कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहन्नारदीयपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकर्ता
एस. एन. खण्डेलवाल

पूर्वार्द्धम्

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२५७
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहन्नारदीयपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

पूर्वार्द्धम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०७३, सन् २०१६

ISBN : 978-81-218-0376-2 (पूर्वार्द्धम्)

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
(गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर)
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : २३३३४५८ (आफिस), २३३४०३२ एवं २३३५०२० (आवास)
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

निवेदन

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासदेव भारतीय संस्कृति के महान् आधार स्तम्भ हैं। वैसे तो पुराण परम्परा में वर्णित है कि प्रति मन्वन्तर के पृथक्-पृथक् व्यास होते हैं; परन्तु वर्त्तमान चतुर्युग में इन श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास की ही प्रधानता सर्वत्र परिलक्षित होती है। इन महापुरुष की ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-काव्य तथा इतिहास वर्णन परम्परा तो अद्वितीय है। व्यासदेव परमज्ञान के वारिधि हैं। व्यासदेव रूपी उस वारिधि में उनकी वाग्विभूति की तरंगे उत्ताल रूप से नर्त्तन करती रहती हैं। परमात्म तत्व का निदर्शन ही इस जलनिधि का तट है। इस वारिधि की अतल गहराई में असंख्य उपाख्यान, तर्क तथा उपदेश रूपी अमूल्य रत्न बिखरे पड़े हैं। ऐसे परम ज्ञानरूप श्रीव्यासदेव अपने कृतित्व पुराण साहित्य से सभी को पावन करें। यथा—

वाग्विस्तरा यस्य बृहत्तरङ्गा, वेलातटं वस्तुनि तत्वबोधः।
रत्नानि तर्कप्रसरप्रकाराः, पुनात्वसौ व्यासपयोनिधिर्नः॥ —(संक्षेप शारीरक)

यह बृहद्नारदीयपुराण व्यासदेव की ही कृति है। यही **बृहद्नारदीय पुराण** भाषानुवाद सहित दो **खण्डों** में प्रस्तुत है। ग्रन्थ **इण्डियन कल्चर जिल्द ३** पृष्ठ ४७७-४७८, के अवलोकन से ज्ञात होता **है कि यह एक** प्रमाणिक पुराण है। इसका वंगवासी संस्करण मात्र ३८ अध्याय तथा ३६०० श्लोकों **वाला बंगभाषा में** मिलता है। लेकिन वेंकटेश्वर प्रेस का संस्करण दो भाग में है, जिसमें द्वितीय भाग में ५५१३ **श्लोक अंकित हैं।** उपरोक्त **जिल्द ३** में यह कहा गया है कि यह एक कट्टर वैष्णव सम्प्रदाय की कृति है। **मत्स्यपुराण** तथा अग्निपुराण में जिस नारदीय पुराण का वर्णन है, वह प्रस्तुत बृहद्नारदीय से पूर्णतः भिन्न प्रतीत होता है। विशेष बात तो यह है कि इस पुराण ने कहा है कि कोई विपत्ति काल में भी बौद्ध मन्दिर में प्रवेश न करे। अतः इसका दृष्टिकोण घोर बौद्ध विरोधी है। अपरार्क तथा स्मृतिचन्द्रिका में इसके कतिपय श्लोक उद्धृत किये गये हैं। जिसके कारण कहा गया है कि आज जो नारदीय पुराण प्राप्त है, उसका संग्रह १००० ईस्वी में किया गया, ऐसा पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित विद्वानों का कथन है, जिनकी दृष्टि में हमारी सभ्यता मात्र ५००० वर्ष पुरानी है! अतः कालनिर्णय कालज्ञ विद्वानों पर ही छोड़ना उचित मानता हूँ।

इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड अनेकांश में तान्त्रिक प्रयोगों पर भी आधारित है, तथापि उनमें जो मन्त्र संकेत दिये गये हैं, उनका मन्त्रोद्धार सम्भव ही नहीं हो सका। क्योंकि इस विषय के जो कोई ग्रन्थ तन्त्राभिधान आदि उपलब्ध हैं, उन कोष की सहायता से भी इन मन्त्र संकेतों की पहेली सुलझ ही नहीं सकी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित इस ग्रन्थ के भाषानुवाद में भी मन्त्र संकेतों का कोई मन्त्रोद्धार अंकित नहीं है। अतः जब ऐसे विद्वद्वर्ग द्वारा यह पहेली नहीं सुलझ सकी, तब मुझ जैसे अज्ञ व्यक्ति का इसमें असफल रह जाना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। अतः मैंने अनुवाद काल में उन मन्त्र संकेतों का मात्र भाषानुवाद लिख दिया; क्योंकि गलत मन्त्रोद्धार करना पाठकों के प्रति एक वंचना ही होती तथा मुझे प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता। अतः इस अल्पज्ञता हेतु पाठक वर्ग क्षमा करें।

यह ग्रन्थ भी तीर्थवर्णन से भरा पड़ा है। सदाचार, तत्कालीन आश्रम धर्म आदि का इसमें सम्यक् वर्णन है। भूगोल का भी यत्किञ्चित् वर्णन इसके प्रथम भाग में दृष्टिगोचर होता है। द्वितीय खण्ड तो एकादशी तत्त्व की महिमा से ओत-प्रोत है। द्वितीय खण्ड के ३४०० श्लोक तो तीर्थों से ही सम्बन्धित हैं तथा प्रथम खण्ड में सांख्य एवं योग का विस्तृत वर्णन है। यह अत्यन्त रोचक कथानक तथा उपदेशों से युक्त एक महान् कृति है।

पुराण एक प्रकार का इतिहास वर्णन भी है। जब भागवत की कथा श्रीशुकदेव ने परीक्षित् से वर्णन कर दिया, तभी उसी प्रसंग में उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर से लगाकर उस समय तक का अर्थात् १ अरब १५ करोड़ वर्ष का इतिहास कहते हुय कहा—"परीक्षित्! इस लोक में असंख्य महापुरुष हो चुके, वे धरती पर स्वतेज तथा अपने यश का विस्तार करते चले गये। ये कथायें तुमको विज्ञान तथा वैराग्य की प्राप्ति कराने हेतु हैं। यह वाणी वैभव तथा वाग्विलास मात्र नहीं है। इसमें जीवन का अर्थ एवं तत्व समाहित है।" —(भागवत १२-३-१४)

पाश्चात्य वैज्ञानिक इतिहास को जमीन में गड़ी हड्डियों में खोजते हैं। हड्डियां मिलती गयीं, उनका इतिहास बनता गया! अस्थियों का सैम्पल सर्वे कदापि मानव इतिहास नहीं लिख सकता। हमारा इतिहास हड्डियों पर आधारित नहीं है। वह अखण्ड काल की अवधारणा से ऊर्जित तथा व्यक्त है। वह लौहयुग, ताम्रयुग जैसी काल्पनिक सीमा में बन्धा नहीं है। बाईबिल में न कोई काल की अवधारणा है, न इतिहास की दीर्घदृष्टि ही है। वहां के इतिहासज्ञ हड्डीजनित कालमान वाले इतिहास को ही विश्व इतिहास मान बैठते हैं। उनका अन्धानुकरण करने वाले हमारे देश के इतिहासकार भी पुराणों का काल एक हजार वर्ष के ही अन्तर्गत् रखने में अपनी बौद्धिक प्रवणता मान बैठे हैं। जो यथार्थ के परे है।

काल का जो अखण्ड प्रवाह है, उसमें मानव का गतिमय अस्तित्व ही इतिहास है। मानवीय प्रज्ञा ने इसका विभाजन युग के रूप में किया था। भाषागत वर्णनार्थ इसे भूत-भविष्य-वर्त्तमान रूप से व्यक्त किया जाता है। अनादि अनन्त कालप्रवाह में घटी किसी घटना को अखण्ड काल से संकेतित कर पाना असंभव होता है। तभी युग संवत्सर आदि विभाग रखे गये हैं। तुलसीदास जी ने यह काल संकेत अत्यन्त प्रकृष्ट रूप से कहा है—**"लव निमेष परमाणु युग"**। पुराणों में यह काल संकेत कल्प, मन्वन्तर, महायुग, युग तथा संवत्सरादि के रूप में वर्णित हैं। पुराणों के अनुसार पृथिवी के समग्र इतिहास की चाभी मन्वन्तर विज्ञान में योजित है। यह भी षड्भागमय है, मनु, सप्तर्षि, देव, इन्द्र, मनुपुत्र एवं अवतार! (देखें—भागवत १२-७-१५)

ये छः तत्व पृथिवी की काल चक्रात्मक गति के इतिहास के द्योतक हैं।

हम जिसे इतिहास कहते हैं, वह अंग्रेजी के शब्द (History) का तरजुमा नहीं है। दोनों शब्दों की अर्थतत्वमूलक आधारभूमि अलग-अलग है। History शब्द से सम्भावना मूलक Inquiry मात्र का द्योतन होता है, जबकि इतिहास शब्द का अर्थ विनिश्चयवाचक है। इसमें तीन पद हैं। इति, ह, आस = इतिहास। इति = ऐसा, इस प्रकार का। ह = निश्चित। आस = था। सम्पूर्ण अर्थ है 'ऐसा निश्चित घटित हुआ था।' अतः यह इतिहास शब्द History का तरजुमा कदापि नहीं है। इसलिये पुराणों को पाश्चात्य History वालों

के दृष्टिकोण से देखने वाले कदापि पुराणों की अति पुरातनता तथा अतिवैज्ञानिकता का सन्धान ही नहीं पा सकते।

पुराणों का इतिहास श्वेतवाराहकल्प से प्रारम्भ होता है। श्रीवत्सनिधि में कहा है—

इतिहासः कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षःसूत्रं घटं विभ्रत्पङ्कजाभरणान्वितः॥

इतिहास पुरुष श्वेतवाराह कल्प से सृष्टिसंवत प्रारम्भ है। वे वराहमुख हैं। समस्त काल उनमें समाहित है, तभी वे हैं महोदर! वे कुशाभास हैं अर्थात् पृथिवी का ब्रह्माण्ड का चित्रविचित्र वर्ण उनकी छटा है। उनके हाथ में अक्षसूत्र है, जो कालसंख्या का प्रतीक है। वाराह का अर्थ है वायु। अन्य अर्थ है प्राण। प्राण जल को शुद्ध करता है। उसे जीवनीशक्ति युक्त करता है। कल्पारंभ में पृथिवी पर असुर प्राणरूप विकृतप्राण (हिरण्याक्ष असुर नामक प्राण था) था। वराह वायु ने उस मलिन प्राण को शुद्ध किया। शुद्ध अर्थात् श्वेत। सूर्य के प्रचण्ड ताप ने मलिन जल को शुद्ध किया। सूर्यकिरणों से तप्त वायु ने जल सुखाकर पृथिवी का उद्धार किया। सूर्य का अन्य नाम है वराह! इस प्रकार पुराणों में वर्णित इतिहासपूर्ण श्वेतवाराहकल्प एक अरब सन्तानबे करोड़ वर्ष पुराना है। अत: इतने सुदीर्घ काल में बहुत-सी घटनाओं के वर्णन का तारतम्य लुप्त हो जाना, शृंखलाओं का टूट जाना, परम्पराओं का विस्मरण हो जाना सम्भव है। अनेक तथ्य काल में समा गये। पुराणोक्त इतिहास के अनेक सांकेतिक अर्थ तथा प्रतीक अब स्पष्ट नहीं हो पा रहे हैं। अनेक सत्य को प्रतीकात्मक, रूपक, संकेत बिम्बरूपेण प्रकट किया गया था। इनके अर्थ, इनकी अभिव्यक्ति का काल के प्रवाह में परिवर्त्तित होते रहना भी असम्भव नहीं रहा। उनमें अनेक क्षेपक तथा पाठभेद जुड़ते गये। हड्डी से इतिहास खोजने वाले पाश्चात्यगण तथा उनके अनुयायी हमारे देश के विद्वान् सुविशाल पौराणिक गाथा को मिथक कह देते हैं। रामायण-महाभारत सब मिथक है! लगता है हमारे पूर्वज मिथकों के उत्पादन का कारोबार करते थे! यही इन लोगों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। भारतीय परम्परा कभी मिथक प्रधान नहीं रही है। वह विज्ञानमयी है। जिसे ये हड्डियों से इतिहास खोजने वाले लोग मिथक कहते हैं, वास्तव में वह रूपक है। प्रतीक है। संकेतार्थ है। यही हमारे पूर्वजों का महान् कौशल रहा है। जिसे ये लोग मिथक कह गये हैं, आज वे मिथक तथ्यपूर्ण तथा सत्य होकर आधुनिक विज्ञान से बराबरी कर रहे हैं। उसका उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। पुराण तो सृष्टि का बृहद साम है!

भारतीय परम्परा में पुराण तो इतिहास विज्ञान तथा शास्त्र है। वह मिथक की सृष्टि नहीं है। आज के पढ़े-लिखे लोग भारतीय होकर भी अपने वक्तव्य, अपनी रचनाओं में पुराणों को, रामायण को मिथक कहकर अपनी अल्पज्ञता का परिचय देते हैं। यह विज्ञानमय है। इस पुराण-इतिहास का उद्देश्य है ज्ञानामृत प्रदान करना। इतिहास पुराण का आभूषण कमल कहा गया है। कमल अर्थात् विकास। अत: यह मिथक न होकर प्रतीकात्मक सत्य है। विकास की धारा है। हजारों वर्ष पूर्व पुराणों ने विश्व की प्रारम्भ अवस्था आदिअण्ड माना है। विज्ञान भी Cosmic egg की Theory मानता है। दोनों ही मानते हैं कि संकोचशक्ति से आदि अण्ड निर्मित है। इसका तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार है—

पुराण की मान्यता	विज्ञान की मान्यता
❑ आदि अण्ड की आभ्यन्तर अवस्था परमघन-तम है	❑ यही विज्ञान मानता है।
❑ आदि अण्ड की बाह्य अवस्था परमभास्वर है।	❑ यही विज्ञान कहता है।
❑ इसका तापमान परम प्रचण्ड है।	❑ यही विज्ञान कहता है।
❑ तापशक्तिवर्द्धन से अण्ड विस्फोट।	❑ यही विज्ञान कहता है।
❑ आदि अण्ड का नाद विस्फोट हुआ।	❑ प्रकारान्तर से विज्ञान इसे Big Bang विस्फोट कहता है।
❑ एक क्षण के नगण्य भाग में विश्व द्रव का विस्फोट।	❑ यही विज्ञान का कथन है।
❑ आदि अण्ड तथा हिरण्यगर्भ का संरचना काल १० अरब ६१ करोड़ २९ लाख, ४९ हजार, ११५ वर्ष।	❑ विज्ञान भी इसे ११ से १५ अरब वर्ष के मध्य मानता है।
❑ विस्फोट से आदिमद्रव्य की उत्पत्ति पाञ्चभौतिक तेजमय।	❑ विस्फोट से आदिमद्रव्य की उत्पत्ति विज्ञान भी मानता है। लेकिन पाञ्चभौतिक तक वह गरीब नहीं पहुंच पाया। वह उसे Dust Cloud कहता है।
❑ वर्त्तमान आकाश गंगा के आदिम द्रव्य का रचनाकाल १० अरब ६१ करोड़ २५ लाख १७ हजार ११५ वर्ष।	❑ गरीब विज्ञान इतना सही आकलन न करके उसे १० अरब से १३ अरब वर्ष कहता है।
❑ नभोगंगा की आन्तरिक आकृति सर्पिल कुण्डलाकृति।	❑ विज्ञान भी यही मानता है।
❑ आकाश गंगा का आभ्यन्तरीण तापमान परम शीतल।	❑ बेचारा विज्ञान भी यही कहता है।
❑ सूर्य का जन्मकाल ६ अरब २९ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार १०५ वर्ष।	❑ विज्ञान भी ६-७ अरब वर्ष कहता है।
❑ सूर्य की सम्पूर्ण आयु १२ अरब १६ कोटि वर्ष।	❑ १२ से १४ अरब वर्ष।
❑ सूर्य की आदि अवस्था आज की तुलना में १६ गुना अधिक।	❑ विज्ञान सही आकलन नहीं कर पाया, तथापि वह भी १० से १६ गुना बृहत् बतलाता है।
❑ द्रव्य की सूक्ष्म अवस्था कण-परमाणु-अणु-स्कन्ध है।	❑ द्रव्य की सूक्ष्म अवस्था कण-परमाणु-अणु है। बेचारा विज्ञान स्कन्ध तक अभी नहीं पहुंचा।
❑ विश्व की अमृतधातु है लौह।	❑ विज्ञान यही मानता है।
❑ विश्व के परम पदार्थ में कार्य कारण नियम नहीं है।	❑ यही विज्ञान कहता है Uncertanity Principle मानता है।
❑ दिक् की मण्डलाकार वक्रता है।	❑ यही विज्ञान मानता है।
❑ काल की गति सर्पिल है।	❑ विज्ञान यही कहता है।
❑ विश्व प्रसरणशील है।	❑ यही विज्ञान मानता है। Theory of Expanding Universe.

इस प्रकार आज के विज्ञान की जो उपलब्धि है, उसे सदियों पहले वेदव्यास ने बिना किसी प्रयोगशाला के तथा करोड़ों डालर के खर्च के बिना, हिमालय की कन्दरा में एकाकी बैठे लिख दिया था। अत: उनकी रचनाओं को मिथक कहने वाले तथाकथित विद्वान् क्या स्वयं मिथकग्रस्त नहीं हैं? विश्व के किसी भी धर्म-सम्प्रदाय ने सृष्टि का इतना सटीक आकलन प्रस्तुत नहीं किया है। तथापि हमारे अपने ही देश के विद्वान् षडयन्त्रकारी पाश्चात्य मैक्समूलर आदि की भ्रमपूर्ण तथा असत्य प्राय: उपलब्धियों से प्रेरित होकर पुराणों को मिथक कह बैठते हैं, इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है? यहां तो कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये। यह तालिका तो एक पुस्तक में भी नहीं समायेगी! साथ ही विज्ञान की अवधारणा सटीक नहीं है; अनुमानित है। जबकि पुराणों ने तो एक-एक वर्ष का गणित प्रस्तुत कर दिया है। जैसे पृथिवी पर व्यवस्थित जैवविकास का प्रारम्भ विज्ञान दो अरब वर्ष से कुछ कम बतलाता है। वेदव्यास उसे सटीक एक अरब, पनचानबे करोड़ अट्ठावन लाख पचासी हजार १०८ वर्ष बतलाते हैं। (यह गणना २००८ ई. की है आज २०१६ ई. है, अत: १०८ वर्ष की जगह ११५ वर्ष कहें।

इस प्रकार से विज्ञ पाठकजन स्वयं आकलन करें कि महर्षि वेदव्यास ने बिना किसी बाह्य साधन का उपयोग किये अन्त:प्रज्ञा द्वारा सृष्टि का सटीक आकलन प्रस्तुत करके आज के विज्ञान के उदय के हजारों वर्ष पूर्व जिन ग्रन्थों में अकाट्य तथ्यों को स्पष्ट कर दिया था, क्या उनकी रचना मिथक हैं?

पृथिवी का जो इतिहास चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का है, उसे पुराण में १४ मन्वन्तर में विभाजित किया है। इस उपरोक्त अवधि में सूर्य आकाश गंगा के केन्द्र की चतुर्दश परिक्रमा करता है। प्रत्येक (मन्वन्तर) परिक्रमा का काल तीस करोड़ वर्ष से कुछ अधिक है। प्रति परिक्रमा में उसका मण्डलस्थ ईन्धन बदल जाता है तथा उसका नवीनीकरण हो जाता है। इसे **इन्द्र परिवर्त्तन** कहते हैं। इसी क्रम में प्रति परिक्रमा में इन्द्र परिवर्त्तन होता है। सृष्टि के कुल १४ इन्द्र हैं। इस ईन्धन परिवर्त्तन से सूर्य की जो सप्त किरणें बदलती हैं, वही **सप्तर्षि परिवर्त्तन** है। प्रति मन्वन्तर में इन्द्र तथा सप्तर्षि बदल जाने का यही रहस्य है। किरण का पर्याय ऋषि शब्द है। मनु का अर्थ है मन की नवीन चैतन्य सत्ता। ये मनु भावी सृष्टि के बीज हैं। मन्वन्तर बदलने से यह बीज रूपी मनु बदल जाते हैं। तब नवबीज सृष्ट होता है। मनु परिवर्त्तन = बीज परिवर्त्तन। सूर्य ही हरि विष्णु हैं। दोनों एक हैं। जब नाना कारणों से इस सृष्टि विकास क्रम में रूकावट उत्पन्न होती है, तब सूर्य (हरि) का तेज अवतरित होता है। यही अवतार है। जैसा अवरोध तदनुरूप अवतार। यही अवतार का तात्पर्यार्थ है। यह सब सूर्य, मनु, सप्तर्षि, इत्यादि तत्व अत्यन्त आलंकारिक रूप से पुराणों में वर्णित हैं। यही वेदव्यास का कौशल है। इतने वैज्ञानिक तथा महत्तर अवधारणा युक्त पुराण साहित्य को मिथक मानने, कहने वालों की बुद्धि परमेश्वर शुद्ध करें, यही प्रभु से प्रार्थना है।

आचार्य दण्डि कहते हैं कि समस्त संसार अन्धकाराच्छन्न हो जाता यदि शब्दरूपा ज्योति देदीप्यमान न होती। भारत की आत्मा ही शब्द ज्योर्तिमय पुराणों से आलोकित है। इसकी ज्योति से ज्ञान-विज्ञान तथा इतिहास सतत् प्रकाशमान हैं। महर्षि वेदव्यास की प्रज्ञा ने विज्ञान तथा इतिहास, दोनों को ही उद्भासित किया है। पुराण मिथक नहीं है। वह युग-युग तक सत्य ही रहेगा।

चातुर्मास, सन् २०१६ ई.

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

पुराणतत्त्व का संधारक : श्रीबृहन्नारदीयपुराणम्

- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', फैलो इण्डोलॉजी

भारतीय संस्कृति के ज्ञानात्मक, दर्शनात्मक और अन्यान्य विषय वैविध्यात्मक अवदान का जीवन्त स्वरूप पुराण वाङ्मय है। यह वाङ्मय लोक के उस महत्त्वपूर्ण तत्व को धारण किए है जिसका उद्भव संस्कृति के उष:काल में आदिम विचार से प्रभविष्णुमय हुआ और प्रथमतः पितामह प्रोक्त स्वीकारा गया अर्थात् परम्परा में प्राचीनतम कहा गया— *पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्॥ अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनि:सृता॥ (मत्स्यपुराण ३, ३-४)* कुछ ऐसा ही मत मार्कण्डेयपुराणकार का रहा है जो इस वाङ्मय को पुराशास्त्र तक सिद्ध करता है और उसकी रचना, सम्पादन, प्रवचन-विवेचन सहित प्रचार और प्रसिद्धि के लिए कविधारा और मुनिधारा का विभाजन निर्धारित करता है। कहा गया है कि कवियों ने वेदविद्या को ग्रहण किया और मुनियों ने पुराणविद्या को जबकि दोनों ही ब्रह्मा के मुखकमल से विनि:सृत हैं— *उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणो अव्यक्त जन्मनः। पुराणमैतद् वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनि:सृता। वेदान् सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः। पुराणं जग्रहुश्चाया मुनयस्तस्य मानसाः॥ (मार्कण्डेयपुराण ४५, २०-२३)* इस वाङ्मय का पुराण नाम ही उनके पुरातन होने का द्योतक है। अथर्ववेद का एक मन्त्र पुराण को एक विशिष्ट विद्या के रूप में प्रतिपादित करता है और इसको वेदों के समानान्तर विकासमान सिद्ध करता है— *ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाजज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ (अथर्ववेद ११, ७, २४)*

अठारह महापुराण और उपपुराण, औपपुराण, स्थलपुराण आदि के पारम्परिक विभाजन के साथ ही नवीनतम धर्मपुराण और धर्मोत्तरपुराणों के वर्गीकरण में अनेक पुराणों के मूल एवं प्रक्षिप्त रूपों पर विमर्श किया जाता रहा है। वर्तमान में पुराण जिस रूप में है, वे भले ही मूल रूप में न हो लेकिन ज्ञान के विकास और उस ज्ञानधारा के जनोपयोग के लिए संग्रह का जो दृष्टिकोण बारम्बार शोधानुसन्धान के रूप में जुड़ा होता है, वही पुराणों के सम्पादन के साथ भी सम्पृक्त रहा है। पुराणों के आदिकाल, मध्यकाल और उत्तरकाल पर भी विचार हुआ है जैसा कि डॉ. जायसवाल ने पाँचवीं सदी तक पुराणों की रचना सम्पन्न होने और उनमें संशोधन-परिष्करण का समय पाँचवीं सदी के बाद होने का विचार दिया है। पुराणों के प्रक्षिप्त विषयों, अध्यायों, श्लोकों के साथ-साथ सार और सारोद्धार रूप में पुराणों के नवगठन पर भी विचार किया जा सकता है— यह सब पुराणों के गम्भीर अध्ययन और उनके कालक्रम की दृष्टि से सम्भव है।

नारदीयपुराण की पृष्ठभूमि पर भी इस तरह का विचार अपेक्षित है। यह पुराण अठारह पुराणों में परिगणित है, जैसा कि विष्णुपुराण, पद्म, भागवत एवं मार्कण्डेयपुराण का मत है। गुप्तकालपूर्व तक यह पुराणों की सूची में स्थान प्राप्त कर चुका था और छठवें स्थान पर गिना जाता था और यही स्थान नारदीयपुराण को भी स्वीकार्य रहा। *(विष्णुपुराण ३, ६,२०-२४; ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीयं तथैव च। भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयं च कीर्तितम्॥ नारद. पूर्व. ९२, २६)* मत्स्यपुराण के काल तक नारदीयपुराण के बारे में यह प्रसिद्ध था कि इसको स्वयं नारद ने बृहत्कल्प का आश्रय लेकर कहा था और इनमें धर्म की अनेक आख्यायिकाओं अर्थात् धर्मों को कहा था। उस समय इसको २५ हजार श्लोकों में रचा गया था और आश्विन मास की पूर्णिमा पर गाय सहित इस पुराण के दान करने की परम्परा समाज में प्रचलित थी— *यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि*

च। पञ्चविंशत् सहस्राणि नारदीय तदुच्यते॥ आश्विने पञ्चदश्यां तु दद्यात् धेनु समन्वितम्। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ (मत्स्य. ५३, २३-२४) नारद कथित उक्त पाठ १२वीं सदी के लगभग शिवपुराणकार को भी ज्ञात था क्योंकि शिवपुराण में कहा गया है कि नारद के द्वारा कहे जाने से ही वह पुराण नारदीय नाम से स्वीकारा गया— *नारदोक्तं पुराणं तु नारदीय प्रचक्षते। (शिव. उमा. ४४, १३०)*

नारदीयपुराण के पाठ के सन्दर्भ :

वर्तमान में उपलब्ध नारदीयपुराण में न तो २५ हजार श्लोक हैं न ही नारद वक्ता, बल्कि १८, ११० श्लोक ही हैं और नारद श्रोता है और ऐतिहासिक दृष्टि से गोविन्दानन्द (१५००-१५४० ई.) ने शुद्धिक्रियाकौमुदी और श्राद्धक्रियाकौमुदी, रघुनन्दन (१५२०-१५७५ ई.) ने स्मृतितत्त्व (७९, २-३) एवं शूलपाणि (१३७५-१४४० ई.) ने 'व्रतकालविवेक' में बृहन्नारदीयपुराण का सन्दर्भ दिया है। यही नहीं, बृहद्धर्मपुराण, जो १३वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सम्पादित हुआ में बृहन्नारदीय और नारदीय दोनों नामों का साक्ष्य है और दोनों को उपपुराणों में गिना गया है— *तथाप्युपपुराणानि कथयामि मुदा शृणु॥ आदावादिपुराणं स्यादादित्याख्यं द्वितीयकम्। ततो बृहन्नारदीयं नारदीयं ततः परम्॥ (बृहद्धर्म. २५, २२-२३)* पारोशरोपपुराण में भी उपपुराण ही कहा है। *(१, २९)* इसी प्रकार बंगाल में १२वीं सदी में सम्पादित हुए शिवपुराण के उत्तरखण्ड और ओडिशा में १०वीं-११वीं सदी में सम्पादित हुए एकाम्रपुराण (१, २०) में भी ये साक्ष्य हैं— लेकिन, इनमें इसके संगठन स्वरूप का सन्दर्भ नहीं है। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में 'नारदोक्तं भविष्यपुराणेन सम्बद्धम्' कहा गया है। *(१, ४६-५२)*

इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि नारदीय के साथ-साथ बृहन्नारदीयपुराण भी रहा है। उसको उपपुराण कहा गया है और महर्षि नारद एवं सनत्कुमार के संवाद स्वरूप में रहा है तथा जिसमें ३८ अध्याय है और ३, ४७८ श्लोक हैं— *इत्येतद्वः समाख्यातं नारदेन प्रभाषितम्। सनत्कुमारमुनये बृहन्नारद सञ्ज्ञितम्॥ सर्व्वपाहरं पुण्यं सर्व्वदुःखनिवारणम्। समस्तपुण्यफलदं सर्व्वयज्ञफलप्रदम्॥ (बृहन्नारदीयपुराण : सम्पादक-हृषीकेश शास्त्री, एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, १८९१ ई., पुनर्मुद्रण चौखम्बा, वाराणसी, १९७५ ई., ३८, १३४-१३५)* किन्तु, इसके श्लोक नारदीयपुराण में भी मिलते हैं और इसने नारदीयपुराण के स्वरूप विकास में सहयोग किया है। निम्न प्रसिद्ध श्लोक इस प्रसंग में द्रष्टव्य है—

शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिव स्मृतः। तयोरन्तरकृद्याति नरकान् कोटिकोटिशः॥

(बृहन्नारदीय. १४, २१४; नारदीय. १५, १५८)

नारदीयपुराण के प्रणयन की पृष्ठभूमि :

वर्तमान पाठ दोनों का समन्वित स्वरूप लगता है। यही नहीं, उसमें अनेक विषयों का संग्रह भी है और कई स्थलों पर वह संहितात्मक स्वरूप लिए हुए है। इसके इस रूप के मूल में स्मरण होता है कि नारद-सनत्कुमार उपनिषद् इस पुराण के प्रणयन में आधार रहा है। नारद का योगदान भक्ति-अध्यात्म सहित ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखा-प्रशाखाओं के प्रवर्तन की दिशा में अप्रतिम कहा जाता है। नारदीय-शिक्षा की परम्परा हमारे यहाँ प्राचीनकाल से ही रही है। यह वैसे ही थी जैसे कि शौनक, वशिष्ठ, विश्वामित्रादि की थी। 'छान्दोग्योपनिषद्' सातवें प्रपाठक में एक आख्यान मिलता है जिसमें नारद सनत्कुमार आदि ऋषियों के समीप ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा लेकर पहुँचते हैं। सनत्कुमार आदि नारद मुनि से पूछते हैं कि वे अब तक कौन-कौन सी विद्याओं का अध्ययन कर चुके हैं—

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदथ्ं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति॥

इस पर नारद अपने अधीत विद्याओं में ज्ञानशाखाओं में वेद, इतिहासपुराण, पितृकर्म, गणित, भाग्यविज्ञान, निधि, तर्क, नीति, देव, पञ्चतत्त्व, धनुर्वेद, ज्योतिष, गान्धर्वादि अनेक विद्याओं का उल्लेख करते हैं—

स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्यमेमि, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोध्येमि॥ (छान्दोग्योपनिषद ७, १, १ व ९)

वहाँ विमर्श में सनत्कुमारादि ऋषि विज्ञान का माहात्म्य विवेचित करते हुए पञ्चतत्त्वों की परमसत्ता को प्रकट करते हैं। यह विश्वास होता है कि नारद की जिज्ञासा का प्रसंग ही भक्ति के बीजारोपण और विकास के काल में पुराण स्वरूप लेकर सामने आया। नारदीयपुराण का आरम्भ कुछ ऐसे ही हुआ है कि प्राचीन काल में मुक्ति की कामना से शौनक इत्यादि ब्रह्मवादी ऋणिगण नैमिषारण्य तीर्थ में तपस्यारत थे। एक बार उन महात्मा ने पुरुषार्थ चतुष्टय के प्राप्ति-साधनों को जानने के लिए एक गोष्ठी आहुत की। उसमें छब्बीस हजार ऐसे ऊर्ध्वरेता मुनि आए जिनके शिष्य और प्रशिष्य बड़ी संख्या में थे। अन्य बहुत से महातेजस्वी और ज्ञानी मुनि भी भाग लेने पहुँचे। सभी ने पृथ्वीतल के पावन तीर्थों और पुण्यदायक क्षेत्रों के विषयों सहित त्रिविध तापों से संतप्त मानवों के लिए मुक्ति की प्राप्ति के उपायों और विष्णु में मनुष्य की अचल निष्ठा के सम्बन्ध में एवं त्रिविध कर्मों की सफलता के उपाय को जानने की जिज्ञासा महर्षि शौनक के सम्मुख प्रकट की। *(नारद. पूर्व. १, ३-१३)*

इस पर शौनक ने सभी आगन्तुकों को सिद्धाश्रम में पुराणविद्या के परम ज्ञाता, व्यासजी के आत्मिक शिष्य एवं पुराणसंहिता के वक्ता पौराणिकोत्तम रोमहर्षण सूत के समीप भेजा। उन सभी से से शौनक ने कहा कि सूत की ख्याति इस बात के लिए है कि वेद व्यास ने उनको समस्त शास्त्रों का उपदेश किया है और इसी कारण वे पुराणविद्या के धारक थे। सभी ऋषि-मुनि सिद्धाश्रम पहुँचे। सभी ने पुराणविद्याविद् सूत से अनेक प्रश्न किए और जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की। अग्निष्टोम यज्ञ के उपरान्त सूत ने स्पष्ट किया कि सनकादि प्रमुख ऋषियों ने महात्मा नारद को जो पुराण सुनाया था, वही मैं आप सभी के प्रति सुनाता हूँ, वह पुराण वेदार्थ सम्मत है और नारदीय नाम से ख्यातिलब्ध है— *शृणुध्वमृषयः सर्वेयदिष्टं वा वदामि तत्। गीतं सनकमुख्यैस्तु नारदाय महात्मने॥ पुराणं नारदोपाख्यमेतद्वेदार्थ सम्मितम्। सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम्॥ (उपर्युक्त १, ३५-३६)*

पाञ्चरात्रादि आगम परम्पराओं का स्पर्श :

पुराणारम्भ में नारद को भगवल्लक्षण आदि की जिज्ञासा करते हुए प्रस्तुत किया गया है और इन प्रश्नों के फलस्वरूप कथा-प्रसंगों का विस्तार होता है। अनेक प्रकार के प्रश्न हैं और उनके प्रशमनार्थ अनेकानेक आख्यानों से समन्वित प्रत्युत्तर भी। पुराणकार ने नारद के नाम अपने समय तक ख्यातिलब्ध अनेक प्रसंगों को सुन्दर ढँग से पिरोया है। इसमें वैष्णवीय आगम परम्परा की नारदसंहिता और नारदीयसंहिता की सामग्री ने जहाँ इसके कलेवर को बढ़ाने में योगदान किया, वहीं ज्योतिषीय नारदसंहिता, धर्मशास्त्रीय नारदस्मृति, नारदमनुस्मृति आदि के उद्धरणों सहित सहित तीर्थों का परिचय दिया है जो पूर्वमध्यकालीन पुराणों की एक विशेषता के रूप में द्रष्टव्य है। यह पुराण सात्विक और विष्णुभक्ति का प्रतिपादन करने वाला है। देखा जाए तो ९वीं-१०वीं सदी के आसपास नारदीय मत के विशिष्ट प्रतिपादन की आगमीय पद्धति का पल्लवन आरम्भ हुआ क्योंकि वेदान्तदेशिक

ने पाञ्चरात्ररक्षा के तृतीय अधिकार में कतिपय श्लोकों (नारदोक्त २, १२२-१२३; २५, ७६-८०) को जिस नारदीयसंहिता से उद्धृत किया, वह अग्निपुराण सहित पाञ्चरात्रग्रन्थों (कपिञ्जलसंहिता १,१५), पाद्मसंहिता (ज्ञा. १, १००), पुरुषोत्तमसंहिता (१, ३०), मार्कण्डेयसंहिता (१, ४२), विश्वामित्रसंहिता (२, १९) हयशीर्षसंहिता (आदि. प. २, ३) में भी स्मृत है।

नारदीयसंहिता में प्रस्तावना में वासुदेवस्वरूप निरूपण, सृष्टिक्रम, शुद्धेतरसृष्टिक्रम, सृष्टि व संहार, वासुदेवक्रीडारूप, पाञ्चरात्र में देवीमायानिरसनोपाय का सन्दर्भ हुआ है और फिर देवाराधनक्रम, चतुमूर्तिमन्त्रादि, द्वादशमासाधिप मूर्ति मन्त्र लक्षण, मत्स्यादिमूर्ति मन्त्र साधन प्रकार, मुद्रालक्षण, दीक्षा विधि निरूपण, मण्डल लक्षण विधान, शिष्यादि दीक्षा विधि, अभिषेक विधि, समयाचार निरूपण, हविर्लक्षण निरूपण, मूर्तिलक्षण, प्रासादलक्षण, प्रतिष्ठा विधि, सालादि प्रतिष्ठापन, जीर्णसंस्कार विधि, ध्वजारोहण विधि, अंकुरार्थ मृत्तिकादि संग्रह, स्पनन विधि, पुष्पादि के अर्पण की विधि, वस्तु प्रतिनिधि विधान, पवित्रोत्सव विधि, आराधनानुरूप फलभेद, प्रार्यश्चित निरूपण, महाहविर्विधान, पूजोपकरणों के लक्षण, सर्वदेव स्थापन विधि, निषेकादि श्मशानान्त संस्कार निरूपण और पञ्चकाल निरूपण किया गया है। *(नारदीयसंहिता : तिरुपति, १९७१ ई., अध्याय १-३०)* इस पुराण का स्वरूप उक्त वर्णन-योजना से पर्याप्त समानता रखता है।

इसके अतिरिक्त ज्योतिष के बढ़ता प्रभाव ने भी पुराणकारों को प्रभावित किया और जनोपयोग की दृष्टि से ज्योतिष के अनेक विषयों को संगृहीत किया जाने लगा। नारदसंहिताकार ने चतुर्थ शताब्दी में ही यह स्वीकार कर लिया था कि ज्योतिष तीन स्कन्धों वाला है— *सिद्धान्तः संहिता होरा रूपं स्कन्धत्रयात्मकम्। वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमम्॥ (नारदसंहिता १, ४)* इस मत को पुराणकार ने सहज ही स्वीकार किया और तीनों ही स्कन्धों के श्रेष्ठ ग्रन्थों के विषयों को यथारूप उद्धृत करने से परहेज नहीं किया, इसमें सूर्यसिद्धान्त, होराशास्त्र या बृहज्जातक और गर्ग एवं नारदसंहिता मुख्य थे। ज्योतिष को वेदांग माना गया है, पुराणकार को 'वेदार्थसम्मितम्' रूप देना था, ऐसे में वेदांग के छहों अंगों को महत्व देना था। ये अंग हैं— छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा एवं व्याकरण। छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोक महीयते॥ *(पा. शि. ४१-४२)* इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के अनेक विषयों का समन्वय करते हुए शैव-वैष्णवैक्य भाव से इस पुराण को निश्चित रूप दिया जिसमें तीर्थों के माहात्म्य को भी महत्व दिया गया है। अन्यान्य पुराणों की तरह इस पुराण ने पुराणों की केवल सूची नहीं दी बल्कि अठारहों पुराणों का विस्तृत परिचय भी दिया और उनके लेखन और दानादि की विधियों को भी महत्व दिया है।

विभाग व पादानुसार विषय विवरण :

यह पुराण बृहत्कल्प कथा से युक्त बताया गया है। इसके दो विभाग है— १. प्राग्भाग और २. उत्तरविभाग। पूर्वार्द्ध के पहले पाद में सूत और शौनक संवाद, सृष्टि का संक्षिप्त विवरण और महात्मा सनक द्वारा अनेक धर्म की कथाएँ कही गई हैं। मोक्षधर्म नामक द्वितीय पाद में सनन्दन ने नारद को मोक्ष का उपाय कहा है, वेदांगों तथा शुक की उत्पत्ति कही है। तृतीय पाद में महातन्त्रोपदिष्ट पशुपाश से विमोक्षण, मन्त्रों का संशोधन, दीक्षा, मन्त्रोद्धार पूजन, प्रयोग, कवच, सहस्रनाम, गणेश, सूर्य, वासुदेव विष्णु, शिव और शक्ति के स्तोत्र संगृहीत है। चतुर्थ पाद के अन्तर्गत पुराणों के लक्षण एवं उनका प्रमाण, दान और दानकाल का अलग-अगल विवरण

है। इसी में व्रत जैसे विषय को तिथ्यानुसार निबद्ध किया गया है। चैत्र से लेकर फाल्गुन मास की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक के व्रतों का समन्वित लेखा-जोखा इसकी विशेषता है। पूर्वार्द्ध को बहदुपाख्यान नाम दिया गया है— *पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यान सञ्ज्ञित: ॥ (पूर्व. १७, १०)*

इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में एकादशी व्रत सम्बन्धी प्रश्न के अनन्तर वशिष्ठ व मान्धाता का संवाद, पवित्र रुक्माँगद की कथा, मोहिनी की उत्पत्ति व कर्म, मोहिनी के प्रति वसु का श्राप व उद्धरण क्रिंया, पुण्यतमा गंगा की कथा, गया यात्रानुकीर्तन, काशी माहात्म्य, अतुलनीय पुरुषोत्तम का वर्णन, अनेक आख्यानों सहित पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा का विधान, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, कामाक्षा, बदरीतीर्थ, प्रभास, पुष्कर और गौतम तीर्थ का माहात्म्य, लक्ष्मणाख्यान, सेतु माहात्म्य, नर्मदातट के तीर्थों का महत्व, अवन्ती, मथुरा और वृन्दावन का माहात्म्य, ब्रह्मा के समीप वसु का गमन और मोहिनी चरित्र जैसे विषयों का निरूपण है। *(पूर्व. १७, १०-१८)* इस पुराण की विषयवस्तु पर प्रो. एच.एच. विल्सन से लेकर प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा, प्रो. ए. डी. पुसालकर, प्रो. वी. आर. आर. दीक्षितार, प्रो. पी. वी. काणे, ए. फड़के शास्त्री आदि ने तो अलग-अलग ढँग से लिखा है ही, डॉ. के. दामोदरन नाम्बियार ने 'नारदपुराण : ए क्रिटिकल स्टडी' (वाराणसी, १९७९ ई.), डॉ. शिवशंकर उपाध्याय ने 'द नारदीय पुराण : ए फिलोसॉफिकल : स्टडी' (मुजफ्फरनगर, १९८३ ई.), डॉ. विन्दाप्रसाद मिश्र ने 'नारदीय ज्योतिष' (दिल्ली, १९९४ ई.), डॉ. हेमवती शर्मा ने 'नारदपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन' (आगरा, १९९९ ई.) और डॉ. मंजु नारंग ने 'विष्णुपुराण तथा नारदपुराण का तुलनात्मक अध्ययन' (दिल्ली, २००५) जैसे शोध प्रबन्धों का प्रणयन कर प्रकाशन भी करवाया है। ये कार्य इस पुराण की सामग्री की सार्वकालिक उपयोगिता का परिचायक भी है।

बृहन्नारदीयपुराण : संगठनात्मक स्वरूप

नारदीय और बृहन्नारदीयपुराण पुराण के पाठों को लेकर मतैक्य नहीं है। नारदीयपुराण का जो पाठ वेंकटेश्वर मुद्रणालय से निकला उसके अध्यायों की पुष्पिकाओं में कहीं नारदपुराण लिखा है तो कहीं बृहन्नारदीयपुराण। 'एतद्' एवं 'इदं' के साथ ही 'बृहन्नारदीय' शब्दों के प्रयोग (नारद. प्रथम. ३६, ६६) की तरह ही इस संस्करण में पहले पाद के अध्याय १-९ एवं ११-३६ के लिए बृहन्नारदीय पुराण एवं अन्य अध्यायों की पुष्पिका में नारदपुराण ही कहा गया है। यह पाठों के अन्तर का सूचक सम्भव है। इसी आधार पर यह माना जा सकता है कि बृहन्नारदीय पुराण दसवीं सदी के मध्य के बाद का नहीं हो सकता है। नारदीयपुराण के अध्यायों की विषयवस्तु पर विश्लेषण के बाद यह माना गया हैकि यह पुराण ७५०-९०० से लेकर ११०० तक सम्पादित हुआ है। यद्यपि प्रसिद्ध विद्वान एच. एच. विल्सन ने इसे १६वीं या १७वीं सदी में सम्पादित स्वीकारा है। स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड के पाठ के इस पुराण में मिलने से प्रो. आर. एन. मेहता ने १७वीं सदी से पूर्व सम्पादन होना स्वीकारा है जबकि हरप्रसाद शास्त्री ने ७००-८०० ईस्वी तक और दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री ने इसे नवीं से पहले का नहीं और १२वीं सदी के बाद का नहीं माना है। प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा ने लगभग प्रत्येक अध्याय की समीक्षा करते हुए ८७५-१००० ईस्वी तक इसका वर्तमान रूप में आना स्वीकार किया है। प्रो. पाण्डुरंग वामन काणे ने ७००-१००० ईस्वी का माना है और बलदेव उपाध्याय ने सम्पादनकाल ७००-९०० ईस्वी स्वीकारा है। *(नारदपुराण : अ स्टडी : के. दामोदरन नाम्बियार, वाराणसी, १९७९, पृष्ठ २२४-२२५)*

नारदीयपुराण की रचनात्मक और सम्पादनात्मक पृष्ठभूमि इस बात की परिचायक है कि उसमें वैश्विक उपयोग के अनेक विषयों का कुछ इस तरह समावेश किया गया है कि वह पुराण अध्यात्म-भक्ति और दर्शन के साथ-साथ जनशिक्षण का हेतु बने और विज्ञान की अनेक शाखाओं का पोषण करने में सर्वथा सहायक सिद्ध हो। इसी कारण आधुनिक विद्वानों ने इस पुराण को विश्वकोशीय स्वरूप का माना है और अग्निपुराण, गरुडपुराण और विष्णुधर्मोत्तर के बराबर महत्व का स्वीकार किया है। इसका स्वरूपात्मक संगठन एक गौ की तरह है जिसमें पूर्वार्द्ध के मुखोपरान्त चार पाद है और पुच्छ के रूप में उत्तरार्द्ध है। व्यास-वाणी को गौ रूप में चतुर्पादात्मक या चौखण्डीय आकार देकर विवेचित करने की परम्परा हमारे यहाँ वायुपुराण के काल से ही चली आती है। वायु की तरह ही मत्स्यपुराण को भी प्रक्रियापाद, अनुषंगपाद, उपोद्घातपाद और उपसंहारपाद से युक्त बताया गया है। ये ही पाद ब्रह्माण्डपुराण में भी उपलब्ध होते हैं। यह मान्यता नारदपुराणकार की रही है— *प्रक्रियाख्योऽनुषंगाख्यः उपोद्वात तृतीयकः। चतुर्थ उपसंहारं पादा चत्वारा एव हि॥ (नारद. चतुर्थ. १०९, १-२)*

यद्यपि उत्तरार्द्ध में पुराणकार (भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त की तरह) इसे दशलक्षण और पञ्चपादसमायुक्ता (उत्तर. ८२, ३० एवं ४१) भी कहता है किन्तु इस चार पाद ही प्रधान है। पुराण में पाद के निर्धारण में चार की संख्या का उपयोग चतुर्वेद का ही द्योतक नहीं है बल्कि चतुर्विधगति, चतुर्युग, चतुःलोकपाल, चतुर्दिक् और चतुःआम्नाय का परिचायक भी है। इसके अतिरिक्त सागर, अम्भोनिधि, अर्णव, जलधि के लिए चार का अंक प्रयुक्त होता आया है और चूंकि पुराण ज्ञान के सागर हैं, ऐसे में भाग और भाग में भी चार की संख्या का प्रयोग पुराणों को 'ज्ञानसिन्धु' कहने के लिए उचित ही स्वीकारा जाता है। नारदीयपुराण ने तो स्वयं अपनी इसी पृष्ठभूमि के लिए कहा ही है कि यह नारदीय उपाख्यान वेद की तरह समस्त शास्त्रों का निदर्शक और श्रोता समुदाय की जिज्ञासा को शान्तकर ज्ञान का विस्तार करने वाला है— *उपाख्यानं वेदसमं सर्वशास्त्रनिदर्शनम्। चतुष्पाद समायुक्तं शृण्वतां ज्ञानवर्धनम्॥ (चतुर्थ. १२५, २६)*

नारदीयपुराण के पूर्वभाग में १२५ अध्याय हैं और उत्तरभाग में ८२ अध्याय हैं। कभी इसके श्लोकों की संख्या २५ हजार थी किन्तु वर्तमान पाठ में १८११० श्लोक मिलते हैं। इसमें सभी सम्प्रदायों का न्यूनाधिक विवरण मिलता है, यह मान्यताओं के सम्मिलन-संगम का उदाहरण है, इस पुराण की यही बड़ी विशेषता है कि वैष्णव होकर भी वक्ता इसको शिवालय में सुना सकता है और शैव होकर वैष्णवीय तीर्थ में सुना सकता है। यह शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्यादि समस्त समुदायों में पठनीय और श्रवण के योग्य रहा है, इसके पठन-श्रवण की अपनी विशिष्ट परम्परा रही है— *शैवानां वैष्णवानां च शाक्तानां सूर्यसेविनाम्। तथैव गाणपत्यानां वर्णाश्रमवतां द्विजाः॥ तपसां च व्रतानां च फलानां सम्प्रकाशकम्। मन्त्राणां चैव यन्त्राणां वेदाङ्गानां विभागशः॥ तथागमानां सांख्यानां वेदानां चैव संग्रहम्। य एतत्पठते भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः॥ स लभेद्वांछितान्कामान्देवादिष्वपि दुर्लभान्। श्रुत्वेदं नारदीयं तु पुराणं वेदसम्मितम्॥ वाचकं पूजयेद्भक्त्या धनरत्नांशुकादिभिः। भूमिदानैर्गवां दानै रत्नदानैश्च सन्ततम्॥ हस्त्यश्वरथदानैश्च प्रीयतेत् सततं गुरुम्। यस्तु व्याकुरुते विप्राः पुराणं धर्मसंग्रहम्॥ चतुर्वर्गप्रदं नृणां कोऽन्यस्ततत् सदृशो गुरुः॥ कायेन मनसा वाचा धनाद्यैरपि सन्ततम्॥ (उपर्युक्त चतुर्थ. १२५, ३४-४०)* हाँ, बौद्ध विचारधारा की आलोचना भी इसमें मिलती है (पूर्व. १५, ५१-५२) और यह विवरण उस काल का परिचायक है जबकि वेद-वेदांग निःस्रत सनातन धर्म-संस्कृति के प्रति भारतीयों में निष्ठाभाव का उद्भव होकर पल्लवन हो रहा था।

स्वदेशानुराग और ग्रन्थ का महत्व :

स्वदेश के प्रति अनुराग का भाव पुराणकार को अभीष्ट रहा तभी तो उसने लिखा कि जो भारतवर्ष में जन्म लेकर पुण्यकर्मों से विमुख होता है, वह अमृत-कलश को छोड़कर विष भरे पात्र को अंगीकार करता है। जो कर्मभूमि भारतवर्ष का आश्रय लेकर धर्म का आचरण नहीं करता, वह वेदज्ञ महात्माओं द्वारा सबसे अधम कहा गया है। जो शुभ कर्मों को छोड़कर पापकर्मों को करता है, वह कामधेनु को छोड़कर आक के दूध को खोजता रहता है। ब्रह्मादि भी अपने भोगों के नाश से भयभीत होकर भारतवर्ष के भूभाग की प्रशंसा करते रहते हैं। अतः भारतवर्ष सबसे अधिक पवित्र और उत्तम समझने के योग्य है। यह देवताओं के लिए भी दुर्लभ और समस्त कर्मों का सुफल देने वाला है, जो इस पुण्यमय भूमि में सत्कार्य करने के लिए तत्पर होता है, उसके समान भाग्यशाली तीनों ही लोकों में दूसरा कोई नहीं हो सकता। जो इस भारतवर्ष में जन्म पाकर अपने कर्मों के बन्धन को काट डालने का उपक्रम करता है, वह नर रूप में छिपा हुआ साक्षात् नारायण है— *सम्प्राप्य भारते जन्म सुकर्मसु पराङ्मुखः। पीयूषकलशं त्यक्त्वा विषभाण्डं स मार्गति॥ श्रुतिनोदितधर्मश्च नात्मनं भावयेन्नरः। स एवमात्मघाती स्यात्पातकिनामनुत्तमः॥ कर्मभूमिं समासाद्य न धर्मं कुरुते नरः। स एव सर्वथा दुःखी कोऽन्यस्तस्मादचेतनः॥ स्वकर्मफलदे स्थित्वा दुष्कर्माणि करोति यः। कामधेनुमतिक्रम्य ह्यर्कक्षीरं स मार्गति॥ एवं भारतभूभागं प्रशंसन्ति दिवौकसः। सनत्कुमारब्रह्माद्याः स्वभोगक्षयभीरवः॥ तस्मात्पुण्यतमो ज्ञेयः सर्वकर्मफलप्रदः। भारताख्यो महाभाग देवानामपि दुर्लभः॥ अस्मिन् वै पुण्यभूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यतः। न तस्य सदृशः कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ अस्मिञ्जातो नरो यस्तु स्वकर्मक्षयणोद्यतः। नररूपपरिच्छिन्नो हरिरेव न संशयः॥ (बृहन्नारदीय. ३, ६९-७६; नारदीय. पूर्व. ३, ६५-७२)* यहाँ की सात पुरियाँ मोक्षदायिका कही गई है और इनका एकश्लोकी स्मरण बृहद्देश को एकता के सूत्र में संधारित करता है— अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥ *(पूर्व. २७, ३५)*

निश्चित ही, बृहन्नारदीयपुराण अपनी विविध विषयक सामग्री के लिए विश्वकोशीय विशिष्टता को धारण किए है। इसमें ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिर्गणित, जातक, मुहूर्त, शिक्षा, व्याकरण, छन्दादि काव्यांगों और संगीत-कीर्तनादि के साथ ही भारतीय आस्तिक दर्शन की पृष्ठभूमि, भक्ति और उसके विविध अंग, वैराग्य, योग एवं उसके अंग, व्रत और उपवास, संध्या उपासना, तीर्थों का परिचय, तीर्थों का माहात्म्य और तीर्थाटन जैसे सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों का सोदाहरण विवेचन मिलता है। अनेकत्र सुभाषितों के मोती भी बिखरे हुए मिलते हैं— *न विना ज्ञान विज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्। न विना गुरुसम्बन्धाज्ज्ञानस्याधिगमस्तथा॥ नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं तपः। नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥ (पूर्व. ५९, १९; ६०, ४३)* पुराणकार ने संगृहीत विषयों को लोकोपयोगी बनाने के लिए आख्यानों, कथाओं का भी यथास्थान प्रयोग किया गया है और उनमें कल्पना नहीं बल्कि व्यावहारिकता विद्यमान लगती है। इसे पुराणसंहिता भी कहा गया है।

पुराणकार संस्कृत के सृजन-संसार और प्रयोग-प्रविधि का सुधि जानकार रहा है और वह पुराण परम्परा को आस्था की पगडण्डी के समानान्तर व्यवहार की वीथिका पर भी अग्रसर करता है जिसमें वह सर्वथा सफल रहा है क्योंकि अद्यावधि शोधानुसन्धान के क्षेत्र में अनेक विषयों के प्रमाण के क्रम में इस पुराण के श्लोकों को उद्धृत किया जाता रहा है। इस पुराण की महत्ता स्वयं पुराणकार ने गीता (१०, २१-४०) में श्रीकृष्ण की विभूतियों की स्वीकारोक्ति की तरह सुन्दरतम ढँग से निरूपित की है—

जिस प्रकार नदियों में गंगा, सरोवरों में पुष्कर, पुरियों में काशी, पर्वतों में सुमेरु, देवों में विष्णु, युगों में कृतयुग, वेदों में सामवेद, पशुधन में कामधेनु, वर्णों में विप्र, दानयोग्य वस्तुओं में अन्न और जल, मासों में मार्गशीर्ष, मृगों में सिंह, देहधारियों में मनुष्य, वृक्षों में अश्वत्थ, दैत्यों में प्रह्लाद, अंगों में मुख, अश्वों में उच्चैःश्रवा, ऋतुओं में वसन्त, यज्ञों में जपयज्ञ, नागों में शेष, पितरों में अर्यमा, अस्त्रों में धनुष, वसुओं में पावक, आदित्यों में विष्णु, देवताओं में देवराज इन्द्र, सिद्धों में कपिल, पुरोहितों में बृहस्पति, कवियों में शुक्राचार्य, पाण्डवों में अर्जुन, भक्तों में हनुमान, तृणों में कुश, इन्द्रियों में मन, गन्धर्वों में चित्ररथ, पुष्पों में कमल, अप्सराओं में उर्वशी और धातुओं में सुवर्ण अपने सजातीय पदार्थों में श्रेष्ठतम हैं, वैसे ही पुराणों में नारदीयमहापुराण श्रेष्ठ कहा गया है— तथैव नारदीयं पुराणेषु प्रकीर्तितम्॥ *(पूर्व. १२४, ४३-४७)* गीर्वाणवाणी वाङ्मय के गौरवशाली प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला के संचालक श्रीमान् व्रजमोहनदासजी गुप्ता और उनके समस्त सहयोगी, परिजन इस महत्वपूर्ण पुराण का सानुवाद प्रकाशन कर रहे हैं, यह प्रसन्नता का विषय है। आदरणीय श्रीनाथजी खण्डेलवाल ने बहुत मनोयोग से इस महापुराण का अनुवाद किया है। मेरी प्रसन्नता यह भी है कि चौखम्बा परिवार ने इसके कतिपय क्लिष्टतम अध्यायों को आत्मसात् कर अनुवाद और पुराण की विषयवस्तु का आद्यन्त अवगाहन कर आमुख लिखने का अवसर प्रदान किया। मैं हृदय से आभारी हूँ और लोकहितैच्छा के स्वरूप में पुराणकार के शब्दों में निवेदन प्रकट करना चाहूँगा— *सर्वलोकहितासक्ता साधवः परिकीर्तिताः। यदृच्छलाभसन्तुष्टिः सा शान्तिः परिकीर्तिता:॥ (पूर्व. १६, ३० व ३५)* अस्तु...

श्रावण कृष्णा ११, कामिका एकादशी, विक्रम संवत् २०७३
३० जुलाई, २०१६ ई.
४० राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर,
उदयपुर (राजस्थान)

❖❖❖

विषयानुक्रमणिका

❖❖❖

।।श्रीगणेशाय नमः।।

।।श्रीगुरवे नमः।।

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

श्रीबृहन्नारदीयपुराणम्

पूर्वार्द्धम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

नैमिषारण्य में मुनिगण द्वारा तप तथा सूत एवं ऋषिगण का संवाद

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।

नरोत्तम नर तथा ॐ नारायण एवं देवी सरस्वती का स्मरण करके तथा उनको नमस्कार करके 'जय' को कहे। (जय शब्द पुराण के लिये व्यवहृत होता है)।

ओं वेदव्यासाय नमः

वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्। उपेन्द्रं सांद्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम्।।१।।
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं यस्यांशा लोकसाधकाः। तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे।।२।।

ॐ वेदव्यास को नमस्कार

मैं वृंदावन में आसीन इन्दिरा को आनन्द प्रदान करने वाले धाम स्वरूप कारुणिक, परानन्दमय, परात्पर उपेन्द्र की, ब्रह्मा-विष्णु-महेश नामक चिद्रूप परम विशुद्ध भगवान् की वन्दना करता हूं। ये परब्रह्म के लोकसाधक अंशरूप हैं। ये सभी उन परब्रह्म के अंश हैं, जो आदिदेव, परमतत्वरूप हैं। मैं उनका भजन करता हूं।।१-२।।

शौनकाद्या महात्मान ऋषयो ब्रह्मवादिनः। नैमिषाख्ये महारण्ये तपस्तेषुर्मुमुक्षवः।।३।।
जितेन्द्रिया जिताहाराः सन्तः सत्यपराक्रमाः।
यजन्तः परया भक्त्या विष्णुमाद्यं सनातनम्।।४।।
अनीर्ष्याः सर्वधर्म्मज्ञा लोकानुग्रहतत्पराः। निर्म्ममा निरहंकाराः परस्मिन्रतमानसाः।।५।।
न्यस्तकामा विवृजिनाः शमादिगुणसंयुताः। कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला ब्रह्मचारिणः।।६।।

पूर्वकाल में मुमुक्षु शौनकादि महात्मा ब्रह्मवादी ऋषिगण नैमिष नामक महारण्य में तप करते रहते थे। ये ऋषिगण जितेन्द्रिय, आहारजित्, सत्य पराक्रमी स्थिति में परम भक्ति के साथ आद्य सनातन विष्णु की आराधना कर रहे थे। ये ईर्ष्या रहित, सर्वधर्मज्ञाता, लोकों पर कृपा करने में तत्पर, ममता रहित, अहंकार रहित, एकाग्र मन से, कामनाओं का त्याग करके, शम प्रभृति गुणयुक्त होकर जटाधारी एवं कृष्णमृग चर्मधारी थे।।३-६।।

गृणन्तः परमं ब्रह्म जगच्चक्षुः समौजसः। धर्म्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तेपुर्नैमिषकानने॥७॥
यज्ञैर्यज्ञपतिं केचिज्ज्ञानैर्ज्ञानात्मकं परे। केचिच्च परया भक्त्या नारायणमपूजयन्॥८॥

वे ऋषिगण समस्त धर्मशास्त्र के अर्थ के तत्ववेत्ता थे। वे सतत् परमब्रह्म की अर्चना एवं ध्यान में तत्पर सर्वज्ञ एवं सर्वद्रष्टा और समान ओजवाले थे, जो नैमिषकानन में तप कर रहे थे। कतिपय ऋषिगण यज्ञानुष्ठान से यज्ञपति प्रभु की, कतिपय ज्ञानात्मक विधि से ज्ञानरूप ब्रह्म की तथा कतिपय परम पराभक्ति द्वारा नारायण की आराधना करते रहते थे।।७-८।।

एकदा ते महात्मानः समाजं चक्रुरुत्तमाः। धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायाञ्ज्ञातुमिच्छवः॥९॥

षड्विंशतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
तेषां शिष्यप्रशिष्याणां संख्या वक्तुं न शक्यते॥१०॥
मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजसः।
लोकानुग्रहकर्त्तारो वीतरागा विमत्सराः॥११॥
कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले।
कथं वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणां तापार्तचेतसाम्॥१२॥

एक बार उन महात्मा मुनिगण ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति उपाय को जानने के लिये एक समाज (सभा) का आयोजन किया। इस आयोजन में २६००० ऊर्ध्वरेता मुनिगण भी थे, जिनके शिष्य-प्रशिष्यों की गणना नहीं की जा सकती। इस गोष्ठी में अनेक महातेजस्वी ज्ञानी मुनिगण भी आये थे। ये सभी लोकों के प्रति अनुग्रह करने वाले, वीतराग तथा ईर्ष्या (मत्सरादि) से रहित थे। वे सभी महामुनि शौनक से यह पूछने लगे कि कौन-कौन से क्षेत्र तथा पुण्यमय तीर्थ पृथिवी पर हैं? भवताप से आर्त्त चित्तवाले मनुष्यों को मुक्ति किस उपाय से मिल सकेगी?।।९-१२।।

कथं हरौ मनुष्याणां भक्तिरव्यभिचारिणी।
केन सिध्येत च फलं कर्मणस्त्रिविधात्मनः॥१३॥

इत्येवं प्रष्टुमात्मानमुद्यतान्प्रेक्ष्य शौनकः। प्राञ्जलिर्वाक्यमाहेदं विनयावनतः सुधीः॥१४॥

मनुष्यों के द्वारा हरि के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति कैसे हो सकेगी? किस उपाय द्वारा कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्म सिद्ध होकर फलप्रद हो सकेंगे? वे मुनिगण करवद्ध होकर एवं विनयावनत होकर ये सभी प्रश्न ऋषिप्रवर शौनक से करने लगे।।१३-१४।।

शौनक उवाच

आस्ते सिद्धाश्रमे पुण्ये सूतः पौराणिकोत्तमः। यजन्मखैर्बहुविधैर्विश्वरूपं जनार्दनम्॥१५॥

स एतदखिलं वेत्ति व्यासशिष्यो महामुनिः।
पुराणसंहितावक्ता शान्तो वै रोमहर्षणिः॥१६॥
युगे युगेऽल्पकान्धर्मान्निरीक्ष्य मधुसूदनः। वेदव्यासस्वरूपेण वेदभानं करोति वै॥१७॥
वेदव्यासमुनिः साक्षान्नारायण इति द्विजाः।
शुश्रुमः सर्वशास्त्रेषु सूतस्तु व्यासशासितः॥१८॥

महर्षि शौनक कहते हैं—हे ऋषिगण! पुण्यमय सिद्धाश्रम में पौराणिकों में उत्तम सूत का निवास है। वे अनेक प्रकार के यज्ञों से विश्वरूप जनार्दन का यजन करते रहते हैं। वे महामुनि व्यासशिष्य पुराणों के सम्बन्ध में जानते हैं। वे रोमहर्षण सूत पुराणसंहिता के वक्ता तथा शान्त हैं। युग-युग में धर्म की अल्पता को देखकर वे मधुसूदन ही वेदव्यास के रूप में वेदों का विभाग सम्पन्न करते हैं। हे द्विजगण! वे वेदव्यास मुनि साक्षात् नारायण ही हैं। यह सुना गया है कि व्यासदेव ने सूत को समस्त शास्त्रों का उपदेश प्रदान किया था।।१५-१८।।

तेन संशासितः सूतो वेदव्यासेन धीमता।
पुराणानि स वेत्त्येव नान्यो लोके ततः परः॥१९॥
स पुराणार्थविल्लोके स सर्वज्ञः स बुद्धिमान्।
स शान्तो मोक्षधर्मज्ञः कर्मभक्तिकलापवित्॥२०॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां सारभूतं मुनीश्वराः। जगद्धितार्थं तत्सर्वं पुराणेषूक्तवान्मुनिः॥२१॥

उन धीमान् वेदव्यास ने ही सूत को समस्त शास्त्रों का उपदेश प्रदान किया है। इनसे अधिक इस लोक में पुराणों का ज्ञाता कोई भी नहीं है। वे लोक में पुराणों के अर्थ के ज्ञाता हैं। वे शान्त मोक्ष धर्म के ज्ञाता तथा कर्म मार्ग तथा भक्ति मार्ग के ज्ञाता हैं। व्यासदेव ने जगत् कल्याण के लिये वेद वेदाङ्ग के सारतत्व को पुराणों में कहा है।।१९-२१।।

ज्ञानार्णवो वै सूतस्तत्सर्वतत्त्वार्थकोविदः।
तस्मात्तमेव पृच्छाम इत्यूचे शौनको मुनीन्॥२२॥

सूत जी ज्ञानार्णव (ज्ञान के सागर) हैं। वे व्यासदेव द्वारा कहे गये सभी तत्वार्थ के मूर्धन्य ज्ञाता हैं। आप सब लोग को उनके पास जाकर उन प्रश्नों का उत्तर पूछना चाहिये। मुनीश्वर शौनक यह कहकर मौन हो गये।।२२।।

ततस्ते मुनयः सर्वे शौनकं वाग्विदां वरम्।
समाश्लिष्य सुसंप्रीताः साधु साध्विति चाब्रुवन्॥२३॥
अथ ते मुनयो जग्मुः पुण्यं सिद्धाश्रमं वने।
मृगव्रजसमाकीर्णं मुनिभिः परिशोभितम्॥२४॥

शौनक का यह वचन सुनकर मुनिगण अत्यन्त गद्गद हो गये। उन्होंने प्रेम पूर्वक उत्तम वाग्मी शौनक को साधुवाद देते हुये वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर सभी मुनि ऋषि शौनक के साथ उस पुण्यमय सिद्धाश्रम वन में गये। वह वन मृगों से समाकीर्ण तथा अनेक मुनियों से शोभायमान था।।२३-२४।।

मनोज्ञभूरुहलताफलपुष्पविभूषितम्। युक्तं सरोभिरच्छोदैरतिथ्यातिथ्यसंकुलम्॥२५॥
ते तु नारायणं देवमनन्तमपराजितम्। यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशू रोमहर्षणिम्॥२६॥
यथार्हमर्चितास्तेन सूतेन प्रथितौजसः। तस्यावभृथमीक्षन्तस्तत्र तस्थुर्मखालये॥२७॥
अधरावभृथस्नातं सूतं पौराणिकोत्तमम्। पप्रच्छुस्ते सुखासीनं नैमिषारण्यवासिनः॥२८॥

वह अत्यन्त मनोहर वृक्षों, लताओं, फलों-पुष्पों से विभूषित था। अनेक स्वच्छ जल वाले सरोवर वहां का शोभावर्द्धन कर रहे थे। वहां अतिथियों का प्रभूत आतिथ्य किया जा रहा था। इन समागत मुनिगण ने वहां रोमहर्षण सूत को देखा। वे अग्निष्टोम यज्ञ से अनन्त, अपराजित नारायण देव की उपासना में तल्लीन थे। रोमहर्षण सूत ने उन अति तेजस्वी विख्यात ऋषिगण का यथायथ रूप से स्वागत किया। वे सभी ऋषिगण वहां यज्ञशाला में अवभृत स्नान होते देखने लगे। जब पौराणिकगण में श्रेष्ठ सूत अवभृत स्नान से निवृत्त होकर सुख के साथ आसनासीन हो गये, तब उन नैमिषवासी ऋषिगण ने सूत जी से प्रश्न किया।।२५-२८।।

ऋषयः ऊचुः

वयं त्वतिथयः प्राप्ता आतिथेयास्तु सुव्रत। ज्ञानदानोपचारेण पूजयास्मान्यथाविधि॥२९॥
दिवौकसो हि जीवन्ति पीत्वा चन्द्रकलामृतम्।
ज्ञानामृतं भूसुरास्तु मुने त्वन्मुखनिःसृतम्॥३०॥

ऋषिगण कहते हैं—"हे सुव्रत! हम सभी अतिथि रूप में आपके यहां आये हैं। आप इन अतिथियों का सत्कार ज्ञानदानरूपी उपचार से करिये। देवलोक निवासी देवता चन्द्रकलारूपी अमृतपान से जीवित रहते हैं। उसी प्रकार हम भूदेवता ब्राह्मणगण आपके मुख से निःसृत ज्ञानरूपी अमृतपान द्वारा जीवन धारण करते हैं।।२९-३०।।

येनेदमखिलं जातं यदाधारं यदात्मकम्। यस्मिन्प्रतिष्ठितं तात यस्मिन्वा लयमेष्यति॥३१॥
केन विष्णुः प्रसन्नः स्यात्स कथं पूज्यते नरैः।
कथं वर्णाश्रमाचारश्चातिथेः पूजनं कथम्॥३२॥
सफलं स्याद्यथा कर्म मोक्षोपायः कथं नृणाम्।
भक्त्या किं प्राप्यते पुंभिस्तथा भक्तिश्च कीदृशी॥३३॥
वद सूत मुनिश्रेष्ठ सर्वमेतदसंशयम्। कस्य नो जायते श्रद्धा श्रोतुं त्वद्वचनामृतम्॥३४॥

यह अखिल लोक किससे उत्पन्न है? इसका आधार क्या है? यह किस स्वरूप वाला है? यह सभी लोक किसमें प्रतिष्ठित हैं तथा ये किसमें लयीभूत हो जाते हैं? किस उपचार से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं? मनुष्यगण उनकी पूजा कैसे करें? वर्णाश्रम का आचार तथा अतिथि का आतिथ्य कैसे करें? मानव का कर्म किस प्रकार सफल हो सकता है? मोक्षलाभ कैसे हो सकेगा? भक्ति का रूप क्या है? लोग भक्ति द्वारा क्या प्राप्त करते हैं? हे मुनिप्रवर सूत! आप हमारे इन सभी संशयों का निराकरण करिये। आपके वचनामृत को सुनकर ऐसा कौन है, जो श्रद्धावान् नहीं हो जायेगा?।।३१-३४।।

सूत उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे यदिष्टं वो वदामि तत्। गीतं सनकमुख्यैस्तु नारदाय महात्मने॥३५॥
पुराणं नारदोपाख्यमेतद्वेदार्थसंमितम्। सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम्॥३६॥
दुःस्वप्ननाशनं धर्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। नारायणकथोपेतं सर्वकल्याणकारणम्॥३७॥

सूत जी कहते हैं—हे समस्त ऋषियों! आपने जो सब पूछा है, वह मैं कहता हूं। सनकादि मुख्य मुनियों ने महात्मा नारद से जो कुछ कहा था, वह वेदार्थ सम्मत नारदोपाख्यान (नारद पुराण) है। वह सभी पापों का नाश करने वाली, दुष्टग्रहों का निवारण करने वाला, दुःस्वप्ननाशिनी, भोग-मोक्ष फलप्रदा, नारायण की कथाओं से शोभित, सभी प्रकार के कल्याण को प्रदान करने वाली पुराणकथा है।।३५-३७।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुभूतं महाफलम्। अपूर्व पुण्यफलदं श्रृणुध्वं सुसमाहिताः॥३८॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
श्रुत्वैतदार्षं दिव्यं च पुराणं शुद्धिमाप्नुयात्॥३९॥
यस्यैकाध्यायपठनाद्वाजिमेधफलं लभेत्। अध्यायद्वयपाठेन राजसूयफलं तथा॥४०॥

यह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप महाफल का हेतुभूत पुराण है। यह अपूर्व पुण्यफलप्रद है। आप सभी इसे सुसमाहित हो एकाग्रता के साथ श्रवण करिये। महापातक युक्त तथा उपपातकी भी इस आर्ष तथा दिव्य पुराण का श्रवण करके शुद्धिलाभ कर लेते हैं। इसके मात्र एक अध्याय पाठ का फल अश्वमेधयज्ञ के समान है तथा दो अध्याय के पाठ का फल राजसूय यज्ञ के बराबर मिलता है।।३८-४०।।

ज्येष्ठमासे पूर्णिमायां मूलर्क्षे प्रयतो नरः। स्नात्वा च यमुनातोये मथुरायामुपोषितः॥४१॥
अभ्यर्च्य विधिवत्कृष्णं यत्फलं लभते द्विजाः।
तत्फलं समवाप्नोति अध्यायत्रयपाठतः॥४२॥
तत्प्रवक्ष्यामि वः सम्यक् शृणुध्वं गदतो मम।
जन्मायुतार्जितैः पापैर्मुक्तः कोटिकुलान्वितः॥४३॥
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्रैव प्रतितिष्ठति। श्रुत्वास्य तु दशाध्यायान्भक्तिभावेन मानवः॥४४॥
निर्वाणमुक्तिं लभते नात्र कार्या विचारणा। श्रेयसां परमं श्रेयः पवित्राणामनुत्तमम्॥४५॥

जब ज्येष्ठमास की पूर्णिमा के दिन मूल नक्षत्र हो, उस समय यमुनास्नान तथा एकाग्रता पूर्वक मथुरा में उपवासी रहने वाले व्यक्ति को जो फल मिलता है, वैसा ही फल इस पुराण के अध्यायत्रय के पाठ से प्राप्त होता है। मथुरा में उपवासी रहकर, यमुना स्नान का एवं वहां कृष्ण की सविधिपूजा का जो फल है, वही फल केवल इस पुराण के तीन अध्याय के पाठ से ही प्राप्त हो जाता है। मैं सम्यक् रूप से इस पुराण को कहता हूं। आप लोग उसे सुनिये। इस पुराण का श्रवण करने वाला दसों हजार जन्मों के पाप से रहित होकर अपने कोटि कुल वालों के साथ ब्रह्मपद लाभ करके वहां प्रतिष्ठित हो जाता है। इसके दस अध्याय का श्रवण भक्तिभाव से जो मनुष्य करता है, उसे निर्वाणमुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह पुराण श्रेयसमूह में परम श्रेयरूप तथा पवित्रों में भी अत्यन्त पवित्र है।।४१-४५।।

दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतो द्विजाः।
श्रद्धया सहितो मर्त्यः श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा॥४६॥
पठित्वा मुच्यते सद्यो महापातकराशिभिः। सतामेव प्रवक्तव्यं गुह्याद्गुह्यतरं यतः॥४७॥

हे द्विजगण! इस पवित्र पुराण को अवश्य सुनें, क्योंकि यह दुःस्वप्न नाशक है। जो कोई इसके एक श्लोक को अथवा आधे श्लोक को भी श्रद्धा के साथ सुनता है अथवा पढ़ता है, वह तत्काल अनेक महापातकों से युक्त होने पर भी उनसे मुक्त हो जाता है। यह पुराण सत् व्यक्ति से ही कहें। यह गुप्त से भी गुप्त एवं गोपनीय है।।४६-४७।।

वाचयेत्पुरतो विष्णोः पुण्यक्षेत्रे द्विजन्तिके।
ब्रह्मद्रोहपराणां च दम्भाचारयुतात्मनाम्॥४८॥
जनानां बकवृत्तीनां न ब्रूयादिदमुत्तमम्। त्यक्तकामादिदोषाणां विष्णुभक्तिरतात्मनाम्॥४९॥

इसे पुण्यक्षेत्र में विष्णु के समक्ष द्विजों से कहें। ब्रह्मद्रोही, दम्भाचार से युक्त, दिखावटी बकभक्ति करने वाले, ऐसे लोगों से इस उत्तम पुराण को कभी न कहें। इस पुराण को उनको सुनाना चाहिये जो कामादि दोषों से रहित तथा विष्णुभक्तियुक्त आत्मा वाले हैं।।४८-४९।।

सदाचारपराणां च वक्तव्यं मोक्षसाधनम्। सर्वदेवमयो विष्णुःस्मरतामार्तिनाशनः॥५०॥
सद्भक्तिवत्सलो विप्रा भक्त्या तुष्यति नान्यथा।
अश्रद्धयापि यान्नाम्नि कीर्तितेऽथस्मृतेपिवा॥५१॥
विमुक्तः पातकैर्मर्त्यो लभते पदमव्ययम्। संसारघोरकान्तारदावाग्निर्मधुसूदनः॥५२॥

इस पुराण को जो कि मोक्षसाधनरूप है, सदाचार परायण लोगों को ही सुनायें। हे विप्रवृन्द! सर्वदेवमय विष्णु स्मरण मात्र से लोगों की आर्त्ति के नाशक हैं। वे सद्भक्तिवत्सल देव केवल भक्ति से प्रसन्न होते हैं। अन्य उपाय से प्रसन्न नहीं होते। जो कोई अश्रद्धा से भी विष्णु का नाम स्मरण करता है अथवा उसे वाणी से कहता है, वह व्यक्ति पातकों से मुक्त होकर अव्यय पद की प्राप्ति करता है। इस संसाररूपी महाघोर वन को दग्ध करने हेतु मधुसूदन ही दावाग्निरूपी है।।५०-५२।।

स्मरतां सर्वपापानि नाशयत्यासु सत्तमाः। तदर्थद्योतकमिदं पुराणं श्राव्यमुत्तमम्॥५३॥
श्रवणात्पठनाद्वापि सर्वपापविनाशकृत्। यस्यास्य श्रवणे बुद्धिर्जायते भक्तिसंयुता॥५४॥
स एव कृतकृत्यस्तु सर्वशास्त्रार्थकोविदः।
यदर्जितं तपः पुण्यं तन्मन्ये सफलं द्विजाः॥५५॥
यदस्य श्रवणे भक्तिरन्यथा नहि जायते। सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः॥५६॥
निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः। पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः॥५७॥
तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः। समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः॥५८॥
पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते। अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नराः॥५९॥

पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः।
अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः॥६०॥
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावितः। पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुंसः प्रवर्तते॥६१॥
पुरार्जितानि पापानि तस्य नश्यन्त्यसंशयम्। पुराणे वर्तमानेऽपि पापपाशेन यन्त्रितः।
आदरेणान्यगाथासु सक्तबुद्धिः पतत्यधः॥६२॥

हे सत्तमगण! भगवान् स्मरण मात्र से उस व्यक्ति के समस्त पातकों का नाश कर देते हैं। उन प्रभु की महिमा के द्योतक इस उत्तम पुराण का सर्वदा श्रवण करता रहे। यह सर्वपाप नाशक है। इसके श्रवण से बुद्धि भक्तियुक्त हो जाती है। वह कृतकृत्य तथा सभी शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है। हे द्विजवृन्द! जिसने तप द्वारा पुण्यार्जन किया है, वही द्विज सफल है। उसे ही इस पुराण के श्रवण द्वारा भक्ति अर्जित हो पाती है। अन्यथा भक्ति उत्पन्न नहीं होती। सत्कथा श्रवण करने की इच्छा उनमें ही जाग्रत होती है, जिनमें जगत् का हित करने की कामना रहती है। पाप तत्पर लोगों की प्रवृत्ति सदैव पराई निन्दा तथा कलह में लगी रहती है। जो पुराणों में अर्थवाद रूपी दोष देखते हैं, वे नराधम हैं। उनके सभी अर्जित पुण्यों का क्षय हो जाता है। (अर्थवाद=अर्थात् पुराण कथाओं को असत्य तथा बढ़ा-चढ़ा कर कही बात मानते हैं) वे नराधम समस्त कर्मों को निर्मूल करने (संसारचक्र से छुड़ाने वाले) वाले पुराणोक्त उपायों को अर्थवाद बतलाते हैं, उनको नरक प्राप्त होता है। मोहग्रस्त लोग पुराण साधन नहीं करते। हे द्विजोत्तमगण! जो अनायास पुण्यलाभ करना चाहते हैं, वे भक्तिभाव से पुराणों का श्रवण करें। जो व्यक्ति अपनी बुद्धि पुराण श्रवण में लगा देता है, निःसंदिग्ध रूप से उसके सभी पूर्वार्जित पापों का नाश हो जाता है। पुराणों के वर्त्तमान रहते पापपाशबद्ध व्यक्ति जब अन्य कथानकों में अपना मन लगाता है, तब वह पाप के गर्त्त में अवश्य पतित होगा।।५३-६२।।

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्यः।
प्रयाति विष्णोः परमं पदं यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजाः॥६३॥
तस्मादिदं नारदनामधेयं पुण्यं पुराणं शृणुत द्विजेन्द्राः।
यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिहीनो नरो भवेदच्युतनिष्ठचेताः॥६४॥

जो मनुष्य सत्सङ्ग, देवार्चन, सत्कथा श्रवण तथा हितकारी उपदेशों के श्रवण में निरत है, वह देहत्यागोपरान्त अच्युत एवं अमित तेजस्वी होकर विष्णु के परमपद का लाभ करता है। हे द्विजेन्द्रवृन्द! इस कारण आप लोग इस पुण्यप्रद नारद (पुराण) नामक पुण्य पुराण का श्रवण करिये। इसके श्रवण मात्र से मानव जन्म-जरा आदि से मुक्त होकर अच्युत के प्रति निष्ठावान् चित्तयुक्त हो जाता है।।६३-६४।।

वरं वरेण्यं वरदं पुराणं निजप्रभाभावितसर्वलोकम्।
संकल्पितार्थप्रदमादिदेवं स्मृत्वा व्रजेन्मुक्तिपदं मनुष्यः॥६५॥

वरप्रद, वरेण्य, श्रेष्ठ, पुरातन, अपने प्रभाव से अपनी कान्ति से सभी लोकों को भावित करने वाले, सभी संकल्पित कामनाओं को प्रदान करने वाले आदिदेव का स्मरण करने वाला मनुष्य मुक्तिपद लाभ कर लेता है।।६५।।

ब्रह्मेशविष्णवादिशरीरभेदैर्विश्वं सृजत्यत्ति च पाति विप्राः।
तमादिदेवं परमं परेशमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम्॥६६॥

हे ब्राह्मणवृन्द! वे एक आदिदेव ही अपने शरीरभेद द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपी होकर ब्रह्मारूपेण विश्व सृजन, विष्णुरूपेण सृष्टिपालन तथा शिवरूपेण सृष्टि संहार कार्य करते हैं। उन आदिदेव परम परमेश्वर के ध्यान द्वारा उनमें चित्त लगाने वाला मुक्तिलाभ करता है।।६६।।

यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः परः पराणां परमः परस्मात्।
वेदान्तवेद्यः स्वजनप्रकाशः समीड्यते सर्वपुराणवेदैः॥६७॥

जो देव नाम, जाति प्रभृति विकल्पों से रहित पर, परात्पर, परम से भी परमरूप, वेदान्त द्वारा ही ज्ञात होने वाले, अपने स्वजनों के लिये प्रकाशित (व्यक्त) रहते हैं, उन देवता की आराधना पुराण तथा वेदों के ज्ञाता लोग करते रहते हैं।।६७।।

तस्मात्तमीशं जगतां विमुक्तिमुपासनायालमजं मुरारिम्।
परं रहस्यं पुरुषार्थहेतुं स्मृत्वा नरो याति भवाब्धिपारम्॥६८॥

समस्त जगत् हेतु मुक्तिप्रदाता, उपासना से मिल जाने वाले, अज (अजन्मा) मुरारी का स्मरण करने वाला, उस परम रहस्य का ज्ञाता होकर भवसागर को पार कर लेता है।।६८।।

वक्तव्यं धार्मिकेभ्यस्तु श्रद्दधानेभ्य एव च। मुमुक्षुभ्यो यतिभ्यश्च वीतरागेभ्य एव च॥६९॥
वक्तव्यं पुण्यदेशे च सभायां देवतागृहे। पुण्यक्षेत्रे पुण्यतीर्थे देवब्राह्मणसन्निधौ॥७०॥
उच्छिष्टदेशे वक्तार आख्यानमिदमुत्तमम्। पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम्॥७१॥

इस पुराण को केवल धार्मिक, सश्रद्ध, मुमुक्षु, यति तथा वीतराग लोगों को ही सुनाना चाहिये। इस पुराण का प्रवचन पुण्यदेश में, पुण्यमयी सभा में, देवमंदिरों में, पुण्यक्षेत्र में, पुण्यतीर्थ में, देव प्रतिमा तथा ब्राह्मणों की सन्निधि में ही करें। जो वक्ता अपवित्र देश में इस उत्तम आख्यान को सुनाता है, वह प्रलयपर्यन्त घोर नरक में पतित होता है।।६९-७१।।

मृषा शृणोति यो मूढो दम्भी भक्तिविवर्जितः।
सोऽपि तद्वन्महाघोरे नरके पच्यतेऽक्षये॥७२॥
नरो यः सत्कथामध्ये संभाषां कुरुतेऽन्यतः।
या याति नरकं घोरं तदेकाग्रमना भवेत्॥७३॥
श्रोता वक्ता च विप्रेन्द्रा एष धर्मः सनातनः।
असमाहितचित्तस्तु न जानाति हि किंचन॥७४॥
तत एकमना भूत्वा पिबेद्धरिकथामृतम्। कथं संभ्रान्तचित्तस्य कथास्वादः प्रजायते॥७५॥

जो भक्ति रहित मूढ, दम्भयुक्त व्यक्ति इसे केवल बेमन से तथा दिखलावे के लिये सुनता है, वह भी उसी प्रकार से (उसी वक्ता की तरह) घोर नरकगामी होता है। हे विप्रेन्द्रगण! अतएव एकाग्रता के साथ वक्ता इस

सनातन धर्म को कहे तथा एकाग्रता पूर्वक श्रोता इसे श्रवण करे। असमाहित चित्त वाला वक्ता अथवा श्रोता इस कथा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जान पाता। अतः एकाग्रचित्त होकर हरिकथामृत का पान करें। भ्रमित चित्त वाला इस कथा का रस कैसे पा सकेगा?।।७२-७५।।

किं सुखं प्राप्यते लोके पुंसा संभ्रान्तचेतसा।
तत्मात्सर्वं परित्यज्य कामं दुःखस्य साधनम्।।७६।।
समाहितमना भूत्वा कुर्यादच्युतचिन्तनम्। येन केनाप्युपायेन स्मृतो नारायणोऽव्यये।।७७।।

जो व्यक्ति भ्रान्त (चंचल, भ्रमित) चित्त वाला है, वह इस लोक में क्या सुखलाभ कर सकेगा। तभी दुःखसाधन रूपी लौकिक कामनाओं का त्याग करके समाहित चित्त से अच्युतदेव का चिन्तन करे। येन-केन उपाय से अव्यय नारायण का स्मरण करना चाहिये।।७६-७७।।

अपि पातकयुक्तस्य प्रसन्नः स्यान्न संशयः।
यस्य नारायणे भक्तिर्विभौ विश्वेश्वरेऽव्यये।
तस्य स्यात्सफलं जन्म मुक्तिश्चैव करे स्थिता।।७८।।
धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्था द्विजोत्तमाः। हरिभक्तिपराणां वै संपद्यन्ते न संशयः।।७९।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सूतर्षिसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

अतीव पापी व्यक्ति भी भगवान् को प्रसन्न कर लेता है। जो व्यक्ति विश्वेश्वर, अव्यय, विभु नारायण के प्रति भक्ति युक्त होता है, उसका जन्म सफल है तथा मुक्ति उसके करतलगत रहती है। हे द्विजोत्तमगण! धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति हरिभक्तों को अवश्यमेव प्राप्त हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है।।७८-७९।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सनत्कुमार-नारद संवाद वर्णन नारद कृत विष्णु स्तुति

ऋषयः ऊचुः

कथं सनत्कुमारस्तु नारदाय महात्मने। प्रोक्तावान्सकलान्धर्मान्कथं तौ मिलितावुभौ।।१।।
कस्मिन्स्थाने स्थितौ सूत तावुभौ ब्रह्मवादिनौ। हरिगीतसमुद्गाने चक्रतुस्तद्वदस्व नः।।२।।

ऋषिगण कहते हैं—महात्मा नारद से देवर्षि सनत्कुमार ने किस प्रकार से सभी धर्मों का वर्णन किया

था? वे दोनों महात्मा कहां मिले थे? कहां स्थित होकर उभय ब्रह्मवादियों ने हरि की इस कथा का कथन तथा श्रवण किया था? यह सब विस्तार से कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणो मानसाः सुताः। निर्ममा निरहंकाराः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥३॥
तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दनः। सनत्कुमारश्च विभुः सनातन इति स्मृतः॥४॥
विष्णुभक्ता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणाः। सहस्त्रसूर्यसंकाशाः सत्यसन्धा मुमुक्षुवः॥५॥

सूत जी कहते हैं—महात्मा सनक आदि ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। वे सभी ममता रहित, अहंकारशून्य तथा ऊर्ध्वरेतस् हैं। मैं उनके नाम कहता हूं। वे हैं—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, विभु सनातन। वे सभी विष्णुभक्त, महात्मा, ब्रह्मध्यान परायण, सहस्त्रों सूर्य के समान, सत्यसन्त तथा मुमुक्षु हैं।।३-५।।

एकदा मेरुशृङ्गं ते प्रस्थिता ब्रह्मणः सभाम्।
इष्टं मार्गेऽथ ददृशुः गङ्गां विष्णुपदीं द्विजाः॥६॥
तां निरीक्ष्य समुद्युक्ताः स्नातुं सीताजलेऽभवन्। एतस्मिन्नंतरे तत्र देवर्षिर्नारदो मुनिः॥७॥
आजगाम द्विजश्रेष्ठा दृष्ट्वा भ्रान्तॄन्स्वकाग्रजान्।
तान्दृष्ट्वा स्नातुमुद्युक्तान्नमस्कृत्य कृताञ्जलिः॥८॥
गृणन्नामानि सप्रेमभक्तियुक्तो मधुद्विषः। नारायणाच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन॥९॥
यज्ञेश यज्ञपुरुष कृष्ण विष्णो नमोऽस्तु ते। पद्माक्ष कमलाकान्त गङ्गाजनक केशव।
क्षीरोदशायिन्देवेश दामोदर नमोऽस्तु ते॥१०॥

एक बार वे सभी ब्रह्मा की सभा में जाने हेतु मेरुशृंग की ओर गये। उस प्रस्थान वाले मार्ग में उन्होंने विष्णुपद से निर्गत गंगा को देखा। गंगा को देखकर वे सभी महामुनि सीता (गंगा) जल में स्नानार्थ उद्यत हो गये। वहीं कुछ समय के उपरान्त देवर्षि नारद मुनि आ गये। हे द्विजप्रवर! उन देवर्षि नारद ने आकर अपने अग्रज भ्रातागण को वहां देखा। नारद ने स्नानार्थ उद्यत अपने बड़े भाईयों को देखकर उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया! वे सप्रेम भक्तियुक्त होकर मधुहन्ता भगवान् मधुसूदन का नाम लेकर उनकी स्तुति करने लगे। नारद कहते हैं—"हे नारायण, अच्युत, अनन्त, वासुदेव, जनार्दन, यज्ञेश, यज्ञपुरुष, कृष्ण, विष्णु! आपको प्रणाम! हे पद्माक्ष, कमलाकान्त, गंगाजनक, केशव, क्षीरसागरशायी देवेश, दामोदर! आपको प्रणाम!"।।६-१०।।

श्रीराम विष्णो नरसिंह वामन प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेव।
अजानिरुद्धामलरुङ् मुरारे त्वं पाहि नः सर्वभयादजस्त्रम्॥११॥

हे श्रीराम, विष्णु, नृसिंह, वामन, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव, अज, अनिरुद्ध, मुरारि! आप सदा समस्त भय से हमारी रक्षा करिये!।।।११।।

इत्युच्चरन्हरेर्नाम नत्वा तान्स्वाग्रजान्मुनीन्।
उपासीनश्च तैः सार्द्धं सस्नौ प्रीतिसमन्वितः॥१२॥

तेषां चापि तु सीताया जले लोकमलापहे। स्नात्वा संतर्प्य देवर्षिपितन्विगतकल्मषाः॥१३॥
उत्तीर्य्य संध्योपास्त्यादि कृत्वाचारं स्वकं द्विजाः।
कथां प्रचक्रुर्विविधा नारायणगुणाश्रिताः॥१४॥
कृतक्रियेषु मुनिषु गङ्गातीरे मनोरमे। चकार नारदः प्रश्नं नानाख्यानकथान्तरे॥१५॥

एवंविध नारद ने हरिनाम का कीर्त्तन करने के पश्चात् अपने अग्रज मुनियों को नमस्कार किया तथा प्रेम पूर्वक उनके साथ स्नान करके आसनासीन हो गये। वे संसार के समस्त कलुष का अपहरण करने वाली गंगा के जल में स्नान करने के अनन्तर देवता, ऋषि तथा पितरों का तर्पण करके शुद्ध तथा कलुष रहित हो गये थे। हे द्विजवृन्द! इस प्रकार नारद ने सन्ध्या उपासना आदि अपने आचार का पालन किया। नित्यकर्मों से निवृत्त होकर वे परस्परतः प्रभु नारायण तथा उनके आश्रित जनों की चर्चा करने में प्रवृत्त हो गये। इस प्रकार जब सभी अग्रज मुनिगण मनोरम गंगा तट पर समस्त कृत्य तथा क्रिया आदि सम्पन्न कर चुके, तब देवर्षि नारद ने अपने अग्रज सनकादि मुनिगण से नाना आख्यानों तथा कथाओं के सम्बन्ध में उनसे प्रश्न किया।।१२-१५।।

नारद उवाच

सर्वज्ञाः स्थ मुनिश्रेष्ठाः भगवद्भक्तितत्पराः।
यूयं सर्वे जगन्नाथा भगवन्तः सनातनाः॥१६॥
लोकोद्धारपरान्युष्मान्दीनेषु कृतसौहृदान्। पृच्छे ततो वदत मे भगवल्लक्षणं बुधाः॥१७॥
येनेदमखिलं जातं जगत्स्थावरजङ्गमम्। गङ्गापादोदकं यस्य स कथं ज्ञायते हरिः॥१८॥
कथं च त्रिविधं कर्म सफलं जायते नृणाम्।
ज्ञानस्य लक्षणं ब्रूत तपसश्चापि मानदाः॥१९॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे सर्वज्ञ भगवद्भक्ति तत्पर श्रेष्ठ मुनिगण! आप सभी जगत् के नाथ, सनातन, भगवान् स्वरूप हैं। आप लोग सतत् लोकों के उद्धार में तत्पर, दीनों पर करुणा तथा सौहार्द्र की वर्षा करने वाले हैं। हे बुधजन! मैं भगवत् लक्षण के सम्बन्ध में पूछ रहा हूं। जिन भगवान् से समस्त स्थावर-जंगम जगत् उत्पन्न होता है, जिनकी पादोदक गंगा है, हम उन श्रीहरि को किस प्रकार से जान सकते हैं? मनुष्यों के त्रिविध कर्म (कायिक-वाचिक-मानसिक कर्म) किस प्रकार से सफल होते हैं? हे मानद! ज्ञान तथा तप के लक्षण को कहिये।।१६-१९।।

अतिथेः पूजनं वापि येन विष्णुः प्रसीदति। एवमादीनि गुह्यानि हरितुष्टिकराणि च।
अनुगृह्य च मां नाथास्तत्त्वतो वक्तुमर्हथ॥२०॥

जिस अतिथि पूजन कर्म से विष्णु प्रसन्न होते हैं, ऐसे जो अन्य गुह्य उपाय हरि को प्रसन्न करने वाले हैं, हे नाथ! आप लोग मुझ पर कृपा करके वह सब कहें।।२०।।

शौनक उवाच

नमः पराय देवाय परस्मात्परमाय च। परावरनिवासाय सगुणायागुणाय च॥२१॥

अमायायात्मसंज्ञाय मायिने विश्वरूपिणे। योगीश्वराय योगाय योगगम्याय विष्णवे॥२२॥
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय सर्वज्ञानैकहेतवे। ज्ञानेश्वराय ज्ञेयाय ज्ञात्रे विज्ञानसंपदे॥२३॥

महर्षि शौनक कहते हैं—परम परदेवता, परमश्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर देव को प्रणाम! आप परम महान् से भी महत्तर तथा अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म में भी विराजमान हैं। आप सगुण-अगुण, माया विनिर्मुक्त संज्ञावाले तथा विश्वरूप हैं। आप प्रभु योगीश्वर, योगी, योगगम्य विष्णु हैं। आपको प्रणाम! आप ज्ञानरूप, ज्ञान से प्राप्त होने वाले, सर्वज्ञान समूह के हेतुभूत हैं। आप ज्ञानेश्वर, ज्ञेय, ज्ञाता तथा विज्ञानसम्पदा रूप हैं।।२१-२३।।

ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातृपापहराय च। ध्यानेश्वराय सुधिये ध्येयध्यातृस्वरूपिणे॥२४॥

आदित्यचन्द्राग्निविधातृदेवाः सिद्धाश्च यक्षासुरनागसङ्घाः।
यच्छक्तियुक्तास्तमजं पुराणं सत्यं स्तुतीशं सततं नतोऽस्मि॥२५॥

आप ध्यान स्वरूप, ध्यान से प्राप्त होने वाले, ध्यान करने वाले लोगों का पापहरण करने वाले, ध्यानेश्वर, सुधीरूप, ध्येय-ध्याता स्वरूप हैं। आदित्य, चन्द्र, अग्नि, विधाता, समस्त देवगण, सिद्ध, यक्ष, असुर, नागगण जिनकी शक्ति से युक्त हैं, उन अजन्मा, पुरातन, सत्य, समस्त स्तुतिसमूह के ईश्वर को मैं सतत् प्रणाम करता हूं!।।२४-२५।।

यो ब्रह्मरूपी जगतां विधाता स एव पाता द्विजविष्णुरूपी।
कल्पान्तरुद्राख्यतनुः स देवः शेतेंऽघ्रिपानस्तमजं भजामि॥२६॥

जो ब्रह्मा रूप से विश्व की रचना करते हैं, जो द्विज विष्णु के रूप में सबकी रक्षा करते हैं, जो कल्पान्त में रुद्र नामक देह धारण करके समस्त सृष्टि का लय करके सर्वान्त में क्षीरसमुद्र में शयन करते हैं, उन अजन्मा का मैं भजन करता हूं।।२६।।

यन्नामसंकीर्त्तनतो गजेन्द्रो ग्राहोग्रबन्धान्मुमुचे स देवः।
विराजमानः स्वपदे पराख्ये तं विष्णुमाद्यं शरणं प्रपद्ये॥२७॥

जिनके नाम संकीर्तन मात्र से गजेन्द्र को ग्राह के तथा उग्रबन्धन से मुक्ति प्राप्त हो गयी थी, जो देवदेव सर्वदा अपने पर स्वपद पर विराजित रहते हैं, उन आद्य विष्णु की शरण ग्रहण करता हूं।।२७।।

शिवस्वरूपी शिवभक्तिभाजां यो विष्णुरूपी हरिभावितानाम्।
संकल्पपूर्वात्मकदेहहेतुस्तमेव नित्यं शरणं प्रपद्ये॥२८॥

जो शिवभक्तगण हेतु शिवरूपी होकर, हरिभाव भावित भक्तों हेतु विष्णुरूपी होकर विद्यमान रहते हैं, जो पूर्व सङ्कल्पानुरूप देह प्रतिग्रह करते हैं, उन देवदेव का मैं नित्य शरणागत रहता हूं।।२८।।

यः केशिहन्ता नरकान्तकश्च बालो भुजाग्रेण दधार गोत्रम्।
देवं च भूभारविनोदशीलं तं वासुदेवं सततं नतोऽस्मि॥२९॥

जो केशी दैत्य, नरकासुर का हनन करने वाले हैं, जिन्होंने अपनी बाल्यावस्था में (कृष्णावतार में) अपनी उंगली के अग्रभाग पर पर्वत को धारण किया था, जिन देवता का भूभारहरण करना स्वभाव है अर्थात् जो भूभार विनोदशील हैं, मैं उन वासुदेव को सतत् नमस्कार करता हूं!।।२९।।

लेभेऽवतीर्योग्रनृसिंहरूपी यो दैत्यवक्षः कठिनं शिलावत्।
विदार्य संरक्षितवान्स्वभक्तं प्रह्लादमीशं तमजं नमामि॥३०॥

जिन्होंने अतीव उग्र नृसिंहरूपी होकर शिला के समान कठोर दैत्य हिरण्यकशिपु के वक्ष को विदीर्ण करके अपने भक्त प्रह्लाद को संरक्षित कर दिया था, मैं उन अज ईश्वर को प्रणाम करता हूं!।।३०।।

व्योमादिभिर्भूषितमात्मसंज्ञं निरञ्जनं नित्यमयेयतत्त्वम्।
जगद्विधातारमकर्मकं च परं पुराणं पुरुषं नतोऽस्मि॥३१॥

जो आकाश आदि (पंचतत्वों) से भूषित, आत्मा संज्ञा वाले, निरंजन, नित्य, रहस्यपूर्ण तत्व रूप, जगत्विधाता, कर्म रहित तथा परमपुराण पुरुष हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूं!।।३१।।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रानिलवायुमर्त्यगन्धर्वयक्षासुरदेवसंघैः ।
स्वमूर्तिभेदैः स्थित एक ईशस्तमादिमात्मानमहं भजामि॥३२॥

जो ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, मर्त्यलोकवासी मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, असुर, देवसंघ आदि नानारूप में स्थित हैं, वे एक होकर भी अपनी मूर्त्तिभेद से इन रूपों में स्थित हैं। मैं उन ईश्वर आदि आत्मा का भजन करता हूं।।३२।।

यतो भिन्नमिदं सर्वं समुद्भूतं स्थितं च वै।
यस्मिन्नेष्यति पश्चाच्च तमस्मि शरणं गतः॥३३॥

यः स्थितो विश्वरूपेण सङ्गीवात्र प्रतीयते। असङ्गी परिपूर्णश्च तमस्मि शरणं गतः॥३४॥

जिनसे ये सभी विभिन्न लोकादि समुद्भूत होकर उनमें ही स्थित रहते हैं, जिनमें सर्वान्त में ये सभी लय को प्राप्त हो जाते हैं, मैं उनकी शरण लेता हूं। जो विश्वरूप में स्थित होकर इनके संगी प्रतीत होते हैं (इनमें रत प्रतीत होते हैं), तथापि जो इन सबसे संग रहित, निर्लिप्त एवं परिपूर्ण हैं, मैं उनकी शरण में हूं।।३३-३४।।

हृदि स्थितोऽपि यो देवो मायया मोहितात्मनाम्।
न ज्ञायेत परः शुद्धस्तमस्मि शरणं गतः॥३५॥

सर्वसंगनिवृत्तानां ध्यानयोगरतात्मनाम्। सर्वत्र भाति ज्ञानात्मा तमस्मि शरणं गतः॥३६॥

जो देव माया से मोहित आत्माओं (प्राणियों) के हृदय में स्थित रहते हैं, तथापि जिसे वे मायामोहित प्राणी नहीं जान पाते, मैं उन ईश्वर की शरण में हूं। जो प्रभु समस्त संग से निवृत्त तथा ध्यानयोग तत्पर महात्माओं को सर्वत्र ज्ञानात्मावत् प्रकाशित दृष्टिगत होते हैं, मैं उन प्रभु की शरण में हूं।।३५-३६।।

दधार मंदरं पृष्ठे निरोदेऽमृतमन्थने। देवतानां हितार्थाय तं कूर्मं शरणं गतः॥३७॥
दंष्ट्राङ्कुरेण योऽनन्तः समुद्धत्यार्णवाद्धराम्। तस्थाविदं जगत्कृत्स्नं वाराहं तं नतोऽस्म्यहम्॥३८॥

जिन देव ने समुद्रमन्थन में देवों के लिये अमृत प्राप्ति के लिये मेरु को अपने पृष्ठ पर धारण किया था, मैं उन कूर्मदेव की शरण में हूं। जिन अनन्त देव ने दांतों के अग्रभाग से समुद्र में से पृथिवी का उद्धार किया था तथा उस पर संसार की स्थापना किया था, मैं उन वराह देव को नमस्कार करता हूं!।।३७-३८।।

प्रह्लादं गोपयन्दैत्यं शिलातिकठिनोरसम्। विदार्य हतवान्यो हि तं नृसिंहं नतोऽस्म्यहम्॥३९॥
लब्ध्वा वैरोचनेर्भूमिं द्वाभ्यां पद्भ्यामतीत्य यः।
आब्रह्मभुवनं प्रादात्सुरेभ्यस्तं नतोऽजितम्॥४०॥
हैहयस्यापराधेन ह्येकविंशतिसंख्यया। क्षत्रियान्वयभेत्ता यो जामदग्न्यं नतोऽस्मि तम्॥४१॥

जिन्होंने प्रह्लाद की रक्षा हेतु शिला से भी कठोर हिरण्यकशिपु का वक्ष विदीर्ण करके उसका वध कर दिया था, मैं उन नृसिंह को प्रणाम करता हूं! जिन भगवान् वामन ने विरोचन के पुत्र वलिराज से भूमि दान पाकर उसे दो डग में ही नाप दिया था तथा इस प्रकार ब्रह्मलोक से पृथिवी तक समस्त भुवन देवगण को प्रदान कर दिया था, मैं उन अजित देव वामन को प्रणाम करता हूं! मैं हैययराजा के किये गये अपराध के कारण इक्कीस वार क्षत्रियों का संहार करने वाले जमदग्निपुत्र परशुराम को प्रणाम करता हूं!।।३९-४१।।

आविर्भूतश्चतुर्द्धा यः कपिभिः परिवारितः। हतवान्राक्षसानीकं रामचन्द्रं नतोऽस्म्यहम्॥४२॥
मूर्तिद्वयं समाश्रित्यं भूभारमपहृत्य च। संजहार कुलं स्वं यस्तं श्रीकृष्णमहं भजे॥४३॥

जिन प्रभु ने चार रूपों (राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न) में आविर्भूत होकर वानरों के साथ जाकर राक्षसी सेना का हनन किया था, मैं उन रामचन्द्र को प्रणाम करता हूं! जिन्होंने दो रूप धारण करके बलराम तथा कृष्ण मूर्त्तिरूप में प्रकट होकर पृथिवी के भार का हरण करके इसी क्रम में अपने कुल का भी संहार कर दिया था, मैं उन श्रीकृष्णदेव का भजन करता हूं।।४२-४३।।

भूम्यादिलोकत्रितयं संतृप्तात्मानमात्मनि। पश्यन्ति निर्मलं शुद्धं तमीशानं भजाम्यहम्॥४४॥
युगान्ते पापिनो शुद्धान्भित्त्वा तीक्ष्णसुधारया।
स्थापयामास यो धर्मं कृतादौ तन्नमाम्यहम्॥४५॥

महात्मा लोग अपने स्वात्मा में जिन निर्मल शुद्ध तथा त्रैलोक्यस्वरूप परम आत्मा का दर्शन करते हैं, उन प्रभु को मैं प्रणाम करता हूं! जो देव युगान्त में अशुद्ध पातकी लोगों का संहार अपने तीक्ष्ण खड्ग से करते हैं तथा इस प्रकार जो कृतयुग के प्रारम्भ में धर्मस्थापित करते हैं, मैं उन प्रभु (कल्कि) को प्रणाम करता हूं!।।४४-४५।।

एवमादीन्यनेकानि यस्य रूपाणि पाण्डवाः।
न शक्यं तेन संख्यातुं कोट्यब्दैरपि तं भजे॥४६॥
महिमानं तु यन्नाम्नः परं गन्तुं मुनीश्वराः। देवासुराश्च मनवः कथं तं क्षुल्लको भजे॥४७॥

हे पाण्डवो! इस प्रकार उन परमेश्वर के अनेक रूप हैं, करोड़ों वर्षों में भी उनकी गणना कोई नहीं कर सकता। ऐसे जो प्रभु हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं! जिन प्रभु के नामों की महिमा का पार मुनीश्वरवृन्द, देवता, असुर, मानव भी नहीं पा सकते, उनका भजन मेरे जैसा सामान्य व्यक्ति किस प्रकार कर सकेगा?।।४६-४७।।

यन्नामश्रवणेनापि महापातकिनो नराः। पवित्रतां प्रपद्यन्ते तं कथं स्तौमि चाल्पधीः॥४८॥
यथाकथंचिद्यन्नाम्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा।
पापिनस्तु विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः॥४९॥

आत्मन्यात्मानमाधाय योगिनो गतकल्मषाः।
पश्यन्ति यं ज्ञानरूपं तमस्मि शरणं गतः॥५०॥

साङ्ख्याः सर्वेषु पश्यन्ति परिपूर्णात्मकं हरिम्। तमादिदेवमजरं ज्ञानरूपं भजाम्यहम्॥५१॥

जिनके नाम का श्रवण करने मात्र से महापातकी लोग भी पवित्रता लाभ कर लेते हैं, मैं अल्पबुद्धि मनुष्य उन प्रभु की स्तुति कैसे कर सकूंगा? येनकेन प्रकारेण जिनके नाम कीर्त्तन किंवा नाम श्रवण से ही पापीगण शुद्ध हो जाते हैं तथा विशुद्ध लोग मोक्ष पा सकते हैं तथा कल्मष रहित योगीजन अपनी आत्मा में ही आत्मा का ध्यान करके जिन ज्ञानरूप का दर्शन करते हैं, मैं उनकी शरण में हूं। सांख्यमार्गी लोग जिन परिपूर्णात्मा हरि को सभी में देखते हैं, मैं उन आदिदेव, अजर, ज्ञानरूप ईश्वर का भजन करता हूं।।४८-५१।।

सर्वसत्त्वमयं शान्तं सर्वं द्रष्टारमीश्वरम्। सहस्रशीर्षकं देवं वन्दे भावात्मकं हरिम्॥५२॥
यद्भूतं यच्च वै भाव्यं स्थावरं जङ्गमं जगत्। दशाङ्गुलं योऽत्यतिष्ठत्तमीशमजरं भजे॥५३॥
अणोरणीयांसमजं महतश्च महत्तरम्। गुह्याद् गुह्यतमं देवं प्रणमामि पुनः पुनः॥५४॥

मैं सर्वसत्वमय (सर्वजीवमय), शान्त, सर्वद्रष्टा (सब कुछ देखने वाले) ईश्वर, सहस्रशीर्ष (शिर) वाले देवता तथा भावात्मक श्रीहरि की वन्दना करता हूं। जो भूत तथा भविष्य में तथा स्थावर-जंगम जगत् में दश अंगुल परिमाण में व्याप्त होकर स्थित रहते हैं तथा जो अजर (जरा रहित) प्रभु हैं, मैं उनका भजन करता हूं। जो अतीवसूक्ष्म अर्थात् अणु से भी अणुतर, महान् से भी अति महत्-महत्तर हैं, जो गुप्त से भी अतिगुप्त हैं, मैं उन देव को पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं!।।५२-५४।।

ध्यातः स्मृतः पूजितो वा श्रुतः प्रणमितोऽपि वा।
स्वपदं यो ददातीशस्तं वन्दे पुरुषोत्तमम्॥५५॥

उनका ध्यान, स्मरण, पूजा अथवा उनकी कथा एवं नाम का श्रवण करने वाला जो व्यक्ति है, उसे वे प्रभु अपना पद (स्थान) तक प्रदान करते हैं। मैं ऐसे पुरुषोत्तम देव की वन्दना करता हूं।।५५।।

इति स्तुवन्तं परमं परेशं हर्षाम्बुसंरुद्धविलोचनास्ते।
मुनीश्वरा नारदसंयुतास्तु सनन्दनाद्याः प्रमुदं प्रजग्मुः॥५६॥

य इदं प्रातरुत्थाय पठेद्वै पौरुषं स्तवम्। सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति॥५७॥

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सनत्कुमारनारदसंवादे नारदकृतविष्णुस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

हे मुनिवृन्द! वहां नारद, सनक, सनन्दन प्रभृति सभी मुनिगण परमेश प्रभु की वन्दना इस प्रकार से करते हुये इतने हर्षित हो गये कि उनके नेत्रों से आनन्द की अश्रुधारा निर्गत होने लगी। जो मनुष्य प्रातः उठकर इस पौरुष (विष्णुमय) स्तव का पाठ करता है, वह समस्त पातकों से रहित होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है।।५६-५७।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

सृष्टि, भारतवर्ष तथा तत्सम्बन्धित भूगोल का वर्णन

नारद उवाच

कथं ससर्ज ब्रह्मादीनादिदेवः पुरा विभुः।
तन्ममाख्याहि सनक सर्वज्ञोऽस्ति यतो भवान्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आदिदेव विभु देव ने सृष्टि के प्रारंभ में किस प्रकार से ब्रह्मादि का सृजन किया, हे सनक! आप सर्वज्ञ हैं, यह बतलाने की कृपा करें।।१।।

श्रीसनक उवाच

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः। तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥२॥
आदिसर्गे महाविष्णुः स्वप्रकाशो जगन्मयः। गुणभेदमधिष्ठाय मूर्तित्रिकमवासृजत्॥३॥
सृष्ट्यर्थं तु पुरा देवो दक्षिणाङ्गात्प्रजापतिम्। मध्ये रुद्राख्यमीशानं जगदन्तकरं मुने॥४॥

श्री सनक कहते हैं—श्री नारायण अक्षर (क्षरण रहित), अनन्त सर्वव्यापक निरंजन देव हैं। वे समस्त स्थावर तथा जंगमात्मक जगत् में व्याप्त रहते हैं। आदि सृष्टि में उन प्रभु जगन्मय महाविष्णु देव ने गुण-भेदानुक्रम से तदनुरूप त्रिमूर्त्ति की सृष्टि किया। उन देवता ने सर्वप्रथम अपने दक्षिण अंग से प्रजापति ब्रह्मदेव की सृष्टि किया। ब्रह्मदेव को उन्होंने सृष्टिकार्य हेतु उत्पन्न किया था। हे मुनिवृन्द! उन प्रभु ने रुद्रसंज्ञक ईशान देव की सृष्टि अपने मध्यभाग से समस्त जगत् का अन्त करने हेतु किया था।।२-४।।

पालनायास्य जगतो वामाङ्गाद्विष्णुमुव्ययम्। तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदूचिरे॥५॥
तस्य शक्तिः परा विष्णोर्जगत्कार्यप्रवर्तिनी। भावाभावस्वरूपा सा विद्याविद्येति गीयते॥६॥

उन देवदेव ने अपने वाम अङ्ग से जगत् का पालन करने के लिये अव्यय विष्णु का सृजन किया। उन अजर परदेवता को कुछ लोग शिव भी कहते हैं, उनको कुछ लोग विष्णु तो कतिपय लोग ब्रह्मा भी कहते हैं। उन विष्णु की जगत् कार्य करने वाली शक्ति ही पराशक्ति कही गयी है। वह भावाभाव रूपा तथा विद्या एवं अविद्या, दोनों रूपों वाली हैं।।५-६।।

यदा विश्वं महाविष्णोर्भिन्नत्वेन प्रतीयते। तदा ह्यविद्या संसिद्धा भवेद्दुःखस्य साधनम्॥७॥
ज्ञातृज्ञेयाद्युपाधिस्ते तदा नश्यति नारद। सर्वैकभावनाबुद्धिः सा विद्येत्यभिधीयते॥८॥

जब (प्राणियों को) यह विश्व उन महाविष्णु से अलग, पृथक्, विविक्त रूप प्रतीत होता है, तब वे अविद्या से आक्रान्त तथा दुःखमार्गी हो जाते हैं। ऐसा महाविष्णु से जगत् को पृथक् समझने का दृष्टिकोण ही **अविद्या** है। हे नारद! जब ज्ञाता, ज्ञेय आदि युक्त बुद्धि नष्ट हो जाती है अर्थात् जब मैं, तुम, वह, यह आदि भ्रमपूर्ण उपाधि का नाश हो जाने के कारण ऐक्यभावात्मक, अभेदबुद्धि का उद्गम होता है, उसे ही **विद्या** कहते हैं।।७-८।।

एवं माया महाविष्णोर्भिन्ना संसारदायिनी। अभेदबुद्ध्या दृष्टा चेत्संसारक्षयकारिणी॥९॥
विष्णुशक्तिसमुद्भूतमेतत्सर्वं चराचरम्। यस्माद्भिन्नमिदं सर्वं यच्चेङ्गेद्यच्च नेङ्गति॥१०॥
उपाधिभिर्यथाकाशो भिन्नत्वेन प्रतीयते। अविद्योपाधियोगेन तथेदमखिलं जगत्॥११॥

यह (अविद्या) ही महाविष्णु की वह माया है, जो संसार में आबद्ध करती है। लेकिन अभेद ज्ञान रूपी विद्या संसार का क्षय करने वाली (आवागमन क्षयकारिणी) है। यह समस्त सचराचर सृष्टि विष्णुदेव की शक्ति से ही उत्पन्न है। लेकिन व्यक्ति को यह प्रतीत होता है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उनसे भिन्न है। यहां यह दृष्टान्त है कि अलग-अलग आकृति के घट में स्थित आकाश उस घट की आकृति के कारण अलग-अलग रूपों वाला लगता है (जबकि वह तत्वतः एक ही है), तदनुरूप अविद्या रूपी उपाधि (दृष्टि) के भेद के कारण समस्त सचराचर जगत् भिन्नवत् प्रतीयमान होता है।।९-११।।

यथा हरिर्जगद्व्यापी तस्य शक्तिस्तथा मुने।
दाहशक्तिर्यथाङ्गारे स्वाश्रयं व्याप्य तिष्ठति॥१२॥
उमेति केचिदाहुस्तां शक्तिं लक्ष्मीं तथा परे।
भारतीत्यपरे चैनां गिरिजेत्यम्बिकेति च॥१३॥
दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरीत्यपि।
कौमारी वैष्णवी चेति वाराह्यैन्द्री च शाम्भवी॥१४॥
ब्राह्मीति विद्याविद्येति मायेति च तथा परे। प्रकृतिश्च परा चेति वदन्ति परमर्षयः॥१५॥
शेषशक्तिः परा विष्णोर्जगत्सर्गादिकारिणी।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण जगद्व्याप्य व्यवस्थिता॥१६॥

हे मुनिनारद! जिस प्रकार से हरि समस्त जगत् में व्याप्त हैं, तदनुरूप उनकी शक्ति भी सर्वव्यापक है। जैसे काष्ठ (अंगार-कोयला) की दाहिका शक्ति अपने आश्रयरूपी उस काष्ठ के प्रति अणु में व्याप्त रहती है, तदनुरूप यहां भी वैसा ही समझना चाहिये। उस शक्ति को कोई उमा, कोई लक्ष्मी, कोई भारती, कोई गिरिजा तो कोई अम्बिका कहते हैं। अन्य लोगों द्वारा वही शक्ति दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, वाराही, शांभवी, ब्राह्मी, विद्या, अविद्या, प्रकृति, माया कही जाती है। परमर्षि लोग इनको प्रकृति तथा अन्य नामों से भी पुकारते हैं।।१२-१६।।

प्रकृतिश्च पुमांश्चैव कालश्चेति विधिस्थितिः।
सृष्टिस्थितिविनाशानामेकः कारणतां गतः॥१७॥
येनेदमखिलं जातं ब्रह्मरूपधरेण वै। तस्मात्परततो देवो नित्य इत्यभिधीयते॥१८॥
रक्षां करोति यो देवो नित्य इत्यभिधीयते॥१९॥

जगत् की रचना करने वाली आदिकारण है विष्णु की शेषशक्ति। वही व्यक्त एवं अव्यक्त, उभय रूप से जगत् को व्याप्त करती स्थिता है। प्रकृति, पुरुष, काल, विधि स्थिति, विनाशादि सबका एक ही कारण है।

जिससे अखिल सृष्टि की उत्पत्ति होती है, वे ही ब्रह्मरूपी हैं। उनसे परतर जो देव हैं, वे नित्य कहे गये हैं। जो रक्षा करने वाले देव हैं, वे भी नित्य हैं।।१७-१९।।

रक्षां करोति यो देवो जगतां परतः पुमान्। तस्मात्परतरं यत्तदव्ययं परमं पदम्॥२०॥

अक्षरो निर्गुणः शुद्धः परिपूर्णः सनातनः।
यः परः कालरूपाख्यो योगिध्येयः परात्परः॥२१॥

परमात्मा परानन्दः सर्वोपाधिविवर्जितः। ज्ञानैकवेद्यः परमः सच्चिदानन्दविग्रहः॥२२॥

जो रक्षा करने वाले देव हैं, वे हैं पर। उनसे परतर जो देव हैं, वे अव्यय तथा परमपदरूप हैं। जो अक्षर, निर्गुण, शुद्ध, परिपूर्ण सनातन हैं तथा जो योगीगण के ध्येय काल रूप परात्पर देव हैं, वे परमात्मा, परानन्द आदि सभी उपाधि से रहित कहे गये हैं। वे ज्ञान से ही जाने जाते हैं तथा सत्‌चित् आनन्द रूप हैं।।२०-२२।।

योऽसौ शुद्धोऽपि परमो ह्यहंकारेण संयुतः। देहीति प्रोच्यते मूढैरहोऽज्ञानविडम्बनम्॥२३॥

जो इन शुद्ध परमदेव को अहंकार से संयुत देही कहने वाले मूढ़ जन हैं, वे ज्ञानी नहीं हैं। उनका ऐसा कहना विडम्बना मात्र है।।२३।।

स देवः परमः शुद्धः सत्त्वादिगुणभेदतः। मूर्तित्रयं समापन्नः सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्॥२४॥

योऽसौ ब्रह्मा जगत्कर्ता यन्नाभिकमलोद्भवः।
स एवानन्दरूपात्मा तस्मान्नास्त्यपरो मुने॥२५॥

वे परमशुद्ध देवाधिदेव सत्व-रजः-तमः रूपी गुणभेद मय होकर स्वयं तीन मूर्त्ति धारण करके सृष्टि, स्थिति तथा लय के कारण हो जाते हैं। वे ही आनन्दरूप परमात्मा हैं, जिनके नाभिकमल से ब्रह्मा निर्गत हुये हैं। हे मुनि नारद! उनसे श्रेष्ठ अन्य कोई भी नहीं है।।२४-२५।।

अन्तर्यामी जगद्व्यापी सर्वसाक्षी निरञ्जनः। भिन्नाभिन्नस्वरूपेण स्थितो वै परमेश्वरः॥२६॥

यस्य शक्तिर्महामाया जगद्विस्रम्भधारिणी। विश्वोत्पत्तेर्निदानत्वात्प्रकृतिः प्रोच्यते बुधैः॥२७॥

वे अन्तर्यामी, सर्वसाक्षी, निरंजन परमेश्वर ही भिन्न-भिन्न रूप में स्थित रहते हैं। उनकी शक्ति महामाया ही जगत् को धारण करने वाली है। वही जगत्धारिणी है। बुध व्यक्ति उन शक्ति को ही विश्वोत्पत्ति की आदि कारण होने से प्रकृति कहते हैं।।२६-२७।।

आदिसर्गे महाविष्णोर्लोकान्कर्त्तुं समुद्यतः।
प्रकृतिः पुरुषश्चेति कालश्चेति त्रिधा भवेत्॥२८॥
पश्यन्ति भावितात्मानो यं ब्रह्मेत्यभिसंज्ञितम्।
शुद्धं यत्परमं धाम तद्विष्णोः परमं पदम्॥२९॥

जब आदिसर्ग काल में महाविष्णु लोकों की रचना हेतु समुद्यत होते हैं, तब वे स्वयं ही प्रकृति, पुरुष तथा कालरूपेण विभक्त हो जाते हैं। ये ही उनके रूपत्रय हैं। भावितात्मा मनीषीगण उनको ब्रह्म संज्ञा से अभिहित करते हैं। उनका जो शुद्ध परम धाम है, वही है विष्णु का परमपद।।२८-२९।।

एवं शुद्धोऽक्षरोऽनन्तः कालरूपी महेश्वरः। गुणरूपी गुणाधारो जगतामादिकृद्विभुः॥३०॥
प्रकृतिः क्षोभमापन्ना पुरुषाख्यो जगद्गुरौ। महान्प्रादुरभूद् बुद्धिस्ततोऽहं समवर्त्तत॥३१॥
अहंकाराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
तन्मात्रेभ्यो हि जातानि भूतानि जगतः कृते॥३२॥

वे प्रभु शुद्ध, अक्षर, अनन्त, कालरूपी महेश्वर हैं। वे गुणरूप, गुणाधार जगत् के आदि सृष्टिकर्त्ता हैं। जब उन पुरुष जगद्गुरु द्वारा प्रकृति क्षुब्ध होती है, उस समय महत्तत्व (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर अहंकार उत्पन्न होता है। इस अहंकार से ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पञ्चतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। उन तन्मात्रा से ही जगत् की सृष्टि हेतुभूत पंचमहाभूत पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश उत्पन्न होते हैं।।३०-३२।।

आकाशवाय्वग्निजलभूमयोऽब्जभवात्मज। यथाक्रमं कारणतामेकैकस्योपयान्ति च॥३३॥
ततो ब्रह्मा जगद्धाता तामसानसृजत्प्रभुः। तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्पशुपक्षिमृगादिकान्॥३४॥

हे कमलासनासीन ब्रह्मा के पुत्र! आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा भूमि ये यथाक्रमेण एक-एक के कारण हैं। तात्पर्य यह है कि आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथिवी की सृष्टि हुई है। अतः पूर्ववर्त्ती को अपने से परवर्त्ती का कारण कहा गया है। इसके अनन्तर जगत् के स्रष्टा प्रभु ब्रह्मा द्वारा सर्वाग्र में तामसी सृष्टि की गई। इसमें उन्होंने तिर्यक् योनि की अर्थात् जन्तु, पशु, पक्षी, मृगादि की सृष्टि किया था।।३३-३४।।

तमप्यसाधकं मत्वा देवसर्गं सनातनात्। ततो वै मानुषं सर्गं कल्पयामास पद्मजः॥३५॥
ततो दक्षादिकान्पुत्रान्सृष्टिसाधनतत्परान्। एभिः पुत्रैरिदं व्याप्तं सदेवासुरमानुषम्॥३६॥
भूर्भुवश्च तथा स्वश्च महश्चैव जनस्तथा।
तपश्च सत्यमित्येवं लोकाः सत्योपरि स्थिताः॥३७॥

इस सृष्टि को बनाने के उपरान्त ब्रह्मदेव ने इसे उपयुक्त तथा साधक नहीं माना। तव उन्होंने सनातन देवगण की सृष्टि किया। जो देवसर्ग है। इस देवसर्ग के उपरान्त पद्मजन्मा ब्रह्मदेव ने मानुषसर्ग की कल्पना किया। इस क्रम में उन्होंने सर्वाग्र में सृष्टि साधन तत्पर दक्ष प्रभृति मानस पुत्रों की सृष्टि किया था। इन दक्षादि पुत्रों द्वारा ही देवगण से लगाकर देवता, असुरगण तथा मानवगण की सृष्टि की गयी थी। भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्यलोक प्रभृति जो सात लोक हैं, ये सत्य पर ही स्थित रहते हैं।।३५-३७।।

अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम्। महातलं च विप्रेन्द्र ततोऽधश्च रसातलम्॥३८॥
पातालं चेति सप्तैव पातालानि क्रमादधः।
एष सर्वेषु लोकेषु लोकनाथांश्च सृष्टवान्॥३९॥
कुलाचलान्नदीश्चासौ तत्तल्लोकनिवासिनाम्। वर्त्तनादीनि सर्वाणि यथोयोग्यमकल्पयत्॥४०॥

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल तथा उसके नीचे है रसातल। उसके भी नीचे पाताल है। ये सप्तपाताल क्रमशः कहे गये हैं। ब्रह्मदेव ने तदनन्तर इन लोकों के लोकपाल की सृष्टि किया। ब्रह्मा ने कुलाचल,

नदी, उन लोकों के निवासी, उनके व्यवहार आदि सबको सबके लिये यथायोग्य निश्चित तथा निर्मित किया।।३८-४०।।

भूतले मध्यगो मेरुः सर्वदेवसमाश्रयः।
लोकालोकश्च भूम्यन्ते तन्मध्ये सप्त सागराः॥४१॥
द्वीपाश्च सप्त विप्रेन्द्र द्वीपे द्वीपे कुलाचलाः।
बाह्या नद्यश्च विख्याता जनाश्चामरसन्निभाः॥४२॥

भूतल के मध्य में मेरु पर्वत की भी सृष्टि ब्रह्मा ने करके सभी देवगण का आश्रय बनाया। उन्होंने भूमि के अन्तभाग में लोकालोक पर्वत का सृजन करके भूमिमध्य में सप्तसागर का विधान किया। हे विप्रेन्द्र! उन विधाता ने सात द्वीपों की सृष्टि करके प्रत्येक द्वीप में कुलाचल, विख्यात नदियों, श्रेष्ठ मनुष्यों की रचना किया।।४१-४२।।

जम्बूप्लक्षाभिधानौ च शाल्मलश्च कुशस्तथा।
कौञ्चशाकौ पुष्करश्च ते सर्वे देवभूमयः॥४३॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलैः समम्॥४४॥
एते द्विपाः समुद्राश्च पूर्वस्मादुत्तरोत्तराः।
ज्ञेया द्विगुणविस्तारा लोकालोकाच्च पर्वतात्॥४५॥

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर, देवभूमियां हैं। ये सप्तद्वीप सप्त-समुद्रों से परिवृत हैं। ये सात सागर हैं—लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दूध, जल से पूर्ण रहते हैं। ये समस्त द्वीप एवं सागर लोकालोक पर्वत से पूर्व में क्रमशः एक के बाद स्थित हैं। ये उत्तरोत्तर एक से द्विगुणित हैं।।४३-४५।।

क्षारोदधेरुत्तरं यद्धिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। ज्ञेयं तद्भारतं वर्षं सर्वकर्मफलप्रदम्॥४६॥
अत्र कर्माणि कुर्वन्ति त्रिविधानि तु नारद।
तत्फलं भुज्यते चैव भोगभूमिधनक्रमात्॥४७॥
भारते तु कृतं कर्म शुभं वाशुभमेव च। तत्फलं क्षयि विप्रेन्द्र भुज्यतेऽन्यत्र जन्तुभिः॥४८॥

क्षार समुद्र के उत्तर में एवं हिमालय के दक्षिण में जो प्रदेश है, वह सर्वकर्मफलप्रद भारतवर्ष है। हे नारद! यहां के मनुष्य त्रिविध कर्म को करते हैं तथा उस कर्म फल को वे मनुष्य भोग, भूमि एवं धनरूपी क्रम से प्राप्त करते हैं। हे विप्रेन्द्र! भारतवर्ष में लोग जो शुभ अथवा अशुभ कर्म करते हैं, उस क्षययुक्त कर्म का फल अन्य अनेक लोकों में भोगते हैं अर्थात् सभी कर्म क्षयशील होते हैं, उनका फल रूप जो पुण्य अथवा पाप होता है, उसे अन्य लोकों में भोगकर क्षय करना होता है। मनुष्य पुण्यकर्म का जो फल पाते हैं, उसे स्वर्गादि उत्तम लोकों में भोगकर क्षय करते हैं तथा पाप के फल को नरकादि भोग से क्षय करते हैं। तभी यहां कर्मों को क्षयशील कहा गया।।४६-४८।।

अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्म भारतभूतले। सञ्चितं सुमहत्पुण्यमक्षय्यममलं शुभम्॥४९॥

कदा लभामहे जन्म वर्षभारतभूमिषु। कदा पुण्येन महता यास्याम परमं पदम्॥५०॥
दानैर्वाविविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाथवा हरिम्। जगदीशं समेष्यामो नित्यानन्दमनामयम्॥५१॥
यो भारतभुवं प्राप्य विष्णुपूजापरो भवेत्।
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु नारद॥५२॥

आज भी देवता भारतभूमि में जन्म पाने हेतु व्यग्र रहा करते हैं। वे यहां संचित कर्म, सुमहान्पुण्य तथा निर्मल अक्षय शुभत्व लाभार्थ, जन्म लेना चाहते हैं। उनकी इच्छा रहती है कि "कब हमें भारत वर्ष की भूमि में जन्म का अवसर मिलेगा? कब हमें भारतवर्ष में पुण्यार्जन द्वारा परमपद का लाभ होगा?" वे यह कामना करते हैं कि कब वे भारतभूमि में दान, नाना यज्ञों तथा तप द्वारा नित्यानन्दमय जगदीश श्रीहरि के निकट स्थानलाभ कर सकेंगें? हे नारद! जो मनुष्य भारतभूमि में उत्पन्न होकर विष्णु पूजा परायण रहता है, उसके समान तीनों लोक में कोई नहीं है।।४९-५२।।

हरिकीर्तनशीलो वा तद्भक्तानां प्रियोऽपि वा।
शुश्रूषुर्वापि महतः स वेद्यो दिविजैरपि॥५३॥
हरिपूजारतो नित्यं भक्तं पूजारतोऽपि वा।
भक्तोच्छिष्टान्नसेवी च याति विष्णोः परं पदम्॥५४॥

देवगण तक उस व्यक्ति का सत्कार करते हैं, जो हरिकीर्त्तन का अनुरागी तथा नित्य भक्तों की सेवा में तत्पर बना रहता है। जो भक्तों की सेवा में निरत, हरिपूजारत, भक्तपूजारत, भक्तों के जूठन को ग्रहण करने वाला होता है, उसे विष्णु के परमपद की प्राप्ति होती है।।५३-५४।।

नारायणेति कृष्णेति वासुदेवेति यो वदेत्।
अहिंसादिपरः शान्तः सोऽपि वन्द्यः सुरोत्तमैः॥५५॥
शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेति च यः स्मरेत्।
सर्वभूतहितो नित्यं सोऽभ्यर्च्यो दिविजैः स्मृतः॥५६॥
गुरुभक्तः शिवध्यानी स्वाश्रमाचारतत्परः।
अनसूयुः शुचिर्दक्षो यः सोऽप्यर्च्यः सुरेश्वरैः॥५७॥

जो नारायण कृष्ण-वासुदेव (इत्यादि हरि नाम) का गायन, स्मरण मनन करता रहता है, जो अहिंसा निरत, शान्त है, वह तो देवगण द्वारा भी वन्दनीय है। जो नारायण, नीलकण्ठ, शंकर, इन नामों का स्मरण करता रहता है, सर्वभूतसमूह की सेवा में तत्पर रहता है, वह तो देवगण द्वारा भी अर्चित व्यक्ति है।।५५-५७।।

ब्राह्मणानां हितकरः श्रद्धावान्वर्णधर्मयोः। वेदवादरतो नित्यं स ज्ञेयः पङ्क्तिपावनः॥५८॥
अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके। सर्वं यो ब्रह्मणा नित्यमस्मदादिषु का कथा॥५९॥
गोषु शान्तो ब्रह्मचारी परिनिंदाविवर्जितः। अपरिग्रहशीलश्च देवपूज्यः स नारद॥६०॥
स्तेयादिदोषविमुखः कृतज्ञः सत्यवाक् शुचिः। परोपकारनिरतः पूजनीयः सुरासुरैः॥६१॥

वेदार्थश्रवणे बुद्धिः पुराणश्रवणे तथा।
सत्सङ्गेऽपि च यस्यास्ति सोऽपि वन्द्यः सुरोत्तमैः॥६२॥

ब्राह्मणों के हित में अनुरक्त, वर्णधर्म के प्रति सश्रद्ध, वेदाध्ययनादि में नित्य लगा हुआ व्यक्ति ही पंक्तिपावन कहा गया है। जो नारायण तथा शिव में अभेददर्शन करता है, सर्वत्र (कण-कण में) ब्रह्मदर्शन करता है, उसके सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूं? इन्द्रियजित्, शान्त, ब्रह्मचारी, परनिन्दा रहित, दान लेने से विमुख, देवपूज्य कहा गया है। हे नारद! जो चौर कर्म आदि दोषों से रहित तथा विमुख रहता है, उपकारी के प्रति कृतज्ञ, सत्य बोलने वाला, पवित्र, परोपकारी व्यक्ति होता है, वह तो सुर-असुर सबके लिये पूज्य है। जिसकी मति वेदार्थ तथा पुराण श्रवण के प्रति अनुरक्त रहती है, जो सत्संग का इच्छुक है, उसे तो उत्तम-श्रेष्ठ देवता भी पूज्य मानते हैं।।५८-६२।।

एवमादीन्यनेकानि कर्माणि श्रद्धयान्वितः।
करोति भारते वर्षे संबन्धोऽस्माभिरेव च॥६३॥
एतेष्वन्यतमो विप्रमात्मानं नारभेत्तु यः। स एव दुष्कृतिर्मूढो नास्त्यन्योऽस्मादचेतनः॥६४॥
संप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुखः। पीयूषकलशं मुक्त्वा विषभाण्डमुपाश्रितः॥६५॥
श्रुतिस्मृत्युदितैर्द्धर्मैर्नात्मानं पावयेत्तु यः। स एवात्मविघाती स्यात्पापिनामग्रणीर्मुने॥६६॥

जो व्यक्ति भारतवर्ष में श्रद्धासम्पन्न होकर ऐसे अनेक पुण्यकर्म करता है तथा हमलोगों के मार्गदर्शन से उनको सम्पन्न करता है, वही कृतार्थ है। जो व्यक्ति दुष्कृति तथा मूढ़ है, वह पुण्यकर्मों के स्थान पर पाप करता है, वह पातकी है। उसके समान अज्ञानी कोई है ही नहीं। जो भारत में जन्म लेकर भी सत्कर्मों से विमुख रहता है, मानो उसने अमृतकलश छोड़कर विषभरा पात्र ग्रहण किया है। हे मुनि नारद! जो व्यक्ति श्रुति-स्मृति में कहे गये धर्मपालन द्वारा आत्मोद्धार रूप सुकृत नहीं करता, वह तो स्वयं अपना हनन करने वाला तथा पापियों में अग्रणी ही है।।६३-६६।।

कर्मभूमिं समासाद्य यो न धर्मं समाचरेत्। स च सर्वाधमः प्रोक्तो वेदाविद्भिर्मुनीश्वर॥६७॥
शुभं कर्म समुत्सृज्य दुष्कर्माणि करोति यः।
कामधेनुं परित्यज्य अर्कक्षीरं स मार्गति॥६८॥
एवं भारतभूभागं प्रशंसन्ति दिवौकसः। ब्रह्माद्याः अपि विप्रेन्द्र स्वभोगक्षयभीरवः॥६९॥
तस्मात्पुण्यतमं ज्ञेयं भारतं वर्षमुत्तमम्। देवानां दुर्लभं वापि सर्वकर्मफलप्रदम्॥७०॥

हे मुनीश्वर! जो भारतवर्ष रूपी कर्मभूमि को पाकर भी धर्माचरण नहीं करता, उसे वेदज्ञगण तथा मुनीश्वरगण अधमाधम कहते हैं। जो शुभ कर्मों का त्याग करके दुष्कर्मरत रहता है, मानो वह कामधेनु को त्यागकर मदार की शाखा तोड़ने से टपकते दुग्ध की कामना कर रहा है। देवगण भी भारतभूभाग की प्रशंसा करते हैं। हे विप्रेन्द्र! ब्रह्मा आदि देवता भी अपने कर्मफल जनित भोग को क्रमशः क्षीण होते देखकर भयभीत रहते हैं। अतः सभी वर्षों में से भारतवर्ष को सर्वोत्तम पुण्यतम समझना चाहिये। यह सर्वकर्मफलदायक तथा देवगण के लिये भी दुर्लभ वर्ष है।।६७-७०।।

अस्मिन्पुण्ये च भूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यतः।
न तस्य सदृशं कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥७१॥
अस्मिञ्जातो नरो यस्तु स्वकर्मक्षपणोद्यतः। नररूपपरिच्छन्नः स हरिर्नात्र संशयः॥७२॥

जो लोग इस पुण्यमय भूभाग में सत्कर्म हेतु उद्यत रहते हैं, तीनों लोकों में उनके समान कोई है ही नहीं। जो यहां जन्म लेकर स्वकर्म सम्पादनार्थ उद्यत हैं, वे मनुष्य रूप में निहित श्री हरि ही हैं। यह निःसंदिग्ध है।।७१-७२।।

परं लोकफलं प्रेप्सुः कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः।
निवेद्य हरये भक्त्या तत्फलं ह्यक्षयं स्मृतं॥७३॥
विरागी चेत्कर्मफलेष्वपि किञ्चिन्न कारयेत्। अर्पयेत्सुकृतं कर्म प्रीयतामिति मे हरिः॥७४॥

उत्तम लोक हेतु फलाकांक्षी व्यक्ति को चाहिये कि वह आलस्य रहित होकर कर्म करे। वैसा व्यक्ति अपने कर्म को श्रीहरि को निवेदित करे। इसका फल अक्षय हो जाता है। जो कर्मफल पाने हेतु उत्सुक न होकर विरागी हैं, वह भले ही कुछ न करे, तथापि वह अपने सुकृतों को श्रीहरि को इस वाक्य के साथ निवेदित करे कि श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।७३-७४।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरुत्पत्तिदायकाः।
फलागुध्नुः कर्मणां तत्प्राप्नोति परमं पदम्॥७५॥
वेदोदितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये। यथाश्रमं त्यक्तुकामः प्राप्नोति पदमव्ययम्॥७६॥
निष्कामो वा सकामो वा कुर्यात्कर्म यथाविधि।
स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतितः प्रोच्यते बुधैः॥७७॥

पृथिवी से ब्रह्मभुवन (लोक) पर्यन्त, सभी लोक पुनः जन्मप्रद हैं (उनसे आवागमन का जन्मचक्र निवृत्त नहीं होता)। अतः कर्मफल को जो एवंविध श्रीहरि को अर्पित करता है, उसे परमपद लाभ होता है। वेदों में कहे कर्मों को केवल भगवत् तुष्टि हेतु करना चाहिये। अपने आश्रम व्यवस्था के अनुरूप जो व्यक्ति कार्य नहीं करता तथा जो आश्रमाचार रहित है, उसे बुद्धिमान् लोग पतित कहते हैं।।७५-७७।।

सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा। तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्याद्भक्तियुक्तस्य नारद॥७८॥

हे नारद! जो विप्र सदाचाररत रहते हैं, उनका ब्रह्मतेज बढ़ता रहता है। ऐसे भक्तियुक्त के प्रति विष्णु भी प्रसन्न रहते हैं। निष्काम तथा सकाम, दोनों प्रकार के साधकगण अपने कर्म सविधि करें। हे नारद! भक्तियुक्त के प्रति विष्णु सदा प्रसन्न रहते हैं।।७८।।

भारते जन्म संप्राप्य नात्मानं तारयेत्तु यः। पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम्॥७९॥
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तपः। वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरा गतिः॥८०॥

हे नारद! भारत में जन्म लेकर भी जो मूढ़ अपना उद्धार नहीं करता, उसे यावत् चन्द्र-दिवाकर तथा तारामण्डल के स्थितिकाल तक नरक में ही रहना होगा। वासुदेव ही परमधर्म, परमतप हैं, वे ही परमज्ञान हैं। वे ही परम गति हैं।।७९-८०।।

वासुदेवात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तस्मादन्यन्न विद्यते॥८१॥

स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः।
स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्नं किञ्चिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम्॥८२॥

जो कुछ स्थावर-जंगमात्मक सृष्टि है, वह सब वासुदेवात्मक है। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त में अन्य कुछ भी नहीं है। वे ही विधाता ब्रह्मा, त्रिपुरान्तक शिव तथा देवता, असुर एवं यज्ञरूप हैं। वे ही समस्त ब्रह्माण्डरूप हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कहीं नहीं हैं।।८१-८२।।

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मादणीयान्न तथा महीयान्।
व्याप्तं हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देवदेवं प्रणमेत्समीड्यम्॥८३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सृष्टिभरतखण्ड-प्राशस्त्यभूगोलानां वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

समस्त सृष्टि में जो कुछ अणु से भी सूक्ष्म तथा महान् से भी महत् हैं, वह उनसे रहित है ही नहीं। उन प्रभु से ही यह समस्त जगत् व्याप्त है। यह विचित्र जगत् उनसे ही सदाव्याप्त रहता है। हम उन देवदेव को प्रणाम करें।।८३।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

महर्षि मार्कण्डेय के चरित्र का वर्णन

सनक उवाच

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः। श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः॥१॥

भक्तिर्भक्त्यैव कर्त्तव्या तथा कर्माणि भक्तितः।
कर्मश्रद्धाविहीनानि न सिध्यन्ति द्विजोत्तमाः॥२॥
यथाऽऽलोको हि जन्तूनां चेष्टाकारणतां गतः।
तथैव सर्वसिद्धीनां भक्तिः परमकारणम्॥३॥
यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम्।
तथा समस्तसिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—श्रद्धायुक्त सम्पन्न किये गये समस्त धर्म मनोरथ का फल प्रदान करते हैं। श्रद्धा

से ही सब कुछ साधित होता है। श्रद्धा से ही हरि प्रसन्न हो जाते हैं। भक्ति को भी सश्रद्ध होकर करे। समस्त कर्म भी (शुभकर्म) भक्ति के साथ करना चाहिये। हे द्विजोत्तम! श्रद्धा रहित कर्म कदापि सिद्ध नहीं होते। जैसे जगत् में जन्तुगण की सभी चेष्टा का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। उसी प्रकार से सभी सिद्धि का परमकारण भक्ति ही है। जैसे जगत्स्थ सभी प्राणीगण का जीवन जल है, उसी प्रकार सभी सिद्धियों का कारण तथा जीवन भक्ति ही है।।१-४।।

यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्य्याणि साधयेत्।।५।।
श्रद्धावाँल्लभते धर्म्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्।
श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात्।।६।।
न दानैर्न तपोभिर्वा यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः। भक्तिहीनैर्मुनिश्रेष्ठ तुष्यते भगवान्हरिः।।७।।

जिस प्रकार से समस्त जन्तु भूमि का आश्रयण करके जीवित रहते हैं, तदनुरूप भक्ति का आश्रय लेकर सभी कर्म साधित हो जाते हैं। श्रद्धावान् ही धर्म तथा अर्थ प्राप्त करता है। श्रद्धावान् ही काम प्राप्त करता है। श्रद्धावान् को ही मोक्षलाभ हो पाता है। भगवान् हरि दान, तप, यज्ञ तथा यज्ञ में प्रभूत दक्षिणा देने से प्रसन्न नहीं होते। हे मुनिप्रवर! भक्तिहीन से भगवान् हरि कदापि सन्तुष्ट नहीं होते।।५-७।।

मेरुमात्रसुवर्णानां कोटिकोटिसहस्त्रशः। दत्ता चाप्यर्थनाशाय यतो भक्तिविवर्जिता।।८।।
अभक्त्या यत्तपस्तप्तं केवलं कायशोषणम्।
अभक्त्या यद्धुतं हव्यं भस्मनि न्यस्तहव्यवत्।।९।।

भले ही मनुष्य करोड़ों स्वर्ण निर्मित मेरुपर्वत का दान कर दे, तथापि परमार्थ दृष्टि से यह तो तब तक धननाश ही है यदि इसे भक्ति रहित प्रदान किया जाता है। भक्तिहीन द्वारा किया तप केवल शरीर शोषण है। भक्ति रहित जो आहुति दी जाती है, वह तो मात्र बुझी अग्नि की भस्म में आहुति देना मात्र है।।८-९।।

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म्म श्रद्धयाप्यणुमात्रकम्।
तन्नाम जायते पुंसां शाश्वतं प्रीतिदायकम्।।१०।।
अश्वमेधसहस्त्रं वा कर्म्म वेदोदितं कृतम्।
तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन्यदि भक्तिविवर्जितम्।।११।।

यदि श्रद्धायुक्त होकर अणुमात्र भी किंचित् कर्म किया जाये, वह उस व्यक्ति को शाश्वत प्रसन्नता देता है। हे ब्रह्मन्! यदि भक्ति रहित हो सहस्त्र अश्वमेध तथा वेदोक्त कर्म क्यों न किया जाये, उसका कोई फल नहीं मिलेगा।।१०-११।।

हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता।
तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो।।१२।।
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज। भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता।।१३।।

असूयोपेतमनसां भक्तिदानादिकर्म्म यत्। अवेहि निष्फलं ब्रह्मस्तेषां दूरतरो हरिः॥१४॥
परश्रियाभितप्तानां दम्भाचाररतात्मनाम्। मृषा तु कुर्वतां कर्म तेषां दूरतरो हरिः॥१५॥

मनुष्यों के लिये हरिभक्ति कामधेनुवत् फलदायक है। इसकी स्थिति रहने पर भी अज्ञ लोग संसाररूपी विष का पान करते रहते हैं। हे अज (ब्रह्मा) के पुत्र नारद! इस असार संसार में भगवत् भक्तों का साथ, हरिभक्ति तथा तितिक्षु (सहिष्णु) जीवन ही सार है। जो असूया (ईर्ष्या) से युक्त चित्तवाले लोग हैं, उनका कृत भक्तिदानादि समस्त कर्म व्यर्थ हो जाता है। ऐसे लोगों के लिये तो श्रीहरि दूरातिदूर हैं।।१२-१५।।

पृच्छतां च महाधर्म्मान्वदतां वै मृषा च तान्। धर्मेष्वभक्तिमनसां तेषां दूरतरो हरिः॥१६॥
वेदप्रणिहितो धर्म्मो वेदो नारयणः परः। तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषां दूरतरो हरिः॥१७॥

जिस विद्वान् से महाधर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा की जाये, यदि वे मृषा (व्यर्थतापूर्ण, झूठे) उपदेश देते हैं, उनके उपदेशानुसार कृत कर्म से प्रभु कदापि निकटस्थ नहीं होते, अपितु वे दूरतर होते जाते हैं। जो यर्थार्थ धर्म होता है, वे वेदों में प्रतिपादित होता है। वेदों के अनुसार नारायण ही परमदेव हैं। उन नारायण तथा वेद के प्रति जो अश्रद्धावान् हैं, उनसे नारायण देव दूरातिदूर हो जाते हैं।।१६-१७।।

यस्य धर्म्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥१८॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः।
श्रद्धावतां हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन॥१९॥

जिस व्यक्ति के जीवन के दिन धर्म रहित होकर व्यतीत होते जाते हैं, उसका श्वास लेना उसी प्रकार है, जैसे मृत पशु के चर्म से बनी लुहार की धौंकनी वायु ग्रहण करती तथा छोड़ती है। (अर्थात् वह व्यक्ति मृतवत् ही है)। हे ब्रह्मनन्दन नारद! शास्त्र ने धर्म-अर्थ-काम-मोक्षात्मक चार पुरुषार्थ ही माना है। ये सनातन पुरुषार्थ हैं। ये चारों श्रद्धावन्त को ही सिद्ध होते हैं। अन्य को सिद्ध ही नहीं होते।।१८-१९।।

स्वाचारमनतिक्रम्य हरिभक्तिपरो हि यः। स याति विष्णुभवनं यद्वै पश्यन्ति सूरयः॥२०॥
कुर्वन्वेदोदितान्धर्म्मान्मुनीन्द्र स्वाश्रमोचितान्।
हरिध्यानपरो यस्तु स याति परमं पदम्॥२१॥

जो (शास्त्रविहित) आचार का त्याग नहीं करता तथा हरिभक्तितत्पर रहता है, वह सूरीजन द्वारा सतत् देखे जाने वाले विष्णुलोक की प्राप्ति कर लेता है। हे मुनीन्द्र! जो वेदोचित धर्म का तथा अपने आश्रमोचित धर्म का पालन करते हैं तथा हरिध्यान में निमग्न रहा करते हैं, उनको परमपद लाभ होता है।।२०-२१।।

आचारप्रभवो धर्मः धर्म्मस्य प्रभुरच्युतः। आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः॥२२॥
यः स्वाचारपरिभ्रष्टः साङ्गवेदान्तगोऽपि वा।
स एव पतितो ज्ञेयो यतः कर्मबहिष्कृतः॥२३॥

धर्म द्वारा ही आचार प्रवर्तित होता है। धर्म के स्वामी प्रभु हैं अच्युत। अपने आश्रमाचार से युक्त होकर

सर्वदा हरि अर्चना करे। यदि षडङ्गसहित वेदों एवं वेदान्त का ज्ञाता भी अपने आचार से भ्रष्ट है, उसे कर्मबहिष्कृत पतित ही जानना चाहिये।।२२-२३।।

हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते॥२४॥

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे। आचारात्पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तम॥२५॥

यदि कोई व्यक्ति हरिभक्ति किंवा हरिध्यान तत्पर हो, वेदों एवं महेश्वर के प्रति चाहे जितनी भक्ति क्यों न रखता हो, उसे इनमें से कोई भी पवित्र नहीं कर सकता यदि वह आचार से च्युत है। वह तो पतित ही है।।२४-२५।।

पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेवणम्। यज्ञो वा विविधो ब्रह्मंस्त्यक्ताचारं न रक्षति॥२६॥

आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते सुखम्।
आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न लभ्यते॥२७॥

आचाराणां तु सर्वेषां योगानां चैव सत्तम। हरिभक्तेरपि तथा निदानं भक्तिरिष्यते॥२८॥

पुण्यक्षेत्रों की यात्रा, पुण्यतीर्थ सेवन, यज्ञ तथा विविध पुण्यकृत्यादि भी आचारभ्रष्ट की रक्षा नहीं कर पाते। सदाचार से ही स्वर्ग एवं सुखलाभ होता है। मोक्ष तक सदाचार से मिल जाता है। आचार से व्यक्ति क्या नहीं पा सकता? हे सत्तम! समस्त आचार पालन, योगाभ्यासादि में सफलता का एकमात्र निदान है भक्ति। हरिभक्ति लाभ का भी एकमात्र कारण है भक्ति (श्रद्धा)!।।२६-२८।।

भक्त्यैव पूज्यते विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः।
तस्मात्समस्तलोकानां भक्तिर्मातेति गीयते॥२९॥
जीवन्ति जन्तवः सर्वे यथा मातरमाश्रिताः।
तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति धार्म्मिकाः॥३०॥

भक्तियुक्त होकर विष्णुपूजा से वांछितार्थ की प्राप्ति होती है। विष्णुदेव भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। अतएव सब लोकों की माता है भक्ति। जैसे सभी प्राणी अपनी माता के आश्रय में ही पलते (जीवित रहते) हैं, तदनुरूप समस्त धार्मिकगण भक्ति का आश्रय लेकर ही जीवन्त रहते हैं।।२९-३०।।

स्वाश्रमाचारयुक्तस्य हरिभक्तिर्यदा भवेत्। न तस्य त्रिषुलोकेषु सदृशोऽस्त्यजनन्दन॥३१॥

भक्त्या सिध्यन्ति कर्म्माणि कर्म्मभिस्तुष्यते हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे भवेज्ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्यते॥३२॥
भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन खलु जायते।
तत्सङ्गं प्राप्यते पुम्भिः सुकृतैः पूर्वसञ्चितैः॥३३॥

जब व्यक्ति अपने आश्रम के आचार से आचारवान होकर हरिभक्तिपरायण हो जाता है, तब हे अजनन्दन! उसके समान धन्य तीनों लोक में कोई नहीं है। भक्ति से कर्म सिद्ध होता है। कर्म से हरि प्रसन्न होते

हैं। उनके सन्तुष्ट हो जाने के कारण ज्ञानलाभ होता है तथा ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्ति उत्पन्न होती है भगवद् भक्तों की संगति से। उनका संग उनको ही मिलता है, जिनको पूर्व जन्मार्जित पुण्य तथा सुकृत मिला है।।३१-३३।।

वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तिलालसाः। कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्तो लोकशिक्षकाः॥३४॥

सत्सङ्गः परमो ब्रह्मन्न लभ्येताकृतात्मनाम्।
यदि लभ्येत विज्ञेयं पुण्यं जन्मान्तरार्जितम्॥३५॥

जो व्यक्ति वर्णाश्रमाचार का पालन करता रहता है, जिसे भगवद्भक्ति की लालसा लगी रहती है, जो कामादि दोषों से मुक्त है, वही सन्त तथा लोकशिक्षक कहा गया है। हे ब्रह्मन्! सत्संग अत्यन्त दुर्लभ है, जिसे इन्द्रियों के वश में रहने वाला कभी नहीं पाता। यदि सत्संग लाभ हो जाये, तब उसे जन्म-जन्मान्तरों में किये पुण्य का फल माने।।३४-३५।।

पूर्वार्जितानि पापानि नाशमायान्ति यस्य वै।
सत्सङ्गतिर्भवेत्तस्य नान्यथा घटते हि सा॥३६॥

रविर्हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति बहिस्तमः। सन्तः सूक्तिमरीच्योघैश्चान्तर्ध्वान्तं हि सर्वदा॥३७॥

दुर्लभाः पुरुषा लोके भगवद्भक्तिलालसाः।
तेषां सङ्गो भवेद्यस्य तस्य शान्तिर्हि शाश्वती॥३८॥

जिसके पूर्वजन्मार्जित पाप नष्ट हो गये हों, उसे ही सत् संगति की प्राप्ति होती है, अन्यथा सत्संग नहीं मिलता। जिस प्रकार दिन में उदित सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा बाह्य अन्धकार का नाश कर देता है, तदनुरूप अपनी उक्ति (उपदेश) की किरणों द्वारा सन्तजन मनुष्यों के अन्तस्थ अज्ञानान्धकार का नाश कर देते हैं। संसार में भगवद्भक्ति की लालसा रखने वाले लोग दुर्लभ हैं। उनका सत्संग पाने वाला व्यक्ति शाश्वती शान्ति का लाभ करता है।।३६-३८।।

नारद उवाच

किं लक्षणा भागवतास्ते च किं कर्म्म कुर्वते।
तेषां लोको भवेत्कीदृक्तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः॥३९॥
त्वं हि भक्तो रमेशस्य देवदेवस्य चक्रिणः।
एतन्निगदितुं शक्तस्त्वत्तो नास्त्यधिकोऽपरः॥४०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—भागवत लोगों के लक्षण क्या हैं? वे किस कर्म को करते हैं? वे किन लोकों को प्राप्त करते हैं? कृपया यह सब तत्वतः कहिये। आप देवदेव रमापति चक्रधारी के भक्त हैं। इस तत्व का वर्णन आपकी अपेक्षा अन्य कोई विस्तार पूर्वक कह सकने में सक्षम ही नहीं है।।३९-४०।।

सनक उवाच

शृणु ब्रह्मन्परं गुह्यं मार्कण्डेयस्य धीमतः। यमुवाच जगन्नाथो योगनिद्राविमोचितः॥४१॥

योऽसौ विष्णुः परं ज्योतिर्देवदेवः सनातनः।
जगद्रूपी जगत्कर्त्ता शिवब्रह्मं स्वरूपवान्॥४२॥
युगान्ते रौद्ररूपेण ब्रह्माण्डग्रासबृंहितः। जगत्येकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे॥४३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे ब्रह्मन्! सुनें! योगनिद्रा से विमुक्त होकर जगन्नाथ श्रीहरि ने जो कुछ गुह्यतत्व धीमान् मार्कण्डेय से कहा था, उसे श्रवण करिये। जो विष्णु परज्योतिरूप देवदेव सनातन, जगत्रूप, जगत्कर्त्ता, कल्याणमय, ब्रह्म रूप हैं, वे प्रभु युगान्तकाल में रौद्ररूपी होकर ब्रह्माण्ड का ग्रास कर लेते हैं। उस समय स्थावर-जंगम सभी का नाश होता है तथा जगत् एकार्णवीभूत हो जाता है।।४१-४३।।

भगवानेव शेषात्मा शेते वटदले हरिः। असंख्याताब्जजन्माद्यैराभूषिततनूरुहः॥४४॥
पादाङ्गुष्ठाग्रनिर्यातगङ्गाशीताम्बुपावनः। सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो देवो ब्रह्माण्डग्रासबृंहितः॥४५॥

उस समय ऐसी स्थिति हो जाने पर एकमात्र प्रभु हरि ही अवशिष्ट रह जाते हैं तथा वे वटदल पर शयन करते हैं। उस समय प्रभु के प्रत्येक रोम-रोम में असंख्य ब्रह्मा प्रभृति भूषित रहते हैं। अपने पैर के अंगुष्ठ के अग्रभाग से शीतल पावन जल को भी पवित्र करने वाले प्रभु सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप धारण करके समस्त ब्रह्माण्ड का (स्वयं में) ग्रास करके महत्तर बने रहते हैं।।४४-४५।।

वटच्छदे शयानोऽभूत्सर्वशक्तिसमन्वितः। तस्मिन्स्थाने महाभागो नारायणपरायणः।
मार्कण्डेयः स्थितस्तस्य लीलाः पश्यन्महेशितुः॥४६॥

इस प्रकार के सर्वशक्तिधारी प्रभु वटपत्र पर शयन कर रहे थे। उस स्थल पर नारायण-परायण महाभाग मार्कण्डेय उन महाप्रभु की लीला देखकर विस्मयान्वित हो गये।।४६।।

ऋषयः ऊचुः

तस्मिन्काले महाघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे। हरिरेकः स्थित इति मुने पूर्वं हि शुश्रुम॥४७॥
जगत्येकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजंगमे। सर्वग्रस्तेन हरिणा किमर्थं सोऽवशेषितः॥४८॥
परं कौतूहलं ह्यत्र वर्त्ततेऽतीव सूत नः। हरिकीर्तिसुधापानो कस्यालस्यं प्रजायते॥४९॥

ऋषिगण कहते हैं—उस महाघोरकाल में समस्त स्थावर-जंगम जगत् का नाश हो गया था। हे मुनिवर! हमने पहले ऐसा सुना है कि तब केवल श्रीहरि ही अवशिष्ट थे। उस समय जब समस्त जगत् एकार्णवीभूत होकर नष्ट हो गया था, स्थावर-जंगम कुछ भी नहीं बचा था, तब सबको ग्रस लेने वाले हरि ने किसलिये मार्कण्डेय मुनि को रह जाने दिया था? हे सूत! हमें इस विषय में अत्यन्त कुतूहल हो रहा है? आप कृपा पूर्वक यह बतलाने की कृपा करिये? ऐसा कौन अभागा होगा, जिसे हरिगाथा रूपी अमृत पान करने में आलस्य होगा?।।४७-४९।।

सूत उवाच

आसीन्मुनिर्महाभागो मृकण्डुरिति विश्रुतः।
शालग्रामे महातीर्थे सोऽतप्यत महातपाः॥५०॥

युगानामयुतं ब्रह्मन्गृणन्ब्रह्म सनातनम्। निराहारः क्षमायुक्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः॥५१॥
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिःस्पृहः। सर्वभूतहितो दान्तस्तताप सुमहत्तपः॥५२॥
तत्तपःशङ्किताः सर्वे देवा इन्द्रादयस्तदा। परेशं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम्॥५३॥
क्षीराब्धेरुत्तरं तीरं संप्राप्य त्रिदिवौकसः। तुष्टुवुर्देवदेवेशं पद्मनाभं जगद्गुरुम्॥५४॥

सूत जी कहते हैं—एक समय महाभाग मुनि मृकण्डु अतीव प्रसिद्ध भी थे। उन महामुनि ने निराहार, क्षमाशील, सत्यगन्ध तथा जितेन्द्रिय रहकर दस हजार युग पर्यन्त शालग्राम महातीर्थ में महान् तप करते हुये सनातन ब्रह्म की आराधना किया था। वे उस समय विषयों से निःस्पृह रहते हुये आत्मवत् सभी प्राणीगण को देखा करते थे। वे समस्त प्राणीगण के हित में निरत दान्त स्थिति रहते हुये महान् तप उस समय कर रहे थे। उनके तप से सभी देवता तथा इन्द्रादि प्रधान देवता शंकित से हो गये। इस कारण वे समस्त देवगण अनामय परेश भगवान् नारायण के शरणागत हो गये। तदनन्तर वे सभी क्षीरसमुद्र के उत्तर तट पर गये। वहां जाने पर वे सभी स्वर्ग में निवास करने वाले देवता पद्मनाभ जगद्गुरु देवदेवेश को प्रसन्न करने हेतु उनकी स्तुति करने लगे।।५०-५४।।

देवा ऊचुः

नारायणाक्षरानन्त शरणागतपालक। मृकण्डुतपसा त्रस्तान्पाहि नः शरणागतान्॥५५॥
जय देवाधिदेवेश जय शङ्खगदाधर। जयो लोकस्वरूपाय जयो ब्रह्माण्डहेतवे॥५६॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते लोकपावन। नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकसाक्षिणे॥५७॥
नमस्ते ध्यानगम्याय नमस्ते ध्यानहेतवे। नमस्ते ध्यानरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे॥५८॥
केशिहन्त्रे नमस्तुभ्यं मधुहन्त्रे परात्मने। नमो भूम्यादिरूपाय नमश्चैतन्यरूपिणे॥५९॥

देवगण कहते हैं—हे नारायण! अक्षर, अनन्त, शरणागतपालक, शरणागत की रक्षा करने वाले, मृकण्डु ऋषि के तप से हमारी रक्षा करिये। हे देवाधिदेवेश, शंखगदाधारी, लोकस्वरूप, ब्रह्माण्ड के कारण! आपकी जय हो! हे देवदेवेश! आप लोकपावन, लोकनाथ, लोकसाक्षी, ध्यानगम्य, ध्यान के कारण, ध्यानरूप, ध्यानसाक्षी, केशीहन्ता, मधुदैत्य हन्ता, परात्मा हैं। आप भूमि आदिरूपी तथा चैतन्यरूपी हैं। आपकी जय हो। आपको अनेक प्रणाम!।।५५-५९।।

नमो ज्येष्ठाय शुद्धाय निर्गुणाय गुणात्मने। अरूपाय स्वरूपाय बहुरूपाय ते नमः॥६०॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥६१॥
नमो हिरण्यगर्भाय नमो ब्रह्मादिरूपिणे। नमः सूर्य्यादिरूपाय हव्यकव्यभुजे नमः॥६२॥
नमो नित्याय वन्द्याय सदानन्दैकरूपिणे।
नमः स्मृतार्तिनाशाय भूयो भूयो नमो नमः॥६३॥

आप ज्येष्ठ, शुद्ध, निर्गुण, गुणात्मा, अरूप, स्वरूप, बहुरूप, ब्रह्मण्यदेव, गोब्राह्मणहित में सन्नद्ध, जगत्हितकारी, कृष्ण तथा गोविन्द हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार! हे हिरण्यगर्भ, ब्रह्मादिरूपधारी, सूर्यादिरूप

युक्त, हव्य-कव्य भोक्ता, नित्य, वन्द्य, सदा आनन्दरूप, स्मरण करने वाले की आर्त्ति के नाशक! आपको पुनः-पुनः नमस्कार!।।६०-६३।।

एवं देवस्तुतिं श्रुत्वा भगवान्कमलापतिः। प्रत्यक्षतामगात्तेषां शङ्खचक्रगदाधरः।।६४।।
विकचाम्बुजपत्राक्षं सूर्य्यकोटिसमप्रभम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।।६५।।

भगवान् कमलापति यह देवकृत स्तुति सुनकर उनके समक्ष शंख-चक्र-गदाधारी रूप में प्रत्यक्ष हो गये। उनके नेत्र खिले हुये कमलवत् उत्फुल्ल थे, वे करोड़ों सूर्य की प्रभावाले थे, उनका देह सर्वालङ्कार भूषित तथा उनका वक्ष श्रीवत्सचिह्न से युक्त था।।६४-६५।।

पीताम्बरधरं सौम्यं स्वर्णयज्ञोपवीतिनम्। स्तूयमानं मुनिवरैः पार्षदप्रवरावृतम्।।६६।।
तं दृष्ट्वा देवसंघास्ते तत्तेजोहततेजसः। नमश्चक्रुर्मुदा युक्ता अष्टांगैरवनिं गताः।।६७।।
ततः प्रसन्नो भगवान्मेघगंभीरनिस्वनः। उवाच प्रीणयन्देवान्नतानिन्द्रपुरोगमान्।।६८।।

उनका रूप सौम्य था। उन्होंने स्वर्ण का यज्ञोपवीत तथा पीताम्बर धारण किया था। उनकी स्तुति श्रेष्ठ मुनिगण कर रहे थे। वे प्रभु अपने पार्षदों से घिरे हुये थे। महाप्रभु के तेज को देखकर देवताओं का अपना तेज म्लान हो गया। वे सभी मुदित होकर भगवान् को साष्टांग प्रणाम कर रहे थे। इससे प्रसन्न होकर भगवान् ने मेघवत् गंभीर स्वर में विनम्र देवगण के प्रति प्रसन्न होकर इन्द्रादि देवगण से कहा—।।६६-६८।।

श्रीभगवानुवाच

जाने वो मानसं दुःखं मृकण्डुतपसोद्गतम्।
युष्मान्न बाधते देवाः स ऋषिः सज्जनाग्रणी।।६९।।
संपद्भिः संयुता वापि विपद्भिश्चापि सज्जनाः।
सर्वथान्यं न बाधन्ते स्वप्नेऽपि सुरसत्तमाः।।७०।।

श्री भगवान् कहते हैं—जो मानस दुःख आप लोगों को महर्षि मृकण्डु के तप को देखकर हो गया है, वह मुझे ज्ञात है। इससे उन सज्जानाग्रणी से आप लोगों को कोई बाधा नहीं होगी। हे देवप्रवरगण! वे सज्जन व्यक्ति चाहे संपदाओं से युक्त हों किंवा विपद्ग्रस्त हों, उनसे आप लोगों को स्वप्न में भी कोई बाधा नहीं होगी।।६९-७०।।

सततं बाध्यमानोऽपि विषयाख्यैररातिभिः।
अविधायात्मनो रक्षामन्यान्द्वेष्टि कथं सुधीः।।७१।।
तापत्रयाभिधानेन बाध्यमानो हि मानवः।
अन्यं पीडयितुं शक्तःकथं भवति सत्तमः।।७२।।

वह सज्जन व्यक्ति सतत् विषय आदि शत्रुओं से बारम्बार बाधा पाता हुआ तथा उनसे बारम्बार पीड़ित होता हुआ, अन्य को किस प्रकार कष्ट दे सकेगा? (वह विद्वान् तो अपने इन शत्रुओं से तपःश्चरण करता हुआ अपनी ही रक्षा में लगा रहता है, वह विद्वान् मृकण्डु आप लोगों को कैसे कष्ट दे सकता है)। जो व्यक्ति यह जान

गया है कि वह तो स्वय दैविक, दैहिक, भौतिक रूप तापत्रय से सतत् पीड़ित है, वह अन्य को कैसे पीड़ित कर सकेगा?।।७१-७२।।

कर्मणा मनसा वाचा बाधते यः सदा परान्।
नित्यं कामादिभिर्युक्तो मूढधीः प्रोच्यते तु सः।।७३।।
यो लोकहितकृन्मर्त्यो गतासुर्यो विमत्सरः।
निःशङ्कः प्रोच्यते सद्भिरिहामुत्र च सत्तमाः।।७४।।
सशङ्कः सर्वदा दुःखी निःशङ्कः सुखमाप्नुयात्।
गच्छध्वं स्वालयं स्वस्थाः पीडयिष्यति वो न सः।।७५।।

ऐसा व्यक्ति जो मनसा-वाचा-कर्मणा सदा दूसरों को पीड़ित करता है, वह सदा काम-क्रोधादि दोषों के वश में रहने वाला मूढ़ बुद्धि कहा गया है। जो ईर्ष्या रहित, लोकहिततत्पर, मात्सर्य रहित है, हे सत्तमगण! उसे सज्जनगण इहलोक तथा परलोक में शंका रहित तथा सुखी मानते हैं। सशंक सदैव दुःखी रहते हैं। उपरोक्त निःशंक लोग सदा सुख पाते हैं। इसलिये आप सभी लोग शंका रहित होकर स्वस्थान प्रस्थान करें। स्वस्थचित्त होकर जाईये। वे मुनि आप लोगों को पीड़ा नहीं पहुंचायेंगे।।७३-७५।।

भवतां रक्षकश्चाहं विहरध्वं यथासुखम्। इति दत्त्वा वरं तेषामतसीकुसुमप्रभः।।७६।।
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत। तुष्टात्मानः सुरगणा ययुर्नाकं यथागतम्।।७७।।

मैं आप सभी देवताओं का रक्षक हूं। आप लोग सुख के साथ रहिये, विचरण करिये। अतसी पुष्पवत वर्ण एवं प्रभावान् भगवान् ने देवताओं को यह वर प्रदान किया तथा वे देवताओं के सामने से ही अन्तर्ध्यान हो गये। देवता भी भगवान् के कथन से आश्वस्त होकर अपने स्वर्गलोक वापस चले गये।।७६-७७।।

मृकण्डोरपि तुष्टात्मा हरिः प्रत्यक्षतामगात्। अरूपं परमं ब्रह्म स्वप्रकाशम् निरञ्जनम्।।७८।।
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। दिव्यायुधधरं दृष्ट्वा मृकण्डुर्विस्मितोऽभवत्।।७९।।

मृकण्डु मुनि के तप से प्रसन्न होकर भगवान् श्री हरि उनके समक्ष प्रकट हो गये। प्रभु अरूप, परमब्रह्म, स्वप्रकाश, निरंजन, अतसीपुष्प के वर्ण के समान शरीर वाले, पीतवस्त्रधारी, अच्युत ने दिव्यायुध धारण किया था। उनका दर्शन पाकर महर्षि मृकण्डु विस्मित हो गये।।७८-७९।।

ध्यानादुन्मील्य नयनं अपश्यद्धरिमग्रतः। प्रसन्नवदनं शान्तं धातारं विश्वतेजसम्।।८०।।
रोमाञ्चितशरीरोऽसावानन्दाश्रुविलोचनः। ननाम दण्डवद्भूमौ देवदेवं सनातनम्।।८१।।
अश्रुभिः क्षालयंस्तस्य चरणौ हर्षसम्भवैः। शिरस्यञ्जलिमाधाय स्तोतुं समुपचक्रमे।।८२।।

उन्होंने ध्यान से व्युत्थित होकर जब अपने नेत्रों को उन्मीलित किया, तब उन्होंने अपने समक्ष प्रसन्नमुख, शान्त, धाता, विश्वतेजस श्रीहरि को देखा। उनका दर्शन पाकर मुनि आनन्दातिरेक के कारण रोमांचित हो गये। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगा। उन्होंने भूमि पर दण्डवत् होकर तब देवदेव सनातन को प्रणाम किया! हर्ष के कारण उनके नेत्रों से बह रही अश्रुधारा ने मानों नारायण के चरणयुगल को धो दिया। तदनन्तर वे हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर श्रीहरि का स्तव करने लगे।।८०-८२।।

मृकण्डुरुवाच

नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परस्मात्परतः पराय।
अपारपाराय परानुकर्त्रे नमः परेभ्यः परपारणाय॥८३॥
यो नामजात्यादिविकल्पहीनः शब्दादिदोषव्यतिरेकरूपः।
बहु स्वरूपोऽपि निरञ्जनो यस्तमीशमीड्यं परमं भजामि॥८४॥

महर्षि मृकण्डु कहते हैं—हे परेश! परात्मरूप, परात्पर से भी पर, पर से भी परे, अपार जगत् के भी पार स्थित, परानुकरणकारी, अन्य पर अनुग्रहकारी, सभी को संसार से पार पहुंचाने वाले आपको प्रणाम! जो नाम-जाति प्रभृति विकल्प से रहित हैं, जो शब्दादि दोषों से व्यतिरिक्त रूपी हैं, जो बहुरूपी होकर भी निरंजन हैं, मैं उन परम वन्दनीय परम ईश्वर का भजन करता हूं।।८३-८४।।

वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं हिरण्यगर्भादिजगत्स्वरूपम्।
अनूपमं भक्तिजनानुकम्पिनं भजामि सर्वेश्वरमादिमीड्यम्॥८५॥

जो वेदान्तवेद्य, पुराणपुरुष, हिरण्यगर्भादि जगत्स्वरूप हैं, जो अनुपम, भक्तजन पर अनुकम्पा करने वाले हैं, मैं उन सर्वेश्वर का भजन करता हूं।।८५।।

पश्यन्ति यं वीतसमस्तदोषा ध्यानैकनिष्ठा विगतस्पृहाश्च।
निवृत्तमोहाः परमं पवित्रं नतोऽस्मि संसारनिर्वर्त्तकं तम्॥८६॥

जो प्रभु संसार का निवारण करने वाले (पुनः संसार में आने से रोकने वाले जन्म-मरणरूप चक्रनाशक हैं) हैं, उनका दर्शन सभी दोषों से रहित, ध्यानतत्पर, निःस्पृह साधकगण को प्राप्त होता है। मैं उन परमपवित्र प्रभु को नमन करता हूं।।८६।।

स्मृतार्तिनाशनं विष्णुं शरणागतपालकम्।
जगत्सेव्यं जगद्धाम परेशं करुणाकरम्॥८७॥

वे प्रभु स्मरण करने वाले की आर्त्ति के नाशक विष्णु शरणागत का पालन करने वाले, जगत्सेव्य, जगत् को आश्रय देने वाले, परेश तथा करुणा करने वाले हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूं!।।८७।।

एवं स्तुतः स भगवान्विष्णुस्तेन महर्षिणा। अवाप परमां तुष्टिं शङ्खचक्रगदाधरः॥८८॥
अथालिङ्ग्य मुनिं देवश्चतुर्भिर्दीर्घबाहुभिः। उवाच परमं प्रीत्या वरं वरय सुव्रत॥८९॥
प्रीतोऽस्मि तपसा तेन स्तोत्रेण च तवानघ। मनसा यदभिप्रेतं वरं वरय सुव्रत॥९०॥

शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् उन ऋषिकृत स्तुति द्वारा उन पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन प्रभु ने अपनी चारों भुजाओं से उन मुनि का आलिङ्गन करके परम प्रीति के साथ उनसे कहा—"हे सुव्रत! वर मांगो। हे निष्पाप! मैं तुम्हारे स्तोत्र से अत्यन्त प्रसन्न हूं। हे सुव्रत! तुम अभीप्सित वर मांगो।।८८-९०।।

मृकण्डुरुवाच

देवदेव जगन्नाथ कृतार्थोऽस्मि न संशयः। त्वद्दर्शनमपुण्यानां दुर्लभं च यतः स्मृतम्॥९१॥

ब्रह्माद्या यं न पश्यन्ति योगिनः संशितव्रताः।
धर्मिष्ठा दीक्षिताश्चापि वीतरागा विमत्सराः॥९२॥
तं पश्यामि परं धाम किमतोऽन्यं वरं वृणे। एतेनैव कृतार्थोऽस्मि जनार्दन जगद्गुरो॥९३॥

महर्षि मृकण्डु कहते हैं—हे देवदेव, जगन्नाथ! मैं निःसंदिग्ध रूप से कृतार्थ हो गया। पुण्यहीन के लिये तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जिन प्रभु को ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवता तथा व्रतशील योगीगण नहीं देख पाते, व्रती, धर्मिष्ठ, दीक्षित, वीतराग, मत्सर रहित को भी जिनका दर्शन प्राप्त नहीं होता, उन परमधाम को मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूं। इससे अधिक क्या है, जिसे मांगू? हे जगद्गुरु जनार्दन! मैं इतने से ही कृतार्थ हो गया।।९१-९३।।

यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि ये। तत्पदं परमं यान्ति ते दृष्ट्वा किमुताच्युत॥९४॥

हे अच्युत! जिनके नाम के स्मरणमात्र से महापातकी लोग भी परमपद की प्राप्ति कर लेते हैं, उन प्रभु का दर्शन पाकर क्या मांगना बाकी रह गया?।।९४।।

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मप्रीतोऽस्मि तव पण्डित।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति॥९५॥
विष्णुर्भक्तकुटुम्बीति वदन्ति विबुधाः सदा।
तदेव पालयिष्यामि मज्जनो नानृतं वदेत्॥९६॥
तस्मात्त्वत्तपसा तुष्टो यास्यामि तव पुत्रताम्।
समस्तगुणसंयुक्तो दीर्घजीवी स्वरूपवान्॥९७॥
मम जन्म कुले यस्य तत्कुलं मोक्षगामि वै। मयि तुष्टे मुनिश्रेष्ठ किमसाध्यं जगत्त्रये॥९८॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशो मुनेस्तस्य समीक्षतः। अन्तर्दधे मृकण्डुश्च तपसः समवर्तत॥९९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे भक्तिवर्णनप्रसङ्गेन मार्कण्डेयचरितारम्भो नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे ब्रह्मन्! हे पण्डित! तुमने सत्य कहा है, तथापि मेरा दर्शन कदापि विफल नहीं होता। विद्वानों का कहना है कि विष्णु तो भक्तों के कुटुम्बी हैं। मैं उन अपने जनों के इस वाक्य का पालन करूंगा, इसे मिथ्या नहीं होने दे सकता। मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूं। मैं तुम्हारा पुत्र होकर जन्म लूंगा जो सर्वगुणान्वित, सुरूप एवं दीर्घजीवी होगा। मेरा जन्म जिस कुल में होगा, वह समस्त कुल ही मोक्ष प्राप्त करेगा। हे मुनिप्रवर! मेरे सन्तुष्ट हो जाने पर इस त्रैलोक्य में क्या असाध्य रह जायेगा।" इतना कहने के अनन्तर देवदेवेश मृकण्डु मुनि के समक्ष ही अन्तर्हित् हो गये। वे मुनिप्रवर मृकण्डु पुनः तप करने लगे।।९५-९९।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

महर्षि मार्कण्डेय चरित वर्णन

नारद उवाच

ब्रह्मन्कथं स भगवान्मृकण्डोः पुत्रतां गतः। किं चकार च तद्ब्रूहि हरिर्भार्गववंशजः॥१॥
श्रूयते च पुराणेषु मार्कण्डेयो महामुनिः। अपश्यद्वैष्णवीं मायां चिरञ्जीव्यस्य संप्लवे॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! किसलिये भगवान् नारायण ने मृकण्डु के पुत्रत्व को ग्रहण किया? श्री हरि ने भार्गव कुल में जन्म लेकर क्या कार्य किया? पुराणों में यह सुना गया है कि चिरंजीवी महामुनि मार्कण्डेय ने प्रलयकाल में वैष्णवी माया का दर्शन किया था।।१-२।।

सनक उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां सनातनीम्। विष्णुभक्तिसमायुक्तां मार्कण्डेयमुनिं प्रति॥३॥
तपसोऽन्ते मृकण्डुस्तु भार्यामुद्वाह्य सत्तमः।
गार्हस्थ्यमकरोद्धृष्टः शान्तो दान्तः कृतार्थकः॥४॥
तस्य भार्या शुचिर्दक्षा नित्यं पतिपरायणा। मनसा वचसा चापि देहेन च पतिव्रता॥५॥
काले दधार सा गर्भं हरितेजोंऽशसम्भवम्। सुषुवे दशमासान्ते पुत्रं तेजस्विनं परम्॥६॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे नारद! अब मैं विष्णुभक्ति समायुक्त मार्कण्डेय मुनि की सनातनी कथा को कहता हूं। तपस्या के अन्त में महर्षि मृकण्डु ने प्रसन्न शान्त तथा उदार एवं कृतार्थ होकर विवाह किया तथा गृहस्थ होकर रहने लगे। उनकी पत्नी पवित्र, दक्ष, नित्य पतिपरायण, मन-वाणी-शरीर से पतिव्रता थीं। कुछ काल व्यतीत होने पर उन्होंने हरि के तेजांश से युक्त गर्भ धारण किया तथा दशम मास के अन्त में परम तेजवान् पुत्र को जन्म दिया।।३-६।।

स ऋषिः परमप्रीतो दृष्ट्वा पुत्रं सुलक्षणम्। जातकं कारयामास मङ्गलं विधिपूर्वकम्॥७॥
स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्ष इवोडुपः। ततस्तु पञ्चमे वर्षे उपनीय मुदान्वितः॥८॥

ऋषिश्रेष्ठ मृकण्डु उस पुत्र को सर्वलक्षणयुक्त देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने परमप्रीति पूर्वक तथा विधि पूर्वक जातक बालक का मंगल संस्कार सम्पन्न किया। जैसे शुक्लपक्षीय चन्द्रमा दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है, तदनुरूप वह बालक भी बढ़ने लगा। तदनन्तर जब वह पांच वर्ष का हो गया, तब मुदितमना मृकण्डु ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कर दिया।।७-८।।

शिक्षां चकार विप्रेन्द्र वैदिकीं धर्मसंहिताम्।
नमस्कार्या द्विजाः पुत्र सदा दृष्टा विधानतः॥९॥
त्रिकालं सूर्यमभ्यर्च्य सलिलाञ्जलिदानतः। वैदिकं कर्म कर्तव्यं वेदाध्ययनपूर्वकम्॥१०॥
ब्रह्मचर्येण तपसा पूजनीयो हरिः सदा। निषिद्धं वर्जनीयं स्याद्दुष्टसम्भाषणादिकम्॥११॥

साधुभिः सह वस्तव्यं विष्णुभक्तिपरैः सदा।
न द्वेषः कस्यचित्कार्यः सर्वेषां हितमाचरेत्॥१२॥

हे विप्रेन्द्र! तत्पश्चात् वे ऋषि मृकण्डु अपने पुत्र को वैदिकी धर्मसंहिता की शिक्षा देने लगे—"हे पुत्र! ब्राह्मणों को देखकर सदैव विधानानुरूप नमस्कार करना। तीनों सन्ध्याकाल में सूर्यार्घ्य प्रदान करके सूर्य की अर्चना करना। वेदाध्ययन तथा वैदिक कर्म करना अपना कर्त्तव्य समझना। हरि की पूजा ब्रह्मचारी रहकर तप द्वारा करना। दुष्टों से संभाषण, कठोर वचन कहना प्रभृति निषिद्ध एवं वर्जित मानना। विष्णुभक्त साधुओं का सदा संग करना। किसी से द्वेष न करना तथा सभी का हिताचरण करना।।९-१२।।

इज्याध्ययनदानानि सदा कार्याणि ते सुत।
एवं पित्रा समादिष्टो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः॥१३॥
चचार धर्मं सततं सदा सञ्चिन्तयन्हरिम्। मार्कण्डेयो महाभागो दयावान्धर्मवत्सलः॥१४॥
आत्मवान्सत्यसन्धश्च मार्तण्डसदृशप्रभः। वशी शान्तो महाज्ञानी सर्वतत्त्वार्थकोविदः॥१५॥
तपश्चचार परममच्युतप्रीतिकारणम्। आराधितो जगन्नाथो मार्कण्डेयेन धीमता॥१६॥

"हे वत्स! यज्ञ, अध्ययन, दान सदा करना।" मुनीश्वर मार्कण्डेय एवंविध पिता का उपदेश पाकर धर्म मार्ग पर चलते हुये सदैव हरिचिन्तन करते रहते थे। महाभाग मार्कण्डेय महान् भाग्यशाली, दयालु, धर्मवत्सल, आत्मवान्, सत्यसन्ध, सूर्यवत् तेजवान्, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, शान्त, महाज्ञानी सर्वतत्त्वज्ञ थे। धीमान् मार्कण्डेय ने अच्युत की परमप्रसन्नता प्राप्त करने हेतु तप द्वारा जगन्नाथ की आराधना किया।।१३-१६।।

पुराणसंहितां कर्त्तुंदत्तवान्वरमच्युतः। मार्कण्डेयो मुनिस्तस्मान्नारायण इति स्मृतः॥१७॥

उनकी आराधना से प्रसन्न होकर अच्युत देव ने उनको पुराणसंहिता प्रणयन करने हेतु वर प्रदान किया था। इसी कारण मुनि मार्कण्डेय नारायण कहलाये।।१७।।

चिरजीवी महाभक्तो देवदेवस्य चक्रिणः। जगत्येकार्णवीभूते स्वप्रभावं जनार्द्दनः॥१८॥
तस्य दर्शयितुं विप्रास्तं न संहृतवान्हरिः। मृकण्डुतनयो धीमान्विष्णुभक्तिसमन्वितः॥१९॥
तस्मिञ्जले महाघोरे स्थितवाञ्छीर्णपत्रवत्।
मार्कण्डेयः स्थितस्तावद्यावच्छेते हरिः स्वयम्॥२०॥

वे विष्णु के महाभक्त चिरंजीवी हो गये। जब जगत् एकार्णवीकृत हो गया, तब जनार्दन ने अपने प्रभाव के प्रदर्शनार्थ उन विप्र का संहार (प्रलयकालीन संहार) नहीं किया। वे मृकण्डुपुत्र, धीमान् विष्णुभक्ति समन्वित महर्षि मार्कण्डेय उस महाघोर जलमय एकार्णव में पेड़ से गिरे पत्ते की तरह वर्त्तमान थे। हरि के सम्पूर्ण शयन काल में मार्कण्डेय वहां स्थित थे।।१८-२०।।

तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि कालस्य वदतः शृणु।
दशभिः पञ्चभिश्चैव निमिषैः परिकीर्तिता॥२१॥
काष्ठातत्त्रिंशतो ज्ञेया कला पद्मजनन्दन।
तत्त्रिंशतः क्षणो ज्ञेयस्तैः षड्भिर्घटिका स्मृता॥२२॥

तद्द्वयेन मुहूर्त्तं स्याद्दिनं तत्त्रिंशता भवेत्। त्रिंशद्दिनैर्भवेन्मासः पक्षद्वितयसंयुतः॥२३॥
ऋतुर्मासद्वयेन स्यात्तत्रयेणायनं स्मृतम्। तद्द्वयेन भवेदब्दः स देवानां दिनं भवेत्॥२४॥

हे नारद! मैं उस काल को कहता हूं। उसका श्रवण करें। १५ निमेष की एक कला होती है। हे ब्रह्मपुत्र! तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक क्षण, छः क्षण की एक घटिका, दो घटिका का एक मुहूर्त्त कहा गया है। तीस मुहूर्त्त का एक दिन तथा तीस दिन का एक मास होता है। प्रत्येक मास शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में विभक्त रहता है। दो मास का एक ऋतु तथा तीन ऋतु का एक अयन होता है। दो अयन का एक वर्ष होता है, जो देवगण का एक अहोरात्र है।।२१-२४।।

उत्तरं दिवसं प्राहू रात्रिर्वै दक्षिणायनम्। मानुषेणैव मासेन पितॄणां दिनमुच्यते॥२५॥
तस्मात्सूर्येन्दुसंयोगे ज्ञातव्यं कल्पमुत्तमम्। दिव्यैवर्षसहस्त्रैर्द्वादशभिर्दैवतं युगम्॥२६॥

(छः मास के) उत्तरायण को देवगण का दिन तथा (छः मास के) दक्षिणायन को देवगण की रात्रि कहते हैं। मनुष्यों का एक मास पितरों का एक अहोरात्र होता है। अतः सूर्य-चन्द्र के योग को उत्तम कल्प कहते हैं। देवगण के बारह हजार वर्ष (१२००० × ३६० = ४३२०००० मानववर्ष) का एक दैवत युग होता है।।२५-२६।।

दैवे युगसहस्त्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ नृणाम्।
एकसप्ततिसंख्यातैर्दिव्यैर्मन्वन्तरं युगैः॥२७॥

चतुर्द्दशभिरेतैश्च ब्रह्मणो दिवसं मुने। यावत्प्रमाणं दिवसं तावद्रात्रिः प्रकीर्तिता॥२८॥
नाशमायाति विप्रेन्द्र तस्मिन्काले जगत्त्रयम्। मानुषेण सहस्त्रेण यत्प्रमाणं भवेच्छृणु॥२९॥

चार हजार दैवतयुग को मनुष्यों का दो कल्प माना गया है। इकहत्तर चतुर्युगों का एक मन्वन्तर तथा चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्मा का दिन तथा चौदह मन्वन्तरों की ब्रह्मा की रात्रि होती है। हे विप्रेन्द्र! ब्रह्मा के रात्रिकाल में तीनों लोकों का नाश हो जाता है। अव मानव सहस्त्र का प्रमाण श्रवण करें।।२७-२९।।

चतुर्युगसहस्त्राणि ब्रह्मणो दिवसं मुने। तद्वन्मासो वत्सरश्च ज्ञेयस्तस्यापि वेधसः॥३०॥
परार्द्धद्वयकालस्तु तन्मतेन भवेद्द्विजाः। विष्णोरहस्तु विज्ञेयं तावद्रात्रिः प्रकीर्त्तिता॥३१॥
मृकण्डुतनयस्तावत्स्थितः संजीर्णपर्णवत्। तस्मिन्घोरे जलमये विष्णुशक्त्त्युपबृंहितः।
आत्मानं परमं ध्यायन्स्थितवान्हरिसन्निधौ॥३२॥

हे मुनि! सहस्त्र चतुर्युग ही ब्रह्मा का एक दिवस है। इसी अनुपात से ब्राह्ममास एवं ब्राह्मवर्ष की गणना करे (समझे)। हे द्विजगण! इस मतानुसार दो परार्द्धकाल होते हैं। यह दो परार्द्धकाल विष्णु का एक दिन माना गया है। दो परार्द्धकाल की ही रात्रि होती है। मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेय उस एकार्णव में जीर्णपत्रवत् (पेड़ से गिरे पत्ते की तरह) विष्णु की रात्रि पर्यन्त स्थित थे। वे विष्णुशक्ति से उपबृंहित होकर परम आत्मा का ध्यान करते श्रीहरि की सन्निधि में स्थित थे।।३०-३२।।

अथ काले समायाते योगनिद्राविमोचितः। सृष्टवान्ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम्॥३३॥
संहृतं तु जलं वीक्ष्य सृष्टं विश्वं मृकण्डुजः। विस्मितः परमप्रीतो ववन्दे चरणौ हरेः॥३४॥

शिरस्यञ्जलिमाधाय मार्कण्डेयो महामुनिः। तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः सदानन्दैकविग्रहम्॥३५॥

सृष्टिकाल आसन्न होते ही श्रीहरि योगनिद्रा से विमोचित हो गये तथा उन्होंने ब्रह्मारूपधारी होकर सचराचर जगत् का सृजन किया। उस समय एकार्णव को संहत तथा विश्व की सृष्टि होते देखकर मार्कण्डेय परमविस्मित हो गये। उन्होंने परम प्रेम पूर्वक श्रीहरि के चरणों की वन्दना किया। तत्पश्चात् वे महामुनि शिर पर अपनी अंजलि बांधकर सदानंन्दविग्रह हरि की स्तुति अपनी अभीष्ट वाणी से करने लगे।।३३-३५।।

मार्कण्डेय उवाच

सहस्रशिरसं देवं नारायणमनामयम्। वासुदेवमनाधारं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥३६॥
अमेयमजरं नित्यं सदानन्दैकविग्रहम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥३७॥
अक्षरं परमं नित्यं विश्वाक्षं विश्वसम्भवम्।
सर्वतत्त्वमयं शान्तं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥३८॥
पुराणं पुरुषं सिद्धं सर्वज्ञानैकभाजनम्। परात्परतरं रूपं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥३९॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—हे सहस्र शिर वाले! देव, अनामय, नारायण अनाधार वासुदेव जनार्दन को प्रणाम! आप अमेय, अजर, नित्य, सदा आनन्दमूर्ति, तर्क से अवगत न होने वाले जनार्दन हैं। आपको प्रणाम! आप अक्षर, परम, नित्य, विश्वचक्षु, विश्वसंभव, सर्वतत्वमय, शान्त हैं। हे जनार्दन! आपको प्रणाम! आप पुराणपुरुष, सिद्ध, सर्वज्ञानाधार, परात्परतर रूप हैं। हे जनार्दन! आपको प्रणाम!।।३६-३९।।

परं ज्योतिः परं धाम पवित्रं परमं पदम्। सर्वैकरूपं परमं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥४०॥
तं सदानन्दचिन्मात्रं पराणां परमं पदम्। सर्वं सनातनं श्रेष्ठं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥४१॥
सगुणं निर्गुणं शान्तं मायाऽतीतं सुमायिनम्।
अरूपं बहुरूपं तं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥४२॥

आप परम ज्योति, परमधाम, पवित्र, परमपद हैं। आप सर्वरूप तथा परम हैं। हे जनार्दन! आपको प्रणाम! आप सदानन्द, चिन्मात्र, पर से भी परमपद, सर्व, सनातन, श्रेष्ठ हैं। हे जनार्दन! आपको प्रणाम! आप सगुण, निर्गुण, शान्त, मायातीत, अत्यन्त माया करने वाले, अरूप, बहुरूप हैं। आप जनार्दन को मेरा प्रणाम!।।४०-४२।।

यत्र तद्भगवान्विश्वं सृजत्यवति हन्ति च। तमादिदेवमीशानं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥४३॥
परेश परमानन्द शरणागतवत्सल। त्राहि मां करुणासिन्धो मनोतीत नमोऽस्तु ते॥४४॥

जो प्रभु विश्व का सृजन, रक्षण तथा संहार करते हैं, उन ईशान आदिदेव जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूं! हे परेश! परमानन्द, शरणागतवत्सल, हे करुणासिन्धु! आप मन से भी परे हैं। आपको मेरा प्रणाम!।।४३-४४।।

एवं स्तुवन्तं विप्रेन्द्रं मार्कण्डेयं जगद्गुरुम्। उवाच परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदाधरः॥४५॥

हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार की स्तुति को सुनकर जगद्गुरु, शंखचक्र-गदाधारी श्रीहरि ने परम प्रीति के साथ मार्कण्डेय से कहा—।।४५।।

श्रीभगवानुवाच

लोके भागवता ये च भगवद्भक्तमानसाः। तेषां तुष्टो न सन्देहो रक्षाम्येतांश्च सर्वदा॥४६॥
अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः। भगवद्भक्तरूपेण लोकान्रक्षामि सर्वदा॥४७॥

श्री भगवान् कहते हैं—इस लोक में भागवत वह है, जो भगवान् के प्रति भक्ति रखता है, मैं उससे प्रसन्न होकर सदैव उसकी रक्षा करता रहता हूं। इसमें सन्देह नहीं है। हे द्विजप्रवर! मैं नित्य ऐसे लोगों की रक्षा अपने विग्रह को गुप्त रखते हुये करता रहता हूं अर्थात् मैं भगवद्भक्त के रूप में उनका रक्षण करता हूं।।४६-४७।।

मार्कण्डेय उवाच

किंलक्षणा भागवता जायन्ते केन कर्म्मणा।
एतदिच्छाम्यहंश्रोतुं कौतूहलपरो यतः॥४८॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—भागवत जनों के क्या लक्षण होते हैं? वे किस कर्म को करते हैं? मुझे यह श्रवण करने की अत्यन्त इच्छा हो रही है तथा इस विषय को जानने हेतु मुझमें कुतूहल भी है।।४८।।

श्रीभगवानुवाच

लक्षणं भागवतानां शृणुष्व मुनिसत्तम।
वक्तुं तेषां प्रभावं हि शक्यते नाब्दकोटिभिः॥४९॥
ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः।
वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः॥५०॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे मुनिसत्तम! भागवत लोगों का लक्षण सुनिये। उनके प्रभाव को यथार्थत करोड़ों वर्षों में भी कहा नहीं जा सकता। जो सभी प्राणीगण के हित में तत्पर रहने वाले, ईर्ष्या एवं मत्सर दोषों से रहित, इन्द्रियों को वश में करने वाले, निःस्पृह तथा शान्त होते हैं, वे ही उत्तम भागवत कहे जाते हैं।।४९-५०।।

कर्म्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते। अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः॥५१॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः।
तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः॥५२॥
मात्रापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः। गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः॥५३॥

वे कदापि मनसा-वाचा-कर्मणा परपीड़ा का पातक नहीं करते। वे अपरिग्रही होते हैं अर्थात् संचय नहीं करते। ऐसे व्यक्ति भागवत कहे गये हैं। जिनकी सात्विकी बुद्धि सदा सत्कथा श्रवण में लगी रहती है, ऐसे भक्तिशील ही विष्णुभक्त तथा उत्तम भागवत कहे जाते हैं। जो उत्तम श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिता की सेवा करते हैं, उनके प्रति गंगा तथा विश्वनाथ की भावना रखते हैं, वे ही उत्तम भागवत हैं।।५१-५३।।

ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधकाः स्मृताः।
पूजां दृष्ट्वानुमोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः॥५४॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये। वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः॥५५॥

सर्वेषां हितवाक्यानि ते वदन्ति नरोत्तमाः।
ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः॥५६॥
आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः।
तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवत्तोत्तमाः॥५७॥

जो सदा देवार्चना करते हैं, जो देवार्चना कार्य के साधक हैं, जो अन्य को पूजा करते देखकर उसकी पूजा का अनुमोदन करते हैं, वे ही उत्तम भागवत हैं। जो व्रतशील तथा यति की सेवा करते रहते हैं, जो पराई निन्दा से अपने को वियुक्त रखते हैं, वे ही उत्तम भागवत हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य सदा हितकारी वाणी बोलते हैं, जो गुणग्राही स्वभाव वाले हैं, वे ही भागवत कहे जाते हैं। जो नरोत्तम सभी प्राणीगण को अपनी आत्मा के समान देखते हैं, जिनमें मित्र तथा शत्रु के प्रति समान भाव है, वे ही उत्तम भागवत कहे गये हैं।।५४-५७।।

धर्म्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये। सतां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥५८॥
व्याकुर्वते पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा।
तद्वक्तरि च भक्त्या ये ते वै भागवतोत्तमाः॥५९॥
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वते सततं नराः। तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥६०॥

जो धर्मशास्त्र के प्रवक्ता, सत्य बोलने में अनुरक्त तथा सत् प्रवृत्ति वालों की सेवा करते हैं, वे ही उत्तम भागवत कहे गये हैं। जो पुराणोपाख्यान के व्याख्याता हैं अथवा उस व्याख्या का श्रवण करते हैं, जो पुराण वक्ताओं के प्रति सश्रद्ध भाव वाले हैं, वे ही उत्तम भागवत हैं। जो मनुष्य सदा गौ-ब्राह्मण की सेवा में तत्पर रहता है, जो तीर्थयात्रा परायण है, वही उत्तम भागवत है।।५८-६०।।

अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः। हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥६१॥
आरामारोपणरतास्तडागपरिरक्षकाः। कासारकूपकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः॥६२॥
ये वै तडागकर्त्तारो देवसद्मानि कुर्वते। गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥६३॥
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः।
रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः॥६४॥

जो अन्य की उन्नति देखकर (ईर्ष्या न करके) उसकी प्रशंसा करते हैं तथा हरिनाम परायण रहते हैं, जो उद्यान निर्माण तथा वृक्षों का आरोपण करते हैं, जो तालाबों की रक्षा करते हैं, जो सरोवर, कूपादि का निर्माण कराते हैं, जो सतत् गायत्री उपासनारत रहते हैं, जो हरिनाम कहने वाले का अभिनन्दन करते हैं तथा हरिनाम श्रवण करके हर्षित होते हैं, हरिनाम श्रवण करते ही जो रोमांचित हो जाते हैं, वे ही उत्तम भागवत कहे गये हैं।।६१-६४।।

तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः। तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः॥६५॥
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये। तन्मूलमृत्तिकां ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥६६॥
आश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः। ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः॥६७॥

शिवप्रियाः शिवासक्ताः शिवपादार्च्चने रताः।
त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥६८॥

जो मनुष्य तुलसी उद्यान देखकर उसे प्रणाम करते हैं, जो तुलसी माला धारण करते हैं, जो तुलसी काष्ठ को कानों में धारण करते हैं, जो तुलसी की गंध सूंघकर हर्षित होते हैं, सन्तुष्ट होते हैं, जो वर्णाश्रम आचार का पालन करते हैं, अतिथि पूजक हैं, जो वेदार्थ का प्रवचन करते हैं, जो शिवप्रिय, शिव के प्रति अनुरक्त, शिवचरण वन्दनारत, त्रिपुण्डधारी हैं, वे उत्तम भागवत कहे जाते हैं।।६५-६८।।

व्याहरन्ति च नामानि हरेः शम्भोर्महात्मनः।
रुद्राक्षालङ्कृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥६९॥
ये यजन्ति महादेवं क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः। हरिं वा परया भक्त्या ते वै भागवतोत्तमाः॥७०॥
विदितानि च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये।
सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवताः स्मृताः॥७१॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि।
समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः॥७२॥

जो लोग हरि तथा महात्मा शंभु के नाम का जप करते रहते हैं, जो रुद्राक्ष को सदा धारण करते हैं, जो शास्त्रों का ज्ञान लाभ कर उसका उपदेश अन्य लोगों को देते हैं, जो हरि के प्रति परम भक्तिभाव रहते हैं, जो परमेश शिव तथा परमात्मा विष्णु के प्रति समभाव रखते हैं, वे उत्तम भागवत हैं।।६९-७२।।

शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः। शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥७३॥
पानीयदाननिरता येऽन्नदानरतास्तथा। एकादशी व्रतरता ते वै भागवतोत्तमाः॥७४॥
गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये। मदर्थं कर्म्मकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः॥७५॥

जो शिवार्चन तथा होम कार्य में लगे रहते हैं तथा पंचाक्षर मन्त्र जप में निरत होकर शिवध्यान परायण हैं, जो जलदान, अन्नदान करते हैं, एकादशी व्रताचारी हैं, जो गोदान तथा कन्यादान करते हैं, जो मेरे उद्देश्य से कर्म करते हैं; वे उत्तम भागवत हैं।।७३-७५।।

एते भागवता विप्र केचिदत्र प्रकीर्त्तिताः।
मयाऽपि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि॥७६॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र सुशीलो भव सर्वदा। सर्वभूताश्रयो दान्तो मैत्रो धर्म्मपरायणः॥७७॥
पुनर्युगान्तपर्य्यन्तं धर्म्मं सर्वं समाचरन्। मन्मूर्त्तिध्याननिरतः परं निर्वाणमाप्स्यसि॥७८॥

हे विप्र! मैंने यहां किंचित् ही भागवत लक्षण कहा है। मैं भी ये लक्षण करोड़ों वर्षों में भी पूरी तरह से नहीं कह सकता। हे विप्रेन्द्र! सदा सुशील (शीलवान्) रहो। तुम सभी प्राणीगण के आश्रय, उदार, मैत्री भाव सम्पन्न, धर्म परायण रहो। युगान्तकाल तक पुनः सभी (मेरे द्वारा कहे) धर्मों का पालन करो। मेरी मूर्त्ति के ध्यान में निरत हो। इससे तुमको परम निर्वाण लाभ होगा।।७६-७८।।

एवं मृकण्डुपुत्रस्य स्वभक्तस्य कृपानिधिः। दत्त्वा वरं स देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत॥७९॥
मार्कण्डेयो महाभागो हरिभक्तिरतः सदा। चचार परमं धर्ममीजे च विधिवन्मखैः॥८०॥
शालग्रामे महाक्षेत्रे तताप परमं तपः। ध्यानक्षपितकर्मा तु परं निर्वाणमाप्तवान्॥८१॥
तस्माज्जन्तुषु सर्वेषु हितकृद्धरिपूजकः। ईप्सितं मनसा यद्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम्॥८२॥

अपने भक्त मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय को वर प्रदान करने के उपरान्त देवेश श्रीहरि वहीं अन्तर्हित् हो गये। तभी से महाभाग मार्कण्डेय सदा हरिभक्ति में लीन रहकर परम धर्म का पालन करते हुये अनेक यज्ञ सम्पन्न करने लगे। उन्होंने महाक्षेत्र शालग्राम में जाकर अत्यन्त उत्तम तप किया। उन्होंने ध्यानयोग के अभ्यास द्वारा अपने कर्मों का क्षय करके परमनिर्वाण लाभ किया। अतः सभी प्राणीगण के प्रति हित साधक रहने वाला तथा हरिपूजक मनुष्य अपनी इच्छानुरूप फल प्राप्त करता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।७९-८२।।

सनक उवाच

एतत्सर्वं निगदितं त्वया पृष्टं द्विजोत्तम। भगवद्भक्तिमाहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥८३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे मार्कण्डेयवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

देवर्षि सनक कहते हैं—हे द्विजोत्तम! आपने जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया। अब आप कौन-सा भगवद्भक्ति माहात्म्य सुनना चाहते हैं।।८३।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

पुण्यतोया गंगा के माहात्म्य का वर्णन

सूत उवाच

भगवद्भक्तिमाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतस्तु नारदः। पुनः पप्रच्छ सनकं ज्ञानविज्ञानपारगम्॥१॥

सूत जी कहते हैं—देवर्षि नारद भगवद्भक्ति माहात्म्य श्रवण करके प्रसन्न हो गये। ज्ञानविज्ञान पारंगत नारद ने पुनः सनक ऋषि से प्रश्न किया।।१।।

नारद उवाच

क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम्। परया दयया तथ्यं ब्रूहि शास्त्रार्थपारग॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आप कृपा पूर्वक समस्त क्षेत्रों में से उत्तम क्षेत्र का तथा सर्वोत्तम तीर्थ का वर्णन करिये। आप शास्त्रार्थ (शास्त्र के अर्थ के ज्ञाता) ज्ञाता तथा पारंगत हैं।।२।।

सनक उवाच

शृणु ब्रह्मन्परं गुह्यं सर्वसम्पत्करं परम्। दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं धर्म्यं पापहरं शुभम्॥३॥
श्रोतव्यं मुनिभिर्नित्यं दुष्टग्रहनिवारणम्। सर्वरोगप्रशमनमायुर्वर्द्धनकारणम्॥४॥
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम्। गङ्गायमुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः॥५॥
सितासितोदकं तीर्थं ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः। मुनयो मनवश्चैव सेवन्ते पुण्यकाङ्क्षिणः॥६॥
गङ्गा पुण्यनदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोद्भवा। रविजा यमुना ब्रह्मंस्तयोर्योगः शुभावहः॥७॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे ब्रह्मन्! सर्वसम्पत्ति प्रदायक दुःस्वप्न नाशक, पुण्यमय, धर्ममय, पापहारी, शुभ गुह्य, दुष्टग्रहनिवारक, सर्व रोग नाशक, आयुवर्द्धक इस आख्यान का मुनिगण नित्य श्रवण करें। परमर्षिगण का यह मत है कि सभी क्षेत्रों की तुलना में परमश्रेष्ठ, समस्त तीर्थसमूह में सर्वोत्तम है गंगा-यमुना संगमस्थल। उस श्वेत (गंगाजल) तथा असित (श्यामवर्ण यमुनाजल) जल से शोभित तीर्थ का सेवन ब्रह्मादि सभी देवता, मुनिगण पुण्यकांक्षी मनुष्य करते रहते हैं। विष्णु के चरण कमल से उद्भूत गंगा पुण्यप्रद नदी है। हे ब्रह्मन्! रविपुत्री यमुना भी वहां हैं। इन दोनों का योग (संगम) अतीव शुभ है।।३-७।।

स्मृतार्तिनाशिनी गङ्गा नदीनां प्रवरा मुने। सर्वपापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी॥८॥
यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महीतले। तेषां पुण्यतमं ज्ञेयं प्रयागाख्यं महामुने॥९॥

हे मुनिप्रवर! स्मरण मात्र से ही नदीप्रवरा गंगा सभी पापों का क्षय करने वाली तथा समस्त उपद्रव का नाश करने वाली हैं। हे महामुनि! समुद्र तक व्यापक (समुद्र तक अन्त होने वाली) भूमि पर जितने भी पुण्यक्षेत्र स्थित हैं, उन सबमें पुण्यतम प्रयाग क्षेत्र कहा गया है।।८-९।।

इयाज वेधा यज्ञेन यत्र देवं रमापतिम्। तथैव मुनयः सर्वे चक्रुश्च विविधान्मखान्॥१०॥

सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै।
गङ्गाबिन्द्वभिषेकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥११॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शते स्थितः।
सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान्॥१२॥

यहीं पर ब्रह्मा ने देवदेव लक्ष्मीपति का यज्ञ द्वारा यजन किया था। उसी क्रम में यहां मुनियों ने विविध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। सभी तीर्थों में अभिषेक (स्नान) से जो पुण्यलाभ होता है, वह पुण्य गंगा के एक बूंद से अभिषेक करने की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं है। जो कोई सौ योजन की दूरी से भी गंगा-गंगा का उच्चारण करते हैं, वह पापों से मुक्ति पा लेता है, अतः जिसने गंगा में स्नान किया, उसकी तो बात ही क्या?।।१०-१२।।

विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरः स्थिता।
संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः॥१३॥

यत्सैकतं ललाटे तु धियते मनुजोत्तमैः। तत्रैव नेत्रं विज्ञेयं विध्वर्द्धाधः समुज्ज्वलत्॥१४॥

गंगा देवी विष्णु के चरणकमल से उद्भूत होकर विश्वेश्वर के शिर पर स्थित हो गई हैं। इसका सेवन देवता तथा मुनिगण तक करते हैं। ऐसी स्थिति में पापियों की तो बात ही क्या? जो श्रेष्ठ मनुष्य गंगा की बालुका मस्तक पर लगाते हैं, मानो वही वह समुज्वल अर्द्धचन्द्राकृति (तृतीय) नेत्र हैं।।१३-१४।।

यन्मज्जनं महापुण्यं दुर्लभं त्रिदिवौकसाम्।
सारूप्यदायकं विष्णोः किमस्मात्कथ्यते परम्॥१५॥
यत्र स्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः।
महद्विमानमारूढाः प्रयान्ति परमं पदम्॥१६॥
यत्र स्नाताः महात्मानः पितृमातृकुलानि वै।
सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णुलोके व्रजन्ति वै॥१७॥

जहां स्नान करना महापुण्यप्रद तथा देवदुर्लभ है तथा जो विष्णु का सारूप्य प्रदान करता है, उसके सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाये? जहां स्नान मात्र से पापीगण पापवर्जित हो जाते हैं तथा वे महान् विमान पर बैठकर परमपद प्राप्त करते हैं, जहां स्नान करके महात्मागण अपने पितृकुल तथा मातृकुल की सहस्त्रों पीढ़ी का उद्धार करके स्वयं विष्णुलोक प्रयाग करते हैं, उसके सम्बन्ध में कुछ भी कह सकना संभव नहीं है।।१५-१७।।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो गङ्गां स्मरति द्विज। पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु स्थितवान्नात्र संशयः॥१८॥
यत्र स्नातं नरं दृष्ट्वा पापोऽपि स्वर्गभूमिभाक्।
मदङ्गस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत्॥१९॥
तुलसीमूलसंभूता द्विजपादोद्भवा तथा। गङ्गोद्भवा तु मृल्लोकान्नयत्यच्युतरूपताम्॥२०॥

हे द्विज! जिसने गंगा का स्मरण किया, उसने तो समस्त तीर्थों में स्नान का फल पा लिया। उसने निःसंदिग्ध रूप से गंगा स्मरण मात्र से सभी पुण्यक्षेत्रों में निवास का फल पा लिया। प्रयाग में स्नान करते लोगों को देख कर ही पापी स्वर्गभूमि की प्राप्ति कर लेते हैं। वहां उसके अंग स्पर्श (मूर्ति स्पर्श) मात्र से ही पापी व्यक्ति देवपति हो जाता है। तुलसी के जड़ की मृत्तिका, द्विज के चरणकमल की रज, गंगा की मृत्तिका अत्यन्त पावन तथा अच्युत का सारूप्य प्रदान करने वाली है।।१८-२०।।

गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला। अत्यन्तदुर्ल्लभा नृणां भक्तिर्द्धर्मप्रवक्तरि॥२१॥
सद्धर्मवक्तुः पदसंभवा मृदं गङ्गोद्भवां चैव तथा तुलस्याः।
मूलोद्भवां भक्तियुतो मनुष्यो धृत्वा शिरस्येति पदं च विष्णोः॥२२॥
कदा यास्याम्यहं गङ्गां कदा पश्यामि तामहम्।
वाञ्छत्यपि च यो ह्येवं सोऽपि विष्णुपदं व्रजेत्॥२३॥

सद्धर्म के वक्ता के चरण की धूल, गंगा की मिट्टी तथा तुलसी के जड़ की मिट्टी को व्यक्ति शिर पर लगाने से विष्णुपद प्राप्त कर लेता है। जिसकी ऐसी कामना है कि मैं कब गंगा के निकट जाकर उसका दर्शन करूंगा, उसे भी विष्णुपद की प्राप्ति होती है।।२१-२३।।

गङ्गाया महिमा ब्रह्मन्वक्तुं वर्षशतैरपि। न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः॥२४॥

अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम्।
यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि॥२५॥

हे ब्रह्मन्! गंगा की महिमा को सैकड़ों वर्षों में विष्णु भी पूर्णतः नहीं कह सकते, तब इस विषय में अधिक क्या कहा जाये? यह आश्चर्य का तथ्य है कि गंगा नाम के रहते यह अद्भुत माया कैसे समस्त जगत् को मोहित कर लेती है और गंगा का पवित्र नाम जगत् में स्थित रहते हुये भी लोग नरक में गिरते हैं?।।२४-२५।।

संसारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम्। तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि॥२६॥

सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥२७॥

गंगा के नाम का जप संसार दुःख का नाश करने वाला है और वैष्णव को तुलसी की भक्ति भी संसार दुःख का नाश कर देती है। हरि की कीर्त्ति का गान भी यही कार्य करता है। एक बार भी 'गंगा' इन दो अक्षर का उच्चारण करने वाला सर्वपाप रहित होकर विष्णुलोक जाता है।।२६-२७।।

योजनत्रितयं यस्तु गङ्गायामधिगच्छति। सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं समेति हि॥२८॥

सेयं गङ्गा महापुण्या नदी भक्त्या निषेविता।
मेषतौलिमृगाङ्केषु पावयत्यखिलं जगत्॥२९॥

गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती।
तुङ्गभद्रा च कावेरी कालिन्दी बाहुदा तथा॥३०॥

वेत्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम। एवमादिषु तीर्थेषु गङ्गा मुख्यतमा स्मृता॥३१॥

जो तीन योजन भी गंगा की ओर जाता है (अपने स्थान से गंगा की ओर जाता हुआ तीन योजन अतिक्रान्त कर लेता है), वह सूर्यलोक गमन करता है। मेष, तुला एवं सिंह संक्रान्ति के समय जो भक्तिभाव के साथ महापुण्यमयी नदी गंगा में स्नान करता है, किंवा वहां कल्पवास करता है, उसका यह कृत्य अखिल जगत् को पावन कर देता है। गोदावरी, भीमरथी, सरयु, कृष्णा, रेवा, सरस्वती, तुंगभद्रा, कावेरी, कालिन्दी, बाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी आदि जो तीर्थ है, हे द्विजोत्तम! इनमें गंगा प्रधान तीर्थ है।।२८-३१।।

यथा सर्वगतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठितः।
तथेयं व्यापिनी गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी॥३२॥

अहो गङ्गा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत्।
पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः॥३३॥

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम्। वाराणसीति विख्यातं सर्वदेवनिषेवितम्॥३४॥

जिस प्रकार से व्यापक विष्णु जगत् को व्याप्त करके स्थित रहते हैं, तदनुरूप यह व्यापिनी गंगा सर्वपापनाशिनी है। अहो! यह गंगा जगत् का पालन करने वाली है। यह इतनी पावनी है कि अपने जल में स्नान करने वाले तथा गंगाजल का पान करने वाले को पवित्र कर देती है। लोग ऐसी गंगा का सेवन क्यों नहीं करते? सभी तीर्थों तथा क्षेत्रों में उत्तम सर्वदेवसेवित वाराणसी विख्यात तीर्थ है।।३२-३४।।

ते एव श्रवणे धन्ये संविदाते बहुश्रुतम्।
इह श्रुतिमतां पुंसां काशी याभ्यां श्रुताऽसकृत्॥३५॥
ये यं स्मरन्ति संस्थानमविमुक्तं द्विजोत्तमम्।
निर्धूतसर्वपापास्ते शिवलोकं व्रजन्ति वै॥३६॥
योजनानां शतस्थोऽपि अविमुक्तं स्मरेद्यदि। बहुपातकपूर्णोऽपि पदं गच्छत्यनामयम्॥३७॥

जिनके कान ने काशी का (वाराणसी का) नाम अनेक बार सुना है, वे धन्य हैं। जो अविमुक्त क्षेत्र काशी के नाम का स्मरण करते हैं, वे अपने सभी पापों को दग्ध करके शिवलोक जाते हैं। जो सौ योजन दूर से भी अविमुक्त क्षेत्र काशी का स्मरण करता है, भले ही वह व्यक्ति अनेक पापों से भरा क्यों न हो, उसे शाश्वत अनामय पद की प्राप्ति होती है।।३५-३७।।

प्राणप्रयाणसमये योऽविमुक्तं स्मरेद्द्विज। सोऽपि पापविनिर्मुक्तः शैवं पदमवाप्नुयात्॥३८॥
काशीस्मरणजं पुण्यं भुक्त्वा स्वर्गे तदन्ततः।
पृथिव्यामेकराड् भूत्वा काशीं प्राप्य च मुक्तिभाक्॥३९॥
बहुनात्र किमुक्तेन वाराणस्या गुणान्प्रति। नामापि गृह्णतां काश्याश्चतुर्वर्गो न दूरतः॥४०॥

हे द्विज नारद! जो प्राण निकलते समय अविमुक्त काशी का स्मरण करता है, वह भी पापों से मुक्त होकर शैवपद लाभ कर लेता है। ऐसा व्यक्ति काशी स्मरणजनित पुण्यबल से स्वर्ग में भोगों का उपभोग करके उस पुण्य का क्षय हो जाने पर पृथिवी पर जन्म लेता है। वह मर्त्यलोक में पृथिवी का अकेला सम्राट होकर पुनः काशी की प्राप्ति करके मुक्त हो जाता है। अधिक क्या कहा जाये, वाराणसी के गुणों का अन्त जो नहीं है। इसके दर्शन मात्र से मानव को परमगति की प्राप्ति हो जाती है। जो काशी का मात्र नाम जप करता है, उसके लिये चतुर्वर्ग रूपी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष दूर नहीं रहते।।३८-४०।।

गङ्गायमुनयोर्योगोऽधिकः काश्या अपि द्विज।
यस्य दर्शनमात्रेण नरा यान्ति परां गतिम्॥४१॥
मकरस्थे रवौ गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता। पुनाति स्नानपानाद्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत्॥४२॥
यो गङ्गां भजते नित्यं शङ्करो लोकशङ्करः।
लिङ्गरूपी कथं तस्या महिमा परिकीर्त्यते॥४३॥

हे द्विजप्रवर! यह गंगा-यमुना संगमरूप प्रयाग तथा काशी से भी अधिक है। इस (प्रयाग) संगम के दर्शन मात्र से मनुष्यों को परमगति मिलती है। जब मकर संक्रान्ति पड़े, तब कहीं भी गंगा स्नान करने से व्यक्ति पवित्र हो जाते हैं। जो नित्य गंगा का नाम भजता है तथा नित्य लिंगरूपी शंकर, लोक शंकर की महिमा का कीर्त्तन करता है, उस व्यक्ति की महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकेगा?।।४१-४३।।

हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः। ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृच्चानयोः कुधीः॥४४॥
अनादिनिधने देवेहरिशङ्करसंज्ञिते। अज्ञानसागरे मग्ना भेदं कुर्वन्ति पापिनः॥४५॥

हरि ही लिङ्गरूपी है तथा लिङ्ग (शिव) ही विष्णु हैं। इन दोनों में भेद है ही नहीं। इनमें भेद बुद्धि रखने वाला कुबुद्धिशाली है। देव हरि तथा शंकर अनादि तथा अमर हैं। जो पापी है तथा अज्ञान में डूबा है, वही इनमें भेद दर्शन करता है।।४४-४५।।

यो देवो जगतामीशः कारणानां च कारणम्। युगान्ते निगदन्त्येतद्रुद्ररूपधरो हरिः।।४६।।
रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिलं जगत्। ब्रह्मरूपेण सृजति प्रान्तेऽत्त्येतत्त्रयं हरः।।४७।।
हरिशङ्करयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नरः। भेदं करोति सोऽभ्येति नरकं भृशदारुणम्।।४८।।
हरं हरिं विधातारं यः पश्यत्यैकरूपिणम्। स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निश्चयः।।४९।।

जो देव जगत् के ईश्वर जगत् कारण के भी कारण हैं, वे युगान्त होने पर रुद्ररूप धारण करते हैं। यह कहा गया है। रुद्रदेव ही विष्णुरूपी होकर निखिल जगत् का पालन करते हैं, वे ही ब्रह्मरूपी होकर सृष्टि कार्य करते हैं। ये तीनों उनका ही रूप है। जो हरि, शंकर तथा ब्रह्मा में भेद दर्शन करता है, वह पापी अत्यन्त घोर तथा दारुण नरक में पतित होता है। जो हरि-हर-विधाता को एकरूपी जानता है, वह परमानन्द लाभ करता है, यही शास्त्रों का निश्चय है।।४६-४९।।

योऽसावनादिः सर्वज्ञो जगतामादिकृद्विभुः।
नित्यं सन्निहितस्तत्र लिङ्गरूपी जनार्दनः।।५०।।
काशीविश्वेश्वरं लिङ्गंज्योतिर्लिङ्गं तदुच्यते।
तं दृष्ट्वा परमं ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तमः।।५१।।

जो सृष्टि के आदि, सर्वज्ञ तथा स्वामी शिव हैं, वे ही लिङ्गरूपी जनार्दन होकर नित्य सन्निहित रहते हैं। काशी विश्वेश्वर लिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग कहा गया है। उनके दर्शन से श्रेष्ठ मानव परमज्योतिलाभ करते हैं।।५०-५१।।

काशीप्रदक्षिणा येन कृता त्रैलोक्यपावनी।
सप्तद्वीपा साब्धिशैला भूः परिक्रमितामुना।।५२।।
धातुमृद्दारुपाषाणलेख्याद्या मूर्तयोऽमलाः।
शिवस्य वाच्युतस्यापि तासु सन्निहितो हरिः।।५३।।
तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनं द्विज। पुराणपठनं यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।।५४।।
पुराणसंहितावक्ता हरिरित्यभिधीयते। तद्भक्तिं कुर्वतां नृणां गङ्गास्नानं दिने दिने।।५५।।

जिस मनुष्य ने काशी परिक्रमा कर लिया, वह इस त्रैलोक्य को पावन करने वाली परिक्रमा द्वारा ससागरा, सशैला धरती की परिक्रमा कर चुका। धातु-मिट्टी-पाषाण-चित्र आदि की सभी अमल मूर्तियों में, विष्णु तथा अच्युत की इन मूर्तियों में श्रीहरि सर्वदा सन्निहित रहते हैं। जो पुराण का वक्ता है, वह भी हरि ही कहलाता है। जो पुराण वक्ता के प्रति भक्ति रखता है, उस मनुष्य ने तो प्रतिदिन गंगा स्नान का फल पा लिया।।५२-५५।।

पुराणश्रवणे भक्तिर्गङ्गास्नानसमा द्विज।
तद्वक्तरि च या भक्तिः सा प्रयागोपमा स्मृता।।५६।।

पुराणधर्मकथनैर्यः समुद्धरते जगत्। संसारसागरे मग्नं स हरिः परिकीर्तितः॥५७॥

हे द्विज! पुराण श्रवण भक्ति पूर्वक करना, गंगा स्नानवत् फलदायी है। पुराणवक्ता के प्रति जो भक्ति की जाती है, वह तो प्रयाग के समान फलप्रद है। जो व्यक्ति पुराण धर्म का प्रवचन करके जगत् के लोगों का उद्धार करता है, जो इस प्रकार से संसार मग्न लोगों का उद्धार करता है, वह तो हरि ही है।।५६-५७।।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मानसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥५८॥
वर्णानां ब्राह्मणः श्रेष्ठस्तारकाणां यथा शशी।
यथा पयोधिः सिन्धूनां तथा गङ्गा परा स्मृता॥५९॥
नास्ति शान्तिसमो बन्धुर्नास्ति सत्यात्परं तपः।
नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गङ्गासमा नदी॥६०॥

गंगा के समान तीर्थ नहीं है, मान के समान कोई गुरु नहीं है। कोई विष्णु के समान देवता नहीं है तथा गुरु के समान कोई परम तत्व नहीं है। जैसे वर्णों में ब्राह्मण तथा तारकों में चन्द्रमा श्रेष्ठ है, जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है, तद्वत् समस्त नदी एवं तीर्थों में से गंगा श्रेष्ठ है। शान्ति के समान कोई बन्धु नहीं है, सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है। मोक्ष से बढ़कर कोई लाभ नहीं है तथा गंगा के समान कोई नदी नहीं है।।५८-६०।।

गङ्गायाः परमं नाम पापारण्यदवानलः। भवव्याधिहरा गङ्गा तस्मात्सेव्या प्रयत्नतः॥६१॥
गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते। एतयोर्भक्तिहीनो यस्तं विद्यात्पतितं द्विज॥६२॥

गायत्री छन्दसां माता माता लोकस्य जाह्नवी।
उभे ते सर्वपापानां नाशकारणतां गते॥६३॥

गंगा का परम नाम पापरूपी वन को नष्ट करने वाले दावानल के समान हैं। भवरूपी रोग का हरण करने वाली गंगा ही है। अतः इसका प्रयत्नतः सेवन करना चाहिये। गायत्री तथा जाह्नवी को सर्पपापहारी कहते हैं। हे द्विज! जो इनकी भक्ति नहीं करता उसे पतित जाने। गायत्री छन्दों की माता है तथा गंगा लोकमाता है। ये दोनों सबके सभी पापों का नाश करने वाली हैं।।६१-६३।।

यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गङ्गा प्रसीदति। विष्णुशक्तियुते ते द्वे समकामप्रसिद्धिदे॥६४॥
धर्मार्थकामरूपाणां फलरूपे निरञ्जने। सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तेते महोत्तमे॥६५॥

जिसके प्रति गायत्री प्रसन्न होती हैं, उस पर गंगा भी प्रसन्न हो जाती हैं। ये दोनों विष्णुशक्ति सम्पन्न होने के कारण सभी कामनाओं को सिद्ध कर देती हैं। ये दोनों निरंजन तथा धर्म-अर्थ-कामरूपी फल प्रदा हैं। ये दोनों शक्ति सभी लोकों पर अनुर्ग्रहार्थ प्रवर्त्तित होने वाली महान् उत्तम शक्तियां हैं।।६४-६५।।

अतीव दुर्ल्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा।
तथैव तुलसीभक्तिर्हरिभक्तिश्च सात्त्विकी॥६६॥
अहो गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी। हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी।
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम्॥६७॥

मनुष्यों हेतु गायत्री एवं जाह्नवी अतीव दुर्लभा हैं। एवंविध हरि के प्रति सात्विकी भक्ति तथा तुलसी के प्रति भक्ति भी अतीव दुर्लभा है। अहो! महाभागा गंगा स्मरण द्वारा पाप प्रणाशिनी हैं। अहो! यह दर्शन मात्र से हरिभक्तिप्रदा हैं। यदि इनका जो कोई जल पीता है, उसे ये गंगा सारूप्य प्रदान करती हैं। उसमें स्नान करने वाला अत्युत्तम विष्णुपद प्राप्त करता है।।६६-६७।।

नारायणो जगद्धाता वासुदेवः सनातनः। गङ्गास्नानपराणां तु वाञ्छितार्थफलप्रदः।।६८।।
गङ्गाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः। सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्।।६९।।
यद्बिन्दुसेवनादेव सगरान्वयसम्भवः। विसृज्य राक्षसं भावं सम्प्राप्तः परमं पदम्।।७०।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्यं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।
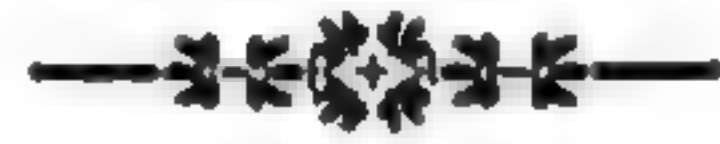
जो गंगास्नान परायण है, उसे नारायण जगत्पालक सनातन वासुदेव प्रभु वांछित पदार्थ प्रदान करते हैं। गंगाजल के एक ही कण से अभिषिक्त होने वाला मनुष्य श्रेष्ठ सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर परमपद प्राप्त करता है। जिस गंगा जल के जलविन्दु का स्पर्श करके सगरपुत्र राक्षसभाव को त्यागकर मुक्त हो गये थे तथा उन्होंने परमपद लाभ किया था, वह गंगाजल परम पावन है।।६८-७०।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।
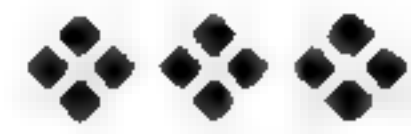
अथ सप्तमोऽध्यायः

गंगा के माहात्म्य का वर्णन

नारद उवाच

कोऽसौ राक्षसभावाद्धि मोचितः सगरान्वये। सगरः को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिप्रवर! राक्षस भाव से मुक्त होने वाले सगरवंशी कौन थे? आप उस आख्यान को कहने की कृपा करिये।।१।।

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। यज्जलस्पर्शमात्रेण पावितं सागरं कुलम्।
गतं विष्णुपदं विप्र सर्वलोकोत्तमोत्तमम्।।२।।

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिशार्दूल! आप गंगा का अत्युत्तम माहात्म्य श्रवण करिये। उस गंगा के जल के स्पर्शमात्र से सगर कुल पवित्र हो गया तथा हे विप्र! उन लोगों ने इस जल के स्पर्श द्वारा विष्णुपद प्राप्त किया, जो सभी लोकों में अत्युत्तम है।।२।।

आसीद्रविकुले जतो बाहुर्नाम वृकात्मजः। बुभुजे पृथिवीं सर्वां धर्मतो धर्मतत्परः॥३॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जन्तवः।
स्थापिताः स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुर्विशाम्पतिः॥४॥

अश्वमेधैरियाजासौ सप्तद्वीपेषु सप्तभिः। अतर्प्ययद् भूमिदेवान् गोभूस्वर्णांशुकादिभिः॥५॥

अशासन्नीतिशास्त्रेण यथेष्टं परिपन्थिनः। मेने कृतार्थमात्मानमन्यातपनिवारणम्॥६॥

पूर्वकाल में सूर्यवंशी वृक का पुत्र था राजा बाहु। वह धार्मिक राजा था। उसने सम्पूर्ण पृथिवी पर धर्म पूर्वक शासन किया था। उसने अपने बाहुबल द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य लोगों को उनके-उनके स्वधर्म में स्थापित किया था। उस राजा ने सातों द्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उसने ब्राह्मणों को गौ, स्वर्ण, भूमि तथा वस्त्र देकर सन्तुष्ट किया। अपने विरोधी लोगों को राजा ने यथेष्ट रूप से नीतिशास्त्रानुसार पराजित किया। वह लोगों के ताप (दुःख) का निवारण करके स्वयं को कृतकृत्य मानता था।।३-६।।

चन्दनानि मनोज्ञानि बलिं यत्सर्वदा जनाः। भूषिता भूषणैर्दिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनो मुने॥७॥

अकृष्टपच्यां पृथिवी फलपुष्पसमन्विता॥८॥

जिस प्रकार चन्दन अन्य के ताप को नष्ट करता है, उसी प्रकार राजा अन्य सभी के कष्ट (ताप) का हरण करता था। उसके राज्य में प्रजा दिव्यभूषणभूषित तथा सुखी रहती थी। हे मुनिवर! पृथिवी बिना जोते फल, पुष्प से समन्वित थी।।७-८।।

ववर्ष भूमौ देवेन्द्रः काले काले मुनीश्वर। अधर्मनिरताराये प्रजा धर्मेण रक्षिताः॥९॥

एकदा तस्य भूपस्य सर्वसम्पद्विनाशकृत्। अहङ्कारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुकः॥१०॥

अहं राजा समस्तानां लोकानां पालको बली।
कर्त्ता महाक्रतूनां च मत्तः पूज्योऽस्ति कोऽपरः॥११॥

उस समय हे मुनीश्वर! इन्द्र भी समयानुकूल वर्षा करते थे। वह राजा सभी प्रकार की आपत्ति एवं वाधाओं से प्रजा की रक्षा धर्मतः करता था। एक बार राजा के मन में सर्वसम्पत्ति विनाशक राज्यादि नाशक महा अहंकार उत्पन्न हो गया, जो ईर्षा समन्वित था। उसके मन में यह विचार आया कि मैं सब का राजा, लोकपालक तथा बली हूं। मैं महान् यज्ञों को सम्पन्न करने वाला हूं। मेरे समान पूज्य अन्य कौन है?।।९-११।।

अहं विचक्षणः श्रीमाञ्जिताः सर्वे मयारयः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः॥१२॥

अजेयोऽव्याहतैश्वर्यो मत्तः कोऽन्योऽधिको भुवि।
अहंकारपरस्यैवं जातासूया परेष्वपि॥१३॥

"मैं बुद्धिमान, श्रीमान, सर्वशत्रुजेता हूं। मैं वेद-वेदाङ्ग के तत्व का ज्ञाता, नीतिशास्त्रज्ञ हूं। मैं अजेय हूं। सर्वऐश्वर्य मेरे पास स्थित है। मुझसे महान् और कौन है?" वह राजा जब इस प्रकार से अहंकारी हो गया, तब उसके मन में दूसरों के प्रति असूया का जन्म हो गया।।१२-१३।।

असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर।
एषु स्थितेषु तु नरो विनाशं यात्यसंशयम्॥१४॥

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥१५॥
तस्यासूया नु महती जाता लोकविरोधिनी। स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसम्पद्विनाशिनी॥१६॥

एवंविध मन बुद्धि में असूया का जन्म जब उसमें हो गया, तब फलस्वरूप उसमें काम का भी संचार हो गया। हे मुनीश्वर! इस प्रकार से असूया एवं काम की स्थिति हो जाने पर मनुष्य का विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है। यौवन, धनसम्पत्ति तथा प्रभुत्व एवं अविवेकी स्वभाव में से यदि एक भी हों, तब वे अनर्थ के कारण हो जाते हैं, जहां ये चारों हो जायें, उसकी बात क्या कहा जाये? हे विप्र! राजा के मन में इस प्रकार से लोकविरोधी, स्वदेहनाशक एवं सर्वसम्पत्ति नाशक असूया उदित हो गयी थी।।१४-१६।।

असूयाविष्टमनसि यदि सम्पत्प्रवर्त्तते। तुषाग्निं वायुसंयोगमिव जानीहि सुव्रत॥१७॥
असूयोपेतमनसां दम्भाचारवतां तथा। परुषोक्तिरतानां च सुखं नेह परत्र च॥१८॥

ऐसी असूया से ग्रसित मानव का सर्वनाश नियत है। यह असूया जब धनी व्यक्ति के मन को अधिकार में कर लेती है, तब मानो भूसे की अग्नि को वायु का संयोग मिल गया। हे सुव्रत! तब वह असूयाग्नि धधक उठती है। असूया से युक्त मन वाला, दम्भाचार में निरत, कठोर वचन बालने वाला जो व्यक्ति है, उसे इहलोक तथा परलोक में, कहीं भी सुख नहीं मिलता।।१७-१८।।

असूयाविष्टचित्तानां सदा निष्ठुरभाषिणाम्।
प्रिया वा तनया वापि बान्धवा अप्यरातयः॥१९॥
मनोभिलाषं कुरुते यः समीक्ष्य परस्त्रियम्।
स स्वसम्पद्विनाशाय कुठारो नात्र संशयः॥२०॥

असूया से आविष्ट चित्त वाला व्यक्ति सदैव निष्ठुरता पूर्ण वाक्य बोलता है, जिससे उसके बन्धु-बान्धव, पत्नी आदि सभी शत्रुवत् हो जाते हैं। जो परस्त्री को देखकर उसे प्राप्त करने की अभिलाषा करता है, वह तो स्वसम्पत्ति का नाश करने वाला कुठार जैसा एकमात्र कारण है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१९-२०।।

यः स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याद्यत्नं नरो मुने।
सर्वेषां श्रेयसं दृष्ट्वा स कुर्यान्मत्सरं कुधीः॥२१॥
मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुष्वपि। हानिमिच्छन्नरः कुर्यादसूयां सततं द्विज॥२२॥

हे मुनिवर! यदि कोई स्वयं अपने श्रेयः का नाश करना चाहता है, तब वह मूढ़ अन्य सभी लोगों की उन्नति देखकर उनसे ईर्ष्या करे। हे द्विज! जो मूढ़ व्यक्ति अपने मित्र, पुत्रादि, गृह, क्षेत्र, धन-धान्य, पशु आदि की हानि तथा नाश की इच्छा करना चाहे, तो वह अन्य लोगों से सदा ईर्ष्या करे।।२१-२२।।

अथ तस्याविनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतसः।
हैहयास्तालजङ्घाश्च बलिनोऽरातयोऽभवन्॥२३॥
यस्यानुकूलो लक्ष्मीशः सौभाग्यं तस्य वर्द्धते।
स एव विमुखो यस्य सौभाग्यं तस्य हीयते॥२४॥

राजा की ऐसी अविनीत एवं ईर्ष्यायुक्त चेष्टा देखकर हैहय, तालजंघ आदि बलवान राजा लोग उस राजा के शत्रु हो गये। लक्ष्मीपति नारायण जिसके प्रति अनुकूल होते हैं, उसका सौभाग्यवर्द्धन होता है। वे प्रभु जिससे प्रतिकूल हो जाते हैं, उसका सौभाग्य क्षीण हो जाता है।।२३-२४।।

तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यगृहादयः। यावदीक्षेत लक्ष्मीशः कृपापाङ्गेन नारद॥२५॥

अपि मूर्खान्धबधिरजडाः शूरा विवेकिनः।
श्लाघ्या भवन्ति विप्रेन्द्र प्रेक्षिता माधवेन ये॥२६॥

हे नारद! व्यक्ति का धन-ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्रादि सन्तति, धान्य-गृहादि तभी तक बढ़ता है, जब तक भगवान् लक्ष्मीपति की कृपादृष्टि उसके प्रति बनी रहती है। हे नारद! हे विप्रेन्द्र! भले ही व्यक्ति मूर्ख, अन्धा, बहरा, जड़ क्यों न हो, जब तक उसके प्रति भगवान् लक्ष्मीपति की कृपा दृष्टि रहती है, वह शूर, विवेकी तथा आदर का पात्र बना रहता है।।२५-२६।।

सौभाग्यं तस्य हीयेत यस्यासूयादिलाञ्छनम्।
जायते नात्र सन्देहो जन्तुद्वेषो विशेषतः॥२७॥

सततं यस्य कस्यापि यो द्वेषं कुरुते नरः। तस्य सर्वाणि नश्यन्ति श्रेयांसि मुनिसत्तम॥२८॥

जो व्यक्ति असूया रूपी कलंक से युक्त है, किंवा प्राणीगण से द्वेष विशेष रूप से करता है, उसका सौभाग्य नष्ट हो जाता है। जो हर-किसी व्यक्ति से द्वेष करता है, हे मुनिप्रवर! उसके समस्त श्रेय नष्ट हो जाते हैं।।२७-२८।।

असूया वर्द्धते यस्य तस्य विष्णुः पराङ्मुखः।
धनं धान्यं मही सम्पद्विनश्यति ततो ध्रुवम्॥२९॥
विवेकं हन्त्यहङ्कारस्त्वविवेकात्तु जीविनाम्।
आपदः सम्भवन्त्येवेत्यहङ्कारं त्यजेत्ततः॥३०॥

हे मुनि! जिसके मन में असूया (ईर्ष्या) की वृद्धि होती जाती है, उससे विष्णु विमुख हो जाते हैं। उसकी सम्पदा, भूमि, धन-धान्य का नष्ट होना निश्चित है। अहंकार के प्रभाव से व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है। विवेकनाश तथा अहंकार के कारण मनुष्य पर विपत्तियां आक्रमण करने लगती हैं। अहंकार का सदा त्याग कर देना चाहिये।।२९-३०।।

अहङ्कारो भवेद्यस्य तस्य नाशोऽतिवेगतः। असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञः परैः सह॥३१॥
आयोधनमभूद्घोरं मासमेकं निरन्तरम्। हैहयैस्तालजङ्घैश्च रिपुभिः स पराजितः॥३२॥

अहंकार से आच्छन्न व्यक्ति का शीघ्रता के साथ नाश होता है। असूया से पूर्ण उस राजा से शत्रुओं का युद्ध छिड़ गया। उसका युद्ध हैयय तथा तालजंघ क्षत्रियों से एक मास पर्यन्त सतत् होता रहा। परिणामतः राजा परास्त हो गया।।३१-३२।।

स तु बाहुस्ततो दुःखी अन्तर्वत्न्या स्वभार्यया।
अवाप परमां तुष्टिं तत्र दृष्ट्वा महत्सरः॥३३॥

असूयोपेतमनसस्तस्य भावं निरीक्ष्य च। सरोगतविहङ्गास्ते लीनाश्चित्रमिदं महत्।।३४।।
अहो कष्टमहो रूपं घोरमत्र समागतम्। विशन्तस्त्वरया वासमित्यूचुस्ते विहङ्गमाः।।३५।।

यह देखकर राजा बाहु अत्यन्त दुःखी हो गया। वह अपनी गर्भवती पत्नी के साथ वन में एक सरोवर को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो गया, तथापि उसके मत्सर भाव को देखकर सरोवर के पक्षी आदि सभी छिप गये और वह आपस में कथनोपकथन करने लगे कि "यह तो अत्यन्त कष्ट का समय आ गया। यह राजा तो महाभयंकर घोर व्यक्ति है। इससे यहां तो संकट हो गया है। सभी पक्षी सरोवर में तत्काल छिप जायें!।।३३-३५।।

सोऽवगाह्य सरो भूपः पत्नीभ्यां सहितो मुदा। पीत्वा जलं च सुखदं वृक्षमूलमुपाश्रितः।।३६।।

वह राजा पत्नी सहित मुदित होकर सरोवर में स्नानोपरान्त तथा जलपान करने के अनन्तर सुख पूर्वक एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।।३६।।

तस्मिन्बाहौ वनं याते तेनैव परिरक्षिताः। दुर्गुणान्विगणय्यास्य धिग्धिगित्यब्रुवन्प्रजाः।।३७।।

यो वा को वा गुणी मर्त्यः सर्वश्लाघ्यतरो द्विजः।
सर्वसम्पत्समायुक्तोऽप्यगुणी निन्दितो जनैः।।३८।।

जब राजा बाहु पराजित होकर वन में आ गया, तब जो लोग उसके राज्य में रहते थे तथा उसके शासन के अन्तर्गत् रहने वाली उसकी रक्षिता प्रजा उस राजा के दुर्गुणों का वर्णन तथा स्मरण करते उसे धिक्कार रही थी। हे द्विज! प्रत्येक व्यक्ति भले ही गुणी किंवा गुण रहित हो, जब तक उसके पास सभी सम्पत्ति है, तब तक लोग उसका आदर, सम्मान करते रहते हैं। लेकिन जब वही मनुष्य सम्पत्ति रहित हो जाता है, तब वे ही लोग उसकी निन्दा करने लगते हैं!।।३७-३८।।

अपकीर्तिसमो मृत्युर्लोकेष्वन्यो न विद्यते। यदा बाहुर्वनं यातस्तदा तद्रागगा जनाः।।३९।।
निन्दितो बहुशो बाहुर्मृतवत्कानने स्थितः। निहत्य कर्म च यशो लोके द्विजवरोत्तम।।४०।।

अपकीर्त्ति इस संसार में मृत्यु से भी बढ़कर कष्टप्रद है। वन में राजा बाहु के भाग जाने पर जो लोग राज्य में उसके प्रति राग रखते थे, वे उसकी और भी निन्दा करने लगे। लोगों से अनेक प्रकार से निन्दित राजा बाहु वन में एक मृतक के समान रहने लगा। हे द्विजोत्तम! लोक में जो उसका यश था तथा जो पूर्वकृत सत्कर्म था, वह सब नष्ट हो गया।।३९-४०।।

नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः।
नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः।।४१।।
नास्त्यसूयासमा कीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः।
नास्ति रागसमाः पाशो नास्ति सङ्गसमं विषम्।।४२।।

एवं विलप्यबहुधा बाहुरत्यन्तदुःखितः। जीर्णाङ्गो मनसस्तापाद् वृद्धभावादभूदसौ।।४३।।

"हे द्विज! अपकीर्त्ति के समान न तो किसी प्रकार की मृत्यु है, न क्रोध जैसा कोई रिपु है। निन्दा के समान कोई पाप नहीं है। मोह के समान कोई मत्त स्थिति नहीं है अर्थात् ऐसी कोई मदिरा मोह जैसी नहीं है।

असूया जैसी कोई अपकीर्त्ति नहीं है। काम के समान कोई अग्नि ही नहीं है। राग के समान कोई पाश नहीं है, आसक्ति-संग जैसा कोई विष नहीं है।" राजा बाहु इस तरह से बहुधा विलाप करता अत्यन्त दुःखी हो गया। उसकी जीर्ण दशा देखकर वह मनस्ताप करने लगा तथा वह शिथिलता के कारण वृद्ध लगने लगा।।४१-४३।।

गते बहुतिथे काले और्वाश्रमसमीपतः। स बाहुर्व्याधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम॥४४॥

तस्य भार्या च दुःखार्ता कनिष्ठा गर्भिणी तदा।
चिरं विलप्य बहुधा सह गन्तुं मनोदधे॥४५॥

समानीय च सैधांसि चितां कृत्वातिदुःखिता। समारोप्य तमारूढं स्वयं समुपचक्रमे॥४६॥

एतस्मिन्नन्तरे धीमानौर्वस्तेजोनिधिर्मुनिः। एतद्विज्ञातवान्सर्वं परमेण समाधिना॥४७॥

भूतं भव्यं वर्त्तमानं त्रिकालज्ञा मुनीश्वराः।
गतासूया महात्मानः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा॥४८॥

हे मुनिप्रवर! इस प्रकार दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर वह राजा बाहु अनेक व्याधि से ग्रस्त होकर और्व ऋषि के आश्रम के निकट मृत हो गया। इस स्थिति में उसकी कनिष्ठा गर्भिणी पत्नी अत्यन्त दुःख से आर्त्त हो गई। दीर्घकाल विलाप करके उसने पति के शव के साथ सहमरण का निश्चय किया। उस दुःखी नारी ने यत्र-तत्र से काष्ठ एकत्र किया तथा चिता बनाया। वह चिता पर पति के शव को रखकर स्वयं उस पर बैठकर भस्म होने का उपक्रम करने लगी। तभी धीमान् तेजनिधि और्व मुनि ने परम समाधि द्वारा यह सब प्रसंग जाना।।४४-४८।।

तपोभिस्तेजसां राशिरौर्वपुण्यसमो मुनिः।
सम्प्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र बाहुप्रिया स्थिता॥४९॥

चितामारोढुमुद्युक्तां तां दृष्ट्वा मुनिसत्तमः।
प्रोवाच धर्ममूलानि वाक्यानि मुनिसत्तमः॥५०॥

वे मुनीश्वर भूत-भविष्य वर्त्तमान रूप त्रिकाल के ज्ञाता थे। वे वहां पर आये जहां बाहु की पत्नी चिता पर बैठी तथा भस्म होने के लिये उद्यत थी। यह देखकर उन मुनिसत्तम ने उस रानी से धर्मयुक्त वचन कहा—।।४९-५०।।

और्व उवाच

राजवर्यप्रिये साध्वि मा कुरुष्वातिसाहसम्। तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहन्ता हि तिष्ठति॥५१॥

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला राजसुते! नारोहति चितां शुभे॥५२॥

ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः।
दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः॥५३॥

नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च।
विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते॥५४॥

महर्षि और्व कहते हैं—हे राजाबाहु की प्रिय भार्या, साध्वी! ऐसा अति साहस मत करो। तुम्हारे उदर में स्थित गर्भ चक्रवर्ती तथा शत्रुहन्ता है। हे शुभे! शास्त्र उस नारी को पति के शव के साथ चितारोहण की अनुमति नहीं देता जिसकी सन्तान बाल्यावस्था में हो, जो गर्भिणी हो, जिसने अभी रजोदर्शन न किया हो। हे राजपुत्री! शुभे! चितारोहण ऐसी नारी हेतु वर्जित है। सत्तम लोगों ने ब्रह्महत्यादि पापों के लिये निष्कृतिरूप प्रायश्चित्त का उपाय तो कहा है लेकिन दम्भी, परनिन्दक तथा भ्रूणहत्या करने वालों हेतु कोई उपाय पापों से छुटकारे का है ही नहीं। हे सुव्रते! नास्तिक, कृतघ्न, धर्म की अहवेलना करने वाले तथा विश्वासघाती हेतु तो कोई प्रायश्चित नहीं है।।५१-५४।।

तस्मादेतन्महत्पापं कर्त्तुनार्हसि शोभने। यदेतद् दुःखमुत्पन्नं तत्सर्वं शान्तिमेष्यति।।५५।।

इत्युक्ता मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम्।
विललापातिदुःखार्ता निगह्यचरणौ मुनेः।।५६।।

"हे शोभने! इस (गर्भस्थ शिशु की) हत्या का महान् पाप तुम कदापि न करो। जो कुछ दुःख तुम पर आया है, वह सब शान्त हो जायेगा।" मुनि के कथन को सुनकर रानी को ऋषि की कृपा पर विश्वास तो हो गया, तथापि वह रानी दुखार्त्त थी। अतः उसने रोते हुये मुनि का चरण पकड़ लिया।।५५-५६।।

और्वोऽपि तां पुनः प्राह सर्वशास्त्रार्थकोविदः।
मारोदीराजतनये श्रियमग्ये गमिष्यसि।।५७।।
मा मुञ्चास्त्रं महाभागे प्रेतो दह्योऽद्य सज्जनैः।
तस्माच्छोकं परित्यज् कुरु कालोचितां क्रियाम्।।५८।।
पण्डितो वापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते।
दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्योः सर्वत्र तुल्यता।।५९।।
नगरे वा तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते।।६०।।

उस समय सर्वशास्त्रज्ञ और्व मुनि ने रानी से पुनः कहा—"हे राजपुत्री! रुदन मत करो। तुमको भविष्य में कल्याणलाभ होगा। हे महाभागे! अश्रु मत बहाओ। अब शोक का त्याग करके कालोचित क्रिया करो तथा इस प्रेत (शव) का दाह करो। पण्डित, मूर्ख, दरिद्र, श्रीयुत, दुर्वृत्त, सद्वृत्त चाहे जैसा व्यक्ति क्यों न हो यह मृत्यु वनस्थ अथवा नगरस्थ सभी को समान दृष्टि से देखती है। इस मृत्यु के कारण दैन्य अवश्य रहता है।।५७-६०।।

यद्यत्पुरातनं कर्म तत्तदेव ह युज्यते। कारणं दैवमेवात्र मन्ये सोपाधिका जनाः।।६१।।

गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वार्द्धके।
मृत्योर्वशे प्रयातव्यं जन्तुभिः कमलानने।।६२।।
हन्ति पाति च गोविन्दो जन्तून्कर्मवशे स्थितान्।
प्रवादं रोपयन्त्यज्ञा हेतुमात्रेषु जन्तुषु।।६३।।

तस्माद्दुःखं परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते।
कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिरा भव॥६४॥
एतच्छरीरं दुःखानां व्याधीनामयुतैर्वृत्तम्। सुखाभासं बहुक्लेशं कर्मपाशेन यन्त्रितम्॥६५॥

तथापि जिसके जो पुरातन कर्म हैं, पूर्व जन्मार्जित कर्म हैं, उनकी ही प्राप्ति यहां होती है। सभी स्थिति का कारण दैव ही है। मनुष्य मात्र निमित्त ही हैं। हे कमलानने! गर्भ में, बाल्यावस्था में, युवावस्था में, वृद्धावस्था में चाहे जिस अवस्था में व्यक्ति क्यों न हो, प्रत्येक प्राणी मृत्यु के वशीभूत ही है। प्राणी के कर्मानुसार गोविन्द उसे नष्ट करते हैं अथवा उसका पालन करते हैं। दूसरों पर इस सम्बन्ध में दोषारोपण करने वाले यह नहीं जानते कि वह निमित्तमात्र है। हे सुव्रते! अतः दुःख का त्याग करके सुखी हो जाओ। अब विवेक का आश्रय लेकर स्थिरता पूर्वक पति का अन्तिम संस्कार कर्म करो। यह देह कर्मपाश से यन्त्रित है। यह देह हजारों दुःखों तथा व्याधियों से घिरा है। इसमें बहुतायत से क्लेश है। सुख का केवल आभास ही झलकता है।।६१-६५।।

इत्याश्वास्य महाबुद्धिस्तया कार्याण्यकारयत्।
त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम्॥६६॥
किमत्र चित्रं यत्सन्तः परार्थफलकाङ्क्षिणः।
नहि द्रुमाश्च भोगार्थं फलन्ति जगतीतले॥६७॥
योऽन्यदुःखानि विज्ञाय साधुवाक्यैः प्रबोधयेत्।
स एव विष्णुस्सत्त्वस्थो यतः परहिते स्थितः॥६८॥
अन्य दुःखेन यो दुःखी योऽन्यहर्षेण हर्षितः। स एव जगतामीशो नररूपधरो हरिः॥६९॥

इस प्रकार महाबुद्धिशाली मुनि और्व ने रानी को सान्त्वना प्रदान किया तथा समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया रानी से सम्पन्न करा दिया। तब उन तन्वी (कोमल शरीर वाली) रानी ने शोक को त्यागकर उन मुनीश्वर और्व से कहा—"सज्जनगण अन्य के प्रति परोपकार करने की आकांक्षा करते हैं। पृथिवी पर वृक्ष अपने भोग हेतु फल उत्पन्न नहीं करते। जो अन्य के दुःख को जान कर उसके प्रबोधन तथा सान्त्वना हेतु साधुवाक्य उससे कहता है, वह परहित करने वाला व्यक्ति वस्तुतः विष्णु जैसा ही है। जो अन्य के दुःख से दुःखी तथा अन्य के हर्ष से हर्षित होता है, वही नररूपी जगदीश हरि ही है।।६६-६९।।

सद्भिः श्रुतानि शास्त्राणि परदुःखविमुक्तये।
सर्वेषां दुःखनाशाय इति सन्तो वदन्ति हि॥७०॥
यत्र सन्तः प्रवर्त्तन्ते तत्र दुःखं न बाधते। वर्तते यत्र मार्तण्डः कथं तत्र तमो भवेत्॥७१॥

सत् लोगों द्वारा श्रुत शास्त्र अन्य के दुःख का नाश करते हैं (अर्थात् जो सुनता है, उसी के ही दुःख का नाश करते हैं), तथापि सन्त तो सभी के दुःखनाशक होते हैं, यह सुना जाता है। जहां-जहां सन्त रहते हैं, वहां दुःख बाधा नहीं पहुंचाते, क्योंकि जहां सूर्य है, वह तमः कैसे होगा?।।७०-७१।।

इत्येवं वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापराः क्रियाः।
चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानतः॥७२॥

स्थिते तत्र मुनौ राजा देवराडिव संज्वलन्। चितामध्याद्विनिष्क्रम्य विमानवरमास्थितः।
प्रपेदे परमं धाम नत्वा चौर्वं मुनीश्वरम्॥७३॥
महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः। परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः॥७४॥

इस प्रकार रानी ने मुनिप्रवर और्व से कहने के उपरान्त अपने पति की और्ध्वदैहिक क्रिया मुनि द्वारा कहे गये विधान से सम्पन्न किया। उन्होंने समस्त क्रिया तथा श्राद्ध सरोवर के तट पर किया। मुनि और्व के सामने ही राजा चिताभस्म से देवराज इन्द्र के समान ज्वलन्त देह धारण करके निर्गत हुआ। उसने मुनीश्वर को प्रणाम किया तथा विमानारूढ़ होकर परमधाम चला गया। महापापी अथवा उपपातकी व्यक्ति भी महत् लोगों की दृष्टि पड़ने मात्र से परमपद प्राप्त कर लेता है।।७२-७४।।

कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम्॥७५॥
पत्युः कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपदं मुनेः। चकार तस्य शुश्रूषां सपत्न्या सह नारद॥७६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्यं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।
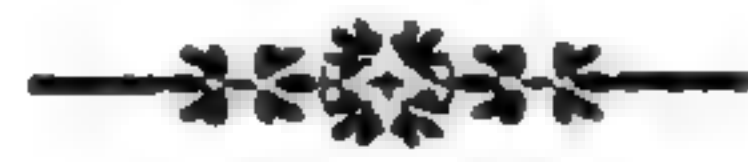
हे सत्तम नारद! यदि पुण्यात्मा व्यक्ति मृत का शव किंवा उसका शवभस्म अथवा उसकी चिता की धुंआ भी देख ले, तब वह मृतात्मा परमपद लाभ कर लेता है। हे नारद! उस रानी ने पति का अंतिम संस्कार किया तथा अपनी सपत्नी (सौत) के साथ वह मुनि और्व के आश्रम में जाकर उनकी सेवा करती रहने लगी।।७५-७६।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अथ अष्टमोऽध्यायः

गंगा माहात्म्य का वर्णन

सनक उवाच

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर। चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषां प्रतिवासरम्॥१॥
गते वर्षार्द्धके काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज।
तस्याः पापमतिर्जाता सपत्न्याः सम्पदं प्रति॥२॥
ततस्तया गरो दत्तः कनिष्ठायै तु पापया। न स्वप्रभावं चक्रे वै गरो मुनिनिषेवया॥३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनीश्वर! एवंविध राजा बाहु की दोनों पत्नियां मुनि और्व के आश्रम में

रहती नित्य भक्तिभाव से उनकी सेवा करती थी। हे द्विज! जब वर्षा ऋतु का आधा समय व्यतीत हो गया, तब बड़ी रानी के मन में अपनी सौत के प्रति पापमति जाग्रत हो उठी। उस पापमति ने अपनी कनिष्ठा सौत को जो गर्भिणी थी विष दे दिया था। मुनि की सेवा के प्रभाव से उस विष का कनिष्ठा रानी पर कोई प्रभाव नहीं हो सका।।१-३।।

भूलेपनादिभिः सम्यग्यतः सानुदिनं मुनेः। चकार सेवां तेनासौ जीर्णपुण्येन कर्मणा॥४॥
ततो मासत्रयेऽतीते गरेण सहितं सुतम्। सुषाव सुशुभे काले शुश्रूषानष्टकिल्विषा॥५॥

इसका कारण था कि वह कनिष्ठा रानी नित्यप्रति मुनि के निवास-स्थल पर पृथिवी पर लेपन आदि करके सम्यक् रूप से उनकी सेवा करती थी। उस पुण्य के कारण विष का कोई प्रभाव रानी पर नहीं पड़ा। इस प्रकार तीन मास बीत जाने पर शुभ काल में विष के साथ ही कनिष्ठा रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, तथापि उन मुनि की सेवा के प्रभाव से विष का प्रभाव नष्ट हो गया था।।४-५।।

अहो सत्सङ्गतिर्लोके किं पापं न विनाशयेत्।
न तदातिसुखं किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम्॥६॥
ज्ञानाज्ञानकृतं पापं यच्चान्यत्कारितं परैः। तत्सर्वं नाशयत्याशु परिचर्या महात्मनाम्॥७॥
जडोऽपि याति पूज्यत्वं सत्सङ्गाज्जगतीतले।
कलामात्रोऽपि शीतांशुः शम्भुना स्वीकृतो यथा॥८॥
सत्सङ्गतिः परामृद्धिं ददाति हि नृणां सदा। इहामुत्र च विप्रेन्द्र सन्तः पूज्यतमास्ततः॥९॥

अहो! सत्संगति से इस लोक में कौन-सा पाप नष्ट नहीं हो जाता। मानव अपने द्वारा किये पुण्यकर्म से कौन-सा सुखलाभ नहीं करता? महात्मा की सेवा करने से ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः किये गये तथा अन्य के द्वारा कराये गये समस्त पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। सत् संगति के कारण जड़ व्यक्ति भी इस लोक में पूज्य हो जाता है। जिस प्रकार से शंभु कला मात्र चन्द्रमा का वरण कर लेते हैं, यह भी वैसी ही बात है। हे मुनीश्वर! सत् संगति द्वारा मनुष्यों को सदा परम समृद्धि मिलती है। हे विप्रेन्द्र! इस लोक में तथा परलोक में सन्तों का सदा आदर किया जाता है।।६-९।।

अहो महद्गुणान्वक्तुं कः समर्थो मुनीश्वर। गर्भं प्राप्तो गरो जीर्णो मासत्रयमहोऽद्भुतम्॥१०॥
गरेण सहितं पुत्रं दृष्ट्वा तेजोनिधिर्मुनिः। जातकर्म चकारासौ तन्नाम सगरेति च॥११॥

हे मुनीश्वर! सत्संगति के महान् गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? इसका उदाहरण यहां स्पष्ट है कि तीन मास तक गर्भ विष के साथ था, तथापि बालक जीर्ण नहीं हो सका, प्रत्युत विष ही जीर्ण हो गया। यह अत्यन्त अद्भुत बात है। जब तेजस्वी मुनि ने विष के साथ बालक को देखा, तब उन्होंने जातकर्म संस्कार के उपरान्त उस बालक का 'सगर' नामकरण कर दिया।।१०-११।।

पुपोष सगरं बालं तन्माता प्रीतिपूर्वकम्। चौलोपवीतकर्माणि तथा चक्रे मुनीश्वरः॥१२॥
शास्त्राण्यध्यापयामास राजयोग्यानि मन्त्रवित्।
समर्थं सगरं दृष्ट्वा किञ्चिदुद्भिन्नशैशवम्॥१३॥

मन्त्रवत्सर्वशस्त्रास्त्रं दत्तवान्स मुनीश्वरः। सगरः शिक्षितस्तेन सग्यगौर्वर्षिणा मुने॥१४॥

इस बालक सगर का पालन उसकी माता प्रेम के साथ करने लगी। उन मुनीश्वर ने उस बालक का चूड़ाकर्म तथा यज्ञोपवीत कर्म भी सम्पन्न कर दिया। उन मुनि ने बालक सगर को समस्त शास्त्रों का अध्ययन कराया। उन मन्त्रज्ञ ऋषि ने जब यह देखा कि बालक का लड़कपन कुछ दूर हो गया है तथा बालक सगर कुछ समर्थ हो गया, तब उन्होंने मन्त्रों के साथ समस्त शस्त्रास्त्र भी सगर को प्रदान किया। ऋषिप्रवर और्व ने सगर को सम्यक् शिक्षित कर दिया था।।१२-१४।।

बभूव बलवान्धर्मी कृतज्ञो गुणवान्सुधीः। धर्मज्ञः सोऽपि सगरो मुनेरमिततेजसः।
समित्कुशाम्बुपुष्पादि प्रत्यहं समुपानयत्॥१५॥
स कदाचिद्गुणनिधिः प्रणिपत्य स्वमारतम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा सगरो विनयान्वितः॥१६॥

मुनि और्व के अमित तेज के कारण बालक सगर बली, धर्मी, कृतज्ञ, गुणवान्, विद्वान् तथा धर्म ज्ञाता हो गया। वह नित्य उन महामुनि के लिये समिध्, कुश, जल, पुष्प ले आता था। एक दिन उस गुणनिधि ने अपनी माता को प्रमाण करके तथा हाथ जोड़कर सविनय कहा—।।१५-१६।।

सगर उवाच

मातर्गतः पिता कुत्र किंनामा कस्य वंशजः।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम॥१७॥
पित्रा विहीना ये लोके जीवन्तोऽपि मृतोपमाः॥१८॥

सगर कहते हैं—हे माता! मेरे पिता कहां गये हैं, उनका नाम क्या है? वे किसके वंशज थे? आप कृपया यह सब मुझसे कहिये। मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। जो इस लोक में पिता रहित है, वह जीते जी मृतक के समान है।।१७-१८।।

दरिद्रोऽपि पिता यस्य ह्यास्ते स धनदोपमः।
यस्य माता पिता नास्ति सुखं तस्य न विद्यते॥१९॥
धर्महीनो यथा मूर्खः परत्रेह च निन्दितः। मातापितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिनः।
अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि॥२०॥

वह पुत्र दरिद्र होकर भी कुबेर के समान धनी है, जिसके पिता जीवित हैं। जिसके माता-पिता नहीं हैं, उसे कोई सुख ही नहीं रहता। धर्महीन मूर्ख इहलोक तथा परलोक—दोनों लोकों में निन्दित होता है, इसी प्रकार वह भी निन्दित है, जो अविवेकी तथा मूर्ख है साथ ही माता-पिता से रहित है। जो व्यक्ति ऋणभार से दबा है तथा जो पुत्र रहित है, ऐसे व्यक्ति का जन्म व्यर्थ है।।१९-२०।।

चन्द्रहीना यथा रात्रिः पद्महीनं यथा सरः।
पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशुः॥२१॥

धर्महीनो यथा जन्तुः कर्महीनो यथा गृही।
पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भकः॥२२॥
सत्यहीनं यथा वाक्यं साधुहीना यथा सभा।
तपो यथा दयाहीनं तथा पित्रा विनार्भकः॥२३॥
वृक्षहीनं यथारण्यं जलहीना यथा नदी। वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भकः॥२४॥
यथा लघुतरो लोके मातार्याञ्चापरो नरः।
तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदुःखान्वितः सुतः॥२५॥

जैसे कमल बिना सरोवर तथा चन्द्र रहित रात्रि, पतिहीना नारी, पिता रहित शिशु व्यर्थ है, जिस प्रकार धर्म रहित प्राणी, कर्महीन गृहस्थ, पशुहीन वैश्य कृशक का जीवन व्यर्थ है, तदनुरूप पिता के बिना पुत्र व्यर्थ है। जैसे वृक्षहीन वन, जल रहित नदी, वेग रहित अश्व व्यर्थ है, उसी प्रकार पिता बिना बालक का जीवन व्यर्थ है। हे माता! याचना करने वाला व्यक्ति लोक में अल्पतर (तुच्छ) माना गया है, तदनुरुप बालक पिता के बिना अत्यन्त दुःख भोगता है।।२१-२५।।

इतीरितं सुतेनैषा श्रुत्वा निःश्वस्य दुःखिता। सम्पृष्टं तद्यथावृत्तं सर्वं तस्मै न्यवेदयत्॥२६॥
तच्छ्रुत्वा सगरः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः। हनिष्यामीत्यरातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा॥२७॥
प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं जननीं च प्रणम्य सः। प्रस्थापितः प्रतस्थे च तेनैव मुनिना तदा॥२८॥
और्वाश्रमाद्विनिष्क्रान्तः सगरः सत्यवाक् शुचिः।
वशिष्ठं स्वकुलाचार्यं प्राप्तः प्रीतिसमन्वितः॥२९॥

माता ने पुत्र का यह कथन सुनकर दुःख पूर्वक निश्वास छोड़ा और उसने पुत्र के प्रश्नानुरूप समस्त वृत्तान्त उससे कह दिया। वह प्रसंग सुनकर सगर क्रोधित हो गया। क्रोध से उसके नेत्र आरक्त हो उठे। उसने तत्काल प्रण किया कि "मैं शीघ्रता पूर्वक पिता के शत्रुगण का वध करूंगा।" उसने मुनि तथा अपनी माता की प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया! तत्पश्चात् और्व मुनि तथा माता की अनुमति लेकर सत्यवाक् तथा पवित्र सगर और्व मुनि के आश्रम से बहिर्गत् होकर अपने कुल के आचार्य वसिष्ठ के यहां प्रसन्नता के साथ पहुंचा।।२६-२९।।

प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने। सर्वं विज्ञापयामास ज्ञानदृष्ट्या विजानते॥३०॥
ऐन्द्रास्त्रं वारुणं ब्राह्ममाग्नेयं सगरो नृपः। तेनैव मुनिनाऽवाप खड्गं वज्रोपमं धनुः॥३१॥
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः सगरः सौमनस्यवान्।
आशीर्भिरर्चितः सद्यः प्रतस्थे प्रणिपत्य तम्॥३२॥

वहां आकर उसने महात्मा गुरु वसिष्ठ को प्रणाम किया! वहां सगर को कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वे महर्षि वसिष्ठ ज्ञान दृष्टि द्वारा सब कुछ जानते थे, तथापि राजा ने उनसे समस्त वृत्तान्त कह दिया। उन मुनि से सगर ने ऐन्द्रास्त्र, वारुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र तथा आग्नेयास्त्र प्राप्त किया। उन मुनि वसिष्ठ ने राजा

सगर को एक खड्ग तथा वज्र के समान धनुष भी प्रदान किया। तत्पश्चात् सौमनस्य सगर गुरु की आज्ञा तथा आशीर्वाद लेकर तथा उनको प्रणाम करके वहां से चल पड़े।।३०-३२।।

एकेनैव तु चापेन स शूरः परिपन्थिनः। सपुत्रपौत्रान्सगणानकरोत्स्वर्गवासिनः।।३३।।
तच्चापमुक्तबाणग्निसन्तप्तास्तदरातयः। केचिद्विनष्टा सन्त्रस्तास्था चान्वे प्रदुद्रुवुः।।३४।।
केचिद्विशीर्णकेशाश्च वल्मीकोपरि संस्थिताः।
तृणान्यभक्षयन्केचिन्नग्नाश्च विविशुर्जलम्।।३५।।
शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृतः। सत्वरं शरणं जग्मुर्वशिष्ठं प्राणलोलुपाः।।३६।।
जितक्षितिर्बाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपगान्। चारैर्विज्ञातवान्सद्यः प्राप्तश्चाचार्यसन्निधिम्।।३७।।

सगर ने उस एकमात्र धनुष द्वारा सभी शत्रुओं को उनके पुत्र, पौत्र तथा गणों के साथ स्वर्ग भेज दिया। उनके धनुष से छोड़े गये बाण की अग्नि से सन्तप्त होकर कुछ शत्रु नष्ट हो गये। कितने ही शत्रु तो सन्त्रस्त होकर वहां से भाग कर अन्यत्र चले गये। कुछ केश मुड़वाकर दीमक की बांबी पर जा बैठे। कुछ शत्रुओं ने दांतों से तृण दबाकर (दैन्य प्रदर्शन करते हुये) राजा सगर की शरण लिया। कुछ नग्नावस्था में जल में जा छिपे! अनेक प्राणलोलुप शक, यवन तथा अन्य राजा शीघ्रता के साथ मुनि वसिष्ठ की शरण में आ गये। इस प्रकार बाहुपुत्र सगर ने समस्त भूमण्डल जीतकर जब अपने चरों से यह जाना कि अनेक शत्रु वसिष्ठ के यहां गोपनीयता पूर्वक छिप गये, तब राजा शीघ्रता से अपने आचार्य वसिष्ठ के यहां आये।।३३-३७।।

समागतं बाहुसुतं निशम्य मुनिर्वशिष्ठः शरणागतांस्तान्।
त्रातुं च शिष्याभिहितं च कर्तुं विचारयामास तदा क्षणेन।।३८।।

जब मुनिप्रवर वसिष्ठ देव ने यह देखा कि बाहुपुत्र सगर उनके आश्रम में आये हैं, तब उन्होंने क्षणमात्र में यह निश्चय कर लिया कि इन शरणागतों की रक्षा कैसे हो तथा शिष्य सगर को किस प्रकार समझाया जाये!।।३८।।

चकार मुण्डाञ्शबरान्यवनाँल्लम्बमूर्द्धजान्।
अन्धांश्च श्मश्रुलान्सर्वान्मुण्डान्वेदबहिष्कृतान्।।३९।।
वसिष्ठमुनिना तेन हतप्रायान्निरीक्ष्य सः। प्रहसन्प्राह सगरः स्वगुरुं तपसो निधिम्।।४०।।

महर्षि वसिष्ठ ने शबर तथा यवनगण के लम्बे बालों को कटवा दिया, वेदविमुख उन दाढ़ीधारियों (अन्धों-अर्थात् जो वेद विमुख होते हैं, वे ज्ञानान्ध होते हैं) अन्धों की दाढ़ी का भी मुण्डन करा दिया। शत्रुगण की एवंविध स्थिति देखकर राजा सगर ने उनको मृतप्रायः समझ कर हंसते हुये अपने गुरु तपोनिधि वसिष्ठ से कहा—।।३९-४०।।

सगर उवाच

भो भो गुरो दुराचारानेतान्रक्षसि तान्वृथा। सर्वथाहं हनिष्यामि मत्पितुर्देशहारकान्।।४१।।
उपेक्षेत समर्थः सन्धर्मस्य परिपन्थिनः। स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न संशयः।।४२।।

बाधन्ते प्रथमं मत्ता दुर्जनाः सकलं जगत्।
त एव बलहीनाश्चेद्व्रजन्तेऽत्यन्तसाधुताम्॥४३॥

राजा सगर कहते हैं—हे गुरुदेव! आप व्यर्थ में इन दुराचारी शत्रुओं की रक्षा कर रहे हैं! इन सबने मेरे पिता का राज्य हड़प लिया था। मैं इन सबका वध करूंगा। जो समर्थ व्यक्ति धर्म विरोधी शत्रुओं की उपेक्षा करके उनको छोड़ देता है, वे शत्रु ही उस उपेक्षा करने वाले के नाश के कारण हो जाते हैं। इसमें तनिक संशय नहीं है। ये मत्त दुर्जन लोक पहले तो समस्त जगत् में बाधा उत्पन्न करते हैं, लेकिन जब वे निर्बल हो जाते हैं, तब साधुपन का ढोंग करने लगते हैं।।४१-४३।।

अहो मायाकृतं कर्म खलाः कश्मलचेतसः।
तावत्कुर्वन्ति कार्याणि यावत्स्यात्प्रबलं बलम्॥४४॥
दासभावं च शत्रूणां वारस्त्रीणां च सौहृदम्।
साधुभावं च सर्पाणां श्रेयस्कामो न विश्वसेत्॥४५॥
प्रहासं कुर्वते नित्यं यान्दन्तान्दर्शयन्खलाः। तानेव दर्शयन्त्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये॥४६॥
पिशुना जिह्वया पूर्वं परुषं प्रवदन्ति च। अतीव करुणं वाक्यं वदन्त्येव तथाबलाः॥४७॥

अहो! इन कलुषित बुद्धि वाले दुष्टजन की विचित्र माया है! वे निर्बल होने पर अच्छे काम का दिखावा करके अपनी बलवृद्धि करने में तत्पर हो जाते हैं। जो अपना कल्याण चाहे वह कदापि शत्रु के दास भाव को देखकर उसे न अपनाये, वेश्याओं के सौहर्द्र तथा सर्प की सरलता का कदापि विश्वास न करें। दुष्टजन जब वैभवशाली रहते हैं, तब वे जोरों से हंसकर अपने दांत दिखलाते हुये, अन्य का उपहास करते हैं। लेकिन जब वे बलहीन, ऐश्वर्यहीन हो जाते हैं, तब उन दांतों को ही दिखलाते अत्यन्त करुण वाक्य बोलने लगते हैं।।४४-४७।।

श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविदः।
साधुत्वं समभावं च खलानां नैव विश्वसेत्॥४८॥
दुर्जनं प्रणतिं यान्तं मित्रं कैतवशीलिनम्।
दुष्टां भार्यां च विश्वस्तो मृत एव न संशयः॥४९॥
मा रक्ष तस्मादेतान्वै गोरूपव्याघ्रकर्मिणः।
हत्वैतानखिलान् दुष्टांस्त्वप्रसादान्महीं भजे॥५०॥
वशिष्ठस्तद्वचः श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिसत्तमः। कराभ्यां सगरस्याङ्गं स्पृशन्निदमुवाच ह॥५१॥

"जो नीतिशास्त्रज्ञ हैं तथा अपनी भलाई चाहते हैं, वे कदापि दुष्टों की साधुता एवं सौम्यता का कदापि विश्वास नहीं करते हैं। जो व्यक्ति कपटी मित्र, दुष्ट पत्नी तथा दुर्जनों के द्वारा प्रणाम करके विनय प्रदर्शन पर विश्वास कर लेता है, वह तो मृतवत् ही है (अर्थात् उस पर संकट आने ही वाला है)! यह निःसंदिग्ध बात है। हे मुनीश्वर! आप ऊपर से गौरूप दीखने वाले, परन्तु अन्दर से व्याघ्रकर्मी की रक्षा न करें। मैं आपकी कृपा से इन अखिल दुष्टों का वध करके सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करूंगा।" वसिष्ठ देव ने

जब सगर की इन बातों को सुना, तब वे प्रसन्न हो गये। वे अपना कृपापूर्ण स्पर्श सगर के उत्तमांग पर करते हुये कहने लगे।।४८-५१।।

वसिष्ठ उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यं वदसि सुव्रत।
तथापि मद्वचः श्रुत्वा परां शान्ति लभिष्यसि॥५२॥

ऋषि वसिष्ठदेव कहते हैं—हे महाभाग! तुमको साधुवाद है। तुमने जो कुछ कहा, वह नितान्त सत्य है, तथापि मेरी बातों का श्रवण करो, उससे तुम्हें शान्ति मिलेगी।।५२।।

मयैते निहताः पूर्वं त्वत्प्रतिज्ञाविरोधिनः। हतानां हनने कीर्तिः का समुत्पद्यते वद॥५३॥
भूमीश जन्तवः सर्वे कर्मपाशेन यन्त्रिताः।
तथापि पापैर्निहताः किमर्थं हंसि तान्पुनः॥५४॥
देहस्तु पापजनितः पूर्वमेवैनसा हतः। आत्मा ह्यभेद्यः पूर्णत्वाच्छास्त्राणामेष निश्चयः॥५५॥

तुम्हारी प्रतिज्ञा के विरुद्ध कार्य करने वाले इन शत्रुगण को एक प्रकार से मैंने इति पूर्व ही निहत कर दिया है। इन मरे हुये लोगों को मारकर तुमको क्या यश प्राप्त होगा? वह कहो! हे भूपति! सभी प्राणीगण अपने कर्मपाश से बद्ध हैं। ये तो अपने पापों द्वारा स्वयमेव मारे गये से हैं, अब इनको क्या मारोगे? इनका पाप जनित शरीर तो इनके पापों से पहले ही निहत-सा हो गया है। शास्त्रों का यह मत है कि आत्मा अभेद्य है।।५३-५५।।

स्वकर्मफलभोगानां हेतुमात्रा हि जन्तवः। कर्माणि दैवमूलानि दैवाधीनमिदं जगत्॥५६॥
यस्माद्दैवं हि साधूनां रक्षिता दुष्टशिक्षिता। ततो नरैरस्वतन्त्रैः किं कार्यं साध्यते वद॥५७॥

सभी प्राणी अपने कृतकर्म के भोगार्थ एक कारण, हेतु मात्र ही हैं। कर्म का मूल है दैव। समस्त जगत् दैव के ही अधीन रहता है। यह दैव ही दुष्टों को शिक्षा देने वाला दैव उनका नियामक है तथा यही उन साधुजन का रक्षक भी है। इस कारण मनुष्य स्वतन्त्र न होकर दैव के आधीन है, वह अपने मन से क्या कर सकता है?।।५६-५७।।

शरीरं पापसम्भूतं पापेनैव प्रवर्तते। पापमूलमिदं ज्ञात्वा कथं हन्तुं समुद्यतः॥५८॥
आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधैः।
तस्मादिदं वपुर्भूप पापमूलं न संशयः॥५९॥
पापमूलवपुर्हन्तुः का कार्तिस्तव बाहुज।
भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिंसीस्ततः सुत॥६०॥

शरीर तो पाप से उत्पन्न होता है। वह पाप से ही प्रवर्त्तित भी होता है। वह पाप की जड़ पर आधारित है, अतः (शत्रु देह) उसको मारने के लिये क्यों तत्पर हो रहे हो? आत्मा तो शुद्ध है। जब वह देह में होता है, तब बुधजन उसे देही कहते हैं। हे भूपाल! यह निःसंदिग्ध है कि सर्वपापमूल है देह। हे बाहुनन्दन! इस पापमूल देह का वध करके तुमको कौन कीर्त्ति मिलेगी। ऐसा विचार करके (तब यदि उचित लगे) इनका वध करना। हे पुत्र! अब तुम स्वयं विचार करो।।५८-६०।।

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं विरराम स कोपतः। स्पृशन्करेण सगरं नन्दनं मुनयस्तदा॥६१॥
अथाथर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मनः। राज्याभिषेकं कृतवान्मुनिभिः सह सुव्रतैः॥६२॥
भार्याद्वयं च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा। काश्यपस्य विदर्भस्य तनये मुनिसत्तम॥६३॥

गुरु का वाक्य सुनकर सगर राजा क्रोध से रहित हो गये। यह देखकर मुनिप्रवर वसिष्ठ आनन्दित होकर अपने हाथों को कृपा पूर्वक सगर के देह पर फिराने लगे। तत्पश्चात् अथर्ववेदज्ञ मुनि वसिष्ठ ने महात्मा सगर का राज्याभिषेक मुनिगण को बुलाकर किया। उन राजा की केशिनी तथा सुमति नामक दो पत्नियां थीं, जो विदर्भराज काश्यप की पुत्रियां थीं।।६१-६३।।

राज्ये प्रतिष्ठिते दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधिः।
वनादागत्य राजानं सम्भाष्य स्वाश्रमं ययौ॥६४॥
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याभ्यां प्रार्थितो मुनिः।
वरं ददावपत्यार्थमौर्वो भार्गवमन्त्रवित्॥६५॥

वे तपोनिधि मुनि और्व राजा को राजगद्दी पर प्रतिष्ठित जानकर वहां अपने वन के आश्रम से आये तथा राजा से वार्ता करने के पश्चात् अपने आश्रम चले गये। एक बार राजा की रानियों ने और्वमुनि को अपने यहां आने की प्रार्थना किया। ऋषि और्व भार्गव मन्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने राजा सगर की दोनों पत्नियों को पुत्र का वर प्रदान किया।।६४-६५।।

क्षणं ध्यानस्थितो भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनीश्वरः।
केशिनीं सुमतिं चैव इदमाह प्रहर्षयन्॥६६॥

पहले वे त्रिकालज्ञ ऋषि ध्यानस्थ हो गये। तदनन्तर उन्होंने केशिनी तथा सुमति को प्रसन्नता प्रदान करते हुये उनसे कहा—।।६६।।

और्व उवाच

एका वंशधरं चैकमन्या षडयुतानि च। अपत्यार्थं महाभागे वृणुतां च यथेप्सितम्॥६७॥
अथ श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेरौर्वस्य नारद। केशिन्येकं सुतं वव्रे वंशसन्तानकारणम्॥६८॥

तथा षष्टिसहस्राणि सुमत्या ह्यभवन्सुताः।
नाम्नासमंजाः केशिन्यास्तनयो मुनिसत्तम॥६९॥
असमञ्जास्तु कर्माणि चकारोन्मत्तचेष्टितः।
तं दृष्ट्वा सागराः सर्वे ह्यासन्दुर्वृत्तचेतसः॥७०॥

तद्बालभावं सन्तुष्टं ज्ञात्वा बाहुसुतो नृपः। चिन्तयामास विधिवत्पुत्रकर्म विगर्हितम्॥७१॥

महामुनि और्व कहते हैं—हे महाभागे! एक राजपत्नी को वंशधर एक पुत्र तथा दूसरी राजपत्नी को ६०००० पुत्र होंगे। इनमें से जिस राजपत्नी को जो उचित लगे, उसका वरण करे। हे नारद! और्व का वचन सुनकर केशिनी ने वंश तथा सन्ताप परम्परा को धारण करने वाला एक ही पुत्र मांगा। उधर सुमति के साठ हजार

पुत्र उत्पन्न हो गये। हे मुनिसत्तम! केशिनी के पुत्र का नाम था असमंजस। यह असमंजस उन्मत्त चेष्टावान् था। उसकी दुर्वृत्तिवाले कार्य को देखते हुये संग दोष के कारण सभी सगर पुत्र दुर्वृत्त चेष्टा वाले हो गये। उसका यह भाव तथा उसके कारण बिगड़ गये अन्य बालकों को दुष्ट कृत्य देखकर बाहुनन्दन सगर ने पुत्रों के विगर्हित कार्य का विचार किया।।६७-७१।।

अहो कष्टतरा लोके दुर्जनानां हि सङ्गतिः। कारुकैस्ताड्यते वह्निरयःसंयोगमात्रतः।।७२।।
अंशुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसमञ्जसः। शास्त्रज्ञो गुणवान्धर्मी पितामहहिते रतः।।७३।।
दुर्वृत्ताः सागराः सर्वे लोकोपद्रवकारिणः। अनुष्ठानवतां नित्यमन्तराया भवन्ति ते।।७४।।
हुतानि यानि यज्ञेषु हवींषि विधिवद्द्विजैः।
बुभुजे तानि सर्वाणि निराकृत्य दिवौकसः।।७५।।

राजा ने विचार किया कि "अहो! दुर्जन संगति कितनी कष्टपूर्ण होती है। कारीगर पत्थर पर आघात करके ही अग्नि की उत्पत्ति करता है।" इधर अंशुमान का पुत्र असमंजस शास्त्र, गुणी, धार्मिक तथा अपने पितामह सगर के हित में तत्पर रहता था। राजा सगर के अन्य सभी दुर्वृत्त पुत्र लोक में उपद्रव करने लगे। वे अनुष्ठान करने वाले लोगों के कार्य में बाधा उत्पन्न करते थे। द्विजगण सविधि जो कुछ आहुति अग्नि में प्रदान करते थे, ये सभी दुर्वृत्तपुत्र देवगण का अपमान करते हुये वह स्वयं खाने लगे।।७२-७५।।

स्वर्गादाहृत्य सततं रम्भाद्या देवयोषितः।
भजन्ति सागरास्ता वै कचग्रहबलात्कृताः।।७६।।
पारिजातादिवृक्षाणां पुष्पाण्याहृत्य ते खलाः।
भूषयन्ति स्वदेहानि मद्यपानपरायणाः।।७७।।
साधुवृत्तीः समाजह्रुः सदाचाराननाशयन्। मित्रैश्च योद्धुमारब्धा बलिनोऽत्यन्तपापिनः।।७८।।

वे स्वर्ग से रम्भा आदि देवस्त्रियों का अपहरण करके ले आते। उनका यथेच्छ भोग करते। ये लोग सदैव मदिरापान करते हुये मदमत्त रहा करते। ये दुष्ट लोग पारिजात प्रभृति वृक्षों के पुष्पों का हरण कर लेते। ये सभी मद्यपगण उन पुष्पों से अपने देह को सजाते थे। इनके कारण साधुवृत्ति का पूर्णतः लोप हो गया। सदाचार नष्ट हो गया। ये अतीव बली तथा पापी सगरपुत्रगण मित्रों के साथ भी युद्ध करते रहते थे।।७६-७८।।

एतद्दृष्ट्वातिदुःखार्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः। विचारं परमं चक्रुरेतेषां नाशहेतवे।।७९।।
निश्चित्य विबुधाः सर्वे पातालान्तरगोचरम्। कपिलं देवदेवेशं ययुः प्रच्छन्नरूपिणः।।८०।।
ध्यायन्तमात्मनात्मानं परानन्दैकविग्रहम्। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टुवुस्त्रिदशास्ततः।।८१।।

यह सब देखकर इन्द्रादि प्रधान देवगण अत्यन्त आर्त्त तथा दुःखी हो गये। वे आपस में इन दुष्ट सगरपुत्रगण के नाश का उपाय सोचने लगे। अन्त में उन्होंने अपना कर्त्तव्य निर्धारित किया तथा अगोचर-रूप से पाताल में वहां गये, जहां देवदेवेश कपिल मुनि प्रच्छन्नरूपेण निवास कर रहे थे। वहां वे महर्षि अपनी आत्मा में आत्मरूप परानन्दविग्रह प्रभु के ध्यान में मग्न थे। यह देखकर देवताओं ने भूमि पर दण्डवत् होकर उनको प्रणाम किया तथा वे सभी देवता उनको स्तुति द्वारा प्रसन्न करने लगे।।७९-८१।।

देवा ऊचुः

नमस्ते योगिने तुभ्यं साङ्ख्ययोगरताय च। नररूपप्रतिच्छन्नविष्णवे जिष्णवे नमः॥८२॥
नमः परेशभक्ताय लोकानुग्रहहेतवे। संसारारण्यदावाग्ने धर्मपालनसेतवे॥८३॥
महते वीतरागाय तुभ्यं भूयो नमो नमः। सागरैः पीडितानस्मांस्त्रायस्व शरणागतान्॥८४॥

देवगण कहते हैं—हे योगीवर! आप साख्ययोग में सतत् निरत रहा करते हैं। आपको नमस्कार! आप मनुष्य रूप में प्रच्छन्नरूपेण अवस्थित विष्णु हैं। आपको नमस्कार! आप परमेश्वर के भक्त तथा संसार पर कृपालु हैं। आप संसार रूपीवन के परम दावाग्नि में धर्मपालनरूप सेतु हैं। आप महान् वीतराग हैं। हम आपको पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं! आप सगरपुत्रों से पीड़ित हमारी रक्षा करिये। हम आपकी शरण में आये हैं।।८२-८४।।

कपिल उवाच

ये तु नाशमिहेच्छति यशोबलधनायुषाम्।
त एव लोकान्बाधन्ते नात्राश्चार्यं सुरोत्तमाः॥८५॥
यस्तु बाधितुमिच्छेय जनान्निरपराधिनः। तं विद्यात्सर्वलोकेषु पापभोगरतं सुराः॥८६॥
कर्मणा मनसा वाचा यस्त्वन्यान्बाधते सदा।
तं हन्ति दैवमेवाशु नात्र कार्या विचारणा॥८७॥
अल्पैरहोभिरेवैते नाशमेष्यन्ति सागराः। इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना।
प्रणम्य तं तथान्यायं गता नाकं दिवौकसः॥८८॥

महर्षि कपिल कहते हैं—हे सुरोत्तमवृन्द! जो लोग अपने ही यश-बल तथा आयु का नाश करने में लगे हैं, वे ही लोगों को पीड़ित करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। हे देवताओ! जो जगत् में निरपराध जीवों को बाधा प्रदान करता है, उसे सभी लोकों में पापभोग में लगा समझे। जो मन-वाणी-कर्म से अन्य प्राणियों को बाधा प्रदान करता है, उसे दैव शीघ्र नष्ट करता है। इस सम्बन्ध में मन में दुविधा न करो। ये सभी सगरपुत्र शीघ्र नाश को प्राप्त होंगे।" महात्मा कपिल के इस वचन को सुनकर सभी देवगण उनको प्रणाम करके देवलोक चले गये।।८५-८८।।

अत्रान्तरे तु सगरो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः। आरेभे हयमेधाख्यं यज्ञं कर्त्तुमनुत्तमम्॥८९॥
तद्यज्ञे योजितं सप्तिमपहृत्य सुरेश्वरः। पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति॥९०॥
गूढविग्रहशक्रेण हृतमश्वं तु सागराः। अन्वेष्टुं बभ्रमुर्लोकान् भूरादींश्च सुविस्मिताः॥९१॥
अदृष्टसप्तयस्ते च पातालं गन्तुमुद्यताः। चख्नुर्महीतलं सर्वमेकैको योजनं पृथक्॥९२॥
मृत्तिकां खनितां ते चोदधितीरे समाकिरन्।
तद्द्वारेण गताः सर्वे पातालं सगरात्मजाः॥९३॥

इसी काल में सगर राजा ने वसिष्ठ प्रभृति महर्षिगण से आज्ञा लेकर उत्तम अश्वमेध यज्ञारम्भ कर दिया। इस यज्ञ में योजित अश्व का हरण इन्द्र ने किया तथा उस अश्व को इन्द्र ने वहां रख दिया जहां महर्षि कपिल

का निवास था। इस अश्व को इन्द्र द्वारा गुप्तरूप से हरे जाने पर सगर के पुत्रगण विस्मित हो गये तथा उन्होंने उस घोड़े के अन्वेषण में सभी लोकों में गमन किया, परन्तु कहीं भी अश्व का सन्धान न मिलने पर वे पाताल गमनार्थ उद्यत हो गये। उन सब साठ हजार सगरपुत्रों में से प्रत्येक ने एक-एक योजन पृथिवी खोदा तथा मृत्तिका को सागर तट पर प्रसारित कर दिया। तदनन्तर उस खोदे गये विवरद्वार द्वारा वे सभी सगरपुत्र पाताल पहुंच गये।।८९-९३।।

विचिन्वन्ति हयं तत्र मदोन्मत्ता विचेतसः। तत्रापश्यन्महात्मानं कोटिसूर्यसमप्रभ॥९४॥
कपिलं ध्याननिरतं वाजिनं च तदन्तिके॥९५॥
ततः सर्वे तु संरब्धा मुनिं दृष्ट्वाऽतिवेगतः। हन्तुमुद्युक्तमनसो विद्रवन्तः समासदन्॥९६॥
हन्यतां हन्यतामेष वध्यतां वध्यतामयम्। गृह्यतां गृह्यतामाशु इत्युचुस्ते परस्परम्॥९७॥

वे सभी सगरपुत्र मद से उन्मत्त थे तथा विवेकहीन थे। इस स्थिति में वे अश्व को पाताल में खोज रहे थे, तभी उन्होंने कोटिसूर्यवत् प्रभावान् ध्याननिरत महात्मा कपिल को देखा जिनके निकट वह यज्ञीय अश्व था। वे सभी सगरपुत्र अत्यन्त क्रोधित हो गये। वे वेग पूर्वक कपिल मुनि वध करने के लिये परस्परतः यह कहते दौड़ पड़े—"मारो, पकड़ो, शीघ्र पकड़ लो!"।।९४-९७।।

हृताश्वं साधुभावेन वकवद्ध्यानतत्परम्।
सन्ति चाहो खला लोके कुर्वन्त्याडम्बरं महत्॥९८॥

वे सगरपुत्र यह कहते जा रहे थे कि इसने अश्व का हरण किया है, यह बगुले की तरह ध्यान लगाये बैठकर साधु का ढोंग कर रहा है। यह महान् आडम्बर किये स्थित है!।।९८।।

इत्युच्चरन्तो जहसुः कपिलं ते मुनीश्वरम्। समस्तेन्द्रियसन्दोहं नियम्यात्मानमात्मनि॥९९॥
आस्थितः कपिलस्तेषां तत्कर्म ज्ञातवान्नहि॥१००॥
आसन्नमृत्यवस्ते तु विनष्टमतयो मुनिम्। पद्भिः सन्ताडयामासुर्बाहू च जगृहुः परे॥१०१॥
ततस्त्यक्तसमाधिस्तु स मुनिर्विस्मितस्तदा।
उवाच भावगम्भीरं लोकोपद्रवकारिणः॥१०२॥

यह कहते हुये वे सगरपुत्रगण मुनीश्वर कपिल का अपमान करने तथा उनका उपहास करने लगे। वे मुनीश्वर समस्त इन्द्रियों को आत्मा में नियोजित करके ध्यान में लीन थे। इसलिये उन्होंने इन दुष्टों के कृत्यों को नहीं जाना! ये सगरपुत्र मृत्यु के वश में थे। उनकी मति नष्ट होने लगी। (जब मुनि ने ध्यानमग्न होने के कारण उनके अपशब्दों के विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं किया) तदनन्तर वे दुष्ट लोग मुनि पर अपने पैरों से आघात करने लगे। कुछ उनकी बाहु पकड़ कर खींचने लगे। तब मुनि ने समाधि त्याग दिया। यह सब सगरपुत्रों का कृत्य देखकर मुनिप्रवर विस्मित हो गये थे। तदनन्तर वे महामुनि संसार में उपद्रव करने वाले उन सगरपुत्रों से भावमय गंभीर वाणी में कहने लगे।।९९-१०२।।

ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम्। अहङ्कारविमूढानां विवेको नैव जायते॥१०३॥
निधेराधारमात्रेण मही ज्वलति सर्वदा। तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलन्तीति किमद्भुतम्॥१०४॥

महर्षि कपिल कहते हैं—तुम लोग अपने ऐश्वर्य के मद से मत्त हो तथा जो मदमत्त तथा क्षुधा से व्याकुल होता है, किंवा कामार्त्त होता है एवं अहङ्कार में डूबा रहता है, वह ज्ञानशून्य तथा विवेकबुद्धि रहित हो जाता है। जब निधि की आधारभूता यह पृथिवी सदा जलती रहती है, तब उस निधि का उपभोग करने वाला मानव यदि जलता रहता है, तब उसमें आश्चर्य की क्या बात?।।१०३-१०४।।

किमत्र चित्रं सुजनं बाधन्ते यदि दुर्जनाः। महीरुहांश्चानुतटे पातयन्ति नदीरयाः॥१०५॥

यत्र श्रीर्यौवनं वापि शारदा वापि तिष्ठति।
तत्राश्रीर्वृद्धता नित्यं मूर्खत्वं चापि जायते॥१०६॥
अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातुं केन शक्यते।
नामसाम्यादहो चित्रं धत्तूरोऽपि मदप्रदः॥१०७॥

इस बात में आश्चर्य क्या है कि दुर्जन सदा सज्जनों को कष्ट देते रहते हैं? नदी का प्रवाह वेग तो अपने तट पर स्थित वृक्षों को गिरा देता है। जहां लक्ष्मी, यौवन किंवा सरस्वती रहती है, वहीं पर दरिद्रता, वार्द्धक्य तथा मूर्खता का भी अवस्थान रहता है। अहो! स्वर्ण की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? जैसे कनक (धतूरा) मद पैदा करता है तदनुरूप एक ही नाम होने के कारण कनक (स्वर्ण) भी मद उत्पन्न कर देता है।।१०५-१०७।।

भवेद्यदि खलस्य श्रीः सैव लोकविनाशिनी।
यथा सखाग्नेः पवनः पन्नगस्य यथा विषम्॥१०८॥
अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्नपि न पश्यति।
यदि पश्यत्यामहितं स पश्यति न संशयः॥१०९॥

यदि खल व्यक्ति को लक्ष्मी मिल जाती है, तब वह लोकविनाशिनी हो जाती है। जिस प्रकार अग्नि अपने मित्र पवन से मिलकर तथा सर्प विषयुक्त होने के कारण लोक विनाशक हो जाते हैं, लक्ष्मीवान् खल भी तदनुरूप लोकविनाशक हो जाता है। अहो! धन के मद से व्यक्ति मदान्ध हो जाता है, उसे कुछ भी (उचित-अनुचित) दिखलाई नहीं देता। यदि उसे आत्महित का तब विचार रहे, तभी वह देख सकेगा, यह निःसंदिग्ध है।।१०८-१०९।।

इत्युत्त्वा कपिलः नेत्राभ्यां ससृजेऽनलम्।
स वह्निःसागरान्सर्वान्भस्मसादकरोत्क्षणात्॥११०॥
यन्नेत्रजानलं दृष्ट्वा पातालतलवासिनः।
अकालप्रलयं मत्वा चुक्रशुः शोकलालसाः॥१११॥
तदग्नितापिता सर्वे दन्दशूकाश्च राक्षसाः।
सागरं विविशुः शीघ्रं सतां कोपो हि दुःसहः॥११२॥

यह कहकर कपिल मुनि ने (क्रोधित होकर) नेत्र से अग्नि को प्रकट किया। उस अग्नि ने क्षणमात्र में

सगरपुत्रों को भस्मसात् कर दिया! उस नेत्राग्नि को देखकर समस्त पाताल निवासी इसे अकाल में हो गये-प्रलय ही मानकर अतीव शोकातुर हो गये। उस अग्नि के ताप से तप्त होकर पातालवासी नागगण एवं राक्षस त्वरापूर्ण गति से समुद्र में कूद पड़े। सज्जनों का कोप ऐसा दुःसह जो होता है।।११०-११२।।

अथ तस्य महीपस्य समागम्याध्वरं तदा। देवदूत उवाचेदं सर्वं वृत्तं हि यक्षते॥११३॥

एतत्समाकर्ण्य वचः सगरः सर्ववित्प्रभुः।
दैवेन शिक्षिता दुष्टा इत्युवाचाति हर्षितः॥११४॥
माता वा जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा।
अधर्मं कुरुते यस्तु स एव रिपुरिष्यते॥११५॥
यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत्।
तं रिपुं परमं विद्याच्छास्त्राणामेष निर्णयः॥११६॥

उधर एक देवदूत ने राजा सगर की यज्ञ-सभा में आगमन करके समस्त वृत्तान्त सगर से कह दिया। यह सुनकर सर्वविद् राजा ने कहा—"उन दुष्टों को दैव ने उत्तम शिक्षा दे दिया।" यह कहकर राजा हर्षित हो गये। माता, पिता, भ्राता, पुत्र इनमें से कोई अधार्मिक है, तब उसे शत्रु ही माने। जो अधार्मिक है तथा सर्वलोक विरोधी है, जो सदा पापकर्म में लगा रहता है, वह परमशत्रु है। यह शास्त्रसम्मत मत है।।११३-११६।।

सगरः पुत्रनाशेऽपि न शुशोच मुनीश्वरः!। दुर्वृत्तनिधनं यस्मात्सतामुत्साहकारणम्॥११७॥
यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामिति स्मृतेः। पौत्रं तमंशुमन्तं हि पुत्रत्वे कृतवान्प्रभुः॥११८॥

हे मुनीश्वर! राजा सगर ने पुत्रनाश की घटना का तनिक शोक नहीं किया। दुर्वृत्त लोगों का निधन सत् लोगों हेतु उत्साह की बात होती है। तब राजा ने अंशुमान को अपना पुत्र घोषित किया, क्योंकि स्मृति का वचन है कि "यज्ञ में पुत्र रहित का कोई अधिकार नहीं होता। इसलिये राजा ने पौत्र अंशुमान को अपना पुत्र मान लिया।।११७-११८।।

असमञ्जस्सुतं तं तु सुधियं वाग्विदांवरम्। युयोज सारविद्भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि॥११९॥
स गतस्तद्बिलद्वारे दृष्ट्वा तं मुनिपुङ्गवम्। कपिलं तेजसां राशिं साष्टाङ्गं प्रणनाम ह॥१२०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रतः स्थितः। उवाच शान्तमनसं देवदेवं सनातनम्॥१२१॥

अब उन सगर ने असमंजस के पुत्र अंशुमान को जो विद्वान् तथा श्रेष्ठ वक्ता था, यज्ञीय अश्व को पाताल से ले आने का भार सौंपा। अंशुमान पाताल के बिल द्वार पर पहुंचा जिसे सगरपुत्रों ने खोदा था। वहां जाकर उसने पाताल में प्रवेश करके तेजराशि कपिल मुनि को देखकर उनको साष्टांग प्रणाम किया! वह करवद्ध होकर विनय पूर्वक महर्षि के समक्ष गया। वहां जाकर अंशुमान उन शान्त मन वाले सनातन देवदेव की स्तुति करने लगा।।११९-१२१।।

अंशुमानुवाच

दौःशील्यं यत्कृतं ब्रह्मन्मत्पितृव्यैः क्षमस्व तत्।
परोपकारनिरताः क्षमासारा हि साधवः॥१२२॥

दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः॥१२३॥
बाध्यमानोऽपि सुजनः सर्वेषां सुखकृद्भवेत्।
ददाति परमां तुष्टिं भक्ष्यमाणोऽमरै शशी॥१२४॥

अंशुमान कहता है—हे ब्रह्मन्! मेरे पितृव्यगण ने जो कुछ दुःशीलता का प्रदर्शन आपके प्रति किया था, वह आप क्षमा करिये। परोपकारी साधुगण के लिये तो क्षमा ही सार है। साधु लोग तो दुर्जन जीवों पर भी दया करते हैं। चाण्डालों के गृह से भी चन्द्रदेव अपनी ज्योत्स्ना को नहीं हटाते! सज्जन लोगों की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वे दूसरों से बाधा पाकर भी सबको सुखी करते रहते हैं। यद्यपि देवताओं द्वारा चन्द्रकला का भक्षण किया जाता है, तथापि चन्द्रमा देवताओं को सुखी ही करते रहते हैं।।१२२-१२४।।

दारितश्छिन्न एवापि ह्यामोदेनैव चन्दनः। सौरभं कुरुते सर्वं तथैव सुजनो जनः॥१२५॥
क्षान्त्या च तापसाचारैस्तद्गुणज्ञा मुनीश्वराः।
सञ्जातं शासितुं लोकांस्त्वां विदुः पुरुषोत्तम॥१२६॥
नमो ब्रह्मन्मुने तुभ्यं नमस्ते ब्रह्ममूर्त्तये। नमो ब्रह्मण्यशीलाय ब्रह्मध्यानपराय च॥१२७॥

चन्दन लोगों द्वारा काटा जाकर स्वयं भग्न होता रहता है, तथापि वह अपनी सौरभ से अन्य को सुगन्ध देता है। यही सज्जनों का भी कार्य है। आपका आगमन शान्ति तपस्याचार तथा सद्गुणों द्वारा लोकशिक्षार्थ हुआ है, यही मुनीश्वरों का मत है। हे ब्रह्मन्! मुनिवर! आप ब्रह्ममूर्त्ति को प्रणाम! आप ब्रह्मण्यशील सम्पन्न, ब्रह्म-ध्यानरत हैं। आपको प्रणाम!।।१२५-१२७।।

इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा। वरं वरय चेत्याह प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥१२८॥
एवमुक्ते तु मुनिना ह्यंशुमान्प्रणिपत्य तम्।
प्रापयास्मत्पितॄन्ब्राह्मं लोकमित्यभ्यभाषत॥१२९॥
ततस्तस्यातिसन्तुष्टो मुनिः प्रोवाच सादरम्।
गङ्गामानीय पौत्रस्ते नयिष्यति पितॄन्दिवम्॥१३०॥

यह स्तुति सुनकर मुनिप्रवर कपिल प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—"हे निष्पाप अंशुमान्! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं। वर मांगो।" यह सुनकर अंशुमान ने मुनि कपिल को प्रणाम किया और कहा—"आप येनकेनप्रकारेण मेरे पितृगण (सगरपुत्रगण) को ब्रह्मलोक प्राप्त करायें।" इस वाक्य को सुनकर सन्तुष्ट हो गये मुनि ने अंशुमान से आदर के साथ कहा—"तुम्हारा पौत्र (भगीरथ) गंगा को धरती पर लाकर पितरों को स्वर्ग ले जायेगा"।।१२८-१३०।।

त्वत्पौत्रेण समानीता गङ्गा पुण्यजला नदी।
कृत्वैतान्धूतपापान्वै नयिष्यति परं पदम्॥१३१॥
प्रापयेनं हयं वत्स यतः स्यात्पूर्णमध्वरम्।
पितामहान्तिकं प्राप्य साश्वं वृत्तं न्यवेदयत्॥१३२॥

सगरेस्तेन पशुना तं यज्ञं ब्राह्मणैः सह। विधाय तपसा विष्णुमाराध्याप पदं हरेः॥१३३॥

"तुम्हारे पौत्र द्वारा लाई गयी पुण्यजला नदी गंगा, उन सगरपुत्रों के पापों का नाश करके उनको परमपद तक ले जायेगी। हे वत्स! अब तुम इस अश्व को ले जाओ। इससे यज्ञ पूर्णतः सम्पन्न हो जायेगा।" यह सुनकर अंशुमान ने पितामह को जाकर अश्व प्रदान किया तथा अपने पितृगण के उद्धार का समस्त वृत्तान्त भी उनसे कहा। अब राजा सगर ने उस यज्ञपशु को पाकर ब्राह्मणों की सहायता से उस यज्ञ को पूर्ण किया। तदनन्तर उन्होंने तपस्या द्वारा विष्णु की आराधना करके हरिपद लाभ किया।।१३१-१३३।।

जज्ञे ह्यंशुमतः पुत्रो दिलीप इति विश्रुतः।
तस्माद्भागीरथो जातो यो गङ्गामानायद्दिवः॥१३४॥
भगीरथस्य तपसा तुष्टो ब्रह्मा ददौ मुने।
गङ्गां भागीरथ्यायाः चिन्तयामास धारणे॥१३५॥

अंशुमान का पुत्र था दिलीप। यह प्रसिद्ध है। उसका पुत्र था भगीरथ। भगीरथ ने स्वर्ग से गंगा का अवतरण पृथ्वी पर कराया। हे मुनि! भगीरथ के तप से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने गंगा प्रदान कर दिया, तथापि यह समस्या चिन्ताजनक थी कि गंगा को कौन धारण करे?।।१३४-१३५।।

ततश्च शिवमाराध्य तद्द्वारा स्वर्णदी भुवम्।
आनीय तज्जलंः स्पृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिवं पितृन्॥१३६॥
भगीरथान्वये जातः सुदासो नाम भूपतिः।
तस्य पुत्रो मित्रसहः सर्वलोकेषु विश्रुतः॥१३७॥
वसिष्ठशापात्प्राप्तः स सौदासो राक्षसीं तनुम्।
गङ्गाबिन्दुनिषेवेण पुनर्मुक्तो नृपोऽभवत्॥१३८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्यं नाम अष्टमोऽध्यायः।।८।।

—※※※—

तब भगीरथ ने शिवाराधन किया तथा उनके द्वारा देवसरिता गंगा को पृथिवी पर लाये और गंगाजल द्वारा अपने पितृगण को पवित्र करके उनको स्वर्ग भेजा। भगीरथ के कुल में राजा सुदास जन्मे थे। उनका पुत्र मित्रसह विश्वविख्यात था। वसिष्ठ ऋषि के शाप द्वारा सुदास के पुत्र मित्रसह को राक्षसी शरीर मिला था, तथापि वे गंगाजलविन्दु से अभिषिक्त होकर पुनः शुद्ध होकर राजा हो गये।।१३६-१३८।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ नवमोऽध्यायः

गंगाजल स्पर्श द्वारा सौदास (मित्रसह) की शापमुक्ति

नारद उवाच

शप्तः कथं वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तमः। गङ्गाबिन्द्वभिषेकेण पुनः शुद्धोऽभवत्कथम्॥१॥
सर्वमेतदशेषेण भ्रातर्मे वक्तुमर्हसि। शृण्वतां वदतां चैव गङ्गाख्यानं शुभावहम्॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वसिष्ठ ने राजा सौदास मित्रसह को क्यों शापित किया था? वे कब गंगा विन्दु के अभिषेक द्वारा पुनः शुद्धि प्राप्त कर सके? हे भ्राता! आप इसे पूर्णतः कहिये। गंगा का उपाख्यान कहने वाले तथा श्रवण करने वाले, दोनों के लिये शुभप्रद होता है।।१-२।।

सनक उवाच

सौदासः सर्वधर्मज्ञः सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचिः। बुभुजे पृथिवीं सर्वां पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः॥३॥
सगरेण यथा पूर्व महीयं सप्तसागरा। रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना॥४॥
त्रिंशदब्दसहस्राणि बुभुजे पृथिवीं युवा॥५॥

देवर्षि सनक कहते हैं—सौदास समस्त धर्मों का ज्ञाता, सर्वज्ञ, पवित्र तथा गुणी था। वह समस्त प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाला था। उसने सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य शासन करके उसे भोगा था। पूर्वकाल में जिस प्रकार राजा सगर ने सप्तद्वीपा पृथिवी की रक्षा किया था, तदनुरूप सौदास ने भी धर्मतः पृथिवी की रक्षा किया। राजा सौदास ने तीस हजार वर्ष पर्यन्त पृथिवी का पालन किया था।।३-५।।

सौदासत्वेकदा राजा मृगयाभिरतिर्वनम्।
विवेश सबलः सम्यक् शोधितं ह्याप्तमन्त्रिभिः॥६॥
निषादैः सहितस्तत्र विनिघ्नन्मृगसञ्चयम्। आससाद नदीं रेवां धर्मज्ञः स पिपासितः॥७॥

एक बार राजा सौदास अपने मृगया प्रेम के कारण सैन्य के साथ वन में गया। उस वन के सम्बन्ध में राजा के विश्वासी मंत्रीगण ने सम्यक्तः जांच-पड़ताल पहले ही किया था। वहां निषादों सहित नाना पशुओं का शिकार करता वह धार्मिक राजा पिपासा से व्याकुलता होने के कारण रेवा नदी तट पर आया।।६-७।।

सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निकं मुने।
भुक्त्वा च मन्त्रिभिः सार्द्धं तां निशां तत्र चावसत्॥८॥
ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम्।
बभ्राम मन्त्रिसहितो नर्मदातीरजे वने॥९॥
वनाद्वनान्तरं गच्छन्नेक एव महीपतिः।
आकर्णाकृष्टबाणः सन् कृष्णसारं समन्वगात्॥१०॥

दूरसैन्योऽश्वमारूढः स राजानुव्रजन्मृगम्। व्याघ्रद्वयं गुहासंस्थमपश्यत्सुरते रतम्॥११॥

हे मुनि! उस समय सुदासपुत्र सौदास मित्रसह ने नदी में स्नानोपरान्त आह्निक क्रिया सम्पन्न किया। तदनन्तर उसने मन्त्रियों सहित भोजन करके वहीं रात्रि व्यतीत किया। रात्रि व्यतीत होने पर राजा प्रातः उठा तथा उसने पूर्वाह्न की सन्ध्योपासनादि क्रिया भी सम्पन्न कर लिया। तदनन्तर राजा अपने मन्त्रीगण के साथ नर्मदातट पर स्थित वन में मृगयार्थ भ्रमण करने लगा। वह राजा कान तक धनुष की प्रत्यंचा खींचे हुये, एकाकी एक वन से वनान्तर में जा रहा था, तभी उसने एक मृग देखा। वह राजा अश्वारूढ़ होकर उस मृग का अनुसरण करते हुये अपनी सेना से बिछुड़ गया। तभी उसने व्याघ्र के एक जोड़े को रतिक्रीड़ारत देखा।।८-११।।

मृगपृष्ठं परित्यज्य व्याघ्रयोः सम्मुखं ययौ। धनुःसंहितबाणेन तेनासौ शरशास्त्रवित्॥१२॥

तां व्याघ्रीं पातयामास तीक्ष्णाग्रनतपर्वणा।
पतमाना तु सा व्याघ्री षट्त्रिंशद्योजनायता॥१३॥
तडित्वद्घोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत्।
पतितां स्वप्रियां वीक्ष्य द्विषन्स व्याघ्रराक्षसः॥१४॥

प्रतिक्रियां करिष्यामीत्युक्त्वा चान्तर्दधे तदा। राजा तु भयसंविग्नो वने सैन्यं समेत्य च॥१५॥

तद्वृत्तं कथयन्सर्वान्स्वांपुरीं स न्यवर्तत्। शङ्कमानस्तु तद्रक्षःकृत्याद्राजा सुदासजः॥१६॥

अब राजा ने उस मृग का पीछा करना छोड़ दिया तथा वह व्याघ्र के समक्ष गया। राजा ने अपने तीक्ष्ण तथा झुकी हुई नोंक वाले बाणों से व्याघ्री का वध कर दिया। वध होते ही वह व्याघ्री ३६ योजन के विस्तारयुक्त शरीर वाली राक्षसी हो गयी! उसने इस शरीर को धारण करते ही अत्यन्त भयानक मेघगर्जन जैसा निर्घोष किया। वह व्याघ्ररूपी राक्षस अपनी मादा व्याघ्री के देह को भूपतित देखकर क्रोध पूर्वक एवं द्वेष के साथ कहने लगे कि—"मैं इसका प्रतिशोध लेकर रहूंगा" और वहां से अन्तर्हित् हो गया। राजा यह देखकर अत्यन्त भयग्रस्त हो गया। उसने अपने सैन्य के निकट आकर समस्त वृत्तान्त बतलाया तथा सेना के साथ अपनी नगरी वापस आ गया। राजा सौदास राक्षस के प्रतिशोध वाक्य का स्मरण करके अत्यन्त शंकित रहता था।।१२-१६।।

परितत्याज मृगयां ततः प्रभृति नारद। गते बहुतिथे काले हयमेधमखं नृपः॥१७॥

समारेभे प्रसन्नात्मा वशिष्ठाद्यमुनीश्वरैः। तत्र ब्रह्मादिदेवेभ्यो हविर्दत्त्वा यथाविधि॥१८॥

समाप्य यज्ञनिष्क्रान्तो वशिष्ठः स्नातकेऽपि च।
अत्रान्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिंसितभार्यकः।
कर्तुं प्रक्रिया राज्ञे समायातो रुषान्वितः॥१९॥

अब उसने शिकार करना पूर्णतः त्याग दिया था। हे नारद! दीर्घकाल बीत जाने पर राजा ने वसिष्ठ प्रभृति ऋषियों के पौरोहित्य में प्रसन्नता के साथ अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ किया। उस यज्ञ में राजा ने ब्रह्मा प्रभृति देवगण को सविधि हवि प्रदान किया था। जब यज्ञ सम्पन्न हो गया, तब मुनि वसिष्ठ अपने स्नातक शिष्यों के साथ चले गये। इसी अवसर पर वह राक्षस जिसकी व्याघ्रीरूपी पत्नी का वध राजा ने पूर्वकाल में किया था, वह रोष में भरकर अपनी प्रतिशोध लेने वाली प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वहां पहुंच गया।।१७-१९।।

स राक्षसस्तस्य गुरौ प्रयाते वशिष्ठवेषं तु तदैव धृत्वा।
राजामभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये मांसं समिच्छाम्यहमित्युवाच॥२०॥
भूयः समास्थाय स सूदवेषं पक्वामिषं मानुषमस्य चादात्।
स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वागुरोरागमनं प्रतीक्षन्॥२१॥
तन्मांसं हेमपात्रस्थं सौदासो विनयान्वितः। समागताय गुरवे ददौ तस्मै स सादरम्॥२२॥

राजगुरु वसिष्ठ देव के वहां से आश्रम चले जाने के पश्चात् वह राक्षस वसिष्ठ ऋषि का वेश धारण करके आया तथा उसने राजा से कहा—"मैं मांस भक्षण करूंगा।" तदनन्तर उसने स्वयं रसोइयें का वेश धर कर मनुष्य मांस पकाया और वहां से चला गया। राजा भी गुरु के आने की प्रतीक्षा करने लगा। राजा ने वह पका मांस स्वर्ण-पात्र में रखा था। जब गुरु वसिष्ठ वापस आये, तब राजा ने स्वर्णपात्रस्थ वह मांस सादर गुरु को अर्पित कर दिया।।२०-२२।।

तं दृष्ट्वा चिन्तयामास गुरुः किमिति विस्मितः॥२३॥
अपश्यन्मानुषं मांसं परमेण समाधिना।
अहोऽस्य राज्ञो दौःशील्यमभक्ष्यं दत्तवान्मम॥२४॥
इति विस्मयमापन्नः प्रमन्युरभवन्मुनिः। अभोज्यं मद्विघाताय दत्तं हि पृथिवीपते॥२५॥
तस्मात्तवापि भवतु ह्येतदेव हि भोजनम्। नृमांसं रक्षसामेव भोज्यं दत्तं मम त्वया॥२६॥
तद्याहि राक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप। इति शापं ददत्यस्मिन्सौदासो भयविह्वलः॥२७॥

यह देखकर गुरु वसिष्ठ ने चिन्तित एवं विस्मित होकर अपनी परम समाधि स्थिति से यह देखा कि यह तो मनुष्य मांस है। उन्होंने विचार किया कि इस राजा ने मुझे अभोज्य वस्तु प्रदान किया है। वे क्रोधित तथा आश्चर्यान्वित होकर राजा से कहने लगे—"हे राजन्! तुमने मेरे तपः नाशार्थ यह अभोज्य मांस प्रदान किया है। यह नरमांस है। नरमांस तो राक्षस खाते हैं। अतएव तुम नरमांस खाने वाले राक्षस हो जाओ।" जब वसिष्ठ ने यह शाप राजा सौदास को दिया, तब वह भय से विह्वल हो गया।।२३-२७।।

आज्ञप्तो भवतैवेति सकम्पोऽस्य व्यजिज्ञपत्।
भूयश्च चिन्तयामास वशिष्ठस्तेन नोदितः॥२८॥
रक्षसा वञ्चितं भूपं ज्ञातवान् दिव्यचक्षुषा। राजापि जलमादाय वशिष्ठं शप्तुमुद्यतः॥२९॥
समुद्यतं गुरुं शप्तं दृष्ट्वा भूयो रुषान्वितम्।
मदयन्ती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाथ सुव्रता॥३०॥

तब वह राजा भयकंपित होकर गुरु से कहने लगा—"आप ने ही यह आज्ञा दिया था।" यह सुनकर वसिष्ठ ऋषि ने पुनः विचार किया तथा दिव्यदृष्टि से देखा कि राजा को राक्षस से ठगा है। उधर राजा भी अंजलि में जल लेकर वसिष्ठ को शाप देने हेतु उद्यत हो गया। जब राजा सौदास की पत्नी मदयन्ती ने देखा कि राजा अत्यन्त क्रोधित होकर गुरु को शाप देने हेतु उद्यत हैं, तब वह सुव्रता रानी राजा से कहने लगी।।२८-३०।।

मदयन्त्युवाच

भो क्षत्रियदायाद कोपं संहर्तुमर्हसि। त्वया यत्कर्म भोक्तव्यं तत्प्राप्तं नात्र संशयः॥३१॥
गुरुं तुंकृत्य हुंकृत्य यो वदेन्मूढधीर्नरः। अरण्ये निर्जले देशे स भवेद्ब्रह्मराक्षसः॥३२॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूषण रताः। प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेषु निश्चयः॥३३॥

रानी मदयन्ती कहती हैं—हे क्षत्रिय वंशोत्पन्न राजा! आप क्रोध को वश में करिये। आपको जिस कर्मफल को भोगना था, वह आपको मिल गया, यह निःसंदिग्ध है। जो गुरु को 'तुम' करके सम्बोधित करता है अथवा उनसे हुंकार करके बोलता है, वह मूढ़ बुद्धिमानव वह अरण्य में तथा निर्जल में ब्रह्मराक्षस योनि में पड़ा स्थित रहता है। जो इन्द्रियजित्, क्रोधजित् गुरु सेवा परायण हैं, उनको ब्रह्मलोक में स्थान लाभ होता है, यह शास्त्रों का मत है।।३१-३३।।

तयोक्तो भूपतिः कोपं त्यक्त्वा भार्यां ननन्द च।
जलं कुत्र क्षिपामीति चिन्तयामास चात्मना॥३४॥
तज्जलं यत्र संसिक्तं तद्भवेद्भस्म निश्चितम्।
इति मत्वा जलं तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम्॥३५॥

तज्जलस्पर्शमात्रेण पादो कल्माषतां गतौ। कल्माषपाद इत्येवं ततः प्रभृति विस्तृतः॥३६॥

पत्नी का वचन सुनकर राजा ने क्रोध का त्याग किया तथा उसने पत्नी के प्रति प्रसन्नता भी व्यक्त किया। अब वह यह विचार करने लगा कि शाप के लिये अंजलि में ग्रहण किया जल कहां छोड़ू? जिस स्थान पर यह जल छोड़ा जायेगा, वह तो वास्तव में भस्म हो जायेगा! यह निश्चित है। अतः उसने वह शाप हेतु लिया जल अपने पैरों पर ही छोड़ दिया। उस शापजल के स्पर्श मात्र से राजा के पैर काले रंग वाले हो गये (कल्माष हो गये)। तभी राजा कल्माषपाद के नाम से विख्यात हो गया।।३४-३६।।

कल्माषपादे मतिमान् प्रियाश्वासितस्तदा। मनसा सोऽतिभीतस्तु ववन्दे चरणं गुरोः॥३७॥
उवाच च प्रपन्नस्तं प्राञ्जलिर्नयकोविदः। क्षमस्व भगवन्सर्वं नापराधः कृतो मया॥३८॥

तच्छ्रुत्वोवाच भूपालं मुनिर्निःश्वस्य दुःखितः।
आत्मानं गर्हयामास ह्यविवेकपरायणम्॥३९॥

अब वह बुद्धिमान् कल्माषपाद अपनी पत्नी के प्रबोधवाक्य से आश्वस्त होकर मन ही मन भयभीत होता गुरु के चरणों पर गिर गया। उस नीतिज्ञ राजा ने शरणागत होकर विनय पूर्वक कहा—"हे प्रभो! मैंने ज्ञातरूप से कोई अपराध नहीं किया था, मुझे क्षमा करिये।" राजा का कथन सुनकर मुनिप्रवर वसिष्ठ ने दुःख पूर्वक एक दीर्घ निःश्वास लिया तथा वे अपनी अविवेक परायणता से खिन्न होकर राजा से कहने लगे।।३७-३९।।

अविवेको हि सर्वेषामापदां परमं पदम्। विवेकरहितो लोके पशुरेव न संशयः॥४०॥

राज्ञा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचितं कृतम्।
विवेकरहितोऽज्ञोऽहं यतः पापं समाचरेत्॥४१॥

विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम्।
विवेकहीनमाप्नोति को वा यो वाप्यनिर्वृतिम्॥४२॥

मुनि कहते हैं—सभी आपत्तियों का परमस्थान है अविवेक। जो अविवेकी है, वह पशु ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। राजा द्वारा अज्ञानतः वह कर्म किया गया था। ऐसा कर्म अज्ञानता से किसी के द्वारा भी हो सकता है, परन्तु मैंने तो विवेक रहित होकर ऐसा पाप कर दिया जबकि मुझे सब कुछ जानने की शक्ति है। विवेकवान् मोक्षभागी होता है, अविवेकी बन्धन में पड़ जाता है।।४०-४२।।

इत्युक्त्वा चात्मनात्मानं प्रत्युवाच मुनिर्नृपम्।
नात्यन्तिकं भवेदेतद्द्वादशाब्दं भविष्यति॥४३॥
गङ्गाबिन्द्वभिषिक्तस्तु त्यक्त्वा वै राक्षसीं तनुम्।
पूर्वरूपं त्वमापन्नो भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम्॥४४॥
तद्बिन्दुसेकसंभूतज्ञानेन गतकल्मषः। हरिसेवापरो भूत्वा परां शान्तिं गमिष्यसि॥४५॥

यह कहने के पश्चात् मुनि ने राजा से कहा—"यह शाप मात्र द्वादश वर्ष तक प्रभावी रहेगा। दीर्घकाल तक नहीं रहेगा। तुम गंगा के जलविन्दु से अभिषिक्त होकर राक्षसी देह का त्याग करोगे तथा पूर्वरूप प्राप्त करके पृथिवी का भोग करोगे। गंगा जलविन्दु द्वारा अभिषिक्त होकर तुम निष्पाप होकर ज्ञान लाभ करोगे। तुम तब हरि सेवा परायण होकर परमशान्ति लाभ करोगे।।४३-४५।।

इत्युक्त्वाथर्ववविदभूपं वशिष्ठः स्वाश्रमं ययौ।
राजापि दुःखसम्पन्नो राक्षसीं तनुमाश्रितः॥४६॥

अथर्वज्ञ महामुनि वसिष्ठ राजा से यह कहकर अपने आश्रम चले गये। उधर राजा ने दुःखी होकर राक्षसी देह प्राप्त किया।।४६।।

क्षुत्पिपासाविशेषार्तो नित्यं क्रोधपरायणः। कृष्णक्षपाद्युतिर्भीमो बभ्राम विजने वने॥४७॥
मृगांश्च विविधांस्तत्र मानुषांश्च सरीसृपान्।
विहङ्गमान्प्लवङ्गांश्च प्रशस्तांस्तानभक्षयत्॥४८॥
अस्थिभिर्बहुभिर्भूयः पीतरक्तकलेवरैः। रक्तान्तप्रेतकेशैश्च चित्रसीद्भूर्भयङ्करी॥४९॥

अब वह राजा नित्य क्रोधपरायण तथा क्षुधापिपासा से आर्त्त बना रहता था। उसका देहवर्ण कृष्णपक्षीय रात्रि के समान काला तथा भयंकर था। वह निर्जन वन में घूमता अनेक मृग पशुओं, मनुष्यों, सरीसृपों, पक्षियों, वानरों तथा अन्य प्राणियों का भोजन करता रहता, जिससे समस्त वनप्रान्तर की भूमि प्रचुर अस्थि के ढेर, पीत तथा रक्तवर्ण अंगों से भर गई। वहां मृतक प्राणियों के रक्ताप्लुत रोम पड़े रहते थे। वह इस कारण विचित्र तथा भयंकर भूमि लगती थी।।४७-४९।।

ऋतुत्रये स पृथिवीं शतयोजनविस्तृताम्। कृत्वातिदुःखितां पश्चाद्वनान्तरमुपागमत्॥५०॥
तत्रापि कृतवान्नित्यं नरमांसाशनं सदा। जगाम नर्मदातीरं मुनिसिद्धनिषेवितम्॥५१॥

विचरन्नर्मदातीरे सर्वलोकभयङ्करः। अपश्यत्कंचन मुनिं रमन्तं प्रियया सह॥५२॥
क्षुधानलेन सन्तप्तस्तं मुनिं समुपाद्रवत्। जग्राह चातिवेगेन व्याधो मृगशिशुं यथा॥५३॥
ब्राह्मणी स्वपतिं वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला॥५४॥

वह राक्षस उस सौ योजन विस्तृत भूभाग को तीनों ऋतुओं में अत्यन्त दुःखपूर्ण बनाकर अन्य वनप्रान्तर में चला गया। उस प्रान्तर में भी वह नित्य नरमांस भक्षी होकर बिचरता रहता है। तभी वह सर्वलोक भयंकर राक्षस मुनिसिद्धगण सेवित नर्मदा तट पर चला गया। वहां उस राक्षस ने किसी मुनि को अपनी पत्नी के साथ विहाररत देखा। वह राक्षस उस समय क्षुधाग्नि से सन्तप्त था। मुनि को देखते ही उसने अतिवेग पूर्वक दौड़कर उनको ऐसे पकड़ा जैसे व्याध मृगशिशु को पकड़ता है। तब मुनिपत्नी ब्राह्मणी पति को राक्षस द्वारा पकड़ा देखकर भयविह्वल हो गयी। वह हाथ जोड़कर विनय के साथ राक्षस से कहने लगी।।५०-५४।।

ब्राह्मण्युवाच

भो भो नृपतिशार्दूल त्राहि मां भयविह्वलाम्। प्रियप्राणप्रदानेन कुरु पूर्णमनोरथाम्॥५५॥
नाम्ना मित्रसहस्त्वं हि सूर्यवंशसमुद्भवः। न राक्षसस्ततोनाथां पाहि मां विजने वने॥५६॥
या नारी भर्त्तृरहिता जीवत्यपि मृतोपमा। तथापि बालवैधव्यं किं वक्ष्याम्यरिमर्दन॥५७॥
न मातापितरौ जाने नापि बन्धुं च कञ्चन। पतिरेव परो बन्धुः परमं जीवनं मम॥५८॥
भवान्वेत्त्यखिलान्धर्मान्योषितां वर्त्तनं यथा।
त्रायस्व बन्धुरहितां बालापत्यां जनेश्वर॥५९॥
कथं जीवामि पत्यास्मिन्हीना हि विजने वने। दुहिताहं भगवतस्त्राहि मां पतिदानतः॥६०॥
प्राणदानानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति। वदन्तीति महाप्राज्ञाः प्राणदानं कुरुष्व मे॥६१॥

ब्राह्मणी कहती है—हे नृपशार्दूल! मैं भय से व्याकुल हूं। मेरी रक्षा करो। मेरे प्रिय पति को प्राणदान देकर मेरे मनोरथ को पूर्ण करो। तुम मित्रसह नामक सूर्यवंश में उत्पन्न राजा हो। तुम राक्षस नहीं हो। हे नाथ! राजा होने के कारण इस विजन वन में मेरी रक्षा करो। जो नारी पति रहित होती है, वह तो मृतवत् ही है। उधर बाल वैधव्य तो अतीव कष्टकारी हो जाता है। हे शत्रुमर्दन! मेरे माता-पिता, भ्राता-बन्धु कोई भी (संसार में) नहीं है। ये मेरे पति ही मेरे लिये परमबन्धु तथा परमजीवनरूप हैं। आप राजा होने के कारण समस्त धर्मों के तत्त्वों के ज्ञाता हैं। आप नारी के सम्बन्ध में भी जानते हैं। हे जनेश्वर! मुझ बन्धुहीन शिशु सन्तति वाली नारी की रक्षा करो। इस विजन वन में पति रहित मेरा जीवन कैसे बीतेगा? मैं तो आपकी पुत्री के समान हूं। मेरे पति को मुझे प्रदान करके मेरी रक्षा करिये, क्योंकि प्राणदानवत् दान न तो भूतकाल में था न भविष्य में ही होगा। यह महाप्राज्ञ लोगों का वचन है।।५५-६१।।

इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रतः।
एवं संप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम्।
अभक्षयत्कृष्णसारशिशुं व्याघ्रो यथा बलात्॥६२॥

यह प्रार्थना करके वह ब्राह्मणी राक्षस के चरणों के आगे भूपतित हो गई, तथापि इस प्रार्थना के उपरान्त भी वह राक्षस ब्राह्मण को खा गया। उसने ब्राह्मण का भोजन उसी प्रकार किया, जैसे व्याघ्र कृष्णसारमृग के शिशु को बल पूर्वक खा लेता है।।६२।।

ततो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता। पूर्वशापहतं भूपमशपत्क्रोधिता पुनः॥६३॥

पतिं मे सुरतासक्तं यस्माद्धिंसितवान्बलात्।
तस्मात्स्त्रीसङ्गमं प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृतिम्॥६४॥
शप्त्वैवं ब्राह्मणी क्रुद्धा पुनः शापान्तरं ददौ।
राक्षसत्वं ध्रुवं तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यतः॥६५॥

तदनन्तर उस पतिव्रता ब्राह्मणपत्नी ने दीर्घकाल तक विलाप किया तथा पूर्वशापग्रस्त उस निशाचर रूपी राजा को क्रोध पूर्वक पुनः शाप दिया कि "तुमने रीतिक्रिया में आसक्त मेरे पति का निर्दयता के साथ वध किया है अतः तुम स्त्रीसंगम करते ही मर जाओगे।" यह शाप देकर उस क्रुद्धा ब्राह्मणी ने पुनः राजा को शाप दिया "तुमने जिस राक्षसत्व के कारण मेरे पति का भक्षण कर लिया है, अतः तुम्हारा यह राक्षसत्व स्थायी हो जायेगा।"।।६३-६५।।

सोऽपि शापद्वयं श्रुत्वा तया दत्तं निशाचरः।
प्रमन्युः प्राह विसृजन्कोपादङ्गारसञ्चयम्॥६६॥

वह राक्षस ब्राह्मणी के दो शाप को सुनकर अतीव क्रोध में भर गया उसके नेत्र से क्रोधज्वाला निकलने लगी। उसने ब्राह्मणी से तब कहा—।।६६।।

दुष्टे कस्मात्प्रदत्तं मे वृथा शापद्वयं त्वया। एकस्यैवापराधस्य शापस्त्वेको ममोचितः॥६७॥
यस्मात्क्षिपसि दुष्टाग्रे मयि शापान्तरं ततः। पिशाचयोनिमद्यैव याहि पुत्रसमन्विता॥६८॥

राक्षस कहता है— हे दुष्टे! तुमने वृथा दो शाप दे दिया। एक अपराध के लिये एक ही शाप मुझे देना उचित था। तुमने तो मुझ दुष्ट को एक की जगह अन्य शाप भी दे दिया। अतः तुम पुत्र के साथ पिशाच योनि प्राप्त करो।।६७-६८।।

तेनैवं ब्राह्मणी शप्ता पिशाचत्वं तदा गता। क्षुधार्ता सुस्वरं भीमा रुरोदापत्यसंयुता॥६९॥
राक्षसश्च पिशाची च क्रोशन्तौ निर्जने वने। जग्मतुर्नर्मदातीरे वनं राक्षससेवितम्॥७०॥

औदासीन्यं गुरौ कृत्वा राक्षसीं तनुमाश्रितः।
तत्रास्ते दुःखसन्तप्तः कश्चिल्लोकविरोधकृत्॥७१॥

वह ब्राह्मणी इस प्रकार शाप द्वारा पिशाचत्व ग्रस्त हो गई। वह अपने (पिशाचयोनि प्राप्त) पुत्र के साथ भयंकराकृति वाली होकर क्षुधा-पिपासा से आर्त्त होकर भयानक रुदन कर रही थी। अब वह राक्षस कल्माषपाद एवं पिशाची नर्मदा नदी के तट पर स्थित वन में आये। वहां भी गुरु की अवज्ञा करने वाला एक शिष्य राक्षसी योनि में रहता था। वह दुःखी तथा लोगों का विरोधी था।।६९-७१।।

राक्षसं च पिशाचीं दृष्ट्वा स्ववटमागतौ। उवाच क्रोधबहुलो वटस्थो ब्रह्मराक्षसः॥७२॥

उस राक्षस ने जब उस कल्माषपाद तथा पिशाची को अपने वटवृक्ष के निकट आते देखा, तब वटस्थ वह ब्रह्मराक्षस क्रोधसम्प्लुत होकर कहने लगा।।७२।।

किमर्थमागतौ भीमौ युवां मत्स्थानमीप्सितम्।
ईदृशो केन पापेन जातौ मे ब्रुवतां ध्रुवम्।।७३।।
सौदासस्तद्वचः श्रुत्वा तया यच्चात्मनाकृतम्।
सर्वं निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह।।७४।।

ब्रह्मराक्षस कहता है—"तुम दोनों भयानक रूप वाले मेरे निवास-स्थल पर क्यों आये हो, जो मुझे अत्यन्त प्रिय है। मुझे वह प्रसंग पूर्णतः कहो कि किस पापकर्म के कारण तुम लोगों को राक्षसत्व-पिशाचत्व मिला है?" राजा सौदास ने यह वचन सुनकर अपना तथा पिशाची का इस योनि में आने का विवरण उससे कहा। तब राजा सौदास ने ब्रह्मराक्षस से प्रश्न किया।।७३-७४।।

सौदास उवाच

कस्त्वं वद महाभाग त्वया वै किं कृतं पुरा। सख्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्वं वक्तुमर्हसि।।७५।।
करोति वञ्चनं मित्रे यो वा को वापि दुष्टधीः।
स हि पापफलं भुङ्क्ते यातनास्तु युगायुतम्।।७६।।
जन्तूनां सर्वदुःखानि क्षीयन्ते मित्रदर्शनात्। तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न कुर्याद्वंचनं कदा।।७७।।
कल्माषपादेनेत्युक्तो वटस्थो ब्रह्मराक्षसः। उवाच प्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद।।७८।।

राजा सौदास कहता है—हे महाभाग! तुम कौन हो? तुमने पूर्वकाल में क्या पातक किया था। अब तो तुम मेरे सखा बन गये। अतः स्नेह के कारण समस्त प्रसंग कहो। हे मित्र! जो दुष्ट प्रवृत्ति वाला अपने मित्र से छल करता है, उसे दस हजार युगों तक वह पापफल भोगना होगा। सभी प्राणीगण के दुःखों का क्षय मित्रदर्शन से हो जाता है। अतएव मतिमान व्यक्ति कभी भी मित्र के साथ छल न करे। हे नारद! कल्माषपाद (राजा सौदास) का कथन सुनकर उस वटवासी ब्रह्मराक्षस ने प्रीति पूर्वक यह धर्मवाक्य कहा—।।७५-७८।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

अहमासं पुरा विप्रो मागधो वेदपारगः। सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना धर्मपरायणः।।७९।।
प्रमत्तोऽहं महाभाग विद्यया वयसा धनैः।
आदासीन्यं गुरोः कृत्वा प्राप्तवानीदृशीं गतिम्।।८०।।
न लभेऽहं सुखं किञ्चिन्निराहारोऽतिदुःखितः।
मया तु भक्षिता विप्राः शतशोऽथ सहस्रशः।।८१।।
क्षुत्पिपासापरो नित्यमन्तस्तापेन पीडितः। जगत्त्रासकरो नित्यं मांसाशनपरायणः।।८२।।
गुर्ववज्ञा मनुष्याणां राक्षसत्वप्रदायिनी। मयानुभूतमेतद्धि ततः श्रीमान्न चाचरेत्।।८३।।

ब्रह्मराक्षस कहता है— पूर्वकाल में मैं मगधवासी वेदज्ञ सोमदत्त नामक धार्मिक एवं प्रसिद्ध ब्राह्मण था।

हे महाभाग! मैं यौवन, विद्या तथा धन के कारण मदमत्त हो गया था और गुरु की अहवेलना करने के कारण मुझे ऐसी गति मिली है। इस योनि में मुझे तनिक भी सुख तथा आहार नहीं मिल रहा है। मैं अतीव दुःखी हूं। मैंने इस अवस्था में सैकड़ों-हजारों ब्राह्मणों का भक्षण किया है, तथापि मैं सदा क्षुधा-पिपासा से परितप्त होता रहता हूं। मैं सदा लोगों को त्रास देने वाला तथा मांसभोगी हूं। गुरु की अवज्ञा मनुष्य को राक्षसत्व प्रदान करती है। इसको मैंने जान लिया है। अतः श्रीमान् व्यक्ति ऐसा कभी न करे।।७९-८३।।

कल्माषपाद उवाच

गुरुस्तु कीदृशः प्रोक्तः कस्त्वया श्लाघितः पुरा।
तद्वदस्व सखे सर्वं परं कौतूहलं हि मे॥८४॥

कल्माषपाद कहता है—गुरु किसे कहते हैं? तुम्हारे सम्मान्य गुरु पूर्व में कौन थे? हे सखे! समस्त प्रसंग कहो। मुझे परम कुतूहल हो रहा है।।८४।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

गुरवः सन्ति बहवः पूज्या वन्द्याश्च सादरम्।
तानहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः सखे॥८५॥
अध्यापकश्च वेदानां वेदार्थयुतिबोधकः।
शास्त्रवक्ता धर्मवक्ता नीतिशास्त्रोपदेशकः॥८६॥
मन्त्रोपदेशव्याख्याकृद्वेदसन्देहहृत्तथा। व्रतोपदेशकश्चैव भयत्रातान्नदो हि च॥८७॥
श्वसुरो मातुलश्चैव ज्येष्ठभ्राता पिता तथा। उपनेता निषेक्ता च संस्कर्त्ता मित्रसत्तम॥८८॥
एते हि गुरवः प्रोक्ता पूज्या वन्द्याश्च सादरम्॥८९॥

ब्रह्मराक्षस कहता है—सादर वन्दनीय गुरु का वर्णन मैं कर रहा हूं। वैसे तो गुरु अनेक प्रकार के कहे गये हैं। हे सखे! एकाग्रता पूर्वक सुनों। वेदों के अध्यापक, वेदों के अर्थ की व्याख्या करके समझाने वाले, शास्त्रवक्ता, नीतिशास्त्र का उपदेश करने वाले, मन्त्रों का उपदेश देने वाले, वेदभाष्य करने वाले, सन्देह भंजक, व्रत का उपदेश प्रदान करने वाले, भय से त्राण दिलाने वाले, श्वसुर, अन्नदाता, मामा, बड़े भाई, पिता, उपनयन कराने वाले, जन्म देने वाले, संस्कार करने वाले ये सभी गुरु हैं। हे मित्रसत्तम! ये सभी गुरु कहे गये हैं, जो पूज्य तथा सादर वन्दनीय हैं।।८५-८९।।

कल्माषपाद उवाच

गुरवो बहवः प्रोक्ता एतेषां कतमो वरः। तुल्याः सर्वेऽप्युत सखे तद्यथावद्धि ब्रूहि मे॥९०॥

कल्माषपाद कहता है—इन अनेक वर्णित गुरुओं में कौन गुरु श्रेष्ठ हैं अथवा सभी तुल्य ही हैं? हे सखे! इसे अपनी मति के अनुरूप कहो।।९०।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टं तद्वदामि ते। गुरुमाहात्म्यकथनं श्रवणं चानुमोदनम्॥९१॥

सर्वेषां श्रेय आधत्ते तस्माद्वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
एते समानपूजार्हाः सर्वदा नात्र संशयः॥९२॥
तथापि शृणु वक्ष्यामि शास्त्राणां सारनिश्चयम्।
अध्यापकाश्च वेदानां मन्त्रव्याख्याकृतस्तथा॥९३॥
पिता च धर्मवक्ता च विशेषगुरवः स्मृताः। एतेषामपि भूपाल शृणुष्व प्रवरं गुरुम्॥९४॥

ब्रह्मराक्षस कहता है—हे महाप्राज्ञ! तुमको साधुवाद है। तुमने जो प्रश्न किया, वह कहता हूं। गुरु महिमा वर्णन तथा श्रवण सभी के लिये उत्तम है। इससे सभी लोगों का कल्याण हो जायेगा। मैं इस सम्बन्ध में शास्त्रों का निर्णय कहता हूं। वेदों के अध्यापक, मन्त्रव्याख्याता, पिता, धर्मवक्ता को विशेष गुरु कहा गया है। हे भूपाल! अब आप प्रवर गुरु के सम्बन्ध में श्रवण करिये।।९१-९४।।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञैर्भाषितं प्रवदामि ते। यः पुराणानि वदति धर्मयुक्तानि पण्डितः॥९५॥
संसारपाशविच्छेदकरणानि स उत्तमः। देवपूजार्हकर्माणि देवतापूजने फलम्॥९६॥
जायते च पुराणेभ्यस्तस्मात्तानीह देवताः। सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते॥९७॥
वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमो गुरुः। यः संसारार्णवं तर्त्तुमुद्योगं कुरुते नरः॥९८॥

इस सम्बन्ध में सभी शास्त्रों को तत्वज्ञ विद्वानों द्वारा तथा पुराण कथित तत्व मैं कह रहा हूं। संसार के पाश का विच्छेद करने वाली विधि देवपूजा के प्रकार, देवपूजा का फल पुराणों में वर्णित है। अतएव पुराण विधि भी देवस्वरूप हैं। सभी वेदार्थ का सार पुराणों में वर्णित है। हे राजन्! पुराण वक्तागण तो परमगुरु हैं। यह मुनिगण का मत है। जो लोग संसार-सागर को पार करने में उद्यमशील हैं।।९५-९८।।

शृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्रविभागकृत्। प्रोक्तवान्सर्वधर्मांश्च पुराणेषु महीपते॥९९॥
तर्कस्तु वादहेतुः स्यान्नीतिस्त्वैहिकसाधनम्।
पुराणानि महाबुद्धे इहामुत्र सुखाय हि॥१००॥

वे पुराणों का श्रवण अवश्यमेव करें। यह शास्त्रविभाग करने वाले विद्वानों का मत है। हे राजन्! पुराणों में समस्त धर्मों का वर्णन किया गया है। तर्कशास्त्र तो मात्र विवाद का ही कारण होता है। नीतिशास्त्र से मात्र इहलोक का साधन हो सकता है। हे महाबुद्धि! पुराणों द्वारा तो इहलोक तथा परलोक, दोनों में सुखलाभ होता है।।९९-१००।।

यः शृणोति पुराणानि सततं भक्तिसंयुतः।
तस्य स्यान्निर्मला बुद्धिर्भूयो धर्मपरायणः॥१०१॥
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपतौ शुभा। विष्णुभक्तनृणां भूप धर्मबुद्धि प्रवर्तते॥१०२॥
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञानं शुद्धं च जायते।
धर्मार्थकाममोक्षाणां ये फलान्यभिलिप्सवः॥१०३॥
शृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थं पुराविदः। अह तु गौतममुनेः सर्वज्ञब्रह्मवादिनः॥१०४॥

श्रुतवान्सर्वधर्मार्थं गङ्गातीरे मनोरमे। कदाचित्परमेशस्य पूजां कर्त्तुमहं गतः॥१०५॥

जो सतत् भक्तिवान् होकर पुराणों का श्रवण करता है, उसकी बुद्धि निर्मलता लाभ करती है तथा उस व्यक्ति में धर्म की बुद्धि का प्रवर्त्तन हो जाता है। धर्म से पापों का नाश होता है। उसे शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का फल प्राप्त करना चाहता है, पुराणज्ञों के मतानुसार वह पुराण श्रवण अवश्य करता रहे। मैंने स्वयं मुनिप्रवर सर्वज्ञ ब्रह्मवादी गौतम मुनि से सभी धर्मों के अर्थरूप पुराणों को मनोरम गंगातट पर सुना था। मैं किसी समय वहां परमेश्वर की पूजा के लिये गया था।।१०१-१०५।।

उपस्थितायापि तस्मै प्रणामं न ह्यकारिषम्।
स तु शान्तो महाबुद्धिर्गौतमस्तेजसां निधिः॥१०६॥
मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति मुदं ययौ।
यस्त्वर्चितो मया देवः शिवः सर्वजगद्गुरुः॥१०७॥
गुर्ववज्ञा कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान्।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योऽवज्ञां कुरुते गुरोः॥१०८॥

यद्यपि वहां मुनिराज गौतम अवस्थित थे, तथापि मैंने उनको प्रणाम नहीं किया। महामुनि शान्त तेजनिधि गौतम ने वहां मन्त्रानुसार पूजा सम्पन्न होते देखा, तब वे मुदित होकर वहां से प्रस्थान कर गये। लेकिन वहां मैं जिन देवदेव जगद्गुरु शिव की अर्चना कर रहा था, उन्होंने मेरे द्वारा की गई गुरु की अवज्ञा को देखकर मुझे राक्षसत्व में योजित कर दिया। जान-बूझ कर किंवा अनजाने में जो गुरु की अवज्ञा करता है।।१०६-१०८।।

तस्यैवाशु प्रणश्यन्ति धीविद्यार्थात्मजैक्रियाः।
शुश्रुषां कुरुते यस्तु गुरूणां सादरं नरः॥१०९॥

तस्य सम्पद्भवेद्भूप इति प्राहुर्विपश्चितः। तेन शापेन दग्धोऽहमन्तश्चैव क्षुधाग्निना॥११०॥
मोक्षं कदा प्रयस्यामि न जाने नृपसत्तम। एवं वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे॥१११॥

धर्मशास्त्रप्रसङ्गेन तयो पापं क्षयं गतम्।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः॥११२॥
कलिङ्गदेशसम्भूतो नाम्ना गर्ग इति स्मृतः।
वहन्गाङ्गाजलं स्कन्धे स्तुवन् विश्वेश्वरं प्रभुम्॥११३॥

उसकी बुद्धि (मति), विद्या, धन, पुत्रादि क्रिया का नाश हो जाता है। जो मनुष्य सादर गुरु सेवा करता है। "हे राजन्! उसे सम्पदा मिलती है, यह सुधीजनों का कथन है। मैं उस शिवशाप से दग्ध होकर क्षुधाग्नि से सन्तप्त रहता हूं। हे नृपसत्तम! मुझे इस दशा से न जाने कब मुक्ति मिलेगी?" हे विप्रेन्द्र! वट निवासी निशाचर के इस धर्मप्रसंग वर्णन से दोनों राक्षसों के पापों का क्षय हो गया। तभी वहां कोई अति धार्मिक विप्र आया। वह कलिंग देश में उत्पन्न गर्ग नाम वाला था। उसने कंधे पर गंगाजल पूर्ण घट रखा था तथा वह प्रभु विश्वेश्वर की स्तुति कर रहा था।।१०९-११३।।

गायन्नामानि तस्यैव मुदा हृष्टतनूरुहः। तमागतं मुनिं दृष्ट्वा पिशाचीराक्षसौ च तौ॥११४॥

प्राप्ता नः पारणेत्युक्त्वा प्राद्रवन्नूर्ध्वबाहवः।
तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिताः।
अशक्तास्तं धर्षयितुमिदमूचुश्च राक्षसाः॥११५॥

वह विप्र मुदित होकर भगवन्नाम का गायन करता हुआ पुलकित हो जाता था। उन मुनि को आता देखकर पिशाची तथा राक्षसगण भोजन मिलने की प्रसन्नता में हाथों को उठाकर उन विप्र की ओर दौड़ पड़े, परन्तु उनके मुख से भगवन्नाम का उच्चारण होते रहने के कारण उन विप्र के निकट नहीं जा सके तथा दूर ही खड़े हो गये। उन्होंने यह अनुभव किया कि इन ब्राह्मण पर हम किसी प्रकार भी आक्रमण नहीं कर सकते। अतः राक्षस यह कहने लगे।।११४-११५।।

अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्यं महात्मने। नामकीर्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम्॥११६॥

अस्माभिर्भक्षिताः पूर्वं विप्राः कोटिसहस्रशः।
नामप्रावरणं विप्र रक्षति त्वां महाभयात्॥११७॥
नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम्।
परां शान्तिं समापन्ना महिम्ना ह्यच्युतस्य वै॥११८॥
सर्वथा त्वं महाभाग रागादिरहितो ह्यसि।
गंगाजलाभिषेकेण पाह्यस्मात्पातकोच्चयात्॥११९॥

हरिसेवापरो भूत्वा यश्चात्मानं तु तारयेत्। स तारयेज्जगत्सर्वमिति शंसन्ति सूरयः॥१२०॥

राक्षस कहते हैं—अहो! हे विप्र, महाभाग! आपको प्रणाम! हे महात्मन्! नाम संकीर्त्तन के प्रभाव से हम राक्षस आपसे दूर ही स्थित हैं। हमने इससे पूर्व हजारों कोटि विप्रों का भक्षण किया था। परन्तु नामोच्चारण रूपी कवच आपकी महाभय से रक्षा कर रहा है। हे विप्र! आप द्वारा उच्चरित नामों का श्रवण करके हम राक्षस होकर भी परमशान्ति लाभ कर रहे हैं। यह भगवान् अच्युत की महिमा है। हे महाभाग! आप तो सर्वदा रागादि दोषों से रहित हैं। आप कृपया अपने द्वारा लाये गंगाजल को छिड़क कर हमारी महापातक से रक्षा करें। जो हरिसेवा परायण रहता हुआ अपनी आत्मा का उद्धार कर लेता है, वह समस्त जगत् को तार देता है, यह सूरीजन का कथन है।।११६-१२०।।

अपहाय हरेर्नाम घोरसंसारभेषजम्। केनोपायेन लभ्येत मुक्तिः सर्वत्र दुर्लभा॥१२१॥
लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यदा। तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथं परान्॥१२२॥

अहो चरित्रं महतां सर्वलोकसुखावहम्।
यथा हि सर्वलोकानामानन्दाय कलानिधिः॥१२३॥

हरिनाम ही इस घोर संसाररूप व्याधि की औषधि है। हरिनाम के अभाव में इससे मुक्ति मिलना सर्वत्र दुर्लभ है। लौह निर्मित नौका से नदी पार करने का इच्छुक जल में डूब जाता है। इसी प्रकार पुण्यहीन व्यक्ति अन्य के उद्धारक कैसे हो सकते हैं? महत् लोगों का चरित तो सर्वत्र सुखप्रद होता है। वह उसी समय से सबके लिये सुखप्रद होता है, जैसे कलानिधि चन्द्रमा सभी लोकों को आनन्द देता है।।१२१-१२३।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम।
तानि सर्वाणि गङ्गायाः कणस्यापि समानि च॥१२४॥
तुलसीदलसम्मिश्रमपि सर्षपमात्रकम्। गङ्गाजलं पुनात्येव कुलनामेकविंशतिम्॥१२५॥
तस्माद्विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद। गङ्गाजलप्रदानेन पाह्यस्मान्पापकर्मिणः॥१२६॥

पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ है, हे द्विजवर्य! वे सब मिलाकर भी गंगाजल के कण की भी बराबरी नहीं कर सकते। यदि गंगाजल में तुलसीदल पड़ा हो, तब तो सरसों इतनी उस जल की बूंद २१ पीढ़ियों का उद्धार कर देती है। हे विप्र! महाभाग! सर्वशास्त्रार्थ ज्ञाता! आप गंगाजल छिड़क कर हम पापीगण का उद्धार करिये।।१२४-१२६।।

इत्याख्यातं राक्षसैस्तैर्गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्।
निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तमः॥१२७॥
एषामपीदृशी भक्तिर्गङ्गायां लोकमतरि।
किमु ज्ञानप्रभावाणां महतां पुण्यशालिनाम्॥१२८॥
अथासौ मनसा धर्मं विनिश्चित्य द्विजोत्तमः।
सर्वभूतहितो भक्तः प्राप्नोतीति परं पदम्॥१२९॥
ततो विप्रः कृपाविष्टो गङ्गाजलमनुत्तमम्। तुलसीदलसम्मिश्रं तेषु रक्षःस्वसेचयत्॥१३०॥

इस प्रकार राक्षसों ने उनसे गंगा का उत्तम माहात्म्य कहा। यह सुनकर वे द्विजश्रेष्ठ विस्मय से अभिभूत हो गये। उन्होंने सोचा कि जब ऐसे पापीजन लोकमाता गंगा के प्रति ऐसी भक्ति करते हैं, तब जो पुण्यशाली ज्ञान प्रभाव वाले महान् लोग हैं, उनकी (गंगाभक्ति) भक्ति के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या? हे द्विजोत्तम! इस प्रकार उन विप्र ने मन से अपना धर्म निश्चित किया (कार्य निश्चित किया) कि जो भक्त सभी प्राणीगण के हित में लगा रहता है, उसे परमपद लाभ होता ही है। तब कृपा करने के लिये उद्यत होकर विप्र ने उस गंगाजल में तुलसी दल मिलाकर उन राक्षसों पर छिड़का।।१२७-१३०।।

राक्षसास्तेन सिक्तास्तु सर्षपोपमबिंदुना। विसृज्य राक्षसं भावमभवन्देवतोपमाः॥१३१॥
ब्राह्मणी पुत्रसंयुक्ता सोमदत्तस्तथैव च। कोटिसूर्यप्रतीकाशा बभूवुर्विबुधर्षभाः॥१३२॥
शंखचक्रगदाचिह्ना हरिसारूप्यमागताः। स्तुवन्तो ब्राह्मणं सम्यक्ते जग्मुर्हरिमन्दिरम्॥१३३॥
राजा कल्माषपादस्तु निजरूपं समास्थितः।
जगाम महतीं चिन्तां दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानघान्॥१३४॥
तस्मिन् राज्ञि सुदुःखार्ते गूढरूपा सरस्वती।
धर्ममूलं महावाक्यं वभाषेऽगाधया गिरा॥१३५॥
भो भो राजन्महाभाग न दुःखं गन्तुमर्हसि।
राजंस्तवापि भोगान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति॥१३६॥

उन ब्राह्मण ने मात्र सरसों के दाने के बराबर ही गंगाजल उन राक्षसों पर छिड़का था, तथापि वे बिन्दुवत् जलाभिषेक द्वारा ही देवता के समान देह वाले हो गये। अब वह राक्षस देहधारी ब्राह्मण सोमदत्त, वह पिशाची ब्राह्मणी एवं उसका पुत्र कोटिसूर्यसमप्रभ देवताकृति हो गये। वे हरि के समान शंख, चक्र, गदाधारी थे। उन्होंने इन विप्र की नाना प्रकार से स्तुति किया तथा हरिलोक चले गये। परन्तु जब राजा कल्माषपाद ने अभी भी स्वयं को राक्षसरूपी देखा तथा यह देखा कि उसके सभी पापी मित्रगण मुक्त हो गये, तब वह अत्यन्त चिन्तातुर हो गया। तब उसे चिन्तित दुःखी देखकर गूढ़रूपा भगवती सरस्वती ने अपनी वाणी से धर्ममूलक धर्मगाथा को कहा। उन्होंने कहा—"हे राजन्! महाभाग! दुःखी क्यों होते हो? इस भोग का अन्त होते ही तुमको महान् श्रेय की प्राप्ति होगी।"।।१३१-१३६।।

सत्कर्मधूपपापा ये हरिभक्तिपरायणाः। प्रयान्ति नात्र सन्देहस्तद्विष्णोः परमं पदम्॥१३७॥
सर्वभूतदयायुक्ता धर्ममार्गप्रवर्तिनः। प्रयान्ति परमं स्थानं गुरुपूजापरायणाः॥१३८॥
इतीरितं समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तमः। मनसा निर्वृत्तिं प्राप्य सस्मार च गुरोर्वचः॥१३९॥
स्तुवन्गुरुं च तं विप्रं हरिं चैवातिहर्षितः। पूर्ववृत्तं च विप्राय सर्वं तस्मै न्यवेदयत्॥१४०॥

"जो जन अपने सुकर्मों से पापों का नाश करके हरिभक्ति परायण हो गये हैं, वे निःसन्देह विष्णु का परमपद लाभ करते हैं। जो सभी प्राणियों के प्रति दयालु तथा धर्ममार्गी हैं, वे गुरु पूजापरायण परमस्थान लाभ करते हैं।" देवी सरस्वती का यह कथन सुनकर राजा के मन का भार कम हो गया। तब उन्होंने गुरु के वचन का स्मरण किया। वे अतीव हर्षयुक्त होकर गुरु की, उन ब्राह्मण की एवं भगवत् स्तुति करने लगे। उन्होंने उन विप्र से अपना पूर्व वृत्तान्त यथावत् कहा—।।१३७-१४०।।

ततो नृपस्तु कालिङ्गं प्रणम्य विधिवन्मुने।
नामानि व्याहरन्विष्णोः सद्यो वाराणसीं ययौ॥१४१॥
षण्मासं तत्र गङ्गायां स्नात्वा दृष्ट्वा सदाशिवम्।
ब्राह्मणीदत्तशापात्तु मुक्तो मित्रसहोऽभवत्॥१४२॥

हे मुनिप्रवर! उस स्तुति के उपरान्त राजा ने उन कलिंग देश के ब्राह्मण को विधिवत् प्रणाम किया! राजा विष्णु का नाम स्मरण करता यथाशीघ्र वाराणसी चला गया। वहां राजा ने नित्य सदाशिव का दर्शन करते हुये छः माह पर्यन्त वहां गंगा स्नान किया। इससे वह राजा मित्रसह ब्राह्मणी के शाप से मुक्त हो गया।।१४१-१४२।।

ततस्तु स्वपुरीं प्राप्तो वसिष्ठेन महात्मना।
अभिषिक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वकं राज्यमपालयत्॥१४३॥
पालयित्वा महीं कृत्स्नां भोगान्स्त्रियं विना।
वसिष्ठात्प्राप्य सन्तानं गतो मोक्षं नृपोत्तमः॥१४४॥

तदनन्तर वह अपनी नगरी में गया, जहां महात्मा वसिष्ठ ने उनका अभिषेक किया। अभिषेक हो जाने पर वह पूर्ववत् अपने राज्य का पालन करने लगा। उसने धरती का पालन करते हुये उत्तम भोगों को भोगा, तथापि

राजा मित्रसह ने ब्राह्मणी के शाप भय से स्त्री का उपभोग नहीं किया। उसने वसिष्ठ ऋषि से (नियोग द्वारा) सन्तानलाभ किया। सर्वान्त में उस श्रेष्ठ राजा ने मोक्ष प्राप्त कर लिया।।१४३-१४४।।

नैतच्चित्रं द्विजश्रेष्ठ विष्णोर्वाराणसीगुणान्।
गृणञ्छृण्वन्स्मरन्गङ्गां पीत्वा मुक्तो भवेन्नरः॥१४५॥
तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गायाः शक्यते नहि।
पारं गन्तुं सुराधीशैर्ब्रह्मविष्णुशिवैरपि॥१४६॥
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः। विमुक्तो ब्रह्मसदनं नरो याति न संशयः॥१४७॥

हे द्विजप्रवर! यह कोई विस्मयजनक घटना नहीं है। मनुष्य भगवान् विष्णु तथा वाराणसी एवं गंगा की महिमा सुनकर, याद करके तथा गंगा जल पान करके मुक्त हो जाता है। हे विप्रेन्द्र! देवी सुरनदी गंगा की महिमा का वर्णन मैं नहीं कर सकता। इसकी महिमा कह सकने में देवराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी समर्थ नहीं हैं। नामस्मरण मात्र से करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य विमुक्त होकर ब्रह्मलोक चला जाता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है।।१४५-१४७।।

गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा। तदैव पापनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥१४८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्ये नवमोऽध्यायः।।९।।

जो गंगा-गंगा, इस नाम को मात्र एक-दो बार भी जप लेता है, वह तत्काल पाप रहित होकर ब्रह्मलोक में आदरलाभ करता है।।१४८।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

अथ दशमोऽध्यायः

राजा बलि द्वारा देवगण की पराजय

नारद उवाच

विष्णुपादाग्रसम्भूता या गङ्गेत्यभिधीयते। तदुत्पत्तिं वद भ्रातरनुग्राह्योऽस्मि ते यदि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जिस गंगा को विष्णु के चरणाग्र से उत्पन्न कहा गया है, हे भ्राता! मेरे ऊपर अनुग्रह करके उनकी उत्पत्ति को कहिये।।१।।

सनक उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि गङ्गोत्पत्तिं तवानघ। वदतां शृण्वतां चैव पुण्यदां पापनाशनीम्॥२॥

असीदिन्द्रादिदेवानां जनकः कश्यपो मुनिः। दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च॥३॥
अदितिर्देवमातास्ति दैत्यानां जननी दितिः। ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिणः॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे नारद! निष्पाप! मैं तुमसे गंगा की उत्पत्ति कहता हूं। इसे कहना तथा सुनना पुण्यप्रद तथा पापनाशक है। इन्द्रादि देवगण के उत्पत्तिकर्त्ता मुनिवर कश्यप थे। उनकी भार्या थीं दक्ष की पुत्री दिति तथा अदिति। अदिति देवताओं की माता थीं, जबकि दिति दैत्य जननी थीं। हे विप्र! इन दोनों की सन्तान परस्परतः एक-दूसरे पर जय पाने की इच्छा करती रहती थीं।।२-४।।

सदा सपूर्वदेवास्तु यतो दैत्याः प्रकीर्तिताः। आदिदैत्यो दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली॥५॥
प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तमः। विरोचनस्तस्य सुतो बभूव द्विजभक्तिमान्॥६॥
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी बलिरासीत्प्रतापवान्। स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुनेः॥७॥
बलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम्। विजित्य वसुधां सर्वां स्वर्गं जेतुं मनो दधे॥८॥

दैत्यगण देवताओं के बड़े भाई (अग्रज) कहे जाते हैं। इनमें आदि दैत्य था दिति का पुत्र हिरण्यकशिपु। वह महाबली था। उसका पुत्र दैत्यसत्तम प्रह्लाद था। प्रह्लाद का पुत्र था ब्राह्मणभक्त विरोचन। उसका अमित तेजस्वी प्रतापी पुत्र था बलि। हे मुनि! वह दैत्य सेना का पालक तथा दैत्यों की रक्षा करने वाला था। उसने अपनी महान् सेना के साथ समस्त धरती को जीतकर स्वर्ग पर विजय पाने का मन बनाया।।५-८।।

गजाश्च यस्यायुतकोटिलक्षास्तावन्त एवाश्वरथा मुनीन्द्र।
गजे गजे पंचशती पदातेः किं वर्ण्यते तस्य चमूर्वरिष्ठा॥९॥

हे मुनीन्द्र! उस बलिराजा की सेना में दस सहस्र कोटि हाथी, उतनी ही संख्या में घोड़े तथा रथ थे। प्रत्येक हाथी के साथ पचास पैदल सैनिक थे। बलि की इतनी विशाल सेना का क्या वर्णन किया जाये!।।९।।

अमात्यकोट्यग्रसरावमात्यौ कुम्भाण्डनामाप्यथ कूपकर्णः।
पित्रा समं शौर्यपराक्रमाभ्यां बाणो बले पुत्रशताग्रजोऽभूत्॥१०॥
बलिः सुराञ्जेतुमनाः प्रवृत्तः सैन्येन युक्तो महता प्रतस्थे।
ध्वजातपत्रैर्गगनाम्बुराशेस्तरङ्गविद्युत्स्भरणं प्रकुर्वन्॥११॥
अवाप्यवृत्तारिपुरंसुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढैः।
सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वज्रकरादयश्च॥१२॥

बलिराज के दो अग्रगण्य मन्त्री कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण थे। पिता के ही समान शौर्य तथा पराक्रम युक्त बलिपुत्र बाण था। वह अपने सौ भ्राताओं में सबसे ज्येष्ठ था। बलि ने जब देवगण पर विजय पाने का विचार किया, तब वह अपनी महान् सेना के साथ स्वर्ग पर आक्रमण करने के लिये बढ़ा। बलिराज की सेना अनगिनत ध्वजा, पताका से ऐसी मण्डित थी जैसे आकाशस्थ मेघमाला के मध्य में विद्युत् वल्लरी चमक रही हो। जब यह सैन्य इन्द्रलोक पहुंची तब दैत्यराज बलि ने इन्द्रपुरी को चतुर्दिक् से अपनी सैन्य द्वारा घेर लिया। वे राक्षस सैनिक सिंहवत् पराक्रमी थे। यह देखकर देवगण भी वज्रादि आयुध लेकर युद्धार्थ बहिर्गत् हो गये।।१०-१२।।

ततः प्रववृत्ते युद्धं घोरं गीर्वाणदैत्ययोः। कल्पान्तमेघनिर्घोषं डिंडिमध्वानसम्भ्रमम्॥१३॥

मुमुचुः शरजालानि दैत्याः सुमनसां बले। देवांश्च दैत्यसेनासु संग्रामेऽत्यन्तदारुणे॥१४॥
जहि दारय भिन्धीति छिंधि मारय ताडय। इत्येवं सुमहान्घोषो वदतां सेनयोरभूत्॥१५॥
शरदुन्दुभिनिध्वानैः सिंहनादैः सुरद्विषाम्।
भाङ्कारैः स्यन्दनानां च बाणाक्रेङ्कारनिःस्वनैः॥१६॥
अश्वानां ह्रेषितैश्चैव गजानां बृंहितैस्तथा। टङ्कारैर्धनुषां चैव लोकः शब्दमयोऽभवत्॥१७॥

इस प्रकार उस समय देवासुर घनघोर युद्ध छिड़ गया। तभी दोनों पक्ष से कल्पान्तकारी मेघ के समान घोष करने वाले युद्ध के नगाड़े प्रभृति बजाये जाने लगे। उस समय दैत्यों ने देव सेना को घोर बाणों के जाल से आक्रान्त कर दिया था। देवगण भी दैत्य सैन्य से दारुण युद्धरत हो गये। उस समय दोनों सैन्य में मारो, चीर दो, भेद दो, टुकड़े कर दो, पटक दो, आघात करो का प्रभृति महाघोष सुनाई दे रहा था। बाणों, दुन्दुभियों की ध्वनि, सिंहनाद, राक्षससैन्य का गर्जन, घोड़ों की हिनहिनाहट, बाणों की क्रेंकार ध्वनि, हाथियों की चिग्घाड़, धनुषों की टंकार से सभी लोक शब्दायमान हो गये थे।।१३-१७।।

सुरासुरविनिर्मुक्तबाणनिष्पेषजानले। अकालप्रलयं मेने निरीक्ष्य सकलं जगत्॥१८॥
बभौ देवद्विषां सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणी।
चलविद्युन्निभा रात्रिश्छादिता जलदैरिव॥१९॥

देवसेना तथा राक्षससेना द्वारा निर्मुक्त किये गये बाणों के टकराने से अग्निकण निकलकर छिटकने लगे। यह देखकर लग रहा था मानो असमय में प्रलय आ गया हो! उस युद्ध में देवद्रोही राक्षसों की सेना अपने-चमकते अस्त्र-शस्त्र के कारण बादलों से आच्छन्न रात्रि में चमकती विद्युत् रेखा ऐसी प्रतीत हो रही थी।।१८-१९।।

तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान् सुरारिभिः।
नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्तु लघुविक्रमाः॥२०॥
केचित्सन्ताडयामासुर्नागैर्नागानथान्थैः। अश्वैरश्वांश्च केचित्तु गदादण्डैरथार्दयन्॥२१॥
परिघैस्ताडिताः केचित्पेतुः शोणितकर्दमे।
समुत्क्रांतासवः केचिर्द्विमानानि समाश्रिताः॥२२॥
ये दैत्या निहता देवैः प्रसह्य सङ्गरे तदा। ते देवभावमापन्ना दैतेयान्समुपाद्रवन्॥२३॥

ऐसे विकट महाघोर युद्ध में देवशत्रु राक्षसों द्वारा देवताओं की ओर फेंके गये महान् पर्वत को देखकर देवगण उनको अपने नाराच अस्त्र के प्रहार से चूर्ण-विचूर्ण कर रहे थे। वे सभी देवता अत्यन्त क्षिप्रता पूर्वक यह कार्य कर रहे थे। कतिपय देवयोद्धागण अपने हाथियों द्वारा शत्रु के हाथियों को, रथों से उनके रथों को, अश्वों से शत्रु के अश्वों को हानि पहुंचवाते जा रहे थे। कतिपय देवताओं ने गदाघात से राक्षस सैन्य को आघात पहुंचाकर आहत किया। कतिपय असुरगण देवसेना के द्वारा किये गये परिघ के आघात से पृथिवी पर पड़े रक्त के कीचड़ में गिर रहे थे। कतिपय राक्षस युद्ध में प्राणविसर्जन करने के कारण मृत्यु के उपरान्त देवरूप पाकर विमानों पर विचर रहे थे। वहां देवगण जिन राक्षसों का वध कर रहे थे, वे मृत्यु के पश्चात् देवरूपधारी होकर राक्षसों पर ही आक्रामक हो जाते थे।।२०-२३।।

अथ दैत्यगणाः क्रुद्धास्ताड्यमानाः सरैर्भृशम्। शस्त्रैर्बहुविधैर्देवान्निजघ्नुरतिदारुणाः॥२४॥
दृषद्भिर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुतोमरैः। परिघैश्छुरिकाभिश्च कुन्तैश्चक्रैश्च शङ्कुभिः॥२५॥

मुसलैरङ्कुशैश्चैव लाङ्गलैः पट्टिशैस्तथा।
शक्त्योपलैः शतघ्नीभिः पाशैश्च तलमुष्टिभिः॥२६॥

शूलैर्नालीकनाराचैः क्षेपणीयैस्समुद्गरैः। रथाश्वनागपदगैः सङ्कुलो ववृधे रणः॥२७॥

देवसैन्य द्वारा ताड़ित दैत्यगण इस कारण अतीव क्रोधित हो गये, क्योंकि देवसैन्य द्वारा वे लोग आहत होते जा रहे थे। अब दैत्य सेना द्वारा दारुण रूप से देवताओं पर अनेक शस्त्रों द्वारा प्रहार किया जाने लगा था। उस युद्ध में पत्थरों को फेंककर, भिन्दिपाल, खंग, परशु, तोमर, परिघ, छूरा, भाला, चक्र, शंकु, मूसल, अंकुश, हल, पट्टिश, पत्थर फेंकने वाले यन्त्रों, तोप, पाश, तलमुष्टि, शूल, नाराच तथा मुद्‌गरों से रथ, अश्व, हस्ति सैन्य तथा पदाति सैन्य पर परस्परतः भयानक प्रहार किया जाने लगा।।२४-२७।।

देवाश्च विविधास्त्राणि दैतेयेभ्यः समाक्षिपन्।
एवमब्दसहस्राणि युद्धमासीत्सुदारुणम्॥२८॥

अथ दैत्यबले वृद्धे पराभूता दिवौकसः। सुरलोकं परित्यज्य सर्वे भीताः प्रदुद्रुवुः॥२९॥
नररूपपरिच्छन्ना विचेरुरवनीतले। वैरोचनिस्त्रिभुवनं नारायणपरायणः॥३०॥
बुभुजेऽव्याहतैश्वर्यप्रवृद्धश्रीर्महाबलः। इयाज चाश्वमेधैः स विष्णुप्रीणनतत्परः॥३१॥

उधर देवसैन्य ने नाना अस्त्रों के द्वारा राक्षस सेना को त्रस्त कर दिया था। यह महादारुण संग्राम एक हजार वर्ष पर्यन्त चल रहा था। अन्ततः दैत्यों का पक्ष प्रबल होने लगा तथा देवता पराजित हो गये। वे सभी देवता स्वर्गलोक छोड़कर यत्र-तत्र पलायन कर गये। वे सभी धरती पर मनुष्य रूप में छिपकर विचरते रहते थे। नारायण-परायण विरोचननन्दन बलि अपने प्रभूत ऐश्वर्य, श्री तथा महान् बल के कारण अनेक भोगों को भोगने लगा। वह असुर सतत् भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने में तत्पर रहता था। इस हेतु उसने अनेक अश्वमेध यज्ञों को भी सम्पन्न किया था।।२८-३१।।

इन्द्रत्वं चाकरोत्स्वर्गे दिक्पालत्वं तथैव च।
देवानां प्रीणनार्थाय यैः क्रियन्ते द्विजैर्मखाः॥३२॥
तेषु यज्ञेषु सर्वेषु हविर्भुङ्क्ते स दैत्यराट्।
अदितिः स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदुःखिता॥३३॥
वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवद्गिरिम्।
शक्रस्यैश्वर्यमिच्छन्ती दैत्यानां च पराजयम्॥३४॥
हरिध्यानपरा भूत्वा तपस्तेपेऽतिदुष्करम्।
किञ्चित्कालं समासीना तिष्ठन्ती च ततः परम्॥३५॥

तब बलिराज ने स्वर्ग में इन्द्रत्व एवं दिक्पालत्व प्राप्त कर लिया। धरती पर ब्राह्मण लोग देवगण की

तुष्टि हेतु जो यज्ञ करते, उन सब में वह दैत्यराज स्वयं हवि ग्रहण कर लेता था! देवमाता अदिति अपने पुत्र देवगण की यह दुःस्थिति देखकर अत्यन्त दुःखी हो गयीं। उन्होंने विचार किया कि "मैं यहां व्यर्थ निवास कर रही हूं।" तदनन्तर वे हिमालय पर्वत पर चली गईं, जहां उन देवमाता ने इन्द्र की ऐश्वर्य प्राप्ति तथा दैत्यों की पराजय लिये हरिध्यान परायण होकर दुष्कर तप किया। उन्होंने कुछ काल तक आसनासीन होकर तदनन्तर खड़े होकर परमतपःश्चरण किया।।३२-३५।।

पादेनैकेन सुचिरं ततः पादाग्रमात्रतः। किञ्चित्कालं फलाहारा ततः शीर्णदलाशना।।३६।।
ततो जलाशना वायुभोजनाहारवर्जिता। सच्चिदानन्दसन्दोहं ध्यायत्यात्मानमात्मना।।३७।।
दिव्याब्दानां सहस्रं सा तपोऽतप्यत नारद।
दुरन्तं तत्तपः श्रुत्वा दैतेया मायिनोऽदितिम्।।३८।।
देवतारूपमास्थाय सम्प्रोचुर्बलिनोदिताः। किमर्थं तप्यते मातः शरीरपरिशोषणम्।।३९।।
यदि जानन्ति दैतेया महद्दुःखं ततो भवेत्। त्यजेदं दुःखबहुलं कायशोषणकारणम्।।४०।।

तत्पश्चात् उन्होंने एक पैर पर खड़े रहकर कुछ काल तप करके अपने पंजों के बल खड़े होकर तप किया। कुछ समय तप काल में मात्र फलाहार किया। कुछ समय पृथिवी पर गिरी पत्तियां खाकर, कुछ समय मात्र जल पीकर तो कुछ समय मात्र वायुपान द्वारा निर्वाह करते अति कठोर तप किया। उस समय देवमाता ने आहार पूर्णतः त्याग दिया था। हे नारद! देवमाता आदिति उस तपःश्चरण काल में सदैव सच्चिदानन्द प्रभु का अपनी आत्मा में आत्मरूपेण ध्यान करती रहती थीं। उन्होंने इस प्रकार एक सहस्र दिव्यवर्ष (१०००x३६०=३६०००० मानववर्ष) तपःश्चरण किया था। यह संवाद जानकर तथा माता का यह दुष्कर तप देखकर कुछ दैत्यों ने माया से देवरूप धारण किया तथा बलिराज द्वारा सिखाये गये वाक्यों को अदिति से कहा—"हे माता! इस काया को शुष्क कर देने वाला तप आप क्यों कर रही हैं? दैत्यों को यदि इस सम्बन्ध में पता चल गया, तो और भी महादुःख होगा। आप इस दुःख बहुल तथा देह को सुखा देने वाले कार्य का त्याग करें।"।।३६-४०।।

प्रयाससाध्यं सुकृतं न प्रशंसन्ति पण्डिताः। शरीरं यत्नतो रक्ष्यं धर्मसाधनतत्परैः।।४१।।
ये शरीरमुपेक्षन्ते ते स्युरात्मविघातिनः। सुखं त्वं तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय।।४२।।
मात्रा हीना जना मातर्मृतप्राया न संशयः।
गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहाः।।४३।।
न लभन्ते सुखं किञ्चिन्मात्रा हीना मृतोपमाः।
दरिद्रो वापि रोगी वा देशान्तरगतोऽपि वा।।४४।।
मातुर्दर्शनमात्रेण लभते परमां मुदम्। अन्ने वा सलिले वापि धनादौ वा प्रियासु च।।४५।।
कदाचिद्विमुखो याति जनो मातरि कोऽपि न। यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा।
साध्वी च स्त्री पतिप्राणा गन्तव्यं तेन वै वनम्।।४६।।

"विद्वान्गण कष्टसाध्य सुकृति की प्रशंसा कभी नहीं करते। धर्मसाधना में लगे रहने वाले लोगों को चाहिये कि वे शरीर की रक्षा यत्नतः करते रहें। जो शरीर की उपेक्षा करते हैं, वे तो आत्मघाती हैं। हे सुशीला

माता! आप सुख से रहिये। इस कठोर तप को करके देहशुष्क करके पुत्रों को दुःखी मत करिये। हे माता! मातृहीन पुत्र तो मृतवत् ही है। यह बात सन्देह रहित है। भले ही गौ प्रभृति पशुगण हरीघास से युक्त मैदान में क्यों न हों परन्तु (उनके वत्स) मातृहीन स्थिति में वे सभी मृतवत् हो जाते हैं। दरिद्र, रोगी, देशान्तर गया हुआ प्रवासी, जब अपनी माता दर्शन पाता है, तब वह परम मुदित हो जाता है। मनुष्य कदाचित् अन्न, जल, धन तथा प्रिय से भले ही विमुख हो जाये, तथापि माता से कोई भी विमुख नहीं मिलता। जिसके गृह में माता अथवा पतिप्राणा, साध्वी तथा धार्मिक नारी न हो, वह घर त्यागकर वन में चला जाये।।४१-४६।।

धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धनं च सद्भोगविवर्जितं हि।
गृहं च भार्यातनयैर्विहीनं यथा तथा मातृविहीनमर्त्यः॥४७॥
तस्माद्देवि परित्राहि दुःखार्तानात्मजांस्तव।
इत्युक्ताप्यदितिर्दैत्यैर्न चचाल समाधितः॥४८॥
एवमुक्त्वासुराः सर्वे हरिध्यानपरायणाम्। निरीक्ष्य क्रोधसंयुक्ता हन्तुं चक्रुर्मनोरथम्॥४९॥

"जो नारायण की भक्ति रहित हो धर्म के बिना रहते हैं, धन का सदुपयोग नहीं करते तथा जिनका गृह भार्या एवं पुत्र से रहित है, उसकी जो स्थिति है, वही मातृहीन की स्थिति होती है। हे देवि! आप अपने दुःख तथा शोक से व्याकुल (जो आपके तपःकष्ट को देखकर दुःख एवं शोक से आकुल हैं) पुत्रों का त्राण करिये।" दैत्यों का यह (कपट) वाक्य सुनकर भी अदिति अपनी समाधि स्थिति से तनिक भी नहीं डिगीं! इतना कहने पर भी जब असुरगण ने अदिति को हरिध्यानतत्पर देखा, तब वे क्रोधयुक्त हो गये। उन्होंने अपनी विफलता के कारण विष्णुध्यान में तत्पर अदिति के वध का उपक्रम किया।।४७-४९।।

कल्पान्तमेघनिर्घोषाः क्रोधसंरक्तलोचनाः। दंष्ट्राग्रैरसृजन्वह्निं सोऽदहत्काननं क्षणात्॥५०॥
शतयोजनविस्तीर्णं नानाजीवसमाकुलम्। तेनैव दग्धा दैतेया ये प्रधर्षयितुं गताः॥५१॥
सैवावशिष्टा जननी सुराणामब्दाच्छतादच्युतसक्तचित्ता।
संरक्षिता विष्णुसुदर्शनेन दैत्यान्तकेन स्वजनानुकम्पिना॥५२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गोत्पत्तौ बलिकृतदेवपराजयवर्णनन्नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥
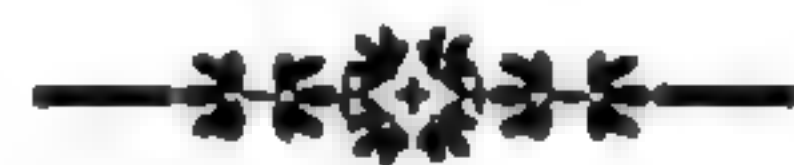
उनके नेत्र क्रोध से आरक्त हो गये। वे कल्पान्त कालीन मेघवत् भयंकर निर्घोष करने लगे। उनके दंष्ट्राग्र से अग्नि निर्गत हो गया, जिसने क्षणमात्र में वन को भस्म कर दिया। उन दितिपुत्र दैत्यों ने दंष्ट्राग्र से निर्गत इस अग्नि ने सौ योजन विस्तार वाले, नाना प्राणियों से भरे वन को दग्ध कर दिया, तथापि इस अग्नि से केवल सैकड़ों वर्ष से तपःनिरत अच्युत ध्यान तत्पर देवी देवमाता अदिति दग्ध नहीं हो सकीं। इसका कारण था कि अपने स्वजनों के प्रति अनुकम्पा रखने वाले दैत्यनाशक विष्णु के सुदर्शन चक्र द्वारा उनकी रक्षा हो रही थी।।५०-५२।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ एकादशोऽध्यायः

गंगा की उत्पत्ति का वर्णन

नारद उवाच

अहो ह्यत्यद्भुतं प्रोक्तं त्वया भ्रातरिदं मम। स वह्निरदितिं मुक्त्वा कथं तानदहत्क्षणात्॥१॥
वदादितेर्महासत्त्वं विशेषाश्चर्यकारणम्। परोपदेशनिरताः सज्जना हि मुनीश्वराः॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भ्राता! आपने तो यह अतीव अद्भुद् प्रसंग मुझसे कहा है। उस अग्नि से सब कुछ क्षणमात्र में दग्ध कर देने पर भी अदिति को बिना दग्ध किये कैसे छोड़ दिया? आप उन माता अदिति के विशेष आश्चर्य प्रदान करने वाले महान् सत्व (प्रभाव) का वर्णन करिये। आप जैसे मुनीश्वर तथा सत्पुरुष सदा परोपदेश देने में लगे रहते हैं।।१-२।।

सनक उवाच

शृणु नारद माहात्म्यं हरिभक्तिरतात्मनाम्। हरिध्यानपरान्साधून्कः समर्थः प्रबाधितुम्॥३॥
हरिभक्तिपरो यत्र तत्र ब्रह्मा हरिः शिवः।
देवाः सिद्धा मुनीशाश्च नित्यं तिष्ठन्ति सत्तमाः॥४॥
हरिरास्ते महाभाग हृदये शान्तचेतसाम्। हरिनामपराणां च किमु ध्यानरतात्मनाम्॥५॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे नारद! हरिभक्ति में सतत् रत रहने वाले महात्माओं की महिमा का श्रवण करिये। जो हरिभक्तिपरायण साधु है, किसका साहस है कि उनको कष्ट दे सके? हे सत्तम! जहां हरिभक्त रहते हैं, वहीं ब्रह्मा, हरि, शिव, देव, सिद्ध, मुनीश्वरगण तथा सर्वोत्तम प्राणीगण सतत् विराजित रहा करते हैं। हे महाभाग! शान्तचित्त, हरिनामतत्पर, महात्माओं के हृदय में सदा हरि निवास करते हैं अतः जो हरिध्यानरत रहने वाला भक्त है, उसकी तो बात ही क्या!।।३-५।।

शिवपूजारतो वाऽपि विष्णुपूजापरोऽपि वा। यत्र तिष्ठति तत्रैव लक्ष्मीः सर्वाश्च देवताः॥६॥
यत्र पूजापरो विष्णोर्वह्निस्तत्र न बाधते।
राजा वा तस्करो वापि व्याधयश्च न सन्ति हि॥७॥
प्रेताः पिशाचाः कूष्माण्डग्रहा बालग्रहास्तथा।
डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्चकम्॥८॥

जहां शिवपूजक अथवा विष्णुपूजक भक्तजन निवास करते हैं, वहां लक्ष्मीदेवी तथा समस्त देवगण भी निवास करते हैं। अग्नि द्वारा वहां कोई बाधा उत्पन्न नहीं की जाती, जहां विष्णु की पूजा में निरक्त भक्तजन का निवास रहता है। वहां राजा, तस्कर, व्याघ्रादि का कोई भय नहीं रहता। वहां प्रेत, पिशाच, कूष्माण्डादि, ग्रह, बालग्रह, डाकिनी, राक्षसादि विष्णुभक्त को कोई बाधा नहीं पहुंचा सकते।।६-८।।

परपीडारता ये तु भूतवेतालकादयः। नश्यन्ति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चने रतः॥९॥

जितेन्द्रियः सर्वहितो धर्मकर्मपरायणः। यत्र तिष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवताः॥१०॥
निमिषं निमिषार्द्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः। तत्रैव सर्वश्रेयांसि तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥११॥

जो परपीड़ाकारक भूत-वेतालदिक हैं, वे वहां आते ही नष्ट हो जाते हैं, जहां सद्भक्त हरि तथा लक्ष्मी की अर्चना करते रहते हैं। जितेन्द्रिय, सभी का हित करने वाले, धर्मकार्य परायण जहां निवास करते हैं, वहां सभी तीर्थ तथा देवता स्थित रहते हैं। जहां योगी एक पल किंवा आधे पल के लिये भी रुकता है, वहां सभी श्रेय विराजमान हो जाते हैं। वही स्थान तीर्थ एवं तपोवन है।।९-११।।

यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः।
स्तोत्रैर्वाप्यर्हणाभिर्वा किमु ध्यानेन कथ्यते॥१२॥
एवं तेनाग्निना विप्र दग्धं सासुरकाननम्। सादितिर्नैव दग्धाभूद्विष्णुचक्राभिरक्षिता॥१३॥
ततः प्रसन्नवदनः पद्मपत्रायतेक्षणः। प्रादुरासीत्समीपेऽस्याः शङ्खचक्रगदाधरः॥१४॥

जिन देव का नाम स्मरण करते ही सभी उपद्रवों का नाश हो जाता है, जिनके पाठ तथा जिनकी अर्चना से सभी बाधायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसे प्रभु की ध्यान महिमा का वर्णन कैसे संभव हैं? हे विप्र! उस अग्नि से असुरों से रक्षित अदिति देवी का वहां बाल-बांका भी नहीं हो सका। तदनन्तर शंखचक्र-गदाधारी-पद्मलोचन प्रसन्न मुख वाले प्रभु अदिति के समीप आविर्भूत हो गये।।१२-१४।।

ईषद्धास्यस्फुरद्दन्तप्रभाभाषितदिङ्मुखः। स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम्॥१५॥

उन प्रभु के स्मित हास्य से उन्मुक्त उनकी दन्तपंक्ति की ज्योत्स्ना से समस्त दिक्मण्डल प्रभायुक्त हो गया। उन प्रभु ने अपने पुण्यमय कर स्पर्श से कश्यपपत्नी को मुदित करते हुये उनसे कहा—।।१५।।

श्रीभगवानुवाच

देवमातः प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया।
चिरं श्रान्तासि भद्रं ते भविष्यति न संशयः॥१६॥
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते। मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुवं श्रेयो भविष्यति॥१७॥
इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा। तुष्टाव प्रणिपत्यैनं सर्वलोकसुखावहम्॥१८॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवमाता! मैं आप की इस तपस्यामयी आराधना से अत्यन्त प्रसन्न हो गया। हे भद्रे! आप दीर्घकाल के तप के कारण अत्यन्त श्रान्त हो गईं। इसमें सन्देह नहीं हैं। हे भद्रे! आप भय न करें। जो इच्छित हो, वह वर मांगिये। आपका कल्याण होना निश्चित है।" देवदेव चक्री विष्णु के यह कहने पर देवमाता सन्तुष्ट हो गईं तथा वे सभी लोकसमूह को सुख प्रदान करने वाले प्रभु के चरणों में प्रणाम करके कहने लगीं।।१६-१८।।

अदितिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनार्दन। सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण॥१९॥
नमस्ते बहुरूपायारूपाय च महात्मने। सर्वैकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने॥२०॥

नमस्ते लोकनाथाय परज्ञानरूपिणे। सद्भक्तजनवात्सल्यशालिने मङ्गलात्मने॥२१॥

देवी अदिति कहती हैं—हे देवदेवेश! सर्वव्यापी, जनार्दन, आप सत्व आदि त्रिगुण भेद के द्वारा लोक व्यापार रूपी सृष्टि के कारण हैं। आपको प्रणाम! आप अनेकरूप, अरूप, महात्मा, सबमें एकरूपेण अवस्थित, निर्गुण, गुणात्मा, लोकनाथ, परमज्ञानरूपी, सद्भक्तों के प्रति वात्सल्यपूर्ण तथा मंगलात्मा हैं। आपको प्रणाम!।।१९-२१।।

यस्यावताररूपाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वराः। तमादिपुरुषं देवं नमामि ह्यर्थसिद्धये॥२२॥

श्रुतयो यं न जानन्ति न जानन्ति च सूरयः।
तं नमामि जगद्धेतुं समायं चाप्यमायिनम्॥२३॥

मुनीश्वरगण जिनके विविध अवताररूपों की अर्चना करते रहते हैं, मैं अपनी कामना सिद्धिहेतु उन आपको प्रणाम करती हूं! आप तो आदिपुरुष हैं। आपको श्रुतियां तथा सूरीजन भी नहीं जान पाते। आप जगत् के हेतु रूप, माया रहित देव हैं। आपको प्रणाम!।।२२-२३।।

यस्यावलोकनं चित्रं मायोपद्रवकारणम्। जगद्रूपं जगद्धेतुं तं वन्दे सर्ववन्दितम्॥२४॥

यत्पादाम्बुजकिञ्जल्कसेवारक्षितमस्तकाः। अवापुः परमां सिद्धिं तं वन्दे कमलाधवम्॥२५॥

जिनका दर्शन मायीय उपद्रवों का शमन करने वाला है, जो जगद्रूपी, जगत् के कारण तथा सर्ववन्दित हैं, उनको प्रणाम! जिन प्रभु के चरणकमल के पराग को अपने मस्तक पर धारण करके आपके जन परमसिद्धि लाभ करते हैं, मैं उन कमलापति को प्रणाम करती हूं!।२४-२५।।

यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमानं न वै विदुः।
अत्यासन्नं च भक्तानां तं वन्दे भक्तसङ्गिनम्॥२६॥
यो देवस्त्यक्तसङ्गानां शान्तानां करुणार्णवः।
करोति ह्यात्मनः सङ्गं तं देवं सङ्गवर्जितम्॥२७॥

जिनकी महिमा को ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जानते, जो भक्तों के निकट स्थित तथा उनके रक्षक हैं, उन भक्तसंगी प्रभु की मैं वन्दना करती हूं। जो देवदेव संग से रहित, शान्त, करुणा-सागर हैं, जो संसार से असंग भक्तों के साथी हैं, उन संगवर्जित देव को प्रणाम!।।२६-२७।।

यज्ञेश्वरं यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम्। नमामि यज्ञफलदं यज्ञकर्मप्रबोधकम्॥२८॥

अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु।
प्राप्तवान्परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम्॥२९॥

हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्दनः। इति लोकस्य नेता यस्तं नमामि जगद्गुरुम्॥३०॥

ब्रह्माद्या अपि देवेशा यन्मायापाशयन्त्रिताः।
न जानन्ति परं भावं तं वन्दे सर्वनायकम्॥३१॥

आप यज्ञेश्वर, यज्ञकर्मरूप, यज्ञकर्मनिष्ठ, यज्ञफलप्रद तथा यज्ञकृत्य प्रबोधक हैं। आपको नमस्कार! पापात्मा अजामिल ने भी जिनका नामोच्चार करके जिनके परमधाम को पा लिया, मैं उन लोकसाक्षी, हरिरूपी,

महादेव, शिवरूपी, जनार्दन, लोकनेता जगद्गुरु को प्रणाम करती हूं! जिनके मायापाश से ब्रह्मादि, देवगण भी यन्त्रित रहते हैं, तथापि वे भी जिनके परमरूप भाव को नहीं जान पाते, मैं उन सर्वनायक की वन्दना करती हूं।।२८-३१।।

हृतपद्मस्थोऽपि योग्यानां दूरस्थ इव भासते।
प्रमाणातीतसद्भावस्तं वन्दे ज्ञानसाक्षिणम्।।३२।।
यन्मुखाद्ब्राह्मणो जातो बाहुभ्यां क्षत्रियोऽजनि।
ऊर्वोर्वैश्यः समुत्पन्नः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत।।३३।।
मनसश्चन्द्रमा जातो जातः सूर्यश्च चक्षुषः। मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत।।३४।।
ऋग्यजुः सामरूपाय सत्यस्वरगतात्मने। षडङ्गरूपिणे तुभ्यं भूयोभूयो नमो नमः।।३५।।

जो लोगों के हृदय में ही निवास करते हैं, तथापि वे योग्य लोगों को भी स्वयं से दूर भासित होते हैं, जिनकी सत्ता को, जिनके सद्भाव को प्रमाणों द्वारा भी नहीं कहा जा सकता, मैं उन ज्ञानसाक्षी की वन्दना करती हूं। जिनके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति कही जाती है, जिनके मन से चन्द्र, नेत्रों से सूर्य, मुख से अग्नि तथा इन्द्र तथा प्राण से वायु उत्पन्न हो गये, उन ऋक्-साम-यजुःरूप, सत्यस्वर युक्त आत्मा, षडङ्गरूपी आपको पुनः-पुनः प्रणम!।।३२-३५।।

त्वमिन्द्रः पवनः सोमस्त्वमीशानस्त्वमन्तकः।
त्वमग्निर्निर्ऋतिश्चैव वरुणस्त्वं दिवाकरः।।३६।।
देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसाः।
गिरयः सिद्धगन्धर्वा नद्यो भूमिश्च सागराः।।३७।।
त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्वं परात्परः। त्वद्रूपमखिलं देव तस्मान्नित्यं नमोऽस्तु ते।।३८।।
अनाथनाथसर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह। दैतेयैर्बाधितान्पुत्रान्मम पाहि जनार्दन।।३९।।

आप ही इन्द्र, पवन, ईशान, सोम, यम, अग्नि, निःऋति, वरुण, दिवाकर हैं। आप ही देव, स्थावर, पिशाच, राक्षस, पर्वत, सिद्ध, गन्धर्व, नदी, भूमि, सागर हैं। आप ही जगदीश तथा परात्पर हैं। हे प्रभो! हे देव! यह अखिल जगत् आप का ही रूप है। इसलिये मैं आपको सतत् प्रणाम करती हूं! आप अनाथों के नाथ, सर्वज्ञ, समस्त प्राणियों में देवेन्द्र रूप से स्थित हैं। हे जनार्दन! इन दैत्यगण से आप मेरे पुत्रगण की रक्षा करिये।।३६-३९।।

इति स्तुत्वा देवमाता देवं नत्वा पुनः पुनः।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनी।।४०।।
अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण।
अकण्टकां श्रियं देहि मत्सुतानां दिवौकसाम्।।४१।।
अन्तर्य्यामिञ्जगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर। अज्ञातं किं तव श्रीश किं मामीहयसि प्रभो।।४२।।

यह स्तुति करने के उपरान्त देवमाता ने देव नारायण को पुनः-पुनः प्रणाम करके हाथ जोड़कर हर्षाश्रुपूर्ण नेत्र की स्थिति में कहा, उस समय आनन्दाश्रु उनके वक्ष को सिक्त कर रहे थे। देवी अदिति कहती हैं—"हे देवेश! सबके आदि कारण! मैं आपके अनुग्रह की आकांक्षी हूं। आप मेरे स्वर्गनिवासी पुत्रों को निष्कण्टक श्री प्रदान करिये। आप अन्तर्यामी, जगद्रूप, सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। हे श्रीपति! ऐसा क्या है, जो आपको ज्ञात न हो! प्रभो! आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं?।।४०-४२।।

तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते। वृथापुत्रास्मि देवेश दैतेयैः परिपीडिता॥४३॥
तान्न हिंसितुमिच्छामि यस्ततेऽपि सुता मम। तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर॥४४॥
इत्युक्तो देवदेवेशः पुनः प्रीतिमुपागतः। उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात्॥४५॥

"हे प्रभो!, तथापि जो मेरे मन को उचित प्रतीत हो रहा है, वह मैं कहती हूं। हे देवेश! दितिपुत्रों से पीड़ित सन्तानों की मैं माता हूं। वे पुत्र शक्ति रहित से, व्यर्थ शक्तिवाले हो गये हैं। मैं उनकी हिंसा नहीं करना चाहती। एक प्रकार से दैत्य भी मेरे पुत्र हैं। हे सुरेश्वर!, तथापि आप कृपा पूर्वक दैत्यों की हिंसा किये बिना मेरे पुत्रगण को श्री तथा इन्द्रत्व प्रदान करिये।" अदिति के यह कहने पर देवदेवेश पुनः प्रसन्न हो गये। हे विप्र! उन्होंने हर्षित होकर आदर के साथ देवमाता से कहा—।।४३-४५।।

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतो ह्यहम्।
यतः सपत्निपुत्रेषु वात्सल्यं देवि दुर्लभम्॥४६॥
त्वया तु यत्कृतं स्तोत्रं तत्पठन्ति नरास्तु ये। तेषां सम्पद्वरा पुत्रा न हीयन्ते कदाचन॥४७॥
स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते। न तस्य पुत्रशोकः स्यादेष धर्मः सनातनः॥४८॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे देवी! तुम तो अपनी सौत के पुत्रों के प्रति भी वात्सल्य प्रदर्शित कर रही हो। इससे मैं तुम पर प्रसन्न हो गया। हे भद्रे! मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र होकर जन्म लूंगा। तुम्हारे द्वारा कहा गया स्तोत्र जो व्यक्ति पाठ करेगा, उसकी उत्तम सम्पत्ति तथा सन्तान परम्परा कदापि नष्ट नहीं होगी। जिसका अपने पुत्रों तथा अन्य के पुत्रों के प्रति समान भाव रहता है, वह कभी पुत्र शोक से ग्रस्त नहीं होता। यह सनातन धर्म है।।४६-४८।।

अदितिरुवाच

नाहं वोढुं क्षमा देव त्वामाद्यं पुरुषं परम्। असङ्ख्याताण्डरोमाणं सर्वेशं सर्वकारणम्॥४९॥
यत्प्रभावं न जानन्ति श्रुतयः सर्वदेवताः। तमहं देवदेवेशं धारयामि कथं प्रभो॥५०॥
अणोरणीयांसमजं परात्परतरं प्रभुम्। धारयामि कथं देव त्वामहं पुरुषोत्तमम्॥५१॥
महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रतः। मुच्यते स कथं देवो ग्राम्येषु जनिमर्हति॥५२॥
यथा शूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो। तथायमपि को वेद तव विश्वेश! चेष्टितम्॥५३॥

देवी अदिति कहती हैं—हे देव! आप क्षमा करिये। आप आद्य देव परम पुरुष हैं। जो सर्वेश, सर्वकारण

हैं, जिनके रोमों से असंख्य ब्रह्माण्ड लटकते रहते हैं, जिनके प्रभाव को श्रुतियां तथा सभी देवता तक नहीं जानते, उन देवदेवेश को हे प्रभो! मैं कैसे (उदर में) धारण कर सकूंगी? हे प्रभो! अणु से भी सूक्ष्मतम, अज, परात्पर प्रभु तो आप हैं। मैं आप पुरुषोत्तम को कैसे धारण करूंगी? जिनके नाम के स्मरणमात्र से महापातकी भी मुक्त हो जाता है, वे देवदेव मेरे समान ग्राम्य नारी से कैसे जन्म ले सकते हैं? हे प्रभो! जैसे पूर्वकाल में आपके शूकरावतार, मत्स्यावतार आदि अवतार हो गये हैं, हे विश्वेश! क्या वैसा अवतार आपका होगा? आपके रहस्य को जान सकने वाला कौन है?।।४९-५३।।

त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा। त्वामेव चिन्तये देव! यथेच्छसि तथा कुरु॥५४॥

मैं तो आपके चरण कमलों में सदा पड़ी रहने वाली, आपके नामों के स्मरण में रता हूं। मैं सदा आपका ही चिन्तन करने वाली नारी हूं। हे देव! आपकी जो इच्छा हो, वही करिये।।५४।।

सनक उवाच

तयोक्तं वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः। दत्त्वाभयं देवमातुरिद वचनमब्रवीत्॥५५॥

देवर्षि सनक कहते हैं—अदिति का कथन सुनकर देवदेव जनार्दन ने देवमाता को अभय प्रदान करते हुये कहा—।।५५।।

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं महाभागे त्वया नास्त्यत्र संशयः। तथापि शृणु वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शुभे॥५६॥
रागद्वेषविहीना ये मद्भक्ता मत्परायणाः। वहन्ति सततं ते मां गतासूया अदाम्भिकाः॥५७॥
परोपतापविमुखाः शिवभक्तिपरायणाः। मत्कथाश्रवणासक्ता वहन्ति सततं हि माम्॥५८॥
पतिव्रताः पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः।
वहन्ति सततं देवि स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सराः॥५९॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे महाभागे! तुमने जो कहा वह सत्य है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। हे शुभे!, तथापि मैं गुह्य से भी गुह्यतर रहस्य कह रहा हूं। उसे सुनो। जो रागद्वेष रहित मेरे परायण भक्त हैं, वे ईष्या-दम्भ रहित होते हैं। वे अन्य को पीड़ित नहीं करते तथा शिवभक्त होते हैं। वे मेरी कथा को सुनने में ही आसक्त होते हैं तथा सर्वदा मुझमें चित्त लगाये रहते हैं। जो स्त्रियां पतिव्रता, पतिप्राण, पतिभक्तिरत होती हैं, वे ईर्ष्या को त्यागकर अपने चित्त में मुझे धारण करती रहती हैं।।५६-५९।।

मातापित्रोश्च शुश्रूषुगुरुभक्तोऽतिथिप्रियः।
हितकृद्ब्राह्मणानां यः स मां वहति सर्वदा॥६०॥
पुण्यतीर्थरता नित्यं सत्सङ्गनिरतास्तथा। लोकानुग्रहशीलाश्च सततं ते वहन्ति माम्॥६१॥
परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः। नपुंसकाः परस्त्रीषु ते वहन्ति च मां सदा॥६२॥
तुलस्युपासनरताः सदा नामपरायणाः। गोरक्षणपरा ये च सततं मां वहन्ति ते॥६३॥

जो माता-पिता की सेवा में रत, गुरुभक्त, अतिथिप्रिय तथा ब्राह्मणों का हितैषी है, वह सदा चित्त में मुझे

धारण करता रहता है। जो पुण्यतीर्थरत, नित्य सत्संग निरत है, जो लोगों पर अनुग्रह करने वाला है, वह सदा मुझे धारण किये रहता है। जो परोपकारी, परद्रव्य से विमुख, परस्त्री के लिये नपुंसक जैसा है, वह सदा मुझे धारण किये रहता है। जो तुलसी की उपासना में लगा रहता है, मेरे नाम के प्रति जो सदा अनुरक्त तथा जप करने वाला है, जो गोरक्षा करता है, वह सदा मुझे धारण करता है।।६०-६३।।

प्रतिग्रहनिवृत्ता ये परान्नविमुखास्तथा। अन्नोदकप्रदातारो वहन्ति सततं हि माम्॥६४॥

त्वं तु देवि! पतिप्राणा साध्वी भूतहिते रता।
सम्प्राप्य पुत्रभावं ते साधयिष्ये मनोरथम्॥६५॥

जो दान नहीं लेता, जो पराये अन्न से विमुख है, जो स्वयं अन्न-जल दान करता रहता है, वह सदा मुझे धारण किये रहता है। हे देवी! तुम प्रतिप्राणा, साध्वी, प्राणीगण के हित में निरत रहा करती हो। मैं तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करूंगा।।६४-६५।।

इत्युक्त्वा देवदेवेशो ह्यदितिं देवमातरम्। दत्त्वा कण्ठगतां मालामभयं च तिरोदधे॥६६॥

सा तु संहृष्टमनसा देवसूर्दक्षनन्दिनी। प्रणम्य कमलाकान्तं पुनः स्वस्थानमाव्रजत्॥६७॥

देवदेवेश श्री हरि ने अदिति से यह कहा तथा उन्होंने अपने कण्ठ की माला अदिति को देकर उनको अभय प्रदान किया। तत्पश्चात् प्रभु वहां से तिरोहित हो गये। अब देवजननी दक्षपुत्री ने कमलाकान्त को प्रसन्न मन से प्रणाम किया तथा पुनः अपने स्थान पर आ गईं।।६६-६७।।

ततोऽदितिर्महाभगा सुप्रीता लोकवन्दिता। असूत समये पुत्रं सर्वलोकनमस्कृतम्॥६८॥

शङ्खचक्रधरं शान्तं चन्द्रमण्डलमध्यगम्। सुधाकलशदध्यन्नकरं वामनसंज्ञितम्॥६९॥

सहस्रादित्यसङ्काशं व्याकोशकमलेक्षणम्। सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं हरिम्॥७०॥

स्तुत्यं मुनिगणैर्युक्तं सर्वलोकैकनायकम्। आविर्भूतं हरिं ज्ञात्वा कश्यपो हर्षविह्वलः।
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे॥७१॥

तत्पचात् महाभागा, सुप्रीता, लोकवन्दिता अदिति ने समय आने पर सर्वलोकनमस्कृत, शंखचक्रगदाधारी शान्त, चन्द्रमण्डल से घिरे, सुधाकलश एवं दधि अन्नपात्रधारी वामन नामक सहस्र सूर्य के समान, खिले कमल जैसे नयनों वाले, सभी आभूषणों से सज्जित, पीताम्बरधारी हरि को पुत्ररूपेण जन्म दिया। जब महर्षि कश्यप ने मुनिवृन्द से स्तुति, सर्वलोकनाथ हरि को प्रकट देखा, तब वे हर्षविह्वल होकर हाथ जोड़कर तथा उनको प्रणाम करने के उपरान्त उनका स्तव करन लगे।।६८-७१।।

कश्यप उवाच

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमोनमस्तेऽखिलपालकाय।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय॥७२॥

नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः सज्जनरञ्जिताय।
नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥७३॥

महर्षि कश्यप कहते हैं—आप समस्त संसार के आदिकारण, सबके पालक, देवों के नायक, दैत्य विनाशक हैं। आपको नमस्कार! आप भक्तों के प्रिय, सज्जनों को रंजित करने वाले, दुर्जनों का नाश करने वाले जगदीश्वर हैं। आपको नमस्कार!।।७२-७३।।

नमोनमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
सशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥७४॥
नमः पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्धृत्कमलस्थिताय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यकथागताय॥७५॥

आप जगत्कारण वामन, अमितविक्रम नारायण हैं। आप शार्ङ्गधनुष, चक्र, तलवार तथा गदाधारी हैं। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार! आप जलराशि में निवास करने वाले, सत् व्यक्तियों के हृदयसरोज में निवास करने वाले, सूर्य के समान अमित प्रभावान्, पावन कथा जहां होती है, वहां उपस्थित रहने वाले हैं। आपको प्रणाम!।।७४-७५।।

नमोनमोऽऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥७६॥
नमो जगत्कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय॥७७॥

आपके नेत्र हैं सूर्य तथा चन्द्रमा। आप यज्ञों का फल देने वाले, यज्ञांग में विराजमान सज्जनों के प्रिय हैं। आप जगत्कारण के भी कारण तथा शब्दादि पंचतन्मात्र रहित, दिव्यसुखदाता तथा भक्तगण के मन में विचरण करने वाले हैं। आपको नमस्कार!।।७६-७७।।

नमोऽस्तु ते ध्वान्तविनाशकाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥७८॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥७९॥

आप अज्ञानान्धकार विनाशक, मन्दरपर्वत को कूर्मावतार में धारण करने वाले, यज्ञवराह नाम वाले तथा हिरण्याक्ष का वध करने वाले हैं। आप वामनरूपधारी हैं, आप (परशुरामरूपेण) क्षत्रिय कुल का अन्त करने वाले, रावणनाशक हैं। आपको प्रणाम! नन्दपुत्र कृष्ण के अग्रज को प्रणाम!।।७८-७९।।

नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने।
स्मृतार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमोनमः॥८०॥
यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन। यज्ञरूप यजद्रूप यज्ञाङ्गं त्वां यजाम्यहम्॥८१॥

हे कमलाकान्त! हे सुखदायक! हे स्मरण करने वाले के दुःखविनाशक! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे यज्ञेश! यज्ञ विन्यास, यज्ञविघ्ननाशक, यज्ञरूप, यजद्रूप, यज्ञांगं! मैं आपका यजन करता हूं।।८०-८१।।

इति स्तुतः स देवेशो वामनो लोकपावनः। उवाच प्रहसन्हर्षं वर्द्धयन्कश्यपस्य सः॥८२॥

महात्मा कश्यप द्वारा एवंविध लोकपावन देवेश वामन की स्तुति की गई। इसे सुनकर कश्यप का हर्ष बढ़ाते हुये भगवान् ने हंसते हुये कहा—।।८२।।

श्रीभगवानुवाच

तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते भविष्यति सुरार्चित!।
अचिरात्साधयिष्यामि निखिलं त्वन्मनोरथम्॥८३॥
अहं जन्मद्वये त्वेवं युवयोः पुत्रतां गतः।
अस्मिञ्जन्मन्यपि तथा साधयाम्युत्तमं सुखम्॥८४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे भद्र! तात! सुरगणपूजित! आपका कल्याण हो। मैं शीघ्र समस्त मनोरथ पूर्ण करूंगा। मैं दो जन्मों में आपका पुत्र रहा हूं। इस जन्म में भी आपको यथापूर्व उत्तम सुख प्रदान करूंगा।"।।८३-८४।।

अत्रान्तरे बलिर्दैत्यो दीर्घसत्रं महामखम्। आरेभे गुरुणा युक्तः काव्येन च मुनीश्वरैः॥८५॥

तस्मिन्मखे समाहूतो विष्णुर्लक्ष्मीसमन्वितः।
हविः स्वीकरणार्थाय ऋषिभिर्ब्रह्मादिभिः॥८६॥

प्रवृद्धैश्वर्यदैत्यस्य वर्त्तमाने महाक्रतौ। आमन्त्र्य मातापितरौ स बटुर्वामनो ययौ॥८७॥

स्मितेन मोहयँल्लोकं वामनो भक्तवत्सलः।
हविर्भोक्तुमिवायातो बलेः प्रत्यक्षतो हरिः॥८८॥

यही वह समय था जब दैत्यपति बलि ने दीर्घकालीन महायज्ञ प्रारम्भ किया। उसने गुरु शुक्र तथा मुनीश्वरों के साथ इसे प्रारंभ किया था। इस यज्ञ में विष्णु तथा लक्ष्मी का भी ऋषियों तथा ब्रह्मादि ने हविः स्वीकार करने हेतु आवाहन किया था। यह महायज्ञ ऐश्वर्यवान् दैत्यों की उपस्थिति से युक्त था। इस यज्ञ में पिता ऋषि कश्यप तथा माता अदिति से आज्ञा लेकर प्रभु वटुवामन भी गये। उन भक्तवत्सल वामनदेव के स्मित हास्य से समस्त लोक मोहित हो गया। प्रतीत हो रहा था जैसे बलि के यज्ञ में हवि ग्रहणार्थ साक्षात् हरि आये हैं।।८५-८८।।

दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा जडो वा पण्डितोऽपि वा।
यो भक्तियुक्तस्तस्यान्तः सदा सन्निहितो हरिः॥८९॥
आयान्तं वामनं दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुषः।
ज्ञात्वा नारायणं देवमुद्ययुः सभ्यसंयुताः॥९०॥
एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकान्ते बलिमब्रवीत्।
स्वसारमविचार्यैव खलाः कार्याणि कुर्वते॥९१॥

दुराचारी, सदाचारी, जड़ मूर्ख-पण्डित चाहे कोई क्यों न हो, यदि उसमें भक्ति है, तब साक्षात् भगवान्

उसकी भक्ति के कारण सदैव उसके पास सन्निहित रहते हैं। अपने ज्ञाननेत्रों से ऋषिगण ने वहां वामनदेव के आगमन को जान लिया। उन्होंने उन नारायणदेव को वहां वामनरूपधारी समागत देखकर उनका अतीव सम्मान किया। जब दैत्याचार्य शुक्र ने यह रहस्य जाना, तब उन्होंने एकान्त में बलि से कहा। अपने सारतत्व को जाने बिना दुष्ट ही कोई कार्य करते हैं।।८९-९१।।

शुक्र उवाच

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम्। विष्णुर्वामनरूपेण ह्यदितेः पुत्रतां गतः।।९२।।
तवाध्वरं स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर। न किञ्चिदपि दातव्यं मन्मतं शृणु पण्डित।।९३।।
आत्मबुद्धिः सुखकरी गुरुबुद्धिर्विशेषतः। परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयङ्करी।।९४।।
शत्रूणां हितकृद्यस्तु स हन्तव्यो विशेषतः।।९५।।

शुक्राचार्य कहते हैं—हे दैत्यपति, सौम्य! तुम्हारे ऐश्वर्य के अपहरणार्थ ही श्रीविष्णु ने वामनरूपी होकर अदिति का पुत्रत्व ग्रहण किया है। वे तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं। हे असुरेश्वर! मेरा मत सुनो। हे पण्डित! उनको कुछ भी मत देना। अपनी बुद्धि का निर्णय सुखकारक होता है। गुरु की बुद्धि और भी अधिक सुखप्रद होती है। पराई बुद्धि से विनाश होता है। स्त्रीबुद्धि तो प्रलय कराने वाली है। जो शत्रु का हित चाहे, उसका विशेष रूप से वध कर दे।।९२-९५।।

बलिरुवाच

एवं गुरो न वक्तव्यं धर्ममार्गविरोधतः। यदादत्ते स्वयं विष्णुः किमस्मादधिकं वरम्।।९६।।
कुर्वन्ति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात्।
स चेत्साक्षाद्धविर्भोगी मत्तः कोऽभ्यधिको भुवि।।९७।।
दरिद्रेणापि यत्किञ्चिद्दीयते विष्णवे गुरो। तदेव परमं दानं दत्तं भवति चाक्षयम्।।९८।।
स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तमः। येन केनाप्यर्चितश्चेद्ददाति परमां गतिम्।।९९।।

बलिराज कहते हैं—हे गुरु! आप इस प्रकार धर्ममार्ग विरोधी वक्तव्य मत दीजिये। जब विष्णु स्वयं यहां आकर याचना करें, तब इससे बढ़कर वर क्या होगा? विद्वान् तथा सुधी व्यक्ति विष्णु को प्रसन्न करने हेतु यज्ञानुष्ठन करता है। यदि वे विष्णु स्वयं मेरे यज्ञ में आकर हविः भोगी हो जाये, तब मुझसे अधिक इस धरती पर कौन धन्य तथा श्रेष्ठ होगा? हे गुरु! यदि दरिद्र व्यक्ति भी अपने पास का यत्किंचित् विष्णु को देता है, तब उसे ही परम एवं अक्षयदान कहा जायेगा। परम भक्ति पूर्वक स्मरण करने पर पुरुषोत्तम उस व्यक्ति को पवित्र कर देते हैं। जो चाहे जिस प्रकार श्री हरि की अर्चना क्यों न करे, उसे परमगति प्राप्त हो जाती है।।९६-९९।।

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।।१००।।
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।।१०१।।
गोविन्देति सदा ध्यायेद्यस्तु रागातिवर्जितः।
स याति विष्णुभवनमिति प्राहुर्मनीषिणः।।१०२।।

यदि दुष्ट बुद्धि एवं दुष्ट चित्त वाले भी हरि का स्मरण करते हैं, तब हरि उनके पापों को हर लेते हैं। चाहे अनिच्छा पूर्वक अग्नि का स्पर्श किया गया हो, वह छूते ही दहन कार्य करता है। जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर "हरि" ये दो अक्षर रहते हैं, वह आवागमन रहित दुर्लभ विष्णुलोक को प्राप्त करता है। जो गोविन्द का सदा ध्यान करता है और राग-द्वेष से रहित होकर रहता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा मनीषी कहते हैं।।१००-१०२।।

अग्नौ वा ब्राह्मणे वापि हूयते यद्धविर्गुरो!।
हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णुः प्रसीदति॥१०३॥
अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम्।
स्वयमायाति चेद्विष्णुः कृतार्थोऽस्मि न संशयः॥१०४॥

हे गुरुदेव! अग्नि में अथवा ब्राह्मण के मुख में जो हविः हरिभक्ति के साथ प्रदान की जाती है, उससे भगवान् विष्णु सुप्रसन्न हो जाते हैं। मैं यह उत्तम यज्ञ मात्र हरि की प्रसन्नतार्थ सम्पन्न कर रहा हूं। यदि भगवान् स्वयं मेरे यज्ञ में आगमन कर रहे हैं, तब तो मैं निःसंशय कृतकृत्य हो गया!।।१०३-१०४।।

एवं वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामनरूपधृक्। प्रविवेशाध्वरस्थानं हुतवह्निमनोरमम्॥१०५॥
तं दृष्ट्वा कोटिसूर्याभं योग्यावयवसुन्दरम्।
वामनं सहसोत्थाय प्रत्यगुह्णात्कृताञ्जलिः॥१०६॥
दत्त्वासनं च प्रक्षाल्य पादौ वामनरूपिणम्।
सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना परमां मुदमाप्तवान्॥१०७॥
विष्णवेऽस्मै जगद्धाम्ने दत्तवार्घ्यं विधिवद्बलिः।
रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा हर्षाश्रुनयनोऽब्रवीत्॥१०८॥

दैत्यपति बलि गुरुशुक्राचार्य से यह कह ही रहे थे, इतने में दीप्त अग्नि के समान मनोरम विष्णु स्वयं वामनरूपधारी होकर यज्ञस्थल में पहुंच गये। उन कोटि सूर्य की आभा वाले, उत्तम अंगों वाले वामनदेव को देखते ही बलिराज सहसा हाथ जोड़कर उठ खड़े हो गये। उन्होंने वामनरूपी प्रभु का चरण धोकर उनको आसन पर बैठाया तथा भगवत् चरणोदक को स्वयं तथा कुटुम्बीगण के शिर पर रखकर मुदित हो गये। तदनन्तर बलिराज ने सविधिजगद्धाम विष्णु को अर्घ्य प्रदान किया। इस अवसर पर वे प्रेम से रोमांचित हो उठे। उन्होंने हर्षाश्रु नेत्रों से बहाते हुये भगवान् से कहा—।।१०५-१०८।।

बलिरुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलो मखः।
जीवितं सफलं मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न संशयः॥१०९॥
अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा। त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सवः॥११०॥
एते च ऋषयः सर्वे कृतार्था नात्र संशयः। यैः पूर्वं हि तपस्तप्तं तदद्य सफलं प्रभो॥१११॥

बलिराज कहते हैं—आज मेरा जन्म तथा यह यज्ञ सफल हो गया। मेरा जीवन सफल हो गया। मैं निःसंदिग्ध रूप से कृतकृत्य हो गया। आपके आगमन के कारण मानो मेरे यहां दुर्लभ अमोघ अमृत वृष्टि हो गई है। आपका आगमन होते ही मेरे यहां महोत्सव का अनायास प्रादुर्भाव हो गया। ये सभी ऋषिगण भी कृतार्थ हो गये, इसमें तनिक संशय नहीं है। हे प्रभो! इन्होंने पूर्वकाल में जो तप किया था, वह आज सफल हो गया।।१०९-१११।।

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः।
तस्मात्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥११२॥
त्वदाज्ञया त्वन्नियोगं साधयामीति मन्मनः।
अत्युत्साहसमायुक्तं समाज्ञापय मां प्रभो॥११३॥
एवमुक्तो दीक्षितेन प्रहसन्वामनोऽब्रवीत्।
देहि मे तपसि स्थातुं भूमिं त्रिपदसम्मिताम्॥११४॥
एतच्छ्रुत्वा बलिः प्राह राज्यं याचितवान्नहि।
ग्रामं वा नगरं वापि धनं वा किं कृतं त्वया॥११५॥
तन्निशम्य बलिं प्राह विष्णुःसर्वशरीरभृत्। आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्यं जनयन्निव॥११६॥

"मैं कृतार्थ हो गया, मैं कृतार्थ हो गया, मैं कृतार्थ हो गया! इसमें संदेह नहीं है। अतः हे प्रभो! आपको नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार! मेरा मन है कि आपकी आज्ञा का पालन करूं। हे प्रभो! आप आज्ञा तो दीजिये। मैं उत्साह से पालन करूंगा।" दीक्षित बलिराज का कथन सुनकर हंसते हुये भगवान् ने कहा—"तुम मुझे तप हेतु तीन पग भूमि प्रदान करो।" भगवान् वामन का कथन सुनकर बलि ने कहा—"आपने राज्य, ग्राम, नगर, धन आदि मांगा ही नहीं, यह कैसा कृत्य आपने कर दिया?" बलि का कथन सुनकर सभी प्राणीगण के आधार, पोषक, प्रभु ने बलि से ऐसे कौशल से कहा मानो वे शीघ्र राज्य से च्युत हो जाने वाले बलि में वैराग्य को उत्पन्न कर रहे हैं।।११२-११६।।

श्रीभगवानुवाच

शृणुदैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतमं परम्। सर्वसङ्गविहीनानां किमर्थैः साध्यते वद॥११७॥
अहं तु सर्वभूतानामन्तर्यामीति भावय।
मयि सर्वमिदं दैत्य! किमन्यैः साध्यते वद॥११८॥
रागद्वेषविहीनानां शान्तानां त्वक्तमायिनाम्।
नित्यानन्दस्वरूपाणां किमन्यैः साध्यते धनैः॥११९॥
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यतां शान्तचेतसाम्।
अभिन्नमात्मनः सर्व को दाता दीयते च किम्॥१२०॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे दैत्येन्द्र! मैं गुप्त से भी गुप्त तत्व तुमसे कहता हूं। इसे सुनो। जो सभी

आसक्तियों तथा संग से रहित है, धन उसके किस काम का? तुम यह देखो कि मैं सभी प्राणीगण का अन्तर्यामी हूं। हे दैत्य! मैं ही तो यह सब कुछ हूं। अन्य वस्तुसमूह की मुझे क्या आवश्यकता? जो सभी प्राणीगण को आत्मा के समान देखता है, जो शान्तचित्त है, जो सबको अपने से अभिन्न समझता है, उसको कौन क्या दे सकता है तथा उसका दाता कौन हो सकता है?।।११७-१२०।।

पृथ्वीयं क्षत्रियवंशा इति शास्त्रेषु निश्चितम्।
तदाज्ञायां स्थिताः सर्वे लभन्ते परमं सुखम्॥१२१॥
दातव्यो मुनिभिश्चापि षष्ठांशो भूभुजे बले!।
महीयं ब्राह्मणानां तु दातव्या सर्वयत्नतः॥१२२॥
भूमिदानस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति।
परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः॥१२३॥

यह शास्त्रों में निश्चित है कि पृथिवी पर क्षत्रियगण का स्वामित्व रहता है। उसकी आज्ञा में स्थित सभी प्रजा परम सुखलाभ करती है। हे बलिराज! मुनिगण को भी चाहिये कि वे छठा अंश राजा को दिया करें। ब्राह्मण को राजा भूमि दान सर्वप्रकार से करें। भूमिदान के समान न तो कोई दान भूतकाल में रहा है, न भविष्य में होगा। भूमिदान कर्त्ता परमनिर्वाण फल लाभ करता है, इसमें किंचित् संशय नहीं है।।१२१-१२३।।

स्वल्पामपि महीं दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥१२४॥
भूमिदः सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत्।
अतिदानं तु तज्ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनम्॥१२५॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१२६॥
सत्पात्रे भूमिदाताः यः सर्वदानफलं लभेत्।
भूमिदानसमं नान्यत्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥१२७॥
द्विजाय वृत्तिहीनाय यः प्रदद्यान्महीं बले।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं न क्षमोऽब्दशतैरहम्॥१२८॥

आहिताग्नि श्रोत्रिय ब्राह्मण को तनिक भी भूदान देने वाला व्यक्ति आवागमन रहित ब्रह्मलोक गमन करता है। भूमिदान करने वाला सर्वदाता कहा गया है। उसे मोक्षलाभ होता है। यह अतिदान कहा गया है, जो सभी पापों का नाशक है। जो कोई महापातकी किंवा सर्वपातकयुक्त क्यों न हो, वह दस हाथ भूमिदान करके सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है। सत्पात्र को भूमिदान देने पर सर्वदानफल लाभ हो जाता है। भूमिदान के समान तीनों लोकों में कोई दान नहीं है। धनहीन ब्राह्मण को भूमिदान देना चाहिये। हे बलि! उसका पुण्यफल सौ वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता।।१२४-१२८।।

सक्ताय देवपूजासु वृत्तिहीनाय दैत्यप।
स्वल्पामपि महीं दद्याद्यः स विष्णुर्न संशयः॥१२९॥
इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिसंयुता। पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र संशयः॥१३०॥
वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने।
स्वल्पामपि महीं दत्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥१३१॥

हे दैत्यराज! जो ब्राह्मण जीविका रहित है तथा देवपूजा तत्पर रहने वाला है, उसे स्वल्प मात्रा में भी भूमिदान देने पर वह भूदाता विष्णुवत् हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। ईख, गेहूं, अरहर तथा सुपारी के वृक्ष वाली जमीन जो मनुष्य दान देता है, वह विष्णु हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। दरिद्र, जीविकाहीन, कुटुम्बी ब्राह्मण को अल्पभूमि देने वाला भी विष्णुसायुज्य लाभ करता है।।१२९-१३१।।

सक्ताय देवपूजासु विप्रायाढकिकां महीम्।
दत्त्वा लभेत गङ्गायां त्रिरात्रस्नानजं फलम्॥१३२॥
विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च।
द्रोणिकां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं लभते शृणु॥१३३॥
गङ्गातीर्थाश्वमेधानां शतानि विधिवन्नरः।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति स पुष्कलम्॥१३४॥

जो व्यक्ति देवपूजारत ब्राह्मण को अरहर का खेत दान देता है, उसे गंगा में त्रिरात्रि स्नानफल (तीन दिन का स्नानफल) प्राप्त हो जाता है। जो ब्राह्मण जीविका रहित, सदाचारी है, उसे द्रोणिका माप वाली भूमि भी दान देने पर मिलने वाला फल सुनो। उस व्यक्ति को गंगातीर्थसेवन तथा सविधि सौ अश्वमेध यज्ञानुष्ठान से मिलने वाला प्रभूत फल मिल जाता है।।१३२-१३४।।

ददाति खारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजाय यः।
तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि वदतो मे निशामय॥१३५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
विधाय जाह्नवीतीरे यत्फलं तल्लभेद्ध्रुवम्॥१३६॥

जो दरिद्र द्विज को खारिका माप की भूमि प्रदान करता है, उसे मिलने वाला पुण्यफल श्रवण करो। गंगातीर पर सहस्र शत अश्वमेध तथा शत संख्यक बाजपेय यज्ञानुष्ठान करने वाला फल उस दाता को प्राप्त होता है। यह निश्चित है।।१३५-१३६।।

भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्त्तितम्। सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम्॥१३७॥
अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृण दैत्यकुलेश्वर।
यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफलं लभेत्॥१३८॥
असीत्पुरा द्विजवरो ब्राह्मकल्पे महामतिः। दरिद्रो वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्बले॥१३९॥

इस भूमिदान को लोग महादान तथा अतिदान कहते हैं। यह सभी पापों का नाशक तथा मोक्षफलप्रद है। हे दैत्यकुलेश्वर! मैं इसका इतिहास कहता हूं। उसे सुनो। इसे जो श्रद्धा पूर्वक श्रवण करता है, उसे भूदानफल लाभ होता है। पूर्वकाल के ब्राह्मकल्प में एक महामति श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था। वह दरिद्र,जीविका रहित था। हे बलि! उसका नाम था भद्रमति!।।१३७-१३९।।

श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन वेदविदानिशम्।
श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।।१४०।।
अभवंस्तस्य षट्पत्न्यः श्रुतिः सिन्धुर्यशोवती।
कामिनी मालिनी चैव शोभा चेति प्रकीर्तिताः।।१४१।।
आसु पत्नीषु तस्यासञ्चत्वारिंशच्छतद्वयम्।
पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वे नित्यं बुभुक्षिताः।।१४२।।
अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्त्तानात्मजान्प्रियाः।
पश्यन्स्वयं क्षुधार्त्तश्च विललापाकुलेन्द्रियः।।१४३।।

वह दिवा-रात्रि सभी शास्त्रों को सुनता था। उसने सभी पुराणों एवं धर्मशास्त्र का श्रवण किया था। उसकी छः पत्नियां थीं। यथा—श्रुति, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी तथा शोभा। इनसे उसने २४० पुत्र उत्पन्न किया। हे असुरप्रवर! धनाभाव से वे सभी पुत्र भूखे से रह जाते थे। भद्रमति अकिंचन् ब्राह्मण था। अपनी पत्नियों तथा पुत्रों को क्षुधार्त्त देखकर तथा स्वयं सुधापीड़ित होकर उसकी इन्द्रियां व्याकुल हो गई तथा वह रुदन करने लगा।।१४०-१४३।।

धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम्।
धिग्जन्म धर्मरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम्।।१४४।।
नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम्।
अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले।।१४५।।
दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते।
प्रियाः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा।।१४६।।
शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम्।
चाण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते।।१४७।।

वह कहने लगा—"मेरा भाग्यहीन जन्म धिक्कार योग्य है। धनवर्जित, धर्म रहित, ख्याति रहित मेरा जन्म धिक्कार योग्य है। बहुपुत्रवान उस मनुष्य जन्म को धिक्कार है, जो ऐश्वर्य रहित है! गुण, सौम्यता, विद्वत्ता, सत्कुल में जन्म, यह सब कुछ उसके लिये व्यर्थ हो जाते हैं, जो दरिद्रतारूपी समुद्र में डूब रहा है। उसे ये सब शोभा नहीं देते। उसकी पत्नी, पुत्र, पौत्र, बन्धु, भ्राता, शिष्य—ये सभी ऐश्वर्यवर्जित होने के कारण उसे छोड़ देते हैं। भाग्यवान् भले ही चाण्डाल किंवा द्विज कोई भी हो, वह संसार में पूज्य हो जाता है।।१४४-१४७।।

दारिद्रः पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दितः।
अहो सम्पत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुरः॥१४८॥
गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यथ पण्डितः।
ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः॥१४९॥
अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा।
आशाभिभूताः पुरुषा दुःखमश्नुवतेऽक्षयम्॥१५०॥

दरिद्र व्यक्ति इस लोक में शव के समान निन्दनीय होता है। अहो! धनी भले ही निष्ठुर हो, लोग उसे निष्ठुर ही नहीं कहते! धनी गुणहीन भी गुणवान हैं। धनी मूर्ख भी पण्डित हैं। यह निःसंदिग्ध है कि व्यक्ति ऐश्वर्य गुणान्वित होने पर भी पूज्य हो सकता है। अहो! दरिद्रता तो दुःख है ही, परन्तु आशा तो और भी अधिक दुःखदायी होती है। जो पुरुष आशा से अभिभूत है, उसे तो अक्षय दुःख मिलता है।।१४८-१५०।।

आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य। आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः॥१५१॥
मानो हि महतां लोके धनमक्षयमच्यते। तस्मिन्नाशाख्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता॥१५२॥

सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत्।
नैष्किञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानां को विमोचकः॥१५३॥
अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता।
तत्रापि पुत्रभार्याणां बाहुल्यमतिदुःखदम्॥१५४॥

जो आशा के दास हैं, वे तो सर्वलोक समूह के दास हैं। लेकिन जिसने आशा को दासी बना लिया, उसने तो समस्त जगत् को अपना दास बना लिया! संसार में सम्मान को ही अक्षय धन कहते हैं। आशा रूपी शत्रु द्वारा मान का नाश हो जाते ही वह व्यक्ति दरिद्रता से घिर जाता है। जो समस्त शास्त्रों का ज्ञाता है, वह भी दरिद्रता के कारण मूर्खवत् हो जाता है। अकिंचनत्व रूपी महान् ग्राह जब ग्रस लेता है, तब उससे बचाने वाला कौन है? अहो! दरिद्रता तो महादुःख है, महादुःख है। यह तो महादुःखरूपी है। इस पर भी जब पत्नी तथा पुत्र अनेक हों, तब आश्रितगण का यह बाहुल्य तो और भी दुःख देने वाला हो जाता है।।१५१-१५४।।

एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः। अन्यमैश्वर्यदं धर्मं मनसाऽचिन्तयत्तदा॥१५५॥
भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम्। दानेन योऽनुमंताति स एव कृतवान्पुरा॥१५६॥
प्रापकं परमं धर्मं सर्वकामफलप्रदम्। दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम्॥१५७॥

यह विलापयुक्त वचन कहने के उपरान्त सर्वशास्त्रवेत्ता भद्रमति अपने मन में यह चिन्तन करने लगा कि ऐसा कौन-सा धर्म है (नियम है), जिसका पालन करने से ऐश्वर्य मिल सके। तब उसने तय किया कि भूमिदान ही सर्वोत्तम दान है। जो पूर्वकाल में दान से (अन्य याचकों को) सन्तुष्ट करता है, वही श्रेष्ठ दान कहा गया है। वही कृतार्थ होता है। यह दान परम धर्म तथा सभी कामनाओं को देने वाला है। दानों में भूदान को सर्वोत्तम दान कहते हैं।।१५५-१५७।।

यद्दत्त्वा समावाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः। इति निश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्बले॥१५८॥

कौशाम्बींनाम नगरीं कलत्रापत्ययुग्ययौ। सुघोषं नामविप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्॥१५९॥
गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां बले।
सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम्॥१६०॥
मनसा प्रीयमाणेन समभ्यर्च्येदमब्रवीत्। कृतार्थोऽहं भद्रमते सफलं मम जन्म च॥१६१॥

हे बलिराज! एवंविध निश्चय करने के उपरान्त वह बुद्धिमान् भद्रमति द्विज अपनी पत्नियों तथा सन्तानगण के साथ कौशाम्बी नगरी पहुंचा। वहां सर्वऐश्वर्यवान् ब्राह्मणप्रवर सुघोष निवास करता था। भद्रमति ने उस सुघोष द्विज से पांच हाथ माप की भूमि मांगा। तब धार्मिक सुघोष ने उसे अनेक सदस्यों वाले ब्राह्मण के कुटुम्ब को देखकर मन ही मन प्रसन्न होकर उसकी सम्यक् अर्चना तथा स्वागतादि के उपरान्त कहा—"हे भद्रमति! आज मेरा जन्म सफल हो गया। मैं कृतकृत्य हो गया।"।।१५८-१६१।।

मत्कुलं पावनं जातं त्वदनुग्रहतो द्विज। इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः॥१६२॥
पञ्चहस्तमितां भूमिं ददौ तस्मै महामतिः।
पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता॥१६३॥
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः।
मन्त्रेणानेन दैत्येन्द्र सुघोषस्तं द्विजोत्तमम्॥१६४॥
विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ।
सोऽपि भद्रमतिर्विप्रो धीमता याचितां भुवम्॥१६५॥
दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटिम्बिने। सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः॥१६६॥
प्रपेदे विष्णुभवनं यद् गत्वा न शोचति।
बले भद्रमतिश्चापि यतः प्रार्थितवाञ्छ्रियम्॥१६७॥

हे ब्राह्मणदेव! आपकी कृपा से मेरा कुल पावन हो गया। "पृथिवी ही पुण्यमयी वैष्णवी है। यह विष्णुपालिता है। इस पृथिवीदान से विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" इस मन्त्र का उच्चारण करके तथा भद्रमति में विष्णु की भावना करके उनकी पूजा करने के उपरान्त सुघोष ने भद्रमति को वांछित भूमिदान दे दिया। उन भद्रमति ब्राह्मण ने वह भूमि किसी हरिभक्त कुटुम्बी द्विज को दे दिया। सुघोष ब्राह्मण ने इस भूमिदान के प्रभाव से अपनी करोड़ों पीढ़ी के साथ उस विष्णुलोक को प्राप्त किया जहां जाने पर व्यक्ति को शोक नहीं करना पड़ता। हे बलि! उस भद्रमति विप्र ने भी लक्ष्मीलाभार्थ कामना किया था।।१६२-१६७।।

स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बो युगायुतम्। तथैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम्॥१६८॥
ऐन्द्रं पदं समासाद्य स्थितवान्कल्पपञ्चकम्। ततो भुवं समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वितः॥१६९॥
जातिस्मरो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम्। ततो भद्रमतिर्दैत्यो निष्कामो विष्णुतत्परः॥१७०॥
पृथिवीं वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तवान्।
तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा तत्त्वैश्वर्यमनुत्तमम्॥१७१॥

इसलिये उसने सकुटुम्ब दस हजार वर्ष पर्यन्त विष्णुलोक में, दस हजार कोटि युगपर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास किया। तत्पश्चात् उसने पांचकल्प पर्यन्त इन्द्र पद भोगकर पृथिवी पर सभी ऐश्वर्य से युक्त होकर जन्म लिया। वह महाभाग पूर्वजन्म की स्मृति से समन्वित था। यह उसके पूर्वपुण्य का फल था। उसने पृथिवी पर उत्तम भोगों का उपभोग किया। तदनन्तर उस भद्रमति ने निष्काम भाव से विष्णु के प्रति भक्तिमान् चित्त से उन गरीब ब्राह्मणों को भूमि प्रदान किया, जो जीविका रहित थे। इससे विष्णु भद्रमति के प्रति प्रसन्न हो गये। उन्होंने भद्रमति को तत्वरूपी परम ऐश्वर्य प्रदान किया।।१६८-१७१।।

कोटिवंशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम्। तस्माद्दैत्यपते मह्यं सर्वधर्मपरायण।।१७२।।
तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदां महीम्। वैरोचनिस्ततो हृष्टः कलशं जलपूरितम्।।१७३।।
आददे पृथिवीं दातुं वर्णिने वामनाय हि। विष्णु सर्वगतो ज्ञात्वा जलधारावरोधिनम्।।१७४।।
काव्यं हस्तस्थदर्भाग्रं तच्छरे संन्यवेशयत्। दर्भाग्रेऽभून्महाशस्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम्।।१७५।।
अमोघं ब्राह्ममत्युग्रं काव्याक्षिग्रासलोलुपम्। आदाय भार्गवसुरानसुरानेकचक्षुषा।।१७६।।

पश्येति व्यादिदेशे च दर्भाग्रं शस्त्रसन्निभम्।
बलिर्ददौ महाविष्णोर्मही त्रिपदसंमिताम्।।१७७।।
ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवनं तदा।
अमिमीत महीं द्वाभ्यां पद्भ्यां विश्वतनुर्हरिः।।१७८।।
स आब्रह्मकटाहांतपदान्येतानि सप्रभः।
पादाङ्गुष्ठाग्रनिर्भिन्नं ब्रह्माण्डं बिभिदे द्विधा।।१७९।।

तद्द्वारा बाह्यसलिलं बहुधारं समागतम्। धौतविष्णुपदं तोयं निर्मलं लोकपावनम्।।१८०।।

"उन्होंने भद्रमति की करोड़ों पीढ़ियों को तथा भद्रमति को उत्तम मोक्ष प्रदान किया। हे दैत्यपति, सर्वधर्मपरायण! मैं मोक्षार्थ तप करूंगा। एतदर्थ मुझे तीन पग भूमि दे दो।" इससे विरोचन पुत्र बलि प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने वामन को भूदानार्थ कलश में जल भरकर लिया। तब विष्णु ने यह जान लिया कि कमण्डल की नली के छिद्र में शुक्र बैठ गये हैं (जिससे बलि जल द्वारा भूमिदान न कर सकें)। अब विष्णु ने अपने हाथ में स्थित कुशा के अग्रभाग द्वारा कमण्डलु की नली में भेदन किया। वह कुशाग्रभाग कोटिसूर्यसमप्रभ, महाशास्त्र हो गया। वह अमोघ अत्युग्र ब्राह्मशस्त्र कवि (शुक्र) की आंखों का ग्रास करने के लिये लोलुप हो गया। तब भगवान् ने कहा—"हे भार्गव शुक्र! अब तुम दैत्यों तथा देवताओं को एक आंख से देखो।" साथ ही इस दर्भाग्र से वामनदेव ने शुक्र की एक आंख को उस दर्भाग्रास्त्र से भेद दिया। तदनन्तर बलि ने महाविष्णु को तीन पग भूमि देने का संकल्प किया। उस समय विश्वात्मा वामनदेव ने अपना आकार ब्रह्मलोक पर्यन्त बढ़ाकर समस्त स्थान को दो डग में ही नाप लिया था। उनका दूसरा पग ब्रह्माण्डकटाह तक पहुंच गया था। उनके चरण के अंगूठे के अग्रभाग के नख से यह समस्त ब्रह्माण्ड भागद्वय में विभक्त हो गया था। वहां से बाहर की ओर अनेक जलराधायें निर्गत हो चलीं। उस जल ने विष्णु के चरणों को धो दिया था। वह जल निर्मल तथा लोकों को पावन करने वाला था।।१७२-१८०।।

अजाण्डबाह्यनिलयं धारारूपमवर्त्तत। तज्जलं पावनं श्रेष्ठं ब्रह्मादीन्पावयत्सुरान्॥१८१॥
सप्तर्षिसेवितं चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्धनि॥१८२॥
एतदद्दृष्ट्वाद्भुतं ब्रह्माद्या देवतागणाः। ऋषयो मनवश्चैव ह्यस्तुवन्हर्षविह्वलः॥१८३॥

वह चरणजल ब्रह्माण्ड के बाह्य में धारारूपेण बहने लगा। वह जलधारा ब्रह्मादि देवगण को पावन करती सप्त ऋषियों से सेवित मेरुशिखर पर गिरी। यह अत्यन्त अद्भुद दृश्य को देखकर ब्रह्मादि देवता, ऋषिगण मनु प्रभृति हर्षविह्वल होकर भगवान् की स्तुति करने लगे।।१८१-१८३।।

देवा ऊचुः

नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परायापररूपधारिणे।
ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मबुद्धये नमोऽस्तु तेऽव्याहतकर्मशीलिने॥१८४॥

देवगण कहते हैं—हे परमेश! परात्मरूप, परात्पर तथा पररूपधारी, ब्रह्मात्मा, ब्रह्मरत, आत्मबुद्धि, व्याहतकर्मशील आपको प्रणाम है!।।१८४।।

परेश परमानन्द परमात्मन्परात्पर। सर्वात्मने जगन्मूर्त्ते प्रमाणातीत ते नमः॥१८५॥
विश्वतश्चक्षुषे तुभ्यं विश्वतो बाहवे नमः। विश्वतः शिरसे चैव विश्वतो गतये नमः॥१८६॥

हे परेश! परमानन्द, परमात्मा, परात्पर, सर्वात्मा, जगन्मूर्त्ति प्रमाणातीत! आपको नमस्कार! आप विश्व ब्रह्माण्ड पर दृष्टि रखने वाले, विश्वबाहु, विश्वतः, अनन्त शिरधारी, विश्वगति हैं। आपको नमस्कार!।।१८५-१८६।।

एवं स्तुतो महाविष्णुर्ब्रह्माद्यैः स्वर्द्दिवौकसाम्।
दत्त्वाभयं न मुमुदे देवदेवः सनातनः॥१८७॥

इस प्रकार ब्रह्मादि देवगण कृत स्तुति से महाविष्णु प्रसन्न हो गये। उन देवदेव सनातन ने तब देवगण को अभयदान दे दिया।।१८७।।

विरोचनात्मजं दैत्यं पदैकार्थं बबन्ध ह। ततः प्रपन्नं तु बलिं ज्ञात्वा चास्मै रसातलम्।
ददौ तद्द्वारपालश्च भक्तवश्यो बभूव ह॥१८८॥

उस समय विरोचन नन्दन बलिराज अपनी प्रतिज्ञानुसार तीसरी डग भूमि नहीं दे सके। तब प्रभु ने बलि को बांध लिया। भगवान् ने बलि को प्रपन्न देखकर उसे रसातल का राज्य देकर वहां भेजा तथा वे भक्त के वशीभूत होकर उसके द्वारपाल बन गये।।१८८।।

नारद उवाच

रसातले महाविष्णुर्विरोचनसुतस्य वै।
किं भोज्यं कल्पयामास घोरे सर्पभयाकुले॥१८९॥

देवर्षि नारद कहते हैं—सर्पों से भयाकुल रसातल में जब महाविष्णु ने विरोचन नन्दन बलि को भेजा, तब वहां उनके लिये भगवान् ने भोजनार्थ क्या व्यवस्था किया?।।१८९।।

सनक उवाच

अमन्त्रितं हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि। अपात्रे दीयते यच्च तद्घोरं भोगसाधनम्॥१९०॥
हुतं हविरशुचिना दत्तं सत्कर्म यत्कृतम्। तत्सर्वं तत्र भोगार्हमधःपातफलप्रदम्॥१९१॥

देवर्षि सनक कहते हैं—जो हवि मन्त्र रहित अग्नि में प्रदत्त होती है, किंवा जो दान अपात्र को दिया जाता है, वही बलिराज हेतु भयंकर भोग का साधन है। जो हविः अपवित्रता पूर्वक होम में प्रदान दी जाती है तथा अपवित्र स्थिति में किये सत्कर्म जो भोग द्वारा अधःपतन करते हैं, वही बलि का भोजन है।।१९०-१९१।।

एवं रसातलं विष्णुर्बलये सासुराय तु। दत्त्वाभयं च सर्वेषां सुराणां त्रिदिवं ददौ॥१९२॥
पूज्यमानोऽमरगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः। गन्धर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनतां गतः॥१९३॥
एतद्दृष्ट्वा महत्कर्म मुनयो ब्रह्मवादिनः। परस्परं स्मितमुखाः प्रणेमुः पुरुषोत्तमम्॥१९४॥
सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागतः। मोहयन्निखिलं लोकं प्रपेदे तपसे वनम्॥१९५॥

एवंविध विष्णु ने बलि को रसातल में असुरों सहित भेजकर देवगण को भय रहित करके उन्हें स्वर्गराज्य प्रदान कर दिया। तब उन अमरगण (देवताओं) ने भगवान् का पूजन किया। महर्षियों ने स्तुतिगान किया, गन्धर्वों ने उनके सुयश का गायन किया। इस प्रकार वे सर्व प्रकार से पूजित होकर पुनः वामनरूपी हो गये। भगवान् का यह महान् कर्म जब ब्रह्मज्ञानी मुनिगण ने देखा, तब वे परस्परतः मुस्कराते हुये पुरुषोत्तम को प्रणाम करने लगे। सर्वभूतात्मक विष्णु ने पुनः वामनत्व ग्रहण किया था। इस प्रकार वे सर्वजगत् को मोहित करते तपार्थ वन में चले गये।।१९२-१९५।।

एवं प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा।
यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः॥१९६॥
इदं तु गङ्गामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि।
देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥१९७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गोत्पत्तिर्गङ्गामाहात्म्यं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

विष्णु चरणकमल से उद्भूत देवी गंगा का ऐसा प्रभाव है कि उनके स्मरणमात्र से मनुष्य सभी पातकों से निर्मुक्त हो जाता है। यह गंगा माहात्म्य जो कोई देवालय में अथवा नदी तट पर पढ़ता है, उसे अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है।।१९६-१९७।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

धर्माख्यान वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं तु गङ्गामाहात्म्यं वाञ्छितं पापनाशनम्। अधुना लक्षणं ब्रूहि भ्रातर्मे दानपात्रयोः॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मैंने गंगा माहात्म्य सुना जो मुझे वांछित था। यह पापनाशक उपाख्यान है। अब आप दान देने हेतु उपयुक्त पात्र का लक्षण कहिये।।१।।

सनक उवाच

सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः। तस्मै दानानि देयानि दत्तस्यानन्त्यमिच्छता॥२॥

ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयात्सर्वतो भयवर्जितः। न कदापि क्षत्रविशौ गृह्णीयातां प्रतिग्रहम्॥३॥

चण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च। स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम्॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—सभी वर्णों का परमगुरु ब्राह्मण ही होता है। जो अपनी दान क्रिया को अनन्त फलप्रद करना चाहे, वह उन्हें दान प्रदान करे। ब्राह्मण निर्भय होकर सभी से दान ले सकता है। क्षत्रिय एवं वैश्य कदापि दान ग्रहण न करें। चण्ड (महाक्रोधी), पुत्रहीन, दंभी, स्वकर्मत्यागी को दिया दान निष्फल है।।२-४।।

परदाररतस्यापि परद्रव्याभिलाषिणः। नक्षत्रसूचकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम्॥५॥

असूयाविष्टमनसः कृतघ्नस्य च मायिनः।
अयाज्ययाजकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम्॥६॥

नित्यं याञ्चापरस्यापि हिंसकस्य खलस्य च। रसविक्रयिणश्चैव दत्तं भवति निष्फलम्॥७॥

वेदविक्रयिणश्चापि स्मृतिविक्रयिणस्तथा। धर्मविक्रयिणो विप्रं दत्तं भवति निष्फलम्॥८॥

जो परस्त्रीनिरत, पराये द्रव्य का लालची, ज्योतिषी, ईर्ष्यालु, कृतघ्न, मायावी, अपात्र को यज्ञ कराने वाला, नित्य याचना करने वाला, हिंसक, दुष्ट, रसविक्रेता, वेद विक्रेता, स्मृति विक्रेता, धर्मविक्रेता विप्र है, उसे दान देना निष्फल होता है।।५-८।।

गानेन जीविका यस्य यस्य भार्या च पुंश्चली।
परोपतापिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम्॥९॥
असिजीवी मषीजीवी देवलो ग्रामयाजकः।
धावको वा भवेत्तेषां दत्तं भवति निष्फलम्॥१०॥

पाककर्तुः परस्यार्थे कवये गदहारिणे। अभक्ष्यभक्षकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम्॥११॥

जो गायन द्वारा जीविका चलाता है, जिसकी पत्नी चरित्रहीन है, जो अन्य लोगों को पीड़ित करने वाला है, जो तलवार से जीविका चलाता है, जो लिपिक है, जो मन्दिरों में पूजा करने वाला देवल है, जो ग्राम पुरोहित

है, जो संवादवाहक है, जो रसोईयां है, दूसरे की महिमा गाने वाला भाट है, वैद्य, अभक्ष्य खाने वाला है, उसे दिया दान निष्फल होगा।।९-११।।

शूद्रान्नभोजिनश्चैव शूद्राणां शवदाहिनः। पौंश्चलान्नभुजश्चापि दत्तं भवति निष्फलम्॥१२॥

नामविक्रयिणो विष्णोः संध्याकर्म्मोज्झितस्य च।
दुष्टप्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं भवति निष्फलम्॥१३॥
दिवाशयनशीलस्य तथा मैथुनकारिणः।
संध्याभोजिन एवापि दत्तं भवति निष्फलम्॥१४॥
महापातकयुक्तस्य त्यक्तस्य ज्ञातिबान्धवैः।
कुण्डस्य चापि गोलस्य दत्तं भवति निष्फलम्॥१५॥

शूद्रों का अन्न खाने वाला, शूद्र की शवदाह क्रिया कराने वाला, वेश्यान्नभोजी, धन लेकर हरिनाम कीर्त्तन करने वाला, सन्ध्या कर्म विहीन तथा जिसने गलत दान रूपी अग्नि में स्वयं को दग्ध-सा कर लिया (अनुचित दान लेने वाला), दिन में सोने वाला, दिन में मैथुन करने वाला, सायंकाल (सन्ध्याकाल) में भोजन करने वाला, ज्ञातिबान्धव से बहिष्कृत, कुण्ड (पति के रहते अन्य व्यक्ति से जब पत्नी का संयोग हो, उससे उत्पन्न पुत्र) गोलक (जब पति मृत हो जाये, तब पुरुष संयोग से उत्पन्न पुत्र), इनको दिया दान निष्फल होता है।।१२-१५।।

परिवित्तः शठस्यापि परिवेत्तुः प्रमादिनः।
स्त्रीजितस्यातिदुष्टस्य दत्तं भवति निष्फलम्॥१६॥
मद्यमांसाशिनश्चापि स्त्रीविटस्यातिलोभिनः।
चौरस्य पिशुनस्यापि दत्तं भवति निष्फलम्॥१७॥

परिवेत्ता, शठ, परिवित्त (जिसे छोटे भाई ने बड़े भाई के अविवाहित रहते विवाह किया हो), शठ, प्रमादी, स्त्री के वश में रहने वाला, अति दुष्ट, मद्य-मांस-भोजी, औरतों का दलाल, चोर, अतिलालची, चुगलखोर को प्रदत्त दान निष्फल होगा।।१६-१७।।

ये केचित्पापनिरता निन्दिताः सुजनैः सदा। न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न च दद्याद्द्विजोत्तम।
सत्कर्मनिरतायापि देयं यत्नेन नारद॥१८॥

जो सदा पापरत है, सज्जनों से निन्दित है, उससे दान लेना तथा देना वर्जित माना गया है। हे नारद! जो सत्कर्मी हो, ऐसे व्यक्ति को खोजकर उसे दान देना चाहिये।।१८।।

यद्दानं श्रद्धया दत्तं तथा विष्णुसमर्पणम्। याचि वापि पात्रेण भवेत्तद्दानमुत्तमम्॥१९॥
परलोकं समुद्दिश्य ह्यैहिकं वापि नारद। यद्दानं दीयते पात्रे तद्दानं मध्यमं स्मृतम्॥२०॥

दम्भेन चापि हिंसार्थं परस्याविधिनापि च।
क्रुद्धेनाश्रद्धयापात्रे तद्दानं मध्यमं स्मृतम्॥२१॥

अधमं बलितोषाय मध्यमं स्वार्थसिद्धये। उत्तमं हरिप्रीत्यर्थं प्राहुर्वेदविदां वराः॥२२॥
दानभोगविनाशाश्च रायः स्युर्गतयस्त्रिधा॥२३॥

जो दान सश्रद्द भाव से विष्णु के उद्देश्य से अर्पित करके दिया जाता है अथवा जो याचना करने पर दिया गया है, वही **उत्तम दान** है। हे नारद! जो दान सत्पात्र को परलोकलाभार्थ किंवा संसार सुखलाभार्थ दिया गया हो, वह **मध्यम दान** है। दम्भ के साथ तथा अन्य को नीचा दिखलाने हेतु, बिना विधि का पालन किये, क्रोध पूर्वक अथवा श्रद्धा रहित होकर जो दान दिया जाता है, वह भी **मध्यम दान** ही है। बलि हेतु प्रदत्तदान **अधम दान** है। स्वार्थसिद्धि (संसार सुख लाभार्थ अथवा उत्तम परलोक लाभार्थ) हेतु प्रदत्त दान भी **मध्यम दान** है। वेदज्ञ व्यक्ति कहते हैं कि हरि की प्रसन्नता हेतु प्रदत्तदान ही **उत्तम दान** है। धन का उपयोग है दान, स्वयं भोग करना अथवा रखे-रखे उसका विनाश होना।।१९-२३।।

यो ददाति च नो भुंक्ते तद्धनं नाशकारणम्।
धनं धर्मफलं विप्र धर्मो माधवतुष्टिकृत्॥२४॥
तरवः किं न जीवन्ति तेऽपि लोके परार्थकाः। यत्र मूलफलैर्वृक्षाः परकार्यं प्रकुर्वते॥२५॥

जो व्यक्ति अपने धन का न तो भोग करता है, न तो उसका दान ही करता है, वह धन व्यर्थ नष्ट हो जाता है। हे विप्र! धन का महत्व है धर्मफल लाभ। धर्म से माधव प्रसन्न होते हैं। वृक्ष भी तो संसार में क्या जीवित नहीं रहते! वे अपने लिये जीवित नहीं रहते। उनका जीवन अन्य के हितार्थ होता है। वे अपने मूल-फल आदि से सदैव परार्थ हेतु परहितार्थ रहते हैं।।२४-२५।।

मनुष्या यदि विप्राग्र्य न परार्थास्तदा मृताः।
परकार्यं न ये मर्त्याः कायेनापि धनेन वा॥२६॥
मनसा वचसा वापि ते ज्ञेयाः पापकृत्तमाः। अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः॥२७॥
यत्र दानादिकानां तु लक्षणं परिकीर्तितम्। गङ्गामाहात्म्यसहितं सर्वपापप्रणाशनम्॥२८॥
भगीरथस्य धर्मस्य संवादं पुण्यकारकम्। आसीद्भगीरथो राजा सगरान्वयसंभवः॥२९॥

हे ब्राह्मणप्रवर! यदि मनुष्य परोपकार नहीं करता, तब तो वह मृतवत् ही है। जो शरीर से अथवा धन से अन्य का उपकार नहीं करते, जो मनसा-वाचा (वाणी एवं मन से) परार्थ कार्य नहीं करते, वे तो पापकर्मा हैं। हे नारद! इस सम्बन्ध में एक तत्वपूर्ण इतिहास कहता हूं। उसे श्रवण करें। इस आख्यान में दानादिलक्षण, गंगा की महिमा कही गयी है। यह प्रसंग सभी पापों का नाशक भी है। यह पुण्यकारक प्रसंग भगीरथ एवं धर्म का संवादरूप है। सगरवंश में उत्पन्न भगीरथ नामक एक राजा थे।।२६-२९।।

शशास पृथिवीमेतां सप्तद्वीपां ससागराम्। सर्वधर्मरतो नित्यं सत्यसंधः प्रतापवान्॥३०॥
कन्दर्पसदृशो रूपे यायजूको विचक्षणः। प्रालेयाद्रिसमो धैर्ये धर्मे धर्मसमो नृपः॥३१॥
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः। सर्वसंपत्समायुक्तः सर्वानन्दकरो मुने॥३२॥
आतिथ्यप्रयतो नित्यं वासुदेवार्चने रतः। पराक्रमी गुणनिधिर्मैत्रः कारुणिकः सुधीः॥३३॥
एतदृशं तं राजानं ज्ञात्वा हृष्टो भगीरथम्। धर्मराजो द्विजश्रेष्ठ कदाचिद्द्रष्टुमागतः॥३४॥

समागतं धर्मराजमर्हयामास भूपतिः। शास्त्रदृष्टेन विधिना धर्मः प्रीत उवाच तम्॥३५॥

उन्होंने ससप्तसागरा सप्तद्वीपा वसुन्धरा का एकच्छत्र पालन किया था। वे सदा सत्यसंघ, सर्वधर्मरत, प्रतापी थे। उनका स्वरूप कामदेव के समान था। वे विद्वान, नाना यज्ञकर्त्ता, हिमालय के समान धैर्यशाली, धर्म में धर्मराज के समान थे। वे राजा सर्वलक्षणसम्पन्न, सर्वशास्त्रार्थ पारङ्गत, सर्वसम्पत्तिशाली तथा सबको आनन्द देने वाले थे। हे मुनिवर! वे नित्य आतिथ्यसेवी तथा वासुदेवार्चन में निरत रहते थे। वे पराक्रमी, गुणों के सागर, सदा मन्त्रीगण से सलाह लेकर काम करने वाले, करुणानिधि तथा बुद्धियुक्त थे। ऐसे राजा के सम्बन्ध में जानकर तथा प्रसन्न होकर धर्मराज उनके यहां किसी काल में उनको देखने आये। हे द्विजप्रवर! राजा ने धर्मराज का आगमन होने पर उनका शास्त्रविधि के अनुसार स्वागत-सत्कार किया। इससे धर्मराज ने प्रसन्न होकर राजा भगीरथ से कहा—।।३०-३५।।

धर्मराज उवाच

राजन्धर्मविदां श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽसि जगत्त्रये।
धर्मराजोऽथ कीर्तिं ते श्रुत्वा त्वां द्रष्टुमागतः॥३६॥
सन्मार्गनिरतं सत्यं सर्वभूतहिते रतम्। द्रष्टुमिच्छन्ति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रियाः॥३७॥
कीर्तिनीर्तिश्च संपत्तिर्वर्वते यत्र भूपते। वसन्ति तत्र नियतं गुणास्सन्तश्च देवताः॥३८॥
अहो राजन्महाभाग शोभनं चरितं तव। सर्वभूतहितत्वादि मादृशामपि दुर्लभम्॥३९॥
इत्युक्तवन्तं तं धर्मं प्रणिपत्य भगीरथः।
प्रोवाच विनयाविष्टः संहृष्टः श्लक्ष्णया गिरा॥४०॥

धर्मराज कहते हैं—"हे राजन! आपकी प्रसिद्धि उत्तम रूप से तीनों लोकों में सुनी गयी है। आप धर्मज्ञ हैं। आपकी कीर्त्ति को सुनकर मैं धर्मराज आपको देखने आया हूं। आप सदा सन्मार्ग पर चलने वाले, सत्यवादी तथा सभी प्राणियों के हित में लगे रहते हैं। आपके उत्तम गुणों को सुनकर देवगण भी आपको देखने हेतु उत्सुक रहते हैं। हे राजन्! जहां कीर्ति, नीतियुक्त सम्पत्ति रहती है, वहां पर नित्य समस्त उत्तमगुण, सन्तजन तथा देवगण निवास करते हैं। अहो! हे राजन्, महाभाग! आपका चरित परम उत्तम है। आपमें सभी प्राणियों के हित की भावना सदा रहती है, वह तो मुझ जैसे देवता में भी दुर्लभ है।" धर्मराज का वचन सुनकर विनयाविष्ट राजा ने उनको प्रणाम करके विनय पूर्वक मधुरवाणी में कहा—।।३६-४०।।

भागीरथ उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ समदर्शिन् सुरेश्वर। कृपया परयाविष्टो यत्पृच्छामि वदस्व तत्॥४१॥
धर्मा कीदृग्विधाः प्रोक्ताः के लोका धर्मशालिनाम्।
कियत्यो यातनाः प्रोक्ताः केषां ताः परिकीर्तिताः॥४२॥
त्वया सम्माननीया ये शासनीयाश्च ये यथा। तत्सर्वं मे महाभाग विस्तराद्वक्तुमर्हसि॥४३॥

राजा भगीरथ कहते हैं—हे सुरेश्वर, भगवान्! आप सर्वधर्मज्ञ, समदर्शी हैं। आप कृपया जो मैं पूछ रहा

हूं, उसे कहें। धर्म के कितने प्रकार हैं, धार्मिक लोगों को किस लोक की प्राप्ति होती है? कितने प्रकार की यातना (पापियों हेतु) कही गयी है? ये यातना कौन लोग पाते हैं? आपकी किसके प्रति सम्मानयुक्त भाव (दृष्टि) रहती है, आप किसे शासित (दण्डित) करते हैं? हे महाभाग! यह सब विस्तार पूर्वक कहिये।।४१-४३।।

धर्मराज उवाच

साधु साधु महाबुद्धे मतिस्ते विमलोर्जिता।
धर्माधर्मान्प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु भक्तितः॥४४॥
धर्मा बहुविधाः प्रोक्ताः पुण्यलोकप्रदायकाः।
तथैव यातनाः प्रोक्ता असंख्या घोरदर्शनाः॥४५॥
विस्तराद्गदितुं नालमपि वर्षशतायुतैः। तस्मात्समासते वक्ष्ये धर्माधर्मनिदर्शनम्॥४६॥
वृत्तिदानं द्विजानां वै महापुण्यं प्रकीर्तितम्।
तथैवाध्यात्मविदुषो दत्तं भवति चाक्षयम्॥४७॥

धर्मराज कहते हैं—हे महाबुद्धि! मैं आपको साधुवाद देता हूं। आपकी मति विमल है। मैं धर्म-अधर्म का प्रसंग कहता हूं। उसे श्रद्धाभक्ति के साथ श्रवण करिये। पुण्यलोकप्रद धर्म अनेक प्रकार के कहे गये हैं। उसी प्रकार असंख्य भयानक यातनायें भी कही गयी हैं। इस प्रसंग को विस्तार से सैकड़ों-हजारों-दसों हजार वर्षों में भी कह सकना संभव नहीं है, तथापि मैं इस धर्म-अधर्म का वर्णन संक्षेप में कह रहा हूं। ब्राह्मणों को उनकी जीविका निर्वाह के उद्देश्य से देना महापुण्य कहा गया है। इसी के समान अध्यात्मज्ञाता लोगों को जो दिया जाता है, वह भी अक्षय फलप्रद हो जाता है।।४४-४७।।

कुटुम्बिनं वा शास्त्रज्ञं श्रोत्रियं वा गुणान्वितम्।
यो दत्त्वा स्थापयेद्वृत्तिं तस्य पुण्यफलं शृणु॥४८॥
मातृतः पितृतश्चैव द्विजः कोटिकुलान्वितः।
निर्विश्य विष्णुभवनं कल्पं तत्रैव मोदते॥४९॥

कुटुम्बी, शास्त्रवेत्ता, श्रोत्रिय, गुणी को दान देकर जो व्यक्ति उनकी जीवन-निर्वाह योग्य वृत्ति का प्रबन्ध करता है, उसका पुण्यफल श्रवण करिये। वह दाता अपने मातृकुल तथा पितृकुल की करोड़ों पीढ़ी के साथ विष्णुलोक प्राप्त करके वहां कल्पान्त पर्यन्त सुखभोग करता है।।४८-४९।।

गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः।
न गण्यन्ते विधात्रापि ब्रह्मवृत्तिफलानि वै॥५०॥
समस्तदेवतारूपो ब्राह्मणः परिकीर्त्तितः। जीवनं ददतस्तस्य कः पुण्यं गदितुं क्षमः॥५१॥
यो विप्रहितकृन्नित्यं स सर्वान्कृतवान्मखान्।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु तप्तं तेनाखिलं तपः॥५२॥

धरती पर बरसती वर्षा की बूंदों को कदाचित् गिना जा सकता है, धरती पर जितने बालुका कण हैं,

उनकी गणना की जा सकती है, तथापि ब्राह्मण को वृत्ति प्रदान करने का जो पुण्यफल है, उसकी गणना नहीं हो सकती। ब्राह्मण तो सर्वदेवरूपी हैं। ऐसा कहा गया है। जो उसको जीविकारूपी जीवन प्रदान करता है, उस व्यक्ति के पुण्य का वर्णन कर सकने में कौन सक्षम हैं? जो सर्वदा ब्राह्मणों के हित में निरत रहता है, उसने तो मानों सभी यज्ञों को कर लिया। उसने तो समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया, उसने तो समस्त तप समूह को सम्पन्न कर लिया!।।५०-५२।।

यो ददस्वेति विप्राणां जीवनं प्रेरयेत्परम्।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः॥५३॥
तडागं कारयेद्यस्तु स्वयमेवापरेण वा। वक्तुं तत्पुण्यसङ्ख्यानं नालं वर्षशतायुषा॥५४॥
एकश्चेदध्वगो राजंस्तडागस्य जलं पिबेत्।
तत्कर्तुः सर्वपापानि नश्यन्त्येव न संशयः॥५५॥

जो मनुष्य ब्राह्मणों को जीविका प्रदानार्थ अन्य व्यक्ति को प्रेरित करता है, वह भी यही फल लाभ करता है। अधिक क्या कहूं? जो स्वयं तालाब खोदता है अथवा दूसरों से उन्हें खोदवाता है, उसके पुण्यफल के सम्बन्ध में सैकड़ों-हजारों वर्ष की आयु में भी पूरी तरह नहीं कहा जा सकता। उस व्यक्ति द्वारा निर्मित तालाब का जल यदि एक भी व्यक्ति, पथिक पान कर लेता है, तब उस तड़ाग निर्माता के समस्त पापों का क्षालन हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं है।।५३-५५।।

एकाहमपि यत्कुर्याद् भूमिस्थमुदकं नरः। म मुक्तः सर्वपापेभ्यः शतवर्षं वसेद्दिवि॥५६॥
कर्तुं तड गं यो मर्त्यः साह्यकः शक्तितो भवेत्।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति तुष्टः प्रेरक एव च॥५७॥

जो व्यक्ति यदि (अस्थायी रूप से) मात्र एक दिन हेतु भी कोई गढ़ा बनाकर उसमें जल भर देता है, वह सभी पापों से रहित होकर सौ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करेगा। यदि कोई मनुष्य तड़ाग निर्माणार्थ अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता कर देता है तथा जो कोई तड़ाग निर्माण की प्रेरणा देता है किंवा निर्मित तड़ाग देखकर प्रसन्नता व्यक्त करता है, उनको भी उपरोक्त फल मिलेगा।।५६-५७।।

मृदं सिद्धार्थमात्रां वा तडागाद्यो बहिः क्षिपेत्।
तिष्ठत्यब्दशतं स्वर्गे विमुक्तः पापकोटिभिः॥५८॥
देवता यस्य तुष्यन्ति गुरवो वा नृपोत्तम।
तडागपुण्यभाक्स स्यादित्येषा शाश्वती श्रुतिः॥५९॥

जो तड़ाग की कुछ भी मृत्तिका वहां से निकाल कर बाहर फेंक देता है (जिससे तालाब की गहराई बनी रहे) वह स्वकृत करोड़ों पापों से विमुक्त होकर सौ वर्षों तक स्वर्ग में निवास करेगा। हे नृपोत्तम! जिस व्यक्ति के प्रति देवता किंवा गुरु प्रसन्न हो जाते हैं, उसे तड़ाग निर्माण का ही पुण्यलाभ होगा, यह शाश्वत श्रुति वचन है।।५६-५९।।

इतिहासं प्रवक्ष्यामि तवात्र नृपसत्तम्। यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥६०॥

गौडदेशेऽतिविख्यातो राजासीद्वीरभद्रकः। महाप्रतापी विद्यावान्सदा विप्रप्रपूजकः॥६१॥
वेदशास्त्रकुलाचारयुक्तो मित्रविवर्धनः। तस्य राज्ञी महाभागा नाम्ना चम्पकमञ्जरी॥६२॥

तस्य राज्ञो महामात्याः कृत्याकृत्यविचारणाः।
धर्माणां धर्मशास्त्रैस्तु सदा कुर्वन्ति निश्चयम्॥६३॥
प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषे धर्मनिर्णयम्।
विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥६४॥

हे नृपश्रेष्ठ! मैं आपसे एक इतिहास कहता हूं। इसे सुनने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। गौड़ देश का प्रसिद्ध राजा वीरभद्रक महाप्रतापी, सदा विद्यावान्, ब्राह्मण पूजक, वेदशास्त्र तथा कुलाचार सम्पन्न, मित्रों की वृद्धि करने वाला था। उसकी महाभाग रानी थी चम्पक मंजरी। राजा के दरबार में कृत्य तथा अकृत्य का विचार करने वाले महामन्त्री भी थे। वह राजा धर्मशास्त्रानुमोदित विधि से सदा न्यायादि का विचार करते थे। प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध में समस्त निर्णय धर्मशास्त्राविधान के अनुरूप करें। जो शास्त्र के विपरीत इनका निर्णय देता है, वह ब्रह्महत्यारा है।।६०-६४।।

इति निश्चत्य मनसा मन्वादीरितधर्मकान्।
आचार्येभ्यः सदा भूपः शृणोति विधिपूर्वकम्॥६५॥
न कोऽप्यन्यायवर्ती च तस्य राज्येऽवरोऽपि च।
धर्मेण पाल्यमानस्य तस्य देशस्य भूपतेः॥६६॥

जातं समत्वं स्वर्गस्य सौराज्यस्य शुभावहम्। स चैकदा तु नृपतिर्मृगयायां महावने॥६७॥

मन्त्र्यादिभिः परिवृतो बभ्राम मध्यभास्करम्।
दैवादाखेटशून्यस्य ह्यतिश्रान्तस्य यत्र वै॥६८॥

वह राजा एवंविध निश्चय करके धर्माचार्यों द्वारा मनु प्रभृति द्वारा कहे गये धर्म को सविधि सुनता था। उसके उत्तम राज्य में कोई भी अन्यायमार्गी नहीं था। वह राजा धर्म द्वारा ही प्रजा तथा देश का पालन करता था। उसका राज्य तो स्वर्ग राज्य जैसा शुभावह हो गया था। एक बार वह राजा शिकार हेतु महावन में गया। वहां वह मध्याह्न काल में भी यत्र-तत्र (शिकार की खोज में) घूम रहा था। दैवात् वहां उसे शिकार योग्य जन्तु नहीं मिले तथा वह अत्यन्त थक गया।।६५-६८।।

नृपरीतस्य संजातं सरसो दर्शनं नृप। ततः शुष्कां तु सरसीं दृष्ट्वा तत्र व्यचिन्तयत्॥६९॥
किमयं सरसी शृङ्गे भुवः केन विनिर्मिता। कथं जलं भवेदत्र येन जीवेदयं नृपः॥७०॥

उस राजा ने तभी एक सरोवर देखा, तथापि वह सरोवर शुष्क था। यह देखकर राजा विचार करने लगा। इसे शृंग के समान उच्च भूम पर किसने निर्मित की? इसमें जल की पुनः प्राप्ति कैसे हो, जिससे राजा (मेरी) पिपासा शान्त हो सके तथा जीवन बचे?।।६९-७०।।

ततो बुद्धिः समभवत्खाते तस्या नृपोत्तम।
हस्तमात्रं ततो गर्त्तं खात्वा तोयमवाप्तवान्॥७१॥

तेन तोयेन पीतेन राजस्तृप्तिरजायत। मन्त्रिणश्चापि भूमीश बुद्धिसागरसंज्ञिनः॥७२॥
स बुद्धिसागरो भूपं प्राह धर्मार्थकोविदः। राजन्नियं पुष्करिणी वर्षाजलवती पुरा॥७३॥

हे नृपोत्तम! तभी राजा को यह उपाय समझ में आया कि इस सरोवर का पुनः खनन किया जाये। राजा ने उसे एक हाथ ही गहरा खोदा था कि उस सरोवर के स्रोत से जल निकलने लगा! राजा उस जल का पान करके तृप्त हो गया। उसके मन्त्रीगण में से भी बुद्धिसागर नामक मन्त्री को उस जलपान से तृप्ति मिली। उस समय धर्म के अर्थज्ञाता बुद्धिसागर ने राजा से कहा—"पूर्वकाल में यह पुष्करिणी वर्षा जल से पूर्ण थी।"।।७१-७३।।

अद्यैनां बद्धवप्रां च कर्त्तुं जाता मतिर्मम। तद्भवान्मोदतां देव दत्तादाज्ञां च मेऽनघ॥७४॥

"अब मेरा विचार है कि इसे चारों ओर (मिट्टी की मेड़ से) से बद्ध कराया जाये। इससे यह उत्तमरूप से जलसंग्रहार्थ बन जायेगी। हे निष्पाप! हे देव! आप मेरे इस कार्य हेतु स्वीकृति तथा आज्ञा प्रदान करें।।७४।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मन्त्रिणो नृपसत्तमः। मुमुदेऽतितरां भूपः स्वयं कर्त्तुं समुद्यतः॥७५॥
तमेव मन्त्रिणं तत्र युयोज शुभकर्मणि। ततो राजाज्ञया सोऽपि बुद्धिसागरको मुदा॥७६॥
सरसीं सागरं कर्त्तुमुद्यतः पुण्यकृत्तमः। धनुषां चैव पञ्चाशत्सर्वतो विस्तृतायताम्॥७७॥
सरसीं बद्धसुशिलां चकरागाधशम्बराम्। तां विनिर्माय सरसीं राज्ञे सर्वं न्यवेदयत्॥७८॥

वे नृपश्रेष्ठ अपने मन्त्री का कथन सुनकर प्रसन्न हो गये। वे स्वयं इस कार्य हेतु उद्यत हो गये। राजा ने उस शुभ कार्य में अपने उस मन्त्री को लगा दिया। राजा की स्वीकृति पाकर बुद्धिसागर भी मुदित हो गया। वह पुण्यात्मा उस सरोवर को सागर जैसा विशाल बनाने हेतु उद्यत हो गया। उसने उस सरोवर को पचास धनुष चौड़ाई तथा पचास धनुष लम्बाई वाला खुदवाकर चतुर्दिक् उत्तम पत्थरों से बंधवाया तथा उस सरोवर को अगाध जल से परिपूर्ण करा दिया। उस सरोवर को ऐसा विशाल बनवाकर बुद्धिसागर ने राजा को अर्पित कर दिया।।७५-७८।।

तस्यां ततः प्रभृति वै सर्वेऽपि वनचारिणः।
पान्थाः पिपासिता भूप लभन्ते स्म जलं शुभम्॥७९॥
कदाचित्स्वायुषश्चान्ते स मन्त्री बुद्धिसागरः।
प्रमृतो गतवाँल्लोकं लोकशास्तुर्मम प्रभो॥८०॥

तदर्थं तु मया पृष्टो धर्मो धर्मलिपिंकरः। चित्रगुप्तस्तु तत्कर्म मह्यं सर्वं न्यवेदयत्॥८१॥
उपदेष्टा स्वयं चासौ धर्मकार्यस्य भूपतेः। तस्माद्धर्मविमानं तु समारोढुमिहार्हति॥८२॥

तभी से वह सरोवर सभी वनेचर प्राणीगण तथा पिपासित पथिकों के लिये पानार्थ शुभ्र जल का भंडार सा हो गया। कुछ काल के उपरान्त वह मन्त्री कालप्रभाव से मृत हो गया तथा मुझ लोकशासक के पास आया। उसके सम्बन्ध में धर्मलीपिक चित्रगुप्त से पूछा। तब चित्रगुप्त ने बुद्धिसागर के कर्मों का वर्णन मुझसे किया था। चित्रगुप्त ने कहा कि बुद्धिसागर ने स्वयं राजा को धर्मकार्य सम्पादनार्थ उपदेश दिया था। अतः यह स्वकर्म के प्रभाव से विमानारूढ़ होने का पात्र है।।७९-८२।।

इत्युक्ते चित्रगुप्तेन समाज्ञतो मया नृप। विमानं धर्मसंज्ञं तु आरोढुं बुद्धिसागरः॥८३॥

अथ कालान्तरे राजन्स राजावीरभद्रकः। मृतो गतो मम स्थानं नमश्चक्रे मुदान्वितः॥८४॥
मया तु तत्र तस्यापि पृष्टं कर्माखिलं नृप। कथितं चित्रगुप्तेन धर्मं संसर्गसंभवम्॥८५॥
तदा सम्यङ्मया राजा बोधितोऽभूद्यथा शृणु।
अधित्यकायां भूपाल सैकतस्य गिरेः पुरा॥८६॥
लावकेनामुना चञ्च्वा खातं द्व्यङ्गुलमम्बुनि। ततः कालान्तरे तेन वाराहेण नृपोत्तम॥८७॥
खनितं हस्तमात्रं तु जलं तुण्डेन चात्मनः।
ततोऽन्यदाऽमुया काल्या हस्तयुग्ममितः कृतः॥८८॥
खातो जले महाराज तोयं मासद्वयं स्थितम्।
पीतं क्षुद्रैर्वनचरैः सत्त्वैस्तृष्णासमाकुलैः॥८९॥
ततो वर्षत्रयान्ते तु गजेनानेन सुव्रत। हस्तत्रयमितः खातः कृतस्तत्राधिकं जलम्॥९०॥

कालान्तर में राजा वीरभद्रक भी देहावसान के उपरान्त मुदित स्थिति में मेरे स्थान पर लाया गया। मैंने चित्रगुप्त से उसके भी कर्मों का लेख पूछा। तब चित्रगुप्त ने धर्मसंसर्ग से उत्पन्न उसके पुण्यों को मुझसे कहा। हे राजन्! उस अवसर पर मैंने जो कहकर राजा को समझाया था, उसका श्रवण करिये। पूर्वकाल में लावक पक्षी ने सरोवर के जल में मात्र अंगुलद्वय का गर्त्त चोंच से खोदा। हे नृपराज! कुछ काल के उपरान्त वराह ने आकर अपनी दाढ़ से वहां एक हाथ का गर्त्त बना दिया। तदनन्तर मुदित हो गये काली ने वहां एक हाथ का गर्त्त बनाया। उस गर्त्त में एकत्र जल से प्यासे वनेचर एवं अन्य छुद्र प्राणी समूह ने दो मास जल पान किया। तीन वर्षोपरान्त एक हाथी ने उस गर्त्त को तीन हाथ और दांतों से खोद दिया।।८३-९०।।

मासत्रयं स्थितं तच्च पयो जीवैर्वनेचरैः। भवांस्तत्र समायातो चलशोषादनन्तरम्॥९१॥
मासे तत्र तु सम्प्राप्तं हस्तं खात्वा जलं नृप। ततस्तयोपदेशेन मन्त्रिणो नृपते त्वया॥९२॥
पञ्चाशद्धनुरुत्खातं जातं तत्र महाजलम्। पुनः शिलाभिः सुदृढं बद्धं जातं महत्सरः।
वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः॥९३॥

उस गर्त्त में एकत्र जल को जीवों तथा वनेचरों ने तीन मास तक पान किया। तदनन्तर जब वह जल भी शुष्क हो गया, तब हे वीरभद्रक! वहां आप आये। हे नृप! तब आपने उस गर्त्त को और एक हस्त परिमित खोद दिया। उस जल का आप लोगों ने पान किया। तदनन्तर हे राजन्! आपने अपने मंत्री की प्रार्थना पर उस सरोवर के गर्त्त को दो सौ हाथ लम्बाई तथा दो सौ हाथ चौड़ाई वाला खनन कराया तथा उसे शिलाओं से दृढ़ता के साथ बद्ध कराकर उस महासरोवर का निर्माण कराया वहीं पर चतुर्दिक् आपने लोकहितकारी वृक्षों का आरोपण भी कराया।।९१-९३।।

तेन स्वस्वेन पुण्येन पञ्चैते जगतीमते। विमानं धर्म्यमारूढास्त्वमप्येनं समारुह॥९४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य मम राजा स भूमिप।
आरुरोह विमानं तत्षष्ठो राजा समांशभाक्॥९५॥

"हे पृथिवीपति राजन्! वे सभी तथा आप अपने पुण्य से धर्मरूपी विमान पर बैठे हैं। आप भी विमानारोहण करिये।" तब वह राजा जो इस क्रम में छठा पुण्यात्मा था (१. लावक, २. वराह, ३. काली, ४. हाथी, ५. मन्त्री तथा ६. राजा) विमानारूढ़ हो गया। उसे भी समांश पुण्य मिला।।९४-९५।।

इति ते सर्वमाख्यातं तडागजनितं फलम्। श्रुत्वैतन्मुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात्॥९६॥

यो नरः श्रद्धया युक्तो व्याख्यातं शृणुयात्पठेत्।
सोऽप्याप्नोत्यखिलं पुण्यं सरोनिर्माणसंभवम्॥९७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्माख्याने द्वादशोऽध्यायः॥१२॥
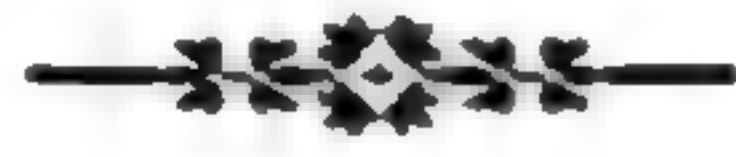
मैंने तड़ाग निर्माण जनित फल कह दिया। इस आख्यान का श्रोता जन्म-मरणात्मक पापबन्धन से मुक्त हो जाता है। जो इस प्रसंग को सश्रद्ध भाव से कहता अथवा सुनता है, उसे सरोवर निर्माणवत् पुण्यलाभ प्राप्त होगा।।९६-९७।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।
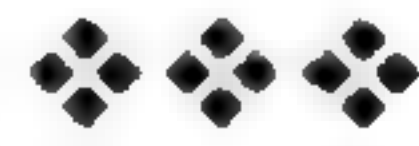
अथ त्रयोदशोऽध्यायः

धर्माख्यान कथन

धर्मराज उवाच

देवतायतनं यस्तु कुरुते कारयत्यपि। शिवस्यापि हरेर्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु॥१॥

धर्मराज कहते हैं—शिव किंवा विष्णुमन्दिर निर्माता किंवा बनवाने वाले को जो पुण्यफल लाभ होता है, वह श्रवण करिये।।१।।

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः। कल्पत्रयं विष्णुपदं तिष्ठत्येव न संशयः॥२॥
मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतनं नरः। यावत्पुण्यं भवेत्तस्य तन्मे निगदतः शृणु॥३॥
दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थितः। कल्पत्रयं विष्णुपदे तिष्ठत्येव न संशयः॥४॥

वह मानव मातृ तथा पितृकुलोत्पन्न लाखों पीढ़ी के साथ कल्पत्रय तक विष्णुपद में स्थित रहता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य मिट्टी का देवालय बनवाता है, उसे प्राप्त होने वाले पुण्यों को कहता हूं, श्रवण करिये। वह दिव्यधारी होकर श्रेष्ठ विमान पर आरूढ़ हो तीन कल्प तक विष्णुपद में स्थित रहता है। यह निःसंदिग्ध बात है।।२-४।।

मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतनं नरः। यातत्पुण्यं भवेत्तस्य तन्मे निगदतः शृणु॥५॥

दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थितः। कल्पत्रयं विष्णुपदे स्थित्वा ब्रह्मपुरं व्रजेत्॥६॥

कल्पद्वयं स्थितस्तत्र पुनः कल्पं वसेद्दिवि।
ततस्तु योगिनामेव कुले जातो मुदान्वितः॥७॥

जो और पक्की मृत्तिका से देवमन्दिर निर्माण कराता है, उसको प्राप्त होने वाले पुण्यफल का श्रवण करिये। वह भी दिव्यदेही एवं उत्तम विमानारूढ़ होकर विष्णुपद में स्थित हो ब्रह्मलोक जाकर कल्पत्रय पर्यन्त रहता है। तदनन्तर पुनः विष्णुपद में कल्पद्वय तक रहकर एक कल्प स्वर्ग में निवास करके वह योगीगण के कुल में मुदित होकर जन्म लेता है।।५-७।।

वैष्णवं योगमास्थाय मुक्तिं व्रजति शाश्वतीम्।
दारुभिः कुरुते यस्तु तस्य स्याद्द्विगुणं फलम्॥८॥
त्रिगुणं चेष्टकाभिस्तु शिलाभिस्तच्चतुर्गुणम्।
स्फाटिकाभिः शिलाभिस्तु ज्ञेयं दशगुणोत्तरम्॥९॥
ताम्रीभिस्तच्छतगुणं हेम्रा कोटिगुणं भवेत्।
देवालयं तडागं वा ग्रामं वा पालयेत्तु यः॥१०॥

वह इस मनुष्य जन्म को लेकर वहां वैष्णव योग में स्थिति पाकर शाश्वती मुक्तिलाभ करेगा। जो लकड़ी का देवमन्दिर बनवाता है, उसे उक्त फल का द्विगुणफल मिलेगा। जो ईंटों का मन्दिर बनवाता है, उसे त्रिगुणफल, पत्थर के मन्दिर निर्माता को चतुर्गुण फल, स्फटिक के मन्दिर निर्माता को दसगुणितफल, ताम्रपत्र का मन्दिर बनवाने वाले को शतगुणित फल, स्वर्णमन्दिर निर्माता को कोटिगुणित फल प्राप्त होता है। जो देवालय, तड़ाग, ग्राम का निर्माण किंवा पालन करता है।।८-१०।।

कर्तुः शतगुणं तस्य पुण्यं भवति भूपते। देवालयस्य शुश्रूषां लेपसेचनमण्डनैः॥११॥

कुर्याद्यत्सततं भक्त्या तस्य पूण्यमनन्तकम्।
वेतनाद्विष्टितो वापि पुण्यकर्मप्रवर्त्तिताः॥१२॥
ते गच्छंति धराधाराः शाश्वतं वैष्णवं पदम्।
तडागार्द्धफलं राजन्कासारे परिकीर्तितम्॥१३॥
कूपे पादफलं ज्ञेयं वाप्यां पद्माकरोन्मितम्।
वापीशतगुणं प्रोक्तं कुल्यायां भूपतेः फलम्॥१४॥

वह व्यक्ति इनका नवनिर्माण कराने वाले से भी सौगुणित फल प्राप्त करता है। देवालय की सेवा, वहां लीपना, मंडित करना जो सतत् भक्तिमान् होकर करता है, उसे अनन्त पुण्यफल का लाभ होगा। जो स्वेच्छा से किंवा दूसरों की देखादेखी इस पुण्यकृत्य को करते हैं, वे पृथिवी को कृतार्थ एवं धन्य करने वाले लोग शाश्वत विष्णुपद लाभ करते हैं। तड़ाग बनवाने की तुलना में छोटा तालाब बनवाने में आधाफल, कूप बनवाने में चौथाई फल तथा बाबली बनवाने में सरोवर-तड़ाग निर्माण जितना फल लाभ होगा। हे भूपति! इससे सौगुना फल कुल्या निर्माण से मिलेगा।।११-१४।।

दृषद्भिस्तु धनी कुर्यान्मृदा निष्किञ्चनो जनः।
तयोः फलं समानं स्यादित्याह कमलोद्भवः॥१५॥
दद्यादाढ्यस्तु नगरं हस्तमात्रमकिंचनः। भुवं तयोः समफलं प्राहुर्वेदविदो जनाः॥१६॥

कमलोत्पन्न भगवान् ब्रह्मा का कथन है कि यदि धनवान् व्यक्ति पत्थरों के घाट वाला तालाब बनवाता है, वहीं यदि निर्धन व्यक्ति मात्र मिट्टी के किनारों वाला तालाब निर्मित करता है, तथापि दोनों को समान पुण्यफल की प्राप्ति होगी। वेदवित् लोगों का कथन है कि यदि धनवान् यदि नगरदान करे तथा अकिंचन निर्धन एक हाथ भूमि मात्र दान करे, तथापि दोनों को मिलने वाला पुण्यफल समान होगा!।१५-१६।।

धनाढ्यः कुरुते यस्तु तडागं फलसाधनम्। दरिद्रः कुरुते कूपं समं पुण्यं प्रकीर्तितम्॥१७॥
आश्रमं कारयेद्यस्तु बहुजन्तूपकारकम्। स याति ब्रह्मभुवनं कुलत्रयसमन्वितः॥१८॥
धेनुर्वा ब्राह्मणो वापि यो वा को वापि भूपते।
क्षणार्द्धं तस्य छायायां तिष्ठन्स्वर्गं नयत्यमुम्॥१९॥

यदि धनी प्रचुरफलप्रद तड़ाग बनवाता है तथा एतद् विपरीत यदि दरिद्र मात्र एक कूप निर्माण कराता है, तथापि दोनों का पुण्यफल समान होगा। यदि किसी ने अनेक प्राणियों के उपकारार्थ आश्रयस्थल बनवाया है, तब वह अपनी तीन पीढ़ी के साथ ब्रह्मलोक प्राप्त करेगा। किसी व्यक्ति द्वारा लगवाये वृक्ष की छाया में धेनु किंवा कैसा भी विप्र यदि क्षणमात्र भी विश्राम करता है, तब वह वृक्षारोपण करने वाला स्वर्ग गमन करेगा।।१७-१९।।

आरामकारका राजन्देवतागृहकारिणः। तडागग्रामकर्त्तारः पूज्यन्ते हरिणा सह॥२०॥
सर्वलोकोपकारार्थं पुष्पारामं जनेश्वर। कुर्वते देवतार्थं वा तेषां पुण्यफलं शृणु॥२१॥
तत्र यावन्ति पर्णानि कुसुमानि भवन्ति च।
तावद्वर्षाणि नाकस्थो मोदते कुलकोटिभिः॥२२॥

हे राजन्! जो वाटिका निर्माण कराता है तथा देवगृह बनवाता है, जो तड़ाग तथा ग्राम का निर्माण कराता है, वह परलोक में श्रीहरि के साथ पूजित होता है। जो सभी लोगों के उपाकर हेतु पुष्पों भरी वाटिका लगवाता है, हे जनेश्वर! तथा उसे देवता के पूजनार्थ निवेदित करता है, उसका पुण्यफल श्रवण करिये। उस पुष्पोद्यान में जितनी पत्तियां तथा पुष्प उत्पन्न होते हैं, वह व्यक्ति उतने वर्षों तक अपनी करोड़ों पीढ़ियों के साथ स्वर्ग में मुदित होता है।।२०-२२।।

प्राकारकारिणस्तस्य कण्टकावरणप्रदाः।
प्रयान्ति ब्रह्मणः स्थानं युगानामेकसप्ततिम्॥२३॥
तुलसीरोपणं ये तु कुर्वते मनुजेश्वर। तेषां पुण्यफलं राजन्वदतो मे निशामय॥२४॥
सप्तकोटिकुलैर्युक्तो मातृतः पितृतस्तथा। वसेत्कल्पशतं साग्रं नारायणपदे नृप॥२५॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्नया। गोपिकाचन्दनेनापि वा चित्रकूटमृदापि वा।
गङ्गामृत्तिकया चैव तस्य पुण्यफलं शृणु॥२६॥

जो वाटिका अथवा देवालय के चतुर्दिक् दीवार उठवाता है, किंवा कांटों से उसे घेर देता है, वह ७१ युग पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करेगा। हे राजन्! मनुजेश्वर! तुलसी पादप आरोपण करने वाले व्यक्ति के पुण्य का वर्णन करता हूं। हे राजन्! वह अपने मातृकुल तथा पितृकुल की सात करोड़ पीढ़ी के साथ सौ कल्पों तक नारायण पद पर निवास करता है। जो तुलसी की जड़ की मृत्तिका द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाता है अथवा गोपीचन्दन, चित्रकूट की मिट्टी किंवा गंगा की मिट्टी का तिलक लगाता है, उसे प्राप्त होने वाला पुण्यफल को सुनें।।२३-२६।।

विमानवरमारूढो गन्धर्वाप्सरसां गणैः। संगीयमानचरितो मोदते विष्णुमंदिरे॥२७॥
पत्राणि तुलसीमूलाद्यावन्ति पतितानि वै। तावन्ति ब्रह्महत्यादिपातकानि हतानि च॥२८॥
तुलस्यां सेचयेद्यस्तु जलं चुलुकमात्रकम्। क्षीरोदवासिना सार्द्धं वसेदाचंद्रताकरम्॥२९॥
ददाति ब्राह्मणानां यः कोमलं तुलसीदलम्। स याति ब्रह्मसदने कुलत्रितयसंयुतः॥३०॥
शालग्रामेऽर्पयेद्यस्तु तुलस्यास्तु दलानि च। स वसेद्विष्णुभवने यावदाभूतसंप्लवम्॥३१॥

वह उत्तम विमान पर आसीन होकर गन्धर्वों तथा अप्सराओं द्वारा अपने चरित का गायन सुनते हुये विष्णुलोक प्राप्त करके मुदित होता है। जो तुलसी पादप लगाता है, उसे वृक्ष से जितनी पत्तियां झड़ती हैं, उस व्यक्ति के उतने ब्रह्महत्या आदि पापों का नाश होता जाता है। जो तुलसी पादप को एक अंजलि जल से भी सिंचित करता है, वह जब तक चन्द्रमा-तारकों की स्थिति है, तब तक क्षीर सागरशायी विष्णु के साथ निवास करता है। जो ब्राह्मणों को कोमल तुलसीदल देता है, वह प्रलयकाल आने तक विष्णुलोकवासी हो जाता है।।२६-३१।।

कण्टकावरणं यस्तु प्रकारं वापि कारयेत्। सोऽप्येकविंशतिकुलैर्मोदते विष्णुमंदिरे॥३२॥
योऽर्च्चयेद्धरिपादाब्जं तुलस्याः कोमलैर्दलैः। न तस्य पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकान्नरेश्वर॥३३॥

जो देवालय, तुलसी वाटिका आदि के चारों ओर दीवार उठवाता है किंवा कांटों के द्वारा घेर देता है, वह विष्णु लोक में अपनी इक्कीस पीढ़ी के साथ आनन्दित होता रहता है। जो तुलसी के कोमल पत्तों से श्रीहरि के चरणकमल की पूजा करता है, हे राजन्! वह विष्णुलोक से पुनः वापस नहीं भेजा जाता।३२-३३।।

द्वादश्यां पौर्णमास्यां यः क्षीरेण स्नापयेद्धरिम्।
कुलायुतयुतः सोऽपि मोदते वैष्णवे पदे॥३४॥

प्रस्थमात्रेण पयसा यः स्नापयति केशवम्। कुलायुतायुतयुतः सोऽपि विष्णुपरे वसेत्॥३५॥
घृतप्रस्थेन यो विष्णुं द्वादश्यां स्नापयेन्नरः। कुलकोटियुतो राजन्सायुज्यं लभते हरेः॥३६॥

जो द्वादशी किंवा पूर्णमासी तिथि पर हरि को दुग्धस्नान कराता है, उसकी दसहजार पीढ़ी वैष्णवलोक में मुदित होकर रहती है। जो मात्र एक किलो (प्रस्थ) दुग्ध से केशव को स्नान कराता है, अपनी एक लाख पीढ़ियों के साथ वह विष्णुपुर में निवास करता है। जो द्वादशी तिथि पर केशव को एक प्रस्थ घृत से स्नान कराता है, वह अपने एक करोड़ कुल के साथ विष्णु सायुज्य लाभ करता है।।३४-३६।।

पञ्चामृतेन यः स्नानमेकादश्यां तु कारयेत्।
विष्णोः सायुज्यकं तस्य भवेत्कुलशतायुतैः॥३७॥

एकादश्यां पौर्णमास्यां द्वादश्यां वा नृपोत्तम।
नालिकेरोदकैर्विष्णुं स्नापयेत्तत्फलं शृणु॥३८॥
दशजन्मार्जितैः पापैर्विमुक्तो नृपसत्तम। शतद्वयकुलैर्युक्तो मोदते विष्णुना सह॥३९॥

हे नृपोत्तम! जो पंचामृत से एकादशी को प्रभु को स्नान कराता है, वह अपनी सौ पीढ़ी के साथ विष्णु सायुज्य लाभ करता है। जो व्यक्ति एकादशी, द्वादशी, किंवा पौणमासी के दिन नारियल के जल से विष्णु को स्नान कराता है, उसका स्नानफल कहता हूं। सुनिये। हे नृपसत्तम! वह तो दस जन्मों में अर्जित किये पातक से मुक्त हो जाता है। वह अपनी दो सौ पीढ़ी के साथ विष्णु के साथ (विष्णु लोक में) मुदित होता रहता है।।३७-३९।।

इक्षुतोयेन देवेशं यः स्नापयति भूपते। केशवं लक्षपितृभिः सार्द्धं विष्णुपदं व्रजेत्॥४०॥
पुष्पोदकेन गोविन्दं तथा गन्धोदकेन च।
स्नापयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णवं पदमाप्नुयात्॥४१॥
जलेन वस्त्रपूतेन यः स्नापयति माधवम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते॥४२॥
क्षीराद्यैः स्नापयेद्यस्तु रविसंक्रमणे हरिम्। स वसेद्विष्णुसदने त्रिसप्तपुरुषैः सह॥४३॥

हे भूपति! जो गन्ने के रस से देवेश श्रीहरि को स्नान करता है, वह अपने एक लाख पितृगण के साथ विष्णुलोक जाता है। जो मनुष्य पुष्पजल तथा गन्धजल से गोविन्द को स्नान कराता है, वह हरिभक्ति युक्त व्यक्ति वैष्णवपद लाभ करता है। जो वस्त्र से छाने जल से माधव को स्नान कराता है, वह सभी पापों से रहित होकर विष्णु के साथ मुदित होता रहता है। जो सूर्यग्रहणकाल में क्षीर से हरि को स्नान कराता है, वह २१ पीढ़ी के पूर्वजों के साथ विष्णुलोक निवास करता है।।४०-४३।।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां पूर्णिमादिने॥४४॥
एकादश्यां भानुवारे द्वादस्यां पञ्चमीतिथौ। सोमसूर्योपरागे च मन्वादिषु युगादिषु॥४५॥
अर्द्धोदये च सूर्यस्य पुष्यार्के रोहिणीबुधे।
तथैव शनिरोहिण्यां भौमाश्विन्यां तथैव च॥४६॥
शन्यां भृगुमृगे चैव भृगुरेवतिसङ्गमे। तथा बुधानुराधायां श्रवणार्के तथैव च॥४७॥
तथा च सोमश्रवणे हस्तयुक्ते बृहस्पतौ। बुधाष्टम्यां बुधाषाढे पुण्ये चान्ये दिने तथा॥४८॥
स्नापयेत्पयसा विष्णुं शान्तिमान् वाग्यतः शुचिः।
घृतेन मधुना वापि दध्ना वा तत्फलं शृणु॥४९॥

जो व्यक्ति शुक्लपक्षीय चतुर्दशी, अष्टमी अथवा पूर्णिमा के दिन अथवा एकादशी, रविवार, द्वादशी किंवा पंचमी के दिन अथवा सूर्यचन्द्रग्रहण काल में, मन्वादिकाल, युगादिकाल, सूर्य के अर्द्धोदय काल में, पुष्यस्थ सूर्य के समय, रोहिणी स्थित बुध के समय, रोहिणी स्थित शनि के समय, अश्विनी के मंगल, शनि के शुक्र-चन्द्र, रेवती तथा शुक्र संगम काल में, अनुराधा के बुध, श्रवण के सूर्य-चन्द्र, हस्तस्थ बृहस्पति के समय,

अष्टमी के बुध के समय, आषाढ़ में बुध के दिन तथा विविध पुण्य पर्वकाल में जो मानव मौनी तथा शान्तचित्त पूर्वक पवित्र मन एवं देह से विष्णु को दुग्ध, घृत, मधु किंवा दधि स्नान कराता है, उसका पुण्यफल सुनिये।।४४-४९।।

सर्वयज्ञफलं प्राप्य सर्वपापविवर्जितः। वसेद्विष्णुपुरे सार्द्धं त्रिसप्तपुरुषैर्नृप॥५०॥
तत्रैव ज्ञानमासाद्य योगिनामपि दुर्लभम्। मोक्षमाप्नोति नृपते पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥५१॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां सोमवारे च भूपते।
शिवं संस्नाप्य दुग्धेन शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥५२॥
नालिकेरोदकेनापि शिवं संस्नाप्य भक्तितः।
अष्टम्यामिन्दुवारे वा शिवसायुज्यमश्नुते॥५३॥

वह सर्वपातक रहित होकर सर्वयज्ञफल लाभ करता है। वह अपनी २१ पीढ़ी के साथ विष्णुलोक में निवास करता है। उसे योगीगण के लिये भी दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति होती है। हे राजन्! वह पुनरागमन रहित मोक्ष की भी प्राप्ति करता है। हे भूपति! कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तथा सोमवार को जो शिव को दुग्ध स्नान कराता है, उसे शिवसायुज्य लाभ होता है। जो भक्तिभाव से शिव को अष्टमी अथवा सोमवार के दिन नारिकेल जल से स्नान कराता है, उसे भी शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है।।५०-५३।।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वापि भूपते।
घृतेन मधुना स्नाप्य शिवं तत्साम्यतां व्रजेत्॥५४॥

हे भूपति! शुक्लपक्षीय चतुर्दशी अथवा अष्टमी के दिन जो घृत-मधु से शिव को स्नान कराता है, उसे भगवान् शिव की साम्यावस्था प्राप्त होती है।५४।।

तिलतैलेन संस्नाप्य विष्णुं वा शिवमेव च।
स याति तत्तत्सारूप्यं पितृभिः सह सप्तभिः॥५५॥
शिवमिक्षुरसेनापि यः स्नापयति भक्तितः। शिवलोके वसेत्कल्पं स सप्तपुरुषैः सह॥५६॥
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गमुत्थाने द्वादशीदिने। क्षीरेण वा महाभाग तत्फलं शृणु मद्गिरा॥५७॥
जन्मायुतकृतैः पापैर्विमुक्तो मनुजो नृप।
कोटिसंख्यं समुद्धृत्य स्वकुलं शिवतां व्रजेत्॥५८॥

जो तिल तैल से विष्णु अथवा शिव को स्नान कराता है, वह अपनी सात पीढ़ी के साथ सारूप्य लाभ करता है। जो व्यक्ति भक्ति के साथ शिव को ईंख के रस से स्नान कराता है, वह अपनी सात पीढ़ी के साथ शिवलोक में कल्पपर्यन्त निवास करता है। जो व्यक्ति देवोत्थान एकादशी तथा द्वादशी तिथि पर दुग्ध स्नान किंवा घृतस्नान शिवलिंग को कराता है, हे महाभाग राजन्! उसका फल श्रवण करें। हे नृप! वह व्यक्ति दस हजार जन्मार्जित पातकों से रहित होकर अपनी एक कोटि पीढ़ी का उद्धारक तथा शिवत्वलाभ करता है।।५५-५८।।

सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्विष्णुं विष्णुतिथौ नृपः।
जन्मायुताजितैः पापैमुक्तो व्रजति तत्पदम्॥५९॥

पद्मपुष्पेण यो विष्णुं शिवं वा पूजयेन्नरः। स याति विष्णुभवनं कुलकोटिसमन्वितः॥६०॥

जो विष्णु तिथि एकादशी के दिन गन्ध-पुष्पादि से विष्णु पूजन करता है, वह दस हजार जन्मों में अर्जित पातक से मुक्त होकर विष्णुपदलाभ करता है, जो व्यक्ति कमल पुष्पों से विष्णु अथवा शिवपूजन करता है, वह अपने कोटि संख्यक कुल के साथ विष्णुलोक जाता है। हरि का पूजन केतकी पुष्प से करें तथा शिव का पूजन रात में धतूरा के पुष्पों से करें। ऐसे व्यक्ति एक युग तक विष्णुलोकवासी होता है।।५९-६०।।

हरिं च केतकीपुष्पैः शिवं धत्तूरजैर्निशि। संपूज्य पापनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरेयुगम्॥६१॥

हरिं तु चाम्पकैः पुष्पैरर्कपुष्पैश्च शंकरम्।
समभ्यर्च्य महाराज तत्तत्सालोक्यमाप्नुयात्॥६२॥

शंकरास्याथवा विष्णोर्घृतयुक्तं च गुग्गुलुम्।
दत्त्वा धूपो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते॥६३॥

तिलतैलान्वितं दीपं विष्णोर्वा शंकरस्य वा। दत्त्वा नरः सर्वकामान्संप्राप्नोति नृपोत्तम॥६४॥

घृतेन दीपं यो दद्याच्छंकरायाथ विष्णवे।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो गङ्गास्नानफलं लभेत्॥६५॥

हे महाराज! हरि की पूजा चम्पापुष्प से तथा शिव की पूजा मदार पुष्प से करे। उसे सालोक्य मुक्ति मिलती है। शंकर अथवा विष्णु की अर्चना घृतयुक्त गुग्गुलु की धूप द्वारा करना चाहिये। ऐसा भक्ति पूर्वक जो करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जो तिलतैल का दीपक विष्णु अथवा शंकर के समक्ष रखता है, हे नृपोत्तम! उसे सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है। जो व्यक्ति घृतदीपक विष्णु अथवा शंकर को प्रदान करता है, वह सर्वपाप रहित होकर गंगा स्नान फललाभ करता है।।६१-६५।।

ग्राम्येण वापि तैलेन राजन्यन्येन वा पुनः।
दीपं दत्त्वा महाविष्णोः शिवस्यापि फलं शृणु॥६६॥

सर्वपापविनिमुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः। तत्तत्सालोक्यमाप्नोति त्रिःसप्तपुरुषान्वितः॥६७॥

यद्यदिष्टतमं भोज्यं तत्तदीशाय विष्णवे।
दत्त्वा तत्तत्पदं याति चत्वारिंशत्कुलान्वितः॥६८॥

यद्यदिष्टतमं वस्तु तत्तद्विप्राय दापयेत्। स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥६९॥

हे राजन्! जो व्यक्ति ग्राम्य अथवा तैल से विष्णु अथवा शिव के समक्ष दीपक प्रज्वलित करके रखता है, उसे प्राप्त होने वाला फल श्रवण करें। वह सर्वपाप रहित होकर सर्वैश्वर्यवान जीवनयापन करने के पश्चात् अपनी इक्कीस पीढ़ी के साथ देव सालोक्यलाभ करता है। जो स्वयं को प्रिय लगने वाली भोज्य वस्तु को इष्टदेव शिव अथवा विष्णु को प्रदान करता है, वह ४० पीढ़ी के पूर्व पुरुषों के सहित शिव एवं विष्णुलोक प्राप्त करता है। जो वस्तु स्वयं को प्रिय लगे, वह ब्राह्मणों को दान करना चाहिये। ऐसा दाता आवागमन रहित विष्णुलोक जाता है।।६६-६९।।

भ्रूणहा स्वर्णदानेन शुद्धो भवति भूपते। अन्नतोयसमं दानं न भूतं न भविष्यति॥७०॥
अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः। सर्वदानफलं यस्मादन्नदस्य नृपोत्तम॥७१॥
अन्नदो ब्रह्मसदनं याति वंशायुतान्वितः। न तस्य पुनरावृत्तिरिति शास्त्रेषु निश्चितम्॥७२॥

हे राजन्! भ्रूणहत्यारा स्वर्णदान से शुद्ध होता है। हे भूपति! अन्न-जल दान जैसा दान न था न होगा। अन्नदाता प्राणदाता कहा गया है। प्राणदाता ही सर्वदाता है। हे नृपोत्तम! सर्वदान फल केवल अन्नदान से मिल जाता है। वह सपरिवार दस हजार पीढ़ी के साथ ब्रह्मलोक गमन करता है। वह आवागमन चक्र से मुक्त हो जाता है। यह शास्त्रों का निर्णय है।।७०-७२।।

सद्यस्तुष्टिकरं ज्ञेयं जलदानं यतोऽधिकम्। अन्नदानान्नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टं ब्रह्मवादिभिः॥७३॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
जलदो मुच्यते तेभ्य इत्याह कमलोद्भवः॥७४॥

जलदान से मनुष्य की पिपासा तत्काल निवृत्त हो जाती है। हे राजन्! जलदान तो अन्नदान से भी उत्तम है। यह ब्रह्मवादीगण का कथन है। जो महापातकी अथवा उपपातकी है, वह जल प्रदान से मुक्त हो जाता है। यह कमलजन्मा ब्रह्मा का कथन है।।७३-७४।।

शरीरमन्नजं प्राहुः प्राणानप्यन्नजान्विदुः। तस्मादन्नप्रदो ज्ञेयः प्राणदः पृथिवीपते॥७५॥
यद्यत्तुष्टिकरं दानं सर्वकामफलप्रदम्। तस्मान्नसमं दानं नास्ति भूपाल भूतले॥७६॥

हे पृथिवीपति! शरीर अन्न से ही जन्मा है। प्राण भी अन्न से उत्पन्न है। इसलिये अन्नप्रदाता ही प्राणप्रदाता है। हे भूपाल! जो दान मनुष्यों को तृप्त करे, वही सर्वमनोरथ साधक दान है। अन्न सबके लिये तृप्तिदायक है। इसलिये अन्नद्वान सर्वोत्तम दान है। ऐसा दान पृथिवी पर नहीं है।।७५-७६।।

अन्नदस्य कुले जाता आसहस्त्रं नृपोत्तम। नरकं ते न पश्यन्ति तस्मादन्नप्रदो वरः॥७७॥

पादाभ्यङ्गं भक्तियुक्तो यऽतिथेः कुरुते नरः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु गङ्गास्नानपुरःसरम्॥७८॥
तैलाभ्यङ्गं महाराज ब्राह्मणानां करोति यः।
स स्नातोऽष्टशतं साग्रं गङ्गायां नात्र संशयः॥७९॥
रोगितान्ब्रह्माणान्यस्तु प्रेम्णा रक्षति रक्षकः।
स कोटिकुलसंयुक्तो वसेद्ब्रह्मपुरे युगम्॥८०॥

हे नृपोत्तम! जो अन्नदाता है, उसकी एकसहस्र पीढ़ी में उत्पन्न होने वाले वंशज नरकदर्शन नहीं करते। अतः अन्नदान श्रेष्ठ दान है। जो व्यक्ति भक्तिभाव से अतिथि का चरणप्रक्षालन करता है, उसने तो गंगास्नान के साथ सभी तीर्थों का स्नान कर लिया। जो ब्राह्मणों को तैल लगाता है, उसने तो प्रातःकाल १०८ बार गंगास्नानफल पा लिया। इसमें सन्देह नहीं है। जो रोगग्रस्त ब्राह्मण की सप्रेम रक्षा करता है (उपचार आदि कराता है) वह अपने एक करोड़ कुल वालों के साथ ब्रह्मपुरी में रहता है। वह वहां एक युगपर्यन्त रहता है।।७७-८०।।

यो रक्षेत्पृथिवीपाल रङ्कं वा रोगिणम् नरम्।
तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान्प्रयच्छति॥८१॥
मनसा कर्मणा वाचा यो रक्षेदामयान्वितम्। सर्वान्कामानवाप्नोतिं सर्वपापविर्जितः॥८२॥
यो ददाति महीपाल निवासं ब्राह्मणाय वै।
तस्य प्रसन्नो देवेशः स्वलोकं संप्रयच्छति॥८३॥
ब्राह्मणाय ब्रह्मविदे यो दद्याद्गां पयस्विनीम्।
स याति ब्रह्मसदनमन्येषामतिदुर्लभम्॥८४॥

जो राजा निर्धन तथा दरिद्र व्यक्ति की रक्षा करता है, विष्णु उसके प्रति प्रसन्न होकर उसकी सर्वकामना पूरी कर देते हैं। जो मनसा-वाचा-कर्मणा रोगी की रक्षा करता है, वह सभी पापों से रहित होकर सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है। जो राजा ब्राह्मण को निवासस्थान दान करता है, उस पर देवेश प्रसन्न होकर अपने लोक को उसे प्रदान कर देते हैं। जो ब्रह्मविद् विप्र को दुग्धवती गौ प्रदान करता है, वह अन्य लोगों के लिये दुर्लभ ब्रह्मलोक गमन करता है।।८१-८४।।

अन्येभ्यः प्रतिगृह्यापि यो दद्याद्गां पयस्विनीम्।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्तोऽस्मि पण्डित॥८५॥
कपिलां वेदविदुषे यो ददाति पयस्विनीम्। स एव रुद्रो भूपालं सर्वपापविवर्जितः॥८६॥
विप्राय वेदविदुषे दद्यादुभयतोमुखीम्। यस्तस्य पुण्यं संख्यातुं न शक्तोऽब्दशतैरपि॥८७॥

जो अन्य से दान में प्राप्त दान से दुग्धवती गौ लेकर दान करता है, उसके पुण्य का मैं वर्णन कर ही नहीं सकूंगा। जो वेदज्ञ विप्र को कपिला दुग्धवती गौ प्रदान करता है, हे भूपाल! वह तो रुद्र है तथा सर्वपाप रहित भी है। जो प्रसव कर रही स्थिति वाली गौ ब्राह्मण को देता है, उसको प्राप्त पुण्य की गणना मैं शतवर्ष में भी नहीं कर सकूंगा।।८५-८७।।

तस्य पुण्यफलं राजञ्शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः। एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः॥८८॥
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम्। संरक्षति महीपाल यो विप्रं भयविह्वलम्॥८९॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। वस्त्रदो रुद्रभवनं कन्यादो ब्रह्मणः पदम्॥९०॥
हेमदो विष्णुभवनं प्रयाति स्वकुलान्वितः।
यस्तु कन्यामलंकृत्य ददात्यध्यात्मवेदिने॥९१॥

हे राजन्! उसका पुण्यफल मैं तत्वतः कह रहा हूं। उसे सुनिये। सर्वयज्ञ समूह में दीक्षित होने वाला तथा सर्वतीर्थ स्नान से मिलने वाला फल वह प्राप्त करता है। जो भयग्रस्त एक भी प्राणी की प्राणरक्षा करता है तथा जो भयविह्वल विप्र की रक्षा करता है, हे राजन्! उसने सर्वतीर्थस्नान तथा सर्वयज्ञ दीक्षाफल पा लिया। वस्त्रप्रदाता रुद्रलोक तथा कन्यादाता ब्रह्मपद लाभ करता है। स्वर्णदाता विष्णुलोक में अपने कुल के साथ जाता है। जो अलंकृत कन्या अध्यात्मविद् ब्राह्मण को देता है।।८८-९१।।

शतवंशसमायुक्तः स व्रजेद्ब्रह्मणः पदम्।
कार्तिक्यां पौर्णमास्यां वा आषाढ्यां वापि भूपते॥९२॥
वृषभं शिवतुष्ट्यर्थमुत्सृजेत्तत्फलं शृणु। सप्तजन्मार्जितैः पापैर्विमुक्तो रुद्ररूपभाक्॥९३॥
कुलसप्ततिसंयुक्तो रुद्रेण सह मोदते। शिवलिङ्गाङ्कितं कृत्वा महिषं यः समुत्सृजेत्॥९४॥
न तस्य यातनालोको भवेन्नृपतिसत्तम। ताम्बूलदानं यः कुर्याच्छक्तितो नृपसत्तम॥९५॥

वह अपनी सौ पीढ़ी के साथ ब्रह्मभवन गमन करता है। हे भूपति! कार्त्तिकी तथा आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन जो व्यक्ति शिव की प्रसन्नता हेतु वृषोत्सर्ग करता है, उससे प्राप्त होने वाला फल श्रवण करें! वह सात जन्मार्जित पापों से रहित होकर रुद्ररूप लाभ करता है। वह अपनी सत्तर पीढ़ी के साथ रुद्रदेव के यहां मुदित होता है, जो भैसे के शरीर को शिवलिङ्ग चिह्न से दाग कर उसका उत्सर्ग करता है, हे नृपसत्तम! वह यातनालोकों में नहीं जाता। हे नृपप्रवर! जो अपनी शक्ति के अनुसार ताम्बूल दान करता है।।९२-९५।।

तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा ददात्यायुर्यशः श्रियम्।
क्षीरोदो घृतदश्चैव मधुदो दधिदस्तथा॥९६॥
दिव्याब्दायुतपर्यंतं स्वर्गलोके महीयते। प्रयाति ब्रह्मसदनमिक्षुदाता नृपोत्तम॥९७॥

विष्णु उस पर प्रसन्न होकर उसे शीघ्र आयु तथा श्री तथा यश प्रदान करते हैं। क्षीर, घृत, मधु, दधि दान करने वाला व्यक्ति सहस्रदिव्य वर्षों तक (१०००×३६०=मानववर्ष ३६०००० वर्ष) स्वर्गलोक में महिमान्वित होता है। हे नृपोत्तम! गन्ना प्रदानकर्त्ता ब्रह्मलोक जाता है।।९६-९७।।

गन्धदः पुण्यफलदः प्रयाति ब्रह्मणः पदम्। गुडेक्षुरसदश्चैव प्रयाति चोत्तमोत्तमम्॥९८॥
घटानां जलदो याति सूर्यलोकमनुत्तमम्। विद्यादानेन सायुज्यं माधवस्य व्रजेन्नरः॥९९॥
विद्यादानं महीदानं गोदानं चोत्तमोत्तमम्। नरकादुद्धरन्त्येव जपवाहनदोहनात्॥१००॥
सर्वेषामपि दानानां विद्यादानं विशिष्यते।
विद्यादानेन सायुज्यं विष्णोर्याति नृपोत्तम॥१०१॥

गन्धदाता अपने इस दान के पुण्यफल से ब्रह्मलोक जाता है। जो गुड़ तथा गन्ने का रस दान करता है, वह उत्तम से उत्तम लोक जाता है। घटपूर्ण जल दाता अति उत्तम सूर्यलोक जाता है। विद्यादाता मानव माधव का सायुज्य लाभ करता है। विद्यादान, पृथिवीदान, गोदान परम उत्तम दान कहे गये हैं। जप, वाहन तथा दोहनी दान द्वारा नरक से त्राण तथा उद्धार मिलता है। सभी दानों में से विद्यादान की विशेषता है। हे नृपोत्तम! विद्यादान द्वारा विष्णु सायुज्य मिलता है।।९८-१०१।।

नरस्त्विन्धनदानेन मुच्यते ह्युपपातकैः। शालग्रामशिलादानं महादानं प्रकीर्तितम्॥१०२॥
यद्दत्त्वा मोक्षमाप्नोति लिङ्गदानं तथा स्मृतम्।
ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत्फलं लभते नरः॥१०३॥

मनुष्य ईन्धन दान द्वारा सभी उपपातक समूह से मुक्त हो जाता है। शालग्रामशिलादान को महादान कहते

हैं। जिस दान को करने से मोक्ष मिलता है, उसे लिंगदान कहते हैं। इस दान द्वारा करोड़ों ब्रह्माण्ड दानफल मिलता है।।१०२-१०३।।

तत्फलं समवाप्नोति लिङ्गदानान्न संशयः।
शालग्रामशिलादाने ततोऽपि द्विगुणं फलम्।।१०४।।
शालग्रामशिलारूपी विष्णुरेवेति विश्रुतः। यो ददाति नरो दानं गृहेषु महतां प्रभो।।१०५।।
गङ्गास्नानफलं तस्य निश्चितं नृप जायते। रत्नान्वितसुवर्णस्य प्रदानेन नृपोत्तम।।१०६।।
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति महादानं यतः स्मृतम्।
नरो माणिक्यदानेन परं मोक्षमवाप्नुयात्।।१०७।।

लिंग दान से ऐसा उत्तम फल मिलता है। इसमें संशय नहीं है। शालग्रामशिलादान का फल इससे द्विगुणित है। यह शालग्रामशिला विष्णुरूप है। हे प्रभो! जो मनुष्य गृहदान करता है, हे नृप! उसे निश्चित गंगा स्नानफल मिलता है। रत्नयुक्त स्वर्णदान देने से हे नृपोत्तम! भोग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्त होती है। यह महादान है। मनुष्यगण माणिक्य दान द्वारा परममोक्ष प्राप्त करते हैं।।१०४-१०७।।

ध्रुवलोकमवाप्नोति वज्रदानेन मानवः। स्वर्गं विद्रुमदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात्।।१०८।।
प्रयाति यानदानेन मुक्तादानेन चैन्दवम्। वैदूर्यदो रुद्रलोकं पुष्परागप्रदस्तथा।।१०९।।

हीरकदान द्वारा मानव ध्रुवलोक की प्राप्ति करता है। विद्रुम रत्न दान द्वारा स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। यानदान से रुद्रलोक की तथा मुक्तादान से इन्द्रपद मिलता है। वैदूर्य तथा पुखराज, मणिदान द्वारा रुद्रलोक की प्राप्ति होगी।।१०८-१०९।।

पुष्परागप्रदानेन सर्वत्र सुखमश्नुते। अश्वदो ह्यश्वसांनिध्यं चिरं व्रजति भूमिप।।११०।।
गजदानेन महता सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
प्रयाति यानदानेन स्वर्गं स्वर्यानमास्थितः।।१११।।
महिषीदो जयत्येव ह्यपमृत्युं न संशयः। गवां तृणप्रदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात्।।११२।।

पुखराज दान करने से सर्वत्र सुखलाभ होता है। अश्वदाता दीर्घकाल तक अश्वलाभ करता है। हे राजन्! महत् गज का दान करने से सर्वकामना परिपूरित होती हैं। यान दान करने से व्यक्ति स्वर्गयान पर आसीन होता है। महिष दान कर्त्ता अपमृत्यु पर विजय पाता है। गौ को हरी घास देने वाला रुद्रलोक जाता है।।११०-११२।।

वारुणं लोकमाप्नोति महीश लवणप्रदः। स्वाश्रमाचारनिरताः प्रयान्ति सदनं हरेः।।११३।।
अदाम्भिका गतासूयाः प्रयान्ति ब्रह्मणः पदम्।
परोपदेशनिरता वीतरागा विमत्सराः।।११४।।
हरिपादार्चनरताः प्रयान्ति सदनं हरेः। सत्सङ्गाह्लादनिरताः सत्कर्मसु सदोद्यताः।।११५।।
परापवादविमुखाः प्रयान्ति हरिमन्दिरम्।
नित्यं हितकरा ये तु ब्राह्मणेषु च गोषु च।।११६।।

हे महीपति! लवण दाता वरुणलोक लाभ करता है। अपने आश्रम आचार में निरत (वर्णाश्रमाचारी) को हरिलोक की प्राप्ति होती है। दम्भ रहित, असूया रहित लोग ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। अन्य को उत्तम उपदेश देने वाले, वीतराग, मात्सर्यहीन, हरिसेवारत, विष्णुलोक जाते हैं। सत्संग के आह्लाद का अनुभव करते रहने वाले, सदा सत्कर्मकारी, परनिन्दा रहित लोग भी हरिलोक जाते हैं। जो नित्य ब्राह्मण तथा गौ का हित करते हैं।।११३-११६।।

परस्त्रीसङ्गविमुखा न पश्यन्ति यमालयम्।
जितेन्द्रिया जिताहारा गोषु क्षान्ताः सुशीलिनः।।११७।।
ब्राह्मणेषु क्षमाशीलाः प्रयांति भवनं हरेः। अग्निशुश्रूषवश्चैव गुरुशुश्रूषकास्तथा।।११८।।
पतिशुश्रूषणरता न वै संसृतिभागिनः। सदा देवार्चनरता हरिनामपरायणाः।।११९।।
प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च प्रयान्ति परमं पदम्। अनाथं विप्रकुणपं ये दहेयुर्नृपोत्तम।।१२०।।
अश्वमेधसहस्त्राणां फलमश्नुवते सदा। पत्रैः पुष्पैः फलैर्वापि जलैर्वा मनुजेश्वर।।१२१।।

परस्त्री संग से विमुख रहने वाले कदापि यमालय नहीं देखते। जितेन्द्रिय, नियत आहार करने वाले, गौओं के प्रति शान्तचित्त, सुशील, ब्राह्मणों को क्षमा करने वाले, हरिलोक जाते हैं। जो पुरुष अग्निहोत्र निरत, गुरु सेवातत्पर हैं तथा जो स्त्रियां पति सेवानिरत हैं, उनको आवागमन चक्र में भी नहीं पड़ना होता। जो हरिनामपरायण हैं तथा सदा देवर्चना में लगे रहते हैं, जो दान नहीं लेते, वे परमपद लाभ करते हैं। हे नृपोत्तम! जो अनाथ विप्र का शवदाह करता है, उसे सदा सहस्र अश्वमेधफल मिलता है। हे मनुजेश्वर! पत्र-पुष्प तथा जल से ही जो व्यक्ति।।११७-१२१।।

पूजया सहितं लिङ्गमर्चयेत्तत्फलं श्रृणु। अप्सरोगणगन्धर्वैः स्तूयमानो विमानगः।।१२२।।
प्रयाति शिवसान्निध्यमित्याह कमलोद्भवः।
चुलुकोदकमात्रेण लिङ्गं संस्नाप्य भूमिप।।१२३।।
लक्षाश्वमेधजं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः।
पूजया रहितं लिङ्गं कुसुमैर्योऽर्चयेत्सुधीः।।१२४।।
अश्वमेधायुतफलं भवेत्तस्य जनेश्वर।
भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैर्वापि शून्यं लिङ्गं प्रपूज्य च।।१२५।।

लिङ्ग की पूजा करता है, उसे मिलने वाले फल को सुनें। वह विमानारूढ़ होकर अप्सराओं तथा गन्धर्वों से स्तुत होता हुआ शिव सान्निध्य में जाता है। यह कमलोद्भव ब्रह्मा का कथन है। हे भूपति! जो कोई अंजलिमात्र जल से लिंग को स्नान कराता है, उसे दस सहस्र अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। यह निःसंशय है। जो सुधीमानव पूजा रहित लिंग की अर्चना पुष्पों से करता है, हे जनेश्वर! उसे दस सहस्र अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। भक्ष्य, भोज्य तथा फलों से शून्य लिङ्ग की पूजा करें।।१२२-१२५।।

शिवसायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम्।
पूजया रहितं विष्णुं योऽर्चयेदर्कवंशजः।।१२६।।

जलेनापि स सालोक्यं विष्णोर्याति नरोत्तम।
देवतायतने यस्तु कुर्यात्संमार्जनं सुधीः॥१२७॥
यावत्पांसु युगावासं वैष्णवे मन्दिरे लभेत्।
शीर्णं स्फटिकलिङ्गं तु यः संदध्यान्नृपोत्तम॥१२८॥
शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स तु मानवः। यस्तु देवालये राजन्नपि गोचर्ममात्रकम्॥१२९॥
जलेन सिञ्चेद्भूभागं सोऽपि स्वर्गं लभेन्नरः।
गन्धोदकेन यः सिञ्चेद्देवतायतने भुवम्॥१३०॥

जो ऐसा कार्य करता है, उसे पुनरागमन रहित शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। हे सूर्यवंशोद्भव राजन्! जिस विष्णु प्रतिमा की दीर्घकाल तक पूजा न की गयी हो, जो व्यक्ति मात्र जल से भी उसकी पूजा कर देता है, वह नरश्रेष्ठ विष्णुसालोक्य लाभ करता है, जो सुधी व्यक्ति देवालय को मार्जित, स्वच्छ करता है, वह उतने युग तक विष्णुलोक में निवास करेगा, जितने वहां पर धूलिकण हैं। हे नृपोत्तम! जो व्यक्ति जीर्ण-शीर्ण स्फटिक लिङ्ग को पुनः यथावत् कर देता है, वह शत जन्मार्जित पातकों से मुक्त हो जाता है। हे राजन्! जो मनुष्य देवमंदिर में गोचर्म परिमित (एक माप) भूमि को जल से धोता है, उसे स्वर्गलाभ होता है। गन्धोदक से देवालय की भूमि का अवश्य सिंचन करें।।१२६-१३०।।

यावत्कणानुकल्पं तु तिष्ठेत देवसन्निधौ। मृदा धातुविकारैर्वा यो लिम्पेद्देवतागृहम्॥१३१॥
स कोटिकुलमुद्धृत्य याति साम्यं मधुद्विषः।
शिलाचूर्णेन यो मर्त्यो देवागारं तु लेपयेत्॥१३२॥

उस देव मंदिर की भूमि में जितने रेणु कण हैं, वह उतने कल्प तक हरि की सन्निधि में रहता है। जो मिट्टी किंवा गेरु आदि से देवमन्दिर की भूमि को लीपता है (मिट्टी की भूमि को), वह अपनी करोड़ों पीढ़ी का उद्धारक होकर माधव का सारूप्य प्राप्त करता है। जो व्यक्ति शिलाचूर्ण से देवमन्दिर की भूमि लीपता है।।१३१-१३२।।

स्वस्तिकादीनि वा कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम्।
यः कुर्याद्दीपरचनां देवतायतने नृप॥१३३॥
तस्य पुण्यं प्रसंख्यातुं नोत्सहेऽब्दशतैरपि।
अखण्डदीपं यः कुर्याद्विष्णोर्वा शंकरस्य च॥१३४॥
क्षणे क्षणेऽश्वरमेधस्य फलं तस्य न दुर्लभम्।
अर्चितं शंकरं दृष्ट्वा विष्णुं वापि नमेत्तु यः॥१३५॥
स विष्णुभवनं प्राप्य मोदते च युगायुतम्।
देव्याः प्रदक्षिणामेकां सप्त सूर्यस्य भूमिप॥१३६॥

अथवा मन्दिर में स्वस्तिकादि शुभ चिह्न अंकित कराता है, वह अनन्त पुण्यलाभ करता है। हे नृप! जो देवालय में दीप रचना करता है, उसकी पुण्य की संख्या गणना सौ वर्ष में भी नहीं की जा सकती। जो कोई व्यक्ति

विष्णु किंवा शंकर के समक्ष अखण्ड दीपदान करता है, उसे प्रतिक्षण अश्वमेध यज्ञ का फल मिलना दुर्लभ नहीं है। जो शंकर तथा विष्णु की अर्चना करता है, उनको प्रणाम करता है, वह युग-युगान्तर पर्यन्त विष्णु लोक में आनन्दित होता है। हे भूपति! देवी की एक बार तथा सूर्य की सात परिक्रमा करे।।१३३-१३६।।

तिस्रो विनायकस्यापि चतस्रो विष्णुमन्दिरे।
कृत्वा तत्तद्गृहं प्राप्य मोदते युगलक्षकम्॥१३७॥
यो विष्णोर्भक्तिभावेन तथैव गोद्विजस्य च। प्रदक्षिणां चरेत्तस्य ह्यश्वमेधः पदे पदे॥१३८॥

विनायक की तीन, विष्णु मन्दिर की चार परिक्रमा करे। ऐसा व्यक्ति उन-उन देवता का लोक प्राप्त करके लाखों युग तक वहां मुदित होता है। जो विष्णु, गौ, ब्राह्मण की प्रदक्षिणा भक्तिभावेन करता है, उसे पग-पग पर (प्रदक्षिणा काल में) अश्वमेध फललाभ होता है।।१३७-१३८।।

काश्यां माहेश्वरं लिङ्गं संपूज्य प्रणमेत्तु यः।
न तस्य विद्यते कृत्यं संसृतिर्नैव जायते॥१३९॥
शिवं प्रदक्षिणं कृत्वा सव्येनैव विधानतः।
नरो न च्यवते स्वर्गाच्छंकरस्य प्रसादतः॥१४०॥
स्तुत्वा स्तोत्रैर्जगन्नाथं नारायणमनामयम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा यद्यदिच्छति॥१४१॥
देवतायतने यस्तु भक्तियुक्तः प्रनृत्यति।
गायते वा स भूपाल रुद्रलोके च मुक्तिभाक्॥१४२॥
ये तु वाद्यं प्रकुर्वन्ति देवतायतने नराः। ते हंसयानमारूढा व्रजन्ति ब्रह्मणः पदम्॥१४३॥

जो व्यक्ति काशी में माहेश्वर लिङ्ग पूजनोपरान्त उसे प्रणाम करते हैं, वे पुनः संसार में जन्म नहीं लेते। उसे संसार में कुछ कर्त्तव्य बाकी नहीं रह जाता। जो दक्षिणावर्तक्रमेण सविधि शिव प्रदक्षिणा करता है, वह शंकर की कृपा से कदापि कभी स्वर्गच्युत नहीं होता। जो जगन्नाथ अनामय नारायण की स्तुति स्तोत्रों से सम्पन्न करता है, उसे सभी मनोकामनायें मिल जाती हैं। जो देवमन्दिर में भक्तिपूर्ण होकर नृत्य करता है अथवा गाता है, हे भूपाल! उसे रुद्रलोक तथा मुक्ति मिलती है। जो देवालय में वाद्यवादन करता है, वह हंसयुक्त विमान में आसीन होकर ब्रह्मपद लाभ करता है।।१३९-१४३।।

करतालं प्रकुर्वन्ति देवतायतने तु ये। ते सर्वपापनिर्मुक्ताः विमानस्था युगायुतम्॥१४४॥
देवतायतने ये तु घण्टानादं प्रकुर्वते। तेषां पुण्यं निगदितुं न समर्थः शिवः स्वयम्॥१४५॥
भेरी मृदङ्गपटहमुरजैश्च सडिण्डिमैः। संप्रीणयन्ति देवेशं तेषां पुण्यफलं शृणु॥१४६॥
देवस्त्रीगणसंयुक्ताः सर्वकामैः समर्चिताः।
स्वर्गलोकमनुप्राप्य मोदन्ते कल्पपञ्चकम्॥१४७॥

जो देवालय में ताली बजाता है, वह सर्वपाप रहित तथा विमानासीन होकर दस हजार युग तक स्थित

रहता है। जो देवालय में घण्टा बजाता है, उसके पुण्य को तो स्वयं शिव तक नहीं कह सकते! जो भेरी, मृदंग, पटह, मुरज, डिण्डिम वाद्य बजाकर देवेश को प्रसन्न करते हैं, उनका पुण्यफल श्रवण करिये। वह देवांगनाओं के साथ रहते हुये समस्त मनोकामनाओं की पूर्त्ति करते हैं। वे स्वर्गलोक में पांच कल्प तक मुदित होकर रहते हैं।।१४४-१४७।।

देवतामन्दिरे कुर्वन्नरः शङ्खरवं नृप। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते।।१४८।।

तालकांस्यादिनिनदं कुर्वन् विष्णुगृहे नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्।।१४९।।

यो देवः सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जनः। सर्वधर्मफलं पूर्णं संतुष्टः प्रददाति च।।१५०।।

हे नृप! जो देवालय में शंखवादन करते हैं, वे सर्वपाप रहित होकर विष्णु के साथ आनन्दलाभ करते हैं। जो कांसे के झांझ का निनाद विष्णु मन्दिर में करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है। जो विष्णुदेव ज्ञानरूपी, निरंजन हैं, जो सब ओर दृष्टि रखने वाले हैं, वे जब सन्तुष्ट होते हैं, तब समस्त धर्मफल को पूर्णतया प्रदान कर देते हैं।।१४८-१५०।।

यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिणः। सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते।।१५१।।

परमात्मा जगन्नाथः सर्वकर्म्मफलप्रदः। सत्कर्मकर्तृभिर्नित्यं स्मृतः सर्वार्तिनाशनः।।१५२।।

तमुद्दिश्य कृतं यच्च तदानन्त्याय कल्पते।।१५३।।

हे भूपति! जिन देवदेव चक्रधारी के प्रसन्न होते ही समस्त कर्म सफल हो जाते हैं, वे परमात्मा, जगन्नाथ, सर्वकर्मफल के प्रदाता हैं। उन सर्वार्त्तिनाशन देव का स्मरण करने वाले सत्कर्मकर्त्ता लोग विघ्न रहित तथा सफल हो जाते हैं। उनका स्मरण करने से सब कुछ सफल हो जाता है। उनके उद्देश्य से कृत सभी कर्म अनन्त फलप्रद हो जाते हैं।।१५१-१५३।।

धर्माणि विष्णुश्च फलानि विष्णुः कर्माणि विष्णुश्च फलानि भोक्ता।
कार्यं च विष्णु करणानि विष्णुरस्मान्न किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति।।१५४।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्मानुकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

विष्णु धर्म हैं, वे ही फल हैं। वे ही कर्म तथा कर्मफल भोक्ता भी हैं। वे प्रभु ही कार्य एवं कारण भी हैं। इन विष्णु के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है।।१५४।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पापसमूह का प्रायश्चित्त तथा श्राद्धपञ्चक वर्णन

धर्मराज उवाच

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः। प्रब्रवीमि नृपश्रेष्ठ तं शृणुष्व समाहितः॥१॥

यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चाण्डालं पतितं स्पृशेत्।
क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम्॥२॥

त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं यथासंख्यं समाचरेत्। स्नानं त्रिषवणं विप्र पञ्चगव्येन शुध्यति॥३॥

धर्मराज कहते हैं—हे नृपश्रेष्ठ! मैं श्रुति-स्मृति में वर्णित धर्मों का यथावत् वर्णन कर रहा हूं। जो भोजन काल में क्रोध, अज्ञान के कारण अशुचि पतित चाण्डाल का स्पर्श करता है, उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह तीन रात्रि अथवा छः रात्रि व्रती रहे, त्रिकाल स्नान करे तथा पंचगव्य पान करे। इससे यह विप्र शुद्ध होगा।।१-३।।

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्त्रवते गुदम्।
उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वे च तस्य शुद्धिं वदामि ते॥४॥

पूर्वं कृत्वा द्विजः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत्। अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति॥५॥

भोजन काल में यदि ब्राह्मण का मलस्राव हो जाये, तब उसकी उच्छिष्ठत्व की शुद्धि का विधान कहता हूं। सर्वाग्र में शौच निवृत्त होकर आचमन के पश्चात् अहोरात्र उपवासी रहे तथा तदनन्तर पञ्चगव्य पान करे। इससे यह शुद्ध होगा।।४-५।।

निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने कृते। अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाऽनलम्॥६॥

यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित्।
भूमौ निधाय तं ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात्॥७॥

यदि पवित्र ब्राह्मण को भोजन काल में मूत्रस्राव हो जाये, किंवा वह अज्ञानता से मूत्रत्यागोपरान्त (शुद्ध हुये बिना) भोजन करें, तब वह अहोरात्र उपवासी रहकर घृताहुति देकर होम करें। इससे वह शुद्ध होगा। यदि किसी अन्य कारण से विप्र भोजन काल में अपवित्र हो जाता है, तब वह अपने गृहीत ग्रास को भूमि पर रखकर स्नान द्वारा शुद्ध होगा।।६-७।।

भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुध्यति। अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥८॥

अश्नतश्चेद्वमिः स्याद्वै ह्यस्वस्थस्त्रिशतं जपेत्।
स्वस्थस्त्रीणि सहस्त्राणि गायत्र्याः शोधनं परम्॥९॥
चाण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः॥१०॥
त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत्।
उदक्यां सूतिकां वापि संस्पृशेदन्त्यजो यदि॥११॥

त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति शातातपोऽब्रवीत्।
रजस्वला तु संस्पृष्टा श्वभिर्मातङ्गवायसैः॥१२॥

यदि ब्राह्मण अपवित्र रहते ग्रास उदरस्थ कर लेता है, तब वह उपवास से ही शुद्ध होगा। यदि वह उसी स्थिति में समक्ष रखे भोजन को ग्रहण करे, तब वह त्रिरात्र उपवासी रहकर पवित्र होगा। यदि भोजन काल में वमन हो जाये, तब वह अस्वस्थ अवस्था में तीन सौ गायत्रीजप करे। यदि वह स्वस्थ होकर जप करे, तब उसकी तीन सहस्र गायत्री जप से परमशुद्धि होगी। यदि द्विज मल-मूत्र त्याग की गई अवस्था में चाण्डाल किंवा श्वपच को छू देता है, तब ३ दिन रात उपवासी रहकर शुद्ध होगा। यदि उच्छिष्ट (भोजन करते) रहते चाण्डालादि का स्पर्श हो, तब वह छः दिन रात उपवासी रहे। अन्त्यज नारी किंवा ऋतुमति अथवा सूतिका नारी को छू देने पर त्रिरात्रि उपवास से शुद्धि होगी। यह शातातप मुनि का वचन है। जो रजस्वला नारी कुत्ता, हाथी, कौआ का स्पर्श कर लेती है,।।८-१२।।

निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्काले स्नानेन शुद्ध्यति।
रजस्वले यदा नार्यावन्योन्यं स्पृशतः क्वचित्॥१३॥
शुध्येते ब्रह्मकूर्चेन ब्रह्मकूर्चन चोपरि। उच्छिष्टेन च संस्पृष्टो यो न स्नानं समाचरेत्॥१४॥
ऋतो तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्।
अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत्॥१५॥
उभावप्यशुची स्यातां दम्पती याभसंगतौ।
शयनादुत्थितानारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्॥१६॥
भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती।
दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना॥१७॥

तभी से वह निराहार रहकर ऋतुस्नान सम्पन्न होने पर शुद्ध हो जायेगी। यदि आपस में दो रजस्वला नारी एक दूसरे का स्पर्श कभी कर लेती हैं, तब वे ब्रह्मकूर्च व्रत से शुद्ध हो जाती हैं। उच्छिष्ट स्पर्श के अनन्तर जो मनुष्य स्नान नहीं करता वह भी अशुद्ध ही है। ऋतु स्नानोपरान्त स्त्री से संयोग करने वाला व्यक्ति गर्भस्थिति ज्ञात हो जाने पर स्नान मात्र से शुद्धि प्राप्त कर लेता है। विना गर्भ रहे यदि स्त्री संयोग सम्पन्न हो जाये, तब व्यक्ति शुद्धि हेतु शौच त्याग काल वाला शुद्धि नियम करे। स्त्री-पुरुष संयोगकाल में अशुद्ध हो जाते हैं, लेकिन नारी मात्र शय्यात्याग करते ही शुद्ध हो जाती है। लेकिन पुरुष स्नान तक शुद्ध नहीं होता। जो दुरात्मा नारी पति की सुश्रुषा से विरत रहती है, उसे गृह से निर्वासित करे। द्वादश वर्ष तक घर से दूर रखे तथा धनादि की सहायता भी उसे नहीं प्रदान करे।।१३-१७।।

त्यजन्तो पतितान्बन्धून्दण्ड्यानुत्तमसाहसम्।
पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन॥१८॥
आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः।
मृते मेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः॥१९॥

दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पाणिकं दमम्।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम्॥२०॥

जो अपने निर्दोष तथा जो पतित नहीं हैं, ऐसे बन्धुजन का त्याग कर देता है, उसे दण्डित करे। पिता कदाचित् पतित हो जाये, परन्तु माता कदापि पतिता नहीं हो सकती। जो रस्सी आदि से फांसी लगाकर आत्महत्या करता है, उसकी यदि मृत्यु हो जाये, तब उसके शव पर पवित्र वस्तु का लेप कर देना चाहिये। यदि वह जीवित बच जाये, तब उस पर दो सौ मुद्रा का दण्ड लगाये। उसके जो पुत्र-मित्रादि सम्बन्धी हैं, उन पर भी अर्थदण्ड लगाये। ये सभी शास्त्रोक्त विधि से प्रायश्चित्त करे।।१८-२०।।

जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः। विषप्रपतनध्वस्ताः शस्त्रघातहताश्च ये॥२१॥
न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः।
चान्द्रायणेन शुद्ध्यंन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा॥२२॥
उभयावसितःपापश्यामच्छबलकाच्च्युताः ।
चान्द्रायणाभ्यां शुद्ध्येन दत्त्वा धेनुं तथा वृषभ॥२३॥

जो जल, अग्नि तथा इस प्रकार (स्वयं आत्महत्या से) बच जाते हैं, जो रस्सी से फांसी लगाकर भी आत्महत्या करने से बच जाते हैं, जो प्रवज्या (संन्यास पालन) से भ्रष्ट हो जाते हैं, जो विषपान करके तथा शस्त्राघात करके मृत होने से बच जाते हैं, उनके लिये किसी प्रायश्चित्त का विधान नहीं है, तथापि वे चान्द्रायण तथा दो तप्तकृच्छ्र व्रतों से शुद्धिलाभ कर लेते हैं। जो अपनी इन्द्रिय चंचलतावशात् नाना प्रलोभनयुक्त पापों से दूर नहीं रह पाते, वे लोग दो चान्द्रायण व्रताचरण करे तथा धेनु एवं वृषभ का दान करे।।२१-२३।।

श्वशृगालप्लवङ्गाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना।
स्पृष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु॥२४॥
अज्ञानाद्वा तु यो भुक्त्वा चाण्डालान्नं कथंचन।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति॥२५॥
गोब्राह्मणगृहं दग्ध्वा मृतं चोद्बद्धन्धनादिना।
पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्द्विजः॥२६॥

यदि कुत्ता, शृगाल, वानर तथा (अस्पृश्य) व्यक्ति का स्पर्श बिना इच्छा हो जाये, तब व्यक्ति दिन-सन्ध्या तथा रात्रि, जो भी काल हो स्नान से शुद्ध होगा। जो व्यक्ति अज्ञानतः कभी चाण्डाल का अन्न भक्षण कर लेता है, उसकी शुद्धि १५ दिनों तक गोमूत्र तथा कुलथी खाकर रहने से होगी। यदि ब्राह्मण का निवासस्थल दग्ध होते समय कोई गौ, पशु बद्ध रह जाये तथा मृत हो जाये, तब वह द्विज पहले उसका बन्धन काटे तथा एक कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रत करे।।२४-२६।।

चाण्डालपुल्कसानां न भुक्त्वा हत्वा च योषितम्।
कृच्छ्रार्द्धमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२७॥
कापालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा। अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे॥२८॥

तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्ध्यति। महापातककर्त्तारश्चत्वारोऽथ विशेषतः॥२९॥

यदि जान-बूझकर कोई व्यक्ति चाण्डाल एवं पुल्कस के यहां उसका अन्न खा लेता है तथा यदि किसी स्त्री का वध कर देता है, तब वह अर्द्धकृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रताचरण करे। यदि द्विज से यह सब कार्य बिना जाने अज्ञानतः हो गया हो, तब वह दो सोमवार को व्रती रहे। जिसने कापालिक का अन्न भक्षण किया हो, किंवा उसकी स्त्री से समागम किया हो, अथवा जिस द्विज ने अगम्यागमन, मद्य, गोमांस भक्षण कर लिया है, वह तप्तकृच्छ्र व्रत तथा मौर्वी होम सम्पन्न करने से शुद्ध होगा। मुख्यतः चार ऐसे पातक हैं, जिनको महापातक कहा जाता है।।२७-२९।।

अग्निं प्रविश्य शुद्ध्यन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ।
रहस्यकरणोऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः॥३०॥
अघमर्षणसूक्तं वा शुद्ध्येदन्तर्जले जपन्। रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च॥३१॥
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते ह्यन्त्यजाः स्मृताः।
भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वा यः प्रतिगृह्यते॥३२॥
कृच्छ्रार्द्धमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम्। मातरं गुरुपत्नीं च दुहितृभगिनीस्नुषाः॥३३॥

ये महापातकी अग्नि में प्रवेश करने पर ही शुद्ध हो पाते हैं। किंवा महान् यज्ञ जैसे राजसूय, अश्वमेध आदि से इनकी शुद्धि होती है। जो रहस्य प्रकट करता है किंवा पापकर्म में सहयोग करता है, वह जल में निमग्न होकर अघमर्षण सूक्त जप करे। धोबी, चर्मकार, नट, बुरुड़, केवट, भील, भेद—ये सात अन्त्यज होते हैं। जो ज्ञानतः इनका अन्न भक्षण, इनकी नारी से सहवास, इनका जलपान किंवा इनका दान लेता है, वह द्विज अर्द्धकृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रताचरण से शुद्ध होगा। माता, गुरुपत्नी, कन्या, बहन तथा पुत्रवधु।।३०-३३।।

संगम्य प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते।
राज्ञीं प्रव्रजितां धात्रीं तथा वर्णोत्तमामपि॥३४॥
गत्वा कृच्छ्रद्वयं कुर्यात्सगोत्रामभिगम्य च। अमूषु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतासु च॥३५॥

इनसे मैथुन करने वाले व्यक्ति का एकमात्र प्रायश्चित्त है कि वह अग्नि में प्रवेश करे। अन्य शुद्धि का उपाय ही नहीं है। रानी, संन्यासिनी, धाय, अपने से उच्च वर्ण की नारी किंवा सगोत्रा से मैथुन करने पर व्यक्ति दो बार कृच्छ्रव्रताचरण करें। पितृगोत्रीय तथा मातृगोत्रीय स्त्री से संगम हो जाने पर भी दो बार कृच्छ्र व्रताचरण करे।।३४-३५।।

परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रार्द्धं तपनं चरेत्। वेश्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजास्तथा॥३६॥
पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पञ्चरात्रं कुशोदकम्।
गुरुतल्पगतो कुर्याद्ब्रह्मणो विधिवद्व्रतम्॥३७॥

पराई स्त्री से सहवास हो जाने पर अर्द्धकृच्छ्र व्रताचरण करे। द्विजगण वेश्यागमन करने पर पांच दिनों तक दिन में एक बार अत्युष्ण जल में कुश भिगोकर उस जल को पीने से पवित्र हो जायेंगे। गुरुपत्नीगामी सविधि व्रताचरण करे।।३६-३७।।

गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः।
दण्डादूर्ध्वं प्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत्॥३८॥
द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विशोधयेत्। अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः॥३९॥
सार्द्रकस्सपलाशश्च गोदण्डः परिकीर्त्तितः। गवां निपातने चैव गर्भोऽपि संभवेद्यदि॥४०॥
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं एषा गोघ्नस्य निष्कृतिः।
बन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजाम्॥४१॥
संपद्यते चेन्मरणं निमित्तेनैव लिप्यते। मूर्च्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतस्ततः॥४२॥
उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पञ्चदशापि वा।
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि॥४३॥
सर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते। काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि॥४४॥

गो हत्यारे हेतु जिस व्रत का विधान है, वही व्रत गुरुपत्नीगामी भी करे। जिसने गोदण्ड प्रहार से गौ को भूपतित किया हो, वह द्विगुणित गो व्रताचरण करे। एक अंगुल स्थूल तथा एक हाथ लम्बाई वाली पलाश की लकड़ी किंवा अन्य गीली लकड़ी को गोदण्ड कहते हैं। सगर्भा गौ भूपतित हो जाने पर (आघात से) गर्भ एवं गौ हेतु एक-एक कृच्छ्र व्रताचरण करना होगा। यही ऐसे गो हत्यारे का प्रायश्चित है। बांधने, बंदी बनाने, आहार कराने किंवा रुग्णता में दवा के कारण गौ मृत हो, तब भी निमित्त होने का पाप लग ही जाता है। यदि गौ दण्ड प्रहार से मूर्च्छित, भूपतित हो जाये परन्तु पुनः उत्थित होकर ६-७-१५ पग चल दें, तदनन्तर स्वस्थता पूर्वक घास खाना किंवा पानी-पीना प्रारम्भ कर दे, तब कोई प्रायश्चित्त नहीं रहता, क्योंकि प्रहार पीड़ा नष्ट हो गई। गौ पर यदि काष्ठ से आघात, पत्थर आदि से आघात, शस्त्र के आघात से यदि गौ मर जाये।।३८-४४।।

प्रायश्चित्तं स्मृतं तत्र शस्त्रे शस्त्रे निगद्यते। काष्ठे सान्तपनं प्रोक्तं प्राजापत्यं तु लोष्टके॥४५॥

उस स्थिति में तप्तकृच्छ्रव्रत करे। शस्त्राघात से गौ मरने पर अतिकृच्छ्र व्रत करे। काष्ठ से गौ मृत होने पर सान्तपन, पत्थर, ढेले के प्रहार से गौ मरने पर प्राजापत्यव्रत करे।।४५।।

तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम्।
औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च॥४६॥
दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं तदा नहि। तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे॥४७॥
निशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते। वत्सानां कण्ठबन्धेन क्रियया भेषजेन तु॥४८॥
सायं संगोपनार्थं च त्वदोषो रोषबन्धयोः।
पादे चैवस्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम्॥४९॥
त्रिपादे तु शिखावर्तं मूले सर्वं समाचरेत्। सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम्॥५०॥

पाषाण का आघात करने से गो हत्या होने पर तप्तकृच्छ्र व्रत करे। गौ पर शस्त्र से आघात करने पर अति कृच्छ्रव्रत करे। यदि गौ किंवा ब्राह्मण को औषधि अथवा तैलयुक्त आहार देने से दुर्घटना हो जाये, तब उसका कोई

भी प्रायश्चित्त नहीं करना होगा। गौ के देह से कण्टक आदि निकालने, उनको शल्य रहित करने का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है। यदि बछड़ों को रज्जु से बांधने, औषधि पिलाने तथा सायंकाल उनको गुप्तरूप से रखने में यदि उन पर रोष दिखलाना पड़े, इसका कोई दोष नहीं होता। एक पाद प्रायश्चित्त में कुछ रोयें कटवाये (अपने शरीर का रोम बाल इत्यादि कटवाये) द्विपाद प्रायश्चित्त में मूछ-दाढ़ी कटवाये, त्रिपाद प्रायश्चित्तार्थ मुण्डन कराये, परन्तु शिखा बचाये रहे। पूर्ण प्रायश्चित्त में इन तीनों विधि का पालन करना चाहिये। स्त्रियों हेतु उनके समस्त केश को दो अंगुल छोटा कराये।।४६-५०।।

एवमेव तु नारीणां मुण्डनं शिरसः स्मृतम्।
न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम्।।५१।।
न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनुव्रजेत्।
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः।।५२।।
अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्।
केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत्।।५३।।
द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणा व्रतदक्षिणा।।५४।।

स्त्रियों हेतु मुण्डन का विधान नहीं है। स्त्री मुण्डन न कराये। वीरासन से न बैठे। गोष्ठ में न रहे। गाय जा रही हो, तब उसके पीछे न चले। राजा, राजकुमार तथा बहुश्रुत ब्राह्मण का प्रायश्चित्त नियम मुण्डन संस्कार रहित होता है। केश रक्षणार्थ दूना व्रत करना होगा। दूना व्रत सम्पन्न होने पर द्विगुण दक्षिणा देनी चाहिये।।५१-५४।।

पापं न क्षीयते हन्तुर्दाता च नरकं व्रजेत्। अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये।।५५।।
तान्धर्मविघ्नकर्तॄंश्च राजा दण्डेन पीडयेत्। न चैतान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः।।५६।।
तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति। प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्।।५७।।
विंशतिर्गा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणम्।
क्रिमिभिस्तृणसंभूतैर्मक्षिकादिनिपातितैः ।।५८।।
कृच्छ्रार्द्धं स प्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्।
प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।।५९।।

जो श्रोत तथा स्मार्त्त विधान के प्रतिकूल प्रायश्चित्त का विधान बतलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं। उनकी विधि से पातक नष्ट नहीं होता। ऐसे धर्मविघ्न करने वाले को राजा दण्ड देकर कष्ट प्रदान करे। यदि राजा स्वेच्छा किंवा किसी स्वार्थ के कारण से मोहित होकर ऐसे व्यक्ति को पीड़ित नहीं करेगा, तब वह राजा को वही पातक सौगुणित होकर लगेगा। सभी प्रायश्चित्त के अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। तब बीस गौ तथा एक वृष दक्षिणा में अवश्य प्रदान करना होगा। यदि घास के कीट के कारण मक्षिकादि के कारण गौ मृत हो जाये, तब अर्द्धकृच्छ्र व्रत तथा दक्षिणा यथाशक्ति देना चाहिये। इस प्रायश्चित्त के उपरान्त श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराये।।५५-५९।।

सुवर्णमानिकं दद्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते।
चाण्डालश्वपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते॥६०॥

न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति। वसेदथ यदां रात्रावज्ञानादविचक्षणः॥६१॥
तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्त्तते। उद्गच्छन्ति च नक्षत्राण्युपरिष्टाच्च ये ग्रहाः॥६२॥
वृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदकस्नानमाचरेत्। याश्चान्तर्जलवल्मीकमूषिकोषरवर्त्मसु॥६३॥

श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः।
इष्टापूर्तं तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः॥६४॥

इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षं पूर्त्तेन चाप्नुयात्। वित्तक्षेपो भवेदिष्टं तडागं पूर्त्तमुच्यते॥६५॥

उन ब्राह्मणों को स्वर्ण, मानिक देने से शुद्धि हो जाती है। चाण्डाल तथा श्वपच स्पर्श पर ऐसे ही न रहे। रात्रि की प्रतीक्षा न करके सद्यः स्नान करने से शुद्धि होती है। यद्यपि चाण्डाल श्वपच स्पर्श पर रात्रि विधान का नियम है। यदि अज्ञानी व्यक्ति रात्रि तक ऐसे ही रह जाता है, तब उसका पाप सौ गुना बढ़ जायेगा। नक्षत्र उदित रहते अशुद्ध स्थिति में यदि उनकी किरणों का देह से स्पर्श हो जाये, तब जल से स्नान करे। जल में अन्दर की मृत्तिका, दीमकों की बांबी की मृतिका, मूषक बिल की मृत्तिका, उसर भूमि की, मार्ग की, श्मशान की, शौचार्थ ग्रहण की गई, द्विज इन सात प्रकार की मृतिका को इष्ट तथा पूर्त-कर्म में ग्रहण न करे। इष्ट कार्य से स्वर्गलाभ होता है, पूर्तकर्म से मोक्षलाभ होता है। वित्तदानादि यज्ञादि इष्ट कर्म है। तड़ाग आदि बनवाना पूर्त कर्म है।।६०-६५।।

आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च। वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च॥६६॥

पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्वफलमश्नुते।
शुक्लाया आहरेन्मूत्रं कृष्णायाः गोः शकृत्तथा॥६७॥
ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेतायाश्च दधि स्मृतम्।
कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम्॥६८॥

वाटिका, देवद्रोणी, बाबली, कूप, तड़ाग, देवमन्दिर की पुनः मरम्मत आदि कराना इसके फल को पूर्व में कहा गया है। वही फल मिलता है। श्वेतवर्ण गौ का मूत्र, कृष्णवर्ण गौ का गोमय, लालवर्ण गौ का दुग्ध, धवल गौ का (श्वेत वर्ण गौ) दधि और कपिला का घृत लेना चाहिये। ये महापातक नाशक द्रव्य हैं।।६६-६८।।

कुशैस्तीर्थनदीतोयैः सर्वद्रव्यं पृथक् पृथक्। आहत्य प्रणवेनैव उत्थाप्यं प्रणवेन च॥६९॥
प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनैव संपिबेत्। पालाशे मध्यमे पर्णभाण्डे ताम्रमये शुभे॥७०॥
पिबेत्पुष्करपर्णे वा मृन्मये वा कुशोदकम्। सूतके च समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते॥७१॥
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुध्यति। जातेन शुध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा॥७२॥

कुशा जल, तीर्थ जल, नदी जल—इन तीनों को पृथक्तः ॐकार का जप करते लाये। इन तीनों को

प्रणव जपते एक में मिलाया जाये। तदनन्तर प्रणवोच्चार के साथ पान करे। कुशोदक को सदा पलाश पत्र के मध्य में रखकर, स्वच्छ ताम्रपात्र में, कमलपत्र में रखकर अथवा मिट्टी के पात्र में पान करे। एक सूतक लगा हो, बीच में ही अन्य सूतक हो जाये, तब प्रथम सूतक की अन्त्य अवधि में ही दोनों के दोष की शान्ति होती है। नियम है कि प्रथम जनन शौच से द्वितीय जनन शौच की शुद्धि हो जाती है। तदनुरूप प्रथम मरण शौच से ही द्वितीय मरण शौच की शुद्धि हो जाती है।।६९-७२।।

गर्भसंस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत्॥७३॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला॥७४॥
स्वगोत्राद्भ्रृश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे।
स्वामिगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रियाः॥७५॥
उद्देश्यं पिण्डदाने स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामतः।
षण्णां देयास्त्रयः पिण्डा एवं दाता न मुह्यति॥७६॥

गर्भस्राव होने पर उस दिन से लगाकर तीन दिन तक दोष रहेगा। जितने मास का गर्भ हो, वह दोष उतनी रात्रि तक रहता है। तदनन्तर शुद्धि हो जायेगी। रजःश्राव के अनन्तर रजस्वला स्त्री स्नान मात्र से शुद्ध हो जाती है (?)। विवाह काल में सप्तपदी सम्पन्न होते ही वधु अपने गोत्र की नहीं रहती वह वर के गोत्र की मानी जाती है। अतः मृत स्त्री का श्राद्धकर्म पति के गोत्र से करे। प्रति पिण्डदान में नामद्वय का निर्देश है। छः व्यक्ति को तीन पिण्ड ही दें। इससे दाता दोषभागी नहीं होगा।।७३-७६।।

स्वेन भर्त्रा सहस्राब्दं माता भुक्त्वा सुदैवतम्। पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही॥७७॥
वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम्।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत्॥७८॥

(दिवंगत) माता अपने भर्त्ता के साथ एक हजार वर्ष स्वर्ग सुख का उपभोग करती रहती है। पितामही, प्रपितामही भी अपने पति के साथ स्वर्ग में रहती हैं। प्रतिवर्ष माता-पिता का श्राद्ध सम्पन्न करे। श्राद्ध में ज्योतिषी को भोजन न कराये। श्राद्ध में एक पिण्ड प्रदान करे।।७७-७८।।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम्।
पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पञ्चविधं बुधैः॥७९॥
ग्रहोपरागे संक्रान्तौ पर्वोत्सवमहालये। निर्वपेत्त्रीन्नरः पिण्डानेकमेव मृतेऽहनि॥८०॥
अनूढा न पृथक्कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके।
पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यते ततः॥८१॥
येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते। तत्समं सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च॥८२॥
विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु। एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके॥८३॥

प्रथमेऽह्नि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके।
अस्थिसञ्चयनं कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभिः॥८४॥

बुद्धिमान् लोगों ने नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य, वृद्धि तथा पार्वण नामक पांच प्रकार के श्राद्ध कहे हैं। ग्रहणकाल, संक्रान्ति, पर्वोत्सव, महालया में व्यक्ति अपने मृत परिवारजन में तीन पिण्ड तीन को प्रदान करे। अविवाहित कन्या को पिण्ड तथा अशौच आदि में पिता के ही गोत्र को मानते हैं, लेकिन विवाह पाणिग्रहण क्षण से ही वह पति के गोत्रवाली हो जाती है। विवाह के चतुर्थ दिन से तदनुरूप ही अशौच (सूतक), श्राद्ध क्रिया की जाती है अर्थात् पति के गोत्र से ही सब होगा। व्यक्ति के मृत होने के अनन्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ दिन में से किसी दिन मृतक के हितार्थ उसके बन्धु अस्थिसंचय कर्म सम्पन्न करे।।७९-८४।।

चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः॥८५॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः। मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते॥८६॥

नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेन तु चिन्तयेत्।
आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन्॥८७॥
हस्तौ कृत्वा तु संयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये विनिःक्षिपेत्॥८८॥
आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुखः।
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणादिक् तथैव च॥८९॥

आपो देवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा। तस्मादस्य जलं देयं पितॄणां हितमिच्छता॥९०॥

ब्राह्मण मृतकतिथि के चौथे दिन, क्षत्रिय पंचम दिन, वैश्य सप्तम दिन तथा शूद्र नवम दिन अस्थिसंचय करे। एकादशाह पर मृतक के उद्देश्य से वृषोत्सर्ग करना चाहिये। इससे प्रेत प्रेतलोक से मुक्त होकर स्वर्गलोक में सादर जाता है। नाभि तक के गहरे जल में खड़े होकर हृदय से प्रेत का चिन्तन करके कहे—हे पितृगण! आप आकर जलांजलि स्वीकार करे।" इस मन्त्र से जल अंजलि में लेकर अंजलि शिर के कुछ ऊपर-उठाकर दक्षिण मुख खड़ा होना चाहिये। वहां से आकाश की ओर उठे हाथ से जल छोड़े। दक्षिण पितृगण की दिशा है। पितृगण का स्थल है आकाश। जल ही देवगण तथा पितृगण दोनों हैं। पितरों का हितकामी वंशज पितरों के हितार्थ जल प्रदान करे।।८५-९०।।

दिवासूर्यांशुसन्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः। मध्ययोरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम्॥९१॥
स्वभावयुक्तमव्यक्तममेध्येन सदा शुचिः। भाण्डस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम्॥९२॥
देवतानां पितॄणां च जलं दद्याज्जलाञ्जलीन्। असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याद्विचक्षणः॥९३॥
श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना। उभाभ्यां तर्पणे दद्यादेष धर्मो व्यवस्थितः॥९४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्मशान्तिनिर्देशो नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

जल दिवाकाल में सूर्य किरणों से तप्त होकर रात्रि में नक्षत्र तथा वायु से स्पर्शित होता है और सायं सूर्य-चन्द्र उभय के स्पर्श द्वारा पावन ही रहता है। जो स्वभावयुक्त अव्यक्त जल है, वह सतत् पवित्र है। पात्रस्थ, पृथिवी तलस्थ, सरोवर, तड़ाग का जल सदा पावन है। देवता तथा पितरों को जलांजलि देना चाहिये। जो मृतक संस्कार तथा प्रमाणहीन हो, उनके लिये भूमि पर जल छोड़ दे। श्राद्ध तथा हवन के समय एक हाथ से जल दान करे। तर्पणार्थ उभय हाथ से जलदान करे।।९१-९४।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

नरक यातना तथा गंगा को लाया जाना

धर्मराज उवाच

पापभेदान्प्रवक्ष्यामि यथा स्थूलाश्च यातनाः। शृणुष्व धैर्यमास्थाय रौद्रा ये नरका यतः॥१॥
पापिनो ये दुरात्मानो नरकाग्निषु सन्ततम्। पच्यन्ते येषु तान्वक्ष्ये भयंकरफलप्रदान्॥२॥
तपनो वालुकाकुम्भो महारौरवरौरवौ। कुम्भीपाको निरुच्छ्वासः कालसूत्रः प्रमर्दनः॥३॥
असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षो हिमोत्कटः। मूषावस्था वसाकूपस्तथा वैतरणी नदी॥४॥
भक्ष्यन्ते मूत्रपानं च पुरीषह्रद एव च। तप्तशूलं तप्तशिला शाल्मलीद्रुम एव च॥५॥
तथा शोणितकूपश्च घोरः शोणितभोजनः। श्वमांसभोजनं चैव वह्निज्वालानिवेशनम्॥६॥

धर्मराज कहते हैं—हे राजन्! अब मैं पापभेद तथा उसके कारण मिलने वाली स्थूल यातनाओं का वर्णन करता हूं। ये नरक अत्यन्त रौद्र होते हैं। धैर्य पूर्वक इनका वर्णन श्रवण करो। दुरात्मा पातकी लोग सतत् नरक की अग्नि में तप्त होते हैं। मैं इन भयंकर फल देने वाले नरकों का वर्णन कर रहा हूं। तपन, बालुकाकुंभ, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र, प्रमर्दन, असिपत्रवन जो अतीव घोर है, लालाभक्ष, हिमोत्कट, मूषावस्था, वसाकूप तथा वैतरणी नदी इनके नाम हैं। ये कतिपय नरक कहे गये हैं। पुरीषह्रद नरक में पापीगण मूत्र तथा विष्ठा का भोजन करते रहते हैं। तप्तशूल, तप्तशिला, शाल्मलीवृक्ष, शोणितकूप, घोरक्षोणित भोजन, श्वमांसभोजन, वह्निज्वाला निवेशन,।।१-६।।

शिलावृष्टिः शस्त्रवृष्टिर्वह्निवृष्टिस्तथैव च। क्षारोदकं चोष्णतोयं तप्तायः पिण्डभक्षणम्॥७॥
अथ शिरःशोषणं च मरुत्प्रपतनं तथा। तथा पाषाणवर्षं च कृमिभोजनमेव च॥८॥
क्षारोदपानं भ्रमणं तथा क्रकचदारणम्। पुरीषलेपनं चैव पुरीषस्य च भोजनम्॥९॥
रेतः पानं महाघोरं सर्वसन्धिषु दाहनम्। धूमपानं पाशबन्धं नाना शूलानुलेपनम्॥१०॥

अङ्गारशयनं चैव तथा मुसलमर्द्दनम्। बहूनि काष्ठयन्त्राणि कषणं छेदनं तथा॥११॥
पतनोत्पतनं चैव गदादण्डादिपीडनम्। गजदन्तप्रहरणं नानासर्पैश्च दंशनम्॥१२॥
शीताम्बुसेचनं चैव नासायां च मुखे तथा। घोरक्षाराम्बुपानं च तथा लवणभक्षणम्॥१३॥

शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, वह्निवृष्टि, क्षारउदक, उष्णतोय, तप्तपिण्डभक्षण, शिरःशोषण, मरुत्प्रपतन, पत्थरवर्ष, कृमिभोजन, क्षारोदपान, भ्रमण, क्रकचदारण, पुरीषलेपन, पुरीष भोजन, वीर्य (रेतः पान) पान, सभी सन्धियों में तीव्र दहन, धूमपान, पाशबन्ध, नानाशूलानुलेपन, अंगारशयन, मूसलमर्दन, अनेक काष्ठयन्त्रों में दबाना, काटना, पतनोत्पतने, गदा-दण्डादि से पीड़ित करना, हाथी के दांतों से प्रहार, नाना सर्पों से डंस, नासिका-मुख में शीतलजल छोड़ना, घोर क्षारमय जल पिलाना, लवण खिलाना।।७-१३।।

स्नायुच्छेदं स्नायुबन्धमस्थिच्छेदं तथैव च।
क्षाराम्बुपूर्णरन्ध्राणां प्रवेशं मांसभोजनम्॥१४॥
पित्तपानं महाघोरं तथैव श्लेष्मभोजनम्। वृक्षाग्रात्पातनं चैव जलान्तर्मज्जनं तथा॥१५॥
पाषाणधारणं चैव शयनं कण्टकोपरि। पिपीलिकादंशनं च वृश्चिकैश्चापि पीडनम्॥१६॥
व्याघ्रपीडा शिवापीडा तथा महिषपीडनम्। कर्द्दमे शयनं जैव दुर्गन्धपरिपूरणम्॥१७॥
बहुशश्चार्धशयनं महातिक्तनिषेवणम्। अत्युष्णतैलपानं च महाकटुनिषेवणम्॥१८॥
कषायोदकपानं च तप्तपाषाणतक्षणम्। अत्युष्णशीतस्नानं च तथा दर्शनशीर्णनम्॥१९॥
तप्तायः शयनं चैव ह्ययोभारस्य बन्धनम्।
एवमाद्या महाभाग यातना कोटिकोटिशः॥२०॥

स्नायु को छेदना, स्नायुबन्ध, अस्थिछेदन, क्षारजल वाले रन्ध्रों में घसीटना, मांसभोजन, पित्तपान, महाघोर श्लेष्मभोजन, वृक्षों के ऊपर से फेंकना, जल में डुबाना, पत्थर से दबाना, कांटों पर शयन कराना, चीटीं से डंसवाना, बिच्छू से डंक मरवाना, व्याघ्र से कटवाना, सियारों से तथा महिष से पीड़ित कराना, कीचड़ में शयन कराना, दुर्गन्धित स्थान में रखना, अतीव तिक्त वस्तु खिलाना, गरम तैल पिलाना, अत्यन्त कटु वस्तु खिलाना, कषाय जल को पिलाना, तपते पत्थरों से काटना, अत्यन्त गरम तथा ठंडे जल से स्नान करना। दांतों को तोड़ना, तप्त स्थान पर लिटाना, तप्त लौह से बांधना, हे महाभाग! ऐसी करोड़ों-करोड़ यातना नरक में दी जाती है।।१४-२०।।

अपि वर्षसहस्रेण नाहं निगदितुं क्षमः। एतेषु यस्य यत्प्राप्तं पापिनः क्षितिरक्षक॥२१॥
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु। ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः॥२२॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः। पंक्तिभेदी वृथावाकी नित्यं ब्राह्मणदूषकः॥२३॥
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः। ब्राह्मणं यः समाहूय दास्यामीति धनादिकम्।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम्॥२४॥

मैं उन यातनाओं का वर्णन हजारों वर्ष में भी नहीं कर सकता। हे पृथिवी की रक्षा करने वाले! जिस

पाप को करने पर पापी जिस नरक में जाता है, वह सुनिये। ब्रह्म हत्यारे, मद्यप, स्वर्णचोर, गुरुपत्नीगामी तथा इन चारों के सम्पर्क में रहने वाला, ये पांच महापापी होते हैं। पंक्तिभेदक (जो एक ही पंक्ति में बैठाये गये लोगों को अन्न भेदभाव से देता है), वर्जित पदार्थ पाक करने वाला, सर्वदा द्विजनिन्दक, जो उलटे ब्राह्मण को आज्ञा प्रदान करे, वेद विक्रेता—इन पांचों को भी ब्रह्महत्यारा कहते हैं। जो यह कहकर ब्राह्मणों को बुलाये कि धन दूंगा, बाद में—"नहीं है" कहकर उनको निराश करे, वह भी ब्रह्महत्यारा ही है।।२१-२४।।

स्नानार्थं पूजनार्थं वा गच्छतो ब्राह्मणस्य यः।
समायात्यंतरायत्वं तमाहुर्ब्रह्मघातिनम्॥२५॥

परनिन्दासु निरतश्चात्मोत्कर्षरतश्च यः। असत्यनिरतश्चैव ब्रह्महा परिकीर्तितः॥२६॥
अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तितः। अन्योद्वेगरतश्चैव अन्येषां दोषसूचकः॥२७॥
दम्भाचाररतश्चैव ब्रह्महेत्यभिधीयते। नित्यं प्रतिग्रहग्रस्तस्तथा प्राणिवधे रतः॥२८॥
अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तितः। ब्रह्महत्यासमं पापमेवं बहुविधं नृपः॥२९॥

जो व्यक्ति स्नान तथा पूजनार्थ उद्यत ब्राह्मण को रोकता किंवा विघ्न उत्पन्न करता है, वह भी ब्रह्मघातकी है। जो सर्वदा पराई निन्दा तथा अपना उत्कर्ष बखानता रहता है, असत्य भाषण तत्पर है, वह भी ब्रह्महत्यारा है। अधर्म कृत्यों को समर्पित करने वाला भी ब्रह्मघाती ही है। जो सदा अन्य लोगों को उद्विग्नता प्रदान करता है, पराये दोष देखता है, पाखण्डी है, नित्य दान लेता है, प्राणी हत्यारा है तथा अधर्म समर्थक है, वह भी ब्रह्म हत्यारा ही है। हे नृप! ब्रह्महत्या की तरह के अनेक पातक हैं।।२५-२९।।

सुरापानसमं पापं प्रवक्ष्यामि समासतः। गणान्नभोजनं चैव गणिकानां निषवणम्॥३०॥
पतितान्नादनं चैव सुरापानसमं स्मृतम्। उपासनापरित्यागो देवलानां च भोजनम्॥३१॥
सुरापयोषित्संयोगः सुरापानसमं स्मृतः। यः शूद्रेण समाहूतो भोजनं कुरुते द्विजः॥३२॥
सुरापी स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः। यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातः प्रेष्यकर्म करोति च॥३३॥
सुरापानसमं पापं लभते स नराधमः। एवं बहुविधं पापं सुरापानसमं स्मृतम्॥३४॥

अब मैं मद्यपान की ही तरह वाले अनेक पापों का संक्षिप्त वर्णन करता हूं। गण (समूह के अन्न का) के अन्न का भोजन, गणिका सेवन, पातकी से अन्नदान, ये सभी मद्यपानवत् पातक हैं। उपासना त्याग, मन्दिर के पुजारी का अन्न भोजन, मद्यपायी स्त्री से मैथुन, यह सब सुरापानवत् ही पातक हैं। जो द्विज शूद्र के आमन्त्रण पर उसके यहां भोजन करता है, वह भी सर्वधर्म बहिष्कृत है तथा मद्यप ऐसा पातकी है। जो शूद्रों के यहां दास्यकर्म करता है, वह नराधम मद्यप ऐसा पापभागी है। ऐसे अनेक पाप हैं, जो सुरापान जैसे कहे गये हैं।।३०-३४।।

हेमस्तेयसमं पापं प्रवक्ष्यामि निशामय। कन्दमूलफलानां च कस्तूरीपटवाससाम्॥३५॥

सदा स्तेयं च रत्नानां स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम्।
ताम्रायस्त्रपुकांस्यानामाज्यस्य मधुनस्तथा॥३६॥

स्तेयं सुगन्धद्रव्याणां स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम्। क्रमुकस्यापि हरणमम्भसां चन्दनस्य च॥३७॥

पर्णरसापहरणं स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम्। पितृयज्ञपरित्यागो धर्मकार्यविलोपनम्॥३८॥
यतीनां निन्दनं चैव स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम्। भक्ष्याणां चापहरणं धान्यानां हरणं तथा॥३९॥
रुद्राक्षहरणं चैव स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम्। भगिनीगमनं चैव पुत्रस्त्रीगमनं तथा॥४०॥
रजस्वलादिगमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम्। हीनजात्याभिगमनं मद्यपस्त्रीनिषेवणम्॥४१॥
परस्त्रीगमनं चैव गुरुतल्पसमं स्मृतम्। भ्रातृस्त्रीगमनं चैव वयस्यस्त्रीनिषेवणम्॥४२॥
विश्वस्तागमनं चैव गुरुतल्पसमं स्मृतम्। अकाले कर्मकरणं पुत्रीगमनमेव च॥४३॥
धर्मलोपः शास्त्रनिन्दा गुरुतल्पसमं स्मृतम्। इत्येवमादयो राजन्महापातकसंज्ञिताः॥४४॥

अब मैं स्वर्णचोरी के बराबर वाले पातकों को कहता हूं। कंद-मूल-फल, कस्तूरी, सिल्क के कपड़े तथा रत्न चोरी स्वर्ण चोरी जैसा पातक है। ताम्र, लौह, रांगा, कांस्य, घृत, मधु, सुगन्ध द्रव्यों को चुराना भी स्वर्ण चौर्यवत् पातक है। सुपारी, चन्दन, जल, पान तथा रसादि की चोरी भी स्वर्ण चौर्यवत् ही है। पितृयज्ञ त्याग, धर्मकार्य न करना, संन्यासी यतीगण की निन्दा करना स्वर्ण चौर्यवत् पातक है। भोजन का हरण, धान्य का हरण, रुद्राक्षहरण, ये सभी स्वर्ण चौर्यवत् पातक हैं। पतोहू तथा बहन से संभोग करना रजस्वला से समागम—ये सभी पाप गुरुपत्नीगमन जैसे पातक हैं। भाई की पत्नी, मित्र की पत्नी, हीन जाति की पत्नी, मद्यप की पत्नी, विश्वस्त की पत्नी से समागम को गुरुपत्नी गमनवत् पातक कहा गया है। हे राजन्! इस प्रकार ये सभी महापाप कहे गये हैं।।३५-४४।।

एतेष्वेकतमेनापि सङ्गकृत्तत्समो भवेत्। यथाकथंचित्पापानामेतेषां परमर्षिभिः॥४५॥
शान्तैस्तु निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तादिकल्पनैः।
प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते॥४६॥

इन महापापियों का जो संग करता है, वह भी महापापी ही है। यद्यपि परमर्षिगण ने इन पापों के लिये प्रायश्चित्त प्रभृति का विधान अवश्य करके इनकी निष्कृति के लिये कहा तो है, तथापि हे राजन्! कतिपय पातक ऐसे भी कहे गये हैं, जिनका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। अब आप उनका श्रवण करिये।।४५-४६।।

समस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च। ब्रह्महत्यादिपापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत्॥४७॥
ब्राह्मणं द्वेष्टि यस्तस्य निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित्।
विश्वस्तघातिनां चैव कृतघ्नानां नरेश्वरः॥४८॥
शूद्रस्त्रीसङ्गिनां चैव निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित्।
शूद्रान्नपुष्टदेहानां वेदनिन्दारतात्मनाम्॥४९॥
सत्कथानिन्दकानां च नेहामुत्र च निष्कृतिः॥५०॥

यद्यपि समस्त पाप जो महानरक में व्यक्ति को पतित करते हैं, वे समान लगते हैं। ब्रह्महत्या प्रभृति पातकों से येनकेनप्रकारेण व्यक्ति प्रायश्चित्तादि करके मुक्त हो जाता है। लेकिन ब्राह्मणद्वेषी हेतु कोई प्रायश्चित्त विधान ही नहीं है। हे नरेश्वर! विश्वासघाती, कृतघ्न, शूद्रस्त्रीगामी की कभी भी निष्कृति नहीं होती। जिसका देह शूद्र के अन्न से पुष्ट है, जो वेदनिन्दक है, सत्कथा की निन्दा करता है, उसे कदापि छुटकारा नहीं मिलता।।४७-५०।।

बौद्धालयं विशेद्यस्तु महापद्यपि वै द्विजः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि॥५१॥

बौद्धाः पाषण्डिनः प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दकाः।
तस्माद्विजस्तान्नेक्षेत यतो धर्मबहिष्कृताः॥५२॥

जो द्विज घोर विपत्तिकाल में बौद्ध मन्दिर में रहता है, वह सैकड़ों प्रायश्चित द्वारा भी उद्धार नहीं पाता। बौद्ध वेदनिन्दक तथा पाखण्डी कहे गये हैं। वे धर्म बहिष्कृत हैं। द्विज को चाहिये कि उनकी ओर दृष्टिपात भी न करे।।५१-५२।।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालयं विशेत्।
ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चयः॥५३॥
एतेषां पापबाहुल्यान्नरकं कोटिकल्पकम्।
प्रायश्चित्तविहीनानि प्रोक्तान्यन्यानि च प्रभो॥५४॥
पापानि तेषां नरकान्गदतो मे निशामय॥५५॥

महापातकिनस्तेषु प्रत्येकं युगवासिनः। तदन्ते पृथिवीमेत्य सप्तजन्मसु गर्दभाः॥५६॥
ततःश्वानो विद्धदेहा भवेयुर्दशजन्मसु। आशताब्दं विट्कृमयः सर्पा द्वादशजन्मसु॥५७॥

जो जाने-अनजाने यदि बौद्धालय में प्रवेश करते हैं, उनमें से भी जो जानबूझ कर बौद्धालय में जाते हैं, तब उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। जो अनजाने में बौद्धालय जाते हैं, वे पापाधिक्य के कारण कोटिकल्प काल तक नरकगामी होते हैं। हे प्रभो! जो प्रायश्चित्त रहित पातक है तथा अन्य जो पाप हैं, उनके लिये मिलने वाले नरक के सम्बन्ध में सुनिये। वहां महापापी अनेक युगान्त पर्यन्त पड़े रहते हैं। तत्पश्चात् पृथिवी पर सप्तजन्म पर्यन्त गर्दभ योनि में पड़े रहते हैं। तदनन्तर दस जन्म तक रोगी एवं कटे-फटे देहयुक्त कुत्ते बनते हैं। वे तत्पश्चात् शतजन्म पर्यन्त विष्ठा के कीट बनकर बारह जन्मों तक सर्पयोनि में रहते हैं।।५३-५७।।

ततः सहस्रजन्मानि मृगाद्याः पशवो नृप। शताब्दं स्थावराश्चैव ततो गोधाशरीरिणः॥५८॥

ततस्तु सप्तजन्मानि चाण्डालाः पापकारिणः।
ततः षोडश जन्मानि शूद्राद्या हीनजातयः॥५९॥

ततस्तु जन्मद्वितये दरिद्रा व्याधिपीडिताः। प्रतिग्रहपरा नित्यं ततो निरयगाः पुनः॥६०॥

हे राजन्! तदनन्तर वे सहस्र जन्मपर्यन्त मृगादि पशु योनियों में जन्म लेते रहते हैं। इसके पश्चात् वे सौ वर्ष तक वृक्ष योनि में रहकर गोह योनि प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् वे सात जन्म तक पापी कर्म करने वाले चाण्डाल तत्पश्चात् १६ जन्मों तक शूद्रादि हीन जाति में उत्पन्न होते हैं। इसके बाद वे अन्य के दान द्वारा जीविका चलाने वाले रोगग्रस्त मनुष्य होकर जन्म लेते हैं। वे पुनः नरक जाते हैं।।५८-६०।।

असूयाविष्टमनसो रौरवे नरके स्मृतम्। तत्र कल्पद्वयं स्थित्वा चाण्डालाः शतजन्मसु॥६१॥

मा ददस्वेति यो ब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषु च।
शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेषूपजायते॥६२॥

जो सर्वदा अन्य से ईर्ष्या करते हैं, वे रौरवनरक प्राप्त करते हैं। वे दो कल्प इस नरक में पीड़ा भोगकर सौ जन्म तक चाण्डाल योनि प्राप्त करते हैं। जो गौ, ब्राह्मण को कुछ देने से लोगों को रोकते हैं, वे सौ जन्म तक श्वान योनि में रहकर तब चाण्डाल होकर जन्म लेते हैं।।६१-६२।।

ततो विष्ठाकृमिश्चैव ततो व्याघ्रस्त्रिजन्मसु। तदंते नरकं याति युगानामेकविंशतिम्।।६३।।
परनिन्दापरा ये च ये च निष्ठुरभाषिणः। दानानां विघ्नकर्त्तारस्तेषां पापफलं शृणु।।६४।।
मुशलोलूखलाभ्यां तु चूर्ण्यन्ते तस्करा भृशम्। तदन्ते तप्तपाषाणग्रहणं वत्सरत्रयम्।।६५।।
ततश्च कालसूत्रेण भिद्यन्ते सप्त वत्सरान्।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि परद्रव्यापहारकाः।।६६।।

तब वे मल में कीट होते हैं। इसके बाद तीन जन्म तक व्याघ्र योनि में रहते हैं। इसके पश्चात् २१ युग तक नरकवासी रहते हैं। परनिन्दक, निष्ठुरभाषी, दान में विघ्न उत्पन्न करने वाले जो पापफल भोगते हैं, उसे श्रवण करे। चौरवृत्तिवाले मूसल से ऊखल में प्रहार द्वारा कूटे जाते हैं। वे एवंविध चूर्ण किये जाते हैं। इस भोगोपरान्त वे तप्तपत्थर में चिपकाये जाते हैं। तीन वर्ष ऐसे रहकर उनको कालसूत्र से सात वर्षों तक काटते हैं। जो अपने कर्म से लोगों का शोषण करते तथा परायाधन हरते हैं।।६३-६६।।

कर्मणा तत्र पच्यन्ते नरकाग्निषु सन्ततम्।।६७।।
परस्वसूचकानां च नरकं शृणु दारुणम्। यावद्युगसहस्रं तु तप्तायःपिण्डभक्षणम्।।६८।।
संपीड्यते च रसना संदंशैर्भृशदारुणैः। निरुच्छ्वासं महाघोरे कल्पार्द्धं निवसन्ति ते।।६९।।
परस्त्रीलोलुपानां च नरकं कथयामि ते। तप्तताम्रस्त्रियस्तेन सुरूपाभरणैर्युताः।।७०।।
यादृशीस्तादृशीस्ताश्च रमन्ते प्रभसं बहु। विद्रवन्तं भयेनासां गृह्णन्ति प्रसभं च तम्।।७१।।

वे स्वकर्म के कारण सतत् नरककुण्ड में सन्तप्त किये जाते हैं। जो अन्य के धन का सन्धान चोरों को देते हैं, उनको दारुण नरक का जो भोग करना होता है, सुनिये। उनको हजारों युग तक लौहपिण्ड भक्षण करना होगा। उनकी जिह्वा को भयानक चिमटे से पीड़ित करते हैं। वे कल्पार्द्ध तक पीड़ा भरे निःश्वास त्याग करते महाघोर नरक में रहते हैं। अब मैं परस्त्री लोलुपों हेतु नरक कहता हूं। उनको अतिरूपवान्, सर्वाभूषणभूषित, पूर्वजन्म में भोगी गयी स्त्री की आकृति की ताम्र की तप्त मूर्त्ति से सम्भोग करना होगा। जब वे भय के कारण वहां से पलायन करने लगते हैं, तब यमदूत बलात उनको पकड़ लाते हैं।।६७-७१।।

कथयन्तश्च तत्कर्म नयन्ते नरकान्क्रमात्।
अन्यं भजन्ते भूपाल पतिं त्यक्त्वा च याः स्त्रियः।।७२।।
तप्तायः पुरुषास्तास्तु तप्तायः शयने बलात्।
पातयित्वा रमन्ते च बहुकालं बलान्विताः।।७३।।

वे यमदूत उन पापियों को पकड़ने के पश्चात् उनके पापों को उन्हें बतलाते हैं तथा पुनः नरक में फेंक देते हैं। हे राजन्! जो स्त्रियां पति को छोड़कर अन्य पुरुषों का साथ करती हैं, उनसे तप्त लौह की पुरुषाकृति मूर्त्तियां बल पूर्वक शय्या पर पटकर दीर्घकालीन सहवास करती हैं।।७२-७३।।

ततस्तैर्योषितो मुक्ता हुताशनसमोज्ज्वलम्।
अयःस्तम्भं समाश्लिष्य तिष्ठन्त्यब्दसहस्रकम्॥७४॥
ततः क्षारोदकस्नानं क्षारोदकनिषेवणम्।
तदन्ते नरकान् सर्वान् भुञ्जतेऽब्दशतं शतम्॥७५॥

इसके पश्चात् वे स्त्रियां अग्निवत् तप्त लौह स्तम्भ का आलिंगन किये एक हजार वर्ष तक रखी जाती है। तदनन्तर यह भोग समाप्त होने पर उनको क्षारयुक्त जल में स्नान तथा उसी जल का पान करने को दिया जाता है।।७४-७५।।

यो हन्ति ब्राह्मणं गां च क्षत्रियं च नृपोत्तमम्।
स चापि यातनाः सर्वा भुङ्क्ते कल्पेषु पञ्चसु॥७६॥
यः शृणोति महन्निन्दां सादरं तत्फलं शृणु।
तेषां कर्णेषु दाप्यन्ते तप्तायःकीलसंचयाः॥७७॥
ततश्च तेषु छिद्रेषु तेलमत्युष्णमुल्बणम्। पूर्यते च ततश्चापि कुम्भीपाकं प्रपद्यते॥७८॥

जो ब्राह्मण, गौ, श्रेष्ठ क्षत्रिय नृप का वध करता है, वह पांच कल्प पर्यन्त नरक में नाना यातना भोगता है। परनिन्दा श्रवणेच्छु व्यक्ति को जो दण्ड मिलता है, श्रवण करे। उनके कानों में तप्त लौह कील से छेदते हैं। इस छिद्र में तप्त तैल भरते हैं। तदनन्तर वे कुंभीपाक में फेंके जाते हैं।।७६-७८।।

नास्तिकानां प्रवक्ष्यामि विमुखानां हरे हरौ।
अब्दानां कोटिपर्यन्तं लवणं भुञ्जते हि ते॥७९॥
ततश्च कल्पपर्यन्तं रौरवे तप्तसैकते। भज्यंते पापकर्माणोऽन्येष्वप्येवं नराधिप॥८०॥

जो हरि-हर विमुख नास्तिक हैं, उनका पापभोग श्रवण करे। वे कोटि वर्ष तक केवल लवण खाते हैं। तदनन्तर कल्पान्तपर्यन्त तप्त बालुका वाले रौरव नरक में पापफल भोगते हैं। हे राजन्! वे एवंविध स्वकृत पापकर्मफल भोग करते हैं। अन्य पापकर्म का भी नाना नरकभोग करते रहते हैं।।७९-८०।।

ब्राह्मणान्ये निरीक्षन्ते कोपदृष्ट्या नराधमाः। तप्तसूचीसहस्रेण चक्षुस्तेषां प्रसूर्यते॥८१॥
ततः क्षाराम्बुधाराभिः सेच्यन्ते नृपसत्तम। ततश्च क्रकचैर्घोरैर्भिद्यन्ते पापकर्म्मणः॥८२॥
विश्वासघातिनां चैवमर्यादाभेदिनां तथा। परान्नलोलुपानां च नरकं शृणु दारुणम्॥८३॥
स्वमांसभोजिनो नित्यं भक्ष्यमाणाः श्वभिस्तु ते।
नरकेषु समस्तेषु प्रत्येकं ह्यब्दवासिनः॥८४॥

जो नराधम ब्राह्मणगण की ओर कोपान्वित दृष्टि से देखते हैं, उनकी आंखों को सहस्त्रों तप्त सूईयों से भेदा जाता है। तत्पश्चात् हे नृपप्रवर! उनके नेत्रों के क्षत में क्षार जल छोड़ा जाता है। वे अपने पापों हेतु आरे से चीरे जाते हैं। जो विश्वासघाती, मर्यादा नाशक, पराये के अन्न के लोलुप हैं, उनको जो दारुण नरक यातना मिलती है, वह सुनिये। वे अपने ही देह के मांस का भक्षण करते हैं। कुत्ते भी उनको नोचते रहते हैं। वे प्रत्येक नरक में वर्षों पापभोग भोगते रहते हैं।।८१-८४।।

प्रतिग्रहरता ये च ये वै नक्षत्रपाठकाः। ये च देवलकान्नानां भोजिनस्ताञ्शृणुष्व मे॥८५॥
राजन्नाकल्पपर्यन्तं यातनास्वासु दुःखिताः।
पच्यन्ते सततं पापाविष्टा भोगरताः सदा॥८६॥
ततस्तैलेन पूर्यन्ते कालसूत्रप्रपीडिताः। ततः क्षारोदकस्नानं मूत्रविष्ठानिषेवणम्॥८७॥

जो लोग सदा दान लेने में लगे रहते हैं अथवा दैवज्ञों (ज्योतिषी-नक्षत्रज्ञानी) का अन्न भक्षण करते हैं अथवा पुजारी लोगों (देवलक) का अन्न भक्षण करते हैं, उनकी पापकथा सुनें। हे राजन्! ऐसे लोग कल्पान्त पर्यन्त नरकयातना सहते दुःखमग्न रहते हैं। वे सदा अपने पापों का फल भोगते हैं। वे कालसूत्र से पीड़ित किये जाते हैं। तप्त तैलकुण्डों में छोड़े जाते हैं। पुनः उनके क्षतयुक्त देह को क्षारजल से नहलाया जाता है। वे मूत्र-विष्ठा खाते हैं।।८५-८७।।

तदन्ते भुवमासाद्य भवन्ति म्लेच्छजातयः।
अन्योद्वेगरता ये तु यान्ति वैतरणीं नदीम्॥८८॥
त्यक्तपञ्चमहायज्ञा लालाभक्षं व्रजन्ति हि। उपासनापरित्यागो रौरवं नरकं व्रजेत्॥८९॥
विप्रग्रामकरादानं कुर्वतां शृणु भूपते। यातनास्वासु पच्यन्ते यावदाचन्द्रतारकम्॥९०॥
ग्रामेषु भूपालवरो यः कुर्यादधिकं करम्। स सहस्रकुलो भुङ्क्ते नरकं कल्पपञ्चसु॥९१॥

वे इस नरकभोग के उपरान्त इस पृथिवी पर म्लेच्छ होकर जन्म लेते हैं। जो अन्य को उद्वेग प्रदान करते हैं, वे वैतरणी नदी में बहाये जाते हैं। पंचमहायज्ञ नहीं करने वाले लालाभक्ष नरक प्राप्त करते हैं। जो देवोपासना नहीं करता, वह रौरव नरक जाता है। हे भूपति! जो विप्रगण से ग्राम में रहने का कर लेता है, वह कल्पान्त पर्यन्त नरकगामी होता है। वह अपनी एक सहस्र पीढ़ी के साथ पांच कल्पों तक नरक निवास करता है।।८८-९१।।

विप्रग्रामकरादाने योऽनुमन्ता तु पापकृत्। स एव कृतवान् राजन्ब्रह्महत्यासहस्रकम्॥९२॥
कालसूत्रे महाघोरे स वसेद्द्विचतुर्युगम्।
अयोनौ च वियोनौ च पशुयोनौ च यो नरः॥९३॥
त्यजेद्रेतो महापापी स रेतोभोजनं लभेत्।
वसाकूपं ततः प्राप्य स्थित्वा दिव्याब्दसप्तकम्॥९४॥
रेतोभोजी भवेन्मर्त्यः सर्वलोकेषु निन्दितः। उपवासदिने राजन्दन्तधावनकृन्नरः॥९५॥
स घोरं नरकं याति व्याघ्रपक्षं चतुर्युगम्।
यः स्वकर्मपरित्यागी पाषण्डीत्युच्यते बुधैः॥९६॥

हे राजन्! जो विप्रों के ग्राम से कर लेने की अनुज्ञा प्रदान करता है, उसे हजारों ब्रह्महत्या पापफल लगता है। तदनन्तर वह कालसूत्र महाघोर नरक में ८ युगों तक रहता है। जो अयोनि, वियोनि, पशुयोनि में वीर्यपात करता है, नरक में वह महापातकी वही वीर्य पीता है। तदनन्तर वह वसाकूप नरक में ७ दिव्यवर्ष तक पापभोग करता है। तदनन्तर वह वीर्यभोजी मानव होकर सर्वलोक निन्दित जीवन व्यतीत करता है। जो व्रत तिथि पर

दन्तकाष्ठ से दांत साफ करता है, उसे चतुर्युग पर्यन्त व्याघ्रपक्ष नरक भोग करना होगा। शास्त्रविहित कर्मों से विरत रहने वाला सुधीजन द्वारा पाखण्डी कहलाता है।।९२-९६।।

तत्संगकृतमोघः स्यात्तावुभावतिपापिनौ। कल्पकोटिसहस्त्रेषु प्राप्नुतो नरकान्क्रमात्॥९७॥
देवद्रव्यापहर्त्तारो गुरुद्रव्यापहारकाः। ब्रह्महत्याव्रतसमं दुष्कृतं भुञ्जते नृप॥९८॥
अनाथधनहर्त्तारो ह्यनाथं ये द्विषन्ति च। कल्पकोटिसहस्त्राणि नरके ते वसन्ति च॥९९॥
स्त्रीशूद्राणां समीपे तु ये वेदाध्ययने रताः।
तेषां पापफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहितः॥१००॥

उस पापयुक्त का साथ करने वाला भी महापापी है। यह पापयुक्त तथा यह महापापी, दोनों सहस्त्रकोटि कल्प पर्यन्त तक क्रमशः एक-एक नरक में पतित किये जाते हैं। जो देवता के द्रव्य का हरण करता है, गुरुद्रव्यहरण करता है, उसे ब्रह्महत्यावत् पापफल भोगना होगा। हे नृप! अनाथ के धनहर्त्ता तथा अनाथों के द्वेषी नरक में सहस्त्र कोटिकल्प तक रहते हैं। जो स्त्री, शूद्र के निकट वेद पढ़ते हैं, समाहित चित्त से उनको मिलने वाले पापफल का श्रवण करिये।।९७-१००।।

अधः शीर्षोर्ध्वपादाश्च कीलिताः स्तम्भकद्वये।
धूम्रपानरता नित्यं तिष्ठन्त्याब्रह्मवत्सरम्॥१०१॥
जले देवालये वापि यस्त्यजेद्देहजं मलम्। भ्रूणहत्यासमं पापं संप्राप्नोत्यतिदारुणम्॥१०२॥
दन्तास्थिकेशनखरान्ये त्यजन्त्यमरालये। जले वा भुक्तशेषं च तेषां पापफलं शृणु॥१०३॥

उस पातकी का शिर नीचे तथा पैर ऊपर करके लटकाकर दो खम्भों में उसे कीलों से जड़ देते हैं। एवंविध वह पापी ब्रह्मा के एक वर्ष काल तक धूआं पीकर यातना भोगता है। जल तथा देवालय में देह मल फेंकने वाले भ्रूणहत्या पातक में मिलने वाले फल को भोगते हैं। वे इस दारुण फल को भोगते रहते हैं। देवालय में दन्त, अस्थि, केश, नखादि अपवित्र वस्तु फेंकने वाले, जल में जूठन फेंकने वाले जो पापफल प्राप्त करते हैं, उसे सुनिये।।१०१-१०३।।

प्रासप्रोता हलैर्भिन्ना आर्त्तरावविराविणः। अत्युष्णतैलपाकेऽतितप्यन्ते भृशदारुणे॥१०४॥
कुर्वन्ति दुःखसंतप्तास्ततोऽन्येषु व्रजन्ति च।
ब्रह्म संहरते यस्तु गन्धकाष्ठं तथैव च॥१०५॥
स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्रतारकम्। ब्रह्मस्वहरणं राजन्निहामुत्र च दुःखदम्॥१०६॥

उनको प्रासास्त्र से छेदा जाता है, हल से विदीर्ण किया जाता है। जब वे आर्त्तनाद करते हैं, तब उनको भयानक तप्त तैल में पकाया जाता है। इस प्रकार पापफल भोगने के अनन्तर उनका जन्म वीभत्स योनियों में होता है। जो वेदों की चोरी करता है अथवा वेद नष्ट करता है, गन्धकाष्ठ की चोरी करता है, वह तब तक घोर नरक का भागी होता है, जब तक पृथिवी पर चन्द्र-तारकादि की स्थिति है। हे राजन्! ब्राह्मण की सम्पत्ति का हरण इहलोक-परलोक दोनों हेतु दुःखप्रद है।।१०४-१०६।।

इह संपद्विनाशाय परत्र नरकाय च। कूटसाक्ष्यं वदेद्यस्तु तस्य पापफलं शृणु॥१०७॥

स याति यातनाः सर्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश। इह पुत्राश्च पैत्राश्च विनश्यन्ति परत्र च॥१०८॥

रौरवं नरकं भुङ्क्ते ततोऽन्यानपि च क्रमात्।
ये चातिकामिनो मर्त्या ये च मिथ्याप्रवादिनः॥१०९॥

उसकी सम्पत्ति का इहलोक में नाश होता है, परलोक में वह नरक गमन करता है। जो झूठी गवाही देता है, उसका पापफल सुनिये। वह चतुर्दश इन्द्रों के राज्यत्व कालपर्यन्त सभी यातना भोग करता रहता है। उसके पुत्र पौत्रादि नष्ट होते हैं। परलोक में वह रौरवादि विभिन्न नरकों में यातना भोगता है। जो मानव महाकामी तथा झूठ बोलने वाला है।।१०७-१०९।।

तेषां मुखे जलौकास्तु पूर्य्यन्ते पन्नगोपमाः। एवं षष्टिसहस्राब्दे ततः क्षाराम्बुसेचनम्॥११०॥
ये वृथामांसनिरतास्ते यान्ति क्षारकर्दमम्। ततो गजैर्निपात्यन्ते मरुत्प्रपतनं यथा॥१११॥

तदन्ते भवमासाद्य हीनाङ्गाः प्रभवन्ति च।
यस्त्वृतौ नाभिगच्छेत स्वस्त्रियं मनुजेश्वर॥११२॥
स याति रौरवं घोरं ब्रह्महत्यां च विन्दति।
अन्याचाररतं दृष्ट्वा यः शक्तो न निवारयेत्॥११३॥
तत्पापं समवाप्नोति नरकं तावुभावपि।
पापिनां पापगणनां कृत्वान्येभ्यो दिशन्ति च॥११४॥

उन पातकी लोगों के मुख को जोकों से भर दिया जाता है, जो सर्पवत् रहती हैं। तदनन्तर उनको ६०००० वर्ष तक क्षार जल से स्नान कराते हैं। जो वृथा मांसाहार करते हैं, उनको क्षारकर्दम नरक में भेजा जाता है। तदनन्तर वे हाथियों द्वारा कुचले जाते हैं तथा आंधी में गिरते हैं। तत्पश्चात् वे पृथिवी पर जन्म लेकर लूले-लंगड़े अवयवों वाले हो जाते हैं। हे मुनीश्वर! जो ऋतुस्नाता अपनी पत्नी के पास जाकर समागम नहीं करते, उनको रौरव नरक में गिराया जाता है। वे ब्रह्महत्यापाप के समान पातक भोगते हैं। जो बली लोग अन्याय करते देखकर अन्यायी को नहीं रोकते, उसे उसी अन्यायी की तरह पापों को भोगना पड़ता है। ये दोनों नरक भोगते हैं। हे नृप! जो किसी पापी के पापों को गिनता है तथा अन्य लोगों से उसका वर्णन करता है।।११०-११४।।

अस्तित्वे तुल्यपापास्ते मिथ्यात्वे द्विगुणा नृप।
अपापे पातकं यस्तु समारोप्य विनिन्दति॥११५॥
स याति नरकं घोरं यावच्चंद्रार्कतारकम्।
पापिनां निन्द्यमानानां पापार्द्धं क्षयमेति च॥११६॥

यदि पापवर्णन सत्य है, तब उसे उस पापी के ही बराबर पाप भोगना होगा, किन्तु यदि पापवर्णन झूठ होता है, उस स्थिति में उसे उस पातकी से दूना पापफल भोग करना पड़ता है। जो पाप रहित पर झूठे पापों का आरोपण करके उसकी निन्दा करता है, उसे घोर नरक में तब तक के लिये जाना पड़ता है, जब तक चन्द्रमा-तारक की जगत् में स्थिति रहती है। जो पापी की निन्दा करता है, वह उस पापी के आधे पाप को क्रमशः क्षयीभूत कर देता है।।११५-११६।।

यस्तु व्रतानि संगृह्य असमाप्य परित्यज्येत्।
सोऽसिपत्रेऽनुभूयार्तिं हीनाङ्गो जायते भुवि॥११७॥
अन्यैः संगृह्यमाणानां व्रतानां विघ्नकृन्नरः।
अतीव दुःखदं रौद्रं स याति श्लेष्मभोजनम्॥११८॥
न्याये च धर्मशिक्षायां पक्षपातं करोति यः।
न तस्य निष्कृतिर्भूयः प्रायश्चित्तायुतैरपि॥११९॥

जो व्रत करने का संकल्प लेकर उसे बिना पूर्ण किये बीच में ही छोड़ देते हैं, वे असिपत्र नरक में पापफल भोगकर पृथिवी पर अंगहीन होकर जन्म लेते हैं। जो अन्य व्रती के व्रताचरण में विघ्न उत्पन्न करता है, वह अत्यन्त दुःखप्रद, रौद्र, श्लेष्मभोजन नरक में जाता है। जो न्याय कार्य तथा शिक्षा क्षेत्र में पक्षपात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित्त करके भी पापों से छुटकारा नहीं पाता।।११७-११९।।

अभोज्यभोजी संप्राप्य विड्भोज्यं तु समायुतम्।
ततश्चाण्डालयोनौ तु गोमांसाशी सदा भवेत्॥१२०॥
अवमान्य द्विजान्वाग्भिर्ब्रह्महत्यां च विन्दति।
सर्वाश्चयातना भुक्त्वा चाण्डालो दशजन्मसु॥१२१॥
विप्राय दीयमाने तु यस्तु विघ्नं समाचरेत्। ब्रह्महत्यासमं तेन कर्त्तव्यं व्रतमेव च॥१२२॥
अपहृत्य परस्यार्थं यः परेभ्यः प्रयच्छति।
अपहर्त्ता तु निरयी यस्यार्थस्तस्य तत्फलम्॥१२३॥

जो अभोज्य भोजन तथा गौमांस खाता है, वह दस सहस्र वर्ष पर्यन्त विडभोज्य नरक भोगोपरान्त चाण्डाल योनि में उत्पन्न होता है। जो ब्राह्मणों को वाणी से अपमानित करता है, उसे ब्रह्महत्या के समान पातक लगता है। वह नरक में समस्त यातना भोगकर दस जन्मों तक चाण्डाल होता है। ब्राह्मणों को दान दिये जाने के कार्य में जो विघ्न करता है, वह ब्रह्महत्या प्रायश्चित्त के समान प्रायश्चित्त करके ही शुद्ध होगा। जो अन्य का धन हरण करके उसे अन्य को देता है, तब अपहरणकर्त्ता को नरकगामी होना ही पड़ेगा तथा जिसे अपहरण करके धन दिया गया है, उसे भी पापफल मिलेगा।।१२०-१२३।।

प्रतिश्रुत्याप्रदानेन लालाभक्षं व्रजेन्नरः।
यतिनिन्दापरो राजन् शिलामात्रे प्रयाति हि॥१२४॥
आरामच्छेदिनो यान्ति युगानामेकविंशतिम्।
श्वभोजनं ततः सर्वा भुञ्जते यातनाः क्रमात्॥१२५॥
देवतागृहभेत्तारस्तडागानां च भूपते। पुष्पारामभिदश्चैव यां गतिं यान्ति तच्छृणु॥१२६॥
यातनास्वासु सर्वासु पच्यन्ते वै पृथक् पृथक्।
ततश्च विष्ठाकृमयः कल्पानामेकविंशतिम्॥१२७॥

जो वचन देकर तदनुरूप दान नहीं देता, उसे लालाभक्ष नरक प्राप्त होगा। हे राजन्! यति निन्दक शिलामात्र नरक प्राप्त करता है। जो बाग उजाड़ता है, वह इक्कीस युग तक श्वभोजन नरक में पापभोग करता है तथा एक-एक करके सभी नरकों की यातना भोगता है। देवगृह, तालाब, वाटिका को नुकसान पहुंचाने वाला व्यक्ति जो गति पायेगा, वह सुनिये। वह पृथक्-पृथक् सभी नरकों की यातना भोगकर इक्कीस कल्प तक विष्ठा का कीट होगा।।१२४-१२७।।

यतश्चाण्डालयोनौ तु शतजन्मानि भूपते।
ग्रामविध्वंसकानां तु दाहकानां च लुम्पताम्॥१२८॥
महत्पापं तदादेष्टुं न क्षमोऽहं निजायुषा। उच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये॥१२९॥
एतेषां यतानास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारकम्।
उच्छिन्नपितृदेवेज्या वेदमार्गबहिःस्थिताः॥१३०॥
पाखण्डा इति विख्यातास्तातेषां वै सर्वयातनाः।
एवं बहुविधा भूप यातनाः पापकारिणाम्॥१३१॥

तत्पश्चात् वह सौ जन्मों तक चाण्डाल योनि में रहेगा। हे भूपति! ग्राम विध्वंसक, ग्राम दहनकर्ता, ग्राम को लूटने वाला जो पाप प्राप्त करता है, अपने सम्पूर्ण जीवन में मैं उसकी गणना नहीं कर सकूंगा। जो जूठन भोजी, मित्रद्रोही हैं, ये चन्द्र-तारकादि के अस्तित्व काल तक भयानक यातना भोग करते हैं। जो पितृकर्म, देवयज्ञादि नहीं करते, जो वेदमार्ग से नहीं चलते, उसकी अवहेलना करते हैं, वे पाखण्डी कहलाते हैं तथा वे सभी प्रकार की यातना प्राप्त करते हैं। हे राजन्! एवंविध पापकारी लोगों हेतु अनेक यातनायें कही जाती हैं।।१२८-१३१।।

तेषां तासां च संख्यानं कर्त्तुं नालमहं प्रभो।
पापानां यातनानां च धर्माणां चापि भूपते॥१३२॥
संख्यां निगदितुं लोके कः क्षमो विष्णुना विना।
एतेषां सर्वपापानां धर्मशास्त्रविधानतः॥१३३॥
प्रायश्चित्तेषु चीर्णेषु पापराशिः प्रणश्यति।
प्रायश्चित्तानि कार्याणि समीपे कमलापतेः॥१३४॥

हे राजन्! पापों की, नरकों की तथा धर्म की गणना मैं नहीं कर सकता। विष्णु के अतिरिक्त इनकी गणना और कौन कर सकता है? सभी पातक धर्मशास्त्र की विधि के अनुसार प्रायश्चित्त द्वारा अपनी पापराशि का नाश कर देते हैं। सभी प्रायश्चित्त कमलापति विष्णु के समक्ष ही सम्पन्न करे।।१३२-१३४।।

न्यूनातिरिक्तकृत्यानां संपूर्तिकरणाय च।
गङ्गा च तुलसी चैव सत्सङ्गो हरिकीर्त्तनम्॥१३५॥
अनसूया ह्यहिंसा च सर्वेप्येते हि पापहा।
विष्णवर्पितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि॥१३६॥

विष्णु के समीप प्रायश्चित्त करने से यदि उनके करने में कुछ न्यूनता अथवा अधिकता रहती भी है, वे दोष समाप्त हो जाते हैं। गंगा, तुलसी, सत्संग, हरिकीर्त्तन, ईर्ष्या न करना, अहिंसा—ये सभी गुण पापनाशक हैं। समस्त वे कर्म जो विष्णु को अर्पित किये जाते हैं, सफल हो जाते हैं।।१३५-१३६।।

अनर्प्पितानि कर्माणि भऽस्मविन्यस्तहव्यवत्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यन्मोक्षसाधनम्॥१३७॥
विष्णौ समर्पितं सर्वं सात्त्विकं सफलं भवेत्।
हरिभक्तिः परा नृणां सर्वपापप्रणाशिनी॥१३८॥
सा भक्तिर्दशधा ज्ञेया पापारण्यदवोपमा। तामसै राजसैश्चैव सात्त्विकैश्च नृपोत्तम॥१३९॥

जो कर्म नारायण को अर्पित नहीं किये जाते, वे भस्म में किये होम के समान व्यर्थ होते हैं। यदि समस्त नित्य, नैमित्तिक, काम्य, मोक्षकर्म—इनको विष्णु को अर्पित किया जा सके, तब ये सभी सात्विक एवं सफल हो जाते हैं। परा हरिभक्ति मानवों के सभी पापों का नाश कर देती है। पाप रूपी वन को जलाने वाली दावाग्नि रूपा भक्ति दस प्रकार की कही गई है। हे नृपोत्तम! यह राजस, तामस तथा सात्विकी होती है।।१३७-१३९।।

यच्चान्यस्य विनाशार्थं भजनं श्रीपतेर्नृप।
सा तामस्यधमा भक्तिः खलभावधरा यतः॥१४०॥
योऽर्चयेत्कैतवधिया स्वैरिणी स्वपतिं यथा।
नारायणं जगन्नाथं तामसी मध्यमा तु सा॥१४१॥
देवपूजापरान्दृष्ट्वा मात्सर्याद्योऽर्चयेद्धरिम्।
सा भक्तिः पृथ्वीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता॥१४२॥

हे नृप! जब अन्य के विनाशार्थ श्रीपति का भजन किया जाता है, तब वही **तामसी अधमा भक्ति** है। यह खलभाव समायुक्त होती है। कुलटा नारी पति के प्रति कपटपूर्ण प्रेम प्रदर्शित करती है। एवंविध जो मनुष्य इस भाव से नारायण, जगन्नाथ की अर्चना करता है, तब वह **तामसी मध्यमा भक्ति** है। जो अन्य द्वारा श्रीहरि की अर्चना होते देखकर मात्सर्य के कारण स्वयं भी हरि अर्चना करता है, हे पृथिवीपाल! वह **तामसी उत्तमा भक्ति** कही गयी है।।१४०-१४२।।

धनधान्यादिकं यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम्।
श्रद्धया परया युक्तः सा राजस्यधमा स्मृता॥१४३॥
यः सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम्।
अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता॥१४४॥
सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम्।
सा राजस्युत्तमा भक्तिः कीर्तिता पृथिवीपते॥१४५॥

जो व्यक्ति धन-सम्पत्ति पाने के लिये परम श्रद्धावान् होकर श्रीहरि की अर्चना करता है, वह **राजस**

अधमा भक्ति है। जो माधव से सर्वलोक प्रसिद्ध यश पाने के लिये परमाभक्ति के साथ श्रीहरि की अर्चना करता है, यही **राजस मध्यमा भक्ति** है। हे धरणीपति! जो मानव सालोक्यादि पदलाभार्थ हरि की अर्चना करता है, उसे राजस **उत्तमा भक्ति** कहा जाता है।।१४३-१४५।।

यस्तु स्वकृतपापानां क्षयार्थं प्रार्चयेद्धरिम्।
श्रद्धया परयोपेतः सा सात्त्विक्यधमा स्मृता॥१४६॥
हरेरिदं प्रियमिति शुश्रूषां कुरुते तु यः।
श्रद्धया संयुतो भूयः सात्त्विकी मध्यमा तु सा॥१४७॥

जो अपने किये पापों के क्षय हेतु हरि की अर्चना करता है, वह अत्यन्त श्रद्धा से की गई भक्ति **अधमा सात्विकी भक्ति** है। जो कि यह विचार कर कि यह हरि को प्रिय है, यह मेरा कार्य है, तदनुसार हरि की सुश्रूषा सश्रद्धभाव से करता है, वह **सात्विकी मध्यमा भक्ति** है।।१४६-१४७।।

विधिबुद्ध्यार्चयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप।
भक्तीनां प्रवरा सा तु उत्तमा सात्त्विकी स्मृता॥१४८॥
महिमानं हरेर्यस्तु किंचित्कृत्वा प्रियो नरः।
तन्मयत्वेन संतुष्टः सा भक्तिरुत्तमोत्तमा॥१४९॥
अहमेव परो विष्णुर्मयि सर्वमिदं जगत्। इति यः सततं पश्येत्तं विद्यादुत्तमोत्तमम्॥१५०॥
एवं दशविधा भक्तिः संसारच्छेदकारिणी।
तत्रापि सात्त्विकीभक्तिः सर्वकामफलप्रदा॥१५१॥

जो शास्त्रोपदेशानुरूप विधिवत् बुद्धि से दास के समान श्रीपति की अर्चना करता है, ऐसी प्रवरा भक्ति को **सात्विकी उत्तमा भक्ति** कहते हैं। जो श्रीहरि की महिमा याद करते उसमें तल्लीन हो जाते हैं, वह **उत्तमोत्तमा भक्ति** है। "मैं परमविष्णु हूं, यह जगत् मुझमें हैं, ऐसी भावनायुक्त हृदय वाला **उत्तमोत्तम भक्त** है। ऐसी दशधा भक्ति संसार का छेदन करती है, तथापि सात्विकी भक्ति ही सर्वकामना फलप्रदा है।।१४८-१५१।।

तस्माच्छृणुष्व भूपाल संसारविजिगीषुणा।
स्वकर्मणो विरोधेन भक्तिः कार्या जनार्दने॥१५२॥
यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति।
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यते॥१५३॥
सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते। आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः॥१५४॥

हे भूपाल! सांसारिक बन्धनों आदि पर विजयी होने के लिये, मनुष्य को चाहिये कि वह आश्रम कर्म से अविरोधी भक्ति जनार्दन के प्रति करे। जो आश्रमधर्म का पालन नहीं करता, केवल भक्ति मात्र से ही जी रहा होता है, विष्णु उसके प्रति सन्तुष्ट नहीं होते। वे केवल आश्रमाचार पालन करने वाले के प्रति सन्तुष्ट रहते हैं।

आचार पालन ही सर्वधर्मलाभ का प्रथम कारण है। आचार से ही धर्मपालन होता है। धर्म के स्वामी—प्रभु हैं अच्युतदेव।।१५२-१५४।।

तस्मात्कार्या हरेर्भक्तिः स्वधर्मस्याविरोधिनी।
सदाचारविहीनानां धर्मा अप्यसुखप्रदाः॥१५५॥
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता।
यत्तु पृष्टं त्वया भूयस्तत्सर्वं गदितं मया॥१५६॥
तस्माद्धर्मपरो भूत्वा पूजयस्व जनार्दनम्। नारायणयणीयांसं सुखमेष्यसि शाश्वतम्॥१५७॥

इसलिये स्वधर्म (आश्रमधर्म) के साथ ही भक्ति करे। आश्रमाचार से भक्ति का विरोध न हो। सदाचार रहित व्यक्ति हेतु धर्म सुखदायक नहीं होता। स्वधर्म रहित भक्ति को मात्र प्राकृत भक्ति ही कहते हैं। (वह यथार्थ भक्ति नहीं होती)। आपने मुझसे जितना पूछा था, मैंने उस सबका उत्तर प्रदान कर दिया। अतः आप स्वधर्म (आश्रमधर्म) तत्पर रहते हुये जनार्दन की पूजा करिये। उन अणु स्वरूप (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) नारायण की पूजा द्वारा आपको शाश्वत सुख प्राप्त हो सकेगा।।१५५-१५७।।

शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्वयम्।
द्वयोरन्तरदृग्याति नरकान्कोटिशः खलः॥१५८॥
तस्माद्विष्णुं शिवं वापि समं बुद्ध्वा समर्चय।
भेदकृद्दुःखमाप्नोति इह लोके परत्र च॥१५९॥
यदर्थमहमायातस्त्वत्समीपं जनाधिप। तत्ते वक्ष्यामि सुमते सावधानं निशामय॥१६०॥
आत्मघातकपाप्मानो दग्धा कपिलकोपतः। वसन्ति नरके तु राजंस्तव पितामहाः॥१६१॥
तानुद्धर महाभाग गङ्गानयनकर्मणा। गङ्गा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते॥१६२॥

शिव ही हरि हैं। साक्षात् हरि ही शिव हैं। जो खल इन दोनों में भेद रखता है, वह करोड़ों नरकों में जाता है। इसलिये आप शिव तथा हरि में समत्व बुद्धि रखते हुये उनकी अर्चना करिये। जो इनमें भेद रखता है, वह इहलोक में तथा परलोक में दुःख लाभ करता है। हे जनाधिप! राजन्! अब मैं यहां आने का प्रयोजन कर रहा हूं। आप उसे सावधान होकर श्रवण करे। कपिल ऋषि के कोप के कारण आपके आत्मघाती पापी पितामहगण भस्म होकर नरक में निवास कर रहे हैं। हे महाभाग! आप उनके उद्धारार्थ यहां पर गंगा को लाईये। हे भूपति! महानदी गंगा समस्त पातकों का नाश करने वाली हैं।।१५८-१६२।।

केशास्थिनखदन्ताश्च भस्मापि नृपसत्तम।
नयति विष्णुसदनं स्पृष्टा गाङ्गेन वारिणा॥१६३॥
यस्यास्थि भस्म वा राजन् गङ्गायां क्षिप्यते नरैः।
स सर्वपापनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः॥१६४॥

हे नरपुंगव राजन्! यदि मृतक का केश, अस्थि, नख, दन्त, किंवा मात्र श्मशान भस्म भी गंगा से

स्पर्शित हो जाये, तब वह मृतक अवश्यमेव विष्णुलोक लाभ कर लेता है। हे राजन्! यदि कोई व्यक्ति किसी मृतक की भस्म, अस्थि आदि यदि गंगा में बहा देता है, तब वह मृतक सर्वपातक विनिर्मुक्त होकर हरिलोक गमन करता है।।१६३-१६४।।

यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तव भूपते।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गाबिन्द्वभिषेचनात्॥१६५॥

हे भूपति! मैंने इस प्रसंग में आपसे जितने पातकों का वर्णन किया है, वे समस्त पातक गंगाजल के अभिषेक से ही नष्ट हो जाते हैं।।१६५।।

सनक उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराजं भगीरथम्।
धर्मात्मानं धर्मराजः सद्यश्चान्तर्दधे तदा॥१६६॥
स तु राजा महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
निक्षिप्य पृथिवीं सर्वां सचिवेषु ययौ वनम्॥१६७॥
तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणाश्रमात्। पश्चिमे तुहिनाक्रान्ते शृङ्गेषोडशयोजने॥१६८॥
तपस्तप्त्वानयामास गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्॥१६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्माख्याने धर्मराजोपदेशेन भगीरथस्य गङ्गानयनोद्यमवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिशार्दूल! महाराज भगीरथ से यह कहने के पश्चात् धर्मात्मा भगीरथ के समक्ष ही धर्मराज तत्काल अन्तर्हित् हो गये। तत्पश्चात् उन महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रार्थविशारद राजा अपने मन्त्रियों को पृथिवी का राज्यभार सौंप कर वन में तपस्यार्थ चले गये। वे हिमालय स्थित नर-नारायण आश्रम से पश्चिम की ओर के पर्वत शिखर पर जो सोलह योजन का हिम से ढंका था, वहां गये तथा वहां घोर तपःश्चरण द्वारा त्रैलोक्य पावनी गंगा को धरती पर ले आये।।१६६-१६९।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

अथ षोडशोऽध्यायः

गंगावतरण द्वारा भगीरथ का स्वकुल उद्धार करना

नारद उवाच

हिमवग्गिरिमासाद्य किं चकार महीपतिः। कथमानीतवान्गङ्गामेतन्मे वक्तुमर्हसि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—उन राजा ने हिमालय पर्वत पर जाकर क्या कार्य किया, वे किस उपाय से गंगा को पृथिवी पर ला सके, वह प्रसंग कहिये।।१।।

सनक उवाच

भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने। गच्छन्हिमाद्रिं तपसे प्राप्तो गोदावरीतटम्॥२॥
तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम्। कृष्णसारसमाकीर्णं मातङ्गगणसेवितम्॥३॥
भ्रमद्भ्रमरसंघुष्टं कूजद्विहगसंकुलम्। वज्रद्वराहनिकरं चमरीपुच्छवीजितम्॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिवर! महाराजा भगीरथ वहां जटाधारी होकर तथा वल्कल पहन कर तप हेतु हिमगिरि पर गोदावरी तट पर गये। उन्होंने उस महावन में उत्तम भृगु आश्रम देखा। वह कृष्णसार मृगों से भरा तथा हाथियों से सेवित वन था। वह मड़राते हुये भ्रमरों की गुंजार तथा पक्षीकुल का कूंजन श्रुतिगोचर हो रहा था। वह वन वज्रदन्त वराहों के विचरण से तथा चवरी गौओं के झुण्ड द्वारा अपनी पूछों को हिलाने से शोभायमान था।।२-४।।

नृत्यन्मयूरनिकरं सारङ्गादिनिषेवितम्। प्रवर्द्धितमहावृक्षं मुनिकन्याभिरादरात्॥५॥
शालतालतमालाढ्यं नूनहिन्तालमण्डितम्। मालतीयूथिकाकुन्दचम्पकाश्वत्थभूषितम्॥६॥
उत्पुल्लकुसुमोपेतमृषिसङ्घनिषेवितम्। वेदशास्त्रमहाघोषमाश्रमं प्राविशद्भृगोः॥७॥

वह वन मयूरों के नृत्य तथा सारंग पक्षियों द्वारा शोभित था। वहां मुनि कन्याओं ने आदर पूर्वक महावृक्षों की सेवा करके उनको उन्नत किया था। वह आश्रम शाल-ताल-तमाल वृक्षों से परिपूर्ण था। वहां हिन्ताल, मालती, यूथिका, कुंद, चम्पक तथा अश्वत्थवृक्ष उस आश्रम की शोभा वर्द्धित कर रहे थे। वह आश्रम खिले पुष्पों तथा मुनियों से सेवित था। जब राजा भगीरथ ने उस भृगु आश्रम में प्रवेश किया, तब उनको वहां वेद-शास्त्र का महाघोष सुनाई देने लगा।।५-७।।

गृणन्तं परमं ब्रह्मावृतं शिष्यगणैर्मुनिम्। तेजसा सूर्यसदृशं भृगुं तत्र ददर्श सः॥८॥
प्रणनामाथ विप्रेन्द्रं पादसंग्रहणादिना। आतिथ्यं भृगुरप्यस्य चक्रे सम्मानपूर्वकम्॥९॥
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमर्षिणा।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयान्मुनिपुङ्गवम्॥१०॥

वहां राजा ने स्वतेज से सूर्य सदृश दीप्त भृगु ऋषि का दर्शन किया, जो शिष्यों से घिरे थे तथा परब्रह्म की चर्चा कर रहे थे। राजा ने उन परम ऋषि को देखकर उनके चरणों में प्रणत होकर उनका अभिवादन किया।

ऋषि ने भी राजा को देखकर उनका सादर सम्मान किया। इस अतिथि सत्कार क्रिया के उपरान्त राजा उन मुनिपुंगण परमर्षि भृगु से विनय पूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे।।८-१०।।

भगीरथ उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। पृच्छामि भवभीतोऽहं नृणामुद्धारकारणम्॥११॥
भगवांस्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम। तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि॥१२॥

राजा भगीरथ कहते हैं— हे भगवान्, सर्वधर्मज्ञ, सर्वशास्त्र विशारद! मैं संसार से भयभीत होकर मनुष्यों के उद्धार का कारण पूछ रहा हूं। हे मुनिसत्तम! यदि आपका अनुग्रह मेरे प्रति है, तब हे सर्वज्ञ! यह कहिये कि भगवान् किन कर्म द्वारा प्रसन्न होते हैं?।।११-१२।।

भृगुरुवाच

राजंस्तवेप्सितं ज्ञातं त्वं हि पुण्यवतां वरः। अन्यथा स्वकुलं सर्वं कथमुद्धर्त्तुमर्हसि॥१३॥
यो वा को वापि भूपाल स्वकुलं शुभकर्मणा। उद्धर्त्तुकामस्तं विद्यान्नररूपधरं हरिम्॥१४॥
कर्मणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रदः। तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्व सुसमाहितः॥१५॥
भव सत्यपरो राजन्न हिंसानिरतस्थ्या। सर्वभूतहितो नित्यं मानृतं वद वै क्वचित्॥१६॥
त्यज दुर्जसंसर्गं भज साधुसमागमम्। कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर विष्णुं सनातनम्॥१७॥
कुरु पूजां महाविष्णोर्याहि शान्तिमनुत्तमाम्। द्वादशाष्टाक्षरं मन्त्रं जप श्रेयो भविष्यति॥१८॥

महर्षि भृगु कहते हैं—हे पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ! मैंने तुम्हारे कथन का आशय समझ लिया है। हे भूपाल! जो कोई व्यक्ति अपने शुभकर्म द्वारा अपने कुल का उद्धार करने का इच्छुक है, वह, नररूपधारी श्रीहरि की अर्चना करें। हे राजेन्द्र! मैं उन कर्मों का वर्णन करता हूं, जिससे वे देवेश मनुष्यगण को अभीष्ट फल देते हैं। तुम समाहित होकर श्रवण करो। हे राजन्! तुम सत्यवादी बनो तथा अहिंसा धर्म का पालन करो। समस्त प्राणीगण का हित करो और असत्य वचन कभी न कहो। दुर्जन संगति त्यागकर साधुगण का संग करो। दिन-रात पुण्यकृत्य करते, सनातन देवता विष्णु का स्मरण करो। तुम महाविष्णु की पूजा करके उत्तम शान्तिलाभ करोगे। तुम "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर मन्त्र का अथवा अष्टाक्षर मन्त्र "ॐ नमो वासुदेवाय" का जप करके श्रेयः लाभ कर सकोगे।।१३-१८।।

भगीरथ उवाच

सत्यं तु कीदृशं प्रोक्तं सर्वभूतहितं मुने। अनृतं कीदृशं प्रोक्तं दुर्जनाश्चापि कीदृशाः॥१९॥

साधवः कीदृशाः प्रोक्तास्तथा पुण्यं च कीदृशम्।
स्मर्तव्यश्च कथं विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी॥२०॥
शान्तिश्च कीदृशी प्रोक्ता को मंत्रोऽष्टाक्षरो मुने।
को वा द्वादशवर्णश्च मुने तत्त्वार्थकोविद॥२१॥
कृपां कृत्वा मयि परां सर्वं व्याख्यातुमर्हसि।

राजा भगीरथ कहते हैं—"हे मुनीश्वर! सत्य का क्या स्वरूप वर्णित है? झूठ-मिथ्या किसे कहते हैं, दुर्जन कैसे होते हैं? साधु का लक्षण क्या है? पुण्य किस प्रकार का होता है? विष्णु स्मरण कब-कैसे किया जाये? उनकी पूजा कैसी हो? शान्ति कैसी कही गयी है? हे मुनि! हे तत्वार्थज्ञ! यह अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मन्त्र कौन-सा है? आप मुझ पर कृपा करके इन सभी प्रश्नों की व्याख्या करे"।।१९-२१½।।

भृगुरुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा॥२२॥
यतपृष्टोऽहं त्वया भूप तत्सर्वं प्रवदामि ते। यथार्थकथनं यत्तत्सत्त्वमाहुर्विपश्चितः॥२३॥
धर्माविरोधतो वाच्यं तद्धि धर्मपरायणैः। देशकालादि विज्ञाय स्वयमस्याविरोधतः॥२४॥
यद्वचः प्रोच्यते सद्भिस्तत्सत्यमभिधीयते। सर्वेषामेव जंतूनामक्लेशजननं हि तत्॥२५॥
अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी। कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपन्थिता॥२६॥

महर्षि भृगु कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! साधुवाद! तुम्हारी बुद्धि अनुत्तमा है। हे भूप! तुमने जो पूछा है, वह सब मैं कहता हूं। सत्य अर्थात् यथार्थ कथन। ऐसे सत्य को धार्मिक व्यक्ति यथावत् कहे। यह धर्म के अविरोधी रूप से कहा जाता है। सत् व्यक्ति देशकाल का विचार करके, ऐसा जो कुछ कहते हैं, जो धर्म का विरोधी न हो, उसे ही **सत्य** कहा गया है। जो समस्त जन्तुगण को अपने कार्य से कष्ट न देना, यही सर्वकामप्रदा अहिंसा है। **सर्वलोकहित** अर्थात् सत्कर्म कार्य में सहायक तथा अकार्य विरोधी जो कार्य है।।२२-२६।।

सर्वलोकहितत्वं वै प्रोच्यते धर्मकोविदैः। इच्छानुवृत्तकथनं धर्माधर्मविवेकिनः॥२७॥
अनृतं तद्धि विज्ञेय सर्वश्रेयोविरोधि तत्। ये लोके द्वेषिणो मूर्खाः कुमार्गरतबुद्धयः॥२८॥
ते राजन्दुर्ज्जना ज्ञेयाः सर्वधर्मबहिष्कृताः। धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिणः॥२९॥
सर्वलोकहितासक्ताः साधवः परिकीर्तिताः। हरिभक्तिकरं यत्तत्सद्भिश्च परिरञ्जितम्॥३०॥
आत्मनः प्रीतिजनकं तत्पुण्यं परिकीर्तितम्।
सर्वं जगदिदं विष्णुर्विष्णुः सर्वस्य कारणम्॥३१॥

उसे ही धर्म ज्ञाता लोग सर्वलोक हित कहते हैं। धर्म-अधर्म का विवेक ज्ञान रखने वाले महापुरुष जिस कार्य को **अनृत** कहते हैं, वह सब श्रेयः का नाशक है। जो लोगों से द्वेष करते हैं, कुमार्गत तथा कुमार्गी बुद्धि वाले हैं, हे राजन्! वे सर्वधर्म-बहिष्कृत **दुर्जन** हैं। जो लोग धर्म-अधर्म का विवेक करके (निर्णय करके) वेदमार्ग का अनुगमन करते हैं तथा सबके हितार्थ लगे रहते हैं, वे ही **साधु** हैं। जो कर्म हरिभक्ति की ओर प्रेरित करने वाले, जो कर्म सत् लोगों को अनुरंजित करते हैं तथा जो कर्म स्वयं को प्रसन्नता प्रदान करते हैं, वह **पुण्य** कहा गया है। समस्त जगत् विष्णु ही हैं। विष्णु ही सर्वकारण भी हैं।।२७-३१।।

अहं च विष्णुर्यज्ज्ञानं तद्विष्णुस्मरणं विदुः। सर्वदेवमयो विष्णुवधिना पूजयामि तम्॥३२॥
इति या भवति श्रद्धा सा तद्भक्तिः प्रकीर्तिता।
सर्वभूतमयो विष्णुः परिपूर्णः सनातनः॥३३॥

"मैं स्वयं विष्णु ही हूं" इस ज्ञान को **विष्णुस्मरण** कहा गया है। "विष्णु सर्वदेवमय हैं। मैं उनकी विधि-विधान से पूजा करूंगा।" इस श्रद्धामय भाव को ही **भक्ति** कहते हैं। विष्णु ही सर्वभूतसमूह मय हैं। वे पूर्ण तथा सनातन भी हैं।।३२-३३।।

इत्यभेदेन या बुद्धिः समता सा प्रकीर्तिता। समता शत्रुमित्रेषु वशित्वं च तथा नृप।।३४।।
यदृच्छालाभसंतुष्टिः सा शान्तिः परिकीर्तिता।
एते सर्वे समाख्यातास्तपःसिद्धिप्रदा नृणाम्।।३५।।
समस्तपापराशीनां तरसा नाशहेतवः। अष्टाक्षरं महामन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम्।।३६।।
वक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुषार्थैकसाधनम्। विष्णोः प्रियकरं चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।३७।।

यह जो अभेद बुद्धि है, इसे ही **समता** कहा गया है। हे नृप! शत्रु-मित्र के प्रति समता रखना, स्वयं को वश में (इन्द्रियों को) रखना, जो मिले उसी से सन्तुष्ट रहना, यही **शान्ति** है। यह सब मनुष्य के लिये तपः सिद्धिप्रद धर्म कहे गये हैं। तत्काल समस्त पापों का नाशक अष्टाक्षर महामन्त्र है। हे राजेन्द्र! उस एकमात्र पुरुषार्थ साधक, विष्णु को प्रिय तथा सर्वसिद्धिप्रद मंत्र को कहता हूं।।३४-३७।।

नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम्। नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम्।।३८।।
प्रणवाद्यं महाराज द्वादशार्णमुदाहृतम्। द्वयोः समं फलं राजन्नष्टद्वादशवर्णयोः।।३९।।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साम्यमुद्दिष्टमेतयोः। शङ्खचक्रधरं शान्तं नारायणमनामयम्।।४०।।
लक्ष्मीसंश्रितवामाङ्कं तथाभयकरं प्रभुम्। किरीटकुण्डलधरं नानामण्डनशोभितम्।।४१।।
भ्राजत्कौस्तुभमालाढ्यं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। पीताम्बरधरं देवं सुरासुरनमस्कृतम्।।४२।।

मन्त्र के आदि में प्रणव (ओं) लगाकर "नमो नारायणाय" का जप करे। "नमो भगवते वासुदेवाय" कहे इसके पूर्व में "ॐ" लगाये। हे महाराज! ये आठ वर्ण वाले तथा बारह वर्ण वाले मन्त्र, दोनों ही समान फलप्रद हैं। ये प्रवृत्तिमार्ग तथा मोक्षमार्ग दोनों के लिये सिद्धिप्रद समान रूप से हैं। जो शंखचक्रधारी, शान्त, अनामय नारायण हैं, उनके बायीं ओर लक्ष्मी शोभायमान हैं। वे अभयप्रदाता, प्रभु, किरीट-कुण्डलधारी, नाना प्रकार से शोभित, कौस्तुभमाला से सजे तथा नाना अन्य मालाओं से भी भूषित हैं। उनका वक्षस्थल श्रीवत्सचिह्नाङ्कित हैं। वे सुरासुर नमस्कृत देव पीताम्बर धारी हैं।।३८-४२।।

ध्यायेदनादिनिधनं सर्वकामफलप्रदम्। अन्तर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्णः सनातनः।।४३।।
एतत्सर्वं समाख्यातं यत्तु पृष्टं त्वया नृप।
स्वस्ति तेऽस्तु तपःसिद्धिं गच्छ लब्धुं यथासुखम्।।४४।।

"ये प्रभु अनादि, अनन्त, सर्वमनोरथदाता भगवान् विष्णु हैं। इनका ध्यान करना चाहिये। ये देवता अन्तर्यामी, ज्ञानरूप, परिपूर्ण सनातन हैं। हे नृप! जो कुछ तुमने पूछा था, वह सब मैंने कह दिया। अब यथासुख जाकर तपःसिद्धि प्राप्त करो।"।।४३-४४।।

एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमर्षिणा। परमां प्रीतिमापन्नः प्रपेदे तपसे वनम्।।४५।।
हिमवद्गिरिमासाद्य पुण्यदेशे मनोहरे। नादेश्वरे महाक्षेत्रे तपस्तेपेऽतिदुश्चरम्।।४६।।

राजा त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः।
कृतातिथ्यर्हणश्चापि नित्यं होमपरायणः॥४७॥
सर्वभूतहितः शान्तो नारायणपरायणः। पत्रैः पुष्पैः फलैस्तोयैस्त्रिकालं हरिपूजकः॥४८॥
एवं बहुतिथं कालं नीत्वा चात्यन्तधैर्यवान्।
ध्यायन्नारायणं देवं शीर्णपर्णाशनोऽभवत्॥४९॥
प्राणायामपरो भूत्वा राजा परमधार्मिकः। निरुच्छ्वासं तपस्तप्तुं ततः समुपचक्रमे॥५०॥

परमर्षि भृगु के यह कहने पर राजा परम प्रसन्नता के साथ तपःश्चरण के लिये वन में गये। वे राजा हिमालय पर्वत के एक नादेश्वर नामक पुण्यमय मनोहर महाक्षेत्र में जाकर परम दुष्कर तपःश्चरण करने लगे। राजा नित्य तीन बार स्नान करते तथा कन्द-मूल-फल खाकर निर्वाह करते रहते थे। वे रोज अतिथि सेवा तथा होम सम्पन्न करते थे। वे सर्वभूतहितरत, शान्त, नारायण के प्रतिभक्तिमान्, सदा नारायण का ध्यान करते तथा पृथिवी पर गिरे पत्तों का ही भोजन करते। वे परमधार्मिक राजा प्राणायाम करते रहते। वे पत्र, पुष्प, फल से तीनों काल नारायण की अर्चना करते थे। तदनन्तर अन्त में प्राणायाम परायण राजा ने श्वास का कुंभक करके तप किया।।४६-५०।।

ध्यायन्नारायणं देवमनन्तमपराजितम्। षष्टिवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासपरोऽभवत्॥५१॥
तस्य नासापुटाद्राज्ञो वह्निर्जज्ञे भयंकरः।
तं दृष्ट्वा देवताः सर्वे वित्रस्ता वह्नितापिताः॥५२॥
अभिजग्मुर्महाविष्णुं यत्रास्ते जगतां पतिः। क्षीरोदस्योत्तरं तीरं संप्राप्य त्रिदशेश्वराः।
अस्तुवन्देवदेवेशं शरणागतपालकम्॥५३॥

हे राजन्! इससे उन राजा के नासापुट से भयानक अग्नि निर्गत होने लगी। यह देखकर सभी देवता उस वह्निज्वाला से तप्त होकर वहां गये, जहां जगन्नाथ महाविष्णु विराजमान थे। सभी देवगण क्षीरसागर के उत्तर तट पर गये थे तथा वहां देवदेवेश शरणागत पालक प्रभु की स्तुति करने लगे।।५१-५३।।

देवा ऊचुः

नता स्म विष्णुं जगदेकनाथं स्मरत्समस्तार्तिहरं परेशम्।
स्वभावशुद्धं परिपूर्णभावं वदन्ति यज्ज्ञानतनुं च तज्ज्ञाः॥५४॥
ध्येयः सदा योगिवरैर्महात्मा स्वेच्छाशरीरैः कृतदेवकार्यः।
जगत्स्वरूपो जगदादिनाथस्तस्मै नताः स्मः पुरुषोत्तमाय॥५५॥

देवगण कहते हैं—हम संसार के एकमात्र स्वामी, स्मरण करते ही समस्त आर्त्ति का हरण करने वाले, परमेश, स्वभावशुद्ध, परिपूर्ण भाव विष्णु को प्रणाम करते हैं! आपको ब्रह्मज्ञ लोग ज्ञानतनु कहते हैं। जिनका योगीवर महात्मागण सदा ध्यान करते हैं, जो स्वेच्छा से शरीर धारण करते तथा देवकार्य सम्पन्न करते हैं, उन जगत्स्वरूप, जगत् के आदिनाथ पुरुषोत्तम को हम प्रणाम करते हैं!।५४-५५।।

यन्नामसंकीर्त्तनतो खलानां समस्तपापानि लयं प्रयान्ति।
तमीशमीड्यं पुरुषं पुराणं नताः स्म विष्णुं पुरुषार्थसिद्ध्यै॥५६॥

जिनका नाम संकीर्तन करने से दुष्टों तक के सर्वपाप लयीभूत हो जाते हैं, उन आदरणीय पुराणपुरुष विष्णु को हम पुरुषार्थ सिद्धि हेतु प्रणाम करते हैं!।५६।।

यत्तेजसा भान्ति दिवाकराद्या नातिक्रमन्त्यस्य कदापि शिक्षाः।
कालात्मकं तं त्रिदशाधिनाथं नमामहे वै पुरुषार्थरूपम्॥५७॥

जिनके स्वप्रकाश से सूर्य आदि सदा प्रभासित होते रहते हैं, जो कदापि उन प्रभु के आदेश की अवहेलना नहीं कर सकते, उन कालात्मक देवताओं के नाथ पुरुषार्थ रूपी प्रभु को हम प्रणाम करते हैं!।५७।।

जगत्करोऽत्यब्जभवोऽत्ति रुद्रः पुनाति लोकाञ्श्रुतिभिश्च विप्राः।
तमादिदेवं गुणसन्निधानं सर्वोपदेष्टारमिताः शरण्यम्॥५८॥

जिन प्रभु की कृपा से ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं तथा रुद्रदेव सर्वज्ञगत् को पुनीत करते हैं, विप्रगण नाना श्रुतिमंत्रों से जिनका स्तव करते हैं, उन आदिदेव, गुणनिधि, सबके उपदेशक प्रभु की हम शरण ग्रहण करते हैं।।५८।।

वरं वरेण्यं मधुकैटभारिं सुरासुराभ्यर्चितपादपीठम्।
सद्भक्तसंकल्पितसिद्धिहेतुं ज्ञानेकवेद्यं प्रणताः स्म देवम्॥५९॥

जो वर, वरेण्य, मधुकैटभ के शत्रु हैं, जिनके चरण पीठ की सुर-असुर अर्चना करते हैं, जो सद्भक्तजन को संकल्प सिद्धि प्रदान करते हैं, जो ज्ञान से ही जाने जाते हैं, उन देव को हम प्रणाम करते हैं!।५९।।

अनादिमध्यान्तमजं परेशमनाद्यविद्याख्यतमोविनाशम्।
सच्चित्परानन्दघनस्वरूपं रूपादिहीनं प्रणताः स्म देवम्॥६०॥

जो अनादि, अमध्य, अनन्त, अज, परेश हैं, जो अनादि अविद्या तमः के विनाशक हैं, जो सत्‌चित् परानन्दघन स्वरूप हैं, जो रूपादि से रहित (अरूप) हैं, उन देव को हम प्रणाम करते हैं!।६०।।

नारायणं विष्णुमनन्तमीशं पीताम्बरं पद्मभवादिसेव्यम्।
यज्ञप्रियं यज्ञकरं विशुद्धं नताः स्म सर्वोत्तममव्ययं तम्॥६१॥

हे नारायण! अनन्त, विष्णु, ईश्वर, पीताम्बर वस्त्रधारी, ब्रह्मा-शिव प्रभृति से सेवनीय, यज्ञप्रिय, यज्ञकर सर्वोत्तम, अव्यय, विशुद्ध देव हैं, उनको हम प्रणाम करते हैं!।६१।।

इति स्तुतो महाविष्णुर्देवैरिन्द्रादिभिस्तदा। चरितं तस्य राजर्षेर्देवानां संन्यवेदयत्॥६२॥
ततो देवान्समाश्वास्य दत्वाभयमनञ्जनः। जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद॥६३॥

जब उन महाविष्णु की इन्द्रादि देवगण ने स्तुति किया था, तभी उन देवताओं ने प्रभु से राजर्षि भगीरथ का समस्त वृत्तान्त भी कह दिया था। यह प्रसंग सुनकर उन निरंजन प्रभु ने देवगण को आश्वस्त करके अभयदान भी दिया। तत्पश्चात् हे नारद! भगवान् महाविष्णु स्वयं वहां गये, जहां राजर्षि भगीरथ तपःश्चरणरत थे।।६२-६३।।

शङ्खचक्रधरो देवः सच्चिदानन्दविग्रहः। प्रत्यक्षतामगात्तस्य राज्ञः सर्वजगद्गुरुः॥६४॥

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं भाभासितदिगन्तरम्।
अतसीपुष्पसंकाशं स्फुरत्कुण्डलमण्डितम्॥६५॥
स्निग्धकुन्तलवक्त्राब्जं विभ्राजन्मकुटोज्ज्वलम्।
श्रीवत्सकौस्तुभधरं वनमालाविभूषितम्॥६६॥

दीर्घबाहुमुदाराङ्गं लोकेशार्चितपङ्कजम्। ननाम दण्डवद्भूमौ भूपतिर्नम्रकन्धरः॥६७॥

शंख, चक्र, गदाधारी सच्चिदानन्द विग्रह, समस्त जगत् के गुरुरूप नारायण को प्रत्यक्ष प्रगट तथा समागत देखकर राजा ने कमलनयन, अतसी पुष्पवत् मनोहर वर्ण, स्वप्रभा से दिग-दिगन्त को उद्भासित करने वाले हिलते हुये कुण्डल से मण्डित (कर्ण वाले), उज्वल मुकुटधारी, उदार अंगों वाले, वनमालाभूषित, श्रीवत्स तथा कौस्तुभधारी, दीर्घ बाहु, लोकेश के चरणों में दण्डवत् भूमि पर गिरकर प्रणाम किया!।६४-६७।।

अत्यन्तहर्षसंपूर्णः सरोमाञ्चः सगद्गदः।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन्॥६८॥

तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा ह्यन्तर्यामी जगद्गुरुः। उवाच कृपयाविष्टो भगवान्भूतभावनः॥६९॥

उस समय राजा रोमांचित, हर्षयुक्त तथा गद्‌गद हो गये। उन्होंने कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, श्रीकृष्ण का ठच्चारण किया। इससे अन्तर्यामी जगद्‌गुरु विष्णु प्रसन्न हो गये। उन भगवान् भूतभावन ने कृपापरवश होकर राजा से कहा—।।६८-६९।।

श्रीभगवानुवाच

भगीरथ महाभाग तवाभीष्टं भविष्यति। आगमिष्यन्ति मल्लोकं तव पूर्वपितामहाः॥७०॥

मम मूर्त्यन्तरं शम्भुं राजन्स्तोत्रैः स्वशक्तितः।
स्तुहि ते सकलं कामं स वै सद्यः करिष्यति॥७१॥

यस्तु जग्राह शशिनं शरणं समुपागतम्। तस्मादाराधयेशानं स्तोत्रैः स्तुत्यं सुखप्रदम्॥७२॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे महाभाग भगीरथ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। तुम्हारे पितामह मेरे लोक में आ जायेंगे। हे राजन्! तुम मेरी अन्य मूर्त्ति शंभु की अपनी शक्ति के अनुसार स्तुति करो। वे तुम्हारी समस्त कामना शीघ्रता से पूर्ण कर देंगे। उन्होंने अपनी शरण में आगत चन्द्रमा को ग्रहण कर लिया। उन सुखदाता, पूज्य देव ईशान की स्तुति करो।।७०-७२।।

अनादिनिधनो देवः सर्वकामफलप्रदः। त्वया संपूजितो राजन्सद्यः श्रेयो विधास्यति॥७३॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशो जगतां पतिरच्युतिः।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ उत्तस्थौ सोऽपि भूपतिः॥७४॥
किमिदं स्वप्न आहोस्वित्सत्यं साक्षाद्द्विजोत्तम।
भूपतिर्विस्मयं प्राप्तः किं करोमीति विस्मितः॥७५॥

"वे आदि-अन्त रहित देव सर्वकामना के फलदाता हैं। हे राजन्! तुम्हारे द्वारा पूजित होकर वे शीघ्र तुमको श्रेयः प्रदान करेंगे।" हे मुनिप्रवर! यह कहने के अनन्तर देवदेवेश, जगत्पति, अच्युत प्रभु तभी अन्तर्हित् हो गये। अब वे राजा उठकर विचार करने लगे। यह स्वप्न है अथवा सत्य हैं? हे द्विजोत्तम! यह देखकर राजा विस्मित हो गये। वे सोचने लगे अब क्या करूं?।।७३-७५।।

अथान्तरिक्षे वागुच्चैः प्राह तं भ्रान्तचेतसम्।
सत्यमेतदिति व्यक्तं न चिन्तां कर्तुमर्हसि॥७६॥

तन्निशाम्यावनीपाल ईशानं सर्वकारणम्। समस्तदेवताराजमस्तौषीद् भक्तितत्परः॥७७॥

तभी राजा ने अन्तरिक्ष से आकाशवाणी सुना—"हे राजन्! भ्रान्तचित्त मत हो। यह घटना सत्य है। चिन्ता मत करो।" यह वाणी सुनकर राजा भगीरथ सर्वकारण सर्वदेवस्वामी ईशान की भक्तितत्पर होकर स्तुति करने लगे।।७६-७७।।

भगीरथ उवाच

प्रणमामि जगन्नाथं प्रणतार्तिप्रणाशनम्। प्रमाणागोचरं देवमीशानं प्रणवात्मकम्॥७८॥
जगद्रूपमजं नित्यं सर्गस्थित्यंकारणम्। विश्वरूपं विरूपाक्ष प्रणतोऽस्म्युग्ररेतसम्॥७९॥
आदिमध्यान्तरहितमनन्तमजमव्ययम्। समामनन्ति योगीन्द्रास्तं वन्दे पुष्टिवर्धनम्॥८०॥

राजा भगीरथ कहते हैं—हे जगन्नाथ! आप प्रणत जनों की आर्ति के नाशक हैं। आप प्रमाणों से परे हैं अर्थात् आप प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान तथा शब्दरूप चार प्रमेयों से अतीत हैं। हे प्रणवात्मक, देव ईशान आपको प्रणाम है! आप नित्य, जगद्रूप, अज, नित्य सृष्टि तथा स्थिति एवं अन्त्य (संहार) के कारण, विश्वरूप, विरूपाक्ष, उग्रवीर्य को प्रणाम करता हूं!। आप आदि, मध्य, अन्त रहित, अनन्त, अज, अव्यय हैं। आप की चरण वन्दना योगीन्द्रगण करते रहते हैं। हे पुष्टिवर्द्धन! मैं आपकी वन्दना करता हूं।।७८-८०।।

नमो लोकाधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते। नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूनां पतये नमः॥८१॥
नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टानां पतये नमः। नमोऽकल्पप्रकल्पाय भूतानां पतये नमः॥८२॥
नमः पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः। नमः कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे॥८३॥
नमस्ते सर्वभूताय घण्टाहस्ताय ते नमः। नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणां पतये नमः॥८४॥

हे लोकाधिनाथ! आप माया का भी वंचन करते रहते हैं। हे नीलग्रीव! पशुपति आपको नमस्कार! हे चैतन्यरूप! पुष्टगण (प्राणीगण) के पति आपको नमस्कार! कल्पों की भी आप रचना करते हैं। आपको नमस्कार! आप प्राणीगण के भी पति हैं। हे पिनाकहस्त, शूलहस्त, कपालहस्त, पाशमुद्गरधारी! आपको नमस्कार! सर्वभूतरूपी, हाथों में घण्टाधारी, पंचमुखदेव क्षेत्रपति! आपको नमस्कार!।।८१-८४।।

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते। अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने॥८५॥
नमोगणाधिदेवाय गणानां पतये नमः। नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नमः॥८६॥
हिरण्यरेतसे तुभ्यं नमो हिरण्यबाहवे। नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे॥८७॥

नमस्ते ध्यानसंस्थाय ध्यानगम्याय ते नमः। येनेदं विश्वमखिलं चराचरविराजितम्॥८८॥
वर्षेवाभ्रेण जनितं प्रधानपुरुषात्मना॥८९॥
स्वप्रकाशं महात्मानं परं ज्योतिः सनातनम्।
यमामनन्ति तत्त्वज्ञाः सवितारं नृचक्षुषाम्॥९०॥

आप सभी भूतसमूह के भी आदिभूत हैं। आप भू (धरती) को धारण करने वाले, अनेकरूपधारी, निर्गुण परात्मा हैं। हे गणाधिदेव, गणों के पति, हिरण्यगर्भ, हिरण्यपति! आपको नमस्कार! आप हिरण्यरेतस्, हिरण्यबाहु, ध्यानस्वरूप, ध्यानसाक्षी, ध्यानसंस्थ, ध्यानगम्य हैं। आपको नमस्कार! आपसे ही यह सचराचर जगत् व्याप्त है। इस जगत् को आप प्रधान पुरुषात्मा ने मेघजनित वर्षा के समान सृष्ट किया है। आपको नमस्कार! आप स्वप्रकाश, महात्मा परमज्योति, सनातन हैं। जिन आपको तत्वज्ञगण सविता मनुष्यों के नेत्ररूपेण जानते हैं, उन आपको नमस्कार!।।८५-९०।।

उमाकांतंनन्दिकेशं नीलकण्ठं सदाशिवम्। मृत्युञ्जयं महादेवं परात्परतरं विभुम्॥९१॥
परं शब्दब्रह्मरूपं तं वन्देऽखिलकारणम्। कपर्द्दिने नमस्तुभ्यं सद्योजाताय वै नमः॥९२॥
भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे। मन्यवे त इवे त्रय्याः पतये यज्ञतन्तवे॥९३॥
ऊर्जे दिशां च पतये कालायाघोररूपिणे। कृशानुरेतसे तुभ्यं नमोऽस्तु सुमहात्मने॥९४॥

हे उमाकान्त! नन्दिकेश, नीलकण्ठ, सदाशिव, मृत्युंजय, महादेव, परातपरतर, विभु, परमशब्दब्रह्मरूप, अखिलकारण मैं आपकी वन्दना करता हूं। हे कपर्दी! हे सद्योजात! आपको प्रणाम! आप भवोद्भव, शुद्ध, ज्येष्ठ, सबसे कनिष्ठ, वेदपति, यज्ञवर्द्धक, ऊर्ज, दिशाओं के पति, काल, अघोररूप, अग्निरेतस्, सुमाहात्मा हैं। आपको प्रणाम करता हूं!।।९१-९४।।

यतः समुद्राः सरितोऽद्रयश्च गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः।
स्थाणुर्चरिष्णुर्महदल्पकं च असच्च सज्जीवमजीवमास॥९५॥
नतोऽस्मि तं योगिनतांघ्रिपद्मं सर्वान्तरात्मानमरूपमीशम्।
स्वतंत्रमेकं गुणिनां गुणं च नमामि भूयः प्रणमामि भूयः॥९६॥

जिन प्रभु से समुद्र, सरिता, पर्वत, गन्धर्व, यक्ष, देवता, सिद्धसंघ, स्थावर, चर, महद्-अल्प, असत्-सत् की उत्पत्ति हुई, मैं उन सर्वान्तरात्मा, अरूप ईश का नमन करता हूं, जिनके चरण कमलों पर योगीगण के शीश भी नत रहते हैं। जो स्वतन्त्र, एक, गुणियों के गुण हैं, मैं उन देवता को पुनरपि प्रणाम करता रहता हूं।।९५-९६।।

इत्थं स्तुतो महादेवः शंकरो लोकशंकरः। आविर्बभूव भूपस्य संतप्ततपसोग्रतः॥९७॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्। त्रिलोचनमुदाराङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम्॥९८॥
विशालवक्षसं देवं तुहिनाद्रिसमप्रभम्। गजचर्माम्बरधरं सुरार्चितपदाम्बुजम्॥९९॥
दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दण्डवद्भुवि नारद।
तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहिताञ्जलिः॥१००॥

प्रणनाम महादेवं कीर्तयन्शंकराह्वयम्। विज्ञाय भक्तिं भूपस्य शंकरः शशिशेखरः॥१०१॥

उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वरं वरय वाञ्छितम्।
तोषितोऽस्मि त्वया सम्यक् स्तोत्रेण तपसा तथा॥१०२॥

एवमुक्तः स देवेन राजा संतुष्टमानसः। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम्॥१०३॥

लोकशंकर, शंकर महादेव की जब राजा भगीरथ ने स्तुति किया, तब भगवान् शिव उस तप से सन्तप्त राजा के समक्ष प्रकट हो गये। वे पंचमुख, दसभुजा वाले, अर्द्धचन्द्र को शिर पर धारण किये हुये, त्रिलोचन, उदार अंगों वाले, नागयज्ञोपवीतधारी, विशालवक्ष वाले देव हिमपर्वत ऐसे प्रभावान् थे। उन्होंने गजचर्म धारण किया था। वे सुरपूजित चरणकमल वाले थे। उन प्रभु महादेव को सम्मुख प्रकट देखकर उनको भगीरथ ने पृथिवी पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया! हे नारद! तदनन्तर भगीरथ शीघ्रता से उठे तथा उन्होंने अंजलिबद्ध होकर शंकर के समक्ष प्रणति निवेदन किया। वे शंकर की कीर्त्ति का गायन करते उनको पुनः-पुनः प्रणाम करने लगे। राजा की भक्ति देखकर शशिशेखर शंकर ने राजा से कहा—"हे राजन्!, मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हूं। तुम वांछित वर मांगो! तुमने तप तथा स्तोत्र से मुझे सम्यक् सन्तुष्ट किया है।" भगवान् के यह कहने पर राजा सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने हाथों को जोड़कर जगत् के ईश्वरों के ईश्वर से विनय पूर्वक कहा—॥९७-१०३॥

भगीरथ उवाच

अनुग्रह्योऽस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर। तदा गङ्गां प्रयच्छास्मत्पितॄणां मुक्तिहेतवे॥१०४॥

राजा भगीरथ कहते हैं—हे महेश्वर! यदि आप मुझे वर प्रदान करके अनुगृहीत करना चाहते हैं, तब आप मेरे पितरों की मुक्ति हेतु मुझे गंगा प्रदान करिये॥१०४॥

श्रीशिव उवाच

दत्ता गङ्गा मया तुभ्यं पितॄणां ते गतिः परा।
तुभ्यं मोक्षः परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिवः॥१०५॥

भगवान् श्रीशिव कहते हैं—"मैं तुमको गंगा प्रदान करता हूं। इससे तुम्हारे पितृगण को परागति प्राप्त होगी। तुम भी परममोक्ष लाभ करोगे।" यह कहकर भगवान् शंकर वहां से अन्तर्ध्यान हो गये॥१०५॥

कपर्दिनो जटास्रस्ता गङ्गा लोकैकपाविनी।
पावयन्ती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम्॥१०६॥
ततः प्रभृति सा देवी निर्मला मलहारिणी।
भागीरथीति विख्याता त्रिषु लोकेष्वमून्मुने॥१०७॥
सगरस्यात्मजाः पूर्वं यत्र दग्धाः स्वपाप्मना।
तं देशं प्लावयामास गङ्गासर्वसरिद्वरा॥१०८॥

यदा संप्लावितं भस्म सागराणां तु गङ्गया। तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैनसः॥१०९॥
पुरा संक्रुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिताः। त एवपूजितास्तेन गङ्गाजलपरिप्लुताः॥११०॥

गतपापान्स विज्ञाय यमः सगरसंभवान्।
प्रणम्याभ्यर्च्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतमानसः॥१११॥

इसके साथ ही कपर्दी महादेव की जटा से निकली सर्वलोकपावनी गंगा समस्त संसार को पावन करती भगीरथ का अनुसरण करते चलने लगीं। तब से ये निर्मला-मलहारिणी देवी गंगा त्रैलोक्य में भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हो गईं। हे मुनिवर! उत्तम सरिता गंगा जहां सगरपुत्रगण अपने पापों के कारण दग्ध हो गये थे, वहां पहुंची तथा उन्होंने उस स्थान को जल से आप्लावित कर दिया। सगरपुत्रगण की भस्म का स्पर्श जैसे ही गंगा से हो गया, वे सगर पुत्रगण उसी समय नरक से उद्धार पाकर पाप रहित स्थिति में स्वर्ग चले गये। पूर्वकाल में इन सगरपुत्रगण पर उनके पातकों के कारण यम क्रोधित हो गये थे तथा पीड़ित करते थे, अब उन सगरपुत्रों की गंगाजल स्पर्श के उपरान्त यम भी पूजा करने लगे! यम ने देखा कि अब गंगास्पर्श के फलस्वरूप सगरपुत्रगण पापमुक्त हो गये हैं। अतः यम ने उनका सविधि आदर करके पूजनोपरान्त हर्षित होकर कहा—।।१०६-१११।।

भो भो राजसुता यूयं नरकाद् भृशदारुणात्।
मुक्ता विमानमारूह्य गच्छध्वं विष्णुमन्दिरम्॥११२॥

यम ने कहा—हे राजपुत्रों! तुम सभी इस महादारुण नरक यातना से मुक्त हो गये। तुम सब अब विमानारूढ़ होकर विष्णुलोक गमन करो।।११२।।

इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषाः। दिव्यदेहधरा भूत्वा विष्णुलोकं प्रपेदिरे॥११३॥
एवंप्रभावा सा गङ्गा विष्णुपादाग्रसंभवा। सर्वलोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी॥११४॥

य इदं पुण्यमाख्यानं महापातकनाशनम्।
पठेच्च शृणुयाद्वापि गङ्गास्नानफलं लभेत्॥११५॥
यस्त्वेतपुण्यमाख्यानं कथयेद्ब्राह्मणाग्रतः।
स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम्॥११६॥

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्ये भगीरथगङ्गानयनं नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

महात्मा यम के इस कथन को सुनकर वे सगरपुत्र पाप रहित तथा दिव्यदेहधारी होकर विष्णुलोक चले गये। विष्णु के पादाग्र से निर्गत् गंगा का ऐसा प्रभाव है। तभी से यह सभी लोकों में महापातकनाशिनीरूपेण प्रसिद्ध हो गयी। जो इस पुण्यमय महापातक नाशक प्रसंग का पाठ करता है किंवा श्रवण करता है, उसे गंगा स्नानफल लाभ होता है। जो इस पुण्यमय प्रसंग का ब्राह्मणगण के समक्ष वर्णन करता है, वह आवागमन रहित विष्णुलोक गमन करता है।।११३-११६।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

शुक्लपक्ष के द्वादशी व्रत का उसके उद्यापन के साथ वर्णन

ऋषय ऊचुः

साधु सूत महाभाग त्वयातिकरुणात्मना। श्रावितं सर्वपापघ्नं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्॥१॥
श्रुत्वा तु गङ्गामाहात्म्यं नारदो देवदर्शनः। किं पप्रच्छ पुनः सूत सनकं मुनिसत्तमम्॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे महाभाग! आप धन्य हैं। आपने परम उत्तम सर्वपापनाशक गंगा माहात्म्य हम सबको श्रवण कराया है। देवदर्शन देवर्षि नारद ने गंगा माहात्म्य श्रवणोपरान्त मुनिप्रवर देवर्षि सनक से क्या प्रश्न किया था? वह कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे नारदेन सुरर्षिणा। पृष्टं पुनर्यथा प्राह प्रवक्ष्यामि तथैव तत्॥३॥
नानाख्यानेतिहासाढ्यं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। श्रुत्वा ब्रह्मसुतो भूयः पृष्टवानिदमादरात्॥४॥

सूत जी कहते हैं—हे ऋषिगण! देवर्षि नारद ने महर्षि सनक से जो कुछ पूछा तथा सनक ने जो उत्तर प्रदान किया, मैं वह प्रसंग आपलोगों से यथावत् कह रहा हूं। नाना आख्यान तथा इतिहास युक्त उत्तम गंगा माहात्म्य सुनने के पश्चात् ब्रह्मनन्दन नारद आदर पूर्वक सनकऋषि से पूछने लगे।।३-४।।

नारद उवाच

अहोऽतिधन्यं सुकृतैकसारं श्रुतं मया पुण्यमसंवृतार्थम्।
गाङ्गेयमाहात्म्यमघप्रणाशि त्वत्तो मुने कारुणिकादभीष्टम्॥५॥
ये साधवः साधु भजन्ति विष्णुं स्वार्थं परार्थं च यतन्त एव।
नानोपदेशैः सुविमुग्धचित्तं प्रबोधयन्ति प्रसभं प्रसन्नम्॥६॥
ततः समाख्याहि हरेर्व्रतानि कृतैश्च यैः प्रीतिमुपैति विष्णुः।
ददाति भक्तिं भजतां दयालुर्मुक्तिस्तु तस्या विदिता हि दासी॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मैं आज अत्यन्त धन्य हूं। मैंने आज आपसे सुकृत का सार रूप पुण्यमय पापनाशक गंगा माहात्म्य सुना। आप कारुणिक हैं। मैंने आपसे इस अभीष्ट वृत्तान्त का श्रवण किया है। साधुगण विष्णु का भजन करते रहते हैं। इससे उनको परार्थ के साथ स्वार्थ की भी सिद्धि हो जाती है। साधुजन नाना उपदेश देकर मायामुग्ध चित्त वालों को भी प्रबोधित करते हैं। उनको प्रसन्न करते हैं। अब आप कृपा पूर्वक भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले व्रतों का वर्णन करिये। जो विष्णु का भजन करता है, उसे वे प्रभु अपनी भक्ति प्रदान करते हैं। यह मुक्ति तो भक्त की दासी के समान है।।५-७।।

ददाति मुक्तिं भजतां मुकुन्दो व्रतार्चनध्यानपरायणानाम्।
भक्तानुसेवासु महाप्रयासं विमृश्य कस्यापि न भक्तियोगम्॥८॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च यत्कर्म हरितोषणम्। तदाख्याहि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तोऽसि मानद॥९॥

जो मुकुन्द की अर्चना, व्रतोपवास, ध्यान में निरत रहने वाले भक्त हैं, वे उनको मुक्ति देते हैं। वे भक्ति उनको इस कारण से नहीं देते कि भक्त सेवा तो महाप्रयास साध्य है। (जबकि मुक्ति पाना अत्यन्त सहज है)। हे मानद! अब आप कृपया उन कर्मों का वर्णन करिये जिन प्रवृत्त-निवृत्त कर्म से हरि सन्तुष्ट होते हैं। आप विष्णुभक्त हैं। हे मुनिप्रवर! यह सब आपको ज्ञात है।।८-९।।

सनक उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ भक्तस्त्वं पुरुषोत्तमे। भूयो भूयो यतः पृच्छेश्चरित्रं शार्ङ्गधन्वनः॥१०॥
व्रतानि ते प्रवक्ष्यामि लोकापकृतिमन्ति च। प्रसीदति हरिर्यैस्तु प्रयच्छत्यभयं तथा॥११॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। मैं आपको साधुवाद देता हूं। आप पुरुषोत्तम विष्णु के भक्त हैं। आप बारम्बार इसी भक्ति के कारण उन शार्ङ्गधनुषधारी का चरित्र जो पूछते रहते हैं। अब मैं आपसे लोकोपकारी व्रतों का वर्णन करता हूं। इन व्रतों का अनुष्ठान करने वाले के प्रति विष्णु प्रसन्न होकर उसे अभय व्रत प्रदान करते हैं।।१०-११।।

यस्य प्रसन्नो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः। इहामुत्र सुखं तस्य तपोवृद्धिश्च जायते॥१२॥
येन केनाप्युपायेन हरिपूजापरायणाः। प्रयान्ति परमं स्थानमिति प्राहुर्महर्षयः॥१३॥
मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वादश्यां जलशायिनम्।
उपोषितोऽर्चयेत्सम्यङ् नरः श्रद्धासमन्वितः॥१४॥

भगवान् यज्ञलिंग जनार्दन जिसके ऊपर प्रसन्न हो जाते हैं, उसकी तपःवृद्धि होती है तथा उसे इहलोक तथा परलोक में सुखलाभ होता है। महर्षियों का कथन है, जो येनकेनप्रकारेण हरिपूजा निरत है, वह परमस्थान प्राप्त करता है। मार्गशीर्ष मास की शुक्ला द्वादशी तिथि के दिन व्यक्ति सश्रद्ध भाव से उपवासी रहकर जलशायी विष्णु की सम्यक् अर्चना करें।।१२-१४।।

स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो दन्तधावनपूर्वकम्। गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यपूर्वकैः॥१५॥
वाग्यतो भक्तिभावेन मुनिश्रेष्ठार्चयेद्धरिम्।
केशवाय नमस्तुभ्यमिति विष्णुं च पूजयेत्॥१६॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा वह्नौ घृततिलाहुतीः। रात्रौ जागरणं कुर्याच्छालग्रामसमीपतः॥१७॥
स्नापयेत्प्रस्थपयसा नारायणमनामयम्। गीतैर्वाद्यैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च केशवम्॥१८॥

वह स्नानोपरान्त श्वेतवस्त्र धारण करे। इससे पूर्व दन्तधावनादि नित्यकर्म यथाविधान सम्पन्न करे। तदनन्तर स्नानोपरान्त श्वेतवस्त्रधारी होकर मौनी स्थिति में गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्यादि द्वारा भक्तिभाव से हरिपूजन करे। हे मुनिप्रवर! "केशवाय नमस्तुभ्यै" मन्त्रों द्वारा पूजन सम्पन्न करे। १०८ घृत-तिल की आहुति द्वारा होम करने के उपरान्त रात्रि में शालग्रामशिला के पास जागरण करे। तत्पश्चात् भगवान् शालग्राम को एक प्रस्थ (५ सेर) दूध द्वारा अभिषेक (स्नान) कराये। केशव के समक्ष नैवेद्य-भक्ष्य-भोज्यादि निवेदित करके गीत-वाद्यादि का वहां आयोजन करे।।१५-१८।।

त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या महालक्ष्म्या समन्वितम्।
पुनः कल्ये समुत्थाय कृत्वा कर्म यथोचितम्॥१९॥
पूर्ववत्पूजयेद्देवं वाग्यतो नियतः शुचिः। पायसं घृतसंमिश्रं नारिकेरफलान्वितम्॥२०॥
मन्त्रेणानेन विप्राय दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम्।
केशवः केशिहाः देवः सर्वसंपत्प्रदायकः॥२१॥
परमान्नप्रदानेन मम स्यादिष्टदायकः। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्तितो बन्धुभिः सह॥२२॥

भक्तिभाव से महालक्ष्मी तथा जनार्दन का पूजन तीनों काल में करे। तदनन्तर प्रातः शय्या त्याग कर सविधि नित्यकर्म सम्पन्न करने के उपरान्त पूर्ववत् पवित्र होकर पूजा करनी चाहिये। उस समय इस मन्त्र द्वारा ब्राह्मणों को दुग्ध, घृत, नारिकेल निर्मित भोज्य पदार्थ तथा दक्षिणा प्रदान करे। मन्त्र है—जो भगवान् केशीदैत्य का वध करने वाले, सर्वसम्पत्ति प्रदाता हैं, वे भोजनादि दान से प्रसन्न होकर मुझे अभीष्ट प्रदान करे। तदनन्तर स्वशक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन के पश्चात् स्वयं नारायण का ध्यान करते हुये बन्धुजन के साथ भोजन करना चाहिये।।१९-२२।।

नारायणपरो भूत्वा स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।
इति यः कुरुते भक्त्या केशवार्चनमुत्तमम्॥२३॥
स पौंडरीकयज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्। पौषमासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः॥२४॥
नमो नारायणायेति पूजयेत्प्रयतो हरिम्। पयसा स्नाप्य नैवेद्यं पायसं च समर्पयेत्॥२५॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्परः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्गन्धैः पुष्पैर्मनोरमैः॥२६॥
तृणैश्च गीतवाद्याद्यैः स्तोत्रैश्चाप्यर्चयेद्धरिम्।
कृशरान्नं च विप्राय दद्यात्सघृतदक्षिणम्॥२७॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी सनातनः। नारायणः प्रसन्नः स्यात्कृशरान्नप्रदानतः॥२८॥

नारायण के ध्यान में तल्लीन रहते हुये मौनी स्थिति में स्वयं भी भोजन करना चाहिये। जो इस प्रकार से अति उत्तम केशवार्चन करता है, उसे पौण्डरीक यज्ञ से भी आठ गुणित फल की प्राप्ति होती है। पौष शुक्लाद्वादशी तिथि को उपवासी रहकर प्रयत्नतः "नमो नारायण" मन्त्र से श्री हरि की पूजा करनी चाहिये। उनको दुग्ध से स्नान कराने के पश्चात् पायस का नैवेद्य प्रदान करे। त्रिकाल यह अर्चना करता हुआ पूजक रात्रि जागरण करे। धूप-दीप-नैवेद्य, गन्ध, मनोहर पुष्प तथा तृणादि से प्रभु की पूजा, स्तव पाठ करे। गीतवाद्य से प्रभु को अर्चित करे। घृतयुक्त खिचड़ी तथा दक्षिणा इस मन्त्र द्वारा ब्राह्मणगण को प्रदान करना चाहिये। "सर्वात्मा, सर्वलोकेश, सर्वव्यापी, सनातनदेव श्री नारायण इस कृशरान्न (खिचड़ी) दान से प्रसन्न हो जायें।।"२३-२८।।

मन्त्रणानेन विप्राय दत्त्वा वै दानमुत्तमम्।
द्विजांश्च भोजयेयच्छक्त्या स्वयमद्यात्स बान्धवः॥२९॥
एवं संपूजयेद्भक्त्या देवं नारायणं प्रभुम्। अग्निष्टोमाष्टकफलं स संपूर्णमवाप्नुयात्॥३०॥

माघस्य शुक्लद्वादश्यां पूर्ववत्समुपोषितः। नमस्ते माधवयेति हुत्वाष्टौ च घृताहुतीः॥३१॥
पूर्वमानेन पयसा स्नापयेन्माधवं तदा। पुष्पगन्धाक्षतैरर्चेत्सावधानेन चेतसा॥३२॥

इस मन्त्र द्वारा ब्राह्मणगण को यह उत्तम दान प्रदान करना चाहिये। पहले स्वशक्ति के अनुसार ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करके तब बन्धुजन के साथ पूजक भोजन करे। एवंविध नारायण देव की पूजा सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अग्निष्टोम यज्ञ से भी आठ गुना फल प्राप्त कर लेता है। माघमासीय शुक्ला द्वादशी तिथि पर पूर्ववत् उपवासी रहकर "नमस्ते माधवाय" मन्त्र द्वारा घी की छः आहुति प्रदान करे। तदनन्तर पांच सेर दुग्ध द्वारा माधवदेव को स्नान कराये। तब सावधान होकर पुष्प-गंध-अक्षतादि से भगवान् पूजन करे।।२९-३२।।

रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूर्ववद्भक्तिसंयुतः। कल्पकर्म च निर्वर्त्य माधवं पुनरर्चयेत्॥३३॥
प्रस्थं तिलानां विप्राय दद्याद्वै मन्त्रपूर्वकम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च सर्वपापविमुक्तये॥३४॥
माधवः सर्वभूतात्मा सर्वकर्मफलप्रदः। तिलदानेन महता सर्वान्कामान्प्रयच्छतु॥३५॥
मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा भक्तिसमन्वितः।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या संस्मरन्माधवं प्रभुम्॥३६॥
एवं यः कुरुते भक्त्या तिलदाने व्रतं मुने। वाजपेयशतस्यासौ संपूर्णं फलमाप्नुयात्॥३७॥
फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः।
गोविन्दाय नमस्तुभ्यमिति संपूजयेद्व्रती॥३८॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा घृतमिश्रतिलाहुतीः। पूर्वमानेन पयसा गोविन्दं स्नापयेच्छुचिः॥३९॥

तत्पश्चात् पूर्ववत् भक्तिभाव से युक्त होकर रात्रि जागरण करना चाहिये। तत्पश्चात् कल्पसूत्रविहित कर्मों को सम्पन्न करके पुनः माधव की अर्चना करे। तब ५ सेर तिल वस्त्र, दक्षिणा ब्राह्मणों को समंत्रक देने वाला सर्वपाप रहित हो जाता है। हे नारद! जो भक्ति पूर्वक तिलदान करता है, उसे सौ बाजपेय यज्ञों का फल मिलता है। फाल्गुन शुक्ला द्वादशी के दिन मनुष्य उपवासी रहकर "गोविन्दाय नमस्तुभ्यं" मन्त्र से घृत तिलाहुति १०८ बार देकर ५ सेर दुग्ध से गोविन्द को पवित्रता पूर्वक स्नान कराये।।३३-३९।।

रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालं पूजयेत्तथा। प्रातःकृत्यं समाप्याथ गोविन्दं पूज्येत्पुनः॥४०॥
व्रीह्याढकं च विप्राय दद्याद्वस्त्रं सदक्षिणम्। नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ॥४१॥
अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो। एवं कृत्वा व्रतं सम्यक् सर्वपापविवर्जितः॥४२॥

त्रिकाल पूजा तथा रात्रि जागरण भी करे। पुनः प्रातः नित्यक्रिया सम्पन्न करने के पश्चात् पुनः गोविन्द की पूजा करनी चाहिये। तब एक आढक तौल का धान्य, वस्त्र एवं दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को प्रदान करे। उस समय का दान मन्त्र है—"गोविन्द सर्वेश गोपीजन वल्लभ को प्रणाम!" इस धान्यदान द्वारा जगद्गुरु प्रसन्न हो जाते हैं। जो इस प्रकार सम्यक् रूप से व्रत करता है, वह सर्वपातक रहित हो जाता है।।४०-४२।।

गोमेधमखजं पुण्यं सम्पूर्णं लभते नरः। चैत्रमासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः॥४३॥
नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यमिति पूर्ववदर्चयेत्। क्षीरेण स्नापयेद्विष्णुं पूर्वमानेन शक्तितः॥४४॥

तथैव स्नापयेद्विप्र घृतप्रस्थेन सादरम्। कृत्वा जागरणं रात्रौ पूजयेत्पूर्ववद्व्रती॥४५॥
ततः कल्ये समुत्थाय प्रातःकृत्यं समाप्य च।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा मध्वाज्यतिलमिश्रितम्॥४६॥

वह व्यक्ति गोमेध यज्ञफल पूर्णतः लाभ करता है। चैत्रमासीय शुक्ला द्वादशी के दिन उपवासी रहे। अब पूर्ववत् "नमोस्तु विष्णवे तुभ्यं" मन्त्र से पूर्ववत् भगवदार्चन करना चाहिये। तदनन्तर इस मन्त्र से प्रभु को दुग्ध स्नान कराने के पश्चात् ५ सेर घृत से स्नान कराये। अब उस रात्रि में जागरण करके पूर्वोक्त नियम से पूजा करे। तत्पश्चात् प्रातः नित्यक्रियादि सम्पन्न करके वह पूजाकर्त्ता मनुष्य मधु, घृत तथा तिल मिलाकर १०८ आहुति प्रदान करे।।४३-४६।।

सदक्षिणं च विप्राय दद्याद्वै तण्डुलाढकम्।
प्राणरूपी महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः॥४७॥
तण्डुलाढकदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः। एवं कृत्वा नरो भक्त्या सर्वपापविवर्जितः॥४८॥
अत्यग्निष्टोमयज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्। वैशाखशुक्लद्वादश्यामुपोष्य मधुसूदनम्॥४९॥
द्रोणक्षीरेण देवेशं स्नापयेद्भक्तिसंयुतः। जागरं तत्र कर्त्तव्यं त्रिकालार्चनसंयुतम्॥५०॥

तदनन्तर विप्रगण को दक्षिणा के साथ एक आढ़क वजन चावल प्रदान करे। दानमन्त्र है—"हे महाविष्णु! आप प्राणरूपी, प्राणदाता, सर्वजन वल्लभ हैं। इस चावल दान द्वारा मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" यह दान भक्ति पूर्वक करने वाला सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है। उस व्यक्ति को अग्निष्टोम यज्ञ से भी आठ गुणितफल की प्राप्ति होती है। वैशाख शुक्ला द्वादशी तिथि पर व्यक्ति उपवासी रहकर मधुसूदन देव को भक्ति पूर्वक एक द्रोण दुग्ध से स्नान कराये। त्रिकाल पूजा करके वहां पर वह व्यक्ति रात्रिजागरण करे।।४७-५०।।

नमस्ते मधुहन्त्रे च जुहुयाच्छक्तितो घृतम्। अष्टोत्तरशतं प्रार्च्य विधिवन्मधुसूदनम्॥५१॥
विपापो ह्यश्वमेधानामष्टानां फलमाप्नुयात्।
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत्॥५२॥

तदनन्तर "मधुहन्ता देव को नमस्कार" इस मन्त्र द्वारा १०८ घृताहुति देनी चाहिये। एवंविध जो व्यक्ति भक्तिभाव से मधुसूदन की पूजा करता है, वह पाप निर्मुक्त होकर आठ अश्वमेध यज्ञपल लाभ करता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन व्यक्ति उपवासी रहे।।५१-५२।।

क्षीरेणाढकमानेन स्नापयेद्यस्त्रिविक्रमम्। नमस्त्रिविक्रमायेति पूजयेद्भक्तिसंयतः॥५३॥
जुहुयात्पायसेनैव ह्यष्टोत्तशताहुतीः। कृत्वा जागरणं रात्रौ पुनः पूजां प्रकल्पयेत्॥५४॥
अपूपविंशतिं दत्त्वा ब्राह्मणाय सदक्षिणम्। देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वरः॥५५॥
उपायेन च संगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥५६॥

वह व्रती व्यक्ति एक आढ़क दुग्ध द्वारा "नमः त्रिविक्रमाय" मन्त्र द्वारा भगवान् त्रिविक्रम की पूजा करे।

यह पूजा भक्तिभाव से करना चाहिये। तत्पश्चात् पायस की १०८ आहुति प्रदान करे। तदनन्तर रात्रिजागरण सम्पन्न करने के पश्चात् प्रातः पुनः पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण को दक्षिणा तथा २० अपूप "देवदेव! परमेश्वर! जगन्नाथ आप प्रसन्न हो जायें। इस उपहार प्रदान से आप मुझ पर प्रसन्न होकर वांछित फल दीजिये" इस मन्त्र से प्रदान करे। तत्पश्चात् स्वशक्ति के अनुसार ब्राह्मण को भोजन कराने के पश्चात् मौनी स्थिति में स्वयं भी भोजन सम्पन्न करे।।५३-५६।।

एवं यः कुरुते विप्र व्रतं त्रैविक्रमं परम्। सोऽष्टानां नरमेधानां विपापः फलमाप्नुयात्॥५७॥
आषाढशुक्लद्वादश्यामुपवासी जितेन्द्रियः। वामनं पूर्वमानेन स्नापयेत्पयसा व्रती॥५८॥
नमस्ते वामनायेति दूर्वाज्याष्टोत्तरं शतम्। हुत्वा च जागरं कुर्याद्वामनं चार्चयेत्पुनः॥५९॥
सदक्षिणं च दध्यन्नं नारिकेरफलान्वितम्।
भक्त्या प्रदद्याद्विप्राय वामनार्चनशीलिने॥६०॥
वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थो वामनः सदा।
वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः॥६१॥

हे विप्र! इस प्रकार जो कोई त्रिविक्रम के इस परम व्रत को सम्पन्न करता है, उसे निष्पाप स्थिति तथा नरमेध का आठगुणित फललाभ होगा। आषाढ़ शुक्लाद्वादशी पर उपवासी एवं जितेन्द्रिय होकर वामनदेव को एक द्रोण दुग्ध से स्नान कराये। तदनन्तर "नमस्ते वामनाय" मन्त्र से दूर्वा को घृतसिक्त करके १०८ होम करने के उपरान्त रात्रि जागरण करना चाहिये। तदनन्तर प्रातःकाल उनकी पुनः अर्चना पूर्ववत् करना चाहिये। तदनन्तर दक्षिणा के साथ दही, अन्न, नारिकेल फल प्रभृति द्वारा वामनदेव की पूजा करने के पश्चात् यथाशक्ति दहीयुक्त अन्न ब्राह्मण को इस मन्त्र से करे। "वामन देव बुद्धिदाता, होता, सभी द्रव्यों में विराजमान रहने वाले देव हैं। वे संसार-सागर से पार करने वाले हैं। उन पूज्य वामन प्रभु को नमस्कार! नमस्कार! नमस्कार!"।।५७-६१।।

अनेन दत्त्वा दध्यन्नं शक्तितो भोजयेद्द्विजान्।
कृत्वैवमग्निष्टोमानां शतस्य फलमाप्नुयात्॥६२॥
श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत्। क्षीरेण मधुमिश्रेण स्नापयेच्छ्रीधरं व्रती॥६३॥
नमोऽस्तु श्रीधरायेति गन्धाद्यैः पूजयेत्क्रमात्। जुहुयात्पृषदाज्येन शतमष्टोत्तरं मुने॥६४॥
कृत्वा च जागरं रात्रौ पुनः पूजां प्रकल्पयेत्।
दातव्यं चैव विप्राय क्षीराढकमनुत्तमम्॥६५॥
दक्षिणां च सवस्त्रां वै प्रदद्याद्धेमकुण्डले। मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वकामार्थसिद्धये॥६६॥
क्षीराब्धिशायिन्देवेश रमाकान्त जगत्पते। क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः॥६७॥
सुखप्रदत्वाद्विप्रांश्च भोजयेच्छक्तितो व्रती।
एवं कृत्वाश्वमेधानां सहस्रस्य फलं लभेत्॥६८॥

इस प्रकार दधि एवं अन्न दान के उपरान्त अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराये। यह

अर्चना करने वाला अग्निष्टोम यज्ञ से शतगुण फललाभ करता है। श्रावण शुक्लाद्वादशी के दिन व्यक्ति उपवासी रहकर क्षीर तथा मधु मिलाकर श्रीधर को स्नान कराये। "नमस्ते श्रीधराय" मन्त्र से गन्धादि द्वारा उनकी क्रमिक पूजा करे। तत्पश्चात् घृत से १०८ होम करना चाहिये। हे मुनिवर! रात्रि में जागरण करके पुनः पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अपनी सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये निम्नोक्त मन्त्र द्वारा उत्तम विप्र को एक आढ़क शुद्ध दुग्ध, वस्त्र, दक्षिणा एवं दो स्वर्ण कुण्डल प्रदान करे। मन्त्र है—"हे क्षीरसागरशायी देव! रमाकान्त! जगत्पति! आप इस क्षीर दान से प्रसन्न होकर सर्वसुखदाता हो जायें।" तदनन्तर ब्राह्मण को अपनी शक्ति के अनुसार वह व्रती मनुष्य भोजन कराये, इससे सुखलाभ होता है। इस विधि से व्रत पालन करने वाला व्यक्ति एक सहस्र अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है।।६२-६८।।

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां समुपोषितः।
स्नापयेद्द्रोणपयसा हृषीकेशं जगद्गुरुम्।।६९।।
हृषीकेशं नमस्तुभ्यमिति संपूजयेन्नरः। चरुणा मधुयुक्तेन शतमष्टोत्तरं हुनेत्।।७०।।
जागरादीनि निर्वर्त्य दद्यादात्मविदे ततः। सार्धाढकं च गोधूमान्दक्षिणां हेमशक्तितः।।७१।।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकहेतवे। मह्यं सर्वसुखं देहि गोधूमस्य प्रदानतः।।७२।।
भोजयेद्ब्रह्मणाञ्शक्त्या स्वयं चाश्नीत वाग्यतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्ममेधफलं लभेत्।।७३।।

भाद्रपद मासीय शुक्ला द्वादशी तिथि पर उपवासी रहकर एक द्रोण दुग्ध द्वारा जगद्गुरु हृषीकेश को स्नान कराये। स्नान मन्त्र है—"हृषीकेश नमस्तुभ्यं"। तदनन्तर मधु एवं चरु को मिलाकर उससे १०८ होम करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् जागरण आदि कार्य से निवृत्त होकर आत्मज्ञ विप्र को स्वशक्ति के अनुसार गेहूं एवं स्वर्ण देना चाहिये। दानमन्त्र है—"हे हृषीकेश! आप समस्त लोकसमूह की उत्पत्ति के कारण हैं। इस गोधूम के दान द्वारा आप मुझे सर्वसुख दीजिये।" इस दान के उपरान्त ब्राह्मणगण को स्वशक्ति के अनुसार भोजन कराये। तदनन्तर व्रती व्यक्ति मौन धारण करके भोजन करे। इससे वह व्रती मनुष्य सभी पापों से रहित होकर ब्रह्मयज्ञ फल को प्राप्त कर लेता है।।६९-७३।।

आश्विने मासि शुक्लायां द्वादश्यां समुपोषितः।
पद्मनाभं च पयसा स्नापयेद्भक्तितः शुचिः।।७४।।
नमस्ते पद्मनाभाय होमं कुर्यात्स्वशक्तितः।
तिलव्रीहियवाज्यैश्च पूजयेच्च विधानतः।।७५।।
जागरं निशि निर्वर्त्य पुनः पूजां समाचरेत्। दद्याद्विप्राय कुडवं मधुनस्तु सदक्षिणम्।।७६।।
पद्मनाभ नमस्तुभ्यं सर्वलोकपितामह। मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः।।७७।।
एवं यः कुरुते भक्त्या पद्मनाभव्रतं सुधीः।
ब्रह्ममेधसहस्रस्य फलमाप्नोति निश्चितम्।।७८।।

आश्विन मासीय शुक्ला द्वादशी तिथि पर व्रती रहकर भगवान् पद्मनाभ को पायस द्वारा भक्ति पूर्वक

पवित्र होकर स्नान कराना चाहिये। स्नान मन्त्र है—"नमस्ते पद्मनाभाय" तब तिल ब्रीहि-जौ-घृत मिलाकर होम करने के साथ सविधि पद्मनाभ की पूजा करे। रात्रि जागरणादि से निवृत्त होकर पुनः प्रातः पूजा करके ब्राह्मण को एकपात्र मधु दक्षिणायुक्त प्रदान करे। मधुदान मन्त्र है—"हे सर्वलोकपितामह, पद्मनाभ! आपको प्रणाम है! आप मेरे मधुदान से सुप्रसन्न होकर मुझे सर्वसुख दीजिये।" जो सुधी व्रती इस विधि से तथा भक्तिभाव पूर्वक पद्मनाभ देव की अर्चना करता है, वह निश्चित रूप से सहस्र ब्रह्मयज्ञ का फल प्राप्त कर लेता है।।७४-७८।।

द्वादश्यां कार्तिके शुक्ले उपवासी जितेन्द्रियः।
क्षीरेणाकढकमानेन दध्ना वाज्येन तावता॥७९॥
नामे दामोदरायेति स्नापयेद्भक्तिभावतः।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा मध्वाज्याक्ततिलाहुतीः॥८०॥
जागरं नियतः कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्परः। प्रातः संपूजयेद्देवं पद्मपुष्पैर्मनोरमैः॥८१॥
पुनरष्टोत्तरशतं जुहुयात्सघृतैस्तिलैः। पञ्चभक्ष्ययुतं चान्नं दद्याद्विप्राय भक्तितः॥८२॥
दामोदर जगन्नाथ सर्वकारणकारण। त्राहि मां कृपया देव शरणागतपालक॥८३॥
अनेन दत्त्वा दानं च श्रोत्रियाय कुटुम्बिने।
दक्षिणां च यथाशक्त्या ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत्॥८४॥
एवं गत्वा व्रतं सम्यगश्नीयाद्बन्धुभिः सह। अश्वमेधसहस्राणां द्विगुणं फलमश्नुते॥८५॥

कार्तिक शुक्ला द्वादशी तिथि पर जितेन्द्रिय तथा उपवासी व्रती "नमो दामोदराय" मन्त्र पढ़ते हुये भक्तिभाव पूर्वक एक आढ़क दुग्ध-दही द्वारा किंवा एक आढ़क घृत से भगवान् दामोदरदेव को स्नान कराने के अनन्तर मधु-घृत-तिल मिलाकर १०८ आहुति प्रदान करे। सविधि त्रिकालपूजन तथा रात्रि जागरण करे। अगले दिन प्रातः (नित्य क्रियादि सम्पन्न करके) उत्तम कमल पुष्पों द्वारा भक्तिपूर्ण मन से दामोदर देव की पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् घृताक्त तिल द्वारा १०८ आहुति देकर भक्ति के साथ पांच प्रकार के भक्ष्यान्न को ब्राह्मण को प्रदान करे। दानमन्त्र है—"हे दामोदर! जगन्नाथ सर्वकारण के कारण! हे देव शरणागत पालक! कृपा पूर्वक मेरी रक्षा करिये।" इस मन्त्र से कुटुम्बी वेदज्ञ ब्राह्मण को दक्षिणा देकर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराये। इस प्रकार से सम्यक्रूप से व्रत करके बन्धुगण के साथ भोजन करना चाहिये। इससे अश्वमेध यज्ञ से दूना फल मिलता है।।७९-८५।।

एवं कुर्याद्व्रती यस्तु द्वादशीव्रतमुत्तमम्। संवत्सरं मुनिश्रेष्ठ स याति परमं पदम्॥८६॥
एकमासे द्विमासे वा यः कुर्याद्भक्तितत्परः।
तत्तत्फलमवाप्नोति प्राप्नोति च हरेः पदम्॥८७॥
पूर्णं संवत्सरं कृत्वा कुर्यादुद्यापनं व्रती। मार्गशीर्षसिते पक्षे द्वादश्यां च मुनीश्वर॥८८॥
स्नात्वा प्रातर्यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम्। शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः॥८९॥

इस प्रकार से जो व्रती उत्तम द्वादशी व्रताचरण एक वर्ष तक करता है, हे मुनिश्रेष्ठ! उसे परमपद की प्राप्ति हो जाती है। जो मात्र एक मास किंवा दो मास यह व्रत भक्तिभाव से सम्पन्न करता है, वह भी वही फल

हरिपद प्राप्ति कर लेता है। व्रती व्यक्ति एक वर्ष पर्यन्त यह व्रत करके इसका उद्यापन करे। हे मुनीश्वर! मार्गशीर्ष मासीय कृष्णपक्षीय द्वादशी तिथि पर वह प्रति प्रातः सविधि दन्तधावन तथा स्नान करके श्वेतवस्त्र धारण करे। साथ ही श्वेत सुगन्धित चन्दन लगाये।।८६-८९।।

मण्डपं कारयेद्दिव्यं चतुरस्त्रं सुशोभनम्। घण्टाचामरसंयुक्तं किङ्किणीरवशोभितम्॥९०॥
अलंकृतं पुष्पमाल्यैर्वितानध्वजराजितम्। छादितं शुक्लवस्त्रेण दीपमालाविभूषितम्॥९१॥

तत्पश्चात् वह व्यक्ति एक दिव्य शोभन चौकोर मण्डप निर्मित करे। उसे घंटा तथा चवर से सज्जित करके मध्य में छोटी घंटिया लगाये। इनकी मधुर ध्वनि मण्डप को गुंजरित करती रहेंगी। इसे पुष्पमाला, वितान, ध्वज से सज्जित करे। तदनन्तर श्वेत वस्त्र का चन्दोवा लगाकर मण्डप को दीपमालादि से शोभित करना चाहिये।।९०-९१।।

तन्मध्ये सर्वतोभद्रं कुर्यात्सम्यगलंकृतम्। तस्योपरि न्यसेत्कुम्भान्द्वादशाम्बुप्रपूरितान्॥९२॥
एकेन शुक्लवस्त्रेण सम्यक्संशोधितेन च। सर्वानाच्छादयेत्कुम्भान्पञ्चरत्नसमन्वितान्॥९३॥
लक्ष्मीनारायणं देवं कारयेद्भक्तिमान्व्रती। हेम्ना वा राजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज॥९४॥
स्थापयेत्प्रतिमां तां च कुम्भोपरि सुसंयमी।
तन्मूल्यं वा द्विजश्रेष्ठ काञ्चनं च स्वशक्तितः॥९५॥

इस मण्डप मध्य को सर्वतोभद्रचक्र से अलंकृत करके उस पर बारह जलपूर्ण घट को स्थापित करके उनमें पंचरत्न छोड़ने के उपरान्त घटों को उत्तम शुद्ध श्वेत वस्त्र से आवरित करे। हे द्विज! भक्तिमान् वह व्रती स्वर्ण-चांदी किंवा ताम्र की लक्ष्मी नारायण देव की मूर्त्ति भक्तिभाव से लाये। अब वह संयमी व्रती उस प्रतिमा को कुंभों पर स्थापित करे। यदि प्रतिमा निर्मित न हो सकी तब उतना स्वर्ण किंवा रजत किंवा ताम्र स्वशक्ति के अनुसार घट पर रखे अथवा उसका मूल्य रख दे।।९२-९५।।

सर्वव्रतेषु मतिमान्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्। यदि कुर्यात्क्षयं यान्ति तस्यायुर्धनसंपदः॥९६॥
अनन्तशायिनं देवं नारायणमनामयम्। पञ्चामृतेन प्रथमं स्नापयेद्भक्तिसंयुतः॥९७॥
नामभिः केशवाद्यैश्च ह्युपचारान्प्रकल्पयेत्। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः॥९८॥
जितनिद्रो भवेत्सम्यक्सोपवासो जितेन्द्रियः। त्रिकालमर्चयेद्देवं यथाविभवविस्तरम्॥९९॥
ततः प्रातः समुत्थाय प्रातः कृत्यं समाप्य च।
तिलहोमान्व्याहृतिभिः सहस्त्रं कारयेद्द्विजैः॥१००॥

सभी व्रतों में मतिमान व्रती को कंजूसी नहीं करना चाहिये। यदि वह धन रहते कंजूसी करता है, तब उसकी आयु, धन तथा सम्पदा क्षयीभूत हो जायेगी। पंचामृत द्वारा भक्तियुक्त मन से अनन्तशायी अनामय देव नारायण को स्नान कराये। केशव प्रभृति उनके नामों का संकीर्त्तन करते हुये नाना उपचारों से तब उनकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। इसके पश्चात् पुराणादि श्रवण करते हुये रात्रि जागरण सम्यक् उपवासी तथा जितेन्द्रिय एवं तन्द्रा रहित होकर करे। तत्पश्चात् अपने ऐश्वर्य के अनुसार त्रिकाल पूजनोपरान्त रात्रि जागरण करके प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करने के पश्चात् तिल द्वारा व्याहृति मन्त्र से एक सहस्र होम ब्राह्मण से कराये।।९६-१००।।

ततः संपूजयेद्देवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्। देवस्य पुरतः कुर्यात्पुराणश्रवणं ततः॥१०१॥
दद्याद्द्वादशविप्रेभ्यो दध्यन्नं पायसं तथा। अपूपैर्दशभिर्युक्तं सघृतं च सदक्षिणम्॥१०२॥
देवदेवजगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह। गृहाणापायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव॥१०३॥

अनेनोपायनं दत्त्वा प्रार्थयेत्प्राञ्जलिः स्थितः।
आधाय जानुनी भूमौ विनयावनतो व्रती॥१०४॥

नमो नमस्ते सुरराजराज, नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास।
कुरुष्व संपूर्णफलं ममाद्य, नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय॥१०५॥

तदनन्तर देवदेव की पूजा क्रमशः गन्धपुष्पादि से करनी चाहिये। इसके पश्चात् देवता के समक्ष बैठकर पुराणों का श्रवण करे। ब्राह्मणों को दधि-अन्न-पायस, घृत, दक्षिण, दस मालपूआ प्रदान करे जिसका दानमन्त्र कहते हैं—"हे देवदेव, जगन्नाथ! भक्तों के प्रति कृपालु! कृष्ण! आप मेरे मनोरथों को पूर्ण करिये।" इस दान के उपरान्त व्रती मनुष्य पृथिवी पर जानु स्थापित करे तथा विनीत होकर हाथ जोड़े। भक्ति भाव से प्रार्थना करे—"हे सुरराज, देवदेव जगन्निवास! हे पुरुषोत्तम! आपको प्रणाम करता हूं!। आप कृपया व्रत का पूर्णफल प्रदान करिये।"।।१०१-१०५।।

इति संप्रार्थयेद्विप्रान्देवं च पुरुषोत्तमम्। दद्यादर्घ्यं च देवाय महालक्ष्मीयुताय वै॥१०६॥

लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं क्षीरार्णवनिवासिने।
अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो॥१०७॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥१०८॥

हे विप्र! एवंविध ब्राह्मणों तथा पुरुषोत्तम की प्रार्थना करने के पश्चात् महालक्ष्मी तथा देवदेव नारायण को अर्घ्य देना चाहिये मन्त्र है—"हे लक्ष्मीपति! क्षीरसागर निवासी! देवेश! आप लक्ष्मीदेवी के साथ मेरे द्वारा प्रदत्त यह अर्घ्य स्वीकार करिये। जिनके स्मरण मात्र से तथा नाम जप से समस्त तपःश्चरण, यज्ञानुष्ठान प्रभृति में जो कमी रह जाती है, वह दूर हो जाती है, मैं उन अच्युत देव को प्रणाम करता हूं!।।१०६-१०८।।

इति विज्ञाप्य देवेशं तत्सर्वं संयमी व्रते। प्रतिमां दक्षिणायुक्तामाचार्याय निवेदयेत्॥१०९॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्।
भुञ्जीत वग्यतः पश्चात्स्वयं बन्धुजनैर्वृतः॥११०॥
आसायं श्रृणुयाद्विष्णोः कथां विद्वज्जनैः सह।
इत्येवं कुरुते यस्तु मनुजो द्वादशीव्रतम्॥१११॥

सर्वान्कामान्स आप्नोति परत्रेह च नारद। त्रिसप्तकुलसंयुक्तः सर्वपापविवर्जितः।

प्रयाति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति॥११२॥

देवेश से यह प्रार्थना करने के उपरान्त वह संयमी व्यक्ति प्रतिमा आदि समस्त सामग्री आचार्य को

निवेदित करे। तदनन्तर स्वशक्ति के अनुरूप ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरान्त उनको दक्षिणा देना चाहिये। इसके अनन्तर वह व्रती व्यक्ति मौनी रहकर अपने बन्धुजन के साथ भोजन सम्पन्न करे। सायंकाल वह व्रती विद्वानों से विष्णुकथा श्रवण करे। जो मनुष्य इस प्रकार से द्वादशीव्रताचरण करता है, हे नारद! उसकी समस्त लौकिक तथा पारलौकिक कामनायें परिपूर्ण हो जाती हैं। उसकी २१ पीढ़ी तथा वह स्वयं पाप विवर्जित हो जाते हैं। वह अन्त में उस विष्णुलोक को जाता है, जहां जाने पर शोक नहीं रह जाता।।१०९-११२।।

य इदं शृणुयाद्विप्र द्वादशीव्रतमुत्तमम्। वाचयेद्वापि स नरो वाजपेयफलं लभेत्॥११३॥

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे मार्गशीर्षशुक्लद्वादशीव्रतकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

हे विप्र! जो इस उत्तमा द्वादशी प्रसंग को सुनता है अथवा इसे अन्य लोगों को सुनाता है, उस व्यक्ति को बाजपेय यज्ञफल की प्राप्ति होती है।।११३।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

अथाष्टादशोऽध्यायः

लक्ष्मीनारायण व्रत तथा उसके सविधि उद्यापन का वर्णन

सनक उवाच

अन्यद्व्रतवरं वक्ष्ये शृणुष्व मुनिसत्तम। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम्॥१॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां योषितां तथा। समस्तकामफलदं सर्वव्रतफलप्रदम्॥२॥
दुःस्वप्ननाशनं धर्म्यं दुष्टग्रहनिवारणम्। सर्वलोकेषु विख्यातं पूर्णिमाव्रतमुत्तमम्।
येन चीर्णेन पापानां राशिकोटिः प्रशाम्यति॥३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिसत्तम! अब मैं समस्त पातकों का हरण करने वाले, पुण्यदायक, सर्वदुःख निवारक अन्य व्रत को कहता हूं। आप श्रवण करिये। यह व्रत ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा नारीगण के लिये समस्त व्रताचरण का फल देने वाला तथा समस्त कामना दायक व्रत है। यह दुःस्वप्न निवारक, धर्मबुद्धिप्रद, दुष्टग्रहों के प्रभाव को हटाने वाला, सर्वलोक प्रसिद्ध उत्तम पूर्णिमा व्रत कहा जाता है। इस व्रताचरण से मनुष्य की करोड़ों पापराशि निवृत्त हो जाती है।।१-३।।

मार्गशीर्षे सितेपक्षे पूर्णायां नियतः शुचिः। स्नानं कुर्याद्यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम्॥४॥
शुक्लाम्बरधरः शुद्धो गृहमागत्य वाग्यतः। प्रक्षाल्य पादावाचम्य स्मरन्नारायणं प्रभुम्॥५॥
नित्यं देवार्चनं कृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम्। लक्ष्मीनारायणं देवमर्चयेद्भक्तिभावतः॥६॥

आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्व्रती। नमो नारायणायेति पूजयेद्भक्तितत्परः॥७॥

मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा तिथि पर पवित्र होकर दन्तधावन, स्नानादि आचार को सम्पन्न करके श्वेतवस्त्रधारी तथा पवित्र होकर मौनावस्था में गृह आये। घर आकर चरण प्रक्षालन द्वारा शुद्ध होकर प्रभु नारायण का स्मरण करना चाहिये। संकल्प-आचमनादि नियम पालन के साथ नित्य देवार्चन करे। वह व्रती देवलक्ष्मी नारायण की अर्चना भक्तिभाव से करे। वह पूजक "नमो नारायणाय" मन्त्र द्वारा भक्ति तत्पर होकर आवाहन-आसनदान-गंधपुष्पादि द्वारा उन प्रभु की अर्चना करे।।४-७।।

गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः। स्तोत्रैर्वाराधयेद्देवं व्रतकृत्सुसमाहितः॥८॥
देवस्य पुरतः कृत्वा स्थण्डिलं चतुरस्त्रकम्। अरत्निमात्रं तत्राग्निं स्थापयेद्गृह्यमार्गतः।
आज्यभागान्तर्पयन्तं कृत्वा पुरुषसूक्ततः। चरुणा च तिलैश्चापि घृतेन जुहुयात्तथा॥९॥
एकवारं द्विवारं वा त्रिवारं वापि शक्तितः। होमं कुर्यात्प्रयत्नेन सर्वपापनिवृत्तये॥१०॥

वह व्यक्ति पुराणपठन, गीतवाद्य, नृत्य, स्तोत्रादि द्वारा समाहित चित्त के साथ व्रताचरण करे तत्पश्चात् एक अरत्नि माप की (हथेली की मुट्ठी बन्द करके केहुनी पर्यन्त का माप) चौकोर वेदी का निर्माण भगवान् के समक्ष करना चाहिये। उस पर गृह्यसूत्र विधान से अग्नि स्थापित करे। तत्पश्चात् वह व्रती आज्यभाग पर्यन्त का कृत्य विधिवत् सम्पन्न करने के उपरान्त स्वशक्ति के अनुसार चरु, तिल, घृत, मिलाकर पुरुष सूक्तोक्त मन्त्र द्वारा एक आहुति, किंवा दो आहुति अथवा तीन आहुति अग्नि में प्रदान करे। इससे उसके सभी पाप निवृत्त हो जाते हैं।।८-१०।।

प्रायश्चित्तादिकं सर्वं स्वगृह्योक्तविधानतः।
समाप्य होमं विधिवच्छान्तिसूक्तं जपेद् बुधः॥११॥
पश्चाद्देवं समागत्य पुनः पूजां प्रकल्पयेत्। तथोपवासं देवाय ह्यर्पयेद्भक्तिसंयुतः॥१२॥
पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव॥१३॥

वह व्रती व्यक्ति प्रायश्चित्त आदि विधान को स्वगृहोक्त विधान से करे। वह बुद्धिमान् व्यक्ति होम सम्पन्न करके सविधि शान्तिसूक्त का पाठ करे। इसके पश्चात् वह पुनः भगवत् पूजनापरान्त प्रभु के चरणों में अपने उस व्रतादि को इस मन्त्र के पाठ के द्वारा अर्पित कर दे। यह कार्य पूर्ण भक्तिभाव से करना चाहिये। अर्पण मन्त्र है—"हे देव! मैं उपवासी स्थिति में पूर्णिमा व्रतोपरान्त अगले दिन भोजन करूंगा। हे पुण्डरीकाक्ष! मैं आप की शरण में आया हूं।"।।११-१३।।

इति विज्ञाप्य देवाय ह्यर्घ्यं दद्यात्तथैन्दवे।
जानुभ्यामवनीं गत्वा शुक्लपुष्पाक्षतान्वितः॥१४॥
क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो॥
एवमर्घ्यं प्रदायेन्दोः प्रार्थयेत्प्राञ्जलिस्ततः॥१५॥
तिष्ठन्पूर्वमुखो भूत्वा पश्यन्निन्दुं च नारद॥१६॥

नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः।
रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते॥१७॥

इसके पश्चात् देवेश चन्द्र को अर्घ्य देना चाहिये। वह व्रती व्यक्ति अपने घुटनों को पृथिवी पर टेके। हाथ में अक्षत, पुष्प, जल लेकर यह मन्त्र पढ़े—"हे क्षीरसागर से आविर्भूत! अत्रिगोत्र में उत्पन्न! प्रभु रोहिणी नायक! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्य को स्वीकार करिये।" इस मन्त्र से चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदानोपरान्त वह व्रती हाथ जोड़कर पूर्व की ओर मुख करे। हे नारद! वह चन्द्रबिम्ब देखता हुआ यह मन्त्र पाठ करे। "हे श्वेत किरणों वाले, द्विजराज, रोहिणीपति, लक्ष्मी के भ्राता! आपको प्रणाम!"।।१४-१७।।

ततश्च जागरं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः। जितेन्द्रियश्च संशुद्धः पाषण्डालोकवर्जितः॥१८॥
ततः प्रातः प्रकुर्वीत स्वाचारं च यथाविधि। पुनः संपूजयेद्देवं यथा विभवविस्तरम्॥१९॥
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या ततश्च प्रयतो नरः।
बन्धुभृत्यादिभिः सार्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥२०॥

इसके पश्चात् वह व्रती जितेन्द्रिय, शुद्ध रहे। पाखण्डी लोगों से दूर रहता हुआ रात्रि जागरण तथा पुराण श्रवणादि करे। प्रातः नित्यक्रिया आदि से निवृत्त होकर स्वशक्ति के अनुरूप भगवदार्चन करके ब्राह्मण भोजन कराये। इसके पश्चात् वह व्रती वन्धु-बान्धवों तथा सेवकों के साथ स्वयं भी भोजन (मौनी होकर) करे।।१८-२०।।

एवं पौषादिमासेषु पूर्णमास्यामुपोषितः। अर्चयेद्भक्तिसंयुक्तो नारायणमनामयम्॥२१॥
एवं संवत्सरं कृत्वा कार्तिक्यां पूर्णिमादिने। उद्यापनं प्रकुर्वीत तद्विधानं वदामि ते॥२२॥

इसी प्रकार पौष आदि मास की पूर्णिमा तिथि पर उपवासी रहकर उपरोक्त नियम-विधि द्वारा अनामय देव नारायण की अर्चना भक्ति भाव से करे। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त पूर्णिमा व्रताचरण करके वह व्रती कार्त्तिकी पूर्णिमा तिथि पर व्रत का उद्यापन कार्य सम्पन्न करे। उसकी विधि सुनिये।।२१-२२।।

मण्डपं कारयेद्दिव्यं चतुरस्रं सुमङ्गलम्। शोभितं पुष्पमालाभिर्वितानध्वजराजितम्॥२३॥
बहुदीपसमाकीर्णं किङ्किणीजालशोभितम्। दर्पणैश्चामरैश्चैव कलशैश्च समावृतम्॥२४॥
तन्मध्ये सर्वतोभद्रं पञ्चवर्णविराजितम्। जलपूर्णं ततः कुम्भं न्यसेत्तस्योपरि द्विज॥२५॥
पिधाय कुम्भं वस्त्रेण सुसूक्ष्मेणातिशोभितम्।
हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज।
लक्ष्मीनारायणं देवं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत्॥२६॥

शुद्ध स्थान पर एक दिव्य मंगलमय चतुरस्र मंडप बनाये। उसे पुष्पमाला, वितान तथा ध्वज से सज्जित करे। वह मंडप नाना दीपों से सजा तथा छोटी-छोटी घंटियों से शोभायमान हो। वह दर्पण, कलश, चामर से भी समावृत हो। उसके मध्य में पंचवर्ण से रंगा सर्वतोभद्र चक्र बनाकर हे द्विज! उस चक्र पर जलपूर्ण घट स्थापित करके उसे महीन नये कपड़े से ढक देना चाहिये। हे द्विज! अपनी वित्त शक्ति के अनुसार उस कलश पर स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र की लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिमा स्थापित करे।।२३-२६।।

पञ्चामृतेन संस्नाप्याभ्यर्च्य गन्धादिभिः क्रमात्।
भक्ष्यैर्भोज्यादिनैवेद्यैर्भक्तितः संयतेन्द्रियः॥२७॥

व्रती व्यक्ति संयत इन्द्रियों वाला होकर पहले पंचमृत स्नान भगवान् को कराये। इसके पश्चात् गन्ध-पुष्प-नैवेद्य-भक्ष्य-भोज्य पदार्थ भक्ति से उनको अर्पित करे।।२७।।

जागरं च तथा कुर्यात्सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः। परेऽह्नि प्रातर्विधिवत्पूर्ववद्विष्णुमर्चयेत्॥२८॥
आचार्याय प्रदातव्या प्रतिमा दक्षिणान्विता।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या विभवे सत्यवारितम्॥२९॥
तिलदानं प्रकुर्वीत यथाशक्त्या समाहितः। कुर्यादग्नौ च विधिवत्तिलहोमं विचक्षणः॥३०॥

इस कार्य को सम्पन्न करने के अनन्तर रात्रि जागरण कार्य सम्यक् श्रद्धा-भक्ति से करना चाहिये। प्रातः नित्यक्रिया आदि समाप्त करके पूर्ववत् विधिवत् विष्णुपूजन करके दक्षिणा के साथ वह प्रतिमा आचार्य को प्रदान करे। अपनी धनशक्ति के अनुसार तब ब्राह्मण को भोजन प्रदान करके वह सुधी व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुरूप समाहित चित्त से तिल प्रदान करे। तदनन्तर तिलों से विधिवत् होम अग्नि में करना चाहिये।।२८-३०।।

एवं कृत्वा नरः सम्यक् लक्ष्मीनारायणव्रतम्। इह भुक्त्वा महाभोगान्पुत्रपौत्रसमन्वितः॥३१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलायुतसमन्वितः। प्रयाति विष्णुभवनं योगिनामपि दुर्लभम्॥३२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मार्गशीर्षपौर्णिमायां लक्ष्मीनारायणव्रतं नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥
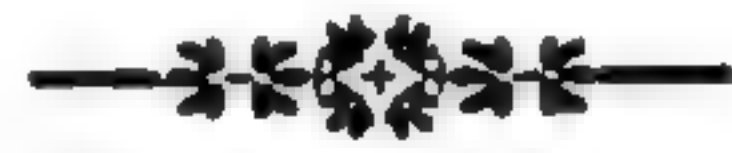
इस प्रकार से जो व्यक्ति सम्यक्तः लक्ष्मीनारायण व्रत सम्पन्न करता है, वह इस जन्म में पृथिवी पर पुत्र-पौत्र समन्वित होकर महाभोग भोगता है। वह अपनी दस हजार पीढ़ी के साथ समस्त पापों से रहित होकर योगीगण के लिये भी दुर्लभ विष्णु-लोक प्राप्त करता है।।३१-३२।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनविंशोऽध्यायः

विष्णु मन्दिर में ध्वज का आरोपण करना

सनक उवाच

अन्यद्व्रतं प्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणसंज्ञितम्। सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुप्रीणनकारणम्॥१॥
यः कुर्याद्विष्णुभवने ध्वजारोपणमुत्तमम्। संपूज्यते विरिञ्च्याद्यैः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥२॥

हेमभारसहस्रं तु यो ददाति कुटुम्बिने। तत्फलं तुल्यमात्रं स्याद्ध्वजारोपणकर्मणः॥३॥
ध्वजारोपणतुल्यं स्याद्गङ्गास्नानमनुत्तमम्। अथवा तुलसीसेवा शिवलिङ्गप्रपूजनम्॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—अब मैं ध्वजारोपण संज्ञक अन्य व्रताचरण कह रहा हूं। यह सर्वपापहारी, पुण्यप्रद तथा विष्णु को प्रसन्नता प्रदान करने वाला व्रत है। जो उत्तम ध्वजारोपण विष्णुमन्दिर में करता है, वह ब्रह्मादि देवगण से पूजित होता है। इस विषय में अधिक क्या कहूं! एक हजार भार स्वर्ण यदि किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को दिया जाये, उससे जो फल मिलेगा, वही फल मात्र ध्वजारोपण कर्म से ही मिलता है। यह ध्वजारोपण कार्य उत्तम गंगा स्नान, तुलसी सेवा तथा शिवलिंग पूजा के समान है।।१-४।।

अहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमिदं द्विज। सर्वपापहरं कर्म ध्वजारोपणसंज्ञितम्॥५॥
सन्ति वै यानि कर्माणि ध्वजारोपणकर्मणि।
तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम॥६॥
कार्तिकस्य सिते पक्षे दशम्यां प्रयतो नरः। स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनपूर्वकम्॥७॥
एकाशी ब्रह्मचारी च स्वपेन्नारायणं स्मरन्। धौताम्बरधरः शुद्धो विप्रो नारायणाग्रतः॥८॥
ततः प्रातः ममुत्थाय स्नात्वाचम्य यथाविधि।
नित्यकर्माणि निर्वर्त्य पश्चाद्विष्णुं समर्चयेत्॥९॥
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम्।
नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि॥१०॥

अहो! यह अपूर्व कर्म है, अपूर्व कर्म है, अपूर्व कर्म है! हे द्विज! सर्वपापहारी यह कर्म ध्वजारोपण नाम से कहा गया है। इस ध्वजारोपण कर्म हेतु जो सब कार्य तथा नियम है, वह सब मैं कह रहा हूं। आप श्रवण करिये। हे विप्र! कार्त्तिक शुक्ला दशमी तिथि पर व्यक्ति को चाहिये कि वह दन्तधावन तथा स्नान पवित्रता से करे। वह ब्रह्मचारी, एक समय भोजन करने वाला, श्वेतवस्त्रधारी तथा शुद्ध होकर नारायण का स्मरण करते हुये उनके सामने ही शयन करे। प्रातः उठकर यथाविधि स्नान करे। नित्यकर्म से निवृत्त होकर विष्णु पूजा करे। ध्वजारोपण कर्म हेतु वह चार ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर नान्दी श्राद्ध सम्पन्न करे।।५-१०।।

ध्वजस्तम्भौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद्वस्त्रसंयुतौ।
सूर्यं च वैनतेयं च हिमांशुं तत्परोऽर्चयेत्॥११॥
धातारं च विधातारं पूजयेद्ध्वजदण्डके। हरिद्राक्षतगन्धाद्यैः शुक्लपुष्पैर्विशेषतः॥१२॥
ततो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चोपलिप्य वै।
आधायाग्निं स्वगृह्योत्त्याह्याज्यभागादिकं क्रमात्॥१३॥
जुहुयात्पायसं चैव साज्यमष्टोत्तरं शतम्। प्रथमं पौरुषं सूक्तं विष्णोर्नुकमिरावतीम्॥१४॥
ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तथा। सोमो धेनुमुदुत्यं च जुहुयाच्च ततो द्विज॥१५॥

गायत्री मन्त्र जपते हुये कपड़े से ढके दोनों स्तम्भों को जल से प्रोक्षित करे। तत्पश्चात् सूर्य, वैनतेय गरुड़

तथा चन्द्रमा की पूजा तत्परता पूर्वक करे। धाता, विधाता की पूजा ध्वजदण्ड पर हरिद्रा, अक्षत, गन्धादि, श्वेत पुष्प से विशेष रूप से करनी चाहिये। तदनन्तर गोचर्म के माप की भूमि को सविधि लीपें।[१] वहां व्रती व्यक्ति स्वगृहसूक्त विधान द्वारा अग्नि स्थापन एवं एक के बाद एक क्रिया आज्य भाग आदि की करे। तदनन्तर १०८ घृताहुति देकर हरि के पास में खीर की आहुति प्रदान करे। सर्वाग्र में विष्णु, विधाता तथा लक्ष्मी के उद्देश्य से होम करना होगा। तदनन्तर आठ आहुति "वैनतेयाय स्वाहा" की प्रदान करे। तदनन्तर चन्द्र, कामधेनु तथा सूर्य हेतु आहुति देनी चाहिये।।११-१५।।

सौरमन्त्रान्जपेत्तत्र शान्तिसूक्तानि शक्तितः।
रात्रौ जागरणं कुर्यादुपकण्ठं हरेः शुचिः॥१६॥

ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च। गन्धपुष्पादिभिर्देवमर्चयेत्पूर्ववत्क्रमात्॥१७॥
ततो मङ्गलवाद्यैश्च सूक्तपाठैश्च शोभनम्। नृत्यैश्च स्तोत्रपठनैर्नयेद्विष्णवालये ध्वजम्॥१८॥

वहां हरि के निकट स्वशक्ति के अनुरूप सौर मंत्र तथा शान्ति सूक्त जप करना चाहिये। व्रती व्यक्ति हरि के निकट जागरण करे। प्रातः नित्यक्रियादि सम्पन्न करने के उपरान्त गन्ध-पुष्पादि से भगवदार्चन करके मांगलिक वाद्य-वादन, नृत्य, गीतगायन करे। सूक्त पाठ, विष्णुस्तव का पाठ सतत् करते-करते विष्णु मन्दिर तक ध्वजा ले जायें।।१६-१८।।

देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वितः। सुस्थिरं स्थापयेद्विप्रध्वजं सुस्तम्भसंयुतम्॥१९॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्देवं धूपदीपर्मैनोहरैः। भक्ष्यभोज्यादिसंयुक्तैर्नैवेद्यैश्च हरिं यजेत्॥२०॥
एवं देवालये स्थाप्य शोभनं ध्वजमुत्तमम्। प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥२१॥

हे विप्र! देव मन्दिर के द्वार पर किंवा मन्दिर के शिखर पर मुदित होकर उत्तम स्तम्भ से संयुक्त उस ध्वजा को उत्तम रीति से स्थापित करे। गंध, पुष्प, अक्षत, मनोहर धूप, दीप, भक्ष्य-भोज्य युक्त नैवेद्यादि से हरि की पूजा करे। इस प्रकार से देवालय में उत्तम ध्वज स्थापना करके प्रदक्षिणा एवं यह स्तवपाठ करे।।१९-२१।।

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज॥२२॥
येनेदमखिलं जातं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। लयमेष्यति यत्रैवं तं प्रपन्नोऽस्मि केशवम्॥२३॥

हे पुण्डरीकाक्ष! विश्वभाव, हृषीकेश, महापुरुष पूर्वज! आपको नमस्कार करता हूं! जिनसे समस्त विश्व उत्पन्न होकर, जिनमें स्थित होकर, जिनमें ही लयीभूत हो जाता है, मैं उन भगवान् केशव की शरण में स्थित हूं।।२२-२३।।

न जानन्ति परं भावं यस्य ब्रह्मादयः सुराः।
योगिनो यं न पश्यन्ति तं वन्दे ज्ञानरूपिणम्॥२४॥

---

१. गोचर्म भूमि माप का एक प्रचीन पैमाना है। वसिष्ठ देव ने कहा है कि—

"दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः।
पञ्च चाप्यधिकान् दद्यादेतद् गोचर्म चोच्यते।।"

यही माप एक गोचर्मभूमि का होता है।

अन्तरिक्षं तु यन्नाभिर्द्यौर्मूर्द्धा यस्य चैव हि।
पादोऽभूद्यस्य पृथिवी तं वन्दे विश्वरूपिणम्॥२५॥

आपके परमभाव को ब्रह्मादि देवता नहीं जानते। आपको योगीगण भी नहीं देख पाते। आप ऐसे ज्ञानरूपी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!। अन्तरिक्ष जिनकी नाभि है, द्यौ जिसकी मूर्द्धा है, जिनके चरण पृथिवी हैं, मैं उन विश्वरूपी को प्रणाम करता हूं!।।२४-२५।।

यस्य श्रोत्रे दिशः सर्वा यच्चक्षुर्दिनकृच्छशी।
ऋक्सामयजुषी येन तं वन्दे ब्रह्मरूपिणम्॥२६॥
यन्मुखाद्ब्राह्मणा जाता यद्बाहोरभवन्नृपाः।
वैश्या यस्योरुतो जाताः पद्भ्यां शूद्रो व्यजायत॥२७॥
मायासङ्गममात्रेण वदन्ति पुरुषं त्वजम्। स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरञ्जनम्॥२८॥
क्षीराब्धिशायिनं देवमनन्तमपराजितम्।
सद्भक्तवत्सलं विष्णुं भक्तिगम्यं नमाम्यहम्॥२९॥

समस्त दिशायें जिनके कर्ण हैं, चन्द्र-सूर्य जिनके नेत्र हैं, जिनकी व्याप्ति से ऋक्-यजुः-साम व्याप्त हैं, मैं उन ब्रह्मरूप प्रभु की वन्दना करता हूं, जो वेदरूप हैं। जिनके मुख से ब्रह्मा, भुजा से क्षत्रिय राजागण, ऊरु से वैश्य तथा चरणकमलद्वय से शूद्र माया संसर्गमात्र से उत्पन्न हैं, वे अजन्मा, पुरुष, स्वभाव से विमल, शुद्ध, निर्विकार तथा निरंजन देव क्षीरसागरशायी देव अनन्त तथा अपराजित हैं। वे सद्भक्त वत्सल विष्णु भक्तिगम्य हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूं!।।२६-२९।।

पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
सूक्ष्मासूक्ष्माणि येनासंस्तं वन्दे सर्वतोमुखम्॥३०॥
यद्ब्रह्म परमं धामसर्वलोकोत्तमोत्तमम्। निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः॥३१॥
अविकारमजं शुद्धं सर्वतोबाहुमीश्वरम्। यमामनन्ति योगीन्द्राः सर्वकारणकारणम्॥३२॥
यो देवः सर्वभूतानामन्तरात्मा जगन्मयः। निर्गुणः परमात्मा च स मे विष्णुः प्रसीदतु॥३३॥

जिन प्रभु विष्णु से पृथिवी आदि पंचमहाभूतादि, तन्मात्रा, इन्द्रियां, सूक्ष्म-असूक्ष्म उत्पन्न हुये हैं, मैं उन सर्वतोमुख देव की वन्दना पुनः-पुनः करता हूं। जो अविकारी, अज, शुद्ध, सर्वतोबाहु एवं ईश्वर हैं, योगीन्द्रगण जिनको प्रणाम करते हैं, जो सभी कारणों के कारण हैं, जो देवता सभी प्राणियों के अन्तरात्मा एवं जगन्मय हैं, वे निर्गुण परमात्मा विष्णु प्रसन्न हों!।।३०-३३।।

हृदयस्थोऽपि दूरस्थो मायया मोहितात्मनाम्।
ज्ञानिनां सर्वगो यस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु॥३४॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु॥३५॥

जो मायामोहित प्राणीगण के हृदयस्थ होकर भी सबसे दूर ही हैं, तथापि जो ज्ञानीजन को सदा प्राप्त रहते

हैं, वे विष्णु मुझ पर प्रसन्न रहें। चार-चार, दो, पांच आहुति देकर के जिनको पुनः दो आहुति दी जाती है, वे विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों। (४-४, २-२ तथा ५ आहुति दी जाती है)।।३४-३५।।

ज्ञानिनां कर्मिणां चैव तथा भक्तिमतां नृणाम्।
गतिदाता विश्वसृग्यः स मे विष्णुः प्रसीदतु॥३६॥
जगद्धितार्थं ये देहा ध्रियन्ते लीलया हरेः।
तानर्चयन्ति विबुधाः स मे विष्णुः प्रसीदतु॥३७॥
यमामनन्ति वै सन्तः सच्चिदानन्दविग्रहम्।
निर्गुणं च गुणाधारं स मे विष्णुः प्रसीदतु॥३८॥

ज्ञानी, कर्मी तथा भक्तिमान् को गति प्रदान करने वाले जो प्रभु विश्व में एकमात्र प्राप्तव्य हैं, वे विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो जायें। जो हरि जगत् के हित के लिये लीला से देह धारण करते हैं, जिनकी अर्चना देवता करते रहते हैं, वे विष्णु प्रसन्न हो जायें। जिन सच्चिदानन्दविग्रह देव की सन्तजन अर्चना करते हैं, वे निर्गुण, निराधार विष्णु प्रसन्न हो जायें।।३६-३८।।

इति स्तुत्वा नमेद्विष्णुं ब्राह्मणांश्च प्रपूजयेत्।
आचार्यम् पूजयेत्पश्चाद्दक्षिणाच्छादनादिभिः॥३९॥
ब्राह्मणान्भोजयेच्छत्त्या भक्तिभावसमन्वितः।
पुत्रमित्रकलत्राद्यैः स्वयं च सह बन्धुभिः।
कुर्वीत पारणं विप्र नारायणपरायणः॥४०॥

यह स्तुति करके विष्णु को प्रणाम करने के उपरान्त ब्राह्मण पूजा करे। तत्पश्चात् वस्त्र-दक्षिणा के साथ भक्तिभाव पूर्वक भोजन कराये। तदनन्तर स्वयं पुत्र, स्त्री, बन्धुगण के साथ व्यक्ति नारायण-परायण होकर भोजन करे।।३९-४०।।

यस्त्वेतकर्म कुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम्। तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणाष्व सुसमाहितः॥४१॥

पटो ध्वजस्य विप्रेन्द्र यावच्चलति वायुना।
तावन्ति पापजालानि नश्यन्त्येव न संशयः॥४२॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः॥४३॥

जो व्यक्ति इस प्रकार से उत्तम ध्वजारोपणकर्म करता है, उसका पुण्यफल कहता हूं, उसे सुसमाहित होकर सुनिये। हे विप्रेन्द्र! जो व्यक्ति ध्वजारोपण इस प्रकार से करता है, उसकी ध्वजा का वस्त्र जब तक वायु में चलित होता है (फहराता है) तब तक के उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। यह निःसंदिग्ध है। जो सर्वपातक अथवा महापातक से युक्त हैं, वह भी ध्वजारोहण विष्णु मंदिर में करके सर्वपाप रहित हो जाता है।।४१-४३।।

यावद्दिनानि तिष्ठेत ध्वजो विष्णुगृहे द्विज। तावद्युगसहस्राणि हरिसारूप्यमश्नुते॥४४॥

आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति धार्मिकाः।
तेऽपि सर्वे प्रमुच्यन्ते महापातककोटिभिः॥४५॥

हे द्विज! जब तक वह ध्वज मन्दिर पर स्थिर रहता है अर्थात् जितने दिवस तक ध्वज रहता है, वह व्यक्ति उतने सहस्रयुग पर्यन्त विष्णु सालोक्य लाभ करके स्थित रहता है। जो मंदिर पर फहराती ध्वजा को देखकर उसे प्रणाम करता है, वह करोड़ों महापातकों से मुक्त हो जाता है।।४४-४५।।

आरोपितो ध्वजो विष्णुगृहे धुन्वन्पटं स्वकम्।
कर्तुः सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषार्द्धतः॥४६॥
यस्त्वारोप्य गृहे विष्णोर्ध्वजं नित्यमुपाचरेत्। स देवयानेन दिवं यातीव सुमतिर्नृपः॥४७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने ध्वजारोपणन्नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

विष्णु मन्दिर में लगा ध्वज अपने फहराने की क्रिया से ही ध्वजारोपण करने वाले के सर्वपापसमूह को एक पल में ध्वस्त कर देता है। जो सुमति राजा मन्दिर पर विष्णुध्वज लगाकर उसकी पूजा करता था, आज भी वह देवयान पर स्वर्ग जा रहा लगता है।।४६-४७।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।

अथ विंशोऽध्यायः

सोमवंशोत्पन्न सुमति राजा द्वारा पूर्वजन्म वृत्तान्त का वर्णन

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग। सर्वकर्मवरिष्ठं च त्वयोक्तं ध्वजधारणम्॥१॥
यस्तु वै सुमतिर्नाम ध्वजारोपपरो मुने। त्वयोक्तस्तस्य चरितं विस्तरेण ममादिश॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! सर्वधर्मज्ञ! हे सर्वशास्त्रज्ञाता, सर्वकर्मवरिष्ठ मुनिप्रवर! आपने सुमति नामक विष्णुध्वज परायण राजा का जो उल्लेख किया है, उसका चरित्र सविस्तार मुझसे कहें।।१-२।।

सनक उवाच

शृणुष्वैकामनाः पुण्यमितिहासं पुरातनम्। ब्रह्मणा कथितं मह्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥३॥
आसीत्पुरा कृतयुगे सुमतिर्नाम भूपतिः। सोमवंशोद्भवः श्रीमान्सप्तद्वीपकैनायकः॥४॥
धर्मात्मा सत्यसंपन्नः शुचिवंश्योऽतिथिप्रियः। सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वसंपद्विभूषितः॥५॥

सदा हरिकथासेवी हरिपूजापरायणः। हरिभक्तपराणां च शुश्रूषुर्निरहंकृतिः॥६॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे नारद! आप एकाग्र होकर इस पुण्यमय पुरातन इतिहास का श्रवण करिये। इस प्रसंग को जो कि सर्वपापनाशक है, ब्रह्मा ने मुझसे कहा था। पूर्वकाल में सत्ययुग में सुमति नामक राजा था। वह श्रीमान् सोमवंश में उत्पन्न तथा सप्तद्वीपों का एकमात्र अधिपति, धार्मिक, सत्यसम्पन्न, पवित्र वंश वाला तथा अतिथिप्रिय था। वह सर्वलक्षणसम्पन्न तथा सर्वसम्पदाविभूषित था। वह सदा हरिकथा सुनने वाला और हरिपूजा परायण रहता था। वह निरहंकार होकर हरिभक्तों की सेवा करता था।।३-६।।

पूज्यपूजारतो नित्यं समदर्शी गुणान्वितः। सर्वभूतहितः शान्तः कृतज्ञः कीर्तिमांस्तथा॥७॥
तस्य भार्या महाभागः सर्वलक्षणसंयुता। पतिव्रता पतिप्राणा नाम्ना सत्यमतिर्मुने॥८॥
तावुभौ दम्पती नित्यं हरिपूजापरायणौ। जातिस्मरौ महाभागौ सत्यज्ञौ सत्परायणौ॥९॥
अन्नदानरतौ नित्यं जलदानपरायणौ। तडागारामवप्रादीनसंख्यातान्वितेनतुः॥१०॥
सा तु सत्यमतिर्नित्यं शुचिर्विष्णुगृहे सती। नृत्यत्यत्यन्तसन्तुष्टा मनोज्ञा मञ्जुवादिनी॥११॥

वह नित्य पूज्यजन की पूजा करने वाला, समदर्शी तथा गुणी, सभी प्राणीगण का हितैषी, शान्त, कृतज्ञ तथा कीर्तिमान था। हे मुनि! उसकी पत्नी का नाम था सत्यमति। वह महान् भाग्यशाली, सर्वलक्षणयुता, पतिव्रता, पतिप्राणा थी। ये दम्पति नित्य हरिपूजापरायण रहते थे। उनको पूर्वजन्म की स्मृति प्राप्त थी। वे सौभाग्यशाली, सत्यबुद्धि तथा सत्यपरायण, नित्य अन्नदान करने वाले, जलदान परायण थे। उन्होंने असंख्य तड़ाग, वाटिका धर्मशाला बनवाया था। सती सत्यमति नित्य विष्णुमंदिर में सन्तुष्ट होकर नृत्य करती थीं। वह मनोहर तथा मधुरभाषिणक्षी थीं।।७-११।।

सोऽपि राजा महाभागौ द्वादशीद्वादशीदिने। ध्वजमारोपयत्येव मनोज्ञं बहुविस्तरम्॥१२॥

एवं हरिपरं नित्यं राजानं धर्मकोविदम्।
प्रियां सत्यमतिं चास्य देवा अपि सदास्तुवन्॥१३॥
त्रिलोके विश्रुतौ ज्ञात्वा दम्पती धर्मकोविदौ।
आययौ बहुभिः शिष्यैर्द्रष्टुकामो विभाण्डकः॥१४॥
तमायांतं मुनिं श्रुत्वा स तु राजा विभाण्डकम्।
प्रत्यद्ययौ सपत्नीकः पूजाभिर्बहुविस्तरम्॥१५॥

कृतातिथ्यक्रियं शान्तं कृतासनपरिग्रहम्। नीचासनस्थितो भूपः प्राञ्जलिर्मुंनिमब्रवीत्॥१६॥

वह राजा प्रत्येक द्वादशी तिथि पर अत्यन्त मनोहर तथा विस्तृत ध्वजारोपण करता था। वह हरिभक्त राजा सदैव धर्मतत्पर रहता था। इस कारण राजा तथा रानी सत्यमति की प्रशंसा देवता भी करते थे। उन धर्मकोविद दम्पति की प्रसिद्धि त्रैलोक्य में हो गयी। यह यश सुनकर राजा को देखने महर्षि विभाण्डक अपने अनेक शिष्यों के साथ वहां आये। राजा विभाण्डक ने जब मुनि का आगमन सुना, तब अत्यन्त आदर से उनका विस्तृत पूजन किया। राजा ने उनका सम्यक् अतिथि सत्कार करने के उपरान्त उनको आसनासीन कराया। तदनन्तर ऋषि से नीचे की ओर बैठकर राजा ने हाथ जोड़कर मुनि से कहा—।।१२-१६।।

राजोवाच

भगवन्कृतकृत्योऽस्मि त्वदभ्यागमनेन वै। सतामागमनं सन्तः प्रशंसन्ति सुखावहम्॥१७॥
यत्र स्यान्महतां प्रेम तत्र स्युः सर्वसम्पदः। तेजः कीर्तिधनं पुत्रा इति प्राहुर्विपश्चितः॥१८॥
तत्र वृद्धिमुपायान्ति श्रेयांस्यनुदिनं मुने। यत्र सन्तः प्रकुर्वन्ति महतीं करुणां प्रभो॥१९॥
यो मूर्ध्नि धारयेद्ब्रह्मन्महत्पादजलं रजः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु पुण्यात्मा नात्र संशयः॥२०॥

राजा कहते हैं—हे भगवान्! मैं आपके इस आगमन से कृतार्थ हो गया। सज्जन लोग सुखावह सन्तों के आगमन की सदा प्रशंसा करते हैं। जिसके प्रति महत् लोग प्रेम करते हैं, उनके पास सभी सम्पदा, तेज, कीर्त्ति, धन, पुत्रादि सब कुछ प्राप्त रहता है। यह विद्वत्वर्ग का कथन है। हे मुनिवर! उस व्यक्ति का श्रेय नित्यप्रति बढ़ता जाता है, जिस पर सन्तजन महती करुणा करते हैं। हे ब्रह्मन्! जो अपने शिर पर इन सन्तों का चरणजल तथा चरणधूलि धारण करते हैं, उस पुण्यात्मा ने तो सभी तीर्थों में स्नान कर लिया। इसमें संशय नहीं है।।१७-२०।।

मम पुत्राश्च दाराश्च संपत्त्वयि समर्पिताः। मामाज्ञापय विप्रेन्द्र किं प्रियं करवाणि ते॥२१॥
विनयावनतं भूपं स निरीक्ष्य मुनीश्वरः। स्पृशन्करेण तं प्रीत्या प्रत्युवाचातिहर्षितः॥२२॥

"मेरे पुत्र, पत्नी, समस्त सम्पदा आपको अर्पित है। हे विप्रेन्द्र! आज्ञा प्रदान करिये। मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूं।" उन मुनीश्वर ने विनयावनत राजा को देखकर प्रेम पूर्वक उन पर हाथ फिराते हुये हर्षित होकर कहा—।।२१-२२।।

ऋषिरुवाच

राजन्यदुक्तं भवता तत्सर्वं त्वत्कुलोचितम्। विनयावनतः सर्वो बहुश्रेयो लभेदिह॥२३॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्च नृपसत्तम। विनयाल्लभते मर्त्यो दुर्लभं किं महात्मनाम्॥२४॥
प्रीतोऽस्मि तव भूपाल सन्मार्गपरिवर्त्तिनः।
स्वस्ति ते सततं भूयाद्यत्पृच्छामि तदुच्यताम्॥२५॥
पूजाबहुविधाः सन्ति हरितुष्टिविधायिकाः।
तासु नित्यं ध्वजारोपे वर्तसे तवं सदोद्यतः॥२६॥
भार्यापि तव साध्वीयं नित्यं नृत्यपारायणा। किमर्थमेतद्वृत्तान्तं यथावद्वक्तुमर्हसि॥२७॥

ऋषि विभाण्डक कहते हैं—हे राजन्! तुमने अपने कुलमर्यादा के अनुरूप ही वाक्य कहा है। इस लोक में विनयावनत व्यक्ति को ही प्रभूत श्रेय की प्राप्ति होती है। हे नृपसत्तम! विनयी महात्माओं के लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से क्या दुर्लभ है? हे राजन! तुम्हारे जैसे सन्मार्गगामी के प्रति मैं अतीव प्रसन्न हूं। तुमको सदा स्वस्ति लाभ हो। अब जो कुछ मेरा प्रश्न है, तुम उसका उत्तर प्रदान करो। संसार में हरि को प्रसन्न करने वाली अनेक पूजाविधि प्रचलित है, तथापि तुम तो उन सबमें से नित्य ध्वजारोपण मात्र करने हेतु सदा सन्नद्ध रहते हो! तुम्हारी भार्या भी नित्य विष्णुदेवालय में नृत्यपरायणा रहती हैं? इन सबका क्या तात्पर्य है, वह यथायथ रूप से कहो।।२३-२७।।

राजोवाच

शृणुष्व भगवन्सर्वं यत्पृच्छसि वदामि तत्। आश्चर्यभूतं लोकानामावयोश्चरितं त्विह॥२८॥
अहमासं पुरा शूद्रो मालिनिर्नाम सत्तम। कुमार्गनिरतो नित्यं सर्वलोकाहिते रतः॥२९॥
पिशुनो धर्मविद्वेषी देवद्रव्यापहारकः। गोघ्नश्च ब्रह्महा चौरः सर्वप्राणिवधे रतः॥३०॥

राजा कहते हैं—हे भगवान्! आपने जो पूछा है, वह कहता हूं। आप श्रवण करिये। हम दोनों का चरित इस लोक में अत्यन्त आश्चर्य भरा है। हे मुनिप्रवर! पूर्वकाल में मैं मालिनी नामक शूद्र था। मैं सदा कुमार्गगामी था तथा सभी लोगों के अहित में लगा रहता था। मैं चुगलखोर, धर्मविरोधी, देवद्रव्य का हरण करने वाला, गौ हत्यारा, ब्रह्महत्यारा, चोर तथा सर्व प्राणीवध में लगा रहता था।।२८-३०।।

नित्यं निष्ठुरवक्ता च पापी वेश्यापरायणः। एवं स्थितः कियत्कालमनादृत्य महद्वचः॥३१॥

मैं नित्य कठोर वचन बोलने वाला, पापी, वेश्यागामी था। मैं कुछ समय तक महान् लोगों के उपदेश का अनादर करके स्थित था।।३१।।

सर्वबन्धुपरित्यक्तो दुःखी वनमुपागतः। मृगमांसाशनो नित्यं तथा पान्थविलुम्पकः॥३२॥
एकाकी दुःखबहुलो न्यवसन्निर्जने वने। एकदाक्षुत्परिश्रान्तो निदाघार्त्तः पिपासितः॥३३॥
जीर्णं देवालयं विष्णोरपश्यं विजने वने। हंसकारण्डवाकीर्णं तत्समीपे महत्सरः॥३४॥
पर्यन्तवनपुष्पौघच्छादितं तन्मुनीश्वर। अपिबं तत्र पानीयं तत्तीरे विगतश्रमः॥३५॥

अन्ततः सभी बन्धुगण से त्यागा जाकर मैं दुःखी मन से वन चला गया। वहां मैं पथिकों का धनादि हरण करता तथा पशु मांस भोजन करता समय व्यतीत करता। मैं अकेला इस प्रकार का दुःख बहुल जीवन व्यतीत करता उस वन में रहता था। एक दिन मैं क्षुधा से श्रान्त होकर तथा सूर्य ताप की ज्वाला से प्यासी अवस्था में भटक रहा था। तभी उस विजन वन में मैंने एक जीर्ण देवालय को देखा। वहां निकटस्थ महासरोवर में हंस-कारण्डव आदि जलपक्षी भरे पड़े थे। हे मुनीश्वर! उस सरोवर का तटप्रदेश वनपुष्प समूह से ढका सा था। मैंने उस सरोवर का जलपान किया तथा श्रम रहित हो गया।।३२-३५।।

फलानि जग्ध्वा शीर्णानि स्वयं क्षुच्च निवारिता।
तस्मिञ्जीर्णालये विष्णोर्निवासं कृतवानहम्॥३६॥

जीर्णस्फुटितसंधानं तश्य नित्यमकारिषम्। पर्णैस्तृणैश्च काष्ठौघैर्गृहं सम्यक् प्रकल्पितम्॥३७॥
स्वसुखार्थं तु तद्भूमिर्मयो लिप्ता मुनीश्वर। तत्राहं व्याधवृत्तिस्थो हत्वा बहुविधान्मृगान्॥३८॥

वहां पककर फल धरती पर गिरे पड़े थे। उनका भोजन करके मैंने अपनी क्षुधा को शान्त किया। उस समय उस जीर्ण देवालय में मैंने अपना आवास बना लिया। मैं नित्य उसकी चिटकी-फटी दीवारों को मरम्मत करता रहता था। मैंने पत्ती, घास तथा काष्ठ से वहां एक गृह सम्यक् रूप से निर्मित कर दिया। मैंने अपनी सुविधा तथा सुख के लिये वहां की भूमि पर लेपन करके उत्तम बना लिये। हे मुनीश्वर! वहां मैं व्याधवृत्ति को अपनाकर अनेक मृगों का वध करता था।।३६-३८।।

आजीवं वर्तयन्नित्यं वर्षाणां विंशतिः स्थितः। अथेयमागता साध्वी विन्ध्यदेशसमुद्भवा॥३९॥

निषादकुलजा विप्र नाम्ना ख्याताऽवकोकिला।
बन्धुवर्गपरित्यक्ता दुःखिता जीर्णविग्रहा॥४०॥
क्षुत्तृड्धर्मपरिश्रान्ता शोचन्ती स्वकृतं ह्यघम्।
दैवयोगात्समायाता भ्रमन्ती विजने वने॥४१॥
ग्रीष्मतापार्दिता बाह्ये स्वान्ते चाधिनिपीडिता।
इमां दुःखार्दितां दृष्ट्वा जाता मे विपुला दया॥४२॥

इस स्थिति में मैंने वहां पर बीस वर्ष व्यतीत किया था तभी यह मेरी रानी जो उस जन्म में निषाद कुलोत्पन्न थी, वहां आई। उस जन्म में इसका नाम था अवकोकिला। इसे इसके वन्धु-बान्धवों ने निकाल दिया था। यह भूख-पिपास-सूर्यताप से पीड़ित थी। अपने पूर्वकृत्य से दुःखी दुर्वल स्थिति में आई थी। इसे दुःखपीड़ित देखकर मेरा मन दया से भर उठा।।३९-४२।।

दत्तं मया जलं चास्यै मांसं वन्यफलानि च।
गतश्रमा त्वियं ब्रह्मन्मया पृष्टा यथातथम्॥४३॥

मैंने अवकोकिला को जल, मांस तथा वन के फल आहारार्थ प्रदान किया। हे व्रह्मन्! इससे वह विगतश्रम हो गई। हे व्रह्मन्! तव मैंने इससे जो प्रश्न पूछा तथा इसने उसके उत्तर में जो अपना वृत्तान्त सुनाया हे महामुनि! उसे यथावत् आपसे कहता हूं। श्रवण करे।।४३।।

अवेदयत्स्ववृत्तान्तं तच्छृणुष्व महामुने। नाम्नावकोकिला चाहं निषादकुलसम्भवा॥४४॥
दारुकस्य सुता चाहं विन्ध्यपर्वतवासिनी। परस्वहारिणी नित्यं सदा पैशुन्यवादिनी॥४५॥

पुंश्चलीत्येवमुक्त्वा तु बन्धुवर्गैः समुज्झिता।
कियत्कालं ततः पत्या भृताहं लोकनिन्दिता॥४६॥
दैवात्सोऽपि गतो लोकं यमस्यात्र विहाय माम्।
कान्तारे विजने चैका भ्रमन्ती दुःखपीडिता॥४७॥

हे महामुने! उस वृत्तान्त को सुनिये। उसने कहा था—"मेरा नाम अवकोकिला है। मैं निषाद कुल में उत्पन्न तथा विन्ध्यपर्वत वासी दारुक की पुत्री हूं। पूर्वकाल में मैं नित्य पराया धन हरण करती तथा सदा चुगलखोरी करती थी। परिवार जनों द्वारा मुझे पुंश्चली कहकर घर से निकाल दिया गया। कुछ काल तथा मेरे पति ने मुझ लोक निन्दता का पालन किया था। दैवात् वह पति भी मुझे छोड़कर यमलोक चला गया। मैं दुःखग्रस्ता नारी इस निर्जन वन में अकेली भटकती रहती थी।।४४-४७।।

दैवात्त्वत्सविधं प्राप्ता जीविताहं त्वयाधुना।
इत्येवं स्वकृतं कर्म मह्यं सर्वं न्यवेदयत्॥४८॥
ततो देवालये तस्मिन्दम्पतीभवामाश्रितौ।
स्थितौ वर्षाणि दश च आवां मांसफलाशिनौ॥४९॥

एकदा मद्यपानेन प्रमत्तौ निर्भरं मुने। तत्र देवालये रात्रौ मुदितौ मांसभोजनात्॥५०॥
तनुवस्त्रापरिज्ञानौ नृत्यं चक्रुव मोहितौ। प्रारब्धकर्मभोगान्तमावां युगपदागतौ॥५१॥
यमदूतास्तदायाताः पाशहस्ता भयङ्कराः। नेतुमावां नृत्यरतौ सुघोरां यमयातनाम्॥५२॥

"मैं दैव के कारण आपके समक्ष जीवित आई हूं।" इस प्रकार उस नारी ने मुझसे अपने समस्त स्वकृत कर्म को कह दिया। तदनन्तर मैं तथा वह स्त्री उस देवमन्दिर में दस वर्ष दम्पति की तरह रहने लगे। हम नित्य प्रति वन्य पशुओं का मांस तथा वन्य फलों का भोजन करते रहते थे। हे मुनिवर! एक बार हम दोनों शरीर के वस्त्र फेंक कर मदविह्वल हो नृत्य कर रहे थे। तभी हम दोनों के प्रारब्ध कर्मभोग का अन्त हो गया। इसलिये उस समय पाशहस्त भयंकर यमदूतों का आगमन हुआ। नृत्य करते हुये हम दोनों पति-पत्नी को वे लोग घोर यमयातना प्रदानार्थ आये थे।।४८-५२।।

ततः प्रसन्नो भगवान्कर्मणा मम मानद। देवावसथसंस्कारसंज्ञितेन कृतेन नः॥५३॥
स्वदूतान्प्रेषयामास स्वभक्तावनतत्परः। ते दूता देवदेवस्य शङ्खचक्रगदाधराः॥५४॥
सहस्रसूर्यसंकाशाः सर्वे चारुचतुर्भुजाः। किरीटकुण्डलधरा हारिणो वनमालिनः॥५५॥
दिशो वितिमिरा विप्र कुर्वन्तः स्वेन तेजसा। भयङ्करान्पाशहस्तान्दंष्ट्रिणो यमकिङ्करान्॥५६॥
आवयोर्ग्रहणे यत्तानूचुः कृष्णपरायणः॥५७॥

हे सम्मानदाता! यह देखकर सर्वदा भक्तरक्षातत्पर भगवान् ने हमारे देवमंदिर संस्कार तथा उसकी मरम्मत प्रभृति के कार्य के कारण हम पर प्रसन्न होकर अपने दूतों को भी भेज दिया। देवाधिदेव के दूत शंख-चक्र, गदाधारी, किरीट कुण्डल विभूषित, वनमाला एवं हार को गले में पहने हुये आये थे। वे सहस्रों सूर्य के समान प्रभावान थे। सभी उत्तम चतुर्भुजधारी थे। हे विप्र! विष्णु रूप धारी दूतों के तेज से समस्त दिशायें प्रकाशित हो रही थीं। उन कृष्णपरायण दूतों ने पाश लेकर हम दोनों को बांधने वाले भयानक दीर्घदंष्ट्रा यमकिंकरों से कहा—।।५३-५७।।

विष्णुदूता ऊचुः

भो भो क्रूरा दुराचारा विवेकपरिवर्जिताः। मुञ्चध्वमेतौ निष्पापौ दम्पती हरिवल्लभौ॥५८॥
विवेकस्त्रिषु लोकेषु संपदामादिकारणम्। अपापे पापधीर्यस्तु तं विद्यात्पुरुषाधमम्॥५९॥
पापे त्वपापधीर्यस्तु तं विद्यादधमाधमम्॥६०॥

विष्णुदूतगण कहते हैं—हे क्रूर, दुराचारी, विवेकहीन! इन निष्पाप हरिप्रिय दम्पति को मुक्त करो। तीनों लोकों में विवेक ही सम्पदा का मुख्य कारण है। पाप रहित लोगों को जो कोई पापी मानता है, उसे पुरुषाधम कहते हैं। जो पातकी स्वयं को पुण्यात्मा माने, उसे तो अधमाधम जानना चाहिये।।५८-६०।।

यमदूता ऊचुः

युष्माभिः सत्यमेवोक्तं किं त्वेतौ पापिसत्तमौ।
यमेन पापिनो दण्ड्यास्तन्नेष्यामो वयं त्विमौ॥६१॥

श्रुतिप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः। धर्माधर्मविवेकोऽयं तन्नेष्यामो यमान्तिकम्॥६२॥
एतच्छ्रुत्वातिकुपिता विष्णुदूता महौजसः। प्रत्यूचूस्तान्यमभटानधर्मे धर्ममानिनः॥६३॥

यमदूतगण कहते हैं—"आप लोगों ने सत्य ही कहा, तथापि ये दोनों महापातकी हैं। यम पापीगण को दण्ड प्रदान करते हैं। अतः हम इनको लेकर जायेंगे। श्रुति में जो कहा गया, वही धर्म है। अधर्म उससे विपरीत होता है। यही धर्म-अधर्म का विवेक कहा जाता है। हम तो इन दोनों को यमालय ले ही जायेंगे।" यह सुनकर महातेजस्वी विष्णुदूत कुपित हो गये। उन्होंने अधर्म को धर्म कहने वाले यमदूतों से कहा—।।६१-६३।।

विष्णुदूता ऊचुः

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम्।
सम्यग्विवेकशून्यानां निदानं ह्यापदां महत्॥६४॥
तर्कणाद्यविशेषेण नरकाध्यक्षतां गताः। यूयं किमर्थमद्यापि कर्तुं पापानि सोद्यमाः॥६५॥
स्वकर्मक्षयपर्यन्तं महापातकिनोऽपि च। तिष्ठन्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥६६॥
पूर्वसंचितपापानामदृष्ट्वा निष्कृतिं वृथा। किमर्थं पापकर्माणि करिष्येऽथ पुनः पुनः॥६७॥

विष्णुदूतगण कहते हैं—यह अत्यन्त कष्टकर स्थिति है कि धर्मसभा में अधर्म परिलक्षित हो रहा है। जब सम्यक् विवेक किसी बात के निर्णय में नहीं रहता, तब अनेक महान् आपदायें आने लगती हैं। लगता है कि तुम लोग तर्क तथा विवेक रहित होकर भी नरकाध्यक्ष बने हो! तुम लोग किस कारण से पाप करने के लिये उद्यत हो गये हो? महापापी अपने स्वकर्मक्षय होने तक तब तक घोर नरक में निवास करते हैं, जब तक सृष्टि में चन्द्र-तारकों की स्थिति रहती है। पूर्व संचित पापों पर दृष्टिपात किये बिना उनका निर्णय नहीं हो सकता। तुम लोग पुनः-पुनः पाप क्यों कर रहे हो?।।६४-६७।।

श्रुतिप्रणिहितो धर्मः सत्यं सत्यं न संशयः।
किन्त्वाभ्यां चरितान्धर्मान्प्रवक्ष्यामो यथातथम्॥६८॥
एतौ पापविनिर्मुक्तौ हरिशुश्रूषणे रतौ। हरिणा त्राणमाणौ च मुञ्चध्वमविलम्बितम्॥६९॥
एषा च नर्तनं चक्रे तथैष ध्वजरोपणम्। अन्तकाले विष्णुगृहे तेननिष्पापतां गतौ॥७०॥
अन्तकाले तु यन्नाम श्रुत्वोक्त्वापि च वै सुकृत्।
लभते परमं स्थानं किमु शुश्रूषणे रताः॥७१॥

श्रुतियों में जो कहा गया, वही धर्म है। वही सत्य है। इसमें संशय नहीं है। हम इन दोनों द्वारा किये गये धर्म को यथार्थतः कह रहे हैं। ये हरिसेवा में निरत रहने के कारण पापों से रहित हो गये हैं। हरि स्वयं इनके रक्षक हैं। इसलिये बिना विलम्ब किये इनको मुक्त करो। इस नारी ने विष्णु मन्दिर में नृत्य किया है। इस नर ने अपने जीवन के काल में विष्णु मन्दिर में ध्वजारोहण किया है। अतः ये दोनों निष्पाप हो गये। मृत्युकाल में जिनका नाम सुनने किंवा उनका एक बार भी नाम मुख से लेने पर व्यक्ति परम स्थान प्राप्त कर लेता है, ऐसी स्थिति में उन प्रभु की सुश्रूषा में जो निरत था, उसकी तो बात ही क्या?।।६८-७१।।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
कृष्णसेवी नरोऽन्तेऽपि लभते परमां गतिम्॥७२॥
यतीनां विष्णुभक्तानां परिचर्यापरायणा।
ते दूताः सहसा यान्ति पापिनोऽपि परां गतिम्॥७३॥
मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धं यस्तिष्ठेद्धरिमन्दिरे। सोऽपि याति परं स्थानं किमु द्वात्रिंशवत्सरान्॥७४॥

भले ही वह व्यक्ति महापातक युक्त अथवा उपपातकी क्यों न रहा हो, अन्तिम काल में भी यदि वह कृष्ण सेवा निरत हो गया हो, तब उसे परमगति मिल ही जाती है। जो यतियों तथा विष्णुभक्तों की परिचर्या करते हैं, वे पातकी भले ही हों, विष्णुदूत उनको सहसा परागति पर्यन्त पहुंचा देते हैं। जो व्यक्ति एक मुहूर्त किंवा आधा मुहूर्त भी हरिमन्दिर में रह जाता है, उसे भी परमस्थान लाभ होता है। तब इस निषाद ने तो वहां बत्तीस वर्ष निवास किया।।७२-७४।।

उपलेपनकर्त्तारौ संमार्जनपरायणौ। एतौ हरिगृहे नित्यं जीर्णशीर्णाधिरोपकौ॥७५॥
जलसेचनकर्त्तारौ दीपदौ हरिमन्दिरे। कथमेतौ महाभागौ यातनाभोगमर्हथ॥७६॥

ये लोग नित्य जीर्ण-शीर्ण मन्दिर की मरम्मत करते, वहां की भूमि लीपते तथा वहां सफाई करते थे। ये वहां जल से सफाई करते, दीपक जलाते थे। ये महाभाग किस प्रकार यातना भोग के योग्य समझे जायेंगे?।।७५-७६।।

इत्युत्त्वा विष्णुदूतास्ते च्छित्वा पाशांस्तदैव हि।
आरोप्यावां विमानाग्र्यं ययुर्विष्णोः परं पदम्॥७७॥
तत्र सामीप्यमापन्नौ देवदेवस्य चक्रिणः।
दिव्यान्भोगान्भुक्तवन्तौ तावत्कालं मुनीश्वर॥७८॥
दिव्यान्भोगगांस्तु तत्रापि भुक्त्वा यातौ महीमिमाम्।
अत्रापि संपदतुला हरिसेवाप्रसादतः॥७९॥
अनिच्छया कृतेनापि सेवनेन हरेर्मुने। प्राप्तमीदृक् फलं विप्रं देवानामपि दुर्लभम्॥८०॥
इच्छयाराध्य विश्वेशं भक्तिभावेन माधवम्। प्राप्स्यावः परमं श्रेय इति हेतुर्निरूपितः॥८१॥
अवशेनापि यत्कर्म कृतं स्यात्सुमहत्फलम्।
जायते भूमिदेवेन्द्र किं पुनः श्रद्धया कृतम्॥८२॥

यह कहकर विष्णु दूतों ने हम दोनों के पाश का छेदन करके हमें उत्तम यान पर बैठाया तथा हमको विष्णु के परमपद ले गये। हे मुनीश्वर! हमने वहां देवदेव चक्रधारी विष्णु के सामीप्य को प्राप्त किया तथा निश्चित काल तक वहां पर दिव्य भोगों का भोग करके इस धरती पर जन्म लिया। यहां भी हरिसेवा के फलस्वरूप हमें अतुलित सम्पदा मिली। हे विप्र! हे मुनिवर! हमने बिना इच्छा के श्रीहरि की सेवा करके ऐसा देवदुर्लभ फल लाभ किया है। जो भक्तिभाव से तथा इच्छा पूर्वक माधव की आराधना करता है, उसे परमश्रेय की प्राप्ति होती है। अतः वैसा

श्रेय हमें भी प्राप्त होना है। उसका हेतु आपसे कह दिया। हे भूदेवेन्द्र! जब अनिच्छा से ही किये सेवा कर्म का ऐसा सुमहान् फल है, तब श्रद्धा से हरिसेवा का फल जो होगा, उसे कहा नहीं जा सकता!।।७७-८२।।

एतदुक्तं निशम्यासौ स मुनींद्रो विभाण्डकः।
प्रशम्य दम्पती तौ तु प्रययौ स्वतपोवनम्॥८३॥
तस्माज्जानीहि देवर्षे देवदेवस्य चक्रिणः। परिचर्या तु सर्वेषां कामधेनूपमा स्मृता॥८४॥
हरिपूजापराणां तु हरिरेव सनातनः। ददाति परमं श्रेयः सर्वकामफलप्रदः॥८५॥
य इदं पुण्यमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम्।
पठेच्च शृणुयाद्वापि सोऽपि याति परां गतिम्॥८६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सुमतिभूपकथावर्णनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

जब मुनिराज विभाण्डक ने उन दम्पति से उनके पूर्व प्रसंग को सुना, तब वे मुनिश्रेष्ठ उन दम्पति की प्रशंसा करते अपने तपोवन चले गये। हे देवर्षि! आप यह निश्चित जानिये कि देवदेव चक्री श्रीहरि की परिचर्या कामधेनु के समान फलदायक कही गयी है। सनातन प्रभु श्रीहरि हरिपूजातत्पर भक्तगण को परमश्रेय प्रदान करते हैं। श्रीहरि समस्त कामनाओं का फल देने वाले परमेश्वर हैं। जो इस सर्वपापप्रणाशन पुण्यमय प्रसंग का श्रवण अथवा पाठ करता है, उसे परमगति का लाभ होता है।।८३-८६।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

अथैकविंशोऽध्यायः

श्री हरि के हरिपंचक व्रत का वर्णन

सनक उवाच

अन्यद्व्रतं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः। दुर्लभं सर्वलोकेषु विख्यातं हरिपञ्चकम्॥१॥
नारीणां च नराणां च सर्वदुःखनिवारणम्। धर्मकामार्थमोक्षाणां निदानं मुनिसत्तम॥२॥
सर्वाभीष्टप्रदं चैव सर्वव्रतफलप्रदम्। मार्गशीर्षे सिते पक्षे दशम्यां नियतेन्द्रियः॥३॥
कुर्यात्स्नानादिकं कर्म दन्तधावनपूर्वकम्। कृत्वा देवार्चनं सम्यक्तथा पञ्च महाध्वरान्॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे नारद! मैं अन्य व्रत का तत्वतः वर्णन कर रहा हूं। उसका श्रवण करो। वह सभी लोकों में प्रसिद्ध, दुर्लभ हरिपंचक व्रत है। यह नर किंवा नारीगण के सभी दुःखों का निवारक है। हे

मुनिसत्तम! यह धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष का कारण भी है। यह सभी अभीष्ट को देने वाला तथा सर्वव्रतफलप्रद है। मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को जितेन्द्रिय होकर दन्तधावन, स्नानादिकर्म विधिवत् करके देवार्चन के पश्चात् पंचमहायज्ञ सम्यक् रूप से करना चाहिये।।१-४।।

एकाशी च भवेत्तस्मिन् दिने नियममास्थितः।
ततः प्रातः समुत्थाय ह्येकादश्यां मुनीश्वर।।५।।
स्नानं कृत्वा यथाचारं हरिं चार्चयेद्गृहे। स्नापयेद्देवदेवेशं पञ्चामृतविधानतः।।६।।
अर्चयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैश्च प्रदक्षिणैः।।७।।
संपूज्य देवदेवेशमिमं मन्त्रमुदीरयेत्। नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते।।८।।
नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने। एवं प्रणम्य देवेशं वासुदेवं जनार्दनम्।।९।।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ह्युपवासं समर्पयेत्। पञ्चरात्रं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।।१०।।
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्ममाभीष्टप्रदोभव। एवं समर्प्य देवस्य उपवासं जितेन्द्रियः।।११।।

इस दिन मात्र एक ही बार आहार करना होगा। नियम पालन करते हुये यह व्रत करे। अगले दिन एकादशी को प्रातः स्नान तथा यथाविधान हरिपूजन अपने गृह में ही सम्पन्न करे। उन देवदेवेश को सविधि पंचामृत से स्नान कराये। परम भक्ति पूर्वक क्रमशः गन्धपुष्पादि से श्री हरि की अर्चना करे। धूप-दीप, नैवेद्य-ताम्बूल प्रदान प्रदक्षिणा आदि करके इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। "हे ज्ञानरूप, ज्ञानदाता, सर्वरूप, सर्वसिद्धिदाता आपको प्रणाम करता हूं!।" इस प्रकार देवेश वासुदेव जनार्दन को प्रणाम निवेदनोपरान्त अपने व्रतोपवास का अर्पण श्रीहरि को इस मन्त्र से करे। "हे केशव! आपकी आज्ञा का पालन करते हुये मैं पांच रात्रि निराहार रहूंगा। हे जनार्दन देव! मुझे अभीष्ट प्रदान करिये" एवंविध अपना व्रत देवता को अर्पित करे तथा जितेन्द्रिय होकर रहे।।५-११।।

रात्रौ जागरणं कुर्यादेकादश्यामथो द्विज। द्वादश्यां च त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां जितेन्द्रियः।।१२।।
पौर्णमास्यां च कर्त्तव्यमेवं विवर्चनं मुने।
एकादश्यां पौर्णमास्यां कर्त्तव्यं जागरं तथा।।१३।।
पञ्चामृतादिपूजा तु सामान्या दिनपञ्चसु।
क्षीरेण स्नापयेद्विष्णुं पौर्णमास्यां तु शक्तितः।
तिलहोमञ्च कर्त्तव्यस्तिलदानं तथैव च।।१४।।

अब व्रती व्यक्ति एकादशी पर रात्रि जागरण करे। हे मुनिवर! वह व्रती द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा तिथि पर संयम पूर्वक रहता हुआ श्रीविष्णु पूजा करे। एकादशी तथा पूर्णिमा पर रात्रि जागरण भी करे। इन पांचों तिथि पर पंचामृत आदि से सामान्य पूजा भी करनी चाहिये, परन्तु पौर्णमासी के दिन स्वशक्ति के अनुसार विष्णु को क्षीर से स्नान कराये। तदनन्तर तिलहोम तथा तिलदान भी करे।।१२-१४।।

ततः षष्ठे दिने प्राप्ते निर्वृत्य स्वाश्रमक्रियाम्।
संप्राश्य पञ्चगव्यं च पूजयेद्विधिवद्धरिम्।।१५।।

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्विभवे सत्यवारितम्। ततः स्वबन्धुभिः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥१६॥
एवं पौषादिमासेषु कार्त्तिकान्तेषु नारद। शुक्लपक्षे व्रतं कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना नरः॥१७॥

छठे दिन प्रातः नित्यक्रिया प्रभृति सम्पन्न करके पंचगव्य से प्राशन करे तथा विधिवत् हरिपूजा करे। तत्पश्चात् अपनी धनशक्ति के अनुरूप निश्चित रूप से ब्राह्मण भोजन कराकर स्वयं मौनी रहता हुआ बन्धुगण के साथ भोजन करे। हे नारद! इसी प्रकार पौष आदि सभी मास में तथा कार्त्तिक मास के अन्त में प्रत्येक मास के शुक्लपक्ष में ऊपर कही गई विधि से व्रताचरण करना चाहिये।।१५-१७।।

एवं संवत्सरं कार्यं व्रतं पापप्रणाशनम्। पुनः प्राप्ते मार्गशीर्षे कुर्यादुद्यापनं व्रती॥१८॥
एकादश्यां निराहारो भवेत्पूर्वमिव द्विज। द्वादश्यां पञ्चगव्यं च प्राशयेत्सुसमाहितः॥१९॥
गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्देवदेवं जनार्दनम्। अभ्यर्च्योपायनं दद्याद्ब्राह्मणाय जितेन्द्रियः॥२०॥

इस प्रकार वर्षपर्यन्त किया गया व्रत समस्त पातकों का नाशक हो जाता है। तत्पश्चात् पुनः मार्गशीर्ष मास आते ही वह व्रती व्यक्ति व्रत का उद्यापन करे। हे द्विज! पूर्ववत् एकादशी को उपवासी रहकर द्वादशी तिथि पर समाहित चित्त से पंचगव्य पान करे। तत्पश्चात् देवदेव जनार्दन की पूजा सम्यक् रूप से गन्धपुष्पादि द्वारा करने के उपरान्त जितेन्द्रिय विप्र को उपहारादि से सन्तुष्ट करे।।१८-२०।।

पायसं मधुसंमिश्रं घृतयुक्तं फलान्वितम्। सुगन्धजलसंयुक्तं पूर्णकुम्भं सदक्षिणम्॥२१॥
वस्त्रेणाच्छादितं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम्। दद्यादध्यात्मविदुषे ब्राह्मणाय मुनीश्वर॥२२॥
सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वव्यापिन्सनातन। परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव॥२३॥
अनेन पायसं दत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।
शक्तितो बन्धुभिः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥२४॥

हे मुनीश्वर! अध्यात्मविद् ब्राह्मण को उस समय मधुयुक्त पायस, घृत, फल, सुगन्ध जल भरा घट दक्षिणा के साथ दे। वह घट पंचरत्न समन्वित तथा वस्त्र से ढका हो। तदनन्तर "हे सर्वात्मा! सर्वभूतेश, सर्वव्यापी, सनातन! माधव! आप इस परमान्न दान द्वारा मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" इस मन्त्र से पायस दान करके स्वशक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं मौनी रहकर बन्धुजन के साथ भोजन करना चाहिये।।२१-२४।।

व्रतमेतत्तुयः कुर्याद्धरिपञ्चकसंज्ञितम्। न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥२५॥
व्रतमेतत्प्रकर्त्तव्यमिच्छद्भिर्मोक्षमुत्तमम्। समस्तपापकान्तारदावानलसमं द्विज॥२६॥
गवां कोटिसहस्राणि दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात्। तत्फलं लभ्यते पुम्भिरेतस्मादुपवासतः॥२७॥
यस्त्वेतच्छृणुयाद् भक्त्या नारायणपरायणः।
स मुच्यते महाघोरैः पातकानां च कोटिभिः॥२८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मार्गशीर्षशुक्लैकादशीमारभ्य पञ्चरात्रिव्रतं नामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

यह हरिपंचक नामक व्रतानुष्ठान करने वाला कभी भी ब्रह्मलोक से वापस नहीं आता। हे द्विज! जो उत्तम मुक्ति की कामना करता है, वह इस व्रताचरण को करे। यह समस्त पापरूपी वन को दग्ध करने वाले दावानल के समान है। एक कोटिसहस्र गोदान का जो फल है, वही फल इस हरिपंचक व्रतोपवास से प्राप्त होता है। जो नारायणपरायण जन इसे भक्ति के साथ श्रवण करते हैं, वे करोड़ों महाघोर पातकों से मुक्तिलाभ करते हैं।।२५-२८।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

विशेष मासों में किये जाने वाले व्रतों का वर्णन

सनक उवाच

अन्यद् व्रतवरं वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहितः। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वलोकोपकारकम्॥१॥
आषाढे श्रावणे वापि तथा भाद्रपदेऽपि च। तथैवाश्विनके मासे कुर्यादेतद्व्रतं द्विज॥२॥

देवर्षि सनक कहते हैं—अब मैं अन्य व्रत कहता हूं। उनको समाहित हो सुनें। ये व्रत सर्वपापहरण करने वाले तथा लोकों का उपकार करने वाले हैं। हे द्विज! आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद किंवा आश्विन मास में इस व्रत को करना चाहिये।।१-२।।

एतेष्वन्यतमे मासे शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः। प्राशयेत्पञ्चगव्यं च स्वपेद्विष्णुसमीपतः॥३॥
ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च। श्रद्धया पूजयेद्विष्णुं वशीक्रोधविवर्जितः॥४॥
विद्वद्भिः सहितो विष्णुमर्चयित्वा यथोचितम्। संकल्पं तु ततः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥५॥

इनमें से किसी भी मास के शुक्लपक्ष में व्रती व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर विष्णु के समीप पंचगव्य का प्राशन करे तथा रात्रि में विष्णु के समीप शयन करे। प्रातः जागने के उपरान्त नित्यकर्म सम्पन्न करके वह व्रती इन्द्रियों पर संयम करके तथा क्रोध रहित स्थिति में विष्णु पूजा करे। वह व्रती विद्वानों के साथ विष्णु की यथोचित अर्चना करके स्वस्तिवाचन सहित यह संकल्प करे।।३-५।।

मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव। मासान्तं पारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया॥६॥
तपोरूप नमस्तुभ्यं तपसां फलदायक। ममाभीष्टप्रदं देहि सर्वविघ्नान्निवारय॥७॥

"हे केशव! मैं आज से एक मास निराहार रहकर आपकी आज्ञा से मासान्त में पारण करूंगा। हे देवदेव! तपरूप! तपःफलदाता! आपको प्रणाम करता हूं!। आप सभी विघ्नों का निवारण करके मुझे वांछित प्रदान करिये।।६-७।।

एवं समर्प्य देवस्य विष्णोर्मासव्रतं शुभम्। ततः प्रभृति मासान्तं निवसेद्धरिमन्दिरे॥८॥
प्रत्यहं स्नपयेद्देवं पञ्चामृतविधानतः। दीपं निरन्तरं कुर्यात्तस्मिन्मासे हरेर्गृहे॥९॥
प्रत्यहं खादयेत्काष्ठं ह्यपामार्गं समुद्भवम्। ततः स्नायीत विधिवन्नारायणपरायणः॥१०॥
ततः संस्नापयेद्विष्णुं पूर्ववत्प्रयतोऽर्चयेत्।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या भक्तियुक्तः सदक्षिणम्॥११॥

इस प्रकार से विष्णु देव के चरणों में इस शुभ मासिक व्रत को अर्पित करके इस दिन से लगाकर मासान्त तक हरि मन्दिर में व्रती व्यक्ति निवास करे। वह व्रती नित्यप्रति देवदेवहरि को पंचामृत विधान से स्नान कराये। हरिमन्दिर में निरन्तर इस मास पर्यन्त (अखण्डदीप) दीप जलता रहे। व्रती व्यक्ति अपमार्ग की दातौन से दन्तशोधन के पश्चात् नित्य विधिवत् नारायण-परायण चित्त से स्नान करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् सावधानी के साथ विष्णु को स्नान कराये। इसके अनन्तर भक्तिभाव पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करे तथा दक्षिणा भी अर्पित करे।।८-११।।

स्वयं च बन्धुभिः सार्द्धं भुञ्जीत प्रयतेन्द्रियः।
एवं मासोपवासांश्च व्रती कुर्यात्त्रयोदश॥१२॥
वर्षान्ते वेदविदुषे गां प्रदद्यात्सदक्षिणाम्। भोजयेद्ब्राह्मणांस्तत्र द्वादशैव विधानतः।
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मण्याभरणानि च॥१३॥

इसके पश्चात् स्वयं संयम के साथ (मौनी रहकर) बन्धुगण के साथ व्रती को भोजन करना होगा। व्रती को चाहिये कि वह १३ बार इस मासोपवास व्रतानुष्ठान को सम्पन्न करे। वर्ष का अन्त होने पर वह वेदज्ञ ब्राह्मण को दक्षिणायुक्त गौ प्रदान करे। वहीं पर सविधि बारह ब्राह्मणगण को भोजन कराने के पश्चात् उनको अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये। साथ ही आभरणादि भी दान करे।।१२-१३।।

मासोपवासत्रितयं यः कुर्यात्संयतेन्द्रियः।
आप्तोर्यामस्य यज्ञस्य द्विगुणं फलमश्नुते॥१४॥
चतुः कृत्वः कृतं येन पाराकं मुनिसत्तम। स लभेत्परमं पुण्यमष्टाग्निष्टोमसंभवम्॥१५॥
पञ्चकृत्वो व्रतमिदं कृतं येन महात्मना। अत्यग्निष्टोमजं पुण्यं द्विगुणं प्राप्नुयान्नरः॥१६॥

जो संयतेन्द्रिय व्रती तीन मासोपवास व्रतानुष्ठान पूर्ण करता है, उसे आप्तोर्याम यज्ञ से भी द्विगुणित फल लाभ होता है। हे मुनिश्रेष्ठ! जो चार बार पारणयुक्त इस व्रत को सम्पन्न करेगा, उसे चार अग्निष्टोम यज्ञ का द्विगुणित फल लाभ होगा। पांच बार यह मासिक व्रतानुष्ठान करने वाला महात्मा व्रती अन्त्यग्निष्टोम का द्विगुणफल प्राप्त करेगा।।१४-१६।।

मासोपवासषट्कं यः करोति सुसमाहितः।
ज्योतिष्टोमस्य यज्ञस्य फलं सोऽष्टगुणं लभेत्॥१७॥
निराहारः सप्तकृत्वो नरो मासोपवासकान्। अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्॥१८॥
मासोपवासान्यः कुर्यादष्टकृत्वो मुनीश्वर। नरमेधाख्ययज्ञस्य फलं पञ्चगुणं लभेत्॥१९॥

जो व्रती समाहित चित्त से छः मासोपवास व्रत करेगा, उसे ज्योतिष्टोम यज्ञ का आठगुणित फल लाभ होगा। जो निराहार रहकर सात मासोपवास व्रत सम्पन्न करेगा, उसे अश्वमेध यज्ञ से भी आठ गुणित फल की प्राप्ति होगी। हे मुनीश्वर! आठ बार मासोपवास व्रताचरण करने वाला नरमेध यज्ञ का पांचगुणित फललाभ करेगा।।१७-१९।।

यस्तु मासोपवासांश्च नवकृत्वः समाचरेत्। गोमेधमखजं पुण्यं लभते त्रिगुणं नरः॥२०॥
दशकृत्वस्तु यः कुर्यात्पराकं मुनिसत्तम। स ब्रह्ममेधयज्ञस्य त्रिगुणं फलमश्नुते॥२१॥
एकादश पराकांश्च यः कुर्यात्संयतेन्द्रियः। स याति हरिसारूप्यं सर्वभोगसमन्वितम्॥२२॥
त्रयोदश पराकांश्च यः कुर्यात्प्रयतो नरः। स याति परमानन्दं यत्र गत्वा न शोचति॥२३॥

नौ बार इस व्रताचरण को सम्पन्न करने वाला गोमेध यज्ञ से भी त्रिगुणित फल लाभ करेगा। दस बार इसे सम्पन्न करने वाला ब्रह्मयज्ञ का त्रिगुणित फल लाभ करेगा। संयम पूर्वक इस व्रताचरण को एकादश बार सम्पन्न करने वाला व्रती हरिसारूप्य तथा सर्वभोगलाभ करेगा। त्रयोदश बार यह व्रतानुष्ठान करने वाला संयमी उस परमानन्द पद का लाभ करेगा, जहां जाने पर शोक नहीं रहता।।२०-२३।।

मासोपवासनिरता गङ्गास्नानपरायणाः। धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एव न संशयः॥२४॥
अवीराभिश्च नारीभिर्यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः।
मासोपवासः कर्त्तव्यो वनस्थैश्च विशेषतः॥२५॥

जो मासोपवास में निरत तथा गंगास्नान परायण है साथ ही धर्ममार्ग का व्याख्याता है, वह मुक्त होकर रहेगा। इसमें संशय नहीं है। पति-पुत्र रहित नारी, यति, ब्रह्मचारी, मासोपवास व्रत करे। विशेषतया वानप्रस्थाश्रमी इसे करे।।२४-२५।।

नारी वा पुरुषो वापि व्रतमेतत्सुदुर्लभम्।
कृत्वा मोक्षमवाप्नोति योगिनामपि दुर्लभम्॥२६॥
गृहस्थो वानप्रस्थो वा व्रती वा भिक्षुरेव वा।
मूर्खो वा पण्डितो वापि श्रुत्वैतन्मोक्षभाग्भवेत्॥२७॥
इदं पुण्यं व्रताख्यानं नारायणपरायणः। श्रृणुयाद्वाचयेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मासोपवासवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

इस सुदुर्लभ व्रत द्वारा पुरुष-स्त्री, सभी लोग योगीगण के लिये भी दुर्लभ मोक्षलाभ करते हैं। गृहस्थ, वानप्रस्थ, व्रती, भिक्षु, मूर्ख, पण्डित—ये सभी इस व्रत प्रसंग के श्रवणमात्र से ही मोक्षभागी हो जाते हैं। जो नारायण भक्त हैं, वह इस व्रतोपाख्यान के पाठ अथवा श्रवण से सर्वपाप रहित हो जाता है।।२६-२८।

।।२२वां अध्याय समाप्त।।

त्रयोविंशोऽध्यायः

भद्रशील ब्राह्मण के प्रसंग का वर्णन

सनक उवाच

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम्॥१॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चैव योषिताम्।
मोक्षदं कुर्वतां भक्त्या विष्णोः प्रियतरं द्विज॥२॥

देवर्षि सनक कहते हैं—अब मैं अन्य व्रत का वर्णन करता हूं, जो त्रैलोक्य प्रसिद्ध, सर्वपापनाशक तथा समस्त कामनाओं का फल प्रदाता है। यह व्रत ऐसा है कि इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नारी, सभी मोक्षलाभ कर लेते हैं। हे द्विज! यह विष्णु को प्रिय से भी अधिक प्रिय है।।१-२।।

एकादशीव्रतं नाम सर्वाभीष्टप्रदं नृणाम्। कर्त्तव्यं सर्वथा विप्रविष्णुप्रीतिकरं यतः॥३॥
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। यो भुङ्क्ते सोऽत्र पापीयान्परत्र नरकं व्रजेत्॥४॥

यह मनुष्यों को समस्त अभीष्ट देने वाला एकादशी नाम वाला व्रत है। सभी लोग इसे करे। यह विष्णु को प्रसन्न करने वाला व्रत कहा गया है। दोनों पक्ष की एकादशी तिथि पर भोजन न करे। इस तिथि पर भोजन करने वाला पापी है। उसे परलोक में नरक में जाना पड़ेगा।।३-४।।

उपवासफलं लिप्सुर्जह्याद्भुक्तिचतुष्टयम्। पूर्वापरदिने रात्रावहोरात्रं तु मध्यमे॥५॥
एकादशीदिने यस्तु भोक्तुमिच्छति मानवः। स भोक्तुं सर्वपापानि स्पृहयालुर्न संशयः॥६॥
भवेद्दशम्यामेकाशी दादश्यां च मुनीश्वर। एकादश्यां निराहारो यदि मुक्तिमभीप्सति॥७॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति तानि विप्र हरेर्दिने॥८॥
ब्रह्महत्यादिपापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत्।
एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते तस्य नैवास्ति निष्कृतिः॥९॥

जो यथार्थ उपवास फल प्राप्त करना चाहता है, वह व्रती व्यक्ति दशमी तथा द्वादशी की रात्रि तथा एकादशी के दिन एवं रात्रि का भोजन न करे। एकादशी को आहार ग्रहण करने वाला तथा उस समय भोजनेच्छा रखने वाला वास्तव में सर्वपापभोग की इच्छा से युक्त रहता है। हे मुनिप्रवर! मुक्तिकामी व्यक्ति दशमी तथा द्वादशी को एक ही समय आहार ग्रहण करे। एकादशी को पूर्णतः निराहार रहे। हे विप्र! वस्तुतः एकादशी तिथि के दिन ब्रह्महत्या आदि घोर पातक अन्न पर आश्रित रहते हैं। इन पापों का जिस प्रकार कोई प्रायश्चित्त नहीं है, तदनुरूप एकादशी के दिन अन्नग्रहण का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है।।५-९।।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
एकादश्यां निराहारः स्थित्वा याति परां गतिम्॥१०॥

एकादशी महापुण्या विष्णोः प्रियतमा तिथिः।
संसेव्या सर्वथा विप्रैः संसारच्छेदलिप्सुभिः॥११॥

दशम्यां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्। स्नापयेद्विधिवद्विष्णुं पूजयेत्प्रयतेन्द्रियः॥१२॥

भले ही व्यक्ति महापातक अथवा सर्वपातक युक्त क्यों न हो, यदि वह एकादशी को निराहार रहता है, उसे परमगति प्राप्त होगी। एकादशी विष्णु की प्रिय तिथि है तथा महापुण्यमयी हैं। हे विप्र! जो संसार-बन्धन का उच्छेद करके उससे छूटना चाहते हैं, वे सर्वथा एकादशी सेवन करे। दशमी को प्रातः उठकर 'दन्त धावन' तथा स्नान सविधि सम्पन्न करने के पश्चात् जितेन्द्रिय होकर विष्णु पूजा करे।।१०-१२।।

एकदश्यां निराहारो निगृहीतेन्द्रियो भवेत्। शयीत सन्निधौ विष्णोर्नारायणपरायणः॥१३॥

एकादश्यां तथा स्नात्वा सम्पूज्य च जनार्दनम्।
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् ततस्त्वेवमुदीरयेत्॥१४॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वाद्याहं परेऽहनि।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥१५॥

वह व्रती एकादशी को जितेन्द्रिय तथा निराहार रहे। नारायण-परायण होकर विष्णु की सन्निधि में उस रात्रि वहां शयन करे। एकादशी को स्नानोपरान्त जनार्दन की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर भगवान् से यह मन्त्र कहे—"हे पुण्डरीकाक्ष! अच्युत! मैं आज एकादशी को उपवासी निराहार रहकर कल भोजन ग्रहण करूंगा। आप मुझे अपनी शरण प्रदान करिये।।१३-१५।।

इमं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः। भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवासं समर्पयेत्॥१६॥
देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती। गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणश्रवणादिभिः॥१७॥

ततः प्रातः समुत्थाय द्वादशीदिवसे व्रती।
स्नात्वा च विधिवद्विष्णुं पूजयेत्प्रयतेन्द्रियः॥१८॥

पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम्। द्वादश्यां पयसा विप्र हरिसारूप्यमश्नुते॥१९॥

इस मन्त्र का देवदेव चक्री गदाधार के समक्ष उच्चारण करके भक्ति पूर्वक प्रसन्न मन से अपना उपवास उनको अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर वह नियम पालक व्रती व्यक्ति देवता के समक्ष रात्रि जागरण गीत-वाद्य, नृत्य, पुराण श्रवणादि के साथ करे। प्रातः द्वादशी के दिन व्रती व्यक्ति स्नानादि सम्पन्न करके जितेन्द्रिय होकर सविधि विष्णुपूजन सम्पन्न करे। एकादशी की तिथि पर जनार्दन को पंचामृत से स्नान कराकर द्वादशी के दिन पायस से स्नान कराये। हे विप्र! इससे वह व्रती हरिसारूप्य लाभ करता है।।१६-१९।।

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव। प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥२०॥

एवं विज्ञाप्य विप्रेन्द्र माधवं सुसमाहितः।
ब्रह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणां तथा॥२१॥

तदनन्तर हे विप्रेन्द्र! वह व्रती नारायण से प्रार्थना करे—"हे केशव! इस व्रत द्वारा मुझ अज्ञानान्धकार

ग्रस्त व्यक्ति पर प्रसन्न होकर ज्ञानदृष्टि देने वाले हो जाईये।" समाहित रूप से व्रती व्यक्ति भगवान् की प्रार्थना करके अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराये तथा उनको दक्षिणा प्रदान करना चाहिये।।२०-२१।।

ततः स्वबन्धुभिः सार्द्धं नारायणपरायणः। कृतपञ्चमहायज्ञः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥२२॥
एवं यः प्रयतः कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम्। स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥२३॥
उपवासव्रतपरो धर्मकार्यपरायणः। चाण्डालान्पतितांश्चैव नेक्षेत्तपि कदाचन॥२४॥
नास्तिकान्भिन्नमर्यादान्निन्दकान्पिशुनांस्तथा। उपवासव्रतपरो नालपेच्च कदाचन॥२५॥
बृषलीसूतिपोष्टारं वृषलीपतिमेव च। अयाज्ययाजकं चैव नालपेत्सर्वदा व्रती॥२६॥

तदनन्तर व्रती व्यक्ति पंचमहायज्ञ पूर्ण करके नारायण-परायण होकर अपने बन्धुगण के साथ स्वयं मौनी रहता हुआ भोजन करे। जो व्यक्ति इस प्रकार सविधि प्रयत्नशील होकर इस पुण्यमय एकादशी व्रत को करता है, वह पुनर्जन्म रहित विष्णु लोक प्राप्त करता है। जो उपवासी, व्रती तथा धर्मकार्य तत्पर है, उसे चाहिये कि वह पतितों तथा चाण्डालों की ओर दृष्टिपात तक न करे। नास्तिक, मर्यादा भंग करने वाले, निन्दा करने वाले, चुगलखोर से भी कदापि वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये। व्रती व्यक्ति वृषली के सन्तान को पालने वाले, वृषली स्त्री के पति, जो यज्ञाधिकारी नहीं है, उसे जो यज्ञ कराता है, उससे कदापि वार्त्तालाप न करे।।२२-२६।।

कुण्डाशिनं गायकं च तथा देवलकाशिनम्।
भिषजं काव्यकर्त्तारं देवद्विजविरोधिनम्॥२७॥
परान्नलोलुपं चैवं परस्त्रीनिरतं तथा। व्रतोपवासनिरतो वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥२८॥
इत्येवमादिभिः शुद्धो वशी सर्वहिते रतः। उपवासपरो भूत्वा परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥२९॥

जो नारी पति के जीवित रहते अन्य व्यक्ति से पुत्रोत्पत्ति करती है—वह कुण्ड कहा गया है। ऐसे कुण्ड का अन्न भक्षण करने वाले, गायक देवल (मन्दिर के पुजारी), वैद्य, भाट, देवब्राह्मण विरोधी, परान्न लोलुप, परस्त्रीगामी की चर्चा अपनी वाणी से कदापि न करे। ऐसा नियम पालक, पवित्र, इन्द्रियजित्, सभी प्राणीगण के हित में निरत उपवासी रहने वाला व्यक्ति परमसिद्धि लाभ करता है।।२७-२९।।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम्॥३०॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम्।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता॥३१॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम्। अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्॥३२॥

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, माता के समान कोई गुरु नहीं है, विष्णु के समान कोई देवता नहीं है तथा उपवास के बढ़कर कोई तप नहीं है। क्षमा के समान कोई माता नहीं है। कीर्त्ति के समान कोई धन नहीं है। ज्ञान के समान कोई प्राप्ति नहीं है तथा धर्म के समान कोई पिता नहीं है। विवेक के समान कोई बन्धु नहीं है। एकादशी के समान कोई व्रत नहीं है। मैं इस सम्बन्ध में एक पुरातन इतिहास सुना रहा हूं।।३०-३२।।

संवादं भद्रशीलस्य तत्पितुर्गालवस्य च। पुरा हि गालवो नाम मुनिः सत्यपरायणः॥३३॥

उवास नर्मदातीरे शान्तो दान्तस्तपोनिधिः। बहुवृक्षसमाकीर्णे गजभल्लुनिषेविते॥३४॥
सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरान्विते। कन्दमूलफलैः पूर्ण मुनिवृन्दनिषेविते॥३५॥

यह भद्रशील तथा उसके पिता ऋषिगालव का संवाद है। इसे मैं कहता हूं। प्राक्काल में गालव संज्ञक सत्यवक्ता मुनि थे, जो शान्त, क्षमाशील, तपोनिधि थे और वे नर्मदा तटस्थ गहन वन में निवास करते थे। वह वन नाना वृक्षों से समाकीर्ण तथा गजों तथा भालुओं से व्याप्त था। वह वन, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधरों का विचरण स्थल था। वह कन्द-मूल-फल से भरा वन मुनियों द्वारा शोभायमान था।३३-३५।।

गालवो नाम विप्रेन्द्रो निवासमकरोच्चिरम्। तस्याभवद्भद्रशील इति ख्यातः सुतो वशी॥३६॥
जातिस्मरो महाभागो नारायणपरायणः। बालक्रीडनकालेऽपि भद्रशीलो महामतिः॥३७॥

मृदा च विष्णोः प्रतिमां कृत्वा पूजयते क्षणम्।
वयस्यान्बोधयेच्चापि विष्णुः पूज्यो नरैः सदा॥३८॥

एकादशीव्रतं चैव कर्त्तव्यमपि पण्डितैः। एवं ते बोधितास्तेन शिशवोऽपि मुनीश्वर॥३९॥

गालव नामक श्रेष्ठ विप्र वहां चिरकाल से निवास करते थे। उनका संयमी पुत्र था भद्रशील। यह मुनिपुत्र पूर्व जन्म की स्मृति से युक्त महाभाग्यवान्, नारायण-परायण था। यह महामति भद्रशील बालकों के साथ खेलते समय विष्णु प्रतिमा मृत्तिका से बनाता तथा कुछ समय उसकी पूजा करता था। वह अपने समवयस्क बालकों से कहता था कि मनुष्य सदा विष्णुपूजा करे। उसका कथन था कि पण्डितगण भी एकादशी व्रत करे। हे मुनीश्वर! भद्रशील बालक इसी प्रकार से अन्य शिशुओं को भी उपदेश देता रहता था।।३६-३९।।

हरिं मृदेव निर्माय पृथक्संसूय वा मुदा। अर्चयन्ति महाभागा विष्णुभक्तिपरायणाः॥४०॥
नमस्कुर्वन्भद्रमतिः विष्णवे सर्वविष्णवे। सर्वेषां जगतां स्वस्ति भूयादित्यब्रवीदिदम्॥४१॥
क्रीडाकाले मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धमथापि वा। एकादशीति संकल्प्य व्रतं यच्छति केशवे॥४२॥

एवं सुचरितं दृष्ट्वा तनयं गालवो मुनिः।
अपृच्छद्विस्मयाविष्टः समालिंग्य तपोनिधिः॥४३॥

इस प्रकार वे महाभाग्यशाली बालक भी हरि की मिट्टी की प्रतिमा एक साथ अथवा अलग-अलग बनाते और विष्णुभक्तिपरायण होकर उसकी पूजा करते थे। सभी बालक सर्वजगत्त्राता विष्णु को प्रणाम करते। उधर भद्रमति प्रार्थना करता "समस्त जगत् का कल्याण हो।" वह भद्रमति खेलते समय भी एक मुहूर्त्त किंवा अर्द्ध मुहूर्त्त तक एकादशी व्रत संकल्प ग्रहण करके केशव को वह व्रत अर्पित कर देता था। पुत्र का यह उत्तम चरित्र देखकर गालव मुनि आश्चर्यान्वित हो गये। उन तपोनिधि गालव ने पुत्र का आलिंगन करके उससे पूछा।।४०-४३।।

गालव उवाच

भद्रशील महाभाग भद्रशीलोऽसि सुव्रत। चरितं मङ्गलं यत्ते योगिनामपि दुर्लभम्॥४४॥
हरिपूजापरो नित्यं सर्वभूतहितेरतः। एकादशीव्रतपरो निषिद्धाचारवर्जितः।
निर्द्वन्द्वो निर्ममः शान्तो हरिध्यानपरायणः॥४५॥

एवमेतादृशी बुद्धिः कथं जातार्भकस्य ते। विनापि महतां सेवां हरिभक्तिर्हि दुर्लभा॥४६॥

स्वभावतो जनस्यास्य ह्यविद्याकामकर्मसु।
प्रवर्त्तते मतिवत्स कथं तेऽलौकिकी कृतिः॥४७॥

ऋषि गालव कहते हैं—हे भद्रशील, महाभाग, सुव्रत! वस्तुतः में तुम भद्र (उत्तम) शीलयुक्त हो। तुम्हारा मंगलमय चरित तो योगीगण के लिये भी दुर्लभ ही है। तुम तो नित्य हरिपूजा करते हो तथा सभी प्राणीगण के हित में निरत रहते हो। तुम एकादशी व्रताचरण करने वाले तथा निषिद्ध कार्यों से रहित हो। तुम द्वन्द्व रहित, ममता रहित, शान्त एवं हरिध्यान परायण रहा करते हो। जन्म से ही तुम्हारी ऐसी बुद्धि कैसे हो गई? महत्‌जनों की सेवा के विना हरिभक्ति तो दुर्लभ है! मनुष्यगण की बुद्धि तो स्वभावतः अविद्यामय कर्मों के प्रति अनुरक्त रहती है। परन्तु हे वत्स! तुम्हारे भीतर ऐसी अलौकिकी कृति कहां से आई हैं?।।४४-४७।।

सत्सङ्गेऽपि मनुष्याणां पूर्वपुण्यातिरेकतः। जायते भगवद्भक्तिस्तदहं विस्मयं गतः॥४८॥
पृच्छामि प्रीतिमापन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हसि। भद्रशीलो मुनिश्रेष्ठः पित्रैवं सुविकल्पितैः॥४९॥
जातिस्मरः सुकृतात्मा हृष्टप्रहसिताननः। स्वानुभूतं यथावृत्तं सर्वं पित्रे न्यवेदयत्॥५०॥

"पूर्वजन्म के पुण्यों की अधिकता के कारण मनुष्य को सत्संग मिलता है। इससे भगवद्‌भक्ति उत्पन्न होती है। लेकिन तुम्हारे सम्बन्ध में तो मुझमें विस्मय हो रहा है। मैं तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण तुमसे यह पूछ रहा हूं।" मुनिश्रेष्ठ भद्रशील ने पिता का यह उत्तम विकल्प वाला प्रश्न सुना। वह जातिस्मर सुकृतात्मा यह सुनकर प्रसन्नता से हंसते हुये समस्त स्वानुभूत रहस्यों को पिता से कहने लगा।।४८-५०।।

भद्रशील उवाच

शृणु तातमुनिश्रेष्ठ ह्यनुभूतं मया पुरा। जातिस्मरत्वाज्जानामि यमेन परिभाषितम्॥५१॥

भद्रशील कहता है—हे तात! मुनिश्रेष्ठ! मुझे पूर्वकालीन अनुभूति, जातिस्मरत्व है। मुझे वह सब ज्ञात है, जो यमराज ने कहा था।।५१।।

एतच्छ्रुत्वा महाभागो गालवो विस्मयान्वितः। उवाच प्रीतिमापन्नो भद्रशीलं महामतिम्॥५२॥

यह सुनकर महाभाग गालव विस्मय में पड़ गये। उन्होंने प्रेम पूर्वक महामति भद्रशील से कहा—।।५२।।

गालव उवाच

कस्त्वं पूर्वं महाभाग किमुक्तं च यमेन ते। कस्य वा केन वा हेतोस्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥५३॥

महर्षि गालव कहते हैं—हे महाभाग! पूर्वजन्म में तुम कौन थे? यमराज ने तुमसे क्या कहा था? उन्होंने क्यों तथा किस कारण से कहा था?।।५३।।

भद्रशील उवाच

अहमासं पुरा तात राजा सोमकुलोद्भवः।
धर्मकीर्तिरिति ख्यातो दत्तात्रेयेण शासितः॥५४॥

नव वर्षसहस्राणि महीं कृत्स्नामपालयन्।
अधर्माश्च तथा धर्मा मया तु बहवः कृताः॥५५॥
ततः श्रिया प्रमत्तोऽहं बह्वधर्ममकारिषम्। पाषण्डजनसंसर्गात्पाषण्डचरितोऽभवम्॥५६॥
पुरार्जितानि पुण्यानि मया तु सुबहून्यपि। पाषण्डैर्बाधितोऽहं तु वेदमार्गं समत्यजम्॥५७॥
मखाश्च सर्वे विध्वस्ता कूटयुक्तिविदा मया।
अधर्मनिरतं मां तु दृष्ट्वा मद्देशजाः प्रजाः॥५८॥
सदैव दुष्कृतं चक्रुः षष्ठांशस्तत्र मेऽभवत्। एवं पापसमाचारो व्यसनाभिरतः सदा॥५९॥

भद्रशील कहता है—पूर्वजन्म में मैं चन्द्रवंशोत्पन्न राजा धर्मकीर्त्ति था। भगवान् दत्तात्रेय ने मुझे ज्ञान प्रदान किया था। मैंने समग्र भूमण्डल पर ९००० वर्ष तक शासन किया था। उस काल में मेरे द्वारा अनेक धार्मिक तथा अधार्मिक कृत्य किये गये थे। मैं ऐश्वर्य से मदमत्त होकर पाखण्डियों के संसर्ग से स्वयं पाखण्डी हो गया। यद्यपि मेरे द्वारा पहले बहुत से पुण्य कृत्य किये गये थे। लेकिन पाखण्ड से बाधित होकर मैंने वेदमार्ग त्याग दिया। मैंने कूट युक्तियों द्वारा सभी यज्ञों को विध्वस्त कर दिया। मेरे देश की प्रजा भी मुझे अधार्मिक देखकर अधर्म एवं दुष्कर्म रत हो गई। उस पाप का छठां भाग राजा होने के कारण मुझे भी प्राप्त होने लगा। इस प्रकार पापाचरण करता मैं व्यसनी भी हो गया।।५४-५९।।

मृगयाभिरतो भूत्वा ह्येकदा प्राविशं वनम्।
ससैन्योऽहं वने तत्र हत्वा बहुविधान्मृगान्॥६०॥
क्षुत्तृट्परिवृतः श्रांतो रेवातीरमुपागमम्। रवितीक्ष्णातपक्लांता रेवायां स्नानमाचरम्॥६१॥
अदृष्टसैन्य एकाकी पीड्यमानः क्षुधा भृशम्॥६२॥

उस व्यसन की आदत के कारण मैं मृगया हेतु वन में प्रवेश कर गया। वहां ससैन्य जाकर मैंने अनेक पशुओं का वध किया। उस समय मैं क्षुधा-पिपासा से परिश्रान्त होकर रेवती नदी के तट पर पहुंचा। मैं सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से जल सा रहा था। अतः मैंने रेवा में स्नान किया। उस समय मैं एकाकी अपनी सेना की दृष्टि से ओझल हो गया। भूख-प्यास मुझे अत्यन्त पीड़ित कर रही थी।।६०-६२।।

समेतास्तत्र ये केचिद्रेवातीरनिवासिनः। एकादशीव्रतपरा मया दृष्टा निशामुखे॥६३॥
निराहारश्च तत्राहमेकाकी तज्जनैः सह। जागरं कृतवांश्चापि सेनया रहितो निशि॥६४॥
अध्वश्रमपरिश्रांतः क्षुत्पिपासाप्रपीडितः। तत्रैव जागरन्तेऽहं तात पंचत्वमागतः॥६५॥

मैंने सायंकाल के समय यह देखा कि कुछ रेवातट के निवासी लोग एकादशी व्रताचरण कर रहे थे। मैंने भी एकाकी तथा निराहारी रहकर उनके साथ रात्रिजागरण किया। तब मैं सेना से रहित था। हे तात! मार्ग में भटकने से मैं अत्यन्त श्रान्त था। भूख से तथा पिपासा से अत्यन्त पीड़ित था। दैवत् वहीं मेरा निधन हो गया।।६३-६५।।

ततो यमभटैर्बद्धो महादंष्ट्राभयंकरैः। अनेकक्लेशसम्पन्नमार्गेणाप्तो यमांन्तिकम्।
दंष्ट्राकरालवदनमपश्यं समवर्तिनम्॥६६॥

अथ कालश्चित्रगुप्तमाहूयेदमभाषत। अस्य शिक्षाविधानं च यथावद्वद पण्डित॥६७॥
एवमुक्तश्चित्रगुप्तो धर्मराजेन सत्तम। चिरं विचारयामास पुनश्चेदमभाषत॥६८॥
असौ पापरतः सत्यं तथापि शृणु धर्मप। एकादश्यां निराहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥६९॥
एष रेवातटे रम्ये निराहारो हरेर्दिने। जागरं चोपवासं च कृत्वा निष्पापतां गतः॥७०॥
यानि कानि च पापानि कृतानि सुबहूनि च।
तानि सर्वाणि नष्टानि ह्युपवासप्रभावतः॥७१॥

तभी महाभयानक दाढ़ों वाले भयानक यमदूतों ने मुझे पाशबद्ध किया। वे अत्यन्त कष्टदायक मार्ग से मुझे यमराज के पास ले गये। मैंने यमलोक में करालमुख तथा भयानक दांतों वाले यमदूतों से घिरे यमराज को वहां देखा। यमराज ने उस समय चित्रगुप्त को वहां बुलाकर कहा—"हे पण्डित! इसके पापों का शिक्षण इसे देने का जो विधान हो, वह कहो! हे सज्जनों में अग्रणी! धर्मराज के यह कहने पर चित्रगुप्त ने दीर्घकाल विचार करके उनसे कहा—हे धर्मराज! यह सत्य है कि यह पापी है, तथापि आप सुनिये। यह एकादशी के दिन निराहार रहने के कारण सर्वपाप रहित हो गया। इसने रम्य रेवातट पर हरिदिवस एकादशी के दिन उपवास तथा जागरण किया। इससे इसे निष्पापता प्राप्त हो गई। जिस किसी प्रकार के भी इसके द्वारा किये बहुत से पाप थे, वे सभी उस उपवास के प्रभाव से नष्ट हो गये।"।।६६-७१।।

एवमुक्तो धर्मराजश्चित्रगुप्तेन धीमता। ननाम दण्डवद्भूमौ ममाग्रे सोऽनुकम्पितः॥७२॥
पूजयामास मां तत्र भक्तिभावेन धर्मराट्। ततश्च स्वभटान्सर्वानाहूयेदमुवाच ह॥७३॥

धीमान् चित्रगुप्त के यह कहने पर धर्मराज ने मुझ पर कृपा करते हुये मुझे भूमि पर झुककर दण्डवत् प्रणाम किया! उन धर्मराज ने भक्तिभाव से मेरा पूजन किया तथा वे अपने सभी दूतगण को बुलाकर उनसे कहने लगे।।७२-७३।।

धर्मराज उवाच

शृणुध्वं मद्वचो दूता हितं वक्ष्याम्यनुत्तमम्।
धर्ममार्गरतान्मर्त्यान्मानयध्वं ममान्तिकम्॥७४॥
ये विष्णुपूजनरताः प्रयताः कृतज्ञाश्चैकादशीव्रतपरा विजितेन्द्रियाश्च।
नारायणाच्युतहरे शरणं भवेति शान्ता वदन्ति सततं तरसा त्यजध्वम्॥७५॥
नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो पद्मेश पद्मजपितः शिव शङ्करेति।
नित्यं वदन्त्यखिललोकहिताः प्रशान्ता दूराद्भटास्त्यजत तान्न ममैषु शिक्षा॥७६॥
नारायणार्पितकृतान्हरिभक्तिभाजः स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकांश्च।
सत्पात्रदाननिरतांश्च सुदीनपालान्दूतास्त्यजध्वमनिशं हरिनामसक्तान्॥७७॥

धर्मराज कहते हैं—हे दूतो! तुम लोग अपने हितार्थ मेरा कथन सुनो। जो लोग धर्ममार्ग से निरत हैं, उनको मेरे निकट मत लाना। जो लोग नारायण, अच्युत हरि! मैं आपकी शरण लेता हूं, जनार्दन, कृष्ण, विष्णु,

पद्मेश, शिव, शंकर का नित्य उच्चारण करते हैं, ऐसे लोकहितकारी, प्रशान्त लोगों को तुम लोग दूर से ही त्यागो। यही मेरी शिक्षा है। जिन्होंने सब कुछ नारायण को अर्पित कर दिया है, जो हरिभक्त हैं, अपने आचार मार्ग में निरत हैं, गुरुसेवक हैं, जो सत्पात्र को दान देते रहते हैं, दीनों का पालन करने वाले, हरि नाम में लीन हैं, उनको दूर से ही त्याग देना।।७३-७७।।

पाषण्डसङ्गरहितान्द्विजभक्तिनिष्ठान्सत्संगलोलुपतरांश्च तथातिथेयान्।
शम्भौ हरौ च समबुद्धिमतस्तथैवदूतास्त्यजध्वमुपकारपराङ्गनानाम्।।७८।।

जो पाखण्डियों का साथ नहीं करते, जो ब्राह्मण भक्ति में निष्ठा रखने वाले, सत्संग लोलुप, अतिथि की सेवा करने वाले, शंभु तथा हरि में समबुद्धि रखने वाले तथा उपकारी हैं, उनको दूर से ही त्याग देना।।७८।।

ये वर्जिता हरिकथामृतसेवनैश्च नारायणस्मृतिपरायणमानसैश्च।
विप्रेन्द्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टांस्तान्पापिनो मम भटा गृहमानयध्वम।।७९।।

हे मेरे यमभट! जो लोग हरिकथामृत सेवन नहीं करते, जो नारायण स्मरण परायण सन्तों से तथा भक्तों से सदा दूर रहते हैं, जो श्रेष्ठ ब्राह्मणों के चरण जल से अपने शिर का सिंचन करने से प्रसन्न नहीं होते, ऐसे लोगों को बांधकर मेरे यहां ले आना।।७९।।

ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च लोकद्विषो हितजनाहितकर्मणश्च।
देवस्वलोभनिरताञ्जननाशकर्तृनत्रानयध्वमपराधपरांश्च दूताः।।८०।।

जो माता-पिता की भर्त्सना करने वाले, लोकद्वेषी, हितैषी लोगों का अहित करने वाले, देवता के निमित्त प्रदत्त धन का अपहरण करने वाले, अपराध करने वाले, जननाशक पापी हैं, हे दूतो! उनको मेरे यहां ले आना।।८०।।

एकादशीव्रतपराङ्मुखमुग्रशीलं लोकापवादनिरतं परनिन्दकं च।
ग्रामस्य नाशकरमुत्तमवैरयुक्तं दूताः समानयत विप्रधनेषु लुब्धम्।।८१।।

जो एकादशी व्रताचरण से विमुख, उग्रवृत्ति, परनिन्दक, लोकापवाद निरत, ग्राम नाश करने वाले, विप्रों के धन के लोभी हैं, हे दूतों! उनको मेरे पास ले आना।।८१।।

ये विष्णुभक्तिविमुखाः प्रणमन्ति नैष नारायणं हि शरणागतपालकं च।
विष्णवालयं च नहि यान्ति नराः सुमूर्खास्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य।।८२।।

जो विष्णुभक्ति से विमुख हैं तथा शरणागत पालक नारायण को प्रणाम नहीं करते, जो महामूर्ख विष्णुमन्दिर में कभी नहीं जाते, उन पापमति लोगों को बलात् यहीं लाना।।८२।।

एवं श्रुतं यदा तत्र यमेन परिभाषितम्। मयानुतापदग्धेन स्मृतं तत्कर्म निंदितम्।।८३।।
असत्कर्मानुतापेन सद्धर्मश्रवणेन च। तत्रैव सर्वपापानि निःशेषाणि गतानि मे।।८४।।

यम के कथन को सुनकर मैं पूर्व में किये अपने निन्दित कर्मों का स्मरण करने लगा। इससे मेरा मन अनुताप से दग्ध हो उठा। इस प्रकार जब अपने असत् कर्मों के लिये मैंने परिताप किया तथा सद्धर्म का श्रवण किया, इससे मेरे सभी पाप नष्ट हो गये।।८३-८४।।

पापशेषाद्विनिर्मुक्तं हरिसारूप्यतां गतम्। सहस्रसूर्यसंकाशं प्रणनाम यमश्च तम्॥८५॥
एवं दृष्ट्वा विस्मितास्ते यमदूता भयोत्कटाः। विश्वासं परमं चक्रुर्यमेन परिभाषिते॥८६॥

ततः संपूज्य मां कालो विमानशतसंकुलम्।
सद्यः संप्रेषयामास तद्विष्णोः परमं पदम्॥८७॥

विमानकोटिभिः सार्द्धं सर्वभोगसमन्वितैः। कर्मणा तेन विप्रर्षे विष्णुलोके मयोषितम्॥८८॥
कल्पोटिसहस्त्राणि कल्पकोटिशतानि च। स्थित्वा विष्णुपदं पश्चादिंद्रलोकमुपागमम्॥८९॥
तत्रापि सर्वभोगाढ्यः सर्वदेवनमस्कृतः। तावत्कालं दिवि स्थित्वा ततो भूमिमुपागतः॥९०॥
अत्रापि विष्णुभक्तानां जातोऽहं भवतां कुले। जातिस्मरत्वाज्जानामि सर्वमेतन्मुनीश्वर॥९१॥

इस प्रकार पापों का अन्त हो जाने पर मुझे हरि का सारूप्य मिल गया। वह सहस्र सूर्य के समान रूप था। उसे देखकर यमराज ने उसे प्रणाम किया! भयभीत यमदूत यह दृश्य देखकर विस्मित हो उठे। अब यम ने जो कुछ कहा था, उस पर यमदूतों को विश्वास हो गया। तदनन्तर काल (यम) ने मेरी पूजा करके सैकड़ों विमानों के साथ सद्यः विष्णु के परमपद में भेज दिया। हे विप्रर्षि! तत्पश्चात् उस कर्म के कारण मैं कोटि-कोटि देव विमानों पर सर्वभोग समन्वित होकर विष्णुलोक में असंख्य कल्प निवासोपरान्त इन्द्रलोक आकर देवताओं द्वारा आदर प्राप्त करते हुये उतने ही काल तक वहां भी दिव्य भोगों का उपभोग किया। तदनन्तर पृथिवी पर मेरा जन्म विष्णुभक्त कुल में हो गया। हे मुनीश्वर! मैं पूर्वजन्म स्मृतियुक्त होने के कारण यह समस्त वृत्तान्त जानता हूं।।८५-९१।।

तस्माद्विष्ण्वर्चनोद्योगं करोमि सह बालकैः।
एकादशीव्रतमिदमिति न ज्ञातवान्पुरा॥९२॥
जातिस्मृतिप्रभावेण तज्ज्ञातं सांप्रतं मया।
अत्र स्वेनापि यत्कर्म कृतं तस्य फलं त्विदम्॥९३॥

एकादशीव्रतं भक्त्या कुर्वतां किमुत प्रभो। तस्माच्चरिष्ये विप्रेन्द्र शुभमेकादशीव्रतम्॥९४॥

तभी मैं बालकों के साथ विष्णुपूजन का प्रयत्न करता रहता हूं। पूर्व में मुझे एकादशी व्रताचरण की महिमा अवगत नहीं थी, तथापि पूर्वजन्म की स्मृति के कारण उस जन्म में प्राप्त अभिज्ञता के कारण मुझे इस सम्बन्ध में सब ज्ञात है। उस जन्म में मैंने अनजाने में जो किया था, उसका इतना फल प्राप्त हो गया। हे प्रभो! जो ज्ञानतः भक्तिभाव से एकादशी व्रत पालन करते हैं, उसका कितना अनन्त फल होगा! हे विप्रेन्द्र! तभी मैं शुभ एकादशी व्रताचरण करता हूं।।९२-९४।।

विष्णुपूजां चाहरहः परमस्थानकांक्षया। एकादशीव्रतं यत्तु कुर्वन्ति श्रद्धया नराः॥९५॥
तेषां तु विष्णुभवनं परमानन्ददायकम्। एवं पुत्रवचः श्रुत्वा संतुष्टो गालवो मुनिः॥९६॥
अवाप परमां तुष्टिं मनसा चातिहर्षितः। मज्जन्म सफलं जातं मद्वंशः पावनीकृतः॥९७॥
यतस्त्वं मद्गृहे जातो विष्णुभक्तिपरायणः। इति संतुष्टचित्तस्तु तस्य पुत्रस्य कर्मणा॥९८॥

हरिपूजाविधानं च यथावत्समबोधयत्। इत्येतत्ते मुनिश्रेष्ठ यथावत्कथितं मया।
संकोचविस्तराभ्यां च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥९९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने एकादशीव्रतमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

"जो उस परमस्थान प्राप्ति की कामना से सदा विष्णुपूजन तथा एकादशी व्रत श्रद्धा-भक्ति से करते हैं, वे उस परमानन्ददायक विष्णुलोक प्राप्त करते हैं।" पुत्र का यह वचन सुनकर मुनिवर गालव सन्तुष्ट हो गये। उनको परम सन्तोष मिला तथा उनका मन अतीव हर्षित हो गया। उन्होंने कहा कि "आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा वंश पवित्र हो गया, क्योंकि मेरे गृह में विष्णुभक्तिपरायण का जन्म हुआ।" इस प्रकार वे पुत्र के कर्म से प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने पुत्र को हरि अर्चनविधि को सम्यक् रूप से बतला दिया। हे मुनिप्रवर! मैंने भी इस प्रसंग को संक्षिप्तता पूर्वक तथा विस्तार से भी आप से यथावत् कह दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?।।९५-९९।।

।।२३वां अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्णों के सदाचार का वर्णन

सूत उवाच

एतन्निशम्य सनकोदितमप्रमेयं पुण्यं हरेर्दिनभवं निखिलोत्तमं च।
पापौघशान्तिकरणं व्रतसारमेवं ब्रह्मात्मजः पुनरभाषत हर्षयुक्तः॥१॥

सूत जी कहते हैं—देवर्षि सनक ने पापों के ढेर के विनाशक, सर्वव्रतसारभूत एकादशी व्रत के निखिल उत्तम पुण्यों का वर्णन नारद से किया। तब ब्रह्मनन्दन नारद हर्षयुक्त होकर पुनः कहने लगे।।१।।

नारद उवाच

कथितं भवता सर्वं मुने तत्त्वार्थकोविद। व्रताख्यानं महापुण्यं यथावद्धरिभक्तिदम्॥२॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वर्णाचारविधिं मुने। तथा सर्वाश्रमाचारं प्रायश्चित्तविधिं तथा॥३॥
एतत्सर्वं महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद। कृपया परया मह्यं यथावद्वक्तुमर्हसि॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिवर! आप तत्वार्थ ज्ञाता हैं। आपने प्रभूत पुण्यप्रद हरिभक्तिप्रदायक इस व्रताख्यान का वर्णन पूर्णतः किया। हे मुनिवर! अब मुझे वर्णाचारविधि, सभी आश्रमों का आचार, प्रायश्चित्तविधि सुनने की इच्छा है। हे महाभाग! कृपया मुझसे कहिये।।२-४।।

सनक उवाच

श्रृणुष्व मुनिशार्दूल यथा भक्तप्रियंकरः। वर्णाश्रमाचारपरैः पूज्यते हरिरव्ययः॥५॥
मन्वाद्यैरुदितं यच्च वर्णाश्रमनिबन्धनम्। तत्ते वक्ष्यामि विधिवद्भक्तोऽसि त्वमधोक्षजे॥६॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चत्वार एव ते।
वर्णा इति समाख्याता एतेषु ब्राह्मणोऽधिकः॥७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या द्विजाः प्रोक्तास्त्रयस्तथा।
मातृतश्चोपनयनाद्द्विजत्वं प्राप्यते त्रिभिः॥८॥

एतैवर्णैः सर्वधर्माः कार्या वर्णानुरूपतः। स्ववर्णधर्मत्यागेन पाषण्डः प्रोच्यते बुधैः॥९॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिशार्दूल! भक्तों का प्रिय करने वाले हरि की पूजा आश्रमाचार तथा वर्णों का नियम पालन करने वाले जिस प्रकार से सम्पन्न करते हैं तथा मनु आदि आचार्यगण ने जो वर्णाश्रम नियम कहा है, वह मैं सविधि कहता हूं। आप तो हरिभक्त जो हैं। चार वर्णों को आचार्यगण ने कहा है। वे हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ये चार वर्ण कहे गये हैं, जिनमें ब्राह्मण प्रधान हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य, ये तीन द्विज कहे गये हैं। ये तीनों मातृजन्म (जिस वर्ण के माता-पिता से जन्म लेते हैं, तदनुसार) तथा उपनयन के उपरान्त द्विजत्व लाभ करते हैं। सभी वर्ण वाले अपने-अपने वर्णों के अनुरूप सर्ववर्ण पालन करे। अपने वर्णधर्म के त्याग को बुध जन पाखण्ड कहते हैं।।५-९।।

स्वगृह्यचोदितं कर्म द्विजः कुर्वन्कृती भवेत्।
अन्यथा पतितो भूयात्सर्वधर्मबहिष्कृतः॥१०॥

युगधर्मः परिग्राह्यो वर्णैरेतैर्यथोचितम्। देशाचारास्तथाग्राह्याः स्मृतिधर्माविरोधतः॥११॥

कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्म्मं समाचरेत्।
अस्वर्ग्यं लोक विद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु॥१२॥

जो द्विज अपने गृह्यसूत्रानुरूप कर्म करता है, वह कृती होता है। अन्यथा वह पतित एवं सर्वधर्म बहिष्कृत कहा गया है। सभी द्विज समुचित रूप से अपने युगधर्म का पालन करें। जो देशाचार स्मृतिधर्म से प्रतिकूल न हो, विरोधी न हो, वह भी ग्राह्य होता है। कर्म-मन-वाणी से यत्नतः धर्माचरण करे। व्यक्ति कदापि लोकाचार विरुद्ध कर्म न करे। ऐसे कर्म न करे, जो स्वर्ग प्राप्ति में बाधक हो। ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये, भले वह धर्मसंगत क्यों न हो।।१०-१२।।

समुद्रयात्रास्वीकारः कमण्डलुविधारणम्। द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा॥१३॥
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः। मांसादनं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा॥१४॥
दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं वराय च। नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ॥१५॥
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः। एतान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥१६॥
देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशगतैर्नरैः। अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥१७॥

मनीषीगण के मतानुसार कलिकाल में समुद्रपार यात्रा, संन्यास, अपने से असवर्ण कन्या से विवाह, देवर से पुत्र उत्पन्न करना, मधुपर्क हेतु पशुवध, श्राद्ध में मांस भोजन, वानप्रस्थाश्रम, एक बार प्रदत्त कन्या का पुनर्विवाह भले ही अक्षत योनि क्यों न हो, नैष्टिक ब्रह्मचर्य, नरमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, सतीप्रथा, गोमेधयज्ञ निषिद्ध है। जिस देश में जो मनुष्य रहता है, वह वहां के आचार को अपनाये। अन्यथा वह पतित एवं सर्वधर्मबहिष्कृत होता है।।१३-१७।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च द्विजोत्तम।
क्रियाः सामान्यतो वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहितः।।१८।।
दानं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा यज्ञैर्यजेत्सुरान्। वृत्त्यर्थं याचयेच्चैव अन्यानध्यापयेत्तथा।।१९।।
याजयेद्यजने योग्यान्विप्रो नित्योदकी भवेत्।
कुर्य्याच्च वेदग्रहणं तथाग्नेश्च परिग्रहम्।।२०।।
ग्राह्ये द्रव्ये च पारक्ये समबुद्धिर्भवेत्तथा। सर्वलोकहितं कुर्यान्मृदुवाक्यमुदीरयेत्।।२१।।

हे द्विजोत्तम! अब मैं सामान्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की क्रिया का वर्णन समान्यतः करता हूं। उसे समाहित होकर श्रवण करिये। ब्राह्मणों को दान देना चाहिये। यज्ञ द्वारा देवगण का ही यजन हो। ब्राह्मण जीविकार्थ याचना कर सकते हैं। वह अन्य का अध्यापन भी इस हेतु करे। वह उन लोगों से यज्ञ सम्पन्न करा सकता है, जो यज्ञ करने के अधिकारी हैं। उसे नियमित सन्ध्यावन्दनादि भी करना चाहिये। वह स्वयं वेदाध्ययन एवं अग्न्याधान अवश्य करे। ग्राह्य द्रव्य तथा पराये द्रव्य के प्रति समबुद्धि रखे(?)। वह सर्वलोकहितैषी तथा मृदुवाक्य बोलने वाला रहे।।१८-२१।।

ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते ब्राह्मणस्य वै।
न कस्याप्यहितं ब्रूयाद्विष्णुपूजापरो भवेत्।।२२।।
दद्याद्दानानि विप्रेभ्यः क्षत्रियोऽपि द्विजोत्तम। कुर्य्याच्च वेदग्रहणं यज्ञैर्देवान्यजेत्तथा।।२३।।
शस्त्राजीवी भवेच्चैव पालयेद्धर्मतो महीम्।
दुष्टानां शासनं कुर्य्याच्छिष्टानां पालनं तथा।।२४।।

ब्राह्मण यदि मात्र ऋतुकाल में पत्नी समागम करता है, तब वह उचित है। वह किसी के अहित की बातों को न कहे। सदा विष्णु पूजातत्पर रहे। हे द्विजोत्तम! क्षत्रिय भी ब्राह्मणगण को दान देते रहें। क्षत्रिय वेदाध्ययन तथा यज्ञ द्वारा देवपूजा करते रहें। क्षत्रियगण शस्त्र प्रयोग से जीविकोपार्जन करे। वे धर्मतः पृथिवी पालन करे। वे दुष्टों पर नियंत्रण रखे तथा शिष्ट-सज्जन लोगों का पालन करे।।२२-२४।।

पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिश्च द्विजसत्तम।
वेदस्याध्ययनं चैव वैश्यस्यापि प्रकीर्त्तितम्।।२५।।
कुर्याच्च दारग्रहणं धर्मांश्चैव समाचरेत्। क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारुक्रियोद्भवैः।।२६।।

पशुपालन, वाणिज्य, कृषि वेदाध्ययन यह वैश्यों का धर्म है। हे द्विजश्रेष्ठ! वे विवाह करके धर्म का पालन करे। खरीद-बिक्री किंवा शिल्प से धन उपार्जन करे। यह उनका प्रशंसनीय कर्म कहा गया है।।२५-२६।।

दद्याद्दानानि शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेन्न च। ब्राह्मणक्षत्रियविशां शुश्रूषानिरतो भवेत्॥२७॥
ऋतुकालाभिगामी च स्वदारेषु भवेत्तथा। सर्वलोकहितैषित्वं मङ्गलं प्रियवादिता॥२८॥

शूद्र दान दे सकते हैं, परन्तु पाकयज्ञ नहीं कर सकते। वे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य सेवा में लगे रहें। वे स्वपत्नी के साथ ऋतुकाल में ही समागम करे तथा सर्वलोकहितैषी तथा सबकी मंगल कामना करे। प्रिय वाणी बोले।।२७-२८।।

अनायासो मनोहर्षस्तितिक्षा नातिमानिता।
सामान्यं सर्ववर्णानां मुनिभिः परिकीर्तितम्॥२९॥

सर्वे च मुनितां यांति स्वाश्रमोचितकर्मणा। ब्राह्मणः क्षत्रियाचारमाश्रयेदापदि द्विज॥३०॥

क्षत्रियोऽपि च विड्वृत्तिमत्यापदि समाश्रयेत्।
नाश्रयेच्छूद्रवृत्तिं तु अत्यापद्यपि वै द्विजः॥३१॥
यद्याश्रयेद्द्विजो मूढस्तदा चाण्डालतां व्रजेत्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां त्रयाणां मुनिसत्तम॥३२॥
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः पंचमो नोपपद्यते।
ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्च सत्तम॥३३॥

चतुर्भिराश्रमैरेभिः साध्यते धर्म उत्तमः। विष्णुस्तुष्यति विप्रेन्द्र कर्मयोगरतात्मनः॥३४॥

मुनिजन ने सभी वर्ण वालों हेतु जो सामान्य कर्त्तव्य निर्धारित किया है—वह है प्रियभाषण, मन का हर्ष, कष्ट सहिष्णुता तथा अभिमान रहित होना। सभी वर्ण वाले अपने आश्रमोचित कर्मों को करके मुनित्व लाभ कर सकते हैं। हे द्विज! जब आपत्ति आ पड़े, उस समय ब्राह्मणगण क्षत्रियोचित कार्य करे। क्षत्रिय भी वैश्यवृत्ति आपत्ति में अपना सकते हैं, तथापि कभी भी ब्राह्मण भयानक आपत्ति में भी शूद्रवृत्ति ग्रहण न करे। ऐसा करने वाला मूढ़मना ब्राह्मण चाण्डालत्व लाभ करता है। हे मुनिप्रवर! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिये ही ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास, ये चार आश्रम बतलाये गये हैं। कोई भी पांचवा आश्रम है ही नहीं। हे सत्तम! इन चार आश्रमों के पालन से ही उत्तम धर्म का लाभ होता है। जो व्यक्ति कर्मयोग में निरत रहता है, उस पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं।।२९-३४।।

निःस्पृहाशांतमनसः स्वकर्मनिरतस्य च। ततो यान्ति परं स्थानं यतो नावर्त्तते पुनः॥३५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सदाचारो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

निःस्पृह, शान्तचित्त, स्वकर्मतत्पर पर प्रभु प्रसन्न रहते हैं। तब प्रभु की प्रसन्नता से उनको वह लोक मिलता है, जहां से कभी पुनरावृत्ति नहीं होती।।३५।।

।।२४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

वर्णाश्रमाचार विधि वर्णन

सनक उवाच

वर्णाश्रमाचारविधिं प्रवक्ष्यामि विशेषतः। शृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ सावधानेन चेतसा॥१॥
यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत्। पाषण्डः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥२॥
गर्भाधानादिसंस्काराः कार्या मन्त्रविधानतः।
स्त्रीणाममन्त्रतः कार्या यथाकालं यथाविधि॥३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—मैं अब विशेष करके वर्णाश्रम आचार विधि कहता हूं। हे मुनिप्रवर! आप सावधान होकर उसे श्रवण करिये। जो स्वधर्म (अपने आश्रमधर्म) त्याग कर परधर्म (अन्य आश्रमधर्म) का आश्रय लेता है, उसे सर्वधर्म-बहिष्कृत पाखण्डी जानना चाहिये। गर्भादानादि संस्कार कार्य मन्त्रविधि से करना चाहिये। स्त्रीगण मन्त्र रहित कार्य यथाकाल सविधि करे।।१-३।।

सीमन्तकर्म प्रथमं चतुर्थे मासि शस्यते। षष्ठे वा सप्तमे वापि अष्टमे वापि कारयेत्॥४॥
जाते पुत्रे पिता स्नात्वा सचैलं जातकर्म च।
कुर्य्याच्च नान्दीश्राद्धं च स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥५॥
हेम्ना वा रजतेनापि वृद्धिश्राद्धं प्रकल्पयेत्। अन्नेन कारयेद्यस्तु स चण्डालसमो भवेत्॥६॥

सीमन्त संस्कार चतुर्थ मास में उत्तम मानते हैं, तथापि इसे षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम मास में भी किया जा सकता है। जब पुत्र उत्पन्न हो, तब पिता पहने गये वस्त्र सहित स्नान करे तथा जातकर्म करे। साथ ही वह स्वस्तिपाठ तथा नान्दी श्राद्ध करे। यह वृद्धिश्राद्ध स्वर्ण तथा चांदी से करना चाहिये। जो यह कार्य अन्न से करता है, वह तो चाण्डालवत् है।।४-६।।

कृत्वाभ्युदयिकं श्राद्धं पिता पुत्रस्य वाग्यतः। कुर्वीत नामनिर्देशं सूतकान्ते यथाविधि॥७॥
अस्पष्टमर्थहीनं च ह्यतिगुर्वक्षरान्वितम्। न दद्यान्नाम विप्रेन्द्र तथा च विषमाक्षरम्॥८॥
तृतीयवर्षे चौलं च पंचमे षष्ठसम्मिते। सप्तमे चाष्टमे वापि कुर्याद् गृह्योक्तमार्गतः॥९॥

पिता को चाहिये कि वह पुत्र हेतु आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न करने के उपरान्त मौनी रहकर सूतक का अन्त होने पर यथाविधि नामकरण करे। हे विप्रेन्द्र! सन्तान का नाम अस्पष्ट, अर्थ रहित, दीर्घ अक्षरयुक्त तथा विषमाक्षर न हो। तृतीय, पंचम, षष्ठ किंवा सप्तम अथवा अष्टम वर्ष की आयु होने पर अपने गृह्य सूत्रानुसार चौल संस्कार सम्पन्न करे।।७-९।।

दैवयोगादतिक्रान्ते गर्भाधानादिकर्मणि।
कर्तव्यः पादकृच्छ्रो वै चौले त्वर्द्धं प्रकल्पयेत्॥१०॥
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे बटुकस्योपनायनम्। आषोडशाब्दपर्यन्तं गौणं कालमुशन्ति च॥११॥

यदि दैवात् किसी कारण से सन्तान का गर्भाधानादि संस्कार न किया गया हो, उस स्थिति में पादकृच्छ्रव्रत करना होगा। यदि चौल संस्कार न किया गया हो, तब अर्द्धकृच्छ्र व्रताचरण करे। गर्भ से अष्टमवर्ष की आयु होने पर ब्राह्मण बालक का (बटुक का) उपनयन संस्कार करे। यदि षोडश वर्ष की आयु तक उपनयन होता है, उसे मुनिगण मध्य कोटि का उपनयन संस्कार कहते हैं।।१०-११।।

गर्भैकादशमेऽब्दे तु राजन्यस्योपनायनम्। आद्वाविंशाब्दपर्यन्तं कालमाहुर्विपश्चितः॥१२॥
वैश्योपनयनं प्रोक्तं गर्भाद्द्वादशमे तथा। चतुर्विंशाब्दपर्यन्तं गौणमाहुर्मनीषिणः॥१३॥

गर्भ से ११वें वर्ष की आयु होने पर क्षत्रिय बाल का उपनयन श्रेष्ठ कहते हैं। विद्वानों के मत से २८ वर्ष की आयु तक उपनयन क्षत्रिय हेतु विहित काल माना गया है। वैश्य वर्ग गर्भ से लेकर द्वादशवर्ष की आयु होने पर उपनयन कराये जो श्रेष्ठ माना गया है, तथापि मनीषीगण ने चौबीस वर्ष पर्यन्त वैश्य का उपनयन गौण तथा विहित माना है।।१२-१३।।

एतत्कालावधेर्यस्य द्विजस्यातिक्रमो भवेत्। सावित्रीपतितं विद्यात्तं तु नैवालपेत्कदा॥१४॥
द्विजोपनयने विप्र मुख्यकालव्यतिक्रमे। द्वादशाब्दं चरेत्कृच्छ्रं पश्चाच्चांद्रायणं तथा।
सान्तपनद्वयं चैव कृत्वा कर्म समाचरेत्॥१५॥

जिस द्विज का ऊपर लिखी अवधि में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न नहीं होता, वह सावित्रपतित कहा गया है। उससे कभी भी आलाप न करे। हे विप्र! द्विजों के उपनयन काल के बीत जाने पर भी यदि यज्ञोपवीत पहले नहीं किया गया, तब वह शुद्धि हेतु द्वादशवर्ष पर्यन्त कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे। तदनन्तर दो सान्तापन व्रताचरण सम्पन्न करे।।१४-१५।।

अन्यथा पतितं विद्यात्कर्त्तापि ब्रह्महा भवेत्।
मौंजी विप्रस्य विज्ञेया धनुर्ज्या क्षत्त्रियस्य तु॥१६॥
आवी वैश्यस्य विज्ञेया श्रूयतामजिनं तथा। विप्रस्य चोक्तमैणेयं रौरवं क्षत्रियस्य तु॥१७॥
आजं वैश्यस्य विज्ञेयं दण्डान्वक्ष्ये यथाक्रमम।
पालाशं ब्राह्मणस्योक्तं नृपस्यौदुम्बरं तथा॥१८॥
बैल्वं वैश्यस्य विज्ञेयं तत्प्रमाणं श्रृणुष्व मे।
विप्रस्य केशमानं स्यादाललाटं नृपस्य च॥१९॥
नासाग्रसंमितं दण्डं वैश्यस्याहुर्विपश्चितः।
तथा वासांसि वक्ष्यामि विप्रादीनां यथाक्रमम्॥२०॥

वह यदि ऐसा नहीं करता, तब उसे पतित जाने। ऐसी अवधि व्यतीत हो जाने पर जो उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराता है, वह भी ब्रह्महत्या पाप से ग्रस्त होगा। विप्र के लिये मूंज की, क्षत्रिय हेतु धनुष्य की ज्या (डोर), वैश्य हेतु भेंड़ के ऊन की मेखला उत्तम मानी जाती है। अब मृगचर्म के सम्बन्ध में सुने। यह विप्र हेतु ऐण मृग का, क्षत्रिय हेतु रौरव मृग का, वैश्य हेतु अजा चर्म का हो। अब दण्ड के विषय में सुनिये। ब्राह्मण हेतु पलाश का, क्षत्रिय हेतु गूलर का, वैश्य हेतु बिल्व का दण्ड हो। अब इसका प्रमाण श्रवण करे। ब्राह्मण हेतु दण्ड उसके

चरण से शिर के केश इतना लम्बा, क्षत्रिय का चरण से ललाट तक का, वैश्य का दण्ड उसके चरण से उसकी नासिकाग्र इतनी लम्बाई का हो। अब मैं विप्र आदि के वस्त्रों का यथाक्रमेण वर्णन करता हूं।।१६-२०।।

कषायं चैव माञ्जिष्ठं हारिद्रं च प्रकीर्तितम्। उपनीतो द्विजो विप्र परिचर्यापरो गुरोः॥२१॥
वेदग्रहणपर्यन्तं निवसेद्गुरुवेश्मनि। प्रातःस्नायी भवेद्वर्णी समित्कुशफलादिकान्॥२२॥
गुर्वर्थमाहरेन्नित्यं कल्ये कल्ये मुनीश्वर। यज्ञोपवीतमजिनं दण्डं च मुनिसत्तम॥२३॥
नष्टे भ्रष्टे नवं मन्त्राद्धृत्वा भ्रष्टं जले क्षिपेत्।
वर्णिनो वर्त्तनं प्राहुर्भिक्षान्नेनैव केवलम्॥२४॥
भिक्षा च श्रोत्रियागारादाहरेत्प्रयतेन्द्रियः। भवत्पूर्वं ब्राह्मणस्य भवन्मध्यं नृपस्य च॥२५॥
भवदंत्यं विशः प्रोक्तं भिक्षाहरणकं वचः। सांयप्रातर्वह्निकार्यं यथाचारं जितेन्द्रियः॥२६॥

विप्र का वस्त्र कषाय, क्षत्रिय का मजीठ के वर्ण का तथा वैश्य का पीत वर्ण का हो। हे विप्र! जिसका उपनयन संस्कार हो गया हो, वह गुरुसेवा तत्पर रहते हुये वेदाध्ययन काल पर्यन्त गुरुगृह में रहे। वह प्रातःस्नान के उपरान्त गुरु के लिये समिध्, कुश, फलादि एकत्र करे। हे मुनीश्वर! यदि यज्ञोपवीत, अजिन तथा दण्ड भग्न हो जाता है, किंवा भ्रष्ट हो जाता है, उस स्थिति में नया मन्त्र द्वारा धारण करे तथा अशुद्ध तथा भग्न हो गये यज्ञोपवीत, अजिन तथा दण्डादि को जलाशय में फेंके। वह केवल भिक्षान्न से निर्वाह करे। संयत चित्त से ब्रह्मचारी श्रोत्रिय के यहां से भिक्षा ग्रहण करे। ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा लेने के लिये 'भवान्' शब्द पहले कहे। क्षत्रिय 'भवान्' का प्रयोग मध्य में और वैश्य अन्त में करे। ब्रह्मचारी (छात्र) नित्य संयम के साथ आचार के अनुसार होम करे।।२१-२६।।

कुर्यात्प्रतिदिनं वर्णी ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम्।
अग्निकार्यपरित्यागी पतितः प्रोच्यते बुधैः॥२७॥
ब्रह्मयज्ञविहीनश्च ब्रह्महा परिकीर्तितः। देवताभ्यर्च्चनं कुर्याच्छुश्रूषानुपदं गुरोः॥२८॥
भिक्षान्नं भोजयेन्नित्यं नैकान्नाशी कदाचन।
आनीयानिन्द्यविप्राणां गृहाद्भिक्षां जितेन्द्रियः॥२९॥
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया। मधुस्त्रीमांसलवणं ताम्बूलं दन्तधावनम्॥३०॥
उच्छिष्टभोजनं चैव दिवास्वापं च वर्जयेत्।
छत्रपादुकगन्धाश्च तथा माल्यानुलेपनम्॥३१॥

वह नित्य प्रति ब्रह्मयज्ञ एवं तर्पण करे। बुधजन अग्निकार्य (होम) त्याग करने वाले को पतित कहते हैं। ब्रह्मयज्ञ विहीन को ब्रह्महत्यारा कहा गया है। पहले गुरुसेवा के उपरान्त तब देवपूजा करनी चाहिये। नित्य भिक्षान्न भोजन करे। कदापि एक ही अन्न भोजन नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय रहे तथा जो निन्दित न हों, ऐसे विप्र के यहां से भिक्षा लाकर गुरु को प्रदान करे। जब उनकी आज्ञा मिले तभी मौनी रहता हुआ अन्न ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचारी हेतु मधु (मद्य), स्त्री, मांसाहार, लवण, ताम्बूल, दन्तकाष्ठ, उच्छिष्ट भोजन, दिन में निद्रा वर्जित कही गई है। वह छाता, पादुका, गन्ध माला तथा गन्धानुलेपन का उपयोग न करे।।२७-३१।।

जलकेलिं नृत्यगीतवाद्यं तु परिवर्जयेत्। परिवादं चोपतापं विप्रलापं तथांजनम्॥३२॥
पाषण्डजनसंयोगं शूद्रसङ्गं च वर्जयेत्।
अभिवादनशीलः स्याद् वृद्धेषु च यथाक्रमम्॥३३॥
ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा वयोवृद्धा इति त्रयः।
आध्यात्मिकादिदुःखानि निवारयति यो गुरुः॥३४॥
वेदशास्त्रोपदेशेन तं पूर्वमभिवादयेत्। असावहमिति ब्रूयाद्द्विजो वै ह्यभिवादने॥३५॥

वह जल क्रीड़ा, नृत्य-गीत-वाद्य का त्याग करे। वह परायी निन्दा, मनस्ताप, व्यर्थ वार्त्तालाप तथा अंजन लगाना, पाखण्डी लोगों का संयोग, शूद्रों का साथ त्याग दे। वह वृद्धजन का उनकी आयु के क्रम से अभिवादन करे। वृद्ध तीन प्रकार के कहे गये हैं, जो अपने से ज्ञान में बड़ा हो, वह ज्ञानवृद्ध, तप में अधिक हो, वह तपोवृद्ध तथा अधिक आयु वाला वयोवृद्ध। जो शास्त्रोपदेश दाता है तथा आध्यात्मिकादि दुःखों का निवारण करता है, उस गुरु का सबसे पहले अभिवादन करे। द्विजगण अभिवादन काल में कहें कि "यह मैं (नाम लेकर) आपका अभिवादन करता हूं।"।।३२-३५।।

नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन।
नास्तिकं भिन्नमर्यादं कृतघ्नं ग्रामयाजकम्॥३६॥
स्तेनं च कितवं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत्।
पाषण्डं पतितं व्रात्यं तथा नक्षत्रजीविनम्॥३७॥
तथा पातकिनं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत्। उन्मत्तं च शठं धूर्तं धावन्तमशुचिं तथा॥३८॥
अभ्यक्तशिरसं चैव जपन्तं नाभिवादयेत्। विवादशीलिनं चण्डं वमन्तं जलमध्यगम्॥३९॥
भिक्षान्नधारिणं चैव शयानं नाभिवादयेत्।
भर्तृघ्नीं पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम्॥४०॥
कृतघ्नीं च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत्।
सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि॥४१॥
प्रत्येकं तु नमस्कारोहन्ति पुण्यं पुराकृतम्। श्राद्धं व्रतं तथा दानं देवताभ्यर्चनं तथा॥४२॥

विप्र लोग कभी भी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का अभिवादन न करे। नास्तिक, मर्यादा भंग करने वाले, कृतघ्न, चोर, ग्रामयाजक, धूर्त का अभिवादन करना वर्जित है। पाखण्डी, पतित, व्रात्य, ज्योतिषी तथा पातकी का कभी अभिनन्दन न करे। उन्मत्त, शठ, धूर्त, जो दौड़ रहा हो, अपवित्र, जिसका शिर तैलाक्त (अधिक तेल से लिप्त हो) हो, जो जपकर्म कर रहा हो, इनका अभिवादन न करे। विवादशील, उद्दण्ड, वमन कर रहे, जल में खड़े, भिक्षान्नधारी, शयनरत को प्रणाम न करे। पति हत्यारी, ऋतुमती, व्यभिचारिणी, सूतिका, गर्भपात करने वाली, कृतघ्न वृत्ति तथा कर्कशा नारी को भी नमस्कार न करे। सभा, यज्ञमण्डप, देवमन्दिर, इनमें प्रत्येक व्यक्ति को नमस्कार करना पूर्वपुण्य नाशक हैं। श्राद्ध, व्रत, दान, देवार्चन,।।३६-४२।।

यज्ञं च तर्पणं चैव कुर्वन्तं नाभिवादयेत्। कृतेऽभिवादने यस्तु न कुर्यात्प्रतिवादनम्॥४३॥

नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव सः।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य गुरोरभिमुखः सदा॥४४॥
तस्य पादौ च संग्रह्य अधीयीत विचक्षणः। अष्टकासु चतुर्दश्यां प्रतिपत्पर्वणोस्तथा॥४५॥
महाभरण्यां विप्रेन्द्र श्रवणद्वादशीदिने। भाद्रपदापरपक्षे द्वितीयायां तथैव च॥४६॥
माघस्य शुक्लसप्तम्यां नवम्यामाश्विनस्य च। परिवेषं गते सूर्ये श्रोत्रिये गृहमागते॥४७॥
वञ्चिते ब्राह्मणे चैव प्रवृद्धकलहे तथा। सन्ध्यायां गर्जिते मेघे ह्यकाले परिवर्षणे॥४८॥
उल्काशनिप्रपाते च तथा विप्रेऽवमानिते। मन्वादिषु च देवर्षे युगादिषु चतुर्ष्वपि॥४९॥
नाधीयीत द्विजः कश्चित्सर्वकर्मफलोत्सुकः।
तृतीया माधवे शुक्ला भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी॥५०॥

यज्ञ, तर्पण कार्य जो कर रहा हो, उसका अभिवादन कदापि न करे। जो अभिवादन का उत्तर नहीं देता, वह अभिवादन का पात्र नहीं है। वह तो शूद्र ही है। सत्शिष्य सदा पैर धोकर तथा आचमन करके गुरु की ओर अभिमुख होकर बैठे तथा उनका चरण छूकर अध्ययन करे। अनध्याय के दिनों को कहा जा रहा है। हे विप्रेन्द्र! अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, पर्व, महाभरणी, श्रावण द्वादशी, भाद्रशुक्ला द्वितीया, माघशुक्ल सप्तमी, आश्विनमासीय नवमी, जब सूर्य के चतुर्दिक् मण्डल चिह्न दृष्टिगोचर हो, कोई श्रोत्रिय घर पर आया हो, आकाशीय विद्युत् गिरने पर, ब्राह्मण संकटग्रस्त हो, कलह बढ़ा हो, सन्ध्या को जब मेघ गरजे, असमय वर्षा हो, उल्कापात हो, ब्राह्मण का अपमान किया गया हो, चारों युगों की आरंभ तिथि के समय, मन्वन्तरारंभ तिथियों के समय अध्ययन न करे। अब उत्तम कर्मफल प्रदान करने वाली तिथियों को कहता हूं। अक्षय तृतीया, भाद्रकृष्ण त्रयोदशी,॥४३-५०॥

कार्तिके नवमी शुद्धा माघे पंचदशी तिथिः।
एता युगाद्याः कथिता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥५१॥
मन्वादींश्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः।
अक्षयशुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी सिता॥५२॥
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च। आषाढ़शुक्लदशमी सिता माघस्य सप्तमी॥५३॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा।
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता॥५४॥
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता।
मन्वादयः समाख्याता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥५५॥

कार्त्तिक शुक्ला नवमी, चैत्री तृतीया, भाद्रपदी तृतीया, आषाढ़ शुक्लादशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी, आषाढ़ की पूर्णिमा, फाल्गुनी अमावस्या, पौष शुक्ला एकादशी, कार्त्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा तथा ज्येष्ठा पूर्णिमा को मन्वादि तिथि कहा गया है। इनमें प्रदत्त दान अक्षय हो जाता है।॥५१-५५॥

द्विजैः श्राद्धं च कर्त्तव्यं मन्वादिषु युगादिषु।
श्राद्धे निमन्त्रिते चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥५६॥
अनयद्वितये चैव तथा भूकम्पने मुने। गलग्रहे दुर्द्दिने च नाधीयीत कदाचन॥५७॥
एवमादिषु सर्वेषु अनध्यायेषु नारद। अधीयतां सुमूढानां प्रजां प्रज्ञां यशः श्रियम्॥५८॥
आयुष्यं बलमारोग्यं निकृंतति यमः स्वयम्।
अनध्याये तु योऽधीते तं विद्याद्ब्रह्मघातकम्॥५९॥

द्विजगण मन्वादि तथा युगादि तिथियों पर श्राद्ध निश्चित रूप से करे। हे मुनिवर! श्राद्ध में निमन्त्रण दिये जाने पर, चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय, दोनों अयन काल में, भूकम्प के समय, गलग्रह तथा दुर्दिन के रहने पर कदापि अध्ययन न करे। हे मुनि नारद! इन अनध्याय वाली तिथियों पर जो मूढ़ अध्ययन करता है, उसकी सन्तान, प्रज्ञा, यश, लक्ष्मी, आयु, बल, आरोग्य इन सबको स्वयं यम नाश करते हैं। अनध्याय काल में अध्ययन करने वाला व्यक्ति ब्रह्मघाती माना जाये।।५६-५९।।

न तं संभाषयेद्विप्र न तेन सह संवसेत्। कुण्डगोलकयोः केचिज्जडादीनां च नारद॥६०॥
वदन्ति चोपनयनं तत्पुत्रादिषु केचन। अनधीत्य तु यो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्॥६१॥
शूद्रतुल्यः स विज्ञेयो नरकस्य प्रियोऽतिथिः। अनधीतश्रुतिर्विप्र आचारं प्रतिपद्यते॥६२॥
नाचारफलमाप्नोति यथा शूद्रस्तथैव सः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम्॥६३॥
अनधीतस्य विप्रस्य सर्वं भवति निष्फलम्। शब्दब्रह्ममयो विष्णुर्वेदः साक्षाद्धरि स्मृतः॥६४॥
वेदाध्यायी ततो विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥६५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे स्मार्ताचारेषु वर्णाश्रमधर्मेष्वध्ययनादि-
धर्मनिरूपणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

हे विप्र! ऐसे व्यक्ति के साथ न तो निवास करे, न उसके साथ रहे। हे नारद! कुछ लोग जड़, कुण्ड (जब स्त्री अपने पति के जीवित रहते अन्य पुरुष के संयोग से पुत्र उत्पन्न करे, वह पुत्र कुण्ड है), गोलक (विधवा का जारज पुत्र) का भी यज्ञोपवीत संस्कार कर देते हैं। जो ब्राह्मण अन्य विषयों को पढ़ता है, तथापि वेद नहीं पढ़ता, वह शूद्र तुल्य है, वह तो नरक का प्रिय अतिथि है। जो वेदों का अध्ययन किये बिना आचार पालन करता है, उसे आचार पालन का फल नहीं मिलता। वह तो शूद्र ही है। उसके द्वारा कृत नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा अन्य सभी वैदिक कृत्य निष्फल हो जाते हैं। जो वेदाध्ययन नहीं करता, उस विप्र के सभी कार्य निष्फल हैं। विष्णु शब्द ब्रह्ममय हैं। वेद तो साक्षात् हरि ही हैं। वेदाध्यायी विप्र सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।६०-६५।।

।।२५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
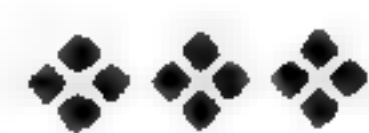
अथ षड्विंशोऽध्यायः

द्विजों के लिये विहित वेदाध्ययनादि धर्मों का वर्णन

सनक उवाच

वेदग्रहणपर्यन्तं शुश्रूषानियतो गुरोः। अनुज्ञातस्ततस्तेन कुर्यादग्निपरिग्रहम्॥१॥

वेदाश्च धर्मशास्त्राणि वेदाङ्गान्यपि च द्विजः।
अधीत्य गुरवे दत्त्वा दक्षिणां संविशेद्गृहम्॥२॥

रूपलावण्यसंपन्नां सगुणां सुकुलोद्भवाम्। द्विजः समुद्वहेत्कन्यां सुशीलां धर्मचारिणीम्॥३॥

मातृतः पञ्चमीं धीमान्पितृतः सप्तमीं तथा। द्विजः समुद्वहेत्कन्यामन्यथा गुरुतल्पगः॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—वेद की शिक्षा जब तक ब्रह्मचारी ले रहा हो, वह उस समय तक गुरु सेवा करे। तदनन्तर गुरु की आज्ञा लेकर अग्निपरिग्रह करना चाहिये। वह द्विज वेद, धर्मशास्त्र, वेदांगों का सम्यक् अध्ययन सम्पन्न करके गुरु को दक्षिणा प्रदान करके तब गृहस्थाश्रम का वरण करे। वह द्विज अब रूप लावण्य सम्पन्ना, गुणशीला, उत्तम कुल में जन्मी, सुशीला धर्मचारिणी कन्या से विवाह करे। वह द्विज मातृकुल से पांच पीढ़ी तथा पितृकुल से सात पीढ़ी छोड़कर ही कन्या चयन करके विवाह करे। इस नियम का व्यतिक्रम करने वाला गुरुपत्नीगामी कहा जायेगा।।१-४।।

रोगिणीं चैव वृत्ताक्षीं सरोगकुलसंभवाम्। अतिकेशामकेशां च वाचालां नोद्वहेद्बुधः॥५॥

कोपनां वामनां चैव दीर्घदेहां विरूपिणीम्। न्यूनाधिकाङ्गीमुन्मत्तां पिशुनां नोद्वहेद्बुधः॥६॥

स्थूलगुल्फां दीर्घजंघां तथैव पुरुषाकृतिम्। श्मश्रुव्यंजनसंयुक्तां कुब्जां चैवोद्वहेन्न च॥७॥

वृथाहास्यमुखीं चैव सदान्यगृहवासिनीम्। विवादशीलां भ्रमितां निष्ठुरां नोद्वहेद्बुधः॥८॥

बह्वाशिनीं स्थूलदन्तां स्थूलोष्ठीं घुर्घुरस्वनाम्। अतिकृष्णां रक्तवर्णां धूर्तां नैवोद्वहेद्बुधः॥९॥

रोगिणी, गोल नेत्र वाली, रोगयुक्त कुल में जन्मी, अधिक बालों वाली, केशहीन, वाचाल कन्या से बुद्धिमान् व्यक्ति विवाह न करे। क्रोधी, नाटी, अति लम्बी, दीर्घदेही, विरूपा, कम अंगों वाली अथवा अधिक अंगों वाली, चुगलखोर कन्या से बुद्धिमान् व्यक्ति विवाह न करे। स्थूल टखनों वाली, दीर्घ जंघायुक्त, पुरुष जैसी आकृति वाली, दाढ़ी-मूंछ के चिह्नवाली, कुब्जा से विवाह न करे। जो अधिक हंसती हो, स्थूलदन्ता, स्थूल मोटे ओठों वाली, घुर्घुर आवाज में बोलने वाली, सदा अन्य के घर में रहने वाली, विवाद करने वाली, घूमती रहने वाली, निष्ठुरा कन्या से विवाह न करे। अधिक खाने वाली, अति काले वर्ण वाली, रक्तवर्णा, धूर्त्ता से विवाह बुद्धिमान् व्यक्ति न करे।।५-९।।

सदारोदनशीलां च पाण्डुराभां च कुत्सिताम्।
कासश्वासादिसंयुक्तां निद्रशीलां च नोद्वहेत्॥१०॥

अनर्थभाषिणीं चैव लोकद्वेषपरायणाम्। परापवादनिरतां तस्करां नोद्वहेद्बुधः॥११॥

दीर्घनासां च कितवां तनूरूहविभूषिताम्। गर्वितां वकवृत्तिं च सर्वथा नोद्वहेद्बुधः॥१२॥
बालभावादविज्ञातस्वभावामुद्वहेद्यदि। प्रगल्भां वाऽगुणां ज्ञात्वा सर्वथा तां परित्यजेत्॥१३॥

जो सदा रोती रहे, पीले वर्ण वाली, कुत्सिता, दूसरों की बुराई में लगी, चोर, ऐसी कन्या से बुद्धिमान् व्यक्ति विवाह न करे। लम्बी नाकों वाली, कास (खासी) तथा श्वासरोग वाली, दिनभर सोने वाली से विवाह न करे। अनर्थभाषिणी, लोगों से द्वेषरता, धूर्त्ता, रोये से भरे शरीर वाली, घमण्डी, कपट रखने वाली कन्या से बुद्धिमान् व्यक्ति कदापि विवाह न करे। यदि कोई व्यक्ति कन्या की कुमारी अवस्था में उसके स्वभाव को ठीक से समझे बिना विवाह कर लेता है तथा यदि वह कन्या कालान्तर में दुष्ट एवं गुणहीन ज्ञात हो, तब वह उस कन्या का सर्वथा त्याग कर दे।।१०-१३।।

भर्तृपुत्रेषु या नारी सर्वदा निष्ठुरा भवेत्। परानुकूलिनी या च सर्वथा तां परित्यजेत्॥१४॥
विवाहाश्चाष्टधा ज्ञेया ब्राह्माद्या मुनिसत्तम। पूर्वः पूर्वो वरो ज्ञेयः पूर्वाभावे परः परः॥१५॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मतः॥१६॥
ब्राह्मेण च विवाहेन वैवाह्यो वै द्विजोत्तमः। दैवेनाप्यथवा विप्र केचिदार्षं प्रचक्षते॥१७॥
प्राजापत्यादयो विप्र विवाहाः पंच गर्हिताः। अभावेषु तु पूर्वेषां कुर्यादेव परान्बुधः॥१८॥

जो नारी पति तथा पुत्र के प्रति निष्ठुरा रहे तथा अन्य के प्रति अनुकूल व्यवहार करती है, पति उसका सर्वथा त्याग करे। हे मुनिप्रवर! विवाह अष्टविध कहे गये हैं। इनमें बाद वाले की अपेक्षा पूर्ववाले विवाह को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहा गया है। यदि पूर्ववाला विवाह प्राप्त न हो, तब पर विवाह (बाद वाला) ही ग्रहण करे। ये विवाह हैं ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। उत्तम द्विज ब्राह्मविधि से विवाह करे। कुछ विद्वानों के मतानुसार दैव तथा आर्ष विवाह भी ब्राह्मण एवं द्विज कर सकते हैं। शेष ५ विवाह निन्दनीय हैं, तथापि पूर्व वाला विवाह न हो सके तब बाद वाला विवाह अपना सकते हैं।।१४-१८।।

यज्ञोपवीतद्वितयं सोत्तरीयं च धारयेत्। सुवर्णकुण्डले चैव धौतवस्त्रद्वयं तथा॥१९॥
अनुलेपनलिप्तांगः कृत्तकेशनखः शुचिः। धारयेद्वैणवं दण्डं सोदकं च कमण्डलुम्॥२०॥
उष्णीषममलं छत्रं पादुके चाप्नुपानहौ। धारयेत्पुष्पमाल्ये च सुगन्धं प्रियदर्शनः॥२१॥

नित्यं स्वाध्यायशीलः स्याद्यथाचारं समाचरेत्।
परान्नं नैव भुञ्जीत परवादं च वर्जयेत्॥२२॥
पादेन नाक्रमेत्पादमुच्छिष्टं नैव लङ्घयेत्।
न संहताभ्यां हस्ताभ्यां कंडूयेदात्मनः शिरः॥२३॥

पूज्यं देवालयं चैव नापसव्यं व्रजेद्द्विजः। देवार्चाचमनस्नानव्रतश्राद्धक्रियादिषु॥२४॥
न भवेन्मुक्तकेशश्च नैकवस्त्रधरस्तथा। नारोहेदुष्ट्रयानं च शुष्कवादं च वर्जयेत्॥२५॥

बुद्धिमान् व्यक्ति दो यज्ञोपवीत, उत्तरीय धारण करे। वह दो धुले वस्त्र पहने। स्वर्णकुण्डल, अंगों पर अनुलेप लगाये। नख तथा केशों का कर्त्तन कराता रहे। पवित्र रहे। वह बांस की छड़ी, पवित्र जलपूर्ण कमण्डलु,

निर्मल पगड़ी, छाता धारण करे। पादुका अथवा जूता पहने। वह पुष्पमाला तथा सुगन्धित द्रव्य द्वारा प्रियदर्शन बना रहे। वह नित्य स्वाध्याय करे, लोक के अनुरूप आचार अपनाये। परान्न भक्षण न करे। परनिन्दा का सर्वथा त्याग करे। अपने पैर से अपने पैर को न टकराये। उच्छिष्ट भोजन को न लांघे। दोनों हाथ मिलाकर शिर न खुजलाये। पूज्य देवालय में उलटा न जाये। देवार्चान, आचमन, स्नान, व्रत तथा श्राद्धकाल में केश बिखरे न हों। वह सदा दो वस्त्र पहने। केवल एक वस्त्र न धारण करे। ऊंट गाड़ी पर कभी न बैठे। रूखी बातें कदापि न करे।।१९-२५।।

अन्यस्त्रियं न गच्छेच्च पैशुन्यं परिवर्जयेत्।
नापसव्यं व्रजेद्विप्र गोऽश्वत्थानलपर्वतान्॥२६॥
चतुष्पथं चैत्यवृक्षं देवखातं नृपं तथा। असूयां मत्सरत्वं च दिवास्वापं च वर्जयेत्॥२७॥
न वेदत्परपापानि स्वपुण्यं न प्रकाशयेत्। स्वकं नाम स्वनक्षत्रं मानं चैवातिगोपयेत्॥२८॥
न दुर्जनैः सह वसेन्नाशास्त्रं शृणुयात्तथा। आसवद्यूतगीतेषु द्विजस्तु न रतिं चरेत्॥२९॥

परस्त्री गमन न करे, चुगलखोरी से दूर रहे। यज्ञोपवीत अपसव्य करके विप्र, गौ, पीपल, अग्नि तथा पर्वत के निकट न जायें। चौराहा चैत्यवृक्ष, देवकुण्ड, राजा, ईर्ष्या, मात्सर्य तथा दिन में शयन इनका वर्जन करे। अन्य व्यक्ति के पापों का तथा अपने पुण्य का वर्णन न करे। अपना नाम, नक्षत्र तथा सम्मान गोपनीय रखे। शास्त्रविपरीत बात न सुनें। दुर्जनगण के साथ न रहें। मद्य, द्यूत, गीतादि में द्विज को रुचि नहीं रखनी चाहिये।।२६-२९।।

आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्टं शूद्रं च पतितं तथा।
सर्पं च भषणं स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्॥३०॥
चितिं च चितिकाष्ठं च यूपं चाण्डालमेव च।
स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत्॥३१॥

जब आर्द्र अस्थि, उच्छिष्ट भोजन, शूद्र, पतित, सर्प, श्वान का स्पर्श हो जाये, तब जो वस्त्र पहने हो, उसी के साथ स्नान करे। चिता, चिता की लकड़ी, यूप तथा चाण्डाल, मन्दिर से जीविका चलाने वाला—इनका स्पर्श होने पर भी उपरोक्त विधि से वस्त्रसहित स्नान करे।।३०-३१।।

दीपखट्वातनुच्छायाकेशवस्त्रकटोदकम्। अजामार्जनिमार्जाररेणुर्दैवं शुभं हरेत्॥३२॥
शूर्प्पवातं प्रेतधूमं तथा शूद्रान्नभोजनम्। वृषलीपतिसङ्गं च दूरतः परिवर्जयेत्॥३३॥
असच्छास्त्रार्थमननं खादनं नखकेशयोः। तथैव नग्नशयनं सर्वदा परिवर्जयेत्॥३४॥
शिरोभ्यंगावशिष्टेन तैलेनांगं न लेपयेत्।
ताम्बूलमशुचिं नाद्यात्तथा सुप्तं न बोधयेत्॥३५॥
नाशुद्धोऽग्निं परिचरेत्यपूजयेद्गुरुदेवताः। न वामहस्तेनैकेन पिबेद्वक्त्रेण वा जलम्॥३६॥
न चाक्रमेद्गुरोश्छायां तदाज्ञां च मुनीश्वर।
न निंदेद्योगिनो विप्रान्व्रतिनोऽपि यतींस्तथा॥३७॥

परस्परस्य मर्माणि न कदापि वदेद्द्विजः।
दर्शे च पौर्णमास्यां च यागं कुर्याद्यथाविधि॥३८॥

दीपक-शय्या की परछाईं, केश, चटाई का जल, बकरी, झाड़ू, बिडाल के शरीर की धूल मानव के उत्तम दैव तथा शुभ का हरण कर लेती है। सूप की हवा, चिता की धूआं, शूद्रान्न भोजन, वृषलीपति वाली स्त्री का संग तो दूर से ही त्यागे। असत् ग्रन्थों का अध्ययन, नख तथा केश मुख में चबाना, नग्न होकर शयन, सदा त्यागे। जो तैल शिर पर लगाने से बचा हो, उसे अपने अंगों में न लगाये। अशुद्ध ताम्बूल न खाये। सोये को न जगाये। स्वयं अशुद्धि स्थिति में अग्नि, गुरु, देवपूजन न करे। बायें हाथ से अथवा एक हाथ से जल न पीये। गुरु के शरीर की छाया का लंघन न करे। उनकी आज्ञा की अहवेलना न करे। हे मुनीश्वर! योगी, व्रती, ब्राह्मण तथा यति की निन्दा कभी न करे। द्विजगण एक दूसरे का रहस्य अन्य से न कहे। मार्मिक बातें न कहें। अमावस्या तथा पूर्णिमा को सविधि यज्ञ करे। पौर्णमास तथा दर्शयज्ञ करे।।३२-३८।।

उपासनं च होतव्यं सायं प्रातर्द्विजातिभिः। उपासनपरित्यागी सुरापीत्युच्यते बुधैः॥३९॥
अयने विषुवे चैव युगादिषु चतुर्ष्वपि। दर्शे च प्रेतपक्षे च श्राद्धं कुर्याद्गृही द्विजः॥४०॥
मन्वादिषु मृताहे च अष्टकासु च नारद। नवधान्ये समायाते गृही श्राद्धं समाचरेत्॥४१॥
श्रोत्रिये गृहमायाते ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः। पुण्यक्षेत्रेषु तीर्थेषु गृही श्राद्धं समाचरेत्॥४२॥
यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
वृथा भवति तत्सर्वमूर्द्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥४३॥

द्विजगण सदा प्रातः एवं सन्ध्याकाल में सन्ध्योपासना तथा हवन कार्य करे। जो सन्ध्योपासना का त्याग करता है, उसे बुद्धिमान् लोग मद्यप कहते हैं। अयन, विषुव, युगादि चारों तिथि पर अमावस्या तथा पितृपक्ष काल में गृहस्थ व्यक्ति श्राद्ध सम्पन्न करे। हे नारद! मन्वादि तिथियों के समय, मृत्युतिथि पर, अष्टमी तथा नवधान्य लाये जाने पर गृहस्थ अवश्य श्राद्ध सम्पन्न करे। जब कोई श्रोत्रिय घर आये, चन्द्र-सूर्य ग्रहण हो, पुण्यक्षेत्रों में तथा तीर्थों में सद्गृहस्थ अवश्य श्राद्ध सम्पन्न करे। जो ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण किये बिना यज्ञ-दान-तप-होम और स्वाध्याय एवं पितृतर्पण करता है, उसके ये सभी कार्य सफल नहीं होते।।३९-४३।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छति केचन।
वृथाचारः परित्याज्यस्तमाच्छ्रेयाऽर्थिभिर्द्विजैः॥४४॥
इत्येवमादयो धर्माः स्मृतिमार्गप्रचोदिताः। कार्या द्विजातिभिः सम्यक्सर्वकर्मफलप्रदाः॥४५॥
सदाचारपरा ये तु तेषां विष्णुः प्रसीदति।
विष्णौ प्रसन्नतां याते किमसाध्यं द्विजोत्तम॥४६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे स्मार्त्तधर्मेषु वेदाध्ययनादिकस्य गृहस्थधर्मस्य च निरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

कतिपय विद्वानों का मत है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा तुलसी माला श्राद्ध हेतु आवश्यक नहीं है। अतः श्रेयार्थी द्विजगण व्यर्थ आचार का त्याग करे। यह सब धर्माचार स्मृतिमार्ग के अनुरूप तथा द्विजातियों के सभी कर्म का फल प्रदान करने वाले हैं। हे द्विजोत्तम! जो लोग सदाचार परायण हैं, उनके ऊपर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। विष्णु की प्रसन्नता होने पर क्या असाध्य रह जायेगा?।।४४-४६।।

।।२६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
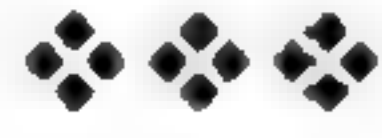
अथ सप्तविंशोऽध्यायः

गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासी धर्म का वर्णन

सनक उवाच

गृहस्थस्य सदाचारं वक्ष्यामि मुनिसत्तम। यद्वतां सर्वपापानि नश्यन्त्येव न संशयः॥१॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय पुरुषार्थाविरोधिनीम्। वृत्तिं सञ्चिंतयेद्विप्र कृतकेशप्रसाधनः॥२॥
दिवासन्ध्यासुकर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः॥३॥
शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ह्यंतर्द्धाय तृणैर्महीम्। वहन्काष्ठं करेणैकं तावन्मौनी भवेद्द्विजः॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिसत्तम! अब मैं गृहस्थ लोगों के सदाचार को कहता हूं। इसके कथन से ही सर्वपाप नष्ट हो जाते हैं। यह संशय रहित है। प्रातः उठकर व्यक्ति पुरुषार्थ के अनुकूल वाले कर्म का विचार करके केश प्रसाधन करे। हे विप्र! दिवा एवं सन्ध्याकाल में कानों पर यज्ञोपवीत रखे तथा उत्तर की ओर मुंह करके मल-मूत्र त्याग करना चाहिये। रात्रिकाल में यह कृत्य दक्षिणाभिमुखी होकर करे। मल-मूत्र त्याग काल में शिर ढांके। पृथिवी को तृणादि से ढांक दे। एक हाथ में काष्ठ रखे। मौनी होकर यह कृत्य करना चाहिये।।१-४।।

पथि गोष्ठे नदीतीरे तडागगृहसन्निधौ। तथा वृक्षस्यच्छायायां कान्तारे वह्निसन्निधौ॥५॥
देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे। ब्राह्मणानां समीपे च तथा गोगुरुयोषिताम्॥६॥
तुषांगारकपालेषु जलमध्ये तथैव च। एवमादिषु देशेषु मलमूत्रं न कारयेत्॥७॥

मार्ग, गौशाला, नदीतट, तालाब, गृह के पास, वृक्ष छाया में, वन में, अग्नि के समीप, देवालय, उद्यान में, जोती गई भूमि में, चौराहे पर, ब्राह्मण के पास, गौ-गुरु-स्त्रियों के निकट, भूसी, कोयला, नरकपाल, जलमध्य में तथा पवित्र स्थलों पर मल-मूत्र त्याग कदापि न करे।।५-७।।

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम्॥८॥

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। मृज्जलाभ्यां बहिः शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथांतरम्॥९॥

पवित्र रहने का सर्वदा प्रयत्न करे। द्विजगण की श्रेष्ठता उनकी पवित्रता के कारण हैं। जो शौचाचार रहित है, उसके सर्वकार्य निष्फल हो जाते हैं। यह शौच बाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से द्विविध कहा गया है। मिट्टी तथा जल से बाह्य शुद्धि होती है। भावशुद्धि ही आभ्यन्तरीण शुद्धि है।।८-९।।

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय शौचार्थं मृदमाहरेत्।
न मूषकादिखनितां फालोत्कृष्टां तथैव च॥१०॥
वापीकूपतडागेभ्यो नाहरेदपि मृत्तिकाम्। शौचं कुर्यात्प्रयत्नेन समादाय शुभां मृदम्॥११॥
लिङ्गे मृदेका दातव्या तिस्रो वा मेढ्रयोर्द्वयोः। एतन्मूत्रसमुत्सर्गे शौचमाहुर्मनीषिणः॥१२॥

मूत्र त्यागोपरान्त शिश्न को हाथ से पकड़कर उठे तथा शुद्धि के प्रयोजन के लिये मिट्टी लायें। मूषक के बिल की, फाल से जोती मिट्टी, बाबली-कूप-तड़ाग की मिट्टी वर्जित है। शुद्ध मृत्तिका लेकर शुद्धि करे। लिङ्ग पर एक बार, अण्डकोष द्वय पर तीन बार मिट्टी लगाये। मनीषीगण मूत्रत्याग में यही शौच कह गये हैं।।१०-१२।।

एका लिङ्गे गुदे पञ्च दश वामे तथोभयोः।
सप्त तिस्रः प्रदातव्याः पादयोर्मृत्तिकाः पृथक्॥१३॥
एतच्छौचं विडुत्सर्गे गन्धलेपापनुत्तये। एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्॥१४॥
त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तच्चतुर्गुणम्।
स्वस्थाने पूर्णशौचं स्यात्पथ्यर्द्धं मुनिसत्तम॥१५॥

मलत्यागजनित शुद्धि हेतु गुदा पर पांच बार, बांये हाथ पर दस बार, दोनों हाथों में सात बार तथा पैर पर तीन बार मृत्तिका से मार्जन करे। मलत्याग से हो रही दुर्गन्ध से छुटकारा का तथा शुद्धि का यही नियम है। ये नियम मात्र गृहस्थ हेतु हैं। ब्रह्मचारी इसकी द्विगुणित शुद्धि करे। वानप्रस्थ त्रिगुणित तथा संन्यासी चतुर्गुण शुद्धि करे। जब ये लोग अपने निवास पर रहें, तब इतनी शुद्धि करे। हे मुनिसत्तम! यदि वह व्यक्ति मार्ग में है, तब इसका आधा शौच करे।।१३-१५।।

आतुरे नियमो नास्ति महापदि तथैव च। गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्याद्विचक्षणः॥१६॥
स्त्रीणामनुपनीतानां गन्धलेपक्षयावधि। व्रतस्थानां तु सर्वेषां यतिवच्छौचमिष्यते॥१७॥
विधवानां च विप्रेन्द्र एतदेव निगद्यते। एवं शौचं तु निर्वर्त्य पश्चाद्वै सुसमाहितः॥१८॥
प्रागास्य उदगास्यो वाप्याचामेत्प्रयतेन्द्रियः।
त्रिश्चतुर्धा पिबेदापो गन्धफेनादिवर्जिताः॥१९॥

तथापि रोगातुर एवं आपदा में पड़े व्यक्ति के लिये कोई नियम नहीं है। स्त्रीगण तथा जिनका उपनयन नहीं हुआ है, वे मलजनित दुर्गन्धि नष्ट होने तक मिट्टी से सफाई करे। सभी व्रती लोग यति के लिये बताये गये शौच नियम का पालन करे। हे विप्रेन्द्र! विधवा नारीगण हेतु भी यही नियम है। जब यह शौच तथा शुद्धि हो जाये, तब समाहित चित्त से पूर्वमुख किंवा उत्तरमुखी होकर संयम के साथ ४-५ कुल्ला करे। कुल्ला का जल गन्ध रहित तथा फेन रहित हो।।१६-१९।।

द्विर्मार्जयेत्कपोलं च तलेनोष्ठौ च सत्तम। तर्जन्यंगुष्ठयोगेन नासारन्ध्रद्वयं स्पृशेत्॥२०॥

अगुंष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रे यथाक्रमम्।
कनिष्ठांगुष्ठयोगेन नाभिदेशे स्पृशेद्द्विजः॥२१॥
तलेनोरःस्थलं चैव अंगुल्यग्रैः शिरः स्पृशेत्।
तलेन चांगुलाग्रैर्वा स्पृशेदंसौ विचक्षणः॥२२॥
एवमाचम्य विप्रेन्द्र शुद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम्।
दन्तकाष्ठं ततः खादेत्सत्वचं शस्तवृक्षजम्॥२३॥

कपोल को दो बार धोये। तदनन्तर हथेली से ओठों का स्पर्श करे तथा तर्जनी एवं अंगुष्ठ को मिलाकर उभय नासाविवर का स्पर्श करे। अंगुष्ठ से नेत्र का तथा अनामिका से कान का स्पर्श करना चाहिये। द्विजगण कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ को मिलाकर नाभि स्पर्श करे। हथेली से वक्ष का एवं अगुलियों से शिर स्पर्श करे। तदनन्तर विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि वह हथेली किंवा अंगुलि के अग्रभाग से दोनों कंधे का स्पर्श करे। हे विप्रेन्द्र! आचमन द्वारा अतीव शुद्धि होती है। तब उत्तम वृक्ष की दातौन छाल सहित चबाना चाहिये।।२०-२३।।

बिल्वासनापामार्गाणां निम्बाम्रार्कादिशाखिनाम्।
प्रक्षाल्य वारिणा चैव मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रितम्॥२४॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो धेहि वनस्पते॥२५॥

बिल्व, असनवृक्ष (पीला साल नामक वृक्ष), अपामार्ग, नीम, आम तथा मदार आदि वृक्षों से दातौन करे। सर्वाग्र में जल से दातौन धोकर मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित करना होगा। मन्त्र है—"हे वनस्पति! तुम आयु, बल, यश, तेज, सन्तति, पशु, धन, ब्रह्म, प्रज्ञा, मेधा मुझे दो!"।।२४-२५।।

कनिष्ठाग्रसमं स्थौल्ये विप्रः खादेद्दशांगुलम्।
नवांगुलं क्षत्रियश्च वैश्यश्चाष्टांगुलोन्मितम्॥२६॥

शूद्रो वेदांगुलमितं वनिता च मुनीश्वर। अलाभे दन्तकाष्ठानां गण्डूषैर्भानुसंमितैः॥२७॥
मुखशुद्धिर्विधीयेत तृणपत्रसमन्वितैः। करेणादाय वामेन संचर्वेद्वामदंष्ट्रया॥२८॥

द्विजान्संघर्ष्य गोदोहं ततः प्रक्षाल्य पाटयेत्।
जिह्वामुल्लिख्य ताभ्यां तु दलाभ्यां नियतेन्द्रियः॥२९॥

प्रक्षाल्य प्रक्षिपेद् दूरे भूयश्चाचम्य पूर्ववत्। ततः स्नानं प्रकुर्वीत नद्यादौ विमले जले॥३०॥

हे विप्र! दातौन की मोटाई कनिष्ठा उंगली के अग्रभाग इतनी हो, वह १० अंगुल लम्बी हो। हे मुनीश्वर! क्षत्रियगण नौ अंगुल लम्बी, वैश्य आठ अंगुल लम्बी, शूद्र तथा स्त्री चार अंगुल लम्बी दातौन का उपयोग करे। यदि दातौन उपलब्ध न हो, तब बारह कुल्ला करे। तदनन्तर तृण किंवा पत्ती से मुखशुद्ध करना चाहिये। दातौन वाम हस्त में पकड़े। इसको वाम भाग के दांतों से चबाये। दांतों को रगड़ने के उपरान्त मसूड़ों

की भी मन्दगति से दातून द्वारा मंजाई करे। तब मुख धो दे। तब बाकी बची दातौन बीच से चीरकर दो भाग करके उससे जिह्वा रगड़कर स्वच्छ करे। अब दातौन को धोकर दूरी पर फेंके। पुनः वह व्यक्ति पूर्ववत् आचमन करे। इसके पश्चात् नदी आदि के विमल जल से स्नान करे।।२६-३०।।

तटं प्रक्षाल्य दर्भांश्च विन्यस्य प्रविशेज्जलम्।
प्रणम्य तत्र तीर्थानि आवाह्य रविमण्डलात्॥३१॥
गन्धाद्यैर्मण्डलं कृत्वा ध्यात्वा देवं जनार्दनम्।
स्नायान्मन्त्रान्स्मरन्पुण्यांस्तीर्थानि च विरिंचिज॥३२॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥३३॥
पुष्काराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छतुं महाभागाः स्नानकाले सदा मम॥३४॥

स्नान कार्य हेतु सर्वाग्र में नदी अथवा तड़ाग के तट को प्रक्षालित करके वहां कुश बिछाये, तब स्नानार्थ जल में अवगाहन करे। जल में सर्वतीर्थावाहन (सभी तीर्थों का आवाहन करे) रविमण्डल से करना चाहिये। तदनन्तर उसे प्रणाम करके उस जल में गन्ध आदि का मण्डल बनाये। उस मण्डल में देवाधिदेव जनार्दन का ध्यान करे। तदनन्तर पुण्यदायक मन्त्रों का एवं तीर्थों का चिन्तन करते स्नान करे। हे ब्रह्मनन्दन! मन्त्र है—"हे गंगे, यमुने, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी! आप सब इस जल में उपस्थित रहे। हे पुष्कर आदि तीर्थगण तथा गंगा आदि सरितायें! हे महाभाग! आप लोग मेरे स्नानकाल में सदा विद्यमान रहिये।"।।३१-३४।।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः॥३५॥
ततोऽघमर्षणं जप्त्वा यतासुर्वारिसंप्लुतः। स्नानाङ्गं तर्पणं कृत्वाचम्यार्घ्यं भानवेऽर्पयेत्॥३६॥
ततो ध्यात्वा विवस्वन्तं जलान्निर्गत्य नारद। परिधायाहतं धौतं द्वितीयं परिवीय च॥३७॥
कुशासने समाविश्य सन्ध्याकर्म समारभेत्।
ईशानाभिमुखो विप्र गायत्र्याचम्य वै द्विज॥३८॥

"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ति, द्वारकापुरी—ये सात मोक्षप्रदा पुरी हैं।" तदनन्तर अघमर्षण मन्त्र का जप करे और उस जल में स्नान करे। तत्पश्चात् स्नानांग के रूप में तर्पण एवं सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। हे नारद! तत्पश्चात् सूर्य का ध्यान करके तब जल से बहिर्गत् हो जाये। उस व्यक्ति को चाहिये कि वह आर्द्रवस्त्र बदलकर धुले वस्त्रद्वय धारण करे (एक अधोवस्त्र तथा एक उत्तरीय धारण करे)। तत्पश्चात् उसे कुशासन पर आसीन होकर सन्ध्याकर्म करना चाहिये। हे विप्र! तब वह व्यक्ति ईशान की ओर मुख करके गायत्री मन्त्र द्वारा आचमन करे।।३५-३८।।

ऋतमित्यभिमन्त्र्याथ पुनरेवाचमेद् बुधः।
ततस्तु वारिणात्मानं वेष्टयित्वा समुक्ष्य च॥३९॥

संकल्प्य प्रणमान्ते तु ऋषिच्छन्द-सुरान्स्मरन्।
भूरादिभिर्व्याहृतिभिः सप्तभिः प्रोक्ष्य मस्तकम्॥४०॥

उस समय वह धीमान् व्यक्ति "ऋतञ्च सत्यम्" इत्यादि मन्त्र द्वारा पुनराचमन सम्पन्न करे। उस समय अपने चतुर्दिक् जल छिड़के जैसे वह जल द्वारा स्वयं को वेष्ठित कर रहा हो! संकल्प तथा प्रणामोपरान्त ऋषि, छन्दः तथा देवता का स्मरण करते हुये "भूः" आदि सप्त व्याहृति द्वारा अपने मस्तक का जल से प्रोक्षण करे।।३९-४०।।

न्यासं समाचरेन्मन्त्री पृथगेव कराङ्गयोः।
विन्यस्य हृदये तारं भूः शिरस्यथ विन्यसेत्॥४१॥
भुवः शिखायां स्वश्चैव कवचे भूर्भुवोऽक्षिषुः।
भूर्भुवः स्वस्तथात्रास्त्रं दिक्षु तालत्रयं न्यसेत्॥४२॥

तदनन्तर वह व्यक्ति करांग आदि न्यास करे। हृदय पर ॐ का न्यास करके "भूः" का शिर पर, "भुवः" का न्यास शिखा पर करे। कवच (दोनों कन्धों का स्पर्श) "स्वः" से तथा दोनों नेत्रों पर "भूर्भुवः" से न्यास करके "भूर्भुवः स्वः" द्वारा "अस्त्राय फट्" कहे तथा सभी दिशाओं में तीन बार ताली बजाकर (त्रिताल) न्यास करे।।४१-४२।।

तत आवाहयेत्सन्ध्यां प्रातः कोकनदस्थिताम्।
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि॥४३॥
गायत्रि च्छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते।
मध्याह्ने वृषभारुढां शुक्लाम्बरसमावृताम्॥४४॥
सावित्रीं रुद्रयोनिं चावाहयेद्रुद्रवादिनीम्। सायं तु गरुडारूढां पीताम्बरसमावृताम्॥४५॥
सरस्वतीं विष्णुयोनिमाह्वयेद्विष्णुवादिनीम्।
तारं च व्याहृतीः सप्त त्रिपदां च समुच्चरन्॥४६॥
शिरः शिखां च संपूर्य कुम्भयित्वा विरेचयेत्। वाममध्यात्परैर्वायुं क्रमेण प्राणसंयमे॥४७॥
द्विराचामेत्ततः पश्चात्प्रातः सूर्यश्चमेति च। आपः पुनन्तु मध्याह्ने सायमग्निश्चमेति च॥४८॥

तत्पश्चात् प्रातः खिले अरुणवर्ण कमल (कोकनद) पर आसीन भगवती का आवाहन करना चाहिये। "हे देवी! आप त्र्यक्षरा (तीन अक्षरों वाली) ब्रह्मवादिनी हैं। आप गायत्री हैं। आप छन्दों की माता, ब्रह्मयोनि हैं। आपको नमस्कार! आप आगमन करिये।" मध्याह्न काल में शुक्लवस्त्रधारिणी वृषभारूढ़ा सावित्री रुद्रयोनि रुद्रवादिनी देवी का आवाहन करना चाहिये। सायंकाल गरुड़ पर बैठी पीताम्बर धारिणी, सरस्वती, विष्णुयोनि, विष्णुवादिनी का आवाहन करे। अब साधक व्यक्ति ॐ, सप्तव्याहृति एवं त्रिपदागायत्री का उच्चारण करे। शिर तथा शिखा पर्यन्त स्थान को पूरक प्राणायाम से पूर्ण करके कुंभक में स्थित रहे, तदनन्तर रेचक प्राणायाम करना चाहिये। इसका विधान कहते हैं—प्रथमतः वाम नाड़ी ('वाम नासाछिद्र') पिंगला से रेचक करके मध्यनाड़ी सुषुम्ना में कुंभक करना चाहिये। तत्पश्चात् इड़ा (दाहिनी नाड़ी अथवा नासिकाछिद्र) से उस वायु का रेचक करे (बाहर

छोड़े)। यही क्रमिक प्राणसंयम कहा गया है। प्रातः के समय "सूर्यश्च मामन्युश्च" इत्यादि से दो आचमन करे। मध्याह्न में "आपः पुनन्तु" इत्यादि द्वारा तथा सायंकाल में "अग्निश्च मामन्युश्च" इत्यादि मन्त्र से आचमन सम्पन्न किया जाना चाहिये।।४३-४८।।

आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं च ततश्चरेत्। सुमित्रिया न इत्युक्त्वा नासास्पृष्टजलेन च॥४९॥
द्विषद्वर्गं समुत्सार्य द्रुपदां शिरसि क्षिपेत्। ऋतं च सत्यमेतेन कृत्वा चैवाघमर्षणम्॥५०॥
अन्तश्चरसि मन्त्रेण सकृदेव पिबेदपः। ततः सूर्याय विधिवद्गन्धं पुष्पं जलाञ्जलिम्॥५१॥

आचमनोपरान्त "आपोहिष्ठामयोभुवः" इत्यादि से मार्जनत्रय सम्पन्न करे। तदनन्तर "सुमित्रिया न" इत्यादि से नासा से जल स्पर्श कराये तथा शत्रुओं का चिन्तन करके उसे छोड़े। तदनन्तर "द्रुपदाद्विव" इत्यादि से शिर का प्रोक्षण जल द्वारा करे। तब "ऋतं च सत्यम्" इत्यादि मन्त्र से अघमर्षण करे। इसके पश्चात् "अन्तश्चरसि" इत्यादि से एक आचमन करे। इसके अनन्तर सूर्य को सविधि गन्ध-पुष्पादि से जलांजलि प्रदान करे।।४९-५१।।

क्षिप्त्वोपतिष्ठेद्देवर्षे भास्करं स्वस्तिकाञ्जलिम्। ऊर्द्धबाहुरधोबाहुः क्रमात्कल्यादिके त्रिके॥५२॥
उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुरित्येतत्त्रितयं जपेत्। सौराञ्छैवान्वैष्णवांश्च मन्त्रानन्यांश्च नारद॥५३॥
तेजोऽसि गायत्र्यसीति प्रार्थयेत्सवितुर्महः। ततोऽङ्गानि त्रिरावर्त्य ध्यायेच्छक्तीस्तदात्मिकाः॥५४॥

तदनन्तर स्वस्तिकांजलि द्वारा सूर्योपस्थान करने का विधान है। सूर्योपस्थान काल में तीनों सन्ध्या के समय क्रमशः ऊर्ध्वबाहु एवं अधोबाहु रहे। हे नारद! "उदुत्यजातं" इत्यादि का, "चित्रं देवानाम्" इत्यादि का तथा "तच्चक्षुः" इत्यादि का (अर्थात् मन्त्रत्रय का) जप करे। सूर्य, शिव, विष्णु-देवत्रय के मन्त्र का जप और भी श्रेयःप्रद है। दिन में "तजोसि गायत्र्यसि" इत्यादि से सूर्य की प्रार्थना करे। अपने अंगों के चतुर्दिक् तीन बार जल क्षेपण करके शक्ति का चिन्तन कालानुरूप (उस चिन्तन के समय जो काल हो तदनुरूप) करे।।५२-५४।।

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलया कुम्भं करैः स्रुक्स्रवौ,
बिभ्राणा त्वरुणेन्दुकान्तिवदना ऋग्रूपिणी बालिका।
हंसारोहणकेलिखणखण्मणेर्बिंबार्चिता भूषिता,
गायत्री परिभाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा॥५५॥

ध्यान का मंत्र एवंविध है—ब्रह्माणी देवी चतुराननना, अक्ष कंकणधारिणी, हाथ में घट धारण करने वाली तथा स्रुक्-स्रुवा धारण करने वाली हैं। उनकी मुखकान्ति बालचन्द्र के समान हैं। वे ऋक्रूपा बाला हंसारूढ़ा हैं। उनकी मणियों तथा मालाओं से मधुर ध्वनि रूप झंकार शब्द गुंजरित होता रहता है। वे मणिबिम्ब भूषिता गायत्री रूपादेवी हमें सर्वसमृद्धि तथा सम्पदा सदा प्रदान करे।।५५।। (प्रातः ध्यान)

रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा,
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिश्रियै चास्तु नः।
विद्युद्दामजटाकलापविलसद् बालेन्दुमौलिर्मुदा,
सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी॥५६॥

रुद्राणी देवी नवयौवना, नेत्रत्रयधारिणी, व्याघ्र चर्म के वस्त्र को धारण करने वाली, खट्वाङ्ग धारण किये हुये, अग्नि तथा अक्षसूत्रवलया हैं। ये देवी हमें अभय तथा श्री प्रदान करे। विद्युत्वत् जटाकलाप से युक्त, बालचन्द्र बिम्ब को शिर पर धारण करने वाली, श्वेत अंगों वाली यजुः स्वरूपा, वृषभारूढ़ा सरस्वती भगवती का ध्यान करना चाहिये।।५६।। (मध्याह्न ध्यान)

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालंकृता,
श्यामा श्यामतनुर्जरोपरिलसद्गात्राञ्चिता वैष्णवी।
तार्क्ष्यस्था मणिनूपुराङ्गदलसद्ग्रैवेयभूषोज्ज्वला,
हस्तालंकृतशङ्खचक्रसुगदापद्मा श्रियै चास्तु नः॥५७॥

उन देवी भगवती सरस्वती का ध्यान करे, जो पीतवस्त्र से अलंकृता, श्यामवर्णा, जरालक्षणों से शोभिता, श्याम अंगों वाली गरुड़ारूढ़ा, मणि-नूपुर-अंगद-हार से शोभायमान, शंख-चक्र-गदा-पद्महस्ता, वैष्णवी सरस्वती भगवती हमारी श्रीवृद्धि सम्पन्न करे।।५७।। (यह सायंध्यान है)

एवं ध्यात्वा जपेत्तिष्ठन्प्रातर्मध्याह्नके तथा।
सायंकाले समासीनो भक्त्या तद्गतमानसः॥५८॥

यह गायत्री ध्यान तथा जप संयतचित्त से प्रातः एवं मध्याह्न काल में खड़े रहकर करना चाहिये। सायं ध्यान तथा जप आसनासीन होकर करे। यह कार्य तीनों काल में भक्तिभाव से तथा तद्गत्मानस (एकाग्र होकर) करना होगा।।५८।।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्। त्रिपदां प्रणवोपेतां भूर्भुवः स्वरूपक्रमाम्॥५९॥
षट्तारः संपुटो वापि व्रतिनश्च यतेर्जपः। गृहस्थस्य सतारः स्याज्जप्य एवंविधा मुने॥६०॥
ततो जप्त्वा यथाशक्ति सवित्रे विनिवेद्य च।
गायत्र्यै च सवित्रे च प्रक्षिपेदञ्जलिद्वयम्॥६१॥

गायत्री का एक सहस्रजप परमोत्तम होता है। एक सौ जप मध्यम होता है तथा दस जप अवर जप होता है। ॐकारयुक्त त्रिपदा गायत्री जो भूः, भुवः, स्वः से युक्त हो, वह जप उचित है। व्रतशील यति षट् ओंकार युक्त अथवा सम्पुट व्रत करे। हे मुनिवर! गृहस्थ के लिये केवल ओंकार सहित जप शुभ कहते हैं। तत्पश्चात् यथाशक्ति जप के उपरान्त सूर्य की प्रार्थना के उपरान्त गायत्री एवं सावित्री को अंजलिद्वय जलदान करे।।५९-६१।।

ततो विसृज्य तां विप्र उत्तरे इति मन्त्रतः। ब्रह्मणेशेन हरिणानुज्ञाता गच्छ सादरम्॥६२॥
दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यश्च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
प्रातरादेः परं कर्म कुर्यादपि विधानतः॥६३॥
प्रातर्मध्यन्दिने चैव गृहस्थः स्नानमाचरेत्। वानप्रस्थश्च देवर्षे स्नायात्त्रिषवणं यतिः॥६४॥
आतुराणां तु रोगाद्यैः पान्थानां च सकृन्मतम्। ब्रह्म यज्ञं ततः कुर्याद्दर्भपाणिर्मुनीश्वर॥६५॥

हे विप्र! इस प्रकार "उत्तरे शिखरे" इत्यादि मन्त्र द्वारा गायत्री का विसर्जन करना चाहिये। तब वह गायत्री

साधक व्यक्ति कहे—"ब्रह्मा, ईश, हरि की आज्ञा से आप यहां से सादर प्रस्थान करिये। तदनन्तर सभी दिशा, दिग्देवताओं को हाथ जोड़कर प्रणाम करे। गृहस्थ केवल प्रातः तथा दोपहर में स्नान करे। हे देवर्षि! यति, वानप्रस्थगण तीन बार स्नान करे। रोगी, पीड़ित, पथिकादि एक बार ही स्नान करे। हे मुनीश्वर! हाथ में कुशा लेकर ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये।।६२-६५।।

दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि चेत्।
शर्वर्याः प्रथमे यामे तानि कुर्याद्यथाक्रमम्॥६६॥
नोपास्ते यो द्विजः संन्ध्या धूर्तबुद्धिरनापदि।
पाषण्डः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥६७॥
यस्तु संध्यादिकर्माणि कूटयुक्तिविशारदः। परित्यजति तं विद्वान्महापातकिनां वरम्॥६८॥

यदि प्रमाद के कारण दिन के विहित कर्म दिवाकाल में सम्पन्न न हो सकें, तब वे कर्म रात्रि के प्रथम प्रहर में क्रम से सम्पन्न करे। जो धूर्तबुद्धि मानव विना आपत्ति के भी सन्ध्याकृत्य नहीं करता, वह सर्वधर्मबहिष्कृत पाखण्डी ही है, जो कूटयुक्तिविशारद व्यक्ति सन्ध्याकर्म नहीं करता, उनका त्याग कर देता है, उसे महापातकियों में भी प्रधान मानें।।६६-६८।।

ये द्विजा अभिभाषन्ते त्यक्तसन्ध्यादिकर्मणः।
ते यान्ति नरकान्घोरान्यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥६९॥
देवार्चनं ततः कुर्याद्वैश्वदेवं यथाविधि। तत्रत्यमतिथिं सम्यगन्नाद्यैश्च प्रपूजयेत्॥७०॥

जो द्विजगण उस व्यक्ति से वात करते हैं, जिसने द्विज होकर भी सन्ध्यावन्दनादि का त्याग कर दिया है, (वह पाखण्डी तथा सर्वधर्म बहिष्कृत है), उससे तो वार्तालाप तक न करे अन्यथा ऐसे व्यक्ति के साथ वार्त्ता करने के पाप फल के कारण जब तक सृष्टि में चन्द्रमा-सूर्य-तारक हैं, तब तक नरक में रहना होगा। देवार्चन, वैश्वदेव कर्म सविधि करना चाहिये। उस समय अतिथि आने पर सम्यक् रूप से अन्न द्वारा उसकी पूजा करे।।६९-७०।।

वक्तव्या मधुरा वाणी तेष्वप्यभ्यागतेषु तु। जलान्नकन्दमूलैर्वा गृहदानेन चार्चयेत्॥७१॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥७२॥
अज्ञातगोत्रनामानमन्यग्रामादुपागतम्। विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत्तं प्रपूजयेत्॥७३॥

अतिथि से मधुरवाणी बोलते हुये उसका स्वागत करे। उसे जल, अन्न, कन्द, मूल अथवा रुकने की जगह देना चाहिये। जिस गृहस्थ के यहां से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उस अतिथि ने तो अपने पाप उस गृहस्थ को प्रदान करके उसके पुण्यों का हरण कर लिया! दूर ग्राम से समागत अज्ञात नाम-गोत्र व्यक्ति को ही विद्वद्वर्ग अतिथि कहता है। उसकी पूजा विष्णुवत् ही करे।।७१-७३।।

स्वग्रामवासिनं त्वेकं श्रोत्रियं विष्णुतत्परम्।
अन्नाद्यैः प्रत्यहं विप्र पितॄनुद्दिश्य तर्पयेत्॥७४॥
पञ्चयज्ञपरित्यागी ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः। कुर्यादहरहस्तस्मात्पञ्चयज्ञान्प्रयत्नतः॥७५॥

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च। नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते॥७६॥

भृत्यमित्रादिसंयुक्तः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।
द्विजानां भोज्यमश्नीयात्पात्रं नैव परित्यजेत्॥७७॥
संस्थाप्य स्वासने पादौ वस्त्रार्द्धं परिधाय च।
मुखेन वमितं भुक्त्वा सुरापीत्युच्यते बुधैः॥७८॥
खादितार्द्धं पुनः खादेन्मोदकांश्च फलानि च।
प्रत्यक्षं लवणं चैव गोमांसाशीति गद्यते॥७९॥

अपने ग्राम में रहने वाले विष्णुभक्त श्रोत्रिय को नित्य पितृगण के उद्देश्य से तृप्त करे। जो व्यक्ति पंचयज्ञ नहीं करता वह ब्रह्मघाती है, ऐसा बुधजन का कहना है। अतएव नित्य सर्वप्रयत्न पूर्वक पंचयज्ञ सम्पन्न करना चाहिये। देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—ये ही पंचयज्ञ कहे जाते हैं। तदनन्तर मौनी रहकर भृत्यों तथा मित्रादि के साथ भोजन करे। जो अन्य द्विजगण के भोजन के अनुरूप है, उसी का भक्षण करना चाहिये। सत्पात्र व्यक्ति का कभी त्याग न करे। जो आसन पर दोनों पैर रखकर खाता है, आधा वस्त्र पहनकर भोजन करता है, मुख से उगले अन्न को पुनः खाता है, वह तो मद्यप ही है। ऐसा विद्वान् कहते हैं। मोदक फल आदि को आधा खाकर पुनः दूसरी बार जो उसका भक्षण करता है, जो केवल नमक खाता है (बिना खाद्य में मिश्रित किये खाता है), वह गोमांस खा रहा है, यह समझे।।७४-७९।।

अपोशाने वाचमने अद्यद्रव्येषु च द्विजः। शब्दं न कारयेद्विप्रस्तं कुर्वन्नारकी भवेत्॥८०॥
पथ्यमन्नं प्रभुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्। अमृतोपस्तरणमसि अपोशानं भुजेः पुरः॥८१॥
अमृतापिधानमसि भोज्यान्तेऽपः सकृत्पिबेत्। प्राणाद्या आहुतीर्दत्त्वाचम्य भोजनमाचरेत्॥८२॥
ततश्चाचम्य विप्रेन्द्र शास्त्रचिंतापरो भवेत्। रात्रावपि यथाशक्ति शयनासनभोजनैः॥८३॥

आचमन काल में भोजन कदापि न करे। जल पीते समय वार्त्ता न करे। ऐसा करने वाला पातकी ही है। वह यथार्थतः नारकी है। पथ्यरूप अन्न का भोजन मौनी होकर करे तथा अन्न की निन्दा न करे। भोजन पूर्व में "अमृतोपस्तरमसि" इत्यादि मन्त्र से आचमन करके भोजनोपरान्त "अमृतापिधानमसि" मन्त्र को पढ़े तथा एक बार जल पीये। "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्र से अग्नि में पंचाहुति प्रदान करके भोजन करे। भोजनोपरान्त आचमन मुख प्रक्षालनादि से निवृत्त होकर व्यक्ति शास्त्र का चिन्तन करे। रात्रिकाल में स्वशक्ति के अनुसार शयन-आसन-भोजन में भी नियम तत्पर रहे।।८०-८३।।

एवं गृही सदाचारं कुर्यात्प्रतिदिनं मुने। यदाऽऽचारपरित्यागी प्रायश्चित्ती तदा भवेत्॥८४॥
दूषितां स्वतनुं दृष्ट्वा पलिताद्यैश्च सत्तम। पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥८५॥
भवेत्त्रिषवणस्नायी नखश्मश्रुजटाधरः। अधःशायी ब्रह्मचारी पञ्चयज्ञपरायणः॥८६॥
फलमूलाशनो नित्यं स्वाध्यायनिरतस्तथा। दयावान्सर्वभूतेषु नारायणपरायणः॥८७॥

एवंविध गृही व्यक्ति नित्य सदाचार पालन करे। जो सदाचार त्यागी है, वह प्रायश्चित्त करने का पात्र हो जाता है। जब अपने देह को जरा आदि से दूषित देखे, तब पुत्र पर भार्या का भार देकर वनगमन करे अथवा पत्नी

के साथ वनगमन करे। वहां वानप्रस्थी रहकर तीनों काल स्नान करे, जटा, नख, दाढ़ी-मूंछ न काटे। वह ब्रह्मचारी, भूमि पर सोने वाला तथा पंचयज्ञ परायण होकर निवास करे। नित्य फल मूल का आहार करे तथा स्वाध्याय निरत रहे। सभी प्राणियों के प्रति दयालु तथा नारायण का भक्त होकर रहे।।८४-८७।।

वर्जयेद्ग्रामजातानि पुष्पाणि च फलानि च।
अष्टौ ग्रांसाश्च भुञ्जीत न कुर्याद्रात्रिभोजनम्।।८८।।
अत्यन्तं वर्जयेत्तैलं वानप्रस्थसमाश्रमी। व्यवायं वर्जयेच्चैव निद्रालस्ये तथैव च।।८९।।
शंखचक्रगदापाणिं नित्यं नारायणं स्मरेत्।
वानप्रस्थः प्रकुर्वीत तपश्चान्द्रायणादिकम्।।९०।।
सहेत शीतातपादिं वह्निं परिचरेत्सदा। यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु।।९१।।

वह ग्राम में उत्पन्न पुष्प-फल का कदापि उपभोग न करे। वह दिन भर में आठ ग्रास ही भोजन करे। रात्रि भोजन पूर्णतः वर्जित है। उस वानप्रस्थी हेतु तैल पूर्णतः वर्जित है। वह मैथुन, निद्रा, आलस्य का वर्जन करे। वह नित्य शंख-चक्र-गदाधारी नारायण का नित्य स्मरण करे। वानप्रस्थाश्रमी व्यक्ति चान्द्रायणादि तप करे। वह शीत-ग्रीष्म को सहन करे तथा सदैव अग्निसेवा करे। (अग्निसेवा-होम को कहते हैं)। हे विप्र! जब उसका मन सभी वस्तु से वैराग्यमय हो जाये।।८८-९१।।

तदैव संन्यसेद्विप्र पतितस्त्वन्यथा भवेत्।
वेदान्ताभ्यासनिरतः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः।।९२।।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारो निर्ममः सर्वदा भवेत्। शमादिगुणसंयुक्तः कामक्रोधविवर्जितः।।९३।।
नग्नो वा जीर्णकौपीनो भवेन्मुण्डो यतिर्द्विजः।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।।९४।।
एकरात्रं वसेद्ग्रामे त्रिरात्रं नगरे तथा। भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्यतिः।।९५।।

तभी वह संन्यासाश्रम ग्रहण कर ले। नहीं तो उसे पतित कहा जायेगा। वह वेदान्त के अभ्यास में निरत, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, निर्द्वन्द्व, निरहंकार, ममता रहित सदा रहे। वह शम आदि गुणयुक्त एवं काम-क्रोध रहित मन वाला होकर रहे। हे द्विज! अब वह यती (संन्यासी) नग्न अथवा जीर्ण कौपीनधारी तथा मुण्डित रहे। उसके लिये मान-अपमान, शत्रु-मित्र समान हो। वह ग्राम में मात्र एक रात्रि तथा नगर में तीन रात्रि ही निवास करे। वह एक ही अन्न का भोजन न करे। नित्य भिक्षा द्वारा निर्वाह करे।।९२-९५।।

अनिंदितद्विजगृहे व्यंगारे भुक्तिवर्जिते। विवादरहिते चैव भिक्षार्थं पर्यटेद्यतिः।।९६।।
भवेत्त्रिषवणस्नायी नारायणपरायणः।
जपेच्च प्रणवं नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः।।९७।।

संन्यासी गृहस्थ के घर में भोजनादि जब बन जाये, तब ऐसे द्विज के यहां भिक्षार्थ जाये जो निन्दनीय न हो। जहां गृह में विवाह हो, वहां भिक्षाटन न करे। वह अपना चित्त नारायण में लगाकर तीनों काल स्नान करे। वह जितात्मा तथा इन्द्रियजित् होकर नित्य प्रणव जप करे।।९६-९७।।

एकान्नादी भवेद्यस्तु कदाचिल्लंपटो यतिः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि॥९८॥
लोभाद्यदि यतिर्विप्र तनुपोषपरो भवेत्। स चण्डालसमो ज्ञेयो वर्णाश्रमविगर्हितः॥९९॥
आत्मानं चिन्तयेद्देवं नारायणमनामयम्। निर्द्वन्द्वं निर्ममं शान्तं मायातीतममत्सरम्॥१००॥

जो संन्यासी एक ही प्रकार का अन्न खाता हुआ एवंविध लम्पटता युक्त होता है, दस हजार प्रायश्चित्त से भी उसकी शुद्धि नहीं होती। जो यति लोभादि से ग्रसित होकर केवल अपना शरीर पोषण करता है, वह वर्णाश्रम रहित तथा चण्डालवत् ही है। आत्मा में अनामय नारायण देव का चिन्तन करे। वह निर्द्वन्द्व, ममताशून्य, शान्त तथा मत्सर रहित एवं माया से परे।।९८-१००।।

अव्ययं परिपूर्णं च सदानन्दैकविग्रहम्। ज्ञानस्वरूपममलं परं ज्योतिः सनातनम्॥१०१॥
अविकारमनाद्यन्तं जगच्चैतन्यकारणम्। निर्गुणं परमं ध्यायेदात्मानं परतः परम्॥१०२॥

अव्यय, परिपूर्ण, सदा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, निर्मल, परमज्योतिः, सनातन, अविकारी, आदि-अन्त रहित, जगत् को चैतन्य प्रदान के एकमात्र कारण, निर्गुण परम, पर से भी परम प्रभु का ध्यान करे।।१०१-१०२।।

पठेदुपनिषद्वाक्यं वेदान्तार्थांश्च चिन्तयेत्।
सहस्रशीर्षं देवं च सदा ध्यायेज्जितेन्द्रियः॥१०३॥
एवं ध्यानपरो यस्तु यतिर्विगतमत्सरः। स याति परमानन्दं परं ज्योतिः सनातनम्॥१०४॥

वह नित्य उपनिषद् वाक्यों का पाठ करे। वेदान्तार्थ का चिन्तन करे। वह जितेन्द्रिय होकर सहस्रशीर्ष देव का सदा ध्यान करे। जो यति मत्सर रहित तथा ध्यानतत्पर है, वह परमानन्द परमज्योति सनातन देव को प्राप्त करता है।।१०३-१०४।।

इत्येवमाश्रमाचारान्यः करोति द्विजः क्रमात्।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥१०५॥
वर्णाश्रमाचाररताः सर्वपापविवर्जिताः। नारायणपरा यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥१०६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सदाचारेषु गृहस्थवानप्रस्थयतिधर्मनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

जो द्विज क्रमशः इन आश्रमाचार का क्रमशः पालन करता है, वह उस परमस्थान पर जाता है, जहां जाने पर शोक नहीं रह जाता। जो वर्णाश्रम के आचार का पालन करते हैं, सर्वपाप विनिर्मुक्त हैं, ऐसे नारायण-परायण विष्णु के परमपद को प्राप्त करते हैं।।१०५-१०६।।

।।२७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

विष्णु मन्दिर में ध्वजारोपण का वर्णन

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल श्राद्धस्य विधिमुत्तमम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१॥
क्षयाहपूर्वदिवसे स्नात्वा चैकाशनो भवेत्।
अधःशायी ब्रह्मचारी निशि विप्रान्निमन्त्रयेत्॥२॥
दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गं तथैव च। रत्योषधिपरान्नानि श्राद्धकर्त्ता विवर्जयेत्॥३॥
अध्वानं कलहं क्रोधं व्यवायं च धुरं तथा।
श्राद्धकर्त्ता च भोक्ता च दिवास्वापं च वर्जयेत्॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनि शार्दूल! अब आप श्राद्ध की उत्तम विधि का श्रवण करे। इसे सुनकर व्यक्ति निश्चित रूप से सर्वपाप रहित हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। मृत व्यक्ति की निधन तिथि के पहले वाले दिन स्नानोपरान्त एक ही बार भोजन ग्रहणोपरान्त रात्रि में धरती पर शयन करे। इसी दिन ब्राह्मणों को निमन्त्रण भी देना चाहिये। वह श्राद्धकर्त्ता, दन्तकाष्ठ, ताम्बूल, तैलमर्दन, पत्नी समागम, औषधिग्रहण तथा परान्न भोजन त्यागे। श्राद्धकर्त्ता तथा श्राद्ध में भोजनार्थ निमन्त्रित ब्राह्मण मार्ग पर्यटन, कलह, क्रोध, स्त्री संगम, भारवहन, दिवा निद्रा त्यागे।।१-४।।

श्राद्धे निमन्त्रितो यस्तु व्यवायं कुरुते यदि। ब्रह्महत्यामवाप्नोति नरकं चापि गच्छति॥५॥
श्राद्धे नियोजयेद्विप्रं श्रोत्रियं विष्णुतत्परम्। यथास्वाचारनिरतं प्रशान्तं सत्कुलोद्भवम्॥६॥
रागद्वेषविहीनं च पुराणार्थविशारदम्। त्रिमधुत्रिसुपर्णज्ञं सर्वभूतदयापरम्॥७॥
देवपूजारतं चैव स्मृतितत्त्वविशारदम्। वेदान्ततत्त्वसम्पन्नं सर्वलोकहिते रतम्॥८॥
कृतज्ञं गुणसम्पन्नं गुरुशुश्रूषणे रतम्। परोपदेशनिरतं सच्छास्त्रकथनैस्तथा॥९॥
एते नियोजितव्या वै श्राद्धे विप्रा मुनीश्वर।
श्राद्धे वर्ज्यान्प्रवक्ष्यामि शृणु तान्सुसमाहितः॥१०॥

जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित होकर तब स्त्री संगम करता है, वह ब्रह्महत्यापातक तथा नरक प्राप्त करता है। हे विप्र! जो श्रोत्रिय, विष्णुभक्त, अपने आचार में निरत, शान्त, उत्तमकुल में जन्मे, राग-द्वेष रहित, पुराण-शास्त्रविद ऋग्वेद के अंशत्रिमधु के जानकार, त्रिसुपर्ण अर्थात् ऋग्वेद के दशम मण्डल में उक्त तीन मुख्य मन्त्रों को जानने वाले, सर्वलोकहित तत्पर, कृतज्ञ, गुणी, गुरुसेवा करने वाले, उपदेशक, सत् शास्त्र की कथा कहने वाले ब्राह्मणों को हे मुनीश्वर! श्राद्धार्थ निमन्त्रित करे। श्राद्ध में जो वर्जित ब्राह्मण हैं, उनका वर्णन करता हूं। समाहित होकर श्रवण करिये।।५-१०।।

न्यूनाङ्गश्चाधिकाङ्गश्च कदर्यो रोगितस्तथा। कुष्ठी च कुनखी चैव लम्बकर्णः क्षतव्रतः॥११॥
नक्षत्रपाठजीवी च तथा च शवदाहकः। कुवादी परिवेत्ता च तथा देवलकः खलः॥१२॥
निन्दकोऽमर्षणो धूर्तस्तथैव ग्रामयाजकः। असच्छास्त्राभिनिरतः परान्ननिरतस्तथा॥१३॥
वृषलीसूतिपोष्टा च वृषलीपतिरेव च। कुण्डश्च गोलकश्चैव ह्ययाज्यानां च याजकः॥१४॥
दम्भाचारो वृथामुण्डी ह्यन्यस्त्रीधनतत्परः। विष्णुभक्तिविहीनश्च शिवभक्तिपराङ्मुखः॥१५॥
वेदविक्रयिणश्चैव व्रतविक्रयिणस्तथा। स्मृतिविक्रयिणश्चैव मन्त्रविक्रयिणस्तथा॥१६॥

हीन (कम) अंगों वाले, अधिक अंगों वाले (जैसे छः अंगुली वाले आदि), कायर, रोगी, कुष्ठी, कुनखी, लम्बे कान वाले, जो व्रत बीच में भंग कर देते हों, ज्योतिर्विद्, शवदाहक, कुतर्की, जिसने बड़े भाई के अविवाहित रहते अपना विवाह किया हो वह परिवेत्ता, देवलक, दुष्ट, निन्दारत रहने वाला, क्रोधी स्वभाव, धूर्त्त, ग्रामीण पुरोहित, असत् ग्रन्थों को पढ़ने वाला, पराया अन्न खाकर रहने वाला, शूद्रा स्त्री की सन्तान पालने वाला, वृषलीपति, कुण्ड (जिसे पति के जीवित रहते स्त्री ने अन्य पुरुष से उत्पन्न किया), गोलक (विधवा का अन्य पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न पुत्र), जो कुपात्र को यज्ञ कराये, घमण्डी, व्यर्थ शिर मुड़ाने वाला, अन्य के धन तथा पराई नारी का लोलुप, विष्णुभक्ति रहित, शिवभक्ति से विमुख, वेद विक्रेता, जो व्रतफल का विक्रेता हो, स्मृति शास्त्र विक्रयी, मन्त्र विक्रयी।।११-१६।।

गायकाः काव्यकर्त्तारो भिषक्छास्त्रोपजीविनः। वेदनिन्दापरश्चैव ग्रामारण्यप्रदाहकः॥१७॥
तथातिकामुकश्चैव रसविक्रयकारकः। कूटयुक्तिरतश्चैव श्राद्धे वर्ज्याः प्रयत्नतः॥१८॥

गायक, काव्यकर्त्ता, वैद्य, वेदनिन्दापरायण, ग्राम तथा वनों को दग्ध करने वाला, अतिकामुक, रसविक्रेता, सदा कूटयुक्ति में लगा, इनका श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक वर्जित करे।।१७-१८।।

निमन्त्रयीत पूर्वेद्युस्तस्मिन्नेव दिनेऽथवा। निमंत्रितो भवेद्विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥१९॥
श्राद्धे क्षणस्तु कर्त्तव्यः प्रसादश्चेति सत्तम।
निमन्त्रयेद्द्विजं प्राज्ञं दर्भपाणिर्जितेन्द्रियः॥२०॥
ततः प्रातः समुत्थाय प्रातःकृत्ये समाप्य च। श्राद्धं समाचरेद्विद्वान्काले कुतपसंज्ञिते॥२१॥

श्राद्ध से एक दिवस पूर्ण किंवा उसी दिन ब्राह्मण को निमन्त्रण देना चाहिये। जो विप्र निमंत्रित हो, वह ब्रह्मचारी तथा इन्द्रियजित् हो। हे सत्तम! श्राद्ध को प्रसन्नता पूर्वक सम्पन्न करे। जितेन्द्रिय श्राद्धकर्त्ता ब्राह्मण को हाथ में कुश धारण करके निमन्त्रण प्रदान करे। प्रातः उठकर नित्यक्रिया सम्पन्न करके वह सुधी व्यक्ति कुतपकाल में श्राद्ध सम्पन्न कर दे।।१९-२१।।

दिवसस्याष्टमे काले यदा मन्दायते रविः। स कालः कुतपस्तत्र पितॄणां दत्तमक्षयम्॥२२॥
अपराह्णः पितॄणां तु दत्तः कालः स्वयंभुवा।
तत्काल एव दातव्यं कव्यं तस्माद्द्विजोत्तमैः॥२३॥
यत्कव्यं दीयते द्रव्यैरकाले मुनिसत्तम। राक्षसं तद्धि विज्ञेयं पितॄणां नोपतिष्ठति॥२४॥

दिन के अष्टम काल के (आठवीं घड़ी) व्यतीत होने पर जब सूर्य मन्द होने लगते हैं, वह कुतुपकाल है। उस काल में पितरों को प्रदत्त सब अक्षय हो जाता है। स्वयंभु देवब्रह्मा ने पितरों को प्रदान करने हेतु अपराह्न काल निश्चित किया है। हे द्विजोत्तम! उस काल में ही कव्य (जो पितरों को दिया जाने वाला पदार्थ है, वही कव्य है) प्रदान करे। हे मुनिप्रवर! अकाल में जो कव्य पितरों के लिये दिया जाता है, वह राक्षसों के अधिकार में जाता है। वह पितरों के निकट नहीं पहुंचता।।२२-२४।।

कव्यं प्रदत्तं तु सायाह्ने राक्षसं तद्भवेदपि। दाता नरकमाप्नोति भोक्ता च नरकं व्रजेत्।।२५।।

क्षयाहस्य तिथेर्विप्र यदि दण्डमितिर्भवेत्।
विद्धापराह्निकायां तु श्राद्धं कार्यं विजानता।।२६।।

क्षयाहस्य तिथिर्या तु ह्यपराह्णद्वये यदि। पूर्वे क्षये तु कर्त्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।।२७।।

मुहूर्त्तद्वितये पूर्वदिने स्यादपरेऽहनि। तिथिः सायाह्नगा यत्र परा कव्यस्य विश्रुता।।२८।।

जो काव्य सायंकाल दिया जाता है, वह राक्षसों को जाता है। उसका दाता एवं भोक्ता, दोनों नरक जाते हैं। यदि मरणातिथि एक ही दण्ड रह जाये, तब विद्वान् मनुष्य उसी दिन अपराह्न में ही श्राद्ध करे। यदि मरणतिथि २ अपराह्न में पड़े, तब पूर्व क्षयाह तिथि में किंचित् श्राद्ध सम्पन्न करके बाकी कर्म द्वितीय दिन अपराह्न में करे। यदि क्षयाह की तिथि अपराह्न में (पहले ही दिन) दो मुहूर्त्त हो, तब सायंकाल जो तिथि पड़ती है, उस तिथि पर दिन में कव्यदान करना उत्तम है।।२५-२८।।

किञ्चित्पूर्वदिने प्राहुर्मुहूर्त्तद्वितये सति। नैतन्मतं हि सर्वेषां कव्यदाने मुनीश्वर।।२९।।

निमन्त्रितेषु विप्रेषु मिलितेषु द्विजोत्तम।
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां समाहरेत्।।३०।।

हे मुनीश्वर!, तथापि मतान्तर से कतिपय विद्वान् प्रथम दिन में दो मुहूर्त्त पर्यन्त क्षयतिथि काल को भी कव्य हेतु प्रशस्त कहते हैं, तथापि यह सबका मत नहीं है। हे द्विजोत्तम! जब वहां निमन्त्रित विप्रगण का आगमन हो जाये, तब वह व्यक्ति प्रायश्चित से विशुद्ध हो गया। श्राद्धकर्त्ता ब्राह्मणगण से उनकी आज्ञा ग्रहण करे।।२९-३०।।

श्राद्धार्थं समनुज्ञातो विप्रान्भूयो निमन्त्रयेत्।
उभौ च विश्वेदेवार्थं पित्रर्थं त्रीन्यथाविधि।।३१।।

देवतार्थं च पित्रर्थमेकैकं वा निमन्त्रयेत्। श्राद्धार्थं समनुज्ञातः कारयेन्मण्डलद्वयम्।।३२।।

अर्थात् उनसे श्राद्ध हेतु आज्ञा प्राप्त करके, पुनः उन विप्रगण को ही पुनः निमन्त्रित करना चाहिये। विधि यह है कि विश्वेदेव हेतु दो ब्राह्मणों को तथा पितृकार्य हेतु तीन ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे। किंवा देवता हेतु एक तथा पितृकार्य हेतु एक ही ब्राह्मण को आमंत्रित करे। जब विप्रगण श्राद्ध के लिये आज्ञा दे देते हैं, तब वहां दो मण्डल बनाये।।३१-३२।।

चतुरस्त्रं ब्राह्मणस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य वै।
वैश्यस्य वतुर्लं ज्ञेयं शूद्रस्याभ्युक्षणं भवेत्।।३३।।

ब्राह्मणानामभावे तु भ्रातरं पुत्रमेव च। आत्मानं वा नियुञ्जीत न विप्रं वेदवर्जितम्॥३४॥

ब्राह्मण चौकोर मण्डल तथा क्षत्रिय त्रिकोणमण्डल और वैश्य गोल मण्डल बनाये। शूद्र केवल जलसिंचन से भूमि पवित्र करे। यदि श्राद्धकर्त्ता को श्राद्ध हेतु ब्राह्मण न मिले तब अपने भ्राता, किंवा पुत्र को उस कार्य हेतु बुलाये अथवा स्वयं श्राद्ध भले ही कर ले, तथापि वेदवर्जित ब्राह्मण को निमन्त्रित न करे।।३३-३४।।

प्रक्षाल्य विप्रपादांश्च ह्याचांतानुपवेश्य च। यथावदर्चनं कुर्यात्स्मरन्नारायणं प्रभुम्॥३५॥

ब्राह्मणानां तु मध्ये च द्वारदेशे तथैव च।
अपहता इत्यृचा वै कर्त्ता तु विकिरेत्तिलान्॥३६॥

यवैर्दर्भैश्च विश्वेषां देवानामिदमासनम्। दत्त्वेति भूयो दद्याच्च दैवे क्षणप्रतीक्षणम्॥३७॥

अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने स्मृता।
अन्नदाने चतुर्थीस्याच्छेषाः संबुद्धयः स्मृताः॥३८॥

आसाद्य पात्रद्वितयं दर्भशाखासमन्वितम्। तत्पात्रे सेचयेत्तोयं शन्नोदेवीत्यृचा ततः॥३९॥

ब्राह्मण का चरण प्रक्षालन कराने के अनन्तर उनको आसनासीन कराना चाहिये। नारायण का चिन्तन करते-करते उन विप्र की पूजा करे। श्राद्धकर्त्ता ब्राह्मणों के बीच में तथा द्वार पर "अपहता" इत्यादि ऋचा पढ़ते हुये तिल फेंके। समस्त देवगण को यव तथा कुश का आसन प्रदान करे। तत्पश्चात् दैवेक्षण एवं प्रतीक्षण (देखरेख) का भार देना चाहिये। अक्षय्यासन में षष्ठी, आवाहन में द्वितीया, अन्नदानार्थ चतुर्थी तथा सम्बोधनार्थ अन्य तिथि का उपयोग होता है। अब दो पात्र कुश शाखा युक्त लाये। इन पात्रद्वय में "शन्नो देवि" इत्यादि मन्त्र से जल भरे।।३५-३९।।

यवोसीति यवान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे च वाग्यतः।
आवाहयेत्ततो देवान्विश्वे देवास्स इत्यृचा॥४०॥

या दिव्या इतिमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं समाहितः। गन्धैश्च पत्रपुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्यजेत्ततः॥४१॥

देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणांस्तथा। तिलसंयुक्तदर्भैश्च दद्यात्तेषां सदासनम्॥४२॥

तत्पश्चात् "यवोऽसि" इत्यादि मन्त्र द्वारा जौ छिड़के तथा मौनी होकर गन्ध-पुष्पादि निवेदित करना चाहिये। इसके पश्चात् "विश्वे देवास्म" इत्यादि से देवता का आवाहन करे। इसके पश्चात् समाहित चित्त से "या दिव्या" इत्यादि द्वारा अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। उन आवाहन किये गये देवताओं का पूजन गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप-दीपादि से करना चाहिये। अब देवगण की आज्ञा लेकर पितरों की पूजा के लिये तत्पर हो जाये। तिल एवं कुश द्वारा पितृगण को उत्तम आसन प्रदान करना चाहिये।।४०-४२।।

पात्राण्यासादयेत्त्रीणि ह्यर्घाय पूर्ववत्द्विजः।
शन्नो देव्या जलं क्षिप्त्वा तिलोसीति तिलान्क्षिपेत्॥४३॥

उशन्त इत्यृचावाह्य पितॄन्विप्रः समाहितः।
या दिव्या इति मन्त्रेण दद्यादर्घ्यं च पूर्ववत्॥४४॥

गन्धैश्च पत्रपुष्पैश्च धूपैर्दीपैश्च सत्तम। वासोभिर्भूषणैश्चैव यथाविभवमर्चयेत्॥४५॥

ततोऽन्नाग्रं तमादाय घृतयुक्तं विचक्षणः।

अग्नौ करिष्य इत्युक्त्वा तेभ्योऽनुज्ञां समाहरेत्॥४६॥

अब पूजक व्यक्ति पूर्ववत् अर्घ्य हेतु तीन पात्र रखकर उन पर "शन्नो देव्या" इत्यादि द्वारा जल छिड़कने के उपरान्त "तिलोऽसि" इत्यादि द्वारा तिल क्षेपण उस पर करे। अब उस पूजक को समाहित चित्त से "उशन्तः" इत्यादि से पितृगण का आवाहन तथा "या देव्या" इत्यादि द्वारा पूर्ववत् अर्घ्यदान करे। हे मुनिप्रवर! अपनी धनशक्ति के अनुरूप उन आवाहन किये गये पितृगण की पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, वस्त्र, आभूषणादि से करनी चाहिये। तत्पश्चात् वह बुद्धिमान् व्यक्ति घृताक्त अन्नाग्र लेकर पितृगण से हवन हेतु आज्ञा इस मन्त्र से प्राप्त करे "अग्नौ करिष्ये"।।४३-४६।।

करवै करवाणीति चापृष्टा ब्राह्मणा मुने। कुरुष्व क्रियतां वेति कुर्विति ब्रूयुरेव च॥४७॥

उपासनाग्निमाधाय स्वगृह्योक्तविधानतः। सोमाय च पितृमते स्वधा नम इतीरयेत्॥४८॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इतीह वा।

स्वाहांतेनापि वा प्राज्ञो जुहुयात्पितृयज्ञवत्॥४९॥

तदनन्तर ब्राह्मण से यह पूछना चाहिये "अब क्या करूं?" तब ब्राह्मण कहें "आगे का कार्य करो।" यह आज्ञा मिलने के उपरान्त अपने गृह्यसूत्रानुसार "सोमाय नमः", "पितृमते स्वधा" कहकर "अग्नये स्वाहा", "कव्य वाहनाय स्वाहा" मन्त्र द्वारा पितृयज्ञवत् होम करे।।४७-४९।।

आभ्यामेवाहुतिभ्यां तु पितॄणां तृप्तिरक्षया।

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ होमो विधीयते॥५०॥

यथाचारं प्रकुर्वीत पाणावग्नौ च वा द्विज। नह्यग्निर्दूरगः कार्यः पार्वणे समुपस्थिते॥५१॥

संधायाग्निं ततः कार्यं कृत्वा तं विसृजेत्कृती।

यद्यग्निर्दूरगो विप्र पार्वणे समुपस्थिते॥५२॥

भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद्द्विजैः।

क्षयाहे चैव संप्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि॥५३॥

तथैव भ्रातरस्तत्र लौकिकाग्नावपि स्थिताः।

उपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते॥५४॥

यद्यग्नौ जुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी।

उपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति वै द्विजाः॥५५॥

उपरोक्त दोनों आहुति के द्वारा पितृगण की तृप्ति विधानार्थ अग्नि में होम करे। यदि अग्नि न हो, तब ब्राह्मण के हाथ पर रखने से भी हवन विधि मानी जाती है। हे द्विज! आचार तथा विधान के अनुसार ब्राह्मण के हाथ पर रखकर, किंवा अग्नि में होम करे। पार्वण श्राद्धकाल में अग्नि निकट ही रहे। श्राद्धकर्त्ता अग्निस्थापन

के अनन्तर होम करने के पश्चात् अग्नि को विसर्जित करे। हे विप्र! यदि पार्वण श्राद्ध के समय अग्नि दूर हो, तब साग्निक द्विजों तथा भ्रातागण से सविधि श्राद्ध सम्पन्न कराये। यदि क्षयाह काल आ जाता है और उपासनाग्नि दूर हो, भाई भी वहां न हों, तब लौकिकाग्नि में हवन किया जा सकता है। यदि उपासनाग्नि दूर हो, तथापि भ्रातागण निकट हों, तब ब्राह्मण के हाथों पर अथवा अग्नि में होम करने वाला पातकी कहा जाता है। कतिपय द्विजगण उपासनाग्नि को दूर रखते हैं, यह उनका मत है।।५०-५५।।

तच्छेषं विप्रपात्रेषु विकिरेत्संस्मरन्हरिम्। भक्ष्यैर्भोज्यैश्च लेह्यैश्च स्वाद्यैर्विप्रान्प्रपूजयेत्।।५६।।
अन्नत्यागं ततः कुर्य्यादुभयत्र समाहितः। आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः।।५७।।
ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते। इति संप्रार्थयेद्देवान्ये देवास ऋचा नु वै।।५८।।

अन्ततः शेष अग्नि को विप्रपात्र में हरिस्मरण के साथ बिखेर देना चाहिये। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य प्रभृति रुचिकर पदार्थ द्वारा विप्रगण की पूजा करके दोनों पात्र में अन्न रखकर कहे "महाभाग महाबली विश्वेदेवगण! आप आईये। श्राद्ध में जो जहां के लिये विहित हैं, वे इस कर्म को सम्यक् रूप से सम्पन्न करने हेतु सावधान हो जायें।" यह प्रार्थना करके "ये देवास" इत्यादि ऋचा द्वारा देवताओं की प्रार्थना करनी चाहिये।।५६-५८।।

तथा संप्रार्थयेद्विप्रान्ये च हेति ऋचा पितॄन्।
अमूर्त्तानां मूर्वानां च पितॄणां दीप्ततेजसाम्।।५९।।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम्। एवं पितॄन्नमस्कृत्य नारायणपरायणः।।६०।।
दत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे विनिवेदयेत्।
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे भुञ्जीरन्वाग्यता द्विजाः।।६१।।
हसते वदते कोऽपि राक्षसे तद्भवेद्धविः। यथाचारं प्रदेयं च मधुमांसादिकं तथा।।६२।।

तथा "अमूर्त्त, मूर्त्त, दीप्ततेज वाले, योगचक्षु सम्पन्न, ध्यानमग्न पितृगण को प्रणाम करता हूं!।" इस मन्त्र से पितृगण को प्रणाम करे। तदनन्तर श्राद्धकर्त्ता स्वयं नारायण-परायण होकर हवि को तथा इस श्राद्ध कर्म को श्रीविष्णु को अर्पित करे। तब सभी ब्राह्मण मौनी होकर उसका भक्षण करे। भोजन के समय वार्त्ता करने तथा हंसी करने से वह हविष्यान्न राक्षस हो जाता है। यथाचार विप्रगण को मधु मांसादि भी दिया जा सकता है।।५९-६२।।

पाकादि च प्रशंसेरन् वाग्यता धृतभाजनाः।
यदि पात्रं त्यजेत्कोऽपि ब्राह्मणः श्राद्धयोजितः।।६३।।
श्राद्धहन्ता स विज्ञेयो नरकायोपपद्यते। भुंजानेषु च विप्रेषु ह्यन्योन्यं संस्पृशेद्यदि।।६४।।
तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत्। भुज्यमानेषु विप्रेषु कर्त्ता श्रद्धापरायणः।।६५।।
स्मरेन्नारायणं देवमनन्तमपराजितम्। रक्षोघ्नान्वैष्णवांश्चैव पैतृकांश्च विशेषतः।।६६।।
जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा। त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमानं यजूंषि च।।६७।।

विप्रगण भोजनपात्र हाथ में पकड़कर पाक की प्रशंसा करने के उपरान्त मौनी होकर भोजन करे। श्राद्ध

में निमन्त्रण द्वारा बुलाया गया कोई भी ब्राह्मण उस पात्र को भोजन काल में छोड़ता है, तब वह नरक गमन करेगा। भोजन काल में यति भोजनकर्त्ता ब्राह्मण परस्परतः एक दूसरे का स्पर्श कर देते हैं, तब अन्न भोजनोपरान्त १०८ गायत्री जप करे। जब विप्रगण भोजन कर रहे हों, तब श्राद्धकर्त्ता सश्रद्ध भाव से अनन्त-अपराजित भगवान् नारायण देव का स्मरण करता रहे। वह मुख्यतः रक्षोघ्न मन्त्रों का, वैष्णव एवं पितृगण के मन्त्रों का जप करता रहे। वह पुरुष सूक्त, नाचिकेत त्रय, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, पावमान, एवं यजुःमन्त्रों को जपता रहे।।६३-६७।।

सामान्यपि तथोक्तानि वदेत्पुण्यप्रदांस्तथा। इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चैव हि॥६८॥
भुञ्जीरन्ब्राह्मणा यावत्तावदेताञ्जपेद्विज। ब्राह्मणेषु च भुक्तेषु विकिरं विक्षिपेत्तथा॥६९॥
शेषमन्नं वेदच्चैव मधुसूक्तं च वै जपेत्। स्वयं च पादौ प्रक्षाल्य सम्यगाचम्य नारद॥७०॥
आचांतेषु च विप्रेषु पिण्डं निर्वापयेत्ततः। स्वस्तिवाचनकं कुर्यादक्षय्योदकमेव च॥७१॥
दत्त्वा समाहितः कुर्यात्तथा विप्राभिवादनम्।
अचालयित्वा पात्रं तु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः॥७२॥
वत्सरं पितरस्तेषां भवंत्युच्छिष्टभोजिनः। दातारो नोऽभिवर्द्धंतामित्याद्यैः स्मृतिभाषितैः॥७३॥
आशीर्वचों लभेत्तेभ्यो नमस्कारं चरेत्ततः।
दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या ताम्बूलं गन्धसंयुतम्॥७४॥

उस समय साममन्त्रों को तथा पुण्यप्रदाता मन्त्रों का पाठ करे। इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र का भी पाठ करे। हे द्विज! जिस काल तक ब्राह्मणगण भोजन करते रहे, तब तक उपर्युक्त सभी पाठ करता रहे। ब्राह्मण के भोजनोपरान्त बचा अन्न बिखेर कर मधुसूक्त पढ़े। हे नारद! तब श्राद्धकर्त्ता ब्राह्मणगण के आचमन के पश्चात् अपना पैर प्रक्षालित करके आचमन करे तथा पिण्ड निर्वपण करे। स्वस्तिवाचन एवं अक्षय्योदक के उपरान्त वह श्राद्ध करने वाला समाहित चित्त से ब्राह्मणों का अभिवादन करे। जो द्विज पात्र को हाथ में हिलाये बिना स्वस्तिवाचन करते हैं, उनके पितृगण को एक वर्ष तथा उच्छिष्ट भोजन ही मिलता है। श्राद्ध करने वाला "हमारे दाता सदा वैभवशाली रहे" यह स्मृति में कहा आशीर्वाद ब्राह्मणों से पाकर उनको प्रणाम करे। उनको यथाशक्ति गंधयुक्त ताम्बूल तथा दक्षिणा प्रदान करे।।६८-७४।।

न्युब्जपात्रमथानीय स्वधाकारमुदीरयेत्। वाजेवाजे इति ऋचा पितॄन्देवान्विसर्जयेत्॥७५॥
भोक्ता च श्राद्धकृत्तस्यां रजन्यां मैथुनं त्यजेत्।
तथा स्वाध्यायमध्वानं प्रयत्नेन परित्यजेत्॥७६॥
अध्वगश्चातुरश्चैव विहीनश्च धनैस्तथा। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेम्ना वास्पृश्यभार्यकः॥७७॥

तब श्राद्धकर्त्ता न्युब्जपात्र लाये तथा स्वधाकार कहे। "वाजे वाजे" इत्यादि द्वारा पितृगण एवं देवगण का विसर्जन करे। जिन ब्राह्मणगण ने श्राद्धभोजन किया है तथा जिस व्यक्ति ने श्राद्ध किया है, ये सभी उस रात्रि स्त्रीगमन न करे। साथ ही स्वाध्याय एवं मार्गगमन विशेषतः त्याग करे। पथिक, आतुर व्यक्ति, धनहीन व्यक्ति कच्चे अन्न द्वारा होने वाला आमश्राद्ध करे किंवा पत्नी के साथ स्वर्ण स्पर्श करे।।७५-७७।।

द्रव्याभावे द्विजाभावे ह्यन्नमात्रं च पाचयेत्। पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः॥७८॥

अत्यन्तहव्यशून्यश्चेत्स्वशक्त्या तु तृणं गवाम्।
स्नात्वा च विधिवद्विप्र कुर्याद्वा तिलतर्पणम्॥७९॥

अथवा रोदनं कुर्यादत्युच्चैर्विजने वने। दरिद्रोऽहं महापापी वदन्निति विचक्षणः॥८०॥

परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न र्पियते पितॄन्।
तत्कुलं नाशमायाति ब्रह्महत्यां च विन्दति॥८१॥

जब द्रव्य का भी अभाव हो, (उत्तम लक्षणान्वित) ब्राह्मण न मिले तब स्वयं अन्नपाक करके वह बुद्धिमान् व्यक्ति पैतृक सूक्त से होम करे। यदि हव्य भी न हो, तब वह सशक्ति के अनुरूप गौओं को तृण खिलाये अथवा हे विप्र! वह विधिवत् स्नान करके मात्र तिल का तर्पण करे। यह भी न हो सके तब वह विजन वन में रुदन करे कि मैं दरिद्र, महापापी हूं।" इस प्रकार का वचन वह बुद्धिमान् पुरुष करे। जो श्राद्धकर्त्ता (क्षयाह के) दूसरे दिन पितरों का श्राद्ध करके उनका तर्पण नहीं करता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। उसे ब्रह्महत्या पातक लगता है।।७८-८१।।

श्राद्धं कुर्वन्ति ये मर्त्याः श्रद्धावंतो मुनीश्वर।
न तेषां संततिच्छेदः सम्पन्नास्ते भवन्ति च॥८२॥

पितॄन्यजन्ति ये श्राद्धे तैस्तु विष्णुः प्रपूजितः।
तस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुष्यन्ति देवताः॥८३॥

पितरो देवताश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा। यक्षाश्च सिद्धा मनुजा हरिरेव सनातनः॥८४॥

येनेदमखिलं जातं जगत्स्थावरजंगमम्। तस्माद्दाता च भोक्ता च सर्वं विष्णुः सनातनः॥८५॥

हे मुनीश्वर! जो श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करता है, वह सम्पन्न रहता है। उसका वंश कभी निर्मूल नहीं होता। जो पितरों की पूजा श्राद्ध द्वारा करता है, उसके द्वारा विष्णु की पूजा हो गई। इस प्रकार जगन्नाथ के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पितर, देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध, मनुष्य—इन सबको सनातन हरि ही माने। जिस प्रभु से समस्त स्थावर-जंगम उत्पन्न है, वे ही दाता, भोक्ता सनातन विष्णु ही हैं।।८२-८५।।

यदस्ति विप्र यन्नास्ति दृश्यं चादृश्यमेव च। सर्वं विष्णुमयं ज्ञेयं तस्मादन्यन्न विद्यते॥८६॥

आधारभूतो विश्वस्य सर्वभूतात्मकोऽव्ययः।
अनोपम्यस्वभावश्च भगवान्हव्यकव्यभुक्॥८७॥

परब्रह्माभिधेयो य एक एव जनार्दनः। कर्त्ता कारियता चैव सर्वं विष्णुः सनातनः॥८८॥

इत्येवं ते मुनिश्रेष्ठ श्राद्धस्य विधिरुत्तमः। कथितः कुर्वतामेवं पापं सद्यो विलीयते॥८९॥

य इदं पठते भक्त्या श्राद्धकाले द्विजोत्तमः। पितरस्तस्य तुष्यन्ति सन्ततिश्चैव वर्द्धते॥९०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे श्राद्धक्रियावर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

हे विप्र! इस जगत् में जो कुछ अदृश्य किंवा दृश्य पदार्थ है, वह सब विष्णुमय है। विष्णु के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं। वे विश्वाधार, सर्वभूतात्मक, अव्यय, अनुपम स्वभाव, हव्य-कव्यभोजी परब्रह्म नामक एकमात्र देव जनार्दन हैं। वे ही कर्त्ता-कारयिता तथा सनातन देव विष्णु ही हैं। हे मुनिवर! मैंने आपसे यह उत्तम श्राद्धविधि कहा है। जो इस विधान के साथ श्राद्धकृत्य सम्पन्न करते हैं, उनका पाप सद्यः विलीन हो जाता है। जो उत्तम द्विज भक्तिभाव से यह आख्यान पढ़ते हैं, उनके पितृगण उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी सन्तान वृद्धि होती है।।८६-९०।।

।।२८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
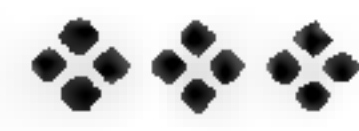
अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

तिथि निर्णय प्रसंग

सनक उवाच

तिथीनां निर्णयं वक्ष्ये प्रायश्चित्तविधिं तथा। श्रृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ कर्मसिद्धिर्यतो भवेत्।।१।।

श्रौतं स्मार्त्तं व्रतं दानं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम्।
अनिर्णीतासु तिथिषु न किंचित्फलति द्विज।।२।।

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्द्दशी। अमावस्या तृतीया च ह्युपवासव्रतादिषु।।३।।

देवर्षि सनक कहते हैं—अब मैं तिथिनिर्णय एवं प्रायश्चित्त विधान कहता हूं। हे मुनिप्रवर! इसे श्रवण करे। यह कर्मसिद्धिप्रद है। हे द्विज! श्रौत, स्मार्त्त, व्रताचरण, दान तथा अन्य वैदिक कर्मों को अनिर्णित तिथि पर जो करता है, उसका किंचित् फल नहीं मिलता। एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, पौर्णमासी, चतुर्दशी, अमावस्या, तृतीया तिथि या यदि आगे की तिथि से विद्ध हो, तब वह उपवास, व्रतादि हेतु प्रशस्त है।।१-३।।

परविद्धाः प्रशस्ताः स्युर्न ग्राह्याः पूर्वसंयुताः।
नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी।।४।।
दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्याः स्युः कदाचन।
दर्शं च पौर्णमासीं च सप्तमीं पितृवासरम्।।५।।

पूर्वविद्धं प्रकुर्वाणो नरकायोपपद्यते। कृष्णपक्षे पूर्वविद्धां सप्तमीं च चतुर्दशीम्।।६।।
प्रशस्तां केचिदाहुश्च तृतीयां नवमीं तथा। व्रतादीनां तु सर्वेषां शुक्लपक्षो विशिष्यते।।७।।
अपराह्णाच्च पूर्वाह्नं ग्राह्यं श्रेष्ठतरं यतः। असंभवे व्रतादीनां यदि पौर्वाह्निकी तिथिः।।८।।
मुहूर्तद्वितयं ग्राह्यं भगवत्युदिते रवौ। प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा।।९।।

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः। तिथिनक्षत्रसंयोगविहितव्रतकर्मणि॥१०॥

तथापि पहले कि तिथि से यदि ये सभी तिथियां विद्ध हों, तब उनको ग्राह्य न माने। जो नागविद्ध षष्ठी, शिवविद्ध सप्तमी, दशमी से विद्ध एकादशी हो, तब उपवासी न रहे। अमावस्या, पूर्णिमा, सप्तमी, पितृदिवस— जब ये तिथियां पूर्वतिथि से बिद्ध हो, तब उस तिथि पर व्रती-उपवासी रहने वाला नरक जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्णपक्षीय पूर्वविद्धा सप्तमी, चतुर्दशी, तृतीया एवं नवमी प्रशस्त है। व्रतादि शुभकर्म हेतु शुक्लपक्ष को श्रेष्ठ मानते हैं। पूर्वाह्न की तिथि ग्राह्य एवं श्रेष्ठ कही गई है। अपराह्न तिथि की तुलना में पूर्वाह्न तिथि अधिक महत्वपूर्ण है। यदि पूर्वाह्नकालिक तिथि न मिले तब सूर्योदय के दो मुहूर्त्त की तिथि व्रताचरण हेतु प्रशस्त है। लेकिन रात्रि के व्रतों के लिये प्रदोष व्यापिनी तिथि को ग्रहण करे। जो व्रत ऐसा हो, जिसमें तिथि एवं नक्षत्र का संयोग आवश्यक हो, उसमें सूर्यास्तकालीन नक्षत्र को ही श्रेष्ठ समझ कर उपवास करे। रात्रि व्रत हेतु प्रदोषव्यापिनी तिथि को ही ग्रहण करे। अन्यथा वह निष्फल है।।४-१०।।

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या त्वन्यथा निष्फलं भवेत्।
अर्द्धरात्रादधो या तु नक्षत्रव्यापिनी तिथिः॥११॥
सैव ग्राह्या मुनिश्रेष्ठ नक्षत्रविहितव्रते। यद्यर्द्धरात्रयोर्व्याप्तं नक्षत्रं तु दिनद्वये॥१२॥
तत्पुण्यं तिथिसंयुक्तं नक्षत्रं ग्राह्यमुच्यते। अर्द्धरात्रद्वये स्यातां नक्षत्रं च तिथिर्यदि॥१३॥
क्षये पूर्वा प्रशस्ता स्याद्वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।
अर्द्धरात्रद्वये व्याप्ता तिथिर्नक्षत्रसंयुता॥१४॥
ह्रासवृद्धिविशून्या चेद् ग्राह्या पूर्वा तथा परा।
ज्येष्ठासंमिश्रितम्मूलं रोहिणी वह्निसंयुता॥१५॥
मैत्रेण संयुता ज्येष्ठा संतानादिविनाशिनी।
ततः स्युस्तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा॥१६॥

हे मुनिप्रवर! जो नक्षत्र व्यापिनी तिथि अर्द्धरात्रि के पश्चात् भी रहे, वही नक्षत्र विहित व्रत हेतु ग्रहण करना चाहिये। यदि उभय दिवस में अर्द्धरात्रिपर्यन्त वही नक्षत्र रहता है, जिसमें व्रत करना है, तब यही तिथि युक्त नक्षत्र पुण्यदायक एवं ग्रहणीय माना गया है। यदि दो अर्द्धरात्रि पर्यन्त नक्षत्र तथा तिथि हो, ऐसी स्थिति में तिथि क्षय में पूर्वा तिथि ही प्रशस्त मानी गयी है। वृद्धि में उत्तरातिथि प्रशस्त मानी गयी है, तथापि एक नक्षत्र से युक्त तिथि दो अर्द्धरात्रि पर्यन्त व्याप्त रहे, साथ ही क्षय-वृद्धि रहित हो, तब पूर्वा-परा-दोनों तिथियां ग्रहण करे। ज्येष्ठा से युक्त मूल, वह्नि संयुक्त रोहिणी, मैत्र नक्षत्र युता ज्येष्ठा में जो कर्म होते हैं, वह सन्तानादि नाशक हो जाते हैं। इनको छोड़कर सभी तिथियां पुण्यप्रदा हैं, तथापि कर्मानुष्ठान दिन में ही हो।।११-१६।।

रात्रिव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते। तिथिर्नक्षत्रयोगेन या पुण्या परिकीर्तिता॥१७॥
तस्यां तु तद्व्रतं कार्यं सैव कार्या विचक्षणैः।
उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशी व्रते॥१८॥

समस्त रात्रिकालीन व्रताचरण हेतु रात्रियोग की ही विशेषता मानी गयी है। जो तिथि नक्षत्र एवं तिथि योग

के कारण पुण्यमयी कहीं गयी है, सुधी लोग उसी समय व्रत करे। व्रताचार हेतु उदयव्यापिनी श्रवण द्वादशी ग्राह्य कही गयी है।।१७-१८।।

सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावद् ग्राह्या जपादिषु।
सङ्क्रान्तिषु तु सर्वासु पुण्यकालो निगद्यते॥१९॥
स्नानदानजपादीनां कुवर्तामक्षयं फलम्। तत्र कर्कटको ज्ञेयो दक्षिणायनसङ्क्रमः॥२०॥
पूर्वतो घटिकास्त्रिंशत्पुण्यकालं विदुर्बुधाः। वृषभे वृश्चिके चैव सिंहे कुम्भे तथैव च॥२१॥
पूर्वमष्टमुहूर्तास्तु ग्राह्याः स्नानजपादिषु। तुलायां चैव मेषे च पूर्वतः परतस्तथा॥२२॥
ज्ञेया दशैव घटिका दत्तस्याक्षयतावहाः। कन्यायां मिथुने चैव मीने धनुषि च द्विज॥२३॥

जब तक सूर्य-चन्द्र ग्रहण रहे, वह काल जपादि कर्म हेतु उत्तम है। सभी संक्रान्ति काल को पुण्यकाल कहा गया है। संक्रान्ति के समय स्नान-दान-जप आदि करने से उनका फल अक्षय हो जाता है। कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन काल है। बुद्धिमान् व्यक्ति उससे पूर्व वाली तीस घड़ी को पुण्यकाल कह गये हैं। वृषभ, वृश्चिक, सिंह, कुंभ संक्रान्ति के पहले वाले आठ मुहूर्त स्नान-जप आदि हेतु ग्रहणीय हैं। तुला-मेष संक्रान्ति का पूर्वकाल एवं परकाल, यह दोनों ग्रहण योग्य माना गया है। हे द्विजवर! लेकिन कन्या, मिथुन, मीन तथा धन संक्रान्ति की पूर्व दस घटी ही ग्राह्य समझे।।१९-२३।।

घटिकाः षोडश ज्ञेया परतः पुण्यदायिकाः। माकरं सङ्क्रमं प्राहुरुत्तरायणसंज्ञकम्॥२४॥
परास्त्रिंशच्च घटिकाश्चत्वारिंशच्च पूर्ववत्।
आदित्यशीतकिरणौ ग्राह्यावस्तंगतौ यदि॥२५॥
स्नात्वा भुञ्जीत विप्रेन्द्र परेद्युः शुद्धमण्डलम्।
दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूः स्मृता॥२६॥
अमावस्या द्विधा प्रोक्ता विद्वद्भिर्धर्मलिप्सुभिः।
सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साग्निकैः श्राद्धकर्मणि॥२७॥
कुहूः स्त्रीभिस्तथा शूद्रैरपिवानग्निकैस्तथा। अपराह्णद्वयव्यापिन्यमावास्या तिथिर्यदि॥२८॥
क्षये पूर्वा तु कर्त्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।
अमावस्या प्रतीता चेन्मध्याह्नात्परतो यदि॥२९॥
भूतविद्धेति विख्याता सद्भिः शास्त्रविशारदैः। अत्यन्तक्षयपक्षे तु परेद्युर्नापराह्णगा॥३०॥

मकर संक्रान्ति के सोलह घटी बाद वाला समय ही पुण्यकाल कहा गया है। मकर संक्रान्ति उत्तरायण काल है। यदि सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण रहते अस्त हों, तब सूर्यास्त के पश्चात् की तीस घटी तथा चन्द्रास्त के उपरान्त की चालीस घटी तक पुण्यकाल कहा गया है। हे विप्रेन्द्र! अगले दिन व्यक्ति स्वगृहमण्डल को शुद्ध करके स्नानोपरान्त भोजन ग्रहण करे। जब अमावस्या को चन्द्रदर्शन हो, तब वह **सिनिवाली** कही जाती है। जब अमावस्या को चन्द्रदर्शन न हो, तब वही **कुहू** है यह धर्मज्ञ विद्वानों ने द्विविध अमावस्या कहा है। सिनिवाली

अमावस्या को द्विजगण जो अग्निहोत्री हैं, वे श्राद्ध हेतु ग्रहण करे। जो साग्निक नहीं हैं अर्थात् शूद्र, स्त्री एवं अग्निस्थापन रहित द्विजगण के लिये कुहू ग्राह्य है। यदि अमावस्या दो अपराह्न पर्यन्त व्याप्त रहे, तब पूर्व अपराह्न काल में क्षयाह श्राद्ध करे। द्वितीय अपराह्न में वृद्धि श्राद्ध करे। भूतविद्धा अमावस्या तिथि वह है, जो अमावस्या मध्याह्न के उपरान्त पड़ती है, ऐसा शास्त्रज्ञ कहते हैं। अत्यन्त क्षयपक्ष दूसरे दिन की अमावस्या तिथि को ग्रहण करे। अपराह्न वाली अमावस्या ग्रहण न करे।।२४-३०।।

तत्र ग्राह्या सिनीवाली सायाह्नव्यापिनी तिथिः।
अर्वाचीनक्षये चैव सायाह्नव्यापिनी तथा॥३१॥
सिनीवाली परा ग्राह्या सर्वथा श्राद्धकर्मणि।
अत्यन्ततिथिवृद्धौ तु भूतविद्धां परित्येजत्॥३२॥
ग्राह्या स्यादपराह्णस्था कुहूः पैतृककर्मणि।
यथार्वाचीनवृद्धौ तु संत्याज्या भूतसंयुता॥३३॥

तब सायंकाल पर्यन्त व्यापिनी सिनिवाली तिथि ग्रहण करने का नियम है। श्राद्धकर्म हेतु परासिनिवाली ही ग्रहण करने की विधि है। जब अत्यन्त तिथिवृद्धि हो, तब भूतविद्धा तिथि त्यागे। पितृकर्म के लिये अपराह्णस्था कुहु ग्राह्य है। नवीन वृद्धि होने पर जो सिनिवाली विद्ध हो, वह पूर्णतः त्यागे।।३१-३३।।

परेद्युर्विबुधश्रेष्ठैः कुहूर्ग्राह्या पराह्णगा। मेध्याह्नद्वितये व्याप्ता ह्यमावस्या तिथिर्यदि॥३४॥
तत्रेच्छया स संग्राह्या पूर्वा वाथ पराथवा।
अन्वाधानं प्रवक्ष्यामि सन्तः सम्पूर्णपर्वणि॥३५॥
प्रतिपद्दिवसे कुर्याद्यागं च मुनिसत्तम। पर्वणो यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः॥३६॥
यागकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः।
मध्याह्नद्वितये स्याताममावस्या च पूर्णिमा॥३७॥
परेद्युरेव विप्रेन्द्र सद्यः कालो विधीयते॥३८॥

अगले दिन (पर दिन) पराह्णगता कुहु को उत्तम विद्वान् ग्राह्य कह गये हैं। यदि अमावस्या दो मध्याह्न व्यापिनी हो, उस स्थिति में व्यक्ति स्वेच्छा से पूर्व किंवा पर में से किसी को भी ग्रहण करे। हे मुनिप्रवर! अब अन्वाधान कर्म कहता हूं। प्रतिपदा तिथि पर यह याग करना चाहिये। पूर्व के चतुर्थ अंश को, प्रतिपदा के आदि के तीन चरण को विद्वान्‌गण यज्ञकाल कहे गये हैं। हे विप्रेन्द्र! यदि अमावस्या एवं पूर्णिमा मध्याह्नद्वय तक व्याप्त हो, तब पर दिन को पुण्यकाल कहते हैं।।३४-३८।।

पूर्वद्वये परेद्युः स्यात्सङ्गवात्परतो यदि। सद्यः कालः परेद्युः स्याज्ज्ञेयमेवं तिथिक्षये॥३९॥
सर्वैरेकादशी ग्राह्या दशमीपरिवर्जिता। दशमीसंयुता हन्ति पुण्यं जन्मत्रयार्जितम्॥४०॥
एकादशी कलामात्रा द्वादश्यां तु प्रतीयते।
द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति चेत्सा परा स्मृता॥४१॥

लेकिन उन दो दिनों में से पर दिन तब ग्रहण किया जाना चाहिये, जब प्रातःस्नानोपरान्त मुहूर्त्तत्रय पर्यन्त वह तिथि व्याप्त रहे। यही नियम समस्त तिथिक्षय होने पर पर दिन ग्रहण हेतु प्रभावी रहेगा। ऐसी एकादशी जो दशमी से अविद्ध है, सभी के लिये ग्राह्य मानी गयी है। दशमीयुक्त एकादशी तो व्रती के त्रिजन्मार्जित पुण्यों का नाश करती है। द्वादशी में कलामात्र एकादशी हो तथा द्वादशी त्रयोदशी से कलामात्र संयुक्त रहे, तब उसे परा कहते हैं।।३९-४१।।

सम्पूर्णैकादशी शुद्धा द्वादश्यां च प्रतीयते।
त्रयोदशी च रात्र्यन्ते तत्र वक्ष्यामि निर्णयम्॥४२॥
पूर्वा गृहस्थैः सा कार्य्या ह्युत्तरा यतिभिस्तथा।
गृहस्थाः सिद्धिमिच्छन्ति यतो मोक्षं यतीश्वराः॥४३॥
द्वादश्यां तु कलायां वा यदि लभ्येत पारणा।
तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथिः॥४४॥
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम्।
गृहस्थानां तु पूर्वोक्ता यतीनामुत्तरा स्मृता॥४५॥

यदि सम्पूर्णतः एकादशी द्वादशी में मिलित सी प्रतीत हो, रात्रि के अन्त में त्रयोदशी पड़े, तब उसके सम्बन्ध में यह कहना है कि गृहस्थों हेतु व्रताचरणार्थ पूर्व एकादशी तथा यतियों हेतु उत्तर एकादशी ग्राह्य है। गृहस्थ कामना सिद्धि के इच्छुक हैं, जबकि यति मोक्षकामी रहता है। यदि पारण काल द्वादशी को पड़े, तब दशमीविद्धा एकादशी उपवासार्थ ग्राह्य है। यदि शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में दो दिन एकादशी हो, तब पहले वाली एकादशी गृहस्थगण के लिये, द्वितीय एकादशी यतीगण के लिये ग्राह्य होगी।।४२-४५।।

द्वादश्यां विद्यते किञ्चिद्दशमीसंयुता यदि। दिनक्षये द्वितीयैव सर्वेषां परिकीर्तिता॥४६॥
विद्धाप्येकादशी ग्राह्या परतो द्वादशी न चेत्।
अविद्धापि निषिद्धैव परतो द्वादशी यदि॥४७॥

यह सर्वसम्मत मत है कि यदि दशमी युक्त एकादशी द्वादशी को भी व्याप्त रहे, तब सूर्यास्त द्वादशी में होगी। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण तिथि द्वादशी मानी जायेगी। विद्धा एकादशी भी ग्राह्य तब होती है, जब परकाल में द्वादशी न हो। लेकिन अविद्धा एकादशी को भी तब अग्राह्य कहा गया है, जबकि परकाल में द्वादशी व्याप्त हो।।४६-४७।।

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी। द्वादशद्वादशीपुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे॥४८॥
एकादशी कलामात्रा विद्यते द्वादशीदिने।
द्वादशी च त्रयोदश्यां नास्ति वा विद्यतेऽथवा॥४९॥
विद्धाप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद्गृहिणां तदा।
यतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यवीराभिस्तथैव च॥५०॥

सम्पूर्णैकादशी शुद्धा द्वादश्यां नास्ति किञ्चन।
द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तत्र कथं भवेत्॥५१॥

यदि ऐसी स्थिति हो जाये कि एक ही दिन में एकादशी एवं द्वादशी, दोनों पड़े, रात्रि के अन्त में त्रयोदशी हो तथा पारण भी त्रयोदशी को हो सके, तब उस व्रताचरण करने वाले को बारह द्वादशी का पुण्यलाभ हो जाता है। यदि द्वादशी पर एकादशी मात्र एक कला भी रहे तथा भले ही द्वादशी त्रयोदशी को पड़ती है अथवा नहीं भी पड़ती, ऐसी स्थिति में ऐसी विद्धा एकादशी को गृहस्थ ग्रहण करे। यति तथा पतिपुत्रहीन स्त्रियां पर एकादशी ही ग्रहण करे। अब प्रश्न यह है कि यदि ऐसी स्थिति हो कि यदि दिन पर्यन्त व्यापिनी शुद्ध एकादशी द्वादशी से सर्वथा अविद्ध ही रहे तथा द्वादशी त्रयोदशी में हो जाये, तब क्या हो? यह कहता हूं।।४८-५१।।

पूर्वा गृहस्थैः कार्यात्र यतिभिश्चोत्तरा तिथिः।
उपोष्यैव द्वितीयेति केचिदाहुश्च भक्तितः॥५२॥
एकादशी यदा विद्धा द्वादश्यां न प्रतीयते। द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तथैव चापरे॥५३॥
उपोष्या द्वादशी शुद्धा सर्वैरेव न संशयः। केचिदाहुश्च पूर्वां तु तन्मतं न समंजसम्॥५४॥

ऐसी स्थिति में पूर्व तिथि को गृहस्थ एवं उत्तरतिथि यतिगण अपनायें। अन्य का मत है कि द्वितीय तिथि ही सबके लिये व्रत हेतु भक्ति के साथ ग्राह्य है। यदि विद्धा एकादशी की स्थिति द्वादशी में किंचित् भी न हो, उसी दिन द्वादशी भी त्रयोदशी में हो, तब यह मत है कि ऐसी द्वादशी सर्वग्राह्य है। यह निःसंदिग्ध मत है। लेकिन कतिपय लोग पूर्व को ही ग्राह्य कहते हैं, तथापि यह उचित नहीं है।।५२-५४।।

सङ्क्रान्तौ रविवारे च पातग्रहणयोस्तथा। पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही॥५५॥
अर्केऽह्नि पर्वरात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा। एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥५६॥
आदित्यग्रहणे प्राप्ते पूर्वयामत्रये तथा। नाद्याद्वै यदि भुञ्जीत सुरापेन समो भवेत्॥५७॥
अन्वाधानेष्टिमध्ये तु ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। प्रायश्चित्तं मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं तत्र याज्ञिकैः॥५८॥
चन्द्रोपरागे जुहुयाद्दशमे सोम इत्यृचा। आप्यायस्व ऋचा चैव सोमपास्त इति द्विज॥५९॥
सूर्योपरागे जहुयादुदुत्यं जातवेदसम्। आसत्येनोद्वयं चैव त्रयो मन्त्रा उदाहृताः॥६०॥

संक्रान्ति तथा रविवार को पात एवं ग्रहण होने पर सपुत्रक गृहस्थ उस दिन पारण एवं उपवास कर्म न करे। रविवार तथा पर्व के समय रात्रि में, चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथि पर दिवाकाल में, एकादशी को रात्रि किंवा दिन में जो भोजन करे, वह प्रायश्चित्त हेतु चान्द्रायण व्रत पालन करे। इन वर्जित काल में भोजन करने वाला मानो मदिरापान कर रहा है। हे मुनिप्रवर! अन्वाधान, इष्टि, चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में सभी याज्ञिक व्यक्ति प्रायश्चित्त करे। चन्द्रग्रहण काल में "दशमे सोम" इत्यादि से अथवा "आप्यायस्व" इत्यादि से किंवा "सोमपास्त" इत्यादि मन्त्र से हवन करे। सूर्य ग्रहण के समय "उदुत्यं जातिवेदसम्", "आसत्येनो द्वयम्" इत्यादि से होम करे। सूर्य हेतु ये मन्त्रत्रय उक्त हैं।।५५-६०।।

एवं तिथिं विनिश्चित्य स्मृतिमार्गेण पण्डितः।
यः करोति व्रतादीनि तस्य स्यादक्षयं फलम्॥६१॥

वेदप्रणिहितो धर्मो धर्मैस्तुष्यति केशवः। तस्माद्धर्मपरा यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥६२॥

धर्मान्ये कर्त्तुमिच्छन्ति ते वै कृष्णास्वरूपिणः।
तस्मात्तांस्तु भवव्याधिः कदाचिन्नैव बाधते॥६३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे तिथ्यादिनिर्णयो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

एवंविध स्मृति मतानुसार तिथिनिर्णय से जो बुद्धिमान, व्रताचरण करता है, वह अक्षय फल लाभ करता है। भगवान् केशव धर्म से सन्तुष्ट होते हैं। धर्मतत्पर जन विष्णु के परमपद का लाभ करते हैं। जो लोग धर्माचरण करने वाले हैं, वे साक्षात् कृष्ण ही हैं। ऐसे लोगों को संसार रूपी महाव्याधि जनित पीड़ा बाधित नहीं कर पाती।।६१-६३।।

।।२९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्त विधि का विस्तृत वर्णन

सनक उवाच

प्रायश्चित्तविधिं वक्ष्ये शृणु नारद साम्प्रतम्। प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफलं लभेत्॥१॥
प्रायश्चित्तविहीनैस्तु यत्कर्म क्रियते मुने। तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं राक्षसैः परिसेवितम्॥२॥
कामक्रोधविहीनैश्च धर्मशास्त्रविशारदैः। प्रष्टव्या ब्राह्मणा धर्मं सर्वधर्मफलेच्छुभिः॥३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे नारद! अब मैं प्रायश्चित्त विधि कहता हूं। जिसने आत्मा को प्रायश्चित्त से विशुद्ध कर लिया है, वह सर्वकर्मफल लाभ करता है। हे मुनिवर! जो प्रायश्चित्त रहित व्यक्ति कोई भी कर्म करता है, वह सब निष्फल कहा गया है। उसके सर्वकर्म राक्षसों से ही परिसेवित होते हैं। जो धर्मशास्त्रज्ञ, काम-क्रोध रहित तथा सब धर्मों के फल की इच्छा करने वाला मनुष्य ब्राह्मणगण से धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न करे।।१-३।।

प्रायश्चित्तानि जीर्णानि नारायणपराङ्मुखैः।
न निष्पुनन्ति विप्रेन्द्र सुराभाण्डमिवापगाः॥४॥

ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः। महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः॥५॥
यस्तु संवत्सरं ह्येतैः शयनासनभोजनैः। संवसेत्सह तं विद्यात्पतितं सर्वकर्मसु॥६॥

हे विप्रेन्द्र! नदियां अपने पुनीत जल से भी मदिरापात्र को पवित्र नहीं कर सकती, इसी प्रकार जो

नारायण से पराङ्गमुख (विमुख) है, उसे प्रायश्चित्त पवित्र नहीं कर सकेगा। जो ब्रह्महत्या, मद्यप, चोर तथा गुरुपत्नीगामी हैं—ये चारों महापातकी कहे जाते हैं। इनके संसर्ग में रहने वाला भी पांचवां महापातकी माना गया है। जो इन पांचों महापातकी लोगों के संसर्ग में एक वर्ष शयन करता, अवस्थान करता तथा भोजन करता है, उसे समस्त कर्मों से पतित समझे।।४-६।।

अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा चीरवासाजटी भवेत्। स्वेनैव हतविप्रस्य कपालमपि धारयेत्।।७।।
तदभावे मुनिश्रेष्ठ कपालं वान्यमेव वा। तद्द्रव्यं ध्वजदण्डे तु धृत्वा वनचरो भवेत्।।८।।

अज्ञानतः, अनजाने में जिससे ब्रह्महत्या हो जाये, वह जटा एवं वल्कलधारी होकर रहे। जिसने जानते हुये ज्ञानतः ब्रह्मवध किया हो, वह कपालधारी रहे, किंवा कपाल अथवा अन्य वस्तु को ध्वजदण्ड में बांधे और उसे लेकर वन चला जाये।।७-८।।

वन्याहारो वसेत्तत्र वारमेकं मिताशनः। सम्यक्सन्ध्यामुपासीत त्रिकालं स्नानमाचरेत्।।९।।
अध्ययनाध्यापनादीन्वर्जयेत्संस्मरेद्धरिम्। ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं गन्धमाल्यादि वर्जयेत्।।१०।।
तीर्थान्यनुवसेच्चैव पुण्यांश्चैवाश्रमांस्तथा।
यदि वन्यैर्न जीवेत ग्रामे भिक्षां समाचरेत्।।११।।

वह एक बार वन के कन्द-मूल-फलादि का सीमित मात्रा में अल्पाहार करे। सम्यक् सन्ध्या तथा स्नान तीनों काल में करे। वह अध्ययन-अध्यापनादि से विमुख रहे तथा सदा हरिस्मरणरत रहा करे। वह नित्य ब्रह्मचारी रहकर गन्ध-माल्यादि का उपयोग कदापि न करे। वह सदा तीर्थ एवं पुण्य आश्रमादि में रहे। यदि वन्यफल न मिलें, तब ग्रामों में भिक्षाटन करे।।९-११।।

द्वादशाब्दं व्रतं कुर्यादेवं हरिपरायणः। ब्रह्महा शुद्धिमाप्नोति कर्मार्हश्चैव जायते।।१२।।
व्रतमध्ये मृगैर्वापि रोगैर्वापि निषूदितः।
गोनिमित्तं द्विजार्थं वा प्राणान्वापि परित्यजेत्।।१३।।
यद्वा दद्याद्द्विजेन्द्राणां गवामयुतमुत्तमम्।
एतेष्वन्यतमं कृत्वा ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात्।।१४।।

इस प्रकार वह मनुष्य बारह वर्षों तक हरिपरायण होकर व्रत करे। एवंविध वह द्वादश वर्षीय व्रताचरण करके ब्रह्महत्या पातक से शुद्ध होकर सत्कर्माचरण का भागी हो जाता है। यदि व्रतपालन के द्वादश वर्ष से पूर्व ही वन्य पशु किंवा रोग से मृत हो जाये अथवा गौ-ब्राह्मण की रक्षा करते मृत हो जाये, किंवा दस हजार श्रेष्ठ गौयें ब्राह्मणों को दान करे, तब वह ब्रह्मघाती शुद्ध हो जाता है।।१२-१४।।

दीक्षितं क्षत्रियं हत्वा चरेद्धि ब्रह्महाव्रतम्। अग्निप्रवेशनं वापि मरुत्प्रपतनं तथा।।१५।।
दीक्षितं ब्राह्मणं हत्वा द्विगुणं व्रतमाचरेत्। आचार्यादिवधे चैव व्रतमुक्तं चतुर्गुणम्।।१६।।
हत्वा तु विप्रमात्रं च चरेत्संवत्सरं व्रतम्। एवं विप्रस्य गदितः प्रायश्चित्तविधिर्द्विज।।१७।।

यदि कोई व्यक्ति यज्ञ में दीक्षित क्षत्रिय का वध कर दे, तब वह व्यक्ति ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त ही करे। वह अग्नि में प्रविष्ट हो जाये अथवा ऊंचाई से हवा में कूद जाये। यदि दीक्षित ब्राह्मण का वध हो जाये, तब दोषी

व्यक्ति ब्रह्महत्या प्रायश्चित्त से दूना प्रायश्चित्त करे। यदि कोई आचार्य का वध करता है, तब वह चौगुना प्रायश्चित्त करे। विप्र की हत्या जिसने किया है, वह उपरोक्त संवत्सर व्रताचरण करे। हे द्विज! विप्रों हेतु यही प्रायश्चित्त विधि का विधान है अर्थात् ब्राह्मण यदि ब्रह्महत्या करे, तब यही नियम है।।१५-१७।।

द्विगुणं क्षत्रियस्योक्तं त्रिगुणं तु विशः स्मृतम्।
ब्राह्मणं हन्ति यः शूद्रस्तं मुशल्यं विदुर्बुधाः॥१८॥
राज्ञैव शिक्षा कर्तव्या इति शास्त्रेषु निश्चयः।
ब्राह्मणीनां वधे त्वर्द्धं पादः स्यात्कन्यकावधे॥१९॥
हत्वा त्वनुपनीतांश्च तथा पादव्रतं चरेत्। हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः षडब्दं कृच्छ्रमाचरेत्॥२०॥

क्षत्रिय द्वारा ब्रह्महत्या करने पर द्विगुण, वैश्य द्वारा ब्रह्महत्या करने पर त्रिगुण प्रायश्चित्त करे। यदि शूद्र ब्राह्मण का वध करता है, तब उसे मूसलाघात से चूर्ण करे। यह बुधजन का निर्णय है। राजा ही दण्डरूपी शिक्षा (सजा) का निर्णय करे। ब्राह्मणी का वध करने वाला (छह वर्ष) आधा प्रायश्चित्त तथा ब्राह्मण कन्या वधकर्त्ता तीन वर्ष का प्रायश्चित्त करे। अविवाहित की हत्या करने पर तीन वर्ष का प्रायश्चित्त विहित है। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय का वध करता है, तब वह ब्राह्मण छः वर्ष का कृच्छ्रव्रताचरण करे।।१८-२०।।

संवत्सरत्रयं वैश्यं शूद्रं हत्वा तु वत्सरम्।
दीक्षितस्य स्त्रियं हत्वा ब्राह्मणीं चाष्टवत्सरान्॥२१॥
ब्रह्महत्याव्रतं कृत्वा शुद्धो भवति निश्चितम्। प्रायश्चित्तविधानं तु सर्वत्र मुनिसत्तम॥२२॥
वृद्धातुरस्त्रीबालानामर्द्धमुक्तं मनीषिभिः।
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा॥२३॥

यदि विप्र वैश्यवध करे, तब तीन वर्ष, शूद्र वध करे, तब एक वर्ष का प्रायचित्त करे। यह शास्त्रोक्त नियम है। जो यज्ञदीक्षित ब्राह्मण की पत्नी की हत्या करता है, वह अष्टवर्षीय (ब्रह्महत्या वाला) प्रायश्चित्त करे। इससे उसकी शुद्धि होगी। हे मुनिप्रवर! अतिवृद्ध तथा रोगी एवं स्त्री विहित प्रायश्चित्त का आधा प्रायश्चित्त करे। सुरा तीन प्रकार की होती है। यथा गौड़ी, पैष्टी तथा माध्वी।।२१-२३।।

चातुर्वर्ण्यैरपेया स्यात्तथा स्त्रीभिश्च नारद। क्षीरं घृतं वा गोमूत्रमेतेष्वन्यतमं मुने॥२४॥
स्नात्वार्द्रवासा नियतो नारायणमनुस्मरन्। पक्वायसनिभं कृत्वा पिबेच्चैवोदकं ततः॥२५॥
तत्तु लौहेन पात्रेण ह्यायसेनाथवा पिबेत्। ताम्रेण वाथ पात्रेण तत्पीत्वा मरणं व्रजेत्॥२६॥

हे नारद! ये मद्य चारों वर्णों के लोगों एवं स्त्रियों हेतु उपभोग्य नहीं माने गये हैं। हे मुनिवर! मदिरा पीने वाला प्रायश्चित्तार्थ दुग्ध अथवा घृत किंवा गोमूत्र अत्युष्ण स्थिति में पान करे। स्नानोपरान्त गीले वस्त्र पहने हुये एकाग्रता से श्रीहरि का चिन्तन करते उपरोक्त अत्युष्ण पदार्थ पी जाये। तदनन्तर जल पीये। ये पेय लौह पात्र किंवा ताम्र पात्र में भरकर पान करके देहत्याग करे।।२४-२६।।

सुरापी शुद्धिमाप्नोति नान्यथा शुद्धिरिष्यते।
अज्ञानादात्मबुद्ध्या तु सुरां पीत्वा द्विजश्चरेत्॥२७॥

ब्रह्महत्याव्रतं सम्यक्कच्चिह्नपरिवर्जितः। यदि रोगा निवृत्यर्थमौषधार्थं सुरा पिबेत्॥२८॥
तस्योपनयनं भूयस्तथा चान्द्रायणद्वयम्। सुरासंस्पृष्टपात्रं तु सुराभाण्डोदकं तथा॥२९॥
सुरापानसमं प्राहुस्तथा चन्द्रस्य भक्षणम्। तालं च पानसं चैव द्राक्षं खार्जूरसंभवम्॥३०॥
माधुकं शैलमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम्। गौडी माध्वी सुरा मद्यमेवमेकादश स्मृताः॥३१॥

मद्यप को ऐसे शुद्धिलाभ होता है, अन्यथा उसकी शुद्धि कदापि नहीं होती। यदि द्विज अनजाने में मद्य पी लेता है, तब वह पैरों को बेड़ी में जकड़कर रहे तथा ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त करे। केवल कपाल आदि ब्रह्महत्या चिह्न धारण न करे। यदि कोई रोगमुक्ति किंवा औषधि के कारण मदिरापान करता है, तब वह दो चान्द्रायण व्रत एवं पुनः यज्ञोपवीत संस्कार करे। सुरा-स्पृष्ट पात्र, मदिरापात्र में लाया जलपान इसे भी सुरापान ही कहा गया है। ताल, कटहल की मदिरा, दाक्षा-खजूर-मुहुआ-शैल से बनी मदिरा, आरिष्ट, मैरेय, नारियल से बनी मदिरा, गौड़ी-माध्वी—ये एकादश प्रकार की मदिरा वर्णित हैं।।२७-३१।।

एतेष्वन्यतमं विप्रो न पिबेद्वै कदाचन। एतेष्वन्यतमं यस्तु पिबेदज्ञानतो द्विजः॥३२॥
तस्योपनयनं भूयस्तप्तकृच्छ्रं चरेत्तथा। समक्षं वा परोक्षं वा बलाच्चौर्येण वा तथा॥३३॥
परस्वानामुपादानं स्तेयमित्युच्यते बुधैः। सुवर्णस्य प्रमाणं तु मन्वाद्यैः परिभाषितम्॥३४॥
वक्ष्ये शृणुष्व विप्रेन्द्र प्रायश्चित्तोक्तिसाधनम्। गवाक्षागतमार्तण्डरश्मिमध्ये प्रदृश्यते॥३५॥
त्रसरेणुप्रमाणं तु रज इत्युच्यते बुधैः। त्रसरेण्वष्टकं निष्कस्तत्त्रयं राजसर्षपः॥३६॥

हे विप्र! विप्रगण इन सब में से कोई मदिरा कदापि न पीयें। यदि कोई ब्राह्मण अनजाने में इनका पान करता है, वह पुनः यज्ञोपवीत संस्कारोपरान्त कृच्छ्रव्रताचरण करे। विद्वान्‌गण का मत है कि बलात् किंवा चोरी द्वारा किसी का धन हरण कर लेना—"स्तेय" है। मनु प्रभृति ने स्वर्ण के प्रमाण को परिभाषित किया है। हे विप्रेन्द्र! तदनुरूप प्रायश्चित्त का वर्णन कर रहा हूं। गवाक्ष (रोशनदान) से सूर्य किरणों में जो धूलिकण रूप त्रसरेणु लक्षित होते हैं, उसे बुधजन रज कहते हैं। आठ त्रसरेणु का एक निष्क तथा तीन निष्क का राजसर्षप होता है।।३२-३६।।

गौरसर्षपस्तत्त्रयं स्यात्तत्षट्कं यव उच्यते।
यवत्रयं कृष्णलः स्यान्माषस्तत्पञ्चकं स्मृतः॥३७॥
माषषोडशमानं स्यात्सुवर्णमिति नारद। हृत्वा ब्रह्मस्वमज्ञानाद्द्वादशाब्दं तु पूर्ववत्॥३८॥
कपालध्वजहीनं तु ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्। गुरूणां यज्ञकर्तॄणां धर्मिष्ठानां तथैव च॥३९॥
श्रोत्रियाणां द्विजानां तु हृत्वा हेमैवमाचरेत्।
कृतनुतापो देहे च सम्पूर्णे लेपयेद् घृतम्॥४०॥
करीषच्छादितो दग्धःस्तेयपापाद्विमुच्यते।
ब्रह्मस्वं क्षत्रियो हृत्वा पश्चात्तापमवाप्य च॥४१॥

हे नारद! तीन राजसर्षप का एक गौरसर्षप तथा छः गौरसर्षप का एक यव कहा गया है। तीन यव का

एक कृष्णल, पांच कृष्णल का एक माष, सोलह माष के बराबर एक स्वर्ण होता है। जो अनजाने में ब्राह्मण का धन चोरी करता है, वह पूर्वकथित रूप से बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करे। मात्र कपालध्वज धारण करने की छूट रहेगी, बाकी यथावत् करना होगा। गुरु, याज्ञिक, धार्मिक, श्रोत्रिय तथा द्विज का स्वर्णहर्ता पहले उपरोक्त प्रायश्चित्त करके शरीर पर घृत लिप्त करके करीष (गोहरी) की आग में स्वयं को दग्ध करे। इससे वह पापमुक्त होगा। यदि क्षत्रिय ब्राह्मण का धन चुराता है, तब वह पापनाशार्थ पहले पश्चाताप करे।।३७-४१।।

पुनर्ददाति तत्रैव तद्विधानं श्रृणुष्व मे। तत्र सान्तपनं कृत्वा द्वादशाहोपवासतः॥४२॥
शुद्धिमाप्नोति देवर्षे ह्यन्यथा पतितो भवेत्। रत्नासनमनुष्यस्त्रीधेनुभूम्यादिकेषु च॥४३॥
सुवर्णसदृशेष्वेषु प्रायश्चिताद्धर्मुच्यते। त्रसरेणुसमं हेम हृत्वा कुर्यात्समाहितः॥४४॥
प्राणायामद्वयं सम्यक् तेन शुद्ध्यति मानवः।
प्राणायामत्रयं कुर्याद्धृत्वा निष्कप्रमाणकम्॥४५॥
प्राणायामाश्च चत्वारो राजसर्षपमात्रके। गौरसर्षपमानं तु हृत्वा हेम विचक्षणः॥४६॥
स्नात्वा च विधिवज्जप्याद्गायत्र्यष्टसहस्त्रकम्।
यवमात्रसुवर्णस्य स्तेयाच्छुद्धो भवेद्द्विजः॥४७॥

तत्पश्चात् वह धन ब्राह्मण को वापस करने के उपरान्त जो विधान पालन करना है, वह मुझसे श्रवण करिये। वह द्वादश दिन उपवासी रहे, तब सान्तपन व्रताचरण करे। हे देवर्षि! तभी वह शुद्ध होगा। अन्यथा पतित कहा जायेगा। रत्न का आसन, मनुष्य, स्त्री, गौ, भूमि प्रभृति की चोरी भी स्वर्ण चोरीवत् ही है, तथापि इसका प्रायश्चित्त स्वर्णचोरी वाले प्रायश्चित्त से आधा होता है। यदि त्रसरेणु इतना स्वर्ण चुराया हो, तब वह व्यक्ति एकाग्रमन से दो प्राणायाम द्वारा शुद्ध होता। एक निष्क स्वर्ण चोरी करने पर तीन प्राणायाम करे। राजसर्षप इतनी स्वर्ण चोरी करने पर चार प्राणायाम करे। जो विज्ञ व्यक्ति गौर सर्षप इतना स्वर्ण चोरी का पातकी हो, वह सविधि स्नानोपरान्त ८००० गायत्री जपे। यवमात्र स्वर्ण चोरी वाला व्यक्ति इस विधान से शुद्ध होगा।।४२-४७।।

आसायं प्रातरारभ्य जप्त्वा वै वेदमातरम्। हेमकृष्णलमात्रं तु हृत्वा सान्तपनं चरेत्॥४८॥
माषप्रमाणे हेम्नस्तु प्रायश्चित्तं निगद्यते। गोमूत्रपक्वयवभुग्वर्षेणैकेन शुद्ध्यति॥४९॥
सम्पूर्णस्य सुवर्णस्य स्तेयं कृत्वा मुनीश्वर। ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्द्वादशाब्दं समाहितः॥५०॥
सुवर्णमानान्न्यूने तु रजतस्तेयकर्मणि। कुर्यात्सान्तपनं सम्यगन्यथा पतितो भवेत्॥५१॥

वह वेदमाता गायत्री का जप करे। जो कृष्णल इतना स्वर्ण चोरी करता है, वह सान्तपन व्रताचरण सम्पन्न करे। अब एक माषा स्वर्ण चोरी का प्रायश्चित्त कहते हैं। वह गोमूत्र में पकाये यव का ही एक वर्ष तक भोजन करे। अन्य भोजन न करे। वह शुद्ध होगा। हे मुनिवर! सम्पूर्ण स्वर्ण चोरी करने वाला समाहित चित्त से बारह वर्षीय ब्रह्महत्या वाला व्रताचरण करे। स्वर्णमान से कम मात्रा में रजत चुराने वाला यदि सविधि सान्तपन व्रताचरण नहीं करता तब वह पतित होगा।।४८-५१।।

दशनिष्कान्तपर्यन्तमूर्ध्वं निष्कचतुष्टयात्। हृत्वा च रजतं विद्वान्कुर्याच्चांद्रायणं मुने॥५२॥
दशादिशतनिष्कान्तं यः स्तेयी रजतस्य तु। चान्द्रायणद्वयं तस्य प्रोक्तं पापविशोधकम्॥५३॥

शतादूर्ध्वं सहस्रान्तं प्रोक्तं चान्द्रायणत्रयम्। सहस्रादधिकस्तेये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्॥५४॥
कांस्यपित्तलमुख्येषु ह्ययस्कान्ते तथैव च। सहस्रनिष्कमाने तु पराकं परिकीर्तितम्॥५५॥
प्रायश्चित्तं तु रत्नानां स्तेये राजतवत्स्मृतम्। गुरुतल्पगतानां च प्रायश्चित्तमुदीर्यते॥५६॥

१६ माषा से १० निष्क (४० माषा) चांदी चोरी करने वाला चान्द्रायण व्रत करे। १० से १०० निष्क तक चांदी चुराने वाला व्यक्ति दो चान्द्रायण व्रताचरण से पापशुद्धि कर सकेगा। सौनिष्क से एक सहस्र निष्क पर्यन्त रजत चोरी करने वाला तीन चान्द्रायण करे। एक हजार निष्क से अधिक रजत चोरी करने वाला ब्रह्महत्या वाला व्रताचरण करे। कांसा, पीतल, अयस्कान्त आदि एकसहस्र निष्क जिसने चुराया हो, वह शुद्धि हेतु पराक् व्रत करे। रत्नों की चोरी करने वाले के लिये चांदी चोरी वाला प्रायश्चित्त विहित है। अब गुरुपत्नीगामी के लिये प्रायश्चित्त कहता हूं।।५२-५६।।

अज्ञानान्मातरं गत्वा तत्सपत्नीमथापि वा। स्वयमेव स्वमुष्कं तु छिंद्यात्पापमुदीरयन्॥५७॥
हस्ते गृहीत्वा मुष्कं तु गच्छेद्वै नैर्ऋतीं दिशम्। गच्छन्मार्गे सुखं दुःखं न कदाचिद्विचारयेत्॥५८॥
अपश्यन्गच्छतो गच्छेत्प्राणान्तं यः स शुद्ध्यति। मरुत्प्रपतनं वापि कुर्यात्पापमुदाहरन्॥५९॥
स्ववर्णोत्तमवर्णस्त्रीगमने त्वविचारतः। ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्द्वादशाब्दं समाहितः॥६०॥

जो अज्ञानतः माता अथवा विमाता से समागम करता है, वह सार्वजनिक रूप से अपना पाप घोषित करके अपना अण्डकोष काटे। वह अपना अण्डकोष हाथ में लेकर नैर्ऋत दिशा में जाये। मार्ग में होने वाले सुख-दुःख का तनिक विचार न करे। इस प्रकार से चलते-चलते जब प्राणान्त हो जायेगा, उसे शुद्धिलाभ होगा। हे द्विजोत्तम! यदि व्यक्ति अविवेक के कारण अपने वर्ण से उत्तम वर्ण की स्त्री से समागम करता है, तब उसे समाहित होकर बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त करना चाहिये।।५७-६०।।

अमत्याभ्यासतो गच्छेत्सवर्णां चोत्तमां तथा।
कारीषवह्निना दग्धः शुद्धिं याति द्विजोत्तम॥६१॥

रेतःसेकात्पूर्वमेव निवृत्तो यदि मातरि। ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्रेतःसेकेऽग्निदाहनम्॥६२॥
सवर्णोत्तमवर्णासु निवृत्तो वीर्यसेचनात्। ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यान्नवाब्दान्विष्णुतत्परः॥६३॥

जो विवेक रहित स्थिति में तथा आदत के कारण सवर्णा अथवा उत्तम वर्ण वाली स्त्री से समागम करता है, तब वह कण्डे की आग में स्वयं को दग्ध करके शुद्ध होगा। हे द्विजोत्तम! यदि व्यक्ति मातृयोनि में वीर्यपात के पूर्व ही मैथुन छोड़ देता है, तब वह ब्रह्महत्या व्रताचरण करे तथा यदि वीर्यपात कर देता है, तब स्वयं अग्नि में दग्ध हो जाये। इससे उसे शुद्धि होगी। जो सवर्ण किंवा अपने से उत्तम वर्ण की स्त्री में वीर्यपात करने के पूर्व ही मैथुन बन्द कर देता है, वह ब्रह्महत्या वाला व्रत नौ वर्ष पर्यन्त विष्णु भगवान् के स्मरण में लीन रहकर करे।।६१-६३।।

वैश्यायां पितृपत्न्यां तु षडब्दं व्रतमाचरेत्। गत्वा शूद्रां गुरोर्भार्यां त्रिवर्षं व्रतमाचरेत्॥६४॥

मातृष्वसारं च पितृष्वसारमाचार्यभार्यां श्वशुरस्य पत्नीम्।
पितृव्यभार्यामथ मातुलानीं पुत्रीं च गच्छेद्यदि काममुग्धः॥६५॥

दिनद्वये ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्यथाविधि। एकस्मिन्नेव दिवसे बहुवारं त्रिवार्षिकम्॥६६॥
एकं वारं गते ह्यब्दं व्रतं कृत्वा विशुद्ध्यति। दिनत्रये गते वह्निदग्धः शुध्येत नान्यथा॥६७॥

जो मनुष्य पिता की वेश्या स्त्री से समागम करे, वह ६ वर्ष तक व्रत पालन करे। जो शिष्य गुरु की शूद्रा पत्नी से समागम करता है, वह तीन वर्ष तक व्रत करे। मौसी, बूआ, आचार्य की पत्नी, सास, चाची, मामी, पुत्री से कामविह्वल व्यक्ति दो दिन समागम करता है, वह सविधि ब्रह्महत्या व्रत करे। इनसे एक ही दिवस में कई बार समागम करने वाला तीन वर्ष तक, एक बार ही समागम करने वाला एक वर्ष व्रती रहे। तभी उसकी शुद्धि होगी। जो इनसे तीन दिन लगातार मैथुन करता है, वह अग्निदग्ध होकर ही शुद्ध होगा। अन्य कोई उपाय नहीं है।।६४-६७।।

चाण्डालीं पुष्कसीं चैव स्नुषां च भगिनीं तथा।
मित्रस्त्रियं शिष्यपत्नीं यस्तु वै कामतो व्रजेत्॥६८॥
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्स षडब्दं मुनीश्वर। आकमतो व्रजेद्यस्तु सोऽब्दकृच्छ्रं समाचरेत्॥६९॥

चाण्डाली, पुष्कसी, पुत्र की पत्नी, भगिनी, मित्रपत्नी, शिष्य पत्नी से जो कामभोग करता है, वह छः वर्ष तक ब्रह्महत्या प्रायश्चित्त वाला व्रताचरण करे। यह विधान कामभावना से भोग वाले हेतु है। जो अकाम (?) रूपेण इनका भोग करता है, वह एक वर्ष पर्यन्त कृच्छ्रव्रताचरण करके शुद्ध होगा।।६८-६९।।

महापातकिसंसर्गे प्रायश्चित्तं निगद्यते। प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफलं लभेत्॥७०॥
यस्य येन भवेत्सङ्गो ब्रह्महादिचतुर्ष्वपि।
तत्तद्व्रतं स निर्वर्त्य शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम्॥७१॥
अज्ञानात्पञ्चरात्रं तु सङ्गमेभिः करोति यः।
कायकृच्छ्रं चरेत्सम्यगन्यथा पतितो भवेत्॥७२॥
द्वादशाहे तु संसर्गे महासान्तपनं स्मृतम्। सङ्गंकृत्वार्द्धमासं तु द्वादशाहमुपावसेत्॥७३॥

अव मैं महापातकियों के संसर्गजनित पाप का प्रायश्चित कहता हूं। इससे वह व्यक्ति विशुद्ध होकर समस्त कामनाओं का फल लाभ करता है। जिसने पहले कहे गये चार प्रकार के महापातकियों में से एक भी पातकी का साथ किया है, वह उस महापाप के अनुसार ही प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होगा। यह निःसंदिग्ध है। जो अनजाने में ऐसे पातकी का साथ पांच रात्रि पर्यन्त कर लेता है, वह तत्काल कायकृच्छ्रव्रत करे। अन्यथा वह पतित हो जायेगा। जिसने बारह रात्रि तक ऐसे पातकी का साथ किया हो, वह महासन्तपन व्रताचरण करे। जिसने ऐसे पातकी का १५ दिन संग किया हो, वह बारह दिन उपवासी रहे।।७०-७३।।

पराको माससंसर्गे चान्द्रमासत्रये स्मृतम्।
कृत्वा सङ्गं तु षण्मासं चरेच्चान्द्रायणद्वयम्॥७४॥

इसी प्रकार एक माह ऐसे महापातकी का संसर्गी पराक् व्रताचरण, मासत्रय वाला संसर्गी चान्द्रायण व्रत करे। जो छः माह ऐसे महापातकी के साथ में हो, वह दो चान्द्रायण सम्पन्न करे।।७४।।

किञ्चिन्न्यूनाब्दसङ्गे तु षण्मासव्रतमाचरेत्। एतच्च त्रिगुणं प्रोक्तं ज्ञानात्सङ्गे यथाक्रमम्॥७५॥

मण्डूकं नकुलं काकं वराह मूषकं तथा।
मार्जाराजाविकं श्वानं हत्वा कुक्कुटकं तथा॥७६॥
कृच्छ्रार्द्धमाचरोद्विप्रोऽतिकृच्छ्रं चाश्वहा चरेत्।
तप्तकृच्छ्रं करिवधे पराकं गोवधे स्मृतम्॥७७॥

एक वर्ष से कुछ न्यूनकाल तक महापातकी का साथ करने वाला षण्मास व्रत करे। जो ज्ञानतः ऐसे का साथ करता है, वह त्रिगुणित प्रायश्चित्त से शुद्ध होगा। मण्डूक, नकुल, कौआ, वराह, मूषक, मार्जार, बकरी, कुत्ता, मुर्गा का हत्यारा अर्द्धकृच्छ्र व्रताचरण करे। अश्व हत्यारा अतिकृच्छ्र, हस्ति हत्यारा तप्तकृच्छ्र, गोवधकर्त्ता पराक् व्रत करे।।७५-७७।।

कामतो गोवधे नैव शुद्धिर्दृष्टा मनीषिभिः। पानं शय्यासनाद्येषु पुष्पमूलफलेषु च॥७८॥
भक्ष्यभोज्यापहारेषु पञ्चगव्यविशोधनम्।
शुष्ककाष्ठतृणानां च द्रुमाणां च गुडस्य च॥७९॥
चर्मवस्त्रामिषाणां च त्रिरात्रं स्वादभोजनम्। टिट्टिभं चक्रवाकं च हंस कारडवं तथा॥८०॥
उलूकं सारसं चैव कपोतं जलपादकम्।
शुकं चाषं बलाकं च शिशुमारं च कच्छपम्॥८१॥
एतेष्वन्यतमं हत्वा द्वादशाहमभोजनम्। प्राजापत्यव्रतं कुर्याद्रेतोविण्मूत्रभोजने॥८२॥

जो जानबूझ कर गोवध करता है, मनीषीगण किसी भी उपाय से उसकी शुद्धि नहीं कहते। पेय पदार्थ, शय्या, आसन, पुष्प-मूल-फल, भक्ष्य-भोज्य का हरण करने वाला पंचगव्य पान से शुद्ध होगा। सूखी लकड़ी, तृण, वृक्ष, गुड़, चर्म, वस्त्र, मांस का हरण करने वाला त्रिरात्र उपवासी रहे। टिट्टिम, चक्रवाक्, हंस, कारंडव, उल्लू, सारस, कपोत, जलपादक जाति का हंस, तोता, चाषपक्षी (नीलकंठ), सुंईस, कच्छप का हत्यारा द्वादश दिन उपवास करे। यदि वीर्य, विष्ठा किंवा मूत्र भोजन हो जाये, तब प्राजापत्य व्रताचरण करे।।७९-८२।।

चान्द्रायणत्रयं प्रोक्तं शूद्रोच्छिष्टस्य भोजने।
रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा॥८३॥
सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम्।
स्पृष्ट्वा सचैलं स्नायीत घृतं संप्राशयेत्तथा॥८४॥
गायत्रीं च विशुद्धात्मा जपेदष्टशतं द्विज। एतेष्वन्यतमं स्पृष्ट्वा अज्ञानाद्यदि भोजने॥८५॥
त्रिरात्रोपोषणाच्छुद्ध्येत्पञ्चगव्याशनाद्विज। स्नानदानजपादौ च भोजनादौ च नारद॥८६॥
एषामन्यतमस्यापि शब्दं यः शृणुयाद्वदेत्। उद्वमेद्भुक्तमन्नंतत्स्नात्वा चोपवसेत्तथा॥८७॥

शूद्र का उच्छिष्ट खाने वाला तीन चान्द्रायण व्रत करे। ऋतुमती नारी, चाण्डाल, जच्चा (प्रसूता), पतित, उच्छिष्ट भोजन, धोबी यदि स्पर्श करे, तब जो वस्त्र पहने हो, उसी के साथ स्नान करके घृत खाये। हे द्विज! तदनन्तर ८०० गायत्री जपे। यदि उपरोक्त किसी का स्पर्श हो जाये तथा शुद्धि रहित स्थिति में आहार ग्रहण करे,

उस स्थिति में वह व्यक्ति त्रिरात्र उपवासी रहे। किंवा पंचगव्य पीये। हे नारद! स्नान, दान, जप, भोजन काल में यदि इन उपरोक्त में से किसी का भी शब्द श्रुतिगोचर हो अथवा वार्त्तालाप हो, तब उस भुक्तान्न को उगलकर उस दिन उपवास करे।।८३-८७।।

द्वितीयेऽह्नि घृतं प्राश्य शुद्धिमाप्नोति नारद।
व्रतादिमध्ये यद्येषा शृणुयाद्ध्वनिमप्युत॥८८॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमारतम्। पापानामधिकं पापं द्विजदैवतनिंदनम्॥८९॥

हे नारद! अगले दिन घृत का प्राशन करने से शुद्धिलाभ होता है। यदि व्रतादि के बीच इनकी ध्वनि सुनाई पड़े, तब १००८ गायत्री का जप करे। सर्वाधिक पाप है द्विज तथा देवगण की निन्दा करना।।८८-८९।।

न दृष्ट्वा निष्क्रितिस्तस्य सर्वशास्त्रेषु नारद।
महापातकतुल्यानि यानि प्रोक्तानि सूरिभिः॥९०॥
प्रायश्चित्तं तु तेषां च कुर्यादेवं यथाविधि। प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायणपरायणः॥९१॥
तस्य पापानि नश्यन्ति ह्यन्यथा पतितो भवेत्।
यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वितः॥९२॥
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः। महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः॥९३॥
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरो यतः। नारायणमनाद्यन्तं विश्वाकारमनामयम्॥९४॥
यस्तु संस्मरते मर्त्यः स मुक्तः पापकोटिभिः।
स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यातः प्रणमितोऽपि वा॥९५॥
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमनः सताम्।
संपर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम्॥९६॥

हे नारद! इस पाप की निष्कृति सभी शास्त्रों को देखने पर भी कहीं नहीं मिलती। महापातकों के तुल्य जो पातक सूरीजन ने कहे हैं, उनका प्रायश्चित्त नारायण-परायण होकर यथाविधि करना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त करने से उसके पापों का नाश हो जाता है, अन्यथा वह पतित ही रह जाता है। जो रागादि दोषों से मुक्त रहकर अनुताप करता है, सभी प्राणीगण के प्रति दर्यार्द्र रहकर विष्णु स्मरण तत्पर रहता है, वह भले ही महापातकी किंवा सर्वपातकी क्यों न हो, वह सभी पातकों से रहित होता है। यह विष्णु सेवा का फल है। अनन्त, नारायण आदि अन्त रहित, विश्वाकार अनामय हैं। उनका स्मरण जो मनुष्य करता है, वह करोड़ों पापों से रहित हो जाता है। स्मरण, पूजन, ध्यान, प्रणाम करने से सर्वहृदयनिवासी प्रभु उसके पापों का नाश करते हैं। जो कोई सम्पर्क के कारण किंवा मोह के कारण भी हरिपूजा करता है।।९०-९६।।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स प्रयाति हरेः पदम्।
सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यन्ति क्लेशसंचयाः॥९७॥
स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते। मानुषं दुर्लभं जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर॥९८॥

तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्त्तिता।
तस्मात्तडिल्लतालोलं मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्॥९९॥
हरिं सम्पूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम्।
सर्वेऽन्तराया नश्यन्ति मनःशुद्धिश्च जायते॥१००॥

वह सर्वपाप रहित होकर हरिपद लाभ करता है। एक बार भी विष्णु नाम स्मरण समस्त संचित क्लेशों का नाशक है। हे विप्र! स्वर्गादि भोग लाभ का अनुमान कर सकना संभव है। (अर्थात् तब स्वर्गादि भोग का मिलना संभव हो जाता है)। हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म लाभ अत्यन्त दुर्लभ है। उसमें भी हरिभक्तिलाभ और भी दुर्लभ है। विद्युत् वल्लरी जैसा चंचल (क्षणिक्) मनुष्य जन्म पाकर व्यक्ति पशुपाश विमोचक हरि की पूजा भक्तिभाव से करे। इससे सभी बाधा समूह दूरीभूत हो जाते हैं तथा मन की शुद्धि होती है।।९७-१००।।

परं मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः॥१०१॥
हरिपूजापराणां तु सिध्यन्ति नात्र संशयः। पुत्रदारगृहक्षेत्रधनधान्याभिधावतीम्॥१०२॥
लब्धवेमां मानुषीं वृत्तिं रे रे दर्पं तु मा कृथाः।
सन्त्यज्य कामं क्रोधं च लोभं मोहं मदं तथा॥१०३॥
परापवादं निन्दां च भजध्वं भक्तितो हरिम्।
व्यापारान्सकलांस्त्यत्त्वा पूजयध्वं जनार्दनम्॥१०४॥

जनार्दन का पूजन करने से परम मोक्षलाभ होता है। सनातन पुरुषार्थ हैं धर्म-अर्ध-काम-मोक्ष। ये चारों हरिपूजा परायण व्यक्ति को अवश्य मिलते हैं। हे मनुष्यगण! पुत्र-स्त्री-गृह-क्षेत्र-धन-धान्य की ऐषणा में मत दौड़ो! ऐसी मानुषी वृत्ति पाकर घमण्ड मत करो! तुम काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद का त्याग करो। पराई निन्दा, अपवाद आदि करना त्याग कर हरिभजन करो। समस्त (बहिर्मुखी) व्यापारों (कार्यों) को छोड़कर जनार्दनार्चन करो।।१०१-१०४।।

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः। यावन्नायाति मरणं यावन्नायाति वै जरा॥१०५॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदेवार्चयेद्धरिम्। धीमान्न कुर्याद्विश्वासं शरीरेऽस्मिन्विनश्वरे॥१०६॥
नित्यं सन्निहितो मृत्युः सम्पदत्यन्तचञ्चला। आसन्नमरणो देहस्तस्माद्दर्प्पं विमुञ्चत॥१०७॥

ये यमपुरी के वृक्ष पास परिलक्षित हो रहे हैं। जब तक मृत्यु आसन्न नहीं है, जरा नहीं आई है, जब तक इन्द्रियां विकल नहीं हैं, तब तक हरि भजन कर लो! धीमान् व्यक्ति कभी भी नश्वर शरीर के स्थायित्व पर विश्वास न करे। सम्पदा (लक्ष्मी) चंचला है। मृत्यु तो सदा सन्निहित है। जीवन तो मृत्यु के निकट है। इसलिये दैहिक दर्प का त्याग करो।।१०५-१०७।।

संयोगा विप्रयोगांताः सर्वं च क्षणभंगुरम्।
एतज्ज्ञात्वा महाभाग पूजयस्व जनार्दनम्॥१०८॥

आशया व्यथते चैव मोक्षस्त्वत्यन्तदुर्लभः।
भक्त्या यजति यो विष्णुं महापातकवानपि॥१०९॥
सोऽपि याति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च सांगा वेदाश्च सत्तम॥११०॥
नारायणार्चनस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
किं वै वेदैर्मखैः शास्त्रैः किंवा तीर्थनिषेवणैः॥१११॥
विष्णुभक्तिविहीनानां किं तपोभिर्व्रतैरपि॥११२॥

संयोग का अन्त तो वियोग है। सब कुछ क्षणिक है। हे महाभाग! यह जानकर जनार्दन की पूजा करो। आशा से सभी व्यथित हैं। मोक्ष सुदुर्लभ है। महापातकी भी यदि भक्ति पूर्वक विष्णु का भजन करता है, वह उस परमस्थान की प्राप्ति करता है, जहां जाने पर कोई शोक नहीं है। हे सत्तम! समस्त तीर्थ, यज्ञ, षडङ्गवेद ये सभी नारायणार्चन की तुलना में १/१६ भी नहीं ठहरते। जो हरिभक्ति रहित हैं, उनको तप, व्रत, वेद, यज्ञ, शास्त्र किंवा तीर्थसेवा का क्या लाभ मिलना है?।।१०८-११२।।

यजन्ति ये विष्णुमनन्तमूर्तिं निरीक्ष्य चाकारगतं वरेण्यम्।
वेदान्तवेद्यं भवरोगवैद्यं ते यान्ति मर्त्याः पदमच्युतस्य॥११३॥
अनादिमात्मानमनन्तशक्तिमाधारभूतं जगतः सुरेड्यम्।
ज्योतिःस्वरूपं परमच्युताख्यं स्मृत्वा समभ्येति नरः सखायम्॥११४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे प्रायश्चित्तविधिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

जो अनन्त मूर्त्ति, वरेण्य, वेदान्तवेद्य, भवरोग के एकमात्र वैद्य नारायण विष्णु का साकार वरेण्यरूप देखकर उसकी अर्चना करते हैं, वे अच्युत लोक में जाते हैं। जो मनुष्य अनादि, परमात्मा, अनन्तशक्ति, संसार के आधार, देवताओं से पूजित, ज्योतिःरूप, परम अच्युत का स्मरण करते हैं, वे उन प्रभु के सखा बन जाते हैं!।।११३-११४।।

।।३०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

यमदूतगण का कृत्य वर्णन

नारद उवाच

कथितो भवता सम्यग्वर्णाश्रमविधिर्मुने। इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं सुदुर्गमम्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिवर! आपने सम्यक्‌रूपेण वर्णाश्रम विधि का वर्णन कर दिया। अब मैं दुर्गम यममार्ग का वर्णन सुनना चाहता हूं।।१।।

सनक उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम्। सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां भयदायकम्॥२॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानि मुनीश्वर। यममार्गस्य विस्तारः कथितः पूर्वसूरिभिः॥३॥
ये नरा दानशीलास्तु ते यान्ति सुखिनो द्विज।
धर्मशून्या नरा यान्ति दुःखेन भृशमर्दिताः॥४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे विप्र! अब मैं दुर्गम यममार्ग का वर्णन करता हूं। यह मार्ग पुण्यशीलों हेतु सुखद है तथा पापीगण हेतु भयप्रद है। हे मुनीश्वर! पूर्व सूरीजन ने यममार्ग का विस्तार ८६००० योजन कहा है। हे द्विज! जो दानशील लोग हैं, वे लोग सुख पूर्वक उस मार्ग को पार करते हैं। लेकिन जो धर्मशून्य लोग हैं, वे उस मार्ग को पार करने में अत्यन्त कष्ट पाते हैं।।२-४।।

अतिभीता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः।
क्रन्दन्तो विस्वरं दीनाः पापिनो यान्ति तत्पथि॥५॥
हन्यमाना यमभटैः प्रतोदाद्यैस्तथायुधैः। इतस्ततः प्रधावन्तो यान्ति दुःखेन तत्पथि॥६॥

वे पापी लोग इस मार्ग पर वस्त्र रहित, अतीव भयभीत स्थिति में शुष्क कण्ठ तथा तालु के साथ दयनीय स्वर में क्रन्दन करते हुये जाते हैं। उस समय यमभट लोग उनको चाबुक तथा आयुधों के प्रहार द्वारा पीड़ित करते हैं। वे पापी इधर-उधर भागते उस पथ पर दुःख पूर्वक भागते रहते हैं।।५-६।।

क्वचित्पङ्कः क्वचिद्वह्निः क्वचित्संतप्तसैकतम्।
क्वचिद्वै दावरूपेण तीक्ष्णधाराः शिलाः क्वचित्॥७॥
क्वचित्कण्टकवृक्षाश्च दुःखारोहशिला नगाः।
गाढान्धकाराश्च गुहाः कण्टकावरणं महत्॥८॥

उस पथ पर कहीं तो कीचड़ है, कहीं अग्नि है, कहीं तप्त बालुका है। कहीं-कहीं पर तीक्ष्णधर शिलायें शस्त्र जैसी स्थित हैं। कहीं कण्टकाकीर्ण वृक्ष हैं। कहीं ऐसे पर्वत हैं, जिनकी शिलाओं को अत्यन्त कष्ट पूर्वक पार किया जाता है। ऐसी गुहायें हैं, जो गहन अन्धकार से भरी तथा कण्टकाकीर्ण हैं।।७-८।।

वप्राग्रारोहणं चैव कन्दरस्य प्रवेशनम्। शर्कराश्च तथा लोष्टाःसूचीतुल्याश्च कण्टकाः॥९॥

शैवालं च क्वचिन्मार्गे क्वचित्कीचकपंक्तयः।
क्वचिद्व्याघ्राश्च गर्जन्ते वर्धन्ते च क्वचिज्ज्वराः॥१०॥

उस मार्ग में उच्चतम शिखरों पर आरोहण करना पड़ता है। कभी कन्दराओं को पार करना पड़ता है। कहीं मार्ग में छोटी कंकड़ी, ढेले, कहीं सूई जैसे कंटक, कहीं शैवाल है, कहीं बासों की पंक्तियां हैं। कहीं व्याघ्र गर्जन करते हैं, कहीं ज्वर हो जाता है।।९-१०।।

एवं वहुविधक्लेशाः पापिनो यान्ति नारद।
क्रोशंतश्च रुदन्तश्च ग्लायन्तश्चैव पापिनः॥११॥
पाशेन यन्त्रिताः केचित्कृष्यमाणास्तथांकुशः।
शस्त्रास्त्रैस्ताड्यमानीश्च पृष्ठतो यान्ति पापिनः॥१२॥
नासाग्रपाशकृष्टाश्च केचिदंत्रैश्च बन्धिताः।
वहन्तश्चायसां भारं शिश्नाग्रेण प्रयान्ति वै॥१३॥
अयोभारद्वये केचिन्नासाग्रेण तथापरे।
कर्णाभ्यां च तथा केचिद्वहन्तो यान्ति पापिनः॥१४॥

हे नारद! इस प्रकार से पापीगण वहुविध क्लेश उठाते हैं। वे रुदन करते, चीत्कार करते तथा ग्लानि करते रहते हैं। वे पाश से वद्ध होकर रहते हैं अथवा यमदूत उनको सतत् अंकुश से खींचते रहते हैं। कोई पापी शस्त्रास्त्रों के आघात के द्वारा ताड़ित होते हैं तथा पीठ के वल खींचते हुये ले जाये जाते हैं। किसी के नासाग्र को पाश से वद्ध करके खींचा जाता है। किसी को आंतों से बाधा जाता है। किसी के लिंग के अग्रभाग पर भार लटका कर ले जाते हैं। किसी के नासिकाग्र के उभय पार्श्व पर लौहभार लटकाये ले जाते हैं। किसी पातकी के कानों पर भार लटका कर उसको ले जाया जाता है।।११-१४।।

केचिच्च स्खलिता यान्ति ताड्यमानास्तथापरे।
अत्यथोच्छ्रवसिताः केचित्केचिदाच्छन्नलोचनाः॥१५॥
छायाजलविहीने तु पथि यात्यतिदुःखिताः।
शोचन्तः स्वानि कर्मांणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च॥१६॥
ये तु नारद धर्मिष्ठा दानशीला सुबुद्धयः। अतीव सुखसम्पन्नास्ते यान्ति धर्ममन्दिरम्॥१७॥

कोई भार के कारण मार्ग में जब गिर जाते हैं, तब वे पीटे जाते हैं। अनेक कष्ट से दीर्घ श्वास लेते हैं। कोई आंखों को आच्छादित करके खींचते हुये ले जाया जाता है। यह मार्ग छाया एवं जल से रहित है तथा अतीव दुःखदायी है। इस समय वे पातकी अपने द्वारा जाने-अनजाने में किये गये पापों का अनुताप करते रहते हैं। हे नारद! जो जीवात्मा धार्मिक, दानी तथा वुद्धिशाली हैं, वे अत्यन्त सुख-सम्पन्नता के साथ यममन्दिर पहुंच जाते हैं।।१५-१७।।

अन्नदास्तु मुनिश्रेष्ठ भुञ्जतः स्वादु यान्ति वै। नीरदा यान्ति सुखिनः पिबन्तः क्षीरमुत्तमम्।

तक्रदा दधिदाश्चैव तत्तद्भोगं लभन्ति वै। घृतदा मधुदाश्चैव क्षीरदाश्च द्विजोत्तम॥१८॥
सुधापानं प्रकुर्वंतो यान्ति वै धर्ममन्दिरम्।
शाकदाः पायसं भुञ्जन्दीपदो ज्वलयन्दिशः॥१९॥

हे मुनिप्रवर! जिन्होंने अन्नदान जीवन काल में किया है, वे स्वादिष्ट भोजन करते, जलदातागण उत्तम क्षीर पीते, तक्र-दधि दाता मट्ठा तथा दधिभोजन करते यमसदन पहुंचते हैं। हे द्विजोत्तम! घृत-मधु-क्षीर-दातागण सुधा पीते हुये यमपुरी पहुंचते हैं। शाकदाता खीर पीते हुये तथा दीपदाता स्वतेज से दिशाओं को उद्भासित करते यमसदन गमन करते हैं।।१८-१९।।

वस्त्रदो मुनिशार्दूल याति दिव्याम्बरावृतः। पुराकरप्रदो याति स्तूयमानोऽमरैः पथि॥२०॥
गोदानेन नरो याति सर्वसौख्यसमन्वितः। भूमिदो गृहदश्चैव विमाने सर्वसम्पदि॥२१॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णे क्रीडन्याति वृषालयम्। हयदो यानदश्चापि गजदश्च द्विजोत्तम॥२२॥
धर्मालयं विमानेन याति भोगान्वितेन वै। अनडुहो मुनिश्रेष्ठ यानारूढः प्रयाति वै॥२३॥
फलदः पुष्पदश्चापि याति सन्तोषसंयुतः। ताम्बूलदो नरो याति प्रहृष्टो धर्ममन्दिरम्॥२४॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कृतवान्यो नरोत्तमः।
स याति परितुष्टात्मा पूज्यमानो दिविस्थितैः॥२५॥
शुश्रूषां कुरुते यस्तु यतीनां व्रतचारिणाम्।
द्विजाग्य्रब्राह्मणानां च स यात्यति सुखान्वितः॥२६॥

हे मुनिशार्दूल! जो मृत्युलोक में वस्त्र दान करते हैं, वे दिव्य वस्त्रधारी होकर यमपुरी पहुंचते हैं। पुर एवं आकर (खान) को दान करने वाले मार्ग में देवगण द्वारा स्तुत होते यमपुरी पहुंचते हैं। गोदाता लोग सर्वसुख भोगी होकर यमलोक जाते हैं। भूदाता एवं गृहदाता सर्वसम्पदासमन्वित विमानों पर अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता वृषालय ले जाया जाता है। अश्व, यान, गज दान करने वाला धर्मात्मा विमानारूढ़ तथा सर्वभोगयुक्त होकर धर्मनगरी जाता है। हे मुनिवर! वैल दान करने वाला यान पर बैठकर जाता है। फल-पुष्प दाता संतोषयुक्त होकर यममार्ग से जाता है। जो ताम्बूल दान करता है, वह प्रसन्न होकर धर्मलोक (यमलोक) गमन करता है। जिस श्रेष्ठ मनुष्य ने माता-पिता की सुश्रूषा किया है, वह परितुष्ट आत्मा वाला देवों द्वारा पूजित होता यममन्दिर पहुंच जाता है। जो यती, व्रती, द्विजों, व्राह्मणों की सेवा करता है, वह अत्यन्त सुख पूर्वक इस पथ को पार कर लेता है।।२०-२६।।

सर्वभूतदयायुक्तः पूज्यमानोऽमरैर्द्विजः। सर्वभोगान्वितेनासौ विमानेन प्रयाति च॥२७॥
विद्यादानरतो याति पूज्यमानोऽब्जसूनुभिः।
पुराणपाठको याति स्तूयमानो मुनीश्वरैः॥२८॥
एवं धर्मपरा यान्ति सुखं धर्मस्य मन्दिरम्। यमश्चतुर्मुखो भूत्वा शंखचक्रगदासिभृत्॥२९॥
पुण्यकर्मरतं सम्यक्स्नेहान्मित्रमिवार्चति। भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठ नरकक्लेशभीरवः॥३०॥

युष्माभिः साधितं पुण्यमत्रामुत्रसुखावहम्।
मनुष्यजन्म यः प्राप्य सुकृतं न करोति च॥३१॥

हे द्विज! जो सभी प्राणीगण के प्रति दयालु रहता है, वह देवगण से पूजित तथा सर्वभोगान्वित होकर विमान से जाता है। विद्यादाता ब्रह्मपुत्रों से पूजित होकर जाता है। पुराणपाठकर्त्ता मुनीश्वर गणों द्वारा स्तुत होकर जाता है। इस प्रकार धार्मिक लोग सुख पूर्वक यमलोक जाते हैं। उनके लिये यमराज चतुर्मुख रूप धारण करते हैं। वे शंख-चक्र-गदा-तलवारधारी होकर उन पुण्यकर्मा लोगों के साथ सम्यक् रूप से मित्रवत् आचरण करते हैं। यमराज उनसे कहते हैं—"हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! तुम लोगों ने नरक से भयभीत होकर उत्तम पुण्यकृत्य किया है। तुमने इहलोक तथा परलोक हेतु उन कर्मों के कारण सुखलाभ का अवसर प्राप्त किया है। जो मनुष्य जन्म लेकर भी सुकृत नहीं करते।"।।२७-३१।।

स एव पापिनां श्रेष्ठ आत्मघातं करोति च। अनित्यं प्राप्य मानुष्यं नित्यं यस्तु न साधयेत्॥३२॥
स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः। शरीरं यातनारूपं मलाद्यैः परिदूषितम्॥३३॥
तस्मिन्यो याति विश्वासं तं विद्यादात्मघातकम्।
सर्वेषु प्राणिनः श्रेष्ठास्तेषु वै बुद्धिजीविनः॥३४॥
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणास्तथा। ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः॥३५॥
कृतबुद्धिषुः कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः। ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते॥३६॥

"वे महान् पापी तथा आत्मघाती ही हैं। जो क्षणभंगुर अनित्य मनुष्य जन्म पाकर भी नित्य स्थिति पाने की साधना नहीं करते, उनको घोरतर नरक की प्राप्ति होती है। उससे बढ़कर अचेतन (जड़) कौन हो सकता है? यह शरीर यातनारूप तथा मल आदि से अतीव दूषित रहता है। इसके प्रति जो विश्वास करता है, उसे आत्मघाती ही माने। समस्त प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है। उनमें भी मनुष्य श्रेष्ठ है। उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों में भी विद्वान, विद्वान् में भी विवेकी, विवेकी में कर्मपरायण, कर्मपरायण में भी ब्रह्मवादी तथा ब्रह्मवादी में भी जो ममत्व रहित है, वही श्रेष्ठ कहा गया है।"।।३२-३६।।

एतेभ्योऽपि परो ज्ञेयो नित्यं ध्यानपरायणः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः॥३७॥
सर्वत्र पूज्यते जन्तुर्धर्मवान्नात्र संशयः। गच्छ स्वपुण्यैर्मत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम्॥३८॥
अस्ति चेद्दुष्कृतं किञ्चित्पश्चादत्रैव भोक्ष्यसे।
एवं यमस्तमभ्यर्च्य प्रापयित्वा च सद्गतिम्॥३९॥
आहूय पापिनश्चैव कालदण्डेन तर्जयेत्। प्रलयांबुदनिर्घोषो ह्यञ्जनाद्रिसमप्रभः॥४०॥

"इनमें भी वह श्रेष्ठ है, जो ध्यानतत्पर है। अतएव सर्वप्रयत्न पूर्वक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह धर्म अर्जित करे। इसमें तनिक संशय नहीं है कि धर्मवान की सर्वत्र पूजा होती है। अतः व्यक्ति अपने पुण्य द्वारा उस स्थान का लाभ करे, जो मेरा समस्त भोग समन्वित स्थान है। जो दुष्कृति भी है, वह अपने पुण्यभोग के पश्चात् यहां लाया जाकर अपना पापफल भोग करेगा।"

इस प्रकार से यमराज पुण्यात्मागण को वहां लाये जाने पर उनकी अर्चना (सत्कार) करके उनको सद्गति दान करते हैं तथा पापियों को बुलाकर उनको अपने कालदण्ड से धमकाते हैं। पापियों के लिये वे अंजन गिरि के समान वर्ण वाले तथा प्रलयकालीन मेघों के समान गर्जन करने वाले हो जाते हैं।।३७-४०।।

सनक उवाच

विद्युत्प्रभायुधैर्भीमो द्वात्रिंशद्भुजसंयुतः। योजनत्रयविस्तारो रक्ताक्षो दीर्घनासिकः॥४१॥
दंष्ट्राकरालवदनो वापीतुल्योग्रलोचनः। मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः॥४२॥
सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यविभीषणाः।
ततो ब्रवीति तान्सर्वान्कम्पमानांश्च पापिनः॥४३॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया।
भो भो पापा दुराचारा अहंकारप्रदूषिताः॥४४॥
किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभिः। कामक्रोधादिदृष्टेन सगर्वेण तु चेतसा॥४५॥
यद्यत्पापतरं तत्तत्किमर्थं चरितं जनाः। कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यंतहर्षिताः॥४६॥
तथैव यातना भोज्याः किं वृथा ह्यातिदुःखिताः।
भृत्यमित्रकलत्रार्थं दुष्कृतं चरितं तथा॥४७॥

वे (उस समय पापियों हेतु) विद्युत् प्रभा जैसे, महाभयंकर, बत्तीस भुजा वाले, तीन योजन विस्तृत, रक्तवर्णनेत्रों से युक्त, दीर्घ नासिका वाले, कराल दातों वाले, वापी के समान उग्रनेत्र युक्त दिखलाई देते हैं। वे उस समय भीषणाकृति चित्रगुप्त, मृत्यु ज्वर प्रभृति से घिरे अतीव भयप्रद हो जाते हैं। उस समय यम के ही समान भीषण दूतगण गरजते रहते हैं। उस समय समस्त पापियों का अपनी वाणी से कंपित करते हुये यम के आदेशानुसार उन पापियों से जो कि अपने पूर्वकर्मों का अनुताप करते रहते हैं, चित्रगुप्त कहते हैं—"हे पापकर्मा, दुराचारी लोगों! तुम सबने अहंकार वृत्ति से दूषित होकर विवेक खोकर पापों को क्यों किया? तुम सबने काम-क्रोधादि के कारण गर्वपूर्ण मन से पापों को क्यों किया? तुम सबने पूर्वकाल में अत्यन्त हर्षित होकर पाप कर्म किये हैं। तदनुरूप यातना तो भोगना ही है। इसमें दुःखी क्यों होते हो? तुम लोगों ने भृत्य-मित्र-पत्नी-स्त्री हेतु दुष्कृत किया था।"।।४१-४७।।

तथा कर्मवशात्प्राप्ता यूयमत्रातिदुःखिताः।
युष्माभिः पोषिता ये तु पुत्राद्या अन्यतो गताः॥४८॥
युष्माकमेव तत्पापं प्राप्तं किं दुःखकारणम्।
यथा कृतानि पापानि युष्माभिः सुबहूनि वै॥४९॥
तथा प्राप्तानि दुःखानि किमर्थमिह दुःखिताः।
विचारयध्वं यूयं तु युष्माभिश्चरितं पुरा॥५०॥
यमः करिष्यते दण्डमिति किं न विचारितम्। दरिद्रेऽपि च मूर्खे च पण्डिते व श्रियान्विते॥५१॥

कांदिशीके च वीरे च समवर्ती यमः स्मृतः।
चित्रगुप्तेरितं वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा॥५२॥

उसी कृत कर्म का फल भोग करने तुम दुःख भोगने के लिये ही लाये गये हो। तुम्हारे द्वारा पालित पुत्रादि अन्यत्र चले गये (तुम्हारे साथ कोई नहीं है)। अब स्वकृत पापों का फलभोग तो तुमको ही करना है, इसमें दुःख क्यों? तुम सबने जैसा प्रचुर पातक जीवन में किया है, उसी के अनुरूप अब दुःख मिल रहा है। अतः क्यों दुःखी हो? यह विचार करो कि पूर्वकाल में पाप करते समय यह क्यों नहीं सोचा कि "यम द्वारा इसका दण्ड अवश्य मिलेगा। चाहे दरिद्र, मूर्ख, पण्डित किंवा धनी कोई क्यों न हो, भले ही वह कायर अथवा वीर चाहे जैसा हो, यमराज का न्याय सबके प्रति निष्पक्ष होता है।" चित्रगुप्त का कथन सुनकर वे सभी पातकी लोग।।४८-५२।।

शोचन्तः स्वामि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति भीषिताः।
यमाज्ञाकारिणः क्रूराश्चण्डा दूता भयानकाः॥५३॥
चण्डालाद्याः प्रसह्यैतान्नरकेषु क्षिपन्ति च।
स्वदुष्कर्मफलं ते तु भुक्त्वान्ते पापशेषतः॥५४॥
महीतलं च संप्राप्य भवन्ति स्थावरादयः।
भगवन्संशयो जाता मतच्चेतसि दयानिधे॥५५॥

"अपने पूर्वकृत कर्मों का विचार करते भयभीत होकर स्तब्ध तथा मौन हो जाते हैं। तब यम की आज्ञा का पालन करने वाले क्रूर भयानक चण्ड, चाण्डालादि दूत उन पातकियों को बल पूर्वक नरक में फेंक देते हैं। वे वहां अपना दुष्कर्म फल भोगते हैं तथा जब कुछ ही पाप भोगना बाकी रह जाता है, तब वे पृथिवी पर स्थावरादि योनियों में जन्म लेते हैं।" यह सुनकर नारद ने कहा—"हे दयानिधि! मेरे मन में कुछ शंकाये हैं।"।।५३-५५।।

नारद उवाच

त्वं समर्थोऽसि तच्छेत्तुं यतो नो ह्यग्रजो भवान्।
धर्माश्च विविधाः प्रोक्ताः पापान्यपि बहूनि च॥५६॥
चिरभोज्यं फलं तेषामुक्तं बहुविदा त्वया।
दिनान्ते ब्रह्मणः प्रोक्तो नाशो लोकत्रयस्य वै॥५७॥
परार्द्धद्वितयान्ते तु ब्रह्माण्डस्यापि संक्षयः। ग्रामदानादिपुण्यानां त्वयैव विधिनन्दन॥५८॥
कल्पकोटिसहस्रेषु महान्भोग उदाहृतः। सर्वेषामेव लोकानां विनाशः प्राकृते लये॥५९॥
एकः शिष्यत एवेति त्वया प्रोक्तं जनार्दनः। एष मे संशयो जातस्तं भवाञ्छेत्तुमर्हति॥६०॥
पुण्यपापोपभोगानां समाप्तिर्नास्य संप्लवे।

देवर्षि नारद कहते हैं—आप समर्थ तथा मेरे बड़े भाई हैं। आप इन शंकाओं को निर्मूल कर सकते हैं। आपने विविध धर्मों तथा प्रभूत पातकों का वर्णन किया है। चिरकाल पर्यन्त भोगे जाने वाले उनके फल को भी

आपने कहा है। यह भी आपने कहा है कि ब्रह्मा के दिन का जब अन्त होता है, तब लोकत्रय विनष्ट हो जाते हैं। दो परार्द्ध अतीत होते ही ब्रह्माण्ड क्षय हो जाता है। हे विधिनन्दन! आपने तो "ग्राम आदि दान का पुण्य फल करोड़ों कल्प पर्यन्त महाभोग के साथ मिलता है" यह कहा था। सब प्राकृत प्रलयकाल में सभी लोक विनष्ट हो जाते हैं। (तब करोड़ों कल्प कालीन फल कैसे मिलेगा?)। मुझे यह संशय है, आप उसका उच्छेद करिये कि क्या प्रलयकाल में भी पुण्य एवं पाप कर्म का नाश नहीं होता?।।५६-६०।।

सनक उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ गुह्याद्गुह्यतमं त्विदम्॥६१॥
पृष्टं तत्तेऽभिधास्यामि शृणुष्व सुसमाहितः।
नारायणोऽक्षरोऽनन्तः परं ज्योतिः सनातनः॥६२॥
विशुद्धो निर्गुणो नित्यो मायामोहविवर्जितः।
निगुर्णोऽपि परानन्दो गुणवानिव भाति यः॥६३॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु भेदवानिव लक्ष्यते। गुणोपाधिकभेदेषु त्रिष्वेतेषु सनातन॥६४॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! साधु-साधु! आपने अतीव गुह्याति-गुह्यतम प्रश्न पूछा है। जो आपने पूछा है, उसका उत्तर सुसमाहित होकर श्रवण करें। नारायण देव ही अक्षर, अनन्त, परमज्योति तथा सनातन हैं। वे विशुद्ध, निर्गुण, नित्य, मायामोहविवर्जित, परानन्द तथा निर्गुण होकर भी गुणयुक्त से भावित होते हैं। वे ही ब्रह्मा-विष्णु-शिव रूपेण भेदयुक्त प्रतीत होने लगते हैं। इन तीनों देवताओं में मात्र गुण एवं उपाधि रूपी भेद है, तथापि वे सनातन ही हैं।।६१-६४।।

संयोज्य मायामखिलं जगत्कार्यं करोति च। ब्रह्मरूपेण सृजति विष्णुरूपेण पाति च॥६५॥
अन्ते च रुद्ररूपेण सर्वमत्तीति निश्चितम्। प्रलयान्ते समुत्थाय ब्रह्मरूपी जनार्दनः॥६६॥
चराचरात्मकं विश्वं यथापूर्वमकल्पयत्। स्थावराद्याश्च विप्रेन्द्र यत्र यत्र व्यवस्थिता॥६७॥
ब्रह्मा तत्तज्जगत्सर्वं यथापूर्वं करोति वै।
तस्मात्कृतानां पापानां पुण्यानां चैव सत्तम॥६८॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मणां ह्यक्षयं फलम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥६९॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। यो देवः सर्वलोकानामन्तरात्मा जगन्मयः।
सर्वकर्मफलं भुङ्क्ते परिपूर्णः सनातनः॥७०॥
योऽसौ विश्वम्भरो देवो गुणभेदव्यवस्थितः।
सृजत्यवति चात्त्येतत्सर्वं सर्वभुगव्ययः॥७१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे यमदूतकृत्यनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

वह एक ही प्रभु माया से संयुक्त होकर अखिल लोककार्य सम्पन्न करते हैं। वे ब्रह्मारूप से सृष्टि, विष्णु रूप से पालन तथा रुद्ररूपेण अन्त में सबका लय करते हैं, यह निश्चित है। प्रलय व्यतीत हो जाने पर ये ब्रह्मरूपी जनार्दन पूर्व की ही भांति चराचर विश्वरचना करते हैं। हे विप्रेन्द्र! पूर्व में जो सृष्टि थी उसमें स्थावरादि जहां-जहां व्यवस्थित थे, ये ब्रह्मा जगत् को पूर्ववत् सृष्ट कर देते हैं। हे सत्तम! इसलिये कृत पाप एवं पुण्य का फल तो अवश्य भोगना पड़ता है। कर्मों का फल कभी क्षय नहीं होता। बिना कर्म भोग किये करोड़ों कल्पों में भी कर्मक्षय नहीं हो सकता। शुभाशुभ कर्मों को तो भोगना ही होगा। जो सर्वलोकान्तरात्मा देव जगन्मय हैं, वे परिपूर्ण सनातन भी सर्वकर्मफल भोग करते हैं। जो गुण-भेदस्थ विश्वपालक देव हैं, वे सर्वभुक् अव्यय प्रभु सचराचर की सृष्टि करते हैं।।६५-७१।।

।।३१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

भवाटवी वर्णन

सनक उवाच

एवं कर्मपाशनियन्त्रित जन्तवः स्वर्गादिपुण्यस्थानेषु पुण्यभोगमनुभूय यातनासु चातीव दुःखतरं पापफलमनुभूय प्रक्षीणकर्माविशेषेणामुं लोकमागत्य सर्वमथविह्वलेषु मृत्युबाधा-संयुतेषु स्थावरादिषु जायन्ते। वृक्षगुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणान च। स्थावराइति विख्याता महामोहसमावृत्ताः॥१॥

देवर्षि सनक कहते हैं—इस प्रकार कर्मपाश से नियंत्रित प्राणी स्वर्गादि पुण्य स्थानों में पुण्य भोगों का अनुभव करके, यातनाप्रद (नरक) स्थान में पापों का दुःखतर फलानुभव करके, जब किंचित् कर्मफलभोग बाकी रह जाता है, तब इस मृत्युलोक में जन्म लेकर सर्वमययुक्त, मृत्युबाधा संयुक्त स्थावरादि योनि में उत्पन्न होता है। वह वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, पहाड़ तृणादिरूपेण उत्पन्न होता है। ये स्थावर कहे गये हैं, जो महामोह समन्वित होते हैं।।१।।

स्थावरत्वे पृथिव्यामुप्तबीजानि जलसेकानुपदं सुसंस्कारसामग्रीवशादन्तरूष्मप्रपा-चितान्युच्छूनत्वमापद्ये ततो मूलभावं तन्मूलादंकुरोत्पत्तिस्तस्मादपि पर्णकाण्डनालादिकं। काण्डेषु च प्रसवमापद्यते तेषु च पुष्पसम्भवः॥२॥

स्थावर दशा में पृथिवी में बोये गये बीज जलसिंचन कारण अपनी सुसंस्कार सामग्री के कारण कुछ उष्णत्व एवं किंचित् आर्द्रत्व के कारण वर्द्धित होने लगते हैं। तब उनमें से जड़ निकलती है। जड़ से अंकुर, अंकुर से उसका डंठल तथा नाल आदि निकलते हैं। काण्डों से (शाखा-डंठल) से कलिका तथा पुष्प का निर्गमन होता है।।२।।

तानि पुष्पाणि कानिचिदफलानि कानिचित्फलहेतुभूतानि तेषु पुष्पेषु वृद्धभावेषु सत्सु तत्पुष्पमूलतस्तुषोत्पत्तिर्जायते तेषु तेषु भोक्तॄणां प्राणिनां संस्कारसामग्री-वशाद्धिमरश्मिकिरणासन्नतया तदोषधिरसस्तुषान्तः प्रविश्य क्षीरभावं समेत्य स्वकाले तण्डुलाकारतामुपगम्य प्राणिनां भोगसंस्कारवशात्संवत्सरेफलिनः स्युः॥३॥

कतिपय पुष्प फलहीन होते हैं। कतिपय फल प्रदान करने वाले होते हैं। पूर्ण विकसित पुष्प मूल से (तुष) रस निकलता है। भोक्ता प्राणी के संस्कार के कारण चन्द्रकिरण संयोग उस औषधि के समान तुष से मिलित होकर क्षीर होता है, जो उचित समय आने पर तण्डुलरूपी होता है। वे प्राणीगण के भोग संस्कार के कारण वर्षपर्यन्त फल प्रदाता हो जाते हैं।।३।।

स्थावरत्वेऽपि बहुकालं वानरादिभिर्भुज्यमाना हि च्छेदनदवाग्निदहनशीतातपादि-दुःखमनुभूय म्रियन्ते। ततश्च क्रिमयो भूत्वा सदादुःखबहुलाः क्षणार्द्धं जीवतं क्षणार्द्धं म्रियमाणा बलवत्प्राणिपीडायां निवारयितुमक्षमाः शीतवातादिक्लेशभूयिष्ठा नित्यं क्षुधाक्षुधिता मलमूत्रादिषु सञ्चरन्तो दुःखमनुभवन्ति॥४॥

स्थावर अवस्था में दीर्घकाल तक उसे वानरादि पशु खाते हैं। स्थावर को कटने, जलाये जाने, शीत-ताप जनित दुःखों को सहना ही पड़ता है। अनेक इस दुःखों के कारण मृत होकर कृमि होते हैं तथा सदैव दुःखबहुल स्थिति में रहते हैं। वे कभी एक क्षण जीते तो अगले क्षण मृत हो जाते हैं। वे बलवत्तर प्राणीगण द्वारा प्रदत्त पीड़न से अपनी रक्षा नहीं कर पाते। वे शीत-वायु-ग्रीष्म-धूप का घोर क्लेश सहन करते हैं। नित्य क्षुधान्वित रहते मल-मूत्रादि में संचरणशील होकर दुःखानुभव करते हैं।।४।।

तत एव पशुयोनिमागत्य बलवद्बाधोद्वेजिता वृथोद्वेगभूयिष्ठाः क्षुत्क्षान्ता नित्यं वनचारिणो मातृष्वपि विषयातुरा वातादिक्लेशबहुलाः कस्मिंश्चिज्जन्मनि तृणाशनाः कस्मिंश्चिज्जन्मनि मांसामेध्याद्यदनाः कस्मिंश्चिज्जन्मनि कन्दमूलफलाशना दुर्बलप्राणि-पीडानिरता दुःखमनुभवंति॥५॥

तत्पश्चात् वे पशुयोनि पाकर बलवत्तर बाधाओं को सहते, वृथा उद्वेग का कष्ट झेलते, क्षुधा-पिपासा से परिश्रान्त होकर नित्य वन में भटकते हैं। वे माता के प्रति भी काम वासना रखते हैं। वे वहां वात प्रभृति के महान् कष्टों को सहते हैं। किसी पशुजन्म में वे तृणभोजी, तो किसी जन्म में मांसादि अमेध्य पदार्थ भोगी, किसी जन्म में कन्द-मूलादि भोजी रहते हैं। वे अपने से दुर्बल को सताते हैं। स्वयं भी अन्य प्रबल द्वारा सताये जाकर दुःखानुभव करते रहते हैं।।५।।

अण्डजत्वेऽपि वाताशनामांसा मेध्याद्यशनाश्च परपीडापरायणा नित्यं दुःखबहुला ग्राम्यपशुयोनिमागता अपि स्वजातिवियोगभरोद्वहनपाशादिबन्धनताडनलहलादिधारणा-दिसर्वदुःखान्यनुभवन्ति॥६॥

जब वे अण्डज योनि प्राप्त करते हैं, उस समय कभी वायु आहार करते हैं, कभी मांस प्रभृति अमेध्य पदार्थों का आहार करते हैं। वे परपीड़ा परायण होकर नित्य दुःखबहुल स्थिति में रहते हैं। जब उनका जन्म ग्राम्य-

पशु के रूप में होता है, तब वे स्वजाति वियोग, भार खींचना तथा उठाना, जंजीर से बन्धन जनित कष्ट तथा ताड़न, हल चलाने आदि का सर्वदुःख भोगते हैं।।६।।

एवं बहुयोनिषु सम्भ्रान्ताः क्रमेण मानुषं जन्म प्राप्नुवन्ति केचिच्च पुण्यविशेषाद्युत्क्रमेणापि मनुष्यजन्माश्नुवते॥७॥

इस प्रकार अनेक योनियों में भ्रमित होता हुआ वह प्राणी कदाचित मानव जीवन प्राप्त करता है। अनेक भाग्यशाली प्राणी अपने विशेष पुण्य के कारण अनेक योनियों में भ्रमण के बिना ही मनुष्य जन्म लाभ कर लेते हैं।।७।।

मनुष्यजन्मनापि च चर्मकारचण्डालव्याधनापितरजककुम्भरकारलोहकारतन्तुवायसौचिकजटिलसिद्धधावकलेखकभृतकशासनहारिनीचभृत्यदरिद्रहीनाङ्गाधिकाङ्गत्वादिदुःख बहुलज्वरतापशीतश्लेष्मगुल्मपादाक्षिशिरोगर्भपार्श्ववेदनादिदुःखमनुभवन्ति॥८॥

कुछ लोग मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर भी चर्मकार, चाण्डाल, व्याध, नाई, कुम्हार, लोहार, जुलाहा, दरजी, जटाधारी, सिद्ध, धावक, लेखक, सेवक, आज्ञापालक, निम्न श्रेणी के भृत्य, हीन अंगों वाले, अधिक अंगों वाले रूप में जन्म लेकर नाना दुःखयुक्त, ज्वर-ताप-शीत-श्लेष्मा-गुल्म-पैर के रोग, नेत्र तथा शिर के रोग, पेट एवं पार्श्वशूलादि रोगों से आक्रान्त होकर दुःख का अनुभव करते रहते हैं।।८।।

मनुष्यत्वेऽपि यदा स्त्रीपुरुषयोर्व्यवायस्तत्समये रेतो यदा जरायुं प्रविशति तदैव कर्मवशाज्जन्तुः शुक्रेण सह जरायुं प्रविश्य शुक्रशोणितकलले प्रवर्त्तते॥९॥

जब मनुष्य योनि मिलती है, तब स्त्री-पुरुष का संयोग होने से वीर्य स्त्री के जरायु में प्रविष्ट होता है, तब कर्मवशात् वह प्राणी पिता के शुक्र के सहित जरायु में प्रवेश करके वहां क्रमिक रूप से शुक्र, शोणित, कलल का रूप धारण करता है।।९।।

तद्वीर्यं जीवप्रवेशात्पञ्चाहात्कललं भवति अर्द्धमासे पललभावमुपेत्य मासे प्रादेशमात्रत्वमापद्यते॥१०॥

ततः प्रभृति वायुवशाच्चैतन्याभावेऽपि मातुरुदरे दुःसहतापक्लेशतयैकत्र स्थातुमशक्यत्वाद्भ्रमति॥११॥

वह वीर्य जीव के प्रवेश के कारण पांचवे दिन कलल, अर्द्धमास में पलल तथा एक मास का होने पर एक बित्ते का पिण्डरूप होता है। भले ही चैतन्य तब नहीं रहता, तथापि वायु के वशीभूत होकर मातृगर्भ में हो रहे असहनीय ताप के कारण वहां भ्रमण करता है। (हिलता-डुलता है)।।।१०-११।।

मासे द्वितीये पूर्णे पुरुषाकारमात्रतामुपगम्य मासत्रितये पूर्णे करचरणाद्यवयवभावमुपगम्य चतुर्षु मासेषु गतेषु सर्वावयवानां सन्धिभेदपरिज्ञानं पञ्चस्वतीतेषु नखानामभिव्यञ्जकता षट्स्वतीतेषु नखसन्धिपरिस्फुटतामुपगम्य नाभिसूत्रेण पुष्यमाणममेध्यमूत्रसिक्ताङ्गं जरायुणाबन्धितरक्तास्थिक्रिमिवसामज्जास्नायुकेशादिदूषिते कुत्सिते शरीरे

निवासिनं स्वयमप्येवं परिदूषितदेहं मातुश्च कट्वम्ललवणात्युष्णभुक्तदह्यमानमात्मानं दृष्ट्वा देही पूर्वजन्मस्मरणानुभावात्पूर्वानुभूतनरकदुःखानि च स्मृत्वान्तर्दुःखेन च परिदह्यमानो मातुर्देहातिमूत्रादिरूक्षेण दह्यमान एवं मनसि प्रलपति॥१२॥

मासद्वय अतीत होते ही पूर्ण पुरुषाकृति मात्रता को प्राप्त करता है। तीसरे मास उसमें पूर्णतः हाथ, पैर आदि अवयव व्यक्त होने लगते हैं। चतुर्थ मास बीतने पर सभी अवयवों का सन्धिभेद लक्षित होने लगता है। पंचम मास व्यतीत होने पर नख तथा छः माह व्यतीत होने पर नख सन्धि व्यक्त होती है। तब वह गर्भ नाभिनाल से पोषण लाभ करता है। अपवित्र मूत्रादि से उसके अंग सिक्त रहते हैं। वह जरायु से आबद्ध रहता है। रक्त-अस्थि-कृमि-वसा-मज्जा-स्नायु-केशादि से अपवित्र देखकर तथा ऐसे घृणित देह में रहते जानकर तथा मातृनाल से प्राप्त कटु-अम्ल-लवण तथा रुक्ष भोजन से दह्यमान वह गर्भस्थ जीव पूर्वजन्म के स्मरण तथा पहले जन्मों में अनुभूत नरकादि दुःख को याद करके मन ही मन विलाप करता है।।१२।।

अहोऽत्यन्तपापोऽहंपूर्वजन्मनि भृत्यापत्यमित्रयोषिद्गृहक्षेत्रधनधान्यादिष्वत्यन्त-रागेण कलत्रपोषणार्थं परधनक्षेत्राधिकं पश्यतो हरणाद्युपायैरपहृत्य कामान्धतया परस्त्रीहरणादिकमनुभूय महापापान्याचरंस्तैः पापैरहमेक एवंविधनरकाननुभूय पुनः स्थावरादिषु महादुःखमनुभूय सम्प्रति जरायुणा परिवेष्टितोऽन्तदुःखेन बहिस्तापेन च दह्यामि॥१३॥

शिशु कहता है—अहो! मैं महापातकी हूं। पूर्व जन्मों में मैंने भृत्य, सन्तान, मित्र, पत्नी, गृह, क्षेत्र, धन-धान्यादि के राग के कारण स्त्री के पालनार्थ पराया धन, क्षेत्र आदि देखकर उपाय का सहारा लिया तथा उनका हरण किया। मैंने कामान्ध होकर परस्त्री हरण भी किया। मैंने अन्य लोगों के लिये पाप किया था, तथापि उसका फल अनेक भयानक नरकों में गिरकर स्वयं भोगा। तदनन्तर मुझे स्थावर आदि योनियों में नाना दुःसह कष्ट उठाना पड़ा। अब जरायु में लिपटा अन्तर्दुःख तथा बाहरी ताप, इन दोनों से जल रहा हूं।।१३।।

मया पोषिता दाराश्च स्वकर्मवशादन्यतो गताः॥१४॥
अहो दुःखं हि देहिनाम्॥१५॥
देहस्तु पापात्सञ्जातस्तस्मात्पापं न कारयेत्। भृत्यमित्रकलत्रार्थमन्यद्द्रव्यं हृतं मया॥१६॥

मैंने जिन पत्नी को पाला-पोसा तथा वह भी अपने कर्म के कारण अन्यत्र गई। अहो! देहधारी तो सदा कष्ट सहता है। देह की प्राप्ति पापों से होती है। अतः पाप न करे। मैंने भृत्यों, मित्रों, स्त्रियों हेतु परद्रव्य का हरण किया था।।१४-१६।।

तेन पापेन दह्यामि जरायुपरिवेष्टितः। दृष्ट्वान्यस्य श्रियं पूर्वं सन्तप्तोऽहमसूयया॥१७॥
गर्भाग्निनानुदह्येयमिदानीमपि पापकृत्।
कायेन मनसा वाचापरपीड़ामकारिषम् तेन पापेन दह्यामि त्वहमेकोऽतिदुःखितः॥१८॥
एवं बहुविधं गर्भस्थो जन्तुर्विलप्य स्वयमेव वा॥१९॥

उन पापों के कारण मैं जरायु से लिपटा आज दग्ध-सा हो रहा हूं। मैं दूसरों की उन्नति, श्री देखकर

ईर्ष्यापरायण रहता था। तभी अब गर्भाग्नि के ताप से दग्ध हो रहा हूं। मैं काया, मन तथा वाणी से लोगों की पीड़ित करता रहता था। उन पापों से आज अकेला दुःखी तथा दह्यमान हो रहा हूं। इस प्रकार से वह गर्भस्थ जन्तु विलाप करता अपने से कहता है।।१७-१९।।

आत्मानमाश्वास्य उत्पत्तेरनन्तरं सत्सङ्गेन विष्णोश्चरितश्रवणेन च विशुद्धमना भूत्वा सत्कर्माणि निर्वर्त्य अखिलजगदन्तरात्मनः सत्यज्ञानानन्दमयस्य शक्तिप्रभावानुष्ठित-विष्टपवर्गस्य लक्ष्मीपतेर्नारायणस्य सकलसुरासुरयक्षगन्धर्वराक्षसपन्नगप्मुनिकिन्नरसमूहार्चित-चरणकमलयुगं भक्तितः समभ्यर्च्य दुःसह संसारच्छेदस्य कारणभूतं वेदरहस्योपनिषद्भिः परिस्फुटं सकललोकपरायणं हृदि निधाय दुःखतरमिमं संस्कारागारमतिक्रमिष्यामीति मनसि भावयति॥२०॥

वह जीव स्वयं को आश्वस्त करता कहता है अब मैं जन्म लेने के उपरान्त सत्संग तथा विष्णुचरित श्रवण करके विशुद्ध मन वाला होकर सत्कर्म परायण रहूंगा। अखिल जगत् के अन्तरात्मरूप सत्य, ज्ञान तथा आनन्दमय की जो अपनी शक्ति के प्रभाव से स्वर्ग की प्रतिष्ठापना करते हैं, उन लक्ष्मीपति नारायण के सभी सुर-असुर-यक्ष-गन्धर्व-राक्षस-नाग, मुनि, किन्नरगण द्वारा अर्चित चरणद्वय की मैं भक्ति के साथ अर्चना करके दुःसह संसार का उच्छेद करने वाले वेद, रहस्य, उपनिषदों में वर्णित सर्व लोककारण सर्वलोकाधार प्रभु को हृदय में स्थापित करके इस दुःखतर संस्कार रूपी कारा बन्धन से स्वयं को मुक्त कर लूंगा।" वह गर्भस्थ जीव उस समय ऐसी भावना मन में करता है।।२०।।

यतस्तन्मातुः प्रसूतिसमये सति गर्भस्थो देही नारदमुने वायुनापरिपीडितो मातुश्चापि दुःखं कुर्वन्कर्मपाशेन बलाद्योनिमार्गान्निष्क्रामन्सकलयातनाभोगमेककालभवमनुभवति॥२१॥

हे मुनि नारद! तदनन्तर जन्मकाल आने पर यह गर्भस्थ देहधारी वायु से स्वयं पीड़ित होकर माता को दुःख पहुंचाता, कर्मपाशबद्ध बल पूर्वक मातृयोनि से बाहर निकलने का उपक्रम करते समय सर्व यातना भोग भी करता है।।२१।।

तेनातिक्लेशेन योनियन्त्रपीडितो गर्भान्निष्क्रान्तो निःसंज्ञतां याति॥२२॥

योनि यन्त्र द्वारा अत्यन्त परिपीड़ित वह गर्भ गर्भाशय से बाहर भूमिष्ठ होते ही निःसंज्ञ हो जाता है।।२२।।

तं तु बाह्यवायुः समुज्जीवयति। बाह्यवायुस्पर्शसमनन्तरमेव नष्टस्मृति-पूर्वानुभूताखिलदुःखानि वर्त्तमानान्यपि ज्ञानाभावादविज्ञायात्यन्तदुःखमनुभवति॥२३॥

ऐसी स्थिति होने पर वह वाह्यवायु के प्रभाव से जीवित होता है। बाह्यवायु का स्पर्श होने मात्र से उसकी पूर्वस्मृति का नाश हो जाता है। तब पूर्वानुभूत दुःख संस्कार रूप धारण करके स्थित रहते हैं। तदापि ज्ञानशून्य वह भूमिष्ठ शिशु सब कुछ भूलकर स्वयं के वर्त्तमान दुःख का ही अनुभव करता है।।२३।।

एवं बालत्वमापन्नो जन्तुस्तत्रापि स्वमलमूत्रलिप्तदेह आध्यात्मिकादिपीड्यमानोऽपि वक्तुमशक्तः क्षुत्तुषपीडितो रुदिते सति स्तनादिकं देयमिति मन्वानाः प्रयतन्ते॥२४॥

अब वह जीव बालकरूपी होकर (कभी-कभी) अपने मल-मूत्र में ही लिपटा रहता है। उसे पीड़ा होती है, तथापि अपनी वेदना कह नहीं पाता। बोलने में अशक्त होने के कारण भूख से पीड़ित होकर रोता है। इससे माता को स्तनपान कराने की आवश्यकता विदित होती है। तब वह माता शिशु को स्तनपान कराती है।।२४।।

एवमनेकं देहभोगमन्याधीनतयानुभूयमानो दंशादिष्वपि निवारयितुमशक्तः॥२५॥

बाल्यभावमासाद्य मातापित्रोरुपाध्यायस्यां ताडनं सदा पर्यटनशीलत्वं पांशु-भस्मपङ्कादिषु क्रीडनं सदा कलहनियतत्वामशुचित्वं बहुव्यापाराभासकार्यनियतत्वं सदसम्भव आध्यात्मिकदुःखमेवंविधमनुभवति॥२६॥

वह बालक अन्य के अधीन रहता है। अनेक देहकष्ट का अनुभव करता है। मशक आदि के डसने पर भी वह उनको हटा नहीं सकता। क्रमशः बाल्यभाव का अवसान होने पर माता-पिता-उपाध्याय उसकी ताड़ना करते हैं। वह यत्र-तत्र धूल, भस्म-कीचड़ आदि में खेलता है। नित्य कलहरत रहता है। अनेक अपवित्रता में एवं अशिष्टाचरण में निरत रहता है। जब कोई इन व्यर्थ कार्यों में उसे बाधा देता है, तब वह मानसिक कष्ट का अनुभव करने लगता है।।२५-२६।

ततस्तु तरुणभावेन धनार्जनमर्जितस्य रक्षणं तस्य नाशव्ययादिषु चात्यन्तदुःखिता मायया मोहिताः कामक्रोधादिदुष्टमनसः सदासूयापरायणाः परस्वपरस्त्रीहरणोपायपरायणाः पुत्रमित्रकलत्रादिभरणोपायचिन्तापरायणा वृथाहङ्कारदूषिताः पुत्रादिषु व्याध्यादिपीडितेषु सत्सु सर्वव्याप्तिं परित्यज्य रोगादिभिः क्लेशितानां समीपे स्वयमाध्यात्मिकदुःखेन परिप्लुता वक्ष्यमाणप्रकारेण चितामश्नुवते॥२७॥

किशोरवय व्यतीत होते ही वह तरुणावस्था प्राप्त करता है। तब वह धनार्जन, अर्जित धनरक्षण, उसके नाश-व्ययादि की चिन्ता से ग्रस्त तथा दुःखी बना रहता है। वह माया से मोहित होकर काम-क्रोधादि से दुष्ट मनोवृत्ति वाला, सदा ईर्ष्या करने वाला होकर सतत् परद्रव्यलाभ तथा परस्त्रीहरण परायण होकर, पुत्र-मित्र-स्त्री के भरण-पोषण की चिन्ता से ग्रसित, वृथा अहंकार से दूषित वृत्तिवाला, पुत्रादि को हो गये रोगों के कारण व्यथित हो जाता है। वह सत्संग तथा सत्क्रिया त्याग कर रोगादि पीड़ित स्वजनों के समीप बना रहता है। स्वयं मानस दुःखों तथा क्लेशों से व्यथित-सा होकर ऐसी चिन्ता करने लगता है।।२७।।

गृहक्षेत्रादिकं कर्म किञ्चिन्नापि विचारितम्।
समृद्धस्य कुटुम्बस्य कथं भवति वर्त्तनम्॥२८॥
मम मूलधनं नास्ति वृष्टिश्चापि न वर्षति।
अश्वः पलायितः कुत्रगावः किं नागता मम॥२९॥
बालापत्या च मे भार्या व्याधितोऽहं च निर्धनः।
अविचारात्कृषिर्नष्टा पुत्रा नित्यं रुदन्ति च॥३०॥

भग्नं छिन्नं तु मे सद्म बान्धवा अपि दूरगाः। न लभ्यते वर्त्तनं च राजबाधातिदुःसहा॥३१॥

वह विचार करता है मैंने गृह-क्षेत्रादि के सम्बन्ध में कुछ भी सावधानी नहीं रखी। अब इस बड़े कुटुम्ब का भरण-पोषण कैसे करूंगा। इस समय वर्षा नहीं हो रही है। मेरे पास संचयरूपी मूलधन का भी अभाव है? पता नहीं मेरा अश्व कहां भाग गया? गौवें नहीं लौटी? मेरी पत्नी की बालक सन्तान है। उधर मैं व्याधिग्रस्त तथा निर्धन हूं। मेरे अविचार के कारण (सन्नद्ध न होने के कारण मेरी कृषि नष्ट है। पुत्रगण सदा अन्नादि के अभाव से रुदन करते हैं। मेरा गृह भग्न है, मेरे बन्धु-बान्धव अत्यन्त दूर हैं। आजीविका भी नहीं है। उधर दुःसहनीय रूप से राजा का शुल्क बाकी है।।२८-३१।।

रिपवो मां प्रधावन्ते कथं जेष्याम्यहं रिपून्।
व्यवसायाक्षमश्चाहं प्राप्ताः प्राघूर्णका अमी॥३२॥
एवमत्यन्तचिन्ताकुलः स्वदुःखानि निवारयितुमक्षमो
धिग्विधिं भाग्यहीनं मां किमर्थं विदधे इति दैवमाक्षिपति॥३३॥

"चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हूं। मैं उनको कैसे जीत सकूंगा? अब मैं व्यवसाय हेतु भी अक्षम हूं। यह देखो! अतिथि भी पहुंच गये।" इस प्रकार मनुष्य चिन्ताकुल हो जाता है। वह देखता है कि मैं इन दुःखों का निवारण ही नहीं कर सकता। वह कहता है "विधि को धिक्कार है। वह मुझ भाग्यहीन का अन्त क्यों नहीं करता?" इस प्रकार वह भाग्य पर ही दोषारोपण करने लगता है।।३२-३३।।

तथा वृद्धत्वमापन्नो हीयमान सारो जरापलितादिव्याप्तदेहो व्याधिबाध्यत्वा-दिकमापन्नः। प्रकम्पमानावयवश्वासकासादिपीडितो लोलाविललोचनः श्लेष्मव्याप्तकण्ठः पुत्रदारादिभिर्भर्त्स्यमानः कदा मरणमुपयामीति चिन्ताकुलो मयि मृते सति मदर्जितं गृहक्षेत्रादिकं वस्तु पुत्रादयः कथं रक्षन्ति कस्य वा भविष्यति॥३४॥

इस प्रकार (चिन्ता करते-करते) वह बूढ़ा हो जाता है। वह जरा-पलित से व्याप्त शरीर वाला, रोग से ग्रस्त, व्याधि एवं क्लेश से पूर्णतः व्याप्त हो जाता है। उसके अंग जरा से कांपने लगते हैं। वह श्वास तथा खांसी से ग्रसित रहता है। आंखों की ज्योति मन्द तथा चंचल हो जाती है। श्लेष्मा से कण्ठ भर जाता है। उसकी भर्त्सना अब पुत्र तथा पत्नी करने लगते हैं, तब वह मनाने लगता है कि मेरा मरण कब होगा? मेरी मृत्यु हो जाने पर मेरे गृह, क्षेत्रादि का रक्षण ये कैसे कर सकेंगे? तब क्या होगा?।।३४।।

मद्धने परैरपहृते पुत्रादीनां कथं वर्त्तनं भविष्यतीति ममतादुःखपरिप्लुतो गाढं निःश्वस्य स्वेन वयसा कृतानि कर्माणि पुनः पुनः स्मरन् क्षणे विस्मरति च सन्ततस्त्वासन्नमरणो॥३५॥

व्याधिपीडितोऽन्तस्तापार्तः क्षणं शय्यायां क्षणं मञ्चे च ततस्ततः पर्यटन् क्षुत्तृट्परि-पीडितः किञ्चिन्मात्रमुदकं देहीत्यतिकार्पण्येन याचनमानस्तत्रापि ज्वराविष्टानामुदकं न श्रेयस्करमिति ब्रुवतो मनसातिद्वेषं कुर्वन्मन्दचैतन्यो भवति॥३६॥

वह सोचता है कि मेरे धन को दूसरे द्वारा हरण किये जाने से पुत्रादि का जीवन कैसे चलेगा? वह ममतापूर्ण दुःख से परिप्लुत होकर आहें भरता अपने इस जन्म के कृत कर्मों का पुनः-पुनः स्मरण करता है, कभी एक क्षण में सब भूल जाता है। तभी मरणघड़ी निकट हो जाती है। उस समय वह व्याधिग्रस्त, अन्तःताप से आर्त

होकर किसी क्षण शय्या पर तो कभी मंच पर लोटने लगता है। वह इस प्रकार करवट बदलते क्षुधा-पिपासा से पीड़ित होकर अत्यन्त दीनता से किंचित् जल मांगने लगता है। तब कुटुम्वी लोग कहते हैं कि "ज्वराक्रान्त हेतु जल श्रेयस्कर नहीं है।" तब वह उनके प्रति मानसिक द्वेष करता अचैतन्य हो जाता है!।।३५-३६।।

ततश्च हस्तपादाकर्षणे न तु क्षमो रुदद्भिर्बन्धुजनैर्वेष्टितो वक्तुमक्षमः स्वार्जितधनादिकं कस्य भविष्यतीति चिन्तापरो वाष्पाविलविलोचनः कण्ठे घुरघुरायमाणे सति शरीरान्निष्क्रान्तप्राणो यमदूतैर्भर्त्स्यमानः पाशयंत्रितो नरकादीन्पूर्ववदश्नुते॥३७॥

क्रमशः वह हाथ-पैर हिला भी नहीं पाता! उसे घेरकर बन्धुजन रुदन करने लगते हैं, तथापि वह स्वयं कुछ भी बोलने में असमर्थ रहता है। उस समय उसे यही चिन्ता सताती है कि उसकी अर्जित सम्पदा कौन लेगा? यह सोचते हुये उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। कण्ठ से अब घरघराहट की आवाज आने लगती है। उसी समय उसके प्राण देह से निर्गत हो जाते हैं। मृत्यु के उपरान्त वह यमदूतों की भर्त्सना सहन करता पाश में बन्धा नरक में ले जाया जाता है।।३७।।

आमलप्रक्षयाद्यद्वद्दग्नौ धाम्यन्ति धातवः।
तथैव जीविनः सर्व आकर्मप्रक्षयाद् भृशम्॥३८॥

तस्मात्संसारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम। अभ्यसेत्परमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्॥३९॥

जब तक दोष भस्म नहीं होता, धातु दग्ध होती रहती है। एवंविध जब तक कर्मक्षय नहीं होता, प्राणीगण भयानक भोगों को भोगते हैं। हे द्विजप्रवर नारद! तभी संसार दावाग्नि से तप्त हो रहा मनुष्य परमज्ञान का अभ्यास करे। ज्ञान से ही उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।।३८-३९।।

ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः। तस्मात्संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत्॥४०॥

मानुष्यं चैव सम्प्राप्य सर्वकर्मप्रसाधकम्। हरिं न सेवते यस्तु कोऽन्यस्तस्मादचेतनः॥४१॥

अहो चिमहो चित्रमहो चित्रं मुनीश्वराः।
आस्थिते कामदे विष्णौ नरा यान्ति हि यातनाम्॥४२॥

नारायणे जगन्नाथे सर्वकामफलप्रदे। स्थितेऽपि ज्ञानरहिताः पच्यन्ते नरकेष्वहो॥४३॥

स्रवन्मूत्रपुरीषे तु शरीरेऽस्मिन्नशाश्वते। शाश्वतं भावयन्त्यज्ञा महामोहसमावृताः॥४४॥

कुत्सितं मांसरक्ताद्यैर्देहं सम्प्राप्य यो नरः।
संसारच्छेदकं विष्णुं न भजेत्सोऽतिपातकी॥४५॥

ज्ञानशून्य मानव पशु कहे जाते हैं। तभी संसार से मोक्ष पाने के लिये परमज्ञान का अभ्यास करें। सर्वकर्मप्रसाधक मनुष्य देह पाकर भी जो हरिसेवा नहीं करते उनसे बड़ा अचेतन कौन है? अहो! सर्वकामदाता विष्णु के रहते मनुष्य यातना पाते हैं, यह विचित्र आश्चर्य है। नारायण जगन्नाथ सर्वकाम फलदाता हैं। उनके रहते हुये भी ज्ञानहीन लोग नरक में पकाये जाते हैं। जो व्यक्ति मांस-रक्तादि से कुत्सित देह पाकर संसार का छेदन करने वाले विष्णु का भजन नहीं करता, वह अति पापी है।।४०-४५।।

अहो कष्टमहो कष्टमहो कष्टं हि मूर्खता। हरिध्यानपरो विप्र चाण्डालोऽपि महासुखी॥४६॥

स्वदेहान्निस्सृतं दृष्ट्वा मलमूत्रादिकिल्विषम्।
उद्वेगं मानवा मूर्खाः किं न यान्ति हि पापिनः॥४७॥
दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि। तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्य्याद्विचक्षणः॥४८॥

हे विप्र! हरिध्यान तत्पर चाण्डाल भी महासुखलाभ करता है। इसलिये महाकष्ट है, अत्यन्त कष्ट है! यह कहकर व्यथित होना महामूर्खता है। मूर्ख पापी लोग अपने देह से निकलते मल-मूत्रादि अपवित्र पदार्थों को देखकर उद्विग्न नहीं होते। देवगण भी दुर्लभ मनुष्य जन्म हेतु प्रार्थना करते हैं। उसे पाने वाला बुद्धिमान् मनुष्य परलोक हेतु यत्न करे।।४६-४८।।

अध्यात्मज्ञानसम्पन्ना हरिपूजापरायणाः। लभन्ते परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥४९॥
यतो जातमिदं विश्वं यतश्चैतन्मश्नुते। यस्मिंश्च विलयं याति स संसारस्य मोचकः॥५०॥
निर्गुणोऽपि परोऽनन्तो गुणवानिव भाति यः। तं समभ्यर्च्य देवेशं संसारात्परिमुच्यते॥५१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे भवाटवीनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

अध्यात्म ज्ञान सम्पन्न, हरिपूजातत्पर ऐसा स्थान प्राप्त करते हैं, जहां जाकर पुनः लौटना ही नहीं है। जिनसे यह समग्र विश्व उत्पन्न है तथा जिनकी कृपा से विश्व को चैतन्य की प्राप्ति होती है तथा जिसमें यह विश्व विलीन हो जाता है, वे ही संसार से उद्धार करने वाले हैं। जो अनन्त निर्गुण होकर भी गुणयुक्त प्रतिभात होते हैं, उन देवेश की पूजा द्वारा संसार से मुक्ति मिलती है।।४९-५१।।

।।३२वां अध्याय समाप्त।।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

योग का वर्णन

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं विदुषा त्वया। संसारपाशबद्धानां दुःखानि सुबहूनि च॥१॥
अस्य संसारपाशस्य च्छेदकः कतमः स्मृतः। येनोपायेन मोक्षः स्यात्तन्मे ब्रूहि तपोधन॥२॥
प्राणिभिः कर्मजालानि क्रियन्ते प्रत्यहं भृशम्।
भुज्यन्ते च मुनिश्रेष्ठ तेषां नाशः कथं भवेत्॥३॥
कर्मणा देहमाप्नोति देही कामेन बध्यते। कामाल्लोभाभिभूतः स्याल्लोभात्क्रोधपरायणः॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं— हे भगवान्! आपके पूछे गये समस्त विषय का वर्णन कर दिया। संसार पाश में बद्ध लोगों के लिये अनेक दुःख है। इस संसार पाश को काटने वाला कौन है? हे तपोधन! किस उपाय से मोक्ष की प्राप्ति होती है? वह कहिये। प्राणीगण नित्य कर्मजाल बनाते रहते हैं। उसका फल भी भोगते रहते हैं। हे मुनिप्रवर! इसका नाश कैसे हो? कर्म से देहलाभ होता है। देही कामनाओं से आबद्ध हो जाता है। काम के कारण (कामनाओं के कारण) वह लोभ से अभिभूत होता है। लोभ के कारण वह क्रोधपरायण हो जाता है।।१-४।।

क्रोधाच्च धर्मनाशः स्याद्धर्मनाशन्मतिभ्रमः। प्रनष्टबुद्धिर्मनुजः पुनः पापं करोति च॥५॥
तस्माद्देहं पापमूलं पापकर्मरतं तथा। यथा देहभ्रमं त्यक्त्वा मोक्षभाक्स्यात्तथा वद॥६॥

क्रोध से धर्मनाश तथा धर्मनाश से मतिभ्रम होता है। बुद्धिभ्रम के कारण नष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति पुनः-पुनः पापाचरण करता है। तभी देह पाप का मूल है तथा देही सदा पापाचरण रहता है। देहभ्रम त्यागकर व्यक्ति मोक्ष का पात्र कैसे बने? वह कहें।।५-६।।

सनक उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ मतिस्ते विमलोर्जिता।
यस्मात्मसंसारदुःखान्नो मोक्षोपायमभीप्ससि॥७॥
यस्याज्ञया जगत्सर्वं ब्रह्मा सृजति सुव्रत। हरिश्च पालको रुद्रो नाशकः स हि मोक्षदः॥८॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! आपको साधुवाद है। आपकी मति विमल तथा उर्जित है। तभी आप संसारदुःख से मुक्ति पाने के उपाय को जानना चाहते हैं। हे सुव्रत! जिसकी आज्ञा से ब्रह्मा समस्त जगत् की सृष्टि करते हैं, हरि पालन कार्य तथा रुद्र संहार कार्य करते हैं, वही प्रभु मोक्षदाता हैं।।७-८।।

अहमादिविशेषांता जाता यस्य प्रभावतः। तं विद्यान्मोक्षदं विष्णुं नारायणमनामयम्॥९॥
यस्याभिन्नमिदं सर्वं यच्चेङ्गति च नेङ्गति। तमुग्रमजरं देवं ध्यात्वा दुःखात्प्रमुच्यते॥१०॥
अविकारमजं शुद्धं स्वप्रकाशं निरंजनम्। ज्ञानरूपं सदानन्दं प्राहुर्वै मोक्षसाधनम्॥११॥

अहम् से लगाकर विशेष तक समस्त पदार्थों की उत्पत्ति जिनके प्रभाव से होती है, वे मोक्ष देने वाले विष्णु हैं। वे अनामय नारायण हैं। जिनसे कोई भी पदार्थ भिन्न नहीं है, जो विश्वरूप है, जो अकाम तथा निष्काम उभय रूप है, उन उग्र-अजर (जरा रहित) देव का ध्यान करने वाला दुःखमुक्त हो जाता है। वे अविकारी, अजन्मा, शुद्ध, स्वप्रकाश, निरंजन, ज्ञानरूप सदानन्द हैं। वे ही मोक्ष साधन भी हैं।।९-११।।

यस्यावताररूपाणि ब्रह्माद्या देवतागणाः।
समर्चयन्ति तं विद्याच्छाश्वतस्थानदं हरिम्॥१२॥
जितप्राणा जिताहाराः सदा ध्यानपरायणाः।
हृदि पश्यन्ति यं सत्यं तं जानीहि सुखावहम्॥१३॥
निर्गुणोऽपि गुणाधारो लोकानुग्रहरूपधृक्।
आकाशमध्यगः पूर्णस्तं प्राहुर्मोक्षदं नृणाम्॥१४॥

जिनके अवताररूप ब्रह्मादि देवगण द्वारा अर्चित होते हैं, उन शाश्वत स्थानदाता को श्रीहरि जानिये। प्राणों पर विजयी होकर, आहार पर विजयी होकर सदा ध्यानतत्पर सन्तजन जिनका दर्शन हृदय में करते हैं, वे सुखावह सत्यरूप प्रभु ही हैं। वे निर्गुण होकर भी सर्वगुणाधार हैं। वे लोक पर कृपा करने के लिये रूप धारण करते हैं। वे पूर्ण, आकाश मध्य स्थित पूर्ण तथा मनुष्यों के लिये मोक्षदाता कहे जाते हैं।।१२-१४।।

अध्यक्षः सर्वकार्याणां देहिनो हृदये स्थितः।
अनूपमोऽखिलाधारस्तं देवं शरणं व्रजेत्॥१५॥
सर्वं संगृह्य कल्पान्ते शेते यस्तु जले स्वयम्।
तं प्राहुर्मोक्षदं विष्णुं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥१६॥
वेदार्थविद्भिः कर्मज्ञैरिज्यते विविधैर्मखैः। स एव कर्मफलदो मोक्षदोऽकामकर्मणाम्॥१७॥

वे सर्वकार्याध्यक्ष, देहीगण के हृदय में स्थित अनुपम, अखिल के आधार हैं। उन देव की शरण ग्रहण करे। जो कल्पान्त में सब कुछ को अपने में समेट कर जलशायी हो जाते हैं, तत्वदर्शी मुनिगण उनको मोक्षदाता विष्णु कहते हैं। वेदार्थज्ञ तथा कर्मज्ञ लोग विविध यज्ञों से जिनकी अर्चना करते रहते हैं, वे कर्मफल दाता हैं। वे ही निष्काम कर्म करने वालों को मोक्ष रूपी फल देते हैं।।१५-१७।।

हव्यकव्यादिदानेषु देवतापितृरूपधृक्। भुङ्क्ते य ईश्वरोऽव्यक्तस्तं प्राहुर्मोक्षदं प्रभुम्॥१८॥
ध्यातःप्रणमितो वापि पूजितो वापि भक्तितः।
ददाति शाश्वतं स्थानं तं दयालुं समर्चयेत्॥१९॥

हव्य-कव्य देने पर जो अव्यक्त ईश्वर देवता एवं पितरों का रूप धारण करके उनका भोग करते हैं, वे ही मोक्षदाता प्रभु कहे गये हैं। जो देव ध्यान, प्रणाम तथा भक्तिपूर्ण पूजा करने पर शाश्वत स्थान पूजक को देते हैं, उनकी अर्चना की जाये।।१८-१९।।

आधारः सर्वभूतानामेको यः पुरुषः परः। जरामरणनिर्मुक्तो मोक्षदः सोऽव्ययो हरिः॥२०॥
संपूज्य यस्य पादाब्जं देहिनोऽपि मुनीश्वर।
अमृतत्वं भजन्त्याशु तं विदुः पुरुषोत्तमम्॥२१॥
आनन्दमजरं ब्रह्म परं ज्योतिः सनातनम्। परात्परतरं यच्च तद्विष्णोः परमं पदम्॥२२॥
अद्वयं निर्गुणं नित्यमद्वितीयमनौपमम्। परिपूर्णं ज्ञानमयं विदुर्मोक्षप्रसाधकम्॥२३॥

जो सभी प्राणीगण के एकमात्र आधार हैं, जो परात्पर पुरुष हैं, जो जरामरण निर्मुक्त करने वाले अव्यय हरि हैं, वे ही मोक्षदाता हैं। हे मुनीश्वर! जिनके चरणकमलों की पूजा करके देहीगण भी अमृतत्वलाभ करते हैं, वे ही पुरुषोत्तम हैं, यह जानिये। जो आनन्द, अजर, ब्रह्म, परं ज्योतिः सनातन, पर से भी परे है, वही विष्णु का परमपद है। जो अद्वय, निर्गुण, नित्य, अद्वितीय, अनुपम, परिपूर्ण, ज्ञानमय है, उनको ही मोक्ष प्रदाता जानिये।।२०-२३।।

एवंभूतं परं वस्तु योगमार्गविधानतः। य उपास्ते सदा योगी सा याति परमं पदम्॥२४॥
सर्वसङ्गपरित्यागी शमादिगुणसंयुतः। कामाद्यैर्वर्जितो योगी लभते परमं पदम्॥२५॥

जो इन परमवस्तु की उपासना योगमार्गीय विधि से सदा करता है, उसे परमपद की प्राप्ति होती है। सर्वसङ्गत्यागी, शम आदि गुणयुक्त तथा काम आदि दुर्गुणों से रहित योगी को परमपद की प्राप्ति होती है।।२४-२५।।

नारद उवाच

कर्मणा केन योगस्य सिद्धिर्भवति योगिनाम्। तदुपायं यथातत्त्वं ब्रूहि मे वदतां वर॥२६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे श्रेष्ठ वक्ता! योगीगण किस कर्म के द्वारा योगसिद्धि लाभ करते हैं? उस उपाय को यथार्थतः तथा तत्वतः कहिये।।२६।।

सनक उवाच

ज्ञानलभ्यं परं मोक्षं प्राहुस्तत्त्वार्थचिन्तकाः।
यज्ज्ञानं भक्तिमूलं च भक्तिः कर्मवतां तथा॥२७॥
दानानि यज्ञा विविधास्तीर्थयात्रादयः कृताः। येन जन्मसहस्त्रेषु तस्य भक्तिर्भवेद्धरौ॥२८॥
अक्षयः परमो धर्मो भक्तिलेशेन जायते। श्रद्धया परया चैव सर्वं पापं प्रणश्यति॥२९॥
सर्वपापेषु नष्टेषु बुद्धिर्भवति निर्मला। सैव बुद्धिः समाख्याता ज्ञानशब्देन सूरिभिः॥३०॥

देवर्षि सनक कहते हैं—तत्वार्थ चिन्तकगण मोक्ष को ज्ञान से प्राप्त होने वाला कहते हैं। ज्ञान का मूल है भक्ति। भक्ति का लाभ कर्मशील व्यक्ति को मिलता है। जिसने सहस्त्रों जन्म पर्यन्त दान, यज्ञ, विविध तीर्थयात्रा आदि पुण्यकार्य किया है, उसे ही हरिभक्ति प्राप्त होती है। भक्ति की यह महिमा है कि उसके लेशमात्र से अक्षय-परमधर्म प्राप्त हो जाता है। उत्तम श्रद्धा के द्वारा सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। जब सब पापों का नाश हो जाता है, तब उस व्यक्ति की बुद्धि भी निर्मला हो जाती है। सूरीजन ऐसी निर्मल बुद्धि को ही ज्ञान कहते हैं।।२७-३०।।

ज्ञानं च मोक्षदं प्राहुस्तज्ज्ञानं योगिनां भवेत्।
योगस्तु द्विविधः प्रोक्तः कर्मज्ञानप्रभेदतः॥३१॥
क्रियायोगं विना नृणां ज्ञानयोगो न सिध्यति।
क्रियायोगरतस्माच्छ्रद्धया हरिमर्चयेत्॥३२॥
द्विजभूम्यग्निसूर्याम्बुधातुहृच्चित्रसंज्ञिताः। प्रतिमाः केशवस्यैता पूज्य एतासु भक्तितः॥३३॥

ज्ञान को मोक्षप्रद कहा जाता है। यह मोक्षप्रद ज्ञान योगीगण प्राप्त करते हैं। ज्ञान तथा कर्म भेद से योग दो प्रकार का कहा गया है। बिना क्रियायोग किये मनुष्यों को ज्ञानयोग सिद्ध नहीं होता। क्रियायोग निरत होकर सश्रद्ध भाव से हरि की अर्चना करनी चाहिये। द्विज (ब्राह्मण), भूमि, अग्नि, सूर्य, जल, धातु, हृदय, चित्र तथा मूर्त्ति, ये सभी केशव की प्रतिमा है। इनमें केशव की अर्चना भक्ति पूर्वक करे।।३१-३३।।

कर्मणा मनसा वाचा परपीडापराङ्मुखः। तस्मात्सर्वगतं विष्णुं पूजयेद्भक्तिसंयुतः॥३४॥
अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयोः समाः॥३५॥

भक्त व्यक्ति कर्म, मन तथा वाणी द्वारा सदा परपीड़ा से विमुख रहे। इस प्रकार सर्वगत हरि की पूजा भक्तिभाव से करनी चाहिये। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ईर्ष्या रहित होना तथा दयाभाव—ये सभी गुण क्रियायोग तथा ज्ञानयोग, इन दोनों में आवश्यक हैं।।३४-३५।।

चराचरात्मकं विश्वं विष्णुरेव सनातनः। इति निश्चित्य मनसा योगद्वितयमयभ्यासेत्॥३६॥
आत्मवत्सर्वभूतानि ये मन्यन्ते मनीषिणः। ते जानन्ति परं भावं देवदेवस्य चक्रिणः॥३७॥
यदि क्रोधादिदुष्टात्मा पूजाध्यानपरो भवेत्।
न तस्य तुष्यते विष्णुर्यतो धर्मपतिः स्मृतः॥३८॥

यह सचराचर विश्व सनातन विष्णु ही है। यह मन में निश्चित करके क्रियायोग तथा ज्ञानयोग का अभ्यास करे। जो मनीषीगण सभी प्राणीगण को आत्मवत् मानते हैं, वे ही देवाधिदेव चक्रधारी हरि के परमभाव के ज्ञाता है। जो स्वयं क्रोधादि से आक्रान्त दुष्टात्मा है, वह भले ही पूजा-ध्यान क्यों न करें, उस पर विष्णु कभी सन्तुष्ट नहीं होते। इसका कारण है कि श्रीहरि धर्मपति कहे गये हैं।।३६-३८।।

यदि कामादिदुष्टात्मा देवपूजापरो भवेत्।
दम्भाचारः स विज्ञेयः सर्वपातकिभिः समः॥३९॥
तपः पूजाध्यानपरो यस्त्वसूयारतो भवेत्।
तत्तपः सा च पूजा च तद्ध्यानं हि निरर्थकम्॥४०॥
तस्मात्सर्वात्मकं विष्णुं शमादिगुणतत्परः। मुक्त्यर्थमर्चयेत्सम्यक् क्रियायोगपरो नरः॥४१॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वलोकहिते रतः। समर्चयति देवेशं क्रियायोगः स उच्यते॥४२॥

यदि कामादि से आक्रान्त दुष्टात्मा देवपूजा करता है, तब उसे दम्भाचारी तथा सर्वपातकी लोगों के समान जाने। जो पूजा-ध्यान परायण होकर भी असूया दोष से युक्त हैं। उसके द्वारा कृत पूजा-तप तथा ध्यान निरर्थक है। अतः व्यक्ति क्रियायोग परायण होकर तथा शमादि गुणों से युक्त होकर मुक्ति हेतु सर्वात्मक विष्णु की सम्यक् अर्चना करे। जो कर्म से, मन से, वाणी से लोकहित में निरत रहता है तथा इस स्थिति में देवेश की अर्चना करता है, वह **क्रियायोगी** कहा गया है।।३९-४२।।

नारायणं जगद्योनिं सर्वान्तर्यामिणं हरिम्।
स्तोत्राद्यैः स्तौति यो विष्णुं कर्मयोगी स उच्यते॥४३॥
उपवासादिभिश्चैव पुराणश्रवणादिभिः। पुष्पाद्यैश्चार्चनं विष्णोः क्रियायोग उदाहृतः॥४४॥
एवं भक्तिमतां विष्णौ क्रियायोगरतात्मनाम्।
सर्वपापानि नश्यन्ति पूर्वजन्मार्जितानि वै॥४५॥

जो नारायण, जगत्योनि, सबके अन्तर्यामी श्रीहरि की स्तोत्रादि द्वारा स्तुति करता है, उसे **कर्मयोगी** कहते हैं। उपवास आदि से तथा पुराणादि श्रवण द्वारा तथा पुष्पादि उपचारों से जो विष्णु का अर्चन करता है, वह **क्रियायोग** है। इस प्रकार भक्ति के साथ जो क्रियायोग में निरत है, उसके पूर्व जन्मार्जित सर्वपाप नष्ट हो जाते हैं।।४३-४५।।

पापक्षयाच्छुद्धमतिर्वांछति ज्ञानमुत्तमम्। ज्ञानं हि मोक्षदं ज्ञेयं तदुपायं वदामि ते॥४६॥
चराचरात्मके लोके नित्यं चानित्यमेव च।
सम्यग् विचारयेद्धीमान्सद्भिः शास्त्रार्थकोविदैः॥४७॥
अनित्यास्तु पदार्था वै नित्यमेको हरिः स्मृतः।
अनित्यानि परित्यज्य नित्यमेव समाश्रयेत्॥४८॥

पापक्षय द्वारा जिसकी मति शुद्ध हो गयी है, उसे उत्तम ज्ञान की कामना होती है। ज्ञान ही मोक्षप्रदाता है। मैं उसे प्राप्त करने का उपाय कहता हूं। धीमान् व्यक्ति सज्जन शास्त्रज्ञ लोगों से यह विचार करे कि इस चराचरात्मक लोक में क्या नित्य है तथा क्या अनित्य है। समस्त पदार्थ अनित्य हैं। एकमात्र श्रीहरि ही नित्य है। अतः व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अनित्य का त्याग करके नित्य का आश्रय ग्रहण करे।।४६-४८।।

इहामुत्र च भोगेषु विरक्तश्च तथा भवेत्। अविरक्तो भवेद्यस्तु स संसारे प्रवर्तते॥४९॥
अनित्येषु पदार्थेषु यस्तु रागी भवेन्नरः। तस्य संसारविच्छत्तिः कदाचिन्नैव जायते॥५०॥
शमादिगुणसम्पन्नो मुमुक्षुर्ज्ञानमभ्यसेत्। शमादिगुणहीनस्य ज्ञानं नैव च सिध्यति॥५१॥

वह तब इहलोक तथा परलोकों में भोग प्राप्ति की कामना से विरक्त हो जाये। जो भोगों से विरक्त नहीं होता वह संसार के जन्म-मृत्यु-चक्र में पड़ा रहता है। जो व्यक्ति संसार के अनित्य पदार्थों के प्रति अनुरागी होता है, उसका संसार चक्र से कभी छुटकारा नहीं होता। शम आदि गुणयुक्त होकर मोक्षार्थी मनुष्य ज्ञानाभ्यास करे। जो शम आदि गुणों से विहीन है, उसे कदापि ज्ञान सिद्ध नहीं होता।।४९-५१।।

रागद्वेषविहीनो यः शमादिगुणसंयुतः। हरिध्यानपरो नित्यं मुमुक्षुरभिधीयते॥५२॥
चतुर्भिः साधनैरेभिर्विशुद्धमतिरुच्यते। सर्वगं भावयेद्विष्णुं सर्वभूतदयापरः॥५३॥
क्षराक्षरात्मकं विश्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।
इति जानाति यो विप्र तज्ज्ञानं योगजं विदुः॥५४॥

जो राग-द्वेष विहीन है तथा शम आदि गुण से युक्त है तथा सदा हरिध्यान परायण रहता है, वही मुमुक्षु कहा गया है। शास्त्रों का मत है कि इन चार साधनों के अनुशीलन से मति विशुद्ध होती है। भगवान् विष्णु का ध्यान इस प्रकार करे कि वे सर्वव्यापक तथा सभी प्राणीगण के प्रति दयालु हैं। इस क्षर-अक्षरात्मक विश्व को व्याप्त करके नारायण स्थित रहते हैं। हे विप्र! जो ऐसा जानता है, उसका ज्ञान योगज कहा गया है।।५२-५४।।

योगोपायमतो वक्ष्ये संसारविनिवर्त्तकम्।
योगं ज्ञानं विशुद्धं स्यात्तज्ज्ञानं मोक्षदं विदुः॥५५॥
आत्मानं द्विविधं प्राहुः परापरविभेदतः। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः॥५६॥
परस्तु निर्गुणः प्रोक्तो ह्यहङ्कारयुतोऽपरः। तयोरभेदविज्ञानं योग इत्यभिधीयते॥५७॥

अब संसार से त्राण दिलाने वाला योगोपाय कहता हूं। जो विशुद्ध ज्ञान है, वही योग है। वही ज्ञान मोक्षप्रद है, ऐसा जानना चाहिये। आत्मा भी पर-अपर भेद से द्विविध है। आथर्वण श्रुति में भी कहा है कि "दो

ब्रह्म को जाने।'' निर्गुण आत्मा ''पर'' तथा अहंकारयुक्त आत्मा ही ''अपर'' आत्मा है। इस पर एवं अपर आत्मा में अभेद बुद्धि रखना ही योग है।।५५-५७।।

पञ्चभूतात्मके देहे यः साक्षी हृदये स्थितः।
अपरः प्रोच्यते सद्भिःपरमात्मा परः स्मृतः।।५८।।
शरीरं क्षेत्रमित्याहुस्तत्स्थः क्षेत्रज्ञ उच्यते। अव्यक्तः परमः शुद्धः परिपूर्ण उदाहृतः।।५९।।
यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः। भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मनः।।६०।।

यहां इस पंचभूतात्म देह में जो हृदय में साक्षी रूप से स्थित है, उसे सज्जनगण 'अपर' कहते हैं। परमात्मा को 'पर' कहा जाता है। यह शरीर क्षेत्र कहलाता है। उसमें जो स्थित है, वही क्षेत्रज्ञ है। वह अव्यक्त, परमशुद्ध परिपूर्ण कहा जाता है। हे मुनिप्रवर! जब जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच अभेदज्ञान की अनुभूति होती है, तब अपरात्मा (जीवात्मा) मुक्त हो जाता है।।५८-६०।।

एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यः परमात्मा जगन्मयः। नृणां विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते।।६१।।
एकमेवाद्वितीयं यत्परं ब्रह्म सनातनम्। गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज।।६२।।
न तस्य कर्म कार्यं वा रूपं वर्णमथापि वा।
कर्त्तृत्वं वापि भोक्तृत्वं निर्गुणस्य परात्मनः।।६३।।
निदानं सर्वहेतूनां तेजो यत्तेजसां परम्। किमप्यन्यद्यतो नास्ति तज्ज्ञेयं मुक्तिहेतवे।।६४।।

वास्तव में एक, शुद्ध, अक्षर, नित्य परमात्मा ही जगन्मय है। यह मनुष्यों को ज्ञानभेद के कारण भिन्नवत् अनुभूत होता है। वेदान्त ने जिन अद्वितीय, एक, पर, सनातन ब्रह्म का वर्णन किया है, उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है। हे द्विज! उस ब्रह्म का कोई कर्म, कार्य, रूप, वर्ण भी नहीं है। उसमें कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि भी नहीं है। वह निर्गुण परमात्मा है। वह सभी कारणों का भी कारण, तेजों का भी परमतेज है। इस परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसे ही मुक्तिलाभार्थ ज्ञेय कहा गया।।६१-६४।।

शब्दब्रह्ममयं यत्तन्महावाक्यादिकं द्विज। तद्विचारोद्भवं ज्ञानं परं मोक्षस्य साधनम्।।६५।।
सम्यग्ज्ञानविहीनानां दृश्यते विविधं जगत्। परमज्ञानिनामेतत्परब्रह्मात्मकं द्विज।।६६।।
एक एव परानन्दो निर्गुणः परतः परः। भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्ययः।।६७।।
मायिनो मायया भेदं पश्यन्ति परमात्मनि। तस्मान्मायां त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम।।६८।।

हे द्विज! जितने भी शब्दब्रह्ममय महावाक्य है, उनका विचार करने से उद्भूत ज्ञान ही परम मोक्ष का साधन है। यद्यपि यह जगत् सम्यक् ज्ञान रहित लोगों को विविधता वाला परिलक्षित होता है, तथापि परमज्ञानी लोग इसका परब्रह्मात्मक अनुभव करते हैं। हे द्विज! वह एक ब्रह्म ही परानन्द, निर्गुण, परतः, परः, अव्यय है, तथापि वही विज्ञानभेद के कारण बहुरूपी प्रतीत होता है। वह परमात्मा माया से प्रभावित लोगों को भेदमय परिलक्षित होता रहता है। हे द्विजसत्तम! जो मुमुक्षु है, वह योगमार्ग का अवलम्बन लेकर माया का त्याग करे।।६५-६८।।

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका। अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी।।६९।।

मायैव ज्ञानशब्देन बुद्ध्यते मुनिसत्तम। तस्मादज्ञानविच्छेदो भवेद्वै जितमायिनाम्॥७०॥
सनातनं परं ब्रह्म ज्ञानशब्देन कथ्यते। ज्ञानिनां परमात्मा वै हृदि भाति निरन्तरम्॥७१॥
अज्ञानं नाशयेद्योगी योगेन मुनिसत्तम।
अष्टाङ्गैः सिद्ध्यते योगस्तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः॥७२॥

माया को सद्रूपा किंवा असद्रूपा नहीं कहा जा सकता। यह भेदबुद्धि प्रदातृ माया तो अनिर्वाच्य है। हे मुनिप्रवर! माया को ज्ञानशब्द द्वारा (ज्ञान द्वारा) ही जाना जा सकता है। तभी ज्ञान के प्रभाव से वह व्यक्ति **जितमायी** हो जाता है। तभी वह अज्ञान से मुक्त हो सकेगा। ज्ञानशब्द द्वारा सनातन परंब्रह्म का ही निर्देश किया गया है। ज्ञानियों के हृदय में परमात्मा निरन्तर उद्भासित रहता है। हे मुनिसत्तम! योगी लोग योग द्वारा अज्ञान का नाश कर देते हैं। यह योग अष्टाङ्ग द्वारा सिद्ध होता है। मैं इसे तत्वात्मक रूप से कहता हूं।।६९-७२।।

यमाश्च नियमाश्चैव आसनानि च सत्तम। प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च॥७३॥
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगाङ्गानि यथाक्रमम्। एषां संक्षेपतो वक्ष्ये लक्षणानि मुनीश्वर॥७४॥

हे सत्तम! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि, ये यथाक्रम योगांग है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं हे मुनीश्वर! इनके लक्षण संक्षेप में कहता हूं।।७३-७४।।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। अक्रोधश्चानसूया च प्रोक्ताः संक्षेपतो यमाः॥७५॥
सर्वेषामेव भूतानामक्लेशजननं हि यत्।
अहिंसा कथिता सद्भिर्योगसिद्धिप्रदायिनी॥७६॥
यथार्थकथनं यच्च धर्माधर्मविवेकतः। सत्यं प्राहुर्मुनिश्रेष्ठ अस्तेयं शृणु साम्प्रतम्॥७७॥
चौर्येण वा बलेनापि परस्वहरणं हि यत्। स्तेयमित्यच्युते सद्भिरस्तेयं तद्विपर्ययम्॥७८॥
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रकीर्त्तितम्। ब्रह्मचर्यपरित्यागाज्ज्ञानवानपि पातकी॥७९॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अक्रोध, असूया को संक्षेप में **यम** कहते हैं। सज्जन लोग **अहिंसा** उसे कहते हैं, जब किसी भी जीव में क्लेशोत्पत्ति न की जाये। इसके पालन से लोग योगसिद्धि लाभ करते हैं। धर्माधर्म का विचार करके यथार्थ कथन ही **सत्य** है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब संक्षेप में अस्तेय का वर्णन श्रवण करिये। चोरी अथवा बल से किसी का धनादि हरण करना **स्तेय** है, लेकिन इसके विपरीत यह सब हरण न करना ही **अस्तेय** है। सर्वत्र मैथुन त्याग ही **ब्रह्मचर्य** है। ब्रह्मचर्य त्याग करने वाला ज्ञानी भी महापातकी ही है।।७५-७९।।

सर्वसङ्गपरित्यागी मैथुने यस्तु वर्तते। स चण्डालसमो ज्ञेयः सर्ववर्णबहिष्कृतः॥८०॥
यस्तु योगरतो विप्र विषयेषु स्पृहान्वितः। तत्संभाषणमात्रेण ब्रह्महत्या भवेन्नृणाम्॥८१॥
सर्वसङ्गपरित्यागी पुनः सङ्गी भवेद्यदि। तत्सङ्गसङ्गिनां सङ्गान्महापातकदोषभाक्॥८२॥

यदि सर्वसंग परित्यागी व्यक्ति भी मैथुन प्रवृत्त होता है। वह तो चाण्डालवत् सर्वधर्म-बहिष्कृत कहा जायेगा। हे विप्र! जो व्यक्ति योग निरत रहकर विषयों के प्रति स्पृहा-आसक्ति रखता है, ऐसे व्यक्ति का साथ करने वाला, वार्त्तालाप करने वाला भी ब्रह्महत्यारे के समान महापातकी माना गया है। जो एक बार सर्वसंग-त्यागी होकर

पुनः संग करे (पुनः यह त्याग छोड़ दे) तब उससे अथवा उसके साथियों का साथ नहीं करना चाहिये। अन्यथा उसका साथ करने वाला महापातकी माना जायेगा।।८०-८२।।

अनादानं हि द्रव्याणामापद्यपि मुनीश्वर। अपरिग्रह इत्युक्तो योगसंसिद्धिकारकः॥८३॥
आत्मनस्तु समुत्कर्षादतिनिष्ठुरभाषणम्। क्रोधमाहुर्धर्मविदो ह्यक्रोधस्तद्विपर्ययः॥८४॥

हे मुनीश्वर! किसी से कुछ न ग्रहण करना **अपरिग्रह** कहा जाता है। इससे योगसिद्धि लाभ होता है। अपने को उत्कर्षमय दिखलाने हेतु जो अन्य से निष्ठुर भाषण करता है ऐसा अभिमान पूर्ण कृत्य क्रोध है। जो ऐसा नहीं करता वही **अक्रोध** गुण से युक्त है।।८३-८४।।

धनाद्यैरधिकं दृष्ट्वा भृशं मनसि तापनम्।
असूया कीर्तिता सद्भिस्तत्त्यागो ह्यनसूयता॥८५॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्ता यमा विबुधसत्तम। नियमानपि वक्ष्यामि तुभ्यं ताञ्छृणु नारद॥८६॥

जब अन्य किसी को स्वयं की तुलना में धनादि से अधिक देखकर मन में दाह, जलन होने लगती है, तब इस दोष को सज्जन लोग असूया कहते हैं। इससे विपरीत की स्थिति को **अनसूया** कहा गया है। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने संक्षेप में यम को कह दिया। हे नारद! अब आप से नियम कहता हूं। उसे श्रवण करिये।।८५-८६।।

तपःस्वाध्यायसंतोषाः शौचं च हरिपूजनम्।
संध्योपासनमुख्याश्च नियमाः परिकीर्त्तिताः॥८७॥
चान्द्रायणादिभिर्यत्र शरीरस्य विशोषणम्। तपो निगदितं सद्भिर्योगसाधनमुत्तमम्॥८८॥
प्रणवस्योपनिषदां द्वादशार्णस्य च द्विज। अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य महावाक्यचयस्य च॥८९॥
जपः स्वाध्याय उदितो योगसाधनमुत्तमम्।
स्वाध्यायं यस्त्यजेन्मूढस्तस्य योगो न सिध्यति॥९०॥

तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, हरिपूजा, सन्ध्योपासना ये मुख्य नियम कहे गये हैं। चान्द्रायणादि व्रतों द्वारा जो देह का शोषण है, उसे सत्पुरुष **तपः** कहते हैं। यह उत्तम योग साधनरूप है। ओंकार, उपनिषद, द्वादशाक्षर मन्त्र, अष्टाक्षर मन्त्र, महावाक्य का जप ही **स्वाध्याय** है। ये सभी उत्तम योगसाधन है। जो मूढ़ इस स्वाध्याय का त्याग करता है, उसे योगसिद्धि लाभ नहीं होता।।८७-९०।।

योगं विनापि स्वाध्यायात्पापनाशो भवेन्नृणाम्।
स्वाध्यायैस्तोष्यमाणाश्च प्रसीदन्ति हि देवताः॥९१॥
जपस्तु त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसः।
त्रिविधेऽपि च विप्रेन्द्र पूर्वात्पूर्वात्परो वरः॥९२॥
मन्त्रस्योच्चारणं सम्यक्स्फुटाक्षरपदं यथा। जपस्तु वाचिकः प्रोक्तः सर्वयज्ञफलप्रदः॥९३॥
मन्त्रस्योच्चारणे किञ्चित्पदात्पदविवेचनम्। स तूपांशुर्जपः प्रोक्तः पूर्वस्माद्द्विगुणोऽधिकः॥९४॥

योग के विना भी मात्र स्वाध्याय द्वारा मनुष्यों का पापनाश हो जाता है। इस स्वाध्याय द्वारा स्तुत देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जप भी तीन प्रकार का होता है। यथा—वाचिक, उपांशु तथा मानस। हे विप्रेन्द्र! वाचिक से उपांशु श्रेष्ठ है तथा उपांशु से मानस जप श्रेष्ठ है। जब जपमन्त्र के अक्षर, पद का सम्यक्तः उच्चारण हो तथा सुनाई पड़े, वह **वाचिक** जप है। यह सर्वयज्ञ फलप्रद है। जब जपकाल में मन्त्रोच्चारण काल में किंचित् पदविवेचन हो (मन्त्रपदों का), वह **उपांशु जप** है, जो वाचिक जप से द्विगुणित फलप्रद है।।९१-९४।।

विधाय ह्यक्षरश्रेण्यां तत्तदर्थविचारणम्। स जपो मानसः प्रोक्तो योगसिद्धिप्रदायकः॥९५॥

जपेन देवता नित्यं स्तुवतः सम्प्रसीदति। तस्मात्स्वाध्यायसम्पन्नो लभेत्सर्वान्मनोरथान्॥९६॥

जब मन्त्राक्षर की पृथक् श्रेणी के अर्थों का चिन्तन करके मन ही मन जप होता है, वही **मानस जप** है। यह योगसिद्धिदायक है। जप द्वारा स्तुत देवता की प्रसन्नता यथाशीघ्र प्राप्त होती है। जो स्वाध्याय सम्पन्न है, उसे सभी मनोरथ प्राप्त हो जाते हैं।।९५-९६।।

यदृच्छालाभसंतुष्टिः सन्तोष इति गीयते। सन्तोषहीनः पुरुषो न लभेच्छर्म कुत्रचित्॥९७॥

न जातु कामः कामानमुपभोगेन शाम्यति।
इतोऽधिकं कदा लप्स्य इति कामस्तु वर्द्धते॥९८॥

तस्मात्कामं परित्यज्य देहसंशोषकारणम्। यदृच्छालाभसंतुष्टो भवेद्धर्मपरायणः॥९९॥

जो कुछ प्राप्त हो जाये, उसी से प्रसन्न रहना ही **सन्तोष** है। सन्तोष रहित व्यक्ति कहीं सुखी नहीं होता। कामनाओं के उपभोग से कामना की शान्ति नहीं होती। सदा अधिक पाने की कामना बनी रहती है। यह कामना रूपी काम वर्द्धित होता रहता है। तभी देह का शोषण करने वाले काम का त्याग करके जो मिल जाये, उसी से सन्तुष्ट रहने वाला धर्मपरायण हो जाता है।।९७-९९।।

बाह्याभ्यन्तरभेदेन शौचं तु द्विविधं स्मृतम्।
मृज्जलाभ्यां बहिः शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥१००॥
अन्तःशुद्धिविहीनैस्तु येऽध्वरा विविधाः कृताः।
न फलन्ति मुनिश्रेष्ठ भस्मनि न्यस्तहव्यवत्॥१०१॥
भावशुद्धिविहीनानां समस्तं कर्म निष्फलम्।
तस्माद्रागादिकं सर्वं परित्यज्य सुखी भवेत्॥१०२॥

शौच बाह्याभ्यन्तर रूप से द्विविध है। मृत्तिका तथा जलादि से शुद्धि ही **बाह्य शौच** है। भावशुद्धि ही **आभ्यन्तर शौच** है। हे मुनिप्रवर नारद! जो मनुष्य आभ्यन्तर शुद्धि से रहित हैं, उनके द्वारा कृत नाना यज्ञों में प्रदत्त आहुति उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे राख में किया होम व्यर्थ होता है। जब तक व्यक्ति का भावशुद्ध न हो, तब तक सर्वकर्म निष्फल हैं। अतः रागादि दोषों का त्याग करके सुखी हो जाये।।१००-१०२।।

मृदा भारसहस्त्रैस्तु कुम्भकोटिजलैस्तथा।
कृतशौचोऽपि दुष्टात्मा चण्डालसदृशः स्मृतः॥१०३॥

अन्तःशुद्धिविहीनस्तु देवपूजापरो यदि। तमेव दैवतं हन्ति नरकं च प्रपद्यते॥१०४॥

अन्तःशुद्धिविहीनश्च बहिः शुद्धिं करोति यः।
अलङ्कृतः सुराभाण्ड इव शान्ति न गच्छति॥१०५॥
मनःशुद्धिविहीना ये तीर्थयात्रां प्रकुर्वते। न तान्पुनन्ति तीर्थानि सुराभाण्डमिवापगा॥१०६॥

हजारों भार मिट्टी तथा करोड़ों घट जल से शुद्ध किये जाने पर भी जो (भाव से अशुद्ध) दुष्टात्मा है, वह चाण्डालवत् ही कहा जायेगा! यदि आन्तरिक शुद्धि रहित व्यक्ति देवपूजा करता है, तब देवता उसे नष्ट करके नरक भेज देते हैं। जो अन्तःशुद्धि रहित है तथा बाहरी शुद्धि तत्पर रहता है, वह उसी प्रकार है, जिस तरह मदिरा भरे पात्र को बाहर से सज्जित कर दिया गया हो। ऐसे लोग कदापि शान्ति लाभ नहीं कर पाते। जो मनःशुद्धि किये बिना तीर्थयात्रा करता है, उसे तीर्थ भी पवित्र नहीं कर पाते, जैसे मदिरापूर्ण पात्र को देवनदी गंगा भी पावन नहीं कर सकती!।।१०३-१०६।।

वाचा धर्मान्प्रवदति मनसा पापमिच्छति।
जानीयात्तं मुनिश्रेष्ठ महापातकिनां वरम्॥१०७॥
विशुद्धमानसा ये तु धर्ममात्रमनुत्तमम्।
कुर्वन्ति तत्फलं विद्यादक्षयं सुखदायकम्॥१०८॥
कर्मणा मनसा वाचा स्तुतिश्रवणपूजनैः। हरिभक्तिर्दृढा यस्य हरिपूजेति गीयते॥१०९॥
यमाश्च नियमाश्चैव संक्षेपेण प्रबोधिताः। एभिर्विशुद्धमनसां मोक्षं हस्तगतं विदुः॥११०॥

जो मुख से धर्मवार्त्ता करता रहता है, परन्तु मन में पापेच्छा रहती है, हे मुनिप्रवर! उसे महापातकीगण में भी प्रमुख जानें। जो विशुद्धमन वाला मात्र उत्तम धर्म का पालन करता है, वह अक्षय सुखप्रद फल लाभ करता है। कर्म-मन-वाणी से स्तुति, प्रभुयश तथा नाम श्रवण और हरिपूजन करते रहते हैं तथा जिनकी हरिभक्ति दृढ़ है, इसे ही हरि पूजा कहा गया है। मनुष्य हेतु यम-नियम का वर्णन मैंने संक्षेप में कह दिया। उससे मन को विशुद्ध करने वाले के लिये मोक्ष हस्तगत जानें।।१०७-११०।।

यमैश्च नियमैश्चैव स्थिरबुद्धिर्जितेन्द्रियः। अभ्यसेदासनं सम्यग्योगसाधनमुत्तमम्॥१११॥
पद्मकं स्वस्तिकं पीठं सैहं कौक्कुटकौञ्जरे।
कौर्मं वज्रासनं चैव वाराहं मृगचैलिकम्॥११२॥
क्रौञ्चं च नालिकं चैव सर्वतोभद्रमेव च।
वार्षभं नागमात्स्ये च वैयाघ्रं चार्द्धचन्द्रकम्॥११३॥
दण्डवातासनं शैलं स्वभ्रं मौद्गरमेव च। माकरं त्रैपथं काष्ठं स्थाणुं वैकर्णिकं तथा॥११४॥
भौमं वीरासनं चैव योगसाधनकारणम्।
त्रिंशत्संख्यान्यासनानि मुनीन्द्रैः कथितानि वै॥११५॥

स्थिर बुद्धि जितेन्द्रिय होकर यम तथा नियमों द्वारा आसनों का अभ्यास करे। यही सम्यक् तथा उत्तम योगसाधन है। पद्मासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुंजरासन, वज्रासन, वाराह आसन, मृगासन,

चैलिकासन, क्रौञ्चासन, नालिकासन, सर्वतोभद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्य-व्याघ्र-अर्द्धचन्द्र-दण्डवातासन, शैल-स्वभ्र-मौद्गर-मकर-त्रिपथ-काष्ठ-स्थाणु-वैकर्णिक-भौम तथा वीरासन, ये तीस आसन प्रकार वर्णित हैं। इन्हें मुनिगण ने कहा है।।१११-११५।।

एषामेकतमं बद्ध्वा गुरुभक्तिपरायणः।
उपासको जयेत्प्राणान्द्वन्द्वातीतो विमत्सरः॥११६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि तथा प्रत्यङ्मुखोऽपि वा।
अभ्यासेन जयेत्प्राणान्निःशब्दे जनवर्जिते॥११७॥
प्राणो वायुः शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रहः।
प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविधः स प्रकीर्त्तितः॥११८॥

इनमें से एक भी आसन का चयन करके साधक को अभ्यास करना चाहिये। इसके द्वारा गुरुभक्तिपरायण साधक प्राणजयी, द्वन्द्वातीत एवं मात्सर्य रहित हो जाता है। एकान्त-निर्जन स्थल में पूर्वमुख किंवा उत्तर अथवा पश्चिमाभिमुखीन आसन लगाकर निरन्तर अभ्यास करता हुआ प्राणवायु को जय करे।।११६-११८।।

अगर्भश्च सगर्भश्च द्वितीयस्तु तयोर्वरः। जपध्यानं विना गर्भः सगर्भस्तत्समन्वितः॥११९॥
रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः शून्यकस्तथा।
एवं चतुर्विधः प्रोक्तः प्राणायामो मनीषिभिः॥१२०॥
जन्तूनां दक्षिणा नाडी पिङ्गला परिकीर्तिता।
सूर्यदैवतका चैव पितृयोनिरिति श्रुता॥१२१॥
देवयोनिरिति ख्याता इडा नाडी त्वदक्षिणा।
तत्राधिदैवतं चन्द्रं जानीहि मुनिसत्तम॥१२२॥

अब प्राणायाम का अर्थ कहते हैं। शरीरस्थ वायु प्राण है। प्राण का (उसका) आयाम=प्राणायाम। आयाम का अर्थ है निग्रह। यह दो प्रकार का वर्णित है। प्रथम है **अगर्भ**, द्वितीय है **सगर्भ**। अगर्भ की तुलना में सगर्भ श्रेष्ठ है। जिस प्राणायाम में जप-ध्यान नहीं किया जाता, वह अगर्भ प्राणायाम है। जिस प्राणायाम में जप-ध्यान रहता है, वह सगर्भ प्राणायाम है। मनीषीगण ने रेचक, पूरक, कुंभक एवं शून्यक रूप से चतुर्विध प्राणायाम का उल्लेख किया है। जन्तुगण की दक्षिणा नाड़ी पिंगला नाम वाली है। इसके देवता हैं—सूर्य, योनि है पितृगण। हे मुनिप्रवर! वाम नाड़ी इड़ा को देवयोनि कहा है, उसके देवता चन्द्र हैं।।११९-१२२।।

एतयोरुभयोर्मध्ये सुषुम्णा नाडिका स्मृता।
अतिसूक्ष्मा गुह्यतमा ज्ञेया सा ब्रह्मदैवता॥१२३॥
वामेन रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः। पूरयेद्दक्षिणेनैव पूरणात्पूरकः स्मृता।१२४॥
स्वदेहपूरितं वायुं निगृह्य न विमुञ्चति।
सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत्कुम्भकः स हि विश्रुतः॥१२५॥

न गृह्णाति न त्यजति वायुमन्तर्बहिःस्थितम्।
विद्धि तच्छून्यकं नाम प्राणायामं यथास्थितम्॥१२६॥

इन दोनों (इड़ा-पिंगला) के मध्य सुषुम्ना नाड़ी कही गयी है। यह अतिसूक्ष्म, गोपनीय एवं ब्रह्मदैवत् है। (वाम नासिका) वामनाड़ी से वायु त्याग करे। रेचन के कारण इस क्रिया को **रेचक** कहा गया है। दक्षिण नाड़ी (दाहिनी नासिका) से वायु भीतर भरे। इस क्रिया में वायु से देह का पूरण (भरते हैं) करते हैं। अतः यह क्रिया **पूरक** है। अपने शरीर में पूरक से जो वायु भरा गया है, उसका रेचक अर्थात् त्याग न किया जाये, उसे जल से भरे घट के समान भरा रहने दिया जाये, तब यही क्रिया **कुंभक** है। इन तीनों से अलग चतुर्थ प्राणायाम है, जबकि अन्दर की वायु को बाहर न करे तथा बाहर की वायु को अन्दर न खींचे। यह प्राण की यथास्थिति क्रिया **शून्यक** है।।१२३-१२६।।

शनैःशनैर्विजेतव्यः प्राणो मत्तगजेन्द्रवत्। अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयङ्कराः॥१२७॥

क्रमेण योजयेद्वायु योगी विगतकल्मषः।
स सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मणः पदमाप्नुयात्॥१२८॥
विषयेषु प्रसक्तानि चेन्द्रियाणि मुनीश्वरः।
समाहृत्य निगृह्णाति प्रत्याहारस्तु स स्मृतः॥१२९॥
जितेन्द्रिया महात्मानो ध्यानशून्या अपि द्विज।
प्रयान्ति परमं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥१३०॥

जैसे क्रमशः मदमत्त हाथी को महावत वशीभूत करता है, तदनुरूप शनैः-शनैः प्राण को वशीभूत करे। (इसमें त्वरा न करे) अन्यथा भयानक रोग हो जाता है। वायु को क्रमशः कल्मष रहित योगी वश में करे। इससे यह सभी पापों से निर्मुक्त होकर ब्रह्मपद लाभ कर लेता है। हे मुनीश्वर! इन्द्रियां सदा विषयों से युक्त रहती हैं। उनको समाहित करके वश में करना **प्रत्याहार** है। जो इन्द्रियजित् महात्मा हैं, वे भले ध्यान रहित हों, तथापि परम ब्रह्मपद लाभ कर लेते हैं। वे वहां से पुनः जन्म-मरण चक्र में नहीं लौटते।।१२७-१३०।।

अनिर्जितेन्द्रियग्रामं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
मूढात्मानं च तं विद्याद्ध्यानं चास्य न सिध्यति॥१३१॥
यद्यत्पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मवदात्मनि।
प्रत्याहृतानीन्द्रियाणि धारयेत्सा तु धारणा॥१३२॥

योगाज्जितेन्द्रियग्रामस्तानि हृत्वा दृढं हृदि। आत्मानं परमं ध्यायेत्सर्वधातारमच्युतम्॥१३३॥
सर्वविश्वात्मकं विष्णुं सर्वलोकैककारणम्। विकसत्पद्मपत्राक्षं चारुकुण्डलभूषितम्॥१३४॥
दीर्घबाहुमुदाराङ्गं सर्वालङ्कारभूषितम्। पीताम्बरधरं देवं हेमयज्ञोपवीतिनम्॥१३६॥
बिभ्रतं तुलसी माला कौस्तुभेन विराजितम्। श्रीवत्सवक्षसं देवं सुरासुनमस्कृतम्॥१३६॥
अष्टारे हृत्सरोजे तु द्वादशाङ्गुलविस्तृते। ध्यायेदात्मानमव्यक्तं परात्परतरं विभुम्॥१३७॥

जो अजितेन्द्रिय रहकर ध्यान परायण रहता है, वह मूढ़ है। उसका ध्यान कदापि सिद्ध नहीं होता। जो कुछ भी जगत् में परिलक्षित हो, उसे आत्मवत् जानें। इन्द्रियों को विषयों से लौटाकर (प्रत्याहृत करके) धारण करना ही **धारणा** है। योगाभ्यास द्वारा इन्द्रियजित् होकर दृढ़ हो जाये। तब हृदय में परम आत्मा, सबके पालक, सर्वविश्वात्मक, सर्वलोक समूह के कारण विष्णु का ध्यान करे। वे विकसित कमलपत्र जैसी आंखों वाले, उत्तम कुण्डल से भूषित, दीर्घबाहु, उदार अंगों वाले, सर्वालंकार भूषित, पीताम्बरधारी देव स्वर्ण यज्ञोपवीतधारी हैं। उन्होंने तुलसी माला तथा कौस्तुभ मणि धारण किया है। उनका वक्षस्थल श्रीवत्स चिह्न से अंकित है। वे देवदेव सुर-असुर, सभी से नमस्कृत हैं। इन विभु अव्यक्त पर से परतर विष्णु का ध्यान बारह अंगुल विस्तार वाले, आठ पंखुड़ियों से युक्त हृदयकमल पर करे।।१३१-१३७।।

ध्यानं सद्भिर्निगदितं प्रत्ययस्यैकतानता।
ध्यानं कृत्वा मुहूर्त्तं वा परं मोक्षं लभेन्नरः॥१३८॥
ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्षं च विन्दति।
ध्यानात्प्रसीदति हरिर्ध्यानात्सर्वार्थसाधनम्॥१३९॥
यद्यद्रूपं महाविष्णोस्तत्तद्ध्यायेत्समाहितम्।
तेन ध्यानेन तुष्टात्मा हरिर्मोक्षं ददाति वै॥१४०॥

महापुरुषों के अनुसार जब प्रत्यय से एकतानता हो अर्थात् परमप्रभु के प्रति एकाग्रता हो, तब यही स्थिति **ध्यान** है। एक मुहूर्तमात्र ध्यान से परंमोक्षलाभ हो जाता है। ध्यान से पापों का नाश तथ मोक्षलाभ होता है। ध्यान से विष्णु प्रसन्न होते हैं। ध्यान सर्वार्थसाधक हैं। महाविष्णु के विभिन्न रूप का ध्यान एकाग्रता से करे। इससे सन्तुष्ट होकर श्रीहरि मोक्षदाता हो जाते हैं।।१३८-१४०।।

अचञ्चलं मनः कुर्याद्ध्येयवस्तुनि सत्तम।
ध्यानं ध्येयं ध्यातृभावं यथानश्यति निर्भरम्॥१४१॥
ततोऽमृतत्वं भवति ज्ञानामृतनिषेवणात्। भवेन्निरन्तरं ध्यानादभेदप्रतिपादनम्॥१४२॥
सुषुप्तिवत्परानन्दयुक्तश्चोपरतेन्द्रियः। निर्वातदीपवत्संस्थः समाधिरभिधीयते॥१४३॥

हे सत्तम! साधक ध्येय वस्तु के प्रति मन स्थैर्य करे। ध्यान-ध्येय-ध्यातृभाव का जब नाश हो जाता है अर्थात् जब यह तीनों भेद नहीं रह जाते, तब ज्ञानामृत के पान से अमृतत्व प्राप्त होता है। निरन्तर ध्यान ही अभेदत्व प्रदाता है। जब साधक सुषुप्तिवत् परानन्दयुक्त होकर इन्द्रियों के कार्य से निवृत्त होता है, तब जिस प्रकार से वायु रहित स्थल में दीपक की ज्योति अंचचल रहती है, तद्रूप मन भी चांचल्य रहित हो जाता है। यही **समाधि** की स्थिति उक्त है।।१४१-१४३।।

योगी समाध्यवस्थायां न श्रृणोति न पश्यति।
न जिघ्रति न स्पृशति न किञ्चिद्वक्ति सत्तम॥१४४॥
आत्मा तु निर्मलः शुद्ध सच्चिदानन्दविग्रहः।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो योगिनां भात्यचञ्चलः॥१४५॥

योगीगण समाधिज स्थिति में न तो कुछ श्रवण करता है न देखता है। तब वह कुछ आघ्राण नहीं करता, स्पर्श ज्ञान भी नहीं रह जाता। हे सत्तम! तब वह कुछ वार्त्ता भी नहीं करता। उसका आत्मा निर्मल, शुद्ध, सच्चिदानन्द विग्रह, समस्त उपाधि रहित, पर्वतवत् अचल (चंचलता रहित) हो जाता है।।१४४-१४५।।

निर्गुणोऽपि परो देवो ह्यज्ञानाद्गुणवानिव।
विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम्।।१४६।।
परं ज्योतिरमेयात्मा मायावानिव मायिनाम्।
तन्नाशे निर्मलं ब्रह्म प्रकाशयति पण्डित।।१४७।।
एकेमवाद्वितीयं च परं ज्योतिर्निरञ्जनम्। सर्वेषामेव भूतानामन्तर्यामितया स्थितम्।।१४८।।

जो निर्गुण परमदेव है, वह ज्ञाननाश काल में (अज्ञानावस्था में) गुणवान् (गुणयुक्त) प्रतीत होता है। अज्ञानान्धकार का नाश होते ही वह अपने पूर्व निर्गुण रूप में व्यवस्थित प्रतीत होने लगता है। जो मायावद्ध हैं, उनको वह परमज्योति अमेयात्मा भी मायिक (मायाच्छन्न) प्रतीत होती है। माया नाश होने पर पण्डितों के समक्ष निर्मल ब्रह्म प्रकाशित हो उठता है। वह एक, अद्वितीय, परमज्योति, निरंजन है तथा सभी प्राणियों में अन्तर्यामी सा स्थित है।।१४६-१४८।।

अणोरणीयान्महतो महीयान्सनातनात्माखिलविश्वहेतुः।
पश्यन्ति यज्ज्ञानविदां वरिष्ठाः परात्परस्मात्परमं पवित्रम्।।१४९।।
अकारादिक्षकरान्तवर्णभेदव्यवस्थितः। पुराणपुरुषोऽनादिः शब्दब्रह्मेति गीयते।।१५०।।

वह अणु से भी सूक्ष्म, महान् की तुलना में उससे भी महान्तम है। वह सनातनात्मा तथा समस्त विश्व का एक कारण है। तत्वज्ञानीगण में जो श्रेष्ठ महात्मा हैं, वे उसे परात्पर से भी पावनतम जानते हैं। वह सनातनात्मा अखिल विश्व का हेतु है। वह पुराणपुरुष अनादि तथा अकार से क्षकार तक वर्णभेदात्मक होकर व्यवस्थित है। उसे शब्दब्रह्म भी कहते हैं।।१४९-१५०।।

विशुद्धमक्षरं नित्यं पूर्णमाकाशमध्यगम्। आनन्दं निर्मल शान्तं परं ब्रह्मेति गीयते।।१५१।।
योगिनो हृदि पश्यन्ति परात्मानं सनातनम्। अविकारमजं शुद्धं परं ब्रह्मेति गीयते।।१५२।।
ध्यानमन्यत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुनि सत्तम।
संसारतापतप्तानां सुधावृष्टिसमं नृणाम्।।१५३।।
नारायणं परानन्दं स्मरेत्प्रणवसंस्थितम्। नादरूपमनौपम्यमर्द्धमात्रोपरिस्थितम्।।१५४।।

वह विशुद्ध, अक्षर, नित्य, पूर्ण, आकाशमध्यगामी, आनन्द, निर्मल, शान्त, परब्रह्म कहा गया है। योगीगण उस परात्मा सनातन को हृदयस्थ देखते हैं। वह अविकारी, अज, शुद्ध, परब्रह्म कहा गया है। हे मुनिसत्तम! अब अन्य ध्यान कहता हूं। उसे सुनें। यह संसारताप तप्त लोगों हेतु सुधावृष्टिवत् है। परानन्द नारायण का प्रणवसंस्थित स्थिति में स्मरण करे। वे नादरूपी अनुपम हैं, वे अर्द्धमात्रा के ऊपर स्थित हैं। इस रूप में उनका ध्यान करे।।१५१-१५४।।

अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत्। मकारं रुद्ररूपं स्यादर्द्धमात्रं परात्मकम्।।१५५।।

मात्रास्तिस्त्रः समाख्याता ब्रह्मविष्णुशिवाधिपाः।
तेषां समुच्चयं विप्र परब्रह्मप्रबोधकम्॥१५६॥

(प्रणव का) अकार ब्रह्मा, ऊकार विष्णु, मकार रुद्ररूपी हैं। अर्द्धमात्रा परब्रह्मरूप है। अ, ऊ, म, मात्रात्रय को क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु-शिव की मात्रा कहा गया है। इन तीनों का समुच्चय ही परब्रह्म प्रबोधक है।।१५५-१५६।।

वाच्यं तु परमं ब्रह्म वाचकः प्रणवः स्मृतः।
वाच्यवाचकसम्बन्धो ह्युपचारात्तयोर्द्विज॥१५७॥
जपन्तः प्रणवं नित्यं मुच्यन्ते सर्वपातकैः।
तदभ्यासेन संयुक्ताः परं मोक्षं लभन्ति च॥१५८॥
जपंश्च प्रणवं मन्त्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
कोटिसूर्यसमं तेजो ध्यायेदात्मनि निर्मलम्॥१५९॥
शालग्रामशिलारूपं प्रतिमारूपमेव वा। यद्यत्पापहरं वस्तुतत्तद्वा चिन्तयेद्धृदि॥१६०॥

परमब्रह्म वाच्य हैं। उनका वाचक है प्रणव। हे द्विज! इनका यह वाच्य-वाचक सम्बन्ध उपचारात्मक अर्थात् मात्र आरोपित ही कहा गया है। वास्तव में परब्रह्म एवं प्रणव में अभेदात्मक सम्बन्ध रहता है। प्रणव का नित्य जप सर्वपातक रहित कर देता है। उसका अभ्यास करने वाला परममोक्ष लाभ करता है। ब्रह्मा, विष्णु-शिवात्मक मन्त्रजप काल में कोटिसूर्यसमप्रभ निर्मल ब्रह्मतेज का ध्यान करे। शालिग्राम शिला, प्रतिमा तथा अन्य जो पापहारी वस्तु है, उसका हृदय में चिन्तन करे।।१५७-१६०।।

यदेतद्वैष्णवं ज्ञानं कथितं ते मुनीश्वर। एतद्विदित्वा योगीन्द्रो लभते मोक्षमुत्तमम्॥१६१॥
यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वापि समाहितः। स सर्वपापनिर्मुक्तो हरिसालोक्यमाप्नुयात्॥१६२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे योगनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

हे मुनीश्वर! यह वैष्णवज्ञान मैंने आपसे कहा है। इसे जानकर योगीन्द्रगण उत्तम मोक्षलाभ करते हैं। जो व्यक्ति इस प्रसंग को एकाग्रता पूर्वक सुनता है, किंवा पाठ करता है, वह सर्वपाप रहित होकर हरिसालोक्य लाभ करता है।।१६१-१६२।।

।।३३वां अध्याय समाप्त।।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

हरिभक्त के लक्षणों का वर्णन

नारद उवाच

समाख्यातानि सर्वाणि योगाङ्गानि महामुने। इदानीमपि सर्वज्ञ यत्पृच्छामि तदुच्यताम्॥१॥

योगो भक्तिमतामेष सिध्यतीति त्वयोदितम्।

यस्य तुष्यति सर्वेशस्तस्य भक्तिश्च शाश्वतम्॥२॥

यथा तुष्यति सर्वेशो देवदेवो जनार्दनः। तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ मुने कारुण्यवारिधे॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महामुनि! आपने सभी योगांगों का सम्यक् वर्णन कर दिया। हे सर्वज्ञ! अब मैं जो पूछता हूं, उसका वर्णन करिये। आपका कथन है कि योगमार्ग भक्तों को ही सिद्ध हो पाता है। शाश्वत भक्ति वही पाता है, जिस पर सर्वेश प्रसन्न हो जाते हैं। हे सर्वज्ञ! करुणावारिधि! जिस प्रकार सर्वेश देवदेव जनार्दन सन्तुष्ट होते हैं, वह सब कृपया कहिये।।१-३।।

सनक उवाच

नारायणं परं देवं सच्चिदानन्दविग्रहणम्। भज सर्वात्मना विप्र यदि मुक्तिमभीप्ससि॥४॥

रिपवस्तं न हिंसन्ति न बाधन्ते ग्रहाश्च तम्। राक्षसाश्च चेक्षन्ते नरं विष्णुपरायणम्॥५॥

भक्तिर्दृढा भवेद्यस्य देवदेवे जनार्दने।

श्रेयांसि तस्य सिध्यन्ति भक्तिमन्तोऽधिकास्ततः॥६॥

देवर्षि सनक कहते हैं—यदि आप मुक्तिकामी हैं, तब हे विप्र! आप पूर्णतः मन लगाकर परमदेव सच्चिदानन्द विग्रह नारायण का भजन करिये। विष्णुपरायण की हिंसा शत्रु नहीं कर सकते, ग्रह उसे बाधा नहीं दे सकते। राक्षस उसकी ओर दृष्टिपात नहीं कर सकते। जिसकी भक्ति देवदेव जनार्दन के प्रति दृढ़ हो जाती है, उसका सभी कल्याण साधित होता जाता है। उसमें भक्ति बढ़ती जाती है।।४-६।।

पादौ तौ सफलौ पुंसां यौ विष्णुगृहगामिनौ।

तौ करौ सफलौ ज्ञेयौ विष्णुपूजापरौ तु यौ॥७॥

ते नेत्रे सुफले पुंसां पश्यतो ये जनार्दनम्। सा जिह्वा प्रोच्यते सद्भिर्हरिनामपरा तु या॥८॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते। तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात्परः॥९॥

सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः।

असारेऽस्मिंस्तु संसारे सत्यं हरिसमर्चनम्॥१०॥

संसारपाशे सुदृढं महामोहप्रदायकम्। हरिभक्तिकुठारेण च्छित्त्वात्यन्तसुखी भव॥११॥

उस व्यक्ति के चरण सफल (धन्य) हैं, जो विष्णुमन्दिर जाता है। वे हाथ धन्य हैं, जो विष्णु पूजा तत्पर

रहते हैं। वे नेत्र सफल हैं, जो जनार्दन का दर्शन करते हैं। वह जिह्वा धन्य है तथा प्रशंसित है, जो सदा हरिनाम जप परायण रहती है। मैं ऊर्ध्वबाहु होकर कहता हूं कि कोई तत्व गुरु के समान नहीं है तथा केशव के समान अथवा श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। मैं यह सत्य कहता हूं, हितप्रद वाक्य कहता हूं, मैं यह सार वाक्य कह रहा हूं कि असाररूप इस संसार में केवल हरि की अर्चना ही सत्य है। यह संसार पाश अत्यन्त सुदृढ़ तथा महामोहप्रदायक है। हरिभक्तिरूपी कुल्हाड़ी से इस पाश को काटकर अत्यन्त सुखी होना चाहिये।।७-११।।

तन्मनः संयुतं विष्णौ वाणी मत्परायणा। ते श्रोत्रे तत्कथासारपूरिते लोकवन्दिते॥१२॥

आनन्दमक्षरं शून्यमवस्थां त्रितयैरपि। आकाशमध्यगं देवं भज नारद सन्ततम्॥१३॥

स्थानं न शक्यते यस्य स्वरूपं वा कदाचन।
निर्देष्टुं मुनिशार्दूल द्रष्टुं वाथ कृतात्मभिः॥१४॥

वही मन धन्य है, जो विष्णुयुक्त है। वही उत्तमा वाणी है, जो प्रभु परायण है। जो कान भगवतकथा से भरे हैं, वे ही लोकवन्दित हैं। हे नारद! आप जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति रूपी अवस्था त्रय में आनन्द, अक्षर, शून्य तथा आकाश मध्यगामी देव विष्णु का सदा भजन करते रहिये। हे मुनिशार्दूल! उन प्रभु के स्थान तथा स्वरूप का निर्देश भी अकृतात्मा जन कभी नहीं कर सकते, उनका दर्शन पाना तो उनके लिये संभव ही नहीं है।।१२-१४।।

समस्तैः करणैर्युक्तो वर्त्ततेऽसौ यदा तदा। जाग्रदित्युच्यते सद्भिरन्तर्यामी सनातनः॥१५॥

यदान्तःकरणैर्युक्तः स्वेच्छया विलत्यसौ।
स्वपन्नित्युच्यते ह्यात्मा यदा स्वापविवर्जितः॥१६॥

न बाह्यकरणैर्युक्तो न चान्तःकरणैस्तथा।
अस्वरूपो यदात्मासौ पुण्यापुण्यविवर्जितः॥१७॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो ह्यानन्दो निर्गुणो विभुः। परब्रह्ममयो देवः सुषुप्त इति गीयते॥१८॥

समस्त करण (इन्द्रियादि) से जब आत्मा युक्त रहता है, उसे सद्बुद्धि वाले लोग जाग्रदावस्था कहते हैं। जब वह आत्मा अन्तःकरण से समन्वित होकर स्वेच्छा पूर्वक विचरता रहता है, निद्रित नहीं रहता, तब वह स्वप्नावस्था है। जब वह बाह्य इन्द्रियों तथा अन्तःकरण से भी युक्त नहीं रहता, जब वह अस्वरूप, पुण्यापुण्य विवर्जित रहता है, तब वह स्थिति ही सुषुप्ति है। जो सभी उपाधि से रहित, आनन्दमय, निर्गुण विभु परब्रह्ममय देवता है, उसे ही सुषुप्त कहते हैं।।१५-१८।।

भावनामयमेतद्वै जगत्स्थावरजङ्गमम्। विद्युद्विलोलं विप्रेन्द्र भज तस्माज्जनार्दनम्॥१९॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। वर्तते यस्य तस्यैव तुष्यते जगतां पतिः॥२०॥

सर्वभूतदयायुक्तो विप्रपूजापरायणः। तस्य तुष्टो जगन्नाथो मधुकैटभमर्द्दनः॥२१॥

सत्कथायां च रमते सत्कथां च करोति यः।
सत्सङ्गो निरहङ्कारस्तस्य प्रीतो रमापतिः॥२२॥

नामसंकीर्त्तनं विष्णो क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु।
करोति सततं यस्तु तस्य प्रीतो ह्यधोक्षजः॥२३॥

यह स्थावर जंगमात्मक जगत् विद्युत्लोल के समान चंचल है। हे विप्रेन्द्र! अतः आप भावना द्वारा जनार्दन का सदा भजन करिये। अहिंसा, सत्य, अस्त्येय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जिसमें स्थित है, उस व्यक्ति के प्रति जगत्पति प्रसन्न रहते हैं। सर्वप्राणीगण के प्रति दयावान्, विप्रपूजा परायण, मधुकैटभनाशक मनुष्य पर जगन्नाथ सन्तुष्ट हो जाते हैं। जिसका मन सर्वदा सत्कथा में लीन रहता है, जो सत्कथा कहता है, जो अहंकारशून्य होकर सत्संग करता है, उस पर प्रभु अधोक्षज हरि प्रसन्न हो जाते हैं।।१९-२३।।

या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा। तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपदं मुने॥२४॥
असूयारहिता ये तु ह्यहङ्कारविवर्जिताः। देवपूजापराश्चैव तेषां तुष्यति केशवः॥२५॥
तस्माच्छृणुष्व देवर्षे भजस्व सततं हरिम्।
मा कुरुष्व ह्यहङ्कारं विद्युल्लोलश्रिया वृथा॥२६॥
शरीरं मृत्युसंयुक्तं जीवितं चातिचञ्चलम्। राजादिभिर्धनं बाध्यं सम्पदः क्षणभङ्गुराः॥२७॥

हे मुनि! जो नारी पतिप्राणा तथा पतिपूजा परायण रहती है, उस पर जगन्नाथ सन्तुष्ट होकर अपना पद प्रदान करते हैं। जो असूया तथा अहंकार रहित हैं, देवपूजा परायण हैं, उनके प्रति केशव सन्तुष्ट हो जाते हैं। अतः हे देवर्षि! सुनिये! आप सदा हरि का भजन करिये। विद्युत्वत् चंचल तथा क्षणिक सम्पत्ति पाकर अहंकार कदापि मत करिये। शरीर सदा मृत्युयुक्त रहता है, जीवन अत्यन्त चंचल (क्षणिक) है। राजा प्रभृति से मिली धन-सम्पदा सभी क्षणस्थायी हैं। स्थायी नहीं है।।२४-२७।।

किं न पश्यसि देवर्षे ह्यायुषार्द्धं तु निद्रया। हृतं च भोजनाद्यैश्च कियदायुः समाहृतम्॥२८॥
कियदायुर्बालभावाद्वृद्धभावात्कियद्वृथा। कियद्विषयभोगैश्च कदा धर्मान्करिष्यति॥२९॥
बालभावे च वार्द्धक्ये न घटेताच्युतार्चनम्।
वयस्येव ततो धर्मान्कुरु त्वमनहङ्कृतः॥३०॥

हे देवर्षि! क्या आप यह लक्ष्य नहीं करते कि आयु का आधा भाग निद्रा में ही व्यतीत हो जाता है। भोजनादि करने में कुछ आयु चली जाती है। उसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। कुछ आयु शैशव तथा वृद्धावस्था में व्यर्थ व्यतीत हो जाती है। कुछ आयु तो विषयभोग में व्यतीत हो जाती है, तब मनुष्य धर्म कब करेगा? बाल्यावस्था तथा वार्द्धक्यावस्था में अच्युतार्चन नहीं हो सकता, अतः आप इसी वय में (यौवनकाल में) अहंकार रहित होकर धर्माचरण करें।।२८-३०।।

मा विनाशं व्रज मुने मग्नः संसारगह्वरे। वपुर्विनाशनिलयमापदां परमं पदम्॥३१॥
शरीरं भोगनिलयं मलाद्यैः परिदूषितम्। किमर्थं शाश्वतधिया कुर्यात्पापं नरो वृथा॥३२॥
आसारभूते संसारे नानादुःखसमन्विते। विश्वासो नात्र कर्त्तव्यो निश्चितं मृत्युसङ्कुले॥३३॥
तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्। देहयोगनिवृत्त्यर्थं सद्य एव जनार्दनम्॥३४॥
मानं त्यक्त्वा तथा लोभं कामक्रोधविवर्जितः।
भजस्व सततं विष्णुं मानुष्यमतिदुर्लभम्॥३५॥

हे मुनि नारद! इस संसार गह्वर में मग्न होकर अपना विनाश मत करें। यह देह विनाश का गृह है। यह

आपत्ति समूह का परमस्थल भी है। यह शरीर भोगों का गृह तथा मलादि से परिदूषित रहता। ऐसी स्थिति में मनुष्य इसका शाश्वत मान कर पापाचरण क्यों करते हैं? यह संसार सार रहित, नाना दुःखपूर्ण है। यह सर्वत्र मृत्यु से घिरा है। इस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। हे विप्रेन्द्र! मैं सत्य कहता हूं। इसे श्रवण करिये। देह का साथ पुनः न मिले अतः मान, लोभ, काम, क्रोध रहित होकर सतत् विष्णुभजन करिये। मनुष्य जन्म अतीव दुर्लभ है।।३१-३५।।

कोटिजन्मसहस्त्रेषु स्थावरादिषु सत्तम। संभ्रान्तस्य तु मानुष्यं कथञ्चित्पिरिलभ्यते॥३६॥

तत्रापि देवताबुद्धिर्दानबुद्धिश्च सत्तम। भोगबुद्धिस्तथा नृणां जन्मान्तरतपःफलम्॥३७॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्त यो हरिं नार्चयेत्सकृत्।
मूर्खः कोऽस्ति परस्तस्माज्जडबुद्धिरचेतनः॥३८॥
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं नार्चयन्ति च ये हरिम्।
तेषामतीव मूर्खाणां विवेकः कुत्र तिष्ठति॥३९॥

आराधितो जगन्नाथो ददात्यभिमतं फलम्। कस्तं न पूजयेद्विप्रसंसाराग्निप्रदीपितः॥४०॥

हे सत्तम! सहस्रकोटि जन्म स्थावरादि योनियों में रहकर तब कदाचित कभी मनुष्य जन्म मिलता है। हे सत्तम! इस जीवन में देवबुद्धि (देवार्चन बुद्धि), दानबुद्धि, भोगबुद्धि आदि की प्राप्ति मनुष्यों को जन्मान्तर में किये तप से मिलती है। जो ऐसा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर एक बार भी हरिपूजा नहीं करता, ऐसे अतीव मूर्खों में विवेक कहां रहेगा? जगन्नाथ की आराधना करने वाले को वे प्रभु अभिमत फल देते हैं। हे विप्र! अतः कौन ऐसा है, जो प्रदीप्त संसाराग्नि से परितप्त होकर भी उनकी पूजा नहीं करेगा?।।३६-४०।।

चण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।
विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधमः॥४१॥
तस्तात्कामादिकं त्यक्त्वा भजेत हरिमव्ययम्।
यस्मिंस्तुष्टेऽखिलं तुष्येद्यतः सर्वगतो हरिः॥४२॥

यथा हस्तिपदे सर्वं पदमात्रं प्रलीयते। तथा चराचरं विश्वं विष्णावेव प्रलीयते॥४३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यदि चाण्डाल भी विष्णुभक्त है, तब उसे द्विज से अधिक माना गया है। जो द्विज विष्णुभक्त नहीं है, वह श्वपच से भी अधम है। अतः कामादि दोषों को त्यागकर अव्यय हरि का ही भजन करना चाहिये। हरि सर्वगत हैं। उनके प्रसन्न होते ही सर्वजगत् सन्तुष्ट हो जाता है। जैसे हाथी के पैर से बने गढ़े में सभी के पदचिह्न विलीन हो जाते हैं, क्योंकि वह बहुत बड़ा होता है, उसी प्रकार सचराचर विश्व विष्णु में प्रलीन हो जाता है।।४१-४३।।

आकाशेन यथा व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
तथैव हरिणा व्याप्तं विश्वमेतच्चराचरम्॥४४॥

जन्मनो मरणं नृणां जन्म वै मृत्युसाधनम्। उभे ते निकटे विद्धि तन्नाशं हरिसेवया॥४५॥

ध्यातः स्मृतः पूजितो वा प्रणतो वा जनार्दनः। संसारपाशविच्छेदी कस्तं न प्रतिपूजयेत्॥४६॥

यन्नामोच्चारणादेव महापातकनाशनम्। यं समभ्यर्च्य विप्रर्षे मोक्षभागी भवेन्नरः॥४७॥

जैसे समस्त जगत् आकाश से व्याप्त है, उसी प्रकार यह सचराचर विश्व हरि से व्याप्त है। मनुष्यों में जन्म होना ही मृत्यु का साधन है (अर्थात् जन्म लेने वाला मृत होकर रहेगा), ऐसे ही मृत्यु ही जन्म का साधन कहा गया है (अर्थात् मृत्यु के उपरान्त जन्म होता है)। ये एक-दूसरे के निकट हैं। इन दोनों का नाश हरि की सेवा से ही होता है। जो प्रभु जनार्दन का ध्यान, स्मरण, पूजन तथा प्रणाम करता है, उसे भवबन्धन से मुक्ति मिल ही जाती है। अतः कौन भाग्यहीन ऐसा है, जो उनकी पूजा से विरत रहेगा?।।४४-४७।।

अहो चित्रमहो चिमहो चित्रमिदं द्विज। हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे परिवर्त्तते॥४८॥

भूयोभूयोऽपि वक्ष्यामि सत्यमेतत्तपोधन। नीयमानो यमभटैरशक्तो धर्मसाधनैः॥४९॥

हे विप्रर्षि! जिनके नामस्मरण से ही महापातकों का नाश होता है, जिनकी अर्चना द्वारा मनुष्य मोक्ष के भागी हो जाते हैं, उनकी पूजा करनी ही चाहिये। अहो! यह आश्चर्य है, हे द्विज! यह महान् आश्चर्य है! इस लोक में हरिनाम के विराजमान रहते लोग संसार के आवर्त्त में डूबते जाते हैं! हे तपोधन! मैं इस सत्य को बारम्बार कहता हूं, जो धर्मसाधन से रहित है, वह यमदूतों द्वारा खींचकर ले जाया जाता है।।४८-४९।।

यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावद् व्याधिर्न बाधते।
तावदेवार्चयेद्विष्णुं यदि मुक्तिमभीप्सति॥५०॥
मातुर्गर्भाद्विनिष्क्रान्तो यदा जन्तुस्तदेव हि।
मृत्युः संनिहितो भूयात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥५१॥

अहो कष्टमहो कष्टमहो कष्टमिदं वपुः। विनश्वरं समाज्ञाय धर्मं नैवाचरत्ययम्॥५२॥

जब तक इन्द्रियों में विकलता नहीं है, जब तक व्याधि भक्ति को बाधित नहीं करती, उसी बीच विष्णु की अर्चना मुक्ति की इच्छा करने वाले मनुष्य द्वारा सम्पन्न की जाये। जैसे ही जीव मातृगर्भ से निष्क्रान्त होता है, उसी क्षण से मृत्यु उसके साथ जुड़ जाती है। अतः मनुष्य सदा धर्मतत्पर होकर रहे। अहो! यह कष्ट है, महाकष्ट है, इस विनश्वर देह को जानकर भी मनुष्य धर्माचरण नहीं करता।।५०-५२।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते। दम्भाचारं परित्यज्य वासुदेवं समर्चयेत्॥५३॥

भूयो भूयो हितं वच्मि भुजमुद्धृत्य नारद।
विष्णुः सर्वात्मना पूज्यस्त्याज्यासूया तथानृतम्॥५४॥
क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्।
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥५५॥
काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्।
यशः क्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥५६॥
समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्।
नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत्॥५७॥

मैं ऊर्ध्वबाहु होकर बारम्बार इस सत्य को कहता हूं कि दम्भाचार त्यागकर वासुदेव की अर्चना करनी चाहिये। हे नारद! मैं पुनः भुजा उठाकर कहता हूं कि असूया तथा मिथ्या का त्याग करके विष्णु की सर्वात्मभावेन पूजा करे। क्रोध मनस्ताप का मूल है। क्रोध से संसारबन्धन होता है। धर्म का क्षयकारक भी क्रोध ही है। काम संसार में जन्म का कारण है। काम ही पाप का कारण है। यह यश का नाशक है। अतः काम का त्याग करे। सभी दुःख जाल का कारण मात्सर्य को कहते हैं। यह नरक का साधन है। अतः मात्सर्य का त्याग करे।।५३-५७।।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
तस्मात्तदभिसंयोज्य परात्मनि सुखी भवेत्॥५८॥
अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्।
विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धता॥५९॥
अनाराध्य जगन्नाथं सर्वधातारमच्युतम्। संसारसागरे मग्नाः कथं पारं प्रयान्ति हि॥६०॥

मन ही मनुष्यों के बन्ध-मोक्ष का कारण है। अतः इसका संयोजन परमात्मा से करके व्यक्ति सुखी हो जाये। अहो! यह मनुष्य का महान् धैर्य (रूप जड़त्व) है। जो वे मदमत्त बने हैं। वे जगत्पति विष्णु के रहते उन प्रभु का भजन नहीं करते। सबके पालक अच्युत जगन्नाथ की आराधना किये बिना संसार-सागर में मग्न लोग उसका पार कैसे पा सकते हैं?।।५८-६०।।

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥६१॥
नारायण जगन्नाथ वासुदेव जनार्दन। इतीरयन्ति ये नित्यं ते वै सर्वत्र वन्दिताः॥६२॥
अद्यापि च मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माद्या अपि देवताः। यत्प्रभावं न जानन्ति तं याहि शरणं मुने॥६३॥

मैं यह सत्य कह रहा हूं, यह सत्य पुनः कह रहा हूं कि अच्युत, अनन्त, गोविन्द का नामोच्चारण ऐसी औषधि है, जो समस्त रोगों का नाश कर देती है। नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, जनार्दन—ये नाम जो सदा जपते हैं, वे सर्वत्र वन्दनीय हो जाते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्मादि देवता अब तक जिनके प्रभाव को ज्ञात नहीं कर सके, उनकी शरण ग्रहण करिये।।६१-६३।।

अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं दुरात्मनाम्।
हृत्पद्मसंस्थितं विष्णुं न विजानन्ति नारद॥६४॥
शृणुष्व मुनिशार्दूल भूयोभूयो वदाम्यहम्। हरिः श्रद्धावतां तुष्येन्न धनैर्न च बान्धवैः॥६५॥

हे नारद! अहो! यह दुरात्मागण की कितनी मूर्खता है, कितनी बड़ी मूर्खता है, कैसी मूर्खता है, जो वे हृदय संस्थित (हृदयकमलस्थ) विष्णु को नहीं जानते। हे मुनिशार्दूल! श्रवण करिये! यह मैं पुनः-पुनः कहता हूं। श्रीहरि धन तथा बन्धुवर्ग युक्त स्थिति से सन्तुष्ट नहीं होते, वे मात्र श्रद्धावान् भक्त पर प्रसन्न होते हैं।।६४-६५।।

बन्धुमत्त्वं धनाढ्यत्वं पुत्रवत्त्वं च सत्तम।
विष्णुभक्तिमतां नृणां भवेज्जन्मनि जन्मनि॥६६॥

पापमूलमयं देहः पापकर्मरतस्तथा। एतद्विदित्वा सततं पूजनीयो जनार्द्दनः॥६७॥
पुत्रमित्रकलत्राद्या बहवः स्युश्च सम्पदः। हरिपूजारतानां तु भवत्येव न संशयः॥६८॥
इहामुत्र सुखप्रेप्सुः पूजयेत्सततं हरिम्। इहामुत्रासुखप्रेप्सुः परनिन्दापरो भवेत्॥६९॥
धिग्जन्म भक्तिहीनानां देवदेवे जनार्द्दने। सत्पात्रदानशून्यं यत्तद्धनं धिक्पुनः पुनः॥७०॥

जो मनुष्य विष्णुभक्ति युक्त हैं, उनको जन्म-जन्मान्तर में बन्धु, धन, पुत्र का लाभ होता रहता है। हे सत्तम! यह देह पापमूलमय है। यह सदा पापकर्मरत होना चाहता है। यह जानकर सतत् जनार्दन की पूजा करनी चाहिये। जो हरिपूजा परायण हैं, उनको पुत्र, मित्र, स्त्री आदि तथा प्रभूत सम्पदा मिलती है। इसमें संशय ही नहीं है। जो इहलोक में तथा परलोक में सदा सुख चाहता है, वह सदा हरिपूजा करे। जो सदा कष्ट पाना चाहता है, इहलोक तथा परलोक दोनों में दुःखी रहना चाहता है, वह परनिन्दा परायण हो जाये। जो देवदेव जनार्दन की भक्ति से हीन हैं, उनके जन्म को धिक्कार है। जो धन सत्पात्र को दान में नहीं प्रदान किया जाता, उस धन को पुनः धिक्कार है।।६६-७०।।

न नमेद्विष्णवे यस्य शरीरं कर्मभेदिने। पापानामाकरं तद्वै विज्ञेयं मुनिसत्तम॥७१॥
सत्पात्रदानरहितं यद्द्रव्यं येन रक्षितम्। चौर्येण रक्षितमिव विद्धि लोकेषु निश्चितम्॥७२॥

कर्मबन्धन रहित कराने वाले विष्णु के समक्ष जिसका शरीर नहीं झुकता (प्रणत नहीं होता), हे मुनिसत्तम! वह मनुष्य तो पापों की खान है। जिसने उत्तम अधिकारी व्यक्ति को दान नहीं दिया तथा धन को बचाकर सुरक्षित कर दिया, उसके द्वारा संजोकर रखा गया धन उसी प्रकार है, जैसे संसार में चोर ने चोरी की कमाई सुरक्षित रख दिया हो!।।७१-७२।।

तडिल्लोलश्रिया मत्ताः क्षणभङ्गुशालिनः।
नाराधयन्ति विश्वेशं पशुपालविमोचकम्॥७३॥
सृष्टिस्तु द्विविधा प्रोक्ता दैवासुरविभेदतः। हरिभक्तियुता दैवी तद्धीनाह्यासुरी मता॥७४॥

यह लक्ष्मी आकाश में चमकने वाली विद्युत् जैसी क्षणिक है। ऐसी क्षणभंगुर सम्पत्ति के मद से मत्त होकर जो उन विश्वेश नारायण की आराधना नहीं करते, जो पशु आदि योनि से मुक्त करते हैं, यह उन व्यक्तियों का दुर्भाग्य ही है। दैवी, आसुरी सृष्टि रूप से सृष्टि दो प्रकार की है। जो हरिभक्तियुता है, उसे दैवी कहते हैं। जो हरिभक्ति रहित सृष्टि है, उसे आसुरी जानें।।७३-७४।।

तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र हरिभक्तपरायणाः।
श्रेष्ठाः सर्वत्र विख्याता यतो भक्तिः सुदुर्लभा॥७५॥
असूयारहिता ये च विप्रत्राणपरायणाः। कामादिरहिता ये च तेषां तुष्यति केशवः॥७६॥
सम्मार्जनादिना ये तु विष्णुशुश्रूषणे रताः। सत्पात्रदाननिरताः प्रयान्ति परमं पदम्॥७७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे हरिभक्तिलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

हे विप्रेन्द्र! अतः श्रवण करिये। हरिभक्तिपरायण भक्त सर्वत्र श्रेष्ठ, प्रसिद्ध होते हैं, क्योंकि भक्ति दुर्लभ कही गयी है। जो ब्राह्मण की रक्षा के लिये उद्यत तथा ईर्ष्या रहित रहते हैं, जो कामादिदोष विवर्जित हैं, उन पर केशव प्रसन्न हो जाते हैं। जो विष्णुमन्दिर की सफाई आदि सुश्रूषा कार्य करते हैं, सदा उत्तमपात्रों को दान देते हैं, उनको परमपद प्राप्त होता है।।७५-७७।।

।।३४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
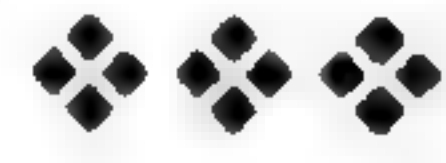
अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ज्ञान निरूपण

सनक उवाच

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्यं देवदेवस्य चक्रिणः। पठतां शृण्वतां सद्यः पापराशिः प्रणश्यति।।१।।
शान्ता जितारिषड्वर्गा योगेनाप्यनहङ्कृताः। यजन्ति ज्ञानयोगेन ज्ञानरूपिणमव्ययम्।।२।।
तीर्थस्नानैर्विशुद्धा ये व्रतदानतपोमखैः। यजन्ति कर्मयोगेन सर्वधातारमच्युतम्।।३।।
लुब्धा व्यसनिनोऽज्ञाश्च न यजन्ति जगत्पतिम्। अजरामरवन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः।।४।।

देवर्षि सनक कहते हैं—अब मैं देवदेव चक्री हरि का माहात्म्य पुनः कहता हूं। इसके पाठ अथवा श्रवण से तत्काल पापराशि का नाश हो जाता है। शान्त, षड्रिपुओं पर विजयी, योगसाधना से अहंकार पर विजयी होकर वे ज्ञानरूपी अव्यय प्रभु का यजन करते हैं। तीर्थस्नान द्वारा विशुद्ध होकर लोग व्रत, दान, तपः तथा यज्ञ रूपी कर्म योग से सबके पालनहार अच्युत का यजन करते हैं, तथापि लुब्ध, व्यसनी, अज्ञानी लोग उन जगत्पति का यजन (अर्चना नहीं करते) नहीं करते। वे मूढ़ स्वयं को अजर-अमर मानकर कीट के समान पड़े रहते हैं।।१-४।। *(यहां मूल में कीटक शब्द है, उसका अर्थ है मगध जाति का भाट)।*

तडिल्लेखाश्रिया मत्ता वृथाहङ्कारदूषिताः। न यजन्ति जगन्नाथं सर्वश्रेयोविधायकम्।।५।।
हरिधर्मरताः शान्ता हरिपादाब्जसेवकाः। दैवात्केऽपीह जायन्ते लोकनुग्रहतत्पराः।।६।।
कर्मणा मनसा वाचा यो यजेद्भक्तितो हरिम्।
स याति परमं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम्।।७।।

मनुष्य व्यर्थ अहंकार से मत्त रहता है, क्योंकि वह विद्युत् वल्लरी जैसी चंचला लक्ष्मी के मद में पड़ा रहता है। अतः समस्त कल्याणदाता जगन्नाथ का यजन वह नहीं करता। हरिधर्मरत, शान्त, हरि के चरणकमल के सेवक भगवत् कृपा के कारण, लोक पर अनुग्रह के कारण धरती पर उत्पन्न होते हैं। जो कर्म-मन तथा वाणी से भक्ति पूर्वक हरि की अर्चना करते हैं, वे सर्वलोकोत्तमोत्तम परमस्थान प्राप्त करते हैं।।५-७।।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम्॥८॥
तत्प्रवक्ष्यामि चरितं यज्ञमालिसुमालिनोः। यस्य श्रवणमात्रेण वाजिमेधफलं लभेत्॥९॥

मैं इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दे रहा हूं। उसके पाठ से किंवा श्रवण करने से सभी पातकों का नाश हो जाता है। मैं यह यज्ञमाली तथा सुमाली का चरित्र वर्णन कर रहा हूं। इसके श्रवण से ही अश्वमेध यज्ञफल मिलता है।।८-९।।

कश्चिदासीत्पुरा विप्र ब्राह्मणो रैवतेंऽतरे। वेदमालिरिति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः॥१०॥
सर्वभूतदयायुक्तो हरिपूजापरायणः। पुत्रमित्रकलत्रार्थं धनार्जनपरोऽभवत्॥११॥
अपण्यविक्रयं चक्रे तथा च रसविक्रयम्। चण्डालाद्यैरपि तथा संभाषी तत्प्रतिग्रही॥१२॥
तपसां विक्रयं चक्रे व्रतानां विक्रयं तथा। परार्थं तीर्थगमनं कलत्रार्थमकारयत्॥१३॥

हे विप्र! कभी पूर्वकाल में रैवत देश में वेदमाली नामक वेद-वेदांग पारंगत ब्राह्मण था। वह सभी प्राणीगण के प्रति दयावान् तथा हरिपूजा परायण था। तदनन्तर वह पुत्र-मित्र-पत्नी हेतु धनोपार्जनार्थ उद्यत हो गया। उसने निषिद्ध पदार्थों का तथा रस का विक्रय किया। वह चाण्डालों से भी वार्तालाप करता तथा दान ग्रहण करता था। वह अपने तपःफल तथा व्रत का भी विक्रय कर देता था। वह अन्य के निमित्त धन लेकर तीर्थाटन किया करता था।।१०-१३।।

कालेन गच्छता विप्र जातौ तस्य सुतावुभौ।
यज्ञमाली सुमाली च यमलावतिशोभनौ॥१४॥
ततः पिता कुमारौ तावतिस्नेहसमन्वितः। पोषयामास वात्सल्याद्बहुभिः साधनैस्तदा॥१५॥
वेदमालिर्बहूपायैर्धनं सम्पाद्य यत्नतः। स्वधनं गणयामास कियत्स्यादिति वेदितुम्॥१६॥
निधिकोटिसहस्राणां कोटिकोटिगुणान्वितम्।
विगणय्य स्वयं हृष्टो विस्मितश्चार्थचिन्तया॥१७॥

कुछ काल व्यतीत होने पर उसके पुत्रद्वय उत्पन्न हो गये। वे जुड़वा तथा अतिशोभन यज्ञमाली तथा सुमाली नाम वाले थे। उनका पिता वेदमाली इन दोनों से अतीव प्रेम करता था। पिता ने उनका पालन अनेक साधन तथा वत्सल्य के साथ किया। वेदमाली ने नाना उपाय द्वारा धन यत्नतः कमाया। एक दिन यह जानने हेतु कि उसके पास कितना धन है, उसकी गिनती करने लगा। उसने पाया कि उसका संचित धन करोड़ों-हजारों के परिमाण में है। इससे वह प्रसन्न होकर तथा आश्चर्यान्वित होकर विचार करने लगा।।१४-१७।।

असत्प्रतिग्रहैश्चैव अपण्यानां च विक्रयैः। मया तपो विक्रयाद्यैरेतद्धनमुपार्जितम्॥१८॥
नाद्यापि शान्तिमापन्ना मम तृष्णातिदुःसहा।
मेरुतुल्यसुवर्णानि ह्यसंख्यातानि वाञ्छति॥१९॥

(उसने विचार किया कि) मैंने असत् व्यक्तियों से दान ग्रहण किया, वर्जित पदार्थों तथा तप बेचकर धन उपार्जन किया है, तथापि मुझे शान्ति नहीं मिली। तृष्णा कितनी दुःसह होती है! व्यक्ति मेरुपर्वत इतने असंख्य धन की कामना करता है।।१८-१९।।

अहो मन्ये महाकष्टं समस्तक्लेशसाधनम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति पुनरन्यच्च कांक्षति॥२०॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते॥२१॥

अहो! यह अत्यन्त कष्टकर है तथा समस्त क्लेशों का साधन यह है कि सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाने पर भी वह पुनः और की कामना करता है। वृद्धावस्था में केश पक जाते हैं, दांत जीर्ण होकर गिरने लगते हैं। नेत्र तथा कर्ण जीर्ण हो जाते हैं, तथापि तृष्णा युवा होती जाती है।।२०-२१।।

ममेन्द्रियाणि सर्वाणि मन्दभावं वज्रन्ति च। बलं हतं च जरसा तृष्णा तरुणतां गता॥२२॥
कष्टाशा वर्त्तते यस्य स विद्वानथ पण्डितः।
सुशान्तोऽपि प्रमन्युः स्याद्धीमानप्यतिमूढधीः॥२३॥
आशा भङ्गकरी पुंसामजेयारातिसन्निभा।
तस्मादाशां त्यजेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छाश्वतं सुखम्॥२४॥
बलं तेजो यशश्चैव विद्यां मानं च वृद्धताम्।
तथैव सत्कुले जन्म आशा हंत्यतिवेगतः॥२५॥

जिसमें यह कष्टप्रदा आशा विद्यमान रहती है, वह विद्वान, पण्डित, सुशान्त होकर भी चिड़चिड़ा क्रोधी हो जाता है, धीमान् मूढ़ हो जाता है। आशा मनुष्य को भंग करने वाली है। मनुष्य के लिये यह अजेय है। शत्रु के समान नाशक है। अतः प्राज्ञ व्यक्ति आशा त्यागकर शाश्वत सुख की कामना करे। बल, तेंज, यश, विद्या, मान, वृद्धत्व तथा सत्कुल में जन्म—इन सबको आशा वेग पूर्वक नष्ट कर देती है।।२२-२५।।

नृणामाशाभिभूतानामाश्चर्यमिदमुच्यते। किञ्चिद्दातापि चाण्डालस्तस्मादधिकतां गतः॥२६॥
आशाभिभूता ये मर्त्या महामोहा महोद्धताः।
अवमानादिकं दुःखं न जानन्ति कदाप्यहो॥२७॥
मयाप्येवं बहुक्लेशैरेतद्धनमुपार्जितम्। शरीरमपि जीर्णं च जरसापहतं बलम्॥२८॥
इतः परं यतिष्यामि परलोकार्थमादरात्। एवं निश्चित्य विप्रेन्द्र धर्ममार्गरतोऽभवत्॥२९॥

आशा पाश में बद्ध मानव महामोह युक्त तथा महोद्धत होकर अपमान आदि दुःखों को जानते ही नहीं। जो मनुष्य आशा से अभिभूत हैं, उनका अवलोकन करके यह कहना पड़ता है कि किंचित् दान चाण्डाल से लेकर मैं उससे भी हीन हो गया! मैंने अनेक क्लेश सहकर यह धनार्जन किया है। मेरा शरीर जीर्ण हो गया तथा जरा ने बल का हरण कर लिया। आज से अब मैं आदर पूर्वक परलोक हेतु यत्न करूंगा। यह निश्चित करके वह विप्र धर्ममार्ग में निरत हो गया।।२६-२९।।

तदैव तद्धनं सर्वं चतुर्द्धा व्यभजत्तथा। स्वयं तु भागद्वितयं स्वार्जितार्थादपाहरत्॥३०॥
शेषं च भागद्वितयं पुत्रयोरुभयोर्ददौ। स्वेनार्जितानां पापानां नाशं कर्तुमनास्तदा॥३१॥

प्रपातडागारामांश्च तथा देवगृहान्बहून्। अन्नादीनां च दानानि गङ्गातीरे चकार सः॥३२॥
एवं धनमशेषं च विश्राण्य हरिभक्तिमान्। नरनारायणस्थानं जगाम तपसे वनम्॥३३॥
तत्रापश्यन्महारम्यमाश्रम मुनिसेवितम्। फलितैः पुष्पितैश्चैव शोभितं वृक्षसंचयैः॥३४॥

तब उसने समस्त अर्जित धन को चार भागों में विभक्त किया। उसने उस स्वअर्जित धन का दो भाग लेकर बाकी दो भाग दोनों पुत्रों को दे दिया। उसने अपने द्वारा अर्जित पापनाशार्थ अनेक कार्य किये। उसने अनेक देवमन्दिर, प्रपा, तड़ाग निर्माण कराया। उसने गंगा तट पर अन्न आदि का प्रचुर दान किया। इन धार्मिक कार्यों द्वारा उसने समस्त धन हरिभक्तजन में वितरित कर दिया तथा वन में तप करने के उद्देश्य से हिमालयस्थ नर-नारायण स्थान में आ गया। वहां उसने मुनिगण सेवित महारम्य आश्रम को देखा। वह फलित, पुष्पित शोभित वृक्षों से परिपूर्ण था।।३०-३४।।

गृणद्भिः परमं ब्रह्म शास्त्रचिंतापरैस्तथा। परिचर्यापरैवृद्धैर्मतिभिः परिशोभितम्॥३५॥
शिष्यै परिवृतं तत्र मुनिं जानन्ति संज्ञकम्। गृणन्तं परमं ब्रह्म तेजोराशिं ददर्श ह॥३६॥
शमादिगुणसंयुक्तं रागादिरहितं मुनिम्। शीर्णपर्णाशिनं दृष्ट्वा वेदमालिर्ननाम तम्॥३७॥
तस्य जानन्तिरागन्तोः कल्पयामास चार्हणम्।
कन्दमूलफलाद्यैस्तु नारायणधिया मुने॥३८॥

वह आश्रम परमब्रह्म के गुणगान में तत्पर तथा शास्त्र चिन्तन में लगे हुये भगवत् परिचर्या परायण मति वाले वृद्ध तपस्वियों से शोभायमान था। वहां वेदमाली ने शिष्यगण से घिरे मुनि जानंति को देखा। वे परमब्रह्म का जप करते तेजोराशि के समान परिलक्षित हो रहे थे। हे मुनिवर! वे मुनि शमादि गुणों से संयुक्त तथा रागादि दोषों से रहित थे। वे पृथिवी पर गिरे पत्तों को खाकर निर्वाह करते थे। तब वेदमाली ने इन मुनि को प्रणाम किया! उधर मुनि जानंति ने भी उन अतिथि वेदमाली का आदर सत्कार नारायण की भावना (अतिथि में करके) के साथ कन्द-मूल फलादि द्वारा सम्पन्न किया।।३५-३८।।

कृतातिथ्यक्रियस्तेन वेदामाली कृताञ्जलिः।
विनयावनतो भूत्वा प्रोवाच वदतां वरम्॥३९॥
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि विगते कल्मषं मम। मामुद्धर महाभाग ज्ञानदानेन पण्डित॥४०॥
एवमुक्तस्ततस्तेन जानतिर्मुनिसत्तमः। प्रोवाच प्रहसन्वाग्मी वेदमालिं गुणान्वितम्॥४१॥
श्रृणुष्व विप्रशार्दूल संसारच्छेदकारणम्। प्रवक्ष्यामि समासेन दुर्लभं त्वकृतात्मनाम्॥४२॥
भज विष्णुं परं नित्यं स्मर नारायणं प्रभुम्। परापवादं पैशुन्यं कदाचिदपि मा कृथाः॥४३॥
परोपकारनिरतः सदा भव महामते। हरिपूजाकरश्चैव त्यज मूर्खसमागमम्॥४४॥

इस आतिथ्य क्रिया सम्पन्न हो जाने पर वेदमाली ने विनय पूर्वक हाथ जोड़कर उन वाग्मीप्रवर मुनि से कहा—"हे भगवान्! मैं कृतार्थ हो गया। मेरा कल्मष नष्ट हो गया। हे पण्डित! महाभाग! ज्ञानदान द्वारा मेरा उद्धार करिये।" वेदमाली का कथन सुनकर मुनिसत्तम जानंति ने हंसते हुये गुणी वेदमाली को उत्तर दिया—"हे विप्रशार्दूल! आप संसार के उच्छेदक इस ज्ञान का श्रवण करिये। मैं इसे संक्षेप में कहता हूं। यह अकृती (जो

विवेकयुक्त न हों) लोगों के लिये अतीव दुर्लभ है। आप नित्य विष्णु का भजन करें तथा नारायण प्रभु का स्मरण किया करें। पर निन्दा, चुगली आदि कभी न करें। हे महामति! आप सदा परोपकार निरत रहिये। आप मूर्खों का साथ छोड़कर सदा हरि पूजन तत्पर रहें।।३९-४४।।

कामं क्रोधं च लोभं च मोहं च मदमत्सरौ।
परित्यज्यात्मवल्लोकं दृष्ट्वा शान्तिं गमिष्यसि॥४५॥
असूयां परनिन्दां च कदाचिदपि मा कुरु। दम्भाचारमहङ्कारं नैष्ठुर्यं च परित्यज॥४६॥
दयां कुरुष्व भूतेषु शुश्रूषां च तथा सताम्।
त्वया कृतांश्च धर्मान्वै मा प्रकाशय पृच्छताम्॥४७॥
अनाचारपरान्दृष्ट्वा नोपेक्षां कुरु शक्तितः।
पूजयस्वातिथिं नित्यं स्वकुटुम्बाविरोधतः॥४८॥

काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर का त्याग करे। सब कुछ को आत्मवत् देखे। इससे आपको शान्तिलाभ होगा। असूया, परनिन्दा कदापि न करे। दम्भाचार, अहंकार तथा निष्ठुरता का त्याग करिये। सदा सत् लोगों की सेवा करे। सभी प्राणियो के प्रति दयाभाव रखे। आपने जो धर्म किया हो, उसे अन्य द्वारा पूछे जाने पर भी न कहे। यदि आपके सामने अनाचार हो रहा हो, तब जब तक शक्ति है, उसका प्रतिकार करिये। उसकी उपेक्षा करना अनुचित है। अपने कुटुम्ब की हानि किये बिना अतिथि सेवा करिये।।४५-४८।।

पत्रैः पुष्पैः फलैर्वापि दूर्वाभिः पल्लवैरथ। पूजयस्व जगन्नाथं नारायणमकामतः॥४९॥
देवानृषीन्पितृंश्चांपि तर्पयस्व यथाविधि। अग्नेश्च विधिवद्विप्रं परिचर्यापरो भव॥५०॥
देवतायतने नित्यं सम्मार्जनपरो भव। तथोपलेपनं चैव कुरुष्व सुसमाहितः॥५१॥
शीर्णस्फटितसन्धानं कुरु देवगृहे सदा। मार्गशोभां च दीपं च विष्णोरायतने कुरु॥५२॥

जगन्नाथ नारायण की निष्काम पूजा पत्र, पुष्प, फल, दूर्वा तथा पल्लवों से करिये। देवता, ऋषि तथा पितृगण का तर्पण यथाविधि करें। हे विप्र! सविधि अग्नि की परिचर्या परायण हो जायें। नित्य देवमन्दिर में सफाई तथा वहां की धरती पर लेपन समाहित चित्त से करें। सदैव देवमन्दिर के शीर्ण तथा फटे स्थान को खोजकर उनकी मरम्मत करिये। विष्णु मन्दिर के मार्ग को शोभायमान बनाकर वहां दीप प्रदान करिये।।४९-५२।।

कन्दमूलफलैर्वापि सदा पूजय माधवम्। प्रदक्षिणनमस्कारैः स्तोत्राणां पठनैस्तथा॥५३॥
पुराणश्रवणं चैव पुराणपठनं तथा। वेदान्तपठनं चैव प्रत्यहं कुरु शक्तितः॥५४॥
एवं स्थिते तव ज्ञानं भविष्यत्युत्तमोत्तमम्।
ज्ञानात्समस्तपापानां मोक्षो भवति निश्चितम्॥५५॥
एवं प्रबोधितस्तेन वेदमालिर्महामतिः। तथा ज्ञानरतो नित्यं ज्ञानलेशमवाप्तवान्॥५६॥
वेदमालिः कदाचित्तु ज्ञानलेशप्रचोदितः।
कोऽहं मम क्रिया केति स्वयमेव व्यचिन्तयत्॥५७॥

मम जन्म कथं जातं रूपं कीदृग्विधं मम। एवं विचारणपरो दिवानिशमतेन्द्रितः॥५८॥
अनिश्चितमतिर्भूत्वा वेदमालिर्द्विजोत्तमः। पुनर्जानन्तिमागम्य प्रणम्येदमुवाच ह॥५९॥

"सदा कन्द-मूल-फलादि से माधव की पूजा करते रहिये। प्रदक्षिणा, प्रणाम, स्तोत्र पाठ, भी अपनी शक्ति के अनुसार करिये। पुराण श्रवण, पुराण पठन, वेदान्त पठन नित्य स्वशक्ति के अनुसार करिये। इस कार्य द्वारा आपको भविष्य में उत्तमोत्तम ज्ञानलाभ होगा। ज्ञान द्वारा समस्त पापों से आपको निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त होगी।" इस प्रकार महामति वेदमाली प्रबोधित हो गये। उन्हें ज्ञान का लेश प्राप्त हो गया (अभी कुछ ही ज्ञान लाभ हो सका था)। उस ज्ञान लेश से प्रेरित होकर वे विचार करने लगे—"मैं कौन हूं? मेरी क्या क्रिया (कर्त्तव्य) है? मेरा जन्म कैसे हुआ? मेरा स्वरूप कैसा है?" इस प्रकार वे आलस्य रहित होकर दिन-रात विचारशील रहते थे। इस प्रकार किसी निर्णय पर न पहुंच सकने के कारण द्विजोत्तम वेदमाली पुनः जानन्ति मुनि के यहां गये तथा उनको प्रणाम करके कहने लगे।।५३-५९।।

वेदमालिरुवाच

ममचित्तमतिभ्रान्तं गुरो ब्रह्मविदां वर। कोऽहं मम क्रिया का च मम जन्म कथं वद॥६०॥

वेदमाली कहता है—हे ब्रह्मज्ञों में श्रेष्ठ! मेरा चित्त भ्रान्त हो रहा है? मैं कौन हूं? मैं क्या करूं? मेरा जन्म कैसे हुआ? यह कहिये।।६०।।

जानन्तिरुवाच

सत्यं सत्यं महाभाग चित्तं भ्रान्तं सुनिश्चितम्।
अविद्यानिलयं चित्तं कथं सद्भावमेष्यति॥६१॥
ममेति गदितुं यत्तु तदपि भ्रान्तिरिष्यते। अहङ्कारो मनोधर्म आत्मनो नहि पण्डित॥६२॥
पुनश्च कोऽहमित्युक्तं वेदमाले त्वया तु यत्।
मम जात्यादि शून्यस्य कथं नाम करोम्यहम्॥६३॥
अनौपम्यस्वभावस्य निर्गुणस्य परात्मनः। नीरूपस्याप्रमेयस्य खतं नाम करोम्यहम्॥६४॥
परज्योतिःस्वरूपस्य परिपूर्णाव्ययात्मनः।
अविच्छिन्नस्वभावस्य कथ्यते च कथं क्रिया॥६५॥
स्वप्रकाशात्मनो विप्र नित्यस्य परमात्मनः।
अनन्तस्य क्रिया चैव कथं जन्म च कथ्यते॥६६॥

मुनि जानन्ति कहते हैं—हे महाभाग! यह कथन सत्य है कि तुम्हारा चित भ्रान्त है। चित्त तो अविद्या का घर है। वहां सद्भाव लाभ कैसे होगा? "यह मेरा है" यह वाक्य भी भ्रमात्मक है। अहंकार मन का धर्म है। वह आत्मा का धर्म नहीं है। हे पण्डित! हे वेदमाली! तुमने यह प्रश्न किया कि "मैं कौन हूं?" तब मैं जाति आदि से शून्य (आत्मा) का नाम कैसे बतला सकूंगा? जो अनुपम स्वभाव, निर्गुण, परात्मा, रूप रहित, अप्रमेय हैं, उसका नाम कैसे कहूं। हे विप्र! आत्मा स्वप्रकाश नित्य परमात्मा है। उस अनन्त की क्या क्रिया होगी तथा जन्म कैसे होगा?।।६१-६६।।

ज्ञानैकवेद्यमजरं परं ब्रह्म सनातनम्। परिपूर्णं परानन्दं तस्मान्नान्यदिह द्विज॥६७॥

तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्यो ज्ञानं मोक्षस्य साधनम्।

ज्ञाने त्वनाहते सिद्धे सर्वं ब्रह्ममयं भवेत्॥६८॥

"हे द्विज! एकमात्र ज्ञान द्वारा ही उसे जाना जाता है। उस एकमात्र जानने योग्य, परंब्रह्म, सनातन, परिपूर्ण, परानन्द के अतिरिक्त हे द्विज! अन्य कोई नहीं है। "तत्वमसि" इत्यादि वाक्यों द्वारा प्राप्त ज्ञान ही मोक्ष साधन है। इस अनाहत ज्ञान की सिद्धि होने से सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है।"।।६७-६८।।

एवं प्रबोधितस्तेन वेदमालिर्मुनीश्वर। मुमोद पश्यन्नात्मानमात्मन्येवाच्युतं प्रभुम्॥६९॥

उपाधिरहितं ब्रह्म स्वप्रकाशं निरञ्जनम्।

अहमेवेति निश्चित्य परां शान्तिमवाप्तवान्॥७०॥

इस प्रकार मुनीश्वर जानन्ति ने वेदमाली को प्रबोधित किया। उसने मुदित होकर अपनी आत्मा में ही आत्मरूप अच्युत प्रभु का साक्षात्कार किया। यह ब्रह्म उपाधि रहित स्वप्रकाश निरंजन है। "यह मैं ही हूं" यह ज्ञान लाभ करके उसने पराशान्ति लाभ किया।।६९-७०।।

ततश्च व्यवहारार्थं वेदमालिर्मुनीश्वरम्। गुरुं प्रणम्य जानन्ति सदा ध्यानपरोऽभवत्॥७१॥

गते बहुतिथे काले वेदमालिर्मुनीश्वर। वाराणसीपुरं प्राप्य परं मोक्षमवाप्तवान्॥७२॥

तदनन्तर वेदमाली ने व्यवहार के निर्वाह के लिये गुरु मुनीश्वर जानन्ति को प्रणाम किया तथा ध्यानपरायण हो गया। इसके पश्चात् दीर्घकाल व्यतीत होने पर मुनीश्वर वेदमाली वाराणसी पुरी गया, जहां उसने परममोक्ष लाभ किया।।७१-७२।।

य इमं पठतेऽध्यायं श्रृणुयाद्वा समाहितः।

स कर्मपाशविच्छेदं प्राप्य सौख्यमवाप्नुयात्॥७३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे ज्ञाननिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

जो इस अध्याय का समाहित होकर पाठ करता है, वह कर्मपाश विच्छेद करके परमसुख की प्राप्ति करता है।।७३।।

।।३५वां अध्याय समाप्त।।

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

यज्ञमाली तथा सुमाली द्वारा उत्तमलोक प्राप्त करना

सनक उवाच

वेदमालेः सुतौ प्रोक्तौ यावुभौ मुनिसत्तम। यज्ञमाली सुमाली च तयोः कर्माधुनोच्यते॥१॥
तयोराद्यो यज्ञमाली विभेद पितृसञ्चितम्। धनं द्विधा कनिष्ठस्य भागमेकं ददौ तदा॥२॥
सुमाली च धनं सर्वं व्यसनाभिरतः सदा। अपादानादिभिश्चैव नाशयामास भो द्विज॥३॥
गीतवाद्यरतो नित्यं मद्यपानरतोऽभवत्। वेश्याविभ्रमलुब्धोऽसौ परदाररतोऽभवत्॥४॥
सर्वस्मिन्नाशमायाते हिरण्ये पितृसञ्चिते। अपहृत्य परं द्रव्यं वारस्त्रीनिरतोऽभवत्॥५॥

देवर्षि सनक कहते हैं—पूर्व में मैंने वेदमाली के दो पुत्रों को चर्चा किया था। हे मुनिसत्तम! अब मैं इन दो पुत्र यज्ञमाली एवं सुमाली के कर्मों का वर्णन करता हूं। ज्येष्ठ पुत्र यज्ञमाली द्वारा पिता प्रदत्त सम्पत्ति भागद्वय में बांटकर उसका एक भाग छोटे भाई सुमाली को प्रदान किया गया। सुमाली सदैव व्यसनों में निरत रहता था। उसने समस्त सम्पत्ति मद्यपानादि में नष्ट कर दिया। वह गीतवाद्यरत, नित्य मद्यपायी, वेश्या के विभ्रम में लुब्ध, परस्त्रीगामी था। उसने पिता से मिला समस्त स्वर्ण नष्ट कर दिया। तदनन्तर वह पराया धन हरण करता तथा नित्य वेश्यागमनशील रहता था।।१-५।।

दृष्ट्वा सुमालिनः शीलं यज्ञमाली महामतिः।
बभूव दुःखितोऽत्यन्तं भ्रातरं चेदमब्रवीत्॥६॥
अलमत्यन्तकष्टेन वृत्तेनास्मत्कुलोऽनुज। त्वमेक एव दुष्टात्मा महापापरतोऽभवः॥७॥

महामति यज्ञमाली ने सुमाली का यह चरित्र देखा, तब वह अतीव दुःख पूर्वक भाई से कहने लगा कि "हे भाई! स्वयं को दुष्टात्मा बनाया तथा महापापी निकले! तुमने कुल की मर्यादा के प्रतिकूल कार्य किया है।।६-७।।

एवं निवारयन्तं तं बहुशो ज्येष्ठसोदरम्।
हनिष्यामीति निश्चित्य खड्गहस्तः कचेऽग्रहीत्॥८॥

जब इस प्रकार बड़े भाई ने सुमाली को अपकृत्य से बहुत रोका तब उस सुमाली ने यह निश्चय किया कि मैं इस यज्ञमाली का वध करूंगा। उसने खड्ग हस्त होकर सुमाली का केश पकड़ लिया।।८।।

ततो महारवो जज्ञे नगरे भृशदारुणः। बबन्धुर्नागराश्चैनं कुपितास्ते सुमालिनम्॥९॥
यज्ञमाली ह्यमेयात्मा पौरान्सम्प्रार्थ्य दुःखितः।
बन्धनान्मोचयामास भ्रातृस्नेहविमोहितः॥१०॥
यज्ञमाली पुनश्चापि विभिदे स्वधनं द्विधा। आददे स्वयमर्द्धं च ददावर्द्धं यवीयसे॥११॥

यह देखकर समस्त नगर कोलाहल पूर्ण हो उठा। नागरिक लोगों ने क्रोध पूर्वक सुमाली को बांध दिया।

लेकिन भाई के प्रेम में विमोहित होकर शुद्धात्मा यज्ञमाली ने नागरिकगण से दुःखी होकर प्रार्थना किया तथा भाई को बन्धनमुक्त करा दिया। इसके अनन्तर यज्ञमाली ने पुनः अपनी सम्पत्ति भागद्वय में विभक्त करके आधा अपने पास रखकर बाकी अर्द्धभाग सुमाली को दे दिया।।९-११।।

सुमाली त्वतिमूढात्मा तद्धनं चापि नारद।
मूर्खैः पाखण्डचण्डालैर्बुभुजे च सहोद्धतः॥१२॥
असतामुपभोगाय दुर्जनानां विभूतयः। पिचुमन्दः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते॥१३॥
भ्रात्रा दत्तं धनं तच्च सुमाली नाशयन्मुने। मद्यप्रानप्रमत्तश्च गोमांसादीन्यभक्षयत्॥१४॥
त्यक्तो बन्धुजनैः सर्वश्चाण्डालस्त्रीसमन्वितः।
राज्ञापि बाधितो विप्र प्रपेदे निर्जनं वनम्॥१५॥

हे नारद! मूढ़बुद्धि सुमाली ने वह धन मूर्ख, पाखण्डी, महोद्धत तथा चाण्डालों और व्यसन में व्यय कर दिया। दुर्जनों के धनादि का उपभोग प्रायः असज्जन ही करते हैं। यह उसी प्रकार है, जैसे नीम का पेड़ जब निमकौड़ी से भर जाता है, तब उसका उपयोग कौये ही करते हैं। हे मुनिवर! सुमाली ने भाई प्रदत्त सम्पत्ति का नाश करना प्रारंभ कर दिया। वह मद्यपान से प्रमत्त होकर गोमांस आदि खाता था। उसे चाण्डाल, स्त्रियों का साथ करते देखकर उसके बन्धुजन ने भी उसका त्याग कर दिया। राजा से बाधित होकर अन्ततः वह निर्जन वन में भाग गया।।१२-१५।।

यज्ञमाली सुधीर्विप्र सदा धर्मरतोऽभवत्। अवारितं ददावन्नं सत्सङ्गतकल्मषः॥१६॥
पित्रा कृतानि सर्वाणि तडागादीनि सत्तम। अपालयत्प्रयत्नेन सदा धर्मपरायणः॥१७॥
विश्राणितं धनं सर्वं यज्ञमालेर्महात्मनः। सत्पात्रदाननिष्ठस्य धर्ममार्गप्रवर्तिनः॥१८॥
अहो सदुपभोगाय सज्जनानां विभूतयः। कल्पवृक्षफलं सर्वममरैरेव भुज्यते॥१९॥

उधर यज्ञमाली बुद्धिमान् विप्र होने के कारण सदा धर्माचरण में लगा रहता था। वह सतत् अन्नदान करता तथा उसने सत्संग से अपने पापों को नष्ट कर दिया था। उसने अपना समस्त धन सत्पात्रों को धर्मनिष्ठों तथा धर्मपथावलम्बी लोगों को प्रदान कर दिया। वह धर्मनिष्ठ यज्ञमाली अपने पिता वेदमाली द्वारा निर्मित तड़ाग आदि का संरक्षण भी करता रहता था। अहो! सज्जनों का धन सदा सदुपयोग में ही व्यय होता है। कल्पवृक्ष के फलों का उपभोग देवगण ही कर पाते हैं।।१६-१९।।

धनं विश्राण्य धर्मार्थं यज्ञमाली महामतिः।
नित्यं विष्णुगृहे सम्यक्परिचर्य्यापरोऽभवत्॥२०॥
कालेन गच्छता तौ तु वृद्धभावमुपागतौ। यज्ञमाली सुमाली च ह्येककाले मृतावुभौ॥२१॥
हरिपूजारतस्यास्य यज्ञमालिमहात्मनः। हरिः सम्प्रेषयामास विमानं पार्षदावृतम्॥२२॥
दिव्यं विमानमारुह्य यज्ञमाली महामतिः। पूज्यमानः सुरगणैः स्तूयमानो मुनीश्वरैः॥२३॥

एवंविध यज्ञमाली ने अपना धन धर्मार्थ व्यय कर दिया। अब वह नित्यप्रति विष्णु मन्दिर में परिचर्या कार्य किया करता था। कालान्तर में दोनों भाई वृद्ध हो गये। दोनों समान काल में ही मृत हो गये। महात्मा

यज्ञमाली सदा हरिपूजा में लगा रहता था। इस कारण श्रीहरि ने उसे अपने धाम में लाने हेतु पार्षदयुक्त एक विमान वहां भेजा। यज्ञमाली महामति उस दिव्य विमान पर आसीन हो गया। वह वहां मुनीश्वरों से स्तुत हो रहा था। देवता उसकी पूजा कर रहे थे।।२०-२३।।

गन्धर्वैर्गीयमानश्च सेवितश्चाप्सरोगणैः। कामधेन्वा पुष्यमाणश्चित्राभरणभूषितः॥२४॥
कोमलैस्तुलसीमाल्यैर्भूषितस्तेजसां निधिः।
गच्छन्विष्णुपदं दिव्यं मनुजं पथि दृष्टवान्॥२५॥
ताड्यमानं यमभटैः क्षुत्तड्भ्या परिपीडितम्।
प्रेतभूतं विवस्त्रं च दुःखितं पाशवेष्टितम्।
इतस्ततः प्रधावन्तं विलपन्तमनाथवत्॥२६॥

उस विमान पर गन्धर्व गायन कर रहे थे तथा यज्ञमाली की सेवा अप्सरायें कर रही थीं। कामधेनु उसे वांछित पदार्थ दे रही थी। यज्ञमाली नाना आभरणों से भूषित था। वह कोमल तुलसी पत्रों की माला पहने था तथा अत्यन्त तेजोमय था। इस प्रकार वह दिव्य विष्णुलोक जाने लगा, परन्तु उसने एक पथिक को देखा। वह क्षुधा-पिपासा से पीड़ित था तथा यमदूतों द्वारा पीटा जा रहा था। वह वस्त्र रहित, प्रेतरूप तथा पाश से बद्ध था। वह इधर-उधर दौड़ता अनाथ की तरह विलाप कर रहा था।।२४-२६।।

क्रोशन्तं च रुदन्तं च दृष्ट्वा मनसि विव्यथे॥२७॥
यज्ञमालादयायुक्तो विष्णुदूतान्समीपगान्। कोऽयं भटैर्बाध्यमानं इत्यपृच्छत्कृताञ्जलिः॥२८॥
अथ ते हरिदूतास्तं यज्ञमालिमहौजसम्।
असौ सुमाली भ्राता ते पापात्मेति समब्रुवन्॥२९॥

उसे रोते तथा चीत्कार करते देखकर यज्ञमाली व्यथित हो गया। उसने हाथ जोड़कर विष्णु पार्षदों से प्रश्न किया—"यह कौन है, जिसे यमदूत पीड़ित कर रहे हैं?" यह सुनकर विष्णु पार्षदों ने महातेजस्वी विष्णुपार्षदों ने कहा "यह तुम्हारा भाई पापात्मा सुमाली ही है।।"।।२७-२९।।

यज्ञमाली समाकर्ण्य व्याख्यातं विष्णुकिङ्करैः।
मनसा दुःखमापन्नः पुनः पप्रच्छ नारद॥३०॥
कथमस्य भवेन्मोक्षः सञ्चितैःपापसञ्चयैः। तदुपायं वदध्वं मे यूयं हि मम बांधवाः॥३१॥
सख्यं साप्तपदीनं स्यादित्याहुर्धर्मकोविदाः।
सतां साप्तपदी मैत्री सत्सतां त्रिपदी तथा॥३२॥
सत्सतामपि ये सन्तस्तेषां मैत्री पदे पदे॥३३॥
तस्मान्मे बान्धवा यूयं मां नेतुं समुपागताः।
यतोऽयं मम भ्रातपि मुच्यते तदिहोच्यताम्॥३४॥

हे नारद! विष्णु पार्षदों का यह कथन सुनकर यज्ञमाली का मन दुःख से भर गया उसने पुनः पूछा—

"इसने जो पातक संचित किया है, उससे इसकी मुक्ति कैसे होगी? आप सब मेरे बन्धु हैं। इसका उपाय कहिये। सज्जनों के सहित सात डग साथ चलने मात्र से मित्रता हो जाती है। उससे भी अधिक जो सत्पुरुष है, उनके साथ तो तीन डग चलने मात्र से मैत्री होती है। उससे भी बढ़कर जो सत्पुरुष होते हैं, उनसे तो मैत्री एक डग साथ चलने से ही हो जाती है। अतः आप लोग मेरे बन्धु हैं। आप वह उपाय कहिये जिससे मेरे भ्राता की सद्गति हो सके।"।।३०-३४।।

यज्ञमालिवचः श्रुत्वा विष्णुदूता दयालवः।
पुनः स्मितमुखाः प्रोचुर्यज्ञमालिहरिप्रियम्॥३५॥

यज्ञमाली का वचन सुनकर विष्णुदूत दयार्द्र हो गये। तब उन्होंने हंसते हुये हरिभक्त यज्ञमाली से कहा—।।३५।।

विष्णुदूता ऊचुः

यज्ञमालिन्महाभाग नारायणपरायण। उपायं तव वक्ष्यामः सुमालिप्रेतमुक्तिदम्॥३६॥
कृतं यत्सुमत्कर्म त्वया प्राक्तनजन्मनि। प्रवक्ष्यामः समासेन तच्छृणुष्व समाहितः॥३७॥
पुरा त्वं वैश्यजातीयो नाम्ना विश्वम्भरः स्मृतः।
त्वया कृतानि पापानि महांत्यगणितानि वै॥३८॥
सुकर्मवासनाहीनो मात्रापित्रोर्विरोधकृत्। एकदा बन्धुभिस्त्याक्तः शोकसन्तापपीडितः॥३९॥

विष्णुदूत कहते हैं—हे यज्ञमाली, महाभाग! तुम नारायण-परायण हो। अब हम तुमसे वह उपाय कहते हैं, जिससे प्रेत सुमाली की मुक्ति हो सके। इस जन्म के पहले वाले जन्म में तुमने जो सत्कर्म किया था, वह हम कह रहे हैं। उसे तुम समाहित होकर श्रवण करो। पूर्वकाल में तुम्हारा जन्म वैश्य जाति में हुआ था। तब तुम्हारा नाम था विश्वम्भर। उस समय तुमने अगणित पाप कर्मों को किया था। तुम्हारे मन में सुकर्म करने की वासना ही नहीं थी। तुम माता-पिता के सदा विरोधी थे। एक बार तुम बन्धुजन द्वारा त्यागे जाने के कारण शोक-सन्ताप से पीड़ित हो गये थे।।३६-३९।।

क्षुधाग्निनापि सन्तप्तः प्राप्तवान्हरिमन्दिरम्।
तदा वृष्टिरभूत्तत्र तत्स्थानं पङ्किलं ह्यभूत्॥४०॥
दूरीकृतस्त्वया पङ्कस्तत्स्थाने स्थातुमिच्छया। उपलेपनतां प्राप्तं तत्स्थानंविष्णुमन्दिरे॥४१॥
त्वयोषितं तु तद्रात्रौ तस्मिन्देवालये द्विज। दंशितश्चैव सर्पेण प्राप्तं पञ्चत्वमेव च॥४२॥
तेन पुण्यप्रभावेण उपलेपकृतेन च। विप्रजन्म त्वया प्राप्तं हरिभक्तिस्तथाचला॥४३॥
कल्पकोटिशतं साग्रं संप्राप्य हरिसन्निधिम्। वसाद्य ज्ञानमासाद्य परं मोक्षं गमिष्यसि॥४४॥
अनुजं पातकिश्रेष्ठ त्वं समुद्धर्त्तमिच्छसि। उपायं तव वक्ष्यामस्तं निबोध महामते॥४५॥
गोचर्ममात्रभूमेस्तु उपलेपनजं फलम्। दत्त्वोद्धर महाभाग भ्रातरं कृपयान्वितः॥४६॥

ऐसी स्थिति में तुम क्षुधापीड़ित होकर एक हरिमन्दिर में आये। उस समय वृष्टि होने के कारण वह स्थान

कीचड़ से भर गया था। तुमने वहां शरण लेने की इच्छा से अपने लिये उस स्थान को स्वच्छ किया। उस विष्णु मन्दिर का वह स्थान तुम्हारे द्वारा इस प्रकार लीप दिया गया। हे द्विज! तुम उस रात्रि को उसी देवालय में ही व्यतीत किया। तभी वहां सर्पदंश से तुम मृत हो गये। उस हरिमन्दिर को लीपने तथा स्वच्छ करने के पुण्य प्रभाव के कारण तुमको यह ब्राह्मण जन्म तथा अचल हरिभक्ति प्राप्त हो गई। अब तुम्हारा निवास सैकड़ों कोटिकल्प तक हरि के पास रहेगा। तदनन्तर ज्ञान पाकर परम मोक्ष लाभ करोगे। तुम अपने पातकियों में प्रधान भाई का उद्धार करने के इच्छुक हो। हे महामति! उसका उपाय श्रवण करो। हे महाभाग! तुम अपने पुण्य में से मात्र उतना पुण्य अपने भाई को प्रदान करो जो मात्र एक गोचर्म माप की भूमि (विष्णु मन्दिर की भूमि) लीपने से मिलता है। यह पुण्यफल प्रदान करते ही तुम्हारा भाई पापमुक्त होगा। (गोचर्म=विशेष माप, वसिष्ठ के अनुसार "दश हस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः। पंच चाम्यधिकान् दद्यादेतद् गोचर्म चोच्यते।।)।।४०-४६।।

एकमुक्तो विष्णुदूतैर्यज्ञमाली महामतिः। तत्फलं प्रददौ तस्मै भ्रात्रे पापविमुक्तये॥४७॥
सुमाली भ्रातृदत्तेन पुण्येन गतकल्मषः। बभूव यमदूतास्तु तं त्यक्त्वा प्रपलायिताः॥४८॥

विष्णुदूतों द्वारा यह कहे जाने पर महामति यज्ञमाली ने कृपा पूर्वक वह फल अपने भाई की पापविमुक्ति हेतु अर्पित कर दिया। सुमाली भी भाई द्वारा प्रदत्त इस पुण्य से कल्मष रहित हो गया। इसको देखकर यमदूत भी सुमाली को वहीं छोड़कर पलायन कर गये!।।४७-४८।।

विमानं चागतं सद्यः सर्वभोगसमन्वितम्। तदा सुमाली स्वर्यानमारुह्य मुमुदे मुने॥४९॥
तावुभौ भ्रातरौ विप्र सुरवृन्दनमस्कृतौ। अवापतुर्भृशं प्रीतिं समालिङ्ग्य परस्परम्॥५०॥

यज्ञमाली सुमाली च स्तूयमानौ महर्षिभिः।
गीयमानौ च गन्धर्वैर्विष्णुलोकं प्रजग्मतुः॥५१॥
अवाप्य हरिसालोक्यं सुमाली मुनिसत्तम।
यज्ञमाली चोषतुस्तौ कल्पमेकं मुदान्वितौ॥५२॥

भुक्त्वा भोगान्बहूँस्तत्र यज्ञमाली महामतिः। तत्रैव ज्ञानसम्पन्नः परं मोक्षमुपागतः॥५३॥

वहां पर तत्काल सर्वभोग समन्वित एक विमान आ गया। हे मुनि! उस विमान पर आरूढ़ होकर सुमाली अत्यन्त प्रसन्न हो गया। हे विप्र! वे दोनों भाई देवताओं द्वारा नमस्कृत हो गये। उन दोनों ने आपस में एक-दूसरे का आलिंगन किया। ये दोनों भाई महर्षियों द्वारा स्तुत होकर तथा गन्धर्वों द्वारा गायन से समादृत होकर विष्णुलोक चले गये। हे मुनिसत्तम! वहां हरिसालोक्य पाकर सुमाली तथा यज्ञमाली ने एक कल्पपर्यन्त मुदित होकर निवास किया। वहां अनेक भोगों का उपभोग करके महामति यज्ञमाली ने अन्ततः ज्ञानलाभ किया तथा मुक्त हो गये।।४९-५३।।

सुमाली तु महाभागो विष्णुलोके मुदान्वितः।
स्थित्वा भूमिं पुनः प्राप्य विप्रत्वं समुपागतः॥५४॥

अतिशुद्धे कुले जातो गुणवान्वेदपारगः। सर्वसम्पत्समोपेतो हरिभक्तिपरायणः॥५५॥
व्याहरन्हरिनामानि प्रपेदे जाह्नवीतटम्। तत्र स्नानश्च गङ्गायां दृष्ट्वा विश्वेश्वरं प्रभुम्॥५६॥

अवाप परमं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्। उपलेपनमाहात्म्यं कथितं ते मुनीश्वर॥५७॥

सुमाली भी मुदित मन से विष्णुलोक में निवास करने के पश्चात् मर्त्यलोक में ब्राह्मण होकर जन्मा। उसका जन्म अतिशुद्ध कुल में हुआ। वह अब गुणी एवं वेद पारंगत था। वह सर्वसम्पदायुक्त था हरिभक्तिपरायण था। अन्तकाल आसन्न होने पर वह हरिनाम जपता गंगातट पर आया। वहां उसने गंगा में स्नानोपरान्त प्रभु विश्वेश्वर का दर्शन किया। तदनन्तर उसने योगीगण के लिये भी दुर्लभ परमस्थान को प्राप्त किया। हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने विष्णुमन्दिर में उपलेपन का माहात्म्य कह दिया।।५४-५७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पूज्यो जगतां पतिः।
अकामादपि ये विष्णोः सकृत्पूजां प्रकुर्वते॥५८॥
न तेषां भवबन्धस्तु कदाचिदपि जायते। हरिभक्तिरतान्यस्तु हरिबुद्ध्या समर्चयेत्॥५९॥
तस्य तुष्यन्ति विप्रेन्द्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। हरिभक्तिपराणां तु सङ्गिनां सङ्गमात्रतः॥६०॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महापातकवानपि। हरिपूजापराणां च हरिनामरतात्मनाम्॥६१॥
शुश्रूषानिरता यान्ति पापिनोऽपि परां गतिम्॥६२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुसेवाप्रभावो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।
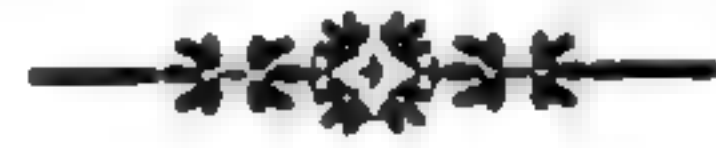
अतः मनुष्य सर्वप्रयत्न पूर्वक जगत्पति की पूजा करे। जो कोई अनिच्छा से एक बार भी विष्णुपूजा करता है, उसे कदापि भवबन्धन नहीं होता। जो लोग हरिभक्तों को श्रीहरि मानकर उनकी सेवा करते हैं, हे विप्रेन्द्र! उनके प्रति ब्रह्मा-विष्णु-शिव सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो हरिभक्त हैं, उनके साथियों तक का संसर्ग महापापी के भी पापों का नाश कर देता है। हरिपूजारत तथा हरिनामतत्पर लोगों की जो सेवा करता है, वह भले ही घोर पातकी हो, उसे परमगति प्राप्त होती है।।५८-६२।।

।।३६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

विष्णु माहात्म्य वर्णन

सनक उवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र माहात्म्यं कमलापतेः।
कस्य नो जायते प्रीतिः श्रोतुं हरिकथामृतम्॥१॥
नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्। एकमेव हरेर्नाम सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

सकृद्वा न नमेद्यस्तु विष्णु पापहरं नृणाम्। श्वपचं तं विजानीयात्कदाचिन्नालपेच्च तम्॥३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! अब आप कमलापति का माहात्म्य श्रवण करिये। ऐसा कौन है, जिसे हरिकथामृत को सुनने के प्रति प्रेम न हो? विषयान्ध, ममता से आकुल चित्त वाले मनुष्य के सभी पापों को नाश करने वाला एकमात्र हरिनाम ही है। जिस मनुष्य ने मात्र एक बार भी पापहारी विष्णु को प्रणाम नहीं किया, वह तो चाण्डाल है, उससे कदापि वार्त्तालाप न करे।।१-३।।

हरिपूजाविहीनं तु यस्य वेश्म द्विजोत्तम। श्मशानसदृशं तद्धि कदाचिदपि नो विशेत्॥४॥
हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा। गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्त्तिताः॥५॥
यो वा को वापि विप्रेन्द्र विप्रद्वेषपरायणः। समर्चयति गोविन्दं तत्पूजा विफला भवेत्॥६॥
अन्यश्रेयोविनाशार्थं येऽर्चयन्ति जनार्दनम्। सा पूजैव महाभाग पूजकानाशु हन्ति वै॥७॥

हे द्विजोत्तम! जिसका गृह हरिपूजा रहित है, वह गृह श्मशान के समान है। वहां कदापि प्रवेश न करे। जो हरिपूजा रहित तथा वेद से विद्वेष करने वाले हैं, जो गौ तथा ब्राह्मण से द्वेष रखते हैं; वे राक्षस कहलाते हैं। हे विप्रेन्द्र! जो व्यक्ति ब्राह्मणों से द्वेष रखता है और गोविन्द की अर्चना करता है, उसकी समस्त पूजा विफल ही है। जो अन्य की उन्नति के विनाशार्थ जनार्दन की अर्चना करता है, हे महाभाग! वह पूजा उलटे पूजक का ही नाश कर देती है।।४-७।।

हरिपूजाकरो यस्तु यदि पापं समाचरेत्। तमेव विष्णुद्वेष्टारं प्राहुस्तत्त्वार्थकोविदाः॥८॥
ये विष्णुनिरताः सन्ति लोकानुग्रहतत्पराः। धर्मकार्यरताः शश्वद्विष्णुरूपास्तु ते मताः॥९॥

कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्विष्णुभक्तिः प्रजायते।
दृढभक्तिमतां विष्णौ पापबुद्धिः कथं भवेत्॥१०॥

जो हरिपूजारत होकर भी पाप करता है, तत्वज्ञगण उसे हरि का द्वेषी ही कहते हैं। जो विष्णु की सेवा में निरत तथा लोक पर अनुग्रहार्थ तत्पर रहते हैं और धर्मकार्य में लगे रहते हैं, वे तो विष्णुरूप ही हैं। करोड़ों जन्मों के पुण्य से व्यक्ति में विष्णुभक्ति का उदय होता है। जो विष्णु के प्रति भक्तिभावना द्वारा दृढ़ हैं, उनकी पापबुद्धि कैसे हो सकती है?।।८-१०।।

जन्मकोट्यर्जितं पापं विष्णुपूजारतात्मनाम्।
क्षयं याति क्षणादेव तेषां स्यात्पापधीः कथम्॥११॥
विष्णुभक्तिविहीना ये चण्डालाः परिकीर्तिताः।
चण्डाला अपि वै श्रेष्ठाः हरिभक्तिपरायणाः॥१२॥

नराणां विषयान्धानां सर्वदुःखविनाशिनी। हरिसेवेति विख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥१३॥

जो विष्णु पूजन में निरत रहता है, उसके तो करोड़ों जन्मार्जित पातक समूह क्षण में नष्ट हो जाते हैं। तब वह पापबुद्धि कैसे रह सकेगा। जो विष्णुभक्ति से रहित है, उसे चाण्डाल कहा गया है। हरिभक्ति परायण चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो विषयान्ध हैं, उनके लिये हरिसेवा ही सर्वदुःखविनाशिनी है। हरिसेवा भुक्ति-मुक्तिदात्री रूप में प्रख्यात है।।११-१३।।

सङ्गात्स्नेहाद्भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि यो नरः। विष्णोरुपासनं कुर्यात्सोऽक्षयं सुखमश्नुते॥१४॥
हरिपादोदकं यस्तु कणमात्रं पिबेदपि। स स्नातः सर्वतीर्थेषु विष्णोः प्रियतरो भवेत्॥१५॥

संग से, स्नेह-भय-लोभ से अथवा अनजाने में भी जो मनुष्य विष्णु की उपासना करता है, उसे अक्षय सुख की प्राप्ति होती है। जिसने हरि चरणामृत कणमात्र भी पान किया है, उसने तो सभी तीर्थों का स्नान सम्पन्न कर लिया। वह हरि का प्रियतर हो जाता है।।१४-१५।।

अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्। सर्वदुःखोपशमनं हरिपादोदकं स्मृतम्॥१६॥
नारायणं परं धाम ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्।
ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषां मुक्तिर्हि शाश्वती॥१७॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम्॥१८॥

हरिपादोदक अकाल मृत्यु नाशक तथा सर्वव्याधि विनाशक है। यह सभी दुःखों को दूर करने वाला कहा गया है। नारायण ही परम धाम तथा उत्तम ज्योतिरूप हैं। जो उनकी शरण ग्रहण करते हैं, वे शाश्वत मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस सन्दर्भ में मैं एक प्राचीन इहितास कह रहा हूं। जिसे सुनने से तथा पाठ करने से सभी पातकों का नाश हो जाता है।।१६-१८।।

आसीत्पुरा कृतयुगे गुलिको नाम लुब्धकः। परदारपरद्रव्यहरणे सततोद्यतः॥१९॥
परनिन्दापरो नित्यं जन्तूपद्रवकृत्तथा। हतवान्ब्रह्मणान् गाश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥२०॥

सत्ययुग में एक गुलिक नामक व्याध रहता था। वह सदा परद्रव्यहरण और परस्त्रीहरण के लिये उद्यत रहा करता था। वह नित्य परनिन्दा करता तथा प्राणियों को कष्ट देता रहता था। उसने सैकड़ों-हजारों ब्राह्मण एवं गौओं का हनन भी किया था।।१९-२०।।

देवस्य हरणे नित्यं परस्वहरणे तथा। उद्युक्तः सर्वदा विप्र कीनाशानामधीश्वरः॥२१॥
तेन पापान्यनेकानि कृतानि सुमहान्ति च।
न तेषां शक्यते वक्तु संख्या वत्सरकोटिभिः॥२२॥
स कदाचिन्महापापो जन्तूनामन्तकोपमः। सौवीरराज्ञो नगरं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्॥२३॥
योषिद्भिर्भूषिताभिश्च सरोभिर्निर्मलोदकैः।
अलङ्कृतं विपणिभिर्ययौ देवपुरोपमम्॥२४॥

वह देव सम्पदा तथा पराई सम्पदा के हरण में लगा रहता था। हे विप्र! वह यमराज की तरह लगता था तथा इन कर्मों हेतु सदा सन्नद्ध रहा करता था। करोड़ों वर्षों में भी उसके द्वारा कृत पापों की गणना नहीं की जा सकती। एक बार वह सभी प्राणियों के लिये यमस्वरूप परमपातकी व्याध सर्वऐश्वर्य युक्त सौवीरराज की नगरी में पहुंचा। वहां की स्त्रियां आभूषणों से भूषित थी। वहां के सरोवर निर्मल जल से भरे थे। वहां की दुकानें अत्यन्त सजी हुई थीं। वह पुरी देवनगरी जैसी अनुपम लग रही थी।।२१-२४।।

तस्योपवनमध्यस्थं रम्यं केशवमन्दिरम्। छादितं हेमकलशैर्दृष्ट्वा व्याधो मुदं ययौ॥२५॥

हराम्यत्र सुवर्णानि बहूनीति विनिश्चितम्। जगामाभ्यन्तरं तस्य कीनाशश्चौर्यलोलुपः॥२६॥
तत्रापश्यद्द्विजवरं शान्तं तत्त्वार्थकोविदम्। परिचर्यापरं विष्णोरुत्तङ्कं तपसां निधिम्॥२७॥

उस नगर के उपवन के मध्य में भगवान् केशव का एक मन्दिर था। वह स्वर्ण कलश से आच्छादित तथा शोभित था। यह देखकर व्याध मुदित हो गया। उस यमराज ने विचार किया कि "मैं इस स्वर्ण राशि का अवश्य हरण करूंगा।" तदनन्तर वह लोलुपता पूर्वक उस मंदिर में गया। वहां उसने एक द्विजप्रवर को देखा, जो शान्त तथा तत्वार्थज्ञाता थे। वे विष्णु की परिचर्या में लगे तपोनिधि महर्षि उत्तङ्क थे।।२५-२७।।

एकाकिनं दयालुं च निस्पृहं ध्यानलोलुपम्।
चौर्यान्तरायकर्तारं तं दृष्ट्वा लुब्धको मुने॥२८॥
द्रव्यजातं तु देवस्य हर्तुकामोऽतिसाहसी। उत्तङ्कं हन्तुमारेभे विधृतासिर्मदोद्धतः॥२९॥
पादेनाक्रम्य तद्वक्षो जटाः संगृह्य पाणिना।
हन्तुं कृतमतिं व्याधमुत्तङ्कः प्रेक्ष्य चाब्रवीत्॥३०॥

वे ध्यानतत्पर, एकाकी तथा निस्पृह थे। उस व्याध ने मुनि को देखकर उनको अपने चौर्यकार्य में विघ्न दाता तथा बाधा समझा। वह देवद्रव्य हरण करने की इच्छा से युक्त व्याध अतीव साहसी था। उस महोद्धत व्याध ने उत्तङ्क का वध करने की इच्छा से तलवार उठाया। उसने उतङ्क के वक्ष पर पैर रखकर उनकी जटा को हाथों से पकड़ लिया। उस व्याध को अपनी हत्या के लिये उद्यत जानकर ऋषि उत्तङ्क कहने लगे।।२८-३०।।

उत्तङ्क उवाच

भो भो साधो वृथा मां त्वं हनिष्यसि निरागसम्।
मया किमपराधं ते तद्वदस्व महामते॥३१॥
कृतापराधिनां लोके शक्ताः शिक्षां प्रकुर्वते।
नहि सौम्य वृथा घ्नन्ति सज्जना अपि पापिनः॥३२॥
विरोधिष्वपि मूर्खेषु निरीक्ष्यावस्थितान् गुणान्।
विरोधं नहि कुर्वन्ति सज्जनाः शान्तचेतसः॥३३॥
बहुधा बोध्यमानोऽपि यो नरः क्षमयान्वितः। तमुत्तमं नरं प्राहुर्विष्णोः प्रियतरं सदा॥३४॥

ऋषि उत्तङ्क कहते हैं—हे साधु! मुझ निरपराधी का वध व्यर्थ में क्यों कर रहे हो। हे महामति! मेरा अपराध क्या है, वह कहो। इस लोक में समर्थ लोग अपराधी को शिक्षा देने हेतु उसे दण्डित करते हैं। सौम्य लोग तो व्यर्थ में पापी को भी दण्डित नहीं करते! जो सज्जन तथा शान्तिचित्त वाले हैं, वे अपने विरोधी मूर्ख में भी स्थित गुण को देखकर उसका विरोध नहीं करते। जो नाना प्रकार की उत्तेजना में भी क्षमाशील रहता है, वही उत्तम मनुष्य है तथा वह सदा विष्णु का प्रियतर है।।३१-३४।।

सुजनो न याति वैरं परहितबुद्धिर्विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य॥३५॥

अहो विधिः सुबलवान्बाधते बहुधा जनान्।
सर्वसङ्गविहीनोऽपि बाध्यते हि दुरात्मना॥३६॥
अहो निष्कारणं लोके बाधन्ते बहुधा जनान्।
सर्वसङ्गविहीनोऽपि बाध्यते पिशुनैर्जनैः।
तत्रापि साधून्बान्धते न समानान्कदाचन॥३७॥

परहित बुद्धियुक्त सज्जन लोग विनाश काल में भी वैर भावना नहीं रखते। कुठार चन्दन के वृक्ष को काटता है, परन्तु चन्दन काटे जाने पर भी कुठार के अग्रभाग को सुगन्धित कर देता है। अहो! विधि अत्यन्त बली है। यह सज्जनों को भी कष्ट देता है तभी सर्वसंग रहित लोगों को भी दुरात्मा पीड़ित करते रहते हैं। अहो! इस लोक में अकारण अनेक लोगों को कष्ट पहुंचाया जाता है, क्योंकि जो सभी के संग से रहित हैं, उसे भी दुष्ट पीड़ित करते हैं। वे केवल साधुजन को ही सताते हैं। जो उनके ही समान दुष्ट हैं, उनको पीड़ित नहीं करते।।३५-३७।।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥३८॥

अहो बलवती माया मोहयत्यखिलं जगत्। पुत्रमित्रकलत्रार्थं सर्वं दुःखेन योजयेत्॥३९॥
परद्रव्यापहारेण कलत्रं पोषितं त्वया। अन्ते तत्सर्वमुत्सृज्य एक एव प्रयाति वै॥४०॥

तृण पर जीवन व्यतीत करने वाले मृगपशु को व्याध, जल में जीवन व्यतीत करने वाले मत्स्य को मधुआरे, सन्तोष से जीवन व्यतीत करने वाले को चुगलखोर अकारण वैरी बनकर पीड़ित करते हैं। अहो! यह माया कैसी बलवती है, इसने समस्त जगत् को मोहित किया है। इसी के कारण सभी लोग अपने पुत्र-मित्र-स्त्री के लिये सभी प्रकार के दुःखों को भोगते हैं। तुमने पराया धन हरण करके अपनी स्त्री का पोषण किया है, तथापि तुम अन्तकाल में सबको छोड़कर अकेले ही प्रयाण करोगे!।।३८-४०।।

मम माता मम पिता मम भार्या ममात्मजाः। ममेदमिति जन्तूनां ममता बाधते वृथा॥४१॥
यावदर्जयति द्रव्यं बान्धवान्तावदेव हि। धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥४२॥

मेरी माता, मेरे पिता, मेरी स्त्री, मेरे सन्तान! यह व्यर्थ का ममत्व है। यह एक प्रकार से व्यर्थ है। भाई-बन्धु तभी तक हैं,जब तक व्यक्ति धनार्जन करता रहता है। लोक-परलोक दोनों स्थान पर केवल स्वकृत धर्म तथा अधर्म ही सहगामी होता है।।४१-४२।।

धर्माधर्मार्जितैर्द्रव्यैः पोषिता येन ये नराः। मृतमग्निमुखे हुत्वा घृतान्नं भुञ्जते हि ते॥४३॥
गच्छन्तं परलोकं च नरं तु ह्यनुतिष्ठतः। धर्माधर्मो न च धनं न पुत्रा न च बान्धवाः॥४४॥

कामः समृद्धिमायाति नराणां पापकर्मिणाम्।
कामः संक्षयमायाति नराणां पुण्यकर्मणाम्॥४५॥
वृथैव व्याकुला लोका धनादीनां सदार्जने॥४६॥

जिनका पालन व्यक्ति अपनी धर्मतः अथवा अधर्मतः अर्जित सम्पत्ति से करता है, वे सभी उस व्यक्ति के मृत होने पर उसे अग्नि में छोड़कर घृतान्न भक्षण करते हैं। जो मनुष्य परलोक जा रहा है, उसके साथ उसके द्वारा कृत धर्म-अधर्म ही साथ जाते हैं। उसका धन, पुत्र, बन्धु, कोई साथ नहीं जाता। पापकर्मी मनुष्यगण की इच्छा कामना बढ़ती जाती है। पुण्यकर्मा लोगों की कामना का क्षय होता जाता है। लोग व्यर्थ में धनादि का सदा अर्जन करने हेतु व्याकुल रहते हैं!।।४३-४६।।

यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्यं न तद्भवेत्।
इति निश्चितबुद्धीनां न चिन्ता बाधते क्वचित्॥४७॥
दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। तस्माज्जन्म च मृत्युं च दैवं जानाति नापरः॥४८॥
यत्र कुत्र स्थितस्यापि यद्भाव्यं तद्भवेद् ध्रुवम्।
लोकस्तु तत्र विज्ञाय वृथायासं करोति हि॥४९॥

जो होना है, वह होकर रहेगा। जो नहीं होना है, वह प्रयत्न करने पर भी नहीं होगा। ऐसी निश्चित बुद्धि वाले लोगों को कभी भी चिन्ता बाधित नहीं करती। यह स्थवार-जंगमात्मक जगत् दैव के अधीन रहता है। अतः जन्म तथा मृत्यु को केवल दैव ही जान सकता है। अन्य कोई नहीं जान सकता। व्यक्ति चाहे जहां क्यों न रहे, जो होना है तथा जो मिलना है, वह होकर तथा मिलकर रहेगा। यह ध्रुव निश्चित है। लोग इसे जानकर भी वृथा प्रयास करते रहते हैं।।४७-४९।।

अहो दुःखं मनुष्याणां ममताकुलचेतसाम्।
महापापानि कृत्वापि परिपुष्यन्ति यत्नतः॥५०॥
अर्जितं च धनं सर्वं भुञ्जते बान्धवाः सदा। स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते॥५१॥

अहो! ममत्व से आकुलित चित्त वाले प्रभूत दुःख उठाते हैं। यत्नतः वे महापाप से अर्जित धनादि से पोषण करते हैं। समस्त अर्जित धन का भोग बान्धवों द्वारा कर लिया जाता है। लेकिन वह मूढ़ व्यक्ति समस्त पातकों का फल स्वयं भोग करता है।।५०-५१।।

इति ब्रुवाणं तमृषिं विमुच्चय भयविह्वलः।
गुलिकः प्राञ्जलिः प्राह क्षमस्वेति पुनः पुनः॥५२॥
सत्सङ्गस्य प्रभावेण हरिसन्निधिमात्रतः। गतपापो लुब्धकश्च ह्यनुतापीदमब्रवीत्॥५३॥

ऋषि का यह वाक्य सुनकर व्याध गुलिक भयविह्वल सा हो गया। उसने ऋषि को छोड़कर हाथ जोड़े हुये क्षमा प्रार्थना के साथ पुनः-पुनः कहना प्रारंभ किया। सत्संग के प्रभाव से तथा (मन्दिरस्थ) हरि की सन्निधि के कारण वह लुब्धक पाप रहित होकर तथा अनुताप में भरकर कहने लगा।।५२-५३।।

मया कृतानि पापानि महान्ति सुबहूनि च।
तानि सर्वाणि नष्टानि विप्रेन्द्र तव दर्शनात्॥५४॥
अहोऽहं पापधीर्नित्यं महापापमुपाचरम्।
कथं मे निष्कृतिर्भूयो यामि कं शरणं विभो॥५५॥

लुब्धक गुलिक कहता है—हे विप्रेन्द्र! आपके शुभ दर्शनों से मेरे पूर्वकृत महान् पाप जो अनेक थे, सभी नष्ट हो गये। अहो! मैं पापबुद्धि तथा महापाप करने वाला था। मेरा उद्धार कैसे होगा? हे विभु! मैं किसकी शरण ग्रहण करूं?।।५४-५५।।

पूर्वजन्मार्जितैः पापैर्लुब्धकत्वमवाप्तवान्। अत्रापि पापजालानि कृत्वा कां गतिमाप्नुयाम्।।५६।।

अहो ममायुः क्षयमेति शीघ्रं पापान्यनेकनि समर्ज्जितानि।
प्रतिक्रिया नैव कृता मयैषां गतिश्च का स्यान्मम जन्म किं वा।।५७।।
अहो विधिः पापशताकुलं मां किं सृष्टवान्यापतरं च शाश्वत्।
कथं च यत्पापफलं हि भोक्ष्ये कियत्सु जन्मस्वहमुग्रकर्मा।।५८।।

मैंने पूर्व जन्मार्जित पातकों के परिणामस्वरूप यह व्याध का जन्म पाया था। इसमें भी मैंने इतने पातक किये, आगे अब मेरी क्या गति होगी? अहो! मेरी आयु समाप्त होने वाली है, अभी तक मैंने पाप ही पाप अर्जित किये हैं, मैंने इनका प्रायश्चित्त भी नहीं किया! मेरी क्या गति होगी, कैसा जन्म मिलेगा? इस दैव ने मुझ सैकड़ों पातकों से समाकुल व्यक्ति के लिये किस शाश्वत (दीर्घकालीन) पाप योनि का चयन किया है? अपने महापापों के फलस्वरूप मुझ उग्रकर्मा को न जाने कितने जन्मों को लेना पड़ेगा?।।५६-५८।।

एवं विनिन्दन्नात्मानमात्मना लुब्धकस्तदा। अन्तस्तापाग्निसन्तप्तः सद्यः पञ्चत्वमागतः।।५९।।
उत्तङ्कः पतितं प्रेक्ष्य लुब्धकं तं दयापरः। विष्णुपादोदकेनैवमभ्यषिञ्चन्महामतिः।।६०।।
हरिपादोदकस्पर्शाल्लुब्धको गतकल्मषः। दिव्यं विमानमारुह्य मुनिमेतदथाब्रवीत्।।६१।।

इस प्रकार वह स्वयं अपने पातकों के लिये अपनी निन्दा करते हुये अन्तः-तापाग्नि से सन्तप्त होकर सद्यः मृत हो गया। जब उस समय महर्षि उत्तङ्क ने उस व्याध को ऐसे गिरते देखा, तब वे दयार्द्र हो उठे। उन महामति ने विष्णु का चरणोदक व्याध के देह पर छिड़क दिया। हरिपादोदक का स्पर्श होते ही वह व्याध पातक रहित हो गया। वह दिव्य विमानारूढ़ होकर मुनि से कहने लगा।।५९-६१।।

गुलिक उवाच

उत्तङ्क मुनिशार्दूल गुरुस्त्वं मम सुव्रत। विमुक्तस्त्वत्प्रसादेन महापातककञ्चुकात्।।६२।।
गतस्त्वदुपदेशान्मे सन्तापो मुनिपुङ्गव। तथैव सर्वपापानि विनष्टान्यतिवेगतः।।६३।।
हरिपादोदकं यस्मान्मयि त्वं सिक्तवान्मुने। प्रापितोऽस्मि त्वया तस्मात्तद्विष्णोः परमं पदम्।।६४।।

त्वयाहं तारितो विप्र पापादस्माच्छरीरतः।
तस्मान्नतोऽस्मि ते विद्वन्मत्कृतं तत्क्षमस्व च।।६५।।

इत्युक्त्वा देवकुसुमैर्मुनिश्रेष्ठं समाकिरन्। प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा नमस्कारं चकार सः।।६६।।

गुलिक व्याध कहता है—"हे सुव्रत मुनिशार्दूल उत्तङ्क! आप मेरे गुरु हैं। आपकी कृपा से मुझे महापातक रूपी कंचुक से मुक्तिलाभ हुआ है। हे मुनिपुंगव! आपके सत् उपदेश से मेरा सन्ताप नष्ट हो गया तथा सभी पाप अत्यन्त वेग पूर्वक नष्ट हो गये। हे मुनि! आपने विष्णुपादोदक से मेरा सिंचन किया था। इस प्रकार आपने मुझे

विष्णु का परमपद लाभ करा दिया। हे विप्र! आपने इस पापयुक्त शरीर से मेरा उद्धार कर दिया मैं आपके सामने नतशिर हूं। आप मेरे द्वारा कृत अपराध को क्षमा करिये।'' उस समय देवगण उन महर्षि पर पुष्पवर्षा कर रहे थे। गुलिक ने ऐसे उन मुनि की तीन बार प्रदक्षिणा करके उनको नमस्कार किया।।६२-६६।।

ततो विमानमारुह्य सर्वकामसमन्वितम्। अप्सरोगणसङ्कीर्णः प्रपेदे हरिमन्दिरम्॥६७॥

एतद्दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ ह्युत्तंकस्तपसांनिधिः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव कमलापतिम्॥६८॥

तेन स्तुतो महाविष्णुर्दत्तवान्वरमुत्तमम्। वरेण तेनोत्तंकोऽपि प्रपेदे परमं पदम्॥६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।

तदनन्तर वह सर्वकामयुक्त विमान पर बैठा तथा अप्सराओं से घिरा हुआ हरिलोक चला गया। तपोनिधि उत्तङ्क यह दृश्य देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने शिर पर अंजलि बांधकर प्रणाम द्वारा कमलापति को सन्तुष्ट किया। इस स्तुति से महाविष्णु ने प्रसन्न होकर ऋषि को उत्तम वर प्रदान किया। उस वर का यह प्रभाव था कि ऋषि उत्तङ्क को परमपद प्राप्त हो गया।।६७-६९।।

।।३७वां अध्याय समाप्त।।
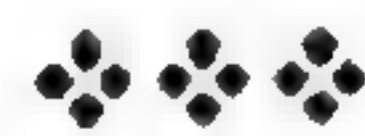
अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः

विष्णु माहात्म्य वर्णन

नारद उवाच

किं तत्स्तोत्रं महाभागं कथं तुष्टो जनार्दनः। उत्तङ्कः पुण्यपुरुषः कीदृशं लब्धवान्वरम्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! वह स्तोत्र कौन है, जिससे जनार्दन सन्तुष्ट हो गये? पुण्यपुरुष उत्तङ्क ने किस प्रकार का वर लाभ किया था?।।१।।

सनक उवाच

उत्तङ्कस्तु तदा विप्रो हरिध्यानपरायणः।
पादोदकस्य माहात्म्यं दृष्ट्वा तुष्टाव भक्तितः॥२॥

देवर्षि सनक कहते हैं—विप्र उत्तङ्क सदैव हरिध्यान-परायण रहा करते थे। उन्होंने पादोदक का माहात्म्य देखकर भक्ति पूर्वक प्रभु का स्तव पाठ किया।।२।।

उत्तङ्क उवाच

नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबन्धुम्।
चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महान्तं स्मृतार्तिनिघ्नं शरणं प्रपद्ये॥३॥

ऋषि उत्तङ्क कहते हैं—हे नारायण! आदिदेव, जगन्निवास, जगत् के एकमात्र बन्धु! मैं आपको प्रणाम करता हूं!। आप चक्र, कमल, शार्ङ्गधनु तथा खड्ग धारण करने वाले, महान्, स्मरण करने से ही आर्त्ति के नाशक हैं। मैं आपकी शरण में हूं।।३।।

यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमुं लोकसमुच्चयं च।
यत्क्रोधजो हन्ति जगच्च रुद्रस्तमादिदेवं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥४॥

जिनकी नाभि से प्रादुर्भूत विधाता समस्त लोकों की सृष्टि करते हैं, जिनके क्रोध से प्रादुर्भूत रुद्र जगत् का संहार करते हैं, उन आदिदेव विष्णु को प्रणाम करता हूं!।।४।।

पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम्।
वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं तेजोनिधिं विष्णुमहं प्रपन्नः॥५॥

पद्मा (लक्ष्मी) पति, पद्मपत्र ऐसे विशाल नेत्रों वाले, विचित्र पराक्रमी, समस्त जगत् के कारणरूप, वेदान्तवेद्य, पुराण पुरुष, तेजनिधि विष्णु की मैं शरण लेता हूं।।५।।

आत्माक्षरः सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदां शरण्यः।
ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसम्मष्टिरूपः॥६॥

आप आत्मा, अक्षर, सर्वग, अच्युत, ज्ञानात्मक, ज्ञानविद् तथा शरण्य हैं। आप ज्ञान से ही जाने जाते हैं, आप अनादि भगवान् हैं। आप व्यष्टि तथा समष्टि रूपी हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।६।।

अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठः।
नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयाम्बुधिर्मे वरदस्तु भूयात्॥७॥

हे देव! आप अनन्त पराक्रम तथा प्रभाव वाले, गुण तथा जाति से रहित, गुणात्मा, ज्ञानियों में वरिष्ठ, नित्य शरणागत की आर्त्ति का हरण करने वाले, परात्मा है। आप दयासागर हैं। मेरे लिये आप वरदाता हो जायें।।७।।

यः स्थूलसूक्ष्मादिविशेषभदेर्जगद्यथावत्स्वकृतं प्रविष्टः।
त्वमेव तत्सर्वमनन्तसारं त्वत्तः परं नास्ति यतः परात्मन॥८॥

आप स्थूल-सूक्ष्मादि विशेष भेद समन्वित जगत् का सृजन करके शीघ्र उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। आप उस सबके अनन्त साररूप हैं। हे परात्मन्! आपसे श्रेष्ठ जगत् में कुछ भी नहीं है।।८।।

अगोचरं यत्तव शुद्धरूपं मायाविहीनं गुणजातिहीनम्।
निरञ्जनं निर्मलमप्रमेयं पश्यन्ति सन्तः गुणजातिहीनम्॥९॥

आपका शुद्ध रूप अगोचर, माया रहित, गुणजाति से विहीन, निरंजन, निर्मल, अप्रमेय है, उस परमार्थ संज्ञक आपको सन्तगण सर्वदा देखते हैं।।९।।

एकेन हेम्नैव विभूषणानि यातानि भेदत्वमुपाधिभेदात्।
तथैव सर्वेश्वर एक एव प्रदृश्यते भिन्न इवाखिलात्मा॥१०॥

स्वर्ण एक ही है, तथापि उससे नाना आभूषणों का निर्माण होता है। उपाधि भेदानुसार उसके अनेक नाम हैं। तदनुरूप सर्वेश्वर प्रभु एक ही हैं, तथापि वे अखिलात्मा भिन्न-भिन्न परिलक्षित होते हैं।।१०।।

यन्मायया मोहितचेतसस्तं पश्यन्ति नात्मानमपि प्रसिद्धम्।
त एव मायारहितास्तदेव पश्यन्ति सर्वात्मकमात्मरूपम्॥११॥

जिनकी माया से सभी मोहित लोग उस विख्यात आत्मा का दर्शन नहीं कर पाते, तथापि जब उनकी कृपा से वे माया रहित हो जाते हैं, तब उनको सर्वात्मक आत्मरूप का साक्षात्कार होने लगता है।।११।।

विभुं ज्योतिरनौपम्यं विष्णुसंज्ञं नमाम्यहम्। समस्तमेतदुद्भूतं यतो यत्र प्रतिष्ठितम्॥१२॥
यतश्चैतन्यमायातं यद्रूपं तस्य वै नमः। अप्रमेयमनाधारमाधाराधेयरूपकम्॥१३॥
परमानन्दचिन्मात्रं वासुदेवं नतोऽस्म्यहम्। हृद्गुहानिलयं देवं योगिभिः परिसेवितम्॥१४॥
योगानामादिभूतं तं नमामि प्रणवस्थितम्। नादात्मकं नादबीजं प्रणवात्मकमव्ययम्॥१५॥
सद्भावं सच्चिदानन्दं तं वन्दे तिग्मचक्रिणम्।
अजरं साक्षिणं त्वस्य ह्यवाङ्मनसगोचरम्॥१६॥

मैं विभु, अनुपम ज्योतिरूप विष्णु को प्रणाम करता हूं!। समस्त संसार उनसे ही उद्भूत होकर उनमें ही स्थित रहता है तथा उससे जिस रूप से चैतन्य की प्राप्त होती है, मैं प्रणाम करता हूं!। वे अप्रमेय, आधार रहित, आधाराधेय, परमानन्द, चिन्मात्र वासुदेव हैं। उनको नमस्कार करता हूं! वे हृदयगुहावासी योगीगण से सेवित हैं। वे योगीगण के आधाररूप तथा प्रणव में विराजमान रहते हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूं!। वे नादात्मक, नादबीज, प्रणवरूप, अव्यय, सद्भाव, तीक्ष्ण चक्रधारी हैं। मैं उन सच्चिदानन्द की वन्दना करता हूं। वे अजर, साक्षी, मन-वाणी से परे हैं।।१२-१६।।

निरञ्जनमनन्ताख्यं विष्णुरूपं नतोऽस्म्यहम्।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः॥१७॥
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च। विद्याविद्यात्मकं प्राहुः परात्परतरं तथा॥१८॥
अनादिनिधनं शान्तं सर्वधातारमच्युतम्। ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषां मुक्तिर्हि शाश्वती॥१९॥

जो निरंजन तथा अनन्त हैं मैं उन विष्णुरूप को प्रणाम करता हूं!। इन्द्रियसमूह, मन, बुद्धि, सत्व, तेज, बल, धृति, क्षेत्र (शरीर), आत्मा—ये सब वासुदेवात्मक ही हैं। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, विद्या-अविद्यात्मक परात्परतर भी वासुदेव ही हैं। वे आदि-अन्त रहित शान्त, सबके आधार, अच्युत हैं। जो महात्मा उनके शरणागत होते हैं, उनकी शाश्वती मुक्ति मिलती है।।१७-१९।।

वरं वरेण्यं वरदं पुराणं सनातन सर्वगतं समस्तम्।
नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयो नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयः॥२०॥

यत्पादतोयं भवरोगवैद्यो यत्पादपांशुर्विमलत्वसिद्ध्यै।
यन्नाम दुश्कर्मनिवारणाय तमप्रमेयं पुरुषं भजामि॥२१॥

सद्रूपं तमसद्रूपं सदसद्रूपमव्ययम्। तत्तद्विलक्षणं श्रेष्ठं श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं भजे॥२२॥
निरञ्जनं निराकारं पूर्णमाकाशमध्यगम्। परं च विद्याविद्याभ्यां हृदम्बुजनिवासिनम्॥२३॥

वर, वरेण्य, वरद, पुराण, सनातन, सर्वव्यापक भगवान् को मेरा प्रणाम! मैं उनको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं!। जिनका चरण जल भवरोग के लिये वैद्यरूप है, जिनके चरणरज से मनुष्य विमल हो जाता है, जिसका नाम दुष्कर्म निवारक है, मैं उन अप्रमेय पुरुष का भजन करता हूं। जो सद्रूप, असद्रूप, अव्यय, सत्-असत् दोनों से विलक्षण हैं, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर हैं, मैं उनका भजन करता हूं। वे निरंजन, निराकार, पूर्ण आकाश के मध्य स्थित हैं। वे विद्या-अविद्या से परे, परम तथा हृदयकमल में विराजमान रहते हैं।।२०-२३।।

स्वप्रकाशमनिर्देश्यं महतां च महत्तरम्। अणोरणीयांसमजं सर्वोपाधिविवर्जितम्॥२४॥
यन्नित्यं परमानन्दं परं ब्रह्म सनातनम्। विष्णुसंज्ञं जगद्धामतमस्मि शरणं गतः॥२५॥

यं भजन्ति क्रियानिष्ठा यं पश्यन्ति च योगिनः।
पूज्यापूज्यतरं शान्तं गतोऽस्मि शरणं प्रभुम्॥२६॥

यं न पश्यन्ति विद्वांसो य एतद्व्याप्य तिष्ठति। सर्वस्मादधिकं नित्यं नतोऽस्मि विभुमव्ययम्॥२७॥

जो स्वप्रकाश, अनिर्देश्य, महत्, महत्तर, अणु से भी अणु, अज, सर्वोपाधि रहित, नित्य परमानन्द, परंब्रह्म सनातन हैं, जो विष्णु नामक परमधाम हैं, मैं उनकी शरण लेता हूं। जिनका भजन क्रियानिष्ठ साधक भक्त ही करते हैं, जिनका साक्षात्कार केवल योगी ही करते हैं, जो पूज्य से भी पूज्यतर शान्त हैं, मैं उन प्रभु की शरण में जाता हूं। जिनको विद्वान् भी नहीं देख पाते जो सब कुछ को व्याप्त करके स्थित हैं, जो सबसे अधिक नित्य हैं, मैं उन अव्यय विभु को प्रणाम करता हूं!।।२४-२७।।

अन्तःकरणसंयोगाज्जीव इत्युच्यते च यः। अविद्याकार्यरहितः परमात्मेति गीयते॥२८॥
सर्वात्मकं सर्वहेतुं सर्वकर्मफलप्रदम्। वरं वरेण्यमजनं प्रणतोऽस्मि परात्परम्॥२९॥

जो अन्तःकरण के संयोग के कारण जीव कहलाते हैं, जिनको अविद्या रूपी कार्य रहित परमात्मा कहा जाता है, मैं उन परमात्मा को जो वर, वरेण्य, अजन (जन रहित) हैं, उन परात्पर को प्रणाम करता हूं!।।२८-२९।।

सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वान्तर्यामिणं हरिम्।
ज्ञानात्मकं ज्ञाननिधिं ज्ञानसंस्थं विभुं भजे॥३०॥

नमाम्यहं वेदनिधिं मुरारिं वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम्।
सूर्येन्दुवत्प्रोज्ज्वलनेत्रमिन्द्रं खगस्वरूपं श्वपतिस्वरूपम्॥३१॥
सर्वेश्वरं सर्वगतं महान्तं वेदात्मकं वेदविदां वरिष्ठम्।
तं वाङ्मनोऽचिन्त्यमनन्तशक्तिं ज्ञानैकवेद्यं पुरुषं भजामि॥३२॥

जो सर्वज्ञ, सर्वगामी, शान्त, सर्वन्तर्यामी हरि हैं, जो ज्ञानात्मक, ज्ञाननिधि, ज्ञानसंस्थ विभु हैं, उनका भजन करना चाहिये। मैं वेदनिधि मुरारी को प्रणाम करता हूं! जो वेदान्त ज्ञान द्वारा निश्चित अर्थरूपेण ज्ञात होते हैं। वे प्रभु सूर्य-चन्द्रात्मक नेत्र वाले, इन्द्र, खगरूप, श्वपतिरूप, सर्वेश्वर, सर्वगत, महान्, वेदरूपी, वेदज्ञातागण में वरिष्ठ हैं। मैं वाणी, मन के द्वारा अचिन्त्य अनन्तशक्ति, ज्ञान से ही जानने योग्य पुरुष का भजन करता हूं।।३०-३२।।

इन्द्राग्निकालासुरपाशिवायुसोमेशमार्तण्डपुरन्दराद्यैः ।
यः पाति लोकान्परिपूर्णभावस्तमप्रमेयं शरणं प्रपद्ये।।३३।।

जो इन्द्र, काल, अग्नि, असुर, वरुण, वायु, सोम, सूर्य, पुरन्दरादि रूप से विश्वरक्षा कार्य करते हैं, मैं उन परिपूर्णभाव परमपुरुष की शरण ग्रहण करता हूं।।३३।।

सहस्रशीर्षं च सहस्रपादं सहस्रबाहुं च सहस्रनेत्रम्।
समस्तयज्ञैः परिजुष्टमाद्यं नतोऽस्मि तुष्टिप्रदमुग्रवीर्यम्।।३४।।
कालात्मकं कालविभागहेतुं गुणत्रयातीतमहं गुणज्ञम्।
गुणप्रियं कामदमस्तसङ्गमतीन्द्रियं विश्वभुजं वितृष्णम्।।३५।।
निरीहमग्र्यं मनसाप्यगम्यं मनोमयं चान्नमयं निरूढम्।
विज्ञानभेदं प्रतिपन्नकल्पं न वाङ्मयं प्राणमयं भजामि।।३६।।

जो सहस्रशीर्षा वाले, सहस्र चरण-बाहु तथा सहस्र नेत्रों वाले, सब यज्ञों में पूज्य, सबके आदि तथा तुष्टि दाता हैं मैं उन परम पराक्रमी कालात्मक, कालविभाग के कारण, गुणत्रयातीत, गुणज्ञ, गुणप्रिय, सभी कामना प्रदाता, असंग, अतीन्द्रिय विश्व के भोक्ता तृष्णाशून्य, निरीहों में श्रेष्ठ, मन से अगम्य, मनोमय, अन्नमय, अतीवरूढ़, विज्ञानभेद, प्रतिपन्नकल्प (आदृत), वाङ्मय, प्राणमय को प्रणाम करता हूं!। उनका भजन करता हूं।।३४-३६।।

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न यस्य कर्माणि न यत्प्रमाणम्।
जानन्ति देवा कमलोद्भवाद्यास्तोष्याम्यहं तं कथमात्मरूपम्।।३७।।

जिनके रूप, बल, प्रभाव, कर्म तथा प्रमाण को कोई नहीं जानता, ब्रह्मा आदि भी यह नहीं जानते, मैं उन आत्मरूप प्रभु की स्तुति कैसे कर सकता हूं?।।३७।।

संसारसिन्धौ पतित कदर्यं मोहाकुलं कामशतेन बद्धम्।
अकीर्तिभाजं पिशुनं कृतघ्नं सदाशुचिं पापरतं प्रमन्युम्।
दयाम्बुधे पाहि भयाकुलं मां पुनः पुनस्त्वां शरणं प्रपद्ये।।३८।।

हे प्रभो! मैं इस संसार-सागर में निमज्जित हूं। मैं कायर, मोहाकुल, सैकड़ों कामना से आबद्ध हूं। मेरे पास कीर्त्ति नहीं है मैं निन्दित हूं, मैं चुगली करने वाला, कृतघ्न, सदा अपवित्र पापी, क्रोधी तथा भयभीत रहता हूं। हे दयानिधि! मुझ भयाकुल की रक्षा करके मुझे शरण में ग्रहण करिये।।३८।।

इति प्रसादितस्तेन दयालुः कमलापतिः। प्रत्यक्षतामगात्तस्य भगवांस्तेजसां निधिः।।३९।।

अतसीपुष्पसंकाशं फुल्लपङ्कजलोचनम्। किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम्॥४०॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम्। नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम्॥४१॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। तुलसीकोमलदलैरचितांघ्रिं महाद्युतिम्॥४२॥
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम्।
दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत्क्षितिमण्डले॥४३॥
अभ्यर्षिचद्धरेः पादावुत्तंको हर्षवारिभिः। मुरारे रक्ष रक्षेति व्याहरन्नान्यधीस्तदा॥४४॥

इस प्रकार दयालु कमलापति उत्तङ्क मुनि के इस स्तुतिगान से प्रसन्न हो गये। वे तेजनिधि भगवान् उनके समक्ष प्रकट हो गये। उनका वर्ण अतसी पुष्प के समान नील था, उनके नेत्र विकसित कमल के समान थे। उन्होंने किरीट, कुण्डल धारण किया था तथा वे हार केयूर से भूषित थे। वे प्रभु श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणिधारी थे तथा स्वर्णयज्ञोपवीत उन्होंने धारण किया था। उनके नाक में पहनी मोती की आभा से उनके शरीर की छवि वर्द्धित हो रही थी। वे देव पीताम्बरधारी थे। वे वनमाला से विभूषित थे। उनके चरणद्वय तुलसी के कोमलदल से वन्दित थे। भगवान् गरुड़ध्वज किंकिणी, नूपुर आदि से अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। उन महाद्युति प्रभु को देखकर उन विप्रेन्द्र उत्तङ्क ने उनको पृथिवी पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया तथा अपने नेत्रों से बह रहे हर्षाश्रु से उनके चरणों को प्रक्षालित किया। साथ ही उन्होंने अनन्यता पूर्वक यह कहा—"हे मुरारी! मेरी रक्षा करिये।"।।३९-४४।।

तमुत्थाप्य महाविष्णुरालिलिङ्ग दयापरः। वरं वृणुष्व वत्सेति प्रोवाच मुनिपुङ्गवम्॥४५॥
असाध्यं नास्ति किञ्चित्ते प्रसन्ने मयि सत्तम। इतीरितं समाकर्ण्य ह्युत्तङ्कश्चक्रपाणिना।
पुनः प्रणम्य तं प्राह देवदेवं जनार्द्दनम्॥४६॥

दया करने वाले महाविष्णु ने उस समय उत्तङ्क मुनि को उठाकर उनका आलिङ्गन किया। तदनन्तर श्री भगवान् ने उन मुनिपुंगव से कहा—"हे वत्स! वर मांगो! हे सत्तम! मेरे प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता।" भगवान् चक्रपाणी का वचन सुनकर मुनि उत्तङ्क ने प्रभु को पुनः प्रणाम किया तथा देवदेव जनार्दन से कहने लगे।।४५-४६।।

किं मां मोहयसीश त्वं किमन्यैर्देव मे वरैः।
त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मन्मान्तरेष्वपि॥४७॥
कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्षःपिशाचमुजेष्वपि यत्र यत्र।
जातस्य मे भवतु केशव ते प्रसादात्त्वय्येव भक्तिरचलाव्यभिचारिणी च॥४८॥

ऋषि उत्तङ्क कहते हैं—हे ईश! आप वर देने की बात कहकर मुझे क्यों मोहयुक्त कर रहे हैं? जन्मजन्मान्तर में आपके प्रति मेरी दृढ़भक्ति बनी रहे। हे केशव! चाहे मैं कीट, पक्षी, मृग, सर्प, राक्षस, पिशाच, मनुष्य कहीं भी जन्म लूं, आपकी कृपा से सर्वत्र आपके प्रति मेरी अचला अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहे।"।।४७-४८।।

एवमस्तित्वति लोकेशः शङ्खप्रान्तेन संस्पृशन्। दिव्यज्ञानं ददौ तस्मै योगिनामपि दुर्लभम्॥४९॥

पुनः स्तुवन्तं विप्रेन्द्रं देवदेवो जनार्दनः।
इदमाह स्मितमुखो हस्तं तच्छिरसि न्यसन्॥५०॥

यह सुनकर लोकेश प्रभु ने अपने शंख का स्पर्श उत्तङ्क को कराकर उनको योगीगण के लिये भी दुर्लभ दिव्यज्ञान दे दिया। इसके पश्चात् उन विप्रेन्द्र ने देवदेव जनार्दन की पुनः स्तुति किया। तब भगवान् ने अपने करकमल मुनि के शिर पर फिरा कर स्मित हास्य के साथ कहा—।।४९-५०।।

श्रीभगवानुवाच

आराधाय क्रियायोगैर्यां सदाद्विजसत्तम। नरनारायणस्थानं व्रज मोक्षं गमिष्यसि॥५१॥
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं यः पठेत्सततं नरः।
सर्वान्कामानवाप्यान्ते मोक्षभागी भवेत्ततः॥५२॥

श्री भगवान् कहते हैं—"हे द्विजसत्तम! तुम क्रियायोग द्वारा नरनारायण स्थान में मेरी सदा आराधना करो। इससे तुमको मोक्षलाभ होगा। तुम्हारे द्वारा कृत इस स्तोत्र का पाठ जो मनुष्य करेगा, वह अपनी समस्त वांछित कामनाओं को प्राप्त करके मोक्षभागी होगा।"।।५१-५२।।

इत्युक्त्वा माधवो विप्रं तत्रैवान्तर्दधे मुने। नरनारायणस्थानमुत्तङ्कोऽपि ततो ययौ॥५३॥
तस्माद्भक्तिः सदा कार्या देवदेवस्य चक्रिणः।
हरिभक्तिः परा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा॥५४॥

हे मुनिवर! यह कहकर भगवान् माधव उन ब्राह्मण के समक्ष अन्तर्हित् हो गये। तत्पश्चात् उत्तङ्क मुनि ने नरनारायण स्थान की ओर प्रस्थान किया। अतएव सदा देवदेव चक्रधारी विष्णु की भक्ति करनी चाहिये। हरिभक्ति अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सर्वकामफलप्रदा है।।५३-५४।।

उत्तङ्को भक्तिभावेन क्रियायोगपरो मुने। पूजयन्माधवं नित्यं नरनारायणाश्रमे॥५५॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः संच्छिन्नद्वैतसंशयः। आवाप दुरवापं वै तद्विष्णोः परमं पदम्॥५६॥

हे मुनि! तब से उत्तङ्क भी भक्तिभाव के साथ क्रियायोग परायण हो गये। वे नरनारायण आश्रम में नित्य माधव पूजन करते थे। वे इससे ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न हो गया। उनका द्वैत संशय उच्छिन्न हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने विष्णु के परमपद का लाभ किया।।५५-५६।।

पूजितो नमितो वापि संस्मृतो वापि मोक्षदः।
नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्द्धनः॥५७॥
तस्मान्नारायणं देवमनन्तमपराजितम्। इहामुत्र सुखप्रेप्सुः पूजयेद्भक्तिसंयुतः॥५८॥
यः पठेदिदमाख्यानं शृणुयाद्वा समाहितः। सोऽपि सर्वाघनिर्मुक्तः प्रायाति भवनं हरे॥५९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्यं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

भक्तों के मान का वर्द्धन करने वाले नारायण जगन्नाथ का पूजन, नमस्कार, स्मरण करना मोक्षप्रद है। ये नारायण देव अनन्त तथा अपराजेय हैं। इहलोक तथा परलोक में सुख चाहने वाला इनकी पूजा भक्तियुक्त होकर करे। जो इस आख्यान को समाहित होकर पढ़ता किंवा सुनता है, वह सर्वपाप रहित होकर हरिलोक गमन करता है।।५७-५९।।

।।३८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णु माहात्म्य वर्णन

सनक उवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र माहात्म्यं परमेष्ठिनः। सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्॥१॥
अहो हरिकथालोके पापघ्नी पुण्यदायिनी। शृण्वतां वदतां चैव तद्भक्तानां विशेषतः॥२॥
हरिभक्तिरसास्वादमुदिता ये नरोत्तमाः। नमस्कारोम्यहं तेभ्यो यत्सङ्गान्मुक्तिभाङ्नरः॥३॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! अब पुनः परमेष्ठी के माहात्म्य का श्रवण करिये। मनुष्यों हेतु यह महापुण्यप्रद-सर्वपापहर तथा भुक्तिमुक्तिप्रद है। अहो! लोक में हरिकथा पापनाशिनी तथा पुण्यदायिनी है। इसके श्रवण तथा पाठ जो भक्त करते हैं, वे विशेष फललाभ करते हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य हरिभक्ति रसास्वाद से मुदित हो जाते हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! उन भक्तों के संगमात्र द्वारा व्यक्ति मुक्तिभागी हो जाता हैं।।१-३।।

हरिभक्तिपरा ये तु हरिनामपरायणाः। दुर्वृत्ता वा सुवृत्ता वा तेभ्यो नित्यं नमो नमः॥४॥
संसारसागरं तर्तुं य इच्छेन्मुनिपुङ्गवं। स भजेद्धरिभक्तानां भक्तान्वै पापहारिणः॥५॥
दृष्टः स्मृतः पूजितो वा ध्यातः प्रणमितोऽपि वा।
समुद्धरति गोविन्दो दुस्तराद्भवसागरात्॥६॥
स्वपन्भुञ्जन् व्रजंस्तिष्ठन्नतिष्ठंश्च वदंस्तथा। चिन्तयेद्यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः॥७॥

जो मनुष्य हरिभक्ति निरत तथा हरिनामपरायण हैं, भले ही वे दुष्कर्मा किंवा सुकर्मा क्यों न हो, उनको मैं प्रणाम करता हूं! हे मुनिपुंगव! जो संसार-सागर से पार जाने की इच्छा रखता हो, वह हरिभक्तों की अर्चना करे। वे भक्त पापों का हरण करने वाले होते हैं। गोविन्द का दर्शन, स्मरण, पूजन, ध्यान, प्रणाम इस दुस्तर भव सागर के पार उतार देता है। जो स्वप्नावस्था में, भोजन करते समय, चलते समय, बैठे हुये, वार्त्तालाप के समय अर्थात् प्रत्येक अवस्था में हरिनाम चिन्तन करते हैं, मेरा उनको नित्य नमस्कार है।।४-७।।

अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुभक्तिरतात्मनाम्।
येषां मुक्तिः करस्थैव योगिनामपि दुर्लभा॥८॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। वदतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम्॥९॥
आसीत्पुरा महीपालः सोमवंशसमुद्भवः। जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः॥१०॥
विष्णोर्देवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः। दीपदानरतश्चैव सर्वभूतदयापरः॥११॥

अहो! जो विष्णुभक्ति तत्पर हैं, उनका भाग्य महान् है। वे ही यथार्थ भाग्यशाली हैं। योगीगण के लिये भी दुर्लभ मुक्ति मानो उनके हाथों पर रखी हैं! मैं इस प्रसंग में एक प्राचीन इतिहास का उल्लेख करता हूं। इसे सुनने से तथा पाठ करने से सभी पातकों का नाश हो जाता है। प्राचीनकाल में सोमवंश में उत्पन्न जयध्वज नामक राजा प्रसिद्ध थे। वे नारायण-परायण थे। वे नित्य विष्णुमन्दिर का सम्मार्जन, दीपदान करते थे। वे सभी प्राणियों के प्रति दयालु भी थे।।८-११।।

स कदाचिन्महीपालो रेवातीरे मनोरमे। विचित्रकुसुमोपेतं कृतवान्विष्णुमन्दिरम्॥१२॥
स तत्र नृपशार्दूलः तदा सम्मार्जने रतः। दीपदानपरश्चैव विशेषेण हरिप्रियः॥१३॥
हरिनामपरो नित्यं हरिसंसक्तमानसः। हरिप्रणामनिरतो हरिभक्तजनप्रियः॥१४॥
वीतिहोत्र इति ख्यातो ह्यसीत्तस्य पुरोहितः।
जयध्वजस्य चरितं दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥१५॥
कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम्। अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तु वेदवेदाङ्गपारगः॥१६॥

उन राजा ने मनोरम रेवातट पर विचित्र पुष्पों से शोभित स्थल पर एक विष्णुमन्दिर निर्मित कराया। वे नृपशार्दूल उसका सम्मार्जन करते रहते थे। वे हरिप्रिय राजा वहां विशेषतया दीपदान भी करते थे। वे राजा हरिनाम स्मरण में रत, नित्य हरि के प्रति समर्पित मन वाले, हरि को प्रणाम करने वाले तथा हरिभक्तों को प्रिय थे। उनके पुरोहित वीतिहोत्र नाम से प्रसिद्ध थे। वे राजा जयध्वज का ऐसा चरित देखकर विस्मयापन्न हो गये। उन विष्णु सेवा तत्पर राजा से एक बार उन वेदवेदांग-पारंगत वीतिहोत्र ने प्रश्न किया।।१२-१६।।

वीतिहोत्र उवाच

राजन्परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण। विष्णुभक्तिमतां पुंसां श्रेष्ठोऽसि भरतर्षभ॥१७॥
सम्मार्जनपरो नित्यं दीपदानरतस्तथा। तन्मे वद महाभाग किं त्वया विदितं फलम्॥१८॥
सम्पादेन वर्त्तीनां तैलसम्पादनेन च। संयुक्तोऽसि सदा भद्र यद्विष्णोर्गृहमार्जने॥१९॥

वीतिहोत्र कहते हैं—हे राजन्! आप परमधर्म के ज्ञाता तथा हरिभक्ति परायण हैं। हे भरतर्षभ! आप विष्णु के भक्तों में प्रधान हैं। आप नित्य विष्णुमन्दिर को स्वच्छ करते तथा वहां दीपदान करते हैं। इसका क्या फल है, यह कहिये। आप सदा दीपकों की बत्ती बनाने तथा दीपकों में तैल भरने में लगे रहते हैं। हे भद्र! आप सदा विष्णुमन्दिर का मार्जन कार्य करते रहते हैं!।।१७-१९।।

कर्माण्यन्यानि संत्येव विष्णोः प्रीतिकराणि च।
तथापि किं महाभाग एतयोः सततोद्यतः॥२०॥
सर्वात्मना महापुण्य नरेश विदितं च यत्। तद् ब्रूहि मे गुह्यतमं प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत्॥२१॥

पुरोधसैवमुक्तस्तु प्रहसन्स जयध्वजः। विनयावनतो भूत्वा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः॥२२॥

"विष्णु को प्रसन्न करने के अन्य अनेक उपचार हैं, हे महाभाग! इस पर भी आप सदा उपरोक्त कार्य ही करते रहते हैं। हे नरेश! आपको इन सर्वात्मा प्रभु की महापुण्य सेवा का जो गुह्यतम तत्त्व विदित हो, वह मुझसे कहिये। यदि आपका मेरे प्रति तनिक भी प्रेम है, तब यह रहस्य प्रकट करें।" पुरोहित का यह कथन सुनकर राजा जयध्वज हंसने लगे। तदनन्तर उन्होंने विनयान्वित होकर हाथ जोड़कर यह वाक्य कहा—।।२०-२२।।

जयध्वज उवाच

श्रृणुष्व विप्रशार्दूल मयैवाचरितं पुरा। जातिस्मरत्वाज्जानामि श्रोतॄणां विस्मयप्रदम्॥२३॥
आसीत्पुरा कृतयुगे ब्रह्मन्स्वारोचिषेऽन्तरे। रैवतो नाम विप्रेन्द्रो वेदवेदाङ्गपारगः॥२४॥
अयाज्ययाजकश्चैव सदैव ग्रामयाजकः। पिशुनो निष्ठुरश्चैव ह्यपण्यानां च विक्रयी॥२५॥
निषिद्धकर्माचरणात्परित्यक्तः स बन्धुभिः।
दरिद्रो दुःखितश्चैव शीर्णाङ्गो व्याधितोऽभवत्॥२६॥

राजा जयध्वज कहते हैं—हे विप्रशार्दूल! प्राचीनकाल में मेरे द्वारा जो कुछ किया गया था वह कहता हूं। मुझे जातिस्मरत्व प्राप्त है। इस कारण मेरे पूर्वजन्म का प्रसंग आप सुनें जो सुनने वालों के लिये विस्मयदायक है। हे ब्रह्मन्! पूर्वकृतयुग में स्वारोचिष मन्वन्तर के अधिकार काल में वेद-वेदान्तज्ञ दैवत नामक ब्राह्मण सदा ग्रामयाजक, अपात्रों को यज्ञ कराने वाला, चुगलखोर, निष्ठुर तथा वर्जित वस्तुओं का विक्रेता था। अपने निषिद्ध कर्मों के कारण वह बन्धुजन द्वारा त्यक्त हो गया। वह इस कारण दरिद्र, दुःखी, सूखे शरीर वाला तथा रोगी हो गया।।२३-२६।।

स कदाचिद्धनार्थं तु पृथिव्यां पर्यटन् द्विजः। ममार नर्मदातीरे श्वासकासप्रपीडितः॥२७॥
तस्मिन्मृते तस्य भार्या नाम्ना बन्धुमती मुने।
कामचारपरा सा तु परित्यक्ता च बन्धुभिः॥२८॥
तस्यां जातोऽस्मि चण्डालो दण्डकेतुरिति श्रुतः।
महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषपरायणः॥२९॥
परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुहिंसकः। गावश्च विप्रा बहवो निहता मृगपक्षिणः॥३०॥

हे द्विज! इसी समय वह कभी धन लाभार्थ पृथिवी पर्यटन करता तथा श्वास एवं खांसी रोग से पीड़ित स्थिति में नर्मदा तट तक पहुंच गया। वहीं उसका निधन भी हो गया। हे मुनिवर! इस द्विज के निधनोपरान्त उसकी भार्या बन्धुमती स्वेच्छाचारिणी हो गई, अतः बन्धुगण ने उसका त्याग कर दिया। उस बन्धुमती के गर्भ से मैंने चाण्डाल के यहां जन्म लिया। मेरा नाम दण्डकेतु था। मैं चाण्डाल होने के कारण ब्रह्मद्वेषी तथा महापापरत रहता था। सदा पराई स्त्री एवं पराया द्रव्य हरण करने में लगा रहता था। मैं जन्तु हिंसा करता था। मैंने अनेक गौ, विप्र, पशु-पक्षियों का वध किया था।।२७-३०।।

मेरुतुल्यसुवर्णानि बहून्यपहृतानि च। मद्यपानरतो नित्यं बहुशो मार्गरोधकृत्॥३१॥

पशुपक्षिमृगादीनां जन्तूनामन्तकोपमः। कदाचित्कामसंतप्तो गन्तुकामो रतिंस्त्रियः॥३२॥

शून्यं विष्णुगृहं दृष्ट्वा प्रविष्टश्च स्त्रिया सह।
निशि रामोपभोगार्थं शयितं तत्र कामिना॥३३॥

ब्रह्मन्स्ववस्त्रप्रान्तेन कियद्देशः प्रमार्जितः।
यावन्त्यः पांशुकणिकास्तत्र सम्मार्जिता द्विज॥३४॥

तावज्जन्मकृतं पापं तदैव क्षयमागतम्। प्रदीपः स्थापितस्तत्र सुरतार्थं द्विजोत्तम॥३५॥
तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम्। एवं स्थिते विष्णुगृहे ह्यागताः पुरपालकाः॥३६॥

जारोऽयमिति मां तां च हतवन्तः प्रसह्य वै।
आवां निहत्य ते सर्वे निवृत्ताः पुररक्षकाः॥३७॥

मैंने प्रभूत स्वर्ण का अपहरण भी किया था। मैं सदा मद्यपान करता तथा पथिकों को बाधा प्रदान करता था। मैं पशु-पक्षी-मृगादि पशुओं के लिये कालस्वरूप था। एक दिन मैं कामेच्छा के वेग के कारण एक रतिप्रिय नारी के पास गया। मैं रात में निर्जन विष्णुमन्दिर को देखकर उस नारी के साथ उस मंदिर में गया तथा वहीं उस नारी से समागम करने के उपरान्त वहीं निद्रित हो गया। हे ब्रह्मन्! शयनार्थ मैंने अपने उत्तरीय से वहां की कुछ भूमि को स्वच्छ किया था। मार्जन काल में उतनी भूमि से जितने धूलिकण को मैंने हटाया था, उतने जन्मों के मेरे पातक तत्काल नष्ट हो गये। हे द्विजप्रवर! नारीसमागमार्थ मैंने वहां जो दीपक जलाया था, उससे मेरे बचे-खुचे पातकों का भी नाश हो गया! मैं अभी उसी विष्णु मन्दिर में था, इतने में वहां नगर-रक्षक पहुंच गये! उन्होंने मुझे उस स्त्री का जार समझा तथा हम दोनों का तत्कालवध कर दिया। जब हम दोनों का वध करके पुररक्षक चले गये।।३१-३७।।

यदा तदैव संप्राप्ता विष्णुदूताश्चतुर्भुजाः। किरीटकुण्डलधरा वनमालाविभूषिताः॥३८॥
तैस्तु सम्प्रेरितावावां विष्णुदूतैरकल्मषैः। दिव्यं विमानमारुह्य सर्वभोगसमन्वितम्॥३९॥
दिव्यदेहधरौ भूत्वा विष्णुलोकमुपागतौ। तत्र स्थित्वा ब्रह्मकल्पशतं साग्रं द्विजोत्तम॥४०॥

उसी समय वहां पर चतुर्भुज विष्णुदूतों का आगमन हुआ। वे किरीट-कुण्डलधारी तथा वनमाला से भूषित थे। उन निष्पाप विष्णुदूतगण ने हमें दिव्य तथा सर्वभोग समन्वित विमान पर बैठाया। उसमें हम दिव्यदेहधारी होकर विष्णुलोक गये। विष्णुलोक में हे द्विजोत्तम! हमने सौ ब्रह्मकल्प पर्यन्त निवास किया।।३८-४०।।

दिव्यभोगसमायुक्तौ तावत्कालं दिवि स्थितौ।
ततश्च भूमिभागेषु देवयोगेषु वै क्रमात्॥४१॥

तेन पुण्यप्रभावेण यदूनां वंशसम्भवः। तेनैव मेऽच्युता संपत्तथा राज्यमकंटकम्॥४२॥

ब्रह्मन्कृत्वोपभोगार्थमेव श्रेयो ह्यवाप्तवान्।
भक्त्या कुर्वन्ति ये संतस्तेषां पुण्यं न वेद्म्यहम्॥४३॥

हमने वहां उतने काल तक दिव्यभोग समन्वित होकर निवास करने के अनन्तर अन्य देवोपम लोकों में सुख भोगने के अनन्तर पूर्वपुण्य के प्रभाव से यदुवंश में जन्म लिया। हे ब्रह्मन्! मुझे यह अथाह सम्पदा तथा निष्कंटक राज्य मिला है। यह सब भोगपदार्थ तथा श्रेयः मैंने उसी पुण्यप्रभाव से लाभ किया है। (मैंने तो अभक्ति पूर्वक वह कार्य किया था) जो लोग भक्तिभाव से यह कार्य करते हैं, उनके पुण्य का वर्णन मैं नहीं कर सकता।।४१-४३।।

तस्मात्संमार्जने नित्यं दीपदाने च सत्तम।
यतिष्ये परया भक्त्या ह्यहं जातिस्मरो यतः॥४४॥

हे सत्तम! इसी कारण मैं नित्य विष्णुमन्दिर में सम्मार्जन तथा दीपदान करता हूं। मैं यह कार्य परमाभक्ति के साथ करता हूं। इसका कारण यह है कि मुझे समस्त पूर्वजन्म का वृत्तान्त अवगत है।।४४।।

यः पूजयेज्जगन्नाथमेकाकी विगतस्पृहः। सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥४५॥

अवशेनापि यत्कर्म कृत्वेमां श्रियमागतः।
भक्तिमद्भिः प्रशांतैश्च किं पुनः सम्यगर्चनात्॥४६॥

"जो एकाग्रभाव से स्पृहा रहित होकर जगन्नाथ की अर्चना करते हैं, वे सर्वपाप-विनिर्मुक्त होकर परमपद प्राप्त करते हैं। जब (मेरे समान) अनजाने में जिस कर्म को करने से श्रेयलाभ होता है, तब जो शान्तचित्त होकर भक्ति पूर्वक सम्यक्तः अर्चना करते हैं, उनकी तो बात ही क्या!"।।४५-४६।।

इति भूपवचः श्रुत्वा वीतिहोत्रो द्विजोत्तमः। अनन्ततुष्टिमापन्नो हरिपूजापरोऽभवत्॥४७॥

तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र देवो नारायणोऽव्ययः।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः॥४८॥
अनित्या बान्धवाः सर्वे विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥४९॥
अज्ञो लोको वृथा गर्वं करिष्यति महोद्धतः।
कायः सन्निहितापायो धनादीनां किमुच्यते॥५०॥

राजा का यह कथन सुनकर द्विजोत्तम वीतिहोत्र को अनन्त सन्तोष प्राप्त हुआ। वे हरिपूजा परायण हो गये। हे विप्रेन्द्र! सुनिये! ये देव अव्यय नारायण ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः पूजा करने वाले को मुक्ति देते हैं। बन्धुजन अनित्य हैं। समस्त वैभव शाश्वत नहीं है। मृत्यु नित्य सन्निहित है। अतः धर्मसंग्रह ही एकमात्र कर्त्तव्य होना चाहिये। अज्ञलोग महोद्धत बुद्धि से वृथा गर्व करते हैं। यह काया ही मृत्युयुक्त है। तब धनादि के सम्बन्ध में क्या कहा जाये।।४७-५०।।

जन्मकोटिसहस्रेषु पुण्यं यैः समुपार्जितम्। तेषां भक्तिर्भवेच्छुद्धा देवदेवे जनार्दने॥५१॥

सुलभं जाह्नवीस्नानं तथैवातिथिपूजनम्।
सुलभाः सर्वयज्ञाश्च विष्णुभक्तिः सुदुर्लभा॥५२॥

दुर्लभा तुलसीसेवा दुर्लभः सङ्गमः सताम्।
सर्वभूतदया वापि सुलभा यस्य कस्यचित्॥५३॥
सत्सङ्गस्तुलसीसेवा हरिभक्तिश्च दुर्लभा। दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं न तथा गमयेद् बुधः॥५४॥
अर्चयेद्धि जगन्नाथं सारमेतद्द्विजोत्तम॥५५॥

करोड़ों जन्मों में जो पुण्यार्जन किया जाता है, उसी के फलस्वरूप देवाधिदेव जनार्दन के प्रति शुद्धा भक्ति उदित होती है। जाह्नवी में स्नान सुलभ है, अतिथि पूजा, सभी यज्ञ भी सुलभ है, लेकिन हरिभक्ति अतीव दुर्लभा है। तुलसी सेवा, सज्जन संग ये दोनों दुर्लभ हैं। सर्वभूतदया भावना प्रत्येक व्यक्ति हेतु सुलभ नहीं है। इस कारण दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर बुद्धिमान् व्यक्ति इसे व्यर्थ में व्यतीत न करे। हे द्विजोत्तम! इस मनुष्य जन्म का सार है जगन्नाथ की अर्चना करना।।५१-५५।।

तर्त्तुं यदीच्छति जनो दुस्तरं भवसागरम्। हरिभक्तिपरो भूयादेतदेव रसायनम्॥५६॥
भ्रातराश्रय गोविन्दं मां विलम्बं कुरु प्रिय। आसन्नमेव नगरं कृतान्तस्य हि दृश्यते॥५७॥
नारायणं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम्। समर्चयस्व विप्रेन्द्र यदि मुक्तिमभीप्ससि॥५८॥
सर्वाधारं सर्वयोनिं सर्वान्तर्यामिणं विभुम्।
ये प्रपन्ना महात्मानस्ते कृतार्था न संशयः॥५९॥

जो व्यक्ति दुस्तर भवसागर से पार जाना चाहता है, वह हरिभक्ति परायण हो जाये। उसके लिये यह एकमात्र रसायन है। हे भ्राता नारद! हे प्रिय! गोविन्द का शीघ्र आश्रय ग्रहण करो। इसमें विलम्ब न हो। यह यमलोक सामने परिलक्षित हो रहा है। जगद्योनि नारायण सर्वकारणों के कारण हैं। हे विप्रेन्द्र! यदि मुक्ति चाहिये तब उनकी अर्चना करो। वे विभु सर्वाधार, सर्वयोनि, सबके अन्तर्यामी हैं। जो महात्मा उनके शरणागत हो जाते हैं, वे ही कृतार्थ हैं। इसमें संशय नहीं है।।५६-५९।।

ते वन्द्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्कार्या विशेषतः।
येऽर्चयन्ति महाविष्णुं प्रणतार्तिप्रणाशनम्॥६०॥
ये विष्णुभक्ता निष्कामा यजन्ति परमेश्वरम्।
त्रिःसप्तकुलसम्मुक्तास्ते यान्ति हरिमन्दिरम्॥६१॥
विष्णुभक्ताय यो दद्यान्निष्कामाय महात्मने।
पानीयं वा फलं वापि स एव भगवत्प्रियः॥६२॥
विष्णुभक्तिपरायणां तु शुश्रूषां कुर्वते तु ये।
ते यान्ति विष्णुभुवनं यावदाभूतसम्प्लवम्॥६३॥

वे भक्त सबके वन्दनीय, पूज्य तथा प्रणम्य हैं, क्योंकि वे प्रणतजन की आर्ति के नाशक महाविष्णु की अर्चना करते हैं। जो निष्काम विष्णुभक्त उन परमेश्वर की अर्चना करते हैं, वे अपनी इक्कीस पीढ़ी को मुक्त करके हरिलोक प्रस्थान करते हैं। जो निष्काम महात्मा लोग विष्णुभक्त को पानीय अथवा फलादि आहार देते हैं, वे

भगवान् के प्रिय हो जाते हैं। जो विष्णुभक्ति परायण व्यक्ति की सेवा-सुश्रुषा करते हैं, वे प्रलयकाल पर्यन्त विष्णुलोक में रहते हैं।।६०-६३।।

ये यजन्ति स्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा।
त एव भुवनं सर्वं पुनन्ति स्वांघ्रिपांशुना।।६४।।
देवपूजापरो यस्य गृहे वसति सर्वदा। तत्रैव सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति श्रीहरिस्तथा।।६५।।

जो व्यक्ति स्पृहा रहित होकर (स्पृहा=लालच कामना) हरिभक्तों तथा श्रीहरि की सेवा करते हैं, यह भुवन उनकी चरणधूलि से पावन हो जाता है। जिस गृह में देवपूजक निवास करता है, वहां सभी देवता तथा श्रीहरि निवास करते हैं।।६४-६५।।

पूज्यमाना च तुलसी यस्य तिष्ठति वेश्मनि। तत्र सर्वाणि श्रेयांसि वर्द्धंत्यहरहर्द्विज।।६६।।
शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः। न बाधन्ते ग्रहास्तत्र भूतवेतालकादयः।।६७।।
शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्तपोवनम्। यतः सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः।।६८।।
यद्गृहे नास्ति देवर्षे शालग्रामशिलार्चनम्।
श्मशानसदृशं विद्यात्तद् गृहं शुभवर्जितम्।।६९।।

हे द्विज! जिस गृह में तुलसी पूजित होकर रहती है, वहां समस्त श्रेयः स्थित रहते हैं, वहां अहरह वृद्धि होती है। जहां शालग्राम शिलारूपी केशव की स्थिति है, वहां ग्रह, भूत, वेतालादि की बाधा नहीं सताती। जहां शालग्राम शिला है, वह घर तो तपोवन है। वहां भगवान् मधुसूदन सदा सन्निहित रहते हैं। हे देवर्षि! जिस गृह में शालग्राम शिलार्चन नहीं होता, वह गृह समस्त शुभवर्जित तथा श्मशानवत् है।।६६-६९।।

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि च द्विज।
साङ्गा वेदास्तथा सर्वे विष्णोरूपं प्रकीर्तितम्।।७०।।
भक्त्या कुर्वन्ति ये विष्णोः प्रदक्षिणचतुष्टयम्।
तेऽपि यान्ति परं स्थानं सर्वकर्मनिबर्हणम्।।७१।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्यं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।
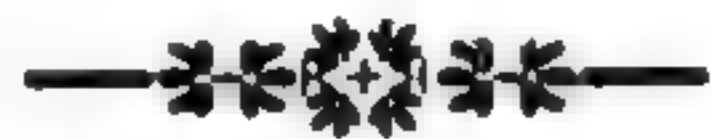
हे द्विज! पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, अंगों सहित सभी वेद यह सब विष्णुरूप है। जो विष्णु की चार प्रदक्षिणा भक्तिभाव से करते हैं, वे सर्वकर्म से छुटकारा दिलाने वाले परमस्थान को प्राप्त करते हैं।।७०-७१।।

।।३९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णु माहात्म्य वर्णन

सनक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विभूतिं वैष्णवीं मुने।
यां शृण्वतां कीर्तयतां सद्यः पापक्षयो भवेत्॥१॥

वैवस्ततेऽन्तरे पूर्वं शक्रस्य च बृहस्पतेः। संवादः सुमहानासीत्तं वक्ष्यामि निशामय॥२॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिवर! तदनन्तर मैं वैष्णवी विभूति प्रसंग को कहता हूं, जिसके पठन किंवा श्रवण द्वारा समस्त पाप क्षयीभूत हो जाते हैं। मैं अब वह प्रंसग कह रहा हूं, जो वैवस्वत मन्वन्तर इन्द्र तथा बृहस्पति के बीच का वार्त्तालाप है। मैं उसे यथावत् कहता हूं।।१-२।।

एकदा सर्वभोगाढ्यो विबुधै परिवारितः। अप्सरोगणसङ्कीर्णो बृहस्पतिमभाषत॥३॥

एक बार सर्वभोगान्वित देवसभा में जो अप्सराओं से व्याप्त थी इन्द्र ने बृहस्पति से कहा—।।३।।

इन्द्र उवाच

बृहस्पते महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद। अतीतब्रह्मणः कल्पे सृष्टिः कीदृग्विधा प्रभो॥४॥

इन्द्रस्तु कीदृशः प्रोक्तो विबुधाः कीदृशाः स्मृताः।
तेषां च कीदृशं कर्म यथावद्वक्तुमर्हसि॥५॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे महाभाग बृहस्पति! आप सर्वतत्वार्थ के ज्ञाता हैं। हे प्रभो! अतीत ब्रह्मकल्प में किस प्रकार की सृष्टि थी। तब इन्द्र एवं देवगण किस प्रकार के थे, उनके क्या कर्म थे? यह सब सम्यक् रूप से कहिये।।४-५।।

बृहस्पतिरुवाच

न ज्ञायते मया शक्र पूर्वेद्युश्चरितं विधेः। वर्तमान दिनस्यापि दुर्ज्ञेयं प्रतिभाति मे॥६॥

मनवः समतीताश्च तान्वक्तुमपि न क्षमः। यो विजानाति तं तेऽद्य कथयामि निशामय॥७॥

देवगुरु बृहस्पति कहते हैं—हे इन्द्र! विधि का वह पूर्वकालीन (ब्रह्मकल्प वृत्तान्त) चरित मुझे अज्ञात है। यहां तक कि इस कल्प की सभी बातों को जान सकना कठिन है। जो मनु अतीत हो गये, उनके सम्बन्ध में भी मैं नहीं कह सकता। इस विषय को जो जानते हैं, मैं उनका वर्णन करता हूं।।६-७।।

सुधर्म इति विख्यातः कश्चिदास्ते पुरे तव। भुञ्जानो दिव्यभोगांश्च ब्रह्मलोकादिहागतः॥८॥

स वा एतद्विजानाति कथयामि निशामय। एवमुक्तस्तु गुरुणा शक्रस्तेन समन्वितः॥९॥

देवतागणसङ्कीर्णः सुधर्मनिलयं ययौ॥१०॥

"तुम्हारी सभा में सुधर्मा रहते हैं। वे ब्रह्मलोक के दिव्य भोगों को भोगकर यहां आये हैं। उनको यह सब

सम्यक् रूप से विदित है।'' गुरु बृहस्पति का कथन सुनकर इन्द्र अपने गुरु तथा देवगण के साथ सुधर्मा के गृह गये।।८-१०।।

समागतं देवपतिं बृहस्पतिसमन्वितम्। दृष्ट्वा यथार्हं देवर्षे पूजयामास सादरम्॥११॥
सुधर्मेणार्चितः शक्रो दृष्ट्वा तच्छ्रियमुत्तमाम्।
मनसा विस्मयाविष्टः प्रोवाच विनयान्वितः॥१२॥

देवराज को बृहस्पति के साथ आया देखकर देवर्षि सुधर्मा ने उनका सादर पूजन किया। सुधर्मा से अर्चित होकर जब इन्द्र ने उसकी श्री को देखा, तब वे विस्मित होकर सविनय सुधर्मा से पूछने लगे।।११-१२।।

इन्द्र उवाच

अतीतब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्त वेत्सि चेद्बुध। तदाख्याहि सकायात एतत्प्रष्टुं सयाजकः॥१३॥
गतनिद्रांश्च देवांश्च येन जानासि सुव्रत।
तद्वदस्वाधिकः कस्मादस्मद्भ्योऽपि दिवि स्थितः॥१४॥
तेजसा यशसा कीर्त्या ज्ञानेन च परन्तप। दानेन वा तपोभिर्वा कथमेतादृशः प्रभो॥१५॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे बुद्धिमान! आपको अतीत ब्रह्मकल्प का वृत्तान्त अवगत है। यही जानने हेतु मैं बृहस्पति सहित यहां आया हूं। हे सुव्रत! जिस प्रकार आप निद्रा रहित देवगण को जानते हैं वह कहिये। साथ में यह भी वर्णन करिये कि स्वर्ग में आप सर्वश्रेष्ठ क्यों माने जाते हैं? हे प्रभो! हे परन्तप! आप तेज, यश, कीर्त्ति, ज्ञान, दान तथा तप किसके प्रभाव से इस स्थिति को पा सके हैं?।।१३-१५।।

इत्युक्तो देवराजेन सुधर्मा प्रहसंस्तदा। प्रोवाच विनयाविष्टः पूर्ववृत्तं यथाविधि॥१६॥

देवराज का यह कथन सुनकर सुधर्मा हंसने लगे। उन्होंने सविधि विनय पूर्वक समस्त पूर्ववृत्तान्त कहना प्रारंभ किया।।१६।।

सुधर्म उवाच

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते। एकस्मिन् दिवसे शक्र मनवश्च चतुर्दश॥१७॥
इन्द्राश्चतुर्दश प्रोक्ता देवाश्च विविधाः पृथक्।
इन्द्राणां चैव सर्वेषां मन्वादीनां च वासव॥१८॥
तुल्यता तेजसा लक्ष्म्या प्रभावेण बलेन च।
तेषां नामानि वक्ष्यामि श्रृणुष्व सुसमाहितः॥१९॥

सुधर्मा कहते हैं—एक हजार चतुर्युग (४००० युग) ब्रह्मा का एक दिन होता है। हे इन्द्र! उनके इस एक दिन में चतुर्दश मनु होते हैं। इन्द्र भी चौदह कहे गये हैं। पृथक्-पृथक् देवता भी विविध हैं। सभी इन्द्र तथा मनु तेज, लक्ष्मी, बल, प्रभाव में समान होते हैं। उनके पृथक्-पृथक् नामों को सुसमाहित होकर श्रवण करिये।।१७-१९।।

स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषस्तथा। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥२०॥

वैवस्वतो मनुश्चैव सूर्यसावर्णिरष्टमः। नवमो दक्षसावर्णिः सर्वदेवहिते रतः॥२१॥
दशमो ब्रह्मसावर्णिर्द्धर्मसावर्णिकस्ततः। ततस्तु रुद्रसावर्णी रोचमानस्ततः स्मृतः॥२२॥

भौत्यश्चतुर्दशः प्रोक्त एते हि मनवः स्मृताः।
देवानिंद्राश्च वक्ष्यामि शृणुष्व विबुधर्षभ॥२३॥

स्वायम्भुव सबसे पहले हैं। तदनन्तर स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, तदनन्तर वैवस्वत मनु जन्मे। सूर्य सावर्णि अष्टम मनु हैं। नवम हैं दक्षसावर्णि। ये सर्वदेव हित कार्य में रत थे। तदनन्तर ब्रह्म सावर्णि दशम हैं। एकादश हैं धर्मसावर्णि। द्वादश हैं रुद्रसावर्णि, त्रयोदश हैं रोचमान मनु। चतुर्दश हैं भौत्य मनु। ये ही चतुर्दश मनु कहे जाते हैं। अब हे विवुधर्षभ! अब इन्द्र तथा देवगण का नाम श्रवण करिये।।२०-२३।।

यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
शचीपतिः समाख्यातस्तेषामिन्द्रो महामतिः॥२४॥
पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे।
विपश्चिन्नाम देवेन्द्रः सर्वसंपतत्समन्वितः॥२५॥
सुधामानस्तथा सत्याः शिवाश्चाथ प्रतर्दनाः।
तेषामिन्द्रः सुशान्तिश्च तृतीये परिकीर्तितः॥२६॥
सुताः पाराहराश्चैव सुत्याश्चासुधियस्तथा।
तेषामिन्द्रः शिवः प्रोक्तः शक्रस्तामसकेऽन्तरे।
विभुनामा देवपतिः पञ्चमः परिकीर्तितः॥२७॥
अमिताभादयो देवाः षष्ठेऽपि च तथा शृणु।
आर्याद्या विबुधाः प्रोक्तास्तेषामिन्द्रो मनोजवः॥२८॥

आदित्यवसुरुद्राद्या देवा वैवस्वतेऽन्तरे। इन्द्रः पुरन्दरः प्रोक्तः सर्वकामसमन्वितः॥२९॥

स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता थे याम। उनके इन्द्र थे महामति शचिपति। स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत, तुषित देवता थे। उनके इन्द्र थे सर्वसम्पत्तिशाली विपश्चित्। तृतीय मन्वन्तर में सुधाम, सत्य, शिव एवं प्रतर्दन देवता थे। उनके इन्द्र थे सुशान्ति। तामस मन्वन्तर में सुत पाराहर, सुत्य तथा सुधी देवता थे। उनके इन्द्र शक्र शिव। पंचम मन्वन्तर में विभु इन्द्र थे तथा देवता अमिताभ कहे गये। षष्ठ मन्वन्तर में आर्य देवगण थे। उनके इन्द्र थे मनोजव। वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्रादि देवता थे। तब इन्द्र का नाम था पुरन्दर। वे सर्वकामयुक्त थे।।२४-२९।।

अप्रमेयाश्च विबुधाः सुतपाद्याः प्रकीर्तिताः।
विष्णुपूजाप्रभावेण तेषामिन्द्रो बलिः स्मृतः॥३०॥

पाराद्या नवमे देवा इन्द्रश्चादभुदुच्यते। सुवासनाद्या विबुधा दशमे परिकीर्तिताः॥३१॥
शान्तिर्नाम च तत्रेन्द्रः सर्वभोगसमन्वितः। विहङ्गमाद्या देवाश्च तेषामिन्द्रो वृषः स्मृतः॥३२॥

अष्टम मन्वन्तर में अप्रमेय, विबुध तथा सुतपाद्य देवता का नाम था। उस समय विष्णु पूजा प्रभाव से बलिराज ही इन्द्र हो गये। नवम मन्वन्तर में देवता पराद्य कहलाये। तब इन्द्र का नाम था अद्भुद्। दशम मन्वन्तर में सुवासना आदि देवता थे। सर्वभोगभोक्त इन्द्र का नाम है शान्ति। एकादश मन्वन्तर में विहंगम देवता हैं तथा इन्द्र का नाम है वृष।।३०-३२।।

एकादशे द्वादशे तु निबोध कथयामि ते। ऋभुनामा च देवेन्द्रो हरिनाभास्तथा सुराः।।३३।।
सुत्रामाद्यास्तथा देवास्त्रयोदशतमेऽन्तरे। दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिन्द्रः प्रकीर्तितः।।३४।।

चतुर्दशे चाक्षुषाद्या देवा इन्द्रः शुचिः स्मृतः।
एवं ते मनवः प्रोक्ता इन्द्रा देवाश्च तत्त्वतः।।३५।।
एकस्मिन्ब्रह्मदिवसे स्वाधिकारं प्रभुञ्जते।।३६।।

द्वादश मन्वन्तर में हरिनाभ देवगण का नाम है। इस मन्वन्तर में ऋभु इन्द्र का नाम है। त्रयोदश मन्वन्तर में सुमात्रा आदि देवता हैं तथा इन्द्र का नाम है महावीर दिवस्पति। चतुर्दश मन्वन्तर में चाक्षुष आदि देवगण का नाम है तथा इन्द्र का नाम है शुचि। इस प्रकार मैंने तत्वतः इन्द्रों तथा देवताओं का नाम कह दिये। ये सभी ब्रह्मा के एक दिन में ही अपने स्वाधिकार का भोग प्राप्त करते हैं।।३३-३६।।

लोकेषु सर्वसर्गेषु सृष्टिरेकविधा स्मृता।
कर्त्तारो बहवः सन्ति तत्सङ्ख्यां वेत्ति कोविदः।।३७।।
मयि स्थिते ब्रह्मलोके ब्रह्माणो बहवो गताः।
तेषां सङ्ख्यां न सङ्ख्यातु शक्तोऽस्म्यद्य द्विजोत्तम।।३८।।
स्वर्गलोकमपि प्राप्य यावत्कालं शृणुष्व मे।
चत्वारो मनवोऽतीता मम श्रीश्चातिविस्तरा।।३९।।

लोगों में प्रत्येक सर्ग में सृष्टि एक ही तरह से होती है। इनके कर्त्ता तो अनेक हैं, तथापि उनका संख्या ज्ञान केवल विद्वानों को ही होता है। मैं जब ब्रह्मलोक में था, तब अनेक ब्रह्मा का कार्यकाल क्रमशः समाप्त होता गया। हे द्विजोत्तम! उनकी संख्या कितनी थी, उसकी गणना करना मेरे द्वारा संभव नहीं है। हे द्विजोत्तम! जब से मैं इस स्वर्गलोक में हूं, उसकी गणना सुनो। यहां जब से आया हूं, तब से ४ मनुओं का काल व्यतीत हो गया, तथापि मेरी श्री उसी प्रकार से विस्तृत है।३७-३९।।

स्थातव्यं च मयात्रैव युगकोटिशतं प्रभो। ततः परं गमिष्यामि कर्मभूमिं शृणुष्व मे।।४०।।
मया कृतं पुरा कर्म वक्ष्यामि तव सुव्रत। वदतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम्।।४१।।
अहमासं पुरा शक्र गृधः पापो विशेषतः। स्थितश्च भूमिभागे वै अमेध्यामिषभोजनः।।४२।।

हे प्रभो! अभी यहां शतकोटि युग पर्यन्त रहकर तब मुझे मर्त्यलोक में जन्म लेना है। वह प्रसंग सुनिये। मेरे द्वारा पूर्वकाल में जो कृत कर्म हैं, हे सुव्रत! उसे सुनिये। इसके पाठ किंवा श्रवण से सभी पापों का नाश हो जाता है। हे शक्र! पूर्वकाल में मैं विशेष पापी गृद्ध था, जो भूमिभाग पर रहता सदा अपवित्र भोजन खाता था।।४०-४२।।

एकदाहं विष्णुगृहे प्राकारे संस्थितः प्रभो।
पतितो व्याधशस्त्रेण सायं विष्णोर्गृहाङ्गणे॥४३॥
मयि कण्ठगतप्राणे भषणो मांसलोलुपः। जग्राह मां स्ववक्त्रेण श्वभिरन्यैश्चरन्द्रुतः॥४४॥
वहन्मां स्वमुखेनैव भीतोऽन्यैर्भषणैस्तथा।
गतः प्रदक्षिणाकारं विष्णोस्तमन्दिरं प्रभो॥४५॥

एक समय की घटना है, हे प्रभो! मैं मन्दिर की चाहरदिवारी पर बैठा था। मैं सायंकाल व्याध के तीर से आहत होकर मन्दिर के आंगन में गिर पड़ा। मेरे प्राण कंठगत थे, तभी एक मांसलोलुप श्वान वहां आया तथा अपने मुंह में दबाकर मुझे वहां से ले गया। मुंह में भोजनस्वरूप मुझे देखकर अन्य श्वान उसका पीछा करने लगे। वह श्वान मुझे मुंह में पकड़े मन्दिर के चारों ओर घूमने लगा, जिससे मन्दिर की प्रदक्षिणा सी हो गयी।।४३-४५।।

तेनैव तुष्टिमापन्नो ह्यपरात्मा जगन्मयः। मम चाप शुनश्चापि दत्तावन्परमं पदम्॥४६॥
प्रदक्षिणाकारतया गतस्यापीदृशं फलम्। सम्प्राप्तं विबुधश्रेष्ठ किं पुनः सम्यगर्चनात्॥४७॥

यह देखकर जगन्मय परमात्मा प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने मुझे तथा श्वान को परमपद प्रदान कर दिया। जब अज्ञानतः प्रदक्षिणा का इतना प्रभूत प्रभाव है, तब सविधि भगवत्पूजा का कितना फल मिलेगा!।।४६-४७।।

इत्युक्तो देवराजस्तु सुधर्मेण महात्मना। मनसा प्रीतिमापन्नो हरिपूजारतोऽभवत्॥४८॥
तथापि निर्जराः सर्वे भारते जन्मलिप्सवः। समर्चयन्ति देवेशं नारायणमनामयम्।
तानर्चयन्ति सततं ब्रह्माद्या देवतागणाः॥४९॥

जब सुधर्मा से इन्द्र ने यह सुना, तब वे प्रसन्न हो कर श्री हरि की पूजा करने लगे, तथापि जितने भी देवगण हैं, वे भारत में जन्म की लालसा रखते हैं, जिससे वे अनामय देवेश नारायण की यहां आकर पूजा कर सके। इसीलिये वे स्वर्ग में नारायण की पूजा करते रहते हैं। ब्रह्मा प्रभृति देवता भी सतत् उनका पूजन करते हैं।।४८-४९।।

नारायणानुस्मरणोद्यतानां महात्मनां त्यक्तपरिग्रहाणाम्।
कथं भवत्युग्रभवस्य बन्धस्तत्सङ्गलुब्धा यदि मुक्तिभाजः॥५०॥

जो नारायण के स्मरणार्थ सदा उद्यत रहने वाले महात्मा हैं, जिन्होंने समस्त परिग्रह त्याग दिया है, उनको कैसे इस उग्र भवबन्धन की प्राप्ति हो सकती है? उनका तो प्रभाव यह है कि उनके सत्संग में रहने वाले भी मुक्तिभाजन हो जाते हैं।।५०।।

ये मानवाः प्रतिदिनं परिमुक्तिसङ्गा नारायणं गरुडवाहनमर्चयन्ति।
ते सर्वपापनिकरैः परितो विमुक्ता विष्णोः पदं शुभतरं प्रतियान्ति हृष्टाः॥५१॥

जो लोग विषय-वासना के तथा लौकिक संग का त्याग करके गरुड़वाहन नारायण की अर्चना करते हैं, वे समस्त पापों के ढेर से मुक्त होकर हृष्ट होकर शुभत्तर विष्णुलोक गमन करते हैं।।५१।।

ये मानवाः विगतरागपरावरज्ञा नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन तेन हतकिल्वषचेतनास्ते मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति॥५२॥

जो मानव राग रहित होकर सतत् सुरगुरु नारायण का स्मरण करते हैं, वे उस ध्यान के प्रभाव से पाप रहित हो जाते हैं। उनको भविष्य में मातृस्तन निःसृत दुग्ध को कभी पान नहीं करना पड़ता अर्थात् वे जन्म-मरण-चक्र से मुक्त हो जाते हैं।।५२।।

ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोषाः कृष्णांघ्रिपद्मभजने रतचेतनाश्च।
ते वै पुनन्ति च जगन्ति शरीरसङ्गात् सम्भाषणादपि ततो हरिरेव पूज्यः॥५३॥

जिन मनुष्यों के समस्त दोष हरिकथा श्रवण द्वारा दूर हो गये हैं, जो सतत् कृष्ण पदकमल के ध्यान में तल्लीन रहते हैं, ऐसे भक्तों के स्पर्श से तथा उनकी वाणी के श्रवण से संसार पवित्र हो जाता है। अतः सभी लोग हरिपूजा करें।।५३।।

हरिपूजापरा यत्र महान्तः शुद्धवुद्धयः। तत्रैव सकलं भद्र यथा निम्ने जलं द्विज॥५४॥
हरिरेव परो बन्धुर्हरिरेव परा गतिः। हरिरेव ततः पूज्यो यतश्चैतन्यकारणम्॥५५॥

हे द्विज! जहां हरिपद निरत शुद्ध बुद्धि महान् भक्त रहते हैं, वहां तो सभी प्रकार का कल्याण उसी प्रकार आ जाता है, जैसे निम्न भूमि में चतुर्दिक् का जल एकत्र हो जाता है। हरि ही परम बन्धु हैं। हरि ही परम गति हैं। वे सर्वपूज्य हैं। वे ही सर्व चैतन्य कारण भी हैं।।५४-५५।।

स्वर्गापवर्गफलदं सदानन्दं निरामयम्। पूजयस्व मुनिश्रेष्ठ परं श्रेयो भविष्यति॥५६॥
पूजयन्ति हरिं ये तु निष्कामाः शुद्धमानसाः।
तेषां विष्णुः प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान् प्रयच्छति॥५७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! स्वर्ग मोक्ष फल देने वाले, सदानन्द, निरामय प्रभु की पूजा करने से परम कल्याण होगा। जो निष्कामतः तथा शुद्ध मन से हरिपूजा करते हैं, उन पर विष्णु प्रसन्न होकर उनकी समस्त वाञ्छा पूर्ण कर देते हैं।।५६-५७।।

यस्त्वेतच्छृणुयाद्वपि पठेद्वा सुसमाहितः। स प्राप्नोत्यश्वमेधस्य फलं मुनिवरोत्तम॥५८॥
इत्येतत्ते समाख्यातं हरिपूजाफलं द्विज। सङ्कोचविस्तराभ्यां तु किमन्यत्कथयामि ते॥५९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्ये चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥
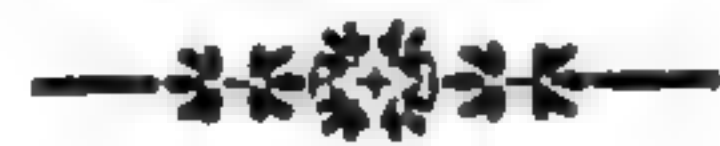
हे मुनिप्रवर! जो इस प्रसंग को समाहित भाव से सुनता अथवा इसका पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। हे द्विज! यह मैंने हरिपूजाफल कह दिया। यह मैंने संक्षेप तथा विस्तार, इन दोनों प्रकार से कहा है। अब मुझे और क्या कहना है?।।५८-२९।।

।।४०वां अध्याय समाप्त।।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

युगों का स्थिति लक्षण, विष्णु के नाम-माहात्म्य का वर्णन

नारद उवाच

आख्यातं भवता सर्वं मुने तत्त्वार्थकोविद।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि युगानां स्थितिलक्षणम्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे तत्वार्थकोविद, मुनिवर! आपने सभी कुछ का वर्णन कर दिया। अब मैं युगों का स्थितिलक्षण श्रवण करना चाहता हूं।।१।।

सनक उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ मुने लोकोपकारक। युगधर्मान्प्रवक्ष्यामि सर्वलोकोपकारकान्॥२॥
धर्मो विवृद्धिमायाति काले कस्मिंश्चिदुत्तम। तथा विनाशमायाति धर्म्म एव महीतले॥३॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। दिव्यैर्द्वादशभिर्ज्ञेयं वत्सरैस्तत्र सत्तम॥४॥
संध्यासन्ध्यांशयुक्तानि युगानि सदृशानि वै।
कालतो वेदितव्यानि इत्युक्तं तत्त्वदर्शिभिः॥५॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिवर महाप्राज्ञ! आपका प्रश्न साधु प्रश्न है तथा लोकोपकारक है। अब मैं सर्वलोक का उपकारक युगधर्म कहता हूं। हे उत्तम! किसी काल में पृथिवी पर धर्म की वृद्धि होती है, कभी इस पृथिवीतल पर धर्म विनष्ट हो जाता है। सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि ही चतुर्युग हैं। हे सत्तम! इनका काल दिव्य द्वादश वर्ष तक जाने। ये सभी युग सन्ध्या तथा सन्ध्यांश युक्त रहते हैं। ये कालानुसार जाने जाते हैं, यह तत्वदर्शीगण का कथन है।।२-५।।

आद्ये कृतयुगं प्राहुस्ततस्त्रेताविधानकम्। ततश्च द्वापरं प्राहुः कलिमन्त्यं विदुः क्रमात्॥६॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। नासन्कृतयुगे विप्र सर्वे देवसमाः स्मृताः॥७॥
सर्वे हृष्टाश्च धर्मिष्ठा न तत्र क्रयविक्रयौ। वेदानां च विभागश्च न युगे कृतसंज्ञके॥८॥

हे विप्र! सर्वाग्र में कृतयुग होता है। इसके पश्चात् क्रमशः त्रेता, द्वापर तथा कलिकाल आता है। कलि अन्तिम युग कहा गया है। कृतयुग में देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग (भेद) नहीं थे। सभी देवता के समान थे। सभी प्रसन्न, धर्मात्मा थे। तब क्रय-विक्रय नहीं था। कृतयुग में वेदों का विभाग नहीं था।।६-८।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्वाचारतत्पराः। सदा नारायणपरास्तपोध्यानपरायणाः॥९॥
कामादिदोषनिर्मुक्ताः शमादिगुणतत्पराः। धर्मसाधनचित्ताश्च गतासूया अदाम्भिकाः॥१०॥
सत्यवाक्यरताः सर्वे चतुराश्रमधर्मिणः। वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वशास्त्रविचक्षणाः॥११॥
चतुराश्रमयुक्तेन कर्मणा कालयोनिना। अकामफलसंयोगाः प्रयान्ति परमां गतिम्॥१२॥

नारायणः कृतयुगे शुक्लवर्णः सुनिर्मलः। त्रेताधर्मान्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः॥१३॥

कृतयुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने आचार में तत्पर थे। वे सदा नारायण-परायण, तप, स्वाध्याय परायण रहते थे। वे कामादि दोष रहित तथा शमादि गुणयुक्त थे। उनका चित्त धर्मपालन रत रहता था। वे ईर्ष्या रहित तथा दम्भ रहित थे। वे सदा सत्यवाक्य तत्पर, चतुराश्रम धर्म का पालन करने वाले, वेदाध्ययनशील तथा सर्वशास्त्र विशारद होते थे। वे चारों आश्रम के कर्म का निष्काम भाव से पालन करते थे। इस फल से उनको परमागति का लाभ होता था। कृतयुग में नारायण शुक्लवर्ण तथा सुनिर्मल थे। अब मैं त्रेतायुग का धर्म कहता हूं। उसे एकाग्रता पूर्वक सुनिये।।९-१३।।

धर्मः पाण्डुरतां याति त्रेतायां मुनिसत्तम।
हरिस्तु रक्ततां याति किञ्चित्क्लेशान्विता जनाः॥१४॥

क्रियायोगरताः सर्वे यज्ञकर्मसु निष्ठिताः। सत्यव्रता ध्यानपराः सदाध्यानपरायणाः॥१५॥

हे मुनिसत्तम! त्रेता में धर्म का वर्ण पाण्डुर हो जाता है। उस समय हरि रक्तवर्ण हो जाते हैं। लोगों में अब किंचित् क्लेश की उत्पत्ति होती है। सभी क्रियायोगरत तथा यज्ञकर्म में निष्ठित रहते हैं। वे सत्यव्रती, ध्यानतत्पर तथा सदा ध्यानपरायण स्थिति में रहते हैं।।१४-१५।।

द्विपादो वर्तते धर्मो द्वापरे च मुनीश्वर। हरिः पीतत्वमायाति वेदश्चापि विभज्यते॥१६॥

असत्यनिरताश्चापि केचित्तत्र द्विजोत्तमाः।
ब्राह्मणाद्याश्च वर्णाः स्युः केचिद्रागादिदुर्गुणाः॥१७॥

केचित्स्वर्गापवर्गार्थं विप्रयज्ञान्प्रकुर्वते। केचिद्धनादिकामाश्च केचित्कल्मषचेतसः॥१८॥

हे मुनीश्वर! द्वापर में धर्म द्विपाद रहता है। हरि का पीतत्व वर्ण हो जाता है। वेदों का विभाग हो जाता है। कोई-कोई द्विजोत्तम भी इस समय असत्य निरत हो जाते हैं। ब्राह्मणादि वर्णों में कुछ-कुछ रागादि दोषों का संचार हो जाता है। हे विप्र! तब कतिपय लोग स्वर्ग तथा अपवर्ग लाभार्थ यज्ञ करते हैं, कोई धन कामना वाले रहते हैं तथा कुछ कलुषयुक्त चित्त वाले होते हैं।।१६-१८।।

धर्माधर्मौ समौ स्यातां द्वापरे विप्रसत्तम। अधर्मस्य प्रभावेण क्षीयन्ते च प्रजास्तथा॥१९॥

अल्पायुषो भविष्यन्ति केचिच्चापि मुनीश्वर।
केचित्पुण्यरतान् दृष्ट्वा असूयां विप्रकुर्वते॥२०॥

हे विप्रसत्तम! द्वापर में धर्म-अधर्म समान रहता है। प्रजा अधर्म प्रभाव से क्षीण बनी रहती है। हे मुनीश्वर! कतिपय लोग अल्पायु हो जाते हैं। हे विप्र! किसी को पुण्यरत देखकर अन्य लोग उसके प्रति ईष्यालु हो जाते हैं।।१९-२०।।

कलिस्थितिं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः। धर्मः कलियुगे प्राप्ते पादेनैकेन वर्तते॥२१॥

तामसं युगमासाद्यः हरिः कृष्णत्वमेति च।
यः कश्चिदपि धर्मात्मा यज्ञाचारान्करोति च॥२२॥

यः कश्चिदपि पुण्यात्मा क्रियोगरतो भवेत्। नरं धर्मरतं दृष्ट्वा सर्वेऽसूयां प्रकुर्वते॥२३॥

अब मैं कलिकाल की स्थिति कहता हूं। उसे समाहित होकर श्रवण करिये। कलियुग आने पर धर्म का मात्र एक पाद रह जाता है। इस तामस युग के आने पर हरि का वर्ण कृष्णात्वमय हो जाता है। उस समय यदि कोई धार्मिक यज्ञानुष्ठान करता है अथवा कोई क्रियायोग का अभ्यास करता है, तब उसे देखकर तथा उसकी धार्मिकता को देखकर लोग उसके प्रति ईर्ष्यालु हो जाते हैं।।२१-२३।।

व्रताचाराः प्रणश्यन्ति ज्ञानयज्ञादयस्तथा। उपद्रवा भविष्यन्ति ह्यधर्मस्य प्रवर्तनात्॥२४॥

असूयानिरताः सर्वे दम्भाचारपरायणाः।
प्रजाश्चाल्पायुषः सर्वा भविष्यन्ति कलौ युगे॥२५॥

कलिकाल में समस्त व्रताचरण तथा यज्ञादि नष्ट हो जाते हैं। अधर्म का प्रवर्त्तन होने के कारण उपद्रव होने लगता है। सभी लोग दम्भाचारी तथा असूयायुक्त हो जाते हैं। प्रजा अल्पायु होती है। यह कलि का प्रभाव है।।२४-२५।।

नारद उवाच

युगधर्माः समाख्यातास्त्वया संक्षेपतो मुने।
कलिं विस्तरतो ब्रूहि त्वं हि धर्मविदां वरः॥२६॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम।
किमाहाराः किमाचाराः भविष्यन्ति कलौ युगे॥२७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिवर! आपने संक्षेप में युगधर्म कह दिया। अब आप केवल कलि का विस्तृत वर्णन करिये। आप धर्मविद् लोगों में श्रेष्ठ हैं। हे मुनिसत्तम! कलिकाल में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इनका क्या आहार तथा आचार होता है?।।२६-२७।।

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल सर्वलोकोपकारक। कलिधर्मान्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम्॥२८॥

सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णे कृष्णात्वमागते।
तत्समात्कलिर्महाघोरः सर्वपातकसंकरः॥२९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मपराङ्मुखाः।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजा वेदपराङ्मुखाः॥३०॥

देवर्षि सनक कहते हैं—हे मुनिशार्दूल! आप लोकों का उपकार करने वाले हैं। मैं आपसे विस्तार पूर्वक तथा यथायथ रूप से कलिधर्म कहता हूं। हरि के कृष्ण वर्ण हो जाने के कारण सभी धर्म विनष्ट हो जाते हैं। इसलिये कलि महाघोर काल है तथा सर्वपातक युक्त है। घोर कलिकाल में ब्राह्मण वेदविमुख हो जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रगण धर्मविमुख हो जाते हैं।।२८-३०।।

व्याजधर्मरताः सर्वे असूयानिरतास्तथा। वृथाहंकारदुष्टाश्च सत्यहीनाश्च पण्डिताः॥३१॥

अहमेवाधिक इति सर्वेऽपि विवदन्ति च।
अधर्मलोलुपाः सर्वे यथा वैतण्डिका नराः॥३२॥
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे।
अल्पायुष्यान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विज॥३३॥
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुनः। व्युत्क्रमेण प्रजाः सर्वा म्रियन्ते पापतत्पराः॥३४॥

सभी पाखण्ड धर्म में रत तथा असूया से व्याप्त रहते हैं। वे वृथा अहंकार से सन्तुष्ट होते हैं। पण्डितगण भी सत्यहीन रहते हैं। सभी लोग स्वयं को श्रेष्ठ कहते हैं। सभी अधर्म लोलुप तथा वितंडा करने वाले होते हैं। इस कारण सभी लोग कलिकाल में अल्पायु रहते हैं। हे द्विज! अल्पायु के लिये विद्याग्रहण कैसे संभव होगा। वे विद्याग्रहण से रहित होते हैं, अतः अधर्म वृद्धि होने लगती है। इस कारण विपरीत मार्गी प्रजा पापात्पर हो जाती है, वे असमय मृत होने लगते हैं।।३१-३४।।

ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम्।
कामक्रोधपरा मूढा वृथासन्तापपीडिताः॥३५॥
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति सर्वे वर्णा कलौ युगे।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा॥३६॥
राजानो द्रव्यनिरतास्तथा ह्यन्यायवर्त्तिनः। पीडयन्ति प्रजाश्चैव करैरत्यर्थयोजितैः॥३७॥

ब्राह्मणादि वर्ण वाले परस्परतः संकर होने लगते हैं। लोग काम-क्रोध से आक्रान्त होने के कारण वृथा सन्ताप से पीड़ित होते हैं। सभी वर्ण कलिकाल में शूद्रतुल्य हो जाते हैं। जो उत्तम हैं, वे नीचता प्राप्त करते हैं। नीचजन उत्तम स्वयं बनने लग जाते हैं। राजा लोग द्रव्यलोलुप तथा अन्यायी हो जाते हैं। वे कर वसूली हेतु प्रजा को पीड़ित करते हैं।।३५-३७।।

शववाहा भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः।
धर्मस्त्रीष्वपि गच्छन्ति पतयो जराधर्मिणः॥३८॥
द्विषन्ति पितरं पुत्रा भर्तारं च स्त्रियोऽखिलाः। परस्त्रीनिरता सर्वे परद्रव्यपरायणाः॥३९॥
मत्स्यामिषेण जीवन्ति दुहन्तश्चाप्यजीविकाम्।
घोरे कलियुगे विप्र सर्वे पापरता जनाः॥४०॥
सतामसूयानिरतां उपहासं प्रकुर्वते। सरित्तीरेषु कुद्दालैर्वापयिष्यन्ति चौषधीः॥४१॥

द्विजलोग भी शूद्रों का शव वहन करते हैं। पतिगण व्यभिचाररत हो जाते हैं। वे लोग धार्मिक स्त्रियों के साथ भी व्यभिचार करते हैं। पुत्रगण पिता से द्वेष करते हैं। स्त्रियां पति से द्वेष करती हैं। सभी परनारीरत तथा परद्रव्य के लोभी हो जाते हैं। लोग मत्स्य, मांस खाकर जीवित रहते हैं। जो वर्जित जीविका है, उसे ही अपने लिये उचित मान लेते हैं। हे विप्र! घोर कलिकाल में सभी जनता पापरत हो जाती है। लोग सत्पुरुषों की आलोचना करते तथा उनका उपहास करते हैं। नदी तट को भी कुदाल से खनन करके वहां अन्नौषधि बोते हैं।।३८-४१।।

पृथ्वी निष्फलतां याति बीजं पुष्पं विनश्यति।
वेश्यालावण्यशीलेषु स्पृहां कुर्वन्ति योषितः॥४२॥
धर्मविक्रयिणो विप्राः स्त्रियश्च भगविक्रयाः।
वेदविक्रयकाश्चान्ये शूद्राचाररता द्विजाः॥४३॥

पृथिवी फलहीन होने लगती है। बीज तथा पुष्प नष्ट हो जाते हैं। स्त्रियां वेश्याओं का लावण्य तथा उनकी सज्जा देखकर उनसे स्पृहा करने लगती हैं। विप्र धर्म विक्रयी हो जाते हैं, स्त्रियां अपना स्त्रित्व बेचने लगती हैं। अन्य लोग वेद विक्रय करते हैं। द्विजगण शूद्राचार अपनाने लगते हैं।।४२-४३।।

साधूनां विधवानां च वित्तान्यपहरन्ति च।
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा द्रव्यलोलुपाः॥४४॥

द्रव्यलोलुप ब्राह्मण व्रत नहीं करते। साधुलोग विधवाओं का भी धन हरण करने लगते हैं।।४४।।

धर्माचारं परित्यज्य वृथावादैर्विषज्जिताः।
द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः॥४५॥
आपात्रेष्वेव दानानि प्रयच्छन्ति नराधमाः। दुग्धलोभनिमित्तेन गोषु प्रीतिं च कुर्वते॥४६॥
न कुर्वन्ति तथा विप्राः स्नानशौचादिकाः क्रियाः।
अकाले कर्मनिरता भविष्यन्ति द्विजाधमाः॥४७॥

लोग धर्माचरण त्याग देते हैं, वे वृथा बकवाद करते हैं। द्विजगण दम्भ के कारण (दिखावे के लिये) पितृश्राद्ध आदि करते हैं। नराधम लोग अपात्र को दान देते हैं। गौओं से प्रेम केवल उनके दुग्ध हेतु किया जाता है। विप्रगण स्नान-शौचादि क्रिया नहीं करते। द्विजाधम लोग अकाल में (निषिद्ध काल में) सभी कर्म करते हैं।।४५-४७।।

साधुनिन्दापराश्चैव विप्रनिन्दापरास्तथा।
न कस्यापि मनो विप्र विष्णुभक्तिपरं भवेत्॥४८॥
यज्विनश्च द्विजानैव धनार्थं राजकिंकराः।
ताडयन्ति द्विजान्दुष्टाः कृष्णे कृष्णात्वमागते॥४९॥
दानहीना नराः सर्वे घोरे कलियुगे मुने। प्रतिग्रहं प्रकुर्वन्ति पतितानामपि द्विजाः॥५०॥

लोग साधुनिन्दा तथा विप्रनिन्दा करते हैं। किसी के मन में ब्राह्मणों के प्रति तथा विष्णु के प्रति भक्ति नहीं रह जाती। ब्राह्मण यथार्थ यज्ञकर्त्ता नहीं रह जाते। वे धन के लिये राजा के किंकर बन जाते हैं। कलि में हरि कृष्णवर्ण हो जाते हैं। अतः दुष्टगण ब्राह्मणों को पीटते हैं। हे मुनि! इस घोर कलिकाल में सभी लोग दान देने से विमुख रहते हैं। द्विजलोग तो पतितों से भी दान ग्रहण करते हैं।।४८-५०।।

कलेः प्रथमपादेऽपि विनिन्दन्ति हरिं नराः। युगान्ते च हरेर्नाम नैव कश्चिद्वदिष्यति॥५१॥
शूद्रस्त्रीसंगनिरता विधवासंगलोलुपाः। शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कलौ द्विजाः॥५२॥

कलि का प्रथम चरण लगते ही मनुष्य हरि निन्दा करने लगते हैं। कलि के युगान्त काल में कोई भी हरि का नामोच्चारण भी नहीं करने वाला रहेगा! लोग शूद्र नारी से रमणरत रहते हैं, वे विधवा के साथ समागम करते हैं। कलिकाल में द्विज भी शूद्रान्न भोजन करने लगते हैं।।५१-५२।।

विहाय वेदसन्मार्गं कुपथाचारसङ्गताः। पाषण्डाश्च भविष्यन्ति चतुराश्रमनिन्दकाः॥५३॥

न च द्विजातिशुश्रूषां कुर्वन्ति चरणोद्भवाः। द्विजातिधर्मान्गृह्णन्ति पाखण्डलिङ्गिनोऽधमाः॥५४॥

काषायपरिवीताश्च जटिला भस्मधूलिताः। शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यन्ति कूटयुक्तिपरायणः॥५५॥

लोग योग का उत्तममार्ग त्यागकर कुपथ पर चलते हैं। वे पाखण्डी तथा चारों आश्रमों के निन्दक हो जाते हैं। चरणों से उत्पन्न शूद्र द्विजों की सेवा नहीं करेंगे। वे द्विजों का धर्म ग्रहण करेंगे। अधम पाखण्डी व्यक्ति काषायवस्त्र पहनेंगे, जटा रखेंगे, भस्म से अंगलिप्त करके वेश धारण करेंगे। कटूयुक्ति परायण शूद्रगण धर्मप्रवचन करेंगे।।५३-५५।।

द्विजाःस्वाचारमुत्सृज्य परपाकान्नभोजिनः। भविष्यन्ति दुरात्मानः शूद्राः प्रव्रजितास्तथा॥५६॥

उत्कोचजीविनस्तत्र भविष्यन्ति कलौ मुने।
धर्महीनास्तु पाषण्डाः कापाला भिक्षवोऽधमाः॥५७॥

धर्मविध्वंसशीलानां द्विजानां द्विजसत्तम। शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यन्तिह्यधिरुह्योत्तमासनम्॥५८॥

द्विजगण अपने आचार का त्याग करके पराये लोगों द्वारा पकाये अन्न का भोजन करेंगे। उस समय दुरात्मा शूद्रगण ही संन्यासी वेषधारी होंगे। हे मुनि! कलिकाल में घूस लेना भी आजीविका होगी। धर्महीन, पाखण्डी, कापालिक, अधम भिक्षुगण धर्मविध्वंसक होकर द्विजों को उपदेश प्रदान करेंगे।।५६-५८।।

एते चान्ये च बहवः नग्नरक्तपटादिकाः।
पाषण्डाः प्रचरिष्यन्ति प्रायो वेदविदूषकाः॥५९॥
गीतवादित्रकुशलाः क्षुद्रधर्मसमाश्रयाः।
भविष्यन्ति कलौ प्रायो धर्मविध्वंसका नराः॥६०॥

ऐसे लोग तथा अन्य बहुत से नग्न लालवस्त्रधारी कापालिक पाखण्डी वेददूषक धर्म का प्रचार करेंगे। इस काल में लोग गीत-वाद्यादि में कुशल तथा क्षुद्र (निम्न) धर्म का आश्रय ग्रहण करेंगे। कलि में मनुष्यगण प्रायः धर्मविध्वंसक लोग ही होंगे।।५९-६०।।

अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहङ्कारदूषिताः। हर्तारः परवित्तानां भवितारो नराधमाः॥६१॥

प्रतिग्रहपरा नित्यं जगदुन्मार्गशीलिनः। आत्मस्तुतिपराः सर्वे परनिन्दापरास्तथा॥६२॥

विश्वस्तघातिनः क्रूरा दयाधर्मविवर्जिताः।
भविष्यन्ति नरा विप्र कलौ चाधर्मबान्धवाः॥६३॥

लोग धनहीन, बनावटी वेषधारी, व्यर्थ अहंकार से दूषित, पराया धन हरण करने वाले नराधम होंगे। वे नित्य प्रतिग्रह लेने वाले, कुमार्गगामी, चापलूसी पसंद तथा पर निन्दा तत्पर होंगे। वे विश्वासघाती, क्रूर, दयाधर्महीन, अधर्म के प्रिय होंगे।।६१-६३।।

परमायुश्श्च भविता तदा वर्षाणि षोडश। घोरे कलियुगे विप्र पञ्चवर्षा प्रसूयते॥६४॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च युवानोऽतः परे जरा। स्वकर्मत्यागिनः सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तयः॥६५॥
याचकाश्च द्विजा नित्यं भविष्यन्ति कलौ युगे। परावमाननिरताःप्रहृष्टाः परवेश्मनि॥६६॥
तत्रैव निन्दानिरता वृथाविश्रमिणो जनाः। निदां कुर्वन्ति सततं पितृमातृसुतेषु च॥६७॥
वदन्ति वाचा धर्मांश्च चेतसा पापलोलुपाः। धनविद्यावयोमत्ताः सर्वदुःखपरायणाः॥६८॥

कलियुग में मनुष्य की परमायु १६ वर्ष हो जायेगी। घोर कलिकाल आने पर पंचवर्षीय कन्यायें प्रसव करेंगी। सात-आठ वर्ष तक ही लोग युवा रह पायेंगे। तदनन्तर व्यक्ति जराग्रस्त होगा। सभी स्वकर्मत्यागी, कृतघ्न, परम्परा के विरुद्ध वृत्तिवाले होंगे। उस समय कलि में सभी द्विज अन्य का अपमान करने में प्रसन्न होंगे तथा दूसरों के घर जाने पर प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। वे पराई निन्दा में निरत तथा अपनी महत्ता का प्रदर्शन करने में लगे रहेंगे। सभी द्विज याचना करेंगे। सतत् पिता-माता की निन्दा पुत्रगण करेंगे। मुख से तो धर्म की बातें करेंगे, तथापि चित्त पापलालुप रहेगा। वे धन, वित्त, विद्या तथा युवावस्था के मद में मत्त तथा सबको दुःख देने वाले रहेंगे।।६४-६८।।

व्याधितस्करदुर्भिक्षैः पीडिता अतिमायिनः।
प्रपुष्यन्ति वृथैवामी न विचार्य च दुष्कृतम्॥६९॥
धर्ममार्गप्रणेतारं तिरस्कुर्वन्ति पापिनः। धर्मकार्ये रतं चैव वृथाविश्रम्भिणो जनाः॥७०॥
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते राजानो म्लेच्छजातयः।
शूद्रा भैक्ष्यरताश्चैव तेषां शुश्रूषणे द्विजाः॥७१॥

जनता सर्वदा व्याधि, तस्करों तथा अकाल से त्रस्त रहेगी। लोग अपने द्वारा कृत दुष्कर्मों का पश्चाताप न करके उसे ही सही ठहरायेंगे। पापी लोग धर्ममार्ग का उपदेश देने वालों का अपमान करेंगे। जो पाखण्डी तथा आडम्बर करने वाले हैं, धर्मकार्य में निरत लोगों की निन्दा तिरस्कार करेंगे। कलि आने पर राजा भी म्लेच्छ जाति वाले होंगे। शूद्र साधु बनकर भिक्षाटन करेंगे। उनकी सेवा द्विजों द्वारा होगी।।६९-७१।।

न शिष्यो न गुरुः कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा।
न भार्या न पतिश्चैव भवितारोऽत्र सङ्करे॥७२॥
कलौ गते भविष्यन्ति धनाढ्या अपि याचकाः।
रसविक्रयिणश्चापि भविष्यन्ति द्विजातयः॥७३॥

कोई पुत्र पिता की, शिष्य गुरु की, भार्या पति की अपेक्षा नहीं करेगा। सभी वर्णसंकर हो जायेंगे। कलि के अन्तिम चरण के समय धनी भी याचना करेंगे। द्विज वर्जित कार्य रसविक्रय करेंगे।।७२-७३।।

धर्मकञ्चुकसंवीता मुनिवेषधरा द्विज। अपण्यविक्रयरता अगम्यागामिनस्तथा॥७४॥
वेदनिन्दापराश्चैव धर्मशास्त्रविनिन्दिकाः। शूद्रवृत्त्यैव जीवन्ति नरकार्हा द्विजा मुने॥७५॥
अनावृष्टिभयं प्राप्ता गगनासक्तदृष्टयः। भविष्यन्ति कलौ मर्त्याः सर्वेक्षुद्भयकातराः॥७६॥

धर्म की नकली चादर ओढ़कर द्विजगण वर्जित वस्तु बेचेंगे। वे अगम्या स्त्री से गमन करेंगे, वेदनिन्दारत रहेंगे। धर्मशास्त्र की निन्दा करेंगे। हे मुनिवर! वे नरक जाने के अधिकारी द्विज कलि में शूद्रवृत्ति से जीवन यापन करेंगे। लोग अनावृष्टि होने पर जलकामी होकर आसक्त दृष्टि से आकाश की ओर ताकेंगे। कलिकाल में मनुष्यगण क्षुधा तथा भय से कातर हो जायेंगे।।७४-७६।।

कन्दपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः। आत्मानं तारयिष्यन्ति अनाबृष्ट्यातिदुखिताः।।७७।।

कामार्ता ह्रस्वदेहाश्च लुब्धाश्चाधर्मतत्पराः।
कलौ सर्वे भविष्यन्ति स्वल्पभाग्या बहुप्रजाः।।७८।।
स्त्रियः स्वपोषणपरा वेश्या लावण्यशीलिकाः।
पतिवाक्यमनादृत्य सदान्यगृहतत्पराः।।७९।।
दुःशीला दुष्टशीलेषु करिष्यन्ति सदा स्पृहाम्।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः।।८०।।

चौरादिभयभीताश्च काष्ठयन्त्राणि कुर्वते। दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रुता जनाः।।८१।।

इस प्रकार वे कन्द, पत्र तथा फल खाकर जीवित रहेंगे। वे अनावृष्टि से दुःखी होकर येनकेनप्रकारेण जीवित रहने का प्रयत्न करेंगे। लोक कामार्त्त, नाटे, लोभी, अधर्मपरायण होंगे। सभी अल्पभाग्यवाले, तथापि प्रभूत सन्ततिसम्पन्न होंगे। उस समय की स्त्रियां अपने पोषण में लगी रहेंगी। वे वेश्या के साथ शृंगार को अपनायेंगी। वे पतिवाक्य की अहवेलना करके सदा अन्य लोगों के गृह में जायेंगी। वे सदा दुःशीला होकर दुष्टों को पाने की कामना करेंगी। कुलीन स्त्रियां भी घर के पुरुष के प्रति असत् आचरण करेंगी। जनता में चौरभय रहेगा। वे सदा दरवाजा, काष्ठयंत्र (ताला आदि) से घर की रक्षा करेंगे। दुर्भिक्ष तथा राज्य के करभार से पीड़ित जनता अत्यन्त त्रस्त हो जायेगी।।७७-८१।।

गोधूमान्नयवान्नाढ्ये देशे यास्यन्ति दुःखिताः।
निधाय हृद्यकर्माणि प्रेरयन्ति वचः शुभम्।।८२।।
स्वकार्यसिद्धिपर्यन्तं बन्धुतां कुर्वते जनाः।
भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसम्बन्धयन्त्रिताः।।८३।।

वह जनता दुःखी होकर उन देशों में जायेगी जहां गेहूं, जौ आदि प्राप्त हो सकें। मन में छल रहेगा परन्तु मुख से शुभ, मीठे, वाक्य बोलेंगे। जब तक अपना कार्य सिद्ध नहीं हो जाता, तभी तक लोग आपस में बन्धुत्व रखेंगे। भिक्षु (संन्यासी) भी मित्र-बन्धु आदि के ममत्व में आबद्ध रहेंगे।।८२-८३।।

अन्नोपाधिनिमित्तेन शिष्यान्गृह्णन्ति भिक्षवः।।८४।।
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञामुल्लंघयन्ति च।।८५।।

पाषण्डालापनिरता पाषण्डजनसङ्गिनः। यदा द्विजा भविष्यन्ति तदा वृद्धिं कलिर्व्रजेत्।।८६।।

संन्यासी, अन्न, सम्मान आदि के लिये शिष्य बनायेगे। स्त्रियां दोनों हाथ से शिर खुजलायेंगी। वे गुरुजन

तथा पति की आज्ञा की अहवेलना करेंगी। जब द्विजगण भी पाखण्डपूर्ण वार्तालाप करने लगें तथा पाखण्डियों का साथ करें, तब यह जान लें कि अब कलि की वृद्धि हो रही है।।८४-८६।।

यदा प्रजा न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः। तदैव तु कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥८७॥
अधर्मवृद्धिर्भविता बालमृत्युरपि द्विज। सर्वधर्मेषु नष्टेषु याति निःश्रीकतां जगत्॥८८॥
एवं कलेः स्वरूपं ते कथितं विप्र सत्तम। हरिभक्तिपरानेष न कलिर्बाधते क्वचित्॥८९॥

जब द्विजाति यज्ञ एवं होम त्याग कर दें, तब विद्वान् व्यक्ति कलिवृद्धि का अनुमान कर ले। हे द्विज! जब अधर्म की वृद्धि होती है, तब बाल्यावस्था में ही मृत्यु होने लगती है। सभी धर्मों के नाश हो जाने पर जगत् श्रीहीन हो जायेगा। हे ब्राह्मणसत्तम! इस प्रकार मैंने कलि का स्वरूप कहा। लेकिन जो हरिभक्तिपरायण है, उसे कलिकाल बाधा नहीं दे सकता।।८७-८९।।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव च। द्वापरे यज्ञवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥९०॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥९१॥

इसके अतिरिक्त सत्ययुग में तप, त्रेता में ध्यान, द्वापर में यज्ञ तथा एकमात्र दान कलिकाल के लिये कहा गया है। जो पुण्य कृतयुग में दस वर्ष, त्रेता में एक वर्ष, द्वापर में एक माह सत्कर्म द्वारा अर्जित होता है, वही पुण्य कलिकाल में मात्र एक अहोरात्र शुभकर्म करने से मिलता है।।९०-९१।।

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥९२॥
अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयन्ति च ये नराः। कुर्वन्ति हरिपूजां वा न कलिर्बाधते च तान्॥९३॥

कृतयुग में ध्यान द्वारा, त्रेता में यज्ञ द्वारा, द्वापर में अर्चना द्वारा, जो पुण्य मिलता है, वही कलिकाल में मात्र हरिकीर्त्तन से मिल जाता है। जो मनुष्य अहोरात्र हरिनाम कीर्त्तन करते हैं तथा हरिपूजा करते हैं, उनको कलि बाधा नहीं देता।।९२-९३।।

नमो नारायणायेति कीर्तयन्ति च ये नराः।
निष्कामा वा सकामा वा न कलिर्बाधते च तान्॥९४॥
हरिनामपरा ये तु घोरे कलियुगे द्विज। त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते च तान्॥९५॥
हरिपूजापरा ये च हरिनामपरायणाः। त एव शिवतुल्याश्च नात्र कार्या विचारणा॥९६॥

जो मनुष्य "नमो नारायणाय" का कीर्त्तन करते हैं, भले ही वे सकाम किंवा निष्काम क्यों न हों, कलि उनको बाधा नहीं देता। हे द्विज! जो कोई इस घोर कलिकाल में हरिनामपरायण रहते हैं, वे कृतार्थ हैं। उनको कलि कोई बाधा नहीं देता। जो हरिपूजा करते हैं तथा हरिनाम परायण हैं, वे साक्षात् शिवतुल्य हैं। इसमें कोई शंका न करे।।९४-९६।।

समस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम्। घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन्न सीदति॥९७॥
अहो अति सुभाग्यास्ते सकृद्वै केशवार्चकाः। घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते॥९८॥

न्यूनातिरिक्तदोषाणां कलौ वेदोक्तकर्मणाम्। हरिस्मरणमेवात्र संपूर्णत्वविधायकम्॥९९॥

जो समस्त जगत् के आधार, परमार्थ स्वरूप विष्णु का कलिकाल में ध्यान करता हैं, उसे कलि कष्ट प्रदान नहीं करता। अहो! वे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने सर्वधर्म रहित घोर कलियुग में एक बार भी केशव की अर्चना किया है। इस युग में किये गये वेदोक्त कर्मों में यदि न्यून अथवा अधिक दोष भले ही रह जाये, वह हरिनाम स्मरण से नष्ट हो जाता है। वह कर्म सम्पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है।।९७-९९।।

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय। इतीरयन्ति ये नित्यं नहि तान्बाधते कलिः॥१००॥

शिव शङ्कर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन।
इति जल्पन्ति ये वापि कलिस्तान्नापि बाधते॥१०१॥

हे हरि! केशव, गोविन्द, वासुदेव, हे जगन्मय—यह जो नित्य कहते हैं, उनको कलि बाधा नहीं होती। हे शिव! शंकर, रुद्रेश, नीलकण्ठ, त्रिलोचन का जो नित्य जप करते हैं, उनको भी कलि बाधा नहीं देता।।१००-१०१।।

महादेव विरूपाक्ष गङ्गाधर मृडाव्यय। इत्थं वदन्ति ये विप्र ते कृतार्था न संशयः॥१०२॥
जनार्दन जगन्नाथ पीताम्बरधराच्युत। इति वाप्युच्चरन्तीह न च तेषां कलेर्भयम्॥१०३॥

हे महादेव! विरूपाक्ष, गंगाधर, मृड, अव्यय, जो नित्य उच्चरित करता है, वह विप्र कृतार्थ हो जाता है। यह निःसंशय है। जनार्दन, जगन्नाथ, पीताम्बरधारी, अच्युत! इन नामों का जो उच्चारण करता है, उसे कलि का भय नहीं होता।।१०२-१०३।।

संसारे सुलभाः पुंसां पुत्रदारधनादयः। घोरे कलियुगे विप्र हरिभक्तिस्तु दुर्लभा॥१०४॥
कर्मश्रद्धाविहीना ये पाषण्डा वेदनिन्दकाः। अधर्मनिरता नैव नरकार्हाहरिस्मृतेः॥१०५॥

वेदमार्गबहिष्ठानां जनानां पापकर्मणाम्।
मनः शुद्धिविहीनानां हरिनाम्नैव निष्कृतिः॥१०६॥

इस असार संसार में पुत्र, स्त्री धनादि सुलभ हैं, परन्तु हे विप्र! घोर कलिकाल में हरिभक्ति दुर्लभ है। जो कर्म, श्रद्धा आदि से रहित, पाखण्डी, वेदनिन्दक हैं, वे भी हरिस्मरण के प्रभाव से नरक से त्राण पा जाते हैं। वेदमार्ग बहिष्कृत,। पापकर्मा, मन की शुद्धि से रहित लोगों के लिये केवल हरिनाम ही निष्कृति का मार्ग है।।१०४-१०६।।

दैवाधीनं जगत्सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम्। यथाप्रेरितमेतेन तथैव कुरुते द्विज॥१०७॥
शक्तितः सर्वकर्माणि वेदोक्तानि विधाय च। समर्पयेन्महाविष्णौर्नारायणपरायणः॥१०८॥
समर्पितानि कर्माणि महाविष्णौ परात्मनि। सम्पूर्णतां प्रयान्त्येव हरिस्मरणमात्रतः॥१०९॥

यह स्थावर-जंगमात्मक जगत् दैवाधीन है। दैव की जैसी प्रेरणा होती है, हे द्विज! वैसा ही वे करते हैं। अपनी शक्ति के अनुसार व्यक्ति सभी कार्य वेदोक्त विधि से करे। वह नारायण-परायण होकर सब कर्म परात्मा महाविष्णु को अर्पित करे। केवल मात्र हरिनाम स्मरण से सभी कर्म पूर्ण हो जाते हैं।।१०७-१०९।।

हरिभक्तिरतानां च पापबन्धो न जायते। अतोऽतिदुर्लभा लोके हरिभक्तिर्दुरात्मनाम्॥११०॥

अहो हरिपरा ये तु कलौ घोरे भयङ्करे। ते सुभाग्या महात्मानः सत्सङ्गरहिता अपि॥१११॥

हरिस्मरणनिष्ठानां शिवनामरतात्मनाम्।
सत्यं समस्तकर्माणि यान्ति सम्पूर्णतां द्विज॥११२॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं हरिनामरतात्मनाम्।
त्रिदशैरपि ते पूज्याः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥११३॥

तस्मात्समस्तलोकानां हितमेव मयोच्यते।
हरिनामपरान्मर्त्यान्न कलिर्बाधते क्वचित्॥११४॥

जो व्यक्ति हरिभक्ति में लीन रहते हैं, उनको पापबन्धन नहीं होता। दुरात्माओं के लिये लोक में हरिभक्ति अतीव दुर्लभ है। इस घोर भयानक कलिकाल में जो लोग हरिभक्तिपरायण रहते हैं तथा शिवनाम निरत रहते हैं, हे द्विज! उनके सभी कर्म सम्पूर्णत्व प्राप्त करते हैं। यह सत्य है। अहो! हरिनाम में निरत सज्जनों के भाग्य के विषय में क्या कहूं। अधिक कहने से क्या लाभ? वे तो देवपूजित हैं। तभी मैं सभी लोकों के हितार्थ कहता हूं। हरिनाम परायण व्यक्ति को कभी कलिबाधा नहीं हो सकती।।११०-११४।।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥११५॥

हरिनाम ही मेरा जीवन है। वही मेरा जीवन है। कलि में अन्य गति है ही नहीं।।११५।।

सूत उवाच

एवं स नारदो विप्राः सनकेन प्रबोधितः। परां निर्वृत्तिमापन्नः पुनरेतदुवाच ह॥११६॥

सूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! एवंविध सनक द्वारा नारद ने प्रबोधित होकर परम निर्वृत्ति को प्राप्त किया। तदनन्तर वे कहने लगे।।११६।।

नारद उवाच

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ त्वयातिकरुणात्मना। प्रकाशितं जगज्ज्योतिः परं ब्रह्म सनातनम्॥११७॥

एतदेव परं पुण्यमेतदेव परं तपः। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सर्वपापविनाशनम्॥११८॥

ब्रह्मन्नानाजगच्चैतदेकचित्संप्रकाशितम्। त्वयोक्तं तत्प्रतीयेऽहं कथं दृष्टान्तमन्तरा॥११९॥

तस्माद्येन यथा ब्रह्म प्रतीतं बोधितेन तु।
तदाख्याहि यथाचित्तं सीदत्स्थितिमवाप्नुयात्॥१२०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! आप सर्वशास्त्रवेत्ता हैं। आप परम कारुणिक हैं, क्योंकि आपने परब्रह्म सनातन रूप जगज्योति को प्रकाशित किया है। यही परम पुण्य हैं, यही परम तप है कि मानव पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करे, जो सर्वपापनाशक हैं। हे ब्रह्मन्! यह नानारूप में प्रकाशित जगत् एक ही प्रकाश से ज्योतित होता है, आप द्वारा कहे गये इस तत्व को बिना किसी दृष्टान्त द्वारा समझायें मैं कैसे समझ सकूंगा! इस कारण यह ब्रह्म किस प्रकार से प्रतीत तथा बोधित होता है, यह कहिये। तभी मेरा चित्त शान्त हो सकेगा।।११७-१२०।।

एतच्छ्रुत्वा वचो विप्रा नारदस्य महात्मनः। सनकः प्रत्युवाचेदं स्मन्नारायणं परम्॥१२१॥

महात्मा विप्रप्रवर महात्मा नारद का कथन सुनकर सनक ने नारायण का स्मरण करते हुये कहा—।।१२१।।

सनक उवाच

ब्रह्मन्नहं ध्यानपरो भवेयं सनन्दनं पृच्छ यथाभिलाषम्।
वेदान्तशास्त्रे कुशलस्तवायं निवर्तयेद्वा परमार्यवन्द्यः।।१२२।।

देवर्षि सनक कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अब मैं ध्यान तत्पर हो रहा हूं। अब आप मेरे भ्राता सनन्दन से अपनी इच्छानुसार प्रश्न करें। वे वेदान्त शास्त्रज्ञ हैं। वे वन्दनीय भी हैं। वे आपकी इच्छा को पूर्ण करेंगे।।१२२।।

इतिरितं समाकर्ण्य सनकस्य स नारद। सनन्दनं मोक्षधर्मान्प्रष्टुं समुपचक्रमे।।१२३।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे नाममाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

सनक ऋषि का वचन सुनकर देवर्षि नारद ने सनन्दन से मोक्ष धर्म पूछने के लिये उद्यत हो गये।।१२३।।

।।४१वां अध्याय समाप्त।।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

सृष्टि-वर्णन

श्री नारद उवाच

कुतः सृष्टमिदं ब्रह्मञ्जगत्स्थावरजङ्गमम्। प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि सनन्दन।।१।।
ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः। सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः।।२।।

कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः।
शौचाशौचं कथं तेषां धर्माधर्मविधः कथम्।।३।।
कीदृशो जीवतां जीवः क्व वा गच्छन्ति ये मृताः।
अस्माल्लोकादमुं लोकं सर्वं शंसतु मे भवान्।।४।।

देवर्षि नारद कहते हैं— हे ब्रह्मन्! जगत् में स्थावर-जंगम की सृष्टि कैसे हो गई? प्रलय में यह नष्ट होगा, वह तत्व कहिये। हे सनन्दन! भूमि, अग्नि, पवन, सागर, गगन, मेघ तथा लोकों को किसने निर्मित किया? कैसे प्राणीगण सृष्ट हुये, कैसे वर्ण विभाग किया गया? आप यह कहें कि संसार में शौच-अशौच, धर्म-

अधर्म विधि का प्रचलन कैसे हो सका? कैसे जीवन जीते हैं, कैसे वे मृत होते हैं? यह सब तत्त्व आप कहिये।।१-४।।

सनन्दन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि चेतिहास पुरातनम्। भृगुणाभिहितं शास्त्रं भरद्वाजाय पृच्छते।।५।।
कैलासशिखरे दृष्ट्वा दीप्यमानं महौजसम्। भृगुं महर्षिमासीनं भरद्वाजोऽन्वपृच्छत।।६।।

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे नारद! मैं प्राचीन इतिहास कहता हूं। आप इसका श्रवण करिये। इस प्रंसग को भरद्वाज द्वारा पूछे जाने पर भृगु ऋषि ने कहा था। भरद्वाज ऋषि ने जब कैलाश शिखरस्थ देदीप्यमान महातेजस्वी भृगुको देखा, तब उन्होंने उनसे प्रश्न किया।।५-६।।

भरद्वाज उवाच

कथं जीवो विचरति नानायोनिषु सन्ततम्। कथं मुक्तिश्च संसाराज्जायते तस्य मानद।।७।।
यश्च नारायणः स्रष्टा स्वयंभूर्भगवान्स्वयम्। सेव्यसेवकभावेन वर्तेते इति तौ सदा।।८।।
प्रविशन्ति लये सर्वे यमीशं सचराचराः। लोकानां रमणः सोऽयं निर्गुणश्च निरञ्जनः।।९।।
अनिर्देश्योऽप्रतर्क्यश्च कथं ज्ञायेत कैर्मुने। कथमेनं परात्मानं कालशक्तिदुरन्वयम्।।१०।।
अतर्क्यचरितं वेदाः स्तुवन्ति कथमादरात्।
जीवो जीवत्वमुल्लंघ्य कथं ब्रह्म समन्वयात्।।११।।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि कृपानिधे। एवं स भगवान्पृष्टो भरद्वाजेन संशयम्।।१२।।
महर्षिर्ब्रह्मसंकाशः सर्वं तस्मै ततोऽब्रवीत्।

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—''हे मान देने वाले! जीवगण किस प्रकार सदा नानायोनि में विचरते रहते हैं? उनकी संसार से मुक्ति कैसे होती है? भगवान् स्वयम्भु नारायण इसके स्वयं रचने वाले हैं। प्राणीगण सेव्य-सेवक भाव से विद्यमान रहते हैं, जब इस सचराचर का लय होता है, तब जिसमें यह सब प्रविष्ट हो जाता है, जो स्वयं ही लोकों में रमण करते हैं, जो निर्गुण-निरंजन, अनिर्देश्य तथा तर्क के परे तर्क से नहीं जाने जा सकते, हे मुनिवर! उनको कैसे जाना जा सकेगा? उन परमात्मा की दुरन्वय कालशक्ति कैसी है? उन तर्क से परे देव की स्तुति अत्यन्त आदर पूर्वक वेद कैसे करते हैं? जीव अपने जीवत्व का अतिक्रमण करके कैसे ब्रह्मपद लाभ करता है? हे कृपानिधि! यह सब मैं श्रवण करना चाहता हूं। हे कृपानिधि! कृपया कहिये।'' जब भरद्वाज ऋषि ने अपना संशय भगवान् भृगु से इस प्रकार पूछा, तब ब्रह्म के समान द्योतित भृगु उनसे कहने लगे।।७-१२।।

भृगुरुवाच

मानसो नाम यः पूर्वो विश्रुतो वै महर्षिभिः।।१३।।
अनादिनिधनो देवस्तथा तेभ्योऽजरामरः।
अव्यक्त इति विख्यातः शाश्वतोऽथाक्षयोऽव्ययः।।१४।।
यतः सृष्टानि भूतानि जायन्ते च म्रियन्ति च। सोऽसृजत्प्रथमं देवो महान्तं नाम नामतः।।१५।।

आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः। आकाशादभवद्वारि सलिलादग्निमारुतौ॥१६॥

महर्षि भृगु कहते हैं—पूर्व में महर्षिगण ने मानस नाम जिन देव की चर्चा किया है, वे अनादि निधनदेव अजर, अमर, अव्यक्त, शाश्वत, अक्षय, अव्यय नाम से प्रसिद्ध हैं। जिनसे समस्त भूत (प्राणी) समूह उत्पन्न होते हैं तथा मृत होते हैं, उन देवाधिदेव ने सर्वाग्र में महान् का सृजन किया था। वह सब भूतों को धारण करने वाला प्रभु आकाश नाम से विख्यात है। आकाश से जल तथा जल से अग्नि एवं मारुत् उत्पन्न हो गये।।१३-१६।।

अग्निमारुतसंयोगात्ततः समभवन्मही। ततस्तेजोमयं दिव्यं परमं सृष्टं स्वयम्भुवा॥१७॥

तस्मात्पद्मात्समभवद्‌ब्रह्मा वेदमयो विधिः। अहङ्कार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत्॥१८॥

ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः।
शैलास्तस्यास्थिसंघास्तु मेदो मासं च मेदिनी॥१९॥

अग्नि तथा मारुत् के संयोग से पृथिवी उत्पन्न हो गयी। तदनन्तर उन स्वयम्भु ने एक तेजोमय दिव्य पद्म की सृष्टि किया। उस पद्म से वेदमय विधि ब्रह्मा उत्पन्न हो गये। वे ही समस्त भूतसमूह को उत्पन्न करने वाले अहंकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे ब्रह्मा ही पंचधातु तथा महातेज हैं। शैल समूह उनकी अस्थियां हैं तथा उनका मेद-मांस ही पृथिवी है।।१७-१९।।

समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा। पवनश्चैव निश्वासस्तेजोऽग्निर्निम्नगाः शिराः॥२०॥

अग्नीषोमौ च चन्द्रार्कौ नयने तस्य विश्रुते।
नभश्चोर्ध्वशिरस्तस्य क्षितिः पादौ भुजौ दिशः॥२१॥
दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मा सिद्धैरपि न संशयः।
स एष भगवान्विष्णुरनन्त इति विश्रुतः॥२२॥

समुद्र उनका रक्त है। आकाश उनका उदर है। पवन तथा तेज उनका निश्वास है, निम्नगामिनी नदियां उन विधि के देह की शिरायें हैं। अग्नि-सोम अर्थात् सूर्य-चन्द्र उनके नेत्र कहे गये हैं। आकाश उनका शिर है, पृथिवी उनका पैर है, दसों दिशायें उनकी भुजायें हैं। ये अचिन्त्य आत्मा सिद्धों से भी दुर्विज्ञेय हैं। यह निःसंशय बात है। ये ही भगवान् विष्णु अनन्त नाम से प्रसिद्ध हैं।।२०-२२।।

सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः। अहङ्कारस्य यःस्त्रष्टा सर्वभूतभवाय वै।
ततः समभवद्विश्वं पृष्टोऽहं यदिह त्वया॥२३॥

अकृतात्मा लोग इन सर्वभूतात्मा को नहीं जान सकते। वे देव अहंकार के स्रष्टा तथा समस्त भूतसमूह के एकमात्र कारणरूप हैं। उनसे ही यह विश्व सृष्टि संभव होती है। आप द्वारा पूछे प्रश्न का मैंने उत्तर दे दिया।।२३।।

भरद्वाज उवाच

गगनस्य दिशां चैव भूतलस्यानिलस्य च।
कान्यत्र परिमाणानि संशयं छिन्धि तत्त्वतः॥२४॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—इस गगन, दिशा, भूतल वायु का परिणाम क्या है? यह बतला कर मेरा संशय उच्छिन्न करिये।।२४।।

भृगुरुवाच

अनन्तमेतदाकाशं सिद्धैदैवसेवितम्। रम्यं नानाश्रयाकीर्णं यस्यान्तो नाधिगम्यते॥२५॥

ऊर्ध्वं गतेरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न पश्यतः।

तत्र देवाः स्वयंदीप्ता भास्कराभाग्निवर्चसः॥२६॥

ते चाप्यन्तं न पश्यन्ति नभसः प्रथितौजसः। दुर्गमत्वादनन्तत्वादिति मे वद मानद॥२७॥

महर्षि भृगु कहते हैं—यह सिद्ध तथा देवगण द्वारा सेवित आकाश अनन्त है। यह नाना रम्य आश्रय स्थानों में फैला हुआ है। इसका अन्त ज्ञात नहीं होता। गति के ऊर्ध्व में तथा अधः में चन्द्र तथा सूर्य तक परिलक्षित नहीं होते। जो स्वयं प्रकाशित सूर्य तथा अग्नि के समान दीप्त देवता हैं, वे भी तेजस्वी आकाश का अन्त नहीं देख सकते। हे मानद! उस दुर्गम तथा अनन्त का परिमाण कौन कह सकेगा? यह तुम बतलाओ!।।२५-२७।।

उपरिष्टोपरिष्टात्तु प्रज्वलद्भिः स्वयंप्रभैः। निरुद्धमेतदाकाशं ह्यप्रमेयं सुरैरपि॥२८॥

पृथिव्यन्ते समुद्रास्तु समुद्रान्ते तमः स्मृतम्।

तमसोऽन्ते जलं प्राहुर्जलस्यान्तेऽग्निरेव च॥२९॥

रसातलान्ते सलिलं जलान्ते पन्नगाधिपाः। तदन्ते पुनराकाशमाकाशान्ते पुनर्जलम्॥३०॥

अपनी स्वयम्प्रभा से प्रज्वलित के समान तथा उत्तरोत्तर तेजोद्भासित इस आकाश का क्या परिमाण है, यह देवगण को भी अज्ञात है। पृथिवी के अन्त में समुद्र है। उसके अन्त में तमः है। तमः के अन्त में जल है। जल के अन्त में अग्नि कहा गया है। एवंविध रसातल के अन्त में जल की स्थिति है। जल के अन्त में नागों के अधिपति शेष हैं। उनके अन्त में पुनः आकाश ही है। आकाश के अन्त में पुनः जल है।।२८-३०।।

एवमन्तं भगवतः प्रमाणं सलिलस्य च। अग्निमारुततोयेभ्यो दुर्ज्ञेयं दैवतैरपि॥३१॥

अग्निमारुततोयानां वर्णाः क्षितितलस्य च।

आकाशसदृशा ह्येते भिद्यन्ते तत्त्वदर्शनात्॥३२॥

इस तरह के भगवान् आकाश का एवं जल का परिमाण अग्नि-वायु नहीं कह सकते, यह तो देवताओं के लिये भी दुर्ज्ञेय है। अग्नि-वायु-जल-पृथिवी के वर्ण में अन्तर नहीं है। वे सब आकाशवत् हैं, तथापि तत्वदर्शन से ही इनका भिन्नत्व ज्ञात हो सकेगा।।३१-३२।।

पठन्ति चैव मुनयः शास्त्रेषु विविधेषु च। त्रैलोक्ये सागरे चैव प्रमाणं विहितं यथा॥३३॥

अदृश्यो यस्त्वगम्यो यः कः प्रमाणमुदीरयेत्।

सिद्धानां देवतानां च परिमीता यदा गतिः॥३४॥

तदागण्यमनन्तस्य नामानन्तेति विश्रुतम्। नामधेयानुरूपस्य मानसस्य महात्मनः॥३५॥

मुनिगण ने नाना शास्त्रों में त्रैलोक्य तथा समुद्र के विस्तार का प्रमाण कहा है। लेकिन अदृश्य, अगम्य के प्रमाण को कौन कह सकेगा? सिद्ध तथा देवताओं की गति एक सीमा तक ही परिमित है। अगम्य आकाश का उनको ज्ञान नहीं है, तभी इसे अनन्त कहा गया है। महात्मा मानस भी अपने नाम के अनुरूप ऐसे ही हैं।।३३-३५।।

यदा तु दिव्यं यद्रूपं ह्रसते वर्द्धते पुनः। कोऽन्यस्तद्वेदितुं शक्यो योऽपि स्यात्तद्विधोऽपरः।।३६।।

ततः पुष्करतः सृष्टः सर्वज्ञो मूर्तिमान्प्रभुः। ब्रह्मा धर्ममयः पूर्वः प्रजापतिरनुत्तमः।।३७।।

उन देवमानस का रूप बढ़ता है, कभी घटता है। अतः जो अपर देवगण हैं (जो पर नहीं हैं) वे किस प्रकार उस आकाश के परिमाण आदि को जान सकेंगे? उन सर्वज्ञदेव प्रभु ने पुष्कर (पद्म) सृजन से पूर्व धर्ममय पूर्व प्रजापति अनुत्तम ब्रह्मा को उत्पन्न किया था।।३६-३७।।

भरद्वाज उवाच

पुष्करो यदि संभूतो ज्येष्ठं भवति पुष्करम्। ब्रह्माणं पूर्वजं चाह भवान्संदेह एव मे।।३८।।

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—यदि पहले पुष्कर उत्पन्न था, तब तो पुष्कर ही ज्येष्ठ है, तथापि आपने तो ब्रह्मा को उससे पूर्व उत्पन्न कहा, इससे मुझे सन्देह हो रहा है।।३८।।

भृगुरुवाच

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता। तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते।।३९।।

कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान्सृजत्येष जगद्विधिः।।४०।।

ऋषि भृगु कहते हैं—मानस की जिस मूर्त्ति ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया था, उनके आसनार्थ पृथिवी को पद्म कहा गया है। उस पद्म की कर्णिका मेरु है, जो गगनचुम्बी पर्वत है। उस मेरुमध्य में स्थित विधि ब्रह्मा लोकों का सृजन करते हैं।।३९-४०।।

भरद्वाज उवाच

प्रजाविसर्गं विविधं कथं स सृजति प्रभुः। मेरुमध्ये स्थितो ब्रह्मा तद्बहिर्द्विजसत्तम।।४१।।

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—हे प्रभु! हे द्विजसत्तम! मेरु मध्य में स्थित रहकर ब्रह्मा उसके बाहर कैसे विविध प्रजा सृष्टि करते हैं?।।४१।।

भृगुरुवाच

प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसाऽसृजत्। संरक्षणाय भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम्।।४२।।

यत्प्राणाः सर्वभूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम्।
यत्प्राणाः सर्वभूतानां वर्द्धते येन च प्रजाः।।४३।।

परित्यक्ताश्च नश्यन्ति तेनेदं सर्वमावृतम्। पृथिवी पर्वता मेघा मूर्तिमन्तश्च ये परे।
सर्व तद्वारुणं ज्ञेयमापस्तस्तंभिरे पुनः।।४४।।

ऋषि भृगु कहते हैं—मानस ने विविध प्रजाओं की सृष्टि सर्वाग्र में अपने मन से किया। उन्होंने समस्त भूत (प्राणी) समूह के संरक्षणार्थ पहले जल की सृष्टि किया। जो सब भूतों का प्राण है, उस जल की उन्होंने सर्वप्रथम सृष्टि किया। जिसके द्वारा सभी भूतसमूह वर्द्धित होते हैं, जिसके अभाव में प्रजा तथा प्राणीगण नष्ट हो जाते हैं, उससे यह सब कुछ आवृत है। जितने मूर्त्त पदार्थ पृथिवी-पर्वत-मेघादि हैं, वे सब वारुण (जल) ही हैं। यहां जल ही घन होकर इन रूपों वाला हो गया।।४२-४४।।

भरद्वाज उवाच

कथं सलिलमुत्पन्नं कथं चैवाग्निमारुतौ। कथं वा मेदिनी सृष्टेत्यत्र मे संशयो महान्॥४५॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—जल की उत्पत्ति तथा अग्नि-मारुत् की उत्पत्ति किस तरह से हो गई? कब पृथिवी सृष्ट हो गई? इसमें मुझे महान् संशय है।।४५।।

भृगुरुवाच

ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन् ब्रह्मर्षीणां समागमे। लोकसम्भवसन्देहः समुत्पन्नो महात्मनाम्॥४६॥

तेऽतिष्ठन्ध्यानमालम्ब्य मौनमास्थाय निश्चलाः।
त्यक्ताहाराः स्पर्द्धमाना दिव्यं वर्षशतं द्विजाः॥४७॥
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत्।
दिव्या सरस्वती तत्र सम्बभूव नभस्तलात्॥४८॥

पुरास्तिमितमाकाशमनन्तमचलोपमम्। नष्टचन्द्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव सम्बभौ॥४९॥

महर्षि भृगु कहते हैं—पूर्व ब्रह्मकल्प में सभी ब्रह्मर्षियों का समागम हुआ। हे ब्रह्मन्! उन महात्मागण में लोक उत्पत्ति सम्बन्धित सन्देह उत्पन्न हो गया था। यह जानने हेतु वे ध्यानस्थ, मौनी होकर निश्चल हो गये। उन्होंने सौ दिव्य वर्ष पर्यन्त (१ दिव्य वर्ष=३६० मानव वर्ष) आहार तक त्याग दिया, क्योंकि वे सभी सन्देह का निराकरण जानना चाहते थे। अन्ततः उन सबको ब्रह्ममयी वाणी श्रुतिगोचर हो गयी अर्थात् आकाश में दिव्या सरस्वती का आविर्भाव हो गया। उसी समय वह आकाश जो अनन्त था अचपल हो गया। उस समय चन्द्र, सूर्य, पवन नष्ट हो गये। वह प्रसुप्तवत् लग रहा था।।४६-४९।।

ततः सलिलमुत्पन्नं तमसीव तमः परम्। तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः॥५०॥

यथाभवनमच्छिद्रं निःशब्दमिव लक्ष्यते।
तच्चाम्भसा पूर्यमाणं सशब्दं कुरुतेऽनिलः॥५१॥

तथा सलिलसंरुद्धे नभसोऽन्तं निरन्तरे। भित्त्वार्णवतलं वायुः समुत्पतति घोषवान्॥५२॥

एषु वै चरते वायुरर्णवीत्पीडसम्भवः। आकाशस्थानमासाद्य प्रशान्तिं नाधिगच्छति॥५३॥

तस्मिन्वाय्वम्बुसंघर्षे दीप्ततेजा महाबलः।
प्रादुरासीदूर्ध्वशिखः कृत्वा निस्तिमिरं तमः॥५४॥

तब जल उत्पन्न हो गया। जैसे तमः से ही अन्धकार उत्पन्न होता है, तदनुरूप जल को निष्पीड़ित करता

मारुत उत्पन्न हो गया। जैसे छिद्र रहित भवन निःशब्दवत् लगता है, उसी प्रकार जल भर जाने के कारण वायु सशब्द हो गया। उसी प्रकार जल संरुद्ध समुद्रतल का भेदन करता शब्दयुक्त वायु आकाश में ऊर्ध्वोत्थित होता है। अतः वायु समुद्र की गति तथा उसके कम्पन से गतियुक्त होता है। वायु आकाशगत् होकर भी शान्त नहीं होता। वायु तथा जल के संघर्ष द्वारा महाबली दीप्ततेजा अग्नि प्रकट हो गया। उसकी शिखा ऊर्ध्वोत्थित होने लगी तथा तमः अन्धकार रहित हो गया।।५०-५४।।

अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिपते जलम्। तदग्निवायुसम्पर्काद्धनत्वमुपपद्यते॥५५॥

तस्याकाशं निपतितः स्नेहात्तिष्ठति योऽपरः।
स सङ्घातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति॥५६॥

रसानां सर्वगन्धानां स्नेहानां प्राणिनां तथा। भूमिर्योनिरियं ज्ञेया यस्याः सर्वं प्रसूयते॥५७॥

अग्नि तथा पवन संयुक्त हो जाने पर आकाश में जल आक्षिप्त होता है। तब अग्नि एवं वायु संयोग के कारण जल में घनत्व उत्पन्न होता है। वह आकाश में जाकर बादल का रूप धारण करता है। वह जब आकाश में ऊर्ध्वोत्थित होता है तथा अपने जलीय भाग का वर्षण करता है, तब उसमें स्थित स्नेहभाग वहीं ऊपर रह जाता है। वह संघातत्व उत्पन्न होने के कारण भूमि का रूप लेता है। यही भूमि ऐसी योनि है, जहां से सब उत्पन्न होते हैं। रस, सभी गन्ध, स्नेह, प्राणीगण, सब वहीं से उत्पन्न होते हैं।।५५-५७।।

भरद्वाज उवाच

य एते धातवः पञ्च रक्ष्या यानसृजत्प्रभुः। आवृता यैरिमे लोका महाभूताभिसंज्ञितैः॥५८॥

यदाऽसृजत्सहस्राणि भूतानां स महामतिः। पश्चात्तेष्वेव भूतत्वं कथं समुपपद्यते॥५९॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—इन पांच धातुओं को प्रभु ने उत्पन्न किया है। इनसे समस्त लोक आवृत हैं। इनको महाभूत कहा जाता है। जब उन महामति ने सहस्रों प्राणीगण की रचना किया, तब क्या वे भूत कहलाये? तत्पश्चात् उनमें भूतत्व कब उत्पन्न हो गया?।।५८-५९।।

भृगुरुवाच

अमितानि महाष्टानि यान्ति भूतानि सम्भवम्। अतस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते॥६०॥

चेष्टा वायुः खमाकाशमूष्माग्निः सलिलं द्रवः।
पृथिवी चात्र सङ्घातः शरीरं पाञ्चभौतिकम्॥६१॥

इत्यतः पञ्चभिर्युक्तैर्युक्तं स्थावरजङ्गमम्। श्रोत्रे घ्राणो रसः स्पर्शो दृष्टिश्चेन्द्रियसंज्ञिताः॥६२॥

ऋषि भृगु कहते हैं—इन पंच महाभूत से ही आठ महाभूत उत्पन्न होते हैं। अतः पांचों का महाभूत नाम उचित है। प्राणीगण की चेष्टा वायु है। आकाश, ऊष्मा, अग्नि है तथा जल द्रव हैं। पृथिवी का संघात होने से यह शरीर पांच भौतिक हो जाता है। (वायु शरीर की चेष्टा है। आकाश शरीर का स्थान है, इसकी उष्मा अग्नि है। इसमें स्थित रक्तादि पदार्थ जल है। इसका ठोस पदार्थ ही भूमि (पृथिवी तत्व है) यह पंचमहाभूतों का संघात ही देह है। समस्त स्थावर-जंगम पंचमहाभूत से निर्मित हैं। श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् तथा दृष्टि (नेत्र) ही पांच इन्द्रियां हैं।।६०-६२।।

भरद्वाज उवाच

पञ्चभिर्यदि भूतैस्तु युक्ताः स्थावरजङ्गमाः। स्थावरणां न दृश्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः॥६३॥
अनूष्मणामचेष्टानां घनानां चैव तत्त्वतः। वृक्षाणां नोपलभ्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः॥६४॥
न शृण्वन्ति न पश्यन्ति न गन्धरसवेदिनः।
न च स्पर्शं हि जानन्ति ते कथं पञ्च धातवः॥६५॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—यहां समस्त स्थावर-जंगम इन पंचभूतों से युक्त हैं, तब स्थावर पदार्थों में ये पंच धातु परिलक्षित क्यों नहीं होते? वृक्ष में चेष्टा तथा उष्मा नहीं है। अतः उनमें पंच धातु नहीं है। वे न तो देखते हैं, न सुनते हैं, उनमें गन्ध संवेदना एवं रस संवेदन नहीं हैं। वे स्पर्श नहीं जानते! अतः उनमें पंचधातु कैसे है?।।६३-६५।।

अद्रवत्वादनग्नित्वादभूमित्वादवायुतः। आकाशस्याप्रमेयत्वाद्वृक्षाणां नास्ति भौतिकम्॥६६॥

उन वृक्षों में द्रवत्व, अग्नित्व, भूमित्व, वायुत्व नहीं है। आकाश के अप्रमेयत्व के कारण वृक्ष भौतिक नहीं हैं।।६६।।

भृगुरुवाच

घनानामपि वृक्षाणामाकाशोऽस्ति न संशयः। तेषां पुष्पफलव्यक्तिर्नित्यं समुपपद्यते॥६७॥
ऊष्मतो म्लायते पर्णं त्वक्फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥६८॥
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥६९॥
वल्ली वेष्टयते वृक्षान्सर्वतश्चैव गच्छति।
नह्यदृष्टश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः॥७०॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाःपुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः॥७१॥
सुखदुःखयोर्ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते॥७२॥

महर्षि भृगु कहते हैं—अत्यन्त घनत्वपूर्ण (ठोस) वृक्षों में भी निःसंशयरूपेण आकाश है। तभी उनमें से पुष्प-फलादि की सतत् उत्पत्ति होती है। ऊष्मा से पत्ती, छाल, पुष्प, म्लान हो जाते हैं। वे शुष्क होकर भूपतित हो जाते हैं। अतः क्या वे स्पर्श ज्ञान रहित हैं? वायु, वज्रपात के निर्घोष से आकाशीय विद्युत् की कड़क से उनके फल-पुष्प विशीर्ण हो जाते हैं। अतः वृक्ष श्रोत्र से शब्द सुनते हैं। लतायें वृक्ष को चारों ओर से घेर लेते हैं। उनको बिना दृष्टि शक्ति के यह कैसे दिखलाई देता है? पुण्य-अपुण्य-विविध गन्ध से तथा सूर्य-चन्द्र किरणों के स्पर्श से ये वृक्ष व्याधि रहित तथा फलित-पुष्पित होते हैं। वृक्ष सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। अतः वे सूंघते हैं तथा काटे जाने पर पुनः वर्द्धित हो जाते हैं। उनमें जीव है। वे अचैतन्य कदापि नहीं हैं।।६७-७२।।

तेन तज्जलमादत्ते जरयत्यग्निमारुतौ। आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते॥७३॥
जङ्गमानां च सर्वेषां शरीरे पञ्च धातवः। प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यै शरीरं विचेष्टते॥७४॥

त्वक् च मांसं तथास्थीनि मज्जा स्नायुश्च पञ्चमः।
इत्येतदिह सङ्घातं शरीरे पृथिवीमये॥७५॥
तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च।
अग्निर्जनयते यच्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः॥७६॥

श्रोत्रं घ्राणं तथास्यं च हृदयं कोष्ठमेव च। आकाशात्प्राणिनामेते शरीरे पञ्च धातवः॥७७॥

श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च।
इत्यापः पञ्धाः देहे भवति प्राणिनां सदा॥७८॥
प्राणात्प्रीणयते प्राणी व्यानाद्व्यायच्छते तथा।
गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानो हृद्यवस्थितः॥७९॥
उदानादुच्छ्वसितीति पञ्च (प्रति) भेदाच्च भाषते।
इत्येते वायवः पञ्च वेष्टयन्तीह देहिनम्॥८०॥
भूमेर्गन्धगुणान्वेति रसं चाद्भ्यः शरीरवान्।
तस्य गन्धस्य वक्ष्यामि विस्तराभिहितान्गुणान्॥८१॥

इष्टश्चानिष्टगन्धश्च मधुरः कटुरेव च। निर्हारी संहतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च॥८२॥

एवं नवविधो ज्ञेयः पार्थिवो गन्धविस्तरः।
ज्योतिः पश्यति चक्षुर्भ्यः स्पर्शं वेत्ति च वायुना॥८३॥
शब्दः स्पर्शश्च रुपं च रसश्चापि गुणाः स्मृताः।
रसज्ञानं तु वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु॥८४॥

वे जल का पान करते हैं। अग्नि तथा वायु के प्रभाव से उनमें जरा भी (वृद्धत्व भी) आता है। आहार के परिणाम से उनमें स्नेह (रस) उत्पन्न होता है। सभी जंगमों में (प्राणियों में) पंचधातु हैं। विविध शारीरिक चेष्टा से इनका प्रत्यक्ष होता है। त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा, स्नायु का संघात ही पृथिवीमय देह है। तेज, अग्नि, क्रोध, चक्षु तथा ऊष्मा अग्नि से उत्पन्न हैं। ये देहस्थ आग्नेय तत्व हैं। कर्ण, नासिका, मुख, हृदय, कोष्ठ आकाशोत्पन्न देहस्थ तत्व हैं। प्राणीदेहस्थ कफ, पित्त, स्वेद, वसा, रक्त जल का ही रूप है। प्राणी **प्राणवायु** द्वारा सन्तुष्ट होता है। **व्यानवायु** से वह अंग फैलाता है। **अपानवायु** अधः भाग से बहिर्गत् होता है। **समानवायु** हृदयस्थ है। **उदानवायु** का कार्य है उच्छ्वास त्याग। ये वायु के पंच भेद उक्त हैं। ये देह को घेरे रहते हैं। यह देह भूमितत्व के प्रभाव से गन्ध लेता है, जलतत्व के कारण रसास्वादन करता है। अब मैं विस्तार के साथ गन्ध के गुणों का वर्णन करता हूं। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रुक्ष, विशद—ये पृथिवी तत्वस्थ नव प्रकार के गन्ध हैं। चक्षु ज्योति दे देखते हैं। वायु से स्पर्शज्ञान होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस ये गुण हैं। अब गन्ध ज्ञानोपरान्त रस ज्ञान सुनिये।।७३-८४।।

रसो बहुविधः प्रोक्त ऋषिभिः प्रथितात्मभिः।
मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोऽम्लः कटुस्तथा॥८५॥
एष षड्विधविस्तारो रसो वारिमयः स्मृतः।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते॥८६॥
ज्योतिः पश्यति रूपाणि रूपं च बहुधा स्मृतम्।
ह्रस्वो दीर्घस्तथा स्थूलश्चतुरस्रोऽणुवृत्तवान्॥८७॥
शुक्लः कृष्णस्तथा रक्तो नीलः पीतोऽरुणस्तथा।
कठिनश्चिक्कणः श्लक्ष्णः पिच्छिलो मृदु दारुणः॥८८॥
एवं षोडशविस्तारो ज्योतीरूपगुणः स्मृतः।
तत्रैकगुणमाकाशं शब्द इत्येव तत्स्मृतम्॥८९॥

प्रथितात्मा ऋषिगण द्वारा रस अनेक प्रकार के वर्णित हैं। मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अम्ल, कटु ये षड्विध रस हैं, जो जलमय कहे जाते हैं। शब्द-स्पर्श-रूप ये ज्योतिः के गुणत्रय हैं। ज्योति के द्वारा ही रूपदर्शन होता है। रूप अनेक प्रकार के होते हैं। यथा—ह्रस्व-दीर्घ-स्थूल-चतुष्कोण, अणु, शुक्ल, कृष्ण, रक्त, पीत, नील, अरुणवर्ण, कठिन, चिकना, पिच्छिल (जिस पर फिसल जाते हैं), मृदु, दारुण। ये सोलह प्रकार के ज्योति से देखे जाने वाले रूप हैं। आकाश का मात्र एक ही गुण वर्णित है। वह है शब्द।।८५-८९।।

तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरं विविधात्मकम्।
षड्जो ऋषभगान्धारौ मध्यम धैवतस्तथा॥९०॥
पञ्चमश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान्।
एष सप्तविधः प्रोक्तो गुण आकाशसम्भवः॥९१॥
ऐश्वर्य्येण तु सर्वज्ञ स्थितोऽपि पटहादिषु। मृदङ्गभेरीशंखानां स्तनयित्नो रथस्य च॥९२॥
एवं बहुविधाकारः शब्द आकाशसम्भवः।
वायव्यस्तु गुणः स्पर्शः स्पर्शश्च बहुधा स्मृतः॥९३॥

मैं विस्तृतरूपेण शब्द के विविध भेद को कहता हूं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, पंचम निषाद ये आकाशोद्भूत शब्द के सप्तगुण हैं। आकाश से उद्भूत शब्द पटह आदि में, मृदंग, भेरी, शंख, बादल (मेघ) तथा रथ के शब्द आदि विभिन्न रूपों के कारण नानाविध हो जाता है। वायु का गुण है स्पर्श। यह भी अनेक प्रकार का कहा गया है।।९०-९३।।

उष्णः शीतः सुखं दुःख स्निग्धो विशद एव च।
तथा खरो मृदुःश्लक्ष्णो लघुर्गुरुतरोऽपि च॥९४॥
शब्दस्पर्शौ तु विज्ञेयौ द्विगुणौ वायुरित्युत। एवमेकादशविधो वायव्यो गुण उच्यते॥९५॥
आकाशजं शब्दमाहुरेभिर्वायुगुणैः सह। अव्याहतैश्चेतयते नवेति विषमा गतिः॥९६॥

आप्यायन्ते च ते नित्यं धातवस्तैस्तु धातुभिः।
आपोऽग्निर्मारुतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु॥९७॥

स्पर्श के भेद हैं—उष्ण, शीत, सुख-दुःख, स्निग्ध, विशद, खर, मृदु, चिकना, लघु, गुरुतर। वायु के शब्द तथा स्पर्श ये दो गुण हैं। ये दो तथा पूर्वकथित नौ। सब मिलाकर वायु के गुण एकादश हैं। शब्द आकाश से उद्भूत होता है। यह विचारणीय है कि यह वायुगुणों को अव्याहत चेतना देता है किंवा नहीं। ये धातु अन्य धातुओं के साथ उनके संसर्ग से आप्यायित होते जाते हैं। जल-अग्नि तथा वायु देहीगण में सतत् जाग्रत रहते हैं।।९४-९७।।

मूलमेते शरीरस्य व्याप्य प्राणानिह स्थिताः।
पार्थिवं धातुमासाद्य तथा चेष्टयते बली॥९८॥
श्रितो मूर्द्धानमग्निस्तु शरीरं परिपालयेत्।
प्राणा मूर्द्धनि वाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते॥९९॥
स जन्तुः सर्वभूतात्मा पुरुषः स सनातनः।
मनो बुद्धिरहङ्कारो भूतानि विषयश्च सः॥१००॥
एवं त्विह स सर्वत्र प्राणैस्तु परिपाल्यते।
पृष्ठतस्तु समानेन स्वां स्वां गतिमुपाश्रितः॥१०१॥

ये देह के मूलतत्व हैं। ये प्राण में व्याप्त होकर स्थित हैं। बली वायु पार्थिव धातुओं के साथ क्रिया की उत्पत्ति करता है। अग्नि मस्तकस्थ होकर शरीर का पालन करता है। प्राण मूर्द्धा में अग्नि के साथ चेष्टा करता है। वह प्राणी सर्वभूतात्मा सनातन पुरुष है। वही मन, बुद्धि, अहंकार, भूतसमूह का विषय भी है। वह देह में सर्वत्र प्राणों द्वारा परिपालित होता है। पृष्ठतः वह समान वायु द्वारा अपनी गति को प्राप्त करता है।।९८-१०१।।

वस्तिमूलं गुदं चैव पावकं समुपाश्रितः। वहन्मूत्रं पुरीषं वाप्यपानः परिवर्तते॥१०२॥
प्रयत्ने कर्मनियमे च एकस्त्रिषु वर्तते। उदान इति तं प्राहुरध्यात्मज्ञानकोविदाः॥१०३॥
सन्धिष्वपि च सर्वेषु संन्निविष्टस्थानिलः। शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते॥१०४॥
बाहुष्वग्निस्तु विततः समानेन समीरितः। रसान्बाहूँश्च दोषांश्च वर्तयन्नतिचेष्टते॥१०५॥

अपान वायु वस्तिमूत, गुदा तथा शरीराग्नि से गति पाकर मूत्र-मलादि का देह से निष्क्रमण कराता है। जो वायु देहगत प्रयत्न, कर्मसंगठन में लगा रहता है आध्यात्मविद् लोग उसे उदानवायु कहते हैं। व्यानवायु मनुष्य देह की प्रत्येक संधि में विराजित रहता है। समानवायु से समीरित होकर अग्नि ही बाहु आदि अंगों को प्रसारित करता है। यह वायु रस, बाहु तथा दोष (कफ-पित्त-वायु) से सम्बन्ध होकर क्रियारत हो जाता है।।१०२-१०५।।

अपानप्राणयोर्मध्ये प्राणापानसमीहितः।
समन्वितस्त्वधिष्ठानं सम्यक् पचति पावकः॥१०६॥

आस्यं हि पायुपर्यन्तमन्ते स्याद्गुदसंज्ञिते। रेतस्तस्मात्प्रजायन्ते सर्वस्त्रोतांसि देहिनाम्॥१०७॥

प्राणानां सन्निपाताच्च सन्निपातः प्रजायते।
ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनाम्॥१०८॥
अग्निवेगवहः प्राणो गुदान्ते प्रतिहन्यते।
स ऊर्ध्वमागम्य पुनः समुत्क्षिपति पावकम्॥१०९॥
पक्वाशयस्त्वधो नाभ्या ऊर्ध्वमामाशयः स्मृतः।
नाभिमूले शरीरस्य सर्वे प्राणाश्च संस्थिताः॥११०॥

अपान तथा प्राण के मध्य में प्राण एवं अपान से चालित एवं युक्त होकर अग्नि भोजन का पाक देह में सम्यक् रूप से करता है। मुख से ग्रहण किये भोज्य पदार्थ को पचाकर गुदा तक अपच्छिष्ट को ले जाना अग्नि तथा वायु का काम है। इससे देहीगण के सभी स्रोतों में वीर्य उत्पन्न होता है। (इसी से देह के सभी स्रोत बनते हैं)। प्राणों के सन्निपात द्वारा सन्निपात रोगोत्पत्ति होती है। ऊष्मा ही अग्नि है, जो देहीगण के देह में अन्नपाक करती है। अग्नि के वेग के कारण प्राणवायु गुदा तक जाकर उसके अन्तिम विन्दु पर आघात करता है। वह पुनः पावक को ऊर्ध्व में उत्क्षिप्त कर देता है। नाभि के अधः में पक्वाशय तथा ऊर्ध्व में आमाशय है। शरीरस्थ नाभिमूल में सभी प्राण स्थित रहते हैं।।१०६-११०।।

प्रस्थिता हृदयात्सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा। वहन्त्यन्नरसान्नाड्यो दशप्राणप्रचोदिताः॥१११॥
एष मार्गोऽपि योगानां येन गच्छन्ति तत्पदम्।
जितक्लमाः समा धीरा मूर्द्धन्यात्मानमादधन्॥११२॥
एवं सर्वेषु विहितप्राणापानेषु देहिनाम्।
तस्मिन्समिध्यते नित्यमग्निः स्थाल्यामिवाहिताः॥११३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे भृगुभरद्वाजसंवादे जगदुत्पत्ति-
वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।

ये सभी हृदय से तिरछे ऊर्ध्व में तथा अधः में जाते हैं। दश प्राणों से प्रेरित होकर नाड़ियां रसों को सर्वत्र पहुंचाती हैं। यही प्राणमार्ग है, जिसका आश्रय लेकर योगीगण ब्रह्मपद लाभ कर लेते हैं। योगीगण बाधा रहित धीर स्थिति में मूर्द्धा में आत्मा को स्थापित कर देते हैं तथा आत्मपद लाभ करते हैं। यही देह में प्राण-अपानादि की स्थिति है। यह व्यवस्था ऐसी है, जिसमें पात्रस्थ अग्नि के समान शरीराग्नि नित्य उद्दीप्त रहती है।।१११-११३।।

।।४२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जीव गति, द्विजाचार का वर्णन

भरद्वाज उवाच

यदि प्राणपतिर्वायुर्वायुरेव विचेष्टते। श्वसित्याभाषते चैव ततो जीवो निरर्थकः॥१॥
य ऊष्मभाव आग्नेयो वह्निनैवोपलभ्यते। अग्निर्जरयते चैतत्तदा जीवो निरर्थकः॥२॥
जन्तोः प्रम्रियमाणस्य जीवो नैवोपलभ्यते। वायुरेव जहात्येनमूष्मभावश्च नश्यति॥३॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—यदि वायु ही प्राणों की गति है, वही चेष्टारत रहता है, वही श्वसन करता तथा वार्ता करता है, तब तो देहस्थ जीव व्यर्थ है। उष्मा अग्नि का गुण है। वह अग्नि से उपलब्ध होता है। व्यक्ति के देह को अग्नि ही जराग्रस्त करता है, तब जीव व्यर्थ है। जब जन्तु मर रहा होता है, तब जीव की कहीं भी उपलब्धि नहीं होती। यह वायु ही उस समय देह का त्याग करता है अतः शरीर की उष्णता समाप्त हो जाती है।।१-३।।

यदि वायुमयो जीवः संश्लेषो यदि वायुना। वायुमण्डलवत्पश्येद्गच्छेत्सह मरुद्गणैः॥४॥
संश्लेषो यदि वा तेन यदि तस्मात्प्रणश्यति। महार्णवविमुक्तत्वादन्यत्सलिलभाजनम्॥५॥
कूपे वा सलिलं दद्यात्प्रदीपं वा हुताशने। क्षिप्रं प्रविश्य नश्येत तथा नश्यत्यसौ यथा॥६॥

यदि वायु मय ही जीव है तथा वह वायु से ही संश्लिष्ट रहता है, वह वायुमण्डलवत् देखता है, मरुद्गण के साथ गमन करता है, तब तो वायु के साथ ही जीव का दृढ़ संयोग हो जाता है। तब वायु से अलग होते ही उसका नाश हो जाना निश्चित है। जैसे सागर का जल कूपादि में छोड़ने से नष्ट हो जाता है, जैसे दीपक प्रज्वलित अग्नि में छोड़ने से नष्ट हो जाता है यह भी वैसा ही है।।४-६।।

पञ्चधारणके ह्यस्मिञ्छरीरे जीवितं कृतम्। येषामन्यतराभावाच्चतुर्णां नास्ति संशयः॥७॥
नश्यन्त्यापो ह्यनाहाराद्वायुरुच्छ्‌वासनिग्रहात्।
नश्यते कोष्ठभेदार्थमग्निर्नश्यत्यभोजनात्॥८॥
व्याधिव्रणपरिक्लेशैर्मेदिनी चैव शीर्यते। पीडितेऽन्यतरे ह्येषां सङ्घातो याति पञ्चताम्॥९॥

जीव इस पांच भौतिक देह में जीवित रहता है। यदि देह में एक भी भूत का अभाव हो जाये, तब इस एक के अभाव से बाकी चार भूत का भी अभाव हो जायेगा। यह संदेह रहित तथ्य है। अनाहार से जल का, श्वास रोकने से वायु का, भोजन से अग्नि का तथा पृथिवी तत्व का नाश व्याधि-व्रणादि से होता है यदि इन पांच में से एक भी पीड़ित हो जाये, तब इन पांचों का जो एकत्र संघात देह का कारण है, वह नष्ट हो जायेगा।।७-९।।

तस्मिन्पञ्चत्वमापन्ने जीवः किमनुधावति।
किं खेदयति वा जीवः किं शृणोति ब्रवीति च॥१०॥
एषा गौः परलोकस्थं तारयिष्यति मामिति। यो दत्त्वा म्रियते जन्तुः सा गौः कं तारयिष्यति॥११॥

मृत्यु हो जाने पर जीव किसके पीछे दौड़ता है, वह क्या खेद करता है, क्या सुनता तथा कहता है? जो गौदान करके यह निश्चय करता है कि "दान में प्रदत्त गौ परलोक में मेरे उद्धार का कारण होगी" उसके मृत हो जाने पर गाय किसका उद्धार करेगी?।।१०-११।।

गौश्च प्रतिग्रहीता च दाता चैव समं यदा। इहैव विलयं यान्ति कुतस्तेषां समागमः॥१२॥
विहगैरुपभुक्तस्य शलाग्रात्पतितस्य च। अग्निना चोपयुक्तस्य कुतः संजीवनं पुनः॥१३॥
छिन्नस्य यदि वृक्षस्य न मूलं प्रतिरोहति। जीवन्यस्य प्रवर्तेत मृतः क्व पुनरेष्यति॥१४॥
जीवमात्रं पुरा सृष्टं यदेतत्परिवर्तते। मृता मृताः प्रणश्यन्ति बीजाद्बीजं प्रणश्यति॥१५॥
इति मे संशयो ब्रह्मन्हृदये परिधावति। ते निवर्तय सर्वज्ञ यतस्त्वामाश्रितो ह्यहम्॥१६॥

दान में प्रदत्त गौ, गौदाता तथा गौदान लेने वाला, ये तीनों इसी लोक में मृत हो जाते हैं, तब मरण के बाद उनका संयोग कैसे होगा? पक्षियों द्वारा खाये जाने पर, पहाड़ के शिखर से गिरकर मृत होने पर, अग्नि से जलने पर जीव कैसे पुनर्जीवित होगा? वृक्ष का तना काट दिया जाये, उससे जड़ नहीं उगती, तब प्राणी मृत होकर पुनः कैसे जन्म लेगा? पूर्वकाल में जो सृष्ट थे सभी मृत हो गये। बीज से उत्पन्न बीज भी नष्ट हो गये। हे सर्वज्ञ! मेरे मन में ये सब संशय हैं। हे सर्वज्ञ! आप इनको दूर करें। मैं शरणागत हूं।।१२-१६।।

सनन्दन उवाच

एवं पृष्टस्तदानेन स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः। पुनराह मुनिश्रेष्ठ तत्संदेहनिवृत्तये॥१७॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—जब मुनिप्रवर भरद्वाज ने यह सब प्रश्न किया, तब ब्रह्मपुत्र मुनिप्रवर भृगु ने भरद्वाज का सन्देह निवृत्त करने हेतु पुनः कहा—।।१७।।

भृगुरुवाच

न प्राणाः सन्ति जीवस्य दत्तस्य च कृतस्य च।
याति देहान्तरं प्राणी शरीरं तु विशीर्यते॥१८॥
न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन्नष्टे प्रणश्यति।
समिधामग्निदग्धानां यथाग्निर्दृश्यते तथा॥१९॥

महर्षि भृगु कहते हैं—ईश्वर प्रदत्त अथवा ईश्वररचित जीव के प्राण नहीं होते। वह देह की मृत्यु के उपरान्त अन्य देह पा लेता है। जैसे काष्ठ अग्नि में जल गया, तथापि दग्ध काष्ठ में अग्नि परिलक्षित होती है। इसी प्रकार शरीर के आश्रय में रहने वाला जीव देहनाश होने पर भी नष्ट नहीं होता।।१८-१९।।

भरद्वाज उवाच

अग्नेर्यथा तस्य नाशात्तद्विनाशो न विद्यते।
इन्धनस्योपयोगान्ते स वाग्निर्नोपलभ्यते॥२०॥
नश्यतीत्येव जानामि शान्तमग्निमनिन्धनम्।
गतिर्यस्य प्रमाणं वा संस्थानं वा न विद्यते॥२१॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—काष्ठ नष्ट हो जाने पर भी दग्ध काष्ठ में से अग्नि का नाश नहीं होता, तथापि यदि ईन्धन न हो, तब अग्नि की उपलब्धि ही नहीं होती। काष्ठ रहित अग्नि (ईन्धन रहित अग्नि) शान्त ही रहती है, अतः उसे नष्ट माना गया। ईन्धन के अभाव में अग्नि की गति, प्रमाण किंवा संस्थान ही नहीं रहता।।२०-२१।।

भृगुरुवाच

समिधामुपयोगान्ते स चाग्निर्नोपलभ्यते।
नश्यतीत्येव जानामि शान्तमग्निमनिन्धनम्॥२२॥

गतिर्यस्य प्रमाणं वा संस्थानं वा न विद्यते। समिधामुपयोगान्ते यथाग्निर्नोपलभ्यते॥२३॥

आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः।
तथा शरीरसन्त्यागे जीवो ह्याकाशवत्स्थितः॥२४॥
न नश्यते सुसूक्ष्मत्वाद्यथा ज्योतिर्न संशयः।
प्राणान्धारयते ह्यग्निः स जीव उपधार्यताम्॥२५॥

महर्षि भृगु कहते हैं—समिध् (ईन्धन) के अभाव में अग्नि की उपलब्धि नहीं होती। बिना ईन्धन शान्त अग्नि का गति, प्रमाण तथा संस्थान ज्ञात नहीं होता। साथ ही ईन्धन के उपयोग के अभाव में अथवा ईन्धन पूर्णतः जल जाने पर अग्नि परिलक्षित नहीं होता। निराधार वस्तु आकाश में रहता है। उसे ग्रहण ही नहीं कर सकते। तदनुरूप जीव देहत्यागोपरान्त आकाश के समान ही स्थित रह जाता है। अतः वह अतीव सूक्ष्मता के कारण ज्योतिवत् नष्ट नहीं होता, यह निःसंशय है। अग्नि प्राणों को धारण करता है। अतः अग्नि को ही जीव माने!।।२२-२५।।

वायुसंधारणो ह्यग्निर्नश्यत्युच्छ्वासनिग्रहात्।
तस्मिन्नष्टे शरीराग्नौ ततो देहमचेतनम्॥२६॥

पतितं याति भूमित्वमयनं तस्य हि क्षिति। जङ्गमानां हि सर्वेषां स्थावराणां तथैव च॥२७॥

आकाशं पवनोऽन्वेति ज्योतिस्तमनुगच्छति।
तेषां त्रयाणामेकत्वाद्द्वयं भूमौ प्रतिष्ठितम्॥२८॥

जब शरीर में श्वास (मरणोपरान्त) रुक जाता है, तब वायु पर आधारित अग्नि परिलक्षित नहीं होता। यह शरीराग्नि नष्ट होते ही देह अचेतन हो जाता है। देह नष्ट होकर भूमि में मिल जाता है। वही उसकी आवास भूमि जो है। समस्त स्थावर-जंगम का निवास स्थल है पृथिवी। वायु आकाश का तथा अग्नि पवन का अनुगामी है। इन तीनों का ऐक्य इनको भूमि में स्थित कराता है।।२६-२८।।

यत्र खं तत्र पवनस्तत्राग्निर्यत मारुतः। अमूर्तयस्ते विज्ञेया मूर्तिमन्तः शरीरिणः॥२९॥

जहां आकाश है, वहीं वायु है। जहां वायु है, वहीं अग्नि है। ये अमूर्त्त हैं तथा देहधारी मूर्त्तिमान हैं।।२९।।

भरद्वाज उवाच

यद्यग्निमारुतौ भूमिः खमापश्च शरीरिषु। जीवः किंलक्षणस्तत्रेत्येतदाचक्ष्व मेऽनघ॥३०॥
पञ्चात्मके पञ्चरतौ पञ्चविज्ञानसंज्ञके। शरीरे प्राणिनां जीवं वेत्तुमिच्छामि यादृशम्॥३१॥
मांसशोणितसङ्घाते मेदःस्नाय्वस्थिसञ्चये। भिद्यमाने शरीरे तु जीवो नैवोपलभ्यते॥३२॥
यद्यजीवशरीरं तु पञ्चभूतसमन्वितम्। शरीरे मानसे दुःखे कस्तां वेदयते रुजम्॥३३॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—हे निष्पाप! यदि अग्नि, वायु, भूमि, आकाश तथा जल ये ही पंचतत्व देहधारी में रहते हैं, तब जीव का क्या लक्षण है, वह कहिये। प्राणीगण के पंचात्मक, पंचरत, पंचविज्ञान संज्ञक देह में स्थित जीव को मैं जानने का इच्छुक हूं। मांस, शोणित, मेद, स्नायु अस्थिमय देह का भेदन (काटने) करने पर भी जीव उपलब्ध ही नहीं होता। यह जो देह है, वह तो पंचभूतात्मक है। यदि यह जीवहीन है, तब शारीर-मानस दुःखों का पीड़ा का अनुभव कर्त्ता कौन है?।।३०-३३।।

शृणोति कथितं जीवः कर्णाभ्यां न शृणोति तत्।
महर्षे मनसि व्यग्रे तस्माज्जीवो निरर्थकः॥३४॥
सर्वे पश्यन्ति यद्दृश्यं मनोयुक्तेन चक्षुषा।
मनसि व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति॥३५॥
न पश्यति न चाघ्राति न शृणोति न भाषते।
न च स्पर्शमसौ वेत्ति निद्रावशगतः पुनः॥३६॥
हृष्यति क्रुद्ध्यते कोऽत्र शोचत्युद्विजते च कः।
इच्छति ध्यायति द्वेष्टि वाक्यं वाचयते च कः॥३७॥

हे महर्षि! कही बातों को जीव सुनता है, तथापि व्याकुलित मन होने पर नहीं सुनता। अतः जीव निरर्थक है। जिस दृश्य को मनः से युक्त नेत्रों से सभी देखते हैं, यदि व्यक्ति का मन व्याकुल है, तब नेत्रों से देखकर भी वह नहीं देखता। निद्रित जीव न देखता है, न सुनता अथवा आघ्राण करता है, न बोलता है। तब वह स्पर्श ज्ञान रहित हो जाता है। कौन देह में हर्ष, शोकादि एवं उद्वेग का अनुभव करता है? यह इच्छा, ध्यान तथा द्वेष करने वाला कौन है? यह वाक्य बोलना किसका कार्य है?।।३४-३७।।

भृगुरुवाच

तं पञ्चसाधारणमत्र किञ्चिच्छरीरमेको वहतेऽन्तरात्मा।
स वेत्ति गन्धांश्च रसाञ्छ्रुतीश्च स्पर्शं च रूपं च गुणांश्च येऽन्ये॥३८॥
पञ्चात्मके पञ्चगुणप्रदर्शी स सर्वगात्रानुगतोऽन्तरात्मा।
सदेति दुःखानि सुखानि चात्र तद्विप्रयोगात्तु न वेत्ति देहम्॥३९॥

महर्षि भृगु कहते हैं—इस पंचभौतिक देह में इसका वहन करने वाला अन्तरात्मा है। गन्ध तथा रस को जानने वाला, सुनने वाला, स्पर्श, रूपादि गुणों का आस्वादन करने वाला वही है। वह सर्वाङ्ग में व्याप्त है। वही

शरीर के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द गुणों को देखता है। वही देहगत सुख-दुःख का अनुभव कर्त्ता भी है। जब उस अन्तरात्मा का शरीर से योग नहीं रह जाता, तब देह को कोई अनुभव ही नहीं हो पाता।।३८-३९।।

यदा न रूपं स्पर्शो नोष्मभावश्च पावके। तदा शान्ते शरीराग्नौ देहत्यागेन नश्यति॥४०॥

आपोमयमिदं सर्वमापोमूर्तिः शरीरिणाम्।
तत्रात्मा मानसो ब्रह्मा सर्वभूतेषु लोककृत्॥४१॥

जब रूप, स्पर्श नहीं है, उष्णता अग्नि नहीं है, तब देहाग्नि के स्तिमित हो जाने के कारण अन्तरात्मा देह त्याग कर देता है। तब से शरीर नष्ट होने लगता है। सब कुछ जल है। सभी देह जलमय हैं। समस्त प्राणीगण के जलमय देह में लोकों का सृजन करने वाले मानस ब्रह्मा का निवास है।।४०-४१।।

आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम्।
तस्मिन्यः संश्रितो देहे ह्यब्बिंदुरिव पुष्करे॥४२॥
क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम्।
तमोरजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान्॥४३॥

ये ही सर्वलोक हितकारक आत्मा ही हैं। वे देह में रह कर भी कमलपत्र पर पड़े जलविन्दुवत् निर्लिप्त बने रहते हैं। (कमलपत्र पर पड़ा जलविन्दु कमल पत्र पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाता)। वे नित्य लोकहितकर्त्ता क्षेत्रज्ञ ही हैं। जीव के गुण हैं—सत्व, रजः तमः।।४२-४३।।

अचेतनं जीवगुणं वदन्ति स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम्।
अतःपरं क्षेत्रविदो वदन्ति प्रावर्तयद्यो भुवनानि सप्त॥४४॥
न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे मिथ्यैतदाहुर्मुन इत्यबुद्धाः।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति दशार्द्धतस्तस्य शरीरभेदः॥४५॥

जीव का गुण है अचेतन। आत्मा की इच्छा से ही सब में चेष्टा होती है। सप्तलोकों का जो प्रभु है, उसको केवल क्षेत्रज्ञ ही जान सकता है। देह नाश भले हो जाये, जीव कदापि नष्ट नहीं होता। हे मुनि! बुधगण कहते हैं कि इसे मिथ्या मानने वाले ज्ञानहीन हैं। जीव मृत्यु के उपरान्त अन्य देह में जाता है, तथापि पांच भौतिक देह तथा जीव में अन्तर रहता है।।४४-४५।।

एवं भूतेषु सर्वेषु गूढश्चरति सर्वदा। दृश्यते त्वग्र्याबुद्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः॥४६॥
तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः। लब्धाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि॥४७॥

चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते॥४८॥

मानसोऽग्निः शरीरेष जीव इत्यभिधीयते। सृष्टिः प्रजापतेरेषा भूताध्यात्मविनिश्चये॥४९॥

यह जीव सभी देह में गुप्तरूप से गमन करता है। इसे अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा तत्वज्ञ ही जान पाते हैं। सदा योगयुक्त तथा प्राप्त आहार पर सन्तुष्ट रहने वाले विशुद्धात्मा ही उसे अपने शुद्ध अन्तःकरण में देखते हैं।

ऐसी चित्त प्रसन्नता युक्त योगी अपने शुभा-शुभ कर्मों का त्याग करके प्रसन्नात्मा आत्मस्थ होकर सुखानुभव करता है।।४६-४८।।

असृजद्ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतिः।
आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान्भास्कराग्निसमप्रभान् ॥५०॥
ततः सत्यं च धर्मं च तथा ब्रह्म च शाश्वतम्।
आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः॥५१॥
देवदानवगन्धर्वा दैत्यासुरमहोरगाः। यक्षराक्षसनागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा॥५२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राणामसितस्तथा।

शारीरिक मानसाग्नि ही जीव है। प्रजापति ने भूतसमूह तथा अध्यात्म तत्व विनिश्चयार्थ इसकी सृष्टि किया है। सर्वप्रथम ब्रह्मा प्रजापति ने ब्राह्मणों की सृष्टि किया। वे आत्मतेज युक्त तथा सूर्य एवं अग्निवत् तेजवान् थे। तदनन्तर उन प्रभु द्वारा स्वर्ग लाभार्थ सत्य, धर्म, शाश्वत ब्रह्म, आचार तथा शाश्वत ब्रह्म को आधार बनाया गया। उन प्रभु ने देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महासर्प, यक्ष, राक्षस, पिशाच मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा चाण्डालों की सृष्टि किया।।४९-५२।।

भरद्वाज उवाच

चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते॥५३॥
स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम्।
त्वन्तः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते॥५४॥
जङ्गमानामसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः।
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः॥५५॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—यदि चारों वर्ण का विभाग वर्णभेद से माना गया है, तब यह अनुचित है। सभी वर्णों वाले समान रूप से स्वेद, मूत्र, मल, कफादि त्याग करते हैं। पित्त-शोणित के रूप में भी समानता रहती है, तब वर्णभेद क्यों बना? जंगमों में तथा स्थावरों में अनेक जातियां हैं। उनके विविध वर्णों में किस प्रकार वर्ण का निश्चय हो।।५३-५५।।

भृगुरुवाच

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममयं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम्॥५६॥
कामभोगाः प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधताप्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वकर्मरक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥५७॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥५८॥

ऋषि भृगु कहते हैं—वर्णों की कोई विशेषता नहीं है। समस्त जगत् ब्रह्ममय है, तथापि ब्रह्मा द्वारा पूर्व में सृष्ट प्राणियों की कर्म भिन्नता के कारण संसार भिन्न वर्णमय हो गया है। जो द्विज स्वेच्छा पूर्वक भोगी थे, ऐसे उग्र प्रकृति, क्रोधी, साहसी अपने द्विज कर्म को त्यागने वाले द्विजों ने क्षत्रियत्व लाभ किया। जो द्विजत्व त्याग कर गौ पालन से जीविकोपार्जन करते तथा जो कृषि एवं व्यापार के इच्चुक थे, जो स्वधर्मानुष्ठान (द्विजधर्मपालन) नहीं करते थे, वे द्विज वैश्य हो गये।।५६-५८।।

हिंसानृतपरा लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥५९॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।
ब्राह्मणा धर्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति॥६०॥
ब्रह्म धारयतां नित्य व्रतानि नियमांस्तथा। ब्रह्म चैव पुरा सृष्टं येन जानन्ति तद्विदः॥६१॥
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र द्विजातयः।
पिशाचा राक्षसाः प्रेता विविधा म्लेच्छजातयः
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा॥६२॥

जो द्विजगण हिंसा परायण, झूठ बोलने वाले, वधिक, पापकर्म से आजीविका चलाने वाले, शौचाचार से भ्रष्ट, कृष्णवर्ण थे, उन द्विजों को शूद्रत्व प्राप्त होगा। अतः अपने-अपने कर्मों द्वारा द्विजों को भिन्न वर्णत्व मिला था। ब्राह्मण धर्मतन्त्रस्थ रहने वाले तथा तपःशील होते हैं, जिनका तप कभी नष्ट नहीं होता। वे ब्रह्म को (ज्ञान के) धारण करने वाले, व्रत तथा नियम तत्पर होते हैं। ब्रह्म सृष्टि को केवल वे ही जानते हैं। एवंविध अनेक प्रकार की द्विजाति की स्थिति यत्र-तत्र है। पिशाच, राक्षस, प्रेत नाना म्लेच्छजाति भी द्विजाति से ही भ्रष्ट हुये हैं। यह धर्मतन्त्रपरायण सृष्टि ही मानसी सृष्टि है।।५९-६२।।

भरद्वाज उवाच

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम। वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतां वर॥६३॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—हे द्विजोत्तम! किस कर्म से मनुष्य ब्राह्मण होते हैं? क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का क्या कर्म है? हे वाग्मीप्रवर! इसे कहिये।।६३।।

भृगुरुवाच

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नो ब्रह्मकर्मस्ववस्थितः॥६४॥
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघ्नाभ्यासी गुरुप्रियः।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते॥६५॥
सत्यं दानमथोऽद्रोह आनृशंस्यं कृपा घृणा।
तपस्यां दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥६६॥

महर्षि भृगु कहते हैं—जात कर्मादि संस्कार शुद्ध, वेदाध्ययन सम्पन्न, ब्रह्मकर्मपरायण, शौचाचार युक्त, सम्यक् विद्या का अभ्यास करने वाले, गुरुप्रिय, नित्यव्रती, सत्यवक्ता ब्राह्मण कहे गये हैं। सत्य, दान, अद्रोह, निर्ममता रहित, कृपातत्परता, घृणा रहित होना तथा तपस्या—ये गुण जिसमें हों, वह **ब्राह्मण** है।।६४-६६।।

क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसङ्गतः। दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते॥६७॥

विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः॥६८॥

सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः। त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः॥६९॥

शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भरेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च॥७०॥

सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः। एतत्पवित्रं ज्ञानानां तथा चैवात्मसंयमः॥७१॥

जो क्षत्रिय कर्म का पालन करता है, वेदाध्ययन करता है, दान हेतु जो कर ग्रहण करता है, वह क्षत्रिय है। पशुपालन तथा कृषि द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले, दान देने की विशेष रुचि वाले, वेदाध्यायी ही वैश्य हैं। जो भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं करता, सभी अच्छे-बुरे कर्म करता है, अपवित्र, वेदमर्यादा न मानने वाला, आचार रहित व्यक्ति शूद्र है। ये लक्षण शूद्र के हैं। ये द्विजों में नहीं होते। जिसमें ये लक्षण नहीं हैं, वह शूद्र नहीं हैं। यदि ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व वाले लक्षण नहीं हैं, तब वह ब्राह्मण ही नहीं है। सर्वप्रयत्न पूर्वक क्रोध तथा लोभ को वशीभूत करे। ज्ञानी का यह पवित्र धर्म कहा गया। आत्मसंयम ज्ञानी का प्रधान कार्य है।।६७-७१।।

वर्ज्यौ सर्वात्मना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ।
नित्यक्रोधाच्छ्रियं रक्षेत्तपो रक्षेत्तु मत्सरात्॥७२॥
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥७३॥
यस्य सर्वे समारम्भा निराशीर्बन्धना द्विज।
त्यागे यस्य हुतं सर्वं स त्यागी स च बुद्धिमान्॥७४॥

क्रोध तथा लोभ आत्मकल्याण के शत्रु हैं। इनको दूर रक्खे। रोग क्रोध से अपने श्री (ऐश्वर्य) की रक्षा करे तथा तप को मात्सर्य दोष से बचाये। विद्या को मान-अपमान से बचाये। प्रमाद से स्वयं को बचाये। हे द्विज! जो समस्त कार्यारम्भ आशा तथा फल की कामना से रहित होकर करता है, जिसने त्यागाग्नि में सब कुछ का होम कर दिया, वही बुद्धिमान् है।।७२-७४।।

अहिंस्रः सर्वभूतानां मैत्रायणगतश्चरेत्। परिग्रहात्परित्यज्य भवेद्बुद्ध्या जितेन्द्रियः॥७५॥

अशोकस्थानमातिष्ठेदिह चामुत्र चाभयम्। तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना॥७६॥

अजितं जेतुकामेन व्यासङ्गेषु ह्यसङ्गिना। इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः॥७७॥

अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्।
अविश्रंभेण मन्तव्यं विश्रम्भे धारयेन्मनः॥७८॥

समस्त प्राणीगण के प्रति अहिंसक भावना रखने वाला, सबके प्रति मैत्री रखने वाला, जो परिग्रह त्यागकर जितेन्द्रिय हो गया, वही यथार्थ बुद्धिशाली है। इहलोक तथा परलोक दोनों में अपने लिये शोक रहित स्थान बनाये। संयतात्मा मुनि अजित (काम-क्रोध आदि ऐसे शत्रु हैं, जो जीते नहीं जा सकते अतः उनको अजित कहा) शत्रु पर विजयार्थ नित्य तप से मन को वश में करके आसक्ति को वैराग्य से जीते। इन्द्रियां जिस-जिस को (विषयों को) ग्रहण करती हैं, वह व्यक्त कहा गया। अतीन्द्रिय वह है, जो आभास मात्र तथा अतीन्द्रिय हो। मन से अविश्वास हटाकर विश्वास की स्थापना करे।।७५-७८।।

मनः प्राणेन गृह्णीयात्प्राणं ब्रह्मणि धारयेत्।
निर्वेदादेव निर्वाणं न च किञ्चिद्विचिन्तयेत्।।७९।।
सुखं वै ब्राह्मणो ब्रह्मन्निर्वेदेनाधिगच्छति। शौचे तु सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।।८०।।
स्वनुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम्।
सत्यं व्रतं तपः शौचं सत्यं विसृजते प्रजा।।८१।।

मन को प्राण से वशीभूत करके प्राण को ब्रह्म में स्थिर करना होगा। जो संसार की असारता जान लेता है, वह निर्वाण लाभ करता है। वह अन्य कुछ चिन्तन न करे। हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण हेतु निर्वेद (वैराग्य) में ही सुख है। उसे सतत् शौच तथा सदाचारवान् रहना चाहिये। सब प्राणीगण के प्रति दयाभावना युक्त होना द्विज का (मुख्य) लक्षण है। सत्य, व्रत, तप, शौच तथा सत्य द्वारा ही प्रजा सृष्ट होती है।।७९-८१।।

सत्येन धार्यते लोकः स्वः सत्येनैव गच्छति। अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः।।८२।।
तमोग्रस्तानि पश्यन्ति प्रकाशं तमसावृताः। सुदुष्प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च।।८३।।
सत्यानृतं तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः। तत्राप्येवंविधा लोके वृत्तिः सत्यानृते भवेत्।।८४।।

सत्य ही लोकों को धारण करता है। सत्य से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। असत्य तमस् रूप है। तमस् अधोगामी करता है। तमोग्रस्त व्यक्ति प्रकाश को भी तमस् से आवृत देखते हैं। प्रकाश स्वर्ग है। अन्धकार नरक है। संसारमग्न प्राणी को सत्य तथा असत्य प्राप्त होता है। इसी सत्य-असत्य पर लोक व्यवहार टिका है।।८२-८४।।

धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखसुखं तथा। शरीरैर्मानसैर्दुःखैः सुखैश्चाप्यसुखोवयैः।।८५।।
लोकसृष्टं प्रपश्यन्तो न मुह्यन्ति विचक्षणाः।
तत्र दुःखाविमोक्षार्थं प्रयतेत विचक्षणः।।८६।।

धर्म-अधर्म, प्रकाश-अन्धकार, सुख-दुःख से लोक परिव्याप्त रहता है। शारीरिक-मानसिक दुःख से तथा कष्टप्रद सुख से यह लोक व्याप्त है। यह देखकर बुद्धिमान् लोग मोहग्रस्त नहीं होते। वे दुःखों से सदा के लिये त्राण पाने हेतु प्रयत्नशील रहा करते हैं।।८५-८६।।

सुखं ह्यनित्यं भूतानामिह लोके परत्र च।
राहुग्रस्तस्य सोमस्य यथा ज्योत्स्ना न भासते।।८७।।
तथा तमोभिभूतानां भूतानां नश्यते सुखम्। तत्खलु द्विविधं सुखमुच्यते शारीरं मानसं

च। इह खल्वमुष्मिंश्च लोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभिधीयन्ते नहीतः परत्रापवर्गफलाद्विशिष्टतरमस्ति। स एव काम्यो गुणविशेषो धर्मार्थागुणारम्भस्तद्धेतुरस्योत्पत्तिः सुखप्रयोजनार्थ-मारंभाः॥८८॥

लोक में किंवा परलोक में सुख अनित्य (अस्थायी) है। जिस प्रकार राहुग्रस्त चन्द्रमा की ज्योत्स्ना नहीं होती, तदनुरूप तमः से अभिभूत प्राणियों का सुख नष्ट प्रायः रहता है। सुख शारीर तथा मानस रूपेण द्विविध है। लोक तथा परलोक में सुख पाने हेतु व्यक्ति वस्तुओं से अपेक्षा करता है, तथापि लोक एवं परलोक में मुक्ति ही सर्वश्रेष्ठ फलरूप है। वही फल सबका काम्य है। धर्माचरण हेतु ही अपवर्ग गुण की उत्पत्ति हुई है। सभी कार्यों का आरंभ व्यक्ति सुखलाभार्थ करता है।।८७-८८।।

भरद्वाज उवाच

वदैतद्भवताभिहितं सुखानां परमा स्थितिरिति॥८९॥
न तदुपगृह्णीमो न ह्येषामृषीणां महति स्थितानाम्॥९०॥

अप्राप्य एष काम्यगुणविशेषो न चैनमभिशीलयन्ति। तपसि श्रूयते त्रिलोक-कृद्ब्रह्मा प्रभुरेकाकी तिष्ठति ब्रह्मचारी न कामसुखेष्वात्मानमवदधाति॥९१॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—आपका वचन है कि लोक में सुखलाभ ही परम स्थिति है, तथापि सुख लाभ नहीं होता। यहां तक कि महत्तत्व में स्थित ऋषियों को भी सुख लाभ नहीं है। यह काम्य वस्तु सुख दुष्प्राप्य है, तथापि इसे योगी नहीं चाहता। यह सुना गया कि त्रिलोक रचयिता ब्रह्मा एकाकी तप करते रहते हैं। ये ब्रह्मचारी कामना सुख को तुच्छ मानते हैं।।८९-९१।।

अपि च भगवान्विश्वेश्वर उमापतिः काममभिवर्तमानमनङ्गत्वेन सममनयत्॥९२॥
तस्माद्भूमौ न तु महात्मभिरञ्जयति गृहीतो न त्वेष तावद्विशिष्टो गुणविशेष इति॥९३॥
नैतद्भगवतः प्रत्येमि भवता तूक्तं सुखानां परमाः स्त्रिय इति लोकप्रवादो हि द्विविधः फलोदयः सुकृतात्सुखमवाप्यतेऽन्यथा दुःखमिति॥९४॥

लेकिन भगवान् विश्वेश्वर उमापति ने काम के वर्तमान रहते ही उसको भस्म किया तथा उसे अंग रहित (अनंग) बना दिया। अतः पृथिवी पर सांसारिक सुख भोग के प्रति महात्मा कोई आकर्षण नहीं रखते, वे उससे अभिरंजित नहीं होते तथा उसे विशेष गुण नहीं मानते। मेरे मन में आपके कथन से शंका उत्पन्न होती है। आपका कहना है कि लोक में सुख का कारण स्त्रियां हैं। यह लोक में प्रसिद्ध है। यहां फल प्राप्ति द्विविध कही गयी है अर्थात् शुभकर्म यहां सुख देते हैं। अशुभ कर्म से दुःखोदय होता है।।९२-९४।।

भृगुरुवाच

अत्रोच्यते अनृन्तात्खलु तमः प्रादुर्भूतं ततस्तमोग्रस्ता अधर्ममेवानुवर्तते न धर्मं क्रोधलोभमोहहिंसानृतादिभिरवच्छन्नाः खल्वस्मिंल्लोकेनामुत्र सुखमाप्नुवन्ति विविधव्याधि-रुजोपतापैरवकीर्यन्ते वधबन्धनपरिक्लेशादिभिश्च क्षुत्पिपासाश्रमकृतैरुपतापैरुपतपप्यन्ते

वर्षवातात्युष्णातिशीतकृतैश्च प्रतिभयैः शारीरैर्दुःखैरुपतप्यन्ते बन्धुधनविनाशविप्रयोगकृतैश्च मानसैः शोकैरभिभूयन्ते जरामृत्युकृतैश्चान्यान्यैरिति यस्त्वेतैः॥९५॥

महर्षि भृगु कहते हैं—अब मैं (शंका निवारणार्थ) कहता हूं। अनृत से अन्धकार उत्पन्न हो गया। अन्धकार में स्थित अधर्म पथ का वरण करते हैं। वे धर्मपथ पर नहीं चलते। क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, अनृत से वे आच्छन्न रहते हैं। उनको इहलोक-परलोक, कहीं सुखलाभ नहीं होता। वे नाना व्याधि, रोग, तापादि से दुःखी रहते हैं। वे वध, बन्धन, परिक्लेश, क्षुधा-पिपासा, श्रमोत्पन्न रोगों से उत्पन्न ताप से तप्त होते हैं। वे वर्षा, वात, ग्रीष्म-शीत के भय से शारीर दुःखों से परितप्यमान होते रहते हैं। वे बन्धुनाश, धनहानि तथा स्वजन वियोग जनित मानसिक क्लेशों से अभीभूत रहा करते हैं। वे जरा-मृत्यु आदि क्लेशों से सदा ग्रस्त रहते हैं।।९५।।

शरीरं मानसं नास्ति न जरा न च पातकम्।
नित्यमेव सुखं स्वर्गे सुखं दुःखमिहोभयम्॥९६॥
नरके दुःखमेवाहुः सुखं तत्परमं पदम्। पृथिवी सर्वभूतानां जनित्री तद्विधाः स्त्रियः॥९७॥

स्वर्ग में शारीरिक, मानसिक कष्ट का, जरा एवं पातकों का भय नहीं रहता। वह नित्य सुख ही है। धरा पर सुख-दुःख दोनों का भय है। नरक तो मात्र दुःख से पूर्ण हैं। उस परम पद में ही नित्य सुख है। पृथिवी सभी प्राणीगण की माता है। इस प्रकार प्रजा की जननी माता ही है।।९६-९७।।

पुमान्प्रजापतिस्तत्र शुक्रं तेजोमयं विदुः। इत्येतल्लोकनिर्माता धर्मस्य चरितस्य च॥९८॥
तपसश्च सुतप्तस्य स्वाध्यायस्य हुतस्य च।
हुतेन शाम्यते पापं स्वाध्याये शान्तिरुत्तमा॥९९॥
दानेन भोगानित्याहुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात्।
दानं तु द्विविधं प्राहुः परत्रार्थमिहैव च॥१००॥
सद्भ्यो यद्दीयते किञ्चित्तत्परत्रोपतिष्ठते। यादृशं दीयते दानं तादृशं फलमश्नुते॥१०१॥

पुरुष प्रजापति हैं। उनका वीर्य तेजोमय है। ये ही लोक निर्माता हैं। लोक में धर्म, चरित्र, तप, स्वाध्याय होम उनके द्वारा व्यवस्थित है। होम से पापों का शमन होता है। स्वाध्याय से उत्तमा शान्ति मिलती है। दान से भोगप्राप्ति तथा तपःश्चरण से स्वर्गलाभ होता है। दान द्विविध है। एक दान केवल परलोक में फल प्रदान करता है। दूसरा दान इसी लोक में फलप्रद होता है। सत्पात्र को प्रदत्त दान परलोक में फलद होता है। असत्पात्र को प्रदत्त दान इहलोक में ही (विपरीत) फलद हो जाता है। जैसा दान—वैसा फल, यह कहते हैं।।९८-१०१।।

भरद्वाज उवाच

किं कस्य धर्माचरणं किं वा धर्मस्य लक्षणम्।
धर्मः कतिविधो वापि तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१०२॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—धर्म का, धर्माचरण का लक्षण क्या है? कैसा धर्माचरण करे? धर्म कितने प्रकार के होते हैं? कृपया कहिये।।१०२।।

भृगुरुवाच

स्वधर्माचरणे युक्ता ये भवन्ति मनीषिणः।
तेषां स्वर्गफलावाप्तिर्योऽन्यथा स विमुह्यते॥१०३॥

महर्षि भृगु कहते हैं—जो मनीषी स्वधर्माचरण तत्पर होते हैं, वे स्वर्गलाभ करते हैं, जो यह नहीं करते वे मूढ़बुद्धि हैं।।१०३।।

भरद्वाज उवाच

यदेतच्चातुराश्रम्यं ब्रह्मर्षिविहितं पुरा। तेषां स्वे स्वे समाचारास्तन्मे वक्तुमिहार्हसि॥१०४॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—प्राचीन काल में ब्रह्मर्षि विहित जो चारों आश्रमाचार व्यवस्था है, कृपया उसे कहिये।।१०४।।

भृगुरुवाच

पूर्वमेव भगवता ब्रह्मणा लोकहितमनुतिष्ठता। धर्मसंरक्षणार्थमाश्रमाश्चत्वारोऽभिनिर्दिष्टाः॥१०५॥

तत्र गुरुकुलवासमव प्रथममाश्रममाहरन्ति सम्यगत्र शौचसंस्कारनियमव्रतविनियतात्मा उभे सन्ध्ये भास्कराग्निदैवतान्युपस्थाय विहाय तद्ध्यालस्यं गुरोरभिवादनवेदाभ्यास-श्रवणपवित्रीकृतान्तरात्मा त्रिषवणमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्याग्निपरिचरणगुरुशुश्रूषानित्याभिक्षा-भैक्ष्यादिसर्वनिवेदितान्तरात्मा गुरुवचननिदेशानुष्ठानाप्रतिकूलो गुरुप्रसादलब्धस्वाध्यातत्परः स्यात्॥१०६॥

महर्षि भृगु कहते हैं—पूर्वकाल में भगवन् ब्रह्मा ने लोकहितार्थ धर्म संरक्षण हेतु चतुराश्रम व्यवस्था किया। उसमें गुरुकुल निवास अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रथमाश्रम है। इस आश्रम में स्थित बालक, शौच, संस्कार, नियम, व्रत आदि का पालन करें। दोनों सन्ध्याकाल में सूर्य तथा अग्नि की पूजा करके आलस्य रहित होकर गुरु का अभिवादन करें। वह वेदाभ्यास तथा उपदेश श्रवण करके अन्तरात्मा को पवित्र करे। तीनों सन्ध्या काल में आचमन करें। वह ब्रह्मचर्य, अग्निसेवा (होम), गुरुसेवा, नित्य भिक्षाटन करें। भिक्षा में प्राप्त द्रव्य तथा अन्तरात्मा गुरु को निवेदित करें। गुरु आज्ञा का यथायथ पालन करे। गुरुकृपा लब्ध विद्या तथा स्वाध्याय तत्पर रहे।।१०६।।

भवंति चात्र श्लोकः

गुरुं यस्तु समाराध्य द्विजो वेदमवाप्नुयात्।
तस्य स्वर्गफलावाप्तिः सिद्ध्यते चास्य मानसम्।
इति गार्हस्थ्यं खलु द्वितीयमाश्रमं वदन्ति॥१०७॥

इस सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है। जो द्विज गुरु सेवा तथा वेदाध्ययन करता है, उसे स्वर्गलाभ होता है। सभी मनोकामना पूर्ण होती है। तदनन्तर गृहस्थाश्रम ही द्वितीयाश्रम कहा जाता है।।१०७।।

तस्य सदाचारलक्षणं सर्वमनुव्याख्यास्यामः। समावृतानां सदाचाराणां सहधर्म-चर्यफलार्थिनां गृहाश्रमो विधीयते॥१०८॥

धर्मार्थकामावाप्तिर्ह्यत्र त्रिवर्गसाधनमपेक्ष्यागर्हितकर्मणा धनान्यादाय स्वाध्यायोपलब्धप्रकर्षेण वा ब्रह्मर्षिनिर्मितेन वा अग्दि्भः सागरगतेन वा द्रव्यनियमाभ्यासदैवतप्रसादोपलब्धेन वा धनेन गृहस्थो गार्हस्थ्यं वर्तयेत्॥१०९॥

उसके सदाचारादि समस्त लक्षणों की व्याख्या करता हूं। स्त्री के साथ धर्मपालनेच्छु व्यक्ति हेतु गृहस्थाश्रम की व्यवस्था है। यहां धर्म-अर्थ-काम की उपलब्धि होती है। इस त्रिवर्ग साधनार्थ सत्कर्म द्वारा, विद्या तथा स्वाध्याय लब्ध उत्कर्ष द्वारा, ब्रह्मर्षियों निर्मित साधनों द्वारा अथवा समुद्र यात्रा किंवा सागर से निकले द्रव्यों से, उनके व्यवसाय से अथवा अन्य विधि से द्रव्य उपार्जन द्वारा, देवकृपालब्ध धन द्वारा गृहस्थ व्यक्ति स्वाश्रमोचित कार्य सम्पन्न करे।।१०८-१०९।।

तद्धि सर्वाश्रमाणां मूलमुदाहरन्ति गुरुकुलनिवासिनः परिव्राजका येऽन्ये सङ्कल्पितव्रतनियमधर्मानुष्ठानिनस्तेषामप्यन्तरा च भिक्षाबलिसंविभागाः प्रवर्तते॥११०॥

वानप्रस्थानां च द्रव्योपस्कार इति प्रायशः खल्वेते साधवः साधुपथ्योदनाः स्वाधयप्रसङ्गिनस्तीर्थाभिगमनदेशदर्शनार्थं पृथिवीं पर्यटन्ति॥१११॥

तेषां प्रत्युत्थानाभिगमनमनसूयावाक्यदानसुखसत्कारासनसुखशयनाभ्यवहारसत्क्रिया चेति॥११२॥

गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का मूलरूप है। गुरुकुलवासी, परिव्राजक तथा अन्य संकल्पित व्रत-नियम का अनुष्ठान करने वाले, इसी आश्रम वाले व्यक्ति द्वारा भिक्षा किंवा बलिभाग प्राप्त करते हैं। वानप्रस्थाश्रमी लोग द्रव्योपार्जन की आकांक्षा नहीं रखते। वे सात्विक भोजन भोजी, सज्जन पुरुष का अन्न तथा आतिथ्य ग्रहण करने वाले होते हैं। वे सदा स्वाध्याय तथा हरिचर्चा में लीन रहते हैं। वे हरिचर्चा तथा देशाटन एवं तीर्थटनार्थ यत्र-तत्र भ्रमणरत रहते हैं। ऐसे साधुजन जब आयें, तब उत्थित होकर तथा विनय पूर्वक स्वागत करे। उनसे मधुर वाक्य कहें। दान, सत्कार, आसन तथा सम्यक् शयन व्यवस्था, मधुर आहार से उनका सादर सम्मान करे।।११०-११२।।

भवंति चात्र श्लोकः

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥११३॥

इस प्रसंग में एक श्लोक कहते हैं। जिस गृह से अतिथि निराश होकर वापस चला जाता है, वह उस घर में अपने दुष्कृत्य प्रदान (पाप प्रदान) करके, वहां का पुण्य अपने साथ ले जाता है।।११३।।

अपि चात्र यज्ञक्रियाभिर्देवताः प्रीयन्ते निवापेन पितरो विद्याभ्यासश्रवणधारणेन ऋषयः अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिति॥११४॥

यज्ञ द्वारा देवगण प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। तर्पण-श्राद्ध से पितृगण को तृप्ति होती है। विद्याभ्यास एवं सद्ग्रन्थ श्रवण से ऋषि प्रसन्न होते हैं। पुत्र प्राप्ति होने पर प्रजापति को प्रसन्नता होती है।।११४।।

श्लोकौ चात्रभवतः

वात्सल्यं सर्वभूतेभ्यो वायोः श्रोत्रस्तथा गिरा।
परितापोपघातश्च पारुष्यं चात्र गर्हितम्॥११५॥
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चैव विगर्हितः। अहिंसा सत्यमक्रोधं सर्वाश्रमगतं तपः॥११६॥

इस सम्बन्ध में श्लोक कहे गये हैं—सभी भूतों पर वात्सल्य, वाणी, श्रोत्र तथा कार्य से किसी को कष्ट न दे। सबके कष्टों को दूर करे। किसी से कठोर व्यवहार करना गर्हित है। किसी की अवज्ञा करना, अहंकार, दम्भ प्रदर्शन भी गर्हित है। अहिंसा, सत्य एवं क्रोध रहित होना सभी आश्रमों का तपः है।।११५-११६।।

अपि चात्र माल्याभरणवस्त्राभ्यङ्गनित्योपभोगनृत्यगीतवादित्रश्रुतिसुखनयन-स्नेहरामादर्शनानां प्राप्तिर्भक्ष्यभोज्य लेह्यपेयचोष्याणामभ्यवहार्य्याणां विविधानामुप-भोगः॥११७॥

स्वविहारसन्तोषः कामसुखावाप्तिरिति।
त्रिवर्गगुणनिवृत्तिर्यस्य नित्यं गृहाश्रम।
स सुखान्यनुभूयेह शिष्टानां गतिमाप्नुयात्॥११८॥

गृहस्थ व्यक्ति माला, आभरण, उत्तम वस्त्र, अभ्यङ्ग धारण करे। नित्य सुखोपभोग करे। नृत्य देखे। गीत-वाद्य, कान को सुख देने वाले गीत सुने। आंखों में अंजन लगाये। मनोहर स्त्रियों को देखे। नाना भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय, चोष्य पदार्थ रूप विविध आहार का भोजन करे। स्वविहार द्वारा सन्तोष एवं कामसुख लाभ करे। जिस गृहस्थाश्रमी के गृह में धर्म-अर्थ काम को नित्य सम्पन्न किया जाता है, वह सुखानुभूति के अनन्तर शिष्टजनों की गति को प्राप्त करता है।।११७-११८।।

उञ्छवृत्तिर्गृहस्थो यः स्वधर्मचरणे रतः।
त्यक्तकामसुखारम्भः स्वर्गस्तस्य न दुर्लभः॥११९॥

जो गृहस्थ उञ्छवृत्ति[1] से जीविका चलाता अपने गृहस्थाश्रम का पालन करके समस्त सुखप्रद एवं कामप्रद कर्मों का त्याग कर दिया तथा स्वधर्माचरण निरत है, उसके लिये स्वर्ग कदापि दुर्लभ नहीं है।।११९।।

वानप्रस्थाः खल्वपि धर्ममनुसरन्तः पुण्यानि तीर्थानि नदीप्रस्रवणानि स्वभक्तेष्वरण्येषु मृगवराहमहिषशार्दूल वनगजाकीर्णेषु तपस्यन्ते अनुसञ्चरन्ति॥१२०॥

वानप्रस्थी स्वधर्म पालन करने वाले रहें तथा पुण्यतीर्थ, नदी, जल के उद्गम स्थल आदि में मृग, वराह, महिष, व्याघ्र, वनहस्ति से पूर्ण वन में आसनासीन होकर तप करें।।१२०।।

त्यक्तग्राम्यवस्त्राभ्यवहारोपभोगा वन्यौषधिफलमूलपर्णपरिमितविचित्रनियताहाराः स्थानासनिनोभूपाषाणसिकताशर्कराबालुकाभस्मशायिनः काशकुशचर्मवल्कलसंवृताङ्गाः

१. उञ्छवृत्ति=फसल कटकर ले जाये जाने के पश्चात् खेतों में जमीन पर पड़े दानों को चुनकर उससे जीविका चलने वाला।

केशश्मश्रुनखरोमधारिणो नियतकालोपस्पर्शनाः शुष्कबलिहोमकालानुष्ठायिनः। समित्कुश-कुसुमापहारसंमार्जनलब्धविश्रामाःशीतोष्णपवनविष्टम्भाविभिन्नसर्वत्वचो विविधनियम-योगचर्यानुष्ठानविहीनपरिशुष्कमांसशोणितत्वगस्थिभूता धृतिपराः सत्त्वयोगाच्छरीरा-ण्युद्वहन्ते॥१२१॥

वे सभी ग्रामीण वस्त्र-भोजनादि त्यागें तथा वनौषधि, फल, मूल तथा वृक्ष के पत्रों का आहार सीमित मात्रा में करें। एक जगह ही आसनासीन रहे। रात्रि में पृथिवी, प्रस्तर, बालुका, कंकड़ तथा धूलयुक्त स्थानों पर शयन करें। कास-कुश-चर्म-वल्कल से अंगों को आवरित करें। सिर के केश, दाढ़ी-मूछें-नख आदि को न काटें। नियत काल पर स्नान-आचमन सम्पन्न करें। शुष्क बलि, होम आदि का अनुष्ठान करें। समिध्, कुश, पुष्प आदि स्वयं लाये। आश्रम का मार्जन स्वयं करें। शीत-उष्ण, वायु, उष्ण वायु से भले ही त्वचा फटें। विविध नियम, योग तथा विहित अनुष्ठान के कारण उसका मास, रक्त, चर्म शुष्क हो जाय शरीर हड्डी-हड्डी ही रह जाये। इस धीरता के साथ सत्वमय योगसाधना युक्त समय अतिवाहित करें।।१२१।।

यस्त्वेतां नियतचार्यां ब्रह्मर्षिविहितां चरेत्।
स दहेदग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च दुर्जयान्॥१२२॥

जो एवंविध ब्रह्मर्षि द्वारा विहित किये गये नियत आचार का पालन करता है, उसने तो अपने पातकों को मानों अग्नि में दहन कर लिया तथा दुर्जय लोकों पर विजय पा लिया।।१२२।।

परिव्राजकानां पुनराचारः तद्यथा। विमुच्याग्निं धनकलत्रपरिबर्हसङ्गेष्वात्मानं स्नेहपाशानवधूय परिव्रजन्ति। समलोष्टाश्मकाञ्चनास्त्रिवर्गप्रवृत्तेष्वसक्तबुद्धयः॥१२३॥

अब मैं परिव्राजकों (यति-संन्यासी) के नियमों का वर्णन कर रहा हूं। पूर्व के तीनों आश्रमों का पालन करके व्यक्ति अग्नि (होमाग्नि), धन, स्त्री, समस्त सामग्री एवं बन्धुजन का स्नेह त्यागे। तब संन्यास ग्रहण करे। उस आश्रम में वह मिट्टी, पत्थर के ढेले तथा स्वर्ण में समबुद्धि रखे। त्रिवर्ग प्रभृति के प्रति अनासक्त हो जाये।।१२३।।

अरिमित्रोदासीनानां तुल्यदर्शनाः स्थावरजरायुजाण्डजस्वेदजानां भूतानां वाड्मनः कर्मभिरनभिद्रोहिणोऽनिकेताः पर्वतपुलिनवृक्षमूलदेवायतनान्यंनुसञ्चरन्तो वासार्थमुपेयुर्नगरं ग्रामं वा न क्रोधदर्पलोभमोहकार्पण्यदंभपरिवादाभिमाननिर्वृत्तहिंसा इति॥१२४॥

वह शत्रु-मित्र सम्बन्ध में उदासीन रहे। दोनों को समान माने। स्थावर-जरायुज-अण्डज-स्वेदज आदि किसी भी प्राणी के प्रति मन-वचन-कर्म से द्रोह न करे। वह अपने निवासार्थ गृह न बनाये। वह पर्वत, नदी तट, वृक्ष छाया, देवमन्दिर में रहे अथवा ग्राम एवं नगरों में भ्रमण करता काल अतिवाहित करे। वह क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कार्पण्य, दंभ, अन्य की निन्दा तथा हिंसा से विरत रहे।।१२४।।

भवन्ति चात्र श्लोकः

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्॥१२५॥

कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति।
विप्रस्तु भैक्षोपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निना संव्रजते हि लोकान्॥१२६॥

इस विषय में श्लोक कहा गया है कि जो मुनि सभी प्राणीसमूह को अभयदान देता है, उसे किसी भी प्राणी द्वारा भय की स्थिति नहीं आती। जो विप्र अग्निहोत्र के उपरान्त भिक्षान्न रूपी हविष्य का अपने मुख में हवन करता है (भिक्षान्न खाता है) उसे उत्तम लोकों की प्राप्ति हो जाती है।।१२५-१२६।।

मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं शुचिः स्वसङ्कल्पितयुक्तबुद्धिः।
अनिंधनं ज्योतिरिव प्रशान्तं स ब्रह्मलोकं श्रूयते द्विजातिः॥१२७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे भृगुभारद्वाजसंवादे ब्राह्मणाचारनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

जो द्विज अपने संकल्प द्वारा बुद्धियुक्त होकर मोक्षाश्रम संन्यास धर्म का पालन करता है, वह ईन्धन रहित ज्योति से (स्वयं उद्भासित ज्योति से) दीप्त होकर तथा प्रशान्त होकर, ब्रह्मलोक गमन करता है।।१२७।।

।।४३वां अध्याय समाप्त।।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

ध्यानयोग वर्णन

भरद्वाज उवाच

अस्मल्लोकात्परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते। तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—यह मैंने सुना है कि इस लोक से परे भी अन्य लोक है, तथापि उसकी उपलब्धि खोजने पर नहीं होती। मैं उसके विषय में जानने का इच्छुक हूं। कृपया कहिये।।१।।

भृगुरुवाच

उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते। पुण्यः क्षेम्यश्च काम्यश्च स परो लोक उच्यते॥२॥
तत्र ह्यपापकर्माणः शुचयोऽत्यन्तनिर्मलाः। लोभमोहपरित्यक्ता मानवा निरुपद्रवाः॥३॥
स स्वर्गसदृशो देशः तत्र ह्युक्ताः शुभा गुणाः।
काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च॥४॥
न लोभः परदारेषु स्वदारनिरतो जनः। नान्यो हि बध्यते तत्र द्रव्येषु च न विस्मयः॥५॥

महर्षि भृगु कहते हैं—उत्तर दिशा में सर्वगुणान्वित हिमाचल के पार्श्व में पुण्यमय, क्षेमकर काम्यलोक है। वही परलोक है। वहां निष्पाप कर्म वाले, पवित्र निर्मल अन्तःकरण वाले लोभ-मोह रहित शान्त चित्तवृत्त

वाले मानव रहते हैं। वह स्वर्गसदृश देश है तथा ऊपर कहे गये शुभ गुणों वाला है। वहां काल के अनुसार मृत्यु होती है (अकाल मृत्यु नहीं होती)। वहां व्याधि भी नहीं होती। वहां पराई स्त्री के प्रति लोभ नहीं है। सभी स्वपत्नी में ही निरत रहते हैं। वहां कोई किसी का वध नहीं करता। पराये द्रव्य को देखकर किसी को विस्मय नहीं होता।।२-५।।

परो ह्यधर्मो नैवास्ति सन्देहो नापि जायते। कृतस्य तु फलं तत्र प्रत्यक्षमुपलभ्यते॥६॥
यानासनाशनोपेताः प्रसादभवनाश्रयाः। सर्वकामैर्वृताः केचिद्धेमाभरणभूषिताः॥७॥

वहां अधर्म है ही नहीं। वहां एक-दूसरे के प्रति कोई सन्देह नहीं करता। वहां कृतकर्म का फल प्रत्यक्षतः प्राप्त होता है। वहां सभी यान-वाहन, आसन, प्रासाद-भवन से सम्पन्न रहते हैं। वहां भोजनादि सभी को प्राप्त है। कतिपय लोग सभी आभरणों से भूषित रहते हैं। उनकी समस्त कामनायें पूर्ण रहती हैं।।६-७।।

प्राणधारणमात्रं तु केषाञ्चिदुपपद्यते। श्रमेण महता केचित्कुर्वन्ति प्राणधारणम्॥८॥
इह धर्मपराः केचित्केचिन्नैष्कृतिका नरा। सुखिता दुःखिताः केचिन्निर्धना धनिनो परे॥९॥

इह श्रमो भयं मोहः क्षुधा तीव्रा च जायते।
लोभश्चार्थकृतो नृणां येन मुह्यन्त्यपण्डिताः॥१०॥

उस स्थान के विपरीत इस पृथिवी लोक वाले कतिपय धार्मिक हैं, कतिपय अधार्मिक हैं। कोई सुखी तो कोई दुःखी, कोई निर्धन तो कोई धनी है। प्राण धारणार्थ कुछ लोगों को महान् श्रम करना पड़ता है। यहां क्लान्ति-श्रान्ति, भय, मोह तथा तीव्र क्षुधा रहती है। यहां मनुष्यों को धनलोभ है। जो विद्वान् नहीं हैं, वे भी धनलोभ से मोहित रहते हैं।।८-१०।।

यस्तद्वेदोभयं प्राज्ञः पाप्मना न स लिप्यते।
सोपधे निकृतिः स्तेयं परिवादोऽभ्यसूयता॥११॥

परोपघातो हिंसा च पैशुन्यमनृतं तथा। एतान्संसेवते यस्तु तपस्तस्य प्रहीयते॥१२॥
यस्त्वेतानाचरेद्विद्वान्न तपस्तस्य वर्द्धते। इह चिन्ता बहुविधा धर्माधर्मस्य कर्मणः॥१३॥

कर्मभूमिरियं लोके इह कृत्वा शुभाशुभम्।
शुभैः शुभमवाप्नोति तथाशुभमथान्यथा॥१४॥

जो इन दोनों लोकों का ज्ञान रखता है, वही प्राज्ञ मनुष्य है। वह पापालिप्त नहीं होता। जो शाठ्य, विश्वासघात, चोरी, परिवाद, ईर्ष्या, हिंसा, चुगली में निरत रहता है, उसके समस्त तप (पुण्य) का क्षय हो जाना निश्चित है। जो इन दोषों से युक्त नहीं रहता, उसका तप (पुण्य) वर्द्धित होता रहता है। इस लोक में धर्म तथा अधर्म के अनेक चिन्तन हैं। यहां यह भारत कर्मभूमि है, जहां शुभ तथा अशुभ कर्मों के आधार पर व्यक्ति तदनुरूप फल पाता है।।११-१४।।

इह प्रजापतिः पूर्वं देवाः सर्षिगणास्तथा। इष्टेष्टतपसः पूता ब्रह्मलोकमुपाश्रिताः॥१५॥

उत्तरः पृथिवीभागः सर्वपुण्यतमः शुभः।
इहस्थास्तत्र जायन्ते ये वै पुण्यकृतो जनाः॥१६॥

यदि सत्कारमिच्छन्ति तिर्यग्योनिषु चापरे।
क्षीणायुधस्तथा चाज्ये नश्यन्ति पृथिवीतले॥१७॥

इस लोक में पूर्वकाल में देवता तथा ऋषिगण ने अपनी इच्छानुरूप इष्ट प्राप्ति हेतु तपःश्चरण किया था तथा उन्होंने ब्रह्मलोक लाभ किया था। पृथिवी का उत्तर भाग सर्वपुण्यतम तथा शुभस्थल है। यहां पुण्यात्मा ही जन्मलाभ करते हैं। जो शुभ चाहते हैं, तथापि शुभ कर्माचरण से विरत रहते हैं, वे वहां पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं। अन्य लोग अल्पायु आदि दोषों से युक्त होकर पृथिवी पर ही नाश को प्राप्त होते हैं।।१५-१७।।

अन्योन्यभक्षणासक्ता लोभमोहसमन्विताः।
इहैव परिवर्त्तन्ते न च यान्त्युत्तरां दिशम्॥१८॥
गुरूनुपासते ये तु नियता ब्रह्मचारिणः। पन्थानं सर्वलोकानां विजानन्ति मनीषिणः॥१९॥
इत्युक्तोऽयं मया धर्मः संक्षिप्तो ब्रह्मनिर्मितः।
धर्माधर्मौ हि लोकस्य यो वै वेत्ति स बुद्धिमान्॥२०॥

जो एक दूसरे की हिंसा में आसक्त, लोभ-मोह समन्वित लोग हैं, वे उत्तर दिशा में कदापि जन्म नहीं पाते, वे इसी ओर बारम्बार जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं, जो नियमित ब्रह्मचर्य पालन तथा गुरु सेवा करते हैं, वे मनीषी सभी लोकों के मार्ग के ज्ञाता हैं। मैंने इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा निर्मित धर्म का संक्षिप्त वर्णन कर दिया। इस लोक में जो मनुष्य धर्म-अधर्म को जानता है, वही बुद्धिमान् है।।१८-२०।।

भरद्वाज उवाच

अध्यात्मं नाम यदिदं पुरुषस्येह चिन्त्यते। यदध्यात्मं यथा चैतत्तन्मे ब्रूहि तपोधन॥२१॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—हे तपोधन! पुरुष के अध्यात्म का सदैव चिन्तन तथा वर्णन किया जाता है। जो अध्यात्म का यथार्थ रूप है, वह कहिये।।२१।।

भृगुरुवाच

अध्यात्ममिति विप्रर्षे यदेतदनुपृच्छसि।
तद्व्याख्यास्यामि ते तात श्रेयस्करतमं सुखम्॥२२॥
सृष्टिप्रलयसंयुक्तमाचार्यैः परिदर्शितम्।
यज्ज्ञात्वा पुरुषो लोके प्रीतिं सौख्यं च विन्दति॥२३॥

महर्षि भृगु कहते हैं—आपने मुझसे अध्यात्म प्रसंग पूछा है, अब मैं उसका वर्णन करता हूं। वह उत्तम कल्याणप्रद तथा सुखदायक है। इस अध्यात्म को आचार्यगण ने सृष्टि-प्रलयात्मक कहा है। इसे जानकर पुरुष इस लोक में प्रीति तथा सुखलाभ करते हैं।।२२-२३।।

फललाभश्च तस्य स्यात्सर्वभूतहितं च तत्।
पृथिवी वायुमाकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्॥२४॥

महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ। यतः सृष्टानि तत्रैव तानि यान्ति लयं पुनः॥२५॥
महाभूतानि भूतेभ्यः सागरस्योर्मयो यथा। प्रसार्य च यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः॥२६॥

यह फलप्रद ज्ञान है। इसी से समस्त प्राणियों का हितसाधन होता है। पृथिवी, वायु, जल, आकाश तथा पंचम महाभूत है तेज। ये पांचों महाभूत कहे गये हैं। इनसे ही सृष्टि तथा नाश होता है। ये जहां से सृष्ट होते हैं, पुनः वहीं लीन हो जाते हैं। ये महाभूत भूतात्मा से उत्पन्न होकर पुनः उसी में लीन हो जाते हैं। यह वैसा ही है, जैसे सागर से ही उत्पन्न लहरें पुनः सागर में ही विलीन हो जाती हैं। यह उसी प्रकार है, जैसे कच्छप अपने अंगों को खोल के बाहर फैलाकर पुनः उसी में आकुंचित कर देता है।।२४-२६।।

तद्वद् भूतानि भूतात्मा सृष्टानि हरते पुनः। महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत्॥२७॥
अकरोत्तेषु वै सम्यक् तं तु जीवो न पश्यति।
शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशयोनिजम्॥२८॥

इसी प्रकार भूतात्मा इन महाभूतों को प्रसारित करता है, तदनन्तर स्वयं में ही इनको सिकोड़ लेता है अर्थात् स्वयं में लीन कर लेता है। वह इन महाभूतों से ही प्राणियों आदि का निर्माण करता है, तथापि जीवगण उसे देख ही नहीं सकते। शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय (कर्ण) तथा आकाश, ये तीनों आकाश से ही उत्पन्न होते हैं।।२७-२८।।

वायोः स्पर्शस्तथा चेष्टा त्वक्चैव त्रितयं स्मृतम्।
रूपं चक्षुस्तथा पाकस्त्रिविधं तेज उच्यते॥२९॥
रसाः क्लेदश्च जिह्वा च त्रयो जलगुणाः स्मृता।
घ्रेयं घ्राणं शरीरं च एते भूमिगुणास्त्रयः॥३०॥

वायु से स्पर्श, चेष्टा तथा त्वक्, ये तीन उत्पन्न होते हैं। रूप, चक्षु तथा अन्न पाचन (पाक) रूप जठराग्नि—ये सभी तेज के ही रूप हैं। रस, क्लेद एवं जिह्वा, जल के रूप हैं। गन्ध-नासिका-देह—ये तीन पृथिवी तत्व के गुण हैं।।२९-३०।।

महाभूतानि पञ्चैव षष्ठं च मन उच्यते। इन्द्रियाणि मनश्चैव विज्ञातान्यस्य भारत॥३१॥
सप्तमी बुद्धिरित्याहुः क्षेत्रज्ञः पुनरष्टमः।
श्रोत्रं वैश्रवणार्थाय स्पर्शनाय च त्वक् स्मृताः॥३२॥
रसानादाय रसना गन्धानादाय नासिका। चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः॥३३॥
बुद्धिरध्यवसानाय क्षेत्रज्ञः साक्षिवत्स्थितः।
ऊर्ध्वं पादतलाभ्यां यदवाक्यचोदक्च पश्यति॥३४॥
एतेन सर्वमेवेदं विभुना व्याप्तमन्तरम्। पुरुषैरिन्द्रियाणीह वेदितव्यानि कृत्स्नशः॥३५॥

इन्द्रिय रूप में ये पंचमहाभूत हैं। छठा है मन। मैंने इस प्रकार इन्द्रिय तथा मन का वर्णन कर दिया। हे भारत! सप्तम है बुद्धि, अष्टम है क्षेत्रज्ञ। श्रोत्र श्रवण के लिये, त्वक् स्पर्श ज्ञान के लिये, रसनेन्द्रिय रसग्रहण

के लिये, नासिका गन्ध ग्रहण के लिये है। नेत्र देखने हेतु है। मन संशय (तर्क-वितर्क) करता है। बुद्धि अध्यवसाय (निर्णय) करती है। क्षेत्रज्ञ मात्र सबका साक्षी होकर स्थित रहता है। वह पदतल से ऊर्ध्व उत्तर-दक्षिण-चतुर्दिक् देखता है। इस प्रकार सब कुछ उस विभु द्वारा व्याप्त है। मनुष्य को चाहिये कि वह इन्द्रियों का सम्यक् ज्ञान रखे।।३१-३५।।

तमो रजश्च सत्त्वं च तेऽपि भावास्तदाश्रिताः। एतां बुद्धिं नरो भूतानामगतिं गतिम्॥३६॥
समवेक्ष्य शनैश्चैवं लभते शममुत्तमम्। गुणैर्विनश्यते बुद्धिर्बुद्धेरेवेन्द्रियाण्यपि॥३७॥
मनः षष्ठानि भूतानि बुद्ध्यभावे कुतो गुणाः। इति तन्मयमेवैतत्सर्वं स्थावरजङ्गमम्॥३८॥

रजः, सत्व, तमः भाव आत्मा पर आश्रित हैं। अपनी बुद्धि से मनुष्य भूतसमूह की गति एवं अगति की समीक्षा करता हुआ शनैः-शनैः शान्तिलाभ करता है। ये गुण बुद्धि का नाश करते हैं। बुद्धि का नाश होने पर इन्द्रियां, मन तथा पंचभूत का नाश हो जाता है। बुद्धि के अभाव में गुण कैसे रह सकेंगे? ये सभी स्थावर-जंगम आत्ममय हैं।।३६-३८।।

प्रलीयते चोद्भवति तस्मान्निर्दिश्यते तथा।
येन पश्यति तच्चक्षुः शृणोति श्रोत्रमुच्यते॥३९॥
जिघ्रति घ्राणमित्याहुः रसं जानाति जिह्वया।
त्वचा स्पर्शयति स्पर्शं बुद्धिर्विक्रियते सकृत्॥४०॥
येन प्रार्थयते किञ्चित्तदा भवति तन्मनः। अधिष्ठानात्तु बुद्धेर्हि पृथगर्थानि पञ्चधा॥४१॥
इन्द्रियाणीति तान्याहुस्तारन्यदृश्योऽधितिष्ठति।
पुरुषे तिष्ठती बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते॥४२॥

ये आत्मा से ही उद्भूत होकर उसी में विलीन हो जाते हैं। अतः इनका निर्देश तद्वत् किया गया है। जो देखता है, वह चक्षु है, जो सुनता है, वह कान (श्रोत्र है) है। सूंघने वाला घ्राण तथा रसज्ञाता जिह्वा है। त्वचा स्पर्श ज्ञान कराती है। बुद्धि में पुनः-पुनः विकार होता है। पुरुष जिससे इच्छा करता है, वह मन है। बुद्धि सर्वाधिष्ठान रूपी है। अतः पांचों इन्द्रियां तथा उनके विषय पृथक् हैं। ये सभी सर्वाधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ को नहीं देख सकते। पुरुष में रहने वाली बुद्धि तीन भावों में रहती है।।३९-४२।।

कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदुपशोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाचिदपि वर्तते॥४३॥
एवं नराणां मनसि त्रिषु भावेषु वर्तते। सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेताननतिवर्तते॥४४॥
सरितां सागरो भर्ता वेलानामिव वारिधिः। अतिभावगता बुद्धिर्भावैर्मनसि वर्तते॥४५॥
वर्तमानो मुनिस्त्वेवं स्वभावमनुवर्तते। इन्द्रियाणि हि सर्वाणि प्रवर्तयति सा सदा॥४६॥

(१) वह कभी प्रसन्न होता है, तो (२) कभी शोकग्रस्त होता है, तथापि (३) उसमें न दुःख है न सुख। इस प्रकार से मन तीनों भाव में विराजमान रहता है। जैसे सागर नदीपति है, वह नदियों को आत्मसात् कर लेता है। अति भावगता बुद्धि भावों के माध्यम से मनस्थ रहती है। हे मुनि! एवंविध वह स्वभाव का अनुसरण करती है तथा बुद्धि इन्द्रियों को प्रेरणा देती है।।४३-४६।।

प्रीतिः सत्त्वं रजः शोकस्तमः क्रोधस्तु ते त्रयः।
ये ये च भावा लोकेऽस्मिन्नसर्वेऽप्येतेषु वै त्रिषु॥४७॥
इति बुद्धिगताः सर्वा व्याख्यातास्तव भावनाः।
इन्द्रियाणि च सर्वाणि विजेतव्यानि धीमता॥४८॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्राणिनां संश्रिताः सदा। त्रिविधा वेदनाश्चैव सर्वसत्त्वेषु दृश्यते॥४९॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति मानद।
सुखस्पर्शः सत्त्वगुणो दुःखस्पर्शो रजोगुणः॥५०॥
तमोगुणेन संयुक्तौ भवतो व्यावहारिकौ। तव यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत्॥५१॥

प्रीति सत्वरूप है। शोक रजोरूप है तथा क्रोध तमोरूप है। लोकों में जो-जो भाव हैं, वे इन गुणत्रय में ही सन्निहित रहते हैं। इस प्रकार मैंने बुद्धिगत भावनाओं की व्याख्या सम्पन्न कर दिया। धीमान् व्यक्ति सभी इन्द्रियों पर विजय करे। सत्व, रजः तथा तमः प्राणीगण में सदा विद्यमान रहा करते हैं। सात्विक-राजस-तामस रूप वेदना सभी प्राणीगण में लक्षित होती है। हे मानद! सत्वगुण सुखद स्पर्शात्मक है। रजोगुण दुःखस्पर्शात्मक है। जब रजः एवं सत्व गुण तमः से मिलते हैं, तब ये व्यावहारिक कहे गये हैं। जब आपके मन तथा देह में प्रसन्नता का अनुभव हो।।४७-५१।।

वर्तते सात्त्विकी भाव इत्याचक्षीत तत्तथा। अथ यद्दुःखसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः॥५२॥
प्रवृत्तं रज इत्येव जानीहि मुनिसत्तम। अथ यन्मोहसंयुक्तमव्यक्तविषयं भवेत्॥५३॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्। प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं वा शान्तचित्तता॥५४॥
कथञ्चिदभिवर्तन्त इत्येते सात्त्विका गुणाः।
अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथा क्षमा॥५५॥
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते देहहेतुभिः। अपमानस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतन्द्रिते॥५६॥
कथञ्चिदभिवर्तते विविधास्तामसा गुणाः। दूषणं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम्॥५७॥
मनः स्वनियतं यस्य स सुखी प्रेत्य चेह च। सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं यस्य सूक्ष्मयोः॥५८॥
सृजते च गुणानेक एको न सृजते गुणान्।
मशकोदुम्बरौ वापिः सम्प्रयुक्तौ यथा सदा॥५९॥

तब यह जाने कि मन तथा देह में सात्विकी भाव है। हे मुनिप्रवर! जब मन दुःखयुक्त हो अथवा कुछ अप्रीतिकर भाव आये, तब रजोगुण की स्थिति जानें। जब मन मोहाकुलित हो तथा विषयवस्तु अव्यक्त हो तर्क-ज्ञान से निर्णय न हो सके, तब तमः का उद्रेक जानना चाहिये। जब प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख, शान्त-चित्तता जो कभी-कभी अनुभूत होता है, तब इसे सात्विकगुण जानें। असन्तोष, परिताप-शोक, लोभ, क्रोध रजोगुण के चिह्न हैं। इनका अनुभव देही को होता रहता है। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा, जो कभी देह में आविर्भूत होता है, वह विविध तामस गुण हैं। देह में अनेक दूषणों का आक्रमण होता है, ये कामना (प्रार्थना) तथा संशय

के कारण उद्भूत होते हैं। जिसने मन को वशीभूत किया है, वह इहलोक तथा परलोक में सुखी हैं। जीवन (सूक्ष्म सत्व) तथा क्षेत्र में भेद यह है कि जीव एक भी गुण का सृजन नहीं कर सकता, जबकि क्षेत्रज्ञ अनेक गुणों का सृजन कर देता है। जैसे गूलरफल तथा उसमें स्थित कीट सम्प्रयुक्त रहते हैं।।५२-५९।।

अन्योन्यमेतौ स्यातां च संप्रयोगस्तथोभयोः।
पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा॥६०॥
यथा मत्स्यो जलं चैव संप्रयुक्तो तथैव तौ।
न गुणा विदुरात्मानं स गुणान्वेत्ति सर्वशः॥६१॥
परिद्रष्टा गुणानां तु संस्रष्टा मन्यते तथा। इन्द्रियस्तु प्रदीपार्थं कुरुते बुद्धि सत्तमैः॥६२॥
निर्विचेष्टैरजानद्भिः परमात्मा प्रदीपवान्। सृजते हि गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति॥६३॥

वैसे ही ये दोनों सदा युक्त रहते हैं। प्रकृति में ये दोनों पृथक् होकर भी सदा सम्प्रयुक्त रहते हैं। जैसे मत्स्य प्रकृति में पृथक् होने पर भी सदा जल से युक्त रहता है। वैसे ही ये दोनों युक्त रहते हैं। गुण आत्मा को नहीं जान सकते, तथापि आत्मा सभी गुणों का ज्ञाता है। वास्तव में पुरुष गुणों का मात्र द्रष्टा है, तथापि हे सत्तम! वह बुद्धि संसर्गवशात् स्वयं को उनका स्रष्टा मानने लगता है। हे सत्तम! परमात्मा प्रदीपवान् तथा चेष्टा रहित है। क्षेत्रज्ञ गुणों को देखता रहता है।।६०-६३।।

संप्रयोगस्तयोरेष सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्ध्रुवम्। आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य क्षेत्रज्ञस्य च कश्चन॥६४॥
सत्त्वं मनः संसृजते न गुणान्ये कदाचन।
रश्मींस्तेषां स मनसा सदा सम्यङ्नियच्छति॥६५॥
तदा प्रकाशतेऽस्यात्मा घटे दीपो ज्वलन्निव।
त्यक्त्वा यः प्राकृतं कर्म नित्यमात्मरतिर्मुनिः॥६६॥
सर्वभूतात्मभूस्तस्मात्स गच्छेदुत्तमां गतिम्।
यथा वारिचरः पक्षी सलिलेन न लिप्यते॥६७॥
एवमेव कृतप्रज्ञो भूतेषु परिवर्तते। एवं स्वभावमेवैतत्स्वबुद्ध्या विहरेन्नरः॥६८॥

इस प्रकार सत्व तथा पुरुष का संसर्ग होने पर भी इनका पार्थक्य अवश्यम्भावी है। जब बुद्धि मन रूपी सारथी द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ों की लगाम खिंचवाकर उनको वशीभूत करती है, तब शरीररूपी घट में स्थित आत्मा प्रकाशित होने लगता है। हे मुनि! जो प्राकृत कर्म का त्याग करके नित्य आत्मा में रत रहता है, वह सभी प्राणीगण की आत्मा को जानने वाला उत्तमगति लाभ करता है। जैसे जलचर पक्षी जल से लिप्त नहीं होता, तदनुरूप प्रज्ञायुक्त मनुष्य भूतसमूह में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता। इस प्रकार स्वभावस्थ बुद्धि वाला होकर स्वेच्छा पूर्वक विचरण करे।।६४-६८।।

अशोचन्नप्रहृष्यंश्च समो विगतमत्सरः।
भावयुक्तया प्रयुक्तस्तु स नित्यं सृजते गुणान्॥६९॥

ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं विज्ञेयास्तन्तुवद्गुणाः। प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते निवृत्तिर्नोपलभ्यते॥७०॥
प्रत्यक्षेण परोक्षं तदनुमानेन सिद्ध्यति। एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे॥७१॥

वह शोक तथा हर्ष एवं ईर्ष्या रहित होकर समत्व स्थिति में रहे। वह व्यक्ति भावयुक्त होकर नित्य गुणों की सृष्टि करता है। जैसे मकड़ी अपने मुख से अपने जाले का सूत्र उगलती है, उसी प्रकार से वह प्रज्ञावान् यह कार्य (गुण सृष्टि कार्य) करता है। ये गुण यद्यपि ध्वस्त होते जाते हैं, तथापि इस गुणसृष्टि का विराम नहीं होता। वह कार्य अनवरत चलता रहता है। उसका कार्य प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा अनुमान से सिद्ध होता है। (अर्थान्तर है कि उस जीव का कर्त्तव्य प्रत्यक्ष सृष्टि से सिद्ध होता है तथा परोक्ष की अनुमान द्वारा सिद्धि होती है)। कुछ विद्वानों का मत है कि वह सदा इस व्यवसाय में लगा रहता है। अन्य का मत है कि वह कभी इस कार्य से निवृत्त भी हो जाता है।।६९-७१।।

उभयं संप्रधार्यैतद्व्यवस्येत यथामति। इतीमं हृदयग्रन्थिं बुद्धिचिन्तामयं दृढम्॥७२॥
विमुच्य सुखमासीत न शोचेच्छिन्नसंशयः।
मलिनाः प्राप्नुयुः शुद्धिं यथा पूर्णां नदीं नराः॥७३॥
अवगाह्य सुविद्वांसो विद्धि ज्ञानमिदे तथा। महानद्या हि पारज्ञस्तप्यते न तरन्यथा॥७४॥
न तु तप्यति तत्त्वज्ञः कुलज्ञस्तु तरत्युत। एवं ये विदुरध्यात्मं कैवल्यं ज्ञानमुत्तमम्॥७५॥

व्यक्ति इन उभय सिद्धान्तों का विश्लेषण करके यथामति कार्य करे। एवंविध हृदयग्रन्थि को बुद्धि-चिन्तामय होकर दृढ़ता से भेद करके सुख से रहे। वह संशय छिन्न करे तथा शोक न करे। एक मलिन व्यक्ति नदी स्नान द्वारा शुद्ध हो जाता है तदनुरूप ज्ञान रूपी महानदी में स्नान द्वारा शुद्ध होता है। तैराक को महानदी पार करते समय कष्ट नहीं होता। तदनुरूप तत्व तथा कुल ज्ञानी संसार-सागर को पार कर लेता है। जो इस उत्तम कैवल्य ज्ञान को जानते हैं।।७२-७५।।

एवं बुद्ध्वा नरः सर्वो भूतानामगतिं गतिम्।
अपेक्ष्य च शनैर्बुद्ध्या लभते च शमं ततः॥७६॥
त्रिवर्गो यस्य विदितः प्रेक्ष्य यश्च विमुञ्चति।
अन्विष्य मनसा युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः॥७७॥
न चात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियेषु विभागशः। तत्र तत्र विसृष्टेषु दुर्वापेष्वकृतात्मभिः॥७८॥
एतद् बुद्ध्वा भवेद् बुद्धः किमन्यद् बुद्धलक्षणम्।
विज्ञाय तद्धि मन्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः॥७९॥

वे सभी प्राणियों की गति ज्ञान द्वारा जान लेते हैं। वे ज्ञानबुद्धि से यह जानकर उत्तम शान्तिलाभ करते हैं। जो त्रिवर्ग जानते हैं, जो जगत् को देखकर उससे मुक्त हो जाते हैं अज्ञानी लोग आत्मा को इन्द्रिय से पृथक् नहीं देख पाते। वे इन्द्रियों को विभाग के अनुसार नहीं जोत्त पाते। अतः ऐसी उपरोक्त ज्ञान बुद्धियुक्त ही बुद्ध कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त बुद्ध का कोई लक्षण कैसे हो सकता है? यह जानकर मनीषी कृतार्थ हो जाते हैं।।७६-७९।।

न भवति विदुषां ततो भयं यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत्।
नहि गतिरधिकास्ति कस्यचित्सति हि गुणे प्रवदत्यतुल्यताम्।।८०।।
यः करोत्यनभिसन्धिपूर्वकं तच्च निर्दहति यत्पुराकृतम्।
नाप्रियं तदुभयं कुतः प्रियं तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः।।८१।।
लोकमायुरभिसूयते जनस्तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः।
तत्र पश्य कुशलान्न शोचते जायते यदि भयं पदं सदा।।८२।।

ऐसे ज्ञान से जो विद्वान् तथा बुद्धिमान् हो गया है, उसे कोई भय नहीं रह जाता, तथापि अज्ञानी महाभय युक्त रहता है। जो व्यक्ति फलेच्छा तथा आसक्ति त्याग देता है, तब कर्म करता है, वह पूर्वकृत सभी कर्मों को दग्ध कर देता है। इस व्यक्ति द्वारा अब किये कर्म का कोई प्रिय अथवा अप्रिय फल उत्पन्न ही नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य अपने जीवन पर्यन्त लोगों को कष्ट देता है, तब यह कर्म जो उसने किया है (उस पुरुष का कृत अशुभ कर्म) उसे अशुभ फलोत्पादन ही करता है। कुशल कर्म कर्त्ता (पुण्य कर्त्ता) कदापि कर्म द्वारा शोकग्रस्त नहीं होता, तथापि यदि वह पाप करता है, तब उसे प्रत्येक कदम पर भय बना रहेगा।।८०-८२।।

भरद्वाज उवाच

ध्यानयोगं समाचक्ष्व मह्यं तत्पदसिद्धये। यज्ज्ञात्वा मुच्यते ब्रह्मन्नरस्त्रिविधतापतः।।८३।।

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मपद लाभ के लिये विहित ध्यान योग का उपदेश दीजिये, जिसे जानकर व्यक्ति त्रिविध तापों से निर्मुक्त हो जाता है।।८३।।

भृगुरुवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि ज्ञानयोगं चतुर्विधम्।
यं ज्ञात्वा शाश्वतीं सिद्धिं गच्छन्तीह महर्षयः।।८४।।
यथा स्वनुष्ठितं ध्यानं तथा कुर्वन्ति योगिनः। महर्षयो ज्ञानतृप्ता निर्वाणगतमानसाः।।८५।।
नावर्तन्ते पुनश्चापि मुक्ताःसंसारदोषतः। जन्मदोषपरिक्षीणाः स्वभावे पर्यवस्थिताः।।८६।।
निर्द्वन्द्वा नित्यसत्त्वस्था विमुक्ता निष्परिग्रहाः।
असङ्गान्यविधादीनि मनः शान्तिकराणि च।।८७।।
तत्र ध्यानेन संक्लिष्टमेकाग्रं दारयेन्मनः।
पिण्डीकृत्येन्द्रियग्राममासीनः काष्ठवन्मुनिः।।८८।।
शब्दं न विन्देच्छ्रोत्रेण त्वचा स्पर्शं न वेदयेत्।
रूपं न चक्षुषा विद्याज्जिह्वया न रसांस्तथा।।८९।।
घ्रेयाण्यपि च सर्वाणि जह्याद्ध्यानेन तत्त्ववित्।
पञ्चवर्गप्रमाथीनि नेच्छेच्चैतानि वीर्यवान्।।९०।।

महर्षि भृगु कहते हैं—अच्छा! अब मैं चतुर्विध ज्ञानयोग कहता हूं, जिसे जानकर महर्षियों ने शाश्वती सिद्धि प्राप्त किया। योगीगण अपने अनुष्ठित ध्यान का सदा अभ्यास करते हैं। मर्हिषगण सदा ज्ञान तृप्त तथा निर्वाणकामी मन वाले होते हैं। वे जन्म दोष को क्षीण कर देते हैं। तब वे स्वभाव में स्थित हो जाते हैं। वे लोग सुख-दुःख से परे, नित्य सत्वस्थ, विमुक्त, परिग्रह से रहित व्यक्ति संसारदोष से रहित होकर पुनः आवागमन चक्र में नहीं पड़ते। अनासक्ति, असंग आदि उपाय मन को शान्त करने वाले हैं। इनके द्वारा ध्यान तत्पर होकर अपने मन को एकाग्र करना चाहिये। अब वह मुनि काष्ठवत् बैठ जाये। वह इन्द्रियों को पिण्डीकृत करे अर्थात् उनकी बहिर्गति को रोक दे। कानों से शब्द न सुने, त्वचा के स्पर्श को न जाने। चक्षु से रूप दर्शन न करे, जिह्वा से रस का ध्यान छोड़ दे। सभी सूंघने योग्य विषयों का भी त्याग करें। तदनन्तर वह वीर्यवान् योगी पांचों इन्द्रियों के विषयों की इच्छा न करें।।८४-९०।।

ततो मनसि सङ्गृह्य पञ्चवर्गं विचक्षणः।
समादध्यान्मनो भ्रान्तमिन्द्रियैः सह पञ्चभिः।।९१।।
विसञ्चारि निरालम्बं पञ्चद्वारं बलाबलम्। पूर्वध्यानपथे धीरः समादध्यान्मनस्त्वरा।।९२।।

वह विद्वान् साधक मन से ही पंचवर्ग को जकड़कर पांचों इन्द्रियों द्वारा भ्रान्त हो रहे मन की एकाग्रता को सम्पन्न करे। वह धीर साधक निरन्तर संचाररत निरालम्ब पंचेन्द्रिय को पूर्वोक्त ध्यान पथ द्वारा समाहित करे।।९१-९२।।

इन्द्रियाणि मनश्चैव यदा पिण्डीकरोत्ययम्। एष ध्यानपथः पूर्वो मया समनुवर्णितः।।९३।।
तस्य तत्पूर्वसंरुद्ध आत्मषष्ठमनन्तरम्। स्फुरिष्यति समुद्भ्रान्ता विद्युदम्बुधरे यथा।।९४।।
जलबिन्दुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः।
एवमेवास्य चित्तं च भवति ध्यानवर्त्मनि।।९५।।
समाहितं क्षणं किञ्चिद्ध्यानवर्त्मनि तिष्ठति। पुनर्वायुपथं भ्रान्तं मनो भवति वायुवत्।।९६।।
अनिर्वेदो गतक्लेशो गततन्द्रो ह्यमत्सरी।
समादध्यात्पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित्।।९७।।

जब इन्द्रियां तथा मन पिण्डीकृत (समाहित-एकाग्र) हो जाते हैं, तब वही मेरे द्वारा पूर्व वर्णित ध्यानपथ है। इस प्रकार ५ इन्द्रियों तथा छठे मन को संरुद्ध कर देने से आत्मशक्ति स्फुरित होती है। वह वैसा ही है, जैसे समुद्रस्थ विद्युत् मेघों के मध्य में स्फुरित होती है, जिस प्रकार जलविन्दु कमलपत्र पर स्थिरवत् न रहकर चंचल रहता है, तदनुरूप योगी का चित्त ध्यानपथ पर (बीच-बीच में) चंचल होता रहता है। पहले स्थित रहकर पुनः वायुपथ पर वायुवत् भ्रान्त हो जाता है। अतः ऐसी अवस्था आने पर ध्यानी योगी ध्यान द्वारा निर्वेद, आलस्य, क्लेश तथा मत्सर समाधान करे।।९३-९७।।

विचारश्च वितर्कश्च विवेकश्चोपजायते। मुनेः समाधियुक्तस्य प्रथमं ध्यानमादिताः।।९८।।
मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत्।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत्कुर्यादेवात्मनो हितम्।।९९।।

पांशुभस्मकरीषाणां यथा वै राशयश्श्रिताः।
सहसा वारिणा सिक्ता न यान्ति परिभावनाः॥१००॥
किञ्चित् स्निग्धं यथा च स्याच्छुष्कं चूर्णमभावितम्।
क्रमेण तु शनैर्गच्छेत्सर्वं तत्परिभावनम्॥१०१॥
एवमेवेन्द्रियग्रामं शनैः शं परिभावयेत्। संहरेत्क्रमशश्चैव सम्यक् तत्प्रशमिष्यति॥१०२॥

ध्यान में समाधियुक्त को विचार तथा वितर्क एवं विवेक उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में योगी को चाहिये कि इनका समाधान करें। इन सब से उस योगी मुनि को दुःख का अनुभव नहीं करना चाहिये। वह अपने हित का प्रयत्न करे। जैसे धूल, कण्डे की भस्म तथा चिता, जल सिंचन से तत्काल शान्त नहीं होती। वह पहले धीरे-धीरे गीली होती है। कुछ सूखी भी रहती है तदनन्तर क्रमशः पूर्ण आर्द्र हो पाती है। एवंविध इन्द्रियों को क्रमशः शान्त किया जाना चाहिये। सर्वाग्र में इनको धीरे-धीरे विषयों से विमुख करें। तदनन्तर वे अन्ततः स्वयं प्रशमित (शान्त) हो जायेंगी।।९८-१०२।।

स्वयमेव मनश्चैवं पञ्चवर्गं मुनीश्वर। पूर्वं ध्यानपथे स्थाप्य नित्ययोगेन शाम्यति॥१०३॥
न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित्। सुखमेष्यति तत्तस्य यदेवं संयतात्मनः॥१०४॥
सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यानकर्मणि।
गच्छन्ति योगिनो ह्येवं निर्वाणं तु निरामयम्॥१०५॥

हे मुनीश्वर! योगी स्वयं मन तथा पंचेन्द्रिय को ध्यानपथ पर स्थापित करे। तदनन्तर ये नित्ययोग साधना द्वारा शान्त हो जाती हैं। यह सुख पौरुष तथा दैव नहीं दे सकता। यह सुखलाभ संयतात्मा को ध्यानकर्म से मिलता है। योगी इस प्रकार ध्यानकर्म में निरत होकर निरामय निर्वाण लाभ करता है।।१०३-१०५।।

सनन्दन उवाच

इत्युक्तो भृगुणा ब्रह्मन्भरद्वाजः प्रतापवान्।
भृगुं परमधर्मात्मा विस्मितः प्रत्यपूजयत्॥१०६॥
एष ते प्रसवो विद्वान् जगतः सम्प्रकीर्तितः।
निखिलेन महाप्राज्ञ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१०७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे द्वितीयपादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे ब्रह्मन्! यह प्रसंग महर्षि भृगु ने प्रतापी भरद्वाज से कहा था। यह सुनकर भरद्वाज ने परमधर्मात्मा भृगु का पूजन किया। हे विद्वान् नारद! यही जगत् की उत्पत्ति कथा है। हे महाप्राज्ञ! आप अब क्या श्रवण करना चाहते हैं?।।१०६-१०७।।

।।४४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा जनक को पञ्चशिख मुनि का उपदेश

सूत उवाच

सनन्दनवचः श्रुत्वा मोक्षधर्माश्रितं द्विजाः।
पुनः पप्रच्छ तत्त्वज्ञो नारदोऽध्यात्मसत्कथाम्॥१॥

सूत जी कहते हैं—हे द्विजो! मोक्षधर्माश्रित सनन्दन का कथन सुनकर तत्वज्ञ नारद ने अध्यात्ममय सत्कथा का प्रसंग पूछा।।१।।

नारद उवाच

श्रुतं मया महाभाग मोक्षशास्त्रं त्वयोदितम्।
न च मे जायते तृप्तिर्भूयोभूयोऽपि शृण्वतः॥२॥
यथा सम्मुच्यते जन्तुरविद्याबन्धनान्मुने। तथा कथय सर्वज्ञ मोक्षधर्म सदाश्रितम्॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! मैंने आप द्वारा कथित मोक्षशास्त्र श्रवण किया, तथापि इसे पुनः-पुनः सुनकर भी मैं तृप्त नहीं हो रहा हूं। जन्तुगण अविद्या के बन्धन से किस प्रकार छुटकारा पाते हैं? हे मुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं। यह कहिये। आप मोक्षधर्मज्ञ तथा पालक हैं।।२-३।।

सनन्दन उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। यथा मोक्षमनुप्राप्तो जनको मिथिलाधिपः॥४॥
जनको जनदेवस्तु मिथिलाया अधीश्वरः। और्ध्वदेहिकधर्माणामासीद्युक्तो विचिन्तने॥५॥
तस्य तु शतमाचार्या वसन्ति सततं गृहे। दर्शयन्तः पृथग्धर्मान्नानापाषण्डवादिनः॥६॥
स तेषां प्रेत्यभाव च प्रेत्य जातौ विनिश्चये।
आगमस्थः स भूयिष्ठमात्मतत्त्वेन तुष्यति॥७॥

देवर्षि सनक कहते हैं—बुद्धिमान् लोग इस सम्बन्ध में वह पुरातन इतिहास कहते हैं, जिसके अनुसार मिथिला के राजा जनक को मोक्षलाभ हुआ था। मिथिला के अधीशवर जनक को प्रजा देववत् मानती थी। वे सदा और्ध्वदैहिक धर्म का चिन्तन करते रहते थे। उनके यहां सैकड़ों आचार्य निवास करते थे। वे इस सम्बन्ध में नाना मतों को राजा से कहते थे। उनमें पाखण्डवादी भी थे। राजा उन लोगों के साथ प्रेत्यभाव तथा मृत्यु के अनन्तर की गति का आगमों के मतानुरूप विचार करके अन्ततः आत्मतत्व का निर्णय होने पर सन्तुष्ट होते थे।।४-७।।

तत्र पञ्चशिखो नाम कापिलेयो महामुनिः। परिधावन्महीं कृत्स्नां जगाम मिथिलामथ॥८॥
सर्वसंन्यासधर्माणः तत्त्वज्ञानविनिश्चये। सुपर्यवसितार्थश्च निर्द्वन्द्वो नष्टसंशयः॥९॥
ऋषीणामाहुरेकं यं कामादवसितं नृषु। शाश्वतं सुखमत्यन्तमन्विच्छन्स सुदुर्लभम्॥१०॥

यमाहुः कपिलं सांख्याः परमर्षिप्रजापतिम्।
स मन्ये तेन रूपेण विख्यापयति हि स्वयम्॥११॥
आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम्। पञ्चस्त्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्त्रकम्॥१२॥

वहां किसी समय कपिल मुनिनन्दन महर्षि पंचशिख मिथिलापुरी में पहुंचे। वे पृथिवी परिक्रमा करते वहां आये। वे समस्त संन्यासधर्म के तत्व ज्ञान के ज्ञाता थे। वे निर्द्वन्द्व तथा नष्ट संशय थे। ऋषिगण में वे अद्वितीय थे। (ऋषिगण में उनको अत्यन्त मान्यता थी) उन्होंने सुदुर्लभ शाश्वत सुख की इच्छा से काम पर विजय पा लिया था। सांख्य मतावलम्बी परमर्षि प्रजापति को कपिल कहते हैं। मानो स्वयं कपिल मुनि ने पंचशिख के रूप में स्वयं को प्रकट किया था। संसार में लोग उनको आसुरि मुनि के प्रथम शिष्य तथा चिरंजीवी कहते हैं। उन्होंने पंचस्रोत में सहस्त्रवर्ष पर्यन्त यज्ञ किया था।।८-१२।।

पञ्चस्त्रोतसमागम्य कापिलं मण्डलं महत्। पुरुषावस्थमव्यक्तं परमार्थं न्यवेदयत्॥१३॥
इष्टिमन्त्रेण संयुक्तो भूयश्च तपसा सुरिः। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्व्यक्तिं विबुधे देहदर्शनः॥१४॥
यत्तदेकाक्षरं ब्रह्म नानारूपं प्रदृश्यते। आसुरिमण्डले तस्मिन्प्रतिपेदे तमव्ययम्॥१५॥
तस्य पञ्चशिखः शिष्यो मानुष्या पयसा भृतः।
ब्राह्मणी कपिली नाम काचिदासीत्कुटुम्बिनी॥१६॥
तस्याः पुत्रत्वमागत्य स्त्रियाः स पिबति स्तनौ।
ततश्च कापिलेयत्वं लेभे बुद्धिं च नैष्ठिकीम्॥१७॥

पंचस्रोत क्षेत्र में आसुरी द्वारा महान् कापिल मण्डल (कपिल मतानुयायी मुनिमण्डली) को अव्यक्त परमार्थ मय ब्रह्म का प्रसंग बतलाया गया था। उन्होंने इष्टिमन्त्र संयुक्त प्रभूत तप किया था। वे क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ को जान गये थे। एकाक्षर जो ब्रह्म नानारूपेण परिदृश्यमान होता है, उस कापिल मण्डल में आसुरी ने उन अव्यय ब्रह्म को प्राप्त किया था। इन आसुरी के ही पंचशिख शिष्य थे। इन पंचशिख ने मानुषी माता का दुग्धपान किया था। एक ब्राह्मणी कपिली नामक कुटुम्बिनी स्त्री थी। उसके गर्भ से जन्म लेकर कपिली का ही स्तनपान पंचशिख ने किया था। तभी उनको कापिलेयत्व एवं नैष्ठिक बुद्धि की प्राप्ति हो गयी।।१३-१७।।

एतन्मे भगवानाह कापिलेयस्य सम्भवम्। तस्य तत्कापिलेयत्वं सर्ववित्त्वमनुत्तमम्॥१८॥
सामात्यो जनको ज्ञात्वा धर्मज्ञो ज्ञानिनं मुने।
उपेत्य शतमाचार्यान्मोहयामास हेतुभिः॥१९॥
जनकस्त्वभिसंरक्तः कापिलेयानुदर्शनम्।
उत्सृज्य शतमाचार्यान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम्॥२०॥
तस्मै परमकल्याणं प्रणताय च धर्मतः। अब्रवीत्परमं मोक्षं यत्तत्सांख्यं विधीयते॥२१॥
जातिनिर्वेदमुक्त्वा स कर्मनिर्वेदमब्रवीत्। कर्मनिर्वेदमुक्त्वा च सर्वनिर्वेदमब्रवीत्॥२२॥

कापिलेय पंचशिख की इस जन्मकथा को भगवान् ने स्वयं मुझसे कहा था। धर्मज्ञ जनक उन मुनि को

कापिलेयत्वमय जानकर तथा अत्युत्तम सर्वतत्वज्ञ मानकर उन धर्मज्ञ मुनि के यहां सौ आचार्यगण सहित गये तथा अपने हेतुवाद से उन्होंने उन मुनि को मोहित कर दिया। जनक उन कापिलेय के दर्शन से अतीव हर्षित हो गये। उन्होंने अपने साथ आये सौ आचार्यगण को वहीं छोड़ दिया तथा कापिलेय का अनुगमन करने लगे। तब उन मुनि ने प्रणत सविनीत हो गये जनक से धर्मतः परममोक्ष धर्म को कहा जिसे सांख्य कहते हैं। पहले मुनि ने जातिनिर्वेद का वर्णन किया। (जातिनिर्वेद अर्थात् गर्भवास आदि से होने वाले कष्टों का चिन्तन करके तब देह से वैराग्य होना) तत्पश्चात् मुनि ने कर्मनिवेद का वर्णन किया—(नानायोनि में जन्म तथा नरकादि यातना को देखकर पापकर्म तथा कामनापूर्ण कर्म से विरक्ति होना कर्म निवेद है)। तत्पश्चात् मुनि ने सर्वनिर्वेद का वर्णन किया (सर्वनिर्वेद अर्थात् तृण से लेकर ब्रह्मलोक तक के भोगों की क्षणभंगुरता, उनके अन्तर्गत् मिलने वाले दुःख का चिन्तन करके सर्वतः विरक्त होना)।।१८-२२।।

यदर्थं धर्मसंसर्गः कर्मणा च फलोदयः। तमनाश्वासिकं मोहं विनाशि चलमध्रुवम्॥२३॥

(तदनन्तर पंचशिख ने कहा)—जिस परलोक भोगार्थ धर्माचरण किया जाता है, जो परलोक कर्मफलोदय द्वारा पाया जाता है, वह परलोक-इहलोक भोग पूर्णत; नाशवान है। उस पर विश्वास न करे। वह चंचल, मोहमय तथा अस्थिर है। यह ध्रुव सत्य है।।२३।।

दृश्यमाने विनाशे च प्रत्यक्षे लोकसाक्षिके। अगमात्परमस्तीति ब्रुवन्नपि पराजितः॥२४॥

अनात्मा ह्यात्मनो मृत्यु क्लेशो मृत्युर्जरामयः।
आत्मानं मन्यते मोहात्तदसम्यक् परं मतम्॥२५॥

अन्य नास्तिक कहते हैं कि सम्पूर्ण लोक साक्षी है कि इस दृश्यमान देह का नाश होता है। यदि कोई शास्त्र का आधार लेकर देह से अलग आत्मा का प्रतिपादन करने लगे, तब उसका कथन लोकानुभव से विपरीत है। अतः देह से अलग आत्मा मानने वाला पराजित ही है। अनात्मा ही आत्मा की मृत्यु है (?)। रोग-जरा आदि क्लेश ही मृत्यु है। मोहवश आत्मा को देह से पृथक् मानना उचित मत नहीं है!।।२४-२५।।

अथ चेदेवमप्यस्ति यल्लोके नोपपद्यते। अजरोऽयममृत्युश्च राजासौ मन्यते यथा॥२६॥

अस्ति नास्तीतिचाप्येतत्तस्मिन्नसितलक्षणे।
किमधिष्ठाय तद् ब्रूयाल्लोकयात्राविनिश्चयम्॥२७॥
प्रत्यक्षं ह्येतयोर्मूलं कृतान्ते ह्येतयोरपि।
प्रत्यक्षो ह्यागमो भिन्नः कृतान्तो वा न किञ्चन॥२८॥
यत्र तत्रानुमानेऽस्मिन्कृतं भावयतेऽपि च।
अन्यो जीवः शरीरस्य नास्तिकानां मते स्थितः॥२९॥

यदि इस लोक में जो नहीं हो सकता, उसको हम सत्य मान लें, तब वह उचित नहीं है। यथा यदि शास्त्रोक्त मतानुसार यह स्वीकार किया जाये कि देह से अतिरिक्त कोई अजर-अमर आत्मा है, तब यह भी सत्य मानना होगा कि बंदीगण यथार्थ बात कहते हैं कि राजा अजर-अमर है। (बंदीगण ऐसी अतिशयोक्ति चापलूसी में ही कहते हैं)। जैसे यह कथन औपचारिक मात्र है। तदनुरूप ऐसा शास्त्र वाक्य भी मात्र औपचारिक ही है। रोग

रहित देह को लोक में अजर-अमर माना गया है, जो यहां प्रत्यक्ष सुख भोग मिलता है, वही स्वर्गीय सुख है। आत्मा है किंवा नहीं है, यह प्रश्न जब सामने हो, तब अनुमान से ही इसका निर्णय लिया जाये, तथापि ऐसा कोई ज्ञापक हेतु ही नहीं मिलता जो कहीं से निरर्थक न सिद्ध हो सके। तब किस अनुमान के द्वारा लोक व्यवहार निश्चित होगा? अनुमान तथा आगम प्रमाणों का मूल है प्रत्यक्ष प्रणाम! यदि ये दोनों प्रत्यक्ष के विपरीत हैं, तब वे प्रामाणिक नहीं हैं। किसी भी अनुमान से ईश्वर, अदृष्ट किंवा आत्मा की सिद्धि हेतु जो भावना की जाये, वह व्यर्थ है। अतः नास्तिकों के अनुसार जीव का शरीर से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं है।।२६-२९।।

रेतोवटकणीकायां घृतपाकाधिवासनम्। जातिस्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोऽम्बुभक्षणम्॥३०॥

जिस प्रकार वट बीज में सम्पूर्ण वट वृक्ष की संभावना (उसके पत्ते, पुष्प, मूल, त्वचापि) अन्तर्निहित रहता है, गौ द्वारा चरी गई घास से घी-दुग्धादि प्रकट होते हैं, जैसे अनेक औषधियों के पाकादि से उनमें मादकता आ जाती है, तदनुरूप वीर्य से देह तथा चैतन्य प्रकट होता है।।३०।।

प्रेतभूतप्रियश्चैव देवता ह्युपयाचनम्। मृतकर्मनिवृत्तिं च प्रमाणमिति निश्चयः॥३१॥

नन्वेते हेतवः सन्ति ये केचिन्मूर्तिसंस्थिताः।
अमृतस्य हि मूर्तेन सामान्यं नोपलभ्यते॥३२॥
अविद्या कर्म तृष्णा च केचिदाहुः पुनर्भवम्।
तस्मिन्नष्टे च दग्धे च चित्ते मरणधर्मिणि॥३३॥
अन्योऽस्यमाज्जायते मोहस्तमाहुः सत्त्वसञ्क्षयम्।
यदा सरूपतश्चान्यो जातितः श्रुततोऽर्थतः॥३४॥
कथमस्मिन्स इत्येव सम्बन्धः स्यादसंहितः।
एवं सति च का प्रीतिर्ज्ञानविद्यातपोबलैः॥३५॥
यदस्याचरितं कर्म सामान्यात्प्रतिपद्यते।
अपि त्वयमिहैवान्यैः प्राकृतैर्दुःखितो भवेत्॥३६॥
सुखितो दुःखितो वापि दृश्यादृश्यविनिर्णयः।
यता हि मुशलैर्हन्युः शरीरं तत्पुनर्भवेत्॥३७॥
वृथा ज्ञानं यदन्यच्च येनैतन्नोपलभ्यते।
ऋमसंवत्सरौ तिष्यः शीतोष्णोऽथ प्रियाप्रिये॥३८॥
यथा तातानि पश्यन्ति तादृशः सत्त्वसञ्क्षयः।
जरयाभिपरीतस्य मृत्युनाच विनाशितम्॥३९॥
दुर्बलं दुर्बलं पूर्वं गृहस्येव विनश्यति।
इन्द्रियाणि मनो वायुः शोणितं मांसमस्थि च॥४०॥

अब उपरोक्त नास्तिक कथन का खण्डन करते हैं कि मृत देह में चेतनता नहीं रह जाती। अतः आत्मा

का अस्तित्व देह से पृथक् है। चेतनता कदापि देह धर्म नहीं है। ऐसा होता तो मृतक देह भी चेतनता पूर्ण रहता। मृत्यु पश्चात् (सड़ने के पूर्व तक) देह तो रहेगा, परन्तु वह चेतना नहीं रहती। चैतन्य आत्मा शरीर से पृथक् है। यह निश्चित मत है। नास्तिक भी रोग आदि से छुटकारा हेतु मन्त्र-जपादि पद्धति से देवाराधन करते हैं। यदि देवता पांच भौतिक है, तब गृह आदि प्रत्यक्ष वस्तु जैसा उसका दर्शन मिलना चाहिये। यदि वह भौतिक वस्तु नहीं है, तब तो चेतन की सत्ता अपने आप सिद्ध है। यह प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध है कि आत्मा देह से अलग है। यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है कि देह ही आत्मा है। यदि देह की मृत्यु सहित आत्मा भी मृत होती है, तब कृत कर्म का भी मृत्यु के साथ नाश होना माना जायेगा। तब तो शुभ-अशुभ का भोक्ता ही नहीं रह जायेगा। अतः यह स्पष्ट होता है कि देह के अतिरिक्त भी चेतन आत्मा की स्थिति है। नास्तिक जिन प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं, वे मूर्त पदार्थ हैं। मूर्त-जड़ से तो मूर्त जड़ ही उत्पन्न होगा। जैसे काष्ठ से अग्नि की उत्पत्ति। यदि पञ्चभूतों से आत्मा की उत्पत्ति की तरह मूर्त्त से अमूर्त्त की उत्पत्ति का सिद्धान्त लिया जाये, तब तो यह मानना पड़ेगा कि मूर्त्त भूतों से अमूर्त्त आकाश उत्पन्न है। ऐसा संभव नहीं है। अतः स्थूलभूत के संयोग से अमूर्त्त चेतनात्मा कदापि उत्पन्न नहीं होता।।३१-४०।।

(नोट : यहां ३१ से ४० तक शब्दार्थ न देकर उसका तत्वार्थ दिया गया है। मूल के शब्दार्थ से कुछ भी हल नहीं हो रहा था।)

आनुपूर्व्या विनश्यन्ति स्वं धातुमुपयाति च। लोकयात्राविघातश्च दानधर्मफलागमे।।४१।।
तदर्थं वेदशब्दाश्च व्यवहाराश्च लौकिकाः। इति सम्यङ् मनस्येते बहवः सन्ति हेतवः।।४२।।
एतदस्तीति नास्तीति न कश्चित्प्रतिदृश्यते। तेषां विमृशतामेव तत्सम्यगभिधावताम्।।४३।।
क्वचिन्निवसते बुद्धिस्तत्र जीर्यति वृक्षवत्। एवतुर्थैरनर्थैश्च दुःखिताः सर्वजन्तवः।।४४।।

यदि आत्मा की स्थिति न मानी जाये, तब लोकयात्रा का निर्वहन कैसे होगा? किसी की आस्था दान-धर्म के फल के प्रति नहीं रहेगी। वैदिक शब्द तथा लौकिक व्यवहार आत्मा के सुख के ही लिये हैं। अतः मन यह तर्क करता है कि नास्तिक के तर्कों से आत्मा की सत्ता एवं असत्ता अनिर्णीत रह जाती है। इस विचार से भिन्न मतावलम्बी बुद्धि एक स्थान पर प्रविष्ट होकर मिट्टी में जड़ स्थापित किये वृक्षवत् वहां जीर्ण हो जाती है। ऐसे अर्थ-अनर्थ से सभी प्राणी दुःखपूर्ण रहते हैं।।४१-४४।।

आगमैरपकृष्यन्ते हस्तिपैर्हस्तिनो यथा।।४५।।
अर्थांस्तथा हन्ति सुखावहांश्च लिहन्त एते बहवोपशुष्काः।
महत्तरं दुःखमभिप्रपन्ना हित्वामिषं मृत्युवंशं प्रयान्ति।।४६।।
विनाशिनो ह्यध्रुवजीविनः किं किं बन्धुभिर्मित्रपरिग्रहैश्च।
विहाय यो गच्छति सर्वमेव क्षणेन गत्वा न निवर्तते च।।४७।।
भूव्योमतोयानलवायवोऽपि सदा शरीरं प्रतिपालयन्ति।
इतीदमालक्ष्य रतिः कुतो भवेद्विनाशिनाप्यस्य न शर्म विद्यते।।४८।।

शास्त्र ही ऐसे बुद्धियुक्त प्राणी को बलात् खींचते हुये सत्पथ पर लाते हैं। यह उसी प्रकार है, जैसे

महावत अंकुश द्वारा हाथी को संतुलित रखता है। अनेक शुष्क मनोवृत्ति वाले लोग सुखप्रद विषयों के प्रति आकर्षित रहते हैं, तथापि इससे उनको अत्यन्त दुःख का सामना करना पड़ता है। अन्ततः भोग यहीं रह जाते हैं तथा वे लोग मृत्यु द्वारा ग्रसित हो जाते हैं। यह जीवन अल्पकाल में नष्ट हो जाता है। अतः देह अनित्य है। अतः स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव से क्या लाभ। जो यह विचार करके क्षणमात्र में इन सबके प्रति वैराग्यवान् हो जाता है, वह मरकर पुनः जन्म नहीं लेता। पृथिवी, आकाश, जल अग्नि, वायु रूप पंचमहाभूत सदा शरीर का पालन करते हैं। जो यह जान लेता है, वह देहादि एवं विषयों के प्रति आसक्त कैसे होगा। मृत्युमुख में एक दिन यह शरीर जायेगा ही! इससे सुख कहां?।।४५-४८।।

इदमनुपधिवाक्यमच्छलं परमनिरामयमात्मसाक्षिकम्।
नरपतिरभिवीक्ष्य विस्मितः पुनरनुयोक्तुमिदं प्रचक्रमे॥४९॥

महर्षि का यह वाक्य सुनकर जो परम निरामय तथा आत्मसाक्षात्कार से पूर्ण था, राजा अतीव विस्मित होकर कहने लगे।।४९।।

जनक उवाच

भगवन्यदि न प्रेत्य संज्ञा भवति कस्यचित्।
एवं सति किमज्ञानं ज्ञानं वा किं करिष्यति॥५०॥
सर्वमुच्छेदनिष्ठं स्यात्पश्य चैतद्द्विजोत्तम। अप्रमतः प्रमतो वा किं विशेषं करिष्यति॥५१॥
असंसर्गो हि भूतेषु संसर्गो वा निवाशिषु।
कस्मै क्रियते कल्पेत निश्चयः कोऽत्र तत्त्वतः॥५२॥

राजा जनक कहते हैं—हे प्रभो! जो प्रेत्य संज्ञा से कदाचित युक्त हो गया है, उसका यह ज्ञान क्या करेगा? आप यह बतलायें कि अप्रमत अथवा प्रमत क्या विशेष करेगा? प्राणीगण के लिये विषय संसर्ग विनाशक होता है। अतः यहां कौन क्रिया तत्वतः करनी चाहिये?।।५०-५२।।

सनन्दन उवाच

तमसा हि मतिच्छत्रं विभ्रान्तमिव चातुरम्।
पुनः प्रशमयन्वाक्यैः कवि पञ्चशिखोऽब्रवीत्॥५३॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—तमस से आवरित तथा विभ्रान्त मति के प्रशमनाथ कवि पंचशिख पुनः राजा से कहने लगे।।५३।।

(नोट : ५४ से ७१ तक श्लोकों का शब्दार्थ न देकर उनका भावार्थ दिया गया है, क्योंकि शब्दार्थ से तत्व स्पष्ट नहीं हो रहा है।)

पञ्चशिख उवाच

उच्छेदनिष्ठा नेहास्ति भावनिष्ठा न विद्यते। अयं ह्यपि समाहारः शरीरेन्द्रियचेतसाम्॥५४॥
वर्तते पृथगन्योन्यमप्युपाश्रित्य कर्मसु। धावतः पञ्चधा तोयं खे वायुर्ज्योतिषो धरा॥५५॥

तेषु भावेन तिष्ठन्ति वियुज्यन्ते स्वभावतः।
आकाशं वायुरूष्मा च स्नेहो यश्चापि पार्थिवः॥५६॥
एष पञ्चसमाहारः शरीरमपि नैकधा। ज्ञानमूष्मा च वायुश्च त्रिविधः कायसंग्रहः॥५७॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभागश्चेतनामनः।
प्राणापानौ विकारश्च धातवश्चात्र निःसृताः॥५८॥
श्रवणं स्पर्शनं जिह्वा दृष्टिर्नासा तथैव च। इन्द्रियाणीति पञ्चैते चित्तपूर्वंगमा गुणाः॥५९॥
तत्र विज्ञानसंयुक्ता त्रिविधा चेतना ध्रुवा। सुखदुःखेति यामाहुरनदुःखासुखेति च॥६०॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च मूर्त्यर्थमेव ते त्रयः। एते ह्यामरणात्पञ्च सद्गुणा ज्ञानसिद्धये॥६१॥
तेषु कर्मणि सिद्धिश्च सर्वतत्त्वार्थनिश्चयः। तमाहुः परमं शुद्धं बुद्धिरित्यव्ययं महत्॥६२॥
इमं गुणसमाहारमात्मभावेन पश्यतः। असम्यग्दर्शनैर्दुखमनन्तं नोपशाम्यति॥६३॥
अनात्मेति च यद्दृष्टं तेनाहं न ममेत्यपि। वर्तते किमधिष्ठानात्प्रसक्ता दुःखसंततिः॥६४॥
तत्र सम्यग्जनो नाम त्यागशास्त्रमनुत्तमम्।
शृणुयात्तत्र मोक्षाय भाष्यमाणं भविष्यति॥६५॥
त्याग एवं हि सर्वेषामुक्तानामपि कर्मणाम्।
नित्य मिथ्याविनीतानां क्लेशो दुःखावहो मतः॥६६॥
द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतानि च।
सुखत्यागे तपो योगं सर्वत्यागे समापना॥६७॥
तस्य मार्गोऽयमद्वैधः सर्वत्यागस्य दर्शितः।
विप्रहाणाय दुःखस्य दुर्गतिर्हि तथा भवेत्॥६८॥
पञ्च ज्ञानेन्द्रियाण्युक्त्वा मनः षष्ठानि चेतसि।
बलषष्ठानि वक्ष्यामि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि तु॥६९॥
हस्तौ कर्मेन्द्रियं ज्ञेयमथ पादो गतीन्द्रियम्। प्रजनानन्दयोमढ्रो विसर्गो पायुरिन्द्रियम्॥७०॥
वाक्चः शब्दविशेषार्थमिति पञ्चान्वितं विदुः। एवमेकादशैतानि बुद्ध्या त्वसृजेन्मनः॥७१॥

पञ्चशिख कहते हैं—जो मृत्यु हेतु प्रयत्न कर रहे हैं, उनको सभी सकाम कर्म का तथा धनादि का त्याग कर देना चाहिये। जो त्याग नहीं कर सके, तथापि यह कहते हैं कि वे शम-दम आदि का पालन कर रहे हैं, वे मिथ्या एवं अविद्या दुःख को ही पाते हैं। आगमों में द्रव्य त्यागार्थ दान-यज्ञादि कर्मों का विधान है। भोग त्यागार्थ व्रत का विधान है। दैहिक सुखत्यागर्थ तप करना चाहिये, तथापि जो सर्वत्याग करना चाहता है, वह योग साधना करें। यहीं तक त्याग का क्षेत्र है। जो इसका आश्रय नहीं लेता उसकी अधोगति होती है। हस्तद्वय कार्य करने वाली इन्द्रिय हैं। पैर आवागमनार्थ है। लिंग का कार्य सन्तानोत्पत्ति तथा मूत्र त्याग तथा कामसुख है। गुदा मलत्यागार्थ है। वाक् उच्चारण हेतु है। मन इन पांचों से युक्त रहता है। शास्त्रों में पंच ज्ञानेन्द्रिया, पंच कर्मेन्द्रिया तथा मन

को मिलाकर एकादश इन्द्रियों का वर्णन है। मन इन सब से युक्त रहने वाला है। अतः इन मनरूपी इन्द्रियों का त्याग बुद्धि द्वारा सम्पन्न करें।।५४-७१।।

कर्णौ शब्दश्च चित्तं च त्रयः श्रवणसंग्रहे। तथा स्पर्शे तथा रूपे तथैव रसगन्धयोः॥७२॥
एवं पञ्च त्रिका ह्येते गुणस्तदुपलब्धये। येनायं त्रिविधो भावः पर्यायात्समुपस्थितः॥७३॥

सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चापि ते त्रयः।
त्रिविधा वेदना येषु प्रसृता सर्वसाधिनी॥७४॥
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता।
अकुतश्चित्कुतश्चिद्वा चित्ततः सात्त्विको गुणः॥७५॥

कुछ श्रवण करते समय श्रोत्रेन्द्रिय, शब्दरूपी विषय तथा चित्तरूपी कर्त्ता, इन तीन का आपसी संयोग होता है। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन चारों के अनुभव काल में भी तत्तद् इन्द्रिय, उन इन्द्रियों के विषय तथा मन का संयोग आवश्यक है। पंचतन्मात्र के कारण प्रत्येक तन्मात्रा के ये तीन-तीन कारण हैं। ये १५ गुण कहे गये। इनमें शब्दादि विषय का ग्रहण किया जाता है। अतः ये कर्त्ता-कर्म-करण रूपेण भावत्रय क्रमशः उपस्थित हो जाते हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन भेद हैं। यथा सात्विक-राजस तथा तामस। अकारण किंवा सकारण उपस्थित होने वाले हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख, शान्तचित्तता ये **सात्विक गुणरूप** हैं।।७२-७५।।

अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथाऽक्षमा।
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुतः॥७६॥
अविवेकस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतन्द्रिता।
कथञ्चिदपि वर्तन्ते विवधास्तामसा गुणाः॥७७॥

असन्तोष, सन्ताप, शोक, लोभ, क्षमाहीनता—चाहे सकारण हो किंवा अकारण ये **रजोगुणरूप** हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न, आलस्य चाहे अकारण किंवा सकारण क्यों न हों, ये **तामस गुणरूप** कहे गये हैं।।७६-७७।।

इमां च यो वेद विमोक्षबुद्धिमात्मानमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
न लिप्यते कर्मफलैरनिष्टैः पत्रं विषस्येव जलेन सिक्तम॥७८॥
दृढैर्हि पाशैर्विविधैर्विमुक्तः प्रजानिमित्तैरपि देवतैश्च।
यदा ह्यसौ दुःखसौख्ये जहाति मुक्तस्तदाऽग्र्यां गतिमेत्यलिङ्गः॥७९॥
श्रुतिप्रमाणागममङ्गलैश्च शेते जरामृत्युभयादतीतः।
क्षीणे च पुण्ये विगते च पापे तनोर्निमित्ते च फले विनष्टे॥८०॥

जो मनुष्य इस मोक्षविद्या का अप्रमत्त होकर अनुशीलन करता है, वह कदापि अनिष्टप्रद कर्मफल से लिप्त नहीं होता, जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से लिप्त नहीं होता। देवताओं तथा सन्तानादि के लिये कृत कर्मानुष्ठान सकाम यज्ञादि सभी तो मनुष्य की गति को रोकने वाले अनेक दृढ़ बन्धन रूपी ही हैं। जो

इन बन्धनों को तोड़कर दुःख-सुख से परे हो जाता है, उसे मुक्तिरूप उत्तम गति का लाभ होता है। श्रुति प्रमाणों का तथा शास्त्रोक्त मंगलप्रद उपायों का अवलम्बन लेने वाला व्यक्ति जरामृत्यु भय से अतीत हो जाता है। एवंविध उसके पुण्य क्षीण हो जाते हैं; पाप निर्मूल हो जाता है तथा तत्जनिक सुख दुःखादि फल भी नष्ट हो जाते हैं।।७८-८०।।

अलेपमाकाशमलिङ्गमेवमास्थाय पश्यन्ति महत्यशक्ता।
यथोर्णनाभिः परिवर्तनमानस्तन्तुक्षये तिष्ठति यात्यमानः॥८१॥

ऐसी स्थिति को प्राप्त मनुष्य सभी आसक्तियों से मुक्त होकर अलेप तथा आकाशवत् निर्गुण आत्मा का दर्शन लाभ करता है। जैसे मकड़ी अपने उदर से ही निःसृत तन्तुओं को स्वयं में समेट लेती है, उसी प्रकार आत्मदर्शन के साथ सभी द्वन्द्व आत्मा में ही लीन हो जाते हैं।।८१।।

तथा विमुक्तः प्रजहाति दुःखं विध्वंसते लोष्टमिवादिमृच्छन्।
यथा रुरुः शृङ्गमथो पुराणं हित्वा त्वचं वाप्युरगो यथा च॥८२॥
विहाय गच्छन्ननवेक्षमाणास्तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम्।
मत्स्यं यथा वाप्युदके पतन्तमुत्सृज्य पक्षी निपतत्यशक्तः॥८३॥
तथा ह्यसौ दुःखसौख्ये विहाय मुक्तः पराद्ध्यां गतिमेत्यलिङ्गः॥८४॥

जो व्यक्ति देह में आसक्ति त्याग कर उसके प्रति ममत्व रूपी अभिमान त्याग देता है, वह उसी प्रकार दुःख रहित हो जाता है, जिस प्रकार पक्षी जल में गिरते हुये वृक्ष को देखकर उस वृक्ष से अपना घोंसला त्याग कर उड़ जाता है। इसी प्रकार मृत्यु रूपी अगाध जल में गिर रहे देह के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। जैसे प्रतिवर्ष रुरुमृग अपने पुराने सींग गिरा देता है तथा सर्प अपनी पुरानी केंचुल बदल देता है, उसी प्रकार व्यक्ति देह के प्रति आसक्ति त्याग करे। वह मुक्त व्यक्ति सुख-दुःख का त्याग करके उत्तम स्थानलाभ करता है।।८२-८४।।

इदममृतपदं निशम्य राजा स्वयमिह पञ्चशिखेन भाष्यमाणम्॥८५॥
अपि च भवति मैथिलेन गीतं नगरमुपाहितमग्निनाभिवीक्ष्य।
न खलु मम हि दह्यतेऽत्र किञ्चित्स्वयमिदमाह किल स्म भूमिपालः॥८६॥
इमं हि यः पठति विमोक्षनिश्चयं महामुने सततमवेक्षते तथा।
उपद्रवाननुभवते ह्यदुःखितः प्रमुच्यते कपिलमिवैत्य मैथिलः॥८७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

इस प्रकार ऋषि पंचशिख द्वारा उपदिष्ट अमृतमय तत्व को सुनकर राजा जनक ने उसका चिन्तन किया तथा इस सम्बन्ध में तत्व विनिश्चय करके सुख पूर्वक रहने लगे। इस ज्ञान के प्रभाव से राजा जनक ने जब एक बार मिथिला नगर को दग्ध होते देखा, तब उन्होंने कहा—"इस नगर के दग्ध होने से मेरा कुछ भी दग्ध नहीं

हो रहा है।'' हे नारद! इस प्रसंग में जिस मोक्षतत्व का वर्णन है, इसका पाठ करने वाला तथा चिन्तन करने वाला दुःख-शोक से विमुक्त होकर सभी विघ्नों से रहित हो जाता है। वह राजा जनक के समान जो पंचशिख के उपदेश से ज्ञानोपलब्धि हो जाने के कारण मुक्त हो गये थे, वह भी मुक्त हो जाता है।।८५-८७।।

।।४५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
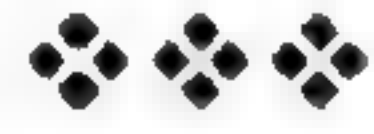
अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

त्रिविध ताप से मुक्ति के उपाय का वर्णन

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा नारदो विप्रा मैथिलाध्यात्ममुत्तमम्। पुनः पप्रच्छ तं प्रीत्या सनन्दनमुदारधीः॥१॥

सूत जी कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! उदार बुद्धि नारद ने राजा जनक को प्राप्त उत्तम अध्यात्म ज्ञान का श्रवण करके पुनः हर्षान्वित होकर सनन्दन से पूछा।।१।।

नारद उवाच

आध्यात्मिकादित्रिविधं तापं नानुभवेद्यथा। प्रब्रूहि तन्मुने मह्यं प्रपन्नाय दयानिधे॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे दयानिधि! महामुनि! आप कृपया वह उपाय कहिये। जिसके अनुशीलन द्वारा आध्यात्मिक आदि त्रिविध ताप न हो। मैं आपकी शरण में आया हूं।।२।।

सनंदन उवाच

तदस्य त्रिविधं दुःखमिह जातस्य पण्डित। गर्भे जन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः॥३॥
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा। भेषजं भगवत्प्राप्तिरैका चात्यन्तिकी मता॥४॥
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः। तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने॥५॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे पण्डित! जब जन्म जरा आदि से प्रभावित जीव गर्भस्थ होता है, उसी क्षण से उसका सम्बन्ध त्रिताप से हो जाता है। इस त्रिताप को शान्त करने हेतु अतिशय अह्लाद सुखभाव को निरस्त करने वाली एक मात्र औषधि है भावलक्षणा भगवत् प्राप्ति! अतः पण्डित व्यक्ति उसे पाने का उपाय करें। हे महामुनि भगवत् प्राप्ति हेतु ज्ञान एवं कर्म, ये दो उपाय वर्णित हैं।।३-५।।

आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते। शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम्॥६॥
मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वायं मुनिसत्तमः। तदेतच्छ्रुयतामत्र सुबोधं गदतो मम॥७॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥८॥

ज्ञान द्विविध है। यथा—शास्त्रों से प्राप्त एवं स्वविवेक से प्राप्त। हे मुनिप्रवर! मनु ने वेदार्थ का स्मरण करके यही कहा है। मैं उस मनुकथित ज्ञान को कहता हूं। आप श्रवण करिये। दो प्रकार के ब्रह्म को जाने। वे हैं शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म। जो शब्दब्रह्म में निष्णात है, वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।।६-८।।

द्वे विद्ये वेदितव्ये चेत्याह चाथर्वणी श्रुतिः। परमा त्वक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमया परा॥९॥
यत्तदव्यक्तमजरमनीहमजमव्ययम्। अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादादिसंयुतम्॥१०॥
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिमकारणम्।
व्याप्यं व्याप्तं यतः सर्वं तं वै पश्यन्ति सूरयः॥११॥

आथर्वणी श्रुति का मत है कि दो विद्या को जानें। वह है अपरा विद्या तथा परा विद्या। परा है अक्षरत्व प्राप्ति। अपरा विद्या है ऋग्वेदादि। जो देव अव्यक्त, अजर, अनीह, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पैर-हाथ से युक्त है, जो विभु, सर्वव्यापी, नित्य, प्राणीगण का उत्पत्ति स्थान है, जो व्याप्त, व्याप्य है, उसका सूरीजन नित्य दर्शन करते हैं।।९-११।।

तद्ब्रह्म तत्परं धाम तद्ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम्॥१२॥
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः। वाचको भगवच्छब्दस्तस्योद्दिष्टोऽक्षयात्मनः॥१३॥
एवं निगदितार्थस्य यत्तत्वं तस्य तत्त्वतः। ज्ञायते येन तज्ज्ञानं परमन्यत्त्रयीमयम्॥१४॥

वह ब्रह्म परम धाम है। वह मोक्षकामी लोगों का ध्येय है। श्रुति में उस विष्णु के सूक्ष्म परमपद का वर्णन है। उसे ही भगवान् कहते हैं। वही परमात्म-स्वरूप है। उन अक्षयात्मा का वाचक शब्द है भगवान्! इस प्रकार की व्याख्या का जो सारतत्व रूप है, उसे जानने का साधन हरि ज्ञान है। अन्य है त्रयी (वेदत्रयी) यही अपरज्ञान है।।१२-१४।।

अशब्दगोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज।
पूजायां भगवच्छब्दः क्रियते ह्यौपचारिकः॥१५॥
शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि वर्त्तते। भगवन्भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे।
ज्ञेयं ज्ञातेति तथा भकारोऽर्थद्वयात्मकः। तेनागमयिता स्त्रष्टा गकारोऽयं तथा मुने॥१६॥
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥१७॥

हे द्विज! ब्रह्म कदापि शब्द एवं वाणी से गोचर नहीं होता, तथापि पूजार्थ औपचारिक संज्ञा है भगवान्! हे नारद! शुद्ध, सर्वकारणों का भी कारण उस शुद्ध महाविभूति के लिये भगवान् शब्द का प्रयोग करते हैं। यहां "भकार" के अर्थद्वय हैं ज्ञेय एवं ज्ञाता। "गकार" के अर्थत्रय हैं प्रेरक, संचालक, स्त्रष्टा। (अथवा गमयिता, नेता तथा स्त्रष्टा) मकार एवं गकार के योग से 'भग' शब्द होता है। भग का अर्थ है—समग्र ऐश्वर्य, वीर्य पराक्रम, यश एवं श्री तथा ज्ञान एवं वैराग्य। ये छः ही भग हैं।।१५-१७।।

वसन्ति तत्र भूतानि भूतान्मन्यखिलात्मनि। सर्वभूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥१८॥

एवमेव महाशब्दो भगवानिति सत्तम। परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः॥१९॥
तत्र पूज्यपदार्थोक्तिः परिभाषासमन्वितः। शब्दोऽयं नोपचारेण चान्यत्र ह्युपचारतः॥२०॥

उसी अखिलात्मा में सभी प्राणी तथा भूतसमूह निवास करते हैं। वह प्रभु अशेष पदार्थों में विराजमान रहता है। "वकार" का अर्थ है ऐसे अव्यय। हे सत्तम! महाशब्द भगवान् का यही अर्थ कहा गया है। अन्य कोई शब्द परमब्रह्म वासुदेव के लिये उपयुक्त है ही नहीं। पूज्य पदार्थोक्ति के लिये ही (पूज्य पद के अर्थ को व्यक्त करने हेतु) यह भगवान् शब्द परमात्मा के लिये प्रधानतः प्रयुक्त होता है। अन्यत्र केवल औपचारिक रूपेण इसका प्रयोग करते हैं।।१८-२०।।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥२१॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥२२॥
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि। भूतेषु वसनादेव वासुदेवस्ततः स्मृतः॥२३॥

जो उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों की गति-अगति, विद्या-अविद्या के ज्ञाता हैं, वे ही भगवान् कहे गये हैं। भगवत् शब्द के अर्थ हैं ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा अशेष तेज। जहां ये गुण न हों, वहां भगवत् शब्द का सम्बोधन कैसे हो सकेगा? सभी भूतसमूह उन परमात्मा में ही निवास करते हैं। वह प्रभु समस्त भूतसमूह में निवास करता है। तभी वे वासुदेव हैं।।२१-२३।।

खाण्डिक्यं जनकं प्राह पृष्टः केशिध्वजः पुरा।
नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः॥२४॥
भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्।
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः॥२५॥

प्राचीन काल में जब खाण्डिक्य जनक ने प्रश्न किया था, तब यहीं वासुदेव नाम महिमा केशीध्वज ने उनसे तत्वतः कहा था। वह प्रभु सभी भूतसमूह में स्थित रहता है। साथ ही सभी भूतसमूह उसमें ही निवास करते हैं। वह संसार का धाता एवं विधाता जगत्प्रभु वासुदेव ही है।।२४-२५।।

स सर्वभूतप्रकृतिं विकारं गुणादिदोषांश्च मुने ह्यतीतः।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुनान्तरालम्॥२६॥

हे मुनि! वह भूतसमूह की प्रकृति, विकार, गुण-दोषादि से अतीत है। वह अखिलात्मा सभी आवरण से परे हैं। उसी से समस्त भुवन व्याप्त रहते हैं।।२६।।

समस्तकल्याणगुणं गुणात्मको हित्वातिदुःखावृतभूतसर्गः।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ॥२७॥

वह समस्त कल्याण गुणों से गुणमय है। वे दुःखों से आवृत भूतसर्ग को व्याप्त किये रहते हैं। वे अपनी इच्छा से ही अभिमत देह धारण करते हैं। वे सतत् संसार का हित करते रहते हैं।।२७।।

तेजोबलैश्वर्यमहावबोधं स्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः।
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे॥२८॥

वे प्रभु, तेज, बल, ऐश्वर्य, महाबोध, वीर्य, शक्ति गुणराशि के खान हैं। वे प्रकृति प्रभृति से परे हैं। वे समस्त, सब कुछ के स्वामी परमेश्वर हैं। उनमें क्लेश का लेश भी नहीं है।।२८।।

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः।
सर्वेश्वरः सर्वनिसर्गवेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः॥२९॥

वे ईश्वर, व्यष्टि-समष्टि रूप, अव्यक्त होकर भी प्रकट स्वरूप हैं। वे सर्वेश्वर, समस्त निसर्ग के ज्ञाता, समस्त शक्तिशाली परमेश्वर हैं।।२९।।

स ज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेव रूपम्।
संदृश्यते चाप्यवगम्यते च तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम्॥३०॥

उनके जानने के उपाय को, उन निर्दोष, शुद्ध तथा निर्मल रूप को जानने के उपाय को ज्ञान कहते हैं। जो इसके विपरीत है, वह अज्ञान कहा गया है।।३०।।

स्वाध्यायसंयमाभ्यां स दृश्यते पुरुषोत्तमः। तत्प्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतत्प्रतिपद्यते॥३१॥
स्वाध्यायायोगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥३२॥
तदीक्षणाय स्वध्यायश्चक्षुर्योगस्तथापरम्। न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते॥३३॥

वे स्वाध्याय तथा संयम द्वारा परिलक्षित होते हैं। उनकी प्राप्ति कारण ब्रह्म का प्रतिपादन किया जा रहा है। स्वाध्याय को योग से तथा योग को स्वाध्याय से योजित करे। स्वाध्याय तथा योग के सम्मिलन से ही उनका प्रत्यक्ष होता है। उनके अवलोकनार्थ स्वाध्याय तथा योग नेत्ररूपी हैं। कोई भी इन दोनों भौतिक मांसनेत्रों से उन प्रभु का ब्रह्मभूत पुरुषोत्तम का अवलोकन नहीं कर सकता।।३१-३३।।

नारद उवाच

भगवंस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद। ज्ञाते यत्राखिलाधारं पश्येयं परमेश्वरम्॥३४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! मैं उस योग को आपसे जानना चाहता हूं, जिसे ज्ञात हो जाने पर निखिल के आधार रूप परमेश्वर को देख सकूं।।३४।।

सनन्दन उवाच

केशिध्वजो यथा प्राह खाण्डिक्याय महात्मने।
जनकाय पुरा योगं तथाहं कथयामि ते॥३५॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—प्राचीन काल में खाण्डिक्य जनक द्वारा पूछे जाने पर केशीध्वज ने इस योग का जो वर्णन किया था। उसे मैं यथावत् कह रहा हूं।।३५।।

नारद उवाच

खाण्डिक्यः कोऽभवद्ब्रह्मन्को वा केशिध्वजोऽभवत्।
कथं तयोश्च संवादो योगसम्बन्धवानभूत्॥३६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! ये खाण्डिक्य कौन थे? केशीध्वज कौन थे? किस कारण उन दोनों के बीच यह योग सम्बन्धित संवाद हुआ?।।३६।।

सनन्दन उवाच

धर्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रोऽमितध्वजः।
कृतध्वजोऽस्य भ्राताभूत्सदाध्यात्मरतिर्नृपः॥३७॥
कृतध्वजस्य पुत्रोऽभूद्धन्यः केशिध्वजो द्विजः।
पुत्रोऽमितध्वजस्यापि खाण्डिक्यजनकाभिधः॥३८॥
कर्ममार्गे हि खाण्डिक्यः स्वराज्यादवरोपितः।
पुरोधसा मन्त्रिभिश्च समवेतोल्पसाधनः॥३९॥
राज्यान्निराकृतः सोऽथ दुर्गारण्यचरोऽभवत्।
इयाज सोऽपि सुबहून् यज्ञाञ्ज्ञानव्यपाश्रयः॥४०॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—धर्मध्वज जनक एक राजा थे। उनका पुत्र था अमितध्वज, जिसके भाई कृतध्वज सदा आध्यात्म चिन्तन में प्रवृत्त रहते थे। इनका यशस्वी पुत्र था केशीध्वज। अमितध्वज का पुत्र था खाण्डिक्य जनक जिसे केशीध्वज ने राज्यच्युत कर दिया। वह राज्य से च्युत होकर कतिपय पुरोहित, मन्त्री तथा अल्पसाधन के साथ दुर्गम अरण्य में विचरण करने लगा। इधर केशीध्वज ने अनेक ज्ञानपूर्ण यज्ञानुष्ठान भी किया था।।३७-४०।।

ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्तुं मृत्युमपि स्वयम्। एकदा वर्तमानस्य यागे योगविदां वर॥४१॥
तस्य धेनुं जघानोग्रः शार्दूलो विजने वने।
ततो राजा हतां ज्ञात्वा धेनुं व्याघ्रेण चर्त्विजः॥४२॥
प्रायश्चित्तं स पप्रच्छ किमत्रेति विधीयताम्।
ते चोचुर्न वयंविद्मः कशेरुः पृच्छ्यतामिति॥४३॥

राजा केशीध्वज ने ब्रह्मविद्या में स्थित होकर स्वयं मृत्युमय संसार से पार उतरने का उपाय भी जान लिया। हे योगीप्रवर! एक दिन वह याग में प्रवृत्त था तभी व्याघ्र ने वन में उसकी गौ का वध कर दिया। जब ऋत्विक् राजा ने व्याघ्र द्वारा धेनुवध का समाचार पाया, तब वह ऋषि से प्रायश्चित्त का विधान पूछने लगा। ऋषिगण ने कहा—"हम नहीं जानते। आप कशेरु ऋषि से पूछें।" जब केशीध्वज कशेरु से पूछने लगे, तब उन्होंने शुनक ऋषि से पूछने हेतु कहा और बतलाया कि मैं यह नहीं जानता। शुनक ही जानते हैं।।४१-४३।।

कशेरुरपि तेनोक्तस्तथेति प्राह नारद। शुनकं पृच्छ राजेन्द्र नाहं वेद स वेत्स्यति॥४४॥
स गत्वा तमपृच्छच्च सोऽप्याह नृपतिं मुने।
न कशेरुर्नचैवाहं न चान्यः साम्प्रतं भुवि॥४५॥
वेत्त्येक एव त्वच्छत्रुः खाण्डिक्यो यो जितस्त्वया। स चाह तं व्रजाम्येष प्रष्टुमात्मरिपुं मुने॥४६॥

हे मुनिवर! जब राजा ने शुनक से पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया—"यह मैं तथा कशेरु नहीं जानते। पृथिवी पर यह जानने वाला भी कोई नहीं है। मात्र तुम्हारा शत्रु खाण्डिक्य जनक यह जानता है, जिसे तुमने जीता था।" तब केशीध्वज ने कहा—"हे मुनि! मैं उससे यह पूछने अवश्य जाऊंगा।।"।।४४-४६।।

प्राप्त एव मया यज्ञे यदि मां स हनिष्यति। प्रायश्चित्तं से चेत्पृष्टो वदिष्यति रिपुर्मम॥४७॥
ततश्चाविकलो योगो मुनिश्रेष्ठ भविष्यति। इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरो नृपः॥४८॥
वनं जगाम यत्रास्ते खाण्डिक्यः स महीपतिः।
तमायान्तं समालोक्य खाण्डिक्यो रिपुमात्मनः॥४९॥
प्रोवाच क्रोधताम्राक्षः समारोपितकार्मुकः।

यदि वह पूछने के लिये जाने पर मेरा वध कर देगा, तब मुझे यज्ञफल लाभ होगा। यदि वह उपाय कह देगा, तब प्रायश्चित्त कर देने से मेरा जो योग विकल हो गया है, वह पूर्ण हो जायेगा। हे मुनिश्रेष्ठ! यह कहकर वह कृष्णमृगचर्मधारी राजा रथ पर बैठकर वहां गया, जहां खाण्डिक्य विराजमान थे। जब खाण्डिक्य ने अपने सामने शत्रु को देखा, तब उन्होंने क्रोध से रक्तवर्ण हो गये नेत्रों की स्थिति में धनुष पर बाण चढ़ाया तथा राजा केशीध्वज से कहा—।।४७-४९।।

खाण्डिक्य उवाच

कृष्णाजिनत्वक्कवचभावेनास्मान्हनिष्यसि ॥५०॥
कृष्णाजिनधरे वेत्सि न मयि प्रहरिष्यति। मृगाणां वद पुष्ठेषु मूढ कृष्णाजिनं न किम्॥५१॥
येषां मत्वा वृथा चोग्राः प्रहिताः शितसायकाः।
स त्वामहं हनिष्यामि न मे जीवन्विमोक्ष्यसे॥५२॥
आततायअसि दुर्बुद्धे मम राज्यहरो रिपुः।

खाण्डिक्य कहते हैं—क्या तुम कृष्णमृगचर्म धारण करके हमारा वध करने आये हो! क्या तुम कृष्णमृगचर्म धारण कर लेने मात्र से अवध्य हो गये? क्या मृगों पर (कृष्णमृगों पर) कृष्ण मृगचर्म नहीं होता? यह जानकर भी तुम जैसे लोग उनका वध तीक्ष्ण बाणों से करते हैं! मैं तुम्हारा शत्रु हूं। तुम्हारा वध अवश्य करूंगा। मेरे जीते रहते तुम बच नहीं सकते! हे दुर्बुद्धि! तुम मेरे राज्य का हरण करने वाले आततायी शत्रु हो।।५०-५२।।

केशिध्वज उवाच

खाण्डिक्यं संशयं प्रष्टुं भवन्तमहमागतः॥५३॥
न त्वां हन्तुं विचार्यैतत्कोपं बाणं स मुञ्च वा।
ततः स मन्त्रिभिः सार्द्धमेकान्ते सपुरोहितः॥५४॥
मन्त्रयामास खाण्डिक्यः सर्वैरेव महामतिः। तमूचुर्मन्त्रिणो वध्यो रिपुरेष वशंगतः॥५५॥
हतेऽत्र पृथिवी सर्वा तव वश्या भविष्यति। खाण्डिक्यश्चाह तान्सर्वानेवमेव न संशयः॥५६॥

केशीध्वज कहते हैं—"मैं आपके पास अपने संशय निवारणार्थ आया हूं। आपको मारना मेरा उद्देश्य नहीं है। अतः आप क्रोध त्याग कर धनुष से बाण उतारें।" यह सुनकर खाण्डिक्य ने मन्त्रियों तथा पुरोहितों के साथ विचार किया। मन्त्रियों ने कहा—"इस समय शत्रु अपने वश में हैं। इसका वध अवश्य करिये। इसका वध होते ही समस्त पृथिवी आपके वश में होगी।" यह सुनकर खाण्डिक्य ने कहा—"यह निःसंशय है कि तब ऐसा ही होगा। सब मेरा हो जायेगा।"।।५३-५६।।

हते तु पृथिवी सर्वा मम वश्या भविष्यति। परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम।।५७।।
न हन्मि चेल्लोकजयो मम तस्य वसुंधरा।
परलोकजयोऽनन्तः स्वल्पकालो महीजयः।।५८।।
तस्मान्नैनं हनिष्येऽहं यत्पृच्छति वदामि तत्।
ततस्तयभ्युपेत्याह खाण्डिक्यो जनको रिपुम्।।५९।।
प्रष्टव्यं यत्त्वया सर्वं तत्पृच्छति त्वं वदाम्यहम्। ततः प्राह यथावृत्तं होमधेनुवधं मुने।।६०।।

"इसका वध करने पर तो समस्त धरती मेरी होगी तथा परलोक जय इसकी होगी। परलोक जय तो अनन्त काल के लिये होती है, परन्तु पृथिवी की जय जो लौकिक जय है, वह स्वल्पकालीन होगी। अतः मैं इसका वध न करके इसकी जिज्ञासा का उत्तर प्रदान करूंगा।" यह निर्णय करके जनक खाण्डिक्य अपने शत्रु केशीध्वज के निकट आये। उन्होंने कहा—"जो कुछ जानना है, वह पूछो। मैं उत्तर प्रदान करूंगा।" हे मुनिवर! यह सुनकर केशीध्वज ने समस्त वृत्तान्त होमधेनु वध का उनसे कह दिया।।५७-६०।।

ततश्च तं स पप्रच्छ प्रायश्चित्तं हि तद्व्रतम्।
स चाचष्ट यथान्यायं मुने केशिध्वजाय तत्।।६१।।
प्रायश्चित्तमशेषं हि यद्वै तत्र विधीयते। विदितार्थः स तेनैवमनुज्ञातो महात्मना।।६२।।
यागभूमिमुपागत्य चक्रे सर्वां क्रियां क्रमात्।
क्रमेण विधिवद्यागं नीत्वा सोऽवभृथाप्लुतः।।६३।।

महात्मा खाण्डिक्य ने समस्त प्रसंग जानकर तथा केशीध्वज द्वारा प्रायश्चित्त पूछे जाने पर उनको यथान्याय समस्त प्रायश्चित्त और सम्बन्धित अन्य सभी क्रिया का उपदेश प्रदान किया। यह सब जानकर केशीध्वज ने उन महात्मा से आज्ञा लिया और यज्ञभूमि में आकर समस्त क्रिया सम्पन्न कर दिया। तब समस्त यज्ञक्रिया सम्पन्न करके राजा केशीध्वज ने अवभृथ स्नान सम्पन्न कर दिया।।६१-६३।।

कृतकृत्यस्ततो भूत्वा चिन्तयामास पार्थिवः।
पूजिता ऋत्विजः सर्वे सदस्या मानिता मया।।६४।।
तथैवार्थिजनोऽप्यर्थैर्योजितोऽभिमतैर्मया।
यथार्हं मर्त्यलोकस्य मया सर्वं विचेष्टितम्।।६५।।
अनिष्पन्नक्रियं चेतस्तथा न मम किं यथा। इत्थं तु चिन्तयन्नेव सस्मार स महीपतिः।।६६।।

इन सब कार्य को सम्पन्न करके राजा कृतार्थ हो गया। तब उसने चिन्तन किया कि मैंने ऋत्विकगण की पूजा करके सदस्यों का सम्मान आदर किया। याचकों को यथेच्छ दान भी प्रदान कर दिया। मैंने मर्त्यलोक के लिये विहित सभी विधान सम्पन्न कर दिया, तथापि मेरे चित्त में ऐसा असन्तोष क्यों है कि मैंने कोई भी कार्य यथार्थतः सम्पन्न नहीं किया। वह राजा यही विचार करने लगा।।६४-६६।।

खाण्डिक्याय न दत्तेति मया वै गुरुदक्षिणा।
स जगाम ततो भूयो रथमारुह्य पार्थिवः।।६७।।
स्वायम्भुवः स्थितो यत्र खाण्डिक्योऽरण्यदुर्गमम्।
खाण्डिक्योऽपि पुनर्दृष्ट्वा तमायान्तं धृतायुधः।।६८।।
तस्थौ हन्तुं कृतमतिस्तमाह स पुनर्नृपः।
अहं तु नापकाराय प्राप्तः खाण्डिक्य मा क्रुधः।।६९।।

तभी उसे स्मरण हो गया कि मैंने खाण्डिक्य को गुरुदक्षिणा नहीं दिया था! अतः वह राजा पुनः रथारूढ़ होकर वहां गया, जहां स्वायम्भुव खाण्डिक्य दुर्गम वन में रहते थे। केशीध्वज को पुनः आते देख खाण्डिक्य ने धनुष उठाया तथा केशीध्वज के वधार्थ तत्पर हो गये। यह देखकर राजा ने कहा—"हे खाण्डिक्य! मैं आपका अपकार करने नहीं आया हूं। आप क्रोध न करें।"६७-६९।।

गुरोर्निष्कृतिदानाय मामवेहि समागतम्।
निष्पादितो मया यागः सम्यक् त्वदुपदेशतः।।७०।।
सोऽहं ते दातुमिच्छामि वृणीष्व गुरुदक्षिणाम्।
इत्युक्तो मन्त्रयामास स भूयो मन्त्रिभिः सह।।७१।।
गुरोर्निष्कृतिकामोऽयं किमयं प्रार्थ्यतां मया।
तमूचुर्मन्त्रिणो राज्यमशेषं याच्यतामयम्।।७२।।
कृतिभिः प्रार्थ्यते राज्यमनायासितसैनिकैः।
प्रहस्य तानाह नृपः स खाण्डिक्यो महीपतिः।।७३।।

"मैं आपको गुरु दक्षिणा देने आया हूं। आपके उपदेशानुरूप मैंने यज्ञ सम्यक् रूप से सम्पन्न कर दिया। मैं आपको गुरु दक्षिणा देने आया हूं। आप क्या मांगते हैं?" यह सुनकर खाण्डिक्य मन्त्रियों से परामर्श करने लगे कि "यह राजा गुरु दक्षिणा देने आया है। मैं इससे क्या मांगू?" यह सुनकर मन्त्रीगण ने कहा—"आप सम्पूर्ण राज्य मांगिये। नीतिपटु लोग बिना सैनिकों की सहायता के अनायास राज्य प्राप्त करते हैं।" खाण्डिक्य मन्त्रियों के यह कहने पर हंसने लगे।।७०-७३।।

स्वल्पकालं महीराज्यं मादृशैः प्रार्थ्यते कथम्।
एतमेतद्भवन्तोऽत्र स्वार्थसाधनमन्त्रिणः।।७४।।
परमार्थः कथं कोऽत्र यूयं नात्र विचक्षणाः। इत्युक्त्वा समुपेत्यैनं स तु केशिध्वजं नृपम्।।७५।।

उन्होंने कहा—यह पृथिवी राज्य तो स्वल्पकाल वाला होता है। मैं उसे कैसे मांगू? आप लोग तो मात्र स्वार्थसाधन का परामर्श देने वाले मन्त्री हैं। आप लोग यहां परमार्थ क्या है, यह जानने में विचक्षण नहीं हैं। यह कहकर खाण्डिक्य राजा केशीध्वज के पास गये।।७४-७५।।

उवाच किमवश्यं त्वं दास्यसि गुरुदक्षिणाम्।
बाढमित्येव तेनोक्तः खाण्डिक्यस्तमथाब्रवीत्।।७६।।
भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षणः। यदि चेद्दीयते मह्यं भवता गुरुनिष्क्रयः।।७७।।
तत्क्लेशप्रशमायालं यत्कर्म तदुदीरय।

वहां जाकर खाण्डिक्य ने कहा—"क्या तुम गुरु दक्षिणा देना चाहते हो?" केशीध्वज ने कहा—"अवश्य देना चाहता हूं।" तब खाण्डिक्य ने कहा—"तुम अध्यात्मविद् तथा विचक्षण परमार्थज्ञ भी हो। यदि तुम गुरु दक्षिणा ही देना चाहते हो, तब भवक्लेश नाशक कर्म कहो।"।।७६-७७।।

केशिध्वज उवाच

न प्रार्थितं त्वया कस्मान्मम राज्यमकण्टकम्।।७८।।
राज्यलाभाद्धि नास्त्यन्यत्क्षत्त्रियाणामतिप्रियम्।

केशीध्वज कहते हैं—आपने अकंटक राज्य नहीं मांगा? राज्यलाभ ही क्षत्रियों हेतु अत्यन्त प्रीतिप्रद कहा गया है।।७८।।

खाण्डिक्य उवाच

केशिध्वज निबोध त्वं मया न प्रार्थितं यतः।
राज्यमेतदशेषेणे यन्न गृघ्नन्ति पण्डिताः। क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्।।७९।।
वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्। यत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपकृते त्वया।।८०।।
बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्या चाक्रमोज्झिता।
जन्मोपभोगलिप्सार्थमियं राज्यस्पृहा मम।।८१।।
अन्येषां दोषजानेव धर्ममेवानुरुध्यते। न याञ्चा क्षत्रबन्धूनां धर्मायैतत्सतां मतम्।।८२।।
अतो न याचितं राज्यमविद्यान्तर्गतं तव। राज्यं गृघ्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाकृष्टचेतसः।।८३।।
अहंमानमहापानमदमत्ता न मादृशाः।

खाण्डिक्य कहते हैं—हे केशीध्वज! मैंने राज्य क्यों नहीं मांगा, उसका कारण सुनो। विद्वान् लोग राज्य नहीं चाहते। क्षत्रियों का धर्म है प्रजापालन, धर्मयुद्ध में अपने राज्यविरोधी लोगों का वध करना। मैं इस कार्य हेतु असमर्थ था। अतः ऐसी स्थिति में तुमने मेरा राज्य हर लिया, इसमें तुमने कोई दोष नहीं किया। यह राज्य बन्धन का कारण तथा अविद्या है। राज्य की कामना केवल इस जन्म के उपभोग का ही माध्यम होगी। उससे मेरा कल्याण नहीं होगा। अन्य का दोषदर्शन धर्ममार्ग में बाधा स्वरूप है। याचना क्षत्रिय का कार्य नहीं है। सज्जनगण कहते हैं वह भ्रष्ट क्षत्रियों का कार्य है। अतः अविद्यान्तर्गत् स्थित राज्य मैंने नहीं मांगा। जो राज्यलोभी हैं, वे मोह के वश में हैं। वे अहंकार तथा मान के मद में मत्त रहते हैं। मुझ जैसे लोग राज्यलोलुप नहीं होते।।७९-८३।।

केशिध्वज उवाच

अहं च विद्यया मृत्युं तर्तुकामः करोमि वै॥८४॥
राज्यं यज्ञांश्च विविधान्भोगे पुण्यक्षयं तथा।
तदिदं ते मनो दिष्ट्या विवेकैश्वर्यतां गतम्॥८५॥
श्रूयतां चाप्यविद्यायाः स्वरूपं कुलनन्दन।
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या ह्यस्वे स्वविषया मतिः॥८६॥
अविद्यातरुसम्भूतं बीजमेतद्द्विधा स्थितम्। पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः॥८७॥
अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम्।
आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीभिः पृथक् स्थिते॥८८॥
आत्मन्यात्ममयं भावं कः करोति कलेवरे। कलेवरोपभोग्यं हि गृहक्षेत्रादिकं च यत्॥८९॥

केशीध्वज कहते हैं—मैं विद्या द्वारा मृत्युभय से अपनी रक्षा हेतु राज्य एवं विविध कर्म करता हूं। मैं राज्य, यज्ञ, विविध भोगों के द्वारा अपना पुण्य क्षय कर रहा हूं। आपका मन कलुष शून्य तथा अत्यन्त विवेकसम्पन्न है। हे कुलनन्दन! अब अविद्या का स्वरूप श्रवण करिये। अविद्या रूपी वृक्ष से उत्पन्न उनके बीज दो प्रकार के होते हैं। प्रथम बीज है पंचभूतात्मक देह में मोहतम से आवृत रहना। उसे "यह मैं हूं" इस प्रकार से मानना। यह है अनात्म में आत्मबुद्धि। द्वितीय है, जो अपना नहीं है, उसे अपना मानना। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीतत्व जब (मरणोपरान्त) देह से पृथक् हो जाते हैं, तब यह "अहम्" देहात्मबोध कहां रहता है? अतः कौन मतिमान देह को आत्मा मानेगा? गृह क्षेत्रादि तो देह की भोग्य वस्तु है।।८४-८९।।

अदेहे ह्यात्मनि प्राज्ञो ममेदमिति मन्यते। इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पादितेषु च॥९०॥
करोति पण्डितः स्वाम्यमनात्मनि कलेवरे। सर्वदेहोपभोगाय कुरुते कर्म मानवः॥९१॥
देहं चान्यद्यदा पुंसस्सदा बन्धाय तत्परम्। मृण्मयं हि यथा गेहं लिप्यते वै मृदम्भसा॥९२॥

प्राज्ञ मनुष्य देह से पृथक् आत्मा को "मैं" मानते हैं। देहोत्पन्न पुत्र-पौत्रादि में अधिक ममत्व न रखे। पण्डितगण अपनी आत्मा का नियन्त्रण देह पर रखे। मानव देह के उपयोग हेतु ही सभी कर्मरत रहते हैं। यह देह आत्मा से पृथक् है, तथापि मनुष्य देह में ही बद्ध रहकर स्वतः स्वयं को मोहबन्धन में आबद्ध कर लेता है। जैसे मृत्तिका निर्मित गृह की लिपाई मिट्टी तथा जल से ही की जाती है।।९०-९२।।

पार्थिवोऽयं तथा देहो मृदम्भोलेपनस्थितिः।
पञ्चभोगात्मकैर्भोगैः पञ्चभोगात्मकं वपुः॥९३॥
आप्यायते यदि ततः पुंसो गर्वोऽत्र किङ्कृतः।
अनेकजन्मसाहस्रं संसारपदवीं व्रजन्॥९४॥
मोहश्रमं प्रयातोऽसौ वासनारेणुगुण्ठितः। प्रक्षाल्यते यदा सौम्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा॥९५॥
तदा संसारपान्थस्य याति मोहश्रमः शमम्। मोहश्रमे शमं याते स्वच्छान्तःकरणः पुमान्॥९६॥

अनन्यातिशयाधारः परं निर्वाणमृच्छति। निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः॥९७॥

उसी प्रकार से यह देव पार्थिव ही है। मोह में ग्रस्त व्यक्ति की स्थिति इस मिट्टी के देह को मिट्टी तथा जल लिप्त करने जैसी है। यदि इस पांच भौतिक देह को पञ्चभोगात्मक भोगों में ही संलग्न रखा जाता है, तब यह कौन सा महान् कार्य है, जिस पर गर्व किया जाये। अनेक सहस्र जन्मों के अनन्तर मनुष्य संसार में आकर मनुष्य जन्म लेता है, तब वह मोहग्रस्त होकर वासना रूपी रेणु से लिप्त हो जाता है। तब इसे ज्ञानरूपी उष्ण जल से प्रक्षालित करे। तभी संसार पथ के पथिक के मोह तथा श्रम का शमन होगा। मोहश्रम से शान्ति मिलते ही व्यक्ति का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। अब वह अनन्यता पूर्वक ईश्वर का आधार पाकर परं निर्वाण प्राप्त करता है। आत्मा तो स्वरूपतः निर्वाणमय, ज्ञानमय एवं मलहीन है।।९३-९७।।

दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः।
जलस्य नाग्निना सङ्गः स्थालीसङ्गात्तथापि हि॥९८॥
शब्दोद्रेकादिकान्धर्मान्करोति हि यथा बुधः।
तथात्मा प्रकृतेः सङ्गादहंमानादिदूषितः॥९९॥
भजते प्राकृतान्धर्मान्यस्तस्तम्भो हि योऽव्ययः।
तदेतत्कथितं बीजमविद्याया मया तव॥१००॥
क्लेशानां च क्षयकरं योगादन्यत्र विद्यते॥१०१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।
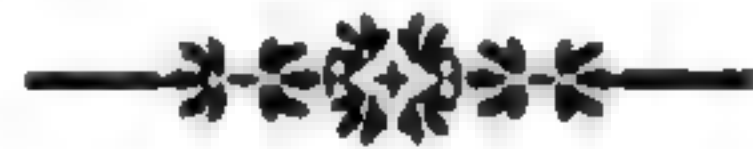
दुःख तथा अज्ञान आत्मा के धर्म न होकर प्रकृति के धर्म हैं। जल से अग्नि का सम्बन्ध नहीं है, परन्तु स्थाली से उसका सम्बन्ध है। शब्दोद्रेक आदि धर्म को बुधजन स्वीकार करते हैं। उसका अस्तित्व मानते हैं। तदनुरूप प्रकृति के संसर्ग के कारण आत्मा अहंकार के साथ से दूषित हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्मा जो अव्यय है, अपना स्वभाव त्यागकर प्राकृत धर्मों का उपभोग करता है। मैंने आपको अविद्या बीज कह दिया। योग के अतिरिक्त क्लेश क्षयकारी कोई उपाय नहीं है।।९८-१०१।।

।।४६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

मुक्तिदायक योग का वर्णन

सनन्दन उवाच

एतदध्यात्ममानाढ्यं वचः केशिध्वजस्य सः।
खाण्डिक्योऽमृतवच्छ्रुत्वा पुनराह तमीरयन्॥१॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—केशीध्वज से अध्यात्मयुक्त अमृतमय वाणी सुनकर खाण्डिक्य ने उनसे पुनः कहा—।।१।।

खाण्डिक्य उवाच

तद् ब्रूहि त्वं महाभाग योगं योगविदुत्तम। विज्ञातयोगशास्त्रार्थस्त्वमस्यां निमिसन्ततौ॥२॥

खाण्डिक्य कहते हैं—हे महाभाग! तुम योगीगण में उत्तम हो। निमि के वंश में एकमात्र तुम ही योगशास्त्र के तत्वज्ञ हो।।२।।

केशिध्वज उवाच

योगस्वरूपं खाण्डिक्य श्रूयतां गदतो मम।
यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्मलयं मुनिः॥३॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धस्य विषयासङ्गि मुक्तेर्निर्विषयं तथा॥४॥
विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा बुधो मनः। चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परमेश्वरम्॥५॥
आत्मभावं नयेत्तेन तद्ब्रह्मध्यापनं मनः।
विकार्यमात्मनः शक्त्या लोहमाकर्षको यथा॥६॥
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः। तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते॥७॥

केशीध्वज कहते हैं—हे खाण्डिक्य! योगस्वरूप का वर्णन श्रवण करिये। योगस्थ मुनिगण कभी भी ब्रह्मलीन स्थिति से च्युत ही नहीं होते। मन ही मनुष्य के बन्ध-मोक्ष का कारण है। विषयों का संग ही बन्धन का तथा निर्विषय होना मुक्ति का कारण कहा गया है। विज्ञानी बुद्धिमान् मनुष्य मन को विषयों से हटाकर ब्रह्मभूत परमात्मा का चिन्तन मुक्ति हेतु करे। वह ब्रह्मध्यान तत्पर होकर मन को आत्मभाव पर्यन्त ले जाये। जैसे चुम्बक लौह का आकर्षण करता है, वैसे ही विकारमय मन को खींचे तथा आत्मभाव से स्थापित करे। जो विशिष्ट मनःगति आत्म प्रयत्न द्वारा होती है, उसका ब्रह्म से संयोग होना ही योग है।।३-७।।

एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तधर्मोपलक्षणम्। यस्य योगः स वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते॥८॥
योगयुक् प्रथमं योगी युञ्जमानोऽभिधीयते। विनिष्पन्नसमाधिस्तु परब्रह्मोपलब्धिमान्॥९॥

एवंविध अत्यन्त विशेषता युक्त धर्म से उपलक्षित योग युक्त योगी ही मुमुक्षु हैं। प्रारंभ में योगसाधक

योगी को युञ्जान कहते हैं। जब उसे समाधिलाभ हो जाता है, तब वह परब्रह्म की उपलब्धि युक्त हो जाता है।।८-९।।

यद्यन्तरायदोषेण दूष्यते नास्य मानसम्। जन्मान्तरैरभ्यसनान्मुक्तिः पूर्वस्य जायते॥१०॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि।

प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मचयोऽचिरात्॥११॥

ब्रह्मचर्यमहिंसां च सत्यास्तेयापरिग्रहान्।

सेवेत योगी निष्कामो योगितां स्वमनो नयन्॥१२॥

यदि युंजान योगी का मन अन्तराय (नाना विघ्नों) एवं दोष से दूषित नहीं होता, तब वह पूर्व जन्माभ्यास जनित पुण्य प्रभाव से इसी युंजान स्थिति में ही मुक्ति प्राप्त करता है। समाधिलब्ध योगी अपने कर्म योगाग्नि से शीघ्र दग्ध करके इसी जन्म में मुक्त हो जाता है। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह का सेवन करता व्यक्ति योगीधर्म में मन नियोजित करे।।१०-१२।।

स्वाध्यायशौचसन्तोषतपांसि नियमान्यमान्।

कुर्व्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन्प्रवणं मनः॥१३॥

एते यमाश्च नियमाः पञ्च पञ्चप्रकीर्तिताः।

विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामानां विमुक्तिदाः॥१४॥

एवं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतः।

यमाख्यैर्नियमाख्यैश्च युञ्जीत नियतो यतिः॥१५॥

स्वाध्याय, शौच, सन्तोष, तप, उत्तम नियम तथा यम का अभ्यास करते हुये मन को ब्रह्म में लगाना चाहिये। ये यम पांच हैं तथा नियम भी पांच हैं। यह कामनायुक्त लोगों को विशेष फल देने वाला तथा निष्काम लोगों हेतु मुक्तिदायक है। भद्रासन प्रभृति आसन विधि से आसीन होकर तथा शुभ गुणान्वित होकर यति एकाग्रता पूर्वक यम-नियमादि द्वारा सविधि योगाभ्यास करें।।१३-१५।।

प्राणाख्यमवलंवस्थमभ्यासात्कुरुते तु यत्।

प्राणायामः स विज्ञेयः सबीजोऽबीज एव च॥१६॥

परस्परेणाभिभवं प्राणापानौ यदानिलौ। कुरुतः सद्विधानेन तृतीयः संयमात्तयोः॥१७॥

अभ्यास द्वारा प्राणवायु को स्थिर करना प्राणायाम है। यह प्राणायाम सबीज तथा निर्बीज रूप से द्विविध है। जब प्राण एवं अपानवायु परस्परतः एक-दूसरे का अभिभव करने लगते हैं, तब रेचक एवं पूरक प्राणायाम ही स्थिति होती है। जब रेचक एक पूरक का संयम एक साथ होता है, तब वह तृतीय प्राणायाम कुंभक है।।१६-१७।।

तस्य चालम्बनवत्स्थूलं रूपं द्विषत्पते।

आलम्बनमनन्तस्य योगिनोऽभ्यसतः स्मृतम्॥१८॥

शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्। कुर्य्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः॥१९॥

हे राजन्! सबीज प्राणायाम के अभ्यास की स्थिति में योगी का आलम्बन है, भगवान् विष्णु का स्थूल रूप जो अनन्त कहे गये हैं। जो प्रत्याहार की साधना कर रहा है, ऐसा योगी शब्दादि विषयों में आसक्त इन्द्रियों को वश में करके मन को वशीभूत करे।।१८-१९।।

वश्यता परमा तेन जायते निश्चलात्मनाम्। इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी योगसाधकः॥२०॥

प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहरेण चेन्द्रियैः। वशीकृतैस्ततः कुर्यात्स्थिरं चेतः शुभाश्रये॥२१॥

ऐसे निश्चलात्मा योगीगण का इन्द्रियों तथा मन पर अधिकार हो जाता है। इन्द्रियों को जो वश में नहीं करता वह योगी योगसाधना नहीं कर सकता। योगी प्राणायाम से वायु को, प्रत्याहार से इन्द्रियों को वशीभूत करके चित्त को शुभ आश्रय में स्थिर करे।।२०-२१।।

खाण्डिक्य उवाच

कथ्यतां मे महाभाग चेतसो यः शुभाश्रयः। यदाधारमशेषं तु हन्ति दोषसमुद्भवम्॥२२॥

खाण्डिक्य कहते हैं—हे महाभाग! चित्त के शुभाश्रय का वर्णन करें। ऐसे शुभाश्रय को कहिये जिसका आलम्बन दोष जनित विकार का नाश करता है।।२२।।

केशिध्वज उवाच

आश्रयश्चेतसो ज्ञानिन् द्विधा तच्च स्वरूपतः। रूपं मूर्तममूर्तं च परं चापरमेव च॥२३॥

त्रिविधा भावना रूपं विश्वमेतत्त्रिधोच्यते।
ब्रह्माख्या कर्मसंज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका॥२४॥
कर्मभावात्मिका ह्येका ब्रह्मभावात्मिकापरा।
उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना॥२५॥

केशीध्वज कहते हैं—हे ज्ञानी! चित्त का आश्रय स्वरूपतः द्विविध है। वह मूर्त्त-अमूर्त्त किंवा पर-अपर है। रूप की भावना त्रिविध होती है। यथा ब्रह्म-कर्म एवं उभयात्मक। ये ही त्रिविध भाव-भावना हैं।।२३-२५।।

(ये हैं कर्म भावात्मिका, ब्रह्म भावात्मिका तथा कर्मब्रह्मोभयभावात्मिका)

सनकाद्या सदा ज्ञानिन् ब्रह्मभावनया युताः।
कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावराश्चराः॥२६॥
हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्मात्मिका द्विधा।
अधिकारबोधयुक्तेषु विद्यते भावभावना॥२७॥

हे ज्ञानी! सनकादि देवर्षि सर्वदा ब्रह्मभावना युक्त रहते हैं। अन्य देवता, स्थावर, चर कर्मभावना का अवलम्बन लेते हैं। हिरण्यगर्भ आदि में ब्रह्मकर्मोभयात्मिका भावना रहती है। जो अधिकार तथा बोधयुक्त है, उनमें केवल भावात्मक भावना रहती है।।२६-२७।।

अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु। विश्वमेतत्परं चान्यद्भेदभिन्नदृशां नृपः॥२८॥

प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्मसन्तोद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥२९॥

हे नृप! समस्त विशेष ज्ञान तथा कर्म जब स्थित रहता है, उस समय भेदात्मक, भिन्नरूपयुक्त यह विश्व दृष्टिगोचर होता है। जब सभी भेदभाव स्तिमित हो जाते हैं, तब जो मात्र सत् है एवं वाणी का विषय नहीं है तथा मात्र सत्तामात्र रूपेण गोचर रहता है तथा जो मात्र अनुभव गम्य है, उसे ब्रह्म ज्ञान कहा गया है।।२८-२९।।

तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजनस्य च। विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः॥३०॥

न तद्योगयुजा शक्यं नृप चिन्तयितुं यतः।
ततः स्थूलं हरे रूपं चिन्त्यं यच्चक्षुगोचरम्॥३१॥

वही विष्णु का परमरूप है। वह विश्वस्वरूप से विलक्षण परमात्म रूप है। हे नृप! उस रूप का चिन्तन योगीगण कदापि नहीं कर सकते अतः उनके स्थूल हरिरूप का चिन्तन करे, जो नेत्र से गोचर है।।३०-३१।।

हिरण्यगर्भो भगवान्वासवोऽथ प्रजापतिः।
मरुतो वसवो रुद्रा भास्करास्तारका ग्रहाः॥३२॥
गन्धर्वा यक्षदैत्याश्च सकला देवयोनयः।
मनुष्याः पशवः शैला समुद्राः सरितो द्रुमाः॥३३॥

भूप भूतान्यशेषाणि भूतानां ये च हेतवः। प्रधानादिविशेषान्ताश्चेतनाचेतनात्मकम्॥३४॥
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम्। मूर्त्तमेतद्धरे रूपं भावनात्रितयात्मकम्॥३५॥

भगवान, हिरण्यगर्भ, इन्द्र, प्रजापति, मरुत् वसु, रुद्र, भास्कर, तारक, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य, सभी देवयोनि, मनुष्य, पशु, पर्वत, सागर, नदी, वृक्ष, सभी प्राणीगण, प्रधान अर्थात् प्रकृति से लगाकर विशेष पर्यन्त सर्वभूतकारण तथा चेतन, अचेतनात्मक, एकपाद, द्विपाद, पाद रहित, अनेक पाद वाले जितने भी प्राणी हैं, सभी उक्त तीन भावनात्मक हैं। वे भगवान् के मूर्त्तरूप कहे गये हैं।।३२-३५।।

एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्। परमब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥३६॥

विष्णुशक्तिःपरा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्याकर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥३७॥

येयं क्षेत्रज्ञशक्तिः सा चेष्टिता नृप कर्मजा। आसारभूतेसंसारे प्रोक्ता तत्र महामते॥३८॥
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यनुसंज्ञितान्। तया तिरोहिततत्वात्तु शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता॥३९॥
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते। अप्राणवत्सु खल्वल्पा स्थावरेषु ततोऽधिका॥४०॥

सरीसृपेषु तेभ्योऽन्याप्यतिशक्त्या पतत्त्रिषु।
पतत्त्रिभ्यो मृगास्तेभ्यः स्वशक्त्या पशवोऽधिकाः॥४१॥
पशुभ्यो मनुजाश्चातिशक्त्या पुंसः प्रभाविताः।
तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप॥४२॥

यह सचराचर विश्व परब्रह्मस्वरूप विष्णु की शक्ति से समन्वित है। विष्णु की शक्ति परा है। अपरा

क्षेत्रज्ञा नामक द्वितीय शक्ति है। तृतीय अविद्या कर्म शक्ति है। हे नृप! हे महामति! यह द्वितीया क्षेत्रज्ञा शक्ति इस असार संसार में कर्मचेष्टा से युक्त रहती है। हे भूपाल! सभी प्राणीगण में यह तारतम्य से परिलक्षित होती है। यह प्राण रहित पदार्थ समूह में अत्यल्प रहती है। यह स्थावरसमूह में उसकी तुलना में किंचित् अधिक रहती है। यह सरीसृप आदि रेंगने वाले प्राणियों में इससे अधिक रहती है। पक्षियों में इन रेंगने वालों से कुछ अधिक रहती है। पक्षियों की तुलना से मृगों में यह और अधिक रहती है। मृगों की तुलना में पशुओं में और अधिक रहती है। उनसे अधिक मनुष्यों में मनुष्यों की तुलना में नाग, गन्धर्व, यक्ष, देवता में यह और अधिक रहती है।।३६-४२।।

शक्रः समस्तदेवेभ्यस्ततश्चातिप्रजापतिः।
हिरण्यगर्भोऽपि ततः पुंसः शक्त्युपलक्षितः।।४३।।
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा।।४४।।

सभी देवगण की तुलना में यह शक्ति इन्द्र में सर्वाधिक रहती है। इन्द्र से अधिक शक्तिमान् हैं प्रजापति तथा प्रजापति की तुलना में हिरण्यगर्भ पुरुष में यह अधिक और भी अधिक पाई जाती है। हे पार्थिव! उसका (पुरुष शक्ति) यही सम्पूर्ण रूप है। जैसे शक्तियोग से सब कुछ आकाश से युक्त रहता है, वैसे ही समस्त पदार्थ पुरुष शक्ति से युक्त रहते हैं।।४३-४४।।

द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते। अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः।।४५।।
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः। नहि स्वरूपरूपं वै रूपमन्यद्धरेर्महत्।।४६।।
समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर। देवतिर्यङ्मनुष्यादिचेष्टावन्ति स्वलीलया।।४७।।

हे महामति! द्वितीय है विष्णु नामक योगियों का ध्येय परब्रह्म विष्णु का अमूर्त रूप। उसे बुद्धिशाली लोग सत् कहते हैं। हे राजन्! जहां समस्त शक्तियां स्थित रहती हैं, वह हरि का अन्य रूप अथवा महत् रूप नहीं है। हे जनेश्वर! वह सत् रूप ही समस्त शक्तियों का संचालक है। देव, तिर्यक् प्राणी तथा मनुष्य को यह अपनी लीला से चेष्टारत कर देता है।।४५-४७।।

जगतामुपकाराय तस्य कर्मनिमित्तजा। चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यविहतात्मिका।।४८।।

तद्रूपं विश्वरूपस्य चिन्त्यं योगयुजा नृप।
तस्य ह्यात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकिल्बिषनाशनम्।।४९।।
यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम्।।५०।।

जगत् के उपकारार्थ ही उस अप्रमेय सत् की कर्म निमित्तजा शक्ति सर्वत्र व्याप्त एवं गतिशील रहती हैं। अतः उसे विश्वरूप चिन्मय रूप का चिन्तन योगीगण समस्त पापनाशार्थ तथा आत्मविशुद्धि हेतु करे। जैसे अग्नि की अनिरुद्ध (जिसे रोका न गया हो) शिखा वायु द्वारा अतितीव्र हो जाती है। वह निकटस्थ कक्ष को दग्ध कर देती है, उसी प्रकार चित्त में स्थित विष्णु योगी के समस्त पाप को जला देते हैं।।४८-५०।।

तस्मात्समस्तशक्तीनामाद्यान्ते तत्र चेतसः। कुर्वीत संस्थितं साधु विज्ञेया शुद्धलक्षणा।।५१।।

शुभाश्रयः सचित्तस्य सर्वगस्य तथात्मनः। त्रिभावभावनातीतो मुक्तये योगिनां नृप॥५२॥

अतः साधु को चाहिये कि वह चित्त को सभी शक्तियों के आधार उन प्रभु से युक्त करे। इसे ही शुद्धलक्षणा कहते हैं। हे नृप! जो शुभाश्रय चंचलता तथा चित्र की त्रिभाव भावना से रहित है, योगियों हेतु वही मुक्ति का कारण भी है।।५१-५२।।

अन्ये तु पुरुषव्याघ्र चेतसो ये व्यपाश्रयाः।
अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनयः॥५३॥

मूर्त्तं भगवतो रूपं सर्वापाश्रयनिस्पृहः। एषा वै धारणा ज्ञेया यच्चित्तं तत्र धार्यते॥५४॥

हे पुरुष सिंह! जो अन्य चित्त के आधार हैं, वे देवादि है, जो कर्मयोनि हैं, वे सभी अशुद्ध हैं। भगवान् के मूर्त्त रूप का चिन्तन सभी आश्रयों से रहित होकर करे। यही धारणा है। यही चित्त को एकाग्र करती है। इससे चित्त को आधार मिल जाता है।।५३-५४।।

तत्र मूर्त्तं हरे रूपं यादृक् चिन्त्यं नराधिप। तच्छूयतामनाधारे धारणा नोपपद्यते॥५५॥

प्रसन्नचारुवदनं पद्मपत्रायतेक्षणम्। सुकपोलं सुविस्तीर्णं ललाटफलकोज्ज्वलम्॥५६॥

समकर्णांसविन्यस्तचारुकर्णोपभूषणम्। कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥५७॥

वलित्रिभङ्गिना भुग्ननाभिना चोदरेण वै। प्रलंवाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम्॥५८॥

हे राजन्! अब आप हरि के उस रूप को सुनिये जिसका चिन्तन हो सके। अनाधार में धारणा नहीं हो सकती। धारणा आधार में ही होती है। सुन्दर प्रसन्नता पूर्ण चेहरा, कमल पत्र जैसे विशाल नेत्र, उत्तम कपोल, विशाल उज्वल दीप्त ललाट, उत्तम कर्ण जो आभूषणों से भूषित है, शंख के समान ग्रीवा वाले, विशाल एवं श्रीवत्साकिंत वक्षस्थल से शोभायमान, त्रिवली युक्त वृत्ताकृति गहन नाभि वाले, सुन्दर उदर वाले, प्रलम्ब बाहु चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करे अथवा अष्टभुजा युक्त विष्णु का ध्यान करे।।५५-५८।।

समस्थितोरुजघनं सुस्थिराङ्घ्रिकराम्बुजम्।
चिन्तयेद्ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम्॥५९॥

किरीट चारुकेयूरकटकादिविभूषितम्। शार्ङ्गशङ्खगदाखङ्गप्रकाशवलयाञ्चितम्॥६०॥

चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम्। तावद्यावद् दृढीभूता तत्रैव नृपधारणा॥६१॥

अन्य ध्यान—उन्होंने उरु तथा जघन को स्थिरता के साथ आसनबद्ध किया है। उन्होंने घुटनों पर अनेक करकमलों को रखा है। वे पीत निर्मल वस्त्र से शोभित हैं। वे योगीरूप में आसीन हैं। उन्होंने किरीट तथा केयूर धारण किया है। वे वलय से सुशोभित हैं। उन्होंने शार्ङ्गधनुष, शंख, गदा, खड्ग धारण किया है। वे प्रभा वलय से मण्डित हैं। इस प्रकार के ब्रह्मा का ध्यान योगी मन को वशीभूत करके सतत् करे। हे नृप! इस धारणा का अभ्यास उस समय तक करना चाहिये, जब तक मन में यह धारणा दृढ़ न हो जाये।।५९-६१।।

वदतस्तिष्ठतो यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
नापयाति यदा चित्तात्सिद्धां मन्येत तां तदा॥६२॥

ततः शङ्खगदाचक्रशार्ङ्गादि रहितं बुधः। चिन्तयेद्भगवद्रूपं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम्॥६३॥

यदि कहीं बैठते, वार्त्ता करते अथवा स्वेच्छा से काम करते समय यह रूप मन से लुप्त न हो, तब ऐसा समझें कि धारणा सिद्ध हो गयी। जब यह धारणा स्थिरीभूत हो जाये, तब वह बुद्धिमान् साधक प्रभु की धारणा शंख, गदा, चक्रशार्ङ्ग आदि से रहित रूप में करे। उस समय भगवद् रूप का चिन्तन प्रशान्त तथा अक्षसूत्रयुक्त ही रहे।।६२-६३।।

सा यदा धारणा तद्वदवस्थानवती ततः। किरीटकेयूरमुखैर्भूषणैरहितं स्मरेत्।।६४।।
तदेकावयवं चैवं चेतसा हि पुनर्बुधः। कुर्यात्ततोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत्।।६५।।
तद्रूपप्रत्यये चैकसन्नतिश्चान्यनिःस्पृहा। तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यतेनृप।।६६।।

जब यह धारणा स्थिर हो जाये, तब प्रभु का ध्यान अब किरीट, केयूर, आदि आभरण रहित रूप में करे। (उनके शार्ङ्ग आदि आयुध से उनका रूप इस धारणा से पूर्व वाली धारणा में शून्य कर दिया गया था। अब उनका रूप आभरण शून्य होगा) अब वह उपासक केवल उन अवयवी (अंगों से युक्त तथा आभूषण तथा आयुध रहित रूप में) रूप में करे। इन प्रभु के इस रूप का ध्यान करने तथा उस पर दृढ़ आस्था हो जाने के उपरान्त साधक को कुछ भी अन्य इच्छा नहीं रहती। हे नृप! सज्जन लोग ऐसा ध्यान यम नियमादि षड़ङ्ग का अवलम्बन लेकर सम्पन्न करते हैं।।६४-६६।।

तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्। मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते।।६७।।
विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव। प्रौपणीयस्तथैवात्मा प्रक्षीणाशेषभावनः।।६८।।
क्षेत्रज्ञकरणीज्ञानं करणं तेन तस्य तत्। निष्पाद्य मुक्तिकार्यं वै कृतकृत्यो निवर्तन्ते।।६९।।

अब उन प्रभु का ध्यान अवयवों तक की कल्पना के विना मन द्वारा करे। ऐसा ध्यान जब सम्पन्न हो, तब वही समाधि है। हे राजन्! विज्ञान द्वारा वह परब्रह्म प्राप्त होता है। वह अशेष भावना से रहित होकर प्राप्त होता है। क्षेत्रज्ञ को कर्त्ता तथा ज्ञान को करण कहते हैं। वह योगी अब ज्ञानरूपी करण के अवलम्बन से मुक्तिकार्य को निष्पन्न करके कृतकृत्य होकर निवर्त्तित हो जाता है।।६७-६९।।

तद्भावभावनापन्नस्ततोऽसौ परमात्मनः। भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत्।।७०।।
विभेदजनके ज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते। आत्मनो ब्रह्मणाभेदं सम्मतं कः करिष्यति।।७१।।

इत्युक्तस्ते मया योगः खाण्डिक्यं परिपृच्छतः।
संक्षेपविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्रियतां तव।।७२।।

वह उस भाव से भावापन्न होकर स्वयं परमात्मा रूप तद्रूप हो जाता है। उनसे स्वयं को भिन्नरूप मानना अज्ञान है। जब भेदमूलक ज्ञान (अज्ञान) निवृत्त हो जाता है, उस समय आत्मा तथा ब्रह्म के बीच भेद समाप्त हो जाता है। तब इसका समर्थन करने वाला अन्य कोई रह ही नहीं सकता (अर्थात् इस अभेद में तब कौन भेद देख सकेगा?) हे खाण्डिक्य! मैंने आपकी जिज्ञासा के अनुरूप कुछ स्थल पर संक्षेपतः तो कुछ स्थल पर विस्तृत रूप से योग का वर्णन कर दिया। अब मैं आपका क्या प्रिय कार्य सम्पन्न करूं।।७०-७२।।

खाण्डिक्य उवाच

कथितो योगसद्भावः सर्वमेव कृतं मम। तवोपदेशात्सकलो नष्टश्चित्तमलो मम।।७३।।

ममेति यन्मया प्रोक्तमसदेतन्न चान्यथा। नरेन्द्र गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः॥७४॥
अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः। परमार्थस्त्वसंलाप्यो वचसां गोचरो न यः॥७५॥
तद्गच्छ श्रेयसे सर्वं ममैतद्भवता कृतम्। यद्विमुक्तिपरो योग प्रोक्तः केशिध्वजाव्ययः॥७६॥

खाण्डिक्य कहते हैं—तुमने सद्भाव पूर्वक समस्त योग का वर्णन मुझसे कर दिया। तुम्हारे उपदेश द्वारा मेरे चित्त का समस्त कलुष नष्ट हो गया। मैंने जगत् को तथा देह को "मेरा है" इस प्रकार समझा था। वह सब असत् था। यह निःसंदिग्ध उपलब्धि है। हे राजन्! जो इस तत्व को जानते हैं, वे ही इसका उचित वर्णन कर सकते हैं। मैं तथा मेरा ममत्व से आच्छन्न व्यवहार अविद्यापरक था, तथापि जो परमार्थ है, वह वाणी से परे हैं। उसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। हे केशीध्वज! अब तुम स्वस्थान गमन करो। तुमने जो श्रेय मार्ग का उपदेश दिया, वह योग मेरे लिये विमुक्तिप्रद है।।७३-७६।।

सनन्दन उवाच

यथार्हपूजया तेन खाण्डिक्येन स पूजितः।
आजगाम पुरं ब्रह्मंस्ततः केशिध्वजो नृप॥७७॥
खाण्डिक्योऽपि सुतं कृत्वा राजानं योगसिद्धये।
विशालामगमत्कृष्णे समावेशितमानसः॥७८॥
स तत्रैकान्तिको भूत्वा यमादिगुणसंयुतः।
विष्णवाख्ये निर्मले ब्रह्मण्यवाप नृपतिर्लयम्॥७९॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—इस प्रकार खाण्डिक्य से पूजित होकर केशीध्वज अपनी नगरी लौट गये। खाण्डिक्य ने भी अपना राज्यभार अपने पुत्र को प्रदान किया तथा वह योगिसिद्धि हेतु कृष्ण में मन को निवेशित करके विशाला नगर आ गया। वह वहां ऐकान्तिक रूप से यमादि गुणयुक्त होकर निर्मल परब्रह्म विष्णु में लीन हो गया।।७७-७९।।

केशिध्वजोऽपि मुक्त्यर्थं स्वकर्मक्षपणोन्मुखः। बुभुजे विषयान्कर्म चक्रे चानभिसङ्गितम्॥८०॥
स कल्याणोपभोगैश्च क्षीणपापोऽमलस्ततः। अवाप सिद्धिमत्यन्तत्रितापक्षपणीं मुने॥८१॥
एतत्ते कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृष्टवान्। तापत्रयचिकित्सार्थं किमन्यत्कथयामि ते॥८२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

उधर केशीध्वज भी मुक्तिलाभार्थ तथा अपने कर्मक्षय हेतु अनासक्त भाव से अपने राज्यपालनादि कर्म को सम्पन्न करने लगा। हे मुनिवर! इस प्रकार उसने कल्याणपूर्ण भोगों द्वारा अपने पापों का नाश कर दिया तथा उसने कालान्तर में त्रितापनाशक सिद्धिमती स्थिति को प्राप्त किया। हे मुनिवर! आपने तापत्रय की चिकित्सा हेतु जो कुछ पूछा था, वह मैंने कह दिया। अब और क्या कहना है?।।८०-८२।।

।।४७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा भरत का उपाख्यान तथा ज्ञानचर्चा वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं मया महाभाग तापत्रयचिकित्सितम्।
तथापि मे मनो भ्रान्तं न स्थितिं लभतेऽन्जसा॥१॥
आत्मव्यतिक्रमं ब्रह्मन्दुर्जनाचरितं कथम्। सोढुं शक्येत् मनुजैस्तन्ममाख्याहि मानद॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! मैंने आप द्वारा त्रिताप नाशक योग रहस्य का वर्णन श्रवण किया, तथापि अभी भी मेरा मन भ्रमित-सा है। मैं अभी भी विश्रान्ति नहीं पा सकता हूं। हे ब्रह्मन्! मानद! कृपया यह बताने की कृपा करिये कि व्यक्ति दुर्जनों के व्यतिक्रमरूपी आचरण को कैसे सहे?॥१-२॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा नारदेनोक्तं ब्रह्मपुत्रः सनन्दनः। उवाच हर्षसंयुक्तः स्मरन्भरतचेष्टितम्॥३॥

सूत जी कहते हैं—नारद का कथन सुनकर ब्रह्मनन्दन सनन्दन ने हर्षित होकर राजा भरत के चरित का स्मरण करते हुये कहा—॥३॥

सनन्दन उवाच

अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।
यं श्रुत्वा त्वन्मनो भ्रान्तमास्थानं लभते भृशम्॥४॥
आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपतिः। आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते॥५॥
स राजा प्राप्तराज्यस्तु पितृपैतामहं क्रमात्। पालयामास धर्मेण पितृवद्रंजयन् प्रजाः॥६॥
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्भगवन्तमधोक्षजम्। सर्वदेवात्मकं ध्यायन्नानाकर्मसु तन्मतिः॥७॥
ततः समुत्पाद्य सुतान्विरक्तो विषयेषु सः।
मुक्त्वा राज्यं ययौ विद्वान्पुलस्त्यपुलहाश्रमम्॥८॥
शालग्रामं महाक्षेत्रं मुमुक्षुजनसेवितम्। तत्रासौ तापसो भूत्वा विष्णोराराधनं मुने॥९॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—मैं एक पुरातन इतिहास का वर्णन करता हूं, जिसे सुनकर आपके भ्रान्त चित्त को शान्तिलाभ होगा। हे मुनिप्रवर! पुराकाल में ऋषभनंदन भरत नामक राजा थे। उनके ही नाम से यह देश भारतखण्ड कहा जाता है। उन राजा ने पितृ-पितामह क्रम से राज्यलाभ किया था। वे पितृवत् प्रजा का पालन करते थे। उन्होंने राजत्व काल में अनेक यज्ञों द्वारा भगवान् सर्वदेवात्मक अधोक्षज देव का यजन किया था। उन राजा ने पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् विषयों से विमुख होकर राज्यभार त्याग दिया तथा वे विद्वान् पुलस्त्य तथा पुलह ऋषि के आश्रम में आये। वह शालग्राम महाक्षेत्र मुमुक्षुजनों द्वारा सेवित था। हे मुनिवर! वे राजा वहां तपस्वी वेश में विष्णुदेव की आराधना में निरत हो गये॥४-९॥

चकार भक्तिभावेन यथालब्धसपर्यया।
नित्यं प्रातः समाप्लुप्य निर्मलेऽम्भसि नारद॥१०॥
उपतिष्ठेद्रविं भक्त्या गृहन्ब्रह्माक्षरं परम्। अथाश्रमे समागत्य वासुदेवं जगत्पतिम्॥११॥
समाहृतैः स्वयं द्रव्यैः समित्कुशमृदादिभिः।
फलैः पुष्पैस्तथा पत्रैस्तुलस्याः स्वच्छवारिभिः॥१२॥
पूजयन्प्रयतो भूत्वा भक्तिप्रसरसंप्लुतः।
स चैकदा महाभागः स्नात्वा प्रातः समाहितः॥१३॥
चक्रनद्यां जपंस्तस्थौ मुहूर्तत्रयमम्बुनि। अथाजगाम तत्तीरं जलं पातुं पिपासिता॥१४॥

हे नारद! वे जो कुछ सामग्री मिल जाती थी, उसी के द्वारा भक्तिभाव से उपासना करते थे। हे नारद! वे राजा नित्य निर्मल जल में निमज्जित होकर स्नानोपरान्त भक्ति पूर्वक ब्रह्माक्षरों का जप करते सूर्योपस्थान करके आश्रम आते। वहां वे वन में स्वयं संचित की गई समिध्, कुश, मृत्तिका, फल, पुष्प, तुलसीदल एवं स्वच्छ जल से प्रयत्न पूर्वक भक्तिभावेन भगवत् पूजन करते थे। एक बार उन महाभाग ने प्रातः समाहित होकर चक्रनदी में स्नान किया तथा जल में ही खड़े होकर एकाग्रता पूर्वक तीन मुहूर्त्त पर्यन्त जप किया। तभी वहां एक प्यासी मृगी नदी तीर पर जल पीने आ गई।।१०-१४।।

आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात्। ततः समभवत्तत्र प्रीतप्राये जले तया॥१५॥
सिंहस्य नादः सुमहान् सर्वप्राणिभयङ्करः।
ततः सा सिंहसन्नादादुत्प्लुता निम्नगातटम्॥१६॥
अत्युच्चारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात ह। तमुह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम्॥१७॥
जग्राह भरतो गर्भात्पतितं मृगपोतकम्। गर्भप्रच्युतिदुःखेन प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन च॥१८॥
मुनीन्द्र सा तु हरिणी निपपात ममार च।
हरिणीं तां विलोक्यनथ विपन्नां नृपतापसः॥१९॥
मृगपोतं समागृह्य स्वमाश्रममुपागतः। चकारानुदिनं चासौ मृगपोतस्य वै नृपः॥२०॥

हे ब्रह्मन्! वह मृगी आसन्न प्रसवा थी। वह वन से आई थी। जब उसने प्रीति पूर्वक जलपान कर लिया, तभी वहां सभी प्राणीगण के लिये भयंकर सिंहनाद सुनाई पड़ा। वह महाभयंकर शब्द सुनकर वह मृगी नदी पार करने हेतु उछली। वह अत्युच्च स्थान से कूदी थी फलतः उसका गर्भ नदी में ही च्युत होकर गिर गया। वह गर्भ से च्युत मृगशावक वेग से बहती नदी की तरंगों से परिप्लुत हो गया। ऋषि भरत ने उसको उठा लिया। हे मुनीन्द्र! गर्भपात की वेदना तथा उच्च स्थान से कूद पड़ने के कारण हरिणी भूपतित होकर मृत हो गई। उन तापस राजा ने हरिणी को मृत तथा शावक को विपन्न देखा। वे राजा इस कारण मृगशिशु को लेकर आश्रम में आ गये। वे राजा नित्य उस मृगशिशु की परिचर्या तथा पालन-पोषण करने लगे।।१५-२०।।

पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने। चचाराश्रमपर्यन्तं तृणानि गहनेषु सः॥२१॥

दूरं गत्वा च शार्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः। प्रातर्गत्वातिदूरं च सायमायात्यथाश्रमम्॥२२॥
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजान्तरे। तस्य तस्मिन्मृगे दूरसमीपपरिवर्तिनि॥२३॥
आसीच्चेतः समासक्तं न तथा ह्यच्युते मुने।
विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबान्धवः॥२४॥

हे मुनिवर! वह शावक नित्य राजा द्वारा पोषण किये जाने के कारण बढ़ने लगा। वह आश्रम प्रांगण में यत्र-तत्र विचरण करता तृण चरने लगा। कभी वह गहन वन तक जाता परन्तु दूर जाने पर सिंह-व्याघ्र के भय के कारण पुनः लौट आता। वह प्रातः चरने के लिये दूर वन में जाकर सायं आश्रम लौटकर भरत की पर्णकुटी में ही विश्राम करता था। हे मुनिवर! भरत मुनि उस मृग के प्रति अत्यन्त समासक्त हो गये थे। भले वह दूर जाता किंवा निकट रहता, वे उसी का चिन्तन करते रहते थे। अब वे उसी मृग में आसक्त रहते थे। भगवान् के प्रति अब उनका चित्त आसक्त नहीं था। इन राजा ने बन्धु-बान्धवों का त्याग कर दिया था। पुत्र राज्य तक त्याग दिया था।।२१-२४।।

ममत्वं स चकारोच्चैस्तस्मिन्हरिणपोतके।
किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः किं सिंहेन निपातितः॥२५॥
चिरायमाणे निष्क्रान्ते तस्यासीदिति मानसम्।
प्रीतिप्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे॥२६॥

लेकिन अब उन राजा को इस मृग के प्रति ममत्व हो गया। यदि वह मृग लौटने में तनिक विलम्ब कर देता, तब उन राजा को आशंका होती कि कहीं वह वृक (भेड़िया) व्याघ्रादि द्वारा भक्षित तो नहीं हो गया अथवा उसे सिंह ने तो भोजन नहीं कर लिया। जब तक वह मृग उनके पार्श्व में रहता तब तक राजा भरत प्रसन्न रहते थे।।२५-२६।।

समाधिभङ्गस्तस्यासीन्ममत्वाकृष्टमानसः। कालेन गच्छता सोऽथ कालं चक्रे महीपतिः॥२७॥
पितेव साश्रं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः। मृगमेव तदाद्राक्षीत्त्यजन्प्राणानसावपि॥२८॥

मृग की ओर मन आकर्षित रहने के कारण मुनि भरत की समाधि भंग हो जाती। इस प्रकार काल व्यतीत होते हुये राजा की अन्तिम घड़ी आ गई। जैसे मृत्युकाल में पुत्र पिता को साश्रुनयन होकर देखता है, उसी तरह उस मृगशावक ने मुनि भरत को जब देखा, तब राजा ने भी उसी भावना से मृग को देखा।।२७-२८।।

मृगो बभूव स मुने तादृशीं भावनां गतः। जातिस्मरत्वादुद्विग्नः संसारस्य द्विजोत्तम॥२९॥
विहाय मातरं भूयः शालग्राममुपाययौ।
शुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णैः स कुर्वन्नात्मपोषणम्॥३०॥
मृगत्वहेतुभूतस्य कर्मणो निष्कृतिं ययौ। तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिस्मरो द्विजः॥३१॥
सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले। सर्वविज्ञानसम्पन्नः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥३२॥

हे मुनिवर! मरण काल में मृगयुक्त भावना के कारण भरत जन्मान्तर में मृग योनि में जन्मे। परन्तु हे

द्विजोत्तम!, तथापि पूर्व जन्मार्जित सुकृति के कारण उनको अपने पूर्वजन्म का ज्ञान था। वे मृगयोनि में भी संसार से उद्विग्न रहते थे। अन्ततः उन्होंने माता का त्याग किया और शालग्राम स्थान में शुष्क पत्र तथा तृणादि भक्षण करके रहते थे। एवंविध जिस कारण से उनको मृगयोनि मिली थी, उस कारणभूत कर्म का नाश कर्म भोग द्वारा हो जाने पर उन राजा ने अगला जन्म सर्वशास्त्रमर्मज्ञ, सर्वविज्ञानसम्पन्न, सर्वशास्त्रार्थज्ञ, सदाचारी शुद्ध योगियों के उत्तम कुल में लिया।।२९-३२।।

अपश्यत्स मुनिश्रेष्ठः स्वात्मानं प्रकृतेः परम्। आत्मनोधिगतज्ञानाद्देवादीनि महामुने।।३३।।
सर्वभूतान्यभेदेन ददर्श स महामतिः। न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतम्।।३४।।
न ददर्श च कर्माणि शास्त्राणि जगृहे न च।
उक्तोऽपि बहुशः किञ्चिज्जडं वाक्यमभाषत।।३५।।
तदप्यसंस्कारगुणं ग्रामभाषोक्तिसंयुतम्। अपद्धस्तवपुः सोऽपि मलिनाम्बरधृङ् मुने।।३६।।
क्लिन्नदन्तान्तरः सर्वैः परिभूतः स नागरैः। सम्मानेन परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः।।३७।।
जनेनावमतो योग योगसिद्धिं च विन्दति। तस्माच्चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन्।।३८।।

हे मुनिश्रेष्ठ! अब वे स्वयं को प्रकृति से परे समझते थे। वह महामति सभी प्राणीगण में अभेददर्शन करता था। उपनयन हो जाने पर भी वह गुरु के द्वारा कहे शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता था। वह शास्त्रों का अध्ययन तथा कर्मानुष्ठान भी नहीं करता था। बहुत दबाव देने पर जड़ों के समान कुछ बोल देता। तब वह असंस्कारी की तरह ग्राम्यभाषा का प्रयोग करता था। वह सर्वदा मलिन कपड़े पहनता तथा अपंगवत् व्यवहार तथा गमनागमन करता था। नागरिकों द्वारा उसका अपमान किया जाता, लोगों ने उसके दांतों को तोड़ दिया। सम्मान से योगसिद्धि बाधित होती है। जो अपमानित होता है, वह योग में सिद्धिलाभ करता है। अतः योगी सदा धर्म की रक्षा करें।।३३-३८।।

जना यथावमन्येयेयुर्गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम्। हिरण्यगर्भवचनं विचिन्त्येत्थं महामतिः।।३९।।
आत्मानं दर्शयामास जडोन्मत्ताकृतिं जने।
भुङ्क्ते कुल्माषवटकान् शाकं वन्यफलं कणान्।।४०।।
यद्यदाप्नोति सा बहूनत्ति वै कालसम्भवम्। पितर्युपरते सोऽथ भ्रातृभ्रातृव्यबान्धवैः।।४१।।
कारितः क्षेत्रकर्मादि कदन्नाहारपोषितः। सरूक्षपीनावयवो जडकारी च कर्मणि।।४२।।
सर्वलोकोपकरणं बभूवाहारवेतनः। तं तादृशमसंस्कारं विप्राकृतिविचेष्टितम्।।४३।।
क्षत्ता सौवीरराज्यस्य विष्टियोग्यममन्यत। स राजा शिबिकारूढो गन्तुं कृतमतिर्द्विज।।४४।।

योगी को मनुष्यों द्वारा जितना अपमान प्राप्त होगा, लोग उसकी संगति से दूर रहेंगे, उतना ही योगी का कल्याण होगा। वह महामति भरत सदा ब्रह्मा के इस वचन का चिन्तन करते रहते हैं। वे लोगों के सामने अपना रूप जड़ तथा उन्मत्तवत् प्रदर्शित करते थे। वे भोजन में उर्द की रोटी, शाक, वन के फल तथा कणों का भोजन करते थे। जो भी समय पर मिल जाये, उसे ही पर्याप्त मान कर भोजन कर लेते। पिता की मृत्यु होने पर उनके भाई-बन्धु-बान्धवों ने उनसे खेती का कार्य कराया तथा मात्र कदन्न भोजन कराया। हर कोई उन

रुक्ष एव पुष्ट देह वाले भरत को रुखा-सूखा देकर अपने कार्य में नियोजित कर लेता था। एक दिन उनको विप्र के समान आकृति तथा चेष्टायुक्त मलिनवस्त्रधारी के रूप में सौवीर राज के सारथि ने देखा। हे द्विज! उसने भरत को पालकी उठाने वाला समझा। हे द्विज! राजा ने पालकी पर बैठकर कहीं जाने का विचार किया था।।३९-४४।।

बभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्षेर्वराश्रमम्। श्रेयः किमत्र संसारे दुःखप्राये नृणामिति॥४५॥
प्रष्टुं तं मोक्षधर्मज्ञं कपिलाख्यं महामुनिम्। उवाह शिबिकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः॥४६॥

नृणां विष्टिगृहीतानामन्येषां सोऽपि मध्यगः।
गृहीतो विष्टिना विप्र सर्वज्ञानैकभाजनम्॥४७॥
जातिस्मरोऽसौ पापस्य क्षयकाम उवाह ताम्।
ययौ जडग्रतिस्तत्र युगमात्रावलोकनम्॥४८॥
कुर्वन्मतिमतां श्रेष्ठस्ते त्वन्ये त्वरितं ययुः।
विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमं शिबिकागतम्॥४९॥
किमेतदित्याह समं गम्यतां शिबिकावहाः।
पुनस्तथैव शिबिकां विलोक्य विषमां हसन्॥५०॥

नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा। भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः।
शिबिकावाहकाः प्रोचुरयं यातीत्यसत्वरम्॥५१॥

उसने सोचा कि इक्षुमती नदी के तट पर स्थित कपिल ऋषि के उत्तम आश्रम में जाना चाहिये। वह राजा कपिल से यह जानना चाहता था कि इस दुःखपूर्ण संसार में मनुष्य अपना कल्याण कैसे साधित करे। यही वह मोक्ष धर्मज्ञ कपिल से जानना चाहता था। सारथी द्वारा आज्ञा पाकर भरत वह पालकी वहन करने लगे। बिना वेतन कार्य करने वाले कहारों (जो पालकी ढोते हैं) के साथ यह ब्राह्मण भरत भी पकड़े गये। सभी ज्ञान से युक्त तथा पूर्वजन्म की स्मृति सम्पन्न ये ब्राह्मण अपने पापक्षयार्थ पालकी ढोने लगे। परन्तु वे ब्राह्मण जड़ भरत पालकी के दण्डे के अग्रभाग तक की भूमि को सावधानी से देखते चल रहे थे। उनकी गति मन्द थी। अन्य कहार तीव्रगति से चल रहे थे। पालकी वालों की चाल इस कारण विषम थी। तब राजा ने कहा—"कहारो! सीधे चलो।" तब भी गति में विषमता जानकर राजा ने हंसते हुये कहा—"तुम लोग एक चाल से क्यों नहीं चलते?" जब राजा ने अनेक बार ऐसे कहा तब कहारों ने जड़भरत की ओर संकेत करके कहा—"राजन्! यह मन्दगति से चल रहा है।"।।४५-५१।।

राजोवाच

किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम।
किमायाससहो न त्वं पीवा नासि निरीक्ष्यसे॥५२॥

राजा कहता है—तुम श्रान्त हो गये क्या? अभी तो हम कुछ ही दूर आये हैं? क्या तुम श्रम से श्रान्त हो जाते हो? तुम तो स्थूलदेह वाले हो।।५२।।

ब्राह्मण उवाच

नाहं पीवा न चैवोढा शिबिका भवतो मया।
न श्रान्तोऽस्मि न चायासो बोढान्योऽस्ति महीपते॥५३॥

ब्राह्मण (जड़भरत) कहते हैं—न तो मैं मोटा हूं। न तो मैंने आपकी पालकी का वहन किया है! मैं श्रान्त-क्लान्त भी नहीं हूं। मुझे कोई खेद नहीं है। हे राजन्! पालकी वहन करने वाला अन्य कोई है।।५३।।

राजोवाच

प्रत्यक्षं दृश्यते पीवा त्वद्यापि शिबिका त्वयि।
श्रमश्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम्॥५४॥

ब्राह्मण उवाच

प्रत्यक्षं भवता भूप यद्दृष्टं मम तद्वद। बलवानबलश्चेति वाच्यं पश्चाद्विशेषणम्॥५५॥
त्वयोढा शिबिका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता।
मिथ्या तदप्यत्र भवान् शृणोति वचनं मम॥५६॥

राजा कहता है—प्रत्यक्ष में तुम स्थूल परिलक्षित हो रहे हो। पालकी तो तुम्हारे कन्धों पर है। भार वहन करने वाले को श्रम तो होता ही है।

ब्राह्मण कहते हैं—हे राजन्! आपने जो प्रत्यक्ष देखा है, वही कहिये। तदनन्तर आप बलवान्, दुर्बल आदि विशेषण लगायें। आपने जो यह कहा कि मैं पालकी वहन कर रहा हूं, वह मेरे कन्धों पर है, वह सब झूठ है। आप मेरा कथन श्रवण करिये।।५५-५६।।

भूमौ पादयुगे चाथ जङ्घे पादद्वये स्थिते। ऊरू जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम्॥५७॥
वक्षःस्थलं तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ।
स्कन्धाश्रितेयं शिबिका ममाधारोऽत्र किङ्कृतः॥५८॥

मेरे दोनों चरण भूमि पर हैं। जंघे पैर पर स्थित हैं। उस दोनों जंघे पर स्थित हैं। कटि तथा नितम्ब जंघों पर हैं। कटि भी उदर का आधार है। उदर वक्ष का तथा दोनों भुजा एवं कंधे उदर के सहारे हैं। शिविका मेरे कंधे पर है। मैं किसका आधार हूं।।५७-५८।।

शिबिकायां स्थितं चेदं देहं त्वदुपलक्षितम्। तत्र त्वमहमप्यत्रेत्युच्यते चेदमन्यथा॥५९॥
अहं त्वं च तथान्ये च भूतैरूह्याश्च पार्थिव। गुणप्रवाहपतितो भूतवर्गोऽपि यात्ययम्॥६०॥
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते। अविद्यासञ्चितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु॥६१॥

पालकी पर आपका देह है, ऐसे आपका सोचना भ्रम है। पालकी में मैं हूं आप हैं, यह भी कहना अनुचित है। हे राजन्! 'मैं' 'तुम' प्रभृति का जो व्यवहार यहां है, वह मिथ्या है। हे पार्थिव! मैं, आप, सभी प्राणी पंचमहाभूत द्वारा वहन किये जाते हैं। हे पृथिवीपति! यह पंचमहाभूत भी गुणप्रवाह के कारण कार्य करता है। हे पृथिवीपति! कर्म के वश में ये गुण भी (सत्वादि) कार्य करते हैं। अविद्या द्वारा संचित कर्म सभी जन्तुओं में स्थित रहता है।।५९-६१।।

आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृते परः।
प्रवृद्ध्यपचयौ न स्त एकस्याखिलजन्तुषु॥६२॥
यदा नोपचयस्तस्य नचैवापचयो नृप।
तदापि बालिशोऽसि त्वं कया युक्त्या त्वयेरितम्॥६३॥
भूपादजङ्घाकट्यूरुजठ्रादिषु संस्थिता।
शिविकेयं यदा स्कन्धे तदा भारः समस्त्वया॥६४॥

आत्मा शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण तथा प्रकृति से अतीत है। वह एक होकर भी सभी प्राणीगण में व्याप्त रहता है। उसकी न तो वृद्धि है, न ह्रास। तब आपने यह कैसे कहा कि मैं स्थूल हूं? यदि क्रमिक रूप से यह पालकी पृथिवी, पैर, जांघ, उरु, कटि तथा उदर पर से होते कंधों पर स्थित है, तब यह शिविका जैसे मेरे लिये भार है, वैसे आपके लिये भी भार ही है।।६२-६४।।

तथान्यजन्तुभिर्भूप शिविकोढा न केवलम्।
शैलद्रुमगृहोत्थोऽपि पृथिवीसम्भवोऽपि च॥६५॥
यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप। सोढव्यः सुमहान्भारः कतमो नृप ते मया॥६६॥
यद्द्रव्यो शिबिका चेयं तद्द्रव्यो भूतसङ्ग्रहः।
भवतो मेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः॥६७॥

हे राजन्! इस युक्ति से अन्य सभी जन्तुओं ने शिविका (पालकी) वहन किया है। यही नहीं, इस प्रकार तो सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह, पृथिवी का भार भी सभी जन्तु ही वहन कर रहे हैं। हे राजन्! जिस द्रव्य से इस पालकी का निर्माण हुआ है, उसी से हम सबका, आपका, मेरा शरीर निर्मित है। उसमें सबकी ममता बढ़ती रहती है।।६५-६७।।

सनन्दन उवाच

एवमुक्त्वाऽभवन्मौनी स वहञ्शिबिकां द्विजः।
सोऽपि राजाऽवतीर्योर्व्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन्॥६८॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे द्विज! इतना कहकर ब्राह्मण जड़ भरत मौन हो गये तथा पूर्ववत् शिविका वहन करने लगे। इतने में राजा पालकी से उतरे तथा उन्होंने तत्काल ब्राह्मण के चरणों को पकड़ लिया।।६८।।

राजोवाच

भो भो विसृज्य शिबिकां प्रसादं कुरु मे द्विज।
कथ्यतां को भवानत्र जाल्मरूपधरः स्थितः॥६९॥
यो भवान्यदपत्यं वा यदागमनकारणम्। तत्सर्वं कथ्यतां विद्वन्मह्यं शुश्रूषवे त्वया॥७०॥

राजा कहते हैं—हे द्विज! आप पालकी छोड़कर मुझ पर कृपा करिये। आप कौन हैं? आपने क्यों यह कपट वेष धारण किया है? आप किसे पुत्र हैं? यहां आगमन का क्या कारण है? हे विद्वान्! आप अपने सेवक को यथायथ उत्तर प्रदान करिये।।६९-७०।।

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां कोऽहमित्येतद्वक्तुं भूप न शक्यते। उपयोगनिमित्तं च सर्वत्रागमनक्रिया॥७१॥
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देहाद्युपपादकौ। धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देहादिमृच्छति॥७२॥
सर्वस्यैव हि भूपाल जन्तोः सर्वत्र कारणम्।
धर्माधर्मौ यतस्तस्मात्कारणं पृच्छ्यते कुतः॥७३॥

ब्राह्मण कहते हैं—हे राजन्! मैं कौन हूं, यह मैं कहने में समर्थ नहीं हूं। लोग सर्वत्र उपयोगार्थ ही आते-जाते हैं। सुख-दुःख का उपभोग ही देहोत्पत्ति का कारण है। यह प्राणीगण धर्म एवं अधर्म जनित सुख एवं दुःख भोगार्थ देहलाभ करते हैं। हे भूपाल! समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का कारण उनके द्वारा कृत धर्म एवं अधर्म ही है। अतः आप अन्य कारण क्यों पूछ रहे हैं।।७१-७३।।

राजोवाच

धर्माधर्मौ न सन्देहः सर्वकार्येषु कारणम्। उपभोगनिमित्तं च देहाद्देहान्तरागमः॥७४॥
यत्त्वेतद्भवता प्रोक्तं कोऽहमित्येतदात्मनः। वक्तुं न शक्यते श्रोतुं तन्ममेच्छा प्रवर्तते॥७५॥
योऽस्ति योऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते।
आत्मन्येव न दोषाव शब्दोऽहमिति यो द्विज॥७६॥

राजा कहते हैं—यह निःसन्देह है कि धर्म एवं अधर्म ही सर्व कार्यकारण हैं। उसके फल भोगार्थ ही प्राणीगण जन्म लेते हैं। अभी आपने कहा—"मैं कौन हूं नहीं कह सकूंगा", यह मैं जानने हेतु प्रबल इच्छा है। हे ब्रह्मन्! आप अपना परिचय क्यों नहीं दे पा रहे हैं? हे द्विज! किसी व्यक्ति द्वारा यह कहना कोई दोष नहीं है कि वह कैसा है?"।।७४-७६।।

ब्राह्मण उवाच

शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येवं तथैव तत्।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा श्रुतिलक्षणः॥७७॥
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तौष्ठतालुकं नृप। एतेनाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः॥७८॥
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम्। तथापि वागहतेद्वक्तुमित्थं न युज्यते॥७९॥

ब्राह्मण कहते हैं—अहम शब्द का प्रयोग जहां तक आत्मा के लिये हो, वह दोषपूर्ण नहीं है। परन्तु जब व्यक्ति अनात्मा में आत्मा का भान करने लगता है, ऐसे भ्रमात्मक ज्ञान की उत्पत्ति होने पर "मैं" (अहम्) का प्रयोग भ्रान्त स्थिति है। हे नृप! जब जिह्वा "मैं" कहती है, तब दन्त-ओष्ठ-तालु भी तो इस "मैं" के उच्चारण में सहायक हैं। (तब क्या वे सब 'मैं' नहीं हैं), तथापि क्या वाणी अपने लिये "मैं" (अहम्) कहती है? "मैं वाणी हूं" यह भी अनुचित है।।७७-७९।।

पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरः पाण्यादिलक्षणः।
ततोऽहमिति कुत्रैनां संज्ञां राजन्करोम्यहम्॥८०॥

यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम।
न देहोऽहमयं चान्ये वक्तुमेवमपीष्यते॥८१॥
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः।
तदा हि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफलं वचः॥८२॥

शिर, हाथ, पैर आदि से युक्त जो शरीर है, उससे आत्मा पूर्णतः पृथक् है। अतः 'अहम्' कहना उचित ही नहीं है। हे राजन्! तब "मैं" (अहम्) का प्रयोग किसके लिये होगा? यह 'मैं' संज्ञा किसे प्रदान करूं? हे राजन्! यदि कोई अन्य सजातीय आत्मा हो, जो मुझसे अलग हो तभी यह कहना संभव है कि यह "मैं हूं तथा वह अन्य है" लेकिन जितने भी प्राणीदेह हैं, सबमें एक ही पुरुष (आत्मा) व्यवस्थित रहते हैं। अतः मैं, तुम, वह आदि का प्रयोग ही त्रुटिपूर्ण है।।८०-८२।।

त्वं राजा शिविका चेयं वयं वाहाः पुरःसराः।
अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते॥८३॥
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता। क्व वृक्षसंज्ञा वै तस्या दारुसंज्ञाथवा नृप॥८४॥
वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति ते जनः।
न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतम्॥८५॥
शिबिकादारुसङ्घातो स्वनामस्थितिसंस्थितः।
अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठानन्ददा शिविका त्वया॥८६॥
एवं छत्रं शलाकाभ्यः पृथग्भावो विमृश्यताम्।
क्व जातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि॥८७॥

यह सब कहना असत्य है कि आप राजा हैं, यह पालकी है, हम लोग इसका वहन कर रहे हैं, यह राज्य आपका है। ये सब सत्य नहीं हैं। आप जिस पालकी पर आसीन हैं, वह वृक्ष की लकड़ी से निर्मित है। हे नृप! इसका नाम वृक्ष कहे अथवा काष्ठ! आपके सेवक यह नहीं कहते कि राजा वृक्ष पर आसीन हैं और पालकी पर आरूढ़ होने के कारण आपको लकड़ी पर बैठा नहीं कहते। यह पालकी तो काष्ठ का समूह है। अब यह काष्ठ समूह एक विशेष नाम 'पालकी' धारण करके अवस्थित है। अब हे राजन्! आप काष्ठ से अलग एक आनन्दप्रदा पालकी खोजिये? साथ ही शलाका आदि से अलग छत्र खोजिये। तब छत्र कहां गया, यह प्रश्न हमारे आपके निमित्त एक ही है।।८३-८७।।

पुमान्स्त्री गौरजा वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः। देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु॥८८॥
पुमान्न देवो न नरो न पशुर्न च पादपः। शरीराकृतिभेदास्तु भूपैते कर्मयोनयः॥८९॥
वस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटास्मकम्।
तथान्यच्च नृपेत्थं तन्न सत्यं कल्पनामयम्॥९०॥
यस्तु कालान्तरेणापि नाशसंज्ञामुपैति वै। परिणामादिसम्भूतं तद्वस्तु नृप तच्च किम्॥९१॥

त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वं भूप वदाम्यहम्॥९२॥

पुरुष, नारी, गौ, बकरी, हाथी, वृक्ष, पक्षी ये सभी कर्म से प्राप्त शरीर की ही मानी जाती है। जो कुछ भी वस्तु इस लोक में है यथा—राजा, भट (राजपुरुष) आदि जितनी भी संज्ञा हैं, वे वास्तव में कल्पित हैं। कदापि सत्य ही नहीं हैं। जो कालान्तर में नष्ट हो जाते हैं, वे पुनः नाम प्राप्त कर लेते हैं। जो वस्तु परिणाम आदि से सम्भूत हैं, वह क्या है? आप सबके राजा हैं, किसी पिता के आप पुत्र हैं, किसी शत्रु के शत्रु हैं, किसी पत्नी के पति हैं, किसी पुत्र के पिता हैं, तथापि आप वास्तव में क्या हैं?।।८८-९२।।

त्वं किमेतच्छिरः किं तु शिरस्तव तथोदरम्।
किमु पादादिकं त्वेतन्नैव किं ते महीपते॥९३॥
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः।
कोऽहमित्यत्र निपुणं भूत्वा चिन्तय पार्थिव॥९४॥
एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भावितुम्।
पृथक्चरणनिष्पाद्यं शक्यं तु नृपते कथम्॥९५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीय पादे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

—※※※—

क्या आप शिर हैं? नहीं यह शिर आपका है। आप शिर नहीं है। उदर भी आपका है। आप उदर नहीं हैं। हे राजन्! तब विचार करिये कि आप हैं कौन? मैं चरण आदि देह अवयवों से पृथक् हूं? हे राजन्! यह कहना शक्य है क्या?।।९३-९५।।

।।४८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

परमार्थ निरूपण

सनन्दन उवाच

निशम्य तस्येति वचः परमार्थसमन्वितम्। प्रश्रयावनतो भूत्वा तमाह नृपतिर्द्विजम्॥१॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—ब्राह्मण से परमार्थ समन्वित वचन सुनकर राजा ने पुनः विनय पूर्वक पूछा।।१।।

राजोवाच

भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं परमार्थमयं वचः। श्रुते तस्मिन्भ्रमन्तीव मनसो मम वृत्तयः॥२॥
एवद्विवेकविज्ञानं यदि शेषेषु जन्तुषु। भवता दर्शितं विप्र तत्परं प्रकृतेर्महत्॥३॥
नाहं वहामि शिविकां शिविका मयि न स्थिता।
शरीरमन्यदस्मत्तो येनेयं शिविका धृता॥४॥
गुणप्रवृत्तिर्भूतानां प्रवृत्तिः कर्मचोदिता। प्रवर्तन्ते गुणाश्चैते किं ममेति त्वयोदितम्॥५॥
एतस्मिन्परमार्थज्ञ मम श्रोत्रपथं गते। मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थतां गतम्॥६॥
पूर्वमेव महाभाग कपिलर्षिमहं द्विज। प्रष्टुमभ्युद्यतो गत्वा श्रेयः किंत्वत्र संशये॥७॥
तदन्तरे च भवता यदिदं वाक्यमीरितम्। तेनैव परमार्थार्थं त्वयि चेतः प्रधावति॥८॥
कपिलर्षिर्भगवतः सर्वभूतस्य वै किल। विष्णोरंशो जगन्मोहनाशाय समुपागतः॥९॥
स एव भगवान्नूनमस्माकं हितकाम्यया। प्रत्यक्षतामनुगतस्थैवतद्भवतोच्यते॥१०॥
तन्मह्यं मोहनाशाय यच्छ्रेयः परमं द्विज। तद्वदाखिल विज्ञानजलवीच्युदधिर्भवान्॥११॥

राजा कहते हैं—हे भगवान्! आपने जो परमार्थमय वाक्य कहा है, उसे सुनकर मेरी वृत्ति अभी भी भ्रमपूर्ण है। यदि ऐसा विवेक ज्ञान समस्त जन्तुओं के विषय में हो जाये, तब वह प्रकृति से परे का महत् ज्ञान है। मैं पालकी वहन नहीं करता। वह मुझ पर स्थित भी नहीं है। पालकी धारण करने वाला देह मुझसे पृथक् है। भूतों की जो प्रवृत्ति है, वह गुणों से प्रेरित होती है। ये गुण कर्म से प्रेरित होते हैं। ऐसी स्थिति में आपने मेरा कर्त्तव्य वर्णित किया है। हे परमार्थ ज्ञाता! आप द्वारा वर्णित परमार्थ तत्व मेरे कानों में प्रविष्ट हो गया है। जिससे मुझे इसे और जानने हेतु और भी विह्वलता तथा उत्सुकता हो रही है। हे द्विज! मैं आपसे मिलने के पहले महर्षि कपिल के यहां जा रहा था। मुझे कुछ संशय था अतः श्रेयस्कर तत्व को जानने के लिये मैं उनकी शरण में जा रहा था। लेकिन आपसे इसी बीच आपका वचन सुनकर अब तो आप से ही परमार्थतत्व जानने हेतु मेरा मन आपकी ओर जा रहा है। महर्षि कपिल समस्त प्राणीगण के ईश्वर विष्णु के अंश हैं। उनका आगमन जगत् के मोह के नाशार्थ हुआ है। हे द्विज! अब आप मेरे हितार्थ जो उचित प्रतीत हो, वह कहिये। हे द्विज! आप अखिल विज्ञानमय तरंगों से युक्त समुद्र जो हैं।।२-११।।

ब्राह्मण उवाच

भूयः पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थेन पृच्छसि। श्रेयांसि परमार्थानि ह्यशेषाण्येव भूपते॥१२॥
देवताराधनं कृत्वा धनसम्पदमिच्छति। पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप॥१३॥
विवेकिनस्तु संयोगः श्रेयोऽसौ परमात्मना।
कर्मयज्ञादिकं श्रेयः स्वर्लोकफलदायि यत्॥१४॥
श्रेयः प्रधानं च फले तदेवानभिसंहिते। आत्मा ध्येयः सदा भूप योगयुक्तैस्तथा परैः॥१५॥
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः। श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः॥१६॥

संत्यत्र परमार्थास्तु न त्वेते श्रूयतां च मे। धर्मोऽयं त्यजते किं तु परमार्थो धनं यदि॥१७॥

ब्राह्मण कहते हैं—आपका पुनः प्रश्न है कि श्रेयः क्या है? यदि आप यह परमार्थतः जानना चाहते हैं, तब हे राजन्! सम्पूर्ण परमार्थ ही श्रेयःरूप है। लोग देवाराधन द्वारा धन-सम्पदा चाहते हैं। वे आराधना द्वारा पुत्र एवं राज्य की कामना करते हैं। उनका यही श्रेयः है। विवेकी पुरुष के लिये परमात्मा से संयोग होना ही श्रेयः है। कर्म यज्ञादि भी श्रेयः है, क्योंकि वे स्वर्गफलप्रद होते हैं। जो फल अभिसंहित नहीं है, उस परमफल में श्रेयः ही प्रधान रहता है। हे राजन्! योगयुक्त लोगों ने आत्मा को सदा ध्येय माना है। वे परमात्मा के साथ संयोग को ही परमफल मानते हैं। श्रेयः तो अनेक हैं। वे सैकड़ों-हजारों हैं, तथापि ये सभी श्रेयः परमार्थ नहीं कहे जाते। जो परमार्थ है, वह मुझसे श्रवण करें। यदि धन ही परमार्थ है, तब परमार्थ हेतु उसका त्याग क्यों किया जाता है।।१२-१७।।

व्ययश्च क्रियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः।
पुत्रश्चेत्परमार्थाख्यः सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर॥१८॥
परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि नो पिता।
एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यत्र चराचरे॥१९॥

तब कामना प्राप्ति हेतु धन व्यय क्यों होता? हे नरेश्वर! पुत्र को हम परमार्थ कैसे कहें? वह अन्य का परमार्थभूत है। पिता भी परमार्थ नहीं है। वह तो अन्य का परमार्थ है। हे नरेश्वर! सचराचर जगत् में परमार्थ है ही नहीं।।१८-१९।।

परमार्थो हि कार्याणि कारणानामशेषतः। राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि॥२०॥
परमार्था भवन्त्यत्र न भवन्ति च वै ततः। ऋग्यजुः सामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म मतं तव॥२१॥

परमार्थ अशेष कारणों का कार्य है। इसका तात्पर्य है कि संसार में एकमात्र परमार्थ को ही प्राप्त करें। यदि राज्यादि प्राप्ति को परमार्थ कहें तब तो ऋक्-यजुः साम से निष्पादित होने वाले यज्ञादि कर्म परमार्थ नहीं हैं!।।२०-२१।।

परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां नदतो मम। यत्तु निष्पाद्यते कार्यं मृदा कारणभूतया॥२२॥

तत्कारणानुगमनाज्जायते नृप मृन्मयम्।
एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्यकुशादिभिः॥२३॥
निष्पाद्यते क्रिया या तु सा भवित्री विनाशिनी।
अनाशी परमार्थस्तु प्राज्ञैरभ्युपगम्यते॥२४॥

यत्तु नाशि न संदेहो नाशिद्रव्योपपादितम्। तदेवाफलदं कर्म परमार्थो न भेदवान्॥२५॥

अब मैं परमार्थभूत तत्वों का वर्णन करता हूं। उसका श्रवण करिये। घट का कारण है मृत्तिका। मृत्तिका का कार्य है घट (अर्थात् मृत्तिका से उत्पन्न है)। कारण के अनुगमन से मृण्मय घट का स्वरूप ज्ञात होगा। एवंविध समिध्, कुश आदि विनाशमय पदार्थों से (यज्ञादि) जो कार्य उत्पन्न होता है तथा उससे जो क्रिया निष्पन्न की जाती है, वह विनाशिनी (नष्ट हो जाने वाली) होगी। प्राज्ञजन परमार्थ को विनश्वर नहीं मानते, उसे अविनश्वर मानते

हैं। नाशवान द्रव्यों से जो कार्य किया जाता है, वह परमार्थ प्रदाता नहीं होता। (जो कोई प्रत्यक्ष फल न दे, वही परमार्थ है यह कुछ लोगों का मत है)।।२२-२५।।

मुक्तिसाधनभूतत्वात्परमार्थो न साधनम्। ध्यानमेवात्मानो भूप परमार्थर्थशब्दितम्॥२६॥
भेदकारि परेभ्यस्तु परमार्थो न भेदवान्। परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते॥२७॥

परमार्थ तो स्वयं मुक्ति का साधन है। उससे अन्य कुछ का भी साधन नहीं होता। यदि परमार्थ शब्द का अर्थ ध्यान माना जाये, तब वह तो अन्य का भेदकारी है। लेकिन परमात्म में भेद नहीं होता। (तात्पर्य है कि ध्यान से भेदन क्रिया होती है। ''अप्रमत्तेन वेद्धव्यो'' वहां ब्रह्मरूप लक्ष्य के भेदन ध्यान की तन्मयता से होता है, लेकिन परमार्थतः भेदन नहीं करता, वहां तो भेदन के स्थान पर परमार्थ एवं आत्मा का योग होता है। यही परमार्थ है।।२६-२७।।

मिथ्यैतदन्यद्द्रव्यं हि नैतद्द्रव्यमयं यतः।
तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः॥२८॥
परमार्थस्तु भूपाल संक्षेपाच्छ्रूयतां मम। एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणप्रकृतेः परः॥२९॥
जन्मबृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतो नृप।
परिज्ञानमयो सद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः॥३०॥
न योगवान्न युक्तोऽभून्नैव पार्थिव योक्ष्यति। तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि तत्॥३१॥

अन्य सभी द्रव्य मिथ्या हैं, परन्तु परमार्थ में कोई द्रव्य नहीं है। अतः राजन्! जिन सबका यहां उल्लेख किया गया है सभी श्रेयः हैं। वे कोई भी परमार्थ नहीं कहे जा सकते। हे राजन्! अब संक्षिप्त रूप से परमार्थ प्रसंग श्रवण करें। हे नरेश्वर! एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृति से परे जन्म-वृद्धि रहित आत्मा सर्वगत है। वह परमज्ञानात्मक है। असत् नाम-जाति इत्यादि से उस विभु का कभी योग नहीं हुआ है न होगा। हे पार्थिव! वह स्वयं के तथा अन्य के देह में रहकर भी एक ही है।।२८-३१।।

विज्ञानं परमार्थोऽसौ वेत्ति नोऽतथ्यदर्शनः। वेणुरन्ध्रविभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः॥३२॥
अभेदो व्यापिनो वायोस्तथा तस्य महात्मनः। एकत्वं रूपभेदश्च वाह्यकर्मप्रवृत्तिजः॥३३॥
देवादिभेदमध्यास्ते नास्त्येवावरणो हि सः।
श्रृणवत्र भूप प्राग्वृत्तं यद्गीतमृभुणा भवेत्॥३४॥

यह विज्ञान ही परमार्थ है। इसे अतथ्य दर्शन करने वाले नहीं जानते। वेणु एक ही है परन्तु उसमें छिद्र भेद के कारण छः स्वर उत्पन्न होते हैं। यह एक वेणु का ही छः भेद है। एवंविध उसमें व्याप्त वायु में अभेद है। इसी प्रकार एक ही परमात्मा के ही बाह्यकर्म प्रवृत्ति के कारण रूप भेद हो जाते हैं। देवता, मनुष्य आदि जो विभिन्न भेद परिलक्षित होते हैं, वे सभी अविद्या आवरण तक ही सीमित हैं। हे नृप! इस सम्बन्ध में आप प्राचीन आख्यान सुने, जो महर्षि ऋभु का वृत्तान्त है।।३२-३४।।

अवबोधं जनयतो निदाघस्य द्विजन्मनः। ऋभुर्नामाऽभवत्पुत्रो ब्राह्मणः परमेष्ठिनः॥३५॥
विज्ञाततत्त्वसद्भावो निसर्गादेव भूपते। तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत्पुलस्त्यतनयः पुरा॥३६॥

प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा। अवाप्तज्ञानतत्त्वस्य न तस्याद्वैतवासना॥३७॥
स ऋभुस्तर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर। देविकायास्तटे वीर नागरं नाम वै पुरम्॥३८॥
समृद्धमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम्। रम्योपवनपर्यन्तं स तस्मिन्पार्थिवोत्तम॥३९॥
निदाघनामयोगज्ञस्तस्य शिष्योऽभवत्पुरा। दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम्॥४०॥

जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोकितुम्।
स तस्य वैश्वदेवान्ते द्वारालोकनगोचरः॥४१॥
स्थितस्तेन गृहीतार्थो निजवेश्म प्रवेशितः।
प्रक्षालिताङ्घ्रिपाणिं च कृतासनपरिग्रहम्॥४२॥

द्विज निदाघ को बोध प्रदान करने वाले ऋभुऋषि परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र थे। हे भूपति! ऋभु स्वभावतः सर्वतत्वज्ञ थे। पूर्वकाल में पुलत्स्य ऋषि के पुत्र निदाघ उनके शिष्य थे। महर्षि ऋभु ने प्रसन्नता पूर्वक निदाघ को समस्त ज्ञान प्रदान किया था, लेकिन तमाम तत्त्वज्ञान लाभ कर लेने पर भी उसकी द्वैतभावना नहीं जा सकी। हे नरेश्वर! ऋभु ऋषि ने निदाघ की इस स्थिति को जान लिया था। देवीका नदी के तट पर एक नागर नामक पुर था। वह अत्यन्त समृद्ध तथा रमणीक था। उसे महर्षि पुलत्स्य ने ही निर्मित किया था। हे नृपोत्तम! वह रमणीक उपवनों से शोभायमान था। उसी रम्य नगर में निदाघ नामक योगज्ञ निवास करता था। जब एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघ का अवलोकन करने उस पुर में आये। निदाघ ने वैश्वदेव सम्पन्न करने के पश्चात् गुरु ऋभु को अपने द्वार पर आया देखा। निदाघ उनको आदर पूर्वक अपने गृह में लाये तथा उनके चरण तथा हांथ प्रक्षालित करके उनको आसनासीन कराया।।३५-४२।।

उवाच स द्विजश्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम्।

ऋभुरुवाच

भो विप्रवर्य भोक्तव्यं यदत्र भवतो गृहे॥४३॥
तत्कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम।

निदाघ उवाच

सक्तुयावकव्रीहीनामपूपानां च मे गृहे। यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तावद्भुङ्क्ष्व यथेच्छया॥४४॥

तदनन्तर उस द्विजप्रवर ने गुरु से सादर विनय पूर्वक भोजनार्थ कहा। यह सुनकर महर्षि ऋभु ने कहा— हे विप्रप्रवर! जो कुछ तुम्हारे पास प्राप्त है, वही भोजन योग्य है। लेकिन कदन्न के प्रति मुझे रुचि नहीं है। निदाघ कहते हैं—"हे द्विजप्रवर! मेरे गृह में सत्तू, जौ, लप्सी तथा बाटी नामक अन्न बना है। हे द्विजश्रेष्ठ! इन सबमें से जो अच्छा प्रतीत हो, वह भोजन यथेच्छ रूप से करिये।"।।४३-४४।।

ऋभुरुवाच

कदन्नानि द्विजैतानि मिष्टमन्नं प्रयच्छ मे॥४५॥
संयावपायसादीनि चेक्षुका रसवन्ति च।

निदाघ उवाच

गृहे शालिनि मद्गेहे यत्किञ्चिदतिशोभनम्॥४६॥
भोज्येषु साधनं मिष्टं तेनास्यान्नं प्रसाधय। इत्युक्त्वा तेन सा पत्नी मिष्टमन्नं द्विजस्य तत्॥४७॥
प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात्। तं भुक्तवन्तमिच्छातो मिष्टमन्नं महामुनिम्॥४८॥
निदाघः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः।

महर्षि ऋभु कहते हैं—"हे द्विज! यह सब तो कदन्न ही है। मुझे मिष्टान्न भोजन प्रदान करो। सवाय (हलवा), पायस तथा खाड़ से निर्मित रसपूर्ण भोजन प्रदान करो।" निदाघ कहते हैं—"हे गृहिणी! मेरे घर में जितने उत्तम अन्न तथा मिष्ठान्न हैं, उनका स्वादिष्ट भोजन बनाकर प्रस्तुत करें।" यह सुनकर गृहिणी ने पति के वचन का गौरव रखते हुये तदनुरूप भोजन महर्षि को प्रस्तुत किया। जब महामुनि ने इच्छानुरूप वह मिष्ठान्न भक्षण कर लिया, तब निदाघ उनसे विनयावनत होकर कहने लगे।।४५-४८।।

निदाघ उवाच

अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना पुष्टिरेव च॥४९॥
अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज।
क्व निवासी भवान्विप्र क्व वा गन्तुं समुद्यतः॥५०॥
आगम्यते च भवता यतस्तच्च निवेद्यताम्।

निदाघ कहते हैं—क्या आपकी तृप्ति इस भोजन से हो गई? क्या पुष्टि का अनुभव हुआ? किंवा इस आहार से आप कुछ मानसिक सन्तुष्टि का अनुभव कर रहे हैं? आप कहां के निवासी हैं? आप कहां जा रहे हैं? आपका आगमन कहां से हुआ है, कृपया कहिये।।४९-५०।।

ऋभुरुवाच

क्षुधितस्य च भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्रह्मन्विजायते॥५१॥
न मे क्षुधा भवेत्तृप्तिः कस्मान्मां द्विज पृच्छसि।
वह्निना पार्थिवेनादौ दग्धे वै क्षुत्समुद्भवः॥५२॥
भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृष्णासमुद्भवः। क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज॥५३॥
ततः क्षुत्सम्भवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा।
मनसः स्वस्थता तुष्टिश्चित्तधर्माविमौ द्विज॥५४॥

महर्षि ऋभु कहते हैं—भूखे व्यक्ति की तृप्ति भोजन से ही होती है। हे द्विज! मुझे तो कभी क्षुधा का अनुभव ही नहीं होता। तब तुम तृप्ति विषयक प्रश्न क्यों कर रहे हो? पार्थिव अग्नि के दग्ध होने से क्षुधा लगती है। जल नष्ट होने पर पिपासा लगती है। हे द्विज! ये दोनों मेरे नहीं अपितु देहधर्म हैं। अतः मैं देह नहीं हूं। इस कारण मुझमें क्षुधा का सर्वथा अभाव रहता है। अतः मैं सर्वदा तृप्त हूं। हे द्विज! मन की स्वस्थता एवं सन्तुष्टि ये दोनों चित्त धर्म ही हैं।।५१-५४।।

चेतसो यस्य यत्पृष्टं पुमानेभिर्न युज्यते।
क्व निवासस्तवेत्युक्तं क्व गन्तासि च यत्त्वया॥५५॥
कुतश्चागम्यते त्वेतत्त्रितयेऽपि निबोध मे। पुमान्सर्वगतो व्यापीत्याकाशवदयं यतः॥५६॥
कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्येतदप्यर्थवत्कथम्।
सोऽहं गन्ता च चागन्ता नैकदेशनिकेतनः॥५७॥

ये चित्त के धर्म हैं। पुरुष इनसे कदापि युक्त ही नहीं होता। तुमने मेरा निवास पूछा। यह पूछा कि मैं कहा जाऊंगा तथा मुझे कहां जाना है? अब इन तीनों प्रश्न का उत्तर श्रवण करो। पुरुष आकाशवत् सर्वव्यापी है। वह सर्वगत भी है। अतः कहां से मेरा आगमन हुआ कहां जाऊंगा, यह व्यर्थ कथन है। मैं न कहीं गया न कहीं जाऊंगा। न कहीं से आता हूं। किसी एक स्थान में मेरा निवास भी नहीं है।।५५-७७।।

त्वं चान्ये च न च त्वं त्वं नान्ये नैवाहमप्यहम्।
मिष्टान्ने मिष्टमित्येषा जिह्वा सा मे कृता तव॥५८॥
किं वक्ष्यतीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम। मिष्टमेव यदामिष्टं तदेवोद्वेगकारणम्॥५९॥
अमिष्टं जायते मिष्टं मिष्टादुद्विजते जनः। आदिमध्यावसानेषु किमन्नं रुचिकारणम्॥६०॥
मृण्मयं हि मृदा यद्वद्गृहं लिप्तं स्थिरीभवेत्।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः॥६१॥

तुम तो तुम भी नहीं हो। न अन्य लोग अन्य हैं। न मैं ही मैं हूं! तुमने जो मिष्टान्न प्रदान किया था, उसे तो जिह्वा ने ग्रहण किया। हे द्विजसत्तम! वह जिह्वा क्या कहती है, वह श्रवण करो। यदि कोई मिष्ठान्न को मिष्टान्न न कहे, तब तो उद्वेग का कारण हो जायेगा। कभी अमिष्ट (जो मीठा नहीं है) मीठा अनुभूत होता है। कभी मिष्ठान्न ही अरुचिपूर्ण प्रतीत होता है। आदि-मध्य-अन्त में अन्न ही क्यों रुचिकर लगता है, वह कारण श्रवण करो। नियम यह है कि यह शरीर पार्थिव है। उसकी पुष्टि पार्थिव परमाणु ही करते हैं। जैसे मृत्तिका के घर को मिट्टी से लीप कर मजबूत करते हैं, यह भी तदनुरूप ही है।।५८-६१।।

यवगोधूममुद्गादिर्घृतं तैलं पयो दधि। गुडः फलानीति तथा पार्थिवाः परमाणवः॥६२॥
तदेतद्भवता ज्ञात्वा मिष्टामिष्टविचारि यत्।
तन्मनः शमनालम्बि कार्यं प्राप्यं हि मुक्तये॥६३॥
इत्यकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप।
प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत्॥६४॥
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यस्त्वमागतः।
नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज॥६५॥

"यव, गेहूं, मूंग, घृत, तैल, दूध, दधि, गुड़, फलादि पार्थिव परमाणु हैं। अतः मिष्ठान्न एवं अमिष्ठान्न का विचार करके मन स्थिर करो तथा शम का व्रत लेकर मुक्ति के उपाय का अवलम्बन लो।" ऋभु का यह वचन

सुनकर महाभाग निदाघ ने ऋभु को प्रणाम करके कहा—"हे द्विज! मेरे हितार्थ आये आप कौन हैं? आपके वचनों का श्रवण करके मेरा मोह नष्ट हो गया।"।।६२-६५।।

ऋभुरुवाच

ऋभुरस्मि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज। इहागतोऽहं दास्यामि परमार्थं सुबोधितम्॥६६॥
एक एवमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत्। वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः॥६७॥

ऋभु कहते हैं—मैं तुम्हारा आचार्य ऋभु हूं। हे द्विज! मैं तुमको परमार्थ ज्ञान का उत्तम बोध प्रदान करने आया हूं। यह जगत् वासुदेव का ही स्वरूप है। यह परमात्मा वासुदेव से भिन्न नहीं है।।६६-६७।।

ब्राह्मण उवाच

तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम्।
पूजितः परया भक्त्यानिच्छितः प्रययौ विभुः॥६८॥
पुनर्वर्षसहस्त्रान्ते समायातो नरेश्वर। निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं गुरुः॥६९॥
नगरस्यबहिः सोऽथ निदाघं दृष्टवान् मुनिम्। महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे॥७०॥
दूरस्थितं महाभागे जनसम्मर्दवर्जकम्। क्षुत्क्षामकण्ठमायान्तमरण्यात्ससमित्कुशम्॥७१॥
दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपागत्याभिवाद्य च।
उवाच कस्मादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज॥७२॥

ब्राह्मण (जड़भरत) कहते हैं—ऋभु का उपदेश सुनकर निदाघ ने उनको प्रणाम करके उनका यथेष्ट पूजन किया। भक्ति पूर्वक पूजन से प्रभु ऋभु सन्तुष्ट होने के पश्चात् वहां से चले गये। हे नरेश्वर! पुनः एक सहस्त्रवर्ष व्यतीत हो जाने पर गुरु ऋभु निदाघ को ज्ञान प्रदानार्थ पुनः उस नगर में आये। उस समय ऋभु ने निदाघ को नगर के बाहर स्थित देखा। तभी राजा सैनिकों आदि के साथ नगर में आया। उधर ऋषि निदाघ वन से समिध् तथा कुश लेकर वहां पहुंचे। क्षुधा-पिपासा से उनका कण्ठ शुष्क था। वे उस समय उस जनबहुल स्थिति से बचकर दूर थे। ऋभु ने निदाघ से कहा—"हे द्विज! आप यहां एकान्त स्थल में क्यों स्थित हैं?।।६८-७२।।

निदाघ उवाच

भो विप्र जनसम्मर्दो महानेष जनेश्वरे। प्रविवक्षौ पुरे रम्ये तेनात्र स्थीयते मया॥७३॥

निदाघ कहते हैं—हे विप्र! आज यहां के इस रम्य नगरी में महान् जनसमुदाय के साथ प्रवेश कर रहे हैं। इस जनसमाहार से बचने हेतु मैं यहां स्थित हूं।।७३।।

ऋभुरुवाच

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः। कथ्यतां मेद्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम॥७४॥

ऋभु कहते हैं—इनमें राजा कौन हैं तथा सामान्य जनता कौन है? हे द्विजश्रेष्ठ! आप इससे सम्यक् रूप से अवगत हैं, कृपा कहिये।।७४।।

निदाघ उवाच

योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छ्रयम्। अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परितो यस्तथेतरः॥७५॥

निदाघ कहते हैं—यह जो पर्वत शिखर ऐसे उच्च मत्त गजराज पर आसीन हैं, वे राजा हैं। बाकी लोग सामान्य लोग हैं।।७५।।

ऋभुरुवाच

एतौ हि गजराजानौ दृष्टौ हि युगपन्मया। भवता निर्विशेषेण पृथग्वेदोपलक्षितौ॥७६॥

तत्कथ्यतां महाभाग विशेषो भवतानयोः।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं कोऽत्र गजः को वा नराधिपः॥७७॥

ऋभु कहते हैं—मैंने युगपत रूप से (एक साथ) राजा तथा गजराज को देखा, तथापि आपने तो इनको अलग-अलग देखा है। अब इनकी विशेष पहचान भी कहिये। मुझे यह जानने की इच्छा है कौन हाथी है तथा कौन राजा है।।७६-७७।।

निदाघ उवाच

गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्यस्यैष भूपतिः।
बाह्यवाहकसम्बन्ध को न जानाति वै द्विज॥७८॥

निदाघ कहते हैं—जो नीचे है, वह गज है। हे ब्रह्मन्! हाथी पर जो स्थित है, वह राजा है। हे द्विज! स वाह्य-वाहक सम्बन्ध को कौन नहीं जानता।।७८।।

ऋभुरुवाच

ब्रह्मन्यथाहं जानीयां तथामामवबोधय।
अधः सत्त्वविभागं किं किं चोर्ध्वमभिधीयते॥७९॥

ऋभु कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अब इसे ऐसे कहिये, जिससे मैं यह उचित रूप से जान सकूं। इसमें अधः क्या है तथा ऊर्ध्व क्या है (अर्थात् नीचे किसे कहा जाये तथा ऊपर किये कहा जाये!)।।७९।।

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्त्वा सहसारुह्य निदाघः प्राह तं ऋभुम्।
श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥८०॥

उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा। अवबोधाय ते ब्रह्मन्दृष्टान्तो दर्शितो मया॥८१॥

ब्राह्मण कहते हैं—ऋभु के कथन को सुनकर निदाघ ऋभु के ऊपर आरोहण करके कहने लगे—"आप श्रवण करें। आपने जो पूछा वह कहता हूं। जिस प्रकार मैं आपके ऊपर हूं,वैसे हाथी के ऊपर राजा है। जैसे आप मेरे नीचे हैं, तदनुरूप राजा के नीचे हाथी है। आपको सम्यक् रूप से समझाने हेतु यह दृष्टान्त मैंने प्रस्तुत किया।।८०-८१।।

ऋभुरुवाच

त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ स्थितोऽहं गजवद्यदि।
तदेवं त्वं समाचक्ष्व कतमस्त्वमहं तथा॥८२॥

ऋभु कहते हैं—हे द्विजप्रवर! यदि तुम राजा की तरह हो तथा मैं गज के समान हूं, तब तुम बतलाओ कि वास्तव में तुम कौन हो तथा मैं कौन हूं?॥८२॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्तः सत्वरस्तस्य चरणावभिवन्द्य सः। निदाघः प्राह भगवन्नाचार्यस्त्वमृभुर्मम॥८३॥
नान्यस्याद्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा।
यथाचार्यस्य तेन त्वां मन्ये प्राप्तमहं गुरुम्॥८४॥

ब्राह्मण कहते हैं—निदाघ ने यह सुनकर तत्काल ऋभु के चरणों की वन्दना करके कहा—"हे भगवान्! आप तो वास्तव में मेरे गुरु ऋभु नहीं हैं? आपके अतिरिक्त अद्वैत संस्कार से संस्कृत मानस किसी का नहीं हो सकता। आज मैंने अपने आचार्य गुरु को प्राप्त किया है।॥८३-८४॥

ऋभुरुवाच

तवोपदेशदानाय पूर्वशुश्रूषणात्तव। गुरुस्नेहादृभुर्नाम निदाघं समुपागतः॥८५॥
तदेतदुपदिष्टं ते संक्षेपेण महामते। परमार्थसारभूतं यत्तदद्वैतमशेषतः॥८६॥

ऋभु कहते हैं—मैं तुम्हारे द्वारा की गई पूर्वकालिक सेवा से प्रसन्न होकर तुमको उपदेश दानार्थ यहां आ गया। मैं ऋभु गुरु स्नेह के कारण निदाघ के पास आया हूं। हे महामति! मैंने संक्षेप में अद्वैतरूपी परमार्थ का सारतत्व तुमको सुना दिया।॥८५-८६॥

ब्राह्मण उवाच

एवमुक्त्वा ददौ विद्यां निदाघं स ऋभुर्गुरुः। निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत्॥८७॥
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनः। तथा ब्रह्मतनौ मुक्तिमवाप परमां द्विजः॥८८॥
तथा त्वमपि धर्मज्ञ तुल्यात्मरिपुबान्धवः। भव सर्वगतं ज्ञानमात्मानमवनीपते॥८९॥
सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः।
भ्रान्तं दृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक् पृथक्॥९०॥

ब्राह्मण (जड़भरत) कहते हैं—एवंविध गुरुदेव ऋभु ने निदाघ को विद्या प्रदान किया था। निदाघ भी इस उपदेश के प्रभाव से अद्वैतपरायण हो गये। वे अपनी आत्मा के साथ समस्त प्राणीगण में अभेदानुभूति करने लगे। हे द्विज! इस प्रकार निदाघ ने उसी ब्राह्मण देह में परमामुक्ति लाभ कर लिया था। हे धर्मज्ञ! आप भी बन्धु तथा शत्रु में तुल्य भावना वाले हो जायें। हे अवनीपति! आप सर्वत्र आत्मभावना रखने वाले ज्ञानात्मा हो जाये। आकाश एक है, तथापि वह नील, श्वेत आदि अनेक वर्णभेद के कारण विभिन्न परिलक्षित होता है, तदनुरूप जो भ्रान्तदृष्टि वाले हैं, वे एक ही आत्मा को अलग-अलग रूप वाला देखते हैं।॥८७-९०॥

ब्राह्मण उवाच

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मा स्वयं भात्यपभेदमोहः॥९१॥

ब्राह्मण (जड़भरत) कहते हैं—इस जगत् में जो कुछ भी परिदृश्यमान है, वह सब प्रभु अच्युत के अतिरिक्त अन्य है ही नहीं। मैं, तुम, वह इत्यादि सभी भेद एक आत्मा में ही उद्भासित होते रहते हैं।।९१।।

सनन्दन उवाच

इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः।
स चापि जातिस्मरणावबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप॥९२॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—ब्राह्मण के यह कहने पर उस राजप्रवर ने भेद दृष्टि त्यागकर परमार्थ दृष्टि का वरण कर लिया। इस प्रकार उसे पूर्वजन्म की स्मृति का लाभ हो गया तथा वह इसी जन्म में ही मुक्त हो गया।।९२।।

परमार्थाध्यात्ममेतत्तुभ्यमुक्तं मुनीश्वर। ब्राह्मणक्षत्रियविशां श्रोतॄणां चापि मुक्तिदम्॥९३॥
यथा पृष्टं त्वया ब्रह्मंस्तथा ते गदितं मया। ब्रह्मज्ञानमिदं शुद्धं किमन्यत्कथयामि वै॥९४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

हे मुनिप्रवर! मैंने इस परमार्थ अध्याय तत्व को आपसे कह दिया। यह श्रवण करने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को मुक्ति देने वाला है। हे ब्रह्मन्! आपने जिस प्रकार का प्रश्न किया था, मैंने उसी के अनुसार आपको उत्तर प्रदान कर दिया। यही शुद्ध ब्रह्मज्ञान है। अब आप क्या श्रवण करना चाहते हैं?।।९३-९४।।

।।४९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शिक्षा का वर्णन

सूत उवाच

श्रुत्वा सनन्दनस्येत्थं वचनं नारदो मुनिः। असन्तुष्ट इव प्राह भ्रातरं तं सनन्दनम्॥१॥

सूत जी कहते हैं—सनन्दन का कथन सुनकर भी नारद अभी सन्तुष्ट नहीं हो सके अतः उन्होंने अपने भाई सनन्दन से कहा—।।१।।

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं भवतो मया। तथापि नात्मा प्रीयेत शृण्वन्हरिकथां मुहुः॥२॥

श्रूयते व्यासपुत्रस्तु शुकः परमधर्मवित्।
सिद्धिं सुमहतीं प्राप्तो निर्विण्णोऽवान्तरं बहिः॥३॥
ब्रह्मन्पुंसस्तु विज्ञानं महतां सेवनं विना।
न जायते कथं प्राप्तो ज्ञानं व्यासात्मजः शिशुः॥४॥
तस्य जन्मरहस्यं मे कर्मचाप्यस्य शृण्वते।
समाख्याहि महाभाग मोक्षशास्त्रार्थविद्भवान्॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! मैंने आपसे जो कुछ पूछा था, उसे आपने बतला दिया, तथापि हरिकथा सुनकर तथा उसे पुनः-पुनः सुनकर भी प्रसन्नता नहीं हो सकी। यह सुना गया है कि परमधर्मज्ञ व्यासनन्दन शुकदेव ने निर्विण्ण रूप से तथा बिना आन्तर किंवा वाह्य साधनाभ्यास द्वारा ही महत् सिद्धि का लाभ किया था। हे ब्रह्मन्! पुरुष को कदापि महत् जनों की सेवा के अभाव में विज्ञान लाभ नहीं होता, तथापि व्यासात्मज शिशु शुक ने वह इन सबके बिना कैसे प्राप्त किया? हे महाभाग! कृपा पूर्वक उनके जन्मरहस्य का वर्णन करिये। आप तो मोक्षशास्त्र के मर्मज्ञ हैं। यह प्रसंग कहिये।।२-५।।

सनन्दन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं समासतः। यां श्रुत्वा ब्रह्मतत्त्वज्ञो जायते मानवो मुने॥६॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः। ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥७॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—मैं संक्षेप में शुक के जन्म का वर्णन संक्षेप में कर रहा हूं। हे मुनिवर! इसे जानकर मनुष्य ब्रह्मतत्वज्ञ हो जाता है। यह महत्ता वृद्धत्व से, केश श्वेत हो जाने से, धन किंवा बन्धुजन से नहीं मिलती। ऋषिगण का यह कथन है कि जो अनूचान है, वही महान् भी है। (अनूचान=वेदवेदाङ्ग का महाविद्वान् जो इनका अध्यापन भी करे।)।।६-७।।

नारद उवाच

अनूचानः कथं ब्रह्मन्पुमान्भवति मानद। तन्मे कर्म समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम॥८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मानद! हे ब्रह्मन्! अनूचान कैसा होता है। उनका कर्म कहिये। यह श्रवण करने का मुझे अत्यन्त कुतूहल है।।८।।

सनन्दन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि ह्यनूचानस्य लक्षणम्। यज्ज्ञात्वा साङ्गवेदानामभिज्ञो जायते नरः॥९॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
छन्दःशास्त्रं षडेतानि वेदाङ्गानि विदुर्बुधाः॥१०॥

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः। वेदाश्चत्वार एवैते प्रोक्ता धर्मनिरूपणे॥११॥
साङ्गान्वेदान्गुरोर्यस्तु समधीते द्विजोत्तमः।
सोऽनूचानः प्रभवति नान्यथा ग्रन्थकोटिभिः॥१२॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे नारद! अब मैं अनूचान के लक्षणों को कहता हूं, जिसे जानकर मनुष्य को अंगो सहित समस्त अंगों का ज्ञान लाभ कर लेता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्दशास्त्र ये वेदांग बुधजन द्वारा कहे गये हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चतुर्वेद कहे गये हैं। इनसे धर्म निरूपण होता है। हे द्विजोत्तम! जिसने अंगों सहित गुरु से इनका अध्ययन किया है, वही अनूचान है। अन्यथा करोड़ों ग्रन्थ पढ़ने वाला अनूचान नहीं है।।९-१२।।

नारद उवाच

अङ्गानां लक्षणं ब्रूहि वेदानां चापि विस्तरात्।
त्वमस्मासु महाविज्ञः साङ्गेष्वेतेषु मानद॥१३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मानद! आप अंगोसहित वेदों के महान् ज्ञाता हैं। आप विस्तृत रूप से वेद के अंगों का लक्षण कहिये।।१३।।

सनन्दन उवाच

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वया मम कृतो द्विज।
संक्षेपात्कथयिष्यामि सारमेषां सुनिश्चितम्॥१४॥
स्वरः प्रधानः शिक्षायां कीर्त्तितो मुनिभिर्द्विजैः।
वेदानां वेदविद्भस्तु तच्छृणुष्व वदामि ते॥१५॥
आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम्।
कृतान्ते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्यं विशेषतः॥१६॥
एकान्तरः स्वरो ह्यप्सु गाथासु द्व्यन्तरः स्वरः।
सामसु त्र्यन्तरं विद्यादेतावत्स्वरतोऽन्तरम्॥१७॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे द्विज! आपने मुझसे अत्यन्त बृहद् प्रश्न किया है। मैं संक्षेप में उनके सार को निश्चित करके कहता हूं। मुनि तथा द्विजों ने इसे स्वर प्रधान शिक्षा कहा है। इस सम्बन्ध में वेदज्ञों का जो कथन है, उसे श्रवण करें। मैं कहता हूं। इनके स्वरान्तर हैं आर्चिक, जो ऋक् सम्बन्धित होते हैं। अन्य है गाथिक, जो गाथा सम्बन्धित होते हैं। तृतीय है सामिक जो साम सम्बन्धित कहे गये हैं। इन स्वरान्तर का प्रयोग करें। ऋचा में एक अन्तर से स्वर होगा। गाथा में दो के अन्तर से तथा साममन्त्रों के सम्बन्ध में तीन के व्यवधान से स्वर कहा गया है। यही स्वरान्तर है।।१४-१७।।

ऋक्सामयजुरङ्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञ्जते।
अविज्ञानाद्धि शिक्षायास्तेषां भवति विस्वरः॥१८॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥१९॥

ऋक्-साम तथा यजुः के अंग जो यज्ञों में प्रयुक्त होते हैं (याज्य, स्तोत्र, करण, मन्त्रादि) यदि शिक्षा का शास्त्र अज्ञात हो, तब वे सभी विस्वर हो जाते हैं। उनमें विरुद्ध स्वरोच्चार होता है। स्वर, वर्ण रहित मन्त्र तथा उनका मिथ्या प्रयुक्त होना तो यजमान का नाश उसी प्रकार कर देता है, जैसे वृत्रासुर के यज्ञ में इन्द्रशत्रु का गलत प्रयोग होने से उलटे इन्द्र की जगह वृत्र का ही नाश हो गया। यह स्वरापराध कहा गया है।।१८-१९।।

('इन्द्रस्य शत्रु' इस विग्रहानुसार षष्ठी समास में समासान्त में प्रयुक्त अन्तोदात्त का उच्चारण होना चाहिये था परन्तु प्रयोगार्थ पूर्वपद प्रकृति स्वर आद्युदात्त कहा गया। इसलिये स्वरापराध के कारण वृत्रासुर का वध इन्द्र ने किया।)

उरः कण्ठः शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये।
सवनान्याहुरेतानि साम वाप्यर्द्धतोऽन्तरम्॥२०॥
उरः सप्तविवारं स्यात्तथा कण्ठस्तथा शिरः।
न च शक्तोऽसि व्यक्तस्तु तथा प्रावचनो विधिः॥२१॥

वाङ्मय में उर, कण्ठ, शिर ये ही शब्द हेतु (उच्चारणार्थ) स्थान त्रय कहे गये हैं। इनको सवन कहा जाता है।[१] अधरोत्तर भेदानुसार सप्तस्वरात्मक साम के यही तीन स्थल हैं। उर-कण्ठ तथा शिर में सप्तस्वर विचरते हैं। लेकिन उर में मन्द्र तथा अतिस्वर अभिव्यक्त नहीं होता। अतः वह सप्त स्वरों का विचरण स्थलन नहीं है[२]।।२०-२१।।

कठकालापवृत्तेषु तैत्तिराह्वरकेषु च। ऋग्वेदे सामवेदे च वक्तव्यः प्रथमः स्वरः॥२२॥

कठ, कालाप, तैत्तरीय, आहूरक शाखा हेतु ऋग्वेद तथा सामवेद में प्रथमस्वर का ही प्रयोग करें।।२२।।

ऋग्वेदस्तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते। उच्चमध्यमसङ्घातः स्वरो भवति पार्थिवः॥२३॥

तृतीये प्रथमेक्रुष्टाः कुर्वत्याह्वरकान् स्वरान्।
द्वितीयाद्यास्तु मद्रान्तास्तैत्तिरीयाश्चतुःस्वरान्॥२४॥

प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः। मन्द्रः क्रुष्टो मुनीश्वर एतान्कुर्वन्ति सामगाः॥२५॥

द्वितीयप्रथमावेतौ नाण्डिभाल्लविनौ स्वरौ।
तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम्॥२६॥

---

१. वक्ष में निम्न स्वर से होने वाला शब्दोच्चार प्रातः सवन है।
कण्ठ में मध्यम स्वर से होने वाला शब्दोच्चार माध्यन्दिन सवन है।
मस्तकशिर में उच्चस्वर से होने वाला शब्दोच्चार तृतीय सवन है।

२. तथापि उनकी सम्यक् अभिव्यक्ति भले ही न हो, वहां उपांशु तथा मानस प्रयोग में वर्ण एवं स्वर सूक्ष्मतः उच्चरित होते हैं।

एते विशेषतः प्रोक्ताः स्वरा वै सार्ववैदिकाः।
इत्येतच्चरितं सर्वं स्वराणां सार्ववैदिकम्॥२७॥

ऋग्वेद द्वितीय (ऋषभ) तथा तृतीय (गान्धार) स्वर में भी उच्चरित होता है। उच्च तथा मध्यम का जब संघात हो जाता है, तब वह पार्थिवरूप लौकिक स्वरात्मक हो जाता है। आह्वरक शाखा वाले विद्वान् (गांधार) तृतीय तथा प्रथम में (षड्ज) उच्चरित स्वर का उच्चारण करते हैं। तैत्तरीय शाखा वाले लोग द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम स्वर का उच्चारण करते हैं। सामगान वाले विद्वान् षड्ज (प्रथम), ऋषभ (द्वितीय), गान्धार (तृतीय), मध्यम (चतुर्थ), मन्द्र (पंचम) धैवत (क्रुष्टषष्ठ) तथा निषाद (अतिस्वार सप्तम) रूप सातस्वर का उच्चारण करते हैं। षड्ज तथा ऋषभ ताण्ड्य पंचविशादि ब्राह्मण के अध्येता कौथुम आदि शाखा वाले ताण्डी एवं छन्दोग शाखा वाले माल्लवी पण्डितों के स्वर हैं। शतपथ ब्राह्मण में आये ये दोनों षड्ज तथा ऋषभ स्वर का प्रयोग वाजसनेयी शाखा वाले भी करते हैं। ये सभी स्वर सभी वेदों में प्रयुक्त हैं तथा विशेषतया कहे गये। इनका नाम है **सार्ववैदिक स्वर संचार**।।२३-२७।।

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा। अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थं सामवेदाङ्गमुत्तमम्॥२८॥
तानरागस्वरग्राममूर्च्छनानां तु लक्षणम्। पवित्रं पावनं पुण्यं यथा तुभ्यं प्रकीर्तितम्॥२९॥
शिक्षामाहुर्द्विजातीनामृग्यजुःसामलक्षणम्। सप्त सवरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः॥३०॥
ताना एकोनपञ्चाशदित्येतत्स्वरमण्डलम्।
षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा॥३१॥
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः।
षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः॥३२॥

अब सामवेद में प्रयुक्त स्वरों का वर्णन कहता हूं। यह ऐसा वेद है, जिसमें अल्प शब्दों में प्रभूत अर्थ व्यक्त रहता है। मैंने आपसे पहले ही कहा था कि तान, राग, स्वर, ग्राम तथा मूर्च्छना लक्षण तो पावन एवं पुण्यप्रद है। द्विजों हेतु ऋक्-यजुः तथा साम शिक्षा वर्णित है। स्वर सात हैं। ग्राम तीन हैं तथा मूर्च्छना २१ हैं। तान ४९ होते हैं। ये सभी स्वरमण्डल हैं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद—ये सात स्वर हैं। षड्ज, मध्यम तथा गान्धार ही ग्रामत्रय हैं।।२८-३२।।

भूर्ल्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः।
स्वर्गाभ्राच्चैव गान्धारो ग्रामस्थानानि त्रीणि हि॥३३॥
स्वराणां च विशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः। विंशतिर्मध्यग्रामे षड्जग्रामे चतुर्दश॥३४॥
तानान्पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारे सामगायिनाम्।
नदी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती मुखा॥३५॥
बला चाप्यथ विज्ञेया देवानां सप्त मूर्च्छनाः।
आप्यायिनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी॥३६॥

मैत्री च बार्हती चैव पितृणां सप्त मूर्च्छनाः।
षड्जे तूत्तरभन्द्रा स्यादृषभे चाभिरूहता॥३७॥
अश्वक्रान्ता तु गान्धारे तृतीया मूर्च्छना स्मृता।
मध्यमे खलु सौवीरा हृषिका पञ्चमे स्वरे॥३८॥
धैवते चापि विज्ञेया मूर्च्छना तूत्तरा मता। निषादे रजनीं विद्यादृषीणां सप्त मूर्च्छनाः॥३९॥

भूलोक से षड्ज उत्पन्न होता है। भुवर्लोक से मध्यम एवं स्वर्गलोक तथा मेघलोक से गान्धार उत्पन्न होता है। ये तीन ग्राम के स्थान हैं। स्वर के विशेष रूप से ग्रामराग कहे गये हैं। मध्यम ग्राम में बीस, षड्ज में चतुर्दश (१४), गान्धार में पन्द्रह तान का प्रयोग सामग लोग करते हैं। नदी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, मुखा, बला—ये सात मूर्च्छना देवगण की हैं। आप्यायनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री, बार्हती पितृगण की सप्त मूर्च्छना हैं। षड्ज में उत्तरभद्रा, ऋषभ में अभिरूढ़ता तथा गान्धार में अश्वक्रान्ता नामक तीन मूर्च्छनायें हैं। मध्यम में सौवीरा, पंचमस्वर में हृषीका, धैवत में उत्तरा नामक मूर्च्छना कही गयी है। निषाद में रजनी मूर्च्छना होती है। इस प्रकार ऋषीगण की सात मूर्च्छना कही गयी है।।३३-३९।।

उपजीवन्ति गन्धर्वा देवानां सप्त मूर्च्छनाः।
पितृणां मूर्च्छनाः सप्त तथा यक्षा न संशयः॥४०॥
ऋषीणां मूर्च्छनाः सप्त यास्त्विमा लौकिकाः स्मृताः।
षड्जः प्रीणाति वै देवानृषीन्प्रीणाति चर्षभः॥४१॥
पितॄन् प्रीणाति गान्धारो गन्धर्वान्मध्यमः स्वरः।
देवान्पितॄनृषींश्चैव स्वरः प्रीणाति पञ्चमः॥४२॥
यक्षान्निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवतः। गानस्य तु दशविधा गुणवृत्तिस्तु तद्यथा॥४३॥

गन्धर्वगण भी देवताओं वाली सात मूर्च्छना का उपयोग करते हैं। यक्षगण पितरों वाली सात मूर्च्छना का उपयोग करते हैं। यह निःसंदिग्ध है। जो ऋषिगण की सप्त मूर्च्छनायें हैं, उनका उपयोग मनुष्य गायक करते हैं। षड्ज स्वर से देवता, ऋषभ से ऋषि, गान्धार से पितृगण तथा मध्यम से गन्धर्व को प्रसन्नता होती है। मद्र नामक पंचमस्वर से देव-पितृगण तथा ऋषि प्रसन्न हो जाते हैं। निषाद स्वर से यक्ष तथा धैवत से समस्त प्राणीगण प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार गायन की दस गुणवृत्ति वर्णित है।।४०-४३।।

रक्तं पूर्णमलङ्कृतं प्रसन्नं व्यक्तं विक्रुष्टं श्लक्ष्णं समं सुकुमारं मधुरमिति गुणास्तत्र रक्तं नाम वेणुवीणास्वराणामेकीभावं रक्तमित्युच्यते पूर्णं नाम स्वरश्रुतिपूरणाच्छन्दः पादाक्षरं संयोगात्पूर्णमित्युच्यते अलङ्कृतं नामोरसि शिरसि कण्ठयुक्तमित्यलङ्कृतं प्रसन्नं नामापगता-गद्गदनिर्विशङ्कं प्रसन्नमित्युच्यते व्यक्तं नाम पदपदार्थप्रकृतिविकारगमनोपकृतद्धितसमासधातु-निपातोपसर्गस्वरलिङ्गं वृत्तिवार्त्तिकविभक्त्यर्थवचनानां सम्यगुपपादनं व्यक्तमित्युच्यते विक्रुष्टं नामोच्चैरुच्चारितं व्यक्तपदाक्षरं विक्रष्टमित्युच्यते श्लक्ष्णं नामाद्रुतमविलम्बितमुच्चनीचप्लुत-

समाहारहेलतालीपनयादिभिरुपषादनाभिः श्लक्ष्णमित्युच्यते समं नामावापनिर्वापप्रदेशे प्रत्यन्तरस्थानानां समासः सममित्युच्यते सुकुमारं नाम मृदुपदवर्णस्वरकुहरणयुक्तं सुकुमारमित्युच्यते मधुरं नाम स्वभावोपनीतललितपदाक्षरगुणसमृद्धं मधुरमित्युच्यते एवमेतैर्दशभिर्गुणैर्युक्तं गानं भवति॥१॥

इन दसों गुणवृत्ति का रूप सुनें। ये हैं रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट, (चीत्कारपूर्ण, सहायतार्थ क्रन्दन करता दुहाई देना यह इस शब्द का आप्टे शब्दकोशस्थ अर्थ है) ये श्लक्ष्ण (चिकना-कोमल), सम, सुकुमार एवं मधुर। ये दस गुण हैं। जब वेणुवीणा के स्वर पुरुष के स्वर से एकात्मरूप हो जाते हैं, वही **रक्तगुण** है। स्वर तथा श्रुति को पूर्ण करने वाला छंद-पादाक्षर का संयोजन करने वाला गुण **पूर्णगुण** है। उर, शिर, कण्ठ को जो अलंकृत करे, वह है **अलंकृत गुण**। जो शंका रहित तथा कण्ठगत गद्‌गदभाव रहित हो, वह **प्रसन्नगुण** है। पद, पदार्थ, प्रकृति, विकार, आगमन, कृत, तद्धित, समास, धातु, निपात, उपसर्ग, स्वर, तिगंत, वृत्ति, वार्तिक, विभक्त्यर्थ तथा सम्यक् विचारोपरान्त गायन करना ही **व्यक्त गुण** है। जो गायन पद एवं अक्षरों का स्पष्टतया उच्चारण के साथ गाया जाये, वह **विक्रुष्ट** है। जो द्रुत एवं विलम्बित दोष रहित है, उच्च-निम्न, प्लुत, समाहार, हेल, ताल, उपनयादि के उपपादान से युक्त गीत है, वह **श्लक्ष्ण गुण** है। स्वरों के उतार-चढ़ाव स्थल में प्रत्यन्त स्थान का समास ही **समगुण** है। मृदुपद, वर्ण, सर एवं कुहरण रहित गायन ही **सुकुमार गुण** है। जो गानविधि स्वभावतः ललितपदान्वित, अक्षर तथा गुणान्वित हो, वही **मधुर गुण** है। इस प्रकार दस गुणान्वित गान होता है।।१।।

भवन्ति चात्र श्लोकाः

काकस्वरं मूर्द्धगतं तथा स्थानविवर्जितम्।
शङ्कितं भीषणं भीतमुद्धुष्टमनुनासिकम्॥४४॥
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्। व्याकुलं तालहीनं च गीतिदोषाश्चतुर्दश॥४५॥

अन्य श्लोक में कहा है कि शंकित, भीषण, भीति, उद्‌धुष्ट, अनुनासिक, काकस्वर, मूर्द्धगत, स्थान विवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल, तालहीन को चतुर्दश गीतिदोष माना गया है।।४४-४५।।

आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः॥४६॥
पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिञ्जरः।
कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसन्निभः॥४७॥
पञ्चमस्तु भवेत्कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः।
निषादः सर्ववर्णः स्यादित्येताः स्वरवर्णताः॥४८॥

आचार्यगण सम स्वर को ही अत्यन्त मान्यता देते हैं। स्त्रियां मधुर स्वर चाहती है। अन्य लोग विक्रुष्ट स्वर की इच्छा करते हैं। षड्ज स्वर पद्मपत्रवत् है। ऋषभ पीतमिश्रित हरित वर्ण (शुकवर्ण) है। गान्धार कनक

आभा वाला है। मध्यम स्वर कुंदवत् श्वेतवर्णाभ है। पंचम स्वर कृष्णवर्ण है। धैवतस्वर पीत वर्ण, निषाद सर्ववर्णात्मक होता है। ये सब स्वरों के वर्ण हैं।।४६-४८।।

पञ्चमो मध्यमः षड्ज इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः।
ऋषभो धैवतश्चापीत्येतौ वै क्षत्रियावुभौ॥४९॥
गान्धारश्च निषादश्च वैश्यावर्द्धेन वै स्मृतौ। शूद्रत्वं विधिनार्द्धेन पतितत्वान्न संशयः॥५०॥
ऋषभो मूर्च्छितवर्जितो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र।
निपतति मध्यमरागे स निषादं षाड्जवं विद्यात्॥५१॥
यदि पञ्चमो विरमते गान्धारश्चान्तरस्वरो भवति।
ऋषभो निषादसहितस्तं पञ्चमीदृशं विद्यात्॥५२॥

पंचम, मध्यम एवं षड्ज ब्राह्मण वर्ण कहे गये हैं। ऋषभ, धैवत क्षत्रिय वर्ण, निषादस्वर आधा वैश्यवर्ण है तथा आधा शूद्रवर्ण है। ये पतित स्वर हैं।[१] जहां ऋषभ मूर्च्छना बिना हो, धैवत के साथ पंचम स्वर हो तथा अन्तःस्वर मध्यम का हो तथा तदनन्तर क्रमशः ऋषभ, निषाद तथा पंचम स्वरोदय हो, तब पंचम स्वर को षाडव जानें।।४९-५२।।

गान्धारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः। धैवतस्य च दौर्बल्यान्मध्यमग्राम उच्यते॥५३॥
ईषत्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत्।
धैवतः कम्पितो यत्र स षड्जग्राम ईरितः॥५४॥

जब गान्धार प्रधान हो, निषाद आये तथा जाये तथा जहां धैवत प्रधान न हो—तब यह मध्यम ग्राम है। जहां निषाद का किंचित् स्पर्श हो, गान्धार की अधिकता हो, जहां धैवत कम्पित रहे, त्तह षड़ज् ग्राम है।।५३-५४।।

अन्तरस्वरसंयुक्तः काकलिर्यत्र दृश्यते।
तं तु साधारितं विद्यात्पञ्चमस्थं तु कैशिकम्॥५५॥
कैशिकम् भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः।
यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात्कैशिकमध्यमः॥५६॥
काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु।
कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसम्भवम्॥५७॥
गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेति कारुप्रवादनम्। वेति वाद्यस्य संज्ञेयं गन्धर्वस्य प्ररोचनम्॥५८॥

जहां अन्तर स्वरान्वित सूक्ष्मध्वनि हो, वह साधारित जानें। यदि यह सूक्ष्मध्वनि (काकलि) पंचम स्वरस्थ हो, तब वह कैशिक है। जब यह कैशिक चतुर्दिक् से सब स्वरों द्वारा भावित की जाकर मध्यम स्वर में न्यस्त हो, तब यही कैशिक मध्यम है। जहां सूक्ष्मध्वनि हो, तथापि पंचमस्वर प्रधान हो, वह कश्यप ऋषि के मतानुसार

१. उच्चारण वाले अंगों के निम्न भाग से जो स्वर निकले उसे पतित स्वर कहा गया है।

मध्यम ग्रामोत्पन्न कैशिक है। गान्धर्व शब्द में "गा" अर्थात् गेय। 'धं' अर्थात् कलायुक्त वाद्यवादन तथा "र्व" है वाद्य सामग्री।।५५-५८।।

यः समागानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयः स गान्धारस्तृतीस्त्वृषभः स्मृतः॥५९॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः॥६०॥

सामगायन का प्रथम स्वर ही वेणु का मध्यम स्वर है। उनके द्वितीय स्वर को गान्धार तथा तृतीय स्वर को ऋषभ, चतुर्थ को षड्ज एवं पंचम को धैवत, षष्ठ को निषाद, सप्तम को पंचम कहा गया है।।५९-६०।।

षड्जं मयूरो वदति गावो रम्भन्ति चर्षभम्।
अजाविके तु गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम्॥६१॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम्।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः॥६२॥

मयूर की काकली षड्ज स्वर में होती है। गौयें ऋषभ स्वर में बोलती हैं। भेड़ तथा बकरियों का मिमियाना गान्धार स्वर में होता है। क्रौंच जलपक्षी का कुंजन मध्यम स्वरमय है। वसन्तागम में पुष्प विकसित होने पर नर कोयल पंचम स्वर में कुंजन करता है। अश्व की हिनहिनाहट धैवत स्वर में होती है। हाथी का चिग्घाड़ निषाद स्वर में माना गया है।।६१-६२।।

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस्त्वृषभः स्मृतः।
गान्धारस्त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः॥६३॥
उरसः शिरसः कण्ठादुत्थितः पञ्चमः स्वरः।
ललाटाद्धैवतं विद्यान्निषादं सर्वसन्धिजम्॥६४॥

कण्ठ से **षड्ज**, शिर से **ऋषभ** उत्पन्न होता है। गान्धार आनुनासिकात्पन्न है। वक्ष से मध्यम स्वरोदय होता है। उर-शिर-कण्ठ से **पंचम** स्वरोदय होता है। ललाट से **धैवत** एवं सर्वसन्धियों से **निषाद** स्वरोत्पत्ति होती है।।६३-६४।।

नासा कण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संश्रितः।
षड्भिः सञ्जायते यस्मात्तस्मात्षद्यृज इति स्मृतः॥६५॥
वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः। नर्दत्यृषभवद्यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते॥६६॥
वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
वाति गन्धवहः पुण्यो गान्धारस्तेन हेतुना॥६७॥
वायुः समुत्थितो नाभेरूरौ हृदि समाहतः। नाभिप्राप्तो मध्यवर्ती मध्यमत्वं समश्नुते॥६८॥

नासिका, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा, दांत ये **षड्ज** स्वर निकलता है। नाभि से वायु उत्थित होकर

ऊर्ध्वोत्थित होता है। क्रमशः कंठ एवं शीर्ष से आहत होकर वह बैल जैसा शब्द करता है। तभी वह **ऋषभ** स्वर है। नाभि से उत्थित वायु ऊपर जाकर उरु तथा हृदय से टकराकर नाभिरूप स्थान में (मध्य में) आता है। अतः उससे निष्क्रान्त स्वर का **मध्यमस्वर** कहा गया।।६५-६८।।

वायुः समुत्थितो नाभेरुरोहृत्कण्ठकाहतः।
पञ्चस्थानोत्थितस्यास्य पञ्चमत्वं विधीयते॥६९॥
धैवतं च निषादं च वर्जयित्वा तु तावुभौ।
शेषान्पञ्च स्वरांस्त्वन्ये पञ्चस्थानोत्थितान्विदुः॥७०॥
पञ्चस्थानस्थितत्वेन सर्वस्थानानि धार्यते।
अग्निगीतस्वरः षड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते॥७१॥
सोमेन गीतो गान्धारो विष्णुना मध्यमः स्वरः।
पञ्चमस्तु स्वरो गीतस्त्वयैवेति निधारय॥७२॥
धैवतश्च निषादश्च गीतौ तुम्बुरुणा स्वरौ।
आद्यस्य दैवतं ब्रह्मा षड्जस्याप्युच्यते बुधैः॥७३॥

नाभि से ऊर्ध्वोत्वित वायु उरु, हृत्, कण्ठ तथा शीर्ष से टकराकर बहिःनिष्क्रमण करता है। तब इन नाभि, उरु, हृत्, कण्ठ एवं शीर्ष रूप पंचस्थल से निकलने के कारण **पंचमस्वर** कहते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार धैवत तथा निषाद के अतिरिक्त बाकी बचे पांच स्वर इन पंच स्थान से उत्पन्न होते हैं। पंचस्थानस्थ होने के कारण वह इन सब स्थानों में धारण किया जाता है। षड्ज स्वर को अग्नि, ऋषभ को ब्रह्मा, गान्धार को चन्द्र, मध्यम को विष्णु गाते हैं। पंचमस्वर का गायन आप (नारद) करते हैं। तुम्बुरु धैवत तथा निषाद में गायन करते हैं। आदिस्वर के देवता हैं ब्रह्मा। षड्ज के भी देवता ब्रह्मा ही हैं।।६९-७३।।

तीक्ष्णदीप्तप्रकाशत्वादृषभस्य हुताशनः। गावः प्रणीते तुष्यन्ति गान्धारस्तेन हेतुना॥७४॥
श्रुत्वा चैवोपतिष्ठन्ति सौरभेया न संशयः।
सोमस्तु पञ्चमस्यापि दैवतं ब्रह्मराट् स्मृतम्॥७५॥

ऋषभ के देव अग्नि हैं, क्योंकि यह स्वर तीक्ष्ण एवं दीप्त प्रकाश वाला है। गौवें गान्धार स्वर को सुनकर तुष्ट होकर चली आती हैं। पंचम स्वर के देवता सोम हैं। वे ब्राह्मणों के सम्राट हैं।।७४-७५।।

निह्रासो यस्य वृद्धिश्च ग्रामसामाद्य सोमवत्।
अतिसन्धीयते यस्मादेतान्पूर्वोत्थितान्स्वरान्॥७६॥
तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते। निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना॥७७॥
सर्वांश्चाभिभवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम्॥७८॥

जैसे शुक्लपक्षीय चन्द्रमा बढ़ते हैं, कृष्णपक्ष में वे ह्रासोन्मुखी हो जाते हैं, इसी प्रकार जब स्वर ग्रामस्थ जिस स्वर का ह्रास होता है, किंवा वृद्धि होती है तथा पूर्वोत्पन्न स्वरों का अन्तर्भाव होता है, तब वही निषाद स्वर

है। यह सभी स्वरों को अभीभूत करता है। इसी प्रकार सूर्य भी सभी नक्षत्रों को अभिभूत कर लेते हैं। तभी निषाद स्वर के देवता सूर्य हैं।।७६-७८।।

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु।।७९।।
सामनी गात्रवीणा तु तस्यास्त्वं शृणु लक्षणम्।
ग्रात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्यां गायन्ति सामगाः।।८०।।
स्वरव्यञ्जनसंयुक्ता अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्जिता।
हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ।।८१।।
गुरोरनुकृतिं कुर्याद्यथान्या न मतिर्भवेत्। प्रणवं प्राक्प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम्।।८२।।

गायनार्थ द्विविध वीणा प्रयोज्य हैं। यथा काष्ठ-वीणा तथा गात्रवीणा। सामगानार्थ गात्र वीणा का लक्षण श्रवण करें। गात्रवीणा वह है, जिस पर सामगगण सामगान करते हैं। इसे जानु के ऊपर रखकर बजाते हैं। इसे दो हाथों के मध्य में सविधि रखते हैं, तब स्वर-व्यंजन युक्त अंगुलियों तथा अंगुष्ठ से बजाते हैं। इसके वादनार्थ गुरु का ही अनुकरण करें। इससे बुद्धि वाह्य वस्तु की ओर नहीं जायेगी। सर्वप्रथम इस वीणा पर प्रणव को बजाये, तदनन्तर व्याहतियों को बजाये।।७९-८२।।

सावित्रीं चानुवचनं ततो वै गानमारभेत्।
प्रसार्य चाङ्गुलीः सर्वा रोपयेत्सवरमण्डलम्।।८३।।
न चाङ्गुलीभिरङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेनाङ्गुलीः स्पृशेत्।
विरला नाङ्गुलीः कुर्यान्मूले चैतां न संस्पृशेत्।।८४।।

तब सावित्री की स्तुति के उपरान्त गायन का आरंभ करे। उंगलियों को प्रसारित करके स्वरमण्डल पर स्थापित करे। अंगुष्ठ से उंगलियों का तथा उंगलियों से अंगुष्ठ का स्पर्श न हो। उंगलियों को अधिक न फैलायें तथा न तो मूल में स्पर्श करे।।८३-८४।।

अङ्गुष्ठाग्रण तां नित्यं मध्यमे पर्वणि स्पृशेत्।
मात्राद्विमात्रवृद्धानां विभागाथ विभागवित्।।८५।।
अङ्गुलीभिर्द्विमात्रं तु पाणेः सव्यवस्य दर्शयेत्।
त्रिरेखा यस्य दृश्येत सन्धिं तत्र विर्निदिशेत्।।८६।।
स पर्व इति विज्ञेयः शेषमन्तरमन्तरम्। पर्वान्तरं सामसु च ऋक्षु कुर्यात्तिलान्तरम्।।८७।।

अंगुष्ठ के अग्रभाग से मध्य पर्व का स्पर्श करें। व्यक्ति को चाहिये कि मात्रा-द्विमात्रा वृद्धि के विभागार्थ वाम हाथ की उंगलियों से द्विमात्रा का दर्शन करे। जहां त्रिरेखा दिखलाई पड़े, वहीं पर सन्धि का निर्देश करे। वही पर्व है शेष अन्तर-अन्तर है। साममन्त्र के द्वारा प्रथम एवं द्वितीय स्वर के मध्य एक तिल के इतना अन्तर कर देना चाहिये। (यहां तिल से जौ का भी तात्पर्य हो सकता है।)।।८५-८७।।

स्वरान्मध्यमपर्वसु सुनिविष्टं निवेशयेत्। न चात्र कम्पयेत्किञ्चिदङ्गस्थावयवं बुधः।।८८।।

अधस्तनं मृदं न्यस्त्य हस्तमात्रे यथाक्रमम्।
अभ्रमध्ये यथा विद्युद्दृश्यते मणिसूत्रवत्॥८९॥
पृषच्छेदविवृत्तीनां यथा बालेषु कर्त्तरी। कूर्मोऽगानि च संहृत्य चेतोदृष्टिं दिशन्मनः॥९०॥
स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीको वर्णानुच्यारयेद्बुधः।
नासिकायास्तु पूर्वेण हस्तं गोकर्णवद्धरेत्॥९१॥

सम्यक्तः निविष्ट स्वरों को निवेश मध्यमपर्व में करना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति यहां पर किसी भी अव्यय को कम्पित न करे। उरु-जंघा आदि को मिट्टी पर स्थापित करके उस पर दोनों हाथों को प्रचलित विधि से रखे। दाहिनी हथेली को गोकर्णवत् तथा वाम को उत्तानरूप रखे। जैसे आकाश में मणिसूत्रवत् विद्युत् चमकती हैं यही पदादि विभाग के छेद (बाधाओं खण्डत्व) का, अलगाव का निर्देश दृष्टान्त है। जिस प्रकार कर्त्तरी बालों को काटकर पृथक् कर देती है, तदनुरूप विद्वान् व्यक्ति सभी अन्य चेष्टाओं से रहित होकर मन तथा दृष्टि योजित करे। वह स्वस्थ, प्रशान्त, भय रहित होकर वर्णोच्चारण करे। उच्चारण काल में नाक की सीध की ओर गोकर्णाकृति में हाथ रखे।।८८-९१।।

निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयेत्।
सम्यक्प्रचारयेद्वाक्यं हस्तेन च मुखेन च॥९२॥

हाथ के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर शास्त्र के अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। मन्त्रवाक्य का हाथ तथा मुख से साथ ही साथ प्रचालन करे।।९२।।

यथैवोच्चारेयेद्वर्णांस्तथैवैनां समापयेत्। नात्याहन्यान्न निर्हण्यान्न प्रगायेन्न कम्पयेत्॥९३॥
समं सामानि गायेत व्योम्नि श्येनगतिर्यथा।
यथा सुचरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते॥९४॥
आकाशे वा विहङ्गानां तद्वत्स्वरगता श्रुतिः।
यथा दधिनि सर्पिः स्यात्काष्ठस्थो वा यथाऽनलः॥९५॥
प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत्स्वरगता श्रुतिः।
स्वरात्स्वरस्य सङ्क्रामं स्वरसन्धिमनुल्बणम्॥९६॥

वर्णों का प्रारम्भ में जिस गति से अर्थात् द्रुत आदि वृत्ति से आरम्भ में उच्चारण किया जाये, उसी प्रकार उसी गति से उसे समाप्त करे। उसमें अभ्याघात, निर्हण्य, प्रगान तथा कम्पन न करे। साममन्त्र का गायन समभावेन करना चाहिये। जैसे जल में तैरती मछली किंवा आकाश में उड़नशील पक्षी के मार्ग का ज्ञान नहीं हो पाता, तदनुरूप सामगायन काल में स्वरगत श्रुति के विशेष स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। (मात्र गीतमात्र का ही अनुभव हो पाता है)। जैसे दही में घृत एवं काष्ठ में अग्नि सन्निहित रहती है, तदनुरूप साममन्त्र गीत में अन्तर्निहित रहते हैं। सप्रयत्न उनकी स्वरूपोलब्धि हो पाती है। प्रथम स्वर से द्वितीय स्वर में जो स्वर संक्रमण होता है, उसकी प्रथम स्वर से सन्धि रखे।।९३-९६।।

अविच्छिन्नं समं कुर्यात्कासूक्ष्मच्छायातपोपमम्। अनागतमतिक्रान्तं विच्छिन्नं विशमाहतम्॥९७॥

तन्वन्तमस्थितान्तं च वर्जयेत्कर्षणं बुधः।
स्वरः स्थानाच्च्युतोयस्तु स्वं स्थानमतिवर्तते॥९८॥

उसे अविच्छिन्न रखना चाहिये। जैसे छाया एवं धूप अत्यन्त सूक्ष्म गति से अन्य स्थान पर जाते हैं, वे अपने पूर्व स्थान से हठात् वियुक्त (अलग) नहीं होते। अन्य स्थान पर अत्यन्त वेग से नहीं जाते, तदनुरूप स्वरक्रमण को सम तथा अविच्छिन्न भाव से करें। जब प्रथम स्वर को खींचने से द्वितीय स्वर होता है, उस कर्षण को (खींचने को) विद्वान् पुरुष त्यागे। यह कर्षण षड्दोषयुक्त होता है अर्थात् अनागत, अतिक्रान्त अवस्था में कर्षण नहीं करें। द्वितीय स्वर के प्रारंभ होने के पहले उस द्वितीय स्वर की अनागत स्थिति रहती है। लेकिन प्रथम स्वर का पूर्णतः अतीत हो जाना ही उसकी अतिक्रान्त अवस्था है। (अर्थात् प्रथमस्वर पूर्ण अतीत हो जाये, तब वह अतिक्रान्त स्थिति है तथा तब द्वितीय स्वर आरंभ होने जा ही रहा है, उसका पूर्वक्षण अनागत स्थिति है)। इन अनागत एवं अतिक्रान्त स्थिति में प्रथम स्वर का कर्षण नहीं हो। उसे कम्पित (विषमाहत) करके भी द्वितीय स्वर पर न जाये। कर्षणकाल में तीन मात्रा से अधिक स्वर विस्तार न हो। द्वितीय स्वर में भी त्रिमात्रायुक्त स्थिति रहे। द्विमात्र स्थिति न हो।।९७-९८।।

विस्वरं सामगा ब्रूयुर्विरक्तिमिति वीणिनः।
अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्॥९९॥
शिष्यणामुपदेशार्थं कुर्य्याद्वृत्तिं विलंबिताम्।
गृहीतग्रन्थ एवं तु ग्रन्थोच्चारणशैक्षकान्॥१००॥

जो स्वर स्थान से स्खलित होकर अपने स्थान का अतिक्रमण करता है, वह सामगायक विस्वर है। वीणा बजाकर गाने वाले गायक उसे विरक्त कहते हैं। जो स्वयं अभ्यास करना चाहे वह तीव्रता पूर्वक मन्त्रोच्चार करे। प्रयोगार्थ मध्यमवृत्ति की शरण ले। शिष्यों को जो उपदेश देना चाहे, वह विलम्बित वृत्ति का सहारा ले। गुरु हाथ में पुस्तक धारण करके ग्रन्थोच्चारण की शिक्षा प्रदान करे।।९९-१००।।

हस्तेनाध्यापयेच्छिष्यान् शैक्षेण विधिना द्विजः।
क्रुष्टस्य मूर्द्धनि स्थानं ललाटे प्रथमस्य तु॥१०१॥
भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयोः।
कण्ठस्थानं चतुर्थस्य मन्द्रस्य रसनोच्यते॥१०२॥
अतिस्वरस्य नीचस्य हृदि स्थानं विधीयते।
अङ्गुष्ठस्योत्तमे क्रुष्टो ह्यङ्गुष्ठ प्रथमः स्वरः॥१०३॥
प्रदेशिन्या तु गान्धार ऋषभस्तदनन्तरम्।
अनामिकायां षड्जस्तु कनिष्ठायां तु धैवतः॥१०४॥
तस्याधस्ताच्च योन्यास्तु निषादं तत्र निर्दिशेत्।
अपर्वत्वादमध्यत्वादव्ययत्वाच्च नित्यशः॥१०५॥

मन्द्रो हि मन्दीभूतस्तु परिस्वार इति स्मृतः।
क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः॥१०६॥

गुरु विभिन्न प्रकार से हस्त संचालन करके शिष्यों को शिक्षा प्रदान करें। क्रुष्ट का स्थान मूर्द्धा में है। प्रथम का ललाट में हैं। द्वितीय भ्रूमध्य में हैं। तीसरा कर्ण में है। कण्ठस्थान में चतुर्थ है। मन्द्र का स्थान रसना है। नीच अतिस्वर हृदयस्थ है। अंगुष्ठ के उपरले भाग में क्रुष्ट का, अंगुष्ठ में प्रथम स्वर का, तर्जनी में गांधार का तथा मध्यमा में ऋषभ का, अनामिका में षड्ज का तथा कनिष्ठा में धैवत का स्थान है। धैवत के अधः में निषाद का स्थान है। मंदीभूत मन्द्रस्वर को परिस्वार कहते हैं। वह अपर्व, अमध्य तथा नित्य अव्यय जो है। क्रुष्ट से देवता जीवित रहा करते हैं। प्रथम स्वर से मनुष्य जीवित रहते हैं।।१०१-१०६।।

पशवस्तु द्वितीयेन गन्धर्वाप्सरसस्त्वनु। अन्धजाः पितरश्चैव चतुर्थस्वरजीविनः॥१०७॥
मन्द्रत्वेनोपजीवन्ति पिशाचासुरराक्षसाः। अतिस्वरेण नीचेन जगत्स्थावरजङ्गमाः॥१०८॥

सर्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकैः स्वरैः।
दीप्तायताकरुणानां मृदुमध्यमयोस्तथा॥१०९॥
श्रुतीनां योऽविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते।
दीप्ता मन्द्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव च॥११०॥

द्वितीय से पशु, गन्धर्व, अप्सरा जीवित रहते हैं। अन्धकार से उत्पन्न पितर चतुर्थ स्वर से जीते हैं। मन्द्र से पिशाच, असुर, राक्षस जीते हैं। नीच अतिस्वर से जगत् के स्थावर-जंगम जीवित रहते हैं। समस्त प्राणीगण सामिक स्वर से जीवित रहते हैं। दीप्त, आयत, करुण, मृदु, मध्यम का तथा श्रुति का जो ज्ञाता नहीं होता वह आचार्य कदापि नहीं कहा जाता। मन्द्र, द्वितीय, चतुर्थ में दीप्ता श्रुति होती है।।१०७-११०।।

अतिस्वरे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः।
श्रुतयो या द्वितीयस्य मृदुमध्यायताः स्मृताः॥१११॥
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक्।
आयतात्वं भवेन्नीचे मृदुता तु विपर्यये॥११२॥

अतिस्वर, तृतीय तथा क्रुष्ट में करुणा श्रुति होती है। द्वितीय की श्रुति मृदु, मध्य आयत होती हैं अब उनके पृथक् लक्षणों का श्रवण करें। आयत वह है, जो तृतीय स्वर से परे हो। विपर्यय में मृदु एवं स्वस्वर में मध्यमा श्रुति कही गयी है। (विपर्यय-अर्थात् चतुर्थ स्वर से परे रहने पर)।।१११-११२।।

स्वे स्वरे मध्यमात्वं तु तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत्।
द्वितीये विरता या तु क्रुष्टश्च परतो भवेत्॥११३॥
दीप्तां तां तु विजानीयात्प्राथम्येन मृदुः स्मृतः।
अत्रैव विरता या तु चतुर्थेन प्रवर्तते॥११४॥

तथा मन्द्रे भवेद्दीप्ता साम्नश्चैव समापने। नातितारश्रुतिं कुर्यात्स्वरयोर्नापि चान्तरे॥११५॥

अपने स्वर में मध्यमा श्रुति होती है। उसकी सम्यक् रूप से समीक्षा करके प्रयोग करे। जब क्रुष्ट स्वर हो, तब द्वितीय स्वरस्थ श्रुति ही दीप्ता होती है। प्रथम स्वर में वह मृदु श्रुति होती है। चतुर्थ स्वर प्रवर्त्तित होने पर वही श्रुति कही जायेगी। यदि वह मन्द्र स्वरस्थ हो, तब दीप्ता होगी। जब साम समाप्त होता है, तब प्रत्येक स्वरस्थ श्रुति दीप्ता ही होगी। जब स्वर समाप्त होने लगे, तब उससे पूर्व आयतादि श्रुति का प्रयोग करना वर्जित है। स्वर समाप्त हो गया हो, तथापि गान का विच्छेद जब तक न हो, तब तक स्वरद्वय के अन्तराल में (मध्य में) श्रुति प्रयोग न हो।।११३-११५।।

तं च ह्रस्वे च दीर्घे च न चापि घुटसंशके।
द्विविधा गतिः पदान्तस्थितसन्धिः सहोष्मभिः॥११६॥
स्थानेषु पञ्चस्वेतेषु विज्ञेयं घुटसंज्ञकम्। स्वरान्तराविरतानि ह्रस्वदीर्घघुटानि च॥११७॥
स्थितिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत्स्वरतो वदेत्।
दीप्तामुदात्ते जानीयाद्दीप्तां च स्वरिते विदुः॥११८॥

ह्रस्व तथा दीर्घ अक्षर का जब गान हो, तब प्लुत में श्रुति प्रयोग न हो तथा घुट संज्ञक स्वर में भी श्रुति प्रयोग न करें। तालव्य इकार का भाव होता है 'आ' तथा 'इ' तथा 'आ' 'उ' भाव भी कहा गया है। ये द्विविधा गति कही जाती है। 'श ष स' ऊष्म वर्ण होते हैं। इनके साथ त्रिविध पदान्त सन्धि कही गई है। अतः ऊपर द्विविधा तथा ये त्रिविध मिलाने से पंचस्थान होते हैं। ये सभी घुट स्वर हैं, जिनमें श्रुति नहीं करनी चाहिये। जो श्रुति रहित स्थल ह्रस्व, दीर्घ एवं घुट स्थल है तथा श्रुतिस्थल में जहां स्वर-स्वरान्तर असमाप्त रहें, वहां श्रुति वर्जित है। उन स्थानों पर स्वर से ही श्रुतिवत् कार्य किया जाये। उदात्त स्वर में दीप्ता श्रुति होती है। (समास से अतिरिक्त स्थलों में ऐसा होता है। स्वरित में भी दीप्ता की स्थिति पण्डितजन मान गये हैं।।११६-११८।।

अनुदात्ते मृदुर्ज्ञेया गन्धर्वाः श्रुतिसम्पदे। उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा॥११९॥
निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदश्च पञ्चधा।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आर्चिकस्य स्वरत्रयम्॥१२०॥

अनुदात्त में मृदु श्रुति होगी। गान्धर्व गान में श्रुति न होने पर भी वहां स्वर को ही श्रुतिवत् जाने। उदात्त, अनुदात्त स्वरित, प्रचय (जब स्वरित के आगे स्वरित हो, तब वही प्रचय है), निघात (प्रचय से परे होने पर स्वरित का आहनन हो, तब वही निघात है) ये पंच स्वरभेद कहे गये हैं। अब मैं आर्चिक के स्वरत्रय का वर्णन करता हूं।।११९-१२०।।

उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीयः स्वरितः स्वरः।
य एवोदात्त इत्युक्तः स एव स्वरितात्परः॥१२१॥
प्रचयः प्रोच्यते तज्ज्ञैर्न चात्रान्यत्स्वरान्तरम्।
वर्णस्वरोऽतीतस्वरः स्वरितो द्विविधः स्मृतः॥१२२॥
मात्रिको वर्ण एवं तु दीर्घस्तूच्चारितादनु।
स तु सप्तविधो ज्ञेयः स्वरः प्रत्ययदर्शनात्॥१२३॥

पदेन तु स विज्ञेयो भवेद्यो यत्र यादृशः। सप्तस्वरान्प्रयुञ्जीत दक्षिणं श्रवणं प्रति॥१२४॥

ये हैं उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। जब उदात्त स्वरित से परे हो, वही विद्वानों द्वारा वर्णित प्रचय है। वहां अन्य स्वरान्तर है ही नहीं। स्वरित के भेदद्वय का नाम है वर्णस्वर एवं अतीतस्वर। एवंविध वर्ण भी मात्रिक एवं उच्चारित के अनन्तर दीर्घ हो जायेगा। वह प्रत्ययदर्शन के कारण सप्तविध हो जाता है। वह कहां कैसा होगा, इसे पद द्वारा जाने। दक्षिण कर्ण में सप्तस्वर श्रवण कराये।।१२१-१२४।।

आचार्यैर्विहितं शास्त्रं पुत्रशिष्यहितैषिभिः।
उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा॥१२५॥
वैस्वर्यंस्वरसंज्ञायां किंस्थानः स्वार उच्यते।
उच्चनीचस्य यन्मध्ये साधारणमिति श्रुतिः॥१२६॥
तं स्वारं स्वारसंज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः।
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्ते ऋषभधैवतौ॥१२७॥

इस शिक्षाशास्त्र का निर्माण आचार्यगण ने सन्तान तथा शिष्यों के हितार्थ किया था। जब उदात्त से उच्चतर कोई नहीं है तथा अनुदात्त से निम्नतर कोई नहीं है, तब स्वर का स्थान उसमें क्या हो? इसका समाधान यह है कि उदात्त एवं अनुदात्त के बीच जो "साधारण" यह श्रुति है, इसे ही शिक्षाशास्त्रज्ञ लोग "स्वर" कहते हैं। उदात्त में निषाद एवं गान्धार शब्द हैं। अनुदात्त में ऋषभ एवं धैवत हैं।।१२५-१२७।।

स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः। यत्र कखपरा ऊष्मा जिह्वामूलप्रयोजनाः॥१२८॥
तानप्याज्ञापयेन्मात्राप्रकृत्यैव तु सा कला।
जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहितस्तैरव्यञ्जन एव च॥१२९॥

इनका प्राकट्य होता है षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वरित में। जहां जिसके परे 'क' तथा 'ख' है तथा जिससे जिह्वामूलक प्रयोजन सिद्ध हो, उस उष्मा क तथा ख को मात्रा जानना चाहिये। वह अन्य वर्ण का अवयव कदापि नहीं है। वह स्वस्वरूपेण कला ही है। विद्वान्गण इसे उपध्मानीय का उपलक्षण कह गये हैं। जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरव्यञ्जन।।१२८-१२९।।

तिरोविरामः प्रश्लिष्टोऽपादवृत्तश्च सप्तमः।
स्वाराणामहमेतेषां पृथग्वक्ष्यामि लक्षणम्॥१३०॥
उद्दिष्टानां तथा न्यायमुदाहरणमेव च। सयकारं सवं वापि ह्यक्षरं स्वरितं भवेत्॥१३१॥
न चोदात्तं पुरो यस्य जात्यः स्वारः स उच्यते।
इउवर्णो यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित्॥१३२॥
अनुदात्तं प्रत्यये तु विद्यात्क्षैप्रस्य लक्षणम्।
एओआभ्यामुदात्ताभ्यामकारो निहितश्च यः॥१३३॥
अकारो यत्र लुम्पति तमभिनिहितं विदुः। उदात्तपूर्वे यत्किञ्चिच्छन्दसि स्वरितं भवेत्॥१३४॥

तिरोविराम, प्रश्लिष्ट तथा अपादवृत्त को सप्तस्वर कहा गया है। इनके अलग-अलग लक्षणों का श्रवण करिये। साथ ही लक्षणों के उपरान्त उन सबके सम्यक् उदाहरण भी प्रस्तुत करूंगा। जो अक्षर 'य' तथा 'व' के साथ स्वरित हो, आगे उदात्त न हो, वह है **जात्यस्वार**। **क्षैप्रस्वार** का लक्षण यह है कि जब उदात्त 'इ' कार तथा 'उ' कार से अनुदात्त अकार के परे रहते सन्धि काल में 'य' 'व' रूपेण हो स्वरित हो जाये, तब वह क्षैप्र स्वार है। 'ए' तथा 'ओ' रूप उदात्त स्वरों के परे वकार सहित तथा अकार निहित हो (अर्थात् अनुदात्त रूपेण निपातित हो) उसका लोप जहां हो अर्थात् एकार एवं उकार में वह अनुप्रविष्ट हो जाये, वही **अभिनिहित स्वार** है। जहां छन्द में ऐसा स्वरित हो, जिसके पूर्व में उदात्त हो।।१३०-१३४।।

एष सर्वबहुस्वारस्तैरव्यञ्जन उच्यते। अवग्रहात्परं यत्र स्वरितं स्यादनन्तरम्।।१३५।।
तिरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः। इकारं यत्र पश्येयुरिकारेणैष संयुतम्।।१३६।।
उदात्तमनुदात्तेन प्रश्लिष्टं तं विचारय। स्वरे चेत्स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता।।१३७।।
एतत्पादान्तवृत्तस्य लक्षणं शास्त्रनोदितम्।
तान्यः स्वारः य जात्येन श्रुष्ट्यग्ने क्षैप्र उच्यते।।१३८।।
ते मन्वताभिनिहितस्तैरव्यञ्जन ऊतये।
तिरोविरामो विष्कभिते प्रश्लिष्टो हीन्द्रगिर्वणः।।१३९।।
पादवृत्तः कन्दविदे स्वराः सप्तैवमादयः। उच्चादेकाक्षरात्पूर्वात्स्वरं यद्यदिहाक्षरम्।।१४०।।
स्वाराणां जात्ववर्जानामेषा प्रकृतिरुच्यते।
चत्वारस्त्वादितः स्वाराः कम्पम्पुंश्फुतिशास्त्रतः।।१४१।।
उदात्ते चैकनीचे वा जुह्वोऽग्निस्तन्निदर्शनम्। इकारान्ते पदे पूर्व उकारे परतः स्थिते।।१४२।।

वह सर्वत्र बहुलता पूर्वक हो रहा स्वर **तैरव्यञ्जन** कहा जायेगा। यदि उदात्त अवग्रह हो, उसके अनन्तर स्वरित हो, तब यही **तिरोविराम** है। जहां उदात्त इकार अनुदात्त इकार से संयोजित हो, वही **प्रश्लिष्टस्वार** है। जिस स्थल पर स्वर अक्षर अकरादि में स्वरित हो तथा पूर्वपद के साथ संहिता विभक्त हो—वह **पादवृत्त स्वार** का लक्षण है, जो शास्त्रानुमोदित है। **जात्य स्वार** का उदाहरण है सजात्येन।

श्रुष्ट्यग्ने में **क्षैप्र स्वार** है। 'ते मन्वत' आदि में **अभिनिहित** स्वार जाने। ऊतये तथा वीतये इत्यादि में **तैरव्यञ्जन स्वार** है। विष्कम्भितें आदि में **तिरोविराम** कहा गया है।

हि इन्द्र गिवर्णः में **प्रश्लिष्ट स्वार** है। कन्दविन्द में **पादवृत्त स्वार** है। ये सभी मिलकर सात स्वार वर्णित हैं। जात्यस्वरों के आतिरिक्त एक पूर्ववर्त्ती उदात्त अक्षर से मरे वाले अक्षर को स्वरित कहा गया है। जो स्वरित का सामान्य लक्षण ही है। पूर्वोक्त चार स्वर उदात्त किंवा एक अनुदात्त से परे रहने की स्थिति में कम्प (शास्त्रतः) उत्पन्न करते हैं। जैसे जुह्वाग्नि। पूर्वपद इकारान्त हो बाद में उकार स्थित हो।।१३५-१४२।।

ह्रस्वं कम्पं विजानीयान्मेधावी नात्र संशयः। इकारान्ते पदे चैवोकारद्वयं परे पदे।।१४३।।
दीर्घं कम्पं विजानीयाच्छाग्धूष्विति निदर्शनम्।
त्रयो दीर्घास्तु विज्ञेया ये च सन्ध्यक्षरेषु वै।।१४४।।

मन्या पथ्या न इन्द्राभ्यां शेषा ह्रस्वाः प्रकीर्तिताः।
अनेकानामुदात्तानामनुदात्तः प्रत्ययो यदि॥१४५॥

उसे विद्वान् लोग **ह्रस्व कम्प** कहते हैं। यह निःसंदिग्ध है। यदि उकारद्वय, परे हो, तब इकारान्त पद में **दीर्घ कम्प** होगा। सैसे **'शग्ध्यूष'**। सन्ध्यक्षरों में तीन कम्प होते हैं। जैसे मान्या, पथ्या, न इन्द्राभ्याम् शेष ह्रस्व कम्प हैं। यदि अनेक उदात्तोपरान्त कोई अनुदात्त प्रत्यय हो।।१४३-१४५।।

शिवकम्पं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि।
यत्र द्विप्रभृतिनि स्युरुदात्तान्यक्षराणि तु॥१४६॥
नीचं वोच्चं च परतस्तत्रोदात्तं विदुर्बुधाः।
न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित्॥१४७॥
न च वर्गद्वितीयेषु च चतुर्थ कदाचन। चतुर्थं तु तृतीयेन द्वितीयः प्रथमेन तु॥१४८॥

तब एक उदात्त के परे रहने पर द्वितीय एवं तृतीय उदात्त को शिवकम्प कहते हैं। उसे शिवकम्प नामक आद्युदात्त कहा गया, तथापि वह उदात्त प्रत्यय होगा, तब ऐसा कहां जायेगा। जहां दो, तीन, चार प्रभृति उदात्त अक्षर हो, नीच अनुदात्त रहे, उससे पूर्व उदात्त हो, साथ ही वह पूर्व वाले उदात्तों से किंवा उदात्त से परे हो, उस स्थल पर पण्डितजन उदात्त ही माने गये हैं। रेफ तथा हकार में द्विर्भाव कदापि नहीं होता। उसमें दो रेफ किंवा दो हकार एक साथ प्रयुक्त ही नहीं होते। कवर्गादि जो वर्ग हैं, उनके द्वितीय तथा चतुर्थ अक्षर द्वित्व रहित होते हैं। वर्गस्थ चतुर्थाक्षर को तृतीयाक्षर से तथा द्वितीयाक्षर को प्रथमाक्षर से कदापि पीड़ित न करे।।१४६-१४८।।

आद्यमन्त्यं च मध्यं च स्वाराक्षरेण पीडयेत्।
अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यन्तश्च परतो यदि॥१४९॥
तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत्स्ववर्णः पूर्ववर्णयोः।
वर्गांत्यान् शषसैः सार्द्धमन्तस्थैर्वापि संयुतान्॥१५०॥
दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते अदेशिक्रमिवाध्वगाः।
तृतीयश्च चतुर्थश्च चतुर्थादिम्परं पदम्॥१५१॥

आदि (क), मध्य (ग), अन्त्य (ङ), को अपने ही अक्षर से संयुक्त करें (पीड़ित=संयुक्त)। यदि संयोग काल में अन्त्य वर्ण पहले हो तथा नकार आदि अनन्त्य वर्ण पश्चात् में हों, तब मध्य में यम अक्षर स्थित होने पर (य व र ल ञ म ङ ण न ही यम अक्षर हैं)। वे पूर्ववर्त्ती अक्षर के सवर्ण होते हैं। जैसे चोर-तस्करों को मार्ग में देखकर पथिक मार्ग से लौट जाता है, तदनुरूप पूर्ववर्त्ती श ष स तथा य र ल व से संयुक्त वर्ग के अन्त्य वर्ण को देखकर यम अक्षर निवृत्त हो जाते हैं। जब वर्ण के तृतीय तथा चतुर्थाक्षर संयुक्त हों, तब पदकाल के समय चतुर्थाक्षर से ही उत्तरपद प्रारभं होगा।।१४९-१५१।।

द्वौ तृतीयो हकारश्च हकारादिपरं पदम्।
अनुस्वारोपधामूला तान् क्वचित्क्रमतः परम्॥१५२॥

रहपूर्वं संयुते चाप्युत्तरं क्रमतेऽक्षरम्। संयोगो यत्र दृश्येत व्यञ्जनं बिरते पदे॥१५३॥
पूर्वाङ्गमादितः कृत्वा पराङ्गादो निवेशयेत्। संयोगे स्वरितं यत्र उद्घातः प्रतनं यथा॥१५४॥
पूर्वाङ्गन्तद्विजानीयाद्येनारंभः परं हि तत्।
संयोगात्तु विजानीयात्परं संयोगनायकम्॥१५५॥

जब द्वितीय, तृतीय तथा हकार का संयोग हो, तब उत्तर पद हकारादि होगा। अनुस्वार, उपध्मानीय, जिह्वामूलीय अक्षरों का दो बार उच्चारण नहीं होता, वे किसी पद में नहीं जाते। यदि पूर्व में 'र' किंवा 'ह' का संयोग हो, तब परवर्त्ती अक्षर द्वित्व हो जायेगा। जहां संयोग काल में स्वरित हो, नीचे से ऊपर जाने में तथा ऊपर से नीचे आने में स्वरित हो, वहां नीचे वाले में उच्चत्व लाकर पराङ्ग के प्रारम्भ में स्वरित का सन्निवेश किया जाये। संयोग जब विभक्त हो जाये, विरत हो जाये उस स्थिति में जो व्यंजन उत्तर पद से असंयुक्त प्रतीत हो, वही पूर्वाङ्ग है। जिस व्यंजन से उत्तर पद प्रारंभ हो, वह पराङ्ग है। संयोग से परवर्त्ती भाग को स्वर से युक्त करना चाहिये। वही उत्तम है, संयोग का नायक है।।१५२-१५५।।

संयुक्तस्य तु वर्णस्य तत्परं पूर्वमक्षरम्। अनुस्वारः पदतश्च क्रमजं प्रत्यये स्वके॥१५६॥
स्वरभक्तिस्तथारेफः पूर्वपूर्वाङ्गमुच्यते। पादादौ च पदादौ संयोगावग्रहेषु च॥१५७॥
य्यशब्द इति विज्ञेयी योऽन्यः सय इति स्मृतः।
पादादावप्यविच्छेदे संयोगान्ते च तिष्ठताम्॥१५८॥
वर्जयित्वा रहयाणामुपादेशः प्रदृश्यते। स्वसंयुक्तो गुरुर्ज्ञेयः सानुस्वाराग्रिम स्फुटः।
अत्रुशेषो ह्रिगो वापि युगलादिरविस्फुटः॥१५९॥

व्यंजन से संयुक्त वर्ण का पूर्वाक्षर स्वरित होता है। उसे स्वर बिना ही कहे। अनुस्वार, पदान्त, प्रत्यय तथा सवर्णपद जब परे हो, तब जो द्वित्व होता है तथा जो रेफरूपी स्वरभक्ति होती है, वह पूर्वाङ्ग कहा जाता है। पदादि में (पद के आदि में) पादादि में, संयोग में, अवग्रह में 'य' कार के द्वित्व का प्रयोग 'य्य' का प्रयोग करे। अन्यत्र 'य' ही रहेगा। उसका द्वित्व नहीं होगा। जब पदादि में रहने पर भी उसका विभाग न हो, किंवा संयोगान्त में स्थित र् ह् रेफविशिष्ट य को छोड़कर अन्य वर्णो का दित्वाभाव देखा जाता है। स्व संयोगयुक्त अक्षर को गुरु जाने। अनुस्वार तथा विसर्ग युक्त वर्ण गुरु होता ही है। शेष अणु अर्थात् ह्रस्व है। 'ह्रि' तथा 'गोः' में 'ह्रि' संयुक्त है। 'गोः विसर्गयुक्त है। अतः संयुक्त संयोग एवं विसर्ग में आदि अक्षर गुरुत्वयुक्त है।।१५६-१५९।।

यदुदात्तमुदात्तं तद्यत्स्वरितं तत्पदे भवेत।
यन्नीचं नीचमेव तद्यत्प्रचयस्थं तदपि नीचम्॥१६०॥
अग्निः सुतो मित्रमिदं तथा वयमयावहाः।
प्रियं दूतं घृतं चित्तमतिशब्दस्तु नीचतः॥१६१॥

उदात्त तो उदात्त ही रहेगा। जो स्वरित है, वह अनुदात्त होता है। अतः अनुदात्त भी अनुदात्त ही रहता है। प्रचयस्थ स्वर अनुदात्त हो जाता है। नाना मन्त्रगत अग्नि, सुतः, मित्रम्, इदम्, वयम्, अया, प्रियम, दूतम्, घृतम्, चित्तम, अभि, ये सभी पद अनुदात्त से प्रारंभ होते हैं।।१६०-१६१।।

अर्केष्वेव सुतेष्वेव यज्ञेषु कलशेषु च। शतेषु सपवित्रेषु नीचादुच्चार्यते श्रुतिः॥१६२॥

हारिवरुणवरेण्येषु धारापुरुषेषु स्वरतिरेफः।
विश्वानरोनकारश्च शेषास्तु स्वरिता नराः॥१६३॥

द्वो वरुणौ वस्वरित उदुत्तमन्त्वं वरुणाधार चौरुधारामुरुधारेस्वदोहते। मात्रिकं वा द्विमात्रं वा स्वर्यते यदिहाक्षरम्। तस्यादितोऽर्द्धमात्रं वै शेषं तु परतो भवेत्। अदीर्घं दीर्घत्कुर्याद् द्विस्वरं यत्प्रयुज्यते॥१६४॥

कम्पोत्स्वरिताभिगीतं ह्रस्वकर्षणमेव च।
निमेषकाला मात्रा स्याद्विद्युत्कालेति चापरे॥१६५॥

अर्थ, सुत, यज्ञ, कलश, शत, पवित्र में अनुदात्त से श्रुति का उच्चारण आरंभ करते हैं। हरि, वरुण, वरेण्य, धारा, पुरुष में रेफयुक्त स्वर स्वरित होता है। विश्वानर में नकारयुक्त स्वर स्वरित होता है। नर शब्द में रेफयुक्त स्वर स्वरित होता है। "उदुत्तमं त्वं वरुण" इत्यादि जो वरुण सम्बन्धित मन्त्रद्वय है, इनमें वकार स्वरित होता है। "उरु धारा मां कृतम्" में धारा का धारा स्वरित होता है। "उरु धारेय दोहने" में भी धाकार स्वरित होता है। यहां रेफ स्वरित नहीं माना जाता। ह्रस्व किंवा दीर्घरूप जो भी अक्षर यहां स्वरित होते हैं, उसकी आधी मात्रा उदात्त रहती है। शेष आधी मात्रा अनुदात्त मानी जाती है। जहां कम्प, उत्स्वरित तथा अभिगीत में द्विस्वर प्रयुक्त होता है, वहां ह्रस्व को दीर्घवत् करे एवं ह्रस्वाकर्षण करे। एकमात्रा का मान कतिपय विद्वानों के अनुसार पलक गिरने के समय के बराबर माना गया है, तथापि कतिपय विद्वान् इसका समय मान उतना मानते हैं, जितने में एक आकाशीय विद्युत् चमक कर अस्तमित हो जाये।।१६२-१६५।।

ऋक्स्वरा तुल्ययोगा वा कैश्चिदेवमुदीर्यते॥१६६॥

समासेऽवग्रहं कुर्यात्पदं चात्रानुसंहितम्। यतोऽक्षरादिकरणं पदान्तस्येति तं विदुः॥१६७॥

कतिपय विद्वानों के मत से "ऋ, छ किंवा श" के उच्चारण का जो काल है, वही एकमात्रा है। समास में यदि पदविच्छेद हो, तब समासपद को संहिता से युक्त ही रखना होगा। वहां जिसके द्वारा अक्षरादिकरण सम्पन्न होता है, उसे ही समास पद का अन्त्य कहा जाता है।।१६६-१६७।।

(सर्वत्रमित्रपुत्रसखिशब्दा अहिशतक्रतोरवग्राह्याः।
आदित्यविप्रजातवेदाश्च सत्पतिगोपतिबृत्रहासमुद्राश्च।
स्वरयुपुवोदेवयुवश्चाऽरतिं देवतातये) चिकितिश्चुक्रुधं चैव नावगृह्णन्ति पण्डिताः।
विवृतयश्चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम्॥१६८॥

मित्र, पुत्र, सखि, अद्रि, शतक्रतु, आदित्य, प्रजातवेद, सत्पति, गोपति, वृत्रहा एवं समुद्र शब्द को सभी स्थान पर अवग्रह योग्य कहा गया है। (अवग्रह = पदविच्छेद)। लेकिन विद्वान् लोग 'स्वर्युवः, देवयुबः, अरतिम्', देवतातये, चिकितिः, चुक्रुधम में एक ही पद है इनमें वे अवग्रह (पदविच्छेद) नहीं करते। मेरा यह मत है कि अक्षर नियोग द्वारा चार विवृती जाने।।१६८।।

अक्षराणां नियोगेन तासां नामानि मे शृणु। ह्रस्वादिवत्सानुसृता वत्सानुसारिणी चाग्रे॥१६९॥

अक्षरों के नियोग द्वारा आप उनके नामों का श्रवण करिये। वत्सानुसृता, वत्सानुसारिणी, पाकवती एवं पिपीलिका। इनमें पूर्वपद ह्रस्व एवं उत्तरपद की स्थिति दीर्घ रहती है। वह ह्रस्वादि वत्सों (बछड़ों) से अनुगत है अतः उसे **वत्सानुसृता विवृत्ति** कहा गया। जिसके पूर्वपद में दीर्घ तथा उत्तरपद में ह्रस्व हो, वह है **वत्सानुसारिणी विवृत्ति**।।१६९।।

पाकवत्युभयोर्ह्रस्वा दीर्घा वृद्धा पिपीलिकाः।
चतसृणां विवृतीनामन्तरं मात्रिकं भवेत्॥१७०॥
अर्द्धमात्रिकमन्येषामन्येषामणुमात्रिकम् ॥१७१॥

पाकवती विवृत्ति वह है, जहां उभयपद में ह्रस्व हो। **पिपीलिका विवृत्ति** में दोनों पदों में दीर्घ रहता है। एक मत से चारों विवृत्ति में एक मात्रा का अंतर है। अन्य मत से यह आधी मात्रा का अन्तर है। कुछ के मत से यह अन्तर अणुमात्र ही है।।१७०-१७१।।

आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेऽप्यनुस्वारम्।
पवेषु परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापतिम्॥१७२॥
नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परतः स्थिते। अकारं रक्तमित्याहुस्तकारेण तु रज्यते॥१७३॥
नकारान्ते पदे पूर्वे व्यञ्जनैश्च यवोहिषु। अर्द्धमात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया॥१७४॥

जिनके आदि में श ष स तथा रेफ हो, (जैसे प्रत्यय से परे होने पर 'म' अनुस्वार भावापन्न हो जाता है) य व ल परे हो, तब वही **परसवर्ण** है। स्पर्शवर्ण परे होने पर उन-उन वर्ग में यह पंचम वर्ण को प्राप्त होता है। यदि नकारान्त पद पूर्वस्थ हो अन्य स्वर परे हो, तब नकार से पूर्ववर्ती आकार से अनुरंजित होने के कारण वह रक्त कहा जाता है। नकारन्त पद पूर्वस्थ होने पर यदि य व हि व्यञ्जन परे हो, तब पूर्व की अर्द्धमात्रा, अणुमात्रा अनुरंजित कही जाती है।।१७२-१७४।।

नकारस्वरसंयुक्तश्चतुर्युक्तो विधीयते।
रेफो रङ्गश्च लोपश्च सानुस्वारोऽपि वा क्वचित्॥१७५॥
हादृयादुत्तिष्ठते रङ्गः कांस्येन तु समन्वितः।
मृदुश्चैव द्विमात्रश्च दधन्वांइति निदर्शनम्॥१७६॥
यथा सौराष्ट्रिका नारी अरां इत्यभिभाषते। एवं रङ्गः प्रयोक्तव्यो नारदैतन्मतं मम॥१७७॥

यदि पूर्व में स्वरयुक्त हलन्त नकार पदान्त में हो तथा उससे परे भी पद की स्थिति हो, तब वह चार रूप से युक्त होगा। कहीं वह रेफ होगा, कहीं रक्त होगा (रंग), कहीं वह लुप्त रहेगा, कहीं वह अनुस्वार में बदल जायेगा। रंग का उत्थान ह्रदय से होता है। कांस्य के वाद्यवत् उसकी ध्वनि होगी। वह मृदु तथा द्विमात्र अर्थात् दीर्घ भी होता है। 'दधन्वां' इत्यादि उदाहरण है। हे नारद! सौराष्ट्र की स्त्री, नारी ''अरां'' कहती है। इसी के अनुरूप रंग का प्रयोग करें। यह मेरा मत है।।१७५-१७७।।

स्वरा गडदबाश्चैव ङणनमाः सहोष्मभिः।
चतुर्णां पदजातीनां पदान्ता दश कीर्तिताः॥१७८॥

स्वरः उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च।
व्यञ्जना न तु वर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः॥१७९॥
स्वरप्रवादं त्रैस्वर्यमाचार्याः प्रतिजानते।
मणिवद्व्यञ्जनं विद्यात्सूत्रवच्च स्वरं विदुः॥१८०॥

ग ड द ब ङ ण न म ष स ये दस अक्षर पदान्त हैं। ये नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात के अन्त्य पदों में स्वर पूर्वक होते हैं। उदात्त स्वर, अनुदात्त स्वर तथा स्वरित स्वर कहीं भी हों, उनका अनुगमन व्यंजन करते हैं। आचार्य इन तीन स्वर को प्रधान कहते हैं। व्यंजन मणियां हैं। स्वर उनको गुथने वाले सूत्र हैं।।१७८-१८०।।

दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान्नृपः। दुर्बलं व्यञ्जनं तद्वद्धरेत बलवान्स्वरः॥१८१॥
उभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च। जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥१८२॥

बली राजा निर्बल के राज्य का हरण कर लेते हैं। तदनुरूप बली स्वर दुर्बल व्यंजन का हरण कर लेते हैं। ओ भाव[1], विवृत्ति[2], श[3] ष[4] स[5] र[6] , [7]जिह्वामूलीय तथा [8]उपध्मानीयरूपेण आठ उष्मागति वर्णित हैं। उष्मा (सकार) इन अष्ट भावों में बदल जाता है।।१८१-१८२।।

स्वरप्रत्यया विवृत्तिः संहितायां तु या भवेत्।
विसर्गस्तत्र मन्तव्यस्तालव्यश्चात्र जायते॥१८३॥
सन्ध्यक्षरे परे सन्धौ प्राप्तलुप्तौ यवौ यदि।
व्यञ्जनाख्या विवृत्तिस्तु स्वराख्या प्रतिसंहिता॥१८४॥
ऊष्मान्तं विरते यत्र सम्भावो भवति क्वचित्।
विवृत्तिर्या भवेत्तत्र स्वराख्यां तां विनिर्दिशेत्॥१८५॥

यद्योभावप्रसन्धानमृकारादिपरं पदम्। स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः॥१८६॥

संहिता में स्वरप्रत्यया विवृत्ति को वहां विसर्ग जानना चाहिये अथवा वहां तालव्य हो जाता है। जिसके उपधा में ए ओ ऐ औ (सन्ध्यक्षर हों) हों उस सन्धि में यदि 'य' एवं 'व' लुप्त हो गये हों, तब वहां व्यञ्जनविवृत्ति एवं स्वर नामक प्रतिसंहिता जाने। उष्मान्त विरत हो तथा सन्धि में 'व' हो, तब वहां पर स्वराविवृत्ति होगी। यदि 'ओ' भाव का प्रसन्धान हो एवं उत्तर पद ऋकारादि हो, तब वह प्रसन्धान स्वरान्त ही होगा। यदि उष्मा प्रसन्धान एतद्विपरीत हो अथवा भिन्न हो, तब उत्तरपद ऋकारादि होगा। ऐसा प्रसन्धान स्वरान्त कहलायेगा। इससे भिन्न होने वाला उष्मा प्रसन्धान कहा जाता है। यथा—"वायो ऋ" इत्यादि यहां 'ओ' भाव का प्रसन्धान मिलता है। 'क इ ह' में ऊष्मा प्रसन्धान रहता है।।१८३-१८६।।

प्रथमा उत्तमाश्चैव पदान्तेषु यदि स्थिताः।
द्वितीयं स्थानमापन्नाः शषसप्रत्यया यदि॥१८७॥
प्रथमानूष्मसंयुक्तान् द्वितीयानिव दर्शयेत्।
न चैतान्प्रतिजानीयाद्यथा मत्स्यः क्षुरोप्सराः॥१८८॥

छन्दोमानं च वृत्तं च पादस्थानं त्रिकारणभ्।
ऋचः स्वच्छन्दवृत्तास्तु पादास्त्वक्षरमानतः॥१८९॥
ऋग्वर्य्यान् स्वरभक्तिं च छन्दोमानेन निर्दिशेत्।
प्रत्ययेत सहारेफमिमीते स्वरभक्त्या॥१९०॥

जब श ष स प्रभृति परे रहें, तब यदि वर्ग का पहला अक्षर एवं वर्ग का अन्त्य अक्षर पदान्त में हो, तब उनको द्वितीय स्थान मिलेगा। उष्मसंयुक्त होने पर (सकारादि परे होने पर) जो प्रथम (तकार) आदि अक्षर हैं, उनको द्वितीय (थकार) आदि अक्षर जैसे उच्चारण किया जायेगा, लेकिन उनको इस द्वितीय रूप थकार आदि रूप न समझें। जैसे मत्स्य, क्षुरः एवं अप्सरा। लौकिक श्लोकों में छन्द ज्ञानप्रदानार्थ हेतु हैं छन्दोमान, वृत्त एवं पादस्थान, तथापि ऋचायें तो गायत्री प्रभृति छन्दों से आवृत रहती हैं। उनकी पादगणना किंवा गुरु-लघु तथा अक्षरग णना मात्र छन्दोविभाग समझने हेतु ही है। ऐसे लक्षण ही ऋचा के हों, ऐसा नियम नहीं है। पाद-अक्षर गणना पर आधारित होते हैं। लौकिक छन्दः। ऋवर्गस्थ तथा स्वरभक्तिगत रेफ उसे अक्षरान्तर जानना चाहिये। तब उनको छन्द की मात्रा एवं अक्षर गणार्थ ग्रहण करें, तथापि स्वरभक्ति में प्रत्यय तथा रेफ के साथ अक्षर गणना करनी चाहिये।।१८७-१९०।।

ऋवर्णे तु पृथग्रेफः प्रत्ययस्तु वृथा भवेत्।
विद्याल्लघुमृकारं तु यदि तृष्माणसंयुतः॥१९१॥
ऊष्मणैव हि संयुक्त ऋकारो यत्र पीड्यते।
गुरुवर्णः स विज्ञेयस्तृचं चात्र निदर्शनम्॥१९२॥
ऋषभं च गृहीतं च बृहस्पतिं पृथिव्यां च।
निर्ऋतिपञ्चमा ह्यत्र ऋकारा नात्र संशयः॥१९३॥
शषसहरादौ रेफः स्वरभक्तिर्जायते द्विपदसन्धौ।
इउवर्णाभ्यां हीना क्वचिदेकपदाक्रमवियुक्ता॥१९४॥

रेफरूप व्यञ्जन ऋवर्ण में पृथक् प्रतीत होते हैं। स्वररूप अक्षर भी पृथक् प्रतीत होता है। यदि 'ऋ' से ऊष्मा संयोग न हो, तब वह ऋकार यहां लघु अक्षर रहेगा। जहां शकार (ऊष्मा) आदि से युक्त होकर वह ऋकार से पीड़ित (युक्त) होता है, उस ऋवर्ण को ही स्वर होने पर गुरु समझे। जैसे 'तृचम्' जहां ऋकार लघु है। ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति, निर्ऋति, पृथिवी—इन पांच में निसंदिग्ध रूप से ऋकार स्वर ही है। श, ष, स, ह, र जिसके आदि में हो, उस पद में द्विपद सन्धि होने पर 'इ तथा उ' से रहित एकपदा स्वरभक्ति कही जायेगी, जो क्रमवियुक्त मानी गयी है।।१९१-१९४।।

स्वरभक्तिर्द्विधा प्रोक्ता ऋकारे रेफ एव च।
स्वरोदा व्यञ्जनोदा च विहिताक्षरर्चितकैः॥१९५॥
शषसेषु स्वरोदयां हकारे व्यञ्जनोदयाम्। शषसेषु विवृत्तां तु हकारे संवृत्तां विदुः॥१९६॥

ऋकार तथा रेफरूपेण स्वरभक्ति द्विविध है। इसमें से अक्षर विज्ञानी ऋकार को स्वरोदा तथा रेफरूपी को

व्यञ्जनोदा कह गये हैं। श, ष, स के सम्बन्ध में स्वरोदया तथा विवृता स्वरभक्ति कहते हैं। हकार के सम्बन्ध में पण्डितजन व्यञ्जनोदया तथा संवृत्ता स्वरभक्ति कहते हैं। व्यञ्जनोदया का उदाहरण ऊर्षति है तथा संवृत्ता का उदाहरण अर्हति है।।१९५-१९६।।

स्वरभक्तिं प्रयुञ्जानस्त्रीन्दोषान्परिवर्जयेत्। इकारं चाप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च॥१९७॥

संयोगपरं छपरं विसर्जनीयं द्विमात्रकं चैव।
अथ सान्तिकं च नङ्मसानुस्वारं घुटतं च॥१९८॥

जो पुरुष स्वरभक्ति प्रयुक्त करता है, वह इकार, उकार तथा ग्रस्तदोष त्यागे। जिसके परे संयोग हो, जिसके परे 'छ' हो, जो विसर्गयुक्त हो, जिसका द्विमात्रिक में (दीर्घ) में अवसान हो, अनुस्वार हो, घुटन्त हो, ये सभी लघु नहीं होते।।१९७-१९८।।

यस्याः पादः प्रथमो द्वादशमात्रस्तथा तृतीयोऽपि।
अष्टादशो द्वितीयः समापन्नः पञ्चदशमात्रः।
यस्याः लक्षणमुक्तं या त्वन्या सा स्मृता विपुला॥१९९॥

जिसका प्रथम पद तथा तृतीय पद द्वादश मात्रा का हो, वह पथ्या (आर्या) छन्द है। उसका द्वितीय पाद अष्टादश मात्रा का होता है, जो इस लक्षण से भिन्न है, वह विपुला है।।१९९।।

अक्षराणां लघुह्रस्वमसंयोगपरं यदि। तत्संयोगोत्तरं विद्याद् गुरुदीर्घाक्षराणि तु॥२००॥

विवृत्तिर्यत्र दृश्येत स्वारस्यैवाग्रतः स्थितः॥२०१॥

गुरुस्वारः सविज्ञेयः क्षैप्रस्तत्र न विद्यते। अष्टप्रकारं विज्ञेयं पदानां स्वरलक्षणम्॥२०२॥

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्। मध्योदात्तं स्वरितं द्विरुदात्तमित्येता अष्टौ पदसंज्ञाः। अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषा स्वर्वनस्पतिः। अन्तर्मध्यमयोताम्युदमनुनिपात्य आद्यात्स्वरितमुपसर्गे द्विर्नीचमाख्यात इति स्वरितात्पराणि यानि स्युर्द्धार्याक्षराणि तु। सर्वाणि प्रचयस्थान्युपोदात्तं निहन्यते॥२०४॥

अक्षर में जो ह्रस्व है, उसके परे संयोग न हो, तब उसकी संज्ञा लघु है। ह्रस्व से परे संयोग को गुरु जाने। दीर्घाक्षर को भी गुरु माने। जहां स्वर के आते ही विवृत्ति लक्षित हो, वहां गुरु स्वर है। वहां लघु रहता ही नहीं। पदों की अष्ट संज्ञा है यथा—अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीचस्वरित, मध्यौदात्त, स्वरित तथा द्विरुदात्त। ''अग्निर्वृत्राणि'' में अग्निः अन्तोदात्त है। ''सोमः पवते' में सोमः **आद्युदात्त** है। 'प्र वो ह् वम्' स्वरित है। ''वनस्पतिः'' में 'व' तथा 'स्प' दोनों उदात्त हैं। यही द्विरुदात्त है। नाम में अन्तर एवं मध्य **उदात्त** होते हैं। स्वरित से परे वाले धार्य अक्षर प्रचयस्थान हैं ('निहोता सत्सि' में (ता) स्वरित है। इससे परे 'सत्सि' धार्य अक्षर है।) स्वरित ही प्रचित जो है। यहां आदिस्वरित का निघात स्वर होगा।।२००-२०४।।

प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात्स्वरं बुधः।
स्वरितः केवलो यत्र मृदुस्तत्र निपातयेत्॥२०५॥

पञ्चविधमाचार्यकं नाम सुखं न्यासः करणं प्रतिज्ञोच्चारणा। अत्रोच्यते श्रेयः खलु वैश्याःप्रतिज्ञातोच्चारणा यस्यकस्यचिद्वर्णस्य करणं नोपलभ्यते प्रतिज्ञा तत्र वोढव्याकरणं हि तदात्मकम्॥२०६॥

तुम्बुरुभवद्विशिष्टविश्वावस्वादयश्च गन्धर्वाः।
सामसु निभृतं करणं स्वरसौक्ष्म्यान्नैव जानीयुः॥२०७॥

जहां प्रचय हो, वहां धीमान् व्यक्ति स्वर का निघात करे। मृदु स्वरित स्थल में निघात न करे। आचार्यकर्म पंचविध होता है, यथा—मुख, न्यास, करण, प्रतिज्ञा तथा उच्चारण। सप्रतिज्ञ उच्चारण उत्तम होता है। जिस किसी वर्ण का कारण जो शिक्षादिशास्त्र है, जब उपलब्ध न हो, वहां गुरु परम्परा का निर्वहन करे। यह करण (शिक्षादि) भी प्रतिज्ञा ही है। हे नारद! आप, तुम्बुरु, वसिष्ठ, विश्वावसु आदि गन्धर्वगण साम विषयक शिक्षाशास्त्र में कहे गये लक्षणों को स्वर की सूक्ष्मता के कारण नहीं हृदयगम कर सकते।।२०५-२०७।।

कौक्षेयाग्निं सदा रक्षेदश्रीपादशनं हेतुम्।
जीर्णो हारः बुद्धः खलूषसिन्ब्रह्म चिन्तयेत्॥२०८॥

शरद्विषुवतोतीतादुषस्युत्थानमिष्यते। यावद्वासन्तिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता॥२०९॥

जठर की अग्नि सदा रक्षित करे। सदा हित करने वाला आहार करे। जब भोजन पाक हो जाये, तब उषाकाल में निद्रा त्याग करे। तब ब्रह्मचिन्तन करे। शरत्कालीन विषुवयोग (जब रात्रि-दिन बराबर हों) आये, तब उसके विगत हो जाने पर जब तक वसन्त की मध्यरात्रि न हो, तब तक वेद स्वाध्यायार्थ उषाकाल में उठे।।२०८-२०९।।

आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयो। वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद्दन्तधावनम्॥२१०॥

खादिरश्च कदम्बश्च करवीरकरञ्जयोः।
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः॥२११॥

तेनास्य करणे सौक्ष्म्यं माधुर्यं चोपजायते। वर्णांश्च कुरुते सम्यक्प्राचीनौदवतिर्यथा॥२१२॥

त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच्छिष्यकः सदा। अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा॥२१३॥

आम, पलाश, अपामार्ग, शिरीष की दतुअन प्रातः मौनावस्था में करे। खैर, कदम्ब, करवीर, करंज तथा सभी कंटकयुक्त वृक्षों की काष्ठ दातौन पुण्यप्रद, है। दुग्धयुक्त वृक्षों का दन्तकाष्ठ यशप्रद होता है। दन्तकाष्ठ के उपयोग से वाणी में सूक्ष्मता होती है तथा स्वर में माधुर्य हो जाता है। इससे वर्णों का स्पष्ट उच्चारर होता है। यह प्राचीनौदवति आचार्य का कथन है। कुशल शिष्य सदा नमकयुक्त त्रिफला का भक्षण करे। यह जाठराग्नि तथा मेधाशक्ति को उद्दीप्त करता है। वर्णोच्चारण उत्तम होता है।।२१०-२१३।।

कृत्वा चावश्यकान्धर्माञ्जाठरं पर्युपास्य च।
पीत्वा मधु घृतं चैव शुचिर्भूत्वा ततो वदेत्॥२१४॥

मन्त्रेणोपक्रमेत्पूर्वं सर्वशाखास्वयं विधिः। सप्तमन्त्रानतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुत्सृजेत्॥२१५॥

सभी आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर भोजन सम्पन्न करने के उपरान्त पहले मधु तदनन्तर घृतपान करके पवित्र होकर वेदपाठ किंवा सामगान करे। प्रारंभ मन्द्रस्वर से करे। यह सर्वशाखा विधि है। सात मन्त्र का पाठ करे, तब इच्छा के अनुसार वाणी का प्रयोग करे।।२१४-२१५।।

न तां समीरयेद्वाचं न प्राणमुमरोधयेत। प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते।
स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं लुप्यते नात्र संशयः॥२१६॥

उस समय श्वास न रोकें तथा वाणी को बाधित न करे। यह विपर्यय करने से स्वरभंग होगा तथा स्वर-व्यञ्जन का माधुर्य लुप्त होगा। इसमें संशय नहीं है।।२१६।।

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णैश्च भक्षितम्।
न तस्य परिमोक्षोऽस्ति पापहेरिव किल्बिषात्॥२१७॥
सुतीर्थादागतं जग्धुं स्वाम्नातं सुप्रतिष्ठितम्।
सुस्वरेण स्ववक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजति॥२१८॥

जो दुर्जन कुतीथ से प्राप्त दग्ध अपवित्र वस्तु खा लेते हैं, उनका पाप से कभी छुटकारा नहीं होता। वे पापरूपी सर्पविष से नहीं बच पाते। (कुतीर्थ=अर्थात् जो अच्छे अध्यापक नहीं हैं। दग्ध वस्तु प्राप्ति अर्थात् निष्फल अध्ययन। तात्पर्यार्थ है, जो अशुद्ध वर्णोच्चारण की शिक्षा कुअध्यापक से पाकर वैसा उच्चारण करते हैं, वे उस भ्रष्ट अध्ययन के दोष से कभी मुक्त नहीं हो पाते)। उत्कृष्ट ज्ञानी अध्यापक से जो अध्ययन प्राप्त होता है, वह सुअभ्यास द्वारा शिष्य के अन्तर में स्थापित हो जाता है। उसके शोभन मुख से उत्तम स्वर से उच्चरित वेदब्रह्म शोभायमान हो जाता है।।२१७-२१८।।

न करालो न लंबोष्ठो न च सर्वानुनासिकः। गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति॥२१९॥
एकचित्तो निरुद्धान्तः स्नातो गानविवर्जितः।
स तु वर्णान्प्रयुञ्जीत दन्तोष्ठं यस्य शोभनम्॥२२०॥
पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति चण्डा स्तब्धाश्च ये नराः।
अलसाश्च सरोगाश्च येषां च विसृतं मनः॥२२१॥

जो व्यक्ति कराल मुख वाला, लम्बे ओठों वाला, नाक से बोलने वाला, हकला, रुधे गले वाला है, शब्दोच्चारण सम्यक्तः कैसे करेगा? एकाग्र, वशीभूत अन्तःकरण वाला, नित्य स्नात, गानवर्जित, शोभन दांत एवं ओठों वाला वह सम्यक् उच्चारण कर सकता है। पंचविध लोग विद्यालाभ नहीं कर सकते। यथा—चण्ड, स्तब्ध, आलसी, रोगी तथा चंचल मन वाले।।२१९-२२१।।

शनैर्विद्यां शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः। शनैरध्वसु वर्तेत योजनानां परं व्रजेत्॥२२२॥
योजनानां सहस्त्रं तु शनैर्याति पिपीलिका।
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥२२३॥

विद्या, अर्थोपार्जन, पर्वतारोहण शनैः-शनैः करें। मार्ग को शनैः-शनैः पार करें। शनै-शनै योजन पर्यन्त

मार्ग पार करे। चींटी धीरे-धीरे एक सहस्र योजन मार्ग पार कर लेती है, (तथापि द्रुतगति से चलने वाला गरुड़ यदि न चले तब वह एक डग भी नहीं जा सकता।।२२२-२२३।।

नहि पापहता वाणी प्रयोगान्वक्तुमर्हति।
वधिरस्येव जल्पस्य विदग्धा वामलोचना॥२२४॥
उपांशुचरितं चैव योऽधीयते वित्रसन्निव। अपि रूपसहस्रेण संदेहेष्वेव वर्तते॥२२५॥
पुस्तकप्रत्ययाधातं नाधीतं गुरुसन्निधौ। राजते न सभामध्येजारगर्भेव कामिनी॥२२६॥

जैसे वधिर पति से उसकी पत्नी चाहे कितना मधुर बोले, उस वधिर के पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा, तदनुरूप शुद्ध तथा उचित विधि से यदि उच्चारण न हो, तब वाणी अर्थों का सम्यक् बोध नहीं करा सकेगी। जो उपांशु (धीमे स्वर में) डर-डर कर अध्ययन करता है, वह भले ही उस पाठ को एक हजार बार दोहरा क्यों न ले, वह सर्वदा संदेहयुक्त ही रहेगा। गुरु के बिना केवल पुस्तक का ही अध्ययन करने से व्यक्ति की शंका निर्मूल नहीं होगी। वह विद्वानों के बीच वैसे ही शंकित रहेगा जैसे जार पुरुष का गर्भ धारण करने वाली नारी शंकित रहती है।।२२४-२२६।।

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु॥२२७॥
यत्कीटैः पांशुभिः श्लक्ष्णैर्वल्मीकः क्रियते महान्।
न तत्र बलसामर्थ्यमुद्योगस्तत्र कारणम्॥२२८॥

यदि नित्य व्यय करे, तब अंजन पर्वत का भी क्षय हो जायेगा अर्थात् अंजन पर्वत से रोज अंजन लेते रहने पर वह धीरे-धीरे चुक जाता है। दीमक तनिक-तनिक मृत्तिका संचित करके उंची से ऊंची बांबी बना लेते हैं। अतः यह देखकर मनुष्य अहर्निश अध्ययन तथा कर्त्तव्य श्रम में लगा रहे। छोटे से कीट जब महान् बांबी बना लेते हैं, तब उसमें बल कारण नहीं है। सतत् उद्योग ही इसका कारण है।।२२७-२२८।।

सहस्रगुणिता विद्यता शतशः परिकीर्तिता।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलन्निम्नमिवोदकम्॥२२९॥
हयानामिव जात्यानामर्द्धं रात्रार्द्धशायिनाम्।
नहि विद्यार्थिनां निद्रा चित्रं नेत्रेषु तिष्ठति॥२३०॥

सहस्र बार पाठ करने तथा शतावृत्ति (१०० आवृत्ति) करने से विद्या जिह्वाग्र पर स्थित हो जाती है। यह वैसा ही है, जैसे जल सदा निम्नभूमि में एकत्र हो जाता है। विद्या की इच्छा रखने वाला उच्चजाति के अश्व के समान मात्र एक प्रहर शयन करे। जो विद्यार्थी हैं, उनके नेत्रों में निद्रा अधिक नहीं ठहर पाती।।२२९-२३०।।

न भोजनबिलम्बी स्यान्न च नारीनिबन्धनः। समुद्रमपि विद्यार्थी व्रजेद्गरुडहंसवत्॥२३१॥
अहिरिव गणाद्भीतः साहित्यान्नरकादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति॥२३२॥

न शठाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीवा न च मानिनः।
न च लोकरवा दीना न च श्वः श्वः प्रतीक्षकाः॥२३३॥

विद्यार्थी अधिक समय भोजन में न लगाये। वह नारी के प्रति कदापि आसक्त न रहे। यदि विद्या समुद्र के निकट मिले, तो वहां भी विद्यापार्जन हेतु गरुड़ एवं हंस की गति से चला जाये। वह जनसमूह से वैसे ही डरे जैसे व्यक्ति सर्प से डरता है। शृंगारिक चर्चा, व्यर्थ मित्रता उसके लिये नरकवत् हैं। जो विद्यार्थी स्त्रियों का त्याग राक्षसी की तरह करता है, वह विद्यावान् हो जाता है। दुष्ट लोग धन तथा विद्यालाभ नहीं कर पाते। नपुंसक बुद्धि (डरपोक) गर्वित लोग भी सफल नहीं हो पाते। जो लोकापवाद से भयभीत रहने वाले, लोकनिन्दित तथा भाग्य का आसरा देखने वाले हैं, जो सर्वदा कार्य आज न करके कल पर टालते हैं, उनको कदापि विद्यालाभ नहीं होता।।२३१-२३३।।

यथा खनन्खनित्रेण भूतलं वारि विन्दति। एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥२३४॥
गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा। अथवा विद्यया विद्या ह्यन्यथा नोपपद्यते॥२३५॥
शुश्रूषारहिता विद्या यद्यपि मेधागुणैः समुपयाति।
वन्ध्येव यौवनवती न तस्य साफल्यवती भवति॥२३६॥
इति दिङ्मात्रमुद्दिष्टं शिक्षाग्रन्थं मया तव।
ज्ञात्वा वेदाङ्गमाद्यं तु ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२३७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।
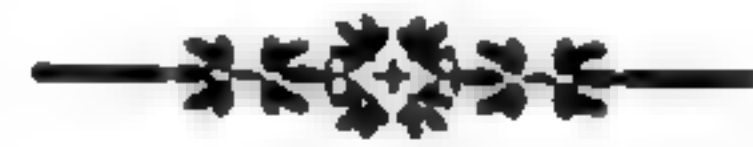
जैसे खोदने वाला कुदाल से खोदता हुआ भूतलस्थ जल पा लेता है, तदनुरूप गुरु सुश्रूषा निरत शिष्य गुरुगत विद्या का लाभ करता है। विद्यालाभ गुरु सेवा तथा सम्पत्ति दान एवं विद्या के आदान-प्रदान से होता है। विद्यालाभ का अन्य कोई साधन है ही नहीं। जो विद्या गुरु सेवा के बिना अपनी निजी मेधा से मिल जाती है, वह वन्ध्या युवती के समान फलप्रसव नहीं कर पाती। अतः निष्फल होती है। मैंने संक्षेपतः शिक्षाशास्त्र का वर्णन कर दिया। इस आद्यवेदान्त का ज्ञाता ब्रह्मज्ञान लाभ करेगा।।२३४-२३७।।

नोट : *इस अध्याय को कोई भी इस अनुवाद को पढ़कर नहीं समझ सकता। इसके एक-एक श्लोक का अध्ययन गुरु से करना होगा। वे ही इसे उदाहरण से समझा सकते हैं। यहां अनुवाद मात्र से अध्येता को वास्तविकता का लाभ नहीं हो सकता।*

।।५०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वेद के द्वितीय अंग कल्प का वर्णन, गणपतिपूजन, ग्रहशान्ति एवं श्राद्ध निरूपण

सनन्दन उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि कल्पग्रन्थं मुनीश्वर। यस्य विज्ञानमात्रेण स्यात्कर्मकुशलो नरः॥१॥
नक्षत्रकल्पो वेदानां संहितानां तथैव च। चतुर्थः स्यादाङ्गिरसः शान्तिकल्पश्च पञ्चमः॥२॥
नक्षत्राधीश्वराख्यानं विस्तरेण यथातथम्। नक्षत्रकल्पे निर्दिष्टं ज्ञातव्यं तदिहापि च॥३॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे मुनीश्वर! अब मैं कल्पग्रंथ को कहता हूं। इसे जानने मात्र से व्यक्ति कर्मकुशल हो जाते हैं। कल्प पंचविध हैं—नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प, आंगीरसकल्प तथा शान्तिकल्प। **नक्षत्रकल्प** में नक्षत्रों के अधीश्वरों का आख्यान विस्तार पूर्वक यथायथ वर्णित है। उसी का यहां वर्णन कर रहा हूं। यह सभी ब्राह्मणों हेतु ज्ञातव्य है।।१-३।।

वेदकल्पे विधानं तु ऋगादीनां मुनीश्वर।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्ध्यै प्रोक्तं सविस्तरम्॥४॥
मन्त्राणामृषयश्चैव छन्दांस्यथ च देवताः। निर्दिष्टाः संहिताकल्पे मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥५॥
तथैवाङ्गिरसे कल्पे षट्कर्माणि सविस्तरम्। अभिचारविधानेन निर्दिष्टानि स्वयम्भुवा॥६॥
शान्तिकल्पे तु दिव्यानां भौमानां मुनिसत्तम।
तथान्तरिक्षोत्पातानां शान्तयो ह्यदिताः पृथक्॥७॥
संक्षेपेणैतदुद्दिष्टं लक्षणं कल्पलक्षणे। विशेषः पृथगेतेषां स्थितः शङ्खान्तरेषु च॥८॥

हे मुनीश्वर! **वेदकल्प** में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि हेतु ऋक्, यजुः तथा सामादि वेद विधान वर्णित है। यह विस्तार से कथित है। तत्वद्रष्टा मुनिगण ने **संहिताकल्प** में मन्त्र के ऋषि, छन्दः तथा देवता का वर्णन किया गया है। **आंगीरस कल्प** में विस्तार से षट्कर्म वर्णन है। उसमें स्वयम्भु ब्रह्मा ने अभिचारादि का विधान विस्तार से कहा है (षट्कर्म—मारण-मोहन-उच्चाटनादि षट्कर्म)। हे मुनिवर! शान्तिकल्प में दिव्य-भौम, अन्तरिक्ष के उत्पातों की शान्ति का उल्लेख है। इस प्रकार कल्प तथा लक्षण मैंने संक्षेप में कह दिया। इसके सम्बन्ध में विस्तृत रूप से अन्य शाखाओं में वर्णित है।।४-८।।

गृह्यकल्पे तु सर्वेषामुपयोगितयाऽधुना। वक्ष्यामि ते द्विजश्रेष्ठ सावधानतया शृणु॥९॥
ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गल्यकाविमौ॥१०॥

हे द्विजप्रवर! अब मैं सभी के उपयोगार्थ एवं उपकारार्थ गुह्यकल्प का वृत्तान्त कहता हूं, जो अतीव

उपयोगी है। सावधानी से उसका श्रवण करें। सृष्टि के आदि के समय ब्रह्मा ने दो शब्द ओंकार तथा अथ शब्द कहा। ये दोनों उनके कण्ठ का भेदन करके निकले थे। अतएव मंगलकारक हैं।।९-१०।।

कृत्वा प्रोक्तानि कर्माणि तदूर्द्धानि करोति यः।
सोऽथशब्दं प्रयुञ्जीत तदानन्त्यार्थमिष्यते॥११॥
कुशाः परिसमूहाय व्यस्तशाखाः प्रकीर्तिताः।
न्यूनाधिका निष्फलाय कर्मणोऽभिमतस्य च॥१२॥
कृमिकीटपतङ्गाद्या भ्रमन्ति वसुधातले। तेषां संरक्षणार्थाय प्रोक्तं परिसमूहनम्॥१३॥
रेखाः प्रोक्ताश्च यास्तिस्त्रः कर्तव्यास्ताः समा द्विज।
न्यूनाधिका न कर्त्तव्या इत्येव परिभाषितम्॥१४॥

जो अपने कल्प में कहे गये कर्म कर्मों को सम्पन्न करके और आगे के कर्म करने का इच्छुक है, वह 'अथ' का प्रयोग करे। इससे अनन्त फललाभ होता है। व्यक्ति परिसमूहन कार्य हेतु परिगणित कुशों की शाखा निर्मित करे। इसमें कमी अथवा बहुलता जो करता है, उसके कृत कर्मों में निष्फलता जाती है, जो कीट-पतंगादि पृथिवी पर भ्रमण करते हैं, उनके संरक्षणार्थ परिसमूहन कार्य कहा गया है। हे द्विज! जिन तीन रेखा को लिखने का विधान है, वह तीनों सम हो। वे न्यूनाधिक न हों। यह शास्त्राज्ञा है।।१०-१४।।

मेदिनी मेदसा व्याप्ता मधुकैटभदैत्ययौः। गोमयेनोपलेप्येयं तदर्थमिति नारद॥१५॥
वन्ध्या दुष्टा च दीनाङ्गी मृतवत्सा च या भवेत्।
यज्ञार्थं गोमयं तस्या नाहरेदिति भाषितम्॥१६॥
ये भ्रमन्ति सदाऽऽकाशे पतङ्गाद्या भयङ्कराः। तेषां प्रहरणार्थाय मतं प्रोद्धरणं द्विज॥१७॥
स्त्रुवेण च कुशेनापि कुर्यादुल्लेखनं भुवः।
अस्थिकण्टकसिद्ध्यर्थं ब्रह्मणा परिभाषितम्॥१८॥
आपो देवगणाः सर्व तथा पितृगणा द्विज।
तेनाद्भिरुक्षणं प्रोक्तं मुनिभिर्विधिकोविदैः॥१९॥

हे नारद! यह धरती दैत्य-मधु-कैटभ की वसा से निर्मित है। अतः पहले गोबर के लेप से उसकी शुद्धि करनी चाहिये। लेकिन जो गौ वन्ध्या, दुष्टा, दुर्बल, मृतवत्सा हो ऐसी गौ का गोबर यज्ञकार्यार्थ वर्जित है। हे द्विज! जो भयानक कीट-पतंगादि सर्वत्र आकाश में उड़ते हैं, उनको भगाने हेतु प्रोद्धरण क्रिया करे। ब्रह्मा ने कहा कि अस्थि-कण्टकादि से पृथिवी के शोधनार्थ वहां कुश जल तथा स्त्रुव से धरती पर रेखा खींचना करना होगा। हे द्विज! समस्त देवगण तथा पितृगण जलरूप हैं। तभी उनका जलसिंचन करे। यह मुनिगण का उपदेश है।।१५-१९।।

अग्नेरानयनं प्रोक्तं सौभाग्यस्त्रीभिरेव च।
शुभदे मृण्मये पात्रे प्रोक्ष्याद्भिस्तं निधापयेत्॥२०॥

अमृतस्य क्षयं दृष्ट्वा ब्रह्माद्यैः सर्वदैवतैः। वेद्यां निधा पतस्तस्मात्समिद्गर्भो हुताशनः॥२१॥

दक्षिणस्यां दानवाद्याः स्थिता यज्ञस्य नारद।
तेभ्यः संरक्षार्थाय ब्रह्माणं तद्दिशि न्यसेत्॥२२॥

शुभप्रद पवित्र मृत्तिका पात्र में सौभाग्यशाली स्त्री अग्नि लाये। सर्वाग्र में उस अग्नि को जल से प्रोक्षित करे (जल छिड़कें) तदनन्तर अग्निकुण्ड में अग्नि रखे। ब्रह्मादि सभी देवता ने जब अमृत का क्षय होते देखा था, तब उन्होंने समिध्युक्त वेदी में अग्नि स्थापित किया। हे नारद! यज्ञ के दक्षिण भाग में राक्षस एवं दानवादि का निवास होता है। उनसे संरक्षणार्थ उस दिशा में ब्रह्मा को स्थापित करे।।२०-२२।।

उत्तरे सर्वपात्राणि प्रणीताद्यानि पश्चिमे। यजमानः पूर्वतः स्युर्द्विजाः सर्वेऽपि नारद॥२३॥

द्यूते च व्यवहारे च यज्ञकर्मणि चेद्भवेत्।
कर्तोदासीनचित्तस्तत्कर्म नश्येदिति स्थितिः॥२४॥
ब्रह्माचार्यौ स्वशाखौ हि कर्त्तव्यौ यज्ञकर्मणि।
ऋत्विजां नियमो नास्ति यथालाभं समर्चयेत्॥२५॥

हे नारद! सभी पात्रों को उत्तर में रखे तथा वहीं प्रणीता पात्र भी स्थापित करे। वेदी से पश्चिम दिशा में यजमान रहे। पूर्व में सभी द्विज रहें। द्यूत, व्यवहार तथा यज्ञकर्म में जो कर्त्ता उदासीनता रखता है, उसका कर्म नाश हो जाता है। यज्ञ में जो ब्राह्मण ब्रह्मा तथा आचार्य हो, वह स्वशाखा का हो। ऋत्विक् हेतु कोई नियम नहीं है। उनको यथालाभ चुनकर उनकी अर्चना करे।।२३-२५।।

द्वे पवित्रे त्र्यंगुले सतः प्रोक्षिणी चतुरङ्गुला।
आज्यस्थाली त्र्यङ्गुलाथ चरुस्थाली षडङ्गुला॥२६॥

द्वयङ्गुलं तूपयमनमेकं सम्मार्जनाङ्गुलम्। स्रूवं षडङ्गुल प्रोक्तं स्रुचं सार्द्धत्रयाङ्गुलम्॥२७॥

दो अंगुल की पवित्र हो, प्रोक्षणी चतुरंगुल हो, आज्यस्थाली तीन अंगुल, चरुस्थाली छः अंगुल, उपयमन कुशा दो अंगुल, सम्मार्जन कुश एक अंगुल हो। स्रुवा छः अंगुल का हो, परन्तु कुछ विद्वान् कहते हैं कि वह साढ़े तीन अंगुल ही हो।।२६-२७।।

प्रादेशायात्राः समिधः पूर्णपात्रं षडङ्गुलम्। प्रोक्षिण्या उत्तरे भागे प्रणीतापात्रमष्टभिः॥२८॥

यानि कानि च तीर्थानि समुद्राः सरितस्तथा।
प्रणीतायां समासन्नास्तस्मात्तां पूरयेज्जलैः॥२९॥

समिध् एक बित्ते का हो। पूर्णपात्र यदि छः अंगुल हो, तब उत्तम है। आठ अंगुल माप का प्रणीत, प्रोक्षणी से उत्तर दिक् में रखे। समस्त तीर्थ, समुद्र, नदियां प्रणीता पात्र में रहते हैं। अतः प्रणीता को जलपूर्ण करे।।२८-२९।।

वेदिका वस्त्रहीना च नग्ना सम्प्रोच्यते द्विज।
परिस्तीर्य्य ततो दर्भैः परिदध्यादिमां बुधः॥३०॥

इन्द्रवज्रं विष्णुचक्रं वामदेवत्रिशूलकम्। दर्भरूपतया त्रीणि पवित्रच्छेदनानि च॥३१॥
प्रोक्षणी च प्रकर्तव्या प्रणीतोदकसंयुता। तेनातिपुण्यदं कर्म पवित्रमिति कीर्तितम्॥३२॥
आज्यस्थाली प्रकर्तव्या पलमात्रप्रमाणिका।
कुलालचक्रघटितं आसुरं मृण्मयं स्मृतम्॥३३॥
तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत्।
स्त्रुवे च सर्वकर्माणि शुभान्यप्यशुभानि च॥३४॥

हे द्विज! वस्त्र रहित वेदी को नग्न कहते हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वहां वेदी को कुश बिछा कर ढांके। इन्द्र का वज्र, विष्णु का चक्र, वामदेव का त्रिशूल, ये तीनों दर्भरूप हैं। ये पवित्रच्छेदन होते हैं। (कुशरूपेण होते हैं)। प्रोक्षणी को प्रणीता जल से युक्त करे। ऐसा कर्म पवित्र तथा पुण्यदायक होता है। पलमात्र प्रमाण की आज्यस्थाली हो। कुम्हार चक्र निर्मित मृत्पात्र आसुर कहा जाता है। हस्तनिर्मित मृत्पात्र दैविक माना गया है। स्रुवा में शुभ तथा अशुभ सर्वकर्म रहते हैं।।३०-३४।।

तस्य चैव पवित्रार्थं वह्नौ तापनमीरितम्। अग्रे धृतेन वैधब्ये मध्ये चैव प्रजाक्षयः॥३५॥
मूले च म्रियते होता तस्माद्धार्यं विचार्य तत्।
अग्निः सूर्यश्च सोमश्च विरिञ्चिरनिलो यमः॥३६॥
स्त्रुवे षडेते देवास्तु प्रत्यङ्गुलमुपाश्रिताः।
अग्निर्भोगार्थनाशाय सूर्यो ब्याधिकरो भवेत्॥३७॥
निष्फलस्तु स्मृतः सोमो विरिञ्चिः सर्वकामदः।
अनिलो वृद्धिदः प्रोक्तो यमो मृत्युप्रदो मतः॥३८॥
सम्मार्जनोपयमनं कर्त्तव्यं च कुशद्वयम्। पूर्वं तु सप्तशाखं स्यात्पञ्चशाखं तथापरम्॥३९॥

उन सब को पवित्र करने के लिये अग्नि पर तप्त करे। यह विधान कहा गया है। जो स्रुवा का अग्रभाग पकड़ कर कर्म करता है, उससे स्वामिनाश, मध्य में पकड़कर कर्म करने पर पुत्रनाश तथा मूल पकड़कर कर्म करने से होता का निधन हो जाता है। अतः सम्यक् विचार द्वारा स्रुवा पकड़े। स्रुवा में प्रति एक अंगुल पर क्रमशः अग्नि, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, वायु तथा यम रहते हैं। अग्नि भोगार्थनाशक, सूर्य रोगोत्पादक, सोम निष्फलतादायक, ब्रह्मा सर्वकामप्रद होते हैं। वायु श्रीवर्द्धक एवं यम मृत्यु दाता हैं। (अतः स्रुवा को मूल की ओर से मापे तथा चौथे अंगुल पर वायु रहते हैं, जो सर्वकामप्रदाता एवं श्रीवर्द्धक हैं)। सम्मार्जन एवं उपयमन नामक कुशद्वय निर्मित करे। पहला सप्तशाखा वाला, द्वितीय पंचपत्रात्मक रहे।।३५-३९।।

श्रीपर्णी च शमी तद्वत्खदिरश्च विकङ्कतः।
पलाशश्चैव विज्ञेयाः स्त्रुवे चैव तथा स्त्रुचि॥४०॥
हस्तोन्मितं स्त्रुवं शस्तं त्रिंशदाङ्गुलिकं स्त्रुचम्।
विप्राणां चैतदाख्यातं ह्यन्येषामङ्गुलोनकम्॥४१॥

यह स्रुवा तथा स्रुक् गंभारी, शमी, खैर, विकंकत तथा पलाश काष्ठ का हो। स्रुवा यज्ञकर्त्ता के हाथ से एक हाथ का हो तथा स्रुक् तीस अंगुल का उत्तम वर्णित है। जो यजमान ब्राह्मण हो, उसके लिये यह विधान है। क्षत्रिय-वैश्य हेतु एक अंगुल का प्रमाण कहा गया है (?)।।४०-४१।।

शूद्राणां पतितानां च खरादीनां च नारद।
दृष्टिदोषविनाशार्थं पात्राणां प्रोक्षणं स्मृतम्।।४२।।
अकृते पूर्णपात्रे तु यज्ञच्छिद्रं समुद्भवेत्। तस्मिन्पूर्णीकृते विप्र यज्ञसंपूर्णता भवेत्।।४३।।

जो दृष्टिदोष यज्ञसामग्री आदि पर शूद्र, पतित तथा गर्दभ आदि पशुओं की दृष्टि पड़ने से हो जाता है, उसे दूर करने हेतु इन पात्रों पर जल छिड़कें। पूर्णपात्र को जो नहीं रखता, उसका यज्ञ दोषपूर्ण हो जाता है। इसे 'यज्ञछिद्र' कहा गया है। अतः पूर्णपात्र को भरकर रखना आवश्यक है। हे विप्र! इससे यज्ञ में सम्पूर्णता आती है।।४२-४३।।

अष्टमुष्टिर्भवेत्किंचित्पुष्कलं तच्चतुष्टयम्। पुष्कलानि तु चत्वारि पूर्णपात्रं विदुर्बुधाः।।४४।।
होमकाले तु सम्प्राप्ते च दद्यादासनं क्वचित्।
दत्तेऽतृप्तो भवेद्वह्निः शापं दद्याच्च दारुणम्।।४५।।
आघारौ नासिक प्रोक्तौ आज्यभागौ च चक्षुषी।
प्राजापत्यं मुखं प्रोक्तं कटिर्व्याहृतिभिः स्मृता।।४६।।
शीर्षहस्तौ च पादौ च पञ्चवारुणिमीरितम्।
तथा स्विष्टकृतं विप्र श्रोत्रे पूर्णाहुतिस्तथा।।४७।।

आठ मुट्ठी माप को किंचित् कहते हैं। चार किंचित् का एक पुष्कल होता है। चार पुष्कल माप का पूर्णपात्र कहा गया है। होमकाल में कहीं आसन प्रदान न करे। ऐसा करने पर अग्नि अतृप्त रहकर शाप प्रदान करते हैं। आधार ही अग्नि की नासिका है। (अर्थात् घृताहुति प्रदान करना आधार है, वही नासिका है) आज्यभाग-अग्नि के नेत्र, प्राजापत्य उनका मुख, व्याहृति कटिभाग, पंचवारुणी उनका शिरोभाग, हाथ तथा पैर हैं। हे विप्र! अग्नि के कान हैं स्विष्टकृत् तथा पूर्णाहुति!।।४४-४७।।

द्विमुखं चैकहृदयं चतुःश्रोत्रं द्विनासिकम्।
द्विशीर्षकं च षणनेत्रं पिङ्गलं सप्तजिह्वकम्।।४८।।
सव्यभागे त्रिहस्तं च चतुर्हस्तञ्च दक्षिणे।
स्रुक्स्रुवौ चाक्षमाला च या शक्तिर्दक्षिणे करे।।४९।।
त्रिमेखलं त्रिपादं च घृतपात्रं द्विचामरम्। मेषारूढं चतुःशृङ्गं बालादित्यसमप्रभम्।।५०।।
उपवीतसमायुक्तं जटाकुण्डलमण्डितम्। ज्ञात्वैवमग्निदेहं तु होमकर्मसमाचरेत्।।५१।।

अग्नि देवता का रूप यह है। वे द्विमुख, एक हृदय वाले, चार कर्ण तथा दो नासा युक्त हैं। उनके शिर दो हैं। नेत्र छः हैं। नेत्र पिंगल हैं। जिह्वा सात है। बायीं ओर तीन हाथ हैं, दाहिनी ओर चार हाथ हैं। दाहिने चार

हाथों में क्रमशः स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला तथा शक्ति है। वे तीन मेखला, तीन चरण युक्त हैं। उन्होंने (संभवतः बायें तीन हाथों में) घृत पात्र तथा दो चवर धारण किया है। वे चतुःशृंग भेड़े पर आसीन रहते हैं। वे बालसूर्यवत् प्रभावान् एवं यज्ञोपवीतधारी एवं जटा-कुण्डल से मण्डित हैं। अग्निदेव की देह को जानकर तब होमकर्म करे।।४८-५१।।

पयो दधि घृतं चैव स्नेहपक्वं तथैव च। जुहुयाद्यस्तु हस्तेन स विप्रो ब्रह्महा भवेत्।।५२।।
यदन्नं पुरुषोऽश्नाति तदन्नं तस्य देवताः। सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं हविर्मतम्।।५३।।

दुग्ध, दधि तथा घृत, तैल से पक्व वस्तु को हाथ से उठाकर होम न करे। ऐसा विप्र ब्रह्महत्यारा होता है। (ब्रह्महत्या पापभागी होता है)। जो अन्न मनुष्य भक्षण करता है, वही देवता भी ग्रहण करते हैं, तथापि समस्त कामना की पूर्ति हेतु तिलयुक्त हवि उत्तम है।।५२-५३।।

होमे मुद्रात्रयं प्रोक्तं मृगी हंसी च सूकरी।
अभिचारे सूकरी स्यान्मृगी हंसी शुभात्मके।।५४।।
सर्वाङ्गुलीभिः क्रौडी स्याद्धंसी मुक्तकनिष्ठिका।
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्मृगी मुद्रा प्रकीर्तिता।।५५।।
पूर्वप्रमाणयाहुत्या पञ्चाङ्गुलिगृहीतया। दधिमध्वाज्यसंयुक्तै ऋत्विग्भिर्जुहुयात्तिलैः।।५६।।

होमार्थ मृगी, हंसी तथा शूकरी नामक मुद्रात्रय विहित है। अभिचारार्थ शूकरी मुद्रा ग्रहण करे। शुभ कर्म हेतु मृगी एवं हंसी मुद्रा विहित है। समस्त उंगलियों को मिलना शूकरी मुद्रा है। मध्यमा, अनामिका तथा अंगुष्ठ को एकत्र मिलाना मृगी मुद्रा है। केवल इसमें कनिष्ठा को न मिलाये, तब वह हंसी मुद्रा कही जाती है। ऋत्विक को चाहिये कि पूर्वोक्त प्रमाण के अनुरूप पांचों उंगलियों से लेकर दधि, मधु, घृतयुक्त तिल से होम करे।।५४-५६।।

कुशास्त्वनामिकासक्ताः कार्याः स्युः पुण्यकर्मणि।।५७।।
विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजतः। गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा।।५८।।
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोध मे। स्वमेव गाहतेत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति।।५९।।
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति। अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्टैः सहैकत्रावतिष्ठते।।६०।।

पुण्य कर्म हेतु कुश को अनामिका से युक्त रखे। विनायक को कर्म विघ्न-विनाशार्थ गणों का आधिपत्य रुद्र तथा ब्रह्मा ने प्रदान किया। उनके द्वारा जो विघ्न उत्पन्न होते हैं, उसका श्रवण करिये। विनायक के असन्तुष्ट होने पर व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को जल में डूबता देखता है। तदनन्तर काषाय वस्त्र पहने व्यक्ति तथा मुण्डित लोगों को देखता है। वह स्वप्न में कच्चा मांस खाने वाले गृध्र आदि पर स्वयं को आरूढ़ देखता है। वह कहीं एक साथ अन्त्यज, गर्दभ तथा उष्ट्र के मध्य में स्थित देखता है।।५७-६०।।

व्रजन्नपि तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः। विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः।।६१।।
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः। कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमङ्गना।
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा।।६२।।

वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चापि कृषीबलः।
स्नपने तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्।
गौरसर्षपकल्केन स्वस्ति वाच्या द्विजैः शुभाः॥६३॥

उसे लगता है कि चलते समय उसके पीछे-पीछे कुछ लोग उसका अनुसरण कर रहे हैं। वह विमन सा रहता है। उसके सर्वकार्य विफलीभूत हो जाते हैं। वह असफल ही रहता है। राज्यपुत्र को राज्य नहीं मिलता, स्त्री को गर्भ नहीं रहता, कुमारी को पतिलाभ नहीं होता। श्रोत्रिय को आचार्यत्व, विद्यार्थी को विद्या, वणिक् को वाणिज्य लाभ, किसान को खेती से लाभ नहीं हो पाता। ऐसा व्यक्ति पुण्यतिथि में अपना अभिषेक करे। वह श्वेत सरसों के काढ़े से अभिषिक्त होकर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराये।।६१-६३।।

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्घ्रदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धान् गुग्गुलं चाशु निक्षिपेत्॥६४॥
पात्र्यात्हृता ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात्।
चर्मण्यानुडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं ततः॥६५॥
सहस्त्रांक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्याः पुनन्तु ते॥६६॥

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः। भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥६७॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तुदन्तु सर्वदा॥६८॥
स्नानस्य सार्षपं तैलं स्त्रुवेणौदुम्बरेण तु। जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्सब्येन परिगृह्य च॥६९॥

मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥७०॥

वह व्यक्ति अश्वशाला, गजशाला, दीमक की बांबी, नदी संगम तथा तालाब की मिट्टी लाकर मिलाये। उसमें गोरोचन, गन्ध, गुग्गुलु मिश्रित करे। एक जैसे चार कलसों में जल लेकर प्रत्येक कलस के जल में उपरोक्त मिश्रण मिलायें। तदनन्तर लाल उडुह के चर्म पर भद्रासन लगाकर उस पर इस मन्त्र से जल छिड़कना चाहिये। मन्त्र वह है, जो मूल में अंकित श्लोक ६६ है। तत्पश्चात् श्लोक ६७ तथा ६८ (मूलोक्त) पढ़ते हुये जल से अभिषेक करे। इसके पश्चात् गूलर काष्ठ से निर्मित स्त्रुवा तथा कुश को दाहिने हाथ में लेकर "मिताय स्वाहा संमिताय स्वाहा, शालाय स्वाहा, कंटकटाय स्वाहा, कूष्माण्डाय स्वाहा, राजपुत्राय स्वाहा" द्वार उस अभिषेक युक्त व्यक्ति के शिर पर स्त्रुवा से सरसों का तेल एक-एक मन्त्र से एक-एक बार छोड़े। (यह भी एक प्रकार का होम है)।।६४-७०।।

नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः। दद्याच्चतुष्पथे सूर्य्ये कुशनास्तीर्य्य सर्वतः॥७१॥
कृता कृतांस्तण्डुलीश्च पललौदनमेव च। मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु॥७२॥
पुष्पं चित्रं सुगन्धं च सुराञ्च त्रिविधामपि। मूलकं पूरिकापूपांस्थैवोटस्त्रजोऽपि च॥७३॥

दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम्। एतान्सर्वानुपाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः॥७४॥
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम्। दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम्॥७५॥
रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे॥७६॥
उपस्थाय शिवां दुर्गमुमापतिमथार्चयेत्। धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः॥७७॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि॥७८॥

इसके पश्चात् यजमान को चाहिये कि वह चतुष्पथ पर तथा मदार वृक्ष पर कुश फैलाये। उनको नमस्कार करके नामोच्चारण तथा नाम तथा बलिमत्र से बलि प्रदान करे। वहां मांस, भात, मत्स्य का पक्व मांस की बलि प्रदान करे। नाना प्रकार के पुष्प, तीन तरह की सुरा, मूली, पूड़ी, मालपुआ, धूप, माला, दधियुक्त अत्र, पायस, गुड़, पिष्टक मोदक लाकर रखे तथा पृथिवी पर शिर रखकर (दण्डवत् करके) विनायक, गौरी की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अंजलि में दूर्वा, सरसों तथा पुष्प रखकर इस मन्त्र से अंजलि अर्पित करे। "हे भगवती! आप मुझे रूप, यश, पुत्र, धन दीजिये। सभी कामना पूर्ण करिये।" एवंविध पूजनोपरान्त भगवान् शिव की पूजा धूप, दीप, गन्ध,माला तथा सुगन्धित लेप से करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराये। तब एक जोड़ी वस्त्र गुरु को देना चाहिये।।७१-७८।।

एवं विनायकं पूज्य ग्रहाँश्चैव प्रपूजयेत्।
श्रीकामः शान्तिकामो वा पुष्टिवृद्ध्यायुर्वीर्य्यवान्॥७९॥
सूर्य्यः सोमो महीपुत्रो बुधो जीवो भृगुः शनिः।
राहुकेतू नवाप्येते स्थापनीया ग्रहाः क्रमात्॥८०॥
ताम्रकाद्रजताद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादपि। हेम्नो रजतादयसः सीसात्कार्या शुभाप्तये॥८१॥
स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गन्धैर्मण्डलकेषु च। यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च॥८२॥
गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः। कर्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम्॥८३॥

एवंविध विनायक की अर्चना के पश्चात् ग्रहों की पूजा करे। श्री, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि तथा आयुकामी पराक्रमी मनुष्य नवग्रह पूजा अवश्य सम्पत्र करे। सूर्य की ताम्र से, सोम की चांदी से, मंगल की रक्तचन्दन से, बुध की स्वर्ण से, बृहस्पति की हेम से, शुक्र की रजत से, शनि की लौह से, राहु की एव केतु की प्रतिमा सीसा धातु से निर्मित करे अथवा किसी वस्त्रखण्ड पर स्वर्ण किंवा गन्धमय मण्डल लिखकर उसमें ग्रहाकृति बनाये। जिस ग्रह का जो वर्ण है, तदनुरूप वस्त्र, पुष्प, गन्ध, वलय, धूप तथा गुग्गुलु अर्पित करे। प्रत्येक देवता के उनके अपने मन्त्र द्वारा उनको चरु देनी चाहिये।।७९-८३।।

आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत्।
उद्बुध्यस्वाति यदर्यर्णस्तथैवान्नात्परिस्रुतः॥८४॥
शन्नोदेवीस्तथा काण्डात्केतुं कृण्वन्नकेतवः॥८५॥
अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथपिप्पलः।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्॥८६॥

ग्रह मन्त्र इस प्रकार हैं—

सूर्य — आकृष्णेन रजसा, इत्यादि।
चन्द्र — इमं देवा, इत्यादि।
मंगल — अग्निर्मूद्धां दिवः ककुत्, इत्यादि।
बुध — उद् बुध्यस्व, इत्यादि।
बृहस्पति — बृहस्पतये अतियदर्य, इत्यादि।
शुक्र — अन्नात्परि स्नुतः, इत्यादि।
शनि — शन्नो देवि, इत्यादि।
राहु — कांडात् इत्यादि।
केतु — केतु कृण्वन्नकेतवः इत्यादि।

मदार (सूर्य), पलाश (चन्द्र), खैर (मंगल), अपामार्ग (बुध), गूलर (बृहस्पति), शमी (शनि), दूर्वा (राहु), कुश (केतु) की समिध् हैं।।८४-८६।।

एकैकस्मादष्टशतमष्टाविंशतिरेव च। होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा पुनः॥८७॥
गुडौदनं पायसं च हविष्यंक्षीरषाष्टिकम्। दध्योदनं हविश्चूर्णं माषं चित्रान्नमेव च॥८८॥

दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं बुधः।
शक्तितोऽपि यथा लाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥८९॥
धेनुःशङ्खस्तथाऽनड्वान्हिमवासो हयः क्रमात्।
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः स्मृताः॥९०॥

एक-एक ग्रह का उनकी समिध् से होम करे। १०८ बार अथवा २८ बार मधु-घृत-दधि-दुग्ध आदि से होम करे। तदनन्तर गुड, चावल, पायस, हविष्य, क्षीरपिष्टक (दूध मिला साठी का चावल), दधिमिश्रित अन्न, हविश्चूर्ण, घी भात, तिलचूर्णयुक्त भात, उर्दभात, खिचड़ी को ग्रहों के क्रम से धीमान् व्यक्ति अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप ब्राह्मणों को प्रदान करे। क्रमशः वित्तसाधन शक्ति के अनुसार गौ, शंख, वृषभ (बैल), स्वर्ण, वस्त्र, कृष्ण गौ, अश्व, लौह एवं बकरी की दक्षिणा सूर्यादि ग्रह निमित्त देना चाहिये।।८७-९०।।

यस्य यस्य तु यद्द्रव्यं पलेनार्च्यः स तेन च।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ॥९१॥

जिस ग्रह हेतु जो द्रव्य कहा गया है, वह एक-एक पल मात्र लेकर अर्चना करे। ब्रह्मा द्वारा यह वर ग्रहों को दिया गया है कि जो तुम्हारी पूजा करता है, उसकी मनोरथ पूर्ति तुम करो।।९१।।

ग्रहाधीना नरेन्द्राणां धनजात्युच्छ्रयास्तथा।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः॥९२॥
आदित्यस्य सदा पूजा तिलकं स्वामिनस्तथा। महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात्॥९३॥

कर्मणा सफलत्वं च श्रियं वाप्नोत्यनुत्तमाम्॥९४॥
अकृत्वा मातृयागं तु यो ग्रहार्चां समारभेत्।
कुप्यन्ति मातरस्तस्य प्रत्यूहं कुर्वते तथा॥९५॥

राजाओं का धन-ऐश्वर्य, उनकी वंश-सन्तान परम्परा, भाव-अभाव, (अर्थात् प्राप्ति एवं क्षय) तथा जन्म-निधन आदि सब ग्रहाधीन हैं। तभी ग्रह पूज्यतम हैं। सूर्यपूजन, महागणपति तथा स्वामी कार्त्तिय का पूजन, उनको तिलक लगाना अथवा उनकी सेवा करना सिद्धि, सफलता तथा उत्तम श्रीप्रद है। जो मातृयाग किये बिना ग्रहार्चन करता है, उसके प्रति मातृकागण कुपित होकर विघ्न बाधा उत्पन्न करती हैं।।९२-९५।।

वसोः पवित्रमन्त्रेण वसोर्द्धारां प्रकल्प्य च।
गौर्याद्या मातरः पूज्या माङ्गल्येषु शुभार्थिभिः॥९६॥
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातृका वैधृतिर्धृतिः॥९७॥
पुष्टिर्हृष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह। गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश॥९८॥

इसलिये "वसो पवित्र" इत्यादि मन्त्र द्वारा वसुधारा सम्पन्न करे अथवा शुभ चाहने वाले लोग प्रति मंगल कृत्य में गौरी प्रभृति मातृगण की पूजा करे। गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृका, वैधृति, धृति हृष्टि, तुष्टि, ये षोडश मातायें हैं। इनकी अपनी कुल देवी तथा गणपति सहित पूजा करने वाले की श्रीवृद्धि होती है।।९६-९८।।

आवाहनं तथा पाद्यमर्घ्यं स्नानं च चन्दनम्।
अक्षतांश्चैव पुष्पाणि धूपं दीपं फलानि च॥९९॥
नैवेद्याचमनीयं च ताम्बूलं पूगमेव च। नीराजनं दक्षिणां च क्रमाद्दद्याच्च तुष्टये॥१००॥

आवाहन के उपरान्त पाद्य, अर्घ्य तथा स्नानार्थ जल प्रदान करे। तदनन्तर इनके उद्देश्य से चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, फल, गुड़ प्रदान करके आचमन, ताम्बूल, सुपाड़ी, नीराजन तथा दक्षिणा प्रदान करना चाहिये।।९९-१००।।

पितृकल्पं प्रवक्ष्यामि धनसन्ततिवर्द्धनम्।
अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षायनद्वयम्॥१०१॥
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विवुवत्सूर्यसङ्क्रमः।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः॥१०२॥
श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः।
अग्र्याःसर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा॥१०३॥
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसपर्णकः। स्वस्त्रीय ऋत्विग्जामाता याज्यश्वशुरमातुलाः॥१०४॥
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः। कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः॥१०५॥

पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः।
रोगी न्यूनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा॥१०६॥

अब मैं पितृकल्प कहता हूं, जो धन तथा संतति वर्द्धक है। अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष, दोनों अयन के प्रथम दिन, जब श्राद्धीय द्रव्य प्राप्त रहे, जब उत्तम ब्राह्मण मिलें, विषुवयोग, सूर्यसंक्रान्ति, व्यतीपात, गजच्छाया, चन्द्र एवं सूर्यग्रहण तथा जब श्रद्धार्थ रुचि हो, इन सभी अवसर पर श्राद्ध कर सकते हैं। सर्ववेदाग्रणी, श्रोत्रीय, ब्रह्मज्ञ, युवा, वेदार्थज्ञाता, ज्येष्ठ सामग, मधुवाता प्रभृति ऋचात्रय का जप तथा उनके अनुकूल व्रत में सक्षम त्रिमधु ब्राह्मण, त्रिसौपर्णी ऋचा ज्ञाता तथा उनके अनुकूल व्रत करने वाला त्रिसुपर्ण ब्राह्मण, अपनी बहन का पुत्र, ऋत्विक, जामाता, यजमान, श्वसुर, मातुल, त्रिविध अग्निविद्याज्ञाता तथा उसके अनुकूल व्रत करने वाला त्रिणाचिकेत ब्राह्मण, कन्या का पुत्र, शिष्य, सम्बन्धी, बन्धु, कर्मनिष्ठ तपोनिष्ठ व्यक्ति, पंचाग्नि का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी, पितृमातृसेवक भक्त ब्राह्मण श्राद्ध सम्पदा कहे गये हैं। परन्तु रोगी, कम अंग वाला, अधिक अंग वाला, काना, पौनर्भव (पुनर्विवाहित विधवा का पुत्र)।।१०१-१०६।।

अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः।
भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः॥१०७॥
मित्रधृक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविन्दकः।
मातृपितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः॥१०८॥
परिपूर्वापतिः स्तेनः कर्मभ्रष्टाश्च निन्दिताः।
निमन्त्रयीत पूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान् शुचिः॥१०९॥

व्रतंभग कर देने वाला, कुण्ड (जो स्त्री पति के रहते अन्य पुरुष से संसर्ग करके पुत्र उत्पन्न करे, वह पुत्र कुण्ड है), गोलक (विधका का जारजपुत्र), विकृत नख वाला, काले दांतों वाला, घर पर धन लेकर अध्यापन करने वाला, नपुंसक, कन्या का शीलभंग करने वाला, व्यभिचार का आरोपी, मित्रद्रोही, चुगली करने वाला, सोम विक्रेता, बड़े भ्राता के अविवाहित रहते विवाहित होने वाला छोटा भाई (परिविन्दक), माता-पिता-गुरु का त्याग करने वाला, उपरोक्त कुण्ड का अन्न खाने वाला, वृषल का पुत्र, जो स्त्री पूर्वपति का त्याग करके आई उससे विवाह करने वाला, चोर, कर्मच्युत को यज्ञ में लेना वर्जित है। श्राद्ध के पूर्व दिन आत्मज तथा पवित्र ब्राह्मण को निमन्त्रित करे।।१०७-१०९।।

तैश्चापि संयतैर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः। अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान्॥११०॥
पवित्रपाणिराचान्तानासने चोपवेशयेत्।
विप्रान्दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च॥१११॥

निमन्त्रित ब्राह्मण मन-वाक्य तथा कर्म से संयमी रहें। जब वे ब्राह्मण आयें, उस अपराह्न के समय उनको स्वागत सत्कार के साथ आचमन कराये तदनन्तर श्राद्धकर्त्ता पवित्र पाणि होकर उनको आसनासीन कराये। दैवकार्य में युग्म (२-४-८ इस प्रकार) संख्या में तथा पितृकार्य में (१-३, ५, ७ इस प्रकार) अयुग्म संख्या ब्राह्मण को निमंत्रित करे।।११०-१११।।

पराश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणं तथा। द्वौ देवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव च॥११२॥

ऐसी भूमि में श्राद्ध करे, जो दक्षिण की ओर निम्न हो तथा सब ओर से घिरी एवं पवित्र हो। वैश्वदेव श्राद्ध हेतु पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मण बैठाना चाहिये। पितृकार्य हेतु तीन ब्राह्मण को उत्तरमुख बैठाये। अन्यथा उभय कार्य में एक-एक ही ब्राह्मण योजित करे।।११२।।

मातामहानामप्येवं तत्र वा वैश्वदैविकम्। पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि॥११३॥
आवाहन्येदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा। यवैरन्वावकीर्याथ भाजने सपवित्रके॥११४॥
शन्नो देव्या अपः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा।
या दिव्यां इति मन्त्रेण हस्ते पाद्यं विनिःक्षिपेत्॥११५॥

मातामह के श्राद्ध में श्राद्ध तथा वैश्वदेव कर्म अवश्य सम्पन्न करे। उन ब्राह्मणों को हस्तप्रक्षालनार्थ जल प्रदान करे तथा विष्ठर के लिये कुश प्रदान करे। तदनन्तर ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर "विश्वेदेवास" इत्यादि ऋचा से आवाहन करे। सबसे पहले यव विखेरें तथा पवित्र युक्त पात्र में "शन्नो देव्या" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुये जल छोड़े। तब "यवोऽसि" इत्यादि द्वारा यव बिखेर कर "या दिव्या आपः" इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण के हाथ में पाद्य हेतु जल प्रदान करे।।११३-११५।।

दत्वोदकं गन्धमाल्यं प्रदायान्नं सदीपकम्।
अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां सप्रदक्षिणम्॥११६॥
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन्।
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु नस्ततः॥११७॥
यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत्।
दत्त्वार्घ्यं सयवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः॥११८॥
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः।
अग्नौ करिष्यान्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम्॥११९॥

अब श्राद्ध कर्त्ता जल, गन्ध, माला तथा अन्न प्रदान करे तथा दीपक जलाये। तब अपसव्य होकर विना प्रदक्षिणा किये दो कुशासन बिछाये तथा "उशन्त" इत्यादि ऋचा द्वारा पितृगण का आवाहन करना चाहिये। तब आवाहित ब्राह्मण से आज्ञा लेकर यह मन्त्र जपे "आयन्तु न पितरः" इत्यादि। यव का प्रयोग देवता हेतु होता है। अतः पितृकर्म में तिल का ही प्रयोग करना चाहिये, यव का नहीं। वहां अर्घ्य पूर्ववत् प्रदान करे। सविधि पात्र में यव प्रभृति रखे तथा अर्घ्य प्रदानोपरान्त "पितृभ्यः स्थानमसि" कहते हुये न्युब्ज पात्र को पलट देना चाहिये। उसे अधोमुख करे। तब अग्नि में अन्य घृतप्लुत अन्न द्वारा हवन करने हेतु ब्राह्मण से कहे "अग्नौ करिष्ये"।।११६-११९।।

कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो दत्त्वाग्नौ पितृयज्ञवत्। हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः॥१२०॥
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः। दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम्॥१२१॥

जब ब्राह्मण यह आज्ञा करे कि "करिये" तब वह श्राद्धकर्त्ता पितृयज्ञवत् उस अग्नि में होम करे तथा शेष सामग्री को उस पात्र में संयत होकर रखे। लेकिन वह पात्र जहां तक संभव हो, उत्तम धातु का हो। रजत का होना सर्वोत्तम है। अन्न प्रदानोपरान्त इस मन्त्र से अभिमंत्रित करे यथा "पृथिवी ते पात्रम्"।।१२०-१२१।।

कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्।
सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्यृचम्॥१२२॥
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः।
अन्नमिष्टं हविष्य च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः॥१२३॥
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा।
अन्नमादाय तृप्तास्थः शेषं चैवानुमान्य च॥१२४॥
तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत्।
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः॥१२५॥
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्दद्याद्वै पितृयज्ञवत्। मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः॥१२६॥

तत्पश्चात् "इदं विष्णु" इत्यादि कहे तथा उस अन्न का स्पर्श उन ब्राह्मण के अंगुष्ठ से कराये। तदनन्तर व्याहृति एवं गायत्री मन्त्र और "मधुव्वाता" इत्यादि मन्त्रोच्चार के पश्चात् सादर ब्राह्मणों को भोजनार्थ कहे। ब्राह्मणगण भी मौनी होकर भोजन करे। तब श्राद्धकर्त्ता क्रोध से पूर्णतः रहित हो जाये तथा त्वरा न करके शान्ति के साथ ब्राह्मण के समक्ष प्रिय अन्न तथा हविष्य भोजन प्रस्तुत करे। जब तक ब्राह्मण तृप्त न हो जायें अथवा जब यह लगे कि वे तृप्त हैं, तब बाकी अन्न धरती पर बिखेर दें। एक-एक बार जल प्रदान करे। तदनन्तर जो अन्न बचा है, उससे उच्छिष्ट भूमि पर उससे पितृयज्ञवत् पिण्ड प्रदान करे। तदनन्तर मातामहों का भी श्राद्ध करके आचमन प्रदान करे।।१२२-१२६।।

स्वस्तिवाचं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव हि।
दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत्।१२७॥
वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम्।
ब्रूयस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम्॥१२८॥
विश्वेदेवाश्च प्रीयन्तां विप्रैश्चोक्त इदं जपेत्।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च॥१२९॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं चनोऽस्त्विति।
इत्युक्तोक्ताः प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥१३०॥

इसके पश्चात् उसे आचमन एवं स्वस्तिवाचन के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुरूप ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे तथा उनसे स्वधाकार कहे। जब ब्राह्मण "वाच्यताम्" कहकर आज्ञा दे दें तब श्राद्धकर्त्ता "प्रकृतेभ्य स्वधा" कहे। तत्पश्चात् वह "वपुरस्तु स्वधा" का उच्चारण करके धरती पर जल छिड़के। तदनन्तर ब्राह्मणों द्वारा

"विश्वेदेवाश्च प्रीयन्ताम्" कहा जाये। तब वह यजमान कहे कि मेरे कुल में दाता (दानी), वेदाध्यायी, वंशवृद्धि करने वाले, सदा श्रद्धावान् हों। हम सदैव श्रद्धायुक्त रहें। हमारे पास दान प्रदान करने हेतु प्रचुर धन हो।" यह कहने के उपरान्त यजमान पितरों का सत्कार करे। तदनन्तर प्रणामोपरान्त उनका विसर्जन करे।।१२७-१३०।।

वाजेवाजे इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम्।
यस्मिंस्ते संश्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः॥१३१॥
पितृपात्रं तदुत्थानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत्।
प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम्॥१३२॥

सर्वप्रथम "वाजे वाजे" इत्यादि द्वारा पितृगण को विसर्जित करना चाहिये। पहले अर्घ्यपात्र में जिसमें संश्रव जल रखा गया था, उसे उत्थापित करके (अर्थात् उस पितृपात्र को उत्थापित करके) विप्रगण को विसर्जित कर देना चाहिये। वहीं ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके गृह की सरहद के बाहर तक उनको छोड़े। यह सम्पन्न करके पितृसेवित सामग्री में से स्वयं भी भोजन करे।।१३१-१३२।।

ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह।
एवं प्रदक्षिणावृत्तया वृद्धौ नान्दीमुखान्पितृन्॥१३३॥
यजेत दधिकर्कंधुमिश्रान्पिडान्यवैः कृतान्। एकोद्दिष्टं देवहीनमेवार्घ्यैकपवित्रकम्॥१३४॥

वे सभी ब्राह्मण तथा श्राद्ध करने वाला व्यक्ति उस रात ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें। तदनन्तर जब वृद्धिकार्य (पुत्र जन्म-विवाह आदि) घर में पड़े, तब नान्दीमुख पितृगण की अर्चना करनी चाहिये। उस समय दधि एवं कर्कन्धु मिलाकर अन्नपिण्ड प्रदान करे। एकोदि्दष्ट श्राद्ध में किसी देवता की पूजा नहीं की जाती। मात्र एक पिण्ड कुशयुक्त प्रदान करते हैं।।१३३-१३४।।

आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत्। उपतिष्ठतामक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने॥१३५॥
अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयस्तेऽभिरताः स्म ह।
गन्धोदकं तिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम्॥१३६॥
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्। ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्॥१३७॥

एकोदि्दष्ट में अपसव्य होकर कदापि आवाहन एवं अग्नि स्थापना नहीं होती। जब विप्रों को विदा देते हैं, तब "उपतिष्ठताम्" का उच्चाण करते हैं। उस समय "अक्षय्यमस्तु" नहीं करते। इसमें पहले विप्रगण से "अभिरम्यताम्" कहें। तब विप्रगण कहें "अभिरताः स्म"। उस समय सर्वाग्र में गन्धोदक तथा तिल युक्त चार पात्र स्थापित करना चाहिये। उस समय प्रेतपत्र को केवल जल से सिंचित करे। तब "ये समाना" इत्यादि मन्त्र द्वारा दो पात्रों में पिण्ड देना चाहिये, लेकिन और सभी क्रिया पूर्ववत् होगी।।१३५-१३७।।

एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्ट स्त्रिंया अपि।
अर्वाक्सपिंडीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्॥१३८॥
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे।
मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्॥१३९॥

प्रतिसंवत्सरं चैव मासमेकादशेऽहनि।
पिण्डांश्चगोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा॥१४०॥

सपिण्डीकरण तथा एकोद्दिष्ट श्राद्ध स्त्रियों का भी करे। जिसका सपिण्डीकरण श्राद्ध एक संवत्सर पूर्ण होने के पूर्व ही किया गया हो, उसके निमित्त वर्ष पर्यन्त जलकलश तथा अन्न प्रदान करे। मृततिथि को प्रतिमास श्राद्ध एक वर्ष पर्यन्त होना चाहिये। प्रतिवर्ष मृत्यु तिथि के एकादशवें दिन श्राद्ध करे तथा पिण्ड को गौ, बकरी अथवा ब्राह्मण को पिण्ड खिलाये किंवा अग्नि अथवा जल में फेंके।।१३८-१४०।।

प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषुद्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत्।
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्॥१४१॥
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः। ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाश्रमम्॥१४२॥
मासवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः।
खड्गामिषं महाकल्पं मधु मुन्यन्नमेव च॥१४३॥

ब्राह्मण भोजन करके जब तक हट न जायें, उस समय तक उस स्थान पर झाड़ू आदि न लगाये। पितृगण हविष्य पिण्ड से एक मास तथा पायस देने से एक वर्ष तृप्त रहती हैं। मछली मांस के पिण्ड से एक मास, मृग मांस से दो मास, भेड़ मांस से तीन मास, पक्षी मांस से चार मास, ऐण हरिण के मांस से पांच मास, सामान्य हरिण के मांस से छः मास, कृष्ण मृग मांस से सात मास, वाराह मांस से आठ मांस, शशक मांस से पिण्ड देने पर नौ मास पितृगण तृप्त रहते हैं। खड्ग मांस (गैड़े के मांस) से पितृगण महाकल्प तक की तृप्ति पाते हैं।।१४१-१४३।।

लोहामिषं महाशाकं मांसं वाध्रीणसस्य च।
यो ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते॥१४४॥
तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः।
कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि॥१४५॥
द्यूतं कृषिं च वाणिज्य द्विशफैकशफांस्तथा।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके॥१४६॥
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा।
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्॥१४७॥
शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते। स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा॥१४८॥
पुत्रान् श्रेष्ठांश्च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम्।
प्रवृत्तं चक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीनि च॥१४९॥
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम्।
धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं कुप्यगा अप्यजाविकम्॥१५०॥

अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति।
कृत्तिकादिभरण्यन्तं सकामानाप्नुयादिमान्॥१५१॥
आस्तिकः श्रद्दधानश्च व्यपेतमदमत्सरः। वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः॥१५२॥

जो व्यक्ति गया में पितृगण को मधु, लाल बकरा का मांस महाशाक, गैडे का मांस देता है तथा विशेषतया भाद्रपद कृष्णपक्ष में मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशी को वहां यह सब पितरों को प्रदान करता है, वे श्राद्धकर्त्ता अनन्तकाल पर्यन्त इष्ट पदार्थों की प्राप्ति करते रहते हैं। चतुर्दशी को त्यागकर प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त श्राद्ध करे। वह क्रमशः रूप शीलवान् कन्या, बुद्धिमान् सुरूप जामाता, पशु, उत्तम पुत्र, द्यूत विजय, कृषि, व्यापार में लाभ, गौ-बकरी जैसे दो खुर वाले पशु, एक खुरवाले अश्व आदि पशु, ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र, स्वर्ण, चांदी, सीसा आदि धातु, जाति में श्रेष्ठत्व तथा मनोवांछित कामनाओं को प्राप्त करता है। गयाधाम में चतुर्दशी श्राद्ध केवल युद्ध में शस्त्राहत मृतकों का किया जाता है। सविधि श्राद्ध करने वाला स्वर्ग, सन्तान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, उत्तम सन्तान, सौभाग्य, समृद्धि, समुदाय में मुख्यत्व, शुभ, चक्रवर्तित्व, व्यवसाय में लाभ, उत्तम स्वास्थ्य (रोगहीनता), यश, शोक रहित स्थिति, परमगति, धन, विद्या, औषधि सिद्धि, सीसा आदि धातु, गौ, बकरी, भेड़, अश्व एवं आयुलाभ करता है। कृत्तिका से लेकर भरणी तक नक्षत्र के मध्य आस्तिक, श्रद्धावान्, मद-मत्सर रहित, होकर श्राद्ध करने वाला मनुष्य उपर्युक्त वस्तुओं की तथा स्थिति की प्राप्ति करता है। वसु, रुद्र तथा अदिति पुत्र आदित्य श्राद्ध देवता हैं।।१४४-१५२।।

प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः।
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च॥१५३॥
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः।
इत्येवं कथितं किञ्चित्कल्पाध्याये विशेषतः॥१५४॥
ज्ञातव्यं वैदिके तन्त्रे पुराणान्तरकेऽपि च।
य इमं चिन्तयेद्विद्वान्कल्पाध्यायं मुनीश्वर॥१५५॥
स भवेत्कर्मकुशल इहान्यत्र गतिं शुभाम्।
यः श्रृणोति नरो भक्त्या दैवे पित्रये च कर्मणि॥१५६॥
कल्पाध्यायं स लभते दैवपित्रयक्रियाफलम्।
धनं विद्यां यशः पुत्रान्नपरत्र च गतिं पराम्॥१५७॥
अतः परं व्याकरणं तुभ्यं वेदमुखाभिधम्।
कथयिष्ये समासेन श्रृणुष्व सुसमाहितः॥१५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

—✻✻✻—

ये श्राद्ध देवता तथा देव पितर श्राद्ध द्वारा मनुष्य पितरों को प्रसन्न करते हैं। वे मनुष्य पितर (पितामह)

श्राद्धकर्त्ता के प्रति सन्तुष्ट होकर उसे आयु, धन, प्रजा, विद्या, स्वर्ग, राज्य, मोक्ष सुख देते हैं। मैंने इस प्रकार किंचित् कल्पाध्याय विशेषतया कहा है। इसे वैदिक तन्त्र, पुराणादि से सम्यक् रूप से जाने। हे मुनीश्वर! इस कल्पाध्याय का चिन्तन करने वाली सुधी व्यक्ति कर्मकुशल होकर इहलोक एवं परलोक में शुभगति लाभ करता है। दैव तथा पितृकार्य में जो इस कल्पाध्याय को भक्ति पूर्वक सुनता है, उसे इन दोनों कार्या में प्रभूतफल की प्राप्ति होती है। उसे इहलोक में धन, विद्या, यश, पुत्रादि प्राप्त होती है तथा परलोक में वह परमगति लाभ करता है। अब मैं वेदमुखरूप व्याकरण का संक्षेप में वर्णन करूंगा। समाहित होकर सुनिये।।१५३-१५८।।

।।५१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

व्याकरण शास्त्र का वर्णन

सनन्दन उवाच

अथ व्याकरणं वक्ष्ये संक्षेपात्तव नारद। सिद्धरूपप्रबन्धेन मुखं वेदस्य साम्प्रतम्॥१॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे नारद! अब मैं शब्दों के सिद्धरूप का वर्णन करते हुये आपसे संक्षिप्तरूपेण वेद के मुखस्वरूप व्याकरण प्रसंग को कहता हूं।।१।।

सुप्तिङन्तं पदं विप्र सुपां सप्त विभक्तयः।
स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मिका॥२॥

हे विप्रवर! पद शब्द है सुवन्त एव तिङन्त। जहां अन्त में सुप् प्रत्यय का प्रयोग है, वही है सुवन्त। इसकी सप्त विभक्ति कही जाती हैं। (इसके सुप् प्रत्याहार की सप्तविभक्ति होती हैं) प्रथमा है सु-औ-जस्। यह है **प्रथमा विभक्ति**। इस प्रथमा विभक्ति को प्रातिपादिक कहा है।।२।।

सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्तरि। अर्थवत्प्रातिपदिकं धातुप्रत्ययवर्जितम्॥३॥

सम्बोधनार्थ प्रथमा विभक्ति प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त लिंग परिणाम तथा वचन के बोधार्थ भी प्रथमा का ही प्रयोग किया जाता है। जहां कर्म वाच्य हो तथा जहां कर्त्ता वाच्य हो, वहां भी इसी प्रथमा का प्रयोग विहित है। जो धातु तथा प्रत्यय रहित सार्थक शब्द है, वही प्रातिपदिक है।।३।।

अमौसशौ द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत्।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्तान्तरान्तरेण संयुते॥४॥

द्वितीया विभक्ति है—अम् (एकवचन), औ (द्विवचन), शस् (बहुवचन)। जिसे कहते हैं, वह है कर्म। कर्तृवाच्य में कर्म अनुक्त रहता है अर्थात् वहां कर्म प्रधान नहीं रहता। इसमें भी द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती

है। अन्तरा, अन्तरेण रूप शब्द से जिसका संयोग किंवा अन्वय हो, वहां शब्द में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करें।।४।।

टाभ्यांभिस्तृतीया स्यात्करणे कर्तरीरिता।
येन क्रियते तत्करणं स कर्ता स्यात्करोति यः॥५॥

तृतीया विभक्ति है—टा (एकवचन), भ्याम् (द्विवचन), भिस् (बहुवचन)। करण एवं अनुक्त कर्त्ता में भी तृतीया विभक्ति ही है। जिसकी सहायता से कार्य हो, वह हैं करण। जो कार्य करे, वह है कर्त्ता। जहां कर्म प्रधान है, वहां कर्त्ता अनुक्त है।।५।।

ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदानेन च कारके।
यस्मै दित्सा धारयेद्वै रोचते सम्प्रदानकम्॥६॥

चतुर्थी विभक्ति है—ङे, भ्याम्, भ्यस्। यह सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त रहती है। जब किसी व्यक्ति को कुछ प्रदान करने की इच्छा हो, वही है सम्प्रदान। साथ ही जिसे जो रुचे, वह भी सम्प्रदान ही है।।६।।

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके।
यतोऽपैति समादत्ते अपदत्ते च यं यतः॥७॥

पंचमी विभक्ति है—ङसि, भ्याम्, भ्यस्। यह अपादान कारक में प्रयुक्त की जाती है। जहां से कोई चला जाये, जिससे कोई वस्तु पृथक् हो, जिससे कुछ मिले, वह अपादान कारक है। यह अपादान विभाग तथा अलगाव की सीमा का रेखांकन करता है।।७।।

ङसोसामश्च षष्ठी स्यसात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके।
ड्योस्सुपः सप्तमी तु स्यात्सा चाधिकरणे भवेत्॥८॥
आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थानां प्रयोगतः। इप्सितं चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम्॥९॥

षष्ठी विभक्ति है—ङस्, ओस्, आम्। जहां स्वामी तथा सेवकादि सम्बन्ध प्रधान हो, वहां षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त की जाती है।

सप्तमी विभक्ति है—ङि, ओस्, सुप्। यह अधिकरण कारक में प्रयुक्त होती है। हे विप्रप्रवर! आधार भी सप्तमी विभक्तिमय होती है। जब भयार्थक किंवा रक्षार्थक का प्रयोग हो, तब भय के कारण को अपादान कहा गया है। वारणार्थक धातु के अन्तर्गत् जो अभीष्ट नहीं है, उससे रक्षणीय ईप्सित-अनीप्सित अभीष्ट वस्तु को ही अपादान कहा है।।८-९।।

पञ्चमी पर्युपाङ्योगे इतरर्तेऽन्यदिङ्मुखे। एतैर्योगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकै॥१०॥
लक्षणेत्थम्भूतोऽभिरभागे चानुपरिप्रति। अन्तरेषु सहार्थे च हीने ह्युपश्च कथ्यते॥११॥

परि, अप्, आङ्, इतर, ऋत, अन्य तथा दिग्वाचक शब्द योग में भी पंचमी विभक्ति कहते हैं। कर्मप्रवचनीय संज्ञाशब्द योग जब होता है, तब वह द्वितीया विभक्ति होती है। कर्मप्रवचनीय में लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग, वीप्सा की अभिव्यक्ति हेतु अव्यय प्रति-परि अनु की कर्मप्रवचनीया संज्ञा द्वितीया होती है। यहां 'भाग' अर्थ के अतिरिक्त बाकी जो लक्षणादि अर्थ कहे गये हैं, 'अभि' अव्यय उनकी अभिव्यक्ति के लिये

प्रयुक्त होता है। यह भी कर्मप्रवचनीय है। 'हीन' अर्थ प्रकाशक अनु एवं हीन भी कर्मप्रवचनीय ही है। 'अधिक' अर्थ प्रकट करने वाला 'उप' अव्यय भी कर्मप्रवचनीय माना जाता है। अन्तर (मध्य अर्थ) तथा सहायक तृतीया विभक्ति के अर्थ के व्यक्तीकरण हेतु प्रयुक्त "अनु" भी कर्मप्रवचनीय है। इन सबके योगार्थ द्वितीया विभक्ति जाने।।१०-११।।

द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि।
अप्राणिषु विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे।।१२।।
नमःस्वस्तिस्वधास्वाहालंवषड्योग ईरिता।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः।।१३।।

गत्यर्थक चेष्टा तथा गति कर्म हेतु द्वितीया तथा चतुर्थी विभक्तिद्वय जाने, तथापि मार्ग अथवा तद्वाचक शब्द जब गत्यर्थक धातु का कर्म हो, ऐसी स्थिति में वहां मात्र द्वितीया विभक्ति होगी, तथापि यदि मार्ग पर चलता व्यक्ति कुपथ पर चला गया हो, अब सुपथ पर जाने को उद्यत है, तब वहां चतुर्थी विभक्ति होगी। अनादर सूचक "मन्" धातु का कर्म जहां प्राणी के अतिरिक्त अन्य कुछ हो तथा अनादरपूर्ण अर्थ जहां व्यक्त हो, वहां द्वितीया विभक्ति तथा चतुर्थी, ये दोनों होती हैं। नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् रूप अव्यय शब्दयोगार्थ चतुर्थी विभक्ति प्रयोग करें। यहां तादर्श्य का तात्पर्य है, जिस वस्तु हेतु कार्य हो। उसके बोधक शब्द में चतुर्थी विभक्ति जाने। 'तुमर्थ' भाववाचक में (अव्ययभिन्न भावार्थक प्रत्ययान्त में) चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हो।।१२-१३।।

तृतीयासहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि।।१४।।
स्वामीस्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः। निर्धारणे द्वे विभक्ति षष्ठी हेतुप्रयोगके।।१५।।

'सह' तथा तत्पर्यायवाची शब्द योग हो, तब तृतीया विभक्ति होगी। सदृश, तुल्य, सम, निभ आदि शब्द सदृशार्थक हैं। इनके योग में भी तृतीया विभक्ति होती है। यदि कोई विकृत अंग विशेषणरूपेण प्रयुक्त हो, वहां तृतीया विभक्ति होगी। जहां एक क्रिया हो रही हो, तभी अन्य होने लगे, वहां सप्तमी विभक्ति होगी स्वामी, ईश्वर, अधिपति, साक्षी, दायाद, प्रसूत शब्द योग में षष्ठी एवं सप्तमी उभय विभक्ति होगी। हेतु शब्द प्रयोगोपरान्त जब हेत्वर्थ प्रकाशित हो, तब षष्ठी विभक्ति कहे। जहां एकाकी जाति से सम्बन्धित, गुणसम्बन्धित, क्रिया सम्बन्धित किंवा विशिष्ट नामधारी व्यक्ति से सम्बन्धित विशेषता निर्णीत करना हो, तब वहां समुदायबोधक शब्द में सप्तमी तथा षष्ठी—ये दोनों विभक्ति जाने।।१४-१५।।

स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियानके। हिंसार्थानां प्रयोगे च कृतिकर्मणि कर्त्तरि।।१६।।

जहां स्मरणार्थक है (स्मृति अर्थ बताने वाले) वहां क्रिया के कर्म में शेष षष्ठी होगी। 'कृ' धातु के कर्म में भी यही विधान जाने। हिंसार्थक धातु प्रयोग हो, तब उसके कर्म में भी शेषषष्ठी रहेगी। जहां कृदन्त शब्द योग हो, वहां कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति होगी।।१६।।

न कर्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठादिप्रतिपादिका। गता वै द्विविधा ज्ञेयाः सुबादिषु विभक्तिषु भूवादिषु तिङन्तेषु लकारा दश वै स्मृताः।।१७।।

तिप्तसन्तीति प्रथमो मध्यमः सिप्थस्थोत्तमः।
मिब्बस्मसः परस्मै तु पादानां चा मपनेदम्॥१८॥

निष्ठा, लकारादेश, अव्यय, खलर्थ, तृन्, प्रत्याहार योग में षष्ठी नहीं रहती अर्थात् इन शब्दों का अर्थ प्रतिपादन करने वाले प्रत्यययुक्त शब्द का जहां प्रयोग हो, वहां कर्त्ता तथा कर्म षष्ठी रहित जानें। ये सुप् तथा तिङ् विभक्ति हैं। यहां सुप् प्रभृति विभक्तियों का पहले वर्णन किया गया है। क्रियावाचक 'भू' 'वा' ही तिङ् विभक्ति के साथ जब जुड़ जाते हैं, तब वे तिङन्त हैं। तिङन्त दस लकारात्मक है। प्रत्येक लकार परस्मैपद तथा आत्मनेपदात्मक होता है। प्रत्येक पद प्रथम-मध्यम-उत्तम पुरुषात्मक होते हैं। तिप्, तस्, अन्ति प्रथम पुरुष, सिप्, थस्, थ मध्यम, मिप्, वस् मस् उत्तम पुरुष है। ये सभी प्रत्यय क्रमशः एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन हैं। अब आत्मनेपद कहा जाता है।।१७-१८।।

त आतेंऽते प्रथमो मध्यः से आथे ध्वे तथोत्तमः।
ए वहे मह आदेशा ज्ञेया ह्यन्ये लिङ्गादिषु॥१९॥
नाम्नि प्रयुज्यमाने तु प्रथमः पुरुषो भवेत्। मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि॥२०॥

प्रथम पुरुष — ते, आते, अन्ते
मध्यम पुरुष — से, आथे, ध्वे
उत्तम पुरुष — ए, वहे, महे

(ये लट् लकार के स्थान के आदेश हैं।)

लिट् आदि लकार के स्थान के आदेश अन्य है, उनको (विद्वानों से) जानें। युस्मद्, अस्मद्, से अतिरिक्त संज्ञा शब्दों के प्रयोग में प्रथम पुरुष, युष्मद् के प्रयोग में मध्यम पुरुष तथा अस्मद् के प्रयोग में उत्तम पुरुष होगा।।१९-२०।।

भूवाद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः।
लडीरितो वर्तमाने भूतेऽनद्यतने तथा॥२१॥
मास्मयोगे च लङ् वाच्यो लोडाशिषि च धातुतः।
विध्यादौ स्यादाशिषि च लिङितो द्विविधो मुने॥२२॥

क्रिया बोधक 'भू' 'वा' धातु है। सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष, आचार क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ् ये बारह सनादि प्रत्यय हैं। ये प्रत्यय जिसके अन्त में हैं, वह भी धातु है। धातु से वर्त्तमान काल में लट् होता है। अभी से पहले के भूतकाल में लङ्लकार होता है। 'मा' तथा 'स्म' के योग में भी लङ् होता है। (लुङ्) भी होता है। विधि प्रभृति अर्थ में तथा आशीर्वादादि अर्थ में धातु से लोट् लकार होता है। हे मुनिवर! विधि लिंग एवं आशीर्लिंग रूप लिङ् लकार के दो भेद कहे गये हैं।।२१-२२।।

लिडतीते परोक्षे स्यात् श्वस्तने लुङ्‌ भविष्यति।
स्यादनद्यतने लृट् च भविष्यति तु धातुतः॥२३॥

जो परोक्ष भूतकाल है, लिट् लकार होता है। आज के पश्चात् का भविष्य जो होता है, उसमें लुट् का

प्रयोग होता है। आज से सम्पन्न होने वाले भविष्य में तथा सामान्य भविष्य में धातु से लृट् लकार का प्रयोग होगा।।२३।।

भूते लुङ् तिपस्यपौ क्रियायां लृङ् प्रकीर्तितः।
सिद्धोदाहरणं विद्धि संहितादिपुरःसरम्॥२४॥

सामान्य भूतार्थ हेतु लुंग लकार प्रयुक्त होगा। क्रिया की अनिष्पत्ति में जो लिंग के निमित्त हैं, वह होने पर भविष्यार्थ में लृङ् का प्रयोग होगा, तथापि यदि क्रिया की असिद्धि लगे, तभी यह उचित है। अब संहिता अर्थात् संधि को उदाहरण से कहा जा रहा है।।२४।।

दण्डाग्रं च दधीदं च मधूदकं पित्र्षर्भः। होतृकारस्तथा सेयं लाङ्गलीषा मनीषया।२५॥
गङ्गोदकं लवल्कार ऋणार्णं च मुनीश्वर। शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सेन्द्रः सौकार इत्यपि॥२६॥

अब स्वर संधि के उदाहरण कहे जाते हैं। दण्ड+अग्रम=दण्डाग्रम। दधि+इदम=दधीदम। मधु+उदकम=मधुकम। पितृ+ऋषभ=पित्र्षभ। होतृ+लकार=होतृकार। एवंविध मनीषा के साथ लाङ्गलीषा सिद्धसन्धि है। हे मुनीश्वर! गंगा+उदकम=गंगोदकम्, तब+लृकार=तवल्कार। इस प्रकार ऋणार्णम, शीतार्त्तः सेन्द्र, सौकार ये सन्धि के उदाहरण हैं। ऋणार्थ, शीतार्त्त ये सभी सन्धियां हैं। दण्डाग्र, दद्योदम, मधुदकम्, पितृर्षभ, होतृकार ये दीर्घ सन्धि हैं। गंगोदक, तल्वकार, सेयम्, सैन्द्र, सौकार, ऋणार्ण, शीतार्त्त ये वृद्धि सन्धि हैं।।२५-२६।।

वध्वासनं पित्रर्थो नायको लवणस्तथा।
त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्मा अर्घो गुरा वधः॥२७॥
हरेऽव विष्णोऽवेत्येषादसोमादप्यमी अघाः।
गौरी एतौ विष्णु इमौ दुर्गे अमू नो अर्जुनः॥२८॥
आ एवं च प्रकृत्यैते तिष्ठन्ति मुनिसत्तम। षड्त्र षण्मातरश्च वाक्छुरो वाग्घस्तिथा॥२९॥
हरिश्शेते विभश्चित्यस्तच्छेषो यच्चरस्तथा।
प्रश्नस्त्वथ हरिष्षष्ठः कृष्णाष्टीकत इत्यपि॥३०॥

यण् सन्धि के उदाहरण हैं—दध्यत्र, वध्वासन्, पित्रर्थ, नायक, लवण, ते आद्या, विष्णवे—ये भी सन्धि के उदाहरण हैं। अदसोमात् सूत्रानुसार अघा, गौरी, एतौ, विष्णु इमौ, दुर्गे अमू, नो अर्जुना, आएवम् में सन्धि नहीं होती यहां प्रकृति भाव ही है। षड्त्र, षण्मतर, वाक्+शूरः=वाक्छूरः (यहां वाक्शूर की जगह वाक्छुर कहा गया, क्योंकि "झ" से "प" तक के अक्षरों के पश्चात् "श्" हो, तब वह 'श्' की जगह 'छ' लिखा जायेगा, तथापि यहां 'श्' पश्चात् पहले स्वर हो अथवा ह, य, व, र रहे। वाग्घरिः, हरिश्शेते विभुश्चिन्त्यः तच्छेषः, यच्चरः, प्रश्नः, हरिष्षष्ठ, कृष्णाष्टीकते इसके उदाहरण हैं। इत्यादि।।२७-३०।।

भवान्षष्ठश्च षट् सन्तः षट्ते तल्लेप एव च।
चक्रिंश्छिधि भवाञ्छौरिर्भवाञ्शौरिरित्यपि॥३१॥

भवान्+षष्ठः=भवान्षष्ठश्च, षट्सन्तः, षट् ते, तल्लेपः, चक्रिंश्चिन्धि, भवाञ्शौरिः भी सन्धि के उदाहरण हैं। भवान्षष्ठश्च में पूर्वनियमानुरूप तवर्ग का टवर्ग नहीं होता। इसका कारण है कि षकार जब परे हो, तब तवर्ग

कदापि टवर्ग नहीं होता। तदनुरूप षट्सन्तः तथा "षट् ते" में ष्टुत्व नहीं हो गया। (पदान्त टवर्ग से परे नाम भिन्न सकार तथा तवर्ग के स्थान में षकार तथा टवर्ग नहीं होता)।।३१।।

सम्यङ्ङनंतोंगच्छाया कृष्णं वन्दे मुनीश्वर।
तेजांसि मंस्यते गङ्गा हरिश्छेत्ता मरश्शिवः॥३२॥

हे मुनीश्वर! "सम्यङ्ङनन्तः, अङ्गच्छाया, कृष्णवन्दे, तेजांसि, मंस्यते, गङ्गा, हरिश्छेता, अमरश्शिवः" यहां तक व्यञ्जन सन्धि कहा। अब विसर्ग सन्धि कहते हैं। यहां हरिश्छेत्ता अमरश्शिव कहा गया। इन दोनों में विसर्ग के स्थान में दन्त्य 'स्' होकर श्चुत्व सन्धि नियमानुसार तालव्य 'श' हो गया।।३२।।

रामँ्काम्यः कृपँ्पूज्यो हरिः पूज्योऽर्च्य एव हि।
रामो दृष्टोऽबला अत्र सुप्ता इष्टा इमा यतः॥३३॥
विष्णुर्नम्योरविरयं गी) (फलं प्रातरच्युतः।
भक्तैर्वन्द्यौऽम्यन्तरात्मा भो भो एष हरिस्तथा।
एष शार्ङ्गी सैष रामः संहितैवं प्रकीर्तिता॥३४॥

रामकाम्यः, कृपः पूज्यः, हरिपूज्योऽर्च्य, रामोदृष्टः, अबला अत्र, सुप्तादृष्टाः, इमायतः, विष्णुर्नम्यः, रविरयम्, गीफलम्, प्रातरच्युतः, भक्तैर्वन्द्यः, अन्तरात्मा, भो भोः, ये पूर्वोक्त नियमानुसार हैं। एषहरिः, एष शार्ङ्गी, सैषरामः, इन उदाहरण से संहिता वर्णित है। एषशार्ङ्गी में एतत् तथा तत् शब्द से परे 'सु' विभक्ति के सकार का लोप हल् परे रहने पर है। अतः यहां 'स्' का लोप है। यहां "सैषरामः" में सस् के 'सु' का लोप करने हेतु यह नियम है कि सस् के 'सु' का लोप होता है अच् जब परे हैं यदि उसके लोप के पश्चात् ही श्लोक का पाद पूर्ण हो।।३३-३४।।

रामेणाभिहितं करोमि सततं रामं भजे सादरम्।
रामेणापहृतं समस्तदुरितं रामाय तुभ्यं नमः॥३५॥

यहां सुवन्त प्रकरणारम्भ के साथ स्वरान्त शब्द का शुद्धरूप प्रस्तुत हैं। यहां प्रायः समस्त विभक्ति का एक-एक रूप है। यहां प्रथमा से सप्तमी तक का उदाहरण प्रस्तुत है। अर्थ यह है मैं श्रीराम के कहे आदेश का सदा पालन करता हूं। मैं सादर राम का भजन करता हूं। राम ने मेरे समस्त दुरित का हरण कर लिया। (दुरित=पातक) हे भगवान् श्रीराम! मैं आपको नमस्कार करता हूं! मैं श्रीराम से सर्वदा मुक्ति की प्राप्ति करना चाहता हूं। मैं सदैव श्रीराम का दास हूं। मेरा मन निर्मल होकर श्रीराम में ही लगा रहे। हे राम! आपको प्रणाम! इस श्लोक में राम शब्द का रूप समस्त विभक्ति में है।।३५।।

सर्वं इत्यादिका गोपाः सखा चैव पतिर्हरिः॥३६॥
सुश्रीर्भानुः स्वयंभूश्च कर्ता रै गोस्तु नौरिति।
अनड्वान्गोधुग्लिट् च द्वै त्रयश्चत्वार एव च॥३७॥
राजा पन्थास्तथा दण्डी ब्रह्महा पञ्च चाष्ट च।
अष्टौ अयं मुने सम्राट् सविभ्रद्द्वपुङ्मनः॥३८॥

प्रत्यङ् पुमान्महान् धीमान् विद्वान्षट् पिपठीश्च दोः।
उशानासाविमे पुंसि स्युरक्तबलविरामकाः॥३९॥

सर्व आदि सभी शब्द सर्वनाम हैं। यथा—सर्वः सर्वौ: सर्वे इत्यादि। इसी प्रकार गोपाः, सखा, पतिः, हरिः, सुश्रीः, भानुः, स्वयम्भुः, कर्त्ता, राः, गोः, नौः, अनड्वान्, गोधुक्, लिह्, द्वे, त्रयः, चत्वारः, राजा, पन्थाः, दण्डी, ब्रह्महा, पंच, अष्ट, अष्टौ, अयम्, सम्राट्, सुराट्, वपुष्मान्, प्रत्यङ, पुमान्, महान्, विद्वान्, षट्, पिपाठीः, दीः, उशना—ये सभी स्वरान्त हलन्त पुलिंग शब्द हैं। यहां राः (रैः) शब्द धनवाचक है। कर्त्ता कर्तृ शब्द का रूप है। पुल्लिंग में तथा स्त्रीलिंग में 'गो' शब्द का एक ही रूप कहा गया है। पुल्लिंग में अर्थ है बैल, स्त्रीलिंग में गाय। अनड्वान् का तात्पर्य है बैलगाड़ी खींचने वाला बैल! गोधुक् अर्थात् गौ दुहने वाला इत्यादि।।३६-३९।।

राधा सर्वा गतिर्गोपी स्त्री श्रीर्धेनुर्वधूः स्वसा।
गौर्नौरूपान् दुद्यौर्गोः क्षुत् ककुप्संवित्तु वा क्वचित्॥४०॥
रुग्विड्डुद्धाः स्त्रियास्तपः कुलं सोमप' ' च।
ग्रामण्यम्बुखलप्वेवं कर्तृ चातिरि ातिनु॥४१॥
स्वनडुच्च विमलद्यु वाश्चत्वारीदमेव च। एतद्ब्रह्माहश्च दण्डी असृक्किंकिचित्त्यदादि च॥४२॥
एतद्वेभिद्गवाक्गवाङ् गोअक् गोङ्गोक् गोङ्।
तिर्यग्यकृच्छकृच्चैव ददद्भवत्पचत्तुदत्॥४३॥
दीव्यद्धनुश्च पिपठीः पयोऽदःसुपुमांसि च।
गुणद्रव्यक्रियायोगांस्त्रिलिङ्गांश्च कति ब्रुवे॥४४॥

अब स्त्रीलिंग शब्द कहा जाता है। राधा, सर्वा, गतिः, गोपी, स्त्री, श्रीः, धेनुः, वधुः, स्वसा, गौः, नौः, उपानत्, द्यौः, क्षुत्, ककुप, संवित्, रुक्, विट्, उद्भः—ये स्त्रीलिंग वाले शब्द हैं।

नुपंसक लिंग शब्द हैं—तपः, कुलम्, सोमपम्, अक्षिका, अम्बु, खलपू, (जो भूमि-खलिहान साफ करे), कर्तृ, अतिरि—जो धन की सीमा का लंघन करे। अतिनु (नाव से पार न हो सके), स्वनडुत्—जिस घर में बैलगाड़ी के अच्छे बैल रहें, विमलद्यु (निर्मल आकाश वाला दिवस), वाः (जल), चतुर् शब्द का रूप नपुंसक लिंग में केवल प्रथमा—द्वितीया का 'चत्वारि' होगा। बाकी पुलिंगवत् होगा। इदम् (यह इदम-इमे इमानि नपुंसकलिंग होगा शेष पुल्लिंग है)। एतत्, ब्रह्म, अहः, दण्डि, असृक् (खून), किम्, चित्, त्यत्, एतत्, वेभित, गवाक्-गवाग्-गोअक्, गोअग्, गोक्, गोग्, गवाङ्, गोङ् (जो गौ के पास जाये तथा गोपूजक), तिर्यक् (पशु-पक्षी), यकृत्-कलेजा तथा तत्सम्बन्धित रोग, शकृत् (मल), ददतु भवत्, पचत्, तुदत्, दीव्यत्, धनुः, पिपठीः, पय, अदः, सुपुम् सभी नपुंसक लिंग वाले शब्द हैं। आगे ऐसे शब्द का वर्णन है, जो गुण-द्रव्य-क्रिया सम्बन्ध से तीनों लिंग में प्रयुक्त हो जाते हैं।।४०-४४।।

शुक्तः कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः।
पटुः स्वयंभुः कर्ता च माता चैव पिता च ना॥४५॥

सत्यानायुस्तथा पुंसो मतभ्रमरदीर्घपात्। धनाढ्यसोमौ चागर्हस्तादृगथोस्वर्णबहू॥४६॥

शुक्त (सीप), कीलालपा, शुचि, ग्रामणी, सुधी, पटु, स्वयम्भू, कर्त्ता, माता, पिता, ना, सत्यः, अनायुः, अपुमान्, मतः, भ्रमणः, दीर्घपात्, धनाड्य, सोमः, अगर्हः, तादृक्, स्वर्ण तथा बहुः।।४५-४६।।

रिमषब्विषाद्वंद्वजातानहो तथा सर्वं विश्वोभये चोभौ अन्यान्तरेतराणि च॥४७॥
उत्तरश्चोत्तमो नेमस्त्वसमोऽथ समा इषः। पूर्वोत्तरोत्तराश्चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ॥४८॥
अपरश्चतुरोऽप्येतद्यावत्तत्किमसौ द्वयम्। युष्मदस्मच्च प्रथमश्चरमोऽल्पस्तथार्धकः॥४९॥
नीरः कतिपयो द्वे च त्रयो शुद्धादयस्तथा।
स्वेकाभुविरोधपरि विपर्ययश्चाव्ययास्तथा॥५०॥

ये सभी सर्वनाम शब्द हैं। सर्व, विश्व, उभय, उभ, अन्य, अन्यतर, इतर, उतर, उत्तम, नेम, त्व, त्वत्, सम, सिम्, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर, अपर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम् अदस् किम्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्। इनके रूप प्रायः सर्व के ही समान हैं। (यहां प्रायः का तात्पर्य है कि कतिपय शब्द रूप में कहीं-कहीं अन्तर भी है)। प्रथम, चरम, तय, अल्प, अर्ध, कतिपय ने म—इनके प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं। जैसे प्रथमे प्रथमाः, चरमे चरमाः। इसी प्रकार तय, अल्प, अर्घ, कतिपय। नेम के भी प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं। स्वरादि, निपात, उपसर्ग, विभक्ति तथा स्वर के प्रतिरूपक शब्द अव्यय संज्ञक होते हैं।।४७-५०।।

तद्धिताश्चाप्यपत्यार्थं पाण्डवाः श्रैधरस्तथा।
गार्ग्यो नाडायनात्रेयी गाङ्गेयः पैतृष्वस्त्रीयः॥५१॥
देवतार्थे चेदमर्थे ह्यैन्द्र ब्राह्मो हविर्बली।
क्रियायुजोः कर्मकर्त्रोर्धौरियः कौङ्कुमं तथा॥५२॥

तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दों का वर्णन किया जा रहा है। अपत्यवाचक संज्ञारूपेण प्रयुक्त शब्द हैं—[१]पाण्डव, [२]श्रौधर, [३]गार्ग्य, [४]नाडायन, [५]आत्रेय, [६]गाङ्गेय, [७]पैतृष्वस्त्रीय।

(यहां १-२ में अण्, ३ में यञ्, ४ में आयन, ५-६ में एय तथा सप्तम में ई य प्रत्यय है। प्रत्येक में आदिस्वर की वृद्धि है। इत्यादि) ये शब्द देवतार्थक तथा इदमर्थक प्रत्यय युक्त हैं। (१) ऐन्द्रं हविः, (२) ब्राह्मो बलिः। १ में अण् प्रत्यय है। २ में 'उसका यह' अर्थ में अण् प्रत्यय है। इन दोनों में आदि स्वर वृद्धयुक्त है। जो कर्म क्रियायुक्त है तथा कर्त्ता में तद्धित प्रत्यय है। यथा धौरेय एवं कौङ्कुमं।।५१-५२।।

भवाद्यर्थे तु कानीनः क्षत्रियो वैदिकः स्वकः।
स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चन्द्रबन्मुखमीक्षते॥५३॥

यह 'भव' प्रभृति अर्थ में होने वाले तद्धित प्रत्यय का उदाहरण कहा जाता है। यथा—कानीन, क्षत्रिय तथा वैदिक। स्वकः में स्वार्थ में कन् प्रत्यय है। 'स्व एव स्वकः' यहां स्वार्थ में 'क' प्रत्यय है। "चोर एवं चौरः" यहां स्वार्थ में अण् प्रत्यय है। तुल्य अर्थ में 'वत्' प्रत्यय है। जैसे चन्द्रवत्।।५३।।

ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च। गोमान्धनी च धनवानस्त्यर्थे प्रमितौ कियान्॥५४॥

भाव-अर्थ में त्व, ता, य प्रत्यय उक्त हैं। यथा ब्राह्मणत्वं (त्व), ब्राह्मणता (ता), ब्राह्मण्य (य)। अत्यर्थ में मतुप् तथा इन् प्रत्यय होते हैं। यथा—"गौः अस्यास्ति इति गोमान्" (गौ पास हो, तब वही गोमान है)। "धनमस्यास्ति इति धनी (धन पास हो, तब वह धनी)। प्रमिति अर्थ में कियान् शब्द बनता है। इसका अर्थ है कितना।।५४।।

जातार्थे तुण्डिदलः श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दन्तुरः।
स्त्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यर्थ एव च॥५५॥

अब जातार्थ में होने वाले प्रत्यय कहते हैं—यथा तुन्दिलः, श्रद्धालुः (तुन्द+इल=तुन्दिल, श्रद्धा+आलु=श्रद्धालु)। एवंविध दयालु, कृपालु आदि को समझे। उन्नताः दन्ता अस्य इति दन्तुरः। अस्, माया, मेधा स्त्रज् शब्दों से अस्त्यर्थ में विन् प्रत्यय होता है। यथा स्त्रग्वी, तपस्वी, मेधावी, मायावी।।५५।।

वाचाटो वाचालश्चैव बहुकुत्सितभाषिणि। ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च॥५६॥

वाच् शब्द से आल तथा आट प्रत्यय होते हैं। जो अनापशनाप बके वह वाचाल। अल्प तथा असमाप्ति के अर्थ में कल्पप, देश्य एवं देशीय प्रत्यय होते हैं।।५६।।

कविकल्पः कविदेश्यः प्रकारवचने तथा। पटुजातीयः कुत्सायां वैद्यपाशः प्रशंसने॥५७॥
वैद्यरूपो भूतपूर्वे मतो दृष्ट्चरो मुने। प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृण्मयः स्त्रीमयस्तथा॥५८॥

इसके उदाहरण हैं कविकल्पः, कविदेश्यः, कविदेशीय। जहां प्रकार बताया जाये, वहां किम् तथा सर्वनाम आदि शब्द से 'था' प्रत्यय होगा। प्रकार वचन में जहां विशेष प्रकार के व्यक्ति का प्रतिपादन हो, वहां जातीय प्रत्यय होगा। जैसे—पटुप्रकारः, पटुजातीयः। हीनता प्रकाशनार्थ संज्ञा शब्द से पाश प्रत्यय होगा। कुत्सितौ वैद्यः वैद्यपाशः (बेकार वैद्य)। प्रशंसा अर्थ में रूप प्रत्यय होगा। "प्रशस्तो वैद्यः वैद्यरूपः।" हे नारद! भूतपूर्व अर्थ प्रकाशनार्थ चर प्रत्यय होगा। जैसे—दृष्टचरः (पहले देखा गया)। प्राचुर्य एवं विकार अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु मय प्रत्यय होगा। जैसे अन्नमयो यज्ञः, यहां अन्न शब्द से मयट् प्रत्यय हो गया। ऐसे ही मृण्मयः, स्त्रीमयः इत्यादि।।५७-५८।।

जातार्थे लज्जितोऽत्यर्थं श्रेयाञ्छ्रेष्ठश्च नारद।
कृष्णतरः शुक्लतमः किम आख्यानतोऽव्ययान्॥५९॥
किंतरां चैवातितरामभिह्युच्चैस्तरामपि। परिमाणे जानुदघ्नं जानुद्वयमित्यपि॥६०॥

हे नारद! जातार्थ में तारकादि शब्द से इत प्रत्यय होगा। जातार्थ में लज्जित, अत्यर्थ में श्रेयान् तथा श्रेष्ठ होगा। (१) जहां अनेक में से एक को विशेष कहना हो, तब वहां तम एवं इष्ठ प्रत्यय होंगे। (२) जहां दो वस्तु में से एक को श्रेष्ठ कहना हो, वहां तर एवं ईयसु प्रत्यय होंगे। (१) का उदाहरण है—कृष्णतम, शुक्लतर इत्यादि। किम् क्रियावाचक तिङन्त तथा अव्यय से परे वाले तम एवं तर प्रत्ययान्त में आम् लगाते हैं। जैसे किंतराम, अतितराम, उच्चैस्तराम्। प्रमाण (माप) व्यक्त हेतु द्वयस, दघ्न, मात्र प्रत्यय होते हैं। जैसे जानुद्वयसम्, जानुदघ्न (घुटने तक आये) तथा जानुमात्रम्।।५९-६०।।

जानुमात्रं च निर्द्धारे बहूनां व द्वयोः क्रमात्।
कतमः कतरः सङ्ख्येयविशेषावधारणे॥६१॥

द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थः षष्ठपञ्चमौ। एकादशः कतिपयः कतिथः कति नारद॥६२॥
विंशश्च विंशतितमस्था शततमादयः। द्वेधा द्वैधा द्विधा संख्या प्रकारेऽथ मुनीश्वर॥६३॥

हे नारद! दो में से एक, बहुत में से एक का निर्णय करने हेतु कतमः, कतरः होता है। "भवतो कतरः श्यामः" (दोनों में से कौन श्याम है)। "भवतां कतमः श्रीरामः" (आप सबमें राम कौन हैं?)। हे नारद! संख्या विशेष निश्चयार्थ द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः, षष्ठः, पंचम, एकादशः, कतिपयः, कतिथः, कति, विंशः, विंशतितमः, शततमः होता है। क्रिया के प्रकार बोधार्थ संख्यावाचक शब्द से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय होगा। एकधा, द्विधा, त्रिधा आदि।।६१-६३।।

क्रियावृत्तौ पञ्चकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि।
द्वितयं त्रितयं चापि संख्यायां हि द्वयं त्रयम्॥६४॥

क्रिया आवृत्ति के पंचकृत्वः, द्विः, त्रिः, एवं बहुशः, उदाहरण हैं। इसमें कृत्वस् प्रत्यय होगा। 'स्' विसर्ग होता है। बहुः शब्द से धा, शस् एवं कृत्वस् प्रत्यय होते हैं। यथा बहुधा, बहुशः, बहुकृत्वः। संख्या बोधार्थ 'तय' प्रत्यय होगा। द्वितय, त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय इत्यादि। द्वि-त्रि के आगे जो 'तय' प्रत्यय होता है, वहां विकल्प से 'अय' होता है। 'द्वि' तथा 'त्रि' के लोप से द्वय, त्रय हो जाता है।।६४।।

कुटीरश्च समीरश्च शुण्डारोऽल्पार्थके मतः।
स्त्रैणः पौष्णास्तुण्डिभश्च वृन्दारककृषीवलौ॥६५॥
मलिनो विकटो गोमी मौरिकीविधमुत्कटम्।
अवटीटोवणाटे च निबिडं चेक्षु शाकिनम्॥६६॥
निबिरीसमेषुकारी वित्तोविद्याच्चणस्तथा। विद्याचुञ्चुर्बहुतिथं पर्वतः शृङ्गिणस्तथा॥६७॥
स्वामी विषमरूप्यं चोपत्यकाधित्यका तथा।
चिल्लश्च चिपिटं चिक्वं वातूलः कुतपस्तथा॥६८॥
वल्लश्च हिमेलुश्च कहोडश्चोपडस्ततः। ऊर्णायुश्च मरूतश्चैकाकी चर्मण्वती तथा॥६९॥
ज्योत्स्ना तमिस्रा ष्ठीवश्च कक्षीवच्चर्मण्वती।
आसन्दीवच्च चक्रीवत्तूष्णीकां जल्पतक्यपि॥७०॥
कम्भश्च कंयुः कंवश्च नारदकेतिः कन्तुः कन्तकम्पौ शंवस्तथैव च। शन्तः शन्तिः शंयशन्तौ शंयोहंयुः शुम्भयुवत्॥७१॥

कुटीर, समीर, शुण्डार अल्पार्थक हैं। इनमें अल्पता का बोध कराने हेतु 'र' प्रत्यय है। स्त्रैण, पौं स्नः, तुण्डिमः, वृन्दारक, कृषीवलः, मलिनः, विकटः, गोमी, मौरिकी, विधम्, उत्कटम्, अवरीटः, अवनाठः, निविड़म्, इक्षुशाकिनम्, निविरीसम्, एषुकारिभक्तम्, विद्याचरण, विद्या, चञ्चुः, बहुतिथम्, पर्वतः, शृङ्गिणः, स्वामी, विषमरुप्यम्, उपत्यका, अधित्यका, चिल्लः, चिपिटम्, चिक्कम्, वातुलः, कुतुपः, बलूलः, हिमेलुः, कहिकः, उपडः, उर्णायुः, मरुत्तः, एकाकी, चर्मण्वती, ज्योत्स्ना, तमिस्रा, अष्ठीवत्, कक्षीवत्, चर्मण्वती,

आसन्दीवत्, चक्रीवत्, तूष्णीकाम्, जल्पतकि, कंवः, कंभः, कंयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कंयः, शंवः, शन्तः, शन्तिः, शन्तुः, अंयुः, शुभंयुः।।६५-७१।।

भवति बभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि भूयादभूदभविष्यल्लादावेतानि रूपाणि। अत्ति जघासात्तात्स्यत्त्वाददद्यादघसदात्स्यत्।।७३।।

अब तिङन्त प्रकरण तथा कतिपय धातुरूप कहते हैं। 'भू' धातु के लट्लकार में भवति-भवतः-भवन्ति आदि रूप हैं। लिट्लकार में बभूव, वभूवत, वभूवुः, लृट् में भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति, लोट में भवतु, भवतात्, भवताद्, भवताम्, भवन्तु आदि, लङ्लकार में अभवत्, अभवताम्, अभवन्, आदि, विधिलिंग में भवेत्, भवेताम्, भवेयुः आदि आशिष लिङ्ग में भूयात्, भूयस्ताम्, भूयासुः, लृङ्लकार में अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन् आदि रूप हैं। अब अदादि गण के अद् धातु का पूर्ववत् प्रति लकार में एक-एक रूप उद्धृत है। यह भक्षणार्थ में प्रयुक्त धातु है। अत्ति, जघास, अत्ता, अत्स्यति, अत्तु, आदत्, अद्यात्, अघसत्, आत्स्यत्।।७२-७३।।

जुहोति जुहाव जुहवाञ्चकार होता होष्यति जुहोतु। अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौसीदहोष्यदात्व्यति। दिदेव देविता देविष्यति च अदीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै।।७४।।

अदेवीददेवोष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै।
सुनोत्वसुनोत्सुनुयात्सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च।।७५।।

जुहोति, जुहाव, जुहवांचकर, होता, होष्यति, जुहोतु, अजुहोत्, जुहुयात्, हूयात्, अहौसीत्, अहोष्यत्—'हु' धातु के रूप हैं। दीव्यति, दिदेव, देविता, देविष्यति, अदीव्यत्, दीव्येत्, दीव्यात्, अदेवीत्, अदेविष्यत्—ये सभी दिव धातु के रूप हैं। स्वादिगण में 'सु' धातु प्रधान है। यह षुञ् धातु नाम द्वारा जानी जाती है। अर्थ है नहलाना, रस निचोड़ना, सोमरस निकालना, नहाना। इसके रूप हैं—सुनोति, सुषाव, सोता, सोष्यति, सुनोतु, असुनोत्, सुनुयात्, सूयात्, असावीत्, असोष्यत्—ये परस्मैपद के रूप हैं। आत्मनेपद में सुनुते, सुषुवे आदि होंगे।।७४-७५।।

तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वतुदत्तुदेत्तुद्याद्धि।
अतौत्सीदतोत्स्यदिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै।।७६।।
रुणद्धु अरुणद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च।
तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि।।७७।।

अतनीच्चातानीदतनिष्यत्क्रीणाति चिक्राय क्रेता क्रेष्यति क्रीणात्विति च। अक्रीणात्क्रीणीयात्क्रीयादक्रैषीदक्रेष्यच्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति चोरयतु।।७८।।

अचोरयच्चोरयेच्चोर्यात् अचूचुरदचोरिष्यदित्येवं दश वगणाः। प्रयोजके भावयति सनीच्छायां बुभूषति। क्रियासमभिहारे तु पंडितो बोभूयते मुने।।७९।।

तथा यङ्लुकि बोभवीति च पठ्यते।
पुत्रीयतीत्यात्मनीच्छायां तथाचारेऽपि नारद।
अनुदात्तञितो धातोः क्रियाविनिमये तथा।।८०।।

तुदादिगण में तुद् धातु प्रधान है। अर्थ है पीड़ा देना। रूप है तुंदति, तुतोद, तोत्ता, तोत्स्यति, तुदतु, अतुदत्, तुदेत्, तुद्यात्, अतौत्सीत्, अतोत्स्यत्। रुधादिगण में रुद् धातु प्रधान है। अर्थ है रुंधना, बाड़ लगाना, घेरना, रोकना। रूप है—रुणद्धि, रुरोध, रोद्धा, रोत्स्यति, रुणद्ध, अरुणत्, सन्ध्यात्, सध्यात्, अरौत्सीत्, अरोत्स्यत्। तनादिगण में तन् धातु प्रधान है। अर्थ है विस्तार करना, फैलाना। रूप है—तनोति, ततान, तनिता, तनिष्यति, तनोतु, अतनोत्, तनुयात्, तन्यात्, अतानीत्, अतनिष्यत्। क्र्यादि में क्रीधातु प्रधान है। अर्थ है—खरीदना, एक वस्तु देकर अन्य वस्तु लेना। रूप है—क्रीणाति, चिक्राय, क्रेता, क्रेष्यति, क्रीणातु, अक्रीणात्, क्रीणीयात्, क्रीयात्, अक्रैषीत्। अक्रेष्यत्—चुरादिगण में चुर् धातु प्रधान है। अर्थ है चुराना। रूप है—चोरयति, चोरयामास, चोरयाञ्चकार, चोरयाम्बभूव, चोरयति, चोरयिष्यति, चोरयतु, अचोरयत्, चोरयेत्, चोर्यात्, अचुचुरत्, अचोरयिष्यत्। (इनका आत्मनेपदीय रूप है—चोरयते, चोरयाञ्चक्रे, चोरयामासे, चोरयाम्बभूवे, चोरयिता, चोरयिष्यते, चोरयताम्, अचोरयत, चोरयेत, चोरयिषीष्ट, अचूचुरत, अचोरयिष्यत ये धातुओं के दस गण हैं। हे मुनिवर! प्रयोजक अर्थात् प्रेरणा में भावयति, सनीच्छा में बुभूषति, क्रिया समभिव्याहार में वोभूयते तथा यङ्लुक् में बोभवीति होगा। हे नारद! आचार, अर्थ और इच्छा अर्थ में पुत्रीयति होता है। हे विप्र! अनुदात्तेत् धातु तथा ङकार इत्यसंज्ञक धातु में आत्मनेपद होता है। क्रियाविनियम में भी आत्मनेपद होगा।।७६-८०।।

निविशादेस्तथा विप्र विजानीह्यात्मनेपदम्।
परस्मैपदमाख्यातं शेषात्कर्तरि शाब्दिकैः॥८१॥

हे विप्रवर! निपूर्वक 'विश्' एवं 'वि' तथा परापूर्वक 'जि' इत्यादि धातु से भी आत्मनेपद होगा। निविशते, विजयते, पराजयते इत्यादि। भाव तथा कर्म में जब प्रत्यय हो, तब भी आत्मनेपद होगा। आत्मनेपद के निमित्तों को छोड़कर शेष धातुओं से कर्त्ता में परस्मैपद होता है। यह शाब्दिक विद्वान् कहते हैं।।८१।।

ञित्स्वरितेतश्च उभे यक्च स्याद्भावकर्मणोः।
सौकर्यातिशयं चैव यदा द्योतयितुं मुने॥८२॥
विवक्ष्यते न व्यापारो लक्ष्ये कर्तुस्तदापरे।
लभन्ते कर्तृतां पश्य पच्यते ह्योदनः स्वयम्॥८३॥
साधु वासिश्छिनत्त्येवं स्थाली पचति वै मुने।
धातोः सकर्मकाद्भावे कर्मण्यपि लप्रत्ययाः॥८४॥

ङित् तथा स्वरितेत् धातु से उभय पद होगा अर्थात् स्वरित एवं 'ञ' की इत्संज्ञा होने पर वहां आत्मनेपद तथा परस्मैपद उभय होंगे। भाव तथा कर्म में यम् प्रत्यय होगा। हे मुनिवर! अत्यन्त सौकर्य व्यक्त करने में जब कर्त्ता के व्यापार की विवक्षा नहीं की जाती, तब कर्त्ता से अतिरिक्त भी जो हो, वह कर्त्तावत् हो जाता है अर्थात् तब कर्म एवं करण आदि कारक भी कर्तृभावयुक्त हो जाते हैं। जैसे "आदनः स्वयमेव पच्यते।" "असिः साधु छिनत्ति" (खड्ग स्वयं काटता है), "स्थाली पचन्ति" (बटलोई) पकाती है। सकर्मक धातु से कर्म एवं भाव में लप्रत्यय होता है। सकर्मक धातु कर्मकर्तृ में अकर्मक हो जाता है। सम्प्रदान तथा अपादान कारक में कर्तृत्व विवक्षा नहीं होती, क्योंकि यह अनुभव विरुद्ध है। सामान्य स्थिति में सकर्मक धातु से कर्त्ता तथा कर्म में प्रत्यय होते हैं।।८२-८४।।

तस्मै वाकर्मकाद्विप्र भावे कर्तरि कीर्तितः। फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः॥८५॥
धातुस्तयोर्द्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः। गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्॥८६॥

बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया।
प्रयोज्य कर्मण्यन्येषाण्यन्तानां लादयो मताः॥८७॥
फलव्यापारयोर्द्धातुराश्रये तु तिङ स्मृताः।
फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्॥८८॥

हे विप्रप्रवर! जब वही धातु अकर्मक हो, तब उससे भाव तथा कर्त्ता में प्रत्यय कहा गया है। जब फल एवं व्यापार-कनिष्ठ हो, तब धातु अकर्मक रहेगा। जब ये उभय भिन्न-भिन्न धर्म में स्थित हों, तब धातु सकर्मक है। द्विकर्मक दुह् आदि के गौण कर्म में, नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म में, बुद्धि भक्षणार्थक तथा शब्द कर्मक धातु के दोनों कर्म में इच्छानुरूप प्रत्यय होते हैं। दुह् आदि के अन्तर्गत् हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, जि, शास्, मथ्, मुष्। इनके दो कर्म हैं। इसी तरह नी, हृ, कृष तथा वह् के भी दो कर्म हैं। ज्ञानार्थक तथा भक्षणार्थक धातु के तथा शब्दकर्मक धातु के ण्यन्त होने पर उनसे प्रधान किंवा अप्रधान किसी भी कर्म में स्वेच्छा से प्रत्यय कर सकते हैं। अन्य गत्यर्थक तथा अकर्मक धातुओं के ण्यन्त होने पर उनके प्रयोज्य कर्म में लकार आदि प्रत्यय माने जाते हैं। यथा—"मासमास्यते माणवकः" धातुफल व्यापार रूप अर्थ का बोधन कराता है। भूधातु आत्मधारण फल एवं तदनुरूप व्यापार का बोधक है। फल तथा व्यापार का जो आश्रय है, वहां कर्त्ता-कर्म-भाव में तिङ् प्रत्यय है। जो तिङर्थरूप फल है, वही उस व्यापार का विशेषण है। फल तथा व्यापार में व्यापार प्रधान है। आश्रय तिङ का अर्थ है। तिङर्थ सदा विशेषण होता है।।८५-८८।।

एधितव्यमेधनीयमिति कृत्ये निदर्शनम्।
भावे कर्मणि कृत्या स्युः कृतः कर्तरि कीर्तिताः॥८९॥
कर्ता कारक इत्याद्या भूते भूतादि कीर्तितम्।
गम्यादिगम्ये निर्दिष्टं शेषमद्यतने मतम्॥९०॥

अब कृदन्त कहते हैं। कृत् प्रत्यय जहां अन्त में हो, वह कृदन्त है। एधितव्यम् तथा एधनीयम् इसके उदाहरण हैं। ये कृत्यप्रत्यय के उदाहरण हैं। कृत्य प्रत्यय, भाव एवं कर्म में होते हैं। कृत् प्रत्यय कर्त्ता में होते हैं। कृत् का उदाहरण है कर्त्ता, कारक। क्त तथा क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। गम्य आदि शब्द भविष्यत् अर्थ में निर्दिष्ट हैं। शेष शब्द वर्त्तमान काल में प्रयुक्त होते हैं।।८९-९०।।

अधिस्त्रीत्यव्ययीभावे यथाशक्ति च कीर्तितम्।
रामाश्रितस्तत्पुरुषे धान्यार्थो यूपदारु च॥९१॥
व्याघ्रभी राजपुरुषोऽक्षशौंडो द्विगुरुच्यते। पञ्चगवं दशग्रामी त्रिफलेति तु रूढितः॥९२॥
नीलोत्पलं महाषष्ठी तुल्यार्थे कर्मधारयः।
अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुम्भकारादिकः कृता॥९३॥
अन्तार्थे तु बहुव्रीहौ ग्रामः प्राप्तोदको द्विजः। पञ्चगू रूपवद्भार्यो मध्याह्नः ससुतादिकः॥९४॥

समुच्चये गुरुं चेशं भजस्वान्वाचये त्वट।
भिक्षामानाय गां चापि वाक्यमेवानयोर्भवेत्॥९५॥
इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ। रामकृष्णं द्विज द्वे द्वे ब्रह्म चैकमुपास्यते॥९६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे व्याकरणनिरूपणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥
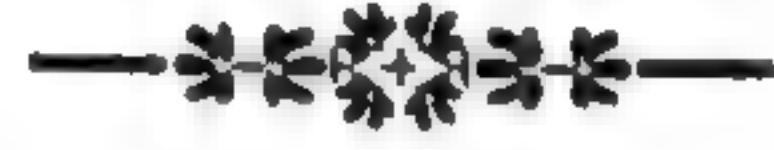
यह समास प्रकरण कहा जा रहा है। अधिस्त्रि यथाशक्ति **अव्ययीभाव** है। रामाश्रितः, धान्यार्थः, यूपदारु, व्याघ्रभीः, राजपुरुष, अक्षशौण्डः, ये **तत्पुरुष समास** हैं। पंचगवम्, दशग्रामी, त्रिफला **द्विगु** हैं। नीलोत्पल, महाषष्ठी में तुल्यार्थ में **कर्मधारय** है। अब्राह्मण **नञ् समास** है। कुम्भकारादि में कृदुपपद के साथ **समास** है। अन्यार्थ में **बहुब्रीहि समास** है। इसका उदाहरण है—"प्राप्तोदको ग्रामः", "पंचगुः रुपवद्भार्यः।" मध्याह्न तथा ससुतः भी समास के उदाहरण हैं। **द्वन्द्व समास में** समुच्चय में 'गुरुं चेशं भजस्वा इत्यादि में तथा 'अट भिक्षां गां चानाय" में अन्वाचय में वाक्य ही रहेगा। समास नहीं होगा। इतरेतर योग द्वन्द्व का "रामकृष्णौ" उदाहरण है। इतरेतर योग द्वन्द्व में समस्यमान पदार्थगत संख्या का सुमदाय में आरोप होता है। वहां द्विवचनान्त किंवा बहुवचनान्त प्रयोग होता है। इस योग में राम-कृष्ण दो हैं। समाहार में वे एक हैं। तभी ब्रह्मरूपेण उनकी उपासना दोनों को एक जानकर करते हैं।।९१-९६।।

।।५२वां अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

निरुक्त लक्षण

सनन्दन उवाच

निरुक्तं ते प्रवक्ष्यामि वेदं श्रोत्राङ्गमुत्तमम्। तत्पञ्चविधमाख्यातं वैदिकं धातुरूपकम्॥१॥
क्वचिद्वर्णागमस्तत्र क्वचिद्वर्णविपर्ययः।
विकारः क्वापि वर्णानां वर्णनाशः क्वचिन्मतः॥२॥
तथा विकारनाशाभ्यां वर्णानां यत्र नारद। धातोर्योगातिशायी च संयोगः परिकीर्तितः॥३॥
सिद्धेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो र्वाविपर्ययात्। गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरः॥४॥
भ्रमरादिषु शब्देषु ज्ञेयो योगो हि पञ्चमः। बहुलं छन्दसीत्युक्तमत्र वाच्यं पुनर्वसु॥५॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—अब मैं वेद के उत्तम कर्णरूप निरुक्त का वर्णन करता हूं। यह उत्तम वेदांग है। यह वैदिक धातुरूप निरुक्त पंचविध है।

(१) जहां वर्णागम होता है,

(२) जहां वर्ण विपर्यय होता है,

(३) जहां वर्ण विकार होता है,

(४) जहां वर्ण नाश माना जाता है,

(५) जहां वर्ण विकार किंवा वर्णनाश द्वारा धातु के साथ विशेष अर्थ का प्रकाशक संयोग हो।

इसे उत्तम योग कहते हैं।

(१) से हंसपद सिद्ध होता है। (२) से सिंहपद सिद्ध होता है। (३) से गूढोत्मा की सिद्धि होती है। गूढ़+आत्मा में 'आ' विकृत हो गया यह उ रूपेण परिणत होकर गुण होने से गूढ़ोत्मा बना (एष सर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशते)। (४) से पृषोदर सिद्ध हो गया। यहां पृषद्+उदर रूप पदच्छेद है। "पृषोदराणि यथोपदिष्टम्" द्वारा यहां तकार का नाश है। (५) से भ्रमर आदि शब्द से पंचम योग हो गया। "भ्रमतीति भ्रमरः" यहां उणादि सूत्रानुसार 'अर' प्रत्यय के कारण 'भ्रमर' सिद्ध होगा। वेदों में लौकिक नियम का विकल्प एवं विपर्यय कथित है। यहां पुनर्वसु पद का उदाहरण दिया जाता है। लौकिक प्रयोग में पुनर्वसु नित्य द्विवचनान्त है, तथापि वेद में नियमानुसार इसका एकवचनान्त प्रयोग होता है।।१-५।।

नभस्वद्वृषणश्चश्चापरस्मैपदि चापि हि। परं व्यवहिताश्चापि गतिसंज्ञास्तु याडि आ॥६॥

आत्मनेपद की जगह वेद में परस्मैपद का भी प्रयोग होता है। इसका उदाहरण है नभस्वत्, वृषणश्व। प्र आदि उपसर्ग यदि धातुपूर्व हों, तब उनकी संज्ञा उपसर्ग अथवा गति होती है, तथापि वे वेद में धातु के पश्चात् किंवा व्यवधान देकर प्रयुक्त होने पर भी उपसर्ग तथा गति कहे जाते हैं। जैसे "हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि। यहां आयाहि के अर्थ में याहि + आ का व्यवहित, पर प्रयोग है। आ + याहि के मध्य अनेक पद का व्यवधान है।।६।।

विभक्तीनां विपर्यासो दघ्ना जुहोति हि। अभ्युत्सादयामकेतुर्ध्वनयीत्प्रमुखास्तथा।
निष्टभ्यास्तथोक्ताश्च गृभायेत्यादिकास्तथा॥७॥

वेद में "दघ्ना जुहोति" में विभक्ति विपर्यास लक्षित होता है। यहां 'दुधि' ही 'हु' का कर्म है। यहां द्वितीया होना चाहिये, तथापि "तृतीया च होश्छन्दसि" के अनुसार कर्म में तृतीया है। अभ्युत्सादयामकः, ध्वनयीत्, निष्टभ्कर्य "गृभाय" ये सभी वैदिक सूत्र हैं। इनके द्वारा च्लिके चङ्भाव का निषेध है।।७।।

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन॥८॥

शास्त्रज्ञगण सुप्, तिङ्, उपग्रह, लिङ्ग, पुरुष, काल, हल, अच्, स्वर, कर्त्ता, यङ् में व्यत्यय चाहते हैं, तथापि यह सब बाहुलक से सिद्ध होता है।।८।।

रात्री विभ्वी च कद्रूश्चाविष्ट्वो वाजसनेयिनः॥९॥
कर्णेभिश्च यशोभाग्य इत्याद्याश्चतुरक्षरम्।
देवासोऽथो सर्वदेवतातित्वावत इत्यपि॥१०॥

उभयाविनमाद्याश्च प्रलयाद्याश्च स्तृचं तथा।
अपस्पृधेथां नो अव्यादापो अस्मान्मुखास्तथा॥११॥
सगर्भ्योऽष्टापदी ऋत्व्योरजिष्टं त्रिपञ्चकम्। हिरण्ययेन नरं च परमे व्योमनित्यपि॥१२॥
उर्विया स्वप्रया वारवध्वाददुह्लवैवधी। यजध्वैनमेमसि च स्नात्वी गत्वायचाश्थभिः॥१३॥
गोनाञ्चापरिहवृत्ताश्चातुरिर्ग्रसितादिका। पश्वेदधद्वभूथापि प्रमिणांतीत्यवीवृधत्॥१४॥
मित्रयुश्च दुरस्युर्वा हीत्वा सुधितमित्यपि।
दाधर्त्याद्या स्ववद्धिश्च ससूवेति च धिष्व च॥१५॥
प्रप्राये च हरिवतेक्षण्वन्तः सुपथिन्तरः। स्थीतरी निषताद्या अम्रर्भुवरथो इति॥१६॥
बूह्याद्यादेः परस्याप्यौ श्रावयेत्यादिके प्लुतः।
दाश्वांश्च स्वतवान्यापौत्रिभिष्ट्वं च नृभिष्टुतः॥१७॥
अभीषुण ऋतावाहं न्यषीदन्नृमणा अपि। चतुर्विधाद्बाहुलकात्प्रवृत्तेरप्रवुत्तितः॥१८॥
विभाषयान्यथाभावात्सर्वं सिद्ध्येयच्च वैदिकम्।
भूवाद्या धातवो ज्ञेयाः परस्मैपदि नःस्मृताः॥१९॥

रात्री, विश्वी, कद्रुः, अविष्टयः, वाजसनेयिनः, कर्णेभिः, यशोभाग्यः, चतुरक्षरम्, देवासः, सर्वदेवताति, त्वावतः, रजिष्ठम्, उभयाविनम्, प्रत्नथा, तृचम्, अपस्पृधेथाम्, नो अव्यात्, आपो अस्मान्, सगर्भ्यः, अष्टापदी, ऋत्व्यम्, त्रिपञ्चम्, हिरण्ययेन, इतरम्, परमे व्योमन्, उर्विया, स्वप्नया, वारवध्वात्, आदुह्, वैवधी, पश्य, इदघद्, वभूथाः, प्रमिणोति, वर्धी, वृत्रम्, यजध्वैनम्, एमसि, स्नात्वी, गत्वाय, अस्थभिः, गोनाम्, अपरिह्वृताः, ततुरिः, जगुरिः, गसिताम्, पश्वे, दधत्, वभूथ, प्रमिणन्ति, अवीवृधत्, मित्रयुः, दुरस्युः, द्रविणस्युः, हित्वा, हीत्वा, सुधितम्, दाधर्त्ति, दर्धर्त्ति, दर्धर्षि, स्ववृद्धिः, ससूव, धिस्व, पप्रायमग्निः, हरिवतं, अक्षण्वन्तः, सुपथिन्तरः, रथीतरः, निषत्तः, अम्ब, भुवरथो, अग्नयेऽनुब्रूहि, ओ ३ श्रा ३ वयं, दाश्वान्, स्वतवाः पायुरग्ने, त्रिभिष्ट्वं देव सवितः अभीषुणः, न्यषीदत्, नृमणाः प्रभति प्रयोग वैदिक प्रक्रिया द्वारा सिद्ध होते हैं। हे मुनि! भू, वा, आदि परस्मैपदी धातु हैं।।९-१९।।

एधाद्या आत्मनेभाषा उदात्ताः षट्त्रिंशसंख्यकाः।
अतादयोऽष्टत्रिंशच्च परस्मैपदिनो मुने॥२०॥
शोकृपूर्वा द्विचत्वारिंशदुक्ता च ह्यात्मने पदे।
उदात्तेतस्तु पञ्चाशत्फक्काद्याः परिकीर्तिताः॥२१॥

एष आदि ३६ धातु उदात्त एवं आत्मनेपदी हैं। ये अनुदात्तेत् माने गये हैं। हे मुनिवर! 'अत' प्रभृति ३७ धातु परस्मैपदी हैं। शी-कृ आदि ४२ धातु आत्मनेपदी हैं। फक्क आदि ५० धातु उदत्तेत् (परस्मैपदी) कही गयी हैं।।२०-२१।।

वर्चाद्या अनुदात्तेत एकविंशतिरीरिताः। गुपादयो द्विचत्वारिंशदुदात्तेता समीरितः॥२२॥

धिण्यादयोऽनुदात्तेता दश प्रोक्ता हि शाब्दिकैः।
अणादयोप्युदात्तेतः सप्तविंशतिधातवः॥२३॥
अमादयःसमुद्दिष्टाश्चतुस्त्रिंशद्धिशाब्दिकैः। द्विसप्ततिमितामव्यमुखाश्चोदात्तबन्धनाः॥२४॥

वैयाकरणगण घिणि प्रभृति १० धातुओं को अनुदात्तेय कहे गये हैं। अण् आदि २७ धातु उदात्तेय कहे गये हैं। अय आदि ३४ धातु को वैयाकरणो ने अनुदात्तेत (आत्मनेपदी) कहा है। मव्य आदि ७२ धातु उदात्तानुबन्धी कहे गये हैं।।२२-२४।।

स्वरितेद्धावुधातुस्तु एक एव प्रकीर्तितः। क्षुधादयोऽनुदात्तेतो द्विपञ्चाशदुदाहृताः॥२५॥
घुषिराद्या उदात्तेतोऽष्टाशीतिर्धातवो मताः। द्युताद्या अनुदात्तेतो द्वविंशतिरतो मताः॥२६॥
षितस्त्रयोदश घटादिष्वनुदात्तेत ईरितः। ततो ज्वलदुदात्तेतो द्विपञ्चाशन्मितास्तथा॥२७॥
स्वरितेद्राजृसंप्रोक्तस्तनाहिर्भ्राजृतस्त्रयः। अनुदात्तेत अख्याता आद्युदात्ता इतः स्यमात्॥२८॥
सहोऽनुदात्तेदेकस्तु रमेङ्क्तोऽप्यात्मनेपदी। सदस्त्रय उदात्तेतः कुचाद्वेदा उदात्त इत्॥२९॥

'धावु' मात्र एक धातु स्वरितेत् है। क्षुध् प्रभृति ५२ धातु अनुदात्तेत कहे गये हैं। घुषिर् आदि ८८ धातु उदात्तेत् (परस्मैपदी) माने गये हैं। द्युत आदि २२ धातु अनुदात्तेत हैं। घटादि में १३ धातु षित् तथा अनुदात्तेत कहे गये हैं। ज्वर आदि ५२ धातु को उदात्त कहा गया है। राजृ धातु स्वरिरेत् है। तदनन्तर भ्राजृ, भ्राशृ तथा भ्लाशृ अनुदात्तेत् है। स्यमु धातु से लगाकर सभी आद्युदात्त एवं उदात्तेत (परस्मैपदी) है। एक मात्र षह धातु ही अनुदात्तेत् है तथा एकमात्र 'रम' धातु आत्मनेपदी है। तदनन्तर सद आदि तीन धातु उदात्तेत् हैं। तदनन्तर कुच आदि चार धातु भी उदात्तेत् परस्मैपदी हैं।।२५-२९।।

स्वरितेतः पञ्चत्रिंशद्धिक्काद्याश्च ततः परम्।
स्वरितेच्छ्रिञ्भृञाद्याश्चत्वार स्वरितेत्ततः॥३०॥
घेटः परस्मैपदिनः षट्चत्वारिंशदुदीरिताः।
अष्टादश स्मिङाद्यास्तु आत्मनेपदिनो मताः॥३१॥

तदनन्तर हिक्क आदि ३५ धातु स्वरितेत है। श्रिञ् तथा भृञ् आदि चार स्वरितेत है। घेट् आदि ३६ परस्मैपदी है। स्मिङ् आदि १८ धातु आत्मनेपदी है।।३०-३१।।

ततस्त्रयोऽनुदात्तेतो पूङाद्याः परिकीर्तिताः। हृपरस्मैपदी चात्मनेभाषास्तु गुपास्त्रयः॥३२॥
रभद्यब्ध्यनुदात्तेतो ञिक्ष्विदोदात्त इन्मतः। परस्मैपदिनः पञ्चदश स्कंन्भ्वादयस्तथा॥३३॥
कितधातुरुदात्तेच्च दानशानोभयात्मकौ। स्वरितेतः पदाद्यङ्काः परस्मैपदिनो मताः॥३४॥
स्वरितेतस्त्रयश्चैतौ वदवची परिभाषिणौ। भ्वाद्या ऐते षडधिकं सहस्त्रं धातवो मताः॥३५॥

पुङ् आदि ३ धातु अनुदात्तेत् है, हृ धातु परस्मैपदी है। 'गुप' से लेकर तीन धातु आत्मनेपदी हैं। 'रभ' आदि अनुदात्तेत है। ञिक्ष्विदा उदात्तेत है। स्कम्भु आदि १५ धातु परस्मैपदी है। ''कित'' धातु उदात्तेत है। दान-शान धातु उभयपदी हैं। पच आदि ९ धातु स्वरितेत् अर्थात् उभयपदी हैं। ये परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी मानी गयी

हैं। तदनन्तर तीन स्वरितेत् धातु है। परिमापणार्थक वद तथा वच धातु परस्मैपदी है। ये १००६ धातु भ्वादि उक्त हैं।।३२-३५।।

परस्मैपदिनः प्रोक्ता वदाश्चाप हनेति च।
स्वरितेतो द्विषाद्यास्तु चत्वारो धातवो मताः।।३६।।
चक्षिङेकः समाख्यातो धातुरत्रात्मनेपदी। इरादयोऽनुदात्तेतो धातवस्तु त्रयोदश।।३७।।
आत्मनेपदिनौ प्रोक्तौ षूङ्शीङ्द्वौ शाब्दिकैर्मुने।
परस्मैपदिनः प्रोक्ता षुमुखाः सप्त धातवः।।३८।।

वद (पाठान्तर अद) तथा हन् धातु परस्मैपदी हैं। द्विष आदि ४ धातु स्वरितेत् हैं। यहां चक्षिङ धातु आत्मनेपदी हैं। तदनन्तर ईर आदि १३ धातु अनुदात्तेत् हैं। हे मुनि! वैयाकरणो ने षुङ् तथा शीङ् धातु को आत्मनेपदी तथा षु आदि सात धातु को परस्मैपदी कहा है।।३६-३८।।

स्वरितेदूर्णुञाख्यातो धातुरेको मुनीश्वर। घुमुखास्त्रय उद्दिष्टाः परस्मैपदिनस्तथा।।३९।।
ष्टुञेकस्तु समाख्यातः स्मृतो नारद शाब्दिकैः।।४०।।
अष्टादश राप्रभृतयः परस्मैपदिनः स्मृताः। इङ्ङात्मनेपदी प्रोक्तो धातुर्नारद केवलः।।४१।।
विदादयस्तु चत्वारः परस्मैपदिनो मताः। ञिष्वप्शये समुद्दिष्टः परस्मैपदिकस्तथा।।४२।।
षरस्मैपदिनश्चैव ते मयोक्ताः श्वसादयः।
दीधीङ्वेवीङ् स्मृतौ धातू आत्मनेपदिनौ मुने।।४३।।
षसादयस्त्रयश्चापि उदात्तेतः प्रकीर्तिताः। चर्करीतं च हुङ्प्रोक्तोऽनुदात्तेन्मुनिसत्तम।।४४।।
त्रिसप्तति समाख्याता धातवोऽदादिके गणे।
दादयो धातवो वेदाः परस्मैपदिनो मताः।।४५।।

हे मुनीष्वर! यहां "ऊर्णञ" धातु को स्वरिरेत् कहा है। 'घु' आदि तीन धातु परस्मैपदी हैं। हे नारद! मात्र 'षष्टञ्' धातु को व्याकरण ज्ञाता विद्वानों ने उभयपदी कहा। 'रा' आदि १८ धातु परस्मैपदी हैं।

हे नारद! तदनन्तर मात्र 'इङ्' धातु को आत्मनेपदी कहा गया। तदनन्तर 'विद' आदि ४ धातु परस्मैपदी हैं। "ञिष्वप् शये" धातु परस्मैपदी हैं। हे मुनिवर! 'श्वस' आदि उदात्तेत हैं। हे मुनिप्रवर! 'चर्करीतं च' यह यङ्लुगन्त प्रतीक है, जो अदादि माना गया। ह्वङ् अनुदात्तेत् है। अदादिगण में ७३ धातु हैं। दीधीङ् तथा वेवीङ् धातु आत्मनेपदी हैं। हु आदि चार धातु अर्थात् हु, भी, ह्री, पृ परस्मैपदी हैं।।३९-४५।।

स्वरितेद्वै भृञाख्यात उदात्तेद्धाक् प्रकीर्तितः। माङ्हाङ्द्वावनुदात्तेतौ स्वरितेद्दानधातुषु।।४६।।
वाणिजिराद्यास्त्रयश्चापि स्वरितेत उदाहृताः। घृमुखा द्वादश तथा परस्मैपदिनो मताः।।४७।।
द्वाविंशतिरिहोद्दिष्टा धातवो ह्वादिके गणे।
परस्मैपदिनः प्रोक्ता दिवाद्याः पञ्चविंशतिः।।४८।।

भृञ् धातु स्वरिरेत, ओहाक् उदात्तेत है। माङ् तथा ओहाङ् अनुदात्तेत हैं। दानार्थक 'दा' धारणार्थक 'धा'

में स्वरित की इत्संज्ञा है। णिजिर् आदि तीन धातु स्वरिरेत् हैं। 'घृ' आदि द्वादश धातु परस्मैपदी हैं। इस प्रकार ह्वादिगण में २२ धातु हैं। दिव् प्रभृति २५ धातु परस्मैपदी हैं।।४६-४८।।

आत्मनेपदिनौ धातू पूङ्दूङ्ह्वावपि नारद।
ओदितः पृङ्मुखाः सप्त आत्मनेपदिनो मताः॥४९॥
आत्मनेपदिनो विप्र दीङ्मुखास्त्विह कीर्तिताः।
स्यतिप्रभृतयो वेदाः परस्मैपदिनो मताः॥५०॥
जन्यादयः पञ्चदश आत्मनेपदिनो मुने। मृषाद्याः स्वरितेतस्तु धातवः पञ्च कीर्तिताः॥५१॥
एकादश पदाद्यास्तु ह्यात्मनेपदिनो मताः।
राधोः कर्मक एवात्र वृद्धौ स्वादिचुरादिके॥५२॥

हे नारद! षुङ् आदि तथा दुङ् आत्मनेपदी तथा षुङ् आदि सप्तधातु ओदित तथा आत्मनेपदी हैं। हे विप्रप्रवर! लीङ् आदि धातु यहां आत्मनेपदी कथित हैं। श्यति आदि ४ धातु परस्मैपदी हैं। हे मुनिवर! जनी आदि १५ धातु आत्मनेपदी, मृष आदि ५ धातु स्वरिरेत, पद आदि ११ धातु आत्मनेपदी हैं। यहां वृद्धि अर्थ में अकर्मक 'राध' धातु हैं। यह स्वादि तथा चुरादिगण में भी पठित हैं।।४९-५२।।

उदात्तेतस्तुदाद्यास्तु त्रयोदश समीरिताः। परस्मैपदिनोऽष्टात्र रधाद्याःपरिकीर्तिताः॥५३॥
समाद्याश्चाप्युदात्तेतः षट्चत्वारिंशदुदीरिताः।
चत्वारिंशच्छतं चापि दिवादौ धातवो मताः॥५४॥
स्वादयः स्वरितेत्तोका धातवः परिकीर्तिताः।
सप्ताख्यातो दुनोतिस्तु परस्मैपदिनो मुने॥५५॥
अष्टिघावनुदात्तेतौ धातू द्वौ परिकीर्तितौ। परस्मैपदिनस्त्वत्र तिकाद्यास्तु चतुर्दश॥५६॥
द्वात्रिंशद्धातवः प्रोक्ता विप्रेन्द्र स्वादिके गणे।
स्वरितेतः षडाख्यातास्तुदाद्या मुनिसत्तम॥५७॥
ऋष्युदात्तेज्जुषीपूर्वा आत्मनेपादिनोर्णवाः।
व्रश्चादय उदात्तेतः प्रोक्ताः पञ्चाधिकं शतम्॥५८॥
गूर्युदात्तेदिहोद्दिष्टो धातुरेको मुनीश्वर। णूमुखाश्चैव चत्वारः परस्मैपदिनो मताः॥५९॥

तुद् आदि १३ धातु उदात्तेत हैं। रधु आदि ८ धातु परस्मैपदी, सम् आदिं ४६ धातु उदात्तेत हैं। दिवादिगण में १४४ धातु हैं। सु आदि ९ धातु स्वरितेत् हैं। हे मुनिवर! 'द्रु' आदि सात धातु परस्मैपदी हैं। अश् तथा रिघ् धातु अनुदात्तेत तथा तिक् आदि १४ धातु परस्मैपदी हैं। हे विप्रेन्द्र! स्वादिगण में ३२ धातु हैं। हे मुनिवर! तुद् आदि ६ धातु स्वरितेत् हैं। ऋषी धातु उदात्तेत हैं। जुषी आदि ४ धातु आत्मनेपदी, व्रश्च आदि १०५ धातु उदात्तेत हैं। हे मुनीश्वर! यहां गुरी धातु को ही अनुदात्तेत कहा गया है। णू आदि चार धातु परस्मैपदी माने गये हैं।।५३-५९।।

कुङाख्यातोऽनुदात्तेच्च कुटाद्याः पूर्तिमागताः।
पृङ् मृङ् चात्मनेभाषौ षट् परस्मैपदे रिषेः॥६०॥
आत्मनेपदिनौ धातू दृङ्धृङ्द्वौ चाप्युदाहृतौ।
प्रच्छादिषोडशाख्याताः परस्मैपदिनो मुने॥६१॥
स्वरितेतः षट् ततश्च प्रोक्ता मिलमुखा मुने। कृतीप्रभृतयश्चापि परस्मैपदिनस्त्रयः॥६२॥
सपत पञ्चाशदधिकास्तुदादौ धातवः। शतम्।
स्वरितेतो रुधोनन्दा परस्मैभाषितः कृती॥६३॥
ञिइंधीतोऽनुदातेतस्त्रयो धातव ईरिताः। उदात्तेतः शिषपिषरुधाद्याः पञ्चविंशतिः॥६४॥

कुङ् धातु अनुदात्तेत कही गयी है। यहां कुटादिगण की पूर्त्ति हुई है। पृङ् तथा मृङ् आत्मनेपदी धातु हैं। 'रि', 'पि' से ६ धातु परस्मैपद में गिने गये हैं। दृङ् तथा धृङ् आत्मनेपदी हैं। हे मुनिवर! प्रच्छ आदि १६ धातु परस्मैपदी हैं। हे मुनिवर! तदनन्तर 'मिल' आदि ६ धातु स्वरिरेत हैं। तदनन्तर 'कृती' आदि तीन धातु परस्मैपदी हैं। एवंविध तुदादि में १५७ धातु हैं। 'रुध' आदि ९ धातु स्वरितेत् हैं। कृती धातु परस्मैपदी हैं। ञिइन्धी से तीन धातु तक को अनुदात्तेत कहा गया। तदनन्तर शिष, पिष प्रभृति १२ धातु उदात्तेत हैं। इस प्रकार रुधादिगण में २५ धातु हैं।।६०-६४।।

स्वरितेतस्तनोः सप्त धातवः परिकीर्तिताः। मनुवन्वात्मनेभाषौ स्वरितेत्कृञुदाहृतः॥६५॥
ततो द्वौ कीर्तितौ विप्र धातवो दश शाब्दिकैः।
क्र्याद्याःसप्तोभयेभाषाः सौत्राः स्तम्भ्वादिकास्तथा॥६६॥
परस्मैपदिनः प्रोक्तश्चत्वारोऽपि मुनीश्वर। द्वाविंशतिरुदात्तेतः क्रुधाद्या घातवो मताः॥६७॥

तनु आदि सप्वधातु स्वरितेत् हैं। वनु तथा मनुधातु आत्मनेपदी हैं। कृञ् को स्वरितेत कहा गया है। हे विप्र! तदनन्तर वैयाकरणों ने तनादिगण में १० धातु गिना है। 'क्री' आदि सात उभयपदी हैं। सूत्र में पठित स्तम्भु आदि ४ धातु परस्मैपदी हैं। हे मुनिवर! क्रुञ् आदि २२ धातु उदात्तेत हैं।।६५-६७।।

वृङ्ङात्मनेपदी धातुः श्रेयाद्याश्चैकविंशतिः।
परस्मैपदिनश्चाथ स्वरितेद्ग्रह एव च॥६८॥
क्रयादिकेषु द्विपञ्चाशद्धातवः कीर्तिता बुधैः।
चुराद्या धातवोञ्यन्ता षट्विंशदधिकं शतम्॥६९॥

वृङ् आत्मनेपदी है। श्रन्थ आदि २१ धातु परस्मैपदी हैं। ग्रह धातु स्वरितेत् हैं। विद्वानों ने क्र्यादिगण में ५२ धातु कहे हैं। चुर आदि १३६ धातु उभयपदी हैं।।६८-६९।।

चित्याद्यष्टादशाख्याता आत्मनेपदिनो मुने।
चर्चाद्या आवृषीयास्तु ञ्यंता वा परिकीर्तिताः॥७०॥
अदन्ता धातवश्चैव चत्वारिंशत्तथाष्ट च। पदाद्यास्तु दश प्रोक्ता धातवो ह्यात्मनेपदे॥७१॥

सूत्राद्या अष्ट चाप्यत्र ञ्यन्ता प्रोक्ता मनीषिभिः।
धात्वर्थे प्रातिपदिकादबहुलं चेष्ठवन्मतम्।।७२।।

हे मुनि! चिति आदि १८ धातु आत्मनेपदी हैं। चर्च से लगाकर धृषी धातु तक के धातु ञिन्त कहे गये हैं। अदन्त ४८ धातु उभयपदी हैं। पद् आदि १० धातु आत्मनेपदी हैं। मनीषीगण ने सूत्र आदि ८ धातु को ञित् कहा है। धात्वर्थ में प्रातिपदिक से णिच् तथा इष्ठवद्भाव विकल्प से होता है।।७०-७२।।

तत्करोति तदाचष्टे हेतुमत्यपि णिर्मतः। धात्वर्थे कर्तृकरणाच्चित्राद्याश्चापि धातवः।।७३।।
अष्ट संग्राम आख्यातोऽनुदात्तेच्छाब्दिकैर्बुधैः।
स्तोभाद्याः षोडश तथा अदन्तस्य निदर्शनम्।।७४।।

उसे करता है अथवा उसे कहता है, इस अर्थ में भी प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय होगा। प्रयोजक व्यापार में प्रेषणादि वाच्य हों, तब धातु से णिच् होगा। कर्तृ व्यापारार्थ जो करण हैं, उससे धात्वर्थ में णिच् होता है। चित्र आदि आठ धातु उदात्तेत हैं, तथापि 'संग्राम' को विद्वानों ने अनुदात्तेत् कहा है। स्तोभ आदि १७ धातु अदन्त धातु के निदर्शन हैं।।७३-७४।।

तथा बाहुलकादन्ये सौत्रलौकिकवैदिकाः। सर्वे सर्वगणीयाश्च तथानेकार्थवाचिनः।।७५।।

'बहुलमेतन्निदर्शनम्' में बहुल शब्द से अन्य सूत्रोक्त लौकिक-वैदिक सभी धातु का ग्रहण होता है। सभी धातु सभी गणों में हैं। सबके नाना अर्थ हैं।।७५।।

सनाद्येता धातवश्च तथा वै नामधातवः। एवमानन्त्यमुद्भाव्यं धातूनामिह नारद।
संक्षेपोऽयं समुद्दिष्टो विस्तरस्तत्र तत्र च।।७६।।

इन धातु के अतिरिक्त जिनके अन्त में सनादि प्रत्यय हों (यथा—सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, इयङ्, णिङ्, उनकी भी धातु संज्ञा होगी। हे नारद! इस प्रकार धातु की उद्भावना होगी। यहां संक्षेप में कहा गया। व्याकरण ग्रन्थों निरुक्त ग्रन्थों में विस्तार से देखिये।।७६।।

ऊदृदन्तैर्यौति रुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः।।७७।।
शक्लण्पच्मुच्रिच्वच्विच्सिच्प्रच्छित्यजनिजिर्भजः।
भञ्जूभुजूभ्रस्जूमस्त्रियजूयुजूरुजूरञ्जूविजिर्स्वञ्जसञ्जसृजः।।७८।।

ऊदृदन्त धातुओं में ऊकारान्त, ॠकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रिञ, वृङ्, वृञ् का छोड़कर सभी अनुदात्त, अनिट् माने जाते हैं। शक्ल, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छ, त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज, भुज्, भ्रस्ज्, भस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज, विजिर्, स्वञ्ज, सञ्ज, सृञ्ज।।७७-७८।।

अद्क्षुद्खिद्छिद्तुदिनुदः पद्यभिद्विद्यतिर्विनद्।
शद्सदी स्विद्यतिरस्कन्दिर्हदी क्रुधक्षुधिबुध्यती।।७९।।
बन्धिर्युधिरुधीराधिव्यध शुधः साधिसिध्यती।
मन्यहन्नाप्क्षिपछुपितप्तिपस्तृप्यतिदृप्यती ।।८०।।

लिब् लुब्वप्शस्वप्सृपियरभरभलभगम्नम् यमो रमिः।
कुशिर्दशिदिशि दृश्मृश्रिश्रुश्लिशविश्स्पृशः कृषिः॥८१॥

अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद्, विद् (विचारणे), शद्, सद्, स्विद्, स्कन्द्, हद्, क्रुध, क्षुध्, बुध्, बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साधू, सिध्, मन् (दिवादि), हन्, आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तिप्, स्तृप्, दृप्।।७९-८१।।

त्विष् तुषदुष्पुष्पिष्विष्शिष्शुष्शिलष्यतयो घसिः।
वसतिर्दहदिहिदुहो नह् मिह् रुह् लिह् वहिस्तथा॥८२॥

त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्, धस्, वस्, दह्, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह्, वह्।।८२।।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम्।
चाद्या निपाता गतयः प्राद्याः दिग्देशकालजाः॥८३॥
शब्दाः प्रोक्ता ह्यनेकार्थाः सर्वलिङ्गा अपि द्विज।
गणपाठः सूत्रपाठो धातुपाठस्तथैव च॥८४॥
पाठोऽनुनासिकानां च परायणमिहोच्यते।
शब्दाः सिद्धा वैदिकास्तु लौकिकाश्चापि नारद॥८५॥

हलन्तों में १०२ धातु अनुदात्त माने गये हैं। 'च' आदि की निपात संज्ञा होती है। 'प्र' आदि उपसर्ग ही गति पदवाच्य हैं। विभिन्न दिशा, देश, काल में प्रकटित शब्द अनेकार्थ बोधक होते हैं। हे विप्रवर! देश-कालादि भेदानुरूप वे सभी लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं। यहां पर गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ, अनुनासिक पाठ को "पारायण" कहा गया। हे नारद! वैदिक एवं लौकिक समस्त शब्द नित्य सिद्ध हैं।।८३-८५।।

शब्दपरायणं तस्मात्कारणं शब्दसङ्ग्रहे। लघुमार्गेण शब्दानां साधूनां संनिरूपणम्॥८६॥
प्रकृतिप्रत्ययादेशलोपागममुखैः कृतम्। इत्थमेतत्समाख्यातं निरुक्तं किञ्चिदेव ते।
कात्स्न्येन वक्तुमनन्त्यात्कोऽपि शक्तो न नारद॥८७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे निरुक्तलक्षणनिरूपणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

वैयाकरणगण ने जो शब्द संग्रह किया है, उनमें उन शब्दों का परायण करना ही मुख्य हेतु है। पारायण के पुण्यलाभार्थ ही वे संकलित हैं। जो सिद्ध शब्द हैं, उनका प्रकृति, प्रत्यय, आदेश तथा आगमादि द्वारा लघुमार्ग से सम्यक् निरुपण किया जाता है। हे नारद! यहां मैंने संक्षिप्त रूपेण शब्दों की निरुक्ति को कहा है। इसका सम्पूर्ण वर्णन किसी के द्वारा संभव नहीं है। शब्द अनन्त होते हैं। अतः सम्पूर्ण वर्णन असंभव है।।८६-८८।।

।।५३वां अध्याय समाप्त।।

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्योतिष वर्णन

सनन्दन उवाच

ज्योतिषाङ्गं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा। यस्य विज्ञान मात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥१॥

सनन्द उवाच— अब मैं ज्योतिषशास्त्र[1] के अंगों के विषय में कहता हूँ, जैसा कि पूर्वकाल में स्वयं पितामह ब्रह्मा ने कहा था।[2] यह ऐसा ज्ञान है जिसके धारण करने मात्र से व्यक्ति को धर्म की सिद्धि हो जाती है॥१॥

त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं शास्त्रं चतुर्लक्षमुदाहृतम्।
गणितं जातकं विप्र संहितास्कन्धसंज्ञिताः॥२॥
गणिते परिकर्मादि खगमध्यस्फुटक्रिये। अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहणं चोदयास्तकम्॥३॥
छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम्।

ज्योतिष शास्त्र मुख्य रूप से तीन स्कन्धों वाला कहा गया है और इसका विस्तार चार लाख श्लोकों में हुआ है। इसके तीन स्कन्धों के नाम हैं— १. गणित (गणना, खगोलविज्ञान या सिद्धान्त ज्योतिष), २. जातक (होराशास्त्र) और ३. संहिता।[3] इसका प्रथम जो गणित स्कन्ध है, उसमें गणना विषयक परिकर्म, ग्रहों की गतियों और तदर्थ स्फुट क्रियाओं की विधियाँ हैं। इसी में देश, दिशा एवं काल की गणना, आकाशस्थ चन्द्रमा

---

१. बृहन्नारदीयपुराण में ज्योतिषशास्त्र के तीनों ही स्कन्धों का सम्यक् विवेचन हुआ है। पुराणकार ने इस विषय को अपने काल तक विद्यमान समस्त धारणाओं को उपन्यस्त किया है। प्रस्तुत अध्याय के अनुवाद और पाद टिप्पणियों के लिए हम भारतविद्याविद् डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' के आभारी हैं। इस अध्याय के अनुवाद और उदाहरण के लिए प्राचीन भारतीय गणित विषयक अनेक ग्रन्थों की सहायता ली गई है और पुराणकार द्वारा प्रयुक्त शब्दों के आधार पर उनके सन्दर्भों को तलाशा भी गया है।

२. वराहमिहिर (५०५-५८७ ई.) ने पितामह ब्रह्मा के रचे ज्योतिषशास्त्र को ही संक्षिप्त रूप से समझाने का प्रयास करने का मत दिया है— प्रथम मुनि कथितमवितथमलोक्य ग्रन्थ विस्तरस्यार्थम्। नातिलघुविपुल रचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम्॥ (बृहत्संहिता १, २) इसी प्रकार जगन्मोहन नामधेय वसिष्ठसंहिता में कहा गया है कि सृष्टि के उदयकाल में जिन स्वर्णगर्भ या हिरण्यगर्भ पुरुष (सूर्यभगवान् से) ने पूर्व काल में समस्त ज्योतिषशास्त्र का पितामह ब्रह्मा के प्रति कथन किया था और उन्हीं से समझने की अन्य सभी मुनिगणों ने प्रार्थना की। प्रसन्न होकर उन मृदुपद ने इस गोपनीय अध्यात्मरूप सनातन ज्ञान का विश्व में प्रकाश किया और ग्रहचरित विदों के निर्मल ज्ञान के चक्षु आलोकित हुए— पूर्वं ब्रह्मा ततोपर्यखिलमुनिगणप्रार्थनाद्यच्चकार। तच्चेदं सुप्रसन्नं मृदुपदनिकरैर्गुह्यमध्यात्मरूपं शश्वद्विश्वप्रकाशं ग्रहचरितविदां निर्मलं ज्ञानचक्षुः॥ (वसिष्ठसंहिता १, २) इसी प्रकार कहा गया कि ज्योतिष प्रत्यक्ष नेत्र रूप है— छन्दः पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्योतिषं लोचने च। शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षड्धा॥ (वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त १, ७)

३. वराहमिहिर ने कहा है— ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं...। (बृहत्. १, ९) नारदसंहिता में कहा गया है— सिद्धान्तः संहिता होरा रूपं स्कन्धत्रयात्मकम्। वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमम्॥ (नारद. १, ४)

और सूर्य के ग्रहण, उनका उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्र शृंगोन्नति, ग्रहों की युतियाँ, पात (महापात, क्रान्तिसाम्य चक्रानुसार चन्द्र व सूर्य का पात) की गणनामूलक विधियाँ हैं। २-३½ ॥[१]

जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिश्च योनिजम्॥४॥
निषेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशाक्रमः। कर्माजीवं चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नाभसाः॥५॥
चन्द्रयोगाः प्रव्रज्याख्या राशिशीलं च दृक्फलम्। ग्रहभावफलं चैवाश्रययोगप्रकीर्णके॥६॥
अनिष्टयोगाः स्त्रीजन्मफलं निर्याणमेव च। नष्टजन्मविधानां च तथा द्रेष्काणलक्षणम्॥७॥

दूसरे, जातक स्कन्ध के अन्तर्गत राशि और उनके भेद, ग्रहों की योनि, वर्ण, रूप एवं गुणादि, मानव और अन्यान्य योनियों का परिचय व उनमें जन्म, निषेक या गर्भस्थापन, जन्म, अरिष्ट (दुःख के पूर्वानुमान), आयुर्दाय, ग्रहादि की दशाएँ और उनका क्रम, कर्म और आजीविका, अष्टकवर्ग सहित राजयोग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रवज्यायोग, राशिशील, ग्रहदृष्टिफल, ग्रहों के भावफल, आश्रययोग और प्रकीर्णक विवरणों में अनिष्टयोग, स्त्री जन्मफल, निर्याण या देहान्त से सम्बन्धित मत, नष्टजन्म विधान एवं राशि के दसवें अंश या तीसरे भाव की संज्ञा द्रेष्काण के रूपारूप पर विमर्श होता है ॥ ४-७ ॥[२]

संहिताशास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम्। तिथिवासरनक्षत्रयोगतिथ्यर्द्धसंज्ञकाः॥८॥
मुहूर्तोपग्रहाः सूर्यसंक्रान्तिर्गोचरःक्रमात्। चन्द्रतारावलं चैव सर्वलग्नार्तवाह्वयः॥९॥
आधानपुंससीमन्तजातनामान्नभुक्तयः। चौलक्र्ण्र्ययणं मौञ्जी क्षुरिकाबन्धनं तथा॥१०॥
समावर्त्तनवैवाहप्रतिष्ठासद्मलक्षणम्। यात्राप्रवेशनं सद्यावृष्टिः कर्मविलक्षणम्॥११॥
उत्पत्तिलक्षणं चैव सर्वं संक्षेपतो ब्रुवे।

ज्योतिष का तीसरा संहिता स्कन्ध शास्त्ररूप है जिसमें सूर्यादि ग्रहचार, संवत्सर लक्षण, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, तिथि के आधे (करण), मुहूर्त, उपग्रह, सूर्य संक्रमण (संक्रान्ति), गोचर, चन्द्रमा और तारा बल, समस्त लग्न व ऋतुओं से सम्बन्धित विचार होता है। इसके अतिरिक्त इसी के अन्तर्गत (मुहूर्तशास्त्र के विषयों में) गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, शिशु के नामकरण, अन्नप्राशन, चौलकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौंजीबन्ध, छुरिकाबन्ध, समावर्तन, पाणिग्रहण, देवप्रतिष्ठा, गृहलक्षण, यात्रा और त्रिविध प्रवेश तथा तत्काल वर्षा

---

१. श्रीपति भटाचार्य का मत है कि ब्रह्मप्रलय और उसकी उत्पत्ति, त्रुटि पर्यन्त समय का प्रमाण, भूमि, नक्षत्र, ग्रह तथा निवह पवन के स्थान, उपग्रह सहित सूर्यादि ग्रहों की गतियाँ, ग्रहादि समस्त प्रकार के गणित जिस स्कन्ध में हो, उसे ज्ञानियों ने सिद्धान्त या गणितीय भाग कहा है— शतानन्दध्वस्ति प्रभृति त्रुटिपर्यन्त समयप्रमाणं भूधिष्ण्यग्रहनिवह संस्थान कथनम्। ग्रहेन्द्राणां चाराः सकल गणितं यत्र गदितं स सिद्धान्तः प्रोक्तो विपुल गणित स्कन्ध कुशलैः ॥ (सिद्धान्तशेखर १, ३)

२. वराहमिहिर का मत है— राशिप्रभेदो ग्रहयोनिभेदो वियोनिजन्माऽथ निषेककालः। जन्माथ सद्यो मरणं तथायुर्दशाविपाकाऽष्टकवर्ग सञ्ज्ञः ॥ कर्माजीवो राजयोगाः खयोगाश्चान्द्रयोगा द्विग्रहाद्याश्च योगाः। प्रव्रज्याथो राशिशीलानि दृष्टिर्भावस्तस्मादाश्रयोऽथ प्रकीर्णं॥ नेष्टा योगा जातकं कामिनीनां निर्याणं स्यान्नष्टजन्मा दृकाणः। अध्यायानां विंशति पञ्चयुक्ता जन्मन्येतद्यात्रिकं चाभिधास्ये॥ (बृहज्जातकम् २८, १-३)

की सम्भावना के लक्षण, कर्मवैलक्षण्य एवं उत्पत्ति के लक्षण जैसे विषय होते हैं[१], जिनके बारे में यहाँ कहा जाएगा॥ ८-११[१/२]॥[२]

एकं दश शतं चैव सहस्त्रायुतलक्षकम्॥१२॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्वकम्। निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च॥१३॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः।
क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योत्तरं तथा॥१४॥

[गणित स्कन्ध के अन्तर्गत सर्वप्रथम संख्याओं की गणना] एक (इकाई), दस (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्त्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब, खरब), निखर्व महापद्म (दस खर्व), शंकु, जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शंख) आदि संख्या स्थान[३] है जिनको उत्तरोत्तर दस गुना

---

१. वराहमिहिर ने गर्गसंहिता के आधार पर संहिता विषय के ६४ अंगों को पूरे १०७ अध्यायों में विस्तृत किया है किंतु वे मूलतः ६४ ही होते हैं। संभवतः उसकी लुप्तप्रायः समाससंहिता में मूल विषय ६४ ही रहे होंगे। ये विषय हैं— सूर्य आदि ग्रहों का संचार, उस संचार में होने वाले ग्रहों के स्वभाव, विकार, बिंब आदि प्रमाण, वर्ण, किरण, द्युति या किरणकांति, ऊर्ध्व-अधोगामी तोरण, दण्ड आदि का संस्थान, अस्त, उदय, मार्ग, मार्गांतर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रों के साथ ग्रह का समागम, नक्षत्रों में चार चा चलन, इनके फल, नक्षत्र विभाग द्वारा बने हुए कूर्मचक्र से देशों में होने वाले शुभाशुभ परिणाम, अगस्त्य मुनि का संचार, वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों का संचार, ग्रहों की भक्ति अर्थात् देश, द्रव्य, प्राणियों का आधिपत्य, नक्षत्रों के व्यूह या द्रव्य, जनों का आधिपत्य, ग्रह शृंगाटक (एक नक्षत्र स्थित तारा ग्रहों के शृंगाटक आदि की स्थितियों में होने वाले शुभाशुभ फल), ग्रहयुद्ध, ग्रह समागम और ग्रह के वर्षपति होने पर उसका फल इत्यादि। (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्याय २)

२. श्रीपति ने मुहूर्त स्कन्ध में इन्हीं विषयों को स्वीकारा है— संवत्सरादि तिथिवारगुणास्ततश्च योगाभिध प्रकरणङ्करण प्रशस्तम्। भानां फलानि तदनु क्षणजा गुणाश्च पश्चादुपग्रहफलं रवि सङ्क्रमोऽत्र॥ सद्गोचरः शशिबलञ्च विलग्नचिन्ता संस्कारजाश्च विधयोऽग्निनृपाभिषेकः। यात्रा विवाहविधिरालय सन्निवेशो वेशम प्रवेशनववस्त्र सुरप्रतिष्ठा॥ (ज्योतिषरत्नमाला : सम्पादक अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', २०, १०-११) नारदसंहिता में इन विषयों को इस तरह गिना गया है— संहिताशास्त्ररूपं च ग्रहचारोब्दलक्षणम्॥ तिथिर्वारं च नक्षत्रं योगं तिथ्यर्द्धसञ्ज्ञकम्। मुहूर्तोपग्रहोऽर्कस्य सङ्क्रान्तिर्गोचरस्तथा॥ चन्द्रताराबलाऽध्यायः सर्वलग्नार्त्तवाह्वयः। आधानपुंससीमन्तो जातनामान्नभुक्तयः॥ चौलाङ्कुरार्पणे मौञ्जीच्छुरिकाबन्धने क्रमात्। समावर्तनवैवाह प्रतिष्ठाः सद्मलक्षणम्॥ यात्राप्रवेशनं सद्योवृष्टि कूर्मविलक्षणम्। उत्पातलक्षणं शान्तिर्मिश्रकं श्राद्धलक्षणम्॥ (नारदसंहिता १, १०-१४)

३. वायपुराण में ये गणनाएं संख्या अष्टविंशति रूप में कही गई हैं। इकाई से लेकर अनन्त तक संख्याओं का ज्ञान परार्द्ध और पर नाम से कहा गया है। इसमें इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार तक और इसके बाद १० सहस्त्र को एक अयुत बताया गया। सौ सहस्त्र का एक नियुत होता है। दस सौ सहस्त्र या दस नियुत की एक कोटि, दस कोटि का एक अर्वुद, सौ कोटि का एक पद्म माना गया है। एक सहस्त्र कोटि का खर्व, दस सहस्त्र कोटि का एक निखर्व, सौ सहस्त्र कोटि का एक शङ्कु माना जाता था। हजार-हजार कोटि को पुनः दस बार गुणित करने पर समुद्र नाम से जाना जाता है। अयुत कोटि का एक मध्य, हजार नियुत कोटि का एक अन्त एवं हजार कोटि कोटि का एक परार्द्ध होता है। दो परार्द्ध की एक संख्या मानी गया है। सौ संख्या को परिदृढ़ एवं हजार को परिपद्मक कहा गया है। इसके बाद अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्वुद,

जानना चाहिए। जो संख्या जिस स्थान पर हो, उसका योग अन्तर क्रम अथवा व्युत्क्रम[१] से किया जाएगा॥ १२-१४॥

हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपान्तिमादिकान्।
शुद्धेद्धरोयद्गुणश्च भाज्यान्त्यात्तफलं मुने॥१५॥
समाङ्कतोऽथो वर्गःस्यात्तमेयाहुः कृतिं वुधः।
अन्त्यात्तु विषमात्त्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक्॥१६॥
द्विगुणोनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत्क्रमात्।
तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत्पुनः॥१७॥
एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर। समत्र्यङ्कहतिः प्रोक्तो घनस्तन्त्रविधिः पदे॥१८॥

[गुणा करने की विधि, प्रायः जिससे गुणा किया जाता है, वह गुणक और जिसको गुणा किया जाय वह गुण्य कहा जाता है] जो गुण्य अंक हो, उसके अन्तिम अंक को गुणा से करें और फिर उसके बाजू वाले अंक को भी उसी गुणक से गुणा करना चाहिए। इस प्रकार प्रारंभिक अंक तक गुणा करने पर जो संख्याएँ मिले, वे गुणनफल है। हे मुने! इसी तरह भागफल के निकालने के लिए जितने अंक से भाजक के साथ गुणा करने पर भाज्य में से कम हो जाए, वह प्राप्त अंक भागफल कहा जाएगा। दो बराबर अंकों के गुणनफल को वर्ग कहा जाता है।[१] गणितज्ञ उसी को कृति[२] के नाम से जानते हैं और इसकी अपनी विधि है।[३] अन्तिम विषम संख्या में

न्यर्वुद, स्वर्वुद, खर्व, निखर्व, शङ्कु, पद्म, समुद्र, मध्यम परार्द्ध एवं पर आदि कुल अठारह संख्याएँ मानी गई हैं— एकं दशं शतं चैव सहस्रं चैव संख्यया॥ विज्ञेयमासहस्रं तु सहस्राणि दशायुतम्। एकं शतसहस्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः॥ तथा शतसहस्राणामर्बुदं कोटिरुच्यते। अर्बुदं दशकोट्यस्तु अब्जं कोटिशतं विदुः॥ सहस्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः। दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति तं विदुः॥ शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते। सहस्रं तु सहस्राणां कोटीनां दशधापुनः॥ गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः। कोटीनां सहस्रमयुतमित्ययं मध्य उच्यते। कोटिसहस्रनियुता स चान्त इति संज्ञितः॥ कोटिकोटिसहस्राणि परार्ध इति कीर्त्यते। परार्धं द्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः। शतमाहुः परिदृढं सहस्रं परिपद्मकम्। विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः॥ अर्बुदं न्यर्बुदं स्वर्बुदं च ततः स्मृतम्। खर्वं चैव निखर्वं च शङ्कुं पद्मं तथैव च॥ समुद्रं मध्यमं चैव परार्धमपरं ततः। एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ॥ (वायुपुराण १०१, ९३-१०२)

१. यहाँ योग और घटाने की ओर संकेत लगता है— क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योत्तरं तथा। यहाँ पहले क्रम से जोड़ना और घटाना और दूसरा उत्क्रम युक्ति से जोड़ना और घटाना। लीलावतीकार भास्कराचार्य ने स्पष्ट किया है— अये बाले लीलावती! मतिमति ब्रूहि सहितान् द्वि पञ्च द्वात्रिंशत्त्रिनवतिशताष्टादशदश। शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद मे, यदि व्यक्ते युक्ति व्यवकलनमार्गेऽसि कुशला॥ योगार्थ न्यासः — २ + ५ + ३२ + १९३ + १८ + १० + १० + १०० संयोजनाज्जातः = ३६० योगः। अयुताच्छोभिते जातम् १०००० — ३६० = ९६४० = अन्तरम्। इति संकलित व्यवकलिते। (लीलावती अभिन्नपरिकर्माष्टकम् योगान्तर प्रश्न १)

२. कृति शब्द महत्वपूर्ण है, कतिपय विद्वानों ने यहाँ वर्ग का उदाहरण भी दिया है। जैसे ५ × ५ = २५ वर्ग हुआ।

३. यहाँ यह भी ज्ञेय है कि पाटी गणित के नियमानुसार वर्गमूल की जानकारी के लिए जो संख्याएँ लिखी जाएँ, उनमें दाहिने अंक से लेकर बायें अंक तक विषम और सम का चिह्न कर देना चाहिए। इसके लिए जो खड़ी रेखा (।) लिखी जाती है, वह विषम को बताती है और जो आड़ी रेखा (—) बनाई जाती है, वह सम का चिह्न है। (लीलावती अभिन्न परिकर्माष्टकम् ७)

जितने वर्ग घटें, उसमें उतने वर्ग घटा देने चाहिए। उस वर्ग का मूल लेकर फिर उसे अलग रख दें और द्विगुणित मूल से सम अंक में भाग दें और जो फल मिले, उसका वर्ग विषम में घटा देना चाहिए। एक बार फिर उसे दुगुना करें और पंक्तिवार रखें। हे मुनीश्वर! इस विधि से बार-बार करने से पंक्ति का आधा वर्गमूल होता है। समानतः तीन अंकों के गुणनफल[1] को घन कहा जाता है॥ १५-१८॥

प्रोच्यते विषमं त्वाद्यं समे द्वे च ततः परम्।
विशोध्यं विषमादन्त्याद्घनं तन्मूलमुच्यते॥१९॥
त्रिघ्नाद्भजेन्मूलकृत्या समं मूले न्यसेत्फलम्।
तत्कृतित्वेन निहतान्निघ्नीं चापि विशोधयेत्॥२०॥
घनं च विषमादेवं घनमूलं मुहुर्भवेत्।

अब घनमूल ज्ञात करने की विधि कही जाती है— घनमूल के लिए निर्दिष्ट संख्या के दाहिने के पहले अंक पर घन या विषम चिह्न (।) और उसके बायें बाजू के दो अंकों पर अघन या सम चिह्न (—) का प्रयोग करें। इस तरह अन्तिम अंक तक क्रमशः एक घन और दो अघन के चिह्नों का अंकन करना चाहिए। अन्तिम या विषम घन में जितने घन कम हो सके, उतने घटाते जाएँ। उस घन को पृथक् रखें और फिर उसका घनमूल लें और उस घनमूल का वर्ग निश्चित करे। इसके बाद उसमें तीन की संख्या से गुणा करें। उससे प्रारम्भ के अंक में भाग देवें, प्राप्त फल को अलग अंकित करें और उसका भी वर्ग करें। उसमें अन्त्य या पहले मूलांक एवं तीन से गुणा करें। फिर, उसके बाद के अंक में उसे घटाना चाहिए और अलग अंकित प्राप्तफल के घन को अगले अंक में से घटा देना चाहिए। इस तरह बारम्बार करते जाने से घनमूल सिद्ध होगा[2]॥ १८-२०½॥

अन्योन्यहारनिहतौ हरांशौ तु समुच्छिदा॥२१॥
लवा लवघ्नाश्च हरा हरघ्ना हि सर्वणनम्। भागप्रभागे विज्ञेयं मुने शास्त्रार्थचिन्तकैः॥२२॥
अनुबन्धेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनकः।
भागास्तलस्थहारेण हरं स्वांशाधिकेन तान्॥२३॥
ऊनेन चापि गुणयेद्धनर्णं चिन्तयेत्तथा। कार्यस्तुल्यहरांशानां योगश्चाप्यन्ततो मुने॥२४॥

---

१. यथा — ३ × ३ × ३ = २७, यही विचार गणितज्ञ श्रीधर, महावीराचार्य और भास्कराचार्य (द्वितीय) का भी है कि तीन समान संख्याओं का गुणनफल घन कहा जाता है। (त्रिंशतिका पृ. ६, गणितसारसंग्रह, पृष्ठ १४ एवं लीलावती अभिन्न परिकर्माष्टकम् ११)

२. लीलावती में भी यही मत है। उदाहरण : १९६८३ इस पर घन और अघन के चिह्न लगाने से अन्त्य घन १९ में २ का घन (८) घटाया, फिर २ के वर्ग ४ को ३ से गुणाकर १२ इस से शेष अग्रिम अघन (११६) में भाग देने से लब्धि ७ को पंक्ति में रखा, इसके वर्ग (४९) को अन्त्य (प्रथम मूल = २) से और ३ से गुणा कर २९४ को शेष अग्रिम अघन ३२८ में घटाया और लब्धि ७ का घन अग्रिम घन (शेष घनांक = २४३) में घटाया तो निश्शेष हो गया। अतः पंक्ति २७ यह घन मूल हुआ। इसी प्रकार यदि और शेषांक बचे तो पूर्व गृहीत मूल के दो अंकों की संख्या को अन्त्य कल्पना कर आगे क्रिया दोहरानी चाहिए। (लीलावती अभिन्नकर्माष्टकम् ११-१२)

अहारराशौ रूप्यं तु कल्पयेद्धरमप्यथा। अंशाहतिश्छेदघातहृद्भिन्नगुणने फलम्॥२५॥

[भिन्न अंकों की परिभाषा] भिन्न अंकों के आपसी हर से हर (भाजक) और अंश (भाज्य) इन दोनों को गुणा कर देने से सबके नीचे बराबर हर हो जाता है। भाग-प्रभाग में अंश को अंश से और हर से गुणा किया जाएगा। भागानुबन्ध एवं भागापवाह में यदि एक अंक अपने अंश से अधिक या ऊन की स्थिति में हो तो निम्नस्थ हर ऊर्ध्वस्थ हर को गुण को गुणा कर दें। तदोपरान्त अपने अंश से अधिक ऊन किए हुए हर से अंश को गुणा कर दें। ऐसा करने से भागानुबन्ध और भागापवाह का फल निकलेगा। जिसके नीचे हर न हो, उसके नीचे एक हर कल्पित करना चाहिए। भिन्न गुणन-साधन के अन्तर्गत अंश-अंश का गुणन करें और हर-हर के गुणन से भाग लगाना चाहिए[१] ॥ २१-२५ ॥

छेदं चापि लवं विद्वन्परिवर्त्य हरस्य च। शेषः कार्यो भागहारे कर्तव्यो गुणनाविधिः॥२६॥
हारांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने। पदसिद्धिये पदे कुर्यादथो स्वं सर्वतश्चस्वम्॥२७॥

हे विद्वन्! भागफल की सिद्धि के लिए यह ज्ञेय है कि भिन्न संख्या के भाग में जो भाजक हो, उसके हर को अंश में और अंश को हर में बदलें और फिर भाज्य के हर-अंश के साथ गुणन क्रिया करें। भिन्नांक के वर्गादि-साधन में यदि वर्ग अपेक्षित हो तो हर एवं अंश दोनों का ही वर्ग करें और घन करना हा तो दोनों को ही घन करना चाहिए। ऐसे ही वर्गमूल ज्ञात करना हो तो दोनों का वर्गमूल करें और घनमूल ज्ञात करना हो तब भी दोनों का घनमूल निकालना चाहिए[२] ॥ २६-२७ ॥

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्। ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये॥२८॥
अथस्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः। अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत्॥२९॥

इसी प्रकार विलोम विधि (व्यस्त विधि) से राशि ज्ञात करने के लिए दृश्य में हर को गुणक, गुणक को हर, वर्ग को मूल, मूल को वर्ग, ऋण को धन तथा धन को ऋण बनाकर अन्त में उलटी क्रिया करने से राशि या इच्छित संख्या सुलभ होती है। इसी प्रकार जहाँ अपना अंश संयुक्त किया गया हो, वहाँ हर में अंश को घटाकर हर कल्पित करें एवं अंश यथावत रहेगा। इसके बाद, दृश्य राशि में विलोम क्रिया उक्त युक्ति से करें तो अभिष्टराशि प्राप्त होती है॥[३] २८-२९ ॥

---

१. लीलावती में कहा गया है कि किसी एक संख्या में दूसरी संख्या के भाग देने पर यदि निःशेष नहीं रहता हो तो प्रथम संख्या (भाज्य) के नीचे दूसरी संख्या (भाजक) को रख देने से भिन्न संख्या कही जाती है। उसमें भाज्य को अंश, लव तथा भाजक को हर, छेद, छिद्, हार कहते हैं। जैसे ९ में ४ का भाग देना है तो ४ से ९ निःशेष नहीं होता है, अतः ९/४ यह भिन्नांक होता है। इसमें ९ अंश और ४ हर नाम से जाना जाता है। (लीलावती भिन्नपरिकर्माष्टकम् १)

२. यों तो भिन्न के चार स्वरूप मिलते हैं और इन स्वरूपों को जाति कहा जाता है। ये हैं— भाग जाति, प्रभाग जाति, भागानुबन्ध जाति एवं भागापवाह। नारदपुराण में भागभाग जाति और भागभागृ जाति का उल्लेख नहीं है। इसमें उक्त जातियों के माध्यम से भिन्नों का योग, घटाना, गुणा, भाग और वर्ग, वर्गमूल घन, घनमूल आदि की विधियाँ मिलती हैं। लीलावती (भिन्न परिकर्माष्टकम् अत्रोद्देश्यक १) में ये विधियाँ विवेचित हैं।

३. तुलनीय— लीलावती (अभिन्न परिकर्माष्टकम्, व्यस्तविधि उद्देश्यक १)

उद्दिष्टराशिः संक्षिप्तौ हृतोऽन्शै रहितो युतः। इष्टघ्नदृष्टेनैतेन भक्तराशिरनीशितः॥३०॥

ऐसे ही अभीष्ट राशि को जानने के लिए किसी इष्ट राशि को कल्पित करें और जब कोई पूछता हो तो उस राशि को गुणा या भाग करना चाहिए। यदि कोई अंश घटाने को कहा हो तो जोड़ दिया जाए यानि प्रश्न के अनुसार क्रियाओं के अनुसार इष्ट राशि में न्यास करके जो लब्ध हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्ट में भाग दें। इस प्रकार मिलने वाली राशि इष्ट राशि होगी[१] ॥ ३० ॥

योगोन्तरेणोनयुतोद्विितोराशीतसंक्रमे। राश्यन्तरहृतं वर्मोत्तरं योगसुतश्च तौ॥३१॥

संक्रम-गणित के अनुसार यदि दो संख्याओं का योग और अन्तर का पता हो तो योग को दो स्थानों पर लिखें। एक स्थान पर अन्तर को जोड़कर आधा करें। इससे एक संख्या प्राप्त होगी और दूसरे स्थान पर अन्तर को घटाकर आधा किया जाए तो दूसरी संख्या प्राप्त होगी। इस तरह दोनों ही राशियों की संख्याओं का पता हो जाता है। वर्ग संक्रम के अनुसार यदि दो संख्याओं का वर्गान्तर एवं अन्तर पता हो तो वर्गान्तर में अन्तर से भाजित करने पर जो फल मिलता है, वही उनका योग होगा। योग की जानकारी हो जाने पर पुनः पूर्व कथित रीति से दोनों ही संख्याओं की जानकारी की जा सकती है[२] ॥ ३१ ॥

गजघ्नीष्टकृतिर्ध्यैका दलिता चेष्टभाजिता।
एकोऽस्य वर्गो दलितः सैको राशिः परो मतः॥३२॥

वर्ग-कर्म गणित[३] के अन्तर्गत इष्ट का वर्ग करें और उसको आठ से गुणे। उसमें से एक घटाकर उसका आधा करें। इसके बाद, उसमें इष्ट से भाग देने पर एक राशि प्राप्त होगी। तत्पश्चात् उसका वर्ग करे और आधा करे। पुनः उसमें एक मिलाएँ तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी॥ ३२ ॥

द्विगुणेष्टहृतं रूपं श्रेष्ठ प्राग्रूपकं परम्। वर्गयोगान्तरे ष्येके राश्योर्वर्गौस्त एतयोः॥३३॥

इसके अतिरिक्त, कोई इष्ट संख्या कल्पित करें। उस द्विगुणित इष्ट से १ में भाग देकर प्राप्त फल में इष्ट को योजित करें। तो प्रथम संख्या होगी एवं दूसरी संख्या १ होगी। इससे प्राप्त संख्याएँ वे ही होंगी जिनके वर्गों का योग एवं अन्तर में एक घटाने पर भी वर्गांक ही शेष बचेगा॥ ३३ ॥

इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोष्टघ्नौ च सैककौ। एपीस्यानासुभे व्यक्ते गणित व्यक्तमेव च॥३४॥

---

१. इष्ट राशि की कल्पना के अनुसार प्रश्न है— वह कौनसी राशि है जिसे ५ से गुणाकर उसमें उसी का १/३ घटाकर १० से भाजित कर लब्धि में राशि का १/३, १/२ एवं १/४ जोड़ने पर ६८ होता है? अत्रोद्देशक— पञ्चघ्नः स्वत्रिभागोनो दशभक्तः समन्वितः। राशित्र्यंशार्धपादैः स्यात् को राशिर्द्व्यूनसप्ततिः॥ (लीलावती करणसूत्रम् इष्टकर्म १)

२. उक्त विधि के अनुसार भी दो और दो से अधिक अज्ञात राशियों को जाना जाता है। पुराणकार ने यहाँ संक्रमविधि, वर्गान्तर विधि एवं वर्गयोग विधि का विवरण दिया है। इसी प्रकार वर्गकर्मविधि एवं गुणकर्मविधि को भी लिखा गया है। ये विधियाँ लीलावती के एक पाठ में भी प्राप्त होती हैं।

३. गणितीय विधि के अनुसार जहाँ कहीं दो संख्याओं का वर्गयोग एवं वर्गान्तर करके दोनों में अलग-अलग १ घटाने पर भी वर्गांक ही शेष रहता है, उसे 'वर्गकर्म' कहा जाता है।

किसी भी इष्ट के वर्ग का वर्ग और अलग उसी का घन करे और दोनों का अलग-अलग आठ से गुणा करे। इसके बाद पहले में एक को योजित करें तो दोनों संख्याएँ मालूम होंगी। यह ज्ञातव्य है कि यह रीति व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों ही गणितों में उपयुक्त हैं॥ ३४॥

गुणघ्नमूलोनयुतः सगुणार्द्धे कृतं पदम्। दृष्टस्य च गुणार्द्धो न युतं वर्गीकृतं गुणः॥३५॥
यदा लघोनपुग्राशिर्दृश्यं भागोनयुग्भुवा। भक्तं तथा मूलगुणं ताभ्यां साध्योथ व्यक्तवत्॥३६॥

गुणकर्म अपने इष्टांक गुणित मूल से ऊन अथवा युक्त होकर यदि कोई संख्या दृश्य हुई हो तो मूल गुणक के आधे का वर्ग दृश्य-संख्या में जोड़कर मूल स्वीकार करना चाहिए। उसमें क्रम से मूल गुणक के आधा जोड़ना और घटाना चाहिए। विचार यह है कि इष्टगुणित मूल से ऊन होकर दृश्य हो, वहाँ गुणकार्ध को जोड़ना और यदि इष्टगुणित मूल सहित होकर दृश्य हो तो उस मूल में गुणकार्ध को घटाया जाना चाहिए। तदोपरान्त उसका वर्ग बनाने से पूछने वाले की अभीष्ट राशि या संख्या ज्ञात होती है। यदि राशि मूलोन अथवा मूल सहित होकर फिर अपने किसी भाग से ऊन या युत होकर दृश्य होती हो तो उस भाग को १ में ऊन या युत करें, ऐसा करते हुए यह ध्यान रहे कि यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटाएँ और अगर युत हुआ हो तो जोड़ना होगा। उसके द्वारा अलग-अगल दृश्य और मूल गुणक में भाग दें, तदोपरान्त इस नवीन दृश्य एवं मूल गुणक से पहले की तरह राशि का साधन किया जाएगा॥ ३५-३६॥

प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यन्ते मध्यगं फलम्।
इच्छन्नमाद्यहृत्सेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात्॥३७॥

[त्रैराशिक गणित] में प्रमाण एवं इच्छा सजातीय होते हैं। इनको प्रारम्भ और अन्त में स्थापित करें और फल को मध्यगामी होगाक्योंकि वह भिन्न जाति का है। इसके बाद, फल को इच्छा से गुणा करें और प्रमाण से यदि भाजित किया जाएगा तो प्राप्त फल इष्ट होगा। यह क्रम त्रैराशिक होगा।[१] इसके साथ ही व्यस्त त्रैराशिक में उक्त क्रिया के विपरीत क्रिया होगी यानी प्रमाण-फल को प्रमाण से गुणा होगा और इच्छा से भाजित किया जाएगा[२]॥ ३७॥

---

१. आर्यभटीय में त्रैराशिक का वर्णन पहली बार मिलता है। उसी से ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, त्रिंशतिका, महासिद्धान्त एवं गणितसारसंग्रह में भी ग्रहण किया गया है। सामान्यतया त्रैराशिक का आशय तीन राशियों से लिया जाता है, जैसा कि भास्कर प्रथम ने आर्यभटीय पर अपने भाष्य में भी स्वीकार किया है। ये तीन राशियाँ प्रमाण, फल और इच्छा हैं जिनको प्रथम, द्वितीय और तृतीय राशि भी कहा जाता है— त्रैराशिके प्रमाणं फलमिच्छाद्यन्तयोः सदृशराशी। इच्छाफलेन गुणिता प्रमाणभक्ता फलम् भवति॥ (ब्रह्मस्फुट. गणिताध्याय १०)

२. श्रीपति भटाचार्य का मत है कि प्रथम राशि प्रमाण संज्ञक, अन्तिम इच्छा संज्ञक सजातीय और मध्य राशि फल संज्ञक होती है। फल को इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि से विभक्त करने से इच्छा फल होता है। व्यस्त विधि में इसके विपरीत क्रिया की जाएगी— प्रमाणादौ चरमेत्वभीच्छा फलं तु मध्ये क्रियतेऽन्ये जाति। फलप्रमाणेन भजेन्निहत्य समिच्छया व्यस्त विधिश्च वामे॥ (सिद्धान्तशेखर व्यक्तगणिताध्यायः १४) ब्रह्मगुप्त का मत भी यही है कि प्रमाण एवं फल के घात को इच्छा से विभक्त करने पर व्यस्त त्रैराशिक में फल प्राप्त होता है— व्यस्तत्रैराशिकफलमिच्छाभक्तः प्रमाणफलघातः॥ (ब्रह्मस्फुट. गणित. ११)

पञ्चराश्यादिकेऽन्योन्यपक्षं कृत्वा फलच्छिदाम्।
बहुराशिवधे भक्ते फलं स्वल्पवधेन च॥३८॥

इसके अतिरिक्त पञ्चराशिक, सप्तराशिक की तरह ही नवराशिक, एकादशराशिक इत्यादि में फल एवं हरों को आपसी पक्ष में परिवर्तित करे अर्थात् प्रमाण पक्ष वाले को इच्छा पक्ष में और इच्छा पक्ष वाले को प्रमाण पक्ष में नियोजित करके अधिक राशियों के घात में अल्प राशि के घात से भाजित करने पर जो फल मिले, वही इच्छाफल होगा[१] ॥ ३८ ॥

इष्टकर्मवधेर्मूलं च्युतं मिश्रात्कलान्तरे। मानघ्नकालश्चातीतकालाघ्नफलसंहताः॥३९॥
स्वयोगभक्तानिघ्नाः स्युः सम्प्रयुक्तदलानि च।

मिश्रधन को इष्ट मानकर इष्टकर्म से मूलधन ज्ञात करना चाहिए, उसको मिश्रधन से घटाने से कलान्तर (ब्याज) समझना चाहिए।[२] अपने-अपने प्रमाण धन से अपने-अपने काल को गुणा करना, उसमें अपने-अपने बीते हुए समय एवं फल के घात (गुणा) से गुणित करना, लब्धि को अलग रहने देना, उस सबमें उन्हीं के योग का अलग-अलग भाग देना और सबको मिश्रधन से गुणा करना चाहिए। इसके बाद क्रम से प्रयुक्त व्यापार में लगाए हुए धनखण्ड के प्रमाणों का पता चलता है॥ ३९$^{1/2}$ ॥

बहुराशिफलात्स्वल्पराशिमासफलं बहु॥४०॥
चेद्राशिविवरं मासफलान्तरहृतं च यः।

पञ्चराशिक की तरह बहुराशिक में फल एवं हर को एक दूसरे के पक्षनयन करने से इच्छापक्ष में फल के जाने से इच्छापक्ष बहुराशि और प्रमाणपक्ष कमराशि स्वीकारा गया है। इस गणितविधि के उदाहरण में यदि इच्छाफल ज्ञातकर मूलधन की जानकारी करनी हो तो फलों को आपसी पक्ष में बदलने से प्रमाण पक्ष (कम राशि) का फल ही बहुराशि (इच्छापक्ष) से अधिक होगा। इस प्रसंग में राशिजफल को इष्टमास और प्रमाणफल के गुणन से भाजित करने पर मूलधन होगा॥ ४०$^{1/2}$ ॥

---

१. श्रीपति का मत है कि फल को एक पक्ष से दूसरे पक्ष में रखकर और बाद में हरों को भी उसी तरह प्रतिस्थापित करके दोनों पक्षों में प्राप्त अंकों को गुणा करके, अधिक राशि पक्ष के गुणा को (अंशों को) दूसरे अल्प राशि के पक्ष से विभाजित करे। मूल्य विनिमय के प्रश्नों में वस्तुओं के मूल्यों को प्रतिस्थापित या परिवर्तित करे और उपर्युक्त नियम से फल को ज्ञात करना चाहिए— आनीय पक्षमपरं फलमल्पराशिपक्षेण पक्षमपरं विभजेच्छिदां च। कृत्वा विपर्ययविधिं निजपक्षराशिघातं विधाय च परस्परतक्षणं च॥ पञ्चराशिकविधिर्विधीयते मूल्ययोर्विनिमये कृते सति। जीवविक्रयविधौ पुनर्वयोव्यत्ययेन विहितश्च पूर्ववत्॥ (सिद्धान्तशेखर व्यक्तगणिताध्याय: १५-१६)

२. यहाँ वर्णित विधि का सूत्र इस प्रकार होगा—

$$\text{मूलधन} = \frac{\text{प्रमाणराशि} \times \text{समय} \times \text{मिश्रधन}}{\text{प्रमाणराशि}\times\text{समय}+\text{फल}\times\text{अन्य समय}}$$

$$\text{ब्याज} = \frac{\text{फल} \times \text{अन्य समय} \times \text{मिश्रधन}}{\text{प्रमाणराशि}\times\text{समय}+\text{फल}\times\text{अन्य समय}}$$

क्षेपा मिश्रहताः क्षेपयोगभक्ताः फलानि च॥४१॥

पूंजी की किश्तों या हिस्सों (प्रक्षेप) को अलग-अलग मिश्रधन से गुण देना एवं उसको प्रक्षेप के योग से भाजित किया जाना चाहिए। इस क्रिया से अलग-अलग फल मालूम होते हैं।[1] इसके अतिरिक्त बावड़ी इत्यादि जलस्रोत के भरने सम्बन्धी सवाल पर अपने-अपने अंशों से हर में भाग दिया जाए, तदनन्तर उन सबके योग से १ में भाग देने पर जलस्रोत के भरने के काल का खुलासा हो सकता है॥ ४०१/२॥

भजेच्छिदोंशैस्तैर्मिश्रै रूपं कालश्च पूर्तिकृत्।
पूर्णो गच्छेत्समेध्यव्येसमेवर्गोर्द्धितेत्यतः॥४२॥
व्यस्तं गच्छतं फलं यद्गुणवर्ग भचहि तत्।
व्येकं व्येकगुणाप्तं च प्राघ्नं मानं गुणोत्तरे॥४३॥

यदि द्विगुण, त्रिगुण आदि चय जैसे सवाल हों तो वहाँ पर विषम संख्यक (३, ५, ७, ९...) हो तो उसमें १ को घटाएँ और गुणक को लिखा जाए। यदि पद सम संख्यक (२, ४, ६...) हो आधा करके वर्गचिह्न अंकित करना चाहिए। इस तरह एक घटाने एवं आधा करते हुए भी यदि विषमांक हो तो गुणकचिह्न, यदि समांक हो तो वर्गचिह्न लगाएँ और जब तक पद की कुल संख्या पूरी न हो जाए तब तक यही रीति करते जाना चाहिए। इसके बाद, अन्त्य चिह्न से उलटा गुणज और वर्गफल साधन करें व प्रारंभिक चिह्न तक जो फल हो, उसमें एक घटाकर शेष में एकोन गुणक से भाग लगाना चाहिए। प्राप्त फल को आदि अंक से गुणा करने पर सर्वधन ज्ञात होता है॥ ४२-४३॥

भुजकोटिकृतियोगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत्। श्रुतिकृत्यन्तरपदं कोटिर्दोः कर्णवर्गयोः॥४४॥
विवरात्तत्कर्णपदं क्षेत्रे त्रिचतुरस्त्रके। राश्योरन्तरवर्गे च द्विघ्ने घाते युते तयोः॥४५॥
वर्गयोगोथ योगान्तहन्तिर्वर्गान्तरं भवेत्।

[क्षेत्रव्यवहार या रेखागणित] रेखात्मक त्रिभुज या चतुर्भुज जैसी रचनाओं में भुज एवं कोटि के वर्गयोग का मूल कर्ण होगा। भुज एवं कर्ण के वर्गान्तर का मूल कोटि होगा तथा कोटि तथा कर्ण के वर्गान्तर का मूल भुज होता है।[2] इसके अतिरिक्त राशि के अन्तरवर्ग में उन्हीं दोनों राशियों का द्विगुणित घात

---

१. इस विषय को प्रक्षेप-गणित नियम कहा गया है। इस नियम के अनुसार मिश्रधन को साझेदारों के अपने-अपने भाग से गुणा करके उनके पृथक्-पृथक् प्रक्षेपकों (भाग या साझा राशि) के योग से विभाजित करने से उनके अपने-अपने भागों का फल मिलता है। वस्तुओं के मूल्य राशियों को उनके भार के मानों से विभक्त करके विभक्त करके उनके भागों या अंशों से गुणा करके उचित नियम से मूल्य या फल प्राप्त होते हैं— प्रक्षेपकान् मिश्रधनेन हन्यात् पृथक् फलाप्त्यै विभजेत् स्वयुत्या। पण्येन भक्ते निजमूल्यराशौ प्राग्वद्विधानं पृथगंशनिघ्ने॥ (सिद्धान्तशेखर व्यक्तगणिताध्याय: १९)

२. इस प्रसंग में लीलावती का मत पारिभाषिक रूप में द्रष्टव्य है कि त्रिभुज अथवा चतुर्भुज में जब एक भुज पर दूसरा भुज लम्बरूप हो तो उन दोनों में एक भुज और दूसरा कोटि के नाम से कहा जाता है। उन दोनों के वर्गयोग मूल को कर्ण कहा जाता है। भुज एवं कर्ण का वर्गान्तर मूलकोटि तथा कोटि एवं कर्ण का वर्गान्तर मूलभुज होगा— इष्टो बाहुर्यः स्यात् तत्स्पर्धिन्यां दिशीतरो बाहुः। त्र्यस्रे चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्ज्ञैः॥ तत्कृत्योर्योगपदं कर्णो दोःकर्णवर्गयोर्विवरात्। मूलं कोटिः कोटिश्रुतिकृत्योरन्तरात् पदं बाहुः॥ (लीलावती क्षेत्र. १-२)

(गुणनफल) जो जोड़ दिया जाए तो वर्गयोग भी होगा अथवा उन दोनों राशियों के योगान्तर का घात वर्गान्तर होता है[१] ॥ ४४-४५[१/२] ॥

व्यास आकृतिसंक्षण्णोव्यासास्यात्परिधिर्मुने॥४६॥

[परिधि, शर, जीवादि निकालना] हे मुने! व्यास की स्थूल परिधि को ज्ञात करने के लिए व्यास को २२ से गुण देवें और ७ से भाजित करना चाहिए॥ ४६ ॥

ज्याव्यासयोगविवराहतमूलोनितोऽर्द्धितः। व्यासः शरः शरोनाच्च व्यासाच्छरगुणात्पदम्॥४७॥
द्विघ्नं जीवाथ जीवार्द्धवर्गे शरहृते युते। व्यासोष्टतेभवेदेवं प्रोक्तं गणितकोविदैः॥४८॥

ज्या या जीवा एवं व्यास का योग स्थान पर रखें और अन्तर को दूसरे स्थान पर रखें। इसके बाद इन दोनों का घात या गुणा करना चाहिए। उस गुणन का मूल लेकर उसको व्यास में से घटा दें। तत्पश्चात् उसका आधा करें, उस लब्ध को 'शर' नाम से जानना चाहिए। व्यास में शर को घटाना, अन्तर को शर से गुण देना, उसका मूल लेना और उसको दुगुना कर दिया जाए तो 'जीवा' का ज्ञान होगा। जीवा का आधा करे और उसका वर्ग करे, शर से भाग देवें और प्राप्त फल में शर को जोड़ दिया जाए तो व्यास का मान निकलेगा[२] ॥ ४७-४८ ॥

चोपोननिघ्नः परिधिः प्रागाङ्कः परिधेः कृते। तुर्यांशेन शरघ्नेनाघे निनाघं चतुर्गणम्॥४९॥
व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्या काशं जायते स्फुटा।

यदि परिधि से चाप को घटाकर शेष में चाप से ही गुणा किया जाए तो गुणनफल 'प्रथम' कहा जाएगा। परिधि का वर्ग करना, उसका चौथा भाग लेना, उसको पाँच से गुणा करना और उसमें पूर्वोक्त प्रथम को घटा दिया जाए। यह भाजक होगा। चतुर्गुणित व्यास को प्रथम से गुण देना, यह भाज्य होगा। भाज्य में भाजक से भाग दिया जाए तो जीवा का मान ज्ञात होगा॥ ४९[१/२] ॥

ज्यांघ्रीषुघ्नोवृत्तवर्गोब्धिघ्नव्यासाढ्यमोर्विहृत्॥५०॥
लब्धोनवृत्तवर्गाद्रिपदेर्धात्पतिते धनुः।

व्यास को चार से गुणा करके उसमें जीवा का मान जोड़ दिया जाए तो यह भाजक होगा। परिधि के वर्ग

---

१. किसी दो राशियों का वर्गयोग या वर्गान्तर ज्ञात करना हो तो दोनों राशियों के अन्तर के वर्ग में उन्हीं दोनों राशि के द्विगुणित घात जोड़ देने से वर्गयोग हो जाता है। किसी भी दो राशियों के योग एवं अन्तर का घात उन्हीं दोनों का वर्गान्तर होता है— राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युतो तयोः। वर्गयोगो भवेदेवं तयोर्योगान्तराहतिः॥ वर्गान्तरं भवेदेवं ज्ञेयं सर्वत्र धीमता॥ (लीलावती तत्रैव, करणसूत्रम् ३)

२. भास्कराचार्य का स्पष्टीकरण है कि जीवा और व्यास के योग एवं अन्तर के घात का जो मूल हो, उसे व्यास में से घटाकर शेष का आधा शर होता है। व्यास में शर घटाकर शेष को शर से ही गुणा कर जो मूल हो, उसको दुगुना करने से जीवा होती है और जीवा के आधे का वर्ग करके उसमें शर का भाग देकर लब्धि में शर को जोड़ा जाए तो वृत्त का व्यास-मान ज्ञात होता है— ज्याव्यासयोगान्तरघातमूलं व्यासस्तदूनो दलितः शरः स्यात्। व्यासाच्छरोनाच्छरसंगुणाच्च मूलं द्विनिघ्नं भवतीह जीवा। जीवार्द्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणं प्रवदनित वृत्ते॥ (लीलावती शरजीवानयनाय करणसूत्रम् ४५-४६)

को जीवा की चौथाई और पाँच से गुण देना, यह भाज्य हुआ। यहाँ भाजक से भाज्य में भाग देना और जो लब्धि हो, उसे परिधि वर्ग के चतुर्थांश में घटा देना और शेष का मूल लेना, उसको वृत्त (परिधि) के आधे में घटा दिया जाएगा तो धनु (चाप) का मान ज्ञात होगा॥ ५०१/२॥

स्थूलमध्यापृवन्नवेधो वृत्ताङ्कशेषभागिकः॥५१॥
वृत्ताङ्गाशकृतिर्वेधनिघ्नीयनकरामितौ। वारिव्यासहतं दैर्घ्यंवेधाङ्गुलहतं पुनः॥५२॥
खखेन्दुरामविहतं मानं द्रोणादिवारिणः।

[अनाज आदि के माप के लिए] राशि-व्यवहार में स्थूल, मध्यम और सूक्ष्म प्रमाण अनाज आदि द्रव्यों में क्रमशः उनकी परिधि का नवम अंश, दस अंश और ग्यारह अंश वेध होता है। परिधि का छठवाँ अंश लेकर उसका वर्ग करना एवं उसे वेध से गुण देना चाहिए। उसकी संज्ञा घनहस्त (खारी प्रमाण) होगी। जल प्रमाण के लिए उसके स्रोत के व्यास (चौड़ाई) से लम्बाई को गुण दें और फिर उसी को गहराई के अंगुल-मान से गुणते हुए ३१०० से भाजित करना चाहिए। इससे जल का द्रोणात्मक मान निकल आता है। ५१-५२१/२॥

विस्तारायामवेधानामङ्गुल्योन्यनाडिघ्नाः ॥५३॥
रसाङ्काभ्राब्धिभिर्भक्ता धान्ये द्रोणादिकामितिः।
उत्सेधव्यासदैर्घ्याणामङ्गुल्यान्यस्य नो द्विज॥५४॥
मिथोघ्नाति भजेत्खाक्षेशैर्द्रोणादिमितिर्भवेत्।
विस्ताराद्यङ्गुलान्येवं मिथोघ्नान्यपसां भवेत्॥५५॥
वाणेभमार्गणैर्लब्धं द्रोणाद्यं मानमादिशेत्।

किसी भरण पात्र की चौड़ाई, गहराई और लम्बाई के अंगुलात्मक मान को आपस में गुणा किया जाए और उसमें ४०९६ का भाग दिया जाए तो अनाज राशियों का द्रोणादि मान ज्ञात हो सकेगा। इसी प्रकार ऊँचाई, व्यास (चौड़ाई) और लम्बाई के अंगुल मान को आपस में गुणा करें और ११५० से भाजित करे तो पत्थर के द्रोण वाला मान ज्ञात होगा। यदि पात्र के विस्तार (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई) आदि के अंगुल मान को आपस में गुणा किया जाए और ५८५ से भाजित किया जाए तो लोहे के द्रोण[1] का मान ज्ञात होगा॥ ५३-५५१/२॥

दीपशङ्कुतलच्छिद्रघ्नः शङ्कुभैवम्भवेन्मुने॥५६॥

---

१. तौलादि के मानों में द्रोण प्रमुख मान रहा है। चाणक्य और वराहमिहिर से लेकर भास्कराचार्य आदि ने इसका प्रमाण दिया है। वराह का मत है कि एक हाथ के बराबर व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्तुलाकार कुण्ड से जल का मापन किया जाता है। इस कुण्ड में पचास पल प्रमाण जल होता है। पचास पल का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है— आप्याद्यैर्जलमानं मागधमानेन हस्तमिते॥ (समाससंहिता, बृहत्संहिता २३, २)

भास्कराचार्य का मत है— १ घनहाथ = १ खारी, ४ कुडव = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ = १ आढक, ४ आढक = १ द्रोण, १६ द्रोण = १ खारी। (लीलावती परिभाषा २-११) इस मान को यदि वर्तमान मान में परिवर्तित करें तो १ आढक = ४ किलो ९६ ग्राम होगा और ४ आढक का जो द्रोण होता है, वह १६ किलो ४०० ग्राम के बराबर होता है।

नरो न दीपकशिखौच्चभक्तो ह्यथ भोद्धने।
शङ्कौनृदीपाधश्छिद्रघ्नैर्दीपौच्च्यं नरान्विते॥५७॥
विशङ्कुदीपौच्च्यगुणाच्छाया शङ्कूद्धृता भवेत्।
दीपशङ्क्वन्तरं चाथ च्छायाग्रविवरघ्नभा॥५८॥
मानान्तरद्धृद्भूमिः स्यादथोभूनराहतिः। प्रभाप्ता जायते दीपशिखौच्च्यं स्यात्त्रिराशिकात्॥५९॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम्।

[छाया का मान, दीपक की ऊँचाई एवं भू मान] दीपक के तल और शंकु तल के बीच के अन्तराल से शंकु के मान को गुण दे और दीपक की ऊँचाई में से शंकु के मान को घटाकर उससे गुणित शंकु में भाग दिया जाए तो छाया का मान ज्ञात होगा (यह त्रिभुज में चतुर्भुज की विधि ये ज्ञात होगी)[१]। शंकु एवं दीपक के तल के अन्तर से शंकु को गुणा करें और फिर छाया से भाग दें। प्राप्त फल में शंकु को जोड़ देने पर दीपक की ऊँचाई ज्ञात होगी। शंकु रहित दीपक की ऊँचाई से छाया को गुण दिया जाए और शंकु से भाग दिया जाए तो शंकु और दीपक का अन्तर निकाला जा सकता है। छायाग्र के अन्तर से छाया को गुण दिया जाए और छाया के प्रमाण के अन्तर से भाग दिया जाए तो दीपक की ऊँचाई ज्ञात हो सकती है। गणित की इन रीतियों में त्रैराशिक ही उपयोगी है। इस तरह संक्षेप में यह परिकर्मगणित मैंने कहा है॥ ५६-५९१/२॥

ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरान्॥६०॥

अब मैं ग्रहों का मध्यादिक गणित का कथन करता हैं किन्तु अधिक विस्तार से नहीं कहूँगा॥ ६०॥

युगमानं स्मृतं विप्र खचतुष्करदार्णवाः। तद्दशांशास्तु चत्वारः कृताख्यं पादमुच्यते॥६१॥
त्रयस्त्रेता द्वापरः द्वौ कलिरेकः प्रकीर्तितः। मनुं कृताब्दसहिता युगानामेकसप्ततिः॥६२॥

[चतुर्युग प्रमाण] हे विप्रवर! चारों युगों का एकीकृत मान तैंतालीस लाख, बीस हजार वर्ष निर्धारित है। उसका जो दशांश होता है, उसको चार से गुणा करने पर कृतयुग संज्ञक पाद होगा (जिसका मान १७ लाख २८ हजार वर्ष स्वीकृत है)। उक्त दशांश को तीन से गुणा करने पर (१२, ९६००० वर्ष) त्रेतायुग का पाद होगा। उक्त दशांश को दो से गुणा किया जाए तो द्वापर का पाद (८६, ४००० वर्ष) होगा। अन्त में, उक्त दशांश को एक ही गुना स्वीकारने पर कलियुग नामक पाद (४३२००० वर्ष) होगा।[२]

---

१. तुलनीय— दीप तल एवं शंकु तल के बीच जो भूमिमान हो, उससे शंकु को गुणा करें और गुणनफल में शंकून दीपक की लौ तक के भाग देने से छाया का मान ज्ञात होता है— शङ्कुः प्रदीप तल शङ्कुतलान्तरघ्नश्छायाभवेद्विनरदीपशिखोच्च्यभक्तः। इत्यादि (लीलावती, छायाव्यवहार छायान्तरे करणसूत्रम्)

२. यहाँ सौर वर्षानुमत मान है। सिद्धान्तशिरोमणि में कहा गया है कि ४३२००० को क्रम से ४, ३, २ और १ से गुणने पर सौर वर्ष के अनुसार एक-एक युग का मान होगा। यह गणना इस प्रकार है—

(अ.) ४३२००० × ४ = १७२८००० कृतयुग या सत्ययुग।

(आ.) ४३२००० × ३ = १२९६००० त्रेतायुग।

(इ.) ४३२००० × २ = ८६४००० द्वापरयुग एवं

कृतयुग सहित (संध्या रूप में एक कृतयुग की वृद्धि समेत) ७१ चतुर्युग का एक मन्वन्तर होता है[१] ॥ ६१-६२ ॥

विधेर्दिने स्युर्विप्रेन्द्र मनवस्तु चतुर्दश। तावत्येव निशा तस्य विप्रेन्द्र परिकीर्तिता॥६३॥
स्वयम्भुवा शरगतानब्दान्संपिड्य नारद। खचरानयनं कार्यमथ वेष्टयुगादितः॥६४॥

ब्रह्मन्! पितामह ब्रह्मा का जो एक दिन माना गया है, उसमें १४ मनु स्वीकारे गए हैं और उतने ही समयावधि की उनकी एक रात्रि भी होती है।[२] हे नारद! ब्रह्माजी के वर्तमान कल्प में जितनी संख्या में वर्ष व्यतीत हुए हैं, उनको सम्पिण्ड्य कर (संयुक्त रूप से) ग्रहों का साधन किया जाना चाहिए अथवा इष्ट युगादि से ग्रह-साधन किया जा सकता है ॥ ६३-६४ ॥

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः। कुजार्किगुरुशुक्राणां भगणाःपूर्वयायिनाम्॥६५॥

ऊपर जो एक युग कहा गया है, उसमें पूर्वयायी (पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए) सूर्य, बुध एवं शुक्र के ४३, २०००० भगण स्वीकारे गए हैं। मंगल, शनि एवं गुरु के शीघ्रोच्च भगण भी ४३, २०००० संख्यक होते हैं ॥ ६५ ॥

इन्दोरसाग्नित्रित्रीषु सप्त भूधरमार्गणाः। दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काश्विलोचनानि कुजस्य तु॥६६॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः। बृहस्पतेः खदस्त्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा॥६७॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः। शनेर्भुजगषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः॥६८॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याक्षिवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विभूधराःशर॥६९॥

इसी प्रकार एक युग में चन्द्रमा के भगण ५७७५३३३६ स्वीकारे गए हैं। मंगल के २२९६८३२, बुध के शीघ्रोच्च के १७९३७०६०, बृहस्पति के ३६४२२० होते हैं, शुक्र के शीघ्रोच्च के ७०२२३७६, शनि के १४६५६८ और चन्द्रमा के उच्च के भगण ४८८२०३ होते हैं। चन्द्र के पात की वाम गति के भगण २३२२३८ होते हैं ॥ ६६-६९ ॥

(ई.) ४३२००० × १ = ४३२००० कलयुग।

इन चारों युगों का जो समय बताया गया है, वह सन्धि और सन्ध्यांश के साथ है। एक युगचरण का बारहवाँ भाग सन्धि और उतना ही सन्ध्यांश होता है। इन दोनों के साथ उक्त युगचरण काल है। इनका योग करने पर जो ४३२ को १०००० से गुणने पर होता है, वह एक महायुग का काल होता है। (सिद्धान्तशिरोमणि मध्य. २१-२२)

१. सूर्यसिद्धान्त का मत है कि पूर्वोक्त ७१ महायुगों का एक मन्वन्तर या मनु होता है और एक कल्प अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु के समान समय होता है। एक मनु के बाद कृतयुग के समय १७२८००० के बराबर सन्धि है और इसमें संसार में जलमात्र शेष रहता है— युगानां सप्ततिः सैका (७१) मन्वन्तरमिहोच्यते। कृताब्दसङ्ख्या (१७२८०००) स्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥ (सूर्यसिद्धान्त मध्य. १८)

२. सूर्यसिद्धान्तकार का मत है कि एक हजार महायुग का ब्रह्मा का कल्प संज्ञक दिन और एक कल्प के समान रात्रि होती है अर्थात् दो कल्प का ब्रह्मा का अहोरात्र कहा गया है— इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः। कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥ (सूर्य. मध्य. २०)

उदयादुदयं भानोर्भूमेः सावनवासराः। वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे॥७०॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः। तिथिक्षयायमार्थाक्षिद्व्यष्टव्योमशराश्विनः॥७१॥

सूर्य के एक उदय से लेकर दूसरे उदय तक दिन का जो मान होता है, वह भौमवासर अथवा सावन वासर के नाम से जानना चाहिए। ऐसे वासर एक महायुग (चारों ही युग) में १५७७९१७८२८ होते हैं। (यह ज्ञातव्य है कि चान्द्र दिवसों की संख्या १६०३०००८० होती हैं)। इसमें १५९३३३९ अधिमास होते हैं तथा २५०८२२५२ तिथिक्षय होते हैं॥ ७०-७१॥

खचतुष्का समुद्राष्टकुपञ्चरविमासकाः। षट्त्र्यग्नित्र्यग्निवेदाग्निपञ्चशुभ्रांशुमासकाः॥७२॥

गणना के अनुसार सूर्यमासों की संख्या ५१८४०००० और चान्द्रमासों की संख्या ५३४३३३३६ हैं॥ ७२॥

प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पेसप्ताष्टवह्नयः। कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः॥७३॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः। गोग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः॥७४॥

प्राग्गत या पूर्वाभिमुख गति के अनुसार एक कल्प में सूर्य के मन्दोच्च भगण ३८७, मंगल के मन्दोच्च भगण २०४, बुध के मन्दोच्च भगण ३६८, बृहस्पति के मन्दोच्च भगण ९००, शुक्र के मन्दोच्च भगण ५३५ और शनि के मन्दोच्च भगण ३९ स्वीकारे गए हैं। इसके बाद, मंगल इत्यादि ग्रहों के पातों की पश्चिम गति के अनुसार एक कल्प में होने वाले भगणों के सम्बन्ध में बताया जाता है॥ ७३-७४॥

मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य शौक्रस्याग्निखनन्दकाः॥७५॥
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः।

मंगल पात के भगण २१४, बुध पात के भगण ४८८, बृहस्पति पात के भगण १७४, शुक्र पात के भगण ९०३ और शनि पात के भगण ६६२ गिने गए हैं॥ ७५$^{1/2}$॥

वर्तमानयुगे यातावत्सराभगणाभिधाः॥७६॥
मासीकृतायुता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः। पृथक्स्थासिधिमासघ्नासूर्यमासविभाजिताः॥७७॥
अथाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः।
द्विस्थास्तिथिक्षयाभ्याभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः॥७८॥
लब्धोनरात्रिरहितालङ्कायामर्द्धरात्रिकः। सावनोद्युगणोऽर्कादिर्दिनमासाब्दपास्ततः॥७९॥

[काल गणना] वर्तमान युग जिसमें समय के अहर्गण अथवा ग्रहादि को ज्ञात करना हो, में सृष्ट्यादि काल अथवा युगादि समय से लेकर अब तक जितने वर्ष व्यतीत हो गए हों, वे सूर्य भगण होते हैं। उन भगण को १२ से गुणा करके मास बनाना चाहिए। उसमें वर्तमान वर्ष के चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से लेकर वर्तमान महीने तक (इष्टकाल पर्यन्त) जितने महीने व्यतीत हुए हों, उनकी संख्या को जोड़ दिया जाए (इस प्रकार मध्यम मासगण कहा जाता है) और योगफल को दो स्थान पर स्थापित करना चाहिए। इसके बाद, दूसरे स्थान के मासगण को युग के उपर्युक्त अधिमासों की संख्या से गुणा करें और गुणनफल में युग के सूर्यमासों की संख्या का भाग लगाएँ। इससे जो संख्या आए, उसे अधिमासों की संख्या जानना चाहिए। इस अधिमासों की संख्या को

पहले स्थान पर स्थापित मासगण में जोड़ा जाना चाहिए। इसका योगफल किया जाए (तो व्यतीत हुए चान्द्रमासों की संख्या होती है)। उस संख्या को ३० से गुणा करें। इससे प्राप्त गुणनफल को तिथि की संख्या माने। उसमें वर्तमान मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से इष्ट तिथि पर्यन्त की संख्या का योग करें (तो चान्द्र दिन की संख्या निकलती है)। पुन: इसको दो स्थान पर स्थापित करना चाहिए। इसके बाद, द्वितीय स्थानस्थ संख्या को युग के लिए कही गई तिथि क्षय संख्या से गुणा करें। प्राप्त गुणनफल में युग की चान्द्र दिनों (युगतिथियाँ) से भाग दें। इससे तिथि क्षय ज्ञात होगी। इसके बाद, उसको पहले स्थानस्थ चान्द्र दिन की संख्या में से घटाएँ तो इच्छित दिन का लंकार्ध रात्रि कालिक सावन दिनगण (जिसे अहर्गण कहा जाता है) ज्ञात होता है।[१] (सावन दिन संख्या में १ रात्रि या १ दिन घटाने से लंका में अर्द्धरात्रि कालिक सावन अहर्गण होगा)। इस प्रकार दिवसपति, मासपति और वर्षपति का ज्ञान किया जा सकता है[२]। उक्त अहर्गण द्वारा सूर्य से आरम्भ कर सूर्यादि ग्रह क्रम से दिन, मास एवं वर्ष के स्वामी होते हैं॥ ७६-७९॥

सप्तभि:क्षयित: शेष: सूर्याद्योवासरेश्वर:। मासाब्ददिनसंख्याप्तंद्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्॥८०॥
सप्तोद्धतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ।

उदाहरण के लिए दिनगण (अहर्गण) में ७ का भाग दिया जाए और जो शेष बचे उसमें एकादि क्रम से सूर्य इत्यादि दिवसपति का ज्ञान करना चाहिए। दिनगण (अहर्गण) में यदि ३० का भाग दिया जाए और प्राप्त फल को २ से गुणा किया जाए तथा गुणनफल में १ जोड़ा जाए और फिर उसमें ७ से भाग देकर एकादि शेष रहे तो सूर्यादि क्रम से मासपति निश्चित करना चाहिए। ऐसे ही यदि दिनगण (अहर्गण) में ३६० का भाग लगाएँ और लब्धि को ३ से गुणा किया जाए एवं गुणनफल में १ जोड़ा जाए तथा उसमें ७ से भाग लगाए जाने पर एकादि संख्या के अनुसार सूर्य इत्यादि वर्तमान वर्षपति होंगे[३]॥ ८०^{१/२}॥

---

१. यहाँ अहर्गणसाधन के श्लोक सूर्यसिद्धान्त से उद्धृत किए गए हैं। तुलनीय— मासीकृतायुता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतै:॥ पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्ना: सूर्यमासविभाजिता:। लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता:॥ द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्य-स्ताश्चान्द्रवासरभाजिता:। लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिका:॥ सावनो द्युगण: सूर्याद्दिनमासाब्दपास्तत:। सप्तभि: क्षयित: शेष: सूर्याद्यो वासरेश्वर:॥ (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार १, ४८-५१) इनकी उपपत्ति रंगनाथादि की टीकाओं में देखी जा सकती है।

२. गणकवर्य केशवदैवज्ञ ने भी इसको स्पष्ट किया है— द्व्यब्धीन्द्रोनितशक ईशदृत्फलं स्याच्चक्राख्यं रविहतशेषकं तु युक्तम्। चैत्राद्यै: पृथगमुत: सदृग्घ्नचक्राद्दिग्युक्तादमर फलाधिमास युक्तम्॥ खत्रिघ्नं गततिथियुङ्निरग्र चक्राङ्गाशाढ्यं पृथगुमतोऽब्धि षट्कलब्धै:। ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद्वै वार: स्याच्छरहतचक्रयुग्गणोऽब्जात्॥ (ग्रहलाघव मध्यमग्रहसाधनाधिकार १, ४-५)

३. नारदपुराणकार ने यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त से ग्रहण किया है जहाँ कहा गया है कि अहर्गण को दो स्थानों पर रखकर एक स्थान में मास दिन संख्या अर्थात् ३० से और दूसरे स्थान पर वर्ष दिन ३६० से भाग देने पर जो लब्धि हो, उसमें क्रम से २ एवं ३ से गुणाकर १-१ जोड़ने से जो संख्या हो, उसे पृथक्-पृथक् ७ से भाग देने पर क्रम से शेष तुल्य रव्यादि ग्रह मासेश और वर्षेश होंगे। तुलनीय— मासाब्द दिन सङ्ख्याऽप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्। सप्तोद्धतावेशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ॥ (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार १, ५२) यहाँ अहर्गण को ३६० से विभक्त करने से लब्धि तुल्य विगत वर्षगण होते हैं और शेष से लब्धि × ३ + १ / ७ = वर्षेश होता है। प्रत्येक गत वर्ष के लिए लब्धि को ३ से गुणा किया है क्योंकि ३६० / ७ = ५१ लब्धि तथा शेष ३ रहता है।

स्त्रेहस्य भगणाभ्यस्तो दिन राशिः कुवासरैः॥८१॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्।
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चाये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः॥८२॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः।

[अहर्गण से मध्यम ग्रह का ज्ञान करने के लिए] युग के लिए भगण की जो संख्या बताई गई है, उससे अहर्गण को गुणा करें और गुणनफल में युग की कुदिन (सावन मान के दिन) की संख्या से भाग दिया जाए तो भगणादि ग्रह लंकार्ध रात्रिकालिक ज्ञात होता है।[१] ऐसे ही पूर्वयायी या पूर्वाभिमुख गति वाले ग्रह जो शीघ्रोच्च एवं मन्दोच्च बताए गए हैं, उनके भगण के द्वारा उनका भी ज्ञान-साधन किया जाता है। विलोमगत अथवा पश्चिमाभिमुख गति वाले जो ग्रहों के पातभगण बताए गए हैं, उनके द्वारा इसी प्रकार जो पात ज्ञात हों, उनको राशि की संख्या १२ में घटाए जाने पर शेष को मेष, वृषभादि क्रम से राश्यादि पात के रूप में जाने[२]॥ ८१-८२[१/२]॥

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णौ द्विगुणः स्मृतः॥८३॥
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्।
लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः॥८४॥

[ज्योतिष की गणनानुसार भूपरिधि मानम्[३]] कहा गया है कि पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है। इस

१. यह मत सूर्यसिद्धान्त का है जहाँ स्पष्ट किया गया है कि अहर्गण को अपने-अपने युग भगण से गुणाकर युग सावन दिवसों से भाग देने पर भगणादि मध्यम ग्रह होते हैं अर्थात् प्रथम लब्धि भगण, शेष को १२ से गुणाकर युग सावन दिनों से भाग दिए जाने पर द्वितीय लब्धि राशि एवमेव ३० × शेष / युग सावन = अंश आदि। तुलनीय— यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः। विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्॥ (सूर्यसिद्धान्त उपर्युक्त ५३) उपपत्तिः युगे कल्पे वा ग्रहभगणा पठिताः सन्ति। अतः अनुपात द्वारा एकदिनस्य मध्यम ग्रहः साध्यते। यदि कल्पकुदिनैः कल्प ग्रहभगणास्तदा अहर्गणेन किमिति— कल्पग्रहभगण × अहर्गण / कल्पकुदिनानि = एक दिवसीयः मध्यमग्रहः भगणादि।

२. सूर्यसिद्धान्तकार का कहना है कि पूर्वोक्त रीति से अनुपात द्वारा अपने-अपने शीघ्रोच्च एवं मन्दोच्च, जिनकी गति पूर्वाभिमुख बताई गई है, उनका भी आनयन किया जा सकता है तथा विलोम या वक्र गति वाले पातों का भी साधन होता है परन्तु साधित राश्यादि मान को चक्र (१२ राशि) में घटाने पर ही मेषादि राशियों के अनुसार पात ग्रह होता है— एवं स्वशीघ्र मन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः। विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः॥ (सूर्य. पूर्वानुसार ५४) उपपत्तिः- अत्रानुपातेन— कल्पकुदिनैः कल्पनीयशीघ्रोच्चाः मन्दोच्चा वा भगणा लभ्यन्ते तदा अहर्गणेन किमिति — कल्पनीया उच्चभगणा × अहर्गणः / कल्पकुदिनानिः = अभीष्टभगणा शीघ्राख्या, मन्दाख्या वा। एवमेव कल्पकुदिनैः कल्पीयपातभगणाः तदा अहर्गणेन किमिति— कल्पीयापातभगणा × अहर्गणः / कल्पीययुगभगणा = अहर्गण सम्बन्धि राश्यादयः पातभगणाः। १२ राश्यादयो पाताः = मेषादिका पाताः। उपपन्नम्।

३. यह सूर्यसिद्धान्त का मत है कि आठ सौ योजन का द्विगुणित मान अर्थात् १६०० योजन पृथ्वी का कर्ण या व्यास होता है। उस व्यास के वर्ग को दस से गुणाकर गुणनफल का वर्गमूल लेने से भूपरिधि होती है— योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधिर्भवेत्॥ (सूर्य. मध्य. १, ५९)

व्यास के वर्ग को १० से गुणा करे तो गुणनफल का मूल भूमध्य परिधि होता है यानी वर्गमूल की जो संख्या हो, उतने ही योजन की पृथ्वी की परिधि जाने। इस भूमध्य परिधि की संख्या को अपने-अपने लम्बांश-ज्या से गुणा करके उसमें त्रिज्या ३४३८ से भाग दें। इससे जो फल मिले, वह स्पष्ट भूपरिधि की योजन संख्या होगी[१] ॥ ८३-८४॥

तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
कलादितत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्॥८५॥
रेखाप्रतीचिसंस्थाने प्रक्षिपेत्स्युः स्वदेशतः।

[ग्रहों में देशान्तर संस्कार[२]] ग्रह की कलादि मध्यम गति को देशान्तर योजन (रेखा देश से जितने योजन पूर्व अथवा पश्चिम अपना स्थान हो उस) से गुणा करे और गुणनफल में स्पष्टभूपरिधि योजन प्रमाण का भाग दिया जाए तो प्राप्तफल को कला इत्यादि कहा जाएगा। उस लब्धि को रेखा से पूर्व देश में पूर्वसाधित ग्रह में से घटाए जाने पर एवं पश्चिमी देश में जोड़ने से अपना स्थानीय अर्धरात्रि कालिक ग्रह ज्ञात होगा॥ ८५$^{1/2}$ ॥

राक्षसातपदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रनाः ॥८६॥
अवन्तिकारोहतिकं तथा सन्निहितं सरः।

[रेखा देश के नगर] राक्षसों के निवास (लंका) से देवताओं के स्थान (सुमेरुगिरि, उत्तरी ध्रुव) तक मध्यगत सूत्र रेखा पर जो-जो भी देश या नगर विद्यमान है, उनको रेखा-देश या रेखा नगर कहा जाता है। इनमें

उपपत्तिः- त्रिज्यामानज्ञानादनुपातेन परिधिमानमन्विते—
यदि २ × त्रिज्यायां (व्यासे) चक्रकला लभ्यते तदा व्यासे किमिति जाता—
भूपरिधि = २१६०० × भूव्या / २ × त्रिज्या = २१६०० × भूव्या / २ (३४३८)
भूपरिधि = (३।८।३४) भूव्या
वर्ग कृते भूपरिधि^{2} = ९।५२।३७ × भूव्या^{2}
अत्र स्वल्पान्तरत्वात् १० × भूव्या^{2} इति गृहीतम्।
अतः भूपरिधि = वर्गमूलचिह्नान्तर्गत १० × भूव्या^{2} उपपन्नम्।

१. भास्कराचार्य का मत है कि ४९६८ योजन भू परिधि और भू व्यास १५८१ योजन है— प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय (४९६७) स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवोऽथ (१५८१) प्रोच्यते योजनम्॥ (सिद्धान्तशिरोमणि मध्य. भू. १)

२. सूर्यसिद्धान्त में स्पष्टभूपरिधिः देशान्तरसंस्कार के लिए ये ही श्लोक हैं और इनका सामान्य अर्थ है कि भूपरिधि को स्वदेशीय लम्बज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने पर लब्धि स्वदेशीय (इष्ट) भूपरिधि होती है। इष्टस्थान के देशान्तर योजन को ग्रहगति कला से गुणाकर स्वदेशीय भूपरिधि से भाग देने पर लब्ध कलादि फल को, रेखादेश से पूर्व में गणितागत ग्रह में घटाने तथा पश्चिम में जोड़ने से स्वदेशीय मध्यम ग्रह होते हैं। आशय है कि यदि रेखादेश से पूर्व हो तो मध्यम ग्रह में घटाने तथा इष्टस्थान पश्चिम होने पर मध्यम ग्रह में जोड़ने से इष्ट स्थान के अर्द्धरात्रि कालिक ग्रह होते हैं— लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः। तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता॥ कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्। रेखाप्रतीचि संस्थाने प्रक्षिपेत् स्युः स्वदेशजाः॥ (सूर्यसिद्धान्त मध्यम. ६०- ६१)

अवन्ति (उज्जैन, मालवा), रोहितक (रोहतक), सन्निहित सर (कुरुक्षेत्र) आदि नगर और उनसे जुड़े देश प्रमुख हैं[१] ॥ ८६½ ॥

वारप्रवृत्तिःप्राग्देशे क्षपार्द्धेभ्यधिको भवेत्॥८७॥
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत्।

[वार प्रवृत्ति की धारणा] यह ज्ञेय है कि रेखादेश से पूर्ववर्ती देशों में रेखादेशीय मध्यरात्रि काल से देशान्तर नाडी तुल्य अधिक काल (मध्यरात्रि काल) में वार प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार पश्चिम दिशागत देशों में देशान्तर घटी तुल्य पहले वार प्रवृत्ति (मध्य रात्रि काल में) होती है[२] ॥ ८७½ ॥

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्॥८८॥
गते शोद्धयं तथा योज्ये गम्ये तात्कालिको ग्रहः।

[इष्टकालिक ग्रह साधन] ग्रह की मध्यम गति कला को इष्ट घटी से गुणाकर ६० का भाग दिए जाने पर जो कलादि लब्धि हो, उसको गत इष्ट घटी होने पर मध्य रात्रि कालिक ग्रह में घटाने तथा गम्य इष्टघटी हो

---

१. तुलनीय सपाठान्तर— राक्षसालयदेवौकः शैलयोर्मध्यसूत्रगाः। रोहीतकमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः॥ तथा च रङ्गनाथटीकायां— अथ रेखास्वरूपं तद्देशांश्च कांश्चिदाह। राक्षसालयं लङ्का देवानां गृहरूपः पर्वतो मेरूः अनयो मध्ये ऋजुसूत्रं तत्र स्थिता देशा रेखाख्या लङ्कादक्षिण सूत्रस्थास्तु अनुपयुक्ताः तत्र मनुष्या गोचरत्वादिति न उक्ताः। ज्ञानार्थम् उदाहरति। रोहीतकमिति। यथा रोहीतकं नगरमवन्ति उज्जयिनी सन्निहितं सरः कुरुक्षेत्रम्। चकारस्तथा इति अव्ययपरः। तथा अन्यानि परस्परं सन्निहिततया ज्ञेयानि॥ (सूर्य. पूर्वानुसार ६२)

२. उक्त श्लोक के लिए भी नारदपुराण सूर्यसिद्धान्त (मध्यमाधिकार ६६) का ऋणि है। श्रीपति ने यह संकेत दिया है कि वार प्रवृत्ति को लेकर विद्वानों में एक मत नहीं था। कुछ आचार्य सूर्य के आधे मण्डल के उदित होने के समय से और कुछ दिनार्ध से वार का आरम्भ मानते होना कहते हैं। कुछ आचार्य सूर्य के आधे अस्तमय काल पर वार के आरम्भ का समय मानते हैं। यवनराज रात्रि के दस मुहूर्त व्यतीत होने पर से वारारम्भ कहते हैं और लाटाचार्य अपने तन्त्र में अर्धरात्रि काल पर वारारम्भ कहते हैं— केचिद्वारं सवितुरुदयादाहुरन्ये दिनार्धात् भानोरर्धास्तमय समयादूचिरे केचिदेवम्। वारस्यादिं यवननृपतिर्दिङ्मुहूर्ते निशायां लाटाचार्यः कथयति पुनश्चार्धरात्रे स्वतन्त्रे॥ (सिद्धान्तशेखर मध्यमाधिकार १०) ये मत-मतान्तर क्रमशः आर्यभट, सिंहाचार्य और लाटदेवाचार्यादि के हैं। श्रीपति ने वराहमिहिर के मत (पञ्चसिद्धान्तिका ज्योतिषोपनिषद् १५, १७-२०) को स्वीकारा है। यह भी कहा है कि लंका में जब सूर्योदय होता है तब वार का आरम्भ होता है। अन्य देशों में चरार्ध एवं देशान्तर घटी इन दोनों के पहले व बाद में स्वदेश में सूर्योदय होने पर वार की प्रवृत्ति होती है— वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति सूर्योदयाद्रावणराजधान्याम्। ऊर्ध्वं तथाधोप्यपरत्र तस्माच्चरार्धदेशान्तर नाडिकाभिः॥ (सिद्धान्त. उपर्युक्त १, १२; ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ ३७, श्लो. १७; बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् २३, २२)

वर्तमान ज्योतिर्विदों का स्पष्टीकरण है कि रेखादेश से पूर्व स्थित देश के देशान्तर के अनुसार जितना मिनट व सैकण्ड का अन्तर होगा, उतने ही मिनट, सैकण्ड बाद पूर्व देशों में मध्यरात्रि काल होगा। इसी तरह पश्चिम देशों में देशान्तर तुल्य मिनट व सैकण्ड पूर्व मध्यरात्रि काल होगा। उदाहरण के लिए रेखा देश में १२.०० बजे मध्यरात्रि काल होता है। रेखादेश में १० मिनट समय के अन्तर पर जो नगर होगा, वहाँ का मध्यरात्रि काल १२.१० बजे तथा इतनी ही दूरी पर पश्चिम में स्थित नगर का मध्यरात्रि काल ११.५० बजे होगा।

तो मध्यरात्रि कालिक ग्रह में जोड़ने से इष्टकालिक ग्रह होता है।[1] (गत-गम्य इष्ट घटी का निश्चय मध्य रात्रि काल से किया जाना अपेक्षित है। मध्य रात्रि से जितने घटी-पल पूर्व ग्रहसाधन अभीष्ट हो, उतने ही घटी पल गत इष्ट घटी तथा मध्य रात्रि के बाद गम्य इष्टघटी होती है)॥ ८८१/२॥

भचक्रलिप्ताशीत्यंशः परमं दक्षिणोत्तरम्॥८९॥
विक्षिप्यते स्वापतेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः।
तत्र वासं द्विगुणितञ्जीवस्त्रिगुणितं कुजः॥९०॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम्।

[चन्द्रादि परम विक्षेप कला] चन्द्रमा अपने पात (क्रान्तिमण्डल चन्द्र विमण्डल के सम्पात) स्थान के प्रभाव से क्रान्ति वृत्तीय अपने मध्य स्थान से भचक्रकला अर्थात् २१६०० कला के ८०वें (२१६०० में ८० का भाग देने पर प्राप्त २७०) भाग के बराबर दूरी तक उत्तर और दक्षिण में विक्षिप्त (हटना) होता है। चन्द्रमा के विक्षेप (२७०) के द्विगुणित नवमांश (२७० × २ / ९ = ६०´) के बराबर गुरु उत्तर एवं दक्षिण तक आकृष्ट होता है। चन्द्रमा के विक्षेप के त्रिगुणित नवमांश (२७० × ३ / ९ = ९०´) के बराबर स्वस्थान से मंगल उत्तर और दक्षिण तक अपकृष्ट होता है। इसी तरह बुध, शुक्र और शनि विक्षेप के चतुर्गुणित नवमांश (२७० × ४ / ९ = १२०´) के बराबर स्वक्रान्ति स्थान से उत्तर एवं दक्षिण अपने-अपने पातों के द्वारा विक्षिप्त किए जाते हैं[2]॥ ८९-९०१/२॥

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते॥९१॥

---

१. पुराणकार ने यह मत सूर्यसिद्धान्त (मध्य. ६७) से यथारूप ग्रहण किया है। इसकी उपपत्ति के लिए रङ्गनाथकृत गूढार्थप्रकाशिका टीका में कहा गया है— गणितागताः ग्रहाः (अहर्गणोत्पन्ना) लङ्कायां मध्यरात्रिकालिका भवन्ति। ततः प्राक् गतेष्ट कालः, पश्चाच्च गम्येष्टकालः। इष्टकालिकं गत्यन्तरं अनुपातेन साध्यते = षष्टिघटीभिर्ग्रहगतिकलास्तदा इष्टघटिभिः किमिति—

ग्रहगति कला × इष्टघटी / ६० = इष्टघटीसम्बन्धिगतिकला

मध्यरात्रिकालिक ग्रहः +- इष्टकालिका ग्रहगतिकला = इष्टकालिको ग्रहः। उपपन्नम्।

२. चन्द्रमा आदि ग्रहों की परम विक्षेप कला का मत पुराणकार ने सूर्यसिद्धान्त (मध्य. ६८-६९) से यथारूप उद्धृत किया है। पुराणकार ने विक्षेप के लिए तीन के घन को दस से गुणा करने का श्लोक नहीं दिया है जबकि वह होता तो विषय अधिक स्पष्ट हो सकता था। सूर्यसिद्धान्तकार ने 'एवं त्रिघनरन्ध्रार्करसार्कार्का दशाहताः। चन्द्रादीनां क्रमादुक्ता मध्य विक्षेप लिप्तिकाः' (मध्य. १, ७०) के रूप में कहा है कि ३ का घन अर्थात् २७, ९, १२, ६, १२, १२ को १० से गुणा करने पर क्रम से चन्द्रादि ग्रहों की विक्षेपकला ज्ञात होती है। यथा— चन्द्रमा की विक्षेप कला २७ × १० = २७०

मंगल की विक्षेप कला ९ × १० = ९०´
बुध की विक्षेप कला १२ × १० = १२०´
गुरु की विक्षेप कला ६ × १० = ६०´
शुक्र की विक्षेप कला १२ × १० = १२०´
शनि की विक्षेप कला १२ × १० = १२०´

ततो द्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद्धितौषकम्।
आद्येनैव क्रमात्पिण्डान्भक्ताल्लब्धोनितैर्युतान्॥९२॥
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशा ज्यार्द्धपिण्डाःक्रमादमी।

[ज्यापिण्ड साधन, पहले जीवा साधनार्थ प्रयोजनीय २४ जीवा साधन] एक राशि में जितनी कलाएँ होती हैं, उनके अष्टमांश को प्रथम ज्यार्द्ध कहा जाता है अर्थात् १ राशि × ३० = ३० × ६० = १८०० कला, १८०० का अष्टमांश = २२५ कला = १ ज्यार्द्ध होता है। प्रथम ज्यार्द्ध को प्रथम ज्यार्द्ध से ही भाजित कर लब्धि को प्रथम ज्यार्द्ध में घटाकर शेष को प्रथम ज्यार्द्ध में जोड़ने पर दूसरा ज्यार्द्ध का मान होता है। प्रथम ज्यार्द्ध से अग्रिम पिण्डों को विभाजित कर लब्धि से रहित ज्याखण्डों को ज्यार्द्ध में जोड़ने से अग्रिम ज्यापिण्ड होगा। इसी तरह क्रम से २४ ज्यार्द्ध पिण्डों के मान होते हैं। जैसे— १८०० कला। १८०० × १/८ = २२५ प्रथम ज्यार्द्धपिण्ड।

२२५ भाजित २२५ = २२५/२२५= १। २२५-१ = २२४ प्रथम ज्याखण्ड।
२२५ + २२४ = ४४९ द्वितीय ज्यार्द्धखण्ड।
४४९ भाजित २२५ = ४४९/२२५ = २ स्वल्पान्तर से
ज्याखण्ड २२४-२ = २२२ द्वितीय ज्याखण्ड
४४९ + २२२ = ६७१ तृतीय ज्यार्द्ध पिण्ड।
इसी प्रकार दूसरे ज्यापिण्डों का साधन किया जाएगा[1] ॥ ९१-९२$^{1/2}$ ॥

परमापत्रमज्या तु सप्तरन्ध्रमुणेन्दवः॥९३॥
तद्गुणज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते।

[परम क्रान्तिज्या निर्दिश्य इष्टक्रान्ति साधन] परम क्रान्तिज्या का मान १३९७ कला स्वीकारा गया है। परम क्रान्तिज्या से इष्टज्या को यदि गुणाकर उस गुणनफल में त्रिज्या (३४३८) का भाग दिया जाए तो लब्धि इष्ट क्रान्तिज्या होती है और इसका चाप मान इष्टक्रान्ति होगा[2] ॥ ९३-९४$^{1/2}$ ॥

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चत्तथा शीघ्राद्विशोध्य च॥९४॥
शेषं केन्द्रपदन्तस्माद्भुजज्या कोटिरेव च।
गताद्भुजज्याविषमे गम्यात्कोटिः पदे भवेत्॥९५॥
समेति गम्याद्बाहुज्या कोटिज्यानुगता भवेत्।

[केन्द्र निर्देश पुरस्सर भुजकोटिज्या साधन] अहर्गणोत्पन्न मध्यमग्रह को अपने-अपने मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च से घटाए जाने पर शेष रहने वाले क्रमशः मन्द्र केन्द्र और शीघ्र केन्द्र होते हैं। अर्थात् मन्दोच्च — मध्यम ग्रह = मन्द्र केन्द्र, शीघ्रोच्च — मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र। केन्द्र से पद ज्ञान तथा पद से भुज एवं कोटि का ज्ञान

१. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार (२, १५-१६)
२. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार (२, २८)

किया जाएगा। विषम पद में गत चाप की जीवा भुजज्या तथा गम्य चाप की जीवा कोटि नाम वाली होती है। सम पद में (विपरीत) गम्य चाप की जीवा भुजज्या तथा गत चाप की ज्या कोटिज्या होती है[१] ॥ ९४-९५१/२ ॥

लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धज्या पिण्डकं गतम्॥९६॥
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्त्वलोचनैः।
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके॥९७॥
स्यात्क्रमज्याविधिश्चैवमुत्क्रमज्वास्यपिस्मृतः ।

[अभीष्ट अंश का ज्यासाधन] जिस चाप की ज्या अभीष्ट हो, उस चाप की कला को २२५ से भाग दिए जाने पर लब्धि गत ज्यापिण्ड होता है। शेष को ऐष्य (अग्रिम) ज्या पिण्ड और गत ज्या पिण्ड के अन्तर से गुणा कर गुणनफल को २२५ से भाग दिए जाने पर जो लब्धि हो, उसको गत ज्यापिण्ड में जोड़ने से अभीष्ट चाप की ज्या होगी। इसको ज्या साधन की विधि कहा गया है और इसी तरह उत्क्रमज्या का भी साधन भी समझना चाहिए[२] ॥ ९६-९७१/२ ॥

ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्॥९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्ग्य संयोज्यं धनुरुच्यते।

[इष्टज्या से चाप निकालना] इष्टज्या से जितनी ज्या घटाई जा सके, घटाएँ और शेषको २२५ से गुणा करें तथा उसमें दोनों (गत एवं गम्य) ज्या के अन्तर से भाग दिए जाने पर प्राप्त लब्धि को, शुद्ध ज्या संख्या एवं २२५ के गुणनफल में जोड़ दिए जाने पर अभीष्ट चाप का मान ज्ञात हो सकेगा[३] ॥ ९८१/२ ॥

स्वेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगोरदाः॥९९॥
युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तोनितास्तयोः।
युग्मान्तेर्थाद्रयः स्वाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः॥१००॥
ओजेद्व्यगा वसुयमारदारुद्रागजाब्धयः।

[ग्रहों के मन्द परिधि भाग, रवि, चन्द्रादि के मन्दपरिध्यंश] सम पदान्त में सूर्य का १४ और चन्द्रमा का ३२ अंश मन्द परिधि अंश होता है। विषम पद में समपद की अपेक्षा २० कला न्यून होगा। इसके अनुसार सूर्य का मन्द परिध्यंश १३ अंश ४० कला का और चन्द्रमा का ३१ अंश ४० कला का होगा। मंगल आदि

---

१. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार (२, २९-३०)

२. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार (२, ३१-३२)

३. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार इष्टज्यातश्चापानयनम् (२, ३३)। गूढप्रकाशकयां अत्रोपपत्ति— अभीष्ट ज्यामानात् गतज्यां विशोध्य शेषेनानुपातः क्रियते। गतगम्यज्ययोरन्तरेण २२५ कलासम्बन्धि चापा लभ्यन्ते तथा शेषकलाभिः किमिति?

२२५ × शेषकला / गम्यज्या - गतज्या = शेषसम्बन्धि कला।

गतज्या सम्बन्धि चापकलाः = शेष सम्बन्धि फलकला = अभीष्टचापकलाः। उपपन्नम्।

पाँच ग्रहों के क्रम से समपदान्त में ७५, ३०, ३३, १२ एवं ४९ अंश मन्द परिधि अंश होते हैं और विषम पदान्त में क्रमानुसार ७२, २८, ३२, ११ और ४८ मन्द परिधि अंश होते हैं[१] ॥ ९९-१००$^{1/2}$ ॥

कुजादीनामतः शौघ्न्यायुग्मान्तेर्थाग्निदस्रकाः॥१०१॥
गुणाग्निचन्द्राः खनगाद्रिरसाक्षीणि गोऽग्नयः। ओजान्ते द्वित्रिमलाद्विविश्वेयमपर्वताः॥१०२॥
खर्तुदस्रावियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः।

[भौम आदि ग्रहों के शीघ्र परिधि अंश] समपदान्त (२, ४) में मंगल आदि ग्रहों के शीघ्र परिधि अंश क्रम से निम्न होंगे— मंगल का शीघ्र परिध्यंश २३५, बुध का १३३, गुरु का ७०, शुक्र का २६२ एवं शनि का ३९ अंश होता हैं। विषम पदान्त (१, ३) में क्रमानुसार मंगल का २३२, बुध का १३२, गुरु का ७२, शुक्र का २६० और शनि ४० होगा।[२] इस प्रकार ये शीघ्रफल साधन के लिए शीघ्र परिध्यंश बताए गए हैं॥ १०१-१०२$^{1/2}$ ॥

ओजयुग्मान्तरगुणाभुजज्यात्रिज्ययोद्धृताः ॥१०३॥
युग्मवृत्तेधनर्णंश्यादोजादूनेऽधिके स्फुटम्।

[इष्ट परिधि का ज्ञान] विषम एवं समपदान्त की मन्द अथवा शीघ्र परिधियों के अन्तर को मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र की भुजज्या से गुणा करे और त्रिज्या (३४३८) का भाग लगाएँ। इससे प्राप्त लब्धि को समपदान्त परिधि में धन ऋण करने से स्फुट परिधि ज्ञात होती है। यदि केन्द्र समपदान्त में हो और विषमपदान्त की परिधि

---

१. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार इष्टज्यातश्चापानयनम् (२, ३४-३५)। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि परिभाषानुसार वृत्त के चतुर्थांश को पद कहा जाता है। प्रथम व तृतीय विषमपद और द्वितीय व चतुर्थ समपद होते हैं। इसी प्रकार मन्द परिधि के लिए यह जानना चाहिए कि मध्यम और स्पष्ट ग्रह का अन्तर मन्दफल होता है। परममन्द फल की ज्या को मन्दान्त्य फलज्या कहा जाता है। मन्दान्त्य फलज्या को व्यासार्ध मानकर निर्मित किए गए वृत्त को मन्दनीचोच्च वृत्त तथा वृत्त की परिधि को मन्द परिधि नाम से जाना जाता है। ग्रहों के मन्द परिध्यंश इस तालिका से स्पष्ट होंगे—

ग्रहः	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
समपद	१४	३२	७५	३०	३३	१२	४९
विषमपद	१३.४०	३१.४०	७२	२८	३२	११	४८

२. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार भौमादीनां शीघ्र परिध्यंशाः (२, ३६-३७)। गूढप्रकाशकयां अत्रोपपत्तिः — शीघ्रफलस्य ज्या शीघ्रान्त्यफलज्या भवति। तस्या व्यासार्धेन निर्मितं वृत्तं शीघ्रनीचोच्चयवृत्तं भवति। शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य परिधिः शीघ्रपरिधिः रिति। परिध्यंशानां ज्ञानार्थमनुपातः। त्रिज्या तुल्य व्यासार्धेन ३६०० परिधिस्तदा शीघ्रान्त्यफल्यज्या तुल्य व्यासार्धेन परिधिमानं किमिति—

३६० × शीघ्रान्त्यफलज्या / त्रिज्या = शीघ्र परिधिः। उपपन्नम्॥

सूर्यसिद्धान्त पर गूढार्थप्रकाशिका टीका करने वाले आचार्य रंगनाथ (१६०३ ई.) ने इन श्लोकों की टीका में यह महत्वपूर्ण संकेत किया है कि यह विवरण नारद के प्रति ब्रह्मसिद्धान्त में है— श्रुतिर्यत्र प्रमाणं स्याद्युक्तिः का तत्र नारद! इति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तेश्चेति सूचितम्। (सूर्यसिद्धान्त स्पष्ट. ३७) नारद-ब्रह्मा संवाद रूप में विद्यमान ब्रह्मसिद्धान्त में यह श्लोक (२, ६४) मिलता है।

से समपदान्त की परिधि कम हो तो प्राप्त फल का समपदान्त परिधि में धन संस्कार अधिक होने पर ऋण संस्कार किया जाएगा[1] ॥ १०३$^{१/२}$ ॥

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते॥१०४॥
तद्भुजज्याफलधनुर्मांदं लिप्तादिकं फलम्।

[मन्द फल साधन] इष्ट स्थानीय स्पष्ट परिधि से मन्दकेन्द्र भुजज्या को और केन्द्र कोटिज्या को गुणाकर भगणांश ३६० से भाग दिए जाने पर क्रम से भुजफल और कोटिफल सिद्ध होंगे। इसे इस रूप में समझा जाए—

इष्ट स्थानीय भूपरिधि × भुजज्या / ३६० = भुजफल

इष्ट स्थानीय स्पष्ट परिधि × कोटिज्या / ३६० = कोटिफल।

भुजफल के चाप का कलादि मान मन्दफल होता है।[2] (भूगर्भ से मन्दप्रतिवृत्त स्थित ग्रह पर्यन्त जाने वाला सूत्र मन्द कर्ण कहा जाता है। दृश्य ग्रह की स्थिति प्रतिवृत्त में और मध्यम ग्रह की स्थिति कक्षावृत्त में होती है। कक्षावृत्त एवं प्रतिवृत्त के केन्द्रों एवं परिधि को स्पर्श करने वाली ऊर्ध्वाधः रेखा को नीचोच्च सूत्र कहा जाता है। भूगर्भ से दृश्य ग्रह तक जाने वाले सूत्र एवं कक्षा वृत्त के सम्पात बिन्दु पर मन्दस्पष्ट ग्रह होगा। दृश्य ग्रह से नीचोच्च रेखा के समानान्तर कक्षा वृत्तव्यास पर लम्ब रूप रेखा का सम्पात बिन्दु कक्षावृत्त में मध्यम ग्रह होता है। मध्यम एवं मन्द स्पष्ट ग्रह का अन्तर मन्दफल होता है) ॥ १०४$^{१/२}$ ॥

शैघ्र्यकोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्॥१०५॥
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्कादौ कोटिजं फलम्।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलकर्णश्चलाभिधः ॥१०६॥

[शीघ्रफलोपयोगी शीघ्र कर्ण साधन] मकर राशि के प्रारम्भ से लेकर मिथुन राशि के अन्त तक छह राशियों में यदि शीघ्रकेन्द्र हो तो शीघ्र कोटिफल का त्रिज्या (३४३८) में धन संस्कार करने से (त्रिज्या + शीघ्र कोटिफल) तथा कर्क राशि के आरम्भ से लेकर धनु राशि के अन्त तक छह राशियों में शीघ्र केन्द्र हो तो शीघ्र कोटिफल का त्रिज्या (३४३८) में ऋण संस्कार (त्रिज्या - शीघ्र कोटिफल) करने से स्पष्ट शीघ्रकोटि ज्ञात होती है। शीघ्र भुजफल एवं शीघ्रकोटि फल के वर्ग योग का वर्गमूल स्फुट शीघ्रकर्ण होता है। इसका सूत्र है—
वर्गमूल चिह्नान्तर्गत शीघ्र भुजफल^{२} + शीघ्रकोटिफल^{२} = स्फुट शीघ्रकर्ण[3] ॥ १०५-१०६ ॥

त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम्।
लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम्॥१०७॥
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि।

[शीघ्र फल साधन] भुजफल को त्रिज्या (३४३८) से गुणा करे और शीघ्रकर्ण (चलकर्ण) से

१. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार इष्ट परिधिज्ञानम् (२, ३८)।

२. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार मन्दफलसाधनम् (२, ३९)।

३. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार शीघ्रफलोपयोगि शीघ्रकर्णानयनम् (२, ४०)।

विभाजित करें। जो लब्धि (शीघ्र फलज्या) हो, उसका चाप कलादि शीघ्रफल होता है। (भुजफल को त्रिज्या से गुणाकर शीघ्रकर्ण से भाजित करने पर भुजफल × त्रिज्या / शीघ्रकर्ण = लब्धि = शीघ्रफलज्या। शीघ्रफलज्या का चापात्मक कलादि मान = शीघ्रकर्मोत्पन्न शीघ्रफल)। यह शीघ्रफल मंगल आदि पञ्च ताराग्रहों के प्रथम एवं चतुर्थ संस्कार कर्म में उपयोगी होता है[1] ॥ १०७१/२ ॥

मान्द्यं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते॥१०८॥
शैघ्र्यं माद्यं पुनर्माद्यं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात्।

[ग्रहों के स्पष्टीकरण के लिए संस्कार] ग्रहों में सूर्य एवं चन्द्रमा को स्पष्ट करने के लिए मात्र एक ही मन्दफल संस्कार किया जाता है। अन्य मंगलादि पंचताराग्रहों के लिए संस्कार विधि को कहता हूँ। इसके लिए पहले शीघ्रफल, फिर मन्दफल, पुनः मन्दफल और फिर शीघ्रफल का संस्कार क्रम एवं अनुक्रम से करना अपेक्षित है, इस प्रकार पहला, दूसरा, तीसरा व चौथा संस्कार होगा।[2] (मध्यम ग्रह में पहले शीघ्रफल का आधा तत्पश्चात् मन्दफल का आधा और फिर समग्र मन्दफल एवं समग्र शीघ्रफल का संस्कार किया जाएगा) ॥ १०८१/२ ॥

अजाकिकेन्द्रे सर्वेषां मान्द्ये शैघ्र्ये च कर्मणि॥१०९॥
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव तत्।

[शीघ्र मन्दकर्मीय संस्कार[3]] सूर्य आदि सभी ग्रहों के मन्द केन्द्र एवं शीघ्र केन्द्र मेष आदि छह राशियों में हो तो मध्यम ग्रह में कलादि मन्दफल एवं शीघ्रफल का संस्कार (जोड़ना) तथा तुलादि छह राशियों के केन्द्र होने पर मध्यम ग्रह में ऋण संस्कार (घटाना) किया जाता है॥ १०९१/२ ॥

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिविभाजिताः॥११०॥
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत्।

[रवि भुजान्तर संस्कार[4]] सूर्य के भुजफल (मन्दफल) को ग्रहगतिकला से गुणाकर गुणनफल को भचक्रकला (३६० × ६० = २१६०० कला) से भाग देने पर जो कलात्मक लब्धि हो, उसको भुजान्तर कहा जाता है। उसका

१. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार शीघ्रफलोपयोगि शीघ्रफलसाधनम् (२, ४१-४२)।

२. सूर्यसिद्धान्त में 'मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते॥ शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात्।' के साथ ही 'मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा। मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्र्यमेव च॥' श्लोक उपलब्ध है (स्पष्टाधिकार ४२-४३) और बृहन्नारदीयपुराण में यह श्लोक नहीं है जबकि सूर्यसिद्धान्त में इस श्लोक के होने से प्रतिपाद्य की स्पष्टता होती है। यहाँ विचार यह है कि मध्यम ग्रह से साधित शीघ्रफल के आधे से संस्कृत मध्यम ग्रह से मन्द फल निकालकर उसके आधे से पूर्व संस्कृत ग्रह में संस्कार (धन या ऋण) करना होगा। इस प्रकार शीघ्र फलार्ध और मन्दफलार्ध संस्कृत ग्रह से पुनः मन्दफल साधित करे और पूर्व संस्कृत ग्रह में धन या ऋण का संस्कार करने से मन्दफल संस्कृत (मन्दस्पष्ट) ग्रह होगा। इसके बाद मन्दफल संस्कृत ग्रह से शीघ्रफल साधन कर पूर्ण शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट ग्रह में करने से स्पष्ट पंचताराग्रह होंगे।

३. तुलनीय—सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार शीघ्रमन्दकर्मणोः धनर्णत्वम् (२, ४५)।

४. तुलनीय—सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार भुजान्तरसंस्कारः (२, ४६)।

संस्कार अभीष्ट ग्रह में सूर्य मन्दफल के अनुरूप करना चाहिए यानी सूर्यमन्दफल धन हो तो ग्रह में लब्धि जोड़ने से मन्दफल ऋण हो तो ग्रह से लब्धि को घटाने से अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट ग्रह होता है॥११०½॥

स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धा मध्यभुक्तिर्निशापतेः॥१११॥
दोर्ज्यान्तरादिकं कृत्वा भुक्तावृणधनं भवेत्।
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि॥११२॥
कर्कादौ तद्धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम्।[1]
दोर्ज्यान्तरगुणाभुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः॥११३॥
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताकलाः।

[ग्रहों की मन्दस्पष्टगति साधन] चन्द्रमा की मन्दोच्चगति से चन्द्रमा की मध्यम गति घटाने पर शेष केन्द्र गति होती है। चन्द्र केन्द्र गति से 'दोर्ज्यान्तर गुणा' जैसी विधि से चन्द्रगतिफल का साधन करके चन्द्रमा की मध्यम गति में निर्दिष्ट विधि के द्वारा धन-ऋण करने से चन्द्रमा की स्पष्टागति ज्ञात होती है। स्पष्ट ग्रह साधन के लिए जिस प्रकार मन्दफल का साधन किया जाता है, उसी तरह मन्दगतिफल का भी साधन किया जा सकता है। चन्द्रगतिफल साधन में चन्द्रमा की मन्दकेन्द्रगति और अन्य ग्रहों की मध्यमा गति को गत-गम्य भुजज्याओं के अन्तर से गुणाकर २२५ से भाजित करने पर जो लब्धि हो, उसे मन्दपरिधि से गुणाकर भगणांश ३६०° से भाग दिए जाने पर प्राप्त कलादि लब्धि को कर्कादि राशियों के केन्द्र होने पर मध्यम गति में धन संस्कार (जोड़े जाने) तथा मकरादि राशियों के केन्द्र होने पर मध्यम गति से घटाने पर ग्रहों की स्पष्टागति ज्ञात होती है॥ १११-११३½॥

मन्दस्फुटकृता भुक्तिः प्रोह्य शीघ्रोच्चभुक्तितः॥११४॥
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः।
चलकर्णहतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम्॥११५॥
ऋणमूनेऽधिके प्रोह्य शेषं वक्रगतिर्भवेत्।

[ग्रहों का शीघ्रगतिफल निकालना[2]] ग्रहों की मन्द स्पष्ट गति को अपनी-अपनी शीघ्रोच्चगति से घटाकर शेष को त्रिज्या एवं अन्त्य कर्ण के अन्तर से गुणाकर शीघ्रकर्ण (चलकर्ण) से भाग दिए जाने पर लब्धि शीघ्रगतिफल होगी। शीघ्रकर्ण यदि त्रिज्या से अधिक हो तो फल धन होगा और अल्प हो तो फल ऋण होगा। मन्दस्पष्ट गति में शीघ्र गतिफल का धन ऋण संस्कार करने से स्पष्ट गति होती है। यदि ऋण शीघ्रगतिफल मन्दस्पष्ट गति से अधिक हो तो शीघ्र गतिफल से मन्दस्पष्ट गति को घटाए जाने पर जो शेष बचे, वह ग्रह की वक्रगति होती है॥ ११४-११५½॥

---

१. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त से उद्धृत हैं क्योंकि बृहन्नारदीयपुराण के अनेकपाठों में ये श्लोक ऊपर-नीचे मिलते हैं। अतः ज्योतिषीय गहन विषय होने से अर्थ और भाव की गम्भीरता की दृष्टि से ये श्लोक वहीं से उद्धृत किए गए हैं। (सूर्यसिद्धान्त २, ४७-४९)

२. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार ग्रहाणां शीघ्रगतिफलानयनम् (२, ५०-५१)।

कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टभिः॥११६॥
शररुद्रैश्चतुर्थांशुकेन्द्रांशैर्भूसुतादयः ।

. [ग्रहों का वक्र केन्द्रांश] मंगल अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांश में, गुरु १३०, शुक्र १६३ और शनि ११५ शीघ्रकेन्द्रांश में वक्र गति होता है। इनके अपने-अपने वक्रकेन्द्रांश को ३६० में घटाने से शेष के बराबर केन्द्रांश होने पर फिर ग्रह वक्रगति का त्याग करता है अर्थात् मार्ग-गति में होता है[१] ॥ ११६[१/२] ॥

वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्तिवक्रताम् ॥११७॥
क्रमज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता।
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं च रासवः॥११८॥
तत्कार्मुकमुदक्रान्तौ धनहीनो पृथक्स्थिते।
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते॥११९॥
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणैते दिनक्षये।

[काल का ज्ञान] रवि-क्रान्तिज्या को पलभा से गुणा करे और गुणनफल में १२ का भाग दे। इसकी लब्धि कुज्या (क्षितिज्या) होती है। उस कुज्या को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या (क्रान्ति की कोटिज्या, अहोरात्र के व्यासार्ध रूपी कर्ण) से भाग देकर लब्धि (चरज्या) के चरज्या के चाप बनाने से चरासु होते हैं।[२] उस चर-चाप को यदि उत्तर क्रान्ति में हो तो १५ घटी में जोड़े जाने पर दिनार्ध और १५ घटी में घटाने रात्रि का अर्ध होता है। दक्षिण क्रान्ति हो तो विपरीत यानी १५ घटी में घटाने घटाए जाने पर दिनार्ध और जोड़े जाने पर रात्र्यर्ध होता है। दिनार्ध को दुगुना किए जाने पर दिनमान एवं रात्र्यर्ध को दुगुना करने से रात्रिमान होता है॥ ११७-११९[१/२] ॥

भभोगोऽष्टशतीर्लिप्ताः खाश्विशैलास्तथातिथे॥१२०॥
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ताभानि भुक्त्यादिनादिकम्।

[पंचांग साधन के लिए नक्षत्र, तिथ्यादि के भोगमानादि ज्ञान] आठ सौ कला एक-एक नक्षत्र का एवं ७२० कला एक-एक तिथि का भोगमान कहा गया है। नक्षत्रगत ग्रहों के ज्ञान के लिए राश्यादि ग्रह को कलात्मक बनाए और उसमें उसके भभोग (८००) से भाग दे, इससे जो लब्धि हो, उसके अनुसार अश्विनी आदि गत नक्षत्र को जानना चाहिए। शेष कलादि से ग्रह की गति के द्वारा उसकी गति और गम्य घटी का ज्ञान करना चाहिए॥ १२०[१/२] ॥

रवीन्दुयोगलिप्तास्तु योगाभभोगभाजिताः॥१२१॥

---

१. तुलनीय— कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः। शतरुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः॥ भवन्ति वक्रिणस्तैस्तु स्वैः स्वैश्चक्राद् विशोधितैः। अवशिष्टांशतुल्यैःस्वै केन्द्रैरुज्झन्ति वक्रताम्॥ (सूर्यसिद्धान्त २, ५३-५४)

२. तुलनीय— सूर्यसिद्धान्त (२, ६२-६३)।

उदयकालिक स्पष्टसूर्य एवं चन्द्र का योगकर उसकी कला में भभोग (८००) का भाग लगाए और लब्धि के अनुसार गत विष्कम्भादि योग जानना चाहिए। शेष वर्तमान योग की गत कला होगी। उसको भभोग (८००) में घटा दिए जाने से गम्य कला होती है। उस गत एवं गम्य कला को ६० से गुणा करे और उससे सूर्य व चन्द्रमा की गति-कला के योग से भाग दिए जाने पर गत एवं गम्यघटी होती है॥ १२१॥

गतगय्याश्च षष्ठिघ्ना भुक्तियोगाप्तनाडिकाः।
अर्कोनचन्द्रलिप्तास्तु तिथयो भोगभाजिताः॥१२२॥
गतगम्याश्च षष्ठिघ्ना नाड्यो भुक्तन्तरोद्धताः।

स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि की कलाएँ बनाए और उसमें तिथि की भोग संख्या ७२० से भाग लगाएँ। इससे लब्धि गत संख्या होगी। शेष वर्तमान तिथि की गतकला होगी। उसको ७२० में घटाए जाने पर गम्यकला होगी। गत और गम्यकला को अलग से ६० से गुणा करें और चन्द्र व सूर्य के स्पष्ट गत्यन्तर से भाग देकर लब्धि-क्रम से भुक्तगत एवं गम्य घटी होगी, जिसे अंकित किया जाना चाहिए॥ १२२$^{१/२}$॥

तिथयः शुक्लप्रतिपदो द्विघ्नाः सैका न गाहताः॥१२३॥
शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः।
वणिजोभ्रे भवेद्विष्टिः कृष्णभूतापरार्द्धतः॥१२४॥
शकुनिर्नागश्च चतुष्पदं किस्तुघ्नमेव च।

[तिथिगत करण ज्ञान साधन] मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा आदि गत तिथि की संख्या को दुगुना करें और ७ के द्वारा भाजित करें। इससे शेष एकादि[१] से क्रमशः १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज और ७ विष्टि नामक करण होंगे, (विष्टि को भद्रा भी कहा गया है) और ये वर्तमान तिथि के पूर्वार्द्ध में होंगे और ये सातों ही कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध तक २८ तिथियों में ८ बार पड़ते हैं, इसलिए इन सातों को चर करण कहा जाता है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध तक जो चार करण पड़ते हैं, वे क्रमशः १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न नाम वाले और स्थिर कहे जाते हैं[२]॥ १२३-१२४$^{१/२}$॥

शिलातलेव संशुद्धे वज्रलेपेतिवासमे॥१२५॥
तत्र शकाङ्गुलैरिष्टैः सममण्डलमालिखेत्।
तन्मध्ये स्थापयेच्छंकुं कल्पनादद्वादशाङ्गुलम्॥१२६॥

---

१. जिस तिथि के दिन करण जानना हो, उससे पूर्व की तिथि संख्या को शुक्ल प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या आए, उसे दो से गुणा करें और एक घटाकर सात का भाग देने पर एकादि से बवादि करण होते हैं— गततिथयो द्विनिघ्नाश्च शुक्लप्रतिपदादितः। एकोनाः सप्तहृच्छेषात् करणं स्याद् बवादिकम्॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् २६, १)

२. तुलनीय : सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार करणन्याह (२, ६७-६९); ज्योतिषरत्नमाला : सम्पादक - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (५, १-२)

तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र दत्तं पूर्वापराह्णयोः।
तत्र बिन्दुं विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ॥१२७॥
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा।
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा॥१२८॥
दिग्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि।

[स्फुटदिशा ज्ञान विधि] पानी से परिमार्जित शिला के तल अथवा मजबूत मसाले से समान किए गए तल के चबूतरे पर शंकु (१२ अंगुल) से अर्द्धव्यास के वृत्त की रचना करे। उस वृत्त के बीच में १२ अंगुल प्रमाण का शंकु स्थापित करना चाहिए। इस शंकु का छायाग्र वृत्त परिधि को पूर्वाह्न में और अपराह्न में जहाँ छूता हो, उन स्थानों पर बिन्दु लगाएँ। ये दोनों बिन्दु पूर्व और पश्चिम दिशाओं के सूचक होंगे। इन दोनों ही बिन्दुओं के बीच में तिमि अथवा चाप रखकर दक्षिण और उत्तर रेखा को डालना चाहिए। दक्षिणोत्तर रेखाओं (दिशाओं) के बीच में तिमि या चाप के द्वारा मत्स्योत्पादन रूप पूर्वा-पर (पूर्व-पश्चिम) रेखा डालकर दोनों ही रेखाओं (पूर्वा-पर एवं दक्षिण-उत्तर) के बीचोबीच विदिशाओं (कोणगत रेखाओं) का ज्ञान (चिह्नांकन) करना चाहिए[1]॥ १२५-१२८$^{1/2}$॥

चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः॥१२९॥
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा मता।

[इष्टकालिक छायाग्र बिन्दु] वृत्त की परिधिगत प्रत्येक दिशा के मध्य बिन्दु से की गई स्पर्श रेखाओं से वृत्त के बाहर एक चतुरस्र (चतुर्भुज) की रचना करें। उसके पूर्व अथवा पश्चिम बिन्दु से गणितागत दिशा में छायाग्र पूर्वापर सूत्रों के अन्तर के बराबर, भुजसूत्र का अंगुलात्मक मान, पूर्वापर रेखा से इष्टकालिक छायाग्र बिन्दु का मान होगा यानी छाया की विपरीत दिशा में छायाग्रान्तर के बराबर सूर्य का दिगंश होता है[2] ॥ १२९$^{1/2}$॥

प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्॥१३०॥

---

१. ये श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, १-४) से यथारूप उद्धृत हैं। शिल्पग्रन्थों में कहा गया है कि भूमितल को सर्वप्रथम समतल करे। उस पर एक हाथ के बराबर व्यास का अर्धवृत्त बनाएँ। उसके बीच में बारह अंगुल प्रमाण का शंकु स्थापित करें। परिधि में शंकु की छाया के अनुसार आगे के स्थान को चिह्नित करें (यह प्रयोग सुबह और संध्या के पूर्व में होगा)। इसके बाद दिन में छायानुसार बिन्दुपात करें। इसके बाद शंकु की छाया के तीन भाग में पूर्व और पश्चिम दिशा में परकाल के प्रयोग से मत्स्य को बनाएँ और दिशा का साधन करना चाहिए। यह भी कहा गया है कि दिक्साधन के लिए सबसे पहले भूमि को जल से इकसार करे। उस पर घेरा बनाएँ। उसमें निर्धारित स्थल पर शंकु को सीधा खड़ा करें। यह देखें कि उस वृत्त में कहाँ पर सूर्य की छाया पड़ती है और किस स्थान को छोड़ती है। इसी विधि से यह निश्चित करें कि पश्चिम और पूर्व दिशा किधर होगी— कृत्वा भूमितले समे करमितव्यासार्धवृत्तं च तन्मध्येऽर्काङ्गुलशङ्कुमत्र परिधिच्छायाग्रयोगेऽङ्कयेत्। पश्चाद् बिन्दुमनन्तरेऽपि दिवसे कृत्वा तयोः शङ्कुरत्र्यंशे प्राग्दिनजं प्रणीय दिशमिन्द्राब्धीशयोः साधयेत्॥ तोयसिद्धवसुधा वलयान्तन्यस्त लम्बककृतार्जव शङ्कोः। यत्र भा विशति मुञ्चति वृत्तं तौ दिशौ वरुणावासवयोः स्तः॥ (शिल्परत्नम् ११, २-३)

२. यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ५) से यथारूप उद्धृत है।

भूमण्डले च विषुवन्मण्डलं परिकीर्तितम्।

पूर्व एवं पश्चिम से जुड़ी पूर्वा-पर रेखा सममण्डल के धरातल में होती है, ऐसा कहा गया है। वही पूर्वापर रेखा उन्मण्डल में यानी उन्मण्डलवृत्त के धरातल में और विषुववृत्त (नाडी वृत्त) के धरातल में भी कही गई है[१] ॥ १३०$^{१/२}$ ॥

रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रया तथा॥१३१॥
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्येह्यग्राभिधीयते ।

पूर्वा-पर सूत्र के समानान्तरा पलभाग्र बिन्दु से गमन करने वाली रेखा और इष्ट छायाग्र बिन्दु का अन्तर अग्रा होता है यानी विषुवद् भाग्रगा (पूर्वापर समानान्तरा पलभाग्रग रेखा) एवं इष्ट छायाग्र बिन्दु का अन्तर अग्रा नामक होता है। कर्णवृत्त में परिणत करने पर उसको कर्णवृत्ताग्रा भी कहा जाता है[२] ॥ १३१$^{१/२}$ ॥

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽथ वर्गतः॥१३२॥
प्रोह्य शङ्कुकृते मूलं छाया शङ्कुविपर्ययात्।

[छाया से कर्ण और कर्ण से छाया निकालना] यहाँ यह ज्ञातव्य है कि शंकु (१२ अंगुल) एवं छाया के वर्ग योग का वर्गमूल कर्ण होता है। कर्ण वर्ग से शंकु वर्ग को घटाया जाकर शेष का वर्गमूल छाया और इससे विलोम अर्थात् कर्ण वर्ग से छाया वर्ग को घटाकर शेष का वर्गमूल शंकु होता है[३] ॥ १३२$^{१/२}$ ॥

त्रिंशत्कृत्योयुगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते॥१३३॥
तद्गुणाद्भदिनैर्भक्त्या द्युगणाद्यदवाप्यते।
तद्दोस्त्रिघ्नादशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः॥१३४॥
तत्सम्वकृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम्।

[अयनांश का साधन] एक महायुग में नक्षत्र चक्र तीस बार अर्थात् ३० × २० = ६०० बार पूर्व दिशा में परिलम्बित होता है और ६०० से अहर्गण को गुणाकर गुणनफल में युग सावन दिन संख्या से भाग देने पर लब्धि का भुज बनाकर ३ से गुणा करे और उसमें १० का भाग दिए जाने पर अयनांश होता है। इस अयनांश संस्कृत ग्रह (सायन ग्रह) द्वारा क्रान्ति, छाया, चरखण्ड आदि का साधन किया जा सकता है[४] ॥ १३३-१३४$^{१/२}$ ॥

शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्कभाजिते॥१३५॥
लम्बाक्षज्ये तयोश्छाये लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा।

[लम्बांश व अक्षांश साधन] शंकु एवं शंकुच्छाया (पलभा) से अलग-अलग त्रिज्या (३४३८) को गुणा करे और गुणनफल को विषुव (पल) कर्ण (वर्गमूलचिह्नान्तर्गत $१२^२$ + $पलभा^२$ = पलकर्ण) से भाग देने

१. यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ६) से यथारूप उद्धृत किया गया है।

२. यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ७) से यथारूप उद्धृत है।

३. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ८) से यथारूप उद्धृत है।

४. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ९-१०) से हैं।

पर क्रमशः लम्बज्या और अक्षज्या होती है। इनके चापीय मान क्रमशः लम्बांश और अक्षांश होते हैं। उत्तरगोल में अक्षांश सदैव दक्षिण होते हैं[१] ॥ १३५१/२ ॥

साक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येन्तरमन्यथा ॥१३६॥
शेषह्यानांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्याथ कोटिजाः।
शङ्कुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम्॥१३७॥
कोटीज्ययाविभज्याप्ते छाया कर्णाबहिर्द्दले।

[लम्बांश व अक्षांश साधन] अपने अक्षांश एवं सूर्य के क्रान्त्यंश दोनों यदि एक दिशागत हो तो योग क्रिया से तथा यदि भिन्न-भिन्न दिशा के हों तो दोनों को अन्तर किए जाने से शेष सूर्य का नतांश होता है। उस नतांश की भुजज्या एवं कोटिज्या की रचना करे। भुजज्या एवं त्रिज्या को अलग-अलग शंकुमान (बारह) से गुणा करे और उसमें कोटिज्या से भाग लगाए तो लब्धि से क्रमशः मध्याह्न काल में छाया एवं छायाकर्ण के मान का ज्ञान होता है[२] ॥ १३६-१३७१/२ ॥

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा॥१३८॥
दिग्भेदोपक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता।
परमोपशमज्याप्त चापमेषादिगो रविः॥१३९॥
कर्कादौ प्रोह्यचक्रार्द्धात्तुलादौ भार्द्धसंयुतात्।
मृगादौ प्रोह्यचक्रात् मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत्॥१४०॥
तन्मन्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः।

[मध्याह्न छाया से सूर्य का ज्ञान] अपने देश के अक्षांश एवं नतांश यदि एक ही दिशा के हो तो अन्तर, यदि भिन्न दिशा के हों तो योग करने से मध्याह्नकाल में सूर्य की क्रान्ति ज्ञात होती है। क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणाकर परमक्रान्तिज्या से भाग लगाने पर जो लब्धि हो, उसका चाप मेष, वृष व मिथुन तीन राशियों में सायन सूर्य होता है। कर्क, सिंह व कन्या तीन राशियों में लब्धि को छह राशि से घटाए जाने से, तुला, वृश्चिक व धनु तीन राशियों में जोड़ने से और मकर, कुम्भ व मीन तीन राशियों में बारह से घटाने पर शेष मध्याह्न कालिक स्पष्ट सायन सूर्य होता है। गणितागत स्फुट सूर्य से मन्दफल का साधन कर उसका स्पष्ट सूर्य में विपरीत संस्कार करें और फिर संस्कृत सूर्य से मन्दफल साधन कर स्पष्ट सूर्य में विपरीत संस्कार करें। इस प्रकार बारम्बार संस्कार करते जाने से अहर्गणोत्पन्न मध्यम सूर्य की जानकारी होगी[३] ॥ १३८-१४०१/२ ॥

ग्रहोदयाः प्राणहताः खखाष्टैकोद्धता गतिः॥१४१॥
चक्रासवो लब्धयुती स्वाहोरात्रासवः स्मृताः।

---

१. यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, १३-१४) से है। वहीं पर इसकी उपपत्ति भी द्रष्टव्य है।

२. उक्त श्लोकों में सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोकों (१७, २०-२१ व २२) के अंश हैं।

३. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, १७-२०) में आए है।

[ग्रहों के स्फुट सावन दिन मान] अभीष्ट ग्रह की स्पष्टगति को ग्रहनिष्ठ राश्युदयासुओं (सायन ग्रह जिस राशि पर विद्यमान हो, उस राशि के उदय मान) से गुणा करे और १८०० से भाजित करे तो जो लब्धि हो, उसको चक्रकला (२१६००) में जोड़े जाने पर अभीष्ट ग्रह के अहोरात्रासु (ग्रह का अहोरात्र मान) होते हैं[1] ॥ १४१$^{१/२}$ ॥

त्रिभर्युकणार्द्धगुणा स्वाहोयत्रार्द्धभाजिता:॥१४२॥
क्रमादेकद्वित्रिभाज्य तच्चापानि पृथक् पृथक्।
स्वाधोध: प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासव:॥१४३॥

[निरक्ष राशि के उदयासु साधन] पहली, दूसरी व तीसरी राशियों की ज्या को अलग-अलग तीन राशि की द्युज्या (परमाल्पद्युज्या) से गुणाकर स्व स्वद्युज्या से भाग देने पर जो लब्धियाँ हों, उनका चाप बनाए और क्रमश: नीचे से नीचे घटाने से मेषादि बारहों राशियों के उदयमान ज्ञात होते हैं। जैसे— पहला फल मेष राशि का दूसरे फल में पहले फल को घटाने से वृष राशि का एवं दूसरे फल को तीसरे फल में घटाने से मिथुन राशि का लंकोदय मान ज्ञात होता है। मेष राशि के १६७०, वृष राशि के १७९५, मिथुन राशि के १९३५ लंकोदयासु सिद्ध होते हैं[2] ॥ १४२-१४३ ॥

स्वागाष्टयोधगोगैका: शसयेकं हिमांशव:।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासव:॥१४४॥
व्यस्ताव्यस्तैर्युतास्तैस्तै: कर्कटाद्यास्ततस्तु य:।
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादय:॥१४५॥

[निरक्षोदय से स्वदेशोदय साधन] पूर्व साधित लंकोदयासुओं में अपने देश के चरासु को घटाने से उनकी राशियों के स्वदेशोदयासु होते हैं। मेष, वृष एवं मिथुन राशियों के लंकादयासुओं को विपरीत क्रम से रखकर उनमें मेषादि राशियों के चरखण्डों को विपरीत क्रम से जोड़ा जाए तो उस पर कर्क आदि तीन राशियों के उदयासु होंगे। मेषादि छह राशियों के उदयासु ही उत्क्रमगणना से तुलादि छह राशियों के उदयासु होते हैं[3] ॥ १४४-१४५ ॥

---

१. यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार (२, ५९) में आया है।

२. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ४२-४३) में आए हैं। इन असुओं को निम्न तालिका से समझा जा सकता है—

राशि	लंकोदयासु	चरासु	स्वदेशोदयासु	राशि
मेष	१६७० -	३६०	=१३१०	मीन
वृष	१७९५ -	२८८	=१५०७	कुम्भ
मिथुन	१९३५ -	१२०	=१८१५	मकर
कर्क	२९३५ +	१२०	=३०५५	धनु
सिंह	१७९५ +	२८८	=२०८३	वृश्चिक
कन्या	१६७० +	३६०	=२०३०	तुला

३. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ४४-४५) में आए हैं।

गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः॥१४६॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत्।
तद्वत् तदेष्यलग्नासूनेवं यातान् तथोत्क्रमात्॥१४७॥
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्।
भागहीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा[१]॥१४८॥

[इष्टकालीन लग्न निकालना] तात्कालिक (सायन) सूर्य के गतासु अथवा भोग्यासु बनाए। जिस राशि पर सूर्य हो, उस राशि के उदयासुओं से गुणा करे और ३० का भाग लगाएँ, इससे क्रमशः गत और भोग्य असु होते हैं। इष्ट घटिकाओं के असुओं में भोग्यासुओं को घटाएँ और आगे की राशियों के उदयासुओं को भी जहाँ तक घट सके, घटाते जाएँ। जिस राशि के उदयासु नहीं घटाए जा सके, उनको अशुद्ध कहा जाता है। घटाने पर शेष रहे को ३० से गुणा करें और अशुद्ध का भाग दिया जाए। इससे जो अंशादि फल मिले, उसको अशुद्ध से पूर्व जितनी मेषादि राशियाँ हों, उनमें जोड़ने से अथवा घटाई गई राशि एवं अंशादिकों के इस अंशादि फल में जोड़े जाने पर तात्कालिक उदय लग्न ज्ञात होता है। इसी तरह भुक्तासुओं को एवं भुक्तराशियों के उदयासुओं को इष्ट घटिकाओं में घटाएं और पूर्वोक्त रीति से गुणन, विभजन द्वारा जो अंशादि फल हो, उसको पूर्वोक्त अशुद्ध पूर्व मेषादि राशियों में घटाने से लग्न होता है। यह ज्ञातव्य है कि यह लग्न सायन होता है। अतएव अयनांश को घटाए जाने पर निरयण लग्न ज्ञात होगा॥ १४६-१४८॥

प्राक्पश्चान्नतनाडीभ्यस्तद्वल्लङ्कोदयासुभिः। भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्॥१४९॥

[मध्य लग्न निकालना] पूर्व-पश्चिम नत घटिका एवं तात्कालिक सायन सूर्य से लग्न निकालने की तरह लंकोदयासुओं से साधन करने से जो राश्यादिक फल मिले, उसको सूर्य में ऋण-धन (पूर्वनत हो तो ऋण एवं पश्चिमनत हो तो धन) करने से मध्यलग्न (दशम लग्न) ज्ञात होता है[२]॥ १४९॥

भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च।
सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम्॥१५०॥

[सूर्यलग्न ज्ञानादिष्ट काल का ज्ञान] लग्न एवं सूर्य के मध्य जो कम (या पीछे) हो, उसके भोग्यासु और जो अधिक हो, उसके भुक्तासु साधन करे और इन दोनों के योग में अन्तर लग्नासु अर्थात् लग्न एवं सूर्य के बीच जितनी राशियाँ हों, उनके उदयासुओं को जोड़ने से इष्टकाल ज्ञात होता है[३]॥ १५०॥

१. उक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार (३, ४६-४८) में आए हैं। इसकी अन्तिम पंक्ति पुराण में 'भागयुक्तं च हीनं व्ययनांशं तनुः कुजे' रूप में मिलती है। ऐसे ही पुराण के पाठों में न्यूनाधिक भेद होने से अर्थ की दृष्टि से यहां सूर्यसिद्धान्त के पाठ को ही संशोधन का आधार बनाया गया है क्योंकि ये वहीं से उद्धृत हैं।

२. सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार (३, ४९)।

३. तत्रैव, त्रिप्रश्नाधिकार (३, ५०)। यहाँ एक अतिरिक्त श्लोक भी मिलता है जो इष्टकाल साधन में सहयोगी है— सूर्यादूने निशाशेषे लग्ने लग्नेऽर्कादधिके दिवा। भचक्रार्धयुताद् भानोरधिकेऽस्तमयात् परम्॥ (३, ५१) इसका आशय है कि लग्नस्पष्ट सूर्यस्पष्ट से न्यून होने पर निशाशेष और अधिक होने दिन में छह राशि युक्त सूर्य से लग्न अधिक हो तो संध्या के पीछे इष्टकाल होगा।

विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिन्द्राल्पाः स्याद् ग्रहो विधोः।
तेषां शिवघ्नाः शैलाप्ता व्यावर्काजः शरोङ्गुलैः॥१५१॥
अर्कं विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम्।
छाद्यछादकमानार्ध शरोन ग्राह्यवर्जितम्॥१५२॥
तत्स्वच्छन्नं च मानैक्यर्द्धशिषष्ठं दशाहतम्।
छन्नघ्नमस्मान्मूलं तु स्वाङ्गोनग्लौवपुर्हृतम्॥१५३॥
स्थित्यर्द्धं घटिकादिस्याद्व्यं गबाह्वं शसंमितैः।
इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कषड्गुणः॥१५४॥
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे सुखान्त्यगे।

[ग्रहण के लिए साधन] पर्व (जिस दिन ग्रहण पड़ता हो, चन्द्रग्रहण के दिन पूर्णिमा व सूर्यग्रहण को अमावस्या) के अन्त के समय में स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहु का साधन करना चाहिए। सूर्य में राहु को घटाकर जो शेष बचे, उसके भुजांश यदि १४ से कम हो तो चन्द्रग्रहण की सम्भावना होती है॥ उन भुजांशों को ११ की संख्या से गुणा करें और लब्धि में ७ से भाग लगाएँ। इससे प्राप्त अंक अंगुलादि मान से शर कहा जाएगा॥ १५१-१५२॥ सूर्य को चन्द्रमा एवं चन्द्रमा को पृथ्वी की छाया जिसे भूभा कहा जाता है, आच्छादित करती है। इसलिए सूर्यग्रहण के दौरान सूर्य छाद्य एवं चन्द्रमा छादक होता है। चन्द्रग्रहण के दौरान चन्द्रमा छाद्य और भूभा छादक बनती है, यह समझें। इसके बाद, छन्नमान बताया जाता है जिसके लिए छाद्य एवं छेदक के बिम्बमान का योग करे एवं उसके आधे मान में शर को घटाए जाने से छन्न अथवा ग्रास का मान ज्ञात होता है। इसी प्रकार ग्रासमान यदि ग्राह्य या छाद्य से अधिक हो तो उसमें छाद्य को घटाया जाए और जो शेष रहे, उसके बराबर खच्छन्न (खग्रास) का प्रमाण स्वीकारना होगा। पूर्वोक्त छाद्य-छादक के बिम्ब योग के आधे जिसे मानैक्यार्ध कहा जाता है, में शर का मान योजित करे। इसके बाद ग्रासमान से गुणा करे। गुणनफल का जो मूल हो, उसमें अपना छठवाँ अंश घटाएँ और शेष में चन्द्र-बिम्ब का भाग लगाएँ। जो लब्ध हो, उस घटी आदि को स्थित्यर्ध समझना चाहिए। इस स्थित्यर्ध को भी दो स्थानों पर लिखें। व्यगु (व्यग्वर्क या राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशि से ऊन हो तो द्विगुणित व्यगु भुजांश के बराबर पल को पहले स्थान वाले स्थित्यर्ध में घटाएँ और दूसरे स्थान में योजित करे। यदि व्यगु ६ अथवा १२ से अधिक हो तो विलोम क्रम करे अर्थात् पहले स्थान में जोड़े और दूसरे स्थान में घटाएँ। इससे ग्रहण में स्पर्श एवं मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होते हैं॥ १५१-१५४$^{1/2}$॥

ग्रासेन स्वाहते च्छाद्यमानामे स्युर्विशोपकाः॥१५५॥

[ग्रहण का बिस्वा फल जानना] अंगुल प्रमाण से ग्रासमान को विंशोपक जानने के लिए उसे २० से गुणा करे और गुणनफल में अंगुलात्मक छाद्यमान से भाग लगाएँ। इससे मिलने वाली संख्या को विंशोपक फल कहा जाता है॥ १५५॥

पूर्णान्त मध्यमत्र स्याद्दर्शान्तजं त्रिभोनकम्।
पृथक्तत्क्रान्त्यक्षभागसंस्कृतौ स्युर्नतांशकाः॥१५६॥

तद्विघ्नांशकृतिद्व्यूनार्द्धार्कयुता हरिः। त्रिभानाङ्गार्कविश्लेषांशोंशोनघ्नाः पुरन्दराः॥१५७॥
हराप्तालम्बनं स्वर्णवित्रिभेर्काधिकोनके।

[सूर्यग्रहण के दौरान विशेष लम्बन घटी साधन] ग्रहण का मध्य पर्व के अन्त काल में होता है। सूर्यग्रहण में दर्शान्त कालिक (अमावस्या के अन्त का) लग्न बनाए और उसमें तीन राशि घटाए जाने पर वित्रिभ या त्रिभोन लग्न कहा जाता है। उसको अलग रखकर उसकी क्रान्ति या अक्षांश के संस्कार किया जाए तो नतांश होता है। यह एक दिशा में जोड़ा जाएगा और भिन्न दिशा हो तो अन्तर किया जाएगा। नतांश का २२वाँ भाग करके वर्ग निकालना चाहिए। यदि वह २ से कम हो तो उसी में, यदि २ से अधिक हो जाए तो २ घटाकर शेष के आधे को उसी वर्ग में जोड़ते हुए पुनः १२ में जोड़े जाने पर हार निकलेगा। त्रिभोन लग्न एवं सूर्य के अन्तरांश के दशमांश को १४ में घटाकर शेष को उसी दशमांश से गुणा करे। उसमें पहले की तरह साधित हार से भाग लगाए जाने पर लब्धि के बराबर घट्यादि लम्बन होता है। यह लम्बन यदि वित्रिभ सूर्य से अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण होगा अर्थात् साधित दर्शान्तकाल में इस लम्बन को संयुक्त करने और घटाए जाने पर पृष्ठ स्थानीय दर्शान्तकाल होता है॥ १५६-१५७१/२ ॥

विश्वघ्नलम्बनकलाढ्योनस्तु तिथिवद्यगुः॥१५८॥
शरोनोलम्वनषडघ्ने तल्लवाढ्योनवित्रिभात्।
नतांशास्तजांसाने प्राधृतस्तद्विवर्जितः॥१५९॥
शब्देन्दुलिप्तैः षड्भिस्तु भक्तानतिर्नतांशदिक्।
तयोर्नाटद्योहभिन्नैकदिक्शरः स्फुटतां व्रजेत्॥१६०॥
ततश्छन्नस्थितिदले साध्ये स्थित्यर्द्धषट्त्रिभिः।
अंशस्तैर्वित्रिभंद्विस्थंलम्बनेतयोः पूर्ववत्॥१६१॥
संस्कृतेस्ताभ्यां स्थित्यर्द्धे भवतः स्फुटे।
ताभ्यां हीनयुतो मध्यदर्शः कालौ मुखान्तगौ॥१६२॥

इसी प्रकार घट्यादि लम्बन को १३ से गुणा किए जाने पर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्क में जोड़कर अथवा घटाकर शर बनाएं ता पृष्ठीय दर्शान्तकालिक शरस्पष्ट होगा। ऐसे ही घट्यादि लम्बन को ६ से गुणा करे और गुणनफल को अंशादि मानकर वित्रिभ में जोड़कर या घटाकर नतांश साधन सम्पादित करे। जो नतांश हो, उसके दशमांश को १८ में घटाकर शेष को उसी दशमांश से गुणा करे। गुणनफल को ६ अंश १८ कला में घटाएँ और जो शेष रहे, उससे गुणनफल में ही भाग देने से लब्धि अंगुलादि नतांश की दिशा की ही नति होगी, यह समझे। इस नति एवं पूर्व साधित शर दोनों के संस्कार से स्पष्ट शर होगा, इसमें भिन्न दिशा हो तो अन्तर किया जाएगा और एक दिशा हो तो जोड़ा जाएगा। सूर्यग्रहण में उसी शर से और स्थित्यर्ध बनाएँ। स्थित्यर्ध को ६ से गुणा करे और अंशादि गुणनफल को वित्रिभ में घटाएँ तथा दूसरे स्थान में संयुक्त करे। इन दोनों पर से पूर्व रीति से अलग लम्बन साधन करते हुए क्रमशः पूर्वविधि से साधित स्पर्श एवं मोक्षकाल में संस्कार करने से स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श एवं मोक्षकाल ज्ञात होता है॥ १५८-१६२॥

अर्काद्यूना विश्व ईशा नवपञ्चदशांशकाः।
कलांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधोः॥१६३॥

[चन्द्रादि ग्रहों के उदयास्त कालांश] ग्रहों में चंद्रमा के १२, मंगल के १७, बुध के १३, गुरु के ११, शुक्र के ९ एवं शनि के १५ कालांश होते हैं। ग्रह अपने इन कालांशों के बराबर ही सूर्य से पीछे होते हैं तो अस्त होता है और अपने-अपने कालांश के बराबर सूर्य से आगे रहते हैं तो उदय होता है॥ १६३॥

दृष्ट्वा ह्यादौ खेटबिम्बं दृगौच्च्ये लम्बमीक्ष्य च।
तल्लम्बपापबिम्बान्तर्दृगौ व्याप्तरविघ्नभाः॥१६४॥

[ग्रहों के प्रतिबिम्ब से छाया का साधन] एक समान भूमि पर स्थापित किए गए दर्पण इत्यादि साधनों में ग्रहों के प्रतिबिम्ब को देखकर दृष्टिस्थान से भूमितल तक लम्ब की रचना करते हुए दृष्टि की ऊँचाई का मान समझना चाहिए। लम्बमूल एवं प्रतिबिम्ब का जो अन्तर हो, उस प्रमाण को दृष्टि की ऊँचाई से भाजित करने पर जो फल मिले, उसको १२ से गुणा किए जाने पर उस समय सम्बन्धित ग्रह की छाया का प्रमाण ज्ञात किया जाता है॥ १६४॥

अस्ते सावयवा ज्ञेया गतैष्यास्तिथयो बुधैः।
व्यस्ते युक्रान्तिभागैश्च द्विघ्नतिथ्याहृता स्फुटम्॥१६५॥
संस्कारादिकलम्बनमङ्गुलाद्यं प्रजायते।
सेष्वंशोनाः सितं तिथ्यो बलन्नाशोन्नतं विधोः॥१६६॥
शृङ्गमन्यत्र उद्वाच्यं वलनाङ्गुललेखनात्।
पञ्चर्तवोगोङ्कविशिखाः शेषकर्णहताः पृथक्॥१६७॥
विकृज्यकाङ्गसिद्धाग्निभक्तालब्धोनसंयुताः ।

[चन्द्रशृंगोन्नति का ज्ञान] सूर्यास्त की वेला में सावयव गत एवं एष्य तिथि का साधन करे। उस सावयव तिथि को १६ से गुणा करे और उसमें तिथि के वर्ग को घटाकर शेष को स्वदेशीय पलभा से गुणा करना चाहिए। जो गुणनफल हो, उसमें १५ से भाग लगाएँ और फल की दिशा उत्तरवर्ती जाने। उसमें सूर्य की क्रान्ति का निर्देशानुसार संस्कार करे अर्थात् एक दिशा में हो तो जोड़ें और भिन्न दिशा हो तो अन्तर रखे। चन्द्रमा के शर एवं क्रान्ति का विलोम संस्कार करने से जो फल मिले, उसमें द्विगुणित तिथि से भाग देने पर जो फल मिले, उतना अंगुल संस्कार-दिशा का वलन कहा जाता है। चन्द्रमा से जिस दिशा में सूर्य विद्यमान हो, वही संस्कार की दिशा होगी। तिथि में उसका पाँचवाँ अंश घटाने से शुक्ल रूप, जो कि चमकीला होता है, का अंगुलादि मान होगा। वलन की जो दिशा होगी, उसी दिशा को चन्द्रशृंग उठा हुआ होगा जबकि अन्य दिशा में नत या झुका हुआ होगा। इसके अनुसार ही परिलेख होगा॥ १६५-१६७१/२॥

त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि स्युर्हताः कुजात्॥१६८॥
ऋज्वोरनृज्वोर्विवरं गत्यन्तरविभाजितम्।
वक्रत्वोर्गतियोगामं गम्येऽतीते दिनादिकम्॥१६९॥

खनत्यासंस्कृतौव्वेषूदक्साम्येन्येन्तरं युतिः।
याम्योदक्खेटविवरं मानैक्याद्धोल्पकं यदा॥१७०॥
यदा भेदोलम्बनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत्।

[ग्रहयुति जानने को मंगलादि पाँच ग्रहों के बिम्ब साधन] मंगल आदि ग्रहों के ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यम बिम्बमानों को क्रम से मंगल आदि ग्रहों के कर्णशेष (त्रिज्या एवं अपने-अपने शीघ्र कर्ण के अन्तर) से गुणा करे। इस गुणनफल को दो अलग-अलग स्थानों पर रखे। एक स्थान पर क्रम से मंगल आदि ग्रह के २१, १२, ६, २४ एवं ३ को भाग लगाएँ और प्राप्त फल को दूसरे स्थान पर रखे गए गुणनफल में, यदि कर्ण त्रिज्या (११) से अधिक हो तो घटाना होगा और यदि त्रिज्या से कम हो तो जोड़ा जाएगा। इसके बाद उसमें ३ का भाग लगाएँ। इससे क्रमशः मंगल इत्यादि ग्रहों के बिम्ब प्रमाण ज्ञात होंगे।

[ग्रहों की युति के गत व गम्य दिन साधन] जब दो ग्रहों की युति काल को जानना हो, वे ग्रह मार्गी हों या फिर वक्री हो तब दोनों ही ग्रहों की अन्तर-कला में दोनों की गत्यन्तर-कला का भाग लगाएँ। यदि एक वक्र एवं एक मार्गी हो तो दोनों की गति-योगकला से भाग दिया जाएगा। इसके बाद जो लब्धि हो, उससे ग्रहयुति के अतीत (गत) या गम्य दिनादि होंगे।

[ग्रहों की युति में भेद को जानना] जिन दो ग्रहों की युति होती हो, उन दोनों ही ग्रहों के अपनी-अपनी नति से संस्कृत शर (भूपृष्ठ स्थान अभिप्रायिक शर) एक दिशा के हों तो अन्तर रखें और यदि भिन्न दिशा के हों तो योग करने से दोनों ही ग्रहों का अन्तर (दक्षिणोत्तर अन्तर) होता है। यह अन्तर यदि दोनों के बिम्बमान-योगार्ध से कम हो तो उनके योग में भेद (एक ग्रह से दूसरा ग्रह छादित) होता है। अतएव इनमें नीचे वाले को छादक एवं ऊपर वाले को छाद्य मानते हुए सूर्यग्रहण के समान ही लम्बन, ग्रासमान आदि को निकाला जाना चाहिए॥ १६८-१७०१/२॥

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा॥१७१॥
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः।
विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः॥१७२॥
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ[१]।

[पाताधिकार वर्णन में वैधृति व व्यतिपात लक्षण] एक ही अयनगत (उत्तरायण या दक्षिणायन में गए हुए) सूर्य और चन्द्रमा हो और दोनों का योग १२ राशि हो और इनकी स्पष्ट क्रान्ति बराबर-बराबर हो तो वैधृति नामक पात कहा जाता है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा का अयन गमन एक दूसरे के विपरीत हो और दोनों का योग ६ राशि का हो तथा दोनों की क्रान्ति बराबर हो तो व्यतीपात नामक पात कहा जाता है॥ १७१-१७२१/२॥

---

१. उपर्युक्त श्लोक सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, १-२) से उद्धृत है। भास्कराचार्य ने भी कहा है कि यदि सूर्य चन्द्र विपरीत अयन में हो लेकिन एक ही गोल में स्थित हो तथा उनकी क्रान्ति बराबर हो तो व्यतीपात योग होता है। यदि सूर्य-चन्द्र दोनों एक ही अयन में हो तथा विपरीत गोल में हो और उनकी क्रान्ति बराबर हो तो वैधृति योग होता है— व्यतिपातोऽ यनभेदे गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयोः क्रान्त्योः। साम्ये वैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रमसमत्वे॥ (सिद्धान्तशिरोमणि पाताधिकार ८) शिष्यधीवृद्धिदम् में लल्लाचार्य का भी यही मत है— तुल्येऽयने भिन्नदिशो रविन्द्वोः स्याद् वैधृतश्चक्रसमे समासे। भिन्नेऽयने तुल्यदिशोस्तु योगे चक्रार्धतुल्ये व्यतिपात योगः॥ (शिष्यधी. व्यतिपातवैधृत्याधिकार १)

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तचक्रार्धावधिसंस्थयोः ॥१७३॥
दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ[1]।

[पात साधन के लिए उपकरण] दृक्तुल्य यानी अयनांशों से संस्कृत सूर्य और चन्द्र का योग १२ राशि या छह राशि के बराबर होने पर उनकी क्रान्ति का साधन किया जाना चाहिए अर्थात् सायन सूर्य द्वारा क्रान्ति एवं सायन चन्द्रमा द्वारा शर संस्कृत स्पष्ट क्रान्ति का साधन करना चाहिए॥ १७३१/२ ॥

अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता॥१७४॥
यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा।
ऊना चेत् स्यात् तदा भावी वामं युग्मपदस्य च॥१७५॥
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुद्ध्यति[2]।

[पात के गतैष्यत्व का साधन] विषमपद में विद्यमान चन्द्रमा की शरसंस्कृत क्रान्ति अर्थात् स्पष्टक्रान्ति यदि सूर्य की क्रान्ति से अधिक हो तो गत पात तथा ऊन (न्यून) हो तो गम्य पात जाने। समपद में चन्द्रमा के होने पर इससे विलोम अर्थात् सूर्य की क्रान्ति से चन्द्र की क्रान्ति यदि न्यून हो तो गत पात, अधिक हो तो गम्यपात होता है। भिन्न दिशा के शर में चन्द्रक्रान्ति घट जाने पर चन्द्रमा का पद भिन्न होगा, यह जाने॥ १७४-१७५१/२ ॥

क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्ययाऽभ्यस्ते परक्रान्तिज्ययोद्धृते॥१७६॥
तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ।
शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम्॥१७७॥
चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत् फलम्।
तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात्॥१७८॥
कर्मैतदसकृत् तावद् यावत् क्रान्ती समे तयोः[3]।

[पात के गत एवं गम्यकाल का ज्ञान] सूर्य एवं चन्द्रमा की क्रान्तिज्या को अलग-अलग त्रिज्या से गुणाकर दोनों में परमक्रान्तिज्या का भाग दिए जाने पर जो लब्धि हो, उनके चापों के अन्तर को अथवा अन्तर के आधे को गत-गम्य पातों के अनुसार चन्द्रमा में घटाने या जोड़ने पर अभीष्ट चन्द्रमा होता है।

उक्त चन्द्र सम्बन्धि फल (चापान्तर या चापान्तरार्ध) को सूर्य की गति से गुणाकर चन्द्र की गति का भाग देने से हुई लब्धि को सूर्य में चन्द्रमा की तरह युत-हीन करने से सूर्य होता है। ऐसे ही चन्द्र विषयक फल

---

१. सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, ६) में उपलब्ध।

२. दोनों ही श्लोक सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, ७-८) में उपलब्ध हैं। आचार्य लल्ल का मत यही है— अयुगगमजश्चान्द्रमसोऽपमश्चेदपक्रमाद् भानुमतोऽधिकः स्यात्। समोद्भवो वापि लघुस्तदेतो विपातकालो भवितान्यथातः॥ (शिष्यधी. व्यतिपातवैधृत्यधिकार ५)

१. उक्त तीनों ही श्लोक सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, ९-११) से उद्धृत हैं।

को चन्द्रपात की गति से गुणाकर चन्द्रगति का भाग लगाने से जो फल मिले, उसका पात में विलोम संस्कार (चन्द्रमा में धन किया गया हो तो पात में ऋण एवं घटाया गया हो तो धन) करने से चन्द्रपात होता है। इस तरह से साधन किए हुए सूर्य की क्रान्ति एवं पात संस्कृत चन्द्र की, स्पष्टक्रान्ति, अतुल्य हों तो फिर पूर्वानुसार साधन किए हुए चापान्तर से संस्कृत सूर्य तथा चन्द्र की क्रान्ति का साधन किया जाना चाहिए। तथापि यदि क्रान्ति अतुल्य हो तो जब तक क्रान्ति बराबर न हो जाए, तब तक यह क्रिया बार-बार की जानी चाहिए। इस प्रकार सूर्य एवं चन्द्रमा की क्रान्ति समान होगी॥ १७६-१७८१/२॥

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ॥१७९॥
हीनेऽर्धरात्रिकाद् यातो भावी तात्कालिकेऽधिके[१]।

[पात का मध्यकाल व गत व गम्य काल] सूर्य एवं चन्द्रमा की स्पष्टक्रान्ति समान होने पर स्पष्टपात अर्थात् पात का मध्यकाल स्पष्ट होता है। स्पष्टपात विषयक चन्द्रमा अपने आसन्न अर्द्धरात्रिकालिक चन्द्रमा से हीन हो तो उस अर्द्धरात्रिकाल से पातकाल गत और अधिक हो तो पातकाल गम्य जानना चाहिए॥ १७९१/२॥

स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः ॥१८०॥
षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः[२]।

[स्पष्ट काल ज्ञान] स्थिरीकृत चन्द्र अर्थात् स्पष्ट क्रान्ति साम्यकलिक चन्द्र एवं अर्द्ध रात्रिकालिक चन्द्र की अन्तर कला को ६० से गुणा करे। गुणनफल में अर्द्धरात्रिकालिक चन्द्रगति का भाग लगाए जाने पर जो फल मिले, उसके बराबर घटिका अर्द्धरात्रिकाल से पातकाल की गत गम्य घटिका होती है॥ १८०१/२॥

रवीन्दुमानयोगार्द्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत्॥१८१॥
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाऽऽप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत्[३]।

[पात काल की स्थिति निकालना] सूर्य एवं चन्द्रमा की बिम्बमान कला का साधन कर दोनों के योग के आधे (मान योगदल) को ६० से गुणा करे। गुणनफल में सूर्य एवं चन्द्रमा के गत्यन्तर का भाग लगाए जाने पर प्राप्त फल स्थित्यर्द्ध घटिका होती है॥ १८११/२॥

पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्द्धवर्जितः॥ १८२॥
तस्य सम्भवकालः स्यात् तत्संयुक्तोऽन्त्यसञ्ज्ञितः[४]।

---

१. सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, १२) से उद्धृत।

२. सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, १३) से उद्धृत।

३. सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, १४) से उद्धृत। स्थित्यर्धघटिकानां साधनमनुपातद्वारा क्रियते—

गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा मानैक्यार्धकलाभिः किमिति

= ६० × मानैक्यार्धकला / गत्यन्तरकला = स्थित्यर्धकला।

अत्र सूर्याचन्द्रमसोः एकदिवसीय क्रान्त्यन्तरेणानुपातोऽपेक्षितः। परं क्रियालाघवार्थं भगवता सूर्येण स्वल्पान्तरत्वात् गत्यन्तरकलाभिरनुपातः कृतः। उपपन्नम्।

४. सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, १५) से उद्धृत।

[पात का आरम्भ, मध्यकाल व निवृत्तिकाल] जैसा कि पूर्व में कहा गया है ('स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वो' इत्यादि साधन) से साधित स्पष्टपातकाल ही पात का मध्यकाल बताया गया है। इसमें स्थित्यर्ध घटिका घटाने से पात का आरम्भ काल और संयुक्त करने से पात का अन्तकाल अर्थात् निवृत्तिकाल कहा गया है॥१८२१/२॥

आद्यान्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः॥१८३॥
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः[१]।

[पातकाल के ज्ञान का प्रयोजन] यहाँ जो पात कहा गया है, उसके आरम्भ एवं अन्त के मध्य का काल बहुत ही दारुणकाल होता है। यह काल अन्त्यन्त कठिन एवं समस्त शुभ कर्मों के लिए निन्दित-निषिद्ध होता है। इसका स्वरूप ज्वलनशील अग्नि के समान बताया गया है जिसमें किए गए कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं।।१८३१/२।।

इत्येद्गणिते किञ्चित्प्रोक्तं सङ्क्षेपतो द्विज।
जातकं वच्मि समयाद्राशिसञ्ज्ञापुरःसरम्॥१८४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे ज्योतिषवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।
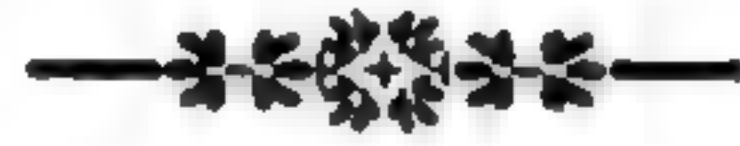
हे द्विज! इस तरह मैंने ज्योतिष के इस गणित स्कन्ध में संक्षेप में कतिपय तत्सम्बद्ध विषयों का कहा है। इसके बाद मैं राशियों की संज्ञाओं का बताते हुए जातक स्कन्ध का वर्णन करूँगा।१८४।

।।५४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

१. यह श्लोक सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार (११, १६) में उपलब्ध है। इसके साथ ही 'एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्। सम्भवस्तावदेवास्य सर्वं कर्मविनाशकृत्॥' श्लोक भी आया है जिसका अर्थ है कि सूर्य और चन्द्रमा के बिम्बों के किसी एक प्रदेश की क्रान्ति जितने काल तक बराबर रहती है, उतने काल तक सम्पूर्ण शुभ कर्मों के नाश करने वाले पात की स्थिति रहती है। इसलिए पातावधि सभी कर्मों के लिए विनाशकारी होती है।

अथ पञ्चापञ्चाशत्तमोऽध्यायः

त्रिस्कन्ध ज्योतिष तथा जातक स्कन्ध

सनन्दन उवाच

मूर्द्धास्यबाहुहृत्कोडान्तर्बस्तिव्यञ्जनसोनखः। जानुजङ्घांघ्रियुगलं कालाङ्गानि क्रियादयः॥१॥
भौमास्फुजिबुधेन्दुश्च रविसौम्यसिताः कुजः। गुरुमन्दार्किगुरवो मेषादीनामधीश्वराः॥२॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे नारद! मेषादि राशियां कालपुरुष में स्थित हैं। यथा—

मेष — काल पुरुष का मस्तक,
वृष — काल पुरुष का मुख,
मिथुन — काल पुरुष का बाहु,
कर्क — काल पुरुष का हृदय,
सिंह — काल पुरुष का उदर,
कन्या — काल पुरुष का कटि,
तुला — काल पुरुष का वस्ति,
वृश्चिक — काल पुरुष का लिंग,
धनु — काल पुरुष का उरु,
मकर — काल पुरुष का जानु,
कुंभ — काल पुरुष का जंघा,
मीन — काल पुरुष का उभय चरण

अब राशीश का वर्णन सुनिये।

मेष-वृश्चिक के स्वामी मंगल, वृष, तुला के शुक्र, कर्क के चन्द्र, सिंह के सूर्य, मिथुन-कन्या के बुध, धनु-मीन के बृहस्पति तथा मकर-कुंभ के स्वामी शनि हैं।।१-२।।

होरे विषमभेकेदोः समभे शशिसूर्ययोः। आदिपञ्चनवाधीशाद्रेष्काणशाः प्रकीर्तिताः॥३॥

होरा तथा द्रेष्काण—विषय भेद (विषमराशि में) से पहले सूर्य होरा तदनन्तर चन्द्र होरा होता है। सम राशि में प्रथमतः चन्द्र होरा, तदनन्तर सूर्य होरा होता है। प्रारंभिक दश अंशों तक उसी राशि का द्रेष्काण होगा। राशि स्वामी ही देष्क्राण स्वामी रहते हैं। ११ से लगाकर बीस अंश पर्यन्त उस राशि से पंचम वाली राशि का द्रेष्काण होगा। उस पंचम राशि के स्वामी इस द्रेष्काण के स्वामी होंगे। २१ से लगाकर तीसवें अंश पर्यन्त उस राशि से नवम राशि का द्रेष्काण माना गया है। उसी राशि के स्वामी उस द्रेष्काण के स्वामी कहे जाते हैं।।३।।

पञ्चेष्टाष्टाद्रिपञ्चाशा कुजार्कीज्ज्यज्ञशुक्रगाः।
ओजे विपर्ययाद्युग्मे त्रिशांशेशाः समीरिताः॥४॥

क्रियेणतौलिककर्काद्या मेषादिड्ड नवांशकाः।
स्वभावादद्वादशभागेशाः षड्गं राशिपूर्वकम्॥५॥

त्रिंशांश

विषम राशियों में—

प्रथम ५ अंश तक मंगल त्रिंशाशेश हैं।

द्वितीय ५ अंश तक शनि त्रिंशाशेश है।

तृतीय ८ अंश तक बृहस्पति त्रिंशाशेश है।

चतुर्थ ७ अंश तक बुध त्रिंशाशेश है।

अंतिम ५ अंश तक शुक्र त्रिंशाशेश है।

समराशि में—

प्रथम ५ अंश तक शुक्र त्रिंशाशेश हैं।

द्वितीय ७ अंश तक बुध त्रिंशाशेश है।

तृतीय ८ अंश तक बृहस्पति त्रिंशाशेश है।

चतुर्थ ५ अंश तक शनि त्रिंशाशेश है।

अंतिम ५ अंश तक मंगल त्रिंशाशेश है।

नवमांश—मेषादि राशियों के नवमांश का यह क्रम है।

मेष, सिंह, धनु का नवमांश प्रारम्भ—मेष राशि से

वृष, कन्या, मकर का नवमांश प्रारम्भ मकर से

मिथुन, तुला, कुंभ का नवमांश प्रारंभ तुला से

कर्क, वृश्चिक, मीन का नवमांश प्रारंभ कर्क से प्रारंभ होगा।

द्वादशांश—ढाई अंशात्मक द्वादशांश होता है। ये अपनी राशि से आरंभ होकर अन्तिम राशि पर पूर्ण हो जाते हैं। उन राशि के स्वामी ही द्वादशांश के अधिपति होते हैं। यही राशि, होरा तथा षड्वर्ग का कथन है।।४-५।।

गोजाश्च कर्कयुग्मेन रात्र्याख्या पृष्ठकोदयाः।
शेषा दिनाख्यास्तूभयं तिमिः क्रूरः सौम्यः पुमान्॥६॥
पुमान् स्त्री च क्लीबश्चरस्थिरद्विःस्वभावकाः।
मेषाद्याः पूर्वतोदिक्स्थाः स्वस्वस्थानचरास्तथा॥७॥

वृष, मेष, धनु, मकर, कर्क, मिथुन रात्रि में बली राशियां हैं। ये ही पृष्ठ से उदित होने के पृष्ठोदय हैं। (इनमें मिथुन को छोड़कर बाकी ५ पृष्ठोदय हैं) शेष राशि दिन में बलवान तथा शीर्षोदय कही गयी हैं, परन्तु मीनराशि उभयोदया है। मेषादि विषम राशियों को क्रूर तथा वृषादि सम राशि को सौम्य कहते हैं।

मेषादि राशि क्रमानुसार पुरुष-स्त्री तथा नुपंसक कही जाती हैं।[१] मेषादि राशियों को क्रमशः चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव भी कहा गया है। जैसे—

मेष	— चर	तुला	— चर
वृष	— स्थिर	वृश्चिक	— स्थिर
मिथुन	— द्विस्वभाव	धनु	— द्विस्वभाव
कर्क	— चर	मकर	— चर
सिंह	— स्थिर	कुंभ	— स्थिर
कन्या	— द्विस्वभाव	मीन	— द्विस्वभाव

दिशा—

पूर्व — मेष, सिंह, धनु।
दक्षिण — वृष, कन्या, मकर।
पश्चिम — मिथुन, तुला, कुंभ।
उत्तर — कर्क, वृश्चिक मीन।

यह राशियों की दिशा है।।६-७।।

अजोक्षैणाङ्गनाकीटझषजूका इनादितः। उच्चानि द्वित्रिमनुयुक्तिथीषुभनखांशकैः॥८॥

सूर्य मेषस्थ, चन्द्रमा वृषस्थ, मंगल मकरस्थ, बुध कन्या में स्थित, गुरु कर्कस्थ, शुक्र मीनस्थ, शनि तुला में स्थित होकर उच्च कहा गया है। अब इनका परमोच्च स्थान कहते हैं।

सूर्य मेषस्थ १० अंश, चन्द्रमा, वृषस्थ, ३ अंशक, मंगल मकरस्थ २८ अंश, बुध कन्या में स्थित १५ अंश, गुरु कर्कस्थ ५ अंश, शुक्र मीनस्थ २७ अंश, शनि तुला में २० अंश परमोच्च कहा जाता है।।८।।

तत्तत्सप्तमनीचानि प्राङ्मध्यान्त्यांशकाः क्रमात्।
वर्गोत्तमाश्च राधेषुभावादद्वादश मूर्तिमान्॥९॥
सिंहोक्षाविस्त्रश्चतौलिकुम्भाः सूर्यात्त्रिकोणभम्।
चतुरस्त्रं तूर्यमृत्युत्रिकोणं नवपञ्चमम्॥१०॥
रिःफाष्टषट्कं त्रिकभं केन्द्रं प्रावतुर्यसप्तखम्।
नृपादः कीटपशवो बलाढ्याः केन्द्रगाः क्रमात्॥११॥

केन्द्रात्परं पणफरमापोक्लिमतः परम्। रक्तः श्वेतःशुक्रनिभः पाटलो धूम्रपाण्डुरौ॥१२॥

चित्रः कृष्णः पीतिपिङ्गौ बभ्रुः स्वच्छः प्रभाक्रियात्।
साम्याशाख्यप्लवत्वं स्यादिद्वतीये वेशिरर्कभात्॥१३॥

जिस राशि में जो ग्रह उच्च कहा गया है, उससे सप्तम राशि में वह ग्रह नीच स्थानस्थ होगा। यथा—

सूर्य	तुला में	नीचस्थ,
चन्द्र	वृश्चिक में	नीचस्थ,

१. परन्तु मतान्तरेण मेषादि विषम राशि पुरुष तथा वृषादि सम राशियां स्त्री कही गयी हैं।

मंगल	कर्क में	नीचस्थ,
बुध	मीन में	नीचस्थ,
गुरु	मकर में	नीचस्थ,
शुक्र	कन्या में	नीचस्थ,
शनि	मेष में	नीचस्थ,

चर राशि में प्रथम नवमांश वर्गोत्तम कहा गया है। स्थिर राशि में पंचम नवमांश एवं द्विस्वभाव में नवम नवमांश वर्गोत्तम कहा गया है। जन्मपत्र में तनु आदि द्वादश भाव रहते हैं।

अब मूल त्रिकोण कहते हैं—

ग्रह	**मूल त्रिकोण**
सूर्य	सिंह राशि
चन्द्र	वृष राशि
मंगल	मेष राशि
बुध	कन्या राशि
बृहस्पति	धनु राशि
शुक्र	तुला-राशि
शनि	कुंभ राशि

मूल त्रिकोण होता है।

चतुर्थ तथा अष्टम भाव चतुरस्र तथा नवम-पंचम भाव त्रिकोण कहा जाता है। द्वादश, अष्टम एवं षष्ठ भाव त्रिक् है। लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम—केन्द्र है। द्विपद राशि लग्न में, जलचर राशि चतुर्थ में, कीट राशि सप्तम में, पशु राशि दशम में बलवान कही गयी है। कुण्डली का द्वितीय, पञ्चम, अष्टम, एकादश भाव पणफर तथा तृतीय, षष्ठ, नवम, त्रयोदश भाव अपोक्लिम कहा गया है। अब राशि वर्ण कहते हैं—

राशि	**वर्ण**
मेष	रक्तवर्ण
वृष	श्वेतवर्ण
मिथुन	शुकवत्वर्ण
कर्क	गुलाबीवर्ण
सिंह	धूम्रवर्ण
कन्या	गौरवर्ण
तुला	चितकबरावर्ण
वृश्चिक	कृष्णवर्ण
धनु	पीतवर्ण
मकर	पिंगलवर्ण
कुंभ	भूरावर्ण
मीन	स्वच्छवर्ण

यह मेष से मीन पर्यन्त राशियों की कान्ति का उल्लेख है। सभी राशियां अपने स्वामीग्रह के दिक् की ओर झुकी सी रहती हैं। जिस भाव में सूर्य हो, उससे द्वितीय भावस्थ राशि का नाम वेशि है।।९-१३।।

कालात्मार्को मनश्चन्द्रः कुजः सत्वं वचो बुधः।
जीवो ज्ञानं सुखं शुक्रः कामो दुःखं दिनेशजः॥१४॥

ग्रह	कालपुरुष से सम्बन्ध
सूर्यदेव	कालपुरुष के आत्मा
चन्द्रमा	कालपुरुष के मन
मंगल	कालपुरुष का पराक्रम
बुध	कालपुरुष की वाणी
बृहस्पति	कालपुरुष के ज्ञान
शुक्र	कालपुरुष के कामभाव
शनैश्चर	कालपुरुष का दुःख

यह माना गया है।।१४।।

नृपौ रवीन्दू नेतासृक कुमारो ज्ञः कवीज्यकौ।
सचिवो सूर्यजः प्रेष्यो मतो ज्योतिर्विदांवरैः॥१५॥
ताम्रशुक्लरक्तहरित्पीतचित्रासिता रवेः। वर्णा वअव्यहहरीन्द्रा शचीकौधिपारवेः॥१६॥
रविशुक्रारराह्वकेन्दुविदीज्या दिगीश्वराः। क्षीणेन्द्वर्कारविजाः पापा पापयुतो बुधः॥१७॥

सूर्य-चन्द्र, राजा, मंगल सेनापति, बुध राजकुमार, बृहस्पति-शुक्र सचिव, शनि सेवक एवं दूत हैं। यह मत उत्तम ज्योतिर्विदों ने प्रकट किया है।

अब ग्रहवर्ण कहते हैं—

ग्रह	वर्ण
सूर्य	ताम्रवर्ण
चन्द्र	शुक्लवर्ण
मंगल	रक्तवर्ण
बुध	हरावर्ण
बृहस्पति	पीतवर्ण
शुक्र	चित्रवर्ण
शनि	कज्जलवर्ण

अग्नि सूर्य के, जल चन्द्र के, कार्त्तिकेय मंगल के, हरि बुध के, इन्द्र बृहस्पति के, इन्द्राणी शुक्र के तथा ब्रह्मा शनि के स्वामी हैं। अब ग्रहों की दिशा कहते हैं—

ग्रह	दिशास्वामी
सूर्य	पूर्व
शुक्र	अग्निकोण
मंगल	दक्षिण
राहु	नैऋत्‌कोण
शनि	पश्चिम
चन्द्र	वायुकोण
बुध	उत्तर
बृहस्पति	ईशान के स्वामी कहे गये हैं।

क्षीण चन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि को पापग्रह कहा गया। जब बुध पापग्रहयुक्त रहे, तब वह भी पापग्रह ही हैं।।१५-१७।।

क्लीबौ बुधार्की शुक्रेन्दू स्त्रियौ शेषा नराः स्मृताः।
शिखिभूमिपयोवारिवासिनो भूसुतादयः॥१८॥

बुध-शनि नपुंसक ग्रह हैं। शुक्र-चन्द्र स्त्री ग्रह हैं। रवि, मंगल, गुरु, पुरुष ग्रह माने जाते हैं।

ग्रह	स्वामी
मंगल	अग्नि स्वामी
बुध	भूमि के स्वामी
गुरु	आकाश के स्वामी
शुक्र	जलस्वामी
शनि	वायु के स्वामी

ये इस प्रकार पंच महाभूतों के स्वामी हैं।।१८।।

कवीज्यौकुजसूर्यौ च वेदो ज्ञो वर्णपाःक्रमात्।
सौरोऽन्त्यजाधिपः प्रोक्तोराहुर्म्लेच्छाधिपस्तथा॥१९॥
चन्द्रार्कजीवाज्ञसितौ कुजार्की सात्त्विकादिकाः। देवतेन्द्वग्निखैलाभूकोसखायोपराधिपाः॥२०॥

गुणों का स्वामित्व

चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति	—	सत्वगुण के स्वामी
बुध-शुक्र	—	रजोगुण के स्वामी
मंगल-शनैश्चर	—	तमोगुण के स्वमी हैं।

चातुर्वर्ण का स्वामित्व

गुरु-शुक्र	—	ब्राह्मणों के स्वामी
भौम (मंगल), रवि	—	क्षत्रियों के स्वामी

चन्द्रमा	— वैश्यों के स्वामी
बुध	— शूद्रों के स्वामी
शनि	— अन्त्यजों के स्वामी
राहु	— म्लेच्छों के स्वामी

अन्य स्वामित्व

सूर्य	— देवगण के स्वामी
चन्द्रमा	— जल के स्वामी
मंगल	— अग्नि के स्वामी
बुध	— क्रीड़ा, विहारादि के स्वामी
बृहस्पति	— भूस्वामी
शुक्र	— कोषस्वामी
शनैश्चर	— शयन के स्वामी
राहु	— ऊसर के स्वामी।।१९-२०।।

वस्त्रं स्थलं नवं वह्निकहतं मद्यदं तथा। स्फुटितं रवितस्ताम्रं तारं ताम्रपुनिस्तथा॥२१॥

हेमकांस्यायसी त्र्यंशैः शिशिराद्याः प्रकीर्तिताः।
सौरशुक्रारचन्द्रज्ञगुरुषूद्यत्सु च क्रमात्॥२२॥

त्र्याशत्रिकोणतुर्याष्टसप्तमान्येन वृद्धितः। सौरेज्यारापरे पूर्णे क्रमात्पश्यन्ति नारद॥२३॥

वस्त्रों का स्वामित्व	स्वामी
मोटे सूत का बना वस्त्र	— सूर्य
नवीन वस्त्र	— चन्द्र
अग्निदग्धवस्त्र	— मंगल
जलसिक्तवस्त्र	— बुध
जो अधिक नया न हो तथा अधिक पुराना न हो	— बृहस्पति
सुदृढ़वस्त्र	— शुक्र
फटावस्त्र	— शनि

ग्रहों के धातु

ग्रह		धातु
सूर्य	—	ताम्र
चन्द्र	—	मणि
मंगल	—	स्वर्ण
बुध	—	कांसा

बृहस्पति	—	रजत
शुक्र	—	मोती
शनि	—	लौह

ऋतु के स्वामी ग्रह

ऋतु		ग्रह
शिशिर	—	शनि
वसन्त	—	शुक्र
ग्रीष्म	—	मंगल
वर्षा	—	चन्द्र
शरद	—	बुध
हेमन्त	—	गुरु

ग्रहदृष्टि—हे नारद! समस्त ग्रह अपने स्थान से (जहां वे जन्मपत्रादि में हों) तृतीय तथा दशम भाव को एकचरण से, पंचम-नवम भाव का दो चरण से, चतुर्थ-अष्टम भाव को तीन चरण से एवं सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, तथापि तृतीय एवं दशम को शनि, पंचम-नवम को गुरु तथा चतुर्थ-अष्टम को मंगल पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।।२१-२३।।

अयनक्षणघस्त्रर्तु मासार्द्धशरदो रवेः। कटुतिक्तक्षारमिश्रमधुराम्लकषायकाः॥२४॥

ग्रहों का काल—अयन जिसमें छः मास होते हैं सूर्य का, मुहूर्त जिसमें दो घड़ी का काल होता है चन्द्र का, अहोरात्र मंगल का, ऋतु जो दो मास का होता है बुध का, एक मास बृहस्पति का, १ पक्ष शुक्र का तथा वर्ष शनि का काल कहा गया है।

ग्रहों के रस—(कटु = मिर्च) कटु—सूर्य का, लवण—चन्द्र का, तिक्त—जैसे नीम—मंगल का वगैरह, क्षार—बुध का, मधुर—बृहस्पति का, अम्ल—शुक्र का तथा कषाय रस शनि का होता है।।२४।।

त्रिकोणात्सान्त्यधाधर्मायुः सुखखोद्यपः सुहृत्।
जीवो जीवज्ञौ सितज्ञौ व्यर्का व्याराः क्रमादमी॥२५॥
वीन्द्वर्का विकुजेन्द्वर्काः सुहृदोऽन्येरवेर्धृताः।
मिथोधनव्ययायत्रिबन्धुव्यापारगः सुहृत्॥२६॥
ध्येकानुभक्ता मयान् ज्ञात्वा मिश्रीदीत्सहजान्मुने। मत्कालोधिसुहृन्मित्रपूर्वकान्कल्पयेत्पुनः॥२७॥

ग्रहों की स्वाभाविक मित्रता—ग्रह अपने मूल त्रिकोण स्थान से द्वितीय, द्वादश, पंचम, नवम, अष्टम, चतुर्थ तथा अपने उच्च स्थान के स्वामी के ग्रहमित्र होते हैं। मूत्र त्रिकोण से १, ३, ६, ७, १०, ११ स्थानों के स्वामी के शत्रु होते हैं।

अन्य मतानुसार—सूर्य की बृहस्पति से, चन्द्र की गुरु-बुध से, मंगल की शुक्र-बुध से, बुध की सूर्य को छोड़कर समस्त ग्रहों से, गुरु की मंगल को छोड़कर सभी ग्रहों से, शुक्र की चन्द्र-सूर्य को छोड़कर सभी ग्रहों से तथा शनि की चन्द्र, मंगल, सूर्य को छोड़कर सभी ग्रहों से मैत्री होती है।

तात्कालिक ग्रहमैत्री—जो दो ग्रह द्वितीय, द्वादश, त्रिरेकादश तथा चतुर्थ-दशम में हो, वे तात्कालिक मित्र हो जाते हैं। जब इनसे भिन्न स्थान में हो, तब वे तात्कालिक शत्रु कहलाते हैं। स्वभााविक मैत्री में मूल त्रिकोण से जिस स्थान के स्वामी को मित्र कहा गया उनमें से दो स्थान के स्वामी को मित्र, एक स्थान के स्वामी को सम कहा गया। जिनके लिये कुछ नहीं कहा गया, उस अनकहे स्थान के स्वामी को शत्रु जाने। तब तात्कालिक मैत्री तथा शत्रुता का विचार करे। तदनुसार अधिमित्र का, सम एवं शत्रु और अधिशत्रु का निर्णय करे।।२५-२७।।

स्वोच्चत्रिकोणगेहा प्रनवांशैस्थानजं बलम्।
दिक्षु सौम्येज्ययोः सूर्यारयोः सौरे सिताब्जयोः॥२८॥
खादृतूदगनेन्ये तु वक्त्रे च समागमे। उत्तरस्था दीप्तकराश्रेष्टा वीर्ययुता मताः॥२९॥

ग्रहबल निर्णय—अपने उच्च स्थान में, मूलत्रिकोण में, गृह तथा नवमांश में ग्रहों का स्थानबल होता है। बुध तथा गुरु लग्न में (पूर्व में), रविमंगल दक्षिण में (दशमभाव में), शनि पश्चिम में अर्थात् सप्तम भाव में, चन्द्र-शुक्र चतुर्थभाव में अर्थात् उत्तर में **दिक्‌बली** होते हैं। रवि-चन्द्र उत्तरायण के समय मकर से छः राशि रहने की स्थिति में, अन्यग्रह चन्द्रमा के साथ समागम में तथा वक्र होने पर **चेष्टाबली** होते हैं।।२८-२९।।

निशीन्दुकुजसौराश्च सर्वदा ज्ञोह्नि चापरे।
क्रूराः कृष्णे सिते सौम्याः मतं कालबलं बुधैः॥३०॥
सौरारज्ञेज्यशुक्रेन्दुसूर्याधिक्यं परस्परम्।
पापास्तु बलिनः सौम्या विवक्षाः कण्टकोपगे॥३१॥
क्लीबे तदूशनाद्वापि चन्द्रार्कांशसमं जनुः।
स्वांशे पापाः परांशस्थाः सौम्यालग्नं वियोनिजम्॥३२॥
निर्बलं च तदादेश्यं वियोनेर्जन्म पण्डितैः। शीर्षं वक्त्रेगले पादावंसौ पृष्ठमुरस्तथा॥३३॥
पार्श्वे कुक्षी त्वपानांघ्री मेढ्रमुष्कौ तथा स्फिजौ।
पुच्छं चतुष्पदाङ्गेषु मेषाद्या राशयः स्मृताः॥३४॥

चन्द्रमा, मंगल, शनि रात्रिबली ग्रह हैं। बुध दिन तथा रात्रि दोनों काल में बली रहता है। रवि, गुरु तथा शुक्र दिन के समय बलवान् होते हैं। कृष्णपक्ष में पापग्रह बली होते हैं। शुक्लपक्ष में शुभग्रह बली कहे गये हैं। यह विद्वानों का **कालजनित बल** है। शनि से मंगल, मंगल से बुध, बुध से गुरु, गुरु से शुक्र, शुक्र से चन्द्र उत्तरोत्तर बली माने गये हैं। यही है ग्रहों का बल। यह ग्रहों का **नैसर्गिक बल** है।

अन्य योनि में जन्म का ज्ञान करना

यदि प्रश्नकाल, अधानकाल किंवा जन्मकाल में पापग्रह निर्बल हों, शुभग्रह बलयुक्त हों, नपुंसक ग्रह बुध-शनि केन्द्रस्थ हों, लग्न पर शनि किंवा बुध की दृष्टि हो, उस स्थिति में तात्कालिक चन्द्र जिस राशि के द्वादशांश में होगा, उस राशि के अनुसार वियोनि जन्म जाने। इसका तात्पर्य यह है कि चन्द्र वियोनि राशि के द्वादशांश में हो, तब वियोनि (मनुष्य के अतिरिक्त) प्राणी का जन्म मनुष्य योनि में जाने। पापग्रह स्वनवमांश में हो तथा शुभग्रह अन्य ग्रह के नवमांश में हो, उस अवस्था में निर्बल नियोनि राशि लग्नस्थ हो, तब विद्वान् दैवज्ञ

वियोनि जीव के ही जन्म का निर्णय करे। वियोनि अंग में राशिस्थान का वर्णन करते हैं। मस्तक, मुख, गर्दन, पैर, कंधा, पृष्ठ, हृदय, उभयपार्श्व, उदर, गुदा, पिछले पैर, लिंग, अंडकोश, नितम्ब, पुच्छ ये द्वादश स्थान पशु-पक्षी के अंगों में द्वादश राशि के हैं। यथा—

अंग		राशि
मस्तक	—	मेष
मुख-गला	—	वृष
पैर-कंधा	—	मिथुन
पृष्ठ	—	कर्क
हृदय	—	सिंह
दोनों पार्श्व	—	कन्या
पेट	—	तुला
गुदा	—	वृश्चिक
पिछला पैर	—	धनु
लिंग	—	मकर
अंडकोष	—	कुंभ
नितम्ब तथा पूंछ	—	मीन।।३०-३४।।

लग्नांशादुग्रहयुग्दृष्ट्वा वर्णौन्बलयुताद्वदेत्।
दृक्समानप्रमाणांश्च इष्टे रेखां स्मरस्थितैः।।३५।।
खगत्र्यंशे बलाग्नेगे चरमांशे ग्रहान्विते। वांशे स्थलाम्बुजः सौरेर्द्वीक्षायोगभवा द्विजाः।।३६।।
विबलैस्तनुचन्द्रेज्यार्कैस्तरूणां जनिं वदेत्। स्थलाम्बुभेदोशकृतश्चेतरेषामुदाहृतः।।३७।।
स्थालाम्बु च पतिः खेटो लग्नाद्यावन्मिते गृहे।
तावन्त एव तरवः स्थलजा जलजास्तथा।।३८।।

पक्षी योनि जन्म ज्ञान

जब लग्न में पक्षी द्रेष्काण हो, किंवा बुध का नवमांश हो, किंवा चर राशि का नवमांश हो तथा शनि एवं चन्द्र की दृष्टि हो, तब शनि की दृष्टि से स्थलचर पक्षी एवं चन्द्र दृष्टि से जलचर पक्षी का जन्म जाने।

वृक्षयोनि का जन्म ज्ञान करना

लग्न-चन्द्र-सूर्य-गुरु—ये सभी निर्बल हो, तब वृक्ष जन्म जानें। जलीय किंवा स्थलीय वृक्षभेद लग्नांशानुसार जाने। यह स्थल किंवा जलचर के लग्न जितने नवमांश में आगे हों, उतनी संख्या स्थल अथवा जलीय वृक्षों को जाने।।३५-३८।।

अंतःसारा रवौ सौरे दुर्भगाः क्षीरिणो विधौ।
भौमे कण्टकिनो वृक्षा ईज्ये ज्ञे सफलाफलौ।।३९।।

पुष्पिता भार्गवे स्निग्धाश्चन्द्रेऽथ कटुकाः कुजे।
अशुभर्क्षे शुभः खेटः शुभं वृक्षं कुभूमिजम्॥४०॥
कुर्याद्विलोमगो वापि स्वांशोक्तपरगैः समम्।
कुजेन्दुहेतुकं स्त्रीणां प्रतिमासमिहार्तवम्॥४१॥

यदि इस अंश का स्वामी सूर्य हो, तब अन्तःसार वृक्ष जैसे शीशम प्रभृति, शनि हो, तब अनुपयोगी वृक्ष, चन्द्र हो, तब दुग्धयुक्तवृक्ष, मंगल हो, तब कंटकमय वृक्ष, गुरु हो, तब फलदार वृक्ष, बुध हो, तब बिना फलवाले वृक्ष, शुक्र होने पर पुष्प वृक्ष का जन्म जाने। जब अंशपति चन्द्रमा हो, तब सुचिक्कण वृक्ष, मंगल अंशपति हो, तब नीम आदि कड़ुये स्वाद वाले वृक्ष, का जन्म जाने। जब शुभग्रह की स्थिति अशुभ ग्रह में हो जाये, तब अनुत्तम भूमि से सुन्दर वृक्ष का तथा जब पापग्रह शुभराशीस्थ हो, तब उत्तम भूमि में से अनुत्तम वृक्ष का जन्म माने। जब अंशपति शुभग्रह शुभराशीस्थ हो, तब उत्तम भूमि में उत्तम वृक्ष का जन्म होगा। यदि अंशपति पापग्रह हो एवं पापराशीस्थ हों, तब अनुत्तम भूमि में व्यर्थ तथा खराब वृक्ष की उत्पत्ति होगी। अंशपति अपने नवमांश के आगे जितनी संख्या दूर अन्य नवमांश में तब उतनी गिनती वाले उतनी तरह के वृक्ष का जन्म जाने। प्रतिमास मंगल तथा चन्द्र के कारण ही स्त्री रजस्वला होती है।।३९-४१।।

नेष्टस्थेज्येऽन्यथास्ते स्त्रीयुङ्क्तासन्नरेक्षिते। पापयुक्तेक्षिते द्यूने रुषा प्रीत्या शुभग्रहैः॥४२॥

गर्भाधान का ज्ञान

जब चन्द्र स्त्री की राशि से अनुपचय स्थान में हो, वह बृहस्पति से दृष्ट हो तथा पुरुष की राशि से इष्ट-उपचय स्थान में हो तथा पुरुष की राशि से इष्ट-उपचय स्थान में हो तथा वह भी गुरु दृष्ट हो, तब वह नारी पुरुष का साथ पाती है। पति-पत्नी संयोग प्रसन्नता के साथ तब होगा, जब आधान लग्न से सप्तम भाव पर शुभग्रह का योग किंवा दृष्टि हो। यही रोषपूर्ण पति-पत्नी संयोग तब होगा, जब वहां पापग्रह योग किंवा दृष्टि पड़ती हो।।४२।।

शुक्रार्केन्दुजैः स्वांशस्थैरीज्य चाङ्गत्रिकोणगे।
भवेदपत्यं विप्रेन्द्र पुंसां सद्वीर्यशालिनाम्॥४३॥
अस्त्रेऽर्केन्दो कुजार्की चेत्पुंस्त्रियोरामयप्रदो।
व्ययखगो युतौ चैकदृष्ट्या मृत्युप्रदौ तयोः॥४४॥

आधान के समय जब शुक्र-चन्द्र-रवि-मंगल स्व-स्व नवमांशस्थ हों, गुरु भी कुण्डली में केन्द्र या त्रिकोणस्थ हो, तब उस पुरुष को सन्तान प्राप्ति निश्चित है। यदि सूर्य से सप्तमस्थ मंगल-शनि हों, तब यह पुरुष हेतु घातक है। जब चन्द्र से मंगल शनि द्विर्द्वादशस्थ हो, तब स्त्री हेतु यह योग घातक है। यदि शनि अथवा मंगल में किसी एक से सूर्य की युति हो तथा दूसरे से सूर्य दृष्ट हो, तब वह पुरुष हेतु घातक है। यदि चन्द्रमा की शनि किंवा मंगल में से एक से युति हो तथा इनमें से दूसरे से दृष्ट हों, तब वह स्त्री हेतु ही घातक स्थिति है।।४३-४४।।

शुक्रार्क्रौ मातृपितरौ दिवा नक्तं शशीनजौ। मातृष्वसृपितृव्याख्यौ वा पद्मेजि समे शुभौ॥४५॥

पापदृष्टे शुभे क्षीणे तुङ्गे वा लग्नगे यमे। क्षीणेन्दुकुजसंदृष्टे मृत्युमेत्य गता ध्रुवम्॥४६॥

दिवाकाल में गर्भाधान होने पर शुक्र है मातृग्रह तथा सूर्य पितृग्रह। जब रात में गर्भाधान हो, तब चन्द्र हैं मातृग्रह तथा शनि है पितृग्रह। विषमराशीस्थ पितृग्रह पिता हेतु शुभ है। यदि मातृग्रह समराशीस्थ हो, तब माता हेतु शुभ है। यदि द्वादशस्य पापग्रह किसी पापग्रह से दृष्ट हो, शुभग्रह से दृष्ट न हो, किंवा शनि लग्नस्थ हो, उस लग्नस्थ शनि पर चन्द्र-मंगल की दृष्टि पड़े, तब गर्भाधान होने पर स्त्री मर जायेगी।।४५-४६।।

युगपद्वा पृथक्संस्थौ लग्नेन्दू पापमध्यगौ। यदा तदा गर्भयुता नारी मृत्युमवाप्नुयात्॥४७॥

लग्नाच्चन्द्राच्च तुर्यस्थैः पापैर्निधनगे कुजे।
नष्टेन्दौ कुजखयोश्च बन्धुरिष्फगयोर्मृतिः॥४८॥

यदि दो पापग्रह के मध्य लग्न एवं चन्द्र में से कोई हो, तब गर्भाधानोपरान्त स्त्री सगर्भ मृत होगी अथवा दोनों में से एक मृत होकर रहेगा। यदि लग्न किंवा चन्द्रमा से चतुर्थस्थ पापग्रह हो, मंगल अष्टमभावस्थ हो, किंवा लग्न से चतुर्थ अथवा द्वादश मंगल एवं शनि हो, चन्द्र क्षीण हो, तब गर्भवती का मरण होगा।।४७-४८।।

तन्वस्तसंस्थयोर्भौमख्योः शस्त्रभवः क्षयः।
यन्मासाधिपतिर्नष्टस्तन्मासं संस्रवे त्यजेत्॥४९॥

लग्नस्थ मंगल हो, सप्तमस्थ सूर्य हो, तब गर्भिणी शस्त्राहत होती है। गर्भाधान कालोपरान्त जिस मास का स्वामी अस्त हो (नौ माह के भीतर) उसी मास में गर्भस्राव होगा। अतः ऐसे लग्न का त्याग गर्भाधान में कर देना उचित होगा।।४९।।

लग्नेन्दुगैः शुभैः खेटैस्त्रिकोणार्थास्तभूखगैः।
पापैस्त्रिषष्ठलाभस्थैः सुखी गर्भो रवीक्षितः॥५०॥

ओजभे पुरुषांशेऽर्केज्येन्दुलग्नैर्बलान्वितैः। गुर्वर्कौ विषमस्थौ वा पुञ्जन्म प्रवदेत्तदा॥५१॥

आधान काल के लग्न किंवा चन्द्र के साथ अथवा लग्न तथा चन्द्र से पंचम, नवम, सप्तम, चतुर्थ तथा दशम में समस्त शुभग्रह स्थित हो तथा तृतीय, षष्टम एवं एकादश में जब समस्त पापग्रहों की स्थिति हो, साथ ही लग्न एवं चन्द्र सूर्य दृष्ट हों, तब गर्भ की स्थिति सुखी हो जाती है। यदि सूर्य, गुरु, चन्द्र एवं लग्न की स्थिति विषम राशि में हो तथा नवमांश भी विषम रहे किंवा रवि एवं गुरु विषमराशीस्थ रहें, उस स्थिति में पुत्र जन्म लेगा।।५०-५१।।

युग्मभांशस्थितैस्तैस्तु वक्रेन्दुभृगुभिस्तथा।
यामस्थानगतैर्वाच्यं स्त्रियो जन्म मनीषिभिः॥५२॥
द्व्यङ्गस्था बुधसंदृष्टाः स्वपक्षेयमलङ्काराः।
लग्नं विनौजभावस्थः सौरः पुञ्जन्मकृत्तथा॥५३॥

यमल सन्तान तब उत्पन्न होते हैं, जब समस्त ग्रह समराशि किंवा सम नवमांशस्थ हों किंवा वे सभी द्विस्वभाव राशीस्थ होकर बुध से दृष्ट हों। इसका तात्पर्य यह है कि पुरुषग्रह ऐसी स्थिति में यमल पुत्र को तथा स्त्रीग्रह दो कन्या को जन्म देते हैं। यदि स्त्री एवं पुरुष ग्रह उभय हों, तब एक पुत्र एवं एक कन्या यमल रूप

से जन्म लेंगे। साथ ही यह भी मत है कि लग्न से तृतीय किंवा पंचमस्थ शनि भी पुत्र जन्म में कारक होता है।।५२-५३।।

मिथो रवीन्दूर्ज्ञार्की वा पश्यतः समगं रविः।
वक्रो वाङ्गविधू ओजे यज्ञौ युग्मौजसंस्थितौ।।५४।।
कुजेक्षितेपुमांशे दुहिता क्लीब जन्मदा।
समे सितेन्दू ओजस्था ज्ञाराङ्गेज्या नृवीक्षितौ।।५५।।
लग्नेन्दुसमगौ युग्मस्थाने वा यमलङ्कराः।
ग्रहोदयस्थान्द्यङ्गांशान्पश्यति ज्ञे स्वभागगे।।५६।।
त्रितयं ज्ञांशकाद्युग्ममिश्रैः सममादिशेत्।
लग्ने चापान्त्यभागस्थे तदंशस्थबलिग्रहैः।।५७।।

जब विषम तथा समराशीस्थ सूर्य एवं चन्द्र किंवा बुध एवं शनि परस्परतः देखते हों अथवा समराशीस्थ सूर्य को विषम राशि में बैठा मंगल देखे अथवा चन्द्रमा के समराशीस्थ होने पर लग्न विषम राशि का हो, उन पर मंगल की दृष्टि पड़े किंवा लग्न-चन्द्र-शुक्र पुरुष राशि वाले नवमांश में हो, तब इन सभी स्थिति में सन्तान नपुंसक होगी। जब शुक्र-चन्द्र समराशीस्थ हों, लेकिन बुध, मंगल, लग्न, बृहस्पति विषमराशीस्थ हों साथ ही पुरुष ग्रह उनको देखे अथवा लग्न एवं चन्द्र समराशीस्थ हों, तब यमल सन्तान का जन्म होगा। यदि बुध मिथुन किंवा कन्या नवमांश में हो तथा वह द्विस्वभाव राशि में विराजित ग्रह एवं लग्न पर दृष्टि रखे, तब गर्भ में तीन सन्तान रहेंगे। दो सन्तान बुध नवमांश प्रकार के तथा एक लग्नांश किस प्रकार का होगा, लेकिन बुध एवं लग्न समान नवमांश में स्थित रहें, तब सन्तानत्रय समान ही होगी। यदि धनुराशि का अन्त्य नवमांश लग्नस्थ हो, उसी अंश में बली ग्रह हो तथा बली बुध एवं शनि से वह दृष्ट हो, तब गर्भ में तीन से भी अधिक सन्तान होंगे।।५४-५७।।

वीर्याढ्यज्ञार्किसंदृष्टैः कोशस्थावहवोगिनः। सितारेज्यार्कचन्द्राकिज्ञाङ्गेशोर्केदवोऽधिपाः।।५८।।
मासानां तत्समं वाच्यं गर्भस्थस्य शुभाशुभम्।
त्रिकोणे ज्ञे परिर्नैष्टैर्द्विमुखाह्लिकपान्वितः।।५९।।
अवागावाटावशुभैर्भसंविस्थैः प्रजायते। वीरान्सगीश्चदष्टेध्वष्टार्कातभसंहिताः।।६०।।

गर्भमास के स्वामी—गर्भाधान से लेकर प्रसवपर्यन्त दस मास के स्वामी हैं। शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि, बुध, आधान, लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा। आधान में जो ग्रह बली किंवा निर्मल हों, तदनुरूप उसे शुभा-शुभ फललाभ होता है। यदि बुध त्रिकोणस्थ हो अन्य ग्रह बली न हो, तब गर्भ के शिशु के दो मुख, चार पैर तथा ४ बाहु होंगे। चन्द्र वृषस्थ हों, अन्य पापग्रह राशि सन्धिस्थ हों, तब बालक मूक होगा। यदि इन ग्रहों को शुभ ग्रह देखे तब बालक विलम्ब से बोलेगा।।५८-६०।।

आरार्की चेज्यभांशस्थौ सदन्तोगर्भकस्तदा। खभेजे भुवि मन्दारदृष्टे कुब्जस्तु गर्भगः।
मयुर्म्मीने यमेन्द्वारैर्दृष्टेथाङ्गेभसन्धिगे।।६१।।

पापैर्जडो विधौ गर्भः शुभदृष्टिविवर्जिते। मृगान्त्यगे वामनकः सौरेन्द्वर्कनिरीक्षिते।
धीनयोदपगैर्व्यंशैः पापास्तैरसिरोह्रदाः॥६२॥

यदि बुध राशि के नवमांश में (मिथुन-कन्या में) मंगल एवं शनि हों, तब शिशु गर्भावस्था से ही दन्तयुक्त होगा। कर्कराशीस्थ चन्द्र जब लग्न में हो तथा लग्न मंगल किंवा शनि द्वारा दृष्ट हो, तब गर्भस्थ शिशु पंगु रहेगा। पापग्रह तथा चन्द्र की स्थिति राशिसंधि में होने पर जब वे शुभग्रहों से दृष्ट न हों, तब वह गर्भस्थ शिशु जड़बुद्धि रहेगा। जब मकर का अंतिम नवमांश लग्नस्थ हो तथा वह शनि, चन्द्र-सूर्य द्वारा दृष्ट हो, तब गर्भस्थ शिशु बौना होगा। यदि पापग्रहों की स्थिति पंचमभाव, नवमभाव में हो तथा लग्न के द्रेष्काण में पापग्रह स्थित हो, तब जातक पैर, मस्तक तथा हाथ से रहित होगा।।६१-६२।।

रवीन्दुयुक्ते सिंहेंगे माहेयार्किनिरीक्षिते। नेत्रहीना मिश्रखेटैर्दृष्टे बुद्बुदलोचनाः।
व्ययेजो वामनयनं यक्षं सूर्यो विनाशयेत्॥६३॥

यदि आधान काल में सिंह लग्न हो, वहां सूर्य-चन्द्र हों, वे मंगल-शनि से दृष्ट हों, वह शिशु नेत्र रहित होगा। यदि शुभ तथा पापग्रह की दृष्टि उस लग्न में हो, तब नेत्र में फूली रोग होगा। लग्न से द्वादश चन्द्र की स्थिति में बालक का वामनेत्र नष्ट रहेगा। यदि लग्न से द्वादशभाव में सूर्य स्थित हो, तब दाहिना नेत्र नष्ट होगा।।६३।।

नेष्टा योगाः शुभैर्दृष्टाः पापाः स्युर्नात्र संशयः।
मन्देऽस्ते मन्दभांशेङ्गे निषेकेऽब्दत्रये जनिः॥६४॥
द्वादशाब्दे शशिन्येवं सुतावपि विचिन्तयेत्॥६५॥

ऊपर जिन दुष्ट योगों को कहा गया है, उन पर यदि शुभग्रह की दृष्टि रहे, तब वे दुष्ट योग पूर्ण दुष्फल नहीं दे सकते। देवाराधना, चिकित्सा प्रभृति से दुष्ट योग का अशुभ फल निवृत्त हो जाता है। यदि गर्भाधान लग्न में शनि नवमांश हो, शनि सप्तमस्थ हो, तब तीन वर्ष में प्रसव हो पायेगा। यदि गर्भाधान लग्न में चन्द्र नवमांश हो तथा चन्द्र सप्तमस्थ रहे, तब द्वादश वर्ष में प्रसव होगा! जन्मकाल में यह सब योग विचारणीय हैं।।६४-६५।।

आधानेन्दुद्वादशांशा पापास्तद्राशिभिः पुरः॥६६॥
शशाङ्के जन्मभागादिद्विघ्नमिष्टकलाः स्मृताः॥६७॥

आधान काल में चन्द्र स्थिति जिस द्वादशांश पर हो, उतनी ही संख्या आगे की राशि में चन्द्रगमन पर बालक उत्पन्न होगा। द्वादशांश युक्त अंश का दो से गुणा करें गुणनफल में पांच का भाग दे। यह लब्धि राश्यादि मान बतलाती है।।६६-६७।।

पितुः परोक्षे जन्मस्यादिन्दौ लग्नमपश्यति॥६८॥
मध्याद्भ्रष्टेऽर्के विदेशस्थे जनने नारिजन्म वै।
मन्देगस्थे कुजेस्ते च ज्ञोस्फुजि मध्यगे विधौ॥६९॥
पापाङ्गेब्जे त्रिभागे लौ स्वायगैः सद्भिरुद्गतः। सूर्यस्तदृष्टिगो वापि ज्ञेयो ज्योतिर्विदां वरैः॥७०॥

शिशु के जन्मलग्न से जन्मज्ञान—जब चन्द्रमा जन्मलग्न को नहीं देखता, तब पिता के वहां (नगरादि में) न रहने पर बालक उत्पन्न होगा। यदि उपरोक्त योग में सूर्य चरराशि में एकादश किंवा द्वादश भाव में हो अथवा नवम-अष्टम में हो, तब जब पिता विदेश में होगा, तब बालक उत्पन्न भया होगा। यदि लग्न में शनि तथा मंगल सप्तमस्थ हो किंवा जन्मपत्र में बुध-शुक्र के मध्य के भाव में चन्द्र हो, तब पिता की अविद्यमानता में पुत्र जन्म होगा। यदि पापग्रह की राशि में चन्द्र स्थित हो किंवा चन्द्र वृश्चिक द्रेष्काणस्थ हो, उस तथा शुभ्रगह द्विरेकादशस्थ हों, तब शिशु सर्परूप होगा किंवा सर्प से लिपटा जन्म लेगा।।६८-७०।।

चतुष्पदर्क्षगे भानौ शेषैर्बलयुतै खगैः। कोशादतौ तु यमलौ जायेते मुनिसत्तम॥७१॥

साक्र्यारसिंहोक्षाजांसे भांशतुल्याङ्गनालयुक्।
लग्नमिन्दुं च सार्केन्दुं न पश्यति यदा गुरुः॥७२॥
सपापगोऽर्को जायो वा परवीर्यप्रसूतिकृत्।
पापभस्थौ पापखेटैः सूयार्घानत्रिकोणगौ॥७३॥

हे मुनिवर! सभी ग्रह बली हों, सूर्य चतुष्पद राशीस्थ हो, तब एक ही नाल से लिपटे दो शिशु उत्पन्न होंगे। यदि सिंह, वृष किंवा मेषलग्न शनि या मंगल युक्त हो, तब लग्न नवमांश राशि जिस अंग की रहेगी, उसी अंग में लिपटे नाल वाली स्थिति में शिशु उत्पन्न होगा। यदि लग्न एवं चन्द्र पर गुरु की दृष्टि नहीं पड़ती हों, किंवा चन्द्रमा पापग्रह एवं सूर्ययुक्त हो, तब वह सन्तान परपुरुष के वीर्य द्वारा जन्मा है। जहां दो पापग्रह पापराशीस्थ होकर सूर्य से सप्तमस्थ हों।।७१-७३।।

विदेशगः पितावृद्धः खेवा राशिवशात्यये।
पूर्ण इन्दौ स्वभेशेजे शुभे भुव्यम्बुजे तनौ॥७४॥
द्यूनस्थे वा विधौ यातेङ्गना नारी प्रसूयते।
अब्धाङ्गमन्भगः पूर्णे ज्यो वा पश्यति नारद॥७५॥
स्वबन्धलग्नगः सूतिः सलिले नात्र संशयः।
पापदृष्टे यमे मुद्यां जन्माङ्गाजव्ययस्थिते॥७६॥

तब सूर्य जिस चर, स्थिर किंवा द्विसभाव वाली राशि में रहता है, उस राशि के ही अनुसार विदेश में, स्वदेश में अथवा मार्ग में बालक का जन्म समझे। यदि पूर्ण चन्द्र स्वराशीस्थ हो, बुध लग्नस्थ हो, शुभग्रह चतुर्थस्थ हो अथवा लग्न जलचर राशि का हो और उसमें सप्तमस्थ चन्द्र हो, तब शिशु जन्म नौका आदि जलयान पर होगा। हे नारद! यदि जलचर राशि में बैठा पूर्ण चन्द्रमा लग्न को देखे अथवा वह दशम, चतुर्थ किंवा लग्न में हो, तब निःसन्देह जल में प्रसव होगा। यदि लग्न तथा चन्द्र से शनि द्वादश स्थानस्थ हो तथा पापग्रह उसे देखे तब गर्त्त में बालक का जन्म होगा।।७४-७६।।

कर्कालिलग्नगेशौरेवटे जन्माब्जवीक्षिते। मन्दे जन्मगते लग्ने बुधसूर्येन्दुवीक्षिते॥७७॥

क्रीडास्थाने देवगेहे प्यूषरे च क्रमाज्जनिः।
श्मशाने लग्नदृगसृग्राम्यस्थानेब्जभार्गवौ॥७८॥

अग्निहोत्रगृहे जीवोऽर्को भूषाभरणो गृहे।
शिल्पालये बुधो जन्म कुर्याद्बलसमन्वितः॥७९॥

जब जलचर राशि में स्थित शनि की स्थिति लग्न में हो, उसे बुध, सूर्य अथवा चन्द्र देखे, तब बुध की दृष्टि से क्रीड़ा स्थान में, सूर्य की दृष्टि से देवालय में तथा चन्द्रदृष्टि द्वारा ऊसर में जन्म होगा। यदि बली मंगल लग्नस्थ शनि पर दृष्टि रखता है, तब श्मशान भूमि में जन्म होगा। जब यही दृष्टि चन्द्र की हो, तब रम्य स्थान में, शुक्र की दृष्टि में भी रम्य स्थान में, गुरु की दृष्टि हो, तब अग्निहोत्र गृह में, सूर्य की दृष्टि हो, तब राजगृह में—देवालय में किंवा गोशाला में जन्म होगा। बुध की दृष्टि हो, तब शिल्पालय में जन्म होगा, तथापि ये सब ग्रह बली हों, तब यह होगा।।७७-७९।।

भासमाने सरे मार्गे स्थिरे स्वर्क्षांशगे गृहे।
त्रिकोणगेऽब्ज आरार्क्योरस्ते वा सृज्यतेऽम्बया॥८०॥
गुरुदृष्टे तु दीर्घायुः परं च प्राप्यते पुनः। पापदृष्टे विधौ लग्नेऽस्ते कुजे तु विनश्यति॥८१॥

लग्न में चर राशि की स्थिति में मार्ग में जन्म होगा। जैसी लग्नराशि हो, उसके अनुसार स्थान में बालक का जन्म होता है। लग्न में स्थिर राशि की स्थिति में उस राशि के अनुरूप स्थान में स्वदेश में जन्म होगा। लग्न राशि स्व-नवांशस्थ हो, तब यदि पंचम-नवम में चन्द्र हो किंवा सप्तम भाव चन्द्र होने पर माता द्वारा बालक का त्याग कर देती है। जब चन्द्र गुरु दृष्ट हो, तब मातृ द्वारा त्यागा बालक भी दीर्घायु होगा। यदि पापग्रह से देखा जा रहा चन्द्र लग्नस्थ हो, मंगल सप्तमस्थ हो, तब माता-पिता से त्यक्त बालक मृत हो जाता है।।८०-८१।।

भवे कुजार्क्योः संदृष्टे परहस्तगतः सुखी। पापेगतायुर्भवति मासः सार्थैः परैरपि॥८२॥

यदि पापग्रह से देखा जा रहा चन्द्रमा शनि अथवा मंगल से एकादशस्थ हो, तब जातक मृत होगा। यदि चन्द्र शुभग्रह दृष्ट है, तब बालक अन्य के यहां जाने पर सुखी होगा। यदि चन्द्र को पापग्रह देखते हों, तब वह अन्य के यहां पाला जाकर भी दीर्घायु होगा।।८२।।

पितृमातृगृहे जन्म तदधीशबलान्मुने। तरुगेहे शुभे नीचे नैकस्थदृष्टौ लग्नेन्दुः॥८३॥
एतल्लक्षणसम्पन्ना प्रसूतिर्विजने तदा। मन्दर्क्षांशे विधौ तुर्ये मन्ददृष्टेऽब्जगेऽपि वा॥८४॥
मन्दार्चने वा तमसि शयनं नीचगे भुवि। शीर्षे पृष्ठोदये जन्म तद्वदेव विनिर्दिशेत्॥८५॥
चन्द्रास्तसुखगैः पापैर्मातुः पीडां समादिशेत्।
जीर्णोद्धृतं गृहं मन्दे सृजि दग्धं नवे विधौ॥८६॥

यदि पितृसंज्ञक ग्रह बलवान हो, तब पिता के घर में जन्म होगा। मातृसंज्ञक ग्रह बली हो, तब मातृगृह में (माता के मायके में) जन्म होगा। हे मुनिवर! यदि शुभग्रहों की स्थिति नीचस्थ हो, उस स्थिति में वृक्षतल में किंवा झोपड़ी में जन्म होगा। यदि शुभग्रह नीचस्थ हो, लग्न किंवा चन्द्र को शुभग्रह न देखे, तब बालक निर्जन स्थल में जन्म लेगा। यदि चन्द्र शनि सम्बन्धित राशि के नवमांश में स्थित रहे तथा चतुर्थ स्थानस्थ हो, उस स्थिति में शनि से उसकी युति हो अथवा उस पर शनि की दृष्टि पड़े, तब प्रसवक काल में शिशु की माता पृथिवी पर लेटी प्रसव कर रही होती है। यदि शीर्षोदय राशि लग्नस्थ हो, ऐसी स्थिति में शिशु जन्म उलटा होगा अर्थात्

वह पैर की ओर से जन्म लेगा। यदि जातक की कुण्डली में चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में अथवा सप्तम स्थानस्थ पापग्रह हो, तब माता के लिये यह स्थिति कष्टदायक ही होगी! यदि जन्मकालस्थ शनि सभी ग्रहों से बली हो, तब सूतिका गृह पुराना होगा, तथापि वह स्वच्छ संस्कृत होगा।।८३-८६।।

काष्ठाढ्यमदृढं सूर्ये बहुशिल्पयुतं बुधे। चित्रयुक्तं नवं शुक्रे दृढं रम्यं गुरौ गृहम्॥८७॥
धटाजकर्क्यलिघटे पूर्व सूर्ये ज्ञेज्यगृहे ह्युदक्।
वृषे पश्चान्मृगे सिंहे दक्षिणे वसतिर्भवेत्॥८८॥

यदि जातक का मंगल बली हो, तब सूतिका गृह दग्ध सा, चन्द्रमा के बलवान होने पर सूतिका गृह नवीन होगा तथा शुक्र बली हो, तब चित्रयुक्त होगा एवं मनोरम लगने वाला होगा। गुरु बली हो, तब सूतिका गृह दृढ़ होगा। यदि लग्न तुला, मेष, कर्क, वृश्चिक किंवा कुम्भ राशि हो, उस समय गृह को पूर्व की ओर सूतिका गृह हो। यदि लग्न मिथुन, कन्या, धनु अथवा मीन हो, तब सूतिका गृह घर में उत्तर की ओर होगा। यदि वृष लग्न हो, तब यह सूतिका गृह घर में पश्चिम की ओर होगा। यदि लग्न मकर किंवा सिंह हो, तब गृह में दक्षिण की ओर सूतिका गृह की स्थिति कही गयी है।।८७-८८।।

गृहप्राच्यादिगौ द्वौ द्वौ द्रव्वङ्गाः कोणेष्वजादयः। पर्यङ्के वास्तुवत्पादास्त्रिपदङ्कान्त्यराशयः॥८९॥
चन्द्रागान्तरगैः खेटैः सूतिकाः समुदाहृताः। चक्रार्द्धबहिरन्तश्च दृश्यादृश्योपरेऽन्यथा॥९०॥

घर की सभी दिशा में (अर्थात् एक-एक दिशा में) दो-दो राशि होगी जो मेष से प्रारंभ होगी। चारों कोण में चार द्विस्वभाव राशि होगी (अर्थात् एक-एक कोण में एक-एक द्विस्वभाव राशि की स्थिति जाने)। इसी प्रकार इसी नियम से सूतिका की शय्या में भी लग्नादि भाव को जानें अर्थात् तृतीय, षष्ठ, नवम एवं द्वादश भाव क्रमशः शय्या के चारों पाये में होंगे। चन्द्र तथा लग्न के बीच जितने ग्रह होंगे, उतनी ही उपसूतिका घर में होगी। सप्तम में लग्न पर्यन्त जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिका गृह में उस समय (प्रसव काल में) वहां रहेंगी। लेकिन अनेक विद्वानों का मत है, जो इससे भिन्न है। वह यह है कि दृश्य चक्रार्द्ध में जितने ग्रह अवस्थित होंगे, तदनुरूप गिनती में उपसूतिकायें गृह के अभ्यन्तर में होगी। अदृश्य चक्रार्द्ध में ग्रहों की गिनती के अनुरूप उपसूतिकायें गृह के बाहरी ओर उपस्थित होगी।।८९-९०।।

लग्नाशयसमानाङ्गो बालिखेटं समोपि वा। चन्द्रनन्दांशवद्वर्णः शीर्षाद्यङ्गविभागयुक्॥९१॥
शीर्षकं दृक्श्रवेनासा कपोलहनवो मुखम्। कण्ठांसपार्श्वहृद्दोषः क्रोडन्नाभिश्च बास्तिकः॥९२॥
शिश्नापाते च वृषणौ जघने जानुनी तथा। जङ्घे पादौ चोभयत्र त्र्यंशैः समुदितैर्वदेत्॥९३॥

लग्न नवमांश के स्वामी ग्रह के अनुसार किंवा जन्मकाल में सबसे बली ग्रह के समान जातक का देह होगा। देह वर्ण चन्द्रमा जिस नवमांश में हो, उस राशि वाला देह वर्ण जातक का होगा। लग्न में प्रथम द्रेष्काण पड़े, तब लग्न भाव मस्तक होगा। द्वितीय एवं द्वादश भाव नेत्र होगा। त्रिरेकादश भाव कर्ण होगा, चतुर्थ-दशम भाव नासिका, पंचम-नवम कपोल, षड़ाष्टक भाव ठुड्डी, सप्तम भाव मुख होगा। यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण पड़े, उस स्थिति में लग्न भाव कण्ठ होगा। द्विर्द्वादश भाव स्कन्ध, त्रिरेकादशभाव पसली होगा। चतुर्थ-दशम भाव हृदय, पंचम-नवम भाव बाहु, षड्ष्टक भाव उदर, सप्तम भाव नाभि जानें। एवंविध यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण पड़े, तब लग्न होगा नाभि तथा लिंग के बीच का स्थान, द्विर्द्वादश भाव होगा लिंग-गुदा, त्रिरेकादश होगा।

अंडकोष, चतुर्थ-दशम भाव होगा जंघा, पंचम-नवम भाव होगा घुटना, षड़ष्टक भाव होगा पिप्पली, सप्तम भाव होगा पैर। इत्यादि।।९१-९३।।

पापयुक्ते व्रणस्तस्मिन्नङ्गे लक्ष्म च तद्युते।
स्वर्क्षांशे स्थिरयुक्ते तु नैज आगन्तुकोऽन्यथा॥९४॥
मन्देऽनिलाश्मजो भौमे विषशस्त्राग्निजो बुधे।
कुजोऽर्के काष्ठपशुजो जेतुः शृंग्यजयोनिजः॥९५॥
यस्मिन्संज्ञास्त्रयः खेता अङ्गेस्युस्तत्र निश्चितम्।
व्रणोशुभकृतःषष्ठे तनो राशिसमाश्रिते॥९६॥
तिलकृन्मसदकृदष्टसौम्यैर्युक्तश्च लक्ष्मवान्।
चतुरस्त्रः पिङ्गदृक् च पैत्तिकोऽल्पकचो रविः॥९७॥

जिस अंग पर जो राशि पड़ती है, यदि उसमें पापग्रह स्थित हों, तब उस अंग में फोड़ा आदि रहेगा। वहां शुभदृष्टि होने पर तिल आदि चिह्न होंगे। यदि पापग्रह स्वराशीस्थ किंवा स्वनवांशस्थ हो, स्थिर राशीस्थ हो, तब ऐसी स्थिति में जन्मकाल से ही शिशु को व्रण रहता है अर्थात् शनि जिस अंग पर हो, वहां वातजनित अथवा प्रस्तर आघातजनित व्रण होगा। मंगल जिस अंग पर हो, उस अंग पर हो, वहां विषजनित, किंवा शस्त्रजनित, किंवा अग्निजनित व्रण होगा। बुध जिस अंग पर हो, वहां पृथिवी पर गिरने अथवा ढेले के आघात से व्रण होगा। जिस अंग पर सूर्य हो, वहां काष्ठाघात किंवा पशु आघात जनित व्रण होगा। क्षीण चन्द्र जिस अंग पर हो, वहां शृंगवाले पशु अथवा जलचर प्राणी के आघात से व्रण होगा। मनुष्य के जिस अंग पर तीन पापग्रह हों, वहां तो व्रण होना अवश्यम्भावी जाने। यदि कुण्डली के षष्ठ स्थान में पापग्रह पड़े हों, तब उस राशि से प्रभावित अंग में व्रण रहेगा, लेकिन यदि वहां पर शुभग्रह की दृष्टि हो, तब वह अंग तिल से युक्त होगा (तिलचिह्न युक्त)। यदि वहां शुभग्रह योग हो जाये, तब केवलमात्र चिह्नांकन होगा। ग्रहों का रूप सूर्य चतुरस्त्र है। पिङ्गल नेत्र वाला है। देह कान्ति भी पिंगल है। वह पित्तप्रकृति है। उसके शिर पर अल्प केश हैं।।९४-९७।।

वृतो वातकफी प्राज्ञो मन्दवाक् शुभदृक् शशी।
क्रूरदृक्तरुणो भौमः पैत्तिकश्चपलस्तथा॥९८॥
त्रिधानुपवृतिर्हास्यरुचिज्ञः श्लिष्टवाक्तथा। पिङ्गके श्लक्षणो दीर्घः कफी धीमान्गुरुर्मतः॥९९॥

चन्द्रमा वृत्ताकृति वात-कफ प्रकृतियुक्त मन्द बोलने वाला, प्राज्ञ तथा उत्तम नेत्र वाला है। मंगल क्रूरदृष्टि, तरुण, पित्त प्रकृति तथा चपल स्वभाव है। बुध की प्रकृति कफ-पित्त-वातयुक्त है। वह हास्य में रुचि रखने वाला तथा ऐसे शब्द बोलता है, जो अनेक अर्थ वाले हों। गुरु पिङ्गल अंग प्रभा वाले, उसी वर्ण के केश एवं नेत्र वाले हैं। वे धीमान् हैं।।९८-९९।।

सुवपुर्लोचनः कृष्णवक्रकेशो भृगुः सुखी। दीर्घः कपिलदृड्भदो निलीखरकचोलसः॥१००॥

शुक्र सुरूप अंगयुक्त तथा सुन्दर नेत्र वाले हैं, जिनके मस्तक पर वक्रकेश हैं। इनकी आखें कपिश वर्ण वाली हैं। ये वात प्रकृति वाले, कड़े बालों वाले तथा आलस्ययुक्त रहते हैं।।१००।।

स्नाय्वस्थिरक्तत्वक्शुक्रवसामज्जास्तु धातवः।
मन्दार्कचन्द्रसोम्यास्फुजिज्जीवकुभुवः क्रमात्॥१०१॥

धातु निर्णय—शिरायें शनि की, अस्थि सूर्य की, रक्त चन्द्र की, त्वचा बुध की, वीर्य शुक्र की, वसा गुरु की तथा मज्जा मंगल की धातु है।।१०१।।

चन्द्राङ्गपापैर्भान्त्यस्थैः सेन्दुपापचतुष्टयैः।
चक्रपूर्वापरे पापसौम्यैः कीटतनौ मृतिः॥१०२॥
उदयास्तगते पापौ चन्द्रः क्रूरयुतैः शुभैः।
न चेद्दृष्टस्तदा मृत्युर्जातस्य भवति ध्रुवम्॥१०३॥

अरिष्ट निर्णय—जब चन्द्र, लग्न, पापग्रह राशि के अन्तिम अंश में रहें, किंवा चन्द्रमा एवं पापग्रहत्रय केन्द्र में हों, कर्क जन्मलग्न हो, तब जातक का निधन होगा। यदि दो पापग्रह लग्न तथा सप्तमस्थ हों, चन्द्रमा एक पापग्रह के साथ हो, उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो, तब जातक की मृत्यु में अधिक विलम्ब नहीं है।।१०१-१०३।।

क्षीणेऽब्जे व्ययगे पापैर्लग्नाष्टस्थैःशुभा न चेत्।
केन्द्रेषु वाब्जोसंयुक्तः स्मरान्त्यमृतिलग्नगः॥१०४॥
केन्द्राद्या हस्त सन्खेटैरदृष्टो मृत्युदस्तथा। षष्ठेभेब्जेऽसंदृष्टेसद्यो मृत्युः शुभेक्षिते॥१०५॥
समाष्टके मिश्रखेटैर्दृष्टेर्दृष्टे मृतिः शिशोः। क्षीणेब्जेङ्गे रन्ध्रक्रेन्द्रे पापे पापान्तरस्थिते॥१०६॥
भूद्यूननिधने वाब्जे लग्नेऽप्येवं शिशोर्मृतिः।
पापैश्चन्द्रास्तगैर्मात्रा सार्द्धं सदृष्टिमन्तरा॥१०७॥

यदि निर्बल चन्द्र द्वादशभावस्थ हो, लग्न पापग्रह युक्त हो तथा अष्टम भाव भी पापग्रह युक्त हो, कोई शुभग्रह केन्द्रस्थ न हो, तब जातक मृत हो जाता है। किंवा यदि पापग्रहयुक्त चन्द्र सप्तम-द्वादश-किंवा लग्नस्थ हो तथा उस पर ऐसे शुभग्रह की दृष्टि न हो जो केन्द्र से अन्य स्थान में स्थित हो, तब भी जातक हेतु मृत्यु योग कहा गया है। यदि षष्ठस्थ अथवा अष्टमस्थ चन्द्र पापग्रह द्वारा देखा जा रहा हो, तब जातक की मृत्यु में विलम्ब नहीं है। निर्बल चन्द्र लग्नस्थ हो तथा पापग्रह अष्टम, लग्न, चतुर्थ अथवा दशमस्थ हों, तब भी मरणयोग है। यदि चन्द्र दो पापाग्रह के मध्य चतुर्थ, सप्तम, अष्टम भावस्थ हो, उस स्थिति अथवा लग्न दो पापग्रह के मध्य में हो, तब भी शिशु मरण योग ही है। यदि सप्तम, अष्टम भाव में पापग्रह हों, वे शुभग्रह दृष्ट न हों, तब माता एवं शिशु, दोनों का मरण होगा।।१०४-१०७।।

शुभादृष्टे भान्त्यगेब्जे त्रिकोणोपरतैः खलैः।
लग्नस्थे वा विधौपापैरस्तस्थैर्मृतिमाप्नुयात्॥१०८॥

किसी राशि के अन्तिम अंश में स्थित चन्द्र यदि शुभग्रह द्वारा नहीं देखा गया हो, पापग्रह पंचम अथवा नवम भावस्थ हो, किंवा लग्न में चन्द्र तथा सप्तम में पापग्रह हो, तब शिशु मृत होगा।।१०८।।

ग्रस्तेऽब्जेऽसद्भिरष्टस्थैः सृज्यवात्मजयोर्मृतिः। लग्ने रवौ तु शस्त्रेण सवीर्यासद्भिरष्टगैः॥१०९॥

यदि राहु से ग्रस्त होकर चन्द्र पापग्रह के साथ हो, मंगल अष्टास्थ हो, तब माता तथा सन्तान दोनों का ही निधन होगा। यदि बलवान पापग्रह अष्टमस्थ हो, तब माता एवं सन्तान का शस्त्र द्वारा निधन होता है।।१०९।।

कर्केन्द्वीज्ययुते लग्ने केन्द्रे सौम्ये च भार्गवे।
शेषैस्त्र्यरीशीगैरायुरमितं भवति ध्रुवम्॥११०॥
वर्गोत्तमे मीनलग्ने वृषेऽब्जे तत्त्वलिप्सिके।
स्वतुङ्गस्थेष्वशेषेषु परमायुः प्रकीर्तितम्॥१११॥

आयु कथन—यदि कर्क लग्न में चन्द्र, बृहस्पति हों, बुध-शुक्र, केन्द्रस्थ हों, रवि-मंगल शनि की स्थिति तृतीय, षष्ठ, एकादशस्थ हो, तब जातक अत्यन्त दीर्घायु होगा। यदि मीन का नवमांश मीनराशि में ही हो, बुध वृषराशीस्थ होकर २५ अंश का हो, सभी बाकी ग्रह उच्चस्थ हो, तब वह जातक १२० वर्ष पांच दिन की परमायु लाभ करेगा।।११०-१११।।

शुभैर्दृष्टः सवीर्योङ्गे केन्द्रस्थे चायुरर्थदः।
स्वोच्चोब्जे स्वर्क्षगैः सौम्यैः सवीर्येङ्गाधिपे तनौ॥११२॥
षष्ठ्यब्दकेन्द्रसौम्येभेष्टशुद्धे सप्ततिर्गुरौ। मूलत्रिकोणगैः सौम्यैर्गुरौ स्वोच्चसमन्विते॥११३॥
लग्नाधिपे बलयुतेशीत्यब्दं त्वायुरीरितम्। सवीर्ये सत्सु केन्द्रेषु त्रिंशच्छुद्धियुतेऽष्टमे॥११४॥
लयेशे धर्मगे जीवेष्टस्थे क्रूरेक्षिते जिताः।
लग्नाष्टमेशावष्टस्थौ भाब्दमायुःकरौ मतौ॥११५॥

जब लग्न का स्वामी बली होकर केन्द्रस्थ हो, वह शुभग्रह दृष्ट हो, तब बालक धनी एवं दीर्घायु होगा। चन्द्रमा उच्चस्थ हो, शुभग्रह स्वराशि में हों, बली लग्नेश भी लग्नस्थ हो, तब जातक की आयु ६० वर्ष होगी। केन्द्र में शुभग्रह हों, अष्टमस्थान ग्रह रहित हो, तब ७० वर्ष की आयु होगी। यदि बली शुभग्रह केन्द्रस्थ हो, अष्टमभाव ग्रह रहित हो, तब मात्र तीस वर्ष की आयु कही गयी है। लग्नेश बली हो, गुरु उच्चस्थ हो, शुभग्रह मूल त्रिकोल में स्थित रहें, तब अस्सी वर्ष की आयु वर्णित है। अष्टमेश नवम स्थानस्थ हो, बृहस्पति अष्टास्थ होकर पापग्रह की दृष्टि में हो, तब २४ वर्ष मात्र आयु होगी। जब जातक के लग्नेश एवं अष्टमेश अष्टमस्थ हो जायें तब २७ वर्ष ही आयु रहेगी।।११२-११५।।

लग्नेऽशुभेज्यौ ग्लौदृष्टौ भृत्यौ कश्चनः चाकृतिः।
धर्माङ्गस्थे शनौ शुक्रेकेन्द्रब्जे व्ययधर्मगे॥११६॥
शताब्दं गीष्मतौ कर्के कण्टकस्थसितेज्योः।
लयेशेङ्गे शुभैर्हीनेष्टमे खाब्धिमितं वयः॥११७॥
लग्ने शेष्टमगेष्टेशे तनुस्थे पञ्चवत्सरम्। कवीज्ययोगे सौम्याब्जौ लग्ने मृत्यौ च खेषवः॥११८॥

लग्नस्थ पापग्रह युक्त बृहस्पति लग्न में हों, वे चन्द्र दृष्ट हों तथा अष्टमस्थान ग्रह रहित हो, तब मात्र २२ वर्ष की आयु रहेगी। यदि शनि नवमभावस्थ हो किंवा लग्नस्थ हो, शुक्र केन्द्रीय हों, चन्द्र द्वादश किंवा

नवमस्थ हो, तब व्यक्ति शतायु होगा। यदि बृहस्पति उच्चस्थ हों किंवा बृहस्पति-शुक्र केन्द्र में हो, तब भी जातक शतायु ही होगा। यदि अष्टमेश लग्नस्थ हों, अष्टमभाव शुभग्रह युक्त न हो, तब ४० वर्ष की आयु होगी। जब लग्नेश अष्टमभाव में हो अष्टमेश लग्न में हो, तब मात्र ५ वर्ष ही आयु रहेगी। यदि शुक्र-बृहस्पति साथ हों अथवा बुध-चन्द्र लग्न किंवा अष्टम में स्थित रहें, तब व्यक्ति ५० वर्ष जीवित रहेगा।।११६-११८।।

एतद्योगजमायुः स्यादथ स्पष्टमुदीर्यते। सूर्याधिक बले पैण्डं निसर्गाच्च विधोर्बले॥११९॥

अंशायुः सबले लग्ने तत्साधनमथो शृणु।
गोब्जास्तत्त्वतिथि सूर्यास्तिथिः स्वर्गा नखाःक्रमात्॥१२०॥
नखा विधुर्द्वावंकाश्च धृतिः स्वाक्षिखमार्गणाः॥१२१॥

हे मुनिवर! एवंविध मैंने ग्रहयोगानुसार आयुर्दाय प्रमाण कह दिया। अब स्पष्टायुर्दाय का गणित के आधार पर वर्णन करता हूं। सूर्य अधिक बली हो, तब पिण्डायु का, चन्द्र बली हो, तब निसर्गायु का तथा लग्न बली होने पर अंशायु साधन करे जिसकी विधि कह रहा हूं। जब सूर्य आदि ग्रह उच्चस्थ हों, तब क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५-२१-२० वर्ष का पिण्डायु प्रमाण कहा गया। इसे समझाकर लिखा जा रहा है—

ग्रह	—	**पिण्डायु**
सूर्य	—	१९ वर्ष
चन्द्र	—	२५ वर्ष
मंगल	—	१५ वर्ष
बुध	—	१२ वर्ष
बृहस्पति	—	१५ वर्ष
शुक्र	—	२१ वर्ष
शनि	—	२० वर्ष
ग्रह	—	**निसर्गायु**
सूर्य	—	२० वर्ष
चन्द्र	—	०१ वर्ष
मंगल	—	०२ वर्ष
बुध	—	०९ वर्ष
बृहस्पति	—	१८ वर्ष
शुक्र	—	२० वर्ष
शनि	—	५० वर्ष।।११९-१२१।।

पिण्डे निससे स्वोच्चे नो ग्रहः षड्भाल्पको यदा।
चक्रशुद्धस्तदा ग्राह्योस्यांशा आयुषि सम्मताः॥१२२॥
अंशोनाः शत्रुभे कार्या ग्रहं वक्रगतिं विना।
मन्दशुक्रौ विनार्द्धोना ग्रहस्यास्तङ्गतस्य च॥१२३॥

हानिर्व्ययेऽधिकाः कार्या तदा क्रूरस्तनौ तदा।
विहायारीनंशाद्यैर्हन्यादायुर्लवान् भजेत्॥१२४॥
भगणांशैर्लब्धहीनास्तेषां कार्या विचक्षणैः।
पापस्यांशाः समग्रोना सौम्यस्यार्द्धविवर्जिताः॥१२५॥

इस आयु साधनार्थ राश्यादि ग्रह में अपने उच्च को ऋण करे। यदि वह ६ राशि से कम हो, तब उसे द्वादश (राशि) से घटाकर बाकी को ग्रहण करे। इसका अंश बनाये। यह आयुर्दाय साधनार्थ उत्तम है। लेकिन शत्रु राशीस्थ ग्रह के अंश में से उसका १/३ घटाये। यदि ग्रह वक्र हो, तब भले ही वह शत्रु राशीस्थ हो, उसका १/३ घटाना वर्जित है। यदि शनि तथा शुक्र के अतिरिक्त शेष पांच ग्रह अस्त हों, तब उनके अंश में से आधा घटाये। भले ही शनि अस्त क्यों न हो, उसका अंश भी आधा घटेगा। यदि कोई ग्रह शत्रु ग्रह हो तथा अस्त हो, तब भी उसमें आधा घटाये। १/३ न घटाये। जहां लग्न में पापग्रह बैठा हो, तब उसकी राशि को छोड़ दें। मात्र अंशादि से आयुर्दाय के अंश का गुणा करे, जो गुणनफल मिले, उमें ३६० का भाग देना चाहिये। तब लब्ध अंशादि को पूर्वोक्त अंक से घटा देना होगा। एवंविध पापग्रह का जितना लब्धांक हो, उसे घटा देना चाहिये। लेकिन शुभग्रह योग किंवा शुभग्रह दृष्ट होने पर लब्धांश का अर्द्धभाग ही घटाना होगा। इससे आयुर्दाय साधनार्थ स्पष्ट अंक प्राप्त होते हैं।।१२२-१२५।।

स्पष्टास्तेंशाः खषट्त्र्यासा गुणयित्वा स्वकैर्गणैः।
वर्षाणि शेषमकघ्नं हारात्सम्मासकाः स्मृताः॥१२६॥
तच्छेषश्च त्रिगुणितः तेनैवाप्तं दिनानि च।
शेषे षष्ट्या हते भक्ते हारेण घटिकादिकम्॥१२७॥

पिण्डायु साधन विधि—जो स्पष्ट अंश श्लोक १२५ द्वारा उपलब्ध होते हैं, उनको अपने पूर्वोक्त गुणक से गुणा करें। जो गुणनफल आये उसे ३६० से भाग दे। तब लब्धिवर्ष संख्या ज्ञात होगी। जो शेष बचे उसे १२ से गुणा करके जो आये उसे ३६० से भाग देने पर लब्धि मास संख्या ज्ञात होगी। इसमें जो शेष बचे उसे ३० से गुणा करके ३६० से भाग देने पर लब्धि दिन की संख्या मिलेगी। अब जो शेष बचा उसे ६० से गुणा करके ३६० से भाग देने पर लब्धि घटी-पल मिलेगी।।१२६-१२७।।

हित्वा भाज्यङ्गभागादीन्कलीकृत्य खखाक्षिभिः।
भजेद्वर्षाणि शेषे तु गुणिते द्वादशादिभिः॥१२८॥
द्विसप्तांशे च मासादिलग्नायुर्जायते स्फुटतम्।
अंशायुषी सलग्नानां खेटानामंशका हताः॥१२९॥
खयुगैरायुरंशाः स्युस्तत्संस्कारं वदामि ते।
ग्रहोनलग्नं षड्भात्यं चेत्संस्करोऽन्यथा नहि॥१३०॥
तंदशः खाग्नयो भक्ता लब्धोनोभूर्गुणो भवेत्।
यदैकाल्पं तदास्यांशाः स्वाग्र्याप्तोना च भूर्गुणाः॥१३१॥

सौम्यस्यार्द्धेन पापस्य समग्रेणेति निश्चयः।
गुणकघ्नाश्चायुरंशाः संस्कारोऽयमुदाहृतः॥१३२॥
आयुरंशकलाभक्ताद्विशत्याब्दा इनाहतम्।
शेषं द्विशतभक्तं स्युर्मासाः शेषा दिनादिकम्॥१३३॥
लग्नायुरंशास्त्रिगुणादिग्भक्ता स्युः समास्ततः।
शेषेऽर्कादिगुणे भक्ते दिग्भर्मासादिकं भवेत्॥१३४॥
सबलेङ्गेभतुल्याब्दैर्यु तमायुर्भवेत्स्फुटम्।
अंशद्विघ्नमक्षांशं मासाः खत्र्यादिसङ्गुणात्॥१३५॥
शेषा दिनादिकं योज्यं नैतत्पिण्डनिसर्गयोः।
लग्नार्कचन्द्रमध्ये तु यो बली तद्दशा पुरा॥१३६॥

लग्नायु साधन विधि—हेतु लग्न राशि को छोड़े। अंशादि की कला बनाकर २०० से भाग दें। यह लब्धिवर्ष की संख्या होगी। जो शेष बचा हो, उसे १२ से गुणा करके २०० से भाग करें। यह लब्धि-मास संख्या कहलाती है। पुनः जो शेष बचे उसमें ३० से गुणा करें। २०० से भाग देने पर लब्धि-दिन का ज्ञान होगा।

अंशायुर्दाय साधन वर्णन—लग्न सहित ग्रहों का पृथक् अंश बनाये। उसमें ४० से भाग देकर जो बचे वही है आयुर्दाय साधनार्थ अंशादि। अब लग्न में से ग्रह घटाना चाहिये। यदि शेष छः राशि से अतिरिक्त हो, तब यह संस्कार करे अन्यथा संस्कार न करे। यदि घटा ग्रह छः राशि से कम तथा एक राशि से अधिक हो, तब उस अंश से ३० का भाग देकर लब्धि घटायें। शेष गुणक समझें। यदि ग्रह से घटा लग्न १ राशि से कम हो, तब उन अंश में ३० का भाग देकर लब्धि को एक में से घटाने पर शेष को गुणक कहा जायेगा। शुभग्रह के गुणक को आधा करके गुणक माने। पापग्रह के समस्त गुणक ग्रहण करे। तब इस तरह के गुणक से उपर्युक्त आयुर्दाय के अंश का गुणा करे, तब संस्कृत अंश प्राप्त होगा। यही संस्कार है। इस संस्कृत आयुर्दाय अंश को कलात्मक में परिणत करके २०० से भाग दे। तब लब्धिवर्ष प्राप्त होगा। जो शेष बचे उसे १२ से गुणा करके गुणनफल में २०० का भाग दें। यह लब्धिमास होगा। तदनन्तर शेष जो बचे उसमें ३० से गुणा करके २०० का भाग देने पर लब्धि दिन एवं घटी आदि होगा। लग्न के आयुर्दाय अंश में उसे गुणा करके जो गुणनफल आये उसे १० से भाग दें। यह लब्धि ही वर्ष है। तब शेष को १२ प्रभृति से गुणा करके १० से भाग देने पर लब्धि ही मासादि होगा। लग्न बली हो, तब मुक्तराशि संख्या में उतने वर्षों का योग करे। अंशादि को दो से गुणा करके पांच से भाग दें। लब्धि को ही मास मानकर उसका भी योग करे। जो शेष बचे उसे तीस आदि से गुणा करके हर से भाग दें। जो लब्धि हो, उसके समान दिनादि रूप फल का योग करे। तब लग्नायु निश्चित होगी। यह गणित पिण्डायु तथा निसर्गायु में न करे।

दशा वर्णन—लग्न, सूर्य, चन्द्र में से जो बली हो, उसकी दशा पहले होगी।।१२८-१३६।।

ततः केन्द्रादिगानां तु द्वित्र्यादौ सबलस्य च।
बह्वायुर्यो वीर्यसाम्येर्काद्युतस्य प्राक् याचकः॥१३७॥

तदनन्तर केन्द्रस्थ ग्रहों की दशा होगी। तत्पश्चात् 'पणफर' स्थित ग्रहों की दशा के उपरान्त 'आपोक्लिम' स्थानस्थ ग्रहों की दशा होगी। केन्द्रादि स्थानों पर स्थित ग्रहों में भी उनके बल के अनुरूप ही पूर्व-पूर्व की दशा मानी जाती है। यदि एक ही स्थानस्थ दो किंवा तीन ग्रह बल में सम हों, तथापि उनमें जिसकी आयु अधिक हो, उसी की पहले दशा होगी। यदि आयु का वर्षादि सम ही हो, तब सूर्य-सान्निध्य से जो ग्रह प्रथमतः उदित हुआ, उसी की दशा प्रथम मानी जायेगी।।१३७।।

षड्वर्गार्द्धस्य त्रिंशस्य त्रिकोणगश्च स्मरगः।
सप्तमासस्य तूर्यस्य चतुरस्त्रगतस्य च॥१३८॥
क्रमः केन्द्रादिकोऽत्रापि द्वित्र्यादौ सबलस्य च।
पाकपस्याब्धिनागाश्च द्व्यर्णवा सहगस्य च॥१३९॥
त्रिकोणस्थस्य चाष्टाभिसूर्या द्यूनगतस्य च।
तुर्याष्टगस्य तु स्वर्गा गुणकाः परिकीर्तिताः॥१४०॥
दशागुणैर्हता भक्त्या गुणैक्येन समागताः।
शेषऽर्कादिहते भक्ते मासाद्यैक्येन नारद॥१४१॥
अन्तर्दशासु विदशास्तासु चोपदशास्तथा।
दशेशमित्रस्वोच्चक्षङ्गोब्जोब्ध्येकाद्रिवृद्धिगः ॥१४२॥
शुभगो यद्भगस्तद्धिस्वादिस्थेन तद्धिकृत्। प्रोक्तेतरस्थानगतस्तत्तद्भावाक्षयं करः॥१४३॥

अन्तर्दशा में इसमें दशापति पूर्णदशा का पाचक है। उसके साथ के ग्रह आधे के हैं। त्रिकोणस्थ ग्रह आधे के, दशापति से सप्तमस्त स्थित ग्रह सप्तमांश के तथा शेष दशापति ये चतुर्थ एवं अष्टम में रहने वाले ग्रह चतुर्थांश के पाचक होते हैं। अतः इन स्थान से भिन्न जगहों पर स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा नहीं होती। मूल दशापित का गुणक है ८४, उसके साथ वाले का ४२, त्रिकोणस्थ का २८, सप्तमस्थ का १२ तथा चतुर्थ-अष्टमस्थ का गुण २१ कहा गया है। वर्ष आदि दशा प्रमाण को अपने-अपने गुणक से गुणा करें। समस्त गुणकों के योग से भाग देने पर जो लब्धि मिले उसे मास-दिन मानें। हे नारद! एवंविध अन्तर्दशा में उपदशा का मान जाने।

अब **दशाफल** कहते हैं—दशारंभ काल में यदि दशापति के मित्र अपनी उच्च स्वराशि किंवा दशापति से प्रथम, सप्तम, तृतीय, दशम में शुभस्थानस्थ हों, तब जहां चन्द्रमा स्थित है, उस भाव की विशेषता वृद्धि करता हुआ वह शुभफल दायक हो जाता है। यदि वह इन स्थानों से अलग स्थान में स्थित हो, तब वह उस भाव का नाश करता है।।१३८-१४३।।

खगस्य यद्भवेद्द्रव्यं भावभे क्षणयोगजम्।
जीविकादिफलं सर्वं दशायां तस्य योजयेत्॥१४४॥
विशन्यापदशायां यो वैरिदृष्टो विपत्तिकृत्। शुभमित्रेक्षितश्रेष्टसद्वर्गस्थश्च यो ग्रहः॥१४५॥
तत्काले बलवानापन्नाशकृत्समुदाहृतः। यस्याष्टवर्गजं चापि फलं पूर्णशुभं भवेत्॥१४६॥
यश्च मूर्तितनुग्लावो वृद्धिगः स्वोच्चभस्थितः। स्वत्रिकोणसुहृद्भस्थस्तस्य मध्यमसत्फलम्॥१४७॥

श्रेष्ठं शुभतरं वाच्यं विपरीतगतस्य तु। नेष्टमुत्कटमिष्टं तु स्वल्पं ज्ञात्वा बलं वदेत्॥१४८॥

(किसी) उस ग्रह की दशा में जिस ग्रह हेतु जो द्रव्य निश्चित किये गये हैं, ग्रह दृष्टि तथा ग्रहयोग का जो फल वर्णित है, तदनुरूप आजीविका सम्बन्धित जिन फलों को कहा गया है, उन सबका सम्यक् रूप से चिन्तन करें। पापदशा में प्रविष्ट होते समय जो ग्रह शत्रु दृष्ट होता है, वह विपत्तिप्रद है। यदि दशापति शुभग्रह हो तथा मित्र दृष्ट हो, वह शुभवर्ण में स्थित रहे तथा तात्कालिक बल सम्पन्न हो, उस स्थिति में वह समस्त आपत्तियों का नाश करता है। यदि अष्टक वर्ग से उसका फल पूर्ण शुभप्रद हो और यदि ग्रह लग्न किंवा चन्द्रमा के साथ, किंवा तृतीय, षष्ठ, दशम एकादशस्थ हो, उच्च स्थान में स्वराशि में हो, अपने मूल त्रिकोण में अथवा मित्र राशीस्थ हो, तब उसका दुष्फल न्यून होगा। यदि मध्यम फल मिलना है, तब वह श्रेष्ठ हो जायेगा। यदि शुभफल मिलना है, तब वह अत्यन्त शुभ हो जायेगा। लेकिन उपरोक्त से भिन्न स्थानस्थ ग्रह हो, तब उनका पाप फल इसी तारतम्य से वर्द्धित होता जायेगा। शुभ फल भी अत्यन्त न्यून हो जायेगा। इस प्रकार ये फल एवं ग्रह के बलाबल को जानकर तब फलादेश न्यून किंवा अधिक कहें।।१४४-१४८।।

चरे सन्मध्यदुष्टाभ्यामङ्गभङ्गे विपर्ययात्।
स्थिरे नेष्टेष्टमध्या च होरायास्त्रयंशकैः फलम्॥१४९॥
स्वामीज्यज्ञयुता होरा दृष्टा च सत्फलावहा।
विनाशदृष्टयुक्ता च पापान्तरगतान्यथा॥१५०॥

अब लग्न का दशाफल कहते हैं—यदि [१]चरलग्न में प्रथम, [२]द्वितीय किंवा [३]तृतीय द्रेष्काण हो, तब (१) में लग्नदशा शुभ होगी, (२) में लग्नदशा मध्यम होगी। (३) में लग्नदशा अशुभ फलप्रद होगा। द्विस्वभाव लग्न में (१) में अशुभ, (२) में मध्यम तथा (३) में शुभ फल होगा। स्थिर लग्न में (१) में अशुभ, (२) में शुभ तथा (३) में मध्यम फलप्रद होगी। यदि लग्न आदि गुरु किंवा बुध से युक्त किंवा दृष्ट हो, तब दशा शुभद होगी। यदि वह पापग्रह युक्त किंवा दृष्ट हो अथवा पापग्रह के मध्य में हो, तब दशा अशुभ कही जाती है।।१४९-१५०।।

प्राग्ध्वांक्षा बन्धुमृत्याय तयोर्द्यूने रविः स्वभात्।
वक्रात्स्वादिवसाच्चार्के शुक्राद्यूनां तु षड्ढतः॥१५१॥
धर्मध्यायारिगो जीवादिकत्र्यारिगो विधोः।
पृध्यन्त्यधीतपाः सुज्ञा ततोवृद्ध्यंत्यबम्धुराः॥१५२॥

अब **अष्टकवर्ग** कहते हैं। **सूर्य** जन्मकाल की स्वाश्रित राशि से यदि लग्न, द्वितीय, दशम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश, नवम तथा सप्तम में हो, तब शुभफलदायक होगा। यदि वह मंगल तथा शनि से भी उपरोक्त अन्तर वाले भावों में हो, तब शुभ होगा। वह शुक्र से सप्तम, द्वादश षष्ठ स्थान में, गुरु से नवम, पंचम, एकादश, षष्ठ स्थान में, चन्द्र से दशम, तृतीय, एकादशभाव में, बुध से भी दशम, तृतीय एकादश तथा षष्ठ में द्वादश, पंचम एवं नवम में शुभ होता है। लग्न से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश तथा चतुर्थ भाव में सूर्य को शुभत्वमय कहा गया है।।१५१-१५२।।

वृद्धिगोङ्गात्सधनघीतपः स्वाराच्छशी शुभः। स्वदवृध्यस्तादिषु पृधात्ससाष्टौ पञ्चयोषगः॥१५३॥

षट्त्र्यायधीस्थो मन्दाच्च ज्ञादित्र्यायाष्टकेन्द्रगः।
केन्द्राष्टायान्त्य इज्याद्वा ज्ञज्यायास्तत्र स्वे कवेः॥१५४॥

चन्द्र प्रत्येक ग्रहों से इन-इन स्थानों में शुभ होता है—

भाव

चन्द्र लग्न से—६, ३, १०-११ में शुभ।

चन्द्र मंगल से—२-६-५-३-९-१०-११ में शुभ।

चन्द्र अपने आश्रित स्थान से—३-६-१०-११, ७-१ में शुभ।

चन्द्र सूर्य से—३-६-१०-७-८ में शुभ।

चन्द्र शनि से—६-३, ११, ५ में शुभ।

चन्द्र बुध से—५-३-८-१-४-७-१० में शुभ।

चन्द्र गुरु से—१-४-७-१०-८-११-१२ में शुभ।

चन्द्र शुक्र से—४-५-९-३-११-७-१० में शुभ कहा गया है।।१५३-१५४।।

वृद्धाविनात्सादिधिया मङ्गा मायारिगो विधोः।
केन्द्राष्टापार्थगः स्वर्क्षान्मन्दाद्गोष्टायकेन्द्रगः॥१५५॥
षट् त्रिधी भवतः सौम्यात्षड्वांशाष्टगो भृगोः।
कर्मायव्ययषष्ठस्थो जीवाद्भौमः शुभः स्मृतः॥१५६॥

मंगल प्रत्येक ग्रह से इन स्थानों में शुभ होता है।

भाव

मंगल सूर्य से—३, ६, १०, ५ में शुभ।

मंगल लग्न से—३, ६, १०, ११, ५ में शुभ।

मंगल चन्द्र से—३, ६, ११ में शुभ।

मंगल अपने आश्रित स्थान से—१, ४, ७, १०, ८, ११, २ में शुभ।

मंगल शनि से—९, ८, ११, १, ४, ७, १० में शुभ।

मंगल बुध से—६, ३, ५, ११ में शुभ।

मंगल शुक्र से—६, ११, २, ८ में शुभ।

मंगल गुरु से—१०, ११, १२, ६ में शुभ।।१५५-१५६।।

कवेर्द्धर्याषष्ठमोध्याये संज्ञोमन्दान्सधीत्रये। साक्षास्ते भूमिज्जाजीवाद्ययारिभवमृत्युगः॥१५७॥
धर्मायारिसतान्त्येर्कात्साद्यत्रिस्वगता स्वभात्।
षट्खायाष्टाब्धिखेष्विज्यात्सहाद्येषु विलग्नतः॥१५८॥

बुध अन्य ग्रहों से इन-इन स्थानों पर शुभ होता है।

भाव

बुध शुक्र से—५, ३, २, १, ८, ९, ४, ११ में शुभ।

बुध शनि तथा मंगल से—२, १०, ७, १, ८, ९, ४, ११ में शुभ।

बुध गुरु से—१२, ६, ११ तथा ८वें स्थान में शुभ।

अपने आश्रित स्थान से—१, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ में शुभ।

बुध चन्द्र से—६-१०-११-८-४-१० में शुभ।

बुध लग्न से—१, ६, १०, ११, ८, ४, १० में शुभ।।१५७-१५८।।

दिक्वाष्टाद्यस्तबन्ध्याये कुजात्खात्सत्रिके गुरुः।
सात्र्यङ्के सन् रवेः शुक्राद्धीखगो दिग्भवारिगः॥१५९॥
चन्द्राद्वीशार्थगोस्तेषु मन्दाद्धीत्रिषडन्त्यगः।
गोब्धिधीषट्खखाद्या ये ज्ञात्सद्यूते विलग्नतः॥१६०॥

बृहस्पति अन्य ग्रहों से इन-इन स्थानों में शुभ होता है।

भाव

गुरु मंगल से—१०, २, ८, १, ७, ४, ११ में शुभ।

गुरु अपने आश्रित स्थान से—३, १०, २, ८, १, ७, ४, ११ में शुभ।

गुरु सूर्य से—३, ९, १०, २, ८, १, ७, ४, ११ में शुभ।

गुरु शुक्र से—५, २, ९, १०, ११, ६ में शुभ।

गुरु चन्द्र से—२, ११, ५, ९, ७ में शुभ।

गुरु शनि से—५, ३, ६, १२ में शुभ।

गुरु बुध से—९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में शुभ।

गुरु लग्न से—७, ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में शुभ।।१५९-१६०।।

आशु तेशाष्टगोष्वङ्गः त्सान्तेष्वब्जात्सितः शुभः।
स्वात्सज्ञेषु त्रिधीगोब्धी दिक्छिद्रासिगतोर्कजात्॥१६१॥
रन्धायव्ययगः सूर्यादोष्टधीखे सगोर्गुरो।
ज्ञाब्धि त्र्यायारिगोरात्रिषट्घ्यध्यान्त्यगोषु च॥१६२॥

शुक्र अपने स्थान से इन-इन स्थानों पर शुभ होगा।

भाव

शुक्र लग्न से—१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ में शुभ।

शुक्र चन्द्र से—१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९, १२ में शुभ।

शुक्र अपने आश्रित स्थान से—१०, १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ में शुभ।

शुक्र शनि से—३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ में शुभ।

शुक्र सूर्य से—८, ११, १२ में शुभ।

शुक्र गुरु से—९, ८, ५, १०, ११ में शुभ।

शुक्र बुध से—५, ३, ११, ६, ९ में शुभ।

शुक्र मंगल से—३, ६, ९, ५, ११, १२ में शुभ।।१६१-१६२।।

त्रिधीशारिषु मन्दः खात्साक्षान्त्येषु शुभो मृतः।
केन्द्रायाष्टधनेष्वर्का लग्नाद्वृद्ध्याद्यबन्धुषु॥१६३॥
गोध्वष्टावारिखान्त्येज्ञाच्चन्द्राल्लाभत्रिषद्धतः।
षडष्टान्त्यगतः शुद्गुरुक्रारोर्द्वी शान्त्यशत्रुषु॥१६४॥

शनि अपने स्थान से इन-इन स्थान पर शुभ होगा।

भाव

शनि स्वाश्रित स्थान से—३, ५, ११, ६ में शुभ।

शनि मंगल से—१०, १२, ३, ५, ११, ६ में शुभ।

शनि सूर्य से—१, ४, ७, १०, ११, ८, २ में शुभ।

शनि लग्न से—३, ६, १०, ११, १, ४ में शुभ।

शनि बुध से—९, ८, ११, १०, १२ में शुभ।

शनि चन्द्र से—११, ३, ६ में शुभ।

शनि गुरु से—५, ११, ६ में शुभ।।१६३-१६४।।

उक्तस्थानेषु रेखादौ ह्यनुक्तेषु तु बिन्दुदाः।
जन्माभाद्वृद्धिमित्रोच्चखभेधिष्टं परेष्वसत्॥१६५॥

ऊपर कहे गये स्थान में ग्रह रेखाप्रद होंगे। जो स्थान ऊपर नहीं कहे गये उनमें वे विन्दुप्रद होंगे। जो ग्रह लग्न से किंवा चन्द्र से वृद्ध स्थान किंवा ३,६, १०, ११वें भाव में हो किंवा मित्र के गृह में हो अथवा उच्च स्थान में अथवा स्वराशि में हो, उनका उत्तम फल अधिक मिलेगा।।१६५।।

कष्टमर्थक्षयः क्लेशः समतार्थसुखायमः।
धनाप्तिः सुखमिष्टाप्तिरिति रेखाफलं क्रमात्॥१६६॥

अव **रेखाफल** कहते हैं—एवंविध जहां एक रेखा हो, वहां ग्रह का संचरण कष्टप्रद होगा। द्विरेखा वाले स्थान में ग्रह संचार होने पर धन नाश, त्रिरेखा वाले स्थान पर ग्रह संचार से क्लेश, चतुः रेखा वाले स्थान पर ग्रह संचार हो, तब मध्यम फल, पंचम रेखा वाले स्थान पर ग्रह संचार से सुख लाभ, षड्रेखा वाले स्थान पर ग्रह संचार से धन लाभ, सप्तरेखायुत स्थान पर ग्रह संचार से सुखलाभ, अष्टरेखा युक्त स्थान पर ग्रह संचार का फल है वांछित लाभ।।१६६।।

पितृमातृद्विषन्मित्रभ्रातृस्त्रीभृतकाद्रवेः। स्वामिलग्नाजयोः स्वस्थाद्भेद्वर्कस्वयशोशयात्॥१६७॥

तृणस्वर्णाश्वधोरणाद्यैरर्कान्शे वृत्तिमादिशेत्।

कृष्यम्बुजस्त्रीभ्योब्जांशे कौजे धात्वस्त्रसाहसैः॥१६८॥

काव्यशिल्पादिभिर्बोधे जैवे देवद्विजाकरैः।

शौक्रे रजतगोरत्नैर्मान्दे हिंसाश्रमाधमैः॥१६९॥

अब **जीविका फल** कहते हैं—यदि जन्म लग्न तथा चन्द्र से दशम स्थान पर ग्रह हों, तब यह फल होगा—सूर्य—पिता से लाभ, चन्द्र—माता से लाभ, मंगल—शत्रु से लाभ, बुध—मित्र से लाभ, बृहस्पति—भ्राता से लाभ, शुक्र—स्त्री से लाभ, शनि—भृत्य से धन लाभ यह होगा।

आजीविका वृत्ति ज्ञानार्थ—जन्मकाल में चन्द्र तथा सूर्य जन्म लग्न जिस भाव में हो, इन तीनों के दशमस्थ भाव का स्वामी जिस राशि के नवमांश में हो, उस नवमांश के अधिपति के अनुसार जीविका जाने। यथा—यदि दशम स्थानों के स्वामी सूर्य नवमांश में हों, तब तृण, स्वर्ण, औषधि, ऊन, सिल्क से वृत्तिलाभ जानें। यदि ये चन्द्र नवमांश में हो, तब कृषि, मोती-मूंगा-शंख, सीप तथा जलोत्पन्न वस्तु से, स्त्री के द्वारा वृत्तिलाभ होगा। इन तीनों के दशम स्थान के स्वामी मंगल नवमांशस्थ हों, तब धातु, अस्त्रादि, साहसिक कार्य से वृत्तिलाभ होगा। यदि इन तीनों के दशम स्थान के स्वामी बुध नवमांशस्थ हों, तब काव्य शिल्पकला से, गुरु के नवमांश में होने पर देव-ब्राह्मण द्वारा, लौह स्वर्ण खान से वृत्तिलाभ होगा। यदि उपरोक्त प्रकार से शुक्र के नवमांश में तीनों के दशमस्थान के स्वामी हों, तब रजत, गौ, रत्नादि से वृत्तिलाभ होगा। यदि यही स्थिति शनि नवमांश में पड़े, तब अन्य को पीड़ित करके, मेहनत से तथा नीचकर्म जनित वृत्तिलाभ होगा।।१६७-१६९।।

स्वोच्चेष्वार्की तथा ज्यारैरुक्तैकाङ्गे नृपाधिपाः।

लग्ने वर्गोत्तमेऽब्जे वा चतुरादिग्रहेक्षिते॥१७०॥

द्वाविंशभूषास्तुङ्गेसृक्चापेर्केन्दुयमस्तनौ। भूपकृत्तुङ्गगोर्कोगेस्तेसाजार्कोखभे गुरौ॥१७१॥

यमेन्दुतुङ्गगौ लग्ने षष्ठेऽर्कज्ञौ तुलाजगा।

सितासृजो गुरौ कर्को साराजे लग्नगे नृपाः॥१७२॥

वृषेगेब्जेर्केज्यसौरैः सुहज्यायाखगैर्नृपः। मन्दे मृङ्गागेव्यर्यकांशस्थैरजादिभिर्नृप॥१७३॥

सेज्याजेश्वे मृगमुखे कुजे तुङ्गेर्क्षभार्गवो। लग्नेऽथ सेज्यकर्केङ्गे ज्ञानशुक्रैर्भवोपगैः॥१७४॥

अब **राजयोग** कहते हैं—जब शनि, रवि, बृहस्पति, मंगल उच्चस्थ हों तथा लग्नाधीश भी इनमें से कोई हो, तब इन चारों के लग्न में जन्में जातक राजा होते हैं। यदि लग्न किंवा चन्द्र वर्गोत्तम नवमांशस्थ हो तथा उस पर ४-५ या ६ ग्रह की दृष्टि हो, तब इनके २२ भेद से २२ प्रकार के राजयोग वर्णित हैं। यथा—

(१) मंगल उच्च हो, रवि-चन्द्र धनु राशिगत हों मकर जन्मलग्न हो जहां शनि स्थित हो—यह राजा बनने वाला योग है।

(२) रवि लग्न में उच्चस्थ, चन्द्र शनि सप्तमस्थ, बृहस्पति स्वगृही हो, तब यह राजयोग है। (मकर लग्न हो)।

(३) शनि किंवा चन्द्र लग्न में उच्चस्थ हों, सूर्य षष्ठस्थ हो, वहां बुध के साथ युति हो, शुक्र तुला में हो, मंगल मेष में हो, गुरु कर्कस्थ हो, तब इन दोनों लग्न में जन्मा जातक राजयोग युक्त होगा।

(४) उच्चस्थ मंगल चन्द्र के साथ युति करके वृष लग्नस्थ हो, तब भी राजयोग होगा। (लग्न वृषलग्न हो)।

(५) चन्द्रमा वृष लग्नस्थ हो, सूर्य चतुर्थस्थ हो, गुरु सप्तमस्थ हो, शनि मकरस्थ हो, तब राजयोग होगा। (वृष लग्न होगा)।

(६) शनि मकरस्थ हो, चन्द्र तृतीयस्थ, मंगल षड्स्थ, बुध नवमस्थ, बृहस्पति द्वादशस्थ हो, तब भी राजयाग होगा। (लग्न-मकर)।

(७-८) यदि गुरु एवं चन्द्रमा धनभाव में हों मंगल मकर में हो, बुध-शुक्र अपने उच्च स्थान में स्थित होकर लग्नस्थ हों, तब इन उभययोग में जन्मा जातक राजा होता है।

(९) जब बृहस्पति कर्क लग्नस्थ हो, एकादश में बुध, चन्द्र, शुक्र, तीनों हों, सूर्य मेषस्थ हो, तब राजयोग होता है।

(१०) जब चन्द्रमा मीन लग्नस्थ हो, सूर्य सिंह में, शनि कुम्भ में, मंगल मकर में हो, तब राजयोग होगा।

(११) जब मंगल मेष लग्नस्थ हो, बृहस्पति कर्कस्थ हों, किंवां लग्न कर्क हो, जिसमें बृहस्पति हों, तब जातक राजा होगा।

(१२) जब मंगल, शनि पंचमस्थ हो, गुरु-चन्द्र-शुक्र चतुर्थस्थ हों, बुध कन्या लग्नस्थ हो, तब राजयोग होगा।

(१३) जब मंगल-शनि पंचमस्थ हों, गुरु, चन्द्र-शुक्र चतुर्थस्थ हों, बुध कन्या लग्नस्थ हों, तब जातक राजा होगा।

(१४) जब मकर लग्नस्थ शनि हो, मेष मंगल से, कर्क चन्द्र से तथा सिंह सूर्य से युक्त हो, शुक्र तुला राशि में हो, बुध मिथुनस्थ हो, तब जातक यशस्वी राजा होगा। अब जो योग कहूंगा, उसमें यदि राजकुमार का जन्म हो, तब उसे राजा तुल्य ही जानें।।१७०-१७८।।

मेषेऽर्के भूमिपासेन्दौ एषे षाङ्ग्रेर्ङ्कपासृजः।
सिंहकुम्भमृगस्थाश्चेद्भूपः सारेतनावजे॥१७५॥
आर्के जीवे तनौ वापि नृपोऽथोः कुजभास्करौ।
धीस्थौ गुर्विदुकवयो भूमौ स्त्र्यगे बुधैर्नृपः॥१७६॥
मृगास्यलग्नगैः सौरेजाब्जर्क्षहरयः सयाः।
कविक्षौ तुलयुग्मस्थौ वै भूपः कीर्तिमान्भवेत्॥१७७॥
यस्य कस्यापि तनयः प्रोक्तैर्योगैर्नृपो भवेत्।
वक्ष्यमाणैर्नृपसुतो ज्ञेयो भूयो मुनीश्वर॥१७८॥

स्वोच्चे त्रिकोणभगतैस्त्र्याद्यैर्बलयुतैर्नृपः। सिंहेऽर्के मेषलग्नेऽब्जे मृगे भौमेघटेऽष्टमे॥१७९॥

चापे जीवे धरानाथःस्यादथ स्वर्क्षगे भृगौ। पातालगे धर्मगेऽब्जे शुभदृष्टे युते मुने॥१८०॥
त्रिलग्नभवगैःशेषैर्धराधीशः प्रजायते। सौम्ये वीर्ययुतेऽङ्गस्थे बलाढ्ये शुभगे शुभे॥१८१॥
धर्मार्थोपचयस्थैश्च शेषैर्धर्मयुतोनृपः। मेषूरणायतनुगाः शशिसूर्यजसूरयः॥१८२॥
ज्ञारौ धने शितरवा हिबुके भूपतिस्तदा।
वृषऽगेऽब्जोधनारिस्थो जीवार्की लाभगाः परे॥१८३॥
सुखे गुरुःखेंरवीन्दूयमो लग्ने भवे करौ।
लग्ने वक्रासितौ चन्द्रेज्यसितार्कबुधाः क्रमात्॥१८४॥
सुखास्तु शुभखाप्तिस्था नरेशं जनयन्त्यपि।
कर्मलग्नगखेटस्य दशायां राज्य सङ्गतिः॥१८५॥
प्रबलस्य दशायां वा शत्रुनीचा दिगार्तिदाः।
आसन्नकेन्द्रद्वयगैर्वर्गदाख्यः सकलग्रहैः॥१८६॥
तन्वस्तगैश्च सकटं विहगो राज्यवन्धुगैः। श्रङ्गाटकं धिगौगस्थैर्लग्नान्यस्थैर्हलं मतम्॥१८७॥

(१५) जब अपने उच्च स्थान में अथवा मूल त्रिकोण में तीन किंवा अधिक ग्रह बली होकर स्थित रहे, तब वह जातक राजा होगा। (राजतुल्य होगा)

(१६) सिंहस्थ सूर्य, मेष लग्नस्थ चन्द्रमा, मकरस्थ मंगल, कुम्भस्थ शनि, धनु में स्थित बृहस्पति होने पर राजयोग होगा।

(१७) हे मुनिवर! जब शुक्र तुला अथवा वृष में स्थित होकर चतुर्थ भाव में हो, चन्द्रमा नवमस्थ होकर शुभ ग्रह से युति करे अथवा शुभग्रह से दृष्ट हो, बाकी ग्रह नवम, पंचम, तृतीय, षष्ठ, दशम तथा एकादशस्थ हो, तब बालक धर्मात्मा राजा होगा।

(१८) जब चन्द्र दशमस्थ, शनि एकादशस्थ तथा बृहस्पति लग्नस्थ हों, बुध, मंगल द्वितीयस्थ हों, शुक्र-सूर्य चतुर्थ भावस्थ हो, तब राजयोग होगा।

(१९) जब वृषलग्न में चन्द्र हों, द्वितीयस्थ गुरु हों, एकादशस्थ शनि हों तथा वहीं बाकी ग्रह हो, तब राजयोग होगा।

(२०) चतुर्थ भाव में गुरु, दश में सूर्य-चन्द्र, लग्न में शनि, एकादश में बाकी ग्रह स्थित हों, तब राजयोग होगा।

(२१) मंगल शनि लग्नस्थ हों, चन्द्र चतुर्थस्थ, गुरु सप्तमस्थ, शुक्र नवमस्थ, सूर्य दशमस्थ तथा बुध एकादशस्थ हो, तब यह भावी नरेश का ग्रहयोग है।

(२२) ऊपर कहे गये योग में उत्पन्न मनुष्य के दशम भावस्थ ग्रह की अथवा लग्नस्थ ग्रह की दशा-अन्तर्दशा हो, तब वह व्यक्ति राज्य लाभ करेगा। यदि दशम भाव तथा लग्न में कोई ग्रह ही न हो, तब जन्म कालस्थ सर्वाधिक बली ग्रह की दशा में राज्यलाभ होगा। साथ ही जन्म काल में जो ग्रह नीच राशि में हो किंवा शत्रु राशीस्थ हो, उसकी दशा में क्लेश, पीड़ा आदि मिलना निश्चित है।

अब **नाभसयोग** कहते हैं। जब आपस में निकट के दो केन्द्र स्थान मे सभी ग्रह हों (सातों ग्रह हों) तब **गदायोग** होगा। जब लग्न एवं सप्तम में सभी ग्रह हों, तब **शकटयोग** होगा। जब दशम तथा चतुर्थ में सभी ग्रह हों, तब **विहगयोग** होगा। जब सभी ग्रह लग्न, पंचम, नवमस्थ हों, तब **शृंगारकयोग** होगा। यदि लग्न को छोड़कर त्रिकोण स्थान में सब ग्रह हों, तब **हलयोग** होगा।।१७९-१८७।।

वज्रोऽङ्गस्थे सत्स्वसत्सु तुर्यखस्थैर्यवोन्यथा।
विमिश्रैः कमलं प्राहुर्वाप्याकण्टकबाह्यगैः॥१८८॥

लग्नाच्चतुर्भुगैर्युपः शरस्तूर्याच्चतुर्भुगेः। द्यूनाद्वेदक्षगैः शक्तिं दंऽखादिचतुर्भगैः॥१८९॥

जब समस्त शुभग्रह लग्न-सप्तम में हों तथा सभी पापग्रह चतुर्थ-दशमस्थ हों, तब **वज्र** योग होगा। यदि लग्न-सप्तम में सभी पापग्रह हों तथा चतुर्थ-दशम में शुभग्रह हों, तब **यवयोग** होगा। यदि चारों केन्द्र स्थान में ही शुभ-पाप ग्रह मिले बैठे हों, तब तब **कमलयोग** होगा। यदि लग्न, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ में ही सभी ग्रह हों, तब **शरयोग** होगा। जब सप्तम, अष्टम, नवम, दशम में सभी ग्रह हों, तब **शक्तियोग** होगा। जब दशम, एकादश, द्वादश तथा लग्न में सभी ग्रह हों, तब **दण्डयोग** होगा।।१८८-१८९।।

लग्नात्क्रमात्सप्तभगैर्नौकाकूटस्तु नुर्यतः। छत्रमस्तात्स्वभाद्यायोन्यस्माद‌र्द्धेन्दुनामकः॥१९०॥

जब लग्न, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम में समस्त ग्रह हों, तब **नौका योग** होगा। चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम में सभी ग्रह हों, तब **कूटयोग** होगा। जब सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश तथा लग्न में सभी ग्रह हों, तब **छत्रयोग** होगा। जब दशम, एकादश, द्वादश, लग्न, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ तक में सब ग्रह हो, तब **चापयोग** होगा। जब केन्द्र से भिन्न स्थान से प्रारम्भ करके सात भाव में ही सभी ग्रह हों, तब **अर्द्धचन्द्र** योग होगा।।१९०।।

लग्नादेकान्तरगतैश्चक्रमर्थात्सरित्पतिः। षड्युस्थानेषु वीणाद्याः समसप्तर्क्षसंस्थितैः॥१९१॥

वीणादामपाशकेदारभूशूलयुगगोलकाः। ग्रहैः सर्वैश्चरभगै राजयोगः प्रकीर्तितः॥१९२॥

स्थिरस्थैर्मुसलं नाम द्विशरीणतैर्नलः।
भाला केन्द्रस्थितैः सौम्यैः पापैस्सर्प उदाहृतः॥१९३॥

यदि लग्न, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम तथा एकादश में ही समस्त ग्रह हों, तब यह **चक्रयोग** है। यदि द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश में समस्त ग्रह हों, तब **समुद्रयोग** होगा। सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश तथा लग्न में सभी ग्रह हों, तब **वीणायोग** होगा। यदि छः स्थान में सब ग्रह हों **दामयोग**, ५ स्थानों में हों, तब **पाशयोग**, चार स्थानों में हो, तब **क्षेत्रयोग**, ३ स्थानों में हों, तब **शूलयोग**, २ स्थानों में हो, तब **युगयोग** तथा एक ही स्थान पर हो, तब **गोलयोग** होगा। जब सभी ग्रह चर राशिस्थ हों, तब **रज्जुयोग**, सभी ग्रह स्थिर राशि में हों, तब **मुसलयोग**, द्विस्वभाव राशि में सभी ग्रह हों, तब **नलयोग** होगा। समस्त शुभग्रह केन्द्रस्थ हों, तब **मालायोग** होगा। सभी पापग्रह केन्द्रस्थ हों, तब **सर्पयोग** होगा।।१९१-१९३।।

ईर्ष्युरध्वरुची राज्ज्वां मुसले धनमानयुक्।
व्यम्मा स्थिरा लोनलजो मोगीस्त्रग्जोहिजोर्दितः॥१९४॥

वीणोद्भवोतिनिपुणः गीतनृत्यरुचिर्भृशम्।
दाता स द्वो दामोस्थः याशजो धनशीलयुक्॥१९५॥
केदारोत्थः कृषिकरः शूले शूरोक्षतो धनः।
युगं पाषण्डयुर्गोले विधनो मलिनस्तथा॥१९६॥
भूपवन्द्यपदश्चक्रे समुद्रे नृपभोगयुक्। सुभगाङ्गोर्द्धचापात्सुखीशूरश्च चामरः॥१९७॥
मित्रोपकारकृच्छत्रे कूटे चानृतबन्धराट्।
नौजः सकीर्तिः सुखभाक् मानवो भवति ध्रुवम्॥१९८॥
त्यागी यज्वात्मवान् यूपे हिंस्रो गुह्याधिपः शरैः।
शक्तौ नीचोऽलसो निःस्वो दण्डे प्रियवियोगभाक्॥१९९॥

योग का नाम		फल
रज्जुयोग	—	ईर्ष्यावान्, भ्रमण करने वाला
मुसलयोग	—	धन मान से युक्त
नलयोग	—	कोई अंगहीन, स्थिरमति, धनी
मालायोग	—	भोगी
सर्पयोग	—	दुःखी
वीणायोग	—	सर्वकार्य निपुण, संगीतज्ञ तथा नृत्य प्रिय
दामयोग	—	दाता, धनी
पाशयोग	—	धनी, सुशील
केदारयोग	—	खेती वृत्ति वाला
शूलयोग	—	शूरवीर, निर्धन, शस्त्राघात से बच जाने वाला
युगयोग	—	पाखण्डी
गोलयोग	—	मलिन, निर्धन
चक्रयोग	—	राजाओं तक से पूजित
समुद्रयोग	—	राजोचित भोग युक्त
अर्द्धचन्द्रयोग	—	सुन्दर देह वाला
चापयोग	—	सुखी, शूरवीर
छत्रयोग	—	मित्रों का उपकार करने वाला
कूटयोग	—	झूठा, कैदखाने का अधिकारी
नौकायोग	—	यशवान्, सुखी
यूपयोग	—	दानी, यज्ञकरने वाला, मनस्वी
शरयोग	—	अन्य को पीड़ा देने वाला, गुप्त स्थान का स्वामी
शक्तियोग	—	नीच, आलसी, निर्धन
दण्डयोग	—	प्रियवियोग का दुःख झेले।।१९४-१९९।।

व्यर्कैः स्वान्त्योभयगतैः खेटैः स्यात्सुनफानफा।
दुरुधरा चैव विधौ ज्ञेयः केमुद्रुमोऽन्यथा॥२००॥
स्वोपार्जितार्थभुग्दाता सुनफायां धनी सुखी।
नीरोगः शीलवान् ख्यातः सुवेपश्चानफाभवः॥२०१॥
भोगी सुखी धनीदानी त्यागी दुरुधुरोद्भवः।
केमुद्रुमेऽतिमलिनो दुःखी नीचोऽथ निर्धनः॥२०२॥

अब **चतुर्योग** कहता हूं। यदि चन्द्रमा से दूसरे भाव में सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रह हो, तब **सुनफा** योग होगा। चन्द्र से द्वादश में सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रह हो, तब **अनफा** योग होगा। यदि चन्द्र से द्विर्द्वादश स्थान में ग्रह हों, तब **दुरुधरा योग** होगा। कोई ग्रह चन्द्र से द्वितीय स्थान में न हो, तब **केमुद्रुम** योग कहा गया है।

सुनफा में उत्पन्न जातक स्वार्जित धन का भोग करने वाला, दानी, धनी तथा सुखी होगा।

अनफा में उत्पन्न जातक रोगहीन, प्रसिद्ध, सुशील तथा रूपवान् होगा।

दुरुधरा में जन्मा जातक भोगी, सुखी, धनी, दानी तथा विषयों में स्पृहा नहीं रखता।

केमुद्रुम में जन्मा जातक मलिन, दुःखी, नीच निर्धन होगा।।२००-२०२।।

यन्त्राश्मकारंशाजोको भौमपुष्यकरुते ध्वगः। सुज्ञः सुकीर्तिर्निपुणं विद्वांसं धनिनं तथा॥२०३॥
सेन्योन्यकार्यनिरतं साम्फुजिच्छस्त्रजीविनम्। समन्दो धातुकुशलं तथा भाडविदं मुने॥२०४॥

जब दो ग्रह एक साथ हों उनका फल कहता हूं।

सूर्य से ग्रहयुति

सूर्य चन्द्र युति — यन्त्र तथा पाषाण के कार्य में कुशल होगा।
सूर्य मंगल युति — जातक नीचकर्मी होगा।
सूर्य बुध युति — जातक यशस्वी, कुशल, विद्वान, धनी होगा।
सूर्य गुरु युति — अन्य के कार्य करने वाला
सूर्य शुक्र युति — सैन्य कार्य करने वाला शस्त्र जीवी होगा।
सूर्य शनि युति — धातु कार्य तथा बर्त्तन बनाने के कार्य में निपुण।।२०३-२०४।।

कूटस्त्र्याशवपण्याठं नसासृगिन्दुः प्रसूद्विषम्। कुर्यात्सज्ञोर्थंनिपुणं नम्रं सत्कीर्तिसंयुतम्॥२०५॥
सेज्योऽस्थिरवयं वंश्यं विक्रान्तं च समर्थिनम्। ससितोसुकवेत्तारं सार्किपौनर्भवं मुने॥२०६॥

चन्द्र की अन्य ग्रहों से युति

चन्द्र-मंगल युति — नकली सामान निर्माता, अरिष्ट-आसव का क्रय-विक्रय करने वाला, पितृ-मातृ द्रोही—जातक होगा।
चन्द्र-बुध युति — जातक धनी, कुशल, विनयी यशस्वी होगा।
चन्द्र-गुरु युति — चंचल, कुल का मुखिया, पराक्रमी तथा धनी होगा।
चन्द्र-शुक्र युति — वस्त्र निर्माता तथा वस्त्र कला ज्ञाता होगा।

चन्द्र शनि युति — ऐसी नारी से जन्म लेगा, जिसने विधवा होकर अथवा पति के जीवित रहते अन्य पुरुष से समागम किया हो।।२०५-२०६।।

आरे सज्ञे बाहुयोधी पुराध्यक्षः सगीष्पतौ। सशुक्र द्यूतकर्होयो नृती द्यूती समन्दके॥२०७॥

मंगल की युति

मंगल बुध युति — बाहु युद्ध करने वाला

मंगल गुरु युति — नगराधीश होगा।

मंगल शुक्र युति — द्यूत-क्रीड़ारत, गौपालक।

मंगल शनि युति — झूठा, जुआड़ी होगा।।२०७।।

सेज्येज्ञे नृत्यगीताढ्यो मायादक्षः सभार्गवे।
समन्दे लुब्धकः क्रूरो नरो भवति नारद॥२०८॥
सशुक्रे वाक्पतौ विद्वान्सासितेऽन्नघटङ्करः।
कवौ समन्दमन्दाक्षा वनिताश्रयवित्तवान्॥२०९॥

बुध की युति

बुध बृहस्पति युति — नृत्य, संगीत प्रेमी होगा

बुध शुक्र युति — मायावी होगा

बुध शनि युति — लोभी क्रूर होगा।

गुरु की युति

गुरु शुक्र युति — विद्वान् होगा।

गुरु शनि युति — रसोई बनाने वाला अथवा घट निर्माता होगा।

शुक्र शनि युति — मन्द दृष्टि तथा स्त्री पर निर्भर होकर धनार्जन करेगा।

शनि की युति उपरोक्त सभी कोष्ठकों में देखे।।२०८-२०९।।

एकस्थैश्चतुराद्यैस्तु खवार्थैः खचरैः पृथक्।
कुजज्ञेज्याजशुक्रार्किसूर्यैः परिव्रजेन्नरः॥२१०॥
शाक्याजीवकवृद्धार्थिचरकाखफलाशनः।
तत्स्वामिभिः परिजितैः प्रव्रज्याप्रच्युतिर्भवेत्॥२११॥
अदीक्षिताल्पस्तगतैः सबलैस्तत्स्थभक्तयः।
जन्मपोन्यैर्यद्यदृष्टो मन्दं पश्यति नारद॥२१२॥
मन्दो वा जन्मपं नष्टं तथा च मन्दकागणे।
भौमार्कांशे सौरदृष्टे चन्द्रे वा दीक्षितो भवेत्॥२१३॥

गृह त्यागी-संन्यासी योग

यदि जन्म कालीन चार ग्रह अथवा चार से अधिक ग्रह एक भाव में हों, तब वह व्यक्ति गृहत्यागी होगा। यदि ऐसे ग्रह में बुध, गुरु, चन्द्र, शुक्र, शनि, सूर्य बली हों, तब यह फल होगा—

बुध बली हो	—	बौद्ध होगा।
गुरु बली हो	—	दण्डी स्वामी होगा।
चन्द्र बली हो	—	यति होगा
शुक्र बली हो	—	वृद्ध श्रावक होगा
शनि बली हो	—	चक्रधारी होगा।
सूर्य बली हो	—	नग्न फलहारी होगा।

यदि प्रव्रज्या उत्पन्न करने वाला ग्रह अन्य ग्रहों से पराजित रहे, तब प्रव्रज्या लेकर भी व्यक्ति उस मार्ग से च्युत होगा। यदि ऐसा ग्रह सूर्य युति से अस्त हो, तब व्यक्ति अदीक्षित होगा। यदि ऐसा ग्रहबली रहे, तब वह प्रव्रज्या के प्रति श्रद्धालु होगा। यदि जन्मराशि के अधिपति को अन्य ग्रह न देखें तथा यदि जन्मराशीश शनि को देखे, किंवा जन्मराशि का निर्वल अधिपति शनि को देखे, किंवा शनि के द्रेष्काण में चन्द्र हो अथवा मंगल-शनि के नवमांशस्थ चन्द्र हो, वह शनि दृष्ट हो, तब जातक विरक्त एवं गृहत्यागी तथा संन्यासी हो जायेगा।।२१०-२१३।।

सुरूपो भूषितोऽश्विन्यां दक्षः सत्यवचा यमे।
बहूभुग्पदास्थौ स्थिरधीः प्रियवाक्तथा॥२१४॥
ब्राह्मे धनीमृगे भोगी रौद्रे हिंस्त्रः शठोऽघकृत्।
दान्तो रोगी शुभोऽदित्यां पुष्यर्यजन्मा कविः सुखी॥२१५॥
धूर्तः शठः कृतघ्नोऽहौ पापः सर्वाशनो भवेत्।
पत्रे भोगी धनी भक्तो दाता प्रियवचा भगे॥२१६॥
धनी भोगी नरोर्यमर्क्षे स्तेनो दृष्टो घृणी करे।
चित्रांवरः सुदृत्त्वाष्ट्रे न च धर्मदयापरः॥२१७॥
द्वीशे लुब्धः पटुः क्रोधी मढैयो आठनोविदेशगः।
शाक्रे धर्मपरस्तुष्टो मूले मानी धनी सुखी॥२१८॥
आप्ये मानी सुखी हृष्टो वैश्श्च नम्रश्च धार्मिकः।
कर्णे धनी सुखी ख्यातो दाता शूरो धनी वसौ॥२१९॥
शेतऽरिहन्ता व्यसनी स्त्रीजितो जाहिभेदिनी।
बुध्ने वक्ता सुखी कान्तः पौष्णे शूरो धनी शुचिः॥२२०॥

अब जन्मनक्षत्र फल कहता हूं।

नक्षत्र	—	फल
अश्विनी	—	सुन्दर तथा भूषण प्रिय
भरणी	—	कार्यदक्ष, सत्यवक्ता
कृत्तिका	—	अधिक भोजन करने वाला परनारीरत, स्थिर मति, प्रियवक्ता
रोहिणी	—	धनी
मृगशिरा	—	भोगी
आर्द्रा	—	हिंसक, शठ, अपराधी
पुनर्वसु	—	इन्द्रियजित्, रोगी सुशील
पुष्य	—	कवि तथा सुखी
आश्लेषा	—	धूर्त्त, शठ, कृतघ्न, नीच, सर्वभक्षी
मघा	—	भोगी, धनी, देवभक्त
पूर्वाफाल्गुनी	—	दानी, प्रियवक्ता
उत्तरा फाल्गुनी	—	धनी, भोगी
हस्त	—	चोर, दुष्ट, निर्लज्ज
चित्रा	—	नाना वस्त्रधारी, धर्मात्मा, दयालु
विशाखा	—	लोभी, चतुर, क्रोधी
अनुराधा	—	भ्रमणशील, विदेश में रहे
ज्येष्ठा	—	धर्मात्मा, सन्तोषयुक्त
मूल	—	धनी, मानी, सुखी
पूर्वाषाढ़ा	—	सुखी, पुष्ट
उत्तराषाढ़ा	—	विनयी धार्मिक
श्रवण	—	धनी, सुखी
शतभिषा	—	शत्रुजित्, व्यसनी
पूर्वभाद्रपद	—	स्त्री के वश में रहे, धनी
उत्तरा भद्रापद	—	वक्ता, सुखी-सुरूप
रेवती	—	धनी, पवित्र मन वाला।।२१४-२२०।।

कामी शूरः कृतज्ञोऽजे कान्तस्त्यागी क्षमी वृषे।
युग्मे स्त्रीद्यूतशास्त्रज्ञः स्त्रैणो ह्रस्वः स्वभे विधौ॥२२१॥
स्त्रीद्विट् क्रोधी हरौ मानी विक्रान्तः स्थिरधीः सुखी।
धर्मी श्लक्ष्णः सुधीः षष्ठे प्राज्ञः प्रांशुर्धनी घटे॥२२२॥
रोगी पूज्यः क्षती कौर्प्ये कवि शिल्पीज्यभे धनी।
मृगेऽलसोऽटनः स्वक्षः परदारार्थहृद्धटे॥२२३॥

अब राशियों में जन्म लेने पर होने वाला फल कहा जाता है।

राशि	—	फल
मेषराशि	—	कामी, कृतज्ञ
वृष	—	सुन्दर, दानी, क्षमाशील
मिथुन	—	स्त्री तथा द्यूतशास्त्रज्ञ
कर्क	—	स्त्रैण, नाटा
सिंह	—	स्त्रीद्वेषी, क्रोधी, मानी पराक्रमी
कन्या	—	स्थिर बुद्धि सुखी, धर्मात्मा
तुला	—	पण्डित, लम्बा, धनी
वृश्चिक	—	रोगी, लोकपूज्य तथा आघात चिह्न वाला
धनु	—	कवि, शिल्पी धनी
मकर	—	कार्य करने में उत्साहहीन, सुन्दर नेत्र वाला
कुंभ	—	परस्त्री तथा परधन हरण करने वाला
मीन	—	कवि एवं शिल्पी।।२२१-२२३।।

सबलेभेभयेवापिसबलेजेखिलफलम्। अन्यथा विपरीतं तत्फलंमेवं परेऽपि न।

ख्यातः स्त्रीद्विट् धनी तीक्ष्णोज्ञः कवि शौण्डिको धनी।
पूज्यो लुब्धोऽधनसखो मेषादौ भास्करे जनौ॥२२४॥
निःस्वोऽर्कभे भूमिपत्रे धनी चान्द्रे स्वभेदनः।
बौधे कृतज्ञो जैवे तु ख्यातः शौक्रेऽन्यदारिकः॥२२५॥
मृगे वह्वात्मजधनः कुम्भे दुःख्यनृती खलः।
स्त्रीद्वेष्यः स्वजनद्वेषीनियरत्यः सधीधनः॥२२६॥
समानार्थः सुपुत्रस्त्रीसर्णः सूर्यादिमे बुधे।
सेनानीः स्त्र्यर्थपुत्राढ्यः दशमैश्यः परिच्छदी॥२२७॥
मण्डलेशः सार्थसुखः सर्पास्यसम्यर्कभाद्गुरौ।
स्त्र्याप्तार्थो मन्दशोकाढ्यो बन्धुद्वेषी धनाघवान्॥२२८॥
सार्थः प्राज्ञः समः ख्यातिः स्त्रीजितोऽर्कादिभे मृगौ।
व्यङ्गजार्थो खप्रसूको विधिमित्रो सुखत्रयः॥२२९॥
सत्पुत्रस्त्रीधनो राजा ग्रामे शोकादिभेऽर्कजे।
भूपज्ञगुणि चौरास्वादृष्टेब्जेजेसृगादिभिः॥२३०॥

जहां चन्द्रराशि बली हो, राशीस्वामी तथा चन्द्र बली रहें, तब उपर्युक्त फल यथोक्त रूप से प्राप्त होंगे। लेकिन इनकी निर्बलता होने पर तदनुरूप फल कम होता जाता है। एवंविध अन्य ग्रहों से सम्बन्धि राशि के अनुरूप फलनिर्णय करें। अब सूर्यादि ग्रह का राशीफल कहते हैं। यथा—

ग्रह	—	**राशि**	—	**फल**
सूर्य	—	मेष राशि में	—	व्यक्ति लोक प्रसिद्ध होगा
सूर्य	—	वृष राशि में	—	स्त्री द्वेषी
सूर्य	—	मिथुन राशि में	—	धनी
सूर्य	—	कर्क राशि में	—	उग्र स्वभाव
सूर्य	—	सिंह राशि में	—	मूर्ख बुद्धि
सूर्य	—	कन्या राशि में	—	कवि
सूर्य	—	तुला राशि में	—	मद्यविक्रयी
सूर्य	—	वृश्चिक राशि में	—	धनी
सूर्य	—	धनु राशि में	—	लोकपूजित
सूर्य	—	मकर राशि में	—	लोभी
सूर्य	—	कुंभ राशि में	—	निर्धन
सूर्य	—	मीन राशि में	—	सुख रहित
मंगल	—	सिंह राशि में	—	निर्धन
मंगल	—	कर्क राशि में	—	धनी
मंगल	—	मेष वृश्चिक में	—	भ्रमणरत
मंगल	—	कन्या, मिथुन में	—	प्रसिद्ध
मंगल	—	धनु, मीन में	—	प्रसिद्ध
मंगल	—	वृष, तुला में	—	प्रसिद्ध
मंगल	—	मकर में	—	बहुसन्तान युक्त धनी
मंगल	—	कुम्भ में	—	दुःखी, दुष्ट मिथ्या स्वभाव
बुध	—	सिंह में	—	स्त्री द्वेषी
बुध	—	कर्क में	—	परिजन द्वेषी
बुध	—	मेष-वृश्चिक में	—	निर्धन, सत्वहीन
बुध	—	मिथुन-कन्या में	—	बुद्धिमान् धनी
बुध	—	धनु-मीन में	—	मानयुक्त धनी
बुध	—	तुला-वृष में	—	पुत्रवान् स्त्रीवान् धनी
बुध	—	मकर-कुंभ में	—	ऋणग्रस्त
गुरु	—	सिंह में	—	सेनानी
गुरु	—	कर्क में	—	स्त्री, पुत्र युक्त धनी

गुरु	—	मेष-वृश्चिक में	—	धनी, क्षमावान्
गुरु	—	मिथनु-कन्या में	—	वस्त्रादि वैभववान्
गुरु	—	धनु-मीन में	—	मण्डलाधिपति
गुरु	—	वृष-तुला में	—	धनी-सुखी
गुरु	—	मकर में	—	ऋणी
गुरु	—	कुंभ में	—	धनी
शुक्र	—	सिंह में	—	स्त्री से धन लाभ
शुक्र	—	कर्क में	—	अभिमानी, दुःखी
शुक्र	—	मेष-वृश्चिक में	—	बन्धुद्वेषी
शुक्र	—	मिथुन-कन्या में	—	धनी, पापी
शुक्र	—	धनु-मीन में	—	धनी, विद्वान
शुक्र	—	वृष-तुला में	—	धनी, क्षमाशील
शुक्र	—	मकर-कुम्भ में	—	स्त्री से पराजित
शनि	—	सिंह में	—	धन, पुत्रहीन
शनि	—	कर्क में	—	धन, पुत्रहीन
शनि	—	मेष-वृश्चिक में	—	बुद्धिहीन, मित्रहीन
शनि	—	मिथुन-कन्या में	—	सुखी
शनि	—	धनु-मीन में	—	सत्पुत्र, उत्तम नारी तथा धनी
शनि	—	वृष-तुला में	—	राजा, राजयोग
शनि	—	मकर-कुंभ में	—	ग्रामाधिपति होगा

यदि मेषस्थ चन्द्र पर मंगल प्रभृति ग्रहों की दृष्टि हो, तब बुध की दृष्टि में राजा, बृहस्पति की दृष्टि में विद्वान, शुक्र की दृष्टि में गुणी, शनि की दृष्टि में चोर तथा धनहीन होगा।।२२४-२३०।।

निः स्वःस्तेननृपाः प्रज्ञप्रेष्यामविनृयुग्मगे।
धात्वाजीवी नृपज्ञाभीतन्तुवायाधनाः स्वभे॥२३१॥
युयुत्सुकविसूरीज्यधातुजीविदृगामयाः। ज्योतिर्ज्ञाढ्येज्यनु खलु नृपेज्ञादिकर्हरौ॥२३२॥
षष्ठे शुभैनृपचमूपनैपुण्यवतिताशयाः। जूके भूपस्वर्णकारवणिजः शेषदृग्युते॥२३३॥

वृषस्थ चन्द्र पर ग्रह दृष्टि—मंगल की दृष्टि से निर्धन, बुध दृष्टि से चोर, बृहस्पति दृष्टि से राजा, शुक्र दृष्टि से पण्डित, शनि दृष्टि से नौकर होगा।

मिथुनराशीस्थ चन्द्र पर ग्रह दृष्टि—मंगल की दृष्टि से धातु व्यापारी, बुध दृष्टि से राजा, बृहस्पति दृष्टि से विद्वान, शुक्र दृष्टि से निर्भय, शनि दृष्टि से जुलाहा तथा निर्धन होगा।

कर्कस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—मंगल की दृष्टि से योद्धा, बुध दृष्टि से कवि, बृहस्पति दृष्टि से विद्वान, शुक्र दृष्टि से धनी, शनि दृष्टि से नेत्र रोगी तथा धातु व्यवसायी होगा।

सिंहस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—मंगल की दृष्टि से ज्योतिषी, बुध की दृष्टि से धनी, बृहस्पति की दृष्टि से पूज्य, शुक्र की दृष्टि से नापित, शनि दृष्टि से तथा भूस्वामी होगा।

कन्याराशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—बुध की दृष्टि पर राजा, गुरु की दृष्टि से सेनानी, शुक्र की दृष्टि से निपुण व्यक्ति होगा। यदि शनि, मंगल किंवा सूर्य दृष्टि हो, तब स्त्री की कृपा से जीविका चलायेगा।

तुला राशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—बुध की दृष्टि से भूपति, गुरु की दृष्टि से सोनार तथा शुक्र की दृष्टि से व्यवसायी होगा। शनि, मंगल, सूर्य की दृष्टि हो तो हिंसक होगा।।२३१-२३३।।

द्विपैतृकाब्धिघ्वजिनो व्यङ्गा स्वक्षितिपा अलौ।
ज्ञातिक्ष्माजनपाश्चापे सद्भिर्दम्भीशठस्तथा।।२३४।।
भूपपण्डितसखे ज्यामृगे भूपान्यदारिकौ।
कुम्भे शेषैश्च हास्यज्ञनृपज्ञाः सद्भिरन्त्यभे।।२३५।।

वृश्चिकराशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—मंगल की दृष्टि से दो सन्तान होगी, बुध की दृष्टि से मृदुस्वभाव होगा, बृहस्पति की दृष्टि से रंगरेज होगा, शुक्र दृष्टि से अंगहीन तथा निर्धन होगा, शनि दृष्टि से भूमिपति होगा।

धनुराशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—बुध, शुक्र, गुरु की दृष्टि हो, तब जातक क्रमशः कुल, पृथिवी तथा जनता का पालक होगा। शनि, रवि, मंगल की दृष्टि से दंभी तथा शठ होगा।

मकर राशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—मंगल की दृष्टि से भूस्वामी, बुध की दृष्टि से विद्वान, बृहस्पति की दृष्टि से पूजित, शुक्र की दृष्टि से राजा, शनि की दृष्टि से परनारीरत होगा।

कुंभराशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—मकर राशि जैसा ही फल जानें।

मीनराशीस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि—बुध से हास्यप्रिय, गुरु दृष्टि से राजा, शुक्र दृष्टि से विद्वान् होगा। पापग्रह रवि, मंगल, शनि की दृष्टि होने पर फल अनिष्टकारी कहा गया है।।२३४-२३५।।

होरेशर्क्षदलस्थैस्तु दृष्टो युक्तः शशी शुभः। त्र्यंशे तत्पतिमित्रर्क्षगतैर्युक्तेक्षितस्तथा।।२३६।।
द्वादशांशे फलं प्रोक्तं नवांशेऽप्यथ कीर्त्यते।
आरक्षेको वधरुचिर्नियुद्धकुशलोऽर्थवान्।।२३७।।
कलहः क्षितिजांशधे शौक्रे मूर्खोऽन्यदारदः। कविः सुखी बुधांशे तु नटचौरज्ञशिल्पिनः।।२३८।।

होरा के स्वामी की होरा में जब चन्द्रमा हो तथा उस पर उसी होरा मैं बैठे ग्रहों की दृष्टि हो, तब यह शुभ योग है। जिस द्रेष्काण में चन्द्र स्थित हो, उसके अधिपति से युक्त चन्द्र किंवा मित्रराशीस्थ ग्रहों से जब युति में चन्द्र हो अथवा उनसे दृष्ट हो, तब वह शुभ फलप्रद होगा। ऊपर प्रतिराशी में स्थित चन्द्र पर अन्य ग्रहगण की दृष्टि का जो फल बतलाया गया है, उन राशियों के द्वादशांश पर स्थित चन्द्र पर भी उन ग्रहगण की दृष्टि का वही प्रभाव होगा। अब नवमांशस्थ चन्द्र पर ग्रहदृष्टि कहते हैं। मंगल की दृष्टि से जातक मूर्ख, बुध दृष्टि से परस्त्री निरत, बृहस्पति की दृष्टि से काव्य कर्त्ता, शुक्र दृष्टि से सुखी तथा शनि दृष्टि से परस्त्री प्रवण होगा। बुध के नवमांशस्थ चन्द्र पर सूर्य की दृष्टि से जातक नर्त्तक, मंगल की दृष्टि से चोर, बुध दृष्टि से विद्वान, बृहस्पति दृष्टि से मन्त्री, शुक्र दृष्टि से संगीतज्ञ, शनि दृष्टि से शिल्पकार, कलाकार होगा।।२३६-२३८।।

स्वांशे त्वल्पतनुः सखस्तपस्वी लोभतत्परः।
क्रोधी निधीशो मात्यो वा नृपे हिंस्रो सुतो हरेः॥२३९॥
जीवांशे हास्याविद्योधा बली मन्त्री च धार्मिकः।
अल्पापत्यो दुःखितो खो दुष्टस्त्रीसौरिभागगे॥२४०॥

यदि कर्क नवमांशस्थ चन्द्र पर सूर्यादि ग्रह दृष्टि हो सूर्य दृष्टि से जाटा, मंगल दृष्टि से धनी, बुध दृष्टि से तपस्वी, बृहस्पति दृष्टि से लोभी, शुक्र दृष्टि से स्त्री द्वारा अर्जित धन से जीवननिर्वाह करने वाला तथा शनि दृष्टि से कर्त्तव्य परायण होगा।

सूर्य के नवमांशस्थ स्थित चन्द्र पर सूर्य दृष्टि से जातक क्रोधी, चन्द्र दृष्टि से राजमन्त्री, मंगलदृष्टि से धनपति, बुध दृष्टि से राजा, शुक्र दृष्टि से हिंसक, शनि दृष्टि से पुत्रहीन होगा। गुरु नवमांशस्थ चन्द्र पर सूर्य दृष्टि से जातक हास्यप्रिय, मंगल दृष्टि से रणकुशल, बुध दृष्टि से बली, बृहस्पति दृष्टि से मन्त्री, शुक्र दृष्टि से धार्मिक तथा शनि दृष्टि से धार्मिक होगा। शनि नवमांशस्थ चन्द्र पर सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि पड़े, तब सूर्य दृष्टि से अल्प संतति, मंगल दृष्टि से दुःखी, बुध दृष्टि से अभिमान वाला, बृहस्पति दृष्टि से कार्य तत्पर, शुक्र दृष्टि से दुष्टा का पति तथा शनि दृष्टि से कृपण होगा।।२३९-२४०।।

भानाविन्द्वादिदृष्टे नु तद्वदेव फलं वदेत्। वर्गोत्तमे खे परभे फलमुक्तं शुभं क्रमात्॥२४१॥
पुष्टं मध्यं लघु ज्ञेयं यदि चांशपतिर्बली।
राशीक्षणफलं रुद्ध्वा ददात्यंशफलं स्फुटम्॥२४२॥

जिस नियम से मेषादि राशीस्थ किंवा उनके नवमांशस्थ चन्द्र पर ग्रहादि के दृष्टि फल यहां वर्णित हैं, तदनुरूप मेषादि राशि किंवा नवमांशस्थ सूर्य पर चन्द्रादि ग्रहों की दृष्टि फल को भी जानें। यदि चन्द्र वर्गोत्तम नवमांशस्थ हो तभी ऊपर कहे शुभ फल पूर्णतः लब्ध होंगे। यदि स्व नवमांशस्थ हो, तब मध्य फल मिलेंगे। यदि अन्य नवमांशस्थ हों, तब अल्प फल लाभ होगा। यदि राशि तथा नवमांश का फल अलग-अलग हो, तब यदि नवमांशाधिपति बली हो, ऐसी स्थिति में राशिफल रुक जाता है। नवमांशस्थ फल ही तब मिलेगा।।२४१-२४२।।

शूरस्तब्धो विकलदृग्निघृणोऽर्के तनुस्थिते।
मेषे धनी तैमिरकः सिंहे रात्र्यन्ध एव च॥२४३॥
नीचोधोस्वः कर्कगेऽर्के उद्बुदाक्षस्तनुस्थिते।
द्वितीयऽर्के बहुधनो नृपदण्ड्यो मुखामयी॥२४४॥
त्रिगे बुधो विक्रमी च विमुखः पीडितो भुवि।
धनापत्योक्तितो धीस्थे बली शत्रुजितोरिगे॥२४५॥
स्त्रीजितो द्यूनसंस्थे च निधनेल्पात्मजोऽल्पदृक्।
सुतार्थसुखभा भाग्ये दशमे श्रुतशौर्यवान्॥२४६॥

लाभे बहुधनो मानी पतितो खोऽव्यये रवौ।
मूकोऽन्धो बधिरः प्रेष्यो जेगे खाच्चाजगे धनी॥२४७॥
बटुर्वा धनवानर्थे हिंस्रो विक्रमगे भवेत्।
साधुभावः सुखगते धीस्थे कन्याप्रजोलसः॥२४८॥
अल्पाग्निकामस्तीक्ष्णोरौईर्ष्युस्तत्रिमदोज्रखे ।
व्यसाधिपीडान्वितो मृत्यौ भानुर्द्धर्मे मित्रधनान्वितः॥२४९॥
धर्मधीधनयुग्राज्ये ख्यातधीधनयुग्भवेत्।
क्षुद्रोऽङ्गहीनो व्ययगे चन्द्रे प्रोक्तं फलं बुधैः॥२५०॥

अब बारहों **भावगत** फलों को कहते हैं—

ग्रह	**स्थान**	—	**फल**
सूर्य	लग्नस्थ	—	शूरवीर, दीर्घसूत्री, नेत्रदुर्बल तथा निर्दयी होगा।
सूर्य	द्वितीयस्थ	—	धनी, राजदण्ड से दण्डित मुखरोगी होगा।
सूर्य	तृतीयस्थ	—	पण्डित-पराक्रमी होगा।
सूर्य	चतुर्थस्थ	—	सुख रहित, पीड़ित होगा।
सूर्य	पंचमस्थ	—	धनहीन, पुत्रहीन होगा।
सूर्य	षष्ठस्थ	—	बली, शत्रुजित् होगा।
सूर्य	सप्तमस्थ	—	स्त्री से पराजित होगा।
सूर्य	अष्टमस्थ	—	अल्प सन्तान, नेत्र दृष्टि कम होगी।
सूर्य	नवमस्थ	—	पुत्रवान्, धनी सुखी होगा।
सूर्य	दशमस्थ	—	बुद्धिमान, शूर होगा।
सूर्य	एकादशस्थ	—	अतीव धनी, मानी होगा।
सूर्य	द्वादशस्थ	—	नीच-निर्धन होगा।
	मेष		
चन्द्र	लग्नस्थ	—	मूक, वधिर, अन्ध तथा भृत्य होगा।
चन्द्र	वृषस्थ	—	धनी होगा।
चन्द्र	द्वितीयस्थ	—	विद्वान, धनी होगा।
चन्द्र	तृतीयस्थ	—	हिंसक होगा।
चन्द्र	चतुर्थस्थ	—	सुखी, गृहादि वाला होगा।
चन्द्र	पञ्चमस्थ	—	कन्या अधिक होगी, आलसी होगा।
चन्द्र	षष्ठस्थ	—	मन्दाग्नि रोगी इच्छित भोग ही न मिलना।
चन्द्र	सप्तमस्थ	—	ईर्ष्यालु अतिकामी।
चन्द्र	अष्टमस्थ	—	रोगी

चन्द्र	नवमस्थ	—	मित्र-धनादि से युक्त।
चन्द्र	दशमस्थ	—	धार्मिक, धनी, बुद्धिशाली।
चन्द्र	एकादशस्थ	—	प्रसिद्ध, बुद्धिशाली, धनी।
चन्द्र	द्वादशस्थ	—	क्षुद्र बुद्धि, अंगहीन।।२४३-२५०।।

लग्ने कुजे क्षततनुर्द्धनगे तु कदन्नभुक्। धर्मपापसमाचारोऽन्यत्र सूर्यसमो मतः॥२५१॥

ग्रह	स्थान	—	फल
मंगल	लग्न में	—	क्षत देह जातक होगा।
मंगल	द्वितीयस्थ	—	कदन्न भोजी
मंगल	नवमस्थ	—	पापबुद्धि

तृतीयस्थ, चतुर्थस्थ, पंचमस्थ, षष्ठस्थ, सप्तमस्थ, अष्ठमस्थ, दशमस्थ, एकादशस्थ, द्वादशस्थ, स्थानस्थ, मंगल का फल सूर्यवत् होगा अर्थात् सूर्य वाली तालिका के अनुरूप फल होगा।।२५१।।

विद्वान् धनी च प्रखरः पण्डितः सचिवोरियुक्।
धर्मज्ञो विस्तृतगुणो गाधो ज्ञेयस्तोऽर्कवत्॥२५२॥

ग्रह	स्थान	—	फल
बुध	लग्नस्थ	—	पण्डित होगा।
बुध	द्वितीयस्थ	—	धनी होगा।
बुध	तृतीयस्थ	—	दुष्ट बुद्धि होगा।
बुध	चतुर्थस्थ	—	पण्डित होगा।
बुध	पंचमस्थ	—	राजमंत्री होगा।
बुध	षष्ठस्थ	—	शत्रु रहित होगा।
बुध	सप्तमस्थ	—	धर्मज्ञ होगा।
बुध	अष्टमस्थ	—	प्रसिद्ध गुणी।

नवमस्थ, दशमस्थ, एकादशस्थ, द्वादशस्थ बुध का फल सूर्यवत् होगा। सूर्यतालिका देखें।।२५२।।

विद्वान्सुवाच्यः कृपणो सुखाक्षो रिपुगृद्धिमान्।
नीचस्तपस्वी चष्णवनी लोभीदुष्टस्तनोर्गुरौ॥२५३॥
स्मरी षुखी विलग्नस्थे कलही सुरतोत्सुकः।
सुखितस्तनपस्ये च भृगौ जीववदन्यतः॥२५४॥

ग्रह	स्थान	—	फल
बृहस्पति	लग्न	—	विद्वान् होगा।
बृहस्पति	द्वितीयस्थ	—	प्रियभाषी होगा।
बृहस्पति	तृतीयस्थ	—	कृपण होगा।
बृहस्पति	चतुर्थस्थ	—	सुखी होगा।

बृहस्पति	पंचमस्थ	—	ज्ञानी होगा।
बृहस्पति	षष्ठस्थ	—	शत्रुहीन होगा
बृहस्पति	सप्तमस्थ	—	ऐश्वर्यवान्
बृहस्पति	अष्टमस्थ	—	नीच स्वभाव
बृहस्पति	नवमस्थ	—	तपःशील
बृहस्पति	दशमस्थ	—	धनी
बृहस्पति	एकादशस्थ	—	नित्य लाभ युक्त
बृहस्पति	द्वादशस्थ	—	दुष्ट हृदय होगा।
शुक्र	लग्नस्थ	—	कामी, सुखी होगा।
शुक्र	सप्तमस्थ	—	कामी होगा।
शुक्र	पञ्चमस्थ	—	सुखी होगा।

अब द्वितीयस्थ, तृतीयस्थ, चतुर्थस्थ, षष्ठस्थ, अष्टमस्थ, नवमस्थ, दशमस्थ, एकादशस्थ, द्वादशस्थ शुक्र का फल वही होगा, जो बृहस्पति प्रकरण में कहा गया है।।२५३-२५४।।

निःस्वो रोगी कामवशो मलिनः शैशवार्तियुक्।
अलसो लग्नगे मन्दे धर्मात्स्वोच्चगते नृपः॥२५५॥
ग्रामाधिपः स विद्वांश्च चार्वङ्गोऽन्यत्र सूर्यवत्।
पूर्णमुच्चेथ पादोनफलं मूलत्रिकोणगे॥२५६॥
शुभग्रहे दलं स्वर्क्षे मित्रभेऽङ्घ्रिमितं फलम्।
शत्रुभेऽल्पं तथा नीचास्तङ्गते फलशून्यता॥२५७॥

लग्नस्थ शनि में जातक निर्धन, रोगी, कामी, मलिन, बचपन में रोगी, आलसी होगा। लेकिन यदि लग्न मकर, कुंभ अथवा तुला हो तथा उसमें शनि हो, तब जातक राजा, ग्रामपति, विद्वान, सुन्दर देह वाला होगा। द्वितीय से लेकर द्वादश भावस्थ शनि का वही फल होगा, जो सूर्य प्रकरण में सूर्य का फल कहा गया है।

अब फल में न्यूनाधिक्य की बात करते हैं—यदि शुभग्रह उच्चस्थ हो, तब पूर्ण फल मिलेगा। यदि वह मूल त्रिकोण में हो, तब ३/४ फललाभ होगा। अपनी राशि में हो, तब १/२ फल मिलेगा। मित्रगृही हो, तब १/४ फल तथा शत्रु राशि में हो, तब अतिन्यून फललाभ होगा। जब नीच राशि में अथवा अस्त हो, तब शून्य फल रहेगा।।२५५-२५७।।

खभराकादिके खेटे कुलतुल्यः कुलाधिकः।
बन्धुपूज्योऽथ धनवान्सुखी भोगी नृपः क्रमात्॥२५८॥

अब **अपनी राशि** में स्थित ग्रहफल कहा जाता है। यदि स्वराशि में एक ग्रह हो, तब जातक पिता के ही समान धनी, यशवान् होगा। यदि दो ग्रह स्वराशीस्थ हों, तब जातक कुल में श्रेष्ठ होगा। तीन ग्रह स्वराशीस्थ होने पर वह बन्धुगण में सम्मानित होगा। यदि चार ग्रह अपनी-अपनी राशि में हों, तब जातक अतीव धनी होगा।

पंचग्रही होने पर जातक सुखी होगा। छः ग्रह जब स्वराशि में हो, तब जातक भोगी होगा। यदि सातों ग्रह स्वराशि में हों, तब वह राजा होगा।।२५८।।

परवित्तसुहृद्बन्धुपोष्यागणबलाधिपौ। नृपश्च मित्रभस्थेषु छेटे घ्रेङ्कादिषु क्रमात्॥२५९॥

यदि मित्राशीस्थ एक भी ग्रह हो, तब जातक अन्य के धन से पाला जायेगा। दो ग्रह मित्रराशि में हो, तब वह मित्र द्वारा पाला जायेगा। ऐसे तीन ग्रह मित्र राशि में हों, तब वह बन्धुजन द्वारा पालित होगा। ऐसे चार ग्रह हों, तब वह स्व-बाहुबल से अपना पोषण करेगा। ऐसे पांच ग्रह मित्रराशीस्थ हों, तब वह स्वयं अनेक का पालन करेगा यदि छः ग्रह मित्र राशि में हो, तब जातक सेनानी होगा। यदि सप्त ग्रह मित्रराशि में हो, तब जातक नृपति होगा।।२५९।।

विषमर्क्षेऽर्कहोरायां संस्थिते शुभभेषु च।
ख्यातो महोद्यमी चातितेजा धीमान्धनी बली॥२६०॥
शुभेषु चन्द्रहोरायां स्थितेषु समराशिषु। कान्तिमार्दुवसौभाग्यभोगधीमान्भवेन्नरः॥२६१॥

जब सूर्य होरा में तथा विषम राशीस्थ पापग्रह हों, तब जातक लोक में प्रसिद्ध, महान् कर्मठ, अति तेजस्वी, बुद्धिशाली, धनी, बली होगा। इसी प्रकार यदि शुभग्रह चन्द्रमा की होरा में हो तथा समराशि हों, तब व्यक्ति कान्तियुक्त, कोमल देह, भाग्यशाली, भोगयुक्त तथा धीमान् होगा।।२६०-२६१।।

सूर्यहोरागतः पापः समभेषु तु मध्यमाः।
विषमर्क्षेषु भास्कर्या सौम्या नोक्तफलप्रदाः॥२६२॥
स्वमित्रत्र्यंशगश्चन्द्रः सुरूपं गुणिनं नरम्। करोत्यन्यगतस्तद्वत्तत्तुल्यगुणरूपिणम्॥२६३॥
व्यालायुधे चतुष्पादाऽञ्जेषु च त्र्यंशकेषु च।
तीक्ष्णोऽतिहिंस्त्रश्च भवेद्गुरुतल्पगतोटनः॥२६४॥

जब पाप ग्रह सूर्य होरा तथा समराशीस्थ हों, उस स्थिति में ऊपर कहा फल अर्द्ध ही प्राप्त होगा। यदि शुभ ग्रह सूर्य होरा तथा विषम राशि में हों, तब ऊपर कहे फल नहीं मिलते। जब चन्द्र अपने अथवा मित्रग्रह के द्रेष्काण में रहे, तब जातक स्वरूपवान्, गुणी होगा। यदि चन्द्र अन्य द्रेष्काण में हो तथा उस द्रेष्काण का अधिपति यदि चन्द्र का मित्र हो, तब आधा फल मिलेगा। यदि शत्रु हो, तब एक चौथाई मात्र फल लाभ होगा। यदि सर्प द्रेष्काण हो, तब जातक उग्र स्वभाव, यदि शस्त्र द्रेष्काण हो, तब जातक हिंसक, चतुष्पद द्रेष्काण हो, तब जातक गुरुपत्नीगामी होगा। यदि पक्षी द्रेष्काण हो, तब पर्यटनशील रहेगा।।२६२-२६४।।

स्तेनो भोक्ता सधनधीर्नृपः क्लीबश्च शत्रुहा।
विष्टिकृद्दासवृत्तिश्च पापोहिंस्त्रोमतिर्भवेत्॥२६५॥
मेषादिकोत्तमांशेषु द्वादशांशेषु राशिवत्।
जायाबलविभूषाढ्यः सत्त्वयुक्तोऽतिसाहसी॥२६६॥
तेजस्वी च नरः खाये त्रिंशांशेऽसृजिसंस्थिते।
आमयी वा स्वभार्यायां विषमः पारदारिकः॥२६७॥

दुःखी परिच्छदयुतो मलिनश्चार्कजे स्वके।
सुखधीधनकीर्त्यालुस्तेजस्वी लोकपूजितः॥२६८॥
नीरगुह्यभवान्भोगी जीवे खत्रिंशभागगे। मेधाकलाकाव्यशिल्पविवादकपटाञ्चितः॥२६९॥
शास्त्रार्थसाहसयुतो बुधे स्वत्रिंशभागगे। बह्वपत्यसुखारोग्यरोगरूपार्थसंयुतः॥२७०॥
ललिताङ्गो विप्रकीर्णेद्रियः स्याद्भार्गवे स्वके।
शूरस्तब्धौ च विषमवधकौ सद्गुणान्वितौ॥२७१॥
सुखेज्ञो चारु चेष्टाङ्गौ चन्द्राकौंचेत्कुजादिगौ।
मूलत्रिकोणस्वक्षौंच्चे कण्ठस्थास्तु च ये ग्रहाः॥२७२॥

अब **लग्न नवमांश सम्बन्धित राशिफल** कहते हैं।

नवमांश	—	फल
लग्न में मेष नवमांश	—	चोर स्वभाव
लग्न में वृष नवमांश	—	भोगी
लग्न में मिथुन नवमांश	—	धनी
लग्न में कर्क नवमांश	—	बुद्धिमान्
लग्न में सिंह नवमांश	—	नपुंसक
लग्न में कन्या नवमांश	—	शत्रु हन्ता
लग्न में तुला नवमांश	—	विष्टि (बेगारी करने वाला)
लग्न में वृश्चिक नवमांश	—	दास
लग्न में धनु नवमांश	—	वृत्ति करने वाला
लग्न में मकर नवमांश	—	पापी
लग्न में कुंभ नवमांश	—	हिंसक
लग्न में मीन नवमांश	—	अल्प बुद्धि होगा।

यदि जो राशि हो, उसी का नवमांश हो (वर्गोत्तम नवमांश) तब जातक उपरोक्त सभी का शासक होगा। उदाहरणार्थ मेष नवमांश में उत्पन्न व्यक्ति चोर स्वभाव होगा, लेकिन यदि मेष राशि में ही मेष नवमांश भी हो, तब जातक चोरों का सरदार होगा। इसी प्रकार इन द्वादश राशि के द्वादशांश में भी मेषादि राशिवत फललाभ होगा।

अब **त्रिंशांश फल** कहा जा रहा है। मंगल स्वत्रिंशांश में स्थित हो, तब व्यक्ति स्त्री, बल, आभूषण युक्त, साहसी बन्धु-बान्धव युक्त, तेजस्वी होगी।

फल

शनि स्व त्रिंशांश में हो — रोगी, स्त्री से कुटिल व्यवहार वाला, परनारीगामी, दुःखी, मलिन, तथापि वस्त्रादि सम्पन्न होगा।

गुरु स्व त्रिंशांश में हो — सुखी, धीमान्, धनी, यशस्वी, तेजस्वी, सम्मानित, रोगहीन, उद्यमी, भोगी होगा।

बुध स्व त्रिंशांश में हो — मेधावी, कलाविज्ञ, काव्य एवं शिल्प प्रवीण, विवादी, कपटी, शास्त्रज्ञ, साहसी होगा।

शुक्र स्वत्रिंशांश में हो — अधिक सन्तान वाला, सुखी, निरोगी, सुन्दर, धनी, मनोहर देह तथा जितेन्द्रियता रहित होगा।

अब **सूर्यचन्द्र फल** कहते हैं—

मंगल त्रिंशांश में सूर्य हो — शूरवीर
मंगल त्रिंशांश में चन्द्र हो — दीर्घसूत्री
बुध त्रिंशांश में चन्द्र हो — कुटिल
बुध त्रिंशांश में चन्द्र हो — हिंसक
गुरु त्रिंशांश में चन्द्र-सूर्य हों — गुणी
शुक्र त्रिंशांश में सूर्य हो — सुखी
शुक्र त्रिंशांश में चन्द्र हो — विद्वान
शनि त्रिंशांश में सूर्य हो — सुरूप देहवाला
शनि त्रिंशांश में चन्द्र हो — सर्वजन प्रिय हो।।२६५-२७२।।

अन्योन्यकारकास्ते स्युः कर्मगस्तु विशेषतः।
शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेसिस्थाने बसद्गृहैः॥२७३॥

अब **कारक ग्रह प्रसंग** कहते हैं—यदि केन्द्र में अपने मूल त्रिकोण में स्थित ग्रह हों, स्वराशि में स्थित ग्रह केन्द्रस्थ हों, उच्चस्थ ग्रह केन्द्रस्थ हो, तब वे परस्परतः शुभ फलदाता अर्थात् कारक होंगे। दशमस्थ ग्रह तो सर्वाधिक कारक होगा।।२७३।।

अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्यगृहेषु च।
गुरुजन्मेशलग्नेशाः केन्द्रस्था मध्यसौख्यदाः॥२७४॥
पृष्ठोभवकोदपक्षस्थितास्त्वन्त्यान्तरादिषु ।
प्रवेशे भास्करकुजौ भृग्वीज्यौ मध्यगौ तथा॥२७५॥

अब **उत्तम जन्म कहते हैं**—यदि वर्गोत्तम नवमांशस्थ लग्न किंवा चन्द्र हो, सूर्य से द्वितीय स्थान में शुभग्रह हों, केन्द्र में उपरोक्त कारक ग्रह हों, तब जातक सुखी यशस्वी होगा। यदि गुरु, जन्मराशि किंवा लग्नेश में से कोई अथवा सभी एक ही केन्द्र में रहें, तब व्यक्ति के जीवन का मध्य भाग सुखी होगा। पृष्ठोयस्थ राशीस्थ ग्रह जीवनान्त में, द्विस्वभाव राशीस्थ ग्रह जीवन के मध्य भाग में तथा शीर्षोदय राशीस्थ ग्रह जीवन के आदि में फलप्रद होते हैं।

अब **ग्रह गोचर का फल काल** कहते हैं—सूर्य तथा मंगल राशि प्रवेश काल में फलप्रद होते हैं। शुक्र-बृहस्पति राशि मध्य में फलद होते हैं।।२७४-२७५।।

चन्द्रार्कीफल दावन्त्ये सदा ज्ञः फलदायकः। लग्नात्पुत्रे कलत्रे वाब्जाच्छुभेशयुतेक्षिते॥२७६॥
स्यात्तयोः सम्पदः स्वत्वमन्यथाथाङ्गगतोदयः।
रवौ मीनेऽर्कजः स्त्रीघ्नः पुत्रस्थस्तु तथा कुजः॥२७७॥
सिमातुर्याष्टगैः क्रूरैर्यद्वा क्रूरान्तरे सितः। सद्ग्रहायुतदृष्टश्चेदग्निपातान्मृतिः स्त्रियाः॥२७८॥
लग्नाद्यपाणिगतयोः शशिरव्योः सह स्त्रिया।
एकेन यस्य जन्माहुरथ सप्तमसंस्थयोः॥२७९॥

चन्द्र-शनि राशि के अन्त्य तृतीयांश पर आने के समय शुभा-शुभ गोचरफल देते हैं। बुध सर्वदा शुभाशुभ फलप्रद रहता है।

अब शुभ अशुभफल कहते हैं—जब लग्न से किंवा चन्द्र से पंचम तथा सप्तम भाव शुग्रह से तथा स्वामी से युक्त हों अथवा इनसे दृष्ट हों, तब जातक पुत्र तथा स्त्री सुख लाभ करेगा। अन्यथा उसे ये सब सुलभ नहीं रहेंगे। जब कन्या लग्न में सूर्य तथा मीन लग्न में शनि हो, ये दोनों स्त्री नाशक कहे गये हैं। जब मेष-वृष राशि के अतिरिक्त राशि में पंचम भाव पड़े तथा उसमें मंगल हो, तब यह पुत्रनाशक योग है। यदि शुक्र से लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम इन चारों केन्द्र में पापग्रह हों किंवा दो पापग्रह के मध्य शुक्र हो, इन पर शुभग्रह दृष्टि न हो शुभग्रह योग न हो, तब जातक की पत्नी गिर कर अथवा अग्निदाह से मृत होगी। यदि जातक के लग्न से द्वादश किंवा छठे भाव में चन्द्र सूर्य हों वह काने सन्तान को उत्पन्न करेगा। यह मुनिगण का कथन है। लग्न से सप्तम किंवा।।२७६-२७९।।

नवधीगतयोर्वापि विकलस्त्रीसितार्कयोः।
कोणोदयेऽस्तान्त्यसन्धौ भृगौ बन्ध्यापतेर्जनिः॥२८०॥
सुतभं चेन्न सौम्याढ्यमथान्त्यास्तोदयर्क्षगैः।
पापे धीस्थे विधौ क्षीणजन्मा सुतकलत्रिणः॥२८१॥

नवम एवं पंचम में शुक्र-सूर्य हों, तब जातक की पत्नी विकलांग होगी। यदि शनि लग्नस्थ हो शुक्र सप्तमस्थ हो तथा ये कर्क, वृश्चिक, मीन राशि के अन्तिम अंश में हों, तब जातक की पत्नी वन्ध्या होगी। यदि द्वादश, सप्तम भाव में तथा लग्न में पापग्रह हों तथा पंचम भाव शुभग्रह समन्वित किंवा दृष्ट न हो, पंचमस्थ क्षीण चन्द्र हो, तब व्यक्ति पुत्रहीन तथा स्त्रीहीन रहेगा।।२८०-२८१।।

शनौ खेगेऽस्ते सशुक्रे तदृष्टे पारदारिकः।
तौ चेत्सेन्दुस्त्रिया सार्द्धं पुंश्चलो जायते नरः॥२८२॥

शनि के राशि नवांश में शुक्र सप्तमस्थ हो, शनि से दृष्ट हो, तब जातक परस्त्रीगामी होगा। यदि शनि तथा शुक्र चन्द्रमा से युति करें, तब व्यक्ति परस्त्री में आसक्त रहेगा। उसकी पत्नी परपुरुष के प्रति आसक्त रहेगी।।२८२।।

भृग्वब्जयोरस्तगयोर्नरो भार्या सुतोऽपि वा।
नृस्त्रियोस्तु शुभैर्दृष्टौ तौ द्वौ परिणताङ्गकौ॥२८३॥

खास्ताम्बुगैरिन्दुशुक्रपापैर्वंशविनाशकः। शिल्पी त्र्येशे बुधयुते केन्द्रसंस्थार्किवीक्षिते॥२८४॥
दास्यां जातः सौरिभागे रिःफगे भृगुनन्दने।
नीचोऽर्केन्दोरस्तगयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन वा॥२८५॥

शुभग्रह से दृष्ट शुक्र-चन्द्र सप्तमस्थ हो, तब पति-पत्नी दीर्घायु वृद्धावस्था पर्यन्त जीवित रहेंगे। यदि दशमस्थ चन्द्र, सप्तमस्थ शुक्र तथा चतुर्थस्थ पापग्रह हों, तब जातक का वंश समाप्त हो जायेगा। बुध जिस किसी द्रेष्काण में हो तथा केन्द्रस्थ शनि से दृष्ट हो, वह जातक शिल्प में प्रवीण होगा। द्वादशस्थ शुक्र शनि के नवमांश में हो, तब वह जातक दासीपुत्र है। यदि सूर्यचन्द्र सप्तमस्थ होकर शनिदृष्ट हों, तब जातक निम्न स्वभावयुक्त होगा।।२८३-२८५।।

पापदृष्टौ शनिकुजावस्तगौ वातरुक्प्रदौ।
कर्काल्यंशगते केन्द्रे पापयुक्ते तु गुह्यरुक्॥२८६॥
पापान्तरगतेऽङ्गेऽब्जे रवौ द्यूने तु कुष्ठयुक।
चन्द्रे खेऽस्तङ्गते भौमे विकलो वेशिगेऽर्कजे॥२८७॥

सप्तमस्थ शनि तथा मंगल पर पापग्रह की दृष्टि होने पर जातक वातरोग ग्रस्त होगा। यदि पापग्रहों के बीच स्थित चन्द्रलग्नस्थ हो, तब शिशु कुष्ठरोगी होगा। यदि चन्द्र दशमस्थ हो, मंगल सप्तमभावस्थ हो, शनि सूर्य से द्वितीय भाव में हो, तब वह जातक विकलांग रहेगा।।२८६-२८७।।

मिथो भांशगयोः शूली रवीन्द्वोर्युतयोः कृशः।
निधनारिधनान्त्यस्था रवीन्द्वारयमा यदा॥२८८॥
चलद्ग्रहेण दोषेण कुर्वन्त्यनयनं नरम्।
सौम्या दृष्टा न वायत्रिधीगताः पापखेचराः॥२८९॥
कर्णोपघातका द्यूने रदवैकृत्यकारकाः। लग्ने गुरौ द्युने मन्दे वातरोगार्दितो भवेत्॥२९०॥
सुखेऽस्ते वा कुजे जीवे लग्ने वार्कियुतोदये।
कुजेन वात्मजे द्यूने संज्ञेऽन्येऽब्जे च सोन्मदः॥२९१॥

सूर्य-चन्द्र दोनों एक दूसरे के नवमांश में हों, तब बालक शूलरोग से आक्रान्त होगा। यदि सूर्य-चन्द्र एक ही भाव में हों, तब व्यक्ति दुर्बलशरीर होगा। यदि सूर्य अष्टमस्थ, चन्द्र षष्टस्थ, मंगल द्वितीयस्थ तथा शनि द्वादशस्थ हो, तब इन चारों में जो सबसे बली होगा, उसी से सम्बन्धित विकार (त्रिदोष में से एक) से जातक नेत्रहीन रहेगा। यदि नवम, एकादश, तृतीय तथा पंचम भाव पापग्रहयुक्त हों, वे शुभग्रह दृष्ट न हो, तब जातक कर्णरोगी होगा। यदि सप्तमस्थ पापग्रह शुभग्रह द्वारा न देखे जाते हों, तब जातक दन्तरोगी होगा। यदि चतुर्थ किंवा सप्तम भाव मंगलयुक्त हो तथा बृहस्पति लग्नस्थ हो अथवा शनि लग्नस्थ हो तथा मंगल नवम अथवा पंचम अथवा सप्तम में हो, किंवा बुध-चन्द्र द्वादश भावस्थ हो, तब इन योगत्रय में जातक उन्मादग्रस्त कहा गया है।।२८८-९१।।

धीधर्मार्थान्त्यगैः पापैर्भसमस्यान्निबन्धनम्। सर्पशृङ्खलया शाठ्यैर्दृक्कैर्बल्यशुभेक्षितैः॥२९२॥

समन्देऽब्जे वक्रदृष्टे पस्मारी दुर्वचाः क्षयी।
रविमन्दकुजैः खस्थैः सौम्यदृष्टैः समण्डलैः॥२९३॥
भृतकाः पूर्व मुदितैर्वरमध्याधमा नराः।
पुञ्चनौ तु फलं पण्यस्त्रीणां योग्यं वदेच्च तत्॥२९४॥
तत्स्वामिष्वखिलं कार्यं तद्भर्तृमरणं मृतौ। लग्नेन्दुगं वपुश्चैव यादयूपपतिद्युने॥२९५॥

जब पंचम, नवम, द्वितीय तथा द्वादश भाव पापाग्रह युक्त रहे, तब वह जातक बन्दी होता है। (यहां लग्न की राशि के आधार पर बन्धन निर्णय किया जाये) यदि चतुष्पद राशि लग्न में हो, तब वह बिना रस्सी हथकड़ी बेड़ी के बन्दी होगा। यदि सर्प-शृंखला, पाश नामक द्रेष्काण लग्न में पड़े, उस पर बली पापग्रह की दृष्टि हो, तब भी बन्धन होगा। जब मण्डलयुक्त चन्द्र से शनि की युति हो तथा चन्द्र-शनि मंगल से दृष्ट हों, उस जातक को मृगी तथा क्षयरोग होगा। वह जातक कटुवचन वक्ता होगा। यदि मण्डल युक्त चन्द्र पर दशमस्थ सूर्य, शनि तथा मंगल की दृष्टि पड़े, तब वह जातक नौकर होगा। यदि यह केवल एक ग्रह से ही दृष्ट हो, तब भृत्य उत्तम होगा। दो से दृष्ट हो, तब मध्यम, जब तीनों से दृष्ट हो, तब वह भृत्य अधम होगा।

अब **स्त्री जातक का विशेषत्व** कहते हैं। यहां पुरुष जातक का जो फल किसी स्त्री जातक से परिलक्षित हो वे समस्त स्त्री मात्र में भी होते हैं। जो फल स्त्री में संभव न हों, वे सभी उसके पति में होंगे। किसी स्त्री के पति की मृत्यु का ज्ञान अष्टम भाव से करें। उस पति के देह के शुभाशुभ का आकलन लग्न तथा चन्द्र की स्थिति से करें। स्त्री के सौभाग्य तथा पति गुण-रूपादि का निर्णय सप्तम भाव से करें।।२९२-२९५।।

युग्मेषु लग्नशिशिनोर्वनिता प्रकृतिस्थिता।
सच्छीलभूषणयुता शुभसंदृष्टयोस्तयोः॥२९६॥
पुरुषाकृतिशीलाढ्या तयोरोजस्थयोर्मता।
अथ पापा गुणोनाश्च पापवीक्षितयोस्तयोः॥२९७॥

यदि उस स्त्री के जन्मकालीन लग्न की तथा चन्द्र की स्थिति समराशि में हो, वे सम नवमांश में हों, तब वह स्त्री स्त्रित्वपूर्ण स्वभाव वाली होगी यदि जन्मकालीन लग्न तथा चन्द्र को शुभग्रह देखें तब वह स्त्री शीलवान् होती है, उसका शील ही तब उसका आभूषण कहलाता है। यदि लग्न तथा चन्द्र विषम राशि किंवा विषम नवमांशस्थ हो, तब वह नारी पुरुष जैसे आकार की झलकती है तथा उसका स्वभाव पुरुषवत् होता है। यदि उस स्त्री के लग्न तथा चन्द्र पर पापग्रह की दृष्टि हो, तब वह स्त्री गुण रहित एवं पापवृत्ति वाली हो जाती है।।२९६-२९७।।

कुजार्कीज्यज्ञशुक्राणां कुजर्क्षे क्रमशोऽङ्गना।
बाल्यदुष्टा तथा दासी साध्वी मायावती त्वरा॥२९८॥
दुश्टावाक् पुनर्भूः सगुणा विज्ञा ख्याता स्फुजिद्ग्रहे।
बौघे समाया क्लीवा च सती गुणवती चला॥२९९॥

यदि लग्न एवं चन्द्राश्रित मंगल की मेष अथवा वृश्चिक राशि में ही मंगल का त्रिंशांश हो जाये, तब

वह स्त्री अपनी बालक वय से ही दुष्ट स्वभावा होगी। इसमें शनि त्रिंशांश हो, तब वह दासी होगी। ऐसी स्थिति के गुरु का त्रिंशांश स्त्री को सच्चरित्र बनाता है। बुध त्रिंशांश होने पर दुःस्वभावा, गुरु का त्रिंशांश हो, तब गुणी, बुध का त्रिंशांश कला ज्ञाता, शुक्र त्रिंशांश हो, तब वह प्रसिद्ध नारी होगी। यदि मिथुन-कन्या लग्न हो अथवा चन्द्र में मंगल त्रिंशांश हो, तब नारी मायावती होगी। वहां शनि का त्रिंशांश हो, तब वह नुपंसक होगी। वहां यदि गुरु त्रिंशांश हो, तब पतिव्रता, बुध का त्रिंशांश है। तब गुणज्ञा, शुक्र का त्रिंशांश हो, तब चंचला होगी।।२९८-२९९।।

द्वन्द्वभे स्वैरिणीशघ्नी गुणाढ्या शिल्पिकाधमा।
वाचाटा कुलटा सिंहे राज्ञी पुन्धीरगम्यता॥३००॥

कर्कस्थ लग्न किंवा चन्द्र में मंगल त्रिंशांश पड़े, उस स्थिति में वह स्त्री स्वेच्छाचाररत, शनि का त्रिंशांश हो, तब पति हेतु हानिकारक, गुरु त्रिंशांश हो, तब गुणज्ञा, बुध का त्रिंशांश हो, तब शिल्पकला प्रवीणा, शुक्र का त्रिंशांश हो, तब अधमा कुलटा होगी। जब सिंह राशि के लग्न अथवा चन्द्रमा में मंगल का त्रिंशांश हो, तब नारी पुरुषवत् आचरण करेगी। वहां शनि त्रिंशांश हो, तब कुलटा, गुरु त्रिंशांश ाहो, तब राजरानी, बुध का त्रिंशांश हो, तब कुलटा, गुरु त्रिंशांश हो, तब राजरानी, बुध का त्रिंशांश हो, तब उसकी बुद्धि पुरुष जैसी होगी। जब ऐसी स्थिति में शुक्र त्रिंशांश हो, तब वह स्त्री अगम्यगामिनी कही गयी है।।३००।।

जैवे गुणाढ्याऽल्परतिर्गुणज्ञा ज्ञानिनी सती।
दासी नीचरता साध्वी मान्दे दुष्टा नपत्यका॥३०१॥
लग्नेन्दुयुक्तैस्त्रिंशांशैः फलमेतद्बलानुगम्।
दृग्गैः मिथोंशे शुक्राकौं शौक्रे चेद्वा घटांशके॥३०२॥

जब लग्न धनु अथवा मीन हो, उसमें अथवा चन्द्रमा में मंगल का त्रिंशांश हो, वह नारी गुणी होगी, शनि का त्रिंशांश हो, तब वह नारी अल्पभोग चाहेगी, गुरु त्रिंशांश हो, तब वह गुणज्ञा होगी, बुध त्रिंशांश हो, तब ज्ञानी होगी, शुक्र त्रिंशांश हो, तब पति-परायणा होगी। यदि लग्न मकर अथवा कुंभ हो तथा लग्न किंवा चन्द्र में मंगल का त्रिंशांश हो, तब नारी दासी होगी, शनि का त्रिंशांश नारी को नीच पुरुष के प्रति आकर्षित तथा युक्त करेगा, गुरु का त्रिंशांश पतिपरायणा करेगा, बुध का त्रिंशांश दुष्ट स्वभावा बनायेगा, शुक्र त्रिंशांश हो, तब नारी सन्तान रहित होगी। ग्रहों के बलाबल से लग्न एवं चन्द्रराशि का फल कम अथवा अधिक होता है। जहां वृष, तुला लग्न में कुंभ नवमांश हो, किंवा शुक्र के नवमांश में शनि का तथा शनि के नवमांश में शुक्र का नवमांश हो, वहां।।३०१-३०२।।

स्त्रीभिः स्त्री मैथुनं याति मदनानलदीपिता।
शून्ये कापुरुषो द्यूने बले क्लीवो न सदृशि॥३०३॥
बुधार्क्योश्चरभे नित्यं परेदेशपरायणः। तत्सृष्टा मदगे सूर्ये स्त्रीबालविधवा कुजे॥३०४॥
पापदृष्टे शनौ द्यूने कन्यैवापद्यते जराम्।
आग्नेयैर्विधवास्तस्थैः पुनर्भूमिश्रकैर्भवेत्॥३०५॥

तो स्त्री कामासक्त होकर स्त्री से ही कामक्रीड़ा करती है।

अब **पतिभाव** का वर्णन किया जाता है। यदि नारी के सप्तम भाव में कोई ग्रह न हो, सप्तम भाव शुभग्रह-दृष्ट न हो, तब पति कुत्सित होगा। यदि सप्तमस्थ बुध-शनि हों, जो शुभग्रह दृष्ट न हों, तब पति नपुंसक होगा। यदि सप्तम भाव चरराशि का हो, तब पति विदेश स्थित रहेगा। यदि स्त्री के सप्तमभाव में सूर्य स्थित हो, तब वह नारी पति द्वारा त्यक्ता होगी। सप्तम में मंगल नारी को बालविधवा करता है। यदि नारी के सप्तम भाव में पापग्रह दृष्ट शनि विराजित हो, तब नारी अविवाहिता रहती वृद्ध हो जायेगी। सप्तम में एकाधिक पापग्रह हो, तब वह नारी वैधव्य भोगेगी। यदि सप्तम स्थान में शुभग्रह तथा पापग्रह साथ हों, तब वह नारी पति के जीवित रहते अन्य पुरुष का साथ करेगी अथवा (पुनर्भू) होगी।।३०३-३०५।।

क्रूरे हीनबलेऽस्तस्थे पतित्यक्ता न सदृशि।
मिथोंशगैः सितारौ तु कुरुतोऽन्यरतां स्त्रियम्॥३०६॥
शीतरश्मिर्यदा द्यूने तदा भतुरनुज्ञया। सौरारक्षे लग्नगते सेन्दुशुक्रे तु बन्धकी॥३०७॥
मात्रा सार्द्धमसदृष्टे तथा कौजेंशकेऽस्तगे।
मन्ददृष्टे व्याधियोनिः सद्ग्रहांशे पतिप्रिया॥३०८॥

नारी के सप्तम भावस्थ पापग्रह जब निर्बल हों, वे शुभग्रह दृष्ट न हों, तब पति उसे त्याग देगा। यदि शुभग्रह द्वारा दृष्ट हों, तब वह पति की प्रिया नारी होगी। यदि मंगल नवमांश में शुक्र हो, शुक्र नवमांश में मंगल हो, तब नारी परपुरुषरत होगी। यही योग हो, तथापि चन्द्रमा सप्तमस्थ हो, तब वह पति की आज्ञा पालन करने वाली होगी। यदि लग्न मकर, कुंभ, मेष, वृश्चिक हो तथा वहां चन्द्र-शुक्र दोनों हों, तब नारी कुलटा होगी। जब सप्तम भाव में मंगल नवमांश हो जो शनि दृष्ट हो, तब उस नारी को योनि रोग होगा, तथापि सप्तम भाव से जब शुभग्रह का नवमांश हो, तब वह नारी पति को प्रिय होगी।।३०६-३०८।।

मन्दर्क्षे वांशके द्यूने वृद्धौ मूर्खः पति स्त्रियाः।
स्त्रीलोलः क्रोधनः कौजे बौधे विद्वांश्च नैपुणः॥३०९॥
जितेन्द्रियो गुणी जैवे चान्द्रे कामी मृदुस्तथा।
शौक्रे सौभाग्ययुक्कान्तः सौरेति मृदुकर्मकृत्॥३१०॥

यदि सप्तम भाव मकर या कुंभ राशि का हो अथवा नवमांश शनि का वहां पड़े, तब नारी का पति बूढ़ा एवं मूढ़ होगा। जब सप्तमभाव मेष अथवा वृश्चिक राशि का हो अथवा वहां मंगल का नवमांश हो, तब उस नारी का पति क्रोधी लालची रहेगा। यदि वहां बुध नवमांश हो, तब पति धीमान्, कुशल होगा। गुरु का नवमांश हो अथवा सप्तम भाव धनु अथवा मीन राशि का हो, अथवा सप्तमभाव गुरु नवमांश का हो, तब नारी का पति इन्द्रियजित् गुणवान् होगा। सप्तम भाव जब कर्क राशि हो अथवा वहां चन्द्र नवमांश हो, तब नारी का पति सुरूप एवं कामी होगा। जब सप्तम भाव वृष किंवा तुला हो अथवा शुक्र नवमांश सप्तम भाव में हो, तब नारी का पति भाग्यशाली तथा सुरूप होगा। जब सप्तमभाव सिंह राशि का हो अथवा सूर्य नवमांश सप्तमभाव में हो, उस नारी का पति कोमल स्वभाव तथा मेहनती होगा।।३०९-३१०।।

शुक्राब्जयोर्लग्नगयोः सुखिनीर्ष्यासमन्विता।
ज्ञेंद्वोः कलासु निपुणा सुखिता च गुणान्विता॥३११॥
शुक्रज्ञयोस्तु सुभगा कलाज्ञा रुचिराङ्गना।
अनेकसौख्यार्थगुणा लग्ने सौम्यत्रये स्थिते॥३१२॥

नारी की कुण्डली में शुक्र चन्द्र लग्नस्थ हो, तब वह स्त्री मत्सरगुण वाली तथा सुखी होगी। बुध-चन्द्र लग्नस्थ हो, तब वह नारी कलाविद्, सुखी तथा गुणान्वित होगी। यदि शुक्र-बुध लग्नस्थ हों, तब वह नारी सौभाग्यशाली, कलाविद् परमरूपवती होगी। जब स्त्री के लग्न में तीन शुभग्रह हों, तब वह नाना सुख, प्रभूत धन तथा गुणवान् होगी।।३११-३१२।।

क्रूरेऽष्टमेऽष्टमेशांशे यस्य स्यात्तद्वयः समे।
वैधव्यं च मृतिस्तस्या स्वयंसत्स्वर्थगेषु तु॥३१३॥
अल्पापत्यत्वमब्जेऽस्याः कन्यालिहरिगोषु तु।
सौरे मध्यबले चन्द्रशुक्रज्ञैर्बलवर्जितैः॥३१४॥
शेषैः सवीर्यैरोजर्क्षे लग्ने कुरूपिणी भवेत्।
जीवारकविसौम्येषु बलिषु समभे तनौ॥३१५॥
विख्यातानैकशास्त्रज्ञा वनिता ब्रह्मवादिनी।
पापेऽस्ते नवमस्थस्य प्रवज्यामेति भामिनी॥३१६॥
उद्वाहे वरणे प्रश्ने सर्वमेतद्वि चिन्तयेत्।
मृत्युस्थानं पश्यतां स्याद्बलिना धातुकोपतः॥३१७॥

अष्टमस्थ पापग्रहों की स्थिति में, अष्टमेश जिस ग्रह के नवमांशस्थ हो, उस ग्रह के बाल्यादि वय में नारी विधवा होगी। यदि इस स्थिति में शुभग्रह द्वितीयस्थ हों, तब स्वामी के रहते वह नारी मृत होगी। यदि नारी की राशि कन्या, वृश्चिक, सिंह अथवा वृष हो, तब उसकी अल्प सन्तान होंगी। चन्द्र-शुक्र-बुध ये ग्रहत्रय निर्बल हो, शनि मध्यम बल वाला हो, सूर्य-मंगल-शुक्र बली तथा विषम राशि, लग्न में बैठे हों, तब वह नारी कुरूप होगी। जीव, मंगल, शुक्र, बुध बली हो तथा समराशि-लग्नस्थ हों, तब वह नारी नाना शास्त्रज्ञ, ब्रह्मज्ञानी तथा प्रसिद्ध होगी। जिस नारी के सप्तम भाव में पापग्रह हों तथा नवम भाव ग्रहयुक्त हो, तब नवम भाव में जो ग्रह होगा, उस ग्रह के समान प्रव्रज्या प्राप्त करेगी (पूर्व में किसी ग्रह से कैसी प्रव्रज्या मिलती है, यह कहा गया है)। इन सब नियमों का उपयोग विवाह निश्चय करते समय किंवा प्रश्नकाल में करे। अब मृत्युकाल विचार करते हैं। अष्टम भाव को जो ग्रह देखें उसके धातु कोप का (विचार करे)।।३१३-३१७।।

नृणां मृत्युहितं युक्तं भगात्रोस्थोपथभूरिभिः। सवीर्यैर्बहुजोऽग्र्यापक्षतज्वररुगुद्भवः।।३१८।।
तृट्क्षुद्भवश्चाष्टमस्थैः सूर्याद्यैश्चं चरादिषु।
परस्वाध्यवप्रदेशेषु मृत्युः सूर्यमहीजयोः॥३१९॥

स्वबन्धुस्थितयोः पुंसः शैलाग्राभिरुतस्य च।
बन्ध्वस्तकर्मगैर्मदचन्द्रभूजैः प्रहौ मृतिः॥३२०॥

अर्थात् जो सबसे बलवान ग्रह अष्टम भाव को देखे उसके ही धातु के प्रकोप से जातक मृत होगा। अष्टम भाव में जो राशि है, वह कालपुरुष के जिस अंग में पड़े, उस अंग में रोग होने से जातक मृत होगा। यदि अष्टम भाव पर अनेक ग्रह की दृष्टि हो अथवा वहां अनेक ग्रह की युति हो, तब उन ग्रहों से सम्बन्धित रोगों से निधन होगा। अष्टम में सूर्य हो—अग्नि से, चन्द्र हो—जल से, मंगल हो—शस्त्र से, बुध हो—ज्वर से, बृहस्पति हो—अनजानी व्याधि से, शुक्र हो—पिपासा से, शनि हो—क्षुधा से मरण मिलेगा। अष्टम में चर राशि हो, तब विदेश में, स्थिर राशि हो—अपने स्थान में, द्विस्वभाव राशि हो—मार्ग में निधन होगा। यदि सूर्य दशम में मंगल चतुर्थ में हो, तब उच्च स्थान से पतन होने पर निधन कहा गया है। चतुर्थ में शनि, सप्तम में चन्द्र, दशम में मंगल हो, तब कूप में गिरने से मृत्यु होगी।।३१८-३२०।।

स्त्रियां हिमोष्णकरयोः स्वजनात्पापदृक्तयोः।
तोयमृतो रवीन्दू तु स्यातां यद्युभयोदये॥३२१॥
शास्त्राग्निजोऽशुभान्तस्थेर्चन्द्रे भौमगृहस्थिते।
मृत्युश्चाथ मृगे चन्द्रे कर्के मन्दे जलोदरात्॥३२२॥

जब कन्या में सूर्य-चन्द्र युति हो तथा वे पापग्रह दृष्ट हों, तब जातक सम्बन्धी के कारण अथवा उसके द्वारा मृत होता है। यदि मीन लग्न में चन्द्र-सूर्य युति हों, तब मरण जल में होगा। यदि मेष अथवा वृश्चिकस्थ चन्द्र दो पापग्रहों के मध्य में विराजमान हो, तब जातक शस्त्राघात किंवा अग्नि से मृत होगा। जब मकर में चन्द्र तथा कर्कस्थ शनि हो, तब जातक जलोदर व्याधि से मृत होगा।।३२१-३२२।।

स्त्रियामिन्दौ रक्तशोथात्सौरेरज्ज्वग्निपातजः।
पुत्रधर्मस्थस्योर्बधात्पापयोः सददृष्टयोः॥३२३॥

यदि कन्या राशीस्थ चन्द्र दो पापग्रहों के मध्य में स्थित रहे, उस स्थिति में तब जातक का निधन रक्तशोथ व्याधि से होगा। यदि मकरस्थ किंवा कुंभस्थ चन्द्र दो पापग्रहों के मध्य हो, तब रस्सी, अग्नि किंवा उच्चस्थान से पतित होकर मौत होगी। जब पंचमस्थ एवं नवमस्थ भाव पापग्रहयुक्त हों, उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो, तब व्यक्ति बन्धन से मृत होगा।।३२३।।

सपाशसर्पनिगडैर्दृकैर्मृत्यौ तु बन्धनैः। स्त्रियां सपापेऽब्जे द्यूने सिते मेषे रवौ तनौ॥३२४॥
मरणं स्त्रीकृते गेहे ह्यथ तुर्ये कुजे रवौ।
यमे खेऽङ्गत्रिकोणस्थैः क्षीणचन्द्राशुभैः सकृत्॥३२५॥

यदि अष्टम भाव में पाश, सर्प तथा निगड़ द्रेष्काण हो, तब जातक बन्धन में मृत होगा। यदि चन्द्र कन्याराशीस्थ तथा सप्तमभावस्थ हो, वह पापग्रहयुक्त हो, उस समय शुक्र मेषस्थ हो तथा लग्न सूर्ययुक्त हो, तब जातक स्वगृह में ही स्त्री के निमित्त मृत होगा। लग्न में तथा पंचम, नवम भाव में से किसी भाव में पापग्रह समन्वित चन्द्र हो, चतुर्थ में मंगल किंवा सूर्य हों, शनि दशमस्थ हो अथवा सूर्य चतुर्थस्थ तथा मंगल

दशमस्थ हो और निर्बल चन्द्र से देखा जा रहा हो, तब इन उभय योग में काष्ठाघात से जातक का मरण होगा।।३२४-३२५।।

तुर्येऽर्के खे कुजे क्षीणचन्द्रदृष्टे समिद्धतः।
रन्ध्रखाङ्ग जलैः क्षीरेन्द्वारार्किरविसंयुतैः।।३२६।।
लकुटेनाथ तैरेव खाङ्काङ्गतनयस्थितैः। धूमानिबन्धनैः कार्यः कुदनैर्मरणं भवेत्।।३२७।।
बन्ध्वस्तखस्थैर्भौमार्कमन्दैः शस्त्राग्निराजभिः।
सौरेन्द्वारैः स्वाम्बुखस्थैः क्षतकेभ्यङ्ग्या ततः।।३२८।।

जब अष्टम, दशम, लग्न तथा चतुर्थ में क्रमशः क्षीण चन्द्र (अष्टम में), मंगल (दशम में), शनि (लग्न में) तथा सूर्य (चतुर्थ में) हो, तब लगुड़ाघात से मरण होगा। यदि दशम में क्षीण चन्द्र, नवम में मंगल, लग्न में शनि तथा पंचम में सूर्य हो, तब मुद्गर गदा आदि के आघात से मृत्यु होगी। यदि चतुर्थ में मंगल, सप्तम में रवि, दशम में शनि हो, तब जातक का मरण शस्त्र, अग्नि तथा राजा द्वारा होगा। यदि शनि द्वितीय स्थान में, चन्द्रमा चतुर्थ में तथा मंगल दशम में हो, तब कीड़े द्वारा क्षत होने पर मरण होगा।।३२६-३२८।।

खेऽर्के तुर्ये कुजे यानपातादथ कुजेऽस्तगे।
यंत्रोसीदुनतः क्षीणचन्द्रयुक्ते मृतिर्भवेत्।।३२९।।
भौमार्किशीतकिरणैर्जूकाजशनिभस्थितैः। क्षीणेन्द्वर्ककुजैः खास्ताम्बुस्थैर्वारकरे मृतिः।।३३०।।

यदि सूर्य दशमस्थ हों, मंगल चतुर्थस्थ हों, तब वाहन से गिरने से जातक मृत होगा। यदि क्षीण चन्द्र तथा मंगल सप्तम में हो, तब मशीन के आघात से मरण होगा। यदि मंगल, शनि, चन्द्र, तुला, मेष अथवा मकर-कुंभ में हो अथवा क्षीर चन्द्र, सूर्य, मंगल दशम, सप्तम, चतुर्थ में हो, तब मल के निकट मृत्यु होगी।।३२९-३३०।।

बल्यारदृष्टे क्षीर्णेदौ मन्दे निधनसंस्थिते।
गुह्यरुक्कृमिशस्त्राग्निदारुजो मृत्युरङ्गिनः।।३३१।।
सौरेऽर्केऽस्ते मृतौ मन्दे क्षीणेन्दौ भुव्यसंयुते।
लग्नध्यायास्तपःस्थार्कभौमचन्द्रनिशाकरैः ।।३३२।।
शैलशृङ्गस्वरूपग्रपातौनुर्निधनं भवेत्। दृक्कोन्तरे तुर्द्वाविंशस्तत्पतिर्मृत्युपोपि वा।।३३३।।
स्वगुणैर्निधनं कुर्याद्बलवान्यो द्वयोर्भवेत्।
लग्नांशेशसदृक्स्थाने मृत्युर्योगेक्षणादिभिः।।३३४।।
मोहोऽन्तेनुदितांशस्य तुल्यो द्विघ्नः स्वपेक्षिते।
शुभेक्षिते नु त्रिगुणः कल्प्यमन्यत्स्वबुद्धितः।।३३५।।

यदि निर्बल चन्द्र जन्मपत्र में बली मंगल से देखा जा रहा हो, शनि सप्तमस्थ हो, तब जातक का निधन गुह्य रोग से, कीट, शस्त्र, अग्नि किंवा काष्ठाघात से होगा। यदि मंगल-सूर्य की युति सप्तम भाव में हो, शनि

अष्टमभाव में हो, निर्बल चन्द्र चतुर्थस्थ हो, तब मरण का कारण पक्षी होगा। यदि लग्न में सूर्य, पंचम में मंगल, अष्टम में शनि नवम में चन्द्र हो, तब वज्रपात से, दीवार से गिरकर अथवा पर्वत से फिसल कर मृत्यु होगी। यदि लग्न से द्वादशवां द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भाव के द्रेष्काण के स्वामी किंवा अष्टम भाव के स्वामी में से जो अधिक बली हो, उसके गुण के अनुसार व्यक्ति का मरण का कारण बनेगा। यदि लग्न में जो नवमांश है, उसके स्वामी ग्रह जिस राशि में हों, तब उस पर जिस ग्रह की दृष्टि हो अथवा युति हो, वैसे ही स्थान में मानव मृत होगा। लग्न का जितना अंश भोग्य हो, तदनुसार जो समय हो, उतने मरण काल तक व्यक्ति मोहग्रस्त रहेगा। (कोमा में रहेगा)। यदि उस पर अपने अधिपति की दृष्टि हो, तब दूने समय तक व्यक्ति मरणकाल में मोहयुक्त रहेगा। यदि उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो, तब तिगुने काल पर्यन्त मोह रहेगा। इस सम्बन्ध में इन नियमों का चिन्तन करके निष्कर्ष निकाले।।३३१-३३५।।

बह्न्यम्बुभस्मसक्लेदशोषव्यालैर्मृतिस्थितैः। बिन्दुश्चिन्तनीयश्च यथोक्तो मृत्युरकङ्गिनः।।३३६।।

अब **शव की स्थिति** कहते हैं—अष्टम स्थान में जो द्रेष्काण हो, उसके अनुसार जातक की मृत्यु तथा उसके शव का जो आगे हाल होगा, उस पर विचार करने का नियम है। पापग्रह का द्रेष्काण होने पर उसका शव दग्ध होगा। सौम्य द्रेष्काण हो, तब शव जल में गलेगा। यदि यह सौम्य द्रेष्काण पापग्रह युक्त रहे किंवा पाप-द्रेष्काण शुभग्रह समन्वित रहे, तब शव सूर्य रश्मि तथा वायु से शुष्क होगा। यदि अष्टम भाव में सर्प द्रेष्काण हो तथा उस शव का आहार पशु तथा काक आदि करते हैं।।३३६।।

गुरुः शशाङ्कशुक्रौ च सूर्यभौमौ यमेन्दुजौ। देवपित्रतिरक्तोथ नारकान्कुर्युरष्टमे।।३३७।।
रवीन्दुबलवश्रंशनाथाच्छ्रेष्ठसमाधमाः। तुङ्गगः सान्दनुकेनुगतिः षड्रन्ध्रदृक्कपः।।३३८।।

अब **पूर्वजन्म स्थिति** कहते हैं। जातक की कुण्डली में सूर्य तथा चन्द्र में से जो बली हो, वह बली जिस द्रेष्काण में हो, उसे द्रेष्काण के स्वामी के लक्षणानुरूप पूर्वजन्म रहा होगा।

द्रेष्काण स्वामी	— पूर्वजन्म स्थिति
सूर्य अथवा मंगल जब स्वामी हो	— मृत्युलोक में था।
शनि अथवा बुध जब स्वामी हो	— नरक में था।
जब द्रेष्काण स्वामी उच्चस्थ हो	— देवादि लोक में था।
यदि द्रेष्काण स्वामी उच्च-नीच के बीच में हो	— तब किसी लोक में मध्यम स्थिति में था।
यदि द्रेष्काण स्वामी नीचस्थ हो	— उस लोक में निम्न श्रेणी में था।

अब **भावी जन्म क्या होगा,** यह कहते हैं—षष्ठ तथा अष्टम भाव के द्रेष्काण के स्वामीद्वय में से जो अधिक बली हो, जातक मृत्यु होने पर उस ग्रह के लोक को प्राप्त करेगा। सप्तम स्थान में यदि बली ग्रह हो, तब वह स्वस्थान में मृतक को ले जायेगा।।३३७-३३८।।

द्यूनस्थितो गुरुर्वापि रिपुकेन्द्रविनाशगः।
स्वोच्चस्थोऽङ्गे व्यये सौम्यभागे मोक्षो बलान्यतः।।३३९।।
आधाने जन्मज्ञाने तु वृक्षतां लग्नतो वदेत्।
पूर्वापरार्द्धैलग्नस्य सौम्ये वाच्यपनेजनिः।।३४०।।

लग्नत्रिकोणे धीज्यत्र्यंशैर्विकल्पावयवाः समाः।
गीष्मोगेऽर्के परे रम्यापनताम्पृतुरर्कभात्॥३४१॥
चन्द्रज्ञजीवावृत्यस्याः शुक्रारार्किभिरन्यथा। दृक्कैराद्यैः पूर्वमासस्तिथिस्तत्रानुपाततः॥३४२॥

जब **जन्म समय न ज्ञात हो, तब उसे जानने की विधि** कहते हैं—ऐसा जातक प्रश्नलग्न को ही जन्मकाल माने। प्रश्नलग्न का पूर्व भाग १५ अंश तक उत्तरायण तथा शेष उत्तर भाग १६ अंश से ३० अंश तक दक्षिणायन होगा। द्रेष्काण द्वारा लग्न, पंचम, नवम में गुरु को माने तब प्रश्नकर्त्ता की आयु के ही आधार पर वर्षमान का आकलन करे। लग्न में सूर्य होने पर ग्रीष्म ऋतु मानें। सभी ग्रहों के ऋतु का वर्णन इतिपूर्व किया गया है, तदनुसार ऋतु निश्चित करे। यदि अयन के अनुसार ऋतु गणना न हो सके, अयन गणना तथा ऋतु में भिन्नता हो जाये, तब चन्द्र-बुध-तथा गुरु सम्बन्धित ऋतुओं की जगह पहले शुक्र तब मंगल तदनन्तर शनि की ऋतु परिवर्त्तित करे। ऋतु को सदा सौरमास से ही लेना चाहिये। जब अयन तथा ऋतु की गणना हो जाये तथा लग्न द्रेष्काण में पूर्वार्द्ध हो, तब ऋतु का पहला मास समझे, उत्तरार्द्ध होने पर द्वितीय मास समझें। अब इसी पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के जो भुक्त अंश हो, उस अनुपात से तिथि का ज्ञान किया जाये।।३३९-३४२।।

विलोमजन्म भागैश्च वेला रात्रिद्युसंज्ञके।
त्रिकोणोत्तमवार्यैवि लग्नं वा लभनाभने॥३४३॥

अब अज्ञात जन्मकाल का **दिन-रात्रि में जन्म कब हुआ** इसका ज्ञान तथा **जन्मलग्न ज्ञान** कहा जा रहा है। जब प्रश्नलग्न में दिन संज्ञक अथवा रात्रि संज्ञक राशि हो, तब दिन संज्ञक राशि में रात्रि का जन्म तथा रात्रि संज्ञक राशि में दिन का जन्म माने। तब लग्न के अंशादि को जानकर उसके अनुसार इष्ट-घटी आदि का ज्ञान करे। यदि प्रश्न करने वाला मात्र जन्मलग्न ज्ञानार्थ प्रश्न करता है, तब लग्न, पंचम, नवम में जो राशि बलवान हो, वही जन्म लग्न होगा। प्रश्नकर्त्ता जिस अंग का स्पर्श करते प्रश्न करेगा, उस अंश की राशि को ही जन्मलग्न मानते हैं।।३४३।।

यावदूनो त्रिधुर्लग्नात्तावच्चन्द्राच्च जन्मभे।
गोहरी युग्मवसुभे क्रियजूके मृगाङ्गने॥३४४॥
दशाष्टसप्तषिषये गुण्याः शेषाः स्वसंख्यया।
जीवभौमकविज्ञाः स्युः राघवाद्यायरेज्ञवत्॥३४५॥
भानां नित्यो विधिः खेटवशावद्धर्गणास्तथा।
सप्तघ्नं भहृतं शेषमृक्षं नवधनर्णतः॥३४६॥

अब **जन्मराशि** जानने की विधि कहते हैं—जब जन्मराशि ज्ञान करने के लिये व्यक्ति प्रश्न करे, तब प्रश्न लग्न से जितने भाव आगे चन्द्र हो, उस समय के गोचर चन्द्र से उतने ही भाव आगे जो राशि होगी, वही प्रश्नकर्त्ता की जन्मराशि होती है। अब अन्य **विधि से अज्ञात जन्मकालादि** जानने की विधि कहते हैं।

यदि प्रश्नकाल में वृष अथवा सिंह लग्न हों, तब लग्न राशि आदि को कलात्मक करके १० से गुणा करे। यदि मिथुन-वृश्चिक हो, तब ८ से, मेष या तुला हो, तब ७ से, मकर अथवा कन्या हो, तब ५ से, गुणा

करे। यदि कर्क, धनु, कुंभ, मीन में से कोई लग्न उस समय रहे, तब उसकी कला का गुणा उसकी संख्या से करे। जैसे धनु को गुणा ९ से करे। यदि लग्न में ग्रह हों, तब इस गुणनफल का ग्रहगुणक से गुणा करे। बृहस्पति की स्थिति में १० से, मंगल में ८ से, शुक्र में ७ से, बुध में ५ से रवि-शनि-मंगल में ५ से गुणा करे। लग्नराशि के अनुरूप ही गुणन निर्धारण होता है। यदि वहां ग्रह हो तभी ग्रहगुणक होगा। जितने ग्रह वहां हों सभी के गुणक से गुणा हो। एवंविध गुणनफल ही ध्रुवपिण्ड माना जाये। इसका गुणा सात से करे। तब २७ का भाग दे। जो शेषांक हो तदनुरूप जन्म नक्षत्र निर्धारण होगा। इस संख्या में कभी ९ जोड़ते हैं, कभी ९ घटाकर नक्षत्र ज्ञान करते हैं।।३४४-३४६।।

द्विघ्ने समर्तुमासाः स्युः पक्षतिथ्यौ गजाहते।
सप्तघ्नं होनिशार्क्षाणीषुघ्नेङ्गांशेष्टहोरिका॥३४७॥

इसी ध्रुवपिण्ड का १० से गुणा करे। जो गुणनफल हो, उससे वर्ष-ऋतु-मास का आकलन होगा। पक्ष-तिथि के ज्ञानार्थ ध्रुवपिण्ड का ८ से गुणा करे। उसमें दो का भाग देना चाहिये। यदि १ बचे तब शुक्लपक्ष होगा। दो बचे तब कृष्णपक्ष होगा। यहां भी ९ को योग करके किंवा ९ घटाकर ग्रहण किया जाये। पक्षज्ञानोपरान्त गुणनफल में १५ का भाग दिया जाये। जो शेष बचे वही तिथि होगी। अहोरात्र ज्ञानार्थ ध्रुवपिण्ड में ७ का गुणा करे, तब दो का भाग देकर यदि एक बचे तब दिन, दो बचे तब रात्रि काल होगा। लग्न-नवमांश ज्ञानार्थ, इष्टघटी तथा होरा ज्ञानार्थ ध्रुवपिण्ड में ५ वे गुणा करे। लग्न ज्ञानार्थ १२ से, इष्टघटी ज्ञानार्थ ६० से, नवमांश के ज्ञानार्थ ९ से तथा होरा हेतु दो से भाग देकर जो शेष बचे इससे सबका ज्ञान होता है। अज्ञात जन्म समय होने पर यह सब विधि प्रयोग करे।।३४७।।

पुमान्परशुधृक्कृष्णो रक्तदृग्रक्षितं क्षमः।
तृषार्तैकपदाश्वास्यो रक्तवस्त्रो घटाकृतिः॥३४८॥
कपिलो ह्यन्धदृक्क्रूरो रक्तवस्त्रः क्षतव्रतः। क्षुत्तृषार्तोदुग्धपटो लूनकुञ्चितमूर्धजः॥३४९॥
मलिनः क्षुत्परोजास्यो दक्षः कृष्यादिकर्मणि।
द्विषकायः सरभपात्पिङ्गलो व्याकुलान्तरः॥३५०॥
सौचिकीरूपिणी साध्वी ह्यप्रजोच्छ्रितपाणिका।
उद्याने कवची धन्वी क्रीडेच्छुर्गरुडाननः॥३५१॥
नृत्यादिविद्वरुणवद्वहुरत्नोधनुर्धरः। द्विपास्यकण्ठक्रोडास्यः काननेशरमाहिकः॥३५२॥
आतव्यशाखां पालाशी रौति मूर्द्धाहिकर्कशा।
चिपिटास्यो हि संवीतो नौस्थः स्त्र्यर्थंव्रजज्जले॥३५३॥
श्वा नरो जम्बुकङ्गृधं गृहीत्वा रौति शाल्मलौ।
धन्वी कृष्णाजिनी सिंहवाश्वोन्नतमातुरः॥३५४॥
फलामिषघ्नः कूर्चौ ना भल्लास्यः कपिचेष्टितः।
पुष्पपूर्णच्छटाकन्याविद्येल्ला मलिनांवरा॥३५५॥

धन्वीव्ययापकृच्छ्यामो लिपिकृद्रोमशोनरः। गौरीधौतांशुकासूच्चाकुम्भहस्तासुरालये॥३५६॥

अब **द्रेष्काण विवरण** कहा जा रहा है। द्रेष्काण का स्वरूप है कृष्णवर्ण पुरुष, नेत्र आरक्त हैं, हाथ में परशुधारी है। यह सभी प्राणीगण की रक्षा में समर्थ हैं। यह मेष के प्रथम द्रेष्काण का रूप है। तदनुसार—

द्रेष्काण संख्या		स्वरूप
मेष का द्वितीय द्रेष्काण	—	पिपासा पीड़ित, एक पैर से चले, अश्वमुख रक्तवस्त्रधारी, घटाकृति।
मेष का तृतीय द्रेष्काण	—	कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, क्रूरस्वभाव, लालवस्त्रधारी, स्वप्रतिमा का भंजक।
वृष का प्रथम द्रेष्काण	—	क्षुधा-पिपासा पीड़ित, कटे कुंचित केश, दुग्ध, दुग्धवत् धवलवस्त्रधारी।
वृष का द्वितीय द्रेष्काण	—	मलिन देह, क्षुधा पीड़ित, बकरे के समान मुख, कृषिकार्य प्रवीण।
वृष का तृतीय द्रेष्काण	—	हस्तिवत् विशाल, शरभ जैसे पैरों वाला, पिंगल वर्ण, व्याकुल चित्त।
मिथुन का प्रथम द्रेष्काण	—	धागा सीने-पिरोने के कार्य में रत, रूपवान्, सुशीला, सन्तानहीना, ऊर्ध्वबाहु।
मिथुन का द्वितीय द्रेष्काण	—	कवच, धनुषधारी, उपवन में क्रीड़ार्थ उपस्थित, गरुड़ मुखी स्वरूप पुरुष।
मिथुन का तृतीय द्रेष्काण	—	नृत्यकला निष्णात, वरुणवत् रत्नों के अनन्त भंडार से युक्त, धनुर्धर वीर पुरुष।
कर्क का प्रथम द्रेष्काण	—	गणेश जैसा कण्ठ, शूकरवत् आकृति, शरभपाद, वनवासी।
कर्क का द्वितीय द्रेष्काण	—	सिर पर सर्प धारण करने वाली, पलाश शाखा पकड़कर रुदनरत नारी।
कर्क का तृतीय द्रेष्काण	—	चपटा मुख, सर्पवेष्टित देह, स्त्री के अन्वेषण नौकारूढ़ जलयात्री।
सिंह का प्रथम द्रेष्काण	—	कुत्ते की आकृति, सेमल वृक्ष के नीचे गीदड़ तथा गृध्र के साथ रोता व्यक्ति।
सिंह का द्वितीय द्रेष्काण	—	धनुष, कृष्णचर्मधारी, सिंहवत् वीर, अश्वाकृति व्यक्ति।
सिंह का तृतीय द्रेष्काण	—	फल, भोज्यपदार्थ युक्त, लम्बी दाढ़ी, भल्लूकमुखी, वानरवत् चपल व्यक्ति।
कन्या का प्रथम द्रेष्काण	—	पुष्पयुक्त कलश समन्वित, विद्याभिलाषिनी, मलिन वस्त्रधारिणी, कुमारी।
कन्या का द्वितीय द्रेष्काण	—	धनुर्धारी, आयव्यय का लेखा रखने वाला, श्यामवर्ण, लेखन में निष्णात, रोमयुक्त मनुष्याकृति।
कन्या का तृतीय द्रेष्काण	—	गौरवर्ण, श्वेतवस्त्रधारी, लम्बी, कलश लेकर देवमंदिर गमनोद्यता नगरी।।३४८-३५६।।

मानोन्मान्मापसोतौलीभाण्डमुल्पविचिन्तकः ।
क्षुत्तृड्युतो नरः कुम्भीगृधस्यः स्त्रीसुतोपगः॥३५७॥

धन्वीकिन्तरचेष्टस्तु हैमवर्मामृगानुगः। सिन्धु कूलंव्रजन्तीस्त्रीनानासर्पसिताङ्घ्रिका॥३५८॥
सौख्यस्पृहाह्यावृताङ्गीभर्त्र्र्थङ्कच्छपाकृतिः। कूर्मास्यो मलये सिंहः श्वक्रोडमृगभीषकः॥३५९॥
वास्यः श्वकायो धानुष्को रक्षस्तापसयज्ञिये। चम्पकाभासने मध्या सिन्धुरत्नविवर्द्धिनी॥३६०॥

तुला का प्रथम द्रेष्काण	—	बाट तथा तराजू लेकर बाजार में तौलने वाला, पात्र आदि की कीमत तय करने वाला पुरुष।
तुला का द्वितीय द्रेष्काण	—	कलशधारी, क्षुधा-पिपासा से व्याकुल भटकता, गृध्रमुख, स्त्री सहित विचरणशील पुरुष।
तुला का तृतीय द्रेष्काण	—	धनुर्धारी, हरिणा का पीछा करता, किन्नरवत् चेष्टाशील, स्वर्ण कवचधारी पुरुष।
वृश्चिक का प्रथम द्रेष्काण	—	नारी, पैर अनेक सर्पों से वेष्ठित, समुद्र तट पर गमनोद्यता स्त्री।
वृश्चिक का द्वितीय द्रेष्काण	—	सर्पों से आवरित सर्वाङ्ग, स्वामी का सुख चाहने वाली, कच्छपाकृति।
वृश्चिक का तृतीय द्रेष्काण	—	मलयपर्वतस्थ सिंह जिसका मुख कच्छप जैसा है। वह कुत्तों, शूकरों तथा मृगों को भयभीत कर रहा है।
धनु का प्रथम द्रेष्काण	—	मनुष्यवत् मुख, अश्वदेह, धनुर्धारी, यज्ञ रक्षक तपस्वी व्यक्ति।
धनु का द्वितीय द्रेष्काण	—	चम्पाकुसुमवत् कान्तिमती, आसनासीन, समुद्री रत्नों के लिये वृद्धिप्रद, मध्यम कद की स्त्री।
धनु का तृतीय द्रेष्काण	—	दाढ़ी मूंछ बढ़े हैं। आसनासीन। चम्पापुष्पवत् कान्ति वाला, दण्ड-पट्टवस्त्र मृगचर्म धारण करने वाला।।३५७-३६०।।

कूर्चासने चम्पकाभो दण्डी कौशेयाकानिनी।
परमोऽथे गृध्रमुखः स्नेहमद्याशनस्पृहः॥३६१॥
दग्धानस्था लोहधरा सभूषाभाण्डकच्चरा।
भाण्डी रोमश्रवाः श्यामः किरीटी फलयन्त्रधृक्॥३६२॥
नौस्थोध्वौसंविभूषार्थं नानारत्नकरोञ्चितः।
नौस्थाब्धेः कूलमायान्ती सयूथां चम्पकानना॥३६३॥
गर्ते सर्पावृतो नग्नो रुदंश्चौरानलार्दितः।
एतादृशाःक्रियांशास्तु षड्विंशदुदिताः क्रमात्॥३६४॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं जातकं मुनिसत्तम।
निबोध संहितास्कन्धं लोककृत्युपयोगिनम॥३६५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे बृहदुपाख्याने जातिनिरूपणन्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

धनु का तृतीय द्रेष्काण	—	कूर्चासनस्थ, दाढ़ी मूंछ बढ़ी, चम्पक पुष्पवत् आभा, दण्डी, पट्टवस्त्रधारी, मृगचर्मधारी।
मकर का प्रथम द्रेष्काण	—	रोमपूर्ण देह, मकरवत् दन्त, शूकराकृति।
मकर का द्वितीय द्रेष्काण	—	कमलदलवत् नेत्र, आभूषण प्रिया, श्यामा स्त्री।
मकर का तृतीय द्रेष्काण	—	धनुर्धारी, कम्बल, कलश, कवचधारी, किन्नरवत् पुरुष।
कुंभ का प्रथम द्रेष्काण	—	गृध्रमुखी, तैल, घृत, मधुपायी, कम्बलधारी पुरुष।
कुंभ का द्वितीय द्रेष्काण	—	हाथ में लौह, शरीर में आभूषण, मस्तक पर पात्रधारिणी, मलिन वस्त्र पहने दग्ध वाहन पर आसीन नारी।
कुंभ का तृतीय द्रेष्काण	—	कान पर दीर्घ रोमवाला, श्यामल कान्ति किरीटधारी, हाथ में फल-पत्र लिये, पात्र व्यवसायी।
मीन का प्रथम द्रेष्काण	—	भूषण निर्माणार्थ नाना रत्न लेकर समुद्र में नौकारूढ़ पुरुष।
मीन का द्वितीय द्रेष्काण	—	चम्पावत् मनोहर मुखकान्ति वाली नारी जो सपरिवार नौकारूढ़ होकर समुद्र से किनारे आ रही है।
मीन का तृतीय द्रेष्काण	—	गर्त्त के पास चोर तथा अग्निपीड़ित होकर रुदनरत, सर्प वेष्टित, नग्नदेह।

एवंविध मेषादि राशियों के ३६ द्रेष्काणों का वर्णन स्वरूप क्रमेण किया। हे मुनिप्रवर नारद! यह संक्षिप्त रूप से जातक स्कन्ध वर्णित है। अवलोक-व्यवहारार्थं अति उपयोगी संहिता स्कन्ध सुनें।।३६१-३६५।।

।।५५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

त्रिस्कन्ध ज्योतिष-संहिता प्रकरण

सनन्दन उवाच

क्रमाच्चैत्रादिमासेषु मेषाद्याः सङ्क्रमा मताः।
चैत्रशुक्लप्रतिपदि यो वारः स नृपः स्मृतः॥१॥
मेषप्रवेषे सेनानीः कर्कटे शस्यपो भवेत्। समोद्यधीश्वरः सूर्यो मध्यमश्चोत्तमो विधुः॥२॥
नेष्टः कुजो बुधो जीवो भृगुस्त्वतिशुभङ्करः।
अधमो रविजो वाच्यो ज्ञात्वा चैषां बलाबलम्॥३॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे नारद! चैत्र आदि मास में एक के बाद एक मेष प्रभृति द्वादश राशियों में

सूर्य संक्रान्ति होती है। चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के प्रारंभ होते ही जो वार हो, वही वारपति (ग्रह) चान्द्र वर्ष का राजा होता है। जब सूर्य मेष में प्रवेश करे, तब जो वार हो, वही ग्रह सेनापति किंवा मन्त्री होगा। कर्क संक्रान्तिकाल में जो वार हो, वही शस्याधिपति होता है। उस वर्ष का अधिपति सूर्य हो मध्यम (शुभाशुभ) फल देगा। चन्द्र अधिपति हो, तब उत्तम फल होगा। मंगल अधिपति हो, तब अशुभ फल होगा। इस पद पर बुध, गुरु, शुक्र का फल अत्युत्तम मिलता है। शनि अधिपति पद पर बैठकर अशुभ फल देता है। फल आकलन करते समय उस समय के इनके बलाबल को देखकर तब शुभाशुभ निर्णय करे।।१-३।।

दण्डाकारे कबन्धे वा ध्वाङ्क्षाकारेऽथ कीलके।
दृष्टेऽर्कमण्डले व्याधिर्भ्रान्तिश्चोरार्थनाशनम्॥४॥
छत्रध्वजपताकाद्यसन्निभैस्तिमिर्तर्ध्वनैः। रविमण्डलमैर्धूम्रैः सस्फुलिङ्गैर्जगत्क्षयः॥५॥

अब धूमकेतु आदि दर्शनफल कहते हैं—यदि सूर्य मण्डल में लाठी, धड़, काक, चील आदि के चिह्न परिलक्षित हों, तब उस देश में व्याधि, भ्रान्ति, चोर, अर्थनाश के उपद्रव से धन नाश होगा। छत्र, ध्वज, पताका तथा सजल मेघखण्ड दीखे अथवा स्फुलिंग युत धूम सूर्यमण्डल में परिलक्षित हो, तब वह देश नष्ट होगा।।४-५।।

सितरक्तैः पीतकृष्णैर्वर्णैर्विप्रादिपीडनम्। घ्नन्ति द्वित्रिचतुर्वर्णैर्भुवि राजजनान्मुने॥६॥
ऊर्ध्वैर्भानुकरैस्ताम्रैर्नाशं याति चमूपतिः। पीतैर्नृपसुतः श्वेतैः पुरोधाश्चित्रितैर्जनाः॥७॥

यदि सूर्यमण्डल श्वेत, रक्तवर्ण, पीतवर्ण अथवा काला परिलक्षित हो, तब श्वेत होने पर ब्राह्मण, रक्तवर्ण हो, तब क्षत्रिय, पीतवर्ण हो, तब वैश्य, कालावर्ण हो, तब शूद्र पीड़ित होंगे। हे मुनीश्वर! जब दो, तीन, चार प्रकार के वर्ण सूर्यमण्डल में लक्षित हों, तब राजा नष्ट होते हैं। जब सूर्य की ऊर्ध्वगामिनी रक्तवर्ण किरणें लक्षित हों, तब सेनापति नष्ट होते हैं। पीतवर्ण की स्थिति में राजपुत्र, श्वेतवर्ण की स्थिति में राजपुरोहित तथा चित्रवर्ण हों, तब प्रजा का नाश होगा।।६-७।।

धूम्रैर्नृपपिशङ्गैस्तु जलदाधोमुखैर्जगत्। शुभोऽर्कः शिशिरे ताम्रः कुङ्कुमाभा वसन्तिके॥८॥
ग्रीष्मश्चपाण्डुरश्चैव विचित्रो जलदागने। पद्मोदराभः शरदि हेमन्ते लोहितच्छविः॥९॥
पीतः शीते सिते वृष्टौ ग्रीष्मे लोहितभा रविः।
रोगानां वृष्टिभयकृत् क्रमादुक्तो मुनीश्वर॥१०॥

यही धूम्रवर्ण हो, तब राजा, कपिलवर्ण हो, तब मेघ का नाश होगा तथा यदि ये सूर्य किरणें अधोगामी हों, तब संसार नष्ट होगा। जब माघ-फाल्गुन में सूर्य ताम्रवर्ण प्रतीत हों, तब जगत् के लिये शुभ होगा। चैत्र-वैशाख में वह कुंकुमवर्ण, ग्रीष्म में श्वेत-पीत मिला रंग, वर्षा में नाना वर्ण समन्वित, शरद में कमलवर्ण, हेमन्त में रक्तवर्ण सूर्यबिम्ब हो, तब शुभ होगा। यदि (१) अगहन से फाल्गुन पर्यन्त सूर्य बिम्ब पीत हो, (२) श्रावण से कार्त्तिक तक श्वेत हो, (३) चैत्र से आषाढ़ तक लाल परिलक्षित हो, तब क्रमशः प्रथम (१) में रोग, द्वितीय (२) में अवर्षण तथा तृतीय (३) में भयदायक होगा।।८-१०।।

इन्द्रचापार्द्धमूर्तिस्तु भानुर्भूपविरोधकृत्। शशरक्तिनिभे भानौ संग्रामो न चिराद्भुवि॥११॥

मयूरपत्रसङ्काशो द्वादशाब्दं न वर्षति। चन्द्रमासदृशो भानुः कुर्यादभूपान्तरं क्षितौ॥१२॥

जब सूर्य का अर्द्धबिम्ब इन्द्रधनुष जैसा लगे, तब राजाओं में युद्ध होगा। जब वह शशक के रक्त जैसे परिलक्षित हो, तब भी यथा शीघ्र राजाओं में युद्ध होगा। यदि सूर्य का वर्ण मोरपंख ऐसा प्रतीत हो, तब वहां द्वादशवार्षिकी अवर्षण होगा। यदि सूर्य चन्द्रवत् परिलक्षित हो, तब वहां के राजा को अन्य राजा पराजित करेगा तथा राज्य पर अधिकार करेगा।।११-१२।।

अर्के श्यामे कीटभयं भस्माभे राष्ट्रजं तथा। छिद्रेऽर्कमण्डले दृष्टं महाराजविनाशनम्॥१३॥
घटाकृतिः क्षुद्भयकृत्पुरहा तोरणाकृतिः। छत्राकृते देशहतिः खण्डभानुनृपान्तकृत्॥१४॥
उदयास्तमये काले विद्युदुल्का शनिर्यदि। तदा नृपवधो ज्ञेयस्त्वथवा राजविग्रहः॥१५॥
पक्षं पक्षार्द्धमर्केन्दुपरिविष्टावहर्निशम्। राजानमन्यं कुरुतो लोहिताम्बुदयास्तमौ॥१६॥
उदयास्तमये भानुराच्छिन्नः शस्त्रसन्निभैः। घनैर्युद्धं खरोष्ट्राद्यैः पापरूपैर्भयप्रदम्॥१७॥

श्यामवर्ण सूर्य लक्षित होने पर कीटभय, भस्मवत् लक्षित होने पर समग्र राज्य पर आफत टूटेगी, सूर्यमण्डल रन्ध्रमय लक्षित हो, तब सम्राट का नाश होगा। कलशाकृति सूर्य अकाल भय का जनक होगा। तोरणवत् सूर्यबिम्ब ग्राम-नगर का नाशक होगा। छत्राकृति सूर्य देश नाश करेगा। खण्डित दीखने वाला सूर्य बिम्ब राजा का नाश करता है। जब सूर्योदय-सूर्यास्त काल में बिजली गरजे, वज्रपात एवं उल्कापात हो, तब राजा का नाश हो तथा राजाओं में युद्ध छिड़े। जब साढ़े सात दिन किंवा १५ दिन सूर्य पर तथा रात्रि में चन्द्र पर मण्डल परिलक्षित हो अथवा इनके उदय तथा अस्तकाल में सूर्य शस्त्राकृति लगे अथवा गर्दभ-उष्ट्राकृति मेघों से खण्डित प्रतीत हो, तब राजाओं में युद्ध छिड़ेगा।।१३-१७।।

याम्यशृङ्गोन्नतश्चन्द्रः शुभदो मीनमेषयोः। सौम्यशृङ्गोन्नतः श्रेष्ठो नृयुङ्मकरयोस्तथा॥१८॥
घटोक्ष्णस्तु समः कर्कचापयोः शरसन्निभः। चापवत्कौर्महर्योश्च शूलवत्तुलकर्कयोः॥१९॥
विपरीतोदितश्चन्द्रो दुर्भिक्षकलहप्रदः। आषाढद्वयमूमेन्द्रधिष्ण्यानां याम्यगः शशी॥२०॥

अब चन्द्रशृङ्गोन्नति फल कहा जा रहा है। यदि मीन तथा मेष राशि में चन्द्र का दक्षिण शृंग उन्नत लगे, तब वह शुभ होगा। मिथुन-मकर में शृंगोन्नति शुभ होगी। कुम्भ-वृष में दोनों शृंगों का बराबर होना शुभ है। कर्क-धनुराशि काल में शृंग बाणाकृति हो, तब शुभ होगा। वृश्चिक-सिंह में धनुषाकृति शृंग शुभ है। तुला-कन्या में यह शृंग शूलवत् लगे, तब शुभ है। इससे विपरीत शृंगोदय हो, तब वह मास दुर्भिक्षमय, युद्धमय तथा कलहरूप अशुभफलप्रद होगा। पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मूल, ज्येष्ठा में यदि चन्द्र दक्षिण दिशा में हो।।१८-२०।।

अग्निप्रदस्तोयचरवनसर्पविनाशकृत्। विशाखा मित्रयोर्याम्यपार्श्वगः पापगः शशी॥२१॥
मध्यमः पितृदैवत्ये द्विदैवे सौम्यगः शशी। अप्राप्यपौष्णाभाद्रौद्रामदुक्षाविंशशी शुभः॥२२॥
मध्यगो द्वारदक्षाणि अतीत्य नववासवात्। यमेन्द्राहीशनोयेशमरुतश्चार्द्धतारकाः॥२३॥
ध्रुवादितिद्वैदैवाः स्युरध्यर्द्धाश्चापराः समाः।
याम्यशृङ्गोन्नतो नेष्टः शुभः शुक्ले पिपीलिका॥२४॥
कार्यहानिः कार्यवृद्धिर्हानिर्वृद्धिर्यथाक्रमम्। सुभिक्षकृद्विशालेन्दुरविशालोघनाशनः॥२५॥

तब जलचर पशुपक्षी, वनचर तथा सर्पगण का नाश एवं अग्नि जनित भय होगा। विशाखा एवं अनुराधा में यदि चन्द्र दक्षिण में हो, तब वह पापफलदायक होगा। मघा एवं विशाखा नक्षत्र काल में चन्द्र यदि मध्यभाग में होकर गमन करे, तब शुभ होगा। रेवती से मृगशिरा तक के षड्नक्षत्र, अनागत आर्द्रा से लगाकर द्वादश नक्षत्र **मध्ययोगी** कहे गये हैं। ज्येष्ठा से लगाकर आगे के नौ नक्षत्र **गतयोगी** कहलाता है। इनमें यदि चन्द्र उत्तरस्थ रहे, तब शुभ होगा। भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा, स्वाती ये अर्द्धतारक (४००) कलाभोगी हैं। उत्तरात्रय तथा रोहिणी, पुनर्वसु, विशाखा १२०० कला भोगी हैं। अन्य नक्षत्र सम कला (८०० कला) भोगी हैं। सामान्य नियमानुसार चन्द्र की दाहिनी शृंग का उन्नत होना अशुभ तथा उत्तर शृंग का उन्नत होना शुभ है। यदि तिथि के अनुसार चन्द्रमा की तदनुरूप शुक्लता न हो, तब प्रजा का कार्य नष्ट होगा। जब शुक्लता बढ़ेगी तब प्रजाकार्य वर्द्धित होगा। जब दोनों शृंग समान हो, तब शुभ-अशुभ में सम स्थिति होगी। यदि चन्द्र बिम्ब मध्यमान से बड़ा लक्षित हो, तब अन्न की कमी नहीं होगी, जब मान से छोटा चन्द्रबिम्ब हो, तब दुर्भिक्ष पड़ेगा।।२१-२५।।

अधोमुखे शस्त्रभयङ्कलहो दण्डसन्निभे। कुजाद्यैर्निहते शृङ्गे मण्डले वा यथाक्रमम्।।२६।।
क्षेमान्नं वृष्टिभूपालजननाशः प्रजायते। सत्यानष्टनवमर्क्षेषु सोदयाद्विक्रमे कुजे।।२७।।
तद्वक्रमुष्णांसंज्ञं स्यात्प्रजापीडाग्निसम्भ्रमः। दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशर्वाग्रतीपयः।।२८।।
कूक्रं वक्रमुखं ज्ञेयं सस्यवृष्टिविनाशकृत्। कुजे त्रयोदशे ऋक्षे वक्रिते वा चतुर्दशे।।२९।।
व्यालास्यवक्रं तत्तस्मिन्सस्यवृष्टिविनाशनम्।
पञ्चदशे षोडशर्क्षे वक्रे स्याद्रुधिराननम्।।३०।।
दुर्भिक्षं क्षुद्भयं रोगान्करोति क्षितिनन्दनः। अष्टादशे सप्तदशे तद्वक्रं मुशलाह्वयम्।।३१।।
दुर्भिक्षं धनधान्यादिनाशनं भयकृत्सदा। फाल्गुन्योरुदितो भौमो वैश्वदेवे प्रतीपगः।।३२।।
अस्तगश्चतुरास्यार्क्षे लोकत्रयविनाशकृत्। उदितः श्रवणे पुष्ये वक्रगोधनहानिदः।।३३।।

जब चन्द्रशृंग अधोमुखी हो, तब शस्त्रभय, दण्डाकार हो, तब राजा-प्रजा के बीच विवाद होगा। जब चन्द्रशृंग मंगल, बुध, शुक्र, गुरु, शनि से आहत हों, तब मंगल से आहत होने पर क्षेमनाश, बुध से आहत होने पर अन्ननाश, गुरु से आहत होने पर वर्षानाश, शुक्र से आहत होने पर राजा का नाश तथा शनि से आहत होने पर प्रजा नाश होगा। अब **भौमचार का फल** वर्णन करते हैं—जिस नक्षत्र में मंगलोदय हो, यदि उससे सप्तम, अष्टम, नवम नक्षत्र में मंगल वक्र हो, तब **उष्ण वक्र** होगा। फल है प्रजापीड़ा, अग्निभय, मंगलउदय नक्षत्र से दशम, एकादश, द्वादश नक्षत्र में वक्र हो, तब यह **अश्वमुख वक्र** है। यह अन्न-वर्षा नाशक कहा गया है। यदि इसी प्रकार वह उदय नक्षत्र से १३वें अथवा १४वें नक्षत्र में वक्र हो, तब वह मंगल **व्यामुखवक्र** है। यह भी अन्न-वर्षा हेतु हानिप्रद है। जब वह मंगल अपने उदय नक्षत्र से १५वें अथवा १६वें नक्षत्र में वक्र होता है, तब वह **रुधिरानन वक्र** है। यहां मंगल अकालास्था क्षुधा एवं रोग वर्द्धन करेगा। अपने उदय नक्षत्र से १७वें अथवा १८वें नक्षत्र में जब मंगल वक्र है, तब यह **मुसलवक्र** है, जो धनधान्य नाशक एवं दुर्भिक्षभय प्रदायक है। यदि मंगल पूर्वाफाल्गुनी किंवा उत्तराफाल्गुनी में उदित होता है तथा उत्तराषाढ़ा में वक्र होकर रोहिणी में अस्त हो जाये, यह त्रैलोक्य नाशक है। श्रवण में उदित मंगल जब पुष्य में वक्र हो, तब धनहानि निश्चित है।।२६-३३।।

यद्दिग्गोऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूषभयप्रदः। मघामध्यगतो भौमस्तत्र चैव प्रतीपगः॥३४॥
अवृष्टिशस्त्रभयदः पीड्यं देवा नृपान्तकृत्। पितृद्विदैवधातॄणां भिद्यन्ते गण्डतारकाः॥३५॥
दुर्भिक्षं मरणं रोगं करोति क्षितिजस्तदा। त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां नैर्ऋते श्रवणे मृगे॥३६॥
अवृष्टिदश्चरन्भौमो दक्षिणेरोहिणीस्थितः। भूमिजः सर्वधिष्ण्यानामुदगामी शुभप्रदः॥३७॥
याम्यगोऽनिष्टफलदो भवेद्भेदकरो नृणाम्।
विनोत्पातेन शशिजः कदाचिन्नोदयं व्रजेत्॥३८॥

मंगलोदय जिस दिशा में हो, उस दिशा के राजा हेतु भयप्रद है। मघा मध्य में होकर गतिशील मंगल मघा में ही वक्री हो जाये, तब देश में अवर्षण तथा शस्त्रभय होगा। यह राजा के लिये नाशकारी कहा गया है। जब मंगल मघा, विशाखा, रोहिणी के योग तारा को भेदित करता अग्रगामी हो, तब दुर्भिक्ष, मरण तथा रोग बढ़ेगा। जब उत्तराफाल्गुनी, उत्तरषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, मूल श्रवण तथा मृगशिरा में मध्य में होकर चले तथा रोहिणी के दक्षिण हो जाये, तब अनावृष्टि निश्चित है। जब समस्त नक्षत्रों के उत्तर से मंगल गतिमान रहे, तब वह शुभ प्रदाता रहेगा। दक्षिण होकर चले, तब देश में विरोध उत्पन्न होगा। अब **बुधाचार फल** कहते हैं। यदि आकाश स्वच्छ हो आंधी मेघादि न हो, तब भी बुधोदय न दीखे।।३४-३८।।

अनावृष्टाग्निभयकृदनर्थनृपविग्रहः। वसुवैष्णवविश्वेन्दुधातृभेषु चरन्बुधः॥३९॥
भिनत्ति यदि तत्तारां बाधावृष्टिभयङ्करः। आर्द्रादिपितृभान्तेषु दृश्यते यदि चन्द्रजः॥४०॥
तदा दुर्भिक्षकलहरोगानावृष्टिभीतिकृत्। हस्तादिषट्सु तारासु विचरन्निदुनन्दनः॥४१॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं कुरुते रोगनाशनम्। अहिर्बुध्न्यार्यमाग्नेययाम्यभेषु चरन्बुधः॥४२॥
भिषक्तुरङ्गवाणिज्यवृत्तीनां नाशकृत्तदा।
पूर्वात्रयेचरन्सौम्यो योगं तारां भिनत्ति चेत्॥४३॥
क्षुच्छस्त्रानलचौरेभ्यो भयदः प्राणिनां तदा।
याम्याग्निधातृवायव्यधिष्ण्येषु प्राकृता गतिः॥४४॥

उस स्थिति में देश में अनावृष्टि, अग्नि का उत्पात तथा शासकों में युद्ध होगा। यदि धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढा, मृगशिरा तथा रोहिणी में गतिमान रहता बुध इन नक्षत्रों के योगतारक का भेदन करे, तब फलस्वरूप बाधा, अनावृष्टि प्रभृति उपद्रव होगा। हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा में बुध रहे, तब देश में सभी कल्याण, सुभिक्ष एवं निरोग स्थिति होगी। उत्तरभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, भरणी में संचरणशील बुध वैद्यों, अश्वों तथा व्यवसायीगण के लिये नाशकारक है। यही बुध जब पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा तथा पूर्वभाद्रपद में विचरता है तथा इन नक्षत्रगण के योगतारकों का भेदन करता है, तब फलस्वरूप क्षुधा, अग्निभय तथा चोरों का भय होने लगता है। भरणी, कृत्तिका, रोहिणी तथा स्वाती नक्षत्रगत बुधगति **प्राकृति गति** कही गयी है।।३९-४४।।

रौद्रेन्द्वसार्पपित्र्येषु ज्ञेया मिश्राह्वया गतिः।
भान्वार्यमेज्यादितिषु संक्षिप्ता गतिरुच्यते॥४५॥

बुध गति जब आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा तथा मघा में हो, तब वह **मिश्रगति** है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्रगत बुध गति **संक्षिप्ता गति** है।।४५।।

गतिस्तीक्ष्णाजचरणाहिर्बुघ्न्यभाश्रिभेषुया। योगान्तिकातिविश्वाम्बुमूलमत्स्यैन्यजस्य च॥४६॥
घोरा गतिर्हरित्वाष्ट्रवसुवारुणभेषु च। इन्द्राग्निमित्रमार्तण्डभेषु पापाह्वया गतिः॥४७॥
प्राकृताद्यासु गतिषु ह्युदितोऽस्तमितोपि वा।
यावन्त्येव दिनान्येष दृश्यस्तावत्यदृश्यगः॥४८॥
चत्वारिंशत्क्रमात्रिंशद्रवीन्दू भूसुतो नव। पञ्चदशैकादशभिर्दिवसैः शशिनन्दनः॥४९॥
प्राकृतायां गतः सौम्यः क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत्।
मिश्रसंक्षिप्तयोर्मध्ये फलदोऽन्यासु वृष्टिदः॥५०॥
वैशाखे श्रावणे पौषे आषाढेऽभ्युदितो बुधः। जगतां पापफलदस्त्वितरेषु शुभप्रदः॥५१॥
इषोर्जम्मासयोः शस्त्रदुर्भिक्षाग्निभयप्रदः। उदितश्चन्द्रजः श्रेष्ठो रजतस्फटिकोपमः॥५२॥

बुध की गति पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी में **तीक्ष्णा गति** कही गयी है। उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, मूल में बुधगति को **योगन्तिक गति** कहते हैं। बुध की श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा तथा शतभिषागत गति को **घोरा गति** कहा गया है। विशाखा, अनुराधा, हस्त नक्षत्रगत बुधगति **पापगति** कही जाती है। इन सात गति में उदित होकर जितने कालपर्यन्त बुध दृश्य रहता है, इनमें अस्त होने पर बुध उतने काल तक अदृश्य रहता है, इन दिनों की संख्या है क्रमशः ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ तथा ११। प्राकृत गतिगत बुध की स्थिति में जगत् कल्याणमय, आरोग्यपूर्ण तथा सुभिक्षप्रद रहता है। मिश्र तथा संक्षिप्त गति काल में बुध का फल मध्यम होता है। अन्य गति काल में वह अनावृष्टिप्रद हो जाता है। जब बुध वैशाख, श्रावण, पौष, आषाढ़ में उदित हो, तब पापफलप्रद होगा। बुध इनके अतिरिक्त अन्य मास में उदित होने पर शुभ फलदायक हो जाता है। आश्विन-कार्त्तिक में उदित बुध शस्त्राघात, अग्नि तथा अकाल भयप्रद रहेगा। यदि उदित स्थिति वाले बुध की कान्ति रजतवत् अथवा स्फटिकवत् निर्मल हो, तब उसका अत्युत्तम फल होगा।।४६-५२।।

द्विभाटजोदिमास्तस्य पञ्चमैकादशास्त्रिभात्।
यन्नक्षत्रादितो जीवस्तन्नक्षत्राख्यवत्सरः॥५३॥
कार्तिको मार्गशीर्षश्च नृणां दुष्टफलप्रदः। शुभप्रदौ पौषमाघौ मध्यमौ फाल्गुनौ मधुः॥५४॥
माधवः शुभदो ज्येष्ठो नृणां मध्यफलप्रदः।
शुचिर्मध्यो नभः श्रेष्ठो भाद्रः श्रेष्ठः क्वचिन्नरः॥५५॥
अतिश्रेष्ठ इषः प्रोक्तो मासानां फलमीदृशम्।
सौम्ये भागे चरन्भानां क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत्॥५६॥

अब **बृहस्पति का चार जनित फल** कहते हैं। कृत्तिकादि नक्षत्रद्वय के द्वारा कार्त्तिकादि मास होते हैं। परन्तु आश्विन, फाल्गुन तथा भाद्रपद तीन नक्षत्र से होते हैं। बृहस्पति का उदय जिस नक्षत्र में हो, उससे ही

संवत्सर का नामकरण होता है। कार्तिक एवं मार्गशीर्ष संवत्सर को अशुभ मानते हैं। पौष-माघ संवत्सर शुभफल प्रदायक हैं। फाल्गुन एवं चैत्र संवत्सर मिश्रफलप्रद होते हैं। वैशाख शुभफलदायक तथा ज्येष्ठ मध्यम फल देता है। आषाढ़ मध्यम फल वाला संवत्सर है। श्रवण संवत्सर उत्तम फलदायक है। भाद्रपद संवत्सर कभी श्रेष्ठ रहता है, कभी श्रेष्ठ नहीं होता। आश्विन संवत्सर प्रजा हेतु अतीव श्रेष्ठ है। हे मुनिप्रवर! यह संवत्सर फल कहा गया है। जब बृहस्पति नक्षत्रों के सौम्यभाग (उत्तरमार्ग) से चलता है, वह उस काल में कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्षप्रद होता है।।५३-५६।।

विपरीतो गुरुर्याम्ये मध्ये चरसि मध्यमम्।
पीताग्निश्यामहरितरक्तवर्णोगिराः क्रमात्।।५७।।
व्याध्यग्निचौरशस्त्रास्त्रभयदः प्राणिनां भवेत्।
अनावृष्टिं धूम्रनिभः करोति सूरपूजितः।।५८।।
दिवादृष्टो नृपव्याध्व्यामयं वा राष्ट्रनाशनम्।
संवत्सरशरीरं स्यात्कृत्तिका रोहिणी तथा।।५९।।

जब यह गुरु नक्षत्रों से दक्षिण होकर संचरण करे, तब अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्षप्रद होता है। जब यह मध्य से संचरण करता है, तब मध्यमफलप्रद (शुभाशुभ मिश्रित) होता है। यदि गुरुबिम्ब पीतवर्ण, अग्निवत्, श्याम, हरित किंवा रक्तवर्ण हो, तब पीतवर्ण की स्थिति में प्रजा व्याधिपीड़ित, अग्निवत् में अग्निभय, श्यामवर्ण की स्थिति में चोरभय, हरिवर्ण की स्थिति में शस्त्रभय, रक्तवर्ण होने पर अस्त्रभय होता है। यदि गुरु का वर्ण धूम्रवत् हो, तब यह अनावृष्टि कारक लक्षण है। यदि प्रातः-सायं को छोड़कर दिन में गुरु दृश्य हो, उस स्थिति में राजा का नाश, रोगभय, राष्ट्र नाश होगा। कृत्तिका एवं रोहिणी संवत्सर के शरीर रूप कहे गये हैं।।५७-५९।।

नाभिस्त्वाषाढयुगलमार्द्रा हृत्कुसुमं मघा। दुर्भिक्षाग्निमरुद्भीतिः शरीरे क्रूरपीडिते।।६०।।
नाभ्यां क्षुत्तृड्भयं पुष्ये सम्यङ्मूलफलक्षयः।
हृदयेशस्य निधनं शुभं स्यातसंयुतैः शुभैः।।६१।।

पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा संवत्सर की नाभि हैं। संवत्सर का आर्द्रा हृदय तथा मघा संवत्सर का पुष्प कहा गया है। जब नाभि पापग्रह समन्वित हो, तब क्षुधा-पिपासा से लोग पीड़ा पाते हैं। यदि पापग्रहाक्रान्त पुष्प होता है, तब फलस्वरूप अन्नप्रभृति नष्ट हो जाते हैं। यदि संवत्सर का देह शुभग्रहयुक्त रहे, तब कल्याण एवं सुभिक्ष होगा।।६०-६१।।

शस्यवृद्धिः प्रजारोग्यं युद्धं जीवात्यवर्षणम्।
ईति द्विजातिमध्यां तु गोनृपस्त्रीमुखं महत्।।६२।।
निःस्वनावृष्टिफणिभिर्वृष्टिः स्वास्थ्यं महोत्सवः।
महार्घमपि सम्पत्तिर्देशनाशोऽतिवर्षणम्।।६३।।
अवैरं रोगमभयं रोगभीः सस्यवर्षणे। रोगो धान्यं नभोऽदृष्टिमघाद्यृक्षगते गुरौ।।६४।।

यदि बृहस्पति मघा प्रभृति नक्षत्र में स्थित हो, तब यह फल होगा—तब एक-एक नक्षत्र में यह फल क्रमशः जाने। यथा शस्यवृद्धि, आरोग्य, युद्ध, अवर्षण, द्विजों को कष्ट, गौओं को सुख, राजाओं को सुख, स्त्रीगण को सुख, वायु का अवरोध, अवर्ष, सर्पभय, उत्तम वर्षा, उत्सव-आह्लादमय कार्यक्रमों की वृद्धि, महार्घ, सम्पत्ति वृद्धि, देशनाश, अतिवर्षा, निर्वैर स्थिति, रोग, अभय, रोगभय, अन्नवृद्धि, वर्षा, रोग बढ़ना, धान्य की वृद्धि अवर्षण। यह २७ नक्षत्र गत बृहस्पति का फल है।।६२-६४।।

सौम्यमध्यमयोग्येषु मार्गेषु वीथिकात्रयम्।
शुक्रस्य दस्त्रभाज्ज्ञेयं पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभिः॥६५॥
नागेभैरावताश्चैव वृषभोष्ट्रखराह्वयाः। मृगाजदहनाख्याः स्युर्याम्यान्ता वीथयो नव॥६६॥

अब **शुक्राचार फल** सुनें। शुक्रमार्ग तीन हैं। उत्तरमार्ग इसे सौम्यमार्ग कहते हैं। मध्यमार्ग। अंतिम है—याम्य मार्ग, जिसे दक्षिण मार्ग कहा गया है। प्रत्येक की तीन-तीन वीथियां होती हैं एक-एक वीथी में क्रमशः ३-३ नक्षत्र आते हैं। (इस प्रकार एक वीथी में ९-९ नक्षत्र होंगे)। यहां अश्विनी से गणना प्रारंभ करें। इस तरह से उत्तर से लेकर दक्षिण पर्यन्त जो शुक्रमार्ग हैं, उसमें ९ वीथियां हैं इनके नाम इस प्रकार हैं—

उत्तर सौम्य वीथि	**मध्य वीथि**	**दक्षिण वीथि**
नाग, इभ, ऐरावत	वृष, उष्ट्र, खर,	मृग, अज, दहन।।६५-६६।।

सौम्यमार्गे च तिसृषु चरन्वीथिषु भार्गवः। धान्यार्थवृष्टिसस्यानां परिपूर्तिं करोति हि॥६७॥
मध्यमार्गे च तिसृषु सर्वमप्यधमं फलम्। पूर्वस्यां दिशि मेघस्तु शुभदः पितृपञ्चके॥६८॥
स्वातित्रये पश्चिमायां तस्यां शुक्रस्तथाविधः। विपरीते त्वनावृष्टिर्वृष्टिकृद्बुधसंयुतः॥६९॥

फल

उत्तर वीथि में शुक्र हो — धान्य, धन, वृष्टि शस्य वृद्धि

मध्य वीथि में शुक्र हो — अशुभ फल वृद्धि

(दक्षिण वीथि का फल नहीं कहा गया है)

जब शुक्र मघा से लेकर पांच नक्षत्रों में जाता है, तब पूर्वदिक् से उत्थित मेघ उत्तम वर्षाकारी तथा शुभ होता है। जब शुक्र स्वाती से तीन नक्षत्र तक रहे, तब पश्चिम की ओर के भूभाग के लिये मेघ उत्तम वर्षाकारी एवं शुभ होगा। बाकी सभी नक्षत्र में वह अवर्षण तथा दुर्भिक्ष देता है। जब शुक्र-बुध युति हो, तब उत्तम वर्षा होगी।।६७-६९।।

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममायां च यदा सितः। उदयास्तमनं याति तदा जलमयी मही॥७०॥
मिथः सप्तमराशिस्थौ पश्चात्प्राग्वीथिसंस्थितौ। गुरुशुक्रावनावृष्टिदुर्भिक्षसमरप्रदौ॥७१॥
कुजज्ञजीवरविजाः शुक्रस्याग्रेसरा यदि। युद्धातिवायुदुर्भिक्षजलनाशकरा मताः॥७२॥

कृष्णपक्षीय अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या काल में शुक्रोदय किंवा शुक्रास्त होने पर पृथिवी जलपूर्ण होगी। जब गुरु-शुक्र परस्परतः सप्तम राशि में विराजित हों (?) एक पूर्व वीथि में हो दूसरा पश्चिम वीथिस्थ हो, तब दोनों की स्थिति देश हेतु अवर्षण एवं दुर्भिक्षप्रदायक होती है। राजा लोग आपस में युद्ध

करते हैं। यदि मंगल, बुध, गुरु, शनि, शुक्र के आगे हों, तब युद्ध, अत्यन्त वायु प्रवाह तथा दुर्भिक्ष एवं अवर्षण होगा।।७०-७२।।

जलमित्रार्यमाहीन्द्रनक्षत्रेषु सुभिक्षकृत्। सच्छस्त्रावृष्टिदो मूलेऽहिर्बुध्न्यान्त्यभयोर्भयम्।।७३।।

जब शुक्र उत्तरा फाल्गुनी, आश्लेष तथा ज्येष्ठा में स्थित रहे, तब देश में सुभिक्ष रहेगा। मूलनक्षत्र में शुक्र की स्थिति में शस्त्र भय तथा अवर्षण होगा। जब शुक्र उत्तरभाद्रपद एवं रेवती में रहे, तब भय की स्थिति कही गयी है।।७३।।

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्यभेषु च। चरञ्छनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत्।।७४।।

अब **शनिचार** का वर्णन करते हैं। श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रस्थ शनि सुभिक्षप्रद, आरोग्यप्रद तथा शस्यवृद्धिप्रद होगा।।७४।।

मुखे चैकं गुदे द्वे च त्रीणि के नयने द्वयम्। हृदये पञ्च ऋक्षाणि वामहस्ते चतुष्टयम्।।७५।।

वामपादे तथा त्रीणि दक्षिणे त्रीणि भानि च।
चत्वारि दक्षिणे हस्ते जन्मभाद्रविजस्थितिः।।७६।।
रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभः सौख्यं च बन्धनम्।
आयासः श्रेष्ठयात्रा च धनलाभः क्रमात्फलम्।।७७।।

बहुधारविजस्त्वेतद्वक्रगः फलमीदृशम्। करोत्येव समः साम्यं शीघ्रगेषूत्क्रमात्फलम्।।७८।।

मनुष्याकृति शनि बनाये। अपने जन्म नक्षत्र से नक्षत्र प्रारंभ करके मुख में एक, गुदा में दो, शिर में तीन, नेत्रद्वय में दो, हृदय में पांच, वामहस्त में चार, वामपद में तीन, दक्षिण पद में तीन, दक्षिण हस्त में चार एवं विध नक्षत्र स्थापित करें। शनि का उस समय का नक्षत्र जिस अंग में हो, उसका फल यह है—

शनि आकृति के अंग में उस समय की नक्षत्र स्थिति	**— फल**
मुख में शनियुक्त नक्षत्र हो	— रोग
गुदा में शनियुक्त नक्षत्र हो	— लाभ
शिर में शनियुक्त नक्षत्र हो	— हानि
नेत्र में शनियुक्त नक्षत्र हो	— लाभ
हृदय में शनियुक्त नक्षत्र हो	— सुख
वामहस्त में शनियुक्त नक्षत्र हो	— बन्धन
वामपद में शनियुक्त नक्षत्र हो	— परिश्रम
दाहिने पद में शनियुक्त नक्षत्र हो	— उत्तम यात्रा
दाहिने हस्त में शनियुक्त नक्षत्र हो	— धन लाभ

वक्री शनि ऐसे फल प्रदान करता है। मार्गी का फल मध्यम होगा। शीघ्रगामी का उत्तमोत्तम फल मिलेगा।।७५-७८।।

विष्णुचक्रोत्कृत्तशिराः पङ्गुः पीयूषपानतः। अमृत्युतां गतस्तत्र खेटत्वे परिकल्पितः।।७९।।

वरेण धातुरर्केन्दू तुदते सर्वपर्वणि। विक्षेपावनतेर्वशाद्राहुर्दूरगतस्तयोः॥८०॥

अब **राहुचार का फल** श्रवण करिये। प्रभु नारायण द्वारा चक्र से राहु के मस्तक का उच्छेद किया गया था, तथापि अमृतपान के कारण वह मृत नहीं हो सका तथा उसने ग्रहपद लाभ किया। वह पूर्णिमा एवं अमावस्या पर चन्द्र-सूर्य के लिये कष्टप्रद होता है, तथापि विक्षेप एवं अवनति के प्रभाव से इनसे दूरी बनाये रखता है।।७९-८०।।

षण्मासवृद्ध्या ग्रहणं शोधयेद्रविचन्द्रयोः।
पर्वेशास्तु तथा सत्यदेवा रव्यादितः क्रमात्॥८१॥
ब्रह्मेन्द्विंद्रधनाधीशवरुणाग्नियमाह्वयाः। पशुसस्यद्विजातीनां वृद्धिर्ब्राह्मे तु पर्वणि॥८२॥
तद्वदेव फलं सौम्ये श्लेश्मपीडा च पर्वणि।
विरोधो भूभुजां दुःखमैन्द्रे सस्यविनाशनम्॥८३॥
धनिनां धनहानिः स्यात्कौबेरं धान्यवर्धनम्। नृपाणामशिवं क्षेममितरेषां च वारुणे॥८४॥
प्रवर्षणं सस्यवृद्धिः क्षेमं हौताशपर्वणि। अनावृष्टिः सस्यहानिर्दुर्भिक्षं याम्यपर्वणि॥८५॥

जब एक सूर्यग्रहण हो, तब छः मास पश्चात् अन्य सूर्यग्रहण की गणना करें। इसी प्रकार चन्द्रग्रहण पड़ने के पश्चात् ६ माह में पुनः चन्द्रग्रहणार्थ गणना करें। प्रति छः मास में एक के बाद एक देवता ग्रहणाधिपति होते हैं। इनका विवरण यह है—

ग्रहणाधिपति देवता	पर्व का नाम	फल
ब्रह्मा	ब्रह्मपर्व	पशु, धान्य, द्विजों की वृद्धि।
चन्द्र	चन्द्रपर्व	यही फल होगा, तथापि प्रजा कफ पीड़ित रहेगी।
इन्द्र	इन्द्रपर्व	राजाओं में विग्रह, जगत् में दुःख, कृषि तथा धननाश।
कुबेर	कुबेरपर्व	धान्यवृद्धि।
वरुण	वारुणपर्व	राजाओं की हानि, प्रजा का कल्याण
अग्नि	अग्निपर्व	वर्षा, धान्यवृद्धि, कल्याण होना।
यम	यमपर्व	वर्षा हानि, कृषि हानि, दुर्भिक्ष।।८१-८५।।

वेलाहीने सस्यहानिर्नृपाणां दारुणं रणम्। अतिवेले पुष्पहानिर्भयं सस्यविनाशनम्॥८६॥
एकस्मिन्नेव मासे तु चन्द्रार्कग्रहणं यदा। विरोधो धरणीशानामर्थवृष्टिविनाशनम्॥८७॥

यदि बेला से पूर्व ग्रहण पड़े, तब कृषि हानि, राजाओं को अत्यन्त भय होगा तथा युद्ध छिड़ेगा। जब बेला के पश्चात् (अतिबेल) ग्रहण हो, तब पुष्प हानि, भय, कृषिहानि होगी। यदि एक ही मास में चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण पड़े, तब शासकों में विरोध, धनहानि, वर्षा की कमी होगी।।८६-८७।।

ग्रस्तोदितावस्तमितौ नृपधान्यविनाशदौ। सर्वग्रस्ताविनेन्दू तु क्षुद्व्याध्यग्निभयप्रदौ॥८८॥
सौम्यायने क्षत्रविप्रानितरां हन्ति दक्षिणे। द्विजातींश्चक्रमाद्धन्ति राहुर्दृष्टोदगादितः॥८९॥

यदि सूर्य-चन्द्र ग्रस्त स्थिति में उदय हों (अर्थात् ग्रहण में ही उदित तथा अस्त हों) तब राजा तथा धान्य

नाश होगा। यदि ग्रहणकाल में चन्द्र एवं सूर्य का सर्वग्रास हो, तब दुर्भिक्ष, रोगवृद्धि, अग्निभय होगा। उत्तरायण में ग्रहण हो, तब ब्राह्मण-क्षत्रिय का नाश, दक्षिणायन में ग्रहण हो, तब वैश्य-शूद्र-म्लेच्छादि कष्ट झेलेंगे। यदि सूर्य किंवा चन्द्र बिम्ब से उत्तर भाग, पूर्वभाग में ग्रहण स्पर्श हो, तब उत्तर में ग्रहणस्पर्श में ब्राह्मणों का, पूर्व में ग्रहणस्पर्श होने पर क्षत्रिय का दक्षिण में ग्रहणस्पर्श होने पर वैश्यों का पश्चिम में ग्रहणस्पर्श होने पर शूद्रों का नुकसान होता है।।८८-८९।।

तथैव ग्रासभेदाः स्युर्मोक्षभेदास्तथा दश।
नो शक्ता लक्षितुं देवाः किं पुनः प्राकृता जनाः॥९०॥
आनीय खेटान्गणितांस्तेषां चारं विचिन्तयेत्।
शुभाशुभान्यैः कालस्य ग्राहयामो हि लक्षणम्॥९१॥
तस्मादन्वेषणीयं तत्कालज्ञानाय धीमता। उत्पातरूपाः केतूनामुदयास्तमया नृणाम्॥९२॥

ग्रहणकाल में ग्रास तथा मोक्ष में दस-दस भेदों का उल्लेख है, तथापि इनको देवगण भी लक्ष्य नहीं कर पाते। मनुष्य की तो बात ही क्या? गणित द्वारा ग्रहों की गति, स्पर्श तथा मोक्ष का निर्णय करे। इसके द्वारा मनुष्य ग्रहण कालीन शुभाशुभ फल को जान सकते हैं। अतः धीमान् व्यक्ति इस सम्बन्ध में अन्वेषण करे। मनुष्य हेतु धूमकेतु प्रभृति का उदय एवं अस्त, दोनों ही उत्पात प्रदायक हैं।।९०-९२।।

दिव्यान्तरिक्षा भौमास्ते शुभाशुभफलप्रदाः। यज्ञध्वजास्त्रभवनरक्षवृद्धिङ्गजोपमाः॥९३॥
स्तम्भशूलाङ्कुशाकारा आन्तरिक्षाः प्रकीर्तिताः।
नक्षत्रसंस्थिता दिव्या भौमा ये भूमिसंस्थिताः॥९४॥

ये दिव्य, भौम एवं आन्तरिक्षरूपी उत्पातत्रय कहे गये हैं। ये शुभ-अशुभ उभय फलप्रद होते हैं। यथा—

आन्तरिक्ष उत्पात लक्षण — आकाश से यज्ञध्वज, अस्त्रशस्त्र भवन, हाथी के समान चिह्न, स्ताम्भ, त्रिशूल, अंकुश दीखना।
दिव्य उत्पात लक्षण — साधारण तारकवत् उदित धूमकेतु किसी नक्षत्र के साथ हो।
भौम उत्पात — भूकम्प, सुनामी प्रभृति।।९३-९४।।

एकोऽपि भिन्नरूपः स्याज्जन्तूनामशुभाय वै।
यावन्तो दिवसान्केतुर्दृश्यते विविधात्मकः॥९५॥
तावन्मासैः फलं यच्छत्यसौ सारव्यवत्सरैः।
ये दिव्याः केतवस्तेऽपि शश्वज्जीवफलप्रदाः॥९६॥
ह्रस्वः स्निग्धः सुप्रसन्नः श्वेतकेतुः सुवृष्टिकृत्।
क्षिप्रादस्तमयं याति दीर्घकेतुरवृष्टिकृत्॥९७॥
अनिष्टदो धूमकेतुः शक्रचापसमप्रभः। द्वित्रिचतुःशूलरूपः स च राज्यान्तकृन्मतः॥९८॥

धूमकेतु एक ही होता है, तथापि विभिन्न अशुभफल प्रदानार्थ वह विभिन्नकृति धारी हो जाता है। जितने दिन यह केतु आकाश में परिलक्षित हो, वह उतने मास अथवा सौर वर्ष तक अशुभ किंवा शुभफलप्रद हो जाता है। दिव्यकेतु प्राणीगण को विभिन्न फल देते हैं। जो केतु ह्रस्व, स्निग्ध, प्रसन्न, श्वेत वर्ण हो, उससे उत्तम वृष्टि होगी। विशालाकृति केतु जब शीघ्र अस्तमित हो, तब अवृष्टि होगी। इन्द्रधनुवत् कान्तिमान धूमकेतु अनिष्टकारक हैं। जो केतु दो, तीन, चार आकृति में त्रिशूलवत् परिलक्षित हो, वह राष्ट्र नाशक होगा।।९५-९८।।

मणिहारस्तु वर्णाभा दीप्तिमन्तोऽर्कसूनवः। केतवश्चोदिताः पूर्वापरयोर्नृपहानिदाः॥९९॥

किंशुकबिम्बक्षतजच्छुकतुण्डादिसन्निभाः ।
हुताशनोदितास्तेऽपि केतवः फलदाः स्मृताः॥१००॥

भूसुता जलतैलाभा वर्तुलाः क्षुद्भयप्रदाः। सुभिक्षक्षेमदाः श्वेतकेतवः सोमसूनवः॥१०१॥

यदि सूर्य से सम्बन्धित मणि, हार के वर्ण की आभा वाला केतु पूर्व अथवा पश्चिम में परिलक्षित हो, तब उन-उन दिशा के राजागण की हानि निश्चित है। यदि पलाश, पुष्प, बिम्बफलवत्, रक्तवर्ण तथा शुक की चोंच के वर्ण वाला केतु अग्निकोण में उगे, तब वह शुभद है। भौमसम्बन्धित केतु का रूप वर्त्तुल तथा जल अथवा तैलवत् कान्ति का होता है। यह दुर्भिक्ष भयदायक है। चन्द्र जनित केतु श्वेतवर्ण तथा सुभिक्ष एवं कल्याणप्रद होते हैं।।९९-१०१।।

पितामहात्मजः केतुस्त्रिवर्णस्त्रिदशान्वितः।
ब्रह्मदण्डाद्धूमकेतुः प्रजानामन्तकृन्मतः॥१०२॥
ऐशान्यां भार्गवसुताः श्वेतरूपास्त्वनिष्टनाः।
अनिष्टदाः पङ्गुसुता विशिखाः कमकाह्वयाः॥१०३॥
विकचाख्या गुरुसुता वेष्टा याम्ये स्थिता अपि।
सूक्ष्माः शुक्ला बुधसुताश्चौररोगभयप्रदाः॥१०४॥
कुजात्मजाः कुङ्कुमाख्या रक्ताः शूलास्त्वनिष्टदाः।
अग्निजा विश्वरूपाख्या अग्निवर्णाः सुखप्रदाः॥१०५॥

आन्तरिक्ष केतु पितामहजनित वर्णित हैं। यह ब्रह्मदण्ड से उत्पन्न त्रिवर्ण एवं तीन अवस्था वाला केतु प्रजानाश करता है। ईशान कोण में उदित शुक्र से जनित श्वेतवर्ण केतु अनिष्टोत्पादक होते हैं। शैनश्चर सम्बन्धित शिखारहित **कनक** नाम वाले केतु भी अनिष्टोत्पादक होते हैं। गुरु सम्बन्धित केतु का नाम **विकचकेतु** है। ये दक्षिण में उदित होकर अभीष्ट प्रदान करता हैं। लेकिन इसी दिशा में उदित सूक्ष्म एवं श्वेतवर्ण बुध सम्बन्धित केतु चोरभय एवं रोगभय प्रदाता हैं। मंगल सम्बन्धित केतु रक्तवर्ण तथा सूर्यवत् आकृति के होते हैं। ये दक्षिण में उदित होकर अनिष्ट देते हैं। इनका नाम है **कुंकुम केतु**। अग्नि सम्बन्धित केतु **विश्वरूप केतु** कहे जाते हैं, जो अग्निवत् कान्तिमान् तथा अग्निकोण में उगने पर सुख देते हैं।।१०२-१०५।।

अरुणाः श्यामलाकारा अर्कपुत्राश्च पापदाः।
शुक्रजा ऋक्षसदृशा केतवः शुभदायका॥१०६॥

कृत्तिकासु भवो धूमकेतुर्नूनं प्रजाक्षयः। प्रासादवृक्षशैलेषु जातो राज्ञां विनाशकृत्॥१०७॥

सुभिक्षकृत्कौमुदाख्यः केतुः कुमुदसन्निभः।
आवर्तकेतुसन्ध्यायां सशिरो नेष्टदायकः॥१०८॥

सूर्य सम्बन्धित श्यामवर्ण केतु **अरुण** संज्ञक होते हैं, जो अनिष्टप्रद हैं। ऋक्ष जैसे शुक्रोत्पन्न केतु शुभप्रद कहे गये हैं। कृत्तिका से उत्पन्न केतु प्रजानाशक हैं। महल, वृक्ष तथा पर्वत पर उत्पन्न केतु विनाशी होते हैं। **कौमुद केतु** कुमुदवर्णात्मक होता है। यह सुभिक्षप्रद है। सन्ध्या में मस्तकयुत अदित केतु अनिष्टप्रद होता है।।१०६-१०८।।

ब्रह्मदेवमनोर्मानं पित्र्यं सौरं च सावनम्। चान्द्रमार्क्षं गुरोर्मानमिति मानानि वै नव॥१०९॥

एतेषां नवमानानां व्यवहारोऽत्र पञ्चभिः।
तेषां पृथक्पृथक्कार्यं वक्ष्यते व्यवहारतः॥११०॥

अब काल का मान कहा जाता है। ये नवधा होते हैं। इनका नाम है ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र, ब्रार्हस्पत्य। सामान्यतः व्यवहार में पांच मान ही आते हैं, तथापि इनका कार्य व्यहारानुरूप पृथक् होता है।।१०९-११०।।

ग्रहाणां निखिलश्चारो गृह्यते सौरमानतः। वृष्टेर्विधानं स्त्रीगर्भः सावनेनैव गृह्यते॥१११॥

प्रवर्षणां समे गर्भो नाक्षत्रेण प्रगृह्यते। यात्रोद्वाहव्रतक्षौरे तिथिवर्षेशनिर्णयः॥११२॥

पर्ववास्तूपवासादि कृत्स्नं चान्द्रेण गृह्यते। गृह्यते गुरुमानेन प्रभवाद्यब्दलक्षणम्॥११३॥

मान का नाम	उनके कार्य
सौरमान	इनसे ग्रहों की गति ज्ञात होती है।
सावनमान	वर्षा का समय तथा स्त्रीप्रसवकाल का ज्ञान।
चान्द्रमान.	यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि, वर्षेश निर्णय, पर्व-उपवासादि का ज्ञान।
नाक्षत्र मान	घटीमान आदि इससे ज्ञात होता है।
ब्रार्हस्पत्यमान	प्रभवार्दि सांवत्सर रूप ज्ञात होता है।

(ये पांच ही मान उपयोग में लाये जाते हैं। यहां पर ब्राह्मा दैव, मानव, पित्र्य मान का वर्णन नहीं है।)।।१११-११३।।

तत्तन्मासैर्द्वादशभिस्तत्तदष्टौ भवेत्ततः। गुरुमध्यमचारेण षष्ट्यब्दाः प्रभवादयः॥११४॥

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च॥११५॥

ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः। चित्रभानुस्सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः॥११६॥

सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः। नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥११७॥

हेमलम्बो विलम्बश्च विकारी शार्वरी लवः।
शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ॥११८॥

प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः सामाप्तश्च विरोधकृत्।
परिभावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः॥११९॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मतीः।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनः क्षयः॥१२०॥
नामतुल्यफलाः सर्वे विज्ञेयाः षष्टिवत्सराः।
युगं स्यात्पञ्चभिर्वर्षैर्युगान्येवं तु द्वादश॥१२१॥

इस ब्रार्हस्पत्यमान द्वारा बारह मास तक विभिन्न संवत्सर होते हैं। बृहस्पति की मध्यगति से साठ संवत्सर वर्णित हैं। यथा—प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगीरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, समान, विरोधकृत्, परिभावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन, क्षय। ये नामानुरूप फलदायक हैं। पंचवर्ष का एक युग होता है। इन साठ संवत्सरों के अन्तर्गत् १२ युग कहे गये हैं।।११४-१२१।।

तेषामीशाः क्रमाज्ज्ञेया विष्णुर्देवपुरोहितः।
पुरन्दरो लोहितश्च त्वष्टाहिर्बुध्न्यसंज्ञकः॥१२२॥
पितरश्च ततो विश्वे शशीन्द्राग्न्यश्विनो भगः।
तथा युगस्य वर्षेशास्त्वग्निर्नेन्दुविधीश्वराः॥१२३॥
अथाद्वेशचमूनाथसस्यपानां बलाबलम्।
तत्कालं ग्रहचारं च सम्यग् ज्ञात्वा फलं वदेत्॥१२४॥

इन बारह युगों के स्वामी क्रमिक रूप से ये देवगण हैं। यथा—विष्णु, बृहस्पति, इन्द्र, लोहित, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितर, विश्वेदेव, चन्द्र, इन्द्र-अग्नि। अश्विनीकुमारद्वय तथा भग। प्रत्येक युग में जो पांच वर्ष होते हैं, उनके स्वामी एक-एक वर्ष के हैं—अग्नि, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, शिव। संवत्सर फल ज्ञानार्थ संवत्सर के राजा, मन्त्री, धनेश के बलाबल का विचार करे तथा साथ में तात्कालिक स्थिति का भी विचार करे।।१२२-१२४।।

सौम्यायनं मासषट्कं मृगाद्यं भानुभुक्तितः।
अहः सुराणां तद्रात्रिः कर्काद्यं दक्षिणायनम्॥१२५॥
गृहप्रवेशवैवाहप्रतिष्ठामौञ्जिबन्धनम्। मघादौ मङ्गलं कर्म विधेयं चोत्तरायणे॥१२६॥
याम्यायने गर्हितं च कर्म यत्नात्प्रशस्यते।
माघादिमासौ द्वौ द्वौ च ऋतवः शिशिरादयः॥१२७॥

मकर से मिथुन तक छः राशि में सूर्य की स्थिति से छः मास का उत्तरायण (सौम्यापन) होता है। कर्क से धनु पर्यन्त छः राशि में सूर्य की स्थिति से ६ मास कालीन दक्षिणायन होता है। उत्तरायण देवगण का दिन

तथा दक्षिणायन रात्रि है। उत्तरायण काल में गृह प्रवेश, विवाह, प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य, यज्ञोपवीतादि शुभ कृत्य करें। दक्षिणायन में यह सब वर्जित है, तथापि अतीव आवश्यक हो, तब पूजा आदि से यह सब सम्पन्न करें। शुभ होगा। माघ मास से दो-दो मास गणना करने से ६ ऋतुयें होती हैं।।१२५-१२७।।

मृगाच्छिशिखसन्तश्च ग्रीष्माः स्युश्चोत्तरायणे।
वर्षा शरच्च हेमन्तः कर्काद्वै दक्षिणायने॥१२८॥

मकर से दो-दो राशि में सूर्य स्थिति के अनुरूप शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म ऋतु उत्तरायण में तथा कर्क से दो-दो राशि में सूर्य की स्थिति के अनुरूप वर्षा, शरद-हेमन्त ऋतु दक्षिणायन में होती हैं।।१२८।।

चान्द्रो दर्शावधिः सौरः सङ्क्रान्त्या सावनो दिनैः।
त्रिंशिद्भश्चन्द्रभगणो मासो नाक्षत्रसंज्ञकः॥१२९॥
मधुश्च माधवः शुक्रः शुचिश्चाथ नभस्ततः।
नभस्य इष ऊर्जश्च सहाश्चैव सहस्यकः॥१३०॥
तपास्तपस्य क्रमशश्चैत्रादीनां समाह्वयाः।
यस्मिन्मासे पौर्णमासी येन धिष्ण्येन संयुता॥१३१॥
तन्नक्षत्राह्वयो मासः पौर्णमासी तदाह्वया।
तत्पक्षौ देवपित्राख्यौ शुक्लकृष्णौ तथापरे॥१३२॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक	— चान्द्रमास
एक सूर्य संक्रान्ति से अन्य सूर्य संक्रान्ति तक	— सौरमास
३० दिनों का	— सावन मास
चन्द्र सभी नक्षत्रों का उपयोग २७ दिन में करते हैं	— नाक्षत्रमास

चैत्र मास	—	मधु मास
ज्येष्ठ मास	—	शुक्र मास
श्रावण मास	—	नभः मास
आश्विन मास	—	इष मास
अग्रहायण मास	—	सहः मास
माघ मास	—	तप मास
वैशाख मास	—	माधव मास
आषाढ़ मास	—	शुचि मास
भाद्रपद मास	—	नभस्य मास
कार्त्तिक मास	—	उर्ज मास
पौष मास	—	सहस्य मास
फाल्गुन मास	—	तपस्य मास

यह मासों के अन्य नाम हैं। जिस मास की पौणमासी जिस नक्षत्र वाली हो, उस नक्षत्र नाम से उस मास का नाम रखा गया है। प्रति मास में दो पक्ष हैं। देवपक्ष शुक्लपक्ष है। पितृपक्ष है कृष्णपक्ष।।१२९-१३२।।

शुभाशुभे कर्मणि च प्रशस्तौ भवतः सदा।
क्रमात्तिथीनां ब्रह्माग्नी विरिञ्चिविष्णुशैलजाः॥१३३॥
विनायकयमौ नागचन्द्रौ स्कन्दौऽर्कवासवौ। महेन्द्रवासवौ नागदुर्गादण्डधराह्वयः॥१३४॥
शिवविष्णू हरिरवी कामः सर्वःकली ततः।
चन्द्रविश्वेदर्शसंज्ञतिथीशाः पितरः स्मृताः॥१३५॥

उभय पक्ष शुभ-अशुभ कार्य हेतु उचित माने गये हैं। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर २९ तिथियों के स्वामी २९ देवगण हैं। अमावस्या के स्वामी पितृगण हैं। यथा—

तिथि	—	स्वामी
शुक्ला प्रतिपदा	—	ब्रह्मा
शुक्ला द्वितीया	—	अग्नि
शुक्ला तृतीया	—	विरञ्चि
शुक्ला चतुर्थी	—	विष्णु
शुक्ला पंचमी	—	गौरी
शुक्ला षष्ठी	—	गणेश
शुक्ला सप्तमी	—	यम
शुक्ला अष्टमी	—	सर्प
शुक्ला नवमी	—	चन्द्र
शुक्ला दशमी	—	कार्त्तिकेय
शुक्ला एकादशी	—	सूर्य
शुक्ला द्वादशी	—	इन्द्र
शुक्ला त्रयोदशी	—	महेन्द्र
शुक्ला चतुर्दशी	—	वासव
शुक्ला पूर्णिमा	—	नाग
कृष्णा प्रथमा	—	दुर्गा
कृष्णा द्वितीया	—	दण्डधर
कृष्णा तृतीया	—	शिव
कृष्णा चतुर्थी	—	विष्णु
कृष्णा पंचमी	—	हरि
कृष्णा षष्ठी	—	रवि
कृष्णा सप्तमी	—	काम

कृष्णा अष्टमी	—	शंकर
कृष्णा नवमी	—	कलाधर
कृष्णा दशमी	—	यम
कृष्णा एकादशी	—	चन्द्र
कृष्णा द्वादशी	—	विष्णु
कृष्णा त्रयोदशी	—	काम
कृष्णा चतुर्दशी	—	शिव
अमावस्या	—	पितृगण।।१३३-१३५।।

नन्दाभद्राजयारिक्ता पूर्णाः स्युस्तिथयः पुनः।
त्रिरावृत्त्या क्रमाज्ज्ञेया नेष्टमध्येष्टदाः सिते॥१३६॥

कृष्णपक्षे त्विष्टमध्यानिष्टदाः क्रमशस्तदा। अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी॥१३७॥

तिथयः पक्षरन्ध्राख्या ह्यतिरूक्षा प्रकीर्तिताः।
समुद्रमनुरन्ध्राङ्कतत्त्वसंख्यास्तु नाडिकाः॥१३८॥

त्याज्याः स्युस्तासु तिथिषु क्रमात्पञ्च च सर्वदा।
अमावास्या च नवमी हित्वा विषमसंज्ञिका॥१३९॥

तिथयस्तु प्रशस्ताःस्युर्मध्यमा प्रतिपत्सिता।
षष्ठ्यां तैलं तथाष्टम्यां मासं क्षौरं कलेस्तिथौ॥१४०॥

अब **तिथियों की संज्ञा** कहते हैं—

शुक्लपक्षीय तिथि—		संज्ञा	प्रकृति
शुक्लपक्ष प्रथम आवृत्ति			
प्रतिपदा	—	नन्दा	अधम
द्वितीया	—	भद्रा	अधम
तृतीया	—	रिक्ता	अधम
चतुर्थी	—	जया	अधम
पंचमी	—	पूर्णा	अधम
शुक्लपक्ष द्वितीय आवृत्ति			
षष्ठी	—	नन्दा	मध्यम
सप्तमी	—	भद्रा	मध्यम
अष्टमी	—	रिक्ता	मध्यम
नवमी	—	जया	मध्यम
दशमी	—	पूर्णा	मध्यम

शुक्लपक्ष तृतीय आवृत्ति

एकादशी	—	नन्दा	शुभ
द्वादशी	—	भद्रा	शुभ
त्रयोदशी	—	रिक्ता	शुभ
चतुर्दशी	—	जया	शुभ
पूर्णिमा	—	पूर्णा	शुभ

कृष्णपक्षीय तिथि

कृष्ण पक्ष की प्रथम आवृत्ति

प्रथम (प्रतिपदा)	—	नन्दा	शुभ
द्वितीया	—	भद्रा	शुभ
तृतीया	—	रिक्ता	शुभ
चतुर्थी	—	जया	शुभ
पंचमी	—	पूर्णा	शुभ

कृष्णपक्ष की द्वितीय आवृत्ति

षष्ठी	—	नन्दा	मध्यम
सप्तमी	—	भद्रा	मध्यम
अष्टमी	—	रिक्ता	मध्यम
नवमी	—	जया	मध्यम
दशमी	—	पूर्णा	मध्यम

कृष्णपक्ष की तृतीय आवृत्ति

एकादशी	—	नन्दा	अशुभ, अधम
द्वादशी	—	भद्रा	अशुभ, अधम
त्रयोदशी	—	रिक्ता	अशुभ, अधम
चतुर्दशी	—	जया	अशुभ, अधम
अमावस्या	—	पूर्ण	अशुभ, अधम

कृष्णपक्षीय तथा शुक्लपक्षीय अष्टमी, द्वादशी, षष्ठी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, पक्षरन्ध्र तथा रुक्ष होती है। अष्टमी की आरंभ की ४ घटी, द्वादशी की १४ घटी, चतुर्थी की ९ घटी, नवमी की २५ घटी तथा चतुर्दशी की ५ घटी शुभ कार्य में त्याज्य हैं। अमावस्या तथा नवमी को छोड़कर तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी, सर्वकार्य में उत्तम हैं। शुक्लपक्षीय प्रतिपदा मध्यम तथा कृष्णपक्षीय प्रतिपदा उत्तम है। षष्ठी को तैल वर्जित है। अष्टमी को मांस तथा चतुर्दशी को क्षौर कर्म वर्जित है।।१३६-१४०।।

पूर्णिमादर्शयोर्नारीसेवनं परिवर्जयेत्। दर्शे षष्ठ्यां प्रतिपदि द्वादश्यां प्रतिपर्वसु॥१४१॥

नवम्यां च न कुर्वीत कदाचिद्दन्तधावनम्।

व्यतीपाते च सङ्क्रान्तावेकादश्यां च पर्वसु॥१४२॥

अर्कभौमदिने षष्ठ्यां नाभ्यङ्गो वैधृतो तथा।
यः करोति दशम्यां च स्नानमामलकैर्नरः॥१४३॥
पुत्रहानिर्भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः। अर्थपुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायां न संशयः॥१४४॥
अमायां च नवम्वां च सप्तम्यां च कुलक्षयः।
यौ पौर्णिमा दिवा चन्द्रमती सानुमती स्मृता॥१४५॥

पूर्णिमा तथा अमावस्या को स्त्री-समागम न करें। अमावस्या-षष्ठी-प्रतिपदा-द्वादशी-समस्त पर्व तिथि पर तथा नवमी के दिन दन्तकाष्ठ न चबाये। जब व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी, पर्व, रवि तथा मंगल हो, तब उबटन (अभ्यंजन) प्रयोग न करें। दशमी के दिन आंवला से स्नान न करें। इससे पुत्रहानि होगी। त्रयोदशी को आंवला से स्नान करने वाले का धन नष्ट होता है। द्वितीया को भी आंवला से स्नान न करें। इससे धन-पुत्र, उभय नष्ट होते हैं। जो व्यक्ति नवमी, सप्तमी अमावस्या को आंवले से स्नान करता है, उसका कुल नाश होता है। जब पूर्णिमा दिन के समय पूर्ण चन्द्रयुक्त हो, वह **अनुमती पूर्णिमा** है। (इसमें रात्रि में चन्द्र कलाहीन रहता है।।१४१-१४५।।

रात्रौ चन्द्रवती राकाप्यमावास्या तथा द्विधा।
सिनीवाली चेन्दुमती कुहूर्नेन्दुमती मता॥१४६॥

जो पूर्णिमा रात्रि में पूर्ण चन्द्रयुक्त हो, वह **राका** है। जब चन्द्रमा की कला का किंचित् अंश बाकी रहे, वह अमावस्या **सिनिवाली** कही गई है। जिसमें चन्द्र की सभी कला बाकी न रहे, वह **कुहु** अमावस्या है। इस प्रकार अमावस्या द्विविध है।।१४६।।

कार्तिके शुक्लनवमी त्वादिः कृतयुगस्य च।
त्रेतादिर्माधवे शुक्ले तृतीया पुण्यसंज्ञिता॥१४७॥
कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिमुदीरिता।
कल्पादिः स्यात्कृष्णपक्षे नभस्यस्य त्रयोदशी॥१४८॥

अब **युगादि तिथि** कहते हैं—

सत्ययुग प्रारंभ की तिथि — कार्त्तिक शुक्लानवमी
त्रेतायुग प्रारंभ की तिथि — वैशाख शुक्लपक्षीय अति पुष्यप्रदा तृतीया
द्वापरयुग प्रारंभ की तिथि — माघी अमावस्या
कलिकाल प्रारंभ की तिथि — भाद्रपदी कृष्णा त्रयोदशी।।१४७-१४८।।

द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्यच्छेश्वयुज्यपि।
चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता॥१४९॥
एकादशी सिता पौषे ह्याषाढे दशमीसिता।
माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्ये त्वसिताष्टमी॥१५०॥

श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पौर्णिमा।
आषाढे कार्तिके मासि ज्येष्ठे चैत्रे च पौर्णिमा॥१५१॥
मन्वादयो मानवानां श्राद्धेष्वत्यन्तपुण्यदा।
भाद्रे कृष्णात्रयोदश्यां मघामिन्दुः करे रविः॥१५२॥
गजच्छाया तदा ज्ञेया श्राद्धे ह्यत्यन्तपुण्यदा।
एकस्मिन्वासरे तिस्रस्तिथयः स्यात्तिथिक्षयः॥१५३॥
तिथिर्वारत्रये त्वेका ह्यधिका द्वेच निन्दिते।
सूर्यास्तमनपर्यन्तं यस्मिन्वारे तु या तिथिः॥१५४॥

मन्वादितिथि—कार्तिक शुक्ला द्वादशी, आश्विन शुक्ला नवमी, चैत्र शुक्ला तृतीया, भाद्रपद शुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, भाद्रपद कृष्णा अष्टमी, श्रावणी अमावस्या, फाल्गुनी पूर्णिमा, आषाढ़ी पूर्णिमा, कार्त्तिकी पूर्णिमा, ज्येष्ठा पौर्णमासी, चैत्री पूर्णिमा।

ये चतुर्दश मन्वादि तिथियां हैं। ये पार्वण श्राद्ध में पुण्यप्रदा हैं।

अब गजच्छाया योग कहते हैं—भाद्रकृष्णपक्षीय त्रयोदशी तथा आश्विन कृष्णपक्षीय त्रयोदशी के दिन सूर्य जब हस्तनक्षत्रस्थ हो, चन्द्र मघा में स्थित हो, यह गजच्छाया योग है। यह श्राद्धार्थ अतीव पुण्यप्रद है। यदि एक ही दिन में तिथित्रय का स्पर्श हो, तब यह **क्षयतिथि** है। जब एक ही तिथि का।।१४९-१५४।।

विद्यते सा त्वखण्डा स्यान्नूना चेत्खण्डसंज्ञिता।
तिथेः पञ्चदशो भागः क्रमात्प्रतिपदादयः॥१५५॥
क्षणसंज्ञास्तदर्द्धानि तासामर्द्धप्रमाणतः।
रविः स्थिरश्चरश्चन्द्रः क्रूरो वक्रीऽखिलो बुधः॥१५६॥
लघुरीज्यो मृदुः शुक्रस्तीक्ष्णो दिकरात्मजः।
अभ्यक्तो भानुवारे यः स नरःक्लेशवान्भवेत्॥१५७॥

तीन दिन में स्पर्श हो, तब इसे **अधितिथि** कहा गया है। ये दोनों निंदित तिथियां हैं। जिस दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक एक ही तिथि हो, तब वही **अखण्ड तिथि** है। यदि वह तिथि सूर्यास्त से पहले समाप्त हो, तब वह **खण्ड तिथि** है। प्रत्येक तिथि में तिथिमान का पंचदशवां भाग ही **क्षणतिथि** है। उन क्षणतिथियों का आधा भाग **तिथ्यर्द्ध** है। रविवार स्थिर, सोमवार चर, मंगल क्रूर, बुध सम्पूर्ण, गुरु लघु, शुक्रवार मृदु तथा शनिवार तीक्ष्ण वार कहा गया है। जो रविवार को तैल लगाता है, वह क्लेश में पड़ता है।।१५५-१५७।।

ऋक्षेशे कान्तिभाग्भौमे व्याधि सौभाग्यमिन्दुजे।
जीवे नैवं सिते हानिर्मन्दे सर्वसमृद्धयः॥१५८॥

सोमवार को तैलमर्दन कान्तिप्रद, मंगल व्याधिप्रद, बुध सौभाग्यवर्द्धक होगा। गुरुवार को तैल लगाना सौभाग्यनाशक है। शुक्रवार तथा शनिवार को तैल लगाने से धन सम्पदा नाश होती है।।१५८।।

लङ्कोदयात्स्याद्वारादिस्तस्मादूर्ध्वमधोऽपिवा। देशान्तरस्वचरार्द्धनाडीभिरपरे भवेत्॥१५९॥

वार का प्रारंभ काल कहते हैं—जब भूमध्य रेखा पर सूर्योदय हो, तब उसी समय रवि आदि वार प्रारम्भ होते हैं। उस काल से देशान्तर तथा चरार्द्ध घटी के समान अन्य देशों में पहले किंवा बाद में सूर्योदय होता है।।१५९।।

बलप्रदस्य खेटस्य कर्म सिद्ध्यति यत्कृतम्।
तत्कर्म बलहीनस्य दुःखेनापि न सिद्ध्यति॥१६०॥

इन्दुज्ञजीवशुक्राणां वासराः सर्वकर्मसु। फलदास्त्वितरे क्रूरे कर्मस्वभिमतप्रदाः॥१६१॥

बलीग्रह के रहते अथवा तत्सम्बन्धित जो कार्य होता है, वह सफल होगा। लेकिन बलहीन ग्रहकाल में अधिक यत्न द्वारा भी कार्यसिद्धि नहीं मिलती। सोम-बुध-बृहस्पति-शुक्रवार सर्वकार्यार्थ (शुभ कार्यों में) शुभद होते हैं। शनि, रवि, मंगल, क्रूर कर्म में सफलता देते हैं।।१६०-१६१।।

रक्तवर्णौ रविश्चन्द्रौ गौरो भौमस्तु लोहितः।
दूर्वावर्णो बुधो जीवः पीतःश्वेतस्तु भार्गवः॥१६२॥
कृष्णः सौरिः स्ववारेषु स्वस्ववर्णक्रिया हिताः।
अद्रिबाणाश्च यस्तर्कपातालवसुधाधराः॥१६३॥

वाणाग्निलोचनानिह्यवेदवाहुशिलीमुखाः। त्र्येकाहयो नेत्रगोत्ररामाश्चन्द्ररसर्तवः॥१६४॥

कुलिकाश्चोपकुलिका वारवेलास्तथा क्रमात्।
प्रहरार्द्धप्रमाणास्ते विज्ञेयाः सूर्यवासरात्॥१६५॥

सूर्य—रक्तवर्ण, चन्द्र—गौरवर्ण, मंगल—गहरा लाल, बुध—कान्तिमय दूर्वादलवत् वर्ण, बृहस्पति—स्वर्णवर्ण, शुक—श्वेत, शनि—कृष्णवर्ण हैं। इन ग्रहों के जो वार हैं, उनमें उस ग्रह के समान गुण-वर्ण वाला कार्य करे। वह हितप्रद रहेगा।

अब **निन्दित मुहूर्त्त** का वर्णन करते हैं। यथा—ग्रहों के प्रहरार्द्ध इनका मान आधा प्रहर होगा—

ग्रहवार	कुलिक	उपकुलिक	वार वेला
रविवार	७ प्रहरार्द्ध	५ प्रहरार्द्ध	४ प्रहरार्द्ध
सोमवार	६ प्रहरार्द्ध	४ प्रहरार्द्ध	७ प्रहरार्द्ध
मंगलवार	५ प्रहरार्द्ध	३ प्रहरार्द्ध	२ प्रहरार्द्ध
बुधवार	४ प्रहरार्द्ध	२ प्रहरार्द्ध	५ प्रहरार्द्ध
गुरुवार	३ प्रहरार्द्ध	१ प्रहरार्द्ध	८ प्रहरार्द्ध
शुक्रवार	२ प्रहरार्द्ध	७ प्रहरार्द्ध	३ प्रहरार्द्ध
शनिवार	१ प्रहरार्द्ध	६ प्रहरार्द्ध	८ प्रहरार्द्ध

।।१६२-१६५।।

यस्मिन्वारे क्षणो वारदृष्टस्तद्वासराधिपः। आद्यः षष्ठो द्वितीयोऽस्मात्तत्षष्ठस्तु तृतीयकः॥१६६॥

षष्ठः षष्ठश्चेतरेषां कालहोराधपाः स्मृताः।
सोर्द्धनाडीद्वयेनैव दिवा रात्रौ यथाक्रमात्॥१६७॥

वारप्रोक्ते कर्मकार्ये तद्ग्रहस्य क्षणेऽपि सन्। नक्षत्रेशाः क्रमाद्दस्त्रयमवह्निपितामहाः॥१६८॥
चन्द्रेशादितिजीवाहिपितरो भगसंज्ञकः। अर्यमार्कत्वष्टमरुच्छक्राग्निमित्रवासवः॥१६९॥
नैर्ऋत्युदकविश्वेजगोविन्दवसुतोयपाः। अजैकपादहिर्बुध्न्या पूषा चेति प्रकीर्तिताः॥१७०॥

अब **प्रत्येक वार में क्षणवार** कहते हैं—प्रथम क्षणवार उसी वार के पति का होगा। उससे छठे वारेश का द्वितीय क्षणवार होगा। उससे छठे वारेश का तृतीय क्षण वार होगा। उससे छठे वार का चतुर्थ क्षण वार होगा। उससे छठे का पंचम क्षणवार होगा। उससे छठे का षष्ठ क्षणवार होगा। उससे छठे का सप्तम क्षणवार होगा। एक-एक क्षणवार का मान ढाई घटी कहा है। जिस वार के दिन जो कार्य शुभ अथवा अशुभ कहा गया है, क्षणवार में भी तदनुरूप शुभाशुभ जानें।

अब **नक्षत्र पति** कहा जा रहा है—अभिजित् सहित २८ नक्षत्रों के स्वामी क्रमशः ये हैं—अश्विनीकुमारद्वय, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, शिव, अदिति, गुरु, सर्प, पितृगण, भग, अर्यमा, सूर्य, विश्वकर्मा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋषि, जल, विश्वेदेव, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अजैकपाद एवं अहिर्बुध्न्य ये २७ नक्षत्रों के स्वामी हैं। अभिजित् नक्षत्र के स्वामी हैं पूषा।।१६६-१७०।।

पूर्वात्रयं मघाह्यग्निविशाखायममूलभम्। अधोमुखं तु नवकं भानौ तत्र विधीयते॥१७१॥
बिलप्रवेशगणितभूतसाधनलेखनम्। शिल्पकर्मकलाकूपनिक्षेपोद्धरणादि यत्॥१७२॥
मित्रेन्दुत्वाष्ट्रहस्तेन्द्रादितिभान्त्यश्विायुभम्। तिर्यङ्मुखाख्यं नवकं भानौ तत्र विधीयते॥१७३॥
हलप्रवाहगमनं गन्त्रीपत्रगजोष्ट्रकम्। खरगौरथयौयानलुलायहयकर्म च॥१७४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशार्यशततारावसुत्तराः। ऊर्द्धास्यं नवकं भानां प्रोक्तमत्र विधीयते॥१७५॥
नृपाभिषेकमाङ्गल्यवारणध्वजकर्म च। प्रासादतोरणारामप्राकाराद्यं च सिद्ध्यति॥१७६॥

अब **नक्षत्र मुख** कहते हैं—

अधोमुख नक्षत्र—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल।

कार्य—बिल प्रवेश अर्थात् कूप, खाई, सुरंग आदि में जाना।

तिर्यक्मुख नक्षत्र—अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, स्वाती।

कार्य—हल चलाना, यात्रा, वाहननिर्माण, पत्र भेजना, हाथी-ऊंट की सवारी, गर्दभ-बल से चलने वाली गाड़ी बनाना, नौकायात्रा, महिष अश्व सम्बन्धित कार्य करना।

ऊर्ध्वमुख नक्षत्र—रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद।

कार्य—राज्याभिषेक, मांगलिक कार्य, गजारोहण, ध्वज फहराना, मन्दिर निर्माण, तोरण बनाना, बाग लगाना, दीवार बनाना आदि करें।।१७१-१७६।।

स्थिरं रोहिण्युत्तराख्यं क्षिप्रं सूर्याश्विपुष्यभम्। साधारणं द्विदैवत्यं वह्निभं च प्रकीर्तितम्॥१७७॥

वस्वदित्यम्बुपुष्याणि विष्णुभं चरसंज्ञितम्।
मृद्विन्दुमित्रचित्रान्त्यमुग्रं पूर्वामघात्रिकम्॥१७८॥
मूलार्द्राहीन्द्रभं तीक्ष्णं स्वनामसदृशं फलम्।
चित्रादित्यम्बुविष्णवम्बान्त्याधिमित्रवसूडुषु ॥१७९॥
समृगेज्येषु बालानां कर्णवेधक्रिया हिता। दस्रेन्द्वदितितिष्येषु करादित्रितये तथा॥१८०॥
गजकर्माखिलं यत्तद्विधेयं स्थिरभेषु च। वाजिकर्माखिलं कार्यं सूर्यवारे विशेषतः॥१८१॥

ध्रुव नक्षत्र — रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद।
क्षिप्र नक्षत्र — हस्त, अश्विनी, पुष्य।
साधारण नक्षत्र — विशाखा, कृत्तिका।
चर नक्षत्र — धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती, श्रवण।
मृदु नक्षत्र — मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा, रेवती।
उग्र नक्षत्र — पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, भरणी।
तीक्ष्ण नक्षत्र — मूल, आर्द्रा, आश्लेषा ज्येष्ठा।
ये सभी नामानुसार फलदायक हैं।

कर्णवेध मुहूर्त्त कहते हैं—चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा, पुष्य में कर्णवेध शुभप्रद है।

अब **अश्व-हस्ति सम्बन्धित कार्य** कहते हैं—अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वामी को स्थिर संज्ञक नक्षत्र कहा है। इसमें हस्ति (हाथी) सम्बन्धित कार्य करे। अश्व सम्बन्धित कार्य करे तथापि रविवार को यह कार्य न करे।।१७७-१८१।।

चित्रा वरुणवैरिञ्चत्र्युत्तरासु गमागमम्।
दर्शाष्टम्यां चतुर्दश्यां च पशूनां न कदाचन॥१८२॥

अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी को पशु को लाना, ले जाना तथा अन्य तत्सम्बन्धित पशु कार्य करना वर्जित है। चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा उत्तरात्रय नक्षत्रों में यह कार्य शुभ है।।१८२।।

मृदुधुवक्षिप्रचरविशाखापितृभेषु च। हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्मूलभे वृषैः॥१८३॥
हलादौ वृषनाशाय भत्रयं सूर्यमुक्तभात्।
अग्रे वृद्ध्यै त्रयं लक्ष्म्यै सौम्यपार्श्वे च पञ्चकम्॥१८४॥
शूलत्रयेपि नवकं मरणाय च पञ्चकम्।
श्रियै पुष्ट्यै त्रयं श्रेष्ठं स्याच्चक्रे लाङ्गलाह्वये॥१८५॥

प्रथम बार हल से खेत जोतना—उपरोक्त मृदु नक्षत्र, ध्रुव नक्षत्र, चर नक्षत्र, क्षिप्र नक्षत्र, विशाखा, मघा, मूल नक्षत्रों में (ऋतु में) प्रथम बार बैलों से हल जुतवाये। जिस नक्षत्र में सूर्य विराजित रहता है, उससे पीछे वाले नक्षत्र से तीन नक्षत्र हल के मूल में रहते हैं। इन नक्षत्र में हल जोतने से बैल नष्ट हो जाते हैं। इस

नक्षत्र से आगे के तीन नक्षत्र हल के अग्रभाग में रहते हैं। इस नक्षत्र में हल जोतने से वृद्धि होगी। इससे आगे वाले पांच नक्षत्र हल के उत्तर पार्श्वस्थ रहते हैं। इन नक्षत्रों में हल जोतने वाला लक्ष्मीलाभ करता है। तीन शूलों में नौ नक्षत्र निवास करते हैं। इन नक्षत्रों में हल जोतने वाला किसान मृत होता है। इससे आगे वाले पांच नक्षत्रों में हल जोते। सम्पत्ति बढ़ेगी। इससे आगे वाले नक्षत्र त्रय में हल जोते। प्रथम बार इन नक्षत्र में हल जोतने का उत्तम फल मिलता है।।१८३-१८५।।

मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु पितृवायुवड्डुषु। समूलभेषु वीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा॥१८६॥

भवेद्भत्रितयं मूर्ध्नि धान्यनाशाय राहुभात्।
गले त्रयं कज्जलाय वृद्ध्यै च द्वादशोदरे॥१८७॥

निस्तण्डुलत्वं लाङ्गुले भचतुष्टयभीतिदम्।
नाभौ वह्निः पञ्चकं यद्वीजोप्ताविचिन्तयेत्॥१८८॥

अब **बीज बोने के नक्षत्र** कहते हैं—मृदु, ध्रुव, क्षिप्र नक्षत्रों में, मघा, स्वाती, धनिष्ठा तथा मूल में बीज वपन उत्तम है। राहु इनमें से जिन नक्षत्र में हो, उस नक्षत्र से तीन नक्षत्र लांगल चक्र के अग्र में रहते हैं। इन तीन नक्षत्र में बीज बोने से धान्य नष्ट होगा। उसके आगे वाले तीन नक्षत्र गले में रहते हैं। उन नक्षत्रों में बीज वपन से जल की कमी होती है। उससे आगे वाले बारह नक्षत्र उदर में स्थित रहते हैं। इनमें बीजवपन करे। धान्य बढ़ेगा। इससे आगे वाले ४ नक्षत्र लांगल में रहते हैं। इससे दाने नहीं लगते, मात्र भूसी हाथ आती है। उससे आगे के पांच नक्षत्र नाभिस्थ रहते हैं। इसमें बीज बोने से अग्नि जनित भय होता है। इस विचार से तब बीज बोये।१८६-१८८।।

स्थिरेष्वदितिसार्पान्त्यपितृमारुतभेष च।
न कुर्याद्रोगमुक्तस्य स्नानमाहीन्दुशुक्रयोः॥१८९॥

जब रोगहीन हो जाये, तब इन नक्षत्र में स्नान न करें—रोगरहित होने पर पहला स्नान स्थिरसंज्ञक नक्षत्र, पुनर्वसु, आश्लेषा, रेवती, मघा, स्वाती में तथा सोम एवं शुक्र के दिन न करे।।१८९।।

उत्तरात्रयमैत्रेन्द्रवसुवारुणभेषु च। पुण्यार्कपौष्णधिष्ण्येषु नृत्यारम्भः प्रशस्यते॥१९०॥

उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त तथा रेवती नक्षत्र में उत्सवों में नृत्यारंभ उत्तम मानते हैं।।१९०।।

पूर्वार्द्धयुञ्जि पद्मानि पौष्णभादुदभात्ततः।
मध्ययुञ्जि द्वादशार्क्षाणीन्द्रभान्नवभानि च॥१९१॥

परार्द्धयुञ्जि क्रमशः सम्प्रीतिर्दम्पतेर्मिथः। जघन्यास्तोयणर्दाहिपवनान्तकनाकपाः॥१९२॥

वर कन्या सम्बन्ध

पूर्वार्धयोगी नक्षत्र—रेवती से लेकर आगे छः नक्षत्र पर्यन्त

मध्ययोगी नक्षत्र—आर्द्रा से लेकर आगे १२ नक्षत्र तक।

परार्द्धयोगी नक्षत्र—धनिष्ठा से लेकर आगे ९ नक्षत्र।

पूर्वार्द्धयोगी नक्षत्रों में ही वर-कन्या का नक्षत्र हो, तब स्त्री स्वामी से अधिक प्रेम करेगी।

मध्ययोगी—दोनों का नक्षत्र हो, तब वर-कन्या में समान प्रेम होगा।

परार्द्ध योगी—यदि दोनों का नक्षत्र हो, तब पति स्त्री से अधिक प्रेम करेगा।

शतभिषा, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वामी, भरणी, ज्येष्ठा जघन्य नक्षत्र हैं।।१९१-१९२।।

क्रमादितिर्द्विदैवत्या बृहत्तारा: पराः समाः।
तासां प्रमाणघटिकास्त्रिंशन्नवतिद्यष्टयः॥१९३॥

क्रमादभ्युदिते चन्द्रे नयत्यर्घसमानि च अश्वग्रीन्द्वीज्यनैर्ऋत्यत्वाष्ट्रजत्त्युत्तराभवाः॥१९४॥

पितृद्विदैववस्वाख्यास्ताराः स्युः कुलसंज्ञिकाः।
धातृज्येष्ठादितिस्वातीपौष्णार्कहरिदेवताः ॥१९५॥

अजाह्यन्त्यकभौजङ्गताराश्चैवाकुलाह्वयाः ।
शेषाः कुलाकुलास्तारास्तासां मध्ये कुलोडुषु॥१९६॥

प्रयाति यदि भूपालस्तदाप्नोति पराजयम्।
भेषूपकुलसंज्ञेषु जयमाप्नोति निश्चितम्॥१९७॥

सन्धिर्वापि तयोः साम्यं कुलाकुलगणोडुषु।
अर्कार्किभौमवारे चेद्भद्राया विषमाङ्घ्रिभम्॥१९८॥

तीन श्रेणी के नक्षत्र—ध्रुव नक्षत्र, पुनर्वसु, विशाखा **बृहद्** (अर्थात् श्रेष्ठ) कहे गये हैं। बाकी सभी नक्षत्र **सम** कहे गये हैं। अधम का मान ३०, बृहद् का मान ९० तथा सम का मान ६० घटी है। यदि द्वितीया के दिन **बृहद् नक्षत्र** में चन्द्रोदय हो जाये, तब अन्न का दाम सस्ता होगा। **समनक्षत्र** में चन्द्रोदय हो, तब अन्नादि का दाम सम होगा। **जघन्य नक्षत्र** में चन्द्रोदय हो, तब अन्न अधिक भाव का होगा।

अब **यात्री हेतु विजय तथा पराजयप्रद नक्षत्र** कहते हैं—

कुल नक्षत्र—अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मूल, चित्रा, श्रवण, उत्तराश्रय, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, विशाखा तथा धनिष्ठा।

अकुल नक्षत्र—रोहिणी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, हस्त, अनुराधा, पूर्वभाद्रपद, भरणी, आश्लेषा।

कुलाकुल नक्षत्र—ऊपर जिनका नाम कुल एवं अकुल की सूची में नहीं है, वे सभी कुलाकुल नक्षत्र हैं।

कुल नक्षत्रों में यात्रा में पराजय, अकुल नक्षत्रों में यात्रा से निश्चित विजय मिलती है। कुलाकुल नक्षत्रों में यात्रा द्वारा सन्धि होगी किंवा युद्ध में दोनों पक्ष समान होंगे। कोई हार-जीत नहीं होगी। यदि रवि-शनिवार को भद्रा तिथि हो तथा विषम चरण नक्षत्र हों।।१९३-१९८।।

त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं यमलाहिभम। दद्यात्तदोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा॥१९९॥

द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वृक्षभोऽपि वा।
क्रूरविद्धो युतो वापि पुष्यो यदि बलान्वितः॥२००॥

(अर्थात् कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा तथा पूर्वभाद्रपद में से कोई हो) तब वार, भद्रा तथा नक्षत्र संयोग से **त्रिपुष्कर योग** होगा। यदि रवि, शनि किंवा मंगलवार को भद्रा तिथि पड़े तथा द्विचरण नक्षत्र मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा हों, तब **द्विपुष्कर** योग होगा। त्रिपुष्कर योग तिगुनी लाभ-हानि प्रदान करते हैं। द्विपुष्कर योग द्विगुणित लाभ-हानि देते हैं। त्रिपुष्कर योग जनित हानि किसी वस्तु की हो जाये, तब दोष नाशार्थ तीन गौ दान करें अथवा तीन गौ का मूल्य ब्राह्मण को प्रदान करे। इसी प्रकार द्विपुष्कर दोष नाशार्थ दो गौ अथवा दो गौ का मूल्य ब्राह्मण को देना चाहिये। इससे वह तिथि-वार-नक्षत्र जनित दोष निवृत्त होगा। पापग्रह से विद्ध तथा युति होने पर भी पुष्य नक्षत्र बली होता है।।१९९-२००।।

विना पाणिग्रहं सर्वमङ्गलेष्विष्टदः सदा। रामाग्निऋतुबाणाग्निभूवेदाग्निशरेषु च॥२०१॥
नेत्रबाहुशरेन्द्विन्दुबाहुवेदाग्निसङ्कुराः। वेदनेत्राब्ध्यग्निशतबाहुनेत्ररदाः क्रमात्॥२०२॥
तारासंख्याश्च विज्ञेया दस्त्रादीनां पृथक् पृथक्।
या दृश्यन्ते दीप्ततारा: स्वगणे योगतारकाः॥२०३॥

तब वह मात्र विवाह को छोड़कर सभी शुभ कर्म हेतु फलद है। अश्विनी आदि नक्षत्रों में इतने योगतारा क्रमशः होते हैं—यथा (अश्विनी से गणना करे) ३, ३, ६, ५, ३, १, ४, ३, ५, २, २, ५, १, १, ४, ४, ३, ११, २, २, ३, ३, ४, १००, २, २ तथा ३२। इतने योगतारा क्रमशः एक-एक नक्षत्र में होते हैं। स्व-स्व गगन विभाग में जो अनेक तारकों का पुञ्ज प्रदान करे, उनमें अति उद्दीप्त तारा ही **योगतारा** हैं।।२०१-२०३।।

वृषो वृक्षोश्वभायाम्यधिष्ण्येयमकरस्तमः।
उडुम्बरश्चाग्निधिष्ण्ये रोहिण्यां जम्बुकस्तरुः॥२०४॥
इन्दुभात्खदिरो जातः कृष्णाप्लक्षश्च रौद्रभात्।
सम्भूतोऽदितिभाद्वंशः पिप्पलः पुष्यसम्भवः॥२०५॥
सर्पधिष्ण्यान्नागवृक्षो वटः पितृभसम्भवः।
पालाशो भाग्यभाज्जातः अक्षश्चार्यमसम्भवः॥२०६॥
अरिष्टवृक्षो रविभाच्छ्रीवृक्षस्त्वाष्ट्रसम्भवः।
स्वात्यृक्षजोऽर्जुनो वृक्षो द्विदैवत्याद्विकङ्कतः॥२०७॥
मित्रभाद्वकुलो जातो विष्टिः पौरन्दरर्क्षजः।
सर्जवृक्षो मूलभाच्च वञ्जुलो वारिधिष्ण्यजः॥२०८॥
पनसो वैश्वभाज्जातश्चार्कवृक्षश्च विष्णुभात्।
वसुधिष्ण्याच्छमीवृक्षः कदम्बो वारुणर्क्षजः॥२०९॥
अजाहेश्चूतवृक्षोभूद्बुध्न्यजः पिचुमन्दकः।
मधुवृक्षः पौष्णाधिष्ण्याद्धिष्ण्यवृक्षः प्रकीर्तितः॥२१०॥

अब **नक्षत्र काल में वृक्षोत्पत्ति** कहते हैं—धरती पर समस्त उत्तम वृक्षों का जन्म अश्विनी से कहा गया है। भरणी से दो यमल वृक्ष जन्में। इसी प्रकार—

कृतिका से	—	गूलर वृक्ष,
मृगशिरा से	—	कत्था का वृक्ष
पुनर्वसु से	—	बांस
आश्लेषा से	—	नागकेसर
पूर्वा फाल्गुनी से	—	पलाश
हस्त से	—	रीठा का वृक्ष
स्वाती से	—	अर्जुन वृक्ष
अनुराधा से	—	मौलश्री वृक्ष
मूल से	—	शाल वृक्ष
उत्तराषाढ़ा से	—	कटहल
धनिष्ठा से	—	शमी वृक्ष
पूर्वभाद्रपद से	—	आम्रवृक्ष
रेवती से	—	महुआवृक्ष
रोहिणी से	—	जामुन वृक्ष
आर्द्रा से	—	काला पाकड़
पुष्य से	—	पीपल
मघा से	—	बरगद
उत्तराफाल्गुनी से	—	रुद्राक्षवृक्ष
चित्रा से	—	बेल वृक्ष
विशाखा से	—	विकंतक वृक्ष
ज्येष्ठा से	—	विष्टि वृक्ष
पूर्वषाढा से	—	अशोक वृक्ष
श्रवण से	—	आक वृक्ष
शतभिषा से	—	कदम्ब
उत्तरभाद्रपद से	—	नीम वृक्ष

यह नक्षत्रों से वृक्षों की उत्पत्ति है।।२०४-२१०।।

यस्मिञ्छनैश्चरो धिष्ण्वे तद्वृक्षोऽर्च्यः प्रयत्नतः। योगेशा यमविश्वेन्दुधातृजीवनिशाकराः॥२११॥
इन्द्रतोयाहिवह्न्यर्कभूमिरुद्रकतोयपाः। गणेशरुद्रधनदत्वष्टृकित्रषडाननाः॥२१२॥
सावित्री कमला गौरी नासत्यौ पितरोऽदितिः।
वैधृतिश्च व्यतीपातो महापातावुभौ सदा॥२१३॥

परिघस्य च पूर्वार्द्धं सर्वकार्येषु गर्हितम्।
विष्कं भवज्रयोस्तिस्त्रः षड्वा गण्डातिगण्डयोः॥२१४॥
व्यागघाते नव शूले तु पञ्च नाड्यो हि गर्हिताः।
अदितीन्दुमघाह्यश्वमूलमैत्रेज्यभानि च॥२१५॥
ज्ञेयानि सहचित्राणि मूर्द्धभानि यथाक्रमम्।
लिखेदूर्ध्वगतामेकां तिर्यग्रेखास्त्रयोदश॥२१६॥
तत्र खार्जूरिकं चक्रे कथितं मूर्घ्नि भे न्यसेत्।
भाज्यैकरेखागतयोः सूर्याचन्द्रमसोमिथः॥२१७॥
एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्वर्जितानि वै। विनाडीभिर्द्वादशभी रहितं घटिकाद्वयम्॥२१८॥

जिस नक्षत्र में शनि हो, उस नक्षत्र की तालिका वाले वृक्ष का यत्नतः पूजन करे। अब **योगों के अधिपति** का वर्णन करते हैं। अश्विनी आदि सत्ताईस ग्रहों के स्वामी क्रमशः ये हैं—यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, कार्त्तिकेय, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनी कुमार, पितर तथा अदिति। अब **निन्दित योग** कहते हैं।

वैधृति तथा व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं। शुभकार्य हेतु इन दोनों का सदा त्याग करे। परिध योग का पूर्वार्द्ध तथा वज्रयोग के प्रारंभ की तीन घटी, गण्ड तथा अतिगण्ड की छः घटी, व्याघात योग की नौ घटी तथा शूलयोग की ५ घटी में समस्त शुभ कार्य वर्जित है। अब **खार्जूर चक्र** कहा जाता है। वैधृति में पुनर्वसु, व्यतिपात में—मृगशिरा, परिध में मघा, विष्कम्भ में आश्लेषा, वज्र में अश्विनी, गण्ड में मूलनक्षत्र, अतिगण्ड में अनुराधा, व्याघात में पुष्य, शूल में चित्रा—ये मूर्द्धा नक्षत्र कहे गये हैं। पहले एक ऊर्ध्व रेखा लिखकर उसके ऊपर तेरह तिर्यक (तिरछी) रेखा बनाये। यही खार्जूर चक्र है। इस चक्र में उपरोक्त मूर्द्धा नक्षत्रों को रेखा के ऊपर लिखे तब सभी नक्षत्रों को लिखे। यदि सूर्य-चन्द्र एक ही रेखा में विभिन्न भागों में हों, तब दोनों की परस्पर दृष्टि एकार्गल दोष है। यह समस्त शुभ अनुष्ठान कार्य में त्याज्य जाने तथापि सूर्य-चन्द्र में से कोई भी अभिजित् नक्षत्रगत हों, तब यह वेधदोष नहीं होगा। १२ पल दो घटी का मान रहने से।।२११-२१८।।

योगं प्रकरणं योगाः क्रमात्तु सप्तविंशतिः।
इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रस्त्वष्टाभूहरितिप्रिया॥२१९॥
कीनाशः कलिरुद्राख्यो तिथ्यर्द्धेशास्त्वहिर्मरुत्।
बवादिवणिजान्तानि शुभानि करणानि षट्॥२२०॥
परीता विपरीता वा विष्टिर्नेष्टा तु मङ्गले।
मुखे पञ्च गले चैका वक्षस्येकादश स्मृतः॥२२१॥

एक-एक योग में ७ योग गत होते हैं। अब **करण के स्वामी तथा शुभाशुभ विभाग** को कहता हूं। इन्द्र, वरुण, मित्र, विश्वकर्मा, पृथिवी, लक्ष्मी, यम, कलि, रुद्र, सर्प, मरुत हैं। ये एकादश करणों के स्वामी हैं यथा—

करण	—	अधिदेवता
वव	—	इन्द्र
बालव	—	ब्रह्मा
कौलव	—	मित्र
तैतिल	—	विश्वकर्मा
गर	—	पृथिवी
वणिज	—	लक्ष्मी
विष्टि	—	यम
शकुनि	—	कलि
चतुष्पद	—	रुद्र
नाग	—	सर्प
किस्तुघ्न	—	मरुत

वव से वणिज पर्यन्त करण शुभ होते हैं तथा विष्टि करण चाहे जिस क्रम से किंवा विपरीत क्रम से कदापि मंगल कार्य हेतु शुभ नहीं कहा गया है। अब **विष्टि के अंगों की घटी तथा फल कहते हैं**। विष्टि के मुख में पांचघटी, गले में एक घटी, वक्ष में एकादश घटी कही गयी है।।२१९-२२१।।

नाभौ चतस्त्रः षट् कट्यां तिस्त्रः पुच्छाख्यनाडिकाः।
कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता॥२२२॥
कट्यामुन्मत्तता नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवं जयः।
स्थिराणि मध्यमान्येषां मध्यनागचतुष्पदौ॥२२३॥

नाभि में चार, कटि में छह, पुच्छ में तीन घटी होती है। मुख वाली घटी में कार्यारम्भ कार्यहानिप्रद है। गले वाली घटी में कार्य का फल है मृत्यु। हृदय की घटी में निर्धनता, कटि की घटी में पागलपल, नाभि की घटी में गिरना, पुच्छ की घटी में कार्य विजयप्रद होगा। भद्रा के उपरान्त ४ स्थिर चरण मध्य हैं। नग तथा चतुष्पद विशेषरूपेण मध्यम हैं।।२२२-२२३।।

दिवामुहुर्ता रुद्राहिमित्रपितृवसूदकमू। विश्वेविधातृब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निवसुतोयपाः॥२२४॥
अर्यमा भगसंज्ञश्च विज्ञेया दश पञ्च च। ईशाजपादाहिर्बुध्न्यपूषाश्वियमवह्नयः॥२२५॥

धातृइन्द्रादितोज्याख्या विष्ण्वर्कत्वष्टृवायवः।
अह्नः पञ्चदशोभागस्तया रात्रिप्रमाणतः॥२२६॥
मुहूर्तमानं द्वरावक्षणर्क्षाणि समेश्वरम्।
अर्यमा राक्षसब्राह्मौ पित्र्याग्नेयौ तथाभिजित्॥२२७॥

अब मुहूर्त्त कहते हैं—दिन के मुहूर्त्त—रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, विश्वेदेव, अभिजित् (विधि), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस (निर्ऋति), वरुण, अर्यमा तथा भग, ये पंचदश मुहूर्त्त हैं।

रात्रि के मुहूर्त्त—शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, विश्वकर्मा, वायु—ये पंचदश मुहूर्त्त हैं। दिनमान का १५वां भाग ही रात्रि मुहूर्त्त का मान है। एवंविध अहोरात्र के क्षण-नक्षत्र का निर्णय किया जाये। अब **निन्द्य मुहूर्त्त क्रम** सुनें। रविवार को अर्यमा, सोम को ब्राह्म-राक्षस, मंगल को पितर तथा अग्नि, बुध को अभिजित् (विधि)।।२२४-२२७।।

राक्षसाख्यौ ब्राह्मपित्र्यौ भर्गाजांशाविनादिषु।
वारेषु वर्जनीयास्ते मुहूर्ताः शुभकर्मसु॥२२८॥
येषु ऋक्षेषु यत्कर्म कथितं निखिलं च तत्।
तद्दैवत्ये मुहूर्तेऽपि कार्यं यात्रादिकं सदा॥२२९॥

बृहस्पतिवार को राक्षस तथा जल, शुक्र को ब्राह्म-पितर, शनिवार को शिव-सर्प-मुहूर्त्त निन्दित हैं। शुभकार्य हेतु इन वार को इनका त्याग करे।।२२८-२२९।।

भूकम्प सूर्यभात्सप्तमर्क्षे विद्युच्च पञ्चमे। शूलोऽष्टमे च दशमे शनिरष्टादशे ततः॥२३०॥
केतुः पञ्चदशे दण्ड उल्का एकोनविंशतौ। निघातपातसंज्ञश्च ज्ञेयः स नवपञ्चमे॥२३१॥
मोहनिर्घातकम्पाश्च कुलिशं परिवेषणम्। विज्ञेया एकविंशर्क्षादारभ्य च यथाक्रमम्॥२३२॥
चन्द्रयुतेषु भेष्वेषु शुभकर्म न कारयेत्। सूर्यभात्सर्वपित्र्यर्क्षे त्वाष्ट्रमित्राप्तभेषु च॥२३३॥
सविष्णुभेषु क्रमशो हस्तभाच्चन्द्रसंयुतः। धिष्ण्ये तातेति सत्यत्र दुष्टयोगः पतत्यसौ॥२३४॥
चण्डीशचण्डायुधाख्यस्तस्मिन्नेवात्रचरेच्छुभम्। वायोदश स्युर्मिलग्नसंख्यया तिथिवारयोः॥२३५॥
क्रकचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वतिगर्हितः। सप्तम्यामर्कवारश्चेत्प्रतिपत्सौम्यवासरे॥२३६॥
संवर्तयोगो विज्ञेयः शुभकर्मविनाशकृत्। आनन्दः कालदण्डाख्यो धूम्रधातृसुधाकराः॥२३७॥

सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे सप्तम नक्षत्र	भूकम्प संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे पंचम नक्षत्र	विद्युत् संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे अष्टम नक्षत्र	शूल संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे दशम नक्षत्र	अशनि संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे अष्टादश नक्षत्र	केतु संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे पंचदश नक्षत्र	दण्ड संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे उनविंश नक्षत्र	उल्का संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे चतुर्दश नक्षत्र	निर्घातपात संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे एकविंश नक्षत्र	मोह संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे द्विविंश नक्षत्र	निर्घात संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे त्रयोविंश नक्षत्र	कम्प संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे चतुर्विंश नक्षत्र	कुलिश संज्ञा
सूर्य जिस नक्षत्र में है	उससे पंचविंश नक्षत्र	निर्घात संज्ञा

इस संज्ञा वाले नक्षत्र में शुभ-कृत्य वर्जित है। यदि सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित है, उससे आश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, श्रवण पर्यन्त जो संख्या हो, यदि वही संख्या अश्विनी से लगाकर चन्द्र नक्षत्र पर्यन्त की संख्या ज्ञात हो, तब वह दुष्टयोग सम्पात कहा गया है। यह **चण्डीश चन्द्रायुध** योग सर्वशुभ-कर्म हेतु वर्जित है।

जब प्रतिपत्यादि जो तिथि हो (चतुर्थी-पंचमी जो हो) तथा उस दिन जो वार हो, वह मिलाये (जैसे रविवार हो, तब १, सोमवार हो, तब दो इत्यादि) तिथि तथा वार का योग यदि १३ हो, तब यही **क्रकच** है, जो शुभकार्य हेतु वर्जित है। यदि रवि का सप्तमी तथा बुध को प्रतिपदा हो, तब **संवर्त्तयोग** होगा, जो सर्वशुभकार्य विनाशक है। आनन्द, कालदण्ड, धूम्र, धाता, सुधाकर।।२२८-२३७।।

ध्वांक्षध्वजाख्यश्रीवत्ससवज्रमुद्गरछत्रकाः। मित्रमानसपद्माख्यलुम्बकोत्पातमृत्यवः॥२३८॥
काणसिद्धिशुभा मृत्युमुशलान्तककुञ्जराः। राक्षसाख्यवरस्थैर्यवर्द्धमानः क्रमादमी॥२३९॥
योगाः स्वसंज्ञाफलदा अष्टाविंशतिरीरिताः। रविवारे क्रमादेव दस्रभादिन्दुभाद्विधौ॥२४०॥
सार्पाद्भौमे बुधे हस्तान्मैत्रभात्सुरमन्त्रिणि। वैश्वदेवाद्भृगुसुते वारुणाद्भास्करात्मजे॥२४१॥

ध्वांक्ष, केतु, श्रीवत्स, वज्र, मुद्गर, छत्र, मित्र, मानस, पद्म, लुम्ब, उत्पात, मृत्यु, काण, सिद्धि, शुभ, अमृत, मूसल, अन्तक (गद), कुंजर, राक्षस, चर, स्थिर, वर्द्धमान याग नाम जैसे फल देते हैं। ये २८ हैं। इन **योगों के ज्ञान की विधि** कहते हैं। सोमवार को मृगशिरा से, मंगल को आश्लेष से, बुधवार को हस्त से, बृहस्पतिवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ से शनिवार को शतभिषा से आरंभ करके उस दिन जो नक्षत्र हो, उसकी संख्या गिने। जो संख्या हो, उसी संख्या वाला (इन २८ योग में से) योग उस दिन जानें।।२३८-२४१।।

हस्तर्क्षं च रवाविंदौ चन्द्रभं दस्रभं कुजे।
सौम्ये मित्रभमाचार्यं तिष्यः पौष्णं भृगोः सुते॥२४२॥
रोहिणी मन्दवारे च सिद्धियोगाह्वया अमी।
आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः॥२४३॥
जयासौम्ये गुरौ रिक्ता शनौपूर्णेति नो शुभाः।
नन्दा तिथिः शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया॥२४४॥
रिक्ता मन्दे गुरोवरि पूर्णा सिद्धाह्वया अमी।
एकादश्यामिन्दुवारो द्वादश्यामर्कवासरः॥२४५॥
षष्ठी गुरौ तृतीया ज्ञेऽष्टमी शुक्र शनैश्चरे।
नवमी पञ्चमी भौमे दग्धयोगाः प्रकीर्तिताः॥२४६॥

अब **सिद्धियोगादि** कहते हैं। रविवार को हस्त, सोम को मृगशिरा, मंगल को अश्विनी, बुध को अनुराधा, बृहस्पति को पुष्य, शुक्र को रेवती तथा शनि को रोहिणी हो, तब इन-इन वार को **सिद्धयोग** कहा जायेगा। रवि-मंगल को नन्दातिथि, शुक्र-सोम को भद्रातिथि, बुध को जया तिथि, गुरु को रिक्ता तिथि, शनि

को पूर्णा तिथि हो, तब उस वार को **मृत्युयोग** कहा गया है। यह शुभ कार्यार्थ वर्जित है। शुक्र को नन्दा, बुध को भद्रा, मंगल को जया, शनि को रिक्ता, गुरु को पूर्णा तिथि हो, तब भी **सिद्धियोग** होगा। अब **दग्धयोग** कहते हैं—सोम को एकादशी, गुरुवार को षष्ठी, बुधवार को तृतीया, शुक्र को अष्टमी, शनि को नवमी, मंगल को पंचमी हो, तब इन-इन वार के दिन दग्धयोग होगा।।२४२-२४६।।

भरण्यर्कदिने चन्द्र चित्रा भौमे तु विश्वभम्।
बुधे श्रविष्ठार्यभभे गुरौ ज्येष्ठा भृगोर्दिने॥२४७॥
रेवती मन्दवारे तु ग्रहजन्मर्क्षनाशनम्। विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात्॥२४८॥
उत्पातमृत्युकाणाख्यसिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः।
तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसम्भवाः॥२४९॥

अब ग्रहगण के जन्मनक्षत्र का वर्णन करते हैं। सूर्य का भरणी, चन्द्र का चित्रा, मंगल का उत्तराषाढ़ा, बुध का धनिष्ठा, गुरु का उत्तरा फाल्गुनी, शुक्र का ज्येष्ठा, शनि का रेवती जन्मनक्षत्र है। अतः रविवार को भरणी, सोम को चित्रा, मंगल को उत्तराषाढ़ा, बुध को धनिष्ठा, गुरुवार का उत्तरा फाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा तथा शनि को रेवती नक्षत्र हो, तब शुभकार्य न करे।

यदि रवि आदि वार में विशाखा प्रभृति चार नक्षत्र हो अर्थात् रविवार को विशाखा से, सोमवार को पूर्वाषाढ़ा से मंगल को धनिष्ठा से, बुध को रेवती से, गुरु को रोहिणी से, शुक्र को पुष्य से, शनि को उत्तरा फाल्गुनी से चार-चार नक्षत्र हों (?) तब क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्धयोग होगा। यहां जो तिथि तथा वार के संयोग द्वारा तथा वार एवं नक्षत्र संयोग द्वारा जो अनिष्ट योग वर्णित है।।२४७-२४९।।

हूणवङ्गखसेष्वन्यदेशेष्वतिशुभप्रदाः। घोराध्वाङ्क्षीमहोदर्यो मन्दा मन्दाकिनी तथा॥२५०॥
मिश्रा राक्षसिका सूर्यवारादिषु यथाक्रमम्।
शूद्रतस्करवैश्यक्ष्मादेवभूपगवां क्रमात्॥२५१॥
अनुक्तानां च सर्वेषां घोराद्याः सुखदाः स्मृताः।
पूर्वाह्णे नृपतीन्हन्ति विप्रान्मध्यन्दिने विशः॥२५२॥
अपराह्णेऽस्तगे शूद्रान्प्रदोषे च पिशाचकान्। निशि रात्रिचरान्नाट्यकारानपररात्रिके॥२५३॥

वे हूण जाति के देश, भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल तथा नेपाल में ही त्याज्य हैं। लेकिन ये सब अन्य देशों में शुभ माने गये हैं। अब **सूर्य संक्रान्ति** का वर्णन किया जा रहा है। रविवासरी संक्रान्ति का नाम घोरा, सोमवासरी का नाम ध्वांक्षी, मंगलवासरी संक्रान्ति का नाम महोदरी, बुधवासरी संक्रान्ति का नाम मन्दा, गुरुवासरी का नाम मन्दाकिनी, शुक्रवासरी का नाम मिश्रा, शनिवासरी संक्रान्ति का नाम राक्षसी होता है। घोरा शूद्रों को, ध्वांक्षी चोरों को, महोदरी वैश्यों को, मन्दा ब्राह्मणों को, मन्दाकिनी क्षत्रियों को, मिश्रा गौ आदि पशुओं को तथा राक्षसी चतुर्वर्ण से अतिरिक्त जातियों को सुख देती है। सूर्य संक्रान्ति पूर्वाह्न में हो, तब वह राजा का हनन करती है। मध्याह्न में संक्रान्ति हो विप्रों की तथा अपराह्न में वैश्यों की, प्रदोषकाल में पड़े, तब शूद्रों की, रात्रि के प्रथम प्रहर में पड़े, तब पिशाचों को हानि करती है। रात्रि के द्वितीय प्रहर में संक्रान्ति

पड़े, तब वह निशाचरों को हानि करती है। रात के तृतीय प्रहर में पड़े, तब नाट्यकारों को हानि करती है।।२५०-२५३।।

गोपानुषसि सन्ध्याधां लिङ्गिनो रविसङ्क्रमः। दिवा चेन्मेषसङ्क्रान्तिरनर्थकलहप्रदा॥२५४॥
रात्रौ सुभिक्षमतुलं सन्ध्ययोर्वृष्टिनाशनम्। हरिशार्दूलवाराहखरकुञ्जरमाहिषाः।
अश्वश्वाजवृषाः पादायुधाः करणवाहनाः॥२५५॥
भुशुण्डी च गदा खड्गौ दण्ड इष्वासतोमरौ॥२५६॥
कुन्तपाशाङ्कुशास्त्रेषून्बिभर्ति करयोस्त्विनः।
अन्नं च पायसं भैक्ष्यं सयूषं च पयो दधि॥२५७॥
मिष्टान्नं गुडमध्वाज्यशर्करा ववतो हविः।
ववोवीवणिजेविश्वां बालवे गोचरस्थितौ॥२५८॥

रात्रि के चतुर्थ प्रहर में संक्रान्ति पड़े, तब गोपालकों, सूर्योदय के समय संक्रान्ति हो, तब-तब अपने पंथ के चिह्न धारण करने वालों को हानि प्रदान करती है। यदि सूर्य की मेष संक्रान्ति दिन में हो, तब संसार में अनर्थ तथा कलह होगा। रात्रिकालीन मेष संक्रान्ति जब पड़ती है, तब अपूर्व सुखप्रद होती है तथा प्रातः सन्ध्या, सायं सन्ध्याकाल में पड़ने वाली संक्रान्ति से वर्षा का नाश होगा। अब **संक्रान्ति के कारण सूर्य के वाहन, भोजन का वर्णन** करते हैं।

एकादश करणों में संक्रान्ति काल में सूर्य के वाहन तथा भोजन का यह विवरण है—

करण	—	**सूर्यवाहन**
व व करण में संक्रान्ति	—	सिंह
बालव करण में संक्रान्ति	—	बाघ
कौलव करण में संक्रान्ति	—	शूकर
तैतिल करण में संक्रान्ति	—	गर्दभ
गर करण में संक्रान्ति	—	हाथी
वाणिज करण में संक्रान्ति	—	महिष
विष्टि करण में संक्रान्ति	—	अश्व
शकुनि करण में संक्रान्ति	—	श्वान
चतुष्पद करण में संक्रान्ति	—	बकरा
नाग करण में संक्रान्ति	—	बैल
किंस्तुघ्न करण में संक्रान्ति	—	मुर्गा

द्वादश करण में क्रमशः संक्रान्ति पर—

सूर्यभोजन (हविष्य)	—	**अस्त्र**
अन्न	—	भुशुंडि

खीर	—	गदा
भिक्षा का अन्न	—	तलवार
पकवान	—	लाठी
दूध	—	धनुष
दधि	—	बरछा
मिष्ठान्न	—	भाला
गुड़	—	पाश
मधु	—	अंकुश
घृत	—	अस्त्र
शर्करा	—	बाण

ब व, वणिज, विष्टि, बालव तथा गर में सूर्य बैठे हुये रहते हैं तथा इसी स्थिति में संक्रान्ति सम्पन्न करते हैं।।२५४-२५८।।

कौलवे शकुनौ भानुः किंस्तुघ्ने चोर्द्धसंस्थितः।
चतुःपादे तिले नागे सुप्तः क्रान्तिं करोति हि॥२५९॥
धर्मायुर्वृष्टिषु समं श्रेष्ठं नष्टं फलं क्रमात्।
आयुधं वाहनाहारौ यज्जातीयं जनस्य च॥२६०॥
स्वापोपविष्टास्तिष्ठन्तस्ते लोकाः क्षेममाप्नयुः।
अन्धकं मन्दसंज्ञं च मध्यसंज्ञं सुलोचनम्॥२६१॥
पपीयाद्गणयेद्भानि रोहिण्यादिचतुर्विधम्।
स्थिरभेष्वर्कसङ्क्रान्तिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया॥२६२॥

कौलव, शकुनि तथा किंस्तुघ्न करणों में वे खड़े रहते संक्रान्ति करते हैं। चतुष्पद, तैतिल तथा नाग करण में वे शयान स्थिति में संक्रान्ति जनित राशि परिवर्त्तन करते हैं। प्रथम (बैठी स्थिति में जब सूर्य हों) संक्रान्ति में प्रजा को धर्म, आयु, वर्षा के सम्बन्ध में समफल मिलेगा। द्वितीय संक्रान्ति में (जब सूर्य खड़े रहते हैं) प्रजा को श्रेष्ठ फल उपरोक्त विषयों में मिलेगा तथा जब सूर्य शयान अवस्था में संक्रान्ति करते हैं, उस तृतीय संक्रान्ति में अनिष्ट फल मिलेगा। उपर्युक्त अस्त्र, वाहन, भोजन से जीविका चलाने वाले अथवा उनका उपयोग करने वाले लोगों का तृतीय संक्रान्ति में अनिष्ट होगा। जैसे सूर्य के बैठे रहते, खड़े रहते तथा शयन करते संक्रान्ति हो जाती है, तदनुसार सुप्त, बैठे तथा खड़े जीवों का उसी प्रकार अनिष्ट होता है। अब नक्षत्रों की **अन्धाक्षादि के सम्बन्ध में कहते हैं।** रोहिणी से प्रारंभ करके चार-चार नक्षत्रों को अन्ध, मन्दनेत्र, मध्यनेत्र तथा सुलोचन मानकर उस समय के सूर्यनक्षत्र तक गिने। चार-चार नक्षत्रों को क्रमशः उपरोक्त अन्धादि चारों संज्ञा प्रदान करता चले। स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ) में सूर्य संक्रान्ति को **विष्णुपदी संक्रान्ति** कहा गया है।।२५९-२६२।।

षडशीतिमुखा ज्ञेया द्विस्वभावेषु राशिषु। तुलाघटाजयोर्ज्ञेयो विषुवत्सूर्यसंमः॥२६३॥

याम्यायने स्थिरे त्वाद्याः पराः सौम्येन्दुमूर्तिभे।
मेध्या विषुवति प्रोक्ताः पुण्यनाड्यस्तु षोडश॥२६४॥

मिथुन, कन्या, धनु, मीन इन चार द्विस्वभाव राशि में सूर्य संक्रान्ति का नाम है **षड्शीतिमुख**। तुला, मेष, 'विषुव' मकर में **सौम्यायन** संज्ञा दी जाती है। कर्क में याम्यायन संज्ञा होगी। याम्यायन तथा विष्णुपदी संक्रान्ति में संक्रान्तिपूर्व की १६ घटी, षड्शीतिमुख संक्रान्ति तथा सौम्यायन संक्रान्ति में संक्रान्ति के बाद की १६ घड़ी, विषुव (मेष-तुला संक्रान्ति) संक्रान्ति में मध्य की अर्थात् संक्रान्ति काल से पहले की ८ घटी एवं संक्रान्ति के बाद की १६ घटी पुण्यप्रदा है।।२६३-२६४।।

सन्ध्या त्रिनाडी प्रमितार्कविवोर्द्धोदयास्ततः।
प्राक्पश्चाद्याम्यसौम्ये चेत्पुण्यं पूर्वापरेहनि॥२६५॥

सूर्योदय के पहले की तीन घटी प्रातः सन्ध्या तथा सूर्यास्त के बाद की तीन-तीन घड़ी सायं-सन्ध्या कही गयी है। यदि सायं-सन्ध्याकाल में याम्यायन किंवा सौम्यायन संक्रान्ति पड़े तथा पूर्व दिन में तथा प्रातः-सन्ध्या में संक्रान्ति हो, तब सूर्योदयोपरान्त पुण्यकाल होता है।।२६५।।

यादृशेनेन्दुना भानोः सङ्क्रान्तिस्तादृशं फलम्।
नरः प्राप्नोति तद्राशौ शीतांशोः साध्वसाधु च॥२६६॥
सङ्क्रान्तेः परतो भानुर्भुक्त्वा यावद्भिरंशकैः।
रवेरयनसङ्क्रान्तिस्तदा तद्राशिसङ्क्रमात्॥२६७॥
सङ्क्रान्तिग्रहगर्क्षवा जन्मन्युभयपार्श्वयोः। व्रतोद्धाहादिकेष्वेव द्वयं नेष्टं तु तत्क्रमात्॥२६८॥
तिलोपरिलिखेच्चक्रं त्रित्रिशूलं त्रिकोणकम्।
तत्र हेम विनिक्षिप्य दद्याद्दोषापवृत्तये॥२६९॥

सूर्य संक्रान्ति के समय चन्द्रमा प्रत्येक व्यक्ति के लिये जिस प्रकार से शुभ अथवा अशुभ हो, तदनुरूप उस मास पर्यन्त उनको चन्द्र फल वैसा ही मिलता है। संक्रान्तिकाल में सूर्य अपने जितने अंश को भोगने के उपरान्त संक्रान्ति करता है, उतने समय तक संक्रान्ति अथवा ग्रहण का जो नक्षत्र हो, वह नक्षत्र तथा उसके आगे पीछे वाले दो नक्षत्र उपनयन तथा विवाहादि हेतु अशुभ माने जाते हैं। इस संक्रान्ति एवं ग्रहण जनित अनिष्ट की शान्ति हेतु तिल पर तीन त्रिशूल युक्त त्रिकोण चक्र बनाये तथा उस पर अपनी धनशक्ति के अनुसार स्वर्ण रखे। तदनन्तर यह सब ब्राह्मण को दान दे।।२६६-२६९।।

ताराबलेन शीतांशुर्बलवांस्तद्वशाद्रविः। बली सङ्क्रममाणस्तु तद्वत्खेटा बलाधिकाः॥२७०॥

अब **ग्रहगोचर** प्रसंग कहते हैं। तारा बल द्वारा चन्द्रमा बली होता है। चन्द्र जब बली हो, तब सूर्य भी बली हो जाता है। जब संक्रमणकारी सूर्य बली हो, तब अन्य ग्रह भी बली होते हैं।।२७०।।

शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषट्सु मुनीश्वर।
नवपञ्चांवुरिष्फस्थैर्व्यर्किभिर्विध्यते न चेत्॥२७१॥

शुभो जन्मर्क्षतश्चन्द्रो द्यूनाङ्गायारिस्वत्रिषु।
यथेष्टान्त्याम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्विध्यते न चेत्॥२७२॥
त्र्यायारिषु कुजः श्रेष्ठो जन्मना चेन्न विध्यते।
व्ययेष्वङ्कस्थितैः सौरिसौम्यसूर्यैः शुभौषधात्॥२७३॥
ज्ञः स्वायार्यष्टखायेषु जन्मश्चेन्न विध्यते।
धीत्र्यकादिगजान्तस्थैः शशाङ्करहितैः शुभैः॥२७४॥
जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठः स्वायगोऽध्यस्तगो न चेत्।
विध्यतेन्त्याष्टखाम्बुत्रिगतैः खेटैर्मुनीश्वर॥२७५॥
जन्मभादासुताष्टाङ्कान्त्यापष्विष्टो भृगोःसुतः।
चेन्न विद्धोऽष्टसप्ताङ्गम् खाङ्काद्यायारिरामगैः॥२७६॥

सूर्य—जन्मराशि से तृतीय, एकादश, दशम तथा षष्ठस्थ सूर्य शुभ है। लेकिन यह शुभत्व तब होगा, जब जन्मराशि से नवम-पंचम-चतुर्थ एवं द्वादशस्थ अन्य ग्रहों से (शनि के अतिरिक्त) विद्ध न हो।

चन्द्र—चन्द्र जन्मराशि से सप्तम, षष्ठ, एकादश, लग्न तथा दशम एवं तृतीयस्थ शुभ होता है, तथापि यह शुभत्व तब होगा, जब वह द्वितीय, द्वादश, अष्टम, पंचम, चतुर्थ, नवमस्थ अन्य ग्रहों से (बुध के अतिरिक्त) विद्ध न हो।

मंगल—जन्मराशि से तृतीय, एकादश तथा षष्ठस्थ शुभ होता है, तथापि वह द्वादश, पंचमस्थ किंवा नवमस्थ ग्रहों से विद्ध न हो।

बुध—बुद्ध जन्मराशि से द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, एकादशस्थ शुभ होगा। लेकिन वह द्वादशस्थ, पंचमस्थ, तृतीयस्थ, नवमस्थ, लग्नस्थ, अष्टमस्थ अन्य ग्रहों (चन्द्र को छोड़कर) से विद्ध न हो।

शनि—अपनी जन्मराशि से तृतीय, एकादश, षष्ठस्थ शुभ है, तथापि वह द्वादश, पंचम, नवमस्थ ग्रहों (सूर्य को छोड़कर) से विद्ध न हो।

गुरु—अपनी जन्मराशि से द्वितीय, एकादश, नवम, पंचम, सप्तमस्थ होने पर शुभ होता, तथापि वह द्वादश, अष्टम, दशम, चतुर्थ तथा तृतीयस्थ अन्य ग्रहों से विद्ध न हो।

शुक्र—स्व जन्मराशि से लग्न, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, अष्टम, नवम, द्वादश, एकादशस्थ शुभ होता, तथापि वह अष्टम, सप्तम, लग्न, दशम, नवम, पंचम, एकादश, षष्ठ तथा तृतीयस्थ किसी ग्रह से विद्ध न हो, तब यह शुभत्व होगा।।२७१-२७६।।

न ददादि शुभं किञ्चिद्गोचरे वेधसंयुते। तस्माद्वेधं विचार्याथ कथनीयं शुभाशुभम्॥२७७॥

वामभेदविधानेन दुष्टोऽपि स्याच्छुभङ्करः।
सौम्येक्षितोऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः॥२७८॥
निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रूणां च विलोकितौ।
नीचराशिगतः स्वस्य शत्रोः क्षेत्रगतोऽपि॥२७९॥

शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तमितोऽपि वा।
ग्रहेषु विषमस्थेषु शान्तिं कुर्यात्प्रयत्नतः॥२८०॥

गोचर में वेधयुक्त ग्रह कोई शुभाशुभ फल प्रदान नहीं कर पाते। वेध विचार फलादेश हेतु आवश्यक है। वामवेध वाले अशुभ ग्रह तक शुभ फलप्रद होते हैं। यदि शुभग्रह भी पापग्रह से दृष्ट हों, तब अनिष्ट फल देते हैं। शुभ किंवा पापग्रह तब निष्फल होते हैं—(१) स्वशत्रु से दृष्ट हों, (२) नीच राशि किंवा शत्रु राशीस्थ हों। अस्तग्रह भी शुभाशुभ फल प्रदान नहीं करते। अशुभ स्थानस्थ ग्रहों के लिये यत्नतः शान्ति अनुष्ठान कराये।।२७७-२८०।।

हानिर्वृद्धिर्ग्रहाधीना तस्मात्पूज्यतमा ग्रहा।
मणिर्मुक्ताफलं विद्रुमाख्यं मरकतं तथा॥२८१॥
पुष्परागं तथा वज्रं नीलं गोमेदसंज्ञितम्।
वैदूर्य्यं भास्करादीनां तुष्ट्य धार्यं यथाक्रमम्॥२८२॥

व्यक्ति की हानि तथा वृद्धि सर्व ग्रहाधीन है। इसलिये ग्रह सर्वदा पूज्य हैं। सूर्य की सन्तुष्टि हेतु मणि (मानिक), चन्द्र हेतु मोती, मंगल हेतु मूंगा, बुध हेतु पन्ना, बृहस्पति हेतु पुखराज, शुक्र हेतु हीरा, शनि हेतु नीलम, राहु हेतु गोमेद तथा केतु हेतु वैदूर्य धारण करे।।२८१-२८२।।

शुक्लपक्षादिदिवसे चन्द्रो यस्य शुभप्रदः।
स पक्षस्तस्यशुभदः कृष्णपक्षोन्यथाऽशुभः॥२८३॥
शुक्लपक्षे शुभश्चन्द्रो द्वितीयनवपञ्चमे। रिःफरन्ध्राम्बुसंस्थैश्चेन्न विद्धो गगने चरैः॥२८४॥
जन्म सम्पद्विपत् क्षेम प्रत्यरिः साधको वधः।
मित्रं परममित्रं च जन्मभात्तु पुनः पुनः॥२८५॥
जन्मत्रिपञ्चसप्ताख्यास्तारा नेष्ट फलप्रदाः।
शाकं गुडं च लवणं सतिलं काञ्चनं क्रमात्॥२८६॥
अनिष्टफलनाशाय दद्यादेतद्दिद्वजातये।
कृष्णे बलवती तारा शुक्लपक्षे बली शशी॥२८७॥

अब चन्द्र शुभत्वादि कहते हैं—शुक्लपक्षीय प्रतिपदा के समय जिस जातक के चन्द्रमा शुभ हो, उस जातक हेतु कृष्ण एवं शुक्लपक्ष—दोनों शुभ होगा। ऐसा न होने पर दोनों पक्ष अशुभ रहेंगे। शुक्लपक्षीय द्वितीय, नवम, पंचमस्थ चन्द्र तब शुभ होता है, जब वह षष्ठ, अष्टम तथा द्वादशस्थ ग्रहों से विद्ध न रहा हो।

अब तारा विचार कहते हैं—जातक के जन्म नक्षत्र से लगाकर नौ नक्षत्रों तक गिने। तब क्रमशः नौ तारा इस प्रकार होंगे—

१ से ९ तक—(१) जन्म, (२) सम्पदा, (३) विपदा, (४) क्षेम, (५) प्रत्यरि, (६) साधक, (७) वध, (८) मित्र, (९) परममित्र।

१० से १८ तक—(१) जन्म, (२) सम्पदा, (३) विपदा, (४) क्षेम, (५) प्रत्यरि, (६) साधक, (७) वध, (८) मित्र, (९) परममित्र।

१८ से २७ नक्षत्र तक—(१) जन्म, (२) सम्पदा, (३) विपदा, (४) क्षेम, (५) प्रत्यरि, (६) साधक, (७) वध, (८) मित्र, (९) परममित्र।

इनमें से १, ३, ५, ७ नम्बर वाले तारा स्वनामानुरूप अनिष्टफलप्रद होते हैं। प्रथम तारा शान्ति हेतु शाक, तृतीय तारा शान्त्यर्थ गुड़, पंचम तारा शान्त्यर्थ लवण, सप्तम तारा शान्त्यर्थ स्वर्ण-तिल दान करे। कृष्ण में तारा तथा शुक्लपक्ष में चन्द्र बली होता है।।२८३-२८७।।

यात्रोद्वाहादिकार्येषु नामतुल्यफलप्रदाः। षष्टिघ्नं गतचन्द्रर्क्षं तत्कालघटिकान्वितम्।
वेदघ्नमिषुवेदान्त्यमवस्था भानुभागतः॥२८८॥
प्रवासनष्टाख्यमृता जयो हास्यं रतिर्मुदा।
शनिभुक्तिर्ज्वरः कम्पः सुस्थितिर्नामसन्निभाः॥२८९॥

अब चन्द्रावस्था तथा उसकी अवस्था का ज्ञान कहते हैं—प्रतिराशीस्थ चन्द्र की द्वादश अवस्था प्रतिराशि में होती है। वह स्वनामानुरूप फल यात्रा विवाह में प्रदान करती है। अब इसका गणित कहते हैं। जिस दिन का देखना हो, उस दिन जितने नक्षत्र बीत गये हों, उस संख्या का गुणा ६० से करे। उसमें वर्त्तमान नक्षत्र का भयात जोड़े। इस योगफल का गुणा चार से करें। गुणनफल में ४५ का भाग देना चाहिये। लब्धि में १२ से भाग देने पर जो बाकी बचे वह मेषादि राशियों की द्वादश गतावस्था होगी। ये नामानुसार फलप्रदा अस्थायें हैं—

मेष—प्रवास, वृष—नष्ट, मिथुन—मृत, कर्क—जय, सिंह—हास्य, कन्या—रति, तुला—मुदा, वृश्चिक—शनि, धनु—भक्ति, मकर—ज्वर, मीन—सुस्थिति। ये नाम के अनुरूप फल देती हैं।।२८८-२८९।।

पट्टबन्धनयानोग्रसन्धिविग्रहभूषणम्। धात्वाकरं युद्धकर्म मेषलग्ने प्रसिद्ध्यति॥२९०॥
मङ्गलानि स्थिराण्यंवुवेश्मकर्मप्रवर्तनम्।
कृषिवाणिज्यपश्वादिदुष्टलग्ने प्रसिद्ध्यति॥२९१॥
कलाविज्ञानशिल्पानि भूषणाहवसंश्रवम्। गजोद्वाहाभिषेकाद्यं कर्त्तव्यं मिथुनोदये॥२९२॥
वापीकूपतडागादि वारिबन्धनमोक्षणम्।
पौष्टिकं लिपिलेखादि कर्तव्यं कर्कटोदये॥२९३॥
इक्षुधान्यवणिक्पण्यकृषिसेवादयस्थिरे। साहसावभूषाद्यं सिंहलग्ने प्रसिद्ध्यति॥२९४॥
विद्याशिल्पौषधं कृत्यं भूषणं च चरस्थिरम्।
कन्या लग्नं विधेयं च पौष्टिकाखिलमङ्गलम्॥२९५॥

लग्नानुसार कार्य—इन लग्नों में यह कार्य करे।

मेष लग्न—राजमुकुट, राजसिंहासन अथवा कोई पदभार धारण, यात्रा, उग्र कार्य, सन्धि-विग्रह, आभूषण पहनना, धातु-खान का कार्य, युद्ध कर्म।

वृष लग्न—विवाह, मंगलकृत्य, स्थिर कर्म जैसे भवन निर्माण, जलाशय निर्माण, गृह प्रवेश, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन।

मिथुन लग्न—कला-विज्ञान-शिल्प कार्य, आभूषण ग्रहण, युद्ध, कीर्तिप्रद कार्य, राजकार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि।

कर्क लग्न—वापी-कूप-तड़ाग-बांध निर्माण, जल हेतु नाली निर्माण, पौष्टिक कृत्य, चित्रकारी, लेखन कार्य।

सिंह लग्न—ईख-धान्य के कार्य, वाणिज्य, कृषिकर्म, सेवाकर्म, साहसिक स्थिर कर्म, युद्ध, आभूषण निर्माण आदि।

कन्या लग्न—विद्यारंभ, शिल्पकृत, औषधि बनाना, सभी चर-स्थिर कार्य, पुष्टिप्रद कर्म, विवाहादि शुभकार्य।।२९०-२९५।।

कृषिवाणिज्ययानं च पशूद्वाहव्रतादिकम्।
तुलायामखिलं कर्म तुलाभाराश्रिते च यत्॥२९६॥
स्थिरकर्माखिलं कार्यं राजसेवाभिषेचनम्।
चौर्यकर्मस्थिरारम्भाः कर्तव्याः वृश्चिकोदये॥२९७॥

व्रतोद्वाहप्रयाणाश्वगजशिल्पकलादिकम्। चरस्थिरविमिश्रं च कर्तव्यं कार्मुकोदये॥२९८॥

चापबन्धनमोक्षास्त्रकृषिगोश्वादिकम् च यत्।
प्रस्थानं पशुदासादि कर्तव्यं मकरोदये॥२९९॥

कृषिवाणिज्यपश्वंवुशिल्पकर्मकलादिकम्। जलपात्रास्त्रशस्त्रादि कर्तव्यं कलशोदये॥३००॥

व्रतोद्वाहाभिशकाम्बुस्थापनं सन्निवेशनम्। भूषणं जलपात्राश्वकर्म मीनोदये शुभम्॥३०१॥

तुला लग्न—कृषि, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह, उपनयनादि, वजन, तुला सम्न्धित सभी कार्य।

वृश्चिक लग्न—स्थिर कृत्य, गृहारंभ प्रभृति कृत्य, राजसेवा-राज्याभिषेक, गुप्तकार्य आदि।

धनु लग्न—उपनयन, विवाह, यात्रा, अश्व एवं गजकृत्य, शिल्प, चर-स्थिर तथा मिश्रित कर्म आदि।

मकर लग्न—धनुष निर्माण, प्रत्यंचा बांधना, बाणकार्य, अस्त्र निर्माण तथा चालन, कृषि, गोपालन, अश्व एवं गज कार्य, पशु क्रय-विक्रय, दास प्रभृति की नियुक्ति का कार्य।

कुंभ लग्न—कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, जलाशय, शिल्प कला कार्य, जलपात्र-अस्त्रशस्त्र निर्माण आदि कार्य।

मीन लग्न—उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, जलाशय स्थापना, गृहप्रवेश, आभूषण, जलपात्र निर्माण अश्व का कार्य शुभप्रद होगा।।२९६-३०१।।

मेषादिषु विलग्नेषु शुद्धेष्वेवं प्रसिद्ध्यति। क्रूरग्रहेक्षितेषूग्रसंयुतेषूग्रमेव हि॥३०२॥

जब मेषादि लग्न शुभ ग्रह युक्त अथवा शुभग्रह दृष्ट हों, तब शुभकार्य सिद्ध होते हैं। क्रूरग्रह से युक्त होने किंवा दृष्ट होने पर मात्र क्रूर कर्म ही सिद्ध होते हैं।।३०२।।

गोयुग्मकर्ककन्यान्त्यतुलाचापधराः शुभाः।
शुभर्क्षत्वाशुभासत्य इतरा पापराशयः॥३०३॥
ग्रहयोगावलोकाभ्यां राशिर्धत्ते ग्रहोद्भवम्।
फलं ताभ्यां विहीनोऽसौ स्वभावमुपसर्पति॥३०४॥
आदौ सम्पूर्णफलदं मध्ये मध्यफलप्रदम्।
अन्ते तुच्छफले लग्ने सर्वस्मिन्नेवमेव हि॥३०५॥

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, मीन, तुला, धन, राशियों शुभाग्रह की राशि हैं। अन्य मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर तथा कुंभ को पापराशि कहा गया है। लग्न के साथ शुभ-अशुभ ग्रहों का योग तथा दृष्टि जैसी होती है, तदनुरूप लग्नफल होता है। लग्न ग्रह रहित हो, दृष्टि भी न हो, तब लग्न अपने स्वभावानुरूप फल देगा। लग्न के आरंभ काल में कार्यारंभ करें। पूर्णफल मिलेगा। लग्न के मध्य में कार्य आरंभ करने से मध्यम फल तथा अन्त में कार्य आरंभ करने पर अत्यल्प फल मिलेगा। समस्त लग्नों में यही नियम प्रभावी है।।३०३-३०५।।

सर्वत्र प्रथमं लग्नं कर्तुश्चन्द्रबलं ततः।
कल्प्यामदिन्दौ वलिनिं सप्तमे वलिनो ग्रहाः॥३०६॥
चन्द्रस्य वलिमाधारमाधेयं चान्यखेटकम्।
आधारभूतेनाधेयं धीयते परिधिष्ठिनम्॥३०७॥
चेदिन्दुः शुभदः सर्वे ग्रहाः शुभफलप्रदाः।
अशुभश्चेदशुभदा वर्जयित्वा धनाधिपम्॥३०८॥

सबसे पूर्व (कार्यारंभ हेतु) में लग्न बल देखे, तब चन्द्रबल ज्ञात करे। यदि बली चन्द्र सप्तमस्थ हो, तब सभी ग्रह बली होते हैं। चन्द्रमा का ही बल सबका आधार है। अन्य ग्रहों के बल को आधेय माना जाता है। आधार पर ही आधेय की स्थिरता रह पाती है। जब चन्द्र शुभ हो, तब समस्तग्रह शुभप्रद होते हैं। चन्द्र के अशुभ होने की स्थिति में समस्त ग्रह अशुभत्व युक्त हो जाते हैं। यह नियम धनेश के साथ प्रभावी नहीं है। भले ही चन्द्र अशुभत्व युक्त हो, लेकिन धनेश के शुभत्व के चलते चन्द्रमा शुभफल देता है।।३०६-३०८।।

लग्नस्याभ्युदिता येंशास्तेष्वंशेषु स्थितो ग्रहः।
लग्नोद्भवं फलं धत्ते धनातीतो द्वितीयकम्॥३०९॥
एवं स्थानेषु शेषेषु चैवमेवं प्रकल्पयेत्। लग्नं सर्वगुणोपेतं लभ्यतेऽल्पैर्दिनैर्नहि॥३१०॥
दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं बहु सन्ततमिष्यते।
दोषाद्दुष्टो हि कालस्तमपि मार्ष्टुं पितामहः॥३११॥
अप्यशौचगुणाधिक्यं दोषान्यत्ते ततो हि ते। अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि॥३१२॥

लग्न का जितना अंश क्षितिज के ऊर्ध्व में आ गया हो, उनमें जो ग्रह हो, वही लग्नफल प्रदान करेगा। लग्न के भावांश के अनुसार उसके अन्तर्गत् स्थित ग्रह लग्नफल देगा। यदि इसमें अग्रपश्चात् हो

(आगे-पीछे हो) तब लग्नराशीस्थ रह कर भी वह आगे-पीछे वाले भाव का ही फल प्रदान करेगा। लग्नांश से जो ग्रह आगे चला जाये, वह द्वितीय भाव का फल प्रदान करेगा। एवंविध समस्त भावों में ग्रहस्थिति देखे तथा फल निर्णीत करें। सर्वगुणान्वित लग्न प्राप्ति सुदुर्लभ है। अतः स्वल्पदोष युक्त तथापि प्रभूतगुणयुक्त लग्न ही कार्य हेतु लेना उचित है। जो अधिक दोषात्मक काल है, वह ब्रह्मा द्वारा भी शुद्ध नहीं किया जा सकता। अतः स्वल्प दोष तथापि अधिक गुणान्वित काल को ग्रहण करे। यही उचित है। अब **स्त्रीगण के प्रथम रजोदर्शन** फल को कहते हैं। अमावस्या, रिक्ता तिथियां (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी तथा प्रतिपदा।।३०९-३१२।।

परिघस्य च पूर्वार्द्धं व्यतीपाते सवैधृतौ।
सन्ध्यासूपप्लवे विष्ट्यमशुभं प्रथमार्त्तवम्।।३१३।।
रुग्णा पतिप्रिया दुःखा पुत्रिणी भोगनी तथा।
पतिव्रता केशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात्।।३१४।।

इन तिथियों के अन्तर्गत् परिघ योग के पूर्वार्द्ध में, व्यतीपात, वैधृति में, सायांल, सूर्य-चन्द्र ग्रहण काल, विष्टि (भद्रा) काल में स्त्री का प्रथम रजोदर्शन अशुभ है। रवि के दिन प्रथम रजोदर्शन हो, तब नारी रोगयुता, सोम के दिन हो, तब पतिप्रिया, मंगल हो, तब दुखयुता, बुध को हो, तब पुत्रवती, बृहस्पति को हो, तब भोगवती, शुक्र को हो, तब पतिपरायणा, शनि हो, तब नारी क्लेशयुक्त रहेगी।।३१३-३१४।।

यामाग्निरौद्रभाग्याहिद्वीशेन्द्रादिह्युपद्विषाः। तारका न हिता मासा मधूर्जशुचिपौषकाः।।३१५।।
भद्रा च सङ्क्रमो निद्रा रात्रिश्चन्द्रार्कयोर्ग्रहः।
कुलटा पापभोगेषु निद्यर्क्षे निन्द्यवासरे।।३१६।।
तिलाज्यदूर्वा जुहुयाद्गायत्र्याष्टशतं बुधः। सुवर्णगोतिलान्दद्यात्सर्वदोषानुपत्तये।।३१७।।

प्रथम मासिक धर्म में अनिष्ट कारक नक्षत्र-मास—भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र तथा चैत्र, कार्त्तिक, आषाढ़ एवं पौष मास। भद्रा, सूर्यसंक्रान्ति, निद्रित अवस्था, रात्रि, सूर्य-चन्द्रग्रहण भी प्रथम रजोदर्शन हेतु अशुभ हैं। यदि अशुभ योग में, निन्दित नक्षत्रों में, निन्दित दिन में यह प्रथम रजोदर्शन होता है, तब नारी कुलटा होगी। धीमान् व्यक्ति इन दोषों के समय प्रथम रजोदर्शन होने की स्थिति जानने पर तिल-घृत-दूर्वा से गायत्री मन्त्र द्वारा १०८ आहुति प्रदान करे तथा स्वर्ण, गौ एवं तिल दान करे।।३१५-३१७।।

आद्या निशश्चतस्रस्तु याज्या ह्यपि समा परैः।
ओजराश्यंशगे चन्द्रे लग्ने पुङ्ग्रहवीक्षिते।।३१८।।
उपवीती युग्मतिथावनग्नः कामयेत्स्त्रियम्।
पुत्रार्थी पुरुषस्त्यक्त्वा पौष्णमूलाहिपित्र्यभम्।।३१९।।

अब **गर्भाधान** सम्बन्धित नियम कहते हैं। मासिक धर्म जिस दिन प्रारंभ हो, तब से चार रात्रि तक गर्भाधान वर्जित है। जब चन्द्र विषमराशीस्थ तथा विषम नवमांशस्थ हो, तब समरात्रियों में, जब लग्न

पर रवि-मंगल-बृहस्पति में से किसी की दृष्टि हो, तब द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, दशमी, द्वादशी तिथि के दिन सवस्त्र रहते स्त्री संग करे। परन्तु जब रेवती, मूल, आश्लेषा तथा मघा नक्षत्र नहीं होना चाहिये।।३१८-३१९।।

प्रसिद्धे प्रथमे गर्भे तृतीये वा द्वितीयके। मासे पुंसवनं कार्यं सीमन्तं च यथा तथा।।३२०।।
चतुर्थे मासिषष्ठे वाप्यष्टमे वा तदीश्वरे। वलोपपन्ने दम्पत्योश्चन्द्रताराबलान्विते।।३२१।।
अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे। तीक्ष्णमिश्रार्कवर्ज्येषु पुम्भांशेरात्रिनायके।।३२२।।
शुद्धेऽष्टमे जन्मलग्नात्तयोर्लग्ने न नैधने। शुभग्रहयुते दृष्टे पापदृष्टिविवर्जिते।।३२३।।
शुभग्रहेषु धीधर्मकेन्द्रेष्वरिभवे त्रिषु। पापेषु सत्सु चन्द्रेत्यनिधनाद्यरिवर्जिते।।३२४।।
क्रूरग्रहाणामेकोपि लग्नादन्त्यात्मजाष्टगः।
सीमन्तिनी वा तद्गर्भं बली हन्ति न संशयः।।३२५।।

अब **पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन नियम** कहते हैं। गर्भ स्थिर हो जाये, तब दूसरे किंवा तीसरे माह में पुंसवन कर्म करें। एवंविध चतुर्थ, षष्ठ किंवा अष्टम मास में जब मास के स्वामी बलयुक्त हों, पुरुष-स्त्री दोनों चन्द्र एवं तारक बलयुक्त हों, तब **सीमन्तोन्नयन** सम्पन्न करे। रिक्ता तिथि तथा पर्व तिथियां त्याज्य हैं। अन्य तिथियों पर मंगल, बृहस्पति, रविवार को, तीक्ष्ण एवं मिश्र नक्षत्रों को छोड़कर अन्य नक्षत्र में, चन्द्र के विषमराशीस्थ तथा विषम नवमांशस्थ होने पर, लग्न से अष्टम स्थान ग्रहरहित होने पर, स्त्री पुरुष के जन्म लग्न में राशिलग्न जब अष्टम में न हों, शुभग्रहलग्न से पंचम, लग्नस्थ, चतुर्थस्थ, नवमस्थ, दशमस्थ हो तथा पापग्रह षष्ठस्थ, एकादशस्थ, तृतीयस्थ हों साथ ही चन्द्र द्वादश-अष्टम तथा लग्न से इतर स्थान में हो तभी पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन विहित है। यदि बली पापग्रह एक भी लग्न से द्वादश, पंचम किंवा अष्टम भाव में हों, तब यह योग उस स्त्री का अथवा उसके गर्भ का नाशक हो जाता है।।३२०-३२५।।

तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽपि वा शिशोः।
जातकर्म प्रकर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्।।३२६।।
सूतकान्ते नामकर्म विधेयं तत्कुलोचितम्।
नामपूर्वं प्रशस्तं स्यान्मङ्गलैः सुसमीक्षितैः।।३२७।।
देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदा।
अनस्तगे भृगावीज्ये तत्कार्ये चोत्तरायणे।।३२८।।
चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभवासरे। चन्द्रताराबलोपेते दिवसे च शिशोः पितुः।।३२९।।
शुभलग्ने शुभांशे च निधने शुद्धिसंयुते।
षष्ठे मास्यष्टमे वापि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे।।३३०।।

अब **जातकर्म एवं नामकरण** का वर्णन करते हैं। जातकर्म जन्मकाल में ही करे। यदि उस समय न किया जा सके, तब जब सूतक व्यतीत हो जाये, तब उस लग्न में नान्दीमुख श्राद्ध रूप पितृपूजन करे। यह

जातकर्म अवश्य सम्पन्न करे। सूतक व्यतीत होने पर अपनी कुल परम्परा के अनुसार जातक का नामकरण-संस्कार भी सम्पन्न करे। बालक का नाम देवता वाचक, मंगलप्रद तथा उत्तम रखे। यदि देश-काल-परिस्थिति के कारण तब समयानुकूल यह कार्य न हो सके, उस स्थिति में उत्तरायण काल में जब चर, स्थिर, मृदु अथवा क्षिप्र नामक नक्षत्र में सोम, बुध, गुरु अथवा शुक्र हो, उस समय जातक तथा पिता का चन्द्रबल तथा ताराबल मिले, शुभ लग्न तथा शुभ नवांश की स्थिति लग्न से अष्टमस्थ कोई ग्रह न पड़े, तब जातक का जातकर्म एवं नामकरण सम्पन्न करे। बालकों का अन्नप्राशन जन्म से षष्ठ किंवा अष्टम मास में बालिका का पंचम—।।३२६-३३०।।

सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्।
रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीमथ॥३३१॥
त्यक्त्वान्यतिथिषु प्रोक्तं प्राशनं शुभवारे। चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभनैधने॥३३२॥
दशमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके।
पूर्वार्द्धे सौम्यखेटेन संयुक्तवीक्षितेऽपि वा॥३३३॥
त्रिषष्टलाभगैः क्रूरैः केन्द्रधीधर्मगैः शुभैः।
व्ययारिनिधनस्थे च चन्द्रेऽन्नप्राशनंशुभम्॥३३४॥

किंवा सप्तम मास में अन्नप्राशन कार्य शुभप्रद होगा। रिक्तातिथि, तिथिक्षय तथा नन्दा तिथि को छोड़कर अन्य शुभ तिथि में चर, स्थिर, मृदु, शिप्र नक्षत्रों में तथा लग्न से अष्टम नक्षत्र में जब जन्मलग्न से अष्टम एवं दशम भाव ग्रहरहित हो, जब शुभ नवांशमय शुभ राशि लग्न में हो, जब लग्न पर शुभग्रहों का योग हो अथवा शुभग्रह दृष्टि हो, जब पापग्रह लग्न से तृतीय, षष्ठ किंवा एकादशस्थ रहे तथा शुभग्रह लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम, पंचम, नवमस्थ हों, चन्द्रमा द्वादश, षष्ठ, अष्टम में न होकर अन्य स्थान में हो, ऐसे पूर्वाह्नकाल में अन्नप्राशन संस्कार शुभप्रद होगा।।३३१-३३४।।

तृतीये पञ्चमे चाब्दे स्वकुलाचारतोऽपि वा।
बालानां जन्मतश्चौलं स्वगृह्योक्तविधानतः॥३३५॥
सौम्यायने नास्तगयोः सुरारिसुरमन्त्रिणोः। अपूर्वरिक्तातिथिषु शुक्रेज्यज्ञेदुवासरे॥३३६॥
दसादितीज्यचन्द्रेन्द्रयूपभानि शुभानि च।
चौलकर्मणि हस्तर्क्षात्त्रीणित्रीणि च विष्णुभात्॥३३७॥
पट्टबन्धनचोलान्नप्राशने चोपनायने। शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि॥३३८॥
अष्टमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके। जन्माष्टमं शीतांशौ षष्टाष्टान्त्यविवर्जिते॥३३९॥
धनत्रिकोणकेन्द्रस्थैः शुभैख्यायारिगैः परैः।
अभ्यक्ते सन्ध्ययोर्वारि निशि भुक्त्वा न वाहवे॥३४०॥

अब **चूड़ाकरण** कहते हैं। अपनी कुल परम्परा के आधार पर जातक के जन्म से तीसरे किंवा पांचवे वर्ष में उत्तरायण में जब गुरु-शुक्र अस्त न हों, पर्व एवं रिक्ता तिथियों को छोड़कर अन्य तिथि के समय शुक्र-

गुरु-सोम के दिन, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र के समय स्वगृह्यसूत्रोक्त विधि के अनुसार चूड़ाकरण सम्पन्न करे। राजागण के राज्याभिषेक, बालकों के चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, उपनयन जन्म नक्षत्र शुभ होता है। जन्म लग्न में शुभग्रह का नवमांश हो, जन्मराशि किंवा जन्मलग्न से अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा षष्ठ, अष्टम तथा द्वादशस्थ न होकर अन्य स्थान में हो, शुभग्रह पंचम, द्वितीय, नवम, लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम में स्थित हो, पापग्रह तृतीय, षष्ठ एकादशस्थ हो, ऐसी स्थिति में चूड़ाकरण उत्तम होगा। अब **क्षौरकर्म** कहा जा रहा है। तेल मर्दन करके प्रातः तथा सायं-सन्ध्या (दोनों सन्ध्याकाल में) क्षौर न कराये। मंगलवार को रात्रि में क्षौर वर्जित है।।३३५-३४०।।

नोत्कटे भूषिते नैव याने न नवमेऽह्नि च। क्षौरकर्म महीपानां पञ्चमेऽहनि॥३४१॥
कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथ वास्योदये शुभम्। नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे॥३४२॥
उद्वाहेऽखिलवारर्क्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम्। कर्तव्यं मङ्गलेष्वादौ मङ्गलाय क्षुरार्पणम्॥३४३॥

दिवाकाल में भोजनोपरान्त क्षौरकर्म वर्जित है। युद्ध यात्रा में भी क्षौर वर्जित है। शय्या पर बैठकर तथा चन्दनादि लिप्त करके क्षौर न करे। जब यात्रा करना हो, उस दिन क्षौर न करे। राजा ५वें दिन क्षौर कराये चूड़ाकरण कृत्य में जिन नक्षत्र वार का विधान कहा गया है, उनमें अथवा क्षौरार्थ विहित नक्षत्रोदय किंवा वारोदय के समय क्षौरकृत्य शुभ माना जाता है। लेकिन जब राजा किंवा ब्राह्मण आज्ञा दें तब यज्ञ हेतु, माता-पिता की मृत्यु होने पर, बन्दीगृह से मुक्त होने पर, विवाह के समय, यदि निषिद्ध नक्षत्र, वार तथा तिथि आदि में क्षौरकार्य शुभ है। सभी मंगल कार्य हेतु, देवता के पास क्षुरा अर्पण करे।।३४१-३४३।।

नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा। तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये॥३४४॥
सम्यग्गृहाण्यलङ्कृत्य वितानध्वजतोरणैः।
आशिषो वाचनं कार्यं पुण्यं पुण्याङ्गनादिभिः॥३४५॥
सहवादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम्। तत्र मृदततस्तीक्ष्णा गृहीत्वा पुनरागतः॥३४६॥
मृण्मयेऽप्यथ वा वैणवेऽपि पात्रे प्रपूरयेत्।
अनेकबीजसंयुक्तं तोयं पुष्पाभिशोभितम्॥३४७॥

अब **उपनयन** का वर्णन करते हैं। जब उपनयन का मुहूर्त्त तय हो, उससे पहले ९वें, ७वें, पांचवें किंवा तीन दिन पूर्व उपवन के लिये निश्चित नक्षत्र में शुभवार एवं शुभलग्न में अपने गृह को चंदोवा, पताका, तोरण से अलंकृत करे। ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन, **पुण्याहवाचनादि** कराये। सौभाग्यशालिनी स्त्रियों सहित मांगलिक वाद्यवादन तथा मंगलगान के साथ गृह से ईशानकोण की ओर जाये तथा पावन स्थल से चिकनी मृत्तिका खोदकर उसे ग्रहण करके इसी समारोह वाद्यवादन, गायन के साथ गृह वापस आकर उस मृत्तिका को बांस पात्र किंवा मृत्तिका पात्र में रखे तथा उसमें नाना वस्तु एवं विविध पुष्प से युक्त पवित्र जल उसमें छोड़े।।३४४-३४७।।

आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाग्रजन्मनाम्।
राज्ञामेकादशे मौञ्जीबन्धनं द्वादशे विशाम्॥३४८॥

जन्मतः पञ्चमे वर्षे वेदशास्त्रविशारदः। उपवीती यतः श्रीमान्कार्यं तत्रोपनायनम्॥३४९॥

ब्राह्मण गर्भाधानकाल किंवा जन्म से अष्टमवें वर्ष में।

क्षत्रियगण गर्भाधानकाल किंवा जन्म से एकादशवें वर्ष में।

वैश्यगण गर्भाधानकाल किंवा जन्म से द्वादशवें वर्ष में मौञ्जी बन्धन सम्पन्न करें। बालक का यज्ञोपवीत यदि जन्म से पंचम वर्ष में हो, तब वह वेदशास्त्रज्ञ तथा ऐश्वर्यवान् होगा। ब्राह्मण बालक का तभी उपनयन कराये।।३४८-३४९।।

बालस्य बालहीनोऽपि सितो जीवः शुभप्रदः। यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते नोपनायनम्॥३५०॥

दृश्यमानगुरौ शुक्रे शाखेशे चोत्तरायणे।
वेदानामधिपा जीवशुक्रभौमबुधाः क्रमात्॥३५१॥

जो वर्ष कहे गये हैं, उतनी ही आयु वर्ष में उपनयन कराये। शुक्र-बृहस्पति भले निर्बल हों, तब भी वे (उपनयनार्थ) शुभ होते हैं। जिन वर्ष का उल्लेख नहीं किया गया उतनी आयु में यज्ञोपवीत न कराये। जब उत्तरायण हो, गुरु-शुक्र तथा वेदशाखा के स्वामी दृश्यमान हों, अस्त न हों तथा उपनयन कराये। बृहस्पति ऋग्वेद के, शुक्र यजुर्वेद के, मंगल सामवेद के तथा बुध अथर्ववेदाधिपति हैं।।३५०-३५१।।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु व्युत्क्रमात्तु द्विजन्मनाम्।
मुख्यं साधारणं तेषां तपोमासादिपञ्चसु॥३५२॥

स्वकुलाचारधर्मज्ञो माघमासे तु फाल्गुने। विधिज्ञश्चार्थवांश्चैत्रे वेदवेदाङ्गपारगः॥३५३॥

वैशाखे धनवान्वेदशास्त्रविद्याविशारदः।
उपनीतो बलाढ्यश्च ज्येष्ठे विधिविदां वरः॥३५४॥

शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा।
त्रयोदशी च दशमी सप्तमी व्रतबन्धने॥३५५॥

श्रेष्ठा त्वेकादशी षष्ठी द्वादश्यन्यास्तु मध्यमाः।
कृष्णे द्वित्रिषुसंख्याश्च मिथ्योऽन्या ह्यतिनिन्दिताः॥३५६॥

शरद ऋतु वैश्यों हेतु ग्रीष्म क्षत्रियों हेतु, वसन्त ब्राह्मणों हेतु उपनयनार्थ मुख्य काल कहा गया है। माघ आदि पंचमास (माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ) सबके लिये यज्ञोपवीत हेतु सामान्य कालरूप हैं। इनका फल यह है—

उपनयन	फल
माघमासीय उपनयन	— कुलोचित आचार तथा धर्म का ज्ञाता होगा।
चैत्रमासीय उपनयन	— ब्रह्मचारी, वेदा-वेदांग ज्ञाता होगा।
फाल्गुनमासीय उपनयन	— विधिज्ञ, धनी होगा।
वैशाखमासीय उपनयन	— धनी, वेद-शास्त्र नाना विद्या का ज्ञाता होगा।
ज्येष्ठमासीय उपनयन	— विधिज्ञोत्तम तथा उत्तम बली होगा।

शुक्लपक्षीय द्वितीया, तृतीया, पंचमी, त्रयोदशी, दशमी, सप्तमी यज्ञोपवीत हेतु वरणीय हैं। एकादशी, षष्ठी, द्वादशी उत्तम तिथि हैं। बाकी मध्यम तिथि हैं। एवंविध कृष्णपक्षीय द्वितीया, तृतीया, पंचमी यज्ञोपवीत हेतु विहित हैं। बाकी तिथि वर्जित हैं।।३५२-३५६।।

धिष्णान्यर्कत्रयान्तेज्यरुद्रादित्युत्तराणि च। विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने।।३५७।।
जन्मभाद्दशमं कर्म सङ्घातर्क्षं तु षोडशम्। अष्टादशं समुदयं त्रयोविंशं विनाशनम्।।३५८।।

मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु।
आचार्यसौम्यकाव्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः।।३५९।।
वारौ तु मध्यमौ चैव व्रतेऽन्यौ निन्दितौ मतौ।
त्रिध विभज्य दिवसं तत्रादौ कर्म दैविकम्।।३६०।।
द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंशे च पैतृकम्।
स्वनीचगे तदंशे वा स्वारिभे वा तदंशके।।३६१।।
गुरुशिखिनोश्च शाखेशे कलाशीलविवर्जितः।
स्वाधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशस्थेऽथ वा व्रती।।३६२।।
शाखेशे वा गुरौ शुक्रे महापातककृद्भवेत्।
स्वोच्चसंस्थे तदंशे वा स्वराशौ राशिगे गणे।।३६३।।

शाखेशे वा गुरौ शुक्रे केन्द्रगे वा त्रिकोणगे। अतीव धनवांश्चैव वेदवेदाङ्गपारगः।।३६४।।

यज्ञोपवीत हेतु उत्तम नक्षत्र — हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, पुष्य, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तरायण, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा, रोहिणी।

शुभकर्म हेतु वर्जित नक्षत्र — जन्म नक्षत्र से शम नक्षत्र 'कर्म' कहलाता है। जन्म नक्षत्र से तेईसवां नक्षत्र 'विनाश' करता है। जन्म नक्षत्र से पचीसवां नक्षत्र 'मानस' नामक है।

मंगल तथा शनैश्चर भी निन्दित हैं। दिवा को तीन भाग में बांटे। प्रथम भाग में—देवकार्य हो—यज्ञ, पूजनादि करे।

द्वितीय भाग में—मनुष्य कार्य हो—अतिथि सत्कार आदि करे।

तृतीय भाग में—पितृकार्य हो—श्राद्ध-तर्पणादि करे।

यदि गुरु-शुक्र तथा अपनी वैदिक शाखा के स्वामी अपनी नीच राशि में हों अथवा उसके अंश में हों, शत्रु राशि में हों अथवा शत्रु राशि के अंश में हों, तब जो यज्ञोपवीत संस्कार करेगा, वह कला, शीलरहित होगा। यदि स्वशाखा के स्वामी, गुरु तथा शुक्र अपने अधिशत्रु गृह में विराजित हों अथवा उसके अंशस्थ हों, तब यज्ञोपवीत ग्रहण करने वाला महापातकी होगा। यदि गुरु, शुक्र तथा स्वशाखा स्वामी अपनी उच्चराशि किंवा अंश में हो, किंवा केन्द्र, त्रिकोण में हो, तब उस समय यज्ञोपवीत ग्रहण करने वाला व्यक्ति अति धनी, वेद-वेदांत पारंगत होगा।।३५७-३६४।।

परमोच्चगते जीवे शाखेशे वाथ वा सिते।
व्रती विशुद्धे निधने वेदशास्त्रविशारदः॥३६५॥
स्वाधिमित्रगृहस्थे वा तस्योच्चस्थे तदंशगे।
गुरौ भृगौ वा शाखेशे विद्याधनसमन्वितः॥३६६॥

यदि गुरु-शुक्र तथा स्वशाखाधिपति परम उच्चस्थान पर स्थित हों तथा अष्टम में कोई ग्रह न हो, उस समय ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने वाला बटु द्विज वेद-शास्त्र पारंगत होगा।।३६५-३६६।।

शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः।
शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते॥३६७॥
तस्माद्वेदांशगे चन्द्रे व्रती विद्याविशारदः।
पापांशगे स्वांशगे वा दरिद्रो नित्यदुःखिताः॥३६८॥

ये तीन स्थिति उपनयन में दुर्लभ हैं—स्वशाखाधिपति का दिन होना, जातक को स्वशाखाधिपति का बल प्राप्त होना, स्वशाखाधिपति का लग्न होना। यदि इससे चतुर्थांश में चन्द्र हो, तब वह वटु विद्यानिपुण होगा। यदि वह पापग्रह के अंश में हो, तब वह वटु द्विज सदा दरिद्र-दुःखी होगा।।३६७-३६८।।

श्रवणादिनि नक्षत्रे कर्कांशस्थे निशाकरे।
तदा व्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमृद्धिमान्॥३६९॥
शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते।
लग्ने तु निधने सौम्यैः संयुते वा निरीक्षिते॥३७०॥
इष्टैर्जीवार्कचन्द्राद्यैः पञ्चभिर्बलिभिर्ग्रहैः।
स्थानादिबलसम्पूर्णैश्चतुर्भिर्वा शुभान्वितैः॥३७१॥
ईक्षन्नैवात्रैकविंशमहादोषविवर्जिते। राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः॥३७२॥

जब श्रवण प्रभृति नक्षत्रस्थ चन्द्र कर्क राशि के अंश में स्थित हो, तब वह ब्रह्मचर्यव्रतधारी द्विज वटु वेद-शास्त्र-धन-धान्य युक्त होगा। शुभ लग्न रहे, शुभग्रह का अंश रहे, अष्टमस्थान शुद्ध हो, लग्न तथा अष्टमस्थान शुभग्रहयुक्त रहे, किंवा वह शुभग्रह दृष्ट हो लग्न भी अभीष्ट भाव में स्थित बृहस्पति, सूर्य, चन्द्र आदि पांच बली ग्रहों से दृष्ट हो किंवा युक्त हो अथवा स्थानादि बलयुक्त चार शुभग्रह की दृष्टि लग्न पर हो, वह इक्कीस महादोष से रहित हो, तब यज्ञोपवीत ग्रहण करना शुभ है। सभी राशियां जो शुभग्रह से दृष्ट किंवा शुभग्रहयुक्त होने पर शुभ रहती हैं।।३६९-३७२।।

शुभनवांशकगता ग्राह्यास्ते शुभराशयः।
न कदाचित्कर्कटांशशु भेक्षितयुतोऽपि वा॥३७३॥
तस्माद्गोमिथुनांशाश्च तुलाकन्यांशकाः शुभाः।
एवंविधे लग्नगते नवांशे व्रतमीरितम्॥३७४॥

यदि शुभ राशि शुभग्रह के नवमांशस्थ हो, तब वह व्रतबन्ध में ग्राह्य है, तथापि कर्कराशि का अंश शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हो, तब कदापि ग्रहणीय नहीं है। वृष-मिथुन का अंश शुभ है। तुला-कन्या का अंश शुभ है। एवंविध लग्नगत नवमांश हो, तब व्रतबन्ध उत्तम मानते हैं।।३७३-३७४।।

त्रिषडायगतैः पापैः षडष्टान्त्यविवर्जितैः।
शुभैः षष्ठाष्टलग्नान्त्यवर्जितेन हिमांशुना॥३७५॥
स्वोच्चसंस्थोऽपि शीतांशुर्व्रतिनो यदि लग्नगः।
स करोति शिशुं निःस्वं सर्वतः क्षयरोगिणम्॥३७६॥

यदि तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थान पापग्रह युक्त हो, षष्ठ, अष्टम, द्वादश स्थान शुभग्रह रहित हो, चन्द्र षष्ठ, अष्टम, लग्न किंवा द्वादशस्थ न हों, तब उपनयन शुभ होगा। चन्द्र उच्चस्थानस्थ हों, तथापि व्रतबन्ध मुहूर्त्तसम्बन्धित लग्न पर स्थित हो, तब बालक वटु निर्धन एवं क्षयरोगी होगा।।३७५-३७६।।

स्फूर्जिते केन्द्रगे भानौ व्रतिनां पितृनाशनम्।
पञ्चदोषोनितं लग्नं शुभदं चोपनायने॥३७७॥
विनावसन्तऋतुना कृष्णपक्षे गलग्रहे। अनध्याये विष्टिषष्ठ्योर्न तु संस्कारमर्हति॥३७८॥
त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम्।
चतुर्थी वा शुभाः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः॥३७९॥

यदि सूर्य केन्द्रस्थ हों, तब यज्ञोपवीत ग्रहण करने वाले के पिता का नाश होगा। पंचदोषरहित लग्न उपनयनार्थ शुभप्रद कहा गया है। वसन्त ऋतु के कृष्णपक्ष को छोड़ अन्य समस्त कृष्णपक्ष में, गलग्रह में, अनध्याय काल में, भद्रा में तथा षष्ठी तिथि पर उपनयन संस्कार वर्जित हैं। त्रयोदशी से चार दिन, सप्तमी से तीन दिन, चतुर्थी से आठ गलग्रह अशुभ माने गये हैं।।३७७-३७९।।

क्षुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात्।
विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे॥३८०॥
जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते। मौजीबन्धोक्ततिथिषु कुजवर्जितवासरे॥३८१॥
नचेन्नवांशके कर्तुरष्टमोदयवर्जिते। शुद्धेऽष्टमे विधौ लग्ने षष्ठाष्टान्त्यविवर्जिते॥३८२॥
धनत्रिकोणकेन्द्रस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः।
क्षुरिकाबन्धनं कार्यमर्चयित्वामरान्पितॄन्॥३८३॥

अब क्षुरिका बन्धन क्षत्रियों हेतु कहते हैं। यह विवाह पूर्व होता है। विवाह के लिये विहित मासों में शुक्लपक्ष में, जब बृहस्पति-शुक्र-मंगल अस्त न हों, चन्द्रमा तथा ताराबल प्राप्त हो, तब मौञ्जीबन्धनार्थ विहित तिथियों पर मंगलवार को छोड़कर सभी छः वारों में यह करे। यदि व्यक्ति का लग्न नवमांश अष्टमोदय से रहित नहीं है, अष्टम भाव शुद्ध है, चन्द्र षष्ठ-अष्टम-द्वादशस्थ नहीं है, लग्नस्थ है, शुभग्रह द्वितीय, पंचम, नवम, लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशमस्थ हैं, पापग्रह तृतीय, एकादश, षष्ठस्थ हैं, तब देवगण एवं पितृगण की अर्चना के उपरान्त क्षुरिकाबन्धन करें।।३८०-३८३।।

अर्चयेत्क्षुरिकां सम्यग्देवतानां च सन्निधौ।
ततः सुलग्ने बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुताम्॥३८४॥
आयामार्द्धाग्रविस्तारप्रमाणेनैवच्छेदयेत्। तच्छेदखण्डाध्यायाः स्युर्ध्वजाये रिपुनाशनम्॥३८५॥
धूम्राये मरणं सिंहे जयः शुनि च रोगिता।
धनलाभो वृषेऽत्यन्तं दुःखी भवति गर्दभे॥३८६॥
गजायेऽत्यन्तसम्प्रीतिर्ध्वांक्षे वित्तविनाशनम्।
खड्गपुत्रिकयोर्मानं गणयेत्स्वाङ्गुलेन तु॥३८७॥
मानाङ्गुलेषु पर्यायामेकादशमितां त्यजेत्।
शेषाणामंगुलीनां च फलानि स्युर्यथाक्रमम्॥३८८॥
पुत्रलाभः शत्रुवधः स्त्रीलाभो गमनं शुभम्।
अर्थहानिश्चार्थवृद्धिः प्रीतिसिद्धिजयः स्तुतिः॥३८९॥

देवता के निकट क्षुरिका की सविधि पूजा करे। तदनन्तर उस शुभलक्षणान्वित क्षुरिका को शुभलग्न में कटि में धारण करे। क्षुरिका की जो लम्बाई हो, उससे आधे भाग का जो विस्तार माप है, उससे क्षुरिका का विभाजन करे। ये आठ भाग ध्वजादि आय कहलाते हैं। ये आठ हैं। यथा—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज, ध्वांक्ष।

ध्वजआय—शत्रुनाश, धूम्रआय—घात, सिंहआय—जय, श्वाआय—रोग, वृषआय—धनलाभ, गर्दभआय—दुःख, गजआय—प्रसन्नता, ध्वांक्षआय—धन नाश।

इस क्षुरिका (खड्ग अथवा कटार) का माप अंगुल से गिनना चाहिये। यदि माप ११ अंगुल से अधिक हो, तब ११ घटा दे। तब बाकी दस अंगुल का फल यह है (उंगली दस होती हैं अतः १० उंगली के १० फल हैं)। पुत्रलाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय, स्तुति।।३८४-३८९।।

स्थितो ध्वजे वृषाये व नष्टाचेत्पूर्वतो व्रणम्।
सिंहे गजे मध्यभागे त्वन्तभागे श्वकोकयोः॥३९०॥
धूम्रगर्दभयोर्नैव व्रणं श्रेयोन्त्यभागगम्। अथोत्तरायणे शुक्रजीवयोर्दृश्यमानयोः॥३९१॥

यदि क्षुरिका में ध्वज किंवा वृष आय विभाग के पूर्वभाग में नष्ट हो, सिंह-गज आय के मध्यभाग में नष्ट हो, श्वान तथा काक—आय के अन्तिम भाग में नष्ट हों, धूम्र तथा गर्दभ आय भाग के अन्तिम भाग में नष्ट हो, तब अशुभ है (अर्थात् क्षुरिका के इस-इस स्थान पर कोई दोष हो (नष्ट हो, टूटा हो, चिटका हो यह तात्पर्य है) ऐसे क्षुरिका आदि का त्याग करें। अब **समावर्त्तन** कहते हैं। जब उत्तरायण में गुरु-शुक्र दोनों उदित रहें।।३९०-३९१।।

द्विजातीनां गुरोर्ग्रेहान्निवृत्तानां यतात्मनाम्। चित्रोत्तरादितीज्यान्त्यहरिमित्रविधातृषु॥३९२॥
भेष्वर्केन्दुज्ञेज्यशुक्रवारलग्नांशकेषु च। प्रतिपत्पर्वरिक्ताभा चाष्टमी च दिनत्रयम्॥३९३॥

हित्वान्यदिवसे कार्यं समावर्तनमुण्डनम्।
सर्वाश्रमाणां विप्रेन्द्र ह्युत्तमोऽयं गृहाश्रमः॥३९४॥

जब चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, श्रवण, अनुराधा, रोहिणी नक्षत्र पड़ें तब यदि रवि, सोम, बुध, गुरु किंवा शुक्र में से कोई वार हो, तब इन पांच ग्रह रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र प्रभृति ग्रहों की राशि, लग्न, नवमांश में गुरु गृह से वापस आने वाले द्विजकुमार का समावर्त्तन करें परन्तु तब प्रतिपदा, पर्व, रिक्ता, अमावस्या तथा सप्तमी से तीन तिथि, इनके अतिरिक्त सभी तिथियों में समावर्त्तन मुण्डनादि संस्कार करें अर्थात् इन वर्जित तिथियों में यह संस्कार न करें। अब **विवाह प्रसंग** कहते हैं। हे विप्रेन्द्र! समस्त आश्रमों में से गृहाश्रम सर्वोत्तम है।।३९२-२९४।।

सुखं तत्रापि भामिन्यां शीलवत्यां स्थितं ततः।
तस्याः सच्छीललब्धिस्तु सुलश्नवशतः खलु॥३९५॥
पितामहोक्तं संवीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवव्यहम्।
पुण्येऽह्न लक्षणोपेतं सुखासीनं सुचेतसम्॥३९६॥
प्रणम्य देवयेत्पृच्छेद्दैवज्ञं भक्तिपूर्वकम्। ताम्बूलफलपुष्पाद्यैः पूर्णाञ्जलिरुपागतः॥३९७॥

यदि गृहस्थाश्रम में धर्मपत्नी सुशीला हो, तब सुख होगा। जब विवाह के समय का लग्न शुभ होगा तभी स्त्री सुशील मिलती है। अतः मैं ब्रह्मा कथित लग्नशुद्धि कहता हूं। कन्यादान करने वाला व्यक्ति शुभ दिवस पर ज्योतिषशास्त्रज्ञ सर्व सुलक्षणान्वित, प्रसन्न सुखासीन धीमान् विप्र के पास अंजलि में पान-फूल-फल-द्रव्यादि लेकर जाये। उनको देवता मान कर प्रणाम करें तथा कन्या के विवाहार्थ लग्न काल की जिज्ञासा करें।।३९५-३९७।।

तत्र चेल्लग्नगः क्रूरस्तस्मात्सप्तमगः कुजः।
दम्पत्योर्मरणं वाच्यं वर्षाणामष्टकात्पुरा॥३९८॥
यदि लग्नगतश्चन्द्रस्तस्मात्सप्तमगः कुजः। विज्ञेयं भर्तृमरणमष्टवर्षान्तरे बुधैः॥३९९॥
लग्नात्पञ्चमगः पापः शत्रुदृष्टश्च नीचगः।
मृतपुत्राथ वा कन्या कुलटा वा न संशयः॥४००॥

यह जिज्ञासा सुनकर ज्योतिषी तत्काल प्रश्नलग्न एवं ग्रह स्पष्ट करके विचार करें। प्रश्न लग्न में यदि पापग्रह हों, सप्तम भाव में मंगल हो, तब कन्या एवं वर को आठ वर्ष में भयानक अरिष्ट भय होगा। यदि लग्न से पंचमस्थ पापग्रह विराज रहे हों, वह नीचराशि में पापग्रह दृष्ट हो, तब कन्या कुलटा, मृतवत्सा होगी यह संशय रहित है।।३९८-४००।।

तृतीयपञ्चसप्तायकर्मगो वा निशाकरः।
लग्नात्करोति सम्बन्धं दम्पत्योर्गुरुवीक्षितः॥४०१॥
तुलागोकर्कटा लग्नसंस्थाः शुक्रेन्दुसंयुताः।
वीक्षिताः पृच्छतां नृणां कन्यालाभो भवेत्तदा॥४०२॥

स्त्रीद्रेष्काणः स्त्रीनवांशे युग्मलग्नं समागतम्।
वीक्षितं चन्द्रशुक्राभ्यां कन्यालाभो भवेत्तदा॥४०३॥

यदि चन्द्र प्रश्नकाल से तृतीय, पंचम, सप्तम, एकादश किंवा दशम में हो, गुरुदृष्ट हो, तब कन्या शीघ्र पतिलाभ करेगी। यदि प्रश्नलग्न में तुला, वृष किंवा कर्म राशि हो तथा वहां प्रश्नलग्न में शुक्र-चन्द्र युति हो, तब वर को पत्नी मिलेगी। यदि प्रश्नलग्न समराशि का हो, उसमें सम राशि द्रेष्काण हो, समराशि नवमांश हो, उस पर चन्द्र-शुक्र दृष्टि हो, तब वर को पत्नी मिलेगी।।४०१-४०३।।

एवं स्त्रीणां भर्तृलब्धिः पुंलग्ने पुन्नवांशके।
पृच्छकस्य भवेल्लग्नं पुङ्ग्रहैरवलोकितम्॥४०४॥
कृष्णपक्षे प्रश्नलग्नाद्यस्यराशौ शशी यदा।
पापदृष्टोऽथ वा रन्धे न सम्बन्धो भवेत्तदा॥४०५॥
पुण्यैर्निमित्तशकुनैः प्रश्नकाले तु मङ्गलम्। दम्पत्योरशुभैरेतैरशुभं सर्वतो भवेत्॥४०६॥

यदि प्रश्नलग्न पुरुष राशि हो, पुरुषराशि का नवमांश हो, उस पर रवि-मंगल-गुरु की दृष्टि पड़े, तब प्रश्नकर्त्ता कन्या पतिलाभ करेगी। यदि प्रश्न काल कृष्णपक्ष हो, समराशीस्थ चन्द्रमा प्रश्नलग्न से षष्ठ किंवा अष्टम भाव में पापग्रह दृष्ट हो, तब सद्यः विवाह नहीं होगा। यदि प्रश्नकाल में शुभ शकुनादि परिलक्षित हो, तब यह योग वर कन्या हेतु शुभ कहा गया है। लेकिन शकुन-निमित्त वर कन्या हेतु शुभ कहा गया है। लेकिन शकुन-निमित्त के अशुभत्व के कारण फल अशुभ होगा।।४०४-४०६।।

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे चन्द्रताराबलान्विते। विवाहभस्योदये वा कन्यावरणमन्वयैः॥४०७॥
भूषणैः पुष्पताम्बूलफलैर्गन्धाक्षतादिभिः।
शुक्लाम्बरैर्गीतवाद्यैर्विघ्नाशीर्वचनैः सह॥४०८॥
कारयेत्कन्यकागेहे वरः प्रणवपूर्वकम्।
तदा कुर्यात्पिता तस्याः प्रदानं प्रीतिपूर्वकम्॥४०९॥

अब कन्या ग्रहण कहते हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण द्वारा शुद्ध दिवस पर वर-कन्या चन्द्र बल एवं ताराबल सहित हों, तब विवाह मुहूर्त्त नक्षत्रादि काल में वर कुल के उत्तम सदस्यों सहित गीत-वाद्य-ब्राह्मणों के शान्ति मन्त्र पाठ के साथ नाना आभूषण, शुभ-वस्त्र, पुष्प-फल-पान-अक्षत-चन्दन-सुगन्धादि के साथ कन्या के गृह जाकर सविनय कन्या का वरण करें। वहां कन्या का पिता प्रसन्न होकर वर को कन्यादान करें।।४०७-४०९।।

कुलशीलवयोरूपवित्तविद्यायुताय च। वराय च रूपवतीं कन्यां दद्याद्यवीयसीम्॥४१०॥
सम्पूज्य प्रार्थयित्वा च शचीं देवीं गुणाश्रयाम्।
त्रैलोक्यसुन्दरीं दिव्यगन्धमाल्यांवरावृताम्॥४११॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम्। अनर्घमणिमालाभिर्भासयन्तीं दिगन्तरान्॥४१२॥

विलासिनीसहस्राद्यैः सेवमानामहर्निशम्।
एवंविधां कुमारीं तां पूजान्ते प्रार्थयेदिति॥४१३॥
देवीन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि।
विवाहे भाग्यमारोग्यं पुत्रलाभं च देहि मे॥४१४॥

कन्या का पिता उत्तम कुल, शील, वय, रूप, धन, विद्यायुक्त वर को उस वर से कम आयु की सुरूपा कन्या प्रदान करें। कन्यादान के पहले सर्वगुणाश्रया, त्रैलोक्यसुन्दरी, दिव्य गन्ध माला आदि से आवृता, सर्वलक्षणसम्पन्ना, सर्वाभरणभूषिता, अपनी अत्यन्त दुर्लभ मणिमाला से दिक्-दिगन्त को उद्भासित करती सहस्त्रों सखियों से अहर्निश सेविता देवी की पूजा वह कुमारी कन्या करें तथा यह प्रार्थना करे—"हे देवी! इन्द्राणी! आप देवराज की प्रिया पत्नी हैं! आपको नमस्कार करती हूं! हे देवी! आप कृपापूर्वक इस विवाह द्वारा मुझे आरोग्य तथा पुत्र प्रदान करें।"।।४१०-४१४।।

युग्मेऽब्दे जन्मतः स्त्रीणां प्रीतिदं पाणिपीडनम्।
एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्ययेनाशनम् तयोः॥४१५॥
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः।
मध्यमा कार्तिको मार्गशीर्षो वै निन्दिताः परे॥४१६॥

कन्या के जन्म समय से सम वर्ष में तथा वर के जन्म समय से विषम वर्ष में जो विवाह होता है, उसमें वर-कन्या में प्रेम तथा प्रसन्नता की वृद्धि होती है। लेकिन जब कन्या के जन्म समय से विषम वर्ष में तथा वर के जन्म समय से सम वर्ष में विवाह हो, तब वह दोनों हेतु घातक है।

माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ मासीय विवाह उत्तम कहते हैं। कार्तिक एवं मार्गशीर्ष के मास का विवाह मध्यम होता है। अन्य माह के विवाह निन्दित माने गये हैं।।४१५-४१६।।

न कदाचिद्विशर्क्षेषु भानोरार्द्राप्रवेशनात्।
विवाहो देवतानां च प्रतिष्ठां चोपनायनम्॥४१७॥
नास्तङ्गते सिते जीवे न तयोर्बालवृद्धयोः।
न गुरौ सिंहराशिस्थे सिंहांशकगतेऽपि वा॥४१८॥

सूर्य जब आर्द्रा में प्रविष्ट हो, तब से लगाकर स्वाती पर्यन्त के नक्षत्र जब तक सूर्य युत रहें, तब तक विवाह, देव प्रतिष्ठा, उपनयन वर्जित है। गुरु तथा शुक्र के अस्त रहते अथवा जब वे बाल किंवा वृद्ध हों तथा मात्र गुरु सिंहस्थ हो अथवा सिंह नवांशस्थ हो, तब भी ये शुभ कार्य न करे।।४१७-४१८।।

पश्चात्प्रागुदितः शुक्रो दशत्रिदिवसं शिशुः।
बृद्धः पञ्चदिनं पक्षं गुरुः पक्षं च सर्वतः॥४१९॥

अब गुरुशुक्र के बाल-वृद्धत्व को कहा जा रहा है। जब शुक्र पश्चिम में उदित हो, तब वह दस दिन पर्यन्त बालक रहेगा। पूर्व में उदित होने पर तीन दिन बालक रहेगा। जब वह पश्चिम में अस्तोद्यत होता है, तब अस्त होने के पांच दिन पूर्व से वृद्ध हो जाता है। जब पूर्व में अस्तोद्यत होता है, तब अस्त होने के

१५ दिन पहले वृद्ध हो जाता है। गुरु उदयोपरान्त १५ दिन तक बाल तथा अस्त होने के १५ दिन पूर्व से वृद्ध रहता है।।४१९।।

अप्रबुद्धो हृषीकेशो यावत्तावन्न मङ्गलम्। उत्सवे वासुदेवस्य दिवसे नान्यमङ्गलम्।।४२०।।
न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि च। आद्य गर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः।।४२१।।
नैवोद्वाहो ज्येष्ठ पुत्रीपुत्रयोश्च परस्परम्। ज्येष्ठमासे तयोरेकज्येष्ठे श्रेष्ठश्च नान्यथा।।४२२।।

आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्त्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त जब श्री हरि शयनावस्था में रहते हैं, तब भगवत् उत्सव में भी अन्य मंगलकार्य न करे। पहले गर्भ से उत्पन्नपुत्र तथा कन्या के जन्ममास, जन्म नक्षत्र, जन्मतिथि, जन्मवार पर भी पिता उनका विवाह न करे। प्रथम गर्भ से उत्पन्न कन्या तथा प्रथम गर्भ से उत्पन्न वर का पारस्परिक विवाह वर्जित है। वर कन्या में से यदि कोई एक ज्येष्ठ हो ज्येष्ठ मास में विवाह करे (अर्थात् पिता के यहां ज्येष्ठ सन्तान हो, तब) यदि दोनों वर-कन्या इस प्रकार ज्येष्ठ हों, तब ज्येष्ठ मास में विवाह हानिप्रद है।।४२०-४२२।।

उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहमखिलग्रहे।
नाखिले त्रिदिनं नेष्टं त्रिद्युस्पृक् च क्षयं तथा।।४२३।।
ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद्ग्रस्तोदयेऽथवा।
सन्ध्यायां त्रिदिनं तद्वन्निशीथे सप्त एव च।।४२४।।
मासान्ते पञ्च दिवसांस्त्यजेद्रिक्ता तथाष्टमीम्।
व्यतीपातं वैधृतिं च सम्पूर्णं परिघार्द्धकम्।।४२५।।

भूकम्प प्रभृति उत्पात हो तथा जब सर्वग्रास सूर्य किंवा चन्द्रग्रहण हो, तब उसके अनन्तर सात दिन समय अशुभ है। खण्डग्रहण के बाद तीन दिन अशुभ होते हैं। तीन दिन की वृद्धि तिथि, क्षयतिथि, ग्रस्तास्त हो, तब पर्व के दिनत्रय अशुभ होंगे। यदि ग्रहण लगा हो तथा उसी में सूर्य-चन्द्र का उदय हो, तब इसके बाद के तीन दिवस अशुभ होते हैं। सन्ध्याकालीन ग्रहण लगे, तब तब ग्रहणपूर्व के तीन तथा ग्रहण के पश्चात् के तीन दिन एवं ग्रहण वाला दिन, ये सात दिन अशुभ होते हैं। मास का अन्तिम दिन, रिक्ता तिथियां, अष्टमी, व्यतिपात, वैधृतियोग पूर्णतः एवं वैधृति योग का पूर्वार्द्ध विवाहार्थ वर्जित है।।४२३-४२५।।

पौष्णभत्र्युत्तरामैत्रमरुच्चन्द्रार्कपित्र्यभैः। समूलभैरविद्धैस्तैः स्त्रीकरग्रह इष्यते।।४२६।।
विवाहे बलमावश्यं दम्पत्योर्गुरुसूर्ययोः।
चेत्पूजा यत्नतः कार्या दुर्बलग्रहयोस्तयोः।।४२७।।

अब **विहित नक्षत्र** कहते हैं—अनुराधा, रेवती, रोहिणी, उत्तरात्रय, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा, मूल नामक एकादश नक्षत्र यदि वेधशून्य हों, तब इन नक्षत्रों में विवाह शुभ कहा है। विवाह काल में वर सूर्य बल से बली हो। कन्या को बृहस्पति का बल प्राप्त हो। यदि गणना से सूर्य-बृहस्पति हानिप्रद लगें तब इनकी सविधि पूजा करे।।४२६-४२७।।

गोचरं वेधजं चाष्टवर्गजंरूपजं बलम्। यथोत्तरं बलाधिक्यं स्थूलं गोचरमार्गजम्।।४२८।।

चन्द्रताराबलं वीक्ष्य ततः पञ्चाङ्गजं बलम्।
तिथिरेकगुणा वारो द्विगुणास्त्रिगुणं च भम्॥४२९॥
योगश्चतुर्गुणः पञ्चगुणः तिथ्यन्द्धसंज्ञितम्।
ततो मुहूर्तो बलवांस्ततो लग्नम्बलाधिकम्॥४३०॥
ततो बलवती होराद्रेष्काणो बलवांस्ततः।
ततो नवांशो बलवान्द्वादशांशो बली ततः॥४३१॥

गोचर बल से वेधबल अधिक होता है। वेधबल से अष्टकवर्ग का बल सर्वाधिक होता है। अतः अष्टकवर्ग बल का आकलन करके ग्रहण करे। सबसे पहले वर-कन्या का चन्द्रबल, तारा बल देखकर पंचांग बल देखें। तिथि में एक गुना, वार में दो गुना, नक्षत्र में तीन गुना, योग में चार गुना तथा करण में पांच गुना बल होता है। इन सबसे बली मुहूर्त्त कहा गया है। मुहूर्त्त से बली लग्न है, लग्न से बली होरा है। होरा से बली द्रेष्काण, उससे बली नवमांश होता है। नवमांश से बली है द्वादशांश। सर्वाधिक बली है त्रिंशांश। अतः दैवज्ञ सभी के बल का आकलन करे।।४२८-४३१।।

त्रिशांशो बलवांस्तस्माद्वीक्ष्यमेतद्बलाबलम्।
शुभेक्षितयुताः शस्ता उद्वाहेऽखिलाराशयः॥४३२॥
चन्द्रार्केज्यादयः पञ्च यस्य राशेस्तु खेचराः।
इष्टस्तच्छुभदं लग्नं चत्वारोऽपि बलान्विताः॥४३३॥
जामित्रशुद्ध्यैकविंशन्महादोषविवर्जितम् ।
एकविंशतिदोषाणां नामरूपफलानि च॥४३४॥
वक्ष्यन्तेऽत्र समासेन शृणु नारद साम्प्रतम्।
पञ्चाङ्गशुद्धिराहित्यं दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः॥४३५॥
उदयास्तशुद्धिर्हानिर्द्वितीयः सूर्यसङ्क्रमः।
तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः॥४३६॥
गण्डान्तं कर्तरी रिष्फषडषेन्दुगतो ग्रहः। दम्पत्योरष्टमं लग्नं राशिविषघटी तथा॥४३७॥
दुर्मुहूर्तो वारदोषः खार्जूरिकसमाङ्घ्रिभम्। ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम्॥४३८॥
कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः।
तिथिवारर्क्षयोगानां करणस्य च मेलनम्॥४३९॥

विवाह हेतु शुभग्रह युत अथवा शुभग्रह दृष्ट होने पर सभी राशि उत्तम मानी गयी हैं। चन्द्र, सूर्य, बुध, गुरु तथा शुक्र ये पंचग्रह जिस राशि में हों, वह लग्न शुभ होगा। पांच के स्थान पर ४ ग्रह भी बली हों, तब वे ही शुभप्रद हैं। हे मुनिवर! यदि लग्न से सप्तम स्थान ग्रहशून्य हो तथा इक्कीस दोषरहित हो, तब वह लग्न विवाहार्थ स्वीकार करे। अब विवाह के २१दोषों के नाम, उनके स्वरूप तथा फल का संक्षिप्त वर्णन

करूंगा। पंचांग की अशुद्धि **पहला दोष** है। उदयास्त की अशुद्धि **द्वितीय** दोष है। सूर्य संक्रान्ति हो, **तब तृतीय दोष** है। पापग्रह षड्वर्गस्थ हो, यह **चतुर्थ दोष** है। लग्न से षष्ठ शुक्र हो, यह **पंचम दोष** है। अष्टमस्थ मंगल **षष्ठदोष** है। गण्डान्त हो, **सप्तमदोष** है। कर्त्तरीयोग **अष्टम दोष** है। द्वादश, अष्टम अथवा षष्ठस्थ चन्द्र होना तथा चन्द्र के साथ वहां अन्य ग्रहस्थिति **नवम दोष** है। वर कन्या की जन्मराशि से **अष्टम** राशि लग्न हो अथवा दैनिक चन्द्रराशि हो, यह **दशम दोष** है। विषघटी **एकादश दोष**, दुमुहूर्त **द्वादश दोष**, वनदोष **त्रयोदश दोष** है। खार्जूर **चतुर्दश दोष**, नक्षत्रैक चरण **पंचदशदोष**, ग्रहण तथा उत्पाती नक्षत्र **षोडश दोष**, पापग्रह विद्धनक्षत्र **सप्तयशदोष**, पापयुक्तनक्षत्र **अष्टादशदोष**, पापग्रह नवमांश **एकोनविंश दोष**, महापात **(विंश दोष)**, वैधृति एकविंश दोष कहा गया है। हे मुनिवर! तिथि, वार, नक्षत्र योग करण का मेल ही।।४३२-४३९।।

पञ्चाङ्गमस्य शुद्धिस्तु पञ्चाङ्गशुद्धिरीरिता।
यस्मिन्पञ्चाङ्गदोषोऽस्ति तस्मिंल्लग्ने निरर्थकम्॥४४०॥
त्यजेत्पञ्चेष्टिकं चापि विषसंयुक्तदुग्धवत्।
लग्नलग्नांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ॥४४१॥
न चेद्वान्योन्यपतिना शुभमित्रेण वा तथा।
वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशकौ॥४४२॥
एवं तौ न युतौ दुष्टौ मृत्युर्वध्वाः करग्रहे।
त्याज्याः सूर्यस्य सङ्क्रान्तेः पूर्वतः परतस्तथा॥४४३॥
विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडशषोडश।
षड्वर्गः शुभदः श्रेष्ठो विवाहस्थापनादिषु॥४४४॥

पंचांग कहा गया है। उसकी शुद्धि है पंचाग की शुद्धि। जिस दिन इस पंच अंग में दोष हो, तब विवाह लग्न न कहे। भले ही ऐसा लग्न पांच इष्टग्रह युक्त हो तथापि उस लग्न का विष मिले दूध की तरह त्याग करे। यदि लग्न किंवा उनका नवमांश अपने अधिपति द्वारा युक्त न हो अथवा दृष्ट न हो अथवा लग्नेश से नवमांशपति तथा नवमांशपति से लग्नेश युक्त किंवा दृष्ट न हो, किंवा लग्नेश के शुभग्रह मित्र से लग्नयुक्त अथवा दृष्ट न हो, तब वर हेतु घातक स्थिति है। यदि सप्तम तथा उसके नवमांश अपने स्वामी से युक्त अथवा देखे न जा रहे हों अथवा अपने-अपने स्वामी के शुभमित्र ग्रह से युक्त किंवा दृष्ट न हो, तब यह स्थिति वधु हेतु घातक कही गयी है। इसी प्रकार सूर्य संक्रान्ति जिस समय हो, उससे पहले की सोलह घटी तथा पश्चात् की सोलह घटी विवाहादि शुभ कार्यार्थ त्याज्य है। यदि लग्न की राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश, त्रिंशांश शुभ हो, तब यह समय देव स्थापना तथा विवाहादि कार्य हेतु प्रशस्त है।।४४०-४४४।।

भृगुषष्ठाह्वयो दोषो लग्नात्षष्ठगते सिते।
उच्चगे शुभसंयुक्ते तल्लग्नं सर्वदा त्यजेत्॥४४५॥
कुजोऽष्टमो महादोषो लग्नादष्टमगे कुजे। शुभत्रययुतं लग्नं न त्यजेत्तुङ्गगो यदि॥४४६॥

लग्न से षष्ठस्थ शुक्र होने पर **भृगुषष्ठ** दोष कहा गया है। उच्च स्थित तथा शुभग्रहयुक्त होने पर इस लग्न का त्याग करे। लग्न से अष्टम स्थान में यदि मंगल हो, तब **भौम महादोष** कहा जाता है। यदि मंगल उच्च का हो तीन शुभग्रह लग्नस्थ हों, तब इस लग्न को ग्रहण करे। तब अष्टम मंगल दोष नहीं रहता।।४४५-४४६।।

पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीद्वयं यदि।
गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु।।४४७।।
कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः।
गण्डान्तमन्तरालं स्याद्घटिकार्द्धं मृतिप्रदम्।।४४८।।

अब **गण्डान्त दोष** कहते हैं। पूर्णा-तिथियों का अन्त हो तथा नन्दा तिथियां प्रारंभ हों, इन दोनों की संधि में दो घटी **तिथिगण्डान्त दोष** स्थित रहता है। यह जन्म, यात्रा, उपनयन एवं विवाहादि कार्य हेतु हानिप्रद है। कर्क लग्न के अन्त तथा सिंह लग्न के आदि की सन्धि, वृश्चिक तथा धनु की ऐसी ही सन्धि में मीन-मेष लग्न की सन्धि में आधा घटी **लग्नगण्डान्त दोष** रहता है। यह भी घातक है।।४४७-४४८।।

सार्पेन्द्रयौष्णभेष्वन्त्यषोडशेंशा भसन्धयः।
तदग्निभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः।।४४९।।
उग्रं च सन्धित्रितयं गण्डान्तं त्रिविधं महत्।
लग्नाभिमुखयोः पापग्रहयोर्ऋजुवक्रयोः।।४५०।।
सा कर्तरीति विज्ञेया दम्पत्योर्गलकर्तरी। कर्तरीयोगदुष्टं यल्लग्नं तत्परिवर्जयेत्।।४५१।।

आश्लेषा का चतुर्थ चरण, मघा का प्रथम चरण, ज्येष्ठा की अन्त वाली १६ घटी, मूल का प्रथम चरण, रेवती की अन्तिम एकादश घटी, अश्विनी का प्रथम चरण एवंविध दो-दो नक्षत्र की सन्धि काल को **नक्षत्र गण्डान्त** कहते हैं। ये तीनों गण्डान्त महाक्रूर हैं। अब **कर्त्तरीदोष** कहते हैं। लग्न से द्वादश में मार्गी, द्वितीय में वक्री ये दोनों पापग्रह जब हों, तब लग्न में अग्रपश्चात् दोनों ओर गमन के कारण यही कर्त्तरीयोग है। यह वर-वधु के लिये गला काटने जैसा अमंगलमय दोष है। ऐसे लग्न का त्याग करे।।४४९-४५१।।

अपि सौम्यग्रहैर्युक्तं गुणैः सर्वैः समन्वितम्।
षडवृरिष्फगे चन्द्रे लग्नदोषः स्वसंज्ञकः।।४५२।।
तल्लग्नं वर्जयेद्यत्नाज्जीवशुक्रसमन्वितम्।
उच्चगे नीचगे वापि मित्रभे शत्रुराशिगे।।४५३।।
अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्निधनप्रदम्। शशाङ्के ग्रहसंयुक्ते दोषः सङ्ग्रहसंज्ञकः।।४५४।।
तस्मिन्सङ्ग्रहदोषे तु विवाहं नैव कारयेत्। सूर्येण संयुते दारिद्र्यं भवति स्फुटम्।।४५५।।
कुजेन मरणं व्याधिः सौम्येन त्वनपत्यता।
दौर्भाग्यं गुरुणा युक्ते सापत्यं भार्गवेण तु।।४५६।।

प्रव्रज्या सूर्यपुत्रेण राहुणा मूलसंक्षयः। केतुना संयुते चन्द्रे नित्यं कष्टं दरिद्रता॥४५७॥

अब लग्नदोष कहते हैं—लग्न से षष्ठ, अष्टम, द्वादश चन्द्र हो, तब **लग्नदोष** है। भले ही यह लग्न शुभग्रहादि युक्त हो, सम्पूर्ण गुणयुक्त हो तथापि दोष ही है। भले ही लग्न में बृहस्पति तथा शुक्र हों तथा चन्द्रमा उच्च-निम्न-मित्र-शत्रुराशि में चाहे जहां हो, तब भी इसे यत्नतः त्यागे। सर्वगुणयुक्त यह दोष भले ही हो तथापि वर वधु हेतु घातक माना गया है। अब **संग्रह दोष** कहते हैं—जब चन्द्रमा अन्य ग्रहयुक्त हो, तब वह **संग्रह दोष** है। इस दोषयुक्त काल में विवाह न करे। चन्द्रमा सूर्य के साथ हों, तब दरिद्रता, मंगलयुक्त हो, तब घात-रोग, बुध के साथ हो, तब अनपत्यता (पुत्रहीनता), गुरु से युति हो, तब दुर्भाग्य, शुक्र से युक्त होने पर पति-पत्नी में शत्रुभाव, शनि से युक्त हो, तब गृहत्याग की स्थिति बनती है। राहु से युति सर्वस्वहानिप्रद है। केतु से युति कष्ट एवं दरिद्रता प्रदायक है।।४५२-४५७।।

पापग्रहयुते चन्द्रे दम्पत्योर्मरणं भवेत्। शुभग्रहयुते चन्द्रे स्वोच्चस्थे मित्रराशिगे॥४५८॥

दोषायनं भवेल्लग्नं दम्पत्योः श्रेयसे सदा।
स्वोच्चगो वा स्वर्क्षगो वा मित्रक्षेत्रगतोऽपि वा॥४५९॥

पापग्रहयुतश्चन्द्रः करोति मरणं तयोः। दम्पत्योरष्टमं लग्नमष्टमो राशिरेव च॥४६०॥

यदि लग्नगतः सोऽपि दम्पत्योर्मरणप्रदः।
स राशिः शुभसंयुक्तो लग्नं वा शुभसंयुतम्॥४६१॥

अब **पापग्रह तथा शुभग्रहों के प्रभाव-दुष्प्रभाव** का वर्णन करते हैं। हे मुनिप्रवर! यदि संग्रह दोष के अन्तर्गत् चन्द्रमा पापग्रहों से युति करे, तब वह वर-वधु-उभयार्थ घातक है। यदि चन्द्र शुभग्रह युक्त हो तथा उच्च किंवा मित्राराशीस्थ हो, तब भले ही लग्न दोष समन्वित हो तथापि यह स्थिति वर-वधु हेतु शुभ है, तथापि यदि चन्द्र ले ही अपनी उच्चराशि, स्वराशि किंवा मित्रराशि में रहकर भी यदि पापग्रह युक्त है, तब यह दोनों हेतु घातक कहा गया है। अब **अष्टमराशि लग्न सम्बन्धित दोष** कहते हैं। यदि विवाहलग्न वर-वधु के जन्म लग्न किंवा जन्मराशि अष्टमराशि पड़ती है, तब यह वरवधु हेतु घातक है। यदि वह राशि किंवा लग्न शुभग्रहयुक्त भले ही हो, वैसी स्थिति में भी उस नवमांश तथा लग्न को एवं उसके नवमांश स्वामी का त्याग करे (अर्थात् उस समय को विवाहार्थ वर्जित मानते हैं। यदि वर-वधु की जन्मराशि अथवा जन्मलग्न से द्वादशस्थ राशि—।।४५८-४६१।।

लग्नं विवर्जयेद्यस्मात्तदंशांशतदीश्वराम्।
दम्पत्योर्द्वादशं लग्नं राशिर्वा यदि लग्नगः॥४६२॥
अर्थहानिस्तयोरस्मात्तदंशस्वामिनं त्यजेत्।
जन्मराश्युदयश्चैव जन्मलग्नोदयः शुभः॥४६३॥

विवाह लग्न में पड़े, उस स्थिति में वर-वधु धनहानि का कष्ट पायेंगे। अतः ऐसा लग्न एवं नवमांश एवं नवमांश स्वामी त्याज्य हैं (उस काल में विवाह न करे)। जब जन्मराशि तथा जन्मलग्न का उदयकाल हो, वह विवाहार्थ शुभ काल है। यदि विवाह लग्न में दोनों का उपचय स्थान हो (मिथुन, कन्या, मकर, कुंभ हो) तब वह लग्न अतीव शुभ है।।४६२-४६३।।

तयोरूपचयस्थानं लग्नेऽत्यन्तशुभप्रदम्।
खमार्गणा वेदपक्षाः खरामा वेदमार्गणाः॥४६४॥
वह्निचन्द्रा रूपदस्राः खरामा व्योमबाहवः। द्विरामाः स्वाग्नयः शून्यदस्राः कुञ्जरभूमयः॥४६५॥
रूपपक्षा व्योमदस्रा वेदचन्द्राश्चतुर्दश। शून्यचन्द्रा वेदचन्द्रा षड्ऋक्षा वेदबाहवः॥४६६॥
शून्यदस्राः शून्यचन्द्राः पूर्णचन्द्रा गतेन्दवः। तर्कचन्द्रा वेदपक्षाः खरामाश्चाश्विभात्क्रमात्॥४६७॥
आभ्यः परास्तु घटिकाश्चतस्रो विषसंज्ञिताः।
विवाहादिषु कार्येषु विषनाडीं विवर्जयेत्॥४६८॥

अब **बिषघटी ध्रुवांक** कहते हैं—

नक्षत्र	—	**ध्रुवांक**
अश्विनी	—	५०
कृत्तिका	—	३०
मृगशिरा	—	१३
पुनर्वसु	—	३०
आश्लेषा	—	३२
पूर्वाफाल्गुनी	—	२०
हस्त	—	२१
स्वाती	—	१४
उत्तराषाढा	—	२०
धनिष्ठा	—	१०
पूर्वभाद्रपद	—	१६
रेवती	—	३०
भरणी	—	२४
रोहिणी	—	५४
आर्द्रा	—	२१
पुष्य	—	२०
मघा	—	३०
उत्तराफाल्गुनी	—	१८
चित्रा	—	२०
विशाखा	—	१४
श्रवण	—	१०
शतभिषा	—	१८
उत्तरभाद्रपद	—	२४

इन नक्षत्रों के स्वध्रुवांशोपरान्त चार घटी तक के काल को विषघटी कहा है। विवाहादि शुभकार्य में इनका त्याग करे।।४६४-४६८।।

भास्करादिषु वारेषु ये मुहूर्ताश्च निन्दिताः।
विवाहादिषु ते वर्ज्या अपिलक्षगुणैर्युताः॥४६९॥
निहिता वारदोषा ये सूर्यवारादिषु क्रमात्।
अपि सर्वगुणोपेतास्ते वर्ज्याः सर्वमङ्गले॥४७०॥

जो मुहूर्त्त रवि आदि वार के समय वर्जित कहे गये हैं, भले ही वे लाखों गुणयुक्त हों तथापि वह वर्जित मुहूर्त्त है। उसमें शुभ एवं मांगलिक कार्य न करे। वारदोष में भी शुभकार्य त्याज्य हैं। भले ही वारदोष अन्य गुणों से सम्पन्न क्यों न हो, उसका त्याग करे।।४६९-४७०।।

एकार्गलाङ्घ्रितुल्यं यत्तल्लग्नं च विवर्जयेत्।
अपिशुक्रज्यसंयुक्तं विषसंयुक्तदुग्धवत्॥४७०॥
ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम्।
यावच्च शशिना भुक्ता मुक्तभं दग्धकाष्ठवत्॥४७२॥
मङ्गलेषु त्यजेत्खेटैविद्धं च क्रूरसंयुतम्। अखिलर्क्षं पञ्चगव्यं सुराविन्दुयुतं यथा॥४७३॥
पाद एव शुभैर्विद्धमशुभं नैव कृत्स्नभम्।
क्रूरविद्धं युतं धिष्ण्यं निखिलं नैव मङ्गलम्॥४७४॥

नक्षत्र का जो चरण एकार्गल दोषान्वित हो, उस नवांश से युक्त लग्न में गुरु-शुक्र का योग भले ही हो तथापि उनका त्याग उसी प्रकार करे जैसे लोग विषाक्त दुग्ध को त्याग देते हैं। ग्रहण तथा अन्य उत्पातों से दोषयुक्त हो गये नक्षत्र का त्याग छः मास तक करे। समस्त शुभकार्य हेतु उस नक्षत्र का त्याग करे, जो ग्रह से विद्ध तथा पापग्रह से युक्त हो। जैसे मदिरा मिले पंचगव्य का त्याग कर दिया जाता है, उसी प्रकार ऐसे नक्षत्र को त्यागे तथापि नियम यह है कि यदि नक्षत्र शुभग्रह से विद्ध है, तब केवल वही चरण त्यागे जो विद्ध हो। बाकी में कार्य कर सकते हैं, तथापि पापग्रह विद्ध नक्षत्र शुभ-मांगलिक कार्य में सर्वथा त्याज्य है।।४७१-४७४।।

तुलामिथुनकन्यांशा धनुरन्त्यार्धसंयुताः।
एते नवांशाः शुभदा वृषभस्यांशकाः खलु॥४७५॥
अत्यांशास्तेऽपि शुभदा यदि वर्गोत्तमाह्वयाः।
अन्ये नवांशाः न ग्राह्या यतस्ते कुनवांशकाः॥४७६॥
कुनवांशकलग्नं यत्त्याज्यं सर्वगुणान्वितम्।
यस्मिन्दिने महापापस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे॥४७७॥
अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्मृत्युदं यतः। अनुक्ताः स्वल्पदोषाः स्युर्विद्युन्नीहारवृष्टयः॥४७८॥

अब विहित नवमांश कहते हैं।

(१) वृष, तुला, मिथुन, कन्या, धन का उत्तरार्द्ध तथा इनके नवमांश विवाह लग्न हेतु शुभ हैं।

(२) यदि किसी लग्न में अंतिम नवमांश वर्गोत्तम हो, तभी वह शुभ है।

(३) विवाह लग्न का अंतिम नवमांश अशुभ हैं। अतः अन्य नवमांश कुनवमांश होने के कारण त्याज्य हैं।

(४) लग्न में कुनवमांश भले ही सर्वगुणान्वित हो तथापि उसे त्यागे।

(५) जब महापात हो, वह भी त्यागे। वह भले ही सभी गुणयुक्त हो तथापि वर-वधु हेतु हानिप्रद है।

(६) यहां अनुक्त विद्युत, नीहार, वृष्टि आदिदोष स्वल्प दोष हैं।।४७५-४७८।।

प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाम्बुधरगर्जनाः। लत्तोपग्रहपाताख्या मासदग्धाह्वया तिथिः।।४७९।।

दग्धलग्नान्धबधिरपङ्गुसंज्ञाश्च राशयः।
एवामाद्यास्ततस्तेषां व्यवस्था क्रियतेऽधुना।।४८०।।

अकालजा भवन्त्येते विद्युन्नीहारवृष्टयः। दोषाय मङ्गले नूनमदोषायैव कालतः।।४८१।।

बृहस्पतिः केन्द्रगतः शुक्रो वा यदि वा बुधः।
एकोऽपि दोषनिचयं हरत्येव न संशयः।।४८२।।

अब **लघु दोष वर्णन** करते हैं—विद्युत, नीहार (कुहरा), दो सूर्य दर्शन (प्रतिसूर्य), परिवेष, इन्द्रधनुष, मेघागर्जन, लत्ता-उपग्रह, पात, मासदग्धतिथि, दग्ध-वधिर-पंगु राशि के लग्न तथा अन्य स्वल्प दोष भी हैं। इनका प्रतिपादन किया जाता है।

जब विद्युत्-नीहार-वृष्टि असमय में हों, तब दोष हैं। यदि अपने समय पर हो, तब शुभ हैं। यदि विवाहकाल में बृहस्पति-शुक्र-बुध कोई भी केन्द्रस्थ हो, तब वे इन लघु दोषों का नाश कर देते हैं। यह निःसंशय है।।४७९-४८२।।

तिर्यक्पञ्चोर्ध्वगाः पञ्च रेखा द्वे द्वे च कोणयोः।
द्वितीये शम्भुकोणेऽग्निधिष्ण्यं चक्रे प्रविन्यसेत्।।४८३।।

भान्यत्र साभिजित्येकरेखाखेटेन विद्धभम्।
पुरतः पृष्ठतोऽर्काद्या दिनर्क्षं लत्तयन्ति यत्।।४८४।।

अर्काकृतिगुणाद्यङ्गबाणाष्टनवसंख्यभम्। सूर्यभात्सार्प्यन्पित्र्यान्त्यत्वाष्ट्रमित्रोडुविष्णुभम्।।४८५।।

संख्यया दिनभे तावदश्विभात्पातदुष्टभम्।
सौराष्ट्रे साल्वदेशे तु लत्तितं भं विवर्जयेत्।।४८६।।

कलिङ्गवङ्गदेशेषु पातितं न शुभप्रदम्। वाह्लिके कुरुदेशे चान्यस्मिन्देशे न दूषणम्।।४८७।।

तिथयो मासदग्धश्च दग्धलग्नानि यान्यपि। मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दुष्टनीतरेषु च।।४८८।।

अब **पंचशलाका वेध** कहते हैं—पांच रेखायें खड़ी तथा पांच रेखायें बेड़ी लिखे। दो रेखा कोणों पर

लिखे। यह पंचशलाका चक्र है। इस चक्र की ईशान कोणस्थ द्वितीय रेखा में कृत्तिका लिखे। तदनन्तर प्रदक्षिण क्रमेण रोहिणी से अभिजित् तक के सभी नक्षत्र लिखे। जिस रेखा में ग्रह हो, उस रेखा के दूसरी ओर वाला नक्षत्र विद्ध होगा।

अब लत्ता दोष कहते हैं—रूपादि ग्रह अपने आश्रित नक्षत्र से १२वें, २२वें, तीसरे, सातवें, छठे, पांचवें, आठवें तथा नवें दैनिक नक्षत्र को लात से दूषित करते हैं। तभी इनको लत्ता दोष कहते हैं।

अब **पात दोष** कहते हैं। सूर्य जिस नक्षत्रस्थ हों उससे आश्लेषा, मघा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण पर्यन्त जितनी संख्या हो यदि वही संख्या अश्विनी से दिन नक्षत्र तक गणना में आये, तब वह नक्षत्र पातदोष युक्त है।

इनका **परिहार** कहा जाता है—सौराष्ट्र तथा शाल्वदेश में लत्ता दोष है। कलिंग, बंग, वाह्लीक, कुरुक्षेत्र में पात दोष है। अन्य देश में यह दोष नहीं है। मासदग्ध तिथि, दग्धलग्न मध्यदेश में वर्जित हैं। मध्यदेश है प्रयाग से पश्चिम, कुरुक्षेत्र से पूर्व विन्ध्य तथा हिमालय के बीच। अन्य देश में यह वर्जित नहीं है।।४८३-४८८।।

षङ्गवन्धकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः।
गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः।।४८९।।
दोषदुष्टं सदा कालं सन्निमार्ष्टुं न शक्यते।
अपि धातुरतो ग्राह्यं दोषाल्पत्वं गुणाधिकम्।।४९०।।

पंगु, अंध, काण लग्न तथा ऐसे मास में कही गई शून्य राशि गौड़, मालव देश में त्याज्य हैं। अन्यत्र त्याज्य नहीं हैं। काल सदा दोषदूषित हैं। ब्रह्मा भी उसे दोषरहित नहीं कर सकते। जहां तनिक दोष तथा अधिक गुण हों, उसे ही ग्रहण करे।।४८९-४९०।।

एवं सुलग्ने दम्पत्योः कारयेत्सम्यगीक्षणम्।
हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समंततः।।४९१।।
स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे तु सन्नताम्।
समण्डपां चतुर्दिक्षु सोपानेरतिशोभिताम्।।४९२।।
प्रागुदक्प्रवणां रम्भास्तम्भैर्हंसशुकादिभिः। विचित्रितां चित्रकुम्भैर्विविधैस्तोरणाङ्कुरैः।।४९३।।
शृङ्गारपुष्पनिचयैर्वर्णकैः समलङ्कृताम्। विप्राशीर्वचनैः पुण्यस्त्रीभिर्दिव्यैर्मनोरमाम्।।४९४।।
वादित्रनृत्यगीताद्यैर्हृदयानन्दिनीं शुभाम्। एवंविधां समारोहेन्मिथुनं स्वाग्निवेदिकाम्।।४९५।।

वधु हेतु शुभ एवं उत्तम काल में श्रेष्ठ लग्न का निर्णय करना चाहिये। एक हाथ उच्च, चार हाथ लम्बी, चार हाथ चौड़ी, उत्तर दिशा में कुछ नीची वेदी निर्माण करे। सुच्चिकन चार खम्भे से युक्त एक मण्डप बनाये। इसमें चारों ओर सीढ़ी हो। यह मण्डप पूर्वोत्तर में नीचा हो। वहां चतुर्दिक् केले के स्तम्भ हों। वहां शुभ पक्षियों के शोभ चित्र लगे हों। वेदी नाना मांगलिक कलशों के चित्र से शोभायमान हो। नाना प्रकार के वन्दनवार तथा पुष्पों से वह सज्जित हो। इसके मध्य निर्मित वेदी पर वर-वधु को आसीन कराना चाहिये। यह

ब्राह्मणों के स्वस्तिपाठ, आशीर्वाद से युक्त पुण्यमयी स्त्रियों तथा मनोरम नृत्य, वाद्य तथा मांगलिक गीत ध्वनि से हृदय को आनन्दित करने वाली वेदी हो।।४९१-४९५।।

अष्टधा राशिकूटं च स्वादूडुगणराशयः। राशीशयोनिवर्णाख्यऋतवः पुत्रपौत्रदाः॥४९६॥

एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये दम्पत्योः पाणिपीडनम्।
उत्तमं मध्यमं मित्रं राश्यैकत्वं ययोस्तयोः॥४९७॥
एकर्क्षे त्वेकराशौ हि विवाहः प्राणहानिदः।
स्त्रीधिष्ण्यादाद्यनवके स्त्रीदूरमतिनिन्दितम्॥४९८॥

द्वितीये मध्यमं श्रेष्ठं तृतीये नवके नृभम्। तिस्रः पूर्वोत्तरा धातृयाम्यमाहेशतारकाः॥४९९॥

इति मर्त्यगणे ज्ञेयः स्यादमर्त्यगणः परः।
हर्यादित्यार्कवाय्वन्त्यमित्राश्वीज्येन्दुतारकाः ॥५००॥

रक्षोगणः पितृत्वाष्ट्रद्विदैवाग्नीन्द्रतारकाः। वसुवारीशमूलाहितारकाभिर्युतास्ततः॥५०१॥

अष्टविध भवकूट, नक्षत्र, राशिस्वामी, योनि-वर्ण प्रभृति गुण यदि शुभ हो, तब यह विवाह पुत्र-पौत्र को सुखदायक होते हैं। जहां वर-कन्या की राशि एवं नक्षत्र पृथक् हो, वहां विवाह उत्तम होता है। दोनों की राशि तथा नक्षत्र एक ही रहे, तब विवाह मध्यम होगा। दोनों का नक्षत्र एक हो, राशि भिन्न हो, तब विवाह मध्यम कहा जायेगा। दोनों का नक्षत्र तथा राशि एक हो, तब इस विवाह से प्राणहानि होगी। यदि कन्या के नक्षत्र से वर का नक्षत्र नौ नक्षत्र के बीच पड़े, तब **स्त्रीदूर** नामक अति निन्दित दोष होगा। जब कन्या के दसवें नक्षत्र से १८वें नक्षत्र के बीच वर का नक्षत्र हो, तब मध्यम दोष होगा। यदि कन्या के उन्नीसवें नक्षत्र से सत्ताईसवें नक्षत्र के बीच वर का नक्षत्र हो, तब यह विवाह परमोत्तम होगा।

अब **गण विचार** कहते हैं। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, भरणी, आर्द्रा **मनुष्य गण** हैं। श्रावण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, मृगशिरा **देवगण** हैं। मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, आश्लेषा **राक्षसगण** हैं।।४९६-५०१।।

दम्पत्योर्जन्मभे चैकगणे प्रीतिरनेकधा। मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोर्मृतिः॥५०२॥

यदि वर-वधु के नक्षत्र एक ही गण के रहें, तब पारस्परिक प्रेम वर-वधु के बीच रहेगा। यदि इनमें एक मनुष्य गण हो, दूसरा देवगण हो, तब मध्यम प्रेम रहेगा। यदि एक का गण राक्षस अन्य का देवगण किंवा मनुष्यगण हो, तब दोनों हेतु मरण के समान कष्ट रहेगा।।५०२।।

मृत्युः षष्टाष्टके पञ्चनवमे त्वनपत्यता।
नैःस्व्यं द्विर्द्वादशेऽन्येषु दम्पत्योः प्रीतिरुत्तमा॥५०३॥

अब **राशिकूट** कहते हैं—यदि वर-वधु की पारस्परिक राशि षष्ठ अथवा अष्टम हो, तब दोनों हेतु घातक है। यही पंचम-नवम हो, तब सन्तानहानि होगी, यदि द्विर्द्वादश स्थिति हो, तब दोनों निर्धन होंगे। इनमें अधिक जो संख्या राशि की होगी, वह प्रेममय जीवन युक्त करेगी।।५०३।।

एकाधिपे मित्रभावे शुभदं पाणिपीडनम्।
द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च न कदाचित्षडष्टके॥५०४॥

यदि द्विर्द्वादश किंवा नवम पंचम दोष में उभय राशि का एक ही अधिपति हो किंवा दोनों के राशिपति मित्र रहें तब विवाह शुभ है, तथापि षड़ष्टक योग में यदि उभय स्वामी एक हों, तब वह विवाह शुभ नहीं होता।।५०४।।

अश्वेभमेषसर्पाहिह्योतुमेषोतुमूषकाः। आखुगोमहिषव्याघ्रकालीव्याघ्रमृगद्वयम्॥५०५॥
श्वानः कपिर्बभ्रुयुगं कपिसिंहतुरङ्गमाः।
सिंहगोदन्तिनो भानां योनयः स्युर्यथाश्विभात्॥५०६॥
श्वैणं बभ्रूरगं मेषवानरौ सिंहवारणम्। गोव्याघ्रमाखुमार्जारं महिषांश्वं च शात्रवम्॥५०७॥

अब योनिकूट कहते हैं। इनमें २८ नक्षत्रों की अट्ठाईस योनि होती है। श्वान योनि तथा मृगयोनि के बीच, नकुल योनि तथा सर्पयोनि के बीच, मेष-वानर के बीच, सिंह-गज के बीच, गौ-व्याघ्र के बीच, मूषक-मार्जार के बीच, महिष-अश्व शत्रुता रहेगी। अश्विनी से लेकर अभिजित् पर्यन्त नक्षत्रों की क्रमशः एक-एक की जो योनि है, उसे नीचे लिखा जा रहा है—

(१) अश्व, (२) गज, (३) मेष, (४) सर्प, (५) सर्प, (६) श्वान (७) मार्जार (१०) मूषक (११) मूषक (१२) गौ (१३) महिष, (१४) व्याघ्र, (१५) महिष, (१६) व्याघ्र, (१७) मृग, (१९) श्वान, (२०) वानर, (२१) नकुल, (२२) नकुल, (२३) वानर, (२४) सिंह, (२५) अश्व, (२६) सिंह, (२७) गौ (२८) गज।।५०५-५०७।।

(नोट : *मूल में ८, ९, १०, १८ नम्बर की योनि अंकित नहीं है। विद्वान् पाठक इसे ज्योतिष ग्रन्थ अथवा पंचांग पुस्तक से ले सकते हैं।)*

झषालिकर्कटा विप्रास्तदूर्ध्वाः क्षत्रियादयः।
पुंवर्णराशेः स्त्रीराशौ सति हीने यथाशुभम्॥५०८॥

अब **वर्णकूट** कहते हैं—मीन-वृश्चिक-कर्क-ब्राह्मण वर्ण है शेष क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र वर्ण हैं। *(इन वर्णों को पाठकगण ज्योतिष ग्रन्थ से देखें यहां केवल ब्राह्मण वर्ण का ही उल्लेख है।)*

समान वर्ण में विवाह उत्तम है। यदि वर के राशि वर्ण से कन्या की वर्णराशि निम्न हो, तब भी विवाह शुभ होगा, तथापि यदि कन्या का राशि वर्ण वर से श्रेष्ठ हो, तब वह अशुभ विवाह है।।५०८।।

चतुस्त्रिद्वयङ्घ्रिभोत्थायाः कन्यायाश्चाश्विभात्क्रमात्।
वह्निभादिन्दुभान्नाडीत्रिचतुःपञ्चपर्वसु ॥५०९॥
गणयेत्संख्यया चैकनाड्यां मृत्युर्न पार्श्वयोः।
प्राजापत्यब्राह्मदैवा विवाहाश्चार्षसंयुताः॥५१०॥
उक्तकाले तु कर्तव्याश्चत्वारः फलदायकाः।
गन्धर्वासुरपैशाचराक्षसाख्यास्तु सर्वदा॥५११॥

चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षाश्च सप्तमम्। गोधूलिकं तदुभयं विवाहे पुत्रपौत्रकम्॥५१२॥
प्राच्यानां च कलिङ्गानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम्।
अभिजित्सर्वदेशेषु मुख्यो दोषविनाशकृत्॥५१३॥

अब **नाड़ी विचार** कहते हैं—अश्विनी, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद, रेवती के चार चरण वाले नक्षत्र कहा गया है। चार चरण वाले उपरोक्त नक्षत्रों में जो कन्या उत्पन्न हो, वहां अश्विनी से प्रारंभ करके रेवती पर्यन्त तीन पर्व के क्रम-उत्क्रम से गिने तथा नाड़ी निर्णय करे।

तीन चरण वाले कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, नक्षत्रोत्पन्न कन्या कृत्तिका से भरणी तक क्रम-उत्क्रम से चार पर्व पर गणना करके नाड़ी ज्ञान प्राप्त करे। मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा नक्षत्रोत्पन्न कन्या (जो इन दो चरण वाले नक्षत्र में उत्पन्न हैं) नाड़ी ज्ञानार्थ मृगशिरा से रोहिणी तक के पांच पर्वों पर क्रम-उत्क्रम से गणना करें। (यह नाड़ी चक्र पंचांग पुस्तकों में सरलता से समझा जा सकता है)। यदि वर-वधु उभय के नक्षत्र एक ही पर्वगत हों, तब अशुभ है। भिन्न पर्व पर पड़े, तब शुभ है।

अब **विवाह भेद** कहते हैं—उक्त शुभकाल में प्राजापत्य, दैव, आर्ष, ब्राह्म विधि से विवाह करे। ये उत्तम उपयुक्त फलप्रद है। अन्य गान्धर्व, आसुर, पैशाच, राक्षस विवाह भी कहे गये हैं। इस प्रकार सात विवाह कहे गये। ये पुत्र-पौत्रप्रद विवाह हैं। प्राच्य तथा कलिंगों हेतु गोधूलिक मुख्य है। सभी देशों में अभिजित् सर्वदोषघ्न है।।५०९-५१३।।

मध्यन्दिनगते भानौ मुहूर्तोऽभिजिदाह्वयः।
नाशयत्यखिलान्दोषान्पिनाकी त्रिपुरं यथा॥५१४॥

अब **अभिजित् प्रशंसा** सुनें। जब मध्याकाशस्थ सूर्य हो, तब अभिजित् मुहूर्त्त रहता है। जैसे त्रिपर को शंकर ने नष्ट किया था, तदनुरूप यह सर्वदोषघ्न है।।५१४।।

पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये। न त्रयोर्व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नान्यमङ्गलम्॥५१५॥
विवाहश्चैकजन्यानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि।
असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत्॥५१६॥
प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम्।
न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके॥५१७॥
नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम्। दिवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा॥५१८॥
आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति नास्ति गण्डे विपर्ययः।
सुतः सुता वा नियतं श्वशुरं हन्ति मूलजः॥५१९॥
तदंत्यपादजो नैव तथाश्लेषाद्यपादजः।
ज्येष्ठान्त्यपादजौ ज्येष्ठं बालो हन्ति न बालिका॥५२०॥

न बालिकाम्बुमूलर्क्षे मातरं पितरं तथा। सैन्द्री धवाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा॥५२१॥

जब पुत्र का विवाह करे, तब छः मास तक पुत्री का विवाह न करे। एक पुत्र किंवा पुत्री के विवाहोपरान्त दूसरे पुत्र का (तभी) उपनयन न करे। एक मांगलिक कार्य के छः मास पर्यन्त अन्य मांगलिक कृत्य न करे। यदि एक माता से उत्पन्न दो कन्या का विवाह छः मास के अन्तर्गत् किया जाये, तब तीन वर्ष के अन्दर एक विधवा होगी। यदि अपने पुत्र के साथ जिसकी कन्या का विवाह किया जाये, उस पिता के पुत्र के साथ अपनी पुत्री का कदापि विवाह न करे। यह **प्रत्युद्वाह दोष** होगा। यह कदापि करणीय नहीं है। एक ही वर को अपनी दो कन्या प्रदान न करे। दो सहोदर वर कदापि दो सहोदर कन्या से विवाह न करे। दो सगे भाई का एक ही दिवस मुण्डन किंवा विवाह न किया जाये।

अब **गण्डान्त दोष** कहते हैं—पहले वर्णित गण्डान्त में दिन में उत्पन्न बालक पिता हेतु, रात्रि में जन्मा माता हेतु सायं किंवा प्रातः सन्ध्या में जन्मा जातक स्वयं अपने लिये घातक होगा। यह कदापि अन्यथा नहीं होता। मूलोत्पन्न पुत्र किंवा कन्या श्वसुर हेतु घातक हैं, तथापि मूल के चतुर्थ चरण में जन्म जातक श्वसुर हेतु घातक नहीं रहता। अश्लेषा प्रथम चरणोत्पन्न जातक पिता किंवा श्वसुर का नाश नहीं करता तथापि ज्येष्ठा के अन्तिम चरण में उत्पन्न जातक श्वसुर हेतु हानिप्रद है। (इसमें कन्या घातक नहीं है)। पूर्वाषाढ़ा किंवा मूलोत्पन्न कन्या माता-पिता नाशक नहीं हैं। ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या अपने जेठ (पति के बड़े भाई) हेतु तथा विशाखा में जन्मी कन्या देवर हेतु घातक कही गयी है।।५१५-५२१।।

आरभ्योद्वाहदिवसात् षष्ठे वाप्यष्टमे दिने। वधूप्रवेशः सम्पत्त्यै दशमे सप्तमे दिने॥५२२॥

हायनद्वितयं जन्मभलग्नदिवसानपि।
सन्त्यज्य ह्यतिशुक्रेऽपि यात्रा वैवाहिकी शुभा॥५२३॥

अब **वधु प्रवेश प्रसंग** कहते हैं—वधु विवाहोपरान्त विवाह तिथि से छठे, आठवें, दसवें किंवा सातवें दिन पतिगृह में प्रथम बार जाये। इससे सम्पत्ति वृद्धि होगी। विवाह से द्वितीय वर्ष तथा जन्मराशि, जन्मलग्न एवं जन्मदिन को छोड़कर अन्य काल में सम्मुखीन शुक्र रहने पर भी यह पतिगृह में प्रथम प्रवेश शुभ होता है।।५२२-५२३।।

श्रीप्रदं सर्वगीर्वाणस्थापनं चोत्तरायणे। गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः॥५२४॥
विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु। शुक्लपक्षेषु कृष्णेषु तदादिष्वष्टसु शुभम्॥५२५॥

दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र तस्य च।
द्वितीयादिद्वये पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात्॥५२६॥

दशम्यादेश्चतसृषु पौणमास्यां विशेषतः। त्र्युत्तगदितिचन्द्रान्त्यहस्तत्रयगुरूडुषु॥५२७॥
साश्विधातृजलाधीशहरिमित्रवसुष्वपि। कुजवर्जितवारेषु कर्तुः सूर्ये बलप्रदे॥५२८॥
चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने। शुभलग्ने शुभांशे च कर्त्तुर्न निधनोदये॥५२९॥

अब **देव प्रतिष्ठा** कहते हैं—गुरु-शुक्रोदय काल में चैत्र को छोड़कर माघ प्रभृति पांच मास के शुक्लपक्ष में समस्त देवस्थापन कार्य शुभप्रद होगा। इस उत्तरायण में कृष्णपक्ष में भी माघ आदि पांच मास में

पक्षारंभ से आठ दिन के भीतर सर्वदेवस्थापन शुभ होगा। जिस देवता की स्थापना करना हो उनकी स्थापना उनकी तिथि पर करे। सामान्यतः द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथि सभी देवस्थापनार्थ शुभ है। मंगलवार के अतिरिक्त बाकी छः वारों में देवस्थापना करे। उत्तरात्रय, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, शतभिषा, श्रवण, अनुराधा धनिष्ठा में भी स्थापना करे। जब यजमान का ताराबल, सूर्यबल तथा चन्द्रबल उत्तम हो, तब पूर्वाह्न में शुभ लग्न, शुभ नवमांश में स्थापना करे। परन्तु यजमान की जन्मराशि से अष्टम राशि को त्यागे। अन्य लग्न में यह प्रतिष्ठा कर्म शुभप्रद है।।५२४-५२९।।

राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः। पञ्चाष्टके शुभे लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते।।५३०।।
लग्नस्थाश्चन्द्रसूर्यारराहुकेत्वर्कसूनवः। कर्तुर्मृत्युप्रदाश्चान्ये धनधान्यसुखप्रदाः।।५३१।।

द्वितीये नेष्टदाः पापाः सौम्याश्चन्द्रश्चवित्तदाः।
तृतीये निखिलाः खेटाः पुत्रपौत्रसुखप्रदाः।।५३२।।
चतुर्थे सुखदाः सौम्याः क्रूराः खेटाश्च दुःखदाः।
ग्लानिदाः पञ्चमे क्रूराः सौम्याः पुत्रसुखप्रदाः।।५३३।।
षष्ठे शुभाः शत्रुदाः स्यु पापाः शत्रुक्षयङ्कराः।
व्याधिदाः सप्तमे पापाः सौम्याः शुभफलप्रदाः।।५३४।।
अष्टमस्थाः खगाः सर्वे कर्तुर्मृत्युप्रदायकाः।
धर्मे पापा घ्नन्ति सौम्याः शुभदा मङ्गलप्रदाः।।५३५।।
कर्मगा दुःखदाः पापाः सौम्याश्चन्द्रश्च कीर्तिदाः।
लाभस्थानगताः सर्वे भूरिलाभप्रदा ग्राहाः।।५३६।।

शुभग्रह युक्त अथवा दृष्ट मेषादि राशियां देवस्थापनार्थ श्रेष्ठ हैं। तब तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण शुभ हो। लग्न से अष्टम स्थान ग्रहरहित हो।

देवस्थापना हेतु—लग्न में—चन्द्र, सूर्य, राहु, केतु, शनि, यजमानार्थ घातक हैं।
देवस्थापना हेतु—लग्नस्थ—बुध, शुक्र, गुरु, धनधान्य सुखप्रद हैं।
देवस्थापना हेतु—द्वितीय भावस्थ—पापग्रह अनिष्टकारी तथा शुभग्रह धनवर्द्धक हैं।
देवस्थापना हेतु—तृतीय भावस्थ—शुभ-पापग्रह दोनों पुत्र-पौत्रादि सुख देते हैं।
देवस्थापना हेतु—चतुर्थ भावस्थ—शुभग्रह शुभफलद पापग्रह पापफल देते हैं।
देवस्थापना हेतु—पंचम भावस्थ—शुभग्रह शुफफलद पापग्रह कष्टप्रद होते हैं।
देवस्थापना हेतु—षष्ठम भावस्थ—शुभग्रह शत्रुवर्द्धक, पापग्रह शत्रुनाशक होते हैं।
देवस्थापना हेतु—सप्त भावस्थ—पापग्रह रोगवर्द्धक, शुभग्रह शुभ फल देते हैं।
देवस्थापना हेतु—अष्टमभावस्थ—शुभग्रह तथा पापग्रह यजमानार्थ घातक हैं।
देवस्थापना हेतु—नवम भावस्थ—पापग्रह धर्मनाशक, शुभग्रह शुभत्वदायक होते हैं।

देवस्थापना हेतु—दशम भावस्थ—पापग्रह, दुःखप्रद, शुभग्रह यशोवर्द्धक होते हैं।
देवस्थापना हेतु—एकादश भावस्थ—पापग्रह-शुभग्रह दोनों लाभप्रद होते हैं।
देवस्थापना हेतु—द्वादशस्थ—शुभग्रह-पापग्रह दोनों व्यय बढ़ाते हैं।।५३०-५३६।।

व्ययस्थानगताः शश्वद्बहुव्ययकरा ग्रहाः।
हन्त्यर्थहीनाः कर्तारं मन्त्रहीनास्तु ऋत्विजम्॥५३७॥
स्त्रियं लक्षणहीनास्तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः।
गुणाधिकतरे लग्ने दोषः स्वल्पतरो यदि॥५३८॥
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदम्। निर्माणायतनग्रामगृहादीनां समासतः॥५३९॥

प्रतिष्ठा करने वाले पुरोहित अर्थज्ञ न हों, तब यजमान का अशुभ होगा। अशुद्ध उच्चरित मन्त्र ऋत्विक् का अशुभ करते हैं। विधिरहित कर्म कर्त्ता की पत्नी का अशुभ करते हैं। हे नारद! देवप्रतिष्ठा में त्रुटि होने पर उसके जैसा (नाशक) शत्रु अन्य नहीं होता। यदि लग्न में स्वल्पदोष हो तथापि गुणाधिक्य हो, तब उसमें प्रतिष्ठा कार्य करे। इससे कर्त्ता की कामना पूर्ण होती है। हे मुनिवर! अब मैं संक्षेपतः ग्राम-मन्दिर गृह निर्माण कहता हूं।।५३७-५३९।।

क्षेत्रमादौ परीक्षेत गन्धवर्णरसांशकैः। मधुपुष्पाम्लपिशितगन्धं विप्रानुपूर्वकम्॥५४०॥
सितं रक्तं च हरितं कृष्णवर्णं यथाक्रमम्। मधुरं कटुकं तिक्तं कषायकरसं क्रमात्॥५४१॥
अत्यन्तवृद्धिदं नृणामीशानप्रागुदक्प्लवम्। अन्यदिक्षु प्लवे तेषां शश्वदत्यन्तहानिदम्॥५४२॥

अब **गृहभूमि चयन प्रसंग** कहते हैं—जहां गृह निर्मित करना हो, वहां गन्ध, वर्ण, रस, आकृति से भूमि परीक्षण करे।

वहां मिट्टी की गन्ध मधुवत् हो — ब्राह्मण योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी की गन्ध पुष्पवत् हो — क्षत्रिय योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी की गन्ध अम्लवत् हो — वैश्यों योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी की गन्ध मांसवत् हो — शूद्रों योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का वर्ण श्वेत हो — ब्राह्मण योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का वर्ण लाल हो — क्षत्रिय योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का वर्ण पीला हो — वैश्य योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का वर्ण कृष्ण हो — शूद्र योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का स्वाद मधुर हो — ब्राह्मण योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का स्वाद मिर्च जैसा हो — क्षत्रिय योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का स्वाद तिक्त हो — वैश्यों योग्य भूमि है।
वहां मिट्टी का स्वाद कषाय हो — शूद्र योग्य भूमि है।

जो भूमि ईशान, पूर्व तथा उत्तर में नीची हो, तब वह सभी लोगों हेतु वृद्धिप्रदा है। अन्य दिशा में नीची हो, तब हानिप्रदा है।।५४०-५४२।।

समगर्तारत्निमात्रं खनित्वा तव पूरयेत्।
अत्यन्तवृद्धिरधिके हीने हानिः समे समम्॥५४३॥

तथानिशादौ तत्कृत्वा पानीयेन प्रपूरयेत्। प्रातर्दृष्टे जले वृद्धिः समं पङ्के क्षयः क्षये॥५४४॥

अव **भूमि परीक्षण** कहते हैं—जहां गृह निर्माण की इच्छा हो, वहां केहुनी से कनिष्ठा तक के माप का लम्बा, इतना गहरा इतना चौड़ा तक गढ़ा बनाये। अब खोदी गई मिट्टी से उस गढ़े को भरें। यदि भरने के बाद मिट्टी बच जाये, तब वहां रहने से सम्पदा बढ़ेगी। यदि मिट्टी कम पड़े, तब वहां निवास न करें सम्पदा हानि होगी। यदि बाहर निकाली मिट्टी पूर्णतः भरने से वह गढ़ा पूर्णत भर जाये, तब वहां रहने पर मध्यम फल होगा। एवंविध इसी माप का कुण्ड बनाये। सायं उसमें जल भरें। प्रातः यदि कुण्ड में जल बच जाये, तब वहां वृद्धि होगी। यदि गीली मृतिका ही बचे, तब मध्यम फल होगा। यदि कुण्ड में नीचे तल में दरार पड़े, तब वहां न रहे। हानि होगी।।५४३-५४४।।

एवं लक्षणसंयुक्तं सम्यक् क्षेत्रं समीक्ष्यते।
दिक्साधनाय तन्मध्ये समं मण्डलमालिखेत्॥५४५॥
द्वादशाङ्गुलकं शङ्कुं स्थाप्येक्षेत्तत्र दिक्क्रमम्।
चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे षड्वर्गपरिशोधिते॥५४६॥
रेखामार्गे च कर्त्तव्यं प्राकारं सुमनोहरम्।
आयामेषु चतुर्दिक्षु प्रागादिषु च सत्स्वपि॥५४७॥
अष्टावष्टौ प्रतिदिशं द्वाराणि स्युर्यथाक्रमम्।
प्रदक्षिणक्रमात्तेषाममूनि च फलानि वै॥५४८॥
हानिर्नैःस्व्यं धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम्।
अतिचौर्यमतिक्रोधो भीतिदिशि शचीपतेः॥५४९॥
निधनं बन्धनं भीतिरर्थाप्तिर्धनवर्द्धनम्।
अनातङ्कं व्याधिभयं निःसत्त्वं दक्षिणादिशि॥५५०॥
पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्द्धनागमः।
सौभाग्यमतिदौर्भाग्यं दुःखं शोकश्च पश्चिमे॥५५१॥
कलत्रहानिर्निःसत्त्वं हानिर्द्धान्यधनागमः।
सम्पद्वृद्धिर्मासभीतिरामयं दिशि शीतगोः॥५५२॥
एवं गृहादिषु द्वारविस्तारादिद्विगुणोच्छ्रितम्।
पश्चिमे दक्षिणे वापि कपाटं स्थापयेद्गृहे॥५५३॥

हे मुनिवर! निवास हेतु भूमि का भलीभांति परीक्षण करके वहां दिक् ज्ञानार्थ समतल भूमि में एक वृत्त बनाये। उसके मध्य में बारह विभाग किंवा द्वादश पर्वयुक्त एक ऋतु लकड़ी स्थापित करें। तब जो दिक् साधन

ज्ञान के नियम हैं, उससे दिशा ज्ञान करें। तब कर्त्ता के नामानुसार षड्वर्ग शुभ क्षेत्रफल बनाये तब वांछित लम्बाई तथा चौड़ाई के बराबर चतुर्भुज बनाये। लम्बाई तथा चौड़ाई में चारों दिशा में आठ-आठ द्वार प्रति दिशा में होंगे। पूर्व से उत्तर एवं दक्षिण तक प्रदक्षिणा क्रमेण ये फल हैं। यथा हानि, निर्धनता, धनलाभ, राजसम्मान, प्रभूतधन, अति चोरी, अतिक्रोध, अतिभय। यह पूर्वभाग का फल है। दक्षिण दिशा के द्वारों का फल है मरण, बन्धन, भय, धनलाभ, धनवृद्धि, निर्भयता, व्याधिमय, निर्बलता, पश्चिम दिशा में क्रमशः पुत्र होनि, शत्रुवृद्धि, लक्ष्मीलाभ, धनलाभ, सौभाग्य, अतिदौर्भाग्य, दुःख, शोक। उत्तर दिशा में स्त्री हानि, निर्बलता, हानि, धान्यलाभ, धनागम, भय, रोग।।५४५-५५३।।

(**नोट** : *यहां मूल में सूत्ररूपेण वर्णित है। इसको विस्तार से वास्तुशास्त्री से ज्ञान करके प्रयोग करे। वे वास्तु शास्त्री पाश्चात्य वास्तु वाले न हों।)*

प्राकारान्तःक्षितिं कुर्यादेकाशीतिपदं यथा। मध्ये नवपदे ब्रह्मस्थानं तदतिनिन्दितम्॥५५४॥

द्वात्रिंशदंशाः प्राकारसमीयांशाः समन्ततः।
पिशाचांशे गृहारम्भो दुःखशोकभयप्रदः॥५५५॥
शेषांशाः स्युश्च निर्माणे पुत्रपौत्रधनप्रदाः।
शिराः स्युर्वास्तुनो रेखा दिग्विदिग्मध्यसम्भवाः॥५५६॥
ब्रह्मभागाः पिशाचांशाः शिराणां यत्र संहतिः।
तत्र तत्र विजातीयाद्वास्तुनो मर्मसन्धयः॥५५७॥
मर्माणि सन्धयो नेष्टाः स्वस्थेऽप्येवं निवेशने।
सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ॥५५८॥
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः।
अकारादिषु भागेषु दिक्षु प्रागादिषु क्रमात्॥५५९॥
खरोऽश्वोऽथ हरिः श्वाख्यः सर्पाखुगजशाशकाः।
दिग्वर्गाणामियं योनिः स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः॥५६०॥

एवंविध पूर्वादिदिक् के गृहादि में भी द्वार तथा उसके फल को समझे। द्वार की चौड़ाई से दूनी ऊंचाई के कपट (दरवाजा) बनाकर उस चाहारदिवार के दक्षिण-पश्चिम में लगाये। इस दीवार के अन्दर जो भूमि हो, उसके ८१ समान भाग करे। बीच के नौ खण्ड में ब्रह्मस्थान है। यहां गृह निर्माण न करे। चाहारदीवारी से सटे चारों ओर के ३२ भाग पिशाचांश हैं। वहां गृह बनाना दुःख-शोक तथा भयप्रद है। शेष अंश में गृह बनाये। पुत्र-पौत्र-धन बढ़ेगा।

वास्तु भूमि की दिशा-विदिशा रेखा ही वास्तु शिरा है। जहां ब्रह्मस्थान, पिशाचभाग तथा शिरा की सन्धि हो, वह वास्तु की मर्मसन्धि है। यह गृहारंभ तथा गृह प्रवेशार्थ अनिष्टप्रद है।

गृह निर्माण का आरम्भ—मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, कार्त्तिक में करे। यह पुत्र, आरोग्य तथा धनप्रद है।

दिशा के वर्ग एवं वर्गेश—पूर्वादिदिक् में आठ वर्ग हैं। इनकी क्रमानुसार योनियां हैं। गरुड़, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज, शशक। योनिवर्ग में अपने से पंचम वर्ग वाले शत्रु होते हैं जैसे गरुड़ वर्ग का शत्रु है सर्प।।५५४-५६०।।

साध्यवर्गः पुरः स्थाप्य पृष्ठतः साधकं न्यसेत्।
व्यत्यये नाशनं तस्य ऋणमध्यं धनाच्छुभम्।।५६१।।
आरभ्य साधकं धिष्ण्यं साध्यं यावच्चतुर्गुणम्।
विभजेत्सप्तभिः शेषं साधकस्य धनं तदा।।५६२।।

जहां जिस स्थान पर गृह बनाना हो—वह साध्य है। गृह निर्माता-साधक, कर्त्ता, भर्त्ता कहा जाता है।

(१) साध्य स्थान की वर्ग संख्या लिखे उसके वाम ओर साधक की वर्ग संख्या लिखे। इसमें ८ का भाग देने पर जो बचे वही साधक धन होगा।

(२) साधक की वर्ग संख्या के बायें साध्य की वर्ग संख्या रखे उसमें आठ का भाग देकर जो बचे, वह साधक का ऋण होगा। यदि ऋण संख्या कम हो, धन संख्या अधिक हो, तब उस ग्राम किंवा उस दिशा में घर बनाना शुभ होगा।

(३) साधक के नक्षत्र से साध्य के नक्षत्र तक की संख्या की गणना करे। जो संख्या आये उसे चार से गुणा करे गुणनफल में सात का भाग देना चाहिये। जो शेष है, वही साधक का धन माना जायेगा।।५६१-५६२।।

विस्तार आयामगुणो गृहस्य पद्मुच्यते।
तस्माद्घनाघनायर्क्षवारांशाः संख्यया क्रमात्।।५६३।।
धनाधिकं गृहं वृद्ध्यै ऋणाधिकमशोभनम्।
विषमायः शुभायैव समायो निर्धनाय च।।५६४।।
धनक्षयस्तृतीय पञ्चमर्क्षे परः क्षयः। आत्मक्षयः सप्तमोर्क्षे भवेत्येव हि भर्तृभात्।।५६५।।
द्विर्द्वादशो निर्धनाय त्रिकोणमसुताय च।
षट्काष्टकं मृत्यवे स्याच्छुभदा राशयः परे।।५६६।।
सूर्याङ्गारकवारांशा वैश्वानरभयप्रदाः। इतरे ग्रहवारांशाः सर्वकामार्थसिद्धिदाः।।५६७।।

अब **धन, ऋण, आय नक्षत्र, वार अंश ज्ञान** कहते है—वास्तुभूमि (गृह) की चौड़ाई की लम्बाई से गुणा करे। गुणनफल ही पद है। इस पद को छः स्थान में अंकित करे। अब प्रत्येक पद में क्रमशः ८, ३, ९, ८, ६ से गुणा करे। जो गुणनफल आये उसे अलग-अलग १२, ८८, २७, ७, ९ से भाग दे। जो शेष बचता है, वह धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार, अंश होगा। धन अधिक हो, तब गृह शुभ है, ऋण अधिक है तो अशुभ है। जब आय १, ३, ५, ७ हो, तब शुभ होगी। जब सम अंक की आय हो, तब २, ४, ६, ८ में अशुभ होगी।

गृह का जो नक्षत्र हो, उससे अपने नाम के नक्षत्र को गिनने से जो संख्या हो, उसे ९ से भाग दे। यदि शेष ३ हो, तब धन नाश, ५ बचे तब यशनाश, ७ बचे तब गृह कर्त्ता का निधन होगा। घर की राशि

से अपनी राशि गणना करे। यदि दो बचे या १२ बचे तब धनहानि, ९, ५ बचे तब पुत्र नाश, ६, ८ बचे तब अनिष्ट होगा। अन्य संख्या आये तब शुभ जाने। सूर्य तथा मंगल का वार तथा अंश जहां हो, वहां अग्नि भय रहेगा। इसे अतिरिक्त अन्य वार या अंश होने पर वांछित वस्तु लाभ होगा।।५६३-५६७।।

नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम्।
पूर्वादिकशिरोवामपार्श्वेशायाप्रदक्षिणम् ॥५६८॥
चराह्वयो वास्तुपुमान् चरत्येवं महोदरः।
यद्दिङ्मुखो वास्तुपुमान् कुर्यात्तद्दिङ्मुखं गृहम्॥५६९॥
प्रतिकूलमुखं गेहं रोगशोकभयप्रदम्। सबलो मुखगेहानामेष दोषो न विद्यते॥५७०॥

अब **वास्तु पुरुष** के सम्बन्ध में कहते हैं—भाद्रपद, क्वार, कार्तिक आदि तीन-तीन मास में क्रमशः पूर्वादि दिशा की ओर मस्तक करके वाम करवट से शयनरत महासर्परूप चर नामक वास्तु पुरुष प्रदक्षिण क्रमेण विचरण करते हैं—यह एवंविध है—

भाद्रपद, क्वार तथा कार्तिक में—वास्तु पुरुष का शिर पूर्व में।

अग्रहायण पौष माघ में—वास्तु पुरुष का शिर दक्षिण में।

फाल्गुन चैत्र वैशाखा में—वास्तु पुरुष का शिर पश्चिम में।

ज्येष्ठ आषाढ़ श्रावण में—वास्तु पुरुष का शिर उत्तर में।

जिस समय जिस दिशा में वास्तु पुरुष का मस्तक हो, उसी दिशा में द्वार बनाये। मुख से विपरीत दिशा में बना द्वार रोग, शोक, भय देता है। यदि चारों दिशा में द्वार हो, तब कोई दोष नहीं रहता।।५६८-५७०।।

वृत्येटिकां स्वर्णरेणुधान्यशैवालसंयुतम्।
गृहमध्ये हस्तमात्रे गर्ते न्यासाय विन्यसेत्॥५७१॥
वस्त्वायामदलं नाभिस्तस्मादध्यङ्गुलत्रयम्।
कुक्षिस्तस्मिन्न्यसेच्छङ्कुं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥५७२॥

जब गृह निर्माण प्रारंभ करना हो, तब नींव के गढ़े में सोना, पवित्र स्थल की धूल, धान्य तथा सेवार एवं काई रहित ईंट रखे। घर की लम्बाई के तीन अंगुल नीचे वास्तुपुरुष के पुच्छ की ओर कुक्षि रहती है। वहां शंकु न्यस्त करे, तब वह पुत्र-पौत्रवर्द्धक गृह हो जाता है।।५७१-५७२।।

चतुर्विंशत्रयोविंशत्षोडशद्वादशाङ्गुलैः। विप्रादीनां कुक्षिमानं स्वर्णवस्त्राद्यलङ्कृतम्॥५७३॥
खादिगर्जुनशालोत्थं युगयन्त्रं तरूद्भवम्। रक्तचन्दनपालाशरक्तशालविशालजम्॥५७४॥
शकुं त्रिधा विभज्याद्यं चतुरस्त्रं ततः परम्।
अष्टास्त्रं च तृतीयासौ मन्वस्त्रं मृदुमव्रणम्॥५७५॥
एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्य शुभे दिने। षड्वर्गशुद्धिसूत्रेण सूत्रिते धरणीतले॥५७६॥
मृदुवक्षिप्रभेषु रिक्तामावर्जिते दिने। व्यर्कारचरलग्नेषु पापे चाष्टमवर्जिते॥५७७॥

नैधने शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके।
शुभेक्षितेऽथ वा युक्ते लग्ने शङ्कुं विनिक्षिपेत्॥५७८॥
पुण्याहघोषैर्वादित्रैः पुण्यपुण्याङ्गनादिभिः।
स्वत्रिकेन्द्रत्रिकोणस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः॥५७९॥
लग्नांशाष्टारिचन्द्रेण दैवज्ञार्चनपूर्वकम्। एकद्वित्रिचतुःशालाःसप्त शाला दशाह्वयाः॥५८०॥

शंकु को खैर, अर्जुन, साखू, कचनार, लालचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल आदि किसी काष्ठ का बनाये। ब्राह्मण हेतु २४ अंगुल, क्षत्रिय हेतु २३ अंगुल, वैश्य हेतु बीस अंगुल का शंकु हो। शंकु के तीन भाग (ऊपरी भाग) में चतुष्कोण, मध्य में अष्टकोण निचला भाग गोल हो। शुभ दिन में छिद्र रहित कोमल शंकु बनाये। उसे षड्वर्ग द्वारा शुद्ध सूत्र से गृह क्षेत्र में स्थापित करना होगा, जिसकी विधि है कि जब मृदु, ध्रुव अथवा क्षिप्र नक्षत्र हो, अमावस्या तथा रिक्ता तिथि को छोड़कर जो कोई तिथि हो, रविवार तथा मंगलवार के अतिरिक्त जो वार हो, चार लग्न को छोड़कर स्थिर किंवा द्विस्वभाव लग्न हो, जब पापग्रह लग्नस्थ हों, अष्टम स्थान ग्रहरहित हो, शुभ राशि लग्न हो तथा उसमें शुभ नवमांश स्थित हो, लग्न में शुभग्रह हो किंवा दृष्टि हो, तब ब्राह्मण पुण्याहवाचन करे। मांगलिक वाद्य बजे, सौभाग्यशाली नारी मंगलगीत गायन करे तथा दैवज्ञ मुहूर्त्त बताने वाले ब्राह्मण का पूजनादि करके कुक्षि स्थल में शंकु स्थापित करे। घर के छः भेद होते हैं—एकशाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतुःशाला, सप्तशाला तथा दशशाला।।५७३-५८०।।

ताः पुनः षड्विधाः शालाः प्रत्येकं दशषड्विधाः।
ध्रुवं धान्यं जय नन्दं खरैः कान्तं मनोरमम्॥५८१॥
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं शत्रुं स्वर्णप्रदं क्षयम्।
आक्रन्दं विपुलाख्यं च विजयं षोडशं गृहम्॥५८२॥
गृहाणि गणयेदेवं तेषां प्रस्तारभेदतः। गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्वन्न्यसेत्॥५८३॥
गुरुभिः पूरयेत्पश्चात्सर्वलघ्ववधीर्विधिः। कुर्याल्लघुपदेऽलिन्दं गृहद्वारात्प्रदक्षिणम्॥५८४॥
पूर्वादिगेष्वलिन्देषु गृहभेदास्तु षोडश। स्नानागारं दिशि ग्राच्यामाग्नेय्यां पाकमन्दिरम्॥५८५॥
याम्यां च शयनागारं नैर्ऋत्यां शास्त्रमन्दिरम्।
प्रतीच्यां भोजनगृहं वायव्यां धान्यमन्दिरम्॥५८६॥
कौबेर्यां देवतागारत्मीशानं क्षीरमन्दिरम्।
शय्यामूत्रास्त्रतद्विच्च भोजनं मङ्गलाश्रयम्॥५८७॥
धान्यस्त्रीभोगवित्तं च शृङ्गारायतनानि च।
ईशान्यादिक्रमस्तेषां गृहनिर्माणकं शुभम्॥५८८॥
एतेष्वेतानि शस्त्राणि स्वं स्थाप्यानि स्वदिक्ष्वपि।
ध्वजो धूम्रोऽथ सिंहःश्वा सौरमेयः खरो गजः॥५८९॥

ध्वांक्षश्चैव भवन्त्यष्टौ पूर्वादिपाः क्रमादमी।
प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्तु हिम्बिभीतकाः॥५९०॥

इन छः शाला को १६ भेद कहे गये हैं। यथा—ध्रुव, धान्य, जय, नन्द, कर, कान्त, मनोरम, सुमुख, क्रूर, शत्रुद, स्वर्णद, क्षय, आक्रन्द, विपुल तथा विजय। प्रस्तार भेद से इनकी गणना करे।

अब **प्रस्तारभेद** कहते हैं—चार गुरुचिह्न लिखे—

ऽ ऽ ऽ ऽ

। । । ।

तदनन्तर जैसा ऊपर है तदनुरूप गुरु किंवा लघु चिह्न द्वितीय पंक्ति में लिखे। तीसरी पंक्ति में पहले गुरु चिह्न के नीचे लघुचिह्न लिखे। तब दाहिने भाग में ऊपर जैसा लघु अथवा गुरु चिह्न था वही लिखे। बायीं ओर गुरु चिह्न से पंक्ति पूर्ण करे। एवंविध पुनः पुनः लिखे जब तक समस्त चिह्न लघु न हों। इस प्रकार चार अक्षर से चारों दिशा हेतु १६ भेद होते हैं। अब चारों चिह्न को प्रदक्षिणा क्रम से पूर्व प्रभृति दिशा जानकर जहां लघु चिह्नांकित स्थान हो, वहां गृहद्वार तथा द्वार के आगे का अलिन्द बनाये। पूर्वदिशा में स्नानगृह, अग्निकोण में पाकगृह, दक्षिण में शयन गृह, नैर्ऋत् में अस्त्रागार, पश्चिम में भोज करने का गृह, वायुकोण में धान्य-खजाना रखने का गृह, उत्तर में देवगृह तथा ईशान में जलगृह बनाये। तदनन्तर अग्निकोण से प्रारंभ करे तथा दो-दो गृह के (कमरे) के बीच दूध-दही मथने का गृह, घृत रखने का गृह, शौचगृह, विद्याभ्यास गृह, स्त्री समागमगृह, औषधि तथा शृंगार सामान रखने का गृह बनाकर वहां वे ही वस्तु संचित करे। अब **आय का नाम-दिशा** कहते हैं। पूर्वादि प्रदक्षिण क्रमेण ध्वज, धूम्र, सिंह, स्वान, वृष, खर, गज, काक (ध्वांक्ष) ये आठ आय हैं। पूर्वादि आठ दिक् क्रमेण ये कहे गये हैं। अब गृह के समीप न लगाने वाले वृक्ष कहते हैं। पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा।।५८१-५९०।।

ये कण्टका दुग्धवृक्षा वृक्षाश्वत्थकपित्थकाः।
अगस्तिसिन्धुवालाख्यतितिडीकाश्च निन्दिताः॥५९१॥
पित्तवाग्नजदेहस्यात्पश्चिमे दक्षिणे तथा।
गृहपादागृहस्तम्भाः समाः शस्ताश्च नासमाः॥५९२॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं कुड्योत्सेधं यथारुचि।
गृहोपरि गृहादीनामेवं सर्वत्र चिन्तयेत्॥५९३॥
गृहादीनां गृहश्रावं क्रमशोऽष्टविधं स्मृतम्।
पाञ्चालमानं वैदेहं कौरवं च कुजन्यकम्॥५९४॥
मागधं शूरसेनं च गान्धारावितका स्मृतम्। सचतुर्भागविस्तारमुत्सेधं यत्तदुच्यते॥५९५॥
पाञ्चालमातुलानां च ह्युत्तरोत्तरवृद्धितः। वैदेहादीन्यशेषाणि मानानि स्युर्यथाक्रमम्॥५९६॥
पाञ्चालमानं सर्वेषां साधारणमतः परम्।
अवन्तिमानं विप्राणां गान्धारं क्षत्रियस्य च॥५९७॥

कौजन्यमानं वैश्यानां विप्रादीनां यथोत्तरम्।
यथोदितं जलस्राव्यं द्वित्रिभूमिकवेश्मनाम्॥५९८॥

तथा कण्टकयुक्त, दुग्धयुक्त, पीपल, कैंथा, अगतस्य, निर्गुण्डी, इमली न लगाये। घर के दक्षिण तथा पश्चिमस्थ वृक्ष धननाशक होते हैं।

अब **गृह प्रमाण** कहते हैं। गृह स्तम्भ ही गृह के चरण हैं। वे समसंख्यक ही उत्तम हैं। विषम न हों। गृह अति उच्च तथा अतिनिम्न न हो। अतः स्वेच्छा के अनुरूप दीवार आदि ऊंची करे (अर्थात् जरूरत भर ऊंची करे)। द्वितीय मंजिल निर्माणार्थ यही नियम है। गृह की उच्चता आठ प्रकार की होती है। यथा—पाञ्चाल, वैदेह, कौरव, कुजन्य, मागध, शूरसेन, गान्धार, आवन्तिक।

पाञ्चाल मान वाला गृह ऐसा होता है, जो चौड़ाई से सवागुना अधिक उच्च हो। एवंविध क्रमशः ऊंचाई बढ़ाते जाने से वदेह आदि मान हो जाते हैं।

पाञ्चालमान — ब्राह्मणों हेतु शुभ
गान्धारमान — क्षत्रियों हेतु शुभ
कुजन्यमान — वैश्यों हेतु शुभ

तृतीय तथा द्वितीय मंजिल में भी पानी का बहाव पूर्वोक्त नियमानुरूप रहे।।५९१-५९८।।

उष्ट्रकुञ्जरशाला ध्वजायेप्यथ वा गजे।
पशुशालाश्च शालानां ध्वजायेप्यथ वा गजे॥५९९॥
द्वारशय्याशनामत्रध्वजाः सिंहवृषध्वजाः। वास्तुपूजाविधिं वक्ष्ये नववेश्मप्रवेशने॥६००॥

ध्वज तथा गज आय के उष्ट्र तथा हाथी शाला बनाये। इसी में अन्य पशु हेतु भी स्थान बनाये। द्वार, शय्या, आसन, छत्र, ध्वज निर्माणार्थ सिंह, वृष, ध्वज हो। अब नवगृह में प्रवेशार्थ वास्तुपूजा विधि का विधान कहता हूं।।५९९-६००।।

हस्तमात्रा लिखेद्रेखा दश पूर्वा दशोत्तराः।
गृहमध्ये तण्डुलोपर्येकाशीतिपदं भवेत्॥६०१॥
पञ्चोत्तरान्वक्ष्यमांणांश्चत्वरिंशत्सुरान् लिखेत्।
द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्यास्तत्रान्तःस्थास्त्रयोदशा॥६०२॥
तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामि क्रमशोऽधुना।
ईशानकोणतो बाह्ये द्वात्त्रिंशत्रिदशा अमी॥६०३॥
कृपीटयोनिः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः।
सूर्यः शशी मृशाकशौ वायुः पूषा च नैर्ऋतिः॥६०४॥
गृहाक्षतो दण्डधरो गान्धर्वो भृगुराजकः।
मृगः पितृगणाधीशास्ततो दौवारिकाह्वयः॥६०५॥

सोमः सूर्योऽदितिदिती द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी।
अथेशानादिकोणस्थाश्चत्वारस्तत्समीपगाः ॥६०६॥

गृहमध्य में चावल के ऊपर पूर्व से पश्चिम की ओर एक हाथ लम्बी दस रेखा लिखे। उत्तर से दक्षिण की ओर भी ऐसी दस रेखा खींचे। इससे समान माप वाले ८१ कोष्ठ होंगे। उनमें ४५ देवगण का यथास्थान नामोल्लेख करना होगा। ३२ देवता बाहर अर्थात् प्रान्त कोष्ठ में तथा १३ देवता भीतर पूज्य होंगे। उन देवगण का नाम यह है। चारों किनारे के देवता हैं—पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, मृग, शशि, मृशा, आकाश, वायु, पूषा, निर्ऋति, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृंगराज, मृग, पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शेष, राजयक्ष्मा, रोग, अहि, मुख्य, भल्लाटक, सोम, सर्प, अदिति तथा दिति। ये बत्तीस देवता चारों किनारों पर हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायुकोण के देवगण के समीप।।६०१-६०६।।

आपः सावित्रसंज्ञश्च जयो रुद्रः क्रमादमी।
एकान्तराः स्युः प्रागाद्याः परितो ब्रह्मणः स्मृताः॥६०७॥
अर्यमा सविता बिम्बविवस्वान्वसुधाधिपः।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधराह्वयः॥६०८॥
आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सुरा अमी।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिः क्रमात्॥६०९॥
यद्दिक्कानां च वर्गेऽयमेवं कोणष्वशेषतः।
तन्मध्ये विंशतिर्बाह्या द्विमदास्ते तु सर्वदा॥६१०॥
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधराह्वयः।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः॥६११॥
ब्रह्माणं च तथैकद्वित्रिपदानर्चयेत्सुरान्।
वास्तुमन्त्रेण वास्तुज्ञो दूर्वादध्यक्षतादिभिः॥६१२॥
ब्रह्ममन्त्रेण वा श्वेतवस्त्रयुग्मं प्रदापयेत्। आवाहनादिसर्वोपचारांश्च क्रमशस्तथा॥६१३॥
नैवेद्यं त्रिविधान्नेन वाद्यैः सह समर्पयेत्।
ताम्बूलं च ततः कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम्॥६१४॥

क्रमशः आपः, सावित्र, जय, रुद्र के पद हैं। ब्रह्मा के चतुर्दिक् पूर्वादि दिशा में अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विवुधाधिप, मित्र, राज्ययक्ष्मा, पृथिवीधर, आपः वत्स हैं। मध्य स्थित नव पदों में ब्रह्मा को स्थापित करे। सभी ९ पदों में ये ४५ देवता पूज्य हैं। ईशानकोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि, दिति ये पांच देव एक पद हैं। अन्य कोष्ठ में पांच-पांच देवता एकपद भागी हैं। ब्राह्मपंक्ति वाले बीस देवता दो-दो पद भागी हैं। ब्रह्मा से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम उत्तरस्थ अर्यमा, विवस्वान्, मित्र तथा पृथिवीधर देवता हैं। ये त्रिपद पद भागी (प्रत्येक) हैं। अतः ब्रह्मा के साथ ही एकपद, द्विपद, त्रिपद, देवगण की वास्तु मन्त्रों से दूर्वा, दही, अक्षत,

पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य से सविधि पूजा करे अथवा ब्राह्ममन्त्र से आवाहन करके षोडशोपचार किंवा पंचोपचार से उनको वस्त्रद्वय अर्पित करे। नैवेद्यार्थ, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य अन्न, मांगलिक गीत तथा वाद्य युक्त अर्पित करे। सर्वान्त में ताम्बूल देकर वास्तुपुरुष की प्रार्थना करे।।६०७-६१४।।

वास्तुपूरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत प्रभो।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥६१५॥

वास्तु पुरुष की प्रार्थना यह है—भूमिशय्या शायी वास्तु पुरुष! आपको प्रणाम! हे प्रभो! आप मेरे गृह को सदा धन-धान्य से समृद्ध करें।।६१५।।

इति प्रार्थ्य यथाशक्त्या दक्षिणामर्चकाय च।
दद्यात्तदग्रे विप्रेभ्यो भोजनं च स्वशक्तितः॥६१६॥
अनेन विधिना सम्यग्वास्तुपूजां करोतिः यः।
आरोग्यं च पुत्रलाभं धनं धान्यं लभेन्नरः॥६१७॥
अकृत्वा वास्तुपूजां यः प्रविशेन्नवमन्दिरम्।
रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते सर्वसङ्कटम्॥६१८॥

इस विधि से प्रार्थना करने के उपरान्त देवपूजा जिन पुरोहित ने कराया है, उनको स्वशक्ति के अनुरूप यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। जो व्यक्ति सावधानी के साथ गृह निर्माण प्रारंभ में किंवा गृहप्रवेश काल में वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, धन, धान्य द्वारा सुखी सम्पन्न हो जाता है। जो बिना वास्तु पूजन सम्पन्न किये गृह प्रवेश करता है, उसे नाना व्याधि, दुःख तथा संकट मिलेगा।।६१६-६१८।।

अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम्। गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत्॥६१९॥

जिसमें द्वार न लगे हों, छत पर छाजन युक्त न हो, देवबलि तथा ब्राह्मणादि को भोजन न कराया गया हो, ऐसे विपत्तिखान गृह में कदापि न जाये।।६१९।।

अथो यात्रा नृपादीनामभीष्टफल सिद्धये।
स्यात्तथा तां प्रवक्ष्यामि सम्यग्विज्ञातजन्मताम्॥६२०॥
अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुवर्णवत्। प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामपि फलोदयः॥६२१॥

अब **यात्रा प्रकरण** कहा गया है—जिस विधि से यात्रा करने पर वह राजा तथा और लोगों की अभीष्ट सिद्धि कराये, वह कहता हूं। जिनका जन्म समय ज्ञात है, उन राजा तथा अन्य लोगों को सविधि यात्रा से उत्तम फललाभ होगा। जिनका जन्मकाल अज्ञात है, भले ही वे घुणाक्षरन्यायेन कभी फल पा भी जायें, तथापि प्रश्नलग्न से यदि वे शुभाशुभ देखकर शकुन आदि देखकर यात्रा करें, तब वे वांछितफल पा जायेंगे।।६२०-६२१।।

षष्ठ्यष्टमीद्वादशीषु रिक्तामापूर्णिमासु च।
यात्रा शुक्लप्रतिपदि निर्द्धनाय क्षयाय च॥६२२॥

मैत्रादितीन्द्वर्कान्त्याश्विहरितिष्यवसूड्डुषु। असप्तपञ्चत्र्याद्येषु यात्राभीष्टफलप्रदाः॥६२३॥

ये तिथि यात्रा हेतु वर्जित हैं। यथा—षष्ठी, द्वादशी, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा तथा शुक्लपक्षीय प्रतिपदा तिथि। जो इन तिथियों में यात्रा करता है, उसे हानि तथा निर्धनता आती है। अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, धनिष्ठा नक्षत्रों में यदि जातक का अपने जन्मनक्षत्र से सप्तम, पंचम, तृतीय तारक न हो, तब यात्रा अभीष्ट फलदायक होती है।।६२२-६२३।।

न मन्देन्दुर्दिने प्राचीं न व्रजेद्दक्षिणं गुरौ। सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोर्द्दिने॥६२४॥

दिशाशूल—शनि-सोम को पूर्व की ओर, गुरु के दिन दक्षिण की ओर, शुक्र-रवि को पश्चिम की ओर, बुध-मंगल को उत्तर की ओर न जाये। ज्येष्ठा नक्षत्र पूर्वदिक् यात्रा हेतु, पूर्वभाद्रपद, दक्षिणदिक् यात्रा हेतु, रोहिणी पश्चिमदिक् यात्रा हेतु तथा उत्तरदिक् यात्रा हेतु उत्तराफाल्गुनी शूल रूप है।।६२४।।

इन्द्राजपादचतुरास्यार्यमर्क्षाणि पूर्वतः। शूलानि सर्वद्वाराणि मित्रार्केज्याश्वभानि च॥६२५॥

अब सभी **दिक् यात्रा हेतु** प्रशस्त नक्षत्र कहते हैं। अनुराधा, हस्त, पुष्य, अश्विनी नक्षत्रों में सभी दिक् की ओर यात्रा कर सकते हैं।।६२५।।

क्रमाद्दिग्द्वारभानि स्युः सप्तसप्ताग्निधिष्ण्यतः। पुग्घिं लङ्घयेद्दण्डं नाग्निश्वसनर्दिग्गमम्॥६२६॥

आग्नेयं पूर्वदिग्धिष्ण्यैर्विदिशश्चैवमेव हि। दिग्राशयस्तु क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनः॥६२७॥

अब **दिक्द्वार नक्षत्र** कहते हैं। कृत्तिका से लेकर सात-सात नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर रहते हैं। (ये ७×४=२८ नक्षत्र हैं)। जो पूर्व हेतु सात नक्षत्र हैं, उनमें अग्निकोण यात्रा करे। पश्चिम तथा उत्तर के नक्षत्रों में वायु कोण यात्रा करे। पूर्वादि चारों दिशा में मेषादि राशियां क्रमशः तीन आवृत्ति में पुनः-पुनः आती हैं।।६२६-६२७।।

दिगीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागमः।
लग्नस्थो भास्करः प्राच्यां दिशि यातुर्ललाटगः॥६२८॥
द्वादशैकादशः शुक्रोऽप्याग्नेय्यां तु ललाटगः।
दशमस्थः कुजो लग्नाद्याम्यां यातुर्ललाटगः॥६२९॥
नवमाष्टमगो राहुर्नैर्ऋत्यां तु ललाटगः।
लग्नात्सप्तमगः सौरिः प्रतीच्यां तु ललाटगः। ६३०॥
षष्ठः पञ्चमगश्चन्द्रो वायव्यां च ललाटगः।
चतुर्थस्थानगः सौम्यश्चोत्तरस्यां ललाटगः॥६३१॥
द्वित्रिस्थानगतो जीव ईशान्यां वै ललाटगः।
ललाटं तु परित्यज्य जीवितेच्छुर्व्रजेन्नरः॥६३२॥

अब लालाटिक योग कहते हैं—यात्रा की दिशा का स्वामी यदि सम्मुख हो, तब, यात्री वापस नहीं आता।

पूर्व दिशा जाने वाले यात्री के लग्न में सूर्य स्थित हो, तब वह ललाटगत है।

शुक्र लग्न स्थान से यदि एकादशस्थ किंवा द्वादशस्थ हो, तब अग्निकोण की यात्रा ललाटगत हैं।

मंगल दशमस्थ हो, तब दक्षिणा यात्रा ललाटगत है।

राहु अष्टम किंवा नवमस्थ हो, तब नैर्ऋतकोणयात्रा ललाटगत है।

शनि सप्तमस्थ हो, तब पश्चिमयात्रा ललाटगत है।

चन्द्र पंचम, षष्ठ हो, तब वायुकोणयात्रा ललाटगत है।

बुध चतुर्थस्थ हो, तब उत्तर यात्रा ललाटगत है।

गुरु द्वितीयस्थ किंवा तृतीयस्थ हो, तब ईशानकोण यात्रा ललाटगत है।

जो जीवन चाहता है, वह ललाटगत स्थिति के अतिरिक्त यात्रा करे।।६२८-६३२।।

विलोमगो ग्रहो यस्य यात्रालग्नोपगो यदि।
तस्य भङ्गप्रदो राज्ञस्तद्वर्गोऽपि विलग्नगः।।६३३।।
रवीन्द्वयनयोर्यातमनुकूलं शुभप्रदम्।
तदभावे दिवारात्रौ या यायाद्यातुर्वधोऽन्यथा।।६३४।।

यदि लग्न में वक्रगति वाले ग्रह हो किंवा तत्सम्बन्धित षड्वर्ग हो, तब उस समय यात्रा करने वाला राजा भी पराजित होता है।

सूर्य-चन्द्र जिस अयन में हो—उसी दिशा में यात्रा शुभ होगी। सूर्य, चन्द्र भिन्न अयनस्थ हों, तब जिस अयन में सूर्य स्थित हो, उसमें दिवायात्रा करे। चन्द्रस्थ अयन में रात्रि यात्रा करे। यह शुभ होगा। इसमें व्यतिक्रम होने से यात्री की पराजय होगी।।६३३-६३४।।

मूढे शुक्रे कार्यहानिः प्रतिशुक्रे पराजयः।
प्रतिशुक्रकृतं दोषां हन्तुं शक्ता ग्रहा न हि।।६३५।।
वासिष्ठकाश्यपेयात्रिभारद्वाजाः सगौतमाः।
एतेषां पञ्चगोत्राणां प्रतिशुक्रो न विद्यते।।६३६।।
एकग्रामे विवाहे च दुर्भिक्षे राजविग्रहे। द्विजक्षोभे नृपक्षोभे प्रतिशुक्रो न विद्यते।।६३७।।
नीचगोऽरिगृहस्थो वा वक्रगो वा पराजितः।
यातुभङ्गप्रदः शुक्रः स्वोच्चस्थश्चेज्जयप्रदः।।६३८।।

यात्रा काल में शुक्रास्त हो, तब हानि होगी।

यात्राकाल में शुक्र सामने हों, तब पराजय होगी।

सामने वाले शुक्रदोष का कोई भी परिहार नहीं कर सकता तथापि जिनका गोत्र वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, गौतम है—उसे सम्मुखस्थ शुक्रदोष नहीं व्यापता।

तथापि कतिपय स्थिति में सम्मुखीन शुक्रदोष नहीं होता। यथा—अपने एक ग्राम में ही जाना हो, विवाह में जाना हो, दुर्भिक्ष काल में, युद्धकाल में, राजा अथवा ब्राह्मण का कोप होने पर भागना पड़े।

यदि नीचराशिस्थ शुक्र शत्रुराशि में बैठा हो किंवा वक्रगतियुक्त अथवा पराजित हो, तब यात्री भी पराजित रहेगा। यदि शुक्र मीनस्थ हो, तब विजय होगी।।६३५-६३८।।

स्वाष्टलग्नेष्टराशौ वा शत्रुभात्त्वष्टमेपि वा।
तेषामीशस्थराशौ वा यातुर्मृत्युर्न संशयः।।६३९।।
जन्मेशाष्टमलग्नेशौ मिथो मित्रे व्यवस्थितौ।
जन्मराश्यष्टपक्षोत्थदोषा नश्यन्ति भावतः।।६४०।।

यदि जन्मलग्न किंवा जन्मराशि से अष्टम राशि अथवा लग्न में, शत्रु राशि से अष्टम किंवा इन सभी के स्वामी जिस राशि में बैठे हों, उस राशि किंवा लग्न में जो यात्रा करे, वह निश्चित मृत्युग्रस्त होगा, तथापि जन्म लग्न के राशीश तथा अष्टमस्थ राशि के राशीश परस्परतः मित्र हों, तब अष्टमराशिस्थ दोष का नाश हो गया रहता है।।६३९-६४०।।

क्रूरग्रहेक्षितोयुक्तो द्विःस्वभावोऽपि भङ्गदः।
याने स्थिरोदये नेष्टो भव्ययुक्तेक्षितः स्वयम्।।६४१।।

यदि द्विस्वभाव लग्न पापग्रह युक्त किंवा दृष्ट हो, तब यात्रा में पराजय होती है। यदि स्थिरराशि पापग्रहों से युक्त नहीं रहती, तब भी वह यात्राकाल अशुभ माना जाता है। स्थिर लग्न में जब शुभग्रह योग हो किंवा शुभग्रह दृष्टि हो, तब शुभफल रहेगा।।६४१।।

वस्वन्त्यार्द्धादिपं च सङ्ग्रहं तृणकाष्ठयोः।
याम्यदिग्गमनं शय्या न कुर्याद्गेहगोपनम्।।६४२।।
जन्मोदये जन्मभे वा तयोरीशस्य भेऽपि वा।
ताभ्यां तयोरिकेन्द्रेषु यातु शत्रुक्षयो भवेत्।।६४३।।

धनिष्ठा के उत्तरार्ध से लेकर रेवती पर्यन्त पंच नक्षत्र में तृण-काष्ठ संग्रह, दक्षिण यात्रा, शय्या आदि निर्माण, घर की छत का निर्माण न करे। जो यात्रा लग्न है यदि उसमें जातक के जन्मलग्न तथा जन्मराशि का अधिपति स्थित रहे किंवा उसकी (यात्रा लग्न की) राशि जातक के जन्मलग्न किंवा जन्मराशि से तृतीय, षष्ठ, एकादश, किंवा दशम हो, तब यह शत्रु संहारक योग है।।६४२-६४३।।

शीर्षोदये लग्नगते द्विग्लग्ने लग्नगेऽपि वा।
शुभवर्गोऽथ वा लग्ने यातु शत्रुक्षयस्तदा।।६४४।।
शत्रुजन्मोदये जन्मराशेर्वा निधनोदये। तयोरीशस्थिते राशौ यातुः शत्रुक्षयो भवेत्।।६४५।।

जब मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ तथा यात्रा दिशा (दिग्द्वार) की राशि लग्नस्थ हो, किंवा किसी का लग्न में शुभग्रह के वर्ग स्थित हों, तब वह यात्रा राजा हेतु शत्रु नाशक है।

यात्रा लग्न में शत्रु के जन्मलग्न, जन्मराशि से अष्टम राशि हो अथवा इन दोनों के अधिपति जिस राशि में हों वही यात्रालग्न की राशि हो, तब यह शत्रुनाशक योग है।।६४४-६४५।।

वक्रः पन्था मीनलग्ने यातुमीनांशकेऽपि वा।
निन्द्यो निखिलयात्रासु घटलग्नो घटांशकः॥६४६॥
जललग्नो जलांशो वा जलयोनेः शुभावहः।
मूर्तिः कोशो धन्विनश्च वाहनं मन्त्रसंज्ञकम्॥६४७॥
शत्रुमार्गस्तथायुश्च मनोव्यापारसंज्ञिकम्।
प्राप्तिरप्राप्तिरुदयाद्भावाः स्युर्द्वादशैव ते॥६४८॥

मीनलग्न में यात्रा से मार्ग वक्र हो जाता है (अर्थात् बहुत भटकना होगा) लग्नगत मीन राशि की नवमांश यात्रा का भी वही फल है। इसी तरह कुंभ लग्न (यात्रा लग्न) तथा लग्न गत कुंभ के नवमांश में भी यात्रा करना निन्दनीय है।

जब कर्क-मीन राशि हो, किंवा इन दोनों का नवमांश हो, तब नौकायात्रा शुभप्रद होगी। अब लग्न भाव कहते हैं—

जन्मपत्री के भाव	—	अन्य नाम
लग्न	—	मूर्त्ति (अर्थात् शरीर) तन
द्वितीय भाव	—	कोष, धन
तृतीय भाव	—	धन्वी, पराक्रम
चतुर्थ भाव	—	वाहन, माता, सवारी
पंचम भाव	—	मन्त्र, विद्या, सन्तान
षष्ठ भाव	—	शत्रु, रोग, मामा
सप्तम भाव	—	मार्ग, यात्रा, पति-पत्नी
अष्टम भाव	—	आय, मृत्यु
नवम भाव	—	अन्तःकरण, मन, भाग्य
दशम भाव	—	व्यवसाय, पिता
एकादश भाव	—	प्राप्ति लाभ
द्वादश भाव	—	अप्राप्ति व्यय।।६४६-६४८।।

घ्नन्ति क्रूरास्त्र्याप्तिवर्गं भवान्सूर्यमहीसुतौ।
न निघ्नतो हि व्यापारं सौम्याः पुष्णन्त्यरिं विना॥६४९॥
शुक्रोऽस्तं च न पुष्णाति मूर्तिं मृत्युं च चन्द्रमाः।
याम्यदिग्गमनं त्यक्त्वा सर्वकाष्ठासु यायिनाम्॥६५०॥
अभिजित्क्षणयोगोऽयमभीष्टफलसिद्धिदः। पञ्चाङ्गशुद्धिरहिते दिवसेऽपि फलप्रदः॥६५१॥

शनि, रवि, मंगल, राहु, केतु—केवल तृतीय में तथा एकादश में उत्तम होते हैं। ये शेष सभी भाव को नष्ट कर देते हैं। ये तृतीय तथा एकादश में जाने पर इन दोनों भाव को पुष्टि प्रदान करते हैं, तथापि रवि-

मंगल दशम भाव को नष्ट नहीं करते। यदि रवि-मंगल दशमस्थ हों, तब व्यापार, पिता, राज्य एवं कर्म को पुष्ट करते हैं। चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र जिस भाव में रहे, उसे पुष्ट करते हैं। ये चारों षष्ठ में रहने पर उस भाव को नष्ट करते हैं अर्थात् शत्रु तथा रोग नाश करते हैं। शुक्र सप्तम भाव की पुष्टि नहीं करते। चन्द्रमा लग्न तथा अष्टम भाव को नष्ट कर देते हैं।

अभिजित् काल मध्याह्न १२ बजे से एक घटी पहले से १ घटी आगे तक अभीष्ट फलप्रद होता है। केवल इसमें दक्षिण यात्रा न करे। अन्य सभी दिशा में यात्रा करे। भले ही अभिजित् मुहूर्त में तिथि-वार आदि पंचांग अशुभ हो तथापि यात्रा शुभफलप्रद रहेगी।।६४९-६५१।।

यात्रायोगा विचित्रास्तान्योगान्वक्ष्ये यतस्ततः।
फलसिद्धिर्योगलग्नाद्राज्ञां विप्रस्य धिष्ण्यतः॥६५२॥
मुहूर्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च।
केन्द्रत्रिकोणे ह्येकेन योगः शुक्रज्ञसूरिणाम्॥६५३॥
अधियोगो भवेद्द्वाभ्यां त्रिभिर्योगाधियोगकः।
योगेऽपि यायिनां क्षेममधियोगे जयो भवेत्॥६५४॥

अब **यात्रायोग** कहते हैं। ये यात्रायोग लग्न एवं ग्रह की गति आदि के अनुसार नाना प्रकार के होते हैं। राजागण इन **योग बल** से ही वांछित प्राप्त करते हैं। अतः ये योग वर्णित हैं। ब्राह्मणगण को **नक्षत्र बल** से अभीष्ट लाभ होता है। अन्य लोगों को **मुहूर्त्त बल** से वांछितार्थ लाभ होता है, लेकिन तस्कर (चोर, डाकू आदि) **शकुन बल** से इष्टसिद्धि करते हैं। विद्वानों का कथन है कि यदि शुक्र, बुध, बृहस्पति किंवा इनमें से एक भी केन्द्रस्थ अथवा त्रिकोणस्थ हो, तब वह **योग** है। यदि दो ग्रह केन्द्र किंवा त्रिकोण में हों, तब **अधियोग** होगा। यदि तीनों लग्न से केन्द्रस्थ (लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम) किंवा त्रिकोण में हों, तब **योगाधियोग** होगा। जो यात्री योग में यात्रार्थ जाता है, वह कल्याण लाभ करेगा। अधियोग में जाने वाला यात्री विजयलाभ करेगा।।६५२-६५४।।

योगाधियोगे क्षेमं च विजयार्थविभूतयः। व्यापारशत्रुमूर्तिस्थैश्चन्द्रमन्ददिवाकरैः॥६५५॥
रणे गतस्य भूपस्य जयलक्ष्मीः प्रमाणिका। शुक्रार्कज्ञार्किभौमेषु लग्नाध्वस्तात्रिशत्रुषु॥६५६॥
गतस्याग्रे वैरिचमूर्वह्नौ लाक्षेव लीयते। लग्नस्थे त्रिदशाचार्ये धनायस्थैः परग्रहैः॥६५७॥

जो व्यक्ति योगाधियोग में यात्रा प्रारंभ करते हैं, वे कल्याण, विजय तथा विभूति (ऐश्वर्य) लाभ करते हैं। लग्न से दशमस्थ चन्द्र, षष्ठस्थ शनि तथा लग्नस्थ सूर्य की स्थिति में यात्रा तत्पर राजा विजय तथा शत्रु सम्पदा हस्तगत कर लेता है। यदि शुक्र लग्न में, रवि चतुर्थ में,बुध सप्तम में, शनि तृतीय में, मंगल षष्ठ में हो, तब राजा के सामने आये शत्रु वैसे ही नष्ट होते हैं, जिस प्रकार से आग में छोड़ी गयी लाख नष्ट हो जाती है। यदि लग्न में गुरु हो, अन्य ग्रह द्वितीय तथा एकादश में हों।।६५५-६५७।।

गतस्य राज्ञोऽरिसेना नीयते यममन्दिरम्।
लग्ने शुक्रे रवौ लाभे चन्द्रे बन्धुस्थिते यदा॥६५८॥

गतो नृपो रिपून्हन्ति केसरीवेभसंहतिम्।
स्वोच्चसंस्थे सिते लग्ने स्वोच्चे चन्द्रे च लाभगे॥६५९॥
हन्ति यातोऽरिष्टतनां केशवः पूतनामिव।
त्रिकोणे केन्द्रगाः सौम्याः क्रूरास्त्र्यायारिगा यदि॥६६०॥

तब इस योग में युद्ध यात्रार्थ निकले राजा के समस्त शत्रु सैन्य यमलोक चले जाते हैं। यदि लग्न में शुक्र हो, सूर्य एकादश में, चतुर्थस्थ चन्द्र हों, तब इस काल में यात्रा पर निकला राजा अपने शत्रुगण को उसी प्रकार नष्ट करता है, जैसे हस्तियूथ को सिंह नष्ट करता है। यदि शुक्र लग्नस्थ होकर वहीं मीन राशि में हो अथवा वृषस्थ चन्द्र एकादशस्थ हो, तब उस काल में यात्रार्थ राजा शत्रु सैन्य को उसी प्रकार नष्ट करता है, जैसे श्रीकृष्ण ने पूतना नाश किया था। यदि यात्रा के समय शुभग्रह त्रिकोणस्थ, केन्द्रस्थ हों, पापग्रह तृतीय, षष्ठ किंवा एकादशस्थ हों।।६५८-६६०।।

यस्य यातेरलक्ष्मीस्तमुपैतीवाभिसारिका।
जीवार्कचन्द्रा लग्नारिरन्ध्रगा यदि गच्छतः॥६६१॥
तस्याग्रे खलमैत्रीव न स्थिरा रिपुवाहिनी।
त्रिखण्डायेषु मन्दारौ बलवन्तः शुभा यदि॥६६२॥
यात्रायां नृपतस्तस्य हस्तस्था शत्रुमेदिनी।
स्वोच्चस्थे लग्नगे जीवे चन्द्रे लाभगते यदि॥६६३॥
गतो राजा रिपून्हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा।
मस्तकोदयगे शुक्र लग्नस्थे लाभगे गुरौ॥६६४॥
गतो राजा रिपून्हन्ति कुमारस्तारकं यथा।
जीवे लग्नगते शुक्रे केन्द्रे वापि त्रिकोणगे॥६६५॥

तब उस काल में यात्रार्थ निकले राजा के पास शत्रु की लक्ष्मी अभिसारिकावत् पहुंच जाती हैं। यदि यात्राकाल में गुरु लग्नस्थ, रवि षष्ठस्थ तथा चन्द्र अष्टमस्थ हो, तब राजा के सम्मुख शत्रुसेना उसी प्रकार नहीं रुकती जैसे दुर्जनों की मैत्री अधिक नहीं रुक पाती। यदि यात्राकाल में लग्न से तृतीय, षष्ठ, एकादशस्थ पापग्रह हों तथा बली शुभग्रह स्वोच्च स्थानस्थ हो, तब यात्रारत राजा शत्रु की भूमि प्राप्त करता है। यदि कर्कस्थ बृहस्पति लग्नस्थ हो, चन्द्रमा एकादशस्थ हो, तब जिस प्रकार त्रिपुर का संहार शंकर ने किया था, उसी प्रकार से वह राजा शत्रुनाश कर देता है। मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुंभ राशिस्थ शुक्र लग्नस्थ हो तथा गुरु एकादशस्थ हो, तब यात्री अपने शत्रु का नाश वैसे ही कहता है, जैसे कार्त्तिकेय ने तारक का वध किया था। यदि बृहस्पति लग्न में हो, शुक्र केन्द्र किंवा त्रिकोण में बैठा हो।।६६१-६६५।।

गतो दहत्यरीन्राजा कृष्णवर्त्मा यथा वनम्।
लग्नगे ज्ञे शुभे केन्द्रे धिष्ण्ये चोषकुले गतः॥६६६॥

नृपाः शुष्यन्त्यरीन् ग्रीष्मे ह्रदिनीं वार्करश्मयः।
शुभे त्रिकोणे केन्द्रस्थे लाभे चन्द्रेऽथवा रवौ॥६६७॥
शत्रून्हन्ति गतो राजा ह्यन्धकारं यथा रविः। स्वक्षेत्रगे शुभे केन्द्रे त्रिकोणायगते गतः॥६६८॥

तब वह यात्रा हेतु उद्यत राजा उस लग्न में यात्रा करने पर अपने शत्रुसमूह को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे वन को दावाग्नि नष्ट कर देता है। यदि बुध लग्नस्थ हो, अन्य शुभग्रह केन्द्रस्थ हों, नक्षत्र भी सहायक हो, तब उस मुहूर्त में यात्रा करके राजा शत्रुगण को उसी प्रकार शुष्क करता है, जैसे सूर्य रश्मियां सामान्य छोटी नदियों को शुष्क करती हैं। केन्द्रस्थ किंवा त्रिकोणस्थ शुभ ग्रह की स्थिति में अथवा सूर्य अथवा चन्द्र के एकादशस्थ होने पर उस मुहूर्त में यात्री नरेश यात्रा करे। वह शत्रु समूह को वैसे ही नष्ट करेगा जैसे सूर्य घनान्धकार का नाश कर देता है। यदि शुभग्रह स्वक्षेत्रस्थ (स्वराशीस्थ) होकर केन्द्रस्थ, त्रिकोणस्थ किंवा एकादशस्थ हों।।६६६-६६८।।

विनाशयत्यरीन्राजा तूलराशिमिवानलः। इन्दौ स्वस्थे गुरौ केन्द्रे मन्त्रः सप्रणवो गतः॥६६९॥
नृपो हन्ति रिपून्सर्वान्पापान्पञ्चाक्षरो यथा। वर्गोत्तमगते शुक्रेऽप्येकस्मिन्नेव लग्नगे॥६७०॥
हरिस्मृतिर्यथाघौघान्हन्ति शत्रून् गतो नृपः।
शुभे केन्द्रे त्रिकोणस्थे चन्द्रे वर्गोत्तमे गतः॥६७१॥
सगोत्रारीन्नृपान् हन्ति तथा गोत्रांश्च गोत्रभित्।
मित्रभेऽथ गुरौ केन्द्रे त्रिकोणस्थेऽथ वा सिते॥६७२॥

तब उस लग्न में यात्रा पर निकला राजा शत्रु को वैसे ही भस्मीभूत कर देता है, जैसे अग्नि द्वारा रुई तत्काल भस्म हो जाती है। जब दशमस्थ चन्द्र हो तथा बृहस्पति केन्द्रस्थ हो, उस काल में यात्रा करने वाला नृपति समस्त शत्रु समूह का नाश उसी प्रकार करता है, जैसे प्रणवयुक्त नमः शिवाय का जप पापों का नाश कर देता है। यदि वर्गोत्तम नवमांशयुक्त एकाकी शुक्र लग्नस्थ हो, तब उस काल में यात्रा करने वाला राजा शत्रु सेना को उसी प्रकार नष्ट करता है, जैसे भगवत् स्मरण पापों का नाश करता है। यदि शुभग्रह केन्द्रस्थ किंवा त्रिकोणस्थ हो चन्द्र अपने वर्गोत्तम नवमांशस्थ हो, तब उस समय यात्रा करने वाला राजा सर्वशत्रुगण का नाश सपरिवार कर देता है, जैसे इन्द्र ने पर्वत नाश किया था। यदि गुरु अथवा शुक्र मित्रराशीस्थ होकर केन्द्र किंवा त्रिकोण में हों उस मुहूर्त में यात्रा करने वाला राजा शत्रु नाश ऐसे करता है, जैसे गरुड़ ने सर्पों का किया था।।६६९-६७२।।

शत्रून्हन्ति गतो राजा भुजङ्गान् गरुडो यथा।
शुभेकेन्द्रत्रिकोणस्थे वर्गोत्तमगते गतः॥६७३॥
विनाशयत्यरीन्राजा पापान्भागीरथी यथा।
ये नृपा यान्त्यरीञ्जेतुं तेषां योगैर्नृपाह्वयैः॥६७४॥
उपैति शान्तिं कोपाग्निः शत्रुयोषाश्रुबिन्दुभिः।
बलक्षपक्षदशमीमासीषे विजयाभिधा॥६७५॥

विजयस्तत्र यान्तॄणां सन्धिर्वा न पराजयः।
निमित्तशकुनादिभ्यः प्रधानं हि मनोदयः।।६७६।।

जहां एक ही ग्रह वर्गोत्तम नवमांशस्थ स्थिति में केन्द्रस्थ हो, तब, वह राजा शत्रुगण को उसी प्रकार क्षणों में नष्ट करता है, जैसे गंगा पापसमूह का नाश करती है। इन राजयोगों में यात्रा प्रारंभ करने वाले राजा का क्रोध तब शान्त होता है, जब शत्रु की स्त्रियां शोकतप्त होकर आंसू बहाने लगती हैं। आश्विन शुक्लादशमी ही विजयातिथि हैं। इसमें यात्रा करने वाला शत्रुजयी होता है, किंवा शत्रु उससे संधि करते हैं। वह कदापि परास्त नहीं होता। निमित्त तथा शकुन प्रभृति की अपेक्षा यात्रार्थ मनोदय ही प्रशस्त एवं बली माना गया है।।६७३-६७६।।

तस्मान्मनस्विनां यत्नात्फलहेतुर्मनोदयः। उत्सवोपनयोद्वाहप्रतिष्ठाशौचसूतके।।६७७।।
असमाप्ते न कुर्वीत यात्रां मिर्त्यो जिजीविषुः।
महिषोन्दुरयोर्युद्धे कलत्रकलहार्तवे।।६७८।।
वस्त्रादेः स्खलिते क्रोधे दुरुक्ते न व्रजेन्नृपाः।
घृतान्नं तिलपिष्टान्नं मत्स्यान्नं घृतपायसम्।।६७९।।
प्रागादिक्रमशो भुक्त्वा यातिं राजा जयत्यरीन्।
सज्जिका परमान्नं च काञ्जिकं च पयो दधि।।६८०।।

अतः मनस्वी लोगों की यत्नतः की गई कार्यसिद्धि में मनोदय ही प्रधान है। यदि परिवार में उत्सव हो, उपनयन-विवाह प्रतिष्ठा किंवा सूतक हो, तब उसे बिना पूर्ण किये यात्रा न करे। यह जीवन जीने की इच्छा वालों हेतु आवश्यक है।

अब यात्राकालीन **अपशकुन** कहा जा रहा है। यात्रा प्रारंभ करते समय यदि दो महिष आपस में लड़ें, किंवा दो मूषक लड़ें, स्त्री से कलह हो, स्त्री को मासिक धर्म हो, वस्त्रादि देह से स्खलित होने लगें, किसी के प्रति क्रोध हो, मुख से दुर्वचन कहा जाये, तब उस लग्न सम्बन्धित दिशा में राजा यात्रा न करे। यदि राजा घृताक्त अन्न खाकर उत्तर जाये किंवा तिल चूर्णयुक्त अन्न खाकर दक्षिण जाये, तब वह अवश्य शत्रुजयी होगा। रविवार को मिश्री मसाला युक्त दधि, सोमवार को खीर एवं कांजी, बुध को दूध, गुरुवार को दधि।।६७७-६८०।।

क्षीरं तिलोदनं भुक्त्वा भानुवारादिषु क्रमात्।
कुल्माषांश्च तिलान्नं च दक्षि क्षौद्रं घृतं पयः।।६८१।।
मृगमांसं च तत्सारं पायसं च खगं मृगम्।
शशमांसं च षाष्टिक्यं प्रियङ्गुकमपूपकम्।।६८२।।
चित्राण्डजफलं कूर्मश्वाविद्गोधांश्च शास्वकम्।
हविष्यं कृशरान्नं च मुद्गान्नं यवपिष्टिकम्।।६८३।।
मत्स्यान्नं च विचित्रान्नं दध्यन्नं दस्रभात्क्रमात्। भुक्त्वा राजेभाश्वरथनरैर्याति जयत्यरीन्।।६८४।।

शुक्र को दूध, शनि को तिल-भात खाकर यात्रा करे। उस राजा को विजय मिलती है।

नोट : *श्लोक ६८१ १/२ से लोकर श्लोक ६८३ १/३ तक प्रतिनक्षत्र में क्या चखकर यात्रा करे। यह अंकित है। उसका अनुवाद व्यर्थ है।*

उपरोक्त नक्षत्र के समय उस समय की विहित वस्तु चखकर राजा हाथी, अश्व, पालकी पर बैठकर यात्रा करे, तब उसे जयलाभ होगा तथा वांछितार्थ लाभ होगा।।६८१-६८४।।

हुताशनं तिलैर्हुत्वा पूजयेत् दिगीश्वरम्। प्रणम्य देवभूदेवनाशीर्वादैर्नृपो व्रजेत्।।६८५।।

यद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यैस्तन्मन्त्रेण विधानतः। इन्द्रमैरावतारूढं शच्या सह विराजितम्।।६८६।।

वज्रपाणिं स्वर्णवर्णं दिव्याभरणभूषितम्। सप्तहस्तं सप्तजिह्वं षण्मुखं मेषवाहनम्।।६८७।।

स्वाहाप्रियं रक्तवर्णं स्रुक्स्रुवायुधधारिणम्।
दण्डायुधं लोहिताक्षं यमं महिषवाहनम्।।६८८।।

श्यामलं सहितं रक्तवर्णैरूर्ध्वमुखं शुभम्। खड्गचर्मधरं नीलं निर्ऋतिं नरवाहनम्।।६८९।।

ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीर्घग्रीवायुतं विभुम्। नागपाशधरं पीतवर्णं मकरवाहनम्।।६९०।।

वरुणं कालिकानाथं रत्नाभरणभूषितम्।
प्राणिनां प्राणरूपं तं द्विबाहुं दण्डपाणिकम्।।६९१।।

वायुं कृष्णमृगारूढं पूजयेदञ्जनीपतिम्।
अश्वारूढं कुम्भपाणिं द्विबाहुं स्वर्णसन्निभम्।।६९२।।

कुबेरं चित्रलेखेशं यक्षगन्धर्वनायकम्। पिनाकिनं वृषारूढं गौरीपतिमनुत्तमम्।।६९३।।

श्वेतवर्णं चन्द्रमौलिं नागयज्ञोपवीतिनम्।
अप्रयाणे स्वयं कार्या प्रेक्षया भूभुजस्तथा।।६९४।।

ज्वलन्त अग्नि में तिल का हवन यात्रा प्रारंभ में करें। जिस दिशा में जाने का प्रयोजन हो, उस दिशा के स्वामी को पूजित करें। देवता, ब्राह्मण को प्रणाम करें। उनका आशीर्वाद लेकर राजा यात्रा करें। दिक्पालों का पूजन उनके अनुरूप वर्णयुक्त वस्त्र-गन्ध-पुष्पादि तथा उनके मन्त्र से पूजन करें। अब दिक्पालगण के स्वरूप का ध्यान कहा जाता है।

पूर्व दिशा के स्वामी—इन्द्र हैं, वे शचीयुक्त हैं तथा ऐरावत पर आसीन हैं। वज्रहस्त, दिव्याभूषण भूषित तथा स्वर्णकान्ति हैं।

अग्निकोण के स्वामी—अग्नि हैं, वे सात हाथ, सात जिह्वा तथा षड्मुख हैं। वे भेड़ पर आसीन हैं। वे रक्तवर्ण कान्ति, स्वाहा के पति, स्रुक्-स्रुवा तथा नाना आयुधधारी हैं।

दक्षिण के स्वामी—यम हैं। उनका अस्त्र है दण्ड। वे रक्तनेत्र महिषारूढ़ हैं। देह वर्ण लालिमायुक्त सांवला है। वे ऊर्ध्वमुख शुभ रूप हैं।

नैर्ऋत्य कोण के स्वामी—निर्ऋति हैं। वे नील वर्ण, नरवाहन, ढाल तलवारधारी, भयंकर नेत्र वाले, ऊर्ध्वकेश हैं। उनका गला अत्यन्त बृहद् है। वे सामर्थ्यवान् हैं।

पश्चिम दिशा के स्वामी—कालिका स्वामी वरुण हैं। ये पीली अंगकान्ति, नागपाशधारी, ग्राह पर आरूढ़ रत्नमय भूषण भूषित हैं।

वायव्य कोण के स्वामी—अंजनी पति वायुदेव हैं। ये कृष्ण मृग पर आसीन, सर्वप्राणीगण के प्राण रूप, द्विभुज, कलशधारी तथा स्वर्ण कान्ति हैं।

उत्तर दिशा के स्वामी—कुबेर हैं। चित्रलेखा के पति धन कुबेर यक्ष, गन्धर्व के राजा हैं।

ईशान कोण के स्वामी—गौरीपति शिव हैं। ये पिनाकधारी, वृषभारूढ़ सर्वश्रेष्ठ देव हैं। इनकी अंगकान्ति श्वेत हैं। मस्तक पर चन्द्रमुकुट हैं। ये सर्पयज्ञोपवीत धारी हैं।

अब प्रस्थान विधान कहते हैं—यदि राजा किसी अत्यन्त आवश्यक कारण से यात्रालग्न में स्वयं न जा सके, तब।।६८५-६९४।।

कार्यं निगमनं छत्रं ध्वजशस्त्रास्त्रवाहनैः।
स्वस्थानान्निर्गमस्थानं दण्डानां च शतद्वयम्।।६९५।।
चत्वारिंशद्द्वादशैव प्रस्थितः स स्वयं गतः।
दिनान्येकत्र न वसेत्सप्तषट् वा परो जनः।।६९६।।
पञ्चरात्रं च पुरतः पुनर्लग्नान्तरे व्रजेत्। अकालजेषु नृपतिर्विद्युद्गर्जितवृष्टिषु।।६९७।।
उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं तु न व्रजेत्।
रत्नाकुड्यशिवाकाककपोतानां गिरस्तथा।।६९८।।

वह अपना छत्र, ध्वजा, शस्त्र किंवा वाहन इनमें से कोई वस्तु यात्रालग्न में घर से निकलवाकर गन्तव्य दिशा की ओर दूरी पर रखवा दे। यह प्रस्थान वस्तु २०० दण्ड से दूरी पर रहे अथवा चालीस अथवा कम से कम बारह दण्ड दूर तो अवश्य हो। राजा यात्रार्थ निकल कर एक ही स्थान पर सात दिन न रुकें। राज्यपुरुषगण तथा जनता भी प्रस्थानोपरान्त एक स्थल पर ६ दिन से अधिक न रुके। यदि कार्यवशात् इस समय से अधिक रहना पड़े, तब अन्य मुहूर्त तथा उत्तमलग्न की गणना करके तदनुरूप यात्रा करे। यदि पौष से चैत्र के बीच आकाशीय विद्युत् चमके मेघ गर्जन तथा वर्षा हो (असमय के उत्पात) अथवा दिव्य, आन्तरिक्ष अथवा भौम उत्पात हो, तब राजा सात रात्रि तक (सात दिन-रात) तक अन्य स्थान गमन न करे।

अब **शकुन** कहते हैं। यात्रा-काल में रत्ना पक्षी, मूषक, सियार, काक-कपोत का शब्द बायीं ओर श्रुतिगोचर हो।।६९५-६९८।।

झझेभुक्हेमवक्षीरस्वराणां वामतो गतिः। पीतकारभरद्वाजपक्षिणां दक्षिणा गतिः।।६९९।।
चापं त्यक्त्वा चतुष्पात्तु शुभदा वामतो मताः।
कृष्णं त्यक्त्वा प्रयाणे तु कृकलासेन वीक्षितः।।७००।।
वाराहशशगोधास्तु सर्पाणां कीर्तनं शुभम्। हतेक्षणं नेष्टमेवव्यत्ययं कपित्रृक्षयोः।।७०१।।
मयूरच्छागनकुलचापपारावताः शुभाः। दृष्टमात्रेण यात्रायां व्यस्तं सर्वं प्रवेशने।।७०२।।
यात्रासिद्धिर्भवेद्दृष्टे शवेरोदनवर्जिते। प्रवेशे रोदनयुतः शवः शवप्रदस्तथा।।७०३।।

तब वह शुभ है। छछुन्दर, उलूक, पल्ली, गर्दभ यात्राकाल में बायें हों, तब उत्तम है। कोयल, शुक, भारद्वाज पक्षी दाहिने हों, तब शुभ है। कृष्णवर्ण के जो चतुष्पद पशु न हों अन्य वर्ण वाले हों, वे वामस्थ परिलक्षित होने पर उत्तम हैं। यात्राकाल में गिरगिट दर्शन अशुभत्व युक्त है। यात्राकाल में मयूर, बकरा, नकुल, नीलकण्ठ, कपोत का दर्शन शुभ है, तथापि वापस लौटने पर किंवा नगर में प्रवेश करते समय (लौटकर) गृह में वापस प्रवेश करते समय इनका दीखना अशुभ है। वराह, शशक, गोधा सर्प दर्शन शुभ है। यदि यात्राकाल में रोदनरहित लोगों के साथ शव परिलक्षित हो, तब यात्रा का उद्देश्य सफल होगा, तथापि गृह वापस आते समय अथवा नवगृह प्रवेश काल में रोदन शब्द के साथ शव दीखे, तब वह अशुभ-घातक है।।६९९-७०३।।

पतितक्लीबजटिलमत्तवान्तौषधादिभिः। अभ्यक्तवसास्थिचर्माङ्गारदारुणरोगिभिः।।७०४।।
गुडाकार्पासलवणरिपुप्रश्नतृणोरगैः। वन्ध्याकुजककाषायमुक्तकेशबुभुक्षितैः।।७०५।।
प्रायाणसमये नग्नैर्दृष्टैः सिद्धिर्न जायते। प्रज्वलाग्नीन्सुतुरगनृपासनपुराङ्गनाः।।७०६।।

यात्रा प्रारंभ काल में पतित, नपुंसक, जटाधारी, पागल, औषधि खाकर जिसने वमन किया, देह में तेल लगाते व्यक्ति, वसा-अस्थि-चर्म, कोयला, दीर्घरोगी, गुड़, कपास, गुड़, नमक, तृण, प्रश्न, गिरगिट, वन्ध्यानारी, कुब्ज, गेरुआ वस्त्रधारी, मुक्तकेश, भूखा नग्न समाने पड़ें, तब कार्य सिद्ध नहीं होगा।

अब **शुभशकुन** कहते हैं। प्रज्वलन्त अग्नि, सुन्दर अश्व, राजसिंहासन, सुन्दरी नारी, तथा।।७०४-७०६।।

गन्धपुष्पाक्षतच्छत्रचामरान्दोलिकं नृपः। भक्ष्येक्षुफलमृत्स्नान्नमध्वाज्यदधिगोमयाः।।७०७।।
मद्यमांससुधाधौतवस्त्रशङ्खवृषध्वजाः। पुण्यस्त्रीपुण्यकलशरत्नभृङ्गारगोद्विजाः।।७०८।।
भेरीमृदङ्गपटहघण्टावीणादिनिःस्वनाः। वेदमङ्गलधोषाः स्युः यायिनां कार्यसिद्धिदाः।।७०९।।

गन्ध, पुष्प, फल, अक्षत, छत्र, चामर, पालकी, खाद्यवस्तु, ईंख, फल, चिकनी मृत्तिका, अन्न, मधु, दधि, गोबर, मद्य, मांस, धुले वस्त्र, चूना, शंख, श्वेतवृष, ध्वजा, सौभाग्यवान् नारी, जलपूर्ण कलस, रत्न, शृंगार, स्वर्णपात्र, अभिषेक पात्र, गौ, ब्राह्मण, भेरी, मृदंग, पटह, घण्टा, वीणा इन वाद्यों का शब्द, वेदमंत्र, मंगलगीत, यात्रा के समय परिलक्षित तथा श्रुतिगोचर हो, तब सर्वकार्य सिद्ध होता है।।७०७-७०९।।

आदौ विरुद्धशकुनं दृष्ट्वा यायीष्टदेवताम्।
स्मृत्वा द्वितीये विप्राणां कृत्वा पूजां निवर्तयेत्।।७१०।।
सर्वदिक्षुक्षुतं नेष्टं गोक्षुतं निधनप्रदम्। अफलं यद्बालवृद्धरोगिपैनसिकैः कृतम्।।७११।।
परस्त्री द्विजदेवस्वं तत्स्पृशेद्दिग्गजाश्वकान्।
हन्यात्परपुरप्राप्तो न स्त्रीर्नित्यं निरायुधान्।।७१२।।

यात्रा काल में प्रथम अपशकुन होने पर खड़े होकर इष्ट देवता का स्मरण करके तब चले। द्वितीय अपशकुन हो, तब ब्राह्मण पूजन करके चले। तृतीय अपशकुन हो, तब यात्रा ही रोके। यात्रा के समय सभी दिक् में छींक होना अशुभ है। गौ की छींक अनिष्टकारी होगी। बालक, वृद्ध, रोगी, कफवाले व्यक्ति की छींक निष्फल कही गयी है। परस्त्री का स्पर्श करने वाला, ब्राह्मण-देवता का धन अपहरण करने वाला, उत्सर्ग किये अश्व-

गज को पुनः अपने यहां बांधने वाला जो व्यक्ति हो, उसे तथा शत्रु को राजा अवश्य निरहत करे तथापि शस्त्रहीन व्यक्ति तथा स्त्रियां पर कदापि आक्रमण न करे।।७१०-७१२।।

आदौ सौम्यायने कार्यं नववास्तुप्रवेशनम्।
विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजाबलिक्रियाम्।।७१३।।

प्रथम बार नूतनगृह में प्रवेश उत्तरायण के शुभ समय पर करें। प्रथम दिन सविधि वास्तु पूजा, बलि प्रदान करें, तब गृह में जाये।।७१३।।

माघफाल्गुनवैशाखज्येठमासेषु शोभनम्।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः।।७१४।।
शशीज्यान्तेषु वरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु। शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः।।७१५।।
व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रदः।।७१६।।
चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्ने शोभने दिने। स्थिरलग्ने स्थिरांशे च नैधने शुद्धिसंयुते।।७१७।।
त्रिकोणकेन्द्रसंस्थैश्च सौम्यैस्त्र्यायारिगैः परैः। लग्नान्त्याष्टमषष्ठवर्जितेन हिमांशुना।।७१८।।
कर्तुर्वा जन्मभे लग्ने ताभ्यामुपचयेऽपि वा।
प्रवेशलग्ने स्याद्वृद्धिरन्यभे शोकनिःस्वता।।७१९।।

अब **गृहप्रवेशार्थ उत्तम मास नक्षत्रादि** कहते हैं—माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ में गृह प्रवेश उत्तम होता है। कार्त्तिक-मार्शशीर्ष में मध्यम होता है।

मृगशिरा, पुष्य, रेवती, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, उत्तरात्रय, रोहिणी नक्षत्रकाल में जब बृहस्पति तथा शुक्रोदय हो तथा रवि-मंगल को छोड़कर बाकी सोम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के दिन चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या को छोड़कर बाकी तिथि के समय दिवा किंवा रात्रि में गृह प्रवेश उत्तम है। उपद्रव रहित चन्द्र बलान्वित तथा ताराबलान्वित दिन के पूर्वाह्न में स्थिर राशि के नवमांश वाले स्थिर लग्न में जब अष्टम भाव ग्रहहीन हो, शुभग्रह त्रिकोणस्थ हों किंवा केन्द्रस्थ हों, पापग्रह षष्ठ, तृतीय, एकादशस्थ हो, चन्द्र भी द्वादश, अष्टम, षष्ठ को छोड़कर अन्य भावस्थ हो, तब गृहप्रवेश करने वाले जातक की जन्मराशि, जन्मलग्न अथवा इनसे तृतीयस्थ, षष्ठस्थ, दशमस्थ एकादशस्थ राशि जब गृह प्रवेश लग्न में हो, तब गृह प्रवेश से सर्वसुख तथा सम्पदा वृद्धि होगी। एतद्विपरीत काल में गृह प्रवेश करने पर शोक तथा निर्धनता होगी।।७१४-७१९।।

दर्शनीयं गृहं रम्यं विविधैर्मङ्गलस्वनैः।
कृत्वार्कं वामतो विद्वान्भृङ्गारं चाग्रतो विशेत्।।७२०।।
वर्षाप्रवेशे शशिनि जलराशिगतेऽपि वा।
केन्द्रगे वा शुक्लपक्षे चातिवृष्टिः शुभेक्षिते।।७२१।।
अल्पवृष्टिः पापदृष्टे प्रावृट्कालेऽचिराद्भवेत्।
चन्द्रश्चेद्भार्गवे सर्वमेवं विधगुणान्विते।।७२२।।

अब **वर्षा निर्णय** कहते हैं—यदि आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश काल में शुक्लपक्ष पड़े, चन्द्र जलचर राशि में, लग्न में, किंवा केन्द्रस्थ हों तथा शुभग्रह दृष्ट हों, तब प्रभूत वर्षा होगी। यदि उस समय उपरोक्त स्थानस्थ चन्द्र पापग्रह दृष्ट हों, तब दीर्घकाल में भी अल्प वर्षा होगी। जो चन्द्र फल है, वही शुक्रफल होगा। तात्पर्य यह है कि जब सूर्य आर्द्रा में प्रवेश करे, तब चन्द्र-शुक्र दोनों का विचार करके तब वर्षा का निर्णय हो।।७२०-७२२।।

प्रावृषीन्दुः सितात्सप्तराशिगः शुभवीक्षितः।
मन्दात्त्रिकोणसप्तस्थो यदि वा वृद्धिकृद्भवेत्।।७२३।।
सद्यो वृष्टिकरः शुक्रो यदा बुद्धसमीपगः।
तयोर्मध्यगते भानौ भवेद्वृष्टिविनाशनम्।।७२४।।

वर्षाकाल में आर्द्रा से स्वाती पर्यन्त सूर्य के इनमें रहने पर चन्द्र यदि शुक्र से सप्तमस्थ हो किंवा शनि से पंचम हो, नवम किंवा सप्तम हो, वह शुभग्रह दृष्ट हो, तब अवश्य उस समय वर्षा होगी। यदि बुध शुक्र की युति हो, तब तत्काल वर्षा कहें तथापि इन दोनों के मध्य सूर्य हो, तब सूखा रहेगा।।७२३-७२४।।

मघादिपञ्चधिष्ण्यस्थःपूर्वे स्वातित्रये परे। प्रवर्षणं भृगुः कुर्याद्विपरीते न वर्षणम्।।७२५।।
पुरतः पृष्ठतो भानोर्ग्रहा यदि समीपगाः। तदावृष्टिं प्रकुर्वन्ति न ते चेत्प्रतिलोमगाः।।७२६।।

यदि मघा से लेकर पांच नक्षत्र पर्यन्त किसी भी नक्षत्र में शुक्र पूर्वोदित हो, तथा स्वाती, विशाखा, अनुराधा में शुक्र पश्चिमोदित हो, तब वर्षा होकर रहेगी अन्यथा वर्षा नहीं होगी। यदि सूर्य के निकट कोई ग्रह आगे-पीछे हों, तब वे यदि वक्र नहीं हैं, वर्षा होना अवश्यम्भावी है।।७२५-७२६।।

वामभागस्थितः शुक्रो वृष्टिकृच्चेत्तु याम्यगः।
उदयास्तेषु वृष्टिः स्याद्भानोरार्द्राप्रवेशने।।७२७।।
सन्ध्ययोः सस्यवृद्धिः स्यात्सर्वसम्पन्नृणान्निशि।
स्तोकवृष्टिरनर्घः स्यादवृष्टिः सस्यसम्पदः।।७२८।।
आर्द्रोदयेग्रभिन्ना चेद्भवेदिति न संशयः।
चन्द्रेज्ये ज्ञेथ वा शुक्रे केन्द्रेन्वीतिर्विनश्यति।।७२९।।

सूर्य से वामस्थ शुक्र वृष्टिकारक है। यदि आर्द्रा प्रवेश काल में शुक्र दक्षिणस्थ हो, तब उदय एवं अस्तकाल में वर्षा होती है। यदि सूर्य आर्द्रा में सन्ध्याकाल में प्रवेश करे, तब धान्य वृद्धि होगी। यदि यह प्रवेश रात में हो, तब जनता सर्वसम्पत्तिशाली होगी। यदि इस प्रवेश काल में चन्द्र, गुरु, बुध, शुक्र से आर्द्रा भेदित हो, तब चन्द्र भेदन से अल्पवर्षा, गुरुभेदन से धान्यनाश, बुध भेदन से अनावृष्टि, शुक्र भेदन से धान्यवृद्धि होगी। यह निःसंशय है। यदि चन्द्र, बुध, गुरु शुक्र प्रवेश लग्न से केन्द्र में हों, तब टिड्डी आदि नाना उपद्रव से फसल नष्ट होगी।।७२७-७२९।।

पूर्वाषाढां गतो भानुर्जीमूतैः परिवेष्टितः। वर्षत्यार्द्रादिमूलान्तं प्रत्यक्षं प्रत्यहं तथा।।७३०।।
वृष्टिश्चेत्पौष्णभे तस्माद्दशर्क्षेषु न वर्षति। सिंहे भिन्ने कुजो वृष्टिरभिन्ने कर्कटे तथा।।७३१।।

कन्योदये प्रभिन्ने चेत्सर्वदा वृष्टिरुत्तमा। अहिर्बुध्न्यं पूर्वशस्यं परशस्या च रेवती॥७३२॥

भरणी सर्वसस्या च सर्वनाशाय चाश्विनी।

गुरोः सप्तमराशिस्थः प्रत्यग्गो भृगुजो यदा॥७३३॥

तदातिवर्षणं भूरि प्रावृट्काले बलोज्झिते। आसप्तमर्क्षशशिनः परिवेशगतोत्तरा॥७३४॥

विद्युत्प्रपूर्णमण्डूकास्वनावृष्टिर्भवेत्तदा। यदा प्रत्यङ्नता मेघाः खसप्तोपरि संस्थिताः॥७३५॥

पतन्ति दक्षिणस्था ये भवेद्वृष्टिस्तदाचिरात्।

नखैर्लिखन्तोमार्जाराश्चावनिं लोहसंयुते॥७३६॥

सूर्य पूर्वाषाढ़ा में प्रवेश कर रहा हो तथापि आकाश मेघाच्छन्न हो, तब आर्द्रा से लगाकर मूल नक्षत्र पर्यन्त नियमित वर्षा होगी। सिंह प्रवेशकाल में जब लग्न मंगल द्वारा भेदित किया गया हो, कर्क प्रवेशकाल में भेदनरहित हो तथा कन्या प्रवेशकाल में भेदित हो, तब वृष्टि प्रभूत होगी।

उत्तर भाद्रपद=पूर्वधान्य युक्त। रेवती—परधान्ययुक्त, भरणी—सर्वधान्य है। अश्विनी—सर्वधान्यनाशक। यदि वर्षा के चार मास में पश्चिमोदित शुक्र गुरु से सप्तमस्थ होकर बलहीन रहें, तब आर्द्रा से लेकर अगले सात नक्षत्र पर्यन्त नियमित वर्षा होगी। यह अतिवृष्टि होगी। यदि चन्द्रमण्डल घेरायुक्त रहे तथा उत्तर में विद्युत् चमके, किंवा मेढ़को का शब्द श्रुतिगोचर हो, तब वर्षा होना अवश्यम्भावी है। यदि बिड़ाल पंजों से धरती खोदे, लौह पर, ताम्र पर काई जमने लगे किंवा अनेक बालक सड़क पर पुल बनाने की क्रीड़ा करें, तब वर्षा होने का चिह्न है। चीटियों की पंक्ति छिन्न-भिन्न हो जाये, आकाश में अनेक जुगनू लक्षित हों।।७३०-७३६।।

रथ्यायां सेतुबन्धाः स्युर्बालानां वृष्टिहेतवः।

पिपीलिकाश्रेणयश्छिन्नाः खद्योता बहवस्तदा॥७३७॥

द्रुमादिरोहःसर्पाणां प्रीतिर्दुवृष्टिसूचकाः।

उदयास्तमये काले विवर्णोऽर्कोथ वा शशी॥७३८॥

मधुवर्णोऽतिवायुश्चेदतिवृष्टिर्भवेत्तदा। प्राङ्मुखस्य तु कूर्मस्य नवाङ्गेषु धरामिमाम्॥७३९॥

किंवा सर्पगण वृक्ष पर चढ़ते दिखाई पड़ें, वे प्रसन्न लगें, तब यह दुर्वृष्टि सूचक चिह्न हैं। उदयास्तकालीन सूर्य, चन्द्र का रंग बदला लगे, कान्ति मधुवत् लक्षित हो, तीखी तेजवायु प्रवहमान हो, तब अतिवर्षा होकर रहेगी।

अब पृथिवी के अंगविभाग कहते हैं—कूर्म देव पूर्वमुख हैं। उनके नौ अंग में यह धरा (भारत) स्थित है।।७३८-७३९।।

विभज्य नवधा खण्डे मण्डलानि प्रदक्षिणम्।

अन्तर्वेदाश्च पाञ्चालस्तस्येदं नाभिमण्डलम्॥७४०॥

प्राच्यामागधलाटोत्था देशास्तन्मुखमण्डलम्।

स्त्रीकलिङ्गकिराताख्या देशास्तद्बाहुमण्डलम्॥७४१॥

अवन्ती द्रविडा भिल्ला देशास्तत्पार्श्वमण्डलम्।
गौडकौङ्कणशाल्वान्ध्रपौण्ड्रस्तत्पादमण्डलम् ॥७४२॥

सिन्धुकाशिमहाराष्ट्रसौराष्ट्राः पुच्छमण्डलम्। पुलिन्दचीनयवनगुर्जराः पादमण्डलम्॥७४३॥

कुरुकाश्मीरमाद्रेयमत्स्यास्तत्पार्श्वमण्डलम् ।
खसाङ्गवङ्गवाह्लीकं काम्बोजाः पाणिमण्डलम्॥७४४॥

इसके नौ विभाग में प्रत्येक खण्ड में प्रदक्षिण क्रमेण विभिन्न मण्डलों को जाने। मध्य में पांचाल है, जो कूर्म का नाभिमण्डल है। पूर्वस्थ मगध तथा लाटदेश कूर्म का मुखमण्डल है। स्त्री, कलिंग, किरात, भुजा है। अवन्ती, द्राविड़, भिल्ल देश दक्षिण पार्श है। गौड़, कोंकण, शाल्व, आन्ध्र, पौड्र इनके आगे के पदद्वय हैं। सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र पुच्छ मण्डल है। पुलिन्द, चीन, यवन, गुर्जर देश दोनों पिछले पदद्वय हैं। कुरु, काश्मीर, मद्र, मत्स्यदेश वाम पार्श्व कहा गया। नेपाल (खसदेश), अंग, बंग, वाह्लीक, काम्बोज पाणिमण्डल है।।७४०-७४४।।

कृत्तिकादीनि धिष्ण्यानि त्रीणि त्रीणि क्रमान्न्यसेत्।
नाभ्यादिषु नवाङ्गेषु पापैर्दुष्टं शुभैः शुभम्॥७४५॥
देवता यत्र नृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति च।
मुहू रुदन्ति गायन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च॥७४६॥
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम्।
अधोमुखाधितिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति च॥७४७॥

एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमासु च। गन्धर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम्॥७४८॥

महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम्। गान्धर्व देहदिग्धूमं भूमिकम्पं दिवा निशि॥७४९॥

अनग्नौ च स्फुलिङ्गाश्चज्वलनं च विनेन्धनम्।
निशीन्द्रचापमण्डूकं शिखरे श्वेतवायसः॥७५०॥
दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः।
जन्तवो द्वित्रिशिरसो जायन्ते वापि योनिषु॥७५१॥

प्रातः सूर्याश्चतसृषु ह्यार्दितायुगपद्रवेः। जम्बूकग्रामसंवासः केतूनां च प्रदर्शनम्॥७५२॥

इन नौ खण्ड (अंग में) कृत्तिका प्रभृति तीन-तीन नक्षत्र का न्यास करे। जिस अंग जब तक के नक्षत्र में पापग्रह हों, उस अंग के देश में उस समय तक अशुभ फल होगा। जिस अंग के नक्षत्र में शुभग्रह रहते हैं, उस अंग के देश में शुभफल होगा।

अब **मूर्तियों में होने वाले विकार के लक्षण** कहते हैं। देव प्रतिमा बारम्बार पतित हो, दग्ध हो, बारम्बार रुदन करे, गायन करे, स्वेदपूर्ण हो जाये, हास्य करे, धूम्र, तैल, शोणित, दुग्ध किंवा जल वमन करे, उल्टी हो जाये, स्थान परिवर्त्तन करे, ऐसी विचित्रता परिलक्षित हो, तब प्रतिमा विकार है। ये सभी अशुभत्व सूचना देने वाले लक्षण हैं।

अब अन्य विकार कहते हैं। नगर (ग्राम के समान आकार), दिन में तारा दर्शन, उल्कापतन, काष्ठ, तृण, शोणित वर्षा, दिग्धूम, दिन अथवा रात में भूकम्प, बिना आग चिनगारी छिटकना, बिना काष्ठ के आग जले, रात में इन्द्रधनुष प्रभृति का घेरा लक्षित होना, पर्वत एवं वृक्षादि पर उज्वल काक दीखना, आदि उपद्रव लक्षित हों, गौ, हस्ति, अश्व आदि को द्विमस्तक किंवा त्रिमस्तक बच्चे उत्पन्न हों, प्रातः चतुर्दिक् अरुणोदय को दृश्य हों, ग्राम में सियार दिन में बोलते दिखें, धूमकेतु परिलक्षित हो।।७४५-७५२।।

काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि।
अकाले पुष्पिता वृक्षा दृश्यन्ते फलिता यदि।।७५३।।
कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शान्तिर्मनीषिभिः।
एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः।।७५४।।
केचिन्मृत्युप्रदाः केचिच्छत्रुभ्यश्च भयप्रदाः।
मध्याद्भयं यशो मृत्युः क्षयः कीर्तिः सुखासुखम्।।७५५।।
ऐश्वर्यं धनहानिं च मधुच्छन्नं च वाल्मिकम्। इत्यादिषु च सर्वेषूत्पातेषु द्विजसत्तम।।७५६।।
शान्तिं कुर्यात्प्रयत्नेन कल्पोक्तविधिना शुभम्।
इत्येतत्कथितं विप्र ज्यौतिषं ते समासतः।।७५७।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि च्छन्दःशास्त्रमनुत्तमम्।।७५८।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

रात्रि में काक का, दिवाकाल में कपोत का क्रन्दन होना महाउत्पात है। अकाल में पुष्प, फलयुक्त वृक्ष होना देखते ही उस वृक्ष को तत्काल काटे। अन्य वृक्षों में भी महोत्पात लक्षित होते हैं। वे उस स्थान के नाशक हैं। एक साथ अनेक उत्पात घातक होते हैं। वे शत्रुभय प्रदायक हैं। अनेक उत्पात से देश में भय, मृत्यु, हानि, कीर्त्ति, यश, सुख, दुःख ऐश्वर्य लाभ होता है। यदि दीमक की बांकी पर मधु लक्षित हो, तब धन हानि होती है। हे द्विजप्रवर! इन सब उत्पात में यत्नतः कल्पोक्त विधि से शान्ति कराये। हे नारद! मैंने संक्षेप में ज्योतिषशास्त्र कहा। अब वेद के षडङ्ग रूप से एक उत्तम अंग छन्दःशास्त्र का वर्णन करता हूं।।७५३-७५८।।

।।५६वां अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

छन्दः शास्त्र का संक्षिप्त परिचय

सनन्दन उवाच

वैदिकं लौकिकं चापि छन्दो द्विविधमुच्यते। मात्रावर्णविभेदेन तच्चापि द्विविधं पुनः॥१॥
मयौ रसौ तजौ भनौ गुरुर्लघुरपि द्विज। कारणं छन्दसि प्रोक्ताश्छन्दःशास्त्रविशारदैः॥२॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे नारद! छन्दः द्विविध हैं। वैदिक, लौकिक। मात्रा वर्ण भेद से लौकिक तथा वैदिक छन्दः द्विविध होते हैं। वे हैं मात्रिक तथा वार्णिक छन्द। छन्द शास्त्रज्ञों ने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण तथा नगण लघु-गुरु का छन्दों की सिद्धि का कारण कहा है।।१-२।।

सर्वगो मगणः प्रोक्तोमुखलो यगणः स्मृतः। मध्यलो रगणश्चैव प्रान्त्यगः सगणो मतः॥३॥
तगणोऽन्तलघुः ख्यातो मध्यगो जो भ आदिगः।
त्रिलघुर्नगणः प्रोक्तस्त्रिका वर्णगणा मुने॥४॥

तीनों अक्षर गुरु हो, तब वह मगण है। आदि अक्षर लघु हो बाकी दो गुरु हों वह है यगण। मध्यवर्त्ती अक्षर लघु हो, वह है रगण। अन्तिम अक्षर यदि गुरु हो, तब वह सगण है। लघु चिह्न है (।) तथा गुरु चिह्न है (ऽ)। जहां अन्तिम अक्षर लघु हो तथा पहले वाले दोनों अक्षर गुरु हों वह तगण है। जहां पहले तथा अन्त वाले लघु हों मध्य का गुरु हो, वह जगण है। जिसमें आदि अक्षर गुरु हो अन्त वाले दोनों लघु हों, वह भगण है। जहां तीनों अक्षर लघु हैं, वह नगण है। अक्षरत्रय समुदय को गण कहा गया है।।३-४।।

चतुर्लास्तु गणाः पञ्च प्रोक्त आर्यादिसम्मताः। संयोगश्च विसर्गश्चानुस्वारो लघुतः परः॥५॥
लघोर्दीर्घत्वमाख्याति दीर्घो गो लो लघुर्मतः। पादश्चतुर्थभागः स्याद्विच्छन्दोयतिरुच्यते॥६॥

आर्या प्रभृति छन्दः में चतुर्मात्र पांचगण हैं। ये चार लघुगण समन्वित हैं। यदि लघु अक्षर से परे संयोग, विसर्ग, अनुस्वार हो, तब वह लघु की दीर्घता का प्रदर्शन करता है। विद्वानों के अनुसार छन्दःशास्त्र में 'ग' का गुरु (दीर्घ है) ल का अर्थ लघु है। श्लोक का १/४ भाग पद है। जो विच्छेद किंवा विराम है, वही यति है।।५-६।।

सममर्द्धसमं वृत्तं विषमं चापि नारद। तुल्यलक्षणतः पादचतुष्के सममुच्यते॥७॥

हे नारद! छन्दः (वृत्त) के भेदत्रय है समवृत्त, अर्थ समवृत्त तथा विषमवृत्त। जिनके चारों चरण में सम लक्षण हो, वह समवृत्त है। जहां प्रथम एवं तृतीय चरण में तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में सम लक्षण हों वह अर्धसम है।।७।।

आदित्रिके द्विचतुर्थे सममर्द्धसमं ततम्। लक्ष्म भिन्नं यस्य पादचतुष्के विषमं हि तत्॥८॥
एकाक्षरात्समारभ्य वर्णैकैकस्य वृद्धितः।
षड्विंशत्यक्षरं यावत्पादस्तावत्पृथक् पृथक्॥९॥

तत्परं चण्डवृष्ट्यादिदण्डकाः परिकल्पिताः।
त्रिभिः षड्भिः पदैर्गाथाः शृणु संज्ञा यथोत्तरम्॥१०॥

जहां प्रथम एवं तृतीय चरण में तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में सम लक्षण हों, वह अर्धसम वृत्त कहा गया है। जिसके चारों चरण में परस्परतः भिन्न लक्षण लगे। वही विषमवृत्त कहलाता है। जब एक अक्षर के पाद से प्रारंभ करके क्रमशः एक-एक अक्षर वृद्धि करते, २६ अक्षरयुक्त पाद बने तब पृथक्तः छन्दः बनते हैं। जब २६ अक्षर से अधिक का चरण हो, तब चण्डविष्टिप्रपात दण्डक निर्मित हो जाता है। जब तीन या ६ पाद हों, तब गाथा बनती है। अब पाद छन्द का वर्णन सुनिये।।८-१०।।

उक्तात्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठान्या सुपूर्विका।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च॥११॥
त्रिष्टुप्च जगती चैव तथातिजगती मता।
शक्वरी सातिपूर्वा च अष्ट्यत्यष्टी ततः स्मृते॥१२॥
धृतिश्च विधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः।
विकृतिः सङ्कृतिश्चैव तथातिकृतिरुत्कृतिः॥१३॥

१ पाद — उक्ता
२ पाद — अत्युक्ता
३ पाद — मध्या
४ पाद — प्रतिष्ठा
५ पाद — सुप्रतिष्ठा
६ पाद — गायत्री
७ पाद — उष्णिक्
८ पाद — अनुष्टुप्
९ पाद — बृहती
१० पाद — पंक्ति
११ पाद — त्रिष्टुप्
१२ पाद — जगती
१३ पाद — अति जगती
१४ पाद — शक्वरी
१५ पाद — अति शक्वरी
१६ पाद — अष्टि
१७ पाद — अत्याष्ट
१८ पाद — धृति
१९ पाद — विधृति

२० पाद — कृति
२१ पाद — प्रकृति
२२ पाद — आकृति
२३ पाद — विकृति
२४ पाद — संकृति
२५ पाद — अतिकृति
२६ पाद — उत्कृति

ये २६ पाद होते हैं।।११-१३।।

इत्येताश्छन्दसां संज्ञा प्रस्ताराद्भेदभागिकाः।
पादे सर्वगुरौ पूर्वाल्लघुं स्थाप्य गुरोरधः।।१४।।
यथोपरि तथा शेषमग्रे प्राग्वन्न्यसेदपि। एष प्रस्तार उदितो यावत्सर्वलघुर्भवेत्।।१५।।

यह छन्दः की संज्ञा है। प्रस्तरानुसार इनमें नाना भेद हैं। जो सम्पूर्ण गुरु अक्षर वाला पाद है, वहां प्रथम गुरु चिह्न के नीचे लघु लिखे। तदनन्तर दक्षिण वाली जो पंक्ति है, उसे ऊर्ध्व वाली पंक्तिवत् भरें। यह क्रिया बराबर हो अर्थात् बायीं ओर जो शेष स्थान है, वहां गुरु ही लिखना होगा। जब तक समस्त लघु अक्षर प्राप्त न हों, तब तक इसे करना होगा। यही प्रस्तर पदवाच्य है।।१४-१५।।

नष्टाङ्कार्द्धे समेलः स्याद्विषमे सैव सोर्द्धगः।
उद्दिष्टे द्विगुणानाद्यादङ्कान्सम्मील्य लस्थितान्।।१६।।
कृत्वा सैकान्वदेत्सङ्ख्यामिति प्राहुः पुराविदः।
वर्णान्सैकान्वृत्तभवानुत्तराधरतः स्थितान्।।१७।।

जब प्रस्तर नष्ट हो, तब वहां किसी भेद के स्वरूप से अवगत होना हो, तब "नष्ट प्रत्यय" वह विधि है, जिससे इसे जाना जाता है। नष्ट अंक सम होने की दशा में एक ही लघु लिखना होगा। उसका अर्द्ध भी यदि सम ही हो, तब वहां पुनः लघु लिखना होगा। विषम नष्ट अंक हेतु एक ही गुरु लिखते हैं। उसमें एक का योग करके उसका आधा किया जाये। यदि यह आधा भी विषम ही मिले, तब तो उसके लिये भी गुरु ही लिखना होगा। इस क्रिया को अभीष्ट अक्षरों के पाद को पाने तक करना ही होगा। प्रस्तार के एक भी भेद का स्वरूप ज्ञात हो जाये परन्तु संख्या अज्ञात हो, यह जानने की विधि ही उद्दिष्ट है। इस उद्दिष्ट में गुरु-लघु बोधक चिह्न में प्रथमाक्षर पर एक लिखकर क्रमशः बाद वाले अक्षर पर द्विगुण लिखे। तदनन्तर लघु पर जो अंक आया हो, उनका योग करके उसमें एक और योग करे। यही उद्दिष्ट स्वरूप संख्या है। पुराणज्ञ विद्वान् कहते हैं कि किसी छन्द के प्रस्तार में एक गुरु, एक लघु अथवा तीन गुरु युक्त भेद कितने हो सकते हैं, इसको अलग-अलग ज्ञात करने वाली प्रक्रिया एकद्वयादिलग क्रिया कहा गया है। छन्द के अक्षरों की संख्या में एक जोड़े। तब तदनुसार उतने एकांक ऊर्ध्व-अधः क्रम से लिखना होगा।।१६-१७।।

एकादिक्रमतश्चैकानुपर्य्युपरि विन्यसेत्। उपान्त्यतो निवर्तेत त्यजन्नेकैकमूर्ध्वतः।।१८।।

उपर्याद्याद्गुरोरेवमेकद्व्यादिलगक्रिया। लगक्रियाङ्कसन्दोहे भवेत्सङ्ख्याविमिश्रिते॥१९॥

अब इन एकांक का ऊर्ध्वस्थ अन्य पंक्ति से योग करे तथापि अन्त्य के समीपस्थ अंक का योग न करे। ऊर्ध्व को एक-एक अंक को त्याग देना चाहिये। अब ऊर्ध्व के सर्वगुरु वाले प्रथम भेद से अधः तक गणना करना चाहिये। अब प्रथम भेद सर्वगुरु, द्वितीय एक गुरु, तृतीय द्विगुरु होगा। अब अधः से ऊर्ध्व तक विचार करने पर सबसे अधः का सर्वलघु, उससे ऊपर वाला एक लघु, तृतीय भेद होगा द्विलघु प्रभृति होता है। एवंविध एकद्वयादि लगक्रिया ज्ञात होती है। लगक्रिया अंक का योग करने से उस छन्द के अन्तर्गत् प्रस्तार की पूर्ण संख्या विदित होती है। यही संख्यान प्रत्यय है।।१८-१९।।

उद्दिष्टाङ्कसमाहारः सैको वा जनयेदिमाम्।
सङ्ख्यैव द्विगुणैकोना सद्भिरध्वा प्रकीर्तितः॥२०॥
इत्येतत्किञ्चिदाख्यातं लक्षणं छन्दसां मुने। प्रस्तारोक्तप्रभेदानां नामानन्त्यं प्रगाहते॥२१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे सङ्क्षिप्तछन्दोवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५७।।

किंवा उद्दिष्ट करके जो अंक हो उनका योग करके पुनः उसमें एक का योग करने से वह पूर्ण प्रस्तार संख्या व्यक्त करता है। छन्द प्रस्तारांकनार्थ जो स्थान नियमन किया जाता है, वह अध्वयोग प्रत्यय है। प्रस्तार संख्या को द्विगुण करके उससे एक घटाये। जो अंक आये तदनुरूप अंगुल का तत्सम्बन्धित प्रस्तारार्थ अध्वा किंवा स्थान करते हैं। हे मुनिप्रवर! यह किंचित् छन्दोलक्षण मैंने कहा है। लेकिन उनके वे भेद-प्रभेद अनन्त हैं, जो प्रस्तारोक्त हैं!।।२०-२१।।

।।५७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
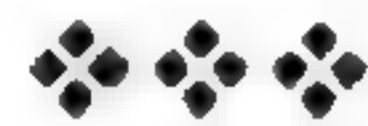
अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शुक के इतिहास का वर्णन

नारद उवाच

अनूचानप्रसङ्गेन वेदाङ्गान्यखिलानि च। श्रुतानि त्वन्मुखाम्भोजात्समासव्यासयोगतः॥१॥
शुकोत्पत्तिं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते।

देवर्षि नारद कहते हैं—मैंने षडङ्ग वेदाध्ययन प्रसंग में आप के द्वारा कहे समस्त वेदांगों का संक्षिप्त तथा विस्तृत वर्णन श्रवण किया। हे महामति! अब शुक की उत्पत्ति का वर्णन कहिये।।१।।

सनन्दन उवाच

मेरुशृङ्गे किल पुरा कर्णिकारवनायते॥२॥

विजहार महादेवो भौमैर्भूतगणैर्वृतः। शैलराजसुता चैव देवी तत्राभवत्पुरा॥३॥
तत्र दिव्यं तपस्तेपे कृष्णद्वैपायनः प्रभुः। योगेनात्मानमाविश्य योगधर्मपरायणः॥४॥
धारयन्स तपस्तेपे पुत्रार्थं मुनिसप्तमः। अग्नेर्भूमस्तथा वायोरन्तरिक्षस्य चाभितः॥५॥
वीर्येण सम्मतः पुत्रो मम भूयादिति स्म ह। सङ्कल्पेनाथ सोऽनेन दुष्प्रापमकृतात्मभिः॥६॥
वरयामास देवेशमास्थितस्तप उत्तमम्। अतिष्ठन्मारुताहारः शतं किल समाः प्रभुः॥७॥
आराधयन्महादेवं बहुरूपमुमापतिम्। तत्र ब्रह्मर्षयश्चैव सर्वे देवर्षयस्तथा॥८॥
लोकपालाश्च साध्याश्च वसुभिश्चाष्टभिः सह। आदित्याश्चैव रुद्राश्च दिवाकरनिशाकरौ॥९॥
विश्वावसुश्च गन्धर्वः सिद्धाश्चाप्सरसां गणः।
तत्र रुद्रो महादेवः कर्णिकारमयीं शुभाम्॥१०॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—प्राचीन काल की बात है। देवदेव शंकर कनेर के वन से आच्छादित विशाल मेरुशृंग पर अपने भौम भूतगणों से घिरे विहार कर रहे थे। पुराकाल में वहीं शैलराजपुत्री देवी भी वहां थीं। (उत्पन्न हुई थीं अथवा आई थीं)। हे मुनिसत्तम! प्रभु कृष्णद्वैपायन ने वहां योग में अपनी आत्मा को लगाकर योगधर्म तत्पर होकर दिव्य तपःश्चरण किया था। उन मुनिसत्तम ने वहां यह तप पुत्रलाभार्थ किया था। उनकी कामना थी कि उनको ऐसे पुत्र की प्राप्ति हो जो अग्नि, भूमि, आकाश, वायु के तेज से उत्पन्न हो। यह संकल्प धारण करके उन्होंने देवेश की ऐसी आराधना को किया, जो अकृतात्मा लोगों के लिये दुष्कर थी। प्रथमतः प्रभु व्यासदेव ने बहुरूपी उमापति महादेव की आराधना केवल वायुपान करते हुये किया। वहां मेरु शिखरस्थ स्थान में ब्रह्मर्षिगण, देवर्षिगण, लोकपाल, अष्टवसु, साध्यगण, आदित्य, रुद्र, सूर्य, चन्द्र, विश्वावसु गन्धर्वादि, सिद्धगण, अप्सरायें निवास करते थे। वहां देवदेव रुद्र महादेव ने कनेर की शुभ—।।२-१०।।

धारयानः स्रजं भाति शरदीव निशाकरः। तस्मिन् दिव्ये वने रम्ये देवदेवर्षिसङ्कुले॥११॥
आस्थितः परमं योगं व्यासः पुत्रार्थमुद्यतः। न चास्य हीयते वर्णो न ग्लानिरुपजायते॥१२॥
त्रयाणामपि लोकानां तदद्भुतमिवाभवत्। जटाश्च तेजसा तस्य वैश्वानरशिखोपमाः॥१३॥
प्रज्वलन्त्यः स्म दृश्यन्ते युक्तस्यामिततेजसः।
एवं विधेन तपसा तस्य भक्त्या च नारद॥१४॥
महेश्वरः प्रसन्नात्मा चकार मनसा मतिम्। उवाच चैनं भगवांस्त्र्यम्बकः प्रहसन्निव॥१५॥

माला पहना वे भगवान् शंकर शारदीय पूर्णिमा के चन्द्र की तरह विराजित थे। उस देवता एवं देवर्षिगण से परिपूर्ण दिव्य रम्य वन में परमयोग युक्त व्यासदेव पुत्रलाभार्थ आराधना कर रहे थे। उस तपःश्चरण काल में भी उनका वर्ण म्लान नहीं था तथा वे किसी भी प्रकार की ग्लानि से रहित थे। यह समस्त त्रैलोक्य हेतु अद्भुद् घटना थी। क्लान्ति किंवा ग्लानि के स्थान पर उनकी जटा मानो अग्नि शिखा के समान तेजदीप्त लग रही थी। इससे उन महातेजस्वी योगी व्यास की जटा तो प्रज्वलन्त सी प्रतीत हो रही थी। हे नारद! उन तपस्वी की इस तपस्या तथा भक्ति द्वारा उमापति महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा उनके लिये वरदानोद्यत हो गये। भगवान् त्र्यम्बक ने तब हंसते हुये व्यास से कहा—।।११-१५।।

यथा ह्यग्निर्यथा भूमिर्यथा जलम्। यथा खं च तथा शुद्धो भविष्यति सुतस्तव॥१६॥

तद्भावभागी तद् बुद्धिस्तदात्मा तदुपाश्रयः।
तेजसा तस्य लोकांस्त्रीन्यशः प्राप्स्यति केवलम्॥१७॥

(भगवान् शिव कहते हैं) हे व्यास! अग्नि, वायु, भूमि, जल, आकाश जिस प्रकार से शुद्ध रूप है, तद्रूप तुमको भी शुद्ध बुद्धि तथा तपःयुक्त पुत्र उत्पन्न होगा। वह उसी भाव से भावित, तद्रूप बुद्धि वाला तथा वैसे ही स्वरूप वाला तथा वैसे ही उपाश्रय वाला पुत्र होगा। वह ऐसा तेजस्वी होगा कि उस तेज से त्रैलोक्य में उनका यश प्रसारित रहेगा।।१६-१७।।

एवं लब्ध्वा वरं देवो व्यासः सत्यवतीसुतः।
अरणिं त्वथ सङ्गृह्य ममन्थाग्निचिकीर्षया॥१८॥

अथ रूपं परं विप्र बिभ्रतीं स्वेन तेजसा। घृताचीं नामाप्सरसं ददर्श भगवानृषिः॥१९॥

ऐसा वर पाकर सत्यवती नन्दन व्यास ने अरणि एकत्र किया (काष्ठादि भी एकत्र किया) तथा अग्नि उत्पन्न करने हेतु मन्थन करने लगे। अरणि मन्थन के समय उन भगवान् ऋषिप्रवर व्यासदेव ने वहां स्वतेज तथा अपने रूप से सुशोभित घृताची अप्सरा को देखा।।१८-१९।।

स तामप्सरसं दृष्ट्वा सहसा काममोहितः। अभवद्भगवान्व्यासो वने तस्मिन्मुनीश्वर॥२०॥

सा तु कृत्वा तदा व्यासं कामसंविग्नमानसम्।
शुकीभूया महारम्या घृताची समुपागमत्॥२१॥

स तामप्सरसं दृष्ट्वा रूपेणान्येन संवृताम्। स्मरराजेनानुगतः सर्वगात्रातिगेन ह॥२२॥

स तु धैर्येण महता निगृह्णन् हृच्छयं मुनिः।
न शशाक नियन्तुं तं व्यासः प्रविसृतं मनः॥२३॥

हे मुनीश्वर! वहां उस अप्सरा का दर्शन करके प्रभु व्यासदेव सहसा काममोहित हो गये। उस अप्सरा ने इस प्रकार महामुनि व्यास को कामभाव युक्त मन वाला किया तथा उसने स्वयं अत्यन्त रम्य शुकी का रूप धारण करके व्यासदेव के पास आगमन किया। उस परमरूपवती अप्सरा को देखकर महामुनि व्यास के सभी अंग काम के वशीभूत हो गये थे। वे अन्त धैर्य के साथ मन को वश में करने का प्रयत्न तो कर रहे थे तथापि वे अपने कामाभिभूत चित्त पर वश नहीं कर पा सके।।२०-२३।।

भावित्वाच्चैव भाव्यस्य घृताच्या वपुषाहृतम्।
यत्नान्नियच्छतश्चापि मुने एतच्चिकीर्षया॥२४॥

अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमवापतत्।
शुक्र निर्मथ्यमानेऽस्यां शुको जज्ञे महातपाः॥२५॥

परमर्षिर्महायोगी अरणीगर्भसम्भवः। यथैव हि समिद्धोऽग्निर्भाति हव्यमुपात्तवान्॥२६॥

तथा रूपः शुको जज्ञे प्रज्वलन्निव तेजसा। बिभ्रच्चित्रं च विप्रेन्द्र रूपवर्णमनुत्तमम्॥२७॥

प्रबल भवितव्यता के चलते घृताची की सुन्दरता के प्रति आकर्षित व्यासदेव ने अपने मन को संयत करने का अत्यन्त प्रयत्न तो किया तथापि कामवेग के कारण सहसा उस अरणि पर ही महामुनि व्यास का वीर्य पतित हो गया। मुनि उस समय अरणि मन्थन अग्नि हेतु कर रहे थे, अतः उनका वीर्य भी मथित हो जाने के कारण परमर्षि महायोगी शुक का जन्म उस अरणि से हो गया। हे विप्रेन्द्र! हविष्य प्राप्त होने से जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलन्त हो उठता है, तद्विध स्वतेज से दीप्त शुक उस अरणि से उत्पन्न हो गये। हे ब्राह्मण प्रवर! उस बालक का रूप आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था। वह रूप तथा वर्ण में अत्युत्तम था।।२४-२७।।

तं गङ्गां सरितां श्रेष्ठां मेरुपृष्ठे स्वरूपिणीम्।
अभ्येत्य स्नापयामास वारिणा स्वेन नारद॥२८॥
कृष्णाजिनं चान्तरिक्षाच्छुकार्थे भुव्यवापतत्।
जेगीयन्ते च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥२९॥

हे नारद! घृताची उस बालक को जो अपने समान रूपवान मेरुपृष्ठ पर प्रवहमान श्रेष्ठ नदी गंगा में ले गई तथा मानो अपने ही जल से (गंगाजल से) उस तेजोमय बालक का स्नान कराया। तभी अनायास अन्तरिक्ष से कृष्णमृगचर्म वहां गिर गया। इस बालक के जन्म से प्रसन्न गन्धर्व मंगलगीत गाने लगे तथा अप्सरागण नृत्यरत हो गयीं।।२८-२९।।

देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त महास्वनाः। विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा तुम्बुरुनारदौ॥३०॥
हाहाहूहूश्च गन्धर्वौ तुष्टुवुः शुकसम्भवम्। तत्र शुक्रपुरोगाश्च लोकपालाः समागताः॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽपि च। दिव्यानि सर्वपुष्पाणि प्रववर्ष च मारुतः॥३२॥

उस समय देवदुन्दुभि के गंभीर घोष से दिक्दिगन्त गुंजरित हो उठा। गन्धर्वगण, विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद, हा-हा, हू हू उन शुकदेव की स्तुति गाने लगे। उस अवसर पर इन्द्रादि लोकपालगण, देवता, सभी देवर्षि एवं ब्रह्मर्षिगण वहां आये थे। इसी समय वायुदेव अपने हृदय की प्रसन्नता का द्योतन कराते सभी देवपुष्प श्रेणी के पुष्पों की वर्षा करने लगे।।३०-३२।।

जङ्गमं स्थावरं चैव प्रहृष्टमभवज्जगत्। तं महात्मा स्वयं प्रीत्या देव्या सह महाद्युतिः॥३३॥
जातमात्रं मुनेः पुत्रं विधिनोपानयत्तदा। तस्य देवेश्वरः शक्रो दिव्यमद्भुतदर्शनम्॥३४॥
ददौ कमण्डलुं प्रीत्या देवा वासांसि चाभितः।
हंसाश्च शतपत्राश्च सारसाश्च सहस्रशः॥३५॥
प्रदक्षिणमवर्तन्त शुकाश्चाषाश्च नारद। आरणेयस्तदा दिव्यं प्राप्य जन्म महामुनिः॥३६॥
तत्रैवोवास मेधावी व्रतचारी समाहितः। उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससङ्ग्रहाः॥३७॥
उपतस्थुर्मुनिश्रेष्ठ यथास्य पितरं तथा। बृहस्पतिं स वव्रे च वेदवेदाङ्गभाष्यवित्॥३८॥
उपाध्यायं द्विजश्रेष्ठ धर्ममेवानुचिन्तयन्।
सोऽधीत्य वेदानखिलान्सरहस्यान्ससङ्ग्रहान्॥३९॥

उस समय यह स्थावर-जंगममय संसार शुकदेव के जन्म की घटना के कारण आनन्दाप्लुत हो गया

था। महातेजस्वी महात्मा शंभु भी महाद्युति देवी के साथ प्रसन्न होकर वहां आ गये। हे मुनिवर! उन्होंने स्वयं सद्यः उत्पन्न शुक का उपनयन कराया। देवराज इन्द्र ने उस बालक शुक को परमदिव्य अद्भुत दर्शन कमंडलु प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किया। अन्य देवगण ने वस्त्र दिया। उस समय बालक शुक की प्रदक्षिणा हंस, शतपत्र, सारस, तोते, नीलकण्ठादि हजारों-हजार पक्षी करने लगे। वह महामुनि मेधावी बालक जो अरणि से उत्पन्न था ऐसा दिव्य बालक वहां एकाग्रता तथा ब्रह्मचर्य के साथ निवास करने लगा। जैसे ही वह बालक उत्पन्न हुआ उसी समय (यज्ञोपवीत के पश्चात्) उसके समक्ष रहस्य, संग्रह प्रभृति सहित सभी वेद भी प्रकट हो गये। इसी प्रकार समस्त वेद पिता वेदव्यास के पास भी पहले आये थे। हे द्विजप्रवर! तथापि (लोकनियम पालनार्थ) उस मुनिबालक ने धर्मपालनार्थ विचारपूर्वक बृहस्पति को अपना उपाध्याय माना। बृहस्पति की शिक्षा से बालक ने वेद-वेदांग, भाष्य का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने उनसे समस्त वेदों का अध्ययन किया तथा रहस्य एवं संग्रह ग्रन्थों।।३३-३९।।

इतिहासं च कार्त्स्न्येन वेदशास्त्राणि चाभितः।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो महामुनिः॥४०॥
उग्रं तपः समारेभे ब्रह्मचारी समाहितः। देवतानामृषीणां च बाल्येऽपि सुमहातपाः॥४१॥
सम्मन्त्रणीयो जन्यश्च ज्ञानेन तपसा तथा। न त्वस्य रमते बुद्धिराश्रमेषु मुनीश्वर॥४२॥
त्रिषु गार्हस्थ्यमूलेषु मोक्षधर्मानुदर्शिनः। स मोक्षमनुचिन्त्यैव शुकः पितरमभ्यगात्॥४३॥

के साथ ही वेद, समस्त इतिहास, वेद-शास्त्रों का अध्ययन सम्पन्न करके गुरुदक्षिणा बृहस्पति को प्रदान किया तथा वहां से वापस आ गये। उन महातपस्वी समाहित ब्रह्मचारी ने वहां उग्र तप प्रारंभ किया था। वह महातपस्वी बालक होकर भी अपने ज्ञान तथा तप के प्रभाव से देवता तथा ऋषिगण को भी मन्त्रों द्वारा ज्ञान चर्चा आदि का उपदेशक हो गया था। हे मुनीश्वर! उस तपस्वी का मन मोक्षधर्म की प्राप्ति में लगा रहता था। वह गृहस्थ आदि आश्रमों के प्रति रुचि नहीं रखता था। इस कारण मोक्षमार्ग लाभार्थ वह बालक ऋषि अपने पिता के वेदव्यास के निकट गया।।४०-४३।।

प्राहाभिवाद्य च तदा श्रेयोऽर्थी विनयान्वितः।
मोक्षधर्मेषु कुशलो भगवान् प्रब्रवीतु मे॥४४॥
यथैव मनसः शान्तिः परमा सम्भवेन्मुने। श्रुत्वा पुत्रस्य वचनं परमर्षिरुवाच तम्॥४५॥
अधीष्व मोक्षशास्त्रं वै धर्मांश्च विविधानपि।
पितुर्निदेशाज्जग्राह शुको ब्रह्मविदां वरः॥४६॥
योगशास्त्रं च निखिलं कापिलं चैव नारद।
शतब्राह्मम् श्रिया युक्तं ब्रह्मतुल्यपराक्रम्॥४७॥

उस श्रेयार्थी मुनिपुत्र ने पिता का अभिवादन विनयावनत होकर किया। तदनन्तर कहा—"हे भगवान्! आप मोक्षमार्ग में कुशल हैं। हे मुनि! आप कृपापूर्वक वह ज्ञान दीजिये, जिससे मेरे मन को परमशान्ति का लाभ हो।" तब पुत्र का यह कथन सुनकर उन परमर्षि व्यास ने कहा कि तुम मोक्षशास्त्र तथा विविध धर्मों का

अध्ययन करो।" पिता की आज्ञा लेकर ब्रह्मज्ञानियों में प्रधान शुक ने योगशास्त्र तथा कपिल द्वारा कहे सांख्यमार्ग का अध्ययन किया। हे नारद! यह देखकर व्यास को ज्ञात हो गया कि मेरा यह पुत्र सैकड़ों ब्राह्म श्री से युक्त तथा ब्रह्मवत् पराक्रमी है।।४४-४७।।

मेने पुत्रं यथा व्यासो मोक्षशास्त्रविशारदम्। उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम्।।४८।।
स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलेन नराधिपः। पितुर्नियोगादगमज्जनकं मैथिलं नृपम्।।४९।।

उन्होंने जान लिया कि यह पुत्र मोक्षशास्त्र विशारद भी है। तदनन्तर व्यास ने कहा—"तुम मिथिलाधिपति जनक के यहां जाओ। उनसे तुमको सम्यक् रूप से मोक्षशास्त्रोपदेश प्राप्त होगा।" पिता का आदेश पाकर शुकदेव मैथिल राजा जनक के यहां गये।।४८-४९।।

प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम्।
उक्तश्च मानुषेण त्वं तथा गच्छेत्यविस्मितः।।५०।।
न प्रभावेण गन्तव्यमन्तरिक्षचरेण वै। आर्जवेनैव गन्तव्यं न सुखाय क्षणात्त्वया।।५१।।
न द्रष्टव्या विशेषा हि विशेषा हि प्रसङ्गिनः।
अहङ्कारो न कर्तव्यो याज्ये तस्मिन्नराधिपे।।५२।।
स्थातव्यं वसथे तस्य स ते छेत्स्यति संशयम्।
स धर्मकुशलो राजा मोक्षशास्त्रविशारदः।।५३।।
यथा यथा च ते संयात्तत्कार्यमविशङ्कया।
एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः।।५४।।

व्यास जी ने शुक को वहां भेजने के पूर्व कहा था—"वहां तुम सामान्य मनुष्य की तरह जाना। विस्मयपूर्ण कार्य मत करना। अपने प्रभाव द्वारा अन्तरिक्षचारी होकर मत जाना। क्षणिक सुखों का त्याग करके विनम्रता पूर्वक जाना। वहां किसी भी विशेष घटना अथवा स्थिति की ओर मत देखना। संसार में प्रसंगवशात् कतिपय विशेष घटना घटित हो जाती है। वह राजा यज्ञ को कराने हेतु सर्वथा पात्र है। उसके प्रति कदापि अहंकार प्रकट मत करना। तुम वहां जाकर उसी राजा का आतिथ्य ग्रहण करके वहीं रहना। वह राजा धर्मकुशल, मोक्षशास्त्र विशारद है। वह जो कोई कार्य तुमसे करने हेतु कहे, उसका बिना किसी उहापोह किये पालन करना। वह तुम्हारे सभी सन्देह निर्मूल करेगा।" पिता का यह उपदेश सुनकर शुकदेव मिथिलापुरी पहुंचे।।५०-५४।।

पद्भ्यां शक्तोऽन्तरिक्षेण क्रान्तुं भूमिं ससागराम्।
सगिरींश्चाप्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्।।५५।।
स देशान्विविधान्स्फीताननतिक्रम्य महामुनिः।
विदेहान्वै समासाद्य जनकेन समागमत्।।५६।।
राजद्वारं समासाद्य द्वारपालैर्निवारितः। तस्थौ तत्र महायोगी क्षुत्पिपासादिवर्जितः।।५७।।

आतपे ग्लानिरहितो ध्यायुक्तश्च नारद। तेषां तु द्वारपालानामेकस्तत्र व्यवस्थितः॥५८॥

मध्यङ्गतमिवादित्यं दृष्ट्वा शुकमवस्थितम्।
पूजयित्वा यथान्यायमभिवाद्य कृताञ्जलिः॥५९॥

प्रावेशयत्ततः कक्षं द्वितीयां राजवेश्मनः। तत्रान्तः पुरसम्बद्धं महच्चैत्ररथोपमम्॥६०॥

सुविभक्तजलाक्रीडं रम्यं पुष्पितपादपम्।
दर्शयित्वासने स्थाप्य राजानं च व्यजिज्ञपत्॥६१॥

यद्यपि शुकदेव अपनी शक्ति से अन्तरिक्ष मार्ग से ससागरा पृथिवी को पार कर सकते थे तथापि वे पैदल चलते-चलते नाना पर्वत, नदी आदि को पार करते भारत पहुंचे। वे महामुनि यहां भी अनेक देशों (राज्यों) को पार करते विदेह राज्य पहुंचे तथा जनक से मिलने का उपक्रम किया, तथापि राजद्वार पहुंचने पर द्वारपालों ने उनको भीतर प्रवेश से रोक दिया। वहीं पर ये महायोगी भूख-प्यास आदि के क्लेश की उपेक्षा करके वहीं धूप में ग्लानिरहित अवस्था में ध्यानस्थ हो गये। हे नारद! तब उन द्वारपाल में से एक ने जब मध्याह्न सूर्यवत् तेजसम्पन्न शुकदेव को देखा, तब उसने शुक का सविधि पूजन किया। वह उनको हाथ जोड़कर अभिवादनोपरान्त सादर राजमहल के द्वितीय कक्ष में ले गया। उस कक्ष से सम्बद्ध देवताओं के चैत्ररथ उपवन ऐसी गृहवाटिका थी, जो विकसित पुष्प भार से युक्त पादपों से युक्त थी। वहां पृथक्-पृथक् क्रीडार्थ अनेक जलाशय भी थे। यह स्थान शुक को द्वारपाल ने दिखलाया और शुक को उसने वहीं आसनासीन कराने के पश्चात् शुकदेव के आगमन का वृत्तान्त राजा से कहा—।।५५-६१।।

श्रुत्वा राजा शुकं प्राप्तं वारस्त्रीः स न्ययुंक्त च।
सेवायै तस्य भावस्य ज्ञानाय मुनिसत्तम॥६२॥

तं चारुकेश्यः शुश्रोण्यस्तरुण्यः प्रियदर्शनाः। सूक्ष्मरक्ताम्बरधरास्तप्तकाञ्चनभूषणाः॥६३॥

संलापालापकुशला भावज्ञाः सर्वकोविदाः।
परं पञ्चाशतस्तस्य पाद्यादीनि व्यकल्पयन्॥६४॥

राजा ने शुकदेव के आगमन का समाचार जानकर इन मुनिसत्तम की परीक्षार्थ कतिपय वारस्त्रियों को इनकी सेवा हेतु नियुक्त किया। वे मुनि के आन्तरिक भाव की परीक्षा कर रहे थे। ये पचास सुन्दरी स्त्रियां उत्तमकेश, मनोहर नितम्बवाली, प्रियदर्शना थीं। उन सबने महीन रक्त परिधान धारण किया था तथा तपे हुये स्वर्ण के चमकदार स्वर्णाभूषण से सभी सज्जित भी थी। ये वार्त्तालाप में कुशल, भावज्ञ तथा कलापारंगत थीं। इन सबने मुनि शुक की पाद्यादि से अभ्यर्थना किया।।६२-६४।।

देशकालोपपन्नेन साध्वन्नेनाप्यतर्पयन्। तस्य भुक्तवतस्तात तास्ततः पुरकाननम्॥६५॥

सुरम्यं दर्शयामासुरेकैकत्वेन नारद। क्रीडन्त्यश्च हसन्त्यश्च गायन्त्यश्चैव ताः शुकम्॥६६॥

उदारसत्त्वं सत्वज्ञास्सर्वाः पर्य्यचरंस्तदा।
आरणेयस्तु शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥६७॥

तदनन्तर उनके समक्ष स्त्रियों ने देश-काल के अनुसार तदनुरूप उत्तम मधुर अन्न प्रस्तुत किया। वे मुनि

इस भोजन से परितृप्त हो गये। इसके पश्चात् उन स्त्रियों ने शुकदेव को प्रत्येक उपवनों में क्रमशः घुमाया। व शुक के समक्ष क्रीड़ा करतीं, हंसती तथा गायन करती थीं। वे इस प्रकार उदारसत्त्व शुक की परिचर्या करने लगीं, तथापि वे अरणिकुमार यथावत् शुद्धात्मा, जितेन्द्रिय तथा क्रोधरहित से बने रह गये।।६५-६७।।

ध्यानस्थ एव सततं न हृष्यति न कुप्यति।
पादशौचं तु कृत्वा वै शुकः सन्ध्यामुपास्य च॥६८॥
निषसादासने पुण्ये तमेवार्थं व्यचिन्तयत्। पूर्वरात्रे तु तत्रासौ भूत्वा ध्यानपरायणः॥६९॥
मध्यरात्रे यथान्याय्यं निद्रामाहारयत्प्रभुः। ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा शौचमनन्तरम्॥७०॥
स्त्रीभिः परिवृतो धीमान्ध्यानमेवान्वपद्यत। अनेन विधिना तत्र तदहः शेषमप्युत॥७१॥
तां च रात्रिं नृपकुले वर्तयामास नारद॥७२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयभागे शुकप्रलोभनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।
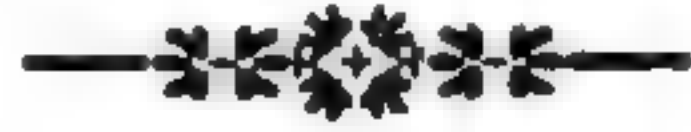
तदनन्तर सन्ध्या काल होने पर शुक ने पैर धोकर सन्ध्योपासना किया। तदनन्तर वे पावन आसन पर बैठकर मोक्षतत्व चिन्तनरत हो गये। रात्रि के प्रथम प्रहर में वे ध्यानमग्न हो गये। तदनन्तर द्वितीय-तृतीय प्रहर में वे यथान्याय निद्रित हो गये। प्रातःकाल उठे तथा शौचादि से निवृत्त होकर वे महात्मा ध्यान में तल्लीन हो गये। भले ही स्त्रियों ने उनको घेर रखा था। उस महल में योगीप्रवर शुक ने दो दिन तथा रात्रि व्यतीत किया।।६८-७२।।

।।५८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

अध्यात्मतत्त्व निरूपण

सनन्दन उवाच

ततः स राजा सहितो मन्त्रिभिर्द्विजसत्तम। पुरः पुरोहितं कृत्वा सर्वाण्यन्तःपुराणि च॥१॥
शिरसा चार्घ्यमादाय गुरुपुत्रं समभ्यगात्। महदासनमादाय सर्वरत्नविभूषितम्॥२॥
प्रददौ गुरुपुत्राय शुकाय परमोचितम्। तत्रोपविष्टं तं कार्ष्णिं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥३॥
पाद्यं निवेद्य प्रथमं सार्घ्यं तां च न्यवेदयत्। स च तां मन्त्रतः पूजां प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः॥४॥
पर्यपृच्छन्महातेजाराज्ञः कुशलमव्ययम्। उदारसत्त्वाभिजनो राजापि गुरुसूनवे॥५॥

आवेद्य कुशलं भूमौ निषसाद तदाज्ञया।
सोऽपि वैयासकिं भूयः पृष्ट्वा कुशलमव्ययम्।
किमागमनमित्येव पर्यपृच्छद्विधानवित्॥६॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—हे द्विजसत्तम! यह देखकर राजा मन्त्रियों, पुरोहित तथा अन्तःपुर की नारियों को आगे करके सविनय अर्घ्यपात्र लेकर गुरुपुत्र के स्वागतार्थ आये। उन्होंने सर्वरत्नविभूषित महत् उपयुक्त आसन उनको प्रदान किया। जब गुरुपुत्र शुक आसनासीन हो गये, तब मिथिलापति ने उनको पाद्य, अर्घ्य निवेदित किया तथा शास्त्रोक्त विधि से उनको गौ प्रदान किया। उन द्विजोत्तम ने भी मन्त्रोच्चारण द्वारा इस पूजा को ग्रहण किया। तदनन्तर उन महातेजस्वी शुकदेव ने राजा से कुशल-मंगल समाचार पूछा। उन उदार हृदय वाले राजा ने गुरुपुत्र से अपना कुशल कहा तथा उनकी आज्ञा लेकर भूमि पर बैठ गये। तदनन्तर राजा ने व्यासनन्दन शुक से कुशल प्रश्नोपरान्त यह पूछा कि "आप द्वारा यहां आगमन का क्या कारण है?"।।१-६।।

शुक उवाच

पित्राहमुक्तो भद्रं ते मोक्षधर्मार्थकोविदः। विदेहराजोह्याद्यो मे जनको नाम विश्रुतः॥७॥
तत्र त्वं गच्छ तूर्णं वै स ते हृदयसंशयम्। प्रवृत्तौ च निवृत्तौ सर्वं छेत्स्यत्यसंशयम्॥८॥
सोऽहं पितुर्नियोगात्त्वामुपप्रष्टुमिहागतः। तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि॥९॥
किं कार्यं ब्राह्मणेनेह मोक्षार्थश्च किमात्मकः।
कथं च मोक्षः कर्तव्यो ज्ञानेन तपसापि वा॥१०॥

महर्षि शुक कहते हैं—हे भद्र! पिता ने मुझसे कहा था—"विदेह राज मेरे प्रथम शिष्य हैं तथा जनक के नाम से विख्यात तथा मोक्ष, धर्म आदि के ज्ञाता हैं। तुम शीघ्र वहां जाओ। वे तुम्हारे मन का संशय दूर करेंगे। तुम्हारे मन में जितने भी प्रवृत्ति निवृत्ति विषयक संशय हैं, वे उसका निवारण करेंगे।" एतदर्थ मैं पिता के आदेश से आप से जिज्ञासा करने तथा शंका निवारणार्थ आया हूं। हे धार्मिक प्रवर! आप यह कहने की कृपा करिये कि ब्राह्मण क्या कर्म करे? मोक्ष का अर्थ क्या है? मोक्ष प्राप्ति हेतु तप तथा ज्ञान में से क्या कर्त्तव्य है?।।७-१०।।

जनक उवाच

यत्कार्यं ब्राह्मणेनेह जन्मप्रभृति तच्छृणु। कृतोपनयनस्तात भवेद्वेदपरायणः॥११॥
तपसा गुरुवृत्त्या च ब्रह्मचर्येण चान्वितः। देवतानां पितॄणां च ह्यतृष्णश्चानसूयकः॥१२॥
वेदानधीत्य नियतो दक्षिणामपवर्त्य च। अभ्यनुज्ञामनुप्राप्य समावर्तत वै द्विजः॥१३॥

राजा जनक कहते हैं—जो कार्य ब्राह्मण को जन्मकाल से ही करना होगा, उसे सुनिये। हे तात! वह ब्राह्मण बालक उपनयन कर्मोपरान्त उसी दिवस से वेदाध्ययन करने लगे। वह ब्रह्मचर्ययुक्त होकर तप करता रहे तथा गुरु सुश्रूषा करे। वह तृष्णा तथा परनिन्दा से विमुख रहकर देवता-पितृगण की भी कदापि निन्दा न करे। वह नियतरूपेण वेदाध्ययन करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा प्रदान करे तथा हे द्विज! उनकी आज्ञा लेकर समावर्त्तन संस्कार सम्पन्न करे।।११-१३।।

समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो नियतो वसेत्। अनसूयुर्यथान्यायमाहिताग्निरनादृते॥१४॥
उत्पाद्य पुत्रपौत्रांश्च वन्याश्रमपदे वसेत्। तानेवाग्नीन्यथान्यायं पूजयन्नतिथिप्रियः॥१५॥
सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित्।
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा ब्रह्माश्रमपदे वसेत्॥१६॥

वह समावर्त्तनोपरान्त नियमतः विवाह करके पत्नी के साथ गार्हस्थ्य धर्म का पालन करे। गृहस्थाश्रम में भी रहकर कदापि किसी की निन्दा न करे। सविधि अग्नि स्थापित करके नित्यप्रति अग्नि में होम करे। वह पुत्र-पौत्रगण को उत्पन्न करने के अनन्तर वानप्रस्थ ग्रहण करे। वहां भी अग्निकार्य (होम) तथा अतिथि सेवक होकर रहे। वह वानप्रस्थाश्रम में सविधि शास्त्रोक्त नियमानुसार अग्न्याधान करे किंवा आत्मा के उस अग्नि का लय करके निर्द्वन्द्व एवं वीतराग होकर ब्रह्माश्रम पद में रहें।।१४-१६।।

शुक उवाच

उत्पन्ने ज्ञानविज्ञाने प्रत्यक्षे हृदि शाश्वते। न विना गुरसंवासाज्ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः॥१७॥
किमवश्यं तु वस्तव्यमाश्रमेषु न वा नृप। एतद्भवन्तं पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१८॥

महर्षि शुक कहते हैं—यदि किसी के हृदय में बिना गुरु का आश्रय लिये ज्ञान होने की बात कही जाती है, तथापि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता, यह वचन है। अतः जिसे बिना गुरु के ज्ञान-विज्ञान प्रत्यक्ष हो गया, क्या तब उसे गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासाश्रम में रहना आवश्यक है? हे नृप! मैं यह प्रश्न आपसे पूछ रहा हूं। कृपया उत्तर दीजिये।।१७-१८।।

जनक उवाच

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्।
विना गुरुसम्बन्धाज्ज्ञानस्याधिगमस्तथा॥१९॥
आचार्यः प्लाविता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते।
विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तत्रोभयं त्यजेत्॥२०॥
अनुच्छेदाय लोकानामनुच्छेदाय कर्मणाम्।
कृत्वा शुभाशुभं कर्म मोक्षो नामेह लभ्यते॥२१॥
भावितैः कारणैश्चाय बहुसंसारयोनिषु। आसादयति शुद्धात्मा मोक्षं हि प्रथमाश्रमे॥२२॥

राजा जनक कहते हैं—मोक्षलाभ बिना ज्ञान-विज्ञान नहीं होता। साथ ही गुरु के साथ सम्बन्ध स्थापित किये विना ज्ञानलाभ सुदुर्लभ है। ज्ञान ही नौका है तथा इस नौका का कर्णधार (पार उबारने वाला) गुरु ही है। ज्ञानलाभ से व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है। इसलिये (मोक्षकामी) शुभ-अशुभ कर्म को त्यागे। अन्यथा मोक्ष लाभ नहीं होता। लोक तथा कर्म का उच्छेद न हो सके, तभी पहले शुभाशुभ कर्मों को करने के उपरान्त मोक्षलाभ करे। जब नाना संसारयोनियों में सत्कर्म जनित फल से सभी इन्द्रियां पावन हो जाती हैं, तब वह शुद्धात्मा प्रथमाश्रम (ब्रह्मचर्याश्रम) में ही मोक्ष पा लेता है।।१९-२२।।

तमासाद्य तु मुक्तस्य दृष्टार्थस्य विपश्चितः। त्रिधाश्रमेषु कोन्वर्थो भवेत्परमभीप्सतः॥२३॥

जब उसकी प्राप्ति द्वारा प्रथमाश्रम में ही व्यक्ति को तत्व साक्षात्कार तथा मुक्ति मिल जाती है, ऐसी स्थिति में परमपद की अभीप्सा रखने वाले व्यक्ति को अन्य आश्रमत्रय की क्या आवश्यकता?।।२३।।

राजसांस्तामसांश्चैव नित्यं दोषान्विसर्जयेत्।
सात्त्विकं मार्गमास्थाय पश्येदात्मानमात्मना॥२४॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। सम्पश्यन्नैव लिप्येत जले वारिचरो यथा॥२५॥

पक्षीवत्पवनादूर्ध्वममुत्रानन्त्यमश्नुते। विहाय देहं निर्मुक्तो निर्द्वन्द्वः शुभसङ्गतः॥२६॥

उस मुक्तात्मा को चाहिये कि वह नित्य राजसिक, तामसिक दोषों का त्याग करे। वह सात्विक मार्ग का अवलम्बन करके अपनी आत्मा में आत्मदर्शन करें। जो सभी भूतसमूह को आत्मा में तथा आत्मा को सर्वभूतसमूह में देखता है, वह जल में निवास करने वाले जलचर के समान संसार में लिप्त नहीं होता। वह मनुष्य पक्षीवत् पवन मण्डल से ऊर्ध्वोसित होकर अतीव सुखानुभव करता है। वह मुक्त होकर यह शरीर त्यागने के उपरान्त निर्द्वन्द्व रूप से शुभ स्थान प्राप्त करता है।।२४-२६।।

अत्र गाथाः पुरा गीताः शृणु राज्ञा ययातिना।
धार्यते या द्विजैस्तात मोक्षशास्त्रविशारदैः॥२७॥
ज्योतिश्चात्मनि नान्यत्र रत्नं तत्रैव चैव तत्।
स्वयं च शक्यं तद्द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥२८॥
न बिभेति परो यस्मान् न बिभेति पराच्च यः।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु॥२९॥

यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्। पूर्वैराचरितो धर्मश्चतुराश्रमसंज्ञकः॥३०॥

इस सम्बन्ध में राजा ययाति ने पूर्वकाल में जिस गाथा का गायन किया है, उसका श्रवण करिये। हे तात! मोक्ष शास्त्रज्ञ द्विजगण इसे हृदय में धारण करते हैं। यह ज्योति आत्मा में निवास करती है। जहां रत्न— वहीं ज्योति! वह अन्यत्र नहीं रहती। उस आत्मज्योतिः का दर्शन सुसमाहित चित्त वाले साधक को स्वतः हो जाता है। जो दूसरों को भयभीत नहीं करता तथा स्वयं अन्य से भयभीत नहीं होता, जिसकी स्वयं कोई इच्छा नहीं है, जो किसी से द्वेष नहीं करता, किसी प्राणी के प्रति पाप भावना नहीं रखता, उसे ब्रह्मपद लाभ होता है। पूर्वाचार्यगण ने चतुराश्रम धर्म का पालन किया है।।२७-३०।।

अनेन क्रमयोगेन बहुजातिसुकर्मणाम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तथा॥३१॥

संयोज्य तपसात्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम्।
त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते॥३२॥

जब व्यक्ति किसी प्राणी के प्रति पाप भाव नहीं रखता अर्थात् मन-वाणी-कर्म से किसी को भी कष्ट नहीं देता, उसे ब्रह्मपद लाभ अवश्य होगा। तब तपः तत्पर व्यक्ति उसमें तल्लीन होकर ईर्ष्या को त्याग देता है, जो मोह कारिणी है, जब वह काम लोभ का त्याग कर देता है, तब वह ब्रह्मपदभागी होगा।।३१-३२।।

यदा श्राव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम्।
समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥३३॥

जब व्यक्ति दृष्टि किंवा श्रवणपथगत अनुभूत होने वाले अखिल भूतस्थ अव्यय आत्मा का दर्शनलाभ कर लेता है, तब वह समत्व तथा द्वन्द्वरहित स्थिति वाला होकर ब्रह्मलाभ कर लेता है।।३३।।

यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेन च पश्यति।
काञ्चनं चाऽयसं चैव सुखदुःखे तथैव च॥३४॥

शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम्। जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तथा॥३५॥
प्रसार्येह तथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः। तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा॥३६॥

जिसे निन्दा तथा स्तुति में समभाव प्रतीत हो, जो स्वर्ण तथा लौह को समान देखे (अर्थात् लौह से वितृष्णा न करें स्वर्ण की लालच न करे) जिनके लिये सुख-दुःख समान है, जो शीत-उष्ण में, अर्थ-अनर्थ में, प्रिय-अप्रिय में, जीवन-मरण में समान भाव युक्त है, उसे ब्रह्म प्राप्ति अवश्य होती है। जैसे कच्छप अपने अंगों को प्रसारित करके उनको पुन सिकोड़ लेता है, तद्रूप भिक्षु (संन्यासी, यति) इन्द्रियों को मन से वशीभूत करे।।३४-३६।।

तमः परिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते। यथा बुद्धिप्रदीपने शक्य आत्मा निरीक्षितुम्॥३७॥

एतत्सर्वं प्रपश्यामि त्वयि बुद्धिमतांवर।
यच्चान्यदपि वेत्तव्यं तत्त्वतो वेत्ति तद्भवान्॥३८॥

ब्रह्मर्षे विदितश्चासि विषयान्तमुपागतः। गुरोश्चैव प्रसादेन तव चैवोपशिक्षया॥३९॥
तस्य चैव प्रसादेन प्रादुर्भूतं महामुनेः। ज्ञानं दिव्यं समादीप्तं तेनासि विदितो मम॥४०॥
अधिकं तव विज्ञानमधिकावगतिस्तव। अधिकं च तवैश्वर्यं तच्च त्वं नावबुध्यसे॥४१॥

जिस प्रकार अन्धकाराच्छन्न गृह दीप से लक्षित होता है, तदनुरूप बुद्धि दीपक से आत्मा परिलक्षित होने लगता है। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! ये सभी विशेषता आपमें परिलक्षित हो रही है। आप अन्य जानने योग्य सभी तत्वों को तत्वतः जानते हैं। हे ब्रह्मर्षि! यह सब तो आपको सदा ज्ञात हैं। आपने गुरु कृपा से तथा उनसे प्राप्त शिक्षा द्वारा विषयों से त्राण पा लिया है। मुझे भी महर्षि व्यास की कृपा से दिव्य ज्ञान प्राप्त है। उस ज्ञानबल के कारण मुझे यह भी ज्ञात है कि आप, आपकी गति तथा आपका ज्ञान ऐश्वर्य, अत्यन्त उत्तम है तथा मुझसे अधिक है। यह आप स्वयं नहीं जानते।।३७-४१।।

बाल्याद्वा संशयाद्वापि भयाद्वापि विमोहजात्।
उत्पन्ने चापि विज्ञाने नाविगच्छन्ति तां गतिम्॥४२॥

व्यवसायेन शुद्धेन मद्विधैश्छिन्नसंशयाः। विमुच्य हृदयग्रन्थीनार्तिमासादयन्ति ताम्॥४३॥
भावांश्चोत्पन्नविज्ञानः स्थिरबुद्धिरलोलुपः। व्यवसायादृते ब्रह्मन्नासादयति तत्पदम्॥४४॥

भले ही इसका कारण आपका बालस्वभाव हो, किंवा (अपनी उपलब्धि पर) संशय हो अथवा

विमोहभय हो! यह नियम है कि विज्ञान लाभ हो जाने पर भी व्यक्ति को मुक्ति नहीं मिलती। अध्यवसाय से शुद्ध होकर जो व्यक्ति हृदयग्रन्थि का भेदन करके संशयरहित स्थिति प्राप्त कर लेता है, वैसा मेरे समान व्यक्ति समस्त संशयों का उच्छेद करके उस परमगति का लाभ करता है। आप स्थिरमति, लोलुपता रहित विज्ञान सम्पन्न हैं। आपको ब्रह्मपद अनायास प्राप्त है।।४२-४४।।

नास्ति ते सुखदुःखेषु विशेषो नास्ति वस्तुषु।
नौत्सुक्यं नृत्यगीतेषु न राग उपजायते॥४५॥
न बन्धुषु निबन्धस्ते न भयेष्वस्ति ते भयम्।
पश्यामि त्वां महाभाग तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिम्॥४६॥
अहं च त्वानुपश्यामि ये चान्येऽपि मनीषिणः।
आस्थितं परमं मार्गे अक्षयं चाप्यनामयम्॥४७॥
यत्फलं ब्राह्मणस्येह मोक्षार्थश्चापदात्मकः।
तस्मिन्वै वर्तसे विप्र किमन्यत्परिपृच्छसि॥४८॥

आप सुख-दुख में सदा समत्व युक्त दृष्टि वाले हैं। आप इच्छारहित, नृत्य-गीतादि के प्रति अनासक्त हैं। इनसे आपके मन में कोई रोग की उत्पत्ति नहीं हो पाती। बन्धुगण के प्रति भी आपको ममता नहीं है। किसी से भय नहीं है। हे महाभाग! मैं देखता हूं कि आप निन्दा तथा स्तुति, दोनों के प्रति समान स्थितियुक्त रहते हैं। मैंने जिन मनीषीगण को देखा है, जो परम मार्ग में स्थित हैं, जो अनामय मार्ग है, तथापि आप तो उन सबसे श्रेष्ठ स्थितियुक्त हैं। पृथिवी पर ब्राह्मणकुल में जन्म लेने का जो फल प्राप्त होता है, जो मोक्ष पदात्मक है, हे विप्र! आप उसमें स्थित रहते हैं। अब ऐसा क्या बचा, जिसके विषय में आपका पूछना शेष रह गया!।।४५-४८।।

सनन्दन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं कृतात्मा कृतनिश्चयः।
आत्मनात्मानमास्थाय दृष्ट्वा चात्मानमात्मना॥४९॥
कृतकार्यः सुखी शान्तस्तूष्णीं प्रायादुदङ्मुखः।
शैशिरं गिरिमासाद्य पाराशर्यं ददर्श च॥५०॥
शिष्यानध्यापयन्तं च पैलादीन्वेदसंहिताः।
आरणयो विशुद्धात्मा दिवाकरसमप्रभः॥५१॥
पितुर्जग्राह पादौ च सादरं हृष्टमानसः। ततो निवेदयामास पितुः सर्वमुदारधीः॥५२॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—जनक का यह वचन सुनकर शुक के मन में आत्म-निश्चय हो गया। उन्होंने अपने स्वात्मा में ही आत्मा की प्रतिष्ठा किया। वे आत्मा में ही परमात्मतत्व का दर्शन पाने लगे। जब वे इस प्रकार कृतार्थ, सुखी एवं शान्त हो गये, तब मौनावलम्बन के साथ वे उत्तरस्थ हिमालय पर्वत पर गये। वहां

शुकदेव ने व्यासदेव का दर्शन किया, जो अपने पैल प्रभृति शिष्यों को वेदसंहिता का अध्ययन करा रहे थे। यह देखकर सूर्यसमप्रभ, विशुद्धात्मा, अरणिनन्दन ने सादर तथा प्रसन्न मन से पिता का चरण पकड़ लिया। तदनन्तर उदार बुद्धि शुक ने समस्त घटनाक्रम पिता से कहा—।।४९-५२।।

शुको जनकराजेन संवादं मोक्षसाधनम्। तच्छ्रुत्वा वेदकर्तासौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना।।५३।।
समालिङ्ग्य सुतं व्यासः स्वपार्श्वस्थं चकार च।।५४।।

शुकदेव ने राजा जनक से जो कुछ मोक्ष साधन सम्बन्धित उपदेश श्रवण किया था, वह सब उन्होंने पिता को सुना दिया। यह सुनकर वेदकर्त्ता (वेद का विभाग करने वाले) व्यास की अन्तरात्मा हर्षित हो गई। व्यास ने अपने पुत्र का आलिंगन करके उनको अपने पार्श्व में आसीन किया।।५३-५४।।

ततः पैलादयो विप्रो वेदान् व्यासादधीत्य च।
शैलशृङ्गाद्धुवं प्राप्ता याजनाध्यापने रताः।।५५।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने एकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।
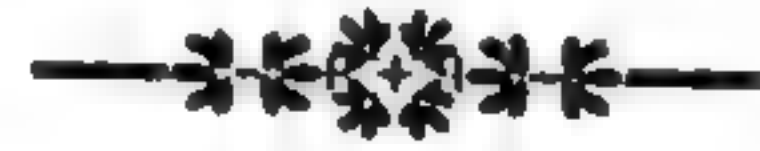
इस घटना के पश्चात् व्यासशिष्य पैल प्रभृति समस्त विप्र व्यासदेव से वेदों का अध्ययन करने के उपरान्त उस पर्वत शिखर से नीचे आये तथा वे यजन तथा अध्यापन कार्य में प्रवृत्त हो गये।।५५।।

।।५९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षष्टितमोऽध्यायः
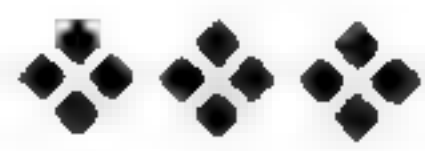
सनत्कुमार द्वारा शुक को ज्ञान का उपदेश

सनन्दन उवाच

अवतीर्णेषु विप्रेषु व्यासः पुत्रसहायवान्। तूष्णीं ध्यानपरो धीमानेकान्ते समुपाविशत्।।१।।
तमुवाचाशरीरी वाक् व्यासं पुत्रसमन्वितम्। भो भो महर्षे वासिष्ठ ब्रह्मघोषो न वर्तते।।२।।
एको ध्यानपरस्तूष्णीं किमास्से चिन्तयन्निव। ब्रह्मघोषैर्विरहितः पर्वतोऽयं न शोभते।।३।।
तस्मादधीष्व भगवन्सार्द्धं पुत्रेण धीमता। वेदान्ववेदविदा चैव सुप्रसन्नमनाः सदा।।४।।

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—शिष्यगण के गमन के पश्चात् व्यासदेव अपने पुत्र शुकदेव के साथ मौन तथा ध्यानरत हो गये। तभी वहां व्यास तथा उनके पुत्र ने अशरीरी वाणी का श्रवण किया—"हे महर्षि वाशिष्ठ! अभी वेदध्वनि नहीं है। तुम मौन तथा ध्यानतत्पर होकर क्या चिन्तन कर रहे हो। ब्रह्मघोष रहित

पर्वत शोभायमान नहीं हो रहा है। हे भगवान्! तुम धीमान् पुत्र के साथ प्रसन्न मन से सदा वेदाध्ययन निरत रहो।।१-४।।

तच्छ्रुत्वा वचनं व्यासो नभोवाणीसमीरितम्। शुकेन सह पुत्रेण वेदभ्यासमथाकरोत्॥५॥
तयोरभ्यसतोरेवं बहुकालं द्विजोत्तम। वातोऽतिमात्रं प्रववौ समुद्रानिलवीजितः॥६॥
ततोऽनध्याय इति तं व्यासः पुत्रमवारयत्। शुको वारितमात्रस्तु कौतूहलसमन्वितः॥७॥

व्यास ने जब इस आकाशीय अशरीरी वाणी को सुना, तब वे पुत्र शुक के साथ वेदाभ्यास करने लगे। हे द्विजोत्तम! इस प्रकार अभ्यास करते दीर्घकाल व्यतीत हो गया। तभी समुद्री वायु से प्रेरित जोरों से वायु प्रवाह होने लगा। इस उत्पात को देखकर व्यास ने कहा—"यह अनध्याय काल है" और पुत्र को वेदाभ्यास से रोक दिया। शुक इस प्रकार पिता द्वारा वेदाभ्यास से रोके जाने के कारण कुतूहलान्वित हो गये।।५-७।।

अपृच्छत्पितरं तत्र कुतो वायुरभूदयम्। आख्यातुमर्हति भवान्सर्वं वायोर्विचेष्टितम्॥८॥

शुकस्यैतद्वचः श्रुत्वा व्यासः परमविस्मितः।
अनध्यायनिमित्तेऽस्मिन्निदं वचनमब्रवीत्॥९॥

शुकदेव ने अपने पिता से प्रश्न किया—"यह वायु कहां से उद्भूत है? आप कृपया वायु की प्रत्येक चेष्टा को कहिये।" पिता व्यास शुक का वचन सुनकर अत्यन्त विस्मित हो गये। तब व्यास ने शुक को अनध्याय के निमित्त वायु स्वरूप कहने लगे।।८-९।।

दिव्यं ते चक्षुरुत्पन्नं स्वस्थं ते निश्चलं मनः।
तमसा राजसा चापि त्यक्तः सत्ये व्यवस्थितः॥१०॥
तस्यात्मनि स्वयं वेदान्बुद्ध्वा समनुचिन्तय।
देवयानचरो विष्णोः पितृयानश्च तामसः॥११॥
द्वावेत्तौ प्रत्ययं यातौ दिवं चाधश्च गच्छतः।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च यतः संयान्ति वायवः॥१२॥

सप्त ते वायुमार्गा वै तान्निबोधानुपूर्वशः। तत्र देवगणाः साध्याः समभूवन्महाबलाः॥१३॥

व्यास जी ने कहा—तुम्हारे भीतर दिव्य चक्षु उत्पन्न हो चुका है। तुम्हारा मन स्वस्थ एवं निश्चल है। तुमने तमस-रजस का त्याग कर दिया है तथा अब तुम सत्व पर व्यवस्थित रहते हो। अब तुम आत्मा में स्वयं वेदों का चिन्तन करो। पृथिवी से विष्णुलोक का मार्ग देवयान चर है। पितृयान तामस पथ है। पृथिवी से अन्तरिक्ष गमनार्थ ये दो मार्ग कहे जाते हैं। सात वायुमार्ग हैं। पहले तुम उसे समझो। सबसे पहले महाबली साध्य देवगण उत्पन्न हुये थे।।१०-१३।।

तेषामप्यभवत्पुत्रः समानो नाम दुर्जयः। उदानस्तस्य पुत्रोऽभूद्व्यानस्तस्याभवत्सुतः॥१४॥
अपानश्च ततो जज्ञे प्राणश्चापि ततः परम्। अनपत्योऽभवत्प्राणो दुर्द्धर्षः शत्रुमर्दनः॥१५॥
पृथक्कर्म्माणि तेषां तु प्रवक्ष्यामि यथा तथा। प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टा वर्तयते पृथक्॥१६॥

प्रीणनाच्चैव सर्वेषां प्राण इत्यभिधीयते। प्रेषयत्यभ्रसङ्घातान्धूमजांश्चोष्मजांस्तथा॥१७॥
प्रथमः प्रथमे मार्गे प्रवहो नाम सोऽनिलः। अम्बरे स्नेहमात्रेभ्यस्तडिद्भ्यश्चोत्तमद्युतिः॥१८॥
आवहो नाम सोऽभ्येति द्वितीयः श्वसनो नदन्।
उदयं ज्योतिषां शश्वत्सोमादीनां करोति यः॥१९॥
अन्तर्देहेषु चोदानं यं वदन्ति मनीषिणः। यश्चतुभ्यः समुद्रेभ्यो वायुर्द्धारयते जलम्॥२०॥
उद्धृत्य ददते चापो जीमूतेभ्यो वनेऽनिलः।
योऽद्भिः संयोज्य जीमूतान्पर्जन्याय प्रयच्छति॥२१॥
उद्वहो नाम बंहिष्ठस्तृतीयः स सदागतिः। संनीयमाना बहुधा येन नीला महाघनाः॥२२॥
वर्षमोक्षकृतारम्भास्ते भवन्ति घनाघनाः।
योऽसौ वहति देवानां विमानानि विहायसा॥२३॥
चतुर्थः संवहो नाम वायुः स गिरिमर्दनः। येन वेगवता रुग्णाः क्रियन्ते तरुजा रसाः॥२४॥
पञ्चम स महावेगो विवहो नाम मारुतः। यस्मिन्परिप्लवेः दिव्या वर्हत्यापो विहायसा॥२५॥
पुण्यं चाकाशयम्मायास्तोयं तिष्ठति तिष्ठति। दूरात्प्रतिहतो यस्मिन्नेकरश्मिर्दिवाकरः॥२६॥
योनिरंशुसहस्रस्य येन याति वसुन्धराम्।
यस्मादाप्यायते सोमो निधिर्दिव्योऽमृतस्य च॥२७॥

उनका समान नामवाला दुर्जय पुत्र था। उसका पुत्र था उदान। उदान का पुत्र था व्यान। व्यान का पुत्र था अपान। अपान का पुत्र था प्राण। लेकिन दुद्धर्ष तथा शत्रुमर्दन प्राण का कोई पुत्र नहीं था। अब इनके कर्मों का अलग-अलग वर्णन करता हूं। वायु ही समस्त प्राणीगण की चेष्टा है। जो समस्त प्राणीगण को तृप्ति प्रदान करे, वह वायु है प्राण। जो धूम्र से उत्पन्न, किंवा ताप से उत्पन्न मेघ को प्रथम मार्ग में ले जाये, वही **प्रवह** वायु है। आकाश में समस्त स्नेहमात्र पदार्थ तथा विद्युत् से भी श्रेष्ठ द्युतियुक्त प्रकाशित जो दूसरा वायु है, उसे **आवह** कहा गया है। यह आवह वायु बहते समय नाद करता है। जो चन्द्रादि ज्योतिष्क पिण्डों का उदय करता है, ऐसी देहाभ्यन्तर संचरणकारी वायु को मनीषी लोग उदान कह गये हैं। जो समुद्रों से जल ग्रहण करता है, जो जीमूत नामक मेघगण का जल वनों में वर्षण करता है, पर्जन्य को पुनः जल से सम्पन्न करता है, वह तृतीय सदागतिमान वायु **उद्वह** है। जो नीलवर्ण महान् मेघगण को इधर-उधर तितर-बितर करता है, उड़ाता है, जो देवगण के विमानों को उड़ाता है, वह गिरिमर्दन चतुर्थ वायु **संवह** है। वृक्षों से उत्पन्न रस में रोग प्रवेश जिस वायु से होता है, वह पंचम महावेग मारुत का नाम **विवह** है। जिसके कारण आकाश में दिव्य जल प्रवहमान होता रहता है, जिसने आकाश गंगा के पावन जल को सदा धारण किया है, जिस वायु से दूर से प्रतिहत सहस्त्र रश्मि दिवाकर एक रश्मि से लगते हैं, जिससे यह धरती प्रकाशमान है, जिसके द्वारा दिव्यनिधि चन्द्रमा भी पोषित होता है, वह षष्ठ वायु ही **परिवह** है। यह सभी जीवनधारण करने वालों हेतु श्रेष्ठ है। जो मरणकाल में सभी जीवधारियों के प्राणों को उनके देह से खींचता है।।१४-२७।।

षष्ठः परिवहो नाम स वायुर्जीवतांवरः। सर्वप्राणभृतां प्राणान्योऽन्तकाले निरस्यति॥२८॥

यस्य धर्मेऽनुवर्तेते मृत्युवैवस्तावुभौ। सम्यगन्वीक्षता बुद्धया शान्तयाऽध्यात्मनित्यया॥२९॥
ध्यानाभ्यासाभिरामाणां योऽमृतत्वाय कल्पते।
यं समासाद्य वेगेन दिशामन्तं प्रपेदिरे॥३०॥
दक्षस्य दश पुत्राणां सहस्राणि प्रजापतेः। येन वृष्ट्या पराभूतस्तोयान्येन निवर्तते॥३१॥
परीवहो नाम वरो वायुः स दुरतिक्रमः। एवमेते दितेः पुत्रा मरुतः परमाद्भुताः॥३२॥

मृत्यु तथा वैवस्वत यम जिसके वशीभूत रहते हैं, योगीगण जिनको शान्त एवं अध्यात्ममयी बुद्धि द्वारा सम्यक्तः अवलोकन करके ध्यानाभ्यासरत स्थिति में उपलब्ध करके अमृतत्व लाभ करते हैं, जिस वायु के वेग द्वारा प्रजापति दक्ष के दस सहस्र पुत्र समस्त दिशाओं के अन्त में पहुंच गये (जहां से वापस नहीं लौटा जा सकता) तथा जिस वायु के प्रभाव से वर्षा का जल ही पता नहीं कहां चला जाता है तथा वर्षा ही रुक जाती है, वह वायु है परिवह। यह किसी के द्वारा वशीभूत नहीं हो सकता। यह दुरतिक्रम है। ये सभी दिति के परम अद्भुत पुत्र मरुत् नामक हैं।।२८-३२।।

अनारमन्तः सर्वातः सर्वगाः सर्वचारिणः। एतत्तु महदाश्चर्य यदयं पर्वतोत्तमः॥३३॥
कम्पितः सहसा तेन पवमानेन वायुना। विष्णोर्निःश्वासवातोऽयं यदा वेगसमीरितः॥३४॥
सहसोदीर्यते तात जगत्प्रव्यथते तदा। तस्माद्ब्रह्मविदो ब्रह्म न पठन्त्यतिवायुतः॥३५॥

ये मरुत्गण सबके अभ्यन्तर में प्रविष्ट होने वाले, सर्वत्रगमन में सक्षम, सर्वत्र संचरण करने वाले तथा व्याप्त हैं। ऐसे वायु के प्रवाह होने के कारण पर्वतोत्तम हिमाचल कम्पित हो उठा। यह तो महद् आश्चर्य वृत्तान्त है। जब विष्णु निःश्वास त्याग करते हैं, वह वायु अत्यन्त वेगपूर्वक जब प्रवहमान होता है, तब हे तात! समस्त जगत् इस वायु से व्यथित हो जाता है। तभी जो ब्रह्मज्ञ हैं, वे ब्रह्म सम्बन्धित पाठ (वेदादि पाठ) से उस समय विरत हो जाते हैं।।३३-३५।।

वायोर्वायुभयं ह्युक्तं ब्रह्म तत्पीडितं भवेत्। एतावदुक्त्वा वचनं पराशरसुतः प्रभुः॥३६॥
उक्त्वा पुत्रमधीष्वेति व्योमगङ्गामगात्तदा।
ततो व्यासे गते स्नातु शुको ब्रह्मविदां वरः॥३७॥
स्वाध्यायमकरोद्ब्रह्मन्वेदवेदाङ्ग पारगः। तत्रस्वाध्यायसंसक्तं शुकं व्याससुतं मुने॥३८॥

मैंने वायुजनित समस्त भय का वर्णन कर दिया। इससे तो ब्रह्म भी पीड़ित हो जाते हैं। तदनन्तर पराशरनन्दन प्रभु व्यास ने शुक से कहा—"हे पुत्र! ब्रह्मन्! तुम अध्ययन करो।" तदनन्तर व्यासदेव व्योम नदी में स्नानार्थ चले गये। हे नारद! व्यासदेव के चले जाने पर ज्ञानीप्रवर वेदवेदांग पारंगत व्यासनंदन शुक स्वाध्याय में लग गये।।३६-३८।।

सनत्कुमारो भगवानेकान्ते समुपागतः। उत्थाय सत्कृतस्तेन ब्रह्मपुत्रो हि कार्ष्णिना॥३९॥
ततः प्रोवाच विप्रेन्द्र शुकं वेदविदां वरः। किं करोषि महाभाग व्यासपुत्रमहाद्युते॥४०॥

हे मुनिवर! जब शुकदेव एकान्तस्थ होकर अध्ययन निरत थे, उस समय वहां भगवान् सनत्कुमार का आगमन हो गया। उनको आया देखकर व्यासपुत्र आसन से उठे तथा उन्होंने सनत्कुमार की अभ्यर्थना तथा

स्वागत किया। तब उन्होंने विप्रेन्द्र उत्तम वेदज्ञ शुक से कहा—"हे महाद्युति! महाभाग व्यासनन्दन! तुम क्या कर रहे हो?।।३९-४०।।

शुक उवाच

स्वाध्याये सम्प्रवृत्तोऽहं ब्रह्मपुत्राधुना स्थितः। त्वद्दर्शनमनुप्राप्तः केनापि सुकृतेन च।।४१।।
किञ्चित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मोक्षार्थसाधनम्।
तद्वदस्व महाभाग यथा तज्ज्ञानमाप्नुयाम्।।४२।।

शुकदेव कहते हैं—हे ब्रह्मपुत्र! मैं अभी स्वाध्याय में प्रवृत्त हूं तथापि आपका यह दर्शन मेरे किसी पूर्वजन्मार्जित सुकृति से हो सका है। हे महाभाग! अब मैं आपसे किंचित् मोक्षसाधन श्रवण करना चाहता हूं। मैं मोक्ष सम्बन्धित ज्ञानलाभ कर सकूं, ऐसा कुछ उपदेश प्रदान करिये।।४१-४२।।

सनत्कुमार उवाच

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।।४३।।
निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता। सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्।।४४।।
मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति।
नालं स दुःखमोक्षाय सङ्गो वै दुःखलक्षणः।।४५।।
सक्तस्य बुद्धिर्भवति मोहजालविवर्द्धिनी। मोहजालावृतो दुःखमिहामुत्र तथाश्नुते।।४६।।
सर्वोपायेन कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः।
कार्यः श्रेयोर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ।।४७।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—विद्या के समान नेत्र तथा तप कुछ भी नहीं है। राग की तरह कोई अन्य दुःख ही नहीं है। समस्त पातकों से दूर होना, सर्वदा पुण्यसंचयरत रहना, साधु पुरुष की तरह अपना व्यवहार तथा सदाचार करना, यही उत्तम श्रेयः है। जो व्यक्ति श्रेयरहित इन्द्रिय सुखों में निरत है, वह अज्ञानान्धकार में निपतित हो जाता है। वह कदापि कथांचित दुःख मुक्त नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि संग ही प्रधान दुःख लक्षण है। जो विषयासक्त है, उसकी बुद्धि मोहवृद्धि करने वाली हो जाती है। जो व्यक्ति एवंविध मोह जालवद्ध है, वह इहलोक तथा परलोक उभय में दुःख भोग करता है। जो श्रेयार्थी है, वह सभी उपाय से काम-क्रोध को वशीभूत करे, क्योंकि ये दोनों श्रेयार्थी के श्रेयलाभ में विघ्न-विघात उत्पन्न करते रहते हैं।।४३-४७।।

नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः।।४८।।
आनृशंस्यं परा धर्मः क्षमा च परमं बलम्। आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम्।।४९।।
येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान्स च पण्डितः। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेभ्यश्चरत्यात्मवशैरिह।।५०।।

सदा तप की क्रोध से रक्षा करे। इसी प्रकार मत्सर दोष से श्री की रक्षा करनी चाहिये। मान तथा

अपमान के भय से विद्या की रक्षा करनी चाहिये। साथ ही आत्मा की रक्षा प्रमाद दोष से करनी चाहिये। परमधर्म है दया तथा परमबल है क्षमा। इसी प्रकार परममान है आत्मज्ञान तथा परमहित है सत्य! पण्डित तथा विद्वान् वही है, जिसने सब कुछ का त्याग कर दिया। यहां यह जान लेना चाहिये कि स्वयं को वश में करने वाले लोग इन्द्रियों के लिये ही इन्द्रिय विषयों का सेवन करते हैं। उनमें वे कदापि आसक्त नहीं होते।।४८-५०।।

असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः।
आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च।।५१।।
स विमुक्तः परं श्रेयो न चिरेणाधिगच्छति। अदर्शनमसंस्पर्शस्तथैवाभाषणं सदा।।५२।।
यस्य भूतैः सह मुने स श्रेयो विन्दते महत्। न हिंस्यात्सर्वभूतानि भूतैर्मैत्रायणश्चरेत्।।५३।।

जो अनासक्त, शान्त मन, विकाररहित तथा समाहित हैं तथा जो आत्मीयों के भावा-भाव से आसक्त नहीं होते, वही मुक्त है। उसे श्रेयलाभ शीघ्रता से होता है। जो सबको नहीं देखता, स्पर्श नहीं करता, बात नहीं करता वह परमश्रेयः प्राप्त करता है। सभी के प्रति हिंसाभावना न रखे सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रक्खे।।५१-५३।।

नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्।
आकिञ्चिन्यं सुसन्तोषो निराशिष्ट्वमचापलम्।।५४।।
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः। परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः।।५५।।
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम्।
निराशिषो न शोचन्ति त्यजेदाशिषमात्मनः।।५६।।
परित्यज्याशिषं सौम्य दुःखग्रामाद्विमोक्ष्यसे।
तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना।।५७।।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना। गुणसंङ्गेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा।।५८।।
ब्राह्मणो न चिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम्। द्वन्द्वारामेषु भूतेषु वराको रमते मुनिः।।५९।।

इस मानव जन्म को पाकर कदापि किसी के प्रति वैर भावना न रखे। अकिंचन रहना, सन्तोष के साथ रहना, निराश रहना (आशारहित होना), चपलतारहित होना ही आत्मज्ञानी तथा इन्द्रियजित के लिये परमश्रेयः है। हे तात! हे शुक! तुमने तो परिग्रह त्याग किया है और तुम जितेन्द्रिय हो गये हो। तुम शोकरहित स्थान ग्रहण करो तथा लोक-परलोक में अभय (निर्भय) रहो। जो निराश है (आशारहित) वह किसी चिन्ता से ग्रसित नहीं होता। इसलिये व्यक्ति ऐसी आशा का त्याग करे, जो अपने स्वार्थ हेतु हो। इस प्रक्रिया द्वारा तुम केवल अपने देह के सुख की भावना का त्याग करके समस्त दुःख के श्रम से मुक्ति पाओगे। जो सदा तप में लीन है, ऐसा संयमी उदार व्यक्ति समस्त आसक्ति के जनक विषयों का त्याग करे। इससे तुम आत्मसुख का त्याग करके दुःख एवं श्रम से रहित हो जाओगे। सततः तपःतत्पर संयमी उदार मुनि समस्त आसक्ति उत्पादक विषयों को प्रयत्नतः जीतें। जो गुणों के (विषयों के) संग में आसक्त नहीं हैं, सदा एकान्त में निवास करता है, उस ब्राह्मण को अनुत्तम सुखलाभ होता है। वराक व्रत में रमने वाला मुनि सुख-दुःख रूपी द्वन्द्व में लिप्त नहीं होता।।५४-५९।।

किञ्चित्प्रज्ञानतृप्तोऽसौ ज्ञानतृप्तो न शोचति।
शुभैर्लभेत देवत्वं व्यामिश्रैर्जन्म मानुषम्॥६०॥
अशुभैश्चाप्यधो जन्म कर्मभिर्लभतेऽवशः। तत्र मृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतम्॥६१॥

तथापि जो किंचित् प्रज्ञान वाले लोग हैं, वे अतृप्त रह जाते हैं, तथापि जो ज्ञान तृप्त है, वह शोक नहीं करता। जो शुभकर्मा है, उसे देवत्व मिलता है, जो शुभाशुभ उभय प्रकार के मिश्रकर्म का फल है। मनुष्य योनि में जन्म होना। अशुभ कर्मा व्यक्ति अधम योनि में जन्म लेता है। प्रत्येक जीव अपने कर्म के कारण मृत्यु, जरा, दुःख से सदा पीड़ा पाता रहता है। प्राणी स्वकर्म के कारण ही इन स्थिति को भोगता है तथा संसार में भटकता रहता है।।६०-६१।।

संसारं पश्यते जन्तुस्तत्कथं नावबुध्यसे। अहिते हितसंज्ञस्त्वमध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः॥६२॥
अनर्थे वार्थसंज्ञस्त्वं किमर्थ नावबुध्यसे। संवेष्ट्यमानं बहुभिर्मोहतन्तुभिरात्मजैः॥६३॥
कोशकारवदात्मानं वेष्टितो नावबुध्यसे। अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः॥६४॥

प्राणी यह सब संसार में देखकर भी इसे क्यों नहीं समझता! तुमको इस अहितप्रद जगत् में जो हितप्रद विषय हैं, उनका ज्ञान है। तुम अध्रुव जगत् (अनित्य जगत् में) में ध्रुव तत्व (नित्य तत्व) को जानने वाले हो। तुम अनर्थ (व्यर्थ) का त्याग करके अर्थमय तत्व को जानने वाले हो, तब तुम इस रहस्य से अवगत क्यों नहीं हो जाते? तुमने तो अपने ही मोहरूप तन्तु से बनी रस्सी से स्वयं को आबद्ध कर लिया है। जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने ही बुने तन्तुओं से आवेष्टित होकर पड़ा रहता है, तदनुरूप तुम भी अपने में ही उत्पन्न अज्ञान के जाल में बधे पड़े हो। यही अज्ञान दुःख का कारण है। अतः परिग्रह को त्यागो। परिग्रह ही दोषयुक्त होता है।।६२-६४।।

कृमिर्हि कोशकारस्तु बध्यते स्वपरिग्रहात्। पुत्रदारकुटुम्बेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः॥६५॥
सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव।
मोहजालसमाकृष्टान्पश्य जन्तून्सुदुःखितान्॥६६॥
कुटुम्बं पुत्रदारं च शरीरं द्रव्यसञ्चयम्। पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृतदुष्कृते॥६७॥
यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन वै। अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वमर्थं नानुतिष्ठसि॥६८॥

रेशम का कीट स्वयं अपने बुने तन्तु में आवेष्टित तथा आबद्ध होता है। तदनुरूप प्राणीगण अपने पुत्र-स्त्री-कुटुम्बादि में आसक्त रहकर कष्ट झेलते रहते हैं। तुम मोहजाल में आबद्ध इन दुःखी प्राणियों को देखो। समस्त कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर, द्रव्यसंचय, पातक तथा सुकृतादि अनित्य एवं अपने से अतिरिक्त इन सभी पराये पदार्थ को त्यागकर उसे इस लोक को त्याग देना है। अतः इन सबका मोह त्यागकर तुम अपने कल्याण के लिये प्रयत्नशील क्यों नहीं होते?।।६५-६८।।

अविश्रान्तमनालम्बमपाथेयमदैशिकम्। तमःकर्त्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि॥६९॥
नहि त्वां प्रस्थितं कश्चित्पृष्ठतोऽनुगमिष्यति।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां गच्छन्तमनुयास्यतः॥७०॥

तुम अविश्रान्त, अवलम्बन रहित (अविश्रान्त अर्थात् जहां तनिक भी विश्रम नहीं मिलता), मार्ग के पाथेय से रहित, देशरहित, अन्धकाराच्छन्न परलोक पथ पर कैसे (सुकर्म तथा धर्मरहित होकर) चल सकोगे? जब तुम इस परलोक मार्ग पर इस लोक का त्याग करके गमन करोगे, तब कौन तुम्हारी सहायता हेतु तुम्हारा अनुसरण करता चलेगा? इस स्थिति में केवल व्यक्ति का पाप-पुण्य उसका अनुसरण करता है।।६९-७०।।

विद्या कर्म च शौर्यं च ज्ञानं बहुविस्तरम्। अर्थार्थमनुशीर्यन्ते सिद्धार्थस्तु विमुच्यते।।७१।।

उस परलोक मार्ग पर जाते समय अर्थोपार्जनार्थ अर्जित विद्या, कृत कर्म, शौर्य किंवा विस्तृत ज्ञान भी कुछ नहीं कर पाते। जो उत्तमकर्मा योगी है, वह सिद्धार्थ योगी ही मुक्त हो पाता है।।७१।।

निबन्धिनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः।
छित्त्वेनां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः।।७२।।
तुल्यजातिवयोरूपान् हतान्पश्यसि मृत्युना।
न च नामास्ति निर्वेदो लोहं हि हृदयं तव।।७३।।

लोक के प्रति आसक्तिदायिनी जो मोह-ममता रूप रस्सी है, वह जीव को बन्धनयुक्त करती है परन्तु उसे सुकृती लोग भग्न कर देते हैं, परन्तु दुष्कृति व्यक्ति उस मोहरज्जु को भग्न नहीं पर पाते। सभी प्राणी अपनी जाति अपनी आकृति तथा आयु सम्पन्न लोगों को मृत्युमुख में जाते देखते हैं। लेकिन तुम्हारी तथा तुम्हारे समान प्राणीगण को निर्वेद ही नहीं होता। अतएव तुम्हारा हृदय लौह का है।।७२-७३।।

रूपकुलां मनःस्रोतां स्पर्शद्वीपां रसावहाम्। गन्धपङ्कां शब्दजलां स्वर्गमार्गदुरारुहाम्।।७४।।
क्षमारित्रां सत्यमयीं धर्मस्थैर्यकराकराम्।
त्यागवाताध्वगां शीघ्रां बुद्धिनावं नदीं तरेत्।।७५।।

यह संसार नदी रूप (आकृति) तट वाली, मन रूपी जलस्रोत वाली, स्पर्श रूपी दीप वाली, रस रूपी प्रवाह वाली है। इसमें गन्धरूपी कीचड़, शब्दरूपी जल है। यह स्वर्गमार्ग की ओर तो अत्यन्त दुर्गम है तथा वहां नहीं ले जाती। इसे क्षमारूपी पतवार, सत्यमय धर्मरूपी लंगर वाली नौका समझें। त्यागरूपी वायु के द्वारा इस नौका को खेया जाता है। इस संसार नदी को अपनी बुद्धिरूपी नाव द्वारा शीघ्रता से पार करे।।७४-७५।।

त्यक्त्वा धर्ममधर्मं च ह्युभे सत्यानृते त्यज। त्यज धर्ममसङ्कल्पादधर्मं चाप्यहिंसया।।७६।।
उभे सत्यानृते बुध्वा बुद्धिं परमनिश्चयात्।
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांशशोणितलेपनम्।।७७।।
धर्मावनद्धं दुर्गन्धिं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः। जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमस्थिरम्।।७८।।

धर्म-अधर्म-दोनों को त्यागो। शुभ को, सत्य-झूठ को त्यागो। धर्म का असंकल्प से तथा अहिंसा द्वारा अधर्म का नाश करे। सत्य तथा मिथ्या को सम्यक्तः जानकर निश्चयात्मिका अपनी बुद्धि द्वारा इस अनित्य देह से सम्बन्ध मत रखो। तदनन्तर मनुष्य अपनी निश्चयात्मिक बुद्धि से अस्थि युक्त, रोग मंदिर, अस्थिर धूल धूसरित इस नाशावान् देह में कोई आसक्ति न रखे। यह देह अस्थि के ढांचे पर आधारित है। स्नायु, मांस रक्तलेप से लिप्त पसीने तथा दुर्गन्धि से पूर्ण, मलमूत्रयुक्त, जरा-शोक से समाविष्ट एवं रोगों का गृह तथा अस्थिर है।।७६-७८।।

रजस्वलमनित्यं च भूतावासं समुत्सृज। इदं विश्वं जगत्सर्वमजगच्चापि यद्भवेत्॥७९॥
महाभूतात्मकं सर्वमस्माद्यत्परमाणुमत्। इन्द्रियाणि च पञ्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥८०॥
इत्येष सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः। सर्वैरिहेन्द्रियार्थैश्च व्यक्ताव्यक्तैर्हि बृंहितम्॥८१॥
पञ्चविंशक इत्येष व्यक्ताव्यक्तमयो गणः। एतैः सर्वैः समायुक्तमनित्यमभिधीयते॥८२॥

यह देह रज से पूर्ण अनित्य है। इसके प्रति ममत्व मोह का त्याग करो। जगत् तथा अजगत् है तथा महाभूतात्मक विश्व एवं परमाणुरूप पदार्थ, पंचेन्द्रियां, रूपमय साकर विश्व तथा त्रिगुण रूप सत्रह पदार्थ अव्यक्त संज्ञक हैं। संसार में इन्द्रियों के विषय व्यक्त हैं, साथ ही यह अव्यक्त समूह को लेकर पचीस पदार्थ व्यक्ताव्यक्त कहे जाते हैं। इन पचीसों से जो युक्त है, वही अनित्य है।।७९-८२।।

त्रिवर्गोऽत्र सुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा। य इदं वेद तत्त्वेन स वेद प्रभवाप्ययौ॥८३॥
इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तद्व्यक्तमभिधीयते। अव्यक्तमथ तज्ज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्॥८४॥
इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तर्प्यते। लोके विहितमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यति॥८५॥
परावरदृशः शक्तिर्ज्ञानवेलां न पश्यति। पश्यतः सर्वभूतानि सर्वास्ववस्थासु सर्वदा॥८६॥
ब्रह्मभूतस्य संयोगो नाशुभेनोपपद्यते। ज्ञानेन विविधात्क्लेशान्न निवृत्तिश्च देहजात्॥८७॥

जो मनुष्य त्रिवर्ग, सुख-दुःख, जीवन-मरण को जानता है, उसे सब कुछ तत्वतः ज्ञात हो जाता है। व्यक्त वह है, जिसे इन्द्रियों से ग्रहण करते हैं। जिसे इन्द्रियां ग्रहण नहीं करतीं उसे अनुमान आदि से ही जान सकते हैं। यही अव्यक्त है। इन्द्रियां तो देही को अखण्ड जलधारावत् तर्पित करती रहती हैं। प्रबुद्ध व्यक्ति तो समस्त जगत् को आत्मा में तथा आत्मा को समस्त जगत् में देखता है। ऐसा परावरदृश व्यक्ति शक्ति युक्त होकर ज्ञानबेला (?) को नहीं देखता। वह (स्वयं में) सभी अवस्थाओं में समस्त प्राणीमूह को (एकात्मरूपेण) देखता रहता है। जो सभी संयोग में ब्रह्मभूत हो चुका है, उसका अशुभ तो कभी हो ही नहीं सकता। केवल ज्ञानलाभ से ही विभिन्न प्रकार के देह में उत्पन्न होने वाले क्लेश नष्ट नहीं हो पाते।।८३-८७।।

लोकबुद्धिप्रकाशेन लोकमार्गो न रिष्यति।
अनादिनिधनं जन्तुमात्मनि स्थितमव्ययम्॥८८॥
अकर्तारममूढं च भगवानाह तीर्थवित्।
यो जन्तुः स्वकृतैस्तैस्तैः कर्मभिर्नित्यदुःखितः॥८९॥

मात्र लौकिक ज्ञान के प्रकाश द्वारा कोई भी अपनी संसार यात्रा को सफल (अर्थात् मुक्तियुक्त) नहीं कर सकता। इस हेतु मात्र ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये अध्यात्मज्ञान लाभ नितान्त आवश्यक रूप है। जो अव्यय, अनादि निधन आत्मा में स्थित है, स्वयं को अकर्ता मानता है, वही भगवान् तथा तीर्थविद् है। समस्त जीव अपने ही कृतकर्म से नित्य दुःखी बने रहते हैं।।८८-८९।।

स्वदुःखप्रतिघातार्थं हन्ति जन्तुरनेकधा। ततः कर्म समादत्ते पुनरन्यन्नवं बहु॥९०॥
तप्यतेऽथ पुनस्तेन भुक्त्वाऽपथ्यमिवातुरः।
अजस्त्रमेव मोहान्तो दुःखेषु सुखसंज्ञितः॥९१॥

वध्यते तप्यते चैव भयवत्कर्मभिः सदा। ततो निवृत्तो बन्धात्स्वात्कर्मणामुदयादिह॥९२॥
परिभ्रमति संसारे चक्रवद्बाहुवर्जितः। संयमेन च सम्बन्धन्निवृत्त्या तपसो बलात्॥९३॥
सम्प्राप्ता बहवः सिद्धिं अव्याबाधां सुखोदयाम्॥९४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे बृहदुपाख्याने षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

—※※※—

सामान्य व्यक्ति अपने दुःखनिवारणार्थ नाना जन्तुओं का वध करता है। फलतः वह स्वयं नाना कर्म जाल में स्वयं बंध जाता है। तत्जनित दुःखों से वह उसी प्रकार दुःखी होता रहता है, जैसे रुग्ण व्यक्ति स्वयं अपथ्य भोजन करके स्वयं दुःखी होता रहता है। मनुष्य कर्मजाल को सदा सुखमय मानकर भ्रमवशात् कष्ट भोग करता है। वह उस कर्मजाल जनित दुःखों से घिरा आवागमन रूप मृत्यु-जन्म-चक्र में घूमता रहता है। कालन्तर में कभी शुभ कर्मों का उदय होने पर वह ऐसे समस्त बन्धनों से छूटकर इस संसार चक्र में तब भी घूमता है (क्योंकि पुण्यकर्म का भी पुण्यफल भोग करना होगा अतः उससे भी व्यक्ति आवागमन से नहीं छूट पाता)। लेकिन जिसने संयम, निवृत्ति, भक्ति, तप का आश्रय लिया है, वह सुखप्रद तथा शुभसिद्धि प्राप्त करता है।।९०-९४।।

।।६०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
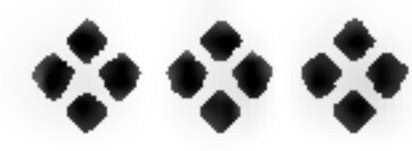
अथैकषष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार द्वारा शुक को ज्ञानोपदेश देना

सनत्कुमार उवाच

अशोकं शोकनाशार्थं शास्त्रं शान्तिकरं शिवम्।
निशम्य लभ्यते बुद्धिर्लब्धायां सुखमेधते॥१॥
हर्षस्थानसहस्राणि शोकस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥२॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—शोकरहित, शोकनाशक अर्थ युक्त शास्त्र कल्याणप्रद तथा शान्तिकर होते हैं। इसके (पाठ तथा श्रवण) अनुशीलन से मनुष्य बुद्धिलाभ हो जाने के कारण सुख लाभ करता है। संसार में हर्ष के हजारों स्थान हैं तथा शोक के भी सैकड़ों स्थान हैं, तथापि दिन-प्रतिदिन इसमें मूढ़ ही आबद्ध होता है, पण्डित आबद्ध नहीं होता।।१-२।।

अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते येऽपल्पबुद्धयः॥३॥

द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान्न चिन्तयेत्।ताननाद्रियमाणश्च स्नेहबन्धाद्विमुच्यते॥४॥
दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्त्तते। अनिष्टबुद्धितां यच्छेत्ततः क्षिप्रं विराजते॥५॥
नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति। अस्याभावेन युज्येत तच्चास्य तु निवर्तते॥६॥

अनिष्ट की प्राप्ति के कारण तथा प्रिय के (इष्ट के) वियोग के कारण अल्प बुद्धि लोग नाना मानसिक दुःखों को भोगते हैं। जो वस्तु अतीत हो गयी (चली गई) उसके गुण का कदापि चिन्तन न करे। ऐसा मनुष्य स्नेह बन्धन रूपी आसक्ति से मुक्ति लाभ करता है। जहां कहीं, जिस वस्तु अथवा व्यक्ति आदि के लिये मन में राग (लगाव) होता प्रतीत हो, तत्काल उसमें जो दोष हों, उनका अवलोकन करे। उन दोषों को जानने मात्र से उस व्यक्ति, वस्तु आदि के सम्बन्ध में यह ज्ञान होगा कि यह तो मेरे लिये अनिष्ट रूप है। अतः उस व्यक्ति को तत्काल उससे विराग होगा। जो विगत हो गयी वस्तु आदि का शोक करता है, उसे धर्म किंवा यश एवं अर्थलाभ कुछ भी नहीं हो पाता। इस भाव से विचार करने वाला सभी कष्ट से निवृत्त हो जाता है।।३-६।।

गुणैर्भूतानि युज्यन्ते तथैव च न युज्यते। सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते॥७॥
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति। दुःखेन लभते दुःखं महानर्थे प्रपद्यते॥८॥
दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते। यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत्॥९॥
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्। चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चाभिप्रवर्द्धते॥१०॥

मनुष्य कभी विषय के गुणों के प्रति आकृष्ट होते हैं, कभी आकृष्ट न होकर उससे विमुख भी हो जाते हैं। इसका यह कारण है कि सभी पदार्थ उसी व्यक्ति के लिये शोक का स्थान नहीं होते। (अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के लिये शोक का विषय पृथक् होता है)। ऐसा व्यक्ति महान् अनर्थ में तथा दुःख जाल में पड़ जाता है, जो मृत, नष्ट तथा विगत के सम्बन्ध में शोक करता है। जो व्यक्ति अपने शारीरिक किंवा मानसिक दुःखों को दूर नहीं कर पाता, तब वह उस विषय में शोक क्यों करता है? (अर्थात् जो दुःख दूर नहीं हो सकता तथा जिसे भोगना अवश्यम्भावी है, उसके लिये शोक कैसा?)। दुःखों को दूर करने वाली सबसे बड़ी भेषज (दवा) वह है कि दुःख की चिन्ता ही न करे। जो दुःख दूर नहीं किया जा सकता, उसे तो भोगना ही है, तब उसकी चिन्ता करके क्या लाभ? इससे तो दुःख और भी बढ़ जायेगा।।७-१०।।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः। एतद्विज्ञाय सामर्थ्यं न वान्यैः समतामियात्॥११॥
अनित्यं जीवितं रूपं यौवनं द्रव्यसञ्चयः।
आरोग्यं प्रियसंवासं न गृध्येत्पण्डितः क्वचित्॥१२॥

प्रज्ञा से मानसिक दुःखों को दूर करे। औषधि से शारीर दुःखों से छुटकारा पाये। यह जानकर मनुष्य अपने सामर्थ्य द्वारा दुःखों का नाश करे। इसके अतिरिक्त समता (दुःख में भी साम्यभाव) की प्राप्ति ही नहीं होती। जो विद्वान् व्यक्ति है, वह इसीलिये कदापि कहीं अनित्य जीवन, रूप, यौवन, द्रव्यसंचय, आरोग्य, प्रिय मिलन प्रभृति की इच्छा न करे।।११-१२।।

नाज्ञानप्रभवं दुःखमेकं शोचितुमर्हति। अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमम्॥१३॥
सुखात्प्रियतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः। जरामरणदुःखेभ्यः प्रियमात्मानमुद्धरेत्॥१४॥

भजन्ति हि शरीराणि रोगाः शारीरमानसाः।
सायका इव तीक्ष्णाग्राः प्रयुक्ता दृढ़धन्विभिः॥१५॥

ये सब अज्ञान जनित प्राप्त दुःख हैं। इनके लिये शोक करना अनुचित है। इन दुःखों को दूर करने का एकमात्र उपाय है कि दुःख भोग जनित कष्ट की चिन्ता न करके मनुष्य दुःखी क्यों हुआ है, उस मूल कारण का चिन्तन करें। तभी दुःख दूर हो सकेगा। जीवितावस्था में सुख से अधिक दुःख भोग होता है। इसलिये व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी प्रिय आत्मा का उद्धार जरा-मरण रूप (जन्म-मरणरूप) दुःख भोग से करे। जैसे दृढ़ धनुर्धर के तीक्ष्णाग्रभाग वाले बाण शरीर में प्रवेश करते हैं, तदनुरूप मानस तथा दैहिकरोग मानवदेह तथा मानव मन में प्रविष्ट हो जाते हैं।।१३-१५।।

व्याधितस्य चिकित्साभिस्त्रस्यतो जीवितैषिणः।
आमयस्य विनाशाय शरीरमनुकृष्यते॥१६॥
स्त्रंसति न निवर्तन्ते स्त्रोतांसि सरितामिव। आयुरादाय मर्त्यानां राज्यहानिः पुनःपुनः॥१७॥
अपयन्त्ययमत्यन्तं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। जातं मर्त्यं जरयति निमिषं नावतिष्ठते॥१८॥

जीवित रहने का इच्छुक व्यक्ति यदि चिकित्सा से भयभीत रहेगा, तब ऐसे रोगी का रोग ही उसका देहनाश करेगा। जैसे नदी की धारा दिन-रात आगे की ओर भागती जाती है, वैसे ही व्यक्ति की आयु को रात एवं दिन आगे लेकर भागते हैं (कम करते जाते हैं) वे कदापि पीछे वापस नहीं आते (अर्थात् जो आयु चली गयी, वह लौटती नहीं)। यह समय (काल) कृष्णपक्ष तथा शुक्लपक्ष के रूप में दूर होता जाता है, व्यतीत होता जाता है। यह समय जन्म लिये व्यक्ति को वृद्ध बना देता है। समय कभी क्षणमात्र भी नहीं रुकता!।।१६-१८।।

सुखदुःखाभिभूतानामजरो जरयत्यसून्। आदित्यो ह्यस्तमभ्येति पुनःपुनरुदेति च॥१९॥
अदृष्टपूर्वानादाय भावा नपरिशङ्कितान्। इष्टानिष्टा मनुष्याणां मतं गच्छन्ति रात्रयः॥२०॥
यो यदिच्छेद्यथाकामं कामानां तत्तदाप्नुयात्।
यदि स्यान्न पराधीनं पुरुषस्य क्रियाफलम्॥२१॥

जो लोग सुख-दुःख से अभिभूत रहते हैं, उनको यह सूर्य नित्यप्रति उदयास्त-युक्त होकर (दिन-रात रूपी समय द्वारा) वृद्ध बना देता है। यह सभी प्राणीगण को वृद्ध बनाता है। ये रात्रि इष्ट (अनुकूल) अनिष्ट (प्रतिकूल) रूप हैं। ये अदृष्ट पूर्व भाव (अनहोनी) युक्त घटना मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत कर देती है, जो उसकी आशा के प्रतिकूल होता है। यदि मनुष्य तथा प्राणीगण के कार्य का फल मिलना उसके अधीन होता है, तब तो वह अपनी इच्छानुरूप फल पा सकते थे।।१९-२१।।

संयताश्चैव दक्षाश्च मतिमन्तश्च मानवाः।
दृश्यन्ते निष्फलाः सन्तः प्रहीनाश्च स्वकर्मभिः॥२२॥
अपरे निष्फलाः सन्तो निर्गुणाः पुरुषाधमाः।
आशाभिरप्यसंयुक्ता दृश्यन्ते सर्वकामिनः॥२३॥
भूतानामपरः कश्चिद्धिंसाया सततोत्थितः। वञ्चनायां च लोकेषु ससुखेष्वेव जीर्यते॥२४॥

जो संयत, दक्ष तथा मतिमान् मनुष्य हैं, वे अपने कर्म को निष्फल होता देखकर वह कार्य त्याग देते हैं, परन्तु जो अन्य गुणरहित पुरुषाधम हैं भले ही उनकी आशा निराशा में बदल जाये तथा अपने कार्य का फल न पा सकें तथापि वे लोग सदा कामनाओं की प्राप्ति के प्रति आशायुक्त रहते अन्ततः नष्ट हो जाते हैं। अन्य ऐसे लोग हैं, जो सतत् हिंसा तथा वंचनापूर्ण कर्म में लगे रहते हैं, तथापि उनको इस सुख के साथ ही वृद्धावस्था भी आती है। उनका यह सुख जीर्ण हो जाता है।।२२-२४।।

अचेष्टमानमासीनं श्रीः कञ्चिदुपतिष्ठिति।
कश्चित्कर्माणि कुरुते न प्राप्यमधिगच्छति॥२५॥
प्रारब्धानि समाचष्टुं पुरुषस्य प्रधानतः। शुक्रमन्यत्र सम्भूतं पुनरन्यत्र गच्छति॥२६॥

यह भी देखा गया है कि कोई चेष्टारहित आसीन बैठा रहता है, तथापि श्री उसके पास आ जाती है। अन्य लोग ऐसे भी हैं कि प्रभूत कर्म करके भी उनको अपना प्राप्तव्य नहीं मिलता। इसलिये पुरुष का प्रारब्ध ही प्रधान है। वीर्य तो अन्यत्र उत्पन्न होता है परन्तु अन्यत्र जाकर (स्त्री गर्भ में जाकर) सन्तानोत्पादन करता है।।२५-२६।।

तस्य योनौ प्रसक्तस्य गर्भो भवति मानवः। आम्रपुष्पोपमा यस्य निवृत्तिरुपलभ्यते॥२७॥
केषाञ्चित्पुत्रकामानामनुसन्तानमिच्छताम्। सिद्धौ प्रयतमानानां नैवाण्डमुपजायते॥२८॥
गर्भादुद्विजमानानां क्रुद्धादाशीविषादिव।
आयुष्मान् जायते पुत्रः कथं प्रेतः पितेव सः॥२९॥
देवानिष्ट्वा तपस्तप्त्वा कृपणैः पुत्रहेतुभिः।
दशमासान्परिधृता जायन्ते कुलपांसनाः॥३०॥

जैसे आम की बौर गिरती है, तब आम्रफल होता है, कभी नहीं भी होता, तदनुरूप वह वीर्य कभी तो योनि में गर्भधारण करता है, कभी नष्ट हो जाता है। कतिपय व्यक्ति पुत्र-पौत्रादि की कामना से उनकी प्राप्ति हेतु नाना यत्न करते हैं, तथापि वे संतान रहित ही रहते हैं। एतद्विपरीत नाना मनुष्य सन्तान से वैसे ही भयभीत रहते हैं, जैसे लोग क्रोधित सर्प से भयग्रस्त रहते हैं, तथापि उनको आयुष्मान् पुत्र ऐसे प्राप्त होता है, मानो वह वहां परलोक से आकर जन्मा है! पुत्राभिलाषी दीनतापूर्ण भाववाले स्त्री-पुरुष देवगण की पूजा तथा तप से तप्त होकर जिस पुत्र को मातृगर्भ में स्थापित करते हैं, वे जन्मोपरान्त कुलनाशक सिद्ध होते हैं!।।२७-३०।।

अपरे धनधान्यानि भोगांश्च पितृसञ्चितान्।
विमलानभिजायन्ते लब्ध्वा तैरेव मङ्गलैः॥३१॥
अन्योन्य समभिप्रेत्य मैथुनस्य समागमे। उपद्रव इवादृष्टो योनौ गर्भः प्रपद्यते॥३२॥
स्निग्धत्वादिन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम्। परित्यजति यो दुःखं सुखमप्युभयं नरः॥३३॥
अत्येति ब्रह्मसोऽत्यन्तं सुखमप्यश्नुते परम्।
दुःखमर्था हि त्यजन्ते पालने च न ते सुखाः॥३४॥

श्रुत्वैव नाधिगमनं नाशमेषां न चिन्तयेत्।
अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिका नराः॥३५॥
अतृप्ता यान्ति विध्वंसं सन्तोषं यान्ति पण्डिताः।
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः॥३६॥

अनेक पुत्र जो विभिन्न मांगलिक कृत्य से प्राप्त होते हैं, वे जन्मतः पिता द्वारा संचित धन-धान्य तथा भोग के अधिकारी होते हैं। अन्य प्राणी अप्रिय मृत्यु के उपरान्त किसी स्त्री-पुरुष प्राणी के मैथुन समागम से उसके गर्भ में प्रविष्ट होते हैं। जो मनुष्य दुःख-सुख दोनों का त्याग कर देता है, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसे परमसुख की प्राप्ति होती है। धनोपार्जन में अत्यन्त कष्ट है, उसके रक्षण में तथा व्यय करने में भी सुख नहीं मिलता। इसलिये व्यक्ति धन को सदा दुःखप्रद समझे तथा धननाश हो जाने पर चिन्तित न हो। जो मनुष्य धन एकत्र करने में लगा रहता है, वह पूर्वापेक्षा और भी धनी स्थिति हो जाने पर भी तृप्त नहीं होता। वह और अधिक अर्जन की कामना करता मृत हो जाता है। केवल सन्तोषी विद्वान् ही प्रसन्न रहते हैं। सभी संचित का क्षय होता है। विनाश ही संचय का परिणाम है। सभी उंचाई का परिणाम है पतन।।३१-३६।।

संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।
अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम्॥३७॥
तस्मात्सन्तोषमेवेह धनं शंसन्ति पण्डिताः।
निमेषमात्रमपि हि योऽधिगच्छन्न तिष्ठति॥३८॥
सशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत्।
भूतेषु भावं सञ्चिन्त्य ये बुद्ध्या तमसः परम्॥३९॥
न शोचन्ति गताध्वानः पश्यन्ति परमां गतिम्।
सञ्चिन्वन्नेकमेवैनं कामानांवितृप्तकम्॥४०॥

संयोग का अन्त है वियोग तथा जीवन का परिणामान्त है मरण! तृष्णारूपी पिपासा का अन्त नहीं है। सन्तोष ही परम सुख है। विद्वान् लोग सन्तोष को ही परमफल कहते हैं। यही परमधन है। आयु की क्षीणता सतत् होती रहती है। यह क्षणपर्यन्त भी नहीं रुकती। अपना देह ही अनित्य है। तब यहां क्या नित्य समझा जाये? जो तमस से परे होकर समस्त प्राणीगण में मन से अतीत परमात्मा को स्थित जानकर उनका एकाग्रतापूर्वक चिन्तन करते रहते हैं, वे संसारयात्रा समाप्त हो जाने पर परमात्मा-चिन्तन करते शोकातीत हो जाते हैं।।३७-४०।।

व्याघ्रपशुमिवासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।
अथाप्युपायं सम्पश्येद्दुःखस्यायस्य विमोक्षणे॥४१॥
अशोचन्नारभेन्नैव युक्तश्चाव्यसनी भवेत्। शब्दे स्पर्शे रसे रूपे गन्धे च परमं तथा॥४२॥
नोपभोगात्परं किञ्चिद्धनिनो वाऽधनस्य वा।
प्राक्सम्प्रयोगाद्भूतानां नास्ति दुःखमनामयम्॥४३॥

जैसे वन में तृणार्थ विचरण करते पशु को व्याघ्र मृत्यु प्रदान करता है, तदनुरूप मनुष्य को मृत्यु ले जाती है। अतः दुःख निवृत्ति का उपाय सदा खोजते रहना चाहिये। शोकरहित होकर उपासना आरंभ कर देना चाहिये। जो व्यसनासक्त नहीं रहता, उसे मुक्ति मिलती है। व्यक्ति चाहे धनवान् हो अथवा निर्धन हो, वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा उत्तम गन्धादि विषय सुख को केवल उपभोग काल में ही अनुभूत करता है। उपभोग के उपरान्त कुछ नहीं बच पाता। जब तक प्राणीगण अन्य से संयोग नहीं करते, तब तक वे दुःखरहित रहते हैं।।४१-४३।।

विप्रयोगश्च सर्वस्य न वाचा न च विद्यया। प्रणयं परिसंहृत्य संस्तुतेष्वितरेषु च॥४४॥
विचरेदसमुन्नद्ध स सुखी स च पण्डितः। अध्यात्मगतमालीनो निरपेक्षो निरामिषः॥४५॥
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत्स सुखी भवेत्। सुखदुःखविपर्यासो यदा समुपपद्यते॥४६॥
चैनं प्रज्ञा सुनियतं त्रायते नापि पौरुषम्। स्वभावाद्यत्नमातिष्ठेद्यत्नवान्नावसीदति॥४७॥

संयोग के उपरान्त जब प्रिय वियोग होता है, उस समय सभी दुःखी होते हैं। जो व्यक्ति प्रियजन तथा इतरजन सभी के प्रति लगाव त्यागकर विचरण करता है, वही सुखी एवं पण्डित कहा जायेगा। जो स्वयं में तल्लीन, अध्यात्मगत, निरपेक्ष तथा निरामिष व्यक्ति है, जो आत्मस्थ होकर विचरण करता रहता है, वही सुखी है। जब व्यक्ति सुख के प्रति आकर्षित रहता है तथा दुःख में वैपरीत्य का अनुभव करता है, तब उसकी जो स्थिति होगी, उससे उस व्यक्ति को पौरुष तथा प्रज्ञा भी त्राण नहीं प्रदान कर सकती। जो स्वाभाविक स्थिति में सुख-दुःख में सम रहता हुआ दोनों का उपभोग करने वाला है तथा जो इस स्थिति हेतु यत्नतत्पर रहता है, उसे कदापि दुःख नहीं होता।।४४-४७।।

उपद्रव इवानिष्टो योनिं गर्भः प्रपद्यते। तानि पूर्वशरीराणि नित्यमेकं शरीरिणम्॥४८॥
प्राणिनां प्राणसंरोधे मांसश्लेष्मविचेष्टितम्। निर्दग्धं परदेहेन परदेहं बलाबलम्॥४९॥
विनश्यति विनाशान्ते नावि नावमिवाचलाम्।
सङ्गत्या जठरे न्यस्तं रेतोबिन्दुमचेतनम्॥५०॥

इस उपद्रव में पड़ा वह व्यक्ति (सुख-दुःख में पड़ा व्यक्ति जो समत्व रहित है) मरणोपरान्त नाना योनियों में जन्म लेता है। उसे अपने पूर्व जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी स्मरण नहीं रह जाता। उस देह में प्राण रुक जाने पर उसके मांस, श्लेष्मा आदि धातुओं से युक्त शरीर को लोग दग्ध कर देते हैं। इस प्रकार विनष्ट होकर वह प्राणी स्त्री-पुरुष समागम जनित शुक्र विन्दुरूपी होकर मातृगर्भ में प्रविष्ट होता है। वहां वह एक नौका से बंधी अन्य नौकावत् अचल हो जाता है।।४८-५०।।

केन यत्नेन जीवन्तं गर्भं त्वमिह पश्यसि।
अन्नपानानि जीर्यन्ते यत्र भक्ष्याश्च भक्षिताः॥५१॥
तस्मिन्नेवोदरे गर्भः किं नान्नमिव जीर्यति। गर्भे मूत्रपुरीषाणां स्वभावनियता गतिः॥५२॥
धारणे वा विसर्गे च न कर्त्तुं विद्यतेऽवशः। प्रभवन्त्युदरे गर्भा जायमानास्तथापरे॥५३॥
आगमेन सहान्येषां विनाश उपपद्यते। एतस्माद्योनि सम्बन्धाद्यो जीवन्परिमुच्यते॥५४॥

पूजां न लभते काञ्चित्पुनर्द्वन्द्वेषु मज्जति।
गर्भस्य सह जातस्य सप्तमीमीदृशीं दशाम्॥५५॥
प्राप्नुवन्ति ततः पञ्च न भवन्ति शतायुषः।
नाभ्युत्थाने मनुष्याणां योगः स्युर्नात्र संशयः॥५६॥
व्याधिभिश्च विवध्यन्ते व्याघ्रैः क्षुद्रमृगा इव।
व्याधिभिर्भक्ष्यमाणानां त्यजतां विपुलं धनम्॥५७॥
वेदना नापकर्षन्ति यतमानाश्चिकित्सकाः॥५८॥

उदर में अन्य-पानादि भक्ष्य पदार्थ खा लेने पर जीर्ण हो जाते हैं, तब यह उदरगर्भस्थ जीव क्यों जीर्ण नहीं हो पाता! गर्भ में तो मल-मूत्रादि की गति तो स्वभावनियत होती है। इसके धारण तथा त्याग में कोई भी स्ववश नहीं है। सभी परवश हैं। कुछ गर्भ उदर में पड़े हैं, कुछ पैदा हो रहे हैं, कोई जन्मतः विनष्ट होते हैं। जो मनुष्य इस योनि सम्बन्ध से मुक्त होता है (उत्पन्न हो जाता है), उसका कोई आदर नहीं होता। वह पुनः जीवन-मरण, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में पड़ता रहता है। गर्भ से निःसृत प्राणी (मनुष्य) को १२५ वर्ष की आयु भले मिल जाती है। मनुष्य के अभ्युत्थान में योग उतना प्रभावी नहीं है। जैसे व्याघ्र छोटे मृगादि का वध कर देता है, तदनुरूप व्यक्ति व्याधियों से सतत् पीड़ित रहता है। व्याधिग्रस्त मनुष्य की वेदना को प्रचुर धन व्यय करने पर भी सर्वप्रयत्न से भी चिकित्सक दूरीभूत नहीं कर पाते।।५१-५८।।

ते चापि विविधा वैद्याः कुशला सम्मतौषधाः।
व्याधिभिः परिकृष्यन्ते मृगा व्याघ्रैरिवार्दिताः॥५९॥
ते पिबन्ति कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च।
दृश्यन्ते जरया भग्ना नागैर्नागा इवोत्तमाः॥६०॥

जो औषधि ज्ञान तथा प्रयोग में कुशल वैद्यगण हैं, वे भी रोगों से वैसे ही ग्रस्त होते हैं, जैसे व्याघ्र मृगों को पकड़ लेता है। वे विभन्न प्रकार के कषाय स्वाद वाली औषधियों तथा घृत का पान करते हैं, वे जरा से वैसे ही भग्न किये जाते हैं, जिस प्रकार सामान्य हाथी को विशिष्ट प्रबल हाथी भग्न कर देता है।।५९-६०।।

कैर्वा भुवि चिकित्स्यन्ते रोगार्त्ता मृगपक्षिणः।
श्वापदाश्च दरिद्राश्च प्रायो नार्ता भवन्ति ते॥६१॥
घोरानपि दुराधर्षान्नृपतीनुग्रतेजसः। आक्रम्य रोग आदत्ते पशून्पशुपचो यथा॥६२॥

यह देखिये कि इस संसार में रोगी मृग-पक्षीगण की चिकित्सा करने वाला कौन है? यहां श्वान आदि मांसभक्षी एवं दरिद्रों की चिकित्सा करने वाला कौन है, तथापि वे आर्त नहीं होते! जो घोर, प्रचण्ड तेजस्वी, दुराधर्ष उग्रतेजा राजा हैं, उनको भी रोग आक्रमण करके उनका वध ऐसे कर देता है, जैसे वधिक व्याध पक्षियों का वध कर देता है।।६१-६२।।

इति लोकमनाक्रन्द्रं मोहशोकपरिप्लुतम्। स्त्रोतसा महता क्षिप्र ह्रियमाणं बलीयसा॥६३॥

न धनेन न राज्येन नोग्रेण तपसा तथा। स्वभावा ह्यतिवर्तन्ते ये निर्मुक्ताः शरीरिषु॥६४॥

इस प्रकार से यह अपार संसार प्रवाह मोह-शोक रूपी व्यापक, शीघ्रगतियुक्त बली प्रवाह में सबको बहाकर ले जाता है, इस अपार संसार को धन, राज्य, उग्र तप, से कोई पार नहीं कर सकता। जो व्यक्ति देहात्मबोध से मुक्त तथा स्वभावस्थ हैं, वे इसे पार कर लेते हैं।।६३-६४।।

उपर्युपरि लोकस्य सर्वो भवितुमिच्छति। यतते च यथाशक्ति न च तद्वर्तते तथा॥६५॥

न म्रियेरन्नजीर्येरन्सर्वे स्युः सार्वकामिकः। नाप्रियं प्रतिपद्येन्नुत्थानस्य फलं प्रति॥६६॥

सभी व्यक्ति ऐसे संसार को स्वयं औरों से श्रेष्ठ बनाने की इच्छा रखते हैं, इसलिये यथाशक्ति प्रयत्नरत भी रहते हैं, तथापि वे ऐसा करने में सफल नहीं होते। यहां प्राणी अपनी जरा तथा मृत्यु की आशंका से लापरवाह रहते हुये यह सोचकर सभी तरह की इच्छा करते रहते हैं मानों वे अमर तथा युवकरूप बने रहेंगे। वे अपने किये कर्म के फल को सदा प्रिय रूप से पाने का विश्वास किये रहते हैं (जबकि कर्मफल कर्मानुरूप मिलता है)।।६५-६६।।

ऐश्वर्यमदमत्ताश्च मानान्मयमदेन च। अप्रमत्ताः शठाः क्रूरा विक्रान्ताः पर्युपासते॥६७॥

शोकाः प्रतिनिवर्तन्ते केषाञ्चिदसमीक्षताम्।
स्वं स्वं च पुनरन्येषां न कञ्चिदतिगच्छति॥६८॥

महच्च फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसन्धिषु।
वहन्ति शिविकामन्ये यान्त्यन्ये शिविकारुहः॥६९॥

ऐश्वर्य के मद से मत्त, मानी, प्रमादपूर्ण, शठ, क्रूर, विक्रान्त व्यक्ति कर्म की ही उपासना करते हैं, उनको बदले में शोक मिलता है, तथापि ज्ञानी व्यक्ति शोकरहित रहते हैं। ऐसी स्थिति में यहां के कर्ममार्ग में फलजनित अत्यन्त विषमता परिलक्षित होती है। कर्मफल के ही कारण कोई पालकी में बैठाकर ले जाया जाता है, तो कोई उस पालकी में बैठे पुरुष को ढोता है।।६७-६९।।

सर्वेषामृद्धिकामानामन्ये रथपुरःसराः।
मनुजाश्च गतश्रीकाः शतशो विविधाः स्त्रियः॥७०॥

द्वन्द्वारामेषु भूतेषु गच्छन्त्येकैकशो नराः। इदमन्यत्परं पश्य नात्र मोहं करिष्यसि॥७१॥

समृद्ध कामी में से कतिपय रथारूढ़ होकर विचरण करते तो अन्य सैकड़ों श्रीरहित रहते हैं। अधिकांश नारीगण की भी यही दशा है। प्राणीगण सुख-दुःख के द्वन्द्व में क्रमशः पड़ते जाते हैं। तुम इनमें न पड़कर अन्य विषय का चिन्तन-मनन करो। इससे तुम मोहग्रस्त नहीं हो सकोगे।।७०-७१।।

धर्मं चापि त्यजाधर्मं त्यज सत्यानृतां धियम्।
सर्वं त्यक्त्वा स्वरूपस्थः सुखी भव निरामयः॥७२॥

एतत्ते परमं गुह्यमाख्यातमृषिसत्तम। येन देवाः परित्यज्य मर्त्यलोकं दिवं गताः॥७३॥

अतः तुम धर्म-अधर्म, सत्य-मिथ्या आदि का त्याग करो। ये सभी द्वन्द्वावस्था है। इनका त्याग करके स्व-स्वरूपस्थ एवं सुखी तथा द्वन्द्वरहित हो जाओ। हे ऋषिसत्तम! मैंने इस परम गुह्य तत्व का वर्णन कर दिया। इसी तत्वज्ञान के प्रभाव से देवगण ने मृत्युलोक का परित्याग करके स्वर्गलाभ किया था।।७२-७३।।

सनन्दन उवाच

इत्युक्त्वा व्यासतनयं समापृच्छ्य महामुनिः।
सनत्कुमारः प्रययौ पूजितस्तेन सादरम्॥७४॥
शुकोऽपि योगिनां श्रेष्ठः सम्यग्ज्ञात्वा ह्यवस्थितिम्।
ब्रह्मणः पदमन्वेष्टुमुत्सकः पितरं ययौ॥७५॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार ने व्यासपुत्र शुक के प्रश्नों का उत्तर दिया। तदनन्तर वे शुक द्वारा सादर पूजित होकर वहां से चले गये। उधर योगीगण में श्रेष्ठ शुकदेव ने भी लोकालय की स्थिति सम्यक्तः जान लिया। तदनन्तर वे ब्रह्मपदान्वेषणार्थ उत्सुक होकर पिता के यहां गये।७४-७५।।

ततः पित्रा समागम्य प्रणम्य च महामुनिः।
शुकः प्रदक्षिणीकृत्य ययौ कैलाशपर्वतम्॥७६॥
व्यासस्तद्विरहाद्धूनः पुत्रस्नेहसमावृतः। क्षणैकं स्थीयतां पुत्र इति चुक्रोश दुर्मनाः॥७७॥
निरपेक्षः शुको भूत्वा निःस्नेहो मुक्तबन्धनः। मोक्षमेवानुसञ्चिन्त्य गत एव परं पदम्॥७८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे एकषष्टितमोऽध्यायः।।६१।।

शुकदेव ने पिता के पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा किया तथा उनको प्रणाम करने के उपरान्त शुकदेव कैलास पर्वत जाने लगे। उधर व्यासदेव पुत्रस्नेह समावृत होकर उनके विरह के कारण जोरों से पुकारने लगे। "हे पुत्र! एक क्षण के लिये रुक जाओ।" परन्तु शुकदेव समस्त बन्धनों से मुक्त ममतारहित तथा निरपेक्ष एवं मात्र मोक्ष का चिन्तन करने वाले थे। इस प्रकार उन्होंने परमपद लाभ किया।।७६-७८।।

।।६१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

मोक्षधर्म का निरूपण

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदो भगवानृषिः। पुनः पप्रच्छ तं विप्र कुशाभिपतनं मुनिम्॥१॥

सूत जी कहते हैं—भगवान् ऋषि नारद ने यह प्रसंग सुनकर उन महामुनि सनन्दन से प्रश्न किया।।१।।

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं त्वयाऽतिकरुणात्मना। यच्छ्रुत्वा मानसं मेऽद्य शान्तिमग्र्यामुपागतम्॥२॥
पुनश्च मोक्षशास्त्रं मे त्वमादिश महामुने। नहि सम्पूर्णतामेति तृष्णा कृष्णगुणार्णवे॥३॥
ये तु संसारनिर्मुक्ता मोक्षशास्त्रपरायणाः। कुत्र ते निवसन्तीह संशयो मे महानयम।
तं छिन्धि सुमहाभाग त्वत्तो नान्यो विदांवरः॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आप करुणात्मा हैं। आपने हे भगवान्! वह सब प्रंसग कहा है। यह सुनकर मेरा मन अत्यन्त शान्ति से भर गया है। हे महामुनि! कृपया आप पुनः मोक्षशास्त्र का उपदेश मुझसे करिये। मेरी कृष्ण गुणार्णव सुनने की जो तृष्णा है, वह परितृप्त नहीं हो पा रही है। मुझे यह अत्यन्त महान् संशय है कि जो लोग संसार से मुक्त हो गये हैं, मोक्षशास्त्र परायण हैं। हे महाभाग! वे कहां निवास करते हैं? कृपया मेरे इस संशय का उच्छेद करिये, क्योंकि आपसे बढ़कर कोई भी ज्ञानसम्पन्न इस लोक में नहीं है।।२-४।।

सनन्दन उवाच

धारयामास चात्मानं यथाशास्त्रं महामुनिः॥५॥
पादात्प्रभृति गात्रेषु क्रमेण क्रमयोगवित्। ततः स प्राङ्मुखो विद्वानादित्येन विरोचिते॥६॥
पाणिपादं समाधाय विनीतवदुपाविशत्। न तत्र पक्षिसङ्घातो न शब्दो न च दर्शनम्॥७॥
यत्र वैयासकिर्द्धाम्नि योक्तुं समुपचक्रमे। स ददर्श तदात्मानं सर्वसङ्गविनिःसृतः॥८॥

देवर्षि सनन्दन कहते हैं—उस क्रमयोगज्ञ महामुनि योगज्ञ शुक्र ने शास्त्रविधि के अनुसार पैर आदि अंगों तक क्रमशः धारणा किया (अर्थात् मन्त्रन्यासादि किया)। तत्पश्चात् वे विद्वान् पूर्वाभिमुख हो गये। वे सूर्य किरणों से शोभायमान स्थान पर पैर तथा हाथों को यथाविधि करके आसीन हो गये। जहां पर व्यासनन्दन शुक आसीन थे वहां पक्षियों की जमघट नहीं थी, उनके शब्द भी सुनायी नहीं पड़ते थे। वहां अन्य प्राणी का दर्शन तक नहीं होता था। वहां शुकदेव ने स्वयं को सर्वसंगविनिर्मुक्त सा देखा।।५-८।।

प्रजहास ततो हासं शुकः सम्प्रेक्ष्य भास्करम्। स पुनर्योगमास्थाय मोक्षमार्गोपलब्धये॥९॥
महायोगीश्वरो भूत्वा सोऽत्यक्रामद्विहायसम्।
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्व्यासपुत्रः सुनिश्चितः॥१०॥

वहां शुक भास्करदेव को देखकर हंसने लगे। वे वहां मोक्षमार्ग लाभार्थ पुनः योगस्थ हो गये। तदनन्तर वे महायोगीश्वर होकर अन्तरिक्षचारी हो गये। अब वे व्यासपुत्र निश्चितरूपेण आकाश में विचरण करने लगे।।९-१०।।

तमुद्यन्तं द्विजश्रेष्ठं वैनतेयसमद्युतिम्। ददृशुः सर्वभूतानि मनोमारुतरंहसम्॥११॥
यथाशक्ति यथान्यायं पूजयाञ्चक्रिरे तथा। पुष्पैवर्षैश्च दिव्यैस्तमवचक्रुर्दिवौकसः॥१२॥
तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
ऋषयश्चैव संसिद्धाः कोऽयं सिद्धिमुपागतः॥१३॥

उन वैनतेय गरुड़ की द्युति वाले द्विजप्रवर को सभी लोगों ने देखा जो व्यासनन्दन मन एवं वायुवत् तीव्रगति से सम्पन्न थे। तब सभी ने यथाशक्ति उनकी पूजा किया। देवगण भी स्वर्ग के पुष्पों की वर्षा करते उनका सत्कार कर रहे थे। यह देखकर वहां गन्धर्वगण, अप्सरायें, ऋषि एवं सिद्धगण आश्चर्य कर रहे थे कि यह कौन हैं, जिन्होंने ऐसी सिद्धि प्राप्त किया है!।।११-१३।।

ततोऽसौ स्वाह्वयं तेभ्यः कथयामास नारद। उवाच च महातेजास्तानृषीन्संप्रहर्षितः॥१४॥

पिता यद्यनुगच्छन्मां क्रोशमानः शुकेति वै।
तस्मै प्रतिवचो देयं भवद्भिस्तु समाहितैः॥१५॥

हे नारद! उन महातेजस्वी ने हर्षित होकर उनसे अपना नाम कहा तथा प्रसन्नतापूर्वक ऋषिगण से कहा—"यदि मेरे पिता मुझे शुक! शुक! पुकारते इधर आ जायें तथा मुझे खोजें, तब आप लोग उनको समाहित होकर उत्तर दीजिये।"।।१४-१५।।

बाढमुक्तस्ततस्तैस्तु लोकान्हित्वा चतुर्विधाम्।
ततो ह्यष्टविधं त्यक्त्वा जहौ पञ्चविधं रजः॥१६॥
ततः सत्त्वं जहौ धीमान्स्तदद्भुतमिवाभवत्।
ततस्तस्मिन्पदे नित्ये निर्गुणे लिङ्गपूजिते॥१७॥

ततः स शृङ्गेऽप्रतिमे हिमवन्मेरुसन्निभे। संश्लिष्टे श्वेतपीते च रुक्मरूप्यमये शुभे॥१८॥
शतयोजनविस्तारे तिर्यगूर्ध्वञ्च नारद। सोऽविशङ्केन मनसा तथैवाभ्यपतच्छुकः॥१९॥

उन ऋषिगण से स्वीकृति मिलने पर शुक ने ४ प्रकार के लोकों का त्याग किया। उन्होंने तब आठ प्रकार के तमः एवं पांच प्रकार के रजः से मुक्ति पा लिया। तब उन धीमान् ने सत्व का भी त्याग किया। तभी वहां एक घटना घटित हो गयी। वे नित्य, निर्गुण, लिंगपूजित, मेरुवत् अप्रतिम शृंगयुक्त, मेरु के समान प्रकाशित, श्वेत पीतवर्ण एक साथ गुथे, शुभ स्वर्णिम, रौप्यमय ऊर्ध्व एवं तिर्यक् शतयोजन विस्तृत लोक में निःशंक मन से अवतीर्ण हो गये।।१६-१९।।

ते शृङ्गेत्यन्तसंश्लिष्टे सहसैव द्विधाकृते। अदृश्येत द्विजश्रेष्ठ तदद्भुतमिवाभवत्॥२०॥
ततः पर्वतशृङ्गाभ्यां सहसैव विनिसृतः। न च प्रतिजघानास्य स गतिं पर्वतोत्तमः॥२१॥
ततो मन्दाकिनीं दिव्यामुपरिष्टादभिव्रजन्। शुको ददर्श धर्मात्मा पुष्पितद्रुमकाननम्॥२२॥

हे द्विजप्रवर! वहां पर शुक ने अत्यन्त संश्लिष्ट (सटे), सहसा भागद्वय में बंटे, दो शिखर देखा। यह विचित्र घटना थी। उन पर्वतशृंग से भी आगे शुक चले गये तथापि वह पर्वतोत्तम उनकी गति को नहीं रोक सका। वहां आकाशमार्ग से आगे जाते दिव्यमन्दाकिनी को धर्मात्मा शुक ने देखा। उसके तट पर एक कानन भी था, जो अत्यन्त उत्फुल्ल फूलों से सज्जित था। वहां धर्मात्मा मुनि ने पुष्पित वृक्षों तथा वन को देखा।।२०-२२।।

तस्यां क्रीडासु निरताः स्नान्ति चैवाप्सरोगणाः।
निराकारं तु साकारा ददृशुस्तं विवाससः॥२३॥

तं प्रक्रमन्तमाज्ञाय पिता स्नेहसमन्वितः। उत्तमां गतिमास्थाय पृष्ठतोऽनुससार ह॥२४॥

उस नदी में अप्सरायें क्रीड़ा तत्पर थीं। वस्त्ररहित स्नानतत्पर साकार अप्सरागण ने वहां निर्गुण शुक को देखा। जब व्यासदेव ने पुत्र की ऐसी गतिविधि का समाचार पाया, तब वे पुत्र स्नेह के कारण स्नेहार्त्त होकर उत्तमगति से शुक का अनुसरण करते चलने लगे।।२३-२४।।

शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वाऽन्तरिक्षगाम्।
दर्शयित्वा प्रभावं स्वं सर्वभूतोऽभवत्तदा॥२५॥

अथ योगगतिं व्यासः समास्थाय महातपाः। निमेषान्तरमात्रेण शुकाभिपतनं ययौ॥२७॥

स ददर्श द्विधा कृत्वा पर्वताग्रं गतं शुकम्।
शशंसुर्मुनयः सिद्धा गतिं तस्मै सुतस्य ताम्॥२८॥

यह देखकर शुक ने अपनी अन्तरिक्ष गामी गति को वायु से भी तीव्र गति वाली बना लिया। उस समय शुक ने अपने प्रभाव को दिखलाते हुये अपनी स्थिति सर्वभूतमय कर लिया। उधर महातपस्वी व्यासदेव भी योगगति द्वारा निमेष मात्र में शुक का पीछा करते दौड़ने लगे। तभी व्यासदेव ने शुक को पर्वत शिखर भागद्वय में विभक्त करके अग्रगामी होते देखा। उस समय मुनि तथा सिद्धवृन्द ने भी व्यासनन्दन शुक की गति का वर्णन किया था। उसी समय व्यास ने शुक-शुक पुकारते हुये क्रन्दन किया था। इससे तीनों लोक निनादित हो उठे!।।२५-२८।।

ततः शुकेति शब्देन दीर्घेण क्रन्दितं तदा। स्वयं पित्रास्वरेणौच्चैस्त्रींल्लोकाननुनाद्य॥२९॥

शुकः सर्वगतिर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वतोमुखः।
प्रत्यभाषत धर्मात्मा भो शब्देनानुनादयन्॥३०॥

तत एकाक्षरं नादं भोरित्येवमुदीरयन्। प्रत्याहरज्जगत्सर्वमुच्चैः स्थावरजङ्गमम्॥३१॥

तब धर्मात्मा शुकदेव ने भी जो सर्वात्मा सर्वतोमुख "भोः" शब्द का उच्चारण किया। जिस एकाक्षर शब्द ध्वनि के होते ही समस्त स्थावर-जंगममय संसार ने उस शब्द की प्रतिध्वनि भी किया। तभी से इसी शुक ध्वनि की प्रतिध्वनि के रूप में गिरि-गह्वरों में जब कोई शब्द ध्वनि करता है, वहां से अलग-अलग प्रतिध्वनि श्रुतिगोचर होती है।।२९-३१।।

अन्तर्हितप्रभावं तं दर्शयित्वा शुकस्तदा। गुणान्सन्त्यज्य सत्त्वादीन्पदमध्यगमत्परम्॥३२॥

महिमानं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्यामिततेजसः। सोऽनुतनीतो भगवता व्यासा रुद्रेण नारद॥३३॥

किमु त्वं ताम्यसि मुने पुत्रं प्रति समाकुलः।
पश्यसि विप्र नायान्तं ब्रह्मभूतं निजान्तिके॥३४॥

इत्येवमनुनीतोऽसौ व्यासः पुनरुपाव्रजत्।
स्वाश्रमं स शुको ब्रह्मभूतो लोकांश्चचार ह॥३५॥

शुकदेव ने उस समय अपने अन्तर्हित् प्रभाव को दिखलाकर समस्त गुणों का त्याग किया तथा परमपद

प्राप्त कर लिया। अपने अमिततेजवान् पुत्र की महिमा का अवलोकन करके व्यासदेव आश्चर्यान्वित हो गये। हे नारद! तब रुद्रदेव ने भगवान् व्यास को प्रबोधित किया कि "हे मुनिवर! तुम किसलिये पुत्रस्नेह के कारण व्याकुल हो? हे विप्र! तुम अपने ब्रह्मभूत पुत्र को स्वयं में अपने निकट नहीं देख रहे हो?" (ब्रह्मरूप हो जाने के कारण वह तो सर्वत्र है)। जब भगवान् रुद्र ने व्यास को इस प्रकार प्रबोधित किया, तब व्यास अपने आश्रम चले गये। उस समय से शुकदेव भी ब्रह्मरूप होकर लोकों में विचरण करने लगे।।३२-३५।।

तत कालान्तरे ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः। नरनारायणौ द्रष्टुं ययौ बदरिकाश्रमम्॥३६॥
तत्र दृष्ट्वा तु तौ देवौ तप्यमानो महत्तपः। स्वयं च तत्र तपसि स्थितः शुकमनुस्मरन्॥३७॥
यावत्तत्र स्थितो व्यासःशुकःपरमयोगवित्। श्वेतद्वीपं गतस्तात यत्र त्वमगमः पुरा॥३८॥
तत्र दृष्टप्रभावस्तु श्रीमन्नारायणः प्रभुः। दृष्टः श्रुतिविमृग्यो हि देवदेवो जनार्दनः॥३९॥
स्तुतश्च शुकदेवेन प्रसन्नः प्राह नारद। त्वया दृष्टोऽस्मि योगीन्द्र सर्वदेवरहःस्थितः॥४०॥

कुछ काल के उपरान्त सत्यवती नन्दन व्यास भगवान् नर-नारायण के दर्शनार्थ बदरिकाश्रम गये। व्यास ने वहां नर-नारायण देव को जब महान् तप करते देखा, तब वे वहीं पर शुकदेव का स्मरण करते हुये तपःश्चरणरत हो गये। हे तात! जब तक वहां व्यासदेव स्थित होकर तप कर रहे थे, तब तक परम योगविद् शुकदेव श्वेतद्वीप चले गये। हे नारद! आपने भी पूर्वकाल में श्वेतद्वीप यात्रा किया था। वहां श्रुतियों द्वारा वन्दनीय तथा दृष्ट देवदेव जनार्दन शुकदेव की स्तुति से प्रसन्न हो गये। हे नारद! तब सर्वदेव वन्दित प्रभु ने शुक से कहा—"हे योगीन्द्र! तुमने तो सर्वदेव गोपनीय मेरा दर्शन पा लिया।"।।३६-४०।।

श्रीभगवानुवाच

सनत्कुमारादिष्टेन सिद्धो योगेन वाडव।
त्वं सदागतिमार्गस्थो लोकान्पश्य यथेच्छया॥४१॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तं नत्वारणिसम्भवः। वैकुण्ठं प्रययौ विप्र सर्वलोकनमस्कृतम्॥४२॥
वैमानिकैः सुरैर्जुष्टं विरजापरिचेष्टितम्। यं भान्तमनुभान्त्येते लोकः सर्वेऽपि नारद॥४३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे ब्रह्मन्! तुम सनत्कुमार द्वारा उपदिष्ट योगपथ से सिद्धिलाभ कर चुके हो। अब तुम सदागति (अबाधित गति, वायु गति) पर स्थित होकर यथेच्छ रूप से लोकों को देखो।" अरणि से उत्पन्न शुक को भगवान् वासुदेव यह उपदेश देकर (वर देकर) चले गये। तदनन्तर हे विप्र! शुक ने भगवान् के उद्देश्य से प्रणाम किया तथा वे सर्वलोकनमस्कृत वैकुण्ठ चले गये। हे नारद! यह लोक वैमानिक देवगण द्वारा वन्दनीय एवं विरजा का प्रिय स्थान है। हे नारद! उस धाम के प्रकाश से ही समस्त लोक भास्कर होते हैं।।४१-४३।।

यत्र विद्रुमसोपानाः स्वर्णरत्नविचित्रिताः।
वाप्य उत्पलसञ्छन्नाः सुरस्त्रीक्रीडनाकुलाः॥४४॥

दिव्यैर्हन्सकुलैर्घुष्टाः स्वच्छाम्बुनिभृताः सदा। तत्र द्वास्थैश्चतुर्हस्तैर्नानाभरणभूषितैः॥४५॥
विष्वक्सेनानुगैः सिद्धैः कुमुदाद्यैरवारितः। प्रविश्याभ्यन्तरं तत्र देववेवं चतुर्भुजम्॥४६॥

शान्तं प्रसन्नवदनं पीतकौशेयवाससम्। शङ्खचक्रगदापद्ममूर्तिमद्भिरुपासितम्॥४७॥
वक्षःस्थलस्थया लक्ष्म्या कौस्तुभेन विराजितम्। कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकटकाङ्गदभूषितम्॥४८॥
भ्राजत्किरीटवलयं मणिनूपुरशोभितम्। ददर्श सिद्धनिकरैः सेव्यमानमहर्निशम्॥४९॥
तं दृष्ट्वा भक्तिभावेन तुष्टाव मधुसूदनम्। नमस्ते वासुदेवाय सर्वलोकैकसाक्षिणे॥५०॥

वहां के सरोवरों की सीढ़ियां विद्रुम मणि रचित हैं। वे स्वर्ण तथा उत्पल से मढ़ी हैं, जहां देव नारीगण क्रीड़ा करती हैं, जिससे उनका जल सदा उद्वेलित बना रहता है। वे दिव्य कलहंसों के स्वरों से गुंजरित तथा स्वच्छ जलपूर्ण रहती हैं। जब शुकदेव उस वैकुण्ठधाम के द्वार पर आये तब नाना भूषणसज्जित चतुर्भुज विष्वक्सेन के अनुगामी सिद्ध कुमुद आदि ने शुकदेव को सादर धाम में प्रवेश कराया। वैकुण्ठधाम के अन्दर जाकर शुक ने वहां विराजमान शान्त, प्रसन्नमुख, पीतकौषेय वस्त्रधारी, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी उद्भासित मूर्त्ति, वक्ष पर लक्ष्मी, कौस्तुभमणि से शोभित, कटिसूत्र-ब्रह्मसूत्र धारण करने वाले, किरीट-वलय एवं मणिनूपुरों से सजे उन मधुसूदन देव को देखा जिनकी सेवा अहर्निश सिद्धगण करते रहते थे। यह देखकर शुकदेव अत्यन्त भक्तिभाव के साथ मधुसूदन को प्रसन्न करने हेतु स्तुति करने लगे। "हे वासुदेव! आप सर्वलोक साक्षी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं!।।४४-५०।।

शुक उवाच

जगद्बीजस्वरूपाय पूर्णाय निभृतात्मने। हरये वासुकिस्थाय श्वेतद्वीपनिवासिने॥५१॥
हंसाय मत्स्यरूपाय वाराहतनुधारिणे। नृसिंहाय ध्रुवेज्याय साङ्ख्ययोगेश्वराय च॥५२॥
चतुःसनाय कूर्माय पृथवे स्वसुखात्मने। नाभेयाय जगद्धात्रे विधात्रेऽन्तकराय च॥५३॥
भार्गवेन्द्राय रामाय राघवाय पराय च। कृष्णाय वेदकर्त्रे च बुद्धकल्किस्वरूपिणे॥५४॥
चतुर्व्यूहाय वेद्याय ध्येयाय परमात्मने। नरनारायणाख्याय शिपिविष्टाय विष्णवे॥५५॥

ऋतधाम्ने विधाम्ने च सुपर्णाय स्वरोचिषे।
ऋभवे सुव्रताख्याय सुधाम्ने चाजिताय च॥५६॥
विश्वरूपाय विश्वाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे।
यज्ञाय यज्ञभोक्त्रे च स्थविष्ठायाणवेऽर्थिने॥५७॥
आदित्यसोमनेत्राय सहओजोबलाय च।
ईज्याय साक्षिणेऽजाय बहुशीर्षाङ्घ्रिबाहवे॥५८॥

शुकदेव कहते हैं—आप जगद्बीजरूप, पूर्ण, निभृतात्मा, हरि, वासुकिनाग पर स्थित, श्वेतदीप निवासी, हंस, मत्स्यरूप, वराहतनुधारी, नृसिंह, ध्रुव के द्वारा पूजित, सांख्ययोगोक्त ईश्वर, सनकादि चाररूप, कूर्म, पृथु, स्वसुखात्मा, नाभेय, जगद्धाता, विधाता, अन्तकर, भार्गव, इन्द्र, राम, राघव, पर, कृष्ण, वेदकर्त्ता, बुद्ध-कल्किरूप, चतुर्व्यूह, वेद्य, ध्येय, परमात्मा, नर-नारायण नाम वाले, शिपिविष्ट, विष्णु, ऋत्धाम्, विधाम्न, सुपर्ण, स्वरोचिष, ऋभु, सुव्रत, सुधाम्न, अजित, विश्वरूप, विश्व सृष्टि-स्थिति तथा संहारक, यज्ञ,

यज्ञभोक्ता, स्थविष्ठ, अणु, अर्थी, आदित्य-सोमरूप नेत्रयुक्त, साहसी, ओजस्वी, बली, पूज्य, साक्षी, इज्य, साक्षी, अज, अनेक शिर-चरण-बाहुयुक्त।।५१-५८।।

श्रीशाय श्रीनिवासाय भक्तवश्याय शार्ङ्गिणे।
अष्टप्रकृत्यधीशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये॥५९॥
बृहदारण्यवेद्याय हृषीकेशाय वेधसे। पुण्डरीकनिभाक्षाय क्षेत्रज्ञाय विभासिने॥६०॥
गोविन्दाय जगत्कर्त्रे जगन्नाथाय योगिने।
सत्याय सत्यसन्धाय वैकुण्ठायाच्युताय च॥६१॥
अधोक्षजाय धर्माय वामनाय त्रिधातवे। धृतार्चिषे विष्णवे तेऽनन्ताय कपिलाय च॥६२॥

श्रीश, श्रीनिवास, भक्तवश्य, शार्ङ्गी, अष्टप्रकृति के अधीश, ब्रह्मा, अनन्तशक्ति, बृहदारण्यक (उपनिषद्) द्वारा ज्ञातव्य, हृषीकेश, वेधा, पुण्डरीकनयन, क्षेत्रज्ञ रूप से विभासित, गोविन्द, जगत्कर्तृ, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यसन्ध, वैकुण्ठ, अच्युत, अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, अमित तेजधारी, विष्णु अनन्त कपिल।।५९-६२।।

विरिञ्चये त्रिककुदे ऋग्यजुःसामरूपिणे। एकशृङ्गाय च शुचिश्रवसे शास्त्रयोनये॥६३॥
वृषाकपय ऋद्धाय प्रभवे विश्वकर्मणे। भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय दैत्यघ्ने निर्गुणाय च॥६४॥
निरञ्जनाय नित्याय ह्यव्ययायाक्षराय च। नमस्ते पाहि मामीश शरणागतवत्सल॥६५॥

विरिंचि, त्रिककुद्, ऋग, यजुः-सामरूपी, एकशृंग, शुचिस्रवा, शास्त्रयोनि, वृषाकपि, ऋद्ध, प्रभव, विश्वकर्म, भूर्भुवः स्वःस्वरूप, दैत्यघ्न, निर्गुण, निरंजन, नित्य, अव्यय, अक्षर! हे शरणागतवत्सल, मेरे ईश्वर! रक्षा करिये।।६३-६५।।

इति स्तुतः स भगवाञ्छङ्खचक्रगदाधरः। आरणेयमुवाचेदं भृशं प्रणतवत्सलः॥६६॥
व्यासपुत्र महाभाग प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत।
विद्यामाप्नुहि भक्तिं च ज्ञानी त्वं मम रूपधृक्॥६७॥

जब शुक ने शंख-चक्र-गदाधारी प्रभु की यह स्तुति किया, तब भक्तवत्सल भगवान् ने अरणि से उत्पन्न शुक से कहा—"हे महाभाग! व्यासपुत्र! सुव्रत! मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हो गया। हे ज्ञानवान्! तुम मेरे रूप को हृदय में धारण करके विद्या तथा भक्तिलाभ करो।"।।६६-६७।।

श्रीभगवानुवाच

यद्रूपं मम दृष्टं प्राक् श्वेतद्वीपे त्वया द्विज।
सोऽहमेवावतारार्थं स्थितो विश्वम्भरात्मकः॥६८॥
सिद्धोऽसि त्वं महाभाग मोक्षधर्मानुचिन्तया।
वरलोकान्यथा वायुर्यथा खं सविता तथा॥६९॥
नित्यमुक्तस्वरूपस्त्वं पूज्यमानः सुरैर्नरैः न।
भक्तिर्हि दुर्लभा लोके मयि सर्वपरायणे॥७०॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे व्यासपुत्र, महाभाग, सुव्रत! तुमने पूर्वकाल में श्वेतद्वीप में मेरे जिस रूप का दर्शन किया है, मैं उस विश्वम्भरात्मरूप में अवतार लूंगा। हे महाभाग! तुम मोक्षधर्म का चिन्तन करते रहने के कारण सिद्धियुक्त हो गये। जिस विधि से वायु ने उत्तम लोकों का लाभ किया था, सविता ने आकाश प्राप्त किया था, तदनुरूप तुम भी सुर तथा नरों से पूज्यमान होकर नित्यमुक्त रूप हो जाओ। जो मेरे प्रति सदा परायण रहने वाले व्यक्ति हैं, उनके लिये भी लोक में भक्ति दुर्लभ है।।६८-७०।।

तां लब्ध्वा नापरं किञ्चिल्लब्धव्यमवशिष्यते। आकल्पान्तः तपः संस्थौ नरनारायणावृषी।।७१।।
तयोर्निदेशतो व्यासो जनकस्तव सुव्रतः। कर्ता भागवतं शास्त्रं तदधीष्व भुवं व्रज।।७२।।

भक्ति प्राप्त करने के पश्चात् कुछ भी पाना बाकी नहीं रह जाता। यहां पर नर-नारायण कल्पान्त व्यापी तप का व्रत लेकर तपःश्चरण रत हैं। उनके निर्देशानुरूप तुम्हारे पिता व्यास भागवत शास्त्र की रचना करेंगे। हे सुव्रत! तुम पृथिवीलोक जाकर उस शास्त्र का अध्ययन करो।"।।७१-७२।।

स तप्यति तपस्त्वद्य पर्वते गन्धमादने। त्वद्वियोगेन खिन्नात्मा तं प्रसादय मत्प्रियम्।।७३।।

"वे व्यास इस समय गन्धमादन पर्वत पर तप कर रहें होगें। वे तुम्हारे वियोग से खिन्न हैं। तुम वहां जाकर मेरे प्रिय भक्त व्यास को प्रसन्न करो।"।।७३।।

एवमुक्तः शुको विप्र नमस्कृत्य चतुर्भुजम्।
यथागतं निवृत्तोऽसौ पितुरन्तिकमागमत्।।७४।।
अथ तं स्वान्तिके दृष्ट्वा पाराशर्य्यः प्रतापवान्।
पुत्रं प्राप्य प्रहृष्टात्मा तपसो निववर्त ह।।७५।।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। आरणेयसमायुक्तः स्वाश्रमं समुपागमत्।।७६।।

हे विप्र! प्रभु विष्णु का आदेश सुनने के अनन्तर शुकदेव ने उन चतुर्भुज वासुदेव को प्रणाम किया! वे जिस प्रकार यहां आये थे, उसी प्रकार से वापस जाकर पिता के पास आये। उन प्रतापी पराशर नन्दन व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को जब अपने निकट आया देखा, तब वे पुत्रलाभ हो जाने के कारण प्रसन्नात्मा होकर तप से निवृत्त हो गये। तत्पश्चात् व्यासदेव ने भगवान् नारायण तथा नरोत्तम नर को प्रणाम किया तथा वे अरणिजन्मा पुत्र शुकदेव के साथ अपने आश्रम वापस आ गये।।७४-७६।।

नारायणनियोगात्तु त्वन्मुखेन मुनीश्वर। चकार संहितां दिव्यां नानाख्यानसमन्विताम्।।७७।।
वेदतुल्यां भागवतीं हरिभक्तिविवर्द्धिनीम्। निवृत्तिनिरतं पुत्रं शुकमध्यापयच्च ताम्।।७८।।
आत्मारामोऽपि भगवान्पाराशर्यात्मजः शुकः।
अधीतवान्संहितां वै नित्यं विष्णुजनप्रियाम्।।७९।।
एवमेते समाख्याता मोक्षधर्मास्तवानघ। पठतां शृण्वतां चापि हरिभक्तिविवर्द्धनाः।।८०।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे बृहदुपाख्याने मोक्षधर्मनिरूपणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

।।समाप्तश्चायं द्वितीयः पादः।।

हे मुनीश्वर! नारायण की आज्ञा पाकर व्यास ने नाना आख्यान समन्वित वेद के समान भागवती तथा हरिभक्ति विवर्द्धित करने वाली संहिता की रचना किया। उन्होंने उस संहिता का अध्ययन अपने निवृत्तिमार्ग में निरत पुत्र शुकदेव को कराया। आत्माराम स्थिति प्राप्त होने पर भी भगवान् व्यासात्मज शुक ने उस नित्य विष्णुजनप्रिय संहिता का अध्ययन किया। हे निष्पाप! मैंने इस प्रकार आपसे यह मोक्षधर्मात्मक प्रसंग कह दिया। इसका पाठ तथा श्रवण हरिभक्ति विवर्द्धक है।।७७-८०।।

।।६२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ तृतीयः पादः

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पाशुपत दर्शन तत्व वर्णन

शौनक उवाच

सूत साधो चिरञ्जीव सर्वशास्त्रविशारद। यत्त्वया पायिता विद्वन्वयं कृष्णकथामृतम्॥१॥
श्रुत्वा तु मोक्षधर्मान्वै नारदो भगवत्प्रियः। सनन्दनमुखोद्गीतान्किं पप्रच्छ ततः परम्॥२॥
मानसा ब्रह्मणः पुत्राः सनकाद्या मुनीश्वराः।
चरन्ति लोकान्संसिद्धा लोकाद्धरणतत्पराः॥३॥
नारदोऽपि महाभाग नित्यं कृष्णपरायणः। तेषां समागमे भद्रा का कथा लोकपावनी॥४॥

ऋषि शौनक कहते हैं—हे साधु सूत जी! आप सर्वशास्त्र पारंगत हैं। आप चिरञ्जीवी हो जायें। हे विद्वान्! आपने कृष्ण के कथामृत का पान कराया है। भगवत् प्रिय नारद ने सनन्दन ऋषि के मुख से गाये गये मोक्षधर्म को सुनने के पश्चात् आगे क्या प्रश्न किया? ब्रह्मदेव के मानसपुत्रगण सनकादि मुनीश्वर लोकों के उद्धार में तत्पर होकर त्रैलोक्य विचरण करते रहते हैं। महाभाग नारद नित्य कृष्ण परायण रहते हैं। उन मुनियों के समागम काल में महामंगलप्रदा लोकों को पावन करने वाली क्या वार्त्ता होने लगी, वह कहिये।।१-४।।

सूत उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया लोकोपकारिणा। कथयिष्यामि तत्सर्वं यत्पृष्टं नारदर्षिणा॥५॥
श्रुत्वा सनन्दनप्रोक्तान्मोक्षधर्मान्सनातनान्। नारदो भार्गवश्रेष्ठ पुनः पप्रच्छ तान्मुनीन्॥६॥

सूत जी कहते हैं—हे महाभाग! आपने अति उत्तम साधु प्रश्न पूछा है। उस समय देवर्षि नारद ने जो कुछ पूछा था, उसका वर्णन मैं आपसे सम्यक् रूप से करूंगा। सनन्दन कथित सनातन मोक्षधर्म को सुनकर हे भार्गवप्रवर! नारद ने उन देवर्षि से पुनः प्रश्न किया।।५-६।।

नारद उवाच

सर्वदेवेश्वरो विष्णुर्वेदे तन्त्रे च कीर्तितः।
समाराध्यः स एवात्र सर्वैः सर्वार्थकाङ्क्षिभिः॥७॥

कैर्मन्त्रैर्भगवान्विष्णुः समाराध्यो मुनीश्वराः। के देवाः पूजनीयाश्च विष्णुपादपरायणैः॥८॥
तन्त्रं भागवतं विप्रा गुरुशिष्यप्रयोजकम्। दीक्षणं प्रातराद्यं च कृत्यं स्याद्यत्तदुच्यताम्॥९॥
यैर्मासैः कर्मभिर्यैवा जप्यैर्होमादिभिस्तथा। प्रीयेत परमात्मा वै तद्ब्रूत मम मानदाः॥१०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—विष्णु को तन्त्रों तथा वेदों में सर्वदेवेश्वर कहा गया है। उन (ग्रन्थों) में यह भी कहा गया है कि जो इस लोक में समस्त मनोरथ प्राप्त करना चाहता है, वह उन भगवान् विष्णु की आराधना करे। हे मुनीश्वर! किन मन्त्रों से विष्णु भगवान् की आराधना करनी चाहिये? विष्णु चरण परायण लोग किन देवता का पूजन करें। हे विप्रप्रवर! आप कृपया भागवत तन्त्र, गुरु-शिष्य प्रयोजक दीक्षा, प्रातः आदि कालों के लिये विहित कृत्य, यह सब कहिये। हे मानद! जिस मास में जिस कर्म, जप, हवनादि से परमात्मा प्रसन्न होते हैं, आप कृपापूर्वक वह सब कहें।।७-१०।।

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य महात्मनः। सनत्कुमारो भगवानुवाचार्कसमद्युतिः॥११॥

सूत जी कहते हैं—महात्मा नारद का यह कथन सुनकर सूर्यवत् द्युति वाले भगवान् सनत्कुमार कहने लगे।।११।।

सनत्कुमार उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि तन्त्रं भागवतं तव।
यज्ज्ञात्वाऽमलया भक्त्या साधयेद्विष्णुमव्ययम्॥१२॥

त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रं प्रचक्षते। भोगमोक्षक्रियाचर्याह्वया पादाः प्रकीर्तिताः॥१३॥

पादार्थास्तु पशुपतिः पशुपाशास्त्रय एव हि।
पतिस्तत्र शिवोह्येको जीवास्तु पशवः स्मृताः॥१४॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! सुनिये। मैं भागवत तन्त्र आपसे कहता हूं। इसे जानकर अपनी अमल भक्ति द्वारा मनुष्य अव्यय विष्णु की कृपा पा सकता है। यह महातंत्र त्रिपदार्थ वाला एवं चतुष्पाद कहा गया है। इसके चतुःपाद हैं—**भोग, मोक्ष, क्रिया तथा चर्या**। इसके त्रिपदार्थ हैं—**पशुपति, पशु तथा पाश**। भगवान् शिव ही पति हैं तथा जीव पशु कहा गया है।।१२-१४।।

यावन्मोहादिसंयोगाः स्वरूपाबोधलक्षणाः। तावत्पशुत्वमेतेषां द्वैतवत्पश्य नारद॥१५॥

पाशाः पञ्चविधास्त्वेषां प्रत्येकं तेषु लक्षणम्।
पशवस्त्रिविधाश्चापि विज्ञाताः कलसंज्ञिकाः॥१६॥

तलपाकलसंज्ञश्च सकलश्चेति नामतः। तत्राद्यो मलसंयुक्तो मलकर्मयुतः परः॥१७॥

मलमायाकर्मयुतस्तृतीयः परिकीर्तितः। आद्यस्तु द्विविधस्तत्र समासकलुषस्तथा॥१८॥
असमासमलश्चेति द्वितीयोऽपि पुनस्तथा। पक्वापक्वमलेनैव द्विविधः परिकीर्तितः॥१९॥

शुद्धेऽध्वनि गतावेतौ विज्ञानप्रलयाकलौ।
कलादितत्त्वनियतः सकलः पर्यटत्ययम्॥२०॥

कर्मानुगशरीरेषु तत्तद्भुवनगेषु च। पाशाः पञ्च तथा तत्र प्रथमौ मलकर्मजौ॥२१॥
मायेयश्च तिरोधानशक्तिजो बिन्दुजः परः। एकोऽप्यनेकशक्तिर्दृक्क्रियाच्छादनकोमलः॥२२॥

हे नारद! जब तक स्वरूप बोध में बाधक मोहादि संयोग से जीव ग्रसित रहता है, तब तक उसमें पशुत्वरूपी द्वैतभाग परिलक्षित होता है। उन पशुगण के पाश भी पंचविध हैं। प्रत्येक के पृथक् लक्षण होते हैं। पशु भी त्रिविध तथा **कलसंज्ञक** कहे गये हैं। इनके नाम हैं तल, पाकल, सकल। तल जो है, वह मलयुक्त पशु है। पाकल तो मल, कर्म युक्त रहता है। सकल सदा मल, माया तथा कर्मयुक्त रहता है। तल के दो भेद हैं। समास तथा कलुष। पाकल के भेदद्वय हैं असमास तथा मल। सकल के भेदद्वय हैं पक्वमल तथा अपक्वमल। जो शुद्धमार्गगामी हैं, वे विज्ञान कल तथा प्रलयाकल मार्ग पर जाते हैं। लेकिन (उपरोक्त) कला आदि तत्वों पर जो नियत लगे रहते हैं, उनको तदनुरूप कर्मानुसार देह धारण करना पड़ता है। वे नाना लोक में कर्मभोगार्थ गमन करते हैं। पाश भी पंचविध है। पहला है मल तथा कर्म जनित **मायेय**। तदनन्तर तिरोधान शक्तिज है तदनन्तर परविन्दुज है। (पहले में तीन पाश हैं तल जनित, पाकल जनित तथा सकल जनित बाकी दो हैं। तिरोधान शक्तिज तथा परविन्दुज)। एक होने पर यह नानाशक्ति युक्त है और नेत्र, क्रिया एवं आच्छादन जनित कोमलता वाला है।।१५-२२।।

तुषकञ्चुकवद्देहनिमित्तं चात्मनामिह। धर्माधर्मात्मकं कर्म विचित्रफलभोगदम्॥२३॥

प्रवाहनित्यं तद्बीजाङ्कुरन्यायेन संस्थितम्।
इत्येतौ प्रथमौ चाथ मायेयाद्यान् शृणु द्विज॥२४॥

सच्चिदानन्दविभवः परमात्मा सनातनः। पतिर्जयति सर्वेषामेको बीजं विभुः परम्॥२५॥

ये पाश खोल तथा कंचुक जैसे आवरण वाले हैं। जैसे अन्न के बीज की रक्षा तुष (भूंसी) से होती है, वैसे ही ये देह रक्षण करते हैं अथवा (बोध का) आवरण कार्य करते हैं। समस्त कर्म, धर्म एवं अधर्म से ही सम्बन्धित होते हैं। वे विचित्र फलप्रद होते हैं। यह (कर्मप्रवाह) नित्य है, सतत् है। इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। यह बीज तथा अंकुरवत् स्थित रहता है। हे द्विज! यह मायेय नामक प्रथम पाश है। इस पाश पर सच्चिदानन्द वैभवयुक्त सनातन परमात्मा पति (पशुपति) ही विजय पा सकता है। वह प्रभु सबका बीज एवं परमविभु है।।२३-२५।।

मनस्यति न चोदेति निवृत्तिं च प्रयच्छति।
वर्वर्ति दृक्क्रियारूपं तत्तेजः शाम्भवं परम्॥२६॥
शक्तो मया हरौ भुक्तो मुक्तो पशुगणस्य हि।
तच्छक्तिमाद्यामेकान्तां चिद्रूपाख्यां वदन्ति हि॥२७॥

तयो चोज्जृम्भितो बिन्दुर्दिक्क्रियात्मा शिवाभिधः।
अशेषतत्त्वजातस्य कारणं विभुरव्ययम्॥२८॥

यह परमात्मा कुछ भी कामना नहीं करता। वर्द्धित भी नहीं होता, (जैसा है तैसा ही रहता है)। जो उसका सेवक है, उसे निवृत्ति का लाभ होता है। यह परम शांभव तेज दृक्क्रियारूपेण विद्यमान है। आचार्यों का मत है कि उन हर की शक्ति एकाकी आद्य शक्ति है। इससे ही प्रेरित होकर दृक् एवं क्रियारूप विभु प्रभु शक्तिमान् होकर सर्वतत्वकारण हो जाते हैं। वे प्रभु अव्यय तथा विभु हैं।।२६-२८।।

अस्मिन्निलीना निखिला इच्छायाः शक्तयः स्वकम्।
कृत्यं कुर्वन्ति तेनेदं सर्वानुग्राहकं मुने॥२९॥
चिज्जडानुग्रहार्थाय यस्य विश्वं सिसृक्षतः।
आद्योन्मेषोऽस्य नादात्मा शान्त्यादिभुवनात्मकः॥३०॥

समस्त इच्छाशक्ति इन प्रभु में प्रविलीन होकर अपना-अपना कृत्य करती है। हे मुनिप्रवर! यह प्रभु सभी पर अनुग्रह करता रहता है। ये शिव सृष्टि कार्य की इच्छा के कारण जड़-चेतन पर कृपा वर्षा करने के लिये सर्वप्रथम शान्त्यादि भुवनात्मक नादात्मा के रूप में उन्मिषित होते हैं।।२९-३०।।

तच्छक्तित्वं विप्रेन्द्र प्रोक्तं सावयवं परम्।
ततो ज्ञानक्रियाशक्त्योस्तथोत्कर्षापकर्षयोः॥३१॥
प्रसरश्चाप्यभावेन तत्त्वं चैतत्सदाशिवम्।
दृक्शक्तिर्यत्र न्यूग्भूता क्रियाशक्तिर्विशिष्यते॥३२॥

हे विप्रेन्द्र! इस शक्तित्व को परम सावयव कहा गया है। इसी शक्ति के कारण ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति का तथा उत्कर्ष एवं अपकर्ष का विस्तार हो गया। वह सदाशिव तत्व है। वहां जब दृक् शक्ति की दुर्बलता होती है, तब क्रियाशक्ति का प्राबल्य हो जाता है।।३१-३२।।

ईश्वराख्यं तु तत्तत्त्वं प्रोक्तं सर्वार्थकर्तृकम्।
यत्र क्रिया हि न्यूग्भूता ज्ञानाख्योद्रेकमश्नुते॥३३॥
तत्तत्त्वं चैव विद्याख्यं ज्ञानरूपं प्रकाशकम्।
नादो बिन्दुश्च सकलः सदाख्यं तत्त्वमाश्रितौ॥३४॥
विद्येशाः पुनरैशं तु मन्त्रा विद्याभिधं पुनः।
इमानि चैव तत्त्वानि शुद्धाध्वेति प्रकीर्तितम्॥३५॥

यह ईश्वरतत्व तत्वतः सर्वार्थकर्तृकत्वमय है। यहां जब क्रियाशक्ति न्यून हो जाती है, तब ज्ञानशक्ति का उद्रेक होता है। यह ईश्वरत्व सर्वपदार्थकर्त्ता रूप है। यह तत्वतः विद्या तथा ज्ञानरूप है। यह सबका प्रकाशक है। नाद-विन्दु आदि सभी सदाख्य तत्वाश्रित रहते हैं। विद्येश ईश्वर तत्वाश्रित है। यह विद्येश मन्त्र विद्या नाम वाला है। ये तत्व शुद्धाध्वा कहे जाते हैं।।३३-३५।।

साक्षान्निमित्तमीशोऽत्रेत्युपादानसबिन्दुराट्। पञ्चानां कालराहित्याक्रमो नास्तीति निश्चितम्॥३६॥

व्यापारवसतो ह्येषां विहिताः खलु कल्पनाः।
तत्त्वं वस्तुत एकं तु शिवाख्यं चित्रशक्तिकम्॥३७॥

इसका साक्षात् निमित्त ईश्वर है। यही उपादान विन्दुराट् है। इन पांच का काल सम्बन्ध नहीं रहता। अतः इनका कोई क्रम नहीं है। क्रियारूपी व्यापार के कारण इनके सम्बन्ध में कल्पना की गई है। वास्तव में यह एक शिव तत्व ही है। इसकी शक्तियां अनेक हैं।।३६-३७।।

शक्तं या वृत्तिभेदात्तु विहिताः खलु कल्पनाः।
चिज्जडानुग्रहार्थाय कृत्वा रूपाणि वै प्रभुः॥३८॥
अनादिमलरुद्धानां कुरुतेऽनुग्रहं चिताम्।
मुक्तिं भुक्तिं च विश्वेषां स्वव्यापारे समर्थताम्॥३९॥

विधत्ते जडवर्यस्य सर्वानुग्राहकः शिवः। शिवसामान्यरूपो हि मोक्षस्तु चिदनुग्रहः॥४०॥

जिस शक्तियुक्त तत्व के सम्बन्ध में वृत्तिभेद जनित कल्पना की जाती है, वे प्रभु चेतन एवं जड़ पर अनुग्रहार्थ अनेक रूपधारी हो जाते हैं। वे अनादिमलयुक्त जीवों पर (चेतनामय जीवों पर) अनुग्रह करते हैं। वे प्रभु अपने-अपने कार्य में सबको समर्थ बनाकर भुक्त-मुक्ति प्रदाता हो जाते हैं। जड़ वर्ग तक पर सर्वानुग्रहकारी शिव कृपा करते हैं। चेतन पर शिव की कृपा ही मोक्ष है। उनका सामान्यरूपत्व हो जाना ही मोक्ष है।।३८-४०।।

सोऽनादित्वात्कर्मणो हि तत्तद्भोगं विना भवेत्।
तेनानुग्राहकः शम्भुस्तद्भुक्त्यै प्रभुरव्ययः॥४१॥

कुरुते सूक्ष्मकरणभुवनोत्पत्तिमञ्जसा। कर्त्तोपादानकरणैर्विना कार्ये न दृश्यते॥४२॥

वे शिव कर्म के अनादि कारण हैं। कर्मयोग के बिना भी मोक्ष मात्र भगवत् कृपा से हो जाता है। शिव की कृपा से कर्मभोग सम्बन्ध जब नहीं रह जाता, तब मोक्ष मिलता है। यही कारण है कि प्रभु-अव्यय-शिव जो कृपा करने वाले हैं, वे कर्मभोगार्थ सूक्ष्म करण द्वारा भुवनोत्पत्ति करते हैं। यह नियम है कि कर्त्ता एवं उपादान कारणों के अभाव में कदापि कार्य नहीं हो सकता। ऐसे देखा ही नहीं गया है।।४१-४२।।

शक्तयः करणं चात्र मायोपादानमिष्यते।
नित्यैका च शिवा शक्त्या ह्यनादिनिधना सती॥४३॥
साधारणीनराणां वै भुवनानां च कारणम्।
स्वभावान्मोहजननी स्वर्चिताजनकर्मभिः॥४४॥
विभ्वी सूक्ष्मा परा माया विकृतैः परतस्तु सा।
कर्माण्यावेक्ष्य विद्यशो मायां विक्षोभ्य शक्तिभिः॥४५॥
विधत्ते जीवभोगार्थं वपूंषि करणानि च।
मृजत्यादौ कालतत्त्वं नानाशक्तिमयी च सा॥४६॥

भावि भूतं भवद्धैदं जगत्कलयते लयम्।
सूते ह्यसन्तरं माया शक्तिं नियमनात्मिकाम्॥४७॥

यहां शक्तियां हैं करण तथा माया ही उपादान रूपी कारण है। यह माया शिवा भक्ति अनादिनिधन सती है। यही है साधारणी शक्ति जो नरसमूह की (प्राणीगण का) तथा भुवनों की कारणरूप है। यह अपने स्वभाव से ही मोह की जननी है तथा प्राणीगण के उनके अपने कृतकर्म से मोहोत्पादन करती है। यह व्यापक, सूक्ष्म, परा, माया है। यह विकार के परे स्थित रहती है। यह भले ही सबको विकृत करे तथापि स्वयं विकृत ही नहीं होती। विद्येश प्रभु कर्मों को देखते हैं, तदनन्तर वे माया को क्षुब्ध करते हैं (सक्रिय करते हैं)। वे तब प्राणीगण को उनके कर्म से युक्त करने हेतु शरीर एवं इन्द्रियों को उत्पन्न कर देते हैं। यह नानाशक्तिमयी माया तब सर्वाग्र में कालतत्व की उत्पत्ति करती है। कालतत्व अब त्रिधा विभक्त होकर भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान होकर जगत् का अन्त में लय करता है। तदनन्तर नियमनात्मिका शक्ति को माया जन्म देती है।।४३-४७।।

सर्वं नियमयत्येषा तेनेयं नियतिः स्मृता।
अनन्तरं हि सा माया नित्या विश्वविमोहिनी॥४८॥
अनादिनिधना तत्त्वं कलाख्यं जनयत्यपि।
एकतस्तु नृणां येन कलयित्वा मलं ततः॥४९॥
कर्तृशक्तिं व्यञ्जयति तेनेदं तु कलाभिधम्। कालेन च नियत्योपसर्गतां समुपेतया॥५०॥
व्यापारं विदधात्येषां भूपर्यन्तं स्वकीयकम्।
प्रदर्शनाय वै पुंसो विषयाणां च सा पुनः॥५१॥
प्रकाशरूपं विद्याख्यं तत्त्वं सूते कलैव हि।
विद्या त्वावरणं भित्त्वा ज्ञानशक्तेःस्वकर्मणा॥५२॥
विषयान्दर्शयत्येषात्मनांशाकारणं ह्यतः। करोति भोग्यं येनासौ करणेन परेण वै॥५३॥

यह शक्ति सभी को नियमन में रखती है। तभी यह नियति कहा गया है। तदनन्तर माया नित्य एवं विश्वमोहिनी है। वह अनादिनिधना माया तब कला नामक तत्व को उत्पन्न कर देती है। कला ही मनुष्य के कर्मरूप मल का आकलन करती है, तब वह कर्तृत्व शक्ति को प्रकटित करती है। तभी उसे कला कहा है। काल, सृष्टिरता शक्ति एवं नियति तीनों के माध्यम से कला इस लोक में अपना कार्य प्रसारित करती है। कला ही लोगों के विषय ज्ञानार्थ (विषय प्रदर्शनार्थ) प्रकाशरूप विद्या नामक तत्व को जन्म देती है। विद्या अब ज्ञानशक्तिरूपी स्वकर्म द्वारा आवरण भेदन करती है तथा वह प्राणीगण को उनके अनुरूप विषयों को दिखलाती है। तभी वह कारण है। वह 'पर' करण द्वारा भोग्य वस्तु को बनाती है।।४८-५३।।

उद्बुद्धशक्तिः पुरुषः प्रचोद्य महदादिकान्।
भोग्ये भोगं च भोक्तारं तत्परं करणं तु सा॥५४॥
भोग्यस्य भोग्यतिर्मांसाच्चिद्व्यक्तिर्भोग उच्यते।
सुखादिरूपा विषयाकारा बुद्धिः समासतः॥५५॥

जब पुरुष की शक्ति का जागरण होता है, तब वह महदादि तत्त्वों को प्रेरित करके भोग्य, भोग, भोक्ता तदनन्तर इन्द्रियों को निर्मित करता है। जिसका हम उपयोग करते हैं, वही भोग्य है। चिद्व्यक्ति ही भोग कहा गया है। वास्तव में संक्षेपतः यही कहना है कि विषयाकृति बुद्धि ही सुखादिरूप विषयों में बदल जाती है।।५४-५५।।

भोग्य भोक्तुश्च स्वेनैव विद्याख्यं करणं तु तत्।
यद्यर्कवत्प्रकाशा धीः कर्तृत्वाच्च तथापि हि।।५६।।
करणान्तरसापेक्षा शक्ता ग्राहयितुं च तम्।
सम्बन्धात्कारणद्यैस्तद्धगौत्सुक्येन चोदनात्।।५७।।
तच्चेष्टाफलयोगाच्च संसिद्धा कर्तृतास्य तु।
अकर्तृत्वाभ्युपगमे भोक्तृत्वाख्या वृथास्य तु।।५८।।

भोक्ता व्यक्ति अथवा प्राणी को भोग्यवस्तु की प्राप्ति उसके कर्मानुसार ही होती है। उसमें विद्या करण मात्र है। यद्यपि सूर्यवत् ही उसका प्रकाश होता है, तथापि जो धीः है, वह उस प्रकाश को ग्रहण करने में अन्य कारणों का सहयोग लेती है। इसका कारण यह है कि प्रकाश ग्रहण भी एक कर्म ही है। कर्म साधन की अपेक्षा रखते हैं। कारणों के सम्बन्ध से व्यक्ति (प्राणी) कर्मभोगार्थ उत्सुक बना रहता है। चेष्टा के योग के कारण ही प्राणी का कर्त्तृत्व सिद्ध होता है। यदि जीव का कर्त्तृत्व न हो, तब उसका भोक्तृत्व भी सिद्ध नहीं होगा। वह वृथा होगा।।५६-५८।।

किं च प्रधानचरितं व्यर्थं सर्वं भवेत्ततः। कर्तृत्वरहिते पुंसि करणाद्यप्रयोजके।।५९।।
भोगस्यासम्भवस्तस्मात्स एवात्र प्रवर्तकः।
करणादिप्रयोक्तृत्वं विद्ययैवास्य सम्मतम्।।६०।।

यदि प्राणी को करणादि का प्रयोक्तृत्व (करण आदि का वह प्रयोजक ही न हो) न स्वीकृत किया जाये, तब तो वह कर्त्ता भी नहीं कहा जायेगा तथा उसकी प्रधानता व्यर्थ होगी। तब वह तो भोगों का भोक्ता भी नहीं रहेगा। वही जीव भोग तथा कर्म का प्रवर्त्तक है। विद्या के ही कारण वह साधन एवं इन्द्रियों (करण) का प्रयोक्ता कहा गया है।।५९-६०।।

अनन्तरं कलारागं सूते भिद्यङ्गरूपकम्। येन भोग्याय जनिता भिद्यङ्गे पुरुषे पुनः।।६१।।
क्रियाप्रवृत्तिर्भवति तेनेदं रागसंज्ञितम्। एभिस्तत्त्वैश्च भोक्तृत्वदशायां कलितो यदा।।६२।।
नित्यस्तदायमात्मा तु लभते पुरुषाभिधाम्।
कलैव पश्चादव्यक्तं सूते भोग्याय चास्य तु।।६३।।
सप्तग्रन्थिविधानस्य यत्तद्गौणस्य कारणम्।
गुणानामविभागोऽत्र ह्याधारे क्ष्मादिभागवत्।।६४।।
आधारोऽपि च यस्तेषां तदव्यक्तं च गीयते।
त्रय एव गुणा ह्येषामव्यक्तादेव सम्भवः।।६५।।

तदनन्तर कला ही राग को उत्पन्न करती है। वह तो वज्रलेपवत् कहा गया है। इसी के कारण पुरुष भोगार्थ प्रस्तुत होता है। यही कार्य करने की प्रवृत्ति देता है। तभी यह 'राग' पद वाच्य है। यही कला भोक्तृत्व दशा को उत्पन्न करती है। तब यह नित्य आत्मा ही पुरुष संज्ञा वाला हो जाता है। तदनन्तर कला ही आत्मा के भोगार्थ अव्यक्त को उत्पन्न करती है। सप्तग्रन्थि विधानमय अव्यक्त का कारण गुण है। पृथिवी की तरह गुणों के अविभाग के एकत्व के फलस्वरूप जो गुणों का आधार है, उसे अव्यक्त कहा गया। ये गुण तीन ही हैं, जो अव्यक्त से संभव होते हैं।।६१-६५।।

सत्त्वं रजस्तमःप्रख्या व्यापारनियमात्मिका।
गुणतो धीश्च विषयाध्यवसायस्वरूपिणी॥६६॥
गुणतस्त्रिविधा सापि प्रोक्ता कर्मानुसारतः। महत्तत्वादहङ्कारो जातः संरम्भवृत्तिमान्॥६७॥
सम्भेदादस्य विषयः प्राप्नोति व्यवहार्यताम्।
सत्त्वादिगुणभेदेन स पुनस्त्रिविधो भवेत्॥६८॥
तैजसो राजसश्चैव तामसश्चेति नामतः। तत्र तैजसतो ज्ञानेन्द्रियाणि मनसा सह॥६९॥
प्रकाशान्वयतस्तस्मान्द्बोधकानि भवन्ति हि।
राजसाच्च क्रियाहेतोस्तथा कर्मेन्द्रियाणि तु॥७०॥
तामसाच्चैव जायन्ते तन्मात्रा भूतयोनयः। इच्छारूपं च सङ्कल्पव्यापारं तत्र वै मनः॥७१॥

सत्व-रजः तथा तमः क्रिया व्यापार के नियम हैं। विषयों के अध्यवसाय रूप (प्रवृत्तिरूप) धीः की उत्पत्ति गुणों से होती है। कार्यनुरूप गुणभेद से बुद्धि भी राजस, तामस तथा तैजस रूप हो जाती है। महत्तत्व से संरम्भवृत्तिमान अहंकार उत्पन्न हुआ। (सरम्भवृत्तिमान=कोपवृत्तिवाला)। सम्भेद से विषय व्यवहार्यता प्राप्त करते हैं। वे सत्वादि गुणभेद से पुनः तीन हो जाते हैं। इसी तरह तैजस धीः से ज्ञानेन्द्रियां मन से युक्त होकर प्रकाश संयोग द्वारा विषयज्ञान को उत्पन्न करती हैं। क्रिया हेतु राजस से कर्मेन्द्रियां तथा तामसी से रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्धादि ५ तन्मात्रा तथा ५ महाभूतों के कारण उत्पन्न होते हैं। वहां मन है, जो इच्छा एवं संकल्पव्यापारमय है।।६६-७१।।

द्विधाधिकारि तच्चित्तं भोक्तृभोगोपपादकम्।
बहिःकरणभावेन स्वोचितेन यतः सदा॥७२॥
इन्द्रियाणां च सामर्थ्यं सङ्कल्पेनात्मवृत्तिना।
करोत्यन्तःस्थितं भूयस्ततोऽन्तःकरणं मनः॥७३॥
मनोऽहङ्कारबुद्ध्याख्यमस्त्यन्तःकारणं त्रिधा।
इच्छासंरम्भबोधाख्या वृत्तयःक्रमतोऽस्य तु॥७४॥

यह चित्त भोक्तृत्व एवं भोगोत्पादक रूप से द्विविध है। यह बाह्यकरण रूप साधनों से जो उसके अनुकूल होते हैं तथा आत्मवृत्ति संकल्प से इन्द्रियों में कार्यक्षमता उत्पादित करता है। तदनन्तर यह अन्तःस्थिति प्राप्त करता है। उस समय इसे अन्तःकरण कहा गया है। अन्तःकरण के भेदत्रय हैं मन, अहंकार एवं बुद्धि। मनोवृत्ति है इच्छा, अहंकार की वृत्ति है संरभ (क्रोध), बुद्धि की वृत्ति है बोध।।७२-७४।।

ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रं त्वक् चक्षुर्जिह्वा च नासिका।
ग्राह्याश्च विषया ह्येषां ज्ञेयाःशब्दादयो मुने॥७५॥
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः शब्दादयो मताः।
वाक्पाणिपादपायूपस्थास्तु कर्मेन्द्रियाण्यपि॥७६॥
वचनादानगमनोत्सर्गानन्देषु कर्मसु। करणानि च सिद्धिर्ना न कृतिः करणैर्विना॥७७॥

ज्ञानेन्द्रिय हैं कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक। इनके ग्राह्य विषय क्रमशः हैं श्रवण, स्पर्श, रूपदर्शन, रसास्वाद तथा गन्धग्रहण। कर्मेन्द्रियां हैं, वाक् कर्म है वचन बोलना, पाणि का कार्य है ग्रहण, पैर का कार्य है गमन, गुदा कार्य है मलत्याग, लिंग कार्य है आनन्दानुभूति। ये कर्म के करण हैं। करण के अभाव में कार्योत्पत्ति कैसे संभव है?।।७५-७७।।

दशधा करणैश्चेष्टां कार्यमाविश्य कार्यन्ते।
चेष्टन्ते कार्यमालम्ब्य विभुत्वात्करणानि तु॥७८॥
तन्मात्राणि तु खंवायुस्तेजोऽम्भः क्ष्मेति पञ्च वै।
तेभ्यो भूतान्येकगुणान्याख्यातानि भवन्ति हि॥७९॥

ये दस कारण (ज्ञानेन्द्रिय के ५, कर्मेन्द्रिय के ५=१०) हैं, जो इच्छा की उत्पत्ति करते हैं। इनसे कार्य सम्पन्न किया जाता है। कार्य का आलम्बन करके इन्द्रियों के विभुत्व के कारण चेष्टा किया जाता है। पंचतन्मात्र से ही आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी की उत्पत्ति होती है। इन पंचमहाभूतों से नाना गुण वाले अनेक प्राणीगण जन्म लेते हैं।।७८-७९।।

इति पञ्चसु शब्दोऽयं स्पर्शो भूतचतुष्टये। रूपं त्रिषु रसश्चैव द्वयोर्गन्धः क्षितौ तथा॥८०॥
कार्याण्येषां क्रमेणैवावकाशो व्यूहकल्पनम्।
पाकश्च सङ्ग्रहश्चैव धारणं चेति कथ्यते॥८१॥
आशीतोष्णौ महावाद्यौ शीतोष्णौ वारितेजसोः।
भास्वदग्नौ जले शुक्लं क्षितौ शुक्लाद्यनेकधा॥८२॥
रूपं त्रिषु रसोऽम्भुःसु मधुरः षड्विधः क्षितौ।
गन्धः क्षितावसुरभिः सुरभिश्च प्रकीर्तितः॥८३॥
तन्मात्रं तद्भूतगुणं करणं पोषणं तथा। भूतस्य तु विशेषोऽयं विशेषरहितं तु तत्॥८४॥

इन ५ महाभूत के कार्य हैं। आकाश का कार्य अवकाश, वायु का कार्य व्यूह कल्पन, तेज का कार्य पाक, जल का कार्य संग्रह तथा पृथिवी का कार्य है धारण। अशीत, उष्ण, महावाद्य, शीतोष्ण जल तथा तेज में होते हैं (?)। अग्नि में भास्वर, जल में शुक्ल, पृथिवी में शुक्लादि अनेक रूप होते हैं। जल, तेज तथा पृथिवी में रूप है। जल में मधुर रस है। पृथिवी में षड्रस हैं। गन्ध पृथिवी में है। यहां भेदद्वय हैं। सुरभि एवं असुरभि! तन्मात्रा में भूतगुण हैं। करण-पोषण भूतसमूह की विशेषता है। परमात्मतत्व निर्विशेष है।।८०-८४।।

इमानि पञ्चभूतानि सन्निविष्टानि सर्वतः। पञ्चभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥८५॥
शरीरसन्निविष्टत्वमेषां तावन्निरूप्यते। देहेऽस्थिमांसकेशत्वङ्नखदन्ताश्च पार्थिवाः॥८६॥

ये पंचभूत सर्वत्र सन्निविष्ट रहते हैं। यह स्थावर-जंगमात्मक जगत् पंचभूतात्मक है। अब यह निरूपण है कि पंचभूत कहां-कहां रहा करते हैं! देहस्थ अस्थि, मांस, केश, चर्म, नख, दन्त पृथिवी तत्वनिर्मित हैं।।८५-८६।।

मूत्ररक्तकफस्वेदशुक्रादिषु जलस्थितिः। हृदि पङ्क्तौ दृशोः पित्ते तेजस्तद्धर्मदर्शनात्॥८७॥
प्राणादिवृत्तिभेदेन वायुश्चैवात्र संस्थितः। वियत्सर्वासु नाडीषु गर्भवृत्यनुषङ्गतः॥८८॥
प्रयोत्त्यादिमहीप्रान्तमेतदण्डार्थसाधनम्। प्रत्यात्मनियतं भोगभेदतो व्यवसीयते॥८९॥
तत्वान्येवं कलाद्यानि प्रतिपुन्नियतानि हि। देहेषु कर्मवशतः सर्वेषु विचरन्ति हि॥९०॥

मूत्र, रक्त, कफ, स्वेद, वीर्य यह जल तत्व हैं। हृदय, पंक्ति, नेत्र तथा पित्त में तेज तत्व है। इनमें यहां तेजगुण दृष्टिगोचर होते हैं। वायु प्राण अपान रूप स देहस्थ है। सर्वनाड़ीसमूह तथा गर्भाशय आकाश तत्व युक्त है। कला से पृथिवी पर्यन्त के तत्व सर्व ब्रह्माण्ड साधन हैं। ये सभी कला प्रभृति तत्व नियतरूपेण स्थित रहते हैं। ये कर्मवश होकर शरीर में घूर्णित होते रहते हैं।।८७-९०।।

मायेयश्चैव पाशोऽयं येनावृतमिदं जगत्।
अशुद्धाध्वा मतो ह्येष धरण्यादिकलावधिः॥९१॥
तत्र भूमण्डलस्थोऽसौ स्थावरो जङ्गमात्मकः।
स्थावरा गिरिवृक्षाद्या जङ्गमस्त्रिविधः पुनः॥९२॥

स्वेदजाश्चाण्डजाश्चैव तथैव च जरायुजाः। चराचरेषु लक्षाणां चतुराशीतियोनयः॥९३॥
भ्रममाणस्तेषु जीवः कदाचिन्मानुषं वपुः। प्राप्नोति कर्मवशतः परं सर्वार्थसाधकम्॥९४॥
तत्रापि भारते खण्डे ब्राह्मणादिकुलेषु च। महापुण्यवशेनैव जनिर्भवति दुर्लभा॥९५॥

इस मायेय पाश से समस्त जगत् आवृत है। पृथिवी से कला पर्यन्त के तत्व अशुद्धाध्वा कहे गये हैं। इस अशुद्धाध्वा की स्थिति स्थावर-जंगमरूपेण विद्यमान है। पर्वत-वृक्षादि स्थावर हैं। जंगम प्रकारत्रय का है स्वेदज, अण्डज, जरायुज। सचराचर में चौरासी लाख योनि हैं। संयोग के कारण, स्वकर्म के कारण जीव सभी योनियों में घूमता मानव देह लाभ करता है। यह सर्वार्थ सिद्धिप्रद देह है। भारत खण्ड में तो ब्राह्मणादि कुलों में जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। महान् पुण्य के कारण यहां जन्म मिल पाता है।।९१-९५।।

जनिश्च पुंस्त्रियोर्योगः शुक्रशोणितयोगतः।
बिन्दुरेकः प्रविशति यदा गर्भे द्वयात्मकः॥९६॥
तदा रजोऽधिके नारी भवेद्रेतोऽधिके पुमान्।
मलकर्मादिपाशेन कश्चिदात्मा नियन्त्रितः॥९७॥

जीवभावं तदा तस्मिन्सकलः प्रतिपद्यते। अथ तत्राहृतैर्मात्रा पानान्नाद्यैश्च पोषितः॥९८॥

पक्षमासादिकालेन वर्धते वपुरत्र हि। दुःखाद्यः पीडितश्चैवाच्छन्नदेहो जरायुणा॥९९॥
एवं तत्र स्थितो गर्भे प्राग्जन्मोत्थं शुभाशुभम्।
स्मरन्तिष्ठति दुःखात्मा पीड्यमानो मुहुर्मुहुः॥१००॥
कालक्रमेण बालोऽसौ मातरं पीडयन्नपि।
सम्पीडितो निःसरति योनियन्त्रादवाङ्मुखः॥१०१॥

यहां जन्म पुरुष-स्त्री तथा रज-वीर्य योग से होता है। जब ऐसे द्वयात्मक गर्भ में बिन्दु प्रविष्ट होता है, तब जब रज की अधिकता होती है, तब कन्या (स्त्री) का तथा जब वीर्याधिक्य होता है, तब पुरुषोत्पत्ति हो जाती है। मल तथा कर्मपाशबद्ध नियंत्रित कोई-कोई आत्मा कलायुक्त होकर उसी गर्भ के अन्तर्गत् होकर जीवरूप हो जाता है। तत्पश्चात् माता जो भोजन ग्रहण करती है, उसके रस से यह जीव पोषण प्राप्त करता है। तदनन्तर मास, पक्ष आदि काल के अन्तर्गत् उस जीव के शरीर की वृद्धि होती है। लेकिन वह गर्भ से जरायु से लिपटा होने के कारण अत्यधिक पीड़ित होता रहता है। इस प्रकार से पीड़ाच्छन्न जीव गर्भ में स्थित होकर नाना कष्ट सहता हुआ पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभ कर्म का वहां पुनः-पुनः स्मरण करता हुआ वही पड़ा रहता है। तत्पश्चात् कालक्रमेण दस माह पश्चात् वह शिशु माता को पीड़ा देता हुआ तथा स्वयं भी पीड़ित होता-होता अधोमुख होकर योनि प्रदेश से बाहर निकलता है।।९६-१०१।।

क्षणं तिष्ठति निश्चेष्टस्ततो रोदितुमिच्छति। ततः क्रमेण स शिशुर्वर्धमानो दिनेदिने॥१०२॥
बालपौगण्डभेदेन युवत्वं प्रतिपद्यते। एवं क्रमेण लोकेऽस्मिन्देहिनां देहसम्भवः॥१०३॥
मानुषं दुर्लभं प्राप्य सर्वलोकोपकारकम्।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः॥१०४॥

पहले तो कुछ क्षण वह निःश्चेष्ट पड़ा रहता है, तदनन्तर वह रोने की इच्छा करता है। इस प्रकार से वह शिशु क्रमशः दिन-रात वृद्धि प्राप्त करता है। वह बाल्यावस्था तथा पौगण्डावस्था को पार करके युवावस्था में पहुंचता है। यही आत्मा का इस लोक में जन्म है। जो व्यक्ति ऐसा सर्वलोकोपकारक शरीर पाकर भी आत्मोद्धार नहीं करता, उससे बड़ा पातकी और कौन होगा?।।१०३-१०४।।

आहारश्चैव निद्रा च भयं मैथुनमेव च। पश्वादीनां च सर्वेषां साधरणमितीरिम्॥१०५॥
चतुर्ष्वेवानुरक्तो यः स मूर्खो ह्यात्मघातकः।
मनुष्याणामयं धर्मः स्वबन्धच्छेदनात्मकः॥१०६॥
पाशबन्धनविच्छेदो दीक्षयैव प्रजायते।
अतो बन्धनविच्छित्त्यै मन्त्रदीक्षां समाचरेत्॥१०७॥
दीक्षाज्ञानाख्यया शक्त्या ह्यपध्वंसितबन्धनः।
शुद्धात्मतत्त्वनामासौ निर्वाणपदमश्नुते॥१०८॥
स्वशक्त्यात्मिकया दृष्ट्या शिवं ध्यायति पश्यति।
यजते शिवमन्त्रैश्च स्वपरेषां हिताय सः॥१०९॥

शिवार्कशक्तिदीधित्या समर्थीकृतचिद्दृशा।
शिवशक्त्यादिभिः सार्द्धं पश्यत्यात्मगतावृतिः॥११०॥

पशुओं में सामान्यतः आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन का संवेग देखा जाता है। मनुष्य इसमें अनुरक्त होकर अपना आत्मघात करते हैं। मनुष्य का प्रधान धर्म है अपने इस बन्धन को भग्न करना। इस पाशबन्धन छेदनार्थ दीक्षा का प्रयोजन रहता है। इसलिये बन्धन विच्छेदार्थ मन्त्रदीक्षा ग्रहण करे। जो मनुष्य दीक्षा ज्ञान नामक शक्ति से अपने सर्व बन्धनों का उच्छेद कर देता है, वही शुद्ध आत्मतत्व युक्त व्यक्ति मुक्तिपद लाभ करता है। उसे निर्वाणपद की प्राप्ति होती है। जो स्वशक्त्यात्मक दृष्टि द्वारा शिव का ध्यान करता है, ध्यान में उनको देखता है तथा अपने तथा पराये के हितार्थ शिवमन्त्र से शिव का यजन करता है, वह अपनी चिद्दृष्टि को शिव-सूर्य तथा शक्ति रश्मि से शक्तीकृत करके शिवशक्तितत्व को आत्मा में देखता है।।१०५-११०।।

अन्तःकरणवृत्तिर्या बोधाख्या सा महेश्वरम्।
न प्रकाशयितुं शक्ता पाशत्वान्निगडादिवत्॥१११॥
दीक्षैव परमो हेतु पाशविच्छेदने पुनः।
अतः शास्त्रोक्तविधिना मन्त्रदीक्षां समाचरेत्॥११२॥
दीक्षितस्तन्त्रविधिना स्ववर्णाचारतत्परः। अनुष्ठानं प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिकात्मकम्॥११३॥
निजवर्णाश्रमाचारान्मनसापि न लङ्घयेत्।
यो यस्मिन्नाश्रमे तिष्ठन्दीक्षां प्राप्नोति मानवः॥११४॥
स तस्मिन्नाश्रमे तिष्ठेत्तद्धर्माननुपालयेत्।
कृतान्यपि न कर्माणि बन्धनाय भवन्ति हि॥११५॥
एकं तु फलदं कर्म मन्त्रानुष्ठानसम्भवम्।
दीक्षितोऽभिलषेद्भोगान्यद्यल्लोकगतानसौ ॥११६॥
मन्त्राराधनसामर्थ्यात्तद्भुक्त्वा मोक्षमश्नुते।
नित्यं नैमित्तिकं दीक्षां प्राप्य यो नाचरेन्नरः॥११७॥
कञ्चित्कालं पिशाचत्वं प्राप्यान्ते मोक्षमश्नुते।
तस्मात्तु दीक्षितः कुर्य्यान्नित्यनैमित्तिकादिकम्॥११८॥
अनुष्ठानं च तेनास्य दीक्षां प्राप्याऽनुमीयते।
नित्यनैमित्तिकाचार पालकस्य नरस्य तु॥११९॥
दीक्षावैकल्यविरहात्सद्यो मुक्तिस्तु जायते।
तत्रापि गुरुभक्तस्य गतिर्भवति नान्यथा॥१२०॥

बोधनामक अन्तःकरण वृत्ति तो पाश रूपी जंजीर में आबद्ध है। वह महेश्वर को प्रकाशित नहीं कर सकती। पाशविच्छेदनार्थ दीक्षा ही परम हेतु है। इसलिये शास्त्रोक्त विधि द्वारा मन्त्रदीक्षा सम्पन्न करे। तन्त्र

विधानानुसार दीक्षित व्यक्ति अपने वर्णधर्मानुकूल आचरण द्वारा नित्य-नैमित्तिकादि सन्ध्या आदि कार्य को करे। ऐसे मन्त्रानुष्ठान से किया गया एक बार का कर्म ही फल दे देता है। दीक्षित व्यक्ति जिन भोगों की इच्छा करता है, वह (मन्त्र जप के कारण) यहां तत्तद् भोगों को पा लेता है। तदनन्तर सर्वान्त में उसे मोक्षलाभ होता है। जो नित्य तथा नैमित्तिक कर्म तत्पर रहता है, दीक्षा के उपरान्त ही उसके द्वारा कृत अनुष्ठान के फल का आकलन हो सकेगा। (अर्थात् दीक्षा के पश्चात् उसे प्रचुर फल की प्राप्ति होगी)। उसे तो दीक्षा के उपरान्त मुक्ति तक मिल जाती है। लेकिन नियम यह है कि मात्र गुरुभक्त ही मुक्ति लाभ करता है। अन्य यह फल नहीं पा सकते।।१११-१२०।।

दीक्षया गुरुमूर्तिस्थः सर्वानुग्राहकः शिवः।
दृष्टाद्यर्थतया यस्य गुरुभक्तिस्तु कृत्रिमा॥१२१॥
कृतेऽपि विफलं तस्य प्रायश्चित्तं पदे पदे। कायेन मनसा वाचा गुरुभक्तिपरस्य च॥१२२॥

दीक्षा द्वारा सभी के प्रति कृपालु शिव स्वयं गुरुमूर्त्ति में स्थित हो जाते हैं। जो नकली गुरुभक्ति का प्रदर्शन करता है, उसका कृतकर्म व्यर्थ हो जाता है। उसे पग-पग पर प्रायश्चित्त करना होगा। जो काया-मन-वाक्य से गुरुभक्तिरत है।।१२१-१२२।।

प्रायश्चित्तं भवेन्नैव सिद्धिस्तस्य पदे पदे। गुरुभक्तियुते शिष्ये सर्वस्वविनिवेदके॥१२३॥
मिथ्याप्रयुक्तमन्त्रस्तु प्रायश्चित्ती भवेद्गुरुः॥१२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

उसे प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं होती। जो शिष्य गुरुभक्ति समन्वित होकर उनको सर्वस्व अर्पित कर देता है, उसे जो गुरु मिथ्या मन्त्र प्रदान करेगा, उसे प्रायश्चित्त भोगना पड़ेगा।।१२३-१२४।।

।।६३वां अध्याय समाप्त।।
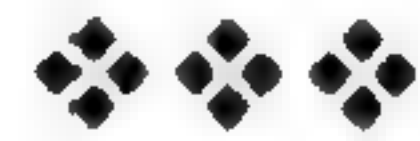
अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

दीक्षा विधि वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथ जीवस्य पाशौघच्छेदनायेष्टसिद्धिदम्। दीक्षाविधिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रसामर्थ्यदायकम्॥१॥
दिव्यं भावं यतो दद्यात्क्षिणुयाद्दुरितानि च। अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वागमविशारदैः॥२॥
मननं सर्ववेदित्वं त्राणं संसार्यनुग्रहः। मननात्त्राणधर्मत्वान्मन्त्र इत्यभिधीयते॥३॥

स्त्रीपुंनपुंसकात्मानस्ते मन्त्रास्तु त्रिधा मताः।
स्त्रीमंस्त्रास्तु द्विठान्ताःस्युः पुंमन्त्रा हुंफडणतकाः॥४॥
क्लीबाश्चैव नमोऽन्ताः स्युर्मन्त्राणां जातयःस्मृताः।
पुंदैवतास्तु मन्त्राः स्युर्विद्याः स्त्रीदैवता मताः॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं जीवगण को पाशों से मुक्ति देकर इष्ट सिद्धि देने वाली तथा मन्त्र को सामर्थ्य प्रदातृ दीक्षा विधि को कहता हूं। दीक्षा दिव्यभाव प्रदान करती है। सर्वपापक्षय करती है। इसी कारण सर्वागम विशारद लोग इसे दीक्षा कहते हैं। मनन का अर्थ है सर्वज्ञत्व। त्राण का अर्थ है जीवानुग्रह। मनन एवं त्राण धर्मान्वित होने के कारण इसे "मन्त्र" कहा गया है। मन्त्र के तीन भेद हैं। यथा स्त्री, नपुंसक तथा पुरुष। स्वाहा (दो ठ जहां कहते हैं) युक्त मन्त्र स्त्री मन्त्र है। अन्त में हुं, फट् हो, तब पुरुष मन्त्र है। अन्त में नमः रहे, तब वह नुपंसक मन्त्र है। यह मन्त्र के जातित्रय हैं। पुरुष देवता वाले को मन्त्र, स्त्री देवता वाले को विद्या कहते हैं।।१-५।।

षट्कर्मसु प्रशस्तास्ते मनवस्त्रिविधाः पुनः।
तारान्त्यरेफः स्वाहास्तु तत्राग्नेयाः समीरिताः॥६॥
सौम्यास्तु भृगुपीयूषबीजाढ्याः कथिता मुने।
अग्नीषोमात्मका ह्येवं मन्त्रा ज्ञेया मनीषिभिः॥७॥
बोधमायान्ति चाग्नेयाः श्वसने पिङ्गलाश्रिते।
सौम्याश्चैव प्रबुध्यन्ते वामे वहति मारुतेः॥८॥
सर्वे मन्त्राः प्रबुध्यन्ते वायौ नाडिद्वयाश्रिते। स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपोऽनर्थफलप्रदः॥९॥

ये त्रिविध मन्त्र षट्कर्मार्थ प्रशस्त हैं। जहां प्रणव के अन्त में रेफ (रं) तथा स्वाहा हो, वह आग्नेय मन्त्र है। हे मुनिवर! भृगु बीज (सं) तथा पीयूष बीजान्वित (वं)—ये सौम्य मन्त्र हैं। मनीषीगण ने मन्त्र को अग्नि-सोमात्मक कहा है। पिंगलाश्रित प्राण दशा में (जब दाहिने नासा से श्वास चले) आग्नेय मन्त्र सिद्ध करें। जब वामनासा (इड़ाश्रित) से प्राण चले, तब सौम्य मन्त्र सिद्ध करे। जब वायु दोनों नासिका से चले तब सभी मन्त्र प्रबुद्ध होते हैं। शयन काल में मन्त्र जप का फल अनर्थमय होता है।।६-९।।

प्रत्येकं मन्त्रमुच्चार्यं नाव्यानां तान्समुच्चरेत्।
अनुलोमे बिन्दुयुक्तान्विलोमे सर्गसंयुतान्॥१०॥
जप्तो यदि स वै देवं प्रबुद्धः क्षिप्रसिद्धिदः।
अनया मालया जप्तो दुष्टमन्त्रोऽपि सिद्धयति॥११॥

मन्त्रोच्चारकाल में श्वास न रोके। अनुलोम में विन्दुयुक्त तथा विलोम में विसर्गयुक्त मन्त्रोच्चार करे। यह ऐसी विधि है, जिससे जप करने पर मन्त्र शीघ्रता से सिद्ध होते हैं। माला पर जप करने से दुष्टमन्त्रों की भी सिद्धि हो जाती है।।१०-११।।

क्रूरे कर्मणि चाग्नेयाः सौम्याः सौम्यफलप्रदाः। शान्तज्ञानेति रौद्रेयशान्तिजातिसमन्वितः॥१२॥

शान्तोऽपि रौद्रतामिति हुंफट्पल्लवयोजनात्। छिन्नादिदोषयुक्तास्ते नैव रक्षन्ति साधकम्॥१३॥

क्रूर कर्म जैसे मारण-उच्चायन-विद्वेषणादि में आग्नेय मन्त्र सिद्धिदायक होते हैं। सौम्य कार्यों में जैसे मोहन, वशीकरण प्रभृति में सौम्य मन्त्रों से सिद्धिलाभ होता है। शान्ति जाति वाले मन्त्र शान्ति कर्म हेतु शुभ कहे गये हैं। किसी भी शान्ति मन्त्र में यदि 'हुं फट्' का योग करे, तब वही रौद्रमंत्र होगा। लेकिन यदि मन्त्र छिन्न आदि दोषों वाला हो, तब वह कदापि साधक की रक्षा नहीं करता।।१२-१३।।

छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनस्ततश्चैव पराङ्मुखः।
कर्णहीनो नेत्रहीनः कीलितः स्तम्भितस्तथा॥१४॥
दग्धः स्त्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः।
भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः॥१५॥
हतवीर्यो भ्रान्तसंज्ञः प्रध्वस्तो बालकस्तथा।
कुमारोऽथ युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा॥१६॥
निर्बीजः सिद्धिहीनश्च मन्दः कूटो निरंशकः।
सत्त्वहीनः केकरश्च बीजहीनश्च धूमितः॥१७॥
आलिङ्गितो मोहिताश्च क्षुधार्तश्चातिदीप्तकः।
अङ्गहीनोऽतिक्रुद्धश्चातिक्रूरो व्रीडितस्तथा॥१८॥
प्रशान्तमानसःस्थानभ्रष्टश्च विकलस्तथा।
अतिवृद्धोऽतिनिःस्नेहः पीडितश्च तथा पुनः॥१९॥
दोषा ह्येते समाख्याता वक्ष्याम्येषां च लक्षणम्।
संयुक्तं वा वियुक्तं वा त्रिधा वा स्वरसंयुतम्॥२०॥
मनोर्यस्यादिमध्यान्ते वह्निबीजं तथोच्यते।
चतुर्द्धा पञ्चधा वापि स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः॥२१॥

छिन्न, रुद्ध, शक्तिरहित, पराङ्गमुख, कर्णहीन, नेत्रहीन, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, स्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हतवीर्य, भ्रान्तसंज्ञक, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निंस्त्रिशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट, निरंशक, सत्वहीन, केकर, बीजहीन, धूमित, आलिंगित, मोहित, क्षुधार्त्त, अतिदीपक, अंगहीन, अतिक्रूर, अतिक्रुद्ध, व्रीड़ित, प्रशान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, अतिवृद्ध, अतिनिःस्नेह, पीड़ित, ये सभी मन्त्रदोष हैं। इनके लक्षण आगे कहे जा रहे हैं। जिस मन्त्र का आदि-मध्य-अन्त संयुक्त, वियुक्त तथा त्रिभाग विभक्त हो, किंवा स्वरयुक्त हो, वही वह्निबीज (रे) कहा जाता है अथवा आदि-मध्य-अन्त वह्निबीज युक्त हो किंवा चार अथवा पांच भाग में बंटा हो, वह छिन्न मंत्र है।।१४-२१।।

मनोर्यस्यादिमध्यान्ते भूबीजद्वयमुच्यते। स तु रुद्धो मनुर्ज्ञेयो ह्यतिक्लेशेन सिद्धिदः॥२२॥
तारवर्मन्त्रया लक्ष्मीरेवं हीनस्तु यो मनुः। शक्तिहीनः स विज्ञेयश्चिरकालफलप्रदः॥२३॥

कामबीजं मुखं मायाह्यन्ते चैवाङ्कुशं तथा।
असौ पराङ्मुखो ज्ञेयो भजतां चिरसिद्धिदः॥२४॥

जब मन्त्र के आदि-मध्य अन्त में दो 'लं' हो, तब वह **रुद्धमन्त्र** है। यह अतिक्लेशपूर्वक सिद्धि देता है। जिस मन्त्र में 'ॐ' तथा 'हूं' तीन बार प्रयुक्त हो, वह लक्ष्मी समन्वित है। जो इनसे रहित हो, वह **शक्तिहीन मन्त्र** है। यह दीर्घकाल में फलप्रद होगा। जब मन्त्र के आदि में 'क्लीं', मध्य में 'ह्रीं' अन्त में 'क्रीं' रहे, तब वह **पराङ्मुख मन्त्र** है। यह दीर्घकाल में सिद्धि प्रदान करता है।।२२-२४।।

आदिमध्यावसानेषु सकारो दृश्यते यदि। स मन्त्रो बधिरः प्रोक्तः कष्टेनाल्पफलप्रदः॥२५॥
पञ्चार्णो यदि रेफार्कबिन्दुवर्जितविग्रहः।
नेत्रहीनस्तु विज्ञेयः क्लेशेनापि न सिद्धिदः॥२६॥
आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रसादवाग्भवौ। हंसेन्दुर्वा सकारो वा फकारो वर्म वा पुनः॥२७॥
माप्रा नमामि च पदं नास्ति यस्मिन्स कीलितः।
एवं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रलकारकौ॥२८॥
न विद्यन्ते स मन्त्रस्तु स्तम्भितः सिद्धिरोधकृत्।
अग्निः पवनसंयुक्तो मनोर्यस्य तु मूर्द्धनि॥२९॥
स सार्णो दृश्यते यस्तु स मन्त्रो दग्धसंज्ञकः।
अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्दृश्यतेऽक्षरैः॥३०॥

जब मन्त्र के आदि-मध्य-अन्त 'स' हो, वह **वधिर कर्णरहित** मन्त्र है। यह साधना में दीर्घ कष्ट सहने के उपरान्त किंचित् फल देता है। रेफ, सकार एवं अनुस्वार से रहित पंचवर्ण मन्त्र **नेत्रहीन** होता है। इसे चाहे कितने कष्ट पूर्वक जपा जाय, यह सिद्धिदायक नहीं होता। जब मन्त्र के प्रारंभ में 'हंस', मध्य में 'सं' तथा अन्त में 'ऐं' हो अथवा प्रारंभ में हंस तथा चन्द्रविन्दु, किंवा मध्य में सकार-फकार तथा अन्त में हुं हो, साथ ही, जिसमें मा, प्रा, नमामि पद न हो, वह **कीलित** मन्त्र है। जिसके मध्य, अन्त में ये उभय पद न हों, जहां फट् तथा लकार न हो, वह **स्तम्भित मन्त्र** कहा जाता है। यह सिद्धि को रोक देता है। जिस मन्त्र के अन्त में 'रं' भी 'यं' सहित हो तथा जो सप्ताक्षर हो, वह **दग्ध मन्त्र** है। जो मंत्र दो, तीन, छः किंवा आठ अक्षर वाला हो।।२५-३०।।

त्रस्तः स मन्त्रो विज्ञेयो मुखे तारविवर्जितः।
हकारः शक्तिरथवा भीतो मन्त्रः स एव हि॥३१॥
मनोर्यस्यादिमध्यान्ते स्यान्मकारचतुष्टयम्।
मलिनस्तु स विज्ञेयो ह्यतिक्लेशेन सिद्धिदः॥३२॥

तथा जिसके मुख भाग में प्रणवरहित हकार शक्ति हो, वह मन्त्र **त्रस्त मन्त्र** कहा जाता है। इसे **भीत मन्त्र** भी कहा गया है। जब मन्त्र के आदि-मध्य-अन्त में चार मकार पड़े, तब वह **मलिन मन्त्र** है। इससे अत्यन्त क्लेशपूर्वक सिद्धि मिलती है।।३१-३२।।

दार्णो यस्य मनोर्मध्ये मूर्ध्नि क्रोधयुगं तथा।
अस्त्रं चास्ति स मन्त्रस्तु तिरस्कृत उदीरितः॥३३॥
म्योद्वयं हृदयं शीर्षे वषड्बौषट्कमध्यमः।
यस्य स्याद्भेदितो मन्त्रस्त्याज्यः क्लिष्टफलप्रदः॥३४॥

जब मन्त्र मध्य में दकार तथा अन्त में दो बार "हुं हुं" हो तथा अन्त में 'फट्' हो, तब यही **तिरस्कृत मन्त्र** है। जब मन्त्रान्त में 'म' 'य' तथा शीर्ष में हृदय हो (हृदय मन्त्र संकेत है। तन्त्राभिधान ग्रन्थ में देखें कि हृदय मन्त्र क्या है) तथा मध्य में वषट्, वौषट् हो, वह **भेदित मन्त्र** है, जो अत्यन्त कष्ट से सिद्धिदाता होता है। इसे सर्वदा त्याग करे।।३३-३४।।

त्र्यक्षरो हंसहीनो यः सुषुप्तः कीर्तितस्तु सः।
विद्या वाप्यथवा मन्त्रो भवेत्सप्तदशाक्षरः॥३५॥
फट्कारपञ्चकादिर्यो मदोन्मत्तस्तु स स्मृतः।
यस्य मध्ये स्थितं चास्त्रं स मन्त्रो मूर्च्छितः स्मृतः॥३६॥
विरामस्थानगं चास्त्रं हतवीर्यः स उच्यते।
मन्त्रस्यादौ च मध्ये च मूर्ध्नि चास्त्रचतुष्टयम्॥३७॥
ज्ञातव्यो भ्रान्त इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः।
पुनर्विंशतिवर्णो वा यो मन्त्रः स्मरसंयुतः॥३८॥
हृल्लेखाङ्कुशबीजाढ्यः प्रध्वस्तः स तु कथ्यते।
सप्तार्णो बालमन्त्रस्तु कुमारो वसुवर्णवान्॥३९॥

हंसहीन त्र्यक्षर मन्त्र **सुषुप्त** होता है। जो विद्या किंवा मन्त्र सप्तदश अक्षरात्मक हो, उसके आदि में फट् का प्रयोग पांच बार किया गया है, वह **मदोन्मत्त मन्त्र** है। मध्य में 'फट्' होने से मन्त्र **मूर्च्छित** दोष वाला होता है। जिनके विरामस्थल में 'फट्' हो, वह **हतवीर्य मन्त्र** है। जिस मन्त्र के आदि-मध्य-अन्त में चार 'फट्' हों, उसे **भ्रान्तमन्त्र** कहते हैं। अठारह किंवा बीस वर्ण हो, वह कामबीज (क्लीं), हृदय बीज (नमः), लेख बीज तथा अंकुश बीज (क्रों) युक्त हो, वह **प्रध्वस्त मन्त्र** है। सात वर्ण वाला **बालमन्त्र** होता है। अष्टाक्षर मन्त्र को **कुमार मन्त्र** कहा गया है।।३५-३९।।

षोडशार्णो युवा प्रौढश्चतुर्विंशतिवर्णकः। त्रिंशद्वर्णश्चतुःषष्टिवर्णश्चापि शताक्षरः॥४०॥
चतुःशताक्षरो मन्त्रो वृद्ध इत्यभिधीयते। नवार्णस्तार संयुक्तो मन्त्रो निस्त्रिंश उच्यते॥४१॥

यस्यान्ते हृदयं प्रोक्तं शिरोमन्त्रोऽथ मध्यगः।
शिखा वर्म च यस्यान्ते नेत्रमस्त्रं च दृश्यते॥४२॥
शिवशक्त्यार्णहीनो वै निर्बीजः स मनुः स्मृतः।
आद्यन्तमध्ये फट्कारः षोढा यस्मिन्प्रदृश्यते॥४३॥

स मनुः सिद्धिहीनः स्यान्मन्दः पङ्क्त्यक्षरो मनुः।
कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवोक्तो निरंशकः॥४४॥

षोडशवर्ण वाला **युवामन्त्र**, चौबीस वर्ण वाला **प्रौढ़मन्त्र** होता है। ३०, ६४, १०० तथा ४०० अक्षरात्मक मन्त्र **वृद्ध मन्त्र** कहे गये हैं। जो नौ वर्ण वाला तथा प्रणवयुक्त मन्त्र है, उसे **निस्त्रिंश** कहते हैं। जिसके अन्त में हृदय बीज नमः, हो मध्य में स्वाहा हो अन्त में वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् हो, जो शिवाक्षर एवं शक्त्यक्षर रहित हो, वही है **निर्बीज मन्त्र**। जब मन्त्र के आदि में, अन्त तथा मध्य में ६ बार 'फट्' प्रयुक्त हो, वह **सिद्धिहीन मन्त्र** है। पंचाक्षर मन्त्र **मन्द** तथा एकाक्षर मन्त्र **कूट मन्त्र** तथा **निरंशक मन्त्र** कहा जाता है।।४०-४४।।

द्विवर्णःसत्त्वहीनः स्यात्केकरश्चतुरक्षरः।
षड्वर्णो बीजहीनो वा सार्द्धसप्ताक्षरोऽपि वा॥४५॥
सार्द्धद्वादशवर्णो वा धूमितो निन्दितस्तु सः।
सार्द्धबीजत्रययुतो मन्त्रो विंशतिवर्णवान्॥४६॥
त्रिंशद्वर्णश्चैकविंशद्वर्णश्चालिङ्गितस्तु सः।
यो मन्त्रो दन्तवर्णस्तु मोहितः सः तु कीर्तितः॥४७॥
चतुर्विंशतिवर्णो वा सप्तविंशतिवर्णवान्।
क्षुधार्तः स तु विज्ञेयो मन्त्रसिद्धिविवर्जितः॥४८॥

द्विवर्ण मन्त्र **सत्वहीन मन्त्र**, चतुरक्षर मन्त्र **केकर मंत्र**, छः किंवा साढ़े सात वर्ण वाले **बीजहीन मन्त्र**, साढ़े बारह वर्ण वाले **धूमित मन्त्र** कहे गये हैं। यह निन्दित कहा गया है। साढ़े तीन बीज वाला, बीस वर्ण वाला, किंवा तीस एवं २१ वर्ण वाला **आलिंगित मन्त्र** कहा गया है। दन्त्य वर्ण वाला **मोहित मन्त्र**, २४ एवं २७ वर्ण वाला **क्षुधार्त्त मन्त्र** है। यह मन्त्रसिद्धि रहित है।।४५-४८।।

एकादशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिवर्णकः। त्रयोविंशतिवर्णो वा स मनुर्दृप्तसंज्ञकः॥४९॥
षड्विंशत्यक्षरो वापि षट्त्रिंशद्वर्णकोऽपि वा।
एकोनत्रिंशद्वर्णो वा मन्त्रो हीनाङ्गकः स्मृतः॥५०॥
अष्टाविंशतिवर्णो वा तथैकत्रिंशद्वर्णकः। अतिक्रूरः स विज्ञेयोऽखिलकर्मसु गर्हितः॥५१॥
चत्वारिंशत्समारभ्य त्रिषष्ट्यंतस्तु यो मनुः।
व्रीडितः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मसु न क्षमः॥५२॥
पञ्चषष्ट्यक्षरा मन्त्रा ज्ञेया वै शान्तमानसाः। पञ्चषष्ट्यर्णमारभ्य नवनन्दाक्षरावधि॥५३॥
ये मन्त्रास्ते तु विज्ञेयाः स्थानभ्रष्टा मुनीश्वर।
त्रयोदशार्णा ये मन्त्रास्तिथ्यवर्णाश्च तथा पुनः॥५४॥
विकलास्ते समाख्याताः सर्वतन्त्रविशारदैः। शतं सार्द्धशतं वापि शतद्वयमथापि वा॥५५॥

द्विनवत्येकहीनो वा शतत्रयमथापि वा।
ये मन्त्रा वर्णसंख्याका निःस्नेहास्ते प्रकीर्तिताः॥५६॥

११, २५, ३३ वर्णात्मक मन्त्र **दृप्त मन्त्र** हैं। २६ वर्णात्मक मन्त्र, ३६ एवं २९ वर्णात्मक मन्त्र **हीनांग मन्त्र** है। २८ एवं ३१ वर्णात्मक मन्त्र **अतिक्रूर मन्त्र** होते हैं। ये सभी कार्य में निन्दित हैं। ४० से ६३ वर्णात्मक मन्त्र **व्रीड़ित मन्त्र** हैं। ये सभी कर्म में अक्षम हैं। ६५ अक्षरात्मक मन्त्र **शान्तमानस मन्त्र** हैं। हे मुनीश्वर! ६५ वर्ण से लेकर ९९ वर्णात्मक मन्त्र **स्थानभ्रष्ट मन्त्र** होते हैं। १३ एवं १५ वर्णात्मक मन्त्र **विकल मन्त्र** कहे गये हैं। १००, १५०, २००, ९१ किंवा ३०० वर्णात्मक मन्त्र **निःस्नेहमंत्र** होते हैं।।४९-५६।।

चतुःशतं समारभ्य सहस्रार्णावधि द्विज।
अतिवृद्धाः प्रयोगेषु शिथिलास्ते समीरिताः॥५७॥
सहस्रवर्णादधिका मन्त्रास्ते पीडिताह्वयाः।
तदूर्ध्वं चैव ये मन्त्राः स्तोत्ररूपास्तु ते स्मृताः॥५८॥
एवंविधाः समाख्याता मनवो दोषसंयुताः। दोषानेतानविज्ञाय मन्त्रोनेताञ्जपन्ति ये॥५९॥
सिद्धिर्न जायते तेषां कल्पकोटिशतैरपि। छिन्नादिदोषदुष्टानां मन्त्राणां साधनं ब्रुवे॥६०॥

४०० से लगाकर १००० वर्णात्मक मन्त्रों को **अतिवृद्ध मन्त्र** कहा गया है। ये **शिथिल** भी कहे गये हैं। एक सहस्र वर्ण से अधिक वर्णात्मक मन्त्र पीड़ित हैं। ये मन्त्र न होकर स्तोत्र ही हैं। ये सभी मन्त्रदोष यहां मैंने कह दिया। जो इसके आधार पर दुष्ट मन्त्र पहचान लेने पर भी जपते हैं, वे शतकोटि कल्प में भी सिद्धिलाभ नहीं कर पाते। अब मैं छिन्न प्रभृति दोषों वाले मन्त्र का साधन कहता हूं।।५७-६०।।

योनिमुद्रासने स्थित्वा प्रजपेद्यः समाहितः।
यं कञ्चिदपि वा मन्त्रं तस्य स्युः सर्वसिद्धयः॥६१॥
सव्यपार्ष्णि गुदे स्थाप्य दक्षिणं च ध्वजोपरि। योनिमुद्राबन्ध एवं भवेदासनमुत्तमम्॥६२॥

साधक योनिमुद्रा में स्थित होकर समाहित चित्त से जिस किसी भी मन्त्र को जपेगा, उसे सभी में सिद्धिलाभ होगा। वाम पद की एड़ी को गुदाद्वार पर स्थापित करे। दाहिने पाद की एड़ी लिंग के ऊपर रखे, यही योनिमुद्रा बन्ध है। यह अत्युत्तम आसन है।।६१-६२।।

अन्योऽप्यत्र प्रकारोऽस्ति योनिमुद्रानिबन्धने। तदग्रे सरहस्यं ते कथयिष्यामि नारद॥६३॥
पारम्पर्यक्रमप्राप्तो नित्यानुष्ठानतत्परः। गुर्वनुज्ञारतः श्रीमानभिषेकसमन्वितः॥६४॥
सुन्दरः सुमुखः शान्तः कुलीनः सुलभो वशी। मन्त्रतन्त्रार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः॥६५॥
निरपेक्षो मुनिर्दान्तो हितवादी विचक्षणः।
तत्त्वनिष्कासने दक्षो विनयी च सुवेषवान्॥६६॥
आश्रमी ध्याननिरतः संशयच्छित्सुबुद्धिमान्। नित्यानुष्ठानसंयुक्तस्त्वाचार्यः परिकीर्तितः॥६७॥

अब मैं योनिमुद्रा बन्ध का अन्य प्रकार कहता हूं। हे नारद! इसे मैं सरहस्य कह रहा हूं। जिसने परम्परा क्रमेण मन्त्र को पाया है, जो नित्य अनुष्ठान में तत्पर रहता है, जो गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला श्रीमान् अभिषेक सम्पन्न शिष्य है, वह सुन्दर, सुमुख, शान्त, कुलीन, सुलभ, इन्द्रियों को वशीभूत करने वाला, मन्त्र-तन्त्र के अर्थ का ज्ञाता, निग्रह-अनुग्रह कार्य में सक्षम, निरपेक्ष, मुनि, दान्त, हितवाक्य बोलने वाला, विचक्षण, तत्व निर्णय में दक्ष, विनयशील, उत्तम वेषधारी, आश्रम धर्म पालक, ध्याननिरत संशय निर्मूल करने की बुद्धि वाला, नित्य अनुष्ठान करने वाला ही आचार्य कहलाने योग्य कहा गया है।।६३-६७।।

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा सर्वलक्षणसंयुतः।
शमादिसाधनोपेतः श्रद्धावान् सुस्थिराशयः।।६८।।
शुद्धदेहोऽन्नपानाद्यैर्धार्मिकः शुद्धमानसः। दृढव्रतसमाचारः कृतज्ञः पापभीरुकः।।६९।।
गुरुध्यानस्तुतिकथासेवनासक्तमानसः। एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वन्यथा गुरुदुःखदः।।७०।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे चतुःषष्टितमोऽध्यायः।।६४।।

शान्त, विनीत, शुद्धात्मा, सर्वलक्षणान्वित, शमादि साधनयुक्त, श्रद्धालु, स्थिर मन वाला, शुद्ध देह, भोजनादि शुद्ध रखने वाला, धार्मिक, शुद्ध मन वाला, दृढ़ता से व्रत पालन करने वाला कृतज्ञ, पापों से भयभीत रहने वाला, गुरु का ध्यान-स्तुति-कथा श्रवणादि में तत्पर ही शिष्य होने का अधिकारी है। इसके विपरीत रहने वाला मात्र गुरु के लिये दुःखप्रद है। वह शिष्य नहीं है।।६८-७०।।

।।६४वां अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

मन्त्र जपविधि वर्णन

सनत्कुमार उवाच

परीक्ष्य शिष्यं तु गुरुर्मन्त्रशोधनमाचरेत्। प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च पञ्चसूत्राणि पातयेत्।।१।।
चतुष्टयं चतुष्कानां स्यादेवं नृपकोष्ठके। तत्राद्यप्रथमे त्वाद्यं द्वितीयाद्ये द्वितीयकम्।।२।।
तृतीयाद्ये तृतीयं स्याच्चतुर्थाद्ये तुरीयकम्। तत्तदाग्नेयकोष्ठेषु तत्तत्पञ्चममक्षरम्।।३।।
विलिख्य क्रमतो धीमान्मनुं संशोधयेत्ततः। नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादि वर्णकम्।।४।।
चतुष्के यत्र नामार्णस्तत्स्यात्सिद्धिचतुष्ककम्।
प्रादक्षिण्यात्तद्द्वितीयं साध्याख्यं परिकीर्तितम्।।५।।

तृतीयं पुंसि सिद्धाख्यं तुरीयमरिसंज्ञकम्। द्वयोर्वर्णावेककोष्ठे सिद्धिसिद्धेति तन्मतम्॥६॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—गुरु पहले शिष्य की परीक्षा करके मन्त्र शोधन करे। पूर्व से पश्चिम तथा दक्षिण से उत्तर रंग से लिप्त ५-५ सूत्रपात करे। पांच खड़ी रेखा बनाकर ५ बेड़ी रेखा लिखे। एवंविध ४-४ कोष्ठ तथा उसके ४-४ समुदाय बनते हैं। पहले चौके के प्रथम कोष्ठ में १, द्वितीय चौके के प्रथम कोष्ठ में दो, तृतीय चौके के प्रथम कोष्ठ में तीन, चतुर्थ चौके के पहले कोष्ठ में चार अंकित करे। अब इसी विधि से प्रथम कोष्ठ में 'अ' अंकित करके उसके अग्निकोण में उससे पंचम अक्षर लिखे। एवंविध सभी कोष्ठान्तर्गत् अक्षर अंकित करके विद्वान् व्यक्ति मन्त्र शोधन करे। जिस कोष्ठक में साधक के नामाक्षर का प्रथम अक्षर पड़े, वहां से प्रारंभ करके जपे जाने वाले मन्त्र का प्रथमाक्षर जिस कोष्ठ में हो, उसे प्रदक्षिणा क्रमेण गिने। यहां यह देखना है कि यदि उसी चौके में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो जहां साधक के नाम का प्रथमाक्षर है, तब यह **सिद्ध चौक** होगा। प्रदक्षिणा क्रमेण गिनने पर यदि तृतीय चौक में मन्त्र का प्रथमाक्षर पड़े, तब वह **साध्य चौक** होगा। तृतीय चौक सुसिद्ध चौक चतुर्थ चौक **अरिचौक** के नाम से प्रसिद्ध है। यदि साधक के नाम का प्रथमाक्षर एवं मन्त्र के प्रथम अक्षर की स्थिति प्रथम चौके के प्रथम कोष्ठ में हो, तब वह मन्त्र सिद्ध होगा।।१-६।।

तदि्द्वतीये तु मन्त्रार्णे सिद्धसाध्यः प्रकीर्तितः।
तृतीये तत्सुसिद्धःस्यात्सिद्धारिस्तच्चतुर्थके॥७॥
नामार्णान्यचतुष्कात्तु द्वितीये मन्त्रवर्णके। चतुष्के चेत्तदा पूर्वं यत्र नामाक्षरं स्थितम्॥८॥
तत्र तत्कोष्ठमारभ्य गणयेत्पूर्ववत्क्रमात्।
साध्यसिद्धः साध्यसाध्यस्तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः॥९॥

यदि मन्त्र वर्ण प्रथम चौके के द्वितीय कोष्ठ में पड़े, तब वह **सिद्धासाध्य** होगा। यदि प्रथभ चौके के तृतीय कोष्ठ में पड़े, तब वह **सिद्ध सुसिद्ध** होगा। चतुर्थ कोष्ठ में पड़े, तब वह **सिद्धारि** होगा। अपने नाम के प्रथम अक्षर वाले चौक से दूसरे वाले चौक में यदि मन्त्र का प्रथमाक्षर हो, तब नामाक्षर वाले कोष्ठ से प्रारंभ कर मन्त्राक्षर वाले कोष्ठ तक प्रदक्षिणाक्रमेण गणना करे। तब यदि द्वितीय चौक के पहले, दूसरे, तीसरे तथा चतुर्थ कोष्ठ में मन्त्राक्षर पड़े, तब पहले में पड़ने से साध्यसिद्ध, दूसरे में साध्य-साध्य, तीसरे में साध्य सुसिद्ध तथा चतुर्थ में साध्य आदि संज्ञा कही जायेगी।।७-९।।

तृतीये चेच्चतुष्के तु यदि स्यान्मन्त्रवर्णकः।
तथा पूर्वोक्तरीत्या तु क्रमाद्देयं मनीषिभिः॥१०॥
सुसिद्धसिद्धस्तत्साध्यस्तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः।
तुरीये चेच्चतुष्टके तु तदैवं गणयेत्सुधीः॥११॥

तृतीय चौक में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो, तब मनस्वी व्यक्ति पूर्वोक्त प्रकार से गिने। तृतीय चौक के पहले कोष्ठ में हो, तब सुसिद्ध सिद्ध, द्वितीय में हो, तब सुसिद्ध साध्य, तृतीय में हो, तब सुसिद्धसुसिद्ध तथा चतुर्थ कोष्ठ में होने पर सुसिद्ध अरि संज्ञा कही जायेगी। चौथे चौक में जब मन्त्र का प्रथम अक्षर पड़े, तब भी बुद्धिमान् साधक ऐसे ही गिने।।१०-११।।

अरिसिद्धोऽरिसाध्यश्च तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः।
सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्विगुणात्सिद्धिसाध्यकः॥१२॥
सिद्धः सुसिद्धोऽर्द्धतयात्सिद्धारिर्हन्ति गोत्रजान्।
द्विगुणात्साध्यसिद्धस्तु साध्यसाध्यो विलम्बतः॥१३॥

तब पूर्ववत् चतुर्थ चौक के प्रथम कोष्ठ में मन्त्र का आदि अक्षर पड़ने पर अरिसिद्ध, द्वितीय कोष्ठ में अरिसाध्य, तृतीय कोष्ठ में अरि सुसिद्ध तथा चतुर्थ कोष्ठ में अरिअरि संज्ञा होगी। सिद्ध-सिद्ध मन्त्र की सिद्धि शास्त्रोक्त संख्या जप से सिद्ध होगी। सिद्धसाध्य हेतु दूनी संख्या में, सिद्धसुसिद्ध में शास्त्रोक्त संख्या से आधी संख्या में जप से, सिद्धि मिलेगी। सिद्धारिमन्त्र द्विगुण संख्या से सिद्ध होगा। सिद्ध सुसिद्ध तो आधी संख्या जप से सिद्ध होना तथापि सिद्धारिमन्त्र कुटुम्बीजन नाशक है। सिद्ध साध्य द्विगुण जप से सिद्ध होगा। साध्य-साध्य अतीव विलम्ब से सिद्ध हो पाता है।।१२-१३।।

साध्यः सुसिद्धो द्विगुणात्साध्यारिर्हन्ति बान्धवान्।
सुसिद्धसिद्धोऽर्द्धतया तत्साध्यो द्विगुणाज्जपात॥१४॥
तत्सुसिद्धप्राप्तमात्रात्सुसिद्धारिः कुटुम्बहृत्।
अरिसिद्धस्तु पुत्रघ्नोऽरिसाध्यः कन्यकापहः॥१५॥
तत्सुसिद्धः कलत्रघ्नः साधकघ्नोऽप्यरिः स्मृतः।
अन्येऽप्यत्र प्रकारा हि सन्ति वै बहवो मुने॥१६॥
सर्वेषु मुख्योऽयं तेऽत्र कथितोऽकथहाभिधः।
एवं संशोध्य मन्त्रं तु शुद्धे काले स्थले तथा॥१७॥

साध्य सुसिद्ध द्विगुणित जप से सिद्ध होगा, तथापि साध्यारि मन्त्र जप बन्धु-बान्धव नाशक है। सुसिद्धसिद्ध आधे जप से सिद्ध होगा। सुसिद्ध साध्य हेतु द्विगुण जप करे। सुसिद्ध-सुसिद्ध मन्त्र प्राप्ति के साथ ही सिद्ध होता है। सुसिद्धारि समस्त कुटुम्ब नाशक है। अरिसिद्ध पुत्र नाशक, अरिसाध्य पुत्री नाशक, अरिसुसिद्ध पत्नी नाशक है। अरि-अरि तो साधक का ही नाश करता है। हे मुनिवर! मन्त्र शोधन के नाना प्रकार हैं, तथापि यही अकथह चक्र सर्वप्रधान है। तभी यही आप से कहा गया। मन्त्र का शोधन शुद्ध काल तथा स्थान में हो।।१४-१७।।

दीक्षयेच्च गुरुः शिष्यं तद्विधानमुदीर्यते। नित्यकृत्यं विधायाथ प्रणम्य गुरुपादुकाम्॥१८॥
प्रार्थयेत्सद्गुरुं भक्त्याभीष्टमन्त्रार्थमादृतः। संपूज्य वस्त्रालङ्कारगोहिरण्यधरादिभिः॥१९॥
कृत्वा स्वस्ति विधानं तु मण्डलादि च तुष्टिमान्।
गुरुः शिष्येण सहितः शुचिर्यागगृहं विशेत्॥२०॥

तब शिष्य को गुरु वहां दीक्षा प्रदान करे। अब दीक्षा विधान कहा जाता है। नित्य कृत्य से निवृत्त होकर शिष्य गुरु पादुका को प्रणाम करे। वह सादर सद्गुरु से उनके पूजनोपरान्त वांछित मन्त्र हेतु प्रार्थना करे। वह शिष्य गुरु की पूजा वस्त्र, अलंकार, गौ, स्वर्ण, भूमिदान आदि से करे। अब गुरु सन्तुष्ट होकर स्वस्तिपाठ के

उपरान्त सविधि मण्डलादि विधि सम्पन्न करने के उपरान्त शिष्य सहित पवित्र होकर यागगृह में प्रविष्ट हो जाये।।१८-२०।।

सामान्यार्घोकदकेनाथ संप्रोक्ष्य द्वारमन्त्रतः।
दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नान्नभस्थानचर्च्य वारिणा॥२१॥
पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमांस्ततः कर्मसमाचरेत्। वर्णकैः सर्वतोभद्रे यथोक्तपरिकल्पिते॥२२॥
वह्निमण्डलमभ्यर्च्य तत्कलाः परिपूज्य च।
अस्त्रप्रक्षालितं कुम्भं यथाशक्ति विनिर्मितम्॥२३॥
तत्र संस्थाप्य विधिवत्तत्र भानोः कलां यजेत्।
विलोममातृकामूलमुच्चरन् शुद्धवारिणा॥२४॥
आपूर्य कुम्भं तत्रार्चेत्सोमस्य विधिवत्कलाः।
धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी॥२५॥
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा।
वह्नेर्दश कलाः प्रोक्ताः प्रोच्यन्तेऽथ रवेः कलाः॥२६॥

तदनन्तर सामान्यार्घ्य जल द्वारा गुरुदेव द्वारमन्त्र से द्वार का प्रोक्षण करे। अब गुरुदेव अस्त्र मन्त्रों द्वारा दिव्य विघ्नों को निवृत्त करके आकाशस्थ विघ्न का निवारण जल से अर्चना द्वारा करे। तदनन्तर भूमि सम्बन्धित विघ्न का निवारण तीन बार एड़ी के आघात से करे। अब विभिन्न वर्णों के चूर्ण से सर्वतामण्डल रचित करे। तदनन्तर उसमें वह्निमण्डल तथा वह्निकला की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अस्त्र मन्त्रोच्चार द्वारा प्रक्षालित यथाशक्ति बने कलश को स्थापित करे। (यथाशक्ति अर्थात् जैसी धनशक्ति हो तदनुसार स्वर्ण, रजत, ताम्र, इत्यादि के कलश) वहां तदनन्तर सूर्य कला की पूजा करे। वे हैं—धूर्मार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्रीः, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा, कव्यवहा। इस प्रकार अग्नि की ये दश कलायें हैं। विलोम मातृका मूल मन्त्रोच्चार करके शुद्ध जल पूर्ण कलश में चन्द्र कलार्चना करे। अब सूर्य कला कहता हूं।।२१-२६।।

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिज्वालिनी रुचिः।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा॥२७॥
अथेन्दोश्च कला ज्ञेया ह्यमृता मानदा पुनः। पूषा तुष्टिश्च पुष्टिश्च रतिश्च धृतिसंज्ञिकाः॥२८॥
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा।
पूर्णापूर्णामृता चेति प्रोक्ताश्चन्द्रमसः कलाः॥२९॥

तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचिज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा—ये सूर्य कला है। चन्द्र कलायें हैं—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चान्द्रीका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता।।२७-२९।।

वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य तस्मिन्सर्वौषधीः क्षिपेत्।
नवरत्नानि निक्षिप्य विन्यसेत्पञ्चपल्लवान्॥३०॥
पनसाम्रवटाश्वत्थबकुलेति च तान् विदुः। मुक्तामाणिक्यवैडूर्यगोमेदान्वज्रविद्रुमौ॥३१॥
पद्मरागं मरकतं नीलं चेति यथाक्रमम्। एवं रत्नानि निक्षिप्त तत्रावाह्येष्टदेवताम्॥३२॥
सम्पूज्य विधिवन्मन्त्री ततः शिष्यं स्वलङ्कृतम्।
वेद्यां संवेश्य सम्प्रोक्ष्य प्रोक्षणीस्थेन वारिणा॥३३॥

उस स्थापित कलश को, वस्त्रद्वय से आवेष्टित करके उसमें सर्वोषधि छोड़े। तदनन्तर उसमें नव प्रकार के रत्न एवं पंचपल्लव अर्थात् कटहल, आम, वट, पीपल, मौलश्री की पत्ती छोड़नी चाहिये। नवरत्न हैं मुक्ता, मणिक, वैदूर्य, गोमेद, हीरा, विद्रुम, पद्मराग, मरकत तथा नीलम। उसमें नवरत्न क्षेपणोपरान्त वहां इष्ट देव का स्मरण करे। मन्त्र देने वाले गुरु एवंविध सर्वतोभद्र मण्डल में आवाहन किये देवगण की पूजा सविधि करे। तत्पश्चात् आभूषण, वस्त्रादि से सज्जित शिष्य को वेदी पर आसीन कराये तथा प्रोक्षणी जल द्वारा उसका प्रोक्षण करे।।३०-३३।।

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा तच्छरीरे विधानतः।
न्यासजालेन संशोध्य मूर्ध्नि विन्यस्य पल्लवान्॥३४॥
अष्टोत्तरशतेनाथ मूलमन्त्रेण मन्त्रितैः। अभिषिञ्चेत्प्रियं शिष्यं जपन्मूलमनुं हृदि॥३५॥

अब गुरु अपने उस शिष्य की भूतशुद्धि सविधि करने के उपरान्त उनके देह को अंगन्यासादि द्वारा शुद्ध करके उसके शिर पर पल्लवों को रखे। अब गुरु१०८ बार मूल मन्त्र जप द्वारा जल का अभिमंत्रित करे। इस जल से गुरु द्वारा शिष्य का अभिषेक कराया जाये। अभिषेक काल में गुरु हृदय में मूलमन्त्र का जप करे।।३४-३५।।

शिष्टोदकेन वाचम्य परिधायाम्बरं शिशुः। गुरुं प्रणम्य विधिवत्संविशेत्पुरतः शुचिः॥३६॥
अथ शिष्यस्य शिरसि हस्तं दत्त्वा गुरुस्ततः। जपेदष्टोत्तरशतं देयमन्त्रं विधानतः॥३७॥
समोऽस्त्वित्यक्षरान्दद्यात्ततः शिष्टोऽर्चयेद्गुरुम्।
ततः सचन्दनं हस्तं दत्त्वा शिष्यस्य मस्तके॥३८॥
तत्कर्णे प्रवदेद्विद्यामष्टवारं समाहितः। सम्प्राप्तविद्यः शिष्योऽपि निपतेद्गुरुपादयोः॥३९॥

तदनन्तर जो जल बचा हो, उससे शिष्य आचमन करके अब नवीन वस्त्र पहने। वह गुरु को सविधि प्रणाम करे तथा उनके सामने आसन ग्रहण करे। गुरुदेव भी शिष्य के शिर पर अपना शिवहस्थ स्थापित करके सविधि देयमन्त्र का १०८ जप करे। जप के पश्चात् गुरु शिष्य से यह कहें—"अब तुम मेरे समान हो जाओ।" इसके पश्चात् शिष्य द्वारा गुरु की पूजा होनी चाहिये। गुरुदेव अपनी हथेली चन्दन चर्चित करके शिष्य के मस्तक पर रखे तथा उसके दक्षिण कर्ण में देय मन्त्र का सतर्क होकर जप करे। एवंविध सविधि दीक्षा लाभोपरान्त शिष्य भक्तिपूर्वक अपना शिर गुरु के चरणों पर रखे।।३६-३९।।

उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान्भव। कीर्तिश्रीकान्तिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते॥४०॥

अब गुरुदेव कहें—हे वत्स! उठ जाओ! तुम मुक्त हो गये। सम्यक्तः आचार पालन करो। तुमको कीर्त्ति, श्री, कान्ति, पुत्र, आयु, बल आरोग्य का सदा लाभ होता रहे।।४०।।

ततः शिष्यः समुत्थाय गन्धाद्यैर्गुरुमर्चयेत्।
दद्याच्च दक्षिणां तस्मै वित्तशाठ्यविवर्जितः॥४१॥
सम्प्राप्यैवं गुरोर्मन्त्रं तदारभ्य धनादिभिः। देहपुत्रकलत्रैश्च गुरुसेवापरो भवेत्॥४२॥

इसके पश्चात् शिष्य उठे तथा गन्धादि से गुरुपूजन करे। अब वह कंजूसी छोड़कर गुरु को दक्षिणा प्रदान करे। गुरु से मन्त्रलाभ के पश्चात् वह शिष्य उसी तिथि से धन सम्पत्ति तथा अपने परिवार के लोगों के साथ गुरुसेवा परायण हो जाये।।४१-४२।।

स्वेष्टदेवं यजेन्मध्ये दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः।
अग्निनैर्ऋतिवागीशान् क्रमेण परिपूजयेत्॥४३॥
यदा मध्ये यजेद्विष्णुं बाह्यादिषु विनायकम्।
रविं शिवां शिवं चैव यदा मध्ये तु शङ्करम्॥४४॥
रविं गणेशमम्बां च हरिं चाथ यदा शिवाम्।
ईशं विघ्नार्कगोविन्दामध्ये चेद्गणनायकम्॥४५॥
शिवं शिवां रविं विष्णं रवौ मध्यगते पुनः।
गणेशं विष्णुमम्बां च शिवं चेति यथाक्रमम्॥४६॥

शिष्य नित्य इष्टदेव पूजन, उनको पुष्पांजलि निवेदन करे तथा तदनन्तर अग्नि, नैर्ऋति तथा वागीशपूजन किया करे। जब वह बीच में (मध्य में) विष्णु पूजन करने लगे, तब उसे उनके चतुर्दिक् विनायक, सूर्य, शिव-शिवा का पूजन भी करना चाहिये। जब मध्य में शिव की पूजा की जाये, तब वहां रवि, गणपति, हरि तथा शिवा की पूजा करनी चाहिये। जब मध्य में शिवा की पूजा हो, तब चतुर्दिक् शिव, गणपति, सूर्य, विष्णु पूजन करे। जब मध्य में गणपति की पूजा हो, तब चतुर्दिक् शिव, शिवा, सूर्य पूजन करे। जब मध्य में सूर्य पूजन हो, तब चतुर्दिक् गणेश, विष्णु, अम्बा तथा शिव की चतुर्दिक् पूजा हो।।४३-४६।।

एवं नित्यं समभ्यर्च्य देवपञ्चकमादृतः। ब्राह्मे मुहूर्त्ते ह्युत्थाय कृत्वा चावश्यकं बुधः॥४७॥
अशङ्कितो वा शय्यायां स्वकीयशिरसि स्मरेत्। सहस्रदलशुक्लाब्जकर्णिकास्थेन्दुमण्डले॥४८॥
अकथादित्रिकोणस्थं वराभयकरं गुरुम्। द्विनेत्रं द्विभुजं शुक्लगन्धमाल्यानुलेपनम्॥४९॥
वामे शक्त्या युतं ध्यात्वा मानसैरुपचारकैः।
आराध्य पादुकामन्त्रं दशधा प्रजपेत्सुधीः॥५०॥

इस प्रकार बुद्धिमान् शिष्य नित्य ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर पंचदेवार्चन किया करे। वह ब्राह्ममुहूर्त्त में उठने के पश्चात् आवश्यक कृत्य सम्पन्न करने के अनन्तर निःशंक भाव से शय्या पर ही बैठे हुये अपने शिरस्थ श्वेत सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य स्थित चन्द्रमण्डल में विराजित अ क थादि त्रिकोण में वर-अभय प्रदाता

गुरु का चिन्तन करे। उनकी दो भुजा, दो नेत्र हैं। वे श्वेत गंध तथा माला एवं अनुलेप युक्त है। उनके वाम भाग में उनकी शक्ति विराजित है। वहां इस प्रकार ध्यान करके सुधी साधक दस बार पादुका मन्त्र का जप करके उनकी आराधना करे।।४७-५०।।

वाङ्माया श्रीर्भगेन्द्वाढ्याः वियद्धंसखकाग्नयः। हसक्षमलवार्यग्निवामकर्णेन्दुयुग्मरुत्॥५१॥

ततो भृग्वाकाशखाग्निभगेन्द्वाढ्याः परन्तिमः।
सहक्षमलतोयाग्निचन्द्रशान्तियुतो मरुत्॥५२॥
ततः श्रीश्चामुकान्ते तु नन्दनाथामुकी पुनः।
देव्यम्बान्ते श्रीपादुकां पूजयामि हृदन्तिमे॥५३॥

श्लोक ५१-५३ में यहां मूल में पादुका मन्त्र कहा गया है। इसका १० बार जप करे। (मन्त्र का मन्त्रोद्धार नहीं हो सकेगा। अतः अनुवाद अनावश्यक है।)।।५१-५३।।

अयं श्रीपादुकामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम्। गृह्येति च समर्प्याथ मन्त्रैरेतैर्नमेत्सुधीः॥५४॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५५॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५६॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मा इष्टदेवस्वरूपिणे। यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्॥५७॥

यह पादुका मन्त्र सर्वसिद्धिप्रदाता है। तदनन्तर "गुह्यातिगुह्य" इत्यादि से मन्त्र का समर्पण करना चाहिये। तदनन्तर साधक शिष्य मन्त्र को नमस्कार करे। तदनन्तर मूलोक्त श्लोक ५५ से ५७ तक द्वारा गुरु वन्दना करे। श्लोक ५५ से ५७ का अर्थ यह है—"सचराचर में व्याप्त अखण्ड मण्डलाकृति ब्रह्मपद का साक्षात्कार कराने वाले गुरु को प्रणाम! जिन गुरु ने अज्ञान तिमिरान्ध मेरे नेत्रों को ज्ञानांजन शलाका द्वारा ज्योतित कर दिया तथा नेत्रों को खोल दिया, उन गुरु को प्रणाम! इष्ट देव रूप आप गुरु को प्रणाम! जिनकी वाणी रूप सुधा संसार विष का नाश करने वाली है।।५४-५७।।

इति नत्वा पठेत्स्तोत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
ओम् नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे॥५८॥

विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह। नवायतनरूपाय परमार्थैकरूपिणे॥५९॥
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते। स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने॥६०॥

परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भावरूपिणे।
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम्॥६१॥

प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे। पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्तुभ्यमुपर्यधः॥६२॥

सदा सच्चित्स्वरूपेण विधेहि भवदासनम्।
त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः॥६३॥

मायामृत्युमहापाशद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि वः। इति स्तुत्वा ततः सर्वं गुरवे विनिवेदयेत्॥६४॥

एवंविध गुरुप्रणामोपरान्तः सद्यः श्रद्धा उत्पन्न करने वाले इस श्लोक का पाठ करना चाहिये। ॐ हे नाथ आप भगवान् शिव ही गुरु रूपी हैं। आप विद्या प्रदानार्थ नाना देह धारण करते हैं। हे नाथ! आप गुरुरूप शिव को प्रणाम! आप परमार्थरूपी, अज्ञानान्धकार नाशक, भानुरूप, चिद्घन, स्वतन्त्र, दयामय विग्रहधारी, शिवात्मा, भक्तों के वशीभूत, भावुकों के भाव, विवेकीगण के विवेक, विमर्शीगण के (विचारकों के) विवेक, प्रकाशों के भी प्रकाश, ज्ञानियों के ज्ञान हैं। आपके आगे पृष्ठ भाग में, पार्श्व में, अधः एवं ऊर्ध्व में प्रणाम है! आप सत्-चित् रूपी हैं। मेरे हृदयासन पर आसीन रहिये। मैं सदा-सर्वत्र आपकी कृपा से कृतकृत्य रहता हूं। आपकी कृपा से मैं माया, मृत्यु रूपी महापाश से मुक्त हो गया।'' यह स्तुति करके अपना सब कुछ गुरु को अर्पित करे।।५८-६४।।

प्रातःप्रभृति सायान्तं सायादिप्रातरन्ततः। यत्करोमि जगन्नाथ तदस्तु तव पूजनम्।।६५।।

समर्पण मन्त्र है—मैं प्रातः से लगाकर सायंकाल तक तथा सायं से प्रातः पर्यन्त जो कुछ कार्य करता हूं, हे जगन्नाथ! वह सब आपकी पूजा है। अन्य कुछ नहीं है।।६५।।

ततश्च गुरुपादब्जगलितामृतधारया। क्षालितं निजमात्मानं निर्मलं भावयेत्सुधीः।।६६।।
मूलादिब्रह्मरन्धान्तं मूलविद्यां विभावयेत्। मूलाधारादधो भागे वर्तुलं वायुमण्डलम्।।६७।।

तत्रस्थवायुबीजोत्थवायुना च तदूर्ध्वकम्।
त्रिकोणं मण्डलं वह्नेस्तत्रस्थं वह्निवीजतः।।६८।।
उत्पन्नेनाग्निना मूलाधारावस्थितविग्रहाम्।
प्रसुप्तभुजगाकारां स्वयं भूलिङ्गवेष्टिनीम्।।६९।।
बिसतन्तुनिभां कोटिविद्युदाभां तनीयसीम्।
कुलकुण्डलिनीं ध्यात्वा कूर्चेनोत्थापयेच्च ताम्।।७०।।

तदनन्तर वह सुधी शिष्य यह भावना करे कि वह गुरु चरणकमल से निर्गत अमृतधारा में स्नान करके अपने पातकों को धोकर निर्मल हो गया। तब वह मूलाधार से लगाकर ब्रह्मरन्ध्र तक मूलविद्या चिन्तन करे। मूलाधार के अधः में वर्तुल वायुमण्डल है। साधक शिष्य वायुमण्डलस्थ वायुबीज को (यं) प्रदीप्त करके उसके ऊर्ध्वस्थ अग्नि त्रिकोण मण्डलस्थ अग्निबीज (रं) को जगाये। वह उस जाग्रत अग्नि बीज द्वारा दीप्त की गयी अग्नि से मूलाधारस्था प्रसुप्तभुजगाकारा मूलाधारस्थ भूलिङ्ग को जकड़कर स्थिता, कमलतन्तु के समान, कोटि विद्युत् की आभा वाली, अत्यन्त सूक्ष्मा कुल कुण्डलिनी का चिन्तन करके उसे कूर्च (?) से जगाये।।६६-७०।।

सुषुम्णावर्त्मना तां च षट्चक्रक्रमभेदिनीम्। गुरूपदिष्टविधिना ब्रह्मरन्ध्रं नयेत्सुधीः।।७१।।

तत्रस्थामृतसम्मग्नीकृत्यात्मानं विभावयेत्।
तत्प्रभापटलव्याप्तं विमलं चिन्मयं परम्।।७२।।
पुनस्तां स्वस्थलं नीत्वा हृदि देवं विचिन्तयन्।
दृष्ट्वा च मानसैर्द्रव्यैः प्रार्थयेन्मनुनामुना।।७३।।

तदनन्तर सुषुम्ना मार्ग द्वारा कुल कुण्डलिनी को एक के बाद एक षट्चक्रों का भेदन करते हुये, गुरु उपदिष्ट विधानानुसार ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त उन्नीत करे। साधक शिष्य ब्रह्मरन्ध्रस्थ अमृत में स्वयं को निमज्जित करके स्वयं की तेजपुंज से व्याप्त, विमल-चिन्मय रूप में भावना करे। तत्पचात् पुनः कुण्डलिनी को यथास्थान स्थापित करके (मूलाधारस्थ करके) हृदय में इष्टदेव का चिन्तन करते हुये वहां मनोकल्पित उपचारों द्वारा उन चिन्मय देवता की पूजना करके यह प्रार्थना करनी चाहिये।।७१-७३।।

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रां त्वनुवर्तयिष्ये॥७४॥

प्रार्थना मन्त्र यह है—हे त्रैलोक्य! चैतन्यरूप, आदिदेव, श्रीनाथ, विष्णु! आपके आदेश के अनुरूप मैं आपको प्रसन्न करने के लिये ही संसारयात्रा सम्बन्धित कार्य कर रहा हूं!।।७४।।

विष्णोरिति स्थले विप्र कार्यं ऊहोऽन्यदेवते।
ततः कुर्यात्सर्वद्धियै त्वजपाया निवेदनम्॥७५॥
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
अजपाख्यां तु गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा॥७६॥
ऋषिर्हंसस्तथाव्यक्तगायत्रीछन्द ईरितम्। देवता परमो हंसश्चाद्यन्ते बीजशक्तिकम्॥७७॥
ततः षडङ्गं कुर्वीत सूर्यः सोमो निरञ्जनः। निराभासश्च धर्मश्च ज्ञानं चेति तथा पुनः॥७८॥
क्रमादेतान्हंसपूर्वानात्मनेपदपश्चिमान्। जातयुक्तान्साधकेन्द्र षडङ्गेषु नियोजयेत्॥७९॥
हकारः सूर्यसङ्काशतेजाः सङ्गच्छते बहिः। सकारस्तादृशश्चैव प्रवेशे ध्यानमीरितम्॥८०॥

हे विप्र! जहां विष्णु के स्थान पर अन्य देवता की मन्त्र दीक्षा ग्रहण करनी हो, तब 'विष्णोः' का प्रयोग न करके उन अन्य देवता के नाम का उपयोग करे। इसके अनन्तर सर्वसिद्धिलाभार्थ अजपा निवेदित करे। (अर्थात् अजपा जप उस मन्त्र का करे)। अहोरात्र में प्राणी २१६०० अजपा गायत्री का जप करता रहता है। इसके ऋषि हैं हंस, छन्दः है अव्यक्त गायत्री। देवता हैं परमहंस। हं (आदि बीज) तथा सः (अन्त्य बीज) ही शक्ति है। षडङ्ग हैं—सूर्य, चन्द्र, निरंजन, धर्म, ज्ञान। इनको कौशल से युक्त करे अर्थात् पूर्व में 'हंस' को जोड़ें। अन्त में आत्मनेपद युक्त करे। इसका इस प्रकार षडङ्गन्यास करे। यथा—

हंसः सूर्यात्मने, हृदयाय नमः।
हंसः सोमात्मने, शिरसे स्वाहा।
हंसो निरंजनात्मने, शिखायै वषट्।
हंसो निराभासात्मने, कवचाय हुम्।
हंसो धर्मात्मने, नेत्राभ्यां वौषट्।
हंसो ज्ञानात्मने, अस्त्राय फट्।

हकार सूर्यवत् तेज की तरह देह से बहिर्गत् होता है। सकार सूर्यवत् तेज की तरह देह में प्रविष्ट होती है। यही है हकार-सकार ध्यान।।७५-८०।।

एवं ध्यात्वार्पयेद्धीमान्वह्न्यर्केषु विभागशः। मूलाधारे वादिसान्तबीजयुक्ते चतुर्दले॥८१॥
बन्धूकाभे स्वशक्त्या तु सहितापास्वगाय च। पाशाङ्कुशसुधापात्रमोदकोल्लासपाणये॥८२॥

एवंविध ध्यानोपरान्त वह धीमान् व्यक्ति अग्नि तथा सूर्यमण्डल में विभाग करके जपार्पण करे। (अर्थात् दोनों में बांटकर जपार्पण करे।) मूलाधारस्थ चतुर्दल कमल बन्धूकपुष्पवत् रक्तवर्ण हैं। उसके चार दल में व, श, ष, स स्थित हैं। वहां अपनी शक्ति से युक्त गणपति देव स्थित रहते हैं, जिन्होंने चतुर्बाहु में पाश, अंकुश, अमृतपात्र तथा मोदक प्रसन्नता पूर्वक धारण कर रखा है।।८१-८२।।

षट्शतं तु गणेशाय वागधीशाय चार्पयेत्। स्वाधिष्ठाने विद्रुमाने बादिलान्तार्णसंयुते॥८३॥
वामाङ्गशक्तियुक्ताय विद्याधिपतये तथा। स्रुवाक्षमालालसितबाहवे पद्मजन्मने॥८४॥
ब्रह्मणे षट्सहस्त्रं तु हंसारूढाय चार्पयेत्। विद्युल्लसितमेघाभे डादिफान्तार्णपत्रके॥८५॥
मणिपूरे शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणे। सश्रिये षट्सहस्त्रं च विष्णवे विनिवेदयेत्॥८६॥

इन वाग्धीश गणेश को ६०० जपार्पण करे। स्वाधिष्ठान षड्दल कमल है। यह विद्रुमाभ है। उसके षट्दल में ब, भ, म, य, र, ल स्थित हैं। वहां विद्याधिपति ब्रह्मदेव हंसारूढ़ विराजमान हैं। जिनके वामभाग में उनकी ब्राह्मीशक्ति है। ब्रह्मदेव के हाथ में स्रुव एवं अक्षमाला है। इन ब्रह्मदेव को षड्सहस्त्र जपार्पण करे। विद्युत्वल्ली युक्त मेघाभ मणिपूर दशदलात्मक है, जिसके प्रतिदल पर क्रमशः ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ अंकित हैं। वहां शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णुदेव लक्ष्मी के साथ स्थित हैं। इनको च सहस्त्र जपार्पण करे।।८३-८६।।

अनाहतेऽर्कपत्रे च कादिठान्तादिसंयुते। शुक्ले शूलाभयवरसुधाकलशधारिणे॥८७॥
वमाङ्गे शक्तियुक्ताय विद्याधिपतये सुधीः। वृषारूढाय रुद्राय षट्सहस्त्रं निवेदयेत्॥८८॥

तदनन्तर अनाहत कमल द्वादशदलात्मक है। इसके दलों पर क्रमशः क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ट, ठ स्थित है। यह शुभ्रवर्ण है। वहां वृषभ पर आसीन रुद्रदेव हैं, जिनके वामांग में उनकी शक्ति स्थित हैं। ये देव शुभ्रवर्ण हैं, इन्होंने शूल, अभय, वर तथा अमृत कलस हाथों में धारण किया है तथा ये विद्याधिपति हैं। इनको शिष्य साधक ६००० जपार्पण करे।।८७-८८।।

विशुद्धे षोडशदले स्वराढ्ये शुक्लवर्णके। महाज्योतिप्रकाशायेन्द्रियाधिपतये ततः॥८९॥
सहस्त्रमर्पयेत्प्राणशक्त्या युक्तेश्वराय च। आज्ञाचक्रे हक्षयुक्ते द्विदलेऽब्जे सहस्त्रकम्॥९०॥
सदाशिवाय गुरवे पराशक्तियुताय वै। सहस्त्रारे महापद्मे नादबिन्दुद्वयान्विते॥९१॥
विलसन्मातृकावर्णे वराभयकराय च। परमाद्ये च गुरवे सहस्त्रं विनिवेदयेत्॥९२॥

विशुद्ध चक्र श्वेतवर्ण तथा षोडश दलान्वित है, जिनके दलों पर क्रमशः १६ स्वर, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ऐ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ओ, औ, अं, अः विराजमान हैं। यहां महाज्योति विभासित इन्द्रियों के स्वामी ईश्वर स्थित हैं। उनकी शक्ति है प्राण। इनको १००० जपार्पण करे। आज्ञाचक्र द्विदल है जहां ह, क्ष स्थित हैं। यहां गुरु सदाशिव महाशक्ति के साथ विराजमान हैं। इनको १००० जपार्पण करे। तदनन्तर सहस्त्रार महापद्म सहस्त्रदलान्वित है, जहां नादविन्दु समन्वित समस्त मातृकायें विराजित रहती हैं। उन वराभय युक्त परम आदिगुरु को १००० जपार्पण करे।।८९-९२।।

चुलुकेऽम्बु पुनर्द्धत्वा स्वभावादेव सिध्यतः। एकविंशतिसाहस्त्रप्रमितस्य जपस्य च॥९३॥
षट्शताधिकसंख्यास्यादजपाया विभागशः। सङ्कल्पेन मोक्षदाता विष्णुर्मे प्रीयतामिति॥९४॥

अब चुल्लू में जल लेकर कहें—मैंने स्वभावतः होने वाले २१६०० अजपा जप का उपरोक्त प्रकारेण विभाग किया तथा संकल्प किया। मोक्षप्रद विष्णुदेव मेरे प्रति प्रसन्न हों।।९३-९४।।

अस्याः सङ्कल्पमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते।
ब्रह्मैवाहं न संसारी नित्यमुक्तो न शोकभाक्॥९५॥
सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत्। ततः समाचरेद्देहकृत्यं देवार्चनं तथा॥९६॥
तद्विधानं प्रवक्ष्यामि सदाचारस्य लक्षणम्॥९७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

इस अजपा गायत्री का संकल्प मात्र करने वाला महापातकरहित हो जाता है। "मैं ही ब्रह्म हूं। संसारी प्राणी नहीं हूं। शोक मेरा स्पर्श तक नहीं कर सकते। मैं तो नित्यमुक्त हूं। मैं सच्चिदानन्द रूप हूं।" इस प्रकार भावना करे। तदनन्तर अपना शारीरिक कार्य तथा देवार्चन करे। अब देवार्चन विधि तथा सदाचार लक्षण कहता हूं।।९५-९७।।

।।६५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
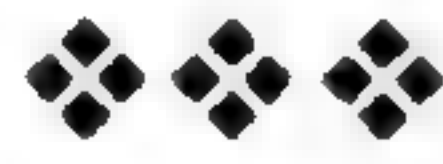
अथ षष्टषष्टितमोऽध्यायः

प्रातःकृत्य, सन्ध्या-तर्पणादि वर्णन

सनत्कुमार उवाच

ततः श्वासानुसारेण दत्त्वा पादं महीतले। समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले॥१॥
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे। इति भूमिं तु सम्प्रार्थ्य विहरेच्च यथाविधि॥२॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—सुबह शय्या से उठते समय जिस नासिका से श्वास चलता हो, उधर का पैर पहले धरती पर रखे। साथ ही पृथिवी की प्रार्थना करे—"हे देवी! समुद्र आपकी मेखला तथा पर्वत स्तनमण्डल हैं। हे विष्णुपत्नी! आपको प्रणाम! आप मेरे चरण स्पर्श जनित (पृथिवी पर जो मैं चरण रख रहा हूं) अपराध को क्षमा करे।" इस प्रार्थना के उपरान्त व्यक्ति अपनी दिनचर्या को प्रारंभ करे।।१-२।।

रक्षःकोणे ग्रामाद्गत्वा मन्त्रमुदीरयेत्। गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः॥३॥

पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्। इति तालत्रयं दत्वा शिरः प्रावृत्य वाससा॥४॥

दक्षिणाभिमुखं रात्रौ दिवा स्थित्वा ह्युदङ्मुखः।
मलं विसृज्य शौचं तु मृदाद्भिः समुपाचरेत्॥५॥

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे मृदः। करयोः सप्त वैः दद्यात्त्रिविचारं च पादयोः॥६॥

एवं शौचं विधायाथ गण्डूषान्द्वादशैव तु। कृत्वा वनस्पतिं चाथ प्रार्थयेन्मनुनामुना॥७॥

तदनन्तर मनुष्य ग्राम से नैर्ऋत्य कोण की ओर एकान्त में मल विसर्जन करे। उसके पूर्व वहां खड़े होकर यह मन्त्र पढ़े—"यहां जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक, पितर किंवा भूतगण हों, अन्यत्र जायें। मैं यहां मलत्याग करूंगा।" तदनन्तर तीन ताली बजाकर एक वस्त्र से शिर ढके। रात्रि में दक्षिणमुख होकर तथा दिवाकाल में उत्तरमुख होकर यह कार्य करे। तत्पश्चात् मृत्तिका एवं जल से मलद्वार साफ करे। लिंग पर एक बार, गुदामार्ग पर तीन बार, वामहाथ में १० बार तथा दोनों हाथ में सात बार एवं उभय पैरों में तीन बार मृत्तिका लगाकर जल से स्वच्छ करे। इस प्रकार से पवित्र होकर वह व्यक्ति १२ बार कुल्ला करके वनस्पति की प्रार्थना इस मन्त्र से करे।।३-७।।

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च। श्रियं प्रज्ञा च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥८॥

सम्प्रार्थ्यैवं दन्तकाष्ठं द्वादशाङ्गुलसम्मितम्।
गृहीत्वा काममन्त्रेण कुर्यान्मन्त्री समाहितः॥९॥

कामदेवपदं ङेन्तं तथा सर्वजनप्रियम्। हृदन्तः कामबीजाढ्यं दन्तांश्चानेन शोधयेत्॥१०॥

वनस्पति मन्त्र—"हे वनस्पति! तुम मुझे आयु, बल, विद्या, यश, तेजः, सन्तति, पशु, धन, श्री, प्रज्ञा, मेधा प्रदान करो।" तदनन्तर बारह अंगुल की दातौन इस मन्त्र से अभिमंत्रित करके दन्त धावन करे। "क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः।"।।८-१०।।

जिह्वोल्लेखो वाग्भवेन मूलेन क्षालयेन्मुखम्।
देवागारं ततो गत्वा निर्माल्यमपसार्य च॥११॥

परिधायाम्बरं शुद्धं मङ्गलारार्तिकं चरेत्।
अस्त्रेण पात्रं सम्प्रोक्ष्य मूलेन ज्वालयेच्च तम्॥१२॥

संपूज्य पात्रणादायोत्थाय घण्टां च वादयेत्। सुगोघृतप्रदीपेन भ्रामितेन समन्ततः॥१३॥

वाद्यैर्गीतैर्मनोज्ञैश्च देवस्यारार्तिकं भवेत्। इति नीराजनं कृत्वा प्रार्थयित्वा निजेश्वरम्॥१४॥

स्नातुं यायान्निम्नगादौ कीर्तयन्देवतागुणान्।
गत्वा तीर्थं नमस्कृत्य स्नानीयं च निधाय वै॥१५॥

जिह्वा का शोधन जल द्वारा "ऐं" मन्त्र से करे। मुख (चेहरा) को मूलमन्त्र पढ़ते हुये धोये। शुद्ध होकर तब देवमंदिर जाये तथा वहां पूर्वार्पित पुष्प अक्षतादि हटाये। (तदनन्तर वहां स्वच्छता करने के उपरान्त) स्वच्छ वस्त्र धारण करके मंगला आरती करे। इसकी विधि यह है। पहले 'अस्त्राय फट्' कहकर जल छिड़के। तदनन्तर

मूलमन्त्रोच्चारण द्वारा दीपक को अभिमंत्रित करके प्रज्वलित करे। उसे हाथ में लेकर घंटी बजाये तथा अन्यलोग भी बजायें। इस पवित्र गोघृतयुक्त दीपक को देवता के चतुर्दिक् घुमाकर पूजा करे। (ऊर्ध्व-अधः-अगल बलग=चतुर्दिक्)। तब मनोहर गीत-गायन तथा वाद्यवादन हो। आरती के उपरान्त नीराजन सम्पन्न करे तथा इष्टदेव की स्तुति एवं गुणकीर्त्तन करते नदी तथा सरोवर के निकट जायें। नदी अथवा सरोवर तट पर जाकर तीर्थ को प्रणाम करे तथा स्नानीय वस्तु सब पृथिवी पर रखे।।११-१५।।

मूलाभिमन्त्रितमृदमादाय कटिदेशतः। विलिप्य पादपर्यन्तं क्षालयेत्तीर्थवारिणा॥१६॥
ततश्च पञ्चभिः पादौ प्रक्षाल्यान्तर्जले पुनः।
प्रविश्य नाभिमात्रे तु मृदं वामकरस्य च॥१७॥
मणिबन्धे हस्ततले तदग्रे च तथा पुनः। कृत्वाङ्गुल्या गाङ्गमृदमादायास्त्रेण तत्पुनः॥१८॥
निजोपरि च मन्त्रज्ञो भ्रामयित्वा त्यजेत्सुधीः।
तलस्थां च षडङ्गेषु तन्मन्त्रैः प्रविलेपयेत्॥१९॥
निमज्ज्य क्षालयेत्सम्यग् मलस्नानमितीरितम्।
विभाव्येष्टमयं सर्वमातरं स्नानमाचरेत्॥२०॥

तत्पश्चात् मूलमन्त्र से अभिमंत्रित मृत्तिका को कटि से लेकर पैरों तक लगाकर उस तीर्थजल से शरीर धोकर स्वच्छ करे। तदनन्तर ५ बार दोनों पैर धोकर तब कटिपर्यन्त जल में प्रवेश करना चाहिये। तब वाम मणिबन्ध अर्थात् कलाई, हथेली, उंमलियों को मिट्टी से लिप्त करने के पश्चात् उंगलियों से जल के भीतर की मिट्टी निकाले। इसे अपने शिर के चारों ओर घुमाकर फेंके। मिट्टी को "अस्त्राय फट्" कहकर निकालना होगा। अब बायें हाथ से निकली मृत्तिका को भी "अस्त्राय फट् " एवं अन्य मन्त्रों से अभिमंत्रित करे तथा अपने छः अंगों में लिप्त करे। तदनन्तर जल में निमज्जित होकर अपने सर्वांग को मलकर धोना चाहिये। स्नानकाल में स्नानजल में समस्त इष्ट मातागण का ध्यान करे। यही विधिवत् स्नान का नियम है।।१६-२०।।

अनन्तादित्यसंकाशं निजभूषायुधैर्युतम्।
मन्त्रमूर्ति प्रभुं स्मृत्वा तत्पादोदकसम्भवाम्॥२१॥
धारां च ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं निजां तनुम्। तथा संक्षालयेत्सर्वमन्तर्देहगतं मलम्॥२२॥
तत्क्षणाद्विरजा मन्त्री जायते स्फटिकोपमः।
ततः श्रौतोक्तविधिना स्नात्वा मन्त्री समाहितः॥२३॥

अब अनन्त आदित्यवत् कांतिमय आभूषणों से तथा आयुधों से सज्जित मन्त्रमूर्त्ति प्रभु का स्मरण करके उनके चरण जल से उद्‌भूत गंगा जल को नासिका रन्ध्र से ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कराये। देह में इस तरह ले जायें तथा उसके द्वारा शरीरस्थ मल को बहिर्गत् करे। ऐसी आन्तरिक शुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति सद्यः रजोगुण मुक्त होकर स्फटिकवत् देहयुक्त हो जाता है। इस श्रुति कथित विधि से वह मन्त्री सचेत होकर स्नान करे।।२१-२३।।

मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात्तद्विधानमथोच्यते। देशकालौ च सङ्कीर्त्य प्राणायामषडङ्गकैः॥२४॥
कृत्वार्कमण्डलात्तीर्थान्याह्वयेन्मुष्टिमुद्रया। ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः॥२५॥

तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थं दिवाकर॥२६॥

मन्त्र स्नान करने की विधि मैं यथावत् कहता हूं। पहले देशकाल का नाम लेकर तब संकल्प करके षडङ्ग प्राणायाम करना चाहिये। इसके पश्चात् मुष्टिमुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से जल में तीर्थावाहन करे। आवाहन मन्त्र हैं—हे देव! आपकी किरण सर्वब्रह्माण्ड एवं नदी जल तीर्थ जलादि का स्पर्श करती रहती है। हे दिवाकर! उस सत्य के द्वारा आप तीर्थों को मेरे निकट लायें।।२४-२६।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरी जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥२७॥

"हे गंगा! यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी! आप इस जल में निवास करे।"।।२७।।

इत्यावाह्य जले तानि सुधाबीजेन योजयेत्।
गोमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावगुण्ठ्य च॥२८॥
संरक्ष्यास्त्रेण तत्पश्चाच्चक्रमुदां प्रदर्शयेत्। वह्न्यर्केन्दुमण्डलानि तत्र साचतयेद्बुधः॥२९॥

इस प्रकार से सबका आवाहन करके सुधाबीजमंत्र द्वारा उनको जल में स्थापित करे। इसे गोमुद्रा से अमृतमय करके उसे कवच द्वारा अवगुण्ठित करे। उसे अस्त्रमंत्र (फट्) से रक्षित करके वहां चक्र-मुद्रा प्रदर्शित करे। बुद्धिमान् व्यक्ति को अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमण्डल का ध्यान करना चाहिये।।२८-२९।।

मन्त्रयेदर्कमन्त्रेण सुधाबीजेन तज्जलम्। मूलेन चैकादशधा तत्र सम्मन्त्र्य भावयेत्॥३०॥
पूजायन्त्रं च तन्मध्ये स्वान्तादावाह्य देवताम्। स्नानपयित्वार्चयेत्तां च मानसैरुपचारकैः॥३१॥

तत्पश्चात् सूर्य मन्त्र द्वारा उस जल को अभिमंत्रित करके पुनः सुधाबीज द्वारा उसे अभिमंत्रित करे। तदनन्तर ११ बार मूल मन्त्रोच्चार करके उस जल को इस मन्त्र से भावित करना होगा। अब पूजायन्त्र को उस जल से स्थापित करके उस यन्त्र में हृदय देवता की स्थापना भावना से करे। तदनन्तर उनका वहीं मानसिक स्नानादि से मानस पूजन भी सम्पन्न करे।।३०-३१।।

सिंहासनस्थां तां नत्वा तज्जलं प्रणमेत्सुधीः। आधारः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः॥३२॥
तद्रूपाश्च ततोजाता आपस्ताः प्रणमाम्यहम्।
इति नत्वा समारुन्ध्य सप्तच्छिद्राणि साधकः॥३३॥
निमज्ज्य सलिले तस्मिन्मूलं देवाकृतिं स्मरेत्।
निमज्ज्योन्मज्ज्य त्रिश्चैवं सिञ्चेत्कं कुम्भमुद्रया॥३४॥
त्रिमूलेन चतुर्मन्त्रैरभिषिञ्चन्निजां तनुम्।
चत्वारो मनवस्तेऽत्र कथ्यन्ते तान्त्रिका मुने॥३५॥

अब वह सुधी साधक व्यक्ति सिंहासनासीन देवता को प्रणाम करके उस जल को भी प्रणाम करके कहे—"हे जल! तुम सभी प्राणीगण तथा अमित तेजवान् विष्णु के आधारभूत हो। तुम अब तद्रूप हो गये (विष्णुरूपी)। मैं ऐसे पावन जल को प्रणाम करता हूं!" इस नमस्कारोपरान्त वह व्यक्ति अपने सात छिद्रों को यथा नाक (२)+कान (२)+नेत्र (२)+मुख (१)=७ सप्तछिद्र को बन्द करके जल में निमज्जित (डुबकी) हो जायें तथा उसी निमज्जित स्थिति में वह मूल देवता की आकृति का स्मरण करे। तीन बार डुबकी लगाकर ऊपर

उठे तथा कुंभ मुद्रा में जल सिंचन करके उस जल से तीन बार एव मन्त्र से ४ बार देह का सिंचन करे। इसके चार मन्त्र मुनिगण ने कहा है।।३२-३५।।

सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम्।।३६।।

प्रथम मन्त्रार्थ—आप समस्त विश्वसृष्टि की इच्छा पुनः-पुनः करने वाले प्रजापति के शुक्र हैं। आप सभी प्राणीगण के जन्मदाता हैं। हे देव! आपको प्रणाम! मुझे पवित्र करे।।३६।।

अलक्ष्मीर्मलरूपा या सर्वभूतेषु संस्थिता।
क्षालयन्ति च तां स्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम्।।३७।।

द्वितीय मन्त्रार्थ—आप सभी प्राणीगण में स्थित मलरूप अलक्ष्मी को अपने विमल स्पर्श से धोते हैं। आप इस प्रकार के जलदेवता! मुझे पवित्र करिये।।३७।।

यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु वो नमः।।३८।।

तृतीय मन्त्रार्थ—मेरे केश, सीमन्त, मूर्द्धा, ललाट, कर्ण तथा नेत्रस्थ दुर्भाग्य को शीघ्र नष्ट करे। आपको प्रणाम!।।३८।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयं शुभम्।
सन्तोषः क्षान्तिरास्तिक्यं विद्या भवतु वो नमः।।३९।।

चतुर्थ मन्त्रार्थ—आप मुझे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रुनाश, कल्याण, सन्तोष, शान्ति, आस्तिक भाव, विद्या दीजिये। आपको प्रणाम!।।३९।।

विप्रपादोदकं पीत्वा शालग्रामशिलाजलम्।
पिबेद्विरुद्धं नो कुर्यादेषां तु नियतो विधिः।।४०।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि दक्षाङ्घ्रौ तानि भूसुरे।
स्वेष्टदेवं समुद्वास्य मन्त्री मार्तण्डमण्डले।।४१।।
ततस्तीरं समागत्य वस्त्रं संक्षाल्य यत्नतः।
वाससी परिधायाथ कुर्यात्सन्ध्यादिकं सुधीः।।४२।।

इसके पश्चात् ब्राह्मणों के चरणजल तथा शालग्राम शिला के चरणोदक का पान करे। इनके विरुद्ध कभी भी आचरण न करे। यही शास्त्रविधि कही गयी है। पृथिवी के समस्त तीर्थ ब्राह्मणों के दाहिने चरण में रहते हैं। सूर्यमण्डल में इष्ट स्थापना तथा अर्चना के उपरान्त वह साधक अपने वस्त्रों को तट पर जाकर स्वच्छ करे। नववस्त्र (धुले कपड़े) धारण करके वह सन्ध्या वन्दनादि सम्पन्न करे।।४०-४२।।

रोगाद्यशक्तो मनुजः कुयात्तत्राघर्मषणम्।
अथवा भस्मना स्नातो रजोभिश्चैव वाऽक्षमः।।४३।।

अथ सन्ध्यादिकं कुर्यात् स्थित्वा चैवासने शुभे।
केशवेन तथा नारायणेन माधवेन च॥४४॥
सम्प्राश्य तोयं गोविन्दविष्णुभ्यां क्षालयेत्करौ।
मधुसूदनत्रिविक्रमाभ्यामोष्ठौ च मार्जयेत्॥४५॥

जो मनुष्य रोगाक्रान्त हो तथा स्नान एवं सन्ध्या वंदनादि में अशक्त हो, उसे मात्र अघमर्षण कृत्य ही करना होगा। वह भस्मस्नान मात्र करके शुभासनासीन होकर सन्ध्या-वन्दनादि कर सकता है। अब सन्ध्योपासन विधि कहता हूं। वह तीन आचमन करे, मन्त्र है केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः। आचमनोपरान्त "गोविन्द विष्णुभ्यां नमः" कहकर उभय हाथों को प्रक्षालित करे। तत्पश्चात् "मधुसूदन त्रिविक्रमाभ्यां नमः" कहे तथा उभय ओष्ठ प्रक्षालित करे।।४३-४५।।

वामनश्रीधराभ्यां च मुखं हस्तौ स्पृशेत्ततः।
हृषीकेशपद्मनाभाभ्यां स्पृशेच्चरणौ ततः॥४६॥
दामोदरेण मूर्द्धानं मुखं सङ्कर्षणेन च। वासुदेवेन प्रद्युम्नेन स्पृशेन्नासिके ततः॥४७॥
अनिरुद्धपुरुषोत्तमाभ्यां नेत्रे स्पृशेत्ततः। अधोक्षजनृसिंहाभ्यां श्रवणे संस्पृशेत्तथा॥४८॥
नाभिं स्पृशेदच्युतेन जनार्दनेन वक्षसि। हरिणा विष्णुनांसौ च वैष्णवाचमनं त्विदम्॥४९॥
प्रणवाद्यैर्ङेतमोन्तैः केशवादिकनामभिः।
मुखे नसोः प्रदेशिन्याऽनामया नेत्रकर्णयोः॥५०॥
कनिष्ठया नाभिदेशं सर्वत्राङ्गुष्ठयोजनम्। आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैःस्वाहान्तैः शिवमीरितम्॥५१॥

तत्पश्चात् "वामन श्रीधराभ्यां नमः" कहकर मुख एवं हस्तद्वय का स्पर्श करे। "हृषिकेशपद्मनाभाभ्यां नमः" कहकर चरणद्वय का स्पर्श करे।

मूर्द्धास्पर्श	—	दामोदराभ्यां नमः।
मुखस्पर्श	—	संकर्षणाय नमः।
उभय नासाविवरस्पर्श	—	प्रद्युम्नाय नमः।
उभयनेत्र स्पर्श	—	अनिरुद्ध पुरुषोत्तमाभ्यां नमः।
कर्णद्वय स्पर्श	—	अधोक्षजनृसिंहाभ्यां नमः।
नाभि स्पर्श	—	अच्युताय नमः।
वक्षस्थल स्पर्श	—	जनार्दनाय नमः।
स्कन्धद्वय स्पर्श	—	हरये नमः, विष्णवे नमः।

इस स्पर्श के अनन्तर 'वैष्णवाय नमः' से आचमन करे। तदनन्तर केशवादि नाम के पूर्व में प्रणव (ॐ) लगाये। अन्त में चतुर्थी विभक्ति तथा नमः लगाये। यथा ॐ दामोदराय नमः इत्यादि। इस प्रकार अंगुष्ठ एवं प्रदेशनी से मुख-नासिका का स्पर्श करे। अंगुष्ठ-अनामिका से नेत्र एवं कर्ण का, कनिष्ठा से नाभि का स्पर्श हो। आत्मविद्या तथा शिवतत्व को स्वाहायुक्त करने से शैवमन्त्र कहा गया है।।४६-५१।।

दीर्घत्रयेन्दुयुग्यवेमपूर्वकैश्च पिबेज्जलम्। आत्मविद्याशिवैरेव शैवं स्वाहावसानिकैः॥५२॥
वाग्लज्जाश्रीमुखैः प्रोक्तं भाक्तं स्वाहावसानिकैः।
वाग्लज्जाश्रीमुखैः प्रोक्तं द्विजाचमनमर्थदम्॥५३॥

दीर्घत्रय, इन्दु एवं व्योम (ये मन्त्र संकेत तथा गुरुगम्य हैं) से युक्त मन्त्र द्वारा जल पीये (आचमन करे)। जब आत्मविद्या तथा शिव के नामान्त में स्वाहा लगाया जाये, वही शैवमन्त्र हैं। वाक् (बीज), लज्जा (बीज) तथा स्वाहा के योग से बनने से जो मन्त्र होता है, उनके द्वारा आचमन करे। अर्थसिद्धि होती है।।५२-५३।।

तिलकं च ततः कुर्याद्भाले सुष्ठु गदाकृति। नन्दकं हृदये शङ्खचक्रे चैव भुजद्वये॥५४॥
शार्ङ्गबाणं मस्तके च विन्यसेत्क्रमशः सुधीः।
कर्णमूले पार्श्वयोश्च पृष्ठे नाभौ ककुद्यपि॥५५॥
एवं तु वैष्णवः कुर्यान्मृद्भिस्तीर्थोद्भवादिभिः।
अग्निहोत्रोद्भवं भस्म गृहीत्वा त्र्यम्बकेण तु॥५६॥
किंवाग्निरिति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य पञ्चमन्त्रकैः। क्रमात्तत्पुरुषाघोरसद्योजातादिनामभिः॥५७॥
पञ्च कुर्यात्त्रिपुण्ड्राणि भालांसोदरहृत्सु च।
शैवः शाक्तस्त्रिकोणाभं नारीवद्वा समाचरेत्॥५८॥
कृत्वा तु वैदिकीं सन्ध्यां तान्त्रिकीं च समाचरेत्।
आचम्य विधिवन्मन्त्री तीर्थान्यावाह्य पूर्ववत्॥५९॥

अब सुधी साधक भाल पर उत्तम गदाकृति तिलक अंकित करके, हृदय पर नन्दाकृतिका (नन्दक तलवार), उभय भुजाओं पर शंख-चक्राकृति का, मस्तक पर धनुर्बाणाकृति का तिलक लगाकर कर्णमूलद्वय, पार्श्वद्वय, पीठ, नाभि गर्दन के पीछे भाग में चन्दन लिप्त करे। एवंविध वैष्णवतीर्थ मृत्तिका किंवा गोपीचन्दन सर्वाङ्ग में लिप्त करे। शैवगण अग्निहोत्र भस्म को 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्र से अथवा 'अग्निरिति' मन्त्र से अभिमंत्रित करके पत्र पंचक से (तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात आदि नाम से) ललाट, दोनों स्कन्ध के ऊर्ध्व में, उदर पर तथा हृदय पर पांच त्रिपुण्ड लगाये। शाक्तगण त्रिकोणाकृति तिलक लगाये अथवा नारीगण जैसी बिन्दी लगाये। वैदिकी सन्ध्या के पश्चात् तांत्रिकी सन्ध्या की जाये। उसकी विधि कही जाती है। मन्त्री व्यक्ति सविधि आचमनोपरान्त पूर्ववत् तीर्थ का आवाहन करे।।५४-५९।।

ततस्त्रिवारं दर्भेण भूमौ तोयं विनिःक्षिपेत्। सप्तधा तज्जलेनाथ मूर्द्धानमभिषेचयेत्॥६०॥
ततश्च प्राणानायम्य कृत्वान्यासं षडङ्गकम्। आदाय वामहस्तेऽम्बु दक्षेणाच्छाद्य पाणिना॥६१॥
वियद्वाटवग्नितोयक्ष्माबीजैः सम्मन्त्र्य मन्त्रवित्।
मूलेन तस्मात् श्च्योतद्भिर्बिन्दुभिस्तत्त्वमुद्रया॥६२॥
स्वशिरः सप्तधा प्रोक्ष्यावशिष्टं तत्पुनर्जलम्। कृत्वा तदक्षरं मन्त्री नासिकान्तिकमानयेत्॥६३॥

तदनन्तर कुश द्वारा तीन बार धरती पर जल निःक्षेप करे। इसी कुश से सात बार मस्तक पर जल

सिंचन करे। अभिषेकोपरान्त प्राणायाम के पश्चात् षडङ्गन्यास करे। वाम हथेली पर जल रखकर उसे दाहिनी हथेली से ढाके। तत्पश्चात् साधक व्यक्ति आकाश (हं), वायु (यं), तेज (रै), जल (वं), पृथिवी (लं) बीज से उसे अभिमंत्रित करें। तदनन्तर हाथ से टपकते जलबिन्दु से तत्वमुद्रा द्वारा शिर का सप्त बार सिंचन करे। शेष जल को नासिका के निकट लाये।।६०-६३।।

जलं तेजोमयं तच्चाकृष्यान्तश्चेडया पुनः।
प्रक्षाल्यान्तर्गतं तेन कल्मषं तज्जलं पुनः।।६४।।
कृष्णवर्णं पिङ्गलया रेचयेत्स्वाग्रतस्तथा। क्षिपेदस्त्रेण तत्पश्चात्कल्पिते कुलिशोपले।।६५।।
एतद्धि सर्वपापघ्नं प्रोक्तं चैवाघमर्षणम्।
ततश्च हस्तौ प्रक्षाल्य प्राग्वदाचम्य मन्त्रवित्।।६६।।

अब इस तेजपूर्ण जल को इड़ा नाड़ी से भीतर खींच कर यह भावना करे कि उसने अन्तः स्थित सभी पापों का प्रक्षालन कर दिया। अब इस पापयुक्त कृष्णवर्ण जल को पिंगला नाड़ी से बहिर्गत् करे। उस जल को अपने सामने कुलिश पाषाण की भावना करके उस पर फेंके। यही सर्वपापनाशक अघमर्षण क्रिया है। तदनन्तर अपने हाथों को प्रक्षालित करके पूर्ववत् आचमन सम्पन्न करे।।६४-६६।।

समुत्थाय च मन्त्रज्ञस्ताम्रपात्रे सुमादिकम्। प्रक्षिप्यार्घं प्रदद्याद्वै मूलान्तैर्मन्त्रमुच्चरन्।।६७।।
रविमण्डलसंस्थाय देवायार्घ्यं प्रकल्पयेत्। दत्त्वार्घं त्रिरनेनाथ देवं रविगतं स्मरेत्।।६८।।

अब वह मन्त्रज्ञ साधक उठे तथा एक ताम्रपात्र में पुष्प तथा चन्दनयुक्त जल से मूलान्तमन्त्रोच्चार करते हुये सूर्यमण्डलस्थ देव को अर्घ्य दे। उक्त मन्त्रयुक्त तीन अर्घ्य को देकर रविमण्डल में विराजमान देवता का चिन्तन करे।।६७-६८।।

स्वकल्पोक्तां च गायत्रीं जपेदष्टोत्तरं शतम्। अष्टविंशतिवारं वा गुह्योतिमनुनार्पयेत्।।६९।।
उद्यदादित्यसंकाशां पुस्तकाक्षकराम्बुजाम्।
कृष्णाजिनाम्बरां ब्राह्मीं ध्यायेत्ताराङ्किते‍ऽम्बरे।।७०।।

तदनन्तर अपने सम्प्रदाय कल्पानुमोदित गायत्री का १०८ किंवा २८ जप करे तथा इस जप को "गुह्यातिगुह्य" इत्यादि मन्त्र से अर्पित करे। जब प्रातः आकाश में तारक परिलक्षित हों, तभी ब्राह्मी देवी का ध्यान इस प्रकार करे—"वे उदय कालीन सूर्यवत् तेजवान्, करकमल में पुस्तक एवं रुद्राक्षमालाधारिणी, कृष्णमृग चर्मावृता हैं।।६९-७०।।

मध्याह्नवरदां देवीं पार्वतीं संस्मरेत्पराम्।
शुक्लाम्बरां वृषारूढां त्रिनेत्रा रविबिम्बगाम्।।७१।।
वरं पाशं च शूलं च दधानां नृकरोटिकाम्।
सायाह्नेरत्नभूषाढ्यां पीतकौशेयवाससाम्।।७२।।
श्यामरङ्गां चतुर्हस्तां शङ्खचक्रलसत्कराम्। गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम्।।७३।।

मध्याह्न के समय शुक्लवस्त्रावृता, त्रिनेत्रा, वृषारूढा, सूर्यमण्डलस्था, वरप्रदा, पाश, शूल, नृकरोटिकाधारिणी देवी पार्वती का ध्यान करे। सायंकाल में रत्न भूषणभूषिता, श्यामांगी, चतुर्हस्ता, शंख-चक्र-गदा-पद्म शोभिता सूर्यमण्डलस्था देवी का ध्यान करे।।७१-७३।।

ततो देवानृषींश्चैव पितृंश्चापि विधानवित्। तर्पयित्वा स्वेष्टदेवं तर्पयेत्कल्पमार्गतः।।७४।।
गुरुपङ्क्तिं च सन्तर्प्य साङ्गं सावरणं तथा। सायुधं वैनतेयं सन्तर्पयामीति तर्पयेत्।।७५।।
नारदं पर्वतं विष्णुं निशठोद्धवदारुकान्। विष्वक्सेनं च शैलेयं वैष्णवः परितर्पयेत्।।७६।।
एवं सन्तर्प्य विप्रेन्द्र दत्त्वार्घ्यं च विवस्वते।
पूजागारं समागत्य प्रक्षाल्ययाङ्घ्री उपस्पृशेत्।।७७।।

तदनन्तर वह साधक स्वकल्पानुसार विधान कुशल देवगण, ऋषि, पितृगण एवं इष्टदेव का सविधि तर्पण करे। तर्पण मन्त्र यह है—"सांगोपांग वस्त्र आदि द्वारा गुरु एवं शस्त्र के साथ गरुड़देव का तर्पण करता हूं।" इसी प्रकार विष्णुभक्त नारद, पर्वत, जिष्णु, भक्त उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा शैलेय का भी तर्पण करना चाहिये। हे विप्रेन्द्र! एवंविध सबका तर्पण करके विवस्वान् को अर्घ्य प्रदान करे। सूर्यार्घ्य देकर पूजागृह में आगमन करके पैरों को धोना चाहिये। तदनन्तर साधक आचमन द्वारा पवित्रता युक्त हो जाये।।७४-७७।।

अग्निहोत्रस्थितानग्नीन् हुत्वोपस्थाय यत्नतः।
पूजास्थलं समागत्य द्वारपूजां समाचरेत्।।७८।।
गणेशं चोर्ध्वशाखायां महालक्ष्मीं च दक्षिणे।
सरस्वतीं वामभागे दक्षे विघ्नेश्वरं पुनः।।७९।।
क्षेत्रपालं तथा वामे दक्षे गङ्गां प्रपूजयेत्। वामे च यमुनां दक्षे धातारं वामतस्तथा।।८०।।
विधातारं शङ्खपद्मनिधींश्च वामदक्षयोः। द्वारपालांस्ततोऽभ्यर्चेत्तत्तत्कल्पोदितान्सुधीः।।८१।।
नन्दः सुनन्दश्चण्डश्चप्रचण्डः प्रचलोबलः। भद्रः सुभद्रश्चेत्याद्या वैष्णवा द्वारपालकः।।८२।।

वह अग्निहोत्रस्थ अग्नि में होम करके यत्नतः उपस्थान करे। तब पूजा स्थान पर आकर द्वारपूजा करे। द्वार के ऊपरी शाखा पर गणेश, दक्षिण में महालक्ष्मी, वाम भाग में सरस्वती, पुनः दक्षिण में विघ्नेश्वर, वाम में पुनः क्षेत्रपाल की, दक्षिण में गंगा की पूजा करे। वाम भाग में यमुना की, दक्षिण में धाता की, वाम में विधाता की, वाम में शंखनिधि की, दक्षिण में पद्मनिधि की पूजा करके स्वकल्पानुमोदित विधान से सविधि नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, प्रचल, बल, भद्र, सुभद्र नामक वैष्णव द्वारपाल की पूजा करे।।७८-८२।।

नन्दी भृङ्गी रिटी स्कन्दो गणेशोमामहेश्वराः।
वृषभश्च महाकालः शैवा वै द्वारपालकाः।।८३।।
ब्राह्म्याद्या मातरोऽष्टौ तु शक्त्यो द्वाःस्थिताः स्वयम्।
सेन्दुः स्वनामाघर्णाद्या ङेनमोन्ता इमे स्मृताः।।८४।।
ततः स्थित्वासने धीमानाचम्य प्रयतः शुचिः। दिव्यान्तरिक्षभौमांश्च विघ्नानुत्सार्य यत्नतः।।८५।।

नन्दी, भृंगी, रिटी, स्कन्द, गणेश, उमा, महेश्वर, वृषभ, महाकाल शैव द्वारपाल हैं। ब्राह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी प्रभृति अष्ट मातृका शक्तियां तो स्वयं द्वार पर स्थित रहती हैं। इनके नाम के प्रथमाक्षर में अनुस्वार लगाये, तब नाम को चतुर्थी विभक्त्यन्त कहकर अन्त में नमः लगाये जैसे "भृं भृंगाय नमः। 'नं नन्दाय नमः।' ऐसे मन्त्र से पूजा करे। तत्पश्चात् धीमान् साधक आचमन करके पवित्र हो जाये। तब वह यत्नतः दिव्य, अन्तरिक्ष तथा भौम विघ्नों को अपसारित करे।।८३-८५।।

केशवाद्यां मातृकां तु न्यसेद्वैष्णवसत्तमः।
केशवः कीर्तिसंयुक्तः कान्त्या नारायणस्तथा॥८६॥
माधवस्तुष्टिसहितो गोविन्दः पुष्टिसंयुतः।
विष्णुस्तु धृतिसंयुक्तः शान्तियुङ्मधुसूदनः॥८७॥
त्रिविक्रमः क्रियायुक्तो वामनो दयितायुतः। श्रीधरो मेधया युक्तो हृषीकेशश्च हर्षया॥८८॥
पद्मनाभयुता श्रद्धा लज्जा दामोदरान्वितः। वासुदेवश्च लक्ष्मीयुक् सङ्कर्षणसरस्वती॥८९॥
प्रद्युम्नः प्रीतिसंयुक्तोऽनिरुद्धो रतिसंयुतः। चक्री जयायुतः पश्चाद्गदी दुर्गासमन्वितः॥९०॥
शार्ङ्गी तु प्रभया युक्तः खड्गी युक्तस्तु सत्यया।
शङ्खी चण्डासमायुक्तो हली वाणीसमायुतः॥९१॥
मुसली च विलासिन्या शूली विजययान्वितः।
पाशी विरजया युक्तो कुशी विश्वासमन्वितः॥९२॥
मुकुन्दो विनतायुक्तो नन्दजश्च सुनन्दया।
नन्दी स्मृत्या समायुक्तो नरो वृद्ध्या समन्वितः॥९३॥
समृद्धियुङ्नरकजिच्छुद्धियुक्च हरिः स्मृतः।
कृष्णो बुद्ध्या युतः सत्यो भुक्त्या मुक्त्याथ सात्वतः॥९४॥

इसके अनन्तर केशव का तथा आद्य मातृकागण का न्यास करे। केशव का न्यास कीर्त्ति के साथ, नारायण का कान्ति, माधव का तुष्टि, गोविन्द का पुष्टि, विष्णु का धृति, मधुसूदन का शान्ति, त्रिविक्रम का क्रिया, वामन का दयिता, श्रीधर का मेधा, हृषिकेश का हर्षा, पद्मनाभ का श्रद्धा, दामोदर का लज्जा, वासुदेव का लक्ष्मी, संकर्षण का सरस्वती, प्रद्युम्न का प्रीति, अनिरुद्ध का रति, चक्री का जया, गदी का दुर्गा, शार्ङ्गी का प्रभा, खड्गी का सत्या, शंखी का प्रभा, खड्गी का सत्या, शंखी का चण्डा, हली का वाणी, मुसली का विलासिनी, शूली का विजया, पाशी का विरजा, कुशी का विश्वा, मुकुन्द का विनता, नन्दज का सुनन्दा, नन्दी का स्मृति, नर का वृद्धि, नरकाजित् का समृद्धि, हरि का शुद्धि, कृष्ण का बुद्धि, सत्य का भुक्ति, सात्वत का मुक्ति के साथ न्यास करे।।८६-९४।।

सौरिक्षमे सूररमे उमायुक्तो जनार्दनः। भूधरः क्लेदिनीयुक्तो विश्वमूर्तिश्च क्लिन्नया॥९५॥
वैकुण्ठो वसुधायुक्तो वसुदः पुरुषोत्तमः। बली तु परया युक्तो बलानुजपरायणे॥९६॥

बालसूक्ष्मे बृषघ्नस्तु सन्ध्यायुक् प्रज्ञया वृषः।
हंसः प्रभासमायुक्तो वराहो निशया युतः॥९७॥
विमलो धारया युक्ता नृसिंहा विद्युता युतः।
केशवादिमातृकाया मुनिर्नारायणो मतः॥९८॥
अमृताद्या च गायत्री छन्दो विष्णुश्च देवता। चक्राद्यायुधसंयुक्तं कुम्भादर्शधरं हरिम्॥९९॥
लक्ष्मीयुतं विद्युदाभं बहुभूषायुतं भजेत्।
एवं ध्यात्वा न्यसेच्छक्तिं श्रीकामपुटिताक्षरम्॥१००॥
वदेत्तद्विष्णुशक्तिभ्यां हृदयं प्रणवादिकम्।
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राण्यसून्वदेत्॥१०१॥
प्राणं क्रोधं तथा मभ्यामन्तान्यादिदशस्वपि।
एकं मौली मुखे चैकं द्विकं नेत्रे द्विकं श्रुतौ॥१०२॥

सौरि का क्षमा, सूर का रमा, जनार्दन का उमा, भूधर का क्लेदिनी, विश्वमूर्त्ति का क्लिन्ना, वैकुण्ठ का वसुधा, पुरुषोत्तम का वसुदा सहित न्यास करे। परा को बलि, परायणा को बलानुज, सूक्ष्मा को बाल, सन्ध्या का वृषहन्ता, प्रज्ञा का वृष, प्रभा को हंस, निशा को वराह, धारा को विमल, विद्युता को नृसिंह सहित न्यस्त करे। केशवादि मातृका के ऋषि हैं नारायण। अमृताद्या तथा गायत्री छन्दः है। विष्णु इसके देवता हैं। चक्रायुध युक्त, लक्ष्मी समन्वित, अनेक आभूषण से सज्जित, विद्युत् वत् प्रभावान् कुंभ एवं दर्पणधारी हरि की उपासना करे। (यह हरि ध्यान है)। एवंविध ध्यान करके ह्रीं (शक्ति), श्रीं (लक्ष्मी) तथा क्लीं (कामबीज) से पुटित अक्षर का (अ आदि का) ललाट आदि स्थान में न्यास करे। आदि में प्रणव लगाये। श्रीविष्णु तथा शक्ति के नाम का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करे तथा अन्त में नमः कहे। त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, असु, प्राण तथा क्रोध का उच्चारण करके उनके आदि एवं अन्त में 'म' से सम्पुटित करे। तदनन्तर दस अंगों में उनको न्यस्त करे। 'अ' का ललाट में, 'आ' का मुख में 'इ' दाहिने तथा 'ई' का बायें कान में न्यास करे॥९५-१०२॥

नसोर्द्वयं कपोले च द्वयं द्वे द्विरदच्छदे। एकं तु रसनामूले ग्रीवायामेकमेव च॥१०३॥

'ऋ' का दाहिनी तथा 'ॠ' का वाम नासिका में, 'ऌ' का दाहिने कपोल में, 'ॡ' का वाम कपोल में, 'ए' का ऊर्ध्वोष्ठ में, 'ऐ' का अधरोष्ठ में, 'ओ' का ऊर्ध्व दन्तपंक्ति में, 'औ' का अधः दन्तपंक्ति में, 'अं' का जिह्वामूल में, 'अः' का ग्रीवा में न्यास करे॥१०३॥

कवर्गं दक्षिणे बाहौ चवर्गं वामबाहुके। टतवर्गो पादयोस्तु पफौ कुक्षिद्वये न्यसेत्॥१०४॥
पृष्ठवशे वमित्युक्तं नाभौ भं हृदये तु मम्।
यादिसप्तापि धातुस्था हं प्राणे लं तथात्मनि॥१०५॥
क्षं क्रोधे क्रमतो न्यस्य विष्णु पूजाक्षमो भवेत्।
पूर्णोदर्या तु श्रीकण्ठो ह्यनन्तो विजरान्वितः॥१०६॥

दक्षिण भुजा में कवर्ग का, वाम भुजा में चवर्ग का, दाहिने पैर में तवर्ग का, वाम पैर में तवर्ग का, 'प' का दाहिनी कोख में, 'फ' का वाम कुक्षि (कोख) में न्यास करे। पृष्ठ वंश में 'ब' का नाभिस्थान में 'भ' का हृदय में 'म' का 'य र ल व श ष स' इन सात का शरीर की सप्तधातु में, 'ह' का प्राण में, 'ल' का आत्मा में, 'क्ष' का क्रोध में न्यास करे। ऐसा मातृका न्यास समन्वित साधक भगवान् विष्णुदेव की पूजा में सक्षम हो पाता है। पूर्णोदरी सहित श्रीकण्ठ का, विरजा सहित अनन्तेश का।।१०४-१०६।।

सूक्ष्मेशः शाल्मलीयुक्तो लीलाक्षीयुक्त्रिमूर्तिकः।
महेश्वरो वर्तुलाक्ष्याधीशो वै दीर्घघोणया॥१०७॥
दीर्घमुख्या भारभूतिस्तिथीशो गोमुखीयुतः।
स्थावरेशो दीर्घजिह्वायुग्धरः कुण्डोदरीयुतः॥१०८॥
उर्द्ध्वकेश्या तु झिंटीशो भौतिकी विकृतास्यया।
सद्यो ज्वालामुखीयुक्तोल्कामुख्यानुग्रहो युतः॥१०९॥
अक्रूर आस्यया युक्तो महासेनो विद्यया युतः।
क्रोधीश्च महाकाल्या चण्डेशेन सरस्वती॥११०॥
पञ्चान्तकः सिद्धगौर्या युक्तश्चाथ शिरोत्तमः।
त्रैलोक्यविद्यया युक्तो मन्त्रशक्त्यैकरुद्रकः॥१११॥
कूर्मेशः कमठीयुक्तो भूतमात्रैकनेत्रकः।
लम्बोदर्या चतुर्वक्त्रो ह्यजेशो द्राविणीयुतः॥११२॥
सर्वेशो नागरीयुक्तः सोमेशः खेचरीयुतः।
मर्यादया लाङ्गलीशो दारुकेशेन रूपिणी॥११३॥
वारुण्या त्वर्द्धनारीशो उमाकान्तो मुनीश्वरः।
काकोदर्या तथाषाढी पूतनासंयुतो मतः॥११४॥
दण्डीशो भद्रकालीयुगत्रीशो योगिनीयुतः।
मीनेशः शङ्खिनीयुक्तो मेषेशस्तर्जनीयुतः॥११५॥
लोहितः कालरात्र्या च शिखीशः कुजनीयुतः।
छलगण्डः कपर्दिन्या द्विरण्डेशश्च वज्रया॥११६॥

शाल्मलि के साथ सूक्ष्मेश का, लोलाक्षी सहित त्रिमूर्त्तीश का, वर्त्तुलाक्षी के साथ महेश का, दीर्घघोणा के साथ अर्धीश का, दीर्घमुखी सहित भारभूतीष का, गोमुखी सहित तिथीश का, दीर्घजिह्वा सहित स्थाण्वीश का, कुण्डोदरी सहित इरेश का, ऊर्ध्वकेशी सहित झिण्टीश का, विकृतास्या सहित भौतिक का, ज्वालामुखी सहित सद्यो का, उल्कामुखी के साथ अनुग्रहेश का, आस्था सहित अक्रूर का, विद्या सहित महासेन का, महाकाली सहित क्रोधीश का, सरस्वती सहित चण्डेश का, सिद्धगौरी सहित पञ्चान्तकेश का, त्रैलोक्यविद्या सहित

शिवोत्तमेश का, मन्त्रशक्ति सहित एकरुद्र का, कमठी के साथ कूर्मेश का, भूतमाता सहित एकनेत्र का, लम्बोदरी सहित चतुर्वक्त्र का, दाविणी सहित अजेश का, नागरी सहित सर्वेश का, खेचरी सहित सोमेश का, मर्यादा सहित लांगलीश का, दारुकेश सहित रूपिणी का, वीरिणी सहित अर्धनारीश्वर का, काकोदरी सहित उमाकान्त का, पूतना सहित आषाढीश का, भद्रकाली सहित दण्डीश का, योगिनी सहित अत्रीश का, शंखिनी सहित मीनेश का, तर्जनी सहित मेषेश का, कालरात्रि सहित लोहितेश का, कुब्जनी सहित शिखीश का, कपर्दिनी सहित छलगण्डेश का, वज्रा सहित द्विरण्डेश का।।१०७-११६।।

महाबलो जयायुक्त बलीशः सुमुखेश्वरी।
भुजङ्गो रेवतीयुक्तः पिनाकी माधवीयुतः॥११७॥
खड्गीशो वारुणीयुक्तो बकेशो वायवीयुतः।
श्वेतोरस्को विदारिण्या भृगुः सहजया युतः॥११८॥
लवकुलीशश्च लक्ष्मीयुक् शिवेशो व्यापिनीयुतः।
संवर्तके महामाया प्रोक्ता श्रीकण्ठमातृका॥११९॥

जया सहित महाबलेश का, सुमुखेश्वरी सहित बलीश का, रेवती सहित भुंजगेश का, माध्वी सहित पिनाकीश का, वारुणी सहित खंगीश का, वायवी सहित बकेश का, विदारिणी सहित श्वेतोरस्क का, सहजा के सहित भृग्वीश का, लक्ष्मी सहित लकुलीश का, व्यापिनी सहित शिवेश का तथा महामाया सहित संवर्त्तेश का न्यास करना होगा। यही है श्रीकण्ठमातृका।।११७-११९।।

यत्र स्वीशपदं नोक्तं तत्र सर्वत्र योजयेत्।
मुनिस्स्याद्दक्षिणामूर्तिर्गायत्रीछन्द ईरितम्॥१२०॥
देवता चार्द्धनारीशौ विनियोगोऽखिलाप्तये।
हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः॥१२१॥

इसमें जिस पुल्लिंग नाम के साथ ईश शब्द नहीं युक्त है, वहां ईश शब्द युक्त करे। इस श्रीकण्ठमातृका न्यास के ऋषि हैं दक्षिणामूर्ति। छन्दः है गायत्री। देवता हैं अर्द्धनारीश्वर। सर्वमनोरथ प्राप्त्यर्थ इसका विनियोग करे। हल् इसका बीज है। शक्ति है स्वर।।१२०-१२१।।

कुर्याद्भृगुस्थाकाशेन षड्दीर्घाढ्येन चाङ्गकम्।
बन्धूकस्वर्णवर्णाङ्गं वराक्षाङ्कुशपाशिनम्॥१२२॥
अर्द्धेन्दुशेखरं त्र्यक्षं देववन्द्यं विचिन्तयेत्।
ध्यात्वैवं शिवशक्तीश्च चतुर्थी हृदयान्तिमे॥१२३॥
सौबीजमातृका पूर्वे विन्यसेन्मातृकास्थले।
विघ्नेशश्च ह्रिया युक्तो विघ्नराजः श्रिया युतः॥१२४॥

भृगु अर्थात् (स) में स्थित आकाश (ह) को षट्दीर्घयुक्त करके उसके द्वारा अङ्गन्यास होगा। तदनन्तर

भगवान् शंकर का ध्यान कहते हैं—वे बन्धूक पुष्प तथा स्वर्णवत् उनका रूप है। उनके हाथ में अक्षमाला, वर, अंकुश तथा पाश है। उनका मस्तक अर्द्धचन्द्र रूप मुकुट से सज्जित है। वे त्रिनेत्र हैं। वे समस्त देवगण द्वारा वन्दित हैं। इस प्रकार शिवशक्ति के ध्यानोपरान्त अन्त में चतुर्थी विभक्ति तथा नमः लगाये। उसके आदि में सौ बीज लगाये। मातृका स्थल में एक-एक मातृका वर्ण लगाकर शक्ति के साथ गणेश का न्यास करना चाहिये। ह्रीं सहित विघ्नेश का तथा श्रीं के साथ विघ्नराज के न्यास को करे।।१२२-१२४।।

विनायकस्तथा पुष्ट्या शान्तियुक्तः शिवोत्तमः।
विघ्नकृत्स्वस्तिसंयुक्तो विघ्नहर्ता सरस्वती॥१२५॥
स्वाहया गणनाथश्च एकदन्तः सुमेधया।
कान्त्या युक्तो द्विदन्तस्तु कामिन्या गजवक्त्रकः॥१२६॥
निरञ्जनी मोहिनीयुक्कपर्द्दी तुनटीयुतः।
दीर्घजिह्वः पार्वतीयुग्ज्वालिन्या शङ्कुकर्णकः॥१२७॥
वृषध्वजो नन्दया च सुरेश्या गणनायकः।
गजेन्द्रः कामरूपिण्या शूर्पकर्णस्तथोमया॥१२८॥
विरोचनस्तेजोवत्या सत्यालम्बोदरेण च।
महानन्दश्च विघ्नेश्या चतुर्मूर्तिस्वरूपिणी॥१२९॥
सदाशिवःकामद्याह्या मोदो मदजिह्वया। दुर्मुखो भूतिसंयुक्तः सुमुखी भृकुटीयुतः॥१३०॥

पुष्टि के साथ विनायक, शान्ति सहित शिवोत्तम, स्वस्ति सहित विघ्नकृत्, सरस्वती सहित विघ्नहर्त्ता, स्वाहा सहित गणनाथ, सुमेधा सहित एकदन्त, कान्ति सहित द्विदन्त, कामिनी सहित गजमुख, मोहिनी के साथ निरंजन, नटी के साथ कपर्दी, पार्वती सहित दीर्घजिह्व, ज्वालिनी सहित शंकुकर्ण, नन्दा के साथ वृषध्वज, सुरेशी सहित गणनायक, कारूपिणी के साथ गजेन्द्र, उमा सति शूपकर्ण, तेजोवती सहित विरोजन, सती के साथ लम्बोदर, विघ्नेशी के साथ महानन्द, सुरूपिणी सहित चतुमूर्त्ति, कामदा सहित सदाशिव, मदजिह्वा सहित आमोद, दुर्मख सहित भूति, भौतिकी सहित सुमुख।।१२५-१३०।।

प्रमोदःसितया युक्त एकपादो रमायुतः।
द्विजिह्वो महिषीयुक्तो जम्भिन्या शूरनामकः॥१३१॥
वीरो विकर्णया युक्तः षणमुखो भृकुटीयुतः।
वरदो लज्जया वामदेवेशो दीर्घघोणया॥१३२॥
धनुर्द्धर्या वक्रतुण्डो द्विरण्डो यामिनी युतः।
सेनानी रात्रिसंयुक्तः कामान्धो ग्रामणीयुतः॥१३३॥
मत्तः शशिप्रभायुक्तो विमत्तो लोलनेत्रया।
मत्तवाहश्चञ्चलया जटी दीप्तिसमन्वितः॥१३४॥

मुण्डो सुभगया युक्तः खड्गी दुर्भगया युतः।
वरेण्यश्च शिवायुक्तो भगया वृषकेतनः॥१३५॥
भक्ष्यप्रियो भोगन्या च गणेशो भोगिनीयुतः।
मेघनादः सुभगया व्यापी स्यात्कालरात्रियुक्॥१३६॥

सिता सहित प्रमोद, रमा सहित एकपाद, महिषी सहित द्विजिह्व, जम्भिनी सहित शूर, विकर्णा सहित वीर, भृकुटी के साथ षण्मुख, लज्जा सहित वरद, दीर्घघोणा सहित वामदेवेश, धनुर्धरी सहित वक्रतुण्ड, यामिनी सहित द्विरण्ड, रात्रि सहित सेनानी, ग्रामणी सहित कामान्ध, शशिप्रभा सहित मत्त, लोलनेत्रा सहित विमत्त, चंचला सहित मत्तवाह, दीप्ति सहित जटी, सुभगा सहित मुण्डी, दुर्भगा सहित खड्गी, शिवा सहित वरेण्य, भगा सहित वृषकेतन, भगिनी सहित भक्ष्यप्रिय, गणेश के साथ भोगिनी, सुभगा सहित मेघनाद, कालरात्रि सहित व्यापी।।१३१-१३६।।

गणेश्वरः कालिकया प्रोक्ता विघ्नेशमातृकाः। गणेशमातृकायास्तु गणो मुनिभिरीरितः॥१३७॥
त्रिवृद्गायत्रिकाछन्दौ देवः शक्तिगणेश्वरः।
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन कृत्वाङ्गानि ततः स्मरेत्॥१३८॥
पाशाङ्कुशाभयवरान्दधानं कञ्जहस्तया। पत्न्याश्लिष्टं रक्ततनुं त्रिनेत्रं गणपे भवेत्॥१३९॥
एवं ध्यात्वा न्यसेत्स्वीयबीजपूर्वाक्षरान्वितम्।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्थेन्धिका॥१४०॥

कालिका के साथ गणेश का न्यास करे। ये सभी विघ्नेश की मातृकायें हैं। गणेश मातृका के ऋषि हैं गण। छन्दः है निचृद्गायत्री, देवता हैं गणेश। ६ दीर्घ स्वरान्वित गणेश बीज से अंगन्यासोपरान्त ध्यान करे। ये देव चतुर्भुज हैं। उन्होंने पाश, अंकुश, अभयमुद्रा तथा वरमुद्रा धारण किया है। उनसे संलग्न पत्नी सिद्धि कमल धारिणी हैं। वे रक्तवर्ण त्रिनेत्र हैं। मैं ऐसे गणपति का भजन करता हूं। साधक इस प्रकार ध्यानोपरान्त स्वबीज को पूर्व अक्षर रूप से रखकर आगे उक्त मातृका न्यास सम्पन्न करे। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका।।१३७-१४०।।

दीपिका रेचिका चापि मोचिका च पराभिधा।
सूक्ष्मासूक्ष्मामृता ज्ञानामृता चाप्यायिनी तथा॥१४१॥
व्यापिनी व्योमरूपा चानन्ता सृष्टिः समृद्धिका।
स्मृतिर्मेधा ततः कान्तिर्लक्ष्मीर्द्धृतिः स्थिरा स्थितिः॥१४२॥
सिद्धिर्जरा पालिनी च क्षान्तिरीश्वरिका रतिः।
कामिका वरदा वाथा ह्लादिनी प्रीतिसंयुता॥१४३॥
दीर्घा तीक्ष्णा तथा रौद्रा प्रोक्ता निद्रा च तन्द्रिका।
क्षुधा च क्रोधिनी पश्चात्क्रियाकारी समृत्युका॥१४४॥

पीता श्वेतारुणा पश्चादसितानन्तया युताः। उक्ता कलामातृकैवं तत्तद्भक्ताः समाचरेत्॥१४५॥

दीपिका, रेचिका, मोचिका, सूक्ष्मा, असूक्ष्मा, अमृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, समृद्धिका, स्मृति मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जरा, पालिनी, क्षान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्रा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रियाकरी, मृत्यु, पीता, श्वेता, अरुणा, असिता, अनन्ता, कलामातृकायें हैं। इनका न्यास भक्त साधक करे।।१४१-१४५।।

कलायुङ्मातृकायास्तु मुनिः प्रोक्तः प्रजापतिः।
गायत्रीछन्द आख्यातं देवता शारदाभिधा॥१४६॥
ह्रस्वदीर्घान्तरस्थैश्च तारैः कुर्यात्षडङ्गकम्।
पद्मचक्रगुणैणांश्च दधतीं च त्रिलोचनाम्॥१४७॥
पञ्चवक्त्रां भारतीं तां मुक्ताभूषां भजेत्सुधीः।
ध्यात्वैवं तारपूर्वां तां न्यसेन्डेन्तकलान्विताम्॥१४८॥
ततश्च मूलमन्त्रस्य षडङ्गानि समाचरेत्।
हृदयादिचतुर्थ्यन्ते जातीः संयोज्य विन्यसेत्॥१४९॥
नमः स्वाहा वषट् हुं वो षट् फट् जातय ईरिताः।
ततो ध्यात्वेष्टदेवं तं भूषायुधसमन्वितम्॥१५०॥
न्यस्याङ्गषट्कं तन्मूर्तौ ततः पूजनमारभेत्॥१५१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे सन्ध्यादिनिरूपणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः।६६॥
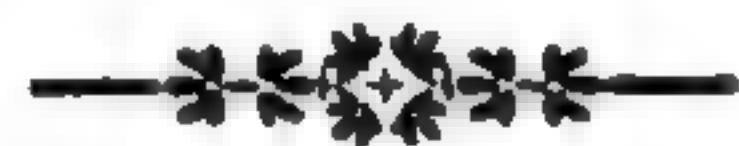
इस कलामातृका के ऋषि हैं प्रजापति। छन्दः है गायत्री देवता हैं शारदा। इस न्यास में ह्रस्व तथा दीर्घस्वर के मध्य में प्रणव रखे तथा षडङ्ग न्यास करे।

यथा—

अं ॐ आं हृदयाय नमः।
इं ॐ ईं शिरसे स्वाहा।
उं ॐ ऊं शिखायै वषट्।
ऐ ॐ ऐं कवचाय हुम्।
ओं ॐ औं नेत्रत्रयाय वौषट्।
अं ॐ अः अस्त्रय फट्।

धीमान् व्यक्ति मुक्ताभूषण भूषित पंचमुख देवी शारदा का ध्यान करे। वे त्रिनेत्र, पद्म, चक्र, त्रिशूल (पाश), मृगचर्म धारिणी हैं। इस प्रकार का ध्यान करे। ॐ को पूर्व में रखकर चतुर्थ्यन्त कला समन्वित मातृका न्यास इस तरह करे। जैसे—

ॐ अं निवृत्यै नमः —ललाटे।

ॐ आं प्रतिष्ठायैनमः —मुखवृन्ते। इत्यादि।

मूलमन्त्र के षडङ्ग, का न्यास करे। हृदय प्रभृति चतुर्थ्यन्त पद में अंगन्यास जाति यथा नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट्, फट् प्रभृति षड्जाति संयोग द्वारा न्यास सम्पन्न करे। तदनन्तर आयुध-भूषण समन्वित इष्टदेव का ध्यान करे। उनके देह में षडङ्गों में न्यास तथा पूजा करे।।१४६-१५१।।

।।६६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

देवपूजा-विधि वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये देवपूजां साधकाभीष्टसिद्धिदाम्।
त्रिकोणं चतुरस्त्रं वा वामभागे प्रकल्प्य च॥१॥
सम्पूज्यास्त्रेण संक्षाल्य हृदाधारं निधाय च।
तत्राग्निमण्डलं चेद्वा पात्रं संक्षाल्य चास्त्रतः॥२॥
आधारे नमसं स्थाप्य तत्र चेद्रविमण्डलम्। विलोममातृका मूलमुच्चरन्पूरयेज्जलैः॥३॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं साधकों को अभीष्टप्रद देवपूजन कहता हूं। पहले बायीं ओर चतुष्कोण किंवा त्रिकोणमण्डल बनाये तथा उसे अस्त्र (फट्) मन्त्र से सिंचित करके वहां हृदाधार निर्मित करे। अग्नि स्थापनार्थ वहां अग्निमण्डल बनाये। फट् मन्त्र से पात्र को प्रक्षालित करके आधार स्थान में चमस स्थापित करके सूर्यमण्डल भावना करे। वहां विलोम मातृका मूलोच्चारण करके पात्र को जलपूर्ण करे।।१-३।।

तत्रेन्दुमण्डलं प्राच्र्य तीर्थान्यावाह्य पूर्ववत्। गोमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावगुण्ठयेत्॥४॥
संक्षाल्यास्त्रेण प्रणवं तदुपर्यष्टधा जपेत्। सामान्यार्घमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥५॥
तज्जलं किञ्चिदुद्धृत्य प्रोक्षिण्या साधकोत्तमः।
आत्मानं यागवस्तूनि तेन सम्प्रोक्ष्ययेत्पृथक्॥६॥
आत्मवामाग्रतः कुर्यात्षट्कोणान्तस्त्रिकोणकम्।
चतुरस्त्रेण संवेष्ट्य संक्षाल्यार्घोदकेन च॥७॥

वहां अब चन्द्रमण्डल का पूजन करके पहले की तरह वहां तीर्थावाहन करे। गोमुद्रा से तीर्थों द्वारा वह स्थान अमृतमय बनाये तथा कवच से उसे आवरित करना चाहिये। वहां फट् मन्त्र से जल क्षेप करके प्रणव का

आठ बार जप करे। यह सर्वसिद्धिदायक सामान्यार्घ है। श्रेष्ठ साधक प्रोक्षणी पात्र में किंचित् जल ग्रहण करे तथा यज्ञीय सामग्री पर छिड़कें। वह अपने वाम भाग में तनिक आगे षट्कोणान्त त्रिभुज निर्मित करे। इस त्रिभुज को चतुरस्र से घेर कर उसका सिंचन अर्घ जल से करे।।४-७।।

ततस्तु साधकश्रेष्ठः स्तम्भयेच्छङ्खमुद्रया। आग्नेयादिषु कोणेषु हृदाद्यङ्गचतुष्टयम्॥८॥

यह सम्पन्न करने के पश्चात् शंख मुद्रा से स्तम्भन कार्य करे। आग्नेय कोण में हृदयादि चार अंग स्थापित करे।।८।।

नेत्रं मध्ये दिक्षु चास्त्रं त्रिकोणे पूजयेत्ततः। मूलखण्डत्रयेनाथा धारशक्तिं तु मध्यगाम्॥९॥
एवं सम्पूज्य विधिवदस्त्रसंक्षालितं हृदा। प्रतिष्ठाप्य त्रिपदिकां पूजययेन्मनुनामुना॥१०॥
मं वह्निमण्डलायेति ततो दशकलात्मने। अमुकार्घ्येति पात्रान्ते सनापहृदयोऽन्तिमे॥११॥
चतुर्विंशतिवर्णोऽयमाधारस्यार्चने मनुः। स्वमन्त्रक्षालित शङ्खं संस्थाप्याथ समर्चयेत्॥१२॥
तारः कार्म्ममहांस्ते तु ततो जलचराय च। वर्म फट् हृदयं पाञ्चजन्याय हृदयं मनुः॥१३॥
तत्रार्कमण्डलायेति द्वादशान्ते कलात्मने। अमुकार्घ्येति पात्रान्ते नमोन्तस्त्र्यक्षिवर्णवान्॥१४॥

सम्पूज्य तेन तत्रार्चेद्द्वादशार्ककलाः क्रमात्।
ततः शुद्धजलैर्मूलं विलोममातृकां पठन्॥१५॥

शङ्खमापूरयेत्तस्मिन्पूजयेन्मनुनामुना। ओं सोममण्डलायेति षोडशान्ते कलात्मने॥१६॥

तत्पश्चात् दिशाओं के मध्य में नेत्र की तथा त्रिकोण में अस्त्र पूजा करना चाहिये। तब मूल खण्डत्रय से मध्य वाले खण्ड में आधारशक्ति की पूजा करे। इस तरह से सम्यक् पूजनोपरान्त उसे फट् मन्त्र से सिंचित करके हृदय में वहां तीन पैर वाली तिपाई स्थापित करके 'मं वह्निमण्डलाय नमः' मन्त्र से पूजन करे। इसके पश्चात् दशकलात्मा की पूजा "अमुकार्घ्येति पात्रान्ते सनापहृदयेन्तिमे" मन्त्र से करे। यह २४ अक्षरात्मक मन्त्र है। इसका प्रयोग आधार पूजनार्थ होता है। अब शंख का प्रक्षालन उसी के मन्त्र से करे। उसे स्थापित करके शंख पूजा करे। उसका पूजामन्त्र है "ॐ कार्म महास्तेतुततो जलचराय च हुं फट्।" पाञ्चजन्याय नमः। वहां द्वादश कलात्मक सूर्यपूजन करे। मन्त्र है "अमुकार्घ्येति पात्रान्ते नमोऽन्तस्त्र्यक्षिवर्णवान्।" तदनन्तर सूर्य पूजनोपरान्त वहीं मण्डल में द्वादश कला की पूजा क्रमशः करे। सूर्यपूजनोपरान्त विलोममातृका का उच्चारण करते-करते पवित्र जल से शंख को पूर्ण करे। अर्घ्यपूजन मन्त्र है—"ॐ सोममण्डलाय षोडशान्त कलात्मने अमुकार्घ्या० मृताय।" वहां सोममण्डलस्थ षोडश कला की पूजा करे।।९-१६।।

अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मनुश्चार्घ्यपूजने। तत्रा षोडशसंख्याका यजेच्चन्द्रमसः कलाः॥१७॥
ततस्तु तीर्थान्यावाह्य गङ्गे चेत्यादिपूर्ववत्। गोमुद्रयामृतीकृत्याच्छादयेन्मत्स्यमुद्रया॥१८॥
कवचेनावगुण्ठ्याथ रक्षेदस्त्रेण तत्पुनः। चिन्तयित्वेष्टदेवं च ततो मुद्रा प्रदर्शयेत्॥१९॥

तत्पश्चात् तीर्थावाहन "गंगे च यमुने चैव" इत्यादि मन्त्र से करके गोमुद्रा से वहां अमृतीकरण करना चाहिये। मत्स्यमुद्रा से उसे आच्छादित करके कवच द्वारा उसे पुनः आवरित करे। फट् मन्त्र से उसकी रक्षा करके इष्टदेव चिन्तन तथा मुद्राप्रदर्शन करे।।१७-१९।।

शङ्खमौशलचक्राख्याः परमीकरणं ततः। महामुद्रां योनिमुद्रां दर्शयेत्क्रमतः सुधीः॥२०॥
गारुडी गालिनी चैव मुख्ये मुद्रे प्रकीर्तिते। गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेद्देवतां स्मरन्॥२१॥

शंखमुद्रा, मौशलमुद्रा, चक्रमुद्रा, परमीकरण, महामुद्रा तथा योनिमुद्रा प्रदर्शन करे। यहां गारुड़ी एवं गालिकी मुख्य मुद्रायें हैं। वहां देव स्मरण के साथ गन्धपुष्पादि से पूजन करना चाहिये।।२०-२१।।

अष्टकृत्वो जपेन्मूलं प्रणवं चाष्टधा तथा।
शङ्खाद्दक्षिणदिग्भागे प्रोक्षणीपात्रमादिशेत्॥२२॥
प्रोक्षण्यां तज्जलं किञ्चित्कृत्वात्मानं त्रिधा ततः।
आत्मतत्त्वात्मने हृच्च विद्यातत्त्वात्मने नमः॥२३॥
शिवतत्त्वात्मने हृच्च इत्येतैर्मनुभिस्त्रिभिः।
प्रोक्षेत्पुष्पाक्षतैश्चापि मण्डलं विधिवत्सुधीः॥२४॥

उस समय आठ बार मूल मन्त्र तथा आठबार प्रणव जपे। प्रोक्षणी पात्र को शंक के दाहिने रखे। प्रोक्षणी में तनिक जल निःक्षेप करके अपने ऊपर तीन बार छिड़कें। अब आत्मतत्वात्मने नमः, विद्या तत्वात्मने नमः तथा शिवतत्वात्मने नमः से पुष्प-अक्षतादि से सविधि मण्डल की पूजा सुधी व्यक्ति करे।।२२-२४।।

अथवा मूलगायत्र्या पूजाद्रव्याणि प्रोक्षयेत्। पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं मधुपर्कार्थमप्युत॥२५॥
पात्राण्याधारयुक्तानि स्थापयेद्विधिना पुनः।
पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तजलैः स्मृतम्॥२६॥

किंवा मूल गायत्री पढ़ते हुये पूजन-सामग्री के ऊपर सविधि जल से प्रोक्षण करे। आगे एक (चौकी) आधार रखकर उस पर पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों, गन्धद्रव्य, दूर्वा आदि युक्त पात्र रखना चाहिये। उसी पर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क पात्र रहे। वहां श्यामाक (सांवा), दूर्वा, कमल तथा विष्णुक्रान्ता मिला जल भी रहे जिससे पाद्य होता है।।२५-२६।।

अर्घ्यं पुष्पाक्षतयवैः कुशाग्रतिलसर्षपैः। गन्धदूर्वादलैः प्रोक्तं ततपश्चाचमनीयकम्॥२७॥
जातीफलं च कङ्कोलं लवङ्गं च जलान्वितम्।
क्षौद्राज्यदधिसंमिश्रं मधुपर्कसमीरितम्॥२८॥
एकस्मिन्नथवापात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत्। शङ्करार्कार्चने शङ्खमयेनैव प्रशस्यते॥२९॥

अर्घ्य हेतु पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों, गन्धद्रव्य दूर्वा से युक्त जल प्रदान करते हैं। इस पाद्य-अर्घ्य के उपरान्त आचमनीय अर्पित करे। जातीफल, कंकोल, लवंग, मधु, दधि मिश्रित करे। यही मधुपर्क है अथवा पाद्य एवं अर्घ्य को एक ही में बनाकर उसी से दोनों कार्य करे। शिव एवं सूर्य पूजनार्थ शंख उत्तम कहा गया है।।२७-२९।।

श्वेताकृष्णारुणापीताश्यामारक्तासितासिताः। रक्ताम्बराभयकरा ध्येयास्स्युः पीठशक्तयः॥३०॥
स्वर्णादिलिखिते यन्त्रे शालग्रामे मणौ तथा। विधिना स्थापितायां वा प्रतिमायां प्रपूजयेत्॥३१॥

अङ्गुष्ठादिवितस्त्यन्तमाना स्वर्णादिधातुभिः। निर्मिता शुभदा गेहे पूजनाय दिने दिने॥३२॥
वक्रां दग्धां खण्डितां च भिन्नमूर्ध्वदृशं पुनः।
स्पृष्टां वाप्यन्त्यजाद्यैश्च प्रतिमां नैव पूजयेत्॥३३॥
बाणादिलिङ्गे वाभ्यर्चेत्सर्वलक्षणलक्षिते।
मूलेन मूर्तिसङ्कल्प्य ध्यात्वा देवं यथोदितम्॥३४॥
आवाह्य पूजयेत्तस्यां परिवारगणैः सह। शालग्रामे स्थापिताया नावाहनविसर्जने॥३५॥

अब श्वेत-नील-अरुण-पीत-श्याम, किंचित् रक्तवर्ण काली एवं धवल वर्ण पीठशक्तिगण का ध्यान करे। स्वर्णादि निर्मित यन्त्र पर, शालिग्राम, मणि किंवा सविधि प्रतिष्ठित पूजा प्रशस्त है। एक बित्ता माप की स्वर्णादि धातु की प्रतिमा का नित्य गृह में पूजन शुभ है। वक्र, दग्ध, खण्डित, नेत्रहीन, शिरभग्न, चाण्डालों से स्पर्शित प्रतिमा पूजन योग्य नहीं होती। सर्वलक्षणान्वित बाणलिंग आदि शिवलिंग पूजन को उत्तम कहा है। मूल मन्त्र से मूर्त्तिपूजा का संकल्प लेकर शास्त्रोक्त विधान से देवता का ध्यान करे। उनका आवाहन करके सपरिवार पूजा करे। शालग्राम स्थापित करके उनका आवाहन विसर्जन कदापि नहीं होता। तब मन्त्र कहते हुये पुष्पांजलि प्रदान एवं ध्यान करे।।३०-३५।।

पुष्पाञ्जलि समादाय ध्यात्वा मन्त्रमुदीरयेत्॥३६॥
आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर। अरण्यामिव हव्याशं मूर्तावावाहयाम्यहम्॥३७॥
तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो। भक्तिस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम्॥३८॥
सर्वान्तर्यामिणे देवं सर्वबीजमयं शुभम्।
स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥३९॥
अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो। सान्निध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहकारक॥४०॥

मन्त्र यह है–आप परमेश्वर, आत्मा से स्थित, अजन्मा, शुद्ध परमेश्वर हैं। जिस प्रकार अग्नि अरणि में प्रतिष्ठित रहती है, उसी तरह मैं आपकी स्थापना इस मूर्त्ति में करता हूं। यह आपकी महामूर्त्ति है। हे प्रभो! आप सर्वत्र व्याप्त प्रभु हैं। आप भक्ति तथा स्नेह से आकृष्ट होते हैं। आपको मैं इस प्रतिमा में दीपकवत् स्थापित करता हूं। आप सबके अन्तर्यामी, सर्वबीजमय शुभ देवता हैं। आप आत्मस्थ हैं। मैं हे देवेश, प्रभु! आपको यह शुद्ध आसन प्रदान करता हूं। यह आपकी अनन्य मूर्त्तिशक्ति है। हे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले! प्रभु! इस मूर्त्ति में आप सान्निध्य करे।।३६-४०।।

अज्ञानादुत मत्तत्वाद्वैकल्यात्साधनस्य च। यद्यपूर्णं भवेत्कल्पं तथाप्यभिमुखो भव॥४१॥
दशा पीयूषवर्षिण्या पूरयन्यज्ञविष्टरे। मूर्तौ वा यज्ञसम्पूर्त्यै स्थितो भव महेश्वर॥४२॥
अभक्तवाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रदूरायितद्युते। स्वतेजः पञ्जरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः॥४३॥
यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये।
तस्मै ते परमेशाय स्वागतं स्वागतं च मे॥४४॥
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम। आगतो देवदेवेशः सुस्वागतमिदं पुनः॥४५॥

यदि अज्ञान के प्रमोद के कारण किंवा साधन विकल्पवशात् कोई कमी इस अर्चना में रही है किंवा हो जाती है, तथापि आप इस मूर्त्ति में अभिमुखीन रहिये। हे महेश्वर! आप अपनी पीयूषवर्षिणी दृष्टि से इस यज्ञस्थल पर किंवा मूर्त्ति में यज्ञ की सम्पूर्णता हेतु सदा विराजित रहें। आप अभक्तों की वाणी, मन तथा नेत्र एवं कानों से अपनी द्युति को दूर रखते हैं। (वे आपका किसी प्रकार का सन्धान नहीं पा सकते। आप यहां अपने स्वतेज पुंज द्वारा चतुर्दिक् सब कुछ वेष्ठित कर लीजिये। अपनी अभीष्ट सिद्धि हेतु देवगण भी जिनके दर्शनार्थ इच्छा करते रहते हैं, मैं उन परमेश का स्वागत करता हूं। आपका स्वागत है! मैं तो आज कृतार्थ अनुगृहीत हो गया। मेरा जीवन सफल हो गया। हे देवदेवेश! आगमन करिये। आपका मैं पुनः-पुनः स्वागत करता हूं।।४१-४५।।

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात्परमानन्दसम्भवः। तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते॥४६॥
वेदानामपि वेद्याय देवानां देवतात्मने। आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे॥४७॥
तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्। तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥४८॥

जिनकी भक्ति के लेश मात्र से परमानन्द प्राप्ति संभव हो जाती है, मैं आपके उन चरणकमलों हेतु यह शुद्ध अर्घ्य प्रदान कर रहा हूं। जो वेदों के वेद्य तथा देवगण के भी देवता हैं, मैं उन शुद्ध प्रभु की शुद्धि हेतु आचमन प्रदान करता हूं। आप तापत्रयहारी, दिव्य, परमानन्द लक्षणान्वित हैं। मैं तापत्रय से मुक्ति हेतु आपको अर्घ्य प्रान करता हूं।।४६-४८।।

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने। मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥४९॥
उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्॥५०॥
स्नेह गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय। सर्वलोकेषु शुद्धात्मन्ददामि स्नेहमुत्तमम्॥५१॥
परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये। साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते॥
सहस्त्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च॥५२॥

आप समस्त कलुष रहित, परिपूर्ण सुखात्मा हैं। मैं आपको मधुपर्क प्रदान करता हूं। आप प्रसन्न हो जाये। जिनके स्मरण मात्र से उच्छिष्ट भी पवित्र हो जाता है, मैं उन आपको पुनराचमनीय प्रदान करता हूं। हे लोकनाथ! आप यह जल स्नेह के साथ ग्रहण करिये। आप सभी लोकों में शुद्धात्मा हैं। मैं आपको यह उत्तम जल अर्पित करता हूं। हे परमानन्द रूप बोध समुद्र में निमग्न आत्ममूर्त्ति! मैं आपके सांगोपांग स्नानार्थ स्वशक्ति के अनुसार सहस्त्र किंवा शत बार स्नानार्थ जल अर्पित करता हूं।।४९-५२।।

गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिञ्चयेत्॥५३॥
मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे। निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम्॥५४॥
यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा। तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम्॥५५॥

अब इस मन्त्र द्वारा गन्ध-पुष्पादियुक्त जल द्वारा देवता को स्नान कराये। मन्त्रार्थ है—आप मायारूपी चित्रपट से अपने विपुल गुह्य तेज को गुप्त रखते हैं। आप निरावरण विज्ञानरूपी प्रभु को मैं वस्त्र अर्पित करता

हूं। जिनकी आश्रित महामाया सदा जगत् को सम्मोहित करती हैं, मैं उन परमेश्वर के लिये उत्तरीय प्रदान करता हूं।।५३-५५।।

रक्तं शक्त्यर्कविघ्नेषु पीतं विष्णौ सितं शिवे।
तैलादिदूषितं जीर्णं सच्छिद्रं मलिनं त्यजेत्।।५६।।
यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रीतमखिलं जगत्। यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये।।५७।।

भगवान् सूर्य, शक्ति तथा शक्ति को रक्तवर्ण, विष्णु को पीतवर्ण तथा शिव को श्वेतवर्ण वस्त्र अर्पित करे। तैलादि से दूषित, जीर्ण, छिद्रान्वित मलिन वस्त्र देना वर्जित है। अब इस मन्त्र से यज्ञोपवीत प्रदान करे। मन्त्रार्थ है—जिनकी त्रिशक्ति द्वारा समस्त संसार प्रसन्न रहता है, ऐसे यज्ञाधाररूप आपको मैं यज्ञोपवीत प्रदान करता हूं।।५६-५७।।

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित।।५८।।
परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्। गृहाण परमं गन्ध कृपया परमेश्वर।।५९।।
तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम्। अमन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम्।
जपाक्षतार्कधत्तूरान्विष्णौ नैवार्पयेत्क्वचित्।।६०।।

इस मन्त्र से भूषण प्रदान करे। मन्त्रार्थ है—आप स्वभावतः सुन्दर अंगों वाले तथा नानाशक्ति के आश्रय हैं। मैं आपको यह चित्र-विचित्र आभूषण प्रदान करता हूं। अब पुष्पार्पण मन्त्र कहते हैं—मन्त्रार्थ है—"हे परमेश्वर! अपनी सुगन्ध से दिग्-दिगन्तर को सुगन्धित करने वाले, परमानन्ददायक अति उत्तम गन्धयुक्त पुष्प को कृपया स्वीकार करिये। यह तुरीयवन से उत्पन्न नाना गुण के कारण मनोहर है। अति उत्कृष्ट सौरभ वाले इस पुष्प को स्वीकार करिये।" जपाकुसुम, अक्षत, मदार, धतूरे के पुष्प को कदापि विष्णु पर अर्पित न करे।।५८-६०।।

केतकी कुटजं कुन्दं बन्धूकं केसरं जपाम्। मालतीपुष्पकं चैव नार्पयेत्तु महेश्वरे।।६१।।
मातुलिङ्गं च तगरं रवौ नैवार्पयेत्क्वचित्।
शक्तौ दूर्वार्कमन्दारान् गणेशतुलसीं त्यजेत्।।६२।।
सरोजिनीदमनकौ तथा मरुबकः कुशः।
विष्णुक्रान्ता नागवल्ली दूर्वापामार्गदाडिमौ।।६३।।
धात्री मुनियुतानां च पत्रैर्देवार्चनं चरेत्। कदली बदरी धात्री तिन्तिणी बीजपुरकम्।।६४।।
आम्रदाडिमजम्बीरजम्बूपनसभूरुहाः। एतेषां तु फलैः कुर्याद्देवतापूजनं बुधः।।६५।।

केतकी, कुटज, कुन्द, बन्धूक, केशर, जवाकुसुम तथा मालती पुष्प कदापि महेश्वर पर न चढ़ाये। मातुलिंग, तगर को सूर्यपूजनार्थ वर्जित कहा गया है। भगवती शक्ति पर दूब, मदार तथा मन्दारपुष्प न चढ़ाये। गणेश पर तुलसीपत्र अर्पित न करे। सरोजनी, दोना, मरुबक, कुश, विष्णुक्रान्ता, नागवल्ली, अपामार्ग, दूर्वा, अनार, आवला एवं मुनियुत के पत्तों से देवार्चन करे। केला, बेर, आमला, तिन्तिड़ी, बीजपूर, आम, अनार, जम्बीर, जामुन, कटहल के फलों से देवार्चन करे। बन्धुजन इनसे देवपूजन करे।।६१-६५।।

शुष्कैस्तु नार्चयेद्देवं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥६६॥
धात्रीखदिरबिल्वानां तमालस्य दलानि च।
छिन्नभिन्नान्यपि मुने न दूष्याणि जगुर्बुधाः॥६७॥
पद्ममामलकं तिष्ठेच्छुद्धं चैव दिनत्रयम्। सर्वदा तुलसी शुद्धा बिल्वपत्राणि वै तथा॥६८॥

सूखे पत्ते, पुष्प फलादि से देवपूजा न करे। हे मुनिवर! विद्वानों का कथन है कि यद्यपि आमला, खैर, बेल, तमाल के पत्र कटे, भग्न, छिन्न हों तथापि पूजार्थ विहित हैं। कमल तथा आवला तीन दिन शुद्ध बने रहते हैं। बेल की पत्ती तथा तुलसी की पत्ती सदा शुद्ध है।।६६-६८।।

पलाशकाशकुसुमैस्तमालतुलसीदलैः। धात्रीदलैश्च दूर्वाभिर्नार्चयेज्जगदम्बिकाम्॥६९॥
नार्पयेत्कुसुमं पत्रं फलं देवे ह्यधोमुखम्। पुष्पपत्रादिकं विप्र यथोत्पन्नं तथार्पयेत्॥७०॥
वनस्पतिरसं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। आघ्रेयं देवदेवेश धूपं भक्त्या गृहाण मे॥७१॥

पलाश, आकाशकुसुम, तमाल, तुलसीदल, धात्रीपत्र, दूर्वा से कभी भी जगदम्बा की पूजा न करे। देवता के अधोमुख पुष्प-पत्र-फल अर्पित न करे। हे विप्र! वे जिस स्थिति में पौधे में पैदा होते हैं, उनको तदनुरूप चढ़ाये। धूपदान मन्त्र कहा जाता है। मन्त्रार्थ है—हे देवदेवेश! सूंघने योग्य, दिव्य वनस्पति रस से निर्मित गन्धयुक्त मनोहर धूप मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित है। आप इसे ग्रहण करे।।६९-७१।।

सप्रकाशं महादीपं सर्वदा तिमिरापहम्। घृतवर्तिसमायुक्तं गृहाण मम सत्कृतम्॥७२॥

अब दीपदान मन्त्र कहते हैं—मन्त्रार्थ है—सप्रकाश सदा अन्धकारहारी, घृत की बत्ती वाले इस महादीप को मैं सादर अर्पित कर रहा हूं। आप स्वीकार करिये।।७२।।

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्।
भक्त्या गृहाण मे देव नैवेद्यं तुष्टिदं सदा॥७३॥

अब नैवेद्यार्पण मन्त्र कहते हैं। मन्त्रार्थ है—"हे देव! यह चतुर्विध स्वादु षड्रस नैवेद्यान्न हैं। आपको मैं भक्ति के साथ अर्पित कर रहा हूं। हे देव! यह आपको सदा सन्तुष्टि प्रदान करे।।७३।।

नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखदिरचूर्णयुक्। कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद्गृहाण मे॥७४॥
दद्यात्पुष्पाञ्जलिं पश्चात्कुर्यादावरणार्चनम्॥७५॥
यदाशाभिमुखो भूत्वा पूजनं तु समाचरेत्।
सैव प्राची तु विज्ञेया ततोऽन्या विदिशो दश॥७६॥
केशरेष्वग्निकोणादिहृदयादीनि पूजयेत्। नेत्रमग्रे दिक्षु चास्त्रं अङ्गमन्त्रैर्यथाक्रमम्॥७७॥

अब ताम्बूलार्पण मन्त्र कहते हैं—हे देव! सुपारी तथा कत्था समन्वित उत्तम ताम्बूल ग्रहण करे। तदनन्तर पुष्पांजलि दे। सर्वान्त में आवरण पूजा करे। पूजा में दिशा नियम यह है कि जिस दिशा में मुख करके पूजक पूजन करता है, वही पूर्वदिक् है। अन्य सभी दस विदिशा हैं (पूर्व को लेकर)। अग्निकोण में केशर पर हृदयादि पूजा करे। अन्य कोण में एक के बाद एक नेत्र, अस्त्रादि का पूजन अंग मन्त्र से करना चाहिये।।७४-७७।।

शुक्लश्वेतसितश्यामकृष्णरक्तार्चिषः क्रमात्। वराभयकरा ध्येयाः स्वस्वदिक्ष्वङ्गशक्तयः॥७८॥

अमुकावरणान्ते तु देवता इति संवेदत्।
सालङ्कारास्ततः पश्चात्साङ्गाः सपरिचारिकाः॥७९॥
सवाहनाः सायुधाश्च ततः सर्वोपचारकैः।
सम्पूजितास्तर्पिताश्च वरदाः संत्विदं पठेत्॥८०॥

मूलान्ते च समुच्चार्य देवतायै निवेदयेत्। अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल॥८१॥
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकवरणार्चनम्। इत्युच्चार्य क्षिपेत्पुष्पाञ्जलिं देवस्य मस्तके॥८२॥

इसके पश्चात् शुक्ल-श्वेत, कृष्ण-श्याम, नील तथा रक्त प्रभा पूर्ण वर-अभय प्रदात्री अंग शक्तियों का उनकी-उनकी दिशाओं में ध्यान करे। वहां यह कहे मैं इन नाम वाले—देवता का वरण करता हूं। देवता का नाम यहां युक्त करे। इन देवगण की पूजा उनके आभूषण, अंग, परिचारक, वाहन, आयुधों के साथ सभी उपचारों से करे। उनको पूजित तथा तर्पित करने के पश्चात् कहे "वरदाः सन्त"। पूजान्त में उच्च स्वर से कहे— "हे शरणागत वत्सल! मुझे वांछित सिद्धि प्रदान करे। मैं यह आवरण पूजा आपको भक्ति के साथ अर्पित करता हूं" यह मन्त्र पढ़कर देवता के शीर्ष पर पुष्पांजलि अर्पित करना चाहिये।।७८-७२।।

ततस्त्वभ्यर्च्यनीयास्युः कल्पोक्ताश्चावृतोः क्रमात्।
सायुधांशतत इन्द्राद्यान्स्वस्वदिक्षु प्रपूजयेत्॥८३॥

इन्द्रो वह्निर्यमो रक्षो वरुणः पवनो विधुः। ईशानोऽथ विधिंश्चैवमघस्तात्पन्नगाधिपः॥८४॥
ऐरावतस्तथा मेषो महिषः प्रेतस्तिमिर्मृगः। वाजी वृषो हंसकूर्मौ वाहनानि विदुर्बुधाः॥८५॥

वज्रं शक्तिं दण्डखड्गौ पाशाङ्कुशगदा अपि।
त्रिशूलं शङ्खचक्रे च क्रमादिन्द्रादिहेतयः॥८६॥

तदनन्तर स्वकल्पोक्त विधि से देवगण की पूजा एक के बाद एक करे। अपने-अपने आयुधों के साथ इन्द्रादि देवताओं की पूजा उनकी-उनकी दिशा में करनी चाहिये। इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वरुण, वायु, चन्द्र, ईशान विधि तथा पाताल के स्वामी शेष—ये सब क्रमशः दस दिशा के स्वामी कहे गये हैं। इन्द्र के ऐरावत, अग्नि के मेष, यम के महिष, कुबेर के प्रेत, वरुण के मत्स्य, वायु के मृग, चन्द्र के अश्व, ईशान के वृष, विधि के हंस तथा शेष के वाहन कच्छप हैं। यह विद्वानों को विदित है। इन्द्र का अस्त्र है वज्र, इसी प्रकार अग्नि का शक्ति, यम का दण्ड, कुबेर का खड्ग, वरुण का पाश, वायु का कुश, चन्द्र का गदा, ईशान का त्रिशूल, विधि का यज्ञ तथा शेष का चक्र आयुध है।।८३-८६।।

समाप्यावरणार्चां तु देवतारार्तिकं चरेत्। शङ्खतोयं परिक्षिप्योद्वाहुर्नृत्यन् पतेत्क्षितौ॥८७॥

दण्डवच्चाप्यथोत्थाय प्रार्थयित्वा निजेश्वरम्।
दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वा तत्र संस्कारमाचरेत्॥८८॥

मूलेनेक्षणमस्त्रेण प्रोक्षणं ताडनं पुनः। कुशैस्तद्वर्मणाभ्युक्ष्य पूज्य तत्र न्यसेद्वसुम्॥८९॥

प्रदाण्य तत्र जुहुयाद्ध्यात्वा चैवेष्टदेवताम्। महाव्याहृतिभिर्यस्तुसमस्ताभिश्चतुष्टयम्।।९०।।
जुहुयात्सर्पिषा भक्तैस्तिलैर्वा पायसेन वा। सघृतैः साधकश्रेष्ठः पञ्चविंशतिसंख्यया।।९१।।

आवरणार्चनोपरान्त देवता की आरति करे। शंख जल को पृथिवी पर छिड़क कर दोनों हाथों को ऊपर उठाये तथा नृत्य करते हुये भूपतित हो जाये। तदनन्तर दण्डवत् प्रणामोपरान्त इष्टदेव की प्रार्थना करके फट् मन्त्र से जल छिड़कना चाहिये। अब दाहिने स्थण्डिल (वेदी) बनाकर उस जल क्षिप्त स्थान को हाथों से बराबर (समतल) करे। तब कुशा से उसे झाड़े तथा उस वेदी पर जल छिड़क कर उसकी पूजा करने के पश्चात् वहां सविधि अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। अग्नि प्रदीप्त होने पर देवध्यानोपरान्त वहां होम करे। सर्वाग्र में साधक वहां महाव्याहृति से चार होम घृत द्वारा सम्पन्न करे (चार आहुति दे)। तत्पश्चात् घृतयुक्त भात, तिल की किंवा पायस की २५ बार आहुति देनी चाहिये।।८७-९१।।

पनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा गन्धाद्यैः पुनरर्चयेत्। देवं संयोजयेन्मूर्तौ ततो वह्निं विसर्जयेत्।।९२।।
भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्।।९३।।
विसृज्याग्निदेवतायै दद्यादाचमनीयकम्। अवशिष्टेन हविषा गन्धपुष्पाक्षतान्वितम्।।९४।।
देवतापार्षदेभ्योऽपि पूर्वोक्तेभ्योर्बलिं ददेत्। ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः।।९५।।
योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये। विघ्नमूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षुसमाश्रिताः।।९६।।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम्। इत्यष्टदिक्षु दत्त्वा च पुनर्भूतबलिं चरेत्।।९७।।

तदनन्तर व्याहृति से हवन करे तथा गन्धादि द्रव्य द्वारा अग्निपूंजा करे। प्रतिमा में देवता की प्रतिष्ठा करके अग्नि को विसर्जित करे। अग्नि विसर्जन मन्त्र का मन्त्रार्थ है—"हे महाशक्ति! सर्वकार्य सम्पन्न कराने वाले भगवान् अग्निदेव! इस हवन कर्म से अतिरिक्त अन्य कर्मों में आप मेरी सहायता करिये।" विसर्जनोपरान्त उनको आचमन प्रदान करे। अब जो हवन सामग्री बची है, उससे तथा गन्ध, पुष्प अक्षत से पूर्वोक्त देव पार्षदों को वलि देनी चाहिये। बलि मन्त्र का मन्त्रार्थ कहते हैं—"जो रौद्र, रौद्रकर्मा, रौद्रस्थानवासी उग्र रूप तथा योगिनियां, गणाधिपति तथा अन्य दिग्-विदिग् वासी विघ्कर्ता पार्षदगण हैं, वे प्रसन्नता से यह बलि ग्रहण करे।" इस मन्त्र द्वारा आठों दिशा में बलि प्रदान करके भूतबलि प्रदान करे।।९२-९७।।

पानीयममृतीकृत्य मुद्रया धेनुसंज्ञया। देवतायाः करे दद्यात्पुनश्चाचमनीयकम्।।९८।।
देवमुद्वास्य मूर्तिस्थं पुनस्तत्रैव योजयेत्। नैवेद्यं च ततो दद्यात्तत्तदुच्छिष्टभोजिने।।९९।।
महेश्वरस्य चण्डेशो विष्वक्सेनस्तथा हरेः। चण्डांशुस्तरणेर्वक्रतुण्डश्चापि गणेशितुः।
शक्तेरुच्छिष्टचाण्डाली प्रोक्ता उच्छिष्टभोजिनः।।१००।।

तब धेनुमुद्रा नामक मुद्रा द्वारा जल का अमृतीकरण करके देवता के हाथों में पुनराचमनीय जल देना चाहिये। तदनन्तर उस प्रतिमा में स्थित देवता का विसर्जन करके उनकी प्रतिष्ठा पुनः वहां करे। तब भगवत् प्रसाद के उच्छिष्ट भोगीगण को नैवेद्य प्रदान करे। महादेव के उच्छिष्ट भोजी हैं चण्डेश, हरि के विष्वक्सेन, सूर्य के चण्डांशु, गणपति के वक्रतुण्ड तथा दुर्गा के उच्छिष्ट भोजी हैं उच्छिष्ट चाण्डाली।।९८-१००।।

ततो ऋष्यादिकं स्मृत्वा कृत्वा मूलषडङ्गकम्।
जप्त्वा मन्त्रं यथाशक्ति देवतायै निवेदयेत्॥१०१॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता॥१०२॥

अब मूल मन्त्र के ऋष्यादि का स्मरण करके उसी मन्त्र से षडङ्गन्यास सम्पन्न करे। यथाशक्ति मन्त्र जप के उपरान्त जपार्पण उन देवता को ही करना चाहिये। मन्त्रार्थ है—"हे देव! आप गुप्त से भी अधिक गोपनीय की रक्षा करते हैं। आप मेरे द्वारा कृत जप को ग्रहण करे। आप में स्थिता सिद्धि मुझे भी प्राप्त हो।"॥१०१-१०२॥

ततः पराङ्मुखं चार्घं कृत्वा पुष्पैः प्रपूजयेत्।
दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥१०३॥
बाहुभ्यां च सजानुभ्यां शिरसा वचसापि वा।
पञ्चाङ्गकः प्रणामः स्यात्पूजायां प्रवरावुभौ॥१०४॥
नत्वा च दण्डवन्मन्त्री ततः कुर्यात्प्रदक्षिणः।
विष्णुसोमार्कविघ्नानां वेदार्धेन्द्वद्रिवह्नयः॥१०५॥

अब पराङ्मुखी अर्घ्य प्रदानोपरान्त पुष्पों से देवपूजा करनी चाहिये। दोनों हाथ, उभय पैर, दोनों घुटने, वक्ष, मस्तक, नेत्र, मन, वाणी से किये जाने वाला प्रणाम अष्टांग प्रणाम है। उभय बाहु, जानु, वक्ष तथा मस्तक एवं वाणी से कृत प्रणाम पंचांग प्रणाम है। पूजार्थ ये उभय प्रणाम उत्तम माने गये हैं। वह मन्त्रज्ञ साधक दण्डवत् प्रणाम करके प्रभु की प्रदक्षिणा करे। विष्णु की चार, शंकर की अर्द्ध, भगवती की एक, सूर्य की सात, गणपति की ३ प्रदक्षिणा करे।।१०३-१०५।।

ततः स्तोत्रादिकं मन्त्री प्रपठेद्भक्तिपूर्वकम्। इतः पूर्णं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः॥१०६॥
जाग्रत्स्वप्नसुषप्त्यन्तेऽवस्थासु मनसा वदेत्।
वाचा हस्ताभ्यां च पद्भ्यामुदरेण ततः परम्॥१०७॥
शिष्णान्ते यत्स्मृतं पश्चाद्यदुक्तं यत्कृतं ततः।
तत्सर्वं च ततो ब्रह्मार्पणं भवतु ठद्वयम्॥१०८॥
मां मदीयं च सकलं विष्णवे च समर्पये। तारं तत्सदतो ब्रह्मार्पणमस्तु मनुर्मतः॥१०९॥
प्रणवाद्योऽष्टवस्वर्णो ह्यनेनात्मानमर्पयेत्।
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात्साधनस्य च॥११०॥
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि। द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयान्यथा॥१११॥
कृतं यत्तत्क्षमस्वेश कृपया त्वं दयानिधे। यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु॥११२॥

तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद्भूत्यै च मे प्रभो।
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्॥११३॥

वह मन्त्री व्यक्ति अब भक्ति के साथ स्तोत्रादि का पाठ करे। तदनन्तर कहे जो मूल में अंकित है अर्थात् "ॐ इतः पूर्व० प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत् स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं विष्णवे ते समर्पये। ॐ तत्सत्।" यह ब्रह्मार्पण मन्त्र है, ऐसा विचक्षण लोग कहते हैं। इसमें प्रथमतः प्रणव है। तदनन्तर ८२ वर्णों का मन्त्र है। इस मन्त्र से भगवान् को आत्म समर्पण करे। तदनन्तर यह प्रार्थना करे। "मैंने अज्ञान से, प्रमाद से, साधना विकलता से (साधनाल्पता से) न्यूनता किंवा अधिकता का दोष किया है, हे दयानिधि! आप उसे क्षमा करिये। मैं द्रव्यहीन, क्रियाहीन, मन्त्रहीन हूं। मुझसे जो अन्यथा कृत्य हो गया हो, हे दयानिधि! आप वह सब कृपा पूर्वक क्षमा करिये। मैंने जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में जो कुछ कर्म किया है, वह आपकी ही पूजारूप हो जाये। हे प्रभो! जैसे धरती पर फिसल कर लोग भले ही गिरें, तथापि धरती ही उनकी सहायक है।"।।१०६-११३।।

त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो। अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥११४॥
तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर। अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया॥११५॥
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्॥११६॥
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर।
सम्प्रार्थ्यैवं ततो मन्त्री मूलान्ते श्लोकमुच्चरेत्॥११७॥

एवंविध जो आपका अपराधी है, उसे तो आप ही शरण देते हैं। हे परमेश्वर! मेरे लिये आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी शरणदाता है ही नहीं! आप कृपापूर्वक त्रुटियों को क्षमा करिये। मैं अहर्निश सहस्रों अपराध करता रहता हूं। हे जगत्पति! मैं आपका ही दास हूं। आप कृपया क्षमा करिये। मुझे आवाहन, विसर्जन आदि कुछ भी ज्ञात नहीं है। मुझे पूजा करना भी नहीं आता। मेरे लिये तो एकमात्र आप ही गति हैं।" यह प्रार्थना करके वह साधक मूलमन्त्र पढ़े।।११४-११७।।

गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय।
यत्र ब्रह्मादयो देवा जानन्ति त्वं सदाशिवः॥११८॥

मन्त्रार्थ कहते हैं—हे जगदीश! जगन्मय! आप अपने परमस्थान जायें, जिसे ब्रह्मादि देवता तथा सदाशिव भी नहीं जानते।।११८।।

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा ततः संहारमुद्रया। निधाय देवं साङ्गं च स्वीयं हृत्सरसीरुहे॥११९॥
सुषुष्णावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेद् बुधः। शङ्खचक्रशिलालिङ्गविघ्नसूर्यद्वयं तथा॥१२०॥
शक्तित्रयं न चैकत्र पूजयेद्दुःखकारणम्। अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्॥१२१॥
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम्॥१२२॥

तदनन्तर पुष्पांजलि प्रदान करके संहारमुद्रा द्वारा भगवान् एवं तदङ्गभूत पार्षदगण को अपने सुषुम्ना

मार्ग से हृदय कमल पर स्थापित करे तथा पुष्प को सूंघकर बुद्धिमान् व्यक्ति भगवान् का विसर्जन करे। दो शंख, दो गोमतीचक्र, दो शिवलिंग, दो गणपति, दो सूर्य मूर्त्ति तथा तीन दुर्गा प्रतिमा का पूजन एक ही गृह में करना वर्जित है। अब चरणामृत पान इस मन्त्र से करे। मन्त्रार्थ है—शुभ, अकालमृत्युहारी, सर्वव्याधिनाशक भगवान् विष्णु का चरणामृत सर्वपाप संहारक है।।११९-१२२।।

तत्तद्भक्तैर्ग्रहीतव्यं तन्नैवेद्यनिवेदितम्। अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्॥१२३॥
शालग्रामशिलास्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम्। पूजा पञ्चविधा तत्र कथिता नारदाखिलैः॥१२४॥

नाना देवगण के भिन्न-भिन्न भक्त लोग अपने देवता को निवेदित नैवेद्य को अवश्य ग्रहण करे तथापि शिव निर्माल्य, पत्र, पुष्प, जल, ग्रहणीय नहीं होता। लेकिन शालग्राम शिला स्पर्श से वह भी ग्रहण योग्य हो जाता है। हे नारद! पूजा पांच प्रकार की कही गयी है।।१२३-१२४।।

आतुरी सौतिकी त्रासी साधना भाविनी तथा।
दौर्बोधी च क्रमादासां लक्षणानि शृणुष्व मे॥१२५॥
रोगादियुक्तो न स्नायान्न जपेन्न च पूजयेत्।
विलोक्य पूजां देवस्य मूर्तिं वा सूर्य्यमण्डलम्॥१२६॥
प्रणम्याथ स्मरन्मन्त्रमर्पयेत्कुसुमाञ्जलिम्। रोगे निवृत्ते स्नात्वाथ नत्वा सम्पूयेद्गुरुम्॥१२७॥
त्वत्प्रसादाज्जगन्नाथ जगत्पूज्य दयानिधे।
पूज्जाविच्छेददोषो मे मास्त्विति प्रार्थयेच्च तम्॥१२८॥
द्विजानपि च सम्पूज्य यथाशक्त्या प्रतोष्य च।
तेभ्यश्चाशिषमादाय देवं प्राग्वत्ततोऽर्चयेत्॥१२९॥
आतुरी कथिता ह्येषा सातिक्यथ निगद्यते।
सूतकं द्विविधं प्रोक्तं जाताख्यं मृतसंज्ञकम्॥१३०॥

(वह पंचविध पूजा है) आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी एवं दौर्बोधी।

आतुरी पूजा का लक्षण—रोगादि ग्रसित मनुष्य स्नान जप, पूजन न करे। मात्र आराध्यदेव का पूजन देखे, प्रतिमा किंवा सूर्यमण्डल दर्शन करे। प्रणाम करे। मन्त्र जप करे। पुष्पांजलि प्रदान करे। लेकिन रोगमुक्त होने पर स्नान, नमस्कार तथा गुरु पूजा करे। भगवान् से प्रार्थना करे—हे जगन्नाथ, जगत्पूजित, दयासागर! आपकी कृपा से मुझे पूजा रहित रहने का दोष न लगे। वह ब्राह्मण पूजन करे। दक्षिणा से तृप्त करे। उनका आशीर्वाद ग्रहण करके पहले जैसा भगवत् पूजन करे। यह आतुरी पूजा है। अब सौतिकी पूजा कहते हैं। सूतक दो प्रकार का है जननाशौच तथा मरणाशौच।।१२५-१३०।।

तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा सन्ध्यां समाहितः। मनसैव यजेद्देव मनसैव जपेन्मनुम्॥१३१॥
निवृत्ते सूतके प्राग्वत्सम्पूज्य च गुरुं द्विजान्। तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत्॥१३२॥
एषा तु सौतिकी प्रोक्ता त्रासी चाथ निगद्यते। दुष्टेभ्यस्त्रासमापन्नो यथालब्धोपचारकैः॥१३३॥

मानसैर्वायजेद्देवं त्रासी सा परिकीर्तिता। पूजासाधनवस्तूनामसामर्थ्ये तु सर्वतः॥१३४॥

इन उभय सूतकों के समय एकाग्रता पूर्वक मानसी सन्ध्या करके मन से ही भगवत् पूजन तथा मन ही मन मन्त्र जप करे। जब सूतक समाप्त हो जाये, तब पहले की तरह गुरु एवं ब्राह्मणों की पूजा करे। उनसे आशीर्वाद लेकर पूजाक्रम प्रारंभ करे। यही सौतिक पूजा है। अब त्रासी पूजा कहते हैं। जब व्यक्ति दुष्टों से त्रस्त हो, तब मनुष्य को जो भी उपचार प्राप्त हो उनसे, किंवा मानस उपचार से भगवत् पूजा करे। यही त्रासी पूजा है। जब पूजा साधन सामाग्री एकत्र न हो सके।।१३१-१३४।।

पुष्पैः पत्रैः फलैर्वापि मनसा वा यजेद्विभुम्।
साधनाभाविनी ह्येषा दौर्बोधीं शृणु नारद॥१३५॥
स्त्रियो वृद्धास्तथा बाला मूर्खास्तैस्तु यथाक्रमम्।
यथाज्ञानकृता सा तु दौर्बोधीति प्रकीर्तिता॥१३६॥

तब जो भी पत्र-पुष्प-फल मिले, उसी से साधनाभाविनी पूजा करनी चाहिये। हे नारद! अब दौर्बोधी पूजा श्रवण करिये। स्त्री, वृद्ध, बालक, मूर्ख लोग अपनी कम समझ से जो भी पूजा करते हैं, वही दौर्बोधी पूजा कही गयी है।।१३५-१३६।।

एवं यथाकथञ्चित्तु पूजां कुर्याद्धि साधकः।
देवपूजाविहीनो यः स गच्छेन्नरकं ध्रुवम्॥१३७॥
वैश्वदेवादिकं कृत्वा भोजयेद्द्विजसत्तमान्।
देवे निवेदितं पश्चाद्भुञ्जीत स्वगणैः स्वयम्॥१३८॥
आचम्याननशुद्धिं च कृत्वा तिष्ठेत् कियत्क्षणम्।
पुराणमितिहासं च शृणुयात्स्वजनैः सह॥१३९॥
समर्थः सर्वकल्पेषु योऽनुकल्पं समाचरेत्।
न साङ्गशयिकं तस्य दुर्मतेर्जायते फलम्॥१४०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे देवपूजानिरूपणं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

इस प्रकार जैसे भी संभव हो, वैसे पूजा सम्पन्न करे। देवपूजा रहित का नरक गमन निश्चित है। वैश्वदेव आदि सम्पन्न करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करे। तदनन्तर भगवद् अर्पित प्रसाद को अपने स्वजनों के साथ ग्रहण करे। तदनन्तर आचमनादि शुद्धि करके कुछ क्षण बैठे। पुराण-इतिहास आदि को स्वजनों के साथ सुने। जो समर्थ होकर भी सम्पूर्ण विधान से पूजा न करके अपूर्ण (अनुकल्प द्वारा) विधान से अनुष्ठान करे, उस दुर्मति उपासक को पूर्ण फललाभ नहीं होता।।१३७-१४०।।

।।६७वां अध्याय समाप्त।।

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

गणेश मन्त्रविधान का वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये गणेशस्य मन्त्रान्सर्वेष्टदायकान्।
यान्समाराध्य विप्रेन्द्र साधको भुक्तिमुक्तिमान्॥१॥

अव्ययो विष्णुवनिता शम्भुस्त्री मीनकेतनः। स्मृतिर्मांसेन्दुमन्वाढ्या सा पुनश्चन्द्रशेखरा॥२॥
ङेन्तो गणपतिस्तोयं भुजङ्गो वरदेति च। सर्वान्ते जनमुच्चार्य ततो मे वशमानय॥३॥
वह्निःप्रियान्तो मन्त्रोऽयमष्टाविंशतिवर्णवान्। गणकोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री निवृदादिका॥४॥
गणेशो देवता बीजं षष्ठशक्तिस्तदादिका। श्रीमन्महागणपतिप्रीतये विनियोगकः॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं गणेश का सर्व इष्टप्रदायक मन्त्र कहूंगा। हे विप्रेन्द्र! इसके द्वारा आराधना करके साधक भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त करते हैं। अव्यय, विष्णुपत्नी, कामदेव, स्मृति, मास, इन्द्ररूपेण मन्त्र से युक्त दुर्गा, चतुर्थी विभक्ति, गणपति, तोय, भुजंग तथा वरदपद को युक्त करे। अन्त में "अमुकं जनं मे वशम् आनय"। अन्त में स्वाहा योग करे (यहां मन्त्र संकेत दिया गया है। इसका मन्त्रोद्धार नहीं है। विज्ञजन इसका मन्त्रोद्धार करें)। मन्त्र के मुनि गणक हैं। छन्दः है निवृत् गायत्री, गणेश देवता हैं। इसकी बीज है षष्ठशक्ति। इसका प्रयोग महागणपति की प्रसन्नतार्थ होता है।।१-५।।

ऋषिं शिरसि वक्त्रे तु छन्दश्च हृदि देवताम्। गुह्ये बीजं पदोः शक्तिं न्यसेत्साधकसत्तमः॥६॥
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन यं च बीजादिना पुनः। षडङ्गानि न्यसेदस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित्॥७॥
शैवी षडङ्गमुद्रात्र न्यस्तव्या हि षडङ्गके। गामाद्यं चैव भूर्लोकं नाभ्यन्तं पादयोर्न्यसेत्॥८॥

गीमाद्यं च भुवर्लोकं कण्ठान्तं नाभितो न्यसेत्।
स्वर्लोकं चैव गूमाद्यं कण्ठादिमस्तकावधि॥९॥

व्यापकं मूलमन्त्रेण न्यासोऽयं भुवनाभिधः। मूलमन्त्रं समुच्चार्य मातृकावर्णमीरयेत्॥१०॥
तदन्तेऽपि च मूलं स्यान्नमोऽन्त मातृकास्थले। क्षान्तं विन्यस्य मूलेन व्यापकं रचयेत्सुधीः॥११॥
वर्णन्यासोऽयमाख्यातः पदन्यासस्तथोच्यते। पञ्चत्रिबाणवह्नीन्दुचन्द्राक्षिनिगमैः क्रमात्॥१२॥
विभक्तैर्मूलगायत्र्या हृदन्तैरष्टाभिः पदैः। भालदेशे मुखे कण्ठे हृदि नाभ्यूरुजानुषु॥१३॥
पादयोश्चैव विन्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत्। वेदेत्तत्पुरुषायान्ते विद्महेति पदं ततः॥१४॥

वक्रतुण्डाय शब्दान्ते धीमहीति समीरयेत्।
तन्नो दन्तिः प्रचोवर्णा दयादिति वदेत्पुनः॥१५॥

एषोक्ता मूलगायत्री सर्वसिद्धिप्रदायिनी। एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेदेवं हृदम्बुजे॥१६॥

श्रेष्ठ साधक ऋषि का न्यास मस्तक पर, मुख में छन्दः का, देवता का हृदय में, बीज का गुह्य में, शक्ति का दोनों चरण में न्यास करे। षड्दीर्घयुक्त बीज मन्त्र से सामान्य न्यास करे। मन्त्रवेत्ता स्वरयुक्त षडङ्ग का न्यास बीजमन्त्र से करे। तदनन्तर शैवी षडङ्ग मुद्रा का न्यास छः अंगों में करे। प्रारंभ में गां लगाकर उभय पद से (भूर्लोक का) नाभिपर्यन्त, आदि में 'ग्रीं' का योग करके भुवर्लोक का नाभि से लगाकर कण्ठ तक, आदि में 'गूं' जोड़कर कंठ से मस्तक तक स्वर्लोक का मूलमन्त्र द्वारा व्यापक न्यास करे। इससे भुवनन्यास कहते हैं। तत्पश्चात् मूलमन्त्रोच्चारणोपरान्त मातृकाक्षर का उच्चारण करे। उसके पश्चात् भी मूलमन्त्रोच्चारण के पश्चात् मन्त्र के अन्त में नमः लगाये। इससे मातृकाक्षर के प्रारंभ में (अ) लेकर 'क्ष' तक व्यापक न्यास सम्पन्न करे। यही सुधी व्यक्ति को करना चाहिये। इस वर्णन्यासोपरान्त पदन्यास करे। अब मैं पदन्यास का वर्णन करता हूं। पांच, तीन, पांच, तीन, एक, एक, दो तथा ४ कुल २४ अक्षरों में बटें आठ पद तथा अन्त में 'नमः' युक्त मूल गायत्री द्वारा ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, जानु, उरु तथा पाद में व्यापक न्यास मूलमन्त्र से करे। सर्वान्त में 'तत्पुरुषाय', तदनन्तर 'विद्महे' तदनन्तर 'वक्रतुण्डाय', तदनन्तर 'धीमहि' कहकर "तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्" कहे। यह मूलगायत्री है। यह सर्वसिद्धिप्रदा है। इस प्रकार न्यासविधि करने के उपरान्त हृदयकमल पर देवता का ध्यान करे।।६-१६।।

उद्यन्मार्तण्डसदृशं लोकस्थित्यन्तकारणम्। सशक्तिकं भूषिताङ्गं दन्तचक्राद्युदायुधम्॥१७॥
एवं ध्यात्वा चतुश्चत्वारिंशत्त्साहस्रसंयुतम्। चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं अष्टद्रव्यैर्दशांशतः॥१८॥
जुहुयाद्विधिवन्मन्त्री संस्कृते हव्यवाहने। इक्षवः सक्तवो मोचाफलानि चिपिटास्तिलाः॥१९॥
मोदका नारिकेलानि लाजा द्रव्याष्टकं स्मृतम्। पीठमाधारशक्तयादिपरतत्वान्तमर्चयेत्॥२०॥
षट्कोणान्तस्त्रिकोणं च बहिरष्टदलं लिखेत्।
भूपुरं तद्बहिः कृत्वा गणेशं तत्र पूजयेत्॥२१॥

वे प्रातःकालीन सूर्य के समान तथा लोकों की स्थिति के तथा अन्त के कारण हैं। वे शक्तियुक्त हैं। वे भूषणों से भूषित अंगों वाले तथा दन्त एवं चक्रायुधधारी हैं। इस प्रकार गणपति का ध्यान करके इनका ऊपर कहा गया मन्त्र चार लाख चौवालीस हजार जप करे। मन्त्र संख्या से १/१० संख्यक होम आठ द्रव्यों द्वारा करना चाहिये। वे द्रव्य हैं—ईंख, सत्तू, केला, चिवड़ा, तिल, मोदक, नारिकेल तथा धान का लावा। होम के उपरान्त आधारशक्ति से परमत्व पर्यन्त पीठार्चन करना चाहिये। षट्कोण के अन्तर्गत् त्रिकोण तदनन्तर अष्टदल कमल अंकित करके उसके बहिर्देश में भूपुर बनाकर गणपति पूजन करना चाहिये।।१७-२१।।

तीव्राख्या ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी।
उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी॥२२॥
सर्वादिशक्तिकमलासनाय हृदयान्तिकः। पीठमन्त्रोऽयमेतेन दद्यादासनमुत्तमम्॥२३॥

पीठ मन्त्र है—"तीव्राख्या ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी, उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी" (तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपा, उग्रा, तेजवती, सत्या तथा विघ्ननाशिनी शक्तियां ९ हैं।) तदनन्तर कहे "सर्वादिशक्ति कमलासनायनमः।" इस मन्त्र द्वारा उत्तम आसन प्रदान करे।।२२-२३।।

तत्रावाह्य गणाधीशं मध्ये सम्पूज्य यत्नतः। त्रिकोणबाह्ये पूर्वादिचतुर्दिक्ष्वर्चयेत्क्रमात्॥२४॥

श्रियं श्रियः पतिं चैव गौरीं गौरीपतिं तथा। रतिं रतिपतिं पश्चान्महीपूर्वं च पोत्रिणम्॥२५॥
क्रमाद्बिल्ववटाश्वत्थप्रियङ्गूनामधोऽर्चयेत्। रमा पद्मद्वयकरा शङ्खचक्रधरो हरिः॥२६॥
गौरीपाशाङ्कुशधरा टङ्कशूलधरो हरः। रतिः पद्मकरा पुष्पबाणचापधरः स्मरः॥२७॥
शूकव्रीह्यग्रहस्ता भूः पोत्री चक्रगदाधरः। देवाग्रे पूजयेल्लक्ष्मीसहितं तु विनायकम्॥२८॥

वहां गणाधीश का आवाहन करके मध्य में उनका पूजन यत्नतः करे। त्रिकोण के बाहर पूर्वादि चतुर्दिक् क्रमेण श्री श्रीपति, गौरी-गौरीपति, रति-रतिपति, पृथिवी तथा वराहदेव की पूजा करे। उसके अधः में बिल्व, वट, अश्वत्थ, प्रियंगु वृक्ष पूजन करे। लक्ष्मी का ध्यान (श्री) उभय हस्त में कमलधारिणी रूपेण करे। विष्णु शंख, चक्रधारी (श्रीपति) हैं। गौरी के हाथों में पाशांकुश है। गौरीपति (शंकर) ने टंक-त्रिशूल धारण किया है। रति कमलधारिणी हैं। कामदेव ने (रतिपति) ने पुष्पबाण तथा धनुष धारण किया है। पृथिवी के हाथ में धान की बाली है। वराहदेव के हाथ में चक्र-गदा है। देवगण के अग्रभाग में लक्ष्मी-गणेश पूजन करे।।२४-२८।।

पूजयेत्षट्सु कोणेषु ह्यामोदाद्यान्प्रियायुतान्। आमोदं सिद्धिसंयुक्तमग्रतः परिपूजयेत्॥२९॥
प्रमोदं चाग्निकोणे तु समृद्धिसहितं यजेत्। ईशकोणे यजेत्कीर्तिसंयुतं सुमुखं तथा॥३०॥
वारुणे मदनावत्या संयुतं दुर्मुखं यजेत्। यजेन्नैर्ऋत्यकोणे तु विघ्नं मदद्रवायुतम्॥३१॥
द्राविण्या विघ्नकर्तारं वायुकोणे समर्चयेत्। पाशाङ्कुशाभयकरांस्तरुणार्कसमप्रभान्॥३२॥
कपोलविगलद्दानगन्धलुब्धालिशोभितान्। षट्कोणोभयपार्श्वे तु शङ्खपद्मनिभौ क्रमात्॥३३॥
सहितौ निजशक्तिभ्यां ध्यात्वा पूर्ववदर्चयेत्। केशरेषु षडङ्गानि पत्रेष्वष्टौ तु मातरः॥३४॥

अब छः कोणान्तर्गत् प्रिया तथा आमोद की पूजा करनी होगी। सिद्धि सहित आमोद की पूजा करे। अग्निकोण में समृद्धि के साथ प्रमोद की, ईशान में कीर्त्ति सहित सुमुख की, वारुणकोण में मदनावती सहित दुर्मुख की, नैर्ऋत्कोण में मदद्रवा सहित विघ्न की, वायुकोण में द्राविणी सहित विघ्नकर्त्ता की अर्चना करे। पूजाकाल में इनके रूप का यह ध्यान करे कि इनके हाथों में पाश, अंकुश तथा अभय मुद्रा है। ये मध्याह्नकालीन सूर्य समप्रभ हैं। इनके (कपोल) गण्डस्थल से मद विगलित होकर बह रहा है, जिससे लुब्ध भ्रमर वहां शोभायमान हैं। षट्कोण के दोनों पार्श्व में क्रम से शंख पद्मनिधि का ध्यान करके उनकी अर्चना पूर्व कथित विधि से करे। केशर पर षडङ्ग की, पत्रों पर अष्ट मातृका की।।२९-३४।।

इन्द्राद्यानपि वज्राादीन्पूजयेद्धरणीगृहे। एवमाराध्य विघ्नेशं साधयेत्स्वमनोरथान्॥३५॥
चतुश्चत्वारिंशताढ्यं चतुःशतमतन्द्रितः। तर्पयेदम्बुभिः शुद्धैर्गजास्यं दिनशः सुधीः॥३६॥

तथा इन्द्रादि देवताओं की, उनके वज्रादि आयुधों की पूजा भूपुर में करनी चाहिये। इस प्रकार विघ्नेश की पूजा द्वारा साधक अपने मनोरथ सिद्ध करे। सुधी साधक आलस्ययुक्त होकर ४४४ बार शुद्ध जल द्वारा गणपति तर्पण करे।।३५-३६।।

पद्मस्तु वशयेद्भूपांस्तत्पत्नीश्चोत्पलैस्तथा। कुमुदैर्मन्त्रिणोऽश्वत्थसमिद्भिर्वाडवाञ्शुभैः॥३७॥
उदुम्बरोत्थैर्नृपतीन्वैश्यान्प्लक्षसमुद्भवैः। वटोद्भवैः समिद्भिश्च वशयेदतिमान्बुधः॥३८॥

जब गणेश मन्त्र सुसिद्ध हो जाये, तब मनुष्य कमल पुष्पों के हवन द्वारा राजा, नीलकमल से हवन

करके राजपत्नीगण, कुमुद द्वारा हवन से राजमंत्रीगण, पावन पीपल समिध् के हवन से ब्राह्मणगण को, गूलर काष्ठ से हवन द्वारा क्षत्रियों को, पाकड़ काष्ठ से हवन द्वारा वैश्यों को वट काष्ठ से हवन द्वारा शूद्रों को वशीभूत कर सकता है।।३७-३८।।

आज्येन श्रियमाप्नोति स्वर्णाप्तिर्मधुना भवेत्।
गोदुग्धेन गवां लाभो दध्ना सर्वसमृद्धिमान्॥३९॥

अन्नाप्तिरन्नहोमेन समिद्भिर्वेतसां जलम्। वासांसि लभते हुत्वा कुसुम्भकुसुमैः शुभैः॥४०॥

व्यक्ति घृताहुति द्वारा लक्ष्मी मधु आहुति से स्वर्ग, गोदुग्धाहुति से गौ, दधि आहुति से सर्वसमृद्धि लाभ कर लेता है। अन्न से हवन द्वारा अन्न, बेत से समिध् से हवन द्वारा जल, कुसुम पुष्प से हवन द्वारा उत्तम वस्त्रलाभ होगा।।३९-४०।।

अथ सर्वेष्टदं वक्ष्ये चतुरावृत्तितर्पणम्। मूलेनादौ चतुर्वारं प्रत्येकं च प्रतर्पयेत्॥४१॥
पूर्वमन्त्राक्षरैर्मन्त्रैः स्वाहान्तैश्च चतुश्चतुः। मूलमन्त्रैश्चतुर्वारपूर्वकं सम्प्रतर्प्य च॥४२॥
मिथुनादींस्ततः पश्चात्पूर्ववत्सम्प्रतर्पयेत्। देवेन सहितां शक्तिं शक्त्या च सहितं तु तम्॥४३॥

एवं च षड्विंशतिधा मिथुनानि भवन्ति हि।
स्वनामाद्यर्णबीजानि तानि सन्तर्पयेत्क्रमात्॥४४॥

अब मैं सर्वकामप्रदायक चतुर्गुण तर्पण कहता हूं। सर्वाग्र में मूलमन्त्र से प्रत्येक देवता का ४-४ बार तर्पण करके पूर्व मन्त्राक्षरों के बराबर मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाकर ४-४ बार होम करे। तत्पश्चात् मूलमंत्र से चार-चार बार तर्पणोपरान्त स्त्री-पुरुष जोड़े हेतु तर्पण करे। देवता के साथ उनकी शक्ति का तर्पण ही मिथुन तर्पण है। इस प्रकार २६ मिथुन होते हैं। उनके नाम के प्रथमाक्षर से युक्त बीजाक्षर का उच्चारण करके उनका क्रमपूर्वक तर्पण करे।।४१-४४।।

भवेत्सम्भूय सचतुश्चत्वारिंशच्चतुःशतम्। एवं सन्तप्य तत्पश्चात्पूर्ववत्सोपचारकैः॥४५॥
सर्वाभीष्टं च सम्प्रार्थ्य प्रणम्योद्वासयेत्सुधीः। भाद्रकृष्णचतुर्थ्यादिप्रतिमासमतन्द्रितः॥४६॥

एवं विध ४४४ बार पूर्वकथित उपचारों से तर्पण सम्पन्न करने के उपरान्त सर्वकामनार्थ प्रार्थना करे। तदनन्तर प्रणामोपरान्त विद्वान् पूजाकर्त्ता विसर्जन करे। अतन्द्रित होकर भाद्रकृष्ण चतुर्थी से प्रारंभ करके यह व्रत करे।।४५-४६।।

आरभ्यार्कोदयं मन्त्री यावच्चन्द्रोदयो भवेत्। तावन्नोपविशेद्भूमौ जितवाक्स्थिरमानसः॥४७॥
ततश्चन्द्रोदये मन्त्री पूजयेद्गणनायकम्। पूर्वोक्तविधिना सम्यङ्नानापुष्पोपहारकैः॥४८॥
एकविंशतिसंख्याकान्मोदकांश्च निवेदयेत्। तदग्रे प्रजपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्॥४९॥

वह सूर्योदय से प्रारंभ करके चन्द्रोदय पर्यन्त भूमि पर आसन ग्रहण न करे। वाणी तथा मन को वश में रखे। जब चन्द्रमा उदित हो जाये, तब वह पूर्व में कथित विधि द्वारा नाना पुष्प एवं उपहारों के द्वारा गणनायक की अर्चना-पूजन करे। उनको २१ मोदक अर्पित करे। उनके समक्ष १००८ मन्त्र जप करना चाहिये।।४७-४९।।

ततः कर्पूरकाश्मीररक्तपुष्पैः सचन्दनैः। अर्घ्यं दद्यात्तु मूलान्ते ङेंतेगणपतिं ततः॥५०॥
इदमर्घ्यं कल्पयामि हृदन्तोऽर्घ्यमनुर्मतः।
स्तुत्वा नत्वा विसृज्याथ यजेच्चन्द्रमसं पुनः॥५१॥
अर्घ्यं दद्याच्चतुर्वारं पूजयित्वा गुरुं ततः। निवेदितेषु विप्राय दद्यादर्धांश्च मोदकान्॥५२॥
स्वयमर्द्धान्प्रभुं जीत ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। एवं व्रतं यः कुरुते सम्यक्संवत्सरावधि॥५३॥
पुत्रान्पौत्रान्सुखं वित्तमारोग्यं लभते नरः। सूर्योदयादशक्तश्चेदस्तमारभ्य मन्त्रवित्॥५४॥
चन्द्रोदयान्तं पूर्वोक्तविधिना व्रतमाचरेत्।
एवं कृतेऽपि पूर्वोक्तं फलमाप्नोति निश्चितम्॥५५॥

अब मन्त्र गणपतये इदमर्घ्यं, इदं गणपतये नमः द्वारा कर्पूर, केसर, रक्तवर्ण पुष्प तथा चन्दनयुक्त अर्घ्य द्वारा गुरुपूजा करनी चाहिये और ब्राह्मण को साढ़े दस मोदक देकर बाकी साढ़े दस मोदक स्वयं (सपरिवार) भक्षण करे। वह ब्रह्मचारी रहे तथा इन्द्रियों पर संयम रखे। जो एक वर्ष तक यह व्रताचरण करता है, वह सुपुत्र-पौत्र सुख-धन एवं आरोग्य प्राप्त करता है। यदि साधक सूर्योदय काल से व्रत न कर सके तथा अशक्त हो, तब वह सूर्यास्त से लगाकर चन्द्रोदय पर्यन्त ही सविधि व्रतचरण कर सकता है। उसे इतना करने से ही पूर्वोक्त पूर्णफल लाभ होगा। यह निश्चित है।।५०-५५।।

गणेशप्रतिमां दन्तिदन्तेन कपिनापि वा। गजभग्नेन निम्बेन सितार्केणाथवा पुनः॥५६॥
कृत्वा तस्यां समावाह्य प्राणस्थापनपूर्वकम्।
अभ्यर्च्य विधिवन्मन्त्री राहुग्रस्ते निशाकरे॥५७॥
स्पृष्ट्वा चैव निराहारस्तां शिखायां समुद्वहन्। द्यूते विवादे समरे व्यवहारे जयं लभेत्॥५८॥
बीजं वराहो बिन्द्वाढ्यौ मन्विन्द्वान्नौ कलौ ततः।
स्मृतिर्मांसेन्दुमन्वाग्रा कर्णोच्छिष्टगणे वदेत्॥५९॥
बकः सदीर्घपवनो महायक्षाय यं बलिः। बलिमन्त्रोऽयमाख्यातो न चेद्वर्णोऽखिलेष्टदः॥६०॥
प्रणवो भुवनेशानीस्वबीजान्ते नवार्णकः। हस्तीति च पिशाचीति लिखेच्चैवाग्निसुन्दरी॥६१॥
नवार्णोऽयं समुद्दिष्टो भजतां सर्वसिद्धिदः। पदैः सर्वेण मन्त्रेण पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत्॥६२॥

गणेश की प्रतिमा को हाथी दांत, वानरदन्त, हाथी द्वारा भग्न किया गया निम्ब काष्ठ किंवा श्वेतार्क काष्ठ से बनाये। चन्द्रग्रहण काल में उसमें देवावाहन तथा प्राणप्रतिष्ठा करने के उपरान्त उसकी पूजा करनी चाहिये। तब निराहार रहकर वह प्रतिमा शिखा में बद्ध करे। वह व्यक्ति द्यूत, विवाद, युद्ध, मुकदमा में विजयी होता है। "बीज, वराह, बिन्द्वाड्यौ मन्विन्द्वान्नौ कलौ ततः। स्मृतिर्मांसेन्दुमन्वाग्रा कर्णोच्छिष्टगणे वदेत्। बकः सदीर्घपवनो महायक्षाय यं बलिः।।" यह बलि मन्त्र है। यह सर्वकाम प्रदायक है। भुवनेशानी के बीज में प्रणव जोड़कर नर्वाण मन्त्र बनाया जाता है। "ॐ हस्तिने पिशाच्यै स्वाहा" भी नवार्ण मन्त्र है। यह साधकों हेतु सर्वसिद्धिप्रद है। हे नारद! पदों द्वारा सम्पूर्ण मन्त्र से पंचांग की कल्पना की जाये।।५६-६२।।

अन्यत्सर्वं समानं स्यात्पूर्वमन्त्रेण नारद। अथाभिधास्ये विधिवद्वक्रतुण्डमनुत्तमम्॥६३॥
तोयं विधिर्वह्नियुक्तकर्णेद्वाढ्यो हरिस्तथा। सदीर्घो दारको वायुर्वर्मान्तोऽयं रसार्णकः॥६४॥

यहां सभी कार्य पूर्वमन्त्रवत् ही होगा। अब मैं अति उत्तम वक्रतुण्ड मन्त्र का वर्णन करूंगा। तोयं विधि वह्नियुक्त कर्णेद्वाढयो हरिस्तथा। सदीर्घो दारको वायुर्वर्मान्तोऽयं रसात्मक।। यह मन्त्र है (परन्तु इसका मन्त्रोद्धार नहीं हुआ है। विज्ञजन इसका मन्त्रोद्धार करें)।।६३-६४।।

भार्गवोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्देवो गणाधिपः।
वक्रतुण्डाभिधो बीजं वं शक्तिः कवचं पुनः॥६५॥
तारहृन्मध्यगैर्मन्त्रवर्णैश्चन्द्रविभूषितैः। कृत्वा षडङ्गमन्त्रार्णान्भ्रूमध्ये च गले हृदि॥६६॥
नाभौ लिङ्गे पदे न्यस्याखिलेन व्यापकं चरेत्।
उद्यदर्कद्युतिं हस्तैः पाशाङ्कुशवराभयान्॥६७॥
दधतं गजवक्त्रं च रक्तभूषाम्बरं भजेत्। ध्यात्वैवं प्रजपेत्तर्कलक्षं द्रव्यैर्दशांशतः॥६८॥
अष्टभिर्जुहुयात्पीठे तीव्रादिसहितेऽर्चयेत्।
मूर्तिं मूर्तेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत्॥६९॥

ओम तथा नमः के मध्यस्थ अनुस्वार युक्त मन्त्र वर्ण से षडङ्ग मन्त्र के अक्षर को जोड़े। तब भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिंग, चरण में न्यास करके सम्पूर्ण मन्त्र द्वारा व्यापक न्यास करना चाहिये। अब उदयकालीन द्युति वाले हाथों में पाश, अंकुश, वर, अभय, मुद्राधारी हस्तिमुख, रक्ताभूषण एवं रक्तवस्त्रधारी, गणेश का ध्यान करे। यह ध्यान करके छः लाख मन्त्र का जप करना चाहिये तथा उसके १/१० का होम अष्ट द्रव्यों से करे। तब तीव्रा आदि शक्ति के साथ पीठ पर अर्चना करे। अब गणेशमूर्त्ति की रचना करके गणेश का उसमें आवाहन एवं पूजन करना चाहिये।।६५-६९।।

षट्कोणेषु षडङ्गानि पत्रेष्वष्टौ तु शक्तयः।
यजेद्विद्यां विधात्रीं च भोगदां विप्रघातिनीम्॥७०॥
निधिप्रदीपां पापघ्नीं पुण्यां पश्चाच्छशिप्रभाम्। दलाग्रेषु वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रमहोदरौ॥७१॥
गजास्यलम्बोदरकौ विकटौ विघ्नराट् तथा।
धूम्रवर्णस्ततो बाह्ये लोकेशान्हेतिसंयुतान्॥७२॥
एवमावरणैरिष्ट्वा पञ्चभिर्गणनायकम्। साधयेदखिलानकामान्वक्रतुण्डप्रसादतः॥७३॥

षट्कोण में षडङ्ग पूजनोपरान्त वहां पत्रों पर अष्टशक्ति की पूजा करे। वे हैं—विद्या, विधात्री, भोगदा, विप्रघातिनी, निधिप्रदीपा, पापघ्नी, पुण्या, शशिप्रभा, पत्राग्र में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजमुख, लम्बोदर, विकट, विघ्नराट् धूम्रवर्ण की पूजा करे। वाह्य भाग में आधुध युक्त लोकपाल की पूजा करे। पंचावरण से गणपति की आराधना करे। इससे व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं को वक्रतुण्ड की कृपा से प्राप्त कर लेता है।।७०-७३।।

लब्ध्वा गुरुमुखान्मन्त्रं दीक्षासंस्कारपूर्वकम्।
ब्रह्मचारी हविष्याशी सत्यवाक् च जितेन्द्रियः।।७४।।

जपेदर्कसहस्त्रं तु षण्मासं होमसंयुतम्। दारिद्यं तु पराभूय जायते धनदोपमः।।७५।।
चतुर्थ्यादि चतुर्थ्यंतं जपेदयुतमादरात्। अष्टोत्तरशतं नित्यं हुत्वा प्राग्वत्फलं लभेत्।।७६।।
पक्षयोरुभयोर्मन्त्रीं चतुर्थ्यां जुहुयाच्छतम्। अपूपैर्वत्सरे स स्यात्समृद्धेः परमं पदम्।।७७।।
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु देवमिष्ट्वा विधानतः। हविषा पात्यसान्नेन नैवेद्यं परिकल्पयेत्।।७८।।
ततो गुरुं समभ्यर्च्य भोजयेद्विधिवत्सुधीः। निवेदितेन जुहुयात्सहस्त्रं विधिवद्वसौ।।७९।।

एवं संवत्सरं कृत्वा महतीं श्रियमाप्नुयात्।
अथान्यत्साधनं वक्ष्ये लोकानां हितकाम्यया।।८०।।

दीक्षा संस्कार द्वारा गुरुमुख लब्ध मन्त्र पाकर व्यक्ति ब्रह्मचारी, इन्द्रिय निग्रहयुक्त, हविष्यभोजी, सत्यवक्ता रहते हुये छः मास तक होमयुक्त १२००० जप करे। वह कुबेरवत् धनी हो जाता है। मनुष्य एक पक्ष की चतुर्थी से लगाकर अन्य पक्ष की चतुर्थी पर्यन्त (दो पक्ष) नित्य १०८ गणपति मन्त्र जप करके (दशांश) हवन करे। उसे पूर्वफल (१२००० जप वाला) प्राप्त होगा। जो उभय पक्षीय चतुर्थी के दिन एक वर्ष तक सौ बार इस मन्त्र से पूआ से पूजा करता है, उसे परम समृद्धि की प्राप्ति हो जाती है। जब मंगल के दिन चतुर्थी तिथि हो, तब वह व्यक्ति सविधि गणपति पूजन करे तथा घृत-खीर का नैवेद्य अर्पित करे। अब वह गुरु की अर्चना करके उनको सविधि भोजन कराये। इसके पश्चात् वह उस नैवेद्य सामग्री खीर-घृत से १००० होम सविधि करे। एक वर्ष पर्यन्त यह करने वाला महती लक्ष्मी का लाभ करता है। अब मैं लोक हितार्थ अन्य साधन कहता हूं।।७४-८०।।

इष्ट्वा गणेशं पृथुकैः पायसापूपमोदकैः। नानाफलैस्ततोमन्त्री हरिद्रामथ सैन्धवम्।।८१।।

वचां निष्कार्द्धभागं च तदर्द्धं वा मनुं जपेत।
विशोध्य चूर्णं प्रसृतौ गवां मूत्रे विनिक्षिपेत्।।८२।।
सहस्त्रकृत्वो मनुना मन्त्रयित्वा प्रयत्नतः।
स्नातामृतुदिने शुद्धां शुक्लाम्बरधरां शुभाम्।।८३।।

देवस्य पुरतः स्थाप्य पाययेदौषधं सुधीः। सर्वलक्षणसम्पन्नं वन्ध्यापि लभते सुतम्।।८४।।

चिवड़ा, पायस, अपूप, मोदक, नानाफल से गणपति अर्चना के उपरान्त मन्त्र जपे। हल्दी, सेंधानमक, अर्धनिष्क (एक माशा) वचचूर्ण को गोमूत्र में छोड़े। उसे एक सहस्त्र बार मन्त्र से अभिमंत्रित करके गणपति के समक्ष अर्पित करे। अब सुधी व्यक्ति यह औषधि ऋतुस्नात पत्नी को पान कराये। इससे वन्ध्या नारी भी सर्वलक्षण सम्पन्न पुत्रलाभ करती है।।८१-८४।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। गोचर्ममात्रां धरणीमुपलिप्य प्रयत्नतः।।८५।।
विकीर्य धान्यप्रकरैस्तत्र संस्थापयेद्घटम्। शुद्धोदकेन सम्पूर्य तस्योपरि निधापयेत्।।८६।।

कपिलाज्येन सम्पूर्णं शरावं नूतनं शुभम्। षडष्टाक्षरमन्त्राभ्यां दीपमारोपयेच्छुभम्।।८७।।
दीपे देवं समावाह्य गन्धुपष्पादिभिर्यजेत्। स्नातां कुमारीमथवा कुमारं पूजयेत्सुधीः।।८८।।

अब मैं अन्य परम रहस्यमय अद्‌भुद् कार्य का वर्णन करता हूं। एक गोचर्म माप की भूमि स्वेच्छापूर्वक लिप्त करे। वहां धान विकिरण करके उस पर घट स्थापित करे। घट को शुद्ध जलयुक्त करके वहां स्थापित करे। एक नव मिट्टी के पात्र में गोघृत रखकर वहां दीप प्रज्वलित करे। षडक्षर तथा अष्टक्षर मन्त्र पढ़ते हुये उस दीप को घट पर रखना होगा। दीपक में ही गणेश का आवाहन करे तथा गन्ध-पुष्पादि से उसकी पूजा करे। तब वह सुधी व्यक्ति स्नात कुमारी किंवा कुमार की पूजा करे।।८५-८८।।

दीपस्य पुरतः स्थाप्य ध्यात्वा देवं जपेन्मनुम्।
प्रदीपे स्थापिते पश्येद्द्विजरूपं गणेश्वरम्।।८९।।
पृष्टस्ततः सम्पदि वा नष्टं चैवाप्यनागतम्। सकलं प्रवदेदेवं कुमारी वा कुमारकः।।९०।।
षडक्षरो हृदन्तश्चेद्भवेदष्टाक्षरो मनुः। अन्येऽपि मन्त्रा देवर्षे सन्ति तन्त्रे गणेशितुः।।९१।।

तदनन्तर उनके समक्ष दीप रखकर गणपति देव का ध्यान एवं उनका मन्त्र जप करे। प्रदीप स्थापना करने के पश्चात् गणेश्वर की भावना ब्राह्मणरूप से करनी चाहिये। अब उस कुमार किंवा कुमारी से किसी के सम्बन्ध में जो कुछ प्रश्न किया जायेगा कि विलम्ब से किंवा शीघ्र प्राप्ति होगी अथवा व्यक्ति शीघ्र आयेगा, नहीं आयेगा अथवा नष्ट हो गया—उससे सब उत्तर मिलेगा। जब षडक्षर मन्त्र से 'नमः' का योग करते हैं, तब वही अष्टाक्षर हो जाता है। हे देवर्षि! गणेश के अनेक अन्य मन्त्र भी विद्यमान हैं।।८९-९१।।

किंत्वत्र यन्न साध्यं स्यात्त्रिषु लोकेषु साधकैः।
अष्टविंशरसार्णाभ्यां तत्र पश्येदपि क्वचित्।।९२।।
एतद्गणेशमन्त्राणां विधानं ते मयोदितम्।
शठेभ्यः परशिष्येभ्यो वञ्चकेभ्योऽपि मा वद।।९३।।
एवं यो भजते देवं गणेशं सर्वसिद्धिदम्। प्राप्येह सकलान्भोगानन्ते मुक्तिपदं व्रजेत्।।९४।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे गणेशमन्त्रविधाननिरूपणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

त्रैलोक्य में २८ अथवा ६ अक्षर के मन्त्र की ओर कभी न देखे, क्योंकि उनकी साधना संभव ही नहीं है। मैंने एवंविध गणेशमन्त्र का विधान आपसे कह दिया। यह अन्य दुष्ट प्रवृत्ति वालों, अन्य गुरु के शिष्यों, वंचकों से कभी न कहे। जो सर्वसिद्धिदाता देवगणपति का भजन करता है, वह इहलोक में समस्त भोगों को प्राप्त करके अन्त में मुक्त हो जाता है।।९२-९४।।

।।६८वां अध्याय समाप्त।।

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मन्त्रविधान निरूपण

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये त्रयीमूर्तेविधानं त्वब्जिनीपतेः। मन्त्राणां यत्समाराध्य सर्वेष्टं प्राप्नुयाद्भुवि॥१॥
तारो रेचिकया युक्तो मेधानेत्रयुता रतिः। ससर्गा वामकर्णाढ्यो भृगुर्वढ्यासनो मरुत्॥२॥
शेषोदित्य इति प्रोक्तो वस्वर्णो भुक्तिमुक्तिदः।
देवभागो मुनिश्छन्दो गायत्री देवता रविः॥३॥
माया बीजं रमा शक्तिदृष्टादृष्टे नियोगकः। सत्याय हृदयं पश्चाद्ब्रह्मणे शिर ईरितम्॥४॥
विष्णवे तु शिखावर्म रुद्राय परिकीर्तितम्। नेत्रं स्यादग्नये पश्चात्शर्वायास्त्रमुदाहृतम्॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं त्रयीमूर्त्ति अब्जिनीपति सूर्य की अर्चना विधि का वर्णन करूंगा, जिनके मन्त्रों की आराधना से व्यक्ति धरती पर सर्वाभीष्ट लाभ करता है। सूर्य का मन्त्र है—"तारो रेचिकया युक्तो मेधानेत्रयुता रति" से लेकर शेषादित्य" पर्यन्त है। (यह मन्त्र संकेत है। अज्ञानतावश मन्त्रोद्धार नहीं किया गया है। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। इस मन्त्र के मुनि हैं देवभाग, छन्दः है गायत्री, देवता हैं सूर्य, माया बीज है ह्रीं, रमा (श्री) शक्ति है। दृष्ट-अदृष्ट फल हेतु इसका प्रयोग होता है। यहां मन्त्र होगा ह्रीं श्रीं सत्याय नमः। तदनन्तर ब्रह्मणे स्वाहा, विष्णवे वषट्, रुद्राय हुं, अग्नये वौषट्, सर्वाय फट्॥१-५॥

नेत्रो ज्वाला मनो हुं फट् स्वाहान्ता मनवो गणाः।
पुनः षडर्णैर्ह्रीं लक्ष्म्याः कृत्वान्तःस्थैः षडङ्गकम्॥६॥
शिष्टारौजठरे पृष्ठे तयोर्ङेताख्यया न्येसत्। आदित्यं च रविं पश्चाद्भानुं भास्करमेव च॥७॥
सूर्यं च मूर्ध्नि वदने हृदि गुह्ये च पादयोः।
सद्यादिपञ्च ह्रस्वाद्यान् न्यसेन्ङे हृदयोऽन्तिमान्॥८॥
ह्रीं रमामध्यगामष्टौ वर्णास्तारादिकान्न्यसेत्। मूर्द्धास्यकण्ठहृत्कुक्षिनाभिलिङ्गगुदेषु च॥९॥
सचन्द्रस्वरपूर्वं तु ङेतं शीतांशुमण्डलम्। मूर्द्धादिकण्ठपर्यन्तं न्यसेच्चान्द्रिमनुस्मरन्॥१०॥

तदनन्तर नेत्र, ज्वाला, मनु तथा हुं फट् स्वाहा का योग करके मन्त्र बनता है (यहां भी मन्त्र संकेत है। मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। पुनः छः अन्तस्थ वर्णों में ह्रीं-श्रीं का योग करके षडङ्ग कहे। मन्त्र संकेत शिष्ट तथा अरि में नमः का योग करके उदर तथा पृष्ठ पर न्यास करे (यहां भी मन्त्र संकेत दिया जा रहा है। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। तदनन्तर आदित्य, रवि, भानु, भास्कर तथा सूर्य का न्यास करे अर्थात् आदित्य का मस्तक पर, रवि का मुख पर, भानु का हृदय पर, भास्कर का गुह्य पर तथा चरणद्वय पर सूर्य का न्यास करे। जहां सद्य (ओ) आदि पंचवर्ण के पूर्व में १ ह्रस्ववर्ण हो, अन्तः में नमः लगा हो किंवा श्रीं के पश्चात् ह्रीं हो, तब इन आठ वर्ण का न्यास मस्तक, मुख, कण्ठ, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिंग, गुदा पर करे। चन्द्र स्वर (अनुस्वार) पूर्वक चतुर्थी विभक्ति न्यास मूर्द्धा से कण्ठ तक करके चन्द्रमन्त्र को जपे॥६-१०॥

स्पर्शान्सेन्दून्समुच्चार्य ङेन्तं भास्करमण्डलम्।
न्यसेत्कण्ठादिनाभ्यन्तं ध्यायन्प्रद्योतनं हृदि॥११॥
यादीन्सचन्द्रानुच्चार्य ङेन्तं च वह्निमण्डलम्। नाभ्यादिपादपर्यन्तं न्यसेद्वह्निमनुस्मरन्॥१२॥

अनुस्वार समन्वित स्पर्श वर्ण का उच्चारण करके अन्त में चतुर्थी विभक्तियुक्त सूर्यमण्डल का कण्ठ से लगाकर नाभि पर्यन्त न्यास करे। तब हृदय में सूर्यदेव का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर आदि में 'य' से युक्त अनुस्वार सहित वर्णोच्चार करके अन्त में चतुर्थी विभक्ति समन्वित अग्निमण्डल का (अग्निमण्डलाय) कहकर नाभि से चरणद्वय तक न्यास करे। तब अग्नि के मन्त्र को जपे।।११-१२।।

प्रोक्तोऽयं मण्डलन्यासो महातेजोविधायकः।
आदिठान्तार्णपूर्वं ङेनमोन्तं सोममण्डलम्॥१३॥
मूर्द्धादिहृदयान्तं तु विन्यसेत्साधकोत्तमः। डकारादिक्षकारान्तवर्णाद्यं वह्निमण्डलम्॥१४॥
ङेन्तं हृदादिपादान्तं विन्यसेत्ससुमाहितः।
अग्नीषोमात्मको न्यासः कथितः सर्वसिद्धिदः॥१५॥

यह मैंने महातेज विधायक मण्डल-न्यास कह दिया। श्रेष्ठ साधक आदि में ठ तथा अन्त में त वर्ण समन्वित और सर्वान्त में नमः शब्द युक्त सोममंडल का न्यास मस्तक से हृद तक करे। यह भी चतुर्थी विभक्तियुक्त (सोममण्डलाय) होगा। अब साधक ड से क्ष तक के वर्णों का योग करके हृदय से पैर पर्यन्त हृदय से चरण तक चतुर्थी विभक्ति युक्त करके (अग्निमण्डलाय) न्यास करे। अग्नि-चन्द्र मन्त्र न्यास सर्व सिद्धिप्रद है।।१३-१५।।

न्यसेत्सेन्दून्मातृकार्णाञ्जयान्तपुरुषात्मने। नमोन्तेव्यापकं मन्त्री हंसन्यासोऽयमीरितः॥१६॥
अष्टावष्टौ स्वराञ्शेषान्पञ्चपञ्च मितान्पुनः।
उक्तादित्यमुखानेतान्विन्यसेच्च नवग्रहान्॥१७॥
आधारलिङ्गयोर्नाभौ हृदि कण्ठे मुखान्तरे।
भ्रूमध्ये च तथा भाले ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेत्क्रमात्॥१८॥
हंसाख्यमग्नीषोमाख्यं मण्डलत्रयमेव च। पुनर्न्यासत्रयं कुर्यान्मूलेन व्यापकं चरेत्॥१९॥

अनुस्वार युक्त मातृका वर्णों का न्यास करने के उपरान्त "जयान्तपुरुषात्मने नमः" कहकर मन्त्री (साधक) जो व्यापक न्यास करेगा, वही हंस न्यास है। अष्ट स्वरवर्ण तथा बाकी पांच-पांच अन्य वर्णो सहित सूर्यादि नवग्रह आधार स्थान लिंग, नाभि, हृत्, कण्ठ, मुख, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध का क्रमशः न्यास करे। हंस, अग्नि, सोम नामक तीन मण्डल बनाकर पुनः तीन न्यास करना चाहिये। तब मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करे।।१६-१९।।

एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेत्सूर्यं हृदम्बुजे। दानाभयाब्जयुगलं धारयन्तं करै रविम्॥२०॥
कुण्डलाङ्गदकेयूरहारिणं च त्रयीतनुम्। ध्यात्वैवं प्रजपेन्मंत्री वसुलक्षं दशांशतः॥२१॥

रक्ताम्भोजैस्तिलैर्वापि जुहुयाद्विधिवद्वसौ। प्रथमं पीठयजने धर्मादीनां स्थले यजेत्॥२२॥
प्रभूतं विमलं शारं समाराध्यमनन्तरम्। परमादिमुखं मध्ये खबिम्बान्तं प्रपूजयेत्॥२३॥

सोमाग्निमण्डलं पूज्य रविमण्डलमर्चयेत्।
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा॥२४॥
अमोघा विद्युता सर्वतोमुखी पीठशक्तयः।
ह्रस्वत्रयोक्तिजाः क्लीबहीना वह्नीन्दुसंयुताः॥२५॥

इस प्रकार न्यासोपरान्त हृदय कमल में सूर्य का ध्यान करे। वे अपनी भुजाओं में दान एवं अभयमुद्रा तथा दो कमल धारण करते हैं। उनका वेदरूपी देह कुण्डल-अंगद तथा केयूर से शोभित है। इस ध्यान के साथ आठ लाख मन्त्र जप करे। तब ८०००० (अस्सी हजार) होम लाल कमल अथवा तिल से सविधि सम्पन्न करे। सर्वाग्र में पीठस्थल पर, तदनन्तर धर्म आदि के स्थान पर पूजन करके प्रभूत, विमल, शार तथा समाराध्य की पूजा करे। मध्य में परमादिमुख तथा अन्त में खविन्द की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर चन्द्रमण्डल एवं अग्निमण्डल पूजनोपरान्त रविमण्डलार्चन करे। पीठ शक्तिगण हैं दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता सर्वतोमुखी। इनमें तीन ह्रस्व मात्रा तथा 'रं' लगाकर इनको क्लीवत्व रहित करे।।२०-२५।।

स्वरा बीजानि शक्तीनां तदाद्या पूजयेत्तु ताः।
ब्रह्मविष्णुशिवात्मना ते सृष्टिः शेषान्विताप्यसौ॥२६॥

एवं चान्ते योगपीठात्मने हृदयमीरयेत्। ताराद्योऽयं पीठमन्त्रस्त्वनेनासनमादिशेत्॥२७॥

ध्रुवो वियद्विन्दुयुतं खं खखोल्काय हृन्मनुः।
नवार्णाय च मनवे मूर्ति सङ्कल्पयेत्सुधीः॥२८॥
साक्षिणं जगतां तस्यामावाह्य विधिवद्यजेत्।
ततः षडङ्गमाराध्य द्विक्ष्वष्टाङ्गं प्रपूजयेत्॥२९॥

ये शक्तियां ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका हैं। यह सृष्टि शेषान्वित भी हैं। इनके पूजनान्त में 'योगपीठात्मने नमः' कहे। प्रारम्भ में ओंकार लगाये। तब "ॐ योगपीठात्मने नमः" मन्त्र होगा। इस मन्त्र से देवता को आसन निवेदित करते हैं। 'गं हं खं खखोल्काय नमः" यह नवाक्षर मन्त्र है। इस नवार्ण मन्त्र हेतु सुधीजन मूर्त्ति बनाये। ऐसी प्रतिमा में जगत्साक्षी सूर्य का आवाहन करके उसकी सविधि पूजा करे। वहां षडङ्ग आराधन करके दिशाओं में आठ अंगों की पूजा करे।।२६-२९।।

सम्पूज्य मध्ये वादित्यं रविं भानुं च भास्करम्।
सूर्यं दिशासु सद्यादिपञ्च ह्रस्वादिकानिमान्॥३०॥
स्वस्वनामादिवर्णाद्याः शक्तयोऽर्च्या विदिक्षु च।
उषां प्रज्ञां प्रभां सन्ध्यां ततो ब्रह्मादिकान्यजेत्॥३१॥

मध्य में आदित्य, रवि, भानु, भास्कर तथा सूर्य की तथा दिशाओं में (ओ) सद्यः प्रभृति ह्रस्व वर्ण के

साथ इन पंचनाम का पूजन हो। विदिशाओं में इनकी ४ शक्ति की पूजा हो। ये हैं उषा, प्रज्ञा, प्रभा, सन्ध्या। तदनन्तर ब्रह्मादि की पूजा करे।।३०-३१।।

पुरतोऽरुणमभ्यर्च्य सोमं ज्ञं च गुरुं भृगुम्।
दिक्ष्वर्यमादिकानिष्ट्वा भूमिजं च शनैश्चरम्॥३२॥
राहुं केतुं च कोणेषु पूर्ववत्परिपूजयेत्। इन्द्राद्यानपि वज्राद्यान्पूजयेत्पूर्ववत्सुधीः॥३३॥
इत्थं सम्पूज्य विधिवद्भास्करं भक्तवत्सलम्।
समाहितो दिनेशाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने॥३४॥

सामने अरुण, सोम, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र पूजा करके दिशाओं में अर्यमा आदि की पूजा करे। मंगल, शनैश्चर, राहु, केतु का पूजन कोणों में पूर्ववत् कोणों में करे। सुधी साधक इन्द्रादि देवगण की तथा उनके वज्रादि आयुध समूह की भी पूजा पूर्ववत् करे। इस प्रकार से भक्तवत्सल भास्कर की सविधि पूजा करके नित्य समाहित चित्त से दिनेश भास्कर को अर्घ्य देना चाहिये।।३२-३४।।

प्राणानायम्य सद्भूमौ न्यासान्कृत्वा पुरोदितान्।
विधाय मण्डलं भानोः पीठं पूर्ववदर्चयेत्॥३५॥
ध्यात्वार्कं प्रयजेद्दिव्यैर्मानसैरुपचारकैः। पात्रं ताम्रमयं प्रस्थतोयग्राहि सुशोभनम्॥३६॥
निधाय मण्डले रक्तचन्दनादिविनिर्मिते। विलोममातृकामूलमुच्चरन्पूरयेज्जलैः॥३७॥
सूर्यबिम्बविनिर्गच्छत्सुधाम्बुधिविभावितैः। कुङ्कुमं रोचनां राजीं चन्दनं रक्तचन्दनम्॥३८॥
करवीरं जपामालिकुशश्यामाकतण्डुलान्। तिलवेणुयवांश्चैव निक्षिपेत्सलिले शुभे॥३९॥

प्राणायाम के उपरान्त उस सद्भूमि पर पहले कहे गये न्यासों के मण्डल को सविधि बनाकर सूर्यपीठ की अर्चना पूर्ववत् करनी चाहिये। अर्क (सूर्य) का ध्यान करके दिव्य मानस उपचारों से उनकी पूजा करे। एक सुन्दर ताम्रपात्र को उस रक्तचन्दनादि से निर्मित मण्डल पर स्थापित करके विलोम मातृका का मूलमंत्र उच्चारण करते-करते जल से पूर्ण करे। उस जल में यह भावना करनी चाहिये कि वह पात्र सूर्य बिम्ब से विनिर्गत सुधा समुद्र जल से आपूरित हो रहा है। कुंकुम, गोरोचन, सरसों, चन्दन, रक्तचन्दन, कनेर, जवापुष्प, श्यामाक चावल, कुश, तिल, सावां चावल, तिल, वेणु, (?) तथा यव उस शुभ जल में छोड़े।।३५-३९।।

साङ्गं सावरणं तत्रावाह्यार्कं पूर्ववद्यजेत्। गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याद्यैर्विधानतः॥४०॥
प्राणामयामत्रयं कृत्वा कुर्यादङ्गानि पूर्ववत्।
सुधाबीजं चन्दनेन दक्षे करतले लिखेत्॥४१॥
तेनाच्छाद्यार्घ्यपात्रं च जपेन्मनुमनन्यधीः।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या पुनः सम्पूज्य भास्करम्॥४२॥

उसमें अब अंग एवं आवरण देवता सहित सूर्यावाहन करे तथा पहले की ही तरह गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि से सविधि उनकी अर्चना करे। अब प्राणायामत्रय (पूरक, कुंभक, रेचक) सम्पन्न करने के उपरान्त

पूर्व की तरह अंगन्यास करके दाहिने ओर की हथेली पर चन्दन द्वारा सुधाबीज लिखे। (सुधाबीज=वं)। इस हथेली से उस अर्घ्यपात्र को ढाक कर एकाग्रता से १०८ सूर्यमन्त्र का जप करने के उपरान्त पुनः सूर्यपूजन का नियम है।।४०-४२।।

हस्ताभ्यां पात्रमादाय जानुभ्यामवनीं गतः। आमूर्ध्नि पात्रमुद्धृत्याम्बरेण वरणे रवेः॥४३॥

दृष्टिं चाधाय मनसा पूजयित्वा रविं पुनः।
साधकेन स्वकैक्येन मूलमन्त्रं धिया जपन्॥४४॥

आर्घ्यं दद्याद्रविं ध्यायन्रक्तंचन्दनमण्डले। दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं भूयो जपेदष्टोत्तरं शतम्॥४५॥

अब दोनों हाथों में पात्र लेकर धरती पर घुटनों को रख के पात्र को मस्तक पर्यन्त उठाये। नेत्रों के सामने वस्त्र की ओट से सूर्य को देखे। मन ही मन उस समय सूर्य की मानस पूजा करने के उपरान्त साधक सूर्य से ऐक्य भावना करते हुये मन ही मन मूलमन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् सूर्य का ध्यान करते हुये रक्त चन्दन मण्डल पर रवि को अर्घ्य निवेदित करके पुष्पांजलि प्रदान करके १०८ बार पुनः मन्त्र जप करना चाहिये।।४३-४५।।

नित्यं वा तद्दिनेऽप्येवमर्घ्यं दद्याद्विवस्वते।
तेन तुष्टो दिनेशोऽस्मै दद्याद्वित्तं यशः सुखम्॥४६॥

पुत्रान्पौत्रानभीष्टं च यद्यत्सर्वं प्रयच्छति। अर्घ्यदानमिदं प्रोक्तमायुरारोग्यवर्द्धनम्॥४७॥

धनधान्यपशुक्षेमक्षेत्रमित्रकलत्रदम्। तेजोवीर्ययशःकीर्तिविद्याविभवभोगदम्॥४८॥

गायत्र्याराधनासक्तः सन्ध्यावन्दनतत्परः।
एवं मनुं जपन्विप्रो दुःखं नैवाप्नुयात्क्वचित्॥४९॥

विकर्तनाय निर्माल्यमेवं सम्पूज्य दापयेत्। वियद्वह्निमरुत्सद्यान्तार्वीसेन्दुसमन्वितम्॥५०॥

मार्तण्डभैरवाख्यं हि बीजं त्रैलोक्यमोहनम्। बिम्बबीजेन पुटितं सर्वकामफलप्रदम्॥५१॥

इस प्रकार सूर्य को नित्य अर्घ्य देना चाहिये। देवदेव दिनेश इससे प्रसन्न होकर साधक को यश, वित्त तथा सुख देते हैं। पुत्र-पौत्र तथा जो-जो अभीष्ट होता है, वह सब उसे प्रदान कर देते हैं। यह अर्घ्यदान आयु, आरोग्य वर्द्धक कहा गया है। यह धन, धान्य, पशु, क्षेम, क्षेत्र, मित्र, स्त्री, तेज, वीर्य, यश, कीर्त्ति, विद्या तथा वैभव देने वाला है। जो गायत्री आराधना तथा सन्ध्यावन्दन तत्पर है तथा सूर्य मन्त्रजप करता है, वह कदापि दुःख भोगी नहीं होता। एवंविध सूर्य पूजनोपरान्त नैवेद्य भी बांटना चाहिये। आकाश (ह), अग्नि (र), मरुत् (य) आदि में स, अन्त में अनुस्वार युक्त आर्वी यह मार्त्तण्ड भैरव बीजमन्त्र है। (यहां शब्दार्थ मात्र प्रस्तुत है। मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। यह त्रैलोक्य मोहन बीज है। जब इसे बिम्ब बीज से सम्पुटित करते हैं, तब यह सर्वकाम फलप्रद हो जाता है।।४६-५१।।

पूर्ववत्सकलं चान्यदत्र ज्ञेयं मनीषिभिः। भृगुर्जलेन्दुमन्वाढ्यः सोमाय हृदयान्तिमः॥५२॥

षडक्षरो मन्त्रराजो मुनिरस्य भृगुर्मतः। छन्दः पंक्तिस्तु सोमोऽस्य देवता परिकीर्तिता॥५३॥

आद्यं बीजं नमः शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये। षड्दीर्घेण स्वबीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥५४॥

मनीषीगण यहां पूर्ववत् जाने। भृगु (स) जल (व), इन्द्र (अनुस्वार), मनु (औ) युक्त यह "ॐ सोमाय नमः" षडक्षर मन्त्रराज कथित है। इसके ऋषि हैं भृगु, छन्दः है पंक्तिछन्द, देवता हैं सोम, आद्य बीज है, नमः शक्ति है, सर्वकामना लाभार्थ इसका प्रयोग होता है। षड्दीर्घ युक्त इनके बीज से षडङ्गन्यास करे।।५२-५४।।

पूर्णेन्द्वास्यं स्फटिकभं नीलालकलसन्मुखम्।
विभ्राणमिष्टं कुमुदं ध्यायेन्मुक्तास्त्रजं विधुम्।।५५।।

ऋतुलक्षं जपेन्मन्त्रं पायेसन ससर्पिषा। जुहुयात्तद्दशांशेन पीठे सोमान्तपूजिते।।५६।।
मूर्तिमूलेन सङ्कल्प्य पूजयेद्विधिवद्विधुम्। केसरेष्वङ्गपूजा स्यात्पत्रेष्वेताश्च शक्तयः।।५७।।
रोहिणी कृत्तिका चैव रेवती भरणी पुरः। रात्रिरार्द्रा ततो ज्योत्स्ना कला हारसमप्रभा।।५८।।

अब ध्यान कहते हैं। इनका मुख पूर्णचन्द्र के समान, स्फटिक की आभा वाला है। काले घुंघराले केश से वे शोभित हैं। उन्होंने अपना प्रिय कुमुद पुष्प हाथ में धारण किया है। उन्होंने मुक्तामाला धारण किया है। ऐसे सोम का ध्यान करे। इन देव के मन्त्र का छः लाख जप करके साठ हजार होम खीर घृत से चन्द्रपीठ पर करना चाहिये। मूर्त्ति के मूल की भावना करके सविधि इनकी पूजा करे। केसर पर इनके अंग देवता की पूजा करके पत्रों पर रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, भरणी, रात्रि, आर्द्रा, ज्योत्स्ना एवं कला का पूजन करे। ये इनकी शक्ति हैं। उनकी कान्तिप्रभा हार के समान है।।५५-५८।।

सुशुक्लमाल्यवसनामुक्ताहारविभूषिताः। सर्वास्स्तनभराक्रान्ता रचिताञ्जलयः शुभाः।।५९।।

उन शक्तियों ने शुभ्रवर्ण माला तथा वस्त्र धारण किया है। वे मुक्ताहार भूषिता हैं। वे सभी स्तनों के भार से कुछ झुकी हैं। उन्होंने शुभ अंजलि बद्ध किया है।।५९।।

स्वप्रियासक्तमनसो मदविभ्रमन्थराः। समभ्यर्च्याः सरोजाक्ष्यः पूर्णेन्दुसदृशाननाः।।६०।।
दलाग्रेषु समभ्यर्च्यास्त्वष्टौ सूर्यादिका ग्रहाः। आदित्यभूसुतबुधमन्ददेवेज्यराहवः।।६१।।
शुक्रकेतुयुता ह्येते पूज्याःपत्राग्रगाग्रहाः। रक्तारुणश्वेतनीलपीतधूम्रसिताऽसिताः।।६२।।
वामोरुन्यस्ततद्धस्ता दक्षिणेन धृताभयाः। लोकपालांस्तदस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत्सुधीः।।६३।।

उन सबने अपने प्रिय के प्रति मन को आसक्त रखा है। वे मदविभ्रम (मदमत्त) हैं। अतः उनकी गति मन्थर है। वे कमलनयना, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली हैं। इनकी पूजा करके दलाग्र में सूर्यादि अष्टग्रह की पूजा करे। वे ग्रह हैं—सूर्य, मंगल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु, शुक्र, केतु, सूर्य, रक्तवर्ण, मंगल अरुण, बुध श्वेत, शनि नील, बृहस्पति पीत, ,राहु धूसर, शुक्र श्वेत तथा केतु कृष्ण वर्ण हैं। इनका बाम हाथ इनकी बायीं जांघ पर न्यस्त है। इन्होंने दक्षिण हस्त में अभय मुद्रा धारण किया है। तदनन्तर इसके बाहर लोकपालगण की पूजा उनके आयुधों के साथ करे।।६०-६३।।

एवं संसाधितो मन्त्रः प्रयच्छेदिष्टमात्मनः। पौर्णमास्यां जिताहारो दद्यादर्घ्यं विधूदये।।६४।।

मण्डलत्रितयं कुर्यात्प्राक्प्रत्यगायतं भुवि।
पश्चिमे मण्डले स्थित्वा पूजाद्रव्यं च मध्यमे।।६५।।

संस्थाप्य सोममन्यस्मिन्मण्डलेऽब्जसमन्विते। समभ्यर्च्य विधानेन पीठपूजनपूर्वकम्।।६६।।

स्थापयेद्राजतं पात्रं पुरतस्तत्र मन्त्रवित्। सुरभीपयसापूर्य्य तं स्पृशन्प्रजपेन्मनुम्॥६७॥
अष्टोत्तरशतं पश्चाद्विद्यामन्त्रेण मन्त्रवित्। दद्यान्निशाकरायार्घ्यं सर्वाभीष्टार्थसिद्धये॥६८॥

इस प्रकार संसाधित मन्त्र वांछितार्थप्रद हो जाता है। पूर्णिमा को उपवासी रहे तथा चन्द्रोदय काल में चन्द्रार्घ्य प्रदान करे। तीन मण्डल निर्माण करे। पूर्व मण्डल तथा पश्चिम मण्डल कुछ लम्बायमान रहे। अब साधक स्वयं पश्चिममण्डलस्थ होकर वहां पूजा सामग्री स्थापित करे। तृतीय मण्डल में कमलपुष्प रखकर उस पर चन्द्रमा की मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिये। पीठ पूजनोपरान्त सविधि चन्द्र पूजा करके मन्त्रसाधक वहां अपने अग्रभाग में रजत पात्र रखे। उस पात्र में गौ दुग्ध रखकर उसका स्पर्श किये हुये १०८ मन्त्र जप करके विद्यामन्त्र द्वारा चन्द्रमा की तुष्टि हेतु उनको अर्घ्य प्रदान करे।।६४-६८।।

कुर्यादनेन विधिना प्रतिमासमतन्द्रितः। वर्षान्तरेण सर्वेष्टं प्राप्नोति भुवि मानवः॥६९॥

विद्ये विद्यामालिनि स्यादन्ते चन्द्रिणि संवदेत्।
चन्द्रमुखि द्विठान्तोऽयं विद्यामन्त्रं उदाहृतः॥७०॥
एवं कुमुदिनीनाथमन्त्रं यो जपति ध्रुवम्।
धन धान्यं सुतान्पौत्रान्सौभाग्यं लभतेऽचिरात्॥७१॥

साधक प्रतिमास अतन्द्रित स्थिति में (आलस्य अहवेलना रहित स्थिति में) चन्द्रपूजन सम्पन्न करे। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त काल में मनुष्य की इष्ट इच्छा पूर्ण हो जाती है। चन्द्र का विद्यामन्त्र है—"विद्ये विद्यामालिनी चन्द्रिणि चन्द्रमुखि स्वाहा।" इस विधान से जो कुमुदिनी पति चन्द्र का मन्त्र जपता है, निश्चित रूप से वह धन-धान्य-पुत्र-पौत्र-सौभाग्य शीघ्र पा लेता है।।६९-७१।।

अथाङ्गारकमन्त्रं तु वक्ष्ये धनसुतप्रदम्। तारो दीर्घेन्दुयुग्व्योम तदेवेन्दुयुतः पुनः॥७२॥

षान्तः सर्गी च चण्डीशौ क्रमादिन्दुविसर्गिणौ।
षडर्णोऽयं महामन्त्रो मङ्गलस्याखिलेष्टदः॥७३॥

अब मैं धन तथा पुत्रप्रद अंगारक (मंगल) मन्त्र कहता हूं। "तार दीर्घन्दुयुग्व्योम तदेवेन्दुयुतः पुनः, षान्तः सर्गी च चण्डीशौ क्रमादिन्दुविसर्गिणी, षडर्णोऽयं महामन्त्रो" यह मंगल का अभीष्ट मन्त्र है (यहां अज्ञानता के कारण मन्त्रोद्धार नहीं किया जा सका, विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)।।७२-७३।।

विरूपाक्षो मुनिश्छन्दोगायत्रं देवता कुजः। मन्त्रार्णैः षड्भिरङ्गानि कुर्वन्ध्यायेद्धरात्मजम्॥७४॥
मेषस्थं रक्तवस्त्राङ्गं शूलशक्तिगदावरान्। करैर्बिभ्राणमीशानस्वेदजं भूसुतं स्मरेत्॥७५॥
रसलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं खदिरोद्भवैः। समिद्भिर्जुहुयादग्नौ शैवे पीठे यजेत्कुजम्॥७६॥

इसके ऋषि हैं विरूपाक्ष, छन्दः है गायत्री, देवता हैं मंगल। षड् मन्त्राक्षर द्वारा षडङ्गन्यासोपरान्त मंगल ध्यान करे। यथा—वे मेष पर आसीन हैं। वे रक्तवर्ण वस्त्रधारी हैं। उन्होंने त्रिशूल, शक्ति तथा श्रेष्ठ गदा धारण किया है। एवंविध शंकर के स्वेद से जन्मे मंगल का ध्यान करके उनके मन्त्र का छः लाख जप करे। साठ हजार होम अग्नि में खैर की समिध् से करे। तत्पश्चात् शैव पीठ पर मंगल का पूजन सम्पन्न करे।।७४-७६।।

प्रागङ्गानि समाराध्य ह्येकविंशतिकोष्ठकम्। मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः॥७७॥

स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः।
लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः॥७८॥
धरात्मजः कुजो भौमो भूमिदो भूमिनन्दनः। अङ्गारको महीसूनुः सर्वरोगापहारकः॥७९॥
वृष्टिकर्ता वृष्टिहर्ता सर्वकार्यार्थसिद्धिदः। इत्येकविंशतिः प्रोक्ता मूर्तयो भूसुतस्य वै॥८०॥

सर्वाग्र में अंगदेवगण की आराधना के उपरान्त इक्कीस कोष्ठ में मंगल की २१मूर्त्ति की पूजा करनी चाहिये। मंगल, भूमिपुत्र, ऋणहर्त्ता, धनप्रद, स्थिरासन, महाकाय, सर्वकर्मावरोधक, लोहित, लोहिताक्ष, सामग लोगों पर कृपालु, धरापुत्र, कुज, भौम, भूमिदाता, भूमिनन्दन,अंगारक महीपुत्र, सर्वरोगापहारक, वृष्टिकर्त्ता, वृष्टिहर्त्ता, सर्वकार्यार्थ सिद्धिदाता। ये भूमिपुत्र की २१ मूर्त्ति हैं।।७७-८०।।

मङ्गलादीन्यजेन्मन्त्री स्वस्वस्थानस्थितान्क्रमात्।
इन्द्राद्यानपि वज्रादीनेवं सिद्धो भवेन्मनुः॥८१॥
सुतकामा कुरङ्गाक्षी भौमव्रतमुपाचरेत्। मार्गशीर्षेऽथ वैशाखे व्रतारम्भः प्रशस्यते॥८२॥
अरुणोदयवेलायामुत्थायावश्यकं पुनः। विनिर्वर्त्य रदान्धावेदपामार्गेण वाग्यता॥८३॥
स्नात्वा रक्ताम्बरधरा रक्तमाल्यविलेपना।
नैवेद्यादींश्च सम्भारानरक्तान्सर्वान्प्रकल्पयेत्॥८४॥
योग्यं विप्रं समाहूय कुजमर्चेत्तदाज्ञया। रक्तागोगोमयालिप्तभूमौ रक्तासने विशेत्॥८५॥
आचम्य देशकालौ च स्मृत्वाकाम्य समुच्चरन्।
मङ्गलादीनि नामानि स्वकीयाङ्गेषु विन्यसेत्॥८६॥

साधक क्रमशः उन-उन ग्रहों की पूजा उनके-उनके अपने स्थान पर करे। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण की पूजा उनके आयुधों सहित करनी चाहिये। पुत्रेच्छु नारी मंगल व्रत करे। मार्गशीर्ष अथवा वैशाख में व्रतारंभ करे। अरुणोदय बेला में उठकर आवश्यक कार्यों से शौचादि कार्य से निवृत्त होकर मौनी स्थिति में अपमार्ग काष्ठ से दन्तधावन, स्नान, रक्तवस्त्र-रक्तपुष्प, रक्तचन्दन धारण करे। नैवेद्यादि सभी लाल रहें। उत्तम ब्राह्मण की आज्ञा लेकर मंगलार्चना करे। लाल रंग की गौ के गोमय से भूमिलिप्त करके वहां रक्तवर्णासन पर वह नारी बैठे। आचमन तथा तिथिवार देशकाल का स्मरण करके अपनी वांछित कामना का उच्चारण करके मंगल के नामों से अंगन्यास करे।।८१-८६।।

मुखे प्रविन्यसेत्साध्वी सामगानां कृपाकरम्।
धरात्मजं नसीरक्ष्णोः कुजं भौमं ललाटके॥८७॥
भूमिदं तु भ्रुवोर्मध्ये मस्तके भूमिनन्दनम्।
अङ्गारकं शिखायां च सर्वाङ्गे च महीसुतम्॥८८॥
बाहुद्वये न्येसत्पश्चात्सर्वरोगापहारकम्। मूर्द्धादि वृष्टिकर्तारमापादान्तं न्यसेत्सुधीः॥८९॥

साध्वी नारी मुख में कृपाकर सामग का नासापुटद्वय में धरात्मज का, उभयनेत्र में कुज का, ललाट

में भौम का, भ्रूमध्य में भूमिद का, मस्तक में भूमिनन्दन का, शिखा में अंगारक का, सर्वाङ्ग में महीसुत का न्यास करे।।८७-८९।।

विन्यसेद्वृष्टिहर्तारं मूर्द्धान्तं चरणादितः। न्यसेदन्ते ततो दिक्षु सर्वकार्यार्थसिद्धिदम्।।९०।।

नाभौ हृदि शिरस्यारं वक्त्रे भूमिजमेव च।
विन्यस्यैवं निजे देहे ध्यायेत्प्राग्वद्धरात्मजम्।।९१।।

तदनन्तर चरण से लगाकर मूर्द्धान्त पर्यन्त वृष्टिहर्त्ता का न्यास करे। तत्पश्चात् दिशाओं में सर्वकार्यार्थसिद्धिप्रद का न्यास करे। नाभि, हृदय, मस्तक में आर का (?) तथा मुख में भूमिपुत्र का न्यास करे। स्वदेह में यह न्यास करने के उपरान्त पूर्ववत् भूमिपुत्र का ध्यान करना चाहिये।।९०-९१।।

मानसैरुपचारैश्च सम्पूज्यार्घ्यं निधापयेत्। एकविंशतिकोष्ठाढ्ये त्रिकोणे ताम्रपत्रगे।।९२।।
आवाह्याङ्गारकं तत्र रक्तपुष्पादिभिर्यजेत्। अङ्गानि पूर्वमाराध्य मङ्गलादीन्प्रपूजयेत्।।९३।।

अब मनः कल्पित वस्तु से मंगलार्चन करके उनको अर्घ्य प्रदान करके एक तिकोने ताम्रपत्र पर २१ कोष्टक बनाकर वहां मंगल का आवाहन करना चाहिये तथा उनकी अर्चना लाल पुष्पों से करनी चाहिये। पहले अंगदेवगण की अर्चना करके तब मंगल प्रभृति की पूजा करे।।९२-९३।।

एकविंशतिकोष्ठेषु चक्रमारं च भूमिजम्।
त्रिकोणेषु च सम्पूज्य बहिरष्टौ च मातृकाः।।९४।।
इन्द्रादीनथ वज्रादीन्बाह्ये सम्पूजयेत्पुनः। धूपदीपौ समार्प्याथ गोधूमात्रं निवेदयेत्।।९५।।

२१ कोष्ठों में तथा त्रिकोण में चक्र, आर (?) तथा भूमिपुत्र पूजनोपरान्त उससे बाहर अष्टमातृका पूजन करके उससे बाहर इन्द्रादि देवता तथा उनके वज्रादि आयुधसमूह की पूजा करने के पश्चात् उनको धूप, दीप तथा गेहूं का अन्न निवेदित करे।।९४-९५।।

ताम्रपात्रे शुद्धतोयपूरिते रक्तचन्दनम्। रक्तपुष्पाक्षतफलान्याक्षिप्यार्घ्यं समर्पयेत्।
मङ्गलाय ततो मन्त्री इदं मन्त्रद्वयं पठेत्।।९६।।

तदनन्तर ताम्रपात्र में शुद्ध जल रखकर उसमें लालचन्दन, रक्तपुष्प, अक्षत, फल छोड़कर अर्घ्य अर्पित करे। उस समय मन्त्रज्ञ साधक ये दो मन्त्र पाठ करे।।९६।।

भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भवपिनाकिनः।
सुतार्थिनी प्रपन्ना त्वां गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।।९७।।

प्रथम मन्त्र—हे भूमिपुत्र, महोतेजस्वी! आप शंकर के स्वेद से उत्पन्न हैं। मैं पुत्रार्थिनी होकर आपकी शरणागत हूं। आपको प्रणाम! यह अर्घ्य ग्रहण करे।।९७।।

रक्तप्रवालसङ्काशं जपाकुसुमसन्निभ। महीसुत महाभाग गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।।९८।।

द्वितीय मन्त्र—आपका वर्ण रक्तवर्ण प्रवालवत् तथा जवापुष्पवत् है। हे भूमिपुत्र महाभाग! यह अर्घ्य ग्रहण करे। आपको प्रणाम!।।९८।।

एकविंशतिपूर्वोक्तैर्ङेनमोन्तैश्च नामभिः। ताराद्यैः प्रणमेत्पश्चात्तावत्यश्च प्रदक्षिणाः॥९९॥
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्तेजः सम्प्रभम्। कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम्॥१००॥

जो इक्कीस मंगल नामावलि पहले कही गई है, उसमें प्रारंभ में प्रणव लगाकर तदनन्तर चतुर्थी विभक्ति युक्त नाम तथा अन्त में नमः कहे। यथा—ॐ भूमिपुत्राय नमः इत्यादि। तदनन्तर यह मन्त्र पढ़ते इक्कीस प्रदक्षिणा करे। मन्त्रार्थ है—धरती के गर्भ से संभूत, विद्युत् के समान तेजः वाले, कुमार, शक्तिधारी मंगल को मेरा प्रणाम!।।९९-१००।।

ततो रेखात्रयं कुयात्खदिराङ्गरकेण च। मार्जयेद्वामपादेन मन्त्राभ्यां च समाहिता॥१०१॥

तत्पश्चात् खदिर काष्ठ से तीन रेखा खींचे। तदनन्तर एकाग्रता पूर्वक मन्त्रद्वय पढ़ते हुये वाम पाद से रेखा मिटाये। प्रथम मन्त्र यह है।।१०१।।

दुःखदौर्भाग्यनाशाय पुत्रसन्तानहेतवे। कृतरेखात्रयं वामपादेनैतत्प्रमार्ज्यहम्॥१०२॥

ऋणदुःखविनाशाय मनोभीष्टार्थसिद्धये।
मार्जयाम्यसिता रेखास्तिस्रो जन्मत्रयोद्भवाः॥१०३॥

दुःख तथा दुर्भाग्य के नाशार्थ और पुत्र सन्तान लाभार्थ मैं रेखात्रय को वामपाद से प्रमार्जित (मिटा रही हूं) कर रही हूं। ऋण, दुःख नाशार्थ, वांछितार्थ प्राप्ति हेतु मैं तीन जन्मों में उत्पन्न इन काली रेखात्रय का मार्जन कर रही हूं।।१०२-१०३।।

स्तुवीत धरणीपुत्रं पुष्पाञ्जलिकरा ततः।
ध्यायन्ती तत्पदाम्भोजं पूजासाङ्गत्वसिद्धये॥१०४॥

ऋणहर्त्रे नमस्तुभ्यं दुःखदारिद्र्यनाशिने। सौभाग्यसुखदो नित्यं भव मे धरीणसुत॥१०५॥
तप्तकाञ्चनसङ्काश तरुणार्कसमप्रभ। सुखसौभाग्यधनद ऋणदारिद्र्यनाशक॥१०६॥
ग्रहराज नमस्तेऽस्तु सर्वकल्याणकारक। प्रसादं कुरु देवेश सर्वकल्याणभाजन॥१०७॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः। आप्नुवन्ति शिवं सर्वे सदा पूर्णमनोरथाः॥१०८॥

इसके पश्चात् वह नारी हाथ की अंजली में पुष्प ले। वह स्त्री सांगोपांग पूजा सिद्धि हेतु मंगल के चरणकमल का ध्यान करते कहे—हे ऋणहारी! आपको प्रणाम! आप दुःख-दरिद्रता नाशक, नित्य सौभाग्य-सुखदाता एवं ऋणरूपी दारिद्र्य के नाशक हैं। हे ग्रहराज! आप सर्वकल्याण कारक हैं। आपको प्रणाम! हे देवेश! आप सर्वकल्याण भाजन हैं। कृपा करिये। आपकी अर्चना द्वारा देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प सभी पूर्ण मनोरथ तथा कल्याणभागी हो जाते हैं।।१०४-१०८।।

आचिरादेव लोकेऽस्मिन्यस्याराधनतो जनाः।
प्राप्नुवन्ति सुखं तस्मै नमो धरणिसूनवे॥१०९॥
यो वक्रगतिमापन्नो नृणां दुखं प्रयच्छति।
पूजितः सुखसौभाग्यं तस्मै क्ष्मासूनवे नमः॥११०॥

नभसि द्योतमानाय सर्वकल्याणहेतवे। मङ्गलाय नमस्तुभ्यं धनसन्तानहेतवे॥१११॥
प्रसादं कुरु मे भौम मङ्गलप्रद मङ्गल। मेषवाहन रुद्रात्मन्देहि पुत्रान्धनं यशः॥११२॥

मनुष्य भी इहलोक में आपकी आराधना द्वारा शीघ्रतापूर्वक सुखलाभ करते हैं। मैं आप पृथिवीपुत्र को प्रणाम करती हूं! आप जन्मपत्रिका में गोचर से वक्रगति होकर लोगों को दुःख देते हैं। आप पूजित होकर सुखदाता हो जाते हैं, आप पृथिवीपुत्र को प्रणाम! आप नभ में द्योतित होकर समस्त कल्याण के कारण हो जाते हैं। हे मंगल! आप धन एवं सन्तान हेतु हैं। आपको प्रणाम! हे भौम! मंगल! मंगलदायक! कृपा करिये। हे मेषवाहन, रुद्रात्म! आप पुत्र, धन, यश दीजिये।।१०९-११२।।

एवं स्तुत्वा प्रणम्याथ विसृज्य धरणीसुतम्।
यथाशक्त्या प्रदाय स्वं गृह्णीद्ब्राह्मणाशिषः॥११३॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा भुञ्जीयात्तन्निवेदितम्॥११४॥
एवमावत्सरं कुर्यात्प्रतिमङ्गलवासरम्। तिलैर्होमं विधायाथशतार्द्धं भोजयेद्द्विजान्॥११५॥
भौममूर्ति स्वर्णमयीमाचार्याय समर्पयेत्। मण्डलस्थे घटेऽभ्यर्चेत्सुतसौभाग्यसिद्धये॥११६॥
एवं व्रतपरा नारी प्राप्नुयात्सुभगान्सुतान्। ऋणनाशाय वित्तार्थं व्रतं कुर्यात्पुमानपि॥११७॥

इस विधि से स्तुति तथा प्रणाम करके मंगल धरणीपुत्र को विसर्जित करे और ब्राह्मण को यथाशक्ति दान देकर ब्राह्मण से आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर गुरु को दक्षिणा देकर उनकी अनुमति होने पर भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष तक प्रत्येक मंगलवार के दिन करके तिल का ५० होम करके ब्राह्मण भोजन कराये। स्वर्णमयी मंगलप्रतिमा आचार्य को प्रदान करे पुत्र सौभाग्यलाभार्थ मंडल पर घट स्थापित करके वहां मंगलार्चन करना चाहिये। ऐसी व्रत परायणा स्त्री उत्तम पुत्र पाती है। ऋणमोचनार्थ तथा धनप्राप्ति हेतु पुरुष भी यही व्रत करे।।११३-११७।।

ब्राह्मणः प्रजपेन्मन्त्रमग्निर्मूर्द्धेति वैदिकम्। अङ्गारकस्य गायत्रीं वक्ष्ये यजनसिद्धये॥११८॥
अङ्गारकाय शब्दान्ते विद्महे पदमीरयेत्। शक्तिहस्ताय वर्णान्ते धीमहीति समुच्चरेत्॥११९॥
तन्नो भौमः प्रचोवर्णान्दयादिति च संवदेत्। भौमस्यैषा तु गायत्री जप्तुः सर्वेष्टसिद्धिदा॥१२०॥

ब्राह्मणगण 'अग्निमूर्द्धा' इत्यादि वैदिक ऋचा जपे। अब मैं यजनसिद्धि हेतु अङ्गारक गायत्री कहता हूं। 'अंगारकाय' के पश्चात् 'विद्महे' कहकर 'शक्तिहस्ताय' कहे। उसके पश्चात् "धीमहि" का योग कराकर "तन्नो भौमः प्रचोदयात्" कहे। भौम गायत्री का मन्त्रोद्धार यह है—"अंगारकाय विद्महे, शक्तिहस्ताय धीमहि, तन्नो भौमः प्रचोदयात्"। यह भौमगायत्री सर्वकामना प्रदायक है। मैंने एवंविध मंगलोपासना कहा।।११८-१२०।।

भौमोपासनमेतद्धि बुधमन्त्रमथोच्यते। फान्तः कर्णेन्दुसंयुक्तो बुधो ङेन्ते हृदन्तिमः॥१२१॥
रसार्णो बुधमन्त्रोऽयं मुनिर्ब्रह्मास्य कीर्तितः।
पङ्क्तिश्छन्दो देवता तु बुधः सर्वेष्टदो नृणाम्॥१२२॥
आद्यं बीजं नमः शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये।
वन्दे बुधं सदा भक्त्या पीताम्बरविभूषणम्॥१२३॥

जानुस्थवामहस्ताढ्यं साभयेतरपाणिकम्। ध्यात्वैवं प्रजपेत्सहस्त्रं विजितेन्द्रियः॥१२४॥

भौमोपासना की सिद्धि इसी से होती है। अब बुध मन्त्र कहता हूं। "फान्तः कर्णेन्दुसंयुक्तो बुधो ङेन्ते हृदन्तिमः।" (यहां मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें। वैसे "ॐ बुधाय नमः" इसका मन्त्रोद्धार है। यह षडक्षर मन्त्र है)। इस ऋषि ब्रह्मा, छन्दः पंक्तिछन्द, देवता बुध हैं। सर्वकामना लाभार्थ इसका प्रयोग होता है। बुध ध्यान है, वे पीतवस्त्र धारी हैं। इन्होंने बाम हाथ वाम उरु पर रखा है। दाहिने हाथ में अभय मुद्रा है। ऐसे बुध का ध्यान-वन्दन भक्ति से करे। ध्यान के साथ इन्द्रियों को वशीभूत रखकर ६००० मन्त्र जपे।।१२१-१२४।।

दशांशं जुहुयादाज्यैः पीठे पूर्वोदितेऽर्चयेत्। अङ्गमातृदिशापालहेतिभिर्बुधमर्चयेत्॥१२५॥

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेत्स्वमनोरथान्।
सहस्त्रं प्रजपेन्मन्त्रं नित्यं दशदिनावधि॥१२६॥

तस्याशु ग्रहजा पीडा नश्यत्येव न संशयः। बुधस्याराधनं प्रोक्तं गुरोराधनं शृणु॥१२७॥

तत्पश्चात् ६०० होम उस पीठ पर करे। बुधार्चन के सहित अंगदेवता, मातृगण, दिक्पाल तथा उनके आयुध समूह की भी अर्चना करे। इस मन्त्र सिद्धि द्वारा मनुष्य के सर्वमनोरथ सफल हो जाते हैं। दस दिन प्रत्यह एक सहस्त्र बुधमन्त्र जपकर्त्ता के ग्रहपीड़ाजनित कष्ट की शान्ति हो जाती है। बुधाराधन विधान मैंने कह दिया। अब गुरु की आराधना सुनें।।१२५-१२७।।

बृहस्पतिपदं ङेऽन्तं सेन्द्वाद्यर्णाघमण्डितम्।
नमोन्तोवसुवर्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मास्य सम्मतः॥१२८॥

छन्दोऽनुष्टुप्सुराचार्यो देवता बीजमादिमम्। हृच्छक्तिर्दीर्घवह्नीन्दुयुगलेनाङ्गकल्पना॥१२९॥

बृहस्पति पद को चतुर्थ विभक्तियुक्त करके आदि वर्ण को अनुस्वार से युक्त करके अन्त में नमः पद लगाये। मन्त्रोद्धार हैं—"बृं बृहस्पतये नमः।" इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है अनुष्टुप् । देवता हैं बृहस्पति। आदि अक्षर बीज है। नमः शक्ति है। यह अष्टाक्षर मन्त्र है। दीर्घ स्वर, वह्नि (रं) तथा इन्दुद्वय (अनुस्वार) से इसके षडङ्ग की कल्पना करे।।१२८-१२९।।

न्यस्तवामकरं राशौ रत्नानां दक्षिणात्करात्। किरन्तं पीतपुष्पालङ्कारालेपांशुकार्चितम्॥१३०॥

सर्वविद्यानिधिं देवगुरुं स्वर्णद्युतिं स्मेरत्। लक्षं जपो दशांशेन घृतेनान्नेन वा हुनेत्॥१३१॥

धर्मादिपीठे प्रजेयदङ्गदिक्पालहेतिभिः। एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः॥१३२॥

विषरोगादिपीडासु कलहे स्वजनोद्भवे। पिप्पलोत्थसमिद्भिश्च जुहुयात्तन्निवृत्तये॥१३३॥

इनका ध्यान यह है। उन्होंने रत्नराशि पर अपना वाम हाथ रखा है। ये दाहिने हाथ से रत्न विकिरण कर रहे हैं। पीतपुष्प, आभूषण, लेप तथा वस्त्र से वे पूजित हैं। ये देवगुरु सर्वविद्या निधि हैं। वे स्वर्ण कान्ति हैं। इनका एक लाख जप करके दस हजार होम घृत तथा अन्न से करे। तदनन्तर धर्मादिपीठ पर अंगदेवता, दिक्पाल तथा आयुध के साथ देवगुरु की अर्चना करे। मन्त्रसिद्धि सम्पन्न हो जाने पर साधक मन्त्री की कामना पूर्ण होती है। विषरोगादि पीड़ा तथा भाई-बन्धु से कलह होने पर निवारणार्थ पीपल समिध् से हवन करे।।१३०-१३३।।

हुत्वा दिनत्रयं मन्त्री निशापुष्पैर्घृतप्लुतैः।
स विंशतिशतं शीघ्रं वासांसि लभते महीम्॥१३४॥
गुरोराराधनं प्रोक्तं शृणु शुक्रस्य साम्प्रतम्।
वस्त्रं मे देहि शुक्राय ठद्वयान्तो ध्रुवादिकः॥१३५॥
रुद्रार्णोऽयं मनुर्ब्रह्मा मुनिश्छन्दो विराड्डुत।
दैत्येज्यो देवता बीजं ध्रुवः शक्तिर्वसुप्रिया॥१३६॥

तीन दिनों तक घृताप्लुत कुमुद के पुष्पों से मन्त्री होम करे। दो हजार होम करने वाला साधक त्वरित रूप से वस्त्र एवं भूमि लाभ करता है। यह गुरु आराधन क्रम है। अब शुक्र पूजनविधि कहते हैं। "शुं वस्त्रं मे देहि शुक्राय स्वाहा" यह एकादशाक्षर मन्त्र है। इसके मुनि ब्रह्मा, विराट छन्दः शुक्र देवता, 'शुं' बीज तथा स्वाहा शक्ति है।।१३४-१३६।।

भुनेत्रचन्द्रनेत्राग्निनेत्रार्णैः स्यात्षडङ्गकम्। शुक्लाम्बरालेपभूषं करेण ददतं धनम्॥१३७॥
वामेन शुक्रं व्याख्यानमुद्रादोषं स्मरेत्सुधीः।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः॥१३८॥
धर्मादिपीठे प्रयजेदङ्गेन्द्रादितदायुधैः। श्वेतपुष्पैः सुगन्धैश्च जुहुयाद् भृगुवासरे॥१३९॥
एकविंशतिवारं यो लभते सोऽन्शुकं मणीन्।
मनवोऽमी सदा गोप्या न देया यस्य कस्यचित्॥१४०॥
भक्तियुक्ताय शिष्याय देया वा निजसूनवे॥१४१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे मन्त्रविधाननिरूपणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥६९॥
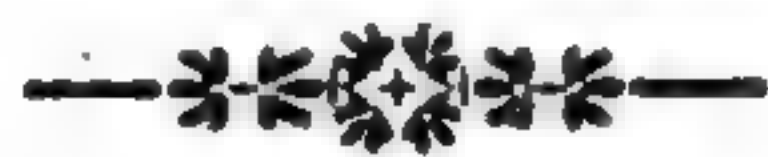
भू (लं) नेत्र (इं) चन्द्र (?) नेत्र (इं) अग्नि (दं) तथा हं वर्ण से षड्ग न्यास करे। तदनन्तर सुधीसाधक इनका ध्यान करे। ये देव उज्वल वस्त्र, उत्तम श्वेत लेप तथा आभूषण से शोभित बायें हाथ से धन देते व्याख्यान मुद्रा में स्थित हैं। तदनन्तर दस हजार मन्त्र जप तथा दशांश होम करे। तदनन्तर धर्मादि पीठ पर श्वेत पुष्प एवं श्वेत द्रव्य से अंग देवता, इन्द्रादि देवता तथा आयुध सहित शुक्र पूजा करे। शुक्रवार को २१ बार होम करे। ऐसा व्यक्ति वस्त्र मणिलाभ करता है। यह मन्त्र गुप्त रखे। प्रत्येक को प्रदान न करे। इसे अपने भक्तिमान् शिष्य किंवा सन्तान को ही प्रदान करे।।१३७-१४१।।

।।६९वां अध्याय समाप्त।।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

विष्णु के अष्टाक्षर प्रभृति नाना मन्त्र के अनुष्ठान की विधि

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये महाविष्णोर्मन्त्रान्लोकेषु दुर्लभान्।
यान्प्राप्य मानवास्तूर्णं प्राप्नुवन्ति निजेप्सितम्॥१॥

येषामुच्चारणेनैव पापसङ्घः प्रलीयते। ब्रह्मादयोऽपि याञ्ज्ञात्वा समर्थाः स्युर्जगत्कृतौ॥२॥

तारहृत्पूर्वकं ङेन्तं नारायणपदं भवेत्। अष्टाक्षरो मनुश्चास्य साध्यो नारायणो मुनिः॥३॥

छन्दः प्रोक्तं च गायत्री देवता विष्णुरव्ययः।
ओं बीजं यं च तथा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये॥४॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! अब मैं महाविष्णु के दुर्लभ मन्त्र का वर्णन करता हूं। यह लोकदुर्लभ है। इसे पाकर मानव शीघ्र अभीष्ट लाभ कर लेते हैं। इसके उच्चारण मात्र से ढेरों पापों का नाश हो जाता है। ब्रह्मा आदि भी जिन मन्त्र ज्ञान का लाभ करके संसार सृष्टि में समर्थ हो जाते हैं, वर "ॐ नमो नारायणाय" यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके साध्य नारायण ही ऋषि हैं। छन्दः है गायत्री, अविनाशी विष्णु इसके देवता हैं। ॐ बीज तथा नमः शक्ति है। इसका प्रयोग सर्वमनोरथ लाभार्थ होता है।।१-४।।

क्रुद्धोल्काय हृदाख्यातं महोल्काय शिरः स्मृतम्।
वीरोल्काय शिखा प्रोक्ता द्युल्काय कवचं मतम्॥५॥

महोल्कायेति चास्त्रं स्यादित्थं पञ्चाङ्गकल्पना।
पुनः षडङ्गमन्त्रोत्थैः षड्वर्णैश्च समाचरेत्॥६॥

अवशिष्टौ न्यसेत्कुक्षिपृष्ठयोर्मन्त्रवर्णकौ। सुदर्शनस्य मन्त्रेण कुयाद्दिग्बन्धनं ततः॥७॥

तारो नमश्चतुर्थ्यन्तं सुदर्शनपदं वदेत्। अस्त्रायफडिति प्रोक्तो मन्त्रो द्वादशवर्णवान्॥८॥

इसका पंचांग न्यास कहते हैं—

क्रुद्धोल्काय हृदयाय नमः,
महोल्काय शिरसे स्वाहा,
वीरोल्काय शिखायै वषट्,
अत्युल्काय कवचाय हुं,
सहस्रोल्काय अस्त्राय फट्। यह न्यास करे।

मन्त्र के छः वर्षों से षडङ्गन्यास करके बाकी दो मन्त्राक्षर का कुक्षि तथा पृष्ठ में न्यास करे। तदनन्तर "ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्" द्वादशाक्षर मन्त्र से जो कि सुदर्शन मन्त्र है, इससे दिग्बन्ध करे।।५-८।।

दशावृत्तिमयं न्यासं वक्ष्ये विभूतिपञ्जरम्। मूलार्णानस्वतनौ न्यस्येदाधारे हृदये मुखे॥९॥

दोःपन्मूलेषु नासायां प्रथमावृत्तिरीरितः। गले नाभौ हृदि कुचपार्श्वपृष्ठेषु तत्पराः॥१०॥
मूर्द्धास्यनेत्रश्रवणघ्राणेषु च तृतीयकाः।
दोःपादसन्ध्याङ्गुलिषु वेदावृत्त्या च विन्यसेत्॥११॥
धातुप्राणेषु हृदय विन्यसेत्तदनन्तरम्। शिरोनेत्रास्यहृत्कुक्षिसोरुजङ्घापदद्वये॥१२॥
एकैकशो न्यसेद्वर्णान्मन्त्रस्य क्रमतः सुधीः। न्यसेद्धृदंसोरुपदेष्वर्णान्वेदमितान्मनोः॥१३॥
चक्रशङ्खगदाम्भोजपदेषु स्वस्वमुद्रया। शेषांश्च न्यासवर्योऽयं विभूतिपञ्जराभिधः॥१४॥

अब विभूति पंजर नामक दशावृत्तिमय न्यास कहता हूं। मूलमन्त्र के अक्षरों से यह न्यास होगा।

प्रथमावृत्ति—स्वशरीरस्थ मूलाधार, हृदय, मुख, भुजद्वय, चरणद्वय के मूल तथा नासिका में न्यास करे।

द्वितीयावृत्ति—कण्ठ, नाभि, हृदय, स्तनद्वय, पार्श्वद्वय, पृष्ठ में पुनः मन्त्राक्षर न्यास करे।

तृतीयावृत्ति—मूर्द्धा, मुख, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासाद्वय में मन्त्राक्षर न्यास करे।

चतुर्थावृत्ति—भुजद्वय तथा चरण की सन्ध्यांगुलि में मन्त्राक्षर न्यास करे।

पंचावृत्ति—धातु, प्राण, हृदय में न्यास करे।

षष्ठ, सप्तम, अष्टम आवृत्ति—शिर, नेत्र, मुख, हृदय, पार्श्व, उस जंघा पदद्वय में क्रमशः एक-एक मन्त्र का न्यास करे।

नवम-दशम आवृत्ति—हृदय, कंधा, उरु, चरण में चार मन्त्रवर्ण का न्यास करे। शेषवर्ण का चक्र, शंख, गदा, कमल की मुद्रा बनाकर न्यास करे। यह सर्वोत्तम न्यास विभूतिपंजर न्यास रूप से प्रसिद्ध है।।९-१४।।

न्यसेन्मूलार्णमेकैकं सचन्द्रं तारसम्पुटम्। अथवा वै नामोन्तेन न्यसेदित्यपरे जगुः॥१५॥

मूल के प्रत्येक अक्षर में अनुस्वार लगाकर उसके उभय पार्श्व में प्रणव सम्पुट लगाकर न्यास करना चाहिये। किंवा प्रारंभ में 'ॐ' अन्त में नमः लगाकर मन्त्राक्षर न्यास करे। यह अन्य विद्वान् कहते हैं।।१५।।

तत्त्वन्यासं ततः कुर्याद्विष्णुभावप्रसिद्धये। अष्टार्णोऽष्टप्रकृत्यात्मा गदितः पूर्वसूरिभिः॥१६॥
पृथिव्यादीनि भूतानि ततोऽहङ्कारमेव च। महांश्च प्रकृतिश्चैवेत्यष्टौ प्रकृतयो मताः॥१७॥
पादे लिङ्गे हृदि मुखे मूर्ध्नि वक्षसि हृत्स्थले।
सर्वाङ्गे व्यापकं कुर्यादेकेन साधकोत्तमः॥१८॥

तदनन्तर विष्णुभाव सिद्धि हेतु तत्वन्यास करे। पूर्वकालीन पण्डितों ने अष्टाक्षर की अष्ट प्रकृत्यात्मा कहा है। पृथिवी प्रभृति पंचमहाभूत, अहंकार, महान् तथा प्रकृति ही अष्ट प्रकृति हैं। अतः चरण, लिंग, हृदय, मुख, मस्तक, वक्ष, हृदय तथा सर्वाङ्ग में एक ही अष्टाक्षर द्वारा साधक व्यापक न्यास करे।।१६-१८।।

मन्त्रार्णहृत्परायाद्यमात्मने हृदयान्तिमम्। तत्तन्नाम समुच्चार्य्य न्यसेत्तत्तत्स्थले बुधः॥१९॥
अयं तत्त्वाभिधो न्यासः सर्वन्यासोत्तमोत्तमः। मूर्तीर्न्यसेद्द्वादश वै द्वादशादित्यसंयुताः॥२०॥
द्वादशाक्षरवर्णाद्या द्वादशादित्यसंयुताः। अष्टार्णोऽयं मनुश्चाष्टप्रकृत्यात्मा समीरितः॥२१॥

तासामात्मचतुष्कस्य योगादर्काक्षरो भवेत्। ललाटकुक्षिहृत्कण्ठदक्षपार्श्वांसकेषु च॥२२॥
गले च वामपार्श्वांसगलपृष्ठेष्वनन्तरम्। ककुद्यपि न्यसेन्मन्त्री मूर्तीर्द्वादश वै क्रमात्॥२३॥

साधक मन्त्राक्षर, नमः परापाद्य तथा आत्मने नमः के साथ उन-उन नाम को कहकर उन स्थानों में न्यास करे। यह सर्वोत्तमोत्तम तत्वन्यास है। इसके पश्चात् द्वादशादित्य सहित द्वादशमूर्त्ति न्यास करे। ये मूर्त्तियां द्वादशाक्षर के एक-एक मन्त्र से युक्त रहती हैं। इनसे द्वादशादित्य संयोग होता है। यही अष्टाक्षर मन्त्र की अष्टप्रकृतिमय कहा गया है। इस अष्टाक्षर में आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा का योग जब हो, तब यही द्वादशाक्षर हो जायेगा। इन द्वादश मूर्त्ति का न्यास ललाट, कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दक्षिणपार्श्व, दक्षिण अंस, गले के दक्षिण ओर, वाम पार्श्व, वाम अंस, गले का वाम भाग, पीठ तथा ककुद्रूप द्वादश अंगों में क्रमशः मन्त्रसाधक को करना चाहिये।।१९-२३।।

धात्रा तु केशवं न्यस्यार्यम्णं नारायणं पुनः।
मित्रेण माधवं न्यस्य गोविन्दं वरुणेन च॥२४॥
विष्णुं चैवांशुना युक्तं भगेन मधुसूदनम्। न्यसेद्विवस्वता युक्तं त्रिविक्रममतः परम्॥२५॥
वामनं च तथेन्द्रेण पूष्णा श्रीधरमेव च। हृषीकेशं न्यसेत्पश्चात्किरीटमनुनासुधीः॥२६॥
त्वष्ट्रा युतं पद्मनाभं दामोदरं च विष्णुना।
द्वादशार्णं ततो मन्त्रं समस्ते शिरसि न्यसेत्॥२७॥

केशव का न्यास धाता के साथ ललाट में, नारायण का अर्यमा के साथ कुक्षि में, माधव का मित्र सहित हृदय में, गोविन्द का वरुण के साथ कण्ठकूप में न्यास करे। विष्णु का अंशु सहित, मधुसूदन का भग सहित, त्रिविक्रम का विवस्वान सहित, वामन का इन्द्र सहित, श्रीधर का पूषा सहित, हृषीकेश का किरीट सहित न्यास करे। त्वष्टा का पद्मनाभ के साथ एवं विष्णु का दामोदर के साथ न्यास करके द्वादशाक्षर मन्त्र का समस्त शिर में न्यास होगा।।२४-२७।।

व्यापकं विन्यसेत्पश्चात्किरीटमनुना सुधीः। ध्रुवःकिरीटकेयूरहारान्ते मकरेति च॥२८॥
कुण्डलान्ते चक्रशङ्खगदान्तेंऽभोजहस्ततः।
पीताम्बरान्ते श्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलेति च॥२९॥
श्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्द्वयमतः परम्। वदेद्दीप्तिकरायान्ते सहस्रादित्यतेजसे॥३०॥
नमोन्तो बाणषड्वर्णैः किरीटमनुरीरितः।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेन्नारायणं विभुम्॥३१॥

तब सुधी व्यक्ति किरीट मन्त्र से व्यापक न्यास करे। किरीट मन्त्र यह है—

ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशंखचक्रगदाम्भोजहस्त पीताम्बरधर श्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थल श्री भूमिसहित स्वात्म-ज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्य तेजसे नमः। इस न्यासविधि के पश्चात् विभु नारायण का ध्यान करे।।२८-३१।।

उद्यत्कोट्यर्कसदृशं शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयाञ्चितम्॥३२॥

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुत्तकन्धरम्। हारकेयूरवलयाङ्गदं पीताम्बरं स्मरेत्॥३३॥

ध्यान—जो कोटि उदित सूर्यवत् कान्तिमान हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी हैं, जिनके दोनों पार्श्व की शोभा भूदेवी तथा श्रीदेवी वर्द्धित कर रही हैं, जिनका वक्ष श्रीवत्स चिह्नांकित है, जिन्होंने गले में द्युतिमान् कौस्तुभमणि धारण किया है, जिनके श्री अंगों में विराजमान हार, केयूर, वलय, पीताम्बर, अंगदादि दिव्य आभूषण शोभायमान हैं, उन प्रभु का स्मरण करें।।३२-३३।।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं विधिवन्नियतेन्द्रियः। प्रथमेन तु लक्षेण स्वात्मशुद्धिर्भवेद् ध्रुवम्॥३४॥
लक्षद्वयजपेनाथ मन्त्रशुद्धिमवाप्नुयात्। लक्षत्रयेण जप्तेन स्वर्लोकमधिगच्छति॥३५॥
विष्णोः समीपमाप्नोति वेदलक्षजपान्नरः। तथा च निर्मलं ज्ञानं पञ्चलक्षजपाद्भवेत्॥३६॥
लक्षषष्ठेन चाप्नोति मन्त्री विष्णौ स्थिरां मतिम्।
सप्तलक्षजपान्मन्त्री विष्णोःसारूप्यमाप्नुयात्॥३७॥
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्री निर्वाणमधिगच्छति। एवं जप्त्वा ततः प्राज्ञो दशांशं सरसीरुहैः॥३८॥
मधुराक्तैः प्रजुहुयात्संस्कृते हव्यवाहने। मण्डूकात्परतत्त्वान्तं पीठे सम्पूज्य यत्नतः॥३९॥

मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्र का सविधि जप इन्द्रियों को संयत रखकर करे। एक लाख जप से आत्मशुद्धि, दो लक्ष जप द्वारा मन्त्रशुद्धि, तीन लक्ष जप द्वारा स्वर्लोक लाभ, चतुर्लक्ष जप से विष्णु सान्निध्य, पंचलक्ष जप द्वारा निर्मल ज्ञान लाभ होता है। षड्लक्ष जप से मन्त्र जप करने वाले साधक की मति विष्णु के प्रति स्थिर हो जाती है। सात लाख जप करने वाला विष्णु सारूप्य लाभ करता है। अष्टलक्ष जप पूर्ण करने वाला निर्वाणपद प्राप्त करता है। प्राज्ञ व्यक्ति जपान्त में मधुराक्त कमल द्वारा संस्कृत अग्नि में होम करे। जप का दशांश संख्यक होम अग्नि में करना चाहिये। मण्डूक से लगाकर परमतत्व पर्यन्त पीठ में यत्नतः पूजा करे। (इन सब का विशद वर्णन तथा प्रक्रिया आगमतत्व विलास ग्रन्थ में देखें)।।३४-३९।।

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा ततः परा।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा नवमी मता॥४०॥
तारो नमो भगवते विष्णवे सर्वभू ततः। तात्मने वासुदेवाय सर्वात्मेति पदं वदेत्॥४१॥
संयोगयोदगद्मान्ते पीठाय हृदयान्तिमः। षड्त्रिंशदक्षरः पीठमन्त्रोऽनेनासनं दिशेत्॥४२॥
मूर्ति सङ्कल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य पूजयेत्।
आदौ चाङ्गानि सम्पूज्य मन्त्राणां केशरेषु च॥४३॥
प्रागादिदिग्दले वासुदेवं सङ्कर्षणं तथा। प्रद्युम्नमनिरुद्धं च शक्तीः कोणेष्वथार्चयेत्॥४४॥
शान्तिं श्रियं सरस्वत्या रतिं सम्पूजयेत्क्रमात्।
हेमपीततमालेन्द्रनीलाभाः पीतवाससः॥४५॥

पीठ शक्तियां नव संख्यक हैं। यथा—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योग्या, प्रह्वी, सत्या, ईशान तथा अनुग्रहा। पूजनोपरान्त "ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठाय नमः"

इस ३६ अक्षरात्मक पीठ मन्त्र से प्रभु को आसन प्रदान करे। मूलमन्त्र से मूर्त्ति निर्माण करके उसमें भगवत् आवाहन तथा पूजन करना चाहिये। सर्वाग्र में मन्त्र के अंगों की पूजा केशरों में करने के उपरान्त अष्टदल कमल के पूर्वादि दल में एक के बाद एक वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध का तथा आग्नेयादि चार कोण में इनकी शक्तियों का पूजन करे। उनके नाम हैं शान्ति, श्री, रति, सरस्वती। वासुदेव की अंगकान्ति स्वर्णाभ, संकर्षण, पीताभ, प्रद्युम्न तमालाभ श्याम तथा अनिरुद्ध इन्द्र नीलाभ मणिवत् वर्ण वाले हैं। इस सबने पीताम्बर, शंख, चक्र, गदा, कमल धारण किया है। ये सभी चतुर्भुज हैं। शक्तियों में शान्ति श्वेतवर्ण, श्री स्वर्ण गौर, सरस्वती गोदुग्धवत् उज्वल, रति दूर्वादल श्याम हैं।।४०-४६।।

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाम्भोजधरा इमे। सितकाञ्चनगोदुग्धदूर्वावर्णाश्च शक्तयः॥४६॥
दलाग्रेषु चक्रशङ्खगदापङ्कजकौस्तुभान्। पूजयेन्मुसलं खड्गं वनमालां यथाक्रमात्॥४७॥
रक्ताजपीतकनकश्यामकृष्णासितार्जुनान्। कुङ्कुमाभं समभ्यर्चेद्बहिरग्रे खगेश्वरम्॥४८॥
पार्श्वयोः पूजयेत्पश्चाच्छङ्खपद्मनिधी क्रमात्।
मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ पश्चिमे ध्वजमर्चयेत्॥४९॥

कमलदलाग्रभाग में चक्र, शंख, गदा, कमल, कौस्तुभ, मणि, मुसल, खड्ग, वनमाला का यथाक्रमेण पूजन करे। चक्र लाल वर्ण का, शंख चन्द्रवर्णवत् श्वेत, गदा पीतवर्ण, कमल स्वर्णवर्ण, कौस्तुभ श्याम वर्ण, मुसल कृष्ण वर्ण, तलवार (खड्ग) श्वेतवर्ण तथा वनमाला उज्वल वर्णमय है। इसके बाह्य में नारायण के समक्ष करवद्ध स्थित कुंकुम वर्णाभ खगेश्वर गरुड़ की पूजा करे। दक्षिण पार्श्व में शंखनिधि की तथा वामपार्श्व में पद्मनिधि की पूजा करे। इनका वर्ण मुक्ता तथा माणिक्यवत् है। पश्चिम में ध्वजा पूजन करे।।४७-४९।।

रक्तं विघ्नं तथाग्नेये श्याममार्यं च राक्षसे।
दुर्गां श्यामां वायुकोणे सेनान्यं पीतमैश्वरे॥५०॥
लोकेशानायुधैर्युक्तान्बहिः सम्पूजयेत्सुधीः।
एवमावरणैर्युक्तं योऽर्चयेद्विष्णुमव्ययम्॥५१॥
भुक्त्वेह सकलान्भोगानन्ते विष्णुपदं व्रजेत्।
क्षेत्रधान्यसुवर्णानां प्राप्तये धरणीं स्मरेत्॥५२॥
देवीं दूर्वादलश्यामां दलानां शालिमञ्जरीम्।
चिन्तयेद्भारतीं देवीं वीणापुस्तकधारिणीम्॥५३॥

अग्निकोण में रक्तवर्ण गणपति का, नैर्ऋत्य कोण में श्यामवर्ण आर्य का, श्यामवर्ण दुर्गा का वायुकोण में, ईशानकोण में पीतवर्ण सेनानी का पूजन करे। इसके बाह्य में धीमान् साधक इन्द्रादि लोकपाल तथा उनके आयुधसमूह की पूजा करे। एवं विध आवरण दैवों के साथ अव्यय विष्णु की पूजा करता है, वह इहलोक में सर्वभोगान्वित होकर अन्त में विष्णुपद को प्राप्त होता है। धरणी देवी का चिन्तन खेत, धान्य, सुवर्ण लाभार्थ करे। धरणी देवी दूर्वदलवत् श्याम हैं। उन्होंने हाथों में धान की बाली धारण किया है। देवदेव

भगवान् के दक्षिण की ओर पूर्ण चन्द्रवत् आननवाली वीणापुस्तक धारिणी देवी सरस्वती का चिन्तन करना चाहिये।।५०-५३।।

दक्षिणे देवदेवस्य पूर्णचन्द्रनिभाननाम्। क्षीराब्धिफेनपुञ्जाभे वसानां श्वेतवाससी।।५४।।
भारत्या सहितं यो वै ध्यायेद्देवं परात्परम्। वेदवेदार्थतत्त्वज्ञो जायते सर्ववित्तमः।।५५।।
नारसिंहमिवात्मानं देवं ध्यात्वातिभैरवम्।
शस्त्रं सम्मन्त्र्य मन्त्रेण शत्रून्हत्वा निवर्तते।।५६।।
नारसिंहेन बीजेन मन्त्रं संयोज्य साधकः। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा वामहस्ताभिमन्त्रिताः।।५७।।
पुनः पुनरपः सिञ्चेत्सर्पदष्टोऽपि जीवति। गारुडेन च संयोज्यपञ्चार्णेन जपेत्तदा।।५८।।

वे क्षीरसागर से उद्भूत फेन के समान उज्वलवर्ण के वस्त्रद्वय धारण करती हैं। जो देवदेव परात्पर विष्णु सहित देवी भारती का ध्यान करता है, वह वेद तथा वेदांग का अर्थज्ञाता तथा तत्वज्ञप्रधान होता है। अतिभैरव नृसिंहरूप में आत्मा का ध्यान करके अपने आयुध को नारसिंह मन्त्राभिमंत्रित करके व्यक्ति शत्रुवध करके वापस आता है। मन्त्र को नारसिंह बीज से संयोजित करके साधक १०८ बार जप द्वारा वामहस्त से जल अभिमंत्रित करके सर्पदष्ट स्थान का उस जल से सिंचन करे। इससे वह सर्पदष्ट प्राणी जीवित हो जायेगा। तब गारुड़ मन्त्र से युक्त पंचाक्षर मन्त्र जप करना चाहिये।।५४-५८।।

निर्विषीकरणे ध्यायेद्विष्णुं गरुडवाहनम्। अशोकफलके तार्क्ष्यमालिख्याशोकसंहतौ।।५९।।
अशोकपुष्पैःसम्पूज्य भगवन्तं तदग्रतः।
जुहुयात्तानि पुष्पाणि त्रिसन्ध्यं सप्तपत्रकम्।।६०।।

किसी को विषमुक्त करने हेतु गरुड़वाहन नारायण का ध्यान करे। अशोक वृक्ष के काष्ठ पर गरुड़ प्रतिमा लिखे। तब अशोक वन में अशोक पुष्पों द्वारा प्रभु नारायण की पूजा करके उन पुष्पों के द्वारा तीनों सन्ध्याकाल में ७-७ पत्ते से हवन करे। (उन पुष्पों के सात-सात पत्ते से हवन होगा)।।५९-६०।।

प्रत्यक्षो जायते पक्षी वरमिष्टं प्रयच्छति। गणपत्येन संयोज्य जपेल्लक्षं पयोव्रतः।।६१।।
महागणपतिं देवं प्रत्यक्षमिह पश्यति। वाणीबीजेन संयुक्तं षणमासं योजयेन्नरः।।६२।।
महाकविवरो भूत्वा मोहयेत्सकलं जगत्। हुत्वा गुडूचीशकलान्यर्द्धाङ्गुलमितानि च।।६३।।
दधिमध्वाज्ययुक्तानि मृत्युं जयति साधकः।
शनैश्चरदिने सम्यक् स्पृष्ट्वाश्वत्थं च पाणिना।।६४।।
जप्त्वा चाष्टशतं युद्धे ह्यपमृत्युं जयत्यसौ।
पञ्चविंशतिधा जप्त्वा नित्यं प्रातः पिवेज्जलम्।।६५।।

इस पूजन से गरुड़ पक्षी प्रत्यक्ष होकर इष्ट वर मांगने के लिये कहते हैं। वे यथेच्छ वर देते हैं। नृसिंह मन्त्र को गणेश यन्त्र से युक्त करके एक लाख जप करता हुआ दुग्धाहार पर रहें। इस विधि से वह साधक महागणपतिदेव का प्रत्यक्ष दर्शनलाभ करता है। इस गणेश मन्त्र को वाणी बीज से युक्त करके ६ मास

जप करे। वह साधक महाकवि होकर समस्त जगत् को मोहित करता है। आधे अंगुल माप के गुरुच को टुकड़ा करके उसे दही, मधु तथा घृतयुक्त करे। इससे हवन करने वाला साधक मृत्युजित् हो जाता है। शनिवार के दिन पीपलवृक्ष का सम्यक् स्पर्श करे। ८०० बार मन्त्र जप द्वारा साधक युद्धजनित अकाल मृत्यु पर भी विजयलाभ करता है। जो प्रातःकाल इस मन्त्र से २५ बार अभिमन्त्रित जल का पान करता है, वह साधक सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर रोग रहित तथा ज्ञानवान् हो जाता है। सविधि पहले कलस को स्थापित करे तथा उसे शुद्ध जलपूर्ण करे।।६१-६५।।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ज्ञानवान् रोगवर्जितः।
कुम्भं संस्थाप्य विधिवदापूर्य शुद्धवारिणा।।६६।।

जप्त्वायुतं ततस्तेनाभिषेकःसर्वरोगनुत्। चन्द्रसूर्योपरागे तु ह्युपोष्याष्टसहस्रकम्।।६७।।

स्पृष्ट्वा ब्राह्मीघृतं जप्त्वा पिबेत्साधकसत्तमः।
मेधां कवित्वं वाक्सिद्धिं लभते नात्र संशयः।।६८।।

जुहुयादयुतं बिल्वैर्महाधनपतिर्भवेत्। नारायणस्य मन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः।।६९।।

आलयः सर्वसिद्धीनां कथितस्तव नारद। नारायणाय शब्दान्ते विद्महे पदमीरयेत्।।७०।।

वासुदेवपदं ङेन्तं धीमहीति ततो वदेत्। तन्नो विष्णुः प्रचोवर्णान्संवदेच्चोदयादिति।।७१।।

एषोक्ता विष्णुगायत्री सर्वपापप्रणाशिनी।
तारो हृद्भगवान् ङेन्तो वासुदेवाय कीर्तितः।।७२।।

द्वादशार्णो महामन्त्रो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
स्त्रीशूद्राणां वितारोऽयं सतारस्तु द्विजन्मनाम्।।७३।।

वहां उक्त मन्त्र का दस सहस्र जप करके उस जल से स्नान करे। साधक के सभी रोग दूर हो जायेगे। चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में ब्राह्मीघृत का स्पर्श करते हुये आठ हजार मन्त्रजप करे। तदनन्तर साधक उस घृत का पान करे। इससे उस साधक की मेधा वृद्धि होगी। उसे कवित्व तथा वाक्सिद्धि मिलेगी। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। जो बिल्व से इस मन्त्र द्वारा १०००० होम करेगा, वह धनपति होगा। यह नारायण मन्त्र सर्व मन्त्रोत्तमोत्तम है। यह सभी सिद्धियों का गृह है। हे नारद! मैंने आपसे यह कह दिया। नारायण पद के अन्त में विद्महे कहे। वासुदेव पद को चतुर्थी विभक्तियुक्त (वासुदेवाय) कहे। इसके अनन्तर धीमहि कह कर "तन्नो विष्णु प्रचोदयात् कहे। मन्त्रोद्धार है "नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णु प्रचोदयात्।" यही विष्णु गायत्री हैं। अब तार (ॐ) हृदय (नमः) कहे। भगवत् शब्द को चतुर्थी विभक्ति युक्त (भगवते) वासुदेवाय कहे। मन्त्रोद्धार है ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। यह द्वादशाक्षर मन्त्र ही महामन्त्र है। यह भोग तथा मोक्षदायक है। स्त्री तथा शूद्र इस मन्त्र को प्रणवरहित पढ़ें। द्विजाति वाले इसे प्रणवयुक्त पढ़ें।।६६-७३।।

प्रजापतिर्मुनिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितः। देवता वासुदेवस्तु बीजं शक्तिर्ध्रुवश्च हृत्।।७४।।

चन्द्राक्षिवेदपञ्चार्णैः समस्तेनाङ्गकल्पनम्। मूर्ध्निभाले दृशोरास्ये गले दोर्हृदये पुनः।।७५।।

कुक्षौ नाभौ ध्वजे जानुद्वये पादद्वये तथा। न्यसेत्क्रमान् मन्त्रवर्णान्सृष्टिन्यासोऽयमीरितः।।७६।।

हृदादिमस्तकान्तं तु स्थितिन्यासं प्रचक्षते। पदादारभ्य मूर्द्धानां न्यासं संहारकं विदुः॥७७॥
तत्त्वन्यासं ततः कुर्यात्सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
जीवं प्राणं तथा चित्तं हृत्पद्मं सूर्यमण्डलम्॥७८॥
चन्द्राग्निमण्डले चैव वासुदेवं ततः परम्। सङ्कर्षणं च प्रद्युम्नमनिरुद्धं ततः परम्॥७९॥
नारायणं चक्रमतस्तत्त्वानि द्वादशैव तु। मूलार्णहृत्परायाद्यमात्मने हृदयान्तिमम्॥८०॥
तत्त्वे नामसमुच्चार्य्य न्यसेन्मूर्द्धादिषु क्रमात्।
पूर्वोक्तं ध्यानमत्रापि भानुलक्षजपो मनोः॥८१॥
तद्दशांशं तिलैराज्यलोलितैर्हवनं चरेत्। पीठे पूर्वोदिते मन्त्री मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः॥८२॥

इस मन्त्र के ऋषि हैं प्रजापति। छन्दः है गायत्री। देवता हैं वासुदेव है। बीज हैं ॐ नमः शक्ति। इस द्वादशाक्षर के एक, दो, चार, पांच अक्षर से तथा सम्पूर्ण द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा पंचांग न्यास करे। मस्तक, ललाट, नेत्र, मुख, गला, बाहु, हृत्, उदर, नाभि, लिंग जानुद्वय, पादद्वय में क्रमशः मन्त्र वर्णों का न्यास किया जाना ही सृष्टिन्यास है। जो न्यास हृदय से मस्तक तक करते हैं, वही स्थिति न्यास है। पाद से मस्तक पर्यन्त का न्यास संहारक न्यास है। तब सर्वतन्त्र गोपनीय तत्वन्यास करे। तत्व द्वादश होते हैं। यथा—जीव, प्राण, चित्त, हृदयकमल, सूर्यमण्डल, अग्निमण्डल, चन्द्रमण्डल, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नारायण। मूल मन्त्राक्षरों सहित उच्चारण एवं परायनमः तथा हृदयाय नमः का उच्चारण करके तत्व के नाम का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर मस्तक प्रभृति में क्रमशः, न्यास सम्पन्न करे। यहां भी पूर्वोक्त ध्यान के साथ १२ लक्षमन्त्र जप करके उसका १/१० संख्यक होम घृताक्त तिल से करना चाहिये। मन्त्री साधक पूर्ववत् पीठ पर मूर्त्ति स्थापना करे।।७४-८२।।

तस्यामावाह्य देवेशं वासुदेवं प्रपूजयेत्। अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य वासुदेवादिकास्ततः॥८३॥
शान्त्यादिशक्तयः पूज्याः प्राग्वद्दिक्षु विदिक्षु च।
तृतीयावरणे पूज्याः प्रोक्ता द्वादश मूर्तयः॥८४॥

अब वहां मूलमन्त्र से समस्त देवगण के प्रभु वासुदेव का आवाहन पूजन करना चाहिये। प्रथमतः अंग देवगण की पूजा करके वासुदेवादि की पूजा, शान्त्यादि शक्ति पूजा पूर्वकथित विधि से दिशा एवं दिक्कोणों में करे। तृतीयावरण में पूर्वोक्त द्वादश मूर्त्ति की पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।।८३-८४।।

इन्द्राद्यानायुधैर्युक्तान पूजयेद्धरणीगृहे। एवमावरणैरिष्ट्वा पञ्चभिर्विष्णुमव्ययम्॥८५॥
प्राप्नुयात्सकलानर्थानन्ते विष्णुपदे व्रजेत्। पुरुषोत्तमसंज्ञस्य विष्णोर्भेदचतुष्टयम्॥८६॥

भूपुर में (भूगृह में) इन्द्रादि देवता तथा उनके आयुधों की पूजा करे। जो व्यक्ति इस विधान से पंचावरण सहित अव्यय विष्णु की पूजा करता है, वह समस्त कामना को प्राप्त करके अन्ततः विष्णुपद प्राप्त करता है। पुरुषोत्तम संज्ञक विष्णु के चार भेद हैं।।८५-८६।।

त्रैलोक्यमोहनस्तेषां प्रथमः परिकीर्तितः। श्रीकरश्च हृषीकेशः कृष्णश्चात्र चतुर्थकः॥८७॥
तारः कामो रमा पश्चात् ङेन्तः स्यात्पुरुषोत्तमः। वर्मास्त्राण्यग्निप्रियान्तो मन्त्रो वह्नीन्दुवर्णवान्॥८८॥

प्रथम है त्रैलोक्यमोहन, द्वितीय है श्रीकर, तृतीय है हृषीकेश, चतुर्थ है कृष्णा इनका मन्त्र है तार (ॐ), काम (क्लीं) रमा (श्रीं) तदनन्तर चतुर्थी विभक्ति युक्त पुरुषोत्तम (पुरुषोत्तमाय) तदनन्तर वर्म (हुं फट्) तदनन्तर अग्निप्रिया (स्वाहा)। मन्त्रोद्धार हैं—ॐ क्लीं श्रीं पुरुषोत्तमाय हुं फट् स्वाहा।।८७-८८।।

ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दः प्रोक्तोऽथ देवता।
पुरुषोत्तमसंज्ञोऽत्र बीजशक्तीस्मरेदिरे॥८९॥

भूचन्द्रैकरसाक्ष्यक्षिमन्त्रवर्णैर्विभागतः। कृत्वाङ्गानि ततो ध्यायेद्विधिवत्पुरुषोत्तमम्॥९०॥
समुद्यदादित्यनिभं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः। लसत्करं पीतवस्त्रं स्मरेच्छ्रीपुरुषोत्तमम्॥९१॥

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा हैं। छन्दः है गायत्री, देवता हैं पुरुषोत्तम बीज तथा शक्ति है इरा। भू (एक) चन्द्र (एक) रस (छह) अक्षि (दो) पुनः अक्षि (दो) इन मन्त्र वर्ण से अंग विभाग द्वारा विधिवत् पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहिये। उदीयमान सूर्यवत् प्रभायुक्त, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, पीतवस्त्र धारण करने वाले, श्री पुरुषोत्तम का स्मरण करे।।८९-९१।।

महारत्नौघखचितस्फुरत्तोरणमण्डपे। मौक्तिकौघशमदमविराजितवितानके॥९२॥
नृत्यद्देवाङ्गनावृन्दक्वणत्किङ्किणिनूपुरे। लसन्माणिक्यवेद्यां तु दीप्तार्कायुततेजसि॥९३॥
वृन्दारकव्रातकिरीटाग्ररत्नाभिचर्चिते। नवलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः॥९४॥

उत्फुल्लैः कमलैः पीठे पूर्वोक्ते वैष्णवेऽर्चयेत्।
एवमाराध्य देवेशं प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥९५॥

वहां महारत्न खचित (जड़ें) दीप्तिमान तोरण से सज्जित मण्डल में मोतियों से बने वितान लगे हैं। वहां नृत्यरता देवस्त्रियों के नूपुर तथा किंकिणी का शब्द गुंजित है। वे प्रभु मणियों की वेदी पर विराजित हैं। उनका तेज १०००० सूर्य के समान हैं। देवगण उनको प्रणाम कर रहे हैं, जिनके शीश प्रभु के चरणों में झुके हैं तथा इस कारण देवगण के शिरस्थ मुकुट के अग्रभाग में लगे रत्नों की प्रभा से भगवान् का चरणारविन्द शोभायमान हो रहा है। इन देवता के मन्त्र का जप ध्यानोपरान्त नौ लाख संख्या में करना चाहिये। तदनन्तर नब्बे लाख होम करे। तदनन्तर उस पीठ पर ही खिले कमलों से विष्णु की अर्चना करनी चाहिये इस प्रकार देवेश की आराधना से साधक महती श्री लाभ करता है।।९२-९५।।

पुत्रान्पौत्रान्यशःकान्तिं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।
उत्तिष्ठेति पदं पश्चाच्छ्रीकराग्निप्रियान्तिमः॥९६॥
अष्टार्णोऽस्य मुनिर्व्यासः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम्।
श्रीकाराख्योहरिः प्रोक्तो देवता सकलेष्टदः॥९७॥

भीषयद्वितयं हृत्स्यात् त्रासयद्वितयं शिरः। शिखा प्रमर्दयद्वन्द्वं वर्म प्रध्वंसयद्वयम्॥९८॥
अस्त्रंरक्षद्वयं सर्वे हुमन्ताः समुदीरिताः। मस्तके नेत्रयोः कण्ठे हृदये नाभिदेशके॥९९॥
ऊरुजङ्घांघ्रियुग्मेषु मन्त्रवर्णान्क्रमान्न्यसेत्। ततः पुरुषसूक्तोक्तमन्त्रैर्न्यासं समाचरेत्॥१००॥

उसे पुत्र, पौत्र, यश, कान्ति, भुक्ति, मुक्ति की प्राप्ति भी होती है। एक अष्टाक्षर मन्त्र है—"उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा।" इसके ऋषि हैं व्यास, पंक्ति छन्द है, देवता हैं सर्वकामपद श्रीकरहरि।

"भीषय भीषय हत्स्यात् त्रासय त्रासय, शिरः शिखा प्रमर्दय प्रमर्दय हुं फट् प्रध्वंसय प्रध्वंसय हुं फट् सर्वे हुमन्ता समुदीरिता" (यह मन्त्र है परन्तु इसका सम्यक् मन्त्रोद्धार अज्ञानता के कारण नहीं हो सका विज्ञजन इसका उचित मन्त्रोद्धार करें।)

इन मन्त्राक्षरों का न्यास क्रमशः मस्तक, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, उरु, जंघा तथा चरणद्वय में करे। तदनन्तर पुरुषसूतोक्त मन्त्र से न्यास होगा।।९६-१००।।

मुखे न्यसेद्ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदिमं मनुम्।
बाहुयुग्मे तथा बाहूराजन्य इति विन्यसेत्॥१०१॥
उरू तदस्य यद्वैश्य इममूरुद्वये न्यसेत्। न्यसेत्पादद्वये मन्त्री पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१०२॥

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इत्यादि का न्यास मुख में करे। "बाहुराजन्यः" इत्यादि का न्यास दोनों बाहु में, "उरु तदस्य" इत्यादि का न्यास उरुद्वय में तथा "पद्भ्यां शूद्रो अजायत्" का न्यास पदद्वय में करे।।१०१-१०२।।

चक्रं शङ्खं गदां पद्मं कराग्रेष्वथ विन्यसेत्।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेत्पूर्वोक्तमण्डपे॥१०३॥
अरुणाब्जासनस्थस्य तार्क्ष्यस्योपरि संस्थितम्।
पूर्वोक्तरूपिणं देवं श्रीकरं लोकमोहनम्॥१०४॥
ध्यात्वैवं पूजयेदष्टलक्षं मन्त्री दशांशतः।
रक्ताम्बुजैः समिद्भिश्च बिल्वक्षीरिद्रुमोद्भवैः॥१०५॥
पयोऽन्नैः सर्पिषा हुत्वा प्रत्येकं सुसमाहितः।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटाः क्षीरिद्रुमाः स्मृताः॥१०६॥
पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः।
अङ्गावरणदिक्पालहेतिभिः सहितं विभुम्॥१०७॥
इत्थं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्पूर्ववच्चरेत्।
तारो हृद्भगवान् ङेन्तो वराहेति ततः परम्॥१०८॥
रूपाय भूर्भुवः स्वः स्याल्लोहितकामिका च ये।
भूपतित्वं च मे देहि ददापय शुचिप्रिया॥१०९॥
रामाग्निवर्णो मन्त्रोऽयं भार्गवोऽस्य मुनिर्मतः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवतादिवराहः समुदीरितः॥११०॥

तदनन्तर हस्ताग्रभाग में चक्र, शंख, गदा तथा पद्म का न्यास होगा। यह न्यास करके पूर्वोक्त

मण्डपान्तर्गत गरुड़ के ऊपर अरुण कमल आसन पर संस्थित पहले कहे गये रूप वाले देव लोकमोहन श्रीकर का ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक आठ लाख मन्त्र जपोपरान्त करके ८०००० होम कमल, विल्व, दुग्धयुक्त वृक्षों की काष्ठ समिध्, खीर तथा घृत से एकाग्र होकर करे। पीपल, गूलर, पाकड़ तथा वट को दुग्धयुक्त वृक्ष कहते हैं। मूलमन्त्र से संकल्पित मूर्त्ति की वैष्णव पीठ पर पूजा करे। (भगवान् की) उनकी पूजा अंगदेवगण, आवरण देवगण, दिक्पाल तथा उनके आयुधों के साथ करना चाहिये। इससे साधक मन्त्रसिद्ध होगा। वह मन्त्र प्रयोग पूर्ववत् करे। ३३ अक्षरों का मन्त्र है—"ॐ नमो भगवते वराहाय रूपाय भूर्भुवः स्वः स्यात्, भूपतित्व च मे देहि ददापय स्वाहा।" इस मन्त्र के ऋषि हैं भार्गव, अनुष्टुप् छन्द है तथा देवता वराह हैं।।१०३-११०।।

एकदंष्ट्राय हृदयं व्योमोल्काय शिरः स्मृतम्।
शिखा तेजोऽधिपतये विश्वरूपाय वर्म च॥१११॥
महादंष्ट्राय चास्त्रं स्यात्पञ्चाङ्गमिति कल्पयेत्। अथवा गिरिषट्सप्तबाणैर्वसुभिरक्षरैः॥११२॥
विभक्तैर्मन्त्रवर्यस्य पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत्। ततो ध्यायेदनेकार्कनिभमादिवराहकम्॥११३॥
आं ह्रीं स्वर्णनिभं जान्वोरधो नाभेः सितप्रभम्।
इष्टाभीतिगदाशङ्खचक्रशक्त्यसिखेटकान् ॥११४॥
दधतं च करैर्दंष्ट्राग्रलसद्धरणिं स्मरेत्। एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं सरसीरुहैः॥११५॥
मध्वक्तैर्जुहयात्पीठे पूर्वोक्ते वैष्णवे यजेत्।
मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य तस्यां सम्पूजयेद्विभुम्॥११६॥

एक दंष्ट्र हेतु हृदय, व्योमोल्क हेतु शिर, तेजोधिपति हेतु शिखा, विश्वरूप हेतु कवच (हुं) तथा महादंष्ट्र हेतु अस्त्राय (फट्) यह पंचांगन्यास है अथवा इस उत्तम मन्त्र के विभाग से अर्थात् ७, ६, ७, ५ तथा ८ अक्षर से पंचांग न्यास सम्पन्न करे। अब आदिवराह का ध्यान करना चाहिये। यथा—वे नाना सूर्यवत् दीप्यमान हैं। आं ह्रीं उनके चरण स्वर्णवत् हैं। नाभि एवं जानु का अधःभाग उज्वल है। उन्होंने हाथ में इष्ट, अभय, गदा, शंख, शक्ति, खड्ग, खेटक धारण किया है। उनके दांतों के अग्रभाग पर धरती शोभायमान है। इस ध्यान को करके एक लक्ष जप करे। तदनन्तर मधु लिप्त कमलों से दस हजार होम करना चाहिये। पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूर्त्ति कल्पना (स्थापना) मूलमन्त्र से करके भगवत् पूजन करे।।१११-११६।।

अङ्गावरणदिक्पालहेतियन्त्रप्रसिद्धये। जपादेवावनिं दद्याद्धनं धान्यं महीं श्रियम्॥११७॥
सिंहार्के सितपक्षस्याष्टम्यां गव्येषु पञ्चसु।
शिलां शुद्धां विनिक्षिप्य स्पृष्ट्वा तामयुतं जपेत्॥११८॥
उदङ्मुखस्ततो मन्त्री तां शिलां निखनेद्भुवि।
भूतप्रेताहिचौरादिकृतां बाधां निवारयेत्॥११९॥

तत्पश्चात् अंगदेवता, आवरणदेवता, दिक्पालगण की तथा उनके आयुध समूह की पूजा करके जब साधक मन्त्र जप करेगा, तभी से उसे भूमि, धन, धान्य, राज्यत्व तथा श्रीलाभ होता है। जब सूर्य सिंहस्थ हों, तब शुक्लाष्टमी के दिन शिला को पंचगव्य में प्रक्षिप्त करे। उस शिला का स्पर्श करते दस सहस्र जप करे।

जपान्त में साधक उत्तरमुख होकर वहां भूमि में शिला गाड़े। वहां उसी समय भूत, प्रेत, सर्प, चौर प्रभृति बाधा विलीन हो जाती है।।११७-११९।।

प्रातर्भृगुदिने साध्यभूतलान्मृदमाहरेत्। मन्त्रितां मूलमन्त्रेण विभजेत्तां त्रिधा पुनः।।१२०।।

चुल्ल्यामेकं समालिप्याप्यपरं पाकभाजने।
गोदुग्धे परमालोड्य शोधितांस्तण्डुलान् क्षिपेत्।।१२१।।
सम्यक् शुद्धे शुचिः केशे जपन्मन्त्रं पचेच्चरुम्।
अवतार्यचरुं पश्चाद्वह्नौ देयं यथाविधि।।१२२।।
सम्पूज्य धूपदीपाद्यैः पश्चादाज्यप्लुतं चरुम्।
जुहुयात्संस्कृते वह्नौ अष्टोत्तरशतं सुधीः।।१२३।।

साधक जहां साधना करता है, वहां से अगले दिन भूमि खनन करके कुछ मृत्तिका का ग्रहण करे। मूलमन्त्र जप करते मृत्तिका भागत्रय में विभक्त करके एक भाग चूल्हे पर, एक भाग पात्र के ऊपर लिप्त करे। द्वितीय भाग को पाक पात्र में गोदुग्ध तथा तण्डुल के साथ छोड़े। अब शुद्धता तथा पवित्रता के साथ मन्त्रजप करके चरुपाक करना चाहिये। जब चरु पक जाये तो उसे अग्नि पर से उतारकर सविधि उससे अग्नि में १०८ होम करे।।१२०-१२३।।

एवं प्रजुहुयान्मन्त्री कविवारेषु सप्तसु। विरोधो नश्यति क्षेत्रे शत्रुचौराद्युपद्रवाः।।१२४।।
भानूदयेप्यारवारे साध्यक्षेत्रान्मृदं पुनः। आदाय पूर्वविधना हविरापाद्य पूर्ववत्।।१२५।।
जुहुयादेधिते वह्नौ पूर्वसंख्याकमादरात्। एवं स सप्तारवारेषु जुहुयात्क्षेत्रसिद्धये।।१२६।।

जुहुयात्लक्षसंख्याकं गव्यैश्चैव सपायसैः।
अभीष्टभूम्याधिपत्यं लभते नात्र संशयः।।१२७।।

उद्यद्दोः परिघं दिव्यं सितदंष्ट्राग्रभूधरम्। स्वर्णाभं पार्थिवे पीते मण्डले सुसमाहितः।।१२८।।

ध्यात्वाप्नोति महीं रम्यां वराहस्य प्रसादतः।
वारुणे मण्डले ध्यायेद्वाराहं हिमसन्निभम्।।१२९।।
महोपद्रवशान्तिं स्यात्साधकस्य न संशयः।
वश्यार्थं च सदा ध्यायेद्ब्रह्म्याभं वह्निमण्डले।।१३०।।

ऐसा होम साधक लगातार सात शुक्रवार को करे। इससे वह विरोध रहित होगा। उस क्षेत्र में शत्रु, चोर एवं अन्य उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। मंगल के दिन साधक साधना स्थल की मृत्तिका लाये। पूर्वोक्त सभी क्रिया की तरह करते हुये हवन सामग्री पकाकर तदनुरूप प्रज्वलित अग्नि में १०८ होम करे। ऐसा जो साधक सात मंगल पर्यन्त अनुष्ठान करता है, उसे क्षेत्र सिद्धिलाभ होता है। गोघृत युक्त खीर की एक लक्ष आहुति देने से साधक अभीष्ट भूमि का स्वामी हो जायेगा। यह निःसंदिग्ध है। ध्यान—पीतवर्ण धरणी मण्डल पर अपनी ऊर्ध्वोत्थित भुजा में लौह परिघ लिये हुये तथा अपने दीर्घदन्त के अग्रभाग पर धरती धारण किये हुये, स्वर्ण

कान्ति वराह देव का ध्यान करे। एवंविध ध्यानतत्पर व्यक्ति सुसमाहित होकर ध्यान करे। वराहदेव की कृपा से वह उत्तम रम्य पृथिवी स्वामी बन जाता है। वारुण मण्डलस्थ हिमवत् कान्तियुक्त वराहदेव के ध्यान द्वारा महान् उपद्रव बाधा से साधक बच जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। वशीकरण कार्यार्थ अग्निमण्डल में अग्निवत् कान्तिमान् वराहदेव का ध्यान करे।।१२४-१३०।।

ध्यायेदेवं रिपूच्चाटे कृष्णाभं वायुमण्डले।
ह्यमण्डलगतं स्वच्छं वाराहं सर्वसिद्धिदम्॥१३१॥
शत्रुभूतग्रहक्ष्वेडामयपीडादिशान्तये। भृग्वर्धीशयुतं व्योमबिन्दुभूषितमस्तकम्॥१३२॥
एकाक्षरो वराहस्य मन्त्रः कल्पद्रुमोऽपरः।
पूजाद्यर्घ्यादिकं सर्वमस्यां पूर्वोक्तवच्चरेत्॥१३३॥

इन देवता का ध्यान रिपु उच्चाटनार्थ कृष्ण आभा वाले वायुमण्डल में करे। मण्डल से अलग स्थानस्थ स्वच्छ वर्ण वराहदेव सर्वसिद्धि प्रदायक हैं। इससे शत्रु-भूत ग्रह, युद्धादिजनित पीड़ा शान्त हो जाती है। "भृग्वर्धीशयुतं व्योम विन्दुभूषित मस्तकम्" यह एकाक्षर मन्त्र है। (यहां अज्ञतावश इसका मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। यह एकाक्षर वराहमन्त्र कल्पवृक्ष जैसा है। इस मन्त्र की पूजा अर्घ्य प्रभृति सब कुछ पूर्ववत् करे।।१३१-१३३।।

सवामकर्णानिद्रास्याद्वराहाय हृदन्तिमः। ताराद्यो वसुवर्णोऽयं सर्वैश्वर्यप्रदायकः॥१३४॥
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दो वाराहसंज्ञकः।
देवश्चन्द्रेन्द्वब्धिनेत्रैः सर्वेणाङ्गक्रिया मता॥१३५॥
ध्यानपूजाप्रयोगादि प्राग्वदस्यापि कल्पयेत्।
प्रणवादौ च ङेन्तं च भगवतीति पदं ततः।
धरणिद्वितयं पश्चाद्धरेर्द्वयमुदीरयेत्॥१३६॥
एकोनविंशत्यर्णाढ्यो मन्त्रो वह्निप्रियान्तिमः।
वराहोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री निवृदादिका॥१३७॥
देवता धरणी बीजं तारःशक्तिर्वसुप्रिया। रामवेदाग्निबाणाक्षिनेत्रार्णैरंगकल्पनम्॥१३८॥

अब सर्वेश्वर्य प्रदायक अष्टाक्षर वराहमन्त्र कहते हैं। वह मूल में "सवामकर्णानिद्रास्याद्वराहाय हृदन्तिमः, ताराद्यो" रूप से अंकित है। (इसका भी मन्त्रोद्धार संभव नहीं हो सका विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। इस अष्टाक्षर वराह मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है गायत्री, देवता हैं वराह। इसका अंगन्यास मन्त्र के १, १, ४, २ मन्त्राक्षर से होगा। इसका ध्यान-पूजा-प्रयोगादि पूर्ववत् कहे गये विधान से करे। आदि में प्रणव ॐ रखकर 'भगवत्यै' कहे। तब 'धरण्यै' कहकर हरये दो बार कहकर स्वाहा कहे। मन्त्रोद्धार होगा "ॐ भगवत्यै धरण्यै हरये हरये स्वाहा" यह १९ अक्षरात्मक मन्त्र है, जिसके ऋषि है वराह, निवृत् आदि के गायत्री छन्दः हैं। देवता है पृथिवी, शक्ति है स्वाहा। इसके ३, ४, ३, ५, दो एवं दो मन्त्राक्षर से अंगन्यास करे।।१३४-१३८।।

श्यामां चित्रविभूषाढ्यां पद्मस्थां तुङ्गसुस्तनीम्। नीलाम्बुजद्वयं शालिमञ्जरीं च शुकं करैः॥१३९॥

दधतीं चित्रवसनां धरां भगवतीं स्मरेत्।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं पायसेन तु॥१४०॥
साज्येन जुहुयान्मन्त्री विष्णोः पीठे समर्चयेत्।
मूर्ति सङ्कल्प्य मूलेन तस्यां वसुमतीं यजेत्॥१४१॥
अङ्गानि पूर्वमाराध्य भूवह्निजलमारुतान्।
दिक्पात्रेषु च सम्पूज्य कोणपत्रेषु तत्कलाः॥१४२॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्यानां तैश्च तत्कलाः। इन्द्राद्यानपि वज्रादीन्पूजयेत्तदनन्तरम्॥१४३॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः। धरणीं प्रभजन्नेवं पशुरत्नाम्बरादिभिः॥१४४॥
धरण्या वल्लभः स स्यात्सुखी जीवेच्छतं समाः।
त्रैलोक्यमोहनो मन्त्रो जगन्नाथस्य कीर्त्यते॥१४५॥

अब ध्यान कहते हैं—युवा, नानाभूषण भूषिता, कमलासीना, उन्नत सुन्दर स्तनों वाली, हाथों में नीलकमलद्वय, धान की बाली तथा शुक धारण करने वाली, चित्र-विचित्र वर्ण के वस्त्रों से युक्त, भगवती धरा का स्मरण करे। यह ध्यान करके ऊपर वर्णित धरणी मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर दस हजार होम घृतयुक्त खीर से करे। विष्णु पीठ पर धरणी की पूजा करे। मूलमन्त्र से विष्णु पीठ पर मूर्त्ति कल्पना करके वहां वसुमती धरती की पूजा करे। पहले अंग देवताओं की आराधना के अनन्तर दिक् में भूमि, तेजः, जल, वायु की विदिशाओं (कोणों) में कलाओं की पूजा करे। इनकी कलायें हैं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा तथा विद्या। तत्पश्चादि इन्द्रादि देवता तथा उनके आयुधों की पूजा करके मन्त्रसिद्ध होता है। साधक सिद्धकाम हो जाता है। जो साधक पशु, रत्न, वस्त्रादि से धरणी को प्रसन्न करता है, वह पृथिवी स्वामी होकर सुखपूर्वक शतवर्ष जीवित रहता है। अब जगन्नाथ का त्रैलोक्यमोहन मन्त्र कहता हूं।।१३९-१४५।।

तारः कामो रमा बीजं हृदन्ते पुरुषोत्तमः।
श्रीकण्ठः प्रतिरूपान्ते लक्ष्मीति च निवासि च॥१४६॥
सकलान्ते जगत्पश्चात्क्षोभणेति पदं वदेत्। सर्वस्त्रीहृदयान्ते तु विदारणपदं वदेत्॥१४७॥
ततस्त्रिभुवनान्तं तु मदोन्मादकरेति च। सुरासुरान्ते मनुजसुन्दरीजनवर्णतः॥१४८॥
मनांसि तापयद्वन्द्वं दीपयद्वितयं ततः। शोषयद्वितयं पश्चान्मारयद्वितयं ततः॥१४९॥
स्तम्भयद्वितयं भूयो मोहयद्वितयं ततः। द्रावयद्वितयं तावदाकर्षययुगं ततः॥१५०॥
समस्तपरमो येन सुभगेन च संयुतम्। सर्वसौभाग्यशब्दान्ते करसर्वपदं वदेत्॥१५१॥
कामप्रदादमुन्ब्रह्मासेन्दुर्हनुयुगं ततः। चक्रेण गदया पश्चात्खड्गेन तदनन्तरम्॥१५२॥
सर्वबाणैर्भेदियुगं पाशेनान्ते कटद्वयम्। अङ्कुशेनेति सम्प्रोच्य ताडयद्वितयं पुनः॥१५३॥
कुरुशब्दद्वयमथो किं तिष्ठसि पदं वदेत्। तावद्यावत्पदस्यान्ते समाहितमनन्तरम्।
ततो मे सिद्धिराभास्यभवमन्ते च वर्म फट्॥१५४॥

यह मन्त्र है—"ॐ क्लीं श्रीं पुरुषोत्तमाय नमः।" अब दो सौ अक्षरों का महामन्त्र कहते हैं—श्रीकण्ठप्रतिरूप लक्ष्मीनिवास सकल जगत्क्षोभण, सर्वस्त्रीहृदयविदारण, त्रिभुवनमदोन्मादकर, सुरासुर, मनुजसुन्दरी वर्णतः मनांसि तापय-तापय, शोषय-शोषय, मारय-मारय, स्तम्भय-स्तम्भय, भूयो मोहय-मोहय, द्रावय-द्रावय, आकर्षय-आकर्षय, सर्वसौभाग्यकर, कामप्रद, अदमुं ब्रह्मा हनुं-हनुं, चक्रेण, गदया, खड्गेन, सर्वबाणै भेदय-भेदय, पाशेज, अंकुशेन, कट-कट, ताड़य-ताड़य कुरु-कुरु, किं तिष्ठति तावत् यावत् समाहितम् में सिद्धिराभास्यभवम् हुं फट्।।१४६-१५४।।

हृदन्तोऽयं महामन्त्रो द्विशतार्णः समीरितः। जैमिनिर्मुनिरस्योक्तश्छन्दश्चामितमीरितम्॥१५५॥

देवता जगतां मोहे जगन्नाथः प्रकीर्तितः।
कामो बीजं रमा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये॥१५६॥

यह २०० वर्णों का महामन्त्र कहा गया। इसके ऋषि है जैमिनि, छन्दः है अमित, देवता हैं जगन्नाथ, बीज है क्लीं, शक्ति है श्रीं, समस्त कामना लाभार्थ इसका प्रयोग होता है।।१५५-१५६।।

पुरुषोत्तमत्रिभुवनोन्मादकान्तेऽग्निवर्म च। हृदयं कीर्तितं पश्चाज्जगत्क्षोभणशब्दतः॥१५७॥

लक्ष्मीदयितवर्मान्तः शिरः प्रोक्तं शिखा पुनः।
मन्मथो तमशब्दान्ते मङ्गजे पदमीरयेत्॥१५८॥

कामदायेति हुं प्रोच्य न्यसेद्वर्म ततः परम्। परमान्ते भृगुकर्णाभ्यां च सर्वं पदं ततः॥१५९॥
सौभाग्यकरवर्मान्ते कवचं परिकीर्तितम्। सुरासुरान्ते मनुजसुन्दरीति पदं वदेत्॥१६०॥
हृदयान्ते विदा पश्चाद्रणसर्वपदं वदेत्। ततः प्रहरणधरसर्वकामुकतत्पदम्॥१६१॥
हनयुग्मं च हृदयं बन्धनानि ततो वदेत्। आकर्षयद्वयं पश्चान्महाबलप्रदं ततः॥१६२॥
वर्म चास्त्रं समाख्यातं नेत्रं स्यात्तदनन्तरम्। वदेत्त्रिभुवनं पश्चाच्चर सर्वजनेति च॥१६३॥
मनांसि हरयुग्मान्ते दारयद्वितयं च मे। वशमानय वर्मान्ते नेत्रमन्त्रः समीरितः॥१६४॥

हृदय मन्त्र है—"पुरुषोत्तम त्रिभुवनोन्मादक अग्नि हुं यह हृदय मन्त्र है। जगत्क्षोभण लक्ष्मीदयित हुं। शिरोमन्त्र है। "मन्मथो तम शब्दान्ते मंगजे पदमीरयेत् कामदायेति हुं प्रोच्य न्यसेद्वर्म ततः परम् परमान्ते भृगु कर्णाभ्यां च सर्व पदं ततः। सौभाग्यकर वर्मान्ते कवचं परिकीर्त्तितम।

(यह मन्त्र संकेत है। अज्ञानता के कारण मन्त्रोद्धार संभव नहीं है। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।)

इसके अन्त में "सुरासुरमनुजसुन्दरीति हृदयविद् रणसर्वप्रहरणधरसर्वकामुक हन हन हृददं बन्धानि आकर्षय महाबला हुं" यह अस्त्र मन्त्र है। अब नेत्र मन्त्र कहते हैं—"त्रिभवन चर, सर्वजन्मनांसि, हर-हर दारय-दारय वशमानय हुं"—नेत्र मन्त्र हैं।।१५७-१६४।।

षडङ्गमन्त्रास्ताराद्याः फट्नमोन्ताः प्रकीर्तिताः।
तारस्त्रैलोक्यशब्दान्ते मोहनेति पदं वदेत्॥१६५॥

हृषीकेशेति सम्प्रोच्याप्रतिरूपादिशब्दतः। मन्मथानन्तरं सर्वस्त्रीणां हृदयमीरयेत्॥१६६॥

आकर्षणपदागच्छेदागच्छहृदयान्तिमः। अनेन व्यापकं कृत्वा जगन्नाथं स्मरेत् सुधीः॥१६७॥

इसके आदि में प्रणव तथा अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से षडङ्ग मन्त्र होता है। अब "ॐ त्रैलोक्य मोहन हृषीकेश अप्रतिमरूपमन्मथ सर्वस्त्रीहृदय माकर्षय गच्छेदागच्छ नमः फट्। इससे सुधीजन जगन्नाथ स्मरण करे॥१६५-१६७॥

क्षीराब्धेस्तु तटे रम्यं सुरद्रुमलाञ्छितम्।
उद्यदर्काभुजालाभं स्वधाम्नोज्वालदिङ्मुखम्॥१६८॥
प्रसूनावलिसौरभ्यमाद्यन्मधुकरारवम्। दिव्यवातोच्चलत्कञ्जपरागोद्धूलिताम्बरम्॥१६९॥
स्वर्वधूगीतमाधुर्याभिराम चिन्तयेद्वनम्। तदन्तर्मणिसम्पत्तिस्फुरत्तोरणमण्डपे॥१७०॥
विलसन्मौक्तिकौद्दामदामराजद्वितानके। मणिवेद्यादिवियत्किरीटाग्रसमर्चिते॥१७१॥
दिव्यसिंहासने विप्र समासीनं स्मरेद्विभुम्।
शङ्खपाशेषु चापानि मुसलं नन्दकं गदाम्॥१७२॥
अङ्कुशं दधतं दोर्भिः श्लिष्टे कमलयोरसि।
पश्यत्त्यङ्कस्थयाम्भोजश्रिया रागोल्लसद्दृशा॥१७३॥

अब ध्यान कहते हैं—क्षीरसागर के तट पर स्थित रम्य वन में देववृक्ष तथा कल्पलतायें सर्वत्र प्रसारित हैं। वहां उगते हुये सूर्य की किरणें अपनी ज्वालाओं से दिशाओं को व्याप्त करती जा रही हैं। वहां पुष्पों के सौरभ से आकृष्ट एवं उन्मत्त भ्रमरों का गुंजन गुंजारित है। वहां बह रही दिव्य वायु के झकोरों से कमलपुष्प हिल रहे हैं तथा इस कारण उन कमलों के पराग से आकाश धूलिमय हो गया है। वहां देववधुगण अपने अभिराम गीतों की मधुरता से उस वन को मनोरम करती जा रही हैं। ऐसी मनोरम वनभूमि के बीच चमक रही मोतियों की माला से शोभित वितान से युक्त तथा मणियों के वन्दनवार युक्त मण्डप में मणिजटित देव मुकुट के अग्रभाग से पूजित दिव्य सिंहासनासीन भगवान् जगन्नाथ का ध्यान करे। हे विप्र! उन्होंने हाथों में शंख, पाश, धनुष, बाण, मूसल, नन्दक तलवार तथा कौमोदकी गदा एवं अंकुश धारण किया है (वे अष्टभुज हैं)। उनके वक्षस्थल का आलिंगन भगवती लक्ष्मी के द्वारा हो रहा है। उनके अंक में स्थित कमल की माला की श्री से उनके नेत्र रक्तवर्ण हो गये हैं। उससे वे देख रहे हैं॥१६८-१७३॥

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः।
कुण्डेऽर्द्धचन्द्रे पद्मैर्वा जातीपुष्पैश्च होमयेत्॥१७४॥
यागभूमिं तथात्मानं यागोपकरणं तथा।
पूजयिष्यन् जगन्नाथं गायत्र्या प्रोक्षयेद्बुधः॥१७५॥

इस प्रकार ध्यानोपरान्त एक लक्ष मन्त्र जप करके दस हजार होम कमल एवं ज्वाती पुष्पों द्वारा अर्धचन्द्राकृति कुण्ड में करे। तदनन्तर सुधी साधक जगन्नाथ की पूजा हेतु यागभूमि, स्वदेह, याग के उपकरण की शुद्धि के लिये गायत्री मन्त्रोच्चारण के साथ उनके ऊपर जल छिड़के॥१७४-१७५॥

त्रैलोक्यमोहनायान्ते विद्महे पदमीरयेत्। स्मराय धीमहीत्युक्त्वा तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥१७६॥

गायत्र्येषा समाख्याता सर्वशुद्धिकरी परा।
कल्पेदासनं पीठे पूर्वोक्ते वैष्णवे सुधीः॥१७७॥
पक्षिराजाय ठद्वन्द्वं पीठमन्त्रोऽयमीरितः। मूर्तिं सङ्कल्पमूलेन तस्यामावाहयेदतः॥१७८॥
व्यापकन्यासमन्त्रेण ततः सम्पूज्य भक्तितः।
श्रीवत्सहृदयं तेन श्रीवत्सं स्तनयोर्यजेत्॥१७९॥
कौस्तुभाय हृदन्तेन यजेद्वक्षसि कौस्तुभम्। पूजयेद्वनमालायै हृदन्तेन गले च ताम्॥१८०॥

इन सबको शुद्ध करने का मन्त्र है—"त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। यह श्रेष्ठ शुद्धिमन्त्र गायत्री है। सुधी व्यक्ति अब पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर आसन स्थापित करे। पीठमन्त्र है "पक्षिराजाय स्वाहा।" अब वहां मूलमन्त्र से मूर्त्ति स्थापना करके विष्णु का आवाहन करे। इसके बाद व्यापक न्यास मन्त्र से भक्तिभावेन पूजन सम्पन्न करके श्रीवत्सायनमः मन्त्र द्वारा प्रभु के स्तनदेश पर स्थित श्रीवत्स चिह्न की पूजा करके वक्ष पर "कौत्सुभाय नमः" द्वारा कौस्तुभ मणि की पूजा करनी चाहिये। कण्ठस्थ वनमाला की पूजा "वनमालायै नमः" से करनी चाहिये।।१७६-१८०।।

कर्णिकायां ततोऽभ्यर्च्येद्विधिवच्चाङ्गदेवताः। दलेषु पूजयेत्पश्चाल्लक्ष्म्याद्यावृतचामराः॥१८१॥
बन्धूककुसुमाभासो मुक्ताहारलसत्कुचाः।
उत्फुल्लाम्भोजनयना मदविभ्रममन्थराः॥१८२॥
लक्ष्मी सरस्वती चैव धृतिः प्रीतिस्ततः परम्।
कान्तिः शान्तिस्तुष्टिपुष्टिबीजाद्याङेनमोन्तिकाः॥१८३॥
भृगुः खड्गाशचन्द्राढ्यो देव्या बीजमुदाहृतम्। ह्रस्वत्रयक्लीबसर्वरहितस्वरसंयुतम्॥१८४॥
देव्या बीजं क्रमादासामादौ च विनियोजयेत्।
दलाग्रेषु यजेच्छङ्खं शार्ङ्गं चक्रमसिं गदाम्॥१८५॥
अङ्कुशं मुसलं पाशं स्वमुद्रामनुभिः पृथक्।
महाजलचरायान्ते वर्मास्त्रं वह्निवल्लभा॥१८६॥
पाञ्चजन्या प्रताराद्यो नमोन्तः शङ्खपूजने।
शार्ङ्गाय संशयान्ते च वर्मास्त्रं वह्निवल्लभा॥१८७॥
शार्ङ्गाय हृदयं मन्त्रो महाद्यः शार्ङ्गपूजने। सुदर्शनमहान्ते तु चक्रराजपदं वदेत्॥१८८॥
हययुग्मं सर्वदुष्टभयमन्ते कुरुद्वयम्। छिन्धिद्वयं ततः पश्चाद्विदारययुगं ततः॥१८९॥
परमन्त्रान्ग्रसद्वन्द्वं भक्षयद्वितयं पुनः। भूतानि त्रासयद्वन्द्वं वर्मफड्वह्निसुन्दरी॥१९०॥
सुदर्शनाय हृदयं प्रोक्तश्चक्रार्चने मनुः। महाखड्गतीक्ष्णपदाच्छिवियुग्मं समीरयेत्॥१९१॥
हुं फट् स्वाहा च खड्गाय नमः खड्गार्चने मनुः।
महाकौमोदकीत्यन्ते वदेच्चैव महाबले॥१९२॥

सर्वासुरान्तके पश्चात्प्रसीदयुगलेति। वर्मास्त्रवह्निजायान्तकौमोदकि हृदन्तिमः॥१९३॥
कोमोदक्यर्चने प्रोक्तो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।
महाङ्कुशपदात्कुट्टयुग्मं हुंफट्वसुप्रिया॥१९४॥
अङ्कुशाय नमः प्रोक्तो मन्त्रश्चैवाङ्कुशार्चने। संवर्तकमहान्ते तु मुसलेति पदं वदेत्॥१९५॥
योधयद्वितयं वर्म फडन्ते वह्निसुन्दरी। मुसलाय नमः प्रोक्तो मन्त्रो मुसलपूजने॥१९६॥
महापाशपदाद्बन्धद्वयमाकर्षयद्वयम्। हुं फट् स्वाहा च पाशाय नमः पाशार्चने मनुः॥१९७॥
ताराद्या मनवो ह्येते ततः शक्रादिकान्यजेत्॥१९८॥

कर्णिका पर सविधि अंगदेवतागण की पूजा करे। दलों पर चमरधारिणी लक्ष्मी प्रभृति देवीगण की पूजा करे। ये देवीगण बन्धूक पुष्प के समान वर्ण एवं कान्ति वाली हैं। उनका स्तन प्रदेश मुक्तामालाओं से शोभायमान है। इनके नेत्र खिले कमल के समान तथा गति मदविभ्रमता के कारण मन्थर है। ये देवियां हैं लक्ष्मी, सरस्वती, धृतिः, प्रीति, कान्ति, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि। इनके नामों के आदि में बीजमन्त्र भी लगाये। इनके नाम को चतुर्थी विभक्तियुक्त कहे। इन देवीगण का बीज मन्त्र है—"भृगु खड्गाशचन्द्राढ्यो" (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। ह्रस्व त्रय, क्लीवरहित, स्वरसंयुत, देवी बीज क्रमशः योजित करे। (यहां भी मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। दलाग्र पर शंख, शार्ङ्गधनुष, चक्र, गदा, अंकुश, मूसल, पाश का पूजन इनके मुद्रा मन्त्र से पृथक्-पृथक् करना चाहिये। "महाजलचराय हुं फट् स्वाहा, ॐ पाञ्चजन्याय नमः से शंख पूजा, शार्ङ्गाय संशयाम् हुं फट् स्वाहा तथा महाशार्ङ्गाय नमः से धनुष की पूजा करे। चक्रपूजार्थ "महासुदर्शन चक्रराज हययुग्मं कुरु कुरु सर्वदुष्टभयं छिन्दि छिन्दि विदारय विदारय परमंत्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हुं फट् स्वाहा, सुदर्शनाय नमः।" यह कहे। खड्ग पूजनार्थ "महाखड्ग तीक्ष्ण शिवियुग्माय हुं फट् स्वाहा, खड्गाय नमः। गदापूजनार्थ "महाकौमोदकी महाबले सर्वासुरान्तके प्रसीद-प्रसीद हुं फट् स्वाहा। कौमोदक्यै नमः। यह मन्त्र सर्वार्थ साधक है, जो कौमोदत्री गदार्चनार्थ है। महांकुश पूजार्थ मन्त्र है—महांकुशकुट्ट कुट्ट हुं फट् स्वाहा। अंकुशायनमः। मूसल पूजार्थ मन्त्र है। "संवर्त्तक महामुसल योधय-योधय हुं फट् स्वाहा।" मुसलाय नमः। पाशपूजार्थ मन्त्र है—"महापाश बन्ध-बन्ध आकर्षय-आकर्षय हुं फट् स्वाहा। सभी मन्त्रों के प्रारंभ में ॐ अवश्य लगाये। तब इन्द्रादि पूजा करे।।१८१-१९८।।

वज्राद्यानपि सम्पूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
मासमात्रं तु कुसुमैः पूजयित्वा हयारिजैः॥१९९॥
कुमुदैर्वा प्रजुहुयादष्टोत्तरसहस्त्रकम्। मासमात्रेण वश्यास्स्युस्तस्य सर्वे नृपोत्तमाः॥२००॥
यस्य नाम युतं मन्त्रं जपेदयुतसंख्यया। स भवेद्दासवत्सद्यो मन्त्रस्यास्य प्रभावतः॥२०१॥
बहुना किमिहोक्तेन मनुनानेन साधकः।
साधयेत्सकलान्कामान्विष्णुतुल्यो न संशयः॥२०२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

तब उनके वज्रादि आयुधों की पूजा सम्पन्न करने वाला सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है। एक मास पर्यन्त कुसुमों से पूजा करे। तब १००८ हवन करे। १ मास साधक ऐसा करे। राजा तक वशीभूत हो जाते हैं। जिसका नाम मन्त्र से युक्त करके १०००० जप साधक करेगा, वह मन्त्र प्रभाव से साधक का दास तुल्य हो जायेगा। किम्बहुना, इस मन्त्र प्रभाव से साधक भगवान् विष्णु से समस्त मनोरथों की प्राप्ति हो जाती है। यह निःसंदिग्ध है।।१९९-२०२।।

।।७०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

नृसिंह मन्त्र की उपासना का वर्णन, नृसिंह गायत्री आदि का वर्णन

सनत्कुमार उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दिव्यान्नरहनेर्मनून्। यान्समाराध्य ब्रह्माद्याश्चक्रुः सृष्ट्यादि कर्म वै।।१।।
संवर्तकश्चन्द्रमौलिर्मनुवह्निविभूषितः। एकाक्षरः स्मृतो मन्त्रो भजतां सुरपादपः।।२।।
मुनिरत्रिश्च जगती छन्दो बुद्धिमतां वर। देवता नृहरिः प्रोक्तो विनियोगोऽखिलाप्तये।।३।।
क्षं बीजं शक्तिरी प्रोक्ता षड्दीर्घेण षडङ्गकम्। अर्केन्दुवह्निनयनं शरदिन्दुरुचं करैः।।४।।
धनुश्चक्राभयवरान्दधतं नृहरिं स्मरेत्। लक्षं जपस्तद्दशांशहोमश्च घृतपायसैः।।५।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! मैं नरहरि के दिव्य मन्त्रों को कहता हूं। उसकी आराधना से ब्रह्मादि देवताओं ने सृष्टि आदि कर्म सम्पन्न किया था। संवर्त्तक, चन्द्रमौलि को अग्नि विभूषित करे अर्थात् "क्षौं" यह एकाक्षर मन्त्र है, जो जपार्थी हेतु कल्पवृक्ष है। हे बुद्धिमानों में प्रवर! इस मन्त्र के देवता हैं नृहरि, मुनि हैं अत्रि, छन्दः है जगती, सब कुछ की प्राप्ति हेतु इसका विनियोग होता है। इसका बीज है 'क्ष' ई शक्ति है। इसका षडङ्ग है षड्दीर्घ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः से षडङ्ग बनता है। ध्यान—सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि रूप नेत्रयुक्त, शरदचन्द्रवत् कांन्ति सम्पन्न, धनुष, चक्र, गदाधारी नृहरि का चिन्तन करे। तदनन्तर एकाक्षरमन्त्र का एक लाख जप करे। जपान्त में दस हजार होम खीर तथा घृत मिलाकर करे।।१-५।।

यजेत्पीठे वैष्णवे तु केसरेष्वङ्गपूजनम्। खगेश शङ्करं शेषं शतानन्दं दिगालिषु।।६।।
श्रियं ह्रियं धृतिं पुष्टिं कोणपत्रेषु पूजयेत्। दन्तच्छदेषु नृहरींस्तावतः पूजयेत्क्रमात्।।७।।
कृष्णो रुद्रो महाघोरो भीमो भीषण उज्ज्वलः।
करालो विकरालश्च दैत्यान्तो मधुसूदनः।।८।।

रक्ताक्षः पिङ्गलाक्षश्चाञ्जनो दीप्तरुचिस्तथा। सुघोरकश्च सुहनुर्विश्वको राक्षसान्तकः॥९॥
विशालको धूम्रकेशे हयग्रीवो घनस्वनः। मेघवर्णः कुम्भकर्णः कृतान्ततीव्रतेजसौ॥१०॥
अग्निवर्णो महोग्रश्च ततो विश्वविभूषणः। विघ्नक्षमो महासेनः सिंहा द्वात्रिंशदीरिताः॥११॥

यह पूजन वैष्णव पीठ पर करे। अंगदेवगण की पूजा केशरों पर होगी। खगेश, शंकर, शेष शतानन्द की पूजा दिशाओं तथा विदिशाओं में श्री, ह्री, धृति तथा पुष्टि की पूजा की जाये। दन्तछन्दों में ३२ नृहरियों की आराधना करे। यथा—कृष्ण, रुद्र, महाघोर, भीम, भीषण, उज्वल, कराल, विकराल, दैत्यान्त, मधुसूदन, रक्ताक्ष, पिंगलाक्ष, अंजन, दीप्तरुचि, सुघोरक, सुहनु, विश्वक्, राक्षसान्तक, विशालक, धूम्रकेश, हयग्रीव, घनस्वन, मेघवर्ण, कुंभकर्ण, कृतान्त, तीव्रतेजा, अग्निवर्ण, महोग्र, विश्वविभूषण, विघ्नक्षम, महासेन तथा सिंह।।६-११।।

तद्बहिः प्रार्चयेद्विद्वाँल्लोकपालान्सहेतिकान्।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदखिलेप्सितान्॥१२॥

उसके बाहर मन्त्रज्ञसाधक लोकपालों की पूजा सांगोपांग करे। इस प्रकार से मन्त्रसिद्ध होकर साधक समस्त वांछितार्थ को प्राप्त कर लेता है।।१२।।

विष्णुः प्रद्युम्नयुक् शार्ङ्गी साग्निर्वीरं महांस्ततः।
विष्णुं ज्वलन्तं भृग्वीशो जलं पद्मासनं ततः॥१३॥
हरिस्तु वासुदेवाय वैकुण्ठो विष्णुसंयुतः। गदी सेन्दुनृसिंहं च भीषणं भद्रमेव च॥१४॥
मृत्युमृत्युं ततः शौरिर्भानोर्नारायणान्वितः।
नृहरेर्द्वाविंशदर्णोऽयं मन्त्रः साम्राज्यदायकः॥१५॥
ब्रह्मा मुनिस्तु गायत्री छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्। देवता नृहरिश्चास्य सर्वेष्टफलदायकः॥१६॥
हं बीजं इं तथा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये।
वेदैश्चतुर्भिर्वसुभिःषड्भिः षड्भिर्युगाक्षरैः॥१७॥
षडङ्गानि विधायाथ मूर्ध्नि भाले च नेत्रयोः।
मुखबाह्वंघ्रिसन्ध्यग्रेष्वथ कुक्षौ तथा हृदि॥१८॥
गले पार्श्वद्वये पृष्ठे ककुद्यर्णान्मनूद्भवान्। प्रणवान्तरितान् कृत्वा न्यसेत्साधकसत्तमः॥१९॥

श्लोक १३ से साढ़े चौदह तक २२ अक्षरात्मक नृसिंह मन्त्र हैं। (यह मूल में है अनुवाद अनावश्यक है)। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा हैं। छन्दः है गायत्री अनुष्टुप्। देवता है नृहरि। यह सर्वाभीष्टप्रद मन्त्र है। इसकी शक्ति है इं तथा हं बीज है। मन्त्रज्ञ साधक, ४, ४, ८, ८, ६, ६ तथा ४ कुल ३२ अक्षर से षडंगन्यास करे। तब साधकसत्तम मस्तक, भाल, नेत्र, मुख, बाहु, अंध्रि, संधि, कुक्षि, हृदय, गला, पार्श्वद्वय, पीठ, ककुद पर मन्त्रवर्ण को ॐ से पुटित करके न्यास करे।।१३-१९।।

नृसिंहसान्निध्यकरो न्यासो दशविधो यथा। करांघ्रष्टाद्यङ्गुलीषु पृथगाद्यन्तपर्वणोः॥२०॥

सर्वाङ्गुलीषु विन्यस्यावशिष्टं तलयोर्न्यसेत्।
शिरोललाटे भ्रूमध्ये नेत्रयोः कर्णयोस्तथा॥२१॥
कपोलकर्णमूले च चिबुकोर्द्ध्वाधरोष्ठके। कण्ठे घोणे च भुजयोर्हृत्तनौ नाभिमण्डले॥२२॥
दक्षान्यदोस्तले कट्यां मेढ्रोर्वोर्जानुजङ्घयोः।
गुल्फे पादकराङ्गुल्योः सर्वसन्धिषु रोमसु॥२३॥
रक्तास्थिमज्जासु तनौ न्यसेद्वर्णान्विचक्षणः।
वर्णान्पदे गुल्फजानुकटिनाभिहृदि स्थले॥२४॥
बाह्वोः कण्ठे च चिबुके चौष्ठे गण्डे प्रविन्यसेत्।
कर्णयोर्वदने नासापुटे नेत्रे च मूर्द्धनि॥२५॥
पदानि तु मुखे मूर्ध्नि नसि चक्षुसि कर्णयोः।
आस्ये च हृदये नाभौ पादान्सर्वाङ्गके न्यसेत्॥२६॥

दसविध न्यास से नृसिंह का सामीप्य लाभ होता है। हाथ, पैर आदि अंग, उंगली, उंगली के आदि तथा अंतिम पोर में मन्त्राक्षर न्यासोपरान्त शेष अक्षर का न्यास उभय हथेली पर करे। बुद्धिमान् मन्त्रज्ञ साधक शिर, ललाट, भ्रूमध्य, नेत्र, कर्ण, कपोल, कर्णमूल, चिबुल अधर, ओष्ठ, कण्ठ, नासिकापुट, भुजाद्वय, हृदय, तनु, नाभिमण्डल, पदतल, कटि, लिंग, जानु, जंघा, गुल्फ, हाथ-पैर की उंगली, सर्वसन्धि, रोम, रक्त, अस्थि, मज्जा में वर्णों का न्यास बुद्धिमान् व्यक्ति करे। पैर, गुल्फ, जानु, कटि, नाभि, हृदय, बाहु, कण्ठ, चिबुक, ओठ, कपोल, कर्ण, चेहरा, नासिका पुट, नेत्र, मस्तक पर वर्ण का न्यास करे। मुख, मस्तक, नासा, नेत्र, कर्ण, हृदय, नाभि तथा सर्वांग में पद न्यास करना चाहिये।।२०-२६।।

अर्द्धद्वयं न्यसेन्मूर्ध्नि आहृत्पादात्तदङ्गकम्। उग्रादीनि पदानीह मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥२७॥
इत्यन्तान्यास्यकघ्राणचक्षुः श्रोत्रेषु पक्ष्मसु।
हृदि नाभौ च कट्यादिपादान्त नवसु न्यसेत्॥२८॥
वीराद्यानपि तान्येव यथापूर्वं प्रविन्यसेत्। नृसिंहाद्यानि तान्येव पूर्ववन्द्विन्यसेत्सुधीः॥२९॥
चन्द्राग्निवेदषड्रामनेत्रदिग्बाहुभूमितान्। विभक्तान्मन्त्रवर्णांश्च क्रमात्स्थानेषु विन्यसेत्॥३०॥
मूले मूलाच्च नाभ्यन्तं नाभ्यादि हृदयावधि।
हृदयाद्भ्रूयुगान्तं तु नेत्रत्रये च मस्तके॥३१॥
बाह्वोरङ्गुलिषु घ्राणे मूर्द्धादि चरणावधि। विन्यसेन्नामतो धीमान्हरिन्यासोऽयमीरितः॥३२॥

आहृत् तथा पादात् का न्यास मूर्द्धा पर करके "उग्रादीनि पदानीह मृत्यु मृत्यु नमाभ्यहम्" पदों का न्यास मुख, नासा, नेत्र, कान, पक्ष्म, हृदय, नाभि-कटि तथा चरण पर करे, जो ९ अंग हैं। विद्वान् साधक "वीर" तथा "नृसिंह" आदि पदों का पूर्ववत् न्यास करके एक वर्ण का चरण मूल में, तीन वर्ण का मूल से नाभि तक, चार वर्ण का नाभि से हृदय तक, छः वर्ण का हृदय से भ्रू तक, तीन वर्ण का त्रिनेत्र पर, दो वर्ण का मस्तक

पर, दश वर्ण का भुजा पर, दो वर्ण का अंगुलि पर, एक अर्थात् ३२ मन्त्र वर्ण का न्यास प्राण तथा शिर से चरण तक प्रत्येक अंग का नाम लेते हुये करे। इस न्यास का हरिन्यास है।।२७-३२।।

न्यासस्यास्य तु माहात्म्यं जानात्येको हरिः स्वयम्।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेच्च नृहरिं हृदि।।३३।।
गलासक्तलसद्बाहु स्पृष्टकेशोऽब्जचक्रधृक्।
नखाग्रभिन्नदैत्येशो ज्वालामालासमन्वितः।।३४।।
दीप्तजिह्वस्त्रिनयनो दंष्ट्रोग्रं वदनं वहन्। नृसिंहोऽस्मान्सदा पातु स्थलाम्बुगगनोपगः।।३५।।

केवल श्रीहरि ही न्यास माहात्म्य के ज्ञाता हैं। इस विधि से न्यासोपरान्त हृदय में नृहरि का ध्यान करे। यथा—ये नृसिंह प्रभु अपनी भुजाओं को गले में लिपटाकर केश स्पर्श कर रहे हैं। इनके हाथ में कमल एवं चक्र है। इन्होंने नखाग्र से दैत्येश को भग्न किया है। ये ज्वालामालायुक्त हैं। ये दीप्त जिह्वा वाले, त्रिनेत्र, उग्रदंष्ट्रा का मुख में वहन कर रहे हैं। आप नृसिंह देव जो स्थल-जल-नभ सर्वत्र व्यापक हैं। सदा मेरी रक्षा करें।।३३-३५।।

ध्यात्वैवं दर्शयेन्मुद्रां नृसिंहस्य महात्मनः।
जानुमध्यगतौ कृत्वा चिबुकोष्ठौ समावुभौ।।३६।।
हस्तौ च भूमिसंलग्नौ कम्पमानः पुनः पुनः।
मुखं विजृम्भितं कृत्वा लेलिहानां च जिह्विकाम्।।३७।।

इस प्रकार ध्यानोपरान्त मुद्रा प्रदर्शन करे। दोनों जानु के मध्य मुख करके चिबुक एवं ओष्ठ सीधा रखकर हाथों को भूमि पर रखे। शरीर कम्पित करते हुये मुख व्यादन करके (फैलाकर) जीभ को लपलपाना चाहिये।।३६-३७।।

एषा मुद्रा नारसिंही प्रधानेति प्रकीर्तिता। वामस्याङ्गुष्ठतो बद्ध्वा कनिष्ठामङ्गुलत्रयम्।।३८।।
त्रिशूलवत् सम्मुखोर्द्ध्वे कुर्यान्मुद्रां नृसिंहगाम्।
अङ्गुष्ठाभ्यां च करयोस्तथाऽऽक्रम्य कनिष्ठके।।३९।।
अधेमुखाभिः शिष्टाभिः शेषाभिर्नृहरौ तः।
हस्तावधोमुखौ कृत्वा नाभिदेशे प्रसार्य च।।४०।।
तर्जनीभ्यां नयेत्स्कन्धौ प्रोक्ता चान्त्रणमुद्रिका।
हस्तावूर्ध्वमुखौ कृत्वा तले संयोज्य मध्यमे।।४१।।
अनामायां तु वामायां दक्षिणां तु विनिक्षिपेत्।
तर्जन्यौ पृष्ठतो लग्नौ अङ्गुष्ठौ तर्जनीश्रितौ।।४२।।
चक्रमुद्रा भवेदेषा नृहरेः सन्निधौ मता। चक्रमुद्रा तथा कृत्वा तर्जनीभ्यां तु मध्यमे।।४३।।
पीडयेद्दंष्ट्रमुद्रैषा सर्वपापप्रणाशिनी। एता मुद्रा नृसिंहस्य सर्वमन्त्रेषु सम्मताः।।४४।।

यह प्रधान नारसिंही मुद्रा है। वाम हाथ के अंगुष्ठ से कनिष्ठा आदि उंगलित्रय को परस्परतः सटाकर त्रिशूलवत् ऊर्ध्वोत्थित करना ही **नृसिंहगामिनी** मुद्रा है। दोनों हाथ के अंगूठों से उभय कनिष्ठा को आक्रान्त करके बाकी उंगलियों को नीचे अधोगत करे। दोनों हाथ अब नीचे ले जाये तथा नाभि पर प्रसारित करे। इसके पश्चात् तर्जनी से कन्धों को छूयें। यही है **अंत्रण मुद्रा**। हाथ ऊर्ध्व करके मध्यमा उंगली को हथेली से सटाकर वाम अनामिका पर दाहिनी अनामिका स्थापित करे। उभय अंगुष्ठ को तर्जनी के नीचे करे तथा दोनों तर्जनी को सटाये। यह है **चक्रमुद्रा**। यह नृहरि के सान्निध्य में दिखलाई जाती है। इस चक्रमुद्रा प्रदर्शनोपरान्त **दंष्ट्रमुद्रा** करे। इस हेतु तर्जनीद्वय से मध्यमाद्वय को दबाते हैं। इन मुद्राओं को सभी मन्त्रों हेतु (नृसिंह मन्त्रों हेतु) सम्मत मानते हैं।।३८-४४।।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं च पायसैः। घृताक्तैर्जुहुयाद्वह्नौ पीठे पूर्वोदितेऽर्चयेत्॥४५॥

अङ्गान्यादौ समाराध्य दिक्पत्रेषु यजेत्पुनः।
गरुडादीन् श्रीमुखांश्च विदिक्षु लोकपान्बहिः॥४६॥
एवं संसाधितो मन्त्रः सर्वान्कामान्प्रपूरयेत्।
सौम्ये कार्ये स्मरेत्सौम्यं क्रूरं क्रूरे स्मरेद्बुधः॥४७॥

तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक एक लाख यह मन्त्र जपकर उसका १०००० का होम घृत पायस से करे। पूर्वोक्त पीठ पर ही होम होगा। दिक्पत्र पर अंगदेवतार्चन करके विदिशाओं में श्री, गरुड़ आदि अर्चना करे। इस प्रकार से साधक मन्त्रसिद्धि प्राप्त करके सभी कामनाओं का लाभ कर लेता है। सौम्य कार्यार्थ देवता के सौम्य रूप का, क्रूर कार्यार्थ क्रूर रूप का ध्यान बुद्धिमान् साधक करे।।४५-४७।।

पूर्वमृत्युपदे शत्रोर्नाम कृत्वा स्वयं हरिः। निशितैर्नखदंष्ट्राग्रैः खाद्यमानं च संस्मरेत्॥४८॥
अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः। जायते मण्डलादर्वाक् शत्रुर्वै शमनातिथिः॥४९॥

शत्रु मारणार्थ पहले शत्रु का नाम लेकर यह ध्यान करे कि नृसिंह रूपी हरि अपनी तीक्ष्ण दाढ़ तथा नखाग्र से शत्रु को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। ध्यानोपरान्त आलस्य त्याग कर १०८ बार मन्त्र जप नित्य करे। इससे शत्रु शीघ्र यमलोक प्रयाण करेगा।।४८-४९।।

ध्यानभेदानथो वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकान्।
श्रीकामः सततं ध्यायेत्पूर्वोक्तं नृहरिं सितम्॥५०॥

वामाङ्कस्थितया लक्ष्म्यालिङ्गितं पद्महस्तया। विषमृत्यूपरोगादिसर्वोपद्रवनाशनम्॥५१॥
नरसिंहं महाभीमं कालानलसमप्रभम्। आन्त्रमालाधरं रौद्रं कण्ठहारेण भूषितम्॥५२॥
नागयज्ञोपवीतं च पञ्चाननसुशोभितम्। चन्द्रमौलिं नीलकण्ठं प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रकम्॥५३॥
भुजैः परिघसङ्काशैर्दशभिश्चोपशोभितम्। अक्षसूत्रं गदापद्मं शङ्खं गोक्षीरसन्निभम्॥५४॥
धनुश्च मुशलं चैव बिभ्राणं चक्रमुत्तमम्। खड्गं शूलं च बाणं नृहरिं रुद्ररूपिणम्॥५५॥
इन्द्रगोपाभनीलाभं चन्द्राभं स्वर्णसन्निभम्। पूर्वादि चोत्तरं यावदूर्ध्वास्य सर्ववर्णकम्॥५६॥

अब मैं सर्वसिद्धिदायक ध्यान के भेदों का वर्णन करता हूं। जो लक्ष्मीकामी हैं, वह शुक्ल वर्ण नृसिंह

का ध्यान करे। पद्महस्ता लक्ष्मी उनके वाम अंक पर बैठकर उनका आलिंगन कर रही हैं। विष, मृत्यु, रोग तथा समस्त उपद्रव नाशार्थ महाभीम कालानल समप्रभ, आतों के मालाधारी, रौद्ररूप कण्ठहार भूषित, नाग यज्ञोपवीतधारी पंचमुख, चन्द्रमौलि नीलकण्ठ, प्रत्येक मुख में तीन नेत्र वाले, परिघ जैसी दस भुजा से शोभित, अक्षसूत्र, गदा, पद्म, दुग्धधवल शंख, धनुष, मूसल, चक्र, खड्ग, त्रिशूल-बाणधारी, वीरवहूटी कीट जैसे रंग वाले, नीलाभ, चन्द्राभ, स्वर्ण के समान पूर्व से लेकर उत्तरदिक् तक ऊर्ध्वमुख, सर्ववर्ण समन्वित नृसिंह देव का ध्यान करे।।५०-५६।।

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री सर्वव्याधिविमुक्तये।
सर्वमृत्युहरं दिव्यं स्मरणात्सर्वसिद्धिदम्।।५७।।
ध्यायेद्यदा महत्कर्म तदा षोडशहस्तवान्। नृसिंहः सर्वलोकेशः सर्वाभरणभूषितः।।५८।।
द्वौ विदारणकर्माप्तौ द्वौ चान्त्रोद्धरणान्वितौ।
शङ्खचक्रधरौ द्वौ तु द्वौ च बाणधनुर्द्धरौ।।५९।।
खड्गखेटधरौ द्वौ च द्वौ गदापद्मधारिणौ। पाशाङ्कुशधरौ द्वौ च द्वौ रिपोर्मुकुटार्पितौ।।६०।।

ध्यानोपरान्त मन्त्र जपने वाला सभी व्याधिरहित हो जाता है। यह मन्त्र सर्वमृत्युहर एवं दिव्य है। इसके स्मरण से ही सर्वसिद्धिलाभ होता है। जब कोई महत् कार्य करना हो, तब व्यक्ति सोलह हाथ वाले, सर्वाभरणधारी सर्वलोकपति नृसिंह को धारण करे। उनके दो हाथ दुष्ट विदारणार्थ प्रवृत्त हैं। दो हाथ से शत्रु की आंतों को खींच रहे हैं। दो हाथ में उन्होंने शंख-चक्र तथा दो हाथों में धनुष-बाण धारण किया है। दो हाथों से वे शत्रु के मुकुट को खींच रहे हैं। दो हाथों में खड्ग-खेट, दो में गदा पद्म तथा दो में पाश-अंकुश धारण किया है।।५७-६०।।

इति षोडशदोर्दण्डमण्डितं नृहरिं विभुम्। ध्यायेन्नारदनीलाभमुग्रकर्मण्यनन्यधीः।।६१।।
ध्येयो महत्तमे कार्ये द्वात्रिंशद्धस्तवान्बुधैः। नृसिंह सर्वभूतेशः सर्वसिद्धिकरः परः।।६२।।
दक्षिणे चक्रपद्मे च परशुं पाशमेव च। हलं च मूशलं चैव अभयं चाङ्कुशं तथा।।६३।।
पट्टिशं भिन्दिपालं च खड्गमुद्गरतोमरान्।
वामभागे करैः शङ्खं खेटं पाशं च शूलकम्।।६४।।
अग्निं च वरदं शक्तिं कुण्डिकां च ततः परम्।
कार्मुकं तर्जनीमुद्रां गदां डमरुशूर्पकौ।।६५।।
द्वाभ्यां कराभ्यां च रिपोर्जानुमस्तकपीडनम्।
ऊद्र्ध्वीकृताभ्यां बाहुभ्यां आन्त्रमालाधरं विभुम्।।६६।।
अधः स्थिताभ्यां बाहुभ्यां हिरण्यकविदारणम्।
प्रियङ्करं च भक्तानां दैत्यानां च भयङ्करम्।।६७।।
नृसिंहं तं स्मरेदित्थं महामृत्युभयापहम्। एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री सर्वकार्यार्थसिद्धये।।६८।।

हे नारद! एवंविध षोडश बाहुयुक्त विभु नृहरि का उग्र कर्म में ध्यान करे, जो नीलवर्ण हरि हैं। अत्यन्त महत्तम कार्य हेतु ३२ भुजा वाले नृसिंह का ध्यान करना चाहिये। बुधजन ध्यान करे—ये प्रभु सर्वप्राणीगण के अधीश्वर तथा सर्वसिद्धिदायक हैं। इन्होंने दाहिनी १६ भुजा में चक्र, पद्म, परशु, पाश, त्रिशूल, मूसल, अभय मुद्रा, अंकुश, पट्टिश, भिन्दिपाल, खड्ग, मुद्गर, तोमर धारण किया है तथा वाम षोडश भुजाओं में शंख, खेट, पाश, त्रिशूल, अग्नि, शक्ति, कुण्डिका, धनुष, तर्जनी मुद्रा, गदा, डमरु तथा शूर्प धारण किया है। शेष दो हाथ से शत्रु का जनु तथा मस्तक भग्न कर रहे हैं तथा दो द्वारा शत्रु की अंतड़ियों की माला बाहुद्वय को ऊर्ध्व करके पहन रहे हैं। अंतिम दो बाहु को नीचे करके हिरण्यकशिपु को विदीर्ण कर रहे हैं। ये भक्तों हेतु प्रियंकर हैं। दैत्यों हेतु भयंकर हैं। महामृत्यु भय को दूर करने वाले नृसिंह का स्मरण इस प्रकार से करे। मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार ध्यान द्वारा सर्वकार्यसिद्ध कर लेता है।।६१-६८।।

अथोच्यते ध्यानमन्यन्मुखरोगहरं शुभम्।
स्वर्णवर्णसुपर्णस्थं विद्युन्मालासटान्वितम्॥६९॥
कोटिपूर्णेन्दुवर्णं च सुमुखं त्र्यक्षिवीक्षणम्। पीतवस्त्रोरुभूषाढ्यं नृसिंहं शान्तविग्रहम्।
चक्रशङ्खाभयवरान्दधतं करपल्लवैः॥७०॥
क्ष्वेडरोगादिशमनं स्वैर्ध्यानैः सुरवन्दितम्।
शत्रोः सेनानिरोधेन यत्नं कुर्याच्च साधकम्॥७१॥

अब मैं मुखरोगहर शुभ ध्यान कहता हूं। सुवर्ण वर्ण वाले गरुड़ पर आसीन, गले में विद्युत्वल्लरी जैसी छटा वाली माला से युक्त, कोटि पूर्णचन्द्र के वर्ण वाले सुमुख, त्रिनेत्र, पीतवस्त्र तथा भूषणों से शोभित, शान्त विग्रह, करपल्लवों में शंख, चक्र, अभयमुद्रा तथा वरमुद्रा धारण करने वाले, कफज प्रभृति रोग हरण करने वाले, सुरगण वन्दित, नृसिंह प्रभु का ध्यान करे। शत्रु सैन्य रोधार्थ एवंविध नृसिंह रूप का ध्यान करना चाहिये।।६९-७१।।

अक्षकाष्ठैरेधितेऽग्नौ विचिन्त्य रिपुमर्दनम्। देवं नृसिंहं सम्पूज्य कुसुमाद्युपचारकैः॥७२॥
समूलमूलैर्जुहुयाच्छरैर्दशशतं पृथक्। रिपुं खादन्निव जपेन्निर्दहन्निव तं क्षिपेत्॥७३॥
हुत्वा सप्तदिनं मन्त्री सेनामिष्टां महीपतेः। प्रस्थापयेच्छुभे लग्ने परराष्ट्रजयेच्छया॥७४॥
तस्याः पुरस्तान्नृहरिं निघ्नन्तं रिपुमण्डलम्।
स्मृत्वा जपं प्रकुर्वीत यावदायाति सा पुनः॥७५॥
निर्जित्य निखिलाञ्छत्रून्सह वीरश्रियासुखात्।
प्रीणयेन्मन्त्रिणं राजा विभवैः प्रीतमानसः॥७६॥
गजाश्वरथरत्नैश्च ग्रामक्षेत्रधनादिभिः। यदि मन्त्री न तुष्येत तदानर्थो महीपतेः॥७७॥

कुसुम प्रभृति उपचारों से नृसिंह देव की पूजा करके बहेड़ा के काष्ठ से प्रज्वलित अग्नि में सौ होम कन्दमूल का करे। साधक उनके ऐसे रूप का ध्यान करे कि वे देवनृसिंह शत्रु भक्षण कर रहे हैं। इस स्थिति में मन्त्र जप करे तथा ऐसे स्वरूप का ध्यान करे कि देवदेव नृसिंह शत्रु दग्ध कर रहे हैं। यह रूप स्मरण करते

हुये होम करे। सात दिवस पर्यन्त हवनोपरान्त वह अन्य राज्य पर विजयर्थ अपने सैन्य को प्रेषित करे। जब तक सैन्य वापस न आ जाये, तब तक रिपुध्वंसक नृसिंह देव का ध्यान तथा उनका मन्त्रजप करता रहे। जब शत्रुओं को जीतकर मन्त्री ससैन्य वापस आये, तब रिपुध्वंसक नृसिंहदेव का ध्यान करते हुये प्रसन्न मन से राजा उस मंत्री को हस्ति, अश्व, रथ, रत्न, ग्राम, धनादि पुरस्कार प्रदान करे। मन्त्री को कदापि असन्तुष्ट नहीं रखना चाहिये। इससे राजा का ही अनिष्ट होगा।।७२-७७।।

जायते तस्य राष्ट्रेषु प्राणेभ्योऽपि महाभयम्। अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रमन्त्रितभस्मना।।७८।।

नाशयेन्मूषिकालूतावृश्चिकाद्युत्थितं विषम्।

लिप्ताङ्गः सर्वरोगैश्च मुच्यते नात्र संशयः।।७९।।

सेवन्तीकुसुमैर्हुत्वा महतीं श्रियमाप्नुयात्। औदुम्बरसमिद्भिस्तु भवेद्धान्यसमृद्धिमान्।।८०।।

अपूपलक्षहोमे तु भवेद्वैश्रवणोपमः। क्रुद्धस्य सन्निधौ राज्ञो जपेदष्टोत्तरं शतम्।।८१।।

सद्यो नैर्मल्यमाप्नोति प्रसादं चाधिगच्छति। कुन्दप्रसूनैरुदयं मोचाभिर्विघ्ननाशनम्।।८२।।

मन्त्री के असन्तोष के कारण राजा का अनिष्ट ही होता है। तब राष्ट्र में प्राणों का महाभय उपस्थित हो जायेगा। यदि मूषक, कीट-बिच्छू आदि का संकट हो जाये, तब भस्म को नृसिंह मूलमन्त्र से १०८ बार अभिमंत्रित करके भस्म चतुर्दिक् छिड़के। ये सब उपद्रवकारी नष्ट हो जायेंगे। वह भस्म अंगों पर लिप्त करने से सर्वरोग नष्ट हो जाते हैं। यह निःसंदिग्ध है। सेवंती पुष्प हवन से प्रचुर सम्पदा लाभ, गूलर समिध् से होम द्वारा धनधान्य लाभ, मालपूआ से एक लक्ष होम द्वारा साधक कुबेर तुल्यलाभ करता है। क्रोधित राजा के समक्ष १०८ बार जप करे। वह राजा क्रोधरहित होकर प्रसन्न होगा। कुन्दपुष्प से होम द्वारा सर्वविध उन्नति होती है। कदली पुष्प द्वारा किया होम सर्वविघ्न नाशक है।।७८-८२।।

तुलसीपत्रहोमेन महतीं कीर्तिमाप्नुयात्। शाल्युत्थसक्तुहोमेन वशयेदखिलं जगत्।।८३।।

मधूकपुष्पैरिष्टं स्यात्स्तम्भनं धात्रिखण्डकैः।

दधिमध्वाज्यमिश्रां तु गुडूचीं चतुरङ्गुलाम्।।८४।।

जुहुयादयुतं योऽसौ शतं जीवति रोगजित्।

शनैश्चरदिनेअश्वत्थं स्पृष्ट्वा चाष्टोत्तरं शतम्।।८५।।

जपेज्जित्वासोऽपमृत्युं शतवर्षाणि जीवति।

अथ तं सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम्।।८६।।

सेमल पुष्पों से कृत होम से विघ्ननाश, तुलसी पत्रों से होम द्वारा महायश लाभ, चावल के सत्तू से होम द्वारा सर्वजगत् वशीकरण, दोपहरिया पुष्प से होम द्वारा इष्टलाभ, धात्रीफल से होम द्वारा शत्रु स्तंभन होता है। दधि-मधु-घृत युक्त चार अंगुल के गुरुच काष्ठ समिध् से होम द्वारा (१०००० होम) रोग रहित शतवर्षीय आयु मिलती है। जो शनिवार के दिन पीपल वृक्ष का स्पर्श किये १०८ बार यह मन्त्र जप करता है, वह अपमृत्यु रहित होकर शतवर्ष पर्यन्त जीवित रहेगा। अब मैं त्रैलोक्य मोहन यंत्र कहता हूं।।८३-८६।।

यस्य सन्धारणादेव भवेयुः सर्वसम्पदः। श्वेतभूर्जे लिखेत्पद्मं द्वात्रिंशत्सिंहसंयुतम्।।८७।।

मध्ये सिंहे स्वबीजं च लिखेत्पूर्ववदेव तु। श्रीबीजेन तु संवेद्य वलयत्रयसंयुतम्॥८८॥
पाशाङ्कुशैश्चैव संवेष्ट्य पूजयेद्यन्त्रमुत्तमम्। त्रैलोक्यमोहनं नाम सर्वकामार्थसाधनम्॥८९॥

इसे धारण करने मात्र से सर्वसम्पदा लाभ होता है। इस पद्म को श्वेत भूर्जपत्र पर लिखे। यह कमल ३२ सिद्धमूर्त्ति समन्वित हो। मध्य में सिंह (नृसिंह) का स्वबीज पूर्ववत् लिखे। यह श्रीं बीज से संवेद्य तथा वलयत्रय से युक्त हो। पाश एवं अंकुश (मन्त्र से) से उसे वेष्ठित करके इस उत्तम यन्त्र की पूजा करे। यह त्रैलोक्य मोहन नामक यन्त्र सर्वकामना का साधन स्वरूप है।।८७-८९।।

चक्रराजं महाराजं सर्वचक्रेश्वरेश्वरम्। धारणाज्जयमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः॥९०॥
अथ यन्त्रान्तरं वक्ष्ये शृणु नारद सिद्धिदम्।
अष्टारं विलिखेद्यन्त्रं श्लक्ष्णं कर्णिकया युतम्॥९१॥
मूलमन्त्रं लिखेत्तत्र प्रणवेन समन्वितम्। एकाक्षरं नारसिंहं मध्ये चैव ससाध्यकम्॥९२॥
जपेदष्टसहस्त्रं तु सूत्रेणावेष्ट्य तद्बहिः। स्वर्णरौप्यसुताम्रैश्च वेष्टयेत्क्रमतः सुधीः॥९३॥
लाक्षया वेष्टितं कृत्वा पुनर्मन्त्रेण मन्त्रयेत्।
कण्ठे भुजे शिखायां वा धारयेद्यन्त्रमुत्तमम्॥९४॥
नरनारीनरेन्द्राश्च सर्वे स्युर्वशगा भुवि। दुष्टास्तं नैव बाधन्ते पिशाचोरगराक्षसाः॥९५॥
यन्त्रराजप्रसादेन सर्वत्र जयमाप्नुयात्। अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं सर्ववशङ्करम्॥९६॥

यह महाराज चक्रराज है। यह सभी चक्रों के ईश्वर का भी ईश्वर है। इसके धारण से जयलाभ होता है। यह सत्य है। इसमें कोई संशय न करे। हे नारद! अब मैं इस यन्त्र के अतिरिक्त यन्त्र का वर्णन करता हूं, जो कि सिद्धिप्रद है। इसे भोजपत्र पर लिखे। अष्टदल पर यह यन्त्र लिखे, जो उत्तम कर्णिका समन्वित हो। वहां प्रणव समन्वित मूल मन्त्र लिखकर मध्य में साध्य युक्त एकाक्षर नारसिंह मन्त्र लिखे। मन्त्र का यन्त्र के सान्निध्य में १००० जप करके सूत से उस यन्त्र को लपेट देना चाहिये। सुधी व्यक्ति अब इस यन्त्र को लाख से लपेट कर पुनः १००० जप द्वारा अभिमन्त्रित करे। इसे कण्ठ-भुजा अथवा शिखा में बांधे। इस अत्युत्तम यन्त्र के प्रभाव से पृथिवी पर नर, राजा, नारी प्रभृति उसके वशीभूत हो जाते हैं। दुष्ट पिशाच, सर्प, राक्षसादि उसे बाधा नहीं पहुंचा सकते। यन्त्रराज के प्रभाव से उसे सर्वत्र विजय लाभ होता है। अब मैं अन्य सर्वव शंकर यन्त्र का वर्णन करता हूं।।९०-९६।।

द्वादशारं महाचक्रं पूर्ववद्विलिखेत्सुधीः। मात्राद्वादशसम्भिन्नदलेन विलिखेद्बुधः॥९७॥
मध्ये मन्त्रं शक्तियुतं श्रीबीजेन तु वेष्टयेत। कालान्तकं नाम चक्रं सुरासुरवशङ्करम्॥९८॥
चक्रमुल्लेखयेद्भूर्जे सर्वशत्रुनिवारणम्। यस्य धारणमात्रेण सर्वत्र विजयी भवेत्॥९९॥

अब अन्य यन्त्र हेतु विद्वान् साधक पूर्ववत् द्वादशाक्षर महाचक्र लिखे। उसके ऊपर द्वादश मात्रायुक्त कमल बनाकर मध्य में शक्ति समन्वित मन्त्र को लिखकर उसे श्रीं बीज द्वारा आवेष्ठित करना चाहिये। यह **कालांतक** चक्र है। यह समस्त देवगण तथा असुरों को वशीभूत कर देता है। यह चक्र सदा भूर्जपत्र पर अंकित करना चाहिये। यह यन्त्र सर्वरिपु निवारक है। जो इसे धारण करता है, उसे सर्वत्र विजयलाभ होता है।।९७-९९।।

अथ सर्वेष्टदं ज्वालामालिसंज्ञं वदाम्यहम्।
बीजं हृद्भगवान्ङेन्तो नरसिंहाय तत्परम्॥१००॥
ज्वालिने मालिने दीप्तदंष्ट्राय अग्निने पदम्।
त्राय सर्वादिरक्षोघ्नाय च नः सर्वभूपदम्॥१०१॥
हरिर्विनाशनायान्ते सर्वज्वरविनाशनः। नामान्ते दहयुग्मं च पचद्वयमुदीरयेत्॥१०२॥
रक्षयुग्मं च वर्मास्त्रठद्वयान्तो ध्रुवादिकः।
अष्टषष्ट्यक्षरैः प्रोक्तो ज्वालामाली मनूत्तमः॥१०३॥
पुण्यादिकं तु पूर्वोक्तं त्रयोदशभिरक्षरैः। पङ्क्तिभी रुद्रसंख्याकैरष्टादशभिरक्षरैः॥१०४॥
भानुभिः करणैर्मन्त्री वरैरङ्गानि कल्पयेत्।
पूर्वोक्तरूपिणं ज्वालामालिनं नृहरिं स्मरेत्॥१०५॥

अब मैं सर्वइष्टदायक **ज्वालामाला मन्त्र** को कहता हूं। (इस मन्त्र का अंकन मूल में "बीजं" से लगाकर "ध्रुवादिकं" पर्यन्त संकेत रूपेण है। (इसका अज्ञता के कारण मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।) यह ६८ अक्षरों वाला मन्त्र है। त्रयोदश अक्षर वाला पुण्यादिक मन्त्र पहले मैंने कहा था। साधक एकादश-पंक्ति, अष्टादशाक्षर तथा द्वादश करण द्वारा अंग कल्पना करे। ज्वालामाली नृहरि देव का पहले कथित रूप से ध्यान करना चाहिये।।१००-१०५।।

लक्षं जपो दशांशं च जुहुयात्कपिलाघृतैः।
रौद्रापस्मारभूतादिनाशकोऽयं मनूत्तमः॥१०६॥
प्राणो माया नृसिंहश्च सृष्टिर्ब्रह्मास्त्रमीरितः। षडक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टप्रदायकः॥१०७॥
मुनिर्ब्रह्मा तथा छन्दः पंक्तिर्देवोनृकेसरी।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१०८॥
पूर्वोक्तेनैव विधिना ध्यानं पूजां समाचरेत्।
सिद्धेन मनुनानेन सर्वसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥१०९॥
रमाबीजादिकोऽनुष्टुप्त्रयस्त्रिंशार्णवान्मनुः। प्रजापतिर्मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् लक्ष्मीनृकेसरी॥११०॥
देवता च पदैः सर्वेणाङ्गकल्पनमीरितम्।
विन्यस्यैवं तु पञ्चाङ्गं स्वात्मरक्षां समाचरेत्॥१११॥
संस्पृशन् दक्षिणं बाहुं शरभस्य मनुं जपेत्। प्रणवो हृच्छिवायेति महते शरभाय च॥११२॥
वह्निप्रियान्तो मन्त्रस्तु रक्षार्ते समुदाहृतः। अथवा राममन्त्रान्ते परं क्षद्वितयं पठेत्॥११३॥
अथवा केशवाद्यैस्तु रक्षां कुर्यात्प्रयत्नतः।
केशवः पातु पादौ मे जङ्घे नारायणोऽवतु॥११४॥

माधवो मे कटिं पातु गोविन्दो गुह्यमेव च।
नाभिं विष्णुश्च मे पातु जठरं मधुसूदनः॥११५॥

इस मन्त्र का एक लक्ष जप करके दशसहस्र होम कपिला गौ के घृत से करना चाहिये। यह उत्तम मन्त्र मिरगी प्रभृति, अपस्मार आदि रोग तथा भूतादि का नाशक है। अन्य एक मन्त्र से संकेत है "प्राणोमाया नृसिंहश्च सृष्टिर्ब्रह्मास्त्रमीरितः।" (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। इसके ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है पंक्तिछन्द तथा देवता है नृहरि। षड्दीर्घ द्वारा इसके षडङ्ग का न्यास करे।

इसका ध्यान तथा पूजन पूर्वोक्त विधि से ही करना चाहिये। जब यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, तब साधक सर्वसिद्धिवान् हो जाता है। रमा बीज युक्त मन्त्र ३३ वर्ण वाला कहा गया है। इसके ऋषि हैं प्रजापति, छन्द है अनुष्टुप्। लक्ष्मी तथा नृहरि इसके देवता हैं। मन्त्रपद से ही अंग कल्पना करे।। पंचांग न्यास से आत्मरक्षा करनी चाहिये। दक्षिण भुजा का स्पर्श करते-करते शरभ मन्त्र जपे। "प्रणवो हृच्छिवायेति महते शरभाय च" कहकर स्वाहा का उच्चारण करे। (यहां भी मन्त्रोद्धार क्या होगा, विज्ञजन निर्णय करे)। यह मन्त्र रक्षार्थ कथित है अथवा राममन्त्र को अन्त में दो बार 'क्ष' का उच्चारण करके जपे। किंवा केशवादि के पाठ द्वारा (जो आगे लिखा जा रहा है) प्रयत्नपूर्वक रक्षा करे। यथा—केशव पैरों की, नारायण जंघा की, माधव कटि देश की, गोविन्द गुह्य की, विष्णु नाभि की, मधुसूदन जठर की रक्षा करें।।१०६-११५।।

ऊरू त्रिविक्रमः पातु हृदयं पातु मे नरः।
श्रीधरः पातु कण्ठं च हृषीकेशो मुखं मम॥११६॥
पद्मनाभः स्तनौ पातु शीर्षं दामोदरोऽवतु।
एवं विन्यस्य चाङ्गेषु जपकाले तु साधकः॥११७॥
निर्भयो जायते भूतवेतालग्रहराक्षसात्। पुनर्न्यसेत्प्रयत्नेन ध्यानं कुर्वन्समाहितः॥११८॥

मेरे उरु की त्रिविक्रम, हृदय की रक्षा नर, कण्ठ की रक्षा श्रीधर तथा मेरे मुख की रक्षा हृषीकेश करे। पद्मनाभ स्तन की, दामोदर शीर्ष की रक्षा करें। साधक जपकाल में इस प्रकार अंगों को विन्यस्त करे। इससे वह भूत, वेताल, ग्रह, राक्षसादि भय से निर्भय हो जायेगा। तदनन्तर एकाग्र होकर यत्नतः ध्यानोपरान्त पुनः न्यास करे। ध्यान यह है।।११६-११८।।

पुरस्तात्केशवः पातुः चक्री जाम्बूनदप्रभः।
पश्चान्नारायणः शङ्खी नीलजीमूतसन्निभः॥११९॥
ऊर्ध्वमिन्दीवरश्यामो माधवस्तु गदाधरः।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान्॥१२०॥
उत्तरे हलधृग्विष्णुः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः।
आग्नेय्यामरविन्दाक्षो मुसली मधुसूदनः॥१२१॥
त्रिविक्रमः खड्गपाणिर्नैर्ऋत्यां ज्वलनप्रभः।
वायव्यां माधवो वज्री तरुणादित्यसन्निभः॥१२२॥

ऐशान्यां पुण्डरीकाक्षः श्रीधरः पट्टिशायुधः।
विद्युत्प्रभो हृषीकेश ऊर्ध्वे पातु समुद्गरः॥१२३॥

अधश्च पद्मनाभो मे सहस्रांशुसमप्रभः। सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वाद्यः सर्वतोमुखः॥१२४॥

मेरे अग्र भाग की रक्षा जाम्बूनद स्वर्ण की प्रभावाले चक्री करे। पृष्ठ भाग की रक्षा नीलमेघाभ शंखधारी नारायण करे। ऊर्ध्व में नीलकमल के समान वर्ण वाले गदाधारी माधव रक्षा करें। चन्द्रमा की प्रभावाले महाधनुर्धर गोविन्द दक्षिण पार्श्व की रक्षा करें। उत्तर में हलधारी विष्णु रक्षा करें जो कमल केशरवत् कान्तिमान हैं। अग्निकोण में कमलनयन मुसलधारी मधुसूदन रक्षा करें। नैर्ऋत्य कोण में खड्पाणि ज्वलनप्रभ त्रिविक्रम रक्षा करें। वायुकोण में उदितादित्य कान्तिसम्पन्न वज्रधारी माधव रक्षा करें। ईशान कोण में पट्टिश अस्त्रधारी पुण्डरीकाक्ष श्रीधर रक्षा करें। विद्युत्प्रभ हृषीकेश अपने मुद्गर द्वारा ऊर्ध्व में मेरी रक्षा करें। सहस्रसूर्य समप्रभ पद्मनाभ अधः में रक्षा करें। सर्वायुध, सर्वशक्तिमान, सबके आदिपुरुष सर्वतोमुख।।११९-१२४।।

इन्द्रगोपप्रभः पायात्पाशहस्तोऽपराजितः। स बाह्याभ्यन्तरे देहमव्याद्दामोदरो हरिः॥१२५॥

एवं सर्वत्र निश्छिद्रं नामद्वादशपञ्जरम्। प्रविष्टोऽहं न मे किञ्चिद्भयमस्ति कदाचन॥१२६॥

इन्द्रगोप जैसी प्रभा वाले, पाशहस्त, अपराजित दामोदर हरि वाह्य एवं आभ्यन्तर सर्वत्र देह की रक्षा करें। मैं निश्छिद्ररूपेण द्वादश नाम रूपी पिंजर में सुरक्षापूर्वक प्रविष्ट हूं। मुझे कदापि कहीं भय नहीं है।।१२५-१२६।।

एवं रक्षां विधायाथ दुर्द्धर्षो जायते नरः। सर्वेषु नृहरेर्मन्त्रवर्णेष्वेवंविधिर्मतः॥१२७॥

पूर्वोक्तविधिना सर्वं ध्यानपूजादिकं चरेत्।
जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन॥१२८॥
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष ते नमः।
इत्थं सम्प्राार्थ्य जप्त्वा च पठित्वा विसृजेद्विभम्॥१२९॥

इस प्रकार से रक्षित मनुष्य दुर्द्धर्ष हो जाता है। यही विधि सभी नृसिंह मन्त्रवर्गार्थ विहित है। पूर्वोक्त विधान से ही ध्यान-पूजनादि करे। तत्पश्चात् विसर्जन मन्त्र पढ़कर प्रभु विभु का विसर्जन करे। मन्त्र है—"हे हृषीकेश, महापुरुष, विश्वभावन पुण्डरीकाक्ष! आपकी जय हो। आपको प्रणाम"।।१२७-१२९।।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री जायते सम्पदां पदम्।
जयद्वयं श्रीनृसिंहेत्यष्टार्णोऽयं मनूत्तमः॥१३०॥
मुनिर्ब्रह्माथ गायत्री छन्द प्रोक्तोऽस्य देवता।
श्रीमाञ्जयनृसिंहस्तु सर्वाभीष्टप्रदायकः॥१३१॥
सेन्दुगोविन्दपूर्वेण वियता सेन्दुना पुनः।
षड्दीर्घाढ्ये न कुर्वीत षडङ्गानि विशालधीः॥१३२॥
ततो ध्यायेद्धृदि विभुं नृसिंहं चन्द्रशेखरम्॥१३३॥

श्रीमन्नृकेसरितनो जगदेकबन्धोश्रीनीलकण्ठ करुणार्णव सामराज।
वह्नीन्दुतीव्रकरनेत्र पिनकपाणे शीतांशुशेखर रमेश्वर पाहि विष्णो॥१३४॥

इस प्रकार से मन्त्री मन्त्र सिद्ध हो जाने पर समस्त सम्पदालाभ करता है। "श्रीनृसिह जय जय" यह अष्टाक्षर उत्तम मन्त्र है। इसके ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है गायत्री, देवता हैं श्रीमान् नृसिंह। यह सर्वाभीष्टप्रद मन्त्र है। "इन्दु गोविन्दपूर्वेण वियता सेन्दुना पुनः" (इस मन्त्र संकेत का मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। इस बीजमन्त्र का षड्दीर्घ से षडङ्गन्यास सम्पन्न करे तथा स्वहृदय में नृसिंह चन्द्रशेखर विभु का ध्यान करे। श्रीमान् नृकेसरि! सूक्ष्म रूप, जगद् के एकमात्र बन्धु, श्री नीलकण्ठ! करुणार्णव सामराज! इन्दु तथा वह्निरूपी किरण युक्त नेत्रवाले, पिनाकधारी, शीतांशुशेखर, रमेश्वर विष्णु रक्षा करिये।।१३०-१३४।।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षाष्टकं मन्त्री दशांशतः।
साज्येन पायसान्नेन जुहुयात्प्राग्वदर्चनम्॥१३५॥
तारो माया स्वबीजान्ते कर्णोग्रं वीरमीरयेत्।
महाविष्णुं ततो ब्रूयाज्ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्॥१३६॥
स्फुरद्द्वयं प्रस्फुरेति द्वयं घोरपदं ततः। वदेद्धोरतरं ते तु तनुरूपं च ठद्वयम्॥१३७॥
प्रचटद्वयमाभाष्य कहयुग्मं च मद्वयम्। बन्धद्वय घातयेति द्वयं वर्मास्त्रमीरयेत्॥१३८॥
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।
पञ्चाशीत्यक्षरो मन्त्रो भजतामिष्टदायकः॥१३९॥
ऋषी ह्यघोरब्रह्माणौ तथा त्रिष्टुबनुष्टुभौ। छन्दसी च तथा घोरनृसिंहो देवता मतः॥१४०॥
ध्यानार्चनादिकं चास्य कुर्यादानुष्टुभं सुधीः।
विशेषान्मन्त्रवर्योऽयं सर्वरक्षाकरो मतः॥१४१॥
बीजं जययुगं पश्चान्नृसिंहेत्यष्टवर्णवान्। ऋषिः प्रजापतिश्चास्यानुष्टुप्छन्द उदाहृतम्॥१४२॥
विदारणनृसिंहोऽस्य देवता परिकीर्तितः।
जं बीजं हं तथा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये॥१४३॥
दीर्घाढ्येन नृसिंहेन षडङ्गन्यासमाचरेत्। रौद्रं ध्यायेन्नृसिंहं तु शत्रुवक्षोविदारणम्॥१४४॥
नखदंष्ट्रायुधं भक्ताभयदं श्रीनिकेतनम्। तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचनम्॥१४५॥

ध्यानोपरान्त आठ लाख जप करे तथा अस्सी हजार होम घृत-पायसान्न से करे। (मूलोक्त श्लोक १३६ से लगाकर एक सौ साढ़े अड़तीस तक मन्त्र है)। (विज्ञजन इसका मन्त्रोद्धार करें।) यहां ८५ अक्षरों का मन्त्र तारो माया से लगाकर "मृत्यु मृत्यु नमाभ्यहं" तक वर्णित है। यह ८५ वर्ण का मन्त्र सर्वाभीष्टप्रद है। इसके ऋषि हैं अघोरब्रह्म छन्दः है त्रिष्टुभ अनुष्टुप्। देवता हैं घोर नृसिंह। धीमान् व्यक्ति इनकी ध्यानार्चा संक्षेप में करे। यह उत्तम मन्त्र सर्वरक्षाकर कहा गया है। "जय जय नृसिंह" यह अष्टवर्णात्मक मन्त्र है। इसके ऋषि हैं प्रजापति छन्द है अनुष्टुप्। देवता हैं विदारण नृसिंह। जं बीज है हं शक्ति है। इसका विनियोग सर्वकामना प्राप्ति हेतु होता

है। षड्दीर्घ से युक्त नृसिंह मन्त्र द्वारा षडङ्गन्यास करे। तदनन्तर ध्यान करे। शत्रु वक्ष विदीर्ण करने वाले, नख-दंष्ट्रारूप आयुधयुक्त, भक्तों हेतु अभयदाता, श्री के निवास-स्थान, सन्तप्त स्वर्णमय केशयुक्त जाज्वल्यमय अग्निवत् नेत्रयुक्त भीषणाकृत नरसिंह का ध्यान करे।।१३५-१४५।।

वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते।
मुनिर्ब्रह्मा समाख्यातोऽनुष्टुप्छन्दः समीरितः॥१४६॥
देवतास्य रदार्णस्य दिव्यपूर्वो नृकेसरी। पदैश्चतुर्भिः सर्वेण पञ्चाङ्गानि समाचरेत्॥१४७॥
ध्यानपूजादिकं सर्वं प्राग्वत्प्रोक्तं मुनीश्वर।
पूर्वोक्तानि च सर्वाणि कार्याण्यायान्ति सिद्धताम्॥१४८॥

वज्र से कठोर आपका नख स्पर्श है। हे दिव्यसिंह! आपको नमस्कार! इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा। छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं दिव्यरूपी नृसिंह। चार पाद एवं वर्ण से पंचागन्यास करे। हे मुनीश्वर! इसका ध्यान, पूजादि पहले कहा गया है। उस विधि से आचरण करके सर्वकार्य सिद्ध होते हैं।।१४६-१४८।।

तारो नमो भगवते नरसिंहाय हृच्च ते। जस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनखान्ततः॥१४९॥
वज्रदंष्ट्रेति कर्मान्ते त्वासयाक्रन्दयद्वयम्।
तमो ग्रसद्वयं पश्चात्स्वाहान्ते चाभयं ततः॥१५०॥
आत्मन्यन्ते च भूयिष्ठा ध्रुवो बीजान्तिमो मनुः।
द्विषष्ट्यर्णोऽस्य मुन्यादि सर्वं पूर्ववदीरितम्॥१५१॥
तारो नृसिंहबीजं च नमो भगवते ततः। नरसिंहाय तारश्च बीजमस्य यदा ततः॥१५२॥
रूपाय तारः स्वर्बीजं कूर्मरूपाय तारकम्। बीजं वराहरूपाय तारो बीज नृसिंहतः॥१५३॥
रूपाय तार स्वं बीजं वामनान्ते च रूपतः। पापध्रुवत्रयं बीजं रामाय निगमादितः॥१५४॥
बीजं कृष्णाय तारान्ते बीजं च कल्किने ततः।
जयद्वयं ततः शालग्रामान्ते च निवासिने॥१५५॥
दिव्यसिंहाय ङेन्तः स्यात्स्वयंभूः पुरुषाय हृत्।
तारः स्वं बीजमित्येष महासाम्राज्यदायकः॥१५६॥
नृसिंहमन्त्रः खाङ्कार्णो मुनिरत्रिः प्रकीर्तितः।
छन्दोऽतिजगती प्रोक्तं देवता कथिता मनोः॥१५७॥
दशावतारो नृहरिं बीजं खं शक्तिरव्ययः। षड्दीर्घाढ्येन कृत्वाङ्गानि च भावयेत्॥१५८॥

तदनन्तर "तारो नमो भगवते (श्लोक १४९ से लगाकर एक सौ साढ़े पचास पर्यन्त तक) से लेकर "आत्मन्यन्ते च भूयिष्ठा ध्रुवो" पर्यन्त ६२ अक्षरात्मक मन्त्र है। इसके मुनि आदि पूर्व में कहे गये के अनुसार ही हैं। (इसका मन्त्रोद्धार अज्ञता के कारण नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)।

तत्पश्चात् "तारो नृसिंह बीजं" से लगाकर "तारः स्वं बीजं" पर्यन्त महासम्राज्य दायक मन्त्र कहा गया

है (यह श्लोक १५२ से लगाकर १५६ में तारः स्वंबीज पर्यन्त तक है। विज्ञजन इसका मन्त्रोद्धार करें)। इसके मुनि हैं अत्रि। छन्दः है जगती। देवता हैं नृहरि। दशावतार नृहरिबीज है। रवं अव्यय शक्ति है। षड्दीर्घ से षडङ्ग न्यास करके नृसिंह ध्यान करे।।१४९-१५८।।

अनेकचन्द्रप्रतिमो लक्ष्मीमुखकृतेक्षणः। दशावतारैः सहितस्तनोतु नृहरिः सुखम्॥१५९॥

जपोऽयुतं दशांशेन होमः स्यात्पायसेन तु।
प्रागुक्ते पूजयेत्पीठे मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः॥१६०॥

ध्यान है—अनेक चन्द्रवत् मनोहर लक्ष्मी के मुखकमल की ओर देखते रहने वाले, दशावतारधारी नृसिंदेव सुखी करें। तदनन्तर दस हजार मन्त्र जप करके एक हजार होम पायस से करे। पूर्वोक्त पीठ पर पूजा करे। वहां मूर्त्ति हेतु मूलमन्त्र से संकल्प करना होगा।।१५९-१६०।।

अङ्गान्यादौ च मत्स्याद्यान्दिग्दलेषु ततोऽर्चयेत्।
इन्द्राद्यानपि वज्राद्यान्सम्पूज्येष्टमवाप्नुयात्॥१६१॥

तदनन्तर सर्वाग्र में दिशाओं में अंगदेवता का, दिशा के कोणों में मत्स्यादि अवतारों की अर्चना करके इन्द्रादि देवता तथा वज्रादि आयुध पूजन द्वारा इष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।।१६१।।

सहस्रार्णं महामन्त्रं वक्ष्ये तन्त्रेषु गोपितम्।
तारो माया रमा कामो बीजं क्रोधपदं ततः॥१६२॥
मूर्ते नृसिंहशब्दान्ते महापुरुष ईरयेत्। प्रधानधर्माधर्मान्ते निगडेतिपदं वदेत्॥१६३॥
निर्मोचनान्ते कालेति ततः पुरुष ईरयेत्।
कालान्तकसदृक्तोयं स्वेश्वरान्ते सदृग्जलम्॥१६४॥
श्रान्तान्ते तु निविष्टेति चैतन्यचित्सदा ततः।
भासकान्ते तु कालाद्यतीतनित्योदितेति च॥१६५॥
उदयास्तमयाक्रान्तमहाकारुणिकेति च। हृदयाब्जचतुश्चोक्ता दलान्ते तु निंविष्टितः॥१६६॥
चैतन्यात्मंश्चतुरामन्द्वादशात्मंस्ततः परम्।
चतुर्विंशात्मन्नन्ते तु पञ्चविंशात्मन्नित्यपि॥१६७॥
बको हरिः सहस्रान्ते मूर्ते एह्यहिशब्दतः। भगवन्नृसिंहपुरुष क्रोधेश्वर रसा सह॥१६८॥
स्रवन्दितान्ते पादेति कल्यान्ताग्निसहस्र च।
कोट्याभान्ते महादेव निकायदशशब्दतः॥१६९॥
शतयज्ञातलं ज्ञेयं ततश्चामलयुग्मकम्। पिङ्गलेक्षणसटादंष्ट्रा दंष्ट्रायुधं नखायुध॥१७०॥
दानवेन्द्रान्तकावह्निणशोणितपदं ततः। संसक्तिविग्रहान्ते तु भूतापस्मारयातुधान्॥१७१॥
सुरासुरवन्द्यमानपादपङ्कजशब्दतः। भगवन्व्योमचक्रैश्वरान्ते तु प्रभवाप्यय॥१७२॥
रूपेणोत्तिष्ठ चोत्तिष्ठ अविद्यानिचयं दह। दह ज्ञानैश्वर्यमन्ते प्रकाशययुगं ततः॥१७३॥

ओं सर्वज्ञ अरोषान्ते जम्भाजृम्भवतारकम्। सत्यपुरुषशब्दान्ते सदसन्मध्य ईरयेत्॥१७४॥
निविष्टं मम दुःस्वप्नभयं निगडशब्दतः। भयं कान्तारशब्दान्ते भयं विषपदात्ततः॥१७५॥

ज्वरान्ते डाकिनी कृत्याध्वरेवतीभयं ततः।
अशन्यन्ते भयं दुर्भिक्षभयं मारीचशब्दतः॥१७६॥
भयं मारीचशब्दान्ते भयं छायापदं ततः।
स्कन्दापस्मारशब्दान्ते भयं चौरभयं ततः॥१७७॥

जलस्वप्नाग्निभयं गजसिंहभुजङ्गतः। भयं जन्मजरान्ते मरणादिशब्दमीरयेत्॥१७८॥
भयं निर्मोचययुगं प्रशमययुगं ततः। ज्ञेयरूपधारणान्ते नृसिंहबृहत्सामतः॥१७९॥
पुरुषान्ते सर्वभयनिवारणपदं ततः। अष्टाष्टकं चतुःषष्टि चेटिकाभयमीरयेत्॥१८०॥
विद्यावृतस्त्रयस्त्रिंशद्देवताकोटिशब्दतः। नमितान्ते पदपदात्पङ्कजान्वित ईरयेत्॥१८१॥
सहस्त्रवदनान्ते तु सहस्त्रोदर संवदेत्। सहस्त्रेक्षणशब्दान्ते सहस्त्रपादमीरयेत्॥१८२॥
सहस्त्रभुज सम्प्रोच्य सहस्त्रजिह्व संवदेत्। सहस्त्रान्ते ललाटेति सहस्त्रायुधतो धरात्॥१८३॥
तमः प्रकाशक पुरमथनान्ते तु सर्व च। मन्त्रराजेश्वरपदाद्विहायसगतिप्रद॥१८४॥
पातालगतिप्रदान्ते यन्त्रमर्द्दन ईरयेत्। घोराट्टहासहसितविश्वावासपदं ततः॥१८५॥
वासुदेव ततोऽक्रूर ततो हायमुखेति च। परमहंस विश्वेश विश्वान्ते तु विडम्बन॥१८६॥

निविष्टान्ते ततः प्रादुर्भावकारक ईरयेत्।
हृषीकेश च स्वच्छन्द निःशेषजीव विन्यसेत्॥१८७॥
ग्रासकान्ते महा पश्चात्पिशितासृगितीरयेत्।
लम्पटान्ते खेचरीति सिद्ध्यन्ते तु प्रदायक॥१८८॥
अजेयाव्यय अव्यक्त ब्रह्माण्डोदर इत्यपि।
ततो ब्रह्मसहस्त्रान्ते कोटि स्त्रगुण्डशब्दतः॥१८९॥
माल पण्डितमुण्डेति मत्स्य कूर्म ततः परम्।
वराहान्ते नृसिंहेति वामनान्ते समीरयेत्॥१९०॥

त्रैलोक्याक्रमणान्ते तु पादशालिक ईरयेत्। रामत्रय ततो विष्णुरूपान्ते धर एव च॥१९१॥

तत्त्वत्रयान्ते प्रणवाधारतस्तच्छिखां पदम्।
निविष्टवह्निजायान्ते स्वधा चैव ततो वषट्॥१९२॥

नेत्र वर्मास्त्रमुच्चार्य्य प्राणाधार इतीरयेत्। आदिदेवपदात्प्राणापानपश्चान्निविष्टितः॥१९३॥

पाञ्चरात्रिक दितिज विनिधनान्ते करेति च।
महामाया अमोघान्ते दर्यं दैत्येन्द्रशब्दतः॥१९४॥

दर्यान्ते दलेनत्युक्त्वा तेजोराशिन् ध्रुवं स्मरः। तेजस्वरान्ते पुरुषपङ्क्षेन्ते सत्यपुरुष॥१९५॥

अस्त्रतारोऽच्युतास्त्रं च तारो वाचा सुदेव फट्।
तारमायामूर्तेः फट् वः कामः स्वरादिमः॥१९६॥
मूर्तेस्त्रमव्ययोबीजं विश्वमूर्तेस्त्रिमव्ययः।
मायाविश्वात्मनेषट् च तारः सौचं तुरात्मने॥१९७॥

फट् तारोर्ह विश्वरूपिन्नस्त्रं च तदनन्तरम्। तारौह्रैपरमान्ते तु ह्रंसफट्प्रणवस्ततः॥१९८॥
ह्रः हिरण्यगर्भरूपधारणान्ते च फट् ध्रुवः। ह्रौं अनौपम्यरूपधारिणास्त्रं ध्रुवस्ततः॥१९९॥

क्षौं नृसिंहरूपधारिन् ओं क्लं श्लक्ष्ण स्वरादिकः।
ष्टाङ्गविन्यासविन्यस्यतमूर्तिधारिंस्ततश्च फट्॥२००॥

ह्रौ निसर्ग्रसिद्ध्यैकरूपधारिंस्ततश्च फट्। तारो वर्मत्रयं सङ्करं वं चामुकमस्तकम्॥२०१॥

खण्डद्वयं खादयेति द्वयं क्लीं साध्यमानय।
द्वयं ततो महात्मन्स्यान्सम्यग्दर्शययुग्मकम्॥२०२॥
षड्दीर्घाढ्यां स्वबीजं च क्षपितान्ते तु कल्मष।
उत्तरायंद्वयं पञ्चबाणबीजानि वोच्चरेत्॥२०३॥
नृसिंहान्ते ततो ज्वालात्मने स्वाहा समीरयेत्।
नृसिंहान्ते ततः कालात्मने स्वाहा ध्रुवस्ततः॥२०४॥
खबीजं कामबीजं च लक्ष्मीबीजद्वयं ततः।
मायातारान्तिमो मन्त्रः सहस्त्राक्षरसम्मितः॥२०५॥
कपिलोऽस्य मुनिश्छन्दो जगती देवता पुनः।
श्रीलक्ष्मीर्नृहरिर्बीजं क्षौं शक्तिर्वह्निवल्लभा॥२०६॥

अब सहस्त्राक्षर अत्यन्त गुप्त मन्त्र को कहता हूं। (यह मन्त्र श्लोक १६२ से "तारो माया रमा कामो बीजं क्रोधपदं ततः" से प्रारंभ होकर "माया तारान्तिमो मन्त्र।" तक है। यह श्लोक २०५ तक है। इसका अनुवाद मन्त्र होने के कारण नहीं हो सका। (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञलोग करें)। यह सहस्त्राक्षर मन्त्र है।।१५९-२०६।।

श्वेतो वर्ण उदात्तश्च स्वरः प्रोक्तो मनीषिभिः।
क्षेत्रं च परमात्मा तु विनियोगोऽखिलाप्तये॥२०७॥

इसके ऋषि हैं कपिल। छन्दः है जगती, देवता हैं लक्ष्मी नृहरि। इसका बीज मनीषीगण ने क्षौं, शक्ति स्वाहा, वर्ण श्वेत तथा इसका स्वर उदात्त है। इसके क्षेत्र हैं परमात्मा। इसका प्रयोग सर्वप्राप्ति हेतु होता है।।२०७।।

क्षः सहस्त्रबाहवेन्ते सहस्त्रायुधधराय च। नृसिंहान्तं वह्निजायास्त्रफट् मन्त्र ईरितः॥२०८॥
अनेन करशुद्धिं च कृत्वाङ्गानि समाचरेत्। तारः क्षां च सहस्त्रान्ते क्षरशब्दाद्विजृम्भितम्॥२०९॥

नृसिंहायाग्निजायान्तो हृदये मनुरीरितः।
तारः क्ष्रीं च महातनुं प्रभान्ते विकरेति च॥२१०॥
नृसिंहायाग्निजायान्ते शिरोमन्त्रः प्रकीर्तितः।
तारः क्ष्रूं तप्तयंहायश्चादृक्क्केशान्त ईरयेत्॥२११॥
ज्वलत्यावकलो कूर्मौ दीर्घा वज्राधिकेति च।
नखस्पर्शाद्दिव्यसिंह नमोऽस्तु भगवन् हरिः॥२१२॥
महाध्वस्त जगद्रूप नृसिंहाय द्वयं द्वयम्। अनेन च शिखा प्रोक्ता कवचं तदनन्तरम्॥२१३॥
तारः क्षैं च सुवर्णं ते मदमत्तपदं ततः। विह्वलितनृसिंहाय स्वाहान्तं कवचं स्मृतम्॥२१४॥
तारः क्ष्रौं च सहस्राक्ष विश्वरूपपदं वदेत्।
धारणेग्निप्रियान्तोऽयं नेत्रमन्त्रः प्रकीर्तितः॥२१५॥
तारो क्षश्च सहस्रान्ते वारोवेपदमीरयेत्। सहस्रान्ते युधायाथ नृसिंहायाग्निसुन्दरी॥२१६॥

"ॐ क्षः सहस्रबाहवें सहस्रायुधधराय नृसिंहाय स्वाहा फट्" मन्त्र है। इसी से कर शुद्धि तथा अंग न्यास करे। ॐ क्षां सहस्राक्षर नृसिंहाय स्वाहा-कहकर हृदय स्पर्श, ॐ क्षीं महातनु प्रभा विकरेति नृसिंहाय स्वाहा से शिर स्पर्श, ॐ क्षूं से केशान्त स्पर्श करे। "ॐ क्षीं महातनुं प्रभाविकरेति स्वाहा" यह शिरो मन्त्र हैं। "ॐ क्षूं इत्यादि यह शिखा मन्त्र है।

(तारः क्षूं से लेकर अनेन च शिखा प्रोक्ता का मन्त्रोद्धार नहीं किया गया विज्ञजन इसे करे)। अब कवच मन्त्र कहते हैं—ॐ क्षैं सुवर्णं मदमत्त विह्वलित नृसिंहाय स्वाहा—यह कवच मन्त्र है। ॐ क्षौं सहस्राक्ष विश्वरूप धारणे स्वाहा—यह नेत्र मन्त्र है। ॐ क्षः इत्यादि यह अस्त्र मन्त्र है। (विज्ञजन "तारो क्षश्च सहस्रान्ते" से लगाकर "नृसिंहायानि सुन्दरी" का मन्त्रोद्धार करें।)।।२०८-२१६।।

अस्त्रमन्त्रः समाख्यातस्ततो ध्यायेन्नृकेसरी।
उद्यदर्कसहस्राभं त्रीक्षणं भीमभूषणम्॥२१७॥
सुतीक्ष्णाग्रभुजो दण्डैर्दैत्यदारणकं स्मरेत्।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री सहस्रं पायसेन च॥२१८॥
आज्यप्लुतेन जुहुयात्सम्यक्सिद्धो भवेन्मनुः।
प्रागुक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः॥२१९॥
सम्पूज्य नृहरिं पश्चादादावङ्गानि पूजयेत्।
चक्रं शङ्खं च पाशं वाङ्कुशं कुलिशमेव च॥२२०॥
गदाकृपाणिक्ष्वेडानि दलेषु परिपूजयेत्। लोकेशानपि वज्राद्यान्पूजयेत्तदनन्तरम्॥२२१॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति।
भस्माभिमन्त्रितं कृत्वा ग्रहग्रस्तं विलेपयेत्॥२२२॥

भस्मसंलेपनादेव सर्वग्रहविनाशनम्। अनेनैव विधानेन यक्षराक्षसकिन्नरः॥२२३॥

यह अस्त्र मन्त्र कहा गया अब नृकेसरी देव का ध्यान कहते हैं—उदीयमान सहस्रों सूर्य के समान कान्तिवाले, त्रिनेत्र, दारुण भूषणान्वित, अत्यन्त सुतीक्ष्ण भुजाग्र भाग से दैत्य दारण करने वाले श्रीनृहरि का ध्यान करे। तदनन्तर एक हजार मन्त्र जप करके १०० होम घृतपायस से करना चाहिये। इस विधि से मन्त्र सिद्धि हो जाता है। पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति का संकल्प करके नृहरि के पूजनोपरान्त अंगदेवता पूजन करे। तत्पश्चात् दिग्दलों में शंख, चक्र, पाश, अंकुश, वज्र, गदा, कृपाण वंश शलाका तथा लोकपालों के वज्रादि आयुध पूजा करे। इस प्रकार से मन्त्र सिद्धि पाकर वह मन्त्रज्ञ व्यक्ति मन्त्र प्रयोग कर सकता है। यह भस्म को मन्त्राभिमंत्रित करके ग्रहग्रस्त पर लेप करे। इससे समस्त ग्रह नष्ट हो जाते हैं। इसी विधान से यक्ष, राक्षस, किन्नर।।२१७-२२३।।

भूतप्रेतपिशाचाश्च नश्यन्त्येव न संशयः। पराभिचारकृत्यानि मनुनानेन मन्त्रितम्॥२२४॥
भस्म संलेपयेत्सद्यो दुराधर्षो भवेन्नरः। सुदिने स्थापेत्कुम्भे सर्वतोभद्रमण्डले॥२२५॥
तीर्थतोयेन सम्पूर्य जपेदष्टोत्तरं शतम्। तेनाभिषिक्तो मनुजः सर्वापत्तिं तरेद् ध्रुवम्॥२२६॥
किं बहूक्तेन सर्वेष्टदायकोऽयं मनूत्तमः। वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि।
तन्नो नृसिंहः शब्दान्ते वदेच्चैव प्रचोदयात्॥२२७॥
एषा नृसिंहगायत्री सर्वाभीष्टप्रदायिनी। एतस्याः स्मरणादेव सर्वपापक्षयो भवेत्॥२२८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने नृसिंहोपासनामन्त्रगायत्र्यादिनिरूपणं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः।।७१।।

भूत, प्रेत, पिशाच नष्ट हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। पराभिचार कृत्य में इस मन्त्र से मन्त्रित भस्म का लेप करने से मनुष्य दुराधर्ष हो जाता है। यह निःसंदिग्ध बात है। उत्तम दिवस में सर्वतोभद्र मण्डल बनाये। वहां कुंभ स्थापना करे। उसे तीर्थजल से भरकर १०८ मन्त्र जपे। उस जल से अभिषिक्त मनुष्य निश्चित रूप से सभी आपत्तियों से उत्तीर्ण हो जाता है। किम्बहुना, यह मन्त्र सर्व इष्ट प्रदायक है। अब नृसिंह गायत्री कहते हैं, जो समस्त अभीष्टदायक है। इसके स्मरण से ही सर्वपाप क्षयीभूत हो जाते हैं। गायत्री है—"ॐ वज्रनखाय विद्महे, तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नृसिंह प्रचोदयात्"।।२२४-२२८।।

।।७१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
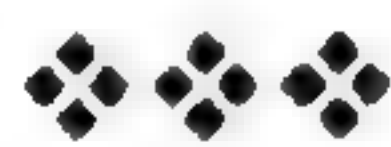
अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

हयग्रीव मन्त्रोपासना का वर्णन

सनत्कुमार उवाच

प्रणवो हृदयं विष्णुर्नेन्तः सुरपतिस्तथा। महाबलाय स्वाहान्तो मन्त्रो वसुधराक्षरः॥१॥
मुनिरिन्दुर्विराट्छन्दो देवता दधिवामनः। तारो बीजं तथा शक्तिर्वह्निजाया प्रकीर्तिता॥२॥
चन्द्राक्षिरामबाणेषु नेत्रसंख्यैर्मनूद्भवैः। वर्णैः षडङ्गं कृत्वा च मूर्ध्नि भाले च नेत्रयोः॥३॥
कर्णयोर्घ्राणयोरोष्ठतालुकण्ठभुजेषु च। पृष्ठे हृद्युदरे नाभौ गुह्ये चोरुस्थले पुनः॥४॥
जानुद्वयं जङ्घयोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात्। अष्टादशैव मन्त्रोत्थास्ततो देवं विचिन्तयेत्॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—"ॐ नमः विष्णु अनन्तः सुरपति महाबलाय स्वाहा" यह वसुधराक्षर मन्त्र है। इसके मुनि हैं इन्दु, छन्दः है विराट्, देवता हैं दधिवामन। ॐ बीज तथा स्वाहा शक्ति है। मन्त्र वर्ण से षडङ्ग न्यास करके मस्तक, भाल, नेत्र, कर्ण, घ्राण, ओष्ठ, तालु, कण्ठ, भुजा, पीठ, हृदय, उदर, नाभि, गुह्य, उरु, जानुद्वय, जंघाद्वय, चरणद्वय में क्रमशः मंत्र से न्यास करे। इन १८ स्थानों पर न्यास करके देवता का ध्यान करे।।१-५।।

मुक्तागौरं रत्नभूषणं चन्द्रस्थं भृङ्गसन्निभैः। अलकैर्विलसद्वक्त्रं कुम्भं शुद्धाम्बुपूरितम्॥६॥
दध्यन्नपूर्णचषकं दोर्भ्यां सन्दधतं भजेत्। लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः॥७॥
पायसान्नैः प्रजुहुयाद्दध्यन्नेन यथाविधि। चन्द्रान्ते कल्पिते पीठे पूर्वोक्ते पूजयेच्च तम्॥८॥
सङ्कल्पमूर्तिमूलेन सम्पूज्य च विधानतः। केसरेषु षडङ्गानि सम्पूज्य दिग्दलेषु च॥९॥
वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम्। कोणपत्रेषु शान्तिं च श्रियं सरस्वतीं रतिम्॥१०॥
ध्वजं च वैनतेयं च कौस्तुभं वनमालिकम्। शङ्खं चक्रं गदां शार्ङ्गं दलेष्वष्टसुपूजयेत्॥११॥

दलाग्रेषु केशवादीन्दिक्पालांस्तदनन्तरम्।
तदस्त्राणि च सम्पूज्य गजानष्टौ समर्चयेत्॥१२॥
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥१३॥
करिण्योऽभ्रमुकपिलापिङ्गलानुपमाः क्रमात्।
ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चाङ्गना ह्यञ्जनावती॥१४॥

ये देव मुक्ता के समान गौरवर्ण वाले, रत्नभूषित, चन्द्रस्थ, भृंगवत अलक से शोभित मुखाकृति वाले, हाथों में शुद्धजलपूर्ण घट, दधि तथा अन्नपूर्ण पात्रधारी हैं, इन देवता का ध्यान करके तीन लाख जप सम्पन्न करके तीस हजार पायसान्न तथा घृत मिलाकर होम यथाविधि करना चाहिये। पूर्वोक्त प्रकारेण चन्द्र पीठ पर कल्पित मूर्त्ति की पूजा सविधि करनी चाहिये। केसरों पर षडङ्गपूजनोपरान्त दिग्दलों में वासुदेव, संकर्षण,

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, शान्ति, श्री, सरस्वती, रति, ध्वजा, गरुड़, कौस्तुभ, वनमाला, शंख, चक्र, शार्ङ्गधनु की पूजा करके केशवादि देवता, दिक्पालगण, उनके आयुधों तथा अष्ट दिग्गजों की पूजा करके उन दिग्गजों की पूजा करे। अष्ट दिग्गज हैं ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम तथा सुप्रतीक। इनकी अष्ट हथिनीगण हैं—भ्रमु, कपिला, पिंगला, अनुपमा, ताम्रकर्णी, शुभ्रदन्ती, अंगना, अंजनावती।।६-१४।।

एवमाराधितो मन्त्री दद्यादिष्टानि मन्त्रिणे।
श्रीकामः पायसाज्येन सहस्रं जुहुयात्सुधीः॥१५॥
महतीं श्रियमाप्नोति धान्याप्तिर्धान्यहोमतः। शतपुष्पासमुत्थैश्च बीजैर्हुत्वा सहस्रतः॥१६॥
महाभयं नाशयेद्धि नात्र कार्या विचारणा। दध्योदनेन शुद्धेन हुत्वा मुच्येत दुर्गतेः॥१७॥
ध्यात्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मन्त्रं समाहितः।
कारागृहाद्द्रवन्मुक्तो बद्धो मन्त्रप्रभावतः॥१८॥

यह आराधना साधक हेतु इष्टदात्री है। धनेच्छा रखने वाला सुधीसाधक पायस तथा घृत से एक हजार होम करे। धान्य होम से महती श्री प्राप्त होती है तथा धान्य लाभ होता है। सौंफ से एक हजार होम करने वाला साधक महाभय का नाश कर देता है। इसमें अन्यथा शंका न करे। शुद्ध गोदुग्ध की दधि तथा भात से होम करे। दुर्गति का नाश होगा। त्रिविक्रमदेव का ध्यान करके व्यक्ति समाहित होकर मन्त्र जपे। कारागार से मुक्ति होगी। यह मन्त्र प्रभाव है।।१५-१८।।

भित्तौ सम्पाद्य देवेशं फलके वा प्रपूजयेत्।
नित्यं सुगन्धकुसुमैर्महतीं श्रियमाप्नुयात्॥१९॥
हुत्वा रक्तोत्पलैर्मन्त्री वशयेत्सकलं जगत्। अन्नाज्यैर्जुहुयान्नित्यमष्टाविंशतिसंख्यया॥२०॥
सिताज्यान्नं च विधिवत्प्राप्नुयादन्नमक्षयम्। अपूपैः षड्रसोपेतैर्हुनेद्वसुसहस्रकम्॥२१॥
अलक्ष्मीं च पराभूय महतीं श्रियमाप्नुयात्।
जुहुयादयुतं मन्त्री दध्यन्नं च सितान्वितम्॥२२॥

इन देवेश का चित्र भित्ति (दीवार) किंवा चित्रपट पर बनाकर नित्य सुगन्ध पुष्पों से पूजा करे। उसे महती श्री का लाभ होगा। जो व्यक्ति लाल कमलों से होम करेगा, त्रैलोक्य उसके वश में हो जायेगा। जो नित्य सविधि घृत-शर्करा मिश्रित अन्न से २८ बार होम करेगा, उसे क्षय रहित अन्न लाभ होगा। षड्रसान्वित मालपूआ से साठ हजार होम करने वाला अपनी दरिद्रता का नाश करके प्रभूत लक्ष्मीलाभ करेगा। जो दधि शर्करा तथा अन्न से दस हजार होम करेगा।।१९-२२।।

यत्र तत्र वसेत्सोऽपि तत्रान्नगिरिमाप्नुयात्।
पद्माक्षैर्युतं बिल्वान्तिकस्थो जुहुयान्नरः॥२३॥
महालक्ष्मीं च लभते तत्र तत्र न संशयः। जुहुयात्पायसैर्लक्षं वाचस्पतिसमो भवेत्॥२४॥

वह चाहे जहां कहीं क्यों न रहे, उसे प्रभूत अन्न की प्राप्ति होगी। बिल्ववृक्ष के नीचे जो पद्मपराग मिश्रित दधि तथा अन्न से होम करेगा, उसे जन्म-जन्मान्तर में सदा महान् लक्ष्मी प्राप्त होती रहेगी, यह निःसंदिग्ध है, जो खीर से एक लक्ष हवन करेगा, वह बृहस्पति के समान हो जायेगा।।२३-२४।।

लक्षं जप्त्वा दद्दशांशं पुत्रजीवफलैर्हुनेत्। तत्ककाष्ठैरेधिते वह्नौ श्रेष्ठं पुत्रमवाप्नुयात्॥२५॥
ससाध्यतारं विलसत्कर्णिकं च सुवर्णकैः। विलसत्केसरं मन्त्राक्षरद्वंद्वाष्टपत्रकम्॥२६॥
शेषयुग्मार्णान्त्यपत्रं द्वादशाक्षरवोष्टतम्। तद्बहिर्मातृकावर्णैर्यन्त्रं सम्पत्प्रदं नृणाम्॥२७॥
रक्तं त्रिविक्रमं ध्यात्वा प्रसूनै रक्तवर्णकैः। जुहुयादयुतं मन्त्री सर्वत्र विजयी भवेत्॥२८॥

एक लाख मन्त्र जपोपरान्त जियुतिया (पुत्रजीव) के फलों से होम दस हजार करे। उसी वृक्ष की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में उसी वृक्ष के फल से होम करने वाला उत्तम पुत्र लाभ करेगा। साध्यनाम एवं ओंकार युक्त कर्णिका का केसरों से शोभित द्वादश मन्त्राक्षरों से आवेष्ठित स्वर्णयन्त्र, जिसके बाहर मातृकावर्ण लिखे हों, उत्तम लक्ष्मी प्रदान करता है।।२५-२७।।

ध्यायेच्चन्द्रासनगतं पद्मानामयुतं हुनेत्। लभेदकण्टकं राज्यं सर्वलक्षणसंयुतम्॥२९॥
हुत्वा लवङ्गैर्मध्वाक्तैरपामार्गदलैस्तु वा।
अयुतं साध्यनामाढ्यं स वश्यो जायते ध्रुवम्॥३०॥

रक्तवर्ण त्रिविक्रम का ध्यान करके लाल पुष्पों से हवन करे। वह साधक सर्वत्र विजयी होगा। जो व्यक्ति चन्द्रासनासीन त्रिविक्रम को याद करके १०००० कमल द्वारा होम करता है, उसे सर्वलक्षणान्वित निष्कंटक राज्य लाभ होता है। मधुलिप्त लौंग अथवा अपमार्ग पत्र से १०००० हवन जिसका मन्त्र के साथ नामोच्चारण करते किया जायेगा, वह वशीभूत होगा। यह ध्रुव निश्चित है।।२८-३०।।

अष्टोत्तरशतं हुत्वा ह्यपामार्गदलैः शुभैः। तावज्जप्त्वा च सप्ताहान्महारोगात्प्रमुच्यते॥३१॥
उहिरत्पदमाभाष्य प्रणवोहीय शब्दतः। सर्ववागीश्वरेत्यन्ते प्रवदेदीश्वरेत्यथ॥३२॥
सर्ववेदमयाचिन्त्यपदान्ते सर्वमीरयेत्। बोधयद्वितवान्तोऽयं मन्त्रस्तारादिरीरितः॥३३॥
ऋषिर्ब्रह्मास्य निर्दिष्टश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
देवता स्याद्धयग्रीवो वागैश्वर्यप्रदो विभुः॥३४॥
तारेण पादैर्मन्त्रस्य पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत्। तुषाराद्रिसमच्छायं तुलसीदामभूषितम्॥३५॥
तुरङ्गवदनं वन्दे तुङ्गसारस्वतः पदम्। ध्यात्वैवं प्रजपेन्मन्त्रमयुतं तद्दशांशतः॥३६॥

एक सप्ताह तक शुभ अपमार्ग दल से १०८ बार मन्त्र जप तथा उतना ही होम करने वाला व्यक्ति महारोग रहित हो जाता है। तारादि मन्त्र मूल में ''उहिरत्यदम्'' से लगाकर ''बोधय द्वित वान्तोयं'' पर्यन्त कहा गया है। (इसका मन्त्रोद्धार अज्ञतावश नहीं हो सका। विज्ञजन सम्पन्न करे)। इनके ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है अनुष्टुप्। देवता है वाणी तथा ऐश्वर्यदाता विभु हयग्रीव है। इसे तारामन्त्र कहते हैं। इससे पंचांगन्यासोपरान्त हिमवत् आभायुक्त, तुलसीमाला भूषित, अश्वमुख, तुंग सारस्वत पद वाले, देवता हयग्रीव का ध्यान करे। इस मन्त्र का दस हजार जप करके उससे १/१० संख्यक होम करे।।३१-३६।।

मध्वक्तै पायसैर्हुत्वा विमलादिसमन्विते। पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्ति सङ्कल्प्य मूलतः॥३७॥
कर्णिकायां चतुर्दिक्षु यजेत्पूर्वादितः क्रमात्।
सनन्दनं च सनकं श्रियं च पृथिवीं तथा॥३८॥

मधुयुक्त खीर से यह होम करना चाहिये। तदनन्तर विमल वैष्णव पीठ के ऊपर मूल मन्त्र से मूर्त्ति कल्पना करके उसकी पूजा करे। तब चतुर्दिक् कर्णिका पर पूर्व आदि दिशा क्रमेण सनंन्दन, सनक, श्री तथा पृथिवी की पूजा करनी चाहिये।।३७-३८।।

तद्बहिर्दिक्षु वेदाश्च षट्कोणेषु ततोऽर्चयेत्।
निरुक्तं ज्योतिषं पश्चाद्यजेद्व्याकरणं ततः॥३९॥
कल्पं शिक्षां च छन्दांसि वेदाङ्गानि त्विमानि वै।
ततोऽष्टदलमूले तु मातरोऽष्टौ समर्चयेत्॥४०॥
वक्रतुण्डादिकानष्टौ दलमध्ये प्रपूजयेत्। दलाग्रेष्वर्चयेत्पश्चात्साधकश्चाष्टभैरवान्॥४१॥
असिताङ्गं रुरुं चैव भीषणं रक्तनेत्रकम्। बटुकं कालदमनं दन्तुरं विकटं तथा॥४२॥
तद्बहिः षोडशदलेष्ववतारान्हरेर्दश। शङ्खं चक्रं गदां पद्मं नन्दकं शार्ङ्गमेव च॥४३॥
तद्बहिर्भूगृहे शक्रमुखान्दश दिगीश्वरान्।
वज्राद्यांस्तद्बहिश्चेष्ट्वा द्वारेषु च ततः क्रमात्॥४४॥

उसकी बाहरी दिशा में वेदार्चन करके षट्कोणों में क्रमशः निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, कला, शिक्षा तथा छन्द रूप वेदांगों की भी पूजा करे। तत्पश्चात् अष्टदल मूल में अष्टमातृका पूजा सम्पन्न करे। दलमध्य में अष्ट वक्रतुण्डादि की पूजा करनी चाहिये। दलाग्र में अष्ट भैरव की पूजा करे। ये हैं असितांग, रुरु, भीषण रक्तनेत्र, बटुक, कालदमन, दन्तुर तथा विकट हैं। तदनन्तर उसके बाहर षोडशदल पर हरि के दशावतार की तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक, तलवार, शाङ्ग धनुष की पूजा करके उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पाल। उनके वज्रादि आयुध का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर द्वारों पर क्रमशः।।३९-४४।।

महागणपतिं दुर्गा क्षेत्रेशं वटुकं तथा। समस्तप्रकटाद्याश्च योगिन्यस्तद्बहिर्भवेत्॥४५॥
तद्बहिः सप्त नद्यश्च तद्बाह्ये तु ग्रहान्नव। तद्बाह्ये पर्वतानष्टौ नक्षत्राणि च तद्बहिः॥४६॥
एवं पञ्चदशावृत्त्या सम्पूज्य तुरगाननम्। वागीश्वरसमो वाचि धनैर्धनपतिर्भवेत्॥४७॥

महागणपति, दुर्गा, क्षेत्रेश, बटुक समस्त प्रकट योगिनीगण की पूजा करे। उसके बाहर सात नदी की, उसके बाहर नवग्रह की, उसके बाहर अष्ट पर्वत की तथा नक्षत्रों की पूजा उसके बाहर करे। इस प्रकार पंचदश आकृत्ति से हयग्रीव की पूजा करके साधक वागीश्वर जैसी वाणी वाला तथा धन में कुबेर के समान हो जाता है।।४५-४७।।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति। अष्टोत्तरसहस्त्रं तु शुद्धं वार्यभिमन्त्रितम्॥४८॥
बीजेन मासमात्रं यः पिवेद्धीमान् जितेन्द्रियः।
जन्ममूकोऽपि स नरो वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम्॥४९॥

जो व्यक्ति इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेता है, वह मन्त्र का प्रयोग करने में सक्षम हो जाता है। पवित्र जल को १००८ बार बीजमन्त्राभिमंत्रित करके जो नित्य १ मास तक इन्द्रियों को वश में रखकर उसका पान करता है, उस साधक को वाक्सिद्धि हो जाती है, भले ही वह जन्म से मूक क्यों न हो। यह निश्चित है।।४८-४९।।

वियद्भृगुस्थमर्धीराबिन्दुमद्बीजमीरितम्। चन्द्रसूर्योपरागे तु पात्रे रुक्ममये क्षिपेत्।।५०।।
दुग्धं वचां ततो मन्त्री कण्ठमात्रोदके स्थितः।
स्पर्शाद्विमोक्षपर्यन्तं प्रजपेन्मन्त्रमादरात्।।५१।।
पिबेत्तत्सर्वमचिरात्तस्य सारस्वतं भवेत्। ज्योतिष्मतीलताबीजं दिनेष्वेकैकवर्द्धितम्।।५२।।
अष्टोत्तरशतं यावद्भक्षयेदभिमन्त्रितम्। सरस्वत्यवतारोऽसौ सत्यं स्याद्भुवि मानवः।।५३।।

"वियद्भृगुस्थमर्धीराविन्दुमद्बीजमीरितम्" (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञजन करें)—इस बीज मन्त्र का सूर्य किंवा चन्द्रग्रहण काल में स्वर्णपात्र में गौ दुग्ध छोड़े। स्वयं कण्ठ पर्यन्त जल में खड़ा होकर ग्रहण स्पर्श से मोक्ष पर्यन्त उपर्युक्त मन्त्र का जप सादर करते हुये अन्त में वह दुग्ध पीये। उस व्यक्ति को त्वरित वाक्सिद्धि मिलती है। १०८ मालकंगनी का बीज लेकर मन्त्राभिमंत्रित करे। पहले दिन एक खाये। दूसरे दिन दो। इस प्रकार एक-एक वृद्धि करते भक्षण करे। ऐसा मानव पृथिवी पर निश्चित रूप से सरस्वती का अवतार कहा जायेगा।।५०-५३।।

किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र मनोरस्य प्रसादतः।
सर्ववेदागमादीनां व्याख्याता ज्ञानवान् भवेत्।।५४।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने सनत्कुमारविभागे तृतीयपादे हयग्रीवोपासना-निरूपणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

हे विप्रवर! अधिक कहना व्यर्थ है। इस मन्त्र के प्रभाव से वह व्यक्ति सर्ववेदागम प्रभृति का व्याख्याता तथा ज्ञानवान् हो जाता है।।५४।

।।७२वां अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

लक्ष्मण तथा राम मन्त्र जपविधि

सनत्कुमार उवाच

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यन्ते सिद्धिदायकाः। येषामाराधनान्मर्त्यास्तरन्ति भवसागरम्।।१।।
सर्वेषु मन्त्रवर्येषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते। गाणपत्येषु सौरेषु शाक्तशैवेष्वभीष्टदम्।।२।।
वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः।
गाणपत्यादिमन्त्रेभ्यः कोटिकोटिगुणाधिकाः।।३।।

विष्णुशय्यास्थितो बह्निरिन्दुभूषितमस्तकः। रामाय हृदयान्तोऽयं महाघौघविनाशनः॥४॥
सर्वेषु राममन्त्रेषु ह्यतिश्रेष्ठः षडक्षरः। ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञाताज्ञातकृतानि च॥५॥
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च। कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यानि वै॥६॥
मन्त्रस्योच्चारणात्सद्यो लयं यान्ति न संशयः।
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दो रामश्च देवता॥७॥
आद्यं बीजं च हृच्छक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥८॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं सिद्धिप्रद राम मन्त्र का वर्णन करता हूं, जिसकी आराधना मात्र से मनुष्य भवसागर पार कर लेता है। सभी श्रेष्ठ मन्त्रों में से वैष्णव मन्त्र को उत्तम कहा गया है। गणपति, सूर्य, शक्ति तथा शैव मन्त्रों की तुलना में विष्णु मन्त्र ही कल्याणप्रद तथा श्रेष्ठतम कहा गया है, तथापि उन विष्णुमन्त्रों में भी राममन्त्र सर्वाधिक फलप्रद है। गणपति प्रभृति मन्त्रों से इसका फल कोटिगुणित है। विष्णु शय्यास्थित अग्नि के मस्तक पर इन्द्रभूषित हों तदनन्तर रामाय नमः कहे। यह महापाप नाशक है अर्थात् "रां रामाय नमः" मन्त्रोद्धार है। सभी राममन्त्रों में षडक्षर मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः की गई हजारों ब्रह्महत्या, जाने-अनजाने किये पाप, स्वर्णचोरी, मद्यपान, गुरु पत्नीगमन, ऐसे हजारों-करोड़ों पाप-उपपाप जो कुछ भी हैं, वे राममन्त्रोंच्चारण से तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यह निःसंदिग्ध है। इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा। गायत्री छन्दः है। राम देवता हैं। रं बीज है। हृत् शक्ति है। सर्वप्राप्ति हेतु इसका उपयोग होता है। षड्दीर्घ मात्रायुक्त बीज से षडङ्ग न्यास करे।।१-८।।

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्येहृन्नाभ्योर्गुह्यपादयोः। मन्त्रवर्णान्क्रमान्न्यस्य केशवादीन्प्रविन्यसेत्॥९॥
पीठन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेद्धृदि रघूत्तमम्।
कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम्॥१०॥
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्। सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्॥११॥
पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्।
ध्यात्वैवं प्रजपेद्वर्णलक्षं मन्त्री दशांशतः॥१२॥
कमलैर्जुहुयाद्वह्नौ ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः। पूजयेद्वैष्णवे पीठे विमलादिसमन्विते॥१३॥

तब ब्रह्मरन्ध्र, भ्रूमध्य, हृत्, नाभि, गुह्य, चरणद्वय में मन्त्रवर्ण का न्यास सम्पन्न करके केशवादि न्यास करे। तत्पश्चात् पीठन्यासादि करके हृदय में रघुश्रेष्ठ राम का ध्यान करे। वे श्याम वर्ण मेघवत् कान्तियुक्त वीरासनासीन, ज्ञानमुद्राधारी है। उन्होंने जानु के बीच दाहिने हाथ में ज्ञान मुद्राधारण किया है। उनके पार्श्व में स्थित सीता विद्युत् के मान आभा वाली हैं। वे विविध आभूषणों से सज्जित हैं तथा हाथों में उन्होंने कमल धारण किया है। वे निरन्तर राम के मुखकमल को देख रही हैं। इस प्रकार ध्यानोपरान्त वह मन्त्रज्ञ साधक छः लक्ष मन्त्र जप करे तथा साठ हजार होम कमल पुष्प से करे। इसके अनन्तर ब्राह्मण को भोजन कराने के पश्चात् विमलादि समन्वित वैष्णवपीठ पर पूजा करे।।९-१३।।

मूर्तिमूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य साधकः।
सीतां वामे समासीनां तन्मन्त्रेण प्रपूजयेत्॥१४॥

वहां मूल मन्त्र से मूर्त्ति का संकल्प करके उन देव का आवाहन करना चाहिये। राम का तथा उनके वाम भाग में आसीना सीता का आवाहन करना चाहिये तथा उस मन्त्र से उनकी पूजा करे।।१४।।

रमासीतापदं ङेन्तं द्विठान्तो जानकीमनुः।
अग्नेः शार्ङ्गं च सम्पूज्य सरान्पार्श्वद्वयेऽर्चयेत्॥१५॥
केशरेषु षडङ्गानि पत्रेष्वेतान्समर्चयेत्। हनुमन्तं च सुग्रीवं भरतं सविभीषणम्॥१६॥
लक्ष्मणाङ्गदशत्रुघ्नान् जाम्बवन्तं क्रमात्पुनः। वाचयन्तं हनुमन्तमग्रतो धृतपुस्तकम्॥१७॥
यजेद्भरतशत्रुघ्नौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ। धृतातपत्रं हस्ताभ्यां लक्ष्मणं पृष्ठतोऽर्चयेत्॥१८॥

यह जानकी मन्त्र है—"रमा सीता ङेन्तं द्विठान्त" अर्थात् स्वाहा इसका मन्त्रोद्धार करके स्वाहा का योग करे। यही जानकी मन्त्र है। तब अग्नि तथा शार्ङ्गधनुष की पूजा करने के उपरान्त उभय पार्श्व में बाण पूजन करे। केशरों पर छः अंग देवता पूजन करके पत्र पर हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान का पूजन करने के उपरान्त राम के आगे पुनः हाथ में पुस्तक लेकर पढ़ते हुये हनुमान का, प्रभु के उभय पार्श्व में चामरधारी भरत तथा शत्रुघ्न की तथा प्रभु के पृष्ठभाग में छत्रधारी लक्ष्मण की पूजा करे।।१५-१८।।

ततोऽष्टपत्रे सृष्टिं च जपन्तं विजयं तथा। सुराष्ट्रं राष्ट्रपालं च अकोपं धर्मपालकम्॥१९॥
सुमन्तं चेति सम्पूज्य लोकेशानायुधैर्युतान्।
एवं रामं समाराध्य जीवन्मुक्तः प्रजायते॥२०॥

तत्पश्चात् अष्टदल पर सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल, अकोप, धर्मपाल, सुमन्त की पूजा के उपरान्त लोकपाल तथा उनके आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार सविधि राम की आराधना करने वाला जीवन्मुक्त हो जाता है।।१९-२०।।

चन्दनाक्तैः प्रजुहुयाज्जातीपुष्पैः समाहितः। राजवश्याय कमलैर्धनधान्यादिसिद्धये॥२१॥
लक्ष्मीकामः प्रजुहुयात्प्रसूनैर्विल्वसम्भवैः। आज्यक्तैर्नीलकमलैर्वशयेदखिलं जगत्॥२२॥
घृताक्तशतपर्वीभिर्दीर्घायुश्च निरामयः।
रक्तोत्पलानां होमेन धनं प्राप्नोति वाञ्छितम्॥२३॥
पालाशकुसुमैर्हुत्वा मेधावी जायते नरः।
तज्जप्ताम्भः पिबेत्प्रातर्वत्सरात्कविराड् भवेत्॥२४॥
तन्मन्त्रितान्नं भुञ्जीत महारोगप्रशान्तये। रोगोक्तौषधहोमेन तद्रोगान्मुच्यते क्षणात्॥२५॥

इसके पश्चात् इसी मन्त्रोच्चारण के साथ जो साधक समाहित चित्त से चन्दन लिप्त जातीपुष्पों से होम करता है, वह राजवशीकरण करता है। कमलपुष्प द्वारा होम से धन-धान्यादि की सिद्धि होती है। लक्ष्मीकामी

बिल्व पुष्पों से होम करे। जो व्यक्ति घृत लिप्त नीलकमल से होम करता है, समस्त संसार उसके वशीभूत हो जाता है। घृतलिप्त दूर्वादल से होम करने वाला दीर्घायु तथा आरोग्य लाभ करता है। रक्त कमल से होम करने वाला वांछित धनलाभ करता है। पलाशपुष्प से हवन करने वाला मेधावी हो जाता है। एक वर्ष पर्यन्त जो इस मन्त्र से मन्त्रित जल पीता है, वह महाकवि होता है। इस मन्त्र से अभिमंत्रित अन्नाहार करने वाले की भयानक व्याधि का भी नाश हो जाता है। जिस रोग हेतु जिस औषधि का विधान है, उससे हवन करने वाले की वह व्याधि नष्ट हो जाती है।।२१-२५।।

नदीतीरे च गोष्ठे वा जपेल्लक्षं पयोव्रतः। पायसेनाज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत्॥२६॥
परिक्षीणाधिपत्यो यः शाकाहारो जलान्तरे। जपेल्लक्षं च जुहुयाद्बिल्वपुष्पैर्दशांशतः॥२७॥
तदैव पुनराप्नोति स्वाधिपत्यं न संशयः। उपोष्य गङ्गातीरान्ते स्थित्वा लक्षं जपेन्नरः॥२८॥

जो व्यक्ति नदी के किनारे अथवा गौशाला के मात्र दुग्धहार पर रहकर एक लाख यह मन्त्र जपता है तथा दस हजार होम खीर एवं घृत से करता है, वह विद्यानिधि होगा। जिस राजा का आधिपत्य क्षीण हो, वह शाकाहारी रहे तथा जल के बीच खड़े होकर एक लाख मन्त्र जप करे। तदनन्तर दस हजार होम बिल्वपुष्पों से करे। वह अपना आधिपत्य पुनः पाता है। इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्य उपवासी रहकर गंगातट पर एक लाख मन्त्र जप करे।।२६-२८।।

दशांशं कमलैर्हुत्वा विल्वोत्थैर्वा प्रसूनकैः। मधुरत्रयसंयुक्तैराज्यश्रियमवाप्नुयात्॥२९॥
माघमासे जले स्थित्वा कन्दमूलफलाशनः। लक्षं जप्त्वा दशांशेन पायसैर्जुहुयाद्वसौ॥३०॥

श्रीरामचन्द्रसदृशः पुत्रः पौत्रोऽपि जायते।
अन्येऽपि बहवः सन्ति प्रयोगा मन्त्रराजके॥३१॥

तदनन्तर वह दस हजार होम कमल को त्रिमधुर से युक्त करके उससे करे अथवा बिल्व पुष्पों से करे। उस व्यक्ति को राज्यश्री की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य माघ मास में जलस्थ रहकर कन्द-मूलफल पर ही निर्वाह कर एक लाख जप करता है, तदनन्तर दस हजार होम पायस से अग्नि में करता है, उसे श्रीराम जैसे पुत्र-पौत्र प्राप्त होते हैं। इस महामन्त्र के अनेक अन्य प्रयोग भी कहे गये हैं।।२९-३१।।

किन्तु प्रयोगकर्तॄणां परलोको न विद्यते।
षट्कोणं वसुपत्रं च तद्बाह्यार्कदलं लिखेत्॥३२॥
षट्कोणेषु षडर्णानि यन्त्रस्य विलिखेद् बुधः।
अष्टपत्रे तथाष्टार्णांल्लिखेत्प्रणवगर्भितान्॥३३॥
कामबीजं रविदले मध्ये मन्त्रावृताभिधाम्। सुदर्शनावृतं बाह्ये दिक्षु युग्मावृतं तथा॥३४॥
वज्रोल्लसद्भूमिगेहं कन्दर्पांकुशपाशकैः।
भूम्या च विलसत्कोणं यन्त्रराजमिदं स्मृतम्॥३५॥

तथापि उनके प्रयोग से कर्त्तागण को परलोक लाभ नहीं होता। पहले षट्कोण बनाकर वहां अष्टपत्र लिखकर उसके बाहर द्वादशदल बनाये। बुद्धिमान् व्यक्ति षट्कोण में वहां षडर्ण यन्त्र बनाये। अष्टपत्र में अष्टवर्ग

को लिखकर प्रणव को लिखे। रविदल में कामबीज क्लीं लिखकर मध्य में मन्त्रावृत्त, (द्वादशदल) बाहर सुदर्शन मन्त्र से आवृत करे तथा बाहर दिशाओं का युग्म स्वर से आवृत्त करे। भूपुर को बनाकर वहां वज्र, कन्दर्प, अंकुश पाश युक्त करे। ऐसा भूगृह कोण युक्त यन्त्र यन्त्रराज कहा जाता है।।३२-३५।।

भूर्जेऽष्टगन्धैः संलिख्य पूजयेदुक्तवर्त्मना। षट्कोणेषु दलार्काब्जान्यावेष्टवृतयुग्मतः॥३६॥
केशरेष्वष्टपत्रस्य स्वरद्वंद्वं लिखेद् बुधः। बहिस्तु मातृकां चैव मन्त्रं प्राणनिधायनम्॥३७॥

भोजपत्र पर अष्टगंध की स्याही से यन्त्र बनाकर पूर्ववत् उसकी पूजा करे। षट्कोण में द्वादश दल कमल बनाकर उसे वृत्तयुग्म से वेष्टित करना चाहिये। अष्टपत्र केसरों पर द्वन्द्व स्वरों (२-२ स्वर) लिखे। उसके बाहर मातृकाओं का प्राणनिधायन मन्त्र लिखे।।३६-३७।।

यन्त्रमेतच्छुभे घस्त्रे कण्ठे वा दक्षिणे भुजे।
मूर्ध्नि वा धारयेन्मन्त्री सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३८॥
सुदिने शुभनक्षत्रे सुदेशे शल्यवर्जिते। वश्याकर्षणविद्वेषद्रावणोच्चाटनादिकम्॥३९॥
पुष्यद्वयं तथादित्यार्द्रामघासु यथाक्रमम्। दूर्वोत्था लेखनी वश्ये तथाकृष्टौ करञ्जजा॥४०॥
नरास्थिजा मारणे तु स्तम्भेन राजवृक्षजा।
शान्तिपुष्ट्यायुषां सिद्ध्यै सर्वापच्छमनाय च॥४१॥

मंत्रज्ञ साधक इस यन्त्र को शुभ तिथि पर कण्ठ, दक्षिण भुजा अथवा शिर पर धारण करके सभी पापों से रहित हो जाता है। उत्तम दिन, शुभनक्षत्र में, शुभ देश में कंटकादिरहित स्थान में इसे धारण करे। इसे आर्द्रा पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा तथा मघा नक्षत्र काल में धारण करे। इसे वशीकरणार्थ दूर्वा की लेखनी से, आकर्षणार्थ कटकरंज की लेखनी से, मारणार्थ अस्थि लेखनी से, स्तम्भनार्थ राजवृक्ष की लेखनी से लिखे। इस यन्त्र धारण से शान्ति पुष्टि तथा आयुवृद्धि होती है। सभी पापों का शमन हो जाता है।।३८-४१।।

विभ्रमोत्पादने चैव शिलायां विलिखेद् बुधः।
खरचर्मणि विद्वेषे ध्वजे तूच्चाटनाय च॥४२॥
शत्रूणां ज्वरसन्तापशोकमारणकर्मणि। पीतवस्त्रं लिखित्वा तु साधयेत्साधकोत्तमः॥४३॥

जहां शत्रु की बुद्धि को भ्रान्त करना हो, तब सुधी व्यक्ति इसे शिला पर बनाये। जहां विद्वेषण करना हो, उसे गधे की खाल पर लिखे। उच्चाटनार्थ ध्वजा पर लिखे। शत्रु पर ज्वर, सन्ताप शोकादि मारण कर्म करना हो, तब इसे पीले वस्त्र पर लिखकर सिद्ध करे।।४२-४३।।

वश्याकृष्टौ चाष्टगन्धैः सम्पूज्य च यथाविधि।
चिताङ्गारादिना चैव ताडनोच्चाटनादिकम्॥४४॥
विषार्कक्षीरयोगेन मारणं भवति ध्रुवम्। लिखित्वैवं यन्त्रराजं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्॥४५॥

वशीकरण तथा आकर्षणार्थ अष्टगन्ध से यथाविधि यन्त्र की पूजा करे। ताड़न तथा उच्चाटनार्थ चिता के कोयले से यन्त्र लेखन करे। मारणार्थ विष तथा मदार के दुग्ध को आपस में मिलाकर यन्त्र बनाये। निश्चितरूप से कार्य सिद्ध होगा। श्रेष्ठ साधक यन्त्रराज बनाकर उसकी अर्चना गन्ध पुष्पादि से करे।।४४-४५।।

त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा धारयेत्साधकोत्तमः। बीजं रामाय ठद्वन्द्वं मन्त्रोऽयं रसवर्णकः॥४६॥
महासुदर्शनमनुः कथ्यते सिद्धिदायकः। सुदर्शनमहाशब्दाच्चक्रराजेश्वरेति च॥४७॥
दुष्टान्तकदुष्टभयानकदुष्टभयङ्करम्। छिन्धि द्वयं भिन्धि युग्मं विदारय युगं ततः॥४८॥
परमन्त्रान् ग्रस द्वन्द्वं भक्षयद्वितयं ततः। त्रासय द्वितयं वर्मास्त्राग्निजायान्तिमो मनुः॥४९॥

अष्टषष्ट्यक्षरः प्रोक्तो यन्त्रसंवेष्टने त्वयम्।
तारो हृद्भगवान् ङेन्तो ङेन्तो हि रघुनन्दनः॥५०॥

रक्षोघ्नविशदायान्ते मधुरादिप्रसन्न च। वरदानायामितान्ते नुतेजसे पदमीरयेत्॥५१॥

बालायान्ते तु रामाय विष्णवे हृदयान्तिमः।
सप्तचत्वारिंशदर्णो मालामन्त्रोऽयमीरितः॥५२॥

उसे त्रिलौह से वेष्टित करके साधकोत्तम पहने। "रां रामाय स्वाहा" यह रसवर्णक मन्त्र है। अब सर्वसिद्धिप्रद महासुदर्शन मन्त्र भी कहा जाता है। "सुदर्शन महाचक्रराजेश्वर दुष्टान्तकदुष्टभयानक दुष्ट भयंकर छिन्दि-छिन्दि भिन्धि-भिन्धि विदारय विदारय परमन्त्रान् ग्रस ग्रस भक्ष भक्ष त्रासय त्रासय हुं फट् स्वाहा"। यह ६८ अक्षरों का महासुदर्शन मन्त्र है। इससे यन्त्र को वेष्ठित करे, तब धारण करे। "ॐ भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्न विशद मधुरादि प्रसन्न वरदानायामिततेजे बालाया रामाय विष्णवे नमः।" यह ४७ अक्षर का मालामन्त्र है।।४६-५२।।

विश्वामित्रो मुनिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम्।
श्रीरामो देवता बीजं ध्रुवः शक्तिश्च ठद्वयम्॥५३॥

षड्दीर्घस्वरयुग्मायाबीजेनाङ्गानि कल्पयेत्। ध्यानपूजादिकं सर्वमस्यपूर्ववदाचरेत्॥५४॥

अयमाराधितो मन्त्रः सर्वान्कामान्प्रयच्छति।
स्वकामसत्यवाग्लक्ष्मीताराढ्यः पञ्चवर्णकः॥५५॥
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः।
ब्रह्मा सम्मोहनः शक्तिर्दक्षिणा मूर्तिसंज्ञकः॥५६॥
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तास्ते तेषां मुनयः क्रमात्।
अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो मुनिः स्मृतः॥५७॥
छन्दः प्रोक्तं च गायत्री श्रीरामो देवता पुनः।
बीजशक्तिराधमान्त्यं मन्त्रार्णैः स्यात्षडङ्गकम्॥५८॥

बीजैः षड्दीर्घयुक्तैर्वा मन्त्रार्णान्पूर्ववन्न्यसेत्। ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे॥५९॥
पुष्पकाख्यविमानान्तः सिंहासनपरिच्छदे। पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलसमप्रभम्॥६०॥

इसके ऋषि हैं विश्वामित्र, छन्दः है गायत्री, देवता हैं श्रीराम, बीज है ध्रुव तथा शक्ति है स्वाहा। षड्दीर्घ युक्त बीज से अंगन्यास करे। ध्यान पूजादि सभी ध्यान पूजादि पूर्ववत् करे। इस मन्त्राराधन से सभी

कामना पूर्ण हो जाती है। ''स्वकाम, सत्य, वाग्, लक्ष्मी, ताराड्य पंचवर्णक'' —(यह मन्त्र संकेत है। इसका विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।) यह षडक्षर मन्त्र है। षड्विध है तथा चतुर्वग फलप्रद है। इसके ऋषि क्रमशः हैं— ब्रह्मा, संमोहन शक्ति, दक्षिणामूर्त्ति अगत्स्य, श्रीशिव अथवा कामबीजादि के ऋषि विश्वामित्र कहे गये हैं। छन्दः गायत्री। देवता हैं श्रीराम स्वाहा बीज शक्ति है। मन्त्राक्षरों से षडङ्गन्यास करके षड्दीर्घ युक्त बीजमन्त्र से पूर्ववत् न्यास करना चाहिये। अब ध्यान कहते हैं कल्पवृक्ष के मूल में स्वर्णमय मण्डप में स्थित पुष्पक विन के अन्तर्गत् अष्टपद्ममय सिंहासन पर स्थित देवता इन्द्रनील मणि के समान प्रभावान् हैं।।५३-६०।।

वीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्। वामोरुन्यस्तयद्धस्तसीतालक्ष्मणसेवितम्॥६१॥

रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम्।
यद्वा स्मारादिमन्त्राणां जयाभं च हरिं स्मरेत्॥६२॥

यजनं काम्यकर्माणि सर्वं कुर्यात्षडर्णवत्।
रामश्च चन्द्रभद्रान्तो ङेनमोन्तो ध्रुवादिकः॥६३॥

मन्त्रावष्टाक्षरौ ह्येतौ तारान्त्यौ चेन्नवाक्षरौ। एतेषां यजनं सर्वं कुर्यान्मन्त्री षडर्णवत्॥६४॥

ये देवता वीरासनासीन हैं। ज्ञानमुद्रा से शोभित हैं। उनके वाम उरु पर सीता बैठीं हैं। राम ने सीता के कन्धों पर हाथ रखा है। वे लक्ष्मण से सेवित हैं। वे प्रभुराम रत्नों के द्वारा शोभित भी हैं। ऐसे प्रभु का ध्यान करके ६ लाख मन्त्र जप करे अथवा साधक स्मार आदि मन्त्रों के देवता हरि का स्मरण करे। इस षडक्षर मन्त्र जपानुष्ठान से मनुष्य यजन तथा काम्यकर्मादि सब सम्पन्न कर सकता है। ॐ रामचन्द्राय नमः अथवा ॐ रामभद्राय नमः ये उभय अष्टाक्षरमन्त्र हैं। यदि इनके अन्त में भी प्रणव (ॐ) का योग हो जाये, तब यह नवाक्षर होगा। साधकजन इन मन्त्रों का यजन षडक्षरमन्त्र की ही विधि से करे।।६१-६४।।

जानकीवल्लभो ङेन्तो द्विठान्तः कवचादिकः।
दशार्णोऽयं महामन्त्रो विशिष्टोऽस्य मुनिः स्वराट्॥६५॥

छन्दश्च देवता सीता पतिबीजं तथादिमम्।
स्वाहा शक्तिश्च कामेन कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात्॥६६॥

शिरोललाटभ्रूमध्यतालुकण्ठेषु हृद्यपि। नाभ्यंघ्रिजानुपादेषु दशार्णान्विन्यसेन्मनोः॥६७॥

'हुं जानकी वल्लभाय स्वाहा' दस अक्षरात्मक महामन्त्र है। इसके ऋषि हैं वसिष्ठ। छन्दः है स्वराट् छन्द। देवता हैं सीतापति, बीज है हुं, शक्ति है स्वाहा। इस मन्त्र से मन्त्री साधक षडङ्गन्यास करे। शिर, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभी, चरण, जानु का इस मन्त्र के दशाक्षरों से न्यास करे।।६५-६७।।

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे। मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते॥६८॥

सिंहासनसमासीन पुष्पकोपरि राघवम्। रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः॥६९॥

संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।
सीतालङ्कृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥७०॥

श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्। एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री वर्णलक्षं समाहितः॥७१॥

दशांशः कमलैर्होमो यजनं च षडर्णवत्।
रामो ङेन्तो धनुष्पाणिर्ङेन्तोऽन्ते वह्निसुन्दरी॥७२॥

अब ध्यान करना चाहिये कि अयोध्या नगरी में रत्नमय सुवर्ण मण्डप मन्दारपुष्पों से सज्जित वितान तथा तोरण से युक्त हैं। वहां पुष्पक पर राघव सिंहासनासीन हैं। उत्तम शुभ विमानों पर आये देवता तथा रक्षोगण उनकी स्तुति में निरत हैं। वे मुनियों द्वारा सेवित प्रभु हैं। उनके वामांग में सीता शोभायमान हैं। वे लक्ष्म की उपस्थिति से भी उपशोभित हैं। श्रीराम श्यामवर्ण, प्रसन्नाकृति, सर्वाभरण भूषित हैं। मन्त्रज्ञ साधक ऐसा ध्यान करके समाहित होकर दस लक्ष जप करे। एक लाख होम कमल पुष्पों द्वारा जपान्त में करे। शेष प्रक्रिया षडक्षर मन्त्रवत् होगी। तदनन्तर "रामाय धनुष्पाणये स्वाहा" दशाक्षर मन्त्र है।।६८-७२।।

दशाक्षरोऽयं मन्त्रोऽस्य मुनिर्ब्रह्मा विराट् पुनः।
छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामो राक्षसमर्दनः॥७३॥
आद्यं बीजं द्विठः शक्तिर्बीजेनाङ्गानि कल्पयेत्।
वर्णन्यासं तथा ध्यानं पुरश्चर्यार्चनादिकम्॥७४॥
दशाक्षरोक्तवत्कुर्याच्चापबाणधरं स्मरेत्। तारो नमो भगवते रामान्ते चन्द्रभद्रकौ॥७५॥
ङेन्तावर्काक्षरौ मन्त्रौ ऋषिध्यानादि पूर्ववत्।
श्रीपूर्वं जयपूर्वं च तद्द्विधा रामनाम च॥७६॥
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम्।
छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामः पापौघनाशनः॥७७॥
षडङ्गानि प्रकुर्वीत द्विरावृत्त्या पदत्रयैः। ध्यानार्चनादिकं सर्वं ह्यस्य कुर्याद्दशार्णवत्॥७८॥

इसके ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है विराट्, देवता हैं राक्षसमर्दन राम। इसका बीज है 'रां', स्वाहा शक्ति है। इस बीज से अंगन्यास करे। वर्णन्यास, पुरश्चरण तथा पूजनादि पूर्वकथित दशाक्षर मन्त्रवत् करे। इसका ध्यान है—चाप-बाणधारी श्रीराम। 'ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय' अथवा 'ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय' ये दो द्वादशाक्षर मन्त्र हैं। इनके ऋषि ध्यानादि पूर्व दशाक्षरवत् हैं। "श्रीराम जयराम जय जय राम" त्रयोदश अक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि हैं ब्रह्मा। छन्दः है विराट् तथा देवता सर्वपापनाशक श्रीराम हैं। मन्त्र के तीन पदों को दोहरा कर षडङ्गन्यास करे। इसका भी ध्यान पूजन दशाक्षरवत् होगा।।७३-७८।।

तारो नमो भगवते रामायान्ते महापदम्। पुरुषाय हृदन्तोऽयं मनुरष्टादशाक्षरः॥७९॥
विश्वामित्रो मुनिश्छन्दो धृती रामोऽस्य देवता।
तारो बीजं नमः शक्तिश्चन्द्राक्ष्यब्ध्यग्निषड्भुजैः॥८०॥
वर्णैर्मन्त्रोत्थितैः कुर्यात्षडङ्गानि समाहितः। निश्शाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनिःस्वनैः॥८१॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते। चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते॥८२॥

अब "ॐ नमो भगवते रामाय पुरुषाय नमः" अष्टादशाक्षर मन्त्र वर्णन किया जाता है। इसके ऋषि

हैं विश्वामित्र, धृति छंद है, देवता हैं श्रीराम। ॐ बीज तथा नमः शक्ति है। साधक को चाहिये कि समाहित स्थिति में इस मन्त्र के अष्टादश अक्षर से षडङ्गन्यास सम्पन्न करे। तब ढोल, भेरी, पटह, शंख, तुरही आदि के शब्दों से तथा जय-जयकार रूप मंगल घोष से तथा नृत्यादि से उत्सव करे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी कर्पूर आदि से सुवासित करे।।७९-८२।।

नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगन्धवहान्विते। देवगन्धर्वनारीभिर्गायन्तीभिरलंकृते।।८३।।
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम्। सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम्।।८४।।
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम्। हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम्।।८५।।
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णं लक्षं मन्त्री दशांशतः। घृताक्तैः पायसैर्हुत्वा यजनं पूर्ववच्चरेत्।।८६।।

नाना सुगन्ध से चर्चित विविध गन्धमय पुष्पों से सज्जित गीतगायन करती देव-गन्धर्व नारीगण से विभूषित पुष्पक विमान पर सिंहासनासीन राघव प्रभु का ध्यान करे। लक्ष्मण तथा सीता सहित, जटामुकुटमण्डित वे प्रभु चाप-बाणधारी श्यामवर्ण हैं तथा सुग्रीव, विभीषण वहां विराजित हैं। उन्होंने युद्धार्थ आते हुये रावण का वध करके त्रैलोक्य रक्षण किया है। इस प्रकार मन्त्रज्ञ साधक एक लक्ष मन्त्र जप करके दस हजार होम घृतयुक्त पायस से करे। पूजाविधि पूर्ववत् है।।८३-८६।।

प्रणवो हृदयं सीतापतये तदनन्तरम्। रामाय हनयुग्मान्ते वर्मास्त्राग्निप्रियान्तिमः।।८७।।
एकोनविंशद्वर्णोऽयं मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।
विश्वामित्रो मुनिश्चास्यानुष्टुप्छन्द उदाहृतम्।।८८।।
देवता रामभद्रो जं बीजं शक्तिर्नम इति।
मन्त्रोत्थितैः क्रमाद्वर्णैस्ततो ध्यायेच्च पूर्ववत्।।८९।।
पूजनं काम्यकर्मादिसर्वमस्य षडर्णवत्। तारः स्वबीजं कमला रामभद्रेति सम्पठेत्।।९०।।
महेष्वासपदान्ते तु रघुवीर नृपोत्तम। दशास्यान्तकशब्दान्ते मां रक्षदेहि सम्पठेत्।।९१।।
परमान्ते मे श्रियं स्यान्मन्त्रो बाणगुणाक्षरः।
बीजैर्वियुक्तो द्वात्रिंशदर्णोऽयं फलदायकः।।९२।।

'ॐ नमः सीतापतये रामाय हन हन हुं फट् स्वाहा' यह १९ अक्षरों वाला मन्त्र सर्वार्थ साधक है। (यहां मन्त्राक्षर २० हैं लेकिन प्रणव रहित १९ ही जोड़ा गया है) इस मन्त्र के ऋषि हैं विश्वामित्र, छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं रामचन्द्र, जं बीज है, शक्ति है नमः। मन्त्रों के वर्ण से न्यासोपरान्त पूर्ववत् ध्यान करे। इस मन्त्र का यजन-पूजनादि कार्य षडक्षरवत् ही होगा। "ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम, दशास्यान्तक मां रक्ष देहि में परमा श्रियं" यह ३५ अक्षरात्मक मन्त्र है। यदि बीज अलग करे, तब यह ३२ अक्षरात्मक ही होगा, तथापि सर्वकामना पूरक है।।८७-९२।।

विश्वामित्रो मुनिश्चास्यानुष्टुप्छन्दउदाहृतम्।
देवता रामभद्रोऽत्र बीजं स्वं शक्तिरिन्दिरा।।९३।।

बीजत्रयाद्यैः कुर्वीत पदैः सर्वेण मन्त्रवित्।
पञ्चाङ्गानि च विन्यस्य मन्त्रवर्णानक्रमान्न्यसेत्॥९४॥
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे गण्डयुग्मे सनासिके।
आस्ये दोःसन्धियुगले स्तनहृन्नाभिषु क्रमात्॥९५॥
कटौ मेढ्रे पायुपादसन्धिष्वर्णान्न्यसेन्मनोः।
ध्यानार्चनादिकं चास्य पूर्ववत्समुपाचरेत्॥९६॥

इस मन्त्र के ऋषि हैं विश्वामित्र, छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं रामभद्र, बीज है आदि का स्वबीज 'रां'। शक्ति है इन्दिरा। मन्त्रज्ञ साधक बीजत्रय युक्त पद द्वारा पंचांग न्यास करे तथा क्रमशः मन्त्रवर्ण का भी न्यास करे। मन्त्र के वर्णों का न्यास मस्तक, भाल, नेत्र, कान, कपोल, नासा, बाहु, बाहुमूल, स्तन, हृदय, कटि, लिंग, पादु, चरण सन्धि में मन्त्रवर्ण न्यास करे। ध्यान-पूजनादि पूर्ववत् करे।।९३-९६।।

लक्षत्रयं पुरश्चर्या पायसैर्हवनं मतम्। ध्यात्वा रामं पीतवर्णं जपेल्लक्षं समाहितः॥९७॥
दशांशं कमलैर्हुत्वा धनैर्धनपतिर्भवेत्। तारो माया रमाद्वन्द्वं दाशरथाय हृच्च वै॥९८॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो मुन्याद्यर्चास्य पूर्ववत्।
त्रैलोक्यान्ते तु नाथाय हृदन्तो वसुवर्णवान्॥९९॥

इसका पुरश्चरण ३ लाख जप है। इसका दशांश होम पायस से करना निर्देशित है। पीतवर्ण राम का ध्यान करके एक लाख जप समाहित होकर करना चाहिये। जप का १/१० होम कमल से करे। साधक इससे धनाधिप होगा। "ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः" एक-एकादशाक्षर मन्त्र है। इसके मुनि तथा शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है। "त्रैलोक्यनाथाय नमः" यह अष्टाक्षर मन्त्र है।।९७-९९।।

अस्यापि पूर्ववत्सर्वं न्यासध्यानार्चनादिकम्।
आञ्जनेयपदान्ते तु गुरवे हृदयान्तिमः॥१००॥
मन्त्रो नवाक्षरोऽस्यापि यजनं पूर्ववन्मतम्। ङेतं रामपद पश्चाद्धृदयं पञ्चवर्णवत्॥१०१॥
मुनिध्यानार्चनं चास्य प्रोक्तं सर्वं षडर्णवत्।
रामान्ते चन्द्रभद्रौ च ङेन्तौ पावकवल्लभा॥१०२॥
मन्त्रौ द्वौ च समाख्यातौ मुन्याद्यर्चादि पूर्ववत्।
वह्निः शेषान्वितश्चैव चन्द्रभूषितमस्तकः॥१०३॥
एकाक्षरो रघुपतेर्मन्त्रः कल्पद्रुमोऽपरः।
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दो रामोऽस्य देवता॥१०४॥
षड्दीर्घाढ्येन मन्त्रेण षडङ्गानि समाचरेत्। सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने॥१०५॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्। वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्॥१०६॥
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया॥१०७॥

इसके ऋषि न्यास पूजनादि सब कुछ पूर्ववत् है। ''आञ्जनेय गुरवे नमः'' यह नवाक्षर मन्त्र है। इसका भी यजनादि विधान पूर्ववत् है। रामाय नमः पंचाक्षर मन्त्र है। इसके ऋष्यादि तथा अर्चनादि विधान षडक्षर मन्त्रवत् होंगे। रामचन्द्राय स्वाहा तथा रामभद्राय स्वाहा, दोनों मन्त्रों के ऋष्यादि, न्यास तथा पूजा प्रभृति पूर्ववत् हैं। अग्नि (र) शेष (आ) तथा मस्तक चन्द्रभूषित हो, तब यह 'रां' एकाक्षर राममन्त्र कल्पवृक्ष के समान है। इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा, गायत्री छन्दः है तथा इसके देवता हैं राम। षड्दीर्घयुक्त बीज से षडङ्ग सम्पन्न करे। अब ध्यान कहते हैं—सरयू तीर पर मन्दारवृक्ष के नीचे बने मंडप में कमलों के आसन पर श्याम वर्ण राम वीरासनासीन है। वे ज्ञानमुद्रा से शोभायमान हैं। उनके वाम जंघा पर भगवती सीता आसीन हैं। निकट में लक्ष्मण भी विराजित हैं। वे अपने कन्दर्प के समान कान्तिमय देह को स्वयं ही देख रहे हैं। जो केवल मोक्ष की आकांक्षा रखता है, वह परमात्मा शुद्ध स्फटिक के समान शोभायमान राम का ध्यान करे।।१००-१०७।।

चिन्तयेत्परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम्। सर्व्वं षडर्णवच्चास्य होमनित्यर्चनादिकम्॥१०८॥
वह्निः शेषासनो भान्तः केवलो द्व्यक्षरो मनुः। एकाक्षरोक्तवत्सर्वं मुनिध्यानार्चनादिकम्॥१०९॥
तारमानारमानङ्गचास्त्रबीजैर्द्विवर्णकः। त्र्यक्षरो मन्त्रराजः स्यात्षड्विधः सकलेष्टदः॥११०॥
द्व्यक्षरश्चन्द्रभद्रान्तो द्विविधश्चतुरक्षरः। एकार्णोक्तवदेतेषां मुनिध्यानार्चनादिकम्॥१११॥

इस ध्यान के अनन्तर षड्लक्ष जप करे। शेष हवन पूजनादि षडक्षर मन्त्रवत् ही करना चाहिये। जब वह्नि (र) शेषासनासीन हो (आ) तथा तत्पश्चान्त भान्त (म) हो, तब द्व्यक्षर मन्त्र राम होता है। इसके ऋषि आदि, ध्यान पूजन न्यासादि एकाक्षर मन्त्रवत् ही करे। ओं राम, ह्रीं राम, श्रीं राम, क्लीं राम, रां राम, रामाय फट्—यह सभी त्र्यक्षर मन्त्र (रामाय फट् पंचाक्षर है) सर्वकामना पूरक हैं। द्व्यक्षर मन्त्र के अन्त में जब चन्द्र एवं भद्र जोड़ते हैं, तब दो तरह का चतुरक्षर मन्त्र होता है, जैसे रामचन्द्र, रामभद्र। इनके ऋषि आदि, ध्यान, न्यास पूजादि एक अक्षरवत् हैं।।१०८-१११।।

तारो रामश्चतुर्थ्यन्तो वर्मास्त्रं वह्निवल्लभा। अष्टार्णोऽयं महामन्त्रो मुन्याद्यर्चा षडर्णवत्॥११२॥
तारो मया हृदन्ते स्याद्रामाय प्रणवान्तिमः। शिवोमाराममन्त्रोऽयमष्टार्णः सर्वसिद्धिदः॥११३॥
ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम्। शिवोमारामचन्द्रोऽत्र देवता परिकीर्त्तितः॥११४॥
षड्वीर्ययामाय यातु ध्रुवपञ्चार्णयुक्तया। षडङ्गानि विधायाथ ध्यायेद्धृदि सुरार्चितम्॥११५॥
रात्रं त्रिनेत्रं सोमार्द्धधारिणं शूलिनं वरम्। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपास्महे॥११६॥
रामाभिरामां सौन्दर्यसीमां सोमावतं सिनीम्। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरां ध्यायेत्त्रिलोचनाम्॥११७॥

तार (ॐ) चतुर्थ्यन्त राम शब्द (रामाय) वर्मास्त्र (हुं फट्) वह्निवल्लभा (स्वाहा) । मन्त्रोद्धार है ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा यह अष्टाक्षर महामन्त्र है। इसके ऋषि तथा अर्चनादि सभी षडक्षरवत् हैं। ''ॐ ह्रीं रामाय नमः ॐ'' यह मन्त्र शिव, राम, उमा सहित राममन्त्र सर्वसिद्धिप्रद है। इसके ऋषि सदाशिव हैं। गायत्री छन्द है। शिव-उमा-रामचन्द्र देवता हैं। षड्दीर्घ मात्रायुक्त सप्ताक्षर मन्त्र द्वारा षडङ्गन्यास करे। तदनन्तर हृदय में ही देववन्दित श्री राम का, कपर्दी-त्रिशूली सर्वाङ्ग में भस्म लेप लगाने वाले, सोमार्द्धधारी त्रिनेत्र शिव का तथा अत्यन्त अभिराम सौन्दर्य सीमा रूप, चन्द्रभूषण भूषित, पाश, अंकुश, धनुष बाण धारिणी त्रिलोचना देवी उमा का ध्यान करे।।११२-११७।।

एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णलक्षं त्रिमधुरान्वितैः। विल्वपत्रैः फलैः पुष्पैस्तिलैर्वा पङ्कजैर्हुनेत्॥११८॥
स्वयमायान्ति निधयः सिद्धयश्च सुरेप्सिताः। तारो माया च भरताग्रजराममनोभवः॥११९॥
वह्निजायाद्वादशार्णो मन्त्रः कल्पद्रुमोऽपरः। अङ्गिराश्च मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः॥१२०॥
श्रीरामो भुवनाबीजं स्वाहाशक्तिः समीरितः। चन्द्रैकमुनिभूनेत्रैर्मन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम्॥१२१॥

ध्यानपूजादिकं चास्य सर्वं कुर्यात्षडर्णवत्।
प्रणवो हृदयं सीतापते रामश्च ङेन्तिमः॥१२२॥
हनद्वयान्ते वर्मास्त्रं मन्त्रः षोडशवर्णवान्।
अगस्त्योऽस्य मुनिश्छन्दो बृहती देवता पुनः॥१२३॥
श्रीरामोऽहं तथा बीजं रां शक्तिः समुदीरिता।
रामाब्धिवह्निवेदाक्षिवर्णैः पञ्चाङ्गकल्पना॥१२४॥
ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य कुर्यात्षडर्णवत्।
तारो हृच्चैव ब्रह्मण्य सेव्याय पदमीरयेत्॥१२५॥
रामायाकुण्डशब्दान्तं तेजसे च समीरयेत्।
उत्तमश्लोकधुर्याय स्वं भृगुः कामिकान्वितः॥१२६॥

दण्डार्पितांङ्घ्रये मन्त्रो रामरामाक्षरो मतः। ऋषिः शुक्रस्तथानुष्टुप्छन्दो रामोऽस्य देवता॥१२७॥

इस प्रकार से ध्यान करके तीन लाख मन्त्र जप के उपरान्त तीस हजार होम त्रिमधुर लिप्त विल्वपत्र, फल, पुष्प, तिल अथवा कमल से करे। इस प्रकार साधक के पास देवताओं द्वारा ईप्सित निधि तथा सिद्धि स्वयं आ जाती है। "ॐ ह्रीं भरताग्रजराम क्लीं स्वाहा" यह द्वादशाक्षर राममन्त्र मानो साधक हेतु कल्पवृक्ष है। इसके ऋषि हैं अंगीरा। गायत्री छन्दः है, देवता हैं श्रीराम। बीज है भुवना, शक्ति है स्वाहा। द्वादश मन्त्राक्षरों से अंगन्यास करके शेष प्रक्रिया षडक्षर मन्त्र विधिवत् करे। "ॐ सीतापति रामाय नमः हन हन हुं फट्" यह षोडशाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि हैं अगत्स्य, छन्दः है बृहती, देवता हैं श्रीराम। बीज है हं, शक्ति है रां। मन्त्र के १६ अक्षरों से पंचांगन्यास करके शेष क्रिया ध्यानादि षडक्षर मन्त्र विधिवत् करे। तदनन्तर ॐ नमः ब्रह्मण्य सेव्याय रामायाकुण्डतेजसे। उत्तम श्लोक धुर्याय न्यस्त दण्डार्पिताङ्घ्रये" यह ३३ अक्षरात्मक मन्त्र है। इसके ऋषि हैं शुक्र, छन्दः है अनुष्टुप् तथा श्रीराम देवता हैं।।११८-१२७।।

दण्डार्पितां पञ्चाङ्गं कुर्याच्छेषं षडर्णवत्। लक्षं जपो दशांशेन जुहुयात्पांयसैः सुधीः॥१२८॥

सिद्धमन्त्रस्य भुक्तिः स्यान्मुक्तिः पातकनाशनम्।
आदौ दाशरथायान्ते विद्महे पदमुच्चरेत्॥१२९॥
ततः सीतावल्लभाय धीमहीति समुच्चरेत्।
तन्नो रामः प्रचो वर्णो दयादिति च संवदेत्॥१३०॥

एषोक्ता रामगायत्री सर्वाभीष्टफलप्रदा। पद्मासीतापदं ङेन्तं ठद्वयान्तः षडक्षरः॥१३१॥

सभी मन्त्र पादों से पंचांगन्यास करके बाकी कार्य षडक्षर से विधिवत् करे। एक लाख जपोपरान्त दस हजार होम पायस द्वारा सुधी साधक करे। मन्त्र सिद्धि से भुक्ति, मुक्ति प्राप्त होती है। पाप नाश होता है। "दाशरथाय विद्महे, सीतावल्लभाय धीमहि, तन्नो रामः प्रचोदयात्" यह राम गायत्री है। यह सर्वकामप्रदा है। इसे राम ने ही प्रकाशित किया था। "श्रीं सीतायै स्वाहा" षडक्षर सीता मन्त्र है।।१२८-१३१।।

वाल्मीकिश्च मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः।
सीता भगवती प्रोक्ता श्रीं बीजं वह्निसुन्दरी॥१३२॥
शक्तिः षड्दीर्घयुक्तेन बीजेनाङ्गानि कल्पयेत्।
ततो ध्यायन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्॥१३३॥
तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्वये। सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम्॥१३४॥
नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्।
पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शय्याघ्र्यां षड्गुणेश्वरीम्॥१३५॥
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णलक्षं मन्त्री दशांशतः।
जुहुयात्कमलै फुल्लैः पीठे पूर्वोदिते यजेत्॥१३६॥
मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य जानकीम्।
सम्पूज्य दक्षिणे राममभ्यर्च्याग्रेऽनिलात्मजम्॥१३७॥
पृष्ठे लक्ष्मणमभ्यर्च्य षट्कोणेष्वङ्गपूजनम्।
पत्रेषु मन्त्रिमुख्यांश्च बाह्ये लोकेश्वरान्पुनः॥१३८॥
वज्राद्यानपि सम्पूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
जातिपुष्पैश्चन्दनाक्तै राजवश्याय होमयेत्॥१३९॥
कमलैर्धनधान्याप्तिर्नीलाब्जैर्वशयन् जगत्।
बिल्वपत्रैः श्रियःप्राप्त्यै दूर्वाभी रोगशान्तये॥१४०॥

इनके ऋषि हैं वाल्मीकि, गायत्री छन्द है। देवता हैं देवी सीता, बीज हैं श्रीं, शक्ति है स्वाहा। षट्दीर्घ मात्रा से युक्त बीजमन्त्र से अंगन्यास करने के पश्चात् त्रैलोक्य में पूजित, तप्त स्वर्ण कान्तियुक्त, दोनों हाथ में कमल धारण करने वाली, उत्तम चमकते रत्नों से शोभित, दिव्य शरीर से शोभित, शुभात्मिका, पद्मनेत्रा, शशि के समान मुख वाली, नानावस्त्रधारिणी, मुदित अन्तरात्मावाली देवी पुण्यमयी शय्या पर आधीन होकर राघव के मुखारविन्द का अवलोकन कर रही हैं। ऐसी षड्गुणेश्वरी सीता का ध्यान करने के उपरान्त ६ लाख मन्त्र जप करे। तदनन्तर ६०००० होम खिले कमलों द्वारा करना चाहिये। इसके पश्चात् पीठ पर मूलमन्त्र द्वारा मूर्त्ति संकल्पित करके वहीं सीता का आवाहन करना चाहिये। प्रतिमा के दक्षिण की ओर राम की, आगे की ओर (सम्मुख) हनुमान की तथा पीठ की ओर लक्ष्मण के पूजनोपरान्त षट्कोण में अंग देवतागण की पूजा करके पत्रों में मुख्य मन्त्रियों की तथा उसके बाहर लोकपालगण की पूजा के उपरान्त उनके वज्रादि आयुधों की

पूजा करके साधक सभी सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है। चन्दन लिप्त जाती पुष्प द्वारा होम करने से राजा वशीभूत हो जाते हैं। कमल से होम करने का फल है धन-धान्य प्राप्ति तथा नीलकमल से होम करने पर जगत् वशीभूत हो जाता है। बिल्वपत्र से होम द्वारा श्री प्राप्ति होती है तथा दूर्वा से होम करने से रोग शान्त हो जाते हैं।।१३२-१४०।।

किं बहूक्तेन सौभाग्यं पुत्रान्पौत्रान्परं सुखम्।
धनं धान्यं च मोक्षं च सीताराधनतो लभेत्॥१४१॥
शक्रः सेन्दुर्लक्ष्मणाय हृदयं सप्तवर्णवान्।
अगस्त्योऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः॥१४२॥
लक्ष्मणाख्यो महावीरश्चाढ्यं हृद्बीजशक्तिके।
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१४३॥
द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्। धनुर्बाणकरं रामसेवासंसक्तमानसम्॥१४४॥
ध्यात्वैवं प्रजपेद्वर्णलक्षं मन्त्री दशांशतः। मध्वाक्तैः पायसैर्हुत्वा रामपीठे प्रपूजयेत्॥१४५॥

इस विषय में अधिक क्या कहा जाये? साधक को सौभाग्य, पुत्र, पौत्र तथा परम सुख मिलता है। सीता की आराधना द्वारा धन-धान्य तथा मोक्ष पर्यन्त प्राप्त होता है। "लं लक्ष्मणाय नमः" सप्ताक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि हैं अगत्स्य, छन्दः है गायत्री तथा देवता हैं लक्ष्मण तथा हनुमान। बीज है लं, शक्ति है नमः। षड्दीर्घयुक्त बीज मन्त्र से षडन्यास करके ध्यान करे। ध्यान लक्ष्मण द्विभुज, स्वर्णवत् उत्तम शरीर वाले, पद्मनेत्र हैं। वे धनुष-बाणधारी तथा सतत् रामसेवा में निरत मन वाले हैं। यह ध्यान करने के पश्चात् सात लाख मन्त्र जपना चाहिये। (सप्ताक्षर मन्त्र है। अतः जप भी सात लाख होगा)। तत्पश्चात् ७०००० होम मधु मिश्रित पायस से करे। उनकी पूजा पूर्वोक्त रामपीठ में राम पूजनवत् ही करनी चाहिये।।१४१-१४५।।

रामवद्यजनं चास्य सर्वसिद्धिप्रदो ह्ययम्।
साकल्यं रामपूजाया यदीच्छेन्नियतं नरः॥१४६॥
तेन यत्नेन कर्त्तव्यं लक्ष्मणार्चनमादरात्।
श्रीरामचन्द्रभेदास्तु बहवः सन्ति सिद्धिदाः॥१४७॥

तब यह मन्त्र सर्वसिद्धिदाता हो जाता है। जो सादर रामपूजा सर्वाङ्ग सम्पन्न करने का इच्छुक है, वह लक्ष्मणार्चन अवश्य करे। राम के अनेक उपासना भेद हैं, जो सिद्धिदायक हैं।।१४६-१४७।।

तत्साधकैः सदा कार्यं लक्ष्मणाराधनं शुभम्।
अष्टोत्तरसहस्त्रं वा शतं वा सुसमाहितैः॥१४८॥
लक्ष्मणस्य मनुर्जप्यो मुमुक्षुभिरतन्द्रितैः।
अजप्त्वा लक्ष्मणमनुं राममन्त्रान् जपन्ति ये॥१४९॥
न तेषां जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे। यो जपेल्लक्ष्मणमनुं नित्यमेकान्तमास्थितः॥१५०॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
जयप्रधानो मन्त्रोऽयं राज्यप्राप्त्यैकसाधनम्॥१५१॥

साधक सदा शुभ लक्ष्मणार्चन करे। वह लक्ष्मण का मन्त्र मुमुक्षुत्व लाभार्थ आलस्यरहित होकर १००८ किंवा १०८ बार समाहित चित्त से नित्य जपे। जो लक्ष्मणमन्त्र जप किये बिना राममन्त्र का जप करता है, उसे सिद्धि मिल ही नहीं सकती, अपितु पग-पग में उसे सिद्धिहानि ही मिलती है। जो नित्य एकान्तस्थ होकर लक्ष्मणमन्त्र जप करते हैं, वे सर्वपाप रहित होकर समस्त कामनाफल लाभ कर लेते हैं। यह मन्त्र जय प्राप्ति का साधन है। राज्यलाभ का भी एक मात्र साधन है।।१४८-१५१।।

नष्टराज्याप्तये मन्त्रं जपेल्लक्षं समाहितः।
सोऽचिरान्नष्टराज्यं स्वं प्राप्नोत्येव न संशयः॥१५२॥
ध्यायन्राममयोध्यायामभिषिक्तमनन्यधीः। पञ्चायुतं मनुं जप्त्वा नष्टराज्यमवाप्नुयात्॥१५३॥

इसके जप द्वारा नष्ट राज्य मिलता है। इस हेतु इसे समाहित होकर एक लाख जपे। उसे नष्ट राज्य मिलकर रहेगा, इसमें संशय नहीं है। अनन्यतापूर्वक अयोध्या में अभिषिक्त हो रहे राम का ध्यान करते हुये जो साधक इस मन्त्र का जप ५०००० करता है, उसे नष्टराज्य लाभ हो जाता है।।१५२-१५३।।

नागपाशविनिर्मुक्तं ध्यात्वालक्ष्मणमादरात्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं निगडान्मुच्यते ध्रुवम्॥१५४॥
वातात्मजेनानीताभिरोषधीभिर्गतव्यथम्। ध्यात्वा लक्षं जपन्मन्त्रमल्पमृत्युं जयेद्ध्रुवम्॥१५५॥
घातयन्तं मेघनादं ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्। दुर्जयं वापि वेगेन जयद्रिपुकुलं महत्॥१५६॥

नागपाश से मुक्तिलाभ कर रहे लक्ष्मण के ध्यानोपरान्त जो साधक दस हजार लक्ष्मण मन्त्र जप करता है, वह कारागृह के निगड़ बन्धन से मुक्त हो जाता है। जो वायु पुत्र हनुमान् द्वारा लाई गई द्रोणाचलस्थ औषधि सेवन से स्वस्थ होने वाले लक्ष्मण का ध्यान करते हुये एक लाख मन्त्र जप करेगा, उसे दुर्जय तथा महाबली शत्रुकुल पर विजय प्राप्त होगी।।१५४-१५६।।

ध्यात्वा शूर्पणखानासाछेदनोद्युक्तमानसम्।
सहस्त्रं प्रजपेन्मन्त्रं पुरुहूतादिकान् जयेत्॥१५७॥
रामपादाब्जसेवार्थं कृतोद्योगमथो स्मरन्। प्रजपल्लँक्षमेकान्ते महारोगात्प्रमुच्यते॥१५८॥

जो साधक शूर्पणखा के नासिका छेदनार्थ उद्यत् लक्ष्मण का ध्यान करके एक हजार मन्त्र जप करता है, वह तो इन्द्र तक पर विजय लाभ कर लेगा। जो राम के चरण सेवार्थ उद्यत लक्ष्मण का चिन्तन करके निर्जन स्थल में यह मन्त्र एक लाख जपेगा, उसे महारोग से मुक्ति मिलेगी।।१५७-१५८।।

त्रिमासं विजिताहारो नित्यं सत्पसहस्त्रकम्।
अष्टोत्तरशतैः पुष्पैर्निश्छिद्रैः शातपत्रकैः॥१५९॥
पूजयित्वा विधानेन पायसं च सशर्करम्। निवेद्य प्रजपेन्मन्त्रं कुष्ठरोगात्प्रमुच्यते॥१६०॥

जो मासत्रय पर्यन्त परिमित तथा विहित आहार करके नित्य सात हजार लक्ष्मण मन्त्र का जप करता है तथा नित्य १०८ छिद्रादि दोष रहित कमलपुष्प से सविधि पूजन करके खीर एवं शर्करा का नैवेद्य अर्पित करता है, उसे कुष्ठ रोग से मुक्ति मिल जाती है।।१५९-१६०।।

विजने विजिताहारः षण्मासं विधिनामुना।
क्षयरोगात्प्रमुच्येत सत्यं सत्यं न संशयः॥१६१॥
अभिमन्त्र्य जलं प्रातर्मन्त्रेण त्रिः समाहितः।
त्रिसन्ध्यं वा पिबेन्नित्यं मुच्यते सर्वरोगतः॥१६२॥

एवंविध विजन प्रदेश में परिमित विहित आहार करते हुये सविधि ६ मास तक जप करेगा, उसे क्षय रोग से मुक्ति मिलेगी। यह सत्य है तथा निःसंशय है। नित्य प्रातः समाहित चित्त से इसे मन्त्र से नित्य तीन बार अभिमन्त्रित उस जल को तीनों सन्ध्याकाल में पान करेगा, उसे सभी रोगों से मुक्तिलाभ होगा।।१६१-१६२।।

दारिद्र्यं च पराभूतं जायते धनदोपमः। विषादिदोषसंस्पर्शो न भवेत्तु कदाचन॥१६३॥
मनुना मन्त्रितैस्तोयैः प्रत्यहं क्षालयेन्मुखम्।
मुखनेत्रादिसम्भूताञ्जयेद्रोगांश्च दारुणान्॥१६४॥

इस कार्य से साधक की दरिद्रता का भी निवारण हो जाता है। वह तो कुबेर जैसा हो जाता है। उसे विष प्रभृति दोषों का संस्पर्श कदापि नहीं होता। इस मन्त्र से मन्त्रित जल से नित्य मुख धोना चाहिये। इस कार्य से उसके मुख, नेत्र आदि में उत्पन्न भयानक रोग भी नष्ट हो जाते हैं।।१६३-१६४।।

पीत्वाभिमन्त्रितं त्वंभः कुक्षिरोगान् जयेद्ध्रुवम्।
लक्ष्मणप्रतिमां कृत्वा दद्याद्भक्त्या विधानतः॥१६५॥
स सर्वेभ्योऽथ रोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
कन्यार्थी विमलापाणिग्रहणासक्तमानसः॥१६६॥
ध्यायन् लक्षं जपेन्मन्त्री अब्जैर्हुत्वा दशांशतः।
ईप्सितां लभते कन्यां शीघ्रमेव न संशयः॥१६७॥

इससे अभिमन्त्रित जल को पीने से समस्त उदर रोग नष्ट हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। जो साधक सुन्दरी विमला कन्या से विवाह की इच्छा रखता हो, वह लक्ष्मण का ध्यान करके एक लाख जप करे तथा कमलों से १०००० होम करे। यह निःसंदिग्ध है कि वह शीघ्र वांछित कन्या प्राप्त करेगा।।१६५-१६७।।

दीक्षितं जृम्भणास्त्राणां मन्त्रेषु नियतव्रतम्।
ध्यात्वा च विधिवन्नित्यं जपेन्मासत्रयं मनुम्॥१६८॥
पूजापुरःसरं सप्तसहस्रं विजितेन्द्रियः। सर्वासामपि विद्यानां तत्त्वज्ञो जायते नरः॥१६९॥
विश्वामित्रक्रतुवरे कृताद्भुतपराक्रमम्। ध्यायंल्लक्षं जपेन्मन्त्रं मुच्यते महतो भयात्॥१७०॥

जो इन्द्रिय संयम करके जंभाई लाने वाले अस्त्रों की दीक्षा से युक्त महाव्रती लक्ष्मण का ध्यान करता

नित्य सात हजार लक्ष्मण मन्त्र जप तीन माह तक करेगा, वह समस्त विद्या का ज्ञाता होगा। जो साधक विश्वामित्र के यज्ञ में अद्भुद पराक्रम प्रदर्शन करने वाले लक्ष्मण का ध्यान करके एक लाख मन्त्र जप करेगा, वह महाभय से मुक्त हो जायेगा।।१६८-१७०।।

कृतनित्यक्रियः शुद्धस्त्रिकालं प्रजपेन्मनुम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥१७१॥
दीक्षितो विधिवन्मत्री गुणैर्विगतकल्मषः।
स्वाचारनियतो दान्तो गृहस्थी विजितेन्द्रियः॥१७२॥
ऐहिकाननपेक्ष्यैव निष्कामो योऽर्चयेद्विभुम्।
स सर्वान्पुण्यपापौघान्दग्ध्वा निर्मलमानसः॥१७३॥
पुनरावृत्तिरहितः शाश्वतं पदमश्नुते। वाञ्छितान् लब्ध्वा भुक्त्वा भोगान् मनोगतान्॥१७४॥

नित्य कर्मों द्वारा शुद्ध होकर जो साधक त्रिकाल यह मन्त्र जपता है, उसे अखिल पापों से छुटकारा मिलता है तथा मृत्यु के पश्चात् वह वैकुण्ठलोक गमन करता है। जो मन्त्री साधक सविधि इस मन्त्र से दीक्षित होकर, कल्मषरहित होकर, स्वाचार निरत, दान्त, गृहस्थी, इन्द्रियजित् होकर इस लोक की कोई कामना न रखते हुये निष्काम भावना के साथ इन प्रभु की अर्चना करता है, वह समस्त पुण्य-पाप को दग्ध करके निर्मल मन हो जाता है। उसे आवागमन रहित शाश्वत पद की प्राप्ति होती है। वह वांछित लाभ करता है, मनोगत भोगों का भोग प्राप्त करता है।।१७१-१७४।।

जातिस्मरश्चिरं भूत्वा याति विष्णोः परं पदम्। निद्राचन्द्रान्विता पश्चाद्भरताय हृदन्तिमः॥१७५॥
सप्ताक्षरो मनुश्चास्य मुन्याद्यर्चादि पूर्ववत्। बकः सेन्दुश्च शत्रुघ्नपरं ङेन्तं हृदन्तिमः॥१७६॥
सप्ताक्षरोऽयं शत्रुघ्नमन्त्रः सर्वेष्टसिद्धिदः॥१७७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने सनत्कुमारविभागे तृतीयपादे रामाद्युपासना-वर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।
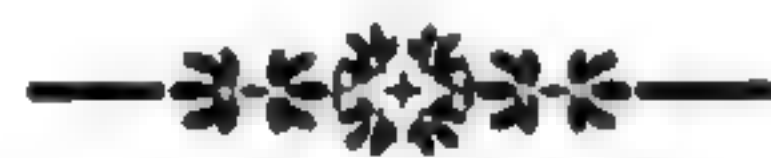
वह पूर्वजन्मस्मृतियुक्त रहता है तथा विष्णु के परमपद की उसे प्राप्ति होती है। "भं भरताय नमः" यह भरत का सप्ताक्षर मन्त्र है। इसके मुनि आदि पूर्ववत् हैं। "शं शत्रुघ्नाय नमः" सप्ताक्षर शत्रुघ्न मन्त्र शत्रुनाशक तथा सर्वसिद्धिप्रद है।।१७५-१७७।।

।।७३वां अध्याय समाप्त।।
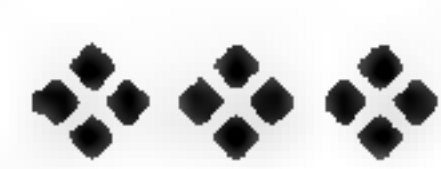
अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

हनुमत् मन्त्र का वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथोच्यन्ते हनुमतो मन्त्राः सर्वेष्टदायकाः। यान्समाराध्य विप्रेन्द्र तत्तुल्याचरणा नराः॥१॥

मनुः स्वरेन्दुसंयुक्तं गगनं च भगान्विताः।
हसफाग्निनिशाधीशाः द्वितीयं बीजमीरितम्॥२॥
स्वफाग्नयो भगेन्द्वाढ्यास्तृतीयं बीजमीरितम्।
वियद्भृग्वग्निमन्विदुयुक्तं स्याच्च चतुर्थकम्॥३॥
पञ्चमं भगचन्द्राढ्यावियद्भृगुस्वकाग्नयः।
मन्विन्द्वाढ्यौ हसौ षष्ठं ङेन्तः स्याद्धनुमांस्ततः॥४॥

हृदयान्तो महामन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः। रामचन्द्रो मुनिश्चास्य जगतीछन्द ईरितम्॥५॥
देवता हनुमान्बीजं षष्ठं शक्तिद्वितीयकम्। षड्बीजैश्च षडङ्गानि शिरोभाले दृशोर्मुखे॥६॥
गलबाहुद्वये चैव हृदि कुक्षौ च नाभितः। ध्वजे जानुद्वये पादद्वये वर्णान्क्रमान्न्यसेत्॥७॥

षड्बीजानि पदद्वन्द्वं मूर्ध्नि भाले मुखे हृदि।
नाभावूर्वीजङ्घयोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात्॥८॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! अब मैं सर्व इष्टदायक हनुमत् मन्त्र कहता हूं। इन मन्त्राराधन से साधक हनुमततुल्य हो जाता है। औ, अनुस्वार तथा ह से युक्त **प्रथम बीज** है हौं। ह् स् फ् र् + अनुस्वार + ए = हस्फ्रें० यह **द्वितीय बीज** है।

ख् फ् र् तथा 'ए' जब अनुस्वार युक्त हों = ख्फ्रें **तृतीय बीज** है। वियत् (ह) + स + र + और तथा अनुस्वार = हस्त्रौं **चतुर्थ बीज** है।

पंचम बीज है—ए + हं +स् + ख् + फ् + र = हस्ख्फ्रें (हस्ख्फ्रें) उच्चारण होगा।

ह + अनुस्वारयुक्त स + और = हसौं **षष्ठबीज** है। तदनन्तर हौं हस्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौं ह्स्ख्फ्रें हसौं हनुमते नमः। यह **द्वादशाक्षर महामन्त्रराज** है। इनके नारायण ऋषि हैं। छन्दः है जगती, देवता हैं हनुमान्। हसौं बीज है। हस्फ्रें शक्ति है। षड्बीजों से षडङ्ग न्यासोपरान्त शिर, ललाट, नेत्र, मुख, ग्रीवा, बाहु, हृदय, उदर, नाभि, लिङ्ग, जानु तथा चरणों से वर्णों का न्यास करे। तदनन्तर पुनः षड्बीज द्वारा क्रमशः दो पद का न्यास मस्तक, भाल, मुख, हृदय, नाभि, उरु, जंघा तथा चरण में करे।।१-८।।

अञ्जनीगर्भसम्भूतं ततो ध्यायेत्कपीश्वरम्। उद्यत्कोट्यर्कसङ्काशं जगत्प्रक्षोभकारकम्॥९॥

श्रीरामान्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्।
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान्मारुतिं भजेत्॥१०॥

अब अंजनी के गर्भ से उत्पन्न हनुमान का ध्यान करना चाहिये—वे उदित हो रहे कोटि सूर्य के समान हैं। वे जगत् को प्रक्षुब्ध करने वाले, श्रीराम के चरणों के ध्यान में निरत सुग्रीवादि से अर्चित, अपने निनाद द्वारा राक्षसों को त्रस्त करने वाले हैं। मैं ऐसे मारुति का भजन करता हूं।।९-१०।।

ध्यात्वैवं प्रजपेद्भानुसहस्त्रं विजितेन्द्रियः।
दशांशं जुहुयाद्व्रीहीन्पयोदध्याज्यमिश्रितान्॥११॥
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्त्तिं सङ्कल्प्य मूलतः।
आवाह्य तत्र सम्पूज्य पाद्यादिभिरुपायनैः॥१२॥

तत्पश्चात् उक्त मन्त्र में से किसी मन्त्र का १२००० जप करके १२०० होम दुग्ध, दधि तथा घृत को मिलाकर धान्य से युक्त करके करे। तदनन्तर वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्त्ति संकल्प (प्रतिष्ठा) करनी चाहिये। उस मूर्त्ति में हनुमत् का आवाहन करके पाद्यादि उपचारों द्वारा उनका पूजन करे।।११-१२।।

केशरेष्वङ्गपूजा स्यात्पत्रेषु च ततोऽर्चयेत्।
रामभक्तो महातेजाः कपिराजो महाबलः॥१३॥
द्रोणाद्रिहारको मेरुपीठकार्चनकारकः। दक्षिणाशाभास्करश्च सर्वविघ्नविनाशकः॥१४॥
इत्थं सम्पूज्य नामानि दलाग्रेषु ततोऽर्चयेत्। सुग्रीवमङ्गदं नीलं जाम्बवन्तं नलं तथा॥१५॥
सुषेणं द्विविदं मैन्दं लोकपालस्ततोऽर्चयेत्।
वज्राद्यानपि सम्पूज्य सिद्धश्चैवं मनुर्भवेत्॥१६॥

केसरों पर अंगदेवगण का पूजन करने के पश्चात् पत्रों पर रामभक्त, महातेजस्वी, कपिराज, महाबली, द्रोणपर्वतहारी, मेरुपीठपूजक, दक्षिण दिशाभास्कर, सर्वविघ्ननाशक नामों से क्रमशः पूजा करे। तदनन्तर पत्राग्र पर सुग्रीव, अंगद, नील, जामवन्त, नल, सुषेण, द्विविद, मैन्द तथा लोकपालगण की अर्चना करनी चाहिये। तत्पश्चात् आयुधों की पूजा सम्पन्न करके साधक मन्त्रसिद्ध हो जाता है।।१३-१६।।

मन्त्रं नवशतं रात्रौ जपेद्दशदिनावधि। यो नरस्तस्य नश्यन्ति राजशत्रूत्थभीतयः॥१७॥
मातुलिङ्गाम्रकदलीफलैर्हुत्वा सहस्त्रकम्। द्वाविंशतिब्रह्मचारि विप्रान्सम्भोजयेच्छुचीन्॥१८॥
एवंकृते भूतविषग्रहरोगाद्युपद्रवाः। नश्यन्ति तत्क्षणादेव विद्वेषिग्रहदानवाः॥१९॥

दस दिन तक साधक रात्रि में नित्य ९०० बार इस मन्त्र को जपे। उस साधक को राजा तथा शत्रुजनित भय नहीं होता। मातुलुंग नीबू, आम तथा कदली से १००० होम के उपरान्त २२ ब्रह्मचारी ब्राह्मण को भोजन कराये। इससे भूत, विष, ग्रह, रोग, शत्रु तथा दानवजनित उपद्रवों का नाश होता है। तदनन्तर तत्क्षण देव विद्वेषी सभी ग्रह, दानव नष्ट हो जाते हैं।।१७-१९।।

अष्टोत्तरशतेनाम्बु मन्त्रितं विषनाशनम्। भूतापस्मारकृत्योत्थं ज्वरे तन्मन्त्रमन्त्रितैः॥२०॥
भस्मभिः सलिलैर्वापि ताडयेज्ज्वरिणं क्रुधा।
त्रिदिनाज्ज्वरमुक्तोऽसौ सुखं च लभते नरः॥२१॥

इस मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित जल विष नाशक होता है। जिसे भूत, अपस्मार अथवा ज्वर प्रकोप होता हो, वह इस मन्त्राभिमन्त्रित जल किंवा अभिमंत्रित भस्म से क्रोधित होकर ज्वर का ताड़न करे (रोगी पर फेंके)। तीन दिन में ही वह रोगी ज्वरमुक्त होकर सुखानुभव करेगा।।२०-२१।।

औषधं वा जलं वापि भुक्त्वा तन्मन्त्रमन्त्रितम्।
सर्वान्रोगान्पराभूय सुखी भवति तत्क्षणात्॥२२॥
तज्जप्तभस्मलिप्ताङ्गो भुक्त्वा तन्मन्त्रितं पयः।
योद्धुं गच्छेच्च यो मन्त्री शस्त्रसङ्घैर्न बाध्यते॥२३॥
शस्त्रक्षतं व्रणस्फोटो लूतास्फोटोऽपि भस्मना।
त्रिर्जप्तेन च संस्पृष्टाःशुष्यन्त्येव न संशयः॥२४॥

इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल अथवा औषधि का पान करने वाला व्यक्ति समस्त रोगों पर विजय पाकर तत्क्षण प्रसन्न हो जाता है। इस मन्त्र से मंत्रित भस्म का अंगों पर लेप करे तथा अभिमंत्रित जल का पान करे। तब युद्ध में जाने पर भी उस पर शस्त्र प्रहार व्यर्थ होगा। इस मन्त्र से भस्म को तीन बार अभिमंत्रित करके शस्त्रों से हुये व्रण घाव पर, व्रण स्फोट किंवा लूता स्फोट पर लगाये। घाव शीघ्र भर जायेंगे।।२२-२४।।

जपेदर्कास्तमारभ्य यावदर्कोदयो भवेत्।
मन्त्रं सप्तदिनं यावच्चादाय भस्मकीलकौ॥२५॥
निखनेदभिमन्त्र्याशु शत्रूणां द्वार्यलक्षितः।
विद्वेषं मिथ आपन्नाः पलायन्तेऽरयोऽचिरात्॥२६॥
भस्माम्बु चन्दनं मन्त्री मन्त्रेणानेन मन्त्रितम्।
भक्ष्यादियोजितं यस्मै ददाति स तु दासवत्॥२७॥
क्रूराश्च जन्तवोऽप्येवं भवन्ति वशवर्तिनः। गृहीत्वेशानदिक्संस्थं करञ्जतरुमूलकम्॥२८॥
कृत्वा तेनाङ्गुष्ठमात्रां प्रतिमां च हनूमतः। कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां च सिन्दूराद्यैः प्रपूज्य च॥२९॥
गृहस्याभिमुखीं द्वारे निखनेन्मन्त्रमुच्चरन्। ग्रहाभिचाररोगाग्निविषचौरनृपोद्भवाः॥३०॥
न जायन्ते गृहे तस्मिन् कदाचिदप्युपद्रवाः। तद्गृहं धनपुत्राद्यैरेधते प्रत्यहं चिरम्॥३१॥
निशि यत्र वने भस्म मृत्स्नया वापि यत्नतः।
शत्रोः प्रतिकृतिं कृत्वा हृदि नाम समालिखेत्॥३२॥
कृत्वा प्राणप्रतिष्ठान्तं भिन्द्याच्छस्त्रैर्मनुं जपन्।
मन्त्रान्ते प्रोच्चरेच्छत्रोर्नाम छिन्धि च भिन्धि च॥३३॥
मारयेति च तस्यान्ते दन्तैरोष्ठं निपीड्य च।
पाण्योस्तले प्रपीड्याथ त्यक्त्वा तं स्वगृहं व्रजेत्॥३४॥

सात दिन पर्यन्त सूर्यास्त से लगाकर सूर्योदय तक मन्त्र जप करके भस्म तथा कील को अभिमंत्रित

करे। उसे गोपनीयता के साथ शत्रु के द्वार पर गाड़े। वह शत्रु अब अपने ही लोगों से द्वेष करेगा तथा वहां से शीघ्र पलायन करेगा। मन्त्राभिमंत्रित जल, भस्म तथा चन्दन जिसे भोजन में मिलाकर प्रदान किया जायेगा, वह व्यक्ति साधक का दासवत् हो जायेगा। हिंसक जन्तु भी साधक के वश में इस विधि से हो जाते हैं। ईशान कोणस्थ करंज वृक्ष के जड़ को लाये तथा उसकी अंगूठे के नाप की हनुमत् मूर्त्ति बनवाये। तदनन्तर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके उस मूर्त्ति का पूजन सिन्दूर प्रभृति से करना चाहिये। तदनन्तर उसे घर के सम्मुख वाले द्वार पर मन्त्रोच्चार सहित गाड़े। उस गृह में अब ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर, राज्य प्रभृति का भय नहीं होगा। रात्रिकाल में वन में जाकर भस्म या उत्तम मृत्तिका से शत्रु प्रतिमा बनाये। उसके हृदय पर शत्रु नाम अंकित करे। तदनन्तर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके हनुमत् मन्त्र जप सहित उसे शस्त्र से काटे। मन्त्रान्त में शत्रु का नाम लेकर कहे "अमुक नामानं शत्रुं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि मारय मारय।" तदनन्तर उस प्रतिमा के ओंठ में अपने दांत से काटे तथा प्रतिमा पर हथेली मारे और स्वगृह वापस आये।।२५-३४।।

कुर्वन्सप्तदिनं चैवं हन्याच्छत्रुं न संशयः। राजिकालवणैर्मुक्तचिकुरः पितृकानने।।३५।।
धत्तूरफलपुष्पैश्च नखरोमविषैरपि।
द्विक (काक) कौशिकगृध्राणां पक्षैः श्लेष्मान्तकाक्षजैः।।३६।।
समिद्भिस्त्रिशतं याम्यदिङ्मुखो जुहुयान्निशि। एवं सप्तदिनं कुर्वन्मारयेदुद्धतं रिपुम्।।३७।।

सात दिन तक यह प्रक्रिया करने से शत्रु मृत होगा। यह निःसंदिग्ध है। रात्रिकाल में साधक श्मशान जाये। वहां अपने बाल बिखेरे। वह पीली सरसों, लवण, धतूरा का फल तथा पुष्प, नख, रोम, विष, काक-उलूक-गृद्ध के पंख, लसोड़ा एवं बहेड़ा काष्ठ द्वारा दक्षिण की ओर मुख करके होम करे। सात दिन यह करने से बली तथा उद्धत शत्रु भी मृत होगा।।३५-३७।।

वित्रासस्त्रिदिनं रात्रौ श्मशाने षड्शतं जपेत्।
ततो वेताल उत्थाय वदेद्भावि शुभाशुभम्।।३८।।

मात्र तीन दिन ऐसा करने से शत्रु को महाभय होगा। रात्रि में श्मशान में हनुमान का मन्त्र ६०० जपे। वेताल उसका दास होकर शुभ-अशुभ फल भी बतला देगा।।३८।।

किङ्करीभूय वर्त्तेत कुरुते साधकोदितम्। भस्माम्बुमन्त्रितं रात्रौ सहस्त्रावृत्तिकं पुनः।।३९।।
दिनत्रयं च तत्पश्चात्प्रक्षिपेत्प्रतिमासु च।
यासु कासु च स्थूलासु लघुष्वपि विशेषतः।।४०।।
मन्त्रप्रभावाच्चलनं भवत्येव न संशयः। अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां कुजे वा रविवासरे।।४१।।
हनुमत्प्रतिमां पट्टे माषैः स्नेहपरिप्लुतैः। कुर्याद्रम्यां विशुद्धात्मा सर्वलक्षणलक्षिताम्।।४२।।

वह साधक का दास हो जाता है। रात्रि में भस्म एवं जल एक हजार बार मंत्रित करे। ऐसा तीन दिन तक करे। फिर किसी भी प्रतिमा पर भले ही वह स्थूल किंवा लघु क्यों न हो तनिक छिड़के। वह प्रतिमा मन्त्रप्रभाव से चलित हो जाती है। यहां संशय न करे। अष्टमी अथवा चतुर्दशी के दिन जब मंगल अथवा रविवार हो, तब शुद्धमन वाला साधक एक पटरे पर उर्द से हनुमान की सर्वलक्षणान्वित कमनीय मूर्त्ति निर्माण करे।।३९-४२।।

तैलदीपं वामभागे घृतदीपं तु दक्षिणे। संस्थाप्यावाहयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥४३॥
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा च पाद्यादीनि समर्पयेत्। रक्तचन्दनपुष्पैश्च सिन्दूराद्यैः समर्पयेत्॥४४॥
धूपं दीपं प्रदायाथ नैवेद्यं च समर्पयेत्। अपूपमोदनं शाकमोदकान्वटकादिकम्॥४५॥

साज्यं च तत्समप्यार्थ मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
अखण्डितान्यहिलतादलानि सप्तविंशतिम्॥४६॥

त्रिधा कृत्वा सपूगानि मूलेनैव समर्पयेत्। एवं सम्पूज्य मन्त्रज्ञो जपेद्दशशतं मनुम्॥४७॥

कर्पूरारार्तिकं कृत्वा स्तुत्वा च बहुधा सुधीः।
निजेप्सितं निवेद्याथ विधिवद्विसृजेत्ततः॥४८॥
नैवेद्यान्नेन सम्भोज्य ब्राह्मणान्सप्तसंख्यया।
निवेदितानि पर्णानि तेभ्यो दद्याद्विभज्य च॥४९॥
दक्षिणां च यथा शक्तिं दत्त्वा तान् विसृजेत्सुधीः।
तत इष्टगणैः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥५०॥

उस मूर्त्ति के बायीं ओर तैल दीप जलाये। दायीं ओर घृत दीप प्रज्वलित करे। तब साधक मूलमन्त्र से उस प्रतिमा को प्रतिष्ठित करके उसमें हनुमत् आवाहन करे। तदनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा कार्य के उपरान्त पाद्य, रक्त चन्दन, पुष्प, सिन्दूर, धूप, दीप, नैवेद्यार्पण करे। भगवान् के समक्ष पूरी, भात, शाक, दही बड़ा, घृत, मिष्ठान्नादि निवेदित करके २७ चौघड़े पान तथा सुपारी मूलमन्त्र से ही भगवान् हनुमान् को अर्पित करे। तदनन्तर एक सहस्र मन्त्र जप, कर्पूर से आरती करे। अनेक स्तुतिगान करे। अपनी प्रियवस्तु हनुमत् देव को अर्पित करे। तदनन्तर सात श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नैवेद्यान्न अर्पित करके उक्त निवेदित पान का चौघड़ा तथा सुपाड़ी देकर तथा यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को विदा करे। तदनन्तर बन्धु-बान्धवों के साथ साधक मौनी रहकर भोजन ग्रहण करे।।४३-५०।।

तद्दिने भूमिशय्यां च ब्रह्मचर्य्यं समाचरेत्।
एवं यः कुरुते मर्त्यः सोऽचिरादेव निश्चितम्॥५१॥
प्राप्नुयात्सकलान्कामान्कपीशस्य प्रसादतः।
हनुमत्प्रतिमां भूमौ विलिखेत्तत्पुरो मनुम्॥५२॥

साध्यनाम द्वितीयान्तं विमोचय विमोचय। तत्पूर्वं मार्जयद्वामपाणिनाथ पुनर्लिखेत्।

एवमष्टोत्तरशतं लिखित्वा मार्जयेत्पुनः॥५३॥
एवं कृते महाकारागृहाच्छीघ्रं विमुच्यते।
एवमन्यानि कर्माणि कुर्य्यात्पल्लवमुल्लिखन्॥५४॥

साधक उस दिन भूमि पर शयन करे तथा ब्रह्मचारी रहे। जो साधक इस विधि से पूजन करता है, वह हनुमत् कृपा से अपनी अभीप्सित कामनाओं को कपीश हनुमान की कृपा से प्राप्त कर लेता है। पृथिवी पर (शुद्ध

स्थान में) हनुमत् प्रतिमा अंकित करके उनके आगे मन्त्रांकन करे। तब जिसके लिये यह अनुष्ठान किया जा रहा हो, उस साध्य का नाम लिखकर "विमोचय विमोचय" लिखे। तदनन्तर बायीं हथेली से सब मिटाये। ऐसी प्रक्रिया (लेखनादि) १०८ बार करे तथा मिटायें। इससे साध्य कारागार से मुक्त हो जाता है। एवंविध पल्लवों पर लिखकर अन्य कर्म करे।।५१-५४।।

सर्षपैर्वश्यकृद्धोमो विद्वेषे हयमारजैः। कुङ्कुमैरिध्मकाष्ठैर्वा मरीचैर्जीर कैरपि।।५५।।
ज्वरे दूर्वागुडूचीभिर्दध्ना क्षीरेण वा घृतैः। शूले करञ्जवातारिसमिद्भिस्तैललोलितैः।।५६।।
तैलाक्ताभिश्च निर्गुण्डीसमिद्भिर्वा प्रयत्नतः।
सौभाग्ये चन्दनैश्चेन्द्रलोचनैर्वा लवङ्गकैः।।५७।।
सुगन्धपुष्पैर्वस्त्राप्त्यै तत्तद्धान्यैस्तदाप्तये। रिपुपादरजोभिश्च राजीलवणमिश्रितैः।।५८।।
होमयेत्सप्तरात्रं च रिपुर्याति यमालयम्। धान्यैः सम्प्राप्यते धान्यमन्नैरन्नसमुच्छ्रयः।।५९।।
तिलाज्यक्षीरमधुभिर्महिषीगोसमृद्धये। किं बहूक्तैर्विषे व्याधौ शान्तौ मोहे च मारणे।।६०।।

सर्षप से होम द्वारा वशीकरण, कनेर-कुंकुम-मरीच तथा जीरे के काष्ठ से होम द्वारा शत्रु में विद्वेषण, दूर्वा-गुरुच-दुग्ध-दधि-घृताहुति से ज्वर नाश, तैलसिक्त करंज, रेड़, निगुण्डी काष्ठ से हवन द्वारा शूल रोग नाश होता है। सौभाग्यलाभार्थ चन्दन, इन्द्रलोचन, लवंग से हवन करे। गंधयुक्त पुष्प से होम करने वाला वस्त्रलाभ करेगा। जो अन्न पाना हो, उसी अन्न से होम करे। शत्रु के पैर की धूल में पीली सरसों तथा लवण मिलाकर होम करे। शत्रु यमलोक गमन करेगा। धान्य होम द्वारा धान्यवृद्धि, अन्न होम से अन्न वृद्धि होगी। तिल, घृत, दुग्ध, मधु से होम करने वाले के यहां महिष एवं गौ की समृद्धि होती है। किम्बहुना, व्याधि, मोह तथा मारण में यही मन्त्र जपे।।५५-६०।।

विवादे स्तम्भने द्यूते भूतभीतौ च सङ्कटे। वश्ये युद्धे क्षते दिव्ये बन्धमोक्षे महावने।।६१।।
साधितोऽयं नृणां दद्यान्मन्त्रः श्रेयः सुनिश्चितम्।
वक्ष्येऽथ हनुमद्यन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।६२।।

विवाद, स्तम्भन, द्यूतक्रीड़ा, भूतभय, संकट, वशीकरण, युद्ध, घाव, बन्धन मुक्ति तथा महावन में संकट होने पर इसी मन्त्र का जप व्यक्ति करे। उसका श्रेयः होना सुनिश्चित है। अब मैं सर्वसिद्धिदायक हनुमद् यन्त्र कहता हूं।।६१-६२।।

लाङ्गूलाकारसंयुक्तं वलयत्रितयं लिखेत्।
साध्यनाम लिखेन्मध्ये पाशिबीजप्रवेष्टितम्।।६३।।
उपर्यष्टच्छदं कृत्वा पत्रेषु कवचं लिखेत्। तद्बहिर्दन्तमालिख्य तद्बहिश्चतुरस्त्रकम्।।६४।।
चतुरस्त्रस्य रेखाग्रे त्रिशूलानि समालिखेत्। सौं बीजं भूपुरस्याष्टवज्रेषु विलिखेत्ततः।।६५।।
कोणेष्वकुंशमालिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयेत्। तत्सर्वं वेष्टयेद्यन्त्रे वलयत्रितयेन च।।६६।।

लांगूलाकार तीन वलय लिखे। उसके मध्य में साध्य नाम अंकित करके वह पाशबीज से वेष्टित करे।

उसके ऊपर अष्टदल कमल लिखकर पत्रों पर कवच अंकित करे। (हुं कवच बीज है)। उसके बाहर दन्त बनाकर उसके बाहर चतुरस्त्र बनाये। चतुरस्त्र के आगे त्रिशूल बनाये। भूपुरस्थ चार कोणों के चार वज्रों पर 'सौं' बीज लिखे। कोणों में अंकुश बीज (क्रों) लिखकर इसे जपमन्त्र (मालामन्त्र) से घेरे। अब सम्पूर्ण यन्त्र को वलयाकृति त्रिरेखा से घेरना चाहिये।।६३-६६।।

शिलायां फलके वस्त्रे ताम्रपत्रेऽथ कुड्यके।
ताडपत्रेऽथ भूर्जे वा रोचनानाभिकुङ्कुमैः॥६७॥
यन्त्रमेतत्समालिख्य निराहारो जितेन्द्रियः।
कपेः प्राणान्प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्तद्यथाविधि॥६८॥
अशेषदुःखशान्त्यर्थं यन्त्रं सन्धारयेद् बुधः। मारीज्वराभिचारादिसर्वोपद्रवनाशनम्॥६९॥
योषितामपि बालानां धृतं जनमनोहरम्। भूतकृत्यापिशाचानां दर्शनादेव नाशनम्॥७०॥

यह यन्त्र, शिला, तख्ता, वस्त्र, ताम्रपत्र, दीवार, तालपत्र किंवा भोजपत्र पर गोरोचन, कस्तूरी, कुंकुम मिलाकर बनी स्याही से लिखे। उपवासी तथा इन्द्रियों को वशीभूत किये हुये साधक उसमें हनुमत् प्रतिष्ठा करे। तदनन्तर सविधि पूजा करे। यह यन्त्र बुधजन अशेष दुःख शान्त करने हेतु धारण करे। यह महामारी, ज्वर, अभिचार आदि सभी उपद्रवों को नाश करने वाला यन्त्र है। इस यन्त्र प्रभाव से स्त्रियां, बालायें तथा लोग वशीभूत हो जाते हैं। यन्त्रधारी को देखते ही भूत, कृत्या, पिशाचादि नष्ट हो जाते हैं।।६७-७०।।

मालामन्त्रमथो वक्ष्ये तारो वाग्विष्णुगेहिनी।
दीर्घत्रयान्विता माया प्रागुक्तं कूटपञ्चकम्॥७१॥
ध्रुवो हृद्धनुमान्ङेन्तोऽथ प्रकटपराक्रमः।
आक्रान्तदिङ्मण्डलान्ते यशोवितानसंवदेत्॥७२॥
धवलीकृतवर्णान्ते जगत्त्रितयवज्र च। देहज्वलदग्निसूर्य कोट्यन्ते च समप्रभ॥७३॥
तनूरुहपदान्ते तु रुद्रावतार संवदेत्। लङ्कापुरी ततः पश्चाद्दहनोदधिलङ्घन॥७४॥
दशग्रीवशिरः पश्चात्कृतान्तकपदं वदेत्। सीतान्ते श्वसनपदं वाय्वन्ते सुतमीरयेत्॥७५॥
अञ्जनागर्भसम्भूतः श्रीरामलक्ष्मणान्वितः। नन्दन्ति करवर्णान्ते सैन्यप्राकार ईरयेत्॥७६॥
सुग्रीवसख्यकाद्वर्णाद्रणवालिनिवर्हण। कारणद्रोणशब्दान्ते पर्वतोत्पाटनेति च॥७७॥
अशोकवनवीथ्यन्ते दारुणाक्षकुमारक। छेदनान्ते वनरक्षाकरान्ते तु समूह च॥७८॥
विभञ्जनान्ते ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्ति ग्रसेति च। लक्ष्मणान्ते शक्तिभेदनिवारणपदं वदेत्॥७९॥
विशल्योषधिशब्दान्ते समानयन सम्पठेत्। बालोदित ततो भानुमण्डलग्रसनेति च॥८०॥
मेघनादहोमपदाद्विध्वंसनपदं वदेत्। इन्द्रजिद्वधकारान्ते णसीतारक्षकेति च॥८१॥
राक्षसीसङ्घशब्दान्ते विदारणपदं वदेत्। कुम्भकर्णादिसङ्कीर्त्यवधान्ते च परायण॥८२॥
श्रीरामभक्तिवर्णान्ते तत्परेति समुद्र च। व्योमद्रुमलङ्घनेति महासामर्थ्य संवदेत्॥८३॥

महातेजः पुञ्जशब्दाद्विराजमानवोच्चरेत्। स्वामिवचनसम्पादितार्जुनान्ते च संयुग॥८४॥
सहायान्ते कुमारेति ब्रह्मचारिन्पदं वदेत्। गम्भीरशब्दोदयान्ते दक्षिणापथ संवदेत्।
मार्त्तण्डमेरुशब्दान्ते वदेत्पर्वतपीठिका॥८५॥

अब मैं माला मन्त्र कहता हूं—

तार (ॐ) वाग् (ऐं) विष्णुगेहिनी (श्रीं) दीर्घ त्रयान्विता माया (ह्रां, ह्रीं ह्रूं), पहले कहे कूट पंचक (हस्फ्रें, ख्फ्रें, हसौं, हस्ख्फ्रें, हसौं) यह मन्त्र है। ॐ नमः हनुमते प्रकट पराक्रम आक्रान्त दिङ्मण्डल यशोवितान धवलीकृत जगत् त्रितय वज्रदेह ज्वलदग्निसूर्यकोटि समप्रभ तनूरुह रुद्रावतार लंकापुरी दहनोदधिलङ्घन दशग्रीव शिरः कृतान्तक सीता श्वसन वायुसुत अञ्जनागर्भसम्भूत श्रीरामलक्ष्मणान्वित नदन्ति कर सैन्य प्राकार सुग्रीवसख्यकाद्रण बालिनिबर्हण कारणद्रोण पर्वतोत्पाटन अशोक वनवीथि दारुणाक्षकुमारछेदक वनरक्षा समूह विभञ्जनान्ते ब्रह्मास्त्रशक्तिग्रस्त लक्ष्मण शक्तिभेद निवारण विशल्योषधि समानयन बालोदित भानुमण्डलग्रसन मेघनादहोमविध्वंसनं इन्द्रजिद्वध सीतारक्षक राक्षसी संघ विदारण कुंभकर्णादि वध परायण। श्रीरामभक्ति तत्पर समुद्र व्योमद्रुमलंघन महासामर्थ्य महातेजःपुञ्ज विराजमान। स्वामिवचन सम्पादितार्जुन संयुग सहाय कुमार ब्रह्मचारि गंभीर शब्दोदय दक्षिणपथ मार्त्तण्डमेरु पर्वत पीठिका।।७१-८५।।

अर्चनान्ते तु सकलमन्त्रान्ते मपदं वदेत्। आचार्यमम शब्दान्ते सर्वग्रहविनाशन॥८६॥
सर्वज्वरोच्चाटनान्ते सर्वविषविनाशन। सर्वापत्तिनिवारण सर्वदुष्टनिबर्हण॥८७॥
सर्वव्याध्यादि सम्प्रोच्य भयान्ते च निवारण॥८८॥
सर्वशत्रुच्छेदनेति ततो मम परस्य च॥८९॥
ततस्त्रिभुवनान्ते तु पुंस्त्रीनपुंसकात्मकम्। सर्वजीवपदान्ते तु जातं वशययुग्मकम्॥९०॥
ममाज्ञाकारकं पश्चात्सम्पादययुगं पुनः।
ततो नानानामधेयान्सर्वान् राज्ञः स सम्पठेत्॥९१॥
परिवारान्ममेत्यन्ते सेवकान् कुरु युग्मकम्।
सर्वशस्त्रास्त्रवीत्यन्ते षाणि विध्वंसयद्वयम्॥९२॥
लज्जादीर्घत्रयोपेता होत्रयं चैहि युग्मकम्। विलोमं पञ्चकूटानि सर्वशत्रून्हनद्वयम्॥९३॥
परबलानि परान्ते सैन्यानि क्षोभयद्वयम्॥९४॥
मम सर्वं कार्यजातं साधयेति द्वयं ततः॥९५॥
सर्वदुष्टदुर्जनान्ते मुखानि कीलयद्वयम्। धेत्रयं वर्मत्रितयं फट्त्रयं हान्त्रयं ततः॥९६॥
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽयं मालासंज्ञोऽखिलेष्टदः॥९७॥
वस्वष्टबाणवर्णोऽयं मन्त्रः सर्वेष्टसाधकः॥९८॥

अर्चन के अन्त में सभी मन्त्रों के अन्त में कहे "आचार्य मम सर्वग्रह विनाशन सर्वज्वरोच्चाटन, सर्वविषविनाशन, सर्वापत्तिनिवारण, सर्वदुष्टनिबर्हण, सर्वव्याधि भय निवारण, सर्वशत्रुच्छेदन मम परस्य त्रिभुनान्ते

पुंस्त्रीनपुंसक सर्वजीव वश्य वश्य ममाज्ञाकारकं सम्पादय सम्पादय नाना नामधेयासर्वान् राज्ञ परिवारान् मम सेवकान् कुरु कुरु, सर्वशास्त्रास्त्रषाणि विध्वंसय विध्वंसय ह्रां ह्रीं ह्रूं हन हन हन चैहि चैहि, ह्सौं, हस्ख्फ्रें हस्त्रौं ख्फ्रें हस्फ्रें सर्वशत्रून् हन हन परवलानि सैन्यानि क्षोभय-क्षोभय, मम सर्व कार्यजातं साधय साध्य सर्वदुष्टदुर्जन मुखानि कीलय कीलय। हुं हुं हुं फट् फट् फट् स्वाहा।" यह मालासंज्ञक मन्त्र अखिल इष्टप्रद है। (यह जो मालामन्त्र है इसका मन्त्रोद्धार एक बार विज्ञ गुरु जांच लें तब कोई इसका प्रयोग करे।)।।८६-९८।।

महाभये महोत्पाते स्मृतोऽयं दुःखनाशनः।
द्वादशार्णस्य षट्कूटं त्यक्त्वा बीजं तथादिमम्॥९९॥
पञ्चकूटात्मको मन्त्रः सर्वकामप्रदायकः।
रामचन्द्रो मुनिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम्॥१००॥
हनुमान्देवता प्रोक्तो विनियोगोऽखिलाप्तये।
पञ्चबीजैः समस्तेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१०१॥

महाभय तथा महोत्पात काल में इस मन्त्र के स्मरणमात्र से दुःखनाश होता है। द्वादशाक्षर में जो अन्तिम षट्कूट छोड़कर "हनुमते नमः" को तथा आदिबीज "ह्रौं" को छोड़े। तब बाकी बचे ५ बीज से पंचाक्षर मन्त्र होगा। यह सर्वकामनाप्रद है। वह है "हस्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौं हस्ख्फ्रें ह्सौं" यह मन्त्र भी सर्वकामफलप्रद हैं। इसके ऋषि हैं रामचन्द्र, छन्दः है गायत्री, देवता हैं हनुमान्। सर्ववस्तुलाभार्थ इसका विनियोग होता है। इन पंचबीज से तथा पूर्ण मन्त्र से षडङ्गन्यास करना चाहिये।।९९-१०१।।

रामदूतो लक्ष्मणान्ते प्राणदाताञ्जनीसुतः। सीताशोकविनाशोऽयं लङ्काप्रासादभञ्जनः॥१०२॥
हनुमदाद्याः पञ्चैते बीजाद्या ङेयुताः पुनः। षडङ्गमनवो ह्येते ध्यानपूजादि पूर्ववत्॥१०३॥

रामदूत, लक्ष्मण प्राणदात, अंजनीसुत, सीताशोकविनाशन तथा लंका प्रासादभंजन ये पंचनाम हैं। इनसे पूर्व में हनुमत नाम है। इन नाम के आदि में उपरोक्त पंचबीज लगाकर चतुर्थी विभक्ति अन्त में लगाये। ये ही षडङ्ग मन्त्र हैं। इनका ध्यान-पूजन पूर्ववत् है। (यह षडङ्ग स्पष्टतः कहा जा रहा है)—

हस्फ्रें हनुमते नमः — हृदयाय नमः।
ख्फ्रें रामभक्ताय नमः — शिरसे स्वाहा।
हस्त्रौं लक्ष्मण प्राणदात्रे नमः — शिखायै वषट्।
हस्ख्फ्रें अञ्जनी सुताय नमः — कवचाय हुं।
ह्सौं सीताशोकविनाशाय नमः — नेत्रत्रयाय वौषट्।
हस्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौं हस्ख्फ्रें ह्सौं लंकाप्रासादभंजनाय नमः—अस्त्राय फट्।।१०२-१०३।।

प्रणवो वाग्भवं पद्मा माया दीर्घत्रयान्विता।
पञ्चकूटानि मन्त्रोऽयं रुद्रार्णः सर्वसिद्धिदः॥१०४॥
ध्यानपूजादिकं सर्वमस्यापि पूर्ववन्मतम्। अयमाराधितो मन्त्रः सर्वाभीष्टप्रदायकः॥१०५॥

प्रणव, वाग्भव, पद्मा, तीन दीर्घस्वरान्वित माया बीज तथा पंचकूट—यह एकादश अक्षरात्मक मन्त्र सर्वसिद्धिप्रद है। मन्त्रोद्धार है—

ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं हं हस्फ्रें ख्फ्रें हस्रौं हस्ख्फ्रें ह्सौं—यह एकादशाक्षरमन्त्र सर्वसिद्धिदायक है। इसका ध्यान पूजनादि पूर्ववत् है। इसकी आराधना सर्वाभीष्टदायक है।।१०४-१०५।।

नमो भगवते पश्चादनन्तश्चन्द्रशेखरां। जनेयाय महान्ते तु बलायान्तेऽग्निवल्लभाः॥१०६॥

अष्टादशार्णो मन्त्रोऽयं मुनिरीश्वरसंज्ञकः। छन्दोऽनुष्टुप्देवता तु हनुमान्पवनात्मजः॥१०७॥

हं बीजं वह्निवनिता शक्तिः प्रोक्ता मनीषिभिः।
आञ्जनेयाय हृदयं शिरश्च रुद्रमूर्तये॥१०८॥

शिखायां वायुपुत्रायाग्निगर्भाय वर्मणि। रामदूताय नेत्रं स्याद्ब्रह्मास्त्रायास्त्रमीरितम्॥१०९॥

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नसंविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥११०॥

ध्यात्वैवमयुतं जप्त्वा दशांशं जुहुयात्तिलैः। वैष्णवे पूजयेत्पीठे प्रागुद्दिष्टेन वर्त्मना॥१११॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं नक्तभोजी जितेन्द्रियः।
जपित्वा क्षुद्ररोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥११२॥

"नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा" यह अष्टादशाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि हैं ईश्वर, छन्दः है अनुष्टुप्, पवनपुत्र हनुमत् देवता हैं। हं बीज तथा स्वाहा शक्ति है। यह विद्वानों का कथन है। इसका न्यास एवंविध होगा—

आञ्जनेयाय नमः — हृदयाय नमः।
रुद्रमूर्तये नमः — शिरसे स्वाहा।
वायुपुत्राय नमः — शिखायै वषट्।
अग्निगर्भाय नमः — कवचाय हुं।
रामदूताय नमः — नेत्रत्रयाय वौषट्।
ब्रह्मास्त्राय नमः — अस्त्राय फट्।

इस प्रकार न्यास कथित है। अब ध्यान कहते हैं। तप्त स्वर्ण के समान कांतिवाले भयनाशक, हनुमान ने अंजलिबद्ध किया है। (राम के समक्ष अंजलिबद्ध हैं) उनका मुख चंचल कुण्डलों के कारण दीप्त है। उनके नेत्र पद्म के समान हैं। ऐसे हनुमान् का ध्यान करे। ध्यानोपरान्त दस हजार मन्त्र जप करके एक हजार होम करना चाहिये। यह होम तिल से किया जायेगा। इनका पूजन वैष्णव पीठ पर पूर्वोक्त विधान से करे। जो नित्य एक बार भोजन करता हुआ नित्य इस मन्त्र का १०८ जप करता है तथा जितेन्द्रिय रहता है, वह क्षुद्र रोगसमूह से निश्चित रूपेण मुक्त हो जाता है। यह निःसंशय है।।१०६-११२।।

महारोगनिवृत्त्यै तु सहस्रं प्रत्यहं जपेत्।
राक्षसौघं विनिघ्नन्तं कपिं ध्यात्वाघनाशनम्॥११३॥

अयुतं प्रजपेन्नित्यमचिराज्जयति द्विषम्। सुग्रीवेण समं रामं सन्दधानं कपिं स्मरन्॥११४॥

प्रजपेदयुतं यस्तु सन्धिं कुर्याद्द्विपद्वयोः। ध्यात्वा लङ्कां दहन्तं तमयुतं प्रजपेन्मनुम्॥११५॥

अचिरादेवं शत्रूणां ग्रामान्सम्प्रदहेत्सुधीः।
ध्यात्वा प्रयाणसमये हनुमन्तं जपेन्मनुम्॥११६॥

महारोग निवृत्ति हेतु इसका नित्यप्रति १००० जप करे। जो राक्षस सैन्य का वध करने वाले पापहारी हनुमान का ध्यान तथा दस सहस्र जप सम्पन्न करता है, वह शीघ्र शत्रुजित् हो जाता है। राम से सुग्रीव की सन्धि कराते हुये वायुपुत्र हनुमान का ध्यान करने वाला साधक दस सहस्र जप करे। वह यथाशीघ्र शत्रु से मित्रता कर लेगा। लंकादाह करते हनुमान का स्मरण करने वाला दस सहस्र मन्त्र जप करे। वह सुधी साधक शीघ्र शत्रुओं का ग्राम दाह कर देता है। प्रयाणकाल में (यात्रा काल में) हनुमत् ध्यानोपरान्त हनुमत् मन्त्र जप करे। वह शीघ्र कार्य में सफल होकर गृहागमन करेगा।।११३-११६।।

यो याति सोऽचिरात्स्वेष्टं साधयित्वा गृहे व्रजेत्।
हनुमन्तं सदा गेहे योऽर्चयेज्जपतत्परः॥११७॥
आरोग्यं च श्रियं कान्तिं लभते निरुपद्रवम्।
कानने व्याघ्रचौरेभ्यो रक्षेन्मनुरयं स्मृतः॥११८॥
प्रस्वापकाले शय्यायां स्मरेन्मन्त्रमनन्यधीः।
तस्य दुःस्वप्नचौरादिभयं नैव भवेत्क्वचित्॥११९॥
वियत्सेन्दुर्हुनुमते ततो रुद्रात्मकाय च।
वर्मास्त्रान्तो महामन्त्रो द्वादशार्णोऽष्टसिद्धिकृत्॥१२०॥

जो स्वगृह में सदैव हनुमत् ध्यान करता रहता है, उसे आरोग्य तथा कान्ति प्राप्त होती है। उसका जीवन उपद्रव रहित बना रहता है। यह मन्त्र वन में व्याघ्र-चोरभय होने पर स्मरण करे। अनन्य चित्ततापूर्वक सोते समय इसका शय्या पर स्मरण करे। उसे कभी भी दुःस्वप्न तथा चोरादि का भय नहीं होगा। "हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्" यह द्वादशाक्षर महामन्त्र अष्टसिद्धिप्रद है।।११७-१२०।।

रामचन्द्रो मुनिश्चास्य जगती छन्द ईरितम्। हनुमान्देवता बीजमाद्यं शक्तिर्हुमीरिता॥१२१॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्।
महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति॥१२२॥
लाक्षारक्तारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्। ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥१२३॥

इसके ऋषि हैं रामचन्द्र! छन्दः है जगती, देवता हैं हनुमान्। बीज हैं "हं"। शक्ति है 'हुं'। षड्दीर्घयुक्त बीजमन्त्र द्वारा षडङ्न्यासोपरान्त हनुमत् ध्यान करे। ध्यान-हनुमान् महान् पर्वत उत्पाटित करके (उखाड़ कर) रावण की ओर धावमान हैं। उनका वर्ण लाक्षारसवत् अरुण है। वे यम के समान भयंकर हैं। उनकी कांति जाज्वल्यमान अग्नि तथा कोटिसूर्य समप्रभ है।।१२१-१२३।।

अङ्गदाद्यैमहावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्। तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजन्तं घोरनिःस्वनम्॥१२४॥
शैवरूपिणमभ्यर्च्य ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्।
दशांशं जुहुयाद्व्रीहीन्पयोदध्याज्यमिश्रितान्॥१२५॥

पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे विमलादिसमन्विते।
मूर्ति सङ्कल्प्य मूलेन पूजा कार्या हनूमतः॥१२६॥
ध्यानैकमात्रोऽपि नृणां सिद्धिरेव न संशयः।
अथास्य साधनं वक्ष्येलोकानां हितकाम्यया॥१२७॥

अंगद प्रभृति महान् वीरों ने उन रुद्ररूपी महावीर को चतुर्दिक् से घेर लिया है। वे रण में गर्जन कर रहे हैं—हे दुष्ट! खड़ा रह!'' शैवरूपी हनूमान् के ध्यानोपरान्त एक लक्ष मन्त्र जप करके दस हजार होम दुग्ध, दधि तथा घृत से मिश्रित धान्य से करे। (इस मन्त्र के ध्यान मात्र से मानव सिद्धिलाभ करता है। यह निःसंशय है।) पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से इनकी मूर्त्ति का संकल्प करके हनुमान की पूजा करे। ध्यान मात्र से ही मनुष्यों को सिद्धिलाभ होता है। इसमें तनिक संशय नहीं है। अब लोककल्याणार्थ अन्य साधना कहता हूं।।१२४-१२७।।

हनुमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम्। एतद् गुह्यतमं लोके शीघ्रसिद्धिकरं परम्॥१२८॥
मन्त्री यस्य प्रसादेन त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
प्रातः स्नात्वा नदीतीरे उपविश्य कुशासने॥१२९॥
प्राणायामषडङ्गे च मूलेन सकलं चरेत्।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा ध्यात्वा रामं ससीतकम्॥१३०॥
ताम्रपात्रे ततः पद्ममष्टपत्रं सकेशरम्। कुचन्दनेन घृष्टेन संलिखेत्तच्छलाकयां॥१३१॥
कर्णिकायां लिखेन्मन्त्रं तत्रावाह्य कपीश्वरम्।
मूर्तिं मूलेन सङ्कल्प्य ध्यात्वा पाद्यादिकं चरेत्॥१३२॥

हनुमत् साधना पुण्यमयी तथा महापातक नाशक है। यह लोकों में गुह्यतम है तथा शीघ्र सिद्धिदायक है। मन्त्रज्ञ साधक इसकी कृपा से त्रैलोक्यविजयी हो जाता है। प्रातः स्नान करके नदी तट पर कुशासनासीन हो जाये। वहां प्राणायाम करके मूलमन्त्र द्वारा विधिवत् षडङ्गन्यास सम्पन्न करे। इसके पश्चात् सीता तथा राम के ध्यानोपरान्त केसर एवं लाल चन्दन द्वारा लालचन्दन की ही कलम से ताम्रपत्र पर अष्टदल कमल लिखे। कर्णिका पर मन्त्र लिखकर वहीं हनुमत् आवाहन करके ध्यानोपरान्त मूलमन्त्र पढ़ते हुये हनुमान की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करे। उनको पाद्य प्रभृति प्रदान करे।।१२८-१३२।।

गन्धपुष्पादिकं सर्वं निवेद्य मूलमन्त्रतः। केसरेषु षडङ्गानि दलेषु च ततोऽर्चयेत्॥१३३॥
सुग्रीवं लक्ष्मणं चैव ह्यङ्गदं नलनीलकौ।
जाम्बवन्तं च कुमुदं केसरीशं दलेऽर्चयेत्॥१३४॥
दिक्पालांश्चापि वज्रादीन्पूजयेत्तदनन्तरम्।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेत्स्वेष्टमात्मनि॥१३५॥
नदीतीरे कानने वा पर्वते विजनेऽथवा। साधयेत्साधकश्रेष्ठो भूमिग्रहणपूर्वकम्॥१३६॥

मूलमन्त्र से गन्धादि पुष्प प्रभृति निवेदन करे। पद्मकेसर पर षडङ्ग देवता तथा दलों पर सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जामवन्त, कुमुद, केसरीश की अर्चना करके, उसके बाह्य से दिक्पालगण तथा उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार साधक मन्त्रसिद्ध होकर अपनी वांछित इष्टकामना पूर्ण करे।।१३३-१३६।।

जिताहारो जितश्वासो जितवाक्च जितेन्द्रियः।
दिग्बन्धनादिकं कृत्वा न्यासध्यानादिर्पूवकम्।।१३७।।
लक्षं जपेन्मन्त्रराजं पूजयित्वा तु पूर्ववत्।
लक्षान्ते दिवसं प्राप्य कुर्य्याच्च पूजनं महत्।।१३८।।
एकाग्रमनसा सम्यग्ध्यात्वा पवननन्दनम्।
दिवारात्रौ जपं कुर्याद्यावत्सन्दर्शनं भवेत्।।१३९।।
सुदृढ साधकं मत्वा निशीथे पवनात्मजः।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा प्रयाति साधकाग्रतः।।१४०।।
यथेप्सितं वरं दत्त्वा साधकाय कपीश्वरः। वरं लब्ध्वा साधकेन्द्रो विहरेदात्मनः सुखैः।।१४१।।

वह साधक नियमित अल्पाहार करे। वह श्वास पर विजयी रहे, वाक् का सम्यक् कम से कम उपयोग करे। इन्द्रियजित् होकर न्यास, ध्यान, दिग्बन्धनादि सम्पन्न करे तथा एकलक्ष मन्त्र जप तथा पूर्ववत् पूजनादि करे। मन्त्र जप पूर्ण होने वाले दिन विशिष्ट रूप से पूजन करना चाहिये। तब तक एकाग्रता के साथ पवनपुत्र का सम्यक् ध्यान करते हुये अहर्निश जप करता रहे, जब तक उनका दर्शन लाभ न हो। भगवान् हनुमान जब साधक की लक्ष्य के प्रति दृढ़ता को जान लेते हैं, तब वे साधक के प्रति प्रसन्न होकर रात्रि में साधक के समक्ष प्रकट होकर उसे ईप्सित वर प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ साधक वरलाभ द्वारा सुखपूर्वक पृथिवी पर विचरण करता है।।१३७-१४१।।

एतद्धि साधनं पुण्यं लोकानां हितकाम्यया।
प्रकाशितं रहस्यं वै देवानामपि दुर्लभम्।।१४२।।
अन्यानपिप्रयोगांश्च साधयेदात्मनो हितान्।
वियदिन्दुयुतं पश्चान्ङेन्तं पवननन्दनम्।।१४३।।
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽयं दशार्णः सर्वकामदः।
मुन्यादिकं च पूर्वोक्तं षडङ्गान्यपि पूर्ववत्।।१४४।।
ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्। धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्।।१४५।।
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले। गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्।।१४६।।
हाहाकारैः सदर्पैशच कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्।।१४७।।

लक्षं जपेद्दशांशेन जुहुयात्पूर्ववत्सुधीः।
पूर्ववत्पूजनम् प्रोक्तं मन्त्रस्यास्य विधानतः॥१४८॥

मैंने इस पुण्यमय साधन के रहस्य को लोगों के हितार्थ प्रकाशित किया है। यह साधन देवगण के लिये भी दुर्लभ है। आत्महितार्थ अन्य साधन भी कर सकते हैं। इन्दु युक्त वियत (हं) के पश्चात् चतुर्थी विभक्त्यन्त पवन नन्दन शब्द लगाकर वह्निप्रिया (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार होगा "हं पवननन्दनाय स्वाहा।" यह दशाक्षरमन्त्र सर्वकामना पूरक है। इसके ऋषि प्रभृति पूर्ववत् जानें। षडङ्गन्यास भी पूर्व की ही तरह होगा। ध्यान—रण में स्थित हनुमान कोटिसूर्य समप्रभ हैं। वे रण में भाग रहे रावण को देखकर उसे पकड़ने हेतु उठ गये हैं। उन्होंने रण में भूपतित लक्ष्मण को देख लिया है। इससे क्रोधित होकर हनुमान एक महापर्वत उखाड़ लाने हेतु दौड़ पड़ते हैं। इससे त्रैलोक्य में हाहाकार शब्द उत्थित हो गया। हनुमान का भयानक शरीर देखकर ब्रह्माण्ड कम्पित हो उठा। इस ध्यान के उपरान्त सुधी साधक एकलक्ष मन्त्र जप करे तथा दशांश हवन करे। यहां भी शेष विधि पूर्ववत् करे।।१४२-१४८।।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदात्मनो हितम्।
अस्यापि मन्त्रवर्यस्य रहस्यं साधनं तु वै॥१४९॥
सुगोप्यं सर्वतन्त्रेषु न देयं यस्य कस्यचित्।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कृतनित्यक्रियः शुचिः॥१५०॥
गत्वा नदीं ततः स्नात्वा तीर्थमावाह्य चाष्टधा।
मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा सिञ्चेदादित्यसंख्यया॥१५१॥
एवं स्नानादिकं कृत्वा गङ्गातीरेऽथवा पुनः।
पर्वते वा वने वापि भूमिग्रहणपूर्वकम्॥१५२॥
आद्यवर्णैः पूरकं स्यात्पञ्चवर्गैश्च कुम्भकम्।
रेचकं च पुनर्याद्यैरेवं प्राणान्नियम्य च॥१५३॥
विधाय भूतशुद्ध्यादि पीठन्यासावधि पुनः।
ध्यात्वा पूर्वोक्तविधिना सम्पूज्य च कपीश्वरम्॥१५४॥
तदग्रे प्रजपेन्नित्यं साधकोऽयुतमादरात्।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते कुर्याच्च पूजनम् महत्॥१५५॥

यह मन्त्र इस प्रकार से सिद्ध करके मन्त्रज्ञ साधक अपना हित करे। इस मन्त्रवर का रहस्य एवं साधन सभी तन्त्रों में गोपनीय रखा गया है। इसे जिस किसी को प्रदान नहीं करे। ब्राह्म मुहूर्त्त में साधक उठकर नित्यक्रिया द्वारा शुद्ध हो जाये। वह आठ तीर्थों का आवाहन करके नदी पर स्नान करे। वहां मूलमन्त्र का जप करते हुये स्वयं को बारह बार जल से सिंचित करे। तदनन्तर वह पुनः स्नानादि करके गंगा तीर पर अथवा पर्वत किंवा वन में आसनासीन होकर मन्त्र के आद्य अक्षर के पूरक, पंचवर्ग से कुंभक तथा 'य' प्रभृति अक्षरों द्वारा रेचक करे। यह तीनों प्राणायाम करने के उपरान्त वह पीठन्यास, भूतशुद्धि करके पूर्वकथित विधानानुरूप हनुमत्

ध्यान एवं पूजन करे। हनुमान के समक्ष नित्य सादर १०००० जप करे। सातवें दिवस पर महापूजा करना चाहिये।।१४९-१५५।।

एकाग्रमनसा मन्त्री दिवारात्रं जपेन्मनुम्।
महाभयं प्रदत्त्वा त्रिभागशेषासु निश्चितम्॥१५६॥
यामिनीषु समायाति नियतं पवनात्मजः। यथेप्सितं वरं दद्यात्साधकाय कपीश्वरः॥१५७॥
विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः॥१५८॥

साधक एकाग्रता के साथ अहर्निश मन्त्रजप तत्पर रहे। वह इस क्रिया से भयभीत हो जायेगा। तब रात्रिकाल में हनुमान महाभय दिखलाते प्रत्यक्ष होकर वर देते हैं। उस विद्या, धन, राज्य शत्रुनाश प्रभृति सभी वांछितार्थ की प्राप्ति हो जाती है। हनुमान उसे यह सब तत्क्षण प्रदान करते हैं। यह सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है।।१५६-१५८।।

इह लोकेऽखिलान्कामान्भुक्त्वान्ते मुक्तिमाप्नुयात्।
सद्याचितं वायुयुग्मं हनूमन्तेति चोद्धरेत्॥१५९॥
फलान्ते फक्रियानेत्रयुक्ता च कामिका ततः।
धग्गन्ते धगितेत्युक्त्वा आयुरास्व पदं ततः॥१६०॥
लोहितो गरुडो हेतिबाणनेत्राक्षरो मनुः। मुन्यादिकं तु पूर्वोक्तं प्लीहरोगहरो हरिः॥१६१॥

वह व्यक्ति इहलोक में समस्त भोगों को भोगकर अन्त में मुक्त हो जाता है। "सद्याचिंत वायुयुग्मं हनुमन्तेति चोद्धरेत्। फलान्ते फक्रियानेत्रयुक्ता च कामिका ततः धग्गन्ते धगितेत्युक्त्वा हनुमन्तेति चोद्धरेत्। लोहितो गरुड़ों हेति बाणनेत्राक्षरो मनुः।" (यह मन्त्र संकेत है, तथापि इसका मन्त्रोद्धार अज्ञता के कारण नहीं हो सका। सम्मेलन संस्करण में जो मन्त्रोद्धार है, वह ठीक नहीं प्रतीत होता। अतः विज्ञजन इसका मन्त्रोद्धार करें)। इस मन्त्र के मुनि प्रभृति पहले मन्त्र की तरह हैं। तथापि देवता हैं प्लीहारोगहारी श्रीहरि।।१५९-१६१।।

देवता च समुद्दिष्टा प्लीहयुक्तोदरे पुनः। नागवल्लीदलं स्थाप्यमुपर्याच्छादयेत्ततः॥१६२॥
वस्त्रं चैवाष्टगुणितं ततः साधकसत्तमः।
शकलं वंशजं तस्योपरि मुञ्चेत्कपिं स्मरेत्॥१६३॥
आरण्यसाणकोत्पन्ने वह्नौ यष्टिं प्रतापयेत्।
बदरीभूरुहोत्थां तां मन्त्रेणानेन सप्तधा॥१६४॥
तया सन्ताडयेद्वंशशकलं जठरस्थितम्।
सप्तकृत्वः प्लीहरोगो नाशमायाति निश्चितम्॥१६५॥

जिसे उदर में प्लीहा रोग हो, वह प्रातः भोर में पेट पर पान का पत्ता रखे। उसे आठ बार मोड़े हुये (आठ तह वाले) वस्त्र से ढांके। हनुमान का ध्यान करके उस पर एक बांस का टुकड़ा रखे। तब ऐसा बेर का

काष्ठ ले जो जंगल की दावाग्नि में तप्त हो। उस लाठी जैसे काष्ठ से बांस के टुकड़ें का ७ बार ताड़न करे। इससे प्लीहा रोग निश्चित रूप से समाप्त हो जायेगा।।१६२-१६५।।

तारो नमो भगवते आञ्जनेयाय चोच्चरेत्।
अमुकस्य शृङ्खलां त्रोटय द्वितयमीरयेत्॥१६६॥
बन्धमोक्षं कुरुयुगं स्वाहान्तोऽयं मनुर्मतः।
ईश्वरोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टप्च देवता पुनः॥१६७॥
शृङ्खलामोचकः श्रीमान्हनूमान्पवनात्मजः।
हं बीजं ठद्वयं शक्तिर्बन्धमोक्षे नियोगता॥१६८॥
षड्दीर्घवह्नियुक्तेन बीजेनाङ्गानि कल्पयेत्।
वामे शैलं वैरिभिदं विशुद्धं टङ्कमन्यतः॥१६९॥
दधानं स्वर्णवर्णं च ध्यायेत्कुण्डलिनं हरिम्।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षदशांशं चूतपल्लवैः॥१७०॥
जुहुयात्पूर्ववत्प्रोक्तं यजनं वास्य सूरिभिः। महाकारागृहे प्राप्तो ह्ययुतं प्रजपेन्नरः॥१७१॥
शीघ्रं कारागृहान्मुक्तः सुखी भवति निश्चितम्।
यन्त्रं चास्य प्रवक्ष्यामि बन्धमोक्षकरं शुभम्॥१७२॥

"ॐ नमो भगवते आन्जनेयाय अमुकस्य शृंखला त्रोटय त्रोटय बन्ध मोक्ष कुरु कुरु स्वाहा।" इस मन्त्र के ऋषि ईश्वर, छन्दः अनुष्टुप्, देवता बन्धन छेदक वायुपुत्र श्रीमान् हनुमान हैं। बीज है 'हं' शक्ति है स्वाहा। बन्धन मोक्षार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। षडदीर्घ तथा वह्नियुक्त (रे) बीज से अंगन्यास करना चाहिये। ध्यान—"श्री हनुमन ने वाम हाथ में पर्वत तथा दाहिने हाथ में गदा धारण किया है। ये स्वर्णवर्ण हैं, इनके कर्ण में कुण्डल शोभित है।" ध्यान के उपरान्त मन्त्र का एक लक्ष जप तथा १०००० होम आम के पल्लव से करे। धीमान् साधक मन्त्रपूजन पूर्ववत् करे। कारागार में बद्ध व्यक्ति इस मन्त्र का दस हजार जप करके बन्धन मुक्ति पा जाता है तथा आनन्दित हो जाता है। यह निश्चित है। अब इसका यन्त्र कहता हूं, जो शुभ तथा बन्धन से मुक्तिप्रद है।।१६६-१७२।।

अष्टच्छदान्तः षट्कोणं साध्यनामसमन्वितम्।
षट्कोणेषु ध्रुवं ङेन्तमाञ्जनेयपदं लिखेत्॥१७३॥
अष्टच्छदेषु विलिखेत्प्रणवो वातुवात्विति।
गोरोचनाकुङ्कुमेन लिखित्वा यन्त्रमुत्तमम्॥१७४॥
धृत्वा मूर्ध्नि जपेन्मन्त्रमयुतं बन्धमुक्तये।
यन्त्रमेतल्लिखित्वा तु मृत्तिकोपरि मार्जयेत्॥१७५॥
दक्षहस्तेन मन्त्रज्ञः प्रत्यहं मण्डलावधि। एवं कृते महाकारागृहान्मन्त्री विमुच्यते॥१७६॥

अष्टदल कमल में षट्दल बनाकर कर्णिका में साध्य व्यक्ति का नाम लिखे। षट्दलों में "ॐ आञ्जनेयाय" लिखे। अष्ट पत्रों पर प्रणव तथा वातु-वातु लिखे। बन्धन मोचनार्थ इसे गोरोचन तथा कुंकुम मिलाकर लिखकर मस्तक पर धारण करना होगा। तब इसके मन्त्र का १०००० जप करना होगा। साधक यन्त्र दाहिने हाथ में लेकर मृत्तिका पर मण्डलाकृति घुमाये। वह व्यक्ति अतिशीघ्र कारामुक्ति प्राप्त करेगा।।१७३-१७६।।

गगनं ज्वलनः साक्षी मर्कटेति द्वयं ततः। तोयं शशेषे मकरे परिमुञ्चति मुञ्चति॥१७७॥
ततः शृङ्खलिकां चेति वेदनेत्राक्षरो मनुः। इमं मन्त्रं दक्षकरे लिखित्वा वामहस्ततः॥१७८॥
दूरीकृत्य जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं बुधः। त्रिसप्ताहात्प्रबद्धोऽसौ मुच्यते नात्र संशयः॥१७९॥
मुन्याद्यर्चादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत्। लक्षं जपो दशांशेन शुभैर्द्रव्यैश्च होमयेत्॥१८०॥

गगन (ह) नेत्र (इ) युक्तज्वलन (र) = **हरि** कहकर अब **मर्कट-मर्कट** कहे तदनन्तर शेष (आ) तोय (व), कहकर 'मकरे' कहे = **वाम करे**। तदनन्तर परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम् कहे। मन्त्रोद्धार है "हरि मर्कट मर्कट वाम करे परिमुञ्चति शृंखलिकाम्।" इस मन्त्र को बायें हाथ से लिखे तथा दाहिने हाथ पर लिखे। यह २४ अक्षरात्मक मन्त्र है। इसका जप २१ दिनों तक नित्य १०८ बार करे। ऐसा नित्य करे। उसे बन्धन मुक्ति मिलेगी। यह निःसंशय है। इसके ऋषि तथा प्रक्रिया आदि पूर्ववत् है। इसका एक लाख जप करके १०००० होम शुभ द्रव्यों से करे।।१७७-१८०।।

पुच्छाकारे सुवस्त्रे च लेखन्या क्षुरकोत्थया।
गन्धाष्टकैर्लिखेद्रूपं कपिराजस्य सुन्दरम्॥१८१॥
तन्मध्येऽष्टदशार्णं तु शत्रुनामान्वितं लिखेत्।
तेन मन्त्राभिजप्तेन शिरोबद्धेन भूमिपः॥१८२॥
जयत्यरिगणं सर्वं दर्शनामेव निश्चितम्। चन्द्रसूर्योपरागादौ पूर्वोक्तं लेखयेद्ध्वजे॥१८३॥
ध्वजमादाय मन्त्रज्ञः संस्पर्शान्मोक्षणावधि। मातृकां जापयेत्पश्चाद्दशांशेन च होमयेत्॥१८४॥
तिलैःसर्षपसम्मिश्रैः संस्कृते हव्यवाहने।
गजे ध्वजं समारोप्य गच्छेद्युद्धाय भूपतिः॥१८५॥
गजस्थं तं ध्वजं दृष्ट्वा पलायन्तेऽरयो ध्रुवम्।
महारक्षाकरं यन्त्रं वक्ष्ये सम्यग्घनूमतः॥१८६॥

अपनी बनाई लेखनी से इस मन्त्र का पुच्छाकार कपड़े पर लिखे। उस वस्त्र पर हनुमान् का सुन्दर चित्रलेखन अष्टगन्ध से करे। मध्य में शत्रुनाम युक्त अष्टादशाक्षर मन्त्र लिखे। (हनुमत् मन्त्र)। मन्त्राभिमन्त्रित करके यह वस्त्र शिर पर बांधे। ऐसा नृपति शत्रुसमूह को देखने मात्र से जीत लेता है। यह निश्चित है। चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में यह मन्त्र ध्वजा पर लिखे। स्पर्शकाल से ग्रहणमोक्ष तक यह धारण करके मातृका जप करे। तदनन्तर संस्कृत अग्नि में तिलयुक्त सरसों से होम करके वह पताका हाथ पर फहराये तथा उस पर आरूढ़ होकर राजा युद्धार्थ निकल पड़े। युद्धस्थल में उस फहराती पताका देखकर शत्रु पलायन कर जाते हैं। यह निश्चित है। अब हनुमान् का महारक्षाकारी यन्त्र सम्यक्तः कहता हूं।।१८१-१८६।।

लिखेद्वसुदलं पद्मं साध्याख्यायुतकर्णिकम्।
दलेऽष्टकोणमालिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयेत्॥१८७॥
तद्बहिर्मायायावेष्ट्य प्राणस्थापनमाचरेत्।
लिखितं स्वर्णलेखन्या भूर्जपत्रे सुशोभने॥१८८॥
काश्मीररोचनाभ्यां तु त्रिलोहेन च वेष्टितम्।
सम्पातसाधितं यन्त्रं भुजे वा मूर्ध्नि धारयेत्॥१८९॥
रणे दुरोदरे वादे व्यवहारे जयं लभेत्। ग्रहैर्विघ्नैर्विषैः शस्त्रैश्चौरैर्नैवाभिभूयते॥१९०॥
सर्वान्रोगानपाकृत्य चिरं जीवेच्छतं समाः।
षड्दीर्घयुक्तं गगनं वह्न्याख्यं तारसम्पुटम्॥१९१॥
अष्टार्णोऽयं महामन्त्रो मालामन्त्रोऽथ कथ्यते।
प्रणवो वज्रकायेति वज्रतुण्डेति सम्पठेत्॥१९२॥
कपिलान्ते पिङ्गलेति ऊद्र्ध्वकेशमहापदम्।
बलरक्तमुखान्ते तु तडिज्जिह्व महा ततः॥१९३॥
रौद्रदंष्ट्रोत्कटं पश्चात्कहद्वन्द्वं करालिति। महद्दृढप्रहारेण लङ्केश्वरबधात्ततः॥१९४॥
वायुर्महासेतुपदं बन्धान्ते च महा पुनः। शैलप्रवाह गगनेचर एह्येहि संवदेत्॥१९५॥
भगवन्महाबलान्ते पराक्रमपदं वदेत्। भैरवाज्ञापयैह्येहि महारौद्रपदं ततः॥१९६॥
दीर्घपुच्छेन वर्णान्ते वदेद्वेष्टय वैरिणम्। जम्भयद्वयमाभाष्य वर्मास्त्रान्तो मनुर्मतः॥१९७॥

कर्णिकायुक्त अष्टदल कमल बनाये। उस पर साध्य नाम अंकित करे। अब पत्रों पर अष्टकोण बनाकर मालामन्त्र से उसे आवेष्टित करे। बाह्य में माया बीज ह्रीं से आवृत्त करके प्राणप्रतिष्ठित करना होगा। उत्तम भोजपत्र पर स्वर्णशलाका से यह यंत्र बनाये। गोरोचन तथा कुंकुम से यन्त्र लिखा हो, तब त्रिलोह से आवेष्ठित करे। जो इस विधान से यन्त्र को बाहु में किंवा मस्तक में धारण करता है, वह अत्यन्त घोरतम युद्ध में शास्त्रार्थ में तथा व्यवहार (मुकदमें) आदि में विजय लाभ करता है। वह ग्रह, विघ्न, विष, शस्त्र तथा चौरों से ग्रस्त नहीं होता। वह सर्वव्याधिरहित होकर शतायु होता है। षड्दीर्घयुक्त गगन (ह) तथा वह्नि को ॐ से सम्पुटित करे। यह अष्टाक्षर महामन्त्र होता है। यथा—ॐ हां हीं हूं हैं, हौं हः ॐ।

अब मालामन्त्र कहते हैं—"ॐ वज्रकाय वक्रतुण्ड कपिल, पिंगल, ऊर्ध्वकेश बलरक्तमुख, तड़िजह्व, रौद्रदंष्ट्र, कट, कहद्वन्द्व, कराल, महद्दृढ़प्रहारेण (लंकेश्वर का वध करने वाले) लंकेश्वरवधात्ततः, वायुर्महासेतुपदं वन्धान्तेचमहापुनः शैलप्रवाह गगनेचर एहि एहि भगवन् महाबल, महापराक्रम, भैरव आज्ञापय एहि एहि महारौद्र, दीर्घपुच्छेन वैरिणं वेष्ठय वेष्ठय जम्भय जम्भय हुं फट्।"॥१८७-१९७॥

मालाह्वयो द्विजश्रेष्ठ शरनेत्रधराक्षरः। मालामन्त्राष्टार्णयोश्च मुन्याद्यर्चा तु पूर्ववत्॥१९८॥
जप्तो युद्धे जयं दद्याद्व्याधौ व्याधिविनाशनः। एवं यो भजते मन्त्री वायुपुत्रं कपीश्वरम्॥१९९॥

सर्वान्स लभते कामान्देवैरपि सुदुर्लभान्।
धन धान्यं सुतान्पौत्रान्सौभाग्यमतुलं यशः॥२००॥
मेधां विद्यां प्रभां राज्यं विवादे विजयं तथा।
वश्याद्यानि च कर्माणि सङ्गरे विजयं तथा॥२०१॥
उपासितोऽन्जनागर्भसम्भूतः प्रददात्यलम्॥२०२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने सनत्कुमारविभागे तृतीयपादे हनुमन्मन्त्रकथनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥
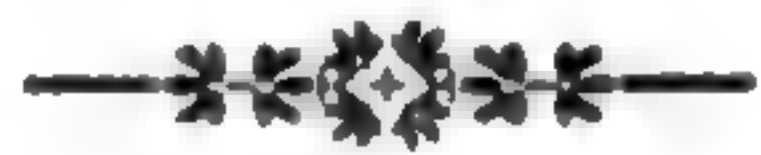
इस माला मन्त्र तथा इससे पहले कहे अष्टाक्षर मन्त्र के ऋषि प्रभृति पूर्ववत् हैं। युद्धकाल में इसका जप विजयप्रद है। इसके जप से व्याधि भी नष्ट होती है। जो पूर्वोक्त प्रकार से सविधि वायुपुत्र हनुमान की अर्चना करता है, उसे धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, सौभाग्य तथा अतुल यश मिलता है। यह मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य, विवाद में विजय, वश्य आदि कर्मों में तथा संग्राम में विजय लाभ करता है। अंजनागर्भोत्पन्न हनुमान के आराधक को इन सबकी प्राप्ति होती है॥१९८-२०२॥

॥७४वां अध्याय समाप्त॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

हनुमान हेतु दीपदान का वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथ दीपविधिं वक्ष्ये सरहस्यं हनूमतः। यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धो भवति साधकः॥१॥
दीपपात्रप्रमाणं च तैलमानं क्रमेण तु। द्रव्यस्य च प्रमाणं वै तत्तु मानमनुक्रमात्॥२॥
स्थानभेदं च मन्त्रं च दीपदानमनुं पृथक्। पुष्पवासिततैलेन सर्वकामप्रदं मतम्॥३॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं हनुमान का दीप विधान उसके रहस्य के साथ कहता हूं। इसके जानने मात्र से साधक सिद्ध हो जाता है। स्थानभेदानुसार दीपदान का मन्त्र अलग-अलग होता है। दीपपात्र प्रमाण, तैल मान, क्रम, द्रव्यप्रमाण में अनुक्रम रहित कहूंगा। पुष्प की गन्ध से वासित तैल का दीपक सर्वकामप्रद माना गया है॥१-३॥

तिलतैलं श्रियः प्राप्त्यै पथिकागमनं प्रति। अतसीतैलमुद्दिष्टं वश्यकर्मणि निश्चितम्॥४॥
सार्षपं रोगनाशाय कथितं कर्मकोविदैः। मारणे राजिकोत्थं वा विभीतकसमुद्भवम्॥५॥

उच्चाटने करञ्जोत्थं विद्वेषे मधुवृक्षजम्। अलाभे सर्वतैलानां तिलजं तैलमुत्तमम्॥६॥

तिल तैल का दीपक श्रीप्रद है तथा इसे जलाने वाला पथिक सकुशल गृह लौट आता है। अतसी तैल के दीपक से वशीकरण कर्म निश्चित रूप से सफल होता है। करञ्ज का तैल उच्चाटनार्थ एवं विद्वेषण में महुआ का तैल प्रयोग करे। कर्मज्ञ लोगों ने सरसों का तैल रोग नाशार्थ कहा है। राई का तैल मारणार्थ उचित है। बहेड़ा का तेल भी मारण कर्म हेतु प्रयोग करे। जब कोई तैल न मिले, तब तिल तैल ही उत्तम है।।४-६।।

गोधूमाश्च तिला माषा मुद्गा वै तण्डुलाः क्रमात्।
पञ्चधान्यमिदं प्रोक्तं नित्यदीपं तु मारुतेः॥७॥
पञ्चधान्यसमुद्भूतं पिष्टमात्रं सुशोभनम्। सर्वकामप्रदं प्रोक्तं सर्वदा दीपदानके॥८॥
वश्ये तण्डुलपिष्टोत्थं मारणे मावपिष्टजम्। उच्चाटने कृष्णतिलपिष्टजं च प्रकीर्तितम्॥९॥
पथिकागमने प्रोक्तं गोधूमोत्थं सतण्डुलम्।
मोहने त्वाढकीजातं विद्वेषे च कुलत्थजम्॥१०॥
संग्रामे केवला माषाः प्रोक्ता दीपस्य पात्रके।
सन्धौ त्रिपिष्टजं लक्ष्मीहेतोः कस्तूरिकाभवम्॥११॥
एलालवङ्गकर्पूरमृगनाभिसमुद्भवम्। कन्याप्राप्त्यै तथा राजवश्ये सख्ये तथैव च॥१२॥

गेहूं, तिल, उर्द, मूंग तथा तण्डुल (चावल), इन पंचान्न का दीप हनुमान को नित्य दीपवत् दिया जाये। इन पंचान्न को पीसकर बनाया सुन्दर दीप सर्वकामनाप्रद है। यह दीप सदा दीपदानार्थ प्रशस्त मानते हैं। चावल पीसकर बनाया दीप वशीकरणार्थ, उर्द का मारणार्थ, काले तिल का उच्चाटनार्थ चावल गोधूम मिश्रण का दीप पथिक के वापस आने हेतु प्रशस्त है। अरहर का दीप मोहनार्थ, कुलत्थ का दीपक विद्वेषणार्थ, उर्द का संग्रामार्थ, त्रिष्टिप् का सन्धि कार्यार्थ, कस्तूरी का लक्ष्मी प्राप्त्यर्थ, इलायची-लौंग-कर्पूर मिश्रण का दीप कन्या लाभार्थ मित्रता हेतु एवं राजवशीकरणार्थ उपयोग करे।।७-१२।।

अलाभे सर्ववस्तूनां पञ्चधान्यं वरं स्मृतम्।
अष्टमुष्टिर्भवेत्किञ्चित्किञ्चिदष्टौ च पुष्कलम्॥१३॥
पुष्पकलानां चतुर्णां च ह्याढकः परिकीर्तितः।
चतुराढको भवेद्द्रोणः खारी द्रोणचतुष्टयम्॥१४॥
खरीचतुष्टयं प्रस्थसंज्ञा च परिकीर्तिता। अथवान्यप्रकारेण मानमत्र निगद्यते॥१५॥
पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थस्तैश्चतुर्भिस्तथाढकः॥१६॥
चतुराढको भवेद्द्रोणः खारी द्रोणचतुष्टयम्।
क्रमेणैतेन ते ज्ञेयाः पात्रे षट्कर्मसम्भवे॥१७॥

जब कोई वस्तु दीपक बनाने हेतु न मिले, तब पंचधान्य उत्तम है। आठ मुट्ठी अन्न की एक कुञ्च होती है। आठ कुञ्ची का एक पुष्कल, ४ पुष्कल का एक आढ़क, चार आढ़क का एक द्रोण, चार द्रोण का एक

खारी, चार खारी का एक प्रस्थ होगा। यहां अन्य मान भी स्वीकृत है। दो पल अर्थात् आठ रत्ती दो मासा का एक प्रसृत, २ प्रसृत का एक कुड़व, चार कुड़व का एक प्रस्थ, चार प्रस्थ का एक आढ़क, चार आढ़क का एक द्रोण तथा चार द्रोण की एक खारी मानी जाती है। षटकर्म हेतु ये ही पात्र मान हैं।।१३-१७।।

पञ्च सप्त नव तथा प्रमाणास्ते यथाक्रमम्।
सौगन्धे नैव मानं स्यात्तद्यथारुचि सम्मतम्॥१८॥
नित्यपात्रे तु तैलानां नियमो वार्तिकोद्भवः।
सोमवारे गृहीत्वा तद्धान्यं तोयप्लुतं धरेत्॥१९॥
पश्चात्प्रमाणतो ज्ञेयं कुमारीहस्तपेषणम्। तत्पिष्टं शुद्धपात्रे तु नदीतोयेन पिण्डितम्॥२०॥
दीपपात्रं ततः कुर्याच्छुद्धः प्रयतमानसः। दीपपात्रे ज्वाल्यमाने मारुतेः कवचं पठेत्॥२१॥
शुद्धभूमौ समास्थाप्य भौमे दीपं प्रदापयेत्।
मालामनूनां ये वर्णाः साध्यनामसमन्विताः॥२२॥
वर्तिकायां प्रकर्त्तव्यास्तन्तवस्तत्प्रमाणकाः।
तत्त्रिंशांशेन वा ग्राह्य गुरुकार्येऽखिलाढ्यता॥२३॥
कूटतुल्याः स्मृता नित्ये सामान्येऽथ विशेषके।
रुद्राः कूटगणाः प्रोक्ता न पात्रे नियमो मतः॥२४॥
एकविंशतिसंख्याकास्तन्तवोऽथाध्वनि स्मृताः।
रक्तसूत्रं हनुमतो दीपदाने प्रकीर्तितम्॥२५॥

५, ७, ९ ये क्रमिक रूप से दीपक के प्रमाण हैं। सुगन्धित तैल वाले दीपक का कोई मान नहीं है। यथारुचि उनका मान रखे। तेल के जो नित्य पात्र कहे जाते हैं, उनमें केवल बत्ती का ही विशेष नियम होता है। सोमवार को धान्य लाये। उसे जल में भिंगोये। तदनन्तर कुमारी कन्या उसे मात्रानुसार पीसे तदनन्तर शुद्ध पात्र में नदी के जल द्वारा उसे गूंथे। उसका दीप कुमारी ही पवित्रता से बनाये। इसे जलाकर हनुमत् कवच पढ़े। मंगल को पवित्र धरती पर दीपक स्थापित करके दान करे। साध्यनाम के साथ माला मन्त्र में जितने भी अक्षर हैं, उतने तन्तु दीपक की वर्त्तिका (बत्ती) में हों अथवा अक्षरों के तीस अंश के बराबर तन्तु हों। लेकिन जहां भारी काम करना हो, वहां तीसवां अंश नहीं पूरा तन्तु रखे अर्थात् साध्य नाम + मालामन्त्राक्षर मिलाकर उतने तन्तु भारी काम में रखे। नित्यपात्र में ११ तन्तु तथा विशेष पात्र में पूर्वकथित तन्तु हों। पात्र का (दीपक का) कोई माप नहीं कहा गया। मार्ग पर जो दीपक जलाये, उसकी बत्ती २१ तन्तु की हो। हनुमान का निवेदित दीपक की बत्ती लाल हो।।१८-२५।।

कृष्णमुच्चाटने द्वेषेऽरुणं मारणकर्मणि। कूटतुल्यपलं तैलं गुरुकार्ये शिवैर्गुणम्॥२६॥
नित्ये पञ्चपलं प्रोक्तमथवा मनासी रुचिः॥२७॥
हनुमत्प्रतिमायास्तु सन्निधौ दीपदापनम्। शिवालयेऽथवा कुर्यान्नित्यनैमित्तिके स्थले॥२८॥
विशेषोऽस्त्यत्र यः कश्चिन्मारुतेरुच्यते मया॥२९॥

उच्चाटन कर्म हेतु कृष्णवर्ण बत्ती, द्वेषकार्य हेतु मारण कार्य हेतु अरुणवर्ण की बत्ती बनाये। महत् कार्य सिद्ध्यर्थ ग्यारह पल प्रमाण से दीपक को तैल से भरें। नित्य दीप से पांच पल किंवा यथारुचि तैल छोड़े दीपदान हनुमत् मूर्त्ति के निकट हो। लेकिन शिवाला में नित्य नैमित्तिक स्थान में दीपदान कर सकते हैं। दीपदानार्थ जो विशेष बात है, वह कहता हूं।।२६-२९।।

प्रतिमाग्रे प्रमोदेन ग्रहभूतग्रहेषु च। चतुष्पथे तथा प्रोक्तं षट्सु दीपप्रदानम्।।३०।।

सन्निधौ स्फटिके लिङ्गे शालग्रामस्य सन्निधौ।
नानाभोगश्रियै प्रोक्तं दीपदानम् हनूमतः।।३१।।

गणेशसन्निधौ विघ्नमहासङ्कटनाशने। विषव्याधिभये घोरे हनुमत्सन्निधौ स्मृतम्।।३२।।

प्रतिमा के समक्ष प्रमोदपूर्वक दीपदान करने से भूत ग्रहादि शान्त होते हैं। चौराहे पर, स्फटिग लिंग के पास, शालग्राम के निकट ६ दीप प्रदान करे। हनुमान को दीपक प्रदान करने वाला नानाभोग तथा श्रीलाभ करता है। जो गणेश के सान्निध्य में दीप प्रदान करता है, उसे विघ्न तथा महान् संकट नष्ट हो जाते हैं। हनुमान के निकट दीपदान से घोर विष व्याधिभय प्रनष्ट होते हैं।।३०-३२।।

दुर्गायाः सन्निधौ प्रोक्तं संग्रामे दीपदापनम्। चतुष्पथे व्याधिनष्टौ दुष्टदृष्टौ तथैव च।।३३।।
राजद्वारे बन्धमुक्तौ कारागारेऽथवा मतम्। अश्वत्थवटमूले तु सर्वकार्यप्रसिद्धये।।३४।।

दुर्गा को दीपदान करने पर संग्राम में जयलाभ होता है। चौराहे पर दीपदान से व्याधि तथा दुष्ट दृष्टि नाश होता है। राजद्वार पर दीपदान से बन्धन तथा कारागार से मुक्ति, पीपल तथा वट के नीचे दीपदान द्वारा सर्वकार्य सिद्धि होती है।।३३-३४।।

वश्ये भये विवादे च वेश्मसंग्रामसङ्कटे। द्यूते दृष्टिस्तम्भने च विद्वेषे मारणे तथा।।३५।।
मृतकोत्थापने चैव प्रतिमाचालने तथा। विषे व्याधौ ज्वरे भूतग्रहे कृत्याविमोचने।।३६।।
क्षतग्रन्थौ महारण्ये दुर्गे व्याघ्रे च दन्तिनि। क्रूरसत्त्वेषु सर्वेषु शश्वद्बन्धविमोक्षणे।।३७।।
पथिकागमने चैव दुःस्थाने राजमोहने। आगमे निर्गमे चैव राजद्वारे प्रकीर्तितम्।।३८।।

दीपदानं हनुमतो नात्र कार्या विचारणा।।३९।।
रुद्रैकविंशपिण्डांश्च त्रिधा मण्डलमानकम्।
लघुमानं स्मृतं पञ्च सप्त वा नव वा तथा।।४०।।

वशीकरण, भय, विवाद, गृहसंकट, संग्रामसंकट, द्यूत, दृष्टि स्तम्भन, विद्वेष, मारण, मृतकोत्थापन, प्रतिमा का चलना, विष-व्याधि-ज्वर-भूतग्रह तथा कृत्य। मोचन, विस्फोटक, महारण्य, दुर्गम स्थान, व्याघ्र, हस्ति तथा भयानक जन्तुभय, बन्धनमोचन, घर से गया पथिक जल्द आये, दुष्ट स्थान में, राजा को मोहित करने में, राजद्वार में प्रवेश तथा वापस लौटने आदि सभी कार्य में हनुमान को दीपदान करने वाला सफलता पाता है। इसमें अन्यथा विचार न करे। एकादश, २१ पिण्ड त्रिधामण्डलमान होते हैं। ५, ७, ९ लघुमान हैं।।३५-४०।।

क्षीरेण नवनीतेन दध्ना वा गोमयेन च। प्रतिमाकरणं प्रोक्तं मारुतेर्दीपदापने।।४१।।

दक्षिणाभिमुखं वीरं कृत्वा केसरिविक्रमम्॥४२॥
ऋक्षविन्यस्तपादं च किरीटेन विराजितम्।
लिखेद्भित्तौ पटे वापि पीठे वा मारुतेः शुभे॥४३॥
मालामन्त्रेण दातव्यं दीपदानं हनूमतः। नित्यदीपः प्रकर्त्तव्यो द्वादशाक्षरविद्यया॥४४॥

दीपदान काल में दुग्ध, मक्खन किंवा दधि अथवा गोमय से हनुमत् प्रतिमा बनाये। दीवार पर, वस्त्र पर किंवा पीठ पर वायुनन्दन का जो चित्र बनाया जाये, उसमें वे वीर तथा सिंह के समान केसरीविक्रम लगें। उनका चरण ऋक्ष पर्वत पर हो। मस्तक मुकुटमण्डित हो। इनको दीपदान मालामन्त्र से करना चाहिये तथापि नित्य दीप तो द्वादशाक्षर मन्त्र से प्रदान हो।।४१-४४।।

विशेषस्तत्र यस्तं वै दीपदानेऽवधारय। षष्ठ्यादौ च द्वितीयादाविमं दीपमितीरयेत्॥४५॥
गृहाणेति पदं पश्चाच्छेषं पूर्ववदुच्चरेत्। कूटादौ नित्यदीपे च मन्त्रं सूर्याक्षरं वदेत्॥४६॥
तत्र मालाख्यमनुना तत्तत्कार्येषु कारयेत्। गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ तद्गतमानसः॥४७॥
षट्कोणं वसुपत्रं च भूमौ रेखासमन्वितम्।
कमलं च लिखेद्भद्रं तत्र दीपं निधापयेत्॥४८॥
शैवे वा वैष्णवे पीठे पूजयेदञ्जनासुतम्।
कूटषट्कं च षट्कोणे अन्तराले परं लिखेत्॥४९॥

अब दीपदान के सम्बन्ध में जो विशेष नियमादि है, उसे श्रवण करिये। षष्टी अथवा द्वितीया प्रभृति तिथियों पर हनुमान (इष्टदेव) से यह कहे—"यह दीपदान स्वीकार कीजिये।" तदनन्तर बाकी कार्य पूर्व की तरह ही करना होगा। कूटदीप अर्थात् राजमहल के द्वार पर आदि स्थानों पर और नित्यदीप दानार्थ द्वादशाक्षर मन्त्र पढ़ना चाहिये, जो पूर्व में कहा है। अन्य दीप दानार्थ मालामन्त्र पढ़ना होगा। गोमय लिप्त भूमि पर एकाग्रता के साथ षट्कोणांकन करे। उससे बाह्य स्थान में अष्टकोण कमल बनाकर उसके बाहर भूपुर रेखांकन करे। वहां कमल में दीपक रखे। तत्पश्चात् शैवपीठ में किंवा वैष्णव पीठ में अंजनीपुत्र हनुमान् की पूजा करनी चाहिये। षट्कोण के अन्तराल में षट्कूट लिखे। यह षट्कूट है—हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं हस्ख्फ्रें हसौं।।४५-४९।।

षट्कोणेषु षडङ्गानि बीजयुक्तानि संलिखेत्।
सौम्यं मध्यगतं लेख्यं तत्र सम्पूज्य मारुतिम्॥५०॥
षट्कोणेषु षडङ्गानि नामानि च पुरोक्तवत्।
वसुपत्रे क्रमात्पूज्या अष्टावेते च वानराः॥५१॥
सुग्रीवायाङ्गदायाथ सुषेणाय नलाय च। नीलायाथो जाम्बवते प्रहस्ताय तथैव च॥५२॥
सुवेषाय ततः पश्चाद्यजेत्षडङ्गदेवताः। आदावञ्जनापुत्राय ततश्च रुद्रमूर्तये॥५३॥
ततो वायुसुतायाथ जानकीजीवनाय च। रामदूताय ब्रह्मास्त्रनिवारणाय तत्परम्॥५४॥
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य देशकालौ च कीर्तयेत्। कुशोदकं समादाय दीपमन्त्रं समुच्चरेत्॥५५॥

अब षट्कोणों में षडङ्ग का नाम आदि (बीजयुक्त नाम) लिखकर मध्य में चन्द्रमन्त्र लिखने के उपरान्त वहां वायुपुत्र हनुमान् का पूजन करके षट्कोण में षडङ्ग देवतागण का नाम बीजयुक्त पूर्णेक्तरूपेण अंकित करे। तत्पश्चात् अष्टदल के दलों पर सुग्रीव, अंगद, सुषेण, नल, नील, जाम्बवन्त, प्रहस्त तथा सुवेश वानर की पूजा क्रमानुसार करे। सबसे पहले अंजनीसुत नाम से पूजा करने के उपरान्त रुद्रमूर्त्ति, वायुसुत, जानकी जीवन, रामदूत, ब्रह्मास्त्रनिवारक नामों की पूजा पंचोपचार से कहे। तब उस देश एवं काल के नाम का उच्चारण करके कुश-जल ग्रहण करे तथा दीपमन्त्र का उच्चारण करे।।५०-५५।।

उत्तराभिमुखो जप्त्वा साधयेत्साधकोत्तमः।
तं मन्त्रं कूटधा जप्त्वा जलं भूमौ विनिक्षिपेत्।।५६।।
ततः करपुटं कृत्वा यथाशक्ति जपेन्मनुम्। अनेन दीपवर्येण उदङ्मुखगतेन वै।।५७।।
तथा विधेहि हनुमन्यथा स्युर्मे मनोरथाः। त्रयोदशैवं द्रव्याणि गोमयं मृत्तिका मसी।।५८।।
अलक्तं दरदं रक्तचन्दनं चन्दनं मधु। कस्तूरिका दधि क्षीरं नवनीतं घृतं तथा।।५९।।
गोमयं द्विविधं तत्र प्रोक्तं गोमहिषीभवम्। पश्चाद्विनष्टद्रव्याप्तौ माहिषं गोमयं स्मृतम्।।६०।।
पथिकागमने दूरान्महादुर्गस्य रक्षणे। बालादिरक्षणे चैव चौरादिभयनाशने।।६१।।
स्त्रीवश्यादिषु कार्येषु शस्तं गोगोमयं मुने।
भूमिस्पृष्टं न तद्ग्राह्यमन्तरिक्षाच्च भाजने।।६२।।

साधकोत्तम को चाहिये कि वह उत्तर मुखी होकर मन्त्र की पांच आवृत्ति करके भूमि पर जल निःक्षेप करे। अब बद्धाञ्जलि (हाथ जोड़कर) यथाशक्ति मन्त्र जपकर यह निवेदन करे—"हे प्रभु हनुमान्! इस उत्तरमुख उत्तम दीपदान द्वारा मेरे मनोरथ पूर्ण करिये।" अब अन्य विधान कहते हैं। साधक गोबर, मृत्तिका, स्याही, आलता, खस, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, मधु, कस्तूरी, दही, दुग्ध, मक्खन, घृत लाये। गोबर गौ-महिष दो प्रकार का होता है (यहां गौ का ही गोबर ग्रहण करे)। खोई भई वस्तु द्रव्यादि की पुनः प्राप्ति हेतु महिष का गोबर उपयोग करे। दूर देश गया पथिक लौट आये, दुर्ग रक्षार्थ, बालक आदि के रक्षार्थ, चौरादि भयनाश, स्त्रीवशीकरण कार्य हेतु गौ का गोबर प्रशस्त है। हे मुनिवर! गोबर जब गाय कर रही हो, उसे पृथिवी पर गिरने के पूर्व ही ग्रहण करे। वह गोबर भूमि पर न गिरे। बीच में ही उसे ग्रहण कर लिया जाये।।५६-६२।।

चतुर्विधा मृत्तिका तु श्वेता पीतारुणासिता। तत्र गोपीचन्दनं तु हरितालं च गैरिकम्।।६३।।
मषी लाक्षारसोद्भूता सर्वं वान्यत्स्फुटं मतम्।
कृत्वा गोपीचन्दनेन चतुरस्त्रं गृहं सुधीः।।६४।।
तन्मध्ये माहिषेणाथ कुर्यान्मूर्तिं हनूमतः।
बीजं क्रोधाच्च तत्पुच्छं लिखेन्मन्त्री समाहितः।।६५।।
तैलेन स्नापयन्नमूर्तिं गुडेन तिलकं चरेत्। शतपत्रसमो धूपः शालनिर्यासम्भवः।।६६।।

मृत्तिका चतुर्विध कही गयी है। यथा—उज्वल, पीत, लाल तथा काली। गोपीचन्दन, हरिताल तथा गेरु मिट्टी को सर्वोत्तम मानते हैं। स्याही लाक्षारस से बनी हो। अन्य वस्तु तो स्पष्टतः कही गयी हैं। सुधी साधक

गोपीचन्दन से चतुरस्र मण्डल बनाये। मध्य में (भैंस) महिषी के गोबर से हनुमद् प्रतिमा बनाये। सावधानी पूर्वक क्रोध बीज 'ह्रं' से हनुमान की पूंछ बनाये। मूर्त्ति को तैल स्नान कराये तथा गुड़ का तिलक लगाना चाहिये। उस समय कमलवत् सुगन्धित शालवृक्ष का धूप हनुमान को अर्पित करे।।६३-६६।।

कुर्याच्च तैलदीपं तु वर्तिपञ्चकसंयुतम्। दध्योदनेन नैवेद्यं दद्यात्साधकसत्तमः॥६७॥
वारत्रयं कण्ठदेशे सशेषविषमुच्चरन्। एवं कृते तु नष्टानां महिषीणां गवामपि॥६८॥
दासीदासादिकानां च नष्टानां प्राप्तिरीरिता। चौरादिदुष्टसत्त्वानां सर्पादीनां भये पुनः॥६९॥
तालेन च चतुर्द्वारं गृहं कृत्वा सुशोभनम्। पूर्वद्वारे गजः स्थाप्यो दक्षिणे महिषस्तथा॥७०॥
सर्पस्तु पश्चिम द्वारे व्याघ्रश्चैवोत्तरे तथा। एवं क्रमेण खड्गं च क्षुरिकादण्डमुद्गरान्॥७१॥

वहां साधकसत्तम पांच बत्तियों वाला तैलदीप जलाये तथा दही-भात का नैवेद्य अर्पित करे। वहां तीन बार शेष (आ) युक्त विष (म्) का उच्चारण करे अर्थात् 'मा मा मा' कहे। जो इस अनुष्ठान को करता है, उसकी खो गई महिष, गौ, दासी, दास पुनः प्राप्त होते हैं। चोर, दुष्ट आदि के सर्प के भय को दूर करने हेतु हरिताल से चतुर्द्वार सुन्दर गृह बनाये। पूर्वद्वार पर हाथी, दक्षिण द्वार पर महिष, पश्चिम द्वार पर सर्प, उत्तर द्वार पर व्याघ्र की प्रतिमा लगाये। इसी क्रम से पूर्व द्वार पर खड्ग, दक्षिण द्वार पर छुरी, पश्चिम द्वार पर दण्ड तथा उत्तर द्वार पर मुद्गर का चित्र बनाये।।६७-७१।।

विलिख्य मध्ये मूर्ति च महिषीगोमयेन वै।
कृत्वा डमरुहस्तां च चकिताक्षीं प्रयत्नतः॥७२॥
पयसा स्नपनं रक्तचन्दनेनानुलेपनम्। जातीपुष्पैस्तु सम्पूज्य शुद्धधूपं प्रकल्पयेत्॥७३॥
घृतेन दीपं दत्त्वाथ पायसान्नं निवेदयेत्। गगनं दीपिकेन्द्वाढ्यं शास्त्रं च पुरतो जपेत्॥७४॥
एव सप्तदिनं कृत्वा मुच्यते महतो भयात्। अनयोर्भौमवारे तु कुर्यादारम्भमादरात्॥७५॥
शत्रुसेनाभये प्राप्ते गौरिकेण तु मण्डलम्। कृत्वा तदन्तरे तालमीषन्नम्रं समालिखेत्॥७६॥
तत्रावलम्बमानां च प्रतिमां गोमयेन तु। वामहस्तेन तालाग्रं दक्षिणे ज्ञानमुद्रिका॥७७॥
तालमूलात्स्वकाष्ठायां मार्गे हस्तिमिते गृहम्।
चतुरस्त्रं विधायाथ तन्मध्ये मूर्तिमालिखेत्॥७८॥

तदनन्तर मध्य में भैंस के गोबर की मूर्त्ति बनाये। उसके हाथ में डमरू हो। नेत्र चकित जैसे हों। मूर्त्ति को दुग्ध से स्नान कराकर रक्त चन्दन लिप्त करे। जाती पुष्प से उसकी पूजा करके वहां शुद्ध धूप, घृत दीप, पायस नैवेद्य, निवेदित करे। आकाश (ह) दीपिका (ऊ) तथा इन्दु (अनुस्वार) शस्त्र (फट्) यहां मन्त्रोद्धार है "हूं फट्" यह देवता के सम्मुख जप करे। सात दिन यह अनुष्ठान करने से महाभय नाश हो जाता है। उभय कार्य सिद्धि हेतु मंगल को सादर पूजन सम्पन्न करे। जब शत्रुसैन्य का भय हो, तब गेरु से मण्डल निर्माण करके उसके अन्दर ही तनिक नत एक ताल वृक्ष बनाकर उसी वृक्ष से लटकती गोमय प्रतिमा बनाये। (चित्र बनाये) उस प्रतिमा के वामहस्त में तालवृक्ष का अग्रभाग हो, दाहिने में ज्ञानमुद्रा हो। तालवृक्ष से एक हाथ के अन्तर पर अपनी ओर एक चतुष्कोण गृह निर्माण करे। मध्य में उत्तम प्रतिमा बनाये।।७२-७८।।

दक्षिणाभिमुखीं रम्यां हृदये विहिताञ्जलिम्।
तोयेन स्नानगन्धादि यथासम्भवमर्पयेत्॥७९॥
कृशरान्नं च नैवेद्यं साज्यं तस्यै निवेदयेत्। किलिद्वयं जपं प्रोक्तमेवं कुर्याद्दिने दिने॥८०॥
एवं कृते भवेच्छीघ्रं पथिकानां समागमः।
श्यामपाषाणखण्डेन लिखित्वा भूपतेर्गृहम्॥८१॥

उस प्रतिमा का मुख दक्षिणाभिमुखी हो। हाथ की अंजलि हृदय पर बद्ध हो। उसे जल से स्नान कराये तथा यथासंभव गन्धादि अर्पित करे। उसे खिचड़ी, घी, खीर प्रभृति का नैवेद्य अर्पित करे। तदनन्त किलि-किलि का जप नित्य करे। जो ऐसी अर्चना करता है, उसका घर से गया हुआ पथिक व्यक्ति शीघ्र वापस आ जाता है। काले पत्थर के खण्ड से राजगृह बनाये।।७९-८१।।

प्राकारं तु चतुर्द्वारयुक्तं द्वारेषु तत्र वै। अन्योन्यपुच्छपरिधित्रययुक्तां हनूमतः॥८२॥
कुर्यान्मूर्तिं गोमयेन धत्तूरकुसुमैर्यजेत्। जठामांसीभवं धूपं तैलाक्तघृतदीपिकम्॥८३॥
नैवेद्यं तिलतैलाक्तसक्षारा माषरोटिका। ध्येयो दक्षिणहस्तेन रोटिकां भक्षयन्हरिः॥८४॥
वामहस्तेन पाषाणैस्त्रासयन्परसैनिकान्।
मारयन्भ्रुकुटीं बद्ध्वा भीषयन्मथयन्स्थितः॥८५॥

चतुर्दिक् प्राकार निर्माण करे। उसमें चारों ओर एक-एक द्वार बनाये। तीन द्वार पर मण्डलाकृति हनुमत् पुच्छवत् रेखा बनाकर चतुर्थ द्वार पर गोमय से हनुमत् मूर्त्ति निर्माण करे। उसे धतूरे के पुष्प से पूजित करके, जटामासी के रस से धूप प्रदान करे। तैल मिश्रित घृत दीपक जलाये। उर्द की लवणयुक्त रोटी तिल तैल में पकाकर अर्पित करे। तब हनुमान का ध्यान करे—"हनुमान दाहिने हाथ से रोटी खा रहे हैं। बाम हाथ से पत्थर फेंक कर शत्रुओं पर प्रहार कर रहे हैं। क्रोध से उनकी भ्रुकुटी वक्र हो गयी है। वे शत्रुओं को भयभीत करते उनको मथित कर रहे हैं।"।।८२-८५।।

जपेच्च भुग्भुगिति वै सहस्रं ध्यानतत्परः। एवं कृतविधानेन परसैन्यं विनाशयेत्॥८६॥
रक्षा भवति दुर्गाणां सत्यं सत्यं न संशयः। प्रयोगा बहवस्तत्र संक्षेपाद्गदिता मया॥८७॥

तब ध्यानस्थ होकर एक हजार बार भुक्-भुक् का जप करे। इससे शत्रु सैन्य विनाश तथा दुर्गरक्षण होता है। यह निःसंदिग्ध तथा सत्य प्रयोग है। मैंने संक्षेप में नाना प्रयोगों को कह दिया है।।८६-८७।।

प्रत्यहं यो विधानेन दीपदानं हनूमतः। तस्यासाध्यं न वै किञ्चिद्विद्यते भुवनत्रये॥८८॥
न देयं दुष्टहृदये दुष्टचिन्तनबुद्धये। अविनीताय शिष्याय पिशुनाय कदाचन॥८९॥
कृतघ्नाय न दातव्यं दातव्यं च परीक्षिते। बहुना किमिहोक्तेन सर्वं दद्यात्कपीश्वरः॥९०॥

जो व्यक्ति सविधि नित्य हनुमान को दीपदान करता है, उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। इसे दुष्ट चिन्तनरत, दुष्ट हृदय, अविनीतशिष्य, चुगलखोर को कदापि न बतलाये। कृतघ्न को भी नहीं देना चाहिये। सम्यक् परीक्षा करके ही देना चाहिये। अब अधिक क्या कहा जाये! दीपदान करने वाले को कपीश्वर सब कुछ प्रदान कर देते हैं।।८८-९०।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये तत्त्वज्ञानप्रदायकम्। तारो नमो हनुमते जाठरत्रयमीरयेत्॥९१॥
दनक्षोभं समाभाष्य संहरद्वयमीरयेत्। आत्मतत्त्वं ततः पश्चात्प्रकाशययुगं ततः॥९२॥

वर्मास्त्रवह्निजायान्तः सार्द्धषड्विंशदर्णवान्।
वसिष्ठोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवताः पुनः॥९३॥
हनुमान्मुनिसप्तर्तुवेदाष्टनिगमैः क्रमात्।
मन्त्रार्णैश्च षडङ्गानि कृत्वा ध्यायेत्कपीश्वरम्॥९४॥

जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि। अध्यात्मचित्तमासीनं कदलीवनमध्यगम्॥९५॥

बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।
ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः॥९६॥

अब तत्वज्ञानप्रद अन्य मन्त्र कहता हूं। यह मन्त्र है पहले तार (ॐ) नमो हनुमते कहने के अनन्तर तीन बार 'म' का उच्चारण करके 'दनक्षोभम्' कहे। ''ॐ नमो हनुमते मम मदन क्षोभम्'' तत्पश्चात् 'संहर-संहर' कह कर 'आत्मतत्वं प्रकाशय-प्रकाशय' कहे। तदनन्तर वर्म (हुं) अस्त्र (फट्) तथा वह्निजाया (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार है—ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्वं प्रकाशय-प्रकाशय हुं फट् स्वाहा'' का उच्चारण करे। इस मन्त्र के ऋषि हैं वसिष्ठ। छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं हनुमान्। ७, ७, ६, ४, ८, ४ मन्त्राक्षर से षडङ्गन्यास करे। तदनन्तर हनुमान का ध्यान करे। यथा—वे पवनपुत्र आजानुबाहु हैं। उनके हाथ में ज्ञानमुद्रा शोभित है। वे सदा अध्यात्मचिन्तन निरत रहा करते हैं। वे कदली वन में विचरते हैं। उनकी कान्ति कोटि बाल सूर्यवत् है। ऐसे ज्ञानप्रद हरि (वानर) का ध्यान करे। ध्यानोपरान्त एकलक्ष जप करके दस हजार होम तिल से करना चाहिये।।९१-९६।।

साज्यैः सम्पूज्येत्पीठे पूर्वोक्ते पूर्ववत्प्रभुम्।
जप्तोऽयं मदनक्षोभं नाशयत्येव निश्चितम्॥९७॥

तत्त्वज्ञानमवाप्नोति कपीन्द्रस्य प्रसादतः। अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये भूतविद्रावणं परम्॥९८॥
तारः काशींकुक्षिपरवराहश्चाञ्जनापदम्। पवनो वनपुत्रान्ते आवेशिद्वयमीरयेत्॥९९॥

इस होम में तिल से घृत भी मिश्रित करे। होम के उपरान्त पीठ पर पूजा पूर्ववत् (हनुमान पूजा) करे। इस मन्त्र का जप करने से साधक में कामजनित क्षोभ अवश्य नष्ट हो जाता है। उसे कपीन्द्र की कृपा से तत्वज्ञान लाभ होता है। अब मैं परम भूतों को भगाने वाला मन्त्र कहता हूं।।९७-९९।।

तारः श्रीहनुमत्पश्चादस्त्रचरभुजाक्षरः। ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दोऽत्र देवता पुनः॥१००॥

हनुमान्कमला बीजं फट् शक्तिः परिकीर्तितः।
षडदीर्घाढ्येन बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१०१॥
आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुममूलस्थं चिन्तयेत्साधकोत्तमः॥१०२॥

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
त्रिमध्वक्तैर्यजेत्पीठे पूर्वोक्ते पूर्ववत्सुधीः॥१०३॥

यह मन्त्र है ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्री हनुमते फट्। यह पच्चीस अक्षरात्मक मन्त्र है (यहां दो प्रणव हैं, उसकी गिनती १ ही होगी)। इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा। छन्दः है गायत्री। देवता हैं हनुमान्। बीज है श्रीं, शक्ति है फट्। षड्दीर्घ युक्त बीज मन्त्र द्वारा षडङ्गन्यासोपरान्त तनिक रक्तमुख स्वर्ण पर्वतवत् देह वाले पारिजात वृक्ष के नीचे विराजमान हनुमत् ध्यान करके इस मन्त्र का एक लक्ष जप तथा दस हजार होम करके त्रिमधुरान्वित तिल का होम करे। अब पूर्वकथित पीठ पर सुधी साधक पूर्ववत् पूजनादि सम्पन्न करे।।१००-१०३।।

अनेन मनुना मन्त्री ग्रहग्रस्तं प्रमार्जयेत्।
आक्रन्दंस्तं विमुच्याथ ग्रहः शीघ्रं पलायते॥१०४॥
मनवोऽमी सदा गोप्या न प्रकाश्या यतस्ततः।
परीक्षिताय शिष्याय देया वा निजसूनवे॥१०५॥
हनुमद्भजनासक्तः कार्तवीर्यार्जुनं सुधीः।
विशेषतः समाराध्य यथोक्तं फलमाप्नुयात्॥१०६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे दीपविधिनिरूपणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।।७५।।
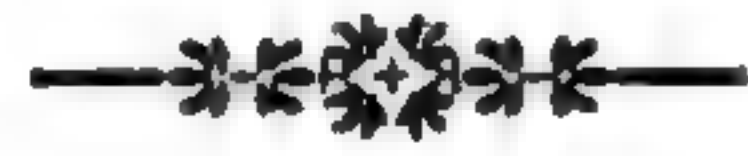
इस मन्त्र द्वारा ग्रह से पकड़े व्यक्ति का मार्जन करने पर ग्रह रुदन करते उस व्यक्ति को मुक्त करके पलायन कर जाते हैं। यह मन्त्र अतीव गुप्त है। इसे यहां-वहां प्रकट न करे। अच्छी तरह परीक्षित शिष्य तथा स्वपुत्र को ही यह मन्त्र प्रदान करे। हनुमान की भक्ति से आसक्त सुधीजन कार्तिवीर्य अर्जुन की आराधना करके विशेष फल लाभ करे।।१०४-१०६।।

।।७५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
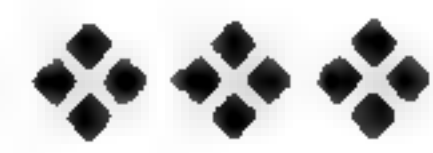
अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

कार्त्तवीर्य महिमा

नारद उवाच

कार्तवीर्यप्रभृतयो नृपा बहुविधा भुवि। जायन्तेऽथ प्रलीयन्ते स्वस्वकर्मानुसारतः॥१॥
तत्कथं राजवर्योऽसौ लोके सेव्यत्वमागतः। समुल्लंघ्य नृपानन्यानेतन्मे नुद संशयम्॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—पृथिवी पर कार्त्तवीर्य आदि राजा अपने कर्मानुगत होकर उत्पन्न होते तथा विलीन हो जाते हैं। तब उन सभी राजाओं को लांघकर राजा कार्त्तवीर्य किस प्रकार लोकालय में सेव्यमान हो गये? यही मेरा संशय है।।१-२।।

सनत्कुमार उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि संदेहविनिवृत्तये। यथा सेव्यत्वमापन्नः कार्तवीर्यार्जुनो भुवि॥३॥
यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः पृथिवीतले। दत्तात्रेयं समाराध्य लब्ध्वांस्तेज उत्तमम्॥४॥
तस्य क्षितीश्वरेन्द्रस्य स्मरणादेव नारद। शत्रूञ्जयति संग्रामे नष्टं प्राप्नोति सत्वरम्॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! मैं आपकी सन्देह निवृत्ति हेतु वह तथ्य कहता हूं। जिस प्रकार से कार्त्तवीर्य अर्जुन पृथिवी पर सेव्यमान कहे गये। ये भूतल पर सुदर्शन चक्रावतार हैं। इन्होंने महर्षि दत्तात्रेय की आराधना से उत्तम तेजः लाभ किया। हे नारद! इन राजेन्द्र के स्मरण मात्र से धरती पर विजय लाभ होता है। शत्रु पर संगाम में विजय प्राप्त होती है तथा शत्रुनाश त्वरित रूप से हो जाता है।।३-५।।

तेनास्य मन्त्रपूजादि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्। तुभ्यं प्रकाशयिष्येऽहं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥६॥

वह्नितारयुता रौद्री लक्ष्मीरग्नीन्दुशान्तियुक्।
वेधाधरेन्दुशान्त्याढ्यो निद्रयाशाग्नि बिन्दुयुक्॥७॥
पाशो मायांकुशं पद्मावर्मास्त्रे कार्तवीपदम्।
रेफोवा द्यासनोऽनन्तो वह्निजौ कर्णसंस्थितौ॥८॥

मेषः सदीर्घः पवनो मनुरुक्तो हृदन्तिमः। ऊनविंशतिवर्णोऽयं तारादिर्नखवर्णकः॥९॥
दत्तात्रेयो मुनिश्चास्यच्छन्दोनुष्टुबुदाहृतम्। कार्तवीर्यार्जुनोदेवो बीजशक्तिध्रुवश्च हृत्॥१०॥
शेषाढ्यबीजयुग्मेन हृदयं विन्यसेदधः। शान्तियुक्तचतुर्थेन कामाद्येन शिरोऽङ्गकम्॥११॥

इन्द्राढ्यं वामकर्णाद्यमाययोर्वीशियुक्तया।
शिखामङ्कुशपद्माभ्यां सवाग्भ्यां वर्म विन्यसेत्॥१२॥

वर्मास्त्राभ्यामस्त्रमुक्तं शेषार्णैर्व्यापकं पुनः। हृदये जठरे नाभौ जठरे गुह्यदेशतः॥१३॥
दक्षपादे वामपादे सक्थिन जानुनि जङ्घयोः। विन्यसेद्बीजदशकं प्रणवद्वयमध्यगम्॥१४॥

ताराद्यानाथ शेषार्णान्मस्तके च ललाटके।
भ्रुवोः श्रुत्योस्तथैवाक्ष्णोर्नसि वक्त्रे गलेंऽसके॥१५॥

सर्वमन्त्रेण सर्वाङ्गे कृत्वा व्यापकमादृतः। सर्वेष्टसिद्धये ध्यायेत्कार्तवीर्यं जनेश्वरम्॥१६॥

उनका मन्त्र तथा पूजनादि सभी तन्त्रों में गुप्त है। मैं इसे आपसे प्रकाशित करता हूं, जो सर्वसिद्धिप्रद है। इनका वह मन्त्र १९ अक्षरों का है। (यह मूल में श्लोक ७ से ९ तक वर्णित है। (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञजन करें।) अतः इसका अनुवाद करना त्रुटिपूर्ण होगा)। इस मन्त्र के ऋषि हैं दत्तात्रेय। छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं कार्त्तवीर्य अर्जुन। बीज है ध्रुव तथा शक्ति है हृत्। शेषाढ्य बीजद्वय से हृदयन्यास करे। शान्तियुक्त चतुर्थ

मन्त्राक्षर से शिरोन्यास, इन्द्राढ्यम् से वामकर्णन्यास, अंकुश तथा पद्म से शिखान्यास, वाणी से कवचन्यास करे। हुं फट् से अस्त्र न्यास तथा शेष अक्षरों से पुनः व्यापक न्यास करना चाहिये। दोनों प्रणव के बीच के बीजों से जो दस हैं हृदय, उदर, नाभि, गुह्य, दक्षिणचरण, वामचरण, उरु, जानु तथा जंघा का न्यास करे। तारक प्रभृति ९ वर्णों का न्यास मस्तक, ललाट, भ्रू, कर्ण, नेत्र, नासा, मुख, कण्ठ तथा स्कन्ध में करे। तदनन्तर पुनः सभी अंगों में पूरे मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये। इसके पश्चात् सर्व इष्ट सिद्धिहेतु जनेश्वर कार्तवीर्य का चिन्तन करे।।६-१६।।

उद्यदर्कसहस्राभं सर्वभूपतिवन्दितम्। दोर्भिः पञ्चाशता दक्षैर्बाणन्वामैर्धनूंषि च॥१७॥
दधतं स्वर्णमालाढ्यं रक्तवस्त्र समावृतम्। चक्रावतारं श्रीविष्णोर्ध्यायेदर्जुनभूपतिम्॥१८॥

ध्यान—इनकी कान्ति सहस्र उदित सूर्यवत् है। सभी राजा उनकी वन्दना करते हैं। उनके ५०० दक्षिण हाथों में बाण तथा ५०० वाम हाथों में धनुष है। वे स्वर्ण मालाधारी तथा रक्तवस्त्र से समावृत हैं। ऐसे श्रीविष्णु के चक्रावतार राजा अर्जुन का ध्यान करे।।१७-१८।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्र दशांशं जुहुयात्तिलैः। सतण्डुलैः पायसेन विष्णुपीठे यजेत्तु तम्॥१९॥
षट्कोणेषु षडङ्गानि ततो दिक्षु विदिक्षु च। चौरमदविभञ्जनं नारीमदविभञ्जनम्॥२०॥
अरिमदविभञ्जनं दैत्यमदविभञ्जनम्। दुष्टनाशं दुःखनाशं दुरितापद्विनाशकम्॥२१॥
दिक्ष्वष्टशक्तयः पूज्याः प्राच्यादिष्वसितप्रभाः।
क्षेमङ्करी वश्यकरी श्रीकरी च यशस्करी॥२२॥
आयुःकरी तथा प्रज्ञाकरी विद्याकरी पुनः।
धनकर्यष्टमी पश्चाल्लोकेशा अस्त्रसंयुताः॥२३॥

ध्यानोपरान्त एक लाख जपोपरान्त दस हजार होम तिल, चावल तथा पायस से करके विष्णु पीठ पर इनका पूजन करे। तत्पश्चात् षट्कोण में पूजा करके दिक्-विदिक् में षडङ्गदेवगण की पूजा करे। इससे चौरमद, नारीमद, शत्रुमद, दैत्यमद का और दुष्टों, दुःख तथा पाप का नाश होता है। अब पूर्वादिदिक् में आठ कृष्णवर्ण प्रभा शक्ति की पूजा करे। ये लोकपालिका शक्ति है—क्षेमंकरी, वश्यकरी, श्रीकरी, यशस्करी, आयुःकरी, प्रज्ञाकरी, विद्याकरी तथा धनकार्यष्टमी। तदनन्तर अस्त्रों के साथ लोकपालगण की पूजा करनी चाहिये।।१९-२३।।

एवं संसाधितो मन्त्रः प्रयोगार्हः प्रजायते। कार्तवीर्यार्जुनस्याथ पूजायन्त्रमिहोच्यते॥२४॥

इस प्रकार से मन्त्र सिद्ध करके प्रयोगार्थ वह साधक कार्य करे। अब कार्त्तवीर्य का पूजा यन्त्र कहा जाता है।।२४।।

स्वबीजानङ्गध्रुववाक्कर्णिकं दिग्दलं लिखेत्। तारादिवर्मान्तदलं शेषवर्णदलान्तरम्॥२५॥
ऊष्मान्त्यस्वरकिञ्जल्कं शेषार्णैः परिवेष्टितम्।
कोणालंकृतभूतार्णभूगृहं यन्त्रमीशितुः॥२६॥

बीज, काम, ध्रुव, वाक् तथा कर्णिका युक्त दिक्पत्र अंकित करे। स्वरवर्ण कमल का अन्तिम पत्र

होगा। शेष वर्ण अन्य पत्र होंगे। श ष स ह तथा औ केसर हैं। वह बाकी वर्णों से घिरा है। कोण से सज्जित चतुर्दश वर्णात्मक भूगृहयन्त्र ही कार्त्तवीर्य यन्त्र है।।२५-२६।।

शुद्धभूमावष्टगन्धैर्लिखित्वा यन्त्रमादरात्। तत्र कुम्भं प्रतिष्ठाप्य तत्रावाह्यार्चयेन्नृपम्।।२७।।

स्पृष्ट्वा कुम्भं जपेमन्त्रं सहस्त्रं विजितेन्द्रियः।
अभिषिञ्चेत्तदम्भोभिः प्रियं सर्वेष्टसिद्धये।।२८।।
पुत्रान्यशो रोगनाशमायुः स्वजनरञ्जनम्।
वाक्सिद्धिं सुदृशः कुम्भाभिषिक्तो लभते नरः।।२९।।

इसे पावन भूमि पर अष्टगन्ध से सादर लिखे तथा वहां घट स्थापित करके उस पर आवाहन पूजन सम्पन्न करे। तत्पश्चात् इन्द्रिय संयमित रखे तथा घट का स्पर्श करते एक सहस्त्र मन्त्र जप करके उसी जल से साधक अपना अभिषेक करे। यह सर्वकामफलप्रद प्रयोग है। इस जलाभिषेक द्वारा मानव वांछित पुत्र-यश-आरोग्य-लोकप्रियता-वाक्सिद्धि तथा सुन्दर दृष्टिशक्तिलाभ करता है।।२७-२९।।

शत्रूपद्रव आपन्ने ग्रामे वा पुटभेदने। संस्थापयेदिदं यन्त्रं शत्रुभीतिनिवृत्तये।।३०।।
सर्षपारिष्टलशुनकार्पासैर्मार्यते रिपुः। धत्तूरैः स्तभ्यते निम्बैर्द्वेष्यते वश्यतेऽम्बुजैः।।३१।।

उच्चाटने विभीतस्य समिद्भिः खदिरस्य च।
कटुतैलमहिष्याज्यैर्होमद्रव्याञ्जनं स्मृतम्।।३२।।

यवैर्हुते श्रियः प्राप्तिस्तिलैराज्यैरघक्षयः। तिलतण्डुलसिद्धार्थजालैर्वश्यो नृपो भवेत्।।३३।।

इस मन्त्रपाठ के साथ सर्षप, नीम, लहसुन तथा कपास से जो होम करता है, उसके शत्रु पलायन कर जाते हैं। धतूरा से होम द्वारा शत्रुस्तम्भन, नीम से होम द्वारा शत्रु में आपसी द्वेष, कमल के होम से वशीकरण, बहेड़ा काष्ठ तथा खैर काष्ठ को सरसों के तैल तथा महिष घृत से सिक्त करके होम द्वारा उच्चाटन, यव होम से लक्ष्मीलाभ, घृताक्त तिल द्वारा पापक्षय होता है। तिल-चावल, श्वेत सर्षप से होम द्वारा राजा वश में होता है।।३०-३३।।

अपामार्गार्कदूर्वाणां होमो लक्ष्मीप्रदोऽघनुत्।
स्त्रीवश्यकृत्प्रियङ्गूणां मुराणां भूतशान्तिदः।।३४।।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटबिल्वसमुद्भवाः। समिधो लभते हुत्वा पुत्रानायुर्द्धनं सुखम्।।३५।।
निर्मोकहेमसिद्धार्थलवणैश्चौरनाशनम्। रोचनागोमयैस्तम्भो भूप्राप्तिः शालिभिर्हुतैः।।३६।।
होमसंख्या तु सर्वत्र सहस्त्रादयुतावधि। प्रकल्पनीया मन्त्रज्ञैः कार्य्यगौरवलाघवात्।।३७।।

अपमार्ग तथा दूर्वा का होम करने से—लक्ष्मी प्राप्ति, पापक्षय।

प्रियंगु होम से—स्त्री वशीकरण।

मुरा के होम से—भूतोपद्रव नाश।

पीपल-गूलर-वट-बिल्व समिध् होम से—पुत्र, आयु, धन सुख लाभ।

स्वर्ण, सफेद सरसों सर्प केचुल से, नमक होम से—चोर नाश

गोरोचन-गोबर के होम से—स्तम्भन।

तण्डुल होम से—भूलाभ होता है।

जैसा छोटा-बड़ा कार्य हो तदनुरूप मन्त्रज्ञ व्यक्ति १००० से १०००० तक जप करे।।३४-३७।।

कार्तवीर्य्यस्य मन्त्राणामुच्यते लक्षणं बुधाः।
कार्तवीर्यार्जुनं ङेन्तं सर्वमन्त्रेषु योजयेत्॥३८॥
स्वबीजाद्यो दशार्णोऽसौ अन्ये नवशिवाक्षराः।
आद्यबीजद्वयेनासौ द्वितीयो मन्त्र ईरितः॥३९॥
स्वकामाभ्यां तृतीयोऽसौ स्वभ्रूभ्यां तु चतुर्थकः।
स्वपाशाभ्यः पञ्चमोऽसौ षष्ठः स्वेन च मायया॥४०॥
स्वाङ्कुशाभ्यां सप्तमः स्यात्स्वरमाभ्यामथाष्टमः।
स्ववाग्भवाभ्यां नवमो वर्मास्त्राभ्यामथान्तिमः॥४१॥
द्वितीयादिनवान्तेषु बीजयोः स्याद्व्यतिक्रमः।
मन्त्रे तु दशमे वर्णा नववर्मास्त्रमध्यगाः॥४२॥

विद्वान् लोग कार्त्तवीर्य मन्त्र लक्षण एवंविध बतलाते हैं—

प्रथम लक्षण—उसमें कार्त्तवीर्यार्जुनाय रहे। आदि में स्वबीज (कार्त्तवीर्य बीज) लगाने से १० अक्षर का मंत्र होगा। परन्तु जिसमें आद्य स्वबीज नहीं होगा, वह ९ अक्षर का मन्त्र होगा। यह दो प्रकार का मन्त्र है। यह **द्वितीय लक्षण** है। "स्वकामाभ्याम्" **तृतीय** लक्षणात्मक मन्त्र है। "स्वभ्रूभ्यां **चतुर्थ**, स्वपाशाभ्यां **पंचम**, स्वेन चमायया **षष्ठ**, "स्वांकुशाभ्याम्" **सप्तम**, स्वरमाभ्याम **अष्टम**, स्ववाग्मवाभ्यां **नवम**, वर्मास्त्राभ्याम **दशम** मन्त्र है। द्वितीय मन्त्र से लेकर नवें मन्त्र तक २ बीजों का व्यतिक्रम रहता है। दशम मन्त्र में वर्ण नव वर्मास्त्र (हुं फट्) के मध्य हो।।३८-४२।।

एतेषु मन्त्रवर्येषु स्वानुकूलं मनुं भजेत्। एषामाद्ये विराट्छन्दोऽन्येषु त्रिष्टुबुदाहृतम्॥४३॥
दश मन्त्रा इमे प्रोक्ता यदा स्युः प्रणवादिकाः।
तदादिमः शिवार्णः स्यादन्ये तु द्वादशाक्षराः॥४४॥
त्रिष्टुप् छन्दस्तथाद्ये स्यादन्येषु जगती मता। एवं विंशतिमन्त्राणां यजनं पूर्ववन्मतम्॥४५॥

इनमें जो अनुकूल लगे उसे जपे। इसमें प्रथम का छन्दः विराट् है। द्वितीय का त्रिष्टुप् कहा गया है। ये दशो मन्त्र जब (ॐ) युक्त होते हैं, तब एकादशाक्षर होते हैं। अन्य तब द्वादशाक्षर हो जाते हैं। उस समय आद्य मन्त्र का छन्दः होगा त्रिष्टुप् तथा अन्य का होगा जगती। एवंविध इन बीस मन्त्रों का यजन पूर्ववत् ही करे।।४३-४५।।

दीर्घाढ्यमूलबीजेन कुर्यादेषां षडङ्गकम्। तारो हृत्कार्तवीर्यार्जुनाय वर्मास्त्रठद्वयम्॥४६॥

चतुर्दशार्णो मन्त्रोऽयमस्येज्या पूर्ववन्मता। भूनेत्रसमनेत्राक्षिवर्णैरस्याङ्गपञ्चकम्॥४७॥
तारो हृद्भगवान् ङेन्तः कार्तवीर्यार्जुनस्तथा।
वर्मास्त्राग्निप्रियामन्त्रः प्रोक्तो ह्यष्टादशार्णकः॥४८॥
त्रिवेदसप्तयुग्माक्षिवर्णैः पञ्चाङ्गकं मनोः। नमो भगवते श्रीति कार्तवीर्यार्जुनाय च॥४९॥
सर्वदुष्टान्तकायेति तपोबलपराक्रमः। परिपालितसप्तान्ते द्वीपाय सर्वरापदम्॥५०॥
जन्यचूडामणान्ते ये महाशक्तिमते ततः। सहस्रदहनप्रान्ते वर्मास्त्रान्तो महामनुः॥५१॥
त्रिषष्टिवर्णवान्प्रोक्तः स्मरणात्सर्वविघ्नहृत्। राजन्यचक्रवर्ती च वीरः शूरस्तृतीयकः॥५२॥
माहिष्मतीपतिः पश्चाच्चतुर्थः समुदीरितः। रेवाम्बुपरितृप्तश्च काणो हस्तप्रबाधितः॥५३॥
दशास्येति च षड्भिः स्यात्पदैर्ङेन्तैः षडङ्गकम्।
सिच्यमानं युवतिभिः क्रीडन्तं नर्मदाजले॥५४॥
हस्तैर्जलौघं रुन्धन्तं ध्यायेन्मत्तं नृपोत्तमम्।
एवं ध्यात्वा युतं मन्त्रं जपेदन्यत्तु पूर्ववत्॥५५॥

ये दीर्घमात्रात्मक हैं। इनका षडङ्ग न्यास मूल बीज से करे। ॐ नमः कार्त्तवीर्यार्जुनाय हुं फट्। यह १४ अक्षर का मन्त्र है (तथापि गिनने पर १३ ही होते हैं) इसकी उपासना पूर्ववत् करे। ९ अक्षर से इसका पंचांगन्यास करे। "नमो भगवते श्री कार्त्तवीर्यार्जुनाय सर्वदुष्टान्तक तपोबलपराक्रम परिपालित सप्तद्वीपाय सर्वराजन्यचूड़ामणि महाशक्तिमते सहस्रदहन हुं फट्। यह ६३ अक्षरात्मक मन्त्र है। इसके स्मरण से सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं। अब [1]राजन्य [2]चक्रवर्त्ती [3]शूर [4]माहिष्मतिपति [5]रेवाम्बुपरितृप्त [6]काणों हस्तप्रवाधितः" इन ६ मन्त्रपद द्वारा षडङ्गन्यासोपरान्त ध्यान करे। ध्यान है नर्मदा के जल में स्नानरत कार्त्तवीर्य नारीगण से जलक्रीड़ा कर रहे हैं तथा उन पर जल छोड़ रहे हैं। वे हाथों से जल प्रवाह को रोक रहे हैं।" इस ध्यान के उपरान्त दस हजार जप करे। पहले एक लाख जप करे। शेष कार्य पूजा आदि यथापूर्व होगा।।४६-५५।।

पूर्वं तु प्रजपेल्लक्षं पूजायोगश्च पूर्ववत्। कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्॥५६॥
तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च संवदेत्। लभ्यते मन्त्रवर्योऽयं द्वात्रिंशद्वर्णसंयुतः॥५७॥

पहले एक लाख जपोपरान्त पूजादि पूर्ववत् करे। "कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यते" —यह ३२ वर्ण का मन्त्र है।।५६-५७।।

पादैः सर्वेण पञ्चाङ्गं ध्यानपूजादि पूर्ववत्। कार्तवीर्याय शब्दान्ते विद्महे पदमुच्चरेत्॥५८॥
महावीर्याय वर्णान्ते धीमहीति पदं वदेत्। तन्नोऽर्जुनः प्रवर्णान्ते चोदयात्पदमीरयेत्॥५९॥
गायत्र्येषार्जुनस्योक्ता प्रयोगादौ जपेत्तु ताम्। अनुष्टुभं मनुं रात्रौ जपतां चौरसञ्चयः॥६०॥
पलायन्ते गृहाद्दूरं तर्पणाद्धवनादपि। अथो दीपविधिं वक्ष्ये कीर्तवीर्यप्रियङ्करम्॥६१॥

इसके सभी पाद से पंचांगन्यास, ध्यान, पूजन पूर्ववत् करे। "कार्त्तवीर्याय विद्महे, महावीर्याय धीमहि, तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात्"—यह अर्जुन गायत्री है। इनके सभी प्रयोग के प्रारंभ में यह गायत्री जप करे। जो रात

में इसका जप करता है, चोर उसके यहां से दूर पलायित होते हैं। यह अनुष्टुप् मन्त्र है। इससे तर्पण हवन भी करना चाहिये। अब कार्त्तवीर्य को प्रिय लगने वाली दीपविधि कहता हूं।।५८-६१।।

वैशाखे श्रावणे मार्गे कार्तिकाश्विनपौषतः।
माघफाल्गुनयोर्मासोर्दीपारम्भं समाचरेत्।।६२।।
तिथौ रिक्ताविहीनायां वारे शनिकुजौ विना। हस्तोत्तराश्विरौद्रेयपुष्यवैष्णववायुभे।।६३।।
द्विदैवते च रोहिण्या दीपारम्भो हितावहः। चरमे च व्यतीपाते धृतौ वृद्धौ सुकर्मणि।।६४।।
प्रीतौ हर्ष च सौभाग्ये शोभनायुष्मतोरपि। करणे विष्टिरहिते ग्रहणेऽर्द्धोदयादिषु।।६५।।
योगेषु रात्रौ पूर्वाह्ले दीपारम्भः कृतः शुभः।
कार्तिके शुक्लसप्तम्यां निशीथेऽतीव शोभनः।।६६।।
यदि तत्र रवेर्वारः श्रवणं भं च दुर्लभम्।
अत्यावश्यककार्येषु मासादीनां न शोधनम्।।६७।।

वैशाख, श्रावण, अगहन, कार्त्तिक, आश्विन, पौष, माघ, फाल्गुन मास में दीपारंभ करे। तिथि रिक्ता न हो, शनिवार-मंगलवार न हो तथा हस्त, उत्तराषाढ़ा, अश्विनी, रौद्रेय, पुष्य, वैष्णव, वायु, द्विदैवत् नक्षत्र तथा रोहिणी नक्षत्र हो। इसमें दीपारंभ हितप्रद होता है। चरम, व्यतीपात, धृति, वृद्धि, प्रीति, हर्ष, सौभाग्य, शोभन तथा आयुष्मान योग जब हो, विष्टिरहित करण हो, ग्रहण में, अर्द्धोदय योग के पूर्व रात्रिकाल में दीपारंभ शुभ है। कार्त्तिक शुक्लासप्तमी की रात्रि में दीपदान अत्यन्त शुभ है। यदि तब रविवार तथा श्रवण नक्षत्र हो, तब तो मानो वह तो अति दुर्लभ योग है। लेकिन जब कार्य अतीव आवश्यक हो, तब मासादि का विचार न करे।।६२-६७।।

आद्ये ह्युपोष्य नियतो ब्रह्मचारी सपीतकैः।
प्रातः स्नात्वा शुद्धभूमौ लिप्तायां गोमयोदकैः।।६८।।
प्राणानायम्य सङ्कल्प्य न्यासान्पूर्वोदितांश्चरेत्।
षट्कोणं रचयेद्भूमौ रक्तचन्दनतण्डुलैः।।६९।।
अतः स्मरं समालिख्य षट्कोणेषु समालिखेत्।
नवार्णैर्वेष्टयेत्तच्च त्रिकोणं तद्बहिः पुनः।।७०।।
एवं विलिखिते यन्त्रे निदध्याद्दीपभाजनम्। स्वर्णजं रजतोत्थं वा ताम्रजं तदभावतः।।७१।।
कांस्यपात्रं मृण्मयं च कनिष्ठं लोहजं मृतौ।
शान्तये मुद्गचूर्णोत्थं सन्धौ गोधूमचूर्णजम्।।७२।।

पहले दिन साधक ब्रह्मचारी रहकर उपवासी रहे। वह नियम पालन पूर्वक रहकर अगले दिन प्रातः स्नानोपरान्त भूमि पर गोमय लिप्त करके पवित्र करे। तत्पश्चात् प्राणायाम तथा संकल्प करके पूर्वोक्त प्रकार से न्यास करे। तत्पश्चात् भूमि पर षट्कोण को लालचन्दन तथा तण्डुल चूर्ण से बनाये। वहां कामदेव को बनाकर

षट्कोण निर्माण करे। अब उस कामदेवाकृति को नवाक्षरों से घेरे। बहिर्भाग में त्रिकोण रचना करे। अब इस यन्त्र पर दीपक रखे। यह दीपक पात्र स्वर्ण, चांदी किंवा ताम्र का हो। यदि यह न ले सके, तब कास्य किंवा मृत्तिका का दीपपात्र बनाये। मारण कार्यार्थ लौह का, शान्ति कार्यार्थ मूंग के आटे का, सन्धिकार्यार्थ गोधूम के आटे का दीपपात्र निर्माण करे।।६८-७२।।

आज्ये पलसहस्रे तु पात्रं शतपलं स्मृतम्। आज्येऽयुतपले पात्रं पलपञ्चशता स्मृतम्।।७३।।
पञ्चसप्ततिसंख्ये तु पात्रं षष्टिपलं स्मृतम्। त्रिसाहस्त्री घृतपले शर्करापलभाजनम्।।७४।।
द्विसाहस्त्र्यां द्विशतमितं च भाजनमिष्यते। शतेऽक्षिचरसंख्यातमेवमन्यत्र कल्पयेत्।।७५।।
नित्यदीपे वह्निपलं पात्रमाज्यं पलं स्मृतम्।
एवं पात्रं प्रतिष्ठाप्य वर्तीः सूत्रोत्थिताः क्षिपेत्।।७६।।

दीप में यदि घी एक हजार पल रखना हो, तब सौ पल के मान से द्रव्य हो। दस हजार पल घृतार्थ पाच सौ पल परिमाण का द्रव्य हो। ७५ पल घृत हेतु ६० पल द्रव्य, तीन हजार पल घृत हेतु १७०० पल द्रव्य, २००० पल घृत हेतु २०० पल द्रव्य, १०० पल घृत हेतु दस पल द्रव्य ग्रहण करे। नित्यदीपार्थ तीन द्रव्य का पात्र तथा एक पल घृत ही रहे। एवंविध पात्र की प्रतिष्ठा करके उसमें सूत की बत्ती रखनी चाहिये।।७३-७६।।

एका तिस्रोऽथवा पञ्चसप्ताद्या विषमा अपि।
तिथिमानादासहस्रं तन्तुसंख्या विनिर्मिता।।७७।।
गोघृतं प्रक्षिपेत्तत्र शुद्धवस्त्रविशोधितम्। सहस्रपलसंख्यादिदशांशं कार्यगौरवात्।।७८।।
सुवर्णादिकृतां रम्यां शलाकां षोडशङ्गुलाम्।
तदर्द्धां वा तदर्द्धां वा सूक्ष्माग्रां स्थूलमूलिकाम्।।७९।।

बत्ती १-३, ५-७ हो। बत्ती की तन्तु संख्या १५ से १००० तक हो। दीपक में गोघृत रखे। वह वस्त्रपूत (छना) हो। यदि कार्य महान् है, तब पात्र में १००० पल घृत छोड़े। वहां एक स्वर्ण शलाका १६ अंगुल की उत्तम बनाकर रखे। यह शलाका माप में १६, ८ किंवा ४ अंगुल की रहे। अग्रभाग सूक्ष्म तथा मूलभाग स्थूल हो।।७७-७९।।

विमुञ्चेद्दक्षिणे पात्रमध्ये चाग्रे कृताग्रिकाम्।
पात्रदक्षिणदिग्देशे मुक्त्वाङ्गुलचतुष्टयम्।।८०।।
अधोग्रां दक्षिणाधारां निखनेच्छुरिकां शुभाम्।
दीपं प्रज्वालयेत्तत्र गणेशस्मृतिपूर्वकम्।।८१।।
दीपात्पूर्वत्र दिग्भागे सर्वतोभद्रमण्डले। तण्डुलाष्टदले वापि विधिवत्स्थापयेद्धटम्।।८२।।

उसे पात्र के बीच उल्टा रखे। दीपपात्र से दक्षिण की ओर ४ अंगुल दूरी पर एक उत्तम धूरी दक्षिणाधार तथा अधोमुखी गाड़ देना चाहिये। वहां गणपति का स्मरण करते दीप प्रज्वलित करे। दीपक से पूर्व

की ओर सर्वतोभद्रमण्डल बनाये किंवा चावल के चूर्ण से अष्टदल निर्माण करे। उसके ऊपर सविधि घट रखे।।८०-८२।।

तत्रावाह्य नृपाधीशं पूजयेत्पूर्ववत्सुधीः। जलाक्षतान्समादाय दीपं सङ्कल्पयेत्ततः।।८३।।
दीपसङ्कल्पमन्त्रोऽयं कथ्यते द्वीषभूमितः।
प्रणवः पाशमाये च शिखा कार्ताक्षराणि च।।८४।।
वीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्र च। बाहवे इति वर्णान्ते सहस्त्रपदमुच्चरेत्।।८५।।
क्रतुदीक्षितहस्ताय दत्तात्रेयप्रियाय च। आत्रेयायानुसूयान्ते गर्भरत्नाय तत्परम्।।८६।।
नमो ग्रीवामकर्णेन्दुस्थितौ पाश इमं ततः। दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष पदं पुनः।।८७।।
दुष्टान्नाशययुग्मं स्यात्तथा पातय घातय।
शत्रून् जहि द्वयं माया तारः स्वं वीजमात्मभूः।।८८।।
वह्निप्रिया अनेनाथ दीपवर्येण पश्चिमा। भिमुखेनामुकं रक्ष अमुकान्ते वरप्रद।।८९।।
मायाकाशद्वयं वामनेत्रचन्द्रयुतं शिवा। वेदादिकामचामुण्डाः स्वाहा तु पूसबिन्दुकौ।।९०।।
प्रणवोऽग्निप्रिया मन्त्रो नेत्रबाणाधराक्षरः। दत्तात्रेयो मुनिर्मालामन्त्रस्य परिकीर्तितः।।९१।।

अब वह सुधी मानव घट पर राजराज का आवाहन करे तथा उनकी पूजा पूर्ववत् करनी चाहिये। तब जल-अक्षत के साथ दीप संकल्प मन्त्र से संकल्प करे। यह मन्त्र श्लोक ८४ में "प्रणवः पाशमाये" से लेकर "प्रणवोग्निप्रिया" श्लोक ९१ तक है। (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञजन ही कर सकते हैं।) इसके ऋषि हैं दत्तात्रेय। यह मालामन्त्र कहा गया।।८३-९१।।

छन्दोऽमितं कार्तवीर्यार्जुनो देवोऽखिलाप्तिकृत्।
चामुण्डया षडङ्गानि चरेत्षड्दीर्घयुक्तया।।९२।।
ध्यात्वा देवं ततो मन्त्रं पठित्वान्ते क्षिपेज्जलम्।
गोविन्दाढ्यो हली सेन्दुश्चामुण्डाबीजमीरितम्।।९३।।
ततो नवाक्षरं मन्त्रं सहस्त्रं तत्पुरो जपेत्।
तारोऽनन्तो बिन्दुयुक्तो मायास्वं वामनेत्रयुक्।।९४।।
कूर्माग्नी शान्तिबिन्द्वाढ्यौ वह्नि जायाङ्कुशं ध्रुवम्।
ऋषिः पूर्वोदितोऽनुष्टुप्छन्दोऽन्यत्पूर्ववत्पुनः।।९५।।
सहस्त्रं मन्त्रराजं च जपित्वा कवचं पठेत्।
एवं दीपप्रदानस्य कर्ताप्नोत्यखिलेऽप्सितम्।।९६।।

इसका छन्द है अनुष्टुप्। कार्तिवीर्य अर्जुन इसके देवता हैं, जो सर्वकामनापूरक हैं। षड्दीर्घयुक्त चामुण्डामन्त्र से षडन्यास करके कार्त्तवीर्य के ध्यानोपरान्त यह मन्त्र पढ़कर जल गिराये। चामुण्डा मन्त्र है— "गोविन्दाढ्यो हली सेन्दुश्चामुण्डाबीज मीरितम्" (यह भी मन्त्र संकेत है विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।) तदनन्तर नवाक्षर

मन्त्र एक सहस्र जपे। नवाक्षर मन्त्र है "तारोऽनन्तो विन्दुयुक्तो मायास्वं वामनेत्रयुक् कूर्माग्नी शान्ति विन्द्वाढ्यौ वह्निजायाङ्कुशं ध्रुवम्" (यह भी मन्त्र संकेत है। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। इसके ऋषि प्रभृति पूर्ववत् हैं। इसका एक हजार जप करके कवच पाठ करे। ऐसा दीपदाता अखिल ईप्सित फललाभ करता है।।९२-९६।।

दीपप्रबोधकाले तु वर्जयेदशुभां गिरम्। विप्रस्य दर्शनं तत्र शुभदं परिकीर्तितम्॥९७॥

शूद्राणां मध्यमं प्रोक्तं म्लेच्छस्य वधबन्धनम्।
आख्वोत्वोदर्शनं दुष्टं गवाश्वस्य सुखावहम्॥९८॥
दीपज्वाला समा सिद्ध्यै वक्रा नाशविधायिनी।
शब्द भयदा कर्तुरुज्ज्वला सुखदा मता॥९९॥
कृष्णा शत्रुभयोत्पत्त्यै घमन्ती पशुनाशिनी।
कृते दीपे यदा पात्रं भग्नं दृश्येत् दैवतः॥१००॥
पक्षादर्वाक्तदा गच्छेद्यजमानो यमालयम्।
वर्त्यन्तरं यदा कुर्यात्कार्यं सिद्ध्येद्विलम्बतः॥१०१॥
नेत्रहीनो भवेत्कर्ता तस्मिन्दीपान्तरे कृते।
अशुचिस्पर्शने व्याधिर्दीपनाशे तु चौरभीः॥१०२॥

दीप जलाते समय अशुभ वार्त्तालाप वर्जित है। उस समय ब्राह्मण दर्शन होना शुभ माना गया है। शूद्रदर्शन उस समय मध्यम है। म्लेच्छ दर्शन वध-बन्धनप्रद होता है। मूषक, बिड़ाल दीखना दुःखप्रद है। गौ-अश्व दर्शन उस समय सुखप्रद होगा। सीधी दीपज्वाला सिद्धिदात्री होती है। वक्र ज्वाला नाशकारक होती हैं। शब्द करने वाली दीपज्वाला भयप्रदा, उज्वलवर्णा ज्वाला सुखप्रदा, कृष्णवर्ण ज्वाला शत्रुभयप्रदा, धमन्ती (शब्द करती) ज्वाला पशु नाश का होती है। दीप प्रज्वलित करने के उपरान्त पात्र भग्न हो, तब एक पक्ष में साधक यमलोक जायेगा। यदि दीपक में दो बार बत्ती रखनी पड़े, तब कार्य देर से होगा। दीप बदलने वाला अन्धा हो जाता है। अपवित्रता पूर्वक दीप छूने वाला रोगी होगा। दीपनाश होने पर चौर भय होगा।।९७-१०२।।

श्वमार्जाराखुसंस्पर्शे भवेद्भूपतितो भयम्।
पात्रारम्भे वसुपलैः कृतो दीपोऽखिलेष्टदः॥१०३॥
तस्माद्दीपः प्रयत्नेन रक्षणीयोऽन्तरायतः।
आसमाप्तेः प्रकुर्वीत ब्रह्मचर्यं न भूशयः॥१०४॥

स्त्रीशूद्रपतितादीनां सम्भाषामपि वर्जयेत्। जपेत्सहस्रं प्रत्येकं मन्त्रराजं नवाक्षरम्॥१०५॥

स्तोत्रपाठं प्रतिदिनं निशीथिन्यां विशेषतः।
एकपादेन दीपाग्रे स्थित्वा यो मन्त्रनायकम्॥१०६॥
सहस्रं प्रजपेद्रात्रौ सोऽभीष्टं क्षिप्रमाप्नुयात्।
समाप्य शोभनदिने सम्भोज्य द्विजसत्तमान्॥१०७॥

यदि दीप को कुत्ते, बिल्ली, चूहे स्पर्श करे, तब राजभय होगा। आठ पल के द्रव्य से बना दीपक सर्व कामना समूह को सफल करता है। अतः इसीलिये दीपक की रक्षा समस्त विघ्न से करे। व्रत जब तक सम्पन्न न हो, उस समय तक ब्रह्मचर्य के साथ भूमिशयन करे। तब तक साधक स्त्री, शूद्र, पापी लोगों से बातें भी न करे। इस नवाक्षर मन्त्रराज का नित्यप्रति १००० जप तथा स्तोत्रपाठ करे। रात में विशेषतः स्तुतिपाठ करे। रात में जो साधक दीपक के समक्ष एक पैर पर खड़ा होकर एक हजार मन्त्र जपता है, उसका वांछित यथाशीघ्र प्राप्त हो जाता है। शुभ दिन में जप समाप्त करके श्रेष्ठ विप्रगण को भोजन कराये।।१०३-१०७।।

कुम्भोदकेन कर्तारमभिषिञ्चन्मनुं जपेत्।
कर्ता तु दक्षिणां दद्यात्पुष्कलां तोषहेतवे॥१०८॥
गुरौ तुष्टे ददातीष्टं कृतवीर्यसुतो नृपः। गुर्वाज्ञया स्वं कुर्याद्यदि वा कारयेद्गुरुः॥१०९॥
दत्त्वा धनादिकं तस्मै दीपदानाय नारद। गुर्वाज्ञामन्तरा कुर्याद्यो दीपं स्वेष्टसिद्धये॥११०॥
सिद्धिर्न जायते तस्य हानिरेव पदे पदे। उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महषीभवम्॥१११॥

तब घट जल से मन्त्र जप करते हुये ब्राह्मण यजमान का अभिषेक सम्पन्न करे। यजमान को चाहिये कि वह गुरु को सन्तुष्ट करने के लिये उनको प्रभूत दक्षिणा प्रदान करे। जब गुरु प्रसन्न हो जाते हैं, तब राजा कार्त्तवीर्य उस व्यक्ति को इच्छित फल प्रदान कर देते हैं। दीपदान गुरु से अनुमति ग्रहण करके करना चाहिये। यदि गुरु दीपदान करते हैं, तब शिष्य उनको इस कार्य हेतु धन प्रदान करे। हे नारद! जो मनुष्य गुरु आज्ञा के बिना अपनी इच्छा सिद्धि हेतु दीपदान करता है, वह सिद्धिलाभ नहीं करता। वह पग-पग पर हानि उठाता है। इस कार्य हेतु गोघृत उत्तम है। भैंस का घृत मध्यम है।।१०८-१११।।

तिलतैलं तु तादृक् स्यात्कनीयोऽजादिजं घृतम्।
आस्यरोगे सुगन्धेन दद्यात्तैलेन दीपकम्॥११२॥
सिद्धार्थसम्भवेनाथ द्विषतां नाशनाय च। सहस्रेण पलैर्दीपे विहिते च न दृश्यते॥११३॥
कार्यसिद्धिस्तदा कुर्यात्त्रिवारं दीपजं विधिम्।
तदा सुदुर्लभमपि कार्य्यं सिद्ध्येन्न संशयः॥११४॥
दीपप्रियः कार्तवीर्यो मार्तण्डो नतिवल्लभः।
स्तुतिप्रियो महाविष्णुर्गणेशस्तपर्णप्रियः॥११४॥
दुर्गार्चनप्रिया नूनमभिषेकप्रियः शिवः। तस्मात्तेषां प्रतोषाय विदध्यात्तत्तदादरात्॥११५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे कार्तवीर्यमाहात्म्यमन्त्रदीप-
कथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

—✻✻✻—

तिल तैल का फल भी महिष घृतवत् है। बकरी प्रभृति पशु का घृत अधम है। मुखरोग से मुक्त होने के लिये सुगन्धित तैल का दीप जलाये, शत्रुनाशार्थ श्वेत सरसों का तैल विहित है। यदि एक हजार द्रव्य

(सामग्री) का दीपपात्र बनाकर भी कार्य सिद्धि न हो, तब तीन बार सविधि दीपदान करे। इससे अति दुर्लभ कार्य में भी सिद्धिलाभ होता है। कार्त्तवीर्य दीपप्रिय हैं, मार्त्तण्ड प्रणाम प्रिय हैं, महाविष्णु स्तुतिप्रिय हैं। गणेश तर्पण प्रिय हैं। दुर्गा अर्चना प्रिय हैं। शिव अभिषेक प्रिय हैं। अतः उन देवता को प्रसन्न करने हेतु वैसा ही उपाय सादर करे।।११२-११६।।

।।७६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

श्री कार्त्तवीर्य कवच

नारद उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ सर्वतन्त्रविशारद। त्वया मह्यं समाख्यातं विधानं तन्त्रगोपितम्।।१।।
अधुना तु महाभाग कार्तवीर्यहनूमतोः। कवचे श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व कृपानिधे।।२।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! आप धन्य हैं! आपने तन्त्रों में गुप्त विधान भी वर्णित कर दिया। अब मुझे कार्त्तवीर्य तथा हनुमान के कवच सुनने की कामना है। हे कृपानिधि! कृपया कहिये।।१-२।।

सनत्कुमार उवाच

श्रृणु विप्रेन्द्र वक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्।
कार्तवीर्यस्य येनासौ प्रसन्नः कार्यसिद्धिकृत्।।३।।
सहस्रादित्यसङ्काशे नानारत्नसमुज्ज्वले। भास्वद्ध्वजपताकाढ्ये तुरगायुतभूषिते।।४।।
महासम्बर्तकाम्भोधिभीमरावविराविणि। समुद्धृतमहाछत्रवितानितवियत्पथे।।५।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! सुनिये। मैं परम अद्भुद् कवच कहता हूं। इससे कार्यसिद्ध करने वाले कार्त्तवीर्य प्रसन्न हो जाते हैं। वे सहस्रसूर्य के समान नानारत्न समुज्वल, अत्यन्त भास्वर ध्वज पताका युत दस हजार अश्वों से जुते रथ पर सुखासीन हैं। वह रथ चलते समय महाप्रलयकालीन उदधि के समान भीषण शब्द करता है। उस पर समुद्धृत छत्र देखकर यह लगता है मानो आकाश में चंदोवा ताना गया हो।।३-५।।

महारथवरे दीप्त नानायुधविराजिते। सुस्थितं विपुलोदारं सहस्रभुजमण्डितम्।।६।।
वामैरुद्दण्डकोदण्डान्दधानमपरैः शरान्। किरीटहारमुहुटकेयूरवलयाङ्गदैः।।७।।
मुद्रिकोदरबन्धाद्यैर्मौंजीनूपुरकादिभिः। भूषितं विविधाकल्पैर्भास्वरैः सुमहाधनैः।।८।।
आबद्धकवचं वीरं सुप्रसन्नाननाम्बुजम्। धनुर्ज्यासिंहनादेन कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।।९।।

सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वव्याधिविनाशनम्। सर्वसम्पत्प्रदातारं विजयश्रीनिषेवितम्॥१०॥
सर्वसौभाग्यदं भद्रं भक्ताभयविधायिनम्। दिव्यमाल्यानुलेपाढ्यं सर्वलक्षणसंयुतम्॥११॥
रथनागाश्वपादातवृन्दमध्यगमीश्वरम्। वरदं चक्रवर्तीनं सर्वलोकैकपालकम्॥१२॥
समानोदितसाहस्त्रदिवाकरसमद्युतिम्। महायोगभवैश्वर्यकीर्त्याक्रान्तजगत्त्रयम्॥१३॥
श्रीमच्चक्रं हरेरंशादवतीर्णं महीतले। सम्यगात्मादिभेदेन ध्यात्वा रक्षामुदीरयेत्॥१४॥

यह श्रेष्ठ महारथ दीप्त है। वहां नाना प्रकार के आयुध विराजमान हैं। वहां महायशस्वी उदार सहस्र-भुजाओं से मण्डित कार्त्तवीर्य सुस्थित हैं। उन्होंने वाम भुजाओं में धनुष तथा दाहिनी भुजाओं में बाण धारण किया है। वे किरीट, केयूर, मुकुट, वलय, बाजूबन्द, मुद्रिका, करधनी, मौजी तथा नुपूर प्रभृति से भूषित हैं। अनेक महान् भास्वर आभूषणों से उनके अंग शोभायमान हैं। उन वीर ने कवच धारण किया है। उनका मुखकमल प्रसन्न मुद्रायुक्त है। उनके धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से तथा उनके सिंहनाद से त्रैलोक्य कम्पायमान है। वे सर्वशत्रु क्षयकारी तथा समस्त रोगनाशक, सर्वसम्पदा दाता विजयलक्ष्मी के भोक्ता, सर्वसौभाग्य प्रदाता, कल्याणप्रद, भक्तों के लिये अभयदाता, दिव्यमालाधारी एवं चन्दन से लिप्त, सर्वलक्षणान्वित हैं। वे अश्व, हाथी, रथ, पैदल सैन्य के मध्य चलने वाले, ईश्वर, वरप्रद, चक्रवर्त्ती, सर्वलोकों के एकमात्र पालक, समान रूपेण सर्वत्र एक जैसे उदित होने वाले सूर्यवत् कान्तिमान्, महायोग के कारण हस्तगत ऐश्वर्य तथा अपनी कीर्त्ति से त्रैलोक्य को आक्रान्त करने वाले धरती पर श्रीमान्चक्र, हरि के अंश से अवतीर्ण आत्मादि भेद द्वारा सम्यक्तः ध्यान कर रक्षा मन्त्र पढ़ें।।६-१४।।

अस्याङ्गमूर्तयः पञ्च पान्तु मां स्फटिकोज्ज्वलाः।
अग्नीशासुरवायव्यकोणेषु हृदयादिकाः॥१५॥
सर्वतोस्त्रज्वलद्रूपा दरचर्मासिपाणयः। अव्याहतबलैश्वर्यशक्तिसामर्थ्यविग्रहाः॥१६॥
क्षेमङ्करीशक्तियुतश्चौरवर्गविभञ्जनः। प्राचीं दिशं रक्षतु मे बाणबाणासनायुधः॥१७॥
श्रीकरीशक्तिसहितो मारीभयविनाशकः।
शरचापधरः श्रीमान् दिशं मे पातु दक्षिणाम्॥१८॥
महावंश्यकरीयुक्तः सर्वशत्रुविनाशकृत्। महेषुचापधृक्पातु मम प्राचेतसीं दिशम्॥१९॥

रक्षा स्तव—कार्त्तवीर्य की हृदया प्रभृति नामयुक्त पंचमूर्त्ति अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य कोणों में स्फटिकवत् धवल वर्ण वाली हैं। इन सभी का रूप जाज्वल्यमान अस्त्रवत् है। ये ढाल खड्गधारी हैं। ये अव्याहत, बल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा सामर्थ्य के विग्रहरूप हैं। ये मेरी रक्षा करें।

धनुर्बाण रूपी अस्त्रों से सज्जित, चौरगण नाशक क्षेमकरी शक्तियुक्त देव पूर्वदिक् में रक्षा करें। श्रीकरी शक्ति सहित देव! आप महामारी भय के नाशक, धनुर्बाण धारी हैं, आप दक्षिणदिक् में मेरी रक्षा करें। सर्वशत्रुनाशक महाबाण-महाधनुषधारी महावश्यकरी शक्ति से युक्त आप प्राचेतसी दिशा में रक्षा करिये।।१५-१९।।

यशःकर्या समायुक्तो दैत्यसङ्घविनाशनः। परिरक्षतु मे सम्यग्विदिशं चैत्रभानवीम्॥२०॥

विद्याकरीसमायुक्तः सुमहद्दुःखनाशनः। पातु मे नैर्ऋतीं चापपाणिर्विदिशमीश्वरः॥२१॥
धनकर्या समायुक्तो महादुरितनाशनः। इष्वासनेधृक्पातु विदिशं मम वायवीम्॥२२॥
आयुःकर्या युतः श्रीमान्महाभयविनाशनः। चापेषुधारी शैवीं मे विदिशं परिरक्षतु॥२३॥

दैत्य समूह का ध्वंस करने वाले, यशःकरी शक्ति समायुक्त देव आप पश्चिम में मेरी रक्षा करें। महादुःखमोचक धनुर्धारी ईश्वर! आप विद्याकरी शक्ति सम्पन्न हैं। आप नैर्ऋत्य दिशा में रक्षा करिये। महापातकनाशक धनुर्बाणधारी धनकरी शक्ति समन्वित देव! आप वायवी दिशा में रक्षा करिये। आयुकरी शक्ति से युक्त महाभयनाशक धनुर्बाणधारी देव! शैवी दिक् में मेरी रक्षा करें।।२०-२३।।

विजयश्रीयुतः साक्षात्सहस्त्रारधरो विभुः। दिशमूर्द्धामवतु मे सर्वदुष्टभयङ्करः॥२४॥
शङ्खभृत्सुमहाशक्तिसंयुतोऽप्यधरां दिशम्। परिरक्षतु मे दुःखध्वान्तसम्भेदभास्करः॥२५॥
महायोगसामयुक्तः सर्वदिक्चक्रमण्डलः। महायोगीश्वरः पातु सर्वतो मम पद्मभृत्॥२६।

विजयश्री युत, साक्षात् सहस्त्रारधर विभु आप सर्वदुष्ट भयंकर हैं। ऊर्ध्व दिशा में मेरी रक्षा करिये। आप दुःखान्धकार हटाने के लिये सूर्यरूप हैं। आप शंखधारी, महाशक्तिसम्पन्न हैं। आप अधः दिशा में रक्षा करिये। आप महायोगयुक्त सर्वदिक् चक्रमण्डल हैं। आप सभी ओर से हे महायोगीश्वर पद्मधारी देव! मेरी रक्षा करिये।।२४-२६।।

एतास्तु मूर्तयो रक्ता रक्तमाल्यांशुकावृत्ताः। प्रधानदेवतारूपाः पृथग्रथवरे स्थिताः॥२७॥

शक्तयः पद्महस्ताश्च नीलेन्दीवरसन्निभाः।
शुक्लमाल्यानुवसनाः सुलिप्ततिलकोज्ज्वलाः॥२८॥
तत्पार्षदेश्वराः स्वस्ववाहनायुधभूषणाः।
स्वस्वदिक्षु स्थिताः पान्तु मामिन्द्राद्या महाबलाः॥२९॥
एतास्तस्य समाख्याताः सर्वावरणदेवताः।
सर्वतो मां सदा पान्तु सर्वशक्तिसमन्विताः॥३०॥

ये सभी मूर्त्तियां रक्तवर्णा, रक्तवस्त्र तथा मालाधारिणी प्रधान देवतारूप पृथक्-पृथक् रथ पर स्थित हैं। जो पार्षदों की स्वामिनी कही जाती हैं तथा जो महाबली शक्तियां कमलपुष्पधारिणी नीलकमलवत् कान्ति सम्पन्ना श्वेतमाला-श्वेतवस्त्रधारिणी हैं तथा सुन्दर लेप तथा तिलक से उज्वल हैं, वे इन्द्रादि शक्तियां स्ववाहनो, आयुधों तथा आभूषणों से सज्जिता अपनी-अपनी दिशाओं में मेरी रक्षा करें। ये सभी कार्त्तवीर्य की आवरण देवता हैं। ये सभी ओर से सर्वसम्पन्ना शक्तियां सदा मेरी रक्षा करें।।२७-३०।।

हृदये चोदरे नाभौ जठरे गुह्यमण्डले। तेजोरूपाः स्थिताः पान्तु वाञ्छासुरवनद्रुमाः॥३१॥

दिशं चान्ये महावर्णा मन्त्ररूपा महोज्ज्वलाः।
व्यापकत्वेन पांत्वस्मानापादतलमस्तकम्॥३२॥

मेरे हृदय, उदर, नाभि, पेट, गुह्य की रक्षा तेजोरूपा स्थिता तथा कामनापूर्ण करने में कल्पवृक्ष के

समान देवीगण करें। अन्य मन्त्ररूपिणी महावर्णा महोज्वला, उत्तम स्वरूपा जो अन्य दिशाओं में व्यापक रूपेण मेरी रक्षा के साथ चरण से मस्तक पर्यन्त मेरी रक्षा करें।।३१-३२।।

कार्तवीर्यः शिरः पातु ललाटं हैहयेश्वरः। सुमुखो मे मुखं पातु कर्णौ व्याप्तजगत्त्रयः।।३३।।
सुकुमारो हनुं पातु भ्रूयुगं मे धनुर्धरः। नयनं पुण्डरीकाक्षो नासिकां मे गुणाकरः।।३४।।
अधरोष्ठौ सदा पातु ब्रह्मज्ञेयो द्विजान्कविः।
सर्वशास्त्रकलाधारी जिह्वां चिबुकमव्ययः।।३५।।
दत्तात्रेयप्रियः कण्ठं स्कन्धौ राजकुलेश्वरः। भुजौ दशास्यदर्पघ्नो हृदयं मे महाबलः।।३६।।
कुक्षिं रक्षतु मे विद्वान् वक्षः परपुञ्जयः। करौ सर्वार्थदः पातु कराग्राणि जगत्प्रियः।।३७।।
रेवाम्बुलीलासन्दृप्तो जठरं परिरक्षतु। वीरशूरस्तु मे नाभिं पार्श्वौ मे सर्वदुष्टहा।।३८।।
सहस्रभुजभृत्पृष्ठं सप्तद्वीपाधिपः कटिम्।
ऊरू माहिष्मतीनाथो जानुनी वल्लभो भुवः।।३९।।
जङ्घे वीराधिपः पातु पातु पादौ मनोजवः। पातु सर्वायुधधरः सर्वाङ्गं सर्वमर्मसु।।४०।।
सर्वदुष्टान्तकः पातु धात्वष्टकलेवरम्। प्राणादिदशजीवेशान्सर्वशिष्टेष्टदोऽवतु।।४१।।
वशीकृतेन्द्रियग्रामः पातु सर्वेन्द्रियाणि मे।
अनुक्तमपि यत्स्थानं शरीरान्तर्बहिश्च यत्।।४२।।
तत्सर्वं पातु मे सर्वलोकनाथेश्वरेश्वरः। वज्रात्सारतरं चेदं शरीरं कवचावृतम्।।४३।।

कार्त्तवीर्य शिर की, हैहयेश्वर ललाट की, सुमुख मुख की, जगद्व्यापी कर्णों की, सुकुमार हनु (ठुड्डी) की, धनुर्धर भ्रूयुगल की, पुण्डरीकाक्ष नेत्रों की, गुणाकर नासिका की, ब्रह्मज्ञेय अधर की, कवि ओष्ठ की, सर्वशास्त्रकलाधारी जिह्वा की, अव्यय चिबुक की, दत्तात्रेयप्रिय कण्ठ की, राजकुलेश्वर स्कन्धों की, दशास्यदर्पघ्न बाहु की, महाबली हृदय की, विद्वान् कुक्षि की, परपुरंजय वक्ष की, सर्वार्थद हाथों की, जगत्प्रिय कराग्र की, रेवाजल में लीलारस सन्तृप्त जठर की, वीरशूर नाभि की, सर्वदुष्टहा पार्श्वों की, सहस्र भुजभृत् पृष्ठ की, सप्तद्वीपाधिप कटि की, महिष्मतीनाथ उरु की, भूवल्लभ जानु की, वीरपति जंघा की, मनोजव पैरों की, सर्वायुधधर सर्वांग की तथा मर्मस्थलों की, सर्वदुष्टान्तक अष्टधातु सहित कलेवर की, सर्वइष्टेष्टदाता प्राणादि दसों जीवेश की, वशीकृत इन्द्रियग्राम मेरे सर्वेन्द्रिय की रक्षा करें। जो शरीर का आभ्यन्तर किंवा बाह्य स्थान यहां नहीं कहा गया, उन सबकी रक्षा सर्वलोकनाथेश्वरेश्वर करें। इस कवच से ढका मेरा देह वज्रसार से भी अभेद्य हो गया।।३३-४३।।

बाधाशतविनिर्मुक्तमस्तु मे भयवर्जितम्। बद्ध्वेदं कवचं दिव्यमाभेद्यं हैहयेशितुः।।४४।।
विचरामि दिवा रात्रौ निर्भयेनान्तरात्मना। राजमार्गे महादुर्गे मार्गे चौरादिसङ्कुले।।४५।।
विषमे विपिने घोरे दावाग्नौ गिरिकन्दरे। सङ्ग्रामे शस्त्रसङ्घाते सिंहव्याघ्रनिषेविते।।४६।।
गह्वरे सर्वसङ्कीर्णे सन्ध्याकाले नृपालये। विवादे विपुलावर्ते समुद्रे च नदीतटे।।४७।।

परिपन्थिजनाकीर्णे देशे दस्युगणावृत्ते। सर्वस्वहणे प्राप्ते प्राप्ते प्राणस्य सङ्कटे॥४८॥
नानारोगज्वरावेशे पिशाचप्रेतयातने। मारीदुःस्वप्नपीडासु क्लिष्टे विश्वासघातके॥४९॥

शारीरे च महादुःखे मानसे च महाज्वरे।
आधिव्याधिभये विघ्नज्वालोपद्रवकेऽपि च॥५०॥

न भवेत्तु भयं किञ्चित्कवचेनावृतस्य मे। आगन्तुकामानखिलानस्मद्वसुविलुम्पकान्॥५१॥
निवारयतु दोर्दण्डसहस्त्रेण महारथः। स्वकरोद्धृतसाहस्त्रपाशबद्धान्सुदुर्जयान्॥५२॥
संरुद्धगतिसामर्थ्यान्करोतु कृतवीर्यजः। सृणिसाहस्त्रनिर्भिन्नान्सहस्त्रमुसलार्दितान्॥५३॥
राजचूडामणिः क्षिप्रं करोत्वस्मद्विरोधकान्। खड्गसाहस्त्रदलितान्सहस्त्रमुसलार्दितान्॥५४॥

यह सैकड़ों बाधाओं से रहित तथा भयवर्जित हो जाये। मैं हैहयकार्त्तवीर्य के अभेद्य तथा दिव्य कवच को बांधकर दिनरात निर्भय अन्तरात्मा होकर विचरण करता हूं। राजमार्ग, महादुर्ग, चौरादि से भरे स्थान मार्ग में, विषम घोर वन में, भयानक दावानल में, गिरिगुहा में, संग्राम में, शस्त्र प्रहार में, सिंह व्याघ्र सेवित पर्वतस्थल में, गह्वर में सन्ध्या के समय, राजा के यहां, विवाद में, विपुल तरंगायित सागर में, नदीतट पर, शत्रु-दस्युगण से व्याप्त देश में, सर्वस्व अपहरण संकट, प्राणसंकट, नानारोग, ज्वराक्रान्त होने पर, पिशाच अथवा प्रेत जनित यातना में, महामारी दुःस्वप्न पीड़ा में, विश्वासघात जनित क्लेश में; शरीर महादुःख होने पर, मानसी पीड़ा, महाज्वर, आधि-व्याधि, विघ्नकाल में, इस कवच के प्रभाव से तनिक भी भय मुझे न हो। मैं कवच से रक्षित हूं। महाबली कार्त्तवीर्य अपने एक हजार भुजण्ड द्वारा मुझे लूटने की इच्छा से समागत दुर्जनों का निवारण करें। वे मेरे दुर्जय शत्रुगण को सहस्त्रों पाशों से आबद्ध तथा चेष्टारहित करें। राजशिरोमणि विरोधियों को त्वरित गति से सहस्त्रों अंकुश प्रहार से छिन्न-भिन्न करके सहस्त्रों बाणों से भेदित करें। सहस्त्रों खड्ग से खण्डित करके सहस्त्रों मुसलाघात द्वारा उनको चूर-चूर करें।।४४-५४।।

चौरादिदुष्टसत्त्वौघान्करोतु कमलेक्षणः। स्वशङ्खनादसन्त्रस्तान्सहस्त्ररसहस्त्रभृत्॥५५॥
अवतारो हरेः साक्षात्पालयत्वखिलं मम। कार्तवीर्यं महावीर्यं सर्वदुष्टविनाशन॥५६॥
सर्वत्र सर्वदा दुष्टचौरान्नाशय नाशय। किं त्वं स्वपिषि दुष्टघ्न किं तिष्ठसि चिरायसि॥५७॥

उत्तिष्ठ पाहि नः सर्वभयेभ्यः स्वसुतानिव।
ये चौरा वसुहर्तारो विद्विषो ये च हिंसकाः॥५८॥

साधुभीतिकरा दुष्टाश्छद्मका ये दुराशयाः। दुर्हृदो दुष्टभूपाला दुष्टामात्याश्च पापकाः॥५९॥

ये च कार्यविलोप्तारो ये खलाः परिपन्थिनः।
सर्वस्वहारिणां ये च पञ्च मायाविनोऽपरे॥६०॥
महाक्लेशकरा म्लेच्छा दस्यवो वृषलाश्च ये।
येऽग्निदा गरदातारो वञ्चका शस्त्रपाणयः॥६१॥

ये पापा दुष्टकर्माणो दुःखदा दुष्टबुद्धयः। व्याजकाः कुपथासक्ता ये च नानाभयप्रदाः॥६२॥

चोर आदि दुष्ट प्राणियों को कमलनयन सहस्रार्जुन अपने शंखनाद से भयग्रस्त करें। आपने सहस्रों सहस्रदल कमल धारण किया है। आप साक्षात् हरि के अवतार हैं। आप सर्वथा सभी तरह से मेरी रक्षा करिये। हे कार्त्तवीर्य, महावीर, सर्वदुष्टविनाशक! आप सर्वत्र-सर्वत्र दुष्टों तथा चोरों का नाश करिये! नाश करिये! क्या आप सो रहे हैं, हे दुष्टघ्न! आप कहां खड़े हैं? विलम्ब क्यों कर रहे हैं! आप उठिये! अपने पुत्र की तरह मेरी रक्षा सभी भय से करिये। जो चोरगण धनहर्त्ता, द्वेषी, हिंसक, साधुओं को भय देने वाले, दुष्ट, छद्मवेशी, दुराशय, दुष्ट हृदय वाले, दुष्ट राजा, दुष्ट पापी मन्त्री, कार्य विलुप्त कर देने वाले, खल, शत्रु, सर्वस्व हरण करने वाले, मायावी, महाक्लेश प्रदाता, म्लेच्छ, दस्यु, शूद्र, अग्नि लगाकर गृहादि जलाने वाले, विषदाता, ठग, शास्त्रधारी, पापी, दुष्टकर्मा, दुःख देने वाले, दुष्टबुद्धि, सूद खाने वाले, कुपथगामी, नानाभय प्रदाता।।५५-६२।।

छिद्रान्वेषरता नित्यं येऽस्मान्बाधितुमुद्यताः। ते सर्वे कार्तवीर्यस्य महाशङ्खरवाहताः।।६३।।

सहसा विलयं यान्तु दूरादेव विमोहिताः।
ये दानवा महादैत्या ये यक्षा ये च राक्षसाः।।६४।।
पिशाचा ये महासत्त्वा ये भूतब्रह्मराक्षसाः।
अपस्मारग्रहा ये च ये ग्रहाः पिशिताशनाः।।६५।।
महालोहितभोक्तारो वेताला ये च गुह्यकाः।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ये च देवादियोयनः।।६६।।
डाकिन्यो द्रुणसाः प्रेताः क्षेत्रपाला विनायकाः।
महाव्याग्रमहामेघा महातुरगरूपकाः।।६७।।

महागजा महासिंहा महामहिषयोनयः। ऋक्षवाराहशुनकवानरोलूकमूर्तयः।।६८।।
महोष्ट्रखरमार्जारसर्पगोवृषमस्तकाः। नानारूपा महासत्त्वा नानाक्लेशसहस्रदाः।।६९।।

तथा जो सदा अन्य के छिद्रान्वेषण में रत, मुझे बाधा देने वाले हैं, वे सभी कार्त्तवीर्य की शंखध्वनि से मृत हो जायें। वे सहसा विलीन हो जायें। दूर से ही विमोहित हो जायें। जो दानव, महादैत्य, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भयानक प्राणी, भूत, ब्रह्मराक्षस, अपस्मार-ग्रह, मांसाहारी तथा महारक्तभक्षी वेताल, गुह्यक, गन्धर्व, अप्सरायें, सिद्ध, देवयोनि, भयानक लम्बी नाक वाले द्रुणस, प्रेत, क्षेत्रपाल, विनायक, महाव्याघ्र, महामेघ, महाअश्व, महागज, महासिंह, महामहिष, रीछ, शूकर, श्वान, वानर, उलूकाकृति प्राणी, ऊंट, गर्दभ, बिलार, सर्प, गौ तथा बैल जैसे शिर वाले, अनेक रूपधारी, सहस्रों विधि से क्लेश प्रदाता।।६३-६९।।

नानारोगकरा क्षुद्रा महावीर्या महाबलाः।
वातिकाः पैत्तिका घोरा श्लैष्मिकाः सन्निपातिकाः।।७०।।
माहेश्वरा वैष्णवाश्च वैरिञ्च्याश्च महाग्रहाः।
स्कान्दा वैनायका क्रूरा ये च प्रथमगुह्यकाः।।७१।।

महाशत्रुग्रहा रौद्रा महामारीमसूरिकाः। ऐकाहिका द्व्याहिकाश्च त्र्याहिकाश्च महाज्वराः।।७२।।

चातुर्थिकाः पाक्षिकाश्च मास्याः षाण्मासिकाश्च ये।
सांवत्सरा दुर्निवार्या ज्वराः परमदारुणाः॥७३॥
स्वाप्निका ये महोत्पाता ये च दुःस्वाप्निका ग्रहाः।
कूष्माण्डा जृम्भिका भौमा द्रोणाः सान्निध्यवञ्चकाः॥७४॥
भ्रमिकाः प्राणहर्तारो ये च बालग्रहादयाः।
मनोबुद्धीन्द्रियहराः स्फोटकाश्च महाग्रहाः॥७५॥
महाशना बलिभुजो महाकुणपभोजनाः।
दिवाचरा रात्रिचरा ये च सन्ध्यासु दारुणाः॥७६॥
प्रमत्ता वाऽप्रमत्ता वै ये मां बाधितुमुद्यता। ते सर्वे कार्त्तवीर्यस्य धनुर्मुक्तशराहताः॥७७॥
सहस्रधा प्रणश्यन्तु भग्नसत्त्वबलोद्यमाः। ये सर्पा ये महानागा महागिरिविलेशयाः॥७८॥

नानारोग दाता, क्षुद्र, महावीर्यशाली, महाबली, वातरोगदाता, पित्तव्याधि प्रदाता, घोररूप, कफरोग प्रदाता, सन्निपात प्रदाता, माहेश्वर-वैष्णव-विरञ्चि इनके महाग्रह स्कन्ध, वैनायक ग्रह, क्रूरग्रह, प्रथमगुह्यक, महाशत्रु ग्रह, रौद्र ग्रह, महामारी ग्रह, मसूरिका ग्रह, ऐकाहिक-द्व्याहिक-त्र्याहिक महाज्वर, चातुर्थिक-पाक्षिक-मासिक-षण्मासिक ज्वर, वार्षिक ज्वर तथा जो दुर्निवार परमदारुण ज्वर हैं, स्वप्नगत महाउत्पात, दुःस्वप्निक ग्रह, कूष्माण्ड, जृम्भिक, भौम, द्रोण, सान्निध्यवंचक, भ्रमिक, प्राणहर्त्ता, बालग्रह, मन-बुद्धि-इन्द्रियों का हरण करने वाले ग्रह, स्फोटकग्रह, महाग्रह, प्रचुर भोजी, बलिभोजी, शवभोजी, दिनचर, निशाचर, दारुण प्रमत्त किंवा अप्रमत्त ग्रह जो मुझे कष्ट देने हेतु सन्नद्ध हैं, वे सभी कार्त्तवीर्य के धनुष से उन्मुक्त बाणों द्वारा आहत होकर सहस्त्रखण्ड हो जायें। जो सर्प, महानाग महापर्वतस्थ बिलों में सोये हुये हैं।।७०-७८।।

कालव्याला महादंष्ट्रा महासागरसंज्ञकाः। अनन्तशूलिकाद्याश्च दंष्ट्राविषमहाभयाः॥७९॥
अनेकशतशीर्षाश्च खण्डपुच्छाश्च दारुणाः।
महाविषजलौकाश्च वृश्चिका रुक्तपुच्छकाः॥८०॥
आशीविषाः कालकूटा महाहालाहलाह्वयाः।
जलसर्पा जलव्याला जलग्राहाश्च कच्छपाः॥८१॥
मत्स्यका विषपुच्छाश्च ये चान्ये जलवासिनः।
जलजाः स्थलजाश्चैव कृत्रिमाश्च महाविषाः॥८२॥
गुप्तरूपा गुप्तविषा मूषिका गृहगोधिकाः। नानाविषाश्च ये घोरा महोपविषसंज्ञकाः॥८३॥
येऽस्मान्बाधितुमिच्छन्ति शरीरप्राणनाशकाः।
ते सर्वे कार्तवीर्यस्य खड्गसाहस्त्रदारिताः॥८४॥

जो काल व्याल, महान् दाढ़ों वाले, महान् अजगर, अनन्त, शूलिक दंष्ट्रा, विष के कारण महाभयंानक रूपी सैकड़ों फणवाले, भग्न पुच्छ, दारुणरूप, महाविषधर, जोंक, विच्छू, लालपुच्छसर्प, कालकूट-महाहलाहल

नामधारी सर्प, जलसर्प, जलव्याल, जलग्रह, कच्छप, मछली, विष एवं पुच्छयुक्त जल के प्राणी, जलज-कृत्रिम महाविषैले, गुप्तरूप, गुप्तविष, मूषक, छिपकली, नाना विष संज्ञक, महीपविष संज्ञक तथा शरीर एवं प्राणनाशक जीव मुझे पीड़ित करना चाहते हैं, वे इससे पहले ही कार्त्तवीर्य की तलवार से सहस्र खण्ड होकर अपनी इन्द्रियों तथा साहस सहित नष्ट हों।।७९-८४।।

दूरादेव विनश्यन्तु प्रणष्टेन्द्रियसाहसाः। मनुष्याः पशवो त्वृक्षवानरा वनगोचराः।।८५।।
सिंहव्याघ्रवराहाश्च महिषा ये महामृगाः। गजास्तुरङ्गा गवया राक्षभाः शरभा वृकाः।।८६।।
शुनका द्वीपिनः शुभ्रा मार्जारा बिललोलुपाः।
शृगालाः शशकाः स्येना गरुत्मन्तो विहङ्गमाः।।८७।।
भेरुण्डा वायसा गृध्राहंसाद्याः पक्षिजातयः।
उद्भिज्जाश्चाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्च जरायुजाः।।८८।।
नानाभेदकुले जाता नानाभेदाः पृथग्विधाः।
येऽस्मान्बाधितुमिच्छन्ति सन्ध्यासु च दिवा निशि।।८९।।
ते सर्वे कार्तवीर्यस्य गदासाहस्त्रदारिताः। दूरादेव विनश्यन्तु विनष्टगतिपौरुषाः।।९०।।

जो मानव पशु, वानर, भिल्ल, सिंह, व्याघ्र, शूकर, महिष, महामृग, हस्ति, अश्व, गवय, राक्षस, शरभ, भेड़िये, श्वान, चीता, शुभ्र विडाल, विललोलुप, शृगाल, शशक, बाज, गरुड़ आदि पक्षी, मेरुण्ड, काक, गिद्ध, हंस, आदि पक्षी, उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, जरायुज जीव, नाना योनियों में उत्पन्न नाना प्रकार के प्राणी जो अहर्निश तथा सन्ध्याकाल में मुझे कष्ट पहुंचाने पर सन्नद्ध हैं, वे सब कार्त्तवीर्य की गदा के प्रहार से सहस्रों खण्ड होकर विनष्ट गति एवं पौरुष स्थिति में दूर से ही नष्ट हो जायें।।८५-९०।।

ये चाक्षेमप्रदातारः कूटमायाविनश्च ये। मारणोत्सादनोन्मूलद्वेषमोहनकारकाः।।९१।।
विश्वास चातका दुष्टा ये च स्वामिद्रुहो नराः।
ये चाततायिनो दुष्टा ये पापा गोप्यहारिणः।।९२।।
दाहोपघातगरलशस्त्रपातातिदुःखदा। क्षेत्रवित्तादिहरणबन्धनादिभयप्रदाः।।९३।।
ईतयो विविधाकारा ये चान्ये दुष्टजातयः।
पीडाकरा ये सततं छिद्रमिच्छन्ति बाधितुम्।।९४।।
ते सर्वे कार्तवीर्यस्य चक्रसाहस्त्रदारिताः। दूरादेव क्षयं यान्तु विनष्टबलसाहसाः।।९५।।

जो विश्वासघातक दुष्ट हैं, जो स्वामीद्रोही मानव हैं, जो आततायी, अक्षेम (अमंगल) प्रदाता, छिपे मायावी, मारण-मोहन-उच्चाटन विद्वेषण, मोहन करने वाले, दुष्ट हैं तथा गुप्तधन चोर, अग्निदग्ध करने वाले, अपघात करने वाले, विष देने वाले, शस्त्र से प्रहार करने वाले, दुःखदाता, खेत-वित्तहारी, बन्धनादि का भय प्रदान करने वाले, अतिवृष्टि-अनावृष्टि शलभ-मूषिक-खग-आदि कृषिनाशक ईतिया हैं, अन्य दुष्ट जातियां, पीड़ा दायक-छिद्रान्वेषी लोग मुझे बाधा देना चाहते हैं, वे सभी कार्त्तवीर्य के चक्र से सहस्रों टुकड़े होकर विनष्ट बल-साहस वाले हो जायें तथा दूर में ही नष्ट हो जायें।।९१-९५।।

ये मेघा ये महावर्षा ये वाता याश्च विद्युतः।
ये महाशनयो दीप्ता ये निर्घाताश्च दारुणाः॥९६॥
उल्कापाताश्च ये घोरा ये महेन्द्रायुधादयः। सूर्येन्दुकुजसौम्याश्च गुरुकाव्यशनैश्चराः॥९७॥
राहुश्च केतवो घोरा नक्षत्रा राशयस्तथा।
तिथयः सङ्क्रमा मासा हायना युगनायकाः॥९८॥
मन्वन्तराधिपाः सिद्धा ऋषयो योगसिद्धयः।
निधयो ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्चैव वह्नयः॥९९॥
ऋतवो लोकपालाश्च पितरो देवसंहतिः। विद्याश्चैव चतुःषष्टिभेदा या भुवनत्रये॥१००॥

मेघ, अतिवर्षा, विद्युत, महाव्रज, भयंकर, निर्घात, घोर उल्कापात, इन्द्रधनुष, सूर्य-मंगल, चन्द्र, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, मन्वन्तराधिप, सिद्ध, ऋषि, योगसिद्ध, निधि, ऋक्-यजुः-साम-अथर्ववेद, ऋतु, लोकपाल, अग्नि, पितृगण, देवता, विद्या, ६४ कला, प्रकृति जिनका नाम यहां कहा गया तथा नहीं भी कहा गया, वे सभी महातेजा योगीन्द्र कार्त्तवीर्य के आदेश से मेरे लिये सर्वदा सुखप्रद हों।।९६-१०१।।

ये त्वत्र कीर्तिताः सर्वे चान्य नानुकीर्तिताः।
ते सन्तु नः सदा सौम्या सर्वकालसुखावहाः॥१०१॥
आज्ञया कार्तवीर्यस्य योगीन्द्रस्यामितद्युतेः।
कार्तवीर्यार्जुनो धन्वी राजेन्द्रो हैहयेश्वरः॥१०२॥
दशास्यदर्पहा रेवालीलादृप्तः सुदुर्जयः। दुःखहा चौरदमनो राजराजेश्वरः प्रभुः॥१०३॥
सर्वज्ञः सर्वदः श्रीमान् सर्वशिष्टेष्टदः कृती।
राजचूडामणिर्योगी सप्तद्वीपाधिनायकः॥१०४॥
विजयी विश्वजिद्वाग्मी महागतिरलोलुपः।
यज्वा विप्रप्रियो विद्वान् ब्रह्मज्ञेयःसनातनः॥१०५॥
माहिष्मतीपतिर्योधा महाकीर्तिर्महाभुजः। सुकुमारो महावीरो मारीघ्नो मदिरेक्षणः॥१०६॥
शत्रुघ्नः शाश्वतः शूरः शङ्खभृद्योगिवल्लभः। महाभागवतो दीमान्महाभयविनाशनः॥१०७॥
असाध्यविग्रहो दिव्यो भावो व्याप्तजगत्त्रयः।
जितेन्द्रियो जितारातिः स्वच्छन्दोऽनन्तविक्रमः॥१०८॥
चक्रभृत्परचक्रघ्नः संग्रामविधिपूजितः। सर्वशास्त्रकलाधारी विरजा लोकवन्दितः॥१०९॥
वीरो विमलसत्वाढ्यो महाबलपराक्रमः। विजयश्रीमहामान्यो जितारिर्मन्त्रनायकः॥११०॥
खड्गभृत्कामदः कान्तः कालघ्नः कमलेक्षणः। भद्रवादप्रिये वैद्यो विबुधो वरदो वशी॥१११॥
महाधनो निधिपतिर्महायोगी गुरुप्रियः। योगाढ्यःसर्वरोगघ्नो राजिताखिलभूतलः॥११२॥

दिव्यास्त्रभृदमेयात्मा सर्वगोप्ता महोज्ज्वलः। सर्वायुधधरोऽभीष्टप्रदः परपुरञ्जयः॥११३॥
योगसिद्धो महाकायो महावृन्दशताधिपः। सर्वज्ञाननिधिः सर्वसिद्धिदानकृतोद्यमः॥११४॥
इत्यष्टशतनामोक्त्या मूर्तयो दश दिक्पथि।
सम्यग्दशदिशे व्याप्य पालयन्तु च मां सदा॥११५॥

कार्तवीर्य अर्जुन, धन्वी, राजेन्द्र, हैहयेश्वर, दशाशन दर्प नाशक, रेवा में क्रीड़ातत्पर, सुदुर्जया, दुःखविनाशक, चोर दमन, राजराजेश्वर, प्रभु, सर्वज्ञ, सर्वद, श्रीमान्, सबके लिये इष्टप्रद, कृती, राजचूड़ामणि, योगी, सप्तद्वीपाधीश, विजयी, विश्वजित्, वाग्मी, महागति, अलोलुप, यज्ञकर्त्ता, विप्रप्रिय, विद्वान्, ब्रह्मज्ञेय, सनातन, माहीष्मतीपति, योधा, महाकीर्त्ति, महाभुज, सुकुमार, महावीर, मारीघ्न, मदिरेक्षण, शत्रुघ्न, शाश्वत, शूर, शंखभृत्, योगीवल्लभ, महाभागवत, धीमान्, महाभयनाशक, असाध्यदेह, दिव्यभाव, व्याप्तजगत्रय, जितेन्द्रिय, जितशत्रु, स्वच्छन्द, अनन्तविक्रमी, चक्रभृत्, परचक्रघ्न, संग्रामविधिपूजित, सर्वशास्त्रकलाधारी, वीतराग, लोकवन्दित, वीर विमलसत्वयुक्त, महानल, पराक्रमी, विजयश्रीभूषित, मन्त्रनायक, खड्गधारी, कामद, कान्त, कालघ्न, कमलेक्षण, भद्रवादप्रिय, वैद्य, विवुध, वरद,वशी, महाधन, निधिपति, महायोगी, गुरुप्रिय, योगसम्पन्न, सर्वरोगनाशक, सम्पूर्णपृथिवी पर विराजित, दिव्यास्त्रधारी, अप्रमेयात्मा, सर्वगोप्ता, महोज्वल, सर्वायुधयुक्त, वांछितदायक, शत्रुंजय, योगसिद्ध, महाकाय शताधिक महागण के प्रभु, सर्वज्ञाननिधान, सर्वसिद्धि देने हेतु उद्यत—ये १०८ नामावलि वाली मूर्त्तियां दसों दिशा में व्याप्त होकर सर्वदा पालन करें।।१०२-११५।।

स्वस्थाः सर्वेन्द्रियाः सन्तु शान्तिरस्तु सदा मम।
शेषाद्या मूर्तयोऽष्टौ च विक्रमेणैव भास्वराः॥११६॥
अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशकोणगाः पान्तु मां सदा। मम सौख्यमसम्बाधमारोग्यमपराजयः॥११७॥
दुःखहानिरविघ्नश्च प्रजावृद्धिः सुखोदयः। वाञ्छाप्तिरतिकल्याणमवैषम्यमनामयम्॥११८॥
अनालस्यमभीष्टं स्यान्मृत्युहानिर्बलोन्नतिः।
भयहानिर्यशः कान्तिर्विद्या ऋद्धिर्महाश्रियः॥११९॥
अनष्टद्रव्यता चैव नष्टस्य पुनरागमः। दीर्घायुष्यं मनोहर्षः सौकुमार्यमभीप्सितम्॥१२०॥
अप्रधृष्यतमत्वं च महासामर्थ्यमेव च। सन्तु मे कार्तवीर्य्यस्य हैह्येन्द्रस्य कीर्तनात्॥१२१॥

मेरी समस्त इन्द्रियां स्वस्थ रहें। मुझे सर्वदा शान्ति लाभ हो। कार्त्तवीर्य की बाकी अष्टमूर्ति जो अत्यन्त भास्वर हैं, वे अग्नि, निर्ऋति तथा वायु एवं ईशान कोण में सदा मेरी रक्षा करें। मुझे अत्यन्त सुख, निरोगत्व, अपराजेयता, दुःखनाश, विघ्नरहित स्थिति, प्रजावृद्धि, सुखोदय, वांछित प्राप्ति, अमित कल्याण, अवैषम्य, अनामय, आलस्यरहित स्थिति, मृत्यु हानि, बलोन्नति, भयहानि, यश-कान्ति-विद्या, ऋद्धि, महाश्री प्राप्त हो। मेरा द्रव्य नष्ट न हो, नष्ट द्रव्य पुनः मिले। दीर्घायु, मनोल्लास, सुकुमारता, अप्रधृष्यत्व, महासामर्थ्य की प्राप्ति मुझे कार्त्तवीर्य हैहयराज की कृपा तथा कीर्त्तन से मिले।।११६-१२१।।

य इदं कार्तवीर्य्यस्य कवचं पुण्यवर्द्धनम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्॥१२२॥

सर्वशान्तिकरं गुह्यं समस्तभयनाशनम्। विजयार्थप्रदं नृणां सर्वसम्पत्प्रदं शुभम्॥१२३॥
शृणुयाद्वा पठेद्वापि सर्वकामानवाप्नुयात्। चौरैर्हृतं यदा पश्येत्पश्वादिधनमात्मनः॥१२४॥
सप्तवारं तदा जप्येन्निशि पश्चिमदिङ्मुखः। सप्तरात्रेण लभते नष्टद्रव्यं न संशयः॥१२५॥

सप्तविंशतिधा जप्त्वा प्राचीदिग्वदनः पुमान्।
देवासुरनिभं चापि परचक्रं निवारयेत्॥१२६॥

यह कार्त्तवीर्य का कवच पुण्यवर्द्धक, सर्वपापनाशक, सर्वोपद्रव नाशक, सर्वशान्तिप्रद, गुह्य, सर्वभयनाशक, विजयप्रद एवं सर्व सम्पदा प्रदायक है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी सभी कामना सफल होती है। जब चोर द्वारा पशु-धनादि चोरी हो जाये, तब पश्चिम की ओर मुख करे तथा इस कवच का पाठ करे। सात रात्रि यह करके वह अपहृत धन प्राप्त कर लेता है। यह निःसंशय है। यदि व्यक्ति पूर्वाभिमुख होकर २७ बार इसका पाठ करेगा, तब वह देवासुर संग्राम ऐसे भी संग्राम को निवारित कर देगा।।१२२-१२६।।

विवादे कलहे घोरे पञ्चधा यः पठेदिदम्।
विजयो जायते तस्य न कदाचित्पराजयः॥१२७॥

सर्वरोगप्रपीडासु त्रेधा वा पञ्चधा पठेत्। स रोगमृत्युवेतालभूतप्रेतैर्न बाध्यते॥१२८॥

सम्यग्द्वादशधा रात्रौ प्रजपेद्बन्धमुक्तये।
त्रिदिनान्निगडाद्बद्धो मुच्यते नात्र संशयः॥१२९॥

अनेनैव विधानेन सर्वसाधनकर्मणि। असाध्यमपि सप्ताहात्साधयेन्मन्त्रवित्तमः॥१३०॥

यात्राकाले पठित्वेदं मार्गे गच्छति यः पुमान्।
न दुष्टचौरव्याघ्रद्यैर्भयं स्यात्परिपन्थिभिः॥१३१॥

कलह किंवा घोर विवाद में जो इसे पांच बार पढ़ता है, उसे विजयलाभ होगा। उसकी पराजय कदापि नहीं होंगी। जो सर्वरोग पीड़ा में इसे तीन अथवा ५ बार पढ़ेगा, उसे रोग, मृत्यु, भूत, वेतालादि बाधा नहीं दे सकते। बन्धन मुक्ति हेतु रात्रि में सम्यक् रूप से इसका १२ पाठ करे। तीन दिन ऐसा करने पर निश्चित रूप से बन्धन मोक्ष होगा। सभी साधना का यही विधान है। उत्तम मन्त्रज्ञ साधक सप्ताह पर्यन्त काल में असाध्य साधन भी कर सकता है। जो यात्राकाल में इसे पढ़ने के पश्चात् यात्रा करता है, उसे दुष्ट, चोर, शत्रु, व्याघ्रादि का भय नहीं होता।।१२७-१३१।।

जपन्नासेचनं कुर्वञ्जलेनाञ्जलिना तनौ। न चासौ विषकृत्यादिरोगस्फोटैः प्रबाध्यते॥१३२॥
कार्तवीर्यः खलद्वेषी कृतवीर्यसुतो बली। सहस्रबाहुः शत्रुघ्नो रक्तवासा धनुर्धरः॥१३३॥

रक्तगन्धो रक्तमाल्यो राजा स्मर्तुरभीष्टदः।
द्वादशैतानि नामानि कार्तवीर्यस्य यः पठेत्॥१३४॥
सम्पदस्तस्य जायन्ते जनास्तस्य वशे सदा।
यः सेवते सदा विप्र श्रीमच्चक्रावतारकम्॥१३५॥

तस्य रक्षां सदा कुर्याच्चक्रं विष्णोर्महात्मनः।
मयैतत्कवचं विप्र दत्तात्रेयान्मुनीश्वरात्॥१३६॥
श्रुतं तुभ्यं निगदितं धारयस्वाखिलेष्टदम्॥१३७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे कार्तवीर्यकवचकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥

इस कवच का पाठ करके जल को अभिमंत्रित करे। (जल सामने रखकर पाठ करे) उस जल से कवच पाठोपरान्त देह सिंचन करे। इससे विष, कृत्यादि, रोग, स्फोट का भय नहीं रहता। कार्त्तवीर्य, खलद्वेषी, कृतवीर्यसुत, बली, सहस्रबाहु, शत्रुघ्न, रक्तवासा, धनुर्धर, रक्तगंध, रक्तमालाधारी हैं। स्मरण कर्त्ता को अभीष्ट देने वाले हैं। जो कार्त्तवीर्य के इन बारह नामों को पढ़ता है, उसे सम्पदा मिलती है तथा लोग उसके वशीभूत हो जाते हैं। हे विप्र! जो सदा श्री चक्रावतार कार्त्तवीर्य की सेवा करते हैं, उनकी रक्षा विष्णु का महाचक्र सदा करता है। हे विप्र! मैंने मुनीश्वर दत्तात्रेय से जिस प्रकार यह कवच सुना था, तदनुरूप आपसे कहा। आप इस सर्वइष्टप्रद कवच को धारण करे।।१३२-१३७।।

।।७७वां अध्याय समाप्त।।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

हनुमत्कवच वर्णन

सनत्कुमार उवाच

कार्तवीर्यस्य कवचं कथितं ते मुनीश्वर। मोहविध्वंसनं जैत्रं मारुतेः कवचं शृणु॥१॥
यस्य सन्धारणात्सद्यः सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः। भूतप्रेतारिजं दुःखं नाशमेति न संशयः॥२॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—"हे मुनीश्वर! मैंने कार्त्तवीर्य कवच आपसे कह दिया। अब हनुमत्कवच सुनिये जो मोह विध्वंसन तथा विजयदायक है। इसे धारण करने से सद्यः भूत-प्रेत, रिपु जनित समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं।।१-२।।

एकदाहं गतो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम्। आनन्दवनिकासंस्थं ध्यायन्तं स्वात्मनः पदम्॥३॥
तत्र रामं रमानाथं पूजितं त्रिदशेश्वरैः। नमस्कृत्य तदादिष्टमासनं स्थितवान् पुरः॥४॥
तत्र सर्वं मया वृत्तं रावणस्य वधान्तकम्। पृष्टं प्रोवाच राजेन्द्रः श्रीरामः स्वयमादरात्॥५॥
ततः कथान्ते भगवान्मारुतेः कवचं ददौ।
मह्यं तत्ते प्रवक्ष्यामि न प्रकाश्यं हि कुत्रचित्॥६॥

भविष्यदेतन्निर्दिष्टं बालभावेन नारद। श्रीरामेणाञ्जनासूनोर्भुक्तिप्रदायकम्॥७॥

रमण करने वाले श्रेष्ठ राम के दर्शनार्थ एक बार मैं गया था। वे आनन्दवन में आसीन होकर वे आत्मपद का ध्यान कर रहे थे। तब मैंने देवेश्वर राम रमानाथ का वहां पूजन किया तथा उनको प्रणाम करके उनके आदेश से उनके समक्ष आसनासीन हो गया। तब मैंने उनसे रावणवध सम्बन्धित वृत्तान्त को पूछा। यह पूछने पर राजेन्द्र श्रीराम ने स्वयं आदरपूर्वक उस वृत्तान्त को कहकर हनुमत्कवच मुझे प्रदान किया। मैं वही कवच आपसे कह रहा हूं। हे नारद! इसे जहां-तहां प्रकाशित नहीं करना चाहिये। श्रीराम ने हनुमान के इस भुक्ति-मुक्तिदायक कवच को बालभाव से मुझसे कहा था।।३-७।।

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणो पवनात्मजः। पातु प्रतीच्यामक्षघ्नः सौम्ये सागरतारकः॥८॥
उर्द्ध पातु कपिश्रेष्ठः केसरिप्रियनन्दनः। अधस्ताद्विष्णुभक्तस्तु पातु मध्य च पावनिः॥९॥

लङ्काविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरन्तरम्।
सुग्रीवसचिवः पातु मस्तकं वायुनन्दनः॥१०॥

भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरन्तरम्। नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः॥११॥
कपोलौ कर्णमूले च पातु श्रीरामकिङ्करः। नासाग्रमञ्जनासूनुः पातु वक्त्रं हरीश्वरः॥१२॥

पातु कण्ठे तु दैत्यारिः स्कन्धौ पातु सुरारिजित्।
भुजौ पातु महातेजाः करौ च चरणायुधः॥१३॥

नखान्नखायुधः पातु कुक्षौ पातु कपीश्वरः। वक्षे मुद्रापहारी च पातु पार्श्वे भुजायुधः॥१४॥

लङ्का निभर्जनः पातु पृष्ठदेशे निरन्तरम्।
नाभिं श्रीरामभक्तस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः॥१५॥
गुह्यं पातु महाप्राज्ञः सक्थिनी अतिथिप्रियः।
ऊरु च जानुनी पातु लङ्काप्रासादभञ्जनः॥१६॥
जङ्घे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः।
अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः॥१७॥
अङ्गानि पातु सत्त्वाढ्यः पातु पादाङ्गुलीः सदा।
मुखाङ्गानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान्॥१८॥

यथा—हनुमान पूर्व में, पवनात्मज दक्षिण में, अक्षघ्न पश्चिम में, उत्तर में समुद्रतारक मेरी रक्षा करें। ऊर्ध्व में कपिप्रवर केसरी नन्दन, अधः में विष्णुभक्त, मध्य में पवनपुत्र तथा सर्वापत्ति में लंकादाहक सदा मेरी रक्षा करें। सुग्रीव सचिव मस्तक की, वायुनन्दन भाल की, महावीर निरन्तर भ्रूमध्य की, छायापहारी नेत्र की, प्लवंगेश्वर कपोल की, रामकिंकर कर्ण मूल की, अंजनिपुत्र नासाग्र की, हरीश्वर मुख की, दैत्यारि कण्ठ की, सुरारिजित् स्कन्ध की, महातेजा बाहु की, चरणायुध करों की, नखायुध नख की, कपीश्वर कुक्षि की, मुद्रापहारी वक्ष की, भुजायुध पार्श्व की, लंका निभर्जन पृष्ठ देश की, श्रीरामभक्त नाभि की, अनिलात्मज कटि की,

महाप्राज्ञ गुह्य की, अतिथिप्रिय सक्थिनी की, लंका प्रासाद भंजन उरु एवं जानु की, कपिश्रेष्ठ जंघा की, महाबल गुल्फ की, अचलोद्धारक (पर्वत उद्धारक) चरण की एवं सूर्यतुल्य अंग की सदा रक्षा करें। सत्वाड्य पैर की उंगलियों की सदा रक्षा करें। मुखांग की रक्षा महाशूर करें। आत्मवान् रोमों की रक्षा करें।।८-१८।।

दिवारात्रौ त्रिलोकेषु सदागतिसुतोऽवतु। स्थितं व्रजन्तमासीनं पिबन्तं जक्षतं कपिः॥१९॥
लोकोत्तरगुणः श्रीमान् पातु त्र्यम्बकसम्भवः। प्रमत्तमप्रमत्तं वा शयानं गहनेऽम्बुनि॥२०॥

वायुपुत्र जो त्रैलोक्यगमन करते हैं, वे अहर्निश मेरी रक्षा करें। उठते-बैठते, चलते, पान करते, भोजन करते, हर समय कपि मेरी रक्षा करें। श्री हनुमान प्रमत्तावस्था किंवा अप्रमत्तावस्था में, अथाह जल में, मेरी रक्षा करें। जो लोकोत्तर गुणसम्पन्न तथा शंकर से उत्पन्न हैं।।१९-२०।।

स्थलेऽन्तरिक्षे ह्यग्नौ वा पर्वते सागरे द्रुमे। सङ्ग्रामे सङ्कटे घोरे विराडरूपधरोऽवतु॥२१॥
डाकिनीशाकिनीमारीकालरात्रिमरीचिकाः। शयानं मां विभुः पातु पिशाचोरगराक्षसीः॥२२॥

स्थल, अन्तरिक्ष में, अग्नि किंवा पर्वत में, सागर में, वृक्ष पर, संग्राम में, घोर संकट में विराट्रूपी मेरी रक्षा करें। डाकिनी, शाकिनी, महामारी, कालरात्रि, मरीचिका से रक्षा करें। जब मैं शयान रहूं तब विभु पिशाच, सर्प तथा राक्षसी से मेरी रक्षा करें।।२१-२२।।

दिव्यदेहधरो धीमान्सर्वसत्त्वभयङ्करः। साधकेन्द्रावनः शश्वत्पातु सर्वत एव माम्॥२३॥
यद्रूपं भीषणं दृष्ट्वा पलायन्ते भयानकाः। स सर्वरूपः सर्वज्ञः सृष्टिस्थितिकरोऽवतु॥२४॥

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साक्षाद्देवो महेश्वरः।
सूर्यमण्डलगः श्रीदः पातु कालत्रयेऽपि माम्॥२५॥

दिव्यदेही, धीमान्, सभी प्राणीगण हेतु भयंकर साधक रक्षक, विभु सदा सर्व मेरी रक्षा करें। जिनके भीषण रूप का अवलोकन करके भयानक प्राणी भी पलायन कर जाते हैं, वे सर्वरूप, सर्वज्ञ, सृष्टि तथा स्थिति करने वाले मेरी रक्षा करें। स्वयं ब्रह्मा, स्वयं विष्णु, स्वयं देव महेश्वर, सूर्यमण्डलगामी, श्रीप्रद तीनों काल में मेरी रक्षा करें।।२३-२५।।

यस्य शब्दमुपाकर्ण्य दैत्यदानवराक्षसाः।
देवा मनुष्यास्तिर्यञ्चः स्थावरा जङ्गमास्तथा॥२६॥
सभया भयनिर्मुक्ता भवन्ति स्वकृतानुगाः।
यस्यानेककथाः पुण्याः श्रूयन्ते प्रतिकल्पके॥२७॥
सोऽवतात्साधकश्रेष्ठं सदा रामपरायणः। वैधात्रधातृप्रभृति यत्किञ्चिद्दृश्यतेऽत्यलम्॥२८॥
विद्धि व्याप्तं यथा कीशरूपेणानञ्जनेन तत्।
यो विभुः सोऽहमेषोऽहं स्वीयः स्वयमणुर्बृहत्॥२९॥

जिनका शब्द सुनकर दैत्य, दानव, राक्षस, देवता, मानव, पशु, पक्षी, स्थावर, जंगम भयग्रस्त हो जाते हैं, जिनके शब्द से भक्त निर्भय हो जाते हैं, प्रति कल्पभेद से जिनकी नाना पुण्या कथायें सुनी जाती हैं,

वे सदारामपरायण देव साधक श्रेष्ठ की रक्षा करें। धाता, विधाता जो कुछ भी परिलक्षित होते हैं, वे कीशरूपी अञ्जनिनन्दन से सदा व्याप्त हैं। जो विभु परमात्मा हैं, वही मैं हूं। वे ही हनुमान् हैं। वे अणु तथा बृहत् दोनों हैं।।२६-२९।।

ऋग्यजुः सामरूपश्च प्रणवस्त्रिवृदध्वरः।
तस्मै स्वस्मै च सर्वस्मै नतोऽस्म्यात्मसमाधिना॥३०॥

अनेकानन्तब्रह्माण्डधृते ब्रह्मस्वरूपिणे। समीरणात्मने तस्मै नतोऽस्म्यात्मस्वरूपिणे॥३१॥
नमो हनुमते तस्मै नमो मारुतसूनवे। नमः श्रीरामभक्ताय श्यामाय महते नमः॥३२॥
नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे। लङ्काविदहनायाथ महासागरतारिणे॥३३॥
सीताशोकविनाशाय राममुद्राधराय च। रावणान्तनिदानाय नमः सर्वोत्तरात्मने॥३४॥
मेघनादमखध्वंसकारणाय नमोनमः। अशोकवनविध्वंसकारिणे जयदायिने॥३५॥

ऋक्, यजुः, प्रणव, त्रिवृत, यज्ञ हनुमान् का ही रूप है। मैं इनको, स्वयं को, सबको आत्मसमाधि रूप से प्रणाम करता हूं! अनेकान्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले, ब्रह्मरूप पवनपुत्र को मैं आत्मस्वरूप रूप से प्रणाम करता हूं! हे हनुमान्, मारुतिनन्दन! आपको नमस्कार! श्रीरामभक्त महान् को नमस्कार! हे वानर वीर! आप सुग्रीव की (राम से) मित्रता कराने वाले हैं। आपको नमस्कार! आप लंका दहन करने वाले, महासागर पार करने वाले, सीता के शोक का नाश करने वाले, राम की मुद्रिका धारण करने वाले, रावण का अन्त करने वाले, सर्वश्रेष्ठात्मा हैं। आपको नमस्कार! आप मेघनाद के यज्ञ ध्वंस के कारण हैं। आप अशोक वन विध्वंस करने वाले जयदाता हैं। आपको नमस्कार!।।३०-३५।।

वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने। वनपालशिरश्छेत्रे लङ्काप्रासादभञ्जिने॥३६॥
ज्वलत्काञ्चनवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे। सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः॥३७॥

हे वायुपुत्र! वीर, आकाशगामी, वनरक्षकगण का शिर भंजन करने वाले, लंका के महलों को भग्न करने वाले, ज्वलत् स्वर्ण वर्ण वाले, दीर्घ पूंछ धारी, लक्ष्मण को जय दिलाने वाले रामदूत आपको प्रणाम!।।३६-३७।।

अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मशस्त्रनिवारिणे। लक्ष्मणाङ्गमहाशक्तिजातक्षतविनाशिने॥३८॥
रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय नमो नमः। ऋक्षवानरवीरौघप्रासादाय नमो नमः॥३९॥
परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः। विषघ्नाय द्विषघ्नाय भयघ्नाय नमो नमः॥४०॥
महारिपुभयघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे। परप्रेरितमन्त्राणां मन्त्राणां स्तम्भकारिणे॥४१॥
पयःपाषाणतरणकारणाय नमो नमः। बालार्कमण्डलग्रासकारिणे दुःखहारिणे॥४२॥
नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च। विहङ्गमाय शैवाय वज्रदेहाय ते नमः॥४३॥

आप अक्षय कुमार का वध करने वाले, ब्रह्मास्त्र का निवारण करने वाले, लक्ष्मण के अंग पर महाशक्ति प्रहार से उत्पन्न घाव का नाश करने वाले, राक्षस-शत्रु तथा भूतों के नाशक! आपको पुनः-पुनः नमस्कार! आप रीछ-वानर वीर यूथों को प्रसन्न करने वाले, परसैन्यबल नाशक, शस्त्रास्त्र नाशक हैं। आपको

नमस्कार! आप विषघ्न, रिपुघ्न, भयघ्न हैं। आपको नमस्कार! आप महारिपुभय नाशक, भक्त के त्राण के एकमात्र कारण, पर प्रेरित मन्त्रों, मन्त्रों का स्तम्भन करने वाले, जल पर पाषाण तक को तैराने वाले, बालसूर्यमण्डल का ग्रास करने वाले, दुःखहारी, नखायुध, भीम, दन्तायुध, विहंगमरूप (आकाशचारी), शैव, वज्रदेह हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार!।।३८-४३।।

प्रतिग्रामस्थितायाथ भूतप्रेतवधार्थिने। करस्थशैलशस्त्राय रामशस्त्राय ते नमः।।४४।।
कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च। दक्षिणाशाभास्कराय सतां चन्द्रोदयात्मने।।४५।।
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च। सर्वाग्निव्याधिसंस्तम्भकारिणे भयहारिणे।।४६।।
भक्तानां दिव्यवादेषु सङ्ग्रामे जयकारिणे।
किल्किलावुवकाराय घोरशब्दकराय च।।४७।।
स्वाम्याज्ञापार्थसङ्ग्रामसख्यसञ्जयकारिणे। सदा वनफलाहारसन्तृप्ताय विशेषतः।।४८।।
महार्णवशिलाबद्धसेतुबन्धाय ते नमः। इत्येतत्कथितं विप्र मारुते कवचं शिवम्।।४९।।

आप प्रतिग्राम में स्थित, भूत-प्रेत नाशक, हाथों पर पर्वत रूपी शस्त्रधारी, राम के शस्त्र, कौपीनधारी, रामभक्ति निरत, दक्षिण दिशा के भास्कर तथा सत् लोगों हेतु चन्द्ररूप हैं। आपको नमस्कार! आप कृत्य-अकृत्य जनित व्रणों के हरणकर्त्ता, सर्वक्लेशनाशक, स्वामी की आज्ञा से संग्राम में अर्जुन से मैत्री करने वाले, सदा वन फलाहार से तृप्त, भक्तजनों को दिव्य विवाद-संग्राम में विजय प्रदाता, सर्व अग्नि, व्याधि स्तम्भन करने वाले, भयहारी, किलकिलाहट रूपी घोर शब्द करने वाले, महासागर में शिलाओं से सेतु बन्धन करने वाले आपको नमस्कार! हे विप्र! यह कल्याणप्रद दिव्य मारुत कवच कहा गया।।४४-४९।।

यस्मै कस्मै न दातव्यं रक्षणीयं प्रयत्नतः। अष्टगन्धैर्विलिख्याथ कवचं धारयेत्तु यः।।५०।।
कण्ठे वा दक्षिणे वाहौ जायस्तस्य पदे पदे। किं पुनर्बहुनोक्तेन साधितं लक्षमादरात्।।५१।।
प्रजप्तमेतत्कवचमसाध्वं चापि साधयेत्।।५२।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे हनुमत्कवचनिरूपणं
नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः।।७८।।

इसे जिस-किसी को प्रदान न करें तथा प्रयत्नतः रक्षा करें। इस कवच को अष्टगन्ध से भोजपत्र पर लिखकर जो कण्ठ में किंवा दाहिनी भुजा में पहनता है, उसे पग-पग पर विजयलाभ होता है। अधिक क्या कहें। जो इस कवच का पाठ एक लाख बार करेगा, वह तो असाध्य की भी सिद्ध करेगा!।।५०-५२।।

।।७८वां अध्याय समाप्त।।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

हनुमत् चरित्र वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथापरं वायुसूनोश्चरितं पापनाशनम्। यदुक्तं स्वासु रामेण आनन्दवनवासिना॥१॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब हनुमान् का अन्य पापनाशक चरित्र श्रवण करिये। इसे स्वयं आनन्दवनवासी राम ने मुझसे कहा था।।१।।

सद्योजाते महाकल्पे श्रुतवीर्ये हनूमति। मम श्रीरामचन्द्रस्य भक्तिरस्तु सदैव हि॥२॥
शृणुष्व गदतो मत्तः कुमारस्य कुमारक। चरितं सर्वपापघ्नं शृण्वतां पठतां सदा॥३॥
वाञ्छाम्यहं सदा विप्र सङ्गमं कीशरूपिणा। रहस्यं रहसि स्वस्य ममानन्दवनोत्तमे॥४॥
परीतेऽत्र सखायो मे सख्यश्च विगतज्वराः।
क्रीडन्ति सर्वदा चात्र प्राकट्येऽपि रहस्यपि॥५॥
कस्मिंश्चिदवतारे तु यद्वत्तं च रहो मम। तदत्र प्रकटं तुभ्यं करोमि प्रीतमानसः॥६॥

श्रीराम कहते हैं—हे कुमार! महाकल्प में सद्यः उत्पन्न होने वाले अमित पराक्रमी हनुमान के प्रति मुझ श्रीरामचन्द्र की भक्ति सदा बनी रहे। मैं हनुमान के महत् चरित्र का वर्णन कर रहा हूं। यह चरित सुनने तथा पढ़ने से सदा सभी पापों का नाश करता है। हे विप्र! मैं तो सर्वदा कीशरूपी हनुमान का संग चाहता रहता हूं। वे इस उत्तम आनन्द वन में गोपनीयता से रहते हैं। इनके सिवाय यहां मेरे कतिपय सखा एवं सखियां यहां प्रकट तथा गुप्तरूपेण क्रीड़ारत रहते हैं। मेरे किसी अवतार के समय जो रहस्यमय घटना हुई थी, मैं उसे आपसे प्रसन्नता के साथ कहता हूं।।२-६।।

आविर्भूतोऽस्म्यहं पूर्वं राज्ञो दशरथक्षये। चतुर्व्यूहात्मकस्तत्र तस्य भार्यात्रये मुने॥७॥
ततः कतिपयैरब्दैरागतो द्विजपुङ्गवः। विश्वामित्रोऽर्थयामास पितरं मम भूपतिम्॥८॥
यक्षरक्षोविघातार्थं लक्ष्मणेन सहैव माम्। प्रेषयामास धर्मात्मा सिद्धाश्रममरण्यकम्॥९॥
तत्र गत्वाश्रममृषेर्दूषयन्तौ निशाचरौ।
ध्वस्तौ सुबाहुमारीचौ प्रसन्नोऽभूत्तदा मुनिः॥१०॥

पूर्वकाल में राजा दशरथ की तीन रानियां थीं। उनसे मैं चतुर्व्यूह रूप से अवतरित हुआ। (चतुर्व्यूह अर्थात् राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न)। तदनन्तर कतिपय वर्ष व्यतीत होने पर द्विजपुंगव विश्वामित्र ने मेरे पिता से मुझे मांगा। उन्होंने यक्ष, राक्षसों के वधार्थ लक्ष्मण के साथ मुझे वन में सिद्धाश्रम भेज दिया। वहां मैंने आश्रम को अपवित्र करने वाले सुबाहु, मारीच निशाचरों को ध्वस्त किया। अतः मुनि विश्वामित्र प्रसन्न हो गये।।७-१०।।

अस्त्रग्रामं ददौ मह्यं मासं चावासयत्तथा। ततो गाधिसुतो धीमान् ज्ञात्वा भाव्यर्थमादरात्॥११॥

मिथिलामनयत्तत्र रौद्रं चादर्शयद्धनुः। तस्य कन्यां पणीभूतां सीतां सुरसुतोपमाम॥१२॥

उन्होंने मुझे अनेक अस्त्र, शस्त्र प्रदान किया तथा एक मास मैंने (लक्ष्मण सहित) वहीं निवास किया। तत्पश्चात् भावी को जानकर धीमान् गाधिपुत्र विश्वामित्र आदर के साथ मुझे मिथिला लाये तथा वहां से रौद्र (शिव) धनुष को दिखलाया। उनकी कन्या देवकन्या के समान सीता नाम्नी थीं।।११-१२।।

धनुर्विभज्य समिति लब्धवान्मानिनोऽस्य च।
ततो मार्गे भृगुपतेर्दर्प्यमूढं चिरं स्मयन्॥१३॥

व्यपनीयागमं पश्चादयोध्यां स्वपितुः पुरीम्। ततो राज्ञाहमाज्ञाय प्रजाशीलनमानसः॥१४॥

यौवराज्ये स्वयं प्रीत्या सम्मन्त्र्याप्तैर्विकल्पितः।
तच्छ्रुत्वा सुप्रिया भार्या कैकयी भूपतिं मुने॥१५॥

देवकार्यविधानार्थं विदूषितमतिर्जगौ। पुत्रो मे भरतो नाम यौवराज्येऽभिषिच्यताम्॥१६॥
रामश्चतुर्दशसमा दण्डकान्प्रविवास्यताम्। तदाकर्ण्याहमुद्युक्तोऽरण्यं भार्यानुजान्वितः॥१७॥
गन्तुं नृपतिनानुक्तोऽप्यगमं चित्रकूटकम्। तत्र नित्यं वन्यफलैर्मांसैश्चावर्तितक्रियः॥१८॥

मैंने वहां धनुष को भंग करके उस सीता से विवाह किया। मैंने मार्ग में परशुराम का दर्प चूर्ण किया। तदनन्तर मैं अपने पिता की पुरी अयोध्या पहुंचा। उस समय राजा दशरथ ने मन्त्रियों से मन्त्रणा किया तथा प्रजा को मुझमें अनुरक्त जानकर मुझे यौवराज्यपद देना चाहा। हे मुने! यह सुन कर राजा की प्रिया भार्या कैकयी ने जिनकी बुद्धि देवगण ने देवकार्यार्थ विकृत कर दिया था, उन्होंने राजा से कहा कि "मेरे पुत्रभरत को आप युवराज पद प्रदान करें। राम को चौदह वर्ष दण्डकारण्य में रहने का आदेश दीजिये।" यह सुनकर पिता की सहमति न होने पर भी मैं पत्नी सीता तथा अनुज के साथ चित्रकूट चला आया। वहां हम तीनों वन्य फल तथा मांस भोजन द्वारा जीवन व्यतीत करने लगे।।१३-१८।।

निवसन्नेव राज्ञस्तु निधनं चाप्यवागमम्। ततो भरतशत्रुघ्नौ भ्रातरौ मम मानदौ॥१९॥
मातृवर्गयुतौ दीनौ साचार्यामात्यनागरौ। व्यजिज्ञपतमागत्य पञ्चवट्यां निजाश्रमम्॥२०॥
अकल्पयं भ्रातृभार्यासहितश्च त्रिवत्सरम्। ततस्त्रयोदशे वर्षे रावणो नाम राक्षसः॥२१॥
मायया हृदवान्सीतां प्रियां मम परोक्षतः। ततोऽहं दीनवदन ऋष्यमूकं हि पर्वतम्॥२२॥

मैं वन में था तभी मेरे पिता की मृत्यु हो गई। तब मेरे मानद भ्राता भरत तथा शत्रुघ्न माताओं के तथा आचार्य के साथ दीनतापूर्वक मन्त्रीगण तथा पुरवासीगण के साथ वहां आये तथा सब समाचार पंचवटी में मेरे आश्रम में आकर मुझसे कहा तथापि मैंने उन सबको वापस भेज दिया। वहां मैंने पत्नी तथा भाई के साथ तीन वर्ष व्यतीत किया। वनवास के तेरहवें वर्ष रावण नामक राक्षस ने मेरी पत्नी सीता को मेरे आश्रम में न रहने पर माया से हर लिया। तब मैं दीनता के साथ ऋष्यमूक पर्वत पहुंचा।।१९-२२।।

भार्यामन्वेषयन्प्राप्तः सख्यं हर्यधिपेन च। अथ वालिनमाहत्य सुग्रीवस्तत्पदे कृतः॥२३॥
सह वानरयूथैश्च साहाय्यं कृतवान्मम। विरुध्य रावणेनालं मम भक्तो विभीषणः॥२४॥
आगतो ह्यभिषिच्याशु लङ्केशो हि विकल्पितः। हत्वा तु रावणं संख्ये सपुत्रामात्यबान्धवम्॥२५॥

सीतामादाय संशुद्धामयोध्यां समुपागतः। ततः कालान्तरे विप्र सुग्रीवश्च विभीषणः॥२६॥
निमन्त्रितौ पितुः श्राद्धे षट्कुलाश्च द्विजोत्तमाः।
अयोध्यायां समाजग्मुस्ते तु सर्वे निमन्त्रिताः॥२७॥
ऋते विभीषणं तत्र चिन्तयाने रघूत्तमे। शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण षट्कुलैश्च सहागतः॥२८॥
अथ पृष्टो मया शम्भुर्विभीषणसमागमे। नीत्वा मां द्रविडे देशे मोचय द्विजबन्धनात्॥२९॥
मया निमन्त्रिताः श्राद्धे ह्यगस्त्याद्या मुनीश्वराः।
सम्भोजितास्तु प्रययुः स्वस्वमाश्रममण्डलम्॥३०॥

वहां मैंने वानरराज सुग्रीव से मित्रता किया। बालि का वध करके उसके राज्य पर सुग्रीव को स्थापित किया। तदनन्तर वानरयूथ ने मेरी सहायता किया। वहां रावण के विरुद्ध मेरा भक्त विभीषण आया। मैंने विभीषण को लंकेश के पद पर अभिषिक्त किया। तब मैंने रावण को उसके बन्धु-बान्धव-पुत्र-आमात्यों सहित युद्ध में निहत कर दिया। सीता को शुद्ध करके अयोध्या लौटा। हे विप्र! कालान्तर में मैंने सुग्रीव तथा विभीषण को तथा अपने छः कुल को पितृ श्राद्धार्थ निमन्त्रित किया। विभीषण को छोड़कर श्राद्ध में सब लोग आये थे। मेरे षट्कुल के साथ ब्राह्मणरूपी शंकर भी आये। जब मैंने शंभु से विभीषण हेतु पूछा, तब शिव ने कहा सर्वप्रथम मुझे द्रविड़ प्रदेश ले जाकर द्विजबन्धन से मुक्त कराये। तदनन्तर मेरे द्वारा निमन्त्रित मुनीश्वरगण अगत्स्यादि मुनि ने सम्यक् रूप से भोजन किया तथा वे अपने-अपने आश्रम लौट गये।।२३-३०।।

ततः कालान्तरे विप्रा देवा दैत्या नरेश्वराः। गौतमेन समाहूताः सर्वे यज्ञसभाजिताः॥३१॥
ते सर्वे स्फाटिकं लिङ्गं त्र्यम्बकाद्रौ निवेशितम्।
सम्पूज्य न्यवंसस्तत्र देवदैत्यनृपाग्रजाः॥३२॥
तस्मिन्समाजे वितते सर्वैर्लिङ्गे समर्चिते। गौतमोऽप्यथ मध्याह्ने पूजयामास शङ्करम्॥३३॥

कालान्तर में गौतम ने यज्ञ समारोहार्थ विप्र, देव, दैत्य, राजाओं को यज्ञ सभा में आहूत किया। सब ने स्फटिक लिंग की प्रतिष्ठा कैलास पर्वत पर किया तथा उसे पूजित किया। गौतम ने भी मध्याह्न में शंकर लिंग की पूजा किया।।३१-३३।।

सर्वे शुक्लाम्बरधरा भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
सितेन भस्मना कृत्वा सर्वस्थाने त्रिपुण्ड्रकम्॥३४॥
नत्वा तु भार्गवं सर्वे भूतशुद्धिं प्रचक्रमुः। हृत्पद्ममध्ये सुषिरं तत्रैव भूतपञ्चकम्॥३५॥
तेषां मध्ये महाकाशमाकाशे निर्मलामलम्।
तन्मध्ये च महेशानं ध्यायेद्दीप्तिमयं शुभम्॥३६॥

सभी लोग शुक्लवर्ण वस्त्र पहने थे। सभी ने शरीर में भस्म लगाया था। सभी ने सर्वस्थान पर त्रिपुण्ड्र लगाया था। सभी ने शिव के समक्ष प्रणत होकर भूतशुद्धि सम्पन्न किया। भूतशुद्धि हेतु हृत्कमल के मध्यगत छिद्र में पंच महाभूत का ध्यान करे। उसके मध्य में महाकाश आकाश में निर्मल अमल दीप्तिमय शुभ महेश का ध्यान करे।।३४-३६।।

अज्ञानसंयुतं भूतं समलं कर्मसङ्गतः। तं देहमाकाशदीपे प्रदहेज्ज्ञानवह्निना॥३७॥
आकाशस्यावृत्तिं चाहं दग्ध्वाकाशमथो दहेत्।
दग्ध्वाकाशमथो वायुमग्निभूतं तथा दहेत्॥३८॥
अब्भूतं च ततो दग्ध्वा पृथिवीभूतमेव च।
तदाश्रितान्गुणान्दग्ध्वा ततो देहं प्रदाहयेत्॥३९॥
एवं प्रदग्ध्वा भूतादिं देही तज्ज्ञानवह्निना। शिखामध्यस्थितं विष्णुमानन्दरसनिर्भरम्॥४०॥
सुशीतला ततो ज्वाला प्रशान्ता चन्द्ररश्मिवत्।
प्रसारितसुधारुग्भिः सान्द्रीभूतश्च सम्प्लवः॥४१॥
अनेन प्लावितं भूतग्रामं सञ्चिन्तयेत्परम्॥४२॥

अज्ञान से संयुत भूत मलपूर्ण हैं। कर्मसंयोग से शरीर निर्माण होता है। अतः शरीर का आकाशदीप रूप ज्ञानाग्नि में दहन कर्म करे। तब आकाश पर लगे आवरण को दग्ध करके आकाश को ही जलाये। तब वायु, अग्नि, पृथिवी तथा उनके गुणों को दग्ध करे। देह भी ज्ञानाग्नि से दग्ध करे। तदनन्तर देही शिखा स्थान के मध्य में विराजित विष्णु, शिव का ध्यान करे। विष्णु आनन्दरस निर्झर हैं। शिव तो चन्द्रकिरण के समान हैं। शिव के अंगों से उत्पन्न किरणों से अमृतविन्दु टपकता है। चन्द्ररश्मिवत् सुशीतल ज्वाला वहां उद्गत् होती है। वह सघन अमृत वर्षा करती है। उससे समस्त भूतसमूह आप्लावित हो जाता है। इसी प्रकार के अमृत से भूतग्राम को सिंचित करे।।३७-४२।।

इत्थं कृत्वा भूतशुद्धिं क्रियार्हो मर्त्यः शुद्धो जायते ह्येव सद्यः।
पूजां कर्तुं जप्यकर्मापि पश्चादेवं ध्यायेद्ब्रह्महत्यादिशुद्ध्यै॥४३॥
एवं ध्यात्वा चन्द्रदीप्तिप्रकाशं ध्यानेनारोप्याशु लिङ्गे शिवस्य।
सदाशिवं दीपमध्ये विचिन्त्य पञ्चाक्षरेणार्चनमव्ययं तु॥४४॥
आवाहनादीनुपचारांस्तथापि कृत्वा स्नानं पूर्ववच्छङ्करस्य।
औदुम्बरं राजतं स्वर्णपीठं वस्त्रादिच्छन्नं सर्वमेवेह पीठम्॥४५॥
अन्ते कृत्वा बुद्बुदाभ्यां च सृष्टिं पीठे पीठे नागमेकं पुरस्तात्।
कुर्यात्पीठे चोर्ध्वके नागयुग्मं देवाभ्याशे दक्षिणे वामतश्च॥४६॥
जपापुष्पं नागमध्ये निधाय मध्ये वस्त्रं द्वादशप्रातिगुण्ये।
सुश्वेतेन तस्य मध्ये महेशं लिङ्गाकारं पीठयुक्तं प्रपूज्यम्॥४७॥

यह भूतशुद्धि क्रिया करके मनुष्य तत्काल शुद्ध हो जाता है। भूतशुद्धि से ब्रह्महत्या प्रभृति दोषों का निवारण हो जाता है। तब पूजा-जप-ध्यान आदि करना चाहिये। तदनन्तर उन गौतमादि मुनिगण ने ध्यान द्वारा उस शिवलिंग में चन्द्रदीप्त प्रकाश को आरोपित किया था। तदनन्तर उन लोगों ने दीप में सदाशिव का चिन्तन करके पंचाक्षर मन्त्र द्वारा अव्यय शिव की पूजा किया। उन्होंने आवाहन, स्नान प्रभृति उपचार से पूजनोपरान्त

उस शिवलिंग को गूलर के काष्ठ तथा स्वर्ण रजत निर्मित एवं वस्त्राच्छादित पीठ पर स्थापित किया। तदनन्तर उन ऋषिगण ने बुलबुलों द्वारा सृष्ट एक-एक नाग को प्रति पीठ पर स्थापित किया। तब उन्होंने पीठ के ऊर्ध्व में तथा शंकर के दक्षिण-वाम पार्श्व में दो-दो नाग की स्थापना किया तथा नागों के बीच में जपाकुसुम पुष्प एवं द्वादश श्वेत वस्त्र रख दिया। वे सभी श्वेत वस्त्र थे। उसके मध्य में उन्होंने पीठयुक्त लिंगाकृति महेश की पूजा किया।।४३-४७।।

एवं कृत्वा साधकास्ते तु सर्वे दत्त्वा दत्त्वा पञ्चगन्धाष्टगन्धम्।
पुष्पैः पत्रैः श्रीतिलैरक्षतैश्चतिलोन्मिश्रैः केवलैश्च प्रपूज्य॥४८॥
धूपं दत्त्वा विधिसम्प्रयुक्तं दीपं दत्त्वा चोक्तमेवोपहारम्।
पूजाशेषं ते समाप्याथ सर्वे गीतं नृत्यं तत्र तत्रापि चक्रुः॥४९॥

यह करके सभी साधकों ने पञ्चगव्य तथा अष्टगन्ध, पुष्प, पत्र, श्रीतिल, तिलयुक्त, अक्षत से शिव की पूजा करके सविधि धूप तथा दीप प्रदान करके नाना उपहार प्रदान किया। तदनन्तर पूजा सम्पन्न होने पर उन लोगों ने वहां शिव के उद्देश्य से नृत्य-गीत आदि उत्सव भी किया।।४८-४९।।

कालेचास्मिन् सुव्रते गौतमस्य शिष्यः प्राप्तः शङ्करात्मेति नाम्ना॥५०॥
उन्मत्तवेषो दिग्वासा अनेकां वृत्तिमास्थितः।
क्वचिद्द्विजातिप्रवरः क्वचिच्चण्डालसन्निभः॥५१॥
क्वच्छिूद्रसमो योगी तापसः क्वचिदप्युत।
गर्जत्युत्पतते चैव नृत्यति स्तौति गायति॥५२॥

उसी समय वहां सुव्रत गौतम के शिष्य शंकरात्मा आये। व उन्मत्त वेश थे। वे दिगम्बर (वस्त्ररहित) थे। वे अनेक वृत्तियों में स्थित रहते थे। कभी उनकी वृत्ति द्विजप्रवर की रहती, कभी उनकी वृत्ति चाण्डाल जैसी हो जाती, कभी वे शूद्र जैसी, कभी योगी-तपस्वी जैसी वृत्ति ग्रहण कर लेते। कहीं वे उछलते, कहीं गर्जते, कभी नृत्य स्तुति तथा गायन करने लगते।।५०-५२।।

रोदिति शृणुतेऽत्युक्तं पतत्युत्तिष्ठति क्वचित्। शिवज्ञानैकसम्पन्नः परमानन्दनिर्भरः॥५३॥
सम्प्राप्तो भोज्यवेलायां गौतमस्यान्तिकं ययौ।
बुभुजे गुरुणा साकं क्वचिदुच्छिष्टमेव च॥५४॥
क्वचिल्लिहति तत्पात्रं तूष्णीमेवाभ्यगात्क्वचित्।
हस्तं गृहीत्वैव गुरोः स्वयमेवाभुनक्क्वचित्॥५५॥
क्वचिद् गृहान्तरे मूत्रं क्वचित्कर्दमलेपनम्।
सर्वदा तं गुरुर्दृष्ट्वा करमालम्ब्य मन्दिरम्॥५६॥
प्रविश्य स्वीयपाठे तमुपवेश्याप्यभोजयेत्। स्वयं तदस्य पात्रेण बुभुजे गौतमो मुनिः॥५७॥

कहीं रुदन करते, कभी कहीं स्पष्टतः श्रवण करते, तो कभी गिरते-उठते रहते। भोजन काल में वे गुरु

गौतम के निकट आते तो कभी जूठन ही खा लेते। कभी भोजन चाटते, कभी चुपचाप पलायन कर जाते। कभी गुरु के हाथ से भोजन करते, तो कभी स्वयं खाते। कभी गृह में मूत्र त्याग करते, कभी कीचड़ देह पर लिप्त करते। गुरु उनका हाथ पकड़कर सदा गृह के अन्दर ले जाते तथा अपने आसन पर आसीन कराकर भोजन कराते! गौतम ऋषि तो कभी उनके ही पात्र में भोजन ग्रहण करते!।।५३-५७।।

तस्य चित्तं परिज्ञातुं कदाचिदथ सुन्दरी। अहल्या शिष्यमाहूय भुङ्क्ष्वेति प्राह तं मुदा।
निर्दिष्टो गुरुपत्न्या तु बुभुजे सोऽविशेषतः॥५८॥
यथा पपौ हि पानीयं तथा वह्निमपि द्विज। कण्टकानन्नवद्भुत्त्वा यथापूर्वमतिष्ठत॥५९॥

कभी उनकी चित्तवृत्ति के परिज्ञानार्थ सुन्दरी अहल्या ने प्रसन्नता के साथ कहा—"तुम मेरे साथ ही भोजन करो। गुरुपत्नी के यह कहते ही शंकरात्मा ने बिना किसी प्रकार का प्रतिवाद किये यथेच्छ भोजन किया। वे जिस प्रकार जल पीते, तदनुरूप अग्निपान भी कर जाते। कंटकों का भोजन अन्नवत् करके भी वे यथापूर्व ही बने रहते।।५८-५९।।

पुरो हि मुनिकन्याभिराहूतो भोजनाय च। दिने दिने तत्प्रदत्तं लोष्टमम्बु च गोमयम्॥६०॥
कर्दमं काष्ठदण्डं च भुक्त्वा पीत्वाथ हर्षितः।
एतादृशो मुनिरसौ चण्डालसदृशाकृतिः॥६१॥
सुजीर्णोपानहौ हस्ते गृहीत्वा प्रलपन्हसन्। अन्त्यजोचितवेषश्च वृषपर्वाणमभ्यगात्॥६२॥
वृषर्वेशयोर्मध्ये दिग्वासाः समतिष्ठत। वृषपर्वा तमज्ञात्वा पीडयित्वा शिरोऽच्छिनत्॥६३॥

मुनि कन्यागण उनको बुलाती तथा उनको भोजनार्थ दिन-प्रतिदिन ढेला, गोबर, कीचड़ काष्ठ देतीं। वे उसी को खा-पीकर हर्षित रहते। इसी प्रकार मुनि शंकरात्मा चाण्डाल वेश में भग्न जूता हाथ में लेकर प्रलाप करते हंसते वृषपर्वा के यहां आये। वे वृषपर्वा तथा शिव के बीच नग्न खड़े हो गये। वृषपर्वा उनको पहचानने में असमर्थ रहे। अतः उन्होंने उन ऋषि को पीड़ित करते उनका शिरच्छेद ही कर दिया।।६०-६३।।

हते तस्मिन्द्विजश्रेष्ठे जगदेतच्चराचरम्। अतीव कलुषं ह्यासीत्तत्रस्था मुनयस्तथा॥६४॥
गौतमस्य महाशोकः सञ्जातः सुमहात्मनः।
निर्ययौ चक्षुषौ वारि शोकं सन्दर्शयन्निव॥६५॥
गौतमः सर्वदैत्यानां सन्निधौ वाक्यमुक्तवान्।
किमनेन कृतं पापं येन च्छिन्नमिदं शिरः॥६६॥
मम प्राणाधिकस्येह सर्वदा शिवयोगिनः।
ममापि मरणं सत्यं शिष्यच्छद्मा यतो गुरुः॥६७॥

उन द्विजश्रेष्ठ की मृत्यु होते ही चराचर जगत् अत्यन्त कलुषपूर्ण हो गया। तब मुनिगण तथा गौतम आदि महात्माओं को महाशोक हो गया। उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगा। वे शोकसन्तप्त हो गये। उस समय उन्होंने समस्त दैत्यगण से कहा—"इन्होंने क्या पाप किया था। जो इनका शिरच्छेद कर दिया गया? मेरे प्राणाधिक प्रिय सर्वदा शिवयोगी का मरण मैंने देखा। अब शिष्य की तरह मेरा भी मरण निश्चित है।।६४-६७।।

शैवानां धर्मयुक्तानां सर्वदा शिववर्तिनाम्। मरणं यत्र दृष्टं स्यात्तत्र नो मरणं ध्रुवम्॥६८॥

तच्छ्रुत्वा ह्यसुराचार्यः शुक्रः प्राह विदाम्वरः।
एनं सञ्जीवयिष्यामि भार्गवशङ्करप्रियम्॥६९॥

किमर्थं म्रियते ब्रह्मन्पश्य मे तपसो बलम्। इति वादिनि विप्रेन्द्रे गौतमोऽपि ममार ह॥७०॥

"शैवगण धर्मयुक्त तथा सदा शिव के अनुगामी रहते हैं। जहां उनका मरण देखा जाय, वहां मेरा भी मरण ध्रुव निश्चित है।" ऋषि गौतम का कथन सुनकर महाज्ञानी असुराचार्य शुक्र ने कहा—"मैं इन शंकरप्रिय को जीवित कर देता हूं। हे ब्रह्मन्! आप क्यों मृत हो रहे हैं। आप मेरा तपबल देखिये।" शुक्राचार्य यह कह ही रहे थे, इतने में विप्रेन्द्र गौतम मृत हो गये!।।६८-७०।।

तस्मिन्मृतेऽथ शुक्रोऽपि प्राणांस्तत्याज योगतः।
तस्यैवं हतिमाज्ञाय प्रह्लादाद्या दितीश्वराः॥७१॥
देवा नृपा द्विजाः सर्वे मृता आसंस्तदद्भुतम्।
मृतमासीदथ बलं तस्य बाणस्य धीमतः॥७२॥
अहल्या शोकसन्तप्ता रुरोदोच्चैः पुनः पुनः।
गौतमेन महेशस्य पूजया पूजितो विभुः॥७३॥

वीरभद्रो महायोगी सर्वं दृष्ट्वा चुकोप ह। अहो कष्टमहोकष्टं महेशा बहवो हताः॥७४॥

गौतम को मृत देखकर शुक्राचार्य ने भी योग बल से प्राण त्याग दिया। उनकी मृत्यु का संवाद पाकर प्रह्लाद आदि दैत्यपति, देवता, नृप, द्विजादि सभी मृत हो गये। तभी धीमान् बाण का समस्त सैन्य भी मृत हो गया। यह अद्भुद् घटना थी। उधर शोकाकुला अहल्या भी इस घटना से अवगत होकर उच्च स्वर से रुदनरत हो गयीं। गौतम ने मृत्युपूर्व महेश्वर की पूजा करके विभु वीरभद्र का भी पूजन किया था। वे महायोगी यह देखकर अत्यन्त कुपित हो गये। वे कहने लगे—"अहो! महाकष्ट है। अनेक माहेश्वर मृत हो गये।"।।७१-७४।।

शिवं विज्ञापयिष्यामि तेनोक्तं करवाण्यथ।
इति निश्चित्य गतवान्मन्दराचलमव्ययम्॥७५॥
नमस्कृत्वा विरूपाक्षं वृत्तं सर्वमथोक्तवान्।
ब्रह्माणं च हरिं तत्र स्थितौ प्राह शिवो वचः॥७६॥

"मैं इस समाचार को भगवान् शिव से कहूंगा। उनका जो आदेश होगा, वही मेरा कर्त्तव्य होगा।" यह विचार करके वे वहां से अव्यग्र मन्दराचल पर गये। वहां उन्होंने विरूपाक्ष को प्रणाम करके उनसे पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया। तब भगवान् शिव ने वहां अपने निकट स्थित ब्रह्मा तथा विष्णु से कहा—।।७५-७६।।

मद्भक्तैः साहसं कर्म कृतं ज्ञात्वा वरप्रदम्।
गत्वा पश्यामि हे विष्णो सर्वं तत्कृतसाहसम्॥७७॥

इत्युक्त्वा वृषमारुह्य वायुना धूतचामरः। नन्दिकेन सुवेषेण धृते छत्रेऽतिशोभने॥७८॥

सुश्वेते हेमदण्डे च नान्ययोग्ये धृते विभो।
महेशानुमतिं लब्ध्वा हरिर्नागान्तके स्थितः॥७९॥
आरक्तनीलच्छत्राभ्यां शुशुभे लक्ष्मकौस्तुभः।
शिवानुमत्या ब्रह्मापि हंसरूढोऽभवत्तदा॥८०॥

भगवान् शिव कहते हैं—मेरे भक्तों ने अत्यन्त साहसिक कृत्य किया है। उनका यह कर्म वरप्रद है। हे विष्णु! वहां जाकर हमें उनका साहसिक कार्य अवलोकन करना चाहिये।" तब शंकर वृषारूढ़ हो गये। वायुदेव उनको चामर से वीजित करने लगे। तभी नन्दी ने उन विभु पर वह छत्र लगाया जो स्वर्णदण्डमय था। अत्यन्त मनोहर एवं उज्वल था। उसे अन्य कोई भी धारण नहीं कर सकता था। महेश की आज्ञा के कारण विष्णु भी गरुड़ारूढ़ हो गये। वे श्रीवत्सांकित कौस्तुभमणिधारी थे। वे हरित, लाल तथा नीलवर्ण छत्र से शोभित हो गये। शिव की आज्ञा के कारण ब्रह्मा भी तत्काल हंस पर आरूढ़ हो गये।।७७-८०।।

इन्द्रगोपप्रभाकारच्छत्राभ्यां शुशुभे विधिः। इन्द्रादिसर्वदेवाश्च स्वस्ववाहनसंयुताः॥८१॥
अथ ते निर्ययुः सर्वे नानावाद्यानुमोदिताः।
कोटिकोटिगणाकीर्णा गौतमस्याश्रमं गताः॥८२॥
ब्रह्माविष्णुमहेशाना दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम्।
स्वभक्तं जीवयामास वामकोणनिरीक्षणात्॥८३॥

ब्रह्मा का छत्र इन्द्रगोप के समान रक्तवर्ण तथा प्रभायुक्त था। इन्द्रादि सभी देवता भी अपने वाहनों पर बैठकर विविध वाद्यवादन ध्वनि के बीच चल पड़े। कोटि-कोटि गणों से आवृत ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर गौतमाश्रम आये। वहां का परमाद्भुद दृश्य देखकर उन्होंने भक्त गौतम को अपनी वाम दृष्टिमात्र से जीवित कर दिया।।८१-८३।।

शङ्करो गौतमं प्राह तुष्टोऽहं ते वरं वृणु। तदाकर्ण्य वचस्तस्य गौतमः प्राह सादरम्॥८४॥
यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम। त्वल्लिङ्गार्चनसामर्थ्यं नित्यमस्तु ममेश्वर॥८५॥
वृतमेतन्मया देव त्रिनेत्र श्रृणुचापरम्। शिष्योऽयं मे महाभागो हेयादेयादिवर्जितः॥८६॥
प्रेक्षणीयं ममत्वेन न च पश्यति चक्षुषा। न घ्राणग्राह्यं देवेश न पातव्यं न चेतरत्॥८७॥
इति बुद्ध्या तथा कुर्वन्स हि योगी महायशाः।
उन्मत्तविकृताकारः शङ्करात्मेति कीर्तितः॥८८॥
न कश्चित्तं प्रति द्वेषी न च तं हिंसयेदपि। एतन्मे दीयतां देव मृतानाममृतिस्तथा॥८९॥

यह देखकर शंकर ने गौतम से कहा—"मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हूं। वर मांगो।" उनका वचन सुनकर गौतम ने आदर पूर्वक कहा—"हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तथा वर देना चाहते हैं, तब आपके लिंग पूजन की शक्ति मुझमें सदैव रहे। हे देव! अब दूसरा वर यह मांगता हूं कि यह महाभाग शिष्य हेय-उपादेय दोनों प्रकार के कर्मों से विवर्जित हैं। यह नेत्र से कुछ नहीं देखता, हे महेश! यह घ्राण से नहीं सूंघता। सब कुछ बुद्धि से करता है। यह महायशा योगी है। यह उन्मत्त, विकृताकार तथा शंकरात्मा नाम वाला है। यह किसी के प्रति द्वेष

अथवा हिंसा की भावना नहीं रखता। हे देव! इससे कोई द्वेष न करे तथा इसके प्रति कोई हिंसा न करे। जितने लोग मृत हो गये, सभी जीवित हो जायें। यही वर दीजिये।।८४-८९।।

तच्छ्रुत्वोमापतिः प्रीतो निरीक्ष्य हरिमव्ययः। स्वांशेन वायुना देहमाविशज्जगदीश्वरः॥९०॥

हरिरूपः शङ्करात्मा मारुतिः कपिसत्तमः।
पर्यायैरुच्यतेऽधीशः साक्षाद्विष्णुः शिवः परः॥९१॥

आकल्मेष प्रत्येक कामरूपमुपाश्रितः। ममाज्ञाकारको रामभक्तः पूजितविग्रहः॥९२॥

यह सुनकर उमापति ने प्रेमपूर्वक अव्यय हरि को देखा तथा वे अपने अंश वायुरूपेण जगदीश्वर के शरीर में प्रविष्ट हो गये। वे ही हरिरूप (वानररूप) शंकरात्मा पवनसुत हनुमान् हैं। वे पर्यायक्रमेण अधीश, साक्षात् विष्णु तथा शिव कहे गये हैं। ये प्रतिकल्प में स्वेच्छा से रूप धारण करते हैं। ये शिव के आज्ञावाहक, मेरे भक्त तथा महाबली हैं।।९०-९२।।

अनन्तकल्पमीशानः स्थास्यति प्रीतमानसः।
त्वया कृतमिदं वेश्म विस्तृतं सुप्रतिष्ठितम्॥९३॥
नित्यं वै सर्वरूपेण तिष्ठामः क्षणमादरात्।
समर्चिताः प्रयास्यामः स्वस्ववासं ततः परम्॥९४॥

तब शंकर ने प्रेम से कहा—तुम्हारा निर्मित मन्दिर अतीव विस्तृत तथा सुप्रतिष्ठित है। हम सभी नित्य इस मन्दिर में एक क्षण रहेंगे। तुम्हारी पूजा स्वीकार करके स्वस्थान गान करेंगे।।९३-९४।।

अथाबभाषे विश्वेशं गौतमो मुनिपुङ्गवः। अयोग्यं प्रार्थयामीश ह्यर्थी दोषं न पश्यति॥९५॥

ब्रह्माद्यलभ्यं देवेश दीयतां यदि रोचते। अथेशो विष्णुमालोक्य गृहीत्वा तत्करं करे॥९६॥

प्रहसन्नम्बुजाभाक्षमित्युवाच सदाशिवः। क्षामोदरोऽसि गोविन्द देयं ते भोजनं किमु॥९७॥

स्वयं प्रविश्य यदि वा स्वयं भुंक्ष्व स्वगेहवत्।
गच्छ वा पार्वतीगेहं या कुक्षिं पूरयिष्यति॥९८॥

तब मुनिप्रवर गौतम ने विश्वेश से कहा—हे ईश्वर! मैं आपसे एक अयोग्य प्रार्थना करता हूं। प्रार्थना करने वाला अपना दोष स्वयं नहीं देखता। यदि आप प्रसन्न हैं, तब ब्रह्मा आदि के लिये भी दुर्लभ ऐसा वर दीजिये कि आप मेरे यहां भोजन करें।" गौतम की यह प्रार्थना सुनकर शिव ने विष्णु को देखकर उनका हाथ अपने हाथ में लिया था। उन्होंने हंसते हुये कमल नयन केशव से कहा—"हे गोविन्द! आपका उदर रिक्त लग रहा है। क्या मैं आपको भोजन प्रदान करूं अथवा आप अपने गृह जैसे मेरे गृह में भोजन ग्रहण करेंगे? अथवा आप पार्वती के यहां जायें। वे आपका उदर पूर्ण कर देगी"।।९५-९८।।

इत्युक्त्वा तत्करालम्बी ह्येकान्तमगमद्विभुः।
आदिश्य नन्दिनं देवो द्वाराध्यक्षं यथोक्तवत्॥९९॥
स गत्वा गौतमं वाथ ह्युक्तवान्विष्णुभाषणम्।
सम्पादयान्नं देवेशा भोक्तुकामा वयं मुने॥१००॥

यह कहकर शिव विष्णु का हाथ पकड़े ही एकान्त में चले गये। उन्होंने द्वार के अध्यक्ष नन्दी से कहा—"तुम जाओ तथा भोजन की व्यवस्था करो।" तब नन्दी ने गौतम से जाकर समस्त वृत्तान्त कहा। नन्दी ने गौतम से जाकर विष्णु का संवाद कहा—"हे मुनिवर! हम देवता भोजन करना चाहते हैं। अन्न का प्रबन्ध करिये"।।९९-१००।।

इत्युक्त्वैकान्तमगमद्वासुदेवेन शङ्करः। मृदुशय्यां समारुह्य शयितौ देवतोत्तमौ॥१०१॥

अन्योन्यं भाषणं कृत्वा प्रोत्तस्थतुरुभावपि।
गत्वा तडागं गम्भीरं स्नास्यन्तौ देवसत्तमौ॥१०२॥

कराम्बुपातमन्योन्यं पृथक्कृत्वोभयत्र च। मुनयो राक्षसाश्चैव जलक्रीडां प्रचक्रिरे॥१०३॥

अथ विष्णुर्महेशश्च जलपानानि शीघ्रतः।
चक्रतुः शङ्करः पद्मकिञ्जल्काञ्जलिना हरेः॥१०४॥

अवाकिरन्मुखे तस्य पद्मोत्फुल्लविलोचने। नेत्रे केशरसम्पातात्प्रमीलयत केशवः॥१०५॥

अत्रान्तरे हरे स्कन्धमारुरोह महेश्वरः। हर्युत्तमाङ्गं बाहुभ्यां गृहीत्वा संन्यमज्जयत्॥१०६॥

उन्मज्जयित्वा च पुनः पुनश्चापि पुनः पुनः।
पीडितः स हरिः सूक्ष्मं पातयामास शङ्करम्॥१०७॥

अथ पादौ गृहीत्वा तं भ्रामयन्विचकर्ष ह।
अताडयद्धरेर्वक्षः पातयामास चाच्युतम्॥१०८॥

अथोत्थितो हरिस्तोयमादायाञ्जलिना ततः।
शीर्षे चैवाकिरच्छम्भुमथ शम्भुरथो हरिः॥१०९॥

तदनन्तर वासुदेव तथा शंकर कोमल शय्या पर गये, जहां पर दोनों देवसत्तम परस्परतः बातचीत करते शयन करने लगे। जब निद्रा के उपरान्त दोनों देवता उठे, तब स्नानार्थ एक गंभीर तड़ाग में जाकर हाथों से एक दूसरे पर जल उछालने लगे। यह देखकर मुनिगण तथा राक्षसगण भी जलक्रीड़ा में लग गये। विष्णु तथा शंकर पद्मपत्र में जल लेकर उसका पान कर रहे थे। उसी बीच शंकर ने पद्मकेसर मिश्रित जल विष्णु के मुखकमले में छोड़ दिया। केशरयुक्त जल गिरने से केशव ने नेत्र बन्द कर लिया। तभी महेश्वर हरि के कन्धों पर आरूढ़ होकर उनके शिर को पुनः-पुनः जल में डुबोने लगे। इससे हरि पीड़ित हो गये। तभी शिव के पैरों को अच्युत ने पकड़ा तथा उनको घुमाने लगे। इस पर शिव ने अच्युत के वक्ष पर अपने चरणों का प्रहार किया। इस प्रहार से हरि गिर पड़े।।१०१-१०९।।

जलक्रीडैवमभवदथ चर्षिगणान्तरे। जलक्रीडासम्भ्रमेण विस्रस्तजटबन्धनाः॥११०॥

अथ सम्भ्रमतां तेषामन्योन्यजटबन्धनम्। इतरेतरबद्धासु जटासु च मुनीश्वराः॥१११॥

शक्तिमन्तोऽशक्तिमत आकर्षति च सव्यथम्।
पातयन्तोऽन्यतश्चापि क्रोशंतो रुदतस्तथा॥११२॥

अन्ततः हरि ने उठकर अंजलि में जल लिया तथा वह जल शिव के शिर पर गिराया। शंभु ने भी तब हरि के शीश पर जल छोड़ा। इधर हरि हर की जलक्रीड़ा चल रही थी, उधर ऋषिगण अपनी जटा का बन्धन खोलकर जलक्रीड़ा कर रहे थे। उन मुनियों की जटा खुली होने से परस्पतः उलझ सी जाती थी। उस समय सबल देह वाले ऋषि दुर्बल देह ऋषियों को खींचते तथा पीड़ित करते। इससे वे रुदन करने लगते।।११०-११२।।

एवं प्रवृत्ते तुमुले सम्भूते तोयकर्मणि। आकाशे वानरेशस्तु ननर्त च ननाद च॥११३॥

विपञ्चीं वादयन्वाद्यं ललितां गीतिमुज्जगौ।
सुगीत्या ललिता यास्तु आगयत विधा दश॥११४॥

शुश्राव गीतिं मधुरां शङ्करो लोकभावतः। स्वयं गातुं हि ललितं मन्दमन्दं प्रचक्रमे॥११५॥

स्वयं गायति देवेश विश्रामं गलदेशिकम्। स्वरं ध्रुवं समादाय सर्वलक्षणसंयुतम्॥११६॥

स्वधारामृतसंयुक्तं गानेनैवमपोनयन्। वासुदेवो मर्दलं च कराभ्यामप्यवादयत्॥११७॥

जब सभी लोग यह तुमुल जलक्रीड़ा कर रहे थे, तभी वानरेश मारुति आकाश में नाचने तथा नाद करने लगे। वे वीणा प्रभृति अन्य वाद्यों का वादन कर रहे थे। उन्होंने अपने ललित स्वर में दशविध गीतों का गायन किया। वे मन्द-मन्द गायन कर रहे थे। उस मधुर गीतिकाओं को सुनकर लोकभाव में शंकर भी ललित स्वर में मन्द-मन्द गायनरत हो गये। उस समय महेश्वर देव सर्वलक्षणान्वित विश्राम, गलदेशिका तथा ध्रुवस्वर में स्वधारामृत से युक्त गायन करने लगे तथा वासुदेव अपने हाथों से मर्दल बजाने लगे।।११३-११७।।

अम्बुजाङ्गश्चतुर्वक्रस्तुम्बुरुर्मुखरो बभौ। तानका गौतमाद्यास्तु गायको वायुजोऽभवत्॥११८॥

गायके मधुरं गीतं हनूमति कपीश्वरे। म्लानमम्लानमभवत्कृशाः पुष्टास्तदाभवन्॥११९॥

स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः।
तूष्णीभूतं समभवद्देवर्षिगणदानवम्॥१२०॥

उस समय चतुर्मुख ब्रह्मा तुम्बुरु वाद्य (अर्थात् तानपूरा) वादन कर रहे थे। गौतमादि ऋषिगण ताल-राग मिला रहे थे। गायक तो वायुनन्दन थे ही। कपिराज हनुमान का गायन तथा मधुर गीत सुनकर म्लान वस्तु भी अम्लान हो गयी। कृश पुष्ट हो गई। यह गीत सुनकर वहां जो अन्य गायक थे, वे स्वयं को तिरस्कृत जानकर (अर्थात् वैसा उत्तम गायन न करने के कारण) मूर्च्छित हो गये। वहां उपस्थित देवता, देवर्षि तथा दानवगण मौन हो गये।।११८-१२०।।

एकः स हनुमान् गाता श्रोतारः सर्व एव तते। मध्याह्नकाले वितते गायमाने हनूमति।
स्वस्ववाहनमारुह्य निर्गताः सर्वदेवताः॥१२१॥

गानप्रियो महेशस्तु जग्राह प्लवगेश्वरम्। प्लवग त्वं मयाज्ञप्तो निःशङ्को बृषमारुह॥१२२॥

मम चाभिमुखो भूत्वा गायस्वानेकगायनम्।
अथाह कपिशार्दूलो भगवन्तं महेश्वरम्॥१२३॥

अब वहां तो यह स्थिति थी कि केवल हनुमान ही गायक थे तथा बाकी तब श्रोता थे। हनुमांन तो

मध्याह्न तक गायन ही करते जा रहे थे तथापि मध्याह्न समागत जानकर सभी देवता स्ववाहनारूढ़ होकर वहां से चले गये। अन्ततः गायनप्रिय महेश्वर ने हनुमान को पकड़ कर कहा—"हे कपि! तुम निःशंक होकर वृषारूढ़ हो जाओ। तब मेरी ओर अभिमुख होकर अनेक गाना सुनाओ।" तथापि कपि शार्दूल हनुमान् ने भगवान् महेश्वर से कहा—।।१२१-१२३।।

वृषभारोहसामर्थ्यं तव नान्यस्य विद्यते। तव वाहनमारुह्य पातकी स्यामहं विभो॥१२४॥
मामेवारुह देवेश विहङ्गः शिवधारणः। तव चाभिमुखं गानं करिष्यामि विलोकय॥१२५॥

हनुमान कहते हैं—इन वृष पर आरूढ़ होने का सामर्थ्य आप को ही है। अन्य को नहीं है। हे विभु! आपके वाहन पर आरोहण का अत्यन्त पातक मुझे होगा। हे देवेश! आप मेरे कन्धों पर आरोहण करिये। मैं आपको लेकर आकाश में उड़ने लगूंगा। तब मैं आपके अभिमुख गायन करूंगा, आप सुनियेगा।।१२४-१२५।।

अथेश्वरो हनूमन्तमारुरोह यथा वृषम्। आरूढे शङ्करे देवे हनुमत्कन्धरां शिवः॥१२६॥
छित्वा त्वचं परावृत्य सुखं गायति पूर्ववत्।
शृष्वन्गीतिसुधां शम्भुर्गौतमस्य गृहं ततः॥१२७॥
सर्व चाप्यागतास्तत्र देवर्षिगणदानवाः। पूजिता गौतमेनाथ भोजनावसरे सति॥१२८॥
यच्छुष्कं दारुसम्भूतं गृहोपकरणादिकम्। प्ररूढमभवत्सर्वं गायमाने हनूमति॥१२९॥
तस्मिन्गाने समस्तानां चित्रं दृष्टिरतिष्ठत॥१३०॥

तब भगवान् उमापति जिस प्रकार से अपने वृष पर आरोहण करते थे, तदनुरूप उन्होंने हनुमान के स्कन्ध पर आरोहण किया। तदनन्तर पश्चिमाभिमुख होकर पवनपुत्र पूर्ववत् सुखपूर्वक गायन करने लगे। इस गीतिसुधा का पान करते-करते शम्भु गौतम ऋषि के गृह तक आ गये। वहां उस समय अन्य देवर्षिगण दानववादि का भी आगमन हो गया। तब गौतम ऋषि ने उन सबका स्वागतादि सम्पन्न करके उनसे भोजनार्थ प्रार्थना किया। उस समय का यह हाल था कि हनुमान का गायन सुनकर गृह के सभी काष्टनिर्मित उपकरण जो शुष्क थे, सजीव हो गये तथा जो श्रोतागण थे, वे सभी चित्र जैसे निःस्पन्द लग रहे थे!।।१२६-१३०।।

द्विबाहुरीशस्य पदाभिवन्दनः समस्तगात्राभरणोपपन्नः।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणाः सुमध्ये विन्यस्तमूर्द्धाञ्जलिभिः शिरोभिः॥१३१॥
शिरः कराभ्यां पतिगृह्य शङ्करो हनूमतः पूर्वमुखं चकार।
पद्मासनासीनहनूमतोऽञ्जलौ निधाय पादं त्वपरं मुखे च॥१३२॥
पादाङ्गुलीभ्यामथ नासिकां विभुः स्नेहेन जग्राह च मन्दमन्दम्।
स्कन्धे मुखे त्वन्सतले च कण्ठे वक्षः स्थले च स्तनमध्यम हृदि॥१३३॥
ततश्च कुक्षावथ नाभिमण्डले पादं द्वितीयं विदधाति चाञ्जलौ।
शिरो गृहीत्वाऽवनमय्य शङ्करः पस्पर्शं पृष्ठं चिबुकेन सोऽध्वनि॥१३४॥
हारं च मुक्तापरिकल्पितं शिवो हनूमतः कण्ठगतं चकार॥१३५॥

उस समय हनुमान शम्भु की चरण वन्दना दोनों हाथों से कर रहे थे। उनका समस्त शरीर आभरणों से शोभित था। वे प्रसन्न मूर्त्ति, तरुण थे। उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक नत किया था। यह देखकर शंकर ने हनुमान का शिर पकड़ा तथा उनको पूर्वाभिमुख कर दिया। उन विभु ने अब एक चरण पद्मासनासीन हनुमान् की अंजलि पर रखा, द्वितीय चरण हनुमान् के मुख पर न्यस्त किया। उन्होंने अपने चरणों की उंगलियों से हनुमान की नासिका को स्नेहपूर्वक पकड़ लिया। अब जो चरण उन्होंने हनुमान की अंजलि पर रखा था, उसे उनके कंधे, मुख, कण्ठ, वक्ष, स्तनमध्य, हृदय, कुक्षि, नाभिमण्डल पर फिराते हुये पुनः उनकी अंजलि पर रख दिया। इसके पश्चात् अपना शिर नत करके शंभु ने अपने चिबुक से हनुमान की पीठ का स्पर्श करते हुये एक मुक्ताहार हनुमान के कण्ठ में धारण करा दिया।।१३१-१३५।।

अथ विष्णुर्महेशानमिदं वचनमुक्तवान्।
हनूमता समो नास्ति कृत्स्नब्रह्माण्डमण्डले॥१३६॥
श्रुतिदेवाद्यगम्यं हि पदं तव कपिस्थितम्।
सर्वोपनिषदव्यक्तं त्वत्पदं कपि सर्वुयुक्॥१३७॥
यमादिसाधनैर्योगैर्न क्षणं ते पदं स्थिरम्। महायोगिहृदम्भोजे परं स्वस्थं हनूमति॥१३८॥
वर्षकोटिसहस्त्रं तु सहस्राब्दैरथान्वहम्।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया॥१३९॥
लोके वादो हि सुमहाञ्छम्भुर्नारायणप्रियः।
हरिप्रियस्तथा शम्भुर्न तादृग्भाग्यमस्ति मे॥१४०॥

इसके पश्चात् विष्णु ने महेश्वर से कहा—"इन हनुमान् के समकक्ष समस्त ब्रह्माण्ड मण्डल में दूसरा कोई नहीं हैं। इसका कारण यह है कि आपका पद जो कि श्रुतियों तथा देवादि के लिये भी अगम्य है, उसे आपने इन कपि के ऊपर स्थित किया। सभी उपनिषदों में अव्यक्त तथा साररूप वह चरण हनुमान पर स्थित हुआ है। यम नियमादि साधन से भी महायोगी जन अपने हृदय कमल पर क्षणमात्र के लिये भी आपके जिन चरणों को स्थिर नहीं कर सकते, वही महायोगी हनुमान के हृदयकमल पर विराजमान रहा है। मैंने एक सहस्रकोटि तथा सहस्र वर्षों तक आपके चरणों की अर्चना भक्तिभाव से किया था, तथापि आपने अपने चरण का दर्शन मुझे नहीं कराया। लोक में यह बात प्रचलित है कि शंभु नारायण को प्रिय हैं तथा नारायण शंभु को प्रिय हैं, तथापि मैं ऐसा भाग्यशाली अपने को नहीं मान सकता!।।१३६-१४०।।

तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भुर्विष्णोः प्राह मुदान्वितः।
न त्वंया सदृशो मह्यं प्रियोऽन्योऽस्ति हरे क्वचित्॥१४१॥
पार्वती वा त्यवा तुल्या वर्तते नैव भिद्यते। अथ देवाय महते गौतमः प्रणिपत्य च॥१४२॥
व्यजिज्ञपदमेयात्मन्देवैर्हि करुणानिधे। मध्याह्नोऽयं व्यतिक्रान्तो भुक्तिबेलाखिलस्य च॥१४३॥

मुदित शंभु ने विष्णु का कथन सुनकर कहा—"हे हरि! मुझे तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है, तथापि पार्वती तुम्हारी ही तरह प्रिय तो हैं, तथापि वे तो मुझसे अभिन्न जो हैं!" तदनन्तर उन महान् देव से प्रणामोपरान्त

गौतम ने कहा—हे अमेयात्मा! करुणानिधि! मध्याह्न काल का समय है। भोजन काल बीतता जा रहा है।।१४१-१४३।।

अथाचम्य महादेवो विष्णुना सहितो विभुः। प्रविश्य गौतमगृहं भोजनायोपचक्रमे।।१४४।।

रत्नाङ्गुलीयैरथ नूपुराभ्यां दुकूलबन्धेन तडित्सुकाञ्च्या।
हारैरनेकैरथ कण्ठनिष्कयज्ञोपवीतोत्तरवाससी च।।१४५।।
विलम्बिचञ्चन्मणिकुण्डलेन सुपुष्पधम्मिल्लवरेण चैव।
पञ्चाङ्गगन्धस्य विलेपनेन बाह्वं गदैः कङ्कणकाङ्गुलीयैः।।१४६।।

यह सुनकर महादेव तथा विष्णु ने आचमन किया और भोजनार्थ उन्होंने गौतमगृह में प्रवेश किया। गौतम ने वहां समागत विभु को रत्नमुद्रिका, नूपुर, धोती, विद्युत्वत् चमकती काञ्ची, अनेक हार, स्वर्ण यज्ञोपवीत, उत्तरीय, वस्त्र, लटकते रत्नों वाले कुण्डल, पुष्प से सजी पगड़ी प्रदान किया। उन्होंने प्रभु को बाजूबन्द तथा कंकण से सजाकर पंचांगगन्ध का लेप लगाया।।१४४-१४६।।

अथो विभूषितः शिवो निविष्ट उत्तमासने। स्वसम्मुखं हरिं तथा नयवेशयद्वरासने।।१४७।।

देवश्रेष्ठौ हरीशौ तावन्योन्याभिमुखस्थितौ।
सुवर्णभाजनस्थान्नं ददौ भक्त्या स गौतमः।।१४८।।
त्रिंशतप्रभेदान्भक्ष्यांस्तु पायसं च चतुर्विधम्।
सुपक्वं पाकजातं च कल्पितं यच्छतद्वयम्।।१४९।।
अपक्वं मिश्रकं तद्वत्त्रिंशतं परिकल्पितम्।
शतं शतं सुकन्दानां शाकानां च प्रकल्पितम्।।१५०।।
पञ्चविंशतिधा सर्पिःसंस्कृतं व्यञ्जनं तथा।
शर्कराद्यां तथा चूतमोचाखर्जूरदाडिमम्।।१५१।।
द्राक्षेक्षुनागरङ्गं च मिष्टं पक्वं फलोत्करम्।
प्रियालकं जम्बुफलं विकङ्कतफलं तथा।।१५२।।
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणीशे समर्प्य च।
दत्त्वापोशानकं विप्रो भुञ्जध्वमिति चाब्रवीत्।।१५३।।
भुञ्जानेषु च सर्वेषु व्यजनं सूक्ष्मविस्तृतम्।
गौतमः स्वयमादाय शिवविष्णू अवीजयत्।।१५४।।

परिहासमथो कर्तुमियेष परमेश्वरः। पश्य विष्णो हनूमन्तं कथं भुङ्क्ते स वानरः।।१५५।।

इस प्रकार से शिव को सजाकर गौतम ने उत्तम आसन पर उनको आसीन कराया। अपने सम्मुख उन्होंन उत्तम आसन पर श्रीहरि को बैठाया। जब देवप्रवर हरि तथा हर परस्परतः अभिमुखीन होकर बैठ गये, तब गौतम भक्तिभाव के साथ उनको स्वर्णपात्रों में भोजन प्रदान करने लगे। ३० प्रकार का भक्ष्य, चार प्रकार

का पायस, दो सौ प्रकार का सुपक्व आहार, तीन प्रकार का पक्वापक्व भोजन, सौ प्रकार के कन्द तथा शाक, २५ प्रकार के घृत निर्मित व्यंजन, शर्करा, आम्र, कदली, खर्जूर, अनार, दाख, ईख, नारंगी, प्रियालक, जामुन, विकंकत फल तथा अन्य मीठे एवं सुपक्व फल और नाना प्रकार के आहार अर्पित किया। इस प्रकार के तथा अन्य प्रकार के भोजनादि द्रव्य अर्पित करके उन्होंने ईश्वर को जल अर्पित किया तथा प्रार्थना किया कि भोजन ग्रहण करिये। अब शिव प्रभृति सभी देवता भोजनरत हो गये। उस समय गौतम एक सुन्दर पंखा लेकर हरि-हर पर हवा करने लगे। तभी शंकर ने परिहास मुद्रा में विष्णु से कहा—"हे विष्णु! देखो वानर हनुमान् कैसे भोजन कर रहा है!"।।१४७-१५५।।

वानरं पश्यति हरौ मण्डकं विष्णुभाजने। चिक्षेप मुनिसङ्घेषु पयत्स्वपि महेश्वरः॥१५६॥

हनूमते दत्तावांश्च स्वोच्छिष्टं पायसादिकम्।
त्वदुच्छिष्टमभोज्यं तु तवैव वचनाद्विभो॥१५७॥

शिव का वचन सुनकर विष्णु कपिराज की ओर देखने लगे। तभी महेश्वर ने मुनिसमूह के सामने ही विष्णु के पात्र में मट्ठा उलट दिया तथा हनुमान को अपना उच्छिष्ट पायसादि प्रदान किया तथापि कपीश्वर ने पूछा—"प्रभो! शिव उच्छिष्ट निर्माल्यादि भोजन न करें, यह आपका ही वचन है।"।।१५६-१५७।।

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्र पुष्पं फलादिकम्। मह्यं निवेद्य सकलं कूप एवं विनिःक्षिपेत्॥१५८॥

अभुक्ते त्वद्वचो नूनं भुक्ते चापि कृपा तव।
बाणलिङ्गे स्वयम्भूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते॥१५९॥

चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्। भुक्तिवेलेयमधुना तद्वैरस्यं कथान्तरात्॥१६०॥

भुक्त्वा तु कथयिष्यामि निर्विशङ्कं विभुंक्ष्व तत्।
अथासौ जलसंस्कारं कृतवान् गौतमो मुनिः॥१६१॥

यह कथन सुनकर शिव ने कहा—"वास्तव में मेरा पत्र-पुष्प-फलादि नैवेद्य भोजन योग्य नहीं होता, वह वर्जित है। उससे समर्पणोपरान्त कूपादि में निःक्षेप करना चाहिये।" यह सुनकर हनुमान ने कहा—"यदि मैं आपका उच्छिष्ट ग्रहण नहीं करता, तब तो आपके वचन की अहवेलना होगी तथापि आपकी कृपा हो, तब मैं यह भोजन कर लूंगा।" यह वाक्य सुनकर शंकर कहने लगे—"मेरे स्वयम्भु लिंग तथा बाणलिंग का किंवा स्फटिक निर्मित लिंग का अथवा मुझे हृदय में स्थित करके जो मेरा उच्छिष्ट (नैवेद्य) ग्रहण करेगा, उसे चान्द्रायण व्रतफल लाभ होगा। अभी भोजन काल है। कथान्तर मत कहो। मैं भोजनोपरान्त सब प्रकट कर दूंगा। अभी निःशंक होकर भोजन करो।" जब सब ने भोजन सम्पन्न किया, तब गौतम ने सबको जल संस्कार कराया।।१५८-१६१।।

आरक्तसुस्निग्धसुसूक्ष्मगात्राननेकधाधौतसुशोभिताङ्गान्।
तडागतोयैः कतबीजघर्षितैर्विशोधितैस्तैः करकानपूरयत्॥१६२॥
नद्याः सैकतवदिकां नवतरां सञ्छाद्य सूक्ष्माम्बरैः,
शुद्धैः श्वेततरैरथोपरि घटांस्तोयेन पूर्णान्क्षिपेत्।

लिप्त्वा नालकजातिमास्तपुटकं तत्कौलकं कारिकाचूर्णं
चन्दनचन्द्ररश्मिविशदां मालां पुटान्तं क्षिपेत्।
यामस्यापि पुनश्च वारिवसनेनाशोध्य कुम्भेन
तत्चन्द्रग्रन्थिमथो निधाय बकुलं क्षिप्त्वा तथा पाटलम्॥१६३॥
शेफालीस्तबकमथो जलं च तत्र विन्यस्य प्रथमत एव तोयशुद्धिम्।
कृत्वाथो मृदुतरसूक्ष्मवस्त्रखण्डेनावेष्टेत्सृणिकमुखं च सूक्ष्मचन्द्रम्॥१६४॥
अनातपप्रदेशे तु निधाय करकानथ। मन्दवातसमोपेते सूक्ष्मव्यजनवीजिते॥१६५॥
सिञ्चेच्छीतैर्जलैश्चापि वासितैः सृणिकामपि।
संस्कृताः स्वायतास्तत्र नरा नार्योऽथवा नृपाः॥१६६॥

अब जलसंस्कार विधि कहते हैं—तनिक रक्तवर्ण चिकने तथा अनेक बार प्रक्षालित शोभित अंग वाले घटों को निर्मली जड़ी से स्वच्छ किये तालाब आदि के जल से पूर्ण करे। तब नदी के बालुकामय तट पर उत्तम बालू की वेदी बनाकर जलपूर्ण घट को उत्तम सूक्ष्म वस्त्र से आवरित करके स्थापित करे। घट पर चावल के चूर्ण से अथवा सिन्दूर आदि से चित्रण करके उस पर चन्द्ररश्मि के समान धवल माला को चन्दन चर्चित करके उसमें छोड़े। एक प्रहर पर्यन्त जल को शुद्ध करने के अनन्तर कर्पूरचूर्ण, मौलश्री पुष्प, पाटल पुष्प, शेफालिका को उसमें छोड़कर पुनः जल शुद्ध करे। (छानें)। अब घटों के मुख को जहां कर्पूर चूर्ण लिप्त अंकुश रखा हो, कोमल सूक्ष्म वस्त्र खण्ड से लपेटे। अब उन घटों को धूप रहित स्थान पर रखे। मन्दवायु वाले हल्के पंखों से हवा झलकर सुगंधित जल से घटमुख (अंकुश) भी सिंचित करे। वहां संस्कृत, स्वायत्त नर-नारी अथवा राजा का किंवा राजकुमारीगण का पूजन करना चाहिये।।१६२-१६६।।

तत्कन्या वा क्षालिताङ्गा धौतपादास्सुवाससः। मधुपिङ्गमनिर्यासमसान्द्रमगुरूद्भवम्॥१६७॥
बाहुमूले च कण्ठे च विलिप्यासान्द्रमेव च।
मस्तके जापकं न्यस्य पञ्चगन्धविलेपनम्॥१६८॥
पुष्पनद्धसुकेशास्तु ताः शुभाः स्युः सुनिर्मलाः।
एवमेवार्चिता नार्यं आप्तकुङ्कुमविग्रहाः॥१६९॥

वे नारीगण शरीर स्वच्छ करें। चरण प्रक्षालन करके उत्तम वस्त्र से सज्जित हों। वे रक्तिम किंवा भूरे रंग के गोद को बाहुमूल अथवा कण्ठ में लगाये। वे मस्तक पर मन्त्रजप के साथ पंचगन्ध का लेप करें।।१६७-१६८।।

युवत्यश्चारुसवङ्ग्यो नितरां भूषणैरपि। एतादृग्वनिताभिर्वा नरैर्वा दापयेज्जलम्॥१७०॥
तेऽपि प्रादानसमये सूक्ष्मवस्त्राल्पवेष्टनम्। अथ वामकरे न्यस्य करकं प्रेक्ष्य तत्र हि॥१७१॥
दोरिकान्यस्तमुन्मुच्य ततस्तोयं प्रदापयेत्।
एवं स कारयामास गौतमो भगवान्मुनिः॥१७२॥

उनके केश पुष्प से सज्जित रहें। तब उन पवित्र तथा निर्मल नारीगण की पूजा करें, जिनके देह पर केसर लिप्त हो। उन सुन्दरी युवतियों को उत्तम आभूषण प्रदान करें। उन पुरुष अथवा नारीगण से जल दिलवायें जो जल प्रदान काल में घट पर ढके हुये वस्त्र को कुछ लपेट दे किंवा दर्पण में घटों को देखकर घट की डोर खोल कर जल दे। एवंविध भगवान् मुनि गौतम ने जल संस्कार किया था।।१६९-१७२।।

महेशादिषु सर्वेषु भुक्तवस्तु महात्मसु। प्रक्षालितांघ्रिर्हस्तेषु गन्धोद्वर्तितपाणिषु॥१७३॥
उच्चासनसमासीने देवदवे महेश्वरे। अथ नीचसमासीना देवाः सर्षिगणास्तथा॥१७४॥
मणिपात्रेषु संवेष्ट्य पूगखण्डान्सुधूपितान्।
अकोणान्वर्तुलान्स्थूलानसूक्ष्मानकृशानपि॥१७५॥
श्वेतपत्राणि संशोध्य क्षिप्त्वा कर्पूरखण्डकम्।
चूर्णं च शङ्करायाथ निवेदयति गौतमे॥१७६॥
गृहाण देव ताम्बूलमित्युक्तवचने मुनौ।
कपे गृहाण ताम्बूलं प्रयच्छ मम खण्डकान्॥१७७॥
उवाच वानरो नास्ति मम शुद्धिर्महेश्वर। अनेकफलभोक्तृत्वाद्वानरस्तु कथं शुचिः॥१७८॥
तच्छ्रुत्वा तु विरूपाक्षः प्राह वानरसत्तमम्।
मद्वाक्यादखिलं शुद्ध्येन्मद्वाक्यादमृतं विषम्॥१७९॥
मद्वाक्यादखिला वेदा मद्वाक्याद्देवतादयः।
मद्वाक्याद्धर्मविज्ञानं मद्वाक्यान्मोक्ष उच्यते॥१८०॥
पुराणान्यागमाश्चैव स्मृतयो मम वाक्यतः।
अतो गृहाण ताम्बूलं मम देहि सुखण्डकान्॥१८१॥
हरिर्वामकरेणाधात्ताम्बूलं पूराखण्डकम्।
ततः पत्राणि सङ्गृह्य तस्मै खण्डान्समर्पयत्॥१८२॥
कर्पूरमग्रतो दत्तं गृहीत्वाभक्षयच्छिवः। देवे तु कृत्तताम्बूले पार्वती मन्दराचलात्॥१८३॥
जयाविजययोर्हस्तं गृहीत्वायान्मुनेर्गृहम्। देवपादौ ततो नत्वा विनम्रवदनाभवत्॥१८४॥

जब समस्त महेश आदि महात्माओं ने भोजन सम्पन्न कर लिया और हस्त-पाद प्रक्षालित कर लिया और हाथों में भोजनगन्ध नहीं रह गयी, तब देवाधिदेव शंकर सर्वाधिक उच्चासनासीन हो गये और ऋषि समूह एवं देवसमूह निम्नासनासीन हो गये। उस समय मणिरचित पात्रों में उत्तम सुपारी के टुकड़े जो गोल, स्थूल, असूक्ष्म तथा अकृश थे और ताम्बूल जो कपूर तथा मसाला से युक्त था, समक्ष रखकर महर्षि गौतम ने कहा— "देव! आप ताम्बूल ग्रहण करें।" तब महादेव ने हनुमान् से कहा—"हे कपि! तुम ताम्बूल ग्रहण करो तथा मुझे सुपारी खण्ड प्रदान करो।" हनुमान् ने कहा—"हे प्रभो! मैं (जलसंस्कार से) शुद्ध नहीं हो सकता। मैं अनेक फलों का भक्षण करने वाला वानर कैसे पवित्र हो सकूंगा?" तब प्रभु विरूपाक्ष ने उत्तर दिया—मेरे वाक्य से

समस्त शुद्ध हो जाता है। मेरे वाक्य से विष अमृत हो जाता है। मेरा वाक्य ही समस्त वेद, देवतादि, धर्म-विज्ञान, मोक्ष कहा गया है। पुराण, आगम स्मृति आदि सब मेरे वाक्य से ही हैं। अतः तुम ताम्बूल ग्रहण करो तथा मुझे सुपारी प्रदान करो। शंकर का आदेश सुनकर वानर हनुमान् ने वाम हाथ से ताम्बूल ग्रहण किया तथा सुपारी खण्ड महादेव को अर्पित कर दिया। कर्पूर तो पहले प्रदान किया गया था। अब कर्पूर एवं सुपारी का भक्षण भगवान् शिव ने कर लिया। तभी मन्दरपर्वत से पार्वती अपनी सखियों का हाथ पकड़े जया-विजया के साथ गौतमाश्रम में आ गयीं। उन्होंने प्रभु महेश्वर की चरण वन्दना किया तथा शिर विनम्रता से नत करके वहीं बैठ गयीं।।१७३-१८४।।

उन्नमय्यमुखं तस्या इदमाह त्रिलोचनः। त्वदर्थं देवदेवेशि अपराधः कृतो मया॥१८५॥

यत्त्वां विहाय भुक्तं हि तथान्यच्छृणु सुन्दरि।
यत्त्वां स्वमन्दिरे त्यक्त्वा महदेनो मया कृतम्॥१८६॥
क्षन्तुमर्हसि देवेशि त्यक्तकोपा विलोकय।
न बभाषेऽप्येवमुक्ता सारुन्धत्या विनिर्ययौ॥१८७॥

तथापि प्रभु त्रिलोचन ने देवी का मुख ऊपर उठाया और कहने लगे—"हे देवेश्वरी! मैंने तुम्हारे साथ यह अपराध किया है कि हे सुन्दरी! मैं तुमको वहीं छोड़कर यहां भोजनार्थ आ गया। यह जो मैं तुमको गृह छोड़कर यहां निमन्त्रणार्थ आ गया, इस घोर अपराध को क्षमा करो। क्रोध छोड़ों। अब मेरी ओर देखो।" तथापि पार्वती ने शंभु से कुछ नहीं कहा तथा वहां से वे अरुन्धती देवी के पास गमनोद्यत हो गयीं!।।१८५-१८७।।

निर्गच्छन्तीं मुनिर्ज्ञात्वा दण्डवत्प्रणनाम ह।
अथोवाच शिवा तं च गौतमं त्वं किमिच्छसि॥१८८॥
अथाह गौतमो देवीं पार्वतीं प्रेक्ष्य सस्मिताम्।
कृतकृत्यो भवेयं वै भुक्तायां मद्गृहे त्वयि॥१८९॥
ततः प्राह शिवा विप्रं गौतमं रचिताञ्जलिम्।
भोक्ष्यामि त्वद्गृहे विप्र शङ्करानुमतेन वै॥१९०॥
अथ गत्वा शिवं विंशे लब्धानुज्ञस्त्वरागतः।
भोजयामास गिरिजां देवीं चारुन्धतीं तथा॥१९१॥
भुक्त्वाथ पार्वती सर्वगन्धपुष्पाद्यलङ्कृता।
सहानुचर कन्याभिः सहस्राभिर्हरं यथा॥१९२॥
अथाह शङ्करो देवीं गच्छ गौतममन्दिरम्।
सन्ध्योपास्तिमहं कृत्वा ह्यागमिष्ये तवान्तिकम्॥१९३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ देवी गौतमस्यैव मन्दिरम्।
सन्ध्यावन्दनकामास्तु सर्वं एव विनिर्गताः॥१९४॥

कृतसन्ध्यास्तडागे तु महेशाद्याश्च कृत्स्नशः।
अथोत्तरमुखः शम्भुर्न्यासं कृत्वा जजाप ह॥१९५॥

वहां से जाती हुई पार्वती को देखकर मुनि गौतम ने उनको दण्डवत् प्रणाम किया! तब उमा ने पूछा—"हे गौतम! तुम्हारी क्या इच्छा है?" तब मुनि ने मुस्कान युक्त पार्वती को देखकर कहा—"यदि आप मेरे यहां भोजन करती तब मैं कृतार्थ हो जाता।" यह सुनकर भगवती ने अंजलिबद्ध गौतम से कहा—"हे विप्र! मैं शिव से आज्ञा लेकर तभी तुम्हारे यहां भोजन करूंगी।" यह जानकर गौतम ने जाकर शिव की अनुमति प्राप्त किया। उन्होंने गिरिजा तथा देवी अरुन्धती को भोजन प्रदान किया। भोजनोपरान्त देवी पार्वती गंध-पुष्पादि से सज्जित होने पर हजारों सेविकाओं के साथ शंकर के पास गयीं तथापि शंकर ने कहा—"अभी तुम गौतमाश्रम जाओ। मैं सन्ध्योपासना करके तुम्हारे निकट आऊंगा।" शिव का वचन सुनकर पार्वती गौतमाश्रम गयीं। उधर सभी देवता भी सन्ध्यावन्दनार्थ बहिर्गत् हो गये। सभी ने तथा महेश्वर आदि ने तड़ाग के निकट जाकर सन्ध्या वन्दनानि किया। जब भगवान् शम्भु उत्तरमुख होकर न्यास तथा जप से निवृत्त हो गये।।१८८-१९५।।

अथ विष्णुर्महातेजा महेशमिदमब्रवीत्। सर्वैर्नमस्यते यस्तु सर्वैरेव समर्च्यते॥१९६॥
हूयते सर्वयज्ञेषु स भवान्किं जपिष्यति। रचिताञ्जलयः सर्वे त्वामेवैकमुपासिते॥१९७॥

तब महातेजवान् विष्णु ने महेश्वर से कहा—"जिनको सभी देवता नमस्कार करते हैं, सभी लोग जिनकी पूजा करते हैं तथा समस्त यज्ञ में जिनको आहुति प्रदत्त होती हैं, वे आप क्या जप करते हैं? सभी लोग तो हाथ जोड़कर आपकी ही उपासना करते हैं।"।।१९६-१९७।।

स भवान्देवदेवेशः कस्मै विरचिताञ्जलिः। नमस्कारादिपुण्यानां फलदस्त्वं महेश्वर॥१९८॥
तव कः फलदो वन्द्यः को वा त्वत्तोऽधिको वद।
तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह देवदेवं जनार्दनम्॥१९९॥

हे देवेश! आप किसे हाथ जोड़ते हैं? हे महेश्वर! आप ही नमस्कार आदि पुण्यों के फलदाता हैं। आपको फल देने वाला कौन है? आपसे अधिक कौन है? वह कहिये? यह सुनकर शंकर ने देवदेव जनार्दन से कहा—।।१९८-१९९।।

ध्याये न किञ्चिद्गोविन्द नमस्ये ह न किञ्चन।
किन्तु नास्तिकजन्तूनां प्रवृत्त्यर्थमिदं मया॥२००॥
दर्शनीयं हरे चैतदन्यथा पापकारिणः। तस्माल्लोकोपकारार्थमिदं सर्वं कृतं मया॥२०१॥
ओमित्युक्त्वा हरिरथ तं नत्वा समतिष्ठत। अथ ते गौतमगृहं प्राप्ता देवर्षयस्तदा॥२०२॥

शंकर कहते हैं—"हे गोविन्द! न तो मैं कुछ ध्यान करता हूं, न तो नमस्कार ही करता हूं तथापि नास्तिकों को प्रवृत्त करने के लिये यह सब करता रहता हूं। हे हरि! इस प्रकारं स्वयं करके दिखलाना चाहिये अन्यथा लोग पापकर्मा हो जायेंगे। सभी लोकोपकारार्थ में यह करता हूं।" यह सुनकर श्रीहरि ने कहा—"आपका कथन उचित है। तदनन्तर श्रीहरि ने महेश्वर को प्रणाम किया! तब सभी देवता एवं ऋषिगण गौतम के आश्रम पहुंचे।।२००-२०२।।

सर्वे पूजामथो चक्रुर्देवदेवाय शूलिने। देवो हनूमता सार्द्धं गायन्नास्ते मुनीश्वर॥२०३॥
पञ्चाक्षरीं महाविद्यां सर्व एव तदाऽजपन्। हनुमत्करमालम्ब्य देवाभ्यां सङ्गतो हरः॥२०४॥
एकशय्यासमासीनौ तावुभौ देवदम्पती। गायन्नास्ते च हनुमास्तुम्बुरुप्रमुखास्तथा॥२०५॥

वहां सभी ने देवाधिदेव शिव की आराधना किया। हे मुनीश्वर! उस समय वे देवाधिदेव भी हनुमान् सहित गायन कर रहे थे। सभी देवता "नमः शिवाय" मन्त्र जप में निरत थे। तदनन्तर शिव ने हनुमान का हाथ पकड़ा तथा विष्णु के साथ पार्वती के पास आये। वहां शिव-पार्वती एक ही शय्या पर बैठ गये। उस समय हनुमान् तानपूरा आदि वाद्यों का वादन करते गायन करने लगे। वहां तुम्बुरु आदि प्रमुख गायक भी गायन करने लगे।।२०३-२०५।।

नानाविधविलासांश्च चकार परमेश्वरः। आहूय पर्वतीमीश इदं वाक्यमुवाच ह॥२०६॥
रचयिष्यामि धम्मिल्लमेहि मत्पुरतः शुभे।
देव्याह न च युक्तं तद्भर्त्ता शुश्रूषणं स्त्रियः॥२०७॥
केशप्रसाधनकृतावनर्थान्तरमापतेत्। केशप्रसाधने देव तत्त्वं सर्व न चेप्सितम्॥२०८॥
अथ बन्धे कृते पश्चादंसप्राप्तप्रमार्जनम्। ततश्चरमसंलग्न केशपुष्पादिमार्जनम्॥२०९॥
एतस्मिन्वर्तमाने तु महात्मानो यदागमन्। तदा किमुत्तरं वाच्यं तव देवादिवन्दित॥२१०॥

वहां परमेश्वर नाना प्रकार के विलास कर रहे थे। तभी महेश्वर ने पार्वती से कहा—"हे कल्याणी! मेरे निकट आओ। मैं तुम्हारे केश का जूड़ा बांधूंगा।" देवी ने यह सुनकर कहा "नहीं! पति द्वारा पत्नी की सेवा करना उचित नहीं है। हे देव! आप यदि मेरा केश प्रसाधन करेंगे, तब अनर्थ होगा। इस कार्य में विलम्ब होता है। इसमें बालों की लट संवारना, उसमें लगे पुराने पुष्प हटाना, पुनः पुष्पादि लगाना। तभी बीच में कोई महात्मा आ गया, तब हे देववन्दित! उसका उत्तर क्या होगा?।।२०६-२१०।।

नायान्ति चेदथ विभो भीतिर्नाशमुपैष्यति।
एवं हि भाषमाणां तां करेणाकृष्य शङ्करः॥२११॥
स्वोर्वोः संस्थापयित्वैव विस्रस्य कचबन्धनम्।
विभज्य च कराभ्यां स प्रससार नखैरपि॥२१२॥

"यदि कोई नहीं आता, तब भी मन में शंका लगी रहेगी कि कोई आ न जाये?" पार्वती ने यह कहकर शंकर को हाथों द्वारा अपनी ओर खींचा और उनका शिर अपने जांघ पर रखने के अनन्तर उनकी जटा को अपनी उंगलियों तथा नखों से संवारने सुलझाने लगीं।।२११-२१२।।

विष्णुदत्तां पारिजातस्त्रजं कचगतामपि।
कृत्वा धम्मिल्लमकरोदथ मालां करागताम्॥२१३॥
मल्लिकास्त्रजमादाय बबन्ध कचबन्धने। कल्पप्रसूनमालां च ब्रह्मदत्तां महेश्वरः॥२१४॥
पार्वतीवसने गूढगन्धाढ्ये च समाददात्। अथांसपृष्ठ संलग्नमार्जनं कृतवान् विभुः॥२१५॥

श्लथन्नीवेरधो देव्या वस्त्रवेष्टादधोगतः।
किमिदं देवि चेत्युत्त्वा नीवीबन्धं चकार ह॥२१६॥

तदनन्तर उनकी जटा सवांरने के उपरान्त उन्होंने विष्णु प्रदत्त पारिजात माला से उनका जूड़ा बांधकर उसमें मालती माला तथा ब्रह्मा प्रदत्त कल्पपुष्पों की माला को बांधा। तदनन्तर स्कन्ध एवं पृष्ठ पर आये बालों को झाड़ने के पश्चात् शिव ने उमा का नीवी बन्धन खींचते यह कहा—"देवी! यह क्या?" तथा उन्होंने नीवी बन्धन कस दिया।।२१३-२१६।।

नासाभूषणमेतत्ते सत्यमेव वदामि ते।
ततः प्राह शिवा शम्भुं स्मित्वा पर्वतनन्दिनी॥२१७॥
अहो त्वन्मन्दिरे शम्भो सर्ववस्तु समृद्धिमत्।
पूर्वमेव मया सर्वं ज्ञातप्रायमभूत्किल॥२१८॥
सर्वद्रविणसम्पत्तिर्भूषणैरवगम्यते। शिरो विभूषितं देव ब्रह्मशीर्षस्य मालया॥२१९॥
नरकस्य तथा माला वक्षःस्थलविभूषणम्।
शेषश्च वासुकिश्चैव सविषौ तव कङ्कणौ॥२२०॥
दिशोऽम्बरं जटा केशा भसितं चाङ्गरागकम्।
महोक्षो वाहनं गोत्रं कुलं चाज्ञातमेव च॥२२१॥

तब शंभु नासिका का आभूषण देते कहने लगे—"हे देवी! यह सत्य कहता हूं। यह तुम्हारी नासिका का आभूषण है। पहनो।" यह सुनकर मुस्कराती हुई पर्वत नन्दिनी पार्वती कहने लगी—"हे शम्भु! आपके निवास में कुछ भी न्यून नहीं है। यह मुझे पूर्व से ही ज्ञात है। देखिये आभूषण से ही व्यक्ति की धन-सम्पत्ति का ज्ञान होता है। आपका मस्तक तो ब्रह्मशीर्ष से कैसा भूषित है। मुण्डमाल से आपका वक्षस्थल सज्जित है। विषधर शेष तथा वासुकि आपके कंगन हैं। वस्त्र दिशायें हैं (आप दिक्वस्त्र हैं), नग्न हैं। आपका अंगलेप अंगराज तो भस्म है। वाहन तो वृष है। आपके वंश-गोत्र को कोई नहीं जानता!"।।२१७-२२१।।

ज्ञायेते पितरौ नैव निरूपाक्षं तथा वपुः।
एवं वदन्तीं गिरिजां विष्णुः प्राहातिकोपनः॥२२२॥
किमर्थं निन्दसे देवि देवदेवं जगत्पतिम्। दुष्प्राणा न प्रिया भद्रे तव नूनमसंयमात्॥२२३॥
यत्रेशनिन्दनं भद्रे तत्र नो मरणव्रतम्।
इत्युत्त्वाथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः॥२२४॥

"आपके पिता-माता को कोई नहीं जानता। आपके देह में दो की जगह तीन नेत्र हैं।" गिरिजा शिव से यह कह रही थीं, जिसे सुनकर विष्णु ने क्रोधान्वित होकर कहा—"हे देवी! आप देवदेव जगतपति की निन्दा क्यों कर रही हैं? आप असंयम युक्त हैं। आपको अपने प्राणों की परवाह नहीं है क्या? हे भद्रे! जहां ईश्वर शिव की निन्दा होती है, वहां तो हमें मरणव्रत ग्रहण कर लेना ही उचित है।" यह कहकर श्री हरि अपने नख से भगवती का शिरच्छेद करने हेतु उद्यत हो गये!।।२२२-२२४।।

महेशस्तत्करं गृह्य प्राह मा साहसं कृथाः। पार्वतीवचनं सर्वं प्रियं मम न चाप्रियम्॥२२५॥

ममाप्रियं हृषीकेश कर्तुं यत्किञ्चिदिष्यते।

ओमित्युक्त्वाथ भगवांस्तूष्णीं भूतोऽभवद्धरिः॥२२६॥

तभी महेश ने विष्णु का हाथ पकड़कर कहा—"ऐसा साहस न करें। पार्वती का सभी कथन मेरे लिये प्रिय है। वह अप्रिय नहीं है। हे हृषीकेश! आप जो कर रहे हैं, वही मेरे लिये अप्रिय है!" शिव का कथन सुनकर 'सत्य है' कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये।।२२५-२२६।।

हनुमानथ देवाय व्यज्ञापयदिदं वचः। अर्थयामि विनिष्कामं मम पूजाव्रतं तथा॥२२७॥

पूजार्थमप्यहं गच्छे मामनुज्ञातुमर्हसि।

तच्छ्रुत्वा शङ्करो देवः स्मित्वा प्राह कपीश्वरम्॥२२८॥

कस्य पूजा क्व वा पूजा किं पुष्पं किं दलं वद।

को गुरुः कश्च मन्त्रस्ते कीदृशं पूजनं तथा॥२२९॥

एवं वदति देवेश हनुमान्नीतिसंयुतः। वेपमान समस्ताङ्ग स्तोतुमेवं प्रचक्रमे॥२३०॥

तदनन्तर हनुमान ने महादेव से कहा—"मैं निष्काम पूजा तथा व्रताचरण करूंगा। आप आज्ञा दीजिये।" यह सुनकर शंकर ने स्मित हास्य के साथ कपीश्वर से कहा—"तुम किसकी पूजा करोगे, कहां करोगे, पुष्प क्या होगा, कौन गुरु तथा क्या मन्त्र होगा, कैसी पूजा होगी?' देवेश शंभु का यह वचन सुनकर हनुमान् विनयावनत हो गये। उनके सभी अंग कम्पित हो उठे। वे प्रभु की स्तुति करने लगे।।२२७-२३०।।

नमो देवाय महते शङ्करायामितात्मने। योगिने योगिधात्रे च योगिनां गुरवे नमः॥२३१॥

योगगम्याय देवाय ज्ञानिनां पतये नमः। वेदानां पतये तुभ्यं देवानां पतये नमः॥२३२॥

ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातृणां गुरुवे नमः। अष्टमूर्ते नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः॥२३३॥

अम्बकाय त्रिनेत्राय सोमसूर्याग्निचक्षुषे। सुभृङ्गराजधत्तूरद्रोणपुष्पप्रियस्य ते॥२३४॥

बृहतीपूगपुन्नागचम्पकादिप्रियाय च। नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु भूय एव नमोनमः॥२३५॥

हनुमान् कहते हैं—हे महान् देव, शंकर अमितात्मा! आप योगी, योगीगण के धाता तथा योगीगण के गुरु हैं। आपको प्रणाम! आप वेदपति, देवों के पति, ध्यान, ध्यानगम्य, ध्यान करने वालों के गुरु, अष्टमूर्त्ति, पशुपति, अम्बक तथा त्रिनेत्र हैं। आपके नेत्र हैं अग्नि, चन्द्र तथा सूर्य। आप भृंगराज, धतूरा तथा द्रोण पुष्पों के प्रिय, बृहती, पुन्नाग, चम्पा आदि के प्रिय हैं। आपको पुनः-पुनः अनेक बार नमस्कार है!।।२३१-२३५।।

शिवो हरिमथ प्राह मा भैषीर्वाद मेऽखिलम्।

ततस्त्यक्त्वा भयं प्राह हनुमान् वाक्यकोविदः॥२३६॥

शिवलिङ्गार्चनं कार्यं भस्मोद्धूलितदेहिना।

दिवा सम्पादितैस्तोयैः पुष्पाद्यैरपि तादृशैः॥२३७॥

देव विज्ञापयिष्यामि शिवपूजाविधिं शुभम्। सायंकाले तु सम्प्राप्ते अशिरःस्नानमाचरेत्॥२३८॥

क्षालितं वसनं शुष्कं धृत्वाचम्य त्रिरन्यधीः।
अथ भस्म समादाय आग्नेयं स्नानमाचरेत्॥२३९॥
प्रणवेन समामन्त्र्य अष्टवारमथापि वा।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण नाम्ना वा येन केनचित्॥२४०॥
सप्ताभिमन्त्रितं भस्म दर्भपाणिः समाहरेत्।
ईशानः सर्वविद्यानामुक्त्वा शिरसि पातयेत्॥२४१॥

यह सुनकर शिव ने कपीश्वर से कहा—"भय मत करो! तुमको जो इच्छा हो मुझसे कहो।" यह कथन सुनकर भय का त्याग करके वाक्य कोविद हनुमान् ने कहा—"हे देव! मैं कल्याणप्रदा शिवपूजा विधि कहता हूं। लिंगार्चन भस्म से लिप्त देह से करे। दिन में जलादि से पूजन करे। पुष्पादि से पूजा करे। अब मैं शुभा शुभपूजाविधि कहता हूं। सायंकाल में शिर भिंगाये बिना स्नानाचरण करे। भस्म को प्रणव से आठ बार मन्त्रित करके पंचाक्षरादि मन्त्र से सात बार मन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर कुशहस्त होकर 'ईशानः सर्वविद्यानां" इत्यादि कहकर शिर पर भस्म गिराये।"।।२३६-२४१।।

तत्पुरुषाय विद्महे मुखे भस्म प्रसेचयेत्।
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो भस्म वक्षसि निक्षिपेत्॥२४२॥
वामदेवाय नमः इति गुह्यस्थाने विनिक्षिपेत्।
सद्योजातं प्रपद्यामि निक्षिपेदथ पादयोः॥२४३॥
उद्धूलयेत्समस्ताङ्गं प्रणवेन विचक्षणाः। त्रैवर्णिकानामुदितः स्नानादिविधिरुत्तमः॥२४४॥
शूद्रादीनां प्रवक्ष्यामि यदुक्तं गुरुणा तथा।
शिवेति पदमुच्चार्य भस्म सम्मन्त्रयेत्सुधीः॥२४५॥
सप्तवारमथादाय शिवायेति शिरस्यथ। शङ्कराय मुखे प्रोक्तं सर्वज्ञाय हृदि क्षिपेत्॥२४६॥
स्थाणवे नम इत्युक्त्वा मुखे चापि स्वयम्भुवे।
उच्चार्य पादयोः क्षिप्त्वा भस्म शुद्धमतः परम्॥२४७॥

'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि से मुख में "अघोरेभ्योऽथ" इत्यादि से वक्ष पर, "वामदेवाय नमः" से गुह्यपर, 'सद्योजातम्, प्रपद्यामि' इत्यादि से चरणों पर और 'ॐ' का उच्चारण करते सर्वाङ्ग भस्मलिप्त करे। यह द्विजों हेतु विधि है, जो उत्तम है। अब गुरु द्वारा कही गयी शूद्रादि हेतु विधि कहता हूं। 'शिव' नाम का ७ बार जप करके भस्म को मंत्रित करे। शिवाय नमः से शिर में, शंकराय नमः से मुख में, 'सर्वज्ञाय नमः' द्वारा हृदय में, 'स्थाणवे नमः' द्वारा पुनः मुख में, 'स्वयंभुवे नमः' द्वारा चरणों पर तथा नमः शिवाय द्वारा सम्पूर्ण अंगों पर भस्म लिप्त करे। तब हाथ-पैर धोकर समाहित साधक कुशग्रहण करे।।२४२-२४७।।

नमः शिवायेत्युच्चार्य सर्वाङ्गोद्धूलनं स्मृतम्।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य दर्भपाणिः समाहितः॥२४८॥

दर्भाभावे सुवर्णं स्यात्तदभावे गवालुकाः।
तदभावे तु दूर्वाः स्युस्तदभावे तु राजतम्॥२४९॥
सन्ध्योपास्तिं जपं देव्याः कृत्वा देवगृहं व्रजेत्।
देववेदीमथो वापि कल्पितं स्थण्डिलं तु वा॥२५०॥
मृण्मयं कल्पितं शुद्धं पद्मादिरचनायुतम्। चातुर्वर्णकरं गैरश्च श्वेतेनैकेन वा पुनः॥२५१॥
विचित्राणि च पद्मानि स्वस्तिकादि तथैव च। उत्पलादिगदाशङ्खत्रिशूलडमरूंस्तथा॥२५२॥
शरोक्तपञ्चप्रासादं शिवलिङ्गमथैव च। सर्वकामफलं वृक्षं कुलकं कोलकं तथा॥२५३॥
षट्कोणं च त्रिकोणं च नवकोणमथापि वा।
कोणे द्वादशकान्दोलापादुकाव्यजनानि च॥२५४॥
चामरच्छत्रयुगलं विष्णुब्रह्मादिकांस्तथा। चूर्णैविरचयेद्वेद्यां धीमान्देवालयेऽपि वा॥२५५॥

दर्भ (कुश) न मिले तब स्वर्ण ग्रहण करे। वह भी न मिले तब गोरोचन ग्रहण करे। उसका भी अभाव रहे, तब दूर्वा ग्रहण करे। दूर्वा भी न मिले तब रजत लेना चाहिये। तत्पश्चात् शिवालय में जाये। वहां देववेदी को मिट्टी से बनाये। वहां गेरु किंवा श्वेतचूर्ण द्वारा शुद्ध पद्मादि की रचना करे। नाना प्रकार के पद्म, स्वस्तिक, उत्पल, गदा, शंख, त्रिशूल डमरु, पंचप्रासाद, शिवलिंग, सर्वकामदायक वृक्ष, कुलक (शिल्पी), कोलक (वीणा), षट्कोण, त्रिकोण, नवकोण, द्वादशकोण, दोला, पादुका, पंखा, चामर, छत्र, विष्णु तथा ब्रह्मादि देवता—ये सभी चित्र निर्माण करे। धीमान् साधक वेदी में अथवा देवालय में इनकी रचना करे।।२४८-२५५।।

यत्रापि देवपूजा स्यात् तत्रैवं कल्पयेद्बुधः।
स्वहस्तरचितं मुख्यं क्रीतं चैव तु मध्यमम्॥२५६॥
याचितं तु कनिष्ठं स्याद्बलात्कारमथोऽधमम्।
अर्हेषु यत्त्वनर्हेषु बलात्कारात्तु निष्फलम्॥२५७॥

जहां भी देवपूजन करना हो, वहीं सुधी साधक ऐसी रचना करे। स्वहस्त से रचित उत्तम है। द्रव्य देकर अन्य द्वारा रचित मध्यम है। याचना करके रचित कराया गया कनिष्ठ है परन्तु बलपूर्वक किसी से रचना कराना अधम है। जो वांछित कर्म है अथवा अवांछित कर्म है, वह बलपूर्वक कराने से निष्फल हो जाता है।।२५६-२५७।।

रक्तशालिजपाशाणकलमासिरक्तकैः। ततन्दुलैर्व्रीहिमात्रोत्थैः कणैश्चैव यथाक्रमम्॥२५८॥
उत्तमैर्मध्यमैश्चैव कनिष्ठैरधमैस्तथा। पद्मादिस्थापनैरेव तत्सम्यग्यागमाचरेत्॥२५९॥
प्रागुत्तरमुखो वापि यदि वा प्राङ्मुखो भवेत्।
आसनं च प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथा श्रुतम्॥२६०॥

लाल चावल, जवापुष्प, शाण, कमलीधान्य, सामान्य धान्य के कण से यथाक्रम यज्ञ करे। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ एवं अधम श्रेणी वाले पद्मों को स्थापित करके तब सम्यक् रूप से याग करे। पूर्व किंवा उत्तरमुख

होकर अथवा पूर्वोत्तर मुख होकर यागादि कर्म करे। अब मैंने जैसे श्रवण किया अथवा देखा है, तदनुसार आसन की व्यवस्था का वर्णन करता हूं।।२५८-२६०।।

कौशं चार्मं चैलतल्पे दारवं तालपत्रकम्।
काम्बलं काञ्चनं चैव राजतं ताम्रमेव च॥२६१॥
गोकरीषार्कजैर्वापि ह्यासनं परिकल्पयेत्। वैयाघ्रं रौरवं चैव हारिणं मार्गमेव च॥२६२॥
चार्मं चतुर्विधं ज्ञेयमथ बन्धुकमेव च। यथासम्भवमेतेषु ह्यासनं परिकल्पयेत्॥२६३॥
कृतपद्मासनो वापि स्वस्तिकासन एव च।
दर्भभस्मसमासीनः प्राणानायम्य वाग्यतः॥२६४॥
तावत्स देवतारूपो ध्यानं चान्तः समाचरेत्।
शिखान्ते द्वादशाङ्गुल्ये स्थितं सूक्ष्मतनुं शिवम्॥२६५॥
अन्तश्चरन्तं भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम्। सर्वाभरणसंयुक्तमणिमादिगुणान्वितम्॥२६६॥

कुश, चर्म, वस्त्र, तल्प, लकड़ी, तालपत्र, कम्बल, स्वर्ण, चांदी, ताम्र, गोमय तथा मदार के काष्ठ का आसन बनाये। व्याघ्र, रुरुमृग, हरिण, मृगचर्म से आसन बनाये। बन्धूक काष्ठ का भी आसन कहा गया है। कुश तथा भस्म धारण करके मौनी स्थिति में प्राणायाम करे। पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन लगाकर बैठे। अब स्वयं भावना से देवरूप होकर ध्यान करे। ध्यान—मेरे द्वादश अंगुलि माप वाले शिखा के अन्त में सूक्ष्म देह, प्राणीगण ही हृदयगुहा में निवास करने वाले, सब ओर मुंह वाले, समस्त आभरणों एवं अणिमादि सिद्धियों से गुणी होकर शंकर विराजमान हैं।।२६१-२६६।।

ध्यात्वा तं धारयेच्चिते तद्दीप्त्या पूरयेत्तनुम्।
तया दीप्त्या शरीरस्थं पापं नाशमुपागतम्॥२६७॥
स्वर्णपादैरसम्पर्कोद्रक्तं श्वेतं यथा भवेत्। तद्द्वादशदलावृत्तमष्ट पञ्च त्रिरेव वा॥२६८॥
परिकल्प्यासनं शुद्धं तत्र लिङ्गं निधाय च।

अब ध्यान के पश्चात् चित्त में उन्हें धारण करे। तत्पश्चात् उनके प्रकाश से साधक स्वदेह को प्रकाशित करे। इस विधि द्वारा शरीरस्थ पातक नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर स्वर्ण का १२, ४, ५ अथवा ३ पत्र का कमल बनाकर उस पर शिवलिंग स्थापित करे। तदनन्तर गुहास्थित महेश्वर, लिंगेश्वर का सदा चिन्तन करे।।२६७-२६९।।

गुहास्थितं महेशानं लिङ्गेशं चिन्तयेत्तथा॥२६९॥
शोधिते कलशे तोयं शोधितं गन्धवासितम्।
सुगन्धपुष्पं निक्षिप्य प्रणवेनाभिमन्त्रितम्॥२७०॥
प्राणायामश्च प्रणवः शूद्रेषु न विधीयते।
प्राणायामपदे ध्यानं शिवेत्योङ्कारमन्त्रितम्॥२७१॥

पवित्र घट में सुवासित जल तथा सुगन्धपुष्प निक्षिप्त करके प्रणवोच्चारण द्वारा जल को अभिमन्त्रित करना चाहिये तथापि शूद्रगण प्रणवोच्चारण न करे। वे प्राणायाम भी न करे। वे प्राणायाम के स्थान पर ध्यान करे। प्रणव के स्थान पर 'शिव' शब्दोच्चारण करे।।२७०-२७१।।

गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि यानि च।
तानि स्थाप्य समीपे तु ततः सङ्कल्पमाचरेत्॥२७२॥
शिवपूजां करिष्यामि शिवतुष्ट्यर्थमेव च।
इति सङ्कल्पयित्वा तु तत आवाहनादिकम्॥२७३॥
कृत्वा तु स्नानपर्यन्तं ततः स्नानं प्रकल्पयेत्। नमस्तेत्यादिमन्त्रेण शतरुद्रविधानतः॥२७४॥
अविच्छिन्ना तु या धारा मुक्तिधारेति कीर्तिता।
तया यः स्नापयेन्मासं जपन्रुद्रमुखांश्च वा॥२७५॥
एकवारं त्रिवारं च पञ्च सप्त नवापि वा। एकादश तथा वारमथैकादशधान्वितम्॥२७६॥
मुक्तिस्नानमिदं ज्ञेयं मासं मोक्षप्रदायकम्।
शैवया विद्यया स्नानं केवलं प्रणवेन वा॥२७७॥
मृण्मयैर्नालिकेरस्य शकलैश्चोर्मिभिस्तथा।
कांस्येन मुक्ताशुक्त्या च पुष्पादिकेसरेण वा॥२७८॥

अब संकल्प करे। मन्त्र है—मैं गन्ध, पुष्प, अक्षत प्रभृति पूजा द्रव्यों को लिंग के निकट स्थापित करके शिव को सन्तुष्ट करने हेतु शिवपूजा करूंगा।'' यह संकल्प करने के उपरान्त आवाहनादि करके स्नान पर्यन्त 'नमस्ते' इत्यादि मन्त्रों द्वारा शतरुद्री विधानानुरूप स्नान कराये। जलधारा अविच्छिन्न रहे। यही मुक्ति धारा है। इस धारा के द्वारा एक मास पर्यन्त शिव स्नान कराना चाहिये। १, ३, ५, ७, ९ अथवा ११ बार स्नान का नाम मुक्तिस्नान कहा गया है। एक मास तक जो मुक्तिस्नान कराता है, उसे मोक्षलाभ होता है। यह स्नान शैव मन्त्र से किंवा केवल प्रणव मन्त्र से कराये।।२७२-२७८।।

स्नापयेद्देवदेवेशं यथासम्भवमीरितैः।
शृङ्गस्य च विधिं वक्ष्ये स्नानयोग्यं यथा भवेत्॥२७९॥
पूर्वमन्तस्तु संशोध्य बहिरन्तस्तु शोधयेत्।
सुस्निग्धं लघु कृत्वाथ नाङ्गं छिन्द्यात्कथञ्चन॥२८०॥
नीचैकदेशविन्यस्तद्वारद्रोण्या सुहत्तया। कृशानुयुक्तं स्नानं तु देवाय परिकल्पयेत्॥२८१॥

मृत्तिका, नारिकेल, कांसा, मोती अथवा सीप के पात्र से पुष्प केशर मिश्रित जलद्वारा महेश को स्नान कराये। अब मैं शृंग का विधान कहता हूं, जिससे वह स्नान योग्य हो जाये। शृंग के भीतर की ओर तथा बाहर की ओर स्वच्छ करके उसे स्निग्ध बनाये। वह कहीं से भग्न कटा न हो। उसका नुकीला नीचे का भाग ऐसा हो, जिससे जल की सूक्ष्म धारा सदा गिरती रहे। कुश हस्त होकर ही देवता को स्नान कराये।।२७९-२८१।।

एवं गवयशृङ्गस्य जलपूर्तिरथोच्यते। द्वारे निषिद्धलोहार्द्धसन्धिद्वारासमन्विते॥२८२॥
योगवक्रं नागदण्डं नागाकारं प्रकल्पयेत्।
फलस्थाने तु चषकं दण्डेन समरन्ध्रकम्॥२८३॥
तत्रैव पातयेत्तोयं मूर्द्धयन्त्रघटे स्थितम्। पातयेदथ चान्येन वामेनैव करेण वा॥२८४॥
मुक्तिधारा कृता तेन पवित्रं पापनाशनम्। एवं संस्नाप्य देवेशं पञ्चगव्यैस्तथैव च॥२८५॥
पञ्चामृतैरथ स्नाप्य मधुरत्रितयेन च। विभूष्य भूषणैर्देवं पुनः स्नाप्य महेश्वरम्॥२८६॥

नरगवय के शृंग को जलपूर्त्ति हेतु विहित कहा गया है। शृंग के मुख पर तथा सन्धि पर विहित धातु को मढ़े। वह शृंग योग-वक्र (टेढ़ा), नागदण्डाकृति अथवा नागाकार हो। उसके अग्रभाग प्याले जैसा चौड़ा हो। अन्त में छिद्र हो। इसी छिद्र के द्वारा शिवलिंग पर स्थापित घट से जल गिरे। शृंग को वाम किंवा दक्षिण हाथ से पकड़कर उसमें घट का जल गिराये। शिव को मुक्तिधारा स्नान कराने वाला साधक पवित्र तथा पापरहित हो जाता है। देवदेव को नहलाकर पंचगव्य तथा त्रिमधुर जल से नहलाये। उनको विभूषणादि से भूषित करके पुनः नहलाया जाये।।२८२-२८६।।

शीतोपचारं कृत्वाथ तत आचमनादिकम्। वस्त्रं तथोपवीतं च गन्धद्रव्यकमेव च॥२८७॥
कर्पूरमगरुं चापि पाटीरमथवा भवेत्। उभयमिश्रितं चापि शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
कृत्स्नं पीठं गन्धपूर्णं यद्वा विभवसारतः।
तूष्णीमथोपचारं वा कालीयं पुष्पमेव च॥२८८॥
श्रीपत्रमरुचित्याज्यं यथाशक्त्यखिलं यथा।
अनेकद्रव्यधूपं च गुग्गुलं केवलं तथा॥२८९॥
कपिलाघृतसंयुक्तं सर्वधूपं प्रशस्यते। धूपं दत्वा यथाशक्ति कपिलाघृतदीपकान्॥२९०॥

शीतोपचार आचमनादि के उपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्धद्रव्यादि, कर्पूर, अगुरु, चन्दनादि को मिलाकर शिवलिंग पूजन करे। सम्पूर्ण पीठ को सुगन्ध से सुवासित करे। अपनी धनशक्ति के अनुसार अर्चना करनी चाहिये। मौन होकर कालीय पुष्प, बिल्वपत्र, कुरवक पुष्प, कपिला गोघृत युक्त गुग्गुलु अर्पित करे। यह सर्वोत्तम धूप है। यथाशक्ति धूप प्रदान करके कपिला घृत से भरा दीपक अर्पित करे।।२८७-२९०।।

अथवा पूजामात्रेण दीपान्दत्त्वोपहारकम्। नैवेद्यमुपपन्नं च दत्त्वा पुष्पसमन्वितम्॥२९१॥
मुखशुद्धिं ततः कृत्वा दत्त्वा ताम्बूलमादरात्।
प्रदक्षिणनमस्कारौ पूजैवं हि समाप्यते॥२९२॥

तदनन्तर उपहार, नैवेद्य पुष्प अर्पित करे। तदनन्तर मुखशुद्धि के लिये सादर ताम्बूल अर्पित करे। तब प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके पूजा समाप्त करे।।२९१-२९२।।

गीत्यङ्गपञ्चकं पश्चात्तानि विज्ञापयामि ते।
गीतिवाद्यं पुराणं च नृत्यं हासोक्तिरेव च॥२९३॥

नीराजनं च पुष्पाणामञ्जलिश्चाखिलार्पणम्।
क्षमापनं चोद्वसनं प्रोक्तं पञ्चोपचारकम्॥२९४॥
भूषणं च तथा छत्रं चामरव्यजने अपि। उपवीतं च कर्यं षोडशानुपचारकान्॥२९५॥
द्वात्रिंशदुपचारैस्तु यः समाराधयेच्छिवम्।
एकेनाह्ना समस्तानां पातकानां क्षयो भवेत्॥२९६॥

गीत, वाद्य, पुराण वाचन, नृत्य एवं हास्योक्ति ये पांच गीत्यपंचक हैं। नीराजन, पुष्पांजलि, अखिल समर्पण (सब कुछ अर्पण), क्षमा-प्रार्थना तथा उद्वसन ये पंचोपचार हैं। भूषण, छत्र, चामर, व्यजन, यज्ञोपवीत, दास्य भाव भी पूजोपचार हैं। सोलह उपाचारों से भी पूजा की जाती है। जो शिवार्चन बत्तीस उपचारों से करता है, उसके सभी पापों का नाश एक दिवस मात्र में हो जाता है।।२९३-२९६।।

एतच्छ्रुत्वा हनुमतो वचनं प्राह शङ्करः। एवकेतत्कपिश्रेष्ठ यदुक्तं पूजनं मम॥२९७॥
सारभूतमहं तुभ्यमुपदेक्ष्यामि साम्प्रतम्।
आराधनं यथा लिङ्गे विस्तरेण त्वयोदितम्॥२९८॥
मत्पादयुगलं प्राच्र्य पूजाफलमवाप्नुहि। ततः प्राह कपिश्रेष्ठो देवदेवमुमापतिम्॥२९९॥
गुरुणालिङ्गपूजैव नियता परिकल्पिता। तां करोमि पुरा देव पश्चात्त्वत्पादपूजनम्॥३००॥

हनुमान् का कथन सुनकर भगवान् शंकर ने कहा—"हे कपिप्रवर! तुमने जो मेरा पूजन कहा है, अब संक्षेप में तुमसे उसका सारमात्र कहता हूं। तुमने जो विस्तृत लिंगपूजा कहा है, उतना फललाभ तुम मात्र मेरे चरणपूजन से प्राप्त कर सकते हो। देवदेव महादेव का कथन सुनकर कपिप्रवर हनुमान् ने उत्तर दिया—"तथापि गुरु ने तो मुझे लिंगपूजा का ही नित्यत उपदेश दिया है। अतः तदनुसार लिंग पूजा करके तब आपका चरणार्चन करूंगा।"।।२९७-३००।।

इत्युत्त्वेशं नमस्कृत्य शिवलिङ्गार्चनाय च।
सरसस्तीरमागत्य कृत्वा सैकतवेदिकाम्॥३०१॥
तालपत्रैर्विरचितमासनं पर्यकल्पयत्।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च समाचम्य समाहितः॥३०२॥
भस्मस्नानमथो चक्रे पुनराचम्य वाग्यतः। देववेद्यामथो चक्रे पद्मं च मनोहरम्॥३०३॥

यह कहकर हनुमान् ने महेश्वर को प्रणाम किया और वे शिवार्चन हेतु सरस्वती नदी के तीर पर आये। उन्होंने वहां बालुका की वेदी का निर्माण करके तालपत्र का आसन बनाया। उन्होंने चरण तथा हाथ प्रक्षालन के उपरान्त समाहित होकर आचमन किया। तत्पश्चात् सावधान चित्त से भस्म का स्नान सम्पन्न किया। तदनन्तर मौनी रहकर पुनराचमन भी किया। उन्होंने इसके पश्चात् देववेदी पर सुन्दर मनोहर पद्म रचित किया।।३०१-३०३।।

अनन्तरं तालपत्रे पद्मासनगतः कपिः।
प्राणानायम्य संन्यस्य शुक्लध्यानसमन्वितः॥३०४॥

प्रणम्य गुरुमीशानं जपन्नासीदतः परम्। अथ देवार्चनं कर्त्तुं यत्रमास्थितवान्कपिः॥३०५॥
पलाशपत्रपुटकद्वयानीतजलं शुचि। शिरः कमण्डलुगतं निधायाग्निनिमन्त्रितम्॥३०६॥
आवाहनादि कृत्वाथ स्नानपर्यन्तमेव च। अथ स्नापयितुं देवमादाय करसम्पुटे॥३०७॥
कृत्वा निरीक्षणं देवपीठं नो दृष्ट्वान्कपिः।
लिङ्गमात्रं करगतं दृष्ट्वा भीतिसमन्वितः॥३०८॥

तदनन्तर वे ताल पत्रासन पर पद्मासनासीन हो गये। उन्होंने तब प्राणायाम करके ईश्वर शंभु के शुक्ल रूप का ध्यान किया। इसके पश्चात् उन्होंने गुरु ईशान को प्रणाम किया तथा मन्त्र जपोपरान्त देवार्चनार्थ परम प्रयत्नरत हो गये। उन्होंने पलाश पत्र के बने दो दोना में शुद्ध जल लाकर अभिमंत्रित किया तथा उसे अपने कमण्डलु में रखा तथा अपना शिर भी सिक्त किया। उन्होंने आवाहनादि करके स्नान पर्यन्त तक का कार्य कर लिया था, तब उन्होंने देवाधिदेव को स्नान कराने हेतु उन्हें अपने हाथ के संपुट में धारण किया तथापि उस समय उनको वहां देवपीठ दिखलाई ही नहीं पड़ा। उनको मात्र लिंग ही हाथ में दीखा! इससे हनुमान् भयभीत हो गये!।।३०४-३०८।।

इदमाह महायोगी किंवा पापं मया कृतम्। यदेतत्पीठरहितं शिवलिङ्गं करस्थितम्॥३०९॥
ममाद्य मरणं सिद्धं न पीठं चागमिष्यति। अथ रुद्रं जपिष्यामि तदायाति महेश्वरः॥३१०॥
इति निश्चित्य मनसा जजाप शतरुद्रियम्।
यदा तु न समायातो महेशोऽथ कपीश्वरः॥३११॥
रुद्रं न्यपातयद्भूमौ वीरभद्रः समागतः। किमर्थं रुद्यते भद्र रुदिते कारणं वद॥३१२॥
तच्छ्रुत्वा प्राह हनुमान्वीरभद्रं मनोगतम्। पीठहीनमिदं लिङ्गं पश्य मे पापसञ्चयम्॥३१३॥

वे महायोगी विचार करने लगे कि "मैंने कौन-सा पाप कर दिया जो पीठरहित लिंग हाथों में है? यदि पीठ नहीं मिला, तब तो आज मेरी मृत्यु निश्चित है। अब मैं रुद्र जप करता हूं। संभवतः पीठ प्राप्त हो जाये।" वे यह तय करके जपनिरत हो गये। वे मन ही मन शतरुद्रीय जपने लगे, तब भी पीठ नहीं लौटा, तब कपीश्वर ने लिंग भूमि पर रख दिया। इतने में वहां वीरभद्र आ गये। उन्होंने पूछा—"हे भद्र! क्यों रो रहे हो? कारण कहो?" यह सुनकर हनुमान् ने वीरभद्र से अपना मनोगत भाव कहा कि—"मैं महापातकी हूं। लिंग पीठ रहित है। मेरे पाप के कारण ऐसा हो गया!"।।३०९-३१३।।

वीरभद्रस्ततः प्राह श्रुत्वा कपिसमीरितम्।
यदि नायाति पीठं ते लिङ्गे मा साहसं कुरु॥३१४॥
दाहयिष्याम्यहं लोकान्यदि नायाति पीठकम्।
पश्य दर्शय मे लिङ्गं पीठ चात्रागतं न वा॥३१५॥
अथ दृष्ट्वा वीरभद्रो लिङ्गे पीठमनागतम्।
दग्धुकामोऽखिलाँल्लोकान्वीरभद्रः प्रतापवान्॥३१६॥

तब वीरभद्र ने हनुमान से कहा—''यदि पीठ नहीं आता, तब लिंगपूजन मत करो। ऐसा साहस मत करो। यदि पीठ नहीं आता है, तब मैं लोकों को दग्ध कर दूंगा। अब आप मुझे दिखायें तथा स्वयं देखें कि लिंग का पीठ आया है अथवा नहीं आया है।'' यह कहने के उपरान्त वीरभद्र ने लिंग की ओर देखा परन्तु तब तक पीठ नहीं आया था। यह देखकर प्रतापी वीरभद्र ने समस्त लोकों को दग्ध करने का मन बनाया।।३१४-३१६।।

अनलं भुवि चिक्षेप क्षणाद्दग्धा मही तदा।
अथ सप्ततलान्दग्ध्वा पुनरूर्द्ध्वमवर्तत॥३१७॥
पञ्चोर्ध्वलोकानदहज्जनलोकनिवासिनः। ललाटनेत्रसम्भूतं नखेनादाय चानलम्॥३१८॥
जम्बीरफलसङ्काशं कृत्वा करतले विभुः।
तपः सत्यं च सन्दग्धुमुद्यतोऽभून्मुनीश्वरः॥३१९॥
ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तपोलोकनिवासिनः। दग्धुकामं वीरभद्रं गौतमाश्रममागताः॥३२०॥

तब शक्तिशाली वीरभद्र ने अग्नि को पृथिवी पर निक्षिप्त किया। क्षणमात्र में ही पृथिवी दग्ध हो गई। वह सप्त पातालतलों को दग्ध करके वह अग्नि ऊर्ध्व लोकों को जलाने लगी। तब तक पांच ऊर्ध्वस्थलोक एवं जनलोक तक के निवासी दग्ध हो गये। यह जानकर वीरभद्र ने ललाटस्थ नेत्र से उद्‌भूत अग्नि को नखों से जम्बीर फल के आकार की बनाकर उससे तपोलोक, सत्यलोक दग्ध करने की इच्छा किया। (जम्बीर फल=जम्बीरी नीबू)। जब तपोलोक वासीगण ने यह जाना, तब वे सभी वीरभद्र की दग्ध करने वाली कामना जानकर गौतम के आश्रम में आ गये।।३१७-३२०।।

न दृष्ट्वा तत्र देवेशं शङ्करं स्वात्मनि स्थितम्। अस्तुवन्भक्तिसंयुक्ताः स्तोत्रैर्वेदसमुद्भवैः॥३२१॥

लेकिन ऋषिगण ने वहां आत्मस्थ महेश्वर को नहीं देखा। इसलिये वे भक्तियुक्त होकर वेदोक्त स्तोत्र से स्तव करने लगे।।३२१।।

ओं वेदवेद्याय देवाय तस्मै शुद्धप्रभाचिन्त्यरूपाय कस्मै।
ब्रह्माद्यधीशाय सृष्ट्ययादिकर्त्रे विष्णुप्रियायार्तिहन्त्रेऽन्तकर्त्रे॥३२२॥
नमस्तेऽखिलाधीश्वरायाम्बराय नमस्ते चरस्थावर व्यापकाय।
नमो वेदगुह्याय भक्तिप्रियाय नमः पाकभोक्त्रे मखेशाय तुभ्यम्॥३२३॥
नमस्ते शिवायादिदेवाय कुर्मो नमो व्यालयज्ञोपवीतप्रधर्त्रे।
नमस्ते सुराबिन्दुवर्षापनाय त्रयीमूर्तये कालकालाय नाथ॥३२४॥

ऋषिगण कहते हैं—आप वेदों से जानने योग्य देव हैं। आप शुद्ध प्रभा तुल्य अचिन्त्य रूप देवता हैं। आप ब्रह्मा के भी स्वामी, सृष्टि प्रभृति कर्त्ता, विष्णुप्रिय, आर्त्तिहारी, संसार का अन्त करने वाले अखिल के अधीश्वर दिगम्बर प्रभु हैं। आपको नमस्कार! आप स्थावर तथा चर, सब में व्याप्त, वेदों में अप्रमेय नाम से प्रसिद्ध भक्त प्रिय, हविर्पाक भोक्ता, यज्ञेश, शिव, आदिदेव, व्याल यज्ञोपवीती, चन्द्रधारी, कालमूर्त्ति कालनाथ हैं। आपको नमस्कार! आप सुराविन्दु वर्षा करने वाले त्रयी मूर्त्ति हैं। आपको नमस्कार!।।३२२-३२४।।

धरित्रीमरुद्व्योमतोयेन्दुवह्निप्रभामण्डलात्माष्टधामूर्तिधर्त्रे ।
शिवायाशिवघ्नायवीराय भूयात्सदा नः प्रसन्नो जगन्नाथकेज्यः॥३२५॥
कलानाथभालाय आत्मा महात्मा मनो ह्यग्रयानो निरूप्यो न वाग्भिः।
जगज्जाड्यविध्वंसनो भुक्तिमुक्तिप्रदः स्तात्प्रसन्नः सदा शुद्धकीर्तिः॥३२६॥
यतः सम्प्रसूतं जगज्जातमीशात्स्थितं येन रक्षावता भावितं च।
लयं यास्यते यत्र वाचां विदूरे स वै नः प्रसन्नोऽस्तु कालत्रयात्मा॥३२७॥
यदादिं च मध्यं तथान्तं न केऽपि विजानन्ति विज्ञा अपि स्वानुमानाः।
स वै सर्वमूर्तिः सदा नो विभूत्यै प्रसन्नोऽस्तु किं ज्ञापयामोऽत्र कृत्यम्॥३२८॥

पृथिवी, वायु, गगन, जल, चन्द्र, तेजः, प्रभा तथा मण्डलरूपी अष्टमूर्तिधारी, शिवरूप, अशिवनाशक, वीर! आपको नमस्कार! आप जगन्नाथ सदा प्रसन्न हों। ललाटेन्दुधारी, आत्म एवं महात्मरूप, मनःतीत, अनिर्वचनीय, जाड्य विध्वंसक, भुक्ति-मुक्तिदाता, विमलयश वाले देव! आपको नमस्कार! आप प्रसन्न हो जायें। जिनके द्वारा जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-संहार होता है, जो वाणी से अगोचर हैं, वे त्रिकालात्मा हम पर प्रसन्न हो जायें। आपके आदि-मध्य-अन्त का कोई ज्ञाता ही नहीं है। विज्ञजन भी केवल आपके सम्बन्ध में अनुमान ही लगा पाते हैं, ऐसे आप सर्वमूर्त्ति हम पर प्रसन्न होकर हमें ऐश्वर्यदान करें और अधिक हम आपसे क्या कहें?॥३२५-३२८॥

एतां स्तुतिमथाकर्ण्य भगनेत्रप्रदः शिवः।
विष्णुमाह मुनीनेतानानयस्व मदन्तिकम्॥३२९॥
अथ विष्णुः समागत्य तपोलोकनिवासिनः।
मुनीन्सांत्वय्य विश्वेशं दर्शयामास शङ्करम्॥३३०॥
तानाह शङ्करो वाक्यं किमर्थं यूयमागताः।
तपो लोकाद्भूमिलोकं मुनयो मुक्तिकिल्बिषाः॥३३१॥
तच्छ्रुत्वा शूलिनो वाक्यं प्रोचुस्ते मुनिसत्तमाः।
देव द्वादशलोकानां दृश्यन्ते भस्मराशयः॥३३२॥
स्थितमेकं वनमिदं पश्य तल्लोकसंक्षयम्।
तच्छ्रुत्वा गिरिशः प्राह तान्मुनीनूद्ध्र्वरेतसः॥३३३॥
भूर्लोकस्य तु सन्दाहे पातालानां तथैव च।
सन्देहो नास्ति मुनयः स्थितानां नो रहः स्थले॥३३४॥
ऊद्ध्र्वपञ्चकलोकानां दाहे सन्देह एव नः।
कथमङ्गारवृष्टिश्च कथं नो वा महाध्वनिः॥३३५॥

यह स्तुति सुनने के अनन्तर भग देव को नेत्र प्रदाता शिव ने विष्णु से कहा—"इन मुनिगण को मेरे

निकट लायें।" केशव ने तब तपोलोकवासी मुनिगण को आश्वस्त किया तथा उनको विश्वेश शंकर का दर्शन कराया। शंकर ने कहा—"हे निष्पाप मुनिगण! आप लोगों का तपोलोक से यहां आगमन का क्या कारण है?" यह सुनकर मुनियों ने कहा—"हे देव! द्वादशलोक भस्मीभूत हो गये। एक हमारा लोक शेष है। वह भी नष्टोन्मुख है।" तब गिरीशदेव ने उन ऊर्ध्वरिता मुनिगण से कहा—"भूलोक से पाताल तक तो दग्ध हो सकता है, यह निःसंदिग्ध है, तथापि ऊर्ध्वस्थ पांच लोकों के दग्ध होने में मुझे संदेह है। वहां महा अग्नि अंगारवर्षा तथा महाध्वनि कैसे होगी?।।३२९-३३५।।

तदाकर्ण्य विभोर्वाक्यं शङ्करस्य मुनीश्वराः।
प्रोचुः प्राञ्जलयो देवं ब्रह्मादिसुरसङ्गतम्॥३३६॥
भीतिरस्माकमधुना वर्तते वीरभद्रतः। स एवाङ्गारवृष्टिं च पिपासुरपिबद्विभोः॥३३७॥

प्रभु शंकर का कथन सुनकर ऊर्ध्वरिता मुनिगण ने करबद्ध होकर ब्रह्मा आदि तथा महादेव से कहा—"हे भगवान्! हमें तो भय वीरभद्र का है! इस अंगार वर्षा के कारण हे विभु! वे ही हैं।"।।३३६-३३७।।

देवोऽथ वीरमाहूय किं वीरेत्यब्रवीद्वचः।
वीरोऽप्याह कपेर्लिङ्गे पीठाभावादिदं कृतम्॥३३८॥

तब देवदेव शिव ने वीरभद्र को बुलाकर कहा—"क्या मुनिगण का कथन सही है?" तब वीरभद्र ने उत्तर दिया—"जी हां! हनुमान् को लिंगपीठ नहीं मिली। तभी मुझे यह कार्य करना पड़ा।"।।३३८।।

तच्छ्रुत्वाह शिवो देवो मुनींस्तान्भयविह्वलान्।
कपेश्चित्तं परिज्ञातुं मया कृतमिदं द्विजाः॥३३९॥
मा भैष्ट भवतां सौख्यं सदा सम्पादयाम्यहम्।
इत्युक्त्वा तु यथापूर्वं देवदेवः कृपानिधिः॥३४०॥
दग्धानप्यखिलाँल्लोकान्पूर्वतः शोभनान्विभुः।
कल्पयामास विश्वात्मा वीरभद्रमथाब्रवीत्॥३४१॥
साधु वत्स यतो भद्रं भक्तानामीहसे सदा।
ततस्ते विपुला कीर्तिर्लोके स्थास्यति शाश्वती॥३४२॥

वीरभद्र का कथन सुनकर प्रभु महेश्वर ने भयविह्वल मुनिगण से कहा—"हे द्विजो! मैंने कपि के चित्त का परीक्षण करने के लिये यह कार्य किया। आप सब भय न करें। मैं आप लोगों का सुख सदा बनाये रखूंगा। यह कहकर देवदेव कृपानिधि ने सभी दग्ध लोकों को भी यथापूर्व कर दिया। वे पुनः शोभायमान हो गये। तब विश्वात्मा शिव ने वीरभद्र से कहा—"हे वत्स! साधु! तुम सदा भक्तों की हित कामना करते हो। तुम्हारी विपुल शाश्वत कीर्त्ति लोकों में स्थित रहेगी।"।।३३९-३४२।।

इत्युक्त्वालिंग्य शिरसि समाघ्राय महेश्वरः। ताम्बूलं वीरभद्राय दत्तवान्प्रीतमानसः॥३४३॥
अथासौ हनुमानीशपूजनं कृतवान्यथा। समाप्तायां तु पूजायां हनुमान्प्रीतमानसः॥३४४॥
एकं वनचरं तत्र गन्धर्वं सविपञ्चकम्। ददर्श तमथाभ्याह वीणा मे दीयतामिति॥३४५॥

गन्धर्वोऽप्याह न मया त्याज्या वीणा प्रिया मम।
ममापीष्टेह गन्धर्व वीणेत्याह कपीश्वरः॥३४६॥
यदा न दत्ते गन्धर्वो वल्लकीं कपये प्रियाम्।
तदा मुष्टिप्रहारेण गन्धर्वः पातितः क्षितौ॥३४७॥

यह कहकर महेश्वर ने वीरभद्र का आलिंगन किया तथा उनका मस्तक सूंघा। प्रीतिपूर्वक वीरभद्र को एक ताम्बूल महेश्वर ने प्रदान किया। अन्ततः हनुमान ने भी शिवपूजन सम्पन्न कर दिया। पूजा के उपरान्त प्रसन्न मन हनुमान् ने एक गन्धर्व को वीणावादन करते देखकर उससे वीणा मांगा, तथापि गन्धर्व का कथन था कि "वीणा मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं इसका त्याग नहीं करूंगा। जब गन्धर्व ने वीणा हनुमान् को नहीं दिया, तब हनुमान ने मुष्ठिप्रहार से उसे निहत तथा भूपतित कर दिया।।३४३-३४७।।

वीणामादाय महतीं स्वरतन्तुसमन्विताम्।
हनुमान्वानरश्रेष्ठो गायन्प्रागाच्छिवान्तिकम्॥३४८॥

अब हनुमान् उस महती वीणा को लेकर गायन करते उस स्वरतन्तुयुक्त वीणा के साथ महेश्वर के पास आये। वहां वानर प्रवर हनुमान् शिव के समीप गायन करने लगे।।३४८।।

ततो गानेन महता प्रसाद्य जगदीश्वरम्। बृहतीकुसुमैः शुद्धैर्देवपादावपूजयत्॥३४९॥
ततः प्रसन्नो विश्वात्मा मुनीनां सन्निधौ तदा।
दैत्यानां देवतानां च नृपाणां शङ्करोऽपि च॥३५०॥
तस्मै वरमथ प्रादात्कल्पान्तं जीवितं पुनः।
समुद्रलङ्घने शक्तिं शास्त्रज्ञत्वं बलोन्नतिम्॥३५१॥
एवं दत्तं वरं प्राप्य महेशेन महात्मना। प्रत्यक्षं मम विप्रेन्द्र हनुमान्हर्षमागतः॥३५२॥

उन्होंने वहां महान् संगीत तथा गायन से जगदीश्वर को प्रसन्न किया तथा शिवचरणों का पूजन बृहती पुष्पों से किया। इस पर प्रसन्न होकर शिवात्मा शंकर ने मुनिगण, दैत्य, देवगण तथा राजाओं के सामने हनुमान् को वरदान दिया। "तुम कल्पान्त तक जीवित रहोगे। तुमको समुद्रलंघन क्षमता, शक्ति, शास्त्रज्ञत्व तथा नित्य बल की उन्नति प्राप्त होगी।" हे विप्रवर! महात्मना महेश का यह वर पाकर हनुमान् मेरे सामने ही हर्षित हो उठे।।३४९-३५२।।

समस्तभूषासुविभूषिताङ्गः स्वदीप्तिमन्दीकृतदेवदीप्तिः।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः शिवांशः सम्भावयामास समस्तदेवान्॥३५३॥

समस्त अंगों में आभूषण से विभूषित होकर अपनी दीप्ति से देवताओं की दीप्ति को भी मन्द करने वाले, प्रसन्न मूर्त्ति तरुण शिवांश हनुमान समस्त देवताओं के समक्ष अतीव सुशोभित हो गये।।३५३।।

आज्ञप्तो हनुमांस्तत्र मत्सेवायै मुनीश्वरः। महेशेनाहमप्येनं शशिमौलिमवैमि च॥३५४॥
किं बहूक्तेन विप्रर्षे यादृशो वानरेश्वरः।
बुद्धौ न्याये च वै धैर्ये तादृगन्योऽस्ति न क्वचित्॥३५५॥

इति ते सर्वमाख्यातं चरितं पापनाशनम्।
पठतां शृण्वतां चैव गच्छ विप्र यथासुखम्॥३५६॥

(श्रीराम कहते हैं)—हे विप्रवर! एवंविध महात्मा महेश से वर मिलने के कारण हनुमान मेरे सामने ही आनन्दित हो उठे थे। शंकर ने उनको मेरी सेवार्थ आज्ञा दिया। हे मुनीश्वर! तभी से मैं उनको शिववत् ही देखता हूं। हे विप्रर्षि! अधिक क्या कहा जाये! बुद्धि, न्याय में तथा धैर्य धारण में हनुमान् की तुलना में अन्य कोई नहीं है। इस हनुमत् चरित का पाठ करने तथा श्रवण करने से पाप क्षयीभूत होते हैं। मैंने इसे कह दिया। अब आप सुख के साथ जायें।।३५४-३५६।।

तच्छ्रुत्वा रामभद्रस्य रघुनाथस्य धीमतः।
वचनं दक्षिणीकृत्य नत्वा चागां यथागतः॥३५७॥
एतत्तेऽभिहितं विप्र चरितं च हनूमतः। सुखदं मोक्षदं सारं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥३५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे हनुमच्चरित्रं नाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

हे विप्रप्रवर नारद! श्रीमान् रघुकुल तिलक रामचन्द्र का यह उपदेश सुनकर मैंने उनकी प्रदक्षिणा किया तथा उनको प्रणामोपरान्त मैंने वहां से प्रस्थान कर दिया। हे विप्र! नारद! मैंने आपसे यह सुखकर एवं मोक्षप्रद चरित्र कह दिया। अब आपको और क्या श्रवण करना है?।।३५७-३५८।।

।।७९वां अध्याय समाप्त।।

अथ अशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण सम्बन्धित मन्त्र की साधना का वर्णन

सूत उवाच

श्रुत्वा तु नारदो विप्राः कुमारवचनं मुनिः। यत्पप्रच्छ पुनस्तच्च युष्मभ्यं प्रवदाम्यहम्॥१॥
कार्तवीर्यस्य कवचं तथा हनुमतोऽपि च। चरितं च महत्पुण्यं श्रुत्वा भूयोऽब्रवीद्वचः॥२॥

सूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! सनत्कुमार का वाक्य सुनकर नारद ने उनसे जो कुछ प्रश्न किया था, वह मैं आप लोगों से कहता हूं। कार्त्तवीर्य कवच तथा हनुमत्कवच और हनुमान् के पुण्यप्रद चरित्र का श्रवण करके नारद ने कहा—।।१-२।।

नारद उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ त्वयातिकरुणात्मना। श्रावितं चरितं पुण्यं शिवस्य च हनूमतः॥३॥

तन्त्रस्यास्य क्रमप्राप्तं कथनीयं च यत्त्वया। तत्प्रब्रूहि महाभाग किं पृष्ट्वान्यद्विदांवर॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिप्रवर! आप अतीव करुणात्मा हैं। मैंने आपसे शिव तथा हनुमान् का चरित्र श्रवण किया। हे विद्वानों में श्रेष्ठ! अब तक आपने तन्त्र क्रम से ही सब कहा था। अब वही आगे कहिये। हे महाभाग! अब अन्य कुछ क्या पूछूं?।।३-४।।

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये कृष्णमन्त्रान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदान्।
ब्रह्माद्या यान्समाराध्य सृष्ट्यादिकरणे क्षमाः॥५॥

कामः कृष्णपदं ङेन्तं गोविन्दं च तथाविधम्। गोपीजनपदं पश्चाद्वल्लभायाग्निसुन्दरी॥६॥

अष्टादशार्णो मन्त्रोऽयं दुर्गाधिष्ठातृदैवतः। नारदोऽस्य मुनिच्छन्दो गायत्री देवता पुनः॥७॥

श्रीकृष्णः परमात्मा च कामो बीजं प्रकीर्तितम्।
स्वाहा शक्तिर्नियोगस्तु चतुर्वर्गप्रसिद्धये॥८॥

ऋषिं शिरसि वक्त्रे तु छन्दश्च हृदि देवताम्।
गुह्ये बीजं पदोः शक्तिं न्यसेत्साधकसत्तमः॥९॥

युगवेदाब्धिनिगमैर्द्वाभ्यां वर्णैर्मनूद्भवैः। पञ्चाङ्गानि प्रविन्यस्य तत्त्वन्यासं समाचरेत्॥१०॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं भोग तथा मोक्षदायक कृष्ण मन्त्रों को कहता हूं। उनकी आराधना ब्रह्मादि करके सृजनादि कार्य हेतु सक्षम हो गये। उनका अष्टादशाक्षर मन्त्र है "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।" इसकी अधिष्ठात्री देवता हैं दुर्गा। इसके ऋषि हैं नारद। छन्दः है गायत्री, देवता हैं श्रीकृष्ण परमात्मा, बीज है क्लीं, शक्ति है स्वाहा। इसका प्रयोग चतुर्वर्ग सिद्धि हेतु किया जाता है। उत्तम साधक को चाहिये कि वह शिर में ऋषि का, मुख में छन्दः का, हृदय में देवता का, गुह्य में बीज क्लीं का, पैरों में शक्ति न्यास करे। मन्त्र के अष्टादश अक्षर द्वारा पंचांगन्यास एवं तत्वन्यास सम्पन्न करे।।५-१०।।

हृदन्तिमादिकान्तार्णमपराद्यानि चात्मने।
मत्यन्तानि च तत्त्वानि जीवाद्यानि न्यसेत्क्रमात्॥११॥

जीवं प्राणं मतिमहङ्कारं मनस्तथैव च। शब्दं स्पर्शं रूपरसौ गन्धं श्रोत्रं त्वचं तथा॥१२॥

नेत्रं च रसनां घ्राणं वाचं पाणिं पदेन्द्रियम्।
पायुं शिश्नमथाकाशं वायुं वह्निं जलं महीम्॥१३॥

मन्त्र के ४, ४, ७, १ तथा २ वर्ण से पंचांगन्यास करके तब तत्वन्यास करे। जीव, प्राण, मति, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका, वाणी, बाहु, पैर, पायु, शिश्न, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी का न्यास करे।।११-१३।।

जीवं प्राणं च सर्वाङ्गे मत्यादित्रितयं हृदि।
मुर्द्धास्यहृद्गुह्यपादेष्वथ शब्दादिकान्न्यसेत्॥१४॥

कर्णादिस्वस्वस्थानेषु श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि च।
तथा वागादीन्द्रियाणि स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत्॥१५॥
मूर्द्धास्यहृद्गुपादेष्वाकाशादीन्न्यसेत्ततः। हृत्पुण्डरीकमर्केन्दुवह्निबिम्बान्यनुक्रमात्॥१६॥
द्विषट्ह्यष्टदशकलाव्याप्तानि च तथा मतः।
भूताष्टाङ्गाक्षिपदगैर्वर्णैः प्राग्विन्न्यसेद्धृदि॥१७॥
अथाकाशदिस्थलेषु वासुदेवादिकांस्ततः। वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः॥१८॥

सम्पूर्ण अंग में जीव-प्राण का, हृदय में मति, अहंकार तथा मन का, मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य एवं चरण में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का न्यास करे। कर्णादि का अपने-अपने स्थान में श्रोत्र आदि इन्द्रिय तथा वाक् आदि इन्द्रियों का न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् शिर, मुख, गुह्य तथा चरण में पुनः आकाशादि का न्यास करे। तत्पश्चात् हृदय कमल में द्वादशकलात्मक सूर्यमण्डल का, षोडश-कलात्मक चन्द्रमण्डल का, दस कलात्मक अग्निमण्डल का न्यास करे। यथा—

(१) क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय अं द्वादशकलाव्याप्त सूर्यमण्डलात्मने नमः।

(२) गोपीजन वल्लभाय ओं षोडश कला व्याप्त चन्द्रमण्डलात्मने नमः स्वाहा।

(३) मं दशकल्प व्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः—हृत्पुण्डरीके।

तदनन्तर आकाशादि स्थान में (शिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरण में) परमेष्ठि सहित वासुदेव आदि का क्रमशः न्यास होगा। वासुदेवादि हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध।।१४-१८।।

नारायणश्च क्रमशः परमेष्ठ्यादिभिर्युताः। परमेष्ठिपुमाञ्छौचविश्वनिवृत्तिसर्वकाः॥१९॥
श्वेतानिलाग्न्यम्बुभूमिवर्णैः प्राग्वत्प्रविन्यसेत्।
स्वबीजाद्यं कोपतत्त्वं नृसिंहं व्यापकेन च॥२०॥
प्राग्वद्विन्यस्य सर्वाङ्गे तत्त्वन्यासोऽयमीरितः।
मकाराद्या आद्यवर्णाः सर्वे स्युश्चन्द्रभूषिताः॥२१॥
वासुदेवादिका ज्ञेया ङेन्ताः साधकसत्तमैः।
प्राणायामं ततः कृत्वा पूरकुम्भकरेचकैः॥२२॥
चतुर्भिः षड्भिर्द्वाभ्यां च मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
केचिदाहुरिहाचार्याः प्राणायामोत्तरं पुनः॥२३॥

नारायण परमेष्ठी प्रभृति से युक्त होकर परमेष्ठी, पुमान् शौच, विश्य, निवृत्ति तथा सर्वक कहे गये हैं। परमेष्ठी-श्वेतवर्ण, पुमान् शौच-अनिलवर्ण, विश्य-अग्निवर्ण, निवृत्ति-जलवर्ण तथा सर्वक-भूमिवर्ण हैं। इन सबका न्यास एवंविध करे—

श्वेतवर्ण परमेष्ठि पुरुषात्मने वासुदेवाय नमः — मूर्द्धनि।
अग्निवर्ण शौचात्मने संकर्षणाय नमः — मुखे।
अग्निवर्ण विश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः — हृदये।

अम्बुवर्ण निवृत्यात्मने अनिरुद्धाय नमः — गुह्ये।
भूमिवर्णात्मने नारायणाय (सर्वकाय) नमः — पादयो।
ॐ क्षौं कोपतत्वात्मने नृसिंहाय नमः — सर्वाङ्गे।

एवंविध सर्वांग में न्यास करे। यही तत्वन्यास है। वासुदेव आदि नाम के चतुर्थी विभक्त्यन्तरूप का ही न्यास में प्रयोग हो। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक मूलमन्त्र का चार पाठ करके पूरक करे, ६ बार मूलमन्त्र पढ़कर कुंभक करे, दो बार पढ़कर रेचक करे। कोई आचार्य कहते हैं कि प्राणायामोपरान्त।।१९-२३।।

पीठन्यासं विधायाथ न्यासानन्यान्समाचरेत्।
दशतत्त्वादि विन्यस्य वक्ष्यमाणविधानतः॥२४॥

पीठन्यास करना चाहिये। तब अन्य न्यास को करना उचित है। अब वह विधान कहते हैं, जिसके अनुसार दस तत्वादि के न्यास इस विधि से होगा।।२४।।

मूर्तिपञ्जरनामानं पूर्वोक्तं विन्यसेद्बुधः। सर्वाङ्गे व्यापकं कृत्वा किरीटमनुना सुधीः॥२५॥
ततस्तारपुटं मन्त्रं व्यापय्य करयोस्त्रिशः। पञ्चाङ्गुलीषु करयोः पञ्चाङ्गं विन्यसेत्ततः॥२६॥
त्रिशो मूलेन मूर्द्धादिपादान्तं व्यापकं न्यसेत्।
सकृद्व्यापय्य तारेण मन्त्रन्यासं ततश्चरेत्॥२७॥

उसके पश्चात् ही मूर्त्तिपंजर न्यास किया जाये। तत्पश्चात् किरीट मन्त्र द्वारा सभी अंगों में व्यापक न्यास सुधी साधक करे। प्रणव पुटित मन्त्र द्वारा ३ बार दोनों हाथ की सभी उंगलियों में न्यास करे। तदनन्तर तीन बार पंचांगन्यास किया जाना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्र द्वारा मस्तक से चरण पर्यन्त व्यापक न्यास करना होगा। तदनन्तर एक बार प्रणव से मन्त्र न्यास करे।।२५-२७।।

शिरोललाटे भ्रूमध्ये कर्णयोश्चक्षुषोस्तथा। घ्राणयोर्वदने कण्ठे हृदि नाभौ तथा पुनः॥२८॥
कट्यां लिङ्गे जानुनोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात्।
हृदन्तान्मन्त्रवर्णांश्च ततो मूर्ध्नि ध्रुवं न्यसेत्॥२९॥
पुनर्नयनयोरास्ये हृदि गुह्ये च पादयोः। विन्यसेद्धृदयान्तानि मनोः पञ्चपदानि च॥३०॥
भूयो मुन्यादिकं न्यस्य पञ्चाङ्गं पूर्ववन्न्यसेत्।
अथ वक्ष्ये महागुह्यं सर्वन्यासोत्तमोत्तमम्॥३१॥

तत्पश्चात् शिर, ललाट, भ्रूमध्य, कर्ण, चक्षु, घ्राण, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, कटि, लिंग जानु तथा पैरों में क्रमशः न्यास करे। पुनः नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणद्वय में मन्त्र के पंचपद के अन्त में नमः लगाकर न्यास सम्पन्न करे। यथा—

क्लीं नमः — नेत्रद्वये,
कृष्णाय नमः — मुखे,
गोविन्दाय नमः — हृदये,
गोपीजन वल्लभाय नमः — गुह्ये,
स्वाहा नमः — पादयो।

तदनन्तर ऋषि प्रभृति के न्यासोपरान्त पूर्ववत् पंचांगन्यास करना चाहिये। अब मैं सभी न्यासों से अत्युत्तम महागुह्य न्यास कहता हूं।।२८-३१।।

यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरः स्यान्न संशयः।।३२।।
यस्याराधनतो मन्त्री कृष्णसान्निध्यतां व्रजेत्।
ताराद्याभिर्व्याहृतिभिः सम्पुटं विन्यसेन्मनुम्।।३३।।
मन्त्रेण पुटितांश्चापि प्रणवाद्यांस्ततो न्यसेत्।
गायत्र्या पुटितं मन्त्रं विन्यसेन्मातृकास्थले।।३४।।
मन्त्रेण पुटितां तां च गायत्रीं विन्यसेत्क्रमात्।
मातृकापुटितं मूलं विन्यसेत्साधकोत्तमः।।३५।।
मूलेन पुटितां चैव मातृकां विन्यसेत्क्रमात्।
तृचं न मातृकावर्णान्पूर्वं तत्तस्थले सुधीः।।३६।।
विन्यसेन्न्यासषट्कं च षोढा न्यासोऽयमीरितः।
अनेन न्यासवर्येण साक्षात्कृष्णसमो भवेत्।।३७।।

जिसे जानने मात्र से व्यक्ति निःसंदिग्ध रूप से जीवन्मुक्त हो जाता है। वह अणिमादि अष्टसिद्धिसमूह का ईश्वर बन जाता है। इसमें संशय नहीं है। इसकी आराधना करने वाला मन्त्रज्ञ साधक कृष्ण का सान्निध्य लाभ करता है। प्रणवादि व्याहृति से सम्पुटित मन्त्र का तथा मन्त्र से पुटित प्रणव का तथा मन्त्र से संपुटित गायत्री का मातृका स्थल पर विन्यास करे। मन्त्र से पुटिता गायत्री को क्रमपूर्वक न्यस्त करे। साधक श्रेष्ठ व्यक्ति मातृका से पुटित मूलमन्त्र का तथा मूलमन्त्रपुटित मातृका का क्रमशः न्यास करे। सुधीसाधक उन स्थानों में मातृका वर्ण का न्यास करके पूर्वोक्त न्यास करे। इस प्रकार छः प्रकार से न्यास करना चाहिये। यही षोढ़ान्यास है। जो साधक यह उत्तम न्यास करता है, वह कृष्णवत् हो जाता है।।३२-३७।।

न्यासेन पुटितं दृष्ट्वा सिद्धगन्धर्वकिन्नराः।
देवा अपि नमन्त्यसेनं किंपुनर्मानवा भुवि।।३८।।
सुदर्शनस्य मन्त्रेण कुर्याद्दिग्बन्धनं ततः। देवं ध्यायन्स्वहृदये सर्वाभीष्टप्रदायकम्।।३९।।

इस न्यासयुक्त व्यक्ति को सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, देवता तक प्रणाम करते हैं! मनुष्यों की तो बात क्या? तदनन्तर "ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्।।" मन्त्र से दिग्बन्धन करे तथा हृदय में सर्वकामफलप्रद देवता का ध्यान करे।।३८-३९।।

उत्फुल्लकुसुमव्रातनम्रशाखैर्वरद्रुमैः। सस्मेयमञ्जरीवृन्दवल्लरीवेष्टितैः शुभैः।।४०।।
गलत्परागधूलीभिः सुरभीकृतदिङ्मुखः। स्मरेच्छिशिरितं वृन्दावनं मन्त्री समाहितः।।४१।।
उन्मीलन्नवकञ्जालिविगलन्मधुसञ्चयैः। लुब्धान्तःकरणैर्गुञ्जद्द्विरेफपटलैः शुभम्।।४२।।

ध्यान-समाहित चित्त साधक चिन्तन करे कि वृन्दावन शिशिर ऋतु में शोभायमान है। वहां खिले पुष्पों के भार से वृक्ष शाखायें झुकी हुई हैं। सभी वृक्ष लताओं से लिपटे हैं। वे वृक्ष अत्यन्त सुन्दर मंजरियों से भरे हैं। वायु पुष्प पराग को उड़ा रही है तथा दशों दिशाओं को सुरभित किये जा रही है। विकसित कमल पुष्पों पर मधुपानरत मत्तभ्रमर गुंजार कर रहे हैं।।४०-४२।।

मरालपरभृत्कीरकपोतनिकरैर्मुहुः। मुखरीकृतमानृत्यन्मायूरकुलमञ्जुलम्।।४३।।
कालिन्द्या लोलकल्लोलविप्रुषैर्मदवाहिभिः। उन्निद्राम्बुरुहव्रातरजोभिर्धूसरैः शिवैः।।४४।।
प्रदीपितस्मरैर्गोष्ठसुन्दरीमृदुवाससाम्। विलोलनपरैः संसेवितं वा तैर्निरन्तरम्।।४५।।
स्मरेत्तदन्ते गीर्वाणभूरुहं सुमनोहरम्। तदधः स्वर्णवेद्यां च रत्पीठमनुत्तमम्।।४६।।

मराल, कोकिल, शुक, कपोत पक्षियों का समूह वहां वातावरण को मुखर करता रहता है। मयूर वहां सुन्दर नृत्य करते रहते हैं। कालिन्दी की लोल-कल्लोलमयी तरंगों से उत्थित जलकण के पड़ने के कारण कमल विकसित हो रहे हैं। इसलिये वहां कमल पराग से धूसर वर्ण हो गया, सुखदायक तथा ब्रज वधुओं के महीन वस्त्रों को विलोलित करती वायु वहां निरन्तर मन्द गति से प्रवहमान है। वहां वृन्दावन में एक कल्प वृक्ष है। उसके नीचे स्वर्ण वेदी पर उत्तम स्वर्ण वेदी है।।४३-४६।।

रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरुणं कमलं स्मरेत्। अष्टपत्रं च तन्मध्ये मुकुन्दं संस्मरेत्स्थितम्।।४७।।
फुल्लेन्दीवरकान्तं च केकिबर्हावतन्सकम्। पीतांशुकं चन्द्रमुखं सरसीरुहनेत्रकम्।।४८।।
कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्कं सुभूषितम्।
व्रजस्त्रीनेत्रकमलाभ्यर्चितं गोगणावृतम्।।४९।।
गोपवृन्दयुतं वंशीं वादयन्तं स्मरेत्सुधीः। एवं ध्यात्वा जपेदादावयुतद्वितयं बुधः।।५०।।
जुहुयादरुणाम्भोजैस्तद्दशांशं समाहितः। जपेत्पञ्चान्मन्त्रसिद्ध्यै भूतलक्षं समाहितः।।५१।।
अरुणैः कमलैर्हुत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः।।५२।।

इस पीठ पर स्थित अरुणवर्ण के कमल का ध्यान करे। वहां उस अष्टपत्र कमल के मध्य में मुकुन्ददेव विराजित हैं, यह चिन्तन करना चाहिये। वे खिले नीलकमल की कान्ति वाले तथा मयूर पुच्छरूपी आभूषण को शिर पर धारण करने वाले हैं। वे पीताम्बधारी हैं। उनका मुख चन्द्रमा के समान है तथा नेत्र कमल जैसे हैं। उनके शरीर के अंग कौस्तुभ की छटा से उद्भासित हैं। वे श्रीवत्सचिह्न से भूषित हैं। वे गोगण (गौओं) से आवृत हैं। व्रजनारीगण के नेत्रकमल से वे सतत् अर्चित रहते हैं। वे गौ तथा गोपियों से घिरे रहकर वंशीवादन कर रहे हैं। इस प्रकार ध्यान करते हुये बुद्धिमान् साधक बीस हजार जप करे। तदनन्तर दो हजार होम समाहित होकर रक्त कमलों से करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र सिद्धि हेतु पांच लाख जप समाहित चित्त से करे (तदनन्तर ५०००० होम करना चाहिये)। जो लाल कमल से होम करता है, वह सर्वसिद्धि लाभ करता है। तत्पश्चात् उक्त वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति प्रतिष्ठा करे।।४७-५२।।

तस्यामावाह्य चाभ्यर्चेद्गोपीजनमनोहरम्। मुखे वेणुं समभ्यर्च्य वनमालां च कौस्तुभम्।।५३।।

श्रीवत्सं च हृदि प्राच्र्य ततः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।
ततः श्वेतां च तुलसीं शुक्लचन्दनपङ्किलाम्॥५४॥
रक्तां च तुलसीं रक्तचन्दनाक्तां क्रमात्सुधीः। अर्पयेद्दक्षिणे वामभागे ध्यायन्सुरेश्वरम्॥५५॥
हयमारद्वयेनैव हृदि मूर्ध्नि तथा पुनः। पद्मद्वयं च विधिवत्ततः शीर्षे समर्पयेत्॥५६॥

उसमें श्रीकृष्ण का आवाहन एवं पूजन करे। उन गोपीजन मनोहर की पूजा के उपरान्त उनके मुखस्थ वेणु, हृदयस्थित श्रीवत्सचिह्न तथा उनकी वनमाला एवं कौस्तुभ मणि के पूजनोपरान्त पुष्पांजलि प्रदान करे। तदनन्तर शुक्ल चन्दनलिप्त तुलसी, रक्तचन्दन युता रक्ततुलसी (लाल चन्दन लिप्त होने से रक्तवर्ण लगे ऐसी तुलसी), श्रीकृष्ण के दाहिने तथा वाम भाग में अर्पित करे। उन सुरेश्वर के हृदय तथा मस्तक पर एक-एक रक्त कनेर पुष्प चढ़ाये। तत्पश्चात् दो कमल सविधि भगवान् के शिर पर चढ़ाना चाहिये।।५३-५६।।

तुलसीद्वयमम्भोजद्वयमश्वारियुग्मकम्। ततः सर्वाणि पुष्पाणि सर्वाङ्गेषु समर्पयेत्॥५७॥
दक्षिणे वासुदेवाख्यं स्वच्छं चैतन्यमव्ययम्।
वामे च रुक्मिध्णीं तद्वन्नित्यां रक्तां रजोगुणाम्॥५८॥
एवं सम्पूज्य गोपालं कुर्यादावरणार्चनम्।
यजेद्दामसुदामौ च वसुदामं च किङ्किणीम्॥५९॥
पूर्वाद्याशासु दामाद्या ङेनमोन्तधुवादिकाः।
अग्निनैर्ऋतिवाय्वीशकोणेषु हृदयादिकान्॥६०॥

तत्पश्चात् चरणों पर दो-दो तुलसी-पत्र, दो पद्म तथा दो अश्वारि (कनेर) अर्पित करे। तदनन्तर सभी प्रकार के विहित पुष्प सभी अंगों पर समर्पित करे। दक्षिण भाग में वासुदेव नामक स्वच्छ चैतन्य अव्यय देव की तथा वाम भाग में नित्या रक्तवर्णवाली रजोगुणान्वित रुक्मिणी देवी की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार से गोपालार्चनोपरान्त आवरण (गणों) की पूजा करनी होगी। पूर्वादिदिक् में पूजा करे पूर्व में दाम की, दक्षिण में सुदाम की, पश्चिम में वसुदाम की तथा उत्तर में किंकिणी की पूजा करके अग्नि, नैर्ऋत्, वायु एवं ईशान कोण में हृदयादि की पूजा करे। चतुर्थ विभक्तियुक्त नाम तथा अन्त में नमः लगाकर पूजा करे।।५७-६०।।

दिक्ष्वस्त्राणि समभ्यर्च्य पत्रेषु महिषीर्यजेत्।
रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजित्यभिधा पुनः॥६१॥
सुविन्दा मित्रविन्दा च लक्ष्मणा चर्क्षजा ततः। सुशीला च लसद्रम्यचित्रिताम्बरभूषणा॥६२॥

दिशाओं में इनकी उपर्चना करके पत्रों पर महिषी (रानियों) की पूजा की जाये। रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, सुविन्दा, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, जाम्बवती तथा सुशीला—ये राजमहिषी हैं। इनके अंग रम्य चित्र-विचित्र वस्त्राभूषण से सज्जित हैं।।६१-६२।।

ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवञ्च देवकीम्। नन्दगोपं यशोदां च बलभद्रं सुभद्रिकाम्॥६३॥
गोपान् गोपीश्च गोविन्द विलीनमतिलोचनान्। ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपाण्डुरौ॥६४॥
दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषणे मातरौ पुनः। धारयन्त्यौ चरुं चैव पायसीं पूर्णपात्रिकाम्॥६५॥

इनके पूजनोपरान्त दलाग्र में वसुदेव, देवकी, नन्दगोप, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा, गोविन्द में लीन नेत्र तथा मति वाले गोप-गोपियों, ज्ञानमुद्रा, अभयमुद्राधारी पितृगण (पिताओं की) जो पीत एवं पाण्डुर वर्ण वाले हैं, उनकी पूजा करे। तदनन्तर दलाग्र में ही दिव्यमाला वस्त्र लेप भूषण सज्जित माताओं की पुनः पूजा करे। वे चरु तथा पायस भरे पात्रों को धारण करने वाली हैं।।६३-६५।।

अरुणश्यामले हारमणिकुण्डलमण्डिते। बलः शङ्खेन्दुधवलो मुशलं लाङ्गलं दधत्।।६६।।
हालालोलो नीलवासा हलवानेककुण्डलः। कला या श्यामला भद्रा सुभद्रा भद्रभूषणा।।६७।।
वराभययुता पीतवसना रूढयौवना। वेणुवीणाहेमयष्टिशङ्खशृङ्गादिपाणयः।।६८।।
गोपा गोप्यश्च विविधप्राभृतान्नकराम्बुजाः। मन्दारादींश्च तद्बाह्ये पूजयेत्कल्पपादपान्।।६९।।

वे मातायें अरुण-श्यामल वर्ण हैं। हार-मणि-कुण्डल मण्डित, शंख तथा चन्द्र के समान धवलवर्ण मूसल तथा हलधारी, नीलवस्त्र तथा कुण्डल धारण करने वाले बलभद्र की, श्यामला, पूर्णयौवन सम्पन्ना पीतवसना, उत्तम सुन्दर आभूषणों से भूषिता, वरमुद्रा एवं अभयमुद्राधारिणी सुभद्रा की पूजा करके नाना उपहार एवं अन्न, वेणु, वीणा, स्वर्ण की छड़ी, शंख, शृंग प्रभृति वाद्य हाथ में लिये गोप-गोपीगण की पूजा करके उसके बाहर मंदार आदि कल्पवृक्षों की पूजा करे।।६६-६९।।

मन्दराश्च तथा सन्तानको वै पारिजातकः। कल्पद्रुमस्ततः पश्चाद्धरिचन्दनसंज्ञकः।।७०।।

मन्दार, सन्तानक, पारिजातक, कल्पद्रुम तथा हरिचन्दन ही कल्पवृक्ष कहे गये हैं।।७०।।

मध्ये दिक्षु समभ्यर्च्य बहिः शक्रादिकान्यजेत्।
तदस्त्राणि च सम्पूज्य यजेत्कृष्णाष्टकेन च।।७१।।

कृष्णं च वासुदेवं च देवकीनन्दनं तथा। नारायणं यदुश्रेष्ठं वार्ष्णेयं धर्मपालकम्।।७२।।
असुराक्रान्तभूभारहारिणं पूजयेत्ततः। एभिरावरणैः पूजा कर्तव्यासुरवैरिणः।।७३।।
संसारसागरोत्तीर्त्यै सर्वकामाप्तये बुधैः। एवं पूजादिभिः सिद्धो भवेद्वैश्रवणो यमः।।७४।।

मध्य में इनकी पूजा करके उसके बाहर शक्रादि देवता तथा उनके अस्त्रों के पूजन के अनन्तर कृष्णाष्टक पूजन करे अर्थात् कृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नारायण, यदुःश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, धर्मपालक तथा असुराक्रान्तभूभारहारी की पूजा करे (यही कृष्णाष्टक है)। असुर वैरी के इन आवरणों की पूजा कर्त्तव्य है। संसार-सागर पार करने के लिये तथा सर्वकामनालाभार्थ बुधजन इस पूजा से सिद्ध होकर वैश्रवण (कुबेर) तथा धर्मराज के समान हो जाते हैं।।७१-७४।।

त्रिकालपूजनं चास्य वक्ष्ये सर्वार्थसिद्धिदम्। श्रीमदुद्यानसंवीतिहेमभूरत्नमण्डपे।।७५।।
लसत्कल्पद्रुमाधस्थरत्नाब्जपीठसंस्थितम्। सुत्रामरत्नसङ्काशं गुडस्निग्धालकं शिशुम्।।७६।।
चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलं सुघोणधरमुद्धुतस्मितमुखाम्बुजं सुन्दरम्।
स्फुरद्विमलरत्नयुक्कनकसूत्रनद्धं दधत्सुवर्णपरिमण्डितं सुभगपौण्डरीकं नखम्।।७७।।

समुद्धूसरोरस्थले धेनुधूल्या सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम्।
कटीलस्थले चारुजङ्घान्तयुग्मं पिनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना।।७८।।

अब मैं सर्वकामना सिद्ध करने वाले त्रिकाल पूजन को कहता हूं। साधक ध्यान करे कि मनोहर उद्यानस्थ स्वर्ण तथा रत्न मण्डप पर कल्पवृक्ष शोभायमान है। उसके नीचे कमलासनासीन शिशु विराजमान हैं। उसका देहवर्ण मरकतमणिवत् तथा अलकें स्निग्ध एवं घुंघराली हैं। उसके कपोल हिलते हुये स्वर्ण कुण्डलों से शोभायमान हैं। मनोहर नासिका अधर तथा मन्दहास्य से युक्त उस शिशु को मुखकमल अत्यन्त मनोहर है। उसने दीप्तछटा वाले विमल रत्न एवं स्वर्ण करधनी धारण किया है। उनके नख कमल वर्ण वाले अंग सुपुष्ट हैं। गौओं के खुर से उड़ती धूल के कारण उनके उरुधूल से भर गये हैं। देह की आभा स्वर्ण जैसी है। कमर में बंधी किंकिणियां शब्दायमान हो रही हैं।।७५-७८।।

हसन्तं हसद्बन्धुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या।
दधानं करे दक्षिण पायसान्न सुहैंयगवीनं तथा वामहस्ते।।७९।।
लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्ये स्थितं वासवाद्यैः सुरैरर्चितांघ्रिम्।
महीभारभूतामरारातियूथांस्ततः पूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम्।।८०।।

उनके जंघाद्वय अतीव मनोरम हैं। करकमल एवं पैर के तलवों की प्रभा बन्धुजीव के फूलों की तरह है। उन्होंने दाहिने हाथ में पायस तथा वाम हाथ में नवनीत पात्र लिया है। वे गोपगोपी तथा गौवों के वृन्द के बीच स्थित हैं। उनके चरण इन्द्रादि देवगण वन्दित हैं। वे पृथिवी के भारभूत दैत्य यूथ एवं आततायी लोगों और पूतना आदि के वधार्थ प्रवृत्त हैं।।७९-८०।।

एवं ध्यात्वार्च्चयेद्देवं पूर्ववत्स्थिरमानसः। दध्ना गुडेन नैवेद्यं दत्त्वा दशशतं जपेत्।।८१।।
मध्यन्दिने यजेदेवं विशिष्टरूपधारिणम्। नारदाद्यैर्मुनिगणैः सुरवृन्दैश्च पूजितम्।।८२।।

इस प्रकार ध्यानोपरान्त पूर्ववत् स्थिर मन से देवार्चन करना चाहिये। दधि-गुड़ का नैवेद्य देकर मन्त्र का १०००० जप करे। तदनन्तर मध्याह्न पूजन काल में नारदादि मुनि तथा सुरसमूह से पूजित देवता का यजन करे, जो विशिष्टरूप धारण करने वाले हैं।।८१-८२।।

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्यस्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम्।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च।।८३।।

ध्यान—वे प्रभु गोप-गोपी तथा गो वृन्द के बीच स्थित हैं। उनका वर्ण जलपूर्ण मेघ के समान है तथा वे सुन्दर अंग वाले हैं। उनका शिरोमुकुट मयूरपंख से शोभायमान है। उनके नेत्र कमल के समान हैं। अलकें घुंघराली हैं। मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान है।।८३।।

चलत्कुण्डलोल्लासिगण्डस्थलश्रीभरं सुन्दरम् मन्दहासं सुनासम्।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषणं क्वणत्किङ्किणीजालमत्तानुलेपम्।।८४।।
वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम्।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं ध्यात्वार्चयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै।।८५।।
एवं ध्यात्वार्चयेत्कृष्णं पूर्ववद्वैष्णवोत्तमः। अपूपपायसान्नाद्यैर्नैवेद्यं परिकल्पयेत्।।८६।।

उनके हिल रहे कुण्डलों की चमक से उनके कपोल अपूर्व शोभान्वित लग रहे हैं। वे मन्द मुस्कान

तथा सुन्दर नासिका वाले देव दिव्य वस्त्र तथा दिव्य आभूषणधारी हैं। उन्होंने उत्तम गन्ध लेप लगा रखा है। उनकी किंकिणियां (आभूषण में लगी छोटी घन्टियां) शब्दायमान हैं। वे वंशी वादन कर रहे हैं। उनके वाम हाथ में छड़ी है। उनके हाथ में दान प्रदान करने वाला पात्र भी है। वे उदार वेष वाले हैं। धन लाभार्थ कृष्ण के इस रूप का ध्यान करके वैष्णवोत्तम साधक उनकी पूजा करे। उनको मालपूआ, पायसान्न प्रभृति नैवेद्य अर्पित करना चाहिये।।८४-८६।।

हुत्वा चाष्टोत्तरशतं पयोऽन्नैः सर्पिषाप्लुतैः। स्वस्वदिक्षु बलिं दद्याद्विशेदाचमनं ततः॥८७॥

अष्टोत्तरसहस्रं च प्रजपेन्मन्त्रमुत्तमम्। अह्नो मध्ये यजेदेवं यः कृष्णं वैष्णवोत्तमः॥८८॥

देवाः सर्वे नमस्यन्ति लोकानां वल्लभो नरः।
मेधायुः श्रीकान्तियुक्तः पुत्रैः पौत्रैश्च वर्द्धते॥८९॥

तदनन्तर घृताक्त खीर से १०८ होम करना होगा। तत्पश्चात् उन-उन सभी दिशाओं में बलि देकर आचमनोपरान्त १००८ अत्युत्तम मन्त्र जप करे। जो वैष्णवोत्तम मध्याह्न में इस प्रकार कृष्ण की पूजा करता है, वह लोकवल्लभ तथा देवगण द्वारा नमस्कृत होता है। उस मेधा, आयु, श्री कान्ति लाभ होता है। उसके पुत्र-पौत्रादि वृद्धि प्राप्त करते हैं।।८७-८९।।

तृतीयकालपूजायामस्ति कालविकल्पना।
सायाह्ने निशि वेत्यत्र वदन्त्येके विपश्चितः॥९०॥

दशाक्षरेण चेद्रात्रौ सायाह्नेऽष्टादशार्णतः। उभयीमुभयेनैव कुर्यादित्यपरे जगुः॥९१॥

तृतीय कालीन पूजा के सम्बन्ध में आचार्यगण के बीच मतान्तर है। कतिपय विद्वान् कहते हैं कि सायंकाल में, कतिपय विद्वान् के मत से रात्रिकाल में पूजा करे। किसी का मत है कि रात में दशाक्षर मन्त्र द्वारा तथा सायं अष्टाक्षर मन्त्र द्वारा पूजा की जाये। किसी-किसी विद्वान् ने कहा है कि उभयकाल में उभय मन्त्रों से पूजा करनी होगी।।९०-९१।।

सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते। अष्टासाहस्रसङ्ख्यातैर्भवनैरुपमण्डिते॥९२॥

हंससारससङ्कीर्णकमलोत्पलशालिभिः। सरोभिर्निर्मलाम्भोभिः परीते भवनोत्तमे॥९३॥

उद्यत्प्रद्योतनोद्योतद्युतौ श्रीमणिमण्डले। हेमाम्भोजासनासीनं कृष्णं त्रैयोक्यमोहनम्॥९४॥

मुनिवृन्दैः परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये। तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम्॥९५॥

उन्निद्रेन्दीवरश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्। स्निग्धं कुन्तलसम्भिन्नकिरीटवनमालिनम्॥९६॥

चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम्। श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं सुमनोहरम्॥९७॥

अब सायंकालीन ध्यान कहा जा रहा है। द्वारकास्थित आनन्दरूप चित्रोद्यान में आठ हजार भवन विराजमान हैं। वहां के सरोवरों के निर्मल जल में कमल-उत्पल पुष्प तथा हंस-सारस भरे हुये हैं। वहीं एक उत्तम भवन भी है। वह भवन उदयकाल के सूर्य के समान प्रभास्वर है। वही स्वर्णकमलासन पर त्रैलोक्य को मोहित करने वाले प्रभु विराजमान हैं। वे आत्मतत्व चिन्तन तथा उसका निर्णय करने वाले मुनिगण से घिरे हुये हैं। उन मुनियों को भगवान् कृष्ण अपने परमाक्षर प्रणव रूप धाम का संकेत से भान करा रहे हैं। कृष्ण का श्यामवर्ण खिले हुये नीलकमल की

तरह प्रतीत हो रहा है। वे पद्मपत्रवत् विशाल नेत्र वाले हैं। उनके केश कोमल तथा घुंघराले हैं। उन्होंने किरीट तथा वनमाला धारण किया है। उनका मुख सुन्दर तथा प्रसन्न है। हिलते हुये मकराकृति कुण्डल उन देवदेव ने धारण किया है। उनके वक्ष पर मनोहर कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्सचिह्न विराजित है।।९२-९७।।

काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम्। हारकेयूरकटककटिसूत्रैरलङ्कृतम्॥९८॥
हृतविश्वम्भराभूरिभारं मुदितामानसम्। शङ्खचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम्॥९९॥

एवं ध्यात्वार्चयेन्मन्त्री स्यादङ्गैः प्रथमावृतिः।
द्वितीया महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत्॥१००॥
नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकान्।
विष्वक्सेनं न शैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम्॥१०१॥
लोकपालैश्च वज्राद्यैः पूजयेद्वैष्णवोत्तमः।
एवं सम्पूज्य विधिवत्पायसं विनिवेदयेत्॥१०२॥

कौस्तुभमणि की आभा के कारण उनका वक्ष पुष्करमूल के वर्ण जैसा धूसर प्रतीत हो रहा है। उन्होंने पीतवस्त्र धारण किया है। उनके देह पर हार, केयूर, वलय तथा करधनी शोभित है। वे पृथिवी के भूरि भार का हरण करने वाले, मुदित मानस हैं। उनके चार बाहु में शंख-चक्र-गदा-पद्म विराजमान है। इस प्रकार ध्यानोपरान्त वैष्णवसाधक प्रथमावृत्ति में अंगदेवगण का पूजन करे तथा द्वितीयावृत्ति में राज महिषीगण की पूजा करके तृतीया वृत्ति में नारद, पर्वत ऋषि, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शैनेय तथा गरुड़ पूजा करके दिशाओं में लोकपालगणार्चन उनके वज्रादि आयुध के साथ करे। इस प्रकार पूजनोपरान्त साधक कृष्ण को सविधि पायस निवेदित करे।।९८-१०२।।

तर्पयित्वा खण्डमिश्रदुग्धंबुद्ध्या जलैरिह। जपेदष्टशतं मन्त्री भावयन्पुरुषोत्तमम॥१०३॥

पूजनोपरान्त पायस अर्पित करे तथा जल में ही दुग्ध-मिश्री की भावना करके उसी से तर्पण करना चाहिये। पुरुषोत्तम की भावना करते हुये मन्त्रज्ञ साधक को १०८ मन्त्र जप करना चाहिये।।१०३।।

पूजासु होमं सर्वासु कुर्यान्मध्यन्दिनेऽथवा।
आसनादर्घ्यपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा नमेत्सुधीः॥१०४॥

समर्थात्मानमुद्वास्य स्वीयहृत्सरसीरुहे। विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत्॥१०५॥

मध्याह्न पूजा काल में कमल पुष्प से हवन करना होगा। सुधीसाधक आसन से लगाकर अर्घ्य प्रदान पर्यन्त का कर्म सम्पन्न करके स्तुति एवं प्रणाम निवेदन करे। इसके पश्चात् एकाग्रता पूर्वक हृदय में आत्मा का चिन्तन करके अर्चना करनी चाहिये।।१०४-१०५।।

सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं समर्चयेत्।
सर्वान्कामानवाप्यान्ते सा याति परमां गतिम्॥१०६॥

जो सायाह्न में नित्य वासुदेवार्चन करता है, वह अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति के अनन्तर परमागति लाभ करता है।।१०६।।

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तचेतसं नन्दनन्दनम्। यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम्॥१०७॥
विकसत्कुन्दकह्लारमल्लिकाकुसुमोद्गतैः। रजोभिर्धूसरैर्मन्दमारुतैः शिशिरीकृते॥१०८॥

उन्मीलन्नवकैरवालिविगलन्माध्वीकलब्धान्तरं
भ्राम्यन्मत्तमिलिन्दगीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते।
पीयूषांशुकरैर्विशालितहरित्प्रान्ते स्मरोद्दीपने कालिन्दी-
पुलिनाङ्गणे स्मितमुखं वेणुं रणन्तं मुहुः॥१०९॥

रात्रि में नन्दनन्दन का इस प्रकार ध्यान करे। उनका चित्त काम विह्वल है। वे रासलीला करते श्रान्त हो गये हैं। वे गोपीमण्डल के मध्यगत हैं। कालिन्दी तट पर खिले कुन्द, कुल्हार, मल्लिका प्रभृति पुष्पों के पराग से सुरभित शीतल मन्द पवन प्रवाहित है। वे प्रभु मन्द मुस्कान सहित वंशी वादन कर रहे हैं। जल पूर्ण मेघ जैसी उनकी कान्ति है। उनके केश घुघराले हैं। नेत्र कमल जैसे दीर्घ हैं। अधर सुन्दर तथा बिम्बफल के समान हैं।।१०७-१०९।।

अन्तस्तोयलसन्नवाम्बुदघटासङ्घट्टकारत्विषं चञ्चच्चिल्लिकमम्बुजायतदृशं बिम्बाधरं सुन्दरम्।
मायूरच्छदबद्धमौलविलसद्धम्मिल्लमालं चलं दीप्यत्कुण्डलरत्नरश्मिविलसद्गण्डद्वयोद्भासितम्॥११०॥
काञ्चीनूपुरहारकङ्कणलसत्केयूरभूषान्वितं गोपीनां द्वितयान्तरे सुललितं वन्यप्रसूनस्रजम्।
अन्योन्यं विनिबद्धगोपदयितादोर्वल्लिवीतं लसद्रासक्रीडनलोलुपं मनसिजाक्रान्तं मुकुन्दं भजेत्॥१११॥

उनका मुकुट मयूरपंख से सज्जित है। जूड़ा बंधा है। उन बालों पर पुष्पमाला शोभायमान है। दीप्त कुण्डल रत्न मण्डित हैं। उनकी चमक से कपोल भी विभासित हो रहे हैं। वे करधनी, नूपुर, हार, कंकण, केयूर से भूषित हैं। वे गोपीगण को मोहित कर रहे हैं। उन्होंने सुललित वन्य पुष्पों की माला धारण किया है। गोपियां एक दूसरे की बाहों को पकड़ कर नृत्य कर रही हैं। ऐसी नृत्यरता गोपियों की बाहों के बीच श्रीकृष्ण चतुर्दिक् घिरे हैं। इस प्रकार क्रीड़ालोलुप कामाक्रान्त मुकुन्द का भजन करना चाहिये।।११०-१११।।

विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतरस्वरसप्तकमूर्छनतानगणैः।
भ्रममाणममूभिरुदारमणिस्फुटमण्डनसिञ्चितचारुतनुम्॥११२॥
इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ।
मणिशङ्कुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम्॥११३॥

वे विविध श्रुतियों के भिन्न-भिन्न परम मनोज्ञ सात स्वरों की मूर्च्छना तथा तान के साथ गोपियों के संग भ्रममाण हैं (नाच रहे हैं)। उत्तम मणिमय निर्मल आभूषणों के शिंजन से भगवान् का उत्तम शरीर ही झंकृत हो उठा है। वहां गोपीगण एक-दूसरे के हाथ को पकड़े मण्डलाकार नृत्य कर रही हैं। उनके बीच में प्रभु गोपाल मणिजटित मेघ की तरह विराजित हैं। उन्होंने लीला बल से अपने इतने दिव्य स्वरूपों को प्रकट किया है कि वे प्रत्येक दो गोपीगण के बीच एक-एक स्थित हैं।।११२-११३।।

एवं ध्यात्वार्चयेन्मन्त्री स्यादङ्गैः प्रथमावृतिः।
श्रीकामः सस्वराद्यानि कलाब्जैर्वैष्णवोत्तमः॥११४॥

यजेत्केशवकीर्त्यादिमिथुनानि च षोडश। इन्द्राद्यानपि वज्रादीन्पूजयेत्तदनन्तरम्॥११५॥

पृथं सुवृत्तं मसृणं वितस्तिमात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शङ्कुम्।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरैस्तु हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी॥११६॥

एवंविध ध्यानोपरान्त मन्त्रज्ञ साधक भगवत्पूजन करे। हृदयादि अंगमन्त्र से प्रथमावरण पूजा की जाये। श्री की कामना रखने वाला उत्तम वैष्णव केशव-कीर्त्ति इत्यादि जोड़ों को जो १६ जोड़ें हैं, कमल पुष्प से पूजित करे। तत्पश्चात् उसके बाहर इन्द्रादि देवता (दिक्पाल) एवं वज्रादि आयुध पूजन करे। अब रासगोष्ठी कहते हैं। एक मोटा वृत्ताकार सुचिक्कन काष्ठ का खूंटा जो एक बित्ते मात्र का हो भूमि में पहले गाड़े। उसे पैरों से दबाकर एक-दूसरे से हाथ मिलाकर उसके चतुर्दिक् चक्कर देना ही रासगोष्ठी कही गई है।।११४-११६।।

सम्पूज्यैवं च पयसा ससितो पलसर्पिषा। नैवेद्यमर्चयित्वा तु चषकैर्नृपसंख्यकैः॥११७॥
ससितं पायसं मन्त्री मिथुनेष्वर्पयेत्क्रमात्। विधाय पूर्ववच्छेषं सहस्रं प्रजपेन्मनुम्॥११८॥

इस पूजा के उपरान्त दुग्ध-घृत-मिश्री मिश्रित करके प्रभु कृष्ण को नैवेद्यार्पण करना चाहिये। अब पूर्वोक्त १६ मिथुन (स्त्री-पुरुष के जोड़े) हेतु १६ प्याले लेकर उसमें खीर मिश्री उन जोड़ों को अर्पित करना चाहिये। बाकी कार्य पूर्ववत् करते हुये एक हजार मन्त्र जप करना होगा।।११७-११८।।

स्तुत्वा नत्वा च सम्प्रार्थ्य पूजाशेषं समापयेत्।
एवं यः पूजयेत्कृष्णं स समृद्धेःपदं भवेत्॥११९॥
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरः स्यान्न संशयः।
भुक्त्वेह विविधान्भोगानन्ते विष्णुपदं व्रजेत्॥१२०॥

तदनन्तर भगवान् की स्तुति, उनको प्रणाम करे तथा प्रार्थना निवेदन द्वारा पूजा कार्य का समापन करे। जो कृष्ण की ऐसी पूजा करता है, उसे पग-पग पर समृद्धि मिलती है। वह अणिमादि समस्त सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है। यह निःसंशय है। वह समस्त विविध भोगों का उपयोग पृथिवी पर करके विष्णुपद लाभ करता है।।११९-१२०।।

एवं पूजादिभिः सिद्धे मनौ काम्यानि साधयेत्।
अष्टाविंशतिवारं वा त्रिकालं पूजयेत्सुधीः॥१२१॥
स्वकालविहितान् भूयः परिवारांश्च तर्पयेत्।
प्रातर्दध्ना गुडाक्तेन मध्याह्ने पयसा पुनः॥१२२॥
नवनीतयुतेनाथ सायाह्ने तर्पयेत्पुनः। ससितोपलमिश्रेण पयसा वैष्णवोत्तमः॥१२३॥
तर्पयामिपदं योज्यं मन्त्रान्ते स्वेषु नामसु।
द्वितीयान्तेषु तु पुनः पूजाशेषं समापयेत्॥१२४॥
अभ्युक्ष्य तत्प्रसादाद्भिरात्मानं प्रपिबेदपः।
तत्तृप्तस्थमथोद्वास्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम्॥१२५॥

इस प्रकार पूजा प्रभृति से सिद्धिलाभ करके व्यक्ति मन की कामना प्राप्ति हेतु साधन करे। सुधी साधक

एक काल में २८ बार अथवा तीनों काल में कृष्ण पूजा करके अंग (तर्पण) देवता सहित कृष्ण को तर्पित करे। प्रातः गुड़युक्त दधि से, मध्याह्न में दुग्ध से, सायं नवनीत से तर्पण करे। अन्य काल में श्रेष्ठ वैष्णव साधक को शर्करायुक्त दुग्ध द्वारा तर्पण करना चाहिये। तर्पण मन्त्र के अन्त में अपना नाम एवं "तर्पयामि" यह युक्त करे। पूजा समापनोपरान्त तर्पणीय जल को अपने ऊपर छिड़के तथा शेष जल का पान कर ले। इसके पश्चात् मन्त्र जप आवश्यक है।।१२१-१२५।।

अथ द्रव्याणि काम्येषु प्रोच्यन्ते तर्पणेषु च।
तानि प्रोक्तविधानानामाश्रित्यान्यतमं भजेत्॥१२६॥
पायसं दाधिकं चाज्यं गौडान्नं कृसरं पयः।
दधीनि कदली मोचा चिञ्चा रजस्वला तथा॥१२७॥
अपूपा मोदका लाजाः पृथुका नवनीतकम्।
द्रव्यषोडशकं ह्येतत्कथितं पद्मजातिभिः॥१२८॥
लाजान्ते पृथुकं प्राक्च समर्प्य च सितोपलम्।
चतुःसप्ततिवारं यः प्रातरेवं प्रतर्पयेत्॥१२९॥
ध्यात्वा कृष्णपदं मन्त्री मण्डलादिष्टमाप्नुयात्।
धारोष्णपक्वपयसा नवनीतं दधीनि च॥१३०॥

काम्य तर्पणार्थ विहित आवश्यक सामग्री कहता हूं। खीर, दही-बड़ा, घृत, गुड़ से पक्व अन्न, खिचड़ी, दुग्ध, दधि, केला, सैजन, इमली, शर्करा, पूआ, मोदक, लावा, चिवड़ा नवनीत। ब्रह्मा आदि ने इन षोडश द्रव्यों का विधान किया है। सन्दर्भित द्रव्यों द्वारा तर्पण करके लावा, चिवड़ा तथा शर्करा अर्पित करे। जो प्रातः कृष्णध्यानोपरान्त पूर्वोक्त विधानानुसार ७४ बार तर्पण करता है, उसे वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होगी। धारोष्ण दूध (विना गर्म किया दूध), आग पर पका दूध, नवनीत तथा दधि।।१२६-१३०।।

दौग्धाग्रमाज्यं मत्स्यण्डी क्षौद्रं कीलालमेव च।
पूजयेन्नवभिर्द्रव्यैः प्रत्येकं रविसंख्यया॥१३१॥
एवमष्टोत्तरशतसंख्याकं तर्पणं पुनः। यः कुर्याद्वैष्णवश्रेष्ठः पूर्वोक्तं फलमाप्नुयात्॥१३२॥

छेना, घृत, राब, मधु, जल इन ९ द्रव्य में से प्रत्येक से १२-१२ तर्पण करे। जो एवंविध ९ द्रव्यों में से प्रत्येक से १२-१२ तर्पण कुल १०८ तर्पण करता है, वह पूर्वोक्त फललाभ करेगा।।१३१-१३२।।

किं बहूक्तेन सर्वेष्टदायकं तर्पणं त्विदम्। ससितोपलधारोष्णंदुग्धबुद्ध्या जलेन वै॥१३३॥
कृष्णं प्रतर्पयन् ग्रामे व्रजन्प्राप्नोति साधकः।
धनवस्त्राणि भोज्यं च परिवारगणैः सह॥१३४॥
यावत्सन्तर्पयेन्मन्त्री तावत्संख्यं जपेन्मनुम्।
तर्पणेनैव कार्याणि साधयेदखिलान्यपि॥१३५॥

किंबहुना, यह तर्पण सर्वकामना पूरक है। जो व्यक्ति (दुग्ध की व्यवस्था न कर सकता हो, वह) जल

में ही धारोष्ण दुग्ध तथा शर्करा की भावना करके उसके द्वारा तर्पण सम्पन्न करता है, वह भी (कृष्ण की कृपा से) ग्राम, गोष्ठ, धन, वस्त्र, भोज्य तथा परिवार की सुख प्राप्ति करता है। जितनी बार तर्पण किया जाये, उतनी बार मन्त्र जप भी आवश्यक है। तर्पण से सर्वकार्य सिद्धि होती है।।१३३-१३५।।

काम्यहोममथो वक्ष्ये साधकानां हिताय च।
श्रीपुष्पैर्जुहुयान्मन्त्री श्रियमिच्छन्ननिन्दिताम्।।१३६।।
साज्येनान्नेन जुहुयात्घृतान्नस्य समृद्धये।
वन्यपुष्पैर्द्विजान् जातीपुष्पैश्च पृथिवीपतीन्।।१३७।।
असितैः कुसुमवैंश्यान् शूद्रान्नीलोत्पलैस्तथा।
वशयेल्लवणैः सर्वानम्बुजैर्युवतीजनम्।।१३८।।
गोशालासु कृतो होमः पायसेन ससर्पिषा।
गवां शान्तिं करोत्याशु गोपालो गोकुलेश्वरः।।१३९।।
शिक्षावेषधरं कृष्णं किङ्किणीजालशोभितम्।
ध्यात्वा प्रतर्पयेन्मन्त्री दुग्धबुद्ध्या शुभैर्जलैः।।१४०।।
धनं धान्यं सुतान्कीर्तिं प्रीतस्तस्मै ददाति सः।
ब्रह्मवृक्षसमिद्भिर्वा कुशैर्वा तिलतन्दुलैः।।१४१।।
जुहुयादयुतं मन्त्री त्रिमध्वाक्तैर्हुताशने। वशयेद्ब्राह्मणांश्चाथ राजवृक्षसमुद्भवैः।।१४२।।

अब साधकों के हितार्थ काम्य हो कहता हूं। जो साधक अमित लक्ष्मी लाभ चाहता है, वह विल्वपुष्प से होम करे। घृत तथा अन्न लाभ की कामना वाला व्यक्ति घृताक्त अन्न से होम करे।

वन्य पुष्प होम से — द्विज वशीभूत हों।
जाता पुष्प होम से — राजा वशीभूत हों।
कृष्णवर्ण पुष्प होम से — वैश्य वशीभूत हों।
नीलकमल पुष्प होम से — शूद्र वशीभूत हों।
लवण के पुष्प होम से — सर्वजन वशीभूत हों।
कलम पुष्प — युवती वशीभूत हों।

गौशाला में खीर तथा घृत के होम से गोकुलेश्वर कृष्ण द्वारा गौओं को शान्ति मिलती है। लोकशिक्षार्थ मनुष्य वेशधारी किंकिणी शोभित कृष्ण का प्रातः ध्यान करता है तथा जल में ही दुग्ध भावना द्वारा उस जल से तर्पण करता है, उस पर भी गोपाल प्रसन्न हो जाते हैं। वे उसे धन, धान्य, पुत्र, कीर्त्ति, प्रीतिपूर्वक प्रदान करते हैं। पलाश समिध्, कुश अथवा तिल तण्डुल में त्रिमधु मिलाकर होम करे। इससे ब्राह्मण वशीभूत होते हैं। राजवृक्ष से उत्पन्न—।।१३६-१४२।।

प्रसूनैः क्षत्रियान्वैश्यान्कुरण्डकुसुमैस्तथा।
पाटलोत्थैश्च कुसुमैर्वशयेदन्तिमान्सुधीः।।१४३।।

श्वेतपद्मै रक्तपद्मैश्चम्पकैः पाटलैः क्रमात्। हुत्वायुतं त्रिमध्वाक्तैर्वशयेत्तद्वराङ्गनाः॥१४४॥

नित्यं हयारिकुसुमैर्निशीथे त्रिमधुप्लुतैः।
वरस्त्रीर्वशयेत्प्राज्ञः सम्यग्धृत्वा दिनाष्टकम्॥१४५॥

पुष्प से होम करने वाला साधक क्षत्रिय लोगों को वशीभूत करता है। कुरण्ड पुष्पों का होम करके साधक वैश्यों को, पाटल पुष्प से हवन करने वाला शूद्रों को वशीभूत कर लेता है। त्रिमधु मिश्रित श्वेत कमल, लाल कमल तथा पाटल पुष्प से होम करे। वेश्यागण वश में हो जाती हैं। नित्य आठ दिन त्रिमधुयुक्त कनेर फूलों से होम करे। वह बुद्धिमान् मानव श्रेष्ठ नारी को वशीभूत करता है।।१४३-१४५।।

अयुतत्रितयं रात्रौ सिद्धार्थैस्त्रिमधुप्लुतैः।
प्रत्यहं जुह्वतो मासात्सुरेशोऽपि वशीभवेत्॥१४६॥
आहृत्य बल्लवीवस्त्राण्यारूढं नीपभूरुहे।
स्मरेत्कृष्णं जपेद्रात्रौ सहस्रं खेद्वंहात्सुधीः॥१४७॥

हठादाकर्षयेच्छीघ्रमुर्वशीमपि साधकः। बहुना किमिहोक्तेन मन्त्रोऽयं शर्ववश्यकृत्॥१४८॥

रात में जो एक मास पर्यन्त त्रिमधु मिश्रित श्वेत सरसों से (नित्य) तीस सहस्र होम करता है, उसके वश में इन्द्र तक हो जाते हैं। सुधी साधक १० दिनों तक गोपीगण का चीर हरण करके कदम्ब वृक्ष पर छिप जाने वाले कृष्ण का ध्यान करके नित्य एक सहस्र कृष्णमन्त्र जपे। वह तो उर्वशी तक को आकर्षित कर लेगा। किम्बहुना उस मन्त्र प्रभाव से व्यक्ति सभी को वशीभूत कर लेगा।।१४६-१४८।।

रहस्यं परमं चाथ वक्ष्ये मोक्षप्रदं नृणाम्।
ध्यायेत्स्वहृत्सरसिजे देवकीनन्दनं विभुम्॥१४९॥
श्रीमत्कुन्देन्दुगौरं सरसिजनयनं शङ्खचक्रे गदाब्जे,
बिभ्राणं हस्तपद्मैर्नवनलिनलसन्मालयादीप्य मानम्।
वन्दे वेद्यं मुनीन्द्रैः कणिकमुनिलसद्दिव्यभूषाभिरामं,
दिव्याङ्गालेपभासं सकलभयहरं पीतवस्त्रं मुरारिम्॥१५०॥

अब मैं लोगों के लिये मोक्ष प्रदायक परम रहस्य कहता हूं। अपने हृदय सरोज में विभु देवकी नन्दन का ध्यान करे। वे कुन्द पुष्प तथा चन्द्रमा की तरह गौर हैं। उनके नेत्र कमल जैसे हैं। उनके करकमल में शंख-चक्र-गदा-पद्म है। नव कमलपुष्पों की माला से उनका शरीर आभायुक्त है। मुनीन्द्रगण ही उनकी वन्दना करके उनको जान पाते हैं। वे मणि-रत्नादि के दिव्य आभूषण को धारण करके अत्यन्त अभिराम लग रहे हैं। उनके दिव्य अंगों पर दिव्य लेप लगा है। वे सकल भयहारी, पीतवस्त्रधारी मुरारी हैं।।१४९-१५०।।

एवं ध्यात्वा पुमांसं स्फुटहृदयसरोजासनासीनमाद्यं
सान्द्राम्भोदाच्छबिम्बाद्धुतकनकनिभं सञ्जपेदर्कलक्षम्।
मन्वोरेकं द्वितारान्तरितमथ हुनेदर्कसाहस्त्रमिध्मैः
क्षीरिद्रूत्थैर्यथोक्तैः समधुघृतसितेनाथवा पायसेन॥१५१॥

अपने हृदय सरोज पर आसनासीन आद्य प्रभु का ध्यान करे, जिनकी छटा सघन मेघ के समान तथा कान्ति अद्भुद कनक के समान है। इन आदिदेव का यह ध्यान करके १२ लाख मन्त्र जप करे। तब १२१०८ बार आम-पीपल आदि दुग्ध वृक्षों की समिध् से अथवा घृत, मधु, शर्करा मिश्रित पायस से होम करे।।१५१।।

एवं लोकेश्वराराध्यं कृष्णं स्वहृदयाम्बुजे।
ध्यायन्ननुदिनं मन्त्री त्रिसहस्त्रं जपेन्मनुम्॥१५२॥
सायाह्नोक्तेन विधिना सम्पूज्य हवनं पुनः।
कृत्वा पूर्वोक्तविधिना मन्त्री तद्गतमानसः॥१५३॥

अपने हृदय कमल में लोकेश्वर कृष्ण का ध्यान करने के अनन्तर साधक उन देव का तीन हजार मंत्र जप नित्य करे। उनमें तल्लीन होकर पूर्वोक्त सायंकालीन विधानानुसार पूजन-हवनादि भी सम्पन्न करे। जो सुधी साधक गोपाल नन्दन का इस प्रकार भजन-पूजन करता है, वह संसार-सागर से उत्तीर्ण होकर परमपद लाभ करता है।।१५२-१५३।।

एवं यो भजते नित्यं विद्वान् गोपालनन्दनम्।
समुत्तीर्य भवाम्भोधिं स याति परमं पदम्॥१५४॥
मध्ये कोणेषु वाह्येष्वनलपुरपुटस्यालिखेत्कर्णिकायां
कन्दर्पं साध्ययुक्तं विवरगतषडर्णद्विषः केशरेषु।
शक्तिः श्रीपूर्विकाणि द्विनवलिपिमनोरक्षराणिच्छदानां
मध्ये वर्णान्दशान्तो दशलिपिमनुवर्यस्य वैकैकशोऽब्जम्॥१५५॥
भूसद्मनाभिवृतमस्त्रगमन्मथेन गोरोचनाविलिखितं तपनीयसूच्या।
पट्टे हिरण्यरचिते गुलिकीकृतं तद्गोपालयन्त्रमखिलार्थदमेतदुक्तम्॥१५६॥
संयातसिक्तमभिजप्तमिमं महद्भिर्धार्यं जगत्त्रयवशीकरणैकदक्षम्।
रक्षायशः सुतमहीधनधान्यलक्ष्मी सौभाग्यलिप्सुभिरजस्त्रमनर्ध्यवीर्यम्॥१५७॥

सर्वाग्र में त्रिभुजद्वय लिखे। एक ऊर्ध्वमुख अन्य अधोमुख हो। एक के ही ऊपर दूसरा त्रिकोण हो। यथा—

इस प्रकार यह षट्कोण हो गया। कोण बाह्यतः ही होते हैं। बीच में षट्कोण है। यही षट्कोण अग्निपुर है। इसकी कर्णिका (मध्य) में 'क्लीं' अंकित करे। उसमें साध्य व्यक्ति का नाम तथा कार्य भी लिखे। बाहरी जो कोण हैं, उनके विवर (बीच) में षडक्षर मन्त्रांकन करे। अब इस षट्कोण के ऊपर एक गोला खींचे तथा उसमें बाह्यतः दशदल अंकित करे। इन दशदल के केसर भाग में दशाक्षर मन्त्र का एक-एक अक्षर अंकित करना होगा। इस दशदल को अब भूपुर (चतुरस्त्र) से आवृत किया जाये। भूपुर में अस्त्रों की जगह 'क्लीं' लिखे। इसे सोने के पत्र पर स्वर्ण शलाका से गोरोचन की स्याही से लिखे। अब इसकी गुटिका बनाये। यही गोपाल मन्त्र कहा गया। यह सर्व मनोरथ
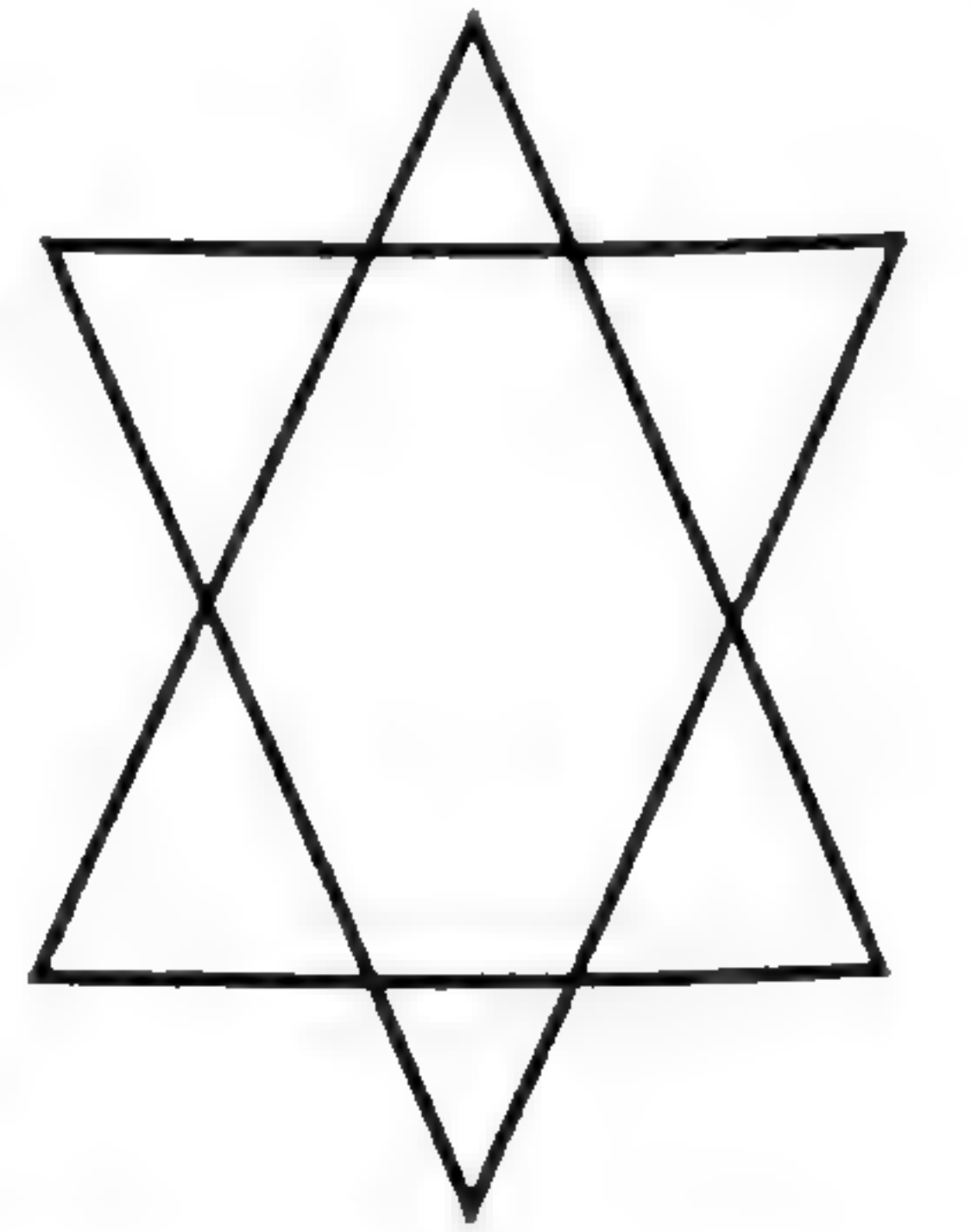
प्रदायक है। जो व्यक्ति आत्मरक्षा, यश, पुत्र, धरती, धन-धान्य, लक्ष्मी तथा सौभाग्य चाहते हैं, ऐसे उत्तम लोग निरन्तर यह यन्त्र धारण करे। यह त्रैलोक्य वशीकरणार्थ अकेला उपाय है। इसकी शक्ति का वर्णन तो वाणी के अतीत का विषय है।।१५४-१५७।।

स्मरस्त्रिविक्रमाक्रान्तश्चाक्रीष्टयाय हृदित्यसो।
षडक्षरोऽयं सम्प्रोक्तः सर्वसिद्धिकरो मनुः॥१५८॥
क्रोडः शान्तींदुवह्न्याढ्यो मायाबीजं प्रकीर्त्तितम्।
गोविन्दवह्निचन्द्राढ्यो मनुः श्रीबीजमीरितम्॥१५९॥
आभ्यामष्टादशक्लिपिः स्याद्विंशत्यक्षरो मनुः।
शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु वा॥१६०॥
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले।
एवं यो भजते कृष्णं स याति परमां गतिम्॥१६१॥
विंशार्णश्य मुनिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द ईरितम्।
कृष्णश्च देवता कामो बीजं शक्तिर्द्विठो बुधैः॥१६२॥

स्मर (क्लीं) त्रिविक्रम (ऋ), युक्त (क्) अर्थात् ऋ+क=कृ तदनन्तर 'ष्णाय' कहकर हृत् (नमः) कहे। मन्त्रोद्धार है "क्लीं कृष्णाय नमः।" यह षडक्षर मन्त्र है। यह सर्वमनोरथ सिद्ध है। वराह (ह), अग्नि (र), शान्ति (ई), इन्दु (अनुस्वार) युक्त हो मन्त्रोद्धार "श्रीं" हैं। इन बीजद्वय से युक्त अष्टादशाक्षर मन्त्र विंशाक्षर होता है। मन्त्रोद्धार है—"ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" यह विंशाक्षर हो गया। श्रीहरि का नित्यपूजन शालग्राम, मणि, यन्त्र, मण्डल अथवा प्रतिमा आदि में करे। केवल भूमि पर ही न करे। एवंविध कृष्णाराधक व्यक्ति परम उत्तम गति लाभ करता है। इस विंशाक्षर मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दः गायत्री, देवता कृष्ण, बीज क्लीं तथा शक्ति स्वाहा है।।१५८-१६२।।

रामाग्निवेदवेदाब्धेर्नेत्रार्णैरङ्गकल्पनम्। मूलेन व्यापकं कृत्वा मनुना पुटितानथ॥१६३॥
मातृकार्णान्न्यसेत्तत्तत्स्थानेषु सुसमाहितः।
दशतत्त्वानि विन्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत्॥१६४॥
मन्त्रन्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये।
शीर्षं ललाटे भ्रूमध्ये नेत्रयोः कर्णयोस्तथा॥१६५॥
नसोर्वक्त्रे च चिबुके कण्ठे दोर्मूलके हृदि। उदरे नाभिदेशे च लिङ्गे मूलसरोरुहे॥१६६॥
कट्यां जान्वोर्जङ्घयोश्च गुल्फयोः पादयोः क्रमात्।
न्यसेद्बुदन्तान्मन्त्राणां सृष्टिन्यासोऽयमीरितः॥१६७॥

मन्त्र के २० अक्षर से अंगन्यास करे। मन्त्र पुटित मूल मन्त्र द्वारा व्यापक न्यास करे। देवभाव सिद्धि हेतु **मन्त्रन्यास** कहा गया है। शीर्ष, ललाट, भ्रूमध्य, नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख, चिबुक, कण्ठ, ठुड्डी,

बाहुमूल, हृदय, उदर, लिंग, मूलाधार, कटि, जानु, उरु, जंघा, गुल्फ तथा चरण में नमः तक के मन्त्राक्षर का न्यास क्रमशः करना चाहिये। इसे **सृष्टि न्यास** कहा जाता है।।१६३-१६७।।

हृदये चोदरे नाभौ लिङ्गे मूलसरोरुहे।
कट्यां जान्वोर्जङ्घयोश्च गुल्फयो पादयोस्तथा।।१६८।।
मूर्ध्नि कपोले भ्रूमध्ये नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः।
वदने चिबुके कण्ठे दोर्मूले विन्यसेत्क्रमात्।।१६९।।
नमोन्तान्मन्त्रवर्णांश्च स्थितिन्यासोऽयमीरितः।
पादयोर्गुल्फयोश्चैव जङ्घयोर्जानुनोस्तथा।।१७०।।
कट्यां मूले ध्वजे नाभौ जठरे हृदये पुनः।
दोर्मूले कण्ठदेशे च चिबुके वदने नसोः।।१७१।।
कर्णयोर्नेत्रयोश्चैव भ्रूमध्ये निटिले तथा।
मूर्ध्नि न्यसेन्मन्त्रवर्णान्संहाराख्योऽयमीरितः।।१७२।।

हृदय, उदर, नाभि, लिंग, मूलाधार, कटि, जानु, उरु, जंघा, गुल्फ, चरण, मस्तक, कपोल, भ्रूमध्य, नेत्र, कर्ण, नासा, मुख, ठुड्डी, कण्ठ, बाहुमूल में नमः तक के मन्त्र वर्ण का क्रमशः न्यास ही **स्थितिन्यास** है। पैर, गुल्फ, जंघा, जानु, कटि, मूलाधार, लिंग, नाभि, उदर, हृदय, बाहुमूल, कण्ठ, चिबुक, मुख, नासा, कर्ण, नेत्र, भ्रूमध्य, ललाट के मन्त्रवर्ण न्यास ही **संहारन्यास** हैं।।१६८-१७२।।

पुनः सृष्टिस्थितिन्यासौ विधाय वैष्णवोत्तमः।
मूर्तिपञ्जरनामानं विन्यसेत्पूर्ववत्ततः।।१७३।।
पुनः षडङ्गं कृत्वाथ ध्यायेत्कृष्णं हृदम्बुजे। द्वारवत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोत्तमैः।।१७४।।
अनल्पैः कल्पवृक्षैश्च परीते मणिमण्डपे। ज्वलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुड्यके।।१७५।।
फुल्लप्रफुल्लसच्चित्रवितानालम्बिमौक्तिके। पद्मरागस्थलीराजद्रत्नसङ्घैश्च मध्यतः।।१७६।।
अनारतगलद्रत्नधाराढ्यस्वस्तरोरधः। रत्नप्रदीपावलिभिः प्रदीपितदिगन्तरे।।१७७।।

अब श्रेष्ठ वैष्णव साधक इन न्यासों को करके पुनः सृष्टिन्यास तथा स्थिति न्यास करे। तत्पश्चात् मूर्त्तिपंजर न्यासोपरान्त षडङ्ग न्यास सम्पन्न करके हृदय सरोज पर श्रीकृष्ण का ध्यान करे। यथा—द्वारका में सहस्रसूर्यवत् दीप्तिशाली भवनों तथा कल्पवृक्ष से आवेष्ठित एक मणिमण्डप स्थित है। उस मण्डप के स्तम्भ, द्वार, तोरण तथा कुड्य ज्वलन्त रत्नों से निर्मित है। वहां अनेक चित्र बने हैं। वहां वितान में मुक्तामाला लटकती है। वहां पद्मरागमणि तथा बहुमूल्य रत्नों की शोभा ऐसी है कि नेत्र चकित हो जाते हैं। वहां कल्पवृक्ष के नीचे लगे रत्नों से ज्योति धारायें निकलती प्रतीत होती हैं। वहां रत्नप्रदीप की ज्योति दिक्-दिगन्त को प्रदीप्त कर रही है।।१७३-१७७।।

उद्यदादित्यसङ्काशमणिसिंहासनाम्बुजे। समासीनोऽच्युतो ध्येयो द्रुतहाटकसन्निभः।।१७८।।
समानोदितचन्द्रार्कतडित्कोटिसमुद्युतिः। सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः।।१७९।।

वहां उदित आदित्यवत् मणिसिंहासन स्थित कमल पर समासीन अच्युत का ध्यान करे। वहां स्थित केशव स्वर्ण कान्ति वाले प्रतीत होते हैं। करोड़ों सूर्य-चन्द्र तथा विद्युत् जब एक ही साथ उदित हो जायें ऐसी द्युति केशव की है। वे सर्वांगसुन्दर सौम्य तथा सभी आभूषणों से सजे हैं।।१७८-१७९।।

पीतवासाः शङ्खचक्रगदाम्भोजलसत्करः। अनाहतोच्छलद्रत्नधारौघकलशं स्पृशन्॥१८०॥

वामपादाम्बुजाग्रेण मुष्णता पल्लवच्छविम्।
रुक्मिणीसत्यभामेऽस्य मूर्ध्नि रत्नौघधारया॥१८१॥
सिञ्चन्त्यौ दक्षवामस्थे स्वदोस्थकलशोत्थया।
नाग्नजिती सुनन्दा च दिशन्त्यौ कलशौ तयोः॥१८२॥
ताभ्यां च दक्षवामस्थमित्रविन्दासुलक्ष्मणे।
रत्ननद्याः समुद्धृत्य रत्नपूर्णौ घटौ तयोः॥१८३॥
जाम्बवती सुशीला च दिशन्त्यौ दक्षवामके।
बहिः षोडश साहस्रसङ्ख्याकाः परितः प्रियाः॥१८४॥
ध्येयाः कनकरत्नौघधारायुक्कलशोज्ज्वलाः।
तद्बहिश्चाष्टनिधयः पूरयन्तो धनैर्धराम्॥१८५॥

उन्होंने पीतवस्त्र धारण किया है। उनके बाहु में शंख-चक्र-गदा-पद्म शोभायमान है। उन्होंने ऐसा एक कलस हाथ में उठाया है, जिसमें से विना आहत हुये (परस्परतः टकराये) रत्नधारा प्रवहमान हो रही है। उनके वाम चरण का नख नई कोपल की छवि को भी म्लान कर रहा है। भगवान् कृष्ण के वाम भाग में तथा दाहिने भाग में देवी रुक्मिणी तथा सत्यभामा वहीं स्थित होकर अपने हाथों में दिव्य कलस से निकली रत्नराशिमयी धारा से उन देवकृष्ण का मस्तकाभिषेक कर रही हैं। नाग्नजिति तथा सुनन्दा ही रुक्मिणी तथा सत्यभामा को कलश दे रही हैं। मित्रविन्दा तथा सुलक्षणा देवियां रत्न नदी से रत्न को कलसों में भरती जा रही हैं। इनके दाहिने तथा वाम भाग में देवी जाम्बवती तथा सुशीला ने और चारों दिशाओं में कृष्ण पत्नी सोलह हजार नारियां सुवर्ण एवं रत्नधारा प्रवाहित करने वाले श्वेत मनोहर कलश लिये दण्डायमान हैं। इनके पीछे अष्ट निधियां धरती को निधियों से परिपूर्ण करती जा रही हैं।।१८०-१८५।।

तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे पुरोवच्च स्वरादयः। एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षपञ्चकं तद्दशांशतः॥१८६॥

अरुणैः कमलैर्हुत्वा पीठे पूर्वोदिते यजेत्।
विलिप्य गन्धपङ्केन लिखेदष्टदलाम्बुजम्॥१८७॥
कर्णिकायां च षट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम्।
शिष्टैस्तु सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत्स्वरम्॥१८८॥
प्राग्रक्षोऽनीलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु संविदम्।
षट्सु सन्धिषु षट्कर्णे केसरेषु त्रिशस्त्रिशः॥१८९॥

विलिखेत्स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दलाष्टके।
षट्शः संलिख्य तद्बाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः॥१९०॥
भूबिम्बं च लिखेद्बाह्ये श्रीमायादिग्विदिक्ष्वपि।
भूग्रहं चतुरस्त्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम्॥१९१॥

अष्ट निधियों के पृष्ट की ओर वृष्णिवंश के लोग विराजित हैं। इस ध्यानोपरान्त पंचलक्ष मन्त्रजप करके ५०००० होम लाल कमलों द्वारा पूर्वोक्त पीठ पर करना चाहिये। इसके पश्चात् अष्टगन्ध से अष्टदल कमल लिखकर उसकी कर्णिका पर षट्कोण बनाकर वहां साध्य का नामक्षर और (क्लीं) बीज अंकित करे। तदनन्तर इसे मन्त्र के सप्तदशाक्षरों से वेष्ठित करना होगा। पूर्व, नैर्ऋत्य तथा वायुकोण में श्री, बाकी कोण में संवित लिखे। षट्सन्धि, षट्कर्ण तथा केसरों पर ३०-३० 'ॐ' लिखकर अष्टदल पर कामदेवगायत्री एवं मालामन्त्र लिखना चाहिये। इसे मातृकाक्षरों से घेरकर बाहर भूपुर बनाये। तदनन्तर दिक्-विदिक् में श्रीं, ह्रीं आदि लिखने के पश्चात् भू गृह (भूपुर) तथा अष्टवज्रयुक्त चतुरस्त्र बनाये।।१८६-१९१।।

एतद्यन्त्रं हाटकादिपट्टेष्वालिख्य पूर्ववत्।
संस्कृतं धारयेद्यो वै सोऽर्च्यते त्रिदशैरपि॥१९२॥
स्याद्गायत्री कामदेवपुष्पबाणौ तु ङेन्तिमौ।
विद्महेधीमहियुतौ तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्॥१९३॥

इस यन्त्र को स्वर्णादि पट्ट पर पूर्ववत् लिखना चाहिये। इसे संस्कृत करके धारण करने वाला देव पूज्य हो जाता है। अब कामगायत्री कहते हैं। यथा "कामदेवाय विद्महे, पुष्पबाणायै धीमहि, तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्"।।१९२-१९३।।

जप्या जपादौ गोपालमनूनां जनरञ्जनी। हृदयं कामदेवाय ङेन्तं सर्वजनप्रियम्॥१९४॥
उक्त्वा सर्वजनान्ते तु सम्मोहनपदं तथा।
ज्वल ज्वल प्रज्वलेति प्रोच्य सर्वजनस्य च॥१९५॥
हृदयं मम च ब्रूयाद्वशं कुरु युगं शिरः। प्रोक्तो मदनमन्त्रोऽष्टचत्वारिंशद्भिरक्षरैः॥१९६॥
जपादौ स्मरबीजाद्यो जगत्त्रयवशीकरः।
पीठ प्राग्वत्समभ्यर्च्य मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः॥१९७॥
तत्रावाह्याच्युतं भक्त्या सकलीकृत्य पूजयेत्।
आसनादिविभूषान्तं पुनर्न्यासक्रमाद्यजेत्॥१९८॥
सृष्टिं स्थितिं षडङ्गं च किरीटं कुण्डलद्वयम्।
शङ्खं चक्रं गदां पद्म मालां श्रीवत्सकौस्तुभौ॥१९९॥
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य मूलेन वैष्णवोत्तमः।
षट्कोणेषु षडङ्गानि दिग्दलेषु क्रमाद्यजेत्॥२००॥

वासुदेवादिकान्कोणेषु तु शान्त्यादिकांस्ततः।
पत्राग्रगा महिष्योऽष्टौ यजेत्साधकसत्तमः॥२०१॥
ततः षोडशसाहस्त्रं सकृदेवार्चयेत्प्रियाः।
इन्द्रनीलमुकुन्दांश्च करालनन्द कच्छपान्॥२०२॥
शङ्खपद्मौ ततः पश्चान्निधीनष्टौ क्रमाद्यजेत्।
तद्बहिर्लोकपालांश्च वज्राद्यानपि पूजयेत्॥२०३॥
एवं सप्तावृत्तिवृतं कृष्णमभ्यर्च्य चादरात्।
प्रीणयेद्दधिखण्डाज्यमिश्रेण तु पयोऽन्धसा॥२०४॥
दिव्योपचारं दत्त्वाथ स्तुत्त्वा नत्वा केशवम्। उद्वासयेत्स्वहृदये परिवारगणैः सह॥२०५॥
न्यस्यात्मानं समभ्यर्च्य तन्मयो विहरेत्सुधीः।
रत्नाभिषेकध्यानेज्या विंशत्यर्णाश्रितेरिता॥२०६॥

प्रत्येक गोपाल मन्त्र जप के पहले इस कामगायत्री का जप अवश्य करे। यह जनरंजन करता है। नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय, सर्वजन सम्मोहय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं ममद्वशं कुरु कुरु—यह मदन मन्त्र है, जो ४८ अक्षरों वाला है। जप के पूर्व इस स्मरबीज को जो जपता है, वह त्रैलोक्य को वशीभूत कर लेता है। पीठ पर पूर्ववत् पूजा करके वहां मूलमन्त्र से मूर्त्ति प्रतिष्ठा करे। उस मूर्त्ति में अच्युत का आवाहन करके वहां सकलीकृत्य पूजा करे। आसन से लेकर आभूषण पर्यन्त पुनः न्यास करे। सृष्टि, स्थिति, षडङ्ग, किरीट, दोनों कुण्डल, शंख, चक्र, गदा, माला, श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभमणि की अर्चना गन्ध पुष्पादि से करके उत्तम वैष्णव साधक मूल मन्त्र से षट्कोण में षडङ्ग की, पूर्वादि दल में वासुदेव आदि की, कोणों में शान्ति प्रभृति की पूजा क्रमशः करे। तदनन्तर श्रेष्ठ साधक दलाग्र भाग में अष्ट राज नारियों की प्रार्थना के उपरान्त १६००० कृष्णपत्नियों की पूजा एक साथ करे। इन्द्र, नीलवर्ण मुकुन्द, कराल, आनन्द, कच्छप, शंख, पद्म की क्रमशः पूजा करके लोकपालों तथा उनके अस्त्र की भी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार से सात बार कृष्णाराधन करे। इसके पश्चात् सादर कृष्ण की आराधना सम्पन्न करके उनको दधि, मिश्री, घृत, दुग्ध, अन्न तथा दिव्य उपचार देकर उनकी स्तुति तथा नमस्कार करे। तदनन्तर अपने हृदय में कृष्ण का ध्यान उनके परिवार सहित करके उनको आत्मा में न्यस्त करके सुधी साधक तन्मय होकर विचरण करे। कृष्ण का रत्नाभिषेक अर्चना, यह सब विंशाक्षर मन्त्र के आश्रित है।।१९४-२०६।।

एवं यो भजते मन्त्रं स समृद्धेः पदं भवेत्। जपहोमार्चनध्यानैर्यो मनुं प्रजपेदमुम्॥२०७॥
तद्वेश्म पूर्यते रत्नैः स्वर्णधान्यैरनारतम्।
पृथ्वी पृथ्वी करे तस्य सर्वसस्यसमाकुला॥२०८॥
पुत्रैर्मित्रैः सुसम्पन्नः प्रयात्यन्ते परां गतिम्।
वह्नावभ्यर्च्य गोविन्दं शुक्लपुष्पैः सतन्दुलैः॥२०९॥
आज्याक्तैरयुतं हुत्वा भस्म तन्मूर्ध्नि धारयेत्। तस्यान्नादिसमृद्धिः स्यात्तद्वशे सर्वयोषितः॥२१०॥

जो इस विधि से कृष्ण मन्त्रोपासना करता है, उनको समृद्धि का पदलाभ होता है। जो व्यक्ति जप, होम, पूजा तथा ध्यान सहित यह मन्त्र जप करता है, उसका गृह सदैव स्वर्ण, रत्न, धान्यादि से भरा रहता है। समस्त शस्य वनस्पति के साथ उसके यहां पृथिवी अन्न उपजाती है। वह पुत्र-मित्रगण के साथ सुसम्पन्न बना रहकर परागतिलाभ करता है। जो गोविन्दार्चन करके चावल, घृत, श्वेत पुष्प द्वारा होम करता है, उसे प्रभूत अन्न तथा स्त्रियां मिलती हैं अर्थात् स्त्रियां वशीभूत हो जाती हैं।।२०७-२१०।।

रक्ताम्भोजैस्त्रिमध्वक्तैर्हुनेल्लक्षं समाहितः।
श्रिया तस्यैन्द्रमैश्वर्यं तृणलेशायते ध्रुवम्॥२११॥
त्रिमध्वक्तैः सितैः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकम्। या हुनेत्प्रत्यहं मासात्पुरोधा नृपतेर्भवेत्॥२१२॥
एवमादिप्रयोगांश्च साधयेन्मनुनामुना। मन्त्रराजमथो वक्ष्ये दशार्णं सर्वसिद्धिदम्॥२१३॥

जो रक्तकमल में त्रिमधुर लिप्त करके एकलाख होम करता है, उसके ऐश्वर्य के सामने इन्द्र का भी ऐश्वर्य तृणवत् हो जाता है। यह निश्चित है। जो ३० दिन तक प्रतिदिन त्रिमधुर लिप्त श्वेत पुष्प से १०८ बार होम करता है, वह राजा का पुरोहित पदलाभ करता है। हे मुनिवर! इस प्रकार मन्त्र द्वारा अनेक प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। अब मैं दशाक्षर सर्वसिद्धि मन्त्र कहता हूं।।२११-२१३।।

स्मृतिः सद्यान्विता साक्षिर्लोहितो जनवल्लभा।
पवनोऽग्निप्रियान्तोऽयं दशार्णो मन्त्र ईरितः॥२१४॥
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो विराट् कृष्णोऽस्य देवता।
कामो बीजं वह्निजाया शक्तिः प्रोक्ता मनीषिभिः॥२१५॥

स्मृति (ग), सद्य (ओ) से युक्त करे = गो
लोहित (प) वामनेत्र (ई) युक्त करे = पी
यह गोपी कहकर तब जनवल्लभा कहे।
तब पवन (य) कहे। सब होगा = गोपीजन वल्लभाय।

अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) कहें। मन्त्रोद्धार होगा गोपीजन वल्लभाय स्वाहा। यही दशाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि नारद हैं, छन्दः है विराट्, देवता है कृष्ण, क्लीं बीज हैं। स्वाहा शक्ति है। यह मनीषी कहते हैं।।२१४-२१५।।

आचक्रं च विचक्रं च सुचक्रं तदनन्तरम्। त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरान्तकचक्रकम्॥२१६॥
एतैर्ङेठद्वयान्तैश्च चक्रैः पञ्चाङ्गकं मनोः।
ततस्तारपुटं मन्त्रं व्यापय्य कारयोस्त्रिशः॥२१७॥
सेन्दून्हृदन्तामन्त्रार्णान्प्रणवान्तरितान्न्यसेत्। दशाङ्गुष्ठाच्च वामाङ्गुष्ठान्तमङ्गुलिपर्वसु॥२१८॥
सृष्टिन्यासोऽयमुदितः स्थितिन्यासोऽधुनोच्यते।
न्यसेद्वामनकनिष्ठादिकनिष्ठान्तं स्थितौ सुधीः॥२१९॥
वामाङ्गुष्ठान्न्यसेद्दक्षाङ्गुष्ठान्तं संहतौ तथा। संहतिर्दोषसङ्घातहारिणी परिकीर्तिता॥२२०॥

विद्याप्रदश्च सृष्ट्यन्तो वर्णिनां शुद्धचेतसाम्।
स्थित्यन्तः स्याद्गृहस्थानामेवं काम्यादिरूपतः॥२२१॥

मन्त्र के ५ अंग हैं—आचक्र, विचक्र, सुचक्र, त्रैलोक्यरक्षण चक्र तथा सुरान्तकचक्र। इनके अन्त में चतुर्थी विभक्ति तथा स्वाहा लगाकर पंचांगन्यास करे। यथा—

आचक्राय स्वाहा
विचक्राय स्वाहा
सुचक्राय स्वाहा
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा
सुरान्तक चक्राय स्वाहा।

तत्पश्चात् प्रणव सम्पुटित मन्त्र पढ़कर दोनों हाथों में तीन बार व्यापक न्यास करके मन्त्राक्षर को अनुस्वार समन्वित करे। उसके प्रारंभ में प्रणव जोड़े। अन्त में 'नमः' जोड़े। दाहिने अंगूठे से लगाकर वाम अंगुष्ठ पर्यन्त के अंगुलि पर्वपर्यन्त न्यास करे। यही सृष्टि न्यास है। अवस्थिति न्यास कहते हैं—वाम कनिष्ठा से लेकर दक्षिण कनिष्ठा पर्यन्त पूर्वोक्त प्रकार से मन्त्राक्षर न्यास करे। संहार न्यासार्थ वाम अंगूठे से लगाकर दाहिने अंगूठे तक मन्त्राक्षर न्यास करे। संहारन्यास दोष समूह नाश करने वाला है।।२१६-२२१।

संहारान्तो मुनीन्द्राणां विरक्तानां च सर्वशः।
पुनः स्थितिक्रमेणार्णान्मनोरङ्गुलिषु न्यसेत्॥२२२॥
पुनश्चक्रैश्च पूर्वोक्तैः पञ्चाङ्गं करयोर्न्यसेत्।
ततो मूलेन पुटितान्मातृकार्णान्सबिन्दुकान्॥२२३॥
विन्यसेन्मातृकान्यासस्थानेषु प्रणतः सुधीः।
ततस्तारपुटं मूलं व्यापकत्वेन विन्यसेत्॥२२४॥
संहारसृष्टिभेदेन दशतत्त्वानि विन्यसेत्। नमोन्तमूलमन्त्रार्णपदायाम्यानि चात्मने॥२२५॥
मत्यन्तानि च तत्त्वानि पृथिव्याद्यानि च क्रमात्।
पृथ्वी जलं तथा वह्निर्वायुराकाशमेव च॥२२६॥
अहङ्कारो महत्तत्त्वं प्रकृतिं पुरुषं परम्।
प्रविन्यसेन्मस्तके च नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नसोः॥२२७॥
वदने हृदये नाभौ लिङ्गे जान्वोश्च पादयोः। प्रणवान्तरितान्वर्णान्हृदन्तान्विन्यसेन्मनोः॥२२८॥
सृष्टिन्यासोऽयमाख्यातः स्थितिन्यासं शृणु द्विज।
हृदि नाभौ ध्वजे जान्वोः पादयोर्मस्तके पुनः॥२२९॥

शुद्ध चित्त संन्यासी हेतु ये नासद्वय तथा सृष्टिन्यास विद्याप्रद है। स्थिति न्यास जब अन्त में किया जाता है, यह गृहस्थों हेतु कामप्रद है। अन्त में जब संहारन्यास करते हैं, तब मुनीन्द्रगण तथा विरक्तजन हेतु लाभप्रद हैं। तब साधक पुनः स्थितिन्यास क्रमेण मन्त्राक्षरों का न्यास उंगली में करे। इसके पश्चात् पंचचक्रों से (पूर्वोक्त)

पंचांगन्यास सम्पन्न करे। तदनन्तर मूलमन्त्र सम्पुटित विन्दुयुक्त मातृकाक्षर का उनके स्थानों में प्रणत होकर सुधीसाधक न्यास करे। अन्त में प्रणव से सम्पुटित करके मूलमन्त्र द्वारा व्यापक न्यास सम्पन्न करे। संहार-सृष्टि भेद से दस तत्वों का न्यास करे। मस्तक, नेत्र, कर्ण, नासापुट, मुख, हृदय, नाभि, लिंग, जानु तथा चरण में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व, प्रकृति, पुरुष का न्यास करके मन्त्र के हृदन्त अक्षरों को प्रणवान्तिरित करके न्यस्त करे। यही सृष्टिन्यास है। हे द्विज! अब स्थितिन्यास श्रवण करे। हृदि, नाभि, लिंग, जानु, चरण, मस्तक।।२२२-२२९।।

नेत्रयोः कर्णयोर्घ्राणे वदने विन्यसेत्क्रमात्।
पदोर्जान्वोर्लिङ्गदेशे नाभौ हृदि मुखे नसोः॥२३०॥
कर्णयोर्नेत्रयोर्मूर्ध्नि संहाराख्योऽयमीरितः।
सृष्ट्यन्तो वर्णिनां न्यासः स्थित्यन्तो गृहमेधिनाम्॥२३१॥
यतेर्वैराग्ययुक्तस्य संहारान्तः प्रकीर्तितः।
चतुर्द्धा वर्णिनां चैव गृहस्थानां च पञ्चधाः॥२३२॥
यतीनां च त्रिधा न्यासः प्रोक्तोऽयं क्रमतः शुभः।
केचिद्विरक्ते गृहगे संहारान्तं विदुर्बुधाः॥२३३॥

नेत्र, कर्ण, घ्राण, मुख में क्रम से न्यास करे। यही सृष्टि न्यास है। चरण, जानु, लिंग, नाभि, हृदय, मुख, नासा, कर्ण, नेत्र, शिर का क्रमशः न्यास ही संहार न्यास है। संन्यासी ४ प्रकार का, गृहस्थ ५ प्रकार का, यति ३ प्रकार का न्यास क्रमशः करे। जो गृहत्यागी तथा विरक्त हैं, उनके लिये संहार न्यास ही उचित है।।२३०-२३३।।

विभूतिपञ्जरं न्यासं कुर्यादिष्टाप्तये ततः।
मनोर्दशावृत्तिमयं कृष्णसान्निध्यकारकम्॥२३४॥
आधारे च ध्वजे नाभौ हृदि कण्ठे मुखे शये।
ऊर्वोश्च कन्धरायां च नाभौ कुक्षौ तथा हृदि॥२३५॥
स्तनयोः पार्श्वयोः श्रोण्योर्मस्तके वदने तथा।
नेत्रयोः कर्णयोर्नासापुटयोश्च कपोलयोः॥२३६॥
एवं दक्षिणदोर्मूलसन्ध्यग्रेष्वङ्गुलीषु च।
ततः शिरसि तत्पूर्वाद्याशासु स्वकलासु च॥२३७॥
दोष्णोः सक्थ्नोः शिरोक्ष्यास्यकण्ठहृज्जठरेषु च।
मूलाधारे लिङ्गदेशे जानुनोः पादयोस्तथा॥२३८॥
श्रोत्रगण्डांसवक्षोजपार्श्वलिङ्गेषु विन्यसेत्।
ऊर्वोर्जान्वोर्जङ्घयोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात्॥२३९॥

विभूतिपञ्जराख्योऽयं न्यासः सर्वार्थसिद्धिदः।
अनेन न्यासवर्येण साक्षात्कृष्णतनुर्भवेत्॥२४०॥

विभूतिपञ्जरन्यास इष्टलाभार्थ करे। यह मन की वृत्ति को संयत करके कृष्ण सान्निध्यरूप मोक्षदाता है। मूलाधार, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, मुख, स्कन्ध, उरु, नाभि, कुक्षि, हृदय, स्तन, पार्श्व, श्रोणि, मस्तक, नेत्र, कर्ण, नासापुट, कपोल, दक्षिण भुजामूल, उंगली इनमें न्यास करके शिर, पूर्वादिदिक्, स्वकला, कुम्भा, सक्थिनी, शिर, नेत्र, मुख, कण्ठ, हृदय, उदर, मूलाधार, लिंग, जानु, चरण, कर्ण, कपोल, स्तन, पार्श्व, लिंग में न्यास करना चाहिये। तदनन्तर उरु, जानु, जंघा में क्रमशः न्यास करे। यही विभूतिपंजन न्यास है, जो सर्वकामना पूर्ण करता है। जो इस उत्तम न्यास को सम्पन्न कर लेता है, उसका देह साक्षात् कृष्ण तनु हो जायेगा।।२३४-२४०।।

मूर्तिपञ्जरनामानं न्यासं पूर्वोदितं न्यसेत्।
ततो दशाङ्गपञ्चाङ्गौ न्यासवर्यौ न्यसेत्क्रमात्॥२४१॥
हृदि मूर्ध्नि शिखायां च सर्वाङ्गे दिक्षु पार्श्वयोः।
कट्यां पृष्ठे तथा मूर्ध्नि विन्यसेद्वैष्णवोत्तमः॥२४२॥
पञ्चाङ्गानि न्यसेद्धूयश्चक्रैः प्राग्वत्समाहितः।
अन्योऽप्यष्टादशार्णोक्तः कर्तव्यो न्याससञ्चयः॥२४३॥
ततः किरीटमन्त्रेण व्यापकं रचयेत्सुधीः।
वेणुबिल्वादिमुद्रांश्च दर्शयेत्साधकोत्तमः॥२४४॥
सुदर्शनस्य मन्त्रेण कुर्याद्दिग्बन्धनं तत।
अनङ्गुष्ठाश्च ऋजवः करशाखा भवन्ति चेत्॥२४५॥
हृन्मुद्रेयं समाख्याता शिरोमुद्रा तथा भवेत्।
अधोङ्गुष्ठा तु या मुष्टिः शिखामुद्रेयमीरिता। प्रसारितकाराङ्गुल्योर्वर्ममुद्रेयमीरिता॥२४६॥

मूर्तिपंजरन्यास पूर्वकथित है। उसका न्यास करे। तदनन्तर श्रेष्ठ विष्णुभक्त हृदय, मस्तक, शिखा, सर्वाङ्ग, दिशा, पार्श्व, कटि, पृष्ठ, शिखर में एक-एक अक्षर का न्यास करे। तदनन्तर समाहित होकर पूर्वोक्त चक्रों से पूर्ववत् पंचांग न्यास करे। १८ अक्षरमन्त्र से अन्य न्यास भी करना होगा। तत्पश्चात् किरीट मन्त्र से व्यापक न्यास के उपरान्त सुधी साधक वेणु-बिल्वादि मुद्रा प्रदर्शन करे। तदनन्तर सुदर्शन मन्त्र से दिक्बन्धन करे। अंगुष्ठों की सीधा न करके शेष सभी उंगलियां सीधा रखना हृदयमुद्रा है। ऐसी ही शिरोमुद्रा है। अंगुष्ठ को अधः करके मुष्ठी बांधना शिखामुद्रा है। सभी उंगलियां फैलाना वर्ममुद्रा है।।२४१-२४६।।

नाराचमुष्ट्या धृतबाहुयुग्मकाङ्गुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु।
विष्वग्विमुक्ता कथितास्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे च॥२४७॥
ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंसक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता॥२४८॥

तर्जनी मध्यमानामा किञ्चित्सङ्कुच्य चालिता। वेणुमुद्रेयमुदिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः।
नोच्यन्ते तत्र सिद्धत्वान्मालाश्रीवत्सकौस्तुभाः॥२४९॥

नाराच जैसी उठी मुट्ठी बनाकर दोनों भुजा के अंगूठे तथा तर्जनी से चुटकी बजाये, जिससे ध्वनि चारों ओर फैले। यह अस्त्र मुद्रा है। तर्जनी तथा मध्यमा नेत्रमुद्रा है। जहां त्रिनेत्र न्यास हो, वहां तर्जनी, मध्यमा, अनामिका की उंगली से यह कार्य करे। वाम हाथ का अंगुष्ठ ओष्ठ से संलग्न हो। उस हाथ की कनिष्ठा दक्षिण हाथ के अंगुष्ठ से सटी हो, दाहिने हाथ की कनिष्ठा प्रसारित हो, उसी हाथ की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका कुछ संकुचित करके हिलायी गयी हो, यही वेणुमद्रा है। यह अति गोपनीय तथा कृष्ण को अतिप्रिय है। वनमाला, श्रीवत्स कौस्तुभ अतीव प्रसिद्ध मुद्रा हैं। अतः उनका वर्णन नहीं किया गया।।२४७-२४९।।

वामाङ्गुष्ठं समुद्रं तमपरकराङ्गुष्ठकेनाथ बद्ध्वा
सम्पीड्याग्रं च दक्षाङ्गुलिभिरपि च तां वामहस्ताङ्गुलीभिः।
गाढं बद्ध्वा स्वकीये हृदयसरसिजे स्थापयेत्कामबीजं
प्रोच्चार्यैषां तु गोप्या सकलसुखकरी विल्वमुद्रा मुनीन्द्रैः॥२५०॥

वाम अंगुष्ठ को ऊर्ध्वमुख खड़ा करके उसे दाहिने अंगुष्ठ से वेष्ठित करे। उसके अग्रभाग को दाहिनी उंगलियों से दबाये तथा उन उंगलियों को सभी वाम उंगलियों से कसकर दबाये। उसे हृदय पर स्थापित करे। साथ ही 'क्लीं' बीज जपता रहे। यही मुनियों द्वारा कथित बिल्व मुद्रा है। यह सबके लिये सुखप्रदा है।।२५०।।

कायेन मनसा वाचा यत्पापं समुपार्जितम्।
मुद्राया ज्ञानमात्रेण सर्वं नाशमुपैश्यति॥२५१॥
ध्यानं जपस्त्रिकालार्चा कार्या पूर्वोदिता मनोः।
सर्वेष्वेकः क्रमः प्रोक्तो दशार्णाष्टादशार्णयोः॥२५२॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति। उद्दण्डबाहुदोर्दण्डधृतगोवर्द्धनाचलम्॥२५३॥
अन्यहस्ताङ्गुलीव्यक्तस्वरवं शार्पितानननम्।
ध्यायन्कृष्णं जपेन्मन्त्रं व्रजेच्छत्रं विना सुधीः॥२५४॥
वर्षवाताशनिभ्योऽपि भयं तस्य न जायते। मोघेमेघौघव्रातात्द्गतेन्द्रं तं स्मरन्हुनेत्॥२५५॥
लोणैरयुतसंख्यैः स्यादनावृष्टिर्न संशयः। क्रीडन्तमर्कजातीरे मज्जनस्नापनादिभिः॥२५६॥
तच्छीकरजलासारैः सिच्यमानं प्रियाजनैः। ध्यात्वायुतं पयः सिक्तैर्हुनेद्वा नीरतर्पणैः॥२५७॥
वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नात्र संशयः। सदाहमोहैरार्तस्य विस्फोटकज्वरादिभिः॥२५८॥
अमुमेव स्मरन्मूर्ध्नि जपेच्छान्तिर्भवेत्क्षणात्। अथवा गरुडारूढं प्रद्युम्नबलसंयुतम्॥२५९॥
निजज्वरनिष्पिष्टज्वराभिष्टुतमच्युतम्। ध्यात्वा मूर्ध्नि जपेन्मन्त्रं ज्वरमुक्तो भवेज्ज्वरी॥२६०॥
ध्यात्वैवमग्नावभ्यर्च्य यथोक्तैश्चतुरङ्गुलैः। जुहुयादमृताखण्डैरयुतं ज्वरशान्तये॥२६१॥
शिलीमुखविनिर्भिन्नभीष्मतापहरं हरिम्। ध्यात्वा जेपत्स्पृशन्नार्तं पाणिभ्यां ज्वरशान्तये॥२६२॥

शरीर, मन, वाणी कृत पातक इस मुद्रा के ज्ञानमात्र से नष्ट हो जाते हैं। यह ध्यान, तप, त्रिकालपूजन मन्त्राराधनार्थ आवश्यक है। मन्त्र भले ही १८ किंवा १० अक्षरात्मक हो, इनमें एक ही क्रम चलेगा। मन्त्र सिद्ध साधक इनका प्रयोग करे। कृष्ण निज भुजदण्ड पर गोवर्द्धन पर्वत को धारण करके अन्य हाथ की उंगली से वंशी के छिद्रों से स्वर मिलाते हुये वंशी वादन करते रहे, उनका ध्यान करते हुये पूर्वोक्त मन्त्र को जपे। ऐसा करने वाले सुधी साधक भले ही छत्ररहित होकर कहीं जाते हों, वर्षा, वायु, वज्र से उनकी कुछ भी हानि नहीं होती। मेघ तथा पवन सहित इन्द्र के भी प्रयास को व्यर्थ करने वाले कृष्ण का ध्यान करके १०००० होम छुद्र आंवला अथवा लोनी साग से किया जाये, तब वर्षा रुक जायेगी। सूर्यपुत्री यमुना के तट पर क्रीड़ा करते स्नान निमज्जनादि करते प्रियागण द्वारा फेंके जाते जल की फुहारों से गीले किये जाने वाले कृष्ण का ध्यान तथा १०००० जलासिक्त 'लोण' के होम से (छुद्र आमला) (१०००० होम से) अथवा जलतर्पण से असमय में वर्षा निःसन्देह होगी। जिसका शरीर जलन से पीड़ित है अथवा वह विस्फोटक ज्वरादि से पीड़ित है, तब वह यह ध्यान करे कि उसके शिर पर प्रद्युम्न तथा बलराम हैं। वैष्णवज्वर पीड़ित शैवज्वर उनकी स्तुति कर रहा है। इस ध्यान के साथ शैव ज्वरों के मस्तक पर भावना करके मन्त्र जपे। ज्वर समाप्त होगा। कृष्ण का यही रूप ध्यान करके कृष्णपूजन करे। अग्नि में चतुरंगुल बहेड़ा की लकड़ी से होम द्वारा ज्वर शान्त होता है। बाणविद्ध देह वाले भीष्म का ताप हरण करने वाले कृष्ण का ध्यान करे। तब मन्त्र जप करते हुये हाथों से ज्वरग्रस्त का स्पर्श करे। उसका ज्वर समाप्त हो जायेगा।।२५१-२६२।।

सान्दीपनाय ददतं पुत्रं ध्यात्वायुतं हुनेत्। यथोक्तैरमृताखण्डैरपमृत्युनिवृत्तये॥२६३॥
सपार्थं मृतपुत्रायापर्यन्तं च द्विजन्मने। सुतं ध्यात्वा जपेल्लक्षं पुत्रपौत्रादिवृद्धये॥२६४॥
पुत्रजीवफलैर्हुत्वायुतं मधुरसप्लुतैः। तत्काष्ठैरेधिते वह्नौ सुतान्दीर्घायुषो लभेत्॥२६५॥

सान्दीपनी मुनि को उनका पुत्र प्रदान करते हरि का ध्यान करके बहेड़े की चतुरंगुल समिध् से १०००० होम करने से अपमृत्यु निवारण होगा। मृतपुत्र सान्दीपनी ब्राह्मण को (जीवित करके) अर्जुन सहित कृष्ण ने समर्पण किया। यह ध्यान करके एक लक्ष मन्त्र जप द्वारा पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि होगी। मधुलिप्त पुत्र जीवा का फल तथा उसी की समिध् से प्रज्वलित अग्नि में पुत्र जीवा फल द्वारा १०००० होम करने से दीर्घायु पुत्रलाभ होगा।।२६३-२६५।।

क्षीरद्रुक्वाथसम्पूर्णमभ्यर्च्य कलशं निशि। प्रातर्ज्जप्त्वायुतं नारीमभिषिञ्चेद्द्विषड्दिनम्॥२६६॥
एवं कृते तु वन्ध्यापि लभेत्पुत्राश्चिरायुषः। प्रातर्वाञ्छंयमाश्वत्थदलसम्पुटकं जलम्॥२६७॥
अष्टोत्तरशतं जप्तं मासं पुत्रार्थिनी पिबेत्। सर्वलक्षणसम्पन्नं वन्ध्यापि लभते सुतम्॥२६८॥

रात्रि में गूलर के क्वाथ को कलश में भरकर रखे। प्रातः १०००० मन्त्र से यह जल मंत्रित करके स्त्री को सिंचित करे। १२ दिनों तक यह प्रक्रिया करे। वन्ध्या भी दीर्घायु पुत्र उत्पन्न करेगी। पुत्रार्थिनी नारी प्रातः पीपल पत्तों के दोने में जल को १०८ बार कृष्ण मन्त्राभिमन्त्रित करे। तब पान करे। इससे वन्ध्या को भी सन्तानोत्पत्ति होगी।।२६६-२६८।।

जित्वा कृत्यां काशिराजप्रेषितां च निजारिणः।
तेजसा तस्य नगरं दहन्तं भावयन्हरिम्॥२६९॥

हुनेत्सप्तदिनं मन्त्री सुस्नेहाक्तैश्च सर्षपैः। कृत्याकर्तारमेवास्मै कुपिता नाशयेद्ध्रुवम्॥२७०॥
बदरीद्रुमसङ्कीर्णे स्थितं दिव्याश्रमे शुभे। स्पृशन्तं करपद्माभ्यां घण्टाकर्णकलेवरम्॥२७१॥
ध्यात्वैवं जुहुयाल्लक्षं तिलैस्त्रिमधुराप्लुतैः। माहपापयुतोऽप्येवं पूतो भवति तत्क्षणात्॥२७२॥

काशीराज द्वारा प्रेरित कृत्या को जीतकर स्वतेज से शत्रु नगरी दग्ध करने वाले हरि का ध्यान करे। सात दिन स्नेहाक्त सरसों से हवन करे। इससे कृत्या भेजने वाले का ही वध कर देगी। वेर के वृक्ष से भरे अपने पवित्र दिव्य आश्रम में अपने हाथों से घण्टाकर्ण के शरीर का स्पर्श करने वाले हरि का ध्यान करते हुये त्रिमधुर युक्त तिल से एकलक्ष होम करे। इससे महापातकी भी पावन (तत्काल) हो जायेगा।।२६९-२७२।।

द्यूतासक्तौ रुक्मिबलौ द्वेषयन्तं हरिं स्मरन्। जुहुयादिष्टयोर्द्विष्ट्यं गुलिका गोमयोद्भवाः॥२७३॥
नित्यं सहस्त्रं सप्ताहान्मिथो विद्वेषयेदरीन्। वर्षन्तं गरुडारूढं ज्वलदग्निमुखैः शरैः॥२७४॥
धावन्तं रिपुसङ्घातमनुधावतमच्युतम। ध्यात्वा सप्तसहस्त्रं तु जपेन्मन्त्रमानन्यधीः॥२७५॥
उच्चाटनं भवत्येव शत्रूणां सप्तभिर्दिनैः। ध्यायन्नुत्क्षिप्तवत्सं तु कपित्थफलहारिणम्॥२७६॥
प्रजपेदयुतं शत्रुमुच्चाटयति तत्क्षणात्। आत्मानं कंसमथनं ध्यायन्मञ्चान्निपातितम्॥२७७॥

द्यूत से आसक्त रुक्मि से द्वेष करते हुये हरि का स्मरण करे। तदनन्तर गोमय की गुलियों से नित्य एक सहस्त्र होम करे। सात दिनों तक यह करे। शत्रु में पारस्परिक वैर होगा। गरुड़ारूढ़ होकर ज्वालामय बाणों की वर्षा करने वाले तथा पलायन पर शत्रुओं को पीछा करने वाले हरि का ध्यान करे। उनमें ही अनन्यता पूर्वक चित्त एकाग्र करके सात हजार कृष्ण मन्त्र जपे। सात दिन यह करते-करते शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। कपित्थ फल तोड़ने वाले तथा वत्सासुर को फेंक कर उसका वध करने वाले कृष्ण का ध्यान करके १०००० जप करे। तत्क्षण शत्रु का उच्चाटन होगा। मंच से कंस को गिराकर उसके शरीर को मथित करने वाले—।।२७३-२७७।।

कंसात्मानं व्यकर्षन्तं गतासुं तं जपेन्मनुम्। रिपुजन्मर्क्षवृक्षोत्थसमिद्भिरयुतं निशि॥२७८॥
जुहुयादेवमुग्रोऽपि सपत्नो निधनं व्रजेत्। अथवा निम्बतैलाक्तैर्हुनेदेधोभिरक्षजैः॥२७९॥
अयुतं नियतो रात्रौ मरयेदचिरादरीन्। निशादिष्टदलव्योषकार्पासास्थिकरैर्निशि॥२८०॥

तथा जमीन पर घिसटा कर उसका वध कर देने वाले हरि का ध्यान करे। साथ ही शत्रु के जन्म नक्षत्र में लगाये वृक्ष की समिध् से रात में १०००० होम करे। भयंकर शत्रु भी मृत हो जाते हैं अथवा नीम के तेल से लिप्त बहेड़ा काष्ठ से रात में सविधि १०००० होम करे। शत्रु यथाशीघ्र यमलोक को प्राप्त होगा।।२७८-२८०।।

हुनेदेरण्डतैलाक्तैः श्मशाने रिपुशान्तये। न शस्तं मारणं कर्म कुर्य्याच्चेदयुतं हुनेत्॥२८१॥

पायसैर्वा हुनेत्तावच्छान्तये शान्तमानसः।
पारिजातहरं कृष्णं ध्यायन् लक्षं जपेन्मनुम्॥२८२॥
सर्वत्रैव जयस्तस्य न कदापि पराजयः।
व्याख्यामुद्राकरं कृष्णं रथस्थं भावयञ्जपेत्॥२८३॥

पार्थे दिशन्तं गीतार्थं धर्मवृद्ध्यै सुमानवः।
पलाशपुष्पमध्वक्तैर्लक्षं विद्याप्तये हुनेत्॥२८४॥

शत्रु मारणार्थ रात्रि में श्मशान जाये। तथा दक्षिण दिशा में जल रही अग्नि में ऐरण्ड तैल से लिप्त कपास काष्ठ से १०००० होम वहीं करे। मारण कर्म को यदि पापपूर्ण मानता हो, तब साधक दोष नाशार्थ स्वस्थ मन से १०००० होम खीर से करे। जो कल्पवृक्षहारी कृष्ण का ध्यान करके उनका मन्त्र जपता है, वह कदापि पराजित नहीं होगा।

जो व्याख्या करते हुये (गीता कहते हुये) कृष्ण की भावना करता मन्त्र जप (कृष्णमन्त्र) जपेगा तथा धर्म वृद्धि हेतु अर्जुन को गीतोपदेश देते कृष्ण का ध्यान करेगा तथा मधुलिप्त पलाश पुष्पों से एक लाख होम करेगा, उसे विद्यालाभ होगा।।२८१-२८४।।

राष्ट्रपूर्ग्रामवस्तूनां शरीरस्यापि रक्षणे। विश्वरूपधरं प्रोद्यद्भानुकोटिसमप्रभम्॥२८५॥
अग्नीषोमात्मकं कृष्णं द्रुतचामीकरप्रभम्।
अर्काग्निद्योतितास्यांघ्रिपङ्कजं दिव्यभूषणम्॥२८६॥
नानायुधधरं प्राप्तं विश्वाकाशावकाशकम्।
ध्यात्वा लक्षं जपेन्मन्त्रं रक्षणाय समाहितः॥२८७॥
रक्तैर्वन्यप्रसूनैर्यो दिनादौ पूजयेद्धरिम्। दिनमध्योक्तविधिना जपेदष्टोत्तरं शतम्॥२८८॥
सहस्रमण्डलामन्त्री वशयेन्मुखरान्द्विजान्।
जातिपुष्पैः क्षत्रियांश्च गोपवेषधरं स्मरन्॥२८९॥

राष्ट्र, नगर, ग्राम, वस्तु तथा शरीर रक्षाकामी व्यक्ति कृष्ण का यह ध्यान करे कि वे विश्वरूपधारी हैं। उनकी कान्ति उदित होते कोटि सूर्यवत् प्रभावान् है, वे अग्नि जैसे प्रकाशमान हैं, अनेक शस्त्रास्त्रधारी तथा समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। ध्यानोपरान्त एक लाख जप करे। रक्तवर्ण वन्य पुष्पों से प्रातः हरिपूजा करे। मध्याह्न में पूर्वोक्त प्रकार से १०८ मन्त्र जपे, ऐसा व्यक्ति हजारों वाचाल ब्राह्मणों को वशीभूत कर लेता है। गोपवेश युक्त हरि का स्मरण करके जाती पुष्प से पूजा करे। क्षत्रिय वशीभूत होंगे।।२८५-२८९।।

ध्यायन् क्रीडारतं कृष्णं रक्तैरश्वारिपुष्पकैः।
वशयेद्वैश्यजातीयान् शूद्रान्नीलोत्पलैः स्मरन्॥२९०॥
गीतनृत्यरतं श्वेतपुष्पैः साज्यैश्च तन्दुलैः।
हुत्वान्वहं सप्तदिनं भस्म भाले च मूर्द्धनि॥२९१॥
धारयन्वशयेत्कान्तांसापि तद्वत्पतिं ध्रुवम्।
ताम्बूलं कुसुमं वासोऽञ्जनं चन्दनमेव च॥२९२॥
सहस्रं मनुना जप्तं दद्याद्यस्मै नराय च। सोऽचिरादेष वशगः सपुत्रपशुबान्धवः॥२९३॥

क्रीड़ारत कृष्ण का ध्यान करके लाल कनेर पुष्प से होम करे। वैश्य वशीभूत होंगे। नृत्यगीत निरत कृष्ण का ध्यान करके नीलकमल से होम करे। शूद्र वशीभूत होंगे। श्वेत पुष्प, घृत, तण्डुल से होम सात दिन

करे। होम भस्म ललाट तथा मस्तक में लगाये। पत्नी वशीभूत होगी। यदि यही कार्य पत्नी करे, तब पति वशीभूत होगा। यह निःसंशय प्रयोग है। ताम्बूल, पुष्प, वस्त्र, अंजन, चन्दन को कृष्ण मन्त्र से १००० बार मन्त्रित करे। जिसको प्रदान किया जायेगा, वह पुत्र, इष्ट मित्र तथा पुत्रसहित साधक के वश में हो जायेगा।।२९०-२९३।।

वृन्दारण्यस्थितं ध्यायन्बल्लवीसंयुतं हरिम्।
अपामार्गसमिद्भिस्तु हुत्वा तु वशयेज्जगत्॥२९४॥
सम्प्राप्य सद्गुरोर्दीक्षां कृष्णं यो विधिनामुना।
अर्चयेद्वैष्णवश्रेष्ठः सोऽष्टसिद्धीश्वरो भवेत्॥२९५॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभाः स्मृताः।
वसेत्सरस्वती वक्त्रे गृहे चापि सभासदः॥२९६॥
भुक्त्वा नानाविधान्भोगानन्ते विष्णुपदं व्रजेत्॥२९७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे तृतीयपादे कृष्णमन्त्रनिरूपणं नामाशीतितमोऽध्यायः।।८०।।
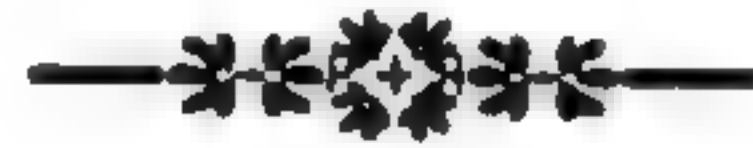
वृन्दावन में गोपीगण के साथ स्थित हरि का ध्यान करके अपामार्ग काष्ठ से हवन करने वाला व्यक्ति त्रैलोक्य को वशीभूत कर लेता है।

जो वैष्णव प्रवर सद्गुरु से कृष्णमन्त्र दीक्षा लेता है तथा उसी विधि से अर्चना करते हैं, वे अष्ट सिद्धि के स्वामी हो जाते हैं। उसे देखते ही विपक्षी निष्प्रभ होगा। सभा में भी सरस्वती उसके मुख में विराजमान हो जाती हैं। वह इहलौकिक विविध भोग को भोगकर अन्ततः विष्णुलोक जाता है।।२९४-२९७।।

।।८०वां अध्याय समाप्त।।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

मनोकामना-भेद से कृष्ण मन्त्रों के भेद का कथन

सनत्कुमार उवाच

अथ कृष्णस्य मन्त्राणां वक्ष्ये भेदान् मुनीश्वर।
यान्समाराध्य मनुजाः साधयन्तीष्टमात्मनः॥१॥
शक्तिश्रीमारपूर्वश्च श्रीशक्तिस्मरपूर्वकः। मारशक्तिरमापूर्वो दशार्णा मनवस्त्रयः॥२॥
मुनिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्री देवता पुनः। कृष्णो गोविन्दनामात्र सर्वकामप्रदो नृणाम्॥३॥

चक्रैः पूर्ववदङ्गानि त्रयाणामपि कल्पयेत्। ततः किरीटमनुना व्यापकं हि समाचरेत्॥४॥
सुदर्शनस्य मनुना कुर्याद्दिग्बन्धनं तथा। विंशत्यर्णोक्तवत्कुर्यादाद्ये ध्यानार्चनादिकम्॥५॥
द्वितीये तु दशार्णोक्तं ध्यानपूजादिकं चरेत्। तृतीये तु हरिं ध्यायेत्समाहितमनाः सुधीः॥६॥
शङ्खचक्रधनुर्बाणपाशाङ्कुशधरारुणम्। दोर्भ्यां धृतं धमन्तं च वेणुं कृष्णदिवाकरम्॥७॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रान्पञ्चलक्षं पृथक् सुधीः। जुहुयात्तद्दशांशेन पायसेन ससर्पिषा॥८॥

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री कुर्यात्काम्यानि पूर्ववत्।
श्रीशक्तिकामः कृष्णाय गोविन्दायाग्निसुन्दरी॥९॥
रव्यर्णो ब्रह्मगायत्रीकृष्णा ऋष्यादयोऽस्य तु।
बीजै रमाब्धियुग्मार्णैः षडङ्गानि प्रकल्पयेत्॥१०॥

विंशत्यर्णोदितजपध्यानहोमार्चनादिकम्। किं बहूक्तेन मन्त्रोऽयं सर्वाभीष्टफलप्रदः॥११॥
श्रीशक्तिस्मरपूर्वोगजन्मा शक्तिरमान्तिकः। दशाक्षरः स एवादौ प्रोक्तः शक्तिरमायुतः॥१२॥

मन्त्रौ षोडशरव्यर्णौ चक्रैरङ्गानि कल्पयेत्।
वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यन्तं स्वाङ्कके प्रिये॥१३॥
पद्मोत्पलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रदरोज्ज्वलम्।
ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षदशकं तद्दशांशतः॥१४॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे मुनिप्रवर! अब मैं कृष्ण मन्त्रों का भेद कहूंगा, जिनकी आराधना करने वाला अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। दशाक्षर मन्त्र का प्रथम भेद है "ह्रीं श्रीं क्लीं के साथ गोपीजन वल्लभाय स्वाहा कहे।

द्वितीय भेद है "श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजन वल्लाभाय स्वाहा" कहे।

तृतीय भेद हैं क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजन वल्लभाय स्वाहा कहे।

इन तीनों भेद के ऋषि नारद, छन्दः गायत्री तथा देवता हैं, सर्वकामप्रदायक श्रीकृष्ण। तीनों मन्त्र का पंचचक्र के पंचमन्त्र से (पूर्व कथित) पूर्ववत् अंगन्यास करे तथा किरीट मन्त्र से व्यापक न्यास करके सुदर्शन मन्त्र से दिग्बन्ध के उपरान्त प्रथम भेद में विंशाक्षर मन्त्रवत् ध्यान पूजनादि करे।

द्वितीय भेद में दशाक्षर मन्त्रवत् ध्यान पूजनादि करे।

तृतीय मन्त्र में ध्यान पृथक् है। एकाग्रता से चिन्तन करे कि वे हाथों में शंख, चक्र, धनुष, बाण, पाश अंकुशधारी हैं। उनका करतल रक्तवर्ण है। वे वंशी वादनरत हैं। इससे उनकी हथेली कृष्ण एवं श्वेत लक्षित हो रही है। ध्यानोपरान्त तृतीय भेद वाले मन्त्र का पांच लाख जप करे। तब ५०००० होम घृत खीर से करे। मन्त्र सिद्ध साधक सकाम कर्म पूर्ववत् कर सकता है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र हो जाता है। "श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा" यह द्वादशाक्षर ब्रह्मगायत्री इसके ऋषि हैं कृष्ण। इससे षडङ्ग करे। विंशवर्ण मन्त्र से जप होम ध्यान तथा अर्चनादि करे। किम्बहुना यह सर्वाभीष्टप्रद मन्त्र है। (श्लोक १२-१४ मन्त्र संकेत है। अज्ञता के कारण इनका मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।)॥१-१४॥

आज्यैर्हुत्वा ततः सिद्धौ भवेतां मन्त्रनायकौ।
सर्वकामप्रदौ सर्वसम्पत्सौभाग्यदौ नृणाम्॥१५॥
अष्टादशार्णः कामान्तो मनुः सुतधनप्रदः।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मनोः॥१६॥
कृष्णः कामो बीजमुक्तं शक्तिर्वह्निप्रिया मता।
षड्वीर्याढ्येन बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१७॥

घृत से आहुति देकर मन्त्रज्ञ साधक सिद्ध हो जाता है। यह सर्वकामना प्रदायक तथा सर्वसम्पत्ति एवं सौभाग्यप्रद हो जाता है। अष्टादशाक्षर मन्त्र के अन्त में 'क्लीं' जोड़ने पर वह मन्त्र पुत्रप्रद तथा धनप्रद हो जाता है। उसके ऋषि हैं नारद, छन्दः है गायत्री। देवता हैं कृष्ण, बीज है क्लीं, शक्ति है स्वाहा। षड्दीर्घयुक्त बीज से षडङ्ग सम्पन्न करे।।१५-१७।।

पाणौ पायसपक्वं च द्रक्षे हैयङ्गवीनकम्। वामं दधद्दिव्यदिगम्बरो गोपीसुतोऽवतु॥१८॥
ध्यात्वैवं प्रजपेन्मन्त्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः।
दशांशं जुहुयादग्नौ सिताढ्येन पयोऽन्धसा॥१९॥
पूर्वोक्तवैष्णवे पीठे यजेदष्टादशार्णवत्। पद्मस्थं कृष्णमभ्यर्च्य तर्पयेत्तन्मुखाम्बुजे॥२०॥
क्षीरेण कदलीपक्वैर्दध्ना हैयङ्गवेन च। पुत्रार्थी तर्पयेदेवं वत्सराल्लभते सुतम्॥२१॥

अब ध्यान करे—कृष्ण के दाहिने हाथ में खीर तथा वाम हाथ में मक्खन है। ऐसे दिगम्बर गोपीपुत्र श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें। यह ध्यान करके मन्त्र का ३२ लक्ष जप करे। ३२०००० होम शर्करा मिश्रीयुक्त खीर से करे। इसके पश्चात् पूर्वोक्त वैष्णवपीठ पर १८ अक्षर वाले मन्त्र जैसे पूजन करे। कमल के आसन पर विराजमान श्रीकृष्णार्चन करके उनके मुख में दुग्ध, पक्व कदली फल, दधि तथा नवनीत छोड़कर तृप्त करे। जो व्यक्ति पुत्र हेतु यह तर्पण करता है, उसे वर्षान्त तक पुत्रलाभ हो जायेगा।।१८-२१।।

यद्यदिच्छति तत्सर्वं तर्पणादेव सिद्ध्यति।
वाक्कामो ङेयुतं कृष्णपदं माया ततः परम्॥२२॥
गोविन्दाय रमा पश्चाद्दशार्णं च समुद्धरेत्। मनुस्वरयुतौ सर्गयुक्तौ भृगुददूर्द्ध्वगौ॥२३॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रदायकः।
ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्री देवता पुनः॥२४॥
विद्याप्रदश्च गोपालः कामो बीजं प्रकीर्तितम्।
शक्तिस्तु वाग्भवं विद्याप्राप्तये विनियोजना॥२५॥

वह साधक जिस किसी वस्तु की कामना करता है, वह सब इस तर्पण द्वारा उसे प्राप्त हो जाती है। वाक् (ऐं), काम (क्लीं) चतुर्थी विभक्त्यन्त कृष्णपद (अर्थात् कृष्णाय) माया (ह्रीं) रमा गोविन्दाय, तदनन्तर रमा (श्रीं) तत्पश्चात् गोपीजन वल्लभाय स्वाहा (दशाक्षरमन्त्र) उद्धृत करे। तदनन्तर मनुस्वर युक्त, सर्गयुक्त तथा भृगु

(स) उसके ऊर्ध्व में कहे। यह बाईस अक्षरात्मक वागीश्वरत्व प्रदायक मन्त्र है। (इसके मन्त्र संकेत का अनुवाद किया गया तथापि अज्ञातावश मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। विज्ञजन उसे करे)। इस मन्त्र के ऋषि नारद हैं। छन्दः है गायत्री, देवता हैं विद्यादाता कृष्ण गोपाल। बीज क्लीं है तथा शक्ति ऐं है। विद्यालाभार्थ इसका प्रयोग होता है।।२२-२५।।

वामोद्ध्र्वहस्ते दधतं विद्यापुस्तकमुत्तमम।
अक्षमालां च दक्षोद्ध्र्वस्फाटिकीं मातृकामयीम्।।२६।।
शब्दब्रह्ममयं वेणुमधः पाणिद्वये पुनः। गायत्रीगीतवसनं श्यामलं कोमलच्छविम्।।२७।।
बर्हावतंसं सर्वज्ञं सेवितं मुनिपुङ्गवैः। ध्यात्वैवं प्रमदावेशविलासं भुवनेश्वरम्।।२८।।

ध्यान—उन्होंने ऊर्ध्व वामहस्त में श्रेष्ठ विद्या ग्रन्थ तथा ऊर्ध्व दक्षिण हस्त में रुद्राक्षमाला तथा मातृकामयी स्फटिक माला धारण किया है। उन्होंने अपने दोनों अधः हस्त में वेणु धारण किया है। वे गायत्री गा रहे हैं। उन्होंने वस्त्रादि पहन रखा है। उनकी छवि श्यामल कोमल है। उन्होंने मयूर पंख को शिर पर धारण किया है। श्रेष्ठ मुनिगण उनकी सेवा कर रहे हैं। उन भुवनेश्वर को रमणियों का वेश विलास रुचिपूर्ण लगता है। यह ध्यान करे।।२६-२८।।

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं किंशुकैस्तद्दशांशतः। हुत्वा तु पूजयेन्मन्त्री विंशत्यर्ण विधानतः।।२९।।
एवं यो भजते मन्त्रं भवेद्वागीश्वरस्तु सः। अदृष्टान्यपि शास्त्राणि तस्य गङ्गातरङ्गवत्।।३०।।

इस मन्त्र का चार लाख जप करके चालीस सहस्र होम पलाश पुष्पों से सम्पन्न करे। हवन के पश्चात् बीस अक्षरात्मक मन्त्र प्रसंग वाले विधान के अनुरूप पूजा-अर्चना करे। ऐसी आराधना करके साधक वागीश्वरत्व लाभ करता है। जिन शास्त्र को उसने नहीं देखा है,वे भी उसकी जिह्वा से गंगा की तरंगवत् प्रवाहित होने लगते हैं अर्थात् उनका भी वर्णन वह करता है।।२९-३०।।

तारः कृष्णयुगं पश्चान्महाकृष्ण इतीरयेत्। सर्वज्ञ त्वंप्रशब्दान्ते सीदमेऽग्निश्च मारम।।३१।।
णान्ते विद्येश विद्यामांशु प्रयच्छ ततश्च मे। त्रयस्त्रिंशदक्षरोऽयं महाविद्याप्रदो मनुः।।३२।।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् कृष्णोऽस्य देवता।
पादैः सर्वेण पञ्चाङ्गं कृत्वा ध्यायेत्ततो हरिम्।।३३।।

"ॐ कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञत्वं प्रसीद में।
रमारमण विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ मे।।"

यह ३३ अक्षर वाला मन्त्र महाविद्याप्रद है। इसके ऋषि हैं नारद, छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं कृष्ण। इस मन्त्र के चतुःचरण से तथा सम्पूर्ण मन्त्र से पञ्चागं न्यासोपरान्त ध्यान करना चाहिये।।३१-३३।।

दिव्योद्याने विवस्वत्प्रतिममणिमयेमण्डपे योगपीठे
मध्ये यः सर्ववेदान्तमयसुरतरोः सन्निविष्टो मुकुन्दः।
वेदैः कल्पद्रुरूपैः शिखरिशतसमालम्बिकोशैश्चतुर्भि-
र्न्यायैस्तर्कैः पुराणैः स्मृतिभिरभिवृतस्तादृशैश्चामराद्यैः।।३४।।

दद्यादिब्भ्रत्कराग्रैरपि दरमुरलीपुष्पबाणेक्षुचापान-
क्षस्पृक्पूर्णकुम्भौ स्मरललितवपुर्दिव्यभूषाङ्गरागः।
व्याख्यां वामे वितन्वन् स्फुटरुचिरपदो वेणुना विश्वमात्रे
शब्दब्रह्मोद्भवेन श्रियमरुणरुचिर्बल्लवीबल्लभो नः॥३५॥

ध्यान—दिव्य उद्यान में विवस्वान् के समान द्युतिपूर्ण मणिमय मण्डप में स्थित योगीपठ पर सर्व वेदान्तमय सुरतरु के नीचे मुकुन्द विराजमान हैं। उनको देवगण ने तथा कल्पवृक्ष के समान वेद ने और उस वेद कल्पद्रुम की शाखा कोश, न्याय, पुराण, तर्क स्मृति समूह ने चामर झलते चतुर्दिक् से घेर रखा है। उनके करकमलों में मुरली, पुष्पबाण, ईख का धनुष, अक्षमाला तथा पूर्णकुंभ शोभायमान है। वे कामदेववत् मनोहर हैं। उन्होंने दिव्यभूषण तथा अंगराग धारण किया है। उन्होंने शब्द ब्रह्म से प्रकट हुई वेणु को बायें हाथ में धारण किया है। वे उसके माध्यम से विश्वमात्र में स्पष्ट एवं रुचिपूर्ण पदों का उच्चारण करते (शास्त्रों की) विशद व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। वे अरुण कान्ति वाले गोपीवल्लभ गोविन्द हमें लक्ष्मी प्रदान करे।।३४-३५।।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं पायसैर्हुनेत्।
अष्टादशार्णवत्कुर्याद्यजनं चास्य मन्त्रवित्॥३६॥

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप सम्पन्न करे तथा दस हजार होम पायस द्वारा करे। शेषपूजा विधि अष्टादशाक्षर मन्त्रवत् होगी।।३६।।

तारो नमो भगवते नन्दपुत्राय संवदेत्। आनन्दवपुषे दद्याद्दशार्णं तदनन्तरम्॥३७॥
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं मन्त्रः सर्वेष्टदायकः। नन्दपुत्रपदं ङेंतं श्यामलाङ्गपदं तथा॥३८॥

तथा बालवपुःकृष्णं गोविन्दं च तथा पुनः।
दशार्णोऽतोभवेन्मन्त्रो द्वात्रिंशदक्षरान्वितः॥३९॥

अनयोर्नारदऋषिश्छन्दस्तूष्णिगनुष्टुभौ। देवता नन्दपुत्रस्तु विनियोगीऽखिलाप्तये॥४०॥
चक्रैः पञ्चाङ्गमर्चास्यादङ्गदिक्पालहेतिभिः। दक्षिणे रत्नचषकं वामे सौवर्णवेत्रकम्॥४१॥

"ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय आनन्दवपुषे गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा" यह २८ अक्षरात्मक महामन्त्र सर्वकामना प्रदायक है। अन्य मन्त्र है—"नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा" यह ३२ अक्षरात्मक मन्त्र है। इन उभय मन्त्र के ऋषि नारद हैं। प्रथम का छन्दः है उष्णिक्, द्वितीय का छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं श्रीकृष्ण। इसका प्रयोग सर्वप्राप्ति हेतु करे। तदनन्तर पंचांग न्यास के उपरान्त अंगदेवता, दिक्पालगण एवं उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करे। इसके पश्चात् दाहिने हाथ में रत्नों भरा पात्र तथा बायें हाथ में स्वर्ण की छड़ी है।।३७-४१।।

करे दधानं देवीभ्यां श्लिष्टं सञ्चिन्तयेद्विभुम्। लक्षं जपो दशांशेन जुहुयात्पायसेन तु॥४२॥

एताभ्यां सिद्धमन्त्राभ्यां मन्त्री कुर्याद्यथेप्सितम्।
प्रणवः कमला माया नमो भगवते ततः॥४३॥

नन्दपुत्राय तत्पश्चाद्बालान्ते वपुषे पदम्। ऊनविंशतिवर्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मा समीरितः॥४४॥

छन्दोऽनुष्टुप् देवता च कृष्णो बालवपुः स्वयम्।
मन्त्रोऽयं सर्वसम्पत्तिसिद्धये सेव्यते बुधैः॥४५॥

वे दो देवीगण से अलिंगित हैं। ऐसे प्रभु का ध्यान करने के उपरान्त एकलाख जप तथा दस हजार होम खीर से करना चाहिये। इन उभयमंत्र का सिद्ध साधक वांछित फल प्राप्त करता है। प्रणव (ॐ) कमला (श्रीं) माया (ह्रीं) तदनन्तर नमो भगवते कहे। तदनन्तर नन्दपुत्राय कहकर बाल वपुषे कहे। तदनन्तर पद्म (श्री) कहे। संभावित मन्त्रोद्धार यह लगता है—"ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे श्रीं।" इसके ऋषि ब्रह्मा हैं। छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं बालवपुकृष्ण। (यहां मन्त्र संकेत का अनुवाद कर दिया गया। मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। विज्ञजन समाधान करे।) यह मन्त्र सर्वसम्पत्ति सिद्धि हेतु है। बुद्धिमान् लोग इसकी सेवा करे।।४२-४५।।

तारो हृद्भगवान्ङेतो रुक्मिणीवल्लभाय च।
वह्निजायावधिः प्रोक्तो मन्त्रः षोडशवर्णवान्॥४६॥
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता मनोः। रुक्मिणीवल्लभश्चन्द्रदृग्वेदाङ्गाक्षिवर्णकैः।
पञ्चाङ्गानि प्रकुर्वीत ततो ध्यायेत्सुरेश्वरम्॥४७॥
तापिच्छच्छविरङ्कगां प्रियतमां स्वर्णप्रभामम्बुज-
प्रोद्यद्दामभुजां स्ववामभुजयाश्लिष्यन्स्वचित्ताशया।
श्लिष्यन्तीं स्वयमन्यहस्तविलसत्सौवर्णवेत्रश्चिरं
पायान्नः सुविशुद्धपीतवसनो नानाविभूषो हरिः॥४८॥

षोडशाक्षर मन्त्र है—"ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा।" इसके ऋषि हैं नारद, छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं रुक्मिणी वल्लभ। इसका पंचांग न्यास १६ अक्षरों से करके कृष्ण ध्यान करे। यथा—तमाल पत्र की छवि वाले कृष्ण की स्वर्ण वर्ण प्रिया कमलमाला धारिणी हैं। वे कृष्ण के वक्ष से लिपट रही हैं। कृष्ण भी उनको अपने क्रोड़ में बैठाकर उनका आलिंगन बायीं भुजा से कर रहे हैं। कृष्ण के दाहिने हाथ में स्वर्ण की छड़ी है। वे नाना आभूषणों से सज्जित तथा पीतवसन धारण किये हुये हैं।"।।४६-४८।।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं रक्तैः पद्मैर्दशांशतः॥४९॥
त्रिमध्वक्तैर्हुनेत्पीठे पूर्वोक्ते पूजयेद्धरिम्। अङ्गैर्नारदमुख्यैश्च लोकेशैश्च तदायुधैः॥५०॥
एवं सिद्धो मनुर्दद्यात्सर्वान्कामांश्च मन्त्रिणे।
लीलादण्डपदाब्जोऽपि जनसंसक्तदोः पदम्॥५१॥
दण्डान्ते वा धरावह्निनधीशाढ्योऽथ लोहितः।
मेघश्यामपदं पश्चाद्भगवन् सलिलं सदृक्॥५२॥
विष्णो इत्युक्त्वा ठद्वयं स्यादेकोनत्रिंशदर्णवान्।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता मनोः॥५३॥

लीलादण्डहरिः प्रोक्तो मन्वब्धियुगवह्निभिः।
वेदैः पञ्चाङ्गकं भागैर्मन्त्रवर्णोत्थितैः क्रमात्॥५४॥
सम्मोहयंश्च निजवामकरस्थलीलादण्डेन गोपयुवतीः परसुन्दरीश्च।
दिश्यन्निजप्रियसखांसगदक्षहस्तो देवश्रियं निहतकंस उरुक्रमो नः॥५५॥

ध्यानोपरान्त मन्त्र का एकलक्ष जप करके १०००० होम त्रिमधुर लिप्त लाल कमल से करे। तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर नारदादि अंगदेवतागण, लोकपाल तथा उनके आयुधों की और श्रीहरि की पूजा करे। इस मन्त्र सिद्धि से मन्त्रज्ञ साधक सर्वकामनापूर्ण कर लेता है। ''लीलादण्ड पदाब्ज जन संसक्तदोर्दण्ड बालरूप मेघश्याम भगवन् विष्णवे स्वाहा'' यह २९ अक्षर का मन्त्र है।

(यह मन्त्रोद्धार ३१ अक्षरों का है, जबकि मूल में यह मन्त्र २९ अक्षरात्मक कहा गया है। विज्ञजन इस त्रुटि की मार्जना करे।)

इस मन्त्र के मुनि हैं नारद, छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं लीलादण्डहरि। इस मन्त्र सिद्धि हेतु मन्त्र के २९ वर्णो से अंगन्यास करके ध्यान करे। यथा—

वे प्रभु कृष्ण वामकरस्थ लीला दण्ड द्वारा अमित सौन्दर्यपूर्ण गोपयुवतीगण को मोहित कर रहे हैं। उन्होंने दाहिना हाथ अपने प्रिय सखा के कन्धे पर रखा है। वे महापराक्रमी हैं। उन्होंने कंस वध किया है।।४९-५५।।

लक्षं जपो दशांशेन जुहुयात्तिलतण्डुलैः। त्रिमध्वक्तैस्ततोऽभ्यर्चेदङ्गं दिक्पालहेतिभिः॥५६॥
लीलादण्डहरिं यो वै भजते नित्यमादरात्।
स सर्वैः पूज्यते लोकैस्तस्य गेहे स्थिरा रमा॥५७॥

ध्यानोपरान्त इस मन्त्र का एक लाख जप करके १०००० होम त्रिमधुराक्त तिल, तण्डुल से करे। तत्पश्चात् अंगदेवता, दिक्पालगण एवं उनके आयुधों की पूजा करे। लीलादण्डधारी श्रीहरि की आराधना आदर पूर्वक करने वाला साधक सर्वपूज्य होता है। उसके यहां स्थिरालक्ष्मी रहती हैं।।५६-५७।।

सद्यारूढा स्मृतिस्तोयं केशवाढ्यधरायुगम्।
भयाग्निवल्लभामन्त्रः सप्तार्णः सर्वसिद्धिदः॥५८॥
ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो उष्णिग्गोवल्लभस्य तु।
देवतापूर्ववच्चक्रैः पञ्चाङ्गानि तु कल्पयेत्॥५९॥
ध्येयो हरिः सकपिलागणमध्यसंस्थस्था आह्वयन्दधद्दक्षिणदोस्थवेणुम्।
पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः पीताम्बराहिरिपुपिच्छकृतावतंसः॥६०॥
सप्तलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः। गोदुग्धैः पूजयेत्पीठं स्यादङ्गैः प्रथमावृत्तिः॥६१॥
सुवर्णपिङ्गलां गौरपिङ्गलां रक्तपिङ्गलाम्। गुडपिङ्गां बभ्रुवर्णां चोत्तमां कपिलां तथा॥६२॥
चतुष्कपिङ्गलां पीतपिङ्गलां चोत्तमां शुभाम्।
गोगणाष्टकमभ्यर्च्य लोकेशानायुधैर्युतान्॥६३॥

सम्पूज्यैवं मनौ सिद्धे कुर्यात्काम्यानि मन्त्रवित्।
अष्टोत्तरसहस्त्रं यः पयोभिर्दिनशो हुनेत्॥६४॥
पक्षात्सगोगणो मुक्तो दशार्णे चाप्ययं विधिः।
तारो हृद्भगवान् ङेन्तः श्रीगोविन्दस्तथा भवेत्॥६५॥

"गो वल्लभाय स्वाहा" सप्ताक्षर मन्त्र सर्वसिद्धिप्रद है। इसके ऋषि नारद, छन्दः उष्णिक्, देवता गोपाल हैं। पूर्वमन्त्रवत् पंचचक्र से पंचांगन्यासोपरान्त ध्यान करे। यथा—हरि गोगण के बीच है तथा उनको पुकार रहे हैं। वे मेघवत् नीलवर्ण हैं तथा पीताम्बर और मयूरपंख का मुकुट धारण किये हुये हैं। उनके दाहिने हाथ में बांसुरी तथा वामहाथ में छड़ी तथा पाश है। यह ध्यान करके इस मन्त्र का सातलक्ष जप करके ७०००० होम गोदुग्ध से करे। पीठ पर अंगदेवतागण के साथ अष्टधेनु पूजन करे। इनके नाम हैं—स्वर्णपिंगला, गौरपिंगला, रक्तपिंगला, गुड़पिंगला, वभ्रुवर्णा तथा कपिला, चतुष्कपिंगला, पीतपिंगला। ये शुभा गौये हैं। इनकी अर्चना के पश्चात् लोकपाल तथा उनके आयुधों की पूजा करके मन्त्र सिद्ध करे। तदनन्तर कमना प्राप्ति हेतु मन्त्र प्रयोग करना चाहिये। जो मन्त्र के साथ दुग्ध से १००८ होम करता है, उसकी गौयें तथा स्वयं वह साधक उपद्रवों से रहित हो जाता है। यही दशार्ण मन्त्र की विधि है। "ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय"।।५८-६५।।

द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तो नारदोऽस्य मुनिर्मतः।
छन्दः प्रोक्तं गायत्री श्रीगोविन्दोऽस्य देवता
चन्द्राक्षियुगभूतार्णैः सर्वैः पञ्चाङ्गकल्पनम्॥६६॥
ध्यायेत्त्कल्पद्रुमूलाश्रितमविकसद्दिव्यसिंहासनस्थं।
मेघश्यामंपिशङ्गांशुकमतिसुभगं शङ्खवेत्रे कराभ्याम्॥६७॥
विप्राणं गोसहस्त्रैर्वृतममरपतिं प्रौढहस्तैककुं। भप्रश्चोतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम्॥६८॥
रविलक्षं जपेन्मन्त्रं दुग्धैर्हुत्वा दशांशतः। यजेच्च पूर्ववद्गोष्ठस्थितं वा प्रतिमादिषु॥६९॥
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः। तत्रावाह्य यजेत्कृष्णं गुरुपूजनपूर्वकम्॥७०॥

यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि हैं नारद। छन्दः है गायत्री। श्री गोविन्द देवता हैं। मन्त्र के द्वादश अक्षर से पंचांगन्यासोपरान्त ध्यान करे। "सुरपति कृष्ण कल्पवृक्ष के नीचे मणिमय दिव्य सिंहासन पर विराजमान हैं। वे मेघश्याम वर्णवाले, पीताम्बरधारी तथा शंख और बेत को हाथों में धारण करके स्थित हैं। वे सहस्त्रों गौओं से घिरे हैं। वे मनोहर हैं। उनके नेत्र कमलपत्र जैसे हैं। प्रौढ़ गोपीगण उनको सुधाधारा से स्नान करा रही हैं। एवंविध ध्यानोपरान्त द्वादशलक्ष मन्त्र जप करे तथा उसका १/१० संख्यक होम दुग्ध से करे। तदनन्तर गौशाला में अथवा मूर्त्ति में कृष्ण पूजा करना चाहिये। पूजा हेतु पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्त्ति प्रतिष्ठा करके वहां कृष्ण का आवाहन करे तथा पूजा करे तथापि पहले गुरु पूजा करे।।६६-७०।।

रुक्मिणीं सत्यभामां च पार्श्वयोरिन्द्रमग्रतः। पृष्ठतः सुरभिं चेष्ट्वा केसरेष्वङ्गपूजनम्॥७१॥
कालिन्द्याद्या महिष्योऽष्टौ वसुपत्रेषु संस्थिताः।
पीठकोणेषु बद्धादिकिङ्कणीं च तथा पुनः॥७२॥

दामानि पृष्ठयोर्वेणुं पुरः श्रीवत्सकौस्तुभौ।
अग्रतो वनमालादिर्दिक्ष्वष्टसु तथा स्थिताः॥७३॥
पाञ्चजन्यं गदा चक्रं वसुदेवश्च देवकी। नन्दगोपो यशोदा च सगोगोपालगोपिकाः॥७४॥
इन्द्राद्याश्च स्थिता बाह्ये वज्राद्याश्च ततः परम्।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः॥७५॥
शङ्कुवर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः।
विष्वक्सेनश्च सम्पूज्यः स्वात्मा चार्च्यस्ततः परम्॥७६॥

कृष्ण के दोनों पार्श्व में देवी रुक्मिणी तथा सत्यभामा की, सम्मुख में इन्द्र की, पृष्ठ की ओर सुरभि गौ का पूजन करके केसरों में देवपूजा करे। अष्टदल में कालिन्दी आदि आठ राजरानियों की पूजा करनी चाहिये। पीठ के चतुर्दिक् कोणों में बद्ध किंकिणियों की (छोटी घंटियों की), पृष्ठ में माला की, अग्रभाग में श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि की पूजा करे। अष्टदिक् में वनमालादि का पूजन करे। इसके बाहर पांचजन्य, गदा, चक्र, वसुदेव, देवकी, नन्दगोप, यशोदा, गोप-गोपी, इन्द्रादि देवता, वज्रादि आयुध, कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख, सुप्रतिष्ठ, विष्वक्सेन की पूजा करके स्वयं आत्मा की पूजा करे।।७१-७६।।

एककालं त्रिकालं वा यो गोविन्द यजेन्नरः। स चिरायुर्निरातङ्को धनधान्यपतिर्भवेत्॥७७॥
स्मृतिः सद्यान्विता चक्री दक्षकर्णयुतोधरा। नाथाय हृदयान्तोऽयं वसुवर्णो महामनुः॥७८॥
मुनिर्ब्रह्मास्य गायत्री छन्दः कृष्णोऽस्य देवता।
वर्णद्वन्द्वैश्च सर्वेण पञ्चाङ्गान्यस्य कल्पयेत्॥७९॥
पञ्चवर्षमतिलोलमङ्गणे धावमानमतिचञ्चलेक्षणम्।
किङ्किणीवलयहारनूपुरै रञ्जितं नमत गोपबालकम्॥८०॥

जो साधक एक काल अथवा त्रिकाल में गोविन्द पूजन करता है, वह चिरायु, आतंकरहित, धन-धान्य का स्वामी होता है। सद्य (ओ) स्मृति (ग) = **गो** दक्षिण कर्ण **(उ)** चक्री (क्) = **कु** धरा (=**ल**) = गोकुल हुआ। इसके आगे नाथाय तथा अन्त में हृदय (नमः) लगाये। मन्त्रोद्धार है "गोकुलनाथाय नमः"। यह अष्टाक्षर महामन्त्र है। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्दः गायत्री तथा देवता कृष्ण हैं। मन्त्र के आठों अक्षरों से पंचांगन्यास तथा ध्यान सम्पन्न करे। ध्यान—ये कृष्ण पंचवर्षीय शिशु तथा चंचल हैं। उनके नेत्र अतीव चपल हैं। उन्होंने किंकिणी, वलय, नूपुर, हार धारण किया है। ऐसे गोपशिशु को प्रणाम!।।७७-८०।।

एवं ध्यात्वा जपेदष्टलक्षं मन्त्री दशांश। ब्रह्मवृक्षसमिद्भिश्च जुहुयात्पायसेन वा॥८१॥
प्रागुक्ते वैष्णवे पीठे मूर्ति सङ्कल्प्य मूलतः।
तत्रावाह्यार्चयेत्कृष्णं मन्त्री वै स्थिरमानसः॥८२॥
केसरेषु चतुर्दिक्षु विदिक्ष्वङ्गानि पूजयेत्। वासुदेवं बलं दिक्षु प्रद्युम्नमनिरुद्धकम्॥८३॥
विदिक्षु रुक्मिणीसत्यभामे वै लक्ष्मणर्क्षजे।
लोकेशान्सायुधान्बाह्ये एवं सिद्धो भवेन्मनुः॥८४॥

यह ध्यान करके ८ लाख जप करके ८०००० होम पलाश समिध् से करे अथवा पायस से होम करे। तदनन्तर पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्त्ति प्रतिष्ठा करके वहां स्थिर मन से कृष्ण का आवाहन करे तथा पूजा करे। तदनन्तर दिक्-विदिक् में केसर पर अंगदेव पूजा, दिक् में वासुदेव-बलराम पूजा, विदिक् में प्रद्युम्न-अनिरुद्ध पूजा, तत् बाह्य प्रदेश में रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, जाम्बवती, लोकपाल तथा आयुधसमूह की पूजा करे। तब मन्त्र सिद्ध हो गया जानें।।८१-८४।।

तारः श्रीभुवनाकमो ङेन्तं श्रीकृष्णमीरयेत्।
श्रीगोविन्दं ततः प्रोच्य गोपीजनपदं ततः॥८५॥
वल्लभाय ततः पद्मात्रयं तत्त्वाक्षरो मनुः।
मुन्यादिकं च पूर्वोक्तं सिद्धगोपालकं स्मरेत्॥८६॥
माधवीमण्डपासीनौ गरुडेनाभिपालितौ।
दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत्॥८७॥

तार (ॐ) श्रीं (श्रीं) भुवना (ह्रीं) काम (क्लीं) तथा चतुर्था विभक्त्यन्त श्रीकृष्णाय 'गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय' कहकर तीन पद्मा (श्रीं श्रीं श्रीं) कहे। मन्त्रोद्धार है—"ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं" यह २३ अक्षर का मन्त्र है। इसके ऋषि प्रभृति पूर्ववत् हैं। इसे सिद्ध करने हेतु सिद्धगोपाल का स्मरण करे। तदनन्तर माधवीलता निर्मित मण्डप में आसीन, गरुड़ सेवित दिव्यक्रीड़ा निरत बलराम कृष्ण का ध्यान करे।।८५-८७।।

पूजनं पूर्ववच्चास्य कर्तव्यं वैष्णवोत्तमैः। चक्री मुनिस्वरोपेतः सर्गी चैकाक्षरो मनुः॥८८॥
कृष्णोति द्व्यक्षरः प्रोक्तः कामादिः स्यात्त्रिवर्णकः।
सैव ङेन्तो युगार्णः स्यात्कृष्णाय नम इत्यपि॥८९॥
पञ्चाक्षरश्च कृष्णाय कामरुद्धस्तथा परः।
गोपालायाग्निजायान्तो रसवर्णः प्रकीर्तितः॥९०॥
कामः कृष्णपदं ङेन्तं वह्निजायान्तकः परः।
कृष्णगोविन्दकौ ङेन्तौ सप्तार्णः सर्वसिद्धिदः॥९१॥
श्रीशक्तिकामाः कृष्णाय कामः सप्ताक्षरः परः।
कृष्णगोविन्दकौ ङेन्तौ हृदन्तोऽन्यो नवाक्षरः॥९२॥
ङेन्तौ च कृष्णगोविन्दौ तथाः कामः पुटः परः।
कामः शार्ङ्गी धरासंस्थो मन्विन्द्वाढ्यश्च मन्मथः॥९३॥
श्यामलाङ्गाय हृदयं दशार्णः सर्वसिद्धिदः।
बालान्ते वपुषे कृष्णायाग्निजायान्तिमोऽपरः॥९४॥
द्विठान्ते बालवपुषे कामः कृष्णाय संवदेत्। ततो ध्यायन्स्वहृदये गोपीजनमनोहरम्॥९५॥

विष्णु सेवकगण इस मन्त्र का पूजन पूर्ववत् करे। चक्री (क) अष्टमस्वर (ऋ) युक्त हो, साथ में विसर्ग लगा हो = कृः यह एकाक्षर मन्त्र, कृष्ण द्वयक्षर मन्त्र, क्लींकृष्ण त्र्यक्षर मन्त्र है। इस त्र्यक्षर में चतुर्थी विभक्ति लगने पर यही "क्लीं कृष्णाय" चतुरक्षर हो जाता है। पंचाक्षर है कृष्णाय नमः। "क्लीं कृष्णाय क्लीं" भी पंचाक्षर है।" "गोपालाय स्वाहा" षडक्षर है। "क्लीं कृष्णाय स्वाहा" द्वितीय षडक्षर है। "कृष्णाय गोविन्दाय" सप्ताक्षर है। यह सर्वसिद्धिप्रद है। "श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं" यह अन्य सप्ताक्षर है। "कृष्णाय गोविन्दाय नमः" यह नवाक्षर है। "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं" भी नवाक्षर है। 'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः" यह दशाक्षर सर्वसिद्धिप्रदायक मन्त्र है। अन्य दशाक्षर है "बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा।" "बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा" एकादशाक्षरमन्त्र है। तदनन्तर अपने हृदय में गोपीजन मनोहर कृष्ण का ध्यान करे।।८८-९५।।

श्रीवृन्दाविपिनप्रतोलिषु नमत्सम्फुल्लवल्लीत-
तिष्वन्तर्जालविघट्टनैः सुरभिना वातेन संसेविते।
कालिन्दीपुलिने विहारिणमथो राधैकजीवातुकं
वन्दे नन्दकिशोरमिन्दुवदनं स्निग्धाम्बुदाडम्बरम्।।९६।।

कृष्ण कालिन्दी तट पर विहार कर रहे हैं। वहां वृन्दावन की पगडंडियों पर छायी प्रफुल्लित लताओं के जाल को अस्त-व्यस्त करता सुरभित पवन प्रवाहित है। कृष्ण का मुख प्रफुल्लित है। उनका देहवर्ण सघनघन सदृश है। वे राधा के जीवन हैं। वे नन्दकिशोर चन्द्रमा के समान मुख वाले हैं।।९६।।

पूर्वोक्तवर्त्मना पूजा ज्ञेयाह्येषां मुनीश्वरो। देवकीसुतवर्णान्ते गोविन्दपदमुच्चरेत्।।९७।।
वासुदेवपदं प्रोच्य सम्बुद्ध्यन्तं जगत्पतिम्। देहि मे तनयं पश्चात्कृष्ण त्वामहमीरयेत्।।९८।।
शरणं गत इत्यन्तो मन्त्रो द्वात्रिंशदक्षरः। नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री चाप्यनुष्टुभम्।
देवः सुतप्रदः कृष्णः पादैः सर्वेण चाङ्गकम्।।९९।।

ध्यानोपरान्त पूजा पूर्वोक्त विधान से ही करे। "देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पति, देहि में तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः।" यह ३२ अक्षरों वाला मन्त्र है। इसके ऋषि हैं नारद, छन्दः है गायत्री तथा अनुष्टुप्। देवता हैं पुत्रपद कृष्ण। इस मन्त्र से अंगन्यास करे।।९७-९९।।

विजयेन युतो रथस्थितः प्रसमानीय समुद्रमध्यतः।
प्रददत्तनयान् द्विजन्मने स्मरणीयो वसुदेवनन्दनः।।१००।।
लक्षं जपोऽयुतं होमसितलैर्मधुरसंप्लुतैः। अर्चा पूर्वोदिने पीठे अङ्गलोकेश्वरायुधैः।।१०१।।
एवं सिद्ध मनौ मन्त्री वध्यायामपि पुत्रवान्।
तारो माया ततः सान्त सेन्दुष्वान्तश्च सर्ववान्।।१०२।।
सोऽहं वह्निप्रियान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरः परः।
पञ्चब्रह्मात्मकस्यास्य मन्त्रस्य मुनिसत्तमः।।१०३।।
ऋषिर्ब्रह्मा च परमा गायत्री छन्द ईरितम्।
परं ज्योतिः परं ब्रह्म देवता परिकीर्तितम्।।१०४।।

प्रणवो बीजमाख्यातं स्वाहा शक्तिरुदाहृता।
स्वाहेति हृदयं प्रोक्तं सोऽहं वेति शिरो मतम्॥१०५॥
हंसश्चेति शिखा प्रोक्ता हृल्लेखा कवचं स्मृतम्।
प्रणवो नेत्रमाख्यातमस्त्रं हरिहरेति च॥१०६॥

विजयी वसुदेवनन्दन रथ पर स्थित हैं। वे समुद्र से लाकर ब्राह्मण का मृतपुत्र उनको दे रहे हैं। इन प्रभु का स्मरण करे। इसे एक लाख जप कर १०००० होम तिल को मधु से युक्त करके सम्पन्न करे। तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर अंगदेवगण, लोकपाल तथा उनके आयुधों की पूजा करे। मन्त्र सिद्ध व्यक्ति की वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जायेगी। "ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा।" यह अन्य अष्टाक्षर मन्त्र है। इस पंचब्रह्मात्मक मन्त्र के मुनि ब्रह्मा, छन्दः है गायत्री। देवता हैं परं ज्योति पर ब्रह्म। बीज है प्रणव, शक्ति है स्वाहा।

स्वाहा हृदयाय नमः, सोहं शिरसे स्वाहा।

हंसः शिखायै वषट्, हृल्लेखा कवचाय हुम्।

ॐ नेत्राभ्यां वौषट्, हरिहर अस्त्राय फट्। यह अंगन्यास अब करे।।१००-१०६।।

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥१०७॥
एवं ध्यात्वा जपेदष्टलक्षहोमो दशांशतः। पूजाप्रणवपीठेऽस्य साङ्गावरणकैर्मन्ता॥१०८॥
एवं सिद्धे मनौ ज्ञानं साधकेन्द्रस्य नारद।
जायते तत्त्वमस्यादिवाक्योक्तं निर्विकल्पकम्॥१०९॥
कामो ङेन्तो हृषीकेशो हृदयान्तो गजाधरः।
ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छन्दो गायत्रमीरितम्॥११०॥
देवता तु हृषीकेशो विनियोगोऽखिलाप्तये।
कामो बीजं तथायेति शक्तिरस्य ह्युदाहृता॥१११॥
बीजनैव षडङ्गानि कृत्वा ध्यानं समाचरेत्।
पुरुषोत्तममन्त्रोक्तं सर्वं बास्य प्रकीर्तितम्॥११२॥

श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे शिव, हरि तथा इन्द्र हैं। वे सर्वरूप, सब संज्ञा हैं। वे ही अक्षर तथा परम स्वराट् हैं। इस प्रकार से ध्यान करके ८ लाख होम करके जप का १/१० होम करे। तत्पश्चात् प्रणव पीठ पर अंगदेवगण तथा कृष्ण की पूजा करनी चाहिये। हे नारद! ज्ञानी साधक श्रेष्ठ इस प्रकार से मन्त्र की सिद्धि करके त्वमसि इत्यादि वाक्यों में उक्त निर्विकल्प स्थिति को प्राप्त करता है। काम (क्लीं), चतुर्थविभक्त्यन्त हृषीकेश अर्थात् हृषीकेशाय, हृदयान्त = नमः—अर्थात् क्लीं हृषीकेशाय नमः, यह गजाधर अर्थात् अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि हैं ब्रह्मा। छन्दः है गायत्री, देवता हैं हृषीकेश। इसका प्रयोग सर्वप्राप्ति हेतु होता है। इसका बीज है क्लीं तथा शक्ति है "आय"। बीजमन्त्र से षडङ्गन्यास करने के उपरान्त ध्यान करे अथवा जो कुछ पुरुषोत्तम मन्त्र के प्रसंग में कहा गया, वही इस मन्त्र का भी विधान है।।१०७-११२।।

लक्षं जपोऽयुतं होमो घृतेनैव प्रकीर्तितः।
तर्पणं सर्वकामाप्त्यै प्रोक्तं सम्मोहिनीसुमैः॥११३॥
श्रीबीजं च चतुर्थ्यन्तं श्रीधरो ङेन्तकस्तथा।
त्रैलोक्यमोहनः शब्दो नमोऽन्तो मनुरीरितः॥११४॥
ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः श्रीधरदेवता।
श्रीबीजं शक्तिरापेति बीजेनैव षडङ्गकम्॥११५॥
पुरुषोत्तमवद्ध्यानपूजादिकमिहोदितः। लक्षं जपस्तथा होम आज्येनैव दशांशतः॥११६॥
सुगन्धश्वेतपुष्पैस्तु पूजां होमादिकं चरेत्।
एवं कृते तु विप्रेन्द्र साक्षात्स्याच्छ्रीधरः स्वयम्॥११७॥
अच्युतानन्तगोविन्दपदं ङेन्तं नमोन्तिमम्।
मन्त्रोऽस्य शौनकऋषिर्विराट् छन्दः प्रकीर्तितम्॥११८॥
ऐषां पराशराव्यासनारदा ऋषयः स्मृताः।
विराट् छन्दः समाख्यातं परब्रह्मात्मको हरिः॥११९॥
देवताबीजशक्ती तु पूर्वोक्ते साधकैर्मते। शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥१२०॥

इसके पश्चात् एकलक्ष मन्त्रजप तथा १०००० होम करे। तदनन्तर सुगन्धमय श्वेत पुष्पों से पूजा होमादि करे। हे विप्रेन्द्र! यह करके साक्षात् स्वयं साक्षात् श्रीधर हो जाता है। "[१]अच्युतानन्द गोविन्दाय नमः" यह भी मन्त्र है। [२]अच्युताय नमः, [३]गोविन्दाय नमः, [४]अनन्ताय नमः, ये तीन मन्त्र हैं। प्रथम के ऋषि हैं शौनक तथा छन्दः है विराट्। दूसरे मन्त्र के ऋषि हैं पराशर, तीसरे मन्त्र के ऋषि हैं नारद, चौथे मन्त्र के ऋषि हैं व्यास। इनके श्री छन्दः हैं विराट् तथा देवता हैं परब्रह्म हरि। बीज, शक्ति पूर्वमन्त्रवत् समझे। ध्यान—शंख चक्रधर देव किरीटी तथा चतुर्बाहु हैं।।११३-१२०।।

सर्वैरप्यायुधैर्युक्तं गरुडोपरि संस्थितम्। सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्॥१२१॥
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम्। प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्॥१२२॥
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि। अभयं वरदं देवं प्रयच्छन्तं मुदान्वितम्॥१२३॥

वे गरुड़ पर आसीन हैं। सनकादि मुनिगण तथा देवगण उनकी आराधना में रत हैं। वे श्री तथा भूमि के साथ हैं। उनकी कान्ति उदयकालीन सूर्यवत् हैं। उनके कर्णकुण्डल प्रातःकालीन हजारों सूर्य के समान चमक रहे हैं। वे प्रभु सर्वलोक रक्षार्थ उद्यत रहते हैं। वे अनन्त तथा नित्य हैं। ये देव प्रसन्न होकर अभय तथा वर देते हैं।।१२१-१२३।।

एवं ध्यात्वार्चयेत्पीठे वैष्णवे सुसमाहितः।
आद्यावरणसङ्गैः स्याच्चक्रशङ्खगदादिभिः॥१२४॥
मुशलाढ्यधनुःपाशाङ्कुशैः प्रोक्तं द्वितीयकम्। सनकादिकशाक्तेयव्यासनारदशौनकैः॥१२५॥

तृतीयं लोकपालैस्तु चतुर्थं परिकीर्तितम्। लक्षं जपो दशांशेन घृतेन हवनं स्मृतम्॥१२६॥

एवं सिद्ध मनौ मन्त्री प्रयोगानप्युपाचरेत्।
श्रीवृक्षमूले देवेशं ध्यायन्वै रोगिणं स्मरन्॥१२७॥

स्पृष्ट्वा जप्त्वायुतं साध्वं स्मृत्वा वा मनसा द्विज।
रोगिणां रोगनिर्मुक्तिं कुर्यान्मन्त्री तु मण्डलात्॥१२८॥

इस प्रकार ध्यान करके समाहित होकर वैष्णव पीठ पर कृष्ण की पूजा पूर्वोक्त विधि से करे। प्रथमावरण अंग द्वारा सम्पन्न होगा। शंख, चक्र, गदा, खड्ग, मूसल, धनुष, पाश, अंकुश, यह द्वितीयावरण है।

सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, पराशर, व्यास, नारद, शौनक तृतीयावरण है। लोकपालगण द्वारा चतुर्थावरण होगा। पंचमावरण में वज्रादि आयुध की पूजा करे। इस मन्त्र का एक लक्ष जप तथा घृत के दशांश होम करे। एवंविध मन्त्रसिद्धि होने पर साधक स्वेच्छा पूर्वक सविधि प्रयोग करे। बिल्ववृक्ष के नीचे कृष्ण का ध्यान करके रोगी का स्पर्श अथवा स्मरण करते १०००० मन्त्र जप द्वारा रोगी रोगमुक्त हो जाता है।।१२४-१२८।।

कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैर्बिल्वैश्चापि धनाप्त्ये।
वस्त्रार्थी गन्धकुसुमैरारोग्याय तिलैर्हुनेत्॥१२९॥

रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेत्तु यः।
अष्टोत्तरसहस्रं वै सज्वरं नाशयेद् ध्रुवम्॥१३०॥

विवाहार्थं जपेन्मासं शशिमण्डलमध्यगम्।
ध्यात्वा कृष्णं लभेत्कन्यां वाञ्छितां चापि नारद॥१३१॥

वसुदेवपदं प्रोच्य निगडच्छेदशब्दतः। वासुदेवाय वर्मास्त्रे स्वाहान्तो मनुरीरितः॥१३२॥

नारदोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री कृष्णदेवता।
वर्म बीजं शिरः शक्तिरन्यत्सर्वं दशार्णवत्॥१३३॥

कन्या चाहने वाला लावा से होम करे, धन चाहने वाला बिल्वफल से, वस्त्रार्था सुगन्ध पुष्पों से, आरोग्यकामी तिलों से होम करे। जो मानव रविवार को नाभि तक जल में खड़ा होकर १००८ बार मन्त्र जप करता है, वह ज्वर नाश कर सकेगा। हे नारद! विवाहार्थ चन्द्रमण्डल मध्यवासी कृष्ण का चिन्तन करता एक मास पर्यन्त यह मन्त्र जपे। उसे मनोनुकूल पत्नी प्राप्त होगी। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्दः गायत्री, देवता कृष्ण हैं। हुं बीज है। शिरः शक्ति है। इसका समस्त विधान दशाक्षरवत् है।।१२९-१३३।।

बालः पवनदीर्घेन्दुयुक्तो झिण्टीशयुर्जलम्। अत्रिव्यासाय हृदयं मनुरष्टाक्षरोऽवतु॥१३४॥

ब्रह्मानुष्टुपमुनिश्छन्दो देवः सत्यवतीसुतः।
आद्यं बीजं नमः शक्तिर्दीर्घाढ्यो नादिनाङ्ककम्॥१३५॥

व्याख्यामुद्रिकया लसत्करतलं सद्योगपीठस्थितं
वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम्।

विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहाङ्गद्युतिं
पाराशर्य्यमतीव पुण्यचरितं व्यासं स्मरेत्सिद्धये॥१३६॥

जपेदष्टसहस्राणि पायसैहोममाचरेत्। पूर्वोक्तपीठे व्यासस्य पूर्वमङ्गानि पूजयेत्॥१३७॥
प्राच्यादिषु यजेत्पैलं वैशम्पायनजैमिनी। सुमन्तुं कोणभागेषु श्रीशुकं रोमहर्षणम्॥१३८॥
उग्रश्रवसमन्यांश्च मुनीन्सेन्द्रादिकायुधान्। एवं सिद्धमनुर्मन्त्री कवित्वं शोभनाः प्रजाः॥१३९॥

व्याख्यानशक्तिं कीर्तिं च लभते सम्पदां चयम्।
नृसिंहो माधवो दृष्टो लोहितो निगमादिमः॥१४०॥
कृशानुजाया पञ्चार्णो मनुर्विषहरः परः।
अनन्तपङ्क्तिपक्षीन्द्रा मुनिश्छन्दःसुरा मताः॥१४१॥
तारवह्निप्रिये बीजशक्ती मन्त्रस्य कीर्तिते।
ज्वल ज्वल महामन्त्री स्वाहा हृदयमीरितम्॥१४२॥
गरुडेति पदस्यान्ते चूडाननशुचिप्रिया।
शिरोमन्त्रो गरुडतः शिखे स्वाहा शिखा मनुः॥१४३॥

गरुडेति पदं प्रोच्य प्रभञ्जययुगं वदेत्। प्रभेदययुगं पश्चाद्वित्रासय विमर्दय॥१४४॥
प्रत्येकं द्विस्ततः स्वाहा कवचस्य मनुर्मतः। उग्ररूपधरान्ते तु सर्वविषहरेति च॥१४५॥
भीषयद्वितयं प्रोच्य सर्वं दहदहेति च। भस्मीकुरु ततः स्वाहा नेत्रमन्त्रोऽयमीरितः॥१४६॥
अप्रतिहतवर्णान्ते वलाय प्रहतेति च। शासनान्ते तथा हुं फट् स्वाहास्त्रमनुरीरितः॥१४७॥

पादे कटौ हृदि मुखे मूर्ध्नि वर्णान्प्रविन्यसेत्॥१४८॥
तप्तस्वर्णनिभं फणीन्द्रनिकरैःक्लृप्ताङ्गभूषं प्रभुं
स्मर्तॄणां शमयन्तमुग्रमखिलं नृणां विषं तत्क्षणात्।
चंच्वग्रप्रचलद्भुजङ्गमभयं पाण्योर्वरं बिभ्रतं पक्षो-
च्चारितसामगीतममलं श्रीपक्षिराजं भजे॥१४९॥

पञ्चलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः। पूजयेन्मातृकापीठे गरुडं वेदविग्रहम्॥१५०॥

चतुर्थ्यन्तः पक्षिराजः स्वाहा पीठ मनुः स्मृतः।
दृष्ट्वाङ्गं कर्णिकामध्ये नागान्यन्त्रेषु पूजयेत्॥१५१॥

तद्बहिर्लोकपालांश्च वज्राद्यैर्विलसत्करान्। एवं सिद्धमनुर्मन्त्री नाशयेद्गरलद्वयम्।

देहान्ते लभते चापश्रीविष्णोः परमं पदम्॥१५२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे कृष्णादिमन्त्रभेदनिरूपणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

बाल (व) पवन (य) ये दोनों दीर्घ आ युक्त तथा अनुस्वार मय हों = व्यां। झिण्टीश (ए) से युक्त जल (व) हो, तब अत्रि (द) हो तदनन्तर व्यासाय कहकर हृदय (नमः) कहे। मन्त्रोद्धार है—"व्यां वेदव्यासाय नमः।" यह अष्टाक्षर है। इसके ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं व्यास। बीज है—'व्यां'। शक्ति है नमः। षड्दीर्घयुक्त बीज से अंगन्यास करे। मन्त्रसिद्धि के लिये व्यास का ध्यान करना होगा। यथा—वे सद्योगपीठस्थ हैं। एक हाथ व्याख्यामुद्रा में है। दूसरा हाथ वाम जानुतल पर है। वे सुविद्यानिधि हैं। वे ब्राह्मणोचित सभी व्रताचरण करने वाले हैं। वे प्रसन्न मन हैं। उनकी अंगद्युति कमलवत् हैं। वे पराशरनन्दन अत्यन्त पुष्पचरित हैं। यह ध्यान करके ८००० उक्त व्यास मन्त्र जपकर ८०० होम खीर से करे। पूर्वोक्त पीठ पर व्यास के अंग देवताओं का पूजन करे। पूर्वादि चार दिशा में यथाक्रम पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु की, कोणों में शुक, रोमहर्षण, उग्रश्रवा तथा अन्य मुनियों की तथा आयुध सहित इन्द्रादि लोकपाल की पूजा करे। इस प्रकार साधक मन्त्रसिद्ध हो जाता है। उसे कवित्व, व्याख्यान प्रतिमा, उत्तम सन्तति तथा सम्पदा लाभ होता है। "नृसिंह स्वाहा" पंचाक्षर मन्त्र *(यहां मन्त्रोद्धार में सन्देह है, क्योंकि मूल में नृसिंहों माधवो दृष्टो लोहितो निगमादिमः कृशानुजाया पञ्चाणों" यह मन्त्र संकेत है। विज्ञजन विचार करके मन्त्रोद्धार करें)* विषहर हैं। इसके मुनि अनन्त, पंक्ति छन्दः, देवता गरुड़, बीज ॐ तथा शक्ति स्वाहा है। "ज्वल ज्वल महामन्त्री स्वाहा" **हृदयमन्त्र** है। गरुड़ेति शिखे स्वाहा—**शिखामन्त्र** है। गरुड़ प्रभंजय प्रभंजय प्रमेदय प्रमेदय वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय स्वाहा, उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषय भीषय सर्वम् दह दह भस्मी कुरु स्वाहा यह **नेत्रमंत्र** है। अप्रतिहत बलाय प्रहते शासनाय हुं फट् स्वाहा—अस्त्रमन्त्र है। गरुड़ मन्त्र की सिद्धि हेतु चरण, कटि, हृदय, मुख, मस्तक पर मन्त्र वर्ण से न्यास करके यह ध्यान करे कि गरुड़ की देह कान्ति तप्त स्वर्ण सन्निभ है। वे नाग भूषण हैं। इससे वे अपूर्वतय शोभित हैं। वे अपना ध्यान-स्मरण करने वालों का विष दूरीभूत कर देते हैं। अपने पंजों में फंसे महान् भयानक सर्पो को वे प्रभु चोंच से क्षतिग्रस्त कर रहे हैं। वे अपने पंखों से सामगान कर रहे हैं। ऐसे पक्षिराज को प्रणाम! एवंविध ध्यान द्वारा ५ लाख मन्त्र जप करके जप का १/१० होम करे। यह होम तिल द्वारा होगा। हवन मन्त्र है "पक्षिराजाय स्वाहा" तदनन्तर मातृकापीठ पर वेदमूर्त्ति गरुड़ की पूजा करे। केसरों पर अंग देवता तथा यन्त्रों पर नागपूजा करके उसके बाहर लोकपालगण तथा उनके वज्रादि आयुध की पूजा करे। ऐसा करने से व्यक्ति मन्त्र सिद्ध होकर विष प्रभाव नाश में समर्थ हो जाता है। वह दोनों प्रकार के विष का नाशक हो जाता है। देहान्त होने पर उसे विष्णु का परमपद लाभ होता है।।१३४-१५२।।

।।८१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

राधा-कृष्ण सहस्रनामस्तव

सनत्कुमार उवाच

किं त्वं नारद जानासि पूर्वजन्मनि यत्त्वया।
प्राप्तं भगवतः साक्षाच्छूलिनो युगलात्मकम्।
कृष्णमन्त्ररहस्यं च स्मर विस्मृतिमागतम्॥१॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! क्या आप नहीं जानते कि पूर्वजन्म में आपने साक्षात् शूली महेश्वर से युगलात्मक कृष्णमन्त्र रहस्य को पाया था। यदि आप उसे विस्मृत कर गये हों, तब स्मरण करें।।१।।

सूत उवाच

इत्युक्तो नारदो विप्राः कुमारेण तु धीमता॥२॥
ध्याने विवेदाशु चिरं चरितं पूर्वजन्मनः। ततश्चिरं ध्यानपरो नारदो भगवत्प्रियः॥३॥
ज्ञात्वा सर्वं सुवृत्तान्तं सुप्रसन्नाननोऽब्रवीत्। भगवन्सर्ववृत्तान्तः पूर्वकल्पसमुद्भवः॥४॥
मम स्मृतिमनुप्राप्तो विना युगललम्भनम्। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः॥५॥
सनत्कुमारो भगवान् व्याजहार यथातथम।
शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यस्मिञ्जन्मनि शूलिनः॥६॥

सूत जी कहते हैं—धीमान् सनत्कुमार का कथन सुनकर नारद ध्यान द्वारा अपने पूर्वजन्म के चरित ज्ञान हेतु चिरकाल पर्यन्त प्रयास करने लगे। तदनन्तर वे सभी वृत्तान्त जानकर प्रसन्न होकर कहने लगे—"हे भगवन्! पूर्वजन्म की स्मृति तो मुझे प्राप्त हो गई तथापि युगलमन्त्र प्रसंग स्मरण में नहीं आ सका। शेष सब कुछ पूर्वकल्प वृत्तान्त से मैं अवगत हो गया।" महात्मा नारद का कथन सुनकर भगवान् सनत्कुमार उनसे सब यथार्थ वृत्तान्त कहने लगे—"हे विप्र! आपने शूली महेश्वर से जिस जन्म में सब जाना था, वह कहता हूं। श्रवण करें।"।।२-६।।

सनत्कुमार उवाच

प्राप्तं कृष्णरहस्यं वै सावधानो भवाधुना। अस्मात्सारस्वतात्कल्पात्पूर्वस्मिन्पञ्चविंशके॥७॥
कल्पे त्वं काश्यपो जातोनारदो नाम नामतः।
तत्रैकदा त्वं कैलासं प्राप्तः कृष्णस्य योगिनः॥८॥
सम्प्रष्टुं परमं तत्त्वं शिवं कैलासवासिनम्। त्वया पृष्टो महादेवौ रहस्यं स्वप्रकाशितम्॥९॥
कथयामास तत्त्वेन नित्यलीलानुगं हरेः। ततस्तदन्ते तु पुनस्त्वया विज्ञापितो हरः॥१०॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—आपने जो कृष्ण रहस्य पाया था, सावधान होकर श्रवण करिये। इस

सारस्वत कल्प के पूर्व वाले २५वें कल्प में (अर्थात् इस कल्प से २५ कल्प पहले) आप कश्यप के पुत्र होकर जन्मे थे। आपका नाम नारद ही था। परम प्रभुकृष्ण का तत्व जानने की कामना से आप कैलास पर्वत कैलासवासी शिव के पास गये। आपके पूछने पर महादेव ने स्वयं प्रकाशित हरि के नित्य लीला रूप तत्व रहस्य का वर्ण कर दिये। अन्त में आपने पुनः उनसे निवेदन किया—"मैं हरि की नित्य लीला का दर्शन करना चाहता हूं।"।।७-१०।।

नित्यां लीलां हरेर्द्रष्टुं तथा प्राह सदाशिवः। गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभेति पदं ततः॥११॥

चरणाच्छरणं पश्चात्प्रपद्ये इति वै मनुः।
मन्त्रास्यास्य ऋषिः प्रोक्तो सुरभिश्छन्द एव च॥१२॥
गायत्री देवता चास्य बल्लवीवल्लभो विभुः।
प्रपन्नोऽस्मीति तद्भक्तौ विनियोग उदाहृतः॥१३॥

तब शंभु ने कहा—गोपीजन के पश्चात् 'वल्लभ' जोड़कर 'चरण' 'शरण' तथा अन्त में 'प्रपद्ये' कहे। मन्त्रोद्धार है—"गोपीजन वल्लभचरणाञ्छरणं प्रपद्ये।" इस मन्त्र के ऋषि हैं सुरभि, छन्दः है गायत्री, देवता है गोपी वल्लभ कृष्ण। इसका प्रयोग शरणागति हेतु किया जाता है।।११-१३।।

नास्य सिद्धादिकं विप्र शोधनं न्यासकल्पनम्।
केवलं चिन्तनं सद्यो नित्यलीलाप्रकाशम्॥१४॥
आभ्यन्तरस्य धर्मस्य साधनं वच्मि साम्प्रतम्॥१५॥

हे विप्र! इस मन्त्र हेतु न्यास, शुद्धि, सिद्ध करना—ये सब आवश्यक ही नहीं है। मात्र चिन्तन से नित्य लीला प्रकाशक यह मन्त्र है। अब संक्षेप में आभ्यन्तर धर्म साधन सुनिये।।१४-१५।।

सङ्गृह्य मन्त्रं गुरुभक्तियुक्तो विचिन्त्य सर्वं मनसा तदीहितम्।
कृपां तदीयां निजधर्मसंस्थो विभावयन्नात्मनि तोषयेद्गुरुम्॥१६॥

गुरु से मन्त्र दीक्षा लेकर गुरुभक्ति करें तथा उनके मन की सभी कामना का ध्यान रखे। शिष्य अपने धर्म पर संस्थित रहकर मन में गुरु कृपा की भावना करें तथा उनको तोषित करता रहे।।१६।।

सतां शिक्षेत वै धर्मान्प्रपन्नानां भयापहान्।
ऐहिकामुष्मिकीचिन्ताविधुरान् सिद्धिदायकान्॥१७॥

स्वेष्टदेवधिया नित्यं तोषयेद्वैष्णवांस्तथा। भर्त्सनादिकमेतेषां न कदाचिद्विचिन्तयेत्॥१८॥

वह साधक शरणागत सज्जनगण को भय का नाश करने वाले इहलोक तथा परलोक सम्बन्धित चिन्ता को समाप्त करने वाले सिद्धिप्रद धर्म का उपदेश प्रदान करें। वह वैष्णवजन को ही इष्ट देवता समझ कर उनको नित्य प्रसन्न रखे। उनकी भर्त्सना कभी न करें। उनके प्रतिकूल कदापि न सोचे।।१७-१८।।

पूर्वकर्मवशाद्भव्यमैहिकं भोग्यमेव च। आयुष्यकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति॥१९॥

श्रीकृष्णं नित्यलीलास्थं चिन्तयेत्स्वधियानिशम्।
श्रीमदर्चावतारेण कृष्णं परिचरेत्सदा॥२०॥

अनन्यचिन्तनीयोऽसौ प्रपन्नैः शरणार्थिभिः। स्थेयं च देहगेहादावुदासीनतया बुधैः॥२१॥
गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरे हरौ। वेदनिन्दां हरेर्नामबलात्पापसमीहनम्॥२२॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसङ्ग्रहे। अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥२३॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च। सन्त्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान्सुदारुणान्॥२४॥

इस नियम से चलने वाले व्यक्ति को उसके पूर्वजन्मार्जित कर्मानुरूप इहलोक में भोग तथा आयु भगवान् कृष्ण प्रदान करते हैं। वे स्वयं यह सब देते हैं। साधक को चाहिये कि वह अहर्निश नित्य लीला में स्थित प्रभु का चिन्तन करें। श्रीमत् अर्चावतार कृष्ण की परिचर्या सदा करें। वह अनन्यता पूर्वक उनका चिन्तन करता हुआ उनका शरणागत हो जाये। वह साधक देह, गृह आदि के प्रति उदासीनता अपने मन में रक्खे। गुरु की अवज्ञा, साधु निन्दा, हरि-हर में भेद भावना, वेदनिन्दा, हरिनाम निन्दा, बलात् पापों में रुचि, हरिनाम में अर्थवाद, पाखण्ड, आलस्य, नास्तिक को हरिनामोपदेश, नामविस्मरण नाम का अनादर, इन दारुण दोषों को दूर से त्यागे।।१९-२४।।

प्रपन्नोऽस्मीति सततं चिन्तयेद्धृद्गतं हरिम्। स एव पालनं नित्यं करिष्यति ममेति च॥२५॥

तवास्मि राधिकानाथकर्मणा मनसा गिरा।
कृष्णकान्तेति चैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥२६॥
दासाः सखायः पितरः प्रेयस्यश्च हरेरिह।
सर्वे नित्या मुनिश्रेष्ठ चिन्तनीया महात्मभिः॥२७॥

प्रपन्न होकर हृदयस्थ हरि का सदा चिन्तन करें। यह भावना रक्खे "आप ही नित्य मेरे पालक हैं। हे राधिका नाथ! मैं मन-वाणी-कर्म से आप का ही हूं। आप दोनों मेरी गति हैं। हे मुनिप्रवर! हरि के दासों, सखा, पितृगण तथा प्रेयसी (राधा आदि) का सदा चिन्तन करें। हे मुनिप्रवर! ये सभी नित्य हैं। इन महात्माओं का चिन्तन करें।"।।२५-२७।।

गमनागमनेनित्य करोति वनगोष्ठयोः। गोचारणं वयस्यैश्च विनासुरविघातनम्॥२८॥

सखायो द्वादशाख्याता हरेः श्रीदामपूर्वकाः।
राधिकायाः सुशीलाद्याः सख्यो द्वात्रिंशदीरिताः॥२९॥
आत्मानं चिन्तयेद्वत्स तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं च स्वलङ्कृताम्॥३०॥

नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम्। तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम्॥३१॥
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावदर्धनिशा भवेत्। तावत्परिचरेत्तौ तु यथाकालानुसेवया॥३२॥
सहस्रं च तयोर्न्नाम्नां पठेनित्यं समाहितः। एतसाधनमुद्दिष्टं प्रपन्नानां मुनीश्वर॥३३॥

नाख्येयं कस्यचित्तुभ्यं मया तत्त्वं प्रकाशितम्।

श्रीकृष्ण वन गोष्ठों में नित्य आते हैं तथा जाते हैं। वे देवगण को क्षति पहुंचाये विना सखाओं के साथ

गौचारण करते हैं। यह भावना करें। श्रीकृष्ण के श्रीदामा प्रभृति द्वादश सखा हैं। राधिका, सुशीला प्रभृति बत्तीस सखियां हैं। उन सबके बीच साधक स्वयं को मनोरम, रूपयौवनान्वित, किशोरी, अलंकृता, नाना शिल्पकलाज्ञाता, कृष्ण के भोग के अनुरूप तथा उनके सेवनजनित सुख के आह्लाद से उत्फुल्ल सखी ही माने। ब्राह्ममुहूर्त्त से लेकर अर्द्धरात्रि तक समयानुसार कृष्ण की परिचर्या करनी चाहिये। नित्य समाहित होकर राधा-कृष्ण के सहस्र नाम का पाठ करें। हे मनीश्वर! यही भक्तों हेतु (प्रपन्न भक्तों हेतु) साधन उद्दिष्ट है। यह रहस्य अन्य किसी से न कहे। मैंने केवल आपसे ही कहा है।।२८-३३।।

सनत्कुमार उवाच

ततस्त्वं नारद पुनः पृष्टवान्वै सदाशिवम्।।३४।।
नाम्नां सहस्रं तच्चापि प्रोक्तवांस्तच्छृणुष्व मे।
ध्यात्वा वृन्दावने रम्ये यमुनातीरसङ्गतम्।।३५।।
कल्पवृक्षं समाश्रित्य तिष्ठन्तं राधिकायुतम्। पठेन्नामसहस्रं चु युगलाख्यं महामुने।।३६।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! तब आपने पुनः शिव से पूछा। तब उन्होंने आपसे सहस्रनामों का वर्णन किया। हे महामुने! आप उन सहस्रनामों का श्रवण मुझसे करिये। पहले रम्य वृन्दावन में यमुनातटस्थित कल्पवृक्ष के पास स्थित राधा-कृष्ण के युगलाख्य सहस्र नाम का श्रवण करिये।।३४-३६।।

देवकीनन्दनः शौरिर्वासुदेवो बलानुजः। गदाग्रजः कंसमोहः कंससेवकमोहनः।।३७।।
भिन्नार्गलो भिन्नलोहः पितृबाह्यः पितृस्तुतः।
मातृस्तुतः शिवध्येयो यमुनाजलभेदनः।।३८।।
व्रजवासीव्रजानन्दी नन्दबालो दयानिधिः।
लीलाबालः पद्मनेत्रो गोकुलोत्सव ईश्वरः।।३९।।
गोपिकानन्दनः कृष्णो गोपानन्दः सतां गतिः।
बकप्राणहरो विष्णुर्बकमुक्तिप्रदो हरिः।।४०।।
बलदोलाशयशयः श्यामलः सर्वसुन्दरः। पद्मनाभो हृषीकेशः क्रीडामनुजबालकः।।४१।।

यथा—देवकी नन्दन, वासुदेव, बलानुज, गदाग्रज, कंस को मोह उत्पन्न करने वाले, कंस सेवकों में मोह (भ्रम) उत्पन्न करने वाले, कारागार की जंजीर भंजक, लौह हथकड़ी आदि भग्न करने वाले, पिता के शिर पर वहन करने वाले, (जब वसुदेव शिर पर रखकर कंस कारागार से व्रज गये हैं), पितृस्तुत, मातृस्तुत, शिव के ध्येय, यमुना जल भेदक, व्रजवासी, व्रजानन्दी, नन्दबालक, दयानिधि, लीला-बाल, पद्मनेत्र, गोकुल के उत्सव, ईश्वर, गोपिकानन्दन, कृष्ण, गोपानन्द, सज्जनों की गति, बकराक्षस के प्राणहर्त्ता, विष्णु, बकासुर को मोक्षदाता, हरि, बलराम के चंचल चित्त में स्थित, श्यामल, सर्वसुन्दर, पद्मनाभ, हृषीकेश, क्रीड़ा हेतु मनुज बालक रूपधारी।।३७-४१।।

लीलाविध्वस्तशकटो वेदमन्त्राभिषेचितः। यशोदानन्दनः कान्तो मुनिकोटिनिषेवितः।।४२।।
नित्यं मधुवनावासी वैकुण्ठः सम्भवः क्रतुः। रमापतिर्यदुपतिर्मुरारिर्मधुसूदनः।।४३।।

माधवो मानहारी च श्रीपतिर्भूधरः प्रभुः। बृहद्वनमहालीलो नन्दसूनुर्महासनः॥४४॥
तृणावर्तप्राणहारी यशोदाविस्मयप्रदः। त्रैलोक्यवक्त्रः पद्माक्षः पद्महस्तः प्रियङ्करः॥४५॥
ब्रह्मण्यो धर्मगोप्ता च भूपतिः श्रीधरः स्वराट्।
अजाध्यक्षः शिवाध्यक्षो धर्माध्यक्षो महेश्वरः॥४६॥
वेदान्तवेद्यो ब्रह्मस्थः प्रजापतिरमोघदृक्। गोपीकरावलम्बी च गोपबालकसुप्रियः॥४७॥
बालानुयायी बलवान् श्रीदामप्रिय आत्मवान्। गोपीगृहाङ्गणरतिर्भद्रः सुश्लोकमङ्गलः॥४८॥
नवनीतहरो बालो नवनीतप्रियाशनः। बालवृन्दी मर्कवृन्दी चकिताक्षः पलायितः॥४९॥
यशोदातर्जितः कम्पी मायारुदितशोभनः। दामोदरोऽप्रमेयात्मा दयालुर्भक्तवत्सलः॥५०॥

लीला में ही शकट ध्वंस करने वाले, वेदमन्त्राभिषिक्त, यशोदा नन्दन, कान्त, कोटि मुनि सुसेवित, नित्य मधुवन निवासी, वैकुण्ठ, सबकी उत्पत्ति कर्त्ता संभव, क्रतु, रमापति, यदुपति, मुरारी, मधुसूदन, माधव, मानहारी, श्रीपति, भूधर, प्रभु, बृहद्वन में महालीलाकारी, नन्दपुत्र, महासन, तृणावर्त्त प्राणहारी, यशोदा को विस्मित करने वाले, त्रैलोक्य मुख, पद्माक्ष, पद्महस्त, प्रियकार्यकर्त्ता, ब्राह्मणहितकारी, धर्मगोप्ता, भूपति, श्रीधर, स्वराट् (स्वयम्प्रकाश), अजाध्यक्ष, शिवाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, महेश्वर, वेदान्तवेद्य, ब्रह्म में स्थित, प्रजापति, अमोघदृक्, गोपीकरावलम्बी, गोपबालकप्रिय, बालानुयायी, बलवान्, श्रीदामप्रिय, आत्मवान्, गोपीगण के गृह के आंगन में अनुरागपूर्ण रहने वाले, अत्यन्त मंगलमय, नवनीत हरण करने वाले, बाल, नवनीत रुचि पूर्वक खाने वाले, बालवृन्दी, मर्कवृन्दी (बालक तथा बानरों को खिलाने वाले), चकिताक्ष, पलायित (भाग जाने वाले), यशोदा से ताड़ित, कांपने वाले, अपनी माया से रुदन करने वाले, दामोदर, अप्रमेयात्मा, दयालु भक्तवत्सल।।४२-५०।।

सुबद्धोलूखले नम्रशिरा गोपीकदर्थितः। वृक्षभङ्गी शोकभङ्गी धनदात्मजमोक्षणः॥५१॥
देवर्षिवचनश्लाघी भक्तवात्सल्यसागरः। व्रजकोलाहलकरो व्रजानन्दविवर्द्धनः॥५२॥
गोपात्मा प्रेरकः साक्षी वृन्दावननिवासकृत्। वत्सपालो वत्सपतिर्गोपदारकमण्डनः॥५३॥
बालक्रीडो बालरतिर्बालकः कनकाङ्गदी। पीताम्बरो हेममाली मणिमुक्ताविभूषणः॥५४॥
किङ्किणीकटकी सूत्री नूपुरी मुद्रिकान्वितः। वत्सासुरपतिध्वंसी बकासुरविनाशनः॥५५॥
अघासुरविनाशी च विनिद्रीकृतबालकः। आद्य आत्मप्रदः सङ्गी यमुनातीरभोजनः॥५६॥
गोपालमण्डलीमध्यः सर्वगोपालभूषणः। कृतहस्ततलग्रासो व्यञ्जनाश्रितशाखिकः॥५७॥
कृतबाहुश‍ृङ्गयष्टिगुञ्जालङ्कृतकण्ठकः। मयूरपिच्छमुकुटो वनमालाविभूषितः॥५८॥
गैरिकाचित्रितपुर्नवमेघवपुः स्मरः। कोटिकन्दर्पलावण्यो लसन्मकरकुण्डलः॥५९॥
आजानुबाहुर्भगवान्निद्रारहितलोचनः। कोटिसागरगाम्भीर्यः कालकालः सदाशिवः॥६०॥
विरञ्चिमोहनवपुर्गोपवत्सवपुर्द्धरः। ब्रह्माण्डकोटिजनको ब्रह्ममोहविनाशकः॥६१॥
ब्रह्मा ब्रह्मडितः स्वामी शक्रदर्पादिनाशनः। गिरिपूजोपदेष्टा च धृतगोवर्धनाचलः॥६२॥

पुरन्दरेडितः पूज्यः कामधेनुप्रपूजितः। सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च गोविन्दोगोपरक्षकः॥६३॥

ऊखल में बांधे गये, नतशिर, गोपियों की फटकार सहने वाले, वृक्ष भंजक, शोक भंजक, कुबेर पुत्रों को छुटकारा प्रदान करने वाले, देवर्षि के वचन से श्लाघा करने वाले, भक्तवात्सल्यसागर, व्रज में कोलाहल करने वाले, व्रजवासियों के आनन्दवर्द्धक, गोपात्मा, प्रेरक, साक्षी, वृन्दावनवासी, वत्सपाल, वत्सपति, गोपबालकों में प्रधान, बालक्रीड़ा करने वाले, बालक प्रेमी, कनक का बाजूबन्दधारण करने वाले, पीताम्बरधारी, स्वर्णमाली, मणि-मुक्ता भूषित, किंकिणी-कंटक-सूत्र-नूपुर धारण करने वाले, मुद्रिका धारी, वत्सासुर के स्वामी का ध्वंस करने वाले, बकासुर नाशक, अघासुर नाशक, बालकों को जाग्रत करने वाले, आद्य, आत्मप्रद, संज्ञी, यमुनातट पर भोजनरत, गोपाल-मण्डली में स्थित, सर्वगोपाल भूषण, हथेली पर भोजन करने वाले, वृक्षों की डाल पर चढ़ने वाले, लाठीधारी, गुंजामालालंकृत कण्ठ वाले, मयूर पंख का मुकुट धारण करने वाले, वनमाला भूषित, गेरु से शरीर सजाने वाले, मेघवर्ण, कामदेव ऐसे, कोटि कामदेव के समान लावण्य वाले, मकराकृति कुण्डल विभूषित, प्रलम्बबाहु, भगवान्, निद्रारहित नेत्र वाले, करोड़ों सागरवत गंभीर, काल के भी काल, सदाशिव, ब्रह्मा को मोहित करने वाले शरीर धारी, गोप तथा वत्स शरीर धारी, कोटि ब्रह्माण्ड जनक, गोवर्द्धन धारी, इन्द्रदर्पनाशक, पर्वतपूजन के उपदेष्टा, शक्रस्तुत, पूज्य, कामधेनु से पूजित, सर्वतीर्थ जल से अभिसिक्त, गोविन्द, गोपरक्षक।।५१-६३।।

कालियार्तिकरः क्रूरो नागपत्नीडितो विराट्। धेनुकारिः प्रलम्बारिर्वृषासुरविमर्दनः॥६४॥
मायासुरात्मजध्वंसी केशिकण्ठविदारकः। गोपगोप्ता धेनुगोप्ता दावाग्निपरिशोषकः॥६५॥
गोपकन्यावस्त्रहारी गोपकन्यावरप्रदः। यज्ञपत्न्यन्नभोजी च मुनिमानापहारकः॥६६॥
जलेशमानमथनो नन्दगोपालजीवनः। गन्धर्वशापमोक्ता च शङ्खचूडशिरोहरः॥६७॥
वंशीवटी वेणुवादी गोपीचिन्तापहारकः। सर्वगोप्ता समाह्वानः सर्वगोपीमनोरथः॥६८॥
व्यङ्गधर्मप्रवक्ता च गोपीमण्डलमोहनः। रासक्रीडारसास्वादी रसिको राधिकाधवः॥६९॥
किशोरीप्राणनाथश्च वृषभानुसुताप्रियः। सर्वगोपीजनानन्दी गोपीजनविमोहनः॥७०॥

कालीयनाग को आर्त्त करने वाले, क्रूर, नागपत्नीगण से स्तुत, विराट्, धेनुक शत्रु, प्रलम्ब शत्रु, वृषासुर मर्दक, मायासुर के पुत्र के विध्वंसक, केशीकण्ठ को विदीर्ण करने वाले, गोपगोप्ता, धेनुगोप्ता, दावाग्नि शोषक, गोपकन्याओं का चीरहरण करने वाले, गोपकन्याओं को वर देने वाले, यज्ञ पत्नियों के अन्न का भोजन करने वाले, मुनियों के मान को हरण करने वाले, वरुण के गर्व का मंथन करने वाले, नन्द-गोपालों के जीवनरक्षक, गन्धर्व के शापमोचक, शंखचूड़ का शिर हरण करने वाले, वंशीवटी (वंशीवट में लीला करने वाले), वेणुवादी, गोपीगण की चिन्ता हरण करने वाले, सर्वगोप्ता, जोरों से बुलाने वाले, सर्वगोपीगण की कामना के पूरक, व्यंगधर्म प्रवक्ता, गोपीमण्डल मोहन, रासक्रीड़ारसास्वादी, रसिक, राधिकापति, किशोरी प्राणनाथ, वृषभानुपुत्री राधा के प्रिय, सभी गोपीजन को आनन्द देने वाले, गोपीजन को मोहित करने वाले।।६४-७०।।

गोपिकागीतचरितो गोपीनर्तनलालसः। गोपीस्कन्धाश्रितकरो गोपिकाचुम्बनप्रियः॥७१॥
गोपिकामार्जितमुखो गोपीव्यञ्जनवीजितः। गोपिकाकेशसंस्कारी गोपिकापुष्पसन्तरः॥७२॥

गोपिकाहृदयालम्बी गोपीवहनतत्परः। गोपिकामदहारी गोपिकापरमार्जितः॥७३॥
गोपिकाकृतसंनीलो गोपिकासंस्मृतप्रियः। गोपिकावन्दितपदो गोपिकावशवर्तनः॥७४॥
राधापराजितः श्रीमान्निकुञ्जेसुविहारवान्। कुञ्जप्रिय कुञ्जवासी वृन्दावनविकासनः॥७५॥
यमुनाजलसिक्ताङ्गो यमुनासौख्यदायकः। शशिसंस्तम्भनः शूरः कामी कामविमोहनः॥७६॥
कामाद्याः कामनाथश्च काममानसभेदनः। कामदः कामरूपश्च कामिनीकामसञ्चयः॥७७॥
नित्यक्रीडो महालीलः सर्वः सर्वगतस्तथा।
परमात्मा पराधीशः सर्वकारणकारणः (म्)॥७८॥

गोपीगण का गीत श्रवण करने वाले, गोपियों के नृत्य देखने वाले, गोपियों के कंधों पर हाथ का सहारा करने वाले, गोपिका चुम्बन प्रिय, गोपियों से मुख प्रक्षालित कराने वाले, गोपियों से पंखा झलाने वाले, गोपियों के केशसज्जाकारी, गोपियों से पुष्पशय्या लगवाने वाले, गोपिकाओं के हृदय के सहारा, गोपिकाओं के वाहनरूप, गोपीगण का मदचूर्ण करने वाले, गोपीगण दोष मार्जक, गोपियों से छिपने वाले, गोपी संस्मृति प्रिय, गोपिकाओं से वन्दित चरण वाले, गोपियों के वशवर्त्ती, राधा से पराजित, श्रीमान्, निकुंज में विहार करने वाले, कुंजप्रिय, कुंजवासी, वृन्दावन विकासन, यमुना जल से सिक्त अंगों वाले, यमुना को सुख प्रदान करने वाले, शशिस्तम्भक, शूर, कामी, कामविमोहन, काम के प्रवर्त्तक, कामनाथ, काममानस भेदन, कामप्रद, कामरूप, कामिनी तथा काम संचित करने वाले, नित्यक्रीड़ारत, महालीलाकारी, सर्व, सर्वगत, परमात्मा, पराधीश, सर्वकारण के भी कारण।।७१-७८।।

गृहीतनारदवचा ह्यक्रूरपरिचिन्तितः। अक्रूरवन्दितपदो गोपिकातोषकारकः॥७९॥
अक्रूरवाक्यसङ्ग्राही मथुरावासकारणः (म्)।
अक्रूरतापशमनो रजकायुःप्रणाशनः॥८०॥
मथुरानन्ददायी च कंसवस्त्रविलुण्ठनः। कंसवस्त्रपरीधानो गोपवस्त्रप्रदायकः॥८१॥
सुदामगृहगामी च सुदामपरिपूजितः। तन्तुवाकसम्प्रीतः कुब्जाचन्दनलेपनः॥८२॥
कुब्जारूपप्रदो विज्ञो मुकुन्दो विष्टरश्रवाः। सर्वज्ञो मथुरालोकी सर्वलोकाभिनन्दनः॥८३॥
कृपाकटाक्षदर्शी च दैत्यारिर्देवपालकः। सर्वदुःखप्रशमनो धनुर्भङ्गीमहोत्सवः॥८४॥
कुवलयापीडहन्ता दन्तस्कन्धबलाग्रणीः। कल्परूपधरोधीरो दिव्यवस्त्रानुलेपनः॥८५॥

नारद वचन स्वीकारकर्त्ता, अक्रूर का वचन मानने वाले, अक्रूर वन्दित चरण वाले, गोपीगण को प्रसन्न करने वाले, अक्रूर के वाक्य का संग्रह करने वाले, मथुरावासी, अक्रूर ताप नाशक, मथुरा में धोबी संहारक, मथुरा वासीगण को आनन्द देने वाले, कंसवस्त्रहारी, कंस के वस्त्र को पहनने वाले, गोपों को वस्त्र बांटने वाले, सुदामा के गृह जाने वाले, सुदामा से सम्यक् पूजित, दर्जी पर प्रसन्न, कुब्जा से चन्दन लेप कराने वाले, कुब्जा को रूप देने वाले, विज्ञ, मुकुन्द, विष्टश्रवा, सर्वज्ञ, मथुरा को आलोकित करने वाले, सर्वलोकों में अभिनन्दित, कृपाकटाक्षदर्शी, दैत्यारि, देवपालक, सर्वदुःखनाशक, धनुष भंग करने वाले, महोत्सवकर्त्ता, कुवलयापीड़ वधकर्त्ता, उसके दन्तों को कंधे पर धारण करने वाले, कल्परूपधर, धीर, दिव्यवस्त्र अनुलेपन युक्त,।।७९-८५।।

मल्लरूपो महाकालः कामरूपी बलान्वितः।
कंसत्रासकरो भीमो मुष्टिकान्तश्च कंसहा॥८६॥

चाणूरघ्नो भयहरः शलारिस्तोशलान्तकः। वैकुण्ठवासी कंसारिः सर्वदुष्टनिषूदनः॥८७॥
देवदुन्दुभिनिर्घोषी पितृशोकनिवारणः। यदवेन्द्रः सतांनाथो यादवारिप्रमर्द्दनः॥८८॥
शौरिशोकविनाशी च देवकीतापनाशनः। उग्रसेनपरित्राता उग्रसेनाभिपूजितः॥८९॥
उग्रसेनाभिषेकी च उग्रसेनदयापरः। सर्वसात्वतसाक्षी च यदूनामभिनन्दनः॥९०॥
सर्वमाथुरसंसेव्यः करुणो भक्तबान्धवः। सर्वगोपालधनदो गोपीगोपाललालसः॥९१॥
शौरिदत्तोपवीती च उग्रसेनदयाकरः। गुरुभक्तो ब्रह्मचारी निगमाध्ययने रतः॥९२॥
सङ्कर्षणसहाध्यायी सुदामसुहृदेव च। विद्यानिधिः कलाकोशो मृतपुत्रप्रदस्तथा॥९३॥

चक्री पाञ्चजनी चैव सर्वनारकिमोचनः।
यमार्चितः परो देवो नामोच्चारवसी (शो)ऽच्युतः॥९४॥

कुब्जाविलासी सुभगो दीनबन्धुरनूपमः। अक्रूरगृहगोप्ता च प्रतिज्ञापालकः शुभः॥९५॥

मल्लरूप, महाकाल, कामरूपी, बलान्वित, कंसत्रासकारी, भीम, मुष्टिकान्तक, कंसनाशक, चारणवधकर्ता, भयहारी, शलशत्रु, तोशलनाशक, वैकुण्ठनिवासी, कंस शत्रु, सर्वदुष्टनाशक, देवदुंदुभिवादक, पितृशोकहारी, यादवप्रभु, सज्जनों के नाथ, यादव शत्रु प्रमर्दक, शौरिशोकनाशक, देवकी तापनाशक, उग्रसेन के त्राणकर्त्ता, उग्रसेन से पूजित, उग्रसेन का अभिषेक करने वाले, उग्रसेन पर दयालु, सर्वसात्वतसाक्षी, सभी मथुरावासी से सेवित, करुण, भक्तों के बन्धु, सभी गोपों के धन देने वाले, गोप-गोपी की लालसा पूर्ण करने वाले, शौरि हेतु यज्ञोपवीतधारक, गुरुभक्त, ब्रह्मचारी, निगम के अध्ययन में निरत, बलराम के सहाध्यायी, सुदामा के सुहृद, विद्यानिधि, कलाकोष, गुरु को मृतपुत्र जीवित करके देने वाले, चक्री, पाञ्चजन्यधारी, सभी नारकीगण को मुक्त कराने वाले, यमपूजित, पर देवता, नामोच्चारण मात्र से वशीभूत, कुब्जाविलासी, सुभग, अनुपम, दीनबन्धु, अक्रूर के गृहरक्षक, प्रतिज्ञापालक पवित्र।।८६-९५।।

जरासन्धजयी विद्वान् यवनान्तो द्विजाश्रयः। मुचुकुन्दप्रियकरो जरासन्धपलायितः॥९६॥
द्वारकाजनको गूढो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः। लीलाधरः प्रियकरो विश्वकर्मा यशःप्रदः॥९७॥
रक्मिणीप्रियसन्देशो रुक्मशोकविवर्द्धनः। चैद्यशोकालयः श्रेष्ठो दुष्टराजन्यनाशनः॥९८॥
रुक्मिवैरूप्यकरणो रुक्मिणीवचने रतः। बलभद्रवचोग्राही मुक्तरुक्मी जनार्दनः॥९९॥

रुक्मिणीप्राणनाथश्च सत्यभामापतिः स्वयम्।
भक्तपक्षी भक्तिवश्यो ह्यक्रूरमणिदायकः॥१००॥

जरासंध को जीतने वाले, विद्वान्, यवन नाशक, द्विजाश्रयी, मुचुकुन्द का प्रिय करने वाले, जरासन्ध के भय से पलायनरत, द्वारका निर्माता, गूढ़, ब्रह्मण्य, सत्यसंघ, लीलाधर, प्रियकर, विश्वकर्मा, यशप्रद, रुक्मिणी को प्रिय सन्देश प्रेषक, रुक्मशोकवर्द्धक, शिशुपाल हेतु शोकालय रूप, दुष्ट राजाओं के नाशक,

रुक्मी को विरूप करने वाले, रुक्मिणी का कथन मानने वाले, बलभद्र के वचनों को ग्रहण करने वाले, रुक्मी को मुक्त करने वाले, जनार्दन, रुक्मिणी के प्राणनाथ, सत्यभामापति, भक्तों का पक्ष लेने वाले, भक्ति के वशीभूत, अक्रूर को मणि देने वाले।।९६-१००।।

शतधन्वाप्राणहारी ऋक्षराजसुताप्रियः। सत्राजित्तनयाकान्तो मित्रविन्दापहारकः॥१०१॥

सत्यापतिर्लक्ष्मणाजित्पूज्यो भद्राप्रियङ्करः।
नरकासुरघाती च लीलाकन्याहरो जयी॥१०२॥

मुरारिर्मदनेशोऽपि धरित्रीदुःखनाशनः। वैनतेयी स्वर्गगामी अदित्यकुण्डलप्रदः॥१०३॥

इन्द्रार्चितो रमाकान्तो वज्रीभार्याप्रपूजितः।
पारिजातापहारी च शक्रमानापहारकः॥१०४॥

प्रद्युम्नजनकः साम्बतातो बहुसुतो विधुः। गर्गाचार्यः सत्यगतिर्धर्माधारो धराधरः॥१०५॥

द्वारकामण्डनः श्लोक्यः सुश्लोको निगमालयः।
पौण्ड्रकप्राणहारी च काशीराजशिरोहरः॥१०६॥

अवैष्णवविप्रदाही सुदक्षिणभयावह। जरासन्धविदारी च धर्मनन्दनयज्ञकृत्॥१०७॥

शिशुपालशिरच्छेधी दन्तवक्त्रविनाशनः। विदूरथान्तकः श्रीशः श्रीदो द्विविदनाशनः॥१०८॥

रुक्मिणीमानहारी च रुक्मिणीमानवर्द्धन। देवर्षिशापहर्ता च द्रौपदीवाक्यपालकः॥१०९॥

दुर्वासोभयहारी च पाञ्चालीस्मरणागतः। पार्थदूतः पार्थमन्त्री पार्थदुःखौघनाशनः॥११०॥

शतधन्वा प्राणहर्त्ता, ऋक्षराज की पुत्री के प्रिय, सत्राजित् नन्दिनी के पति, मित्रविन्दा के हरणकर्त्ता, सत्या के पति, लक्ष्मणा को जीतने वाले, पूज्य, भद्रा का प्रिय करने वाले, नरकासुर घाती, लीला से कन्या हरण करने वाले, गरुड़ को वाहन बनाकर रखने वाले, स्वर्गगामी, अदिति को कुण्डल देने वाले, इन्द्रपूजित, रमापति, इन्द्रपत्नी से पूजित, पारिजात वृक्षहारी, शक्र के मान का नाश करने वाले। प्रद्युम्न के पिता, साम्ब के पिता, बहुसुत, चन्द्ररूप, गर्गाचार्य के रूप, सत्यगति, धर्माधार, धराधर, द्वारकाभूषण, स्तुत्य, यशवान्, निगमालय, पौण्ड्रक प्राणहर्त्ता, काशीराज के शिर को काटने वाले, अवैष्णव ब्राह्मण दग्धकारी, सुदक्षिण को भयग्रस्त करने वाले, जरासंध विदारक, धर्मनन्दन से यज्ञ कराने वाले, शिशुपाल के शिर को काटने वाले, दन्तवक्त्रनाशक, विदूरथ का अन्त करने वाले, श्रीश, श्री देने वाले, द्विविधवध के कर्त्ता, रुक्मिणी के अभिमान का हरण करने वाले, देवर्षि के शाप के हर्त्ता, द्रौपदी वाक्य पालक, दुर्वासा कृत भय को दूर करने वाले, पांचाली के स्मरण मात्र से उपस्थित रहने वाले, पार्थ के दूत, पार्थमन्त्री, पार्थ के दुःखों के नाशक।।१०१-११०।।

पार्थमानापहारी च पार्थजीवनदायकः। पाञ्चाली वस्त्रदातः च विश्वपालकपालका॥१११॥

श्वेताश्वसारथिः सत्यः सत्यसाध्यो भयापहः।
सत्यसन्धः सत्यरतिः सत्यप्रिय उदारधीः॥११२॥

महासेनजयी चैव शिवसैन्यविनाशनः। बाणासुरभुजच्छेत्ता बाणबाहुवरप्रदः॥११३॥

ताक्ष्यर्मानापहारी च ताक्ष्यर्तेजोविवर्द्धनः। रामस्वरूपधारी च सत्यभामामुदावहः॥११४॥
रत्नाकरजलक्रीडो व्रजलीलाप्रदर्शकः। स्वप्रतिज्ञापरिध्वंसी भीष्माज्ञापरिपालकः॥११५॥

पार्थ के मान के नाशक, पार्थ को जीवन प्रदायक, द्रौपदी को वस्त्र प्रदाता, विश्वपालक के पालक, श्वेत घोड़ों के सारथी, सत्य, सत्यसाध्य, भयापह, सत्यसन्ध, सत्यरति, उदारबुद्धि, महासेन विजेता, शिवसैन्य नाशक, बाणासुर की भुजा काटने वाले, बाण को बाहु सम्बन्धित वरदाता, गरुड़ मान हर्त्ता, गरुड़ का तेजवर्द्धन करने वाले, रामरूपी, सत्यभामा हेतु आनन्द दाता, समुद्र जल में जल-क्रीड़ा करने वाले, व्रज में लीला दिखलाने वाले, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने वाले, भीष्माज्ञा पालक।।१११-११५।।

वीरायुधहरः कालः कालिकेशे महाबलः। वर्वरीषशिरोहारी वर्वरीषशिरःप्रदः॥११६॥
धर्मपुत्रजयी शूरदुर्योधनमदान्तकः। गोपिकाप्रीतिनिर्बन्धनित्यक्रीडो व्रजेश्वरः॥११७॥
राधाकुण्डरतिर्धन्यः सदान्दोलसमाश्रितः। सदामधुवनानन्दी सदावृन्दावनप्रियः॥११८॥
अशोकवनसन्नद्धः सदातिलकसङ्गतः। सदागोवर्द्धनरतिः सदा गोकुलवल्लभः॥११९॥
भाण्डीरवटसंवासी नित्यं वंशीवटस्थितः। नन्दग्रामकृतावासो वृषभानुग्रहप्रियः॥१२०॥
गृहीतकामिनीरूपो नित्यं रासविलासकृत्। वल्लवीजनसङ्गोप्ता वल्लवीजनवल्लभः॥१२१॥
देवशर्म कृपाकर्ता कल्पपादपसंस्थितः। शिलानुगन्धनिलयः पादचारी घनच्छविः॥१२२॥

वीरों का अस्त्र हरण करने वाले, काल, कालिकेश, महाबली, बर्बरीक का शिर काटने वाले, बर्बरीक को शिर देने वाले। धर्मपुत्र को विजयदाता, शूर दुर्योधन का मद चूर्ण करने वाले, गोपीगण की प्रीति में वद्ध होकर नित्य क्रीड़ा करने वाले, व्रजेश्वर, राधाकुण्ड से रति करने वाले, सदा झूला झूलने वाले, सदा मधुवन में आनन्द करने वाले, वृन्दावन के शाश्वत प्रेमी, अशोक वन निवासी, तिलकधारी, गोवर्द्धन से स्नेह करने वाले सदा गोकुल प्रिय, वृषभानु कुमारी प्रिय, कामिनी रूप धारी, नित्य रासलीला करने वाले, भांडीरवट में रहने वाले, नित्य वंशीवट स्थित, नन्दग्राम के निवासी, गोपीगण संरक्षक, गोपीगण प्रिय, देवशर्मा पर कृपालु, कल्पवृक्षस्थ, सुगन्धित शिलाजीत आदिगन्धयुक्त, पैदल विचरने वाले, मेघकान्ति।।११६-१२२।।

अतसीकुसुमप्रख्यः सदा लक्ष्मीकृपाकरः। त्रिपुरारि प्रियकरो ह्युग्रधन्वापराजितः॥१२३॥
षड्धुरध्वंसकर्ता च निकुम्भप्राणहारकः। वज्रनाभपुरध्वंसी पौण्ड्रकप्राणहारकः॥१२४॥
बहुलाश्वप्रीतिकर्ता द्विजवर्यप्रियङ्करः। शिवसङ्कटहारी च वृकासुरविनाशनः॥१२५॥
भृगुसत्कारकारी च शिवसात्त्विकताप्रदः। गोकर्णपूजकः साम्बकुष्ठविध्वंसकारणः॥१२६॥
वेदस्तुतो वेदवेत्ता यदुवंशविवर्द्धनः। यदुवंशविनाशी च उद्धवोद्धारकारकः॥१२७॥

राधा च राधिका चैव आनन्दा वृषभानुजा।
वृन्दावनेश्वरी पुण्या कृष्ण मानसहारिणी॥१२८॥
प्रगल्भा चतुरा कामा कामिनी हरिमोहिनी।
ललिता मधुरा माध्वी किशोरी कनकप्रभा॥१२९॥

जित्तचन्द्रा जितमृगा जितसिंहा जितद्विपा। जितरम्भा जितपिका गोविंहृदयोद्भवा।।१३०।।
जितबिम्बा जितशुका जितपद्मा कुमारिका।
श्रीकृष्णाकर्षणा देवी नित्यं युग्मस्वरूपिणी।।१३१।।
नित्यं विहारिणी कान्ता रसिका कृष्णवल्लभा।
आमोदिनी मोदवती नन्दनन्दनभूषिता।।१३२।।
दिव्याम्बरा दिव्यहारा मुक्तामणिविभूषिता।
कुञ्जप्रिया कुञ्जवासा कुञ्जनायकनायिका।।१३३।।

अतसी पुष्प के वर्ण वाले, सदा लक्ष्मीयुक्त, त्रिपुरारि का प्रिय करने वाले, उग्रधन्वा से परास्त, षड्धुर ध्वंसक, निकुम्भनाशक, वज्रनाभ के पुर का ध्वन्स करने वाले, पौण्ड्रक के प्राणों का हरण करने वाले, बहुलाश्व प्रीतिकर्त्ता, द्विजों का प्रिय करने वाले, शिवसंकटहारी, वृकासुर नाशक, भृगु का सत्कार करने वाले, शिव का सात्विक करने वाले, गोकर्णपूजक, साम्ब के कुष्ठ विनाश कारण, वेदों से स्तुत, वेदज्ञाता, यदुवंश बढ़ाने वाले, यदुवंशनाशक, उद्धव के उद्धारकर्त्ता (यहां से राधा का नाम कहते हैं) राधा, राधिका, आनन्दा, वृषभानुजा, वृन्दावनेश्वरी, पुण्या, कृष्ण के मन का हरण करने वाले, प्रगल्भा, चतुरा कामा, कामिनी, हरि को मोहित करने वाली, ललिता, मधुरा, माध्वी, किशोरी कनक प्रभा, जितचन्द्रा, जितमृगा, जितसिंहा, जितद्विपा, जितरंभा, जितपिका, गोविन्द के हृदय से उद्भूत, जितबिम्बा, जितशुका, जितपद्मा, कुमारिका, श्रीकृष्ण को आकर्षित करने वाली, नित्य युगलरूप धारिणी, नित्य विहारिणी, कान्ता, रसिका, कृष्णवल्लभा, अमोदिनी, मोदवती, नन्दनन्दनभूषिता, दिव्याम्बरा, दिव्यहारा, मुक्तामणिभूषिता, कुब्जप्रिया, कुब्जवासा, कुब्जनायक, कुब्जनायिका।।१२३-१३३।।

चारुरूपा चारुवक्त्रा चारुहेमाङ्गदा शुभा।
श्रीकृष्णवेणुसङ्गीता मुरलीहारिणी शिवा।।१३४।।
भद्रा भगवती शान्ता कुमुदा सुन्दरी प्रिया।
कृष्णक्रीडा कृष्णरतिः श्रीकृष्णसहचारिणी।।१३५।।
वंशीवटप्रियस्थाना युग्मायुग्मस्वरूपिणी।
भाण्डीरवासिनी शुभ्रा गोपीनाथप्रिया सखी।।१३६।।
श्रुतिनःश्वसिता दिव्या गोविन्दरसदायिनी।
श्रीकृष्णप्रार्थनीशाना महानन्दप्रदायिनी।।१३७।।
वैकुण्ठजनसंसेव्या कोटिलक्ष्मीसुखावहा। कोटिकन्दर्पलावण्या रतिकोटिरतिप्रदा।।१३८।।
भक्तिग्राह्या भक्तिरूपा लावण्यसरसी दमा। ब्रह्मरुद्रादिसंराध्या नित्यं कौतुहलान्विता।।१३९।।

चारुरूपा, चारुवक्त्रा, चारुहेमांगदा, शुभा, कृष्ण वेणुसंगीता, मुरलीहारिणी, शिवा, भद्रा, भगवती, शान्ता, कुमुदा, सुन्दरी, प्रिया, कृष्ण-क्रीड़ा, कृष्णरति, श्रीकृष्ण सहचारिणी, वंशीवट को प्रियस्थान मानने वाली, युग्म-अयुग्म स्वरूपा, भाण्डीरवन वासिनी, शुभ्रा, गोपीनाथ प्रिया, सखी, श्रुत निःश्वासोत्पन्न, दिव्या,

गोविन्दरसप्रदा, श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने वाली, महान् आनन्दप्रदा, वैकुण्ठजन संसेव्या, कोटिलक्ष्मीवत् सुखप्रदा, कोटि कामदेवों के लावण्य से युता, करोड़ों रति के समान रतिप्रदा, भक्तिग्राह्या, भक्तिरूपा, लावण्य सरोवर, उमा, ब्रह्मा, रुद्र आदि से आराधिता, नित्य कौतूहल संयुता।।१३४-१३९।।

नित्यलीला नित्यकामा नित्यशृङ्गारभूषिता। नित्यवृन्दावनरसा नन्दनन्दनसंयुता॥१४०॥

गोपिकामण्डलीयुक्ता नित्यं गोपालसङ्गता।
गोरसक्षेपणी शूरा सानन्दा नन्ददायिनी॥१४१॥
महालीला प्रकृष्टा च नागरी नगचारिणी।
नित्यमाघूर्णिता पूर्णा कस्तूरीतिलकान्विता॥१४२॥
पद्मा श्यामा मृगाक्षी च सिद्धिरूपा रसावहा।
कोटिचन्द्रानना गौरी कोटिकोकिलसुस्वरा॥१४३॥

शीलसौन्दर्यनिलया नन्दनन्दनलालिता। अशोकवनसंवासा भाण्डीरवनसङ्गता॥१४४॥

कल्पद्रुमतलाविष्टा कृष्णा विश्वा हरिप्रिया।
अजागम्या भवागम्या गोवर्द्धनकृतालया॥१४५॥

यमुनातीरनिलया शाश्वद्गोविन्दजल्पिनी। शश्वन्मानवती स्निग्धा श्रीकृष्णपरिवन्दिता॥१४६॥

नित्यलीला, नित्यकामा, नित्य शृंगार भूषिता, नित्य वृन्दावन रसा, नन्दनन्दन से युक्ता, गोपीगण की मण्डली से युक्त, नित्यगोपाल के साथ रहने वाली, गोरस को फेंकने वाली, शूरा, सानन्दा, आनन्दप्रदा, महालीला, प्रकृष्टा, नागरी, नगचारिणी, नित्य घूमने वाली, पूर्णा, कस्तूरीतिलक युक्त, पद्मा, श्यामा, मृगाक्षी, सिद्धिरूपा, रसावहा, कोटिचन्द्रानना, गौरी, करोड़ों कोकिलों के समान स्वरवाली, शील सौन्दर्य की खान, नन्दनन्दन कृष्ण द्वारा लालिता, अशोकवन निवासी, भाण्डीरवनगमना, कल्पद्रुम लताओं से वेष्ठित, कृष्णा, विश्वा, हरिप्रिया, विष्णु से प्राप्य, शंकर प्राप्य, गोवर्द्धन निवासिनी, यमुनातट निवासिनी, सदा गोविन्दनाम कीर्त्तनरता, सदामान करने वाली, श्रीकृष्ण से वन्दित।।१४०-१४६।।

कृष्णस्तुता कृष्णवृता श्रीकृष्णहृदयालया। देवद्रुमफला सेव्या वृन्दावनरसालया॥१४७॥

कोटितीर्थमयी सत्या कोटितीर्थफलप्रदा। कोटियोगसुदुष्प्राप्या कोटियज्ञदुराश्रया॥१४८॥

मनसा शशिलेखा च श्रीकोटिसुभगाऽनघा।
कोटिमुक्तसुखा सौम्या लक्ष्मीकोटिविलासिनी॥१४९॥

तिलोत्तमा त्रिकालस्था त्रिकालज्ञाप्यधीश्वरी। त्रिवेदज्ञा त्रिलोकज्ञा तृतीयान्तनिवासिनी॥१५०॥

दुर्गाराध्या रमाराध्या विश्वाराध्या चिदात्मिका।
देवाराध्या पराराध्या ब्रह्माराध्या परात्मिका॥१५१॥
शिवाराध्या प्रेमसाध्या भक्तराध्या रसात्मिका।
कृष्णप्राणार्पिणी भामा शुद्धप्रेमविलासिनी॥१५२॥

कृष्णस्तुता, कृष्णवृता, श्रीकृष्णहृदयालया, देवद्रुमफला, सेव्या, वृन्दावन रसालया, देवद्रुमफला=कल्पवृक्ष के फल को खाने वाली, वृन्दावन रसालया-वृन्दावन के रस का उपभोग करने वाली, कोटितीर्थमयी, सत्या, कोटितीर्थ फलप्रदा, कोटियोग साधन से दुष्प्राप्य, मनसा नाम वाली, शशिलेखा, कोटिलक्ष्मीवत्, सौभाग्यमयी, करोड़ों यज्ञ से भी दुष्प्राप्य, पापरहिता, कोटि मुक्त जीववत् सुख लाभ करने वाली, सौम्या, कोटि लक्ष्मी के समान विलासमयी, तिलोत्तमा, त्रिकालस्था, त्रिकालज्ञा, ईश्वरी, त्रिवेदज्ञा, त्रिलोकज्ञा, चतुर्थ (नाद) के अन्त में निवास करने वाली, दुर्गा से पूजित, लक्ष्मी से आराधित, विश्व से आराधित, चिदात्मिका, देवाराध्या, पराराध्या, ब्रह्माराध्या, परात्मिका, शिवाराध्या, प्रेम से सिद्ध होने वाली, भक्त से अर्चिता, रसात्मिका, कृष्ण का प्राणार्पण करने वाली, भामा, शुद्धप्रेम विलासिनी।।१४७-१५२।।

कृष्णाराध्या भक्तिसाध्या भक्तवृन्दनिषेविता।
विश्वाधारा कृपाधारा जीवधारातिनायिका॥१५३॥
शुद्धप्रेममयी लज्जा नित्यसिद्धा शिरोमणिः।
दिव्यरूपा दिव्यभोगा दिव्यवेषा मुदान्विता॥१५४॥
दिव्याङ्गनावृन्दसारा नित्यनूतनयौवना। परब्रह्मावृता ध्येया महारूपा महोज्ज्वला॥१५५॥
कोटिसूर्यप्रभा कोटिचन्द्रबिम्बाधिकच्छविः।
कोमलामृतवागाद्या वेदाद्य वेददुर्लभा॥१५६॥
कृष्णासक्ता कृष्णभक्ता चन्द्रावलिनिषेविता। कलाषोडशसम्पूर्णा कृष्णदेहार्द्धधारिणी॥१५७॥

कृष्ण से आराधिता, भक्ति से साध्या, भक्तवृन्द सेविता, विश्वाधार, कृपाधार, जीव को धारण करने वाली, अति नायिका, शुद्ध प्रेममयी, लज्जा, नित्यसिद्धा, शिरोमणि, दिव्यरूपा, दिव्यभोगा, दिव्यवेशा, मुदान्विता, दिव्य रमणियों में सर्वोत्तम, नित्यनवयौवना, परब्रह्म से आवृत, ध्येया, महारूपा, महोज्वला, करोड़ों सूर्य के समान प्रभान्विता, कोटि चन्द्रबिम्ब से अधिक छवि वाली, कोमल तथा अमृतोपम वचन वाली, आद्या, वेदाद्या, वेददुर्लभा, कृष्णासक्ता, कृष्णभक्ता, चन्द्रावलिशोभिता, षोडशकलापूर्णा, कृष्ण की अर्द्धदेहस्था।।१५३-१५७।।

कृष्णबुद्धिः कृष्णसारा कृष्णरूपविहारिणी। कृष्णकान्ता कृष्णधना कृष्णमोहनकारिणी॥१५८॥
कृष्णदृष्टिः कृष्णगोत्री कृष्णदेवी कुलोद्वहा। सर्वभूतस्थितावात्मा सर्वलोकनमस्कृता॥१५९॥
कृष्णदात्री प्रेमधात्री स्वर्णगात्री मनोरमा। नगधात्री यशोदात्री महादेवी शुभङ्करी॥१६०॥
श्रीशेषदेवजननी अवतारगणप्रसूः। उत्पलाङ्कारविन्दाङ्का प्रसादाङ्का द्वितीयका॥१६१॥
रथाङ्का कुञ्जराङ्का च कुण्डलाङ्कपदस्थिता।
छत्राङ्का विद्युदङ्का च पुष्पमालाङ्कितापि च॥१६२॥
दण्डाङ्का मुकुटाङ्का च पूर्णचन्द्रा शुकाङ्किता।
कृष्णान्नाहारपाका च वृन्दाकुञ्जविहारिणी॥१६३॥
कृष्णप्रबोधनकरी कृष्णशेषान्नभोजिनी। पद्मकेशरमध्यस्था सङ्गीतागमवेदिनी॥१६४॥

कोटिकल्पान्तभ्रूभङ्गा अप्राप्तप्रलयाच्युता। सर्वसत्त्वनिधिः पद्मशङ्खादिनिधिसेविता॥१६५॥

कृष्णबुद्धि, कृष्णसार, कृष्णरूप से विहार करने वाली, कृष्णकान्ता, कृष्णघना, कृष्णगोहनकारिणी, कृष्णदृष्टि, कृष्णगोत्री, कृष्णदेवी, वंशधारिणी, सर्वप्राणीगण में स्थिता आत्मा, सर्वलोक नमस्कृता, कृष्णदात्री, प्रेमधात्री, स्वर्गगात्री, मनोरमा, नगधात्री, यशोदात्री, महादेवी, शुभंकरी, श्रीशेषदेव जननी, अवतार समूह प्रसविणी, नीलकमलांकित, लालकमल से चिह्नित, प्रसादगुण से युक्त, अद्वितीया, रथचिह्नांकित, हस्ति चिह्नांकित, कुण्डांकित पद पर स्थिता, छत्रचिह्नांकित, विद्युत् चिह्नांकित, पुष्पमालांकित, दण्डांकित, मुकुटांकित, पूर्णचन्द्र तथा शुकचिह्नांकित, कृष्ण हेतु अन्नपाक करने वाली, वृन्दाकुंज में विहार करने वाली, कृष्ण को प्रबोधित करने वाली, कृष्ण का जूठन खाने वाली, पद्मकेशर मध्य में निवास करने वाली, संगीत तथा आगम ज्ञाता, अपने भ्रूभंग से कोटि-कल्पों का अन्त करने वाली, प्रलय में भी अच्युत स्थिता, समस्त जीवों की निधि, पद्म तथा शंखादि निधियों से सेविता,।।१५८-१६५।।

अणिमादिगुणैश्वर्या देववृन्दविमोहिनी। सर्वानन्दप्रदा सर्वा सुवर्णलतिकाकृतिः॥१६६॥
कृष्णाभिसारसङ्केता मालिनी नृत्यपण्डिता। गोपीसिन्धुसकाशाह्वा गोपमण्डपशोभिनी॥१६७॥
श्रीकृष्णप्रीतिदा भीता प्रत्यङ्गपुलकाञ्चिता। श्रीकृष्णालिङ्गनरता गोविन्दविरहाक्षमा॥१६८॥
अनन्तगुणसम्पन्ना कृष्णकीर्तनलालसा। बीजत्रयमयी मूर्तिः कृष्णानुग्रहवाञ्छिता॥१६९॥

अणिमादि ऐश्वर्ययुता, देवसमूह को मोहित करने वाली, सर्वानन्दप्रदा स्वर्णलतिकाकृति, कृष्ण की अभिसारिका, मालिनी, नृत्यपण्डिता, गोपीसमुदाय रूप समुद्र में प्राप्त होने वाली, गोपमण्डल की शोभा, श्रीकृष्ण को प्रीति प्रदातृ, कृष्ण से भयभीता, प्रति अंग जिनका हर्ष से रोमांचित है, श्रीकृष्ण के आलिंगन में रत, बीजत्रयमयी मूर्त्ति, कृष्ण का अनुग्रह चाहने वाली, गोविन्द के विरह को सहने में अक्षम, अनन्तगुणयुता, कृष्ण कीर्त्तन की लालसा से भरी।।१६६-१६९।।

विमलादिनिषेव्या च ललिताद्यार्चिता सती। पद्मवृन्दस्थिता हृष्टा त्रिपुरापरिसेविता॥१७०॥

वृन्तावत्यर्चिता श्रद्धा दुर्ज्ञेया भक्तवल्लभा।
दुर्लभासान्द्रसौख्यात्मा श्रेयोहेतुः सुभोगदा॥१७१॥
सारङ्गा शारदा बोधा सद्वृन्दावनचारिणी।
ब्रह्मानन्दा चिदानन्दा ध्यानानन्दार्द्धमात्रिका॥१७२॥

गन्धर्वा सुरतज्ञा च गोविन्दप्राणसङ्गमा। कृष्णाङ्गभूषणा रत्नभूषणा स्वर्णभूषिता॥१७३॥
श्रीकृष्णहृदयावासमुक्ताकनकनालि(सि)का। सद्रत्नकङ्कणयुता श्रीमन्नीलगिरिस्थिता॥१७४॥
स्वर्णनूपुरसम्पन्ना स्वर्णकिङ्किणिमण्डिता। अशेषरासकुतुका रम्भोरूस्तनुमध्यमा॥१७५॥
पराकृतिः परानन्दा परस्वर्गविहारिणी। प्रसूनकबरी चित्रा महासिन्दूरसुन्दरी॥१७६॥
कैशोरवयसा बाला प्रमदाकुलशेखरा। कृष्णाधरसुधास्वादा श्यामप्रेमविनोदिनी॥१७७॥
शिखिपिच्छलसच्चूडा स्वर्णचम्पकभूषितां कुंकुमालक्तकस्तूरीमण्डिता चापराजिता॥१७८॥
हेमहारान्वितापुष्पा हाराढ्या रसवत्यपि। माधुर्य्य मधुरा पद्मा पद्महस्ता सुविश्रुता॥१७९॥

भ्रूभङ्गाभङ्गकोदण्डकटाक्षशरसन्धिनी। शेषदेवा शिरस्था च नित्यस्थलविहारिणी॥१८०॥
कारुण्यजलमध्यस्था नित्यमत्ताधिरोहिणी। अष्टभाषवती चाष्टनायिका लक्षणान्विता॥१८१॥
सुनीतिज्ञा श्रुतिज्ञा च सर्वज्ञा दुःखहारिणी। रजोगुणेश्वरी चैव शरच्चन्द्रनिभानना॥१८२॥
केतकीकुसुमाभासा सदा सिन्धुवनस्थिता।
हेमपुष्पाधिककरा पञ्चशक्तिमयी हिता॥१८३॥

विमला आदि से सेविता, ललिता आदि से अर्चिता, सती, पद्मराशि पर स्थित, दृष्ट, त्रिपुरा से सेविता, वृन्तावती से अर्चिता, श्रद्धा, दुर्ज्ञेया, भक्तवल्लभा, अत्यन्त सुखभोग करने वाली, श्रेय की हेतुभूता, सुभोग देने वाली, आभूषणयुता, शारदा, बोधा, सद्वृन्दावन में विचरणशीला, ब्रह्मानन्दा, चिदानन्दा, ध्यानानन्दा, अर्द्धमात्रिका, गन्धर्वा, सुरतज्ञा, गोविन्द की प्राणों से प्रिया, कृष्णांग को सज्जित करने वाली, रत्नभूषणा, स्वर्णभूषिता, श्रीकृष्ण के हृदय में निवास करने वाली, मुक्ता तथा स्वर्णाभूषण धारिणी, उत्तम रत्न खचित कंगन धारिणी, रत्नपूर्ण नीलगिरि निवासिनी, कदलीवत् जांघों वाली, पराकृति, परानन्दा, परस्वर्ग में विहाररत, केशपाश को पुष्पसज्जित करने वाली, चित्रा, महासिन्दूर सुन्दरी, कैशोर आयु वाली, बाला, स्त्रियों की शिरमुकुटरूप, कृष्ण के अधरामृत का आस्वाद लेने वाली, श्यामप्रेम विनोदिनी, मयूरपंखयुक्त मुकुटवाली, कंचन चम्पा पुष्प भूषिता, कुंकुम-आलता कस्तूरी से समलंकृत, जो अपराजिता, स्वर्णहारधारिणी, पुष्पधारिणी, हार से सम्पन्न, रसवती, माधुर्यमधुरा पद्मा, पद्महस्ता, सुविश्रुता, भ्रूभंग पर कटाक्ष रूपी बाण धारण करने वाली, शेष के शिर पर स्थित, नित्य स्थल पर विहार करने वाली, करुणा रूपी जलमध्य निवासिनी, नित्य हस्ति आरोहण तत्परा, अष्टभाषा वेत्ता, अष्टनायिका, लक्षणसम्पन्ना, सुनीतिज्ञा, श्रुतिज्ञा, सर्वज्ञा, दुःखहारिणी, रजोगुणेश्वरी, शरतकालीन चन्द्र के समान आनन वाली, केतकी पुष्पवत् कान्ति शालिनी, सदासिन्धुवन निवासिनी, चम्पापुष्पहस्ता, पंचशक्तिमयी हिता।।१७०-१८३।।

स्तनकुम्भी नराढ्या च क्षीणापुण्या यशस्विनी।
वैराजसूयजननी श्रीशा भुवनमोहिनी॥१८४॥
महाशोभा महामाया महाकान्तिर्महास्मृतिः। महामोहा महाविद्या महाकीर्तिर्महारतिः॥१८५॥
महाधैर्या महावीर्या महाशक्तिर्महाद्युतिः। महागौरी महासम्पन्नमहाभोगविलासिनी॥१८६॥
समया भक्तिदाशोका वात्सल्यरसदायिनी। सुहृद्भक्तिप्रदा स्वच्छा माधुर्यरसवर्षिणी॥१८७॥
भावभक्तिप्रदा शुद्धप्रेमभक्तविधायिनी। गोपरामाभिरामा च क्रीडारामा परेश्वरी॥१८८॥
नित्यरामा चात्मरामा कृष्णरामा रमेश्वरी। एकानेकजगद्व्याप्ता विश्वलीलाप्रकाशिनी॥१८९॥
सरस्वतीशा दुर्गेशा जगदीशा जगद्विधिः। विष्णुवंशनिवासा च विष्णुवंशसमुद्भवा॥१९०॥
विष्णुवंशस्तुता कर्त्री विष्णुवंशावनी सदा।
आरामस्था वनस्था च सूर्य्यपुत्र्यवगाहिनी॥१९१॥

कुंभ जैसे स्तनवाली, महामाया, महाकान्ति, महास्मृति, महामोहा, महाविद्या, महाकीर्त्ति, महारति, महाधैर्या, महावीर्या, महाशक्ति, महाद्युति, महागौरी, महासम्पन्ना, महाभोग विलासिनी, समया, भक्तिप्रदा,

शोकरहिता, वात्सल्यरसप्रदा, अन्तरंग साधक को भक्ति देने वाली, स्वच्छा, माधुर्यरस वर्षा करने वाली, भावभक्तिप्रदा, शुद्ध प्रेम भक्तिप्रदा। गोपों के लिये आनन्दप्रदा अभिरामा, क्रीडारता, परमेश्वरी, नित्यरामा, आत्मा में रमणशील, कृष्ण में रमणशील, रमेश्वरी, अद्वितीया, समस्त जगत् में व्याप्त, विश्वलीला, प्रकाशिका, सरस्वती की ईश्वरी, दुर्गा की ईश्वरी, जगदीश्वरी, जगत् विधात्री, विष्णु वंशनिवासिनी, विष्णुवंशोत्पन्ना, विष्णुवंश स्तुता, कर्त्री, सदा विष्णु वंश रक्षिणी, उद्यान निवासिनी, वन निवासिनी, यमुना में स्नान करने वाली।।१८४-१९१।।

प्रीतिस्था नित्ययन्त्रस्था गोलोकस्था विभूतिदा।
स्वानुभूतिस्थिता व्यक्ता सर्वलोकनिवासिनी॥१९२॥

अमृता ह्यद्भुता श्रीमन्नारायणसमीडिता। अक्षरापि च कूटस्था महापुरुषसम्भवा॥१९३॥
औदार्यभावसाध्या च स्थूलसूक्ष्मातिरूपिणी। शिरीषपुष्पमृदुला गाङ्गेयमुकुरप्रभा॥१९४॥
नीलोत्पलजिताक्षी च सद्रत्नकवरान्विता। प्रेमपर्यङ्कनिलया तेजोमण्डलमध्यगा॥१९५॥
कृष्णाङ्गगोपनाऽभेदा लीलावरणनायिका। सुधासिन्धुसुमुल्लासामृतास्यन्दविधायिनी॥१९६॥
कृष्णचित्ता रासचित्ता प्रेमचित्ता हरिप्रिया। अचिन्तनगुणग्रामा कृष्णलीला मलापहा॥१९७॥
राससिन्धुशशाङ्का च रासमण्डलमण्डिनी। नतव्रता सिंहरीच्छा सुमूर्तिः सुरवन्दिता॥१९८॥

प्रीति में स्थिता, नित्य यन्त्र में स्थिता, गोलोक में स्थिता, विभूतिप्रदा, स्वानुभूति में स्थिता, व्यक्ता, सर्वलोक में निवास करने वाली, अमृता, अद्भुता, श्रीमन्नारायणवत् स्तुता, कूटस्था, अक्षररूपा, महापुरुष से उत्पन्न होने वाली, उदारभाव रखने से साध्या, अतिस्थूल तथा अतिसूक्ष्मरूपा, शिरीष पुष्पवत् कोमल, स्वर्ण अथवा शीशे जैसी प्रभा सम्पन्न, नीलकमल को भी पराजित करने वाले नेत्रों वाली, उत्तर रत्नों से शोभायमान चोटी वाली, प्रेमरूपी पलंग पर शयन करने वाली, तेजमण्डल के मध्य स्थिता, कृष्ण की अंगरक्षिका, कृष्ण से अभिन्न, क्रीड़ा में नायिका का भाग लेने वाली, सुधाब्धि को तरंगायित करने वाली, कृष्ण में चित्त संसक्त करने वाली, रास चित्ता, प्रेमचित्ता, हरिप्रिया, अचिन्त्य गुणयुता, कृष्ण सह विलासिनी, मलापहा, रास सिन्धु हेतु चन्द्रस्वरूपा, रासमण्डली को मण्डित करने वाली, नतव्रता, सिंह तथा रीछ को वाहन बनाने वाली, सुमूर्त्ति, सुरवन्दिता।।१९२-१९८।।

गोपीचूडामणिर्गोपी गणेड्या विरजाधिका। गोपप्रेष्ठा गोपकल्या गोपनारी सुगोपिका॥१९९॥
गोपधामा सुदामाम्बा गोपाली गोपमोहिनी। गोपभूषा कृष्णभूषा श्रीवृन्दावनचन्द्रिका॥२००॥

गोपीगण की चूड़ामणि, गोपियों से स्तुत्य, विरजा नाम वाली, उत्तम सखी, गोपों को प्रिय, गोपकन्या, गोपनारी, सुगोपिका, गोपधामा, सुदामा की माता, गोपाली, गोपमोहिनी, गोपभूषा, कृष्णभूषा, श्रीवृन्दावन चन्द्रिका।।१९९-२००।।

वीणादिघोषनिरता रासोत्सवविकासिनी। कृष्णचेष्टा परिज्ञाता कोटिकन्दर्पमोहिनी॥२०१॥
श्रीकृष्णगुणनागाळ्या देवसुन्दरिमोहिनी। कृष्णचन्द्रमनोज्ञा च कृष्णदेवसहोदरी॥२०२॥
कृष्णाभिलाषिणी कृष्णप्रेमानुग्रहवाञ्छिता। क्षेमा च मधुरालापा भुवोमाया सुभद्रिका॥२०३॥

प्रकृतिः परमानन्दा नीपद्रुमतलस्थिता। कृपाकटाक्षा बिम्बोष्ठी रम्भा चारुनितम्बिनी॥२०४॥
स्मरकेलिनिधाना च गण्डताटङ्कमण्डिता। हेमाद्रिकान्तिरुचिरा प्रेमाद्या मदमन्थरा॥२०५॥
कृष्णचिन्ता प्रेमचिन्ता रतिचिन्ता च कृष्णदा।
रासचिन्ता भावचिन्ता शुद्धचिन्ता महारसा॥२०६॥
कृष्णादृष्टित्रुटियुगा दृष्टिपक्ष्मिविनिन्दिनी। कन्दर्पजननी मुख्या वैकुण्ठगतिदायिनी॥२०७॥
रासभावा प्रियाश्लिष्टा प्रेष्ठा प्रथमनायिका।
शुद्धा सुधादेहिनी च श्रीरामा रसमञ्जरी॥२०८॥
सुप्रभावा शुभाचारा स्वर्णदी नर्मदाम्बिका।
गोमती चन्द्रभागेड्या सरयूस्ताम्रपर्णिसूः॥२०९॥

वीणा आदि घोष में निरत, रासोत्सव का विकास करने वाली, कृष्ण चेष्टा जानने वाली, करोड़ों कामदेव को मोहित करने वाली, कृष्णगुण वर्णन करने वाली, देवसुन्दरी, मोहिनी, कृष्णचन्द्र जैसी मनोरम, कृष्ण की भगिनी, कृष्ण की अभिलाषा करने वाली, कृष्ण प्रेम तथा कृपा चाहने वाली, कल्याण कामिनी, मधुर आलाप करने वाली, धरती पर माया कहलाने वाली, सुभद्रिका, प्रकृति, परमानन्दा, कदम्ब पेड़ के नीचे स्थित, कृपाकटाक्ष करने वाली, बिम्ब फलवत् ओठों वाली, रम्भा, उत्तम नितम्ब वाली, कामकेलि निधाना, कपेल की शोभा वर्द्धित करने वाले कुण्डल से युक्त, सुमेरु पर्वत जैसी उत्तम कान्ति वाली, आद्यप्रेमरूपा, मद से आलस्य वाली, कृष्ण चिन्तनरता, प्रेमचिन्तनरता, रतिचिन्तनरता, कृष्ण भक्ति प्रदातृ, रासचिन्तनरता, भावचिन्तनरता, शुद्धचिन्तारता, महारसा, दृष्टिदोष नाश करने वाली, कामजननी, मुख्या, वैकुंठ गतिप्रदा, रासभावा, प्रियतम कृष्ण का आलिंगन करने वाली, अति प्रियपात्र, प्रथम नायिका, शुद्धा, सुधाशरीर वाली, श्रीरामा, रसमंजरी, सुप्रभावा, शुभ आचार वाली, देवनदी नर्मदा तथा गंगा की माता, गोमती तथा चन्द्रभागा से वन्दिता, सरयू तथा ताम्रपर्णी को प्रकट करने वाली।।२०१-२०९।।

निष्कलङ्कचरित्रा च निर्गुणा च निरञ्जना। एतन्नामसहस्रं तु युग्मरूपस्य नारद॥२१०॥
पठनीयं प्रयत्नेन वृन्दावनरसावहे। महापापप्रशमनं वन्ध्यात्वविनिवर्तकम्॥२११॥
दारिद्र्यशमनं रोगनाशनं कामदं महत्। पापापहं वैरिहरं राधामाधवभक्तिदम्॥२१२॥

हे नारद! इनके चरित्र कलंक रहित हैं। यह निर्गुण तथा निरंजन हैं। हे नारद! ये युग्मरूप राधा-कृष्ण के सहस्रनाम हैं। वृन्दावन में यत्नतः इन नामों का पान करे। यह सहस्रनाम महापापहारी, वन्ध्यात्व नाशक, दारिद्र्यभंजक, रोगनाशक, कामप्रद, पापहारी, शत्रुताध्वंसक तथा राधाकृष्ण भक्तिदायक है।।२१०-२१२।।

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे। राधासङ्गसुधा सिन्धौ नमोनित्यविहारिणे॥२१३॥
राधादेवी जगत्कर्त्री जगत्पालनतत्परा। जगल्लयविधात्री च सर्वेशी सर्वसूतिका॥२१४॥
तस्या नामसहस्रं वै मया प्रोक्तं मुनीश्वर। भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥२१५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे राधाकृष्णसहस्रनामकथनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

अकुण्ठित मेधा वाले भगवान् कृष्ण को नमस्कार! राधा संग सुधा-सागर में नित्य विहारशाली माधव को प्रणाम! हे मुनीश्वर! राधादेवी जगत् की सृष्टि करने वाली, विश्वपालननिरत तथा सर्वान्त में संसार ध्वंसकारिणी भी हैं। ये सर्वेश्वरी तथा जगत् माता हैं। इनके सहस्रनामों का वर्णन कर दिया। वे नाम दिव्य तथा भुक्ति-मुक्तिदायक हैं। अब आप क्या श्रवण करना चाहते हैं।।२१३-२१५।।

।।८२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
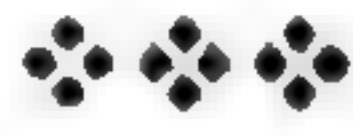
अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

राधा के अंश से उत्पन्न पंचप्रकृति वर्णन

श्रीशौनक उवाच

साधू सूत महाभाग जगदुद्धारकारकम्। महातन्त्रविधानं नः कुमारोक्तं त्वयोदितम्।।१।।
अलभ्यमेतत्तन्त्रेषु पुराणेष्वपि मानद। यदिहोदितमस्मभ्यं त्वयातिकरुणात्मना।।२।।
नारदो भगवान्सूत लोकाद्धरणतत्परः। भूयः प्रपच्छ किं साधो कुमारं विदुषां वरम्।।३।।

ऋषि शौनक कहते हैं—हे महाभाग सूत! साधुवाद देता हूं। आपने कुमारोक्त महातन्त्र विधान कहा, जो जगत् उद्धारक है। हे मानद! यह तो तन्त्रों तथा पुराणों में अलभ्य है। आप करुणात्मा हैं। तभी आपने इसे हमें बतला दिया। हे सूत जी! लोक का उद्धार करने में तत्पर विद्वानों में प्रवर सनत्कुमार से नारद ने तब क्या पूछा।।१-३।।

सूत उवाच

श्रुत्वा स नारदो विप्राः युग्मनामसहस्रकम्। सनत्कुमारमप्याह प्रणम्य ज्ञानिनां वरम्।।४।।

सूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! युगल सहस्रनाम श्रवणोपरान्त ज्ञानियों में श्रेष्ठ सनत्कुमार से नारद ने प्रश्न किया।।४।।

नारद उवाच

ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता विधयस्तन्त्रचोदिताः।
तत्रापि कृष्णमन्त्राणां वैभवं ह्युदितं महत्।।५।।
या तत्र राधिका देवी सर्वाद्या समुदाहृता। तस्या अंशावताराणां चरितं मन्त्रपूर्वकम्।।६।।
तन्त्रोक्तं वद सर्वज्ञ त्वामहं शरणं गतः। शक्तेस्तन्त्राण्यनेकानि शिवोक्तानि मुनीश्वर।।७।।
यानि तत्सारमुद्धृत्य साकल्येनाभिधेहि नः। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः।
सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वाराधापदाम्बुजम्।।८।।

देवर्षि नारद कहते हैं—"हे ब्रह्मन्! आपने मन्त्र विधियों को कहा। आपने कृष्ण मन्त्रों के महान् वैभव को भी कह दिया। जो राधा देवी सबकी आद्य कही गयी हैं, उनके अंशावतारों का चरित्र उनके मन्त्र के साथ तन्त्रोक्त प्रकार से कहिये। हे सर्वज्ञ! हम आपके शरणागत हैं। शिव ने शक्ति सम्बन्धित अनेक तन्त्रों को कहा है। उनके सारतत्व को कृपया सविस्तार कहिये।" महात्मा नारद का कथन सुनकर सनत्कुमार राधा के चरणकमल का स्मरण करके कहने लगे।।५-८।।

सनत्कुमार उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि राधांशानां समुद्भवम्॥९॥
शक्तीनां परमाश्चर्यं मन्त्रसाधनपूर्वकम्।
या तु राधा मया प्रोक्ता कृष्णार्द्धाङ्गसमुद्भवा॥१०॥
गोलोकवासिनी सा तु नित्या कृष्णसहायिनी।
तेजोमण्डलमध्यस्था दृश्यादृश्यस्वरूपिणी॥११॥
कदाचित्तु तया सार्द्धं स्थितस्य मुनिसत्तम।
कृष्णस्य वामभागात्तु जातो नारायणः स्वयम्॥१२॥
राधिकायाश्च वामाङ्गान्महालक्ष्मीर्बभूव ह।
ततः कृष्णो महालक्ष्मीं दत्त्वा नारायणाय च॥१३॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे नारद! अब मैं राधा के अंशों का वर्णन करता हूं। मन्त्र साधन के साथ इन शक्तियों का परमाश्चर्य वृत्तान्त सुनिये। जिन राधा को मैंने कृष्ण के अर्द्धांग से समुद्भूत कहा है, वे गोलक में निवास करती नित्य कृष्ण की सहायता करने वाली हैं। वे तेजोमण्डल के मध्य में स्थित हैं। वे वहां दृश्य-अदृश्यरूपेण विभाजित हैं। हे मुनिप्रवर! कभी राधा के साथ स्थित कृष्ण के आधे भाग से (वामभाग से) स्वयं नारायण उत्पन्न हुये उधर राधा के वामांग से महालक्ष्मी आविर्भूत हो गयीं। तब कृष्ण ने नारायण को महालक्ष्मी प्रदान कर दिया।।९-१३।।

वैकुण्ठे स्थापयामास शश्वत्पालनकर्मणि।
अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने॥१४॥
जाताश्चासङ्ख्यगोपालास्तेजसा वयसा समाः।
प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवः पार्षदा विभोः॥१५॥

कृष्ण नारायण को सदा पालन कार्य करने हेतु वैकुण्ठ में स्थापित कर दिया। तब कृष्ण के रोमकूप से असंख्य गोपाल भी उत्पन्न हो गये। वे सभी तेज तथा आयु में कृष्ण के समान थे। वे सभी विभु कृष्ण के प्राणतुल्य पार्षद हो गये।।१४-१५।।

राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः। राधातुल्याः सर्वतश्च राधादास्यः प्रियंवदाः॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः। आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी॥१७॥

देवीनां बीजरूपां च मूलप्रकृतिरीश्वरी। परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका॥१८॥
सहस्रभुजसंयुक्ता नानाशस्त्रा त्रिलोचना। या तु संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी॥१९॥
रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकस्तु चतुर्मुखः॥२०॥

ज्ञानिनां प्रवरः श्रीमान् पुमानोङ्कारमुच्चरन्।
कमण्डलुधरो जातस्तपस्वी नाभितो हरेः॥२१॥

उधर राधा के रोमकूप से गोपकन्याओं की उत्पत्ति हो गई। वे सभी राधा के समान तथा राधा की प्रिय दासियां हो गईं। तभी कृष्ण के शरीर से अकस्मात् विष्णुमाया सनातनी दुर्गा का आविर्भाव हो गया। वे देवीगण की बीजरूपा तथा मूलप्रकृति, ईश्वरी, परिपूर्णतमा, तेजरूपा, त्रिगुणात्मिका, एक हजार भुजाओं वाली, नाना शस्त्रधारिणी, त्रिलोचना थीं। वे ही संसाररूपी वृक्ष की सनातन बीज हैं। राधिकेश्वर कृष्ण ने उनको रत्न सिंहासन प्रदान किया। इसी काल में ज्ञानीप्रवर, श्रीमान् कमण्डलुधारी तपस्वी पुरुष ओंकार का उच्चारण करते सपत्नीक हरि की नाभि से उत्पन्न हो गये।।१६-२१।।

स तु संस्तूय सर्वेशं सावित्र्या भार्यया सह। निषसादासने रम्ये विभोस्तस्याज्ञया मुने॥२२॥

अथ कृष्णो महाभाग द्विधारूपो बभूव ह।
वामार्द्धाङ्गो महादेवो दक्षार्द्धो गोपिकापतिः॥२३॥
पञ्चवक्त्रस्त्रिनेत्रोऽसौ वामार्द्धाङ्गो मुनीश्वरः।
स्तुत्वा कृष्णं समाज्ञप्तो निषसाद हरेः पुरः॥२४॥
अथ कृष्णश्चतुर्वक्त्रं प्राह सृष्टिं कुरु प्रभो।
सत्यलोके स्थितो नित्यं गच्छ मां स्मर सर्वदा॥२५॥

वे अपनी पत्नी सावित्री सहित सर्वेश कृष्ण की स्तुति करके कृष्णाज्ञानुसार रमणीय आसन पर स्थित हो गये। तभी महाभाग कृष्ण भी द्विधा रूप हो गये। उनके वामार्द्ध से महादेव तथा दक्षिणार्द्ध से गोपिकापति उद्भूत हो गये। हे मुनीश्वर! वाम अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न पंचमुख त्रिनेत्र मुनीश्वर शिव कृष्ण का स्तव करके उनके समक्ष आसनासीन हो गये। तब कृष्ण ने चतुर्मुख ब्रह्मा से कहा—"आप सृष्टि करें। आप सत्यलोक में नित्य रहते हुये सदा मेरा स्मरण करते रहिये।"।।२२-२५।।

एवमुक्तस्तु हरिणा प्रणम्य जगदीश्वरम्। जगाम भार्यया साकं स तु सृष्टिं करोति वै॥२६॥

पितास्माकं मुनिश्रेष्ठ मानसीं कल्पदैहिकीम्।
ततः पश्चात्पञ्चवक्त्रं कृष्णः प्राह महामते॥२७॥

दुर्गां गृहाण विश्वेश शिवलोके तपश्चर। यावत्सृष्टिस्तदन्ते तु लोकान्संहर सर्वतः॥२८॥

ब्रह्मा ने तब 'ऐसा ही हो' कहा तथा जगदीश्वर हरि को प्रणाम करके वे भार्या के साथ सत्यलोक चले गये। हे मुनिश्रेष्ठ! तभी से मेरे पिता ब्रह्मदेव मानसी एवं दैहिकी सृष्टि कार्य कर रहे हैं। हे महामति! तत्पश्चात् कृष्ण ने पंचमुख शिव से कहा—"हे विश्वेश! आप दुर्गा को लेकर शिवलोक में तप करिये। जब सृष्टि का अन्तकाल हो, तब आप लोकसंहार करिये।"।।२६-२८।।

सोऽपि कृष्णं नमस्कृत्य शिवलोकं जगाम ह।
ततः कालान्तरे ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः॥२९॥
वक्त्रात्सरस्वती जाता वीणापुस्तकधारिणी।
तामादिदेश भगवान् वैकुण्ठं गच्छ मानदे॥३०॥
लक्ष्मीसमीपे तिष्ठ त्वं चतुर्भुजसमाश्रया।
सापि कृष्णं नमस्कृत्य गता नारायणान्तिकम्॥३१॥
एवं पञ्चविधा जाता सा राधा सृष्टिकारणम्।
आसां पूर्णस्वरूपाणां मन्त्रध्यानार्चनादिकम्॥३२॥
वदामि शृणु विप्रेन्द्र लोकानां सिद्धिदायकम्।
तारः क्रियायुक् प्रतिष्ठा प्रीत्याढ्या च ततः परम्॥३३॥
ज्ञानामृता क्षुधायुक्ता वह्नीजायान्तको मनुः।
सुतपास्तु ऋषिश्छन्दो गायत्री देवता मनोः॥३४॥
राधिका प्रणवो बीजं स्वाहा शक्तिरुदाहृता।
षडक्षरैः षडङ्गानि कुर्याद्बिन्दुविभूषितैः॥३५॥
ततो ध्यायन्स्वहृदये राधिकां कृष्णभामिनीम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम्॥३६॥

शिव भी कृष्ण को प्रणाम करके शिवलोक प्रस्थान कर गये। तदनन्तर कृष्ण के मुख से वीणापुस्तक धारिणी सरस्वती उत्पन्न हो गईं। उनसे कृष्ण ने कहा—"हे मान देने वाली! तुम वैकुण्ठ जाओ। तुम वहां चतुर्भुज नारायण का आश्रय लेकर लक्ष्मी के पास रहना।" वे भी कृष्ण को नमस्कार करके नारायण के यहां चली गयीं। इस प्रकार राधा से पंचविध सृष्टि हो गयी। वे सृष्टिकारण हैं। उन पूर्णस्वरूपा के मन्त्र का ध्यानार्चन कहता हूं। हे विप्रेन्द्र! वह श्रवण करिये। वह लोकों में सिद्धि देने वाला है। क्रियायुक्त तार (ह्रीं) देवी का मन्त्र है। यही उनकी प्रतिष्ठा तथा प्रीतिमय है। ज्ञानामृत तथा क्षुधायुक्त स्वाहा देवी मन्त्र का अन्तिम भाग है। (यहां मन्त्र संकेत दिया गया। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। इस मन्त्र के ऋषि सुतपा, छन्दः गायत्री है। देवता हैं राधिका, बीज है ॐ, शक्ति है स्वाहा। विन्दु भूषित ६ अक्षर से षडङ्ग न्यास सम्पन्न करे। इसके पश्चात् हृदय में राधा ध्यान करे। राधा कृष्ण प्रिया हैं। वे श्वेत चम्पा पुष्प की तरह श्वेत वर्ण वाली तथा कोटिचन्द्र समप्रभ हैं।।२९-३६।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यां नीलेन्दीवरलोचनाम्। सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधराम्बराम्॥३७॥
मुक्ताकुन्दाभदशनां वह्निशुद्धांशुकान्विताम्। रत्नकेयूरवलयहारकुण्डलशोभिताम्॥३८॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थिताम्॥३९॥
ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा पूजयेदुपचारकैः। लक्षषट्कं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः॥४०॥

आज्याक्तैर्मातृकापीठे पूजा चावरणैः सह। षट्कोणेषु षडङ्गानि तद्बाह्येऽष्टदले यजेत्॥४१॥

मालावतीं माधवीं च रत्नमालां सुशीलिकाम्।
ततः शशिकलां पारिजातां पद्मावतीं तथा॥४२॥
सुन्दरीं च क्रमात्प्राच्यां दिग्विदिक्षु ततो बहिः।
इन्द्राद्यान्सायुधानिष्ट्वा विनियोगास्तु साधयेत्॥४३॥

उनका मुख शत्कालीन चन्द्रमा के समान, नेत्र नीलकमल के समान हैं। श्रोणी तथा नितम्ब सुन्दर हैं। उनके अधर पक्व बिम्बफल के समान हैं। उनके दांत मुक्ता तथा कुन्द की तरह श्वेत हैं। वे राधा वह्निवत् शुद्ध वस्त्रों से विभूषित हैं। वे रत्नों, केयूर, वलय, हार-कुण्डल से अलंकृत हैं। सुप्रिय गोपीगण उनकी सेवा श्वेत चामर से कर रहीं हैं। वे रासमण्डल के मद्य में रत्न सिंहासनासीन हैं। यह ध्यान करके उनको पुष्पों की अंजलि अर्पित करे तथा उनकी पूजा षोडशोपचार से करें। छः लाख मन्त्र जप करके ६०००० होम घृत तथा तिल से करे। यह पूजा मातृका पीठ पर हो। आवरण देवताओं के साथ यह पूजा करे। षट्कोण में षडङ्ग पूजा बाहर अष्टदल में करना चाहिये। मालावती, माधवी, रत्नमाला, सुशीला, शशिकला, पारिजाता, पद्मावती, सुन्दरी की पूजा पूर्व से प्रारंभ करके क्रमशः करे। तदनन्तर दिक्-विदिक् में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा उनके आयुधों के साथ करके विनियोग सिद्ध करें। (अर्थात् प्रयोग, कामना आदि सिद्ध करे)।।३७-४३।।

राधा कृष्णप्रिया रासेश्वरी गोपीगणाधिपा। निर्गुणा कृष्णपूज्या च मूलप्रकृतिरीश्वरी॥४४॥
सर्वेश्वरी सर्वपूज्या वैराजजननी तथा। पूर्वाद्याशासु रक्षतुं पान्तु मां सर्वतः सदा॥४५॥

त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी।
कृष्णमायादिदेवी च कृष्णप्राणाधिके शुभे॥४६॥

कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे। इति सम्प्रार्थ्य सर्वेशीं स्तुत्वा हृदि विसर्जयेत्॥४७॥

अब प्रार्थना करना चाहिये। यथा—"राधा, कृष्णप्रिया, रासेश्वरी, गोपिगण की अधीश्वरी, निर्गुणा, कृष्ण की पूजा मूलप्रकृति, ईश्वरी, सर्वेश्वरी, सर्वपूज्या, वैराजजननी पूर्वादिदिक् में सदा सब ओर मेरी रक्षा करें। हे देवी! आप जगन्माता, विष्णुमाया, सनातनी, कृष्णमाया, आदिदेवी, कृष्णप्राणाधिक तथा शुभ हैं। हे राधे! आप कृष्णभक्ति देने वाली हैं। हे मंगलप्रदे! आपको नमस्कार!" यह प्रार्थना करके हृदय में उनका विसर्जन करे।।४४-४७।।

एवं यो भजते राधां सर्वाद्यां सर्वमङ्गलाम्।
भुक्त्वेह भोगानखिलान्सोऽन्ते गोलोकमाप्नुयात्॥४८॥
अथ तुभ्यं महालक्ष्म्या विधानं वच्मि नारद।
यदाराधनतो भूयात्साधको भुक्तिमुक्तिमान्॥४९॥

इस प्रकार से जो सबकी आदिरूप समस्त कल्याणप्रद राधा की आराधना करता है, वह इहलोक में सब भोगों का उपभोग करके अन्त में गोलोक प्राप्त करता है। हे नारद! अब मैं आपसे महालक्ष्मी का विधान कहता हूं। इनकी आराधना करने वाला साधक भुक्त-मुक्तियुक्त हो जाता है।।४८-४९।।

लक्ष्मीमायाकामवाणीपूर्वा कमलवासिनी।
ङेन्ता वह्निप्रियान्तोऽयं मन्त्रकल्पद्रुमः परः॥५०॥
ऋषिर्नारायणश्चास्य छन्दो हि जगती तथा। देवता तु महालक्ष्मीर्द्विद्विवर्णैः षडङ्गकम्॥५१॥

मन्त्र है—लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), वाणी (ऐं) कहकर कमलवासिन्यै कहे। अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) कहने से यह मन्त्र कल्पद्रुम से भी परे वाला मन्त्र हो जाता है। इसका मन्त्रोद्धार यह है—'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा' इसके ऋषि हैं नारायण, जगती छन्दः है। देवता हैं महालक्ष्मी। मन्त्र के दो-दो अक्षर से षडङ्गन्यास करे।।५०-५१।।

श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम्॥५२॥
बिभ्रतीं रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभाम्। ध्यात्वा जपेदर्कलक्षं पायसेन दशांशतः॥५३॥
जुहुयादेधिते वह्नौ श्रीद्रुकाष्ठैः समर्चयेत्। नवशक्तियुते पीठे ह्यङ्गैरावरणैः सह॥५४॥
विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः।
व्युष्टिरुत्कृष्टिर्ऋद्धिश्च सम्प्रोक्ता नव शक्तयः॥५५॥
अत्रावाह्य च मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य साधकः।
षट्कोणेषु षडङ्गानि दक्षिणे तु गजाननम्॥५६॥
वामे कुसुमधन्वानं वसुपत्रे ततो यजेत्। उमां श्रीं भारतीं दुर्गां धरणीं वेदमातरम्॥५७॥
देवीमुषां च पूर्वादौ दिग्विदिक्षु क्रमेण हि। जह्नुसूर्यसुते पूज्ये पादप्रक्षालनोद्यते॥५८॥

वे श्वेतचम्पक वर्णवाली, रत्नाभरण भूषिता, तनिक हास्य के कारण प्रसन्न मुखाकृति वाली तथा भक्तों पर अनुग्रहार्थ कातर हैं। उन्होंने रत्नमाला धारण किया है। वे करोड़ चन्द्र की द्युति वाली हैं। इस प्रकार ध्यान करके बारह लाख जप करके जप संख्या का दशांश होम पायस से करे। अग्नि में बिल्वकाष्ठ से होम करके अर्चना करे। तदनन्तर नवशक्ति युक्त पीठ पर अंग तथा आवरणों के साथ पूजा करे। ये नव शक्तियां हैं विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि, कीर्त्ति, सन्नति, व्युष्टि, उत्कृष्टि तथा ऋद्धि। साधक पूर्वोक्त पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति प्रतिष्ठा करे। षट्कोण में छः अंगों की पूजा करे। दक्षिण में गणेश तथा उत्तर में पुष्पधन्वा काम की पूजा करे। यह पूजा अष्टदल के पत्रों में हो। तदनन्तर पूर्वदिक् से प्रारंभ करके उमा, श्री, भारती, दुर्गा, धरणी, वेदमाता, देव तथा ऊषा की पूजा करे। यह पूजा पूर्व से आरंभ करके क्रमशः दिक्-विदिक् में एक-एक की करे। महालक्ष्मी के चरण प्रक्षालनार्थ उद्यत् गंगा-यमुना की भी पूजा की जाये।।५२-५८।।

शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ। धृतातपत्रं वरुणं भूजयेत्पश्चिमे ततः॥५९॥
सम्पूज्य राशीन्परितो यथास्थानं नवग्रहान्।
चतुर्दन्तैरावतादीन् दिग्विदिक्षु ततोऽर्चयेत्॥६०॥

दोनों पार्श्व में चामरधारिणी, शंखनिधि तथा पद्मनिधि की पूजा करे। पश्चिम में छत्र धारी वरुण की पूजा करके उनके-उनके स्थान पर नवग्रह पूजन करना चाहिये। दिक्-विदिक् में चतुर्दन्त ऐरावतादि की (आठ हस्ति की) पूजा करे।।५९-६०।।

तद्बहिर्लोकपालांश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः। दूर्वाभिराज्यसिक्ताभिर्जुहुयादायुषे नरः॥६१॥
गुडूचीमाज्यसंसिक्तां जुहुयात्सप्तवासरम्। अष्टोत्तरसहस्रं यः स जीवेच्छरदां शतम्॥६२॥

उसके बाह्य में लोकपालों की तथा और बाहर उनके आयुधों की पूजा करे। तदनन्तर घृतलिप्त दूर्वा से आयु हेतु होम करना होगा। जो मनुष्य घृतलिप्त गुरुच से नित्य १००८ होम सात दिन करता है, वह शतायु होगा।।६१-६२।।

हुत्वा तिलान्घृताभ्यक्तान्दीर्घमायुष्यमाप्नुयात्।
आरभ्यार्कदिनं मन्त्री दशाहं घृतसम्प्लुतः॥६३॥
जुहुयादर्कसमिधः शरीरारोग्यसिद्धये। शालिभिर्जुह्वतो नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम्॥६४॥
अचिरादेव महती लक्ष्मी सञ्जायते ध्रुवम्। उषाजाजीनालिकेररजोभिर्घृतमिश्रितैः॥६५॥
हुनेदष्टोत्तरशतं पायसाशी तु नित्यशः। मण्डलाज्जायते सोऽपि कुबेर इव मानवः॥६६॥

घृताक्त तिल से होम करने वाला दीर्घायु होगा, रविवार से प्रारंभ करके दस दिवस पर्यन्त घृतलिप्त आक के काष्ठ से होम करने वाला रोग रहित होगा। नित्य तण्डुल से १००८ होम करने वाला अल्पकाल में महत् लक्ष्मी लाभ करता है। जो नित्य पायस भोजन करता है तथा ऊषाकाल में नारिकेल तथा घृत मिलाकर १०८ होम करेगा, वह कुबेर के समान होगा।।६३-६६।।

हविषा गुडमिश्रेण होमतो ह्यन्नवान्भवेत्। जपापुष्पाणि जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम्॥६७॥
ताम्बूलरससम्मिश्रं तद्भस्मतिलकं चरेत्। चतुर्णामपि वर्णानां मोहनाय द्विजोत्तमः॥६८॥
एवं यो भजते लक्ष्मीं साधकेन्द्रो मुनीश्वर।
सम्पदस्तस्य जायन्ते महालक्ष्मीः प्रसीदति॥६९॥
देहान्ते वैष्णवं धाम लभते नात्र संशयः। या तु दुर्गा द्विजश्रेष्ठ शिवलोकं गता सती॥७०॥
सा शिवाज्ञामनुप्राप्य दिव्यलोकं विनिर्ममे।
देवीलोकेति विख्यातं सर्वलोकविलक्षणम्॥७१॥
तत्र स्थिता जगन्माता तपोनियममास्थिता।
विविधान् स्वावतारान्हि त्रिकाले कुरुतेऽनिशम्॥७२॥
मायाधिका ह्लादिनीयुक् चन्द्राढ्या सर्गिणी पुनः।
प्रतिष्ठा स्मृतिसंयुक्ता क्षुधया सहिता पुनः॥७३॥
ज्ञानामृता वह्निजायान्तस्ताराद्यो मनुर्मतः।
ऋषिः स्याद्वामदेवोऽस्य छन्दो गायत्रमीरितम्॥७४॥

गुड़मिश्रित हवि से होम करने से देह रोगरहित होगी। जो द्विजप्रवर चतुर्वर्ण को मोहित करना चाहे, वह जवापुष्प से १००८ होम करे। होम भस्म को ताम्बूल रस युक्त करके उसका तिलक करे। हे मुनिप्रवर! जो इस विधि से लक्ष्मी अर्चना करता है, वह सर्वसम्पत्तियुक्त होता है। महालक्ष्मी उसके प्रति सन्तुष्ट रहती हैं।

देहान्त होने पर उसे वैकुण्ठलाभ होता है। यह निःसंशय है। हे द्विजप्रवर! जब सती दुर्गा ने कृष्णाज्ञा से शिवलोक गमन किया, वहां उन्होंने शंकर की आज्ञा से दिव्यलोक सृष्ट किया था। वही देवीलोक के नाम से प्रसिद्ध है। यह सर्वलोकोत्तम है। वहां तपःश्चरण एवं नियमानु वर्त्तित्व में तत्पर जगन्माता विविध अवतार निरवच्छिन्नरूप से सदा ग्रहण करती रहती हैं। माया, ह्लादिनी, चन्द्रा, सर्गिणी, प्रतिष्ठा, स्मृति, क्षुधा ज्ञानामृता, स्वाहा तथा प्रारंभ से प्रणव, यही मन्त्र है। (यहां केवल मन्त्र संकेत का अनुवाद है। मन्त्रोद्धार नहीं हो सका। सुधीजन मन्त्रोद्धार करें)। इसके ऋषि वामदेव हैं। छन्दः गायत्री है।।६७-७४।।

देवता जगतामादिर्दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। ताराद्येकैकवर्णेन हृदयादित्रयं मतम्।।७५।।
त्रिभिर्वर्मेक्षणं द्वाभ्यां सर्वैरस्त्रमुदीरितम्। महामरकतप्रख्यां सहस्त्रभुजमण्डिताम्।।७६।।
नानाशस्त्राणि दधतीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम्।
कङ्कणाङ्गदहाराढ्यां क्वणन्नूपुरकान्विताम्।।७७।।
किरीटकुण्डलधरां दुर्गां देवीं विचिन्तयेत्। वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं तिलैः समधुरैर्हुनेत्।।७८।।

देवता हैं दुर्गति का नाश करने वाली जगन्माता आदि दुर्गा हैं। ओंकार प्रभृति एक-एक से हृदयादि त्रय का न्यास करे। त्र्यक्षर से नेत्र तथा दो अक्षर से सभी अस्त्र (न्यास) कहे गये हैं। महामरकत कान्तिमती, सहस्त्र भुजाओं से युक्त, नाना शस्त्रधारिणी, त्रिनेत्रा, ललाट पर चन्द्र धारण करने वाली, कंकण, केयूर, हार से सज्जित, नूपुरों के क्वणन से युक्त, मुकुट-कुण्डल धारिणी देवी दुर्गा का ध्यान करे। ८ लाख मन्त्र जप कर ८०००० होम मधुयुक्त तिल से करे।।७५-७८।।

पयोऽन्धसा वा सहस्त्रं नवपद्मात्मके यजेत्।।७९।।
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धानन्दिनी पुनः।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा पीठशक्तयः।।८०।।

किंवा पायस से नवपद्मात्मक पीठ पर एक हजार होम करे। पीठशक्तिगण हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, आनन्दिनी, सुप्रभा, विजया, सर्वसिद्धिप्रदा।।७९-८०।।

आद्भिर्ह्रस्वत्रयक्लीबरहितैः पूजयेदिमाः। प्रणवो वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महापदात्।।८१।।
सिंहाय वर्मास्त्रं हृच्च प्रोक्तः सिंहमनुर्मुने। दद्यादासनमेतेन मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।।८२।।

ह्रस्वत्रय तथा क्लीवरहित मन्त्र से इन देवीगण की पूजा करे। हे मुनि! "ॐ वज्रनख दंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट्" यह सिंह मन्त्र है। मूल मन्त्र से मूर्त्ति प्रतिष्ठा करके इस मन्त्र से आसन प्रदान करे।।८१-८२।।

अङ्गावृत्तिं पुराभ्यर्च्य शक्तीः पत्रेषु पूजयेत्।
जया च विजया कीर्तिः प्रीतिःपश्चात्प्रभा पुनः।।८३।।
श्रद्धा मेधा श्रुतिश्चैव स्वनामाद्याक्षरादिकाः। पत्राग्रेश्वर्चयेदष्टावायुधानि यथाक्रमात्।।८४।।
शङ्खचक्रगदाखड्गपाशांकुशशरान्धनुः। लोकेश्वरांस्ततो बाह्ये तेषामस्त्राण्यनन्तरम्।।८५।।
इत्थं जपादिभिर्मंत्री मन्त्रे सिद्धे विधानवित्। कुर्यात्प्रयोगानमुना यथा स्वस्वमनीषितान्।।८६।।

प्रथमतः अंगावृत्ति की पूजा करके तब पत्रों पर शक्तियों का पूजन करे। शक्ति हैं जया, विजया, कीर्त्ति, प्रीति, प्रभा, श्रद्धा, मेधा, श्रुति इनके नाम के आद्य अक्षरादि से पूजा करे। पत्राग्र में शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, बाण, धनुष की क्रमशः पूजा करे। तदनन्तर लोकपालगण की और उनके आयुधों की पूजा की जाये। इस प्रकार मंत्रज्ञ साधक जप आदि द्वारा मन्त्र सिद्ध होकर इच्छित कामना लाभार्थ उस मन्त्र का प्रयोग करे।।८३-८६।।

प्रतिष्ठाप्य विधानेन कलशान्नवशोभनान्। रत्नहेमादिसंयुक्तान्घटेषु नवसु स्थितान्।।८७।।
मध्यस्थे पूजयेद्देवीमितरेषु जयादिकाः। सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैरभिषिञ्चेन्नराधिपम्।।८८।।
राजा विजयते शत्रून्योऽधिको विजयश्रियम्।
प्राप्नोत्यरोगो दीर्घायुः सर्वव्याधिविवर्जितः।।८९।।
वन्ध्याभिषिक्ता विधिना लभते तनयं वरम्। मन्त्रेणानेन सञ्जप्तमाज्यं क्षुद्रग्रहापहम्।।९०।।
गर्भिणीनां विशेषेण जप्तं भस्मादिकं तथा।
जृम्भश्वासे तु कृष्णस्य प्रविष्टे राधिकामुखम्।।९१।।
या तु देवी समुद्भूता वीणापुस्तकधारिणी।
तस्या विधानं विप्रेन्द्र शृणु लोकोपकारकम्।।९२।।

साधक सविधि सुन्दर ९ कलश स्थापित करे। वे सभी रत्न-स्वर्णादि युक्त हों। मध्य के कलश में देवी की तथा अन्य कलशों में जया आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिये। गन्ध पुष्पादि से अर्चना करके राजा का कलशस्थ जल से अभिषेक किया जाये। इससे राजा विजयी होता है। शत्रु पर अधिक विजयश्री लाभ करता है। वह रोग रहित, दीर्घायु तथा सर्वव्याधि रहित हो जाता है। वन्ध्या को इस जल से अभिषिक्त करे। उसे उत्तम पुत्रलाभ होगा। घृत पर इस मन्त्र को पढ़कर प्रदान करे। इससे क्षुद्र ग्रह नष्ट होते हैं। इस मन्त्र से भस्म को मन्त्रित करके गर्भिणी स्त्री को देना चाहिये। उसके लिये यह विशेष लाभप्रद है। कृष्ण की जंभाई की जो श्वास राधिका के मुख में प्रविष्ट हो गई थी, उससे वीणापुस्तकधारिणी देवी समुद्भूत हो गयीं। हे विप्रेन्द्र! उनका लोकोपकारक विधान श्रवण करिये।।८७-९२।।

प्रणवो वाग्भवं माया श्रीः कामः शक्तिरीरिता।
सरस्वती चतुर्थ्यन्ता स्वाहान्ते द्वादशाक्षरः।।९३।।
मनुर्नारायण ऋषिर्विराट् छन्दः समीरितम्। महासरस्वती चास्य देवता परिकीर्तिता।।९४।।
वाग्भवेन षडङ्गानि कृत्वा वर्णान्न्यसेद् बुधः।
ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेत्तारं लज्जां भ्रूमध्यगां न्यसेत्।।९५।।
मुखनासादिकर्णेषु गुदेषु श्रीमुखार्णकान्।
ततो वाग्देवतां ध्यायेद्वीणापुस्तकधारिणीम्।।९६।।
कर्पूरकुन्दधवलां पूर्णचन्द्रोज्ज्वलाननाम्। हंसाधिरूढां भालेन्दुदिव्यालङ्कारशोभिताम्।।९७।।
जपेद्द्वादशलक्षाणि तत्सहस्त्रं सिताम्बुजैः। नागचम्पकपुष्पैर्वा जुहुयात्साधकोत्तम।।९८।।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), माया (ह्रीं), श्रीं काम (क्लीं), शक्ति (ह्रीं) कहकर सरस्वती चतुर्थ्यन्त कहे। (सरस्वत्यै) अन्त में स्वाहा कहे। यह १२ अक्षरों का मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है—"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा" इस मन्त्र के ऋषि है नारायण, छन्दः है विराट्, देवता हैं सरस्वती। विद्वान् लोग 'ऐं' बीज से षडङ्ग न्यास करके वर्णन्यास करे। बुद्धिमान् व्यक्ति ब्रह्मरन्ध्र में प्रणव का (ॐ), भ्रूमध्य में लज्जाबीज का, मुख, नासिका, कर्ण, गुदा में श्रीमुख वर्ण का न्यास करे। तदनन्तर श्रेष्ठसाधक वीणा, पुस्तक धारिणी, कर्पूर तथा कल्पपुष्पवत् शुभ्रवर्णा, पूर्णचन्द्र निभानना, हंसारूढ़ा, चन्द्ररूप दिव्यालंकार शोभित सरस्वती का ध्यान करे। तदनन्तर द्वादश लक्ष मन्त्र जप करे। उसका १/१० होम श्वेतकमल किंवा नाग चम्पा से करे। तत्पश्चात् मातृका पीठ पर उनकी अर्चना होगी। उसका क्रम यह है।।९३-९८।।

मातृकोक्ते यजेत्पीठे वक्ष्यमाणक्रमेण ताम्।
वर्णाब्जेनासनं दद्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्॥९९॥
देव्या दक्षिणतः पूज्या संस्कृता वाङ्मयी शुभा।
प्राकृता वामतः पूज्यास वाङ्मयी सर्वसिद्धिदा॥१००॥

तदनन्तर मूलमन्त्र से मूर्त्ति कल्पना के अनन्तर उसे कमलासन अर्पित करना चाहिये। देवी के दक्षिण भाग में संस्कृता, शुभा वाङ्मयी देवी की पूजा करे। वाम में प्राकृता वाङ्मयी सर्वसिद्धिप्रदा की पूजा करनी चाहिये।।९९-१००।।

पूर्वमङ्गानि षड्कोणे प्रजाद्याःपूजयेद्बहिः।
प्रज्ञा मेधा श्रुतिः शक्तिः स्मृतिर्वागीश्वरी मतिः॥१०१॥
स्वस्तिश्चेति समाख्याता ब्रह्माद्यास्तदनन्तरम्।
लोकेशानर्चयेद्भूयस्तदस्त्राणि च तद्बहिः॥१०२॥

पहले षट्कोण में षडङ्ग पूजा करके तदनन्तर ब्रह्मा-प्रज्ञा-मेधा-श्रुति-शक्ति-स्मृति-वागीश्वरी मूर्त्ति तथा स्वस्ति की पूजा करे। तदनन्तर लोकपालगण की पूजा उनके बाह्य में करके तब अस्त्रपूजा करे।।१०१-१०२।।

एवं सम्पूज्य वाग्देवीं साक्षाद्वाग्वल्लभो भवेत्।
ब्रह्मचर्यरतः शुद्धः शुद्धदन्तनखादिकः॥१०३॥
संस्मरन् सर्ववनिताः सततं देवताधिया।
कवित्वं लभते धीमान् मासैर्द्वादशभिर्ध्रुवम्॥१०४॥
पीत्वा तन्मन्त्रितं तोयं सहस्त्रं प्रत्यहं मुने। महाकविर्भवेन्मन्त्री वत्सरेण न संशयः॥१०५॥

इस प्रकार से वाग्देवी की पूजा करने वाला व्यक्ति साक्षात् वाग्वल्लभ (वाचस्पति) हो जाता है। जो धीमान् व्यक्ति नारी मात्र को देवी बुद्धि से मानता है। ब्रह्मचारी, शुद्ध, दन्त-नख आदि को पवित्र रखता ब्रह्मचारी तथा पवित्र बुद्धि रहता है, उसे कवित्व शक्ति अवश्य मिलती है। हे मुनिवर! जो नित्य इनके मन्त्र से मन्त्रित जल को नित्य एक हजार बार पान करता है, वह मन्त्रज्ञ महाकवित्व एक वर्ष में पा लेता है। इसमें संशय नहीं है।।१०३-१०५।।

उरोमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन्मार्तण्डमण्डले। स्थितां देवीं प्रतिदिनं त्रिसहस्रं जपेन्मनुम्॥१०६॥
लभते मण्डलात्सिद्धिं वाचामप्रतिमां भुवि। पालाशबिल्वकुसुमैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः॥१०७॥

जो वक्षपर्यन्त जल में खड़ा होकर मार्त्तण्ड मण्डल को स्थित देवी का ध्यान करता है तथा इस प्रकार नित्य तीन हजार जप करता है, वह इस लोक में अद्वितीय वाक्‌सिद्धि लाभ करता है। जो पलाश, बेल के पुष्प को त्रिमधुर के साथ मिलाकर इस समिध् से होम करता है, वह बृहस्पतिवत् यशस्वी हो जाता है॥१०६-१०७॥

समिद्भिर्वा तदुत्थाभिर्यशः प्राप्नोति वाक्पतेः। राजवृक्षसमुद्भूतैः प्रसूनैर्मधुराप्लुतैः॥१०८॥
तत्समिद्भिश्च जुहुयात्कवित्वमतुलं लभेत्।
अथ प्रवक्ष्ये विप्रेन्द्र सावित्रीं ब्रह्मणःप्रियाम्॥१०९॥
यां समाराध्य ससृजे ब्रह्मा लोकांश्चराचरान्।
लक्ष्मी माया कामपूर्वा सावित्री ङेंसमन्विता॥११०॥
स्वाहान्तो मनुराख्यातः सावित्र्या वसुवर्णवान्।
ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छन्दः प्रोक्तं च देवता॥१११॥
सावित्रीं सर्वदेवानां सावित्री परिकीर्तिता। हृदन्तिकैर्ब्रह्मा विष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवैः॥११२॥

मधुरयुक्त राजवृक्ष के पुष्प तथा उसकी काष्ठ समिध् से होम करके मनुष्य अतुलित कवित्व शक्तिलाभ करता है। हे विप्रेन्द्र! अब मैं ब्रह्मप्रिय सावित्री का वर्णन करता हूं। इनकी आराधना करके ब्रह्मा ने चराचर जगत् सृष्ट किया था। लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), सावित्री चतुर्थी विभक्तियुक्त अन्त में स्वाहा कहे। यह अष्टवर्णात्मक मन्त्र सावित्री का कहा गया है। मन्त्रोद्धार है—"श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा" इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्दः है गायत्री, देवता हैं सावित्री। ये देवी सभी देवगण को उत्पन्न करने वाली हैं। चतुर्थी विभक्तियुक्त ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव द्वारा हृदय में अंग कल्पना करे॥१०८-११२॥

सर्वात्मना च ङेयुक्तैरङ्गानां कल्पनं मतम्।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा॥११३॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रसमविग्रहाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्॥११४॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकातराम्।
सुखदां मुक्तिदां चैव सर्वसम्पत्प्रदां शिवाम्॥११५॥
वेदबीजस्वरूपां च ध्यायेद्वेदप्रसूं सतीम्।
ध्यात्वैवं मण्डले विद्वान् त्रिकोणोज्ज्वलकर्णिके॥११६॥
सौरे पीठे यजेद्देवीं दीप्तादिनवशक्तिभिः।
मूलमन्त्रेण क्लृप्तायां मूर्तो देवीं प्रपूजयेत्॥११७॥

इसके अनन्तर विद्वान् व्यक्ति तप्तस्वर्णाभ वर्ण एवं छटायुक्त ब्रह्मतेज से ज्वलन्त रूप, ग्रीष्मकालीन

मध्याह्न में उगे सहस्र सूर्य के समान विग्रह वाली, तनिक हास्यमय प्रसन्न मुखमुद्रा वाली रत्नाभूषण भूषित, अग्निवत् शुद्ध वस्त्रों से सज्जित भक्तों पर अनुग्रहार्थ आतुर, सुखप्रदा, मुक्तिदात्री सर्वसम्पत्प्रदा शिवा, वेदबीजरूपा सती सावित्री का जो वेद जननी हैं। ध्यान करे। तदनन्तर त्रिकोण मण्डल की उज्वल कर्णिका में विद्वान् साधक ९ शक्तियों सहित सावित्री पूजन करे।।११३-११७।।

कोणेषु त्रिषु सम्पूज्या ब्राह्म्याद्याः शक्तयो बहिः।
आदित्याद्यास्ततः पूज्या उषादिसहिताः क्रमात्॥११८॥
ततः षडङ्गान्यभ्यर्च्य केसरेषु यथाविधि।
प्रह्लादिनीं प्रभां पश्चान्नित्यां विश्वम्भरां पुनः॥११९॥
विलासिनीप्रभावत्यौ जयां शान्तां यजेत्पुनः।
कान्तिं दुर्गासरस्वत्यौ विद्यारूपां ततः परम्॥१२०॥
विशालसंज्ञितामीशां व्यापिनीं विमलां यजेत्।
तमोपहारिणीं सूक्ष्मां विश्वयोनिं जयावहाम्॥१२१॥
पद्मालयां परां शोभां ब्रह्मरूपां ततोऽर्चयेत्।
ब्राह्म्याद्याः शारणा बाह्ये पूजयेत्प्रोक्तलक्षणाः॥१२२॥

सौर पीठ पर दीप्ता आदि नौ शक्ति सहित देवी की पूजा करे। मूल मन्त्र से आवाहन करके देवीप्रतिमा की पूजा करे। तदनन्तर तीनों कोण में ब्राह्मी आदि शक्ति की पूजा करके ऊषा प्रभृति सहित आदित्यादि देवों का पूजन क्रमशः करना चाहिये। तत्पश्चात् षडङ्ग पूजनोपरान्त केसरों पर सविधि प्रह्लादिनी, प्रभा, नित्या, विश्वंम्भरा, विलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ति, दुर्गा, सरस्वती, विद्यारूपा, विशाला, ईशा, व्यापिनी, विमला, तमोहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जयावहा, पद्मालया, पराशोभा, ब्रह्मरूपा तथा शरणा की पूजा करे।।११८-१२२।।

ततोऽभ्यर्चेद् ग्रहान्बाह्ये शक्राद्यानायुधैः सह।
इत्थमावरणैर्देवीः दशभिः परिपूजयेत्॥१२३॥
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं हुनेत्तिलैः। सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विन्दति॥१२४॥
अरुणाब्जैस्त्रिमधक्तैर्जुहुयाद्युतं ततः। महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षण्मासान्नाद्य संशयः॥१२५॥

तदनन्तर ग्रहों के बाह्य में इन्द्रादि लोकपालों की आयुध सहित पूजा करे। दशावरण से इस प्रकार देवी की पूजा करे। आठ लाख मन्त्र जप करके इसके पश्चात् आठ हजार होम तिलों से करे। ऐसा अनुष्ठान जो साधक करता है, वह सर्वपाप रहित होकर दीर्घायु होता है। तत्पश्चात् लालकमल त्रिमधुर से लिप्त करके दस हजार होम करे। यह करने वाला साधक छः मास में ही महालक्ष्मीवान् हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं है।।१२३-१२५।।

ब्रह्मवृक्षप्रसूनैस्तुजुहुयाद्ब्रह्मतेजसे। बहुना किमिहोक्तेन यथावत्साधिता सती॥१२६॥
साधकानामियं विद्या भवेत्कामदुघा मुने। अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्॥१२७॥

सावित्रीपञ्जरं नाम सर्वरक्षाकरं नृणाम्। व्योमकेशालकासक्तां सुकिरीटविराजिताम्॥१२८॥
मेघभ्रुकुटिलाक्रान्तां विधिविष्णुशिवाननाम्। गुरुभार्गवकर्णान्तां सोमसूर्याग्निलोचनाम्॥१२९॥
इडापिङ्गलिकासूक्ष्मावायुनासापुटान्विताम्। सन्ध्याद्विजोष्ठपुटितां लसद्वागुपजिह्विकाम्॥१३०॥
सन्ध्यासूर्यमणिग्रीवां मरुद्बाहुसमन्वितान्। पर्जन्यहृदयासक्तां वस्वाख्यप्रतिमण्डलाम्॥१३१॥
आकाशोदरविभ्रान्तां नाभ्यवान्तरवीथिकाम्।
प्रजापत्याख्यजघनां कटीन्द्राणीसमाश्रिताम्॥१३२॥

ब्रह्मतेजलाभार्थ पलाश पुष्पों से होम करे। हे मुनिवर! अधिक क्या कहा जाये? सविधि देवी की आराधना द्वारा साधक को विद्यारूपा देवी कामधेनु की तरह सर्वार्थ प्रदान करती हैं। अब मैं सभी मनुष्यों के रक्षार्थ सावित्री पंजर नामक परम अद्‌भुत रहस्य कहता हूं। साधक यह ध्यान करे। देवी का केश विस्तार आकाश तक है, वे सुन्दर मुकुट से शोभायमान हैं। मेघमाला उनकी कुटिल भ्रुकुटी है। ब्रह्मा-विष्णु-शिव उनके मुख हैं। बृहस्पति-शुक्र उनके कर्ण हैं। सूर्य-चन्द्र-वह्नि नेत्र हैं। इड़ा-पिंगला सूक्ष्मा वायु उनके नासापुट हैं। सन्ध्या अधर-ओष्ठ हैं। जिह्वा पर सरस्वती स्थिता हैं। सन्ध्या सूर्य उसकी मणिग्रीवा हैं। मरुद् वायु हैं। पर्जन्य (बादल) हृदय हैं। वसुगण प्रतिमण्डल हैं। आकाश उदर हैं। नाभि के ऊर्ध्व की रोमावलि अन्तर्वीथिका है। प्रजापति जघन हैं। इन्द्राणि कटि हैं।।१२६-१३२।।

ऊर्वोर्मलयमेरुभ्यां शोभमानां सरिद्वराम्। सुजानुजह्नु कुशिकां वैश्वदेवाख्यसंज्ञिकाम्॥१३३॥
पादांघ्रिनखलोमाख्यभूनागद्रुमलक्षिताम्। ग्रहराश्यर्क्षयोगादिमूर्तावयवसंज्ञिकाम्॥१३४॥
तिथिमासर्तुपक्षाख्यैः सङ्केतनिमिषात्मिकाम्। मायाकल्पितवैचित्र्यसन्ध्याख्यच्छदनावृताम्॥१३५॥
ज्वलत्कालानलप्रख्यां तडित्कोटिसमप्रभाम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशां शशिकोटिसुशीतलाम्॥१३६॥

मलय-मेरुपर्वत उनके उरु हैं। श्रेष्ठ नदी जाह्नवी तथा कुशिका उनके जानु हैं। उनकी संज्ञा है वैश्वदेवी पृथिवी-पर्वत-वृक्ष देवी के चरण, नख, लोम हैं। ग्रह-राशि-नक्षत्र-योग अवयव हैं। वे तिथि, मास, ऋतु, पक्ष, क्षण तथा निमेषात्मिका हैं। वे अपनी माया द्वारा अनेक विचित्रताओं को व्यक्त करती हैं। उनका शरीर सन्ध्यावरण से आवरित हैं। वे ज्वलत् कालानलवत् हैं, वे करोड़ों विद्युत् के समान प्रभा वाली हैं। उनका रूप करोड़ों सूर्य के समान हैं। वे करोड़ो चन्द्रवत् शीतल हैं।।१३३-१३६।।

सुधामण्डलमध्यस्थां सान्द्रानन्दामृतात्मिकाम्। वागतीतां मनोऽगम्यां वरदां वेदमातरम्॥१३७॥
चराचरमयीं नित्यां ब्रह्माक्षरसमन्विताम्।
ध्यात्वा स्वात्मविभेदेन सावित्रीपञ्जरं न्यसेत्॥१३८॥
पञ्जरस्य ऋषिः सोऽहं छन्दो विकृतिरुच्यते। देवता च परो हंसः परब्रह्मादिदेवता॥१३९॥
धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै 'विनियोग उदाहृतः। षडङ्गदेवतामन्त्रैरङ्गन्यासं समाचरेत्॥१४०॥
त्रिधामूलेन मेधावी व्यापकं हि समाचरेत्।
पूर्वोक्तां देवतां ध्यायेत्साकारां गुणसंयुताम्॥१४१॥

वे सुधामण्डल के मध्य में स्थिता, पूर्णानन्दमय अमृत पान करती हैं। वे वाणी से अतीत, मन से अगम्य वरदा, वेदमाता हैं। वे चराचरमयी, नित्या ब्रह्माक्षर समन्विता हैं। इस प्रकार उनका ध्यान अभेद रूप से करके सावित्रीपंजर का न्यास करे। इसके ऋषि हैं सोऽहं, छन्दः है विकृति, देवता हैं परमहंस, आदिदेवता हैं परब्रह्म। धर्मार्थ-काम-मोक्ष लाभार्थ इसका प्रयोग होता है। षडङ्ग देवता मन्त्र द्वारा अंगन्यास करें। सुधी व्यक्ति मूलमन्त्र से पूजा करें। त्रिधा मूल द्वारा मेधावी साधक व्यापक न्यास सम्पन्न करें। पूर्वोक्त देवता का ध्यान गुणयुक्त साकाररूपेण करें।।१३७-१४१।।

त्रिपदा हरिजा पूर्वमुखी ब्रह्मास्त्रसंज्ञिका।
चतुर्विंशतितत्त्वाढ्या पातु प्राचीं दिशं मम॥१४२॥

वे त्रिगुणात्मिका, त्रिपदा, हरि से उत्पन्न, व्यापक हैं। वे पूर्वमुखी तथा ब्रह्मास्त्र नाम वाली चौबीस तत्वयुक्त देवी पूर्वदिक् में मेरी रक्षा करें।।१४२।।

चतुष्पदा ब्रह्मदण्डा ब्रह्माणी दक्षिणानना।
षड्विंशतत्त्वसंयुक्ता पातु मे दक्षिणां दिशम्॥१४३॥

चतुष्पदा, ब्रह्मदण्डा, ब्रह्माणी, दक्षिणमुखी, २६ तत्वात्मिका मेरी रक्षा दक्षिण दिशा में करें।।१४३।।

प्रत्यङ्मुखी पञ्चपदी पञ्चाशत्तत्त्वरूपिणी।
पातु प्रतीचीमनिशं मम ब्रह्मशिरोङ्किता॥१४४॥

पश्चिममुखी, पञ्चपदी, ५० तत्वरूपा ब्रह्मशिरधारिणी देवी, सदा पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें।।१४४।।

सौम्यास्या ब्रह्म तुर्याढ्या साथर्वाङ्गिरसात्मिका।
उदीचीं षट्पदा पातु षष्टितत्त्वकलात्मिका॥१४५॥

उत्तराभिमुखी, षट्पदी, तुरीय ब्रह्म से युक्ता, अथर्व-आंगीरस रसात्मिका, ६० तत्वयुता उत्तर दिशा में रक्षा करें।।१४५।।

पञ्चाशद्वर्णरचिता नवपादा शताक्षरी।
व्योमा सम्पातु मे वोदर्ध्वं शिरो वेदान्तसंस्थिता॥१४६॥

५० वर्ण से रचिता, नवपादा, शताक्षरी, व्योमा वेदान्त संस्थिता ऊर्ध्व में मेरे शिर की रक्षा करें।।१४६।।

विद्युन्निभा ब्रह्मसन्ध्या मृगारूढा चतुर्भुजा।
चापेषुचर्मासिधरा पातु मे पावकीं दिशम्॥१४७॥

विद्युत् के समान ब्रह्मसन्ध्या मृगारूढा, चतुर्भुजा, धनुष, बाण, कवच, खड्गधारिणी अग्निकोण में मेरी रक्षा करें।।१४७।।

ब्राह्मी कुमारी गायत्री रक्ताङ्गी हंसवाहिनी।
बिभ्रत्कमण्डलुं चाक्षं स्त्रुवस्त्रुवौ पातु नैर्ऋतिम्॥१४८॥

ब्राह्मी, कुमारी, गायत्री, रक्तांगी, हंसवाहिनी कमण्डलु अक्षमाला, स्त्रुवस्त्रुव धारिणी नैर्ऋत्य कोण में मेरी रक्षा करें।।१४८।।

शुक्लवर्णा च सावित्री युवती वृषवाहना।
कपालशूलकाक्षस्त्रग्धारिणी पातु वायवीम्॥१४९॥

शुक्लवर्णा सावित्री युवती तथा वृषारूढ़ा हैं। वे कपाल, शूल, अक्षमालाधारिणी वायव्य कोण में मेरी रक्षा करें।।१४९।।

श्यामा सरस्वती वृद्धा वैष्णवी गरुडासना।
शङ्खचक्राभयकरा पातु शैवीं दिशं मम॥१५०॥

श्यामा, सरस्वती, वृद्धा, वैष्णवी, गरुड़ासना, शंख, चक्र, अभयास्त्र धारिणी सरस्वती ईशान कोण में रक्षा करें।।१५०।।

चतुर्भुजा देवमाता गौराङ्गी सिंहवाहना। वराभयखड्गचर्मभुजा पात्वधरां दिशम्॥१५१॥

चतुर्भुजा देवमाता गौरांगी सिंह वाहना अभय, खड्ग कवचधारिणी अधर में मेरी रक्षा करें।।१५१।।

तत्तत्पार्श्वे स्थिताः स्वस्ववाहनायुधभूषणाः।
स्वस्वदिक्षु स्थिताः पान्तु ग्रहशक्त्यङ्गसंयुताः॥१५२॥

उनके पार्श्वस्था वे-वे देवियां जो स्ववाहन, स्वअस्त्र तथा आभूषणों से शोभित हैं, ग्रह, शक्ति तथा अंग युता हैं, वे अपनी-अपनी दिशा में मेरी रक्षा करें।।१५२।।

मन्त्राधिदेवतारूपा मुद्राधिष्ठातृदेवताः।
व्यापकत्वेन पान्त्वस्भानापादतलमस्तकम्॥१५३॥

मन्त्राधिदेवता, मुद्राधिष्ठात्री देवता व्यापकरूपेण मेरे मस्तक से लेकर मेरे चरण तक मेरी रक्षा करें।।१५३।।

इदं ते कथितं सत्यं सावित्रीपञ्जरं मया।
सन्ध्ययोः प्रत्यहं भक्त्या जपकाले विशेषतः॥१५४॥
पठनीयं प्रयत्नेन भुक्तिं मुक्तिं समिच्छता। भूतिदा भुवना वाणी महावसुमती मही॥१५५॥
हिरण्यजननी नन्दा सविसर्गा तपस्विनी।
यशस्विनी सती सत्या वेदविच्चिन्मयी शुभा॥१५६॥
विश्वा तुर्या वरेण्या च निसृणी यमुना भुवा।
मोदा देवी वरिष्ठा च धीश्च शान्तिर्मती मही॥१५७॥
धिषणा योगिनी युक्ता नदी प्रज्ञाप्रचोदनी।
दया च यामिनी पद्मा रोहिणी रमणी जया॥१५८॥

यह सत्यरूप सावित्री पंजर मैंने तुमसे कह दिया। इसे सन्ध्याकाल में नित्य पाठ करे। जपकाल में इसका अवश्य पाठ करे। भुक्ति-मुक्ति कामी लोग इसे प्रयत्नतः पढ़ें। भूतिदा, भुवना, वाणी, महावसुमती, मही, हिरण्यजननी, नन्दा, सविसर्गा, तपस्विनी, यशस्विनी, सती, सत्या, वेदवित्, चिन्मयी, शुभा, विश्वा, तुर्या,

वरेण्या, निसृणी, यमुना, भुवा, मोदा, देवी, वरिष्ठा, धी, शान्ति, मही, धिषणा, योगिनी युक्ता नदी, प्रज्ञा, प्रचोदिनी, दया, यामिनी, पद्मा, रोहिणी, रमणी, जया।।१५४-१५८।।

सेनामुखी साममयी बगला दोषवर्जिता।
माया प्रज्ञा परा दोग्ध्री मानिनी पोषिणी क्रिया।।१५९।।
ज्योत्ना तीर्थमयी रम्या सौम्यामृतमया तथा।
ब्राह्मी हैमी भुजङ्गी च वशिनी सुन्दरी वनी।।१६०।।
ओङ्कारहंसिनी सर्वा सुधा सा षड् गुणावती।
माया स्वधा रमा तन्वी रिपुघ्नी रक्षणी सती।।१६१।।
हैमी तारा विधुगतिर्विषघ्नी च वरानना। अमरा तीर्थदा दीक्षा दुर्धर्षा रोगहारिणी।।१६२।।

सेनामुखी, साममयी, बगला, दोषवर्जिता, माया, प्रज्ञा, परा, दोग्ध्री, मानिनी, पोषिणी, क्रिया, ज्योत्स्ना, तीर्थमयी, रम्या, सौम्या, अमृतमया, ब्राह्मी, हैमी, भुजंगी, वशिनी, सुन्दरी, वनी, ओंकारहंसिनी, सर्वा, सुधा, षड्गुणवती, माया, स्वधा, रमा, तन्वी, रिपुघ्नी, रक्षणी, सती, हैमी, तारा, विधुगति, विषघ्नी, वरानना, अमरा, तीर्थदा, दीक्षा, दुर्धर्षा, रोगहारिणी।।१५९-१६२।।

नानापापनृशंसघ्नी षट्पदी वज्रिणी रणी।
योगिनी विमला सत्या अबला बलदा जया।।१६३।।
गोमती जाह्नवी रज्वी तपनी जातवेदसा।
अचिरा वृष्टिदा ज्ञेया ऋततन्त्रा ऋतात्मिका।।१६४।।
सर्वकामदुघा सौम्या भवाहङ्कारवर्जिता।
द्विपदा या चतुष्पदा त्रिपदा या च षट्पदा।।१६५।।
अष्टापदी नवपदी सहस्राक्षाक्षरात्मिका।
अष्टोत्तरशतं नाम्नां सावित्र्या यः पठेन्नरः।।१६६।।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्।
एतत्ते कथितं विप्र पञ्चप्रकृतिलक्षणम्।।१६७।।
मन्त्राराधनपूर्वं च विश्वकामप्रपूरणम्।।१६८।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे पञ्चप्रकृतिमन्त्रादि-निरूपणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।८३।।

नाना पाप नृशंसघ्नी, षट्पदी, वज्रिणी, रणी, योगिनी, विमला, अबला, सत्या, बलदा, जया, गोमती, जाह्नवी, रज्वी, तपनी, जातवेदा, अचिरा, वृष्टिदा, ज्ञेया, ऋततंत्रा, ऋतात्मिका, सर्वकामदुघा, सौम्या, भवाहंकार वर्जिता, द्विपदा, चतुष्पदा, त्रिपदा, षट्पदा, अष्टपदी, नवपदी, सहस्राक्षा, अक्षरात्मिका। ये १०८

नाम सावित्री के हैं। जो इनका पाठ करेगा, वह दीर्घायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी, विनयी होगा। हे विप्र! यह मैंने पंचप्रकृति लक्षण कहा। इस मन्त्र जप तथा आराधना से समस्त कामना पूर्ण होती है।।१६३-१६८।।

।।८३वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
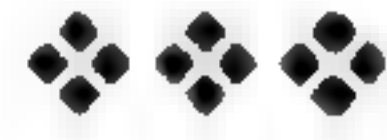
अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

जपहोम विधि, देवी मन्त्र निरूपण

सनत्कुमार उवाच

कलिकल्पान्तरे ब्रह्मन् ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
लोकपद्मे तपस्थस्य सृष्ट्यर्थं सम्बभूवतुः॥१॥
विष्णुकर्णमलोद्भुतावसुरौ मधुकैटभो। तौ जातमात्रौ पयसि लोकप्रलयलक्षणे॥२॥
जानुमात्रे स्थितौ दृष्ट्वा ब्रह्माणं कमलस्थितम्।
प्रवृत्तावत्तुमालक्ष्य तुष्टाव जगदम्बिकाम्॥३॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे ब्रह्मन्! कलिकल्पान्तर में अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा सृष्टि हेतु लोकपद्मासीन होकर तप कर रहे थे, तभी विष्णु के कर्णमल से मधु-कैटभ नामक असुर उत्पन्न हो गये। उस समय उनके घुटनों पर्यन्त ही लोक प्रलयलक्षण जल था। उन्होंने जानुमात्र जल में कमलस्थ ब्रह्मा को देखा। वे उत्पन्न होते ही ब्रह्मा को देखकर उनके भक्षणार्थ उपक्रम करने लगे। यह देखकर ब्रह्मा ने जगदम्बिका को प्रसन्न करने हेतु स्तुति किया।।१-३।।

ततो देवी जगत्कर्त्री शर्वो शक्तिरनुत्तमा। नारायणाक्षिसंस्थानां निद्रा प्रीता बभूद ह॥४॥
तस्या मन्त्रादिकं सर्वं कथयिष्यामि तच्छृणु।
सारुणा क्रोधनी शान्तिश्चन्द्रालङ्कृतशेखरा॥५॥
एकाक्षरीबीजमन्त्रऋषिः शक्तिरुदाहता। गायत्री च भवेच्छन्दो देवता भुवनेश्वरी॥६॥
षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्। संहारसृष्टिमार्गेण मातृकान्यस्तविग्रहः॥७॥
मन्त्रन्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये। हल्लेखां मूर्ध्नि वदने गगनां हृदयाम्बुजे॥८॥
रक्तां करालिकां गुह्ये महोच्छुष्मा पदद्वये। ऊर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषूत्तरेऽपि च॥९॥
सद्यादिह्रस्वबीजाद्यान्वस्तव्या भूतसम्प्रभाः।
अङ्गानि विन्यसेत्पश्चाज्जातियुक्तानि षट् क्रमात्॥१०॥

उस स्तुति से जगत्कर्त्री शिव की शक्ति अत्युत्तमा देवी प्रसन्न हो गयीं। नारायण के नेत्रों में स्थित निद्रा

देवी प्रसन्न हो गयीं। उनके सभी मन्त्रादि को कहता हूं। उसे सुनिये। अरुणा, क्रोधनी, शान्ति, चन्द्रांकित ललाट वाली तथा एकाक्षरी यह बीजमन्त्र है। *(यह मन्त्र संकेत है। इसका मन्त्रोद्धार नहीं ज्ञात हो सका। सुधीजन मन्त्रोद्धार करें।)*

इस एकाक्षरी बीज के ऋषि तथा शक्ति कहे गये हैं (?) इसका छन्दः है गायत्री। देवता हैं भुवनेश्वरी। षड्दीर्घयुक्त बीज से इसका षडङ्गन्यास क्रमशः करे। साधक संहार तथा सृष्टि मार्ग से मातृका न्यासोपरान्त देवता की भावसिद्धि हेतु मन्त्र न्यास करे। मस्तक पर हल्लेखा का, मुख में गगना का, हत्कमल में रक्ता का, गुह्य में करालिका का, चरणद्वय पर महोच्छूष्मा का, ऊपर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर में भूतवत् प्रभाव वाले सद्या आदि का तथा ह्रस्वादि बीज का न्यास करे। तदनन्तर जातियुक्त षडङ्ग पर क्रमशः न्यास करे।।४-१०।।

ब्रह्माणं विन्यसेद्भाले गायत्र्या सह संयुतम्।
सावित्र्या सहितं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत्॥११॥
वागीश्वर्या समायुक्तं वामगण्डे महेश्वरम्। श्रिया धनपतिं न्यस्य वामकर्णाग्रके पुनः॥१२॥
रत्या स्मरं मुखे न्यस्य पुण्यागणपतिं न्यसेत्।
सव्यकर्णोपरि निधाकर्णगण्डान्तरालयोः॥१३॥
न्यस्तव्यं वदने मूलं भूपश्चैत्रांस्ततो न्यसेत्। कण्ठमूले स्तनद्वन्द्वे वामांसे हृदयाम्बुजे॥१४॥
सव्यांसे पार्श्वयुगले नाभिदेशे च देशिकः। भालांश्च पार्श्वजठरे पार्श्वांसापरके हृदि॥१५॥

ललाट पर गायत्री सहित ब्रह्मा का, दक्षिण कपोल पर सावित्री सहित विष्णु का, वाम कपोल पर वागीश्वरी तथा महेश्वर का, वाम कर्णाग्रभाग में लक्ष्मी सहित कुबेर का, मुख में रति-कन्दर्प का, वामकर्ण पर पुण्या सहित गणपति का, सव्यकर्ण तथा कपोल मध्य में निधा का, मुख में मूलमन्त्र का, भूप चैत्र का न्यास करे। तदनन्तर कण्ठमूल, स्तनद्वय, वामस्कन्ध, दाहिना स्कन्ध, हत्कमल, पार्श्वद्वय तथा नाभि में देशिक का न्यास करें। पार्श्व, जठर, स्कन्ध तथा हृदय पर भाला का न्यास करे।।११-१५।।

ब्रह्माण्याद्यास्तनौ न्यस्य विधिना प्रोक्तलक्षणाः।
मूलेन व्यापकं देहे न्यस्य देवीं विचिन्तयेत्॥१६॥
उद्यद्दिवाकरनिभां तुङ्गोरोजां त्रिलोचनाम्। स्मेरास्यामिन्दुमुकुटां वरपाशांकुशाभयाम्॥१७॥
रदलक्षं जपेन्मन्त्रं त्रिमधक्तैर्हुनेत्ततः। अष्टद्रव्यैर्दशांशेन ब्रह्मवृक्षसमिद्वरैः॥१८॥

स्तन पर ब्रह्माणी प्रकृति देवीगण के न्यासोपरान्त देह में मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करके देवी का चिन्तन करे। यथा—वे उदीयमान सूर्य के समान, उतुंग उरोज (स्तन वाली) वाली, त्रिनेत्रा हैं। वे किंचित् हास्य मुद्रा में हैं। वे चन्द्रमुकुटधारिणी, उत्तम पाश-अंकुश तथा अभय धारण करती हैं। ऐसी देवी का ध्यान करके बत्तीस लक्ष मन्त्र जप करे। तदनन्तर तीन लाख बीस हजार होम त्रिमधु मिश्रित अष्टद्रव्य तथा पलाश समिध् से करे।१६-१८।।

द्राक्षाखर्जूरवातादशर्करानालिकेरकम्। तन्दुलाज्यतिलं विप्र द्रव्याष्टकमुदा हृतम्॥१९॥
दद्यादर्घ्यं दिनेशाय तत्र सञ्चिन्त्य पार्वतीम्। पद्ममष्टदलं बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः॥२०॥

विलिखेत्कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम्। ततः सम्पूजयेत्पीठं नवशक्तिसमन्वितम्॥२१॥

जयाख्या विजया पश्चादजिताह्वापराजिता।
नित्या विलासिनी दोग्घ्री त्यघोरा मङ्गला नव॥२२॥

हे विप्र! द्राक्षा, खजूर, बादाम, शर्करा, तन्दुल, घृत, तिल ही अष्ट द्रव्य हैं। तब सूर्यार्घ्य देकर पार्वती का ध्यान करके कर्णिका के मध्य में अष्टदल, वाह्यवृत्त में षोडशदल लिखकर कर्णिका मध्य में अतीव सुन्दर षट्कोण बनाये। तब पीठ पूजा नौ शक्तिगण के साथ करे। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्घ्री, अघोरा तथा मंगला ये नौ शक्तियां हैं।।१९-२२।।

बीजाढ्यमानसं दत्त्वा मूर्ति तेनैव कल्पयेत्।
तस्यां सम्पूजयेद्देवीमावाह्यावरणैः क्रमात्॥२३॥

मध्यप्राग्याम्यसौम्येषु पूजयेदङ्गदेवताः। षट्कोणेषु यजेन्मन्त्री पश्चान्मिथुनदेवताः॥२४॥

इन्द्रकोणे लसद्दण्डकुण्डिकाक्षगुणाभयाम्।
गायत्रीं पूजयेन्मन्त्री ब्रह्माणमपि तादृशम्॥२५॥

बीजमन्त्र से उनको आसन देकर उसी मन्त्र से मूर्त्ति स्थापित करे। (मूर्त्ति कल्पना करे)। उसी प्रतिमा में अंग देवताओं के साथ देवी का आवाहन पूजन सम्पन्न करे। साधक उत्तर में मध्य प्रज्ञा आदि की अंगदेवगण के पूजनोपरान्त षट्कोण में मिथुन देवगण की पूजा करे। ईशानकोण में दण्ड, कुण्डिका, रुद्राक्ष, यज्ञोपवीत, अभयमुद्रा धारिणी गायत्री तथा उनके समान ब्रह्मा की पूजा करे।।२३-२५।।

रक्षःकोणे शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणीम्। सावित्रीं पीतवसनां यजेद्विष्णुं च तादृशम्॥२६॥

वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्विताम्। यजेत्सरस्वतीमच्छां रुद्रं तादृशलक्षणम्॥२७॥

वह्निकोणे यजेद्रत्नकुम्भं मणिकरण्डकम्।
कराभ्यां बिभ्रतीं पीतां तुन्दिलं धनदायकम्॥२८॥
आलिङ्ग्य सव्यहस्तेन वामे ताम्बूलधारिणीम्।
धनदाङ्कसमारूढां महालक्ष्मीं प्रपूजयेत्॥२९॥

तदनन्तर नैर्ऋत् कोण में शंख, चक्र, गदा, पद्म, पीतवस्त्रधारिणी सावित्री तथा तद्रूप वाले विष्णु की पूजा करे। वायुकोण में रुद्राक्षमाला तथा अभयमुद्रा धारिणी शुक्लवर्णा सरस्वती तथा तद्रूप रुद्र पूजा करके अग्निकोण में रत्नघट तथा मणिकरण्ड धारिणी, पीतवर्णा दाहिने हाथ से तुन्दिल उदर कुबेर का आलिंगन करने वाली तथा धनपति की गोद में बैठी बायें हाथ में ताम्बूल लिये हुये महालक्ष्मी की पूजा करे।।२६-२९।।

पश्चिमे मदनं बाणपाशाङ्कुशशरासनाम्। धारयन्तं जपारक्तं पूजयेद्रक्तभूषणम्॥३०॥

सव्येन पतिमाश्लिष्य वामेनोत्पलधारिणीम्। पाणिना रमणाङ्कस्थां रतिं सम्यक्समर्चयेत्॥३१॥

पश्चिम में मदन की पूजा करे, जो बाण, पाश, अंकुश तथा धनुर्धारी हैं। वे जवापुष्प जैसे वर्ण वाले हैं। उन रक्तवर्ण आभूषण धारी की पूजा करे। इनको दाहिने हाथ में आलिंगन में लिये, वाम हाथ में कमल धारण करने वाली पति के क्रोड़ में आसीना रति की सम्यक् अर्चना करनी चाहिये।।३०-३१।।

ऐशान्ये पूजयेत्सम्यक् विघ्नराजं प्रियान्वितम्।
सृणिपाशधरं कान्तं वराङ्गासृक्कलाङ्गुलिम्॥३२॥
माध्वीपूर्णकपालाढ्यं विघ्नराजं दिगम्बरम्। पुष्करे विगलद्रत्नस्फुरच्चषकधारिणम्॥३३॥
सिन्दूरसदृशाकारामुद्दाममदविभ्रमाम्। धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तु ध्वजस्पृशाम्॥३४॥
आश्लिष्टकान्तामरुणां पुष्टिमर्चेद्दिगम्बराम्।
कर्णिकायां निधी पूज्यौ षट्कोणस्याथ पार्श्वयोः॥३५॥

ईशान कोण में पाश-अंकुश धारण करने वाली, कमनीय, हस्ति मस्तक, मद्यपूर्ण कपालधारी दिगम्बर विघ्नराज गणेश की तथा सिन्दूरवर्ण वाली, अतीव मदविह्वला, एक हाथ में रक्तकमल, अन्य में गणेश का लिंगधारिणी, गणेश का आलिंगन किये हुये रक्तवर्णा दिगम्बरा पुष्टि की अर्चना करनी चाहिये। षट्कोण के पार्श्वद्वय में कर्णिका पर निधियों की पूजा करे।।३२-३५।।

अङ्गानि केसरेष्वेताः पश्चात्पत्रेषु पूजयेत्। अनङ्गकुसुमा पश्चाद्द्वितीयानङ्गमेखला॥३६॥
अनङ्गमना तद्वदनङ्गमदनातुरा। भुवनपाला गगनवेगा षष्ठी चैव ततः परम्॥३७॥
शशिलेखा गगनलेखा चेत्यष्टौ यत्र शक्तयः।
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याश्च मातरः॥३८॥
पद्माद्बहिः समभ्यर्च्याः शक्तयः परिचारिकाः। प्रथमानङ्गद्वयास्यादनङ्गमदना ततः॥३९॥
मदनातुरा भवनवेगा ततो भुवनपालिका। स्यात्सर्वशिशिरानङ्गवेदनानङ्गमेखला॥४०॥
चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं छत्रमुज्ज्वलम्।
चामरे चांशुकं पुष्पं बिभ्राणाः करपङ्कजैः॥४१॥
सर्वाभरणसन्दीप्तान् लोकपालान्बहिर्यजेत्।
वज्रादीन्यपि तद्बाह्ये देवीमित्थं प्रपूजयेत्॥४२॥

केसरों पर अंग देवताओं का पूजन करके पत्रों पर अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगगमना, अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, षष्ठी, शशिलेखा, गगनलेखा की पूजा करे। तदनन्तर ढाल-तलवार लिये हुये श्यामवर्णा मातृगण की पूजा करे। तदनन्तर पद्म के बाहर परिचारिका शक्तिगण की पूजा करे। उनके करकमल में प्याला, पंखा, तन्दुल, उज्वल छत्र, चामर, वस्त्र तथा पुष्प है। इनके नाम हैं—अनंगद्वया, अनंगमदना, मदनातुरा, भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंग वेदना तथा अनंग मेखला। तत्पश्चात् सर्वाभूषण अलंकृता लोकपालों तथा वज्रादि आयुध समूह की पूजा सम्पन्न करे।।३६-४२।।

मन्त्री त्रिमधुरोपेतैर्हुत्वाश्वत्थसमिद्वरैः। ब्राह्मणान्वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान्पद्महोमतः॥४३॥
पलाशपुष्पैस्तत्पत्नीं मन्त्रिणः कुमुदैरपि। पञ्चविंशतिधा जप्तैर्जलैः स्नानं दिने दिने॥४४॥
आत्मानमभिषिञ्चेद्यः सर्वसौभाग्यवान्भवेत्।
पञ्चविंशतिधा जप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः॥४५॥

अवाप्य महतीं प्रज्ञां कवीनामग्रणीर्भवेत्। कर्पूरागरुसंयुक्तकुङ्कुमं साधु साधितम्॥४६॥
गृहीत्वा तिलकं कुर्याद्राजवश्यमनुत्तमम्।
शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं मधुरान्विताम्॥४७॥

इस विधि से देवी पूजन के उपरान्त त्रिमधुरयुक्त पीपल की समिध् से मन्त्रज्ञ साधक हवन द्वारा ब्राह्मणों को, कमलपुष्प से होम करने वाले राजाओं (क्षत्रियों) को, पलाशपुष्प से हवन द्वारा राजरानियों को, कुमुद से होम करके मन्त्रियों को वशीभूत कर लेता है। पचीस बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल द्वारा नित्य प्रातः स्नान करने वाला मनुष्य अखिल सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। पचीस बार इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित जल नित्य पान करे। वह व्यक्ति महतीप्रज्ञा लाभ करता है। वह कवियों में अग्रगण्य हो जाता है। सम्यक्रूपेण अभिमन्त्रित कर्पूर, अगरु, कुंकुम का तिलक लगाने वाला राजा को वश में करता है। मधुयुक्त पिसे शालिधान्य को मिलाकर उस पिष्टी से पुत्तली बनाये।।४३-४७।।

जप्तां प्रतिष्ठितप्राणां भक्षयेद्रविवासरे। वशं नयति राजानं नारीं वा नरमेव च॥४८॥
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा वीक्ष्य तोयोद्गतं रविम्।
त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्रं कन्यामिष्टां लभेत्ततः॥४९॥

इस मन्त्र को जपकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा करे। तदनन्तर रविवार को उसका भक्षण करे। वह व्यक्ति राजा, नारी अथवा नर को वशीभूत करता है। प्रातः कण्ठपर्यन्त जल में खड़े होकर जल से निकलते सूर्य का अवलोकन करते इस मन्त्र को तीन हजार जपे। अभीष्ट पत्नी का लाभ होगा।।४८-४९।।

अन्नं तन्मन्त्रितं मन्त्री भुञ्जित श्रीप्रसिद्धये।
लिखितां भस्मना मायां ससाध्यां फलकादिषु॥५०॥
तत्कालं दर्शयेद्यन्त्रं सुखं सूयेत गर्भिणी। भुवनेशीयमाख्याता सहस्रभुजसंभवा॥५१॥

साधक लक्ष्मी लाभार्थ इस मन्त्र से अभिमन्त्रित अन्न भक्षण करे। काष्ठ पट्ट पर भस्म से देवी प्रतिमा बनाकर गर्भिणी को दिखलाये। वह स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है। हे द्विजप्रवर! ये देवी भुवनेश्वरी कहीं गयी हैं। ये सहस्रभुजा वाली भगवती अपने भक्तों को भुक्ति-मुक्ति प्रदात्री हैं।।५०-५१।।

भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां स्मर्तॄणां द्विजसत्तम। ततः कल्पान्तरे विप्र कदाचिन्महिषासुरः॥५२॥
बभूव लोकपालांस्तु जित्वा भुङ्क्ते जगत्त्रयम्।
ततस्तत्पीडिता देवा वैकुण्ठं शरणं ययुः॥५३॥

हे द्विजोत्तम! ये देवी भक्तों को तथा स्मरण करने वालों को भुक्ति-मुक्ति प्रदान करती हैं। हे विप्र! अन्य कल्प में कभी महिषासुर उत्पन्न हुआ था। उसने लोकपालों को जीतकर तीनों लोकों पर राज्य किया। उससे पीड़ित होकर देवता लोगों ने वैकुण्ठ में शरण लिया।।५२-५३।।

ततो देवी महालक्ष्मीश्चक्राद्यङ्गोत्थतेजसा। श्रीर्बभूव मुनिश्रेष्ठ मूर्ता व्याप्तजगत्त्रया॥५४॥
स्वयं सा महिषादींस्तु निहत्य जगदीश्वरी। अरविन्दवनं प्राप्ता भजतामिष्टदायिनी॥५५॥
तस्याः समर्चनं वक्ष्ये संक्षेपेण शृणु द्विज। मृत्युक्रोधेन गुरुणा बिन्दुभूषितमस्तका॥५६॥

बीजमन्त्रः श्रियः प्रोक्तो भजतामिष्टदायकः।
ऋषिर्भृगुनिवृच्छन्दो देवता श्रीः समीरिता॥५७॥

हे मुनिप्रवर! वहां समस्त देवगण के तेज से महालक्ष्मी आविर्भूत हो गयीं। उनके तेज से त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। उन जगदीश्वरी ने महिषासुर आदि का निहत करने के पश्चात् कमलवन प्रस्थान किया। वे भक्तों को उनकी कामना प्रदान करती हैं। मैं उनकी अर्चना का वर्णन संक्षेप में करता हूं। "मृत्यु, क्रोध, गुरु एवं विन्दु भूषित मस्तक वाला अक्षर महालक्ष्मी" का बीजमन्त्र है। *(यह मन्त्र संकेत है। इसका मन्त्रोद्धार ज्ञात नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।)* यह साधकों हेतु इष्टप्रद है। इसके ऋषि भृगु हैं। छन्द निवृत् है। देवता श्री हैं।।५४-५७।।

षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्।
ततो ध्यायेज्जगद्वेद्यां श्रियं सम्पत्तिदायिनीम्॥५८॥
काञ्चनाभां गजैः श्वेतेश्चतुर्भिः स्वकरोद्धृतैः।
हिरणमया मृतघटैः सिच्यमानां सरोजगाम्॥५९॥
वराभयाब्जस्त्रग्घस्तां क्षौमवस्त्रां किरीटिनीम्।
सिद्धलक्षं जपेन्मत्रं तत्सहस्त्रं हुनेत्तथा॥६०॥
सुगन्धकुसुमैरिष्ट्वा कमलैर्मधुरप्लुतैः। महालक्ष्म्युदिते पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्॥६१॥

षड्दीर्घाक्षर युक्त बीजमन्त्र से षडङ्ग न्यास करना चाहिये। अब संसार प्रसिद्ध सम्पत्प्रदा लक्ष्मी का ध्यान करे। वे स्वर्ण जैसी आभा वाली हैं। चार गजराज अपनी सूड़ों में स्थित स्वर्णमय अमृतघट से उनका अमृत सिंचन कर रहे हैं। उन्होंने अपनी चार भुजाओं में वर, अभय तथा पद्मलाभ धारण किया है। वे रेशम का वस्त्र पहने तथा मुकुटधारी हैं। यह मन्त्र आठ लाख जप करे। आठ हजार सुगन्ध पुष्प तथा मधुलिप्त कमलों से देवी का होम करे। तब महालक्ष्मी नामक पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्त्ति कल्पना करनी चाहिये।।५८-६१।।

यजेत्पूर्ववदङ्गानि दिग्दलेष्वर्चयेत्ततः। वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम्॥६२॥
हिमपीततमालेन्द्रनीलाभान्पीतवाससः। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणस्तांश्चतुर्भुजान्॥६३॥
विदिगन्तेषु पत्रेषु दमकादीन्यजेद्गजान्। दमकं पुण्डरीकं च गुग्गुलं च कुरण्टकम्॥६४॥
यजेच्छङ्खनिधिं देव्यां दक्षिणे प्रमदान्वितम्।
मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजौ॥६५॥
अन्योन्यालिङ्गनपरौ शङ्खपङ्कजधारिणौ।
विगलद्रत्नवर्षाभ्यां शङ्खाभ्यां मूर्ध्नि लाञ्छितौ॥६६॥

यहां पूर्ववत् पहले अंगदेवता की पूजा करने के पश्चात् चारों दिशाओं में हिमवर्ण वासुदेव की, पीतवर्ण संकर्षण की, तमाल वर्ण प्रद्युम्न की तथा इन्द्रनीलवर्ण अनिरुद्ध की पूजा करे। सभी ने शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किया है। सभी ने पीताम्बर पहना है। दिशाकोण में दमक, पुण्डरीक, गुग्गुल तथा कुरण्ट नाम वाले गजराज की अर्चना करे। भगवती के दक्षिण की ओर सपत्नीक शंखनिधि की पूजा करे। इन दम्पत्ति का वर्ण

मुक्ता तथा मणिवत् है। मुखारविन्द तनिक हास्य मुद्रा वाला है। दोनों एक दूसरे का आलिंगन कर रहे हैं तथा शंख-कमलधारी हैं। दोनों का शिर शंख-चिह्न से अंकित है, जो रत्नवर्षण करते हैं।।६२-६६।।

तुन्दिलं कम्बुकनिधिं वसुधारां घनस्तनीम्।
वामतः पङ्कजनिधिं प्रियया सहितं यजेत्।।६७।।
सिन्दूराभौ भुजश्लिष्टौ रक्तपद्मोत्पलान्वितौ।
निःसरद्रत्नवर्षाभ्यां पद्माभ्यां मूर्ध्नि लाञ्छितौ।।६८।।
तुन्दिलं पङ्कजनिधिं तत्त्वां वसुमतीमपि। दलाग्रेषु यजेदेता बलाक्याद्याः समन्ततः।।६९।।
बलाकी विमला चैव कमला वनमालिका।
विभीषिका मालिका च शाङ्करी वसुमालिका।।७०।।
पङ्कजद्वयधारिण्यो मुक्ताहारसमप्रभाः। लोकेशान्पूजयेदन्ते वज्राद्यस्त्राणि तद्बहिः।।७१।।
इत्थं यो भजते देवीं विधिना साधकोत्तमः।
धनधान्यसमृद्धः स्याच्छ्रियमाप्नोत्यनिन्दिताम्।।७२।।

शंख निधि तुन्दिल (पेट बड़ा है) हैं। उनकी पत्नी वसुधारा पीन स्तनों (स्थूल स्तनों) वाली हैं। देवी के वाम भाग में सपत्नीक पंकजनिधि की पूजा करनी चाहिये। वे सिन्दूराभ हैं। दोनों की बाहु आपस में लिपटी हैं। बाहु में लाल कमल है। इनके मस्तक पर भी रत्न वर्षाकारी शंख चिह्न हैं। पंकजनिधि भी तुन्दिल है। उनकी पत्नी का नाम धनवती है। दलाग्र पर इनकी पूजा करके साथ ही चतुर्दिक् बलाकी, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मालिका, शांकरी, वसुमालिका की पूजा करे। ये दो कमल धारण करने वाली, मुक्ताहार के समान प्रभा वाली हैं। अन्त में लोकपालगण की पूजा करके उसके बाहर वज्रादि अस्त्रों की पूजा करनी चाहिये। जो साधकोत्तम इस विधि से देवी पूजा करता है, वह धन-धान्य सम्पन्न होकर प्रभूत लक्ष्मीलाभ करता है।।६७-७२।।

वक्षःप्रमाणसलिले स्थित्वा मन्त्रमिमं जपेत्।
त्रिलक्षमर्कगं ध्यायन्स भवेत्कमलालयः।।७३।।
विष्णुगेहस्थबिल्वस्य मूले लक्षत्रयं जपेत्।
साधको यः स लभते वाञ्छितं धनसञ्चयम्।।७४।।
अशोकवह्नावाज्याक्तैस्तण्डुलैर्वशयेज्जगत्। होमेन खादिरे वह्नौ तण्डुलैर्मधुरोक्षितैः।।७५।।
राजा वश्यो भवेच्छीघ्रं महालक्ष्मीश्च वर्द्धते।
बिल्वच्छायामधिवसन्बिल्वमिश्रहविष्यभुक् ।।७६।।
संवत्सरत्रयं हुत्वा तत्फलैरथवाम्बुजैः। साधकेन्द्रो महालक्ष्मीं चक्षुषा पश्यति ध्रुवम्।।७७।।

जो वक्ष पर्यन्त जल में खड़ा होकर इस मन्त्र का तीन लाख जप करता है, साथ ही सूर्य ध्यान करता है, वह महान् धनी होता है। जो विष्णु मन्दिरस्थ बिल्ववृक्ष के मूल में तीन लाख मन्त्रजप करता है, उसे इच्छित

धन लाभ होता है। इस मन्त्र से अग्नि में अशोक वृक्ष काष्ठ समिध् द्वारा घृताक्त तण्डुल से होम करे। वह व्यक्ति संसार को वशीभूत कर लेता है। जो खैर वृक्ष के काष्ठ की अग्नि में मधुसिक्त तण्डुल से होम करता है, वह राजवशीकरण कर लेता है। साथ ही उसे प्रभूत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति बेल वृक्ष की छाया में तीन वर्ष तक रहकर बिल्व वृक्ष के फलों से युक्त हविष्य भक्षण कर निर्वाह करते बिल्वफल अथवा कमल से होम करता है, उसे महालक्ष्मी का दर्शन इन्हीं नेत्रों से मिलेगा। यह निश्चित है।।७३-७७।।

अथ कल्पान्तरे ब्रह्म देवराज्यविलुम्पकौ।
जातौ शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ लोककण्टकौ॥७८॥

ततो भ्रष्टाधिकारैस्तु शक्राद्यैः संस्तुता मुने। महासरस्वती देवी तदा चावततार ह॥७९॥

हे ब्रह्मन्! अन्य कल्पान्तर में इन्द्र राज्य का हरण करने वाले शुभ-निशुंभ नामक असुर जन्मे थे। ये लोककण्टक रूप थे। जब इन लोगों ने इन्द्रादि देवगण को उनके अधिकार से वंचित कर दिया, तब हे मुनिवर! उन देवगण ने महासरस्वती की स्तुति किया। उससे प्रसन्न होकर भगवती महापुण्यमय हिमालय के रमणीय शिखर पर अवतरित हो गयीं।।७८-७९।।

हिमालये महापुण्ये शैलोद्देशेऽतिशोभने। ततः शुम्भादिकान्हत्वा दैवतैः परिपूजिता॥८०॥

वरं दत्त्वाविशद्देवी मानसं नाम वै सरः। तस्या मन्त्रं प्रविक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने॥८१॥

ज्ञानामृता शशधरा क्रान्तभालोपशोभिता।
वाग्बीजं तेन चाङ्गानि कल्पयेत्साधकोत्तमः॥८२॥
ऋषिः सदाशिवश्चास्य छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
देवता वाक्समाख्याता भजतामिष्टदायिनी॥८३॥

तदनन्तर देवी ने शुभांदि दैत्यों का वध किया और देवगण द्वारा पुनः पूजित होकर तथा उनको वर देकर मानस नामक सरोवर में प्रवेश किया। हे मुनिवर! अब उनका मन्त्र सुनें। आप सावधान होकर श्रवण करें। "ज्ञानामृता, शशधरा, क्रान्तभालोपशोभिता, वाग्बीज तेन चाङ्गानि" (यह मन्त्र संकेत मात्र है। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। इस मन्त्र का आधार लेकर साधक अंगन्यास करे। इस मन्त्र के ऋषि सदाशिव हैं, छन्दः अनुष्टुप् है। देवता है वाक्। इस मन्त्र का जप करने से देवी कामनाफल देती हैं।।८०-८३।।

श्वेताम्बरां विसश्वेतां वीणापुस्तकधारिणीम्।
दिव्यैराभरणैर्युक्तां ध्यायेद्देवीं निरन्तराम्॥८४॥

महासरस्वतीपीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्। देवीं सम्पूजयेत्तस्यामङ्गाद्यावरणैः सह॥८५॥

आदावगावृतिः पश्चादम्बिकाद्यास्समीरिताः।
द्वितीया मातृभिः प्रोक्ता तृतीयाद्यष्टशक्तिभिः॥८६॥
चतुर्थी पञ्चमी प्रोक्ता द्वात्रिंशच्छक्तिभिः पुनः।
चतुःषष्ट्या स्मृता षष्ठी शक्तिभिर्लोकनायकैः॥८७॥

सप्तमी पुनरेतेषामस्त्रैः स्यादष्टमावृतिः। एवं पूज्या जगद्धात्री श्रीमती वाग्भवाभिधा॥८८॥

ध्यान—देवी श्वेताम्बर धारिणी, सर्वश्रेष्ठ शुक्लवर्णा, वीणापुस्तकधारिणी, दिव्याभरण भूषिता हैं। ऐसी भगवती का ध्यान निरन्तर करे। महासरस्वती पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्त्ति कल्पना करे। देवी की पूजा उनके अंगों तथा आवरणों सहित करनी चाहिये। प्रथम आवृत्ति के अनन्तर अम्बिका आदि की, द्वितीय में मातृवृन्द की, तृतीया में अष्टशक्ति की, चौथी तथा पांचवी आवृत्ति में ३२ शक्तियों की पूजा करके, षष्ठ आवृत्ति में ६४ शक्तियों की, सप्तमा वृत्ति में लोकपालगण की तथा अष्टमावृत्ति में उनके अस्त्रों की पूजा करे। एवंविध वाग्भवाविधा जगद्धात्री की पूजा करनी चाहिये।।८४-८८।।

स्थानेषु पूर्वमुक्तेषु यजेदङ्गानि साधकः।
अम्बिका वाग्भवा दुर्गा श्रीशक्तिश्चोक्तलक्षणा॥८९॥
ब्रह्माद्याश्च ततः पूज्याः कराली विकराल्युमा।
सरस्वती श्रीदुर्गा च लक्ष्मीश्चैव धृतिः स्मृतिः॥९०॥
श्रद्धा मेधा रतिः कान्तिरार्या षोडश शक्तयः।
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याः स्वलंकृताः॥९१॥

मंत्रज्ञ साधक पूर्व में कहे गये स्थान में अंगदेवताओं के पूजनोपरान्त ब्राह्मी प्रभृति का पूजन करके अम्बिका, वाग्भवी, दुर्गा, उक्त लक्षणों वाली श्रीशक्ति, कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्रीदुर्गा, लक्ष्मी, धृति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, रति, कान्ता तथा आर्या (यहां १६ शक्तियां न होकर १७ शक्तियों के नाम हैं) ये सभी षोडश शक्ति खड्ग, खेटक धारिणी सुमण्डिता, स्वलंकृता तथा श्यामा हैं। इनकी पूजा करे।।८९-९१।।

विषघ्नी पुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूः पुनः।
रुद्रवीर्या प्रभा नन्दा पोषणा वृद्धिदा शुभा॥९२॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी।
विकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी॥९३॥
निशुम्भशुम्भमथनी चण्डमुण्डविनाशिनी। इन्द्राणी चैव रुद्राणीं शङ्करार्द्धशरीरिणी॥९४॥
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी।
अम्बिका ह्लादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयाः सितः॥९५॥

अब ३२ शक्तियों का नाम कहते हैं। यथा—विषघ्नी, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनिवाली, कुहुः, रुद्रवीर्या, प्रभा, नन्दा, पोषणा, वृद्धिदा, शुभा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, विकृति, कपर्दिनी, दण्डिनी, मुण्डिनी, इन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुंभशुंभमथनी, चण्डमुण्डविनाशिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्द्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूली, पालिनी, अम्बिका, ह्लादिनी, सिता, ये ३२ शक्तियां हैं।।९२-९५।।

चक्रहस्ताः पिशाचास्याः सम्पूज्याश्चारुभूषणाः।
पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्बुद्धिरेव च॥९६॥
श्रद्धा स्वाहा स्वधा भिक्षा माया संज्ञा वसुन्धरा।
त्रिलोकधात्री गायत्री सावित्री त्रिदशेश्वरी॥९७॥

सरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाता श्रुतप्रिया। विमला कमला पश्चादरुणी पुनरारुणी॥९८॥

प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च।
सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा॥९९॥

देवमाता भगवती देवकी कमलासना। त्रिमुखीं सप्तवदना सुरासुरविमर्द्दिनी॥१००॥

लम्बोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशिश्ना वृकोदरी।
रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा॥१०१॥
गगनवेगा पवनवेगा वेगा च तदनन्तरम्।
ततो भुवनपालाख्या ततः स्यान्मदनातुरा॥१०२॥

अनङ्गानङ्गवदना तथैवानङ्गमेखला। अनङ्गकुसुमा विश्वरूपा सुरभयङ्करी॥१०३॥

अक्षोभ्या सप्ताहिन्या वज्ररूपा शुचिव्रता।
वरदाख्याथ वागीशी चतुःषष्टिस्समीरिताः॥१०४॥

चक्रहस्ता, पिशाचास्या, चारुभूषणा, पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, बुद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, भिक्षा, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, गायत्री, सावित्री, त्रिदशेश्वरी, सरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, श्रुतप्रिया, विमला, कमला, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, सन्ध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तवदना, सुरासुर विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकिशी, वहुशिश्ना, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, वेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगवदना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरभयङ्करी, अक्षोभ्या, सप्तवाहिनी, वज्ररूपा, शुचिव्रता, वरदा, वागीशी *(मूल में ६४ शक्तियां कहा गया है परन्तु गणना करने पर ये ६६ होती हैं। विज्ञजन निर्णय करें।)* ये ६४ शक्तियां कही गयी हैं।।९६-१०४।।

चापबाणधराः सर्वा ज्वालाजिह्वा महाप्रभाः।
दंष्ट्रिण्यश्चोर्ध्वकेश्यस्ता युद्धोपक्रान्तमानसाः॥१०५॥
सर्वाभरणसन्दीप्ता पूजनीयाः प्रयत्नतः।
लोकेशाः पूर्ववत्पूज्यास्तद्वद्वज्रादिकान्यपि॥१०६॥

ये सभी ६४ शक्तियां धनुष-बाण धारण करने वाली, ज्वालामय जिह्वावाली, महाकान्तिमति, दंष्ट्रावाली, ऊर्ध्वकिशी तथा सर्वाभूषण भूषिता युद्ध की अभिलाषिणी हैं। इनकी पूजा प्रयत्नतः करे। इसके पश्चात् पूर्ववत् लोकपालगण की पूजा करके वज्रादि आयुध पूजा करे।।१०५-१०६।।

जपेत्षोडशलक्षं च तद्दशांशं हुनेत्सुधीः।
आज्येन खादिरे वह्नौ ततः सिद्धो भवेन्मनु॥१०७॥

कमलैरयुतं हुत्वा राजानं वशमानयेत्। उत्पलैर्जुह्वतो नूनं महालक्ष्मीः प्रजायते॥१०८॥

मन्त्र का सोलह लाख जप करके सुधी साधक जप का १/१० होम करे। घृत से खैरकाष्ठ की अग्नि

में होम करना चाहिये। इससे मन्त्र सिद्ध होता है। यदि कमल द्वारा १०००० होम किया जाये, तब राजा वशीभूत हो जाते हैं। रक्तकमल से होम करने पर साधक महालक्ष्मी प्राप्त करेगा।।१०७-१०८।।

पलाशकुसुमैर्हुत्वा वत्सरेण कविर्भवेत्। राजीलवणहोमेन वनितां वशमानयेत्॥१०९॥

भूमौ भोगांस्तु भुक्त्वाते विष्णुलोकमवाप्नुयात्।
वाणीबीजजपाशक्तो नात्र कार्या विचारणा॥११०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे देवीमन्त्रनिरूपणं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः।।८४।।

एक वर्ष तक पलाशपुष्प से होम करने वाला कवि हो जायेगा। राई तथा लवण मिलाकर होम करे। नारी वशीभूत होगी। जो इन सरस्वती के ऊपर कहे मन्त्र से जप करेगा, वह भूमि पर भोगों को प्राप्त करके सर्वान्त में विष्णुलोक जायेगा। यहां अन्यथा विचार न करे।।१०९-११०।।

।।८४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चशतितमोऽध्यायः

वाग्देवी की अवतार रूपा काली प्रभृति के मन्त्रों का वर्णन

सनत्कुमार उवाच

वाग्देवतावतारोऽन्यः कालिकेति प्रकीर्तिताः।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्॥१॥
सृष्टिक्रियान्विता शान्तिर्बिन्द्वाढ्या च त्रिधा पुनः।
अरुणाक्ष्यादीपिका च बिन्दुयुक्ता द्विधा ततः॥२॥

मायाद्वयं ततः पश्चाद्दक्षिणे कालिके पदम्। पुनश्च सप्तबीजानि स्वहान्तोऽयं मनूत्तमः॥३॥
भैरवोऽस्य ऋषिश्छन्द उष्णिक्काली तु देवता। बीजं मायादीर्घवर्त्म शक्तिरुक्ता मुनीश्वर॥४॥
षड्दीर्घाढ्ये बीजेन विद्याया अङ्गमीरितम्। मातृकार्णान्दश दश हृदये भुजयोः पदोः॥५॥
विन्यस्य व्यापकं कुर्यान्मूलमन्त्रेण साधकः। शिरः कृपाणमभयं वरं हस्तैश्च बिभ्रतीम्॥६॥

मुण्डस्त्रङ्मस्तकां मुक्तकेशां पितृवनस्थिताम्।
सर्वालङ्कृतवर्णां च श्यामाङ्गीं कालिकां स्मरेत्॥७॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—इन वाग्देवता (सरस्वती) का अन्य अवतार कालीरूपेण हुआ था। उनका मन्त्र कहता हूं जो मनुष्य हेतु भुक्ति-मुक्तिप्रद हैं। ''सृष्टिक्रिया युक्त, शान्ति, विद्यापूर्ण, अरुणाक्षी, आदीपिका, विन्दुयुता, माया, दक्षिणा कालिका, सप्तबीज तथा सर्वान्त में स्वाहा'' यह उत्तम मन्त्र है (यहां मन्त्र संकेत कहा गया सुधीजन मन्त्रोद्धार करें)। इसके ऋषि भैरव, छन्दः उष्णिक्, देवता काली हैं। हे मुनीश्वर! इनका बीज 'ह्रीं' तथा दीर्घवर्त्म शक्ति हैं। बीजयुक्त षड्दीर्घ से अंगन्यास करे। साधक मातृका के १०-१० वर्ण से हृदय, भुजा, चरणों का न्यास करे तथा मूलमन्त्र से व्यापक न्यास सम्पन्न करे। तदनन्तर शिर, कृपाण, अभयमुद्रा धारिणी, मुण्डमाला पहनने वाली, अस्त-व्यस्त केशों वाली, श्मशान निवासिनी, सर्वालंकार भूषित, श्यामांगी कालिका का ध्यान करे।।१-७।।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयादयुतं ततः। प्रसूनैः करवीरोत्थैः पूजायन्त्रमथोच्यते॥८॥
विलिख्य पूर्वं षट्कोणं त्रिकोणत्रियतं ततः। पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत्॥९॥

जया च विजया चापि अजिता चापराजिता।
नित्या विलासिनी वापि दोग्ध्र्यघोरा च मङ्गला॥१०॥
पीठस्य शक्तयो मायात्मनेहृत्पीठमन्त्रकः।
शिवरूपाशवस्थां च शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम्॥११॥
महाकालरतासक्तां ध्यात्वाङ्गान्यर्चयेत्पुरा।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्॥१२॥
विप्रचित्तां च षट्कोणे नवकोणे ततोऽर्चयेत्।
उग्रामुष्णप्रभां दीप्तां नीलाधानां बलाकिकाम्॥१३॥
मात्रां मुद्रां तथा मित्रां पूज्याः पत्रेषु मातरः।
पद्मस्यास्य सुयत्नेन ब्राह्मी नारायणीत्यपि॥१४॥

माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता। वाराही नारसिंही च पुनरेतास्तु भूपुरे॥१५॥

भैरवीं महदाद्यां तां सिंहाद्यां धूम्रपूर्विकाम्।
भीमोन्मत्तादिकां चापि वशीकरणभैरवीम्॥१६॥
मोहनाद्यां समाराध्य शक्रादीन्यायुधान्यपि।
एवमाराधिता काली सिद्धा भवति मन्त्रिणाम्॥१७॥

इस प्रकार ध्यानोपरान्त एक लाख जप करे। तदनन्तर दस हजार होम कनेर से करे। अब पूजायंत्र कहा जाता है। पहले षट्कोण तदनन्तर त्रिकोण बनाये। तत्पश्चात् अष्टदल लिखकर बाहर भूपुर बनाकर पूजा करे। जया, विजया, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, द्रोग्ध्री, अघोरा, मंगला पीठ शक्ति कही गयी हैं। 'ह्रीं' हृत्पीठ का मन्त्र है। शिवरूपा, शव पर स्थिता, चतुर्दिक्, सियारिनों से घिरी, महाकाल के साथ रति में आसक्ता, कालिका का ध्यान करके अंग देवता पूजन करे। षट्कोण में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता का पूजन करके नवकोण के पत्रों में उग्रा, उष्णप्रभा, दीप्ता, नीलाधाना, बलाकिका, मात्रा, मुद्रा, मित्रा

तथा पत्रों में ही माताओं का पूजन करे। तदनन्तर अष्टदल पर यत्नतः ब्राह्मी, नारायणी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही की पूजा करके भैरवी, महदाद्या, सिंहाद्या, धूम्रपूर्विका, भीमा, उन्मत्ता, उदिका, वशीकरण भैरवी, मोहनाद्या की आराधना के उपरान्त इन्द्रादि देवता तथा उनके अस्त्रों की पूजा सम्पन्न करे। इस विधि से आराधिता काली साधक हेतु सिद्ध हो जाती हैं।।८-१७।।

ततः प्रवोगान्कुर्वीत महाभैरवभाषितान्।
आत्मनो वा परस्यार्थं क्षिप्रसिद्धिप्रदायकान्।।१८।।
स्त्रीणां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यं वाप्रियं वचः।
आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्जयेत्।।१९।।
सुदृशो मदनावासं पश्यन्यः प्रजपेन्मनुम्।
अयुतं सोऽचिरादेव वाक्पतेः समतामियात्।।२०।।
दिगम्बरो मुक्तकेशः श्मशानस्थोऽधियामिनि। जपेद्योऽयुतमेतस्य भवेयुः सर्वसिद्धयः।।२१।।

अपने लिये अथवा अन्य के हेतु महाभैरव प्रतिपादित सिद्धिप्रद मन्त्र प्रयोग करे। कल्याणेच्छु साधक अपने अथवा अन्य के सिद्धिप्रदायक मन्त्र का प्रयोग करे। कल्याणेच्छु कालीभक्तगण नारी पर प्रहार, नारी निन्दा, उनके साथ कपट तथा कटुभाषण न करे। जो मनुष्य सुन्दरी स्त्री की योनि को देखते हुये दस हजार मन्त्र जप करता है, उसे बृहस्पति तुल्य बुद्धि प्राप्त होती है। जो अर्द्धरात्रि काल में श्मशान में केश अस्त-व्यस्त करके नग्नावस्था में मन्त्र का दस हजार जप करेगा, वह सर्वसिद्धि लाभ करेगा।।१८-२१।।

शवस्य हृदये स्थित्वा निर्वासाः प्रेतभूमिगः। अर्कपुष्पसहस्त्रेणाभ्यक्तेन स्वीयरेतसा।।२२।।
देवीं यः पूजयेद्भक्त्या जपन्नेकैकशो मनुम्।
सोऽचिरेणैव कालेन धरणीप्रभुतां व्रजेत्।।२३।।

जो मनुष्य श्मशान में नग्नावस्था में शवासीन होकर सहस्त्र मदार पुष्प में अपना वीर्य लिप्त करके भक्तिभाव से देवी पूजा करता है तथा प्रतिपुष्पार्पण में मन्त्र जप करता है, वह अल्पकाल में ही पृथिवी का राजा हो जाता है।।२२-२३।।

रजःकीर्णं भगं नार्या ध्यायन्यो ह्ययुतं जपेत्।
स कवित्वेन रम्येण जनान्मोहयति ध्रुवम्।।२४।।
त्रिपञ्चारे महापीठे शिवस्य हृदि संस्थिताम्। महाकालेन देवेन मारयुद्धं प्रकुर्वतीम्।।२५।।
तां ध्यायन्स्मेरवदनां विदधत्सुरतं स्वयम्। जपेत्सहस्त्रमपि यः स शङ्करसमो भवेत्।।२६।।

जो नर-नारी रजः से भरी स्त्री योनि का ध्यान करते दस हजार मन्त्र जप करते हैं, वे अपने रम्य कवित्व से निश्चित रूपेण लोगों को मोहित करते हैं। जो मानव त्रिपंचार महापीठ पर शिव वक्षस्थल पर स्थित स्मेरमुखी देवी को महाकाल के साथ रति संग्राम करती स्थिति में ध्यान करता तथा स्वयं भी कामक्रीड़ा करता एक सहस्त्र मन्त्र जप करता है, वह शंकर के समान हो जाता है।।२४-२६।।

अस्थिलोमत्वचायुक्तां मांसं मार्जारमेषयोः। उष्ट्रस्य महिषस्यापि बलिं यस्तु समर्पयेत्।।२७।।

भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः।
विद्यालक्ष्मीयशःपुत्रैः स चिरं सुखमेधते॥२८॥
यो हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरन् जपेत्।
नक्तं विधुवनासक्तो लक्षं स स्याद्धरापतिः॥२९॥
रक्ताम्भोजैर्हुनेन्मन्त्री धनैर्जयति वित्तपम्। बिल्वपत्रैर्भवेद्राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः॥३०॥

जो कृष्णपक्षीय अष्टमी की मध्यरात्रि में बिलाड़, भेड़, ऊंट, महिष के अस्थि, रोम, त्वचायुक्त मांस द्वारा बलि प्रदान करता है, वह समस्त प्राणीगण को वशीभूत कर लेता है। उसे विद्या, लक्ष्मी, सुयश तथा सन्तान प्राप्ति होती है। वह दीर्घकाल पर्यन्त पृथिवी पर सुखलाभ करता रहता है। जो हविष्यान्न भक्षण से निर्वाह करता इस मन्त्र का जप एक लाख रतिक्रीड़ासक्त स्थिति में करता है, वह राजा हो जाता है। रक्तकमल से होम द्वारा धन में कुबेर से भी अधिक होगा। बिल्वपत्र से होम करने से राज्यलाभ तथा रक्तवर्ण पुष्पों से होम द्वारा वशीकरण सिद्धि होती है।।२७-३०।।

असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत्।
तस्या स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः॥३१॥
यो लक्षं प्रजपेन्मन्त्रं शवमारुह्य मन्त्रवित्।
तस्य सिद्धो मनुः सद्यः सर्वेप्सितफलप्रदः॥३२॥

जो महिष आदि के रक्त से कालिका की तृप्ति करता है, वह सर्वसिद्धि भाजन हो जाता है। जो मन्त्रज्ञ साधक शव पर बैठकर एक लाख जप करेगा, उसे यह अभीष्टप्रद मन्त्र की तत्काल सिद्धि हो जाती है। उसे सभी वांछित फल मिलते हैं।।३१-३२।।

तेनाश्वमेधप्रमुखैर्यागैरिष्टं सुजन्मना। दत्तं दानं तपस्तप्तं उपास्ते यस्तु कालिकाम्॥३३॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवा गौरी लक्ष्मीर्गणपती रविः।
पूजिताः सकला देवा यः कालीं पूजयेत्सदा॥३४॥

जिस सुजन्मा मनुष्य ने कालिका की उपासना कर लिया, उसने मानो अश्वमेधयज्ञ तथा दान, तप प्रभृति सम्पन्न कर लिया। कालीपूजक ने मात्र कालिका की पूजा द्वारा ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गौरी, लक्ष्मी, गणेश तथा सूर्यादि देवगण का पूजा फल लाभ कर लिया।।३३-३४।।

अथापरः सरस्वत्या ह्यवतारो निगद्यते।
यां निषेव्य नरा लोके कृतार्थाः स्युर्न संशयः॥३५॥
आप्यायिनी चन्द्रयुक्ता माया च वदनान्तरे।
सकामिका क्रुधा शान्तिश्चन्द्रालङ्कृतमस्तका॥३६॥
दीपिका सासना चन्द्रयुगस्त्रं मनुरीरितः। मुनिरक्षोभ्य उद्दिष्टश्छन्दस्तु बृहती मतम्॥३७॥
ताराख्या देवता बीजं द्वितीयञ्च चतुर्थकम्।
शक्तिः षड्दीर्घयुक्तेन द्वितीयेनाङ्गकल्पनम्॥३८॥

षोढा न्यासं ततः कुर्यात्तारायाः सर्वसिद्धिदम्। श्रीकण्ठादीन्न्यसेद्रुद्रान्मातृकावर्णपूर्वकान्॥३९॥
मातृकोक्तस्थले माया तृतीयक्रोधपूर्वकान्। चतुर्थीनमसायुक्तान्प्रथमो न्यास ईरितः॥४०॥

अब मैं सरस्वती के अन्य अवतार का वर्णन कर रहा हूं। उनकी आराधना द्वारा मनुष्य इस लोक में कृतार्थ हो जाता है। यह निःसंशय है। "आप्यायनी, चन्द्रयुता, वदनान्तरस्था, सकामिक, क्रुधा, शान्ति, चन्द्रालंकृत मस्तका, दीपिका, सासना, चन्द्रयुत अस्त्र यह मन्त्र है।" (यहां मन्त्र संकेत मात्र दिया गया है। इनके मन्त्रोद्धार को नहीं किया सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।) इस मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य तथा छन्दः बृहती है। देवता हैं देवी तारा। द्वितीयाक्षर बीज है चतुर्थाक्षर शक्ति है। षड्दीर्घ युक्त द्वितीयाक्षर से अंग पूजा करे। तदनन्तर सर्वसिद्धिदायक तारा मन्त्र का षोढान्यास करना चाहिये। मातृका वर्णों से श्रीकण्ठादि रुद्रन्यासोपरान्त तृतीय अक्षर क्रोधपूर्वक (मन्त्र संकेत यह है, परन्तु मन्त्रोद्धार नहीं हो सका) मातृकास्थल पर माया का न्यास यह प्रथम न्यास है।।३५-४०।।

शवपीठसमासीनां नीलकान्ति त्रिलोचनाम्।
अर्द्धेन्दुशेखरां नानाभूषणाढ्यां स्मरन्न्यसेत्॥४१॥

द्वितीये तु ग्रहन्यासं कुर्यात्तां समनुस्मरन्। त्रिबीजस्वरपूर्वं तु रक्तसूर्य हृदि न्यसेत्॥४२॥
तथा पवर्गपूर्वं तु शुक्लं सोमं भ्रुवोर्द्वये। कवर्गपूर्वं रक्ताभं मङ्गलं लोचनत्रयम्॥४३॥
चवर्गाद्यं बुधं श्यामं न्यसेद्वक्षःस्थले बुधः। तवर्गाद्यं पीतवर्णं कण्ठकूपे बृहस्पतिम्॥४४॥

शवपीठ समासीन, नीलकान्ति, त्रिनेत्रा, अर्द्धेन्दु शेखरा, नाना भूषण अलंकृता देवी का ध्यान करे। द्वितीय है ग्रहन्यास। देवी का स्मरण ध्यान करते ग्रहन्यास करे। यह द्वितीय न्यास है। तीन बीज स्वर सहित रक्तसूर्य न्यास हृदय में किया जाये। पवर्ग से शुक्ल चन्द्र का उभय भ्रू पर न्यास करे। कवर्ग से रक्तमंगल का न्यास नेत्र पर करे। तब सुधीसाधक चवर्ग से श्याम बुध का न्यास वक्ष पर करे। दवर्ग से बृहस्पति जो पीतवर्ण हैं, उनका न्यास कण्ठकूप में करे।।४१-४४।।

तवर्गाद्यं श्वेतवर्णं घटिकायां तु भार्गवम्। नीलवर्णं पवर्गाद्यं नाभिदेशे शनैश्चरम्॥४५॥
शवर्गाद्यं धूम्रवर्णं ध्यात्वा राहुं मुखे न्यसेत्। त्रिबीजपूर्वकश्चैवं ग्रहन्यासः समीरितः॥४६॥
तृतीयं लोकपालानां न्यासं कुर्यात्प्रयत्नतः। मायादिबीजत्रितयं पूर्वकं सर्वसिद्धये॥४७॥
स्वमस्तके ललाटादि दिक्ष्वष्टस्वधऊर्ध्वतः। ह्रस्वदीर्घकादिकाष्टवर्गपूर्वान्दिशाधिपान्॥४८॥

श्वेतवर्ण वाले शुक्र का न्यास घटिका पर तवर्ग से करे। धूम्रवर्ण राहु का न्यास शवर्ग प्रारंभ में करके मुख में करे। ग्रहों का त्रिबीजात्मक न्यास यही है।

तृतीय न्यास—तदनन्तर लोकपाल न्यास यत्नतः करे। माया आदि बीजत्रय से जो यह करता है, उसे अपूर्व सिद्धिलाभ होता है। स्वमस्तक, ललाट, अष्टदिक् में नीचे ऊपर, ह्रस्व-दीर्घादि अष्टवर्ग के साथ दिक्पाल न्यास करे। यह द्वितीय न्यास है।।४५-४८।।

शिवशक्त्यभिधे न्यासं चतुर्थे तु समाचरेत्।
त्रिबीजपूर्वकान्न्यस्येत्षट् शिवाञ्छक्तिसंयुतान्॥४९॥

आधारादिषु चक्रेषु स्वचक्रवर्णपूर्वकम्।
ब्रह्माणं डाकिनीयुक्तं वादिसान्तार्णपूर्वकम्॥५०॥
मूलाधारे विन्यसेच्च चतुर्दलसमन्वितम्।
श्रीविष्णुं डाकिणीयुक्तबादिलान्तार्णपूर्वकम्॥५१॥
स्वाधिष्ठानाभिधे चक्रे लिङ्गस्थे षड्दले न्यसेत्।
रुद्रं तु लाकिनीयुक्तं डादिफान्तार्णपूर्वकम्॥५२॥
चक्रे दशदले न्यस्येन्नाभिस्थे मणिपूरके। ईश्वरं कादिठान्तार्णपूर्वकं शाकिनीयुतम्॥५३॥
विन्यसेद्द्वादशदले हृदयस्थे त्वनाहते। सदाशिवं शकिनीं च षोडशस्वरपूर्वकम्॥५४॥
कण्ठस्थे षोडशदले विशुद्धाख्ये प्रविन्यसेत्।
आज्ञाचक्रे परशिवं हाकिनीसंयुतं न्यसेत्॥५५॥

चतुर्थ न्यास शिवशक्ति न्यास कहा गया है। शिवशक्तियुक्त षड्दीर्घ से त्रिबीज द्वारा न्यास करे। (यहां मूल में 'न्यसेत्षट' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि षट्रुद्र का न्यास करे, जो उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि रुद्र ११ होते हैं।) आधारादि चक्र में स्वचक्र वर्ण से इनका न्यास करे। अर्थात् जिस चक्र में जो चतुर्दल मूलाधार में डाकिनीयुक्त ब्रह्मा का न्यास करे। यहां वं शं षं सं चार वर्ण स्थित हैं। लिङ्गस्थ षड्दल स्वाधिष्ठान चक्र है। वहां श्रीविष्णु डाकिनी के साथ स्थित हैं। यहां दक्षिणावर्त्त में बं भं मं यं रं लं ये मातृका वर्ण स्थित हैं। यहां श्रीविष्णु का न्यास करे।

लाकिनीयुक्त रुद्र दशदल मणिपूर चक्र में स्थित हैं। इनका (रुद्र) न्यास ड ढ ण त थ द ध न प फ शक्ति शाकिनी के साथ द्वादशदल अनाहत चक्र में स्थित हैं, वहां क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ, ये १२ वर्ण स्थित हैं। इस अनाहत चक्र में ईश्वर तथा कासिनी का न्यास करे। सदाशिवदेव शाकिनी सहित षोडश स्वर वाले विशुद्ध चक्र में स्थित हैं। इस कण्ठस्थ षोडशदल विशुद्ध चक्र में सदाशिव का न्यास करे। शाकिनी के साथ करें। आज्ञा चक्र में परशिव का न्यास हाकिनी के साथ करें॥४९-५५॥

लक्षार्णपूर्वं भ्रूमध्यसंस्थितेऽतिमनोहरे। तारादिपञ्चमं न्यासं कुर्यात्सर्वेष्टसिद्धये॥५६॥
अष्टौ वर्गान्स्वरद्वन्द्वपूर्वकान् बीजसंयुतान्।
ताराद्या न्यासपूर्वाश्च प्रयोज्या अष्टशक्तयः॥५७॥
ताराथोग्रा महोग्रापि वज्रा काली सरस्वती।
कामेश्वरी च चामुण्डा इत्यष्टौ तारिकाः स्मृताः॥५८॥
ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठदेशतः।
हृदि नाभौ फले मूलाधारे चेताः क्रमान्न्यसेत्॥५९॥
अङ्गन्यासं ततः कुर्यात्पीठाख्यं सर्वसिद्धदम्।
आधारे कामरूपाख्यं बीजं ह्रस्वार्णपूर्वकम्॥६०॥

हृदि जालन्धरं बीजं दीर्घपूर्व प्रविन्यसेत्।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यं कवर्गाद्यं न्यसेत्सुधीः॥६१॥
उड्डीयानं चवर्गाद्यं केशसन्धौ प्रविन्यसेत्। कण्ठे तु मथुरापीठं दशमं यादिकं न्यसेत्॥६२॥

सभी इष्ट लाभार्थ अतीमनोहर भ्रूमध्य में ल तथा क्ष वर्ण सहित तरादि पंचम न्यास करे। स्वर तथा बिन्दु पूर्वक बीज समन्वित अष्टवर्ग न्यासोपरान्त तारिकादि शक्ति न्यास करे। आठ तारिकायें हैं। तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, काली, सरस्वती, कामेश्वरी, चामुण्डा। ब्रह्मरन्ध्र , ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि स्वाधिष्ठान मूलाधार में इनका न्यास क्रमशः करे। अब पीठनामक सर्वसिद्धिदायक अंगन्यास करे। मूल आधार में कामरूप नामक ह्रस्वबीज करे, हृदय में दीर्घवर्ण बीज सहित जालेधर का, ललाट मे कवर्ग सहित पूर्णागिरी का, केश सन्धि में चवर्ग सहित बीज से उड्डीयान का कण्ठ में 'य' सहित दशम बीज से मथुरा पीठ का न्यास करे।।५६-६२।।

षोढा न्यासस्तु तारायाः प्रोक्तोऽभीष्टप्रदायकः।
हृदि श्रीमदेकजटां तारिणीं शिरसि न्यसेत्॥६३॥
वज्रोदके शिखां पातु उग्रतारां तु वर्मणि। महोग्रा वत्सरे नेत्रे पिङ्गाग्रैकजटास्त्रके॥६४॥

तारा का षोढ़ान्यास सर्वाभीष्ट फलप्रद है। हृदय में श्रीमद एकजटा का, शिर में तारिणी का, शिखा में व्रजोदक का, कवच पर उग्रतारा का, वक्ष पर महोग्रा का तथा नेत्रों पर पिङ्गाग्रैक जटा का अस्त्रन्यास करे।।६३-६४।।

षड्दीर्घयुक्तमायाया एतान्यष्टौ षडङ्गके। अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु पूर्वं विन्यस्य यत्नतः॥६५॥
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु कृत्वा तालत्रयं ततः। छोटिकामुद्रां कुर्याद्दिग्बन्धं देवतां स्मरन्॥६६॥
विद्यया तारपुटया व्यापकं सप्तधा चरेत्।
उग्रतारां ततो ध्यायेत्सद्यो वादेऽतिसिद्धिदाम्॥६७॥
लयाब्धावम्बुजन्मस्थां नीलाभां दिव्यभूषणाम्।
कम्बुं खड्गं कपालं च नीलाब्जं दधतीं करैः॥६८॥
नागश्रेष्ठालङ्कृताङ्गीं रक्तनेत्रत्रयां स्मरेत्। जपेल्लक्षचतुष्कं हि दशांशं रक्तपद्मकैः॥६९॥
हुनेत्क्षीराज्यसम्मिश्रैः शङ्खं संस्थाप्य सञ्जपेत्।
नारीं पश्यन्स्पृशन्गाच्छन्महानिशि बलिं चरेत्॥७०॥

षड्दीर्घयुक्त माया (ह्रीं) का अर्थात् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इनका अंगुष्ठादि उंगलियों में यत्नतः न्यास करे। तर्जनी तथा मध्यमा से तालत्रय प्रदान करे। तदनन्तर छोटिका (चुटकी) बजाकर दिग्बन्धोपरान्त देव स्मरण करे। तारामन्त्र सम्पुटित विद्या (स्त्रीमंत्र को विद्या कहते हैं) द्वारा सात बार व्यापक न्यास करे। तब ध्यान करे।

उग्र तारा ध्यान—सद्यः सिद्धिप्रदात्री नीलवर्णा, दिव्याभूषण समन्विता शंख, खड्ग, कपाल, नीलकमल धारण करने वाली, उत्तम नाग से अलंकृत अंगों वाली, तीन रक्तवर्ण नेत्रों वाली देवी का स्मरण करे। तदनन्तर ४ लाख जप करके ४०००० होम रक्तपद्म से करना चाहिये। यह होम दुग्ध तथा घृत को

मिलाकर उससे लाल कमल को लिप्त करके करना चाहिये। तदनन्तर शंख स्थापित करके जप करे। रात्रि में नारी को देखते हुये तथा स्पर्श करते हुये बलि प्रदान करे।।६५-७०।।

श्मशाने शून्यसदने देवागारेऽथ निर्जने। पर्वते वनमध्ये वा शवमारुह्य मन्त्रवित्।।७१।।
समरे शत्रुनिहतं यद्वा षाण्मासिकं शिशुम्।
विद्यां साधयतः शीघ्रं साधितैवं प्रसिद्ध्यति।।७२।।
मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीवृत्तिस्मृतिबुद्धयः।
विश्वेश्वरीति सम्प्रोक्ताः पीठस्य नव शक्तयः।।७३।।

श्मशान, शून्यगृह, देवमन्दिर, निर्जन, पर्वत, वन में अथवा शवारूढ़ होकर मन्त्रविद् साधना करे। समर में शत्रु द्वारा मारा गया व्यक्ति अथवा ६ मास का शिशु जो स्वतः मृत हो गया हो, ऐसा शव लेना चाहिये। इससे विद्या शीघ्र सिद्ध होती है। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, वृत्ति, स्मृति, बुद्धि एवं विश्वेश्वरी—ये नौ पीठशक्ति हैं।।७१-७३।।

भृगुमन्विन्दुसयुक्तं मेघवर्त्म सरस्वती। योगपीठात्मने हार्द पीठस्य मनुरीरितः।।७४।।
दत्त्वनेनासनं मूर्तिं मूलमन्त्रेण कल्पयेत्। पूजयेद्विधिवद्देवीं तद्विधानमथोच्यते।।७५।।

"भृगु, विन्दुयुक्त मेघवर्त्म सरस्वती, योगपीठात्मा हार्द" यह पीठमन्त्र है। (यहां मन्त्र संकेत मात्र है। इसका मन्त्रोद्धार नहीं किया जा सका। विज्ञजन इसे करे।) मूलमन्त्र से मूर्त्ति कल्पना करके उसे आसन प्रदान करे। उनकी पूजा सविधि करनी चाहिये। उसका विधान कहा जा रहा है।।७४-७५।।

तारो माया भगं ब्रह्मा जटे सूर्यः सदीर्घकम्।
यक्षाधिपतये तन्द्री सोपनीतं बलिं ततः।।७६।।
गृहयुग्मं शिवा स्वाहा बलिमन्त्रोऽयमीरितः।
दद्यान्नित्यं बलिं तेन मध्यरात्रे चतुष्पथे।।७७।।
जलदानादिकं मन्त्रैर्विदध्याद्दशभिस्ततः। ध्रुवो वज्रोदके वर्म फट्सप्तार्णो जलग्रहे।।७८।।

बलिमन्त्र यह है तार (ॐ) माया (ह्रीं) भगं ब्रह्मा जटे सूर्य सदीर्घकम्, यक्षाधिपतये तन्द्री बलिं गृह्ण गृह्ण शिवा स्वाहा (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञ लोग करें।) यह बलि मध्य रात्रि में चौराहे पर प्रदान करे। तदनन्तर दस मन्त्रों से जलदानादि करे। आचमन मन्त्र यह है—'ॐ वज्रोदके हुं फट्' यह सप्तार्ण का जलग्रहण आचमन मन्त्र है।।७६-७८।।

ताराद्या वह्निजायान्ता माया हि क्षालने मता।
तारो मायाः भृगुः कर्णो विशुद्धं धर्मवर्मतः।।७९।।
सर्वपापानि शाम्यन्ते छेतो नेत्रयुतं जलम्। कल्पान्तनयनस्वाहा मन्त्र आचमने मतः।।८०।।
ध्रुवो मणिधरीत्यन्ते वज्रिण्यक्षियुता मृतिः।
खरिविद्यायुग्रिजश्च सर्ववान्ते बकोऽब्जवान्।।८१।।
कारिण्यन्ते दीर्घवर्म अस्त्रं वह्निप्रियान्तिमः। त्रयोविंशतिवर्णात्मा शिखाया बन्धने मनुः।।८२।।

प्रणवो रक्षयुगलं दीर्घवर्मास्त्रठद्वयम्। नवार्णेनामुना मन्त्री कुर्याद्भूमिविशोधनम्॥८३॥

नारान्ते सर्वविघ्नानुत्सारयेति पदं ततः।
हुं फट् स्वाहा गुणेन्द्वर्णो मनुर्विघ्ननिवारणम्॥८४॥
मायाबीजं जपापुष्पनिभं नाभौ विचिन्तयेत्।
तदुत्थेनाग्निना देहं दहेत्सार्द्धस्वपाप्मना॥८५॥

ताराबीजं सुवर्णाभं चिन्तयेद्धृदि मन्त्रवित्। पवनेन तदुत्थेन पापभस्म क्षिपेद्भुवि॥८६॥
तुरीयं चन्द्रकुन्दाभं बीजं ध्यात्वा ललाटतः। तदुत्थसुधयादे हं स्वयं वै देवतानिभम्॥८७॥

श्लोक ७९ में "ताराद्या" से लेकर श्लोक ८० के "कल्पान्तनयनस्वाहा" तक आचमन मन्त्र हैं। श्लोक ८१ से लेकर श्लोक ८२ के "वह्निप्रिया" पर्यन्त शिखा बन्धन मन्त्र है, जो २३ वर्णवाला है। तदनन्तर "ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा" यह ९ अक्षर के मन्त्र से भूमिशोधन करे। "सर्वविघ्नानां उत्सारय हुं फट् स्वाहा" यह मन्त्र विघ्न नाशक मन्त्र है। साधक को अपनी नाभि में जवापुष्पवत् "ह्रीं" मन्त्र का चिन्तन करे। यह भावना करे कि इससे उत्थित अग्नि से मेरा देह समस्त पापों के साथ दग्ध हो गया। स्वर्णाभ तारा बीज का मन्त्रज्ञ साधक हृदय में चिन्तन करे। उससे उत्थित महावायु से मेरे पापों की भस्म उड़ती जा रही है यह भावना करे। तदनन्तर चन्द्र तथा कुन्दपुष्प के समान श्वेत तुरीय बीज का ध्यान करके यह भावना करे कि मैं तुरीय बीजवत् अमृत का पान करके मैं स्वयं देवता हो गया॥७९-८७॥

(यहां किसी भी मंत्र का मन्त्रोद्धार संभव नहीं हो सका। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।)

अनया भूतशुद्ध्या तु देवी सादृश्यमाप्नुयात्।
तारोऽनन्तो भृगुः कर्णो पद्मनाभयुतो बली॥८८॥
खे वज्ररेखे क्रोधाख्यं बीजं पावकवल्लभा।
अमुना द्वादशार्णेन रचयेन्मण्डलं शुभम्॥८९॥
तारो यथागता निद्रा सदृक्षेकभृगुर्विषम्।
सदीर्घस्मृतिरौ साक्षौ महाकालो भगान्वितः॥९०॥
क्रोधोऽस्त्रं मनुवर्णोऽयं मनुः पुष्पादिशोधने।
तारः पाशः परा स्वाहा पञ्चार्णश्चित्तशोधने॥९१॥
मनवो दश सम्प्रोक्ता अर्घ्यस्थापनमुच्यते।
सेन्दुभ्यां मासतो माया भुवं संसृज्य भूगृहम्॥९२॥

वृतं त्रिकोणसंयुक्तं कुर्यान्मण्डलमन्त्रतः। यजेत्तत्राधारशक्तिं वह्निमण्डलमध्यगाम्।
वह्निमण्डलमभ्यर्च्य महाशङ्खं निधापयेत्॥९३॥

वामकर्णेन्दुयुक्तेन फडन्तेन विहायसा। प्रक्षालितं भृगुर्दण्डी त्रिमूर्तीन्दुयुतं पठेत्॥९४॥
ततोऽर्चयेन्महाशङ्खं जपन्मन्त्रचतुष्टयम्। दीर्घत्रयान्विता माया काली सृष्टिः सदीर्घसः॥९५॥

प्रतिमासंयुतं मासं यवनं हृदयं ततः। एकादशार्णः प्रथमो महाशङ्खार्चने मनुः॥९६॥
हंसो हरिभुजङ्गेशयुक्तो दीर्घत्रयेन्दुयुक्। तारिण्यन्ते कपालाय नमोन्तो द्वादशाक्षरः॥९७॥
स्वं दीर्घत्रयमन्वाढ्यमेषो वामदगन्वितः। लोकपालाय हृदयं तृतीयोऽयं शिवाक्षरः॥९८॥

मायास्त्रीबीजमर्द्धेन्दुयुतं स्वं स्वर्गखादिमः।
पालाय सर्वाधाराय सर्वः सर्वोद्भवस्तथा॥९९॥
सर्वशुद्धिमयश्चेति ङेन्ताः सर्वासुरान्तिकम्।
रुधिरा रतिदीर्घा च वायुः शुभ्रानिलःसुरा॥१००॥

भाजनाय भगी सत्यो विकपालाय हृन्मनुः। तुर्यो रसेषु वर्णोऽयं महाशङ्खप्रपूजने॥१०१॥

ऐसी भूतशुद्धि से व्यक्ति देवी का सादृश्य लाभ करता है। श्लोक ८८ में "ताराऽनन्तो" से लगाकर "पावक वल्लभा" तक के मन्त्र से शुभ-मण्डल रचना करे। "तारो" श्लोक ९० के "तारो यथागता" से लेकर श्लोक ९१ में क्रोधोऽस्त्रं मनुवर्णोयं" तक का मन्त्र पुष्पादि शोधन हेतु है। "तारः पाशः परा स्वाहा" (का मन्त्रोद्धार करके) चित्त शुद्ध करे। अर्घ्यदानार्थ १० मन्त्र कथित है। "सेन्दुभ्यां मासतो माया" (मन्त्र का मन्त्रोद्धार करके) पवित्र भूमि पर भूपुर बनाये। वहीं उसमें वृत्त त्रिकोण संयुक्त मण्डल मन्त्र पढ़ते हुये बनाये। उसमें वह्निमण्डलमध्य स्थित आधारशक्ति का पूजन करे। तदनन्तर अग्निमण्डल पूजनोपरान्त श्लोक ९४ का (मन्त्रोद्धार करके) पाठ करते हुये महाशंख की अर्चना करे। तदनन्तर यहां कहे जा रहे चार मन्त्र से महाशंखार्चन करे। पहला मन्त्र है श्लोक ९५ के "दीर्घत्रयान्विता" से लगाकर श्लोक ९६ के "हृदयम" तक। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) द्वितीय मन्त्र है श्लोक ९७ का मन्त्रोद्धार करके इस मन्त्र से पूजन करे। तृतीय मन्त्र है श्लोक ९८ का 'स्व' से लगाकर "हृदयं" तक। (इसका मन्त्रोद्धार करके पूजन करे।) चतुर्थ मन्त्र है— जो श्लोक ९९ से लगाकर श्लोक १०१ के "हृन्मनुः" पर्यन्त है। इसका मन्त्रोद्धार करके पूजन करे। इन चार मन्त्रों द्वारा महाशंख पूजा करे।।८८-१०१।।

नवार्कमण्डलं चेष्ट्वा सलिलं मूलमन्त्रतः।
प्रपूरयेत्सुधाबुद्ध्या गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥१०२॥
मुद्रां त्रिखण्डां सन्दर्श्य पूजयेच्चन्द्रमण्डलम्।
वाक्सत्यपद्मागगने रेफानुग्रहबिन्दुयुक्॥१०३॥
मूलमन्त्रो विपद्ध्वंसमनुसर्गसमन्वितम्।
अष्टकृत्वोऽमुना मन्त्री मन्त्रयेत्प्रयतो जलम्॥१०४॥
मायया मदिशं क्षिप्त्वा खं योनिं च प्रदर्शयेत्।
तत्र वृत्ताष्टषट्कोणं ध्यात्वा देवीं विचिन्तयेत्॥१०५॥

तदनन्तर नवार्क मण्डल की अर्चना करके जल में मूलमन्त्र पाठ करते हुये गन्ध-पुष्प-अक्षत छोड़े। तदनन्तर त्रिखण्डा मुद्रा प्रदर्शित करके चन्द्रमण्डलपूजन करे। अब श्लोक १०३ में "वाक्सत्य" से लगाकर श्लोक १०४ "सर्ग समन्वितम्" तक मन्त्र द्वारा (मन्त्रोद्धार करके) जल को अभिमंत्रित करे। इससे ऊर्ध्व में

मार्जन करे। जल को ह्रीं मन्त्र द्वारा ऊर्ध्व में छिड़के। तदनन्तर योनिमुद्रा दिखलाये। तत्पश्चात् वृत्त एवं अष्टकोण में पीठ ध्यान करके उस पर आसीन देवी का चिन्तन करके उनकी पूजा मूलमन्त्र से करे।।१०२-१०५।।

पूर्वोक्तां पूजयेत्त्वेनां मूलेनाथ प्रतर्पयेत्। तर्जनीमध्यमानामाकनिष्ठाभिर्महेश्वरीम्॥१०६॥
सांगुष्ठानिश्चतुर्वारं महाशङ्खस्थिते जले। खंरेफमनुबिन्द्वाढ्यं भृगुमन्विन्दुयुक्तया॥१०७॥
ध्रुवाद्येन नमोन्तेन तर्प्यादानन्दभैरवम्। ततस्तेनार्धतोयेन प्रोक्षेत्पूजनसाधनम्॥१०८॥

योनिमुद्रां प्रदर्श्यापि प्रणमेद्भवतारिणीम्।
विधानमर्धे सम्प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥१०९॥

तत्पश्चात् अंगुष्ठ तर्जनी, मध्यमा, अनामिका कनिष्ठा उंगलियों से ४ बार महाशंखस्थ जल से महेश्वरी का तर्पण करने के अन्तर आनन्द भैरव का तर्पण श्लोक १०७ में "खंरेफ मनु से लगाकर श्लोक १०८ के 'नमोन्तेन' पर्यन्त के मन्त्र (इसका मन्त्रोद्धार करके उस मन्त्र से) से करना चाहिये। तत्पश्चात् अर्घ्य जल मे पूजन सामग्री का प्रोक्षण करके योनिमुद्रा प्रदर्शन करना चाहिये। तत्पश्चात् देवी भवतारिणी को प्रणाम करे। यह अर्घ्य विधि सर्वसिद्धिदायक है।।१०६-१०९।।

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे पद्मे षट्कोणकर्णिके।
धारागृहावृते रम्ये देवीं रम्योपचारकैः॥११०॥

महीगृहे चतुर्दिक्षु गणेशादीन्प्रपूजयेत्। पाशाङ्कुशौ कपालं च त्रिशूलं दधतं करैः॥१११॥

तदनन्तर भूपुर से आवृत्त रम्य, षट्कोण तथा कर्णिका से एवं पद्म से युक्त पीठ पर मनोहर उपचार द्वारा देवी पूजन करे। भूपुर के चतुर्दिक् गणेश प्रभृति का पूजन करना चाहिये। गणेश के हाथ में पाश, अंकुश, कपाल, त्रिशूल हैं। वे भूषणों से सजे, सर्वालंकार युक्त हैं। इनका ध्यान करे तथा पूर्वदिक् में पूजा करे।।११०-१११।।

अलङ्कारचयोपेतं गणेशं प्राक्तमर्चयेत्। कपालशूले हस्ताभ्यां दधतं सर्पभूषणम्॥११२॥
स्वयूथवेष्टितं रम्यं बटुकं दक्षिणेऽर्चयेत्। असिशूलकपालानि डमरुं दधतं करैः॥११३॥

कृष्णं दिगम्बरं क्रूरं क्षेत्रपालं च पश्चिमे।
कपालं डमरुं पाशं लिङ्गं शम्बिभ्रतीं करैः॥११४॥
अध्याकन्या रक्तवस्त्रा योगिनीरुत्तरे यजेत्।
अक्षोभ्यं प्रयजेन्मूर्ध्नि देव्या मन्त्रऋषिं शुभम्॥११५॥
अक्षोभ्यं वज्रपुष्पं च प्रतीच्छानलवल्लभा।
अक्षोभ्यपूजने मन्त्रः षट्कोणेषु षडङ्गकम्॥११६॥

त्रिशूल कपालधारी, सर्पों के आभूषण से भूषित, गणों से वेष्ठित मनोरम बटुक का पूजन दक्षिणदिक् में करना चाहिये। हाथों में खड्ग, त्रिशूल, कपाल, डमरुधारी कृष्णवर्ण, दिगम्बर रहने वाले जो क्रूर क्षेत्रपालगण हैं, उनकी पूजा पश्चिम में करे। कपाल, डमरु, पाश एवं लिंगधारी, अर्ध कन्यारूपिणी रक्तवस्त्र पहनने वाली योगिनीगण का पूजन उत्तर दिशा में करे। अक्षोभ्य की पूजा मूर्धा में करे। इनका मन्त्र "अक्षोभ्यं

वज्रपुष्पं च प्रतीच्छानल वल्लभा'' (इस मन्त्र का मन्त्रोद्धार करके तब प्रयोग करे)। इस मन्त्र से पूजनोपरान्त षट्कोण में षडंग देव का पूजन करे।।११२-११६।।

वैरोचनं चामिताभं पद्मनाभाभिधं तथा। शङ्खं पाण्डुरसंज्ञं च दिग्दलेषु प्रपूजयेत्।।११७।।
लाभकां मानकां चैव पाण्डुरां तारकां तथा। विदिग्गताब्जपत्रेषु पूजयेदिष्टसिद्धये।।११८।।
बिन्दुनामादिवर्णाद्याः सम्बुद्ध्यन्तास्तथाभिधाः।
व्रजपुष्पं प्रतीच्छाग्निप्रियान्ताः प्रणवादिकाः।।११९।।
वैरोचनादिपूजायां मनवः परिकीर्तिताः। भूधरश्च चतुर्द्वार्षु पद्मान्तकयामान्तकौ।।१२०।।
विद्यान्तकाभिधः पश्चान्नरान्तकः इमान्यजेत्।
शक्रादींश्चैव वज्रादीन्प्रजपेत्तदनन्तरम्।।१२१।।
एवं सम्पूज्यन्देवीं पाण्डित्यं धनमद्भुतम्।
पुत्रान्पौत्राञ्छुभां कीर्तिं लभते जनवश्यताम्।।१२२।।
तारो माया श्रीमदेकजटे नीलसरस्वती। महोग्रतारे देवासः सनेत्रो गदियुग्मकम्।।१२३।।
सर्वदेवपिशाकर्मो दीर्घोग्निर्मरुसान्ग्रस। अभ्रगुर्मम जाड्यं च छेदयद्वितयं रमा।।१२४।।
मायास्त्राग्निप्रियान्तोऽयं द्विपञ्चाशल्लिपिर्मनुः।
अनेन नित्यं पूजान्तेऽन्वहं देव्यै बलिं हरेत्।।१२५।।

वैरोचन, अमिताभ, पद्मनाभ, पाण्डुर संज्ञक शंख की पूजा दिग्दलों में करे। लाभका, मानका, पाण्डुरा तथा तारका की अर्चना विदिक् में इष्ट सिद्धि हेतु करनी चाहिये। वैराचनादि का पूजामन्त्र श्लोक ११९ में अंकित है। (इसका मन्त्रोद्धार) करके प्रयोग करे। चारों द्वार पर भूधर, पद्मान्तक, विद्यान्तक, नारांतक की पूजा करे। तदनन्तर इन्द्रादि की पूजा करके उनके वज्रादि अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इस देवी पूजन से अद्भुद् पाण्डित्य, सन्तान, पौत्र, उत्तम यश, लोगों को वश में करने की शक्ति का लाभ होता है। यहां लिखे मन्त्र से पूजान्त में देवी को बलि प्रदान करे। मन्त्र श्लोक १२३ प्रारंभ से लगाकर १२५वें श्लोक में मायास्त्राग्नि प्रियान्तोऽयं'' पर्यन्त है। यह ५२ अक्षरात्मक मन्त्र है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।)।।११७-१२५।।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्विदधाति च।
जातमात्रस्य बालस्य दिवसत्रितयादधः।।१२६।।
जिह्वायां विलिखेन्मन्त्रं मध्वाज्याभ्यां शलाकया।
सुवर्णकृतया यद्वा मन्त्री धवलदूर्वया।।१२७।।
गतेऽष्टमेऽब्दे बालोऽपि जायते कविरद्भुतम्।
तथापरैरजेयोऽपि भूपसङ्घैर्ध्वनार्चितः।।१२८।।

यह मन्त्र जब सिद्ध हो जाये, तब व्यक्ति इसका प्रयोग करे। सद्यो जात बालक (जो तीन दिन से कम आयु वाला हो) की जिह्वा पर स्वर्णशलाका अथवा श्वेत दूर्वा से मधु तथा घृत से यह मन्त्र लिखे। (यह असंभव

लगता है कि ३ दिन के बालक के जिह्वा पर ५२ अक्षर का मन्त्र कैसे लिख सकेंगे जबकि उसकी जिह्वा अत्यन्त छोटी होगी। लगता है यहां कुछ पाठ में गड़बड़ी है)। यह क्रिया करने से आठ वर्ष होते-होते वह बालक महाकवि, अन्य से अपराजित तथा राजाओं से पूजित होगा।।१२६-१२८।।

उपरागे दतानीव नरदारुसरोजले। निर्माय कीलकं तेन तैलमध्वमृतैर्लिखेत्॥१२९॥
सरोजिनीदले मन्त्रं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः। निखाय तदलं कुण्डे चतुरस्त्रे समेखले॥१३०॥
संस्थाप्य पावकं तत्र जुहुयान्मनुनामुना। सहस्त्रं रक्तपद्मानां धेनुदुग्धजलाप्लुतम्॥१३१॥
होमान्ते विविधैः रत्नैः पलैरपि बलिं हरेत्।
बलिं मन्त्रेण विधिवद्बलिमन्त्रः प्रकाश्यते॥१३२॥
तारः पद्मे युगं तन्द्री वियद्दीर्घं च लोहितः। अत्रिर्विषभगारूढो वदेत्पद्मावतीपदम्॥१३३॥
झिण्टीशाढ्योनिलस्वाहा षोडशार्णो बलेर्मनुः।
ततो निशीथे च बलिं पूर्वोक्तमनुना हरेत्॥१३४॥

"उपरागे दतानीव नरदारु सरोजले" मन्त्र से कील बनाये। उसके द्वारा कमलिनी के पत्ते पर तेल, मधु तथा जल मिलाकर इस स्याही से यह मन्त्र लिखे तदनन्तर उसे मातृकाक्षरों से घेरें। तदनन्तर मेखला समन्वित चौकोर कुण्ड में अग्नि स्थापित करके गाय के दूध एवं जल से स्वच्छ किये गये १००० लाल कमलों से हवन करके होमान्त में विविध रत्नों तथा मांस से बलि प्रदान करे। बलि प्रदान मन्त्र है १३३वें श्लोक के "तारः पद्मे" से लगाकर श्लोक १३४ में "झिण्टीशाढ्योनिलस्वाहा" पर्यन्त। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) यह षोडशाक्षर मन्त्र बलिमन्त्र है। रात में भी इसी मन्त्र से बलि देना चाहिये।।१२९-१३४।।

एवं कृते पण्डितानां स जयी कविराड् भवेत्।
निवासो भारतीलक्ष्म्योर्जनतारञ्जनक्षमः॥१३५॥
शताभिजप्त्या यो मन्त्री रोचनां मस्तके धरेत्।
यं यं पश्यति तस्यासौ दासवज्जायते क्षणात्॥१३६॥
श्मशानाङ्गारमाश्रित्य पूर्वायां कुजवासरे। तेन मन्त्रेण संवेष्ट्य निबद्धं रक्ततन्तुभिः॥१३७॥
शताभिजप्तं मूलेन निक्षिपेद्वैरिवेश्मनि। उच्चाटयति सप्ताहात्सकुटुम्बाविरोधिनः॥१३८॥

ऐसा करने वाला साधक विद्वान, विजय पाने वाले, कवियों में श्रेष्ठ, सरस्वती तथा लक्ष्मी का निवास रूप और लोकप्रिय होता है। जो गोरोचन को इस मन्त्र से सौ बार अभिमंत्रित करके मस्तक पर उसका तिलक लगाता है, वह जिसे देखेगा, वह तत्क्षण उसका दास हो जायेगा। मंगलवार को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र होने पर श्मशान का कोयला लाकर इस मन्त्र के द्वारा उसे वेष्ठित करके तदनन्तर लाल धागा लपेटे। उसे पुनः उक्त मन्त्र से १०० बार अभिमन्त्रित करके शत्रुगृह पर फेंके। शत्रु वहां से सपरिवार उच्चाटित होकर स्थान त्याग करके चला जायेगा।।१३५-१३८।।

क्षीराढ्यया निशामन्त्रं लिखित्वा पौरुषेऽस्थनि।
रविवारे निशीथिन्यां सहस्त्रमभिमन्त्रयेत्॥१३९॥

तत्क्षिप्तं शत्रुसदने मण्डलादूभ्रंशकं भवेत्।
क्षेत्रे क्षिप्तं सस्यहान्योजवहत्तुरमा लयेत्॥१४०॥

पुरुष की अस्थि पर दुग्धयुक्त शलाका द्वारा निशा मन्त्र लिखे। रविवार की रात में १००० बार उसे अभिमंत्रित करके शत्रुगृह पर फेंके वह शत्रु गृह से हट जायेगा। इसे यदि शत्रु के खेत पर फेंके तब खेती नष्ट होगी।।१३९-१४०।।

षट्कोणान्तर्लिखेन्मूलं साध्यार्णं केशरे स्वरैः।
बाह्येऽष्टवर्गयुक्पत्रं पद्मभूमिपरावृतम्॥१४१॥
यन्त्रं भूर्जे जतुरसैर्लिखेत्पीताम्बरावृतम्। पट्टसूत्रेण सन्नद्धं शिशुकण्ठगतं ध्रुवम्॥१४२॥
भूतभीतिहरं वामवाहौ स्त्रीणां च पुत्रदम्।
नृणां दक्षिणबाहुस्थं निर्धनानां धनप्रदम्॥१४३॥
ज्ञानदं ज्ञानमिच्छूनां राज्ञां तु विजयप्रदम्॥१४४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे यक्षिणीमन्त्रभेदनिरूपणं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

श्लोक १४१ के अनुसार यन्त्र निर्माण करे इसमें षट्कोण में मूल मन्त्र लिखे। साध्य का नाम केसर पर लिखे। बाहर अष्टवर्गयुक्त पत्र पर स्वरों को लिखे। (इसका मन्त्रोद्धार करके लिखना होगा) यह यन्त्र भोजपत्र पर आलता से लिखकर उसे पीले वस्त्र में लपेट कर रेशमी धागे से शिशु के कण्ठ में बांधे। उसका अरिष्ट भूत भय दूर होगा। यही मन्त्र स्त्री की बायीं भुजा में बांधे उसे पुत्र होगा। निर्धन की भुजा में बांधे, उसे धन लाभ होगा। ज्ञान के इच्छुकों को इस यन्त्र धारण से ज्ञान लाभ तथा राजा इस यन्त्र को धारण करके विजय लाभ करेगा।।१४१-१४४।।

।।८५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

महालक्ष्मी अवतार वर्णन बगला प्रभृति शक्ति का मन्त्र एवं साधन वर्णन

सनत्कुमार उवाच

सरस्वत्यवतारास्ते कथिताः सिद्धिदा नृणाम्।
अथ लक्ष्म्यवतारांस्ते वक्ष्ये सर्वार्थसिद्धिदान्॥१॥

वाणीमन्मथशक्त्याख्यं बीजत्रितयमीरितम्।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्दः प्रकीर्तितम्॥२॥
देवता त्रिपुरा बाला मध्यान्ते शक्तिबीजके। नाभेरापादमाद्यं तु नाभ्यन्तं हृदयात्परम्॥३॥
मूर्ध्नो हृदन्तं तार्तीयं क्रमाद्देहेषु विन्यसेत्। आद्यं वामकरे दक्षकरे तदुभयोः परम्॥४॥
पुनर्बीजत्रयं न्यस्य मूर्ध्नि गुह्ये च वक्षसि।
नव योन्याभिधं न्यासे नवकृत्वो मनुं न्यसेत्॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—मैंने मनुष्यों हेतु सिद्धिप्रद सरस्वती अवतार का वर्णन कर दिया। अब मैं लक्ष्मी के अवतार को कहता हूं, जो कि सर्वसिद्धिप्रद है। मन्त्र है वाणी (ऐं) मन्मथ (क्लीं) तथा शक्ति (ह्रीं) है। मन्त्रोद्धार है "ऐं क्लीं ह्रीं" इसके ऋषि दक्षिणामूर्त्ति हैं। छन्दः है पंक्ति, देवता हैं त्रिपुरा। इसका अंगन्यास नाभि से चरण पर्यन्त, तदनन्तर नाभि से हृदय पर्यन्त करके तब हृदय से मस्तक तक अंगन्यास करना चाहिये। वामबाहु, दक्षिण बाहु, मस्तक, गुह्य तथा हृदय में तीन-तीन बार न्यासोपरान्त योनि में ९ बार न्यास करे।।१-५।।

कर्णयोश्चिबुके न्यस्येच्छङ्खयोर्मुखपङ्कजे। नेत्रयोर्नासिकायां च स्कन्धयोरुदरे तथा॥६॥
न्यसेत्कर्पूरयोर्नाभौ जानुनोर्लिङ्गमस्तके। पादयोरपि गुह्ये च पार्श्वयोर्त्हृदये पुनः॥७॥
स्तनयोः कण्ठदेशे च वामाङ्गादिषु विन्यसेत्।
वाग्भवाद्यां रतिं गुह्ये प्रीतिमत्यादिकां हृदि॥८॥

उभय कर्ण, ठुड्डी, मुखारविन्द, नेत्र, नाक, कंधा, पेट, केहुनी, नाभि, घुटना, लिंग, मस्तक, चरण, गुह्य, पार्श्व, हृदय, स्तन, कण्ठ, वामअंग आदि में भी न्यास करे। वाग्भवा आद्या रति का न्यास गुह्य में, प्रीतिमती आदि का हृदय में न्यास करे।।६-८।।

कामबीजादिकान्यश्येद्भ्रू मध्ये तु मनोभवाम्।
पुनर्वागकात्ममाद्यास्तिस्त्र एव च विन्यसेत्॥९॥
अमृतेशीं च योगेशीं विश्वयोनिं तृतीयकाम्।
मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि न्येसद्गुह्ये चरणयोरपि॥१०॥
कामेशी पञ्चबीजाढ्यां स्मरात्पञ्च न्यसेत्क्रमात्।
मायाकामौ च वाग्लक्ष्मी कामेशी पञ्चबीजकम्॥११॥
मनोभवश्च मकरध्वजकन्दर्पमन्मथाः।
कामदेवः स्मरः पञ्चः कीर्तिता न्याससिद्धिदाः॥१२॥

काम बीजादि का भ्रूमध्य में, मनोभवा, वागात्मा देवीगण का भी न्यास करे। वागात्मा देवीगण हैं अमृतेश्वरी, योगेश्वरी तथा विश्वयोनि। मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरण में पंचबीज युक्त कामेशी का न्यास तथा पंचकाम का न्यास करे। पंचबीज हैं माया (ह्रीं), काम (क्लीं), वाक् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), कामेशी (हूं)।

पंचकाम (पंचस्मर) हैं मनोभव, मकरध्वज, कन्दर्प, मन्मथ, कामदेव। इनका न्यास करने पर सिद्धिलाभ होता है।।९-१२।।

शिरःपन्मुखगुह्येषु हृदये बाणदेवताः। द्राविण्याद्याः क्रमान्न्यस्येद्बाणेशीबीजपूर्वकाः।।१३।।
द्रान्द्रीं क्लीं जूंस इति वै बाणेशीबीजकं च कम्।
द्राविणी क्षोभिणी वशीकरण्याकर्षणी तथा।।१४।।
सम्मोहनी च बाणानां देवताः पञ्च कीर्तिताः।
तार्तीयवाग्मध्यगेन कामेन स्यात्षडङ्गकम्।।१५।।
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन ततो देवीं विचिन्तयेत्।
ध्यायेद्रक्तसरोजस्थां रक्तवस्त्रां त्रिलोचनाम्।।१६।।
उद्यदर्कनिभां विद्यां मालाभयवरोद्वहाम्। लक्षत्रयं जपेन्मत्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः।।१७।।
पुष्पैर्हयारिजैर्वापि जुहुयान्मधुरान्वितैः। नवयोन्यात्मकं यन्त्रं बहिरष्टदलावृतम्।।१८।।

शिर, चरण, मुख, गुह्यदेश, हृदय में बाणेशी बीज द्वारा ५ बाणदेवता द्राविणी प्रभृति का न्यास करे। बाणेशी बीज है "द्रां न्द्रीं क्लीं जूं सः।" पंच बाण देवता हैं—द्राविणी, श्रोत्रिणी, वशीकरणी, आकर्षणी तथा सम्मोहनी। तृतीयवाक् मध्यग षड्दीर्घस्वर युक्त काम (बीज) से षडंग करे। तब रक्तवर्ण कमल पर स्थित रक्तवस्त्रधारिणी, त्रिलोचना, उदित हो रहे सूर्य के समान कान्तिमान माला एवं अभय मुद्रा धारिणी विद्या का ध्यान करके तीन लक्ष मन्त्र जप तथा तीस हजार होम त्रिमधुर मिश्रित पलाश एवं कनेर पुष्पों से करना चाहिये। तब नवयोन्यात्मक यन्त्र बनाये जो बाहर अष्टदल से आवृत हो।।१३-१८।।

केशरेषु स्वरान्न्यस्येद्वर्गानष्टौदलेष्वपि। दलाग्रेषु त्रिशूलानि पद्म तु मातृकावृतम्।।१९।।
एवं विलिखिते यन्त्रे पीठशक्तीः प्रपूजयेत्।
इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी।।२०।।
रती रतिप्रिया नन्दा मनोन्मन्यपि चोदिताः।
पीठशक्तीरिमा इष्ट्वा पीठं तन्मनुना दिशेत्।।२१।।

तब केसर तथा अष्टदल पर वर्गीय (?) स्वरों का न्यास करे। दलों पर त्रिशूल तथा मातृका से आवेष्ठित पद्म निर्माण करे। इस प्रकार यंत्र लिखकर उस पर पीठशक्ति पूजन करे। ये हैं—इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, आनन्दा, मनोन्मनी। तदनन्तर पीठ को अभिमन्त्रित करना होगा।।१९-२१।।

व्योमपूर्वे तु तार्तीयं सदाशिवमहापदम्। प्रेत पद्मासनं ङेन्तं नमोन्तः पीठमन्त्रकः।।२२।।
षोडशार्णस्ततो मूर्तौ क्लृप्तायां मूलमन्त्रतः। आवाह्य प्रजपेद्देवीमुपचारैः पृथग्विधैः।।२३।।
देवीमिष्ट्वा मध्ययोनौ त्रिकोणे रतिपूर्विकाम्।
वामकोणे रतिं दक्षे प्रीतिमग्रे मनोभवाम्।।२४।।

श्लोक २२ में पीठमन्त्र अंकित है (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। यह षोडशाक्षर मन्त्र है। मूलमन्त्र से तत्पश्चात् देवी की मूर्त्ति बनाये। देवी का आवाहन करके अनेक उपचारों द्वारा पृथक्-पृथक् पूजन करे। योनि की आकृति वाले त्रिकोण को बनाकर मध्य में रति का पूजन करने के अनन्तर देवी की पूजा करने के पश्चात् वामकोण में रति की, दक्षिण कोण में प्रीति की तथा अग्रभाग में मनोभवा की अर्चना करे।।२२-२४।।

योन्यन्तर्वह्निकोणाद्वङ्गान्यग्रेर्विदिक्ष्वपि। मध्ययोनेर्बहिः पूर्वादिषु चाग्रे स्मरानपि॥२५॥

बाणदेवीस्तद्वदेव शक्तीरष्टसु योनिषु। सुभगाख्या भगा पश्चात्तृतीया भगसर्पिणी॥२६॥

भगमाला तथानङ्गा नागाद्या कुसुमापरा। अनङ्गमेखलानङ्गमदनेत्यष्टशक्तयः॥२७॥

योनि में, अग्निकोण में, मध्य योनि के वाह्य में पूर्वादिदिक् में पंचकाम का पूजन करे। अष्टयोनि में अष्टशक्ति की पूजा करे। ये हैं सुभगा, भगसर्पिणी, भगमाला, अनंगा, नागाद्या, कुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना।।२५-२७।।

पद्मकेशरगा ब्राह्मी मुखाः पत्रेषु भैरवाः।
दीर्घाद्या मातरः पूज्या ह्रस्वाद्याश्चाष्टभैरवाः॥२८॥

दलाग्रेष्वष्टपीठानि कामरूपाख्यमादिमम्। मलयं कोल्लगिर्य्याख्यं चौराहाख्यं कुलान्तकम्॥२९॥

जालन्धरं तथोन्नासं कोटपीठमथाष्टमम्। भूगृहे दशदिक्ष्वर्चेद्धेतुकं त्रिपुरान्तकम्॥३०॥

वैतालमग्निजिह्वं च कमलान्तकपालिनौ। एकपादं भीमरूपं विमलं हाटकेश्वरम्॥३१॥

शक्राद्यानायुधैः सार्द्धं स्वस्वदिक्षु समर्चयेत्।
तद्बहिर्दिक्षु बटुकं योगिनीं क्षेत्रनायकम्॥३२॥

पत्रों पर पद्मकेसरस्थ भैरवों की पूजा करे। वहां दीर्घा प्रभृति मातृगण की तथा ह्रस्वादि अष्टभैरवों की पूजा करके पत्राग्र पर कामरूप, मलय, कोल्लगिरि, चौराहा, कुलांतक, जालंधर, उन्नास एवं कोटपीठ की पूजा करे, जो अष्टपीठ हैं। भूपुर की दसों दिशा में हेतुक, त्रिपुरान्तक, वैताल, अग्निजिह्व, कमलांत, कपाली, एकपाद, भीमरूप, विमल तथा हाटकेश्वर की अर्चना करे। पुनः उनकी-उनकी दिशा में इन्द्रादि देवगण की पूजा करके उसके बाह्य में बटुक, योगिनी, क्षेत्रनायक तथा गणपति पूजन करे।।२८-३२।।

गणेशं विदिशास्वर्चेद्वसून्सूर्याञ्छिवांस्तथा। भूताश्चेत्थं भजन्बालामीशः स्याद्धनविद्ययोः॥३३॥

रक्ताम्भोजैहुतैर्नार्यो वश्याः स्युः सर्षपैर्नृपाः।
नन्द्यावर्तै राजवृक्षैः कुन्दैः पाटलचम्पकैः॥३४॥
पुष्पैर्बिल्वफलैर्वापि होमाल्लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्।
अपमृत्युं जयेन्मन्त्री गुडूच्या दुग्धयुक्तया॥३५॥

विदिग् में वसु, सूर्य, शिव की पूजा करे। एवंविध भूतोपासक स्त्रियों का स्वामी, धनी तथा विद्यायुक्त होता है। रक्तकमल से होम द्वारा नारीवशीकरण होगा। सरसों के होम से राजा वश में होंगे। तगर, राजवृक्ष, कुन्द, पाटल, चम्पा के फूल बिल्वफल से होम द्वारा अचला लक्ष्मी प्राप्ति होगी। दुग्धमिश्रित गुरुच के हवन से अकाल मृत्यु पर विजय होगी।।३३-३५।।

यथोक्तदूर्वाहोमेन नीरोगायुः समश्नुते। ज्ञानं कवित्वं लभते चन्द्रागुरुसुरैर्हुतैः॥३६॥
पलाशपुष्पैर्वाक्सिद्धिरन्नाप्तिश्चान्नहोमतः। सुरभिक्षीरदध्यक्ताँल्लाजान्हुत्वा रुजो जयेत्॥३७॥
रक्तचन्दनकर्पूरकर्चूरागुरुरोचनाः। चन्दनं केशरं मांसी क्रमाद्भागैर्नियोजयेत्॥३८॥
भूमिचन्द्रैकनन्दाब्धिदिक्सप्तनिगमोन्मितैः। श्मशाने कृष्णभूतस्य निशि नीहारपाथसा॥३९॥
कुमार्या पेषयेत्तानि मन्त्रेणाथाभिमन्त्र्य च।
विदध्यात्तिलकं तेन दर्शनाद्वशयेज्जनान्॥४०॥

दूर्वा से हवन करने वाला दीर्घायु होगा। कर्पूर, अगुरु, गुरुच से होम करने वाला ज्ञान एवं कवित्व शक्ति प्राप्त करेगा। पलाश पुष्प के होम से वाक्सिद्धि, अन्न के होम से अन्न लाभ, गोदुग्ध-दधि-लावा मिलाकर होम द्वारा रोगक्षय, रक्तचन्दन- कर्पूर-कचूर-अगुरु-गोरोचन-चन्दन-केसर को इस प्रकार विभक्त करे—रक्तचन्दन एक भाग, कपूर एक भाग, कचूर १ भाग, अगुरु ९ भाग, गोरोचन ७ भाग, चन्दन १० भाग, केसर ७ भाग, जटामांसी ४ भाग लेकर श्मशान में इसे कुमारी कन्या से पिसवाकर मन्त्राभिमंत्रित करके तिलक लगाये। जिस पर वह व्यक्ति दृष्टिपात करेगा, वह वशीभूत होगा। इसे कुमारी कन्या द्वारा कृष्ण चतुर्दशी की रात में हिमजल से पिसवाना होगा। यह कार्य (पीसने का) श्मशान में होगा।।३६-४०।।

गजसिंहादिभूतानि राक्षसाञ्छाकिनीरपि। प्रयोजनानां सिद्ध्यै तु देव्याः शापं निवर्त्य च॥४१॥
विधायोत्कीलितां पश्चाज्जपमस्य समाचरेत्।
यो जपेदादिमे बीजे वराहभृगुपावकान्॥४२॥
मध्यामादौ नभो हंसौ मध्यमान्ते तु पावकम्।
आदावन्ते च तार्तीयक्रमात्स्वं धूम्रकेतनम्॥४३॥
एवं जप्त्वा शतं विद्या शापहीना फलप्रदा। यद्वाद्ये चरमे बीजे नैव रेफं वियोजयेत्॥४४॥

उस व्यक्ति के वश में (उसके देखने मात्र से) हाथी, सिंह, राक्षस, शाकिनी आदि भी हो जायेंगे। व्यक्ति कामना सिद्धि हेतु देवी का शोपोद्धार करके कीलक का पाठ करने के उपरान्त जप करे। आदि बीज में वराह, भृगु, पावक का, मध्यमादि से अन्तरिक्त तथा हंस का, मध्यमान्त में पावक का, आदि-अन्त में तार्तीय क्रमेण धूम्रकेतन बीज का १०० बार जप करके इस फलदा विद्या को शाप रहित करे (यहां मन्त्र संकेत ही दिया गया है। विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) अथवा अन्तिम बीज में रेफ का योग न करे।।४१-४४।।

शापोद्धारप्रकारोऽन्यो यद्वायं कीर्तितो बुधैः।
आद्यमाद्यं हि तार्तीयं कामः कामोऽथ वाग्भवम्॥४५॥
अन्त्यमन्त्यमनङ्गश्च नवार्णः कीर्तितो मनुः। जप्तोयं शतधा शापं बालाया विनिवर्तयेत्॥४६॥
चैतन्याह्लादिनीमन्त्रौ जप्तौ निष्कीलताकरौ।
त्रिस्वराश्चेतनं मन्त्री धरः शान्तिरनुग्रहः॥४७॥
तारादिहृदयान्तः स्यात्काम आह्लादिनीमनुः।
तथा त्रयाणां बीजानां दीपनैर्मनुभिस्त्रिभिः॥४८॥

सुदीप्तानि विधायादौ जपेत्तानीष्टसिद्धये। वदयुग्मं सदीर्घाम्बु स्मृतिनालावनङ्गतौ॥४९॥

सत्यः सनेत्रो नास्तादृग्वा वाग्वर्णाद्यदीपिनी।
क्लिन्ने क्लेदिनि वैकुण्ठी दीर्घ स्वं सद्यगीतिमः॥५०॥
निद्रा सचन्द्रा कुर्वीत शिवर्णा मध्यदीपिनो।
तारो मोक्षं च कुरुते नायं वर्णास्यदीपिनी॥५१॥
दीपिनीमन्तरा बाला साधितापि न सिध्यति।
वागन्त्यकामान् प्रजपेदरीणां क्षोभहेतवे॥५२॥
कामवागन्त्यबीजानि त्रैलोक्यस्य वशीकृतौ।
कामान्त्यवाणीबीजानि मुक्तये नियतो जपेत्॥५३॥
पूजारम्भे तु वालायास्त्रिविधानर्चयेद् गुरून्।
दिव्यौचश्चैव सिद्धौघी मानबौध इति त्रिधा॥५४॥

इनके शापोद्धार का प्रकारान्तर भी विद्वान् लोग कह गये हैं। तदनुसार आदि में तार्तीय, मध्य में वाग्भव एवं काम बीज, अन्त में अनंग जोड़ने से (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें) जो मन्त्र बनता है, वह नवार्ण मन्त्र है। इसके १०० बार जप द्वारा देवीशाप का शापोद्धार होगा। इष्टसिद्धि हेतु व्यक्ति श्लोक ४७ से लगाकर श्लोक ४८ में ''आह्लादिनी'' तक का तथा बीजमन्त्रत्रय का जप करे (यहां मन्त्रोद्धार करके तब जप करे। यहां श्लोक में मन्त्रसंकेत मात्र है)। आगे जो मन्त्र लिखा जा रहा है, उसके जप के बिना यह विद्या सिद्ध नहीं होती। वह मन्त्र है श्लोक ४९ में 'वदयुग्मं' से लगाकर श्लोक ५१ में 'दीपिनी' पर्यन्त है (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) त्रैलोक्य को वशीभूत करने के लिये इस मन्त्र का जप करे। ''कामवागन्त्य बीजानि'' (इसका मन्त्रोद्धार करके जपना होगा)। शत्रुनाशार्थ ''कामान्त्यवाणि बीजानि'' (इसका मन्त्रोद्धार करके) जप करे। देवी की पूजा प्रारंभ करते समय गुरुत्रय की अर्चना करे, जो दिव्यौघं, सिद्धौघ तथा मानवौध हैं।।४५-५४।।

परप्रकाशः परमेशानः परशिवस्तथा। कामेश्वरस्ततो मोक्षः षष्ठः कामोऽमृतोऽन्निमः॥५५॥

एते दप्तैव दिव्यौघा आनन्दपदपश्चिमाः।
ईशानास्यस्तत्पुरुषोऽघोराख्यो वामदेवकः॥५६॥
सद्योजात इमे पञ्च सिद्धौघाख्याः स्मृता मुने।
मानबौधाः परिज्ञेयाः स्वगुरोः सम्प्रदायतः॥५७॥
नवयोन्यात्मके यन्त्रे विलिखेन्मध्ययोनितः।
प्रादक्षिण्येन बीजानि त्रिवारं साधकोत्तमः॥५८॥
त्रींस्त्रीन्वर्णांस्तु गायत्र्या अष्टपत्रेषु सलिखेत्।
बहिर्मातृकयाऽऽवेष्ट्य तद्बहिर्भूपुरद्वयम्॥५९॥

कामबीजलसत्कोण व्यतिभिन्नं परस्परम्। पत्रे त्रैपुरमाख्यातं जपसम्पातसाधितम्॥६०॥

इनमें दिव्यौघ हैं परप्रकाश, परमेशान, परशिव, कामेश्वर, मोक्ष, काम, अमृत ये सात दिव्यौघ हैं। सिद्धौघ हैं—ईशान, अघोर, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव, ये संख्या में ५ हैं। मानवौध गुरु साधक के गुरु सम्प्रदाय वाले होते हैं। साधकप्रवर अब नवयोन्यात्मक यन्त्र में बीजमन्त्रों को तीन बार मध्ययोनि से प्रारंभ करते लिखे। तदनन्तर गायत्री के ३-३ वर्ण को अष्टपत्र पर लिखे। उसके बाहर में मातृका वर्ण से आवेष्ठित करके उसके बाहर दो भूपुर बनाये। कोणों में 'क्लीं' लिखे। तथापि दोनों भूपुर एक-दूसरे से भिन्न हों। पत्र पर जप, संपात तथा साधित—इन तीन पुर का पूजन करना चाहिये।।५५-६०।।

बाहुना विघृते दद्याद्धनं कीर्तिं सुखं सुतान्।
कामान्ते त्रिपुरा देवी विद्महे कविषं महिम्।।६१।।
बकः खङ्गी समारूढः सनेत्रोऽग्निश्च धीमहि।
तत्र क्लिन्ने प्रचोदान्ते यादित्येषा प्रकीर्तिता।।६२।।
गायत्री त्रैपुरा सर्वसिद्धिदा सुरसेविता।
अथ लक्ष्म्यवतारोऽन्यः कीर्त्यते सिद्धिदो नृणाम्।।६३।।

इस यन्त्र को बाहु पर धारण करके दान करे। उसे धन-कीर्त्ति, सुख तथा पुत्रलाभ होगा। अब त्रिपुरा गायत्री कहते हैं, जो श्लोक ६१ में "कामन्ते" से लगाकर श्लोक ६२ में "प्रचोदान्ते" तक है। (इसका विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें।) यह त्रैपुर गायत्री सर्वसिद्धिप्रदा है तथा देवगण द्वारा सेविता है। अब मनुष्यों को सिद्धि देने वाला लक्ष्म्यावतार कहता हूं।।६१-६३।।

वेदादिगिरिजा पद्मा मन्मथो हृदयं भृगुः। भगवति माहेश्वरी ङेन्तेऽन्नपूर्णे दहनाङ्गना।।६४।।
प्रोक्ता विंशतिवर्णेयं विद्या स्याद्द्रुहिणो मुनिः।
धृतिश्छन्दोऽन्नपूर्णेशी देवता परिकीर्तिता।।६५।।
षड्दीर्घाढ्येन हृल्लेखाबीजेन स्यात्षडङ्गकम्।
मुखनासाक्षिकर्णांसपुदेषु नवसु न्यसेत्।।६६।।
पदानि नव तद्ववर्णसङ्ख्येदानीमुदीर्यते। भूमिचन्द्रधरेकाक्षिवेदाब्धियुगबाहुभिः।।६७।।

इनका मन्त्र है, जो श्लोक ६४ में अंकित है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें) इनके बीस वर्ण हैं। इसके ऋषि हैं द्रुहिण, छन्दः है धृति, देवता हैं पूर्णेशि। षड्दीर्घयुक्त हृल्लेखा मन्त्र से षडङ्ग न्यास करे। मुख, नाक, नेत्र, कान, स्कन्ध का न्यास करे तथा नौ पद का न्यास करे। इनकी वर्ण संख्या है—१, १, १, २, ४, ७, २, २।।६४-६७।।

पदसङ्ख्यामिता वर्णैस्ततो ध्यायेत्सुरेश्वरीम्।
स्वर्णाभाङ्गां त्रिनयनां वस्त्रालङ्कारशोभिताम्।।६८।।
भूरमासं युतां देवीं स्वर्णामत्रकराम्बुजाम्। लक्षं जपोऽयुतं होमो घृताक्तचरुणा तथा।।६९।।
जयादिनवशक्त्याढ्ये पीठे पूजा समीरिता। त्रिकोणा वेदपत्राष्टपत्रषोडशपत्रके।।७०।।
भूपुरेण युते यन्त्रे प्रदद्यान्मायया मनुम्। अग्न्यादिकोणत्रितये शिववाराहमाधवान्।।७१।।

अर्चयेत्स्वस्वमन्त्रैस्तु प्रोच्यते मनवस्तु ते। प्रणवो मनुचन्द्राढ्यं गगनं हृदयं शिवा॥७२॥
मारुत शिवमन्त्रोऽर्य सप्तार्णः शिवपूजने। वाराहनारायणयोमन्त्री पूर्व मुदीरयेत्॥७३॥

अब सुरेश्वरी का ध्यान करना चाहिये। वे स्वर्ण की आभायुक्त अंगों वाली, त्रिनयना, पृथिवी तथा लक्ष्मी के साथ स्थिता, वस्त्रालंकार से शोभिता हैं। उनकी उंगलियां तथा कलाई अंगूठी आदि आभूषणों से शोभित हैं। तदनन्तर एक लाख जप करने के पश्चात् दस हजार होम घृतयुक्त चरु से करे। इनकी पूजा जया प्रभृति नव संख्यक शक्तियों सहित करना चाहिये। भूपुर, त्रिकोण, चतुष्पत्र, अष्टपत्र तथा षोडश पत्र समन्वित यन्त्र बनाकर उस पर 'ह्रीं' के साथ मन्त्र लिखे। तदनन्तर अग्नि कोणादि त्रितय कोण में शिव, वाराह, माधव का पूजन उनके उनके मन्त्र से करे। शिव पूजनार्थ सप्तवर्ण का मन्त्र हैं। वह श्लोक ७२ में "प्रणवो" से लगाकर श्लोक ७३ में "मारुतः" तक है (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें) वाराह तथा नारायण का मन्त्र इससे पहले कहा जा चुका है। उसे पहले पढ़े।।६८-७३।।

षडङ्गानि ततोऽभ्यर्च्य वामे दक्षे धरां रमाम्।
यजेत्स्वस्वमनुभ्यां तु तावुच्येते मुनीश्वर॥७४॥
अन्नं मह्यन्नमित्युक्त्वा मे देह्यन्नाधिपोर्णकाः। नयेममन्नं प्राणान्ते दापयानलसुन्दरी॥७५॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो भूमीष्टी भूमिसम्पुटः।
लक्ष्मीष्टौ श्रीपुटो विप्र स्मृतिर्लभनुचन्द्रयुक्॥७६॥
भुवो बीजमिति प्रोक्तं श्रीबीजं प्रागुदाहृतम्।
मन्त्रादिस्थचतुर्बीजपूर्विकाः परिपूजयेत्॥७७॥
शक्तीश्चतस्रो वेदास्त्रे परा च भुवनेश्वरी। कमला सुभग चेति ब्राह्मयाद्या अष्टपत्रगाः॥७८॥
षोडशारे स्मृते चैव मानदातुष्टिपुष्टयः।
प्रीती रतिर्ह्रीः श्रीश्चापि स्वधा स्वाहा दशभ्यथ॥७९॥
ज्योत्स्ना हैमवती छाया पूर्णिमा संहतिस्तथा।
अमावस्येति सम्पूज्या मन्त्रेशे प्राणपूर्विका॥८०॥
भूपुरे लोकपालाः स्युस्तदस्त्राणि तदग्रतः।
इत्थं जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन्धनसञ्चयैः॥८१॥
कुबेरसदृशो मन्त्री जायते जनवन्दितः। अथ लक्ष्म्यवतारोऽन्यः कीर्त्यते मुनिसत्तम॥८२॥

तदनन्तर षडङ्ग पूजन करके वाम तथा दक्षिण भाग में धरा तथा रमा का उनके-उनके मन्त्र से पूजा करे। यह धरापूजन मन्त्र श्लोक ७४-७५ में है (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। लक्ष्मी मन्त्र श्लोक ७६ में "लक्ष्मीष्टौ" से लेकर श्लोक ७७ में "भुवो" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। इस श्रीबीज का प्रयोग मन्त्र के चतुर्बीज से पूजनार्थ करे। तदनन्तर अष्टपत्र पर परा, भवनेश्वरी, कमला, सुभगा, वेदाद्या, ब्रह्माद्या का पूजन करे। षोडशार पर मानदा, तुष्टि, पुष्टि, प्रीति, रति, ह्री, श्री, स्वधा, स्वाहा, ज्योत्स्ना, हेमवती, छाया, पूर्णिमा, संहति, अमावस्या का प्राण पूर्वक मन्त्र से पूजन करे। भूपुर पर लोकपाल की उसके

आगे उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिये। एवंविध जपादि से मन्त्र सिद्ध हो गया। साधक जनवन्दित तथा कुबेरवत् हो जाता है। हे मुनिसत्तम! अब मैं लक्ष्मी का अवतार कहता हूं।।७४-८२।।

प्रणवः शान्तिररुणाक्रियाळ्याचन्द्रभूषिताः। बगलामुखिसर्वान्ते इन्धिकाह्लादिनीयुता।।८३।।
पीताजरायुक्प्रतिष्ठा पुनर्दीर्घोदसंयुता। वाचं मुखं पदं स्तम्भयान्ते जिह्वापदं वदेत्।।८४।।
कीलयेति च बुद्धिं विनाशयान्ते स्वबीजकम्।
तारोऽग्निसुन्दरी मन्त्रो बगलायाः प्रकीर्तितः।।८५।।
मुनिस्तु नारदश्छन्दो बृहती बगलामुखी। देवता नेत्रपञ्चेषुनवपञ्चवर्णकैः।।८६।।
अङ्गानि कल्पयित्वा च ध्यायेत्पीताम्बरां ततः।
स्वर्णासनस्थां हेमाभां स्तम्भिनीमिन्दुशेखराम्।।८७।।
दधतीं मुद्गरं पाशं वज्रं च रसनां करैः। एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवैः।।८८।।
कुसुमैर्जुहुयात्पीठे बालायाः पूजयेदिमाम्। चन्दनागुरुचन्द्राद्यैः पूजार्थं यन्त्रमालिखेत्।।८९।।

यह मन्त्र श्लोक ८३ से लगाकर श्लोक ८५ में "तारोऽग्निसुन्दरी" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। इसके मुनि हैं—नारद, छन्दः है बृहती, देवता हैं बगलामुखी। २, ५, ५, ९, १, ० वर्ण से अंग कल्पना करे। (षडङ्ग करे)। तदनन्तर ध्यान करे। ये भगवती पीताम्बरधारिणी, स्वर्णासनसमासीना, स्वर्ण कान्ति, स्तम्भनी, ललाट पर चन्द्र से विभूषिता, मुद्गर-पाश-वज्र-मेखला धारिणी हैं। ध्यानोपरान्त एक लक्ष मन्त्र जप करके दस हजार होम चम्पापुष्प से पीठ पर करे। चन्दन, अगुरु, कर्पूर से देवी का यन्त्र पूजार्थ लिखे।।८३-८९।।

त्रिकोणषड्दलाष्टास्त्रषोडशारे यजेदिमाम्।
मङ्गला स्तम्भिनी चैव जृम्भिणी मोहिनी तथा।।९०।।
वश्या चला बलाका च भूधरा कल्मषाभिधा।
धात्री च कलना कालकर्षिणी भ्रामिकापि च।।९१।।
मन्दगापि च भोगस्था भाविका षोडशी स्मृता।
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु पूर्वादिषु यजेत्क्रमात्।।९२।।
गणेशं बटुकं चापि योगिनीः क्षेत्रपालकम्।
इन्द्रादींश्च ततो बाह्ये निजायुधसमन्वितान्।।९३।।

यन्त्र को त्रिकोण, षड्दल, अष्टदल तथा १६ दल वाले कमल का बनाये। यन्त्र पर मंगला, स्तम्भिनी, जृंभिणी, मोहनी, वश्या, चला, बलाका, भूधरा, कल्मषा, धात्री, कलना, कालकर्षिणी, भ्रामिका, मंगला, भोगस्था, भाविका की पूजा करके भूपुर के चतुर्दिक्, पूर्वादिदिक् में क्रमशः गणेश, बटुक, योगिनी तथा क्षेत्रपाल पूजन करे उसके बाह्य में इन्द्रादि देवता तथा उनका आयुध पूजन करे।।९०-९३।।

इत्थं सिद्धे मनौ मन्त्री स्तम्भयेद्देवतादिकान्।
पीतवस्त्रपदासीनः पीतमाल्यानुलेपनः।।९४।।

पीतपुष्पैर्यजेद्देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपेत्। पीतां ध्यायन्भगवतीं पयोमध्येऽयुत जपेत्॥९५॥

त्रिमध्याज्यतिलैर्होमो नृणां वश्यकरो मतः।

मधुरत्रितयाक्तैः स्यादाकर्षो लवणैर्धुवम्॥९६॥

तैलाभ्यक्तैर्निम्बपत्रैर्होमो विद्वेषकारकः। ताललोणहरिद्राभिर्द्विषां संस्तम्भनं भवेत्॥९७॥

यह मन्त्र इस प्रकार सिद्ध हो जाने पर वह मन्त्रज्ञ व्यक्ति देवगण को भी स्तम्भित कर देता है। वह मन्त्रज्ञ व्यक्ति पीतवस्त्र, पीली माला, पीला आसन, पीला अनुलेपन, प्रयोग करे। वह पीले पुष्प से देवी की पूजा करे। हल्दी की माला पर जप करे। जलमध्य में पीतवर्ण देवी बगला का ध्यान करके १०००० मन्त्र जप के उपरान्त त्रिमधु, घी, तिल से होम करे। इससे वशीकरण सिद्ध होता है। त्रिमधुयुक्त लवण होम द्वारा आकर्षण सिद्धि होती है। त्रैलाक्त नीम के पत्ते से होम द्वारा विद्वेष उत्पन्न किया जा सकता है। ताल, लवण, हल्दी मिलाकर हवन करने से स्तम्भन होगा।।९४-९७।।

आगारधूमं राजीश्च माहिषं गुग्गुलं निशि। श्मशाने पावके हुत्वा नाशयेदचिरादरीन्॥९८॥

गरुतो गृध्रकाकानां कटुतैलं विभीतकम्। गृहधूमं चितावह्नौ हुत्वा प्रोच्चाटयेद्रिपून्॥९९॥

दूर्वागुडूचीलाजान्यो मधुरत्रितयान्वितान्।

जुहोति सोऽखिलान् रोगान् शमयेद्दर्शनादपि॥१००॥

रात्रि काल में अगर, राज सरसों, भैस का घृत, गुग्गुलु से अग्नि में होम करे। तब शीघ्र शत्रु नाश होगा। गृध्र, काक के पंख, कटुतैल, बहेड़ा तथा गृहधूम (घर की धूआं की जो कालिख दीवार पर जमीं हो) उससे होम करे। शत्रु उच्चाटन होगा। दूर्वा, त्रिमधुयुक्त गुरुच एवं लावा से होम करने पर उस व्यक्ति के देखने मात्र से लोगों का सभी रोग दूर हो जाता है।।९८-१००।।

पर्वताग्रे महारण्ये नदीसङ्गे शिवालये। ब्रह्मचर्यरतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये॥१०१॥

एकवर्णगवीदुग्धं शर्करामधुसंयुतम। त्रिशतं मन्त्रितं पीतं हन्याद्विषपराभवम्॥१०२॥

श्वेतपालाशकाष्ठेन रचिते रम्यपादुके। अलक्तरञ्जिते लक्षं मन्त्रयेन्मनुनामुना॥१०३॥

तदारूढः पुमान् गच्छेत्क्षणेन शतयोजनम्।

पारदं च शिलां तालं पिष्टं मधुसमन्वितम्॥१०४॥

मनुना मन्त्रयेल्लक्षं लिम्पेत्तेनाखिलां तनुम्।

अदृश्यः स्यान्नृणामेष आश्चर्यं दृश्यतामिदम्॥१०५॥

मन्त्र सिद्धि हेतु पर्वत शिखर पर, महावन में, नदी संगम पर, शिवालय में ब्रह्मचारी रहकर एक लक्ष जप करे। एक वर्ण की गौ का दुग्ध, शर्करा तथा मधु को इस मन्त्र से ३०० बार मन्त्रित करके पान करे। विषदोष दूर होगा। श्वेत पलाश की मनोहर खड़ाऊं को आलता से रंगे। एक लाख बार इस मन्त्र से मन्त्रित करके पहने। वह एक क्षण में सौ योजन पहुंचेगा। पारा, शिलाजीत तथा ताल को मधु से पीसें। इस मन्त्र से १ लक्ष बार मन्त्रित करके देह पर लेप करने से वह व्यक्ति अदृश्य होगा। यह आश्चर्य की बात है।।१०१-१०५।।

षट्कोणं विलिखेद्बीजं साध्यनामान्वितं मनोः। हरितालनिशाचूर्णैरुन्मत्तरससंयुतैः॥१०६॥

शेषाक्षरैः समानीतं धरागेहविराजितम्। तद्यन्त्रं स्थापितप्राणं पीतसूत्रेण वेष्टयेत्॥१०७॥

भ्राम्यत्कुलालचक्रस्थां गृहीत्वा मृत्तिकां तथा।
रचयेदृषभं रम्यं यन्त्रं तन्मध्यतः क्षिपेत्॥१०८॥

हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहमर्चयेत्। स्तम्भयेद्विद्विषां वाचं गति कार्यपरम्पराम्॥१०९॥

साध्य वस्तु का नाम तथा केवल बीजमन्त्र षट्कोण में लिखकर हरिताल, निशाचूर्ण, धतूरे के रस से लिप्त करे। शेष मन्त्राक्षरों को भूगृह में (भूपुर में) विराजित करे। यन्त्र को पीले सूत्र से लपेट कर रखे। कुम्हार के धूर्णित होकर चाक की मिट्टी लाकर उत्तम बेल बनाकर यन्त्र मध्य में रख दे। तदनन्तर यन्त्र को हरताल से लीपें। नित्य वृष की पूजा करे। वह व्यक्ति शत्रु की वाणी को तथा उसकी कार्य परम्परा का स्तम्भन कर देगा।।१०६-१०९।।

आदाय वामहस्तेन प्रेतभूस्थितकर्परम्। अङ्गारेण चितास्थेन तत्र यन्त्रं समालिखेत्॥११०॥

मन्त्रितं निहितं भूमौ रिपूणां स्तम्भयेद्गतिम्।
प्रेतवस्त्रे लिखेद्यन्त्रं अङ्गारेणैव तत्पुनः॥१११॥

मण्डूकवदने न्यस्येत्पीतसूत्रेण वेष्टितम्। पूजितं पीतपुष्पैस्तद्वाचं संस्तम्भयेद्द्विषाम्॥११२॥

वाम हाथ में श्मशान से प्राप्त कौड़ी तथा चिता का कोयला लेकर वहीं यन्त्र बनाये। यन्त्र को मन्त्रित करके भूमि में रखे। (छिपाये) यह शत्रु की गति का स्तम्भन करता है। मृतक के कफन पर चिता के कोयले से यन्त्र बनाये। उसे पीले वस्त्र में लपेट कर मण्डूक के मुख में रखकर पीले पुष्प से पूजा करे। इससे शत्रु का वाक् स्तम्भन होगा।।११०-११२।।

यद्भूमौ भविता दिव्यं तत्र यन्त्रं समालिखेत्।
मार्जितं तद्द्विषां पात्रैर्दिव्यस्तम्भनकृद्भवेत्॥११३॥

इन्द्रवारुणिकामूलं सप्तशो मनुमन्त्रितम्।
क्षिप्तं जले दिव्यकृतं जलस्तम्भनकारकम्॥११४॥

किं बहूक्त्या साधकेन मन्त्रः सम्यगुपासितः।
शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनो नात्र संशयः॥११५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे यक्षिणीमन्त्रसाधननिरूपणं नाम षडशीतितमोऽध्यायः॥८६॥
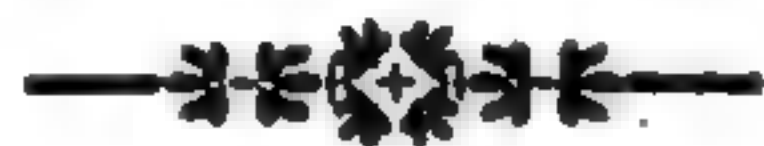
भूमि पर लौंग से यन्त्र बनाकर शत्रु के पात्र से मिटायें। इससे दिव्य स्तम्भन होगा। इन्द्र वारुणी की जड़ को लाकर उसे इस मन्त्र से सप्तधा मन्त्रित करके जल में फेंके। यह दिव्य जलस्तम्भन है। किम्बहुना इस मन्त्र की उपासना सम्यक्तः करने वाला शत्रु की गति, बुद्धि प्रभृति का स्तम्भन निःसंदेह कर देता है।।११३-११५।।

।।८६वां अध्याय समाप्त।।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

दुर्गा मन्त्रों का सविधि-वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अवतारत्रयं लक्ष्म्याः कथितं ते द्विजोत्तम। दुर्गायाश्चाभिधास्यामि सर्वलोकोपकारकान्॥१॥

प्रणवः श्रीः शिवायुग्मं वाणीवैरोचनीपदम्। वज्राद्यं क्षुधिता सूक्ष्मा मृता स्वाग्नीन्दुसंयुता॥२॥

प्रतिष्ठाप्य शिवा फट् च स्वाहान्तोऽत्यष्टिवर्णवान्।
भैरवोऽस्य मुनिः सम्राट् छन्दो मन्त्रस्य देवता॥३॥
छिन्नमस्ता रमा बीजं स्वाहा शक्तिरुदीरिता।
आं खड्गाय हृदाख्यातमीं खड्गाय शिरः स्मृतम्॥४॥
ऊँ वज्राय शिखा प्रोक्ता ऐं पाशाय तनुच्छदम्।
ओमङ्कुशाय नेत्रं स्याद्विसर्गो वसुरक्षयुक्॥५॥
मायायुग्मं चास्त्रमङ्गम् मनवः प्रणवादिकाः।
स्वाहान्ताश्चैवमङ्गानि कृत्वा ध्ययायेदथाम्बिकाम्॥६॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—मैंने इतिपूर्व लक्ष्मी के अवतारत्रय का वर्णन किया है। श्लोक-२ में 'प्रणवः' से लगाकर श्लोक ३ में "स्वाहान्तो" तक यह मन्त्र वर्णित है। (मन्त्रोद्धार करके तब प्रयोग करे)। इस मन्त्र के ऋषि भैरव हैं। छन्दः है सम्राट। देवता हैं छिन्नमस्ता। 'श्रीं' बीज है। शक्ति है स्वाहा। आं खड्गाय से हृदय, ई खड्गाय से शिर, ॐ वज्राय से शिखा, ऐं पाशाय से तनुच्छद, ओं अंकुशाय से नेत्र, अः से कवच, दो माया बीज से अस्त्र (हुं फट्) कहे। इन मन्त्रों के प्रारंभ में प्रणव लगाये। अन्त में स्वाहा लगाकर अंगन्यास करे। तदनन्तर अम्बिका का ध्यान करे।।१-६।।

भानुमण्डलसंस्थानां प्रविकीर्णालकं शिरः।
छिन्नं स्वकं स्फारमुखं स्वरक्तं प्रपिबद्गलात्॥७॥

उपरिस्थां रतासक्तरतिमन्मथयोर्निजे। डाकिनीवर्णिनीसख्यौ दृष्ट्वा मोदभराकुलाम्॥८॥

ये देवी छिन्नमस्ता सूर्यमण्डल संस्थिता हैं। उनके केश बिखरे हैं। उन्होंने शिर काट कर बाहों में धारण किया है। मुख प्रसारित है, जिसमें बहते रक्त का पान कर रही हैं। वे अपनी डाकिनी तथा वर्णिनी सखियों को देखकर मोद से भर गई हैं।।७-८।।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशान्तः। पालाशैर्विल्वजैर्वापि जुहुयात्कुसुमैः फलैः॥९॥

आधारशक्तिमारभ्य परतत्त्वान्तपूजिते। पीठे जयाख्या विजया जिता चापि पराजिता॥१०॥

नित्या विलासिनी षष्ठी दोग्ध्र्यधोरा च मङ्गला।
दिक्षु मध्ये च सम्पूज्या नव पीठस्य शक्तयः॥११॥

यह ध्यान करके एक लाख जप करने के उपरान्त दस हजार होम पलाश किंवा विल्व के फल-पुष्प से पीठ पर करे। आधारशक्ति से लगाकर परतत्वान्त तक पूजा करे। जया, विजया, जिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा, मंगला, ये ९ पीठशक्तिगण हैं। इनकी पूजा दिशा मध्य में करे।।९-११।।

सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वभृगुः सदृक्। सिद्धिप्रदे डाकिनीये तारो वज्रः सभौतिकः।।१२।।
खड्गीशो रोचनीयन्ते भगं धेहि नमोन्तकः। तारादिपीठमन्त्रोऽयं वेदरामाक्षरो मतः।।१३।।
समर्प्यासनमेतेन तत्र सम्पूजयेच्छिवाम्। त्रिकोणमध्यषट्कोणपद्मभूपुरमध्यतः।।१४।।
बाह्यावरणमारभ्य पूजयेत्प्रतिलोमतः। भूपुरे बाह्यमार्गेषु वज्रादीनि प्रपूजयेत्।।१५।।
तदन्तः सुरराजादीन्पूजयेद्धरितां पतीन्। भूपुरस्य चतुर्द्वार्षु द्वारपालान्यजेदथ।।१६।।
करालविकरालाख्यावतिकालस्तृतीयकः। महाकालश्चतुर्थः स्यादथ पद्मेष्टशक्तयः।।१७।।

एकलिङ्गा योगिनी च डाकिनी भैरवी तथा।
महाभैरवकेन्द्राक्षी त्वसिताङ्गी तु सप्तमी।।१८।।
संहारिण्यष्टमी चेति षट्कोणेष्वङ्गमूर्तयः।
त्रिकोणगाच्छिन्नमस्ता पार्श्वयोस्तु सखीद्वयम्।।१९।।
डाकिनीवर्णनीसंज्ञं तारावाग्भ्यां प्रपूजयेत्।
एवं पूजादिभिः सिद्धे मन्त्रे मन्त्री मनोरथान्।।२०।।

पीठ मन्त्र है यह श्लोक १२ से लगाकर श्लोक १३ में "नमोन्तकः" तक है (मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। यह तारापीठ का मन्त्र है। इससे आसन प्रदान करके उस पर शिवा की पूजा करनी चाहिये। त्रिकोण, मध्य षट्कोण, पद्मभूपुर मध्य में वाह्यावरण से आरम्भ कर प्रतिलोमतः पूजा करे। भूपुर के बाह्यमार्ग में वज्रादि आयुध पूजा करे। उसके अन्दर देवराज प्रभृति दिक्पालों की पूजा की जायें तदनन्तर भूपुर के चतुर्द्वार पर द्वारपालार्चन करे। कराल, विकराल, अतिकाल, महाकाल ये द्वारपाल हैं। तदनन्तर आठ पद्मेष्ट शक्ति की पूजा करे जिनके नाम हैं एकलिंगा, योगिनी, डाकिनी, भैरवी, महाभैरवी, इन्द्राक्षी, असितांगी, संहारिणी। तदनन्तर षट्कोणान्तर्गत् त्रिकोणगा, छिन्नमस्ता प्रभृति अंगमूर्त्तिगण की अर्चना करके उनके दोनों पार्श्व में डाकिनी तथा वर्णिनी नामक देवी सखीगण की पूजा तारक बीज से करे। इस प्रकार पूजन से साधक का मनोरथ सिद्ध होगा।।१२-२०।।

प्राप्नुयान्निखिलान्सद्यो दुर्लभांस्तत्प्रसादतः।
श्रीपुष्पैर्लभते लक्ष्मीं तत्फलैश्च समीहितम्।।२१।।
वाक्सिद्धिं मालतीपुष्पैश्चम्पकैर्हवनात्सुखम्।
घृताक्तं छागमांसं यो जुहुयात्प्रत्यहं शतम्।।२२।।
मासमेकं तु वशगास्तस्य स्युः सर्वपार्थिवाः।
करवीरकुसुमैः श्वेतैर्लक्षसङ्ख्यैर्जुहोति यः।।२३।।

रोगजालं पराभूय सुखी जीवेच्छतं समाः।
रक्तैस्तत्सङ्ख्यया हुत्वा वशयेन्मन्त्रिणो नृपान्॥२४॥

इस मन्त्र सिद्धि के प्रभाव से साधक तत्काल सर्वमनोरथ प्राप्त करता है, भले वे कितने दुर्लभ क्यों न हों। श्री पुष्प से होम द्वारा लक्ष्मीलाभ होता है। उसके फल से होम द्वारा मनःकामना पूर्त्ति, मालती पुष्प होम द्वारा वाक्सिद्धि, चम्पा पुष्प से होम द्वारा सुखलाभ होता है। नित्य एक मास पर्यन्त बकरे के मांस में घी मिलाकर होम करे। समस्त राजा वशीभूत हो जाते हैं। इसमें नित्य १०० होम करे। श्वेत कनेर पुष्प से एक लाख होम करने वाला रोगों पर विजय पाकर शतवर्ष आयु पाता है तथा सुखपूर्वक जीवित रहता है। जो इतनी संख्या के लाल कनेर पुष्पों से होम करेगा, मन्त्री उसके वशीभूत हो जाते हैं।।२१-२४।।

फलैर्हुत्वाप्नुयाल्लक्ष्मीमुदुम्बरपलाशजैः। गोमायुमांसैस्तामेव कवितां पायसान्धसा॥२५॥
बन्धूककुसुमैर्भाग्यं कर्णिकारैः समीहितम्। तिलतण्डुलहोमेन वशयेन्निखिलाञ्जनान्॥२६॥
नारीरजोभिराकृष्टैर्मृगमांसैः समीहितम्। स्तम्भनं माहिषैर्मांसैः पङ्कजैः सघृतैरपि॥२७॥

गूलर तथा पलाश पुष्प से होम करने से लक्ष्मी लाभ होता है। (गूलर का पुष्प तो अत्यन्त अलभ्य है)। बन्धूक पुष्प के होम से सौभाग्य, कर्णिकार पुष्प से होम द्वारा मनःकामना पूर्त्ति, तिल-तण्डुल से होम द्वारा सब पर वशीकरण की प्राप्ति, मृगमांस तथा नारी के रजः से होम द्वारा सर्वाभिलाषा पूर्त्ति, महिष मांस तथा घृत मिश्रित कमलों के होम द्वारा स्तम्भन सिद्धि होती है।।२५-२७।।

चिताग्नौ परभृत्पक्षैर्जुहुयादरिमृत्यवे। उन्मत्तकाष्ठदीप्तेऽग्नौ तत्फलं वायसच्छदैः॥२८॥
द्यूते वने नृपद्वारे समरे वैरिसङ्कटे। विजयं लभते मन्त्री ध्यायन्देवीं जपन्मनुम्॥२९॥
भुक्त्यै मुक्त्यै सितां ध्यायेदुच्चाटे नीलरोचिषम्।
रक्तां वश्ये मृतौ धूम्रां स्तम्भने कनकप्रभाम्॥३०॥

शत्रु मारणार्थ चिताग्नि पर काक पंख से होम करे। किंवा धतूरा काष्ठ की अग्नि में काक पंख जलाये। यही फल होगा। जूआ, वन, राजद्वार, युद्ध तथा शत्रु संकट में देवी ध्यान तथा मन्त्रजप कर्त्ता विजय प्राप्त करेगा। भुक्ति-मुक्ति हेतु श्वेत वर्णा इन देवी का ध्यान करे। उच्चाटनार्थ नीलवर्णा देवी का, वशीकरणार्थ रक्तवर्णा देवी का, मृत्युकार्य हेतु धूम्र वर्णा देवी का, स्तम्भनार्थ स्वर्णवर्णा देवी का ध्यान करे।।२८-३०।।

निशि दद्याद्बलिं तस्यै सिद्धये मदिरादिना।
गोपनीयः प्रयोगोऽयं प्रोच्यते सर्वसिद्धिदः॥३१॥
भूताहे कृष्णपक्षस्य मध्यरात्रे तमोघने। स्नात्वा रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यानुलेपनः॥३२॥
आनीय पूजयेन्नारीं छिन्नमस्तास्वरूपिणीम्।
सुन्दरीं यौवनाक्रान्तां नरपञ्चकगामिनीम्॥३३॥
सुस्मितां मुक्तकबरीं भूषादानप्रतोषिताम्। विवस्त्रां पूजयित्वैनमयुतं प्रजपेन्मनुम्॥३४॥
बलिं दत्त्वा निशां नीत्वा सम्प्रेष्य धनतोषिताम्। भोजयेद्विविधैरन्नैर्ब्राह्मणान्भोजनादिना॥३५॥

सिद्धिलाभार्थ देवी को रात्रिकाल में मद्यादि बलि प्रदान करे। इन सब सवार्थप्रद प्रयोगों को गोपित

रखना चाहिये। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी के घोर तमसाच्छन्न निशाकाल में स्नान करके लाल वस्त्र तथा लाल माला एवं लेप धारण करे और छिन्नमस्ता ऐसी आकृति वाली सुन्दरी, यौवनसम्पन्न, पांच लोगों से समागम करने वाली, उत्तम मुस्कान युक्त, मुक्तकेशी, आभूषणभूषित ललना को विवस्त्र करके पूजा करे। तदनन्तर १०००० मन्त्र जप तथा बलि अर्पण करना होगा। इस प्रकार रात बीत जाने पर उस नारी को धनादि से सन्तुष्ट करके विदा करे। तदनन्तर प्रातः विविध अन्न-भोजनादि से सविधि ब्राह्मण भोजन कराये।।३१-३५।।

अनेन विधिना लक्ष्मीं पुत्रान्पौत्रान्धनं यशः।
नारीमायुः सुखं धर्ममिष्टं च समवाप्नुयात्॥३६॥

तस्यां रात्रौव्रतं कार्यं विद्याकामेन मन्त्रिणा। मनोरथेषु चान्येषु गच्छेत्तां प्रजपेन्मनुम्॥३७॥

उषस्युत्थाय शय्यायामुपविष्टो जपेच्छतम्।
षण्मासाभ्यन्तरे मन्त्री कवित्वेन जयेत्कविम्॥३८॥

इस विधि से अनुष्ठान करने पर लक्ष्मी, पुत्र-पौत्र, धन, यश नारी, आयु, सुख, धर्म तथा इष्टलाभ होगा। विद्याकामी उस रात व्रती रहें। अन्य वांछालभार्थ नित्य रात्रि पर्यन्त मन्त्र जप करे। तदनन्तर प्रातः शय्या पर ही बैठे हुये वह मन्त्र १०० बार जपे। वह साधक ६ माह में अपनी कवित्व शक्ति के प्रभाव से अन्य कवियों पर विजयलाभ करता है।।३६-३८।।

शिवेन कीलिता चेयं तदुत्कीलनमुच्यते। मायां तारपुटां मन्त्री जपेदष्टोत्तरं शतम्॥३९॥

मन्त्रस्यादौ तथैवान्ते भवेत्सिद्धिप्रदा तु सा। उदिता छिन्नमस्तेयं कलौ शीघ्रमभीष्टदा॥४०॥

अवतारान्तरं देव्या वच्मि ते मुनिसत्तम। ज्ञानामृतारुणा श्वेता क्रोधिनीन्दुसमन्विता॥४१॥

शान्तिस्तथाविधा चापि नीच सर्गान्वितास्तथा।
वाग्भवं कामराजाख्यं शक्तिबीजाह्वयं तथा॥४२॥

शिव ने छिन्नमस्ता का मन्त्र कीलित किया है। उसका उत्कीलन कहता हूं। "ॐ ह्रीं ॐ" से सम्पुटित करके छिन्नमस्ता मन्त्र ८०० बार जपे। इससे देवी सिद्धिप्रदा हो जाती हैं। कलिकाल में ये देवी शीघ्र फलदात्री हो जाती हैं। हे मुनिप्रवर! अब देवी के अन्य अवतार का वर्णन करता हूं। इनका (त्रिपुरभैरवी) का मन्त्र श्लोक ४१ में "ज्ञानामृता" से लगाकर श्लोक ४२ में "शक्तिबीजाह्वयं" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)।।३९-४२।।

त्रिभिर्बीजैः पञ्चकूटात्मिका त्रिपुरभैरवी।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पङ्क्तिरुदीरिता॥४३॥

देवता देशिकैरुक्ता देवी त्रिपुरभैरवी। नाभेराचरणं न्यस्य वाग्भवं मन्त्रवित्पुनः॥४४॥

हृदयान्नाभिपर्यन्तं कामबीजं प्रविन्यसेत्। शिरसो हृत्प्रदेशान्तं तार्तीयं विन्यसेत्ततः॥४५॥

आद्यं द्वितीयं करयोस्तार्तीयमुभयं न्यसेत्।
मूलाधारे हृदि न्यस्य भूयो बीजत्रयं क्रमात्॥४६॥

नवयोन्यात्मकं न्यासं कुर्याद्बीजैस्त्रिभिः पुनः। बालोदितप्रकारेण मूर्तिन्यासमथाचरेत्॥४७॥

तीन बीज तथा पंचकूटात्मिका त्रिपुर भैरवी मन्त्र है। इसके ऋषि हैं दक्षिणामूर्त्ति तथा छन्दः है पंक्ति। देवता हैं देशिकगण के अनुसार हैं त्रिपुरभैरवी। नाभि में वाग्भव का आचरण (न्यास) करके हृदय से नाभि तक काम बीज का, शिर से हृदय तक तार्त्तीय बीजन्यास करे। आद्य, द्वितीय, तृतीय बीज का न्यास बाहुद्वय में करे। तब मूलाधार तथा हृदय में क्रमिक रूप से तीनों बीज का न्यास करने के उपरान्त इन तीन बीजों द्वारा नवयोन्यान्यास करे। तत्पश्चात् देवी के उपदेशानुसार मूर्त्तिन्यास सम्पन्न करना चाहिये।।४३-४७।।

स्वस्वबीजादिकं पूर्वं मूर्ध्नीशानमनोभवम्। न्यसेद्वक्रो तत्पुरुषं मकरध्वजमात्मवित्।।४८।।
हृद्यघोरकुमारादिकन्दर्प्यं तदनन्तरम्। गुह्यदेशे प्रविन्यस्येद्वामदेवादिमन्मथम्।।४९।।
सद्योजातं कामदेवं पादयोर्विन्यसेत्ततः।
ऊर्ध्वं प्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु तान्।।५०।।
प्रविन्यसेद्यथापूर्वं भृगुव्योमाग्निसंस्थितः। सद्यादिपञ्चह्रस्वाद्या बीजमेषां प्रकीर्तितम्।।५१।।
षड्दीर्घयुक्तेनाद्येन बीजेनाङ्गक्रिया मता। पञ्चबाणांस्ततो न्यस्येन्मन्त्री त्रैलोक्यमोहनान्।।५२।।
द्रामाद्यां द्राविणीं मूर्ध्नि द्रामाद्यां क्षोभणी पदे।
क्लींवशीकरणीं वक्त्रे गुह्ये ब्लूं बीजपूर्विकाम्।।५३।।
आकर्षणीं हृदि पुनः सर्वान्तभृगुसंस्थिताम्।
सम्मोहनीं क्रमादेवं बाणान्यासोऽयमीरितः।।५४।।

जो आत्मविद् हैं वह मस्तक, मुख में उनके उनके बीज आदि से मस्तक पर शिव ईशान का तथा मनोभव का न्यास करे। मुख पर तत्पुरुष तथा मकरध्वज का न्यास करे। हृदय में अघोर, कुमार, काम का न्यास करके गुह्य में वामदेव आदि का तथा मन्मथ का न्यास करे। तदनन्तर गुह्य में वामदेववादि तथा मन्मथ का न्यास करे, सद्योजात तथा कामदेव का न्यास दोनों चरण में करे। ऊर्ध्व में, पूर्व-दक्षिण-उत्तर-पश्चिमदिक् में यथापूर्व कथित देवगण का न्यास करे। इनका बीज है श्लोक ५१ में "भृगुव्योमाग्नि" से लगाकर "सद्यादि पंच ह्रस्वाद्या" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें) षड्दीर्घयुक्त आद्य बीजमन्त्र से अंगन्यास करे। तब मन्त्री त्रैलोक्य मोहन पंच बाण का न्यास करे। "द्रामाद्याद्राविणी" ये शिर में, "द्रामाद्या क्षोभणी" का पैरों में, "क्लीं वशीकरणी" का मुख में, 'ब्लूं' बीज से गुह्य में, आकर्षणी का हृदय में, सर्वान्त में भृगुसंस्थित सम्मोहनी का हृदय में पुनः न्यास करे। यह क्रमपूर्वक करे। यही बाणन्यास है।।४८-५४।।

भालभ्रूमध्यवदने घण्टिकाकण्ठहृत्सु च।
नाभ्यधिष्ठानयोः पञ्च ताराद्याः सुभगादिकाः।।५५।।
मस्तकावधि नाभेश्च मन्त्रिणा सुभगा भगा। भगसर्पिण्यथ परा भगमालिन्यनन्तरम्।।५६।।
अनङ्गानङ्गकुसुमा भूयश्चानङ्गमेखला। अनङ्गमदना सर्वा मदविभ्रममन्थरा।।५७।।
प्रधानदेवता वर्णभूषणाद्यैरलङ्कृताः। अक्षस्त्रक्पुस्तकाभीतिवरदाढ्यकराम्बुजाः।।५८।।
वाक्कामब्लूं स्त्रीं सरान्ते ताराः पञ्च प्रकीर्तिताः।
ततः कुर्याद्भूषणाढ्यं न्याससमुक्तदिशा मुने।।५९।।

भाल, भ्रूमध्य, मुख, घण्टिका, कण्ठ, हृदय, नाभि तथा अधिष्ठान में सुभगा प्रभृति पंचताराद्या का न्यास करे। ये पंचतारा देवी हैं—सुभगा, भगा, भगसर्पिणी, परा, भगमालिनी। अनंगा, अनंगकुसुमा, अनंगमेखला तथा अनंग मदना की पूजा करे। ये सभी मदविभ्रम तथा मन्थरगति वाली हैं। ये प्रधान देवता वर्ण-भूषणादि से अलंकृत हैं। करकमल में इन्होंने अक्षमाला, पुस्तक, अभय तथा वरदायक मुद्रा धारण किया है। पंचतारा भी हैं, उनका मन्त्र श्लोक ५९ में "वाक्काम" से लेकर "ताराः" तक है (इसका मन्त्रोद्धार करें)। इनकी दिशा में (जो पूर्व में कही गयी है) भूषण न्यास करे।।५५-५९।।

एवं न्यस्तशरीरोऽसौ ध्यायेत्त्रिपुरभैरवीम्। सहस्रभानुसङ्काशामरुणक्षौमवाससीम्।।६०।।
शिरोमालामसृग्लिप्तस्तनीं जपवटीं करैः।
विद्यामभीतिं च वरं दधतीं त्रीक्षणाननाम्।।६१।।
दीक्षां प्राप्य जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः। पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षजैः।।६२।।
त्रिमध्वक्तैः प्रसूनैर्वा करवीरसमुद्भवैः। पद्मं वसुदलोपेतं नवयोन्यष्टकर्णिकम्।।६३।।
इच्छादिशक्तिभिर्युक्तं भैरव्याः पीठमर्चयेत्।
इच्छा ज्ञाना क्रिया पश्चात्कामिनी कामदायिनी।।६४।।
रतिप्रिया मदानन्दा नवमी स्यान्मनोन्मनी।
वरदाभयधारिण्यः सम्प्रोक्ता नव शक्तयः।।६५।।

इस प्रकार सम्पूर्ण देह में न्यास करके त्रिपुरभैरवी का ध्यान करना चाहिये। वे सहस्त्रों सूर्य के समान दीप्तिमान हैं। उन्होंने अरुण वर्ण का रेशमी वस्त्र धारण किया है। उनके शिर पर माला है, उनके स्तन रक्त से लिप्त है। उनके हाथ में जपमाला, विद्या, अभय तथा वरमुद्रा है। उनका चेहरा त्रिनेत्र है। इन्द्रियजित् व्यक्ति मन्त्र की गुरुदीक्षा लेकर एक लक्ष मन्त्र जप करे। पलाशपुष्प से १०००० हवन करे। किंवा त्रिमधुरयुक्त कनेर पुष्प से होम कर सकते हैं। तत्पश्चात् अष्टदल कमल, नवयोनि अष्टकर्णिका, इच्छादि शक्तियुत भैरवी पीठ पर अर्चना करे। नौ शक्तियां हैं—इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रतिप्रिया, मन्दा, आनदा, मनोन्मनी। वे सभी वर एवं अभय मुद्रा युक्त हैं।।६०-६५।।

वाग्भवं लोहितो रायै श्रीकण्ठो लोहितोऽनलः।
दीर्घवान्यै परा पश्चादपरायौ हसौ युतः।।६६।।
सदाशिवमहाप्रेतङेन्तं पद्मासनं नमः। अनेन मनुना दद्यादासनं श्रीगुरुक्रमम्।।६७।।
प्राङ्मध्ययोन्यन्तराले पूजयेत्कल्पयेत्ततः।
पञ्चभिः प्रणवैर्मूर्तिं तस्यामावाह्य देवताम्।।६८।।

अब आसन प्रदान करे। उसका मन्त्र श्लोक ६६ से लगाकर श्लोक ६७ में "पद्मासनं नमः" पर्यन्त है। इस मन्त्र से श्रीगुरुक्रमेण आसन अर्पित करे। तदनन्तर प्रथम एवं मध्यम योनि के अन्तराल में पूजा करे। ५ प्रणव के उच्चारण द्वारा मूर्त्ति में देवता का आवाहन करना चाहिये।।६६-६८।।

पूजयेदागमोक्तेन विधानेन समाहितः। तारावाक्छक्तिकमला हसखफ्रें हसौः स्मृताः।।६९।।

वामकोणे यजेद्देव्या रतिमिन्दुसमप्रभाम्। सृणिपाशधरां सौम्या मदविभ्रमविह्वलाम्।।७०।।

प्रीतिं दक्षिणकोणस्थां तप्त काञ्चनसन्निभाम्।
अङ्कुशं प्रणतं दोर्भ्यां धारयन्तीं समर्चयेत्।।७१।।

समाहित होकर आगमोक्त विधान से पूजा करे। ''तारा, वाक्शक्ति, कमला हसखफ्रें हसौः मन्त्र है। (इसका मन्त्रोद्धार करें, तब प्रयोग करे)। इस मन्त्र से बायें कोण में रति की अर्चना करे, जो चन्द्र के समान प्रभावान्, अंकुशपाशधारिणी, सौम्य मद के कारण मत्त तथा उसी कारण विह्वल नेत्रा हैं। दक्षिण कोण में प्रीति की अर्चना करे, जो स्वर्णकान्ति, अंकुश-पाशधारिणी हैं।।६९-७१।।

अग्रे मनोभवां रक्तां रक्तपुष्पाद्यलङ्कृताम्।
इक्षुकार्मुकपुष्पेषुधारिणीं सस्मिताननाम्।।७२।।

अङ्गान्यभ्यर्चयेत्पश्चाद्यर्थापूर्वं विधानवित्। दिक्ष्वग्रे च निजैर्मन्त्रैः पूजयेद्बाणदेवताः।।७३।।

हस्ताब्जैर्धृतपुष्पेषुप्रणामामृतसप्रभाः। अष्टयोनिष्वष्टशक्तीः पूजयेत्सुभगादिकाः।।७४।।

मातरो भैरवाङ्कस्था मदविभ्रमविह्वलाः। अष्टपत्रेषुसम्पूज्या यथावत्कुसुमादिभिः।।७५।।

लोकपालांस्ततो दिक्षु तेषामस्त्राणि तद्बहिः। पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैर्ज्ञात्वैनां परदेवताम्।।७६।।

अग्रभाग में रक्तवर्णा, रक्तवर्णपुष्पों से अलंकृता, ईख के धनुष तथा पुष्पबाण धारण करने वाली, मुस्कानयुक्त मुखमण्डल वाली मनोभवा की पूजा करे। तदनन्तर यथापूर्व विधान द्वारा अंगपूजा करे। इसके पश्चात् दिशाओं में उनके मन्त्र से वाणदेव की पूजा करे। अष्ट योनि में अष्ट शक्ति सुभगादि की पूजा करे। ये मातायें भैरव की गोद में स्थित मद विभ्रम से विह्वल नेत्रों वाली हैं। इनकी पूजा अष्टपत्र पर पुष्पादि से करे। तत्पश्चात् चारों दिक् तथा चारों विदिक् में लोकपालगण की पूजा करके उसके बाहर इनके आयुध का पूजन करे। जो पूर्व जन्म के पुण्य से इन परदेवता की पूजा करता है।।७२-७६।।

यो भजेदुक्तमार्गेण स भवेत्सम्पदां पदम्। एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः।।७७।।

जुहुयादरुणाम्भोजैरदोषैर्मधुराप्लुतैः। लक्षसङ्ख्यं तदर्द्धं वा प्रत्यहं भोजयेद्द्विजान्।।७८।।

वनिता युवती रम्यां प्रीणयेद्देवताधिया। होमान्ते धनधान्याद्यैस्तोषयेद् गुरुमात्मनः।।७९।।

वह इस प्रकार से इनकी पूजा के फलस्वरूप सम्पदा का स्वामी होता है। एवंविध मन्त्रसिद्ध करने वाला मन्त्री अब अपने इष्ट की पूजा करे। दोषरहित रक्त वर्ण कमलों में मधुलिप्त करके एक लक्ष अथवा पचास हजार होम करे। नित्य ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करे। रम्य, युवती, स्त्रियों के प्रति देवता बुद्धि से उनको प्रसन्न करे। होमान्त में अपने गुरु को धन-धान्यादि देकर सन्तुष्ट करे।।७७-७९।।

एवं कृते जगद्वश्यो रमाया भवनं भवेत्। रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैररुणैर्वा हयारिजैः।।८०।।

पुष्पैः पयोन्नैः सघृतैर्होमाद्विश्वं वशं नयेत्।
वाक्सिद्धिं लभते मन्त्री पलाशकुसुमैर्हुतैः।।८१।।

कर्पूरागुरुसंयुक्तं गुग्गुलं जुहुयात्सुधीः। ज्ञानं दिव्यमवाप्नोति तेनैव स भवेत्कविः।।८२।।

ऐसा करने वाले साधक के वश में संसार हो जाता है। उसके गृह में लक्ष्मी स्थित रहती हैं। त्रिमधुर

युक्त रक्तकमल तथा लाल कनेर पुष्प से जो होम करता है, उस साधक को वाक्‌सिद्धि मिलती है। जो व्यक्ति कपूर एवं गुग्गुलु को मिश्रित करके होम करेगा, उसे दिव्य ज्ञान तथा कविता शक्ति आयत्त होना निश्चित है।।८०-८२।।

क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमः सर्वापमृत्युजित्। दूर्वाभिरायुषे होमः क्षीराक्तार्दिनत्रयम्।।८३।।
गिरिकर्णीभवैः पुष्पैर्ब्राह्मणान्वशयेद्धुतैः। कह्लारैः पार्थिवान्पुष्पैस्तद्वधूः कर्णिकारजैः।।८४।।
मल्लिकाकुसुमैर्हुत्वा राजपुत्रान्वशं नयेत्। कोरण्टकुसुमैर्वैश्यान्वृषलान्पाटलोद्भवैः।।८५।।

दुग्ध में गुरुच (अमृता) भिंगोकर होम करने से अकालमृत्यु विजित हो जाती है। दुग्ध एवं दूर्वा मिलाकर ३ दिन होम करने वाले को आयु प्राप्त होती है। जो व्यक्ति गिरिकर्णी के फूलों से होम करता है, वह ब्राह्मणों को वशीभूत कर लेता है। श्वेतकमल से होम द्वारा राजा, कर्णिकार फूलों से होम द्वारा रानी, मालती पुष्प से होम द्वारा राजा के पुत्र, कोरंट पुष्प से होम द्वारा वैश्य तथा पाटल पुष्प से होम द्वारा शूद्र वश में हो जाते हैं।।८३-८५।।

अनुलोमं विलोमान्तस्थितसाध्याह्वयान्वितम्।
मन्त्रमुच्चार्य जुहुयान्मन्त्री मधुरलोलितैः।।८६।।
सर्षपैर्मधुसंमिश्रैर्वशयेत्पार्थिवान् क्षणात्। अनेनैव विधानेन तत्पत्नीस्तत्सुतानपि।।८७।।
जातिबिल्वभवैः पुष्पैर्मधुरत्रयसंयुतैः। नरनारीनरपतीन्होमेन वशयेत्क्रमात्।।८८।।

अनुलोम-विलोमरूपेण मन्त्रोच्चार करते-करते मधुलिप्त सरसों से हवन द्वारा तत्काल राजा वशीभूत होगा। इसी से राजपत्नीगण एवं राजपुत्र वश में हो जाते हैं। त्रिमधुर में बिल्वपुष्प मिलाकर होम करे। राजा तथा नर-नारी वशीभूत होते हैं।।८६-८८।।

मालतीबकुलोद्भूतैः पुष्पैश्चन्दनलोलितैः। जुहुयात्कवितां मन्त्री लभते वत्सरान्तरे।।८९।।
मधुरत्रयसंयुक्तैः फलैर्बिल्वसमुद्भवैः। जुहुयाद्वशयेल्लोकं श्रियं प्राप्नोति वाञ्छिताम्।।९०।।
साज्यमन्नं प्रजुहुयाद्भवेदन्नसमृद्धिमान्। कस्तूरीकुङ्कुमोपेतं कर्पूरं जुहुयाद्वशी।।९१।।
कन्दर्पादधिकं सद्यः सौन्दर्यमधिगच्छति। लाजान्प्रजुहुयान्मन्त्री दधिक्षीरमधुप्लुतान्।।९२।।
विजित्य रोगानखिलान्स जीवेच्छरदां शतम्। पादद्वयं मलयजं पादं कुङ्कुमकेसरम्।।९३।।
पादं गोरोचनान्तानि त्रीणि पिष्ट्वा हिमाम्भसा।
विदध्यात्तिलकं भाले यान्पश्येद्यैर्विलोक्यते।।९४।।
यान्स्पृशेत्स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात्।
कर्पूरकपिचोराणि समभागानि कल्पयेत्।।९५।।
चतुर्भुजा जटामांसी तावती रोचना मता।
कुङ्कुमं समभागं स्याद्दिग्भागं चन्दनं मतम्।।९६।।
अगुरुर्नवभागं स्यादिति भागक्रमेण च। हिमाद्भिः कन्यया पिष्टमेतत्सर्वं सुसाधितम्।।९७।।

आदाय तिलकं भाले कुर्य्याद्भूमिपतीन्नरान्।
वनितामदगर्वाढ्या मदोन्मत्तान्मतङ्गजान्॥९८॥
सिंहव्याघ्रान्महासर्पान्भूतवेतालराक्षसान्। दर्शनामेव वशयेत्तिलकं धारयेन्नरः॥९९॥

एक वर्ष पर्यन्त जूही मालती, बकुल पुष्प को चन्दन से लिप्त करके होम करने वाला मन्त्रज्ञ व्यक्ति एक वर्ष के अनन्तर कवित्व लाभ करता है। बिल्व फल को त्रिमधुर में मिलाकर होम करने वाला वांछित धनलाभ करता है। उसके वश में सभी लोक भी हो जाते हैं। घृत से लिप्त अन्न से होम करने वाला अन्न से समृद्ध हो जाता है। कस्तूरी, कुंकुम तथा कपूर मिलाकर होम करने वाला मंत्री व्यक्ति कामदेव से भी अधिक सुरूप होता है। दधि-दुग्ध-मधु लिप्त धान के लावा से होम करने वाला शतायु तथा निरोग रहेगा। दो भाग चन्दन, एक भाग कुंकुम एक पाद अर्थात् १/४ केसर तथा गोरोचन को हिम जल में पीसे। इसका तिलक लगाकर साधक जिसे देखेगा, किंवा स्पर्श करेगा, वे सब तत्काल वशीभूत होंगे। कपूर, रक्तचन्दन, चोरा (एक औषधि) चतुर्भुज, जटामांसी, गोरोचन, कुंकुम सम मात्रा में लें। अब चार भाग चन्दन तथा नौ भाग अगरु लेकर सब मिलाकर हिम जल में पीसे। इसका तिलक लगाये। फलस्वरूप राजा, गर्वभरी स्त्रियां, मदोन्मत्त हाथी, सिंह, व्याघ्र, महासर्प, भूत, वेताल, राक्षस, दृष्टिपात करते ही वशीभूत हो जाते हैं।।८९-९९।।

इत्येषा भैरवी प्रोक्ता ह्यवतारान्तरं शृणु।
वाङ्माया कमला तारो नमोन्ते भगवत्यथ॥१००॥
श्रीमातङ्गेश्वरी वदेत्सर्वजनमनोहरि। सर्वादिसुखराज्यन्ते सर्वादिसुखरञ्जनी॥१०१॥
सर्वराजवशं पश्चात्करिसर्वपदं वदेत्। स्त्रीपुरुषवशं सृष्टिविद्याक्रोधिनिकान्विता॥१०२॥
सर्वं दुष्टमृगवशं करिसर्वपदं ततः। सर्वतत्त्ववशङ्करि सर्वलोकं ततः परम्॥१०३॥
अमुकं मे वशं पश्चादानयानलसुन्दरी। अष्टाशीत्यक्षरो मन्त्रो मुन्याद्या भैरवीगताः॥१०४॥
न्यासान्मन्त्री तनौ कुर्याद्वक्ष्यमाणान्यथाक्रमम्।
शिरोललाटभ्रूमध्ये तालुकण्ठगलोरसि॥१०५॥
अनाहते भुजद्वन्द्वे जठरे नाभिमण्डले। स्वाधिष्ठाने गुप्तदेशे पादयोर्दक्षवामयोः॥१०६॥
मूलाधारे गुदे न्यस्येत्पदान्यष्टादश क्रमात्। गुणैकद्विचतुःषड्भिर्वसुपर्वनवाष्टभिः॥१०७॥
नन्दपङ्क्त्यष्टवेदाग्निचन्द्रयुग्मगुणाक्षिभिः। यदुक्लृप्तिरियिं प्रोक्ता मन्त्रवर्णैर्यथाक्रमम्॥१०८॥
रत्याद्या मूलहृदयभ्रूमध्येषु विचक्षणः।
वाक्शक्तिलक्ष्मीबीजाद्या मातङ्ग्यन्ताः प्रविन्यसेत्॥१०९॥

यह भैरवी प्रसंग मैंने कहा। अब अन्य अवतार सुनें। इनका मन्त्र श्लोक १०० "वाङ्माया" से लगाकर श्लोक १०४ में "पश्चादानयानलसुन्दरी" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें) यह ८८ अक्षर का भैरवी मन्त्र है। इसका इस प्रकार न्यास करे। शिर, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, ग्रीवा, वक्ष, हृदय, बाहुद्वय, उदर, नाभि, स्वाधिष्ठान (लिंग), गुह्य, दाहिने बायें पैर, दाहिने पैर, मूलाधार, गुदा में १८ पदों का न्यास करे। देह में ३, १, २, ४, ६, ८, ९, ८, ९, १, ०, ८, ४, ३, १, २ मन्त्र वर्ण का यथाक्रमेण

न्यास करे। यही यदुक्लृप्ति कहा गया है। अब विचक्षण व्यक्ति मूल, हृदय, भ्रूमध्य में रति, वाक्शक्ति, मातंगी एवं लक्ष्मी बीजादि का न्यास करे।।१००-१०९।।

शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु विधिना न्यसेत्।
हृल्लेखां गगनां रक्तां भूयो मन्त्री करालिकाम्॥११०॥
महोच्छुष्मां स्वनामादिवर्णबीजपुरःसराः।
मातङ्‌ग्यताः षडङ्गानि ततः कुर्वीत साधकः॥१११॥
वर्णैश्चतुर्विंशतिभिर्हृत्त्रयोदशभिः शिरः।
शिखाष्टादशभिः प्रोक्ता वर्म तावद्भिरक्षरैः॥११२॥
स्यात्त्रयोदशभिर्नेत्रं द्वाभ्यामस्त्रं प्रकीर्तितम्।
बाणन्यासं ततः कुर्याद्भैरवीप्रोक्तवर्त्मना॥११३॥

शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद में वहां अपने नाम के प्रथमाक्षर तथा बीज सहित हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका, महीच्छूष्मा का न्यास सविधि करके मातंगी प्रभृति का षडङ्ग न्यास करे। २४ वर्ण से हृदय, त्रयोदश वर्ण से शिर, अष्टादश वर्ण से शिखा तथा १८ वर्ण से त्वचा का न्यास करे। १३ वर्ण से नेत्र न्यास तथा दो से अस्त्र न्यास करे। तदनन्तर बाण न्यास भैरवी में कही विधि से करे।।११०-११३।।

मातङ्गीपदयोश्चान्यं मन्मथन्वदनांशयोः।
पार्श्वकट्योर्नाभिदेशे कटिपार्श्वांशके पुनः॥११४॥
बीजत्रयादिकान्मन्त्री मन्मथं मकरध्वजम्। मदनं पुष्पधन्वानं पञ्चमं कुसुमायुधम्॥११५॥
षष्ठं कन्दर्पनामानं मनोभवरतिप्रियौ। मातङ्‌ग्यन्तास्ततो न्यस्थेत्स्थानेष्वेतेषु मन्त्रवित्॥११६॥
कुसुमा मेखला चैव मदना मदनातुरा। मदनवेगा सम्भवा च भुवनपालेन्दुरेखिका॥११७॥
अनङ्गपदपूर्वाश्च मातङ्‌ग्यन्ताः समीरिताः।
विन्यस्तव्यास्ततो मूलेऽधिष्ठाने मणिपूरके॥११८॥
हृत्कण्ठास्ये भ्रुवोर्मध्ये मस्तके चापि मन्त्रिणः।
आद्ये लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिःप्रीतिश्च कृत्तिका॥११९॥
शान्तिः पुष्टिः पुनस्तुष्टिर्मातङ्गीपदशेखरा।
मूलमन्त्रं पृथङ्न्यस्येन्निजमूर्द्धनि मन्त्रवित्॥१२०॥

मातंगी के चरणद्वय में मन्मथ का न्यास करे। मुख, स्कन्ध, पार्श्व, नाभि, कटि के पार्श्व में बीजत्रय का न्यास पुनः करे। तब मन्मथ, मकरध्वज, मदन, पुष्पधन्वा, कुसुमायुध, कन्दर्प, मनोभव, रतिप्रिया का विशेष स्थानों पर न्यास करे। मन्त्रज्ञ व्यक्ति कुसुमा, मेखला, मदना, मदनातुरा, मदनवगा, संभवा, भुवनपाला, इन्दुरेखा, अनंगपदपूर्वा तथा मातंगी का न्यास करे। तत्पश्चात् साधक को मूलाधार अधिष्ठान, मणिपूर, हृदय, कण्ठ, मुख, भ्रूमध्य, मस्तक पर न्यास करना चाहिये। पहले लक्ष्मी, सरस्वती, रतिः, प्रीति, कृत्तिका,

शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, मातंगी, पद शेखरा का न्यास करे। तदनन्तर साधक मस्तक पर मूलमन्त्र का न्यास करे।।११४-१२०।।

आधारदेशेऽधिष्ठाने नाभौ पश्चादनाहते।
कण्ठदेशे भ्रुवोर्मध्ये बिन्दौ भूयः कला पदोः॥१२१॥
निरोधिकायामर्द्धेन्दुनादे नादान्तयोः पुनः। उन्नतांसेषु वक्त्रे च ध्रुवमण्डलके शिवे॥१२२॥
मातङ्ग्यन्ताः प्रविन्यस्मेद्वामां ज्येष्ठामतः परम्।
रौद्रीं प्रशान्तां श्रद्धाख्यां पुनर्माहेश्वरीमथ॥१२३॥
क्रियाशक्तिं सुलक्ष्मीं च सृष्टिं संज्ञां च मोहिनीम्।
प्रमथाश्वासिनीं विद्युल्लतां चिच्छक्तिमप्यथ॥१२४॥
ततश्च सुन्दरीं निन्दां नन्दबुद्धिमिमाः क्रमात्।
शिरोभालहृदाधारेष्वेता बीजत्रयाधिकाः॥१२५॥
मातङ्ग्याद्याः प्रविन्यस्येद्यथावद्देशिकोत्तमः।
मातङ्गीं महादाद्यां तां महालक्ष्मीपदादिकाम्॥१२६॥

मूलाधार, अधिष्ठान, नाभि, अनाहत, कण्ठ, भ्रूमध्य, विन्दु, कला, पद, निरोधिका, अर्द्धेन्दु, नाद, नादान्त, उन्नतांश, वक्त्र, ध्रुवमण्डल में कुसुमा आदि के न्यासोपरान्त वामा-ज्येष्ठा का न्यास करना चाहिये। रौद्री, प्रशन्ता, श्रद्धा, माहेश्वरी, क्रियाशक्ति, सुलक्ष्मी, सृष्टि, संज्ञा, मोहिनी, प्रमथा, आश्वासिनी, विद्युल्लता, चिच्छक्ति, सुन्दरी, निन्दा, नन्दबुद्धि का क्रमशः न्यास करके शिर, ललाट, हृदय एवं आधार में बीजत्रयाधिका मातंगी आदि का न्यास करे। जैसे गुरु ने बताया था। मातंगी, महादाद्या, महालक्ष्मीपदादिका, सिद्धलक्ष्मीपदाद्या, मूलाधारमण्डल का व्यापक न्यास देशिकोत्तम करे।।१२१-१२६।।

सिद्धलक्ष्मीपदाद्यां च मूलमाधारमण्डलम्।
न्यसेत्तेनैव कुर्वीत व्यापकं देशिकोत्तमः॥१२७॥
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेन्मन्त्रदेवताम्।
श्यामां शुकोक्तिं शृण्वन्तीं न्यस्तैकांघ्रिशिरोरुहाम्॥१२८॥
शशिखण्डधरां वीणां वादयन्तीं मधून्मदाम्।
रक्तांशुकां च कह्लारमालाशोभितचूलिकाम्॥१२९॥
शङ्खपत्रां तु मातङ्गीं चित्रकोद्भासिमस्तकाम्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं तद्दशांशं मधूकजैः॥१३०॥
पुष्पैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयान्मन्त्रसिद्धये। त्रिकोणकर्णिकं पद्ममष्टपत्रं प्रकल्पयेत्॥१३१॥
अष्टपत्रावृत्तं बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः। चतुरस्त्रीकृतं बाह्ये कान्त्या दृष्टिमनोहरम्॥१३२॥
एतस्मिन्पूजयेत्पीठे नवशक्तीः क्रमादिमाः। विभूतिपूर्वाः पूर्वोक्ता मातङ्गीपदपश्चिमाः॥१३३॥

इस क्रम से शरीर का न्यास करके मन्त्रज्ञ साधक श्यामवर्णा, शुक उक्ति सुन रही, शिर तथा चरण का न्यास करने वाली, चन्द्रलेखा धारिणी, वीणावादन करने वाली, मधुपान से उन्मत्त, लाल वस्त्र पहनने वाली, श्वेतकमल की माला से जूड़ा सज्जित किये हुये, शंखधारिणी, भाल पर तिलक विन्दु से शोभिता, ऐसी मन्त्र देवता मातंगी का ध्यान करे। तदनन्तर १०००० मन्त्र जप कर १००० होम त्रिमधुयुक्त को महुआ के पुष्प मिलाकर मन्त्रसिद्धि हेतु होम करे। तदनन्तर त्रिकोण कर्णिका युक्त पद्म, अष्टदल बनाये। अष्टपत्र के बाह्य में वृत्त षोडश दल वाला हो। उसके बाहर चतुरस्र बनाये। इस पीठ पर विभूति तथा मातंगी की पूजा करने के उपरान्त ९ शक्तियों का पूजन करे।।१२७-१३३।।

सर्वान्ते शक्तिकमलासनाय नम इत्यथ।
वाक्सत्यलक्ष्मी बीजाद्य दक्तः पीठार्चने मनुः।।१३४।।
मूलेन मूर्तिसङ्कल्प्य तस्यामावाह्य देवताम्।
अर्चयेद्विधिनानेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रवित्।।१३५।।

पीठ की अर्चना का मन्त्र श्लोक १३४ में "शक्तिकमलासनाय" से लगाकर "वाक्सत्यलक्ष्मी" पर्यन्त है। (मन्त्रोद्धार करके तब प्रयोग करे)। मूल मन्त्र से मूर्त्ति बनाकर उनका आवाहन करे। उनकी पूजा विधिवत् इस क्रम से मन्त्रज्ञ व्यक्ति करे।।१३४-१३५।।

रत्याद्यास्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्पूर्ववत्सुधीः।
हृल्लेखा पञ्चपूज्या मध्ये दिक्षु च मन्त्रिणा।।१३६।।
पाशाङ्कुशाभयाभीष्टधारिण्यो भूतसप्रभाः।
अङ्गानि पूजयेत्पश्चाद्यथापूर्वं विधानवित्।।१३७।।
बाणानभ्यर्चयेद्दिक्षु पञ्चमं पुरतो यजेत्। दलमध्येऽथ सम्पूज्या अनङ्गकुसुमादिकाः।।१३८।।
पाशाङ्कुशाभयाभीष्टधारिण्योऽरुणविग्रहाः ।
पत्राग्रेषु पुनः पूज्या लक्ष्म्याद्या वल्लकीकराः।।१३९।।
बहिरष्टदलेष्वर्च्या मन्मथाद्या मदोद्धताः। अपराङ्गां निषङ्गाद्याः पुष्पास्त्रेषुधनुर्द्धराः।।१४०।।

सुधी साधक तीनों कोणों में रति प्रभृति की पूजा करे। मध्य में एवं चतुर्दिक् हल्लेखा आदि पूर्वोक्त देवीगण की पूजा करे। वे पाश, अंकुश, अभय तथा वरमुद्रा धारिणी हैं। वे भूतप्रभायुक्त हैं (पंचमहाभूतप्रभावाली हैं)। तत्पश्चात् विधानज्ञ साधक पूर्ववत् अंगदेवगण की पूजा करके दिशाओं में पंचबाण के पूजनोपरान्त पत्र मध्य में पाश, अंकुश, अभय एवं वरमुद्राधारिणी, रक्तवर्णा अंनग कुसुमा प्रभृति देवीगण की पूजा सम्पन्न करे। तदनन्तर पत्राग्रभाग में वीणापाणि लक्ष्या आदि की पूजा सम्पन्न करने के अनन्तर अष्टदल कमल के बाहर पुष्पास्त्र, बाण,धनुर्धारिणी मदगर्विता मन्मथा, अपरागा तथा निषंगा देवीगण की पूजा करे।।१३६-१४०।।

पत्रस्था मातरः पूज्या ब्राह्म्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः। तदग्रेष्वर्चयेद्विद्वानसिताङ्गादिभैरवान्।।१४१।।
पुनःषोडशपत्रेषु पूज्याः षोडश शक्तयः।
वामाद्याः कलवीणाभिर्गायन्त्यः श्यामविग्रहाः।।१४२।।

चतुरस्रे चतुर्दिक्षु चतस्रः पूजयेत्पुनः।
मातङ्ग्याद्या मदोन्मत्ता वीणोल्लसितपाणयः॥१४३॥

पत्रों पर पूर्वकथित लक्षणसम्पन्ना ब्राह्मी प्रभृति माताओं की पूजा करके बुद्धिमान् साधक उसके आगे असितांग प्रभृति भैरवों की अर्चना करने के उपरान्त षोडश पत्रों पर षोडशशक्ति पूजन करे। चतुरस्र पर चतुर्दिक् एवं चार कोणों पर श्याम अंगों वाली वीणावादिनी वामा प्रभृति देवीगण के पूजनोपरान्त मदोन्मत्ता वीणा से शोभिता मातंगी आदि देवीगण की पूजा करे।।१४१-१४३।।

आग्नेयकोणे विघ्नेशं दुर्गां नेशाचरे यजेत्।
वायव्ये बटुकान् पश्चादीशाने क्षेत्रपं यजेत्॥१४४॥
लोकपाला बहिः पूज्या वज्राद्यैरायुधैः सह।
मन्त्रेऽस्मिन्सन्धिते मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः॥१४५॥
मल्लिकाजातिपुन्नागैर्होमाद्भाग्यालयो भवेत्। फलैर्बिल्वसमुद्भूतैस्तत्पत्रैर्वा हुताद्भवेत्॥१४६॥
राजपुत्रस्य राज्याप्तिः पङ्कजैः श्रियमाप्नुयात्।
उत्पलैर्वशयेद्विश्वं क्षारैर्मध्वाश्रितैः स्त्रियम्॥१४७॥
वञ्जुलस्य समिद्धोमो वृष्टिं वितनुतेऽचिरात्।
क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमान्नाशयति ज्वरम्॥१४८॥

आग्नेय कोण में विघ्नेशदेव की, नैर्ऋत्य में दुर्गा की, वायुकोण में बटुकगण की तथा ईशानकोण में क्षेत्रपाल की अर्चना करनी चाहिये। उसके बाह्य में वज्रादि आयुधों तथा लोकपालगण की पूजा सम्पन्न करे। इस प्रकार साधक मन्त्र सिद्ध होकर अपने इष्ट का साधन करे। मालती, जातीपुष्प, पुन्नाग, इन तीन को मिलाकर होम करे। वह साधक सौभाग्यवान् होगा। बिल्वफल किंवा बिल्वपत्र से होम करने वाला जो राजपुत्र है, वह राज्यलाभ करेगा। लाल कमल से होम करने वाले श्रेष्ठ लक्ष्मीलाभ करेगा। उत्पल से (श्वेतकमल) होम करने वाला विश्व को वश में कर सकता है। मधु तथा क्षार से होम करने वाला स्त्री वशीभूत करेगा। अशोक के काष्ठ की समिध् से होम करने से शीघ्र वर्षा हो जाती है। दुग्ध तथा गुड़ मिलाकर होमकर्त्ता ज्वर दूर कर सकेगा।।१४४-१४८।।

दूर्वाभिरायुराप्नोति तन्दुलैर्धनवान् भवेत्।
कदम्बैवश्यमाप्नोति सर्वं त्रिमधुरप्लुतम्॥१४९॥

दूर्वा से होम करने पर आयु वृद्धि होगी तथा तन्डुलों से होम करने वाला धनी होगा। कदम्ब फल को त्रिमधुर से लिप्त करके होम करे। उसे वशीकरण सिद्ध होगा।।१४९।।

नन्द्यावर्तभवैः पुष्पैर्होमो वाक्सिद्धिदायकः। निम्बप्रसूनैर्जुहुयादीप्सितश्रीसमृद्धये॥१५०॥
पलाशकुसुमैर्होमात्तेजस्वी जायते नरः। चन्दनागुरुकस्तूरीचन्द्रकुङ्कुमरोचनाः॥१५१॥
वश्याय च प्रियत्वाय हुताश्च तिलकीकृताः।
निर्गुण्डीमूलहोमेन निगडान्मुच्यते नरः॥१५२॥

निम्बतैलान्वितैर्लोणर्होमः शत्रुविनाशनः। हरिद्राचूर्णसम्मिश्रैर्लवणैः स्तम्भयेज्जगत्॥१५३॥

नन्द्यावर्त्त के पुष्प से होम द्वारा वाक्सिद्धि होगी। नीम के पुष्प के होम से इच्छित श्री समृद्धि लाभ होगा। पलाश पुष्प द्वारा होम से व्यक्ति तेजस्वी होगा। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कपूर, कुंकुम, गोरोचन से हवन करे। तिलक लगाये। सभी प्राणी वशीभूत होंगे। निर्गुणी मूल से होम द्वारा बन्धन मुक्ति होगी। नीम के तेल तथा नमक मिलाकर होम करे। शत्रु नाश होगा। हल्दी के चूर्ण में लवण मिलाकर होम करे संसार स्तम्भित होगा।।१५०-१५३।।

मातङ्गीसिद्धविद्यैषा प्रोक्ता ते द्विजसत्तम। अवतारान्तरं भूयो वर्णयामि निशामय॥१५४॥

दीपिकाप्रीतिचन्द्राढ्या द्विधा चेद्रञ्जितापुनः।
वतिवह्निप्रियामन्त्रो धूमावत्या गजाक्षरः॥१५५॥
पिप्पलादो मुनिश्छन्दो निवृद्धूमावतीश्वरी।
बीजेन षड्दीर्घजातियुक्तेन परिकल्पयेत्॥१५६॥
ततो धूमावतीं ध्यायेच्छत्रुनिग्रहकारिणीम्।
विवर्णां चञ्चलां दुष्टां दीर्घां च मलिनाम्बराम्॥१५७॥

विमुक्तकुतलां सूक्ष्मां विधवां विरलद्विजाम्। कङ्कध्वजरथारूढां प्रलम्बितपयोधराम्॥१५८॥

सूर्यहस्तां निरुक्षाङ्कधृतहस्ताम्बरान्विताम्। प्रवृद्धलोमां तु भृशं कुटिलाकुटिलेक्षणाम्॥१५९॥

क्षुत्पिपासार्दितां नित्यं भयदां कलहप्रियाम्।
एवंविधां तु सञ्चिन्त्य नमः स्वाहा फडन्तकम्॥१६०॥
बीजं साध्योपरि न्यस्य तस्मिन्स्थाप्य शवं जपेत्।
अवष्टभ्य शवं शत्रुनाम्नाथ प्रजपेन्मनुम्॥१६१॥
सोष्णीषकञ्चुको विद्वान्कृष्णे भूते दिवानिशम्।
उपवासी श्मशाने वा विपिने शून्यमन्दिरे॥१६२॥

हे द्विजसत्तम! मातंगी को सिद्धविद्या कहा गया है। अब उनके अन्य अवतारों का श्रवण करिये। उनका मन्त्र है, जो श्लोक १५५ में अंकित है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। इस मन्त्र के ऋषि हैं पिप्पलाद, छन्दः है निवृत्, देवता हैं धूमावती! इसके द्वारा षड्दीर्घयुक्त बीजमन्त्र से षडङ्ग करे। तत्पश्चात् शत्रुनिग्रहकारिणी धूमावती का ध्यान करे। वे विवर्णा, चंचला, दुष्टा, अत्यन्त लम्बी, मलिन वस्त्र धारण करती हैं। उनके केश कुन्तल तथा खुले हैं। वे विधवा वेशवाली विरल दातों वाली हैं। ये क्रौंचपक्षी की ध्वजा वाले रथ पर बैठी हैं। इनके स्तन लटके हुये हैं। ये सूर्यहस्ता, निरुक्षा औषधि, हाथ में धारण करती हैं। रोम घने तथा बड़े हैं। नेत्र कुटिल हैं। ये सदा क्षुधा-पिपासा युक्त रहती हैं। ये भयप्रदा तथा कलहप्रिया हैं। इस प्रकार ध्यान करे तथा "नमः स्वाहा हुं फट्" मन्त्र को साध्य पर न्यस्त करके वहां शव स्थापित करे तथा जप करे। शव पर शत्रु का नाम लिखकर जप करना होगा बुद्धिमान् साधक कृष्णा चतुर्दशी तिथि पर पगड़ी तथा कंचुक पहने तथा रात-दिन जप करे। उपवासी रहकर श्मशान, वन अथवा शून्यगृह में जप करे।।१५४-१६२।।

मन्त्रस्य सिद्ध्यै यतवाग्ध्यायन्देवी निरन्तरम्।
सहस्त्रादूर्ध्ववतः शत्रुज्वरेण परिगृह्यते॥१६३॥
पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्ज्वरस्य पयसापि वा।
मन्त्राद्याक्षरमालिख्य शत्रुनाम ततः परम्॥१६४॥
द्वितीयं मनुवर्णं च शत्रुनामैवमालिखेत्। सर्वं मनुदिक्सहस्त्रजपाच्छवमृतिर्भवेत्॥१६५॥
दग्ध्वा कङ्कं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रवित्।
विरोधिनाम्नाष्टशतं जप्तमुच्चाटनं रिपोः॥१६६॥
श्मशानभस्मना कृत्वा शवं तस्योपरि न्यसेत्।
विरोधिनामसंरुद्धं कृष्णे पक्षे समुच्चरेत्॥१६७॥
महिषीक्षीरधूपं च दद्याच्छत्रुविपत्करम्। एवं संक्षेपतः प्रोक्तं अवतारचतुष्टयम्॥१६८॥
दुर्गाया जगदम्बायाः किं पुनः प्रष्टुमिच्छसि॥१६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे दुर्गामन्त्रचतुष्टयवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

मन्त्रसिद्धि हेतु वाणी संयम तथा सतत् देवी ध्यान करना चाहिये। १००० से कुछ अधिक जप होते ही शत्रु पीड़ित होने लगेगा। तब उसके दाह को पंचगव्य अथवा दुग्ध से शान्त किया जा सकेगा। मन्त्र का प्रथमाक्षर तथा द्वितीयाक्षर लिख कर शत्रु नाम (शव पर) लिखे। २४००० मन्त्र जप से शत्रु मृत होगा। क्रौञ्च पक्षी को श्मशानाग्नि में दग्ध करके उसके भस्म पर १०८ बार शत्रु का नाम जपे। शत्रु को उच्चाटन होगा। कृष्णपक्ष में श्मशान भस्म पर शव रखे शत्रु का नाम पढ़ते हुये महिष दुग्ध तथा धूप अर्पित करे। शत्रु विपदाग्रस्त होगा। मैंने संक्षेप में दुर्गा के चार अवतारों को कहा। अब क्या पूछना है?॥१६३-१६९॥

॥८७वां अध्याय समाप्त॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

राधावतार के अन्तर्गत् षोडश देवताओं के मन्त्र-यन्त्र-पूजन का वर्णन

सूत उवाच

श्रुत्वेत्थं यजनं विप्रा मन्त्रध्यानपुरःसरम्। सर्वासामवताराणां नारदो देवदर्शनः॥१॥
सर्वाद्याया जगन्मातुः श्रीराधायाः समर्चनम्। अवतारकलानां हि पप्रच्छ विनयान्वितः॥२॥

सूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! सनत्कुमार से देवीगण के सर्व अवतारों का मन्त्र-ध्यानादि सुनकर देव दर्शन नारद ने सर्वाद्या जगन्माता श्रीराधा की अर्चना तथा उनकी अवतार कलाओं के सम्बन्ध में विनयान्वित होकर पूछा।।१-२।।

नारद उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि जातोऽहं त्वत्प्रसादतः।
यज्जगन्मातृमन्त्राणां वैभवं श्रुतवान्मुने।।३।।
यथा लक्ष्मीमुखानां तु अवताराः प्रकीर्तिताः।
तथा राधावताराणां श्रोतुमिच्छामि वैभवम्।।४।।
यत्सङ्ख्याकाश्च यद्रूपा यत्प्रभावा विदाम्वर।
राधावतारास्तान्सत्यं कीर्तयाशेषसिद्धिदान्।।५।।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य विधेः सुतः।
सनत्कुमारः प्रोवाच ध्यात्वा राधापदाम्बुजम्।।६।।

देवर्षि नारद कहते हैं—"हे महामुनि! मैं आपकी कृपा पाकर धन्य तथा कृतार्थ हो गया। मैंने आपसे जगन्माता के मन्त्रों का वैभव भी श्रवण किया। आपने लक्ष्मी प्रभृति अवतारों का वर्णन जिस प्रकार से मुझसे कहा है, तदनुरूप राधा के भी अवतारों का वर्णन करिये। हे विदाम्बर! सर्वसिद्धिप्रद राधा के अवतारों की कितनी संख्या है? उनका जो रूप तथा प्रभाव है, वह सब कहने की कृपा करिये।" ब्रह्मपुत्र नारद का यह वचन सुनकर सनत्कुमार ने राधा के चरणकमल के ध्यान के उपरान्त कहा—।।३-६।।

सनत्कुमार उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम्। राधावतारचरितं भजतामिष्टिसिद्धिदम्।।७।।
चन्द्रावली च ललिता द्वे सख्यौ सुप्रिये सदा।
मालावतीमुखाष्टानां चन्द्रावल्याधिपा स्मृता।।८।।
कलावतीमुखाष्टानामीश्वरी ललिता मता। राधाचरणपूजायामुक्ता मालावतीमुखाः।।९।।
ललिताधीश्वरीणां तु नामानि शृणु साम्प्रतम्।
कलावती मधुमती विशाखा श्यामलाभिधा।।१०।।
शैव्या वृन्दा श्रीधराख्या सर्वास्तत्तुल्यविग्रहाः।
सुशीलाप्रमुखाश्चान्याः सख्यो द्वात्रिंशदीरिताः।।११।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे विप्र! मैं आपसे रहस्यों में भी अतिरहस्यमय राधाचरित का वर्णन करता हूं, जो भजन करने से इष्टसिद्धिप्रदायक है। श्री राधाा की अतिप्रिय दो सखियां चन्द्रावली तथा ललिता नामक है। इनमें से चन्द्रावली सखी मालावती आदि आठ सखियों की अधिष्ठातृ हैं। इसी प्रकार ललिता भी कलावती प्रभृति अष्ट सखियों की अधीश्वरी हैं। उन सखियों के नाम सुनें! कलावती, मधुमती, विशाखा, श्यामला,

अभिधा, शैव्या, वृन्दा तथा श्रीधरा ये आठ हैं जिनका श्रीराधा के समान ही विग्रह है। एतद् व्यतिरिक्त सुशीला प्रभृति प्रमुख ३२ सखियां और हैं।।७-११।।

ताः शृणुष्व महाभाग नामतः प्रवदामि ते।
सुशीला शशिलेखा च यमुना माधवी रतिः॥१२॥
कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयम्प्रभा।
चन्द्रानना पद्ममुखी सावित्री च सुधामुखी॥१३॥
शुभा पद्मा पारिजाता गौरिणी सर्वमङ्गला।
कालिका कमला दुर्गा विरजा भारती सुरा॥१४॥
गङ्गा मधुमती चैव सुन्दरी चन्दना सती। अपर्णा मनसानन्दा द्वात्रिंशद्राधिकाप्रियाः॥१५॥

हे महाभाग! उनके नाम कहता हूं। श्रवण करिये। यथा—सुशीला, शशिलेखा, यमुना, माधवी, रति, कदम्बमाला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयम्प्रभा, चन्द्रानना, पद्ममुखी, सावित्री, सुधामुखी, शुभा, पद्मा, पारिजाता, गौरिणी, सर्वमंगला, कालिका, कमला, दुर्गा, विरजा, भारती, सुरा, गंगा, मधुमती, सुन्दरी, चन्दना, सती, अपर्णा, मनसा, आनन्दा—ये ३२ राधिका की प्रिय सखियां हैं।।१२-१५।।

कदाचिल्ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
ससर्ज षोडशकलास्ताः सर्वास्तत्समप्रभाः॥१६॥
तासां मन्त्रं तथा ध्यानं यन्त्रार्चादिक्रमं तथा। वर्णये सर्वतन्त्रेषु रहस्यं मुनिसत्तम॥१७॥

एक समय ललिता देवी ने कृष्णविग्रहा षोडश कला का सृजन किया था। वे सब कृष्ण की प्रभा के समान प्रभा वाली थीं। हे मुनिप्रवर! जिस प्रकार से समस्त तन्त्रों में उनका मन्त्र, ध्यान, अर्चाक्रम रहस्यपूर्ण है। मैं उसका वर्णन करता हूं।।१६-१७।।

वातो मरुच्चाग्निवह्नी धराक्ष्मे जलचारिणी।
विमुखं चरशुचिविभू वनस्वशक्तयः स्वराः॥१८॥
प्राणस्तेजः स्थिरा वायुर्वायुश्चापि प्रभा तथा।
ज्यकुमभ्रं तथा नादो दावकः पाथ इत्यथ॥१९॥
व्योमरयः शिखी गोत्रा तोयं शून्यजवी द्युतिः।
भूमी रसो नमो व्याप्तं दाहश्चापि रसाम्बु च॥२०॥
वियत्स्पर्शश्च हृद्धंसहलाग्रासो हलात्मिकाः।
चन्द्रावली च ललिता हङ्केला नायके मते॥२१॥
ग्रासस्थिता स्वयं राधा स्वयं शक्तिस्वरूपिणी।
शेषास्तु षोडशकला द्वात्रिंशत्तत्कलाः स्मृताः॥२२॥
वाङ्मयं निखिलं व्याप्तमाभिरेव मुनीश्वर। ललिताप्रमुखाणां तु षोडशीत्वमुपागता॥२३॥

श्रीराधा सुन्दरी देवी तान्त्रिकैः परिकीर्त्यते।
कुरुकुल्ला च वाराही चन्द्रालिललिते उभे॥२४॥

उनका मन्त्र है—जो श्लोक १८ से लगाकर श्लोक २२ में "शक्ति स्वरूपिणी" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करें)। १६ कला के अतिरिक्त (जो ललिता देवी सम्बन्धित श्लोक १६ में वर्णित है) अन्य षोडश कला है। सब मिलाकर ३२ कलायें हैं। हे मुनीश्वर! समस्त वांगमय जगत् इन देवीगण से व्याप्त है। ललिता प्रभृति देवी षोडशी हैं। तांत्रिक विद्वान् श्रीराधा को सुन्दरी देवी कहते हैं। उनकी सखियां कुरुकुल्ला, वाराही, चन्द्रालि तथा ललिता कही जाती हैं।।१८-२४।।

सम्भूते मन्त्रवर्गं तेऽभिधास्येऽहं यथातथम्। हृत्प्राणेलाहंसदाहवह्नीस्वैर्ललितेरिता॥२५॥

त्रिविधा हंसभेदेन शृणु तां च यथाक्रमम्।
हंसाद्ययाऽद्या मध्या स्यादादिमध्यस्थहंसया॥२६॥
तृतीया प्रकृतिः सैव तुर्या तैरन्त्यमायया।
आसु तुर्याभवन्मुक्त्यै त्रिस्त्रोऽन्याःस्युश्च सम्पदे॥२७॥

इति त्रिपुरसुन्दर्या विद्या सम्यक्समीरिता। दाहभू मीरसाक्ष्मास्वैर्वशिनीबीजमीरितम्॥२८॥
प्राणो रसाशक्तियुतं कामेश्वर्यक्षरं महत्। शून्यमम्बुरसावह्निस्वयोगान्मोहनीमनुः॥२९॥

अब मन्त्रों का यथार्थ वर्णन करता हूं। ललिता का मन्त्र है "हृत् प्राणेलाहंसदाहवह्नीं" (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग होगा)। यह हंसभेद से त्रिविध है। इसे यथाक्रम सुनें। यह श्लोक २६ में "हंसाद्ययाऽद्या से लगाकर श्लोक २७ के अन्त तक है, जो त्रिपुर सुन्दरी मन्त्र है। इसे सम्यक् रूपेण कर दिया। (इसका मन्त्रोद्धार सुधीगण करे)। वशिनी का मन्त्र है—"दाहभू मीरसाक्ष्मास्वै" (इसका सुधीजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। यह कामेश्वरी का महत् मन्त्र है। "शून्यमम्वुरसावह्नि" यह स्वयोग से मोहिनी का मन्त्र है (यहां भी मन्त्रोद्धार द्वारा प्रयोग करे)।।२५-२९।।

व्याप्तं रसाक्ष्मास्वयुतं विमलाबीजमीरितम्। ज्यानभोदाहवह्निस्वयोगैः स्यादरुणामनुः॥३०॥
जयिन्यास्तु समुद्दिष्टः सर्वत्र जयदायकः। कं नभो दाहसहितं व्याप्तक्ष्मास्वयुतं मनुः॥३१॥

सर्वेश्वर्याः समाख्यातः सर्वसिद्धिकरः परः।
ग्रासो नभोदाहवह्निस्वैर्युक्तः कौलिनीमनुः॥३२॥

एतैर्मनुभिरष्टाभिः शक्तिभिर्वर्गसंयुतैः। वाग्देवतां तैर्न्यासः स्याद्येन देव्यात्मको भवेत्॥३३॥

"व्याप्तं रसाक्ष्मास्वयुक्तं" विमलाबीज है। (सुधीजन मन्त्रोद्धार करें)। "ज्यानमोदाह वह्निस्वयोगै" अरुणा का मन्त्र है (सुधीगण मन्त्रोद्धार करें)। जयिनी का सर्वत्र त्रयप्रद मन्त्र कहा जा रहा है। यह श्लोक ३१ में "कं नभो" से लगाकर "क्ष्मास्वयुतं" पर्यन्त है। यह जयिनी का मन्त्र है। "ग्रासोनभोदाहवह्निस्वैर्युक्त" यह कौलिनीका मन्त्र है। यह अष्ट शक्ति का मन्त्र कहा गया। वाग्देवता तथा इनका (आठ शक्ति का) मन्त्र से न्यास करने से साधक देव्यात्मा हो जाता है।।३०-३३।।

रन्ध्रे भले तथाज्ञायां गले हृदि तथा न्यसेत्। नाभावाधारके पादद्वये मूलाग्रकावधि॥३४॥

षड्दीर्घाढ्येन बीजेन कुर्याच्चैव षडङ्गकम्।
लोहितां ललिता बाणचापपाशसृणीः करैः॥३५॥
दधानां कामराजाङ्के यन्त्रितां मुदितां स्मरेत्।
मध्यस्थदेवी त्वेकैव षोडशाकारतः स्थिता॥३६॥
यतस्तस्मात्तनौ तस्यास्त्वन्याः पञ्चदशार्चयेत्।
ऋषिः शिवश्छन्द उक्ता देवता ललितादिकाः॥३७॥
सर्वासामपि नित्यनामावृतीर्नामसञ्चये। पटले तु प्रयोगांश्च वक्ष्याम्यग्रे सविस्तरम्॥३८॥

ब्रह्मरन्ध्र, भाल, गला, हृदय में न्यास करे नाभि, मूलाधार, पादद्वय तथा मूलाग्र तक भी न्यास करे। षड्दीर्घयुक्त बीज से षडङ्ग न्यास करे। तदनन्तर लोहिता-ललिता का ध्यान करे, जो बाण, पाश, धनुष, अंकुशधारिणी हैं। वास्तव में एक ही देवी की स्थिति षोडश देवीरूपेण है। जो प्रधाना देवी हैं, उनकी ही मूर्त्ति में सभी १५ देवीगण की पूजा की जाती है। इन मन्त्रों के ऋषि शिव हैं। छन्दः है पंक्ति, देवता हैं ललितादि। आगे सभी षोडश नित्या देवियों के नाम पटल, प्रयोगादि विस्तार पूर्वक करूंगा।।३४-३८।।

अथ षोडशनित्यासु द्वितीया या समीरिता। कामेश्वरीति तां सर्वकामदां शृणु नारद॥३९॥
शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो ललिता स्याद्द्वितीयकः।
शून्यमग्नियुतं पश्चाद्रयोव्याप्तेन संयुतम्॥४०॥
प्राणो रसाग्निसहितः शून्ययुग्मं चरान्वितम्। नभोगोत्रा पुनश्चैषां दाहेन समयोजिता॥४१॥
अम्बु स्याच्चरसंयुक्तं नवशक्तियुतं च हृत्।
एषा कामेश्वरी नित्या कामदैकादशाक्षरी॥४२॥
मूलविद्याक्षरैरेव कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्। एकेन हृदयं शीर्षं तावताथो द्वयं द्वयात्॥४३॥
चतुर्भिर्नयनं तद्वदस्त्रमेकेन कीर्तितम्। दृक्श्रोत्रनासाद्वितये जिह्वाहृन्नाभिगुह्यके॥४४॥
व्यापकत्वेन सर्वाङ्गे मूर्द्धादिप्रपदावधि। न्यसेद्विद्याक्षराण्येषु स्थानेषु तदनन्तरम्॥४५॥
समस्तेन व्यापकं तु कुर्यादुक्तक्रमेण तु।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि नित्यपूजासु चोदितम्॥४६॥

हे नारद! षोडश नित्याओं में से सर्वकामप्रद कामेश्वरी नाम्नी ९ देवियां हैं। उनका विवरण सुनिये। उनका मन्त्र श्लोक ५० से लेकर श्लोक ४२ में "च हृत्" तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। यह एकादशाक्षरी विद्या है। इस मूलविद्या के अक्षरों से षडङ्ग करे। दो अक्षर से शीर्ष, १ से हृदय, ४ से नेत्र तथा १ से अस्त्रन्यास करे। नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, हृदय, नाभि, गुह्य तथा चरण में व्यापक न्यास करे। तदनन्तर इन स्थानों में इसी विद्या के अक्षरों का न्यास करे तदनन्तर समस्त का व्यापक न्यास करे। अब नित्यपूजार्थ विशेषतः ध्यान कहता हूं।।३९-४६।।

येन देवी सुप्रसन्ना ददातीष्टमयत्नतः। बालार्ककोटिसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥४७॥

हारग्रैवेयकाञ्चीभिरूर्मिकानूपुरादिभिः। मण्डितां रक्तवसनां रत्नाभरणशोभिताम्॥४८॥
षड्भुजां त्रीक्षणामिन्दुकलाकलितमौलिकाम्। पञ्चाष्टषोडशद्वन्द्वषट्कोणचतुरस्त्रगाम्॥४९॥
मन्दस्मितलसद्वक्त्रां दयामन्थरवीक्षणाम्।
पाशाङ्कुशौ च पुण्ड्रेक्षुचापं पुष्पशिलीमुखम्॥५०॥
रत्नपात्रं सीधुपूर्णं वरदं बिभ्रतीं करैः। ततः प्रयोगान्कुर्वीत सिद्धे मन्त्रे तु साधकः॥५१॥

इससे देवी प्रसन्न होकर इष्ट इच्छा पूर्ण करती हैं। अब उनका ध्यान करे। वे देवी करोड़ों बालसूर्य के समान कान्ति सम्पन्न, माणिक्य युक्त उज्वल मुकुट को धारण करने वाली, हार, कंठ के आभूषण, काञ्ची, अंगूठी, नूपुरादि से सज्जित, रक्तवस्त्रधारिणी, रत्न जड़े आभरणों से शोभित हैं। वे षड्भुज, त्रिनेत्र, चन्द्रकलायुक्त ललाट वाली, ५-८-१६-२-६ कोणान्विता एवं चतुरस्त्र मण्डल वाली, मन्द हास्य से शोभायमान मुखमुद्रा वाली, दयार्द्रदृष्टि, पाश-अंकुश माधवीलता का बना धनुष, पुष्पबाण तथा वरप्रद, रत्नपात्र धारण करने वाली हैं। ऐसी देवी का ध्यान करे। मन्त्र की सिद्धि जब हो जाये, तब साधक प्रयोग करे।।४७-५१।।

तृतीयामथ वक्ष्यामि नाम्ना तु भगमालिनी।
कामेश्वर्यादिरादिः स्याद्रसश्चापस्थिरारसः॥५२॥
धरायुक्सचरा पश्चात्स्थिरा पश्चाद्रसः स्मृतः।
स्थिराशून्येऽग्निसंयुक्ते रसः स्यात्तदनन्तरम्॥५३॥
स्थिरा भूसहिता गोत्रा सदाहोऽग्निरसः स्थिरा।
नभश्च मरुता युक्तं रसवर्णसमन्वितम्॥५४॥
ततो रसः स्थिरा पश्चान्मरुता सह योजिता।
अम्बहंसचरोऽथोक्तो रसोऽथ स्यात्स्थिरा पुनः॥५५॥
स्थिराधरान्विता हंसो व्याप्तेन च चरेण च।
रसः स्थिरा ततो व्याप्तम् भूयुतं शून्यमग्नियुक्॥५६॥
रसः स्थिरा ततः साग्निशून्यं तवियुतो मरुत्।
रसः शून्यं चाग्नियुतं हृदाहंसाच्च तत्परम्॥५७॥
रसः स्थिराम्बु च वियत्स्वयुतं प्राण एव च।
दाहोऽग्नियुग्रसस्तस्मास्थिराक्ष्मा दाहसंयुता।
सचरः स्याज्जवीपूर्वविद्या तार्तीयतः क्रमात्॥५८॥
चतुष्टयमथार्णानांरसंस्तदनु च स्थिरा।
हृदम्बुयुक्क्ष्मया दाहः सचरःस्याज्जवी च हृत्॥५९॥
दाहोऽम्बुमरुता युक्तो व्योम्नि साग्निरसस्तुतः।
स्थिरा तु मरुता युक्ता शून्यं साग्निनभश्चरौ॥६०॥

हंसो व्याप्तमरुद्युक्तः शून्यं व्यापतमतोऽम्बु च।
दाहो गोत्राचरयुता तथा दाहस्तथा रसः॥६१॥
हृद्धरासहितं दाहरयौ चरसमन्वितौ। रसः स्थिरा ततः प्राणो रसाग्निसहितो भवेत्॥६२॥
शून्ययुग्मं चरयुतं ततः पूर्वमतः परम्। शून्ययुग्मं च गोत्रा स्याद्दाहयुक्ताम्बुना चरः॥६३॥
प्राणो रसा चरयुतो गोत्रव्यसिमतः परम्। गोत्रादाहमरुद्युक्ता त्वम्बुन्यासमतो भवेत्॥६४॥
युक्तोनाम्भश्च भूयुक्तं वाश्चरेण समन्वितम्।
ग्रासो धरायुतः पश्चाद्रसः शक्त्या समन्वितः॥६५॥
ग्रासो भूसहितो विप्र रसो व्याप्तं ततश्च हृत्।
दाहोनाम्बु च हृदपश्चाद्रयेऽम्बुमरुदन्वितः॥६६॥
शून्यं च केवलं चैव रसश्च सचरस्थिरा। वियदम्बयतं दाहस्त्वग्नियुक्सयुतः शुचिः॥६७॥
भूमी रसाक्ष्मास्वयुता पञ्चैकान्तरिताः स्थिताः।
तदन्तरित बीजानि स्वसंयुक्तानि पञ्च वै॥६८॥
तानि क्रमाज्ज्यासचरो रसो भूश्च नभोयुता।
हंसश्चरयुतो द्विः स्यात्ततः प्राणो रसाग्नियुक्॥६९॥
शून्यं युग्मं चरयुतं हृद्दाहोम्बुमरुद्युतः। व्योमाग्निसहितं पश्चाद्रसश्च मरुता स्थिरा॥७०॥
शून्यं साग्निनभश्चैव चरेण सहितं तथा। अम्बु पश्चाद्वियत्तस्मान्नभश्च मरुदन्वितम्॥७१॥
शून्यं व्याप्तं च दद्युक्तं रसदाहस्ववह्निभिः।
हंसः सदाहोम्बुरसा चरस्वैः संयुतो भवेत्॥७२॥
हंसः सदाहवह्निस्वैर्युक्तमन्त्यमुदीरितम्।
सप्तत्रिंशच्छतार्णैः स्यान्नित्या सौभगमालिनी॥७३॥
अङ्गानि मन्त्रवर्णैः स्युराद्येन हृदुदीरितम्।
ततश्चतुर्भिः शीर्षं स्याच्छिखा त्रिभिरुदीरिता॥७४॥
गुणवेदाक्षरैः शेषाण्यङ्गानि षडिति क्रमात्।
अरुणामरुणाकल्पां सुन्दरीं सुस्मिताननाम्॥७५॥
त्रिनेत्रां बहुभिः षड्भिरुपेतां कमलासनाम्। कह्लारपाशपुण्ड्रेक्षुकोदण्डान्वामबाहुभिः॥७६॥
दधानां दक्षिणैः पद्मङ्कुशं पुष्पसायकम्।
तथाविधाभिः परितो युतां शक्तिगणैः स्तुतैः॥७७॥
अक्षरोक्ताभिरन्याभिः स्मरोन्मादमदात्मभिः।
एषा तृतीया कथिता वनिता जनमोहिनी॥७८॥

चतुर्थी शृणुविप्रेन्द्र नित्यक्लिन्नासमाह्वयाम्। हंसस्तु दाहवह्निस्वैर्युक्तः प्रथममुच्यते॥७९॥
कामेश्वर्यास्तृतीयादिवर्णानामष्टकं भवेत्। हृदम्बुमरुता युक्तः स एवैकादशाक्षरः॥८०॥

अब तृतीय अवतार भगमालिनी का वर्णन सुनिये। इनका मन्त्र है—श्लोक ५२ में "कामेश्वर्यादिरादि" से लगाकर श्लोक ७३ में "मन्त्यमुदीरितम्" तक यह मन्त्र है। (इसका मन्त्रोद्धार विज्ञजन करे)। इसमें ३७०० अक्षर हैं। यह नित्या सौभगमालिनी (भगमालिनी) का मन्त्र है। अब मन्त्र के अक्षरों से अंगन्यास करे। आद्य अक्षर से हृदय का, चार अक्षर से शिर का, तीन से शिखा का, सात से बाकी छः अंग का क्रमशः न्यास करे। अब ध्यान कहते हैं। ये देवी अरुण वर्णा, सुन्दरी, मुस्कान युक्त चेहरे वाली, त्रिनेत्र, षड्भुज, कमलासनासीन, वाम हाथ में लाल कमल, पाश, माधवी लता का धनुष धारण करने वाली, दाहिने हाथ में पद्म-अंकुश-पुष्प-सायक धारिणी, शक्तियों से स्तुत भगमालिनी का ध्यान करे। ये देवी कामोन्मत्त देवीगण से परिवृत हैं। ये जगन्मोहिनी तृतीय वनिता कही गयी हैं। हे विप्रेन्द्र! अब चतुर्थ देवी नित्यक्लिन्ना का वर्णन सुनिये। इनका मन्त्र श्लोक ७९ के "हंसस्तु" से लगाकर श्लोक ८० में "हृदम्बुमरुता युतः" पर्यन्त है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) यह एकादश अक्षर का मन्त्र है।।५२-८०।।

एकादशाक्षरी चेयं विद्यार्णैरङ्गकल्पनम्। आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम्॥८१॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु शेषाणि अङ्गानि परिकल्पयेत्।
न्यसेदङ्गुष्ठमूलादिकनिष्ठाग्रान्तमूर्द्धगम् ॥८२॥
शेषं तद्वलये न्यस्य हृद्दृक्छ्रोत्रे नसोर्द्वयोः।
त्वचि ध्वजे च पायौ च पादयोरर्णकान्न्यसेत्॥८३॥

अरुणामरुणाकल्पमारुणांशुकधारिणीम्। अरुणस्त्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम्॥८४॥
नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माम्बुमौक्तिके। विराजमानां मुकुटलसदर्द्धेन्दुशेखराम्॥८५॥

चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम्।
अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम्॥८६॥
ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यक्लिन्ना नित्यां स्वशक्तिभिः।
पुण्या चतुर्थी गदिता नित्या क्लिन्नाह्वया मुने॥८७॥
वनिता नवनीतस्य दाविकाग्निर्जयादिना।
भूः स्वेन युक्ता प्रथमं प्राणो दाहेन तद्युतः॥८८॥
रसो दाहेन तद्युक्तं प्रभादाहेन तद्युता।
ज्या च दाहेन तद्युक्ता नित्याक्लिन्नान्तगद्वयम्॥८९॥

मन्त्र के प्रथमाक्षर से हृदय का, दो-दो अक्षर से बाकी अंगों का न्यास करना चाहिये। अंगुष्ठ मूल से कनिष्ठाग्र तक, शिर पर, पादतल में, हृदय, नेत्र, कर्ण, त्वक्, लिंग, गुदा तथा चरणों में वर्णन्यास करे। इस न्यास के उपरान्त रक्तवर्ण, रक्तवस्त्रा, रक्तमालाधारिणी, रक्तवर्ण लेप से लिप्त तनिक हास्य युक्त, मुखकमल वाली, त्रिनेत्र शोभित मुख वाली, मोतियों के जैसे प्रतीत होने वाले स्वेद विन्दु से युक्त, भाल पर अर्द्धचन्द्र

धारण करने वाली, चारों हाथ में पाश, अंकुश, मद्यपात्र, अभयमुद्रा धारिणी, कमल मध्य समासीना, मद से आलस्ययुता नित्यक्लिन्ना का ध्यान करके अपनी शक्ति भर उनकी अर्चना करे। मैंने चतुर्था नित्यक्लिन्ना का वृत्तान्त कहा। तदनन्तर पंचम देवी भेरुण्डा का वर्णन सुनिये। उनका मन्त्र है, श्लोक ८८ से लेकर श्लोक पूर्ण ८९ तक। (अज्ञातावश मन्त्रोद्धार नहीं हो सका)।।८१-८९।।

एषा नवाक्षरी नित्या भेरुण्डा सर्वसिद्धिदा।
प्रणवं ठद्वयं त्यक्त्वा मध्यस्थैः षड्भिरक्षरैः॥९०॥
षडङ्गानि प्रकुर्वीत वर्णन्यासं ततः परम्। रन्ध्राद्यामुखकण्ठेषु हृन्नाभ्यां धारयद्वयम्॥९१॥
न्यसेन्मन्त्रार्णनवकं मातृकान्यासपूर्वकम्। अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि देव्याः सर्वार्थसिद्धिदम्॥९२॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशदेहां नेत्रत्रयान्विताम्। चारुस्मितां चितमुखीं दिव्यालङ्कारभूषिताम्॥९३॥
ताटङ्कहारकेयूररत्नस्तबकमण्डिताम्। रसनानूपुरोर्म्यादिभूषणैरतिसुन्दरीम्॥९४॥
पाशाङ्कुशौ चर्मखड्गौ गदावह्निधनुःशरान्।
करैर्दधानामासीनां पूजायां मत्परां स्थिताम्॥९५॥
शक्तीश्च तत्समाकारतेजोहेतिभिरन्विताः। पूजयेत्तद्वदभितः स्मितास्या विजयादिकाः॥९६॥
पञ्चमीयं समाख्याता भेरुण्डाख्या मुनीश्वर।
यस्याः स्मरणतो नश्येद्गरलं त्रिविधं क्षणात्॥९७॥

यह भेरुदण्डा का सर्वसिद्धिप्रदा नवाक्षरी मन्त्र है। भेरुण्डा के मन्त्र से प्रणव तथा स्वाहा से हटाकर वीच के छः अक्षर से षडङ्ग सम्पन्न करके वर्णन्यास करे। ब्रह्मरन्ध्र, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि का न्यास करे। यह न्यास नव मन्त्रवर्ण से न्यास मातृकान्यास से पूर्व करे। अब देवी का ध्यान कहता हूं। यह सर्वार्थसिद्धिदायक ध्यान है। देवी का वर्ण तप्त काञ्चन के समान है। वे नेत्रत्रययुक्त हैं। वे चारुस्मिता, चितमुखी, दिव्यालंकार भूषित हैं। वे ताटंक, हार, केयूर, रत्नस्तवक मण्डित हैं। नूपुर कांची आदि भूषण रत्नाभरण से वे सुन्दरी विभूषित हैं। उन्होंने पाश, अंकुश, ढाल, तलवार, गदा, धनुष तथा वह्नि, पुष्प बाण धारण करके स्थित हैं। वे देवी पूजा पर आसनासीन हैं। उनके चतुर्दिक् उनके ही तरह तेजयुक्त तनिक हास्य वाली विजयादि देवीगण की पूजा साधक करे। हे मुनीश्वर! यहां मैंने पंचम देवी का वर्णन किया। भेरुण्डा का स्मरण करने मात्र से त्रिविध विष का नाश होता है।।९०-९७।।

या तु षष्ठी द्विजश्रेष्ठ सा नित्या वह्निवासिनी।
तद्विधानं शृणुष्वाद्य साधकानां सुसिद्धिदम्॥९८॥
भेरुण्डाद्यमिहाद्यं स्यान्नित्यक्लिन्नाद्यनन्तरम्। ततोऽम्बुशून्ये हंसाग्निह्युत्तमम्बुमरुद्युतम्॥९९॥
हृदग्निना युतं शून्यं व्याप्तेन शुचिना च युक्। शून्यं नभः शक्तियुतं नवार्णेयमुदाहृता॥१००॥

हे द्विजप्रवर! षष्ठ नित्यादेवी हैं वह्निवासिनी। वे साधकों हेतु सिद्धिप्रदा हैं। उनका मन्त्र श्लोक ९९ से लेकर श्लोक १०० में "शक्तियुतं" तक है। यह नवार्ण मन्त्र है। (इसका विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)।।९८-१००।।

विद्या द्वितीयबीजेन स्वरान्दीर्घान्नियोजयेत्। मायान्तान्षड्भिरेवाङ्गांन्याचरेत्सकराङ्गयोः॥१०१॥
नवाक्षराणि विद्याया नवरन्ध्रेषु विन्यसेत्। व्यापकं च समस्तेन कुर्यादेवात्मसिद्धये॥१०२॥
सर्वास्वपि च विद्यासु व्यापकन्यासमाचरेत्। तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम्॥१०३॥
चारुस्मेरमुखाम्भोजां विलसन्नयनत्रयाम्। अष्टाभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम्॥१०४॥
पद्मरागकिरीटांशुसम्भेदारुणिताम्बराम्। पीतकौशेयवसनां रत्नमञ्जीरमेखलाम्॥१०५॥
रक्तमौक्तिकसम्भिन्नस्तबकाभरणोज्ज्वलाम्। रत्नाब्जकम्बुपुण्ड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलम्॥१०६॥

दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृङ्गकम्।
पुष्पेषु मातुलिङ्गं च दधानां दक्षिणैः करैः॥१०७॥
स्वस्वनामाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्।
एवं ध्यात्वार्चयेद्वह्निवासिनीं वह्निविग्रहाम्॥१०८॥

द्वितीय मन्त्र,(विद्या) वीज से दीर्घस्वर नियोजित करे। तदनन्तर षडक्षर से षडङ्ग न्यास करे। (षड्दीर्घ युक्त बीज से न्यास करे) सभी विद्या में व्यापक न्यास करे। नवाक्षरी विद्या का न्यास नवरन्ध्र में करना चाहिये। आत्मसिद्धि हेतु व्यापक न्यास करे। अव देवी का ध्यान कहते हैं। ये देवी तप्त स्वर्ण के समान वर्णो वाली, नवयौवना तथा सुन्दरी हैं। इनका मुखमण्डल मन्दहास्य से शोभित हैं। इनके तीन नेत्र अत्यन्त शोभायमान है। ये अष्ट बाहु हैं तथा माणिक्य के आभूषणों से अतीव उज्ज्वल लग रही हैं। मुकुट में जड़ी पद्मरागमणि की किरणें इनके वस्त्र पर पड़ रही हैं, जिससे वे वस्त्र भी रक्तवर्ण परिलक्षित हो रहे हैं। वे पीतवस्त्रधारिणी हैं। इनका नूपुर तथा करधनी रत्नों से जड़ित हैं। लाल मुक्ता के स्तवक जड़ित आभूषण से देवी अत्यन्त उज्वल आकृति वाली लग रही हैं। देवी ने वाम बाहु में रत्न, कमल, माधवी लता का निर्मित धनुष तथा पूर्ण चन्द्रमण्डल धारण किया है तथा दाहिने हाथ में श्वेतकमल, स्वर्णश्रृंग, पुष्पवाण तथा बीजपुर फल को धारण किया है। इनकी शक्तियों ने देवी को चतुर्दिक् घेर रखा है। ऐसी वह्निवासिनी को ध्यान करके पूजा करे।।१०१-१०८।।

यस्याः स्मरणतो वश्यं जायते भुवनत्रयम्।
अथ या सप्तमी नित्या महावज्रेश्वरी मुने॥१०९॥
तस्या विद्यां प्रवक्ष्यामि साधकानां सुसिद्धिदाम्।
द्वितीयं वह्निवासिन्या नित्यक्लिन्ना चतुर्थकम्॥११०॥
पञ्चमं भगमालाद्यं भेरुण्डाया द्वितीयकम्।
नित्यक्लिन्नाद्वितीयं च तृतीयं षष्ठसप्तमौ॥१११॥

अष्टमं नवमं चापि पूर्वं स्यादन्तिमं पुनः। द्वयमेकैकमथ च द्वयथद्वयमथ द्वयम्॥११२॥

मायया पुटितं कृत्वा कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्।
प्रत्येकं शक्तिपुटितैर्मन्त्रार्णैर्दशभिर्न्यसेत्॥११३॥

दृक्छ्रोत्रनासावाग्वक्षोणाभिगुह्येषु च क्रमात्।
रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमालाविभूषणाम्॥११४॥

इन वह्निवासिनी के स्मरण मात्र से तीनों लोक वश में हो जाता है। हे मुनिवर! सप्तमी नित्या हैं महावज्रेश्वरी। साधकों को सिद्धि देने वाली उनकी विद्या को कहता हूं। इनका मन्त्र श्लोक ११० में 'द्वितीयं' से लगाकर श्लोक ११२ में ''द्वयम्'' तक है। (इसका मन्त्रोद्धार करके विज्ञजन प्रयोग करे)। इस मन्त्र (विद्या) का मायाबीज (ह्रीं) से सम्पुटित करके षडङ्गन्यास करे। प्रत्येक अक्षर को 'ह्रीं' से पुटित करके नेत्र, कर्ण, नाक, वक्ष, नाभि तथा गुह्य में क्रमानुसार दश अक्षरों से न्यास करना चाहिये। अब देवी का ध्यान करे। वे रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रधारिणी, रक्तवर्ण के गन्ध-माला से भूषित हैं।।१०९-११४।।

चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।
पाशाङ्कुशामिक्षुचापं दाडिमीशायकं तथा॥११५॥
दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयासुप्रीतिशीतलैः। पश्यन्ती साधकेअस्त्रषट्कोणाब्जमहीपुरे॥११६॥
चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम्।
शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पीतमध्यगाम्॥११७॥
सिंहासनेऽभितः प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः।
वृतां ताभिर्विनोदानि यातायातादिभिः सदा॥११८॥
कुर्वाणामरुणाम्भोधौ चिन्तयेन्मन्त्रनायकम्।
एषा तु सप्तमी प्रोक्ता दूतीं चाप्यष्टमीं शृणु॥११९॥

वे चतुर्भुजा, त्रिनेता माणिक्य मुकुट की प्रभा से उज्वल, पाश, अंकुश, ईख के धनुष, अनार के बाणों को धारण करने वाली, दयापूर्ण प्रीतिसमन्वित शीतल नेत्रयुक्त, इस दृष्टि से साधक का अवलोकन करने वाली, अस्त्र, षट्कोण कमल तथा भूपुर एवं चक्रमध्य में सुखासीन, स्मित हास्ययुक्त मुखकमल वाली, स्वस्वरूपात्मक शक्तियों से घिरी, पीतमध्यगा, सिंहासनासीना हैं। आप चामर झलने वाली तथा निकट स्थित शक्तियों के साथ मनोविनोद में रत मन्त्रनायिका देवी का ध्यान अरुण वर्ण सागर में करे। अब मैंने सप्तमी नित्या का वृत्तान्त कह दिया। अब अष्टमी नित्या दूती का वर्णन श्रवण करो।।११५-११९।।

वज्रेश्वर्याद्यमाद्यं स्याद्वियदग्नियुतं ततः।
अम्बु स्यान्मरुता युक्तं गोत्रा क्ष्मासंयुता ततः॥१२०॥
रयोव्यासेन शुचिना युतः स्यात्तदनन्तरम्।
अत्यर्णां वह्निवासिन्या दूती नित्या समीरिताः॥१२१॥
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन विद्यायाः स्यात्षडङ्गकम्। तेनैव पुटितैरर्णैन्यच्छ्रोत्रादिपञ्चसु॥१२२॥
षष्ठकं नसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत्।
निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम् ॥१२३॥

नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम्।
नानाभरणसम्भिन्नदेहकान्तिविराजिताम् ॥१२४॥
शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः।
पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः॥१२५॥

इनका मन्त्र है श्लोक १२० में 'वर्ज्रेश्वर्याद्य' से लेकर श्लोक १२१ में "समीरिता" पर्यन्त (विज्ञजन इसका मन्त्रोद्धार करें)। षड्दीर्घस्वरयुक्त बीजमन्त्र से षडङ्ग सम्पन्न करे। इन ५ स्वरों से सम्पुटित वर्ण द्वारा कर्ण आदि पांच स्थानों (अंगों) में न्यास करे। षष्ठ वर्ण का न्यास नासिका में करे। तदनन्तर व्यापक न्यास करे। तत्पश्चात् देवी का ध्यान करे। ये देवी ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न गगन में उदित सूर्यवत्, कान्तिमान्, नवरत्नजटित मुकुट धारी, त्रिनयना, रक्तवर्ण के वस्त्र को धारण करने वाली, नाना आभूषणों से भूषित, मनोहर अंगों वाली अष्टभुज, मर्हिषगण से वन्दिता, वाम हस्त में पाश, धनुष गदा तथा रत्नपात्र धारण करने वाली हैं। ये उत्तम पावन मन्दहास्य करने वाली अष्ट भुजा, महर्षिगण से स्तुत हैं।।१२०-१२५।।

दक्षिणैरङ्कुशं खड्गं कट्टारं कमलं तथा। दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम्॥१२६॥
ध्यात्वैवं पूजयेद्देवीं देतीं दुर्न्नीतिनाशिनीम्।
इत्येषा कथिता तुभ्यं समस्तापन्निवारिणी॥१२७॥
श्रीकरी शिवतावासकारिणी सर्वसिद्धिदा।
अथ ते नवमीं नित्यां त्वरितां नाम नारद॥१२८॥

इन्होंने दक्षिण हाथ में अंकुश, खड्ग, कटार तथा कमल धारण किया है। ये भगवती सतत् साधकों को अभीष्ट देने हेतु उद्यत रहती हैं। ऐसा ध्यान करके दुर्नीतिनाशिनी देवी दूती का पूजन करे। ये देवी सर्वविपत्ति निवारिणी, कल्याणप्रदा, सकलसिद्धिदायिनी तथा शिव देहाभ्यन्तर निवासिनी हैं। हे नारद! अब मैं नवम नित्या त्वरिता का वर्णन करता हूं।।१२६-१२८।।

प्रवक्ष्यामि यशोविद्याधनारोग्यसुखप्रदाम्। आद्यं तु वह्निवासिन्या दूत्यादिस्तदनन्तरम्॥१२९॥
हंसो धरा स्वयं युक्तस्तेजश्चरसमन्वितम्।
वायुः प्रभाचरयुता ग्रासशक्तिसमन्वितः॥१३०॥
हृदारयेण दाहेन वह्निस्वावष्टमं तथा। हंसःक्ष्माखंयुतो ग्रासश्चरयुक्तो द्वितीयकः॥१३१॥
द्वितिर्नारदयुतानित्या त्वरिता द्वादशाक्षरी।
विद्या चतुर्थवर्णादिसप्तभिस्त्वक्षरैस्तथा॥१३२॥
कुर्यादङ्गानि युग्मार्णैः षट्क्रमेण कराङ्गयोः।
शिरोललाटकण्ठेषु हृन्नाभ्याधारके तथा॥१३३॥
ऊरुयुग्मे तथा जानुद्वये जङ्घाद्वये तथा।
पादयुग्मे तथा वर्णान्मन्त्रजान्दश विन्यसेत्॥१३४॥

ये देवी यश, विद्या, धन, आरोग्य, सुखप्रदा हैं। इनका मन्त्र श्लोक १२९ में आद्यं से लगाकर श्लोक १३२ में "द्वादशाक्षरी" पर्यन्त है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। इसका चतुर्थाक्षर बीजमन्त्र है। सात मन्त्राक्षर से अंगन्यास करना होगा। पहले युग्म वर्ण से क्रमिक रूप से षडङ्गन्यास करे। शिर, ललाट, कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार, दोनों उरु, दोनों जंघा, दोनों चरण में मन्त्र के १० वर्ण का न्यास करना चाहिये।।१२९-१३४।।

द्वितीयोपान्त्यमध्यस्थैर्मन्त्रार्णैरितरैरपि। ताराद्यैः शृणु तद्ध्यानं सर्वसिद्धिविधायकम्॥१३५॥

श्यामवर्णशुभाकारां नवयौवनशोभिताम्। द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पिताभरणोज्ज्वलैः॥१३६॥

ताटङ्कमङ्गदं तद्वद्रसना नूपुरं च तैः। विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः॥१३७॥

पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपिच्छकृतैः शुभैः।
वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥१३८॥
बर्हिबर्हकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम्।
गुञ्जागुणलसद्वक्षःकुचकुंकुममण्डलाम् ॥१३९॥

त्रिनेत्रां चारुवदना मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्। पाशाङ्कुशवराभीतिलसद्भुजचतुष्टयाम्॥१४०॥

मन्त्र के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, एकादश का भी न्यास करे। अब देवी के सर्वसिद्धिप्रद ध्यान को कहा जा रहा है। देवी श्याम वर्णा तथा शुभ आकृति हैं। वे नवयौवन सम्पन्ना हैं। उनके अंगों पर ताटंक, केयूर, कांची, नूपुर के स्थान पर दो-दो नाग हैं। ये आठ उज्वल, भीमकाय वाले क्रमशः दो ब्राह्मण वर्ण के नाग, क्षत्रिय वर्ण के दो नाग, वैश्य वर्ण के दो नाग तथा शूद्र वर्ण के दो नाग आभूषण रूपी हैं। देवी ने रक्तवर्ण वस्त्र पहना है। मयूर पुच्छ के बाजूबन्द से भुजा विभूषित है। शुभ्रवर्ण मणि का मुकुट, मयूर पुच्छ का शिरोभूषण देवी ने धारण किया है। उनके शिर के ऊपर छत्र तथा पताका भी लगी है। भगवती के वक्ष पर घुमची की माला लटक रही है। स्तनद्वय कुंकुम से ढके से हैं। भगवती त्रिनेत्रा मनोहर आनन वाली हैं। उनका मुखकमल स्मित हास्य से शोभायमान हैं। भगवती के ४ हाथों में पाश, अंकुश, वरमुद्रा तथा अभयमुद्रा विराजित हैं।।१३५-१४०।।

ध्यात्वैवं तोतलां देवीं पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम्।
तदग्रस्था लु फट्कारीशरचापकरोज्ज्वला॥१४१॥
प्रसीदेत्फलदाने च साधकानां त्वरान्विता।
एषा तु नवमी नित्या त्वरितोक्ता मुनीश्वर॥१४२॥

अब शक्तियों से चारों ओर से घिरी तीतला देवी का ध्यान तथा पूजा करे। उनके अग्रभाग में उज्वल धनुष बाण धारिणी फट् ध्वनि करने वाली 'लु' की पूजा करे। वे प्रसन्न होने पर साधकों को शीघ्र फलप्रदा हो जाती हैं। यह त्वरिता नामक नवम नित्या का वर्णन किया गया।।१४१-१४२।।

विघ्नदुःस्वप्नप्रशमनी सर्वाभीष्टप्रदायिनी।
शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो रसावह्निसमन्वितः॥१४३॥

प्राणो द्वितीयः स्वयुतो वनदुच्छक्तिभिः परः।
इतीरिता त्र्यक्षराख्या नित्येयं कुलसुन्दरी॥१४४॥
यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते।
त्रिभिस्तैरुदितैर्मूलवर्णैः कुर्य्यात्षडङ्गकम्॥१४५॥

ये देवी विघ्न तथा दुःस्वप्न का नाश करती हैं तथा सर्वाभीष्टप्रदा हैं। अब कुलसुन्दरी का मन्त्र कहते हैं—श्लोक १४३ में 'शुचिः' से लगाकर श्लोक १४४ में 'परः' तक इनका मन्त्र है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें)। ये त्र्यक्षर नित्या हैं। इनके स्मरण मात्र से सर्वज्ञत्व लाभ होता है। इनका षडङ्गन्यास तीन मूल वर्ण से करे।।१४३-१४५।।

आदिमध्यावसानेषु पूजाजपविधिक्रमात्।
प्रत्येकं तैस्त्रिभिर्बीजैर्दीर्घस्वरसमन्वितैः॥१४६॥
कुर्यात्कराङ्गवक्त्राणां न्यासं प्रोक्तं यथाविधि।
ऊर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदक्च पश्चिमाधरनामभिः॥१४७॥

सुविनद्यन्तरस्थैस्तन्नदात्मसु यथाक्रमम्। आधाररन्ध्रहृत्स्वेकं द्वितीयं लोचनत्रये॥१४८॥
तृतीयं श्रोत्रचिबुके चतुर्थं घ्राणतालुषु। पञ्चमं चांसनाभीषु ततः पाणिपदद्वये॥१४९॥

मूलमध्याग्रतो न्यस्येन्नवधा मूलवर्णकैः।
लोहितां लोहिताकारशक्तिवृन्दनिषेविताम्॥१५०॥

लोहितांशुकभूषास्त्रग्लेपनां षण्मुखाम्बुजाम्। अनर्घ्यरत्नघटिमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥१५१॥
रत्नस्तबकसम्भिन्नलसद्वक्षःस्थलां शुभाम्। कारुण्यानन्दपरमामरुणाम्बुजविष्टराम्॥१५२॥

भुजैर्द्वादशभिर्युक्तां सर्वेषां सर्ववाङ्मयीम्।
प्रवालाक्षस्त्रजं पद्मं कुण्डिकां रत्ननिर्मिताम्॥१५३॥
रत्नपूर्णं तु चषकं लुङ्गीं व्याख्यानमुद्रिकाम्।
दधानां दक्षिणैर्वामैः पुस्तकं चारुणोत्पलम्॥१५४॥

आदि-मध्य अवसान में पूजा-जप विधिक्रमेण दीर्घस्वरयुक्त बीजमन्त्रत्रय द्वारा बाहु, हृदय तथा मुख में न्यास करे। ऊर्ध्व, अधः, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम में भी मूलवर्ण द्वारा न्यास सम्पन्न करे। मूलाधार में, रन्ध्र तथा हृदय में प्रथमाक्षर से, त्रिनेत्र में द्वितीयाक्षर से, कर्ण एवं ठुड्डी में तृतीयाक्षर से, नाक एवं तालु में चतुर्थाक्षर से, पंचम से नाभि एवं स्कन्ध में, पंचमाक्षर से, हस्त, पाद, मूल-मध्य-अग्र में, षष्ठ, सप्तम, अष्टम एवं नवमाक्षर का न्यास करे।

ध्यान—देवी का लोहित वर्ण है। रक्तवर्ण की शक्तियों से वे सेवित हैं। वे रक्तवर्ण के वस्त्र, आभूषण, माला तथा लेप से शोभित हैं। उनका छः मुखरूपी कमल है। वे भगवती करुणा की तथा आनन्द की मूर्ति हैं। वे भगवती अनमोल रत्नजटित शुभ्रमणियुक्त मुकुट धारण करती हैं। रत्नों वलि उनके वक्ष पर लम्बायमान है।

वे द्वादश भुजावाली सर्ववाङ्मयी हैं। उनके दाहिने हाथ में प्रवाल की माला तथा जपमाला है। उन्होंने इसी हाथ में पद्म, रत्न निर्मित कमण्डलु, रत्न से बना पानपात्र धारण किया है तथा लुंगी नामक व्याख्यान मुद्रिका भी है। उन्होंने वामहाथ में पुस्तक तथा अरुण वर्ण का कमल धारण किया है।।१४६-१५४।।

हैमीं च लेखनीं रत्नमालां कम्बुवरं भुजैः। अभितः स्तूयमानां च देवगन्धर्वकिन्नरै॥१५५॥
यक्षराक्षसदैत्यर्षिसिद्धविद्याधरादिभिः। ध्यात्वैवमर्चयेन्नित्यां वागलक्ष्मीकान्तिसिद्धये॥१५६॥

उन्होंने वाम हाथ में स्वर्ण की लेखनी, रत्नमाला, उत्तमशंख धारण किया है। उनके चतुर्दिक् देव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, दैत्य, ऋषि, सिद्ध, विद्याधरादि एकत्र होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। वाणी, लक्ष्मी, कान्ति की सिद्धि हेतु व्यक्ति इस ध्यान को करके इन नित्या की सदा अर्चना करे।।१५५-१५६।।

सितां केवलवाक्सिद्ध्यै लक्ष्म्यै हेमप्रभामपि।
धूमाभां वैरिविद्विष्ट्यै मृतये निग्रहाय च॥१५७॥
नीलां च मूकीकरणे स्मरेत्तत्तदपेक्षया। इत्येषा दशमी नित्या प्रोक्ता ते कुलसुन्दरी॥१५८॥
नित्यानित्यां तु दशमीं त्रिकुटां वच्मि साम्प्रतम्।
हंसश्च हृत्प्राणरसादाहकर्णैः समन्वितः॥१५९॥
विद्यया कुलसुन्दर्या योजितः सम्प्रदायतः।
नित्यानित्यत्रिवर्णेयं षड्भिः कूटाक्षरैर्युता॥१६०॥
प्रतिलोमादिभी रूपैर्द्विसप्ततिभिदा मता।
यस्या भजनतः सिद्धो नरः स्यात्खेचरः सुखी॥१६१॥
निग्रहानुग्रहौ कर्तुं क्षमः स्याद्भुवनत्रये। दीर्घस्वरसमेताभ्यां हंसहृद्भ्यां षडङ्गकम्॥१६२॥

मात्र वाक्सिद्धि हेतु सिता की, लक्ष्मी सिद्धि हेतु हेमप्रभा की, शत्रु विद्वेषण, मृत्यु, निग्रहार्थ धूम्राभाकी किसी को मूकत्व प्रदान करने हेतु नीला का स्मरण करे। यह मैंने दशमी नित्या कुल सुन्दरी का वर्णन किया। अब एकादशी नित्या त्रिकूटा का वर्णन करता हूं। इनका मन्त्र श्लोक १५९ में "हंसश्च" से लगाकर श्लोक १६१ में "प्रतिलोमादिभि रूपै" तक है। (मन्त्रोद्धार करके विज्ञजन प्रयोग करे)। यह ७२ वर्ण का मन्त्र है। इसका जप करके त्रैलोक्य में मनुष्य आकाशगामी, सुखी निग्रह-अनुग्रहक्षम हो जाता है। षड्दीर्घयुक्त स्वरवर्ण सहित अजपा तथा प्रणव से षडङ्गन्यास करे।।१५७-१६२।।

भ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिगुह्याधारेषु च क्रमात्।
विद्याक्षराणि क्रमशो न्यसेद्बिन्दुयुतानि च॥१६३॥
व्यापकं च समस्तेन विधाय विधिना पुनः।
ध्यायेत्समस्तसम्पत्तिहेतोः सर्वात्मिकां शिवाम्॥१६४॥

भ्रूमध्य, कण्ठ, नाभि, गुह्य, मूलाधार में क्रमशः विद्याक्षरों (मन्त्राक्षरों) के ऊपर विन्दु लगाकर न्यास करे। तदनन्तर विधि के साथ (नियमतः) समस्त का व्यापक न्यास करना चाहिये। इसके पश्चात् समस्त सम्पत्ति लाभार्थ सर्वात्मिका शिवा का ध्यान करे।।१६३-१६४।।

(यहां मूल में "नित्यानित्यां तु दशमी" गलत पाठ है, क्योंकि यह त्रिकूटा नित्या एकादशी नित्या हैं। जैसा इसी अध्याय के श्लोक १६९ में "इत्येषैकादशी प्रोक्ता" इनके लिये लिखा है।)

उद्यद्भास्करबिम्बाभां माणिक्यमुकुटोज्वलाम्। पद्मरागकृताकल्यामरुणांशुकधारिणीम्॥१६५॥

चारुस्मितलसद्वक्त्रषट्सरोजविराजिताम्। प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां भुजैर्द्वादशभिर्युताम्॥१६६॥

पाशाक्षगुणपुण्ड्रेक्षुचापखेटत्रिशूलकान्। करैर्वामैर्दधानां च अङ्कुशं पुस्तकं तथा॥१६७॥

पुष्पेषुमम्बुजं चैव नृकपालाभये तथा। दधानां दक्षिणैर्हस्तैर्ध्यायेद्देवीमनन्यधीः॥१६८॥

ध्यान उदित हुये सूर्यबिम्ब के समान द्युतियुक्त, माणिक्य जटित उज्वलमुकुट धारिणी, पद्मराग जड़े हुये रक्तवर्ण वस्त्र धारण करने वाली, मन्द मुस्कान से युक्त, षड्मुखकमल धारिणी, प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्रों से शोभिता द्वादशा भुजा समन्विता, वाम हस्त में पाश, रुद्राक्ष, इक्षुधनुष, खेटक, त्रिशूल धारण करने वाली तथा दक्षिण हस्त में अंकुश, पुस्तक, पुष्प के बाण नरकपाल तथा अभय मुद्रा युता देवी का अनन्य ध्यान करे।।१६५-१६८।।

इत्येषैकादशी प्रोक्ता द्वादशीं शृणु नारद।
त्वरितोयान्त्यमाद्यं स्याद्युतिदोहचरस्वयुक्॥१६९॥
हृच्च दाहक्ष्मास्वयुतं वज्रेशीपञ्चमं तथा।
मरुत्स्वयुक्तो मध्याढ्योदशम्याः परतः पुनः॥१७०॥
भूमी रसाक्ष्मास्वयुता वज्रेशीत्यष्टमः क्रमात्।
षडक्षराणि त्वरिता तृतीयं तदनन्तरम्॥१७१॥
द्युतिर्दाहचरस्वेन अस्या आद्यमनन्तरम्।
उक्ता नीलपताकाख्या नित्या सप्तदशाक्षरी॥१७२॥

यह एकादशी संख्या वाली नित्या का वर्णन किया था। हे नारद! अब बारहवीं नित्या का वर्णन करता हूं। उनका मन्त्र यह है, जो श्लोक १६९ में "त्वरितोया" से लगाकर श्लोक १७२ में "आद्यमनन्तरम" पर्यन्त है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके यह प्रयोग करे)। यह बारहवीं नित्या नीलपताकिनी का १७ अक्षरात्मक मन्त्र (विद्या) है।।१६९-१७२।।

द्विद्विपक्षाक्षिषड्वर्णैर्मन्त्रोत्थैरङ्गकल्पनम्। श्रोत्रादिनासायुगले वाचि कण्ठे हृदि क्रमात्॥१७३॥

नाभावाधारकेऽथापि पादसन्धिषु च क्रमात्।
मन्त्राक्षराणि क्रमशो न्यसेत्सप्तदशापि च॥१७४॥
व्यापकं च समस्तेन विदध्याच्च यथाविधि।
इन्द्रनीलनिभां भास्वन्मणिमौलिविराजिताम्॥१७५॥
पञ्चवक्त्रां त्रिनयनामरुणाङ्शुकधारिणीम्।
दशहस्तां लसन्मुक्तामण्याभरणमण्डिताम्॥१७६॥

रत्नस्तबकसम्पन्नदेहां चारुस्मिताननाम्। पाशं पताकां चर्मापि शार्ङ्गचापं वरं करैः॥१७७॥

दधानां वामपार्श्वस्थैः सर्वाभरणभूषितैः।
अङ्कुशं च तथा शक्तिं खड्गं बाणं तथाभयम्॥१७८॥

दधानां दक्षिणैर्हस्तैरासीनां पद्मविष्टरे। स्वाकारवर्णवेषास्यपाण्यायुधविभूषणैः॥१७९॥

शक्तिवृन्दैर्वृतां ध्यायेद्देवीं नित्यार्चनक्रमे। त्रिषट्कोणयुतं पद्ममष्टपत्रं ततो बहिः॥१८०॥

अष्टास्त्रं भूपुरद्वन्द्वावृतं तत्पुरयुग्मकम्। चतुर्द्वारयुतं दिक्षु शाखाभिश्च समन्वितम्॥१८१॥

मन्त्र के १४ वर्णों अंगन्यास करके कान, नाक, कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार तथा चरण की सन्धि में पूरे १७ मन्त्राक्षरों का क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् सविधि व्यापकन्यास करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्रनील मणिवत् कान्तिसम्पन्न, दीप्त मणिमुकुट मण्डिता, पंचमुख, प्रत्येक मुख पर त्रिनेत्र धारण करने वाली, रक्तवस्त्रधारिणी, वामहस्त में पाश, पताका, ढाल, धनुष तथा वर मुद्रा धारिणी तथा दक्षिण हस्त में अंकुश, शक्ति, खड्ग, बाण तथा अभय मुद्रायुता, दश हाथ की दीर्घाकृति वाली, मणिमुक्ता जड़ित आभूषण भूषिता, रत्नावली धारिणी, स्मित मुस्कान से विभूषिता, कमलासनासीना, अपने समान आकार, वर्ण, वेष आभूषण युक्त तथा अपने समान आयुध धारण करने वाली शक्तियों से घिरी देवी का नित्या देवियों के अर्चन क्रम में ध्यान करे। तब त्रिषट्कोण युक्त अष्टदल कमल तथा उसके बाहर अष्टार तथा दो भुपूर लिखे उनमें चतुर्द्वार हो तथा दिशाओं में शाखा समन्वित हो।।१७३-१८१।।

कृत्वा नामावृतां शक्तिं गणैस्तत्रार्चयेच्छिवाम्।
एषा ते द्वादशी नित्या प्रोक्ता नीलपताकिनी॥१८२॥

समरे विजयं खड्गपादुकाञ्जनसिद्धिदा। वेतालयक्षिणीचेटपिशाचादिप्रसाधिनी॥१८३॥

निधानबिलसिद्धान्नसाधिनी कामचोदिता।
अथ त्रयोदशीं नित्यां वक्ष्यामि शृणु नारद॥१८४॥

वहां शक्तियुक्त शिवा की अर्चना करे। (शक्तियों की भी अर्चना करे।) यह मैंने द्वादशी नित्या नीलपताकिनी का वर्णन किया। ये समर में विजय देने वाली, खड्ग-पादुका-अंजन सिद्धि देती हैं। ये देवी वेताल, यक्षिणी, चेटक, पिशाच, निधि, बिलप्रवेश, सिद्धान्न प्रभृति को सिद्ध कराने वाली हैं। वे यह सब शीघ्र सिद्धिदात्री हैं। हे नारद! अब तेरहवीं नित्या का प्रसंग श्रवण करे।।१८२-१८४।।

रसो नभस्तथा दाहो व्याप्तक्ष्मावनपूर्विका।
खेन युक्ता भवेन्नित्या विजयैकाक्षरा मुनि॥१८५॥

विद्याया व्यञ्जनैर्दीर्घस्वरयुक्तैश्चतुष्टयम्। शेषाभ्यां च द्वयं कुर्यात्षड्गानि कराङ्गयोः॥१८६॥

ज्ञानेन्द्रियेषु श्रोतादिष्वथ चित्ते च विन्यसेत्।
अक्षराणि क्रमाद्विन्दुयुतानयन्यत्तु पूर्ववत्॥१८७॥

पञ्चवक्त्रां दशभुजां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्।
भास्वन्मुकुटविन्यासचन्द्रलेखाविराजिताम्॥१८८॥

सर्वाभरणसंयुक्तां पीताम्बरसमुज्ज्वलाम्।
उद्यद्भास्वद्विम्बतुल्यदेहकान्तिं शुचिस्मिताम्॥१८९॥
शङ्खं पाशं खेटचापौ कह्लारं वामबाहुभिः।
चक्रं तथाङ्कुशं खड्गं सायकं मातुलुङ्गकम्॥१९०॥
दधानां दक्षिणैर्हस्तैः प्रयोगे भीमदर्शनाम्।
उपासनेति सौम्यां च सिंहोपरि कृतासनाम्॥१९१॥
व्याघ्रारूढाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्।
समरे पूजनेऽन्येषु प्रयोगेषु सुखासनाम्॥१९२॥
शक्तयश्चापि पूजायां सुखासनसमन्विताः।
सर्वा देव्याः समाकारमुखपाण्यायुधा अपि॥१९३॥

इनका मन्त्र है—श्लोक १८५ में "रसो नभस्तथा" से लगाकर उसी श्लोक में "भवेन्नित्या" तक है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार द्वारा प्रयोग करे।) हे मुनिश्रेष्ठ! यह एकाक्षरी विद्या (मन्त्र) विजया देवी का कहा गया है। षड्दीर्घ स्वर से तथा मन्त्र के व्यंजन अंगन्यास करे। कर्णादि ज्ञानेन्द्रिय में तथा चित्त में विन्दुयुक्त मन्त्रक्षरों से क्रमशः न्यास करे। तदनन्तर ध्यान करे—पंचमुखी, दशभुजा वाली, प्रत्येक मुख में तीन नेत्रों वाली, उदित सूर्य के समान भास्वर विम्बवत् देहकान्तियुता, चमकते दीप्तिमान मुकुट एवं चन्द्रलेखा से शोभिता, सर्वाभरणभूषिता, पीतवस्त्रधारिणी, पवित्र हास्य करने वाली, बायें हाथों में शंख, पाश, ढाल, धनुष, श्वेत पद्म धारण करने वाली, दाहिने हाथ में चक्र, अंकुश, खड्ग, बाण, मातुलुंग फल धारण करने वाली, देखने में घोर तथा भयंकर, परन्तु उपासित होने पर अति सौम्या और सिंहारूढा तथा व्याघ्रारूढ़ा, शक्तियों से घिरी, संग्राम, प्रयोग पूजन काल में इन सुखासीन देवी का ध्यान करे। पूजा के समय ये सभी शक्तियां देवी के साथ सुखासनासीन हो जाती हैं। ये सभी देवियां भगवती के ही समान आकार, मुखाकृति तथा हाथों में आयुध धारण करने वाली हैं।।१८५-१९३।।

चतुरस्त्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारोपशोभितम्। शाखाष्टकसमोपेतं तत्र प्राग्वत्समर्चयेत्॥१९४॥
तदन्तर्वृतयुग्मान्तरष्टकोणं विधाय तु। तदन्तश्च तथा पद्मं षोडशच्छदसंयुतम्॥१९५॥

तथैवाष्टच्छदं पद्मं विधायावाह्य तत्र ताम्।
तत्तच्छक्त्या वृतां सम्यगुपचारैस्तथार्चयेत्॥१९६॥
एषा त्रयोदशी प्रोक्ता वादे युद्धे जयप्रदा।
चतुर्दशीं प्रवक्ष्येऽथ नित्यां वै सर्वमङ्गलाम्॥१९७॥

इनकी अर्चना पूर्ववत् चतुर्द्वार तथा आठ शाखायुक्त दो चतुरस्त्र युक्त बनाये। उस पीठ पर अर्चना करे। वहां अष्टकोण, १६ दल कमल, अष्टदल कमल बनाये। वहीं इन शक्तियों सहित देवी का आवाहन करना चाहिये तथा वहां सम्यक्तः उपचारों द्वारा पूजनादि सम्पन्न करे। ये त्रयोदशी नित्या युद्ध में, वाद-विवाद में विजयप्रदा हैं। अब मैं सर्वमंगला चौदहवीं नित्या का वर्णन करता हूं।।१९४-१९७।।

हृदम्बुवनयुक्तं खं नित्या स्यात्सर्वमङ्गला॥१९८॥
एकाक्षर्यनया सिद्धो जायते खेचरः क्षणात्।
षड्दीर्घाढ्यां मूलविद्यां वडङ्गेषु प्रविन्यसेत्॥१९९॥
तां नित्यां जातरूपाभां मुक्तामाणिक्यभूषणाम्।
माणिक्यमुकुटां नेत्रद्वयप्रेङ्खद्दयापराम्॥२००॥
द्विभुजां शासनां पद्मे त्वष्टषोडशतद्द्वयैः। पत्रैरुपेते सचतुर्द्वारभूसद्मयुग्मके॥२०१॥
मातुलुङ्गफलं दक्षे दधानां करपङ्कजे। वामेन निजभक्तानां प्रयच्छन्तीं धनादिकम्॥२०२॥

उनका मन्त्र श्लोक १९८ में है। (इसे विज्ञजन मन्त्रोद्धारोपरान्त प्रयोग करे।) यह एकाक्षरी देवी मन्त्र है। यह सिद्ध होते ही मनुष्य उसी क्षण आकाशगमन की शक्तिलाभ करता है। षड्दीर्घ युक्त मूलमन्त्र से षडङ्गन्यास करे तथा ध्यान करे। यथा उनका वर्ण रजतवत् धवल है। उनके आभूषण मुक्ता तथा मणि के हैं। मुकुट मणिमय है। उभय नेत्र दयार्द्र हैं। वे द्विभुज हैं। वे चतुर्द्वार युक्त भूपुर में अष्टदल, षोडशदल तथा शतदल कमल पर आसीन हैं। उन्होंने दाहिने हाथ में बीजपूर फल धारण किया है। वे वाम हाथ से भक्तजन को धनादि प्रदान करती हैं।।१९८-२०२।।

स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्।
षट्सप्ततिभिरन्याभिरप्सरोत्थाभिरन्विताम्॥२०३॥
प्रयोगेष्वन्यदा नित्यं सपर्यासक्तशक्तिकाम्।
एषा चतुर्दशी प्रोक्ता तथा पञ्चदशीं शृणु॥२०४॥

उनको उनके ही समान रूपवाली शक्तियों ने सादर घेर रखा है। वे अन्य ७६ अप्सराओं द्वारा युक्त हैं। प्रयोग काल में इन देवी के साथ उक्त सभी शक्तियों की भी पूजा करे। यह मैंने चतुर्दशी देवी का वृत्तान्त कहा। अब १५वीं नित्या का वर्णन सुनिये।।२०३-२०४।।

भूः शून्यं नभसा भूश्च रसश्चाथ स्थिराम्बु च।
रयोग्निना युतीज्याम्बुमरुद्युक्तारसा मरुत्॥२०५॥
नभश्च मरुता युक्तं रसा शून्येऽपि संयुते। गोत्रा चरेण सहिता अम्बुपूर्वाक्षरस्तथा॥२०६॥
अम्ब्वग्नी हृच्च दाहाम्बुरसक्ष्मारयहृत्स्वयुक्।
हंसश्च मरुता दाहः प्राणश्च मारुतायुतः॥२०७॥
दाहः साग्निप्राणचरौ ज्यामरुत्सहितारयः।
चरेणाम्बु च गोत्राहृत्साग्निर्ज्याम्बुरसा स्वयुक्॥२०८॥
रयः साग्निर्ज्याम्बुरसा पुनरेतेजवी ततः।
दाहेनानेन ते द्विः स्याद्घ्रस्वो दाहमरुत्स्वयुक्॥२०९॥
हंसः सदाहवह्निस्वो दाहक्ष्मास्वयुतश्च सः। सप्तदाहस्ततोऽस्याः स्युरष्टमाद्यास्तु पञ्च ते॥२१०॥

उपान्त्याधः स्थितं नीलपताकाया अनन्तरम्।
त्वरिता त्वं च भेरुण्डाष्टमं च नवमं तथा॥२११॥
सा ज्वालामालिनी नित्या त्रिषष्ट्यर्णा समीरिता। एकद्वयचतुःपञ्चचतुष्टयदशाक्षरैः॥२१२॥
कुर्यादङ्गानि मूलार्णैरादितः षट्कराङ्गयोः।
शेषैस्तु व्यापकं कुर्यात्ततो ध्योयत्सनातनीम्॥२१३॥

उनका मन्त्र श्लोक २०५ में "भूः शून्यं" से लगाकर श्लोक २११ में "नवमं तथा" पर्यन्त ज्वालामालिनीक नित्या का ६३ वर्ण का मन्त्र है। (इस मन्त्र का मन्त्रोद्धार करके विज्ञजन प्रयोग करे)। मूलमन्त्र के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, दशम अक्षर से अंगन्यास करे। बाकी से व्यापक न्यास करके भगवती सनातनी ज्वालामालिनी का ध्यान करे।।२०५-२१३।।

ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।
षड्वक्त्रां द्वादशभुजां सर्वाभरणभूषिताम्॥२१४॥
पाशाङ्कुशौ खड्गखेटौ चापबाणौ गदाधरौ।
शूलवह्नी वराभीतो दधानां करपङ्कजैः॥२१५॥
स्वप्रमाणाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्।
चारुस्मितलसद्वक्त्र सरोजां त्रीक्षणान्विताम्॥२१६॥
ध्यात्वैवमुपचारैस्तैरर्चयेत्तां तु नित्यशः। चतुरस्त्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम्॥२१७॥
सशाखमष्टपत्राब्जमन्तरा त्र्यस्त्रकं ततः।
षट्कोणं मध्यतस्त्र्यस्त्रं विधायात्र शिवां यजेत्॥२१८॥

ध्यान—ये देवी ज्वलित अग्निवत् वर्णों वाली, शुभ्रमणिमुकुट मंडिता, षड्मुखी, द्वादाभुजा समन्वित, सर्वाभरणभूषिता हैं। इनके कर कमल में पाश, अंकुश, खड्ग, ढाल, धनुष-बाण, गदा, त्रिशूल, अग्नि, वरमुद्रा-अभयभुद्रा है। इनके मुख उत्तम हास्य से शोभित हैं। प्रति मुख पर तीन नेत्र हैं। एवंविध ध्यानोपरान्त नाना उपचार से देवी पूजा करे। तदनन्तर चतुद्वार समन्वित भूपुर लिखकर उसमें अष्टदल कमल तथा सशाख चतुरस्त्र एवं षट्कोण पीठ रचना करे। तब उस पीठ पर शिवा की सविधि पूजा करे।।२१४-२१८।।।

एषा पञ्चदशी प्रोक्ता षोडशीं शृणु नारद। वायुप्रणवतत्त्वैस्तु चित्रास्यादक्षरद्वया॥२१९॥
या सिद्धा धनधान्यात्मनिधिलाभाय कल्प्यते।
विद्याद्यवायुना कुर्याद्दीर्घस्वरयुजा क्रमात्॥२२०॥
षडङ्गानि यथापूर्वं मातृकां विद्यया न्यसेत्।
उद्यदादित्यबिम्बाभां नवरत्नविभूषणाम्॥२२१॥
नवरत्नकिरीटां च चित्रपट्टांशुकोज्ज्वलाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां शुचिस्मितलसन्मुखीम्॥२२२॥

सर्वानन्दमयीं नित्यां समस्तेप्सितदायिनीम्। चतुर्भुजेषु वै पाशमङ्कुशं वरदाभये॥२२३॥

दधानां मङ्गलापद्मकर्णिकायोनिमध्यगाम्।

तच्छक्तिभिश्च तच्चक्रे तथैवार्चनमीरितम्॥२२४॥

हे नारद! यह १५वीं नित्या का वर्णन कर दिया। अब षोडशी नित्या का वर्णन श्रवण करे। "ॐ यं" यह चित्रा देवी का द्वक्षर मन्त्र है। यह सिद्ध हो जाने पर धन-धान्यादि का लाभ होता है। षड्दीर्घस्वर युक्त बीजमन्त्र द्वारा षडङ्ग तथा मातृका न्यास करके ध्यान करे। ये देवी उदित सूर्यबिम्बवत् कान्तियुता, नवरत्नाभूषण भूषिता, मुकुट मण्डिता, विचित्र वर्ण का पट्ट तथा श्वेत वर्ण का वस्त्र धारण करने वाली, चतुर्भुज, त्रिनेत्रा, स्मित मुस्कान से शोभित आनन वाली, सर्वानन्दप्रदा, सर्वकामना प्रदात्री, चारों भुजा में पाश, अंकुश, वर एवं अभय मुद्रा धारिणी पद्मकर्णिकावत् निर्मित योनिमुद्रा के बीच आसीना मंगलपूर्णा देवी का चिन्तन तथा अर्चन उनकी शक्तियों सहित करे।।२१९-२२४।।

प्राणदाहौ धरायुक्तो पुनराद्यं रसे मरुत्।

व्यासं मरुच्छक्तियुतं भूः स्वयुक्ता ततस्त्रयम्॥२२५॥

अस्या आद्यं रसायुग्मं चरणेन प्रयोजितम्।

दाहेन वह्निशक्तिभ्याम् युतो हंसस्ततः परम्॥२२६॥

नभो दिर्हत्सदाहाम्बुज्या शून्यं स्वेन संयुतम्।

अम्बु पश्चाद्विषयुतं मरुता तु नभोयुतम्॥२२७॥

शून्यं व्याप्तं भुवा हंसः पूर्वान्त्यौ स्यान्मनुत्रयम्।

अस्याः षष्ठादिपञ्चार्णा दैत्यास्यादाद्य ईरितः॥२२८॥

एकादशाक्षरादन्त्या द्वितीयः खण्ड ईरितः।

तृतीयः पञ्चविंशार्णः प्रोक्ता मन्त्रा इति क्रमात्॥२२९॥

बाला बीजत्रयाद्यैर्द्विस्त्रिभिर्मन्त्रैः षडङ्गकम्।

विकीर्णकुन्तलां नग्नां रक्तामानन्दविग्रहाम्॥२३०॥

दधानां चिन्तयेद्बाणचापपाशसृणी करैः।

तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः॥२३१॥

ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः सदानन्दारुणेक्षणाः।

इत्येषा कुरुकुल्लान्ते प्रोक्ता चन्द्रावली स्वयम्॥२३२॥

तदनन्तर ये तीन मन्त्र हैं। इनसे षडङ्गन्यास करे। प्रथम मन्त्र श्लोक २२५ में "प्राणदाहौ" से लगाकर "ततस्त्रयम्" पर्यन्त है। द्वितीय मन्त्र श्लोक २२६ में "अस्या आद्यं" से लगाकर उसी श्लोक में "हंसस्ततः" तक है। तृतीय मन्त्र श्लोक २२७ में "नभो" से लगाकर श्लोक २२८ में "पूर्वान्त्यौ" तक है। (इन तीनों का मन्त्रोद्धार करके तब प्रयोग करे)।। ये तीन मन्त्र हैं। षड्दीर्घ यक्त बीजमन्त्र से क्रमशः षडङ्गन्यास करे। अब

भगवती का ध्यान करना चाहिये। वे देवी उन्मुक्त तथा बिखरे केशों वाली, नग्ना, रक्तवर्णा, आनन्द विग्रहा, हाथों में बाण, धनुष, पाश तथा अंकुशधारिणी हैं। उनके समान ही वर्ण वाली तथा आकृति वाली, वैसे ही आयुध धारण करने वाली, ऋतुस्नाता, फड़कती हुई योनि वाली, आनन्द के कारण अरुणाभ नेत्रों वाली अन्य देवीगण का भी ध्यान करना होगा। यह चन्द्रावलिवत् कुरुकुल्ला का वर्णन किया है।।२२५-२३२।।

वाराहीमभिधास्यामि ललितायाः परा तनुः।
शुचिः स्वेनाथ शून्यं स्यान्नभसाभ्ररसस्थिरा।।२३३।।
अम्बु पश्चाद्रयः साग्निर्मरुताम्बुरयौ तथा। इलायुतोऽग्निरेतानि पुनरम्बुमरुद्युतम्।।२३४।।
दाहाम्बुमरुताहंसस्त्वग्निनैतत्त्रयं पुनः। अम्बुदाहौ मरुद्युक्तौ हंसोऽथ धरया नभः।।२३५।।
तेजोग्निना पुनः पञ्च वातः स्वेन समायुतः।
तोयं चरेण तत्पूर्वं तोयमग्नियुतं ततः।।२३६।।
शून्यं व्याप्तेन शुचिना शून्यं शक्त्या नभो युतम्।
दाहो धरा स्वसहितस्तोयं चरसमन्वितम्।।२३७।।
एतत्पूर्वमधुः प्रोक्तं चतुष्टयमतः परम्।
जयाख्येन युक्ता सचरो रभश्चैतस्य पूर्वकम्।।२३८।।
रसोऽग्निना पुनः प्रोक्तं चतुष्का अपयं ततः।
शुभोभ्रता चरेणापि हंसः स्वेन सपूर्वकम्।।२३९।।
हंसोऽग्निना प्राक् त्रितयं हृदयं स्वसमायुतम्।
रसश्चरेण तत्पूर्वमग्निना चरसो युतः।।२४०।।
पश्चादुक्तस्त्रयं वातो धरया च नभोन्वितम्।
प्राणः स्वेन युतः पश्चाद्धृदयस्वयुतं रसः।।२४१।।
व्याप्तमेतत्त्रयं पश्चाद्दाहेनाम्बु समन्वितम्।
गोत्राभरायुता स्पर्शो नादयुक्तो जवीयुतः।।२४२।।
दाहेन पूर्वपूर्वं च पूर्वं च मरुता युतम्। शून्यं मरुत्स्वसहितं हृद्दाहेनाम्बुना चरः।।२४३।।
स्पर्शा मरुत्स्वसहितो हृद्दाहेनाम्बुसंयुतम्।
ज्याग्निः स्वसंयुतो हंसस्तथाम्बु मरुता सह।।२४४।।
हृद्रूपेण स्वेन युतं रसश्च स्वेन संयुतः। प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनस्तौ वह्निना वियुत्।।२४५।।
वाद्दहियक्तमम्ब स्यादिषष्ट्यासस्वसंयुतम्।
पूर्वद्विरुक्तवर्णौ च शुद्धिः स्वेन युततस्तथा।।२४६।।
स्थिरा रसा वतस्वेन दावो हंसी धरा स्वयुक्।
युतिर्नादवती पश्चाद्धृदम्बुमरुता युतम्।।२४७।।

हंसश्च मरुता विद्यः दशोत्तरशताक्षरी। वाराही पञ्चमी विश्वविजया भद्रकौमुदी॥२४८॥
वार्तालीति च विख्याता स्तम्भनाद्यखिलेष्टदा।
अङ्गानि कुर्यान्मन्त्रार्णैः सप्तभिः षड्भिरेव च॥२४९॥
दशभिः सप्तभिः सप्तसङ्ख्यैर्जातिभिरर्दिताः। त्रिकोणवृत्तषट्कोणवृत्तद्वयसमन्वितम्॥२५०॥
विधाय चक्रं तत्रैव स्वनामालिख्य पूजयेत्।
ध्यायेच्च देवीं कीलास्यां ततः काञ्चनसन्निभाम्॥२५१॥
आकण्ठं वनितारूपां ज्वलत्पिंगसरोरुहाम्।
त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शङ्खमथाङ्कुशम्॥२५२॥
पाशं च मुशल शीर्षमभयं वरदं तथा।
दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत्॥२५३॥

अब मैं ललिता की परामूर्त्ति वाराही का वर्णन करता हूं। उनका मन्त्र यह है, जो श्लोक २३३ में "शुचिः स्वेनाथ" से लगाकर श्लोक २४८ में "मरुता विद्यः" पर्यन्त है। (सुधी विद्वान् इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) यह ११० अक्षरात्मक मन्त्र है। ये वाराही देवी ही पंचमी, विश्वविजया, भद्रकौमुदी तथा वार्त्ताली कही गई हैं। ये स्तम्भन सिद्धि प्रदातृ तथा समस्त इष्ट प्रदान करने वाली है। छः किंवा सात मन्त्राक्षर द्वारा अंगन्यास करे। इसके अनन्तर त्रिकोणवृत्त तथा षट्कोणवृत्त युक्त चक्र लिखे। वहां अपना नाम अंकित करके पूजा करे।

ध्यान—ये देवी कल कील जैसे मुख वाली स्वर्ण वर्णा हैं। ये आकण्ठ वनितारूपी हैं। ये त्रिनेत्रा, अष्टभुजाधारिणी, शंख-चक्र-अंकुश, पाश-मुशल, अभय मुद्रा, कपाल, पीतकमल धारिणी, गरुड़ पर सुखासीन हैं। इन देवी का चिन्तन करे।।२३३-२५३।।

नित्यपूजासु तच्छक्तीस्तत्समानाःस्मरेन्मुने।
प्रयोगेषु स्मरेद्देवीं सिंहस्थां व्याघ्रगामपि॥२५४॥
गजारूढां हयारूढां तार्क्ष्यारूढां च शक्तिभिः।
श्यामाभप्यरुणां पीतामसिताम्भोजविग्रहाम्॥२५५॥
तत्तत्प्रयोगेषु तथा ध्यायेत्तत्तदवाप्तये।
अरुणां पञ्चमीं वश्ये पीतां स्तम्भनके स्मरेत्॥२५६॥
श्यामां च दुर्गमे मार्गे सितां युद्धेऽरिनष्टये।
धूम्रामुच्चाटने ध्यायेत्साधको द्विजसत्तमः॥२५७॥
एताः षोडश नित्यास्ते संक्षेपात्समुदीरिताः। भजतामिष्टदाः सद्यः सर्वपापक्षयङ्कराः॥२५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे राधादिमन्त्रनिरूपणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः।।८८।।

हे मुनिप्रवर! नित्यापूजन काल में उनकी शक्तियों की भी अर्चना की जायें। जब प्रयोग करे (मन्त्रसिद्धि के उपरान्त) तब सिंह-व्याघ्र-गज-अश्व-गरुड़ारूढ़ा शक्तियों सहित आसीना देव का ध्यान करके मात्र देवी का ध्यान श्याम, रक्त, पीत, श्वेत कमल वर्ण विग्रहा देवी का ध्यान करे। जैसे वशीकरण हेतु रक्तवर्णा, स्तम्भनार्थ पीतवर्णा, दुर्गममार्ग में चलते समय श्यामवर्णा, युद्ध काल में शत्रुनाशार्थ श्वेतवर्णा, उच्चाटनार्थ धूम्रवर्णा देवी का ध्यान करना चाहिये। एवंविध मैंने षोडश नित्यागण का संक्षेप में वर्णन किया, जो तत्काल वांछित फल प्रदात्री, सर्वपाप क्षयकारिणी हैं।।२५४-२५८।।

।।८८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
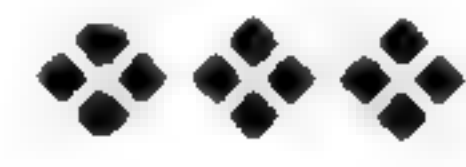
अथ एकोननवतितमोऽध्यायः

शक्तिसहस्रनाम कवच वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथा सामावृतिस्थानां शक्तीनां समयेन च। नाम्नां सहस्त्रं वक्ष्यामि गुरुध्यानपुरःसरम्।।१।।

नाथा नव प्रकाशाद्याः सुभगान्ताः प्रकीर्तिताः।
भूम्यादीनि शिवान्तानि विद्धि तत्त्वानि नारद।।२।।
गुरुजन्मादिपर्वाणि दर्शान्तानि च सप्त वै।
एतानि प्राङ्मनोवृत्त्या चिन्तयेत्साधकोत्तमः।।३।।

गुरुस्तोत्रं जपेच्चापि तद्गतेनान्तरात्मना। नमस्ते नाथ भगवञ्शिवाय गुरुरूपिणे।।४।।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह। नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे।।५।।
सर्वाज्ञानतमाभेदभानवे चिद्घनाय ते। स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने।।६।।

परतन्त्राय भक्तानां भव्यानाम् भव्यरूपिणे।
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम्।।७।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब मैं गुरु ध्यान करके सामवेद के आधार पर शक्ति के सहस्र नाम का वर्णन करता हूं। हे नारद! प्रकाशा से लेकर सुभगान्ता पर्यन्त ९ देवियां स्वामिनी हैं। हे नारद! तत्व भूमि से लेकर शिव पर्यन्त होते हैं। गुरुजन्म से लगाकर दर्श पर्यन्त सप्तपर्व होते हैं। सबसे पहले श्रेष्ठ साधक इन तत्वों का एकाग्र मनोवृत्ति से चिन्तन करे। तत्पश्चात् तद्गत् चित्तता पूर्वक गुरु स्तोत्र जपे। "हे नाथ! आप गुरुरूपी शिव हैं। आपको नमस्कार! विद्या सिद्धि हेतु आप विग्रह धारण करके विद्या का अवतरण कराते हैं। आप नवीन, नवरूप तथा परमार्थ रूप हैं। आप समस्त अज्ञानतम नाश करते हैं। आप भानु, चित् तथा धनरूप हैं।

आपको नमस्कार करता हूं! आप भक्तों के आधीन, भव्यों में भी भव्य, विवेकीगण के विवेक, विमर्शीगण के विमर्श हैं।।१-७।।

प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे। पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे नमः कुर्यामुपर्यधः॥८॥

सदा मच्चित्तसदने विधेहि भवदासनम्।

इति स्तुत्वा गुरुं भक्त्या परां देवीं विचिन्तयेत्॥९॥

आप प्रकाशकगण के प्रकाश, ज्ञानियों के ज्ञानरूप हैं। आपको आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, दोनों पार्श्व भाग से नमस्कार करता हूं! आप सदा मेरे चित्त रूपी सदन में आसनासीन रहें। यह स्तुति करके भक्ति पूर्वक परा देवी का चिन्तन करे।।८-९।।

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्। देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्॥१०॥

प्रणमामि महादेवीं मातृकाम् परमेश्वरीम्।

कालहल्लोहलोल्लोहकलानाशनकारिणीम् ॥११॥

यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्द्धते नरः। रविताक्ष्येन्दुकन्दर्पैः शङ्करानलविष्णुभिः॥१२॥

यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्। वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम्॥१३॥

यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्रयम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम्॥१४॥

तदनन्तर प्रार्थना करे—मैं गणेश, ग्रह, नक्षत्र, यागिनी, राशि तथा मातृका पीठरूपा मन्त्रमयी देवी को प्रणाम करता हूं! परमेश्वरी, मातृका तथा कालरूपी हल्लोहल्लोहकलानाशकारिणी को नमस्कार! जिन भगवती के मन्त्र का एक अक्षर भी सिद्ध कर लेने पर मनुष्य सूर्य-चन्द्र-काम-शंकर-अग्नि-विष्णु से स्पर्द्धा करने लगता है, जिनके अक्षर रूपी महासूत्र से समस्त त्रिलोकी ब्रह्माण्ड कटाहादि ओत-प्रोत है, जिनके अक्षर रूपी चन्द्र की ज्योति से भुवनत्रय मण्डित है मैं उन सर्वेश्वरी देवी महाश्री सिद्धिमातृका की वन्दता करता हूं!।।१०-१४।।

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते॥१५॥

अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम्। ज्येष्ठाङ्गबाहुहृत्कण्ठकटिपादनिवासिनीम्॥१६॥

नौमकीकाराक्षरोद्धारां सारात्सारां परात्पराम्।

प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्॥१७॥

अथापि यस्या जानन्ति न मनागपि देवताः।

केयं कस्मात्क्व केनेति सरूपारूपभावनाम्॥१८॥

ब्रह्माण्डादि से कटाह पर्यन्त जगत् जिनके त्रिकोण से उद्भूत एकादश आधार बीज में समाविष्ट अभी भी परिलक्षित होता है, उन देवी को प्रणाम! अ क च ट त प य श अक्षरों में शिर, बाहु, हृदय, कण्ठ, कटि पाद निवासिनी देवी को मेरा नमस्कार! ईकार अक्षर का उद्धार करने वाली, सार की भी सार, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम परमानन्दरूपा महादेवी को प्रणाम! जिनके सम्बन्ध में देवता यह नहीं जानते कि वे कौन हैं, किससे उत्पन्न हैं? क्यों उत्पन्न हैं? वे भगवती की सरूप तथा अरूप भावना भी नहीं जानते।।१५-१८।।

वन्दे तामहमक्षय्यां क्षकाराक्षररूपिणीम्। देवीं कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं शिवां पराम्॥१९॥

वर्गानुक्रमयोगेन यस्याख्योमाष्टकं स्थितम्।
वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यादिकेश्वरीम्॥२०॥

उन अक्षय, क्षकार अक्षररूपिणी की मैं वन्दना करता हूं। वे देवी कुल कल्लोल लोल से सदा उल्लासमयी परा शिवा हैं। वर्गानुक्रम योग से जिनका उमाष्टक स्थित हैं, उन अष्टवर्ग से आविर्भूत महासिद्धि आदि की ईश्वरी भगवती की वन्दना करता हूं।।१९-२०।।

कामपूर्णजकाराख्या सुपीठान्तर्न्निवासिनीम्। चतुराज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम्॥२१॥
एतत्स्त्रोत्रं तु नित्यानां यः पठेत्सुसमाहितः।
पूजादौ तस्य सर्वास्ता वरदाः स्युर्न संशयः॥२२॥

देवी! आप कामपूर्ण जकार नामक सुपीठ में निवास करती हैं। उन चार आज्ञाकोश भूता श्री त्रिपुरा को मैं प्रणाम करता हूं! इस स्तोत्र का जो समाहित होकर पाठ करता है, उसकी पूजा आदि सब कुछ वरप्रदा हो जाती है। इसमें संशय न करे।।२१-२२।।

अथ ते कवचं देव्या वक्ष्ये नवरतात्मकम्। येन देवासूरनरजयी स्यात्साधकः मदा॥२३॥
सर्वतः सर्वदात्मानं ललिता पातु सर्वगा। कामेशी पुरतः पातु भगमाली त्वनन्रतम्॥२४॥
दिशं पातु तथा दक्षपार्श्वं मे पातु सर्वदा।
नित्यक्लिन्नाथ भेरुण्डा दिशं मे पातु कौणपीम्॥२५॥
तथैव पश्चिमं भागं रक्षताद्वह्निवासिनो। महावज्रेश्वरी नित्या वायव्ये मां सदावतु॥२६॥
वामपार्श्वं सदा पातु इतीमेललिता ततः। माहेश्वरी दिशं पातु त्वरितं सिद्धिदायिनी॥२७॥
पातु मामूर्ध्वतः शश्वद्देवताकुलसुन्दरी। अधोनीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम्॥२८॥
करोतु मे मङ्गलानि सर्वदा सर्वमङ्गला। देहेन्द्रियमनःप्राणाञ्ज्वालामालिनिविग्रहा॥२९॥

अब मैं नवरतात्मक कवच कहता हूं। साधक इसके पाठ मात्र से देवता, असुर तथा मनुष्यों पर सदा विजयी हो जाता है। सदा सर्वत्र गमनशील सब ओर से मेरी रक्षा करें। कामेशी सामने की तथा भगमाली पृष्ठ देश की रक्षा करें। नित्यक्लिन्ना दक्षिण पार्श्व तथा पूर्व दिशा की रक्षा करें। भेरुण्डादेवी उत्तर की रक्षा करें। वह्निवासिनी पश्चिम की रक्षा करें। महावज्रेश्वरी नित्य वायव्य कोण में रक्षा करें। वामपार्श्व की रक्षा सदा ललिता करे। सिद्धिप्रदा माहेश्वरी सर्वदिक् में रक्षा करें। मेरे ऊर्ध्व की रक्षा सदा देवता कुलसुन्दरी करे। अधः की रक्षा नीलपताका करें। विजया सर्वत्र मेरी रक्षा करें। सर्वमंगला सदा मेरा मंगल करे। देह, इन्द्रिय, मनः, प्राण की रक्षा ज्वालामालिनी विग्रहा करें।।२३-२९।।

पालयत्वनिशं चित्ता चित्तं मे सर्वदावतु।
कामात्क्रोधात्तथा लोभान्मोहान्मानान्मदादपि॥३०॥
पापान्मां सर्वतः शोकात्संक्षयात्सर्वतः सदा। असत्यात्क्रूरचिन्तातो हिंसातश्चौरतस्तथा।
स्तैमित्याच्च सदा पान्तु प्रेरयत्यः शुभं प्रति॥३१॥

चित्ता सदा मेरे चित्त की रक्षा करें। स्वशक्तिसहित षोडश गजारूढ़ नित्या देवीगण मेरी रक्षा करें। ये

देवियां काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मद, पाप, शोक, क्षय, असत्य, क्रूर विचार, हिंसा, चोर तथा जाड्य से बचाकर मुझे शुभ कर्म हेतु प्रेरित करें।।३०-३१।।

नित्याः षोडश मां पान्तु गजारूढाः स्वशक्तिभिः।
तथा हयसमारूढाः पान्तु मां सर्वतः सदा॥३२॥
सिंहारूढास्तथा पान्तु पान्तु ऋक्षगता अपि।
रथारूढाश्च मां पान्तु सर्वतः सर्वदा रणे॥३३॥
तार्क्ष्यारूढाश्च मां पान्तु तथा व्योमगताश्च ताः।
भूतगाः सर्वगाः पान्तु पान्तु देव्यश्च सर्वदा॥३४॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च परकृत्यादिकान् गदान्। द्रावयन्तु स्वशक्तीनां भूषणैरायुधैर्मम॥३५॥
गजाश्वद्वीपिपञ्चास्यतार्क्ष्यारूढाखिलायुधाः ।
असङ्ख्याः शक्तयो देव्यः पान्तु मां सर्वतः सदा॥३६॥

ये षोडश गजारूढ़ा मातायें स्वशक्तिसहित तथा अश्वारूपा मातायें मेरी सर्वत्र रक्षा करें। सिंहारूढ़ा ऋक्ष पर आरूढ़ तथा रथारूढ़ देवीगण सदा मेरी रक्षा करें। गरुड़ारूढ़ देवियां सदा मेरी रक्षा करें। आकाशगामिनी, भूतगामिनी, सर्वगामिनी देवीगण सदा मेरी रक्षा करें। वे अपनी शक्तियों के भूषण, आयुधों से भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्यादि का नाश करें। गज, अश्व, व्याघ्र, सिंह तथा गरुड़ारूढ़ तथा सर्वआयुध युक्त असंख्य देवी शक्तियां मेरी सदा रक्षा करें।।३२-३६।।

सायं प्रातर्जपन्नित्याकवचं सर्वरक्षकम्। कदाचिन्नाशुभं पश्येत्सर्वदानन्दमास्थितः॥३७॥
इत्येतत्कवचं प्रोक्तं ललितायाः शुभावहम्।
यस्य सन्धारणान्मर्त्यो निर्भयो विजयो सुखी॥३८॥

सायं-प्रातः सदा इस सर्वरक्षक कवच का जप करे। उस व्यक्ति का कभी अशुभ नहीं होगा। वह सर्वदा आनन्द में स्थित रहेगा। वह कदापि अशुभ का दर्शन नहीं करेगा। यह ललिता का शुभावह कवच मैंने कहा। इसे धारण करने वाला व्यक्ति निर्भय, विजयी, सुखी होगा।।३७-३८।।

अथ नाम्नां सहस्रं ते वक्ष्ये सावरणार्चनम्।
षोडशानामपि मुने स्वस्वक्रमगतात्मकम्॥३९॥
ललिता चापि व कामेश्वरी च भगमालिनी।
नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा कीर्तिता वह्निवासिनी॥४०॥
वज्रेश्वरी तथा दूती त्वरिता कुलसुन्दरी। नित्या संवित्तथा नीलपताका विजयाह्वया॥४१॥
सर्वमङ्गलिका चापि ज्वालामालिनिसंज्ञिता।
चित्रा चेति क्रमान्नित्याः षोडशापीष्टविग्रहाः॥४२॥
कुरुकुल्ला च वाराही द्वे एते चेष्टविग्रहे। वशिनी चापि कामेशी मोहिनी विमलारुणा॥४३॥

तपिनी च तथा सर्वेश्वरी चाप्यथ कौलिनी। मुद्राणन्तनुरिष्वर्णरूपा चापार्णविग्रहा॥४४॥
पाशवर्णशरीरा चाकुर्वर्णसुवपुर्द्धरा। त्रिखण्डा स्थापनी सन्निरोधनी चावगुण्ठनी॥४५॥
सन्निधानेषु चापाख्या तथा पाशाङ्कुशाभिधा।
नमस्कृतिस्तथा संक्षोभणी विद्रावणी तथा॥४६॥

हे मुनिवर! अब मैं तदनन्तर षोडश नित्याओं के सहस्र नामों को कहकर उनके सावरणार्चन को कहता हूं। उनको मैं क्रम से कहूंगा। ललिता, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, वज्रेश्वरी, दूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, संवित्, नीलपताका, विजया, सर्वमंगलिका, ज्वालामालिनि, चित्रा, कामेशी, मोहिनी, विमला, अरुणा, तपिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी, मुद्रातनु, इष्वर्णरूपा, चापवर्णविग्रहा, पाशवर्णशरीरा, चाकुर्वर्ण उत्तम शरीर वाले, त्रिखण्डा, स्थापना, सन्निरोधनी अवगुण्ठनी, सन्निधानी, चापा, पाशांकुश, नमस्कृति, संक्षोभणी, विद्रावणी।।३९-४६।।

आकर्षणी च विख्याता तथैवावेशकारिणी।
उन्मादिनी महापूर्वा कुशाथो खेचरी मता॥४७॥
बीजा शक्त्युत्थापना च स्थूलसूक्ष्मपराभिधा।
अणिमा लघिमा चैव महिमा गरिमा तथा॥४८॥
प्राप्तिः प्रकामिता चापि चेशिता वशिता तथा।
भुक्तिः सिद्धिस्तथैवेच्छा सिद्धिरूपा च कीर्तिता॥४९॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराहीन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीस्वरूपिणी॥५०॥
कामा बुद्धिरहङ्कारशब्दस्पर्शस्वरूपिणी। रूपरूपा रसाह्वा च गन्धवित्तधृतिस्तथा॥५१॥
नाभबीजामृताख्या च स्मृतिदेहात्मरूपिणी। कुसुमा मेखला चापि मदना मदनातुरा॥५२॥
रेखा संवेगिनी चैव ह्यङ्कुशा मालिनीति च।
संक्षोभिणी तथा विद्राविण्याकर्षणरूपिणी॥५३॥
आह्लादिनीति च प्रोक्ता तथा सम्मोहिनीति च।
स्तम्भिनी जम्भिनी चैव वंशङ्कर्यथ रञ्जिनी॥५४॥

आकर्षणी, आवेशकारिणी, उन्मादिनी, महापूर्वा, कुशा, खेचरी, बीजा, शक्त्युत्थापना, स्थूलसूक्ष्मपरा, अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकामित, ईशिता, वशिता, भुक्ति, सिद्धि, इच्छा, सिद्धिरूपा, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मी स्वरूपा, कामा, बुद्धि, अहंकार, शब्द स्पर्शस्वरूपा, रूपा, अरूपा, रसाह्वा, गन्धवित्तधृति, नाभबीजा, अमृता, स्मृतिदेहा, आत्मरूपा, कुसुमा, मेखला, मदना, मदनातुरा, रेखा संवेगिनी, अंकुशा, मालिनी, संक्षोभिणी, विद्राविणी, आकर्षणरूपा, आह्लादिनी, सम्मोहिनी, स्तम्भिनी, जम्भिनी, वशंकरी, रंजिनी।।४७-५४।।

उन्मादिनी तथैवार्थसाधिनीति प्रकीर्त्तिता। सम्पत्तिपूर्णा सा मन्त्रमयी द्वन्द्वक्षयङ्करी॥५५॥

सिद्धिः सम्पत्प्रदा चैव प्रियमङ्गलकारिणी।
कामप्रदा निगदिता तथा दुःखविमोचिनी॥५६॥

मृत्युप्रशमनी चैव तथा विघ्ननिवारिणी। अङ्गसुन्दरिका चैव तथा सौभाग्यदायिनी॥५७॥
ज्ञानैश्वर्यप्रदा ज्ञानमयी चैव च पञ्चमी। विन्ध्यवासनका घोरस्वरूपा पापहारिणी॥५८॥
तथानन्दमयी रक्षा रूपेप्सितफलप्रदा। जयिनी विमला चाथ कामेशी वज्रिणी भगा॥५९॥
त्रैलोक्यमोहना स्थाना सर्वाशापरिपूरणी। सर्वसंक्षोभणगता सौभाग्यप्रदसंस्थिता॥६०॥
सर्वार्थसासधकागारा सर्वरोगहरास्थिता। सर्वरक्षाकरास्थाना सर्वसिद्धिप्रदस्थिता॥६१॥

उन्मादिनी, अर्थसाधिनी, सम्पत्तिपूर्णा, मन्त्रमयी, द्वन्द्वक्षयकरी, सिद्धि, सम्पत्प्रदा, प्रियमंगलकारिणी, कामप्रदा, निगदिता, दुःखविमोचिनी, मृत्युप्रशमनी विघ्ननिवारिणी, अंगसुन्दरिका, सौभाग्यदायिनी, ज्ञानैश्वर्यप्रदा, ज्ञानमयी, पंचमी, विन्ध्यवासनका, घोरस्वरूपा, पापहारिणी, आनन्दमयी, रक्षा, रूप ईप्सित फलप्रदा, जयिनी, विमला, कामेशी, वज्रिणी, भग, त्रैलोक्यमोहना, स्थाना, सर्वाशापरिपूरणी, सर्वसंक्षोभणगता, सौभाग्यप्रद संस्थिता, सर्वार्थसाधकागारा, सर्वरोगहरास्थिता, सर्वरक्षाकरास्थाना, सर्वसिद्धिप्रदस्थिता,।।५५-६१।।

सर्वानन्दमयाधारबिन्दुस्थानशिवात्मिका। प्रकृष्टा च तथा गुप्ता ज्ञेया गुप्ततरापि च॥६२॥
सम्प्रदायस्वरूपा च कुलकोलनिगर्भगा। रहस्यापरापरप्राकृत्तथैवातिरहस्यका॥६३॥
त्रिपुरा त्रिपुरेशी च तथैव पुरवासिनी। श्रीमालिनी च सिद्धान्ता महात्रिपुरसुन्दरी॥६४॥
नवरत्नमयद्वीपनवखण्डविराजिता। कल्पकोद्यानसंस्था च ऋतुरूपेन्द्रिययार्चका॥६५॥
कालमुद्रा मातृकाख्या रत्नदेशोपदेशिका। तत्त्वाग्रहाभिधा मूर्तिस्तथैव विषयद्विपा॥६६॥
देशकालाकारशब्दरूपा सङ्गीतयोगिनी। समस्तगुप्तप्रकटसिद्धयोगिनीचक्रयुक्॥६७॥
वह्निसूर्येन्दुभूताह्वा तथात्माष्टाक्षराह्वया। पञ्चधार्चास्वरूपा च नानाव्रतसमाह्वया॥६८॥
निषिद्धाचाररहिता सिद्धचिह्नस्वरूपिणी। चतुर्द्धा कर्मभागस्था नित्याद्यर्चास्वरूपिणी॥६९॥
दमनादिसमभ्यर्चा षट्कर्मसिद्धिदायिनी। तिथिवारपृथग्द्रव्यसमर्चनशुभावहा॥७०॥

सर्वानन्दमयाधारा, विन्दुस्थान, शिवात्मिका, प्रकृष्टा, गुप्ता, ज्ञेया, गुप्ततरा, सम्प्रदायस्वरूपा, कुलकौलनिगर्भगा, रहस्या, अतिरहस्य का, परापर, प्राकृत्त, अतिरहस्यका, त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, पुरवासिनी, श्रीमालिनी, सिद्धान्ता, महात्रिपुरसुन्दरी नवरत्नमयद्वीप तथा नवखण्ड में विराजिता, कल्पोद्यान में स्थित, ऋतुरूपी इन्द्रिय पूजिता, कालमुद्रा, मातृका, रत्नदेश की उपदेशिका, तत्वा, ग्रहसंज्ञका, मूर्त्ति, विषयद्विपा, देशकाल तथा आकारशब्दरूपा, संगीतयोगिनी, सर्वगुप्त एवं व्यक्त सिद्धचक्रों तथा योगिनी चक्रों की स्वामिनी, सूर्य-चन्द्र तथा महाभूत संज्ञक, आत्मरूपा, अष्टाक्षर नाम्नी, पंचधा अर्चित स्वरूपा, नाना व्रतस्वरूपा, निषिद्धाचाररहिता, सिद्धचिह्नस्वरूपा, चतुर्द्धा कर्मभागस्था, नित्य आद्य अर्चा स्वरूपा, दमनादिसमभ्यर्चा, षट्कर्म से सिद्धिप्रदा, तिथि-वार-दिन-द्रव्य-पूजा तथा मंगलरूपा,।।६२-७०।।

वायोश्यनङ्गकुसुमा तथैवानङ्गमेखला। अनङ्गमदनानङ्गमदनातुरसाह्वया॥७१॥

मददेगिनिका चैव तथा भुवनपालिनी। शशिलेखा समुद्दिष्टा गतिलेखाह्वया मता॥७२॥
श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव धृतिः कान्तिर्मनोरमा। मनोहरा समाख्याता तथैव हि मनोरथा॥७३॥

मदनोन्मादिनी चैव मोदिनी शङ्खिनी तथा।
शोषिणी चैव शङ्करी सिञ्जिनी सुभगा तथा॥७४॥
पूषाचेद्वासुमनसा रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा।
ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च तथैव ह्यंशुमालिनी॥७५॥

वायोशी, अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, मददेगिनिका, भुवनपालिनी, शशिलेखा, गतिलेखा, श्रद्धा, प्रीति रति, धृति, कान्ति से मनोरमा, मनोहरा, मनोरथा, मदनोत्मादिनी, मोदिनी, शंखिनी, शोषणी, शंकरी, सिञ्जिनी, सुभगा, पूषा, वासुमनसा, रति, प्रीति धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, अंशुमालिनी,।।७१-७५।।

शशिनी चाङ्गिरा छाया तथा सम्पूर्णमण्डला।
तुष्टिस्तथामृताख्या च डाकिनी साथ लोकपा॥७६॥

बटुकेभास्वरूपा च दुर्गा क्षेत्रेशरूपिणी। कामराजस्वरूपा च तथा मन्मथरूपिणी॥७७॥
कन्दर्प्परूपिणी चैव तथा मकरकेतना। मनोभावस्वरूपा च भारती वर्णरूपिणी॥७८॥

मदना मोहिनी लीला जम्भिनी चोद्यमा शुभा।
ह्लादिनी द्राविणी प्रीति रती रक्ता मनोरमा॥७९॥
सर्वोन्मादा सर्वमुखा ह्यभङ्गा चामितोद्यमा।
अनल्पाव्यक्तविभवा विविधाक्षेभविग्रहा॥८०॥
रागशक्तिर्द्वेषशक्तिस्तथा शब्दादिरूपिणी।
नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा॥८१॥
मदद्रवा द्राविणी च द्रविणी चेति कीर्तिता।
मदाविला मङ्गला च मन्मथानी मनस्विनी॥८२॥
मोहा मोदा मानमयी माया मन्दा मितावती।
विजया विमला चैव शुभा विश्वा तथैव च॥८३॥
विभूतिर्विनता चैव विविधा विनता क्रमात्।
कमला कामिनी चैव किराता कीर्तिरूपिणी॥८४॥

शशिनी, अंगिरा, छाया, सम्पूर्णमण्डला, तुष्टि, अमृता, डाकिनी, लोकप, बटुका, भास्वरूपा, दुर्गा, क्षेत्रेशरूपा, कामराजरूपा, मन्मथरूपा, कन्दर्परूपिणी, मकरकेतना, मनोभावरूपा, भारती, वर्णरूपा, मदना, मोहिनी, लीला, जम्भिनी, उद्यमा, शुभा, ह्लादिनी, द्राविणी, प्रीति रति, रक्ता, मनोरमा, सर्वोन्मादा, सर्वमुखा, अभंगा, अमितोद्यमा, अनल्पा, अव्यक्तविभवा, विविधा, क्षोभविग्रहा, रागशक्ति, द्वेषशक्ति, शब्दादिरूपिणी,

नित्या, निरंजना, क्लिन्ना, क्लेदिनी, मदनातुरा, मदद्रवा, द्राविणी, द्रविणी, मदाविला, मंगला, मन्मथानी, मनस्विनी, मोहा, मोदा, मानमयी, माया, मन्दा, मितावती, विजया, विमला, शुभा, विश्वा, विभूति, विनताः, विविधाविनता, कमला, कामिनी, किराता, कीर्त्तिरूपिणी।।७६-८४।।

कुट्टिनी च समुद्दिष्टा तथैव कुलसुन्दरी।
कल्याणी कालकोला च डाकिनी शाकिनी तथा॥८५॥
लाकिनी काकिनी चैव राकिनी काकिनी तथा।
इच्छाज्ञाना क्रियाख्या चाप्यायुधाष्टकधारिणी॥८६॥
कपर्दिनी समुद्दिष्टा तथैव कुलसुन्दरी। ज्वालिनी विस्फुलिङ्गा च मङ्गला सुमनोहरा॥८७॥
कनका किनवा विद्या विविधा च प्रकीर्तिता।
मेषा वृषाह्वया चैव मिथुना कर्कटा तथा॥८८॥
सिंहा कन्या तुला कीटा चापा च मकरा तथा।
कुम्भा मीना च सारा च सर्वभक्षा तथैव च॥८९॥

कुट्टिनी, कुलसुन्दरी, कल्याणी, कालकोला, डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी, राकिनी, इच्छा-ज्ञान-क्रियारूप, अष्ट आयुध धारिणी, कपर्दिनी, कुलसुंदरी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगा, मंगला, सुमनोहरा, कनका, किनवा, विद्या-विविधा, मेषा, वृषा, मिथुना, कर्कटा, सिंहा, तुला, कीटा (वृश्चिका), चापा (धनुराशि), मकरा, कुंभा, मीना, सारा, सर्वभक्षा।।८५-८९।।

विश्वात्मा विविधोद्भूतचित्ररूपा च कीर्तिता।
निःसपत्ना निरातङ्का याचनाचिन्त्यवैभवा॥९०॥
रक्ता चैव ततः प्रोक्ता विद्याप्राप्तिस्वरूपिणी।
हृल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा॥९१॥
निरञ्जना रागवती तथैव मदनावती। मेखला द्राविणी वेगवती चैव प्रकीर्तिता॥९२॥
कमला कामिनी कल्पा कला च कलिताद्भुता।
किराता च तथा काला कदना कौशिका तथा॥९३॥
कम्बुवादनिका चैव कातरा कपटा तथा।
कीर्तिश्चापि कुमारी च कुङ्कुमा परिकीर्तिता॥९४॥
भञ्जिनी वेगिनी नागा चपला पेशला सती।
रतिः श्रद्धा भोगलोला मदोन्मत्ता मनस्विनी॥९५॥
विह्वला कर्षिणी लोला तथा मदनमालिनी।
विनोदा कौतुका पुण्या पुराणा परिकीर्तिता॥९६॥
वागीशी वरदा विश्वा विभवा विघ्नकारिणी। बीजविघ्नहरा विद्या सुमुखी सुन्दरी तथा॥९७॥

सारा च सुमना चैव तथा प्रोक्ता सरस्वती।
समया सर्वगा विद्धा शिवा वाणी च कीर्तिता॥९८॥

विश्वात्मा, विविधोद्भूत चित्ररूपा, निःसपत्नी, निरातंका, याचना, अचिन्त्य वैभवा, रक्ता, विद्याप्राप्तिस्वरूपा, हृल्लेखा, क्लेदनी, क्लिन्ना, क्षोभणी, मदनातुरा, निरंजना, रागवती, मदनावती, मेखला, द्राविणी, वेगवती, कमला, कामिनी, कल्पा, कला, कलिताद्भुता, किराता, काला, कदना, कौशिका, कम्बुवादनिका, कातरा, कपटा, कीर्त्ति, कुमारी, कुंकुमा, भञ्जिनी, वेगिनी, नागा, चपला, पेशला, सती, रति, श्रद्धा, भोगलोला, मदोन्मत्ता, मनस्विनी, विह्वला, कर्षिणी, लोला, मदनमालिनी, विनोदा, कौतुका, पुण्या, पुराण, वागीशी, वरदा, विश्वा, विभवा, विघ्नकारिणी, बीजविघ्नहरा, विद्या, सुमुखी, सुन्दरी, सारा, सुमना, सरस्वती, समया, सर्वगा, विद्धा, शिवा, वाणी।९०-९८।।

दूरसिद्धा तथा प्रोक्ताथो विग्रहवती मता। नादा मनोन्मनी प्राणप्रतिष्ठारुणवैभवा॥९९॥
प्राणापाना समाना च व्यानोदाना च कीर्तिता।
नागा कूर्मा च कृकला देवदत्ता धनञ्जया॥१००॥
फट्कारी किङ्कराराध्या जया च विजया तथा।
हुङ्कारी खेचरी चण्डा छेदिनी क्षपिणी तथा॥१०१॥
स्त्रीहुङ्कारी क्षेमकारी चतुरक्षरूपिणी। श्रीविद्यामत्तवर्णाङ्गी काली याम्या नृपार्णका॥१०२॥
भाषा सरस्वती वाणी संस्कृता प्राकृत परा।
बहुरूपा चित्तरूपा रम्यानन्दा च कौतुका॥१०३॥
त्रयाख्या परमात्माख्याप्यमेयविभवा तथा।
वाक्स्वरूपा बिन्दुसर्गरूपा विश्वात्मिका तथा॥१०४॥
तथा त्रैपुरकन्दाख्या ज्ञात्रादित्रिविधात्मिका। आयुर्लक्ष्मीकीर्तिभोगसौन्दर्यारोग्यदायिका॥१०५॥
ऐहिकामुष्मिकज्ञानमयी च परिकीर्तिता।
जीवाख्या विजयाख्या च तथैव विश्वविन्मयी॥१०६॥

दूरसिद्धा, विग्रहवती, नादा, मनोन्मनी, प्राणप्रतिष्ठा, अरुण वैभवा, प्राणा, अपाना, समाना, व्याना, उदाना, नागा, कूर्मा, कृकला, देवदत्ता, धनञ्जया, फट्कारी, किंकराध्या, जया, विजया, हूंकारी, खेचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षपिणी, स्त्रीहुंकारी, क्षेमकरी, चतुरक्षररूपा, श्रीविद्या, मत्तवर्णाङ्गी, काली, याम्या, नृपार्णका, भाषा, सरस्वती, वाणी, संस्कृता, प्राकृता, बहुरूपा, चित्तरूपा, रम्यानंदा, कौतुका, त्रयाख्या, परमात्माख्या, अमेयविभवा, वाक्यरूपा, विन्दुसर्गरूपा, विश्वात्मिका, त्रैपुरकन्दाख्या, ज्ञात्रादित्रिविधात्मिका, आयु, लक्ष्मी, कीर्त्ति, भोग, सौन्दर्यदायिका, ऐहिक-आमुष्मिक-ज्ञानमयी, जीवाख्या, विजयाख्या, विश्वचिन्मयी।।१९९-१०६।।

हृदादिविद्या रूपादिभानुरूपाः जगद्वपुः। विश्वमोहनिका चैव त्रिपुरामृतसंज्ञिका॥१०७॥
सर्वाप्यायनरूपा च मोहिनी क्षोभणी तथा।
क्लेदिनी चापि षट्कूटा पञ्चकूटा विशुद्धगा॥१०८॥

सम्पत्करी हलक्षार्णा सीमामातृतनू रतिः।
प्रीतिर्मनोभवा वापि प्रोक्ता वाराधिपा तथा॥१०९॥
त्रिकूटा चापि षट्कूटा पञ्चकूटा विशुद्धगा।
अनाहतगता चैव मणिपूरकसंस्थिता॥११०॥
स्वाधिष्ठानसमासीनाधारस्थाज्ञासमास्थिता ।
षट्त्रिंशत्कूटरूपा च पञ्चाशन्मिथुनात्मिका॥१११॥
पादुकादिकसिद्धीशा तथा विजयदायिनी।
कामरूपप्रदा वेतालरूपा च पिशाचिका॥११२॥
विचित्रा विभ्रमा हंसी भीषणी जनरञ्जिका।
विशाला मदना तुष्टा कालकण्ठी महाभया॥११३॥
माहेन्द्री शङ्खिनी चैन्द्री मङ्गला वटवासिनी।
मेखला सकला लक्ष्मीर्मालिनी विश्वनायिका॥११४॥
सुलोचन सुशोभा च कामदा च विलासिनी।
कामेश्वरी नन्दिनी च स्वर्णरेखा मनोहरा॥११५॥

हृदादिविद्यारूपादि, भानुरूपा, जगद्वपु, विश्वमोहनिका, त्रिपुरामृता, सर्वाआप्यायनरूपा, मोहिनी, क्षोभणी, क्लेदिनी, षट्कूटा, पंचकूटा, विशुद्धा, सम्पत्करी, ह-ल वर्णयुता, सीमा, मातृतनु, रति, प्रीति, मनोभवा, वाराधिपा, त्रिकूटा, षट्कूटा, पंचकूटा, विशुद्धगा, अनाहतगता, मणिपूरक संस्थिता, स्वाधिष्ठानस्थिता, आधारस्था, आज्ञा समास्थिता, षट्त्रिंशत् कूटरूपा, पंचाशमिथुनात्मिका, पादुकादिक सिद्धीशा, विजयप्रदा, कामरूपप्रदा, वेतालरूपा, पिशाचिका, विचित्रा, विभ्रमा, हंसी, भीषणी, जनरंजिका, विशाला, मदना, तुष्टा, कालकंठी, महाभया, माहेन्द्री, शंखिनी, ऐन्द्री, मंगला, वटवासिनी, मेखला, सकला, लक्ष्मी, मालिनी, विश्वनायिका, सुलोचना, सुशोभा, कामदा, विलासिनी, कामेश्वरी, नन्दिनी, स्वणरिखा, मनोहरा।।१०७-११५।।

प्रमोदा रागिणी सिद्धा पद्मिनी च रतिप्रिया।
कल्याणदा कलादक्षा ततश्च सुरसुन्दरी॥११६॥
विभ्रमा वाहका वीरा विकला कोरका कविः।
सिंहनादा महानादा सुग्रीवा मर्कटा शठा॥११७॥
विडालाक्षा विडालास्या कुमारी खेचरी भवा।
मयूरा मङ्गला भीमा द्विपवक्त्रा खरानना॥११८॥
मातङ्गी च निशाचारा वृषग्राहा बृकानना।
सैरिभास्या गजमुखा पशुवक्त्रा मृगानना॥११९॥
क्षोभका मणिभद्रा च क्रीडका सिंहचक्रका। महोदय स्थूलशिखा विकृतास्या वरानना॥१२०॥

प्रमोदा, रागिणी, सिद्धा, पद्मिनी, रतिप्रिया, कल्याणदा, कलादक्षा, सुरसुन्दरी, विभ्रमा, वाहका, वीरा, विकला, कोरका, कवि, सिंहनादा, महानादा, सुग्रीवा, मर्कटा, शठा, बिडालाक्षा, विडालास्या, कुमारी, खेचरी, भवा, मयूरा, मंगला, भीमा, द्विपवक्त्रा, खरानना, मातंगी, निशाचारा, वृषग्राहा, वृकानना, सरिभास्या (महिष मुख वाली), गजमुखा, पशुवक्त्रा, मृगानना, क्षोभका, मणिभद्रा, क्रीडका, सिंहचक्रका, महोदरा, स्थूलशिखा, विकृतास्या, वरानना।।११६-१२०।।

चपला कुक्कुटास्या च पाविनी मदनालसा।
मनोहर दीर्घजङ्घा स्थूलदन्ता दशानना॥१२१॥
सुमुखा पण्डिता क्रुद्धा वराहास्या सटामुखा।
कपटा कौतुका काला किङ्करा कितवा खला॥१२२॥
भक्षका भयदा सिद्धा सर्वगा च प्रकीर्तिता।
जया च विजया दुर्गा भद्रा भद्रकरी तथा॥१२३॥
अम्बिका वामदेवी च महामायास्वरूपिणी।
विदारिका विश्वमयी विश्वा विश्वविभञ्जिता॥१२४॥
वीरा विक्षोभिणी विद्या विनोदा बीजविग्रहा।
वीतशोका विषग्रीवा विपुला विजयप्रदा॥१२५॥
विभवा विविधा विप्रा तथैव परिकीर्तिता।
मनोहरा मङ्गला च मदोत्सिक्ता मनस्विनी॥१२६॥
मानिनी मधुरा माया मोहिनी च तथा स्मृता।
भद्रा भवानी भव्या च विशालाक्षी शुचिस्मिता॥१२७॥
ककुभा कमला कल्पा कलाथो पूरणी तथा।
नित्या चाप्यमृता चैव जीविता च तथा दया॥१२८॥
अशोका ह्यमला पूर्णापूर्णा भाग्योद्यता तथा।
विवेका विभवा विश्वा वितता च प्रकीर्तिता॥१२९॥
कामिनी खेचरी गर्वा पुराणा परमेश्वरी।
गौरी शिवा ह्यमेया च विमला विजया परा॥१३०॥

चपला, कुक्कुटास्या, पावनी, मदनालसा, मनोहरा, दीर्घजंघा, स्थूलदन्ता, दशानना, सुमुखा, पण्डिता, क्रुद्धा, वराहमुखी, सटामुखी, कपटा, कौतुका, काला, किंकरा, कितवा, खला, भक्षका, भयदा, सिद्धा, सर्वगा, जया, विजया, दुर्गा, भद्रा, भद्रकरी, भक्षका, भयदा, सिद्धा, सर्वगा, जया, विभवा, दुर्गा, भद्रकरी, अम्बिका, वामदेवी, महामायास्वरूपा, विदारिका, विश्वमयी, विश्वा, विश्वविभंजिता, वीरा, विक्षोभिणी, विद्या, विनोदा, बीजविग्रहा, वीत शोका, विषग्रीवा, विपुला, विजयदा, विभवा, विविधा, विप्रा, मनोहरा, मंगला, मदोत्सिक्ता,

मनस्विनी, मानिनी, मधुरा, माया, मोहिनी, भद्रा, भवानी, भव्या, विशालाक्षी, शुचिस्मिता, कुकुभा, कमला, कल्पा, कला, पूरणी, नित्या, अमृता, जीविता, दया, अशोका, अमला, अपूर्णा, पूर्णा, भाग्योद्यता, विवेका, विभवा, विश्वा, वितता, कामिनी, खेचरी, गर्वा, पुराणा, परमेश्वरी, गौरी, शिवा, अमेया, विमला, विजया, परा।।१२१-१३०।।

पवित्रा पद्मिनी विद्या विश्वेशी शिववल्लभा।
अशेषरूपा ह्यानन्दाम्बुजाक्षी चाप्यनिन्दिता॥१३१॥
वरदा वाक्यदा वाणी विविधा वेदविग्रहा।
विद्या वागीश्वरी सत्या संयता च सरस्वती॥१३२॥

पवित्रा, पद्मिनी, विद्या, विद्येशी, शिववल्लभा, अशेषरूपा आनन्दा, अम्बुजाक्षी, अनिन्दिता, वरदा, वाक्यदा, वाणी, विविधा, वेदविग्रहा, विद्या, वागीश्वरी सत्या, संयता, सरस्वती।।१३१-१३२।।

निर्मलानन्दरूपा च ह्यमृता मानदा तथा।
पूषा चैव तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चापि रतिर्धृतिः॥१३३॥
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिनीन्दुकलात्मिका॥१३४॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बाधिनी धारिणी क्षमा॥१३५॥
धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्रीः स्वरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा॥१३६॥
घस्मरा विश्वकवला लोलाक्षी लोलजिह्विका।
सर्वभक्षा सहस्राक्षी निःसङ्गा च गतिप्रिया॥१३७॥
अचिन्त्याचाप्रमेया च पूर्णरूपा दुरासदा।
सर्वा संसिद्धिरूपा च पावनीत्येकरूपिणी॥१३८॥
तथा यामलवेधाख्या शाक्ते वेदस्वरूपिणी।
तथा शाम्भववेधा च भावनासिद्धिसूचिनी॥१३९॥

निर्मलानन्दरूपा, अमृता, मानदा, पूषा, पुष्टि, तुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता, कामदायिनी, इन्दुकलात्मिका, तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बाधिनी, धारिणी, क्षमा, धूर्मार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, स्वरूपा, कपिला, हव्यकव्यवहा, घस्मरा, विश्वकवला, लोलाक्षी, लोलजिह्विका, सर्वभक्षा, सहस्राक्षी, निःसंगा, गतिप्रिया, अचिन्त्य, अप्रमेया, पूर्णरूपा, दुरासदा, सर्वा, संसिद्धिरूपा, पावनी, एकरूपिणी, यामलवेधा, वेदरूपा, शांभववेधा, भावनासिद्धिसूचिनी।।१३३-१३९।।

वह्निरूपा तथा दस्रा ह्युमा विघ्ना भुजङ्गमा।
षण्मुखा रविरूपा च माता दुर्गा दिशा तथा॥१४०॥
धनदा केशवा चापि यमी चैव हरा शशा।
अश्विनी च यमी वह्निरूपा धात्रीति कीर्तिता॥१४१॥
चन्द्रा शिवादितिर्जीवा सर्पिणी पितृरूपिणी।
अर्यम्णा च भगा सूर्या त्वाष्ट्रिमारुतिसंज्ञिकी॥१४२॥
इन्द्राग्निरूपा मित्रा चापीन्द्राणी निर्ऋतिर्जला।
वैश्वदेवी हरितभूर्वासवी वरुणा जया॥१४३॥
अहिर्बुध्न्या पूषणी च तथा कारस्करामला।
उदुम्बरा जम्बुका च खदिरा कृष्णारूपिणी॥१४४॥
वंशा च पिप्पला नागा रोहिणा च पलाशका।
पक्षका च तथाम्बष्ठा बिल्वा चार्जुनरूपिणी॥१४५॥
विकङ्कता च ककुभा सरला चापि सर्जिका।
वञ्जुला पनसार्का च शमी हलिप्रियाम्रका॥१४६॥
निम्बा मधूकसंज्ञा चाप्यश्वत्था च गजाह्वया।
नागिनी सर्पिणी चैव शुनी चापि बिडालिकी॥१४७॥
छागी मार्जारिका मूषी वृषभा माहिषी तथा।
शार्दूली सैरिभी व्याघ्री हरिणी च मृगी शुनी॥१४८॥
कपिरूपा च गोघण्टा वानरी च नराश्विनी।
नगा गौर्हस्तिनी चेति तथा षट्चक्रवासिनी॥१४९॥
त्रिखण्डा तीरपालाख्या भ्रामणी द्रविणी तथा।
सोमा सूर्या तिथिर्वारा योगार्क्षा करणात्मिका॥१५०॥

वह्निरूपा, दस्रा, उमा, विघ्ना, भुजंगमा, षण्मुखा, रविरूपा, माता दुर्गा, दिशा, धनदा, केशवा, यमी, हरा, शशा, अश्विनी, यमी, वह्निरूपा, धात्री, चन्द्रा, शिवा दिति, जीवा, सर्पिणी, पितृरूपा, अर्यम्णा, भगा, सूर्या, त्वाष्ट्रि, मारुति, इन्द्रा, अग्निरूपा, मित्रा, इन्द्राणी, निर्ऋति, जला, वैश्वदेवी, हरितम्, वासवी, वरुणा, जया, अहिर्बुध्न्या, पूषणी, कारस्करा, अमला, उदुम्बरा, जम्बुका, खदिरा, कृष्णारूपा, वंशा, पिप्पला, नागा, रोहिणी, पलाशका, पक्षका, चेष्टा, बिल्बा, अर्जुनरूपा, विकंकता, ककुभा, सरला, सर्जिका, वंजुला, पनसा, अर्का, शमी, हलिप्रिया, आम्रका, निम्वा, मधूका, अश्वत्था, गजा, अजा, नागिनी, सर्पिणी, शुनी, बिड़ालिकी, छागी, मार्जारिका, मूषी, वृषभा, माहिषी, शार्दूली, सैरिभी, व्याघ्री, हरिणी, मृगी, शुनी, कपिरूपा, गोघण्टा, वानरी, नरा, अश्विनी, नगा, गौ, हस्तिनी, षट्चक्रवासिनी, त्रिखण्डा, तीरपाला, भ्रामणी, द्रविणी, सोमा, सूर्या, तिथि, वारा, योगा, ऋक्षा, करणात्मिका।।१४०-१५०।।

यक्षिणी तारणा व्योमशब्दाद्या प्राणिनी च धीः।
क्रोधिनी स्तम्भिनी चण्डोच्चण्डा ब्रह्म्याद्रिरूपिणी॥१५१॥
सिंहस्था व्याघ्रगा चैव गजाश्वगरुडस्थिता।
भौमाप्या तैजसी वायुरूपिणी नाभसा तथा॥१५२॥
एकवक्त्रा चतुर्वक्त्रा नववक्त्रा कलानना।
पञ्चविंशतिवक्त्रा च षड्विंशद्वदना तथा॥१५३॥

यक्षिणी, तारणा, व्योमशब्दां, आद्या, प्राणिनी, धी, क्रोधिनी, स्तम्भिनी, चण्डा उच्चण्डा, ब्रह्मादिरूपा, सिंहस्था, व्याघ्रगा, गजा, अश्व-गरुड़ास्थिता, भौमा, तैजसी, वायुरूपा, नाभसा, एकवक्त्रा, चतुर्वक्त्रा, नववक्त्रा, कलानना, पंचविंशतिवक्त्रा, षड्विंशवदना।।१५१-१५३।।

ऊनपञ्चाशदास्या च चतुःषष्टिमुखा तथा।
एकाशीतिमुखा चैव शताननसमन्विता॥१५४॥
स्थूलरूपा सूक्ष्मरूपा तेजोविग्रहधारिणी।
वृणावृत्तिस्वरूपा च विद्यावृत्तिस्वरूपिणी॥१५५॥
तत्त्वावृत्तिस्वरूपा नित्यावृत्तिवपुर्द्धरा॥१५६॥

ऊनपंचाश (४९) मुखवाली, चतुःषष्टि (६४) मुखवाली, एकाशीतिमुखा (८१ मुखवाली), शतानना, स्थूलरूपा, सूक्ष्मरूपा, तेजविग्रहधारिणी, वृणावृत्तिरूपा, मायावृत्तिस्वरूपा, गुरुपंक्तिरूपा, विद्यावृत्तिरूपा, तत्वावृत्ति स्वरूपा, नित्यावृत्तिर्वपुद्धरा।।१५४-१५६।।

अङ्गावृत्तिस्वरूपा चाप्यायुधावृत्तिरूपिणी।
गुरुपङ्क्तिस्वरूपा च विद्यावृत्तितनुस्तथा॥१५७॥
ब्रह्माद्यावृत्तिरूपा च परा पश्यन्तिका तथा।
मध्यमा वैखरी शीर्षकण्ठताल्वोष्ठदन्तगा॥१५८॥
जिह्वामूलगता नासागतोरःस्थलगामिनी। पदवाक्यस्वरूपा च वेदभाषास्वरूपिणी॥१५९॥
सेकाख्या वीक्षणाख्या चोपदेशाख्या तथैव च।
व्याकुलाक्षरसङ्केता गायत्री प्रणवादिका॥१६०॥
जपहोमार्चनध्यानयन्त्रतर्पणरूपिणी। सिद्धसारस्वता मृत्युञ्जया च त्रिपुरा तथा॥१६१॥
गारुडा चान्नपूर्णा चाप्यश्वारूढा नवात्मिका।
गौरी च देवी हृदया लक्षदा च मतङ्गिनी॥१६२॥

अंगावृत्तिस्वरूपा, आयुधावृत्तिरूपा, गुरुपंक्तिरूपा, विद्यावृत्तितनुस्थिता, ब्रह्माद्यावृत्तिरूपा, परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी, शीर्ष-कण्ठ-तालु-ओष्ठ-दन्तगामिनि, जिह्वामूलगता, नासागता, उरःस्थलगामिनी, पदवाक्यरूपा, वेदभाषास्वरूपा, एकाख्या, वीक्षणा, उपदेशा, व्याकुला, अक्षर संकेता, गायत्री, प्रणवादिका, जप-होम-अर्चन-

ध्यान-यंत्र-तर्पण रूपा, सिद्धसारस्वता, मृत्युञ्जया, त्रिपुरा, गारुड़ा, अन्नपूर्णा, अश्वारूढ़ा, नवात्मिका, गौरी, देवी, हृदया, लक्षदा, मतंगिनी।।१५७-१६२।।

निष्कत्रयपदा चेष्टावादिनी च प्रकीर्तिता।
राजलक्ष्मीर्महालक्ष्मी सिद्धलक्ष्मीर्गवानना॥१६३॥

निष्कत्रयपदा, चेष्टावादिनी, राज्यलक्ष्मी, महालक्ष्मी, सिद्धलक्ष्मी, गवानना।।१६३।।

इत्येवं ललितादेव्या दिव्यं नामसहस्रकम्। सर्वार्थसिद्धिदं प्रोक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥१६४॥
एतन्नित्यमुषःकाले यो जपेच्छुद्धमानसः।
स योगी ब्रह्मविज्ञानी शिवयोगी ततात्मवित्॥१६५॥
द्विरावृत्त्या प्रजपेतो ह्यायुरारोग्यसम्पदः। लोकानुरञ्जनं नारीनृपावर्जनकर्म च॥१६६॥
अपृथक्त्वेनसिद्ध्यन्ति साधकस्यास्य निश्चितम्।
त्रिरावृत्त्यास्य वै पुंसो विश्वं भूयाद्वशेऽखिलम्॥१६७॥
चतुरावृत्तितश्चास्य समीहितमनारतम्। फलत्येव प्रयोगार्हो लोकरक्षाकरो भवेत्॥१६८॥

उपरोक्त सभी नाम ललिता सहस्रनाम के अन्तर्गत् हैं। ये सर्वप्रयोजन पूरक तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षफलप्रद हैं। जो नित्य प्रातः इसे शुद्ध मन से जपेगा, वह योगी ब्रह्मविज्ञानी शिवयोगी तथा आत्मविद् होगा। जो इसे नित्य दो आवृत्ति जपेगा, वह आयु, आरोग्य, सम्पदा प्राप्त करेगा। उससे नारी, राजा तथा सभी लोग प्रसन्न रहेंगे। तीन आवृत्ति पाठ करने वाले के वश में विश्व हो जाता है। चतुरावृत्ति पाठ करने से इच्छानुरूप फललाभ होता है तथा प्रयोग द्वारा रक्षा होती है।।१६४-१६८।।

पञ्चावृत्त्या नरा नार्यो नृपा देवाश्च जन्तवः।
भजन्त्येनं साधकं च देव्यामाहितचेतसः॥१६९॥
षडावृत्त्या तन्मयः स्यात्साधकश्चास्य सिद्धयः।
अचिरेणैव देवीनां प्रसादात्सम्भवन्ति च॥१७०॥

पांच आवृत्ति इस सहस्रनाम का पाठ करने वाले की सेवा नर, नारी, राजा, देवता, सभी प्राणीगण उससे मोहित होकर करते हैं। जो नित्य तन्मय होकर इसका छः पाठ करता है, वह देवी की अनुकम्पा से समस्त सिद्धि प्राप्त कर लेता है।।१६९-१७०।।

सप्तावृत्त्यारिरोगादिकृत्यापस्मारनाशनम्। अष्टावृत्त्या नरो भूपान्निग्रहानुग्रहक्षमः॥१७१॥
नवावृत्त्या मन्मथाभो विक्षोभयति भूतलम्।
दशावृत्त्या पठेन्नित्यं वाग्लक्ष्मीकान्तिसिद्धये॥१७२॥

नित्य सप्त आवृत्ति करने से साधक शत्रुगण में रोगोत्पत्ति कर सकेगा तथा अपस्मरादि रोगों को नष्ट कर सकेगा। नित्य अष्टावृत्ति करने वाला साधक राजाओं के प्रति निग्रह-अनुग्रह का अधिकारी हो जाता है। नित्य नवावृत्ति करने से वह साधक भूतल तथा भूतलस्थ लोगों को विक्षुब्ध कर देगा। जो नित्य दशावृत्ति करेगा, उसे वाक्, लक्ष्मी तथा कान्ति लाभ होगा।।१७१-१७२।।

रुद्रावृत्त्याखिलर्द्धिश्च तदायत्तं जगद्भवेत्।
अर्कावृत्त्या सिद्धिभिः स्याद्दिग्भिर्मर्त्यो हरीपमः॥१७३॥
विश्वावृत्त्या तु विजयी सर्वतः स्यात्सुखी नरः।
शक्रावृत्त्याखिलेष्टाप्तिः सर्वतो मङ्गलं भवेत्॥१७४॥

नित्य एकादशावृत्ति करने वाला सर्वसिद्धिलाभ करता है। समस्त जगत् उसके अधीन हो जाता है। नित्य द्वादशावृत्ति करने वाला अष्टसिद्धि लाभ करेगा। वह शिवतुल्य होगा। नित्य त्रयोदश आवृत्ति करने वाला विजयी तथा सर्वत्र सुखी रहेगा। नित्य चतुर्दशावृत्ति करने वाला समस्त वांछित लाभ करेगा। उसका सर्वत्र मंगल होगा।।१७३-१७४।।

तिथ्यावृत्त्याखिलानिष्टानयत्नादाप्नुयान्नरः। षोडशावृत्तितो भूयान्नरः साक्षान्महेश्वरः॥१७५॥
विश्वं स्त्रष्टुं पालयितुं संहर्तुं च क्षमो भवेत्। मण्डलं मासमात्रं वा यो जपेद्यद्यादाशयः॥१७६॥
तत्तदेवाप्नुयात्सत्यं शिवस्य वचनं यथा। इत्येतत्कथितं विप्र नित्यावृत्त्यर्चनाश्रितम्॥१७७॥
नाम्नां सहस्त्रं मनसोऽभीष्टसम्पादनक्षमम्॥१७८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे ललितास्तोत्रककवचसहस्त्र-नामकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः।।८९।।

—※※※—

नित्य पंचदश आवृत्ति से अनायास सर्ववस्तुलाभ, षोडशावृत्ति से साक्षात् महेश्वरत्व प्राप्ति एवं सृष्टि-पालन-संहार की क्षमता का लाभ, एक मास तक नित्य सप्तदश आवृत्ति द्वारा सर्वाभिलाषा पूर्ण होना—यह सब होगा। यह शिव का सत्य कथन है। हे विप्र! मैंने अभीष्ट सम्पादक नित्या पूजित सहस्त्रनाम इस प्रकार कह दिया।।१७५-१७८।।

।।८९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ नवतितमोऽध्यायः

अर्चन विधान तथा नित्यापटल वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथातो विप्र नित्यानां प्रयोगादिसमन्वितम्।
पटलं तेऽभिधास्यामि नित्याभ्यर्चनदीपकम्॥१॥
ललितायास्त्रिभिर्वर्णैः सकलार्थोऽभिधीयते। शेषेण देवीरूपेण तेन स्यादिदमीरितम्॥२॥

अशेषतो जगत्कृत्स्नं ह्लल्लेखात्मकमुच्यते। तस्याश्चार्थस्तु कथितः सर्वतन्त्रेषु गोपितः॥३॥
व्योम्ना प्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना। तयोर्विमर्श ईकारो बिन्दुना तन्निफालनम्॥४॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—हे विप्र! तदनन्तर नित्यागण के प्रयोग-अर्चना आदि का वर्णन करते हुये पटल वर्णन करता हूं। ललिता के तीन वर्ण से ही सभी पदार्थ अभिधीत होते हैं। यह जगत् देवीरूप ही है। यह अशेष जगत् ह्लल्लोत्मक ही है। इस आश्चर्य वृत्तान्त को सर्वतन्त्रसमूह में गुप्त रखा गया है। प्रकाशरूपता सर्वत्र आकाश का गुण है तथा अग्नि का गुण है ग्रस लेना। इन आकाश तथा अग्नि का विमर्श "ईकार" है। इसका अवलोकन विन्दु से करें।।१-४।।

पिण्डकर्तरि बीजाख्या मन्त्रा मालाभिधाःक्रमात्।
एकार्णवन्तो द्व्यर्णाश्च त्रिदिङ्मुखमुखार्णकाः॥५॥
वृत्तिजार्णांल्लिखेदङ्कैर्व्यत्यस्तक्रमयोगतः। तैर्भेदयोजनं कुर्यात्सन्दर्भाणामशेषतः॥६॥
देव्यात्मकं समुदयं विश्रान्तिं च शिवात्मकम्।
उभयात्मकमप्यात्मस्वरूपं तैश्च भावयेत्॥७॥
कालेनान्यच्च दुःखार्त्तिवासनानाशनो ध्रुवम्। पराहन्तामयं सर्वस्वरूपं चात्मविग्रहम्॥८॥
सदात्मकं स्फुरताख्यमरोषोपाधिवर्जितम्। प्रकाशरूपमात्मत्वे वस्तु तद्भासते परम्॥९॥

पिण्डकर्त्ता बीजाख्य मन्त्र को माला में क्रमशः स्थापित करे। उनमें एक वर्ण, दो वर्ण, तीन तथा चार वर्ण हों। तदनन्तर विपरीत क्रमेण वृत्तिजन्य अक्षरों को लिखे। उनमें पूर्णतया अशेषतया सन्दर्भभेद कर देना चाहिये। समुदय में देव्यात्मक रूप में तथा विश्रान्ति में शिवात्मक रूप में आत्मरूप की भावना करनी चाहिये। इससे दुःख, आर्त्ति, वासना का नाश होना निश्चित है। सभी स्वरूप पराहन्तामय आत्मविग्रह ही हैं। यह सदात्मक है। यह स्फुरतारूप, अक्रोधरूप तथा उपाधिरहित है। यह प्रकाशरूप आत्मतत्व है। इसी से परमवस्तु भासित होती है।।५-९।।

यत एवमतो लोके नास्त्यमन्त्रं यदक्षरम्। यद्विद्येति समाख्यातं सर्वथा सर्वतः सदा॥१०॥
वासरेषु तु तेष्वेवं सर्वापत्तारकं भवेत्। तद्विधानं च वक्ष्यामि सम्यगासवकल्पनम्॥११॥
गौडी पैष्टी तथा माध्वीत्येवं तत्त्रिविधं स्मृतम्।
गुडमुष्णोदके क्षिप्त्वा समालोड्य विनिक्षिपेत्॥१२॥
घटे काचमये तस्मिन् धातकीसुमनोरजः।
खात्वा भूमौ सन्ध्ययोस्तु करैः संक्षोभ्य भूयसा॥१३॥
मासमात्रे गते तस्मिन्निमग्ने रजसि द्रुतम्। संशोध्य पूजयेत्तेन गौडी सा गुडयोगतः॥१४॥

अतः लोक में कोई अक्षर मन्त्र रहित नहीं है। मन्त्राक्षर तथा उसकी विधि का वर्णन सम्यक्तः कर दिया गया। विहित काल, तिथि के समय उस मन्त्र का जपादि करने से सभी आपत्ति से व्यक्ति तर जाता है। अब सम्यक्रूप से आसव बनाने का विधान कहता हूं। यह आसव त्रिविध है। यथा—गौड़ी-पैष्ठी-माध्वी। उष्णजल में गुड़ छोड़कर मन्थन करे। उसे शीशे के घट में धौंके फूल के सुन्दर पराग सहित रखे। वह घट

भूगर्भ में गाड़ कर दोनों सन्ध्या उसे हिलाये। एक मास ऐसा करने के उपरान्त उसे शोषित करके इस द्रव से पूजन करे। यह गौड़ी है, जो गुड़ से बनती है।।१०-१४।।

एवं मधुसमायोगान्माध्वी पैष्टीं शृणु प्रिय। अध्यर्द्धद्विगुणे तोये श्रपयेत्तन्दुलं शनैः॥१५॥

दिनत्रयोषिते तस्मिन्धात्र्यकुररजः क्षिपेत्। दिमेकं धृते वाते निवाते स्थापयेत्ततः॥१६॥

उदकेलोलितं पश्चाद्गलितं पैष्टिकं मधु। वृक्षजं फलजं चेति द्विविधं क्रियते मधु॥१७॥

तन्निर्माणं शृणुष्वाद्य यदास्वादान्मनोलयः। मृद्वीकां वाथ खर्जूरफलं पुष्पमथापि वा॥१८॥

मधूकस्याम्भसि क्षिप्त्वा शृतमर्द्धावशेषितम्।
प्राक्सृतासवलेशेन मिलितं दिवसद्वयात्॥१९॥
गालितं स्वादु पूजार्हं मनोलयकरं शुभम्।
वार्क्षं तु नालिकेरं स्याद्धिंतालस्याथ तालतः॥२०॥
फलकाण्डात्स्नुतं दुग्धं नीतं सद्यो रसावहम्।
नालिकेरफलान्तस्थसलिले शशिना युते॥२१॥

अर्द्धपूगफलोत्थं तु रसं संक्षिप्य तापयेत्। आतपे सद्य एवैतदासवं देवताप्रियम्॥२२॥

हे प्रिय मुनिवर! मधु के योग से माध्वी तथा पैष्टी आसव बनाते हैं। चावल को ढाई गुणित जल में धीमी आंच पर पकाये। तीन दिन तक उसे बासी रक्खें। उसमें धात्रीफल चूर्ण मिलाये। तत्पश्चात् एक दिवस उसे वायु में रखकर तब वायुरहित स्थान में रखकर कतिपय दिनों पश्चात् जलयुक्त करके उसका प्रयोग करे। एवं विध यही पैष्टी मद्य है। माध्वी मधु वृक्ष जनित तथा फलजनित रूप से द्विविध होती है। इसके आस्वादन से मनोलय होता है। इसकी विधि श्रवण करे। दाख अथवा खजूर फल किंवा पुष्प को महुये के जल में पकाये। जब आधा रहे, तब पूर्व निर्मित किंचित् मद्य उसमें मिलाकर दो दिन रहने दिया जाये। तब यह मद्य पूजा हेतु तथा मन की एकाग्रता हेतु कार्यकारी होता है। वृक्ष की माध्वी नारिकेल, हिन्ताल, ताल, तथा नागकेसर के सद्य निकले रस को (ताड़ी को) नारियल के फल से निकले जल में छोड़े। आधी सुपाड़ी उस रस में छोड़कर उसे धूम में तपाये। यह आसव देवता को अतिप्रिय है।।१५-२२।।

आसवैरेभिरुदितैरर्घ्यं देव्यै निवेदयेत्। देवैः कृत्वा ततः सद्यो दद्यात्तत्सिद्धये द्वयम्॥२३॥

साधको नियताहारः समाधिस्थः पिबेत्सदा।
न कदाचित्पिबेत्सिद्धो देव्यर्थमनिवेदितम्॥२४॥
पानं च तावत्कुर्वीत यावता स्यान्मनोलयः।
ततः कराति चेत्सद्यः पातकी भवति ध्रुवम्॥२५॥

देवतागुरुशिष्टान्यं पिबन्नासवमाशया। पातकी राजदण्ड्यश्च रिक्थोपासक एव च॥२६॥

जब यह आसव निर्मित हो जाये, तब देवी को इनका अर्घ्य प्रदान करे। बनने पर सिद्धि हेतु अर्घ्यद्वय देवता को दे। साधक सम्यक् (अल्प) आहार करके सदा समाधिस्थ होकर इसका पान करे। सिद्ध व्यक्ति भी बिना देवी को निवेदित किये इसका पान न करे। उतनी ही मात्रा में पान करना चाहिये जब तक मनोलय न

हो। उससे अधिक जो पान करता है, वह निश्चित रूप से पापी ही है। जो व्यक्ति देवता, गुरु, शिष्य को अर्पित किये बिना केवल अपने भोगार्थ पान करता है, वह राजा द्वारा दण्डार्ह है और पातकी है। यह निश्चित है। जो धनकामनार्थ आसव पान करता है, वह भी पापी है।।२३-२६।।

साध्यसाधकयोरेतत्काम्य एव समीरितम्।
सिद्धस्य सर्वदा प्रोक्तं यतोऽसौ तन्मयो भवेत्॥२७॥
पूजयेत्प्रोक्तरूपस्तु प्रोक्तरूपाश्च ताः क्रमात्।
उपचारैरासवैश्च मत्स्यैर्मांसैश्च संस्कृतैः॥२८॥

यह साध्य तथा साधक हेतु काम्य कहा गया है। अपने इष्ट की सिद्धि हेतु साधक इसका पान कर सकता है। लेकिन जो सिद्ध है, वह मात्र तन्मयता के प्रयोजनार्थ इसका उपभोग करे। वह व्यक्ति देवियों के लिये संस्कृत-मत्स्य, मांस-मद्य को उपचार के साथ प्रदान करे।।२७-२८।।

अथ काम्यार्चनं वक्ष्ये प्रयोगांश्चापि नारद।
येषामाचरणात्सिद्धिं साधको लभते ध्रुवम्॥२९॥
चैत्रे दमनकैरर्चेत्पूर्णायां मदनोत्सवम्। वैशाखे मासि पूर्णायां पूजयेद्धेमपुष्पकैः॥३०॥
ज्यैष्ठ्यां फलैर्यजेद्देवीं कदलीपनसाम्रजैः। आषाढ्यां चन्दनैरेलाजातीकङ्कोलकुङ्कमै॥३१॥
श्रावण्यामागमोक्तेन विधिनार्चेत्पवित्रकैः। प्रौष्ठपद्यां गन्धपुष्पैर्यजेद्वा केतकीसुभैः॥३२॥

हे नारद! अब काम्य कार्य हेतु पूजन तथा प्रयोगादि को कहता हूं। इसके आचरण से साधक सिद्धि अवश्य प्राप्त करता है। चैत्र मास में मदनोत्सव पर दमनक पुष्प-से देवी की अर्चना करे। वैशाखी पूर्णिमा के दिन हेम (चम्पा) पुष्प से पूजा करे। ज्येष्ठ पूर्णिमा पर कदली, कटहल, आम्र पुष्प-फल से पूजा करे। आषाढ़ी पूर्णिमा पर चन्दन, इलायची, कंकोल पुष्प-फल से तथा कुंकुम से पूजा करनी चाहिये। श्रावणी पूर्णिमा पर तन्त्रोक्त विधान से कुशों से पूजन करे। भाद्री पूर्णिमा काल में गन्ध-पुष्प तथा केतकी पुष्प से पूजा करे।।२९-३२।।

आश्वयुज्यां कन्यकार्चा भूषावस्त्रधनादिभिः।
कार्तिक्यां कुङ्कुमैश्चैव निशि दीपगणैरपि॥३३॥
सचन्द्रैर्मार्गशीर्ष्यां तु नालिकेरैरपूपकैः। पौष्यां सर्करगुडैर्गवां दुग्धैः समर्चयेत्॥३४॥
स्वर्णरौप्यैः पङ्कजैस्तु माघ्यां सौगन्धिकादिभिः।
फाल्गुन्यां विविधैर्द्रव्यैः फलैः पुष्पैः सुगन्धिभिः॥३५॥
पर्वताग्रे यजेद्देवीं पलाशकुसुमैर्निशि। सिद्धद्रव्यैश्च सप्ताहात्खेचरीमेलनं भवेत्॥३६॥

आश्विन पूर्णिमा पर वस्त्र, आभूषण, धनादि से कुमारी पूजन करे। कार्त्तिकी पूर्णिमा पर कुंकुम से पूजा करे। रात्रि में दीपमालिका का उत्सव करे। अग्रहण की पूर्णिमा के दिन कर्पूर, नारिकेल तथा मालपूआ से पूजा करे। पौषी पूर्णिमा के दिन शर्करा, गुड़, गोदुग्ध से माघीपूर्णिमा पर स्वर्ण, चांदी, कमल, सुगन्धद्रव्य से पूजा करनी चाहिये। रात्रिकाल में फाल्गुन पूर्णिमा के दिन फल-पुष्प-नाना सुगन्ध द्रव्य से पूजा करे। रात्रिकाल में

पर्वत शिखर पर रात्रि में देवी पूजा पलाश पुष्पों से करनी चाहिये। इस पूजन से एक सप्ताह में खेचरी सिद्धि (आकाशगमन) प्राप्त हो जाती है।।३३-३६।।

अरण्ये वटमूले वा कुञ्जे वा धरणीभृताम्।
कदम्बजातिपुष्पाभ्यां सिद्धद्रव्यैः शिवां यजेत्॥३७॥
मासेन सिद्धा यक्षिण्यः प्रत्यक्षा वाञ्छितप्रदाः।
केतकीकुसुमैः सिद्धाश्चेटका वारिधेस्तटे॥३८॥
आज्ञामभीष्टां कुर्वन्ति रणे मायां महाद्भुताम्।
वसूनि मालां भूषां च दद्युरस्येहयानिशम्॥३९॥

वन, वटमूल अथवा कुंज में अथवा शुद्ध स्थान पर कदम्ब, जातीपुष्प तथा सिद्ध द्रव्य से शिवादेवी की अर्चना करे। एक मास में यक्षिणी सिद्ध होकर वांछित फल देती हैं। सागर तट पर केतकी पूजन द्वारा (चेटक) दाससिद्धि होती है। वे दास साधक का आज्ञापालन करते हैं। वे रण में महाविचित्र माया रचते हैं। वे साधक को सदा माला, धन, आभूषण प्रदान करते रहते हैं।।३७-३९।।

पीठवृक्षद्रुमैः कृत्वा तत्र देवीं यजेन्निशि।
शाल्मलैः कुसुमैः सिद्धद्रव्यैर्मांसं तु निर्भयः॥४०॥
श्मशानदेशे विप्रेन्द्र सिद्ध्यन्त्यस्य पिशाचकाः। अश्मपातप्रहाराद्यैर्जीयादाभिर्द्विषश्चिरम्॥४१॥
निर्जने विपिने रात्रौ मासमात्रं तु निर्भयः। यजेद्देवीं चक्रगतां सिद्धद्रव्यसमन्विताम्॥४२॥
मालतीजातीपुन्नागकेतकीमरुभिः क्रमात्।
तेन सिद्ध्यन्ति वेतालास्तानारुह्येच्छया चरेत्॥४३॥

जो व्यक्ति श्मशानस्थ ऋक्ष वृक्ष के नीचे पीठ बनाकर देवी की पूजा रात्रि में सेमल पुष्प से पके द्रव्य तथा मांस से निर्भय होकर करता है, उसे पिशाचसिद्ध हो जाते हैं। वे साधक के शत्रुगण को संग्राम में पत्थरों के प्रहार से नष्ट करते हैं। निर्जन वन में एकमास तक रात्रि में निर्भय होकर चक्रस्थ देवी का यजन मालती, जाती, पुन्नाग, केतकी तथा मरुबक पुष्पों एवं सिद्ध द्रव्य से करे। उसे वेतालसिद्धि मिलती है। वह वेतालों पर बैठकर यथेच्छ विचरण करता है।।४०-४३।।

श्मशाने चण्डिकागेहे निर्जने विपिनेऽपि वा। मध्यरात्रे यजेद्देवीं कृष्णवस्त्रविभूषणैः॥४४॥
कृष्णाचक्रेऽतिकृष्णां तामतिक्रुद्धाशयो यजेत्।
साध्ययोनिं तदग्रे तु बलिं छिन्दन्निवेदयेत्॥४५॥
सिद्धद्रव्यसमेतं तु मासात्तद्भाललोचनात्।
जायन्ते भीषणाः कृत्यास्ताभ्यः सिद्धिं निवेदयेत्॥४६॥
विश्वसंहारसन्तुष्टाः पुनरेत्य निजेच्छया। देव्या ललाटनेत्रे स्युः प्रार्थिते तु तिरोहिताः॥४७॥
रक्तभूषाम्बरालेपमालाभूषितविग्रहाः। उद्याने निर्जने देवीं चक्रे सञ्चिन्त्य पूजयेत्॥४८॥

श्मशान में किंवा चण्डिका मन्दिर में किंवा निर्जन वन में एक मास तक साधक मध्य निशाकाल में क्रुद्ध मुद्रा में कृष्ण चक्रस्था अति कृष्णवर्णा भगवती की पूजा कृष्णवर्ण वस्त्र-आभूषण से करे। उनके आगे सिद्ध द्रव्य तथा बलि अर्पित करे। तब उस साधक के ललाट से भीषण कृत्या निकलती हैं। वे रक्त वर्ण वसनभूषण, लेप मालायुक्त रहती हैं। उनके साधक सिद्धि निवेदित करे। तब वे विश्वसंहार तक कर देती हैं। पुनः प्रार्थित होकर वे देवी के तृतीय नेत्र में विलीन हो जाती हैं। उद्यानस्थ, निर्जन स्थल में चक्र में देवी का चिन्तन करे तथा पूजा करे।।४४-४८।।

कह्लारचम्पकाशोकपाटलाशतपत्रकैः। सिद्धद्रव्यसमोपेतैर्मायाः सिद्ध्यन्ति मासतः॥४९॥
यासां प्रसादलाभेन कामरूपो भवेन्नरः। याभिर्विश्वजयी विश्वचारी विश्वविनोदवान्॥५०॥
षडाधाराब्जमध्ये तु चक्रं सञ्चिन्त्य पूजयेत्। चन्द्रचन्दनकस्तूरीमृगनाभिमहोदयैः॥५१॥
त्रिकालज्ञो भवेद्देवीं तेषु सम्यग्विचिन्तयेत्।
पूर्णप्रतीतौ भव्यानि विकलेऽभव्यमीरितम्॥५२॥

उनका एक मास तक पूजन रक्तकमल, चम्पा, अशोक, पाटल, सामान्य कमल, सिद्ध द्रव्य से करे। इससे माया सिद्धि होती है। देवी की कृपा से मानव विश्वजयी, विश्वचारी, विश्वविनोदी हो जाता है। वह कामरूपी भी हो जाता है। षडाधारकमल में चक्र चिन्तन करके देवी की पूजा करे। कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी से वहां देवी पूजन कर्त्ता त्रिकालज्ञ हो जाता है।।४९-५२।।

देवींचक्रेण संहितां स्मरेद्भक्तियुतो नरः।
विवेका विभवा विश्वा वितता च प्रकीर्तिता॥५३॥
कामिनी खेचरी गर्वा पुराणा परमेश्वरी। गौरी शिवा ह्यमेया च विमला विजया परा॥५४॥
पवित्रा पीडनी विद्या विश्वेशी शिववल्लभा।
अशेषरूपा स्वानन्दाम्बुजाक्षी चाप्यनिन्दिता॥५५॥
वरदा वाक्यदा वाणी विविधा वेदविग्रहा।
विद्या वागीश्वरी सत्या संयता च सरस्वती॥५६॥
निर्मलानन्दरूपा च ह्यमृता मानदा तथा। पूषा चैव तथा तुष्टिः पुष्टिश्चापि रतिर्धृतिः॥५७॥
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्नाः श्रीः प्रीतिरङ्गदा।
देवीनामानि चैतानि चुलुके सलिले स्मरन्॥५८॥
मातृकासहितां विग्नां त्रिरावृत्त्यामृतात्मिकाम्।
ताडीं सरस्वतीं जिह्वां दीपाकारां स्मरन्पिबेत्॥५९॥
अब्दाच्चतुर्विधं तस्या पाण्डित्यं भुवि जायते।
एवं नित्यमुषःकाले यः कुर्याच्छुद्धमानसः॥६०॥

जो मानव भक्तिभावपूर्वक देवीचक्रसहित उनका चिन्तन करता है, विवेका, विभवा, विश्वा, वितता,

कामिनी, खेचरी, गर्वा, पुराणा, परमेश्वरी, गौरी, शिवा, अमेया, विमला, विजया, परा, पवित्रा, पीड़नी, विद्या, विश्वेशी, शिववल्लभा, अशेषरूपा, स्वानन्दा, अम्बुजाक्षी, अनिन्दिता, वरदा, वाक्यदा, वाणी, विविधा, वेदविग्रहा विद्या, वागीश्वरी, सत्या, संयता, सरस्वती, निर्मलानन्दरूपा, अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, इन नाम का पाठ करते एक चुल्लू जल में पढ़े। तदनन्तर मातृका के साथ विग्ना, अमृतात्मिका, ताड़ी, सरस्वती, जिह्वा, दीपाकरा का स्मरण करके उस एक चुल्लू जल को पीये। जो एक वर्ष तक यह करेगा, उसे अपूर्व पाण्डित्य लाभ होगा, जो नित्य प्रातः शुद्ध मन से ऐसा करेगा।।५३-६०।।

स योगी ब्रह्मविज्ञानी शिवयोगी तथात्मवित्।
अनुग्रहोक्तचक्रस्थां देवीं ताभिर्वृतां स्मरेत्॥६१॥
चम्पकेन्दीवरैर्मासादारोग्यमुपजायते। ज्वरभूतग्रहोन्मादशीतकाकामलाक्षिहृत॥६२॥
दन्तकर्णज्वरशिरःशूलगुल्मादि कुक्षिजाः। व्रणप्रमेहच्छर्द्यर्शोग्रहण्यामत्रिदोषजाः॥६३॥
सर्वे तथा शमं यान्ति पूजया परमेश्वरी। द्रव्यं चक्रस्य निर्माणे काश्मीरं समुदीरितम्॥६४॥

वह योगी, ब्रह्मज्ञानी, शिवयोगी, आत्मवित् हो जाता है। इन शक्तिगण सहित अनुग्रह चक्रस्था देवी का चिन्तन करे तथा चम्पा एवं कमल पुष्पों से अर्चित करे। इससे साधक निरोग होता है। ज्वर, भूतग्रह, उन्माद, शीतरोग, कामला आदि नेत्र रोग, दांत-कान के रोग, शिर, शूल, गुल्मादिरोग, कुक्षिरोग, व्रण, प्रमेह, हिचकी, अर्शरोग, संग्रहणी तथा त्रिदोषज रोग नष्ट होते हैं। परमेश्वरी पूजन से इन सब में शान्ति मिलती हैं। चक्र निर्माणार्थ कुंकुम कहा गया है।।६१-६४।।

सिन्दूरं गैरिकं लाक्षा दरदं चन्दनद्वयम्। बिलद्वारे लिखेत्त्र्यस्त्रं षोडशत्र्यस्त्रसंयुतम्॥६५॥
दरदेनास्य मध्यस्थां पूजयेत्परमेश्वरीम्।
ताभिस्तच्छक्तिभिः साकं सिद्धद्रव्यैः सुगन्धिभिः॥६६॥
कुसुमैर्मासमात्रेण नागकन्यासमन्वितम्। पातालादिषु लोकेषु रमयत्यनिशं चिरम्॥६७॥
यक्षराक्षसगन्धर्वसिद्धविद्याधराङ्गनाः। पिशाचा गुह्यका वीराः किन्नराः भुजगास्तथा॥६८॥
सिद्ध्यन्ति पूजनात्तत्र तथा तत्प्रोक्तकालतः।
किंशुकैर्भूषणावाप्तौ पाटलैर्गजसिद्धये॥६९॥
रक्तोत्पलैरश्वसिद्धौ कुमुदैश्चरसिद्धये। उत्पलैरुष्ट्रसंसिद्ध्यै तगरैः पशुसिद्धये॥७०॥
जम्बीरैर्महिषावाप्त्यै लकुचैरजसिद्धये। दाडिमैर्निधिसंसिद्ध्यै मधुकैर्गानसिद्धये॥७१॥
बकुलैरङ्गनासिद्ध्ये कह्लारैः पुत्रसिद्धये। शतपत्रैर्जयावाप्त्यै केतकैर्वाहनाप्तये॥७२॥
सौरभाढ्यैः प्रसूनैस्तु नित्यं सौभाग्यसिद्धये।
पूजयेन्मासमात्रं वा द्विगुणं त्रिगुणं तु वा॥७३॥

तथा सिन्दूर, गेरु, लाख, दरद, श्वेतचन्दन तथा रक्तचन्दन का उपयोग करे। बिलद्वार पर तीन तथा

षोडश त्रिकोण लिखे। मध्य में दरद से देवी पूजा करनी चाहिये। एकमास पर्यन्त जो साधक सुगन्धित सिद्धद्रव्य तथा पुष्पादि से शक्तिसहित देवी की अर्चना करता है, उसे पातालादि लोकस्थ नागकन्याओं से रात-दिन रमण क्षमता मिलती है। यहां तक कि यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर अंगनायें तथा पिशाच, गुह्यक, वीर, किन्नर, सर्प उसके वश में हो जाते हैं।

पलाश पुष्प पूजन से — भूषण प्राप्ति।
पाटल पुष्प पूजन से — गज प्राप्ति।
रक्तकमल पुष्प पूजन से — अश्व प्राप्ति।
कुमुद पुष्प पूजन से — वाहन प्राप्ति।
कमल पुष्प पूजन से — ऊंट प्राप्ति।
तगर पुष्प पूजन से — पशु प्राप्ति।
नींबू फल पुष्प पूजन से — भैंस प्राप्ति।
बड़हल पुष्प पूजन से — बकरा प्राप्ति।
अनार पुष्प पूजन से — निधि प्राप्ति।
महुआ पुष्प पूजन से — गायन प्राप्ति।
मालश्री पुष्प पूजन से — रमणी प्राप्ति।
रक्तकमल पुष्प पूजन से — पुत्र प्राप्ति।
शतदल पुष्प पूजन से — स्त्री प्राप्ति।
केतकी पुष्प पूजन से — वाहन प्राप्ति।
अतिसुगन्ध द्रव्य पूजन से — सौभाग्य लाभ

पूर्ण फललाभार्थ एक किंवा दो मास अथवा मासत्रय पर्यन्त पूजन करे।।६५-७३।।

यावत्फलावाप्तिकांक्षी शर्कराघृतपायसैः। सचक्रपरिवारां तां देवीं सलिलमध्यगाम्।।७४।।
तर्प्ययेत्कुसुमैः साध्यैः सर्वोपद्रवशान्तये। घृतैः पूर्णायुषः सिद्ध्यै क्षौद्रैः सौभाग्यसिद्धये।।७५।।
दुग्धैरारोग्यसंसिद्ध्यै त्रिभिरैश्वर्यसिद्धये। नालिकेरोदकैः प्रीत्यै हिमतोयैर्नृपाप्तये।
सर्वार्थसिद्धये तौयैरषिषिञ्चेन्महेश्वरोम्।।७६।।

समस्त फलाकांक्षी शर्करा, घृत, खीर को सचक्र देवी परिवार तथा सलिलमध्यगामी देवी को अर्पित करे। तदनन्तर पुष्पयुक्त अर्घ्य देना चाहिये। कुसुम से अर्घ्य देने पर सभी उपद्रव नाश होता है। देवी को घृत से तृप्त करने पर पूर्णायु लाभ, मधु से तृप्त करने पर सौभाग्य लाभ, दुग्ध से आरोग्य सिद्धि, तीनों को मिलाकर तृप्त करने से ऐश्वर्य लाभ, नारिकेल जल से प्रेमलाभ, हिमजल से राज्य लाभ तथा केवल जल से सर्वप्रयोजन सिद्धि होती है।।७४-७६।।

पूगोद्याने यजेद्देवीं सिद्धद्रव्यैर्दिवानिशम्। निवसंस्तत्र तत्पुष्पैर्जायते मन्मथोपमः।।७७।।
पूर्णासु नियतं देवीं कन्यकायां समर्चयन्।
कृत्याः परेरिता मन्त्रा विमुखांस्तान् ग्रसन्ति वै।।७८।।

लिङ्गत्रयमयीं देवीं चक्रस्थाभिश्च शक्तिभिः। पूजयन्निष्टमखिलं लभतेऽत्र परत्र च॥७९॥
शतमानकृतैः स्वर्णपुष्पैः सौरभ्यवासितैः। पूजयन्मासमात्रेण प्राग्जन्माद्यैर्विमुच्यते॥८०॥

सुपाड़ी के उद्यान में रहते हुये उसके पुष्प तथा सिद्ध द्रव्य से देवी की अर्चना करे। वह मनुष्य कामदेववत् होता है, जो कन्या राशि संक्रान्ति कालीन पूर्णिमा के दिन देवी पूजादि करता है, उसके द्वारा प्रेषित कृत्या शत्रु भक्षण कर लेता है। जो लिंगत्रयमयी देवी की पूजा चक्रस्थ शक्तियों सहित करता है, उसकी सर्वकामना इहलोक तथा परलोक में पूर्ण होती हैं। १०० सुवासित स्वर्णपुष्प से एक मास देवी पूजन करने वाला मनुष्य पूर्वजन्म जनित कर्मों से मुक्ति पा लेता है।।७७-८०।।

तथा रत्नैश्च नवभिर्मासं तु यदि पूजयेत्। विमुक्तसर्वपापौघैस्तां च पश्यति चक्षुषा॥८१॥
अंशुकैरर्चयेद्देवीं मासमात्रं सुगन्धिभिः। मुच्यते पापकृत्यादिदुःखौघैरितरैरपि॥८२॥

देवीरूपं स्वमात्मानं चक्रं शक्तीः समन्ततः।
भावयन्विषयैः पुष्पैः पूजयंस्तन्मयो भवेत्॥८३॥
षोडशानां तु नित्यानां प्रत्येकं तिथयः क्रमात्।
तत्तत्तिथौ तद्भजनं जपहोमादिकं चरेत्॥८४॥

घृतं च शर्करा दुग्धमपूपं कदलीफलम्। क्षौद्रं गुडं नालिकेरफलं लाजा तिलं दधि॥८५॥
पृथुकं चणकं मुद्गपायसं च निवेदयेत्। कामेश्वर्यादिशक्तीनां सर्वासामपि चोदितम्॥८६॥

जो नवरत्नों से एकमास देवी की पूजा करता है, वह सर्वपापरहित होकर नेत्रों से देवीदर्शन करता है। जो सुगन्धित वस्त्रों से मासपर्यन्त देवी पूजा करता है, वह सर्वपाप तथा दुःख से मुक्त हो जाता है। स्वात्मा में ही साधक चतुर्दिक् शक्ति परिवेष्ठित देवी की भावना करे। विषयरूपी पुष्पों से देवी पूजन करते तन्मय हो जाये। षोडश नित्याओं की तिथियां पृथक्-पृथक् हैं। उस तिथि के दिन उस नित्या के उद्देश्य से जप, होम, भजन करे। घृत, शर्करा, दुग्ध, मालपुआ, गुड़, नारिकेल, लावा, तिल, दधि, चिवड़ा, चना तथा मूंग की खीर का कामेश्वरी प्रभृति समस्त शक्तियों को अर्पित करे।।८१-८६।।

आद्याया ललितायास्तु सर्वाण्येतानि सर्वदा। निवेदयेच्च जुहुयाद्वह्नौ दद्यान्नृणामपि॥८७॥
तत्तद्विद्याक्षरप्रोक्तमौषधं तत्प्रमाणत। सम्पिष्य गुटिकीकृत्य ताभिः सर्वं च साधयेत्॥८८॥
रविवारेऽरुणाम्भोजैः कुमुदैः सोमवारके। भौमे रक्तोत्पलैः सौम्येवारे तगरसम्भवैः॥८९॥
गुरुवारे सुकह्लारैः शुक्रवारे सिताम्बुजैः। नीलोत्पलैर्मन्दवारे पूजयेदिष्टमादरात्॥९०॥
निवेदयेत्क्रमात्तेषु रविवारादिषु क्रमात्। पायसं दुग्धकदलीनवनीतसिताघृतम्॥९१॥

आद्या तथा ललिता को यह सब समर्पित करे। तदनन्तर अग्नि में होम करे। प्रत्येक के मन्त्र के जितने अक्षर हैं, उतने प्रमाण की औषधि की गोली बनाये। उस गुटिका से सब साधे। रविवार को रक्तकमल से, सोम को कुमुद से, मंगल को रक्तकमल से, बुध को तगर से, बृहस्पति को रक्तकमल से, शुक्र को श्वेतकमल से, शनि को नीलकमल से सादर इष्ट देवी की पूजा करे। रविवार को खीर से, सोम को दूध से, मंगल को कदली से, बुध को मक्खन से, बृहस्पति शर्करा से, शुक्र को घृत से पूजा करे।।८७-९१।।

एवमिष्टं समाराध्य देवीं गन्धादिभिर्यजेत्।
ग्रहपीडां विजित्याशु सुखानि च समश्नुते॥९२॥
अर्धरात्रे तु साध्यां स्त्रीं स्मरन्मदनवह्निना।
दह्यमानां हृतस्वान्तां मस्तकस्थापिताञ्जलिम्॥९३॥
विकीर्णकेशीमालोललोचनामरुणारुणाम्। वायुप्रेङ्खत्पताकास्थपदा पद्मकलेवराम्॥९४॥
विवेकविधुरां मत्तां मानलज्जाभयातिगाम्।
चिन्तयन्नर्चयेच्चक्रं मध्ये देवीं दिगम्बराम्॥९५॥

इस प्रकार इष्ट पूजा करके गन्धादि से देवी का यजन जो करता है, वह ग्रहपीड़ा को जीत लेता है तथा सुखलाभ करता है। अर्द्धरात्रि के समय जिस स्त्री को वश में करना है, उसका स्मरण करे कि वह कामाग्नि दग्ध है, चित्त को वशीभूत करने वाली, मस्तक पर हाथों को रखकर खड़ी है। उसके केश अस्त-व्यस्त हैं। नेत्र दीर्घ तथा अरुण हैं। वायु में फहराती पताका पर उसके पैर स्थित हैं। उसमें तनिक विवेक नहीं है। उसका शरीर कोमल है। वह मत्ता तथा मान, लज्जा भय का लंघन कर चुकी है। यह चिन्तन करके चक्र में दिगम्बरा देवी की अर्चना करनी चाहिये।।९२-९५।।

जपादाडिमबन्धूककिंशुकाद्यैः समर्चयेत्। अन्यैः सुगन्धिशेफालीकुसुमाद्यैः समर्चयेत्॥९६॥
त्रिसप्तरात्रादायाति प्रोक्तरूपा मदाकुला। यावच्छरीरपातः स्याच्छापो वानपगास्य सा॥९७॥
पद्मैरक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। तथैव कैरवै रक्तैरङ्गनाः स्ववशं नयेत्॥९८॥
समानरूपवत्सायाः शुल्काया गोः पयःप्लुतैः। मल्लिकामालतीजातीशतपत्रैर्हुतैर्भवेत्॥९९॥
कीर्तिविद्याधनारोग्यसौभाग्यवित्तपादिकम्। आरग्वधप्रसूनैस्तु क्षौद्राक्तैर्हवनाद्भवेत्॥१००॥

इन देवी का पूजन जवापुष्प, अनार, बन्धूक, पलाश तथा सुगन्धमय शेफालिका प्रभृति पुष्पों से करे। जो साधक २१ दिन तक ऐसा करेगा, उसे वह मदविह्वला स्त्री वशीभूत होगी। त्रिमधुर लिप्त रक्तकमल से होम करे। लक्ष्मी लाभ होगा। रक्त कुमुद से होम करे। ललना वशीभूत होगी। उज्वल रंगयुक्त वत्स वाली शुक्लवर्णा गौ के दुग्ध में मिश्रित मालती, जूही, कमल से जो होम करेगा, उसे यश, विद्या, धन, आरोग्य देह तथा उत्तम भाग्य का लाभ होगा। जो व्यक्ति आरग्वध अर्थात् छितवन के फूलों से हवन करेगा।।९६-१००।।

स्वर्णादिस्तम्भनं शत्रोर्नृपादीनां क्रुधोऽपि च।
आज्याक्तैः करवीरोत्थैः प्रसूनैररुणैर्हुतैः॥१०१॥
रक्ताम्बराणि वनिता भूपामात्यवशं तथा।
भूषावाहनवाणिज्यसिद्धयश्चास्य वाञ्छिताः॥१०२॥

उसे स्वर्ण लाभ होगा, उसके शत्रु तथा क्रोधित राजा का स्तम्भन होगा। घृतलिप्त लाल कनेर से होम करे। स्त्री, राजा, आमत्य वश में होते हैं। रक्त वस्त्र, स्त्री, आभूषण, वाहन, वाणिज्य प्रभृति वांछित की सिद्धि होगी।।१०१-१०२।।

लवणैः सर्षपैर्गौरैरितरैर्वाथ होमतः। सतैलाक्तैर्निशामध्ये त्वानयेद्वाञ्छितां वधूम्॥१०३॥

तैलाक्तैर्जुहुयात्कृष्णादरपुष्पैर्निशान्तरे। मासादरातेस्तस्यार्तिर्ज्वरेण भवति ध्रुवम्॥१०४॥

आरुष्करैर्घृताभ्यक्तैस्तव्बजैर्निशि होमतः।
शत्रोर्दाहव्रणानि स्युर्दुःसाध्यानि चिकित्सकैः॥१०५॥

तथा तत्तैलसंसिक्तैर्बीजैरङ्कोलकैरपि। मरिचैः सर्षपाज्याक्तैर्निशि होमानुसारतः॥१०६॥

वाञ्छितां वनितां कामज्वरार्तामानयेदद्रुतम्।
शालिभिश्चाज्यसंसिक्तैर्होमाच्छालीनवाप्नुयात् ॥१०७॥

लवण तथा श्वेत सर्षप में तैल मिलाये। मध्यरात्रि में हवन करे। इच्छित रमणी मिलेगी। तैलयुक्त कृष्ण दरपुष्प से निशान्तर में एकमास होम करे। शत्रु को विषम ज्वर होगा। यह ध्रुव सत्य है। रात में घृत लिप्त मिलावा बीज से होम करे। शत्रु को दाह व्रण होगा। यह वैद्य के लिये भी दुश्चिकित्स्य होगा। उसी तैल से युक्त बीज, अंकोल, मरिच तथा सर्षप से (अर्थात् अंकोल तैल लिप्त अंकोल बीज) होम करे। शीघ्र कामपीड़ित रमणी प्राप्त होगी। जो घृतलिप्त तण्डुल से होम करेगा, उसे चावल का लाभ होगा।।१०३-१०७।।

मुद्गैर्मुद्गं घृतैराज्यं सिद्धैरित्थं हुतैर्भवेत्। साध्यर्क्षवृक्षसम्भूतां पिष्टपादरजः कृताम्॥१०८॥

राजीमरीचिलोणोत्थां पुत्तलीं जुहुयान्निशि।
प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामुरुयुग्मतः॥१०९॥

नाभेरधस्ताद्धृदयाद्भिन्नेनाकण्ठतस्तथा ।
शिरसा च सुतीक्ष्णेन च्छित्वा शस्त्रेण वै क्रमात्॥११०॥

एवं द्वादशधा होमान्नरनारीनराधिपाः। वश्या भवन्ति सप्ताहाज्ज्वरार्त्तीश्चास्य वाञ्छया॥१११॥

मूंग से होम करने से — मूंग की — उपलब्धि होगी।
घृत से होम करने से — घृत की — उपलब्धि होगी।
सर्षप से होम करने से — सर्षप की — उपलब्धि होगी।

साध्य वृक्ष से उत्पन्न पादरज को पीसकर राई, मरीच तथा लोनी का साग मिलाकर साध्य वृक्ष से उत्पन्न पादरज को राई, मरीच तथा लोणी के साग के साथ पीसना चाहिये। उससे एक पुतली बनाये अर्थात् पुतली के चरणाग्र में रात में होम करे। चरणाग्र, जानु, उरुद्वय, नाभि, हृदय, शिर, कण्ठ पर करके शिर को तेज शस्त्र से काटें। इन द्वादश अंग का होम करने से नर-नारी, राजा एक सप्ताह में वशीभूत होंगे। यदि साधक की इच्छा होगी, तब वे ज्वरार्त्त भी हो जायेंगे।।१०८-१११।।

पिष्टेन गुडयुक्तेन मरिचैर्जीरकैर्युताम्। कृत्वा पुत्तलिकां साध्यनामयुक्तामथो हृदि॥११२॥

सनामहोमसम्पातघृते पाच्यतां पुनः। स्पृशन्निजकराग्रेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम्॥११३॥

अभ्यर्च्य तद् घृताभ्यक्तं भक्षयेत्तद्धिया जपन्। नरनारीनृपास्तस्य वश्याःस्युर्मरणावधि॥११४॥

शक्त्यष्टगन्धं सम्पिष्य कन्यया शिशिरे जले।
तेन वै तिलकं भाले धारयन्वशयेज्जगत्॥११५॥

गुड़, मरीच, जीरक पीस कर पुतली बनाये। उस पर साध्य का (हृदय पर) नाम लिखकर वह नाम

लेते हुये घृत में पकाये। तदनन्तर कराग्र से स्पर्श करते १००० मन्त्र जप करे। तदनन्तर पूजा करके उसे खाये। ऐसा करने से जिसका नाम लिखकर प्रयोग किया जायेगा, वह नर, नारी, राजा मरण तक वश में रहेगा। अष्टगन्ध को ठंडे जल में पीसे। किसी कुमारी से ललाट पर तिलक लगवाये। जगत् वश में होगा।।११२-११५।।

शालितन्दुलमादायप्रस्थं भाण्डे नवे क्षिपेत्।
समानवर्णवत्साया रक्ताया गोः पयस्तथा।।११६।।
द्विगुणं तत्र निक्षिप्य श्रपयेत्संस्कृतेऽनले।
घृतेन सिक्तं सिक्थं तु कृत्वा तत्ससितं करे।।११७।।
विधाय विद्यामष्टोर्ध्वशतं जप्त्वा हुनेत्ततः।
एवं होमो महालक्ष्मीमावहेत्प्रतिपत्कृतः।।११८।।

एक सेर तण्डुल को रक्तवर्णा गौ जिसका वत्स भी रक्तवर्ण हो, उसके दो सेर दुग्ध से नये पात्र में संस्कृत अग्नि पर पाक करे। उसमें शर्करा मिलकार १०८ होम मन्त्र से करे। प्रतिपदा को यह प्रयोग करने से महालक्ष्मी लाभ होगा।।११६-११८।।

शुक्रवारेष्वपि तथा वर्षान्नृपसमो भवेत्।
पञ्चम्यां तु विशेषेण प्राग्वद्धोमं समाचरेत्।।११९।।
तस्यां तिथौ त्रिमध्वक्तैर्मल्लिकाद्यैः सितैर्हुनेत्।
अन्नाज्याभ्यां च नियतं हुत्वान्नाढ्यो भवेन्नरः।।१२०।।
यद्यद्धि वाञ्छितं वस्तु तत्तत्सर्वं तु सर्वदा। घृतहोमादवाप्नोति तथैव तिलतन्दुलैः।।१२१।।
अरुणैः पङ्कजैर्होमं कुर्वस्त्रिमधुराप्लुतैः।
मण्डलाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम्।।१२२।।

शुक्रवार को जो यह करेगा, वह राजा जैसा होगा। पंचमी के दिन विशेषतया पूर्वविधि से होम करे। उस तिथि पर त्रिमधुरलिप्त मालती पुष्प द्वारा होम करे। नियमपूर्वक हवन अन्न-तण्डुल मिलाकर होम करे, अन्न घृत से होम करे, उसे प्रभूत अन्न मिलेगा। घृत के होम से उसे जो कुछ इच्छा होगी वह प्राप्त होगा। तिल-तण्डुल से होम द्वारा भी यही फल होगा। त्रिमधुर लिप्त लाल कमलों से होम करे, उसे प्रभूत लक्ष्मी प्राप्त होती है।।११९-१२२।।

कह्लारैः क्षौद्रसंयुक्तैः पूर्णाद्यं दद्दिनावधि।
जुहुयान्नित्यशो भक्त्या सहस्त्रं विकचैः शुभैः।।१२३।।
स तु कीर्तिं धनं पुत्रान्प्राप्नुयान्नात्र संशयः।
चम्पकैः क्षौद्रसंसिक्तैः सहस्त्रहवनाद्ध्रुवम्।।१२४।।
लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन नारद। पाटलैर्घृतसंसिक्तैस्त्रिसहस्त्रं हुतैस्तथा।।१२५।।

दर्शादिमासाल्लभते चित्राणि वसनानि च।
कर्पूरचन्दनाद्यानि सुगन्धानि तु मासतः॥१२६॥
वस्तूनि लभते हृद्यैरन्यैर्भोगोपयोगिभिः।
शालिभिः क्षीरसिक्ताभिः सप्तमीषु शतं हुतम्॥१२७॥
तेन शालिसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम्।
तिलैर्हुतैस्तु दिवसैर्वर्षादारोग्यमाप्नुयात्॥१२८॥
स्वजन्मर्क्षत्रिषु तथा दूर्वाभिर्ज्जुहुयान्नरः।
निरातङ्को महाभोगः शतं वर्षाणि जीवति॥१२९॥
गुडूचीतिलदूर्वाभिस्त्रिषु जन्मसु वा हुनेत्। तेनायुःश्रीयशोभोगपुण्यनिध्यादिमान्भवेत्॥१३०॥

मधुयुक्त खिले कल्हार पुष्प से दिन के समय सहस्र होम करे। उसे निःसंदिग्ध रूप से कीर्त्ति, धन, पुत्रादि की प्राप्ति होगी। जो चम्पा को मधु लिप्त करके एक हजार होम नित्य करेगा, उसे हे नारद! एक सौ स्वर्ण निष्क की प्राप्ति होगी। जो पाटल पुष्प घृत लिप्त करके अमावस्या से एक मास तक तीन हजार होम नित्य करेगा, वह चित्रित वस्त्र, कर्पूर, चन्दन, सुगन्धित द्रव्य तथा अन्य भोगोपयुक्त उत्तम वस्तु की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। जो दुग्धयुक्त शालि चावल के भात से प्रति सप्तमी को एक सौ होम करेगा, उस मनुष्य के पास छः मास ऐसा करने पर शालिधान्य का भंडार हो जायेगा। यह निःसंशय हैं। नित्य तिल से होम करने वाले को एक वर्ष में आरोग्य लाभ होगा। जो अपने जन्मनक्षत्र के दिन दूर्वा से होम करता है, वह महायोगी, सुप्रसन्न रहकर शतवर्ष जीवित रहता है। इसी प्रकार स्वजन्मनक्षत्र पर तिल, गुरुच तथा दूर्वा से होम करने वाले को आयु, आरोग्य, श्री, यश, भोग, पुण्य तथा निधिलाभ होगा।।१२३-१३०।।

घृतपायसदुग्धैस्तु हुतैस्तेषु त्रिषु क्रमात्। आयुरारोग्यविभवैर्नृपामात्यो भवेत्तथा॥१३१॥
सप्तम्यां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभतेऽन्वहम्।
दूर्वात्रिकैस्तु प्रादेशमानैस्त्रिस्वादुसंयुतैः॥१३२॥
जुहुयाद्दिनशो घोरे सन्निपातज्वरे तथा।
तद्दिनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन्॥१३३॥
सहस्रवारं तत्तोयैः स्नानं पानं समाचरेत्। पाकाद्यमपि तैरेव कुर्याद्रोगविमुक्तये॥१३४॥
साध्यर्क्षवृक्षसञ्चूर्णं त्र्यूषणं सर्षपं तिलम्।
पिष्टं च साध्यपादोत्थरजसा च समन्वितम्॥१३५॥
कृत्वा पुत्तलिकां सम्यग्धृदये नामसंयुताम्।
प्राग्वच्छित्वायसैस्तीक्ष्णैः शस्त्रैः पुत्तलिकां हुनेत्॥१३६॥
एवं दिनैः सप्तभिस्तु साध्यो वश्यो भवेद्दृढम्।
तथाविधां पुत्तलिकां कुण्डमध्ये निखन्य च॥१३७॥

घृतपायस तथा दुग्ध से जन्म नक्षत्रकाल में होम करने पर आयु आरोग्य तथा ऐश्वर्य का लाभ होगा तथा राजा एवं मन्त्री वशीभूत होते हैं। सप्तमी को कदली से होम करने पर मनुष्य सौभाग्य लाभ करता है। सन्निपात ज्वरनाशार्थ एक वित्ते की दूब, हर्रे, बहेड़ा तथा आमला से होम करे। रोगमुक्ति हेतु मन्त्र का १००० जप करके जलस्पर्श करे तथा उसी जल से स्नान, पान, भोजन पकाये। साध्य वृक्ष के चूर्ण, सोंठ-मरीच-पीपल चूर्ण, सरसों तथा तिल पीसकर पुतली बनाये। पुतली के वक्ष पर साध्य का नाम लिखे। पूर्ववत् तीक्ष्ण शस्त्रों से द्वादश टुकड़ें पुतली के करके होम करे। सात दिन तक जो ऐसा करेगा, उसके वश में साध्य वशीभूत होगा। ऐसी पुतली को कुण्ड में गाड़े।।१३१-१३७।।

उपर्यग्निं निधायाथ विद्यया दिनशो हुनेत्।
त्रिसहस्रं त्रियामायां सर्षपैस्तद्रसाप्लुतैः॥१३८॥
शतयोजनदूरादप्यानयेद्वनितां बलात्। वशयेद्वनितां होमात्कौशिकेर्मधुमिश्रितैः॥१३९॥
नारिकेरफलोपेतैर्गुडैलक्ष्मीमवाप्नुयात्। तथाज्यसिक्तैः कह्लारैः क्षीराक्तैररुणोत्पलैः॥१४०॥
त्रिमध्वक्तैश्चम्पकैश्च प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः।
मधूकजैः प्रसूनैश्च हुतैः कन्यामवाप्नुयात्॥१४१॥

ऊपर से आग लगाकर मन्त्र से दिन में वहां ३००० होम करे। रात में उस पर सरसों का तेल एवं सरसों चढ़ाये। वह पुतली सौ योजन दूरी से भी स्त्री को बलात् ले आती है। मधुमिश्रित गुग्गुलु से स्त्री वशीकरण होता है। गुड़ मिश्रित नारिकेल से होम द्वारा लक्ष्मी लाभ होता है। घृताक्त श्वेत कमल, दुग्धयुक्त, रक्तकमल, त्रिमधुरयुक्त चम्पा, मौलश्री तथा महुआ पुष्प से होम करे। कन्यालाभ होगा।।१३८-१४१।।

पुन्नागजैर्हुतैर्वस्त्राण्याज्यैरिष्टमवाप्नुयात्। माहिषैर्महिषीराजैरजान् गव्यैश्च गास्तथा॥१४२॥
अवाप्नोति हुतैराज्यैः रत्नै रत्नं च साधकः।
शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं ससितां ततः॥१४३॥
हृद्देशन्यस्तनामार्णां पचेत्तैलाज्योर्निशि।
तन्मनाश्च दिवारात्रौ विद्याजप्तां तु भक्षयेत्॥१४४॥
सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नृपोऽपि वा।
दासवद्वशमायाति चित्तप्राणादि चार्पयेत्॥१४५॥
हयारिपुष्पैररुणैः सितैर्वा जुहुयात्तथा। त्रिसप्तरात्रान्महतीमवाप्नोति श्रियन्नरः॥१४६॥

पुन्नाग पुष्प से होम करने से साधक वस्त्रलाभ करता है। गोघृत होम द्वारा इष्टलाभ होता है। महिषघृत से होम द्वारा महिषलाभ होगा। बकरी के घृत से होम करने पर बकरे की, गौओं के घृत से गौओं की, रत्न से रत्न की प्राप्ति होती है। चीनी तथा चावल को पीसकर पुतली बनाये। उसके हृदय पर साध्य का नाम लिखे, उसे रात में घृत-तैल में पक्व करे। दिन में मन्त्र जप के उपरान्त उसको खा जायें। ऐसे सात रात्रि तक करने से नर-नारी अथवा राजा वशीभूत हो जाते हैं। वे अपना चित्त, प्राण तक साधक को समर्पित कर देते हैं। श्वेत किंवा रक्तवर्ण कनेर पुष्प द्वारा मन्त्र से २१ रात तक होम करने वाला प्रभूत श्रीलाभ करता है।।१४२-१४६।।

छागमांसैस्त्रिमध्वक्तैर्होमात्स्वर्णमवाप्नुयात्। क्षीराक्तैः सस्यसम्पन्नां भुवमाप्नोति मण्डलात्॥१४७॥

पद्माक्षैर्हवनाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः।
बिल्वैर्दशांशं जुहुयान्मन्त्राद्यैः साधने जपे॥१४८॥
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु मन्त्रितैश्चुलुकोदकैः।
फणिदष्टमृतानां तु मुखे सताड्य जीवयेत्॥१४९॥
तत्कर्णयोर्जपन्विद्यं यष्ट्या वा जपसिद्धया।
सन्ताड्य शीर्ष सहसा मृतमुत्थापयेदिति॥१५०॥
कृत्वा योनिं कुण्डमध्ये तत्राग्नौ विधिवद्धुनेत्।
तिलसर्षपगोधूमशालिधान्ययवैर्हुनेत् ॥१५१॥

त्रिमध्वक्तैरेकशो वा समेतैर्वा समृद्धये। बकुलैश्चम्पकैरब्जैः कह्लारैरुणोत्पलौः॥१५२॥

त्रिमधुरयुक्त बकरी के मांस से होम द्वारा स्वर्णलाभ होगा। क्षीरयुक्त छाग मास से ही होम करने वाला बारह दिनों में खेत-लाभ करता है। पद्म होम द्वारा तीन दिन में लक्ष्मी मिलती है। मन्त्र जपोपरान्त मन्त्र संख्या का १/१० होम करे। साधक यह देवीमन्त्र सिद्ध हो जाने के उपरान्त सर्पदंश से मृत व्यक्ति के मुख में मन्त्र से अभिमंत्रित एक अंजलि जल देकर उसे जीवित कर सकता है अथवा उसके कानों में मन्त्र जप कर उसके शीर्ष पर ताड़न करके उसे मृत्युमुख से उठा सकता है। योनि के आकार का कुण्ड बनाकर उसमें सविधि त्रिमधुर, तिल, सरसों, गेहूं, चावल तथा जौ को मिलाकर होम करे। इससे ऐश्वर्यलाभ होगा। लक्ष्मी लाभार्थ मौलश्री, चम्पा, कमल (श्वेतकमल), लालकमल, कह्लार।।१४७-१५२।।

कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधूकैरिन्दिराप्तये। अशोकैः पाटलैर्विल्वैर्जातीविकङ्कतैः सितैः॥१५३॥

नवनीलोत्पलैरश्वरिपुजैः कर्णिकारजैः।
होमाल्लक्ष्मीं च सौभाग्यं निधिमायुर्यशो लभेत्॥१५४॥

मालती कनेर, मल्लिका, कुन्द, मधुकफूल से होम द्वारा निधिलाभ होगा। अशोक, पाटल, बेल, जूही, श्वेत विकंकत, नीलकमल, कनेर, कर्णिकारज से होम करे। इससे सौभाग्य निधि, आयु, यशलाभ होगा।।१५३-१५४।।

दूर्वां गुडूचीमश्वत्थं वटमारग्वधं तथा। सितार्कप्लक्षजं हुत चिरान्मुच्येत रोगतः॥१५५॥

इक्षुजम्बूनालिकेरमोचागुडसितायुतैः ।
अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति ध्रुवम्॥१५६॥

सर्षपाज्यैर्हुते मृत्युः काष्ठाग्नौ वैरिमृत्यवे। चतुरङ्गुलजैर्होमाच्चतुरङ्गबले रिपोः॥१५७॥

सप्ताहाद्रोगदुःखार्तिर्भवत्येव न संशयः।
नित्यं नित्यार्चनं कुर्यात्तथा होमं घृतेन वै॥१५८॥

विद्याभिमन्त्रितं तोयं पिबेत्प्रातस्तदाप्तये। चन्दनोशीरकर्पूरकस्तूरीरोचनान्वितैः॥१५९॥

काश्मीरकालागुरुभिर्मृगस्वेदमयैरपि। पूजयेच्च शिवामेतैर्गन्धैःसर्वार्थसिद्धये॥१६०॥

दूब, गुरुच, पीपल, वट, छतिवन, श्वेतार्क तथा पाकड़ से होम द्वारा रोगनाश होगा। ईख, जामुन, नारियल, मोचागुड़, शर्करा से होम द्वारा साधक अचल लक्ष्मी का भोक्ता हो जाता है। यह ध्रुव सत्य है। शत्रुमारणार्थ सरसों तथा घृत की आहुति चिताग्नि में प्रदान करे। आरग्वध से होम करने से शत्रुसेना एक सप्ताह में रोग-दुःख से आर्त्त हो जाती है। यह निःसंदिग्ध है। नित्य नित्या देवीगण की अर्चना करके घृत से होम करे। इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल पीये। उसे विद्या लाभ होगा। चन्दन, उशीर, कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, कुंकुम, काला अगुरु, सुगन्धद्रव्यों से शिवा देवी की पूजा करनी चाहिये। इससे सर्वार्थ सिद्धि होगी।।१५५-१६०।।

सर्वाभिरपि नित्याभिः प्रातर्मातृकया समम्।
त्रिजप्ताभिः पिबेत्तोयं तथा वाक्सिद्धये शिवम्॥१६१॥

विदध्यात्साधनं प्राग्वद्वर्णलक्षं पयोव्रतः। त्रिस्वादुसिक्तैररुणैरम्बुजैर्हवनं चरेत्॥१६२॥

जपतर्पणहोमार्चासेकसिद्धमनुर्नरः। कुर्यादुक्तान्प्रयोगांश्च न चेत्तन्मनुदेवताः॥१६३॥

प्राणांस्तस्य ग्रसंत्येव कुपितास्तत्क्षणान्मुने।
अनया विद्यया लोके यदसाध्यं न तत्क्वचित्॥१६४॥

समस्त नित्या देवियों तथा शक्तियों की पूजा करके उनका मन्त्र जप करे। उस अभिमन्त्रित जल का पान करे। तत्पश्चात् त्रिमधुरयुक्त रक्तकमल से हवन करे। वाक्सिद्धि होगी। साधक सभी प्रयोग जप, तर्पण, होम, अर्चना, द्वारा मंत्रसिद्ध करने के उपरान्त करे। अन्यथा हे मुनिवर! ये देवियां कुपित होकर तत्क्षण साधक का प्राण ग्रस लेती हैं। इस संसार में इस मन्त्र विद्या से जो सिद्ध नहीं होगा, वह किसी भी उपाय से सिद्ध नहीं हो सकता (अर्थात् सब सिद्ध होता है)।।१६१-१६४।।

अरण्यवटमूले च पर्वताग्रगुहासु च। उद्यानमध्यकान्तारे मातृपादपमूलतः॥१६५॥

सिन्धुतीरे वने चैता यक्षिणीः साधयेन्नरः।
कमलैः कैरवै रक्तैः सितैः सौगन्धिकोत्पलैः॥१६६॥

सुगन्धिशेफालिकया त्रिमध्वक्तैर्यथाविधि।
होमात्सप्तसु वारेषु तन्मण्डलत एव वै॥१६७॥

विजयं समवाप्नोति समरे द्वन्द्वयुद्धके। मल्लयुद्धे शस्त्रयुद्धे वादे द्यूताह्वयेऽपि च॥१६८॥

व्यवहारेषु सर्वत्र जयमाप्नोति निश्चितम्। चतुरङ्गुलजैः पुष्पैर्होमात्संस्तम्भयेदरीन्॥१६९॥

तथैव कर्णिकारोत्थैः पुन्नागोत्थैर्नमेरुजैः। चम्पकैः केतकै राजवृक्षजैर्माधवोद्भवैः॥१७०॥

प्राग्वद्द्वारेषु जुहुयात्क्रमात्पुष्पैस्तु सप्तभिः।
प्रोक्तेषु स्तम्भनं शत्रोर्भंगो वा भवति ध्रुवम्॥१७१॥

वन में, वट के नीचे, पर्वत शिखर पर, गुफा में, उद्यान में, मातृवक्ष के नीचे, समुद्र तट पर यक्षिणी सिद्ध करे। इस हेतु कमल, कैरव, श्वेत-रक्त कमल, त्रिमधुलिप्त शेफालिका से सविधि होम करे। सात दिन पर्यन्त होम द्वारा साधक सर्वत्र विजयी होगा। समर, द्वन्द्वयुद्ध, मल्लयुद्ध, शस्त्रयुद्ध, वादविवाद, द्यूत, मुकदमे

में, सर्वत्र उसे जयलाभ होगा यह निश्चित है। आरग्वध से होम द्वारा शत्रुस्तम्भन होगा। कर्णिकार, पुन्नाग, सुरपुन्नाग, चम्पा, केतकी, राजवृक्ष तथा माधव पुष्प से होम करे। शत्रु का स्तम्भन किंवा नाश होना निश्चित है।।१६५-१७१।।

शत्रोर्नक्षत्रवृक्षाग्नौ तत्समिद्भिस्तु होमतः।
सर्षपाज्यप्लुताभिस्ते प्रणमन्त्येव पादयोः॥१७२॥
मृत्युकाष्ठानले मृत्युपत्रपुष्पैफलैरपि। समिद्भिर्जुहुयात्सम्यग्वारेशार्चनपूर्वकम्॥१७३॥
अरातेश्चतुरङ्गं तु बलं रोगार्दितं भवेत्। तेनास्य विजयो भूयान्निधनेनापि वा पुनः॥१७४॥

शत्रु के नक्षत्र से सम्बन्धित वृक्ष की अग्नि में सरसों तथा घृतसिक्त उसी वृक्ष की समिध् से होम करे। तत्काल शत्रुगण चरण स्पर्श करने लगते हैं। सूर्य की सविधि अर्चना के उपरान्त मृत्यु वृक्ष के (?) काष्ठ की अग्नि में मृत्युवृक्ष के पत्र-पुष्प-फलों तथा उसी की समिध् से होम करे शत्रु का चतुरंग सैन्य बल रोगाक्रान्त होगा। इससे साधक विजयी हो जाता है तथा शत्रु नाश होता है।।१७२-१७४।।

अर्कवारेऽर्कजैरिध्मैः समिद्धोऽग्नौ तदुद्भवैः।
पत्रैः पुष्पैः फलैः काण्डैर्मूलैश्चापि हुनेत्क्रमात्॥१७५॥
सवर्णारुणवत्साया घृतासिक्तैस्तु मण्डलात्।
अरातिदिङ्मुखो भूत्वा कुण्डे त्र्यस्रे विधानतः॥१७६॥
पलायते वा रोगार्तः प्रणमेद्वा भयान्वितः।
पलाशेध्मानले तस्य पञ्चाङ्गैस्तद्घृताप्लुतैः॥१७७॥
होमेन सोमवारे च भवेत्प्राग्वन्न संशयः।
खादिरेध्मानले तस्य पञ्चाङ्गैस्तद्घृताप्लुतैः॥१७८॥
वारे भौमस्य हवनात्तदाप्नोति सुनिश्चितम्।
अपामार्गस्य सौम्येऽह्नि पिप्पलस्य गुरोर्दिने॥१७९॥
उदुम्बरस्य भृगुजे शम्या मान्देऽह्नि गोघृतैः। शुभ्रपीतसितश्यामवर्णाद्याः पूर्ववत्तथा॥१८०॥
तत्फलं समवाप्नोति तत्समिद्दीपितेऽनले। प्रतिपत्तिथिमारभ्य पञ्चम्यन्तं क्रमेण वै॥१८१॥

रविवार को मदार की समिध् को मदार काष्ठ की अग्नि में घृतयुक्त करके होम करे। क्रम से इसके पत्र, पुष्प, फल, तना से होम करे। अरुण वर्ण की गौ तथा अरुवर्ण का ही उसका वत्स हो, ऐसी गौ के घृत से इन सभी वस्तु को लिप्त करके होम करे। इससे शत्रु रोगार्त्त होते हैं अथवा भाग जाते हैं किंवा प्रणाम करने लगते हैं। सोमवार को पलाश काष्ठ की अग्नि में उसके (पलाश के) पंचांग को उपरोक्त प्रकार की गौ के घृत से लिप्त करे। उसके होम द्वारा भी पूर्ववत् फललाभ होता है। खदिर काष्ठ की अग्नि में पूर्ववत् खदिर के पंचांग को उपरोक्त प्रकार के घृत में लिप्त करके मंगल को होम करे पूर्ववत् फल होगा यह निश्चित है। इसी प्रकार बुध को अपामार्ग से, बृहस्पति को पीपल से, शुक्र को गूलर से, शनि को शमी की समिध् से पूर्वोक्त नियमानुरूप होम द्वारा पूर्वोक्त फललाभ होगा। प्रतिपदा से लेकर पंचमी तक क्रमानुसार।।१७५-१८१।।

शालीचणकमुद्गैश्च यवमाषैश्च होमतः।
माहिषाज्यप्लुतैस्ताभिस्तिथिभिः समवाप्नुयात्॥१८२॥
षष्ठ्यादिसप्तम्यन्तं तु चाजाभवघृतैस्तथा।
प्रागुक्तैर्निस्तुषैर्होमात्प्रागक्तफलमाप्नुयात् ॥१८३॥
तदूर्ध्वं पञ्चके त्वेतैः समस्तैश्च तिलद्वयैः।
सितान्नैः पायसैः सिक्तैराविकैस्तु घृतैस्तथा॥१८४॥
हवनादत्तदवाप्नोति यदादौ फलमीरितम्। एवं नक्षत्रवृक्षोत्थवह्नौ तैस्तैर्मधुप्लुतैः॥१८५॥
हवनादपि तत्प्राप्तिर्भवत्येव न संशयः। विद्यां संसाध्य पूर्वं तु पश्चादुक्तानशेषतः॥१८६॥
प्रयोगान्साधयेद्धीमान् मङ्गलायाः प्रसादतः।
सम्पूज्य देवतां विप्र कुमारीं कन्यकां तु वा॥१८७॥

क्रमशः प्रतिपदा को चावल से, द्वितीया को चना से, तृतीया को मूंग से, चतुर्थी को यव से, पंचमी को उर्द से होम करे। पूर्वोक्त फल लाभ होगा। इन सब वस्तु को महिष घृत से लिप्त करके होम करे। षष्ठी तथा सप्तमी बकरी के घृत से उक्त वस्तु का होम करे। पूर्वोक्त फललाभ होगा। तदनन्तर भेड़ के घृत में दोनों प्रकार के तिल, पायस, शर्करा मिलाकर होम का भी वही फल है। नक्षत्र वृक्ष के काष्ठ की अग्नि में पूर्वोक्त द्रव्यों को मधु से आप्लुत करके होम द्वारा भी पूर्वोक्त फल निःसंशय प्राप्त होता है। धीमान् व्यक्ति सर्वाग्र में मन्त्र सिद्ध करे, तदनन्तर मंगला की कृपा पाकर प्रयोगों को करे। देवता, विप्र तथा कुमारी कन्या की पूजा करे।।१८२-१८७।।

सशुभावयवां मुग्धां स्नातां धौताम्बरां शुभाम्।
तथाविधं कुमारं वा संस्थाप्याभ्यर्च्य विद्यया॥१८८॥
स्पृष्टशीर्षो जपेद्विद्यां शतवारं तथार्चयेत्। प्रसूनैररुणैः शुभ्रैः सौरभाढ्यैरथापि वा॥१८९॥
दद्याद्गुग्गुलधूपं च यावत्कर्मावसानकम्।
ततो देव्या समाविष्टे तस्मिन्नसम्पूज्य भक्तितः॥१९०॥
ततस्तामुपचारैस्तैः प्रागुक्तैर्विद्यया व्रती।
प्रजपंस्तां ततः पृच्छेदभीष्टं कथयेच्च सा॥१९१॥
भूतं भवद्भविष्यं च यदन्यन्मनसि स्थितम्।
जन्मान्तराण्यतीतानि सर्वं सा पूजिता वदेत्॥१९२॥
ततस्तां प्राग्वदभ्यर्च्य स्वात्मन्युद्वास्य तां जपेत्।
सहस्रवारं स्थिरधीः पूर्णात्मा विचरेत्सुखी॥१९३॥

तदनन्तर कुमार अथवा कन्या उत्तम अंगों वाली, मुग्धा, स्नाता, श्वेतवस्त्रावृता तथा शुभ हो। ऐसे कुमार अथवा कुमारी की पूजा करे। उसके शिर का स्पर्श किये हुये १०० बार मन्त्र जपे तथा सुगन्धित पुष्प,

रक्तपुष्प-श्वेतपुष्प, गुग्गुलु, धूपादि द्वारा उसकी अर्चना के अनन्तर उसमें (कुमार किंवा कुमारी में) देवी का आवेश हो जाने पर उसकी पूजा करके मन्त्र जप भी करे। तब उससे जो भी जन्म-जन्मान्तर का प्रश्न उससे पूछा जायेगा, (उसके माध्यम से) देवी सबका उत्तर प्रदान करेगीं। भूत, भविष्य अथवा जो प्रश्न मन में हो, वे सब देवी पूजित होकर कह देती हैं। इसके अनन्तर देवी पूजनोपरान्त एक हजार मन्त्र जप करे। ऐसा स्थिर बुद्धि, पूर्णात्मा साधक सुखपूर्वक जगत् में विचरण करता है।।१८८-१९३।।

मधुरत्रयसंसिक्तैररुणैरम्बुजैः श्रियम्। प्राप्नोति मण्डलं होमात्सितैस्तैश्च महद्यशः॥१९४॥

क्षौद्राक्तैरुत्पलै रक्तैर्हवनात्प्रोक्तकालतः।
सुवर्णं समवाप्नोति निधिं वा वसुधां तु वा॥१९५॥
क्षीराक्तैः कैरवैर्होमात्प्रोक्तं काममवाप्नुयात्।
धान्यानि विविधान्याशु सुभगः स भवेन्नरः॥१९६॥

आज्याक्तैरुत्पलैर्होमाद्वाञ्छितं समवाप्नुयात्। तदुक्तैरपि कह्लारैर्हवनाद्राजवल्लभः॥१९७॥

त्रिमधुर लिप्त रक्तवर्ण किंवा श्वेतवर्ण कमल से होम द्वारा लक्ष्मी तथा महायश का लाभ होता है। त्रिमधुर लिप्त रक्तकमल के होम से श्रीलाभ होगा। श्वेतकमल को त्रिमधुर लिप्त करके होम द्वारा महत् यश लाभ होता है। मधुलिप्त लाल उत्पल द्वारा हवन से स्वर्ण, निधि तथा भूमि लाभ होगा। दुग्धयुक्त कैरव पुष्प होम द्वारा कामना पूर्ण होगी। वह व्यक्ति शीघ्र सौभाग्य लाभ करके धन-धान्येयुक्त हो जाता है। घृत तथा रक्तकमल के होम द्वारा व्यक्ति को वांछित लाभ होगा। कल्हार द्वारा होम करने से व्यक्ति राजप्रिय हो जाता है।।१९४-१९७।।

पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुक्तैस्तत्कालहोमतः।
चतुर्विधं तु पाण्डित्यं भवत्येव न संशयः॥१९८॥

लाजैस्त्रिमधुरोपेतैस्तत्कालहवनेन वै। कन्यकां लभते पत्नीं समस्तगुणसंयुताम्॥१९९॥

नालिकेरफलक्षोदं ससितं सगुडं तु वा। क्षौद्राक्षं जुहुयात्तद्वदयत्नाद्धनदोपमः॥२००॥

तथैवान्नाज्यहोमेन सतन्दुलतिलैरपि। प्रसूनैररुणैस्तद्वत्तथा बन्धूकसम्भवैः॥२०१॥

पलाश पुष्प को त्रिमधुर लिप्त करके होम द्वारा चतुर्विध् पाण्डित्य लाभ होगा। इसमें संशय ही नहीं है। लावा को त्रिमधुर में मिलाकर होम द्वारा सर्वगुणान्वित पत्नीलाभ होगा। शर्करा, गुड़, मधु, नारिकेल मिलाकर होम करे। वह कुबेर तुल्य धनी होगा। अन्न तथा घृत से होम करने वाला, तण्डुल तिल से होम करने वाला, रक्तपुष्प तथा बन्धूक पुष्प से होम करने वाला पूर्वोक्त फललाभ करेगा।।१९८-२०१।।

सितैः प्रसूनैर्वाक्सिद्धिं हवनात्समवाप्नुयात्।
सितरक्तैस्तु मिलितैरायुरारोग्यमाप्नुयात्॥२०२॥
दूर्वात्रिकैस्त्रिमध्वक्तैर्हवनात्तु जयेच्च तान्।
तथा गुडूच्या होमेन पायसेन तिलेन च॥२०३॥

श्रीखण्डपङ्ककर्पूरमिलितैः शतपत्रकैः। हवनाच्छ्रियमाप्नोति यावदन्वयगा भवेत्॥२०४॥

श्वेत पुष्पों द्वारा हवन करे। वाक्सिद्धि मिलेगी। श्वेत तथा रक्त पुष्प मिलाकर हवन द्वारा आयु-

आरोग्य लाभ, त्रिमधुराक्त दूर्वा से होम द्वारा शत्रु विजय, गुरुच-खीर तथा तिल होम द्वारा भी शत्रु विजय प्राप्त होगी। श्रीखण्ड-चन्दन-कर्पूर-कमल को मिलाकर होम करे। तब लक्ष्मी साधक की अनुगामिनी हो जाती हैं।।२०२-२०४।।

कुङ्कुमं हिमतोयेन पिष्ट्वा कर्पूरसंयुतम्। तत्पङ्कमर्दितैर्होमात्कह्लारैर्बिकचैः सुमैः॥२०५॥
राजकल्पः श्रिया भूयाज्जीवेद्वर्षशतं भुवि।
निःसपत्नो निरातङ्को निर्द्वन्द्वो निर्मलाशयः॥२०६॥

हिमजल से कुंकुम को पीसकर उसमें कपूर मिलाये। उसे खिले रक्त कमल पर लिप्त करके होम करे। वह राजा के समान सम्पत्ति लाभ करके पृथिवी पर एक सौ वर्ष जीवित रहता है। वह पृथिवी पर शत्रुहीन, आतंक रहित, निर्द्वन्द्व तथा निर्मल मन वाला होकर जीवन व्यतीत करता है।।२०५-२०६।।

इक्षुकाण्डस्य शकलैर्हवनाद्वस्त्रमाप्नुयात्। तथैव करवीरोत्थै प्रसूनैररुणैः सितैः॥२०७॥
क्षौद्राक्तैः पाटलापुष्पैर्हवनाद्वशयेद्वधूः। तथैव पङ्कजैर्होमाद्रूपाजीवां वशं नयेत्॥२०८॥
सरूपवत्सासितगोक्षीराक्तसितहोमतः। लभतेऽनुपमां लक्ष्मीमपि पापिष्ठचेतनः॥२०९॥
सौवीराक्तैस्तु कार्पासबीजस्तत्कालहोमतः।
अर्द्धेन्दुकुण्डे नियतं वशगा रिपवो मुने॥२१०॥

गन्ने के टुकड़ों से हवन द्वारा वस्त्रलाभ, मधुयुक्त श्वेत एवं लाल कनेर तथा मधुलिप्त पाटल पुष्पों से हवन द्वारा स्त्री वशीकरण होता है। कमल से होम करने से रूप से जीविकोपार्जन करने वाली नारी (वेश्या) वश में होती है। श्वेत वर्णा तथा श्वेत वत्स वाली गौ के दुग्ध में कमल डुबाकर होम करे। उस व्यक्ति को भले वह पापबुद्धि क्यों न हो, अनुपम लक्ष्मी का लाभ होगा। अर्द्धचन्द्रकुण्ड बनाये, उसमें बेर तथा कपास बीज से हवन करने पर शत्रु वशीकरण होता है।। २०७-२१०।।

अरिष्टपत्रैस्तद्बीजैस्तद्वह्नौ तैस्तथा हुतैः। मृत्युबीजैर्निम्बतैलसिक्तैर्होमान्निहन्ति तान्॥२११॥
रोगार्तांस्तुरगांस्तद्वत्पञ्चगव्यैर्हुतैर्ध्रुवम्। अक्षबीजैस्तु तैलाक्तैर्होमः सर्वविनाशनः॥२१२॥

अरिष्टपत्र तथा उसके काष्ठ की अग्नि में अरिष्ट के पत्तों से होम करे। मृत्युबीज तथा निम्बतैल से होम करे। शत्रु नाश होगा। पंचगव्य तथा बहेड़ा की बीज से होम द्वारा सर्वरोगनाश होगा।।२११-२१२।।

करञ्जबीजै संसिक्तैर्होमाद्वैरी पिशाचवान्। तथैवाक्षतरुद्भूतपञ्चाङ्गहवनादपि॥२१३॥
निम्बतैलान्वितैरक्षद्रुमबीजैस्तु होमतः। तद्दिने स्यादपस्मारी वैरी भवति निश्चितम्॥२१४॥

करंज बीज का हवन करने से वैरी मृत होता है। बहेड़े की समिध् तथा उसके पंचांग के हवन का भी यही फल है। बहेड़ा का बीज तथा नीम तैल मिलाकर बहेड़े की समिध् से होम करे। इससे उसी दिन शत्रु अपस्मार का रोगी हो जाता है। यह निश्चित है।।२१३-२१४।।

अरातेर्जन्मनक्षत्रवृक्षेन्धनगतेऽनले। तद्योनिपिशितैस्तैश्च हवनान्मृत्युकृद्रिपोः॥२१५॥
पद्माक्षबीजैः सर्षपतैलाक्तैर्हवनात्तथा। जायन्ते वैरिणः कुष्ठरोगा देहविलोपकाः॥२१६॥

शत्रु के जन्मनक्षत्र के अनुसार उस नक्षत्र का जो वृक्ष हो, उसकी अग्नि में शत्रु की जो योनि हो (पंचांग

में प्रति नक्षत्रानुरूप जातक की योनि अंकित होती है), उसी जन्तु के मास से होम द्वारा शत्रु मृत हो जाता है। सरसों के तेल में लिप्त कमलों से हवन करने पर शत्रु कुष्ठ रोगी हो जायेगा।।२१५-२१६।।

मरिचै सर्षपैर्होमात्तैलाक्तैर्मध्यराजके। दाहज्वरेण ग्रस्तः स्यादरातिस्तद्दिने ध्रुवम्॥२१७॥

एवं निग्रहहोमेषु स्वरक्षायै तथान्वहम्।
स्निग्धैः सम्प्राप्तसद्विद्यैर्जपहोमादि कारयेत्॥२१८॥
मृत्युञ्जयेन वा तत्तत्प्रयोगस्थाभिरेव वा।
विद्याभिरन्यथासिद्धमन्त्रमस्याशु नाशयेत्॥२१९॥

सरसों के तैल में मरीच मिलाकर हवन करे, साधक के इस कार्य से उसका शत्रु उसी दिन दाह ज्वर से ग्रसित हो जायेगा। साधक अपने रक्षार्थ नित्य मन्त्र समन्वित जप, होमादि, मृत्युंजय मन्त्र जप करे। नहीं तो सिद्धमन्त्र शीघ्र साधक का नाश कर देता है।।२१७-२१९।।

लक्षत्रयं कृते प्रोक्तं त्रेतायां द्विगुणं तथा।
द्वापरे त्रिगुणं प्रोक्तं कलौ तत्तु चतुर्गुणम्॥२२०॥

दशांशं हवनं कार्यं तर्पणं तद्दशांशतः। तद्दशांशं मार्जनं सयाद्दशांशं द्विजभोजनम्॥२२१॥

एवं क्रमेण सर्वासां या या संख्या जपस्य सा।
कार्या सिद्ध्यै तु विद्यायास्ततः कुर्यात्प्रयोगकान्॥२२२॥

कृतयुग में तीन लाख, त्रेता में उसका दूना, कलियुग में चौगुना अर्थात् बारह लाख मन्त्र जपे। मन्त्र की जप संख्या का १/१० होम, होम का १/१० तर्पण, तर्पण का १/१० संख्यक मार्जन तथा मार्जन का १/१० संख्यक ब्राह्मण भोजन कराये। इस क्रम से जिसकी जो-जो संख्या है, कार्यसिद्धि के लिये उस क्रम से उसका प्रयोग करे। प्रयोग पूर्व मन्त्र सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है।।२२०-२२२।।

द्विगुणो हि जपः कार्यः कामेश्वर्या मुनीश्वर।
सिद्धे मन्त्रे प्रयोगांस्तु विदधीत यथा तथा॥२२३॥
जपो लक्षं समाख्यातो होमादिस्तद्दशांशतः।
कर्तव्यो भगमालाय विद्यासिद्ध्यै मुनीश्वर॥२२४॥
नित्यक्लिन्नाजपः प्रोक्तो लक्षं होमो दशांशतः।
कार्यः सिद्ध्यै तु विद्यायाः प्रयोगान्साधयेत्ततः॥२२५॥

ततो मौनी पयोभक्ष प्रजपेन्नवलक्षकम्। भेरुण्डामन्त्रयुक्तं तु शेषं कुर्यात्प्रयत्नतः॥२२६॥

लक्षत्रयं जपो वह्निवासिन्याः समुदीरितः।
अन्यत्सर्वं पुरा यच्च कार्यं साधकसत्तमैः॥२२७॥

हे मुनीश्वर! कामेश्वरी मन्त्र का द्विगुणित जप करे। मन्त्र सिद्धि होने पर जैसे चाहे वैसे ही उसका प्रयोग करे। भगमाला देवी हेतु मन्त्र जप संख्या एक लाख है। उसका १/१० संख्य होम करे। शेष क्रिया तर्पण,

मार्जन, ब्राह्मण भोजन भी ऊपर लिखे संख्यानुपात से करे। नित्यक्लिन्ना का जप एक लाख तथा होम १०००० करना चाहिये। मन्त्र जब सिद्ध हो जाये तथा उसका प्रयोग करे। मौनी होकर तथा दुग्धाहार से निर्वाह करते हुये भेरुण्डा मन्त्र का जप ९ लाख, वह्निवासिनी के मन्त्र का जप तीन लाख करे। उत्तम साधक शेष कार्य पूर्ववत् करे।।२२३-२२७।।

महाव्रजेश्वरीविद्याजपो लक्षत्रयो मतः। हवनादि दशांशेन कार्यं प्रोक्तक्रमेण हि।।२२८।।
अतन्द्रितो जपेल्लक्षमितं दूतीमनुं मुने। तद्दशांशक्रमेणैव होमादिः प्रोक्तमार्गतः।।२२९।।

महाव्रजेश्वरी विद्या का जप तीन लाख होगा। पूर्वोक्त क्रम से १/१० होमादि सम्पन्न करे। साधक आलस्य छोड़कर दूतीमन्त्र का एक लाख जप तथा १/१० अर्थात् १०००० होम करे।।२२८-२२९।।

त्वरितां प्रजपेल्लक्षप्रमितां तद्दशांशतः।
कृत्वा होमादिकं सर्वं विद्यासिद्ध्यै मुनीश्वर।।२३०।।
जपो लक्षं समाख्यातो होमादिस्तद्दशांशतः।
विद्यायाः कुलसुन्दर्याः कर्तव्यो द्विजसत्तम।।२३१।।
नित्यानित्याजपो विप्र त्रिलक्षप्रमितो मतः।
होमादिस्तद्दशांशेन प्रोक्तः प्रोक्तविधानतः।।२३२।।
त्रिपञ्चाशल्लक्षमुक्तो नियमेन मुनीश्वर। जपो नित्यपताकाया होमादिस्तद्दशांशतः।।२३३।।
विजयाया जपः प्रोक्तो लक्षमानेन नारद।
अन्यत्पूर्ववदाख्यातं विद्यासिद्ध्यै तु साधनम्।।२३४।।
दन्तलक्षप्रमाणेन सर्वमङ्गलिकां जपेत्। तद्दशांशक्रमेणैव होमादि समुदीरितम्।।२३५।।
अष्टलक्षं हविष्याशी ज्वालामालिनिकां जपेत्।
होमादिस्तद्दशांशेन प्रोक्तद्रव्यैः समीरितः।।२३६।।
चित्रायाभूपलक्षं तु जपो होमादिकस्ततः।
प्रोक्तेन विधिना कार्यो विद्यासिद्ध्यै मुनीश्वर।।२३७।।
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं नित्यापटलमादितः। ज्ञातव्यं सर्वमेवात्र यन्त्रसाधनपूर्वकम्।।२३८।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे नित्यापटलकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः।।९०।।

हे मुनिप्रवर! त्वरिता का मन्त्र एक लाख करके मन्त्र को सिद्ध करने हेतु १०००० होम करे। हे द्विजप्रवर! कुलसुन्दरी का भी इसी संख्यानुरूप जप निर्देश कहा गया। तदनन्तर दशांश होम कहा गया है। हे विप्र! नित्या-अनित्या का मन्त्र जप तीन लाख तथा १/१० होम होगा। हे मुनीश्वर! नित्यपताका का जप ५३ लक्ष तथा ५ लाख तीस हजार होम करे। हे नारद! विजय का मन्त्र-जप एक लाख तथा हवनादि दशांश क्रमेण ही करे। सर्वमंगलिक का जाप ३२ लाख तथा दशांश क्रमेण होमादि (तीन लाख बीस हजार होम, बत्तीस हजार

तर्पण, ३२०० मार्जन, ३२० ब्राह्मण भोजन) करे। हविष्य भोजन से निर्वाह करते ज्वालामालिनी का जप आठ लाख तथा होमादि दशांश क्रमेण होगा। चित्रा है, एक लक्ष जप तथा होमादि दशांश क्रमेण करे। संक्षेप में मैंने नित्या आदि पटल वर्णन कर दिया। यहां सब कुछ यन्त्रसाधन पूर्वक जाने।।२३०-२३८।।

।।९०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ एकनवतितमोऽध्यायः

स्तोत्र सहित माहेश्वर मन्त्र विधान

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये महेशस्य मन्त्रं सर्वार्थसाधकम्।
यं समाराध्य मनुजो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥१॥
हृदयं सबकः सूक्ष्मो लान्तोऽनन्तान्वितो मरुत्।
पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः॥२॥
वामदेवो मुनिश्छन्दः पङ्क्तिरीशोऽस्य देवता।
षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्रेण देशिकः॥३॥
मन्त्रवर्णादिकान्न्यस्येन्मन्त्रमूर्तीर्यथाक्रमम्। तर्जनीमध्ययोरन्त्यानामिकाङ्गुष्ठके पुनः॥४॥
ताः स्युस्तत्पुरुषाघोरभववामेशसंज्ञिकाः। वक्त्रहृत्पादगुह्येषु निजमूर्द्धनि ताः पुनः॥५॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब सर्वप्रयोजन साधक महेश्वर का मन्त्र कहता हूं। इसकी आराधना द्वारा व्यक्ति भोग-मोक्षलाभ करता है। इसका मन्त्र श्लोक-२ में "हृदयं" से लगाकर "मरुत्" पर्यन्त है। (सुधीजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) इसके मुनि हैं ऋषि वामदेव, पंक्ति छन्दः है तथा देवता हैं महेश्वर! मन्त्र के छः वर्ण से षडङ्ग करे। साधक मन्त्र वर्णों से यथाक्रम न्यास करे। तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ में न्यास करे। तत्पुरुष, घोर, भव, वाम तथा ईश मन्त्र की मूर्त्ति हैं। अतः मुख, हृदय, चरण, गुह्य एवं मूर्द्धा पर इन मन्त्रमूर्त्ति का क्रमशः न्यास करना चाहिये।।१-५।।

प्राग्याम्यवारुणोदीच्यमध्यवक्त्रेषु पञ्चसु।
मन्त्राङ्गानि न्यसेत्पश्चाज्जातियुक्तानि षट् क्रमात्॥६॥
कुर्वीत गोलकन्यासं रक्षायै तदनन्तरम्।
हृदि वक्त्रेंऽसयोरूर्वोः कण्ठे नाभौ द्विपार्श्वयोः॥७॥
पृष्ठे हृदि तथा मूर्ध्नि वदने नेत्रयोर्नसोः। दोःपत्सङ्घिषु साग्रेषु विन्यसेत्तदनन्तरम्॥८॥
शिरोवदनहृत्कुक्षिसोरुपादद्वये पुनः। हृदि वक्त्राम्बुजे टङ्कमृगा भयवरेष्वथ॥९॥

वक्त्रांसत्सपादोरुजठरेषु क्रमान्यसेत्। मूलमन्त्रस्य षड् वर्णान्यथावद्देशिकोत्तमः॥१०॥
मूर्ध्नि भालोदरांसेषु हृदये ताः पुनर्न्यसेत्। पश्चादनेन मन्त्रेण कुर्वीत व्यापकं सुधीः॥११॥
नमोस्त्वनन्तरूपाय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने। चतुर्मूर्तिवपुश्छायाभासिताङ्गाय शम्भवे॥१२॥

तत्पश्चात् पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम, मध्य में क्रमिक रूप से जातियुक्त छः मन्त्रांग का न्यास करे। तत्पश्चात् रक्षार्थ गोलक न्यास करे। हृदय, मुख, स्कन्ध, उरु, कण्ठ, नाभि, पार्श्व, पृष्ठ, मस्तक, नेत्र, नासिका, भुजा, चरण तथा अस्थिसन्धि में न्यास करे। तदनन्तर पुनः शिर, मुख, हृदय, पेट, उरु तथा चरण का टंक, मृग, अभय, वर मुद्रा का न्यास करके क्रमपूर्वक मुख, स्कन्ध, पाद, उरु, उदर में न्यास करे। श्रेष्ठ साधक मूलमन्त्र के षड्वर्ण का शिर, ललाट, स्कन्ध तथा हृदय में न्यास करे। तत्पश्चात् विद्वान् साधक को चाहिये कि वह मन्त्र से व्यापक न्यास करे। मन्त्र है हे प्रभो! आप अनन्तरूप ज्योतिर्लिंग अमृतात्मा हैं। हे शंभु! आप चतुर्मूर्त्ति युक्त देह वाले हैं, उसकी छाया से आपके अंग भासित हो रहे हैं। इस मन्त्र से व्यापक न्याय करे।।६-१२।।

एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेत्पार्वतीपतिम्।
ध्यायेन्नित्यं महेशानं रौप्यपर्वतसन्निभम्॥१३॥
चारुचन्द्रावतंसं च रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गकम्। परश्वधवराभीतिमृगहस्तं शुभाननम्॥१४॥
पद्मासीनं समन्तात्तु स्तुतं सुमनसां गणैः।
व्याघ्रकृत्तिं वसानं च विश्वाद्यं विश्वरूपकम्॥१५॥
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च सर्वभीतिहरं शिवम्। तत्त्वलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितः शैववर्त्मना॥१६॥
तावत्सङ्ख्यसहस्राणि जुहुयात्पायसैः शुभैः।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकाऽभीष्टसिद्धिदः॥१७॥

एवंविध देह में न्यासोपरान्त पार्वती पति का ध्यान करना चाहिये। वे चारुचन्द्रवत् कान्तिमान, रजतपर्वत सन्निभ, रत्न के समान प्रदीप्त अंग वाले, फरसा, मृग, वर, अभय, मुद्राधारी, पवित्रानन, कमलासनासीन, चतुर्दिक् देवगण द्वारा स्तुत, व्याघ्रचर्मधारी, विश्व के आदि पुरुष, विश्वरूप, त्रिनेत्र, पंचमुख, सबके भय का हरण करने वाले, शिवप्रद, ईशान शिव का ध्यान शैवमार्ग दीक्षित व्यक्ति करके मन्त्र का ५ लक्ष जप करे। तदनन्तर ५० हजार होम शुभ पायस से करे। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक के लिये अभीष्टप्रद हो जाता है।।१३-१७।।

देवं सम्पूज्यत्पीठे वामादिनवशक्तिके। वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलपदादिका॥१८॥
विकारिण्याह्वया प्रोक्ता बलाद्या विकरिण्यथ। बलप्रमथनी पश्चात्सर्वभूतदमन्यथा॥१९॥
मनोन्मनोति सम्प्रोक्ताः शैवपीठस्य शक्तयः। नमो भगवते पश्चात्सकलादि वदेत्ततः॥२०॥
गुणात्मशक्तिभक्ताय ततोऽनन्ताय तत्परम्।
योगपीठात्मने भूयो नमस्तारादिको मनुः॥२१॥
अमुना मनुना दद्यादासनं गिरिजापतेः। मूर्तिं मूलेन सङ्कल्प्य तत्रावाह्य यजेच्छिवम्॥२२॥

तत्पश्चात् पीठ पर साधक वामा आदि नौ शक्तिगण की अर्चना करे। ये हैं—वाम, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलपदा, विकारिणी, बला, बलप्रमथिनी, मनोन्मनी। ये शैव पीठ शक्ति हैं। इनका मन्त्र है—"ॐ नमो भगवते, सकलगुणात्मशक्तिभक्ताय अनन्ताय योगपीठात्मने नमः।" इस मन्त्र से गिरिजापति को आसन प्रदान करे। तदनन्तर मूलमन्त्र द्वारा मूर्त्ति कल्पना के पश्चात् उसके बाहर कमल पुष्प पर शंकर का आवाहन करके पूजन करे।।१८-२२।।

कर्णिकायां यजेन्मूर्तीरीशमीशानदिग्गजम्।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं दिक्षु तत्पुरुषादिका॥२३॥
पीताञ्जनश्वेतरक्ताः प्रधानसदृशायुधाः। चतुर्वक्त्रसमायुक्ता यथावत्ताः प्रपूजयेत्॥२४॥
कोणेष्वर्चेन्निवृत्त्याद्यास्तेजोरूपाः कलाः क्रमात्।
अङ्गानि केसरस्थानि विघ्नेशान्पन्नगान्यजेत्॥२५॥
अनन्तं सुखनामानं शिवोत्तममनन्तरम्। एकनेत्रमेकरुद्रं त्रिमूर्तिं तदनन्तरम्॥२६॥
पश्चाच्छ्रीकण्ठनामानं शिखण्डिनमिति क्रमात्। रक्तपीतसितारक्तकृष्णरक्ताञ्जनासितान्॥२७॥
किरीटार्पितबालेन्दून्पद्मस्थान्भूषणान्वितान्। त्रिनेत्राञ्छूलवज्रास्त्रचापहस्तान्मनोरमान्॥२८॥
उत्तरादि यजेत्पश्चाद्रुद्रं चण्डेश्वरं पुनः। ततो नन्दिमहाकालौ गणेशं वृषभं पुनः॥२९॥
अथ भृङ्गिं रिटिं स्कन्दमेतान्पद्मासनस्थितान्। स्वर्णतोयारुणश्याममुक्तेन्दुसितपाटलान्॥३०॥
इन्द्रादयस्ततः पूज्या वज्राद्यायुधसंयुताः। इत्थं सम्पूजयेद्देवं सहस्रं नित्यशो जपेत्॥३१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नुयाद्वाञ्छितं श्रियम्।
द्विसहस्रं जपन् रोगान्मुच्यते नात्र संशयः॥३२॥
त्रिसहस्रं जपन्मन्त्रं दीर्घमायुरवाप्नुयात्। सहस्रवृद्ध्या प्रजपन्सर्वकामानवाप्नुयात्॥३३॥
आज्यान्वितैस्तिलैः शुद्धैर्जुहुयाल्लक्षमादरात्।
उत्पातजनितान् क्लेशन्नाशयेन्नात्र संशयः॥३४॥

कर्णिका पर शुद्ध स्फटिक वर्ण वाले ईशान तथा दिग्गजों की पूजा करके दिशाओं में पीत, कृष्ण, श्वेत तथा रक्तवर्ण समन्विता शक्तियों के पूजनोपरान्त निवृत्ति प्रभृति तेजःरूप कलाओं की पूजा करे। तदनन्तर केसर स्थित अंगदेवता, विघ्नेश, पन्नग की अर्चना करके सुखनामा, अनन्त, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्त्ति, श्रीकण्ठ, शिखण्डी की पूजा क्रमशः करके रक्त, पीत, शुक्ल, कृष्ण वर्ण, मुकुट पर बालचन्द्रधारी, कमलासनासीन, आभूषण विभूषित, त्रिनेत्र, शूल-वज्र धनुषपाणि मनोरम देवगण की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पद्मासनस्थ नन्दी, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृंगीरिंटि तथा स्कन्द पूजन करे। इनका वर्ण स्वर्ण, अरुण, श्याम, श्वेत, रक्त, शुक्ल पाटल वर्ण जलमुक्ता तथा चन्द्रमावत् है। तब इन्द्रादि की पूजा करके उनके आयुधों की पूजा करे। नित्य एवंविध पूजन करके १००० जप करे। वह व्यक्ति सर्वपापरहित होकर वांछित लक्ष्मी लाभ करता है। इसमें संशय नहीं है कि व्यक्ति २००० जप द्वारा रोगरहित हो जाता है। तीन हजार जप करने वाला दीर्घायु लाभ करता है। मन्त्र जप को रोज १००० बढ़ाता जाये। उस व्यक्ति की सभी अभिलाषा

पूरी होती है। एक लाख जप करके शुद्ध घृत तथा तिलयुक्त होम करे। सर्व उत्पात जनित क्लेश नष्ट होते हैं। इसमें संशय नहीं है।।२३-३४।।

शतलक्षं जपन्साक्षाच्छिवो भवति मानवः।
षडक्षरः शक्तिरुद्धः कथितोऽष्टाक्षरो मनुः॥३५॥
ऋषिश्छन्दः पुरा प्रोक्तो देवता स्यादुमापतिः।
अङ्गानि पूर्वमुक्तानि सौम्यमीशं विचिन्तयेत्॥३६॥
बन्धूकाभं त्रिनेत्रं च शशिखण्डं धरं विभुम्।
स्मेरास्यं स्वकरैः शूलं कपालं वरदाभये॥३७॥
वहन्तं चारुभूषाढ्यं वामोरुस्थाद्रिकन्यया। भुजेनाश्लिष्टदेहं तं चिन्तयेन्मनसा हृदि॥३८॥
मनुलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्त्रं यथाविधि। जुहुयान्मधुरासिक्तैरारग्वधसमिद्वरैः॥३९॥

सौलक्ष जप करने वाला साधक तो साक्षात् शिव ही है शक्तिरुद्ध षडक्षर मन्त्र ही अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि-छन्दादि पूर्ववत् समझें। देवता हैं उमापति। इसका षडंग पूर्ववत् करे। साधक सौम्यरूप शिव का ध्यान करे। वे बन्धूपपुष्पाभ, त्रिनेत्र, शशिखण्डधारी, स्मितहास्ययुक्त मुखमुद्रा वाले शूल-कपाल, वर-अभय मुद्राधारी, उत्तम आभूषणों से भूषित हैं। इनके वाम जंघे पर पार्वती विराजित हैं। उनकी भुजाओं से सतत् आलिंगित प्रभु शंकर का ध्यान करके एक लाख जप करे। त्रि-मधुर मिश्रित आरग्वध (छितवन) की समिध् से होम करे।।३५-३९।।

प्राक्प्रोक्ते पूजयेत्पीठे गन्धपुष्पैरुमापतिम्।
अङ्गावृत्तैर्बहिः पूज्या हृल्लेखाद्या यथापुरा॥४०॥
मध्यप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु विधानतः। यजेत्पूर्वादिपत्रेषु वृषभाद्याननुक्रमात्॥४१॥
शूलटङ्काक्षवलयकमण्डलुलसत्करम्। रक्ताकारं त्रिनयनं चण्डेशमथ पूजयेत्॥४२॥

पहले कहीं पीठ पर गन्ध पुष्पादि से उमापति की अर्चना के अनन्तर हल्लेखादि शक्ति की पूजा करे। तत्पश्चात् पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम, मध्य में सविधि वृषभ आदि देवताओं की पूजा करे। तदनन्तर चण्डेश की अर्चना करनी चाहिये जो टंक, शूल, रुद्राक्ष, वलय, कमण्डलुधारी, त्रिनेत्र, रक्तवर्ण चण्डेश की अर्चना करे।।४०-४२।।

चक्रशङ्खाभयाभीष्टकरां मरकतप्रभाम्। दुर्गां प्रपूजयेत्सौम्यां त्रिनेत्रां चारुभूषणाम्॥४३॥
कल्पशाखान्तरे घण्टां दधानं द्वादशेक्षणम्।
बालार्काभं शिशुं कान्तं षण्मुखं पूजयेत्ततः॥४४॥

तदनन्तर चक्र, शंख, अभय-वरद मुद्राधारी, मरकतमणिवत् प्रभायुता, त्रिनेत्रा, मनोहर आभूषण से सज्जिता दुर्गा की पूजा करके घंटाधारी द्वादश नेत्रयुक्त, बालसूर्यसमप्रभ, कमनीय कान्ति शिशु कार्त्तिकेय का पूजन करे।।४३-४४।।

नन्दिनं च यजेत्सौम्यं रत्नभूषणमण्डितम्। परश्वधवराभीतिटङ्किनं श्यामविग्रहम्॥४५॥

पाशाङ्कुशवराभीष्टधारिणं कुङ्कमप्रभम्। विघ्ननायकमभ्यर्च्येषच्चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्॥४६॥
श्यामं रक्तोत्पलकरं वामाङ्कन्यस्ततत्करम्। द्विनेत्रं रक्तवस्त्राढ्यं सेनापतिमथार्चयेत्॥४७॥

ततोऽष्टमातरः पूज्या ब्राह्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः।
इन्द्रादिकान्लोकपालान्स्वस्वदिक्षुसमर्चयेत् ॥४८॥
वज्रादीनि ततस्त्राणि तद्बहिः क्रमतोऽर्चयेत्।
एवं यो भजते मन्त्री देवं शम्भुमुमापतिम्॥४९॥
स भवेत्सर्वलोकानां सौभाग्यश्रेयसां पदम्।
सांतसद्यान्तसंयुक्तो बिन्दुभूषितमस्तकः॥५०॥

प्रासादाख्यो मनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः। षड्दीर्घयुक्तबीजेनषडङ्गविधिरीरितः॥५१॥
षडर्णवत्तु मुन्याद्याः प्रोक्ताश्चास्यापि नारद। ईशानाद्या न्यसेन्मूर्तीरङ्गुष्ठादिषु देशिकः॥५२॥

तत्पश्चात् सौम्यमुख, रत्नाभूषणलंकृत, परशु, टंक, अभय, वरद, मुद्राधारी, कुंकुमप्रभ, श्याम शरीर नन्दी के पूजनोपरान्त अर्द्धचन्द्र को ललाट पर धारण करने वाले, श्यावर्ण, रक्तकमलवत् करयुक्त, द्विनेत्र, रक्तवस्त्र पहले गणेश की अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर पहले कहे गये लक्षणों वाली ब्राह्मी प्रभृति माताओं की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् उनकी-उनकी दिशा में इन्द्रादि लोकपालगण की पूजा करके उसके बाह्य में उनके वज्रादि अस्त्रों का पूजन करे। इस प्रकार जो मन्त्रज्ञ साधक देवदेव शंभु उमापति की पूजा करता है, वह सर्वलोक के सौभाग्य तथा श्रेय का स्वामी हो जाता है। सान्त, सद्यान्त, संयुक्त तथा विन्दुभूषित प्रासाद मन्त्र साधकों हेतु सर्वसिद्धिदायक है। (यहां सान्त प्रभृति मन्त्र संकेत ही है। विद्वान् लोक मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) षड्दीर्घयुक्त बीजमन्त्र से षडङ्गन्यास करे। यह मन्त्र षड्वर्णात्मक है। साधको को चाहिये कि अंगुष्ठादि में क्रम से ईशान आदि मूर्त्ति का न्यास करे।।४५-५२।।

ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं तदनन्तरम्। वामदेवाह्वयं सद्योजातबीजं क्रमाद्विदुः॥५३॥

उकाराद्यैः पञ्चह्रस्वैर्विलोमान्संयुतं च यत्।
तत्तदङ्गुलिभिर्भूयस्तत्तद्बीजादिकान्न्यसेत् ॥५४॥

शिरोवदनहृद्गुह्यपाददेशे यथाक्रमात्। उर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु च॥५५॥
ततः प्रविन्यसेद्विद्वानष्टत्रिंशत्कलास्तनौ। ईशानाद्या ऋचः सम्यगङ्गुलीषु यथाक्रमात्॥५६॥

तदनन्तर ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात बीज से तथा उकारादि पंच ह्रस्व मात्र से युक्त तथा विलोमयुत विधि से न्यास करे। तत्तद उंगलियों में बीजादि का न्यास करके शिर, मुख, हृदय, गुह्य, चरण, ऊर्ध्व, पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिमदिक् में न्यासोपरान्त देह में ३८ कला का, उंगलियों में ईशानादि ऋचा का (सम्यक् उंगलियों में) क्रमिक न्यास करे।।५३-५६।।

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यसेद्देशिकसत्तमः। मूर्द्धास्यहृदयाम्भोजगुह्यपादे तु ताः पुनः॥५७॥

वक्त्रे मूर्धादिषु न्यस्य भूयोऽङ्गानि प्रकल्पयेत्।
तारपञ्चकमुच्चार्य सर्वज्ञाय हृदीरितम्॥५८॥

अमृते तेजो मालिनि तृप्तायेति पदं पुनः। तदन्ते ब्रह्मशिरसे शिरोगं ज्वलितं ततः॥५९॥

शिखिं शिखाय परतोऽनादिबोधाय तच्छिखा।
वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय तनुच्छदम्॥६०॥
सौं खौं हौमिति सम्भाष्य परतो तों गुह्यशक्तये।
नेत्रमुक्तं शलीपशुं हुं फडन्ते नेत्रं शक्तये॥६१॥

अस्त्रमुक्तं षडङ्गानि कुर्यादेवं समाहितः। पूर्वदक्षिणपश्चात्प्राक्सौम्यमध्येषु पञ्चसु॥६२॥

वक्त्रेषु पञ्च विन्यस्येदीशानस्य कलाः क्रमात्।
ईशानः सर्वविद्यानां शशिनी प्रथमा कला॥६३॥

ईश्वरः सर्वभूतानां मङ्गला तदनन्तरम्। ब्रह्माधिपतिःशब्दान्ते ब्रह्मणोऽधिपतिः पुनः॥६४॥

ब्रह्मेष्टदातृतीयास्याच्छिवो मे अस्तु तत्परा।
मरीचिः कथिता विप्र चतुर्थी च सदाशिवे॥६५॥

अंशुमालिन्यथ परा प्रणवाद्या नमोन्विताः। पूर्वपश्चिमयाम्योदग्वक्त्रेषु तदनन्तरम्॥६६॥

चतस्रो विन्यसेन्मन्त्री पुरुषस्य कलाः क्रमात्।
आद्या तत्पुरुषायेति विद्महे शान्तिरीरिता॥६७॥
महादेवाय शब्दान्ते धीमहि स्यात्ततः परम्।
विद्या द्वितीया कथिता तन्नो रुद्रः पदं ततः॥६८॥
प्रतिष्ठा कथिता पश्चात्तृतीया स्यात्प्रचोदयात्।
निवृत्तिस्तत्परा सर्वा प्रणवाद्या नमोन्विता॥६९॥
हृदि चांसद्वये नाभिकुक्षौ पृष्ठेऽथ वक्षसि।
अथः उरसि कला न्यस्येदष्टौ मन्त्री यथाविधि॥७०॥

अंगूठे से लगाकर कनिष्ठा पर्यन्त न्यासोपरान्त मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य, चरणों में न्यास करके पुनः मुख, शिर आदि में न्यास करे तदनन्तर अंग कल्पना करे। तदनन्तर तार पंचक का उच्चारण करने के अनन्तर श्लोक ५८ में "सर्वज्ञाय" से लगाकर श्लोक ६१ में "सौं खौं हौं" यह मन्त्र है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) यह कहने के पश्चात् श्लोक ६१ में "तो गुह्यशक्तये" से लगाकर "शक्तये" तक के षडङ्गन्यास करे। (इस मन्त्र का मन्त्रोद्धार करके तब प्रयोग करे। यह कार्य समाहित होकर करे। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं मध्य में इन पांच से न्यासोपरान्त शिर, मुख, हृदय, गुह्य, चरण में ईशान की पंच कला का क्रमशः न्यास करे। ईशान सभी विद्याओं के स्वामी हैं। उनकी शशिनी प्रथमा कला है।

श्लोक ६४ "ईश्वरः सर्वभूतानां" से लेकर श्लोक ६६ में "प्रणवाद्या नमोन्विता" (इसका मन्त्रोद्धार करके) पर्यन्त से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में पुरुष की चार कला का न्यास करे। अब वक्ष्यमाण मन्त्र से सविधि-हृदय, स्कन्ध, नाभि, उदर, पृष्ठ, वक्ष तथा उर में क्रमशः सविधि अष्ट कला का न्यास करे। मन्त्र है—

प्रथम विद्या है "तत्पुरुषाय विद्महे" यह शान्ति कही गयी है। तदनन्तर "महादेवाय धीमहि" यह द्वितीया विद्या है। तन्नोरुद्रः। यह प्रतिष्ठा कला है। तदनन्तर है 'प्रचोदयात्।' यह तृतीया कला है। निवृत्ति तत्परा सभी हैं। सभी के आदि में प्रणव लगाकर तथा अन्त में "नमः" लगाये।।५७-७०।।

अघोरेभ्यस्तथा पूर्वमीरिता प्रथमा कला। अथ घोरेभ्य इत्यन्ते मोहास्यात्तदनन्तरम्।।७१।।

अघोरान्ते क्षमा पश्चात्तृतीया परिकीर्तिता।
घोरतरेभ्यो निद्रा स्यात्सर्वेभ्यः सर्वतत्परा।।७२।।
व्याधिस्तु पञ्चमी प्रोक्ता शर्वेभ्यस्तदनन्तरम्।
मृत्युर्निगदिता षष्ठी नमस्ते अस्तु तत्परम्।।७३।।
क्षुधा स्यात्सप्तमी रुद्ररूपेभ्यः कथिता तृषा।
अष्टमी कथिता एता धुवाद्या नमसान्विताः।।७४।।
गुह्ययुग्मोरुयुग्मेषु जानुजङ्घास्फिजोः पुनः।
कट्यां पार्श्वद्वये वामकला न्यस्येत्त्रयोदश।।७५।।
प्रथमा वामदेवाय नमोन्ते स्याद्रुजा कला।
स्याज्ज्येष्ठाय नमो रक्षा द्वितीया परिकीर्तिता।।७६।।

कलकामा पञ्चमी स्यात्ततो विकरणाय च। नमः संयमनी षष्ठी कथिता तदनन्तरम्।।७७।।

बलक्रिया सप्तमीष्टा कला विकरणाय च।
नमो वृद्धिस्त्वष्टमी स्याद्बलान्ते च स्थिरा कला।।७८।।

पश्चात्प्रमथनायान्ते नमो रात्रिरुदीरिता। सर्वभूतदमनाय नमोन्ते भ्रामणी कला।।७९।।

नमोन्ते मोहिनी प्रोक्ता मन्त्रज्ञैर्द्वादशी कला।
मनोन्मन्यैः नमः पश्चाज्ज्वरा प्रोक्ता त्रयोदशी।।८०।।
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्तास्तु प्रकीर्तिताः।
पाददोस्तननासासु मूर्ध्नि बाहुयुगे न्यसेत्।।८१।।
सद्योजातभवाः सम्यगष्टौ मन्त्राः कला क्रमात्।
सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्धि स्यात्प्रथमा कला।।८२।।
सद्योजाताय वै भूयो नमः स्याद् वृद्धिरीरिता।
भवेद्युतिस्तृतीया स्यादभवे तदनन्तरम्।।८३।।
लक्ष्मी चतुर्थी कथिता ततो नातिभवेपदम्।
मेधा स्यात्पञ्चमी प्रोक्ता कलाभूयो भवस्व माम्।।८४।।
प्राज्ञा समीरिता षष्ठी भवान्ते स्यात्प्रभा कला।
उद्भवाय नमः पश्चात्सुधा स्यादष्टमी कला।।८५।।

प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता कला सर्वा नमोन्विताः।
अष्टात्रिंशत्कलाः प्रोक्ताः पञ्च ब्रह्मपदादिकाः॥८६॥

श्लोक ७२ से लेकर ७४ तक न्यास मन्त्र है। (विद्वान इसका मन्त्रोद्धार करके न्यास करें।) इस मन्त्र से गुह्य, दोनों उरु तथा दोनों जानु, नितम्ब, कटि दोनों पार्श्व में त्रयोदश वाम कला का न्यास करे। पहले वामदेवाय कहकर नमः कहे। पहली कला रुजा कला है। ज्येष्ठा हेतु रक्षा, विकरण हेतु कलकामा है। चतुर्थ है संयमनी कला। पंचमी है बलक्रिया, षष्ठ है वृद्धि, सप्तमा है स्थिरा, अष्टमी कला है रात्रि, नवम है भ्रामणी। दशमा है मोहिनी, एकादश कला है मनोन्मनी। द्वादश कला ज्वरा तथा त्रयोदशा कला है बला। प्रारंभ में प्रणव लगाये अन्त में चतुर्थी विभक्ति युक्त नाम कहे। अन्त में नमः लगाये। जैसे ॐ बलायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः इत्यादि। चरण, भुजा, स्तन, नाक, मस्तक पर आठ सद्योजात मन्त्र कलायें हैं। सिद्धि, वृद्धि, द्युति, लक्ष्मी, मेधा, प्राज्ञा, प्रभा, सुधा। ये सद्योजात अष्टकला हैं। इनके आदि में प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति युक्त नाम लिखकर नमः लगाये। जैसे ॐ प्रभायै नमः। इत्यादि। इस प्रकार पांच ब्रह्मपदा मिलाकर कुल ३८ कलायें हैं।।७१-८६।।

इति विन्यस्तदेहोऽसौ भवेद्गङ्गाधरः स्वयम्।
ततः समाहितो भूत्वा ध्यायेदेवं सदाशिवम्॥८७॥

सितपीतासितश्वेतजपाभैः पञ्चभिर्मुखैः। अक्षैर्युतं ग्लौमुकुटं कोटिपूर्णेन्दुसम्प्रभम्॥८८॥
शूलं टङ्कं कृपाणं च वज्राग्न्यहिपतीन्करैः। दधानं भूषणोद्दीप्तं घण्टापाशवराभयान्॥८९॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षं मधुप्लुतैः। प्रसूनैः करवीरोत्थैर्जुहुयात्तद्दशांशतः॥९०॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्। आवाह्य पूजयेत्तस्यां मूर्तावावरणैः सह॥९१॥

जो मानव उपर्युक्त प्रकारेण शरीर न्यास करता है, वह साक्षात् शिव है। तदनन्तर समाहित होकर सित, पीत, असित, श्वेत, रक्तवर्ण पंचमुखों से युक्त, रुद्राक्ष तथा दीप्त मुकुटधारी, कोटिपूर्ण चन्द्रसमप्रभ, हाथों में त्रिशूल, टंक, कृपाण, वज्र, अग्नि, सर्प, घन्टा, पाश, वर तथा अभय मुद्रा धारण करने वाले नाना आभूषण विभूषित भगवान् शंकर का ध्यान करके पांच लाख मन्त्र जपकर ५०००० होम मधुमिश्रित कनेर पुष्प से करे। तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्त्ति निर्माण तथा उसमें आवाहन करके पूजा करे।।८७-९१।।

शक्तिं डमरुकाभीतिवरान्सन्दधतं करैः। ईशानं त्रीक्षणं शुभ्रमैशान्यां दिशि पूजयेत्॥९२॥
परश्वेणवराभीतिर्दधानं विद्युदुज्ज्वलम्। चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं पूर्वतोऽर्चयेत्॥९३॥
अक्षस्त्रजं वेदपाशौ ऋषिं डमरुकं ततः। खट्वाङ्गं निशितं शूलं कपालं बिभ्रतं करैः॥९४॥
अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदन्तं भयावहम्। अघोरं त्रीक्षणं याम्ये पूजयेन्मन्त्रवित्तमः॥९५॥

मूर्त्ति का आवरण देवगण के सहित पूजन करे। ईशान कोण में शक्ति, डमरु, अभय तथा वरमुद्राधारी त्रिनेत्र शुक्लवर्ण देवता शंकर की पूजा करे। पूर्व में परशु, वर एवं अभय मुद्राधारी विद्युत्वत् दीप्त, चतुर्मुख, तत्पुरुष, त्रिनेत्र, शिव की पूजा करे। दक्षिणदिक् में रुद्राक्ष माला, वेद, पाश, डमरु, खट्वाङ्ग, तीक्ष्णशूल, कपालधारी, अंजनाभ चतुर्मुख, भीमदन्त, भयानक अघोर त्रिनेत्र शिव की पूजा मन्त्रज्ञ करे।। ९२-९५।।

कुङ्कुमाभचतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनम्। हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम्॥९६॥
बालेन्दुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत्।
कर्पूरेन्दुनिभं सौम्यं सद्योजातं त्रिलोचनम्॥९७॥
वराभयाक्षवलयकुठारान्दधतं करैः। विलासिनं स्मेरवक्त्रं सौम्ये साम्यक्समर्चयेत्॥९८॥

पश्चिम में कुंकुमवत् प्रभावान्, चतुर्मुख, त्रिनेत्र, रुद्राक्षधारी, अभय एवं वरमुद्राधारी, बालचन्द्र से युक्त एवं शोभित मुकुटधारी वामदेव की पूजा करे। उत्तरदिक् में कर्पूर तथा चन्द्रवत् धवल, त्रिनेत्र, वरअभय मुद्राधारी, रुद्राक्ष माला तथा कुठार धारण करने वाले स्मित मुस्कान से शोभित आनन वाले, विलासी सौम्य शंकर की अर्चना करे।।९६-९८।।

कोणेष्वर्चेन्निवृत्त्याद्यास्तेजोरूपाः कलाः क्रमात्।
विघ्नेश्वराननन्ताद्यान्पत्रेषु परितो यजेत्॥९९॥
उमादिकास्ततो बाह्ये शक्राद्यानायुधैः सह।
इति सम्पूज्य देवेशं भक्त्या परमया युतः॥१००॥
प्रीणयेन्नृत्यगीताद्यैः स्तोत्रैर्मन्त्री मनोहरैः। तारो मायावियद्बिन्दुमनुस्वरसमन्वितः॥१०१॥
पञ्चाक्षरसमायुक्तो वसुवर्णो मनुर्मतः। पञ्चाक्षरोक्तवत्कुर्यादङ्गन्यासादिकं बुधः॥१०२॥
सिन्दूराभं लसद्रत्नमुकुटं चन्द्रमौलिनम्। दिव्यभूषाङ्गरागं च नागयज्ञोपवीतिनम्॥१०३॥
वामोरुस्थप्रियारोजन्यस्तहस्तं च बिभ्रतम्। वेदटङ्केष्टमभयं ध्यायेत्सर्वेश्वरं शिवम्॥१०४॥
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्त्रं घृतान्वितैः। पायसैर्जुहुयात्पीठे मूर्तिं सङ्कल्प्य मूलतः॥१०५॥
अङ्गैरावरणं पूर्वमनन्ताद्यैरनन्तरम्। उमादिभिः समुद्दिष्टं तृतीयं लोकनायकैः॥१०६॥
चतुर्थं पञ्चमं तेषामायुधैः परिकीर्तितम्। एवं प्रतिदिनं देवं पूजयेत्साधकोत्तमः॥१०७॥

दिक् कोणों में निवृत्ति प्रभृति तेजस्वी कलाओं की पूजा करके चतुर्दिक् पत्रों पर विघ्नेश, अनन्त आदिदेवों की अर्चना करे। उसके बाह्य में उमा आदि देवीगण की तथा इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा उनके आयुध सहित करनी चाहिये। इस प्रकार देवेश की पूजा परम भक्ति के साथ करके उनको नृत्य-गीतादि से स्तोत्रादि से प्रसन्न करे। प्रणव, माया, वियत्, विन्दुयुक्त मन्त्र अष्टाक्षर मन्त्र है (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करें)। इसमें भी बुद्धिमान् पूजक पंचाक्षर मन्त्रवत् अंगन्यासादि करे। तब ध्यान करे। यथा—सिन्दूराभ, ललाट पर चन्द्र धारण करने वाले, दिव्य आभूषण-अंगराग-नागयज्ञोपवीत भूषित वाम जांघ पर आसीन प्रिया के स्तन पर हाथ रखने वाले, हाथों में वेद, टंक, वर-अभय मुद्राधारी सर्वेश्वरशिव का यह ध्यान करके आठ लाख होम करके आठ सहस्र होम घृत मिश्रित पायस से करे। इसके पश्चात् पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्त्ति स्थापित करके आवाहन के उपरान्त उनकी पूजा आवरण देवताओं के साथ विधिवत् करके उमादि देवीगण की तथा इन्द्रादि लोकपालों की पूजा उनके आयुध सहित करे साधकोत्तम नित्य इस विधि से पूजन करे।।९९-१०७।।

पुत्रपौत्रादिगां लक्ष्मीं सम्प्राप्य ह्यत्र मोदते।
तारः स्थिरा सकर्णेन्दुर्भृगुः सर्गसमन्वितः॥१०८॥

अक्षरात्मा निगदितो मन्त्रो मृत्युञ्जयात्मकः।
ऋषिः कहोलो देव्यादिगायत्री छन्द ईरितम्॥१०९॥
मृत्युञ्जयो महादेवो देवतास्य समीरितः। भृगुणा दीर्घयुक्तेन षडङ्गानि समाचरेत्॥११०॥
चन्द्रार्कहुतभुङ्नेत्रं स्मितास्यं युगमपद्मगम्।
मुद्रापाशैणाक्षसूत्रलसत्पाणिं शशिप्रभम्॥१११॥
भालेन्दुविगलत्पीयूषप्लुताङ्गमलंकृतम्। हाराद्यैर्निजकान्त्या तु ध्यायेद्विश्वविमोहनम्॥११२॥

वह व्यक्ति पुत्र-पौत्र तथा लक्ष्मी लाभ करके आनन्दित होता रहता है। प्रणव, स्थिर, कर्ण, भृगु तथा सर्गयुक्त मन्त्र मृत्युंजय मन्त्र कहा गया है। यह मन्त्र है "ॐ जूं सः"। इसके ऋषि हैं कहोल, छन्दः है गायत्री। देवता हैं मृत्युंजय शिव। षड्दीर्घयुक्त 'स' से षडंगन्यास करे। तत्पश्चात् सूर्य, चन्द्र, अग्निरूप नेत्र वाले स्थित मुस्कान युक्त आनन वाले, पद्मासनासीन, मुद्रा-पाश-मृगचर्म-अक्षसूत्र शोभित पाणि वाले, शशिसमप्रभ, ललाटस्थ चन्द्रमा के क्षरित अमृत से सिक्त अंगों वाले हार आदि से अलंकृत विश्वविमोहन शिव का ध्यान करे।।१०८-११२।।

गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्सुधीः। अमृताशकलैः शुद्धदुग्धाज्यसमभिप्लुतैः॥११३॥
शैवे सम्पूजयेत्पीठे मूर्तिं सङ्कल्पमूलतः। अङ्गावरणमाराध्य पश्चाल्लोकेश्वरान्यजेत्॥११४॥

वह सुधी साधक ३ लाख मन्त्र जपकर ३०००० होम शुद्ध गोदुग्ध में डूबी गुरुच की समिध् को घृत लिप्त करके करे। श्रेष्ठ साधक शैवपीठ पर मूलमन्त्र जपते हुये मूर्त्ति स्थापना करके सविधि देवता की पूजा करे। पीठ के बाहर लोकपालगण की पूजा उनके आयुधों सहित करना चाहिये।।११३-११४।।

तदस्त्राणि ततो बाह्ये पूजयेत्साधकोत्तमः। जपपूजादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन्मुनिसत्तमः॥११५॥
कुर्यात्प्रयोगान्कल्पोक्तानभीष्टफलसिद्धये। दुग्धसिक्तैः सुधाखण्डैर्हुत्वा प्रत्यहमादरात्॥११६॥

हे मुनिप्रवर! जब जप-पूजादि से मन्त्रसिद्धि हो जाये, तब वांछित फललाभार्थ मन्त्र का प्रयोग करे। विधान यह है कि दुग्ध सिक्त गुरुच के टुकड़ों से सादर होम करे।।११५-११६।।

सहस्रहोमपर्यन्तं लभेदायुर्धनं सुतान्। सुधावटतितान्पूर्वापयः सर्पिः पयो हविः॥११७॥
सप्त द्रव्याणि वारेषु क्रमाद्दशाशतं हुनेत्। सप्ताधिकान् द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितम्॥११८॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यादरुणां गां पयस्विनीम्। गुरुं सम्प्रीणयेत्पश्चाद्धनाद्यैर्देवताधिया॥११९॥
अनेन विधिना साध्यः कृत्याद्रोहज्वरादिभिः। विमुक्तः सुचिरं जीवेच्छरदां शतमञ्जसा॥१२०॥

एक हजार आहुति देने से अभीष्ट फल लाभ होगा। वह व्यक्ति आयु, धन, पुत्र लाभ करेगा। दुग्ध सिक्त गुडूची के टुकड़ों को दुग्ध, घृत तथा सात होम द्रव्यों में मिलकार १००० होम करे। सात से अधिक द्विजों को नित्य मधुरान्न भक्षण कराये। ऋत्विक् को उत्तम दुग्धवती लाल गौ तथा दक्षिणा प्रदान करे। गुरु में देवता बुद्धि करके उनको धनादि से प्रसन्न करे। इस साधन द्वारा मनुष्य कृत्या, द्रोह, ज्वर, आदि से छुटकारा पाकर सौ वर्ष आनन्द पूर्वक जीवित रहता है।।११७-१२०।।

अभिचारे ज्वरे स्तम्भघोरोन्मादे शिरोगदे। असाध्यरोगे क्ष्वेडार्तौ मोहे दाहे महाभये॥१२१॥

होमोऽयं शान्तिदः प्रोक्तः सर्वाभयप्रदायकः। द्रव्यैरेतैः प्रजुहुयात्त्रिजन्मसु यथाविधि॥१२२॥
भोजयेन्मधुरैर्भोज्यैर्ब्राह्मणान्वेदपारगान्। दीर्घमायुरवाप्नोति वाञ्छितां विन्दति श्रियम्॥१२३॥
एकादशाहुतीर्नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयाद् बुधः। अपमृत्युजिदेव स्यादायुरारोग्यवर्द्धनम्॥१२४॥

त्रिजन्मसु सुधावल्लीकाश्मीरीबकुलोद्भवैः।
समिद्भैः कृतो होमः सर्वमृत्युगदापहः॥१२५॥

सिद्धार्थैर्विहितो होमो महाज्वरविनाशनः। अपामार्गं समिद्धोमः सर्वामयनिषूदनः॥१२६॥

इस होम द्वारा भूतों का उपद्रव, ज्वर, स्तम्भन, भीषण उन्माद, शिरपीड़ा, असाध्य रोग, कफ, मोह, दाह तथा महाभय का शमन हो जाता है। यह भयनाशक है। अपने जन्म नक्षत्र वाले दिन इन द्रव्यों से सविधि हवन करे तथा वेद पारंगत विप्रगण को मधुरान्न भोजन कराये। दीर्घायु तथा वांछित श्रीलाभ होता है। नित्य दूर्वा से ११ आहुति देने वाले की अकाल मृत्यु नहीं होती। वह आयु एवं आरोग्य लाभ करता है। अपने जन्म नक्षत्र वाले दिनत्रय में गुरुच, कुंकुम तथा मौलश्री काष्ठ से होम करे। समस्त अकालमृत्यु का नाश होगा। श्वेत सरसों से होम द्वारा महाभयनाश तथा अपामार्ग की समिध् से होम द्वारा सर्वरोग नाश होगा।।१२१-१२६।।

दक्षिणामूर्तये पूर्वं तुभ्यं पदमनन्तरम्। वटमूलपदस्यान्ते प्रवदेच्च निवासिने॥१२७॥

ध्यानैकनिरताङ्गाय पश्चाद् ब्रूयान्नमः पदम्।
रुद्राय शम्भवे तारशक्तिरुद्धोऽयमीरितः॥१२८॥
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः।
मुनिः शुकः समुद्दिष्टश्छन्दोऽनुष्टुपप्रकीर्तितम्॥१२९॥
देवता दक्षिणामूर्तिर्नाम्ना शम्भुरुदीरितः।
तारशक्तियुतैः पूर्वं ह्रीमाद्यन्तैश्च मन्त्रजैः॥१३०॥
षट्षष्ठाष्टेषु वह्न्यर्णैर्हृदयाद्यङ्गकल्पनम्।
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे गण्डयुग्मे सनासिके॥१३१॥
आस्यदोःसन्धिषु गले स्तनहृन्नाभिमण्डले।
कट्यां गुह्ये पुनः पादसन्धिष्वर्णान्यसेन्मनोः॥१३२॥

व्यापकं तारशक्तियां कुर्याद्देहे ततः परम्। हिमाचलतटे रम्ये सिद्धकिन्नरसेविते॥१३३॥

दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूल निवासिने ध्यानैक निरताङ्गाय नमः ॐ शक्तिरुद्ध रुद्राय शाम्भवे। यह (प्रणव ॐ) को छोड़कर ३६ अक्षर का मन्त्र सर्वकामना पूरक है। इसके ऋषि हैं शुक्र। छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं दक्षिणामूर्त्ति। इनको शंभु भी कहते हैं। आदि में तथा अन्त में ॐ ह्रीं युक्त मन्त्र से छः एवं आठ अंग का न्यास करे। मस्तक, ललाट, नेत्र, कर्ण, कपोल, नासिका, मुख, भुजा, अस्थिसंधि, कंठ, स्तन, नाभि, कटि, गुह्य तथा पाद सन्धियों में मन्त्रवर्ण से न्यास करे। शरीर में तब व्यापक न्यास ॐ ह्रीं युक्त मन्त्रों से करे। अब ध्यान कहते हैं। रम्य हिमालय तट पर जो सिद्ध-किन्नर सेवित हैं।।१२७-१३३।।

विविधद्रुमशाखाभिः सर्वतो वारितातपे। सुपुष्पितैर्लताजालैराश्लिष्टकुसुमद्रुमे॥१३४॥

शिलाविवरनिगच्छन्निर्झरानिलशीतले। गायद्देवाङ्गनासङ्घे नृत्यद्बर्हिकदम्बके॥१३५॥
कूजत्कोकिलसङ्घेन मुखरीकृतदिङ्मुखे। परस्परविनिर्मुक्तमात्सर्यमृगसेविते॥१३६॥
जलजैः स्थलजैः पुष्पैरामोदिभिरलङ्कृते।
आद्यैः शुकाद्यैर्मुनिभिरजस्रसुखसेविते॥१३७॥
पुरन्दरमुखैर्देवैः साङ्गनाद्यैर्विलोकिते। वटवृक्षं महोच्छ्रायं पद्मरागफलोज्ज्लम्॥१३८॥

वहां सर्वत्र विविध वृक्ष हैं। उनकी शाखा सर्वत्र सूर्य ताप को नीचे नहीं आने देतीं। उन वृक्ष में नानाविध पुष्प खिले रहते हैं। वहां लतायें वृक्षों से लिपटी रहती हैं। इससे वहां अनुपम शोभा हो रही है। शिलाओं के छिद्र से निकली निर्झरों से स्पर्शित शीतल वायु तथा वहां के निर्झर का शीतल जल चित्त को प्रसन्न कर देते हैं। वहां देवस्त्रियां गायन करती हैं। मयूर नृत्य करते रहते हैं। कदम्ब के नीचे मयूर नृत्यरत रहते हैं। वहां कोकिल अपने कूजन से दिशाओं को मुखरित करते रहते हैं। वहां पर इन्द्रादि देवता अपनी-अपनी अङ्गनाओं के साथ उस स्थान का अवलोकन करते आते हैं। वहां एक अत्यन्त उच्च तथा अत्यन्त महान् वटवृक्ष स्थित है। उसके फल पद्मराग मणिवत् उज्वल हैं।।१३४-१३८।।

गारुत्मतमयैः पत्रैर्निबिडैरुपशोभितम्। नवरत्नमयाकल्पैर्लम्बमानैरलङ्कृतम्॥१३९॥
संसारतापविच्छेदकुशलच्छायमद्भुतम्। तस्यमूले सुसङ्क्लृप्तरत्नसिंहासने शुभे॥१४०॥
आसीनमसिताकल्पं शरच्चन्द्रनिभाननम्।
कैलासाद्रिनिभं त्र्यक्षं चन्द्राङ्कितकपर्दकम्॥१४१॥
नासाग्रालोकनपरं वीरासनसमास्थितम्। भद्राटके कुरङ्गाढ्यजानुस्थकरपल्लवम्॥१४२॥
कक्षाबद्धभुजङ्गं च सुप्रसन्नं हरं स्मरेत्। अयुतद्वयसंयुक्तगुणलक्षं जपेन्मनुम्॥१४३॥
तद्दशांशं तिलैः शुद्धैर्जुहुयात्क्षीरसंयुतैः। पञ्चाक्षरोदिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत्॥१४४॥

उसके पत्ते नवरत्न के निर्मित लगते हैं, जो अत्यन्त सघन तथा मरकतमणि के वर्ण के हैं। इस वृक्ष की छाया संसारताप का नाश करती हैं। उसके मूल में शुभ रत्नसिंहासन रखा है। उस पर श्वेताभ शरदचन्द्र के समान आनन वाले वीरासन समासीन शंकर स्थित हैं। वे कैलास पर्वत के समान आभा वाले, त्रिनेत्र हैं। उनके भाल पर चन्द्र शोभायमान हैं। वे नासाग्र का अवलोकन कर रहे हैं। उनके करपल्लव (हथेली) जानु पर स्थित हैं। उनके स्कन्ध पर भुजंग लिपटे हैं। ऐसे सुप्रसन्न भगवान् शिव का स्मरण करे। ऐसा ध्यान करके तीन लाख बीस हजार जप करके उसका १/१० होम क्षीर लिप्त शुद्ध तिल से करे। इसके बाद पंचाक्षर मन्त्र से पीठ पर सविधि पूजा करनी चाहिये।।१३९-१४४।।

भिक्षाहारो जपेन्मासं मनुमेनं जितेन्द्रियः।
नित्यं सहस्रमष्टार्द्धं परां विन्दति वाक्छ्रियम्॥१४५॥
त्रिवारं जप्तमेतेन पयस्तु मनुना पिबेत्।
दक्षिणामूर्तिसन्ध्यानाच्छास्त्रव्याख्यानकृद्भवेत्॥१४६॥

जो साधक एक मास तक भिक्षान्न ग्रहण करता नित्य १००८ जप उक्त मन्त्र का करेगा, उसे वाक्

श्री का लाभ होगा। जो जितेन्द्रिय होकर तीन बार जप करके जलपान करेगा तथा उस समय दक्षिणामूर्त्ति का ध्यान करता रहेगा, वह उत्तम शास्त्र व्याख्यान कर सकेगा।।१४५-१४६।।

प्रणवो हृदयं पश्चाद्वदेद्भगवतेपदम्। ङेयुतं दक्षिणामूर्तिं मह्यंमेधाम्रुदीरयेत्॥१४७॥

प्रयच्छ ठद्वयान्तोऽयं द्वाविंशत्यक्षरो मनुः।
मुनिश्चतुर्मुखश्छन्दो गायत्री देवतोदिता॥१४८॥
ताररुद्धैः स्वरैदीर्घैः षड्भिरङ्गानि कल्पयेत्।
पदैर्मन्त्रभवैर्वापि ध्यानाद्यां पूर्ववन्मतम्॥१४९॥
लोहितोग्न्यासनः सद्यो बिन्दुमान्प्रथमं ततः।
द्वितीयं वह्निबीजस्था दीर्घा शान्तीन्दुभूषिता॥१५०॥
तृतीया लाङ्गलीशार्णमन्त्रो बीजत्रयान्वितः।
नीलकण्ठात्मकः प्रोक्तो विषद्वयहरः परः॥१५१॥

हरद्वयं वह्निजाया हृदयं परिकीर्तितम्। कपर्द्दिने पदयुगं शिरोमन्त्र उदाहृतः॥१५२॥

नीलकण्ठाय ठद्वन्द्वं शिखामन्त्रोऽयमीरितः।
कालकूटपदस्यान्ते विषभक्षणङेयुतम्॥१५३॥
हुं फट् कवचमुद्दिष्टं नीलकण्ठिन इत्यतः।
स्वाहान्तमस्त्रमेतानि पञ्चाङ्गानि मनोर्बिदुः॥१५४॥
मूर्ध्नि कण्ठे हृदम्भोजे क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत्।
बालार्कायुतवर्चस्कं जटाजूटेन्दुशोभितम्॥१५५॥
नागभूषं जपवटीं शूलं ब्रह्मकपालकम्।
खट्वाङ्गं दधतं दोर्भिस्त्रिनेत्रं चिन्तयेद्धरम्॥१५६॥

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं ससर्पिषा। हविषा जुहुयात्सम्यक्संस्कृते हव्यवाहने॥१५७॥
शैवं पीठे यजेद्देवं नीलकण्ठं समाहितः। मृत्युञ्जयविधानेन विषद्वयविनाशनम्॥१५८॥

ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधा प्रयच्छ स्वाहा। यह २२ अक्षरात्मक मन्त्र है, जिसके ऋषि हैं चतुर्मुख, छन्दः है गायत्री, देवता हैं दक्षिणामूर्त्ति! मन्त्र के प्रणवयुक्त दीर्घ वर्णों से षडङ्ग न्यास करे। मन्त्र के पदों से पूर्ववत् ध्यानादि करे। अब ईशार्ण मन्त्र कहते हैं, जो श्लोक १५० से लेकर १५१ श्लोक में "लाङ्गली" पर्यन्त है। यह बीजत्रय युक्त है। (इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें। इसे नील कण्ठात्मक कहते हैं, जो विषद्वय नाशक है। हरद्वय तथा स्वाहा यह हृदय कहा गया है। "कपर्दिने पदयुगं" यह शिरोमन्त्र है। "नीलकण्ठाय स्वाहा" यह शिखा मन्त्र है। "कालकूट विषभक्षणाय हुं फट्" यह कवच है। नीलकण्ठिने स्वाहा यह अस्त्र है। यह पञ्चाङ्ग मन्त्र है। मस्तक, कण्ठ तथा हृदय कमल में क्रमशः बीजत्रय का न्यास करे। तत्पश्चात् ध्यान करे। बालचन्द्रवत् तेजयुक्त, जटाकलाप से शोभायमान, सर्पगण भूषित, हाथों में जपवटी, त्रिशूल,

ब्रह्मकपाल एवं षट्वांगधारी त्रिनेत्र शिव के ध्यानोपरान्त तीन लक्ष मन्त्र जप कर तीस हजार होम घी से संस्कृत अग्नि में करना चाहिये। सावधानी पूर्वक शैवपीठ पर नीलकण्ठार्चन करे। उभय विष नाशक शंकर पूजन मृत्युंजय मन्त्र से करे।।१४७-१५८।।

अग्निः संवर्तकादित्यरानिलौ षष्टिबिन्दुमान्।
चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्वसमृद्धिदम्।।१५९।।
कश्यपो मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
अर्धनारीश्वरः प्रोक्तो देवता जगतां पतिः।।१६०।।
रेफादिव्यञ्जनैः षड्भिः कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्।
त्रिनेत्रं नीलमणिभं शूलपाशं कपालकम्।।१६१।।
रक्तोत्पलं च हस्ताब्जैर्दधतं चारुभूषणम्। बालेन्दुबद्धमुकुटमर्द्धनारीश्वरं स्मरेत्।।१६२।।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं त्रिशतं मधुराप्लुतैः। तिलैर्हुनेद्यजेत्पीठे शैवेङ्गावरणैः सह।।१६३।।

श्लोक १५९ में 'अग्नि' से लेकर 'विन्दुमान्' पर्यन्त मन्त्र है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें) इसके मुनि हैं कश्यप। छन्दः है अनुष्टुप्। देवता हैं अर्द्धनारीश्वर जगन्नाथ शंकर। रेफ आदि षड्व्यंजन से षडङ्गन्यासोपरान्त ध्यान करे। यथा—त्रिनेत्रधारी नीलमणिवत् प्रभावान्, कर में त्रिशूल, पाश, कपाल, रक्तकमलधारी, उत्तम आभूषण पहनने वाले, बालचन्द्रयुक्त मुकुट धारण करने वाले, अर्द्धनारीश्वर शंकर का ध्यान करके एक लक्ष मन्त्रजप तथा ३०० होम त्रिमधुर युक्त तिल से करे।।१५९-१६३।।

वृषाद्यैर्मातृभिः पश्चाल्लोकपालैस्तदायुधैः। प्रासादाद्यं जपेन्मन्त्रमयुतं रोगशान्तये।।१६४।।
स्वाहावृत्तमिदं बीजं विगलत्परमामृतम्।
चन्द्रबिम्बस्थितं मूर्ध्नि ध्यातं क्ष्वेडगदापहम्।।१६५।।
प्रतिलोमस्वराढ्या च बीजं वह्निगृहे स्थितम्।
रेफादिव्यञ्जनोल्लासिषट्कोणाभिवृत्तं बहिः।।१६६।।
भूतार्तस्य स्मृतं मूर्ध्नि भूतमाशु विनाशयेत्।
पीडिताङ्गे स्मृतं तत्तत्पीडां शमयति ध्रुवम्।।१६७।।

अब शैवपीठ पर अंगावरणों के साथ नन्दी, मातृगण, लोकपाल, उनके आयुध की अर्चना करे। १०००० जप द्वारा रोग शान्ति होगी। यह बीज स्वाहा से आवृत परम अमृतरूप है। इसका मूर्द्धा में ध्यान करे कि यह चन्द्रबिम्ब में स्थित है। ऐसा करने पर कफरोग का शमन होगा। प्रतिलोभ स्वरयुक्त बीजमन्त्र वह्निगृह में रहेगा। उसके षट्कोण रेफादि व्यंजन से शोभित रहते हैं। भूतों से पीड़ित किये गये व्यक्ति के शिर को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। भूत शीघ्रता पूर्वक नष्ट होंगे। अंग पीड़ा भी इस मन्त्र के जप से निवृत्त हो जायेगी।।१६४-१६७।।

प्रणवो हृदयं पश्चात् ङेन्तः पशुपतिः पुनः।
तारो नमो भूतपदं ततोऽधिपतये ध्रुवम्।।१६८।।

नमो रुद्राय युगलं खड्गरावण शब्दतः। विहरद्वितयं पश्चान्नरीनृत्ययुगं पृथक्॥१६९॥

श्मशानभस्माचितान्ते शरण्याय ततः परम्।
घण्टाकपालमालादिधरायेति पदं पुनः॥१७०॥

व्याघ्रचर्मपदस्यान्ते परिधानाय तत्परम्। शशाङ्ककृतशब्दान्ते शेखराय ततः परम्॥१७१॥

कृष्णसर्पदात्पश्चाद्वदेद्यज्ञोपवीतिने। बलयुग्मं चलायुग्ममनिवर्तकपालिने॥१७२॥

हनुयुग्मं ततो भूतांस्त्रासयद्वितयं पुनः।
भूयो मण्डलमध्ये स्यात्कटयुग्मं ततः परम्॥१७३॥

रुद्राङ्कुशेन शमय प्रवेशययुगं ततः। आवेशययुगं पश्चाच्चण्डासिपदमीरयेत्॥१७४॥

धारादिपतिरुद्रोऽयं ज्ञापयत्यग्निसुन्दरी। खड्गरावणमन्त्रोऽयं सप्तत्यूर्ध्वशताक्षरः॥१७५॥

अब खड्रावण मन्त्र कहते हैं, जो सौ से अधिक वर्ण वाला है (यहां मूल में इसे १०७ अक्षरों वाला कहा है परन्तु मन्त्रोद्धार करने पर यह अधिक ठहरता है।) मन्त्र यह है "ॐ नमः पशुपते ॐ नमो भूताधिपतये नमो रुद्राय खड्रावणाय विहर विहर नृत्य नृत्य श्मशान चिता भस्म शरण्याय घण्टाकपाल मालादिधर व्याघ्रचर्म परिधानाय शशाङ्कशेखराय कृष्णसर्प यज्ञोपवीतिने बल बल चल चल अनिवर्त्त कपालिने हन हन भूतान् त्रासय त्रासय कट कट रुद्राङ्कुशेन शमय शमय प्रवेशय प्रवेशय आवेशय आवेशय चण्ड असि धारादिपति रुद्राय स्वाहा।" यह खड्गरावण मन्त्र है, जो १०० से अधिक अक्षरों वाला है।।१६८-१७५।।

भूताधिपतये स्वाहा पूजामन्त्रोऽमीरितः।
सिद्धमन्त्रोऽयमुदितो जपादेव प्रसिद्ध्यति॥१७६॥

अयुतद्वितयात्पश्चाद्भूतादिग्रहणे क्षमः। माया स्फुरद्वयं भूयः प्रस्फुरद्वितयं पुनः॥१७७॥

घातयद्वितयं वर्म फडन्तः समुदीरितः। एकपञ्चाशदर्णोऽयमघोरास्त्रं महामनुः॥१७८॥

अघोरोऽस्य मुनिः प्रोक्तस्त्रिवृच्छन्द उदाहृतम्।
अघोररुद्रः सन्दिष्टो देवता मन्त्रनायकः॥१७९॥

हृदय पञ्चभिः प्रोक्तं शिरः षड्भिरुदाहृतम्।
शिखा दशभिराख्याता नवभिः कवचं मतम्॥१८०॥

वसुवर्णैः स्मृतं नेत्रं दशार्णैरस्त्रमीरितम्।
मूर्ध्नि नेत्रास्यकण्ठेषु हन्नाभ्यामूरुषु क्रमात्॥१८१॥

जानुजङ्घापदद्वन्द्वे रुद्रभिन्नाक्षरैर्न्यसेत्। पञ्चषट्काष्टवेदाङ्गद्विदव्यब्धिरसलोचनैः॥१८२॥

"भूताधिपतये स्वाहा" पूजामन्त्र है। यह सिद्धमन्त्र है। जप से यह सिद्ध होता है। अब अघोरास्त्र महामन्त्र कहा जाता है। श्लोक १७७ में "अयुत द्वितया" से लेकर "वर्म फडन्तः" श्लोक १७८ पर्यन्त यह मन्त्र है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) यह ५१ अक्षरों का अघोरास्त्र मन्त्र है। ऋषि हैं अघोर, छन्दः है त्रिवृत् मन्त्रनायक देवता अघोर रुद्र हैं। इस मन्त्र के ५ अक्षरों से हृदय का न्यास करके छः अक्षर से शिर,

दस से शिखा, ९ से कवच, ८ से नेत्र का न्यास करके १० से अस्त्र न्यास करे। मस्तक में ५, नेत्र में छह, मुख में आठ, कण्ठ में छह, हृदय में दो, नाभि में दो, उरु में चार, जानु में छह, जंघा में ११ तथा दोनों चरण में अन्य ११ अक्षरों से न्यास करे।

(यहां "पञ्चषट्काष्ट वेदाङ्ग द्विद्व्यब्धिरसलोचनै" का अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो सका विज्ञजन इसका अर्थ करें।)।।१७६-१८२।।

श्यामं त्रिनेत्रं सर्पाढ्यं रक्तवस्त्राङ्गरागकम्।
नानाशस्त्रधरं ध्यायेदघोराख्यं सदाशिवम्।।१८३।।
भूतवेतालकादीनां क्षमोऽयं निग्रहे मनुः।
तारा वान्तो धरासंस्थो वामनेत्रेन्दुभूषितः।।१८४।।
पाशी बकः कर्णनेत्रवर्मास्त्रान्तः षडक्षरः।
मनुः पाशुपतास्त्राख्यो ग्रहक्षुद्रनिवारणः।।१८५।।

अब सदाशिव अघोर का ध्यान करे। वे श्यामवर्ण, त्रिनेत्र, सर्पभूषित, रक्तवस्त्रधारी, अंगराग लिप्त तथा अनेक आयुधधारी हैं। इस मन्त्र से जो ऊपर अंकित है भूत, वेतालादि का निग्रह होगा। अब पाशुपतास्त्रषड्क्षर मन्त्र कहते हैं। यह क्षुद्रग्रह निवारक है। यह श्लोक १८४ में "तारा वान्तो" से लगाकर वर्मास्त्रान्त तक श्लोक १८५ में है। *(सुधीजन इसका मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।)*।।१८३-१८५।।

षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि हुं फडन्तैः सजातिभिः।
मध्याह्नार्कप्रभं भीमं त्र्यक्षं पन्नगभूषणम्।।१८६।।
नानाशस्त्रं चतुर्वक्त्रं स्मरेत्पशुपतिं हरम्। वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।।१८७।।
गव्येन सर्पिषा मन्त्रो संस्कृते हव्यवाहने। शैवे पीठे यजेदङ्गमातृलोकेश्वरायुधैः।।१८८।।
अनेन मन्त्रितं तोयं भूतग्रस्तमुखे क्षिपेत्।
सद्यः स मुञ्चति क्रन्द्रान्महामन्त्रप्रभावतः।।१८९।।
अनेन मन्त्रितान्बाणान्विसृजेद्युधि यो नरः।
जयेत्क्षणेन निखिलाञ्छत्रून्पार्थ इवापरः।।१९०।।
वर्णान्तिमो बिन्दुयुतः क्षेत्रपालाय हृन्मनुः।।१९१।।
ताराद्यो वसुवर्णोऽयं क्षेत्रपालस्य कीर्तितः।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडंगं न्यस्य चिन्तयेत्।।१९२।।

हुं फट् आदि सजातीय षड्वर्ण से षड़ङ्ग सम्पन्न करके ध्यान करे। पशुपति देव मध्याह्न सूर्य समप्रभ, भीमदर्शन, त्रिनेत्र तथा पन्नगों का आभूषण धारण करते हैं। वे चतुर्मुख नाना शस्त्रधारी हैं। ऐसे पशुपति हर का ध्यान करें। एक लाख जप करें। दस हजार होम संस्कृत अग्नि में गोघृत से करें। तत्पश्चात् शैवपीठ पर अंगावरण देवगण के साथ मातृगण तथा लोकपालों के सहित उनके आयुधों की पूजा करें। इस विवेच्य मन्त्र को जल में मन्त्रित करके भूतग्रस्त को पान कराये। भूत पलायन करेगा। इस महामन्त्र का यही प्रभाव है। संग्राम

में इस मन्त्र से अभिमन्त्रित बाण शत्रु पर छोड़े। उसे क्षणमात्र में विजय अर्जुन की तरह मिलेगी। वर्णों के अन्तिम अक्षर तथा विन्दु एवं प्रणव युक्त मन्त्र क्षेत्रपाल मन्त्र है। षड्दीर्घयुक्त इस बीज से षडङ्ग न्यास करे।।१८६-१९२।।

नीलाचलाभं दिग्वस्त्रं सर्पभूषं त्रिलोचनम्।
पिङ्गोर्ध्वकेशान्दधतं कपालं च गदां स्मरेत्॥१९३॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्र जुहुयात्तद्दशांशतः। चरुणा घृतसिक्तेन ततः क्षेत्रे समर्चयेत्॥१९४॥
धर्मादिकल्पिते पीठे साङ्गावरणमादरात्। तस्मै सपरिवाराय बलिमेतेन निर्हरेत्॥१९५॥
पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद्विद्विषं पुरुषं द्वयम्। भञ्जय द्वितयं भूयो नर्तय द्वितयं पुनः॥१९६॥
ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरव तत्परम्। क्षेत्र पालबलिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरी॥१९७॥

अब इनका ध्यान कहा जाता है। ये नील पर्वत की आभायुक्त, दिगम्बर, सर्पगण से भूषित, त्रिनेत्र, पिंगलवर्ण के ऊर्ध्वोत्थित फहराते केश वाले, कपाल, गदाधारी हैं। ध्यानोपरान्त एक लाख जप करके दस हजार होम घृतयुक्त चरु से करके धर्मादि कल्पित पीठ के ऊपर अंगावरण देवगण सहित क्षेत्रपात्र पूजित करके उनके परिवार सहित उनको बलि चढ़ायें। बलिमन्त्र है—"एहि एहि द्विद्विषंपुरुषं भञ्जय भञ्जय नर्त्तय नर्त्तय विघ्न विघ्न क्षेत्रपाल बलिं गृह्णय गृह्णय स्वाहा।"।।१९३-१९७।।

बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकामफलप्रदः।
सोपदेशं बृहत्पिण्डं कृत्वा रात्रिषु साधकः॥१९८॥
स्मृत्वा यथोक्तं क्षेत्रेशं तस्य हस्ते बलिं हरेत्।
बलिनानेन सन्तुष्टः क्षेत्रपालः प्रयच्छति॥१९९॥

यह बलिमन्त्र सर्वकाम फलदायक है। रात्रिकाल में बृहत्पिण्ड बनाकर क्षेत्रेश का मन्त्र जप तथा बलिमन्त्र जप करके क्षेत्रेश का स्मरण करे तथा यह भावना करे कि यह बलिपिण्ड उनके हाथ में बलि से प्रसन्न होकर क्षेत्रपाल साधक को अर्पित है।।१९८-१९९।।

कान्तिं मेघां बलारोग्यं तेजः पुष्टिं यशः श्रियम्।
उद्धरेद्वटुकं ङेतमापदुद्धारणं तथा॥२००॥
कुरुद्वयं ततः पश्चाद्वटुकं ङेन्तमुच्चरेत्।
शक्तिरुद्धो ध्रुवादिश्च द्वाविंशत्यक्षरो भनुः॥२०१॥
द्विचतुःसप्तवेदाब्धिचन्द्रार्णैरङ्गकं मनोः। बालं स्फटिकसङ्काशं तल्लोललसिताननम्॥२०२॥
दिव्या कल्पैः प्रदीप्ताङ्गं त्र्यक्षं दण्डत्रिशूलिनम्।
सुप्रसन्नं स्मरेद्भक्त्या भक्तानामभयङ्करम्॥२०३॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः। तद्दशांशंप्रजुहुयात्तिलैर्मधुरसंयुतैः॥२०४॥

कान्ति मेघा, बल, आरोग्य, तेज, पुष्टि यश, श्री प्रदान करते हैं। श्लोक २०० में "उद्धरेद्" से

लगाकर श्लोक २०१ में "ध्रुवादि" पर्यन्त २२ अक्षर का बटुक मन्त्र है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) मन्त्र के द्वितीया, चतुर्थ, सप्त तथा प्रथमाक्षर से अंगन्यास करे। ध्यान-बटुकदेव स्फटिकवत् वर्ण वाले, चंचल मुखाकृति युक्त, दिव्यभूषणों से भूषित प्रदीप्त अंग वाले, त्रिनेत्र, दण्ड-त्रिशूलधारी, भक्तों हेतु अभयदाता, सर्वदा प्रसन्न, बालरूप शंकर हैं। ध्यानोपरान्त संयमित रहकर २२ लक्ष मन्त्र जप करे। तदनन्तर १/१० संख्यक होम त्रिमधुरयुक्त तिल से करे।।२००-२०४।।

धर्मादिकल्पिते पीठे पङ्कजे चातिशोभने। षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थव्योमपङ्कजसंयुते॥२०५॥
बटुकं पूजयेद्देवं साङ्गावरणकं क्रमात्। शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिशितं च दिने दिने।
भक्षयस्व गणैः सार्द्धं सारमेयसमन्वितः॥२०६॥
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः शत्रुनाम्ना विदर्भितः।
अनेन बलिना हृष्टो बटुकः परसैन्यकम्॥२०७॥
छित्त्वा गणेभ्यो विभजेदामिषं क्रुद्धमानसः।
अङ्कुशो वह्निशिखरो लान्तदान्त इतीरितः॥२०८॥
फडन्तश्चण्डमन्त्रोऽयं त्रिवर्णात्मा समीरितः।
अस्य त्रितो मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्॥२०९॥
चण्डेशो देवता प्रोक्ता वक्ष्यतेऽगप्रकल्पनम्।
हृदयं दीप्तफट् प्रोक्तं ज्वलफट् शिर ईरितम्॥२१०॥
शिखाज्वालिनि फट् प्रोक्ता वहफट् कवचं मतम्।
हलफट् नेत्रमाख्यातं सर्वज्वालिनि फट् परम्॥२११॥
विन्यस्यैवं षडङ्गानि ततो देवं विचिन्तयेत्।
चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्र्यक्षं रक्ताम्बरावृतम्॥२१२॥
दधतं च त्रिशूलाक्षमालाटंककमण्डलून्। वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः॥२१३॥
मधुरत्रयसंयुक्तैर्विशुद्धैस्तिलतण्डुलैः। पञ्चाक्षरोदिते पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्॥२१४॥

अब धर्मादि कल्पित महामनोहर पद्मपीठ पर अंगावरणादि देव तथा बटुक देव की पूजा करे। षट्कोण त्रिकोणस्थ व्योम पंकज संयुक्त बटुक की पूजा करने के उपरान्त इस बलि मन्त्र से बलि देना चाहिये। "आप मेरे शत्रु पक्ष के रुधिर का नित्यप्रति पान करें। उसका आप अपने श्वानों, गणों के साथ भक्षण करें।" इस बलि मन्त्र से शत्रुपक्ष की जगह शत्रु के नाम का उच्चारण करे। इससे बटुक देव प्रसन्न होकर शत्रु के प्रति क्रोध करते हुये उसके मांस का खण्ड-खण्ड करके शत्रु सैन्य उच्छिन्न कर देते हैं। अब चण्डमन्त्र कहते हैं, जो श्लोक २०८ में "अङ्कुशो" से लगाकर श्लोक २०९ में "फड़न्त" तक है। (विज्ञजन मन्त्रोद्धार करके प्रयोग करें।) इसके ऋषि हैं त्रित। छन्दः है अनुष्टुप्, देवता हैं चण्डेश। दीप्तफट् से हृदय का, ज्वलफट् से शिर का, 'ज्वालिनी फट्' से शिखा का, "वहफट्" से कवच, 'हलफट्' से नेत्र, तदनन्तर 'सर्वज्वालिनि फट्' से षडङ्ग न्यास करके देवता का ध्यान करे। यथा—ये चण्डेश देवता रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, रक्तवस्त्रधारी, त्रिशूल-रुद्राक्षमाला-

टंक, कमण्डलुधारी हैं।" तदनन्तर इनका मन्त्र जप तीन लाख करके ३०००० होम त्रिमधुरयुक्त तण्डुल से करे। तदनन्तर पंचाक्षर मन्त्र से पीठ की कल्पना मूलमन्त्र से करनी चाहिये।।२०५-२१४।।

कूर्मेशो बिन्दुसंयुक्तस्ततश्चण्डेश्वराय च। हृदयं मनुराख्यातश्चण्डेशस्य प्रपूजने।।२१५।।
अङ्गैर्मातृभिराशेशैर्वज्राद्यैरावृतिर्भवेत्। शैवमन्त्रेषु निष्णातश्चण्डेश्वरमनुं जपेत्।।२१६।।

अब श्लोक २१५ से "कूर्मेश" से लगाकर "हृदयं" पर्यन्त मन्त्र से चण्डेश की पूजा करे (विद्वजन इसका मन्त्रोद्धार करके पूजा करें। तदनन्तर अंगसहित मातृकागण की पूजा करके लोकपालगण एवं उनके आयुधों की पूजा करे। तब शैवमंत्र में पारंगत व्यक्ति चण्डेश्वर मन्त्र जपे।।२१५-२१६।।

सर्वान्कामानवाप्नोति परत्रेह च नन्दति।
शृणु नारद वक्ष्यामि दिव्यं माहेश्वरं स्तवम्।।२१७।।
यस्य पाठेन पूजायां सिद्ध्यन्ति मनवोऽखिलाः।।२१८।।
धराम्बग्निमरुद्व्योममखेशेन्द्वर्कमूर्तये। सर्वभूतान्तरस्थाय शङ्कराय नमोनमः।।२१९।।
श्रुत्यन्तकृतवासाय श्रुतये श्रुतिजन्मने। अतीन्द्रियाय महसे शाश्वताय नमोनमः।।२२०।।
स्थूलसूक्ष्मविभागाभ्यामनिर्देश्याय शंभवे। भवाय भवसम्भूतदुःखहन्त्रे नमोनमः।।२२१।।
तर्कमार्गातिदूराय तपसां फलदायिने। चतुर्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमोनमः।।२२२।।

एवंविध शिवाराधनतत्पर साधक इस लोक में अपनी समस्त वांछित कामना की प्राप्ति करके परलोक में भी आनन्दित रहता है। हे नारद! अब महेश्वर का दिव्य स्तव सुनें। पूजाकाल में इसके पाठ से सभी मन्त्रों में सिद्धिलाभ होता है। यथा—धरा, जल, वायु, आकाश, अग्नि, चन्द्र, सूर्यरूपी शंकर को नमस्कार! समस्त प्राणीगण में निवास करने वाले शिव को नमस्कार! श्रुतियों के अन्त में निवास करने वाले, श्रुतिरूप, श्रुतिजन्म, अतीन्द्रिय, तेजस्वरूप, शाश्वत स्वरूप! आपको नमस्कार! आप सूक्ष्म-स्थूल विभाग से अनिर्देश्य, शंभु हैं। आप भव से (संसार से उत्पन्न) दुःखहारी भवदेव हैं। आपको नमस्कार! आप तर्कमार्ग से अतिदूर, तपस्वीगण को फल देने वाले, चतुर्वर्ग को प्रदान कराने वाले, सर्वज्ञ हैं। आपको नमस्कार!।।२१७-२२२।।

आदिमध्यान्तशून्याय निरस्ताशेषभीतये। योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमोनमः।।२२३।।
विश्वात्मने विविक्ताय विलसच्चन्द्रमौलये।
कन्दर्प्पदर्प्पनाशाय कालहन्त्रे नमोनमः।।२२४।।
विषाशनाय विहरद्वृषस्कन्धमुपेयुषे। सरिद्दामसमाबद्धकपदार्थ नमोनमः।।२२५।।
शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामन्तरात्मने। पुरान्तकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमोनमः।।२२६।।
भक्ताय निजभक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने।
विवाससे निवासाय विश्वेषां पतये नमः।।२२७।।
त्रिमूर्तिमूलभूताय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने। त्रिधाम्ने धामरूपाय जन्मदाय नमोनमः।।२२८।।

आप आदि-मध्य-अन्तरहित, सर्वभयरहित, योगीगण हेतु ध्यानगम्य, योग्य, निर्गुण, महान् हैं। आप शंकर को नमस्कार! आप विश्वात्मा, सबसे विविक्त, चन्द्रमा से शोभायमान मौलि वाले, कन्दर्प दर्प दलनकारी,

कालनाशक शिव हैं। आपको नमस्कार! आप कालकूट विषभक्षक, विहरण करते वृषभ पर आसीन हैं। आपकी जटायें गंगारूपी रज्जु से बंधी हैं। आपको नमस्कार! हे प्रभो! आप शुद्ध, शुद्धभाव, शुद्धलोगों की अन्तरात्मा, त्रिपुर के नाशक, पूर्ण, पुण्यनाम शिव हैं। आपको नमस्कार! आप त्रिमूर्त्तिमूल, त्रिनेत्र, त्रिशूली, त्रिधाम, धामरूप जन्मदाता हैं। आप भक्तगण को मुक्ति तथा भोग देने वाले, वस्त्ररहित, सर्वत्र निवासी विश्वपति हैं। आपको नमस्कार!।।२२३-२२८।।

देवासुरशिरोरत्नकिरीटारुणिताङ्घ्रये। कान्ताय निजकान्तायै दत्तार्द्धाय नमोनमः॥२२९॥

आप देवगण तथा असुरगण के मस्तकस्थ मुकुट की प्रभा से अरुणिम हो गये चरण वाले, (अर्थात् ये लोग शीश नत करके प्रणाम करते हैं, तब उनके मुकुट की अरुण कान्ति किरणें शिव के चरणों पर पड़ती हैं) कमनीय रूपधारी, पार्वती को अपना आधा शरीर देने वाले अर्द्धनारीश्वर हैं। आपको नमस्कार!।।२२९।।

एतत्स्तोत्रं महेशस्य प्रोक्तं सर्वाघनाशनम्।
शिवसान्निध्यदं विप्र सर्वतन्त्रप्रकाशकम्॥२३०॥
एतत्ते सुमहत्तन्त्रं सर्वदेवप्रकाशकम्। लोकाभिलाषसम्पूर्तिक्रियासाधनसङ्गतम्॥२३१॥
ये तु सामान्यतः प्रोक्तास्तन्त्रेऽस्मिन्मनवो द्विज।
ते तु लोकोपकाराय ज्ञातव्याः सिद्धिदायकाः॥२३२॥

हे द्विज! महेश का यह स्तव सर्वपापनाशक, शिव सान्निध्यप्रद, सर्वरहस्य प्रकाशक है। हे द्विज! मैंने यह महान् तन्त्र कहा जो सर्वदेव प्रकाशक हैं। यह सबकी अभिलाषा पूरक है। इसमें कहे प्रमुख तन्त्र (मन्त्रादि) सिद्धिदायक हैं। लोकोपकारार्थ ये ज्ञातव्य हैं।।२३०-२३२।।

विशेषतो वैष्णवा ये मन्त्राः सर्वोत्तमोत्तमाः। त एव साधनीयाः स्युश्चतुर्वर्गफलाप्तये॥२३३॥
राममन्त्राः कृष्णमन्त्रा साङ्गा रासेशिमन्त्रकाः।
शाक्ताः सौराश्च गाणेशाः शैवाः प्रोक्ताः शुभावहाः॥२३४॥
तेषु स्वात्मप्रकाशाय भजेन्मुक्तिफलप्रदान्। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वयाभ्यर्थितं मुने।
देवताराधनं भक्त्या किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥२३५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे महेशमन्त्रकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः।।९१।।

।।इति तृतीय पादः।।

विशेषतः जो वैष्णव मन्त्र हैं, वे सर्वोत्तम हैं। चतुर्वर्गफल लाभार्थ उनका साधन करे। राममन्त्र, कृष्णमन्त्र, अंगसहित रासेशिका मन्त्र, शाक्त-सौर-गाणपत्य-शैव-ये शुभप्रद हैं। स्वात्मप्रकाशार्थ उनका भजन मुक्तिफलदाता है। हे मुनिवर! आपने भक्तिपूर्वक देवाराधन हेतु जो कुछ पूछा था, मैंने कहा। अब आप क्या श्रवण करना चाहते हैं?।।२३३-२३५।।

।।९१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मपुराण का संक्षिप्त वर्णन

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा नारदस्तु कुमारस्य वचो मुदा। पुनरप्याह सुप्रीतो जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्॥१॥

सूत जी कहते हैं—यह सुनकर नारद अतीव प्रसन्न हो गये। उन जिज्ञासु नारद ने प्रसन्न होकर मुनि से उत्तम कल्याण का प्रश्न पूछा।।१।।

नारद उवाच

साधु साधु महाभाग सर्वलोकोपकारकम्। महातन्त्रं त्वया प्रोक्तं सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम्॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुराणाख्यानमुत्तमम्। यस्मिन्यस्मिन्पुराणे तु यद्यदाख्यानकं मुने।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व सर्वज्ञस्त्वं यतो मतः॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! साधु-साधु! आप ने सर्वलोकोपकारक, सर्वतन्त्रोत्तमोत्तम महातंत्र कहा है। अब मैं पुराण के पवित्र आख्यान का श्रवण करना चाहता हूं। हे मुनिवर! जिस पुराण में जिस आख्यान का वर्णन है, आप वह सब कहिये। आप सर्वज्ञ हैं।।२-३।।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विप्रा नारदस्य शुभावहम्। पुराणाख्यानसम्प्रश्नं कुमारः प्रत्युवाच ह॥४॥

सूत जी कहते हैं—विप्र नारद का शुभ वचन सुनकर तथा उनके पुराण आख्यान सम्बन्धित प्रश्न को सुनकर सनत्कुमार ने कहा—।।४।।

सनत्कुमार उवाच

पुराणाख्यानकं विप्र नानाकल्पसमुद्भवम्। नानाकथासमायुक्तमद्भुतं बहुविस्तरम्॥५॥
ऋषिः सनातनश्चायं यथा वेद तथाऽपरः। न वेद तस्मात्पृच्छ त्वं बहुकल्पविदां वरम्॥६॥
श्रुत्वेत्थं नारदो वाक्यं कुमारस्य महात्मनः। प्रणम्य विनयोपेतः सनातनमथाब्रवीत्॥७॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—"हे विप्र! नाना कल्पों में होने वाले पुराण अद्भुत, नाना कथा समायुक्त तथा अतीव विस्तृत हैं। देवर्षि सनातन एक प्रकार से वेदावतार ही हैं। ये नाना कल्पकथाविद् हैं। आप इनसे ही यह प्रश्न पूछिये।" महात्मा सनत्कुमार का वचन सुनकर नारद ने सनातन को प्रणाम करके कहा—।।५-७।।

नारद उवाच

ब्रह्मन्पुराणविच्छ्रेष्ठ ज्ञानविज्ञानतत्पर। पुराणानां विभागं मे साकल्येनानुकीर्तय॥८॥
यस्मिञ् श्रुते श्रुतं सर्वं ज्ञाते ज्ञातं कृते कृतम्॥९॥
वर्णाश्रमाचारधर्मं साक्षात्कारमुपैष्यति। कियन्ति च पुराणानि कियत्सङ्ख्यानि मानतः॥१०॥

किङ्किमाख्यानयुक्तानि तद्वदस्व मम प्रभो।
चातुर्वर्ण्याश्रया नानाव्रतादीनां कथास्तथा॥११॥
सृष्टिक्रमेण वंशानां कथाः सम्यक्प्रकाशय।
त्वत्तोऽधिको न चान्योऽस्ति पुराणाख्यानवित्प्रभो॥१२॥
तस्मादाख्याहि मह्यं त्वं सर्वसन्देहभञ्जनम्।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पुराणज्ञों में प्रवर! आप पुराणों के विभाग को समग्ररूपेण कहिये। इस आख्यान को सुनकर सब कुछ श्रुत लगता है। इसे ज्ञात होने पर सब कुछ ज्ञात लगता है तथा करने से सब कुछ कृत लगता है। इसमें वर्णाश्रमाचार धर्म का साक्षात्कार उक्त है। हे प्रभो! पुराण कितने हैं तथा उनकी संख्या क्या है? हे प्रभो! उनमें क्या कहा गया है? वह सब कहिये। आप कृपापूर्वक चातुवर्ण पर आश्रित नाना व्रत का वर्णन, सृष्टिक्रम, वंशों की कथा सम्यक्तः प्रकाशित करिये। हे प्रभु! आपसे बढ़कर पुराण आख्यान कोई नहीं जानता। अतः आप यह सब कहकर मेरा सन्देह निवारण करिये।।८-१२।।

सूत उवाच

ततः सनातनो विप्राः श्रुत्वा नारदभाषितम्॥१३॥
नारायणं क्षणं ध्यात्वा प्रोवाचाथ विदां वरः।

सूत जी कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! सनातन ऋषि ने नारद का कथन सुनकर क्षण पर्यन्त नारायण का ध्यान किया, तब वे ज्ञानीगण एवं वेत्ताओं में श्रेष्ठ देवर्षि कहने लगे।।१३।।

सनातन उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकोपकारिका॥१४॥
पुराणाख्यानविज्ञाने यज्जाता नैष्ठिकी मतिः।
तुभ्यं समभिधास्यामि यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पुरा॥१५॥
मरीच्यादिऋषिभ्यस्तु पुत्रस्नेहावृतात्मना। एकदा ब्रह्मणः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः॥१६॥
स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः। उपसृत्य स्वपितरं ब्रह्माणं लोकभावनम्॥१७॥
प्रणम्य भक्त्या पप्रच्छ इदमेव मुनीश्वर। पुराणाख्यानममलं यत्त्वं पृच्छसि मानद॥१८॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे मुनिप्रवर! साधु! साधु! आपकी जो पुराणाख्यान के प्रति नैष्ठिक मति है, वह सभी लोकों का उपकार करने वाली है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने मरीचि आदि ऋषि से पुत्र स्नेहाभिभूत होकर जो कहा था वह सब कहता हूं। एक बार ब्रह्मपुत्र स्वाध्याय सम्पन्न वेदवेदाङ्ग-पारंगत मरीचि नाम से प्रसिद्ध ऋषि ने अपने पिता लोकभावन् ब्रह्मा को भक्ति के साथ प्रणाम किया तथा उनसे हे मानद! हे मुनीश्वर! वही सब पूछा जो कुछ निर्मल पुराणाख्यान आपने मुझसे पूछा है।।१४-१८।।

मरीचिरुवाच

भगवन्देवदेवेश लोकानां प्रभवाप्यय। सर्वज्ञ सर्वकल्याण सर्वाध्यक्ष नमोऽस्तु ते॥१९॥

पुराणबीजमाख्याह मह्यं शुश्रूषवे पितः। लक्षणं च प्रमाणं च वक्तारं पृच्छकं तथा॥२०॥

ऋषि मरीचि कहते हैं—हे भगवान् देवदेवेश! आप लोकों की सृष्टि तथा विनाश करने वाले हैं। हे सर्वज्ञ! सर्वकर्त्ता! सर्वाध्यक्ष! आपको प्रणाम! आप मुझ श्रोता से पुराण बीज कहिये। उसके वक्ता, श्रोता, लक्षण तथा प्रमाण को कहिये।।१९-२०।।

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम्।
यस्मिञ्ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्॥२१॥

पुराणमेकमेवासीत्सर्वकल्पेषु मानद। चतर्वर्गस्य बीजं च शतकोटिप्रविस्तरम्॥२२॥
प्रवृत्ति सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्ततः। कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य महामतिः॥२३॥
हरिर्व्यासस्वरूपेण जायते च युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा॥२४॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोके निर्द्दिशत्यपि। अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम्॥२५॥
अस्त्येव तस्य सारस्तु चतुर्लक्षेण वर्ण्यते। ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीयं तथैव च॥२६॥
भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयं च कीर्तितम्। आग्नेयं च भविष्यं च ब्रह्मवैवर्त्तलिङ्गके॥२७॥

वाराहं च तथा स्कान्दं वामनं कूर्मसंज्ञकम्।
मात्स्यं च गारुड तद्वद्ब्राह्मण्डाख्यमिति त्रिषट्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! मैं पुराण समुच्चय कहता हूं। इसे जान लेने पर सचराचर समस्त वाङ्मय ज्ञात हो जाता है। हे मानद! पूर्व में सभी कल्पों में एक ही पुराण था। यह चतुर्वर्ग का बीज तथा सौ कोटि श्लोकों में विस्तृत था। इस पुराण से ही समस्त शास्त्र उत्पन्न हुये थे। कालक्रम से उस महाविस्तृत पुराण को ग्रहण करने में लोगों को अक्षम जानकर महामति हरि ही व्यासरूपेण युग-युग में उत्पन्न होते हैं। वे प्रति द्वापर युग में पुराण को चार लाख श्लोकों में तथा अट्ठारह भागमय विभक्त करके भूलोक त्याग करते हैं। आज भी देवलोक में शतकोटि विस्तारात्मक पुराण स्थित है। उसका ही साररूप चार लाख श्लोक में कहा गया है। ब्राह्म, पाद्म (ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण), वैष्णव (विष्णु पुराण), वायवीय, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय (अग्नि) भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंगपुराण, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मात्स्य, गारुड़ तथा ब्रह्माण्ड ये अट्ठारह पुराण हैं।।२१-२८।।

एकं कथानकं सूत्रं वक्तुः श्रोतुः समाह्वयम्।
प्रवक्ष्यामि सभासेन निशामय समाहितः॥२९॥

ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय वै। व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना॥३०॥
तद्वै सर्वपुराणाऽग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्। नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्त्रमुच्यते॥३१॥

इन सबका एक ही कथानक सूत्र है। इनके वक्ता-श्रोता के सम्बन्ध में संक्षेपतः कहता हूं। सावधान होकर श्रवण करिये। सबमें प्रथम ब्राह्म पुराण है। महात्मा वेदविदुष व्यास ने इस धर्म-अर्थ-काम-मोक्षप्रद पुराण

को सब पुराणों के पहले लोक कल्याणार्थ कहा था। यह नाना आख्यान तथा इतिहास से सम्पन्न है। इसकी श्लोक संख्या १०००० है।।२९-३१।।

देवानां च सुराणां च यत्रोत्पत्तिः प्रकीर्तिता। प्रजापतीनां च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर॥३२॥
ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्यस्य परमात्मनः। वंशानुकीर्तनं पुण्यं महापातकनाशनम्॥३३॥
यत्रावतारः कथितः परमानन्दरूपिणः। श्रीमतो रामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः॥३४॥
ततश्च सोमवंशस्य कीर्तनं यत्र वर्णितम्। कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम्॥३५॥
द्वीपानां चैव सर्वेषां वर्षाणां चाप्यशेषतः। वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणां च प्रदृश्यते॥३६॥

नरकाणां समाख्यानं सूर्यस्तुतिकथानकम्।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते॥३७॥

दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम्। पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य नारद॥३८॥

हे मुनीश्वर! इसमें देवासुर, प्रजापति, दक्षादि की उत्पत्ति का वर्णन है। इसमें लोकेश्वर परमात्मा सूर्य के वंश का भी वर्णन है, जो महान् पुण्यप्रद एवं महापातक नाशक है। इसमें चतुर्व्यूह सहित अवतार लेने वाले परमानन्दरूपी श्रीमत् रामचन्द्रावतार को भी कहा गया है। इसमें सोमवंश का भी वर्णन किया गया है, जिसमें जगदीश्वर कृष्ण का कलुषनाशक चरित वर्णित है। इसमें अशेष रूप से समस्त द्वीप, वर्ष, पाताल, स्वर्ग, नरक का आख्यान, सूर्यस्तुतिकथन, पार्वती का जन्म-विवाह कहा गया है। उसमें दक्ष का आख्यान तथा एकाम्रक्षेत्र का वर्णन भी है। यह उस पुराण के पूर्वभाग में कहा गया है।।३२-३८।।

अस्योत्तरे विभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम्। विस्तरेण समाख्यातं तीर्थयात्राविधानतः॥३९॥
अत्रैव कृष्णचरितं विस्तरात्समुदीरितम्। वर्णनं यमलोकस्य पितृश्राद्धविधिस्तथा॥४०॥

वर्णाश्रमाणां धर्माश्च कीर्तिता यत्र विस्तरात्।
विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च वर्णनम्॥४१॥

योगानां च समाख्यानं साङ्ख्यानां चापि वर्णनम्। ब्रह्मवादसमुद्देशः पुराणस्य प्रशंसनम्॥४२॥
एतद्ब्रह्मपुराणं तु भागद्वयसमन्वितम्। वर्णितं सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम्॥४३॥

इस पुराण के उत्तर भाग में पुरुषोत्तम क्षेत्र वर्णन तीर्थयात्रा विधि कथित है। इसी भाग में विस्तृत रूपेण कृष्णचरित, यमलोक, पितृश्राद्धविधि, वर्णाश्रमधर्म विस्तार से कहा गया है। इसमें विष्णुधर्म, युग प्रसंग, प्रलय का वर्णन है। इसमें योग तथा सांख्य भी वर्णित है। ब्रह्मवाद के उद्देश्य को कहकर पुराण प्रशंसा की गई है। यह दो भाग में वर्णित है। यह सर्वपापनाशक तथा सर्वसुखप्रद है।।३९-४३।।

सूतशौनकसंवादं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। लिखित्वैतत्पुराणं यो वैशाख्यां हेमसंयुतम्॥४४॥

जलधेनुयुतं चापि भक्त्या दद्याद्द्विजायते।
पौराणिकाय सम्पूज्य वस्त्रभोज्यविभूषणः॥४५॥
स वसेद्ब्रह्मणो लोके यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि ब्राह्मानुक्रमणीं द्विज॥४६॥

सोऽपि सर्वपुराणस्य श्रोतुर्वक्तुः फलं लभेत्।
शृणोति यः पुराणं तु ब्राह्मं सर्व जितेन्द्रियः॥४७॥
हविष्याशी च नियमात्स लभेद्ब्राह्मणः पदम्।
किमत्र बहुनोक्तेन यद्यदिच्छति मानवः।
तत्सर्वं लभते वत्स पुराणस्यास्य कीर्तनात्॥४८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे ब्राह्मपुराणेतिहासकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥
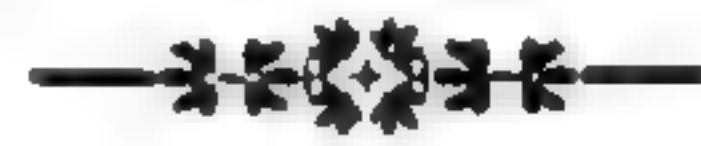
इसमें सूत-शौनक संवाद है, जो भोग-मोक्षप्रद है। वैशाखी पूर्णिमा तिथि पर जो मानव वस्त्र, भोजन, आभूषण से पुराणज्ञ ब्राह्मण की पूजा करके स्वर्ण तथा जलधेनु सहित दान करके लिखित ब्रह्मपुराण उनको भक्तिपूर्वक देता है, वह तब तक ब्रह्मलोक में निवास करेगा जब तक जगत् में चन्द्र-सूर्य की स्थिति रहती है। जो ब्राह्मण ब्रह्मपुराण पढ़ता अथवा सुनता है, वह सर्वपुराण परायण एवं श्रवणफल लाभ करता है। इन्द्रियजित् रहकर नित्य हविष्यान्न भोजन करते ब्रह्मपुराण को सुनने वाला परमब्रह्मपद लाभ करता है। अधिक क्या कहूं! जो कुछ मनुष्य की इच्छा होती है, उसे इस पुराण पाठ से सब प्राप्त हो जाता है।।४४-४८।।

।।९२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
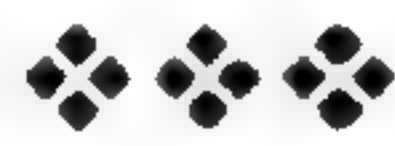
अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

पद्मपुराण का वर्णन

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम्। महत्पुण्यप्रदं नृणां शृण्वतां पठतां मुदा॥१॥
यथा पञ्चेन्द्रियः सर्वः शरीरीति निगद्यते। तथेदं पञ्चभिः खण्डैरुदितं पापनाशनम्॥२॥
पुलस्त्येन तु भीष्माय सृष्ट्यादिक्रमतो द्विज।
नानाख्यानेतिहासाद्यैर्यत्रोक्तो धर्मविस्तरः॥३॥
पुष्करस्य च माहात्म्यं विस्तरेण प्रकीर्तितम्। ब्रह्मयज्ञविधानं च वेदपाठादिलक्षणम्॥४॥
दानानां कीर्तनं यत्र व्रतानां च पृथक्पृथक्।
विवाहः शैलजायाश्च तारकाख्यानकं महत्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! अब पद्मपुराण के सम्बन्ध में श्रवण करो। यह महान् पुण्यप्रद है। यह पढ़ने

तथा सुनने वालों के लिये प्रसन्नता प्रदायक है। जैसे पांच इन्द्रियों वाला व्यक्ति शरीरी कहा गया है, उसी प्रकार पांच खण्डात्मक यह पुराण पापनाशक कही गयी है। हे द्विज! इस पुराण में पुलत्स्य ने भीष्म से सृष्टि आदि का क्रम कहा है। इसमें नाना आख्यान, इतिहास तथा धर्म विस्तार का वर्णन है। इसमें विस्तार से पुष्करतीर्थ का माहात्म्य वर्णित है। ब्रह्मयज्ञ विधि, वेदपाठादिलक्षण, दान तथा व्रत का पृथक्-पृथक् वर्णन इस पुराण में है। इसमें महान् तारक उपाख्यान और शैलकन्या उमा के विवाह का वर्णन भी है।।१-५।।

माहात्म्यं च गवादीनां कीर्तितं सर्वपुण्यदम्।
कालकेयादिदैत्यानां वधो यत्र पृथक्पृथक्।।६।।
ग्रहणामर्चनं दानं यत्र प्रोक्तं द्विजोत्तम। तत्सृष्टिखण्डमुद्दिष्टं व्यासेन सुमहात्मना।।७।।

इसमें सर्वपुण्यप्रद गौ आदि के माहात्म का वर्णन है। कालकेयादि दैत्यों का वध वृत्तान्त भी पृथक्तः कहा गया है। हे द्विजोत्तम! इसमें ग्रहार्चन तथा दान भी कहा गया है। इस खण्ड का नाम महात्मा व्यास ने **सृष्टि खण्ड** कहा है।।६-७।।

पितृमात्रादिपूज्यत्वे शिवशर्मकथा पुरा। सुव्रतस्य कथा पश्चाद्वृत्रस्य च वधस्तथा।।८।।
पृथोर्वैनस्य चाख्यानं सुनीथायाः कथा तथा।
सुकलाख्यानकं चैव धर्माख्यानं ततः परम्।।९।।
पितृशुश्रूषणाख्यानं नहुषस्य कथा ततः। ययातिचरितं चैव गुरुतीर्थनिरूपणम्।।१०।।
राज्ञा जैमिनिसम्वादो बह्वाश्चर्य्यकथायुतः।
कथा ह्यशोकसुन्दर्या हुण्डदैत्यवधान्विता।।११।।
कामोदाख्यानकं तत्र विहुण्डवधसंयुतम्। कुञ्जलस्य च संवादश्च्यवनेन महात्मना।।१२।।
सिद्धाख्यानं ततः प्रोक्तं खण्डस्यास्य फलोहनम्।
सूतशौनकसंवादं भूमिखण्डमिदं स्मृतम्।।१३।।

पितृ-मातृ पूज्यत्व सम्बन्ध में शिवशर्मा की कथा, सुव्रत वृत्तान्त, वृत्रवध, पृथुवेन का उपाख्यान, सुनीथा-सुकला उपाख्यान, धर्माख्यान, पितृसुश्रूषा वर्णन, नहुष की कथा, ययाति चरित, गुरुतीर्थ निरूपण, राजा-जैमिनि संवाद जो अनेक आश्चर्यप्रद कथाओं से संवलित है, अशोक सुन्दरी कथा, हुण्डदैत्यवध, कामोदाख्यान, विहुण्डवध, च्यवन-कुंजल संवाद, सिद्धाख्यान, इस खण्ड का फल कहा गया है। यह सूत-शौनक संवादात्मक **भूमिखण्ड** है।।८-१३।।

ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुदिता यत्रर्षिभिश्च सौतिना।
सभूमिलोकसंस्थानं तीर्थाख्यानं ततः परम्।।१४।।
नर्मदोत्पत्तिकथनं तत्तीर्थानां कथाः पृथक्।
कुरुक्षेत्रादितीर्थानां कथा पुण्या प्रकीर्तिता।।१५।।
कालिन्दीपुण्यकथनं काशीमाहात्म्यवर्णनम्।
गयायाश्चैव माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम्।।१६।।

वर्णाश्रमानुरोधेन कर्मयोगनिरूपणम्। व्यासजैमिनिसंवादः पुण्यकर्मकथान्वितः॥१७॥
समुद्रमथनाख्यानं व्रताख्यानं ततः परम्। ऊर्ज्जपञ्चाहमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वापराधनुत्॥१८॥
एतत्स्वर्गाभिधं विप्र सर्वपातकनाशनम्। रामाश्वमेधं प्रथमं रामराज्याभिषेचनम्॥१९॥
अगस्त्याद्यागमश्चैव पौलस्त्यान्वयकीर्त्तनम्। अश्वमेधोपदेशश्च हयचर्या ततः परम्॥२०॥

अब इस तृतीय खण्ड में सूतपुत्र ने ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ऋषियों से कहा है। तदनन्तर भूलोक संस्थान, तीर्थाख्यान, कालिन्दी के पुण्य का वर्णन, काशी के माहात्म्य का वर्णन, नर्मदा की उत्पत्ति का कथन, तीर्थों की पृथक्तः कथा, कुरुक्षेत्रादि तीर्थों की पुण्य कथा कही गयी है। गया माहात्म्य, प्रयाग के पुण्यक्षेत्र का वर्णन, वर्णाश्रम के अनुसार कर्मयोग निरूपण, पुण्यकथा समन्वित व्यास-जैमिनि संवाद, समुद्रमथनाख्यान, व्रताख्यान, कार्त्तिक के पांच दिन का माहात्म्य, सर्वापराधक शामक स्तोत्र, यही **स्वर्गखण्ड** है, जो महापातक नाशक है। चतुर्थ खण्ड में हे विप्र! रामाश्वमेध, रामराज्याभिषेक, अगत्स्यादि का आगमन, पौलत्स्य वंश कथन, अश्वमेध का उपदेश तथा अश्वचर्या।।१४-२०।।

नानाराजकथाः पुण्या जगन्नाथानुवर्णनम्। वृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥२१॥
नित्यलीलानुकथनं यत्र कृष्णावतारिणः। माधवस्नानमाहात्म्यं स्नानदानार्चने फलम्॥२२॥
धरावराहसंवादो यमब्राह्मणोः कथा। संवादो राजदूतानां कृष्णस्तोत्रनिरूपणम्॥२३॥
शिवशम्भुसमायोगो दधीचाख्यानकं ततः। भस्ममाहात्म्यमतुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम्॥२४॥

नाना राजाओं की कथा जो पुण्यमयी है, जगन्नाथ वर्णन, सर्वपापनाशक वृन्दावन माहात्म्य, कृष्णावतार की नित्यलीला का वर्णन, माधवस्नान महिमा, स्नान-दानार्चन फल, पृथिवी-वराह संवाद, यम तथा ब्राह्मण प्रसंग, राजा का दूतगण से संवाद, कृष्ण स्तोत्र निरूपण, शिवशम्भु का समायोग, दधीच ऋषि का आख्यान, अतुलित भस्म महिमा, अत्युत्तम शिव माहात्म्य।।२१-२४।।

देवरातसुताख्यानं पुराणज्ञप्रशंसनम्। गौतमाख्यानकं चैव शिवगीता ततः स्मृता॥२५॥
कल्पान्तरे रामकथा भारद्वाजाश्रमस्थिता। पातालखण्डमेतद्धि श्रृण्वतां पठतां सदा॥२६॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम्। पर्वताख्यानकं पूर्वं गौर्यै प्रोक्तं शिवेन वै॥२७॥

देवरात के पुत्र का आख्यान, पुराणज्ञ प्रशंसा, गौतमाख्यान, शिवलीला, कल्पान्तर वाली रामकथा जो भारद्वाजाश्रम की है, यह सब **पातालखण्ड** में वर्णित है। इसे जो सुनता अथवा पढ़ता है, उसके लिये यह सर्वपापनाशक एवं इच्छित फलप्रद है। अब पंचमखण्ड का वर्णन इसमें गौरीशंकर ने पर्वताख्यान कहा है।।२५-२७।।

जालन्धरकथा पश्चाच्छ्रीशैलाद्यनुकीर्तनम्। सगरस्य कथा पुण्या ततः परमुदीरितम्॥२८॥
गङ्गाप्रयागकाशीनां गयायाश्चाधिपुण्यकम्। अन्नादिदानमाहात्म्यं तन्महाद्वादशीव्रतम्॥२९॥
चतुर्विंशैकादशीनां माहात्म्यं पृथगीरितम्। विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णुनामसहस्त्रकम्॥३०॥
कार्त्तिकव्रतमाहात्म्यं माघस्नानफलं ततः। जम्बूद्वीपस्य तीर्थानां माहात्म्यं पापनाशनम्॥३१॥
साभ्रमत्याश्च माहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिवर्णनम्। देवशर्मादिकाख्यानं गीतामाहात्म्यवर्णनम्॥३२॥

भक्त्याख्यानं च माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ह।
इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्यं बहुतीर्थकथान्वितम्॥३३॥
मन्त्ररत्नाभिधानं च त्रिपाद्भूत्यनुवर्णनम्।
अवतारकथा पुण्या मत्स्यादीनामतः परम्॥३४॥
रामनामशतं दिव्यं तन्माहात्म्यं च वाडव। परीक्षणं च भृगुणा श्रीविष्णोर्वैभवस्य च॥३५॥
इत्येतदुत्तरं खण्डं पञ्चमं सर्वपुण्यदम्। पञ्चखण्डयुतं पाद्मं यः श्रुणोति नरोत्तमः॥३६॥
स लभेद्वैष्णवं धाम भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्। एतद्वै पञ्चपञ्चाशत्सहस्त्रं पद्मसंज्ञकम्॥३७॥

जालंधर-कथा, श्रीशैल आदि का वर्णन, राजा सगर की कथा जो पुण्यमयी है। गंगा, प्रयाग, काशी, गया के पुण्य का वर्णन, अन्नादि दान महिमा, महाद्वादशीव्रत, चौबीस एकादशी का अलग-अलग माहात्म्य वर्णन, विष्णु धर्म वर्णन, विष्णु सहस्रनाम, कार्त्तिक व्रत माहात्म्य, माघस्नानफल, जम्बूद्वीपस्थ पापनाशक तीर्थ वर्णन, साभ्रमती महिमा, नृसिंहोत्पत्ति वर्णन, देवशर्मा प्रभृति का आख्यान, गीता की महिमा का वर्णन, भक्ति का आख्यान, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, इन्द्रप्रस्थ माहात्म्य, अनेक तीर्थों की कथा, मन्त्र-रत्न का वर्णन, त्रिपाद् विभूति वर्णन, पुण्या अवतार कथा जो मत्स्यादि अवतारों की है, दिव्य राम नाम शतक, उसकी महिमा, वाड़व माहात्म्य, श्रीविष्णु के वैभव की भृगु द्वारा परीक्षा। यही पवित्र उत्तर पंचम खण्ड है, जो सर्वपुण्यदायक है। जो मनुष्य इन पंचखण्डात्मक पद्मपुराण का श्रवण करता है, वह ईप्सित भोग भोगकर वैष्णव धाम जायेगा। यह पांचखण्डात्मक पुराण पद्मनाभ है, जो ५५००० श्लोकात्मक है।।२८-३७।।

पुराणं लेखयित्वा वै ज्येष्ठ्यां स्वर्णाब्जसंयुतम्।
यः प्रदद्यात्सुसत्कृत्य पुराणज्ञाय मानद॥३८॥
स याति वैष्णवं धाम सर्वदेव नमस्कृत। पद्मानुक्रमणीमेतां यः पठेच्छृणुयात्तथा॥३९॥
सोऽपि पद्मपुराणस्य लभेच्छ्रवणजं फलम्॥४०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे पद्मपुराणानुक्रमणिकावर्णनं
नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः।।९३।।

जो इस पुराण को लिखकर ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन स्वर्ण कमल सहित पुराणज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह सर्वदेववन्दित होकर विष्णुलोक जाता है। इस पदानुक्रमणी को जो पढ़ता अथवा सुनता है, उसे इस पुराण श्रवण का फल मिलता है।।३८-४०।।

।।९३वां अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

विष्णु पुराण की विषयानुक्रमणिका

श्रीब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत्। त्रयोविंशतिसाहस्त्रं सर्वपातकनाशनम्॥१॥
यत्रादिभागे निर्दिष्टाः षडंशा शक्तिजेन ह। मैत्रेयायादिमे तत्र पुराणस्यावतारिकाम्॥२॥
आदिकारणसर्गश्च देवादीनां च सम्भवः। समुद्रमथनाख्यानं दक्षादीनां ततोऽन्वयः॥३॥
ध्रुवस्य चरितं चैव पृथोश्चरितमेव च। प्राचेतसं तथाख्यानं प्रह्लादस्य कथानकम्॥४॥
पृथग्राज्याधिकाराख्या प्रथमोंऽश इतीरितः। प्रियव्रताऽन्वयाख्यानं द्वीप वर्षनिरूपणम्॥५॥
पातालनरकाख्यानं सप्तस्वर्गनिरूपणम्। सूर्यादिवारकथनं पृथग्लक्षणसंयुतम्॥६॥
चरितं भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिदर्शनम्। निदाघऋभुसंवादो द्वितायोंऽश उदाहृतः॥७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे वत्स! अब मैं अखिल पातक नाशक २३००० स्तोत्रों वाले महत् वैष्णव पुराण का वर्णन करता हूं। इसके आदि भाग में पराशर द्वारा छः अंश कहे गये हैं। प्रारंभ में इन मुनि ने मैत्रेय मुनि से इस पुराण की अवतरणिका कहा था। तत्पश्चात् सृष्टि के आदि कारण का वर्णन, देवताओं की उत्पत्ति, समुद्र मथनाख्यान, दक्षादि का वंश वर्णन, ध्रुवचरित, पृथुचरित, प्राचेतसाख्यान, प्रह्लाद कथानक, पृथु के राज्याधिकार का वर्णन, ये सब **प्रथमांश** में वर्णित हैं। **द्वितीयांश** में प्रियव्रत के वंश का वर्णन, द्वीपों तथा वर्षों का निरूपण, पाताल-नरक उपाख्यान, सप्तस्वर्ग वर्णन, सूर्यादि वार (सोम मंगल इत्यादि) कथन इनके पृथक् लक्षण सहित, भरत चरित, मुक्तिमार्ग का वर्णन, निदाघ ऋभु संवाद यह **द्वितीयांश** में वर्णित है।।१-७।।

मन्वन्तरसमाख्यानं वेदव्यासावतारकम्। नरकोद्धारकं कर्म गदितं च ततः परम्॥८॥
सगरस्यौर्वसंवादे सर्वधर्मनिरूपणम्। श्राद्धकल्पं तथोद्दिष्टं वर्णाश्रमनिबन्धनम्॥९॥
सदाचारश्च कथितो मायामोहकथा ततः। तृतीयोंऽशोऽयमुदितः सर्वपापप्रणाशनः॥१०॥
सूर्यवंशकथा पुण्या सोमवंशाऽनुकीर्तनम्। चतुर्थेंऽशे मुनिश्रेष्ठ नानाराजकथान्वितम्॥११॥
कृष्णावतारसम्प्रश्नो गोकुलीया कथा ततः।
पूतनादिवधो बाल्ये कोमारेऽघादिहिंसनम्॥१२॥
कैशोरे कंसहननं माथुरं चरितं तथा। ततस्तु यौवने प्रोक्ता लीला द्वारवतीभवा॥१३॥
सर्वदैत्यवधो यत्र विवाहाश्च पृथग्विधाः। यत्र स्थित्वा जगन्नाथः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः॥१४॥
भूभारहरणं चक्रे परेषां हननादिभिः। अष्टावक्रीयमाख्यानं पञ्चमोंऽश इतीरितः॥१५॥

तृतीयांश में मन्वन्तराख्यान, वेदव्यास का अवतार, नरकोद्धारक कर्म कहा गया है। सगर तथा और्व संवाद, सर्वधर्म निरूपण, श्रद्धाकल्प, वर्णाश्रम निरूपण, सदाचार-मायामोह वर्णन यह सर्व पापनाशक तृतीयांश में कहा है। **चतुर्थांश** में सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश कथा, नाना राजाओं की कथा, कृष्णावतार विषयक प्रश्न,

गोकुल उपाख्यान, कृष्ण द्वारा बाल्यकाल में पूतनावध, कौमारावस्था के अघासुरवध, किशोरावस्था में कंसवध, मथुरा में किये चरित्र का वर्णन, यौवन में द्वारिका लीला दैत्यवध, नाना विवाह कहा गया है। **पंचमांश** में जगन्नाथ योगेश्वरेश्वर कृष्ण द्वारा शत्रु वध तथा पृथिवी के भार को उतारना कहा गया है। अष्टावक्रीय आख्यान भी पंचमांश में कहा गया है।।८-१५।।

कलिजं चरितं प्रोक्तं चातुर्विध्यं लयस्य च। ब्रह्मज्ञानसमुद्देशः खण्डिक्यस्य निरूपितः।।१६।।
केशिध्वजेन चेत्येष षष्ठोंऽशः परिकीर्तितः। अतः परं तु सूतेन शौनकादिभिरादरात्।।१७।।
पृष्टेन चोदिताः शश्वद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः। नानाधर्मकथाः पुण्या व्रतानि नियमा यमाः।।१८।।

धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदान्तं ज्योतिषं तथा।
वंशाख्यानं प्रकरणात् स्तोत्राणि मनवस्तथा।।१९।।

नानाविद्यास्तथा प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारिकाः। एतद्विष्णुपुराणं वै सर्वशास्त्रार्थसङ्ग्रहम्।।२०।।

षष्ठ अंश में कलिचरित, चतुर्लय, ब्रह्मज्ञान, खाण्डिक्य प्रसंग, केशिध्वजोपाख्यान कहे गये हैं। तदनन्तर शौनकादि ऋषिगण ने सूत से सादर शाश्वत विष्णुधर्म सम्बन्धित प्रश्न किया, तब नाना धर्मकथा, व्रत, नियम, यम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष, वंशाख्यान, स्तोत्र, मन्त्र, नानाविद्या कही गयी जो लोकोपकारार्थ है। यह सर्वशास्त्र संग्रहरूप विष्णु पुराण है।।१६-२०।।

वाराहकल्पवृत्तान्तं व्यासेन कथितं त्विह।
यो नरः पठते भक्त्याः यः श्रृणोति च सादरम्।।२१।।
तावुभौ विष्णुलोकं हि व्रजेतां भुक्तभोगकौ।
तल्लिखित्वा च यो दद्यादाषाढ्यां घृतधेनुना।।२२।।

सहितं विष्णुभक्ताय पुराणार्थविदे द्विज। स याति वैष्णवं धाम विमानेनार्कवर्चसा।।२३।।

व्यास ने यहां वाराहकल्प वृत्तान्त भी कहा है। जो इसका सादर पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सर्वभोगयुक्त जीवन बिताकर अन्ततः विष्णुलोक गमन करता है। जो इसे लिखकर घृत धेनुसहित आषाढ़ी पूर्णिमा तिथि पर पुराणज्ञ द्विज को देता है, जो विष्णुभक्त भी हो, वह सूर्यवत् प्रभायुक्त विमान पर आरूढ़ होकर वैष्णवधाम जाता है।।२१-२३।।

यश्च विष्णुपुराणस्य समनुक्रमणीं द्विज। कथयेच्छृणुयाद्वापि स पुराणफलं लभेत्।।२४।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे विष्णुपुराणानुक्रमणी-
निरूपणं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।९४।।

जो विष्णु पुराण की इस अनुक्रमणी का पाठ करेगा अथवा सुनेगा, उसे पुराणफल की प्राप्ति होगी।।२४।।

।।९४वां अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

वायु पुराण की विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं वायवीयकम्। यस्मिञ्छ्रुते लभेद्धाम रुद्रस्य परमात्मनः॥१॥
चतुर्विंशतिसाहस्त्रं तत्पुराणं प्रकीर्तितम्। श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मानत्राह मारुतः॥२॥
तद्वायवीयमुदितं भागद्वयसमन्वितम्। सर्गादिलक्षणं यत्र प्रोक्तं विप्र सविस्तरम्॥३॥
मन्वन्तरेषु वंशाश्च राज्ञां ये तत्र कीर्तिताः। गयासुरस्य हननं विस्तराद्यत्र कीर्तितम्॥४॥
मासानां चैव माहात्म्यं माधस्योक्तं फलाधिकम्।
दानधर्मा राजधर्मा विस्तरेणोदितास्तथा॥५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे विप्र! अब मैं वायवीय पुराण का वर्णन करता हूं। इसे सुनने वाला परमात्मा रुद्र का धाम प्राप्त करता है। यह २४००० श्लोकों वाला पुराण है। वायुपुराण में श्वेतकल्प सन्दर्भ में धर्म का उपदेश यहां दिया है। यह वायुपुराण भागद्वय समन्वित हैं। (पूर्वभाग) इसमें सृष्टि लक्षण सविस्तार वर्णित है। हे विप्र! मन्वन्तरों में उत्पन्न राजाओं के वंश का इसमें उल्लेख है। इसमें गयासुर वध का विस्तृत वर्णन है। मासों के माहात्म्य वर्णन में माघ फल प्रभूत रूप से वर्णित है। इसमें दानधर्म तथा राजधर्म भी विस्तार से कहा गया है।।१-५।।

भूपातालककुब्व्योमचारिणां यत्र निर्णयः। व्रतादीनां च पूर्वोऽयं विभागः समुदाहृतः॥६॥
उत्तरे यस्य भागे तु नर्मदातीर्थवर्णनम्। शिवस्य संहितोक्ता वै विस्तरेण मुनीश्वर॥७॥
यो देवः सर्वदेवानां दुर्विज्ञेयः सनातनः। स तु सर्वात्मना यस्यास्तीरे तिष्ठति सन्ततम्॥८॥
इदं ब्रह्मा हरिरिदं साक्षाच्चेदं परो हरः। इदं ब्रह्म निराकारं कैवल्यं नर्मदाजलम्॥९॥
ध्रुवं लोहहितार्थाय शिवेन स्वशरीरितः। शक्तिः कपि सरिद्रूपा रेवेयमवतारिता॥१०॥
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रस्यानुचरा हि ते।
वसन्ति याम्यतीरे ये लोकं ते यान्ति वैष्णवम्॥११॥
ओङ्कारेश्वरमारभ्य यावत्पश्चिमसागरः। सङ्गमाः पञ्च च त्रिंशन्नदीनां पापनाशनी॥१२॥

पृथिवी पाताल, दिशा, आकाशचारीगण, व्रतादि का निर्णय भी इसमें है। हे मुनीश्वर! अब उत्तर भाग का वर्णन करते हैं। इसमें नर्मदा तीर्थ तथा शिवसंहिता का विस्तृत वर्णन है। सनातन देव सर्वदेवगण हेतु दुर्ज्ञेय हैं। वे नर्मदा तट पर सदा निवास करते हैं। नर्मदाजल ब्रह्मा, साक्षात् अवतीर्ण किया। जो इसके उत्तर तट पर रहते हैं, वे हरि, हर, निराकार ब्रह्म तथा निर्वाण रूप है। लोककल्याणार्थ शिव ने स्वशरीर की शक्ति को ही रेखारूपेण साक्षात् रुद्र के अनुचर हैं। जो दक्षिण तट निवासी हैं, वे तो विष्णुलोकगामी होते हैं। इसमें ओंकारेश्वर से लगाकर पश्चिम सागर तक ३५ पापनाशक नदियां मिलती हैं।।६-१२।।

दशैकमुत्तरे तीरे त्रयोविंशतिर्दक्षिणे। पञ्चत्रिंशत्तमः प्रोक्तो रेवासागरसङ्गमः॥१३॥
सङ्गमैः सहितान्येव रेवातीरद्वयेऽपि च। चतुःशतानि तीर्थानि प्रसिद्धानि च सन्त हि॥१४॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यो मुनीश्वर। सन्ति चान्यानि रेवायास्तीरयुग्मे पदे पदे॥१५॥

११ नदियां नर्मदा में उत्तरतट पर मिली हैं। २३ नदियां दक्षिण में मिली हैं। पच्चीसवें का नाम है रेवा सागर संगम। रेवा के दोनों तट पर संगम वाले तीर्थों सहित ४०० प्रसिद्ध तीर्थ हैं। हे मुनीश्वर! साठ कोटि आठ सहस्र अन्य तीर्थ रेवा के उभय तटों पर पग-पग में स्थित हैं।।१३-१५।।

संहितेयं महापुण्या शिवस्य परमात्मनः। नर्मदाचरितं यत्र वायुना परिकीर्तितम्॥१६॥
लिखित्वेदं पुराणं तु गुडधेनुसमन्वितम्।
श्रावण्यां यो ददेद्भक्त्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥१७॥
रुद्रलोके वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। यः श्रावयेद्वा शृणुयाद्वायवीयमिदं नरः॥१८॥
नियमेन हविष्याशी स रुद्रो नात्र संशयः। यश्चानुक्रमणीमेतां शृणोति श्रावयेत्तथा॥१९॥
सोऽपि सर्वपुराणस्य फलं श्रवणजं लभेत्॥२०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे वायुपुराणानुक्रमणी-
निरूपणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥९५॥
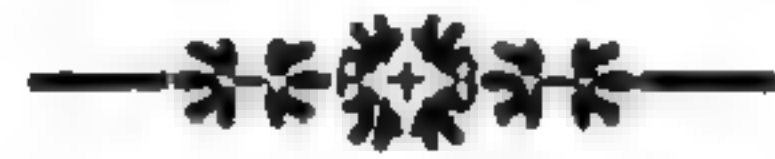
यह परमात्मा शिव की संहिता अमित पुण्यप्रदा है। यहां नर्मदा चरित वायुदेव ने कहा है। इस पुराण को लिखकर गुड़ निर्मित धेनु सहित श्रावणी पूर्णिमा को जो कुटुम्बी ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह चतुर्दश इन्द्र को काल तक रुद्रलोक में रहता है। जो नर नियमतः हविष्यान्न से निर्वाह करता इसे सुनाता अथवा सुनता है, वह निःसन्देह रुद्र ही है। जो इस अनुक्रमणिका को सुनेगा अथवा सुनायेगा, वह भी वायुपुराण श्रवण का फललाभ करेगा।।१६-२०।।

।।९५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
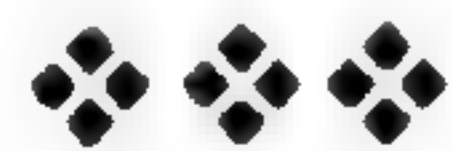
अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

श्रीभागवत पुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मोवाच

मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम्। श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥१॥
तदष्टादशसाहस्त्रं कीर्तितं पापनाशनम्। सूरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः॥२॥

भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपी समीरितः। तत्र तु प्रथमस्कन्धे सूतर्षीणां समागमे॥३॥
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च। परीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मरीचि! वेदव्यास ने ब्रह्मसम्मत श्रीमद्भागवत् नामक पुराण को लिखा है। उसका मैं वर्णन करता हूं। इस पापनाशक पुराणान्तर्गत् १८००० श्लोक हैं। यह कल्पवृक्ष रूप तथा १२ स्कन्धात्मक है। हे विप्रेन्द्र! इसे भगवान् विश्वरूप ही समझो। इसके **प्रथम स्कन्ध** का विषय है—सूत तथा ऋषि समागम। इसमें व्यास तथा पाण्डवों का पुण्यचरित, परीक्षित उपाख्यान कहा गया है।।१-४।।

परीक्षिच्छुकसंवादे सृष्टिद्वयनिरूपणम्। ब्रह्मानारदसंवादे देवताचरितामृतम्॥५॥
पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः। द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता॥६॥
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः। सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः॥७॥
कापिलं साङ्ख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः। सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः॥८॥
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषम्। इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः॥९॥
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम्।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः॥१०॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमी मतः। अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम्॥११॥
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम्। सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्तने॥१२॥
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम्।
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे॥१३॥

इस परीक्षित-शुक संवादात्मक **द्वितीय स्कन्ध** में व्यास जी द्वारा सृष्टिद्वय निरूपण, ब्रह्मा-नारद संवादान्तर्गत देवगण का चरित, पुराणलक्षण-सृष्टिकारण वर्णित है। **तृतीय स्कन्ध** में विदुर चरित, मैत्रेय-विदुर मिलन, परमात्मा ब्रह्मा की सृष्टि वर्णन, कपिल कथित सांख्यशास्त्र का निरूपण वर्णित है। **चतुर्थ स्कन्धान्तर्गत्** सत्या, ध्रुव चरित, पृथु का पुण्य आख्यान, प्राचीनबर्हिष् चरित्र का पवित्र उपाख्यान वर्णित है। **पंचमस्कन्धान्तर्गत्** प्रियव्रत तथा उस वंश के लोगों का उत्तम चरित, ब्रह्माण्डान्तर्गत् अन्तर्वर्ती लोक तथा नरक की स्थिति प्रदर्शित है। **षष्ठस्कन्धान्तर्गत्** अजामिल चरित, दक्षसृष्टि निरूपण, प्रह्लाद का पुण्य चरित, वर्णाश्रम निरूपण वर्णित है। **सप्तम स्कन्ध** में वासना जनित कर्म वर्णन, वृत्र का उपाख्यान, मरुद्गण का उत्तम पुण्यप्रद जन्म **अष्टम स्कन्ध में** व्यासदेव ने।।५-१३।।

गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणे। समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबन्धनम्॥१४॥
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः। सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम्॥१५॥
वंश्यानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते।
कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः॥१६॥
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः। भूभारहरणं चात्रनिरोधे दशमः स्मृतः॥१७॥

नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः। यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च॥१८॥

यादवानां मिथोंतश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः।

भविष्यकलिनिर्द्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः॥१९॥

वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः क्रिया। सौरी विभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम्॥२०॥

पुराणसङ्ख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम्। इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव॥२१॥

मन्वन्तर निरूपण, गजेन्द्रमोक्ष, सागरमन्थन, बलिवैभवबन्धन, मत्स्यावतार चरित कहा है। हे महामति! **नवम स्कन्ध** में सूर्यवंशोपाख्यान, सोमवंश निरूपण, वंशचरित अंकित है। **दशमस्कन्धान्तर्गत्** कृष्ण की बाललीला, कुमारावस्था में व्रज में निवास, कैशोरावस्था में मथुरावास, युवावस्था में द्वारका निवास, युवावस्था में उनके द्वारा भूभारहरण वर्णित है। **एकादश स्कन्धान्तर्गत्** नारद वासुदेव संवाद, यदु-दत्तात्रेय संवाद, कृष्ण-उद्धव संवाद, यादवों का पारस्परिक नाश वर्णित है। **द्वादशस्कन्ध** में भविष्यत् निर्देश, राजा परीक्षित की मोक्षप्राप्ति, वेदशाखा निर्माण, मार्कण्डेय का तप, सौरी सनातनी विभूति, पुराणसंख्या वर्णित है। हे वत्स! मैंने यह भागवत तुमसे कहा।।१४-२१।।

वक्तुः श्रोतुश्चोपदेष्टुरनिमोदितुरेव च। साहाय्यकतुर्गदितं भक्तिभुक्तिविमुक्तिदम्॥२२॥

प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमन्वितम्। देयं भागवतायेदं द्विजाय प्रीतिपूर्वकम्॥२३॥

सम्पूज्य वस्त्रहेमाद्यैर्भगवद्भक्तिमिच्छता। योऽप्यनुक्रमणीमेतां श्रावयेच्छृणुयात्तथा।

स पुराणश्रवणजं प्राप्नोति फलमुत्तमम्॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे श्रीमद्भागवतानुक्रमणी-
निरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः।।९६।।

—※※※—
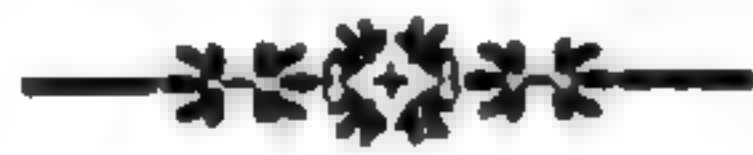
जो वक्ता, श्रोता, उपदेशक, अनुमोदक तथा इस कार्य में सहायक होते हैं, उनको भुक्ति-मुक्ति तथा भक्तिलाभ होता है। जो भगवान् की भक्ति पाना चाहता है, वह भाद्रपदी पूर्णिमा के दिन वस्त्र, स्वर्णादि से प्रसन्नता के साथ भगवान् के भक्त ब्राह्मण की पूजा करके स्वर्ण सिंह तथा भागवतपुराण उसे अर्पित करे। जो मानव इस विषयानुक्रमणिका को सुनता है अथवा सुनाता है, वह पुराण श्रवण जनित उत्तम फललाभ करता है।।२२-२४।।

।।९६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
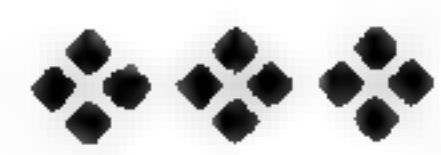
अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

श्रीनारदीय पुराण की विषयानुक्रमणी

श्रीब्रह्मोवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम्। पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहत्कल्पकथाश्रयम्॥१॥
सूतशौनकसंवादः सृष्टिसंक्षेपवर्णनम्। नानाधर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्ते समुदाहृताः॥२॥
प्राग्भागे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना। द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम्॥३॥
वेदाङ्गानां च कथनं शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात्। सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने॥४॥
महातन्त्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम्। मन्त्राणां शोधनं दीक्षामन्त्रोद्धारश्च पूजनम्॥५॥
प्रयोगः कवचं नामसहस्रं स्तोत्रमेव च। गणेशसूर्यविष्णूनां शिवशक्त्योरनुक्रमात्॥६॥
सनत्कुमारमुनिना नारदाय तृतीयके। पुराणलक्षणं चैव प्रमाणं दानमेव च॥७॥
पृथक्पृथक् समुद्दिष्टं दानकालपुरःसरम्। चैत्रादिसर्वमासेषु तिथीनां च पृथक्पृथक्॥८॥
प्रोक्तं प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम्। सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके॥९॥
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यानसंज्ञितः। अस्योत्तरे विभागे तु प्रश्न एकादशीव्रते॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्र! अब नारदीय पुराण का वर्णन सुनो। बृहत्कल्प तथा समन्वित यह पुराण २५००० श्लोकों वाली है। पूर्वाद्ध के **प्रथम पाद** में सूत-शौनक संवाद, सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन, नाना धर्मकथा, कहा गया है। यह प्रथम पाद में सनक महात्मा ने कहा। **द्वितीय पाद** में मोक्षधर्म, मोक्षोपाय निरूपण, वेदांग वर्णन, शुकोत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। इसे महात्मा नारद से सनन्दन ने कहा है। तृतीय पादान्तर्गत् महातन्त्र में पशुपाश मोक्ष, मन्त्र शोधन, दीक्षा, मन्त्रोद्धार, पूजन, प्रयोग, कवच सहस्रनाम, स्तोत्र, गणेश, सूर्य, विष्णु, शिवशक्ति का स्तवादि सनत्कुमार मुनि ने कहा। **तृतीय पाद में** पुराणलक्षण, प्रमाण, दान दानकाल आदि पृथक्तः कहा गया। यह बृहदाख्यान पुराण का पूर्वभाग है। उत्तरार्द्ध में एकादशी व्रत सम्बन्धित प्रश्न है।।१-१०।।

वसिष्ठेनाथ संवादो मान्धातुः परिकीर्तिताः।
रुक्माङ्गकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च॥११॥
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया। गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम्॥१२॥
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम्।
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम्॥१३॥
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम्।
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा॥१४॥
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाक्षायास्तथैव च। प्रभासस्य च माहात्म्यं पुष्कराख्यानकं ततः॥१५॥

गौतमाख्यानकं पश्चाद्वेदपादस्तवस्ततः। गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा॥१६॥

वसिष्ठ-मांधाता संवाद, रुक्मांगद कथा, पुण्यमय मोहिनी उत्पत्ति कर्म, मोहिनी को वसुगण का शाप, तदनन्तर मोहिनी का उद्धार, गंगा कथा, पुण्यमय गयायात्रा वर्णन, काशी का अतुलित माहात्म्य, पुरुषोत्तम तीर्थ वर्णन, क्षेत्रों की यात्रा का विधान, अनेक उपाख्यान, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, कामोदा, बदरीतीर्थ, कामाक्षा, प्रभास, पुष्कर का माहात्म्य कहा गया है। गौतमाख्यान, वेदपादस्तव, गोकर्ण माहात्म्य, लक्ष्मणोपाख्यान वर्णित है।।११-१६।।

सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम्। अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम्॥१७॥
वृन्दावनस्य महिमा वसुर्ब्रह्मान्तिके गतिः। मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम्॥१८॥

सेतुबन्ध माहात्म्य, नर्मदातीर्थ वर्णन, अवन्ति माहात्म्य, मथुरा माहात्म्य, वृन्दावनमहिमा, ब्रह्मा के यहां वसु का जाना, मोहिनी चरित। यही नारदीय पुराण है।।१७-१८।।

यः श्रृणोति नरो भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स याति ब्राह्मणो धाम नात्र कार्या विचारणा॥१९॥
यस्त्वेतदिषुपूर्णायां धेनूनां सप्तकान्वितम्। प्रदद्यादिदद्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च॥२०॥
यश्चानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत्। श्रृणुयाद्वैकचित्तेन सोऽपि स्वर्गगतिं लभेत्॥२१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे नारदीयपुराणानुक्रमणीकथनं
नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः।।९७।।

जो व्यक्ति समाहित होकर इसे भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मा के धाम में जाता है। इसमें अन्यथा विचार न करे। जो मनुष्य अश्विन पूर्णिमा के दिन यह पुराण उत्तम ब्राह्मण को सात गौओं के साथ देता है, वह मोक्षभागी होता है। जो नारदीय पुराण की इस अनुक्रमणी का श्रवण करायेगा अथवा तन्मय होकर श्रवण करेगा, उसे स्वर्गलाभ होगा।।१९-२१।।

।।९७वां अध्याय समाप्त।।

अथ अष्टनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय पुराण की विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयाभिधं मुने। पुराणं सुमहत्पुण्यं पठतां श्रृण्वतां सदा॥१॥
यत्राधिकृत्य शकुनीन्सर्वधर्मनिरूपणम्। मार्कण्डेयपुराणं तन्नवसाहस्त्रमीरितम्॥२॥

मार्कण्डेयमुनेः प्रश्नो जैमिनेः प्राक्समीरितः। पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्॥३॥
पूर्वजन्मकथा चैषां विक्रिया चादिवस्पतेः। तीर्थयात्रा बलस्याथ द्रौपदेयकथानकम्॥४॥
हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम्। पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिवर! अब मैं मार्कण्डेय पुराण कहता हूं। जिसे सुनना महापुण्यप्रद है। इसमें शकुनी पक्षियों के माध्यम से सर्वधर्मनिरूपण किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में ९००० श्लोक हैं। इसमें पहले जैमिनी से मार्कण्डेय मुनि का प्रश्न है, धर्मपक्षियों का जन्म निरूपण, उनका पूर्वजन्म प्रसंग, दिवस्वपति की विक्रिया, बलदेव की तीर्थयात्रा, द्रौपदेय की कथा, हरिश्चन्द्र की पुण्यकथा, आढ़ी-बक युद्ध, पिता-पुत्र का आख्यान तथा दत्तात्रेय प्रसंग वर्णित है।।१-५।।

हैहयस्याथ चरितं महाख्यानसमन्वितम्। मदालसाकथा प्रोक्ता ह्यलर्कचरितान्विता॥६॥
सृष्टिसङ्कीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम्। कल्पान्तकालनिर्देशो यक्षसृष्टिनिरूपणम्॥७॥
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपचर्यानुकीर्तनम्। मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः॥८॥
तासु दुर्गाकथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे। तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजःसमुद्भवा॥९॥

मार्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमन्विता।
वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सप्रीश्चरितं ततः॥१०॥
खनित्रस्य ततः प्रोक्त तथा पुण्या महात्मनः।
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्त्तनम्॥११॥

हैहैयराज का चरित महाख्यानमय वर्णित है, मदालसा की कथा, अकर्ल चरित, नवधा सृष्टि वर्णन, कल्पान्तकाल का वर्णन, यक्षसृष्टि वर्णन, रुद्रादिसृष्टि, द्वीपचर्या, मनुगण की पापनाशक कथायें, अष्टममन्वन्तर वाली अतिपावन दुर्गा कथा, प्रणवोत्पत्ति, त्रयीतेजोद्भव, मार्त्तण्डजन्म तथा माहात्म्य, वैवस्वत वंश वर्णन, वत्सप्री चरित, खनिज की पावन कथा, अवीक्षित चरित, किमिच्छव्रत वर्णन,।।६-११।।

नरिष्यन्तस्य चरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः। नलस्य चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा॥१२॥
कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्त्तनम्। पुरूरवःकथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता॥१३॥
ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्त्तनम्। श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः॥१४॥

द्वारकाचरितं चाथ कथा सर्वावतारजा।
ततः साङ्ख्यसमुद्देशः प्रपञ्चासत्त्वकीर्त्तनम्॥१५॥

मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम्। यः श्रृणोति नरोभक्त्या पुराणमिदमादरात्॥१६॥

मार्कण्डेयाभिधं वत्स स लभेत्परमां गतिम्।
यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम्॥१७॥
तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम्।
कार्तिक्यां द्विजवर्याय स लभेद्ब्रह्मणः पदम्॥१८॥

श्रृणोति श्रावयेद्वापि यश्चानुक्रमणीमिमाम्।
मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम्॥१९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे मार्कण्डेयपुराणानुक्रमणी-निरूपणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥

नरिष्यन्त चरित, इच्छ्वाकुचरित, नलचरित, रामचन्द्र की सत्कथा, कुशवंश समाख्यान, सोमवंश कीर्त्तन, पुरूरवाकथा, नहुष की अद्भुद् कथा, ययातिचरित, पुण्यमय यदुवंश वर्णन, श्रीकृष्ण का बाल तथा मथुरा का चरित, उनका द्वारका चरित, सर्वावतार कथा, सांख्योपदेश, प्रपंचसत्व वर्णन, मार्कण्डेय चरित, पुराणश्रवणफल। जो इस पुराण को आदर सहित श्रवण करता है, वह परमगति लाभ करता है। हे वत्स! इसे पाठ करने वाला शिवलोक लाभ करता है। जो इसे लिखकर कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन उत्तम ब्राह्मण को स्वर्ण हाथी के साथ अर्पित करता है, उसे ब्रह्मपद लाभ होगा। जो इस अनुक्रमणी का श्रवण करता अथवा अन्य को श्रवण कराता है, वह वांछित फललाभ करेगा।।१२-१९।।

।।९८वां अध्याय समाप्त।।
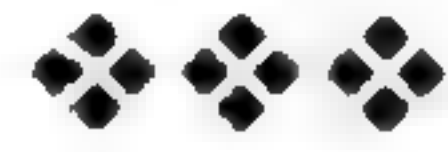
अथ नवनवतितमोऽध्यायः

अग्निपुराण की विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तवाग्नेयपुराणकम्। ईशानकल्पवृत्तान्तं वसिष्ठायानलोऽब्रवीत्॥१॥
तत्पञ्चदशसाहस्रं नानाचरितमद्भुतम्। पठतां श्रृण्वतां चैव सर्वपापहरं नृणाम्॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—अब मैं तुमसे अग्निपुराण कहूंगा। अग्नि ने इसके द्वारा वसिष्ठ से ईशानकल्प का प्रसंग कहा था। इसमें १५००० श्लोक हैं तथा यह अनेक अद्भुद चरितों से युक्त है, जिसके पाठ अथवा श्रवण से मनुष्यों के सभी पापों का हरण हो जाता है।।१-२।।

प्रश्नः पूर्व पुराणस्य कथा सर्वावतारजा। सृष्टिप्रकरणं चाथ विष्णुपूजादिकं ततः॥३॥
अग्निकार्यं ततः पश्चान्मन्त्रमुद्रादिलक्षणम्। सर्वदीक्षाविधानं च अभिषेकनिरूपणम्॥४॥
लक्षणं मण्डलादीनां कुशापमार्जनं ततः। पवित्रारोपणविधिर्देवालयविधिस्ततः॥५॥
शालग्रामादिपूजा च मूर्तिलक्ष्म पृथक्पृथक्।
न्यासादीनां विधानं च प्रतिष्ठापूर्वकं ततः॥६॥

विनायकादिपूजा च नानादीक्षाविधिः परम्।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां ब्रह्माण्डस्य निरूपणम्॥७॥

इसमें सर्वप्रथम पुराण से सम्बन्धित प्रश्न है। तदनन्तर सभी अवतार कथा, सृष्टि प्रकरण, विष्णु पूजा, अग्नि कार्य, मन्त्र—मुद्रादि लक्षण, समस्त दिशा विधान, अभिषेक निरूपण, मण्डलादि लक्षण, कुशामार्जन, पवित्रारोपण विधि, देवालयविधि, शालग्राम पूजा, पृथक् मूर्तिचिह्न न्यासादि विधान, प्रतिष्ठा सहित विनायकादि पूजन, नानादीक्षाविधि सर्वदेव प्रतिष्ठा, ब्रह्माण्ड निरूपण।।३-७।।

गङ्गादितीर्थमाहात्म्यं द्वीपवर्षानुवर्णनम्। ऊद्ध्वार्धोलोकरचना ज्योतिश्चक्रनिरूपणम्॥८॥
ज्योतिषं च ततः प्रोक्तं शास्त्रं युद्धजयार्णवम्।
षट्कर्म च ततः प्रोक्तं मन्त्रमन्त्रौषधीगणः॥९॥
कुब्जिकादिसमर्चत्वं षोढा न्यासविधिस्तथाः।
कोटिहोमविधानं च मन्वन्तरनिरूपणम्॥१०॥
ब्रह्मचर्यादिधर्मांश्च श्राद्धकल्पविधिस्ततः। ग्रहयज्ञस्ततः प्रोक्तो वैदिकस्मार्तकर्म च॥११॥
प्रायश्चित्तानुकथनं तिथिनां च व्रतादिकम्। वारव्रतानुकथनं नक्षत्रव्रतकीर्तनम्॥१२॥
मासिकव्रतनिर्द्देशो दीपदानविधिस्तथा। नवव्यूहार्चनं प्रोक्तं नरकाणां निरूपणम्॥१३॥
व्रतानां चापि दानानां निरूपणमिहोदितम्। नाडीचक्रसमुद्देशः सन्ध्याविधिरनुत्तमः॥१४॥

गंगादितीर्थ माहात्म्य, द्वीपों तथा वर्षों का वर्णन, ऊर्ध्व-अधः लोकरचना, ज्योतिश्चक्र निरूपण, ज्योतिष, मन्त्र तथा मन्त्रौषधि वर्णन, षट्कर्म, युद्धजयशास्त्र, कुब्जा प्रभृति की समर्चा, षड्विध न्यास, कोटिहोम विधि, मन्वन्तर निरूपण, ब्रह्मचर्यादिधर्म, श्राद्धकल्पविधान, ग्रहयज्ञ, वैदिक स्मार्त्त कर्म, प्रायश्चित्त वर्णन। तिथि तथा व्रतादि, दिनव्रत कथन, नक्षत्रव्रत कथन, मासिकव्रत कथन, दीपदानविधि, नरक विवरण, नवव्यूहार्चन, नाड़ीचक्र सुमद्देश, अत्युत्तम सन्ध्याविधि।।८-१४।।

गायत्र्यर्थस्य निर्द्देशो लिङ्गस्तोत्रं ततः परम्।
राज्याभिषेकमन्त्रोक्तिर्द्धर्मकृत्यं च भूभुजाम्॥१५॥
स्वप्नाध्यायस्ततः प्रोक्तः शकुनादिनिरूपणम्।
मण्डलादिकनिर्द्देशो रत्नदीक्षाविधिस्ततः॥१६॥
रामोक्तनीतिनिर्द्देशो रत्नानां लक्षणं ततः। धनुर्विद्या ततः प्रोक्ता व्यवहारप्रदर्शनम्॥१७॥
देवासुरविमर्दाख्या ह्यायुर्वेदनिरूपणम्।
गजादीनां चिकित्सा च तेषां शान्तिस्ततः परम्॥१८॥
गोनरादिचिकित्सा च नानापूजास्ततः परम्।
शान्तयश्चापि विविधाश्छन्दः शास्त्रमतः परम्॥१९॥
साहित्यं च ततः पश्चादेकार्णादिसमाह्वयाः। सिद्धशब्दानुशिष्टिश्च कोशः स्वर्गादिवर्गकः॥२०॥

प्रलयानां लक्षणं च शारीरकनिरूपणम्। वर्णनं नरकानां च योगशास्त्रमतः परम्॥२१॥
ब्रह्मज्ञानं ततः पश्चात्पुराणश्रवणे फलम्। एतदाग्नेयकं विप्र पुराणं परिकीर्तितम्॥२२॥

गायत्री का अर्थ निर्देश, लिंगस्तुति, राज्याभिषेक मन्त्र, राजाओं का धर्मकृत्य, स्वप्नाध्याय, शकुनादि वर्णन, मण्डलादि का विधान, रणदीक्षाविधि, रामकथित नीति, रत्नलक्षण,धनुर्विद्या, व्यवहार प्रदर्शन, देवासुर विमर्दाख्यान, आयुर्वेद निरूपण, गजादि शान्ति तथा चिकित्सा। गौ, मनुष्यादि चिकित्सा, नानापूजाविधि, नानाशान्तिकृत्य, छन्दःशास्त्र, साहित्य, एकार्णादि समाह्वय, सिद्धशब्दानुशिष्टि कोश, स्वर्गादि वर्ग विशिष्ट कोश, प्रलयलक्षण, शारीरिक निरूपण, नरक वर्णन, परम योगशास्त्र, ब्रह्मज्ञान, पुराणश्रवणफल। हे विप्र यही आग्नेय पुराण में कहा गया है।।१५-२२।।

तल्लिखित्वा तु यो दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम्।
तिलधेनुयुगं चापि मार्गशीर्ष्यां विधानतः॥२३॥
पुराणार्थविदे सोऽथ स्वर्गलोके महीयते। एषानुक्रमणी प्रोक्ता तवाग्नेयस्य मुक्तिदा॥२४॥
शृण्वतां पठतां चैव नृणां चेह परत्र च॥२५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादेऽग्निपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नामैकोनशततमोऽध्यायः॥९९॥

मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन जो इस पुराण को सविधि स्वर्णकमल तथा तिल निर्मित धेनु पुराणज्ञ द्विज को देता है, वह स्वर्ग में सम्मानित होता है। इस अनुक्रमणी को सुनने किंवा पढ़ने वाला मोक्षगामी होगा।।२३-२५।।

।।९९वां अध्याय समाप्त।।

अथ शततमोऽध्यायः

भविष्य पुराण की विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि पुराणं सर्वसिद्धिदम्। भविष्यं भवतः सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम्॥१॥
यत्राहं सर्वदेवानामादिकर्ता समुद्गतः। सृष्ट्यर्थं तत्र सञ्जातो मनु स्वायम्भुवः पुरा॥२॥
स मां प्रणम्य पप्रच्छ धर्मं सर्वार्थसाधकम्। अहं तस्मै तदा प्रीतः प्रावोचं धर्मसंहिताम्॥३॥
पुराणानां यदा व्यासो व्यासं चक्रे महामतिः।
तदा तां संहितां सर्वां पञ्चधा व्यभजन्मुनिः॥४॥
अघोरकल्पवृत्तान्तं नानाश्चर्यकथान्वितम्। तत्रादिमं स्मृतं पर्वं ब्राह्मं यत्रास्त्युपक्रमः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अब मैं सर्वसिद्धिदायक भविष्य पुराण को कहता हूं। यह सर्वलोक समूह को सभी अभीष्ट प्रदान करती है। इसमें मैं सर्वदेवगण का आदिकर्त्ता हूं। सर्वाग्र में सृष्टि कार्य के लिये मनु प्रादुर्भूत हुये। उन्होंने मुझे प्रणामोपरान्त सर्वप्रयोजन सिद्ध करने वाले धर्म की जिज्ञासा किया। तब मैंने उनको प्रीतिपूर्वक धर्म संहिता का उपदेश किया। महामति व्यास ने जब पुराण की रचना का विचार किया, तब उन्होंने संहिता को पांच भाग में बांटा। वहां अनेक आश्चर्य कथान्वित अघोर कल्प का वृत्तान्त है। उसका प्रथम पर्व है **ब्राह्म पर्व**। इसमें यह वर्णित है।।१-५।।

सूतशौनकसंवादे पुराणप्रश्नसङ्क्रमः। आदित्यचरितप्रायः सर्वाख्यानसमन्वितः॥६॥

सृष्ट्यादिलक्षणोपेतः शास्त्रसर्वस्वरूपकः।
पुस्तकलेखकलेखानां लक्षणं च ततः परम्॥७॥
संस्काराणां च सर्वेषां लक्षणं चात्र कीर्तितम्।
पक्षस्यादितिथीनां च कल्पाः सप्त च कीर्तिताः॥८॥
अष्टम्याद्याः शेषकल्पा वैष्णवे पर्वणि स्मृताः।
शैवे च कायतो भिन्नाः सौरे चान्त्यकथान्वयः॥९॥

प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमन्वितम्। पुराणस्योपसंहारसहितं पर्व पञ्चमम्॥१०॥

एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन् ब्रह्मणो महिमाधिकाः।
धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापि शिवस्य च॥११॥

द्वितीये च तृतीये च सौरे वर्गचतुष्टये। प्रतिसर्गाह्वयं त्वन्त्यं प्रोक्तं सर्वकथान्वितम्॥१२॥
सभविष्यं विनिर्द्दिष्टं पर्वव्यासेन धीमता। चतुर्द्दशसहस्रं तु पुराणं परिकीर्तितम्॥१३॥

इसी पर्व में सुत-शौनक संवाद, पुराण प्रश्न, समस्त आख्यान समन्वित आदित्यचरित, सृष्टि प्रभृति लक्षणान्वित, सकल शास्त्र स्वरूप का वर्णन, पुस्तक लेखक-लेख्य लक्षण, सभी संस्कार का लक्षण कहा गया है। पक्ष तिथि के सात कल्प वर्णन हैं। **वैष्णव पर्व** में अष्टमी आदि शेष कल्पों का वर्णन, **शैव पर्व** में कायानुसार भिन्नता, **सौर पर्व** में अन्त्यकथा, **प्रतिसर्गपर्व** में अनेक पुराण आख्यान तथा पुराण का उपसंहार वर्णित। यह पंचम पर्व है। **प्रथम पर्व** में ब्रह्मा महिमा, **द्वितीय पर्व** में विष्णु का वर्णन, धर्म-काम-मोक्ष वर्णन, **तृतीय पर्व** में शिव की कथा, चतुर्थ में सूर्यकथा, पंचम में (प्रतिसर्ग में) सर्वकथा वर्णित है। धीमान् व्यास ने पर्वों को बांट कर भविष्यपुराण की रचना किया है। यह पुराण १४००० श्लोकों वाला है।।६-१३।।

भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम्। गुणानां तारतम्येन सम ब्रह्मेति हि श्रुतिः॥१४॥

तं लिखित्वा तु यो दद्यात्पौष्यां विद्वान्विमत्सरः।
गुडधेनुयुतं हेमवस्त्रमाल्यविभूषणैः॥१५॥
वाचकं पुस्तकं चापि पूजयित्वा विधानतः।
गन्धाद्यैर्भोज्यभक्ष्यैश्च कृत्वा नीराजनादिकम्॥१६॥

इसमें समानरूपेण सभी देवगण की कथा वर्णित है। श्रुति वाक्य है कि "गुणतारतम्य वशात् ब्रह्म सम

है।'' इस पुराण को लिखकर जो विद्वान् मत्सररहित होकर पौष पूर्णिमा तिथि पर गुड़निर्मित धेनु, गन्ध, स्वर्ण, माला, वस्त्र, सुगन्धद्रव्य, भोज्य-भक्ष्य सहित सविधि ब्राह्मण की पूजा तथा पुस्तकपूजा करके उन ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह घोर जातक रहित होकर ब्रह्मपदलाभ करता है।।१४-१६।।

यो वै जितेन्द्रियो भूत्वा सोपवासः समाहितः।
अथ वैकहविष्यासी कीर्तयेच्छृणुयादपि॥१७॥
स मुक्तः पातकैर्घोरैः प्रयाति ब्रह्मणः पदम्।
योऽप्यनुक्रमणीमेतां भविष्यस्य निरूपिताम्॥१८॥
पठेद्वा श्रृणुयाच्चैतां भुक्तिं मुक्तिं च विदति॥१९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे भविष्यपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नाम शततमोऽध्यायः॥१००॥

जो जितेन्द्रिय होकर तथा उपवासी रहता हविष्याशी होकर समाहित चित्त से इसका (पुराण का) श्रवण कीर्त्तन करता है, वह पूर्वकथित फल प्राप्त करेगा। इस अनुक्रमणी को पढ़ने किंवा श्रवण करने वाला भोग-मोक्ष दोनों की प्राप्ति कर लेगा।।१७-१९।।

।।१००वां अध्याय समाप्त।।
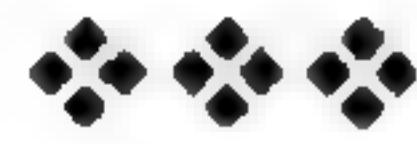
अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण की विषयानुक्रमणिका

श्री ब्रह्मोवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव। ब्रह्मवैवर्तकं नाम वेदमार्गानुदर्शकम्॥१॥
सवर्णिर्यत्र भगवान्साक्षाद्देवर्षये स्थितः। नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम्॥२॥
धमार्थकाममोक्षाणां सारः प्रीतिर्हरौ हरे। तयोरभेदसिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! अब दशम पुराण वेदमार्ग प्रदर्शन करने वाले ब्रह्मवैवर्त्त का वर्णन सुनो। इस पुराण में भगवान् सावर्णि ने देवर्षि नारद से पुराण के अलौकिक अर्थ का वर्णन किया है। तदनुसार हरि तथा हर से अभेदसिद्धि ही पुराणार्थ है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का सार यही है। इस अभेदसिद्धि हेतु इस अत्युत्तम ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का निर्माण हुआ है।।१-३।।

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम्। शतकोटिपुराणे तत्संक्षिप्य प्राह वेदवित्॥४॥

व्यासश्चतुर्द्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्तसंज्ञिते। अष्टादशसहस्रं तत्पुराणं परिकीर्तितम्॥५॥
ब्रह्मप्रकृतिविघ्नेशकृष्णखण्डसमन्वितम्। तत्र सूतर्षिसंवादे पुराणोपक्रमस्ततः॥६॥
सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः। विवादः सुमहान्यत्र द्वयोरासीत्पराभवः॥७॥
शिवलोकगतिः पश्चाज्ज्ञानलाभः शिवात्मने। शिववाक्येन तत्पश्चान्मरीचेर्नारदस्य तु॥८॥
गमनं चैव सावर्णेज्ञनार्थं सिद्धसेविते।
आश्रमे सुमहापुण्ये सुमहापुण्ये त्रैलोक्याश्चर्यकारिणी॥९॥
एतद्धि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम्। ततः सावर्णिसंवादो नारदस्य समीरितः॥१०॥

मेरे द्वारा रथन्तर कल्प में कथित वृत्तान्त को वेदज्ञ व्यास ने सौ कोटि श्लोकात्मक पुराण में संक्षिप्त रूपेण कहा था। तदनन्तर व्यास ने १८००० श्लोकात्मक इस पुराण का निर्माण किया और ब्रह्मप्रकृति, गणेश तथा कृष्णखण्ड से इसे युक्त किया। पुराण का प्रारंभ सूत-शौनक संवादात्मक है। प्रथमतः सृष्टि प्रकरण, तदनन्तर नारद-ब्रह्मा विवाद, दोनों की पराजय, शिवलोकगति, शिव से ज्ञानलाभ, तदनन्तर शिवाज्ञा से ज्ञानलाभार्थ मरीचि तथा नारद का सिद्धगण सेवित, महापुण्यदायक, त्रैलोक्य को आश्चर्य करने वाले सावर्णि के आश्रम में जाना, यह **ब्रह्मखण्ड** है। यह श्रवण मात्र से पाप नाश करता है। **प्रकृति खण्ड** में नारद सावर्णि संवाद है।।४-१०।।

कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यानकथोत्तरम्।
प्रकृतेरंशभूतानां कलानां चापि वर्णितम्॥११॥
माहात्म्यं पूजनाद्यं च विस्तरेण यथास्थितम्।
एतत्प्रकृतिखण्डं हि श्रुतं भूतिविधायकम्॥१२॥

तदनन्तर कृष्ण माहात्म्य, अनेक उपाख्यान, प्रकृति के अंश कलाओं का माहात्म्य, पूजनादि का विस्तृत वर्णन है। यह खण्ड जो सुनता है, वह ऐश्वर्य प्राप्त करता है।।११-१२।।

गणेशजन्म सम्प्रश्नः सपुण्यकमहाव्रतम्।
पार्वत्याः कार्तिकेयेन सह विघ्नशसम्भवम्॥१३॥
चरितं कार्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम्।
विवादः सुमहानासीज्जामदग्न्यगणेशयोः॥१४॥
एतद्विघ्नेशखण्डं हि सर्वविघ्नविनाशनम्।
श्रीकृष्णजन्मसम्प्रश्नो जन्माख्यानं ततोऽद्भुतम्॥१५॥
गोकुले गमनं पश्चात्पूतनादिवधाद्भुताः।
बाल्यकौमारजा लीला विविधास्तत्र वर्णिताः॥१६॥
रासक्रीडा च गोपीभिः शारदी समुदाहृदा। रहस्ये राधया क्रीडा वर्णिता बहुविस्तरा॥१७॥

गणेश खण्ड में—विघ्नेश के जन्म सम्बन्धित प्रश्न के आगे पार्वती का पुण्यक व्रत, कार्त्तिकेय-

विनायक की उत्पत्ति, कार्त्तवीर्य तथा जामदग्न्य का अद्भुत चरित्र, गणेश तथा परशुराम का विवाद कहा गया है। यह खण्ड सर्वविघ्न नाशक है। **श्रीकृष्ण खण्ड** में श्रीकृष्ण जन्म विषयक प्रश्न, अद्भुत जन्माख्यान, गोकुलगमन, तदनन्तर पूतनादि वध का अद्भुद वृत्तान्त, वाल्य-कौमारि में कृष्णलीला, ये सब विविध प्रसंग वर्णित है। गोपीगण के साथ शारीदय रासलीला, निर्जन में राधा के साथ रहस्यक्रीड़ा विस्तार पूर्वक वर्णित है।।१३-१७।।

सहाक्रूरेण तत्पश्चान्मथुरागमनं हरेः। कंसादीनां वधे वृत्ते कृष्णस्य द्विजसंस्कृतिः॥१८॥
काश्यसान्दिपनेः पश्चाद्विद्योपादानमद्भुतम्। यवनस्य वधः पश्चाद्द्वारका गमनं हरेः॥१९॥

नरकादिवधस्तत्र कृष्णेन विहितोऽद्भुतम्।
कृष्णखण्डमिदं विप्र नृणां संसारखण्डनम्॥२०॥
पठितं च श्रुतं ध्यातं पूजितं चाभिवन्दितम्।
इत्येतद्ब्रह्मवैवर्तपुराणं चात्यलौकिकम्॥२१॥

तदनन्तर अक्रूर सहित हरि का मथुरा जाना, कंसादि वध प्रसंग, कृष्ण का यज्ञोपवीतादि संस्कार, काशी में सान्दीपनि से विद्यालाभ, कालयवन वध, हरि का द्वारका जाना, अत्याश्चर्यमय नरकासुरादि वध वर्णित है। हे विप्र! कृष्णखण्ड श्रवण मात्र से मानव का संसार-बन्धन उच्छिन्न हो जाता है। यह पुराण अतीव विलक्षण है।।१८-२१।।

व्यासोक्तं चादि सम्भूतं पठञ्छृण्वन्विमुच्यते। विज्ञानाज्ञानशमनाद्धोरात्संसारसागरात्॥२२॥

लिखित्वेदं च यो दद्यान्माध्यां धेनुसमन्वितम्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति स मुक्तोऽज्ञानबन्धनात्॥२३॥
यश्चानुक्रमणीं चापि पठेद्वा शृणुयादपि।
सोऽपि कृष्णप्रसादेने लभते वाञ्छितं फलम्॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे ब्रह्मवैवर्तपुराणानुक्रमणी-निरूपणं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः॥१०१॥

इसके पठन तथा श्रवण से, ध्यान, पूजन से मानव मोक्षलाभ करता है। यह पुराण संसार-सागर से पार करने वाला, अज्ञाननाशक, विज्ञान प्रकाश प्रदाता है। इसे लिखकर माघी पूर्णिमा को धेनु सहित ब्राह्मण को दान करे। वह व्यक्ति अज्ञान बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मलोक गमन करता है। जो इस विषयानुक्रमणी को पाठ किंवा श्रवण करेगा, उसे श्रीकृष्ण की कृपा से वांछित फललाभ होगा।।२२-२४।।

।।१०१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
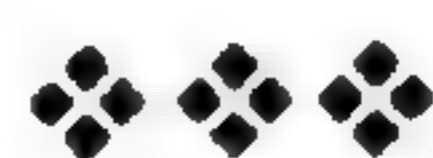
अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

लिंगपुराण की विषयानुक्रमणिका

श्रीब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुराणं लिङ्गसंज्ञितम्। पठतां शृण्वतां चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥१॥
यच्च लिङ्गाभिधं तिष्ठन्वह्निलिङ्गे हरोऽभ्यधात्।
मह्यं धर्मादिसिद्ध्यर्थमग्निकल्पकथाश्रयम्॥२॥
तदेव व्यासदेवेन भागद्वयसमन्वितम्। पुराणं लिङ्गमुदितं बह्वाख्यानविचित्रितम्॥३॥
तदेकादशसाहस्त्रं हरमाहात्म्यसूचकम्। परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! अब मैं लिंग नामक पुराण का वर्णन करता हूं। इसे पढ़ने अथवा श्रवण करने से भुक्ति-मुक्ति का लाभ होता है। वह्निलिंगस्थ भगवान् हर ने धर्म सिद्धि हेतु अग्नि कल्प कथा सम्बन्धित लिंग पुराण कहा था, वह व्यासदेव ने भागद्वय विभक्त किया। यह नाना आख्यान संवलित है। इसमें ११००० श्लोक में शिव माहात्म्य वर्णित है। यह लोकत्रय में सभी पुराणों का सार है।।१-४।।

पुराणोपक्रमे प्रश्नः सृष्टिः संक्षेपतः पुरा।
योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम्॥५॥
लिङ्गोद्भवस्तदम्बा च कीर्तिता हि ततः परम्। सनत्कुमारशैलादिसंवादश्चाथ पावनः॥६॥
ततो दाधीचचरितं युगधर्मनिरूपणम्। ततो भुवनकोशाख्या सूर्यसोमान्वयस्ततः॥७॥
ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकं तथा। लिङ्गप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम्॥८॥
शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम्। प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम्॥९॥
अन्धकाख्यानकं पश्चाद्वाराहचरितं पुनः। नृसिंहचरितं पश्चाज्जलन्धरवधस्ततः॥१०॥
शैवं सहस्त्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम्। कामस्य दहनं पश्चाद्गिरिजायाः करग्रहः॥११॥
ततो विनायकाख्यानं नृपाख्यानं शिवस्य च।
उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः॥१२॥

पूर्व भाग में सर्वप्रथम इसमें पुराण उपक्रम सम्बन्धित प्रश्न के पश्चात् सृष्टिक्रम संक्षेप में कहकर योगाख्यान तथा उसके अनन्तर कल्पाख्यान कहा गया। तदनन्तर लिंगोत्पत्ति, सनत्कुमार तथा पावन शैलादि संवाद, दधीचि चरित, युगधर्म निरूपण, भुवनकोश, सूर्य तथा चन्द्रवंश वर्णन, विस्तारपूर्वक सृष्टि प्रंसग, त्रिपुराख्यान, लिंग स्थापना, पशु-पाश-मोक्षण, शिवव्रत, सदाचार वर्णन, प्रायश्चित्त, अरिष्ट, काशी वर्णन, श्रीशैल वर्णन, अंधक का उपाख्यान, वाराह चरित, नृसिंह चरित, जालंधर वध, शिवसहस्त्रनाम, दक्षयज्ञनाश, कामदहन, पार्वती विवाह, गणेशोपाख्यान, नृपाख्यान, शिवोपाख्यान, उपमन्यु कथा वर्णित है।।५-१२।।

विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीषकथा ततः। सनत्कुमारनन्दीशसंवादश्च पुनर्मुने॥१३॥

शिवमाहात्म्यसंयुक्तः स्नानयागादिकं ततः।
सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा॥१४॥

इसके उत्तर भाग में विष्णु महिमा, अम्बरीष कथा, सनत्कुमार-नन्दीश्वर संवाद, शिव माहात्म्य संयुक्त स्नान यागादि, सूर्यपूजाविधि, मुक्तिप्रदा शिवपूजा कही गयी है।।१३-१४।।

दानानि बहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणं ततः। प्रतिष्ठातन्त्रमुदितं ततोऽघोरस्य कीर्तनम्॥१५॥
वज्रेश्वरी महाविद्या गायत्रीमहिमा ततः। त्र्यम्बकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च॥१६॥

एवं चोपरि भागस्ते लैङ्गस्य कथितो मया।
व्यासेन हि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचितः॥१७॥
लिखित्वैतत्पुराणं तु तिलधेनुसमन्वितम्।
फाल्गुन्यां पूर्णिमायां यो दद्याद्भक्त्या द्विजातये॥१८॥

स लभेच्छिवसायुज्यं जरामरणवर्जितम्। यः पठेच्छृणुयाद्वपि लैङ्गं पापापहं नरः॥१९॥

नाना प्रकार के दान, श्राद्ध प्रकरण, तन्त्रोक्त प्रतिष्ठा, अघोरकीर्त्तन, वज्रेश्वरी महाविद्या तथा गायत्री की महिमा, त्र्यम्बक माहात्म्य एवं पुराण श्रवण माहात्म्य वर्णित है। एवंविध व्यासरचित लिंग पुराण के उत्तर भाग का वर्णन हो गया, इसी में रुद्रमहिमा भी कही गयी। जो व्यक्ति फाल्गुन पूर्णिमा तिथि पर यह पुराण लिखकर ब्राह्मण को तिल निर्मित धेनु के साथ भक्तिभावेन अर्पित करता है, वह जन्म मरण रहित शिवसायुज्य मोक्ष-लाभ करता है।।१५-१९।।

स भुक्तभोगो लोकेऽस्मिन्नन्ते शिवपुरं व्रजेत्।
लिङ्गानुक्रमणीमेतां पठेद्यः शृणुयात्तथा॥२०॥
तावुभौ शिवभक्तौ तु लोकद्वितयभोगिनौ।
जायेतां गिरिजाभर्तुः प्रसादान्नात्र संशयः॥२१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे लिङ्गपुराणानुक्रमणी-निरूपणं नाम द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः॥१०२॥

इह लोक में वह भोगों को भोगकर अन्ततः शिवपुर जाता है। जो कोई इस अनुक्रमणिका को सुनेगा अथवा पाठ करेगा, वे दोनों लोग गिरिजापति के अनुग्रह से दोनों लोक में सुख पाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।।२०-२१।।

।।१०२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराह पुराण की विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम्। भागद्वययुतं शश्वद्विष्णुमाहात्म्यसूचकम्॥१॥
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा। निबबन्ध पुराणेऽस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके॥२॥

व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि।
तत्रादौ शुभसंवादः स्मृतो भूमिवराहयोः॥३॥

अथादिकृतवृत्तान्ते रम्भस्य चरितं ततः। दुर्जयस्य च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः॥४॥
महातपस आख्यानं गौर्युत्पत्तिस्ततः परा। विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरपि॥५॥

गणानां च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च।,
आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम्॥६॥

अगस्त्यगीता तत्पश्चाद्रुद्रगीता प्रकीर्तिता। महिषासुरविध्वंसमाहात्म्यं च त्रिशक्तिजम्॥७॥
पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम्। इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमे दर्शितं मया॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! अब मैं वाराह पुराण कहता हूं। यह दो भाग वाला पुराण है तथा विष्णु माहात्म्य सूचक है। मैंने मानवकल्प सम्बन्धित जो प्रसंग पहले कहा था, वही २४००० श्लोकों के रूप में विदुष लोगों में प्रधान साक्षात् नारायण ने व्यास रूप धरकर पृथिवी पर कहा। इस पुराण के प्रारंभ में भूमि तथा वराह का शुभ संवाद हुआ है। तत्पश्चात् इस पुराण के आदि वृत्तान्त में रैम्य चरित, श्राद्धकल्प, महातपा आख्यान, गौरी की उत्पत्ति, विनायक, नाग, कार्त्तिकेय, आदित्य के गणों, देवी, कुबेर तथा वृषोपाख्यान, सत्यतपा का तप, व्रताख्यान समन्वित है। तदनन्तर अगत्स्यगीता, रुद्रगीता कही गई है। इसमें महिषासुर विध्वन्स माहात्म्य तथा त्रिशक्ति माहात्म्य, तदनन्तर पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान एवं गोप्रदान का उल्लेख हैं। इस प्रकार कृतयुग का वृत्तान्त पहले वर्णित है।।१-८।।

भगवद्धर्मके पश्चाद्व्रततीर्थकथानकम्। द्वात्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरगम्॥९॥

तीर्थानां चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम्।
मथुराया विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः॥१०॥

वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसङ्गतः। विपाकः कर्मणा चैव विष्णुव्रतनिरूपणम्॥११॥

गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम्।
इत्येवं पूर्वभागोऽयं पुराणस्य निरूपितः॥१२॥

तत्पश्चात् भगवद्धर्म वर्णन, इसके बाद तीर्थ कथानक, बत्तीस अपराधों का प्रायश्चित्त कृत्य, सभी तीर्थों का अलग-अलग माहात्म्य कहा गया है। मथुरा में सविशेष रूपेण श्राद्धादि विधि का वर्णन, ऋषिपुत्र प्रसंग में

यमलोक वर्णन, कर्मविपाक, विष्णुव्रतानिरूपण, गोकर्ण की पापनाशक महिमा वर्णित है। यह पुराण के पूर्वभाग में निरूपित है।।९-१२।।

उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयोः। संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात्पृथक्॥१३॥
अशेषधर्माश्चाख्याताः पौष्करं पुण्यपर्व च। इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम्॥१४॥
पठतां शृण्वतां चैव भगवद्भक्तिवर्धनम्। काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम्॥१५॥
लिखित्वैतच्च यो दद्याच्चैत्र्यां विप्राय भक्तितः।
स लभेद्वैष्णवं धाम देवर्षिगणवन्दितः॥१६॥
यो वानुक्रमणीमेतां शृणोत्यपि पठत्यपि।
सोऽपि भक्तिं लभेद्विष्णौ संसारोच्छेदकारिणीम्॥१७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बुहदुपाख्याने चतुर्थपादे वाराहपुराणानुक्रमणी-निरूपणं नाम त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः॥१०३॥
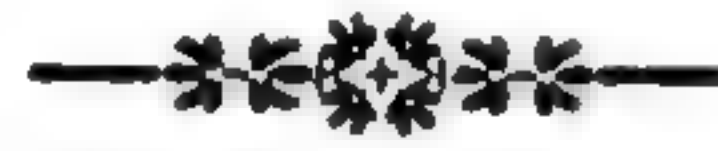
इसके उत्तर भाग में पुलत्स्य तथा कुरुराज का संवाद है। सर्वतीर्थ समूह का वृत्तान्त तथा माहात्म्य अलग-अलग वर्णित है। अशेष धर्मों का वर्णन तथा पुष्कर पुण्यतीर्थ का भी वर्णन है। यही पापनाशक वाराह पुराण का वर्णन है। इसके श्रवण-पठन से भगवद्भक्ति बढ़ती है। जो इसे लिखकर ब्राह्मण को भक्तिभाव से स्वर्णनिर्मित गरुड़ तथा तिलनिर्मित धेनु प्रदान करता है, वह देवर्षिगण से पूजित होकर वैकुण्ठगामी होता है। जो कोई इस अनुक्रमणी को सुनता अथवा इसका पाठ करता है, वह भवबन्धन नाशक विष्णुभक्ति लाभ करता है।।१३-१७।।

।।१०३वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

स्कन्दमहापुराण की विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं स्कन्दसंज्ञकम्।
यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः॥१॥
पुराणे शतकोटौ तु यच्चैवं वर्णितं मया। लक्षं तस्यार्थजातस्य सारो व्यासेन कीर्तितः॥२॥
स्कन्दाह्वयस्तत्र खण्डाः सप्तैव परिकल्पिताः। एकाशीतिसहस्त्रं तु स्कान्दं सर्वाधकृन्तनम्॥३॥

यः शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः।
यत्र माहेश्वरा धर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! अब मैं स्कन्द नामक पुराण को कहता हूं, जिसके प्रत्येक पग पर साक्षात् महादेव का वास है। मैंने सौ करोड़ श्लोकान्विता पुराण में से एक लाख श्लोक वाले शैवपुराण के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, उसके सार स्वरूप स्कन्द महापुराण की रचना व्यास कृत है। यह अखिल पापनाशक स्कन्दपुराण सात खण्डों में कल्पित है। इसमें ८१००० श्लोक हैं। इसका श्रवण अथवा पाठ करने वाला साक्षात् शिववत् स्थित है। षण्मुख स्कन्द ने जिस माहेश्वर धर्म को प्रकाशित किया था।।१-४।।

कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः। तस्य माहेश्वरश्चाथ खण्डः पापप्रणाशनः॥५॥
किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्रो बहुपुण्यो बृहत्कथः। सुचरित्रशतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः॥६॥

यहां स्कन्दपुराणान्तर्गत् वही **माहेश्वर खण्ड** १२००० श्लोकों वाला है। यह १२००० से कुछ कम श्लोकमय है। यह प्रभूत पुण्यप्रद, बृहद् कथाओं से युक्त सैकड़ों उत्तम चरित वाला है। यह स्कन्ददेव की महिमा का सूचक भी है।।५-६।।

यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा। दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चने फलम्॥७॥
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः। पार्वत्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्॥८॥
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्गरः। ततः पाशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमन्वितम्॥९॥
द्यूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागमः। ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम्॥१०॥
धर्मवर्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्तनम्। इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाडीजङ्घकथान्वितम्॥११॥
प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च। महीसारगसंयोगः कुमारेशकथा ततः॥१२॥
ततस्तारकयुद्धं च नानाख्यानसमन्वितम्। वधश्च तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिवेशनम्॥१३॥

स्कन्दान्तर्गत् केदार माहात्म्य के प्रारंभ में पुराण उपक्रम तदनन्तर दक्षयज्ञ कथा, शिवलिंगार्चन फल, समुद्रमंथन का आख्यान, देवेन्द्रचरित, पार्वती का उपाख्यान, तदनन्तर शिव-पार्वती विवाह, कुमार की उत्पत्ति, तारकवध, पाशुपताख्यान, चण्डालाख्यान, द्यूतपर्वत्तन आख्यान, नारद समागम, कुमार माहात्म्य, पञ्चतीर्थ वर्णन, धर्मवर्मा राजा का आख्यान, नदी-सागर वर्णन, इन्द्रद्युम्नकथा, नाड़ीजंघ की कथा, पृथिवी का प्रादुर्भाव, दमनककथा, महीसागर-संगम, कुमारेश कथा, तारकयुद्ध, नाना अन्य आख्यान, तारकवध, पञ्चलिंग निवेश।।७-१३।।

द्वीपाख्यानं ततः पुण्यमूर्ध्वलोकव्यवस्थितिः।
ब्रह्माण्डस्थितिमानं च वर्करेशकथानकम्॥१४॥
महाकालसमुद्भूतिः कथा चास्य महाद्भुता।
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम्॥१५॥
नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्तितम्।
पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्याप्रसाधनम्॥१६॥

तीर्थयात्रासमाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम्। अरुणाचलमाहात्म्यं सनकब्रह्मासङ्कथा॥१७॥
गौरीतपः समाख्यानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम्। महिषासुरमाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः॥१८॥
द्रोणाचले शिवास्थानं नियत्यदा परिकीर्तितम्।
इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डो माहेश्वरोऽद्भुतः॥१९॥

द्वीपाख्यान, पुण्यमय ऊर्ध्वलोकों की स्थिति, ब्रह्माण्ड स्थितिमान, वर्करेश की कथा, महाकाल की उत्पत्ति की अद्भुद् कथा, वासुदेव माहात्म्य, कोटितीर्थ, गुप्त क्षेत्रीय नाना तीर्थ का आख्यान, पाण्डवगण की पावनकथा, महाविद्या प्रसाधन, तीर्थयात्रा समाप्ति, अरुणाचल माहात्म्य, सनक-ब्रह्मासंवाद, गौरी के तप का वर्णन, उन-उन तीर्थों का निरूपण, महिषासुर कथा, उसका आश्चर्यपूर्णवध, द्रोणाचल पर शिव का निवास यह सब अद्भुत **माहेश्वर खण्ड** में वर्णित हैं।।१४-१९।।

द्वितीयो वैष्णवः खण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु।
प्रथमं भूमिवाराहसमाख्यानं प्रकीर्तितम्॥२०॥
यत्र वङ्कटकुधस्य माहात्म्यं पापनाशनम्।
कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः॥२१॥
कुलालाख्यानकं चात्र सुवर्णमुखरी कथा।
नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाजकथाद्भुता॥२२॥
मतङ्गाञ्जनसंवाद कीर्तितः पापनाशनः। पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितं चोत्कले ततः॥२३॥
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः।
इन्द्रद्युम्नस्य चाख्यानं विद्यापतिकथा शुभा॥२४॥
जैमिनेः समुपाख्यानं नारदस्यापि वाडव। नीलकण्ठसमाख्यानं नरसिंहोपवर्णनम्॥२५॥

द्वितीय है वैष्णव खण्ड। उसका प्रसंग सुनो। सबसे पहले भूमिवाराह आख्यान वर्णित है। तदनन्तर वैकुण्ठकुध्र का पापहारी माहात्म्य, कमला की पुण्य कथा, श्रीनिवास की वहां स्थिति, कुलालोपाख्यान, सुवर्णमुखरी कथा, अनेक व्याख्यानमयी भरद्वाज की अद्भुद् कथा, पापनाशक मतंग-अंजन संवाद, उत्कल स्थित पुरुषोत्तम माहात्म्य, मार्कण्डेय राजा अम्बरीष तथा इन्द्रद्युम्न प्रसंग, विद्यापति की कथा, जैमिनि-नारद प्रसंग, नीलकंठ आख्यान, नृसिंहवर्णन।।२०-२५।।

अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तथा।
रथयात्राविधिः पश्चाज्जन्मस्थानविधिस्तथा॥२६॥
दक्षिणामूर्त्युपाख्यानं गुण्डिवाख्यानकं ततः।
रथरक्षाविधानं च शयनोत्सवकीर्तनम्॥२७॥
श्वेतोपाख्यानमत्रोक्तं पृथूत्सवनिरूपणम्। दोलोत्सवो भगवतो व्रतं सांवत्सराभिधम्॥२८॥
पूजा चाकामिका विष्णोरुद्दालकनियोगतः। योगसाधनमत्रोक्तं नानायोगनिरूपणम्॥२९॥

दशावतारकथनं स्नानादिपरिकीर्तनम्। ततो बदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम्॥३०॥
अग्न्यादितीर्थमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम्।
कारणं भगवद्वासे तीर्थं कापालमोचनम्॥३१॥
पञ्चधारभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा। ततः कार्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यं मदनालसम्॥३२॥

अश्वमेध कथा, राजा की ब्रह्मलोकगति, रथयात्राविधि, जन्मस्थानविधि, दक्षिणामूर्त्ति उपाख्यान, गुंडिका उपाख्यान, रथरक्षा विधि, शयनोत्सव वर्णन, श्वेतोपाख्यान, मन्त्रोक्त पृथुत्सव निरूपण, भगवान् का दोलोत्सव, सांवत्सर व्रत, उद्यालक के नियोग से विष्णु की अकामपूजा, योगसाधन, नानायोग निरूपण, दशावतार कथन, स्नानादि का वर्णन, बदरिकाश्रम माहात्म्य जो पापनाशन है। अग्नि आदि तीर्थ माहात्म्य, गरुड़ शिलामहिमा, भगवद्वास का कारण, कापालमोचन तीर्थ, पंचधारातीर्थ, मेरु संस्थापनतीर्थ, कार्त्तिक माहात्म्य में मदनालस महिमा।।२६-३२।।

धूम्रकेशसमाख्यानं दिनकृत्यानि कार्तिके।
पञ्चभीष्मव्रताख्यानं कीर्तितं भुक्तिमुक्तिदम्॥३३॥
ततो मार्गस्य माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा।
पुण्ड्रादिकीर्तनं चात्र मालाधारणपुण्यकम्॥३४॥
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजं फलम्। नानापुष्पार्चनफलं तुलसीदलजं फलम्॥३५॥
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासरकीर्तनम्। अखण्डैकादशीपुण्यं तथा जागरणस्य च॥३६॥
यस्योत्सवविधानं च नाममाहात्म्यकीर्तनम्।
ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम्॥३७॥
मथुरातीर्थमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम्।
वनानां द्वादशानां च माहात्म्यं कीर्तितं ततः॥३८॥
श्रीमद्भागवतस्यात्र माहात्म्यं कीर्तितं परम्।
वज्रशाण्डिल्यसंवाद अन्तर्लीलाप्रकाशकम्॥३९॥
ततो माघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम्।
नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्यायैर्निरूपितम्॥४०॥
ततो वैष्णवमाहात्म्ये शय्यादानादिजं फलम्।
जलदानादिविधयः कामाख्यानमतः परम्॥४१॥

धूम्रकेश आख्यान, कार्त्तिक के दिन का कृत्य, मुक्ति-भुक्तिदायक पञ्चभीष्मव्रत, अग्रहायण मास में स्नान विधान, पुण्ड्रादि का वर्णन, मालाधारण का पुण्य, पंचामृत स्नान का पुण्य, घण्टानाद आदि का फल, अनेक पुण्यार्चन फल, तुलसी दल फल, नैवेद्य माहात्म्य, हरिवासर (एकादशी) वर्णन, अखण्ड एकादशी जनितपुण्य, जागरण पुण्य,उत्सव विधान, नाममाहात्म्य वर्णन, ध्यानादि का पुण्य वर्णन, मथुरा माहात्म्य,

मथुरातीर्थ माहात्म्य, द्वादशवन माहात्म्य, श्रीमद्भागवत् माहात्म्य, व्रजशाण्डिल्य संवाद, अन्तर्लीला प्रकाश, माघस्नान-दान-जप माहात्म्य, दस अध्यायों में नाना आख्यान निरूपण, वैष्णव माहात्म्य में शय्यादान फल, जलदान आदि की विधि, कामाख्यान का परम मत।।३३-४१।।

श्रुतदेवस्य चरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम्। तथाक्षयतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्तनम्।।४२।।
ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थङ्के। सुरापापविमोक्षाख्ये तथाधारसहस्रकम्।।४३।।
स्वर्गद्वारं चन्द्रहरिधर्महर्युपवर्णनम्। स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदासरयूयुतिः।।४४।।
सीताकुण्डं गुप्तहरिसरयूघर्घरान्वयः। गोप्रतारं च दुग्घोदं गुरुकुण्डादिपञ्चकम्।।४५।।
सोमार्कादीनि तीर्थानि त्रयोदश ततः परम्।
गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्वाघाविनिवर्तकम्।।४६।।
माण्डव्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम्।
अजितादिमानसादितीर्थानि गदितानि च।।४७।।
इत्येष वैष्णवः खण्डो द्वितीयः परिकीर्तितः।
अतः परं ब्रह्मखण्डं मरीचे शृणु पुण्यदम्।।४८।।

श्रुतदेव चरित, अद्भुद् व्याधोपाख्यान, अक्षय तृतीया आदि के विशेष पुण्य का वर्णन, अयोध्या माहात्म्य, चक्रब्रह्मतीर्थ वर्णन, सुरापापविमोक्ष तीर्थ, आधारसहस्र, स्वर्गद्वार, चन्द्रहरि-धर्महरि का वर्णन, स्वर्णवृष्टि उपाख्यान, तिलोदा सरयु संगम, सीताकुण्ड, गुप्तहरि, सरयूघर्घर, गोप्रतार, दुग्घोद, गुरुकुण्डादि पञ्चक, सोमाकादि त्रयोदश तीर्थ, सर्वपापनाशक गयाकूप माहात्म्य, माण्डव्याश्रम तथा तीर्थ वर्णन, अजितमानसादि तीर्थकथन। यही **द्वितीय वैष्णव खण्ड** है। हे मरीच! अब तृतीय **ब्रह्मखण्ड** को सुनो जो पुण्यप्रद है।।४२-४८।।

यत्र वै सेतुमाहात्म्ये फलं स्नाने क्षणोद्भवम्।
गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकं ततः।।४९।।
चक्रतीर्थादिमाहात्म्यं देवोपत्तनसंयुते। वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकीर्त्तिनम्।।५०।।
मङ्गलादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम्। हनुमत्कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थभवं फलम्।।५१।।
रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम्। शङ्खादितीर्थमहिमा तथा साध्यामृतादिजः।।५२।।
धनुष्कोट्यादिमाहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा।
गायत्र्यादिकतीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्तितम्।।५३।।
रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम्। यात्राविधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाम्।।५४।।
धर्मारण्यस्य माहात्म्यं ततः परमुदीरितम्।
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान्यत्र तत्त्वमुपादिशत्।।५५।।
धर्मारण्यसुसम्भूतित्पुण्यपरिकीर्तनम्। कर्म्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम्।।५६।।

अप्सरस्तीर्थमुख्यानां माहात्म्यं यत्र कीर्तितम्।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मतत्त्वनिरूपणम्॥५७॥
दिवः स्थानविभागश्च बकुलार्ककथा शुभा।
छत्रानन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतङ्गिनी॥५८॥
पुण्यदा च समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिताः।
इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम्॥५९॥
लोहासुरसमाख्यानं गङ्गाकूपनिरूपणम्। श्रीरामचरितं चैव सत्यमन्दिरवर्णनम्॥६०॥
जीर्णोद्धारस्य कथनमासनप्रतिपादनम्। जातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्मनिरूपणम्॥६१॥
ततस्तु वैष्णवा धर्मा नानाख्यानैरुदीरिताः।
चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम्॥६२॥
दानप्रशंसा तत्पश्चाद्व्रतस्य महिमा ततः। तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनं ततः॥६३॥
तद्वृत्तीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम्।
भारकस्य वधोपायो वृक्षार्चामहिमा तथा॥६४॥

इसमें सेतु माहात्म्य, वहां स्नान दर्शन फल, गालव का तप, राक्षस का आख्यान, चक्रतीर्थादि का माहात्म्य, वेताल तीर्थ महिमा, मंगादि माहात्म्य, ब्रह्मकुण्डादि वर्णन, हनुमत्कुण्डमहिमा, अगत्स्य तीर्थफल, रामतीर्थादि का वर्णन, लक्ष्मीतीर्थ निरूपण, शंखादि तीर्थ महिमा, साध्यामृत महिमा, धनुष्कोटि प्रभृति तीर्थ माहात्म्य, क्षीरकुण्ड माहात्म्य, गायत्री आदि तीर्थ महिमा, रामनाथ महिमा, तत्वज्ञानोपदेश, मोक्षप्रद, सेतु यात्रा विधान, धर्मारण्य माहात्म्य, वह वृक्ष जहां प्रभु ने कार्त्तिकेय को उपदेश दिया, धर्मारण्य का उद्भव, उसका पुण्यकथन, वर्णाश्रम धर्म तत्व वर्णन, दिवस्थान विभाग, बकुलार्क कथा, छत्रानन्दा, शान्ता, श्रीमाता, मतंगिनी, प्रभृति पुण्यप्रदा देवीगण के स्थान का वर्णन, इन्द्रेश्वरादि की महिमा, द्वारकादि निरूपण, लोहासुर समाख्यान, गंगाकूप निरूपण, रामचरित, सत्यमंदिरवर्णन, जीर्णोद्धार कथन, आसन-प्रतिपादन, जातिभेद प्रकथन, स्मृतिधर्म निरूपण, नाना आख्यानों से वैष्णवधर्म निरूपण, चातुर्मास्य के सभी धर्मों का कथन, दान प्रशंसा, व्रतमहिमा, तप-पूजा का सच्छिद्र कथन, प्रकृति का भिन्न आख्यान, शालग्राम निरूपण, भारक का वधोपाय, वृक्षार्चा महिमा।।४९-६४।।

विष्णोः शापश्च वृक्षत्वं पार्वत्यनुतपस्ततः। हरस्य ताण्डवं नृत्यं रामनामनिरूपणम्॥६५॥
हरस्य लिङ्गपतनं कथा बैजवनस्य च। पार्वतीजन्मचरितं तारकस्य वधोऽद्भुतः॥६६॥
प्रणवैश्वर्यकथनं तारकाचरितं पुनः। दक्षयज्ञसमाप्तिश्च द्वादशाक्षरभूषणम्॥६७॥
ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशाक्षरेः। श्रवणादिकपुण्यं च कीर्तितं शर्मदं नृणाम्॥६८॥
ततो ब्राह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः। पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः॥६९॥
शिवरात्रैश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्तनम्। सोमवारव्रतं चापि सीमन्तिन्याः कथानकम्॥७०॥

भद्रायूत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम्। शिववर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम्॥७१॥
भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्तनम्। शबराख्यानकं चैव उमामाहेश्वरं व्रतम्॥७२॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम्।
श्रवणादिकपुण्यं च ब्रह्मखण्डोऽयमीरितः॥७३॥

विष्णु का वृक्षत्व शाप, पार्वती का अनुताप, हर का ताण्डव नृत्य, रामनाम निरूपण, हर का लिंगपतन, बैजवन कथा, पार्वती जन्मचरित, तारक का अद्‌भुद् वध, प्रणवैश्वर्य कथन, तारका चरित, दक्षयज्ञ समापन, द्वादशाक्षरभूषण, ज्ञानयोग सामाख्यान, द्वादशाक्षर महिमा, मनुष्य हेतु कल्याणप्रद श्रवणादिक पुण्य। ब्रह्मखण्ड के उत्तर भाग में शिव की महिमा, पंचाक्षरमहिमा, गोकर्ण महिमा, शिवरात्रि महिमा, प्रदोषव्रत, सोमवार व्रत कथन, सीमंतिनी कथा, भद्रायु की उत्पत्ति, सदाचार निरूपण, शिववर्मा का समुद्देश्य, भद्रायु का विवाह, भद्रायु महिमा, भस्म माहात्म्य वर्णन, शबराख्यान, उमा-महेश्वर व्रत, रुद्राक्ष माहात्म्य, रुद्राध्यायपुण्य, श्रवणादिक पुण्य—ये ब्रह्मखण्ड में कहे गये हैं।।६५-७३।।

अतः परं चतुर्थं तु काशीखण्डमनुत्तमम्। विन्ध्यनारदयोर्यत्र संवादः परिकीर्तितः॥७४॥
सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यावासे सुरागमः। पतिव्रताचरित्रं च तीर्थयात्राप्रशंसनम्॥७५॥
ततश्च सप्तपुर्याख्या संयमिन्या निरूपणम्।
बुधस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकाप्तिः शिवशर्मणः॥७६॥
अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्याद्वरुणसम्भवः। गन्धवत्यलकापुर्योरीश्वर्याश्च समुद्भवः॥७७॥
चन्द्रार्कबुधलोकानां कुजेज्यार्कभुवां क्रमात्।
मम विष्णोर्ध्रुवस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम्॥७८॥
ध्रुवलोककथा पुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम्।
स्कन्दागस्त्यसमालापो मणिकर्णीसमुद्भवः॥७९॥
प्रभावश्चापि गङ्गाया गङ्गानामसहस्रकम्। वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः॥८०॥
दण्डपाणिज्ञानवाप्योरुद्भवः समनन्तरम्।
ततः कलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम्॥८१॥
ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च।
कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम्॥८२॥
गृहस्थयोगिनो धर्माः कालज्ञानं ततः परम्।
दिवोदासकथा पुण्या काशिकावर्णनं ततः॥८३॥
मायागणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः। विष्णुमायाप्रपञ्चोऽथ दिवोदासविमोक्षणम्॥८४॥

अब चतुर्थ अत्युत्तम **काशीखण्ड** सुनो। यहां विन्ध्याचल-नारद संवाद कहा गया। तदनन्तर सत्यलोक प्रभाव, अगत्स्य निवास में देवगण का आना, पतिव्रताचरित, तीर्थयात्रा प्रशंसा, सप्तपुरी-संयमनी

निरूपण, शिवशर्मा को बुध-इन्द्र-अग्निलोक लाभ, अग्नि की उत्पत्ति, क्रव्यात् तथा वरुणोत्पत्ति, गन्धवती, अलकापुरी तथा ईश्वरी की उत्पत्ति, चन्द्र-अर्क-बुध-मंगल-बृहस्पति-सूर्य-ब्रह्मा-विष्णु-ध्रुव, तपोलोक वर्णन, ध्रुवलोक की पवित्र कथा, सत्यलोक निरीक्षण, स्कन्द-अगस्त्य संवाद, मणिकर्णि उद्‌भव, कलावती उपाख्यान, सदाचार निरूपण, ब्रह्मचारी का आख्यान, स्त्री लक्षण, कृत्य-अकृत्य निरूपण, अविमुक्तेश्वर वर्णन, गृहस्थ-योगी धर्म, कालज्ञान, दिवोदास कथा, काशिका वर्णन, पृथिवी पर माया गणपति प्रादुर्भाव, विष्णु माया प्रपञ्च, दिवोदास को मोक्षलाभ।।७४-८४।।

ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाधवसम्भवः।
ततो वैष्णवतीर्थाख्या शूलिनः काशिकागमः।।८५।।
जैगीषव्येन संवादो ज्येष्ठेशाख्या महेशितुः।
क्षेत्राख्यानं कन्दुकेशः व्याघ्रेश्वरसमुद्भवः।।८६।।
शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः। देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः।।८७।।
दुर्गाया विजयाश्चाथ ओङ्कारेशस्य वर्णनम्। पुनरोङ्कारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भवः।।८८।।
केदाराख्या च धर्मेश कथा विष्णुभुजोद्भवा।
वीरेश्वरसमाख्यानं गङ्गामाहात्म्यकीर्तनम्।।८९।।
विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञोदभवस्तथा। सतीशस्यामृतेशादेर्भुजस्तम्भः पराशरे।।९०।।
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसङ्कथा। विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रापरिक्रमः।।९१।।

पंचनदोत्पत्ति, विन्दुमाधव उद्भव, वैष्णवतीर्थ की आख्या, शंकर का काशी आना, ज्येष्ठेष तथा जैगीषव्य का संवाद, क्षेत्राख्यान, कन्दुकेश-व्याघ्रेश्वर की उत्पत्ति, शैलेश-रत्नेश-कृत्तिवासेश्वर का उद्भव, देवाधिष्ठान, दुर्गासुर पराक्रम, दुर्गाविजय, ओंकारेश वर्णन, ओंकार माहात्म्य, त्रिलोचनोद्भव, केदाराख्यान, धर्मशकथा, विष्णुभुज कथा, वीरेश्वरोपाख्यान, गंगा माहात्म्य वर्णन, विश्वकर्मा तथा ईश्वर महिमा, दक्षयज्ञोत्पत्ति, सत्येश तथा अमृतेश, पराशर भुजस्ताम्भ वर्णन, क्षेत्रतीर्थ समूह, मुक्तिमण्डप कथा, विश्वेशविभव, यात्रापरिक्रमा ये सब विषय काशीखण्ड में हैं।।८५-९१।।

अतः परं त्ववन्त्याख्यं शृणु खण्डं च पञ्चमम्।
महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः।।९२।।
प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च सुरागमः। देवदीक्षा शिवस्तोत्रं नानापतकनाशनम्।।९३।।
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः। तीर्थं कनखलेशस्य सर्वपापप्रणाशनम्।।९४।।
कुण्डमप्सरसंज्ञं च सरो रुद्रस्य पुण्यदम्। कुण्डवेशं च विद्याधं मर्कटेश्वरतीर्थकम्।।९५।।
स्वर्गद्वारचतुःसिन्धुतीर्थं शङ्करवापिका। शङ्करार्कं गन्धवतीतीर्थं पापप्रणाशनम्।।९६।।
दशाश्वमेधिकानंशतीर्थे च हरिसिद्धिदम्। पिशाचकादियात्रा च हनुमत्कवचेश्वरौ।।९७।।
महाकालेशयात्रा च वाल्मीकेश्वरतीर्थकम्।
शुक्रे च पञ्चमे चाख्ये कुशस्थल्याः प्रदक्षिणाः।।९८।।

अक्रूरसंज्ञकन्त्वेकपादं चन्द्रार्कवैभवम्। करभेशाख्यतीर्थं च लटुकेशादितीर्थकम्॥९९॥
मार्कण्डेशं यज्ञवापी सोमेशं नरकान्तकम्। केदारेश्वररामेशसौभाग्येशनरार्ककम्॥१००॥
केशवार्कं शक्तिभेदं स्वर्णसारमुखानि च।
ओङ्कारेशादितीर्थानि अन्धकश्रुतिकीर्तनम्॥१०१॥

अब पंचमखण्ड **अवन्ती खण्ड** कहते हैं। इसमें महाकालोपाख्यान, ब्रह्मशीर्ष उच्छेद, प्रायश्चित्त विधि, आग्नेरु उत्पत्ति, सुरागम, देवदीक्षा, सकल पापनाशन शिवस्तुति, कपालमोचन प्रसंग, महाकाल वन स्थिति, सर्वपापनाशी कनखलेश तीर्थ, अप्सराकुण्ड, पुण्यप्रद रुद्र सरोवर, कुण्डवेश, विद्याघ्र, मर्कटेशतीर्थ, स्वर्गद्वार, चतुःसिन्धुतीर्थ, शंकर वापिका, शंकरार्क, पापनाशी गन्धर्वतीर्थ, दशाश्वमेध तीर्थ, हरिसिद्धिदायक अनंशतीर्थ, पिशाचिकादि यात्रा, हनुमत्कवचेश्वर, महाकालेशयात्रा, वल्मीकेश्वरतीर्थ, शुक्रतीर्थ, कुशस्थली परिक्रमा, अक्रूरतीर्थ, एकपादतीर्थ, चन्द्रार्क वैभवतीर्थ, करभेशतीर्थ लटुकेशतीर्थ, मार्कण्डेशतीर्थ, यज्ञवापी, सोमेश, नरकांतक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशवार्क, शक्तिभेद, स्वर्णसारसुख, ओंकारेश तीर्थ, अंधक श्रुति कीर्त्तन।।९२-१०१।।

कालारण्ये लिङ्गसंख्या स्वर्णशृङ्गाभिधानकम्।
कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम्॥१०२॥
पद्मावती वै कुसुद्वत्यमरावतिनामकम्।
विशालाप्रतिकल्पाभिधानं च ज्वरशान्तिकम्॥१०३॥
शिवानामादिकफलं नागोद्गीता शिवस्तुतिः।
हिरण्याक्षवधाख्यानं तीर्थं सुन्दरकुण्डकम्॥१०४॥
नीलगङ्गापुष्कराख्यं विन्ध्यवासनतीर्थकम्।
पुरुषोत्तमाभिधानं तु तत्तीर्थं चाघनाशनम्॥१०५॥
गोमती वामनं कुण्डो विष्णोर्नामसहस्त्रकम्।
वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थकम्॥१०६॥
महिमा नागपञ्चम्यां नृसिंहस्य जयन्तिका।
कुटुम्बरेश्वरयात्रा च देवसाधककीर्तनम्॥१०७॥
कर्कराजाख्यतीर्थं च विघ्नेशादिसुरोहनम्। रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम्॥१०८॥
यात्राष्टतीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुच्यते।
धर्मपुत्रस्य वैराग्यो मार्कण्डेयेन सङ्गमः॥१०९॥
प्राग्रीयानुभवाख्यानममृतापरिकीर्त्तनम्। कल्पे कल्पे पृथङ् नाम नर्मदाया प्रकीर्तितम्॥११०॥
स्तवमार्षं नार्मदं च कालरात्रिकथा ततः।
महादेवस्तुतिः पश्चात्पृथक्कल्पकथाद्भुता॥१११॥

विशल्याख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा।
गौरीव्रतसमाख्यानं त्रिपुरज्वालनं ततः॥११२॥

कालाख्य, लिंगसंख्या, स्वर्णशृंग अभिधान, कुशस्थली, अवन्ती-उज्जयिनी कथा, पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती, विशाला प्रतिकल्पाख्यान, ज्वरशान्तिक, शिवनामादिफल, नागकृत शिवस्तव, हिरण्याक्षवधाख्यान तीर्थ, सुन्दर कुंडक, नीलगंगा, पुष्कर, विन्ध्यवासनतीर्थ, पापहारी पुरुषोत्तम तीर्थ, गोमती, वामनकुण्ड, विष्णुसहस्रनामतीर्थ, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपंचमी महिमा, नृसिंह जयन्ती, कुटुम्बेश्वर यात्रा, देवसाधक कीर्त्तन, कर्कराजतीर्थ, विघ्नेशादि सुरोहन, रुद्र कुण्डादि तीर्थ निरूपण, अष्टतीर्थ की पावनयात्रा, रेवामहिमा, धर्मपुत्र का वैराग्य, धर्मपुत्र-मार्कण्डेय मिलन, प्राग्रीयानुभवाख्यान, अमृता परिकीर्त्तन, प्रतिकल्प में नर्मदा का पृथक् नाम, नर्मदा की आर्ष स्तुति, कालरात्रिकथा, महादेवस्तुति, अलग-अलग कल्पों की अद्भुद् कथा, विशल्या का आख्यान, जालेश्वर कथा, गौरीव्रत आख्यान, त्रिपुर ज्वालन।।१०२-११२।।

देहपातविधानं च कावेरीसङ्गमस्ततः। दारुतीर्थं ब्रह्मावर्तं यत्रेश्वरकथानकम्॥११३॥
अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनादादिदारुकम्। देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाख्यं करञ्जकम्॥११४॥

कुण्डलेशं पिप्पप्लादं विमलेशं च शूलभित्।
शचीहरणमाख्यानमभ्रकस्य वधस्ततः॥११५॥
शूलभेदोद्भवो यत्र दानधर्माः पृथग्विधाः।
आख्यानं दीर्घतपसा ऋष्यशृङ्गकथा ततः॥११६॥
चित्रसेनकथा पुण्या काशिराज्यस्य लक्षणम्।
ततो देवशिलाख्यानं शबरीतीर्थकान्वितम्॥११७॥
व्याधाख्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यर्कतीर्थकम्।
आप्रेत्येश्वरतीर्थं च शक्रतीर्थं करोटिकम्॥११८॥

देहपातविधि, कावेरी संगम, दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्त्त, ईश्वर कथानक, अग्नितीर्थ, रवितीर्थ, मेघनादादि, दारुक, देवतीर्थ, नर्मदेश, कपिल, करंजक, कुण्डलेश, पिप्पलाद, विमलेश, शूलभित्, शचीहरण वर्णन, अभ्रकवध, शूलभेदोद्भव, अलग-अलग प्रकार के दानधर्म, दीर्घतपा आख्यान, ऋष्यशृंग कथा, चित्रसेन कथा, काशिराज लक्षण, देवशिला आख्यान, शबरीतीर्थ, व्याध का आख्यान, पुष्करिण्यर्कतीर्थ, आपित्येश्वर तीर्थ, शक्रतीर्थ करोटिक।।११३-११८।।

कुमारेशमगस्त्येशमानंदेशं च मातृजम्। लोकेशं धनदेशं च मङ्गलेशं च कामजम्॥११९॥
नागेशं चापि गोपारं गौतमं शङ्खचूडकम्। नारदेशं नन्दिकेशं वरुणेश्वरतीर्थकम्॥१२०॥
दधिस्कन्दादितीर्थानि हनूमतेश्वरं ततः। रामेश्वरादितीर्थानि सोमेशं पिङ्गलेश्वरम्॥१२१॥

ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतकेशं जलेशयम्।
चण्डार्कं यमतीर्थं च काल्होडीशं वनादिके॥१२२॥

नारायणं च कोटीशं व्यासतीर्थं प्रभासकम्। नागेशसङ्कर्षणकं प्रश्रयेश्वरतीर्थकम्॥१२३॥

ऐरण्डीसङ्गमं पुण्यं सुवर्णशिलतीर्थकम्।
करजं कामहं तीर्थं भाण्डीरो रोहिणीभवम्॥१२४॥
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कन्दमाङ्गिरसाह्वयम्।
कोटितीर्थमयोन्याख्यमङ्गाराख्यं त्रिलोचनम्॥१२५॥
इन्द्रेशं कम्बुकेशं च सोमेशं कोहनं शकम्। नार्मदं चार्कमाग्नेयं भार्गवेश्वरमुत्तमम्॥१२६॥
ब्राह्मं दैवं च मार्गेशमादिवाराहकेश्वरम्। रामेशमथ सिद्धेशमाहल्यं कङ्कटेश्वरम्॥१२७॥
शाक्रं सौम्यं च नादेशं तोयेशं रुक्मिणीभवम्।
योजनेशं वराहेशं द्वादशीशिवतीर्थकम्॥१२८॥
सिद्धेशं मङ्गलेशं च लिङ्गवाराहतीर्थकम्। कुण्डेशं श्वेतवाराहं गर्भावेशं रवीश्वरम्॥१२९॥
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुङ्कारस्वामितीर्थकम्। सङ्गमेशं नहुषेशं मोक्षणं पञ्चगोपकम्।
नागशावं च सिद्धेशं मार्कण्डाक्रूरतीर्थके॥१३०॥

कुमारेश, अगत्स्येश, आनन्देश, मातृज, लोकेश, धनदेश, मंगलेश, कामज, नागेश, गोपार, गौतम, शंखचूड़, नारदेश, नन्दिकेश, वरुणेश्वरतीर्थ, दधिस्कन्दादि तीर्थ, हनुमतेश्वर, रामेश्वरादितीर्थ, सोमेश, पिंगलेश, ऋणमोक्ष, कपिलेश, पूतकेश, जलेशय, चण्डार्क, यमतीर्थ, काल्होड़ीश, वनादिक, नारायण, कोटीश, व्यासतीर्थ, प्रभास, नागेश, संकर्षण, प्रश्रयेश्वरतीर्थ, ऐरण्डीसंगम, पुण्यमय सुवर्णशिलातीर्थ, करजंतीर्थ, कामहं तीर्थ, भाण्डीर, रोहिणीभव, चक्रतीर्थ, धौतपाप, स्कन्द, आंगीरस, कोटितीर्थ, अयोनि, अंगारक, त्रिलोचन, इन्द्रेश, कम्बुकेश, सोमेश, कोहन, शक, नार्मद, आर्क, आग्नेय, उत्तम, भार्गविश्वर, ब्राह्म, देव, मार्गेश आदिवाराहकेश्वर, रामेश, सिद्धेश, आहल्य, कंकटेश, शाक्र, सौम्य, आदेश, तोयेश, रुक्मिणीभव, योजनेश, वराहेश, द्वादशीशिवतीर्थ, सिद्धेश, मंगलेश, लिंगवराहतीर्थ, कुण्डेश, श्वेतवराह, गर्भावेश, रवीश्वर, शुक्लादितीर्थ, हुंकार स्वामीतीर्थ, संगमेश, नहुशेष, मोक्षण, पंचगोपक, नागशाव, सिद्धेश, मार्कण्ड, अक्रूरतीर्थ।।११९-१३०।।

कामोदशूलारोपाख्ये माण्डव्यं गोपकेश्वरम्।
कपिलेशं पिङ्गलेशं भूतेशं गाङ्गगौतमे॥१३१॥
आश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशं च पापनुत्।
कलकलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम्॥१३२॥
चन्द्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यं च हंसकम्।
मूल्यस्थानं च शूलेशमुग्राख्यं चित्रदैवकम्॥१३३॥
शिखीशं कोटितीर्थं च दशकन्य सुवर्णकम्।
ऋणमोक्षं भारभूति पुङ्खामुण्डि च डिण्डिमम्॥१३४॥
आमलेशं कपालेशं शृङ्गैरण्डीभवं ततः। कोटितीर्थं लोटणेशं फलस्तुतिरतः परम्॥१३५॥

दृमिजङ्गलमाहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः।
धुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोऽस्य वै॥१३६॥
वधो धुन्धोस्ततः पश्चात्ततश्चित्रवहोद्भवः। महिमास्य ततश्चण्डीशप्रभावो रतीश्वरः॥१३७॥
केदारेशो लक्षतीर्थं ततोविष्णुपदीभवम्। मुखारं च्वनान्धास्यं ब्रह्मणश्च सरस्ततः॥१३८॥
चक्राख्यं ललिताख्यानं तीर्थं च बहुगोमयम्।
रुद्रावर्तं च मार्कण्डं तीर्थं पापप्रणाशनम्॥१३९॥
श्रवणेशं शुद्धपटं देवान्धुप्रेततीर्थकम्।
जिह्वोदतीर्थसम्भूतिः शिवोद्भेदं फलस्तुतिः॥१४०॥
एष खण्डो ह्यवन्त्याख्यः शृण्वतां पापनाशनः।
अतः परं नागराख्यः खण्डः षष्ठोऽभिधीयते॥१४१॥

कामोद, शूलारोप, माण्डव्य, गोपकेश्वर, कपिलेश, पिंगलेश, भूतेश, गांग, गौतम, आश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश, पापनुत्, कलकलेश, जालेश, शालग्राम, वराह, चन्द्रप्रभासम, आदित्या श्रीपति, हंसक, मूल्यस्थान, शूलेश, उग्राख्य, चित्रदैवक, शिखीश, कोटितीर्थ, दशकन्य, सुवर्णक, ऋणमोक्ष, भारभूति, पुंखामुण्डि, डिंडिम, आमलेश, कपालेश, शृंगैरण्डीभव, कोटितीर्थ, लोटणेश, फलश्रुति, दृमिजंगल महिमा, रोहिताश्व कथा, धुन्धुमार आख्यान, उसका वधोपाय, धुन्धुवध, चित्तवह उत्पत्ति, चण्डीशप्रभाव, रतीश्वर, केदारेश, लक्षतीर्थ, विष्णुपदतीर्थ, मुखार, च्यवन, अंधास्य, ब्रह्मसर, चक्राख्यान, ललिताख्यान, बहुगोमयतीर्थ, रुद्रावर्त्त, पापनाशी मार्कण्डतीर्थ, श्रवणेश, शुद्धपट, देवांधुप्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थ, संभूति शिवोद्भेद, फलस्तुति। इस खण्ड में इतने ही प्रंसग वर्णित है। यह खण्ड श्रोतागण के पाप का नाश करता है। अब **षष्ट खण्ड नागरखण्ड** का वर्णन सुनो।।१३१-१४१।।

लिङ्गोत्पत्तिसमाख्यानं हरिश्चन्द्रकथा शुभा।
विश्वामित्रस्य माहात्म्यं त्रिशङ्कुस्वर्गतिस्तथा॥१४२॥
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुरवधस्तथा। नागबिलं शङ्खतीर्थमचलेश्वरवर्णनम्॥१४३॥
चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम्।
गयशीर्षं बालशाख्यं बालमण्डं मृगाह्वयम्॥१४४॥
विष्णुपादं च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः।
सिद्धेश्वरं नागसरः सप्तार्षेयं ह्यगस्तकम्॥१४५॥
भ्रूणगर्तं नलेशं च भैष्मं वैदुरमर्ककम्। शारमिष्ठं सोमनाथं च दौर्गमातर्जकेश्वरम्॥१४६॥
जामदग्न्यवधाख्यानं नैःक्षत्रियकथानकम्। रामह्रदं नागपुरं षड्लिङ्गं चैव यज्ञभूः॥१४७॥
मुण्डीरादित्रिकार्कं च सतीपरिणयाह्वयम्।
रुद्रशीर्षं च यागेशं बालखिल्यं च गारुडम्॥१४८॥

लक्ष्मीशापः सप्तविंशसोमप्रासादमेव च।
अम्बाबद्धं पाण्डुकाख्यमाग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम्॥१४९॥
गोमुखं लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा। शानैश्चरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः॥१५०॥
कुशेशाख्यं लवेशाख्यं लिङ्गं सर्वोत्तमोत्तमम्।
अष्टषष्टिसमाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिजातकम्॥१५१॥
ततो वै रेवती चात्र भक्तिकातीर्थसम्भवः।
क्षेमङ्करी च केदारं शुक्लतीर्थमुखारकम्॥१५२॥
सत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पलाकथा।
अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्यं गाणेशमेव च॥१५३॥

इस खण्ड में लिंगोत्पत्ति वर्णन के अनन्तर कल्याणप्रदा हरिश्चन्द्र कथा, विश्वामित्र प्रसंग, त्रिशंकु का स्वर्गगमन, हाटकेश्वर महिमा, वृत्रासुरवध, नागबिल, शंखतीर्थ, अचलेश्वर वर्णन, चमत्कारपुर का आख्यान, चमत्कारतीर्थ, गयातीर्थ, बालशांख्य, बालमण्ड, मृगतीर्थ, विष्णुपादतीर्थ, गोकर्ण, युगरूप, सिद्धेश्वर, नागसर, सप्तार्षेय-तीर्थ, अगत्स्यक, भ्रूणगर्त्त, नलेश, भैष्म, वैडूर, अर्कक, शारमिष्ठ, सोमनाथ, दौर्ग, आर्तजकेश्वर, जमादग्न्यवध का आख्यान, नैःक्षत्रियक कथानक, रामह्रद, नागपूर, षड्लिंग यज्ञभू, मुण्डीर आदि त्रिकार्क, सतीपरिणायतीर्थ, रुद्रशीर्ष, योगेश, बालखिल्य, गारुड़, लक्ष्मीशाप, २७ सोमप्रसाद, अम्बावद्ध, पाण्डुक, आग्नेय, ब्रह्मकुण्ड, गोमुख, लौहयष्टि, अजापालेश्वरि, शानैश्वर, राजवापी, रामेश, लक्ष्मणेश्वर, कुशेश, लवेश, सर्वोत्तम लिंग अष्टखष्टि-आख्यानतीर्थ, दमयन्ती त्रिजातक, रेवती वापी, भक्ति का तीर्थ, क्षेमंकरी, केदार, शुक्लतीर्थ, मुखारक, सत्यसन्धेश्वर गौर्य, गाणेशतीर्थ।।१४२-१५३।।

ततो वास्तुपदाऽख्यानमजागृहकथानकम्।
सौभाग्यान्धुश्च शूलेशं धर्मराजकथानकम्॥१५४॥
मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणापत्यत्रयं ततः। जाबालिचरितं चैव मकरेशकथा ततः॥१५५॥
कालेश्वर्यन्धकाख्यानं कुण्डमाप्सरसं तथा।
पुष्यादित्यं रोहिताश्वं नागरोत्पत्तिकीर्तनम्॥१५६॥
भार्गवं चरितं चैव वैश्वामैत्रं ततः परम्। सारस्वतं पैप्पलादं कंसारीशं च पैण्डकम्॥१५७॥
ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्र्याख्यानसंयुतम्।
रैवर्तं भार्तयज्ञाख्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम्॥१५८॥
कौरवं हाटकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकत्रयम्। पौष्करं नैमिषं धार्ममरण्यत्रितयं स्मृतम्॥१५९॥
वाराणसी द्वारकाख्यावन्त्याख्येति पुरीत्रयम्।
वृन्दावनं खाण्डवाख्यमद्वैकाख्यं वनत्रयम्॥१६०॥
कल्पः शालस्तथा नन्दिग्रामत्रयमनुत्तमम्। असिशुक्लपितृसंज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम्॥१६१॥

श्यूर्बुदौ रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम्। नदीनां त्रितयं गङ्गा नर्मदा च सरस्वती॥१६२॥
सार्द्धकोटित्रयफलमेकैकं चैषु कीर्तितम्।
कूपिका शङ्खतीर्थं चामरकं बालमण्डनम्॥१६३॥
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम्।
साम्बादित्यं श्राद्धकल्पं यौधिष्ठिरमथान्धकम्॥१६४॥
जलशायि चतुर्मासशून्यशयनव्रतम्। मङ्कणेशं शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम्॥१६५॥
पृथ्वीदानं वानकेशं कपालमोचनेश्वरम्। पापपिण्डं मासलैङ्गं युगमानादिकीर्तनम्॥१६६॥
निंवेशशाकम्भर्याख्या रुद्रैकादशकीर्तनम्। दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्तनम्॥१६७॥
इत्येष नागरः खण्डः प्रभासाख्योऽधुनोच्यते।
सोमेशो यत्र विश्वेशोऽर्कस्थलं पुण्यदं महत्॥१६८॥

वास्तुपद उपाख्यान, अजागृह कथानक, सौभाग्यान्धु, शूलेश, धर्मराज कथानक, मिष्ठान्नदेव उपाख्यान, गाणपत्यत्रय, जाबालिचरित, मकरेश कथा, कालेश्वर्यन्धकाख्यान, अप्सरसकुण्ड, पुष्यादित्य, रोहिताश्व, नागरोत्पत्ति वर्णन, भार्गव तथा विश्वमित्रचरित, सारस्वत, पैप्पलाद, कंसारीश, पिण्डक, ब्रह्मयज्ञ चरित, सावित्री का आख्यान, रैवत, भार्त्तयज्ञ का आख्यान, मुख्यतीर्थ दर्शन, कौरव-हाटकेश-प्रभास नामक तीन क्षेत्र, पौष्कर-नैमिष-धार्म अरण्य त्रय, वाराणसी-द्वारका-मनु ग्रामत्रय, असि-शुल्क-पितर तीर्थत्रय, श्री-अर्बुद-रैवत पर्वतत्रय, गंगा-नर्मदा-सरस्वती नदीत्रय का वर्णन किया गया है। इनमें से प्रत्येक तीर्थ सेवन का फल साढ़े तीन कोटि तीर्थफलप्रद है, कूपिका, शंखतीर्थ, चामरक, बालमण्डन, ये हाटकेश्वर क्षेत्रवत् फलद हैं। पार्वती-आदित्य कथा श्राद्धकल्प, युधिष्ठिर-अन्धक संवाद, जलशायीव्रत, चातुर्मास्य व्रत, अशून्यशयनव्रत, मंकणेश, शिवरात्रि तुलापुरुषज्ञान, पृथिवीदान, वानकेश, कपालमोचनेश्वर, पापपिण्ड, मासलैंग, युगमानादि कीर्त्तन, निंवेश, शाकंभरी आख्यान, एकादशरुद्र कीर्त्तन, दानमहिमा कथन, द्वादशादित्य वर्णन—यह सब विषय नागर खण्डोक्त हैं। अब **प्रभास-खण्ड** सुनो। यह **सप्तम-खण्ड** है। इस खण्ड में सोमेश, विश्वेश महापुण्यफलप्रद अर्कस्थल का वर्णन है।।१५४-१६८।।

सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्तितम्।
अग्नितीर्थं कपर्द्दीशं केदारेशं गतिप्रदम्॥१६९॥
भीमभैरवचण्डीशभास्करेन्दुकुजेश्वराः। बुधेज्यभृगुसौरागुशिखीशा हरविग्रहाः॥१७०॥
सिद्धेश्वराद्याः पञ्चान्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः।
वरारोहा ह्यजा पाला मङ्गला ललितेश्वरी॥१७१॥
लक्ष्मीशो वाडवेशश्चोर्वीशः कामेश्वरस्तथाः।
गौरीशवरुणेशाख्यं दुर्वासेशं गणेश्वरम्॥१७२॥
कुमारेशं चण्डकल्पं शकुलीश्वरसंज्ञकम्।
ततः प्रोक्तोऽथ कोटीशबालब्रह्मादिसत्कथा॥१७३॥

नरकेशसंवर्त्तेशनिधीश्वरकथा ततः। बलभद्रेश्वरस्याथ गङ्गाया गणपस्य च॥१७४॥
जाम्बवत्याख्यसरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा।
शतमेधलक्षमेधकोटिमेधकथा ततः॥१७५॥
दुर्वासार्कघटस्थानहिरण्यासङ्गमोत्कथा। नगरार्कस्य कृष्णस्य सङ्कर्षणसमुद्रयोः॥१७६॥
कुमार्याः क्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य तथा पृथक्।
पिङ्गलासङ्गमेशस्य शङ्करार्कघटेशयोः॥१७७॥

तदनन्तर सिद्धेश्वर आख्यान, अग्नितीर्थ, कपर्दीश, केदारेश, भीम, भैरव, चण्डीश, भास्कर, अंगारकेश्वर, बुध, इज्य, भृगु, सौर, आगु, शिखीश, सिद्धेश्वर प्रभृति शिवविग्रह तथा पंचरुद्रावस्थान, वरारोहा, अजा, पाला, मंगला, ललितेश्वरी, लक्ष्मीश, बाड़वेश, उर्वीश, कामेश्वर, गौरीश, वरुणेश, दुर्वासेश्वर, गणेश्वर, कुमारेश, चण्डकल्प, शकुलीश्वर, कोटीश, बालब्रह्मादि की सत्यकथा, नरकेश, संवर्त्तेश, निधीश्वर कथा, बलभद्रेश्वर, गंगा, गणय जाम्बवती नदी, पाण्डुकूप, शतमेध, लक्षमेध, कोटिमेध कथा, दुर्वासार्क, घटस्थान, हिरण्यासंगम कथा, नगरार्क, कृष्ण, संकर्षण, समुद्र, कुमारी, क्षेत्रपाल, ब्रह्मेश, पिंगलासंगमेश, शंकरार्क, घटेश,।।१६९-१७७।।

ऋषितीर्थस्य नन्दार्कत्रितकूपस्य कीर्तनम्।
ससोपानस्य पर्णार्कन्यङ्कुमत्योः कथाद्भुता॥१७८॥
वाराहस्वामि वृत्तान्तं छायालिङ्गाख्यगुल्फयोः।
कथा कनकनन्दायाः कुतीगङ्गेशयोस्तथा॥१७९॥
चमसोद्भेदविदुरत्रिलोकेशकथा ततः। मङ्कणेशत्रैपुरेशषडन्तीर्थकथास्तथा॥१८०॥
सूर्यप्राची त्रीक्षणयोरुमानाथकथा तथा। भूद्धारशूलस्थलयोश्च्यवनार्केशयोस्तथा॥१८१॥
अजापालेशबालार्ककुबेरस्थलजा कथा।
ऋषितोया कथा पुण्या सङ्गालेश्वरकीर्तनम्॥१८२॥
नारदादित्य कथनं नारायणनिरूपणम्।
तप्तकुण्डस्य माहात्म्यं मूलचण्डीशवर्णनम्॥१८३॥
चतुर्वक्त्रगणाध्यक्षकलम्बेश्वरयोः कथा। गोपालस्वामिवकुलस्वामिनोर्मरुतां कथा॥१८४॥
क्षेमार्कोन्नतविघ्नेशजलस्वामिकथा ततः। कालमेघस्य रुक्मिण्या दुर्वासेश्वरभद्रयोः॥१८५॥
शङ्खावर्तमोक्षतीर्थगोप्पदाच्युतसद्मनाम्। जालेश्वरस्य हुङ्कारेश्वरचण्डीशयोः कथा॥१८६॥
आशापुरस्थविघ्नेशकलाकुण्डकथाद्भुता। कपिलेशस्य च कथा जरदगवशिवस्य च॥१८७॥
नलकर्कोटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा। नारदेशयन्त्रभूषादुर्गकूटगणेशजा॥१८८॥
सुपर्णैलाख्यभैरव्योर्भल्लतीर्थभवा कथा। कीर्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च॥१८९॥
बहुस्वर्णेशशृङ्गेशकोटीश्वरकथा ततः। मार्कण्डेश्वरकोटीशदामोदरगृहोत्कथा॥१९०॥

ऋषितीर्थ, नन्दार्क, त्रितकूप, शशोपान, पर्णार्क, न्यकुमती, वाराहस्वामी वृत्तान्त, छायालिंग, गुल्फ, कनकनंदा, कुंती, गंगेश, चर्मसोद्भेद, विदुर, त्रिलोकेश कथा, मंकणेश, त्रैपुरेश, षड्तीर्थ कथा, सूर्यप्राची, त्रीक्षण, उमानाथ कथा, भूद्धार, शूलस्थल, च्यवनार्केश, अजपालेश, बालार्क, कुबेरस्थल, ऋषितोया, संगालेश्वर, नारदादित्यकथा, नारायणनिरूपण, तप्तकुण्डमहिमा, मूलचण्डीश्वर वर्णन, चतुर्वक्त्र, गणोध्यक्ष, कम्बलेश्वर, गोपालस्वामी, वकुलस्वामी, मरुत् की कथा, क्षेमार्क, उन्नत, विघ्नेश, जलस्वामी की कथा, कालमेघ, रुक्मिणी, दुर्वासा, ईश्वरभद्रकथा, शंखावर्त्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पदतीर्थ, अच्युतसद्म, जालेश्वर, हुंकारेश्वर तथा चण्डीश की कथा। आशापुर, विघ्नेश, कलाकुण्ड, कपिलेश, जरद्गवशिव, नलकर्कोटेश्वर, हाटकेश्वर, नारदेश, यन्त्र, भूषा, दुर्ग, कूट, गणेश, सुपर्णैला, भैरवी, भल्लतीर्थ, कर्दमाल, गुप्तसोमेश्वर, बहुस्वर्णेश, श्रृंगेश, कोटीश्वर की कथा, मार्कण्डेश्वर, कोटीश, दामोदरगृह की कथा कही गयी है।।१७८-१९०।।

स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्तीभीमेश्वदरौ तथा।
मृगीकुण्डं च सर्वस्वं क्षेत्र वस्त्रापथे स्मृतम्।।१९१।।
दुर्गाभिल्लेशगङ्गेशरैवतानां कथाद्भुता ततोऽर्बुदेश्वरकथा अचलेश्वरकीर्तनम्।।१९२।।
नागतीर्थस्य च कथा वसिष्ठाश्रमवर्णनम्।
भद्रकर्णस्य माहात्म्यं त्रिनेत्रस्य ततः परम्।।१९३।।
केदारस्य च माहात्म्यं तीर्थागमनकीर्तनम्। कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथास्ततः।।१९४।।
सिद्धेशशुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णीशकीर्तनम्। पङ्गुतीर्थयमतीर्थवाराहतीर्थवर्णनम्।।१९५।।
चन्द्रप्रभासपिण्डोदश्रीमाताशुक्लतीर्थजम् ।
कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिण्डारकस्य च।।१९६।।
ततः कनखलस्याथ चक्रमानुषतीर्थयोः।
कपिलाग्नितीर्थकथा तथा रक्तानुबन्धजा।।१९७।।
गणेशपार्थेश्वरयोर्यात्रायामुज्ज्वलस्य च। चण्डीस्थाननागोद्भवशिवकुण्डमहेशजा।।१९८।।
कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा ततः। उद्दालकेशसिद्धेशगततीर्थकथा पृथक्।।१९९।।
श्रीदेवखातोत्पत्तिश्च व्यासगौतमतीर्थयोः।
कुलसन्तारमाहात्म्यं रामकोट्याह्वतीर्थयोः।।२००।।

स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्ती-भीमेश्वर, मृगीकुण्ड, वस्त्रापथक्षेत्र, दुर्गा, भिल्लेश, गंगेश, रैवत, अर्बुदेश्वर, अचलेश्वर, नागतीर्थ, वसिष्ठाश्रम, भद्रकर्ण, त्रिनेत्र, केदारतीर्थगमन, कोटीश्वर रूपतीर्थ, हृषीकेश, सिद्धेश, शुक्रेश, मणिकर्णीश, पंगुतीर्थ, यमतीर्थ, वराहतीर्थ, चन्द्रप्रभास, पिण्डोद, श्रीमता, शुक्लतीर्थ, कात्यायनी, पिण्डारक, कनखल, चन्द्र, मानुषतीर्थ, कपिलाग्नितीर्थ, रक्तानुबन्ध, गणेश, पर्थिश्वर, उज्वलयात्रा, चण्डीस्थान, नागोद्भव, शिवकुण्ड, महेश, कामेश्वर, मार्कण्डेयोत्पत्ति, उद्धालकेश, सिद्धेश, गततीर्थ, श्रीदेवखात की उत्पत्ति, व्यासगौतम तीर्थ तथा कुल सन्तार माहात्म्य, रामतीर्थ, कोटितीर्थ।।१९१-२००।।

चन्द्रोद्भेदेशानशृङ्गब्रह्मस्थानोद्भवोऽद्भुतम्। त्रिपुष्कररुद्रह्रदगुहेश्वरकथा शुभा।।२०१।।

अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च।
महौजसः प्रभावश्च जम्बूतीर्थस्य वर्णनम्॥२०२॥
गङ्गाधरमिश्रकयोः कथा वाथ फलस्तुतिः।
द्वारकायाश्च माहात्म्यं चन्द्रशर्मकथानकम्॥२०३॥
जागराद्यर्चनाद्याख्या व्रतमेकादशीभवम्। महाद्वादशिकाख्यानं प्रह्लादर्षिसमागमः॥२०४॥
दुर्वासस उपाख्यानं यत्रोपक्रमकीर्तनम्।
गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्या स्नानादिजं फलम्॥२०५॥
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं गोमत्युदधिसङ्गमः।
सनकादिह्रदाख्यानं नृगतीर्थकथा ततः॥२०६॥
गोप्रचारकथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः। गोपीसरः समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादि कीर्त्तनम्॥२०७॥
पञ्चनद्यागमाख्यानं नानाख्यानसमन्वितम्। शिवलिङ्गगदातीर्थकृष्णपूजादिकीर्तनम्॥२०८॥
त्रिविक्रमस्य मूर्ताख्या दुर्वासःकृष्णसङ्कथा।
कुशदैत्यवदोच्चारविशेषार्चनजं फलम्॥२०९॥

चन्द्रोद्भेद, ईशानशृंग, ब्रह्मस्थानोद्भव अद्भुततीर्थ, त्रिपुष्कर, रुद्रह्रद, गुह्येश्वर की शुभा कथा, अविमुक्त माहात्म्य, उमा एवं महान् तेजस्वी महेश्वर के प्रभाव का वर्णन, जम्बूतीर्थ कथा, गंगाधर-मिश्रक वृत्तान्त, फलश्रुति द्वारकामाहात्म्य वर्णन, जागरादि अर्चन वर्णन, एकादशी व्रत, महाद्वादशी आख्यान, प्रह्लाद-ऋषि समागम, दुर्वासोपाख्यान, यात्रा उपक्रम वर्णन, गोमती उत्पत्ति कथा तथा स्नानादि फल, चक्रतीर्थ महिमा, गोमती-सागर-संगम, सनकादि ह्रद का वर्णन नृगतीर्थ कथा, गोप्रचार कथा, गोपीगण का द्वारका आना, गोपीसर महिमा, ब्रह्मतीर्थादि का वर्णन, पंचनदी समागम, नाना आख्यान, शिवलिंग, गदातीर्थ, कृष्णपूजा वर्णन, त्रिविक्रम मूर्त्ति कथा, दुर्वासा-कृष्ण की कथा, कुशदैत्य का वध, विशेष पूजाफल कथन।।२०१-२०९।।

गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीर्तनम्। कृष्णमन्दिरसम्प्रेक्षा द्वारवत्यभिषेचनम्॥२१०॥
तत्र तीर्थावासकथा द्वारकापुण्यकीर्तनम्।
इत्येष सप्तमः प्रोक्तः खण्डः प्राभासिको द्विजाः॥२११॥
स्कान्दे सर्वोत्तरकथे शिवमाहात्म्यवर्णने।
लिखित्वैतत्तु यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम्॥२१२॥
माध्वां सत्कृत्य विप्राय स शैवे मोदते पदे॥२१३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे स्कन्दपुराणानुक्रमणीवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः।।१०४।।

गोमती तथा द्वारका तीर्थागमन फल, कृष्णमन्दिर निरीक्षण, द्वारवती अभिषेक, वहां तीर्थावास की

कथा, द्वारका पुण्य कीर्त्तन। हे द्विज! यह सप्तम प्रभास खण्ड कहा गया। इसमें स्कन्दपुराण के उत्तरभाग की सभी कथाओं का वर्णन है तथा शिवमहिमा कही गयी है। इसे लिखकर माघीपूर्णिमा तिथि पर शूल सहित पूजा करके ब्राह्मण को प्रदान करे। इसे स्वर्णयुत करके दान करे। ऐसा साधक सदा शैवपद पर आनन्द लेता है।।२१०-२१३।।

।।१०४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

वामनपुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम्।
त्रिविक्रमचरित्राढ्यं दशसाहस्त्रसङ्ख्यकम्॥१॥

कूर्मकल्पसमाख्यानं वर्गत्रयकथानकम्। भागद्वयसमायुक्तं वक्तृश्रोतृशुभावहम्॥२॥
पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः। कपालमोचनाख्यानं दक्षयज्ञविहिंसनम्॥३॥
हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहनं ततः। प्रह्लादनारायणयोर्युद्धं देवासुराहवः॥४॥
सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोशकम्। ततः काम्यव्रताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः॥५॥
तपतीचरितं पश्चात्कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम्। सत्यामाहात्म्यमतुलं पार्वतीजन्मकीर्तनम्॥६॥
तपस्तस्या विवाहश्च गौर्युपाख्यानकं ततः। ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! अब मैं वामनपुराण कहता हूं।-इसमें १०००० श्लोक हैं तथा देवदेव त्रिविक्रम का चरित्र कीर्त्तित है। यह कूर्मकल्प का उपाख्यान है, जिसमें वर्गत्रय की कथा निरूपित है। यह भागद्वय युक्त है। यह वक्ता तथा श्रोता, दोनों के लिये शुभप्रद है। इसमें पुराणप्रश्न के बाद ब्रह्मा का शिरच्छेद, कपालमोचन उपाख्यान, दक्षयज्ञनाश, हर का कालारूप वर्णन, कामदहन, प्रह्लाद-नारायण युद्ध, देवासुर संग्राम, सुकेशी अर्क प्रसंग, भुवनकोश वर्णन, काम्यव्रत प्रसंग, श्री दुर्गाचरित, तपती चरित, कुरुक्षेत्र का वर्णन, सत्या का अतुलित माहात्म्य, पार्वती का अलौकिक जन्म वर्णन, उनका तप-विवाह, गौरी उपाख्यान, कौशिकी उपाख्यान, कुमार चरित।।१-७।।

ततोऽन्धकबधाख्यानं साध्योपाख्यानकं ततः।
जाबालिचरितं पश्चादरजायाः कथाद्भुता॥८॥

अन्धकेश्वरयोर्युद्धं गणत्वं चान्धकस्य च। मरुतां जन्मकथनं बलेश्च चरितं ततः॥९॥

ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रममतः परम्।
प्रह्लादतीर्थयात्रायां प्रोच्यन्तेऽथ कथाः शुभाः॥१०॥
ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः। नक्षत्रपुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः॥११॥
त्रिविक्रमचरित्रान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवोत्तमः। प्रह्लादबलिसंवादे सुतले हरिशंसनम्॥१२॥
इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः। शृण्वतोऽस्योत्तरं भागं बृहद्वामनसंज्ञकम्॥१३॥

तदनन्तर अन्धकवध, साध्य का आख्यान, जाबालि का चरित तथा अरज की अद्भुत कथा। अन्धकेश्वर युद्ध, गणत्वलाभ, मरुतों का जन्म वर्णन, बलिचरित, लक्ष्मीचरित, त्रैविक्रममत, प्रह्लादतीर्थ यात्रा की शुभ कथा कही गयी है। तब धुन्धुचरित, प्रेतोपाख्यान, नक्षत्रपुरुष का आख्यान, श्रीदामचरित, त्रिविक्रमचरित, ब्रह्माकृत उत्तम स्तव, प्रह्लाद-बलि संवाद, सुतल में हरि का निवास कहा है। यह मैंने पुराण का पूर्वभाग तुमसे कह दिया। अब बृहद्वामन नामक उत्तर भाग सुनें।।८-१३।।

माहेश्वरी भागवती सौरी गाणेश्वरी तथा।
चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसङ्ख्यया॥१४॥
माहेश्वर्यां तु कृष्णस्य तद्भक्तानां च कीर्तनम्। भागवत्यां जगन्मातुरवतारकथाद्भुता॥१५॥
सौर्यां सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः। गाणेश्वर्यां गणेशस्य चरितं च महेशितुः॥१६॥
इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रकम्। पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने॥१७॥
ततो नारदतः ताप्तं व्यासेन सुमहात्मना।
व्यासात्तु लब्धवांश्चैतत् तच्छिष्यो रोमहर्षणः॥१८॥
स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च।
एवं परम्पराप्राप्तं पुराणं वामनं शुभम्॥१९॥
ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेऽपि यान्ति परां गतिम्।
लिखित्वैतत्पुराणं तु यः शरद्विषुवेऽर्पयेत्॥२०॥
विप्राय वेदविदुषे घृतेधेनुसमन्वितम्। स समुद्धृत्य नरकान्नयेत्स्वर्गं पितृन्स्वकान्॥२१॥
देहान्ते भुक्तभोगोऽसौ याति विष्णोः परं पदम्॥२२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे वामनपुराणानुक्रमणी-
वर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५॥

—✻✻✻—

एक-एक हजार श्लोक की चार संहितायें हैं। यथा—माहेश्वरी, भागवती, सौरी, गणेश्वरी। माहेश्वरी में कृष्ण तथा उनके भक्तों का वर्णन, भागवती में जगन्माता के अद्‌भुद् अवतार की कथा, सौर में सूर्य महिमा वर्णित है, जो पापनाशक है। गाणेश संहिता में गणेश तथा महेश का चरित्र है। यह विचित्र पुराण पुलत्स्य ने नारद से कहा था। नारद से महात्मा व्यास ने सुना। व्यास से उनके शिष्य रोमहर्षण ने प्राप्त किया। उन्होंने

नैमिषवासी विप्रगण से कहा। एवंविध यह पावन वामनपुराण परम्परागत प्राप्त है। इसका श्रवण किंवा पाठ करने वाला सद्गति लाभ करता है। जो इसे लिखकर शरद पूर्णिमा को इसे घृत धेनु बनाकर वेदवेत्ता ब्राह्मण को देता है, वह अपने पितरों को नरक से मुक्ति दिलाकर उनको स्वर्गगामी कर देता है। वह दाता व्यक्ति भी इस लोक में सुखभोग करके देहान्त में वैकुण्ठ गमन करता है।।१४-२२।।

।।१०५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
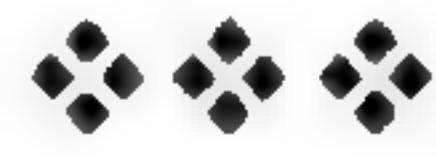
अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

कूर्मपुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स मरीचे त्वं पुराणं कूर्मसंज्ञकम्। लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्मवपुर्हरिः।।१।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यं च पृथक्पृथक्। इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन प्राहर्षिभ्यो दयान्वितः।।२।।
तत्सप्तदशसाहस्त्रं सुचतुः संहितं शुभम्। यत्र ब्राह्माः पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने।।३।।
नानाकथाप्रसङ्गेन नृणां सद्गतिदायकाः। तत्र पूर्वविभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा।।४।।
लक्ष्मीन्द्रुद्युम्नसंवादः कूर्म्मर्षिगणसङ्कथा। वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्तनम्।।५।।
कालसंख्या समासेन लयान्ते स्तवनं विभोः। ततः संक्षेपतः सर्गः शाङ्करं चरितं तथा।।६।।
सहस्त्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम्। भृगुवंशसमाख्यानं ततः स्वायम्भुवस्य च।।७।।
देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयज्ञाहतिस्ततः। दक्षसृष्टिकथा पश्चात्कश्यपान्वयकीर्तनम्।।८।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स मरीचि! अब कूर्म नामक पुराण श्रवण करो। यह लक्ष्मी कल्प का चरित है। इसमें हरि के कूर्मावतार तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष माहात्म्य को पृथक्तः कहा गया है। इसे महर्षियों ने दयाप्लुत होकर इन्द्रद्युम्न प्रसंग में कहा है। इसमें ४ संहिता तथा १७००० श्लोक हैं। हे मुनि! पहले ब्रह्मा द्वारा पूर्वकाल में कहे गये नानाविध धर्म का वर्णन है। इसमें नाना कथा प्रसंग है, जो मनुष्यों हेतु सद्गतिप्रद है। इसमें वर्णाश्रमाचार कथा, जगत् उत्पत्ति प्रसंग वर्णित है। कालसंख्या, संक्षेप में सृष्टिलयान्त के वर्णनोपरान्त विभु का स्तवन, संक्षेप में सर्ग कथन, शंकर चरित, पार्वती सहस्त्रनाम, योगनिरूपण, भृगुवंशाख्यान, स्वायम्भुव आख्यान, देवगणोत्पत्ति, दक्षयज्ञ नाश, दक्षसृष्टि कथा तदनन्तर कश्यप वंश का वर्णन है।।१-८।।

आत्रेयवंशकथनं कृष्णस्य चरितं शुभम्। मार्तण्डकृष्णसंवादो व्यासपाण्डवसङ्कथा।।९।।
युगधर्मानुकथनं व्यासजैमिनीकीर्तनम्। वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम्।।१०।।
त्रैलोक्यवर्णनं चैव वेदशाखानिरूपणम्। उत्तरेऽस्या विभागे तु पुरा गीतैश्वरी ततः।।११।।

व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रबोधिनी।
नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यं च पृथक् ततः॥१२॥
प्रतिसर्गप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता। अतः परं भागवतीसंहितार्थं निरूपणम्॥१३॥
कथिता यत्र वर्णानां पृथग्वृत्तिरुदाहृता।
पादेऽस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः॥१४॥
सदाचारात्मिका वत्स भोगसौख्यविवर्द्धनी।
द्वितीये क्षत्रियाणां तु वृत्तिः सम्यक्प्रकीर्तिता॥१५॥
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेद्दिवम्।
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा॥१६॥
यया चरितया सम्यग्लभते गतिमुत्तमाम्। चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता॥१७॥
यया सन्तुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयोविवर्द्धनः।
पञ्चमेऽस्यास्ततः पादे वृत्तिः सङ्करजोदिता॥१८॥
यया चरितमाप्नोति भाविनीं गतिमुत्तमाम्। इत्येषा पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने॥१९॥

तदनन्तर आत्रेय वंश कथन, कृष्ण का शुभचरित, सूर्य-कृष्णसंवाद, व्यास-पाण्डवों की कथा, यगुधर्म कथन, व्यास-जैमिनि कथा, वाराणसी प्रयाग महिमा, प्रयाग महिमा, त्रैलोक्य वर्णन, वेदशाखानिरूपण वर्णित है। इस ग्रन्थ के उत्तर भाग में ईश्वरीगीता, व्यासगीता, कही गयी है। ये नाना धर्मप्रबोधनी हैं। तदनन्तर नानातीर्थ विधान, तीर्थ माहात्म्य पृथक्तः कहे गये। प्रतिसर्ग कथन, यह ब्राह्मीय संहितोक्त विषय है। भागवती संहिता के प्रथम पाद में सदाचार सम्पन्न भोगसौख्य वर्द्धक ब्राह्मणों की व्यवस्था वर्णित है। द्वितीयपाद में क्षत्रियधर्म का वर्णन है, जिसे अपनाने वाले क्षत्रिय स्वर्ग जाते हैं। तृतीय पाद में वैश्यों की चतुर्विध वृत्ति का वर्णन है। इसे पालन करके वे सम्यक् रूप से जीवन निर्वाह करके अन्ततः उत्तमगति प्राप्त करते हैं। चतुर्थ पाद में शूद्रवृत्ति कथित है। इसे करके वे मानवगण के कल्याणवर्द्धक नारायण को सन्तुष्ट करते हैं। पंचम पाद में संकर जाति वालों की वृत्ति कही गयी है। उसे पालन करने से संकर लोग उत्तमगति पाते हैं। हे मुनिवर! यह पंचपदी द्वितीय संहिता है।।९-१९।।

तृतीयात्रोदिता सौरी नृणां कार्यविधायिनी। षोढा षट्कर्मसिद्धिं बोधयन्ती च कामिनाम्॥२०॥
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता। चतुष्पदी द्विजातीनां साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी॥२१॥
ताः क्रमात्षट्चतुर्द्वीषुसाहस्राः परिकीर्तिताः॥२२॥
एत्कूर्मपुराणं तु चतुर्वर्गफलप्रदम्। पठतां श्रृण्वतां नृणां सर्वोत्कृष्टगतिप्रदम्॥२३॥
लिखित्वैतत्तु यो भक्त्या हेमकूर्मसमन्वितम्। ब्राह्मणायायायने दद्यात्स यातिपरमां गतिम्॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे कूर्मपुराणानुक्रमणी-
कथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

तृतीय सौरी संहिता मनुष्यों के कार्यों की विधायिनी है। इससे षट्कर्म सिद्धि सकाम लोगों की होती है। चतुर्थ वैष्णवी संहिता मोक्षप्रदा, चतुष्पादा तथा द्विजों हेतु ब्रह्मस्वरूपा हैं। यह कूर्मपुराण चतुर्वर्ग फलप्रद है। इसका पाठ करे तथा श्रवण करे। इससे मानव उत्तमगतिलाभ करता है। जो इसे लिखकर स्वेच्छा से ब्राह्मण को स्वर्ण के कच्छप सहित देता है, वह परमगति लाभ करता है।।२०-२४।।

।।१०६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
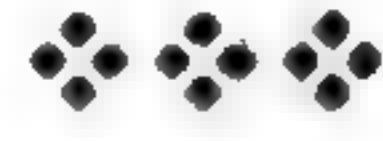
अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्यपुराण की सूची

ब्रह्मोवाच

अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम। यत्रोक्तं सप्तकल्पानां वृत्तं संक्षिप्य भूतले॥१॥
व्यासेन वेदविदुषा नारसिंहोपवर्णने। उपक्रम्य तदुद्दिष्टं चतुर्दशसहस्त्रकम्॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—अव मैं मत्स्यपुराण कहता हूं। इसमें पृथिवी पर वेदवेत्ता व्यास ने सातकल्पों का संक्षिप्त वृत्तान्त कहा है। इसके उपक्रम के अन्तर्गत् नरसिंह का भी वर्णन है। यह चौदह हजार श्लोकात्मक ग्रन्थ है।।१-२।।

मनुमत्स्यसुसंवादो ब्रह्माण्डकथनं ततः। ब्रह्मदेवासुरोत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च॥३॥
मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम्। मन्वन्तरसमुद्देशो वैन्यराज्याभिवर्णनम्॥४॥
सूर्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसङ्गमनं तथा। पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च॥५॥
पितृतीर्थप्रचारश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च। कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा॥६॥
कार्तवीर्यस्य चरितं सृष्टवंशानुकीर्तनम्। भृगुपाशपस्तथा विष्णोर्दशधा जन्मने क्षितौ॥७॥
कीर्त्तनं पूरुवंशस्य वंशो हौताशनः परम्। क्रियायोगस्ततः पश्चात्पुराणपरिकीर्तनम्॥८॥
व्रतं नक्षत्रपुरुषं मार्तण्डशयनं तथा। कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम्॥९॥
तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च। सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च॥१०॥
तथानन्ततृतीयाया रसकल्याणिनीव्रतम्। तथैवानन्दकर्याश्च व्रतं सारस्वतं पुनः॥११॥
उपरागाभिषेकश्च सप्तमीशयनं तथा। भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयनं तथा॥१२॥
अशून्यशयनं तद्वत्तथैवाङ्गारकव्रतम्। सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वाद्वदशीव्रतम्॥१३॥
मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च। ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी॥१४॥
तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा। सङ्क्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम्॥१५॥

षष्टिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः।
प्रयागस्य तु माहात्म्यं द्वीपलोकानुवर्णनम्॥१६॥

इसमें पहले मनु-मत्स्य संवादोपरान्त ब्रह्माण्ड कथन ब्रह्मा, देवता, आसुरों की उत्पत्ति, मरुत् की उत्पत्ति, मदनद्वादशी, लोकपाल पूजन, मन्वन्तर निर्देश, वैनराज्य का वर्णन, सूर्य-वैवस्वतोत्पत्ति, बुध संगमम्, पितृवंश वर्णन, श्राद्धकाल कथन, पितृतीर्थप्रचार, सोमोत्पत्ति, सोमवंश वर्णन, ययाति चरित, कार्त्तवीर्यचरित, सृष्टवंशानुकीर्त्तन, भृगुशाप, विष्णु का पृथिवी पर दस जन्म, पुरुवंश तथा हुताशन वंश वर्णन, क्रियायोग, पुराणकथा, नक्षत्रपुरुषव्रत, मार्त्तण्ड शयन व्रत, कृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणी-चन्द्रवत, तड़ागविधि महिमा, पादपोत्सर्ग, सौभाग्यशयन, अगत्स्यव्रत, अनन्त तृतीयाव्रत, रसकल्याणी व्रत, आनन्दकारीव्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेक, सप्तमीशयन, भीमाद्वादशी, अनंगशयन, अशून्यशयन, अंगारकव्रत, सप्तमीसप्तक, विशोकद्वादशीव्रत, मेरुप्रदान, दशधाग्रहशांन्ति, ग्रहस्वरूपवर्णन, शिवचतुर्दशी, सर्वफलत्याग, सूर्यवार व्रत, संक्रान्ति स्नान, विभूतिद्वादशीव्रत, षष्टिव्रत माहात्म्य, स्नानविधिक्रम, प्रयाग महिमा, द्वीपलोक वर्णन।।३-१६।।

तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च। भवनानि सुरेन्द्राणि त्रिपुरोद्योतनं तथा॥१७॥
पितृप्रवरमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयः। चतुर्युगस्य सम्भूतिर्युगधर्मनिरूपणम्॥१८॥
वज्राङ्गस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च। तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुकीर्तनम्॥१९॥
पार्वतीसम्भवस्तद्वत्तथा शिवतपोवनम्। अनङ्गदेहदाहश्च रतिशोकस्तथैव च॥२०॥
गौरीतपोवनं तद्विच्छिवेनाथ प्रसादनम्। पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम्॥२१॥
कुमारसम्भवस्तद्वत्कुमारविजयस्तथा। तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम्॥२२॥
पद्मोद्भवविसर्गस्तुतथैवान्धकघातनम्। वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च॥२३॥
प्रवरानुक्रमस्तद्वत्पितृगाथानुकीर्तनम्। तयोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च॥२४॥
ततः सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च। विविधोत्पातकथनं ग्रहणान्तस्तथैव च॥२५॥

अन्तरिक्ष संचरण, ध्रुव माहात्म्य, सुरेन्द्र के भवन, त्रिपुरप्रभाव, पितृप्रवर महिमा, मन्वन्तरनिर्णय, चतुर्युग की उत्पत्ति, शिवतपोवन, कामदेव दाह, रतिशोक, गौरी तपोवन, शिवप्रसादन, पार्वती-ऋषि संवाद, परिणय मंगल, कुमारजन्म, कुमारी विजय, तारकवध, नारसिंह वर्णन, पद्मोभव विसर्ग, अंधक पातन, वाराणसी तथा नर्मदा महिमा, प्रवरानुक्रम, पितृगाथा वर्णन, उभयमुखी गोदान, कृष्ण मृगचर्म दान, सावित्री आख्यान, राजधर्म, नाना उत्पात वर्णन, ग्रहशान्ति।।१७-२५।।

यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमङ्गलकीर्तने। वामनस्य तु माहात्म्यं वाराहस्य ततः परम्॥२६॥
समुद्रमथनं तद्वत्कालकूटाभिशान्तनम्। देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्या तथैव च॥२७॥
प्रतिमालक्षणं तद्वद्देवतायतनं तथा। प्रासादलक्षणं ततद्वन्मण्डपान च लक्षणम्॥२८॥
भविष्यराज्ञामुद्देश्यो महादानानुकीर्तनम्। कल्पानुकीर्तनं तद्वत्पुराणेऽस्मिन्प्रकीर्तितम्॥२९॥

पवित्रमेतत्कल्याणमायुः कीर्तिविवर्द्धनम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति भवनं हरेः॥३०॥

लिखित्वैतत्तु यो दद्याद्धेममत्स्यगवान्वितम्।
विप्रायाभ्यर्च्य विषुवे स याति परमं पदम्॥३१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे मत्स्यपुराणानुक्रमणी-कथनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

यात्रानिमित्तकथन, स्वप्नमंगलकीर्त्तन, वामन माहात्म्य, वाराह माहात्म्य समुद्र मंथन, कालकूट निकलना, देवासुरयुद्ध, वास्तुविद्या, प्रतिमालक्षण, देवता स्थापन, प्रासादलक्षण, मण्डपलक्षण, भविष्य के राजागण का कथन, महादान कीर्त्तन, कल्पों का वर्णन इस पुराण में है। यह पावन पुराण कल्याण, आयु तथा यश बढ़ाने वाली है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह हरिलोक प्राप्त करता है। जो इसे लिखकर विषुवकाल में (जब दिन-रात बराबर होते हैं) ब्राह्मण को स्वर्ण मत्स्य तथा गौ सहित देता है, उसे परमपद की प्राप्ति होती है॥२६-३१॥

॥१०७वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
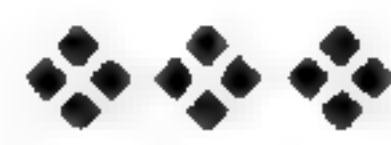
अथ अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

गरुड़ पुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मोवाच

मरीचे शृणु वक्ष्यामि पुराणं गारुडं शुभम्। गरुडायाब्रवीत्पृष्टो भगवान्गरुडासनः॥१॥
एकोनविंशसाहस्रं तार्क्ष्यकल्पकथान्वितम्। पुराणोपक्रमप्रश्नः सर्गः संक्षेपतस्ततः॥२॥
सूर्यादिपूजनविधिर्दीक्षाविधिरतःपरम्। श्राद्धपूजा ततः पश्चान्नवव्यूहार्चनं द्विज॥३॥

पूजाविधानं च तथा वैष्णवं पञ्जरम् ततः।
योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नामसाहस्रकीर्तनम्॥४॥
ध्यानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजा मृत्युञ्जयार्चनम्।
मालामन्त्रः शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम्॥५॥

गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहनश्रीधरार्चनम्। विष्ण्वर्चा पञ्चतत्त्वार्चा चक्रार्चा देवपूजनम्॥६॥

न्यासादिसन्ध्योपास्तिश्च दुर्गार्चाथ सुरार्चनम्।
पूजा माहेश्वरी चातः पवित्रारोपणार्चनम्॥७॥

मूर्तिध्यानं वास्तुमानं प्रासादानां च लक्षणम्। प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक्पूजा विधानतः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मरीचि! अब मैं शुभ गरुड़ पुराण कहता हूं। गरुड़ द्वारा पूछे जाने पर श्रीकृष्ण ने इस पुराण को गरुड़ से कहा। यह तार्क्ष्यकल्प की कथा से युक्त तथा १९००० श्लोकात्मक है। पूर्वखण्ड में पुराणोपक्रमप्रश्न, तदनन्तर सर्ग में संक्षेप में वर्णित है। तदनन्तर सूर्यादिपूजा विधि, दीक्षाविधि श्राद्धपूजा, नवव्यूहादि अर्चना, पूजा विधि, वैष्णवपंजर, योगाध्याय, विष्णुसहस्रनाम, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युंजय आराधना, मालामन्त्र, शिवार्चन, गणपूजा, गोपालपूजा, त्रैलोक्यमोहन, श्रीरार्चन, विष्णुपूजा, पंचतत्वार्चना, चक्रार्चन, देवपूजा, न्यासादि सन्ध्योपासन, दुर्गार्चन, देवार्चन, माहेश्वरी पूजा, पवित्रारोपणार्चन, मूर्त्तिध्यान, वास्तुमान, प्रासादलक्षण सर्वदेव प्रतिष्ठा तथा पृथक्-पृथक् सविधि पूजा।।१-८।।

योगोऽष्टाङ्गो दानधर्माः प्रायश्चित्तविधिक्रिया।
द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्यव्यूहश्च ज्योतिषम्॥९॥
सामुद्रिकं स्वरज्ञानं नवरत्नपरीक्षणम्। माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम्॥१०॥
ततो मन्वन्तराख्यानं पृथक्पृथग्विभागशः।
पित्राख्यानं वर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिः समर्पणम्॥११॥
श्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रहयज्ञस्तथा श्रमाः।
जननाख्यं प्रेतशौचं नीतिशास्त्रं व्रतोक्तयः॥१२॥
सूर्यवंशः सोमवंशोवतारकथनं हरेः। रामायणं हरेर्वंशो भारताख्यानकं ततः॥१३॥
आयुर्वेदनिदानं प्राक् चिकित्सा द्रव्यजा गुणाः।
रोगघ्नं कवचं विष्णोर्गारुडं त्रैपुरो मनुः॥१४॥

अष्टांगयोग, दानधर्म, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेश, नरकाख्यान, सूर्यव्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरज्ञान, नवरत्नपरीक्षा, तीर्थमहिमा, गया का उत्तम माहात्म्य, मन्वन्तराख्यान, इनका पृथक् पृथक् विभाग, पित्राख्यान, वर्णधर्म, द्रव्यशुद्धि, समर्पण श्राद्ध, विनायक अर्चना, ग्रहयज्ञ, आश्रम, जन्माख्यान, प्रेतशौच, नीतिशास्त्र, व्रतविधि, सूर्यवंश, सोमवंश, हरि का अवतार वर्णन, रामायण, हरि का वंश, भारतख्यान, आयुर्वेद निदान, प्राक् चिकित्सा, द्रव्यगुण, रोगनाशक कवच, विष्णु, गरुड़, त्रैपुर मन्त्र।।९-१४।।

प्रश्नचूडामणिश्चान्तो हयायुर्वेदकीर्तनम्। ओषधीनामकथनं ततो व्याकरणोहनम्॥१५॥
छन्दःशास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः।
तर्पणं वैश्वदेवं च सन्ध्या पार्वणकर्म च॥१६॥
नित्यश्राद्धं सपिण्डाख्यं धर्मसारोऽधनिष्कृतिः।
प्रतिसङ्क्रमः उक्ताः स्म युगधर्माः कृतेः फलम्॥१७॥
योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृतिफलं हरेः।
माहात्म्यं वैष्णवं चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम्॥१८॥

ज्ञानामृतं गुहाष्टकं स्तोत्रं विष्ण्वर्चनाह्वयम्।
वेदान्तसाङ्ख्यसिद्धान्तो ब्रह्मज्ञानं तथात्मकम्॥१९॥
गीतासारः फलोत्कीर्तिः पूर्वखण्डोऽयमीरितः।
अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्पः पुरोदितः॥२०॥

प्रश्नचूड़ामणि, हयायुर्वेद, औषधि के नाम, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, तर्पण, वैश्वदेव सन्ध्या, पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डशास्त्र, धर्मसार, पापों से छुटकारा, प्रतिसंक्रम, युगधर्म, कार्त्तव्यफल, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, हरि नमस्कारफल, वैष्णवमहिमा, नारसिंह स्तोत्र, ज्ञानामृत, गुहाष्टक स्तव, विष्णु अर्चना, वेदान्त-सांख्य सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान, गीतासार, पुराणफल कथन वर्णित हैं। यह पूर्वखण्ड का विषय है। अब उत्तर खण्ड में प्रेतकल्प कहा गया है।।१५-२०।।

यत्र ताक्ष्र्येण सम्पृष्टो भगवानाह वाडवाः। धर्मप्रकटनं पूर्वं योगिनां गतिकारणम्॥२१॥
दानादिकं फलं चापि प्रोक्तमन्त्रौर्ध्वदैहिकम्।
यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनं च ततः परम्॥२२॥
षोडशश्राद्धफलको वृत्तान्तश्चात्र वर्णितः। निष्कृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम्॥२३॥
प्रेतपीडाविनिर्देशः प्रेतचिह्ननिरूपणम्। प्रेतानां चरिताख्यानं कारणं प्रेततां प्रति॥२४॥
प्रेतकृत्यविचारश्च सपिण्डीकरणोक्तयः। प्रेतत्वमोक्षणाख्यानं दानानि च विमुक्तये॥२५॥
आवश्यकोत्तमं दानं प्रेतसौख्यकरोहनम्। शारीरकविनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम्॥२६॥
प्रेतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्त्तृविनिर्णयः। मृत्योः पूर्वक्रियाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम्॥२७॥
मध्यषोडशकश्राद्धं स्वर्गप्राप्तिक्रियोहनम्। सूतकस्याथ सङ्ख्यानं नारायणबलिक्रिया॥२८॥

गरुड़ के पूछने पर नारायण ने इसे कहा। तदनन्तर धर्मप्रकटन, योगीगण की गति, दानादि का फल, और्ध्वदैहिक मन्त्र, यमलोक मार्गवर्णन, षोडश श्राद्धफल कथन, यममार्ग से छुटकारा, धर्मराज का वैभव, प्रेतपीड़ा निर्देश, प्रेतचिह्न वर्णन, प्रेतचरित प्रसंग, प्रेतत्व के कारण, प्रेतकृत्य विचार, सपिण्डीकरण वर्णन, प्रेतत्व मोक्ष, मुक्तिहेतु दान, आवश्यक उत्तमदान, प्रेतों को सुखप्रद क्रिया, शारीरिक निर्देश, यमलोक वर्णन, प्रेतत्व से उद्धार, कर्म-कर्त्ता निर्णय, मृत्युपूर्व क्रिया वर्णन, षोडश श्राद्ध, स्वर्गलाभ क्रिया, सूतकसंख्यान, नारायण बलि क्रिया।।२१-२८।।

वृषोत्सर्गस्य माहात्म्यं निषिद्धपरिवर्जनम्। अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणां नृणाम्॥२९॥
कृत्याकृत्यविचारश्च विष्णुध्यानविमुक्तये। स्वर्गतौ विहिताख्यानं स्वर्गसौख्यनिरूपणम्॥३०॥
भूर्लोकवर्णनं चैव सप्ताधोलोकवर्णनम्। पञ्चोर्ध्वलोककथनं ब्रह्माण्डस्थितिकीर्तनम्॥३१॥
ब्रह्माण्डानेकचरितं ब्रह्मजीवनिरूपणम्। आत्यन्तिकं लयाख्यानं फलस्तुतिनिरूपणम्॥३२॥
इत्येतद्गारुडं नाम पुराणं भुक्तिमुक्तिदम्।
कीर्तितं पापशमनं पठतां शृण्वतां नृणाम्॥३३॥

लिखित्वैतत्पुराणं तु विषुवे यः प्रयच्छति।
सौवर्णहंसयुग्माढ्यं विप्राय स दिवं व्रजेत्॥३४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे गारुडानुक्रमणीवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः॥१०८॥

वृषोत्सर्ग महिमा, निषिद्ध का त्याग, अपमृत्यु होने पर विहित क्रिया, कर्मविपाक, कृत्य-अकृत्य विचार, मुक्ति हेतु विष्णुध्यान, स्वर्गगति हेतु विहित आख्यान, स्वर्गसुख निरूपण, भूलोक वर्णन, सात अधोलोक वर्णन पांच ऊर्ध्वलोक वर्णन, ब्रह्माण्ड की स्थिति, ब्रह्माण्ड के नाना चरित, ब्रह्मजीव वर्णन, आत्यन्तिक प्रलय वर्णन, फलस्तुति। इतना विषय उत्तर भाग में है। गरुड़पुराण पाठ करने तथा श्रवण करने पर भुक्ति-मुक्तिप्रद एवं पापहारी है। जो इसे लिखकर विषुव काल में स्वर्ण हंससहित ब्राह्मण को दान करता है, वह स्वर्गलाभ करता है॥२९-३४॥

॥१०८वां अध्याय समाप्त॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्डपुराणगत विषयों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डाख्यं पुरातनम्।
यश्च द्वादशसाहस्रमादिकल्पकथायुतम्॥१॥

प्रक्रियाख्योऽनुषङ्गाख्य उपोद्धातस्तृतीयकः। चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि॥२॥
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोऽत्र समुदाहृतः। तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरो मतः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! अब मैं पुरातन ब्रह्माण्डपुराण कहता हूं, जो १२००० श्लोकात्मक तथा आदिकल्प कथा संवलित है। इसके चार पाद हैं। यथा प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्धात, उपसंहार। प्रक्रिया तथा अनुषंग इसका पूर्व भाग है। उपोद्धात मध्यम है। उपसंहार उत्तरभाग है॥१-३॥

आदौ कृत्यसमुद्देशो नैमिषाख्यानकं ततः। हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनभेव च॥४॥
एष वै प्रथमः पादो द्वितीयं श्रृणु मानद। कल्पमन्वन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम्॥५॥
मानसीसृष्टिकथनं रुद्रप्रसववर्णनम्। महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम्॥६॥
अग्नीनां विजयश्चाथ कालसद्भाववर्णनम्। प्रियव्रतान्वयोद्देशः पृथिव्यायामविस्तरः॥७॥

वर्णनं भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम्।
जम्ब्वादिसप्तद्वीपाख्या ततोऽधोलोकवर्णनम्॥८॥
ऊर्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम्। आदित्यव्यूहकथनं देवग्रहानुकीर्तनम्॥९॥
नीलकण्ठाह्वयाख्यानं महादेवस्य वैभवम्। अमावास्यानुकथनं युगतत्त्वनिरूपणम्॥१०॥
यज्ञप्रवर्तनं चाथ युगयोरन्त्ययोः कृतिः। युगप्रजालक्षणं च ऋषिप्रवरवर्णनम्॥११॥

प्रथमपादान्तर्गत् कर्त्तव्य निर्देश, नैमिषाख्यान, हिरण्यगर्भोत्पत्ति तथा लोक कल्पन वर्णित है। हे मानद! द्वितीय कल्प में कल्प, मन्वन्तर उपाख्यान्, लोकज्ञान, मानसीसृष्टि, रुद्रप्रसव, महादेवविभूति, ऋषिसर्ग, अग्निविजय, कालसद्भाव वर्णन, प्रियव्रत वंश वर्णन, पृथिवी की दीर्घता तथा विस्तार, भारतवर्ष वर्णन, सप्तद्वीप वर्णन, अधोलोक वर्णन, ऊर्ध्वलोककथन, ग्रहाचार, आदित्यव्यूह वर्णन, देवानुग्रहकथन, नीलकण्ठप्रसंग, महादेव का वैभव, अमावस्या कथन, युगतत्व वर्णन, यज्ञप्रवर्त्तन, शेषयुग का कार्य, युगप्रजा लक्षण, ऋषिप्रवर वर्णन।।४-११।।

देवानां व्यसनाख्यानं स्वायंभुवनिरूपणम्। शेषमन्वन्तराख्यानं पृथ्वीदोहनं ततः॥१२॥
चाक्षुषेऽद्यतने सर्गे द्वितीयोऽङ्घ्रिः पुरोदले।
अथोपोद्धातपादे तु सप्तर्षिपरिकीर्तनम्॥१३॥
प्रजापत्यन्वयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः। ततो जयाभिलाषश्च मरुदुत्पत्तिकीर्तनम्॥१४॥
काश्यपेयानुकथनं ऋषिवंशनिरूपणम्। पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम्॥१५॥
वैवस्वतसमुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम्।
मनुपुत्रान्वयश्चान्तो गान्धर्वस्य निरूपणम्॥१६॥
इक्ष्वाकुवंशकथनं वंशोऽत्रेः सुमहात्मनः। अमावसोरन्वयश्च रजेश्चरितमद्भुतम्॥१७॥
ययातिचरितं चाथ यदुवंशनिरूपणम्। कार्तवीर्यस्य चरितं जामदग्न्यं ततः परम्॥१८॥
वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याथ सम्भवः। भार्गवस्यानुचरितं पितृकार्यवधाश्रयम्॥१९॥
सगरस्याथ चरितं भार्गवस्य कथा पुनः। देवासुरावहकथा कृष्णाविर्भाववर्णनम्॥२०॥
इन्द्रस्य तु स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्तितः।
विष्णुमाहात्म्यकथनं बलिवंशनिरूपणम्॥२१॥
भविष्यराजचरितं सम्प्राप्तेऽथ कलौ युगे। समुपोद्धातपादोऽयं तृतीयो मध्यमे दले॥२२॥

देवगण के व्यसन का आख्यान, स्वायम्भुव निरूपण, शेषमन्वन्तर वर्णन, पृथिवीदोहन, यही द्वितीयपाद है। इसमें चाक्षुष मन्वन्तर कथित है। उपोद्घात में सप्तर्षिगण की कथा, प्रजापति वंश वर्णन, देवादिक उत्पत्ति, विजयाभिलाषा, मरुत् की उत्पत्ति, काश्यपेय का अनुकथन, ऋषिवंश वर्णन, पितृकल्प वर्णन, श्राद्धकला, वैवस्वतोत्पत्ति, सृष्टि वर्णन, मनुपुत्रवंश, गान्धर्वनिरूपण, इक्ष्वाकुवंश कथन, महात्मा अत्रिवंश वर्णन, अमावसुवंशकथन, रजिचरित, ययाति चरित, यदुवंशवर्णन, कार्त्तवीर्यचरित, जामदग्न्यचरित, वृष्णिवंश

कथन, सगरोत्पत्ति, पितृवध सम्बन्धित भार्गव चरित, सगर वर्णन, पुनः भार्गव चरित, देवासुर युद्धकथा, कृष्ण का आविर्भाव, शुक्रद्वारा इन्द्रस्तव, विष्णु माहात्म्य वर्णन, बलिवंश-निरूपण, भविष्य के राजागण का चरित, जो कलियुग में होगा। यह तृतीय पाद अर्थात् उपोद्धात है। यह इस पुराण का मध्यम भाग है।।१३-२२।।

चतुर्थमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे। वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम्।।२३।।
पूर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते। भविष्याणां मनूनां च चरितं हि ततः परम्।।२४।।
कल्पप्रलयनिदशः कालमानं ततः परम्। लोकाश्चतुर्द्दश ततः कथिताः प्राप्तलक्षणैः।।२५।।
वर्णनं नरकाणां च विकर्माचरणैस्ततः। मनोमयपुराख्यानं लयः प्राकृतिकस्ततः।।२६।।
शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनं च ततः परम्।
त्रिविधागुणसम्बन्धाज्जन्तूनां कीर्तिता गतिः।।२७।।
अनिर्देश्याप्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम्।।२८।।
इत्येष उपसंहारपादो वृत्तः सहोत्तरः। चतुष्पादं पुराणं ते ब्रह्माण्डं समुदाहृतम्।।२९।।

अब उत्तर भागस्थ उपसंहार पाद कहा जा रहा है। यहां पुनः वैवस्वतान्तराख्यान विस्तार से कहा गया। पूर्व में यह संक्षेप में कहा गया था। तदनन्तर भावी मनुगण का चरित कहा गया। तब कल्पप्रलयनिर्देश, कालमान, चतुर्दशलोक कथन, नरक वर्णन, कुत्सित कर्माचरण, मनोमय पुराख्यान, प्राकृतिलय, शैवपुर वर्णन, गुणसम्पर्क से जीव की त्रिगति, अन्वयव्यतिरेक अनिर्देश्य, अप्रतर्क्य परमात्मा ब्रह्म का वर्णन किया गया। यह उपसंहार पाद है। चतुःपादयुक्त ब्रह्माण्ड पुराण कहा गया।।२३-२९।।

अष्टादशमनौपम्यं सारात्सारतरं द्विज। ब्रह्माण्डं यच्चतुर्लक्षं पुराणं येन पठ्यते।।३०।।
तदेतदस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक्। पाराशर्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद।।३१।।
वस्तुतस्तूपदेष्टाथ मुनीनां भावितात्मनाम्।
मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे।३२।।
मुनयो धर्मशीलास्ते दीनानुग्रहकारिणः। मया चेदं पुराणं तु वसिष्ठाय पुरोदितम्।।३३।।
तेन शक्तिसुतायोक्तं जातूकर्ण्याय तेन च।
व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतत्प्रभञ्जनमुखोद्गतम्।।३४।।
प्रमाणीकृत्य लोकेऽस्मिन्प्रावर्तयदनुत्तमम्। य इदं कीर्तयेद्वत्सश्शृणोति च समाहितः।।३५।।
स विधूयेह पापानि याति लोकमनामयम्।
लिखित्वैतत्पुराणं तु स्वर्णसिंहासनस्थितम्।।३६।।
वस्त्रेणाच्छादितं यस्तु ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
स याति ब्रह्मणो लोकं नात्र कार्या विचारणा।।३७।।

यह अट्ठारहवां पुराण है। यह सर्वपुराण सार है। (पुराणों में) इसमें चार लाख श्लोक कहे गये हैं। पराशर नन्दन व्यास ने पुराणों को १८ भाग में विभक्त किया है। हे मानद्! संयमात्मा मुनिगण व्यास देव ने

जो वस्तुतत्वोपदेश प्रदाता हैं, मुझसे पुराण श्रवण करके उनका लोकालय में प्रचार किया था। अनुग्रह करने वाले धर्मात्मा ऋषियों ने व्यास द्वारा पुराणलाभ किया था। मैंने पूर्वकाल में वसिष्ठ से ब्रह्माण्ड पुराण कहा था। तदनन्तर उन्होंने शक्ति नन्दन व्यास से तथा व्यास ने जातुकर्ण्य से कहा। व्यास ने वायुदेव के द्वारा कहे इस पुराण को पाकर लोकों में प्रमाणित तथा प्रचारित किया। हे वत्स! जो इसका पाठ अथवा श्रवण समाहित होकर करेगा, वह सर्वपापरहित होकर अनामय लोक प्राप्त करेगा। इस पुराण को लिखकर स्वर्ण सिंहासन पर रखे। उसे वस्त्रावरित करके ब्राह्मण को दान करे। वह दाता ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। इसमें सन्देह न करे।।३०-३७।।

मरीचेऽष्टादशैतानि मया प्रोक्तानि यानि ते।
पुराणानि तु संक्षेपाच्छ्रोतव्यानि च विस्तरात्॥३८॥

अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः। कथयेद्वा विधानेन नेह भूयः स जायते॥३९॥
सूत्रमेतत्पुराणानां जन्मयोक्तं तवाधुना। तन्नित्यं शीलनीयं हि पुराणफलमिच्छता॥४०॥
न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वनुसूयवे। देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च॥४१॥
शान्ताय शमचित्ताय शुश्रूषभिरताय च। निर्मत्सराय शुचये देयं सद्वैष्णवाय च॥४२॥

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे वृहदुपाख्याने चतुर्थपादे ब्रह्माण्डपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नाम नवोत्तरशततमोऽध्यायः।।१०९।।

हे मरीचि! मैंने संक्षेप में पुराणों को कहा है। इनको विस्तार से सुनें। जो श्रेष्ठ व्यक्ति अष्टादश पुराणों को सुनता है अथवा कहता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यह जो सूत्ररूपेण अनुक्रमणिका मैंने कहा है, इसका अनुशीलन पुराणफलेच्छु व्यक्ति अवश्य करें। पुराणों को दंभी, गुरु निन्दक, पापी, देव निन्दक, साधुद्रोही, शठ को न दे। इसे शान्त, भगवदभक्त सेवा पर, मत्सररहित पवित्र वैष्णव को ही देना चाहिये।।३८-४२।।

।।१०९वां अध्याय समाप्त।।
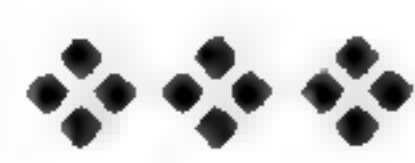
अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासों में प्रतिपदाव्रत

नारद उवाच

पुराणसूत्रमखिलं श्रुतं तव मुखाद्विभो। मरीचये यथा प्रोक्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥१॥

अधुना तु महाभाग तिथिनां वै कथानकम्।
क्रमतो मह्यमाख्याहि यथा स्याद्व्रतनिश्चयः॥२॥

यस्मिन्मासे तु या पुण्या तिथिर्येन उपासिता।
यद्विधानं च पूजायेदस्तत्सर्वं वद साम्प्रतम्॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे विभु! मैंने आपके मुख से अखिल पुराणसूत्र सुन लिया। जैसे परमेष्ठी ने मरीचि से कहा था। तद्वत् आपने कहा है। अब हे महाभाग! मैं तिथियों का कथानक सुनना चाहता हूं। व्रतों के निर्णयार्थ आप उसे क्रम से कहिये। जिस मास में जिस पुण्यतिथि की उपासना जिसने भी किया है,उसका जिस विधान से उसने उपासना किया, वह पूजनादि विधान मुझसे विस्तार से कहे।।१-३।।

सनातन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि तिथीनां ते व्रतं पृथक्। तिथीशानुक्रमादेव सर्वसिद्धिविधायकम्॥४॥
चैत्रे मास जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनी। शुक्लपक्षे समग्रं वै तदा सूर्योदये सति॥५॥
वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः॥६॥
तत्र कार्या महाशान्तिः सर्वकल्मषनाशिनी। सर्वोत्पातप्रशमनी कलिदुष्कृतहारिणी॥७॥
आयुःप्रदा पुष्टिकरी धनसौभाग्यवर्द्धिनी। मङ्गल्या च पवित्रा च लोकद्वयसुखावहा॥८॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे नारद! श्रवण करिये। मैं सर्वसिद्धि तिथिव्रत पृथक् रूप से कहूंगा। ये तिथीश के अनुक्रम से सभी सिद्धिप्रद होते हैं। चैत्रामस के शुक्लपक्ष के प्रथम दिन सूर्योदयोपरान्त ब्रह्मा ने जगत् सृष्टि किया। यही वर्ष तथा वसन्त का प्रारंभ माना गया है। परन्तु विद्वान् व्यक्ति सदा पूर्वविद्धा प्रतिपदा करे। उस दिन सर्वकल्मषहारी महाशान्ति भी करे। यह सर्वपापहारिणी, सर्व उत्पात प्रशमनी, कलिदुष्कृतहारिणी, आयुप्रदा, पुष्टिकरी, धनसौभाग्यवर्द्धिनी, मंगलकारिणी, पवित्र तथा दोनों लोकों हेतु सुखावहा है।।४-८।।

तस्यामादौ तु सम्पूज्यो ब्रह्मा वह्निवपुर्धरः। पाद्यार्घ्यपुष्पधूपैश्च वस्त्रालङ्कारभोजनैः॥९॥
होमैर्बल्युपहारैश्च तथा ब्राह्मणतर्पणैः। ततः क्रमेण देवेभ्यः पूजा कार्या पृथक्पृथक्॥१०॥
कृत्वोङ्कार नमस्कारं कुशोदकतिलाक्षतैः। सवस्त्रं सहिरण्यं च ततो दद्याद्द्विजातये॥११॥
दक्षिणां वेदविदुषे व्रतसम्पूर्तिहेतवे। एवं पूजाविशेषेण व्रतं स्यातसौरिसंज्ञकम्॥१२॥
आरोग्यप्रदं नृणां विप्र तस्मिन्नेवदिने मुने। विद्याव्रतमपि प्रोक्तमस्यामेव तिथौ मुने॥१३॥
तिलकं नाम च प्रोक्तं कृष्णेनाजातशत्रवे। अथ ज्येष्ठो सिते पक्षे पक्षत्यां दिवसोदये॥१४॥
देवोद्यानभवं हृद्यं करवीरं समर्चयेत्। रक्ततन्तुपरीधानं गन्धधूपविलेपनैः॥१५॥
प्ररूढसप्तधान्यैश्च नारङ्गर्बीजपूरकैः। अभ्युक्ष्याक्षततोयेन मन्त्रेणेत्थं क्षमापयेत्॥१६॥
करवीर वृषावास नमस्ते भानुवल्लभ। दम्भोलिमृडदुर्गादिदेवानां सततं प्रिय॥१७॥

आकृष्णेनेति वेदोक्तमन्त्रेणेत्थं क्षमापयेत्।
एवं भक्त्या समभ्यर्च्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम्॥१८॥

इस दिन सर्वाग्र में वह्निदेहधारी ब्रह्मा की पूजा करे। पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, धूप, वस्त्र, अलंकार, भोजन प्रदान, होम, बलि, उपहार, ब्राह्मण पूजनादि करना चाहिये। तब देवता को प्रणामोपरान्त कुश, जल,

तिल, वस्त्र स्वर्ण सहित वेदज्ञ ब्राह्मण को व्रतपूर्ण करने हेतु दक्षिणा प्रदान करे। पूर्णता हेतु वेदज्ञ ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे। यह आरोग्यप्रद व्रत है। यह पूजाविशेष व्रत सौरी व्रत है। हे विप्र! तभी विद्याव्रत भी सम्पन्न करे। हे मुनिवर! कृष्ण ने अजातशत्रु युधिष्ठिर से उसी तिथि पर तिलव्रताचरण हेतु भी कहा था। ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा पर जब सूर्योदय हो, उस समय देवोद्यान में किसी उत्तम (देवोद्यान=देवस्थल के उद्यान) करवीर के पौधे की अर्चना करे। उस पर लाल तन्तु लपेटे तथा गन्ध-धूप लेप लगाये। सप्तधान्य, नारंगी बीजपूर से उसकी अर्चना करे। उसे स्वच्छ जल से सिक्त करके इस मन्त्र से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये। "हे करवीर, वृषावास, भानुवल्लभ! आपको नमस्कार! आप इन्द्र, शंकर दुर्गादि देवगण को सतत् प्रिय हैं। "तदनन्तर "आकृष्णेनेति" इत्यादि वेदमन्त्र द्वारा क्षमा प्रार्थना करे। इस प्रकार उसकी अर्चना करके ब्राह्मण को दक्षिणा देना चाहिये।।९-१८।।

प्रदक्षिणं ततः कुर्यात्पश्चात्स्वभवनं व्रजेत्।
नभःशुक्ले प्रतिपदि लक्ष्मीबुद्धिप्रदायकम्॥१९॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां निदानं परमं व्रतम्। सोमवारं समारभ्य सार्धमासत्रयं द्विज॥२०॥
कार्तिकासितभूतायामुपोष्य व्रततत्परः। पूर्णायां शिवमभ्यर्च्य सुवर्णं वंशसंयुतम्॥२१॥
वायनं सुमहत्पुण्यं देवताप्रीतिवर्धकम्। दद्याद्विप्राय सङ्कल्प्य धनवृद्ध्यै मुनीश्वर॥२२॥

इसके पश्चात् प्रदक्षिणा के उपरान्त स्वगृह आये। हे द्विज! श्रावण शुक्ला प्रतिपदाव्रत लक्ष्मी, बुद्धिप्रद, धर्म-अर्थ-काम, मोक्ष देने वाला है। यह परम व्रत है। हे द्विज! सोमवार के दिन से प्रारंभ करके इस व्रत को साढ़े तीन मास पर्यन्त करे। कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को उपवासी रहकर व्रताचारी व्यक्ति पूर्णिमा को शिवपूजन करे। धनवृद्धि हेतु संकल्प करके विप्र को वंशयुक्त स्वर्ण तथा वायन जो महत्पुण्यप्रद, देवता प्रीतिवर्द्धक है ब्राह्मण को प्रदान करे।।१९-२२।।

भाद्रशुक्लप्रतिपदि व्रतं नाम्ना महत्तमम्। व्रतं मौनाह्वयं केचित्प्राहुरत्र शिवोऽर्च्यते॥२३॥
नैवेद्यं तु पपचेन्मौनी षोडशत्रिगुणानि च। फलानि पिष्टपक्वानि दद्याद्विप्राय षोडश॥२४॥
देवाय षोडशान्यानि भुज्यन्ते षोडशात्मना।
सौवर्णं शिवमभ्यर्च्य कुम्भोपरि विधानवित्॥२५॥
तत्सर्वं धेनुसहितमाचार्य्याय प्रदापयेत्। इदं कृत्वा व्रतं विप्र देवदेवस्य शूलिनः॥२६॥
चतुर्दशाब्दं देहान्तं भुक्तभोगः शिवं व्रजेत्।
आश्विने सितपक्षत्यां कृत्वाशोकव्रतं नरः॥२७॥

भाद्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन महत्तम नामक व्रत करे। कोई इसे मौन व्रत कहते हैं, कोई इसे शिवसंज्ञक कहते हैं। व्रती व्यक्ति नैवेद्यार्थ मालपुआ-पकवान पाक करे। षोडश पक्वान्न (पिष्ट-पक्वान्न) विप्र को दान करे। षोडश पक्वान्न देवता को अर्पित करे। तब घट के ऊपर विधानज्ञ साधक स्वर्णमय शिव की पूजा करे। अन्त में यह सब धेनुसहित आचार्य को देना चाहिये। इस प्रकार जो १४ वर्ष तक देवदेव शूलपाणि का यह व्रत करता है, वे देहान्त पर्यन्त भोगों को भोगकर अन्त में शिवधाम जाता है। हे द्विज! आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के दिन व्यक्ति अशोक व्रत करे।।२३-२७।।

अशोको जायते विप्र धनधान्यसमन्वितः। अशोकपूजनं तत्र कार्यं नियमतत्परैः॥२८॥
व्रतान्ते द्वादशे वर्षे मूर्तिं चाशोकशाखिनः। समर्प्य गुरवे भक्त्या शिवलोके महीयते॥२९॥
अस्यामेव प्रतिपदि नवरात्रं समारभेत्। पूर्वाह्ने पूजयेद्देवीं घटस्थापनपूर्वकम्॥३०॥

हे विप्र! वह मनुष्य धनधान्ययुक्त तथा शोकरहित हो जाता है। द्वादशवर्ष अशोक पूजा तथा यह व्रताचरण करने के उपरान्त अशोकवृक्ष की प्रतिमा भक्तिभाव से गुरु को अर्पित करे। वह व्रती ऐसा करके अन्त में शिवलोक जाता है। उसी प्रतिपदा से नवरात्र पूजा भी प्रारंभ करके पूर्वाह्न में घट स्थापित करने के उपरान्त देवी पूजा करे।।२८-३०।।

अङ्कुरारोपणं कृत्वा यवैर्गोधूममिश्रितैः। ततः प्रतिदिनं कुर्यादेकभुक्तमयाचितम्॥३१॥
उपवासं यथाशक्ति पूजापाठजपादिकम्। मार्कण्डेयपुराणोक्तं चरितत्रितयं द्विज॥३२॥
पठनीयं नवदिनं भुक्तिमुक्ति अभीप्सता। कुमारीपूजनं तत्र प्रशस्तं भोजनादिभिः॥३३॥
इत्थं कृत्वा व्रतं विप्र सर्वसिद्ध्यालयो नरः।
जायते भुवि दुर्गायाः प्रसादान्नात्र संशयः॥३४॥

घट के समीप मृत्तिका के ऊपर गेहूं तथा जौ बोना चाहिये। नित्य बिना याचना प्राप्त भोजन एक बार ही करे। यथाशक्ति उपवास, पूजा-पाठ-जपादि करना चाहिये। हे द्विज! मार्कण्डेय पुराणोक्त दुर्गा सप्तशती के चरित्र त्रय का भी पाठ करके नवरात्र में कुमारीगण को भोजनादि से सम्मानित करना प्रशस्त कहा गया है। हे विप्र! जो इस व्रताचरण को करता है, वह निःसंदिग्ध रूप से दुर्गा की कृपा से सर्वसिद्धि का भागी हो जाता है।।३१-३४।।

अथोर्जसितपक्षत्यां नवरात्रोदितं चरेत्। विशेषादन्नकूटाख्यं विष्णुप्रीतिविवर्धनम्॥३५॥
सर्वपाकैःसर्वदोहैः सर्वैः सर्वार्थसिद्धये। कर्तव्यमन्नकूटं तु गोवर्द्धनसमर्चने॥३६॥
सायं गोभिः सह श्रीमद्गोवर्द्धनधराधरम्।
समर्च्य दक्षिणीकृत्य भुक्तिमुक्ती समाप्नुयात्॥३७॥
अथ मार्गसिताद्यायां धनव्रतमनुत्तमम्। नक्तं विष्ण्वर्चनं होमैः सौवर्णीं हुतभुक्तनुम्॥३८॥
रक्तवस्त्रयुगाच्छन्नां द्विजाय प्रतिपादयेत्। एवं कृत्वा धनैर्धान्यैः समृद्धो जायते भुवि।३९॥
वह्निना दग्धपापस्तु विष्णुलोके महीयते। पौषशुक्लप्रतिपदि भानुमभ्यर्च्य भक्तितः॥४०॥
एकभक्तव्रती मर्त्यो भानुलोकमवाप्नुयात्।
माघशुक्लाद्यदिवसे वह्निं साक्षान्महेश्वरम्॥४१॥

अब कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा का व्रत सुनें। इस तिथि पर मनुष्य विष्णुप्रीति विवर्द्धक विशेष अन्नकूट व्रत करे। सर्वार्थसिद्धि हेतु व्रती व्यक्ति तथा अन्य लोग भी मालपूआ, पक्वान्न, दुग्ध-दधि, मधु, मोदकादि मिष्ठान्न से भी आराधना करे। सायंकाल गौओं के साथ श्रीमान् गोवर्द्धनधारी की अर्चना तथा प्रदक्षिणा करे। इससे मनुष्य को भुक्ति तथा मुक्ति दोनों मिलती है। अग्रहायण शुक्ला प्रतिपदा को अत्युत्तम धनव्रत सम्पन्न

करे। रात में विष्णु अर्चना तथा होमोपरान्त अग्नि की स्वर्णमयी प्रतिमा को एक जोड़ी वस्त्र से आवरित करके ब्राह्मण को प्रदान करे। इससे उस व्यक्ति को पृथिवी पर धन-धान्य-समृद्धि का लाभ होता है। उसके पातक अग्नि में दग्ध हो जाते हैं। वह विष्णुलोक गमन करता है। पौष शुक्ला प्रतिपदा को भक्तिभाव से सूर्यार्चना करे। वह एक समय भोजन करे। ऐसा व्रती सूर्यलोक लाभ करता है। माघशुक्ला प्रतिपदा साक्षात् वह्निरूपी महेश्वर।।३५-४१।।

समभ्यर्च्य विधानेन समृद्धो जायते भुवि।
अथ फाल्गुनशुक्लादौ देवदेवं दिगम्बरम्॥४२॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गं जलैरुक्षेत्समन्ततः। कर्मणा लौकिकेनापि सन्तुष्टो हि महेश्वरः॥४३॥
स्वसायुज्यं प्रदिशति भक्त्या सम्यक्समर्चितः।
वैशाखे तु सिताद्यायां विष्णु विश्वविहारिणम्॥४४॥
समभ्यर्च्य विधानेन विप्रान्सम्भोजयेद्व्रती।
शुचिसिताद्यायां च ब्रह्माणं जगतां गुरुम्॥४५॥
विष्णुना सहितो ब्रह्मा सर्वलोकेश्वरेश्वराः।
स्वसायुज्यं प्रदिशति सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्॥४६॥

का सविधि पूजन करने वाला पृथिवी पर समृद्ध होता है। (यहां सभी प्रयोग में बाकी सभी क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये) फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा को देवदेव दिगम्बर वेश वाले सर्वांग धूल धूलसरित अंग वाले शिव को जल अर्पित करे। इससे वे प्रसन्न होते हैं। इस सामान्य कर्म से वे प्रसन्न होकर भक्तिपूर्वक अर्चना करने वाले को अपना सायुज्य प्रदान करते हैं। वैशाख शुक्ल प्रतिपदा तिथि पर विश्वविहारी विष्णु की अर्चना सविधि करके व्रती व्यक्ति ब्राह्मण भोजन सम्पन्न करे। आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा तिथि पर जगद्गुरु विष्णुसहित सर्वलोकेश्वरेश्वर ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये। इससे वे अपना सायुज्य तथा सकल सिद्धि देते हैं।।४२-४६।।

आसु द्वादशमासानां प्रतिपत्सु द्विजोत्तम।
व्रतानि तुभ्यं प्रोक्तानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च॥४७॥
व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु ब्रह्मचर्यं विधीयते। भोजने तु भविष्यान्नं सामान्यत उदाहृतम्॥४८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासप्रतिपद्व्रत-
निरूपणं नाम दशोत्तरशततमोऽध्यायः॥११०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने आपसे बारहों मास की प्रतिपदा के व्रतों को आपसे कह दिया जो भोग तथा मोक्ष, दोनों प्रदान करते हैं। इस व्रत में सभी व्रती ब्रह्मचारी रहें तथा सामान्य हविष्यान्न भोजन ही करे।।४७-४८।।

।।११०वां अध्याय समाप्त।।

अथ एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय द्वितीया व्रत वर्णन

सनातन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि द्वितीयाया व्रतानि ते।
यानि कृत्वा नरो भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते॥१॥
चैत्रशुक्लद्वितीयायां ब्रह्माणं च सशक्तिकम्।
हविष्यान्नेन गन्धाद्यैः स्तोष्य सर्वक्रतूद्भवम्॥२॥
फलं लब्ध्वाखिलान्कामानन्ते ब्रह्मपदं लभेत्। अस्मिन्नेव दिने विप्र बालेन्दुमुदितं परे॥३॥
समभ्यर्च्य निशारम्भे भुक्तिमुक्तिफलं भवेत्।
अथ वास्मिन्दिने भक्त्या दस्रावभ्यर्च्य यत्नतः॥४॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे विप्र! अब मैं द्वितीया के व्रतों को कहता हूं। श्रवण करे। इस व्रत को भक्तिभाव से करने वाला व्रती ब्रह्मलोक गमन करता है। अपनी शक्ति के अनुसार चैत्रशुक्ल द्वितीया तिथि पर ब्राह्मणों को हविष्यान्न, गन्धादि से सन्तुष्ट करने वाला मनुष्य सर्वयज्ञफल लाभ करता है तथा अखिल भोगों को भोगकर ब्रह्मपद लाभ करता है। हे विप्र! उस तिथि पर रात्रि के प्रारंभ में उदित बाल चन्द्रमा की पूजा द्वारा उसे भोग-मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति होती है अथवा उस दिन व्रती व्यक्ति यत्नतः अश्विनीकुमारद्वय की पूजा करे।।१-४।।

सुवर्णरजते नेत्रे प्रदद्याच्च द्विजातये। पूर्णयात्राव्रते ह्यस्मिन्दध्ना वापि घृतेन च॥५॥
नेत्रव्रते द्वादश वत्सरान्वै कृत्या भवेद्भूमिपतिर्द्विजेन्द्र।
सुरूपरूपोऽरिगणप्रतापी धर्माभिरामोनृपवर्गमुख्यः॥६॥

पूजनोपरान्त स्वर्ण तथा रजत की दो नेत्र प्रतिमा ब्राह्मण को समर्पित करे। यह पूर्णयात्रा व्रत अथवा नेत्रव्रत है। इस व्रतकाल में ब्राह्मण को दधि किंवा घृत से सन्तुष्ट करे। हे द्विजेन्द्र! इस नेत्रव्रत को १२ वर्ष करने वाला भूमिपति, सुरूप, शत्रुओं हेतु प्रतापी, धर्माभिराम तथा नृपवर्ग में मुख्य राजा होता है।।५-६।।

राधाशुक्लद्वितीयायां ब्रह्माणं विष्णुरूपिणम्।
समभ्यर्च्य सप्तधान्याढ्यकुम्भोपरि विधानतः॥७॥
विष्णुलोकमवाप्नोति भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्।
ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां भास्करं भुवनाधिपम्॥८॥
चतुर्वक्त्रस्वरूपं च समभ्यर्च्य विधानतः।
भोजयित्वा द्विजान् भक्त्या भास्करं लोकमाप्नुयात्॥९॥

वैशाख शुक्कल द्वितीया के दिन सप्तधान्यमय घट के ऊपर विष्णुरूपी ब्रह्मा का अर्चक सविधि पूजन

द्वारा पृथिवी पर मनोरम भोगों को भोगकर विष्णुलोक जाता है। ज्येष्ठ शुक्लद्वितीया तिथि पर चतुर्वक्त्र स्वरूप भुवनपति भास्कर की सविधि पूजा करे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने वाला सूर्यलोक लाभ करता है।।७-९।।

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुण्यसंयुता। तस्यां रथं समारोप्य रामं सह सुभद्रया।।१०।।
द्विजातिदभिर्व्रती सार्धं परिक्रम्य पुरादिकम्।
जलाशयान्तिकं गत्वा करायेच्च महोत्सवम्।।११।।
तदन्ते देवभवने निवेश्य च यथाविधि। ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव व्रतस्यास्य प्रपूर्तये।।१२।।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया के दिन बलराम तथा सुभद्रा को रथ पर बैठाये। ब्राह्मणादि लोगों सहित नगर परिक्रमा करे तथा जलाशय के निकट महोत्सव सम्पन्न करे। तदनन्तर देवालय में प्रतिमा रखकर यथाविधि ब्राह्मणों को भोजन कराये, जिससे व्रतपूर्त्ति होती है।।१०-१२।।

नभःशुक्लद्वितीयायां विश्वकर्मा प्रजापतिः।
स्वपितीति तिथिः पुण्या ह्यशोकशयनाह्वया।।१३।।
सशक्तिकं तु शय्यास्थं पूजयित्वा चतुर्मुखम्।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं प्रणम्य जगतां पतीम्।।१४।।
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीवास श्रीपते प्रभो।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामद।।१५।।
चन्द्रार्द्धदानमन्त्रोक्तं सर्वसिद्धिविधायकम्।
भाद्रशुक्लद्वितीयायां शक्ररूपं जगद्विधिम्।।१६।।
पूजयित्वा विधानेन सर्वक्रतुफलं लभेत्।
आश्विने मासि वै पुण्या द्वितीया शुक्लपक्षगा।।१७।।

श्रावण शुक्ला द्वितीया तिथि पर विश्वकर्मा प्रजापति शयनरत होते हैं। अतः यह तिथि पुण्या और अशोकशयना कही गयी है। शय्यास्थित स्वशक्तियुक्त चतुर्मुख विश्वकर्मा ब्रह्मा की पूजा करे तथा उन जगत्पति को प्रणाम करके यह मन्त्र पढ़े—हे श्रीवत्सधारी! श्रीकान्त, श्रीवास, श्रीपति प्रभो! मेरा गृहस्थ जीवन धर्म-अर्थ कामप्रद हो। इस मन्त्र से अर्द्धचन्द्र दान करे। यह सर्वसिद्धिदायक व्रत है। भाद्रशुक्लद्वितीया तिथि पर इन्द्ररूपी ब्रह्मा का पूजन करे। इनकी सविधि पूजा से सर्वयज्ञफल लाभ होता है। अश्विन शुक्ला द्वितीया परम पुण्यमयी है।।१३-१७।।

दानं प्रदत्तमेतस्यामनन्तफलमुच्यते। ऊर्ज्जशुक्लद्वितीयायां यमो यमुनया पुरा।।१८।।
भोजितः स्वगृहे तेन द्वितीयैषा यमाह्वया। पुष्टिप्रवर्द्धनं चात्र भगिन्या भोजनं गृहे।।१९।।
वस्त्रालङ्कारपूर्वं तु तस्यै देयमतः परम्।।२०।।

इस दिन दान का अनन्त फल है। प्राचीन काल में कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया को यमुना ने भाई यम को इस दिन स्वगृह में भोजन कराया था। तभी से इस तिथि को यम द्वितीया कहते हैं। इस दिन बहन के गृह में भोजन द्वारा धन-धान्य वृद्धि होती है। उस दिन बहन को वस्त्राभूषण प्रदान करे।।१८-२०।।

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः, सम्भोजितो निजकरात्स्वसृसौहृदेन।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति, प्राप्नोति रत्नधनधान्यमनुत्तमं सः॥२१॥
मार्गशुक्लद्वितीयायां श्राद्धेन पितृपूजनम्। आरोग्यं लभते चापि पुत्रपौत्रसमन्वयः॥२२॥

इस यम द्वितीया के दिन यमुना ने यमराज को अपने हाथ से सौहार्द पूर्वक भोजन कराया था। इस दिन जो व्यक्ति बहन के हाथ से भोजन करता है, वह उत्तम रत्न, धन-धान्य लाभ करता है। अग्रहायण शुक्ल द्वितीया तिथि पर जो पितृपूजा तथा श्राद्ध करता है, उसे पुत्र-पौत्र-आरोग्यलाभ होता है।।२१-२२।।

पौषशुक्लद्वितीयायां गोश्रृङ्गोदकमार्जनम्। सर्वकामप्रदं नृणामास्ते बालेन्दुदर्शनम्॥२३॥
योऽर्घ्यदानेन बालेन्दु हविष्याशी जितेन्द्रियः। पूजयेत्साज्यसुमनैर्धर्मकामार्थसिद्धये॥२४॥
माघशुक्लद्वितीयायां भानुरूपं प्रजापतिम्। समभ्यर्च्य यथान्यायं पूजयेद्रक्तपुष्पकैः॥२५॥

रक्तैर्गन्धस्तथा स्वर्णमूर्तिं निर्माय शक्तितः।
ततः पूर्णं ताम्रपात्रं गोधूमैर्वापि तण्डुलैः॥२६॥

समर्प्य देवे भक्त्यैव स मूर्तिं प्रददेद्द्विजे। एवं कृते व्रते विप्र साक्षात्सूर्य इवोदितः॥२७॥

दुरासदो दुराघर्षो जायते भुवि मानवः।
इह कामान्वरान्भुक्त्वा यात्यन्ते ब्रह्मणः पदम्॥२८॥

पौष शुक्ल द्वितीया तिथि पर गोशृंग से स्पर्श कराये। जल से स्नान करे। उनकी सर्वकामना पूर्ण होती हैं। उस दिन जो हविष्यान्न भोजन तथा ब्रह्मचर्य परायण रहकर सूर्यास्त के उपरान्त बालचन्द्र का दर्शन करता है, उसे अर्थ, धर्म, काम की सिद्धि होती है। माघ शुक्ल द्वितीया तिथि पर स्वशक्ति के अनुसार लाल पुष्प तथा रक्तवर्ण गन्ध द्वारा भानुरूपी प्रजापति ब्रह्मा की स्वर्णमूर्त्ति की पूजा करके एक ताम्रपात्र में चावल अथवा गेहूं देवता को अर्पित करके मूर्त्ति सहित ब्राह्मण को प्रदान करे। इस व्रत से वह व्यक्ति सूर्यवत् तेजवान् होता है। वह पृथिवी पर दुरासद, दुराधर्ष होकर पृथिवी पर उत्तम काम्य भोगों को भोगकर ब्रह्मपद (ब्रह्मलोक) लाभ करता है।।२३-२८।।

सर्वदेवस्तुतोऽभीक्ष्णं विमानवरमास्थितः।
अथ फाल्गुनशुक्लायां द्वितीयायां द्विजोत्तमः॥२९॥
पुष्पैः शिवं समभ्यर्च्य सुश्वेतैश्च सुगन्धिभिः।
पुष्पैर्वितानकं कृत्वा पुष्पालङ्करणैः शुभैः॥३०॥

नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैर्दीपैर्नीराजनादिभिः। प्रसाद्य प्रणमेच्चैव साष्टाङ्गं पतितो भुवि॥३१॥

हे द्विजोत्तम! वहां पर सभी देवता सतत् उसकी स्तुति करते रहते हैं। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तिथि पर पुष्पों से शिव की अर्चना करे। पुष्प श्वेत तथा सुगन्धित हों। वहां पुष्प का चंदोवा बनाकर पुष्पादि अलंकरण से चंदोवा सज्जित करे। अनेक नैवेद्य, धूप, दीपादि आरती से प्रसन्न करके साष्टांग प्रणाम पृथिवी पर लेटकर करे।।२९-३१।।

एवमभ्यर्च्य देवेशं मर्त्यो व्याधिविवर्जितः। धनधान्यसमायुक्तो जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम्॥३२॥

यद्विधानं द्वितीयासु शुक्लपक्षगतासु वा।
प्रोक्तं तदेव कृष्णासु कर्त्तव्यं विधिकोविदैः॥३३॥
वह्निरेव पृथङ्मास्सु नानारूपवपुर्द्धरः। पूज्यते हि द्वितीयासु ब्रह्मचर्यादि पूर्ववत्॥३४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासद्वितीयाव्रतनिरूपणं नामैकादशोत्तरशततमोऽध्यायः॥१११॥

इस प्रकार देवेश के व्रत पूजनादि द्वारा व्यक्ति व्याधिरहित, धनधान्य सम्पन्न होकर सौ वर्ष जीवित रहता है। यह निश्चित है। शुक्लपक्षीय इन बारह द्वितीया की जो विधि यहां कहा गया है, तदनुरूप विधि से कृष्णपक्षीय द्वितीया को भी विधिज्ञ व्यक्ति पूजन करे। इन सभी मास की द्वितीया तिथि पर नानारूप तथा देहधारी अग्नि की पूजा ब्रह्मचर्यादि नियम बद्ध रहकर करे।।३२-३४।।

।।१११वां अध्याय समाप्त।।
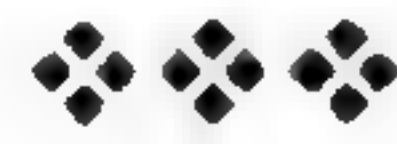
अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय तृतीय व्रत वर्णन

सनातन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि तृतीयायां व्रतानि ते।
यानि सम्यग्विधायाशु नारी सौभाग्यमाप्नुयात्॥१॥
चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीं कृत्वा सभर्तृकाम्।
सौवर्णीं राजतीं वापि ताम्रीं वा मृण्मयीं द्विज॥२॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रैराभरणैः शुभैः। दूर्वाकाण्डैश्च विधिवत्सोपवास तु कन्यका॥३॥
वरार्थिनी च सौभाग्यपुत्रभर्त्रर्थिनी तथा। द्विजभार्या भर्तृमतीः कन्यका वा सुलक्षणाः॥४॥
सिन्दूराञ्जनवस्त्राद्यैः प्रतोष्य प्रीतमानसा। रात्रौ जागरणं कुर्याद्व्रतसम्पूर्तिकाम्यया॥५॥
ततस्तां प्रतिमां विप्र गुरवे प्रतिपादयेत्। धातुजां मृण्मयीं वा तु निक्षिपेच्च जलाशये॥६॥
एवं द्वादशवर्षाणि कृत्वा गौरीव्रतं शुभम्। धेनुद्वादशसङ्कल्पं दद्यादुत्सर्गसिद्धये॥७॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे नारद! अब मैं तृतीया के व्रतों को कहता हूं। जिसे अनुष्ठित करने वाली स्त्री सौभाग्यलाभ करती है। हे द्विज! चैत्र शुक्लातृतीया के दिन (पतिकामिनी) नारी गौरी की तथा शिव की

प्रतिमा स्वर्ण, रजत, ताम्र किंवा मिट्टी की बनाये। उसकी पूजा गन्ध, पुष्प, वस्त्र, शुभ आभरण, दूर्वा आदि से करे। तदनन्तर पतियुता ब्राह्मण पत्नी अथवा सुलक्षण ब्राह्मण कुमारी को सिन्दूर, अंजन वस्त्रादि से प्रसन्न करे। तदनन्तर व्रत को पूर्ण करने हेतु रात्रि जागरण करे। पूजनोपरान्त वह प्रतिमा गुरु को अर्पित करना चाहिये। यदि सामान्य धातु किंवा मृत्तिका की प्रतिमा हो, तब उसे जल में प्रवाहित करे। इस प्रकार से बारह वर्ष पर्यन्त शुभ पवित्र गौरी व्रतोपरान्त उत्सर्ग सिद्धि हेतु बारह गौयें संकल्प करके दान करे।।१-७।।

किमत्र बहुनोक्तेन गौरी सौभाग्यदायिनी। स्त्रीणां यथा तथा नान्या विद्यते भुवनत्रये॥८॥
धनं पुत्रान्पतिं विद्यामाज्ञासिद्धिं यशः सुखम्। लभते सर्वमेवेष्टं गौरीमभ्यर्च्य भक्तितः॥९॥

अधिक क्या कहा जाये, इस तीनों लोक में स्त्री के लिये गौरी के समान सौभाग्यप्रदा कोई नहीं है। जो नारी भक्तिभावेन गौरी की अर्चना इस विधि से करती है, उसे धन, पुत्र, पति, विद्या, आज्ञासिद्धि, यश, सुख प्राप्त होता है।।८-९।।

राधाशुक्लतृतीया या साक्षया परिकीर्तिता।
तिथिस्त्रेतायुगाद्या सा कृतस्याक्षयकारिणी॥१०॥
द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादौ कवयो विदुः।
शुक्ले पूर्वाह्निके ग्राह्ये कृष्णे चैव तपस्यथ॥११॥
द्वापरं हि कलिर्भाद्रो प्रवृत्तानि युगानि वै। तत्र राधातृतीयायां श्री समेतं जगद्गुरुम्॥१२॥
नारायणं समभ्यर्चेत्पुष्पधूपविलेपनैः। यद्वा गङ्गाम्भसि स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥१३॥

वैशाख शुक्ला तृतीया ही अक्षय तृतीया तथा त्रेतायुग की आदि तिथि है। इस दिन प्रदत्त दानादि अक्षय होते हैं। सुधी लोगों ने शुक्लपक्ष की दो तथा कृष्णपक्ष की दो तिथि को युगादि तिथि माना है। इन दोनों पक्ष में पूर्वाह्नकालिक तृतीया ही ग्रहण करे। फाल्गुन में द्वापर तथा कलि भाद्रपद में प्रारंभ है। वैशाखा की अक्षय तृतीया के दिन लक्ष्मी तथा जगद्गुरु नारायण पूजन पुष्प, धूप-चन्दनादि से करे। उस दिन गंगा स्नान द्वारा सर्वपातक नष्ट हो जाते हैं।।१०-१३।।

अक्षतैः पूजयेद्विष्णुं स्नायादप्यक्षतैर्नरः।
सक्तून्सम्भोजयेद्विप्रान्स्वयमभ्यवरहेच्च तान्॥१४॥
एवं कृतविधिर्विप्र नरो विष्णुपरायणः। विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वदेवनमस्कृतः॥१५॥
अथ ज्येष्ठतृतीया तु शुक्ला रम्भेति नामतः।
तस्यां सभार्यं विधिवत्पूजयेद्ब्राह्मणोत्तमम्॥१६॥
गन्धपुष्पांशुकाद्यैस्तु नारी सौभाग्यकाम्यया।
रम्भाव्रतमिदं विप्र विधिवत्समुपाश्रितम्॥१७॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे शुभावहाम्।
आषाढतृतीयायां शुक्लायां शुक्लवाससा॥१८॥
केशवं तु सलक्ष्मीकं सस्त्रीके तु द्विजेऽर्चयेत्। भोजनैः सुरभीदानैर्वस्त्रैश्चापि विभूषणैः॥१९॥

प्रियैर्वाक्यैर्भृशप्रीता नारी सौभाग्यवाञ्छया।
समुपास्य व्रतं चैतद्धनधान्यसमन्विता॥२०॥

तब अक्षत से विष्णु पूजा करे। शिर पर कुछ अक्षत रखकर मनुष्य स्नान करे। इससे वह सर्वदेवनमस्कृत विष्णुलोक जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को रंभा तृतीया कहा गया है। उस दिन ब्राह्मण दम्पति की पूजा-गन्ध-पुष्प वस्त्रादि से सविधि करे। इससे नारी को सौभाग्यलाभ होगा। हे विप्र! जो नारी इस रंभाव्रत को सविधि सम्पन्न करती है, उसे वित्त, पुत्र, शुभावह धार्मिक मति का लाभ होता है। आषाढ़ शुक्ला तृतीया तिथि पर सौभागाकांक्षी नारी श्वेत वस्त्र पहने लक्ष्मी तथा केशव की प्रतिमा की अर्चना करके ब्राह्मण दम्पति की पूजा करे। यह प्रतिमा ब्राह्मण को देकर उनको भोजन, गोदान, वस्त्रदान विभूषणादि से तथा प्रिय वचनों से सन्तुष्ट करे। इस व्रताचरण से पुरुष भी धनधान्य युक्त हो जाता है।।१४-२०।।

देवदेवप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्नुयात्। नभःशुक्लतृतीयायां स्वर्णगौरीव्रतं चरेत्॥२१॥
उपचारैः षोडशभिर्भवानीमभिपूजयेत्। पुत्रान्देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते॥२२॥
अन्याश्ंच सर्वकामान्मे देहि देहि नमोऽस्तु ते।
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशीं भवानीं भवसंयुताम्॥२३॥
व्रतसम्पूर्तिकामा तु वायनं दापयेत्तथा। एवं षोडशवर्षाणि कृत्वा नारी व्रतं शुभम्॥२४॥
उद्यापनं चरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जिता। मण्डपे मण्डले शुद्धे गणेशादिसुरार्चनम्॥२५॥
कृत्वा ताम्रमयं पात्रं कलशोपरि विन्यसेत्।
सौवर्णीं प्रतिमां तत्र भवान्या प्रतिपूजयेत्॥२६॥
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् ततो होमं समाचरेत्।
वेणुपात्रैः षोडशभिः पक्वान्नं परिपूरितैः॥२७॥

देवदेव की कृपा से उसे विष्णुलोक मिलता है। श्रावण शुक्ला तृतीया तिथि पर स्वर्णगौरी व्रतानुष्ठान नारी करे। गौरी पूजनोपरान्त (१६ उपचारों से) प्रार्थना करे। "हे देवी! आप पुत्र दीजिये। हे सुव्रते! आप धन, सौभाग्य, सर्वकाम प्रदान करिये। आपको प्रणाम!" यह प्रार्थना शंकर तथा भवानी से एक साथ करे। व्रतपूर्त्ति हेतु इष्टमित्रों को नैवेद्य प्रदान करे। नारी इस प्रकार यह शुभव्रत १६ वर्ष करे। कंजूसी रहित होकर भक्तिभाव से व्रत के १६ वर्ष पूर्ण होने पर उद्यापन करे। यथा—मण्डप के शुद्ध मंगल में गणेशादि देवगण की अर्चना के उपरान्त ताम्रमय पात्र कलश पर रखकर उसमें स्वर्ण की भवानी प्रतिमा स्थापित करके पूजा करे। गन्ध-पुष्पादि से सम्यक् पूजनोपरान्त होम करे। हवनोपरान्त १६ वेणुपात्र पक्वान्न से पूर्णतः भरें।।२१-२७।।

समर्प्य देव्यै नैवेद्यं द्विजेष्वेतन्निवेदयेत्। वायनं च ततः पश्चाद्दद्यात्सम्बन्धिबन्धुषु॥२८॥
प्रतिमां गुरवे दत्त्वा द्विजेभ्यो दक्षिणां तथा। पूर्णं लभेत्फलं नारी व्रताचरणतत्परा॥२९॥

इन देवी को अर्पित करने के उपरान्त ब्राह्मणों को निवेदित करे। तदनन्तर बन्धुवर्ग को तथा सम्बन्धियों को मिष्ठान्न-नैवेद्य प्रदानोपरान्त प्रतिमा गुरु को प्रदान करे तथा द्विजगण को दक्षिणा देना चाहिये। इस प्रकार व्रताचरण नारी पूर्ण फल लाभ करती है।।२८-२९।।

भाद्रशुक्लतृतीयायां व्रतं वै हारितालकम्।
कुर्याद्भक्त्या विधानेन पाद्यार्घ्यार्चनपूर्वकम्॥३०॥
ततस्तु काञ्चने पात्रे राजते चापि ताम्रके।
वैणवे मृण्मये वापि विन्यस्यान्नं सदक्षिणम्॥३१॥
सफलं च सवस्त्रं च द्विजाय प्रतिपादयेत्। तदन्ते पारणं कुर्यादिष्टबन्धुजनैः सह॥३२॥
एवं कृतव्रता नारी भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्।
व्रतस्यास्य प्रभावेण गौरीसहचरी भवेत्॥३३॥

भाद्रशुक्ला तृतीया का व्रत हरतालिका तृतीया व्रत है। भक्तिपूर्वक सविधि पाद्य, अर्घ्यादि से अर्चना करे। तदनन्तर स्वर्ण, किंवा रजत अथवा ताम्र के पात्र, बांस की टोकरी अथवा मिट्टी के पात्र में अन्न, फल, वस्त्र, दक्षिणा ब्राह्मण को देकर नारी इष्ट बन्धुवर्ग के साथ पारण करे। यह व्रताचरण करने से नारी मनोरम भोगों को भोगकर इस व्रत के प्रभाव से गौरी की सहचरी हो जाती है।।३०-३३।।

सौभाग्यद्रव्यवस्त्राणि वंशपात्राणि षोडश।
दातव्यानि प्रयत्नेन ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि॥३४॥
अन्येभ्यो विप्रवर्येभ्यो दक्षिणां च प्रयत्नतः। भूयसीं च ततो दद्याद्विप्रेभ्यो देवितुष्टये॥३५॥
एवं या कुरुते नारी व्रतं सौभाग्यवर्द्धनम्। सा तु देवीप्रसादेन सौभाग्यं लभते ध्रुवम्॥३६॥

उस तिथि पर सौभाग्यद्रव्य, वस्त्र १६ बांस की छोटी टोकरी (पिटारी) में रखकर ब्राह्मणगण का प्रदान करे। देवी को प्रसन्न करने हेतु अन्य विप्रों को भी प्रभूत दक्षिणा देना चाहिये। जो नारी इस सौभाग्यवर्द्ध व्रत को करती है, वह देवी की कृपा से निश्चित सौभाग्यलाभ करती है।।३४-३६।।

यदा तृतीया भाद्रे तु हस्तर्क्षसहिता भवेत्। हस्तगौरीव्रतं नाम तदुद्दिष्टं हि शौरिणा॥३७॥
तथा कोटीश्वरी नाम व्रतं प्रोक्तं पिनाकिना। लक्षेश्वरी चैव तथा तद्विधानमुदीर्यते॥३८॥
अस्यां व्रतं तु सङ्ग्राह्यं यावद्वर्षचतुष्टयम्। उपवासेन कर्तव्यं वर्षे वर्षे तु नारद॥३९॥
अखण्डानां तण्डुलानां तिलानां व मुनीश्वर।
लक्षमेकं विशोध्याथ क्षिपेत्पयसि संसृते॥४०॥
तत्पक्वेन तु निर्माय देव्या मूर्तिं सुशोभनाम्।
प्रकरे गन्धपुष्पाणां पुष्पमालाविभूषिताम्॥४१॥

भाद्रपदी तृतीया जब हस्तनक्षत्रयुक्त हो, तब वह हस्तगौरीव्रत कहा गया है। यह कृष्ण का वचन है। शंकर का कथन है कि तब कोटीश्वरी व्रत तथा लक्षेश्वरी व्रत होगा। उसका विधान श्रवण करिये। यह व्रत हे नारद! चार वर्ष करे। प्रतिवर्ष इस तिथि पर उपवास कर्त्तव्य रूप है। हे मुनीश्वर! विना टूटा एक लाख चावल किंवा तिल शुद्ध करके उष्ण दुग्ध में छोड़े। जब वह पक जाये, तब इस पाक से ही देवी की मनोरम प्रतिमा बनाये तथा उसे गन्ध-पुष्प-माला आदि से सज्जित करे।।३७-४१।।

संस्थाप्य पार्वतीं तत्र पूजयेद्भक्तिभावितः। गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यविस्तरैः॥४२॥

विविधैश्च फलैर्विप्र नमस्कृत्य क्षमापयेत्।
ततो विसर्जयेद्देवीं जलमध्येऽथ दक्षिणाम्॥४३॥

दत्त्वा विधिज्ञविप्रेभ्यो भुञ्जीयाच्च परे दिने।
इति ते कथितं विप्र कोटिलक्षेश्वरीव्रतम्॥४४॥

वहां पार्वती को स्थापित करके उनकी पूजा भक्तिभाव से गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से, विविध फल से करे। अन्त में उनको नमस्कार करके क्षमा मांगे। तदनन्तर देवी का विसर्जन जल में करे। अगले दिन विप्रगण को दक्षिणा देकर तव स्वयं भोजन करे। हे विप्र! यही है कोटिलक्षेश्वरी व्रत।।४२-४४।।

गौरीलोकं प्रयात्यन्ते व्रतस्यास्य प्रभावतः। इषशुक्लतृतीयायां बृहद्गौरीव्रतं चरेत्॥४५॥

पञ्चवर्षं विधानेन पूर्वोक्तेनैव नारद। आचार्यं पूजयेदन्ते विप्रानन्यान्धनादिभिः॥४६॥

सुवासिनीः पञ्च पूज्या वस्त्रालङ्काररचन्दनैः।
कञ्चुकैश्चैव ताटङ्कैः कण्ठसूत्रैर्हरिप्रियाः॥४७॥

वंशपात्राणि पञ्चैव सूत्रैः संवेष्टितानि च। सिन्दूरं जीरकं चैव सौभाग्यद्रव्यसंयुतम्॥४८॥

गोधूमपृष्टजातं च नवापूपं फलादिकम्।
वायनानि च पञ्चैव ताभ्यो दद्याच्च भोजयेत्॥४९॥

अर्घं दत्त्वा वायनानि पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यता। तत्फलं धारयेत्कण्ठे सर्वकामसमृद्धये॥५०॥

ततः प्रातः समुत्थाय सालङ्कारा सखीजनैः।
गीतवाद्ययुता नद्यां गौरीं तां तु विसर्जयेत्॥५१॥

हे नारद! इसके प्रभाव से व्रती को गौरीलोक प्राप्त होता है। आश्विन शुक्ला तृतीया का बृहद् गौरीव्रत करे। यह व्रत पूर्वोक्त विधि से करना चाहिये। इसे ५ वर्ष करना होगा। अन्त में आचार्य की पूजा करके ब्राह्मणगण को धनादि से सन्तुष्ट करे। ५ सीमन्तिनी नारियों को वस्त्र, अलंकार, चन्दन, कंचुकी, बाली तथा हार देकर उनको सूत्र से लपेटे। ५ बांस की टोकरी (पिटारी) उसमें सिन्दूर, जीरा, सौभाग्य के सामान, गेहूं के आटे का मालपूआ तथा ५ वस्तु का वायन देकर भोजन कराये। तदनन्तर अर्घ्य देकर मौनी होकर स्वयं भोजन करे। सर्वकामना पूर्त्ति हेतु कण्ठ में उसका फल धारण करे। प्रातः उठकर स्वयं भूषणादि अलंकार धारण करे। सखीगण सहित वाद्य-वादन-गायन के साथ गौरी का विसर्जन करे।।४५-५१।।

आहूतासि मया भद्रे पूजिता च यथाविधि।
मम सौभाग्यदानाय यथेष्टं गम्यतां त्वया॥५२॥

एवं कृत्वा व्रतं भक्त्या द्विज देवीप्रसादतः।
भुक्त्वा भोगांस्तु देहान्ते गौरीलोकमवाप्नुयात्॥५३॥

विसर्जन मन्त्र यह है—"हे भद्रे! मैंने अपनी शक्ति के अनुरूप आपका आवाहन अर्चनादि सम्पन्न

किया आप मुझे सौभाग्य प्रदान करके यथा इच्छा प्रस्थान करे।'' हे द्विज! जो नारी इस प्रकार भक्ति के साथ व्रत करती है, वह इहलोक में भोगों को भोगकर सर्वान्त में गौरीलोक प्राप्त करती है।।५२-५३।।

ऊर्जे शुक्लतृतीयायां विष्णुगौरीव्रतं चरेत्। पूजयित्वा जगद्वन्द्यामुपचारैः पृथग्विधैः।।५४।।
सुवासिनीं भोजयित्वा मङ्गलद्रव्यपूजिताम्। विसर्जयेत्प्रणम्यैनां विष्णुगौरीप्रतुष्टये।।५५।।
मार्गशुक्लतृतीयायां हरगौरीव्रतं शुभम्। कृत्वा पूर्वविधानेन पूजयेज्जगदम्बिकाम्।।५६।।
एतद्व्रतप्रभावेण भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्। देवीलोकं समासाद्य मोदते च तया सह।।५७।।

कार्त्तिक शुक्ल तृतीया तिथि पर विष्णु गौरी व्रत करे। जगत्वन्दिता देवी की पूजा विविध उपचारों से करनी चाहिये। तदनन्तर सौभाग्यवती नारी को भोजन कराये। उसकी पूजा विष्णु-गौरी को प्रसन्न करने हेतु मांगलिक द्रव्य देकर करे तथा प्रणामोपरान्त विदा करे। अग्रहायण शुक्ला तृतीया तिथि पर हरगौरीव्रताचरण करे। पूर्वोक्त प्रकार से उनकी पूजा करके वह नारी पृथिवी पर मनोरम भोग भोगकर सर्वान्त में मृत्यु के बाद देवीलोक में देवी के साथ क्रीड़ा करती है।।५४-५७।।

पौषशुक्लतृतीयायां ब्रह्मगौरीव्रतं चरेत्। पूर्वोक्तेन विधानेन पूजितापि द्विजोत्तम।।५८।।
ब्रह्मगौरीप्रसादेन मोदते तत्र सङ्गता। माघशुक्लतृतीयायां पूज्या सौभाग्यसुन्दरी।।५९।।
पूर्वोक्तेन विधानेन नालिकेरार्घ्यदानतः। प्रसन्ना दिशति स्वीयं लोकं तु व्रततोषिता।।६०।।

पौषशुक्ल तृतीया पर पूर्वोक्त विधि से ब्रह्मगौरीव्रत तथा देवी पूजन करे। हे द्विजोत्तम! इस व्रताचरण से नारी देवी का सामीप्य मोक्ष लाभ करती है। माघशुक्ला तृतीया को सौभाग्य सुन्दरी देवी पूजन करे। पूजा पूर्वोक्त विधान से करके नारिकेल का अर्घ्य दान करे। इससे भगवती प्रसन्न होकर अपने लोक में स्थान देती हैं।।५८-६०।।

फाल्गुनस्य सिते पक्षे तृतीया कुलसौख्यदा। पूजिता गन्धपुष्पाद्यैः सर्वमङ्गलदा भवेत्।।६१।।
सर्वासु च तृतीयासु विधिः साधारणो मुने। देवीपूजा विप्रपूजा दानं होमं विसर्जनम्।।६२।।
इत्येवं कथितानीह तृतीयायां व्रतानि ते।
भक्त्या कृतानि चेष्टांस्तु कामान्दद्युर्मनोगतान्।।६३।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासतृतीयाव्रतकथनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११२।।
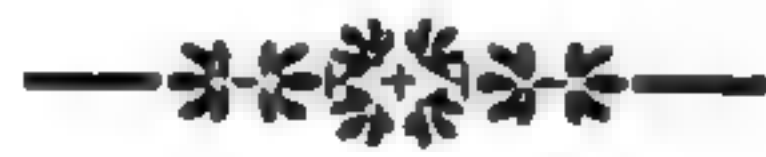
फाल्गुन शुक्ला तृतीया को कुल सौख्यदा की पूजा करे। इनकी पूजा गन्ध-पुष्पादि से करने पर ये सर्वमंगला हो जाती हैं। हे मुनिवर! यह सभी तृतीया की साधारण विधि है अर्थात् देवीपूजा, विप्रपूजा, दान, होम, विसर्जन। यह मैंने तृतीया के व्रताचरण को कहा। इनका अनुष्ठान भक्तिभाव से करने पर सभी कामना पूर्ण होती है।।६१-६३।।

।।११२वां अध्याय समाप्त।।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय चतुर्थी व्रताचरण वर्णन

सनातन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि चतुर्थ्यास्ते व्रतान्यहम्।
यानि कृत्वा नरा नार्योऽभीष्टान्कामानवाप्नुयुः॥१॥
चैत्रमासचतुर्थ्यां तु वासुदेवस्वरूपिणम्। गणपं सम्यगभ्यर्च्य दत्त्वा काञ्चनदक्षिणाम्॥२॥
विप्राय विष्णुलोकं तु गच्छेद्देवनमस्कृतः। वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु प्रार्थ्य सङ्कर्षणाह्वयम्॥३॥
गृहस्थद्विजमुख्येभ्यः शङ्खं दत्त्वा विधानवित्।
प्राप्य सङ्कर्षणं लोकं मोदते बहुकल्पकम्॥४॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे विप्र! अब मैं चतुर्थी तिथि के व्रतों का वर्णन करता हूं, जिसके अनुष्ठन से स्त्री-पुरुष को वांछित सिद्धि प्राप्त होती है। चैत्र शुक्ला चतुर्थी के दिन मनुष्य वासुदेव गणपति की पूजा करके स्वर्ण दक्षिणा विप्र को प्रदान करे। इससे वह व्यक्ति देवगण वन्दित होकर वैकुण्ठगमन करता है। वैशाख मास की चतुर्थी को बलरामरूपी (संकर्षणरूपी) गणपति की पूजा करके ब्राह्मण गृहस्थ विद्वान् को शंखदान करे। इससे पूजक मानव अनेक कल्पों तक संकर्षण लोक में आनन्द उठाता है।।१-४।।

ज्येष्ठमासचतुर्थ्यां तु प्राच्र्य प्रद्युम्नरूपिणम्।
फलं मूलं च यूथेभ्यो दत्त्वा स्वर्ग लभेन्नरः॥५॥
आषाढस्य चतुर्थ्यां तु सम्प्रपूज्यानिरुद्धकम्।
यतिभ्योऽलाबुपात्राणि दत्त्वाभीष्टं लभेन्नरः॥६॥
चतुर्मूर्तिव्रतान्येवं कृत्वा द्वादशवत्सरम्। उद्यापनं विधानेन कर्त्तव्यं फलमिच्छता॥७॥
अन्यज्ज्येष्ठचतुर्थ्यां तु सतीव्रतमनुत्तमम्। कृत्वा गणपतेर्मातुर्लोके मोदेत तत्समम्॥८॥
तथाऽऽषाढचतुर्थ्यां तु व्रतमन्यच्छुभावहम्। रथन्तराह्वकल्पस्य ह्यादिभूतं दिनं यतः॥९॥
श्रद्धापूतेन मनसा गणेशं विधिना नरः। पूजयित्वा लभेच्चापि फलं देवादिदुर्गमम्॥१०॥

ज्येष्ठ मासीय चतुर्थी के दिन साधक प्रद्युम्नरूपी गणपति का पूजन करके विप्रगण को फल-मूलादि दान करने से स्वर्ग गमन करता है। आषाढ़ी चतुर्थी के दिन अनिरुद्धरूपी गणपति की अर्चना करके यतिगण को कमण्डलु प्रदान करे। उसका अभीष्ट सिद्ध होगा। फलेच्छु मनुष्य द्वादशवर्ष तक यह चतुर्मूर्त्ति व्रत नियमानुरूप सम्पन्न करे। अन्य ज्येष्ठा चतुर्थी के दिन उत्तम सतीव्रत कहा गया है। इसे सम्पन्न करने वाली नारी गौरीलोक में जाकर माता गौरी के साथ आनन्दित होती है। आषाढ़ मासीय चतुर्थी के दिन कल्याणमय व्रतानुष्ठान होता है। यह तिथि रथन्तर कल्प की आदितिथि है। इस दिवस जो व्यक्ति श्रद्धापूर्ण मन से सविधि गणेश पूजा करेगा, उसे देव दुर्लभ फल मिलेगा।।५-१०।।

श्रावणस्य चतुर्थ्यां तु जाते चन्द्रोदये मुने॥११॥
गणेशाय प्रदद्याच्च ह्यर्घ्यं विधिविदाम्वरः। लम्बोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम्॥१२॥
नानारत्नविभूषाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत्।
आवाहनादिभिः सर्वैरुपचारैः समर्चयेत्॥१३॥
नैवेद्यं मोदकं दद्याद्गणेशप्रीतिदायकम्। एवं व्रतं विधायाथ भुक्त्वा मोदकमेव च॥१४॥
सुखं स्वप्यान्निशायां तु भूमावेव कृतार्चनः।
व्रतस्यास्य प्रभावेण कामान्मनसि चिन्तितान्॥१५॥
लब्ध्वालोके परं चापि गणेशपदमाप्नुयात्। नानेन सदृशं चान्यद्व्रतमस्ति जगत्त्रये॥१६॥

हे मुनिवर! जब श्रावण मासीय चतुर्थी के दिन चन्द्रोदय हो, तब विधिज्ञ व्यक्ति गणपति को अर्घ्य प्रदान करे। उनका ध्यान यह है—वे लम्बोदर, चार बाहु वाले, त्रिनेत्र, रक्तवर्ण हैं। वे नाना रत्नों से भूषित प्रसन्न मुख हैं। यह चिन्तन करके आवाहनादि पूर्वोक्त उपचार द्वारा उनकी पूजा करने के अनन्तर गणेश को प्रीतिप्रद मोदक नैवेद्य उनको प्रदान करना चाहिये। इस प्रकर से व्रती व्रत सम्पन्न करने के उपरान्त स्वयं भी मोदक भक्षण करे। उस रात्रि वह व्रती भूमि पर ही शयन करे। इस व्रत के प्रभाव से उसकी सभी इच्छित कामनायें प्राप्त होती हैं। मृत्यु के उपरान्त वह गणेशपद प्राप्त करता है। इस त्रैलोक्य में इसके समान कोई व्रत नहीं है।।११-१६।।

तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सता। अथास्मिन्नेव दिवसे दूर्वागणपतिव्रतम्॥१७॥
केचिदिच्छन्ति देवर्षे तद्विधानं वदामि ते। हैमं निर्माय गणपं ताम्रपात्रोपरि स्थितम्॥१८॥
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले। पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभिः॥१९॥

इसे सर्वकामलाभार्थ प्रयत्न पूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। हे देवर्षि! अन्य विद्वान् का मत है कि उसी दिन वह दूर्वागणपति व्रत करे। इसका व्रतविधान श्रवण करिये। गणपति की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर ताम्रपत्र पर स्थापित करे। उसकी पूजा पुष्पों तथा पांच वृक्ष के पत्तों से करे।।१७-१९।।

बिल्वपत्रमपामार्गं शमी दूर्वा हरिप्रिया। आभिरन्यैश्च कुसुमैरभ्यच्चै फलमोदकैः॥२०॥
उपहारं प्रकल्प्याथ दद्यादर्घं समुद्यते। ततः सम्प्रार्थ्य विघ्नेशमूर्तिं सोपस्करां मुने॥२१॥
आचार्याय विधिज्ञाय सत्कृत्य विनिवेदयेत्।
कृत्वैव पञ्च वर्षाणि समुपास्य यथाविधि॥२२॥
भुक्त्वेह भोगानखिलान् लोकं गणपतेर्व्रजेत्।
अथ भाद्रचतुर्थ्यां तु बहुलाधेनुसंज्ञकम्॥२३॥
पूजनीयोऽत्र यत्नेन स्रग्गन्धवयसादिभिः। ततः प्रदक्षिणीकृत्य शक्तश्चेद्दानमाचरेत्॥२४॥
अशक्तः पुनरेतां तु नमस्कृत्य विसर्जयेत्।
पञ्चाब्दं वा दशाब्दं वा षोडशाब्दमथापि वा॥२५॥
व्रतं कृत्वा समुद्याप्य धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्। प्रभावेण व्रतस्यास्य भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्॥२६॥

सत्कृतो देवतावृन्दैर्गोलोकं समवाप्नुयात्।
अथ शुक्लचतुर्थ्यां तु सिद्धवैनायकव्रतम्॥२७॥

ये पांच पत्ते हैं बेल का पत्ता, अपमार्ग, शमी, दूर्वा, कदम्ब। अन्य प्रकार के भी फल-पुष्प अर्पित करे। हे मुनिप्रवर! अर्घ्य के उपरान्त समस्त पूजन सामग्री तथा यह गणपति मूर्त्ति विधिज्ञ आचार्य को सादर प्रदान करे। जो पांच वर्ष पर्यन्त यथाविधि यह व्रत करता है, वह संसार के अखिल भोग भोगकर गणपति लोक जाता है। भाद्रपदी चतुर्थी के दिन बहुलाधेनु व्रत करे। इस दिन प्रयत्नपूर्वक माला, गन्ध, घास आदि से गौओं की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर गौ की प्रदक्षिणा करके यदि समर्थ हो, तब ब्राह्मण को गोदान करे। (यह प्रतिवर्ष का नियम है) यदि सामर्थ्य न हो, तब (प्रतिवर्ष गोदान न करके) उद्यापन वाले वर्ष में ही दुग्धवती गौ दान करे। तथा प्रतिवर्ष गौ की प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करे। इस व्रत का यह प्रभाव है कि वह धरती पर मनोरम भोग भोगकर सर्वान्त में देवगण से सत्कृत होकर गोलोक जाता है। भाद्रपद शुक्लाचतुर्थी तिथि पर सिद्धवैनायक व्रत करे।।२०-२७।।

आवाहनादिभिः सर्वैरुपचारैः समर्चनम्।
एकाग्रमानसो भूत्वा ध्यायेत्सिद्धिविनायकम्॥२८॥
एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्। पाशाङ्कुशधरं देवं तप्तकाञ्चनसन्निभम्॥२९॥

आवाहनादि सभी उपचारों से पूजा के पश्चात् एकाग्र होकर सिद्धिविनायक का ध्यान करे। वे एकदन्त, सूप के समान बड़े कानों वाले, गजमुख, चतुर्भुज हैं। वे तपे हुये स्वर्ण वर्ण वाले पाश-अंकुशधारी देवता हैं।।२८-२९।।

एकविंशति पत्राणि चैकविंशतिनामभिः।
समर्पयेद्भक्तियुक्तस्तानि नामानि वै शृणु॥३०॥
सुमुखाय शमीपात्रं गणाधीशाय भृङ्गजम्। उमापुत्राय बिल्वं तु दूर्वां गजमुखाय च॥३१॥
लम्बोदराय बदरीं धत्तूरं हरसूनवे। शूर्पकर्णाय तुलसीं वक्रतुण्डाय शिंबिजम्॥३२॥
गुहाग्रजायापामार्गमेकदन्ताय बार्हतम्। हेरम्बाय तु सिन्दूरम् चतुर्होत्रे च पत्रजम्॥३३॥
सर्वेश्वरायागस्त्यस्य पत्रं प्रीतिविवर्द्धनम्। दूर्वायुग्मं ततो गृह्य गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम्॥३४॥

ध्यानोपरान्त २१ नामों से २१ पत्र उनको अर्पित करे। यह कार्य भक्तिभावेन करे। सुमुख को शमी का पत्ता, गणाधीश को भृंगराज का पत्ता, उमापुत्र को बेल का पत्ता, गजमुख को दूर्वादल, लम्बोदर को बेर का पत्ता, हरसूनु (हरपुत्र) को धतूर का पत्ता, शूर्पकर्ण को तुलसीपत्र, वक्रतुण्ड को शिवि का पत्ता, कार्त्तिकेय के अग्रज को अपमार्ग का पत्ता, एकदन्त को जामुन का पत्ता, हेरम्ब को सिन्धुआर का पत्ता, चतुर्होता को तेजपत्ता, सर्वेश्वर को अगत्स्य का पत्ता प्रदान करे। ये पत्ते इनको प्रिय हैं। तदनन्तर दो दूर्वा ग्रहण करके गन्ध, पुष्प, अक्षत युक्त।।३०-३४।।

पूजां निवेदयेद्भक्तियुक्तो मोदकपञ्चकम्।
आचमय्य नमस्कृत्य सम्प्रार्थ्य च विसर्ज्जयेत्॥३५॥

विनायकस्य प्रतिमां हैमीं सोपस्करं मुने। निवेदयेच्च गुरवे द्विजेभ्यो दक्षिणां ददेत्॥३६॥

लेकर गणेश पूजा के उपरान्त उनको भक्तिभावेन ५ मोदक अर्पित करे। आचमन प्रदानोपरान्त उनको प्रणाम करे तथा प्रार्थना करके उनका विसर्जन करना चाहिये। हे मुनिवर! पूजित विनायक की स्वर्ण प्रतिमा सभी सामग्री के साथ गुरु को प्रदान करे तथा विप्रगण को दक्षिणा अर्पित करे।।३५-३६।।

एवं कृतार्चनो भक्त्या पञ्च वर्षाणि नारद।
उपास्य लभते कामानैहिकामुष्किान् शुभान्॥३७॥
अस्यां चतुर्थ्यां शशिनं न पश्येच्च कदाचन।
पश्यन् मिथ्याभिशापं तु लभते नात्र संशयः।
अथ तद्दोषनाशाय मन्त्रं पौराणिकं पठेत्॥३८॥

हे नारद! इस प्रकार से भक्तिपूर्वक ५ वर्ष अर्चना करनी चाहिये। इस उपासना द्वारा उपासक की ऐहिक एवं पारलौकिक शुभ कामनायें पूर्ण होती हैं। भाद्रशुक्ल चतुर्थी को कदापि चन्द्रमा न देखें। ऐसा करने से झूठा आरोप लगता है। इसमें संशय नहीं है। उस दोष नाशार्थ यह पौराणिक मन्त्र पाक करे।।३७-३८।।

''सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥३९॥

सिंह ने प्रसेन का वध किया, सिंह का वध जामवन्त ने किया। हे सुकुमार! रुदन मत करो। तुम्हारी स्यमन्तक मणि यह है।।३९।।

इषशुक्लचतुर्थ्यां तु कपर्दीशं विनायकम्॥४०॥
पौरुषेण तु सूक्तेन पूजयेदुपचारकैः। अकारणान्मुष्टिगतांस्तं डुलान्सकपर्द्दिकान्॥४१॥
विप्राय बटवे दद्याद्गन्धपुष्पार्चिताय च। तण्डुला वैश्वदैवत्या हरदैवत्यमिश्रिताः॥४२॥
कपर्दिगणनाथोऽसौ प्रीयतां तैः समर्पितैः।
चतुर्थ्यां कार्तिके कृष्णे करकाख्यं व्रतं स्मृतम्॥४३॥
स्त्रीणामेवाधिकारोऽत्र तद्विधानमुदीर्यते।
पूजयेच्च गणाधीशं स्नाता स्त्री समलङ्कृता॥४४॥
तदग्रे पूर्णपक्वान्नं विन्यसेत्करकान्दश। समर्प्य देवदेवाय भक्त्या प्रयतमानसा॥४५॥
देवो मे प्रीयतामेवमुच्चार्य्याथ समर्पयेत्।
सुवासिनीभ्यो विप्रेभ्यो यथाकामं च सादरम्॥४६॥
ततश्चन्द्रोदये रात्रौ दत्त्वार्घं विधिपूर्वकम्। भुञ्जीत मिष्टमन्नं च व्रतस्य परिपूर्तये॥४७॥
यद्वा क्षीरेण करकं पूर्णं तोयेन वा मुने। सपूगाक्षतरत्नाढ्यं द्विजाय प्रतिपादयेत्॥४८॥
एतत्कृत्वा व्रतं नारी षोडशद्वादशाब्दकम्। उपायनं विधायाथ व्रतमेतद्विसर्ज्जयेत्॥४९॥

आश्विन शुक्ल चतुर्थी के दिन पुरुष सूक्त से कपर्दीश विनायक की स्तुति तथा सर्वोपचार से उनकी

पूजा करे। तदनन्तर गन्ध-पुष्पादि से इस मन्त्र द्वारा पूजित हुये विप्रवटु को एक मुट्ठी चावल तथा एक कौड़ी प्रदान करे। मन्त्र यह है—

"तण्डुला वैश्वदैवत्या, हरदैवत्य मिश्रिताः।
कपर्दिकगणनाथोऽसौ, प्रीयतां तै समर्पितैः।।"

कार्त्तिक कृष्ण चतुर्थी को करके (करवा चौथ) व्रत केवल नारीगण ही करे। उसका विधान यह है। स्त्री स्नानोपरान्त अलंकृत होकर गणाधीश की पूजा करे। उनके समक्ष व्रती रहकर पूरी तरह से पक्वान्न तथा दस कमण्डलु (करवा) रखकर देवगण को "प्रीयताम्" (प्रसन्न हों) कहकर अर्पित करे। तत्पश्चात् सभी वस्तु सौभाग्यशाली स्त्री तथा ब्राह्मणगण को प्रदान करे। जब रात में चन्द्रोदय परिलक्षित हो, तब सविधि अर्घ्य प्रदान करके व्रत पूर्त्ति करने के अनन्तर मिष्ठान्न भोजन करे अथवा दुग्ध-जल पूर्ण कमण्डलु, सुपाड़ी, अक्षत, रत्न ब्राह्मण को प्रदान करे। यह व्रत द्वादश किंवा षोडशवर्ष करे। अन्त में उद्यापनोपरान्त व्रत विसर्जन करे।।४०-४९।।

यावज्जीव तु वा नार्या कार्य्यं सौभाग्यवाञ्छया।
व्रतेनानेन सदृशं स्त्रीणां सौभाग्यदायकम्।।५०।।
विद्यते भुवेनष्वन्यत्तस्मान्नित्यमिति स्थितिः।
ऊर्ज्जशुक्लचतुर्थ्यां तु नागव्रतमुदाहृतम्।।५१।।
प्रातर्व्रतं तु सङ्कल्प्य धेनुशृङ्गजलं शुचि।
पीत्वास्नात्वाथ मध्याह्ने शङ्खपालादिपन्नगान्।।५२।।
शेषं चाह्वानपूर्वैस्तु पूजयेदुपचारकैः। क्षीरेणाप्यायनं कुर्यादेतन्नागव्रतं स्मृतम्।।५३।।

अथवा सौभाग्यकामी नारी इस व्रत को आजीवन करे। इसके समान सौभाग्यदायक व्रत स्त्रियों हेतु है ही नहीं। कार्त्तिक शुक्ल चतुर्थी के दिन नागव्रत करना कहा गया है। प्रातः व्रत संकल्प करके गौ के शृंग से धुलाये जल का पान करके मध्याह्न में शंखपाल आदि तथा शेष आदि नागों का आह्वान करे। तदनन्तर उनकी पूजा उपचार सहित करके दुग्ध से नागगण को तृप्त करना ही नागव्रत कहा गया है।।५०-५३।।

एवंकृते तु विप्रेन्द्र नृभिर्नागव्रते शुभे। विषाणि नश्यन्त्यचिरान्न दशन्ति च पन्नगाः।।५४।।
मार्गशुक्लचतुर्थ्यां तु वर्षं यावन्मुनीश्वर। क्षपयेदेकभक्तेन नक्तेनाथ द्वितीयकम्।।५५।।
अयाचितोपवासाभ्यां तृतीयकचतुर्थके। एवं क्रमेण विधिवच्चत्वार्यब्दानि मानवः।।५६।।
समाप्य च ततोऽस्यान्ते व्रतस्नातो महाव्रती। कारयेद्धेमघटितं भूगणेर्मूषकं रथम्।।५७।।
अशक्तो वर्णकैरेव शुभ्रं चाब्जं सुपत्रकम्।
तस्योपरि घटं स्थाप्य ताम्रपात्रेण संयुतम्।।५८।।
रयेत्तण्डुलैः शुभ्रैस्तस्योपरि गणेश्वरम्। न्यसेद्वस्त्रयुगाच्छन्नं गन्धाद्यैः पूजयेच्च तम्।।५९।।

हे विप्रेन्द्र! ऐसा करने से शुभ नागव्रत सम्पन्न होता है। विष त्वरित रूप से नष्ट हो जाते हैं। सर्प कभी भी उस पूजक को नहीं डंसते। हे मुनीश्वर! अग्रहायण शुक्ला चतुर्थी से प्रारंभ करके वर्ष पर्यन्त एक बार ही

भोजन करे। भोजन बिना मांगे जो मिले वही ग्रहण करे। यह भोजन भी दिवाकाल में करना चाहिये। इस विधि से चार वर्ष पर्यन्त करने के उपरान्त सर्वान्त में स्नानोपरान्त स्वर्ण निर्मित गणेश रथ एवं मूषक बनवाये। यदि अर्थभाव से स्वर्ण का न बनवा सकें तब हरिताल, चन्दन किंवा काष्ठ की प्रतिमा से भी कार्य कर सकता है। व्रती मानव श्वेतकमल रखकर उस पर ताम्र घट स्थापना करे। उसे स्वच्छ तण्डुल से पूर्ण करे। उस घट पर गणेश्वर की प्रतिमा स्थापित करके उनका पूजन गन्ध-पुष्पादि तथा एक जोड़ी वस्त्र से करे।।५४-५९।।

नैवेद्यं मोदकं कल्प्यं गणेशः प्रीयतामिति। जागरैर्गीतवाद्याद्यैः पुराणाख्यानकैश्चरेत्।।६०।।

प्रभाते विमले स्नात्वा होमं कृत्वा विधानतः।
तिलव्रीहियवश्वेतसर्षपाज्यैः सखण्डकैः।।६१।।
गणो गणाधिपश्चैव कूष्माण्डस्त्रिपुरान्तकः।
लम्बोदरैकदन्तौ च रुक्मदंष्ट्रश्च विघ्नपः।।६२।।

ब्रह्मा यमोऽथ वरुणः सोमसूर्यहुताशनाः। गन्धमादी परमेष्ठीत्येवं षोडशनामभिः।।६३।।

प्रणवाद्यैर्ङेनमोंऽतैः प्रत्येकं दहने हुनेत्। वक्रतुण्डेति ङेंतेन वर्मा तेनाष्टयुक्छतम्।।६४।।

ततो व्याहृतिभिः शक्त्या हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत्।
दिक्पालान्पूजयित्वा च ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।।६५।।

तदनन्तर "गणेशः प्रीयताम्" कहकर उनको मोदक चढ़ायें। तदनन्तर रात्रि जागरण गीत-वाद्य, कथा, पुराणादि उत्सव सहित करके प्रातः स्नानोपरान्त तिल, ब्रीहि, जौ, सरसों, घृत मिलाकर होम करे। प्रारंभ में प्रणव कहकर अन्त में चतुर्थ्यन्त नामोच्चारण के पश्चात् नमः कहे। तदनन्तर इन नामों से आहुति प्रदान करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नय, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी, परमेष्ठी। यथा—ॐ गणाय नमः, ॐ गणाधिपाय नमः इत्यादि प्रकार से १०८ आहुति देनी चाहिये। वक्रतुण्डाय हुं फट् यह आठ अक्षर का मन्त्र है। तदनन्तर व्याहृति युक्त होम यथाशक्ति करके पूर्णाहुति प्रदान करे। तदनन्तर दिक्पालों की पूजा करने के पश्चात् ब्राह्मण भोजन कराये।।६०-६५।।

चतुर्विंशतिसङ्ख्याकान् मोदकैः पायसैस्तथा।
सवत्सां गां ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणाम्।।६६।।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति भूयसीं च ततो ददेत्।
प्रणम्य दक्षिणीकृत्य प्रविसृज्य द्विजोत्तमान्।।६७।।
बन्धुभिः सह भुञ्जीत स्वयं च प्रीतमानसः।
एतद्व्रतं नरः कृत्वा भुक्त्वा भोगानिहोत्तमान्।।६८।।

सायुज्यं लभते विष्णोर्गणेशस्य प्रसादतः। केचिद्वरव्रतं नाम प्राहुरेतस्य नारद।।६९।।

अर्थात् २४ संख्यक ब्राह्मणगण को मोदक एवं पायस भोजन कराना चाहिये। तत्पश्चात् आचार्य को वत्ससहित गौ देकर दक्षिणा देना चाहिये। अन्य ब्राह्मणों को भी प्रभूत दक्षिणा देना विधान है। तदनन्तर ब्राह्मणगण की प्रदक्षिणा करके प्रणामोपरान्त उनका विसर्जन करे। तब व्रती व्यक्ति प्रसन्नचित्त होकर बन्धुगण

सहित भोजन करे। इस व्रताचरण को करने वाला मनुष्य इहलोक में उत्तम भोग भोगने के उपरान्त गणेश की कृपा से विष्णु का सायुज्य लाभ करता है। हे नारद! कुछ लोग इसे वरव्रत (उत्तम व्रत) कहते हैं।।६६-६९।।

विधानमेतदेवापि फलं चापीह तत्समम्।
पौषमासचतुर्थ्यां तु विघ्नेशं प्रार्थ्य भक्तितः।।७०।।
विप्रैकं भोजयेच्चैवं मोदकैर्दक्षिणां ददेत्।
एवं कृते मुने भूयादव्रती सम्पत्तिभाजनम्।।७१।।
माघकृष्णचतुर्थ्यां तु सङ्कष्टव्रतमुच्यते। तत्रोपवासं सङ्कल्प्य व्रती नियमपूर्वकम्।।७२।।
चन्द्रोदयमभिव्याप्य तिष्ठेत्प्रयतमानसः। ततश्चन्द्रोदये प्राप्ते मृण्मयं गणनायकम्।।७३।।
विधाय विन्यसेत्पीठे सायुधं सवाहनम्। उपचारैः षोडशभिः समभ्यर्च्य विधानतः।।७४।।
मोदकं चापि नैवेद्यं सगुडं तिलकुट्टकम्। ततोऽर्घ्यं ताम्रजे पात्रे रक्तचन्दनमिश्रितम्।।७५।।
सकुशं च सदूर्वं च पुष्पाक्षतसमन्वितम्। सशमीपत्रदधि च कृत्वा चन्द्राय दापयेत्।।७६।।
गगनार्णवमाणिक्यं चन्द्र दाक्षायणीपते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक।।७७।।

उस वरव्रत की भी यही विधि तथा यही फल है। व्रती व्यक्ति पौषमासीय चतुर्थी के दिन भक्तिभाव से विघ्नेश की प्रार्थना करने के पश्चात् एक व्यक्ति को भोजनोपान्त मोदक तथा दक्षिणा प्रदान करे। ऐसा करने वाला व्रती प्रभूत सम्पत्ति लाभ करता है। माघकृष्ण चतुर्थी को संकष्टीव्रत करे। इस तिथि पर व्रती मानव सविधि संकल्प लेकर उपवासी रहे। चन्द्रोदय होने पर आसन पर मिट्टी के गणपति को वाहन एवं आयुध सहित आसीन कराये। उनका षोडशोपचार पूजन विधिवत् करे। तत्पश्चात् उनको मोदक एवं तिलयुक्त मोदन अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर ताम्रपात्र में रक्त चन्दन मिलाकर, कुश, दूर्वा तथा पुष्प अक्षतयुक्त करे। उसमें शमीपत्र तथा दधि भी छोड़े। तदनन्तर कुश से इस मन्त्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करे—हे चन्द्र! आप गगनरूपी समुद्र के माणिक्यरूप तथा दक्षकन्याओं के पति हैं। हे गणेश के प्रतिरूप! मेरे द्वारा निवेदित अर्घ्य ग्रहण करें।।७०-७७।।

एवं दत्त्वा गणेशाय दिव्यार्घ्यं पापनाशनम्।
शक्त्या सम्भोज्य विप्राग्र्यान्स्वयं भुञ्जीत चाज्ञया।।७८।।
एवं कृत्वा व्रतं विप्र सङ्कष्टाख्यं शुभावहम्।
समृद्धो धनधान्यैः स्यान्न च सङ्कष्टमाप्नुयात्।।७९।।

इस प्रकार से गणेश को पापनाशक दिव्य अर्घ्य देकर पहले विप्रगण को भोजन कराने के उपरान्त उनसे आज्ञा लेकर स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार से हे विप्र! जो संकष्टा नामक इस शुभ व्रताचरण को करता है, वह धन-धान्य से समृद्ध होकर संकटों से दूर रहता है।।७८-७९।।

माघशुक्लचतुर्थ्यां तु गौरीव्रतमनुत्तमम्।
तस्यां तु गौरी सम्पूज्या संयुक्ता योगिनीगणैः।।८०।।
नरैः स्त्रीभिर्विशेषेण कुन्दपुष्पैः सकुङ्कुमैः। रक्तसूत्रै रक्तपुष्पैस्तथैवालक्तकेन च।।८१।।
धूपैर्दीपैश्च बलिभिः सगुडेनार्द्रकेण च। पयसा पायसेनापि लवणेन च पालकैः।।८२।।

पूज्याश्चाविधवा नार्यस्तथा विप्राः सुशोभनाः।
सौभाग्यवृद्धये देयो भोक्तव्यं बन्धुभिः सह॥८३॥

माघशुक्ल चतुर्थ को अत्युत्तम गौरीव्रत करे। गौरी की पूजा योगिनीगण के साथ करे। उस तिथि पर पुरुष विशेषतः नारी कुन्द पुष्प, कुंकुम, रक्तसूत्र, रक्तपुष्प, आलता, धूप, दीप, बलि, गुड़, अदरख, खीर, दुग्ध लवण, पातक से सविधि सुशोभना नारी इनकी पूजा के पश्चात् सौभाग्य वर्द्धनार्थ सधवा नारी तथा उत्तम विप्रों की पूजा सम्पन्न करके बन्धुबान्धव सहित भोजन करे।।८०-८३।।

इदं गौरीव्रतं विप्र सौभाग्यारोग्यवर्द्धनम्। प्रतिवर्षं प्रकर्त्तव्यं नारीभिश्च नरैस्तथा॥८४॥
ढुण्ढि व्रतं परैः प्रोक्तं कैश्चित्कुण्डव्रतं स्मृतम्।
ललिताव्रतमित्यन्यैः शान्तिव्रतमथापरैः॥८५॥
स्नानं दानं जपो होमः सर्वमस्यां कृतं मुने। भवेत्सहस्रगुणित प्रासादाद्दन्तिनः सदा॥८६॥

हे द्विज! यह व्रत सौभाग्यप्रद तथा आरोग्यदाता है। नर-नारी प्रतिवर्ष यह व्रत करे। किसी का कथन है कि उस दिन ढुण्ढिव्रत करे। किसी का कथन है कुण्डव्रत करे। कोई ललिता व्रत को, तो कोई शान्तिव्रत को उत्तम कहते हैं। इस तिथि पर व्रती द्वारा स्नान, दान, जप, होमादि जो कुछ कार्य किया जाता है, उसका फल हजारों गुना प्राप्त होता है। यह गणपति की कृपा है।।८४-८६।।

चतुर्थ्यां फाल्गुने मासि ढुण्ढिराजव्रतं शुभम्।
तिलपिष्टैर्द्विजान् भोज्य स्वयं चाश्नीत मानवः॥८७॥
गणेशाराधनपरो दानहोमप्रपूजनैः। तिलैरेवकृतैः सिद्धिं प्राप्नुयात्तत्प्रसादतः॥८८॥

फाल्गुन चतुर्थी के दिन शुभप्रद ढुंढिराज गणपति व्रत करे। मनुष्य इस तिथि पर ब्राह्मणगण को तिल का मोदक खिलाकर स्वयं भी वहीं भक्षण करे। उस दिन दान, होम, पूजा से सतत् गणपति आराधना करनी चाहिये तथा तिल द्वारा सर्वकर्म सम्पन्न करना चाहिये। एवंविध अनुष्ठान से विघ्नेश गणपति की कृपा से मनुष्य सिद्धिभाक् हो जाता है।।८७-८८।।

सौवर्णं गजवक्त्रं च कृत्वा सम्पूज्य यत्नतः।
द्विजाग्र्याय प्रदातव्यं सर्वसम्पत्समृद्धये॥८९॥
यस्मिन्कस्मिन्भवेन्मासि चतुर्थी रविवारयुक्।
साङ्गारका वा विप्रेन्द्र सा विशेषफलप्रदा॥९०॥
सर्वासु च चतुर्थीषु शुक्लास्वप्यसितासु च।
विघ्नेश एव देवेशः सम्पूज्या भक्तितत्परैः॥९१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासचतुर्थीव्रतनिरूपणं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११३।।

गणेश की स्वर्णमूर्त्ति की साधक यत्नतः पूजा करे। तदनन्तर सर्वसम्पत्ति लाभार्थ उसे द्विज को प्रदान करे। जिस मास में चतुर्थी रवि किंवा मंगलवार को पड़े, वह चतुर्थी विशेष फलदायक है। वह शुक्लपक्षीय किंवा कृष्णपक्षीय चाहे जब हो, यदि रवि या मंगल युक्त है, तब प्रभूत फल देती है। इस प्रकार भक्ति-भाव से व्यक्ति गणेश की पूजा करे।।८९-९१।।

।।११३वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
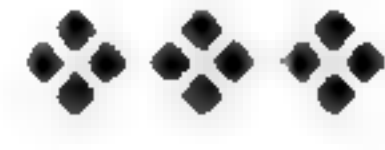
अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय पंचमी व्रत वर्णन

सनातन उवाच

श्रृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पञ्चम्यास्ते व्रतान्यहम्।
यानि भक्त्या समास्थाय सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।१।।
प्रोक्ता मत्स्यजयन्ती तु पञ्चमी मधुशुक्लगा।
अस्यां मत्स्यावताराच्चा भक्तैः कार्या महोत्सवा।।२।।
श्रीपञ्चमीति चैषोक्ता तत्र कार्यं श्रियोऽर्चनम्।
गन्धाद्यैरुपचारैस्तु नैवेद्यैः पायसादिभिः।।३।।
यो लक्ष्मीं पूजयेच्चात्र तं वै लक्ष्मीर्न मुञ्चति। पृथ्वीव्रतं तथा चान्द्रं हयग्रीवव्रतं तथा।।४।।

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे विप्र! अब मैं पञ्चमी के व्रतों का वर्णन करता हूं। श्रवण करें। इस दिन भक्ति पूर्वक आराधना करने वाला सर्वकाम प्राप्त करता है। चैत्रशुक्ल पंचमी को मत्स्य जयन्ती व्रत करे। मत्स्यावतार की भक्तिपूर्वक पूजा करके महोत्सव मनाये। यही श्री पंचमी है। इस दिन लक्ष्मी की अर्चना करे। गन्धादि उपचार तथा पायसादि नैवेद्य से लक्ष्मी पूजा करता है, लक्ष्मी उसका त्याग कदापि नहीं करतीं। जो लोग सिद्धिकामी हैं, वे इसी दिन पृथिवीव्रत, चान्द्रव्रत, हयग्रीवव्रत अवश्य करे।।१-४।।

कार्यं तत्तद्विधानेन तत्तत्सिद्धिमभीप्सुभिः।
अथ वैशाखपञ्चम्यां शेषं चाभ्यर्च्य मानवः।।५।।
सर्वैर्नागगणैर्युक्तमभीष्टं लभते फलम्। तथा ज्येष्ठस्य पञ्चम्यां पितृनभ्यर्चयेत्सुधीः।।६।।
सर्वकामफलावाप्तिर्भवेद्वै विप्रभोजनैः। अथाषाढस्य पञ्चम्यां वायुं सर्वगतं मुने।।७।।
ग्रामाद्बहिर्विनिर्गत्य धरोपस्थे समास्थितः।
ध्वजं च पञ्चवर्णं तु वंशदण्डाग्रसंस्थितम्।।८।।

समुच्छ्रितं निदध्यात्तु कल्पिताब्जे तु मध्यतः। ततस्तन्मूलदेशे तु दिशु सर्वासु नारद॥९॥
लोकपालान्समभ्यर्च्य कुर्याद्वायुपरीक्षणम्। प्रथमादिषु यामेषु यो यो वायुःप्रवर्तते॥१०॥
तस्मै तस्मै दिगीशाय पूजां सम्यक् प्रकल्पयेत्।
एवं स्थित्वा निराहारस्तत्र यामचतुष्टयम्॥११॥

तत्तत् सिद्धि पाने की कामना करने वाले उन-उन विधानों से इन व्रतों का आचरण सविधि करे। वैशाखी पंचमी के दिन व्रती व्यक्ति सर्वनागगण समन्वित शेषनाग की अर्चना करे। उसे अभीष्ट फल प्राप्त होगा। ज्येष्ठ पंचमी तिथि पर व्रती सुधी मानव पितरों की अर्चना करे। विप्रों को भोजन कराने से उसकी समस्त कामना पूर्ण होगी। आषाढ़ी पंचमी के दिन सर्वत्र गमनशील वायु पूजा करे। ग्राम के बाह्य प्रदेश में पवित्र स्थान पर ध्वजारोपण करना चाहिये। उसके वंश (बांस) में पंचवर्ण वाली पताका बंधी हो। ऐसी पताका को बांस को भूमि में गाड़े। तदनन्तर मूल स्थान की (जहां गाड़ी गयी) सभी दिशाओं में लोकपालगण के पूजनोपरान्त वायु गति की परीक्षा करनी चाहिये। हे नारद! प्रथम प्रभृति प्रहर में जिस दिशोन्मुख पवन बहे, उस-उस दिशा के स्वामी की पूजा करता जाये। चारों प्रहर व्रती व्यक्ति निराहार रहे।।५-११।।

सायमागत्य गेहं स्वं भुक्त्वा स्वल्पं समाहितः।
लोकपालान्नमस्कृत्य स्वप्यादभूमितले शुचौ॥१२॥
यः स्वप्नो जायते तस्यां रात्रौ यामे चतुर्थके।
स एव भविता नूनं स्वप्न इत्याह वै शिवः॥१३॥

सायंकल स्वगृह जाकर समाहित चित्त रहकर स्वल्प मात्रा में आहार करे। लोकपालगण को प्रणामोपरान्त रात्रि में पवित्र भूमि पर व्रताचरी शयन करे। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में जो स्वप्न दिखलाई देता है, वही भवितव्यता होगी, यह शिव का वचन है।।१२-१३।।

अशुभे तु समुत्पन्ने शिवपूजापरायणः। सोपवासो नयेदष्टयामं तद्दिनमेव वा॥१४॥
भोजयित्वा द्विजानष्टौ ततः शुभफलं लभेत्। व्रतमेतत्समुदितं शुभाशुभनिदर्शनम्॥१५॥

यदि अशुभ स्वप्न हो, तब शिवपूजा तत्पर होकर उपवासी रहे, आठ प्रहर किंवा मात्र उस दिन उपवासी स्थिति में व्यतीत करने के उपरान्त आठ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इससे शुभफल होगा। यह व्रत शुभ-अशुभ का संकेत देता है।।१४-१५।।

नृणां सौभाग्यजनकमिह लोके परत्र च। श्रावणे कृष्णपञ्चम्यां व्रतं ह्यन्नसमृद्धिदम्॥१६॥
चतुर्थ्यां दिनशेषे तु सर्वाण्यन्नानि नारद।
पृथक् पात्रेषु संस्थाप्य जलैराप्लावयेत्सुधीः॥१७॥
ततो पात्रान्तरे तत्तु निष्कास्याम्बु निधापयेत्।
प्रातर्भानौ समुदिते पितृश्चैव तथा ऋषीन्॥१८॥
देवांश्चाभ्यर्च्य सुस्नातं कृत्वा नैवेद्यमग्रतः। तदन्नं याचकेभ्यस्तु प्रयच्छेत्प्रीतमानसः॥१९॥
सर्वं दिनं क्षिपेदेवं प्रदोषे तु शिवालये। गत्वा सम्पूजयेद्देवं लिङ्गरूपिणमीश्वरम्॥२०॥

साथ ही यह व्रत इस लोक में सौभाग्यदायक भी है। श्रावण कृष्णा पंचमीतिथि पर अन्नसमृद्धिप्रद व्रत करे। हे नारद! जब चतुर्थी तिथि के दिन का अवसान होता रहे, तब सभी अन्नों को धोकर अलग-अलग अन्न अलग पात्रों में रखना चाहिये। द्वितीय प्रहर में अन्नों को पुनः जल में रखे। पंचमी के दिन प्रातः सम्यक् स्नानोपरान्त सूर्योदय काल में देव-पितृ-ऋषि पूजन करके नैवेद्यार्पण करे। अब जो अन्न रखा था, वह याचकों को मुदित मन से देना चाहिये। सम्पूर्ण दिन इसी प्रकार बिताकर प्रदोषकाल में शिवालय जाकर वहां लिंगरूपधारी देवदेव ईश्वर की पूजा करे।।१६-२०।।

गन्धपुष्पादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महेश्वरम्।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां शतं चापि सहस्रकम्॥२१॥
जपं निवेद्य देवाय भवाय भवरूपिणे। स्तुत्वा सर्वैर्वैदिकैश्च पौराणैश्चाप्यनाकुलः॥२२॥

गन्धपुष्पादि से सम्यक् महेश्वर की पूजा करके वहां पंचाक्षी विद्या का एक लाख जप करके भव भवरूपी देव को जप निवेदन करना चाहिये। तदनन्तर पौराणिक अथवा वैदिक स्तोत्रों से अनाकुल चित्त द्वारा उनकी स्तुति करे।।२१-२२।।

प्रार्थयेद्देवमीशानं शश्वत्सर्वान्नसिद्धये।
शारदीयानि चान्नानि तथा वासन्तिकान्यपि॥२३॥
यानि स्युस्तैः समृद्धोऽहं भूया जन्मनि जन्मनि।
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं गृहमागत्य वै स्वकम्॥२४॥
दत्त्वान्नं ब्राह्मणादिभ्यः पक्वं भुञ्जीत वाग्यतः।
एतदन्नव्रतं विप्र विधिनाऽऽचरितं नृभिः॥२५॥

शाश्वत अन्न सिद्धि हेतु, देवदेव ईशान की यह प्रार्थना करनी चाहिये। यह मन्त्र कहे—"हे देव! जो भी शारदीय किंवा वासन्तिक अन्न है तथा अन्य ऋतु संभूत जो अन्न हैं, वे सब मैं प्रतिजन्म में प्राप्त करूं।" यह प्रार्थना करके व्रताचारी स्वगृह गमन करे। पहले ब्राह्मण को भोजन देकर तब मौनावलम्बन करके स्वयं भी आहार ग्रहण करे। हे विप्र! जो मनुष्य इस अन्न व्रत को सविधि सम्पन्न करता है।।२३-२५।।

सर्वान्नसम्पज्जनकं परलोके गतिप्रदम्। श्रावणे शुक्लपञ्चम्यां नृभिरास्तिक्यतत्परैः॥२६॥
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः।
गन्धाद्यैः पूजयेत्तांश्च तथेन्द्राणोमनन्तरम्॥२७॥
सम्पूज्य स्वर्णरूप्यादिदध्यक्षतकुशाम्बुभिः। गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसञ्चयैः॥२८॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य तद्द्रव्यं सम्प्रणम्य च।
सम्प्रार्थ्य भक्तिभावेन विप्राग्र्येषु समर्पयेत्॥२९॥
यदिदं स्वर्णरौप्यादि द्रव्यं वै विप्रसात्कृतम्। तदनन्तफलं भूयान्मम जन्मनि जन्मनि॥३०॥

वह जीवन में समस्त अन्न प्राप्त करता रहता है तथा परलोक में उत्तमगति लाभ करता है। श्रावणशुक्लापंचमी के दिन आस्तिक व्यक्ति अपने घर के द्वार पर गोमय का विषधर सर्प बनाये। तदनन्तर

स्वर्ण, रजत, दधि, अक्षत, कुश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य से इन्द्राणी देवी का पूजन करके प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करे। यह सब द्रव्य भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को प्रदान करे। जो भी स्वर्ण-रजतादि द्रव्य ब्राह्मणगण को प्रदान किया जाता है, उसका अनन्त फल उस दानदाता को प्रत्येक जन्मों में मिलता रहता है।।२६-३०।।

इत्येवं ददतो द्रव्यं भक्तिभावेन नारद। प्रसन्नः स्याद्धनाध्यक्षः स्वर्णादिकसमृद्धिदः।।३१।।

एतद्व्रतं नरः कृत्वा विप्रान्सम्भोज्य भक्तितः।
पश्चात्स्वयं च भुञ्जीत दारापत्यसुहृद्धृतः।।३२।।
भाद्रे तु कृष्णपञ्चम्यां नागान् क्षीरेण तर्पयेत्।।३३।।
यस्तस्याऽऽसप्तमं यावत्कुलं सर्पात्सुनिर्भयम्।
भाद्रस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेदृषिसत्तमान्।।३४।।

हे नारद! इन द्रव्यों को जो भक्तिभाव से ब्राह्मणों को प्रदान करता है, उससे धनाध्यक्ष कुबेर प्रसन्न होकर उस व्यक्ति को स्वर्णादि समृद्धि प्रदान करते हैं। इस व्रत को करने के पश्चात् व्रती व्यक्ति भक्तिभाव से विप्रों को भोजन कराये। तदनन्तर पत्नी-पुत्रादि सहित स्वयं भोजन करे। भाद्रमासीय कृष्णा पंचमी के दिन नागगण को दुग्ध से तृप्त करने वाले मानव को सात पीढ़ी तक को सर्पभय नहीं रह जाता। इसके अनन्तर भाद्रपद शुक्ला पंचमी के दिन ऋषिपूजन कर्त्तव्य है।।३१-३४।।

प्रातर्नद्यादिके स्नात्वा कृत्वा नित्यमतन्द्रितः।
गृहमागत्य यत्नेन वेदिकां कारयेन्मृदा।।३५।।
गोमयेनोपलिप्याथ कृत्वा पुष्पोपशोभिताम्।
तत्रास्तीर्य कुशान्विप्र ऋषीन्सप्त समर्चयेत्।।३६।।
गन्धैश्च विविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैः सुशोभनैः।
कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।।३७।।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः।
एतेभ्योऽर्घ्यं च विधिवत्कल्पयित्वा प्रदाय च।।३८।।

नैवेद्यं विपचेद्धीमान्श्यामाकाद्यैरकृष्टकैः। तन्निवेद्य विसृज्येमान्स्वयं चाद्यात्तदेव हि।।३९।।

इस तिथि पर प्रातः नदी आदि में स्नानोपरान्त आलस्य रहित होकर घर आये तथा वहां मिट्टी की वेदिका बनाये। उसे गोबर से लीपें तथा पुष्पादि से सजायें। हे विप्र! उस पर कुशा बिछाकर सप्तर्षिगण की पूजा करे। गन्ध, नाना पुष्प, सुशोभन धूप-दीप द्वारा कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ इन सप्तर्षिगण की पूजा करे तथा विविध अर्घ्य देकर धीमान् पूजक सावां की खीर उनको अर्पित करे। तदनन्तर उनका विसर्जन करने के उपरान्त स्वयं भोजन करना चाहिये।।३५-३९।।

अनेन विधिना सप्त वर्षाणि प्रतिवत्सरम्।
कृत्वा व्रतान्ते वरयेदाचार्यान् सप्त वैदिकान्।।४०।।

प्रतिमाः सप्त कुर्वीत सुवर्णेन स्वशक्तितः।
जटिलाः साक्षसूत्राश्च कमण्डलुसमन्विताः॥४१॥
संस्थाप्य कलशेष्वेतांस्ताम्रेषुं मृन्मयेषु वा। स्नापयेद्विधिवद्भक्त्या पृथक्पञ्चामृतेरपि॥४२॥
उपचारैः षोडशभिस्ततः सम्पूज्य भक्तितः।
अर्घ्यं दत्वा ततो होमं तिलव्रीहियवादिभिः॥४३॥

इस प्रकार सात वर्ष पर्यन्त प्रतिवर्ष व्रत करके अन्त में (उद्यापनार्थ) सात वेदज्ञ आचार्य का वरण करना चाहिये। स्वर्ण से सप्तर्षियों की प्रतिमा अलग-अलग बनाये। वे जटाधारी, रुद्राक्षधारी तथा कमण्डलुधारी हों। उनको ताम्र किंवा मिट्टी के कलश पर रखकर उनको पंचामृत स्नान भक्तिभावेन कराये। तदनन्तर उनका पूजन श्रद्धायुक्त होकर षोडशोपचार विधान से करे। अर्घ्य देने के अनन्तर तिल, व्रीहि, यव आदि से होम करना चाहिये।।४०-४३।।

'सहस्तोमा' इति ऋचा नाममन्त्रैस्तु वा पृथक्।
पुण्यैर्मन्त्रैस्तथैवान्यैर्हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत्॥४४॥
ततस्तु सप्त गा दद्याद्वस्त्रालङ्कारसंयुताः। आचार्यं पूजयेच्चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥४५॥
अनुज्ञया गुरौः पश्चान्मूर्तीर्विप्रेषु चार्पयेत्।
भोजयित्वा तु तान्भक्त्या प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥४६॥

"सहस्तोमा" इत्यादि से अथवा अन्य पावन मन्त्र से प्रत्येक सप्तर्षि का नाम लेकर उनके लिये पूर्णाहुति प्रदान करे। तदनन्तर वस्त्राभूषणान्वित सात गौ दान करे। वस्त्राभूषण से आचार्य पूजनोपरान्त गुरु आज्ञा लेकर प्रतिमा विप्रगण को प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर उनको आदर पूर्वक भोजन कराने के पश्चात् भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उनका विसर्जन करे।।४४-४६।।

ततश्श्रेष्टैः सहासीनः स्वयं ब्राह्मणशेषितम्।
भुक्त्वा वै षड्रसोपेतं प्रमुद्यात्सह बन्धुभिः॥४७॥
एतत्कृत्वा व्रतं साङ्गं भोगान्भुक्त्वाथ वाञ्छितान्।
सप्तर्षीणां प्रसादेन विमानवरगो भवेत्॥४८॥

तदनन्तर अवशिष्ट बचे षड्रस अन्न का भोजन बन्धु-बान्धव सहित करे। इस व्रत का जो व्रती सांगोपांग निर्वाह करता है, वह पृथिवी पर इच्छित भोगों को भोगकर सप्तर्षिगण की कृपा से उत्तम विमान पर विचरण करता है।।४७-४८।।

आश्विने शुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतम्॥४९॥
तस्याः स्वर्णमयीं मूर्तिं शक्त्या निर्माय नारद।
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्तां विधानतः॥५०॥
पक्वान्नं फलसंयुक्तं सघृतं दक्षिणान्वितम्। द्विजवर्याय दातव्यं व्रतसम्पूर्तिहेतवे॥५१॥

''सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया। मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम्॥५२॥

मनुष्य आश्विन शुक्ला पंचमी के दिन उपांगललिता व्रताचरण करे। हे नारद! यथाशक्ति देवी की स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर उसकी षोडशोपचार पूजा विधिवत् करे। पक्वान्न, फल, घृत तथा दक्षिणा श्रेष्ठ ब्राह्मण को व्रतपूर्णतार्थ प्रदान करे। तदनन्तर देवी का इस मन्त्र से विसर्जन करना चाहिये। "आप की पूजा, आपकी शक्तियों तथा वाहनों के साथ मैंने किया। हे माता! आप मेरे ऊपर कृपा करे तथा अपने गृह जायें।''।।४९-५२।।

कार्तिके शुक्लपञ्चम्यां जयाव्रतमनुत्तमम्। कर्तव्यं पापनाशाय श्रद्धया द्विजसत्तम॥५३॥
पूजयित्वा जयां विप्र यथाविधि समाहितः। उपचारैः षोडशभिस्ततः शुचिरलङ्कृतः॥५४॥

विप्रैकं भोजयेच्चापि तस्मै दत्त्वा च दक्षिणाम्।
विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥५५॥
यस्तु वै भक्तिसंयुक्तः स्नानं कुर्य्याज्जयादिने।
नश्यन्ति तस्य पापानि सिंहाक्रान्ता मृगा यथा॥५६॥

कार्त्तिक शुक्ला पञ्चमी को अति उत्तम जया व्रत करे। हे द्विजसत्तम! पापनाशार्थ श्रद्धापूर्वक यह व्रत करना चाहिये। हे विप्र! यथाविधि समाहित होकर जया की पूजा षोडशोपचार करके उनको पवित्रता पूर्वक अलंकृत करे। तदनन्तर एक ब्राह्मण को भोजन कराये तथा उनको दक्षिणा देकर विदा करने के उपरान्त स्वयं मौनावलम्बन के साथ भोजन करे। उस दिन जो मानव भक्तिभाव से स्नान करता है, उसके पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सिंह द्वारा पकड़ा गया मृग नष्ट हो जाता है।।५३-५६।।

यदश्वमेधावभृथे फलं स्नानेन कीर्तितम्। तत्फलं प्राप्यते विप्रे स्नानेनापि जयादिने॥५७॥
अपुत्रो लभते पुत्रं वन्ध्या गर्भं च विन्दति। रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥५८॥

हे विप्र! उस दिन स्नान का वही फल है, जो अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान से मिलता है। इस व्रत का फल यह है कि अपुत्र को पुत्र, वन्ध्या को गर्भ, रोगी को रोगमुक्ति तथा बद्ध को बन्धन मोचन मिलता है।।५७-५८।।

मार्गशुक्ले च पञ्चम्यां नागानिष्ट्वा विधानतः।
नागेभ्यो ह्यभयं लब्ध्वा मोदते सह बान्धवैः॥५९॥
पौषेऽपि शुक्लपञ्चम्यां सम्पूज्य मधुसूदनम्।
लभते वाञ्छितान्कामान्नात्र कार्या विचारणा॥६०॥
पञ्चम्यां प्रतिमासे तु शुक्ले कृष्णे च नारद।
पितॄणां पूजनं शस्तं नागानां चापि सर्वथा॥६१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थपञ्चमीव्रतनिरूपणं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११४।।

अग्रहायण शुक्ला पंचमी के दिन सविधि नागपूजा करे। वह नागों से अभय पाकर बन्धुजन के साथ मुदित होता है। हे नारद! पौष शुक्ल तथा पौष कृष्णपक्षीय पंचमी तिथि पर पितृगण तथा नागगण की पूजा करे।।५९-६१।।

।।११४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
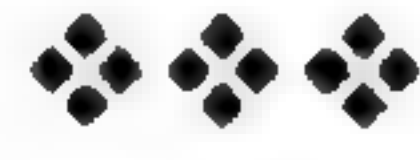
अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशमासीय षष्ठी व्रत वर्णन

सनातन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि षष्ठ्याश्चैव व्रतानि ते।
यानि सम्यग्विधायात्र लभेत्सर्वान्मनोरथान्॥१॥
चैत्रमासे शुक्लषष्ठ्यां कुमारव्रतमुत्तमम्। तत्रेष्ट्वा षण्मुखं देवं नानापूजाविधानतः॥२॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं प्राप्नुयाच्चिरजीविनम्।
वैशाखशुक्लषष्ठ्यां च पूजयित्वा च कार्तिकम्॥३॥
लभते मातृजं सौख्यं नात्र कार्या विचारणा।
ज्येष्ठमासे शुक्लषष्ठ्यां विधिनेष्ट्वा दिवाकरम्॥४॥
लभते वाञ्छितान्कामांस्तत्प्रमादान्न संशयः।
आषाढशुक्लषष्ठ्यां वै स्कन्दव्रतमनुत्तमम्॥५॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे विप्र! अब आपसे षष्ठी तिथि के व्रतों का वर्णन करता हूं। इनके व्रताचरण से मनुष्य सभी मनोरथों की प्राप्ति करता है। चैत्रमासीय शुक्लाषष्ठी को अत्युत्तम कुमार व्रत करे। नानाविधि से इस तिथि पर षण्मुख देव की पूजा करने वाला सर्वगुणान्वित चिरंजीवी पुत्र प्राप्त करेगा। वैशाख शुक्लाषष्ठी के दिन कार्त्तिकेय पूजन करने वाला मातृजनित सुखलाभ करता है। इसमें अन्यथा विचार न करे। ज्येष्ठ मासीय शुक्लपक्षीय षष्ठी को सविधि सूर्यपूजा करने वाला उनकी कृपा से सभी इच्छित कामनाओं को प्राप्त करेगा। इसमें संशय नहीं है। आषाढ़ शुक्लषष्ठी को अति उत्तम स्कन्द व्रत करे।।१-५।।

उपोष्य पूजयित्वैनं शिवोमाप्रियमात्मजम्। लभतेऽभीप्सितान्कामान्पुत्रपौत्रादिसन्ततीः॥६॥
श्रावणे शुक्लषष्ठ्यां तु शरजन्मानमर्चयेत्। उपचारैः षोडशभिर्भक्त्या परमयान्वितः॥७॥
लभतेऽभीप्सितानर्थान्षण्मुखस्य प्रसादतः। भाद्रमासे कृष्णषष्ठ्यां ललिताव्रतमुच्यते॥८॥

उस दिन उपवासी रहकर शिव-उमा के प्रियपुत्र स्कन्द की पूजा करे। वह इच्छित कामनाओं को तथा

पुत्र-पौत्रादि समस्त सन्तति का लाभ करता है। श्रावण शुक्लाषष्ठी को शरजन्मा स्कन्द की पूजा षोडशोपचार से भक्तिभाव पूर्वक करे। इससे वह व्यक्ति षण्मुख देव की कृपा से वांछितार्थ लाभ करता है। भाद्रपद कृष्णपक्षीय षष्ठी के दिन ललिता व्रत करे।।६-८।।

प्रातः स्नात्वा विधानेन नारी शुक्लाम्बरावृता।
शुक्लामाल्यधरा वापि नद्याः सङ्गमवालुकाम्॥९॥
गृहीत्वा वंशपात्रे तु धृत्वा पिण्डाकृतिं च ताम्।
पञ्चधा ललितां तत्र ध्यायेद्वनविलासिनीम्॥१०॥

पङ्कजं करवीरं च नेपालीं मालतीं तथा। नीलोत्पलं केतकीं च सङ्गृह्य तगरं तथा॥११॥
एकैकाष्टशतं ग्राह्यमष्टाविंशतिरेव च। अक्षताः कलिका गृह्य ताभिर्देवीं प्रपूजयेत्॥१२॥
प्रार्थयेदग्रतः स्थित्वा देवीं तां गिरिशप्रियाम्। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते॥१३॥

स्नात्वा कनखले देवि हरिं लम्ब्धवती पतिम्।
ललिते सुभगे देवि सुखसौभाग्यदायिनि॥१४॥

अनन्तं देहि सौभाग्ये मह्यं तुभ्यं नमोनमः। मन्त्रेणानेन कुसुमैश्चम्पकस्य सुशोभनैः॥१५॥

उस तिथि पर स्त्री सविधि स्नानोपरान्त शुक्ल वस्त्र तथा श्वेतमाला धारण करे तथा नदी संगम से बांस की पिटारी में पिण्डाकृति बालुका द्वारा मूर्त्ति बनाये। व्रती व्यक्ति उस मूर्त्ति में ही वनविलासिनी ललिता के पंचरूप का चिन्तन करे। तदनन्तर कमल, कनेर, नेपाली मालती लाकर देवी पूजन करना चाहिये। नीलकमल, केतकी तगर, प्रत्येक की १०८ अथवा २८ कलियों को लायें जो म्लान न हो। इनसे देवीपूजन करे। तदनन्तर उन देवी के समक्ष खड़े होकर उन गिरिप्रिया से प्रार्थना करे। "हे देवी! आपने हरिद्वार, कुशावर्त्त, बिल्वक, नीलपर्वत एवं कनखल में स्नानोपरान्त पतिलाभ किया। हे ललिते, सुभगे! हे सुखसौभाग्यप्रदे! आप मुझे अनन्त सौभाग्य प्रदान करिये। मैं आपको नमस्कार करता हूं!" इस मन्त्र से चम्पा के शोभायमान पुष्पों द्वारा देवी की पूजा करे।।९-१५।।

अभ्यर्च्य विधिवत्तस्या नैवेद्यं पुरतो न्यसेत्।
त्रिपुषैरपि कूष्माण्डैर्नारिकेरैः सुदाडिमैः॥१६॥
बीजपूरैः सुतुण्डीरैः कारदेल्लैः सचिर्भटैः।
फलैस्तत्कालसम्भूतैः कृत्वा शोभां तदग्रतः॥१७॥

विरूढधान्याङ्कुरकैः सुदीपावलिभिस्तथा। साद्धैःसरगणकैर्धूपः सौहालककरञ्जकैः॥१८॥
गुडपुष्पैः कर्णवेष्टैर्मोदकैरुपमोदकैः। बहुप्रकारैर्नैवेद्यैर्यथाविभवसारतः॥१९॥
एवमभ्यर्च विधिवद्रात्रौ जागरणोत्सवम्। गीतवाद्यनटैर्नृत्यः प्रोक्षणीयैरनेकधा॥२०॥

विधिवत् ललिता की अर्चना करने के उपरान्त उनके समक्ष नैवेद्य प्रस्तुत करे। ककड़ी, कुम्हड़ा, नारिकेल, उत्तम अनार, बीजपुर, तुण्डीर, करेला तथा ऋतुफलों को अर्पित करे। यथाशक्ति धान्याकुंरों तथा उत्तम दीपावलि तथा धूप, सौहालक, करंजक, गुड़, पुष्प, कर्णवेष्ट, मोदक, उपमोदक को अपने वैभावानुरूप

देवी के समक्ष प्रस्तुत करे तथा नाना प्रकार के मिष्ठान्नों का नैवेद्य भोग प्रदान करके रात्रि में जागरणोत्सव करे। गीत-वाद्य-नृत्य आदि से उत्सव करते हुये यह उत्सव करे।।१६-२०।।

सखीभिः सहिता साध्वी तां रात्रिं प्रसभं नयेत्।
न य सम्मीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टयम्॥२१॥
दुर्भगा दुष्कृता वन्ध्या नेत्रसम्मीलनाद्भवेत्।
एवं जागरणं कृत्वा सप्तम्यां सरितं नयेत्॥२२॥

साध्वी स्त्री सखीगण के साथ रात्रि विनोदपूर्वक व्यतीत करे तथापि जो नारी इस चार प्रहर में नेत्र (आलस्य के कारण) बन्द करती है, वह दुर्भाग्यशाली, दीन एवं वन्ध्या हो जाती है। एवंविध जागरणोपरान्त सप्तमी को प्रतिमा नदी में विसर्जित करे।।२१-२२।।

गन्धपुष्पैस्तथाभ्यर्च्य गीतवाद्यपुरःसरैः। तच्च दद्याद्द्विजेन्द्राय नैवेद्यादि द्विजोत्तम॥२३॥

स्नात्वा गृहं समागत्य हुत्वा वैश्वानरं ततः।
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च पूजयित्वा सुवासिनीः॥२४॥
कन्यकाश्चैव सम्भोज्य ब्राह्मणान्दश पञ्च च।
भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्दत्त्वा दानानि भूरिशः॥२५॥

नदी के किनारे भी गन्ध-पुष्प, गीतों, वाद्य-वादनादि से देवी की पूजा करके नैवेद्यादि वस्तु श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान करे। स्नानोपरान्त गृह आकर हवन करे। देवता-पितृगण की पूजा करके व्रती व्यक्ति होम करे। देवता, पितर, सौभाग्यवती नारी, कुमारीगण तथा पंचदश ब्राह्मणों को भक्ष्य-भोज्यादि बहुविध देकर प्रभूत दान देना चाहिये।।२३-२५।।

ललिता मेऽस्तु सुप्रीता इत्युक्त्वा तान्विसर्जयेत्।
यः कश्चिदाचरेदेतद्व्रतं सौभाग्यदं परम्॥२६॥

नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु। यद्व्रतैश्च तपोभिश्च दानैर्वा नियमैरपि॥२७॥
तदेतेनेह लभ्यते किं बहुक्तेन नारद। मृतेरनन्तरं प्राप्य शिवलोकं सनातनम्॥२८॥

तदनन्तर "ललिता देवी प्रसन्न हों" कहकर उनका विसर्जन करे। जो इस परम सौभाग्यदायक व्रत का अनुष्ठान करते हैं, वे नर अथवा नारी जिस पुण्यफल का लाभ करते हैं, उसका श्रवण करिये। हे नारद! अधिक क्या कहूं? तप, व्रत, दान, नियम से जो फललाभ होता है, वह केवल इसी व्रत से प्राप्त होता है। वह व्रती मृत्यु के अनन्तर सनातन शिवलोक जाता है।।२६-२८।।

मोदते ललितादेव्या शैवे सखिवच्चिरम्।
नभस्ये मासि या शुक्ला षष्ठी सा चन्दनाह्वया॥२९॥
तस्यां देवीं समभ्यर्च्य लभते तत्सलोकताम्।
रोहिणी पातभौमैस्तु संयुता कपिला भवेत्॥३०॥

तस्यां रवि समभ्यर्च्य व्रती नियमतत्परः। लभते वाञ्छितान्कामान्भास्करस्य प्रसादतः॥३१॥
अन्नदानं जपो होमं पितृदेवर्षितर्पणम्। सर्वमेवाक्षयं ज्ञेयं कृतं देवर्षिसत्तम्॥३२॥
कपिलां धेनुमभ्यर्च्य वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। प्रदद्याद्वेदविदुषे द्वादशात्मप्रतुष्टये॥३३॥

उस लोक में वह ललिता देवी अथवा भगवान् शंकर की सेवा में चिरकाल आनन्द उठाता है। भाद्र शुक्ला षष्ठी का नाम चन्दना है। उस दिन देवी की जो अर्चना करता है, उसे देवी का सालोक्य लाभ होगा। यदि उस तिथि पर रोहिणी नक्षत्र पात-भौम योग युक्त हो, तब वह तिथि कपिल कही जाती है। उस दिन जो कोई निष्ठा तथा नियम सहित दिन कराराधन करेगा, उसकी समस्त कामना सूर्य कृपा से पूर्ण होती हैं। हे देवर्षि प्रवर! इस तिथि पर अन्नदान, जप, होम, पितृतर्पण सभी अक्षय होता है। उस तिथि पर कपिला गौ की पूजा करके वस्त्र, माला, अनुलेपनादि से उसकी अर्चना करके सूर्य द्वादशात्मा देव की प्रसन्नता हेतु वेदज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करे।।२९-३३।।

अथेषुशुक्लषष्ठ्यां तु पूज्या कात्यायनी द्विज। गन्धाद्यैर्मङ्गलद्रव्यैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा॥३४॥
ततः क्षमाप्य देवेशीं प्रणिपत्य विसर्जयेत्। पूज्यात्र सैकती मूर्तिर्यद्वा द्विजसती मुदा॥३५॥
वस्त्रालङ्करणैर्भव्यैः कात्यायिन्याः प्रतुष्टये। कन्यावरं प्राप्नुयाच्च वाञ्छितं पुत्रमङ्गना॥३६॥
कात्यायिनीप्रसादाद्वै नात्र कार्या विचारणा। कार्तिके शुक्लषष्ठ्यां तु षणमुखेन महात्मना॥३७॥
देवसेना महाभागा लब्धा सर्वसुरार्पिता। अतस्तस्यां सुरश्रेष्ठां देवसेनां च षणमुखम्॥३८॥
सम्पूज्य निखिलैरेव उपचारैर्मनोहरैः। प्राप्नुयादतुलां सिद्धिं मनोभीष्टां द्विजोत्तम॥३९॥

हे द्विज! आश्विन शुक्ला षष्ठी तिथि पर व्रती व्यक्ति गन्धादि मंगल द्रव्य तथा विविध नैवेद्य से कात्यायनी पूजन करे। तदनन्तर कात्यायनी पूजनोपरान्त क्षमा प्रार्थना करके प्रणामोपरान्त उनका विसर्जन करे। कात्यायनी देवी की प्रसन्नता के लिये उत्तम वस्त्रालंकार युक्त इनकी मिट्टी की मूर्त्ति अथवा ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री की पूजा करने से कन्या वर लाभ करती है। नारी पुत्रलाभ करती है। इसके प्रति अन्यथा विचार न करे। कार्त्तिक शुक्ला षष्ठी तिथि पर महात्मा स्कन्ददेव को देवताओं ने देवसेना प्रदान किया था। अतः देवसेना देवी तथा स्कन्ददेव की उत्तम उपचारों से इस तिथि पर पूजा करनी चाहिये। इससे मनोकामनापूर्ण होती है तथा अतुला सिद्धि का लाभ होता है।।३४-३९।।

अत्रैव वह्निपूजोक्तां तां च सम्यक्समाचरेत्। विविधद्रव्यहोमैश्च वह्निपूजापुरःसरम्॥४०॥

मार्गशीर्षे शुक्लषष्ठ्यां निहतस्तारकासुरः।
स्कन्देन सत्कृतिः प्राप्ता ब्रह्माद्यैः परिकल्पिता॥४१॥
ततोऽस्यां पूजयेत्स्कन्दं गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः।
वस्त्रैराभूषणश्चापि नैवेद्यैर्विविधैस्तथा॥४२॥

रविवारेण संयुक्ता तथा शतभिषान्विता। यदि चेत्सा समुद्दिष्टा चम्पाह्वा मुनिसत्तम॥४३॥

तस्यां विश्वेश्वरो देवो द्रष्टव्यः पापनाशनः।
पूजनीयो वेदनीयः स्मर्तव्यः सौख्यमिच्छता॥४४॥

स्नानदानादिकं चात्र सर्वमक्षय्यमुच्यते। पौषमासे शुक्लषष्ठ्यां देवो दिनपतिर्द्विज॥४५॥
विष्णुरूपी जगस्त्राता प्रदुर्भूतः सनातनः॥४६॥
स तस्मात्पूजयीयोऽस्यां द्रव्यैर्गन्धपुरस्कृतैः। नैवेद्यैर्वस्त्रभूषाद्यैः सर्वसौख्यमभीप्सुभिः॥४७॥
माघमासे सिता षष्ठी वरुणाह्वा स्मृता तु सा।
तस्यां वरुणमभ्यर्च्येद्विष्णुरूपं सनातनम्॥४८॥
रक्तैर्गन्धांशुकैः पुष्पैर्नैवेद्यैर्धूपदीपकैः। एवमभ्यर्च्य विधिवद्यद्यच्चाभिलषेन्नरः॥४९॥
तत्तच्च फलतो लब्ध्वा मोदते तत्प्रसादतः।
फाल्गुने शुक्लषष्ठ्यां तु देवं पशुपतिं द्विज॥५०॥

इस दिन सम्यक्‌तः विविध द्रव्यों के होम से अग्निपूजा सम्पन्न करे। अग्रहायण शुक्ला षष्ठी के दिन स्कन्द ने तारकासुर का वध करके ब्राह्मादि देवगण से आदर प्राप्त किया था। अतः इस तिथि पर गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, वस्त्र, आभूषण, विविध नैवेद्य से उनकी पूजा करे। इसी तिथि पर रविवार तथा शतभिषा नक्षत्र योग हो, तब हे मुनिसत्तम! विश्वेश्वर पापानाशन देव का दर्शन करे। उन पूजनीय, स्मरणीय देव की प्रसन्नता हेतु स्नान-दानादि जो कुछ किया जायेगा, वह अक्षय होगा। पौषमासीय शुक्ला षष्ठी के दिन दिनपति विष्णु रूपी सनातन जगत्राता का प्रादुर्भाव हुआ था। उनकी पूजा नाना द्रव्य, गन्ध, नैवेद्य, वस्त्राभूषण से करने वाला सर्वसुखकामी व्यक्ति करे। माघमासीय शुक्ला षष्ठी वरुणा नाम वाली है। उस तिथि पर विष्णु रूपी सनातन वरुण की अर्चना रक्त वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से सविधि करने वाला व्यक्ति वांछित फल लाभ करता है। हे द्विज! फाल्गुन शुक्ला षष्ठी तिथि पर पशुपति की पूजा करे।।४०-५०।।

मृन्मयं विधिना कृत्वा पूजयेदुपचारकैः। सस्नाप्य शतरुद्रेण पृथक्पञ्चामृतैर्जलैः॥५१॥
गन्धैरालिप्य सुश्वेतैरक्षतैः श्वेतपुष्पकैः। बिल्वपत्रैश्च धत्तूरकुसुमैश्च फलैस्तथा॥५२॥
सम्पूज्य नानानैवेद्यैर्नीराज्य विधिवत्ततः। क्षमाप्य प्रणिपत्यैनं कैलासाय विसर्जयेत्॥५३॥
एवं कृतशिवार्चस्तु नरो नार्यथवा मुने। इह भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते शिवगतिं लभेत्॥५४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितषष्ठीव्रतनिरूपणं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११५॥

उनकी मिट्टी की प्रतिमा का उपचार पूर्वक पूजन करे। शतरुद्री पाठ के साथ पंचामृत स्नान कराकर चन्दन लेप लगाये। श्वेत पुष्प, अक्षत, बिल्वपत्र, धतूरे के फल-पुष्प से उनकी पूजा करके नाना नैवेद्य तथा नीराजन से सविधि अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर क्षमा प्रार्थना के पश्चात् प्रणामोपरान्त उनका कैलास जाने हेतु विसर्जन करे। हे मुनिप्रवर! इस प्रकार शंकराराधन करके नर-नारीगण इहलोक में श्रेष्ठ भोगों को भोगकर अन्त में शिवगति लाभ करते हैं।।५१-५४।।

।।११५वां अध्याय समाप्त।।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशमासीय सप्तमी व्रत वर्णन

सनातन उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि सप्तम्यास्ते व्रतान्यहम्।
यानि कृत्वा नरो भक्त्या सूर्यसायुज्यमाप्नुयात्॥१॥
चैत्रे तु शुक्लसप्तम्यां बहिः स्नानं समाचरेत्।
स्थण्डिले गोमयालिप्ते गौरमृत्तिकयास्तृते॥२॥
लिखित्वाष्टदलं पद्मं कर्णिकायां विभावसुम्। विन्यसेत्पूर्वपत्रे तु देवौ द्वौ कृतधातुकौ॥३॥
आग्नेयं च न्यसेत्पत्रे गन्धर्वौ कृतकारकौ। दक्षिणे च न्यसेत्पत्रे तथैव राक्षसद्वयम्॥४॥
आकृतौ द्वौ न्यसेत्पत्रे नैर्ऋते मुनिसत्तम। काद्रवेयौ महानागौ पश्चिमे कृतचारकौ॥५॥
वायव्ये यातुधानो द्वौ उत्तरे ऋषिद्वयम्। ऐशान्ये विन्यसेत्पत्रे ग्रहमेको द्विजोत्तम॥६॥
तेषां सम्पूजनं कार्यं गन्धमाल्यानुलेपनैः। दीपैर्धूपैःसनैवेद्यैस्ताम्बूलक्रमुकादिभिः॥७॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे नारद! अब मैं सप्तमी तिथि के व्रतों का वर्णन करता हूं। जिनके आचरण से मनुष्य सूर्य सायुज्य मोक्षलाभ करता है। चैत्र शुक्ला सप्तमी के दिन गृह के बाहर स्नानोपरान्त भूमि को गोबर से लिप्त करे। उस पर अष्टल कमल बनाकर उसकी कर्णिका पर सूर्य, पूर्व पत्र पर दो धातु निर्मित देवता की, आग्नेय कोण वाले पत्र पर दो यज्ञसाधक गन्धर्व की, दक्षिण वाले पत्र पर दो राक्षस की तथा नैर्ऋत्य कोण के पत्र पर दो आकृति बनाये। पश्चिम वाले पत्र पर कद्रुपुत्र दो महानाग की, वायव्यकोण वाले पत्र पर दो यातुधान की, उत्तर वाले पत्र पर ऋषिद्वय की तथा ईशान कोण वाले पत्र पर १ ग्रह की स्थापना करे। हे द्विजप्रवर! उनकी पूजा गन्ध, माला, अनुलेपन, दीप, धूप, नैवेद्य, पान, सुपारी, प्रभृति द्रव्य से करे।।१-७।।

एवं सम्पूज्य होमं तु घृतेनाष्टशतं चरेत्। सूर्यस्याष्टाष्ट चान्येषां प्रदद्यादाहुतीः क्रमात्॥८॥
नाममन्त्रेण वेद्यां वा ततः पूर्णाहुतिं ददेत्।
दक्षिणा च ततो देया द्विजेभ्यः शक्तितो द्विज॥९॥
एतत्कृत्वा विधानं तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात्।
देहान्ते मण्डलं भानोर्भित्त्वा गच्छेत्परं पदम्॥१०॥
वैशाखशुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी स्वयम्।
क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात्॥११॥
तां तत्र पूजयेत्स्नात्वा प्रत्यूषे विमले जले। गन्धपुष्पाक्षताद्यैश्च सर्वैरेवोपचारकैः॥१२॥
ततो घटसहस्रं तु देयं गङ्गाव्रते त्विदम्। भक्त्या कृतं सप्तकुलं नयेत्स्वर्गमसंशयः॥१३॥

इस पूजा के उपरान्त १०८ संख्यक होम घृत से करे। तत्पश्चात् सूर्य प्रभृति अन्य को भी (जो ऊपर कहे गये) ८-८ आहुति प्रदान करे। तदनन्तर उनके नाम मन्त्र से पूर्णाहुति देना चाहिये। तत्पश्चात् हे द्विज! ब्राह्मणों की अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा प्रदान करे। इस विधान से अर्चना करने वाला सर्वसुखलाभ करता है। वह देहान्त होने पर सूर्यमण्डल भेदन करके परमपदलाभ करता है। वैशाख शुक्लसप्तमी तिथि पर स्वयं जह्नुऋषि ने जाह्नवी का पान किया था। तदनन्तर उसे दक्षिण कर्णछिद्र से वहिर्गत् किया। जो इस तिथि पर प्रातः गंगा के निर्मल जल में स्नान करता है तथा उनकी पूजा गन्ध, पुष्प, अक्षत से तथा सर्वोपचार से करता है तदनन्तर एक हजार घट दान करता है, इस गंगा व्रत से उस व्यक्ति की सात पीढ़ी स्वर्गगमन करती है। इसमें संशय नहीं है।।८-१३।।

कमलव्रतमप्यत्र प्रोक्तं तद्विधिरुच्यते। तिलमात्रं तु सौवर्णं विधाय कमलं शुभम्॥१४॥
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धधूपादिनार्चयेत्। नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे॥१५॥
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते। इति सम्प्रार्थ्य देवेशं सूर्ये चास्तमुपागते॥१६॥
सोदकुम्भं तु तत्पद्मं कपिलां च द्विजेऽर्पयेत्। तद्दिने तूपवस्तव्यं भोक्तव्यं च परेऽहनि॥१७॥

यही तिथि है, जव कमल व्रताचरण करते हैं। तिलयुक्त पात्र में स्वर्णमय कमल रखे तथा उसे दो वस्त्रों से आवरित करे। तदनन्तर धूप-गन्धादि से अर्चना करके कहे—"हे पद्महस्त! आपको प्रणाम! हे विश्वधारी! आपको प्रणाम! हे दिवाकर! प्रभाकर! आपको प्रणाम! एवंविध देवेश की प्रार्थना करे तथा जव सूर्य अस्त हों, तव जलपूर्ण घट, यह पद्म तथा कपिला गौ ब्राह्मण को अर्पित करे। इस दिन उपवासी रहकर अगले दिन भोजन करे।।१४-१७।।

सम्भोज्य ब्राह्मणान्भक्त्या व्रतसाकल्यमाप्नुयात्।
निम्बव्रतं च तत्रैव तद्विधानं शृणुष्व मे॥१८॥
निम्बपत्रैः सम्पूज्य पूजा भास्करस्य द्विजोत्तम।
खखोल्कायेति मन्त्रेण प्रणवाद्येन नारद॥१९॥
निम्बपत्रं ततोऽश्नीयाच्छयेद्भूमौ च वाग्यतः।
द्विजान्परेऽह्नि सम्भोज्य स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः॥२०॥
निम्बपत्रवतं चैतत्कर्तॄणां सर्वसौख्यदम्।
सप्तमी शर्कराख्यैषा प्रोक्ता तच्चापि मे शृणु॥२१॥
अमृतं पिबतो हस्तात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः। निष्पेतुर्भुवि चोत्पन्नाः शालिमुद्गयवेक्षवः॥२२॥
शर्करा च ततस्तस्मादिक्षुसारामृतोपमा। इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः॥२३॥
शर्करासप्तमी चैव वाजिमेधफलप्रदा। सर्वदुःखोपशमनी पुत्रसन्ततिवर्धिनी॥२४॥
अस्यां तु शर्करादानं शर्कराभोजनं तथा। कर्तव्यं हि प्रत्यनेन व्रतमेतद्रविप्रियम्॥२५॥
यः कुर्यात्परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात्।
ज्येष्ठे तु शुक्लसप्तम्यां जात इन्द्रो रविः स्वयम्॥२६॥

यह व्रत भक्तिभाव से ब्राह्मण भोजन द्वारा पूर्ण होता है। अब निम्नव्रत विधान सुनिये। "ॐ खखोल्काय" मन्त्र का पाठ करते हुये नीम के पत्तों से सूर्य पूजा करे। तदनन्तर वे नीम के पत्ते खार मौनी होकर भूशायी रहें। अगले दिन ब्राह्मणगण को भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भोजन करना चाहिये। यह व्रत व्रती को समस्त सुख देता है। यह सप्तमी शर्करा सप्तमी है। जब सूर्य अमृतपान कर रहे थे, तब उनकी किरणों से अमृत विन्दु धरती कर गिरे। इसी से शालितण्डुल, मूंग, यव तथा ईख की उत्पत्ति हुई थी। अमृत जैसी ईख से शर्करा बनी। तभी शर्करा सूर्य प्रिय एवं हव्य-कव्य हेतु स्वीकृत है। यह शर्करा सप्तमी अश्वमेध यज्ञवत् फलप्रदा है। यह सर्वदुःख नाशक, पुत्र-सन्तति वर्द्धक है। इस तिथि पर शर्करा दान तथा शर्करा भक्षण करे। यह रविप्रिय व्रत सर्वप्रयत्न पूर्वक करे। जो इसे प्रयत्नतः करता है तथा भक्ति पूर्वक करता है, उसे उत्तम गति मिलती है। ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी के दिन प्रभु रवि भास्कर की उत्पत्ति हुई थी।।१८-२६।।

तं सम्पूज्य विधानेन सोपवासो जितेन्द्रियः। स्वर्गतिं लभते विप्र देवेन्द्रस्य प्रसादतः।।२७।।

आषाढशुक्लसप्तम्यां विवस्वान्नाम भास्करः।
जातस्तं तत्र सम्प्राच्र्यं गन्धपुष्पादिभिः पृथक्।।२८।।
लभते सूर्यसायुज्यं विप्रेन्द्रात्र न संशयः।
श्रावणे शुक्लसप्तम्यामव्यङ्गाख्यं व्रतं शुभम्।।२९।।

कार्पासं तु चतुर्हस्तं सार्द्धं वस्त्रं हि गोपतेः। पूजान्ते प्रीतये देयं व्रतमेतच्छुभावहम्।।३०।।

यदि चेद्धस्तयुक्तेयं तदा स्यात्पापनाशिनी।
अस्यां दानं जपो होमः सर्व चाक्षय्यतां व्रजेत्।।३१।।

उनकी सविधि पूजा जितेन्द्रिय तथा उपवासी रहकर करे। हे विप्र! देवदेव की कृपा से उस व्यक्ति को स्वर्ग में गति मिलती है। आषाढ़ शुक्ल सप्तमी तिथि पर विवस्वान् नामक सूर्य उत्पन्न हुये थे। हे विप्रेन्द्र! इस तिथि पर गन्ध-पुष्प आदि से पृथक्तः पूजा करे। हे विप्रेन्द्र! इस से व्रती व्यक्ति को सूर्य सायुज्य लाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं है। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन अव्यङ्ग व्रताचरण करे। यह शुभ व्रत है। इस तिथि पर सूर्य पूजोपान्त साढ़े चार हाथ का वस्त्र सूर्य की प्रसन्नतार्थ दान करे। यह शुभ व्रत है। इससे सूर्य प्रसन्न होते हैं। यदि यही तिथि हस्त नक्षत्र से युक्त हो, तब यह पापनाशिनी कही गयी है। इस योग में प्रदत्त दान तथा जप-होमादि कार्य अक्षय हो जाता है।।२७-३१।।

भाद्रे तु शुक्लसप्तम्याममुक्ताभरणव्रतम्। सोमस्य तु महेशस्य पूजनं चात्र कीर्तितम्।।३२।।
गङ्गादिभिः षोडशभिरुपचारैः समर्चनम्। प्रार्थ्य प्रणम्य विसृजेत्सर्वकामसमृद्धये।।३३।।
फलसप्तमिका चेयं तद्विधानमुदीर्यते। नालिकेरं च वृन्ताकं नारङ्गं बीजपूरकम्।।३४।।
कूष्माण्डं बृहतीपूगमिति सप्त फलानि वै। महादेवस्य पुरतो विन्यस्यापरदोरकम्।।३५।।
सप्ततन्तुकृतं सप्तग्रन्थियुक्तं द्विजोत्तम। सम्पूज्य परया भक्त्या धारयेद्वामके करे।।३६।।

भाद्रपद मासीय शुक्ला सप्तमी को अमुक्ताभरण व्रत करे। इस दिन सोम तथा महेश्वर पूजन करना कहा गया है। गंगाजल तथा षोडशोपचार से पूजा करके प्रार्थना तथा प्रणाम करना चाहिये। सर्वकामना लाभार्थ

तदनन्तर देवता का विसर्जन करे। इस तिथि को फलसप्तमिका भी कहा गया है। उसका विधान कहता हूं। नारिकेल, बैंगन, नारंगी, बीजपूर, कोहड़ा, छोटा बैंगन, पूंगीफल इन सात फलों को महादेव के साथ रखे। अब सात तन्तु को सप्त ग्रन्थियुक्त करके उसको पूजनोपरान्त भक्तिपूर्वक वाम हाथ में बांध लेना चाहिये।।३२-३६।।

स्त्री नरो दक्षिणे चैव यावद्वर्षं समाप्यते।
सम्भोज्य विप्रान्सप्तैव पायसेन विसृज्य तान्॥३७॥
स्वयं भुञ्जीत मतिमान् व्रतसम्पूर्तिहेतवे। फलानि तानि देयानि सप्तस्वपि द्विजेषु च॥३८॥
एवं तु सप्त वर्षाणि कृत्वोपास्य यथाविधि।
सायुज्यं लभते विप्र महादेवस्य तद्व्रती॥३९॥

स्त्री इसे वाम हाथ में तथा पुरुष दाहिने हाथ में बाधे। एक वर्ष तक इसे बद्ध किये रहें। तदनन्तर ७ ब्राह्मणों को पायस खिलाकर उनको विदा करे। इसके पश्चात् व्रती व्यक्ति व्रत सम्पूर्ण करने के लिये स्वयं भी भोजन करे। सातों ब्राह्मणगण को सात फल देकर विदा करे। इस व्रत को यथाविधि सात वर्ष करने वाला महादेव का सायुज्य लाभ करता है।।३७-३९।।

आश्विने शुक्लपक्षे तु विज्ञेया शुभसप्तमी।
तस्यां कृतस्नानपूजो वाचयित्वा द्विजोत्तमान्॥४०॥
आरम्भं कपिलां गां च सम्पूज्य प्रार्थयेत्ततः।
त्वामहं दद्मि कल्याणि प्रीयतामर्यमा स्वयम्॥४१॥
पालय त्वं जगत्कृत्स्नं यतोऽसि धर्मसम्भवा।
इत्युक्त्वा वेदविदुषे दत्त्वा कृत्वा च दक्षिणाम्॥४२॥

आश्विन शुक्लपक्षीय सप्तमी अत्यन्त शुभ है। इस दिन स्नान पूजा करके श्रेष्ठ द्विजों को निमन्त्रित करना चाहिये। तत्पश्चात् पिला गौ पूजन करके यह प्रार्थना करना चाहिये कि "हे कल्याणि! मैं तुम्हें ब्राह्मण को प्रदान कर रहा हूं। अर्यमा देव प्रसन्न हों। तुम धर्म से उत्पन्न तथा जगत्पालिनी हो।" यह कहकर गौ को दक्षिणा सहित वेदज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करे।।४०-४२।।

नमस्कृत्य स्वयं विप्र विसृजेत्प्राशयेत्स्वयम्।
पञ्चगव्यं व्रतं चेत्थं विधाय श्वो द्विजोत्तमान्॥४३॥
भोजयित्वा स्वयं चाद्यात्तदन्नं द्विजशेषितम्।
कृतं ह्येतद्व्रतं विप्र सुभाष्यं श्रद्धयान्वितः॥४४॥
देवदेवप्रसादेन भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
अथ कार्तिकशुक्लायां शाकाख्यं सप्तमीव्रतम्॥४५॥
तस्यां तु सप्तशाका निसस्वर्णकमलानि च।
प्रदद्यात्सप्तविप्रेभ्यः शाकाहारस्ततः स्वयम्॥४६॥

तदनन्तर नमस्कारोपरान्त ब्राह्मण को विदा करके स्वयं भोजन करे। अन्य दिन पंचगव्य व्रत करे। ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करके शेष बचे अन्न का स्वयं भोजन करना चाहिये। जो सश्रद्धभाव से यह व्रत सम्पन्न करता है, देवदेव की कृपा से उसे भुक्ति तथा मुक्ति, दोनों प्राप्त होती है। कार्त्तिक शुक्ल के दिन शाक नामक सप्तमी व्रत करते हैं। इस तिथि पर सात शाक एवं स्वर्ण कमल सात विप्रगण को प्रदान करे। स्वयं शाकाहारी रहना चाहिये।।४३-४६।।

द्वितीयेऽह्नि द्विजान्भोज्य दत्त्वा तेभ्योऽन्नदक्षिणाम्।
विसृज्य बन्धुभिः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।।४७।।

अगले दिन ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा उनको दक्षिणा प्रदान करे। तदनन्तर उनको विदा करने के पश्चात् बन्धुगण सहित स्वयं मौनी रहकर भोजन करे।।४७।।

मार्गस्य सितसप्तम्यां मित्रव्रतमुदाहृतम्। यद्विष्णोर्दक्षिणं नेत्रं तदेव कृतवानिह।।४८।।
आदित्यां कश्यपाज्जज्ञे मित्रो नामा दिवाकरः।
अतोऽस्यां पूजनं तस्य यथोक्तविधिना द्विज।।४९।।
कृत्वा द्विजान्भोजयित्वा सप्तैव मधुरादिना।
सुवर्णदक्षिणां दत्त्वा विसृज्याश्नीत च स्वयम्।।५०।।

अग्रहायण शुक्ला सप्तमी को मित्रव्रत का नाम दिया गया है। विष्णु की दाहिनी नेत्र का तेज ही कश्यप के तेज तथा अदिति के गर्भ रूप में मित्र नामक दिवाकरस्वरूप उत्पन्न हो गया। हे द्विज! इस तिथि पर यथोक्त विधि से उनकी पूजा करे। तदनन्तर सात ब्राह्मण को मधुर अन्नादि का भोजन कराये तथा तदनन्तर स्वर्ण दक्षिणा देकर उनको विदा करे।।४८-५०।।

कृत्वैतद्विधिना लोकं सूर्य्यस्य व्रजति ध्रुवम्।
द्विजो ब्राह्मं तथा शूद्रः सत्कुले जन्म चाप्नुयात्।।५१।।
पौषस्य शुक्लसप्तम्यां व्रतं चाभयसंज्ञितम्।
उपोष्य भानुं त्रिःसन्ध्यं समभ्यर्च्य धरास्थितः।।५२।।
क्षीरसिक्तान्नसम्बद्धं मोदकं प्रस्थसम्मितम्।
द्विजाय दत्त्वा भोज्यान्यान्सप्ताष्टभ्यश्च दक्षिणाम्।।५३।।
पृथ्वीं वा सुवर्णं वा विसृज्याश्नीत च स्वयम्।
अभयाख्यं व्रतं त्वेतत्सर्वस्याभयदं स्मृतम्।।५४।।
मार्तण्डाख्यं व्रतं नाम कथयन्ति द्विजाः परेः। एकमेवेति च प्रोक्तमेकदैवतया बुधैः।।५५।।

जो सविधि यह व्रताचरण करता है, उसे निश्चित सूर्यलोक प्राप्त होगा। पूजक द्विजाति वाले ब्राह्मण कुल में जन्म लेंगे तथा पूजक शूद्र सत्कुल में जन्म लेगा। पौष शुक्ला सप्तमी का व्रत अभयव्रत है। उस दिन उपवासी रहकर तीनों सन्ध्याकाल में भानुदेव की उपासना करे। इसके पश्चात् ब्राह्मण को दुग्ध सिक्त अन्न तथा मोदक देकर भोजन कराये तथा गौ एवं स्वर्ण दक्षिणा देकर विदा करने के पश्चात् स्वयं भोजन करे। इस

अभयव्रत से सभी व्रती अभय प्राप्त करते हैं। अन्य विद्वानों का मत है कि इन्हीं देवता का इस दिन मार्त्तण्ड व्रत भी सम्पन्न होता है। दोनों व्रत के एक ही देव हैं।।५१-५५।।

माघे तु कृष्णसप्तम्यां व्रतं सर्वाप्तिसंज्ञकम्।
समुपोष्य दिने तस्मिन्सम्पूज्यादित्यबिम्बकम्॥५६॥
सौवर्णं गन्धपुष्पाद्यैः कृत्वा रात्रौ च जागरम्।
परेऽह्नि विप्रान्सम्भोज्य पायसेन तु सप्त वै॥५७॥
दक्षिणां नालिकेराणि तेभ्यो दत्त्वा गुरुं ततः।
सौवर्णं तु रवेर्बिम्बं युक्तं दक्षिणयान्यया॥५८॥
समर्प्य च भृशं प्रार्थ्य विसृज्याद्यात्स्वयं ततः।
एतत्सर्वाप्तिदं नाम सम्प्रोक्तं सार्वकामिकम्॥५९॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण द्वैतं सिध्येद्धि सर्वथा।
माघस्य शुक्लसप्तम्यामचलाख्यं व्रतं स्मृतम्॥६०॥
त्रिलोचनजयन्तीयं सर्वपापहरा स्मृता। रथाख्या सप्तमी चेयं चक्रवर्तित्वदायिनी॥६१॥
अस्यां समर्च्य सवितुः प्रतिमां तु हैमीं, हैमाश्वयुक्तरथगां तु ददेत्सहेभाम्।
यो भावभक्तिसहितः स गतो हि लोकं, शम्भोः स मोदत इहापिं च भुक्तभोगः॥६२॥

माघमासीय कृष्णा सप्तमी पर सर्वाप्ति संज्ञक व्रत करे। इस दिन उपवासी रहकर आदित्य बिम्ब स्वर्ण का बनवाकर गंधपुष्पादि से पूजा करे। इस दिन रात्रि जागरण करके अगले दिन सात ब्राह्मणों को पायस भोजन कराये। ब्राह्मणों को दक्षिणा तथा नारिकेल प्रदान करे। गुरु को स्वर्ण वाला रविबिम्ब तथा दक्षिणा देकर प्रार्थना करे तथा विसर्जन करे। तदनन्तर स्वयं भोजन करे। इसी का नाम सर्वकामिक है। व्रत के प्रभाव से इहलोक तथा परलोक सिद्ध होता है। माघमासीय शुक्ला सप्तमी तिथि का त्रिलोचन जयन्ती नाम है। यह सर्वपातक नाशक है। यह रथ सप्तमी भी कही गयी है तथा चक्रवर्त्तित्व पद प्रदायक है। इसे रथसप्तमी भी कहा गया है। इस दिन भक्तिभाव से स्वर्ण अश्व जुता रथ लाये उस पर स्वर्णमयी सूर्य प्रतिमा का पूजन करके ब्राह्मण को प्रदान करे। वह पूजक इस लोक में सभी भोगों को भोगकर शिवलोक प्राप्त करता है तथा वहां आनन्दित होता है।।५६-६२।।

भास्करी सप्तमी चेयं कोटिभास्वद्ग्रहोपमा।
अरुणोदयवेलायामस्यां स्नानं विधीयते॥६३॥
अर्कस्य च बदर्याश्च सप्त सप्त दलानि वै।
निधाय शिरसि स्नायाप्ससप्तजन्माघशान्तये॥६४॥
पुत्रप्रदं व्रतं चात्र प्राहादित्यः स्वयं प्रभुः। यो माघसितसप्तम्यां पूजयेन्मां विधानतः॥६५॥
तस्याहं पुत्रतां यास्ये स्वांशेन भृशतोषितः।
तस्माज्जितेन्द्रियो भूत्वा समुपोष्य दिवानिशम्॥६६॥

पूजयेदपरे चाह्नि होमं कृत्वा द्विजांस्ततः। दध्योदनेन पयसा पायसेन च भोजयेत्॥६७॥
अनेन विधना यस्तु कुरुते पुत्रसप्तमीम्। लभते स तु सत्पुत्रं चिरायुषमनामयम्॥६८॥

इसे भास्करी सप्तमी भी कहा गया है। यह करोड़ों दीप्त ग्रहों के तुल्य है। इस तिथि पर अरुणोदय बेला में स्नान करे। मदार तथा बेर के सात-सात दल लेकर शिर पर रखे, तब स्नान करने से सात जन्म का पाप शान्त हो जाता है। स्वयं आदित्य प्रभु का वचन है कि "यह व्रत पुत्रप्रद है। जो व्यक्ति माघ शुक्लासप्तमी को सविधि मेरी पूजा करता है, मैं प्रसन्न होकर अपने अंश से उसका पुत्र होता हूं।" अतः उस दिन जितेन्द्रिय रहकर दिन-रात व्रत करे। अगले दिन होम करके ब्राह्मणगण को दधि-भात तथा खीर का भोजन कराये। इस विधि से जो कोई भी पुत्र सप्तमी व्रत करेगा, वह चिरायु, निरोग, सत्पुत्र लाभ करेगा।।६३-६८।।

तपस्याशुक्लसप्तम्यां व्रतमकम्पुटं चरेत्। अर्कपत्रैर्यजेदर्कमर्कपत्राणि चाश्नुयात्॥६९॥
अर्कनाम जपेच्छश्वदित्थं चार्कपुटव्रतम्। धनदं पुत्रदं चैत्सर्वपापप्रणाशनम्॥७०॥
त्रिवर्गदमिति प्राहुः केचिदेतद्व्रतं द्विज। यज्ञव्रतं तथाप्यन्ये विविधवद्धोमकर्मणा॥७१॥
सर्वासु सर्वमासेषु सप्तमीषु द्विजोत्तमः। भास्कराराधनं प्रोक्तं सार्वकामिकमित्यलम्॥७२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितसप्तमीव्रत-
निरूपणं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः।।११६।।

फाल्गुन शुक्ला सप्तमी तिथि पर अर्कपुट व्रत करे। अर्क पत्र से सूर्य पूजा करके वही पत्ते खाये तथा निरन्तर सूर्य नाम जप करता रहे। यह अर्कपुट व्रत धन तथा पुत्रप्रद एवं पापनाशक है। हे द्विज! कतिपय लोग इसे त्रिवर्गप्रद कह गये हैं कोई यज्ञव्रत का नाम देते हैं। हे द्विजोत्तम! सभी महीनों की सप्तमी तिथि पर सविधि होम तथा भास्कराराधन करने वाले की समस्त कामना पूर्ण होती है।।६९-७२।।

।।११६वां अध्याय समाप्त।।

अथ स्प्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशमासीय अष्टमी व्रत वर्णन

सनातन उवाच

शुक्लाष्टम्यां चैत्रमासे भवान्याः प्रोच्यते जनिः।
प्रदक्षिणशतं कृत्वा कार्यो यात्रामहोत्सवः॥१॥
दर्शनं जगदम्बायाः सर्वानन्दप्रदं नृणाम्। अत्रैवाशोककलिकाप्राशनं समुदाहृतम्॥२॥
अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां नतेशोकमवाप्नुयुः॥३॥

महाष्टमीति च प्रोक्ता देव्याः पूजाविधानतः।
वैशाखस्य सिताष्टम्यां समुपोष्यात्र वारिणा॥४॥
स्नात्वापराजितां देवीं मांसीबालकवारिभिः।
स्नापयित्वार्च्य गन्धाद्यैर्नैवेद्यं शर्करामयम्॥५॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—चैत्र मासीय शुक्लाष्टमी को भवानी का जन्म हुआ था। उसी दिन १०० प्रदक्षिणा करके यात्रा महोत्सव करे। ऐसा करने से उस व्यक्ति को जगदम्बा की कृपा से सर्वानन्द लाभ होता है। उस दिन अशोक वृक्ष की कलिका भक्षण करे। जो पुनर्वसुयुक्त चैत्र शुक्लाष्टमी तिथि पर अशोक की आठ कलिका भक्षण करता है, उसे कदापि शोक नहीं होता। यह महाष्टमी भी कही गई है। अब मैं देवी का पूजा विधान कहता हूं। वैशाखा शुक्लाष्टमी तिथि पर उपवासी रहे, शुद्ध जल से स्नानोपरान्त अपराजिता देवी को जटामासी के रस से स्नान कराये तथा उनका गन्धादि से पूजन करने के अनन्तर शर्करा का बना नैवेद्य अर्पित करे।।१-५।।

कुमारीर्भोजयेच्चापि नवम्यां पारणाग्रतः। ज्योतिर्मयविमानेन भ्राजमानो यथा रविः॥६॥
लोकेषु विचरेद्विप्र देव्याश्चैव प्रसादतः। कृष्णाष्टम्यां ज्येष्ठमासे पूजयित्वा त्रिलोचनम्॥७॥
शिवलोके वसेत्कल्पं सर्वदेवनमस्कृतः। ज्येष्ठशुक्ले तथाष्टम्यां यो देवीं पूजयेन्नरः॥८॥
स विमानेन चरति गन्धर्वाप्सरसां गणैः।
शुक्लाष्टम्यां तथाऽऽषाढे स्नात्वा चैवं निशाम्बुना॥९॥
तेनैव स्नापयेद्देवीं पूजयेच्च विधानतः।
ततः शुद्धजलैः स्नाप्य विलिम्पेत्सेन्दुचन्दनैः॥१०॥
नैवेद्यं शर्करोपेतं दत्त्वाऽऽचमनमर्पयेत्।
भोजयित्वा ततो विप्रान्दत्त्वा स्वर्णं च दक्षिणाम्॥११॥
विसृज्य च ततः पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।
एतद्व्रतं नरः कृत्वा देवीलोकमवाप्नुयात्॥१२॥

व्रती स्वयं पारण करने के पूर्व ९ कुमारी कन्याओं को भोजन कराये। तदनन्तर स्वयं पारण करे। हे विप्र! ऐसा करने वाला व्रती (मृत्यु के उपरान्त) ज्योतिर्मय विमानारूढ़ होकर त्रैलोक्य में देवी की कृपा से सूर्यवत् विचरण करता है। ज्येष्ठमासीय कृष्णाष्टमी तिथि पर त्रिलोचन शिव की पूजा करे। वह पूजक सर्वदेव नमस्कृत होकर शिवलोक में एक कल्प निवास करता है। ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को जो मनुष्य देवीपूजन करेगा, वह देहत्याग के उपरान्त विमान पर गन्धर्व तथा अप्सरा एवं गणों के साथ विचरण करेगा। आषाढ़ मासीय शुक्लाष्टमी पर रात में रखे गये जल से स्नान करे। उसी रखे जल से देवी को भी स्नान कराये। तदनन्तर ताजे शुद्ध जल से स्नान कराकर उन पर कर्पूर तथा चन्दन का लेप करे। उनको शर्करायुक्त नैवेद्य प्रदान करे। तत्पश्चात् आचमनीय देना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणगण को भोजन कराकर स्वर्ण दक्षिणा देकर विसर्जित करे तदनन्तर स्वयं मौनी होकर भोजन ग्रहण करना चाहिये। इस व्रत के प्रभाव से व्रती व्यक्ति देवीलोक जाता है।।६-१२।।

नभःशुक्ले तथाष्टम्यां देवीमिष्ट्वा विधानतः।
क्षीरेण स्नापयित्वा च मिष्टान्नं विनिवेदयेत्॥१३॥
ततो द्विजान् भोजयित्वा परेऽह्नि स्वयमप्युत।
भुक्त्वा समापयेदेतद्व्रतं सन्ततिवर्धनम्॥१४॥
नभोमासे सिताष्टम्यां दशाफलमिति व्रतम्।
उपवासं तु सङ्कल्प्य स्नात्वा कृत्वा च नैत्यिकम्॥१५॥
तुलस्याः कृष्णवर्णाया दलैर्दशभिरर्चयेत्।
कृष्णं विष्णुं तथाऽनन्तं गोविन्दं गरुडध्वजम्॥१६॥
दामोदरं हृषीकेशं पद्मनाभं हरिं प्रभुम्। एतैश्च नामभिर्नित्यं कृष्णदेवं समर्चयेत्॥१७॥
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणसमन्वितम्। एवं दशदिनं कुर्याद्व्रतानामुत्तमं व्रतम्॥१८॥

श्रावण शुक्ला अष्टमी को सविधि अर्चना करके उनको दूध से नहलाकर मिष्ठान्न-नैवेद्य अर्पित करे। अगले दिन वह ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करके स्वयं भोजन करे। एवंविध व्रताचरण से सन्तान वृद्धि होगी। भाद्रपदीय कृष्णाष्टमी में दशाफल व्रत करे। उस दिन उपवासी रहे तथा व्रत हेतु संकल्प करके स्नानोपरान्त नित्यक्रिया सम्पन्न करने के अनन्तर श्यामा तुलसी के दस पत्रों से कृष्ण, गोविन्द, विष्णु, अनन्त, गरुड़ध्वज, दामोदर, हृषीकेश, पद्मनाभ हरि, प्रभु, इन नामों से भगवान् कृष्ण की अर्चना करे। तब नमस्कार करके प्रदक्षिणा करे। ऐसा दस दिन करना ही अत्युत्तम व्रत है।।१३-१८।।

आदौ मध्ये तथा चान्ते होमं कुर्याद्विधानतः।
कृष्णमन्त्रेण जुहुयाच्चरुणाऽष्टोत्तरं शतम्॥१९॥
होमान्ते विधिना सम्यगाचार्य्यं पूजयेत्सुधीः। सौवर्णे ताम्रपत्रे वा मृन्मये वेणुपात्रके॥२०॥
तुलसीदलं सुवर्णेन कारयित्वा सुलक्षणम्।
हैमीं च प्रतिमां कृत्वा पूजयित्वा विधानतः॥२१॥
निधाय प्रतिमां पात्रे ह्याचार्याय निवेदयेत्।
दातव्या गौः सवत्सा च वस्त्रालङ्कारभूषिता॥२२॥

इसमें आदि, मध्य, अन्त में कृष्णमन्त्र पाठ करते चरु से १०८ होम सविधि करे। होमान्त में वह सुधी पूजक सम्यक्तः आचार्य पूजा करे। स्वर्ण, ताम्र, रजत किंवा बांस की टोकरी में स्वर्णमय मनोहर तुलसी पत्रों से स्वर्णमयी कृष्ण प्रतिमा की सविधि अर्चना करे। तब आचार्य को बुलाकर वस्त्रालंकार से सज्जित वत्ससहित गौ उनको दान करे।।१९-२२।।

दशाहं कृष्णदेवाय पूरिका दश चार्पयेत्। ताश्च दद्याद्विधिज्ञाय स्वयं व भक्षयेद्व्रती॥२३॥
शयनं च प्रदातव्यं यथाशक्ति द्विजोत्तम। दशमेऽह्नि ततो मूर्तिं सद्रव्यां गुरवेऽर्पयेत्॥२४॥

दस दिनों तक कृष्ण को दस पूरियां नित्य अर्पित करे। उसे ब्राह्मण को प्रदान करे अथवा स्वयं भक्षण

करे। हे द्विजप्रवर! यथाशक्ति शय्यादान भी करे। दशम दिन द्रव्ययुक्त मूर्त्ति गुरु को प्रदान करे। दसवें दिन मूर्त्ति को द्रव्यसहित गुरु को अर्पित करे।।।२३-२४।।

व्रतान्ते दशविप्रेभ्यः प्रत्येकं दश पूरिकाः। दद्यादेवं दशाब्दं तु कृत्वा व्रतमनुत्तमम्॥२५॥

उपोष्य विधिना भूयात्सर्वकामसमन्वितः।

अन्ते कृष्णस्य सायुज्यं लभते नात्र संशयः॥२६॥

कृष्णजन्माष्टमीं चेयं स्मृता पापहरा नृणाम्। केवलेनोपवासेन तस्मिञ्जन्मदिने हरेः॥२७॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।

उपवासी तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले॥२८॥

सुदेशे मण्डपे क्लृप्ते मण्डलं रचयेत्सुधीः।

तन्मध्ये कलशं स्थाप्य ताम्रजं वापि मृन्मयम्॥२९॥

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं तस्योपरि स्थिताम्।

हैमीं वस्त्रयुगाच्छन्नां कृष्णस्य प्रतिमां शुभाम्॥३०॥

व्रतान्त में दस ब्राह्मणों को बुलाकर १०-१० पूरियां प्रदान करे। इस विधि से १० वर्ष पर्यन्त इस उत्तम व्रत को करने तथा उपवास करने से सर्वकामनायें सफल होती हैं। अन्त में वह व्यक्ति कृष्ण सायुज्य लाभ करता है। यह सन्देहरहित है। कृष्ण जन्माष्टमी (भाद्रपद की कृष्णपक्षीय अष्टमी) पापहारी है। उस हरि के जन्मदिन पर केवल उपवासी रहने से वह व्यक्ति सात जन्मों में किये गये पातकों से मुक्त हो जाता है। इसमें कोई सन्देह न करे। उस दिन उपवासी व्यक्ति तिल तैल लगाये तथा विमल नदी जल में स्नान करे। इसके पश्चात् पवित्र स्थान पर मण्डप के नीचे मण्डल बनाकर उसके बीच में ताम्र किंवा मृत्तिका कलस स्थापित करे तदनन्तर ताम्रपात्र ढककर उसमें कृष्ण की मनोहर स्वर्ण मूर्त्ति स्थापित करे। उस प्रतिमा को दो वस्त्रों से आच्छादित भी करे।।२५-३०।।

पाद्याद्यैरुपचारैस्तु पूजयेत्स्निग्धमानसः। देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च॥३१॥

व्रजं गोपांस्तथा गोपीर्गाश्च दिक्षु समर्चयेत्।

तत आरार्तिकं कृत्वा क्षमाप्यानम्य भक्तितः॥३२॥

तिष्ठेत्तथैवार्द्धरात्रे पुनः संस्नापयेद्धरिम्। पञ्चामृतैः शुद्धजलैर्गन्धाद्यैः पूजयेत्पुनः॥३३॥

अब पाद्यादि उपचार से सश्रद्ध भाव से उस प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये। सभी दिक् में क्रमशः देवकी, वासुदेव, यशोदा, नन्द, व्रजगोप एवं गोपीगण की पूजा तथा आरती करके भक्तिपूर्वक क्षमा याचना करनी चाहिये। अर्द्धरात्रि तक वहीं रहें तदनन्तर अर्द्धरात्रि में ही पंचामृत एवं पवित्र जल से हरि को स्नान कराये तथा पुनः गन्धादि से उनका पूजन करे।।३१-३३।।

धान्याकं च यवानीं च शुण्ठीं खण्डं च नारद।

साज्यं रौप्ये धृतं पात्रे नैवेद्यं विनिवेदयेत्॥३४॥

पुनरारार्तिकं कृत्वा दशधा रूपधारिणम्। विचिन्तयन्मृगाङ्काय दद्यादर्घ्यं समुद्यते॥३५॥

ततः क्षमाप्य देवेशं रात्रिखण्डं नयेद्व्रती। पौराणिकैः स्तोत्रपाठैर्गीतवाद्यैरनेकधा॥३६॥
ततः प्रभाते विप्राग्र्यान्भोजयेन्मधुरान्नकैः।
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो विसृजेत्तुष्टमानसः॥३७॥

हे नारद! उनको धनियां, यव, सोंठ, चीनी तथा घृत को रजत पात्र में रखकर नैवेद्य अर्पण करके पुनः आरती करे। उनके दशावतार का स्मरण करते हुये चन्द्रमा को अर्घ्य देकर कृष्ण से क्षमा-प्रार्थना करने के उपरान्त पुराणोक्त स्तोत्र पाठ, गीत-वाद्यादि उत्सव से रात्रि व्यतीत करके प्रातः श्रेष्ठ ब्राह्मणगण को मिष्ठान्न भोजन प्रदान करे तथा दक्षिणासहित, प्रसन्न मन से उनको विदा करे।।३४-३७।।

ततस्तां प्रतिमां विष्णोः स्वर्णधेनुधरान्विताम्।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा विसृज्यास्नीत च स्वयम्॥३८॥
दारापत्यसुहृद्भृत्यरेवं कृत्वा व्रतं नरः। साक्षाद्गोलोकमाप्नोति विमानवरमास्थितः॥३९॥
नैतेन सदृशं चान्यद्व्रतमस्ति जगत्त्रये। कृतेन येन लभ्येत कोट्यैकादशकं फलम्॥४०॥
शुक्लाष्टम्यां नभस्यस्य कुर्याद्राधाव्रतं नरः।
पूर्ववद्राधिकां हैमीं कलशस्थां प्रपूजयेत्॥४१॥
मध्याह्ने पूजयित्वेनामेकभक्तं समाचरेत्।
शक्तो भक्तश्चोपवासं परेऽह्नि विधिना ततः॥४२॥
सुवासिनीर्भोजयित्वा गुरवे प्रतिमार्पणम्। कृत्वा स्वयं च भुञ्जीतं व्रतमेवं समापयेत्॥४३॥
व्रतेनानेन विप्रर्षे कृतेन विधिना व्रती। रहस्यं गोष्ठजं लब्ध्वा राधापरिकरे वसेत्॥४४॥

इसके पश्चात् स्वर्ण की गौ प्रतिमा सहित कृष्ण प्रतिमा गुरु को सदक्षिणा देकर उनको विदा करने के अनन्तर स्वयं स्त्री, पुत्र, मित्र, भृत्य के साथ भोजन ग्रहण करे। ऐसा व्रतशील व्यक्ति देहान्त के पश्चात् उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर गोलोक गमन करता है। तीनों लोक में इसके समान अन्य व्रत नहीं है। इस व्रताचरण द्वारा एक कोटि एकादशी व्रतफल प्राप्त होता है। भाद्रपद शुक्लाष्टमी को व्यक्ति राधाव्रत रखे। पूर्ववत् राधा की स्वर्ण प्रतिमा कलश पर स्थित करके पूजा करे। मात्र एक समय आहार करके मध्याह्न में भी इनका पूजन करे। यदि भोजन न करके उपवासी रहे, तो अच्छी बात होगी। अगले दिन सौभाग्यशाली स्त्रियों को भोजन कराकर प्रतिमा गुरु को अर्पित करके स्वयं भोजन करे। एवंविध व्रत समाप्त होगा। हे विप्रर्षि! सविधि यह व्रत जो करेगा, उसे व्रजरहस्य ज्ञात होगा। वह राधा की सन्निधि में निवास करेगा।।३८-४४।।

दूर्वाष्टमीव्रतं चात्र कथितं तच्च मे श्रृणु। शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां द्विजसत्तम॥४५॥
स्थाप्य लिङ्गं ततो गन्धैः पुष्पैर्धूपैश्च दीपकैः। नैवेद्यैरर्चयेद्भक्त्या दध्यक्षफलादिभिः॥४६॥
अर्घ्यं प्रदद्यात्पूजान्ते मन्त्राभ्यां सुसमाहितः। त्वं दूर्वेऽमृतजन्माऽसि सुरासुरनमस्कृते॥४७॥
सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव।
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृताऽसि महीतले॥४८॥
तथा विस्तृतसन्तानं देहि मेऽप्यजरामरम्। ततः प्रदक्षिणीकृत्य विप्रान्सम्भोज्य तत्र वै॥४९॥

हे द्विजप्रवर! उपरोक्त तिथि पर ही दूर्वाष्टमी व्रताचरण कहा गया है। उसकी विधि सुनिये। पवित्र स्थान पर उगी दूर्वा पर शिवलिंग स्थापित करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, दधि, अक्षत, फलादि नैवेद्य से भक्तिपूर्वक पूजन तथा अर्घ्य निवेदन करे। पूजान्त में समाहित चित्त से कहे—"हे दूर्वा! तुम अमृत से जन्मी तथा सुरासुर द्वारा नमस्कृत हो। तुम मुझे सौभाग्य सन्तति प्रदान करो। तुम मेरे सर्वकार्य को सम्पन्न करो। मेरे वंश की शाखा-प्रशाखा पृथिवी पर विस्तार करे। मुझे ऐसी अजर-अमर सन्तति परम्परा प्रदान करो।" यह कहकर प्रदक्षिणा करे तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये।।४५-४९।।

भुक्त्वा स्वयं गृहं गच्छेद्दत्वा विप्रेषु दक्षिणाम्।
फलानि च प्रशस्तानि मिष्टानि सुरभीणि च॥५०॥
एवं पुण्या पापहरा नृणां दूर्वाष्टमी द्विज। चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीजनानां विशेषतः॥५१॥
यो न पूजयते दूर्वां नारी मोहाद्यथाविधि।
जन्मानि त्रीणि वैधव्यं लभते सा न संशयः॥५२॥

तदनन्तर उनको दक्षिणा तथा उत्तम मीठे फल प्रदान करे। हे द्विज! मनुष्यों के पापों का हरण करने वाली या पुण्यमयी दूर्वाष्टमी है। यह चारों वर्णों तथा विशेषतया स्त्रियों के लिये हैं। जो स्त्री मोह मे कारण दूर्वाष्टमी की पूजा नहीं करती, उसे तीन जन्म पर्यन्त वैधव्य भोगना होगा। यह निःसंशय है।।५०-५२।।

यदा ज्येष्ठर्क्षसंयुक्ता भवेच्चैवाष्टमी द्विज।
ज्येष्ठा नाम्नी तु सा ज्ञेया पूजिता पापनाशिनी॥५३॥
अथैनां तु समारभ्य व्रतं षोडशवासरम्। महालक्ष्म्याः समुद्दिष्टं सर्वसम्पद्विवर्धनम्॥५४॥
करिष्येऽहं महालक्ष्मीव्रतं ते त्वत्परायणः। तदविघ्नेन मे यातु समाप्तिं त्वत्प्रसादतः॥५५॥
इत्युच्चार्य ततो बद्ध्वा डोरकं दक्षिणे करे।
षोडशग्रन्थिसहितं गुणैः षोडशभिर्युतम्॥५६॥
ततोऽन्वहं महालक्ष्मीं गन्धाद्यैरच्चर्यद्व्रती। यावत्कृष्णाष्टमी तत्र चरेदुद्यापनं सुधीः॥५७॥
वस्त्रमण्डपिकां कृत्वा सर्वतोभद्रमण्डले। कलशं सुप्रतिष्ठाप्य दीपमुद्द्योतयेत्ततः॥५८॥

जब यही अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त हो, तब यही है ज्येष्ठाष्टमी। यह पापहारिणी है। इस अष्टमी से लगाकर१६ दिन तक महालक्ष्मी व्रताचरण करे। तदनन्तर यह मन्त्र पढ़ते हुये दाहिने हाथ में षोडश ग्रन्थि तथा षोडश गुणयुक्त सूत बांधे। मन्त्र यह है—हे महालक्ष्मी! मैं एकाग्रतापूर्वक आपका व्रताचरण करूंगा। यह आपकी कृपा से निर्विघ्न समाप्त हो जाये। तदनन्तर साधक महालक्ष्मी पूजन गन्धादि से करे। जब तक यह अष्टमी रहे साधक वस्त्र का मण्डप बनाये तदनन्तर सर्वतोभद्र मण्डल लिखकर वहां कलश स्थापित करकें दीपक प्रज्वलित करे।।५३-५८।।

उत्तार्य डोरकं बाहोः कुम्भस्याधो निवेदयेत्।
चतस्त्रः प्रतिमाः कृत्वा सौवर्णीस्तत्स्वरूपिणीः॥५९॥
स्नपनं कायेत्तासां जलैः पञ्चामृतैस्तथा। उपचारैः षोडशभिः पूजयित्व विधानतः॥६०॥

जागरस्तत्र कर्तव्यो गीतावादित्रनिःस्वनैः।
ततो निशीथे सम्प्राप्तेऽभ्युदितेऽमृतदीधितौ॥६१॥
दत्त्वार्घ्यं बन्धनं द्रव्यैः श्रीखण्डाद्यैर्विधानतः।
चन्द्रमण्डलसंस्थायै महालक्ष्म्यै प्रदापयेत्॥६२॥
क्षीरोदार्णवसम्भूतं महालक्ष्मीसहोदर। पीयूषधाम रोहिण्याः सहितोऽर्घ्यं गृहाण मे॥६३॥
क्षीरोदार्णवसम्भूते कमले कमलालये। विष्णुवक्षःस्थलस्थे मे सर्वकामप्रदा भव॥६४॥
एकनाथे जगन्नाथे जमदग्निप्रियेऽव्यये। रेणुके त्राहि मां देवि राममातः शिवं कुरु॥६५॥

तत्पश्चात् भुजा में बांधे डोरे को निकाले तथा कलस के नीचे रखे। वहां स्वर्ण की एक ही आकृति की ४ प्रतिमा रखकर उनको पंचामृत स्नान कराये। तत्पश्चात् सविधि षोडशोपचार से पूजनोपरान्त गायन-वाद्य वादन करते रात्रि जागरण करे। जब रात्रि में चन्द्रोय हो, तब अर्घ्य एवं श्रीखण्ड प्रभृति सविधि चन्द्र मण्डलस्था महालक्ष्मी को इस मन्त्र से प्रदान करे। "हे क्षीरसागर समुत्पन्ना, कमले, कमलालये, विष्णु वक्षस्थल स्थित देवि महालक्ष्मी। मेरी अखिल कामना पूर्ण करिये। हे एकनाथे, जगन्नाथे, जमदग्नि प्रिये, अव्यये, रेणुके, राममात! मेरी रक्षा करिये, मेरा कल्याण करिये।"॥५९-६५॥

मन्त्रैरेतैर्महालक्ष्मीं प्रार्थ्य श्रोत्रिययोषितः।
सम्यक्सम्पूज्य ताः सम्यग्गन्धयावककज्जलैः॥६६॥
सम्भोज्य जुहुयादग्नौ बिल्वपद्मकपायसैः।
तदलाभे घृतैर्विप्र गृहेभ्यः समिधस्तिलान्॥६७॥
मृत्युञ्जयाय च परं सर्वरोगप्रशान्तये। चन्दनं तालपत्रं च पुष्पमालां तथाऽक्षतान्॥६८॥
दूर्वां कौसुम्भसूत्रं च युगं श्रीफलमेव च। भक्ष्याणि च नवे शूर्पे प्रतिद्रव्यं तु षोडश॥६९॥
समाच्छाद्यान्यशूर्पेण व्रती दद्यात्समन्त्रकम्। क्षीरोदार्णवसम्भूता लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरा॥७०॥
व्रतेनानेन सन्तुष्टा भवताद्विष्णुवल्लभा।
चतस्त्रः प्रतिमास्तास्तु क्षोत्रियेभ्यः समर्पयेत्॥७१॥
ततस्तु चतुरो विप्रान् षोडशापि सुवासिनीः।
मिष्टान्नेनाशयित्वा तु विसृजेत्ताः सदक्षिणाः॥७२॥

एवंविध महालक्ष्मी का स्तव करके आलता, गंध, यावक कज्जलादि से श्रोत्रिय ब्राह्मणगण की पत्नियों को प्रसन्न करे। तदनन्तर अग्नि में विल्व, पद्म आदि से होम करे। यह यदि न मिले, तब घृत, समिध् एवं तिल से होम करे। तदनन्तर सर्वरोग नाशार्थ मृत्युञ्जय को आहुति देनी चाहिये। तत्पश्चात् चन्दन, तालपत्र, पुष्पमाला, अक्षत, दूर्वा, कौसुम्भ सूत्र तथा दो बिल्वफल एवं नाना भक्ष्य-भोज्य पदार्थ को नये सूप में रखे। उसे अन्य सूप से आवरित करके इस मन्त्र का पाठ करते दान करे। "आप क्षीर सागर से उत्पन्न लक्ष्मी हैं तथा चन्द्रमा की बहन हैं। हे विष्णुवल्लभा! आप इस व्रत से सन्तुष्ट हो जायें।" तदनन्तर चारों प्रतिमा श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित

करे। इसके अनन्तर चार उत्तम ब्राह्मण एवं १६ सौभाग्यवती ब्राह्मणी स्त्रियों को मिष्ठान्न खिलाये तथा दक्षिणा देकर विदा करे।।६६-७२।।

समाप्तिनियमः पश्चाद्भुञ्जीतेष्टैः समन्वितः।
एतद्व्रतं महालक्ष्म्याः कृत्वा विप्र विधानतः।।७३।।
भुक्त्वेष्टानैहिकान् कामांल्लक्ष्मीलोके वसेच्चिरम्।
एषाऽशोकाष्टमी चोक्ता यस्यां पूर्णं रमाव्रतम्।।७४।।
अत्राशोकस्य पूजा स्यादेकभक्तं तथा स्मृतम्।
कृत्वाऽशोकव्रतं नारी ह्यशोका शोकजन्मनि।।७५।।
यत्र कुत्रापि सञ्जाता नात्र कार्या विचारणा।
आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रोक्ता विप्र महाष्टमी।।७६।।

यह व्रत नियम समाप्त होने के अनन्तर इष्ट बन्धुजन के साथ व्रती व्यक्ति भोजन करे। हे विप्र! इस महालक्ष्मी व्रत को सविधि करने वाला मनुष्य इस लोक में इष्टभोग भोगकर अन्त में चिरकाल तक लक्ष्मीलोक में निवास करता है। इसे अशोकाष्टमी भी कहते हैं, जिसमें लोग रमाव्रत करते हैं। एकाहारी होकर इस तिथि पर अशोक वृक्ष पूजन करे। जो स्त्री अशोकव्रत करती है, उसे जन्म-जन्मान्तर में शोक नहीं होता। इस सम्बन्ध में सन्देह न करे। अश्विन मास की शुक्लाष्टमी को महाष्टमी कहते हैं।।७३-७६।।

तत्र दुर्गार्चनं प्रोक्तं सर्वैरप्युपचारकैः। उपवासं चैकभक्तं महाष्टम्यां विधाय तु।।७७।।
सर्वतो विभवं प्राप्य मोदते देववच्चिरम्।
ऊर्ज्जे कृष्णादिकेऽष्टम्यां करकाख्यं व्रतं स्मृतम्।।७८।।

उस दिन सर्वोपचार समन्वित दुर्गाचन करे। उपवासी रहें किंवा एक समय ही भोजन करके महालक्ष्मी पूजा करे। इससे वह पूजक सर्व विभवयुक्त होकर देवता की तरह परलोक में चिरकाल तक निवास करता है। कार्त्तिक कृष्णपक्षीय अष्टमी को करके व्रत किया जाता है।।७७-७८।।

तत्रोमासहितः शम्भुः पूजनीयः प्रयत्नतः। चन्द्रोदयेऽर्घदानं च विधेयं व्रतिभिः सदा।।७९।।
पुत्रं सर्वगुणोपेतमिच्छद्भिर्विविधं सुखम्।
गोपाष्टमीति सम्प्रोक्ता कार्तिके धवले दले।।८०।।
तत्र कुर्याद्गवां पूजां गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम्। गवानुगमनं दानं वाञ्छन्सर्वाश्च सम्पदः।।८१।।

उस तिथि पर उस समय उमासहित शंकर की सविधि पूजा करे। जो विविध सुख तथा सर्वगुणान्वित पुत्र चाहे, वह स्त्री चन्द्रोदय काल में अर्घ्यदान करे। उसे वैसा पुत्र तथा विविध सुखलाभ होता है। कार्त्तिक शुक्लाष्टमी को गोपाष्टमी कहते हैं। उसमें गो पूजा, गोग्रास प्रदान तथा गोप्रदक्षिणा करे। उन गौवों को अनुगमन करे तथा दान भी करे। जो ऐसा करता है, वह सर्वसम्पदा लाभ करता है।।७९-८१।।

कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे मिथुनं दर्भनिर्मितम्। अनघां चानघं तत्र बहुपुत्रसमन्वितम्।।८२।।
स्थापयित्वा शुभे देशे गोमयेनोपलेपिते। पूजयेद्गन्धापुष्पाद्यैरुपचारैः पृथग्विधैः।।८३।।

सम्भोज्य द्विजदाम्पत्यं विसृजेल्लब्धदक्षिणम्।
व्रतमेतन्नरः कृत्वा नारी वा विधिपूर्वकम्॥८४॥
पुत्रं सल्लक्षणोपेतं लभते नात्र संशयः॥८५॥
मार्गशीर्षशिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ। उपोष्य जागरं कृत्वा महापापैः प्रमुच्यते॥८६॥
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषजन्मनि। तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात्॥८७॥

अग्रहायण कृष्णपक्षीय अष्टमी के समय दो दम्पति की मूर्त्ति अर्थात् पति-पत्नी की तथा अनेक पुत्रों की मूर्त्ति कुश से बनाये। उसे गोमयलिप्त पवित्र स्थान पर स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर गन्ध पुष्पादि अनेक उपचार से उनकी पूजा करके द्विजदम्पति को भोजन कराये तथा दक्षिणा देकर विदा करना चाहिये। जो नारी सविधि यह व्रताचरण करती है, उस सर्वलक्षणान्वित सन्तान लाभ होता है। यह निःसंशय है। अग्रहायण शुक्लाष्टमी को कालभैरव के निकट उपवासी रहें तथा रात्रि जागरण करने वाले का महापातक भी नष्ट हो जाता है। व्यक्ति ने जो कुछ भी अशुभ कर्म मनुष्य जन्म में किया होगा, कालभैरव के दर्शन मात्र से समस्त विलीन हो जायेगा।।८२-८७।।

अथ पौषसिताष्टम्यां श्राद्धमष्टकसंज्ञितम्। पितृणां तृप्तिदं वर्षं कुलसन्ततिवर्द्धनम्॥८८॥
शुक्लाष्टम्यां तु पौषस्य शिवं सम्पूज्य भक्तितः।
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति भक्तिमेकां समाचरन्॥८९॥
कृष्णाष्टम्यां तु माघस्य भद्रकालीं समर्चयेत्।
भक्तितो वैरिवृन्दघ्नीं सर्वकामप्रदायिनीम्॥९०॥

पौष मासीय कृष्णाष्टमी को श्राद्ध अष्टक कहते हैं अर्थात् इस तिथि पर अष्टका श्राद्ध द्वारा वर्ष पर्यन्त पितृगण को तृप्ति प्राप्त होती है। व्यक्ति की वंशवृद्धि होती है। कुल-सन्तति बढ़ती है। पौष मासीय शुक्लाष्टमी पर भक्ति से शिवपूजा करे। इससे भोग-मोक्ष, दोनों मिलता है। माघ कृष्णाष्टमी पर भद्रकाली पूजन करे। भक्ति से इनका पूजन करने पर वैरी वृन्द नष्ट होते हैं तथा देवी सभी कामना पूर्ण कर देती हैं।।८८-९०।।

माघमासे सिताष्टम्यां भीष्मं सनतर्पयेद्द्विज।
सन्ततिं त्वव्यवच्छिन्नामिच्छंश्चाप्यपराजयम्॥९१॥
फाल्गुने त्वसिताष्टम्यां भीमां देवीं समर्चयेत्। तत्र व्रतपरो विप्रसर्वकामसमृद्धये॥९२॥
शुक्लाष्टम्यां फाल्गुनस्य शिवं चापि शिवां द्विज।
गन्धाद्यैः सम्यगभ्यर्च्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥९३॥

माघ मास की शुक्लाष्टमी के दिन भीष्म का तर्पण करे। इसे सन्तति परम्परा नष्ट नहीं होती तथा वह व्यक्ति अपराजेय रहता है। फाल्गुन कृष्णाष्टमी को भीमा देवी की अर्चना करे। हे विप्र! इस तिथि पर व्रती रहने से सभी वांछित कामनाओं की फल प्राप्ति होती है। हे द्विज! फाल्गुन शुक्ला अष्टमी की तिथि पर गन्ध पुष्पादि से शिव एवं शिवा की पूजा सम्यक् रूप से करने वाला सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है।।९१-९३।।

फाल्गुनापरपक्षे तु शीतलामष्टमीदिने। पूजयेत्सर्वपक्वान्नैः सप्तम्यां विधिवत्कृतैः॥९४॥

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमोनमः॥९५॥

फाल्गुन शुक्लाष्टमी को शीतलाष्टमी भी कहते हैं। इस हेतु सप्तमी को ही सभी पक्वान्न बनाकर अष्टमी के दिन उनसे शीतला की अर्चना करे। मन्त्र है—" हे शीतले! आप जगन्माता तथा जगत्पिता दोनों हैं। आप जगद्धात्री हैं। आपको पुनः पुनः प्रणाम!।।९४-९५।।

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्। मार्जनीकलशोपेतां विस्फोटकविनाशिनीम्॥९६॥

शीतले शीतले चेत्थ ये जपन्ति जले स्थिताः।
तेषां तु शीतला देवी स्याद्विस्फोटकशान्तिदा॥९७॥
इत्येवं शीतलामन्त्रैर्यः समर्चयेत् द्विज।
तस्य वर्षं भवेच्छान्तिः शीतलायाः प्रसादतः॥९८॥
सर्वमासोभये पक्षे विधिवच्चाष्टमीदिने।
शिवां वापि शिवं प्राच्र्य लभते वाञ्छितं फलम्॥९९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थिताष्टमीव्रत-कथनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११७।।

"हे शीतला देवी! आप गर्दभ पर विराजमान हैं तथा दिगम्बरा हैं। आपने मार्जनी तथा कलश धारण किया है। आप विस्फोटक नाशिनी हैं।" जो जल में स्थित होकर शीतला का उपरोक्त ध्यान रखते "शीतला" नाम जप करता है, उसे विस्फोटक में शान्ति मिलती है तथा यह व्याधि नहीं होती। सभी मास की दोनों पक्षीय अष्टमी तिथि पर शिव किंवा पार्वती की पूजा करे। मनुष्य को इससे वांछित फललाभ होगा।।९६-९९।।

।।११७वां अध्याय समाप्त।।
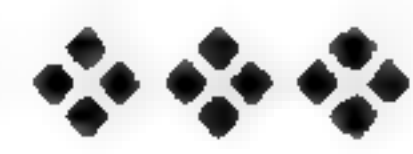
अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासों में नवमी व्रतों का विधान एवं महिमा वर्णन

सनातन उवाच

अथ वक्ष्यामि विप्रेन्द्र नवम्यास्ते व्रतानि वै।
यानि कृत्वा नरा लोके लभन्ते वाञ्छितं फलम्॥१॥

चैतस्य शुक्लपक्षे तु श्रीरामनवमीव्रतम्। तत्रोपवासं विधिवच्छक्तो भक्तः समाचरेत्॥२॥

अशक्तश्चैकभक्तं वै मध्याह्नोत्सवतः परम्।
विप्रान्सम्भोज्य मिष्टान्नं रामप्रीतिं समाचरेत्॥३॥
गोभूतिलहिरण्याद्यैर्वस्त्रालङ्करणैस्तथा। एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम्॥४॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! अब आपसे नवमी व्रताचरण का वर्णन करूंगा। इस व्रत का पालन करने वाले इहलोक में इच्छित फल प्राप्त करते हैं। चैत्र शुक्ला नवमी तिथि पर श्रीरामनवमी व्रत करे। समर्थ व्यक्ति इस दिन भक्तिपूर्वक तथा सविधि उपवासी रहे। जो असमर्थ हो, वह एक ही समय भोजन करे तथा मध्याह्न में जन्मोत्सव मनाकर विप्रगण को मिष्ठान्न भक्षण कराये तथा उनको गौ, तिल, भूमि, स्वर्ण, वस्त्राभूषण तथा दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार राम को प्रसन्न करना चाहिये। जो इस विधि से भक्तिपूर्वक श्रीरामनवमी व्रत करता है।।१-४।।

विधूय चेहपापानि व्रजेद्विष्णोः परं पदम्। उक्तं मातृवतं चात्र भैरवेण समन्विताः॥५॥
स्त्रग्गन्धवस्त्रनैवेद्यैश्चतुःषष्टिस्तु योगिनीः। अत्रैव भद्रकाली तु योगिनीनां महाबला॥६॥
ब्राह्मणश्रेष्ठ सर्वासामाधिपत्येऽभिषेचिता। तस्मात्तां पूजयेच्चात्र सोपवासो जितेन्द्रियः॥७॥
राधे नवम्यां दलयोश्चण्डिकां यस्तु पूजयेत्। विधिना स विमानेन दैवतैः सह मोदते॥८॥

वह निष्पाप हो जाता है। मृत्यु के पश्चात् उसे विष्णु के परमपद की प्राप्ति होती है। इसी तिथि पर भैरव समन्वित मातृव्रत भी करते हैं। माला-वस्त्र-गन्ध-नैवेद्यादि से ६४ योगिनीगण की पूजा करे। हे ब्राह्मणप्रवर! सभी योगिनियों में महाबली भद्रकाली इन सबकी अधिनायिका हैं। इनका इन ६४ पर आधिपत्य रहता है। अतः इनकी आराधना पूजा तथा उपवास से करे। इन्द्रियनिग्रह भी करे। वैशाख के दिन शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्षीय नवमीं तिथि पर सविधि चण्डिकार्चन करना चाहिये। वह साधक विमानारूढ़ होकर देवगण के साथ आनन्दित होता है (मृत्यु के उपरान्त)।।५-८।।

ज्येष्ठशुक्लनवम्यां तु सोपवासो नरोत्तमः।
उमा सम्पूज्य विधिवत्कुमारीर्भोजायेद्द्विजान्॥९॥
स्वभक्त्या दक्षिणां दत्त्वा शाल्यन्नं पयसाऽश्नुयात्।
उमाव्रतमिदं विप्र यः कुर्याद्विधिन्नरः॥१०॥
स भुक्त्वेह वरान्भोगानन्ते स्वर्गगतिं लभेत्।
आषाढ़े मासि विप्रेन्द्र यः कुर्यात्पक्षयोर्द्विज॥११॥
नक्तं चैन्द्री समभ्यर्चेदैरावतगतां सिताम्। स भवेद्देवलोके तु भोगभाग्देवयानगः॥१२॥

ज्येष्ठ शुक्ल नवमी के दिन श्रेष्ठ पुरुष उपवासी रहे। उमा की पूजा करके कुमारीगण तथा द्विजों की पूजा तथा भोजनादि प्रदान करे। उनको दक्षिणा देकर स्वयं शालि अन्न, पायस भक्षण करे। हे विप्र! यह उमाव्रत जो मनुष्य सविधि करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर स्वर्गगति लाभ करता है। हे विप्रेन्द्र! जो आषाढ़ मास के दोनों पक्ष की रात्रियों में ऐरावतारूढ़ शुक्लवर्णा ऐन्द्री का ध्यान-पूजन उपवासी रहकर करता है, वह सर्वभोग लाभ करके अन्त में विमान से देवलोक जाकर देवताओं जैसा भोग वहां भोगता है।।९-१२।।

श्रावणे मासि विप्रेन्द्र यः कुर्यान्नक्तभोजनम्।
पक्षयोरुपवासं वा कौमारीं चण्डिकां यजेत्॥१३॥
एवं पापहरां गन्धैः पुष्पैर्धूपैश्च दीपकैः। नैवेद्यैर्विविधैश्चैव कुमारीभोजनैस्तथा॥१४॥
एवं यः कुरुते भक्त्या कौमारीव्रतमुत्तमम्। स विमानेन गच्छेद्वै देवीलोकं सनातनम्॥१५॥

हे विप्रेन्द्र! श्रवण मास के दोनों पक्षों में दिन में उपवासी रहे तथा रात्रि में ही भोजन करे। उस पूजक को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यों से देवी अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर वह पूजक कुमारी कन्याओं को भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उत्तम कौमारीव्रत करे। वह चण्डिका पूजक सनातन देवीलोक गमन करता है।।१३-१५।।

भाद्रे तु नवमी शुक्ला नन्दाह्वा परिकीर्तिता।
तस्यां यः पूजयेद्दुर्गां विधिवच्चोपचारकैः॥१६॥
सोऽश्वमेधफलं लब्ध्वा विष्णुलोके महीयते।
आश्विने शुक्लनवमी महापूर्वा प्रकीर्तिता॥१७॥
अपराह्ने शमीपूजा कार्याऽस्यां प्राग्दिशि द्विज।
ततो निशायां प्राग्यामे खड्गं धनुरिपून्गदाम्॥१८॥
शूलं शक्तिं च परशुं छुरिकां चर्म खेटकम्।
छत्रं ध्वजं गजं चाश्वं गोवृषं पुस्तकं तुलाम्॥१९॥
दण्डं पाशं चक्रशंखौ गन्धाद्यैरुपचारकैः।
सम्पूज्य महिषं तत्र भद्रकाल्यै समालभेत्॥२०॥

भाद्रपद की शुक्लपक्षीय नवमी आनंदा कही गयी है। उस दिन दुर्गा की पूजा विविध उपचारों से करे। वह पूजक अश्वमेध फल पाकर विष्णुलोक जाता है। आश्विन शुक्लपक्षीय नवमी महापूर्वा कहलाती है। उस दिन पूर्वदिक् में शमी वृक्ष पूजन करे। रात्रि के पहले पहर में खड्ग, धनु, बाण, गदा, शूल, शक्ति, परशु, छूरा, ढाल, खेटक, छत्र, ध्वज, गज, अश्व, बैल, पुस्तक, तुला, दण्ड, पाश, चक्र, शंख की पूजा गन्धादि उपचार से करके भद्रकाली को वहां महिष बलि प्रदान करे।।१६-२०।।

एवं बलिं विधायाथ भुक्त्वा पक्कान्नमेव च।
द्विजेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा व्रतं तत्र समापयेत्॥२१॥
एवं यः पूजयेद्दुर्गां नृणां दुर्गतिनाशिनीम्।
इह भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते स्वर्गतिमाप्नुयात्॥२२॥

इस प्रकार बलि देकर ब्राह्मणगण को पक्व अन्न खिलाये। उनको दक्षिणा देकर वहां व्रत का समापन कर देना चाहिये। एवंविध जो व्यक्ति दुर्गाराधन करता है, वह दुर्गति से रहित होता है। वह इस लोक में समस्त भोग भोगकर सर्वान्त में स्वर्गगमन करता है।।२१-२२।।

कार्तिके शुक्लनवमी याऽक्षया सा प्रकीर्तिता।
तस्यामश्वत्थमूले वै तर्प्पणां सम्यगाचरेत्॥२३॥

देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चापि नारद।
स्वशाखोक्तैस्तथा मन्त्रैः सूर्यायार्घ्यं ततोऽर्पयेत्॥२४॥
ततो द्विजान्भोजयित्वा मिष्टान्नेन मुनीश्वर।
स्वयं भुक्त्वा च विहरेद्द्विजेभ्यो दत्तदक्षिणः॥२५॥

कार्तिक शुक्ला नवमी को अक्षया कहते हैं। उस तिथि अश्वत्थ वृक्ष के नीचे देवता, ऋषि तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिये। अपनी शाखा के मन्त्रों से सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर हे मुनीश्वर! ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन करने के बाद दक्षिणा देकर विदा कर तथा तदनन्तर स्वयं भी भोजन करे।।२३-२५।।

एवं यः कुरुते भक्त्या जपदानं द्विजार्चनम्। होमं च सर्वमक्षय्यं भवेदिति विधेर्वचः॥२६॥
मार्गे तु शुक्लनवमी नन्दिनी परिकीर्तिता। तस्यामुपोषिती यस्तु जगदम्बां प्रपूजयेत्॥२७॥
गन्धाद्यैः सोऽश्वमेधस्य फलभाङ्नात्र संशयः।
पौषे शुक्लनवम्यां तु महामायां प्रपूजयेत्॥२८॥
एकभक्तपरो विप्र वाजपेयफलाप्तये। माघमासे तु वा शुक्ला नवमी लोकपूजिता॥२९॥
महानन्देति सा प्रोक्ता सदानन्दकरी नृणाम्।
तस्यां स्नानं तथा दानं जपो होम उपोषणम्॥३०॥
सर्वमक्षयतां यात्रि नात्र कार्या विचारणा। फाल्गुनामलपक्षस्य नवमी या द्विजोत्तम॥३१॥
आनन्दा सा महापुण्या सर्वपापहरा स्मृता। सोपवासोऽर्चयेत्तत्र यस्त्वानन्दां द्विजोत्तम॥३२॥
स लभेद्वाञ्छितान्कामान्सत्यं सत्यं मयोदितम्॥३३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितनवमीव्रतकथनं नामाष्टदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११८॥

एवंविध जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक जप-दान-द्विजार्चन होम करता है, वह सब अक्षय फलप्रद होता है। यह ब्रह्मा का वचन है। अग्रहायण शुक्लानवमी को नन्दिनी कहा गया है। इस दिन उपवासी रहकर जगदम्बा की गन्धादि से अर्चना करे। उस पूजक को अश्वमेध यज्ञ फल प्राप्त होता है। इसमें तनिक संशय नहीं है। पौष शुक्लानवमी तिथि पर महामाया पूजन करे। एक समय आहार करे। हे विप्र! वह व्यक्ति बाजपेय यज्ञफल लाभ करता है। माघमासीय शुक्लानवमी लोक पूजिता है। उसे महानन्दा कहते हैं। वह मनुष्य हेतु सदा आनन्दकरी है। उस दिन स्नान, दान, जप, होम, उपवासादि करने से वह अक्षय हो जाता है। इसमें अन्य विचार न करे। हे द्विजोत्तम! फाल्गुन शुक्ला नवमी आनन्दा नामक है, जो महापुण्यप्रदा तथा सर्वपाहारिणी है। हे द्विजोत्तम! उस दिन उपवासी रहकर नन्दा देवी की पूजा करनी चाहिये। वह व्यक्ति समस्त वांछित भोगों की प्राप्ति करता है। यह मेरा सत्य वचन है।।२६-३३।।

।।११८वां अध्याय समाप्त।।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय दशमी व्रत

सनातन उवाच

अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि दशम्यां वै व्रतानि च।
यानि कृत्वा नरो भक्त्या धर्मराजप्रियो भवेत्॥१॥
चैत्रशुक्लदशम्यां तु धर्मराजं प्रपूजयेत्। तत्कालसम्भवैः पुष्पैः फलैर्गन्धादिभिस्तथा॥२॥
सोपवासो वैकभक्तो भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।
चतुर्द्दश ततस्तेभ्यः शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्॥३॥
एवं यः कुरुते विप्र धर्मराजप्रपूजनम्। स धर्मस्याज्ञयागच्छेद्देवैः साधर्म्यमच्युतः॥४॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—अब मैं दशमी व्रत कहता हूं। जो इसका भक्तिभाव से अनुष्ठान करेगा, वह धर्मराज का प्रिय हो जायेगा। चैत्र शुक्लदशमी को धर्मराज की पूजा करे। तत्काल (ऋतुजनित) पुष्प-फल-सुगन्ध द्रव्य से धर्मराज की पूजा करे। चतुर्दश उत्तम ब्राह्मणगण को भोजन कराये तथा यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। हे विप्र! जो इस विधि से धर्मराज की पूजा करता है, वह धर्मराज की आज्ञा से देवलोक लाभ करेगा।।१-४।।

दशम्यां माधवे शुक्ले विष्णुमभ्यर्च्य मानवः।
गन्धाद्यैरुपचारैश्च श्वेतपुष्पैः सुगन्धिभिः॥५॥
शतं प्रदक्षिणाः कृत्वा विप्रान्सम्भोज्य यत्नतः।
लभते वैष्णवं लोकं नात्रकार्या विचारणा॥६॥

वैशाख शुक्लादशमी तिथि पर मनुष्य गन्धादि उपचार सुगन्धित श्वेतपुष्प आदि से विष्णु पूजा करके उनकी १०० प्रदक्षिणा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को यत्नपूर्वक भोजन कराये। उसे वैष्णवलोक प्राप्त होता है। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।।५-६।।

ज्येष्ठे शुक्लदशम्यां तु जाह्नवी सरितां वरा।
समायाता धरां स्वर्गात्तस्मात्सा पुण्यदा स्मृता॥७॥
ज्येष्ठः शुक्लदलं हस्तो बुधश्च दशमी तिथिः। गरानन्दव्यतीपाताः कन्येन्दुवृषभास्कराः॥८॥
दशयोगः समाख्यातो महापुण्यतमो द्विज। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरः स्मृतः॥९॥

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन ही नदियों में श्रेष्ठ जाह्नवी स्वर्ग से धरा पर आईं थीं। अतः इस तिथि को स्वर्गवत् पुण्यदा कहा गया है। ज्येष्ठ मासीय शुक्लपक्ष हस्तनक्षत्र, बुधवार को जब दशमी पड़े तथा गरकरण, आनन्दयोग, व्यतीपात, कन्याराशि के चन्द्रमा, वृषस्थ सूर्य—ये दस योग एक साथ हों, तब यह दशमी तिथि महापुण्यप्रद कही गयी है। यह दशविध पापहारी है। अतः इसे दशहरा कहा गया है।।७-९।।

अस्यां यो जाह्नवी प्राप्य स्नाति सम्प्रीतमानसः।
विधिना जाह्नवीतोये स याति हरिमन्दिरम्॥१०॥
आषाढशुक्लदशमी पुण्या मन्वादिकैः स्मृता।
तस्यां स्नानं जपो दानं होमो वा स्वर्गतिप्रदा॥११॥
श्रावणे शुक्लदशमी सर्वाशापरिपूर्तिदा। अस्यां शिवार्चनं शस्तं गन्धाद्यैरुपचारकैः॥१२॥
तत्रोपवासो नक्तं वा द्विजानां भोजनं जपः।
हेम्नो दानं च धेन्वादेः सर्वपापप्रणाशनम्॥१३॥

इस योग में मुदित मन से जो सविधि गंगा में स्नान करता है, उसे वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है। आषाढ़ शुक्ला दशमी को मन्वादि कहा है। उस दिन स्नान, जप, दान, होम स्वर्गगतिप्रद होते हैं। श्रावण शुक्लादशमी सर्वाशापरिपूरक है। इस तिथि पर गन्धादि उपचारों से शिवार्चन श्रेयप्रद है। इस दिन उपवासी रहे अथवा नक्तभोजी (केवल एक बार रात में भोजन करे) तदनन्तर जप करे। तत्पश्चात् द्विजगण को भोजन कराकर स्वर्ण तथा गौ आदि का दान करे। यह सर्वपापनशाक व्रत है।।१०-१३।।

अथो नभस्यशुक्लायां दशम्यां द्विजसत्तम। व्रतं दशावताराख्यं तत्र स्नानं जलाशये॥१४॥
कृत्वा सन्ध्यादिनियमं देवर्षिपितृतर्पणम्। ततो दशावताराणि समभ्यर्चेत्समाहितः॥१५॥
मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम्। रामं रामं च कृष्णं बौद्धं कल्किनमेव च॥१६॥
दशमूर्तीस्तु सौवर्णीः पूजयित्वा विधानतः।
दशभ्यो विप्रवर्येभ्यो दद्यात्सत्कृत्य नारद॥१७॥

हे द्विजप्रवर! श्रावण शुक्ला दशमी को दशावतार कहा गया है। उस दिन जलाशय में स्नान करके सन्ध्यादि नियम पालनोपरान्त पितृ-देवता-ऋषि तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर समाहित चित्त से भगवान् के दसों अवतारों की अर्चना करे। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रमवामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि की दस स्वर्णमूर्त्ति बनवाये तथा इनकी सविधि पूजा सम्पन्न करे। तत्पश्चात् हे नारद! ब्राह्मणों का सत्कार करके दस उत्तम ब्राह्मणों को एक-एक प्रतिमा दान करे।।१४-१७।।

उपवासं चैकभक्तं कृत्वा सम्भोज्य वाडवान्।
विसृज्य पश्चाद्भुञ्जीत स्वयं स्वेष्टैः समाहितः॥१८॥
भक्त्या कृत्वा व्रतं त्वेद्भुक्त्वा भोगानिहोत्तमान्।
विमानेन व्रजेदन्ते विष्णुलोकं सनातनम्॥१९॥

उस तिथि पर उपवास करे अथवा केवल एक ही समय भोजन से निर्वाह करे। प्रतिमा दानोपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। सर्वान्त में व्रती व्यक्ति स्वयं समाहित हो भोजन ग्रहण करे। भक्तिपूर्वक यह व्रत करने वाला इस लोक में उत्तम भोग भोगकर अन्त में विमान पर आसीन होकर सनातन विष्णुलोक जाता है।।१८-१९।।

आश्विने शुक्लदशमी विजया सा प्रकीर्तिता। चतुर्गोमयपिण्डानि प्रातर्न्यस्य गृहाङ्गणे॥२०॥

चक्रबालस्वरूपेण तन्मध्ये रामलक्ष्मणौ। तथा भरतशत्रुघ्नौ पूजयेच्चतुरोऽपि हि॥२१॥

सपिधानासु पात्रीषु गोमयीषु चतसृषु।
क्लिन्नं धान्य सरौप्यं तु धृत्वा धौतांशुकावृतम्॥२२॥

पितृमातृभ्रातृपुत्रजायाभृत्य समन्वितम्। सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैश्च विधानतः॥२३॥

नमस्कृत्याथ भुञ्जीत द्विजान्सम्भोज्य पूजितान्।
एवं कृत्वा विधानं तु नरो वर्षे सुखान्वितः॥२४॥

धनधान्यसमृद्धश्च निश्चितं जायते द्विज। अथापराह्णसमये नवम्यां सनिमन्त्रिताम्॥२५॥

पूर्वं दिक्षु शमीं विप्र गत्वा तन्मूलजां मृदम्।
गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य गीतवादित्रनिःस्वनैः॥२६॥
सम्पूज्य तां विधानेन सञ्जीकृत्य स्वकं बलम्।
निर्गत्य पूर्वद्वारेण ग्रामाद्बहिरनाकुलः॥२७॥

आश्विन शुक्ला दशमी तिथि को विजया कहते हैं। प्रातः अपने गृह के आंगन में गौ के गोमय के चार पिण्ड मण्डलाकार रखकर उसमें राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न की भावना द्वारा पूजा करे। उस गोबर के पिण्डों पर जलसिक्त धान्य तथा रजत रखकर स्वच्छ वस्त्र से ढांके। तदनन्तर पिता, माता, भाई, पुत्र, पत्नी, भृत्य सहित सविधि पूजा करे। पूजा गन्ध-पुष्प-नैवेद्यादि से करके प्रणामोपरान्त द्विजों को आदर के साथ भोजन कराये। इस विधान को सम्पन्न करने वाला व्यक्ति एक वर्ष सुखान्वित रहता है। हे द्विज! वह धन-धान्य समृद्धि लाभ करता है। उसी दिन मध्याह्नकाल में (१ दिन पूर्व) नवमी तिथि पर निमन्त्रित पूर्व दिशा में स्थित शमी वृक्ष के नीचे की मिट्टी लेकर अपने गृह आये। उस मृत्तिका से बनी प्रतिमा को अपने घर में गीत-वाद्यादि ध्वनि से पूजित करके वाहन पर रखे। पूर्वद्वार से बाहर जाकर ग्राम के बाहर अनाकुल मन से यात्रा करे।।२०-२७।।

ततः शत्रुप्रतिकृतिं निर्मितां पत्रकादिभिः। मनसा कल्पितां वापि स्वर्णपुङ्खशरेण वै॥२८॥

विध्येदिति भृशं प्रीतः प्राप्नुयास्त्वगृहं निशि।
एवं कृतविधिर्वापि गच्छेद्वा शत्रुनिग्रहे॥२९॥

तदनन्तर शत्रु की प्रतिकृति को पत्र पर बनाये अथवा मन में कल्पित करे। उसे स्वर्ण बाणों से बारम्बार विद्ध करके रात्रि में प्रसन्नता से गृह आये।। इस प्रकार उसके शत्रु का निग्रह हो जायेगा।।२८-२९।।

एषैवं दशमी विप्र विधिनाऽऽचरिता सदा।
धनं जयं सुतान् गाश्च गजाश्वं वाप्यजाविकम्॥३०॥

दद्यादिह शरीरान्ते स्वर्गतिं चापि नारद। दशम्यां कार्तिके शुक्ले सार्वभौमव्रतं चरेत्॥३१॥

इस प्रकार से जो दशमी का व्रत सविधि करता है, वह धन, विजय, पुत्र, गौ, अश्व, हस्ति, बकरी तथा भेड़ों से सम्पन्न रहकर देहान्तोपरान्त स्वर्गगामी होता है। हे नारद! कार्तिक शुक्ला दशमी की तिथि पर सार्वभौम व्रत करना चाहिये।।३०-३१।।

कृतोपवासो वैकाशी निशीथेऽपूपकादिभिः। दशदिक्षु बलिं दद्याद् गृहाद्वापि पुराद्बहिः॥३२॥

मण्डलेऽष्टदले क्लृप्ते गोविड्लिप्ताधरातले। मन्त्रैरेभिर्द्विजश्रेष्ठ गणेशादिकृतार्चनः॥३३॥
योमे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। तमिन्द्रो देवराजोऽद्य नाशयत्वखिलेष्टदः॥३४॥
यो मे बह्निगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। तेजोराजोऽथ वह्निस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः॥३५॥

हे नारद! उस दिन व्यक्ति उपवासी रहे अथवा एक ही समय भोजन करे। रात्रि में दसों दिशाओं में मालपूआ आदि की बलि गृह किंवा नगर के बाहर अर्पित करे। हे द्विजश्रेष्ठ! मण्डप की भूमि को गोमय से लिप्त करके वहां अष्टदल कमल लिखना चाहिये। उस पर गणेशादि की पूजा इस मन्त्र से करे। यथा—मैंने पूर्वदिक् में जो पाप किया, उसे सर्वकामप्रद इन्द्र नष्ट करे, अग्निकोण में कृत पाप अग्निदेव नष्ट करे, जो सर्वकाम प्रदायक तेजराशि हैं।।३२-३५।।

यो मे दक्षगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। तं यमः प्रेतराजो वै नाशयत्वखिलेष्टदः॥३६॥
यो मे नैर्ऋतिगः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। रक्षोराजो नैर्ऋतिस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः॥३७॥
यो मे पश्चिमगः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। यादःपतिस्तं वरुणा नाशयत्वखिलेष्टदः॥३८॥

दक्षिण दिशा में मैंने जो वर्जित जुगुप्सित पातक किये हैं, वे सब सवेष्टप्रद यमराज नष्ट करे। मैंने नैर्ऋत्य कोण में जो पापकर्म किया हो, उसे सर्वेष्टप्रद राक्षसराज नैर्ऋति नष्ट करे। मैंने पश्चिम में जो अनेक पापकर्म किया है, उसे जलपति वरुण नष्ट करे, जो सर्व इष्टप्रद हैं।।३६-३८।।

यो मे वायुगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। वायुस्तं मरुतां राजो नाशयत्वखिलेष्टदः॥३९॥
यो मे सौम्यगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। सोमस्तमृक्षयक्षेशो नाशयत्वखिलेष्टदः॥४०॥

मैंने वायुकोण में जो पापकर्म किये हैं, वह सब सर्वकामप्रद मरुत् के स्वामी वायुदेव नष्ट करे। मैंने सौम्यदिक् में जो पाप किया हो, उसे नक्षत्र तथा यक्षों के राजा सोम नष्ट करें, जो सर्व कामप्रद हैं।।३९-४०।।

यो मे ईशगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा। ईशानो भूतनाथस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः॥४१॥

यो मे ऊद्ध्र्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा।
ब्रह्मा प्रजापतीशस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः॥४२॥
यो मेऽधःसंस्थितः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा।
अनन्तो नागराजस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः॥४३॥

इत्येवं दिक्षुदशसु बलिं दत्त्वा समाहितः। क्षेत्रपालाय तद्बाह्ये क्षिपेद्बलिमतन्द्रितः॥४४॥

एवं कृतविधिः शेषं निशायां निनयेत्सुधीः।
गीतैः सुमङ्गलप्रायैः स्तवपाठैर्जपादिभिः॥४५॥

मैंने ईशान दिशा में जो कुछ पातक किया है, उसे सर्वइष्ट प्रदायक भूतनाथ नष्ट करे। मैंने ऊर्ध्वदिक् में जो पाप किया हो, उसे सर्वइष्टप्रद प्रजापति ब्रह्मा नष्ट करें। मैंने अधः दिक् में जो पातक किया हो, उसे सर्वइष्टप्रदायक नागराज अनन्त नष्ट करें। इस प्रकार समाहित होकर दशो दिक् में इन मन्त्र से बलि देकर, मण्डप के वाह्य में आलस्यरहित होकर क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करे। सुधी व्रती व्यक्ति उस रात का जागरण मंगलगीत गायन, स्तुतिपाठ तथा जपादि से व्यतीत करे।।४१-४५।।

प्रातःस्नात्वा समभ्यर्च्य लोकपालान् द्विजोत्तमान्।
द्वादशाभ्यर्च्य सम्भोज्य शक्तितो दक्षिणां ददेत्॥४६॥
इत्थं कृत्वा व्रतं विप्र भोगाभुन्क्त्वैहिकाञ्छुभान्।
युगं स्वर्गसुखं भुक्त्वा सार्वभौमौ नृपो भवेत्॥४७॥

हे द्विजोत्तम! प्रातः स्नानोपरान्त व्रती साधक लोकपालों की पूजा करे। तदनन्तर बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणगण को सादर भोजन अर्पित करके यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। ऐसा विधानतः व्रत करने वाला व्यक्ति इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर एक युग तक स्वर्ग सुख भोगकर अन्त में पृथिवी पर चक्रवर्त्ती राजा होकर जन्म लेता है।।४६-४७।।

मार्गशुक्लदशम्यां तु चरेदारोग्यकं व्रतम्। गन्धाद्यैरर्चयेद्विप्रान् दश तच्चरणोदकम्॥४८॥
पीत्वाऽथ दक्षिणां दत्त्वा विसृजेदेकभोजनः।
एतत्कृत्वा व्रतं विप्र ह्यारोग्यं प्राप्य भूतले॥४९॥
धर्मराजप्रसादेन मोदते दिवि देववत्। पौषे दशम्यां शुक्लायां विश्वेदेवान् समर्चयेत्॥५०॥
क्रतुं दक्षं वसून्सत्यं कालं कामं मुनिं गुरुम्।
विप्रं रामं च दशधा केशवस्तान्समास्थितः॥५१॥
स्वापयित्वा दर्भमयानासनेषु च संस्थितान्। गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैश्चापि नारद॥५२॥
प्रत्येकं दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत्।
दक्षिणां तां द्विजाग्र्येभ्यो गुरवे वा समर्पयेत्॥५३॥
एवं कृतविधिश्चैकभक्तो भोगी व्रती भवेत्।
लोकद्वयस्य विप्रर्थे नात्र कार्या विचारणा॥५४॥

अग्रहायण शुक्ल दशमी तिथि पर आरोग्य व्रत करना चाहिये। तब गन्धादि उपचार से दस ब्राह्मणगण की पूजा करके चरणोदक पान करे। उनको दक्षिणा देकर विसर्जित करे। तब एक समय भोजन करे। इस व्रताचरण को करके व्यक्ति भूतल पर निरोग रहता है। वह धर्मराज की कृपा से स्वर्ग में देवता की तरह आनन्दोपभोग करता है। पौष शुक्लदशमी के दिन विश्वेदेवों की अर्चना करे। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, मुनि, गुरु, ब्राह्मण, राम तथा केशव की कुश मूर्त्ति बनाये। उनको आसन पर रखकर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य से उनकी पूजा करनी चाहिये। हे नारद! तदनन्तर प्रत्येक के लिये दक्षिणा देकर उनको प्रणाम करके विसर्जित करे। वह दक्षिणा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अथवा गुरु को देना चाहिये। जो व्यक्ति एकाहारी रहकर यह व्रत इस विधान से करता है, वह इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखभोग को भोगता है। इसमें अन्यथा विचार न करे।।४८-५४।।

माघशुक्लदशम्यां तु सोपवासो जितेन्द्रियः।
देवानङ्गिरसो नाम दशं सम्यक्समर्चयेत्॥५५॥
कृत्वा स्वर्णमयान्विप्र गन्धाद्यैरुपचारकैः। आत्मा ह्यायुर्मनो दक्षो मदः प्राणस्तथैव च॥५६॥

बर्हिष्मांश्च गविष्ठश्च दत्तः सत्यश्च ते दश। दश विप्रान्भोजयित्वा मधुरान्नेन नारद॥५७॥

माघ शुक्ल दशमी के दिन जितेन्द्रिय तथा उपवासी रहना चाहिये। उस दिन दस आंगीरस नामक देवगण की सम्यक् अर्चना करके उनकी स्वर्णमयी प्रतिमा की गन्धादि उपचार से पूजा करके दस विप्रों को भोजन कराकर ये प्रतिमा उन ब्राह्मणों को १-१ प्रदान करना चाहिये। इससे स्वर्गलाभ होता है। ये १० आंगीरस देवगण ये हैं। यथा—आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, बर्हिष्मान्, गविठ, दत्त तथा सत्य। हे नारद! इन दस ब्राह्मणगण को मधुरान्न भक्षण कराये।।५५-५७।।

मूर्तीस्तेभ्यः प्रदद्यात्ताः स्वर्गलोकाप्तये क्रमात्।
अन्त्यशुक्लदशम्यां तु चतुर्दश यमान्यजेत्॥५८॥

यमश्च धर्मराजश्च मृत्युश्चैवान्तकस्तथा। वैवस्वतश्च कालश्च सर्वभूतक्षयस्तथा॥५९॥

औदुम्बरश्च दध्नश्च द्वौ नीलपरमेष्ठिनौ। वृकोदरश्च चित्रश्च चित्रगुप्तश्चतुर्दश॥६०॥

गन्धाद्यैरुपचारैश्च समभ्यर्च्याथ तर्पयेत्। तिलाम्बुमिश्राञ्जलिभिर्दर्भैः प्रत्येकशस्त्रिभिः॥६१॥

ततश्च दद्यात्सूर्यार्घं ताम्रपात्रेण नारद। रक्तचन्दनसम्मिश्रतिलाक्षतयवाम्बुभिः॥६२॥

एहि सूर्यसहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भक्त्या मामनुकम्पय॥६३॥

इति मन्त्रेण दत्त्वाऽर्घ्यं विप्रान्भोज्य चतुर्दश।
रौप्यां सुदक्षिणां दत्त्वा विसृज्याश्नीत च स्वयम्॥६४॥

इन मूर्त्ति का दान करने से स्वर्गलाभ होता है। फाल्गुन शुक्ला दशमी को चतुर्दश यम पूजा करे। चतुर्दश यम ये हैं—यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्त। गन्धादि उपचारों से पूजा करे तथा कुश-तिल-जल से तर्पण करे। तदनन्तर ताम्रपात्र में रक्त चन्दन, तिल, अक्षत तथा जल युक्त अर्घ्य बनाये तथा "हे सूर्य सहस्रांशु, तेजराशि, जगत्पति! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त अर्घ्य को ग्रहण करिये तथा मुझ पर कृपा करिये।" इस अर्घ्य को प्रदान करके १४ ब्राह्मणों को भोजनोपरान्त (भोजन कराये) तथा स्वर्ण एवं उत्तम दक्षिणा देकर विदा करके स्वयं भोजन करे।।५८-६४।।

एवं कृतविधिर्विप्र धर्मराजप्रसादतः। भुक्त्वा भोगांश्च पुत्रार्थनैहिकान्देवदुर्लभान्॥६५॥
विमानवरमास्थाय देहान्ते विष्णुलोकभाक्॥६६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितदशमीव्रतनिरूपणं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥११९॥

हे विप्र! इस विधान से जो व्रत करेगा, वह इहलोक में देवदुर्लभ उत्तम भोग भोगकर देहान्त होने पर उत्तम विमानारूढ़ होकर विष्णुलोक जाता है।।६५-६६।।

।।११९वां अध्याय समाप्त।।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय एकादशी व्रत वर्णन

सनातन उवाच

एकादश्यां तु दलयोर्निराहारः समाहितः। नानापुष्पैर्मुने कृत्वा विचित्रं मण्डपं शुभम्॥१॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन सोपवासो जितेन्द्रियः।
सम्पूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः॥२॥
उपचारैर्बहुविधैर्जपैर्होमैः प्रदक्षिणैः। स्तोत्रपाठेर्बहुविधैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैर्मनोहरैः। रात्रौ जागरणं कृत्वा याति विष्णोः परं पदम्॥४॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे मुनिवर नारद! उभय पक्षीय एकादशी तिथि पर समाहित तथा निराहार रहें। नाना पुष्पों से शुभ विचित्र मण्डप बनाये। सम्यक् विधानानुसार स्नान करके उपवासी तथा इन्द्रियजित् रहे। सविधि विष्णु पूजा श्रद्धा पूर्वक समाहित मन से करे। नानाविध जप, होम, प्रदक्षिणादि उपचारों से स्तोत्र पाठ, अनेक गीत-गायन तथा मनोहर वाद्य वादन से उत्सव करे। दण्डवत् प्रणाम करे तथा उत्तम मनोहर जय-जयकार करे। रात्रि में जागरण करे। इस प्रकार व्रत करने वाला विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है।।१-४।।

चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां सोपवासो नरोत्तमः। कृत्वा च नियमान्सर्वान्वक्ष्यमाणान्दिनत्रये॥५॥
द्वादश्यामर्चयेद्भक्त्या वासुदेवं सनातनम्।
उपचारैः षोडशभिस्ततः सम्भोज्य बान्धवान्॥६॥
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो विसृज्याश्नीत च स्वयम्।
इयं तु कामदा नाम सर्वपातकनाशिनी॥७॥

वह व्रतीप्रवर चैत्रशुक्ल एकादशी को उपवासी रहे। यहां कहे गये नियम का तीन दिन पालन करे। द्वादशी के दिन सश्रद्ध भाव से सनातन वासुदेव की अर्चना षोडश उपचार से करे। तदनन्तर विप्रगण को भोजन तथा दक्षिणा देकर विदा करे। तब स्वयं भोजन करे। यह सर्वपातक नाशिनी **कामदा एकादशी** है।।५-७।।

भुक्तिमुक्तिप्रदा विप्र भक्त्या सम्यगुपोषिता।
वैशाखकृष्णैकादश्यां समुपोष्य विधानतः॥८॥
वरूथिनीं परदिने पूजयेन्मधुसूदनम्। स्वर्णान्नकन्याधेनूनां दानमत्र प्रशस्यते॥९॥
वरूथिनीव्रतं कृत्वा नरो नियमतत्परः। सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं लभते पदम्॥१०॥

इस कामदा एकादशी के दिन सम्यक् उपवास करने से यह मुक्ति तथा भोग दोनों प्रदान करती है। वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन सविधि उपवास रहें। यह **वरूथिनी एकादशी** है। इसमें अगले दिन मधुसूदन पूजन करे। साथ ही स्वर्ण, अन्न, कन्या, धेनुदान भी श्रेष्ठ कहा गया है। जो नियमतत्पर होकर **वरूथिनी एकादशी** व्रत करता है, वह सर्वपाप निवृत्त होकर वैष्णव पदलाभ करता है।।८-१०।।

वैशाखशुक्लैकादश्यां समुपोष्य च मोहिनीम्।
स्नात्वा परेऽह्नि सम्पूज्य गन्धाद्यैः पुरुषोत्तमम्॥११॥
सम्भोज्य विप्रान्मुच्येत पातकेभ्यो न संशयः।
ज्येष्ठस्य कृष्णैकादश्यां समुपोष्य परां नृप॥१२॥
दादश्यां नैत्यिकं कृत्वा समभ्यर्च्य त्रिविक्रमम्।
ततो द्विजाग्र्यान्सम्भोज्य दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्॥१३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।
ज्येष्ठस्य शुक्लैकादश्यां निर्जलां समुपोष्य तु॥१४॥

वैशाख शुक्ल एकादशी को उपवासी रहे। यही **मोहिनी एकादशी** है। अगले दिन स्नान करके गद्यादि उपचार से पुरुषोत्तम पूजन तथा ब्राह्मण भोजन कराये। हे विप्र! यह व्रती इस प्रकार पातकों से निःसंदिग्ध रूप से मुक्त हो जाता है। ज्येष्ठ मासीय कृष्णा एकादशी को व्यक्ति उपवासी रहे। इसे **परा एकादशी** कहते हैं। इस तिथि पर उपवासी रहकर द्वादशी के दिन नित्यकर्म सम्पन्न करके वामन त्रिविक्रमदेव की पूजा करे तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये। उनको दक्षिणा देने से मानव सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक गमन करता है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को उपवासी रहे। इसका नाम **निर्जला एकादशी** है।।११-१४।।

उदयादुदयं यावद्भास्करस्य द्विजोत्तम। प्रभाते कृतनित्यस्तु द्वादश्यामुपचारकैः॥१५॥
हृषीकेशं समभ्यर्च्य विप्रान् सम्भोज्य भक्तितः।
चतुर्विंशैकादशीनां फलं यत्तत्समाप्नुयात्॥१६॥

हे द्विजोत्तम! अगले दिन जब भास्कर उदित हो रहे हों, तब प्रभात का नित्यकृत्य सम्पन्न करे और उस द्वादशी तिथि पर सर्वोपचार से हृषीकेश की पूजा करने के उपरान्त ब्राह्मण भोजन भक्तिपूर्वक कराये। वह व्रती इस अनुष्ठान से २४ एकादशी व्रतफल लाभ करता है।।१५-१६।।

आषाढकृष्णैकादश्यां योगिनीं समुपोष्य वै।
नारायणं समभ्यर्च्य द्वादश्यां कृतनित्यकः॥१७॥
ततः सम्भोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्।
सर्वदानफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे॥१८॥

आषाढ़ कृष्णा एकादशी को उपवास करे। इसे **योगिनी एकादशी** कहते हैं। इस दिन उपवासी रहकर द्वादशी के दिन नित्य कर्मोपरान्त नारायणार्चन करके ब्राह्मण भोजन कराने के पश्चात् उनको दक्षिणा प्रदान करे। जो व्यक्ति ऐसा व्रताचरण करता है, उसे सभी दानफल की प्राप्ति होती है तथा वह विष्णुधाम जाकर मुदित होता है।।१७-१८।।

आषाढशुक्लैकादश्यां यद्विधानं शृणुष्व तत्।
उपोष्य तस्मिन् दिवसे विधिवन्मण्डपे शुभे॥१९॥
स्थापयेत्प्रतिमां विष्णोः शङ्खचक्रगदाम्बुजैः। लसच्चतुर्भुजामग्र्यां काञ्चनीं वाथ राजतीम्॥२०॥

पीताम्बरधरां शुभे पर्य्यङ्के स्वास्तृते द्विज।
ततः पञ्चामृतैः स्नाप्य मन्त्रैः शुद्धजलेन च॥२१॥
पौरुषेणैव सूक्तेन ह्युपचारान् प्रकल्पयेत्।
नीराजनान्तान्पाद्यादींस्ततः सम्प्रार्थयेद्धरिम्॥२२॥

आषाढ़ शुक्ला एकादशी का विधान सुनिये। उस दिन उपवासी रहकर पवित्र मण्डप में शंख, चक्र, गदा, कमल समन्वित चतुर्भुज विष्णु की स्वर्णमयी किंवा रजतमयी प्रतिमा निर्मल आसन पर रखे यह पिताम्बरधारी, शुभ पर्यंक पर स्थित हो। तदनन्तर पुरुषसूक्त का मन्त्र पढ़ते हुये पंचामृत स्नानोपरान्त शुद्ध जल से स्नान कराये। तदनन्तर आचमनीय से लगाकर नीराजन पर्यन्त उपचार से पूजा तथा पाद्यादि प्रदान करने के पश्चात् हरि से प्रार्थना करना चाहिये।।१९-२२।।

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुद्धं च जगत्सर्वं चराचरम्॥२३॥

हे जगन्नाथ! आपके सुप्त होते ही जगत् सुप्त हो जाता है। आपके प्रबुद्ध होते ही चराचर जगत् जाग उठता है।।२३।।

इति सम्प्रार्थ्य देवाग्रे चातुर्मास्यप्रचोदितान्।
नियमांस्तु यथाशक्ति गृह्णीयाद्भक्तिमान्नरः॥२४॥
ततः प्रभाते द्वादश्यां समर्चेच्छेषशायिनम्।
उपचारैः षोडशभिस्ततः सम्भोज्य वाडवान्॥२५॥
प्रतोष्य दक्षिणाभिश्च स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।
ततःप्रभृति विप्रेन्द्र गन्धाद्यैः प्रत्यहं यजेत्॥२६॥
कृत्वैवं विधिना विप्र देवस्य शयनीव्रतम्।
भुक्तिमुक्तियुतो मर्त्यो भवेद्विष्णोः प्रसादतः॥२७॥

इस प्रार्थना के अनन्तर व्रती व्यक्ति भगवान् के समक्ष भक्तिमान् होकर चातुर्मास्य नियम पालनार्थ प्रतिज्ञा करे। तदनन्तर अगले दिन द्वादशी तिथि पर शेषशायीप्रभु का षोडशोपचार पूजन करके ब्राह्मण भोजन कराये। ब्राह्मणों को दक्षिणा से सन्तुष्ट करके स्वयं मौनी रहकर पूजा करे। तब से नित्य गंधादि से भगवत्पूजन करना होगा, जो एवंविध **हरिशयन एकादशी** व्रत करता है, उसे हरि की कृपा से भोग तथा मोक्षलाभ होता है।।२४-२७।।

श्रावणे कृष्णपक्षे तु एकादश्यां द्विजोत्तम। कामिकां समुपोष्यैव नियमेन नरोत्तम॥२८॥

द्वादश्यां कृतनित्यस्तु श्रीधरं पूंजयेद्धरिम्।
उपचारैः षोडशभिस्ततः सम्भोज्य वै द्विजान्॥२९॥
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो विसृज्याश्नीत बान्धवैः।
एवं यः कुरुते विप्रकामिकाव्रतमुत्तमम्॥३०॥

स सर्वकामाँल्लब्ध्वेह याति विष्णोः परं पदम्।
एकादश्यां नभःशुक्ले पवित्रां समुपोष्य वै॥३१॥
द्वादश्यां नियतो भूत्वा पूजयेच्च जनार्दनम्।
उपचारैः षोडशभिस्ततः सम्भोज्य वाडवान्॥३२॥
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यः पुत्रं प्राप्येह सद्गुणम्।
याति विष्णोः पदं साक्षात्सर्वदेवनमस्कृतः॥३३॥

हे द्विजोत्तम! श्रवण कृष्णपक्ष की एकादशी **कामिका एकादशी** कही जाती है। इस दिन वह श्रेष्ठ व्रती मनुष्य उपवासी रहे। द्वादशी के दिन नित्यक्रिया सम्पन्न करके श्रीधर हरि का षोडशोपचार पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन कराये। उनको दक्षिणा प्रदान करके विदा करे, तब बान्धवों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार हे विप्र! जो अत्युत्तम कामिक व्रताचरण करता है, वह सर्वकामलाभ करके अन्त में विष्णुलोक जाता है। श्रावण शुक्ला एकादशी **पवित्रा एकादशी** है। इस दिन उपवासी रहकर द्वादशी के दिन नित्यकर्म सम्पन्न करके जनार्दन की षोडशोपचार पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मण भोजन कराये। उनको दक्षिणा देकर विदा करे। ऐसा व्रताचारी गुणीपुत्र को प्राप्त करता है तथा अन्त में साक्षात् देवनमस्कृत होकर विष्णुपद लाभ करता है।।२८-३३।।

नभस्यकृष्णकादश्यामजाख्यां समुपोष्य वै। अर्चेदुपेन्द्रं द्वादश्यामुपचारैः पृथग्विधैः॥३४॥
विप्रान्सम्भोज्य मिष्टान्नैर्विसृजेत्प्राप्तदक्षिणान्।
एवं कृतव्रतो विप्र भक्त्याऽजायाः समाहितः॥३५॥
भुक्त्वेह भोगानखिलान्यात्यन्ते वैष्णवं क्षयम्।
नभस्यशुक्लैकादश्यां पद्माख्यां समुपोष्य वै॥३६॥

भाद्रपद कृष्णपक्षीय एकादशी को **अजा एकादशी** कहते हैं। इस दिन उपवासी रहे तथा द्वादशी को विभिन्न उपचारों से हरि की पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन कराये तथा दक्षिणा देकर विदा करे। ऐसा व्रती व्यक्ति अजाव्रत के प्रभाव से समस्त भोगों को भोगकर अन्त में वैष्णवलोक जाता है। भाद्रपद शुक्लपक्षीय एकादशी को **पद्मा एकादशी** कहते हैं। इसमें उपवासी रहे।।३४-३६।।

कृत्वा नित्यार्चनं तत्र कटिदानमथाचरेत्।
पूर्वं संस्थापितायास्तु प्रतिमाया द्विजोत्तम॥३७॥
समुत्सवविधानेन नीत्वा तां सलिलाशये। कृताम्बुस्पर्शनां तत्र सम्प्रपूज्य विधानतः॥३८॥
आनीय मण्डपे तस्मिन् वामपार्श्वेन शाययेत्।
ततः प्रभाते द्वादश्यां गन्धाद्यैरर्च्य वामनम्॥३९॥
सम्भोज्य वाडवान्दत्त्वा दक्षिणां च विसर्जयेत्।
एवं यः कुरुते विप्र पद्माव्रतमनुत्तमम्॥४०॥
भुक्तिं प्राप्येह मुक्तिं तु लभतेऽन्ते प्रपञ्चतः। इषस्य कृष्णैकादश्यामिन्दिरां समुपोष्य वै॥४१॥

उस दिन नित्यार्चन के उपरान्त मण्डप बनाये। पूर्व निर्मित प्रतिभा को उत्सव सहित जलाशय के जल से मार्जित करके सविधि पूजनोपरान्त मण्डप में ले जाकर उसे वाम करवट शयन कराये। अगले दिन द्वादशी तिथि पर गन्धादि उपचार के वामन देव की पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करने के उपरान्त दक्षिणा के साथ विदा करे। हे विप्र! यही अत्युत्तम पद्मा व्रत है। यह करने वाला इहलोक के भोगों को भोगकर अन्त में जगत् जाल से मुक्त हो जाता है। आश्विन कृष्णा एकादशी का नाम **इन्दिरा एकादशी** है। इस दिन उपवास करना चाहिये।।३७-४१।।

शालग्रामशिलाग्रे तु मध्याह्ने श्राद्धमाचरेत्। विष्णोः प्रीतिकरं विप्र ततः प्रातर्हरेर्दिने।।४२।।

पद्मनाभं समभ्यर्च्य भूदेवान्भोजयेत्सुधीः।
विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा ताँस्ततोऽश्नीत च स्वयम्।।४३।।

इस तिथि पर मध्याह्न में शालग्राम शिला के निकट श्राद्ध करने से भगवान् विष्णु को प्रसन्नता मिलती है। अगले दिन द्वादशी को भगवान् पद्मनाभ की पूजा करके सुधी व्रताचारी व्यक्ति ब्राह्मणों को भोजनोपरान्त दक्षिणा देकर विदा करे। तदनन्तर स्वयं भोजन करे।।४२-४३।।

एवं कृतव्रतो मर्त्यो भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।
पितृणां कोटिमुद्धृत्य यात्यन्ते वैष्णवं गृहम्।।४४।।
एकादश्यामिषे शुक्ले विप्र पाशाङ्कुशाह्वयाम्।
उपोष्य विधिवद्विष्णोर्दिने विष्णु समर्चयेत्।।४५।।
ततःसम्भोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्।
भक्त्या प्रणम्य विसृजेदश्नीयाच्च स्वयं ततः।।४६।।
एवं यः कुरुते भक्त्या नरः पाशाङ्कुशाव्रतम्।
स भुक्त्वेह वरान्भोगान्याति विष्णोः सलोकताम्।।४७।।

इस प्रकार से व्रत करके व्रती मानव पृथिवी पर इच्छित भोग भोगकर अपने कोटि-कोटि पितरों का उद्धार करके विष्णुलोक जाता है। हे विप्र! आश्विन शुक्ला एकादशी को **पाशांकुशा एकादशी** कहते हैं। उस दिन उपवासी रहे। तब अगले दिन द्वादशी तिथि पर विष्णु पूजन करे। उत्तम ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करके उनको दक्षिणा देने के उपरान्त भक्तिभाव से प्रणामोपरान्त विदा करके स्वयं भोजन करे। इस प्रकार जो मनुष्य पाशांकुशा व्रताचरण करता है, वह इस मर्त्यालोक में उत्तम भोग भोगने के उपरान्त विष्णु सालोक्य लाभ करता है।।४४-४७।।

कार्तिके कृष्णपक्षे तु एकादश्यां द्विजोत्तम।
रमामुपोष्य विधिवद्द्वादश्यां प्रातरर्चयेत्।।४८।।
केशवं केशिहन्तारं देवदेवं सनातनम्।
भोजयेच्च ततो विप्रान्विसृजेल्लब्धदक्षिणान्।।४९।।

एवं कृतव्रतो विप्र भोगान्भुक्त्वेह वाञ्छितान्। व्योमयानेन सान्निध्यं लभते च रमापतेः।।५०।।

हे द्विजप्रवर! कार्त्तिक कृष्ण एकादशी ही **रमा एकादशी** है। तब सविधि उपवासी रहकर अगले दिन द्वादशी को केशी संहारक देवदेव सनातन की सविधि पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन-दक्षिणा प्रदान करके विदा करे। ऐसा व्रत करने वाला वांछित भोगों को भोगकर अन्त में विमानारूढ़ होकर रमापति का सान्निध्य लाभ करता है।।४८-५०।।

ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां समुपोष्य प्रबोधिनीम्।
केशवं बोधयेद्रात्रौ सुप्तं गीतादिमङ्गलैः।।५१।।
ऋग्यजुःसमामन्त्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि। द्राक्षेक्षुदाडिमैश्चान्यै रम्भाशृङ्गाटकादिभिः।।५२।।
समर्पणैस्ततो रात्र्यां व्यतीतायां परेऽहनि।
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा गदादामोदरं यजेत्।।५३।।
उपचारैः षोडशभिः पौरुषेणापि सूक्ततः।
सम्भोज्य विप्रान्वसृजेद्दक्षिणाभिः प्रतोषितान्।।५४।।
ततस्तां प्रतिमां हैमीं सधेनुं गुरवेऽर्पयेत्। एवं यः कुरुते भक्त्या प्रबोधिनीव्रतमादृतः।।५५।।
स भुक्त्वेह वरान्भोगान्वैष्णवं लभते पदम्।
मार्गस्य कृष्णैकादश्यामुत्पन्नां समुपोष्य वै।।५६।।

कार्त्तिक शुक्ला एकादशी को **प्रबोधिनी एकादशी** कहा गया है। इस तिथि पर उपवासी रहकर रात्रिकाल में मंगलगीत, संगीत, ऋक्-यजुः-साममन्त्रोच्चार से तथा नाना वाद्य-वादन से केशव को जाग्रत करे। उनको दाख-ईंख-अनार-केला-सिंघाड़ा अर्पित करके रात्रि जागरण करे। अगले दिन द्वादशी तिथि पर नित्य क्रिया सम्पन्न करके पुरुषसूक्त वाचन करते हुये नाना उपचार से दामोदर की षोडशोपचार पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा से सन्तुष्ट करके दामोदर की स्वर्णप्रतिमा तथा गौ गुरु को अर्पित करे। जो यह प्रबोधिनी व्रत आदर पूर्वक करता है, वह इस लोक में उत्तम भोग भोगने के अनन्तर वैष्णव परमपद लाभ करता है। अग्रहायण कृष्णा एकादशी **उत्पन्ना एकादशी** कही जाती है।।५१-५६।।

द्वादश्यां कृष्णमभ्यर्चेद्गन्धाद्यैरुपचारकैः।
ततः सम्भोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्।।५७।।
विसृज्य पश्चाद्भुञ्जीत स्वयमिष्टैः समाहितः। एवं यो भक्तिभावेन उत्पन्नाव्रतमाचरेत्।।५८।।
स विमानं समारुह्य यात्यन्ते वैष्णवं पदम्।
मार्गस्य शुक्लैकादश्यां मोक्षाख्यां समुपोष्य वै।।५९।।
द्वादश्यां प्रातरभ्यर्च्य ह्यनन्तं विश्वरूपकम्।
सर्वैरेवोपचारैस्तु विप्रान्सम्भोजयेद्द्विजः।।६०।।

इस तिथि पर उपवासी रहें। अगले दिन गन्धादि उपचार से कृष्णार्चन करे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करके उनको विदा करने के अनन्तर स्वयं इष्ट बन्धुगण के साथ समाहित होकर भोजन करे। जो व्यक्ति भक्तिभाव से उत्पन्ना व्रताचरण करता है, वह विमानासीन होकर वैष्णवपद लाभ करता है। मार्गशीर्ष की

(अग्रहायण मास की) शुक्लपक्षीय एकादशी **मोक्षा एकादशी** है। इस तिथि पर उपवासी रहकर द्वादशी को प्रातः सर्वोपचार से विश्वरूपी अनन्त की सर्वोपचार से पूजा करके ब्राह्मण को भोजन कराये।।५७-६०।।

विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा स्वयं भुञ्जीत बान्धवैः।
एवं कृत्वा व्रतं विप्र भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।।६१।।
दश पूर्वान्दश परान्समुद्धृत्य व्रजेद्धरिम्। पौषस्य कृष्णैकादश्यां सफलां समुपोष्य वै।
द्वादश्यामच्युतं प्राच्र्य सर्वैरेवोपचारकैः।।६२।।

तदनन्तर उनको दक्षिणा देकर विदा करे और भातृवर्ग बन्धु-बान्धव सहित भोजन करे। हे विप्र! यह मोक्षव्रत सम्पन्न करने वाला व्यक्ति इहलोकस्थ इच्छित भोगों का आस्वादन करके अपनी १० पूर्व पीढ़ी तथा भविष्यत् की १० पीढ़ी का उद्धार करके हरिलोक जाता है। पौष कृष्ण पक्षीय एकादशी **सफला एकादशी** कही जाती है। इस दिन उपवासी रहकर द्वादशी के दिन सर्वोपचार से अच्युत की पूजा करे।।६१-६२।।

सम्भोज्य विप्रान्मधुरैर्विसृजेल्लब्धदक्षिणान्।
एवं कृत्वा व्रतं विप्र सफलाया विधानतः।।६३।।
भुक्त्वेह भोगानखिलान्यात्यन्ते वैष्णवं पदम्।
पौषस्य शुक्लैकादश्यां पुत्रदां समुपोष्य वै।।६४।।

उस दिन ब्राह्मणगण को मधुर भोजन कराये तथा दक्षिणा देकर विदा करे। हे विप्र! जो एवंविध सफलाव्रत सम्पन्न करता है, वह इहलोक के भोगों को भोगकर अन्ततः विष्णुलोक गमन करता है। पौष शुक्ला एकादशी तिथि को **पुत्रदा एकादशी** कहते हैं। इस दिन उपवासी रहे।।६३-६४।।

द्वादश्यां चक्रिणं प्रार्चेदर्घाद्यैरुपचारकैः।
ततः सम्भोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वातेभ्यस्तु दक्षिणाम्।।६५।।
विसृज्य स्वयमश्नीयाच्छेषान्नं स्वेष्टबान्धवैः।
एवं कृतव्रतो विप्र भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।।६६।।
विमानवरमारुह्य यात्यन्ते हरिमन्दिरम्।
माघस्य कृष्णैकादश्यां षट्तिलां समुपोष्य वै।।६७।।
स्नात्वा दत्त्वा तर्पयित्वा हुत्वा भुक्त्वा समर्च्य च।
तिलैरेव द्विजश्रेष्ठ द्वादश्यां प्रातरेव हि।।६८।।
वैकुण्ठं सम्यगभ्यर्च्य सर्वैरेवोपचारकैः।
द्विजान्सम्भोज्य विसृजेद्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्।।६९।।
एवं कृत्वा व्रतं विप्र विधिना सुसमाहितः।
भुक्त्वेह वाञ्छितान्भोगानन्ते विष्णुपदं लभेत्।।७०।।

तदनन्तर अगले दिन द्वादशी को चक्रधारी भगवान् की अर्चना अर्घ्य आदि उपचारों से करे। तदनन्तर

ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा प्रदान करके विदा करना चाहिये। तदनन्तर बन्धु-बान्धवों सहित स्वयं भोजन करे। इस प्रकार से व्रत सम्पन्न करने वाला व्रती इहलोक में ईप्सित भोगों को भोगकर अन्ततः विमानारूढ़ होकर हरिलोक जाता है। माघ कृष्णपक्षीय एकादशी **षट्तिला एकादशी** है। उस दिन उपवासी रहे तथा स्नान, दान, तर्पण, हवन, पूजा करे। हे द्विजप्रवर! अगले दिन प्रातः काले तिल तथा सर्वोपचार से विष्णु पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे। हे विप्र! इस प्रकार समाहित होकर सविधि व्रताचरण करके व्यक्ति इहलोक में वांछित भोगों को भोगकर अन्ततः विष्णुपद लाभ करता है।।६५-७०।।

माघस्य शुक्लैकादश्यां समुपोष्य जयाह्वयाम्।
प्रातर्हरिदिनेऽभ्यर्च्चेच्छ्रीपतिं पुरुषं द्विज।।७१।।
भोजयित्वा दक्षिणां च दत्त्वा विप्रान्विसृज्य च।
स्वयं भुञ्जीत तच्छेषं प्रयतो निजबान्धवैः।।७२।।
य एवं कुरुते विप्र व्रतं केशवतोषणम्।
स भुक्त्वेह वारान्भोगानन्ते विष्णोः पदं व्रजेत्।।७३।।

माघ शुक्ला एकादशी को **जया एकादशी** कहते हैं। उस दिन उपवासी रहे। तदनन्तर द्वादशी को पुरुषोत्तम श्रीपति की पूजा करे। हे द्विज! तदनन्तर ब्राह्मणगण को भोजन तथा दक्षिणा प्रदान करके विदा करे। जो शेष अन्न हो, उससे मौनी होकर बन्धु-बान्धव सहित भोजन करे। हे विप्र! जो यह केशव को सन्तुष्ट करने वाला व्रत करता है, वह इहलोक में वांछित भोगों को भोगकर अन्ततः विष्णुपद लाभ करता है।।७१-७३।।

तपस्यकृष्णैकादश्यां विजयां समुपोष्य वै।
द्वादश्यां प्रातरभ्यर्च्य योगीशं गन्धपूर्वकैः।।७४।।
ततः सम्भोज्य भूदेवान्दक्षिणाभिः प्रतोष्य तान्।
विसृज्य बान्धवैः सार्द्धं स्वयमश्नीत वाग्यतः।।७५।।
एवं कृतव्रतो मर्त्यो भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।
देहान्ते वैष्णवं लोकं याति देवैः सुसत्कृतः।।७६।।

फाल्गुन कृष्णा एकादशी को **विजया एकादशी** कहते हैं। उस दिन उपवासी रहे। अगले दिन प्रातः गन्धादि से योगीश्वर वासुदेवार्चन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा से प्रसन्न करे तथा उनको विदा करके मौनी होकर बन्धु-बान्धवों सहित भोजन करे। इस प्रकार व्रत सम्पन्न करके व्यक्ति इहलोक के भोगों को भोगकर सर्वान्त में देवताओं द्वारा सत्कृत होकर विष्णुलोक जाता है।।७४-७६।।

फाल्गुनस्य सिते पक्षे एकादश्यां द्विजोत्तम।
उपोष्यामलकीं भक्त्या द्वादश्यां प्रातरर्चयेत्।।७७।।
पुण्डरीकाक्षमखिलैरुपचारैस्ततो द्विजान्।
भोजयित्वा वारान्नेन दद्यात्तेभ्यस्तु दक्षिणाम्।।७८।।

एवं कृत्वा विधानेनामलक्यां पूजनादिकम्।
सितैकादश्यां तपस्ये व्रजेद्विष्णोः परं पदम्॥७९॥
चैतस्य कृष्णैकादशीं पापमोचनिकां द्विज।
उपोष्य द्वादश्यां प्रातर्गोविन्द पूजयेत्तथा॥८०॥
उपचारैः षोडशभिर्द्विजान्सम्भोज्य दक्षिणाम्।
दत्त्वा तेभ्यो विसृज्याथ स्वयं भुञ्जीत बान्धवैः॥८१॥
एवं यः कुरुते विप्र पापमोचनिकाव्रतम्।
स याति वैष्णवं लोकं विमानेन तु भास्वता॥८२॥

फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम **आमलकी एकादशी** है। इस दिन उपवासी रहकर द्वादशी को प्रातः पुण्डरीकाक्ष की पूजा सर्वोपचार से करके उत्तम अन्न से ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा दक्षिणा देकर उनको विदा करे। यह आमकली व्रत जो सम्पन्न करता है, वह विष्णु के परमपद का लाभ करता है। चैत्र कृष्ण एकादशी व्रत सर्वपातक नाशक है। द्वादशी को उपवासी रहकर अगले दिन गोविन्द पूजन प्रातः करे। पूजन करके ब्राह्मण को भोजन कराये तथा दक्षिणा दे। तदनन्तर ब्राह्मणों को विदा करके बन्धुओं के साथ भोजन करे। जो इस प्रकार पापमोचनिका एकादशी व्रत करता है, वह ज्योतियुक्त विमानारुढ़ होकर वैष्णवलोक जाता है।।७७-८२।।

इत्थं कृष्ण तथा शुक्ले व्रतं चैकादशीभवम्।
मोक्षदं कीर्तितं विप्र नास्त्यस्मिन्संशयः क्वचित्॥८३॥
यतस्त्रिदिनसंसाध्यं कीर्तितं पापनाशनम्। सर्वव्रतोत्तमं विप्र ततो ज्ञेयं महाफलम्॥८४॥
त्यजेच्चत्वारि भुक्तानि नारदैतद्दिनत्रये। आद्यन्तयोरेकमेकं मध्यमे द्वयमेव हि॥८५॥
अथ ते निमयान्वच्मि व्रते ह्यस्मिन्दिनत्रये।
कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान्कोद्रवांस्तथा॥८६॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने दशम्यां दश वस्तूनि वर्जयेद्वैष्णवः सदा॥८७॥

हे विप्र! कृष्णपक्षीय एवं शुक्लपक्षीय एकादशी का व्रत मोक्षप्रद कहा गया है। इसमें तनिक संशय न करे। यह व्रत तीन दिन में सम्पन्न होता है। तभी यह पापहारी एवं महाफलप्रद है। हे नारद! इन दिनत्रय में चार समय का भोजन न करे। प्रथम तथा अन्तिम दिन मात्र १-१ समय भोजन करके १-१ समय का भोजन त्यागे। परन्तु मध्य दिन में (एकादशी में) दोनों समय भोजन करना वर्जित है। अब मैं दिनत्रय व्रत का नियम कहता हूं। जो पापहारी, सभी व्रतों में श्रेष्ठ है। हे विप्र! उसे जानना ही महाफल दायक है। कांस्यपात्र, मांस, मसूर का अन्न, चना, कोदों का अन्न, शाक, मधु, पराये व्यक्ति का अन्न, पुनः भोजन, मैथुन इस दस का त्याग दशमी के दिन सदा वैष्णवगण करे।।८३-८७।।

द्यूतक्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम्।
परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम्॥८८॥

कोपं ह्यनृतवाक्यं च एकादश्यां विवर्ज्ययेत्।
कास्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं विण्म्लेच्छभाषणम्॥८९॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने। अस्पृश्यस्पर्शमाशूरे द्वादश्यां द्वादश त्यजेत्॥९०॥

द्यूत, निद्रा, ताम्बूल, दन्त धावन, पर निन्दा, चुगलखोरी, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध मिथ्यावचन इनका एकादशी को वैष्णव सदा त्याग करे। कांस्यपात्र, मांस, मदिरा, शहद, तैल, धूर्त-म्लेच्छ के साथ वार्त्ता, व्यायाम, परदेश गमन, पुनः भोजन, मैथुन, अस्पृश्य का स्पर्श, मसूरान्न को द्वादशी के दिन त्याग करे।।८८-९०।।

एवं नियमकृद्विप्र उपवासं समाचरेत्। शक्तोऽशक्तस्तु मतिमानेकभुक्तं न नक्तकम्॥९१॥
अयाचितं वापि चरेन्न त्यजेद्व्रतमीदृशम्॥९२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितैकादशी-व्रतकथनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥

हे विप्र! इस नियम से उपवास करे। जो अशक्त हैं, एक समय दिन में भोजन करे। रात्रि में न करे अथवा बिना मांगे मिले अन्न का भोजन करे तथापि व्रतत्याग कदापि न करें।।९१-९२।।

।।१२०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय द्वादशी व्रत वर्णन

सनातन उवाच

अथ व्रतानि द्वादश्याः कथयानि तवानघ।
यानि कृत्वा नरो लोके विष्णोः प्रियतरो भवेत्॥१॥
चैत्रस्य शुक्लद्वादश्यां मदनव्रतमाचरेत्। स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततन्दुलपूरितम्॥२॥
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितम्। सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्च्चितम्॥३॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—अब मैं उन द्वादशी व्रताचरण को कहता हूं, जिनका अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति विष्णु प्रिय हो जाता है। चैत्र शुक्लाद्वादशी को मदनव्रत करे। छिद्रादिरहित कुम्भ स्थापित करके उसमें श्वेत तण्डुल भरें। उसे नाना फलान्वित करके ईख के टुकड़ों से भरें। तदनन्तर दो श्वेत वस्त्र से ढांक कर श्वेत चन्दन से चर्चित करे।।१-३।।

नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं स्वशक्तितः। ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत्॥४॥
तत्र सम्पूजयेद्देवं कामरूपिणमच्युतम्। गन्धाद्यैरुपचारैस्तु सोपवासो परेऽहनि॥५॥
पुनः प्रातः समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्॥६॥
वर्षमेवं व्रतं कृत्वा घृतधेनुसमन्विताम्। शय्यां तु दद्याद्गुरवे सर्वोपस्करसंयुताम्॥७॥

तदनन्तर उसमें श्वेत चन्दन, नाना भक्ष्य वस्तु तथा अपनी शक्ति के अनुरूप स्वर्ण उसमें रखकर उस पर गुड़युक्त ताम्रपात्र रखे। उस पात्र में गंधादि उपचार से कामरूपी अच्युत देव का पूजन करके अगले दिन पुनः घट की पूजा तथा अच्युत पूजा करके यह घट ब्राह्मण को अर्पित करे। तदनन्तर ब्राह्मण भोजनोपरान्त उनको दक्षिणा देनी चाहिये। एवंविध एक वर्ष प्रति द्वादशी पर यह करके घृत धेनु तथा समस्त उपकरणयुक्त शय्या गुरु को देनी चाहिये।।४-७।।

काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम्।
वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूजयित्वा समर्पयेत्॥८॥
प्रीयतां कामरूपी मे हरिरित्येवमुच्चरन्। यः कुर्याद्विविधिनाऽनेन मदनद्वादशीव्रतम्॥९॥
स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम्। अस्यामेव समुद्दिष्टं भर्तृद्वादशिकाव्रतम्॥१०॥

स्वर्ण की कामदेव की प्रतिमा तथा दुग्धवती श्वेत गौ द्विजदम्पति का पूजन करके उनको प्रदान करे। प्रदान मन्त्र है—"कामरूपी हरि मेरे ऊपर प्रसन्न हों।" जो व्यक्ति इस विधि से विधिवत् मदनद्वादशी व्रत करता है, वह सर्वपापरहित होकर हरि की साम्यता की प्राप्ति करता है। उस तिथि को भतृद्वादशिका व्रत भी कहते हैं।।८-१०।।

स्वास्तृतां तत्र शय्यां तु कृत्वात्र श्रीयुतं हरिम्।
संस्थाप्य मण्डपं पुष्पैस्तदुपर्य्युपकल्पयेत्॥११॥
ततः सम्पूज्य गन्धाद्यैर्व्रती जागरणं निशि। नृत्यवादित्रगीताद्यैस्ततः प्रातः परेऽहनि॥१२॥
सशय्यं श्रीहरिं हैमं द्विजाग्र्याय निवेदयेत्।
द्विजान्सम्भोज्य विसृजेद्दक्षिणाभिः प्रतोषितान्॥१३॥
एवं कृतव्रतस्यापि दाम्पत्यं जायते स्थिरम्।
सप्तजन्मसु भुङ्क्ते च भोगान् लोकद्वयेप्सितान्॥१४॥

उत्तम रूपेण बिछाई शय्या पर लक्ष्मी तथा श्रीहरि को स्थापित करे। वहां पुष्प मण्डप बनाये। तदनन्तर लक्ष्मी श्रीहरि की पूजा गन्धादि से करके व्रती व्यक्ति रात्रि जागरण करे। वहां नृत्य, गीत-वाद्यादि वादन करके रात में जागना चाहिये। अगले दिन प्रातः रजत के साथ स्वर्णमयी विष्णु प्रतिमा श्रेष्ठ ब्राह्मण को देकर विप्रगण को भोजन दक्षिणा प्रदान करे तथा उनको विदा करे। ऐसा व्रती व्यक्ति स्थिर दाम्पत्य जीवन प्राप्त करता है। वे सात जन्म तक ईप्सित भोग इहलोक तथा परलोक में भोगते हैं।।११-१४।।

वैशाखशुक्लद्वादश्यां सोपवासो जितेन्द्रियः।
सम्पूज्य माधवं भक्त्या गन्धाद्यैरुपचारकैः॥१५॥
पक्वान्नं तृप्तिजनकं मधुरं सोदकुम्भकम्। विप्राय दद्याद्विधिवन्माधवः प्रीयतामिति॥१६॥
द्वादश्यां ज्येष्ठशुक्लायां पूजयित्वा त्रिविक्रमम्।
गन्धाद्यैर्मधुरान्नाढ्यं करकं विनिवेदयेत्॥१७॥
व्रती द्विजाय तत्पश्चादेकभक्तं समाचरेत्। व्रतेनानेन सन्तुष्टो देवदेवस्त्रिविक्रमः॥१८॥
ददाति विपुलान्भोगानन्ते मोक्षं च नारद।
आषाढशुक्लद्वादश्यां द्विजान्द्वादश भोजयेत्॥१९॥
मधुरान्नेन तान्पूज्य पृथग्गन्धादिकै क्रमात्।
तेभ्यो वासांसि दण्डाश्च ब्रह्मसूत्राणि मुद्रिकाः॥२०॥

वैशाख शुक्लद्वादशी को जितेन्द्रिय तथा उपवासी रहे। उस दिन माधव को भक्तिपूर्वक गन्धादि उपचार से पूजित करे। तृप्तिकारक मधुर पक्वान्न, कुम्भ-जल ब्राह्मणों को यह कहते प्रदान करे कि "माधव प्रसन्न हों।" ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी तिथि के दिन गन्ध आदि से त्रिविक्रम देव की पूजा करके ब्राह्मण को मिष्टान्न भोजन कराये तथा स्वयं एक समय ही भोजन करे। हे नारद! इस व्रत करने वाले के प्रति देवाधिदेव त्रिविक्रम प्रसन्न होकर उसे विपुलभोग प्रदान करते हैं। हे नारद! वह व्यक्ति अन्त में मोक्षलाभ करता है। आषाढ़ शुक्ल द्वादशी के दिन व्यक्ति बारह ब्राह्मणों को भोजन कराये। उनको मधुर अन्नों से सन्तुष्ट करके गन्धादि से उनकी पूजा करे। तदनन्तर उनको वस्त्र, दण्ड, यज्ञोपवीत तथा अंगूठी प्रदान करे।।१५-२०।।

पात्राणि च ददेद्भक्त्या विष्णुर्मे प्रियतामिति।
द्वादश्यां तु नभःशुक्ले श्रीधरं पूजयेद्व्रती॥२१॥
गन्धादैस्तत्परो भक्त्या दधिभक्तैर्द्विजोत्तमान्।
सम्भोज्य दक्षिणां रौप्यां दत्त्वा नत्वा विसर्ज्जयेत्॥२२॥
व्रतेनानेन देवेशः श्रीधरः प्रीयतामिति।
द्वादश्यां नभस्यशुक्ले व्रती सम्पूज्य वामनम्॥२३॥

श्रावण शुक्ला द्वादशी तिथि के दिन व्रती व्यक्ति श्रीधर की पूजा करे तथा द्विजोत्तमगण को दधि भात का भोजन कराये तदनन्तर "देवेश श्रीधर मुझ पर प्रसन्न हों" यह कहकर उनको रजत की दक्षिणा प्रदान करे तथा नमस्कार के साथ उनको विदा करे। इससे श्रीधर प्रसन्न होते हैं। अश्विन शुक्ला द्वादशी की तिथि पर व्रती व्यक्ति वामन पूजन करे।।२१-२३।।

तदग्रे भोजयेद्विप्रान्पायसैर्द्वादशैव च। सौवर्णां दक्षिणां दत्त्वा विष्णुप्रीतिकरो भवेत्॥२४॥
द्वादश्यामिष शुक्लायां पद्मनाभं समर्चयेत्।
गन्धाद्यैरुपचारैस्तु तदग्रे भोजयेद्द्विजान्॥२५॥

मधुरान्नेन वस्त्राढ्यां सौवर्णां दक्षिणां ददेत्। व्रतेनैतेन सन्तुष्टः पद्नाभो द्विजोत्तम॥२६॥
श्वेतद्वीपगतिं दद्यद्देहभोगांश्च वाञ्छितान्। कार्तिके कृष्णपक्षे तु गोवत्सद्वादशीव्रतम्॥२७॥

तदनन्तर बारह विप्रगण को भोजन कराये। उनको स्वर्ण दक्षिणा देने से विष्णु प्रसन्न होते हैं। अश्विन शुक्ला द्वादशी के दिन पद्मनाभ की पूजा गन्धादि उपचारों से करके ब्राह्मणों को मधुर अन्न भोजन कराकर वस्त्र तथा स्वर्ण दक्षिणा प्रदान करे। हे द्विजोत्तम! इस व्रत से प्रसन्न होकर पद्मनाभ प्रभु व्रती व्यक्ति को श्वेतद्वीप गमन की गति देते हैं तथा इहलोक में भोग प्रदान करते हैं। कार्त्तिक कृष्णपक्ष में गोवत्स द्वादशी व्रत करे।।२४-२७।।

तत्र वत्सयुतां गां तु समालिख्य सुगन्धिभिः।
चन्दनाद्यैस्तथा पुष्पमालाभिः प्राच्य ताम्रके॥२८॥
पात्रे पुष्पाक्षततिलैरर्घ्यं कृत्वा विधानतः। प्रदद्यात्पादमूलेऽस्या मन्त्रेणानेन नारद॥२९॥
क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते। सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलङ्कृते॥३०॥
मातर्मातर्गवा मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते। ततो माषादिसंसिद्धान्वटकांश्च निवेदयेत्॥३१॥
एवं पञ्च दशैकं वा यथाविभवमात्मनः।
सुरभि त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता॥३२॥
सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिसं ग्रस। सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलङ्कृते॥३३॥
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनी। तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं द्विजोत्तम॥३४॥
गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत्। द्वादश्यामूर्जशुक्लायां देवं दामोदरं द्विज॥३५॥

तदनन्तर वत्सयुता गौ की आकृति बनाकर पुष्पमाला एवं सुगन्ध चन्दनादि द्रव्यों से उनकी पूजा करके एक ताम्रपात्र में अक्षत, तिल, जल रखे तथा यह मन्त्र पढ़ते हुये गौ के पादमूल में अर्घ्य प्रदान करे। मन्त्र है— "तुम सुरासुर नमस्कृत तथा क्षीर सागर से उत्पन्न सर्वदेवमयी एवं सर्वदेव अलंकृत हो। हे माता गौ! हे माता! यह अर्घ्य ग्रहण करो! तुमको प्रणाम!" तदनन्तर उर्द आदि से पकाये वटक गौ को अर्पित करे। अपनी शक्ति के अनुसार पांच किंवा एकादश वटक (बड़ा) गौ को भक्षण कराये। यह खिलाते समय यह मन्त्र पढ़े—"हे सुरभि तुम जगन्माता हो। सदा विष्णुपद में स्थित रहती हो। मैं सर्वदेवमय ग्रास दे रहा हूं। इसे खाओ। तुम सर्वदेवमयी तथा सर्वदेव अलंकृत हो। हे नन्दिनी! हे माता! मेरी अभिलाषा पूरी करो। हे द्विजोत्तम! उस दिन तेल में पका, स्थालीपक्व अन्न, गोदुग्ध, गोघृत, गौ के दूध की दही तथा मट्ठा ग्रहण न करे। हे द्विज कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी तिथि पर देव दामोदर!।।२८-३५।।

समभ्यर्च्योपचारैस्तु गन्धाद्यैः सुसमाहितः।
तदग्रे भोजयेद्विप्रान्पक्वान्नेनार्कसङ्ख्यकान्॥३६॥
ततः कुम्भानपाम्पूर्णान्वस्त्राच्छन्नान्समर्चितान्।
सपूगमोदकस्वर्णांस्तेभ्यः प्रीत्या समर्पयेत्॥३७॥
एवं कृते प्रियो विष्णोर्जायतेऽखिलभोगभुक्।
देहान्ते विष्णुसायुज्यं लभते नात्र संशयः॥३८॥

की एकाग्रता पूर्वक गन्धादि उपचार द्वारा पूजा करे। तदनन्तर १२ ब्राह्मणों को पक्कवान्न खिलाकर जलपूर्ण वस्त्राच्छादित घट, सुपारी, मोदक, स्वर्ण सादर प्रदान करे। यह अनुष्ठान करने वाला व्रती व्यक्ति विष्णु प्रिय हो जाता है। वह इहलोक में समस्त भोगों को भोगकर देहान्त के उपरान्त विष्णु सायुज्य लाभ करता है। यह निःसंदिग्ध है।।३६-३८।।

नीराजनव्रतं चात्र गदितं तन्निबोध मे। सुप्तोत्थितं जगन्नाथमलङ्कृत्य निशागमे।।३९।।

अलङ्कृतो नवं वह्निमुत्पाद्याभ्यर्च्य मन्त्रतः।
हुत्वा तत्र समुद्दीप्ते रौप्यदीपिकया मुने।।४०।।
गन्धपुष्पाद्यर्चिताय जनैर्नीराजयेद्धरिम्।
तत्रैवानुगतां लक्ष्मीं ब्रह्माणीं चण्डिकां तथा।।४१।।
आदित्यं शङ्करं गौरीं यक्षं गणपतिं ग्रहान्।
मातॄः पितॄन्नगान्नागान्सर्वान्नीराजयेत्क्रमात्।।४२।।

इसी तिथि पर नीराजन व्रताचरण करे। उसकी विधि सुनिये। सुप्तावस्था से जगे जगन्नाथ देव को प्रदोष काल में अलंकृत करे तथा मन्त्र द्वारा नव अग्नि की पूजा पाद्य आदि से करे। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्पादि से पूजित रजत के दीप से अग्नि प्रज्वलित करके उसमें होम करे। तदनन्तर हरि का नीराजन करे। उन हरि की अनुगामिनी लक्ष्मी, ब्रह्माणी, चण्डिका, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, ग्रहगण, मातृगण, पितृगण, नग-पन्नग सबका नीराजन क्रम से करे।।३९-४२।।

गवां नीराजनं कुर्यान्महिष्यादेश्च मण्डलम्।
नमो जयेति शब्दैश्च घण्टाशङ्खादिनिःस्वनैः।।४३।।
सिन्दूरालिप्तशृङ्गाणां चित्राङ्गाणां च वर्णकैः।
गवां कोलाहले वृत्ते नीराजनमहोत्सवे।।४४।।
तुरगांल्लक्षणोपेतान् गजांश्च मदविप्लुतान्।
राजचिह्नानि सर्वाणि च्छत्रादीनि च नारद।।४५।।
राजा पुरोधसा सार्धं मन्त्रिभृत्यपुरःसरः।
पूजयित्वा यथान्यायं नीराज्य स्वयमादरात्।।४६।।

गौ का नीराजन करके महिष का मण्डल (परिक्रमा) करे। नमः तथा जय-जयकार का उच्चारण करते हुये घंटा-शंख आदि बजायें। गौ का शृंग सिन्दूरलिप्त करे। अंगों को गेरु से चित्रित करे। जब नीराजन में गौयें कोलाहल करे, तब राजा, मंत्री, पुरोहित, भृत्य, सुलक्षण घोड़े, मदलिप्त हाथी, सभी राजचिह्न, छत्रादि का नीराजन पूजन आदर से करे।।४३-४६।।

शङ्खतूर्यादिघोषैश्च नानारत्नविनिर्मिते। सिंहासने नवे क्लृप्ते तिष्ठेत्सम्यगलङ्कृतः।।४७।।
ततः सुलक्षणैर्युक्ता वेश्या वाथ कुलाङ्गना। शीर्षोपरि नरेन्द्रस्य तया नीराजयेच्छनैः।।४८।।

एवमेषा महाशान्तिः कर्तव्या प्रतिवत्सरम्। राज्ञा वित्तवतान्येन वर्षमारोग्यमिच्छता॥४९॥
येषां राष्ट्रे पुरे ग्रामे क्रियते शान्तिरुत्तमा।
नीराजनाभिधा विप्र तद्रोगा यान्ति संक्षयम्॥५०॥

तत्पश्चात् शंख, तूर्यादि के घोष के बीच राजा नाना प्रकार से सम्यक्तः अलंकृत होकर नानारत्नों से निर्मित सिंहासनासीन हो। उस समय सुलक्षणा वेश्य अथवा कुलस्त्री से अपने शिर की आरती धीरे-धीरे कराये। ऐसा महाशान्ति कार्य प्रतिवर्ष करे। वर्ष पर्यन्त आरोग्य तथा धनलाभ की इच्छा करने वाले राजा अथवा धनी एवंविध महाशान्ति प्रति वर्ष कराये। जिस राष्ट्र, पुर, ग्राम में यह उत्तमा शान्ति कृत्य किया जाता है साथ ही यह उत्तम नीराजन विधि सम्पन्न होती है, उस स्थान पर रोगक्षय होता है।।४७-५०।।

द्वादश्यां मार्गशुक्लायां साध्यव्रतमनुत्तमम्।
मनोभवस्तथा प्राणो नरो यातश्च वीर्यवान्॥५१॥
चितिर्हयो नृपश्चैव हंसो नारायणस्तथा।
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः॥५२॥
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैरेतांस्तन्दुलकल्पितान्। ततो द्विजाग्र्यान्सम्भोज्य द्वादशात्र सुदक्षिणाः॥५३॥
दत्त्वा तेभ्यस्तु विसृजेत्प्रीयान्नारायणस्त्विति।
एतस्यामेव विदितं द्वादशादित्यसंज्ञितम्॥५४॥
व्रतं तत्रार्चयेद्धीमानादित्यान्द्वादशापि च।
धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोंऽशो वरुणो भगः॥५५॥
त्वष्टा विवस्वान्सविता विष्णुर्द्वादश ईरिताः।
प्रतिमासं तु शुक्लायां द्वादश्यामर्च्य यत्नतः॥५६॥

अग्रहायण शुक्ला द्वादशी पर अत्युत्तम व्रत करे। इसका नाम साध्यव्रत है। मनोभव, प्राण, नर, यात, वीर्यवान्, चिति, हय, नृप, हंस, नारायण, विभु प्रभु—ये द्वादश साध्य हैं। इनकी प्रतिमा तण्डुल पीसकर बनाये। उनकी पूजा गन्ध पुष्पादि से करके १२ ब्राह्मणों को भोजन कराये तत्पश्चात् उनको उत्तम दक्षिणा "नारायण प्रसन्न हों" कहकर प्रदान करे। तदनन्तर उनको विदा करे। इसी तिथि पर द्वादशादित्य व्रत भी धीमान् व्यक्ति करे। इस व्रत में द्वादशादित्य अर्चित होते हैं। ये हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शुक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता विष्णु। प्रति मास की शुक्ला द्वादशी तिथि पर द्वादशादित्य की पूजा यत्नपूर्वक करे।।५१-५६।।

वर्षं नयेद्व्रतान्ते तु प्रतिमा द्वादशापि च।
हैमीः सम्पूज्य विधिना भोजयित्वा द्विजोत्तमान्॥५७॥
मधुरान्नैः सुसत्कृत्य प्रत्येकं चार्पयेद्व्रती। एवं व्रतं नरः कृत्वा द्वादशादित्यसंज्ञकम्॥५८॥
सूर्यलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगांश्चिरं ततः। जायते भुवि धर्मात्मा मानुष्ये रोगवर्जितः॥५९॥

प्रतिमास की शुक्लाद्वादशी को इन बारहों स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करे तथा बारह ब्राह्मणों को भोजन कराये। उनको मधुरान्न से सत्कृत करके एक ब्राह्मण को एक प्रतिमा प्रदान करना चाहिये। ऐसा द्वादशादित्य व्रत करने वाला सूर्यलोक जाकर चिरकाल तक उत्तम भोग भोगता है। तदनन्तर वह पृथिवी पर धर्मात्मा रोग रहित मनुष्य के रूप में जन्म लेता है।।५७-५९।।

ततो व्रतस्य पुण्येन पुरेव लभेद्व्रतम्। तत्पुण्येन रवेर्भित्त्वा मण्डलं द्विजसत्तम।।६०।।

निरञ्जनं निराकारं निर्द्वन्द्वं ब्रह्म चाप्नुयात्। अत्रैवाखण्डसंज्ञं च व्रतमुक्तं द्विजोत्तम।।६१।।

हे द्विजप्रवर! उस जन्म में भी वह पूर्वकृत व्रत के पुण्य के कारण इसी व्रत को प्राप्त करता है। तदनन्तर हे द्विजसत्तम! वह व्यक्ति रविमण्डल भेदन करके निरंजन, निराकार, निर्द्वन्द्व ब्रह्म को प्राप्त करता है। हे विप्रप्रवर! इसी तिथि पर अन्य व्रत अखण्ड व्रत भी लोग करते हैं।।६०-६१।।

मूर्तिं निर्माय सौवर्णीं जनार्दनसमाह्वयाम्।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैस्तदग्रे भोजयेद्द्विजान्।।६२।।
द्वादश प्रतिमासं तु नक्ताशी स्याज्जितेन्द्रियः।
ततः समान्ते तां मूर्तिं समभ्यर्च्य विधानतः।।६३।।

गुरवे धेनुसहितां दद्यात्सम्प्रार्थयेत्तथा। शतजन्मसु यत्किञ्चिन्मयाखण्डव्रतं कृतम्।।६४।।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे।
ततः सम्भोज्य विप्रग्र्यान्सखण्डाढ्यैस्तु पायसैः।।६५।।

द्वादशैव हि सौवर्णीं दक्षिणां प्रददेन्नमेत्। इति कृत्वा व्रतं विप्र प्रीणयित्वा जनार्दनम्।।६६।।

अर्थात् स्वर्णमयी विष्णु प्रतिमा निर्मित करके उसकी पूजा गन्ध पुष्पादि से करनी चाहिये। तदनन्तर प्रतिमा के समक्ष १२ ब्राह्मणों को भोजन कराये। एक वर्ष पर्यन्त व्रती केवल रात्रि के समय भोजन करे तथा जितेन्द्रिय रहे। वर्ष समाप्त होने पर सविधि प्रतिमा की अर्चना करके गुरु को गौ तथा यह प्रतिमा प्रदान करे। तदनन्तर व्रती व्यक्ति प्रार्थना करे। "हे प्रभो! अपने शत जन्मों में मैंने जो कुछ खण्डित व्रत किया था, आपकी कृपा से वह सब अखण्ड हो जाये।" इसके पश्चात् द्वादश विप्रगण को खांड़ तथा पायस खिलाये तथा उनको स्वर्ण दक्षिणा देकर प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार से किया गया व्रत जनार्दन को प्रसन्न कर देता है।।६२-६६।।

सौवर्णेन विमानेन याति विष्णोः परं पदम्। पौषस्य कृष्णद्वादश्यां रूपव्रतमुदीरितम्।।६७।।

दशम्यां विधिवत्स्नात्वा गृह्णीयाद्गोमयं व्रती। श्वेताया वैकवर्णाया अन्तरिक्षगतं द्विज।।६८।।

अष्टोत्तरशतं तेन पिण्डिकाः कल्प्य नारद। शोषयेदातपे धृत्वा पात्रे ताम्रेऽथ मृन्मये।।६९।।

एकादश्यां सोपवासः समभ्यर्च्य विधानतः।
सौवर्णीं प्रतिमां विष्णोर्निशायां जागरं चरेत्।।७०।।

सुमङ्गलैर्गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्जपादिभिः। ततः प्रभाते द्वादश्यां तिलपात्रोपरि स्थिताम्।।७१।।

अम्बुपूर्णे घटे न्यस्य पूजयेदुपचारकैः। ततोऽग्निं नवमुत्पाद्य काष्ठसङ्घर्षणादिभिः॥७२॥

तदनन्तर वह व्यक्ति अन्त में स्वर्णमय विमान पर आरूढ़ होकर विष्णु का परमपद प्राप्त करता है। पौष मास के कृष्णपक्ष की द्वादशी को रूपव्रत द्वादशी कहते हैं। व्रती व्यक्ति दशमी के दिन सविधि स्नान करे तथा श्वेत गौ का अथवा एक वर्ष की गौ के गोबर को पृथिवी पर गिरने से पहले ग्रहण करे। उसके १०८ पिण्ड बनाये। हे नारद! इनको मृत्पात्र में किंवा ताम्रपात्र में रखकर धूम में सुखायें। एकादशी को उपवासी रहकर देवदेव की अर्चना विधान के अनुसार करनी चाहिये। यह पूजा विष्णु की स्वर्ण प्रतिमा की होगी। तदनन्तर रात्रि में सुमंगलमय गीत गायन, वाद्यवादन, स्तोत्रपाठ, जपादि के साथ करे। प्रातः द्वादशी के दिन जलपूर्ण घट रखे तथा उस पर प्रतिमा तिल पात्र में रखकर सर्व उपचार सहित पूजा करे। तदनन्तर लकड़ी की रगड़ से नवीन अग्नि उत्पन्न करके उसकी सविधि पूजा करनी चाहिये।।६७-७२।।

तं समभ्यर्च्य विधिवदेकैकां पिण्डिकां सुधीः।
होमयेत्सतिलाज्यां च द्वादशाक्षरविद्यया॥७३॥
वैष्णव्याथ च पूर्णां च शतमष्टोत्तरं ततः।
भोजयेत्पायसैर्विप्रान्प्रीत्या सुस्निग्धमानसः॥७४॥
सहितां च घटेनैव प्रतिमां गुरवेऽर्पयेत्।
विप्रेभ्यो दक्षिणां शक्त्या दत्त्वा नत्वा विसर्जयेत्।
नरो वा यदि वा नारी व्रतं कृत्वैवमादरात्॥७५॥

उस अग्नि की पूजा करके सुधी व्रती व्यक्ति तिलघृत लिप्त गोमय के एक-एक पिण्ड से इस अग्नि में द्वादशाक्षर मन्त्र से होम करे। तदनन्तर कोमल मन से १०८ वैष्णव ब्राह्मणों को पायस भोजन कराने के पश्चात् घट तथा प्रतिमा गुरु को देकर ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे तथा उनको प्रणामोपरान्त विदा करे। नर अथवा नारी, जो कोई भी हो, यह व्रत आदरपूर्वक सम्पन्न करे।।७३-७५।।

लभते रूपसौभाग्यं नात्र कार्या विचारणा।
सहस्ये शुक्लपक्षे तु सुजन्म द्वादशीव्रतम्॥७६॥
तत्र स्नात्वा विधानेन गृह्णीयाद्वार्षिकव्रतम्।
पीत्वा गोशृङ्गवार्यादौ तां च कृत्वा प्रदक्षिणम्॥७७॥
प्रतिमासं ततः शुक्ले द्वादश्यां दानमाचरेत्।
घृतप्रस्थं तच्चतुष्कं क्रमाद्व्रीहेर्यवस्य च॥७८॥
द्विरक्तिकं हेम तिलाढकार्द्धं पयसां घटम्।
रौप्यस्य माषमेकं च तृप्तिकृन्मिष्टपक्वकम्॥७९॥
छत्रं महाषार्धहेम्नश्च प्रस्थं फाणितमुत्तमम्।
चन्दन पलिकं वस्त्रं पञ्चहस्तोन्मितं तनुम्॥८०॥

एवं तु मासिकं दानं कृत्वा प्राश्य यथाक्रमम्।
गोमूत्रं जलभाज्यं वा पक्वा शाकं चतुर्विधम्॥८१॥
दधियुक्तं यवान्नं च तिलाज्यं शर्करान्वितम्।
दर्भां बुक्षीरमुदितं प्राशनं प्रतिमासिकम्॥८२॥
एवं कृतव्रतो वर्षं सौवर्णीं प्रतिमां रवेः।
कृत्वा वै ताम्रपात्रस्थां न्यस्याभ्यर्च्य विधानतः॥८३॥

इससे उसका रूप तथा सौभाग्य वर्द्धित होगा। इसमें अन्यथा विचार न करे। पौष माह की शुक्ला द्वादशी के दिन सुजन्म द्वादशी व्रत होता है। उस तिथि पर स्नानोपरान्त वार्षिक व्रताचरणार्थ संकल्प ग्रहण करे। जल का स्पर्श गाय की सींग से कराये तथा पान करे। तदनन्तर उसकी प्रदक्षिणा करे। (गौ की प्रदक्षिणा करे।) प्रत्येक मास की शुक्लाद्वादशी तिथि पर दान अवश्य करे। इन वस्तु का क्रम से दान करे। यथा—एक सेर घृत, चार सेर यव, दो तोला स्वर्ण, सवा सेर तिल, एक घट दुग्ध, एक माशा रजत, तृप्तिप्रद मिष्ठान्न, छत्र, आधा माशा स्वर्ण, एक सेर उत्तम राब, एक पल चन्दन, पांच हाथ सूक्ष्म वस्त्र, एक-एक मास में एक-एक द्रव्य क्रमशः दान करे। बारह मास के लिये ये बारह द्रव्य कहे गये हैं। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त व्रत सम्पन्न करे। तदनन्तर प्रतिमास गोमूत्र, जल, घृत, चतुर्विध शाक, दही में पका जौ, शर्करायुक्त तिल, घृत, कुशोदक तथा दुग्ध से क्रमशः एक-एक द्रव्य से एक-एक मास प्राशन करे। (ऊपर १२ द्रव्य बारह मास हेतु कहे गये हैं) इस प्रकार एक वर्ष पर्यन्त यह व्रत करना चाहिये। सूर्य की स्वर्ण प्रतिमा को ताम्रपात्र में स्थापित करके सविधि पूजा करे।।७६-८३।।

गुरवे धेनुसहितां प्रत्यर्प्य प्रणमेत्पुरः।
विप्रान्द्वादश सम्भोज्य तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्॥८४॥
एवं कृतव्रतो विप्र जन्माप्नोत्युत्तमे कुले।
नीरोगो धनधान्याढ्यो भवेच्चाविकलेन्द्रियः॥८५॥

तत्पश्चात् गौ एवं यह प्रतिमा गुरु को देकर प्रणाम करे। १२ ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् दक्षिणा देना चाहिये। ऐसा कृतव्रती व्यक्ति उत्तम कुल में जन्म लेता है। हे विप्र! वह रोगरहित, धन-धान्य सम्पन्न तथा अविकल इन्द्रिय वाला होता है।।८४-८५।।

माघस्य शुक्लद्वादश्यां शालग्रामशिलां द्विज।
अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या सुवर्णं तन्मुखे न्यसेत्॥८६॥
तां स्थाप्य रौप्यपात्रे तु सितवस्त्रयुगावृताम्। प्रदद्याद्वदविदुषे तं हि सम्भोजयेत्ततः॥८७॥
पायसान्नेन खण्डाज्यसहितेन हितेन च। एवं कृत्वैकभक्तः सन्विष्णुचिन्तनतत्परः॥८८॥
वैष्णवं लभते धाम भुक्त्वा भोगानहेप्सितान्।
अन्त्ये सितायां द्वादश्यां सौवर्णीं प्रतिमां हरेः॥८९॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्दद्याद्वेदविदे द्विज।
द्विषट्कसङ्ख्यान्विप्रांश्च भोजयित्वा च दक्षिणाम्॥९०॥

माघ शुक्ल द्वादशी को शालग्राम शिला की भक्तिपूर्वक सविधि पूजा करके उसके मस्तक पर स्वर्ण रखे। उसे रजत पात्र में रखकर दो श्वेत वस्त्र से ढाक कर वेदज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करे तथा उसे पायसान्न तथा खाड़ घृतयुक्त भोजन कराये। ऐसा करने वाला भक्त विष्णु चिन्तनरत व्यक्ति पृथिवी पर ईप्सित भोगों को भोगकर विष्णुलोक जाता है। फाल्गुन शुक्ल द्वादशी तिथि पर हरि की स्वर्ण प्रतिमा की अर्चना गन्धपुष्पादि से करके वेदज्ञ द्विज को प्रदान करे। तदनन्तर द्विषट् संख्यक विप्रों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे।।८६-९०।।

दत्त्वा विसर्जयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बान्धवैः।
त्रिस्पृशोन्मीलिनी पक्षवर्द्धिनी वञ्जुली तथा॥९१॥
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता।
एता अष्टौ सदोपोष्या द्वादश्यः पापहरिकाः॥९२॥

तदनन्तर उनको विदा करने के उपरान्त व्रती व्यक्ति बन्धुगण, के साथ भोजन करे। त्रिस्पृशा, उन्मीलिनी, पक्षवद्धिनी, वञ्जुली, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता आठ द्वादशी हैं, जो पापहारी हैं। इन तिथियों पर उपवास करे।।९१-९२।।

नारद उवाच

कीदृशं लक्षणं ब्रह्मन्नेतासां किं फलं तथा।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व याश्चान्याः पुण्यदायिकाः॥९३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! इन द्वादशी का लक्षण तथा फल क्या है? कृपया यह बतलायें तथा अन्य पुण्यप्रदा द्वादशी का भी वर्णन करे।।९३।।

सूत उवाच

इत्थं सनातनः पृष्टो नारदेन द्विजोत्तमः। प्रशस्य भ्रातरं प्राह महाभागवतं मुनिः॥९४॥

सूत जी कहते हैं—द्विजोत्तम नारद के द्वारा यह पूछे जाने पर सनातन ने भाई की प्रशंसा किया तथा वे महाभागवत मुनि कहने लगे।।९४।।

सनातन उवाच

साधु पृष्टं त्वया भ्रातः साधूनां संशयच्छिदा।
वक्ष्ये महाद्वादशीनां लक्षणं च फलं पृथक्॥९५॥
एकादशी निवृत्ता चेत्सूर्यस्योदयतः पुरा।
तदा तु त्रिस्पृशा नाम द्वादशी सा महाफला॥९६॥
अस्यामुपोष्य गोविन्दं यः पूजयति नारद। अश्वमेधसहस्त्रस्य सफलं लभते ध्रुवम्॥९७॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे भ्राता! आपने साधुगण के संशय उच्छेदक अत्यन्त साधु प्रश्न पूछा है। अब मैं महाद्वादशियों के लक्षण तथा फलों को अलग-अलग कहता हूं। हे नारद! जब सूर्योदय के पूर्व एकादशी समाप्त हो, तब त्रिस्पृशा द्वादशी होगी। इस द्वादशी का महाफ़ल होता है। हे नारद! इस दिन जो उपवासी रहकर गोविन्द पूजन करता है, उसे १००० अश्वमेध फल निश्चित प्राप्त होता है।।९५-९७।।

यदारुणोदये विद्धा दशम्यैकादशी तिथि। तदा तां सम्परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत्॥९८॥

तत्रेष्ट्वा वासुदेवाख्यं सम्यक्पूजाविधानतः।
राजसूयसहस्रस्य फलमुन्मीलिते लभेत्॥९९॥

जब अरुणोदय के समय दशमी से एकादशी विद्धा हो, तब इस एकादशी को त्यागे तथा द्वादशी को उपवासी रहें। यह उन्मीलिनी द्वादशी है। इसमें वायुदेव की पूजा सविधि करे। पूजक को १००० राजसूय यज्ञफल मिलता है।।९८-९९।।

यदोदये तु सवितुर्याम्या त्वेकादशीं स्पृशेत्।
तदा वञ्जुलिकाख्यां तु तां त्यक्त्वोपोषयेत्सदा॥१००॥

अस्यां सङ्कर्षणं देवं गन्धाद्यैरुपचारकैः। पूजयेत्सततं भक्त्या सर्वस्याभयदं परम्॥१०१॥

जब सूर्योदय के समय दशमी एकादशी का स्पर्श करे, तब इस एकादशी को त्याग कर द्वादशी को उपवासी रहें। यही वंजुलिका द्वादशी है। उस समय दिनभर भक्तिभाव से गन्धादि उपचार से संकर्षण देव की पूजा करे। उस पूजक को परम अभयपद प्राप्त होगा।।१००-१०१।।

एषा महाद्वादशी तु सर्वक्रतुफलप्रदा। सर्वपापहरा प्रोक्ता सर्वसम्पत्यप्रदायिनी॥१०२॥

कुहूराके यदा वृद्धे स्यातां विप्र यदा तदा।
पक्षवर्द्धनिका नामद्वादशी सा महाफला॥१०३॥

तस्यां सम्पूजयेद्देवंप्रद्युम्नं जगतां पतिम्। सर्वैश्वर्य्यप्रदं साक्षात्पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥१०४॥

यह महाद्वादशी सर्वयज्ञफलप्रदा, सर्वपापहरा, सर्वसम्पदप्रदा कही गई है। जब अमावस्या तथा पूर्णिमा में वृद्धि हो, उस समय पक्षवर्धनिका द्वादशी महाफलप्रदा होती है। उस समय जगत्पति प्रद्युम्न देव की पूजा करे। यह द्वादशी सर्वैश्वर्यप्रदा तथा साक्षात् पुत्र-पौत्र वर्द्धिनी है।।१०२-१०४।।

यदा तु धवले पक्षे द्वादशी स्यान्मघान्विता।
तदा प्रोक्ता जया नाम सर्वशत्रुविनाशिनी॥१०५॥

अस्यां सम्पूजयेद्देवमनिरुद्धं रमापतिम्। सर्वकामप्रदं नृणां सर्वसौभाग्यदायकम्॥१०६॥

जब शुक्लपक्षीय द्वादशी मघा नक्षत्र युक्त हो, तब यही सर्वशत्रुनाशिनी जया द्वादशी है। तब सर्वकामप्रद एवं सर्वसौभाग्यवर्द्धक ऊषा पति अनिरुद्ध की पूजा करे। (रमा=ऊषा)।।१०५-१०६।।

श्रवणर्क्षयुता चेत्स्याद्द्वादशी धवले दले।
तदा सा विजया नाम तस्यामर्चेद्गदाधरम्॥१०७॥
सर्वसौख्यप्रदं शश्वत्ससर्वभोगपरायणम्।
सर्वतीर्थफलं विप्र तां चोपोष्याप्नुयान्नरः॥१०८॥
यदा स्याच्च सिते पक्षे प्राजापत्यर्क्षसंयुता।
द्वादशी महापुण्या जयन्ती नामतः स्मृता॥१०९॥

यस्यां समर्च्चयेद्देवं वामनं सिद्धिदं नृणाम्। उपोषितैषा विप्रेन्द्र सर्वव्रतफलप्रदा॥११०॥

जब शुक्लपक्षीय द्वादशी श्रवणा नक्षत्रयुक्त हो, तब वही है विजयाद्वादशी। उस समय भगवान् गदाधर की अर्चना करे। सर्वसुखप्रद, निरन्तर भोगनिरत तथा सर्वतीर्थफलप्रद गदाधरार्चन करे। जब शुक्लपक्षीय द्वादशी प्रजापति नक्षत्रान्वित हो, तब यह जयन्ती द्वादशी है, जो महापुण्या है। इस समय मनुष्यों को सिद्धि देने वाले वामनदेव की पूजा करे। हे विप्रेन्द्र! इस तिथि पर उपवास करने से यह सर्वफलप्रदा तथा व्रतफलप्रदा हो जाती है।।१०७-११०।।

सर्वदानफला चापि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।
यदा तु स्यात्सिते पक्षे द्वादशी जीवभान्विता॥१११॥

तदापराजिता प्रोक्ता सर्वज्ञानप्रदायिनी। अस्यां समर्चयेद्देवं नारायणमनामयम्॥११२॥

संसारपाशविच्छित्तिकारकं ज्ञानसागरम्। अस्यास्तूपोषणादेव मुक्तः स्याद्विप्र भोजनः॥११३॥

यह सर्वदानफलप्रदा तथा भुक्ति-मुक्तिप्रदा है। जब शुक्लपक्षीय द्वादशी बृहस्पति नक्षत्रयुक्त हो, तब वह अपराजिता द्वादशी कही जाती है। यह सर्वज्ञानप्रदा है। इस तिथि पर अनामय देव नारायण की अर्चना करे। यह संसाररूपी पाश को काटने वाली ज्ञानसागर रूप है। इस तिथि पर उपवासी रहे तथा ब्राह्मण भोजन कराये। यह मुक्तिप्रदा है।।१११-११३।।

यदा त्वाषाढशुक्लायां द्वादश्यां मैत्रभं भवेत्।
तदाव्रतद्वयं कार्य्यं न दोषोऽत्रैकदैवतम्॥११४॥
श्रवणर्क्षयुतायां च द्वादश्यां भाद्रशुक्लके।
ऊर्ज्जे सितायां द्वादश्यामन्त्यभे च व्रतद्वयम्॥११५॥
एताभ्योऽन्यत्र विप्रेन्द्र द्वादश्यामेकभुक्तकम्।
निसर्गतः समुद्दिष्टं व्रतं पातकनाशनम्॥११६॥
एकादश्यां व्रतं नित्यं द्वादश्या सहितं यतः।
नोद्यापनमिहोद्दिष्टं कर्त्तव्यं जीवितावधि॥११७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्य द्वादशीव्रतनिरूपणं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२१॥

—※—

जब आषाढ़ शुक्ला द्वादशी मैत्र नक्षत्र से युक्त हो, तब दोनों दिन व्रत करे। यदि दो व्रत एक देवता हेतु किया जाये, तब दोष नहीं होता। भाद्रशुक्लपक्षीय श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, फाल्गुन शुक्लाद्वादशी में उभय व्रत करे। अन्य द्वादशी के दिन एक ही समय भोजन का नियम है। द्वादशी युक्त एकादशी व्रत आजीवन करे। इसके उद्यापन की आवश्यकता नहीं होती।।११४-११७।।

।।१२१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय त्रयोदशी व्रत

सनातन उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रयोदश्या व्रतानि ते।
यानि कृत्वा नरो भक्त्या सुभगो जायते भुवि॥१॥
मधौ शुक्लत्रयोदश्यां मदनं चन्दनात्मकम्।
कृत्वा सम्पूज्य यत्नेन वीजेयद्व्यजनेन च॥२॥
ततः संक्षुधितः कामः पुत्रपौत्रविवर्द्धनः। अनङ्गपूजाप्यत्रोक्ता तां निबोध मुनीश्वर॥३॥
सिन्दूररजनीरागैः फलकेऽनङ्गमालिखेत्। रतिप्रीतियुतं श्लक्ष्णं पुष्पचापेषुधारिणम्॥४॥
कामदेवं वसन्तं च वाजिवक्त्रं वृषध्वजम्।
मध्याह्ने पूजयेद्भक्त्या गन्धस्त्रग्भूषणांशुकैः॥५॥
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चापि मन्त्रेणानेन नारद। नमो माराय कामाय कामदेवस्य मूर्त्तये॥६॥
ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनःक्षोभकराय वै। ततस्तस्याग्रतो भक्त्या पूजयेदङ्गनापतिम्॥७॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—जिस व्रतानुष्ठान से व्यक्ति पृथिवी पर सौभाग्ययुक्त होता है, मैं उस त्रयोदशी व्रत को कहता हूं। चैत्र शुक्लत्रयोदशी के दिन चन्दन के कामदेव निर्मित करे तथा उनकी पूजा करके यत्नतः पंखा झलना चाहिये। इस काम प्रसन्न होकर पुत्र-पौत्र सन्तान वृद्धि करते हैं। उस तिथि पर कामदेव (अनंग) पूजा की जाये। हे मुनीश्वर! उसका विधान श्रवण करे। सिन्दूर का घोल बनाकर शलाका से कामदेव का रतिप्रीति युक्त, सुन्दर चित्र बनाना चाहिये जो पुष्पधनु एवं कुसुम बाणधारी हो। उस समय अश्वमुख वाले वृषध्वज वसन्त का भी चित्र अंकित करे। इनकी पूजा मध्याह्नकाल में भक्ति-भावेन गन्ध-माला-वस्त्र तथा नाना भक्ष्य-भोज्य पदार्थ से इस मन्त्र द्वारा करनी चाहिये। "हे मार, काम, कामदेवमूर्त्तिधारी! आप ब्रह्मा-विष्णु-शिव-इन्द्र के भी मन को क्षुब्ध करते हैं। इस मन्त्र से अंगनापति काम की पूजा करे।।१-७।।

वस्त्रमाल्याविभूषाद्यैःकामोऽयमिति चिन्तयेत्।
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं गन्धवस्त्रविभूषणैः॥८॥
एवं यः कुरुते विप्र वर्षे वर्षे महोत्सवम्। वसन्तसमये प्राप्ते हृष्टः पुष्टः सदैव सः॥९॥
प्रतिमासं पूजयेद्वा यावद्वर्षं समाप्यते। मदनं हृद्भवं कामं मन्मथं च रतिप्रियम्॥१०॥
अनङ्गं चैव कन्दर्पं पूजयेन्मकरध्वजम्। कुसुमायुधसंज्ञं च ततः पश्चान्मनोभवम्॥११॥
विषमेषु तथा विप्र मालतीप्रियमित्यपि।
अजाया दानमप्युक्तं स्नात्वा नद्यां विधानतः॥१२॥
अजाः पयस्विनीर्दद्याद्दरिद्राय कुटुम्बिने। भूयस्त्वनेन दानेन स लोके नैव जायते॥१३॥

हे विप्र! उनकी पूजा करके द्विजसम्पति में काम तथा रति की भावना करके वस्त्र-माला विभूषण, गंधादि से करे। हे विप्र! जो प्रतिवर्ष यह महोत्सव वसन्त काल में करता है, वह सदा हृष्ट-पुष्ट रहता है। किंवा एक वर्ष पर्यन्त (इस तिथि से लेकर प्रति मासी त्रयोदशी के दिन) हृद्भव, काम, मन्मथ, रतिप्रिय, अनंग, कंदर्प, मकरध्वज, कुसुमायुध, मनोभव, विषमशर, मालतीप्रिय की पूजा करनी चाहिये। इस तिथि पर अजादान की विधि है। व्रती व्यक्ति सविधि सरिता में स्नानोपरान्त दुग्धवती बकरी (अजा) दरिद्र कुटुम्बी को प्रदान करे। जो यह दान करता है, उसे पुनर्जन्म प्राप्त नहीं होता।।८-१३।।

यदीयं शनिना युक्ता सा महावारुणी स्मृता।
गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहाधिका॥१४॥
शुभयोगः शतर्क्षे च शनौ कामे मधौ सिते।
महामहेति विख्याता कुलकोटिविमुक्तिदा॥१५॥
राधशुक्लत्रयोदश्यां कामदेवव्रतं स्मृतम्। तत्र गन्धादिभिः कामं पूजयेदुपवासवान्॥१६॥

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को यदि शनिवार तथा शुभ योग शतभिषा नक्षत्र हो, तब वह महावरुणी कहा गया है। त्रयोदशी शनियुक्त होने पर यह योग होता है। इस तिथि पर इस योग में यदि गंगा स्नान लाभ हो, तब करोड़ों सूर्यग्रहण की तुलना में यह गंगास्नान प्रभूत फलद होगा। इससे स्नानकर्त्ता का एक करोड़ कुल मोक्षगामी हो जाता है। वैशाख शुक्ल त्रयोदशी को कामव्रत तिथि कहते हैं। तब उपवासी रहकर गन्धादि से कामदेव पूजन करे।।१४-१६।।

प्रतिमासं ततः पश्चात्त्रयोदश्यां सिते दले।
एवमेव व्रतं कार्यं वर्षान्ते गामलङ्कृताम्॥१७॥
दद्याद्विप्राय सत्कृत्य व्रतसाङ्गत्वसिद्धये। ज्येष्ठशुक्लत्रयोदश्यां दौर्भाग्यशमनं व्रतम्॥१८॥
तत्र स्नात्वा नदी तोये पूजयेच्छुचिदेशजम्। श्वेतमन्दरमर्कं वा करवीरं च रक्तकम्॥१९॥
निरीक्ष्य गगने सूर्यं प्रार्थयेन्मन्त्रतस्तदा। मन्दरकरवीरार्का भवन्तो भास्करांशजाः॥२०॥
पूजिता मम दौर्भाग्यं नाशयन्तु नमोऽस्तु वः।
इत्थं योऽर्चयेत्भक्त्या वर्षे वर्षे द्रुमत्रयम्॥२१॥

इस तिथि पर वर्षान्त में व्रत को सम्पूर्ण करने हेतु सादर अलंकृता गौ ब्राह्मण को प्रदान करे। ज्येष्ठा शुक्ला त्रयोदशी पर दुर्भाग्यशमन व्रत करे। नदी जल में स्नानोपरान्त पवित्र स्थलोत्पन्न श्वेतमन्दार, आक तथा लाल कनेर से पूजा करे। सूर्य की ओर लक्ष्य रखकर यह मन्त्र पढ़े—'मदार, कनेर, अर्क ये तीनों सूर्य के अंश हैं। ये पूजित होकर मेरे दुर्भाग्य का नाश करे। आपको प्रणाम!" इस प्रकार प्रत्येक वर्ष भक्ति से तीनों वृक्ष की पूजा करे।।१७-२१।।

नश्यते तस्य दौर्भाग्यं नात्र कार्या विचारणा।
शुचिशुक्लत्रयोदश्यामेकभक्तं समाचरेत्॥२२॥
पूजयित्वा जगन्नाथावुमामाहेश्वरी तनूः। हैम्यौ रौप्यौ च मृन्मय्यौ यथाशक्त्या विधाय च॥२३॥

सिंहोक्षस्थे देवगृहे गोष्ठे ब्राह्मणवेश्मनि। स्थापयित्वा प्रतिष्ठाप्य दैवमन्त्रेण नारद॥२४॥
ततःपञ्चदिनं पूजा चैकभक्तं व्रतं तथा। तृतीयदिवसे प्रातः स्नात्वा सम्पूज्य तौ पुनः॥२५॥
समर्पणीयौ विप्राय वेदवेदाङ्गशालिने। वर्षे वर्षे ततः पश्चाद्विधेयं वर्षपञ्चकम्॥२६॥

इस पूजन द्वारा दुर्भाग्य नाश होगा। इसमें अन्यथा विचार न करे। आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी तिथि पर एक समय भोजन करे। एक ही समय भोजन करके निर्वाह करते हुये जगत्पति शंकर तथा माहेश्वरी उमा की स्वर्ण किंवा रजत प्रतिमा बनाये तथा उसे सिंह अथवा गौशाला में, किंवा जहां वृष रहते हों, देवालय में अथवा ब्राह्मण के गृह में देवमन्त्र से स्थापित करे। ५ दिनों तक एक समय ही भोजन करे। तीसरे दिन प्रातः स्नानोपरान्त पुनः पूजा करके वेद-वेतान्तज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करे। इस प्रकार ५ वर्षों तक प्रतिवर्ष यह करना चाहिये।।२२-२६।।

तदन्ते धेनुयुग्मेन सहितौ तौ प्रदापयेत्। इत्थं नरो वा नारी वा कृत्वा व्रतमिदं शुभम्॥२७॥
नैव दाम्पत्यविच्छेदं लभते सप्तजन्मसु। नभःशुक्लत्रयोदश्यां रतिकामव्रतं शुभम्॥२८॥
वैधव्यवारणं स्त्रीणां तथा सन्तानवर्धनम्। कृतोपवासा कन्यैव नारी वा द्विजसत्तम॥२९॥

दो गौओं सहित ये प्रतिमा दान करे। जो नर अथवा नारी इस पवित्र व्रताचरण को करते हैं, उनका दाम्पत्य सात जन्म पर्यन्त बना रहता है। व्रती व्यक्ति श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को रति-काम व्रताचरण करे। यह वैधव्य नाशक है तथा सन्तानवर्द्धक है। हे द्विजप्रवर! उसी तिथि पर कन्या अथवा नारी उपवासी रहे।।२७-२९।।

ताम्रे वा मृन्मये वापि सौवर्णे राजते तथा।
रतिकामौ प्रविन्यस्य गन्धाद्यैः सम्यगर्चयेत्॥३०॥
ततस्तु द्विजदाम्पत्यं चतुर्दश्यां निमन्त्र्य च।
सत्कृत्य भोज्य प्रतिमे दद्यात्ताभ्यां सदक्षिणे॥३१॥
एवं चतुर्दशाब्दं च कृत्वा व्रतमनुत्तमम्। धेनुयुग्मान्विते देये व्रतसम्पूर्तिहेतवे॥३२॥
भाद्रशुक्लत्रयोदश्यां गोत्रिरात्रव्रतं स्मृतम्।
लक्ष्मीनारायणं कृत्वा सौवर्णं वापि राजतम्॥३३॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य मण्डलेऽष्टदले शुभे।
पीठे विन्यस्य वस्त्राढ्यं गन्धाद्यैः परिपूजयेत्॥३४॥
आरार्तिकं ततः कृत्वा दद्यात्सान्नोदकं घटम्।
एवं दिनत्रयं कृत्वा वृतान्ते मासमर्च्य च॥३५॥
सम्यगर्थं च सम्पाद्य दद्यान्मन्त्रेण नारद। पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ॥३६॥
तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः।
प्रदक्षिणीकृत्य ततो दद्याद्विप्राय मन्त्रतः॥३७॥

इस तिथि पर रति तथा काम की ताम्र, मिट्टी, स्वर्ण अथवा चांदी की प्रतिमा लाकर उसकी पूजा गन्धादि से करे। हे द्विजसत्तम! चतुर्दशी के दिन (अगले दिन) द्विजदम्पति का सत्कार करके उनको भोजनोपरान्त सदक्षिणा ये प्रतिमा प्रदान करे। एवंविध चतुर्दश वर्ष पर्यन्त इस उत्तम व्रताचरण को सम्पन्न करने के अनन्तर व्रत पूर्णतार्थ दो गोदान करना चाहिये। भाद्रशुक्ला त्रयोदशी को गोत्रिरात्र व्रत करना चाहिये। लक्ष्मी-नारायण की स्वर्ण किंवा रजत की प्रतिमा लाकर उनको उत्तम अष्टदल पीठ पर पंचामृत स्नान कराये। तदनन्तर गन्धादि से पूजा करके आरती करे तथा अन्न से भरा घट प्रदान करे। इस तरह तीन दिनों तक व्रताचरण करने के पश्चात् अर्चना करके इस मन्त्र से ब्राह्मण को गौ अर्पित करे। हे नारद! गौ प्रदक्षिणा मंत्र यह है—"महोदधि मन्थन से ५ गौवें उत्पन्न हुई थीं। उनमें जो नन्दा हैं, उन धेनु को प्रणाम!" इस मन्त्र से प्रदक्षिणा करने के उपरान्त इस मन्त्र को पढ़ते हुये गौ ब्राह्मण को प्रदान करे।।३०-३७।।

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥३८॥
ततश्च द्विजदाम्पत्यं सम्यगभ्यर्च्य भोजयेत्।
लक्ष्मीनारायणं तस्मै सत्कृत्य प्रतिपादयेत्॥३९॥

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। कृत्वा यत्फलमाप्नोति गोत्रिरात्रव्रताच्च तत्॥४०॥

मन्त्रार्थ यह है—"गायें मेरे आगे, पृष्ठ की ओर तथा उभय पार्श्व में रहें। मैं गौओं के मध्य में निवास करूं" तदनन्तर द्विज दम्पति का पूजन करे और उनको भोजनोपरान्त लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा सादर अर्पित करे। यह हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ का जो पुण्यफल है, वही फल मात्र गो त्रिरात्रि व्रत से प्राप्त हो जाता है।।३८-४०।।

इषे शुक्लत्रयोदश्यां त्रिरात्राशोकव्रतम्। हैमं ह्यशोकं निर्माय पूजयित्वा विधानतः॥४१॥
उपवासपरा नारी नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणाः। अष्टोत्तरशतं विप्र मन्त्रेणानेन सादरम्॥४२॥
हरेण निर्मितः पूर्वं त्वमशोक कृपालुना। लोकोपकारकरणस्तत्प्रसीद शिवप्रिय॥४३॥

आश्विन शुक्ला त्रयोदशी तिथि पर त्रिरात्राशोक व्रत करे। नारी उपवासी रहकर स्वर्ण निर्मित अशोक वृक्ष की सविधि पूजा करके इस मन्त्र द्वारा उसकी १०८ प्रदक्षिणा करे। "हे कृपालु अशोक! भगवान् शिव ने तुम अशोक कृपालु का निर्माण किया था। हे लोकोपकारकारण शिवप्रिय! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।"।।४१-४३।।

ततस्तृतीये दिवसे वृक्षे तस्मिन्वृषध्वजम्।
समभ्यर्च्य विधानेन द्विजं सम्भोज्य दापयेत्॥४४॥
एवं कृतव्रता नारी वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित्।
पुत्रपौत्रादिसहिता भर्तुश्च स्यात्सुवल्लभा॥४५॥

ऐसा दो दिन करके तीसरे दिन उसी वृक्ष में भगवान् शिव की सविधि पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मण को भोजन कराने के उपरान्त दक्षिणा सहित यह वृक्ष उनको प्रदान करना चाहिये। ऐसी व्रत तत्पर नारी कदापि विधवा नहीं होती। वह पुत्र-पौत्र सहित स्वामी की प्रिया होती है।।४४-४५।।

ऊर्ज्जकृष्णात्रयोदश्यामेकभक्तः समाहितः।
प्रदोषे तैलदीपं तु प्रज्वाल्याभ्यर्च्य यत्नतः॥४६॥
गृहद्वारे बहिर्दद्याद्यमो मे प्रीयतामिति। एवं कृते तु विप्रेन्द्र यमपीडा न जायते॥४७॥
ऊर्ज्जशुक्लत्रयोदश्यामेकभोजी द्विजोत्तम।
पुनः स्नात्वा प्रदोषे तु वाग्यतः सुसमाहितः॥४८॥
प्रदीपानां सहस्रेण शतेनाप्यथवा द्विज। प्रदीपयेच्छिवं वापि द्वात्रिंशद्दीपमालया॥४९॥
घृतेन दीपयेद्दीपान्गन्धाद्यैः पूजयेच्छिवम्। फलैर्नानाविधैश्चैव नैवेद्यैरपि नारद॥५०॥
ततः स्तुवीत देवेशं शिवं नाम्नां शतेन च।
तानि नामानि कीर्त्यन्ते सर्वाभीष्टप्रदानि वै॥५१॥

कार्तिक कृष्णपक्षीय त्रयोदशी के दिन मात्र एक बार भोजन करे तथा जितेन्द्रिय रहकर प्रदोष में तैल का दीप जलाये। तथा "यम मुझ पर प्रसन्न रहें" कहकर दीपक को द्वार के बाहर स्थापित करे। हे विप्रप्रवर! जो मनुष्य ऐसा करता है, उसे यमजनित पीड़ा नहीं होती। हे द्विजप्रवर! कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को एक ही समय आहार ग्रहण करे। प्रदोष के समय पुनः स्नानोपरान्त मौनी रहते हुये १००० अथवा १०० दीपक शिव के निकट प्रज्वलित करे। तब बत्तीस दीपमालिका भी प्रज्वलित करना चाहिये। दीपक घृत से दीपमालिका जलाये। तदनन्तर गन्धादि फल, नैवेद्य से शिवार्चन के पश्चात् हे नारद! शंकर के शत नाम से शिव की स्तुति करनी चाहिये। इन नामों के कीर्त्तन से सर्व अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।।४६-५१।।

नमो रुद्राय भीमाय नीलकण्ठाय वेधसे। कपर्द्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै नमः॥५२॥
वृषध्वजाय सोमाय सोमनाथाय वै नमः। दिगम्बराय भृङ्गाय उमाकान्ताय वर्द्धिने॥५३॥
तपोमयाय व्याप्ताय शिपिविष्टाय वै नमः। व्यालप्रियाय व्यालानां पतये नमः॥५४॥
महीधराय व्योमाय पशूनां पतये नमः। त्रिपुरघ्नाय सिंहाय शार्दूलार्षभाय च॥५५॥

रुद्र, भीम, नीलकण्ठ, वेधा, कपर्दी, सुरेश, व्योमकेश! आपको नमस्कार! वृषध्वज, सोम, सोमनाथ, दिगम्बर, भृंग, उमाकान्त, वर्धा, तपोमय, व्याप्त, शिपिविष्ट, व्यालप्रिय, व्यालपति, महीधर, व्योम, पशुपति, त्रिपुरनाशक, सिंह, शार्दूल, ऋषभ! आपको नमस्कार!।।५२-५५।।

मिताय मितनाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने। वेदगीताय गुप्ताय वेदगुह्याय वै नमः॥५६॥
दीर्घाय दीर्घरूपाय दीर्घार्थाय महीयसे। नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः॥५७॥
कल्याणाय विशिष्टाय शिष्टाय परमात्मने। गजकृत्तिधरायाथ अन्धकासुरभेदिने॥५८॥

मित, मितनाथ, सिद्ध, परमेष्ठि, वेदगीत, गुप्त, वेदगुह्य, दीर्घ, दीर्घरूपी, दीर्घाथ, महीयसि, जगत्प्रतिष्ठ, व्योमरूपी, कल्याण, विशिष्ट, शिष्ट, परमात्मा, जगत्कृतिधर, अन्धकासुर नाशक! आपको नमस्कार!।।५६-५८।।

नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च।
भक्तिप्रियाय देवाय यज्ञान्तायाव्ययाय च॥५९॥

महेशाय नमस्तुभ्यं महादेवहराय च। त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदाङ्गाय नमो नमः॥६०॥
अर्थायार्थस्वरूपाय परमार्थाय वै नमः। विश्वरूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वै नमः॥६१॥
शङ्कराय च कालाय कालावयवरूपिणे। अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः॥६२॥

नीललोहित, शुक्ल, चण्ड-मुण्डप्रिय, भक्तिप्रिय, देव, यज्ञान्त, अव्यय, महेश, महादेव, हर, त्रिनेत्र, त्रिवेद, वेदाङ्ग, अर्थ, अर्थरूप, विश्वरूप, विश्व, विश्वनाथ, शंकर, काल, काल अवयवरूपी, अरूप, विरूप, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म! आपको नमस्कार।।५९-६२।।

श्मशानवासिने तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे। शशाङ्कशेखरायाथ रुद्रभूमिश्रिताय च॥६३॥
दुर्गाय दुर्गपाराय दुर्गावयवसाक्षिणे। लिङ्गरूपाय लिङ्गाय लिङ्गानां पतये नमः॥६४॥
नमः प्रभावरूपाय प्रभावार्थाय वै नमः॥६५॥

श्मशानवासी, कृत्तिवास, शशांकशेखर, रुद्रभूमिश्रित, दुर्ग, दुर्गपार, दुर्गावयव, साक्षी, लिंगरूप, लिंग, लिंगपति, प्रभावरूप, प्रभावार्थ! आपको नमस्कार।।६३-६५।।

नमोनमःकारणकारणाय मृत्यञ्जयायात्मभवस्वरूपिणे।
त्रियम्बकाय शितिकण्ठभर्गिणे गौरीयुजेमङ्गलहेतवे नमः॥६६॥

कारण के भी कारण, मृत्युञ्जय, आत्मा, भवरूप, त्र्यम्बक, शितिकण्ठ, भर्ग, गौरी से सम्बन्ध रखने वाले, मंगल के हेतुभूत! आपको नमस्कार!।।६६।।

नाम्नां शतमिदं विप्र पिनाकिगुणकीर्तनम्।
पठित्वा दक्षिणीकृत्य प्रायान्निजनिकेतनम्॥६७॥
एवं कृत्वा व्रतं विप्र महादेवप्रसादतः। भुक्त्वेह भोगानखिलानन्ते शिवपदं लभेत्॥६८॥

हे विप्र! यह शतनाम पिनाकी महादेव के गुणों का कीर्त्तन है। जो इन नामों को पढ़ता प्रदक्षिणा करता है, वह शिवलोक जाता है। हे विप्र! यह व्रत करने वाला महादेव की कृपा से अखिल भोगों को भोगकर अन्त में शिवपद लाभ करता है।।६७-६८।।

मार्गशुक्लत्रयोदश्यां योऽनङ्गं विधिना यजेत्।
त्रिकालमेककालं वा शिवसङ्गमसम्भवम्॥६९॥
गन्धाद्यैरुपचारैस्तु पूजयित्वा विधानतः। घटे मङ्गलपट्टे वा भोजयेद्द्विजदम्पती॥७०॥
ततश्च दक्षिणां दत्त्वा स्वयमेकाशनं चरेत्।
एवं कृते तु विधिवद्व्रती सौभाग्यभाजनः।
जायते भुवि विप्रेन्द्र महादेवप्रसादतः॥७१॥

अग्रहायण शुक्ल त्रयोदशी पर सविधि अनंग (कामदेव) की पूजा करे। तीनों काल अथवा एक काल शिवसंगम से उद्भूत अनंग देव की पूजा, घट पर, मंगलपट्ट पर गन्धादि उपचार से सविधि करके द्विजदम्पति को भोजन कराये। उनको दक्षिणा देकर विदा करके तब स्वयं एकाहार (एक समय ही आहार) करे। हे विप्रर्षि! जो यह व्रत इस प्रकार करता है, उसकी नाना कामनायें सफलीभूत हो जाती हैं।।६९-७१।।

पौषशुक्लत्रयोदश्यां समभ्यर्च्याच्युतं हरिम्। घृतपात्रं द्विजेन्द्राय प्रदद्यात्सर्वसिद्धये।।७२।।
माघशुक्लत्रयोदश्यां समारभ्य दिनत्रयम्। माघस्नानव्रतं विप्र नानाकामफलावहम्।।७३।।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम्। नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि।।७४।।
तत्र स्नानं जपो होमो दानं चानन्त्यमश्नुते। फाल्गुने तु सिते पक्षे त्रयोदश्यामुपोषितः।।७५।।
नमस्कृत्य जगन्नाथं प्रारम्भे धनदव्रतम्। महाराजं यक्षपतिं गन्धाद्यैरुपचारकैः।।७६।।

पौष शुक्ला त्रयोदशी को विष्णु पूजनोपरान्त घृतयुक्त पात्र ब्राह्मण को दान करे। सभी कामना पूर्ण होगी। हे विप्र! माघ शुक्ला त्रयोदशी से माघी पूर्णिमा तक माघ स्नान व्रत ग्रहण करे। नाना कामना पूर्ण होगी। माघ मास में इन तीन दिन प्रयोग स्नान का जो फल है, वह सहस्र अश्वमेध यज्ञफल से भी अधिक है। इन तिथियों पर प्रयाग में स्नान, जप, होम, दान का अनन्त फल होता है। फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी पर उपवासी रहकर जगन्नाथ को प्रणाम करना चाहिये। तब कुबेर व्रताचरण प्रारंभ करना चाहिये। महाराज यक्षपति की पूजा गंधादि उपचारों से करे।।७२-७६।।

लिखितं वर्णकैः पट्टे पूजयेद्भक्तिभावतः। एवं शुक्लत्रयोदश्यां प्रतिमासं द्विजोत्तम।।७७।।
सम्पूजयेत्सोपवासश्चैकभुक्तो भवेन्नरः। ततो व्रतान्ते तु पुनः सौवर्णं धननायकम्।।७८।।
विधाय निधिभिः सार्द्धं सौवर्णाभिर्द्विजोत्तम। उपचारैः षोडशभिः स्नानैः पञ्चामृतादिभिः।।७९।।
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्त्या पूजयेत्तु समाहितः। ततो धेनुमलङ्कृत्य वस्त्रस्त्रग्गन्धभूषणैः।।८०।।
सवत्सां दापयेद्विप्र सम्यग्वेदविदे शुभाम्। सम्भोज्य विप्रान्मिष्टान्नैर्द्वादशाद्य त्रयोदश।।८१।।

गुरुं समर्च्य वस्त्राद्यैः प्रतिमां तां निवेदयेत्।
द्विजेभ्यो दक्षिणां शक्त्या दत्त्वा नत्वा विसृज्य च।।८२।।

पट्ट पर गेरु से बनाये यक्षपति के चित्र की गंधादि उपचार से भक्ति-भाव से पूजा करे। हे द्विजप्रवर! प्रतिमास शुक्ला त्रयोदशी तिथि पर उपवासी रहकर पूजा करने वाला व्यक्ति उपवासी रहकर अथवा मात्र एक समय भोजन करके रहे। व्रतान्त में स्वर्ण के धननायक कुबेर की पूजा निधियों के साथ करके उसकी पूजा षोडशोपचार से करके उसे पंचामृत आदि से स्नान कराये। समाहित होकर विविध नैवेद्य से भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर वस्त्र, माला, गन्ध, आभूषण से सज्जित सवत्सा गौ वेदज्ञ ब्राह्मण को जो वेदज्ञ हो प्रदान करे तदनन्तर १२ अथवा १३ ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन कराये। गुरु को वस्त्रादि एवं दक्षिणा के साथ प्रतिमा अर्पण करे। द्विजगण को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर तथा उनको प्रणाम करके विदा करे।।७७-८२।।

स्वयं भुञ्जीत मतिमानिष्टै सह समाहितः। एवं कृते व्रते विप्र निर्धनः प्राप्य वैभवम्।।८३।।
मोदते भुवि विख्यातो राजराज इवापरः।।८४।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितत्रयोदशीव्रतकथनम्
द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

तत्पश्चात् वह मतिमान् व्रती व्यक्ति सावधानी सहित भोजन करे। हे विप्र! इस व्रताचरण से निर्धन भी ऐश्वर्यवान् होकर इस लोक में राजराज जैसे मुदित एवं विख्यात होता है।।८३-८४।।

।।१२२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय चतुर्दशी व्रत विधि-वर्णन

सनातन उवाच

श्रृणुनारद वक्ष्यामि चतुर्दश्या व्रतानि ते।
यानि कृत्वा नरो लोके सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१॥
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां कुङ्कुमागरुचन्दनैः। गन्धाद्यैर्वस्त्रमणिभिः कार्यार्चा महती शिवे॥२॥
वितानध्वजछत्राणि दत्त्वा पूज्याश्च मातरः।
एवं कृत्वार्चनं विप्र सोपवासोऽथवैकभुक्॥३॥
अश्वमेधाधिकं पुण्यं लभते मानवो भुवि। अत्रैव दमनार्चा च कारयेद्गन्धपुष्पकैः॥४॥
समर्पयेत्सुपूर्णायां शिवाय शिवरूपिणे। राधाकृष्णचतुर्दश्यां सोपवासो निशागमे॥५॥
लिङ्गमभ्यर्चयेच्चैवं स्नात्वा धौताम्बरः सुधीः। गन्धाद्यैरुपचारैश्च बिल्वपत्रैश्च सर्वतः॥६॥
दत्त्वा मन्त्रं द्विजाग्र्याय भुञ्जीत च परेऽहनि। एवमेव तु कृष्णासु सर्वासु द्विजसत्तम॥७॥
शिवव्रतं प्रकर्तव्यं धनसन्तानमिच्छता। राधाशुक्लचतुर्दश्यां श्रीनृसिंहव्रतं चरेत्॥८॥

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे नारद! श्रवण करे! जिस व्रतानुष्ठान से मनुष्य समस्त इहलौकिक कामना प्राप्त करता है, उस चतुर्दशी व्रत को कहता हूं। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तिथि पर कुंकुम, अगुरु, चन्दन, गन्ध, वस्त्र, मणि, वितान, पताका, छत्रादि से शिव तथा मातृकाओं की पूजा करे। हे विप्र! व्रती व्यक्ति उपवासी रहे अथवा एक समय ही यव भोजन करे। जो इस प्रकार व्रत करता है, उसे अश्वमेधादि पुण्यफल लाभ होता है। इसी दिन दमनक पूजा भी होती है। इसे गन्ध-पुष्पादि से करे। इसे तदनन्तर पूर्णिमा के दिन शिव को प्रदान करे, जो कल्याणरूपी है। वैशाखा कृष्ण चतुर्दशी तिथि के दिन उपवासी व्यक्ति प्रदोष में शिवलिंगोपासना करे। इसमें स्नान करे तथा स्वच्छ वस्त्रधारी होकर गन्धादि एवं बिल्वपत्रादि से शिवाराधन करके अगले दिन श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। हे द्विजसत्तम! वह लोग एवंविध प्रत्येक मास शिवव्रत करे, जो धन, सन्तान की इच्छा रखते हैं। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी तिथि पर भी नृसिंह व्रताचरण करे।।१-८।।

उपवासविधानेन शक्तोऽशक्तस्थैकभुक्। निशागमे तु सम्पूज्य नृसिंहं दैत्यसूदनम्॥९॥
उपचारैः षोडशभिः स्नानैः पञ्चामृतादिभिः। ततः क्षमापयेद्देवं मन्त्रेणानेन नारद॥१०॥

तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन। वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते॥११॥

जो अशक्त है, वह एक समय भोजन करे, जो समर्थ है, वह उपवास करे। प्रदोष काल में दैत्यनाशक नृसिंह की पूजा षोडशोपचार से करे। उनको पंचामृत स्नान कराये। तदनन्तर इस मन्त्र से क्षमा याचना करना चाहिये। "आपके केश तप्त स्वर्ण के वर्ण वाले हैं। नेत्र ज्वलामय पावक के समान हैं। आपका नख स्पर्श वज्र से भी तीक्ष्ण है। हे दिव्य सिंह! आपको प्रणाम करता हूं!"।।९-११।।

इति सम्प्रार्थ्य देवेशं व्रती स्यात्स्थण्डिलेशयः।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः सर्वभोगविवर्जितः॥१२॥

एवं यः कुरुते विप्र विधिवद्व्रतमुत्तमम्। वर्षे वर्षे च लभते भुक्तभोगो हरेः पदम्॥१३॥

देवेश से यह प्रार्थना करने के उपरान्त वह व्रती जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, सर्वभाग विवर्जित होकर वहां धरती पर शयन करे। हे विप्र! जो इस प्रकार सविधि इस उत्तम व्रत को प्रतिवर्ष करता है, वह पृथिवी पर सर्वभोगलाभ करके अन्त में शिवलोक गमन करता है।।१२-१३।।

ओङ्कारेश्वरयात्रा च कार्यात्रैव मुनीश्वर। दुर्लभं वार्चनं तत्र दर्शनं पापनाशनम्॥१४॥

किमत्र बहुनोक्तेन पूजाध्यानजपेक्षणम्। यद्भवेत्तत्समुद्दिष्टं ज्ञानमोक्षप्रदं नृणाम्॥१५॥

अत्र लिङ्गव्रतं चापि कर्त्तव्यं पापनाशनम्।
पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य लिङ्गमालिप्य कुङ्कुमैः॥१६॥

नैवेद्यैश्च फलैर्धूपैर्दीपैर्वस्त्रविभूषणैः। एवं यः पूजयेत्पैष्टं लिङ्गसर्वार्थसिद्धिदम्॥१७॥

भुक्तिं मुक्तिं च लभते महादेवप्रसादतः। ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां दिवा पञ्चतपा निशः॥१८॥

मुखे ददेद्धेमधेनुं रुद्रव्रतमिदं स्मृतम्। शुचिशुक्लचतुर्दश्यां शिवं सम्पूज्य मानवः॥१९॥

हे मुनीश्वर! उस दिन ओंकारेश्वर यात्रा करे। उनका अर्चन दुर्लभ है। दर्शन पापनाशक है। अधिक क्या कहूं? व्यक्ति ओंकारेश्वर के पूजन, ध्यान, दर्शन, जप द्वारा मानव ज्ञान तथा मोक्षलाभ करता है। अब पापनाशी लिंगव्रत भी उस दिन करे। पंचामृत से उस दिन शिवलिंग को स्नान कराने के पश्चात् लिंग पर कुकुंम लिप्त करे। नैवेद्य, फल, धूप, दीप, वस्त्राभूषण से उनकी पूजा करे। इस विधि से सर्वकामप्रद शिवलिंगार्चन करने वाला शिव कृपा से भोग-मोक्ष प्राप्त करता है। ज्येष्ठशुक्ल चतुर्दशी को दिन में देश काल में प्राप्त पुष्प से शिवपूजा करे। ब्राह्मण को स्वर्ण तथा धेनु प्रदान करे। यह रुद्रव्रत है। ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी के दिन मानव शिवपूजा करे।।१४-१९।।

देशकालोद्भवैः पुष्पैः सर्वसम्पदमाप्नुयात्।
नभःशुक्लचतुर्दश्यां पवित्रारोपणं मतम्॥२०॥
तत्स्वशाखोक्तविधिना कर्तव्यं द्विजसत्तम।
शताभिमन्त्रितं कृत्वा ततो देव्यै निवेदयेत्॥२१॥
पवित्रारोपणं कृत्वा नरो नार्यथवा यदि।
महादेव्याः प्रसादेन भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात्॥२२॥

देश कालोद्भव पुष्प से पूजा करने वाला व्यक्ति सभी सम्पदा लाभ करता है। श्रावण शुक्ल चतुर्दशी के दिन मानव पवित्रारोपण करे। अपने शाखोक्त विधान से यह करे। हे द्विजप्रवर! उसे १०० बार अभिमंत्रित देवी को अर्पित करे। नर अथवा नारी पवित्रारोपण करके महादेव की कृपा से मुक्ति तथा भुक्ति दोनों प्राप्त करता है।।२०-२२।।

भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतमुत्तमम्। कर्त्तव्यमेकभुक्तं हि गोधूमप्रस्थपिष्टकम्॥२३॥
विपाच्च शर्कराज्याक्तमनन्ताय निवेदयेत्।
गन्धाद्यैः प्राक् समभ्यर्च्य कार्पासं पट्टजं तु वा॥२४॥
चतुर्दशग्रन्थियुतं सूत्रं कृत्वा सुशोभनम्। ततः पुराणमुत्तार्य सूत्रं क्षिप्त्वा जलाशये॥२५॥
निबध्नीयान्नवं नारी वामे दक्षे पुमान्भुजे। विपाच्य पिष्टपक्वं तत्प्रद्याद्दक्षिणान्वितम्॥२६॥
स्वयं च तन्मितं चाद्यादेवं कुर्याद्व्रतोत्तमम्। द्विसप्तवर्षपर्यन्तं तत्र उद्यापयेत्सुधीः॥२७॥

भाद्रपदीय शुक्ला चतुर्दशी को अत्युत्तम अनन्त व्रत करे। उस दिन व्रती व्यक्ति एक ही समय भोजन करे। वह एक सेर आटा को घृत शर्करा में पकाकर भगवान् अनन्त को अर्पित करे। पहले गन्धादि से पूजनोपरान्त कपास किंवा रेशम की उत्तम डोर जो १४ गांठ की हों भुजा पर बांधे, पुराने डोर को जलाशय में फेके। नारी वाम बाहु में तथा पुरुष दाहिनी बाहु में बांधे। तदनन्तर पक्वान एवं दक्षिणा ब्राह्मण को देकर स्वयं भी उतना भोजन करे। सुधी व्रती व्यक्ति १४ वर्ष तक व्रतोपरान्त उद्यापन करे।।२३-२७।।

मण्डलं सर्वतोभद्रं धान्यवर्णैः प्रकल्प्य च। सुशोभने न्यसेत्तत्र कलशं ताम्रजं मुने॥२८॥
तस्योपरि न्यसेद्धैमीमनन्तप्रतिमां शुभाम्।
पीतपट्टांशुकाच्छन्नां तत्र तां विधिना यजेत्॥२९॥
गणेशं मातृकाः खेटाँल्लोकपांश्च यजेत्पृथक्।
ततो होमं हविष्येण कृत्वा पूर्णाहुतिं चरेत्॥३०॥

इस हेतु सर्वतोभद्र मण्डल उत्तमरूपेण बनाकर उस पर ताम्र कलश रखे। तदनन्तर ताम्रपात्र में कलश पर स्वर्ण निर्मित अनन्तदेव की प्रतिमा स्थापित करे तथा पीतवर्ण के रेशमी वस्त्र से उसे आवृत करके सविधि अर्चना करनी चाहिये। गणेश, मातृका, लोकपाल, सूर्यादि देवपंचक की वहां पृथक्-पृथक् पूजा करे। तदनन्तर हविष्य से होम करके पूर्णाहुति प्रदान करे।।२८-३०।।

शय्यां सोपस्करां धेनुं प्रतिमां च द्विजोत्तम। प्रदद्याद्गुरवे भक्त्या द्विजानन्यांश्चतुर्दश॥३१॥
सम्भोज्य मिष्टपक्वान्नैर्दक्षिणाभिः प्रतोषयेत्। एवं यः कुरुतेऽनन्तव्रतं प्रत्यक्षमादरात्॥३२॥
सोऽप्यनन्तप्रसादेन जायते भुक्तिमुक्तिभाक्। कदलीव्रतमप्यत्र तद्विधानं च मे शृणु॥३३॥

हे द्विजोत्तम! सर्वोपकरणों सहित शय्या (बिस्तर चादर तकिया आदि सहित), धेनु तथा प्रतिमा भक्तिपूर्वक गुरु को प्रदान करके १४ ब्राह्मणों को मिष्ठान तथा पक्वान्न खिलाकर सन्तुष्ट करे। इस प्रकार जो आदर पूर्वक अनन्तव्रत करता है, उसे अनन्त की कृपा से भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी तिथि पर कदली व्रत भी किया जाता है। उसका विधान सुनिये।।३१-३३।।

नरो वा यदि वा नारी रम्भामुपवनस्थिताम्।
स्नात्वा सम्पूजयेद्गन्धापुष्पधान्याङ्कुरादिभिः॥३४॥
दधिदूर्वाक्षतैर्दीपैर्वस्त्रपक्वान्नसञ्चयैः। एवं सम्पूज्य मन्त्रेण ततः सम्प्रार्थयेद्व्रती॥३५॥
अप्सरोमरकन्याभिर्नागकन्याभिरर्चिते। शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥३६॥

पुरुष किंवा स्त्री कदली युक्त उपवन में जाये। वहां स्नानोपरान्त गन्ध, पुष्प, धान्य अंकुर, दधि, दूर्वा, अक्षत, दीप, वस्त्र, पक्वान्न से उद्यानस्थ कदली वृक्ष की पूजा सम्पन्न करके इस मन्त्र से प्रार्थना करे। यथा— अप्सरायें, देवकन्याओं, नागकन्याओं से अर्चित देवी शारीर, आरोग्य, लावण्य प्रदान करे। आपको नमस्कार है!।।३४-३६।।

इति सम्प्रार्थ्य कन्यास्तु चतस्रो वा सुवासिनीः।
सम्भोज्यांशुकसिन्दूरकज्जलालक्तचर्चिताः॥३७॥
नमस्कृत्य निजं गेहं समाप्य नियमं व्रजेत्।
एवं कृते व्रते विप्र लब्ध्वा सौभाग्यमुत्तमम्॥३८॥

तत्पश्चात् चार कुमारी कन्या अथवा चार सधवा ब्राह्मणी को भोजन कराये। उनको अगुरु, सिन्दूर, अंजन, आलता से चर्चित करके प्रणामोपरान्त करके घर जायें तथा नियम समाप्त करे। हे विप्र! ऐसा करने से उत्तम सौभाग्य लाभ होगा।।३७-३८।।

इह लोके विमानेन स्वर्गलोके व्रजेत्परम्। इषकृष्णचतुर्दश्यां विषशास्त्राम्बुवह्निभिः॥३९॥
सर्वश्वापदवज्राद्यैर्हतानां ब्रह्मघातिनाम्। चतुर्दश्यां क्रियाश्राद्धमेकोद्दिष्टविधानतः॥४०॥
कर्तव्यं विप्रवर्गं च भोजयेन्मिष्टपक्वकैः।
तर्पणं च गवां ग्रासं बलिं चैव श्वकाकयोः॥४१॥
कृत्वाचम्य स्वयं पश्चाद्भुञ्जीयाद्बन्धुभिः सह।
एवं यः कुरुते विप्र श्राद्धं सम्पन्नदक्षिणाम्॥४२॥
स उद्धृत्य पितॄन्गच्छेद्देवलोकं सनातनम्। इषशुक्लचतुर्दश्यां धर्मराजं द्विजोत्तम॥४३॥

वह इहलोक में प्रसन्नतापूर्वक रहकर अन्त में विमान पर स्वर्गलोक गमन करता है। नारी भी यह करके स्वर्गलोक जाती है। आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को गयाश्राद्ध आदि करने से विष, शस्त्र, जल, अग्नि, सर्प, व्याघ्र आकाशीय विद्युत् पातादि से मृत व्यक्ति, ब्रह्मघाती का भी उद्धार हो जाता है। इस तिथि पर ब्राह्मण को मिष्ठान्न खिलाये, गौ, काक, श्वान को भी बलि अर्पित करे। तदनन्तर आचमनोपरान्त बन्धु-बान्धव सहित भोजन करे। हे विप्र! जो इस प्रकार दक्षिणायुक्त श्राद्ध करता है, वह अपने पितरों का उद्धार करके सनातन देवलोक जाता है। हे द्विजप्रवर! आश्विन शुक्ला चतुर्दशी तिथि पर धर्मराज की स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करे।।३९-४३।।

गन्धाद्यैः सम्यगभ्यर्च्य सौवर्णं भोज्य वाडवम्।
दद्यात्तस्मै धर्मराजस्त्रायते भुवि नारद॥४४॥

एवं यः कुरुते धर्मप्रतिमादानमुत्तमम्। स भुक्त्वेह वरान्भोगान्दिवं धर्माज्ञया व्रजेत्॥४५॥

वह व्रती गन्धादि से उस स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करे। हे नारद! तदनन्तर वह "धर्मराज रक्षा करिये" यह कहकर वह प्रतिमा ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा सहित उनको प्रदान करे। जो इस प्रकार धर्मराज की प्रतिमा का उत्तम दान करता है, वह पृथिवी पर उत्तम भोगों को प्राप्त करके धर्मराज की आज्ञा से स्वर्गगमन करता है।।४४-४५।।

ऊर्ज्जकृष्णाचतुर्द्दश्यां तैलाभ्यंङ्गं विधूदये।
कृत्वा स्नात्वार्चयेद्धर्मं नरकादभयं लभेत्॥४६॥

प्रदोष तैलदीपांस्तु दीपयेद्यमतुष्टये। चतुष्पथे गृहाद्बाह्यप्रदेशे वा समाहितः॥४७॥

वत्सरे हेमलब्धाख्ये मासि श्रीमति कार्तिके। शुक्लपक्षे चतुर्द्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति॥४८॥

स्नात्वा विश्वेश्वरो देवो देवैः सह मुनीश्वर।
मणिकर्णिकातीर्थे च त्रिपुण्ड्रं भस्मना दधत्॥४९॥
स्वात्मानं स्वयमभ्यर्च्य चक्रे पाशुपतव्रतम्।
ततस्तत्र महापूजां लिङ्गे गन्धादिभिश्चरेत्॥५०॥

कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी को चन्द्रोदय होने पर तैल लगाकर स्नानोपरान्त धर्मराज की पूजा करने वाला नरकगमन नहीं करता। प्रदोष काल में एकाग्रता पूर्वक घर के बाहर तैल दीपक जलाये। हे मुनीश्वर! हेमलबन्ध नामक वर्षान्तर्गत् शुभ कार्त्तिक मासीय शुक्ला चतुर्दशी पर अरुणोदय काल में विश्वेश्वर देवता ने देवगण के साथ मणिकर्णिका तीर्थ में स्नान तथा त्रिपुण्ड धारण किया था। उन्होंने पाशुपत व्रताचरण करते हुये स्वयं अपना पूजन किया था। अतः वहां लिंग की महापूजा गन्धादि से करे।।४६-५०।।

द्रोणपुष्पैर्बिल्वदलैरर्कपुष्पैश्च केतकैः। पुष्पैः फलैमिष्टपक्वैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि॥५१॥

एवं कृत्वैकभुक्तं तु व्रतं विश्वेशतोषणम्। लभते वाञ्छितान्कामानिहामूत्र च नारद॥५२॥

द्रोणपुष्प, बेलपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, मीठे पके फल, नाना नैवेद्यादि से लिंग की महापूजा करे। स्वयं एक ही समय भोजन करे। इस प्रकार वह व्रती विश्वेशतोषण व्रत को सम्पन्न करे। हे नारद! यह व्रत करने वाला व्रती दोनों लोक में वांछित फल लाभ करता है।।५१-५२।।

ब्रह्मकूर्चव्रतं चात्र कर्तव्यमृद्धिमिच्छता। सोपवासः पञ्चगव्यं पिबेद्रात्रौ जितेन्द्रियः॥५३॥

कपिलायास्तु गोमूत्रं कृष्णायां गोमयं तथा।
श्वेतायाः क्षीरमुदितं रक्तायाश्च तथा दधि॥५४॥
गृहीत्वा कर्बुरायाश्च घृतमेकत्र मेलयेत्।
कुशाम्बुना ततः प्रातः स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः॥५५॥
ब्राह्मणांस्तोषयित्वा च भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम्।
ब्रह्मकूर्चव्रतं ह्येतत्सर्वपातकनाशनम्॥५६॥

धनेच्छु व्यक्ति इसी तिथि पर ब्रह्मकूर्चव्रत करे। उपवासी तथा जितेन्द्रिय व्रती रात में पंचगव्य पान करे। कृष्ण गौ का मूत्र तथा गोमय, श्वेत गौ का दुग्ध, लाल गौ का दधि, चितकबरी गौ का घृत लाकर पंचगव्य बनाये। प्रातः कुश जल से स्नानोपरान्त देवतर्पण करके ब्राह्मणगण को सन्तुष्ट करे (भोजन तथा दक्षिणा द्वारा)। तब मौनी होकर स्वयं भोजन करना चाहिये। यही सर्वपापनाशक ब्रह्मकूर्च व्रत है।।५३-५६।।

यच्च वाल्ये कृतं पापं कौमारे वार्द्धकेऽपि यत्।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन तत्क्षणादेव नश्यति॥५७॥
पाषाणव्रतमप्यत्र प्रोक्तं तच्छृणु नारद। सोपवासो दिवा नक्तं पाषाणाकारपिष्टकम्॥५८॥
प्राच्र्यं गन्धादिभिर्गौरीं घृतपक्वमुपाहरेत्। व्रतेमेतच्चरित्वा तु यथोक्तं द्विजसत्तम॥५९॥
ऐश्वर्यसौख्यसौभाग्यरूपाणि प्राप्नुयान्नरः। मार्गशुक्लचतुर्दश्यामेकभुक्तःपुरोदितम्॥६०॥

बाल्यावस्था, कौमारावस्था तथा वार्द्धक्य में कृत सभी पातक ब्रह्मकूर्च उपवास द्वारा तत्क्षण नष्ट होते हैं। हे नारद! इसी तिथि पर पाषाण व्रत भी किया जाता है। उसकी विधि सुनिये। दिन में उपवासी रहकर रात्रि में गंधादि से गौरीपूजनोपरान्त घृतपक्व पाषाणाकृति पिष्ठी का भोग देवी को लगाये। हे द्विजवर्य! इस विधान से यह व्रत करने वाला व्रती ऐश्वर्य, सुख, सौभाग्य तथा रूपलाभ करता है। अग्रहायण शुक्ला चतुर्दशी को पूर्व प्रकार से एक बार ही भोजन करे।।५७-६०।।

निराहारो वृषं स्वर्णं प्राच्र्य दद्याद्द्विजातते।
परेऽह्नि प्रातरुत्थाय स्नात्वा सोमं महेश्वरम्॥६१॥
पूजयेत्कमलैः पुष्पैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः।
द्विजान्सम्भोज्य मिष्टान्नैस्तोषयेद्दक्षिणादिभिः॥६२॥
एतच्छिवव्रतं विप्र भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। कर्तॄणामुपदेष्टॄणां साह्यानामनुमोदितम्॥६३॥

तदनन्तर स्वर्णवृष पूजा करके ब्राह्मण को दान करे। अगले दिन प्रातः उठकर स्नान करके कमलफल, गन्ध माल्यादि से, लेप से उमा-महेश्वर की पूजा करने के पश्चात् ब्राह्मणों को मिष्ठान्न प्रदान करे तथा दक्षिणा देकर प्रसन्न करे। हे विप्र! यह व्रत करने वाले, इसका उपदेश देने वाले, श्रोता तथा अनुमति देने वाले—इन सबको भोग-मोक्ष प्रदान करता है।।६१-६३।।

पौषशुक्लचतुर्दश्यां विरूपाक्षव्रतं स्मृतम्।
कपर्दीश्वरसान्निध्यं प्राप्स्याम्यत्र विचिन्त्य च॥६४॥
स्नात्वागाधजले विप्र विरूपाक्षं शिवं यजेत्। गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा॥६५॥
तत्स्थं द्विजातये दत्त्वा मोदते दिवि देववत्। माघकृष्णाचतुर्द्दश्यां यमतर्पणमीरितम्॥६६॥
अनर्काभ्युदिते काले स्नात्वा सन्तर्पयेद्यमम्।
द्विसप्तनामभिः प्रोक्तैः सर्वपापविमुक्तये॥६७॥

पौष शुक्ल चतुर्दशी को विरूपाक्ष व्रत कहा गया है। कपर्दीश्वर के सान्निध्य में यह चिन्तन करे कि मैं शिव के निकट गमन करूंगा। तदनन्तर अगाध जल में स्नान करके गन्ध-माला-प्रणाम-धूप-दीप-अन्नादि

नैवेद्य से विरूपाक्ष देव की पूजा करे। तदनन्तर सभी सामग्री ब्राह्मण को प्रदान करे। ऐसा व्यक्ति स्वर्ग जाकर देववत् विहार करता है। माघकृष्ण चतुर्दशी को यमतर्पण करे। तब सूर्योदय पूर्व स्नानोपरान्त पूर्ववत् स्नान करे तथा यम का तर्पण करे। इनके १४ नामों को कहने से व्यक्ति सर्वपाप रहित हो जाता है।।६४-६७।।

तिलदर्भाम्बुभिः कार्यं तर्प्पणं द्विजभोजनम्।
कृशरान्नं स्वयं चापि तदेवाश्नीत वाग्यतः।।६८।।
अन्त्यकृष्णाचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतं द्विज। निर्जलं समुपोष्यात्र दिवानक्तं प्रपूजयेत्।।६९।।
स्वयंभुवादिकं लिङ्गं पार्थिवं वा समाहितः। गन्धाद्यैरुपचारैश्च साम्बुबिल्वदलादिभिः।।७०।।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः स्तोत्रपाठैर्जपादिभिः। ततः परेऽह्नि सम्पूज्य पुनरेवोपचारकैः।।७१।।
सम्भोज्य विप्रान्मिष्टान्नैर्विसृजेल्लब्धदक्षिणान्। एवं कृत्वा व्रतं मर्त्यो महादेवप्रसादतः।।७२।।
अमर्त्यभोगान् लभते दैवतैः सुसभाजितः।
अन्त्यशुक्लचतुर्दश्यां दुर्गां सम्पूज्य भक्तितः।।७३।।

यह तर्पण तिल, जल कुश से करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण को खिचड़ी खिलाकर वहीं स्वयं भी मौनी रहकर भोजन करे। हे द्विज! फल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को शिवरात्रि व्रताचरण करे। दिन में निर्जल उपवासी रहकर रात्रि में गन्धादि उपचार तथा जल, बेलपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, स्तव पाठ तथा जपादि द्वारा स्वयंभु लिंग की अथवा पार्थिव लिंग की पूजा करे। अगले दिन पुनः उपचारों से शंकरार्चन के उपरान्त ब्राह्मणगण को मिष्टान्न खिलाये तथा दक्षिणा देकर विदा करे। एवंविध व्रताचरणतत्पर व्यक्ति महादेव की कृपा से देवगण सहित दिव्य भोगों को भोगता है। फाल्गुनशुक्ल चतुर्दशी को भक्तिपूर्वक दुर्गार्चना करे।।६८-७३।।

गन्धाद्यैरुपचारैस्तु विप्रान्सम्भोजयेत्ततः। एवं कृत्वा व्रतं विप्र दुर्गायाश्चैकभोजनः।।७४।।
लभते वाञ्छितान्कामानिहामुत्र च नारद। चैत्रकृष्णाचतुर्दश्याममुपावासं विधाय च।।७५।।
केदारोदकपानेन वाजिमेधफलं भवेत्। उद्यापने तु सर्वासां सामान्यो विधिरुच्यते।।७६।।

दुर्गा पूजा गन्धादि उपचारों से करके विप्रों को भोजन कराये। वह विप्र यह व्रत एक समय भोजन करके सम्पन्न करे। वह व्रती वांछित कामनाओं की इहलोक में तथा परलोक में प्राप्ति करता है। चैत्र कृष्ण चतुर्दशी को व्यक्ति उपवासी रहकर शिवलिंग (केदार) के चरणजल का पान करके अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। सभी के उद्यापनार्थ एक ही विधि वर्णित है।।७४-७६।।

कुम्भाश्चतुर्दशैवात्र सपूगाक्षतमोदकाः। सदक्षिणांशुकास्ताम्रा मृन्मयाश्चाव्रणा नवाः।।७७।।
तावन्तो वशदण्डाश्च पवित्राण्यासनानि च।
पात्राणि यज्ञसूत्राणि तावन्त्येव हि कल्पयेत्।।७८।।
शेषं प्रागुक्तवत्कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्ज्जितः।।७९।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२३।।

अब मैं सभी चतुर्दशी व्रतार्थ उद्यापन की सामान्य विधि कहता हूं। इसमें मिट्टी किंवा ताम्र के १४ नये घट हों। वे सुपारी, अक्षत, मिष्ठान्न, वस्त्र तथा दक्षिणा समन्वित हों। १४ वंशखण्ड, १४ पवित्र आसन, पात्र, यज्ञोपवीत भी एकत्र रहे। शेष विधान उन-उन व्रतों में जैसे कहा है, वैसे करे। लेकिन धन रहते हुये कृपणता न करे।।७७-७९।।

।।१२३वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
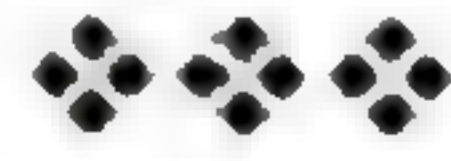
अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादश मासीय पूर्णिमा व्रत-विधान

सनातन उवाच

अथ नारद वक्ष्यामि शृणु पूर्णाव्रतानि ते।
यानि कृत्वा नरो नारी प्राप्नुयात्सुखसन्ततिम्।।१।।

चैत्रपूर्णा तु विप्रेन्द्र मन्वादिः समुदाहृता। अस्यां सान्नोदकं कुम्भं प्रदद्यात्सोमतुष्टये।।२।।
वैशाख्यापि पूर्णायां दामं सर्वस्य सर्वदम्। यद्यद्द्रव्यं ददेद्विप्रे तत्तदाप्नोति निश्चितम्।।३।।
धर्मराजव्रतं चात्र कथितं तन्निशामय। शृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां वै द्विजोत्तमे।।४।।
दद्याद्गोदानफलदं धर्मराजस्य तुष्टये। अत्र कृष्णाजिनं दद्यात्सखुरं च सशृङ्गकम्।।५।।
तिलैः सह समाच्छाद्यवस्त्रैर्हेम्ना द्विजातये। यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सत्कृत्य विधिपूर्वकम्।।६।।
सर्वशास्त्रविदे सप्तद्वीपभूमिप्रदः स वै। मोदते विष्णु लोके हि यावच्चन्द्रार्कतारकम्।।७।।

देवर्षि सनातन कहते हैं—हे नारद! अब पूर्णिमा तिथि के व्रतों को कहता हूं। इनके व्रताचरण से मनुष्य (नर-नारी) को सुख सन्तति लाभ होता है। हे विप्रश्रेष्ठ! चैत्रमासीय पूर्णिमा मन्वादि कही जाती है। इस तिथि पर चन्द्र को प्रसन्न करने हेतु अन्न-जल युक्त घट दान करे। वैशाखा पूर्णिमा को प्रदत्त दान जो विप्रगण को दिया जाता है, वह प्राप्त होता है। यह निश्चित है। इस तिथि पर धर्मराज को प्रसन्न करने हेतु ब्राह्मण श्रेष्ठ को शृतान्न तथा जलकुंभ प्रदान करे। हे द्विजोत्तम! धर्मराज इससे प्रसन्न होकर गोदानफल देते हैं। खुर एवं शृंग सहित कृष्णमृगचर्म ब्राह्मण को आदर तथा विधिवत् प्रदान करे। वह दाता सप्तद्वीपवती पृथिवी दान का फललाभ करता है। वह जब तक चन्द्र-तारक स्थित हैं, तब तक विष्णुलोक में निवास करता है।।१-७।।

कुम्भान्स्वच्छजलैः पूर्णान्हिरण्येन समन्वितान्।
यः प्रदद्याद्द्विजाग्र्येभ्यः स न शोचति कर्हिचित्।।८।।

अथ ज्येष्ठस्य पूर्णायां वटसावित्रिकं व्रतम्। सोपवासा वटं सिञ्चेत्सलिलैरमृतोपमैः।।९।।
सूत्रेण वेष्टयेच्चैव सशताष्टप्रदक्षिणम्। ततः सम्प्रार्थयेद्देवीं सावित्रीं सुपतिव्रताम्।।१०।।

जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते। पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरु ते नमः॥११॥

इति सम्प्रार्थ्य या नारी भोजयत्वा परेऽहनि।
सुवासिनीःस्वयं भुञ्ज्यात्सा स्यात्सौभाग्यभागिनी॥१२॥

इस तिथि पर स्वच्छ जलपूर्णघट स्वर्णयुक्त उत्तम ब्राह्मण को प्रदान करे। ऐसा व्यक्ति कदापि शोकान्वित नहीं होता। नारी के लिये ज्येष्ठी पूर्णिमा को वट सावित्री व्रत होता है। वह उपवासी रहे तथा अमृतोपम जल से वट वृक्ष का सिंचन करे। तदनन्तर सूत लपेटकर १०८ बार प्रदक्षिणा करे तथा महापतिव्रता सावित्री से नारी यह प्रार्थना करे। यथा—"जगत्पूज्या जगन्माता सावित्री पतिदैवते! वटवृक्ष निवासिनी! आपकी कृपा से मुझे पति वियोग न हो।" यह प्रार्थना करके वह स्त्री अन्य सधवा नारियों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। वह सौभाग्यशालिनी होगी।।८-१२।।

आषाढस्य तु पूर्णायां गोपद्मव्रतमुच्यते। चतुर्भुजं महाकायं जाम्बूनदसमप्रभम्॥१३॥
शङ्खचक्रगदापद्मरमागरुडशोभितम्। सेवितं मुनिभिर्देवैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः॥१४॥
एवं विधं हरिं तत्र स्नात्वा पूजा समाचरेत्। पौरुषेणैव सूक्तेन गन्धाद्यैरुपचारकैः॥१५॥
आचार्य वस्त्रभूषाद्यैस्तोषयेत्स्निग्धमानसः। भोजयेन्मिष्टपक्वान्नैर्द्विजानन्यांश्च शक्तितः॥१६॥
एवं कृत्वा व्रतं विप्र प्रसादात्कमलापतेः। ऐहिकामुष्मिकान्कामांल्लभते नात्र संशयः॥१७॥

आषाढ़ी पूर्णिमा को गोपद्मव्रत होता है। स्नानोपरान्त पुरुषसूक्त पाठ करते चतुर्भुज महाकाय जाम्बूनद स्वर्ण के समान प्रभा वाले, शंख-चक्र-गदा-पद्म तथा गरुड़ से शोभित, मुनि, देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर से सेवित हरि की पूजा गन्धादि उपचारों से करनी चाहिये। तत्पश्चात् मुदित मन से वस्त्राभूषणादि देकर आचार्य को सन्तुष्ट करके ब्राह्मणगण को मिष्ठपक्वान्न खिलाकर यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। हे विप्र! यह व्रत इस विधि से करने वाला व्यक्ति कमलापति की कृपा से ऐहिक एवं पारलौकिक कामनाओं को पाता है। यह निःसंदिग्ध है।।१३-१७।।

कोकिलाव्रतमप्यत्र प्रोक्तं तद्विधिरुच्यते। पूर्णिमायां समारभ्य व्रतं स्नायाद्बहिर्जले॥१८॥

पूर्णान्त श्रावणे मासि गौरीरूपां च कोकिलाम्।
स्वर्णपक्षां रत्ननेत्रां प्रवालमुखपङ्कजाम्॥१९॥

कस्तूरीवर्णसंयुक्तामुत्पन्नां नन्दने वने। चूतचम्पकवृक्षस्थां कलगीतनिनादिनीम्॥२०॥

इसी तिथि पर कोकिला व्रताचरण भी करते हैं। इस तिथि से लगाकर श्रावणी पूर्णिमा पर्यन्त नित्य जलाशयादि में स्नानोपरान्त गौरीरूपा कोकिला पूजन करे। उन कोकिलारूपा पार्वती का चिन्तन करे कि वे स्वर्ण पंखवाली, रत्ननेत्रा, प्रवालमुखी, कस्तूरीवर्णा तथा नन्दन वनोत्पन्ना है। वे आम्र तथा चम्पक वृक्ष पर स्थित होती हैं। वे मधुर-अव्यक्त शब्दों मं गायन करती हैं।।१८-२०।।

चिन्तयेत्पार्वतीं देवीं कोकिलारूपधारिणीम्।
गन्धाद्यैः प्रत्यहं प्रार्च्चेल्लिखितां वर्णकैः पटे॥२१॥
ततो व्रतान्ते हैमीं वा तिलपिष्टमयीं द्विज।
दद्याद्विप्राय मन्त्रेण भक्त्या सस्वर्णदक्षिणाम्॥२२॥

देवीं चैत्ररथोत्पन्ने कोकिले हरवल्लभे। सम्पूज्य दत्ता विप्राय सर्वसौख्यकरी भव॥२३॥
द्विजं सुवासिनीस्त्रिंशदेकां वा भोजयेत्ततः।
वस्त्रादिदक्षिणां शक्त्या दत्त्वा नत्वा विसर्जयेत्॥२४॥

इस प्रकार कोकिलारूपा पार्वती का चिन्तन करके वर्ण पट पर (वस्त्र पट पर) रंगों से चित्रित देवी की पूजा नित्य गन्धादि से करनी चाहिये। व्रत सम्पन्न होने पर स्वर्ण किंवा तिलचूर्ण निर्मिता कोकिला प्रतिमा ब्राह्मण को स्वर्ण दक्षिणा सहित प्रदान करे। तदनन्तर ३० किंवा एक ब्राह्मण तथा सधवा नारीगण को भोजन, वस्त्रादि तथा दक्षिणा देकर विदा करे।।२१-२४।।

एवं या कुरुते नारी कोकिलाव्रतमुत्तमम्। सा लभेत्सुखसौभाग्यं सप्तजन्मसु नारद॥२५॥
अथ श्रावणपूर्णायां वेदोपाकरणं स्मृतम्। यतुर्भिस्तत्र कर्त्तव्य देवर्षिपितृतर्पणम्॥२६॥
ऋषीनां पूजनं चापि स्वशाखोक्तविधानतः। बह्वचैस्तु चतुर्दश्यां समागैर्भाद्रगे करे॥२७॥
रक्षाविधानं च तथा कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥२८॥

जो नारी यह अत्युत्तम कोकिला व्रत करती है, हे नारद! उसे सात जन्मों तक सुख-सौभाग्य लाभ होता रहता है। श्रावणी पूर्णिमा तिथि पर वेदोपाकरण व्रत करते हैं। यजुर्वेद के मन्त्रों से देवता, ऋषि तथा पितृगण का तर्पण करे। स्वशाखोक्त विधान से ऋषिपूजन करे। रक्षा-बन्धन के इस दिन ऋचा तथा सामसन्त्र द्वारा सविधि पूजा करे। तदनन्तर सविधि रक्षा विधान करे।।२५-२८।।

सिद्धार्थाक्षतराजिकाश्च विधृता रक्तांशुकांशे सिताः।
कौसुम्भेन च तन्तुनाथ सलिलैः प्रक्षाल्य कांस्ये धृताः।
गन्धाद्यैरभिपूज्य देवनिकरान्सम्प्रार्थ्य विष्ण्वादिका।
न्बघ्नीयाद्द्विजहस्ततः प्रमुदितो नत्वा प्रकोष्ठे स्वके॥२९॥
ततस्तु दक्षिणां दत्त्वा द्विजेभ्योऽध्यायमाचरेत्।
विसृज्य च ऋषीन्सप्त धारयेद्ब्रह्मसूत्रकम्॥३०॥
रञ्जितं कुङ्कुमाद्यैश्च नवीनं निर्मितं स्वयम्।
शक्त्या सम्भोज्य विप्राग्र्यानेकभुक्तं समाचरेत्॥३१॥
कृते ह्यस्मिन्व्रते विप्र वार्षिकं कर्म वैदिकम्।
विस्मृतं विधिहीनं च न कृतं सुकृतं भवेत्॥३२॥

अब कांसे के पात्र को जल से स्वच्छ करके उसमें श्वेत सरसों, अक्षत, लाल पुष्प एवं कुसुम रंग में रंगा धागा रखे। तदनन्तर गंधादि से विष्णु आदि देवगण की पूजा करे। तदनन्तर स्वयं ब्राह्मणों द्वारा बाहु में डोरा बंधवाये। द्विजों को दक्षिणा देकर वेद पढ़े तथा सप्तर्षिगण को विसर्जित करे। वह कुंकुमादि रंजित यज्ञोपवीत पहने। यथा साध्य उत्तम ब्राह्मणगण को भोजन देकर स्वयं एकाहार करे। हे विप्र! जो यह व्रत करता है यदि वह वार्षिक-वैदिक कार्य भूल भी जाये, तब भी उसे क्षति नहीं होगी।।२९-३२।।

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यामुमामाहेश्वरव्रतम्। एकभुक्तश्च यस्तां तु शिवं सम्पूज्यः यत्नतः॥३३॥

कृताञ्जलिः प्रार्थयेच्छ्वः करिष्ये च व्रतं प्रभो।
एवं विज्ञाप्य देवं तु गृह्णीयाद्व्रतमुत्तमम्॥३४॥
रात्रौ देवान्तिके सुप्त्वा उत्थायापरयामके।
कृतमैत्रादिनित्यस्तु भस्मरुद्राक्षधृक् ततः॥३५॥
पूजयेच्छङ्करं सम्यगुपचारैः पृथग्विधैः। बिल्वपत्रैः सुगन्धाढ्यैर्नैवेद्यैर्धूपदीपकैः॥३६॥
ततश्चोपवसेद्विद्वानाप्रदोषं विधूदये। पुनः सम्पूज्य तत्रैव रात्रौ जागरणं चरेत्॥३७॥
एवं पञ्चदशाब्दान्तं कृत्वा व्रतमतन्द्रितः। वर्षे वर्षे तदुत्सर्गे विदध्याद्विधिपूर्वकम्॥३८॥
उमायाश्च महेशस्य सौवर्णी प्रतिमाद्वयम्।
हैमा रौप्या मृन्मयाश्च घटाः पञ्चदशोत्तमाः॥३९॥
तत्रैकस्मिन्घटे स्थाप्यं सवस्त्रं प्रतिमाद्वयम्।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य जलैः शुद्धैस्ततोऽर्चयेत्॥४०॥

भाद्रपद पूर्णिमा के दिन उमामहेश्वर व्रत करे। चतुर्दशी को एक समय आहार करे तथा यत्नतः पूजनोपरान्त संकल्प करे। "हे प्रभो! मैं आपका व्रत करूंगा।" शिव से कहकर उत्तम व्रत करे। रात्रि में देवता के निकट शयन करे। तदनन्तर अंतिम प्रहर में पूर्णिमा को उठकर नित्य कर्मादि सम्पन्न करके भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। वह व्रती व्यक्ति तब विल्वपत्र, सुगन्धित द्रव्य, नैवेद्य-धूप-दीपादि उपचार से शंकर पूजा करे। प्रदोष के समय तक उपवासी रहें। तदनन्तर चन्द्रोदय होने पर पुनः शिवपूजा करे तथा रात्रि जागरण करना चाहिये। इस प्रकार आलस्य रहित होकर १५ वर्ष पर्यन्त व्रती रहें। व्रतोद्यापन में शिव गौरी की स्वर्ण प्रतिमा को स्वर्ण अथवा चांदी के १५ घटों के मध्य वाले घट पर वस्त्रयुक्त स्थापित करे। पंचामृत स्नान कराकर शुद्ध जल से स्नान कराये।।३३-४०।।

उपचारैः षोडशभिस्ततः पञ्चदश द्विजान्। भोजयेच्चैव मिष्टान्नैर्दद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणाम्॥४१॥
कुम्भमेकैकमीशस्य मूर्त्याढ्यं गुरवेऽर्पयेत्। एवं कृत्वा व्रतं चैव उमामाहेश्वराभिधम्॥४२॥
जायते भुवि विख्यातो निधानं सर्वसम्पदाम्।
अथास्मिन्नेव दिवसे शक्रव्रतमपि स्मृतम्॥४३॥

तदनन्तर षोडशोपचार पूजन करके १५ ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजनोपरान्त दक्षिणा प्रदान करे। तदनन्तर प्रतिमा एवं सभी घट गुरु को प्रदान करे। जो इस विधान से उमा-महेश्वर व्रत करता है, वह पृथिवी पर सर्वसम्पत्ति का स्वामी होता है। इसी तिथि पर शक्रव्रत भी किया जाता है।।४१-४३।।

प्रातः स्नात्वा विधानेन सम्पूज्य सुरनायकम्। गन्धाद्यैरुपचारैस्तु नैवेद्यानां च राशिभिः॥४४॥
ततो निमन्त्रितान्विप्रान्सम्भोज्य विधिवद्द्विज। समागतांस्तथैवान्यान्दीननाथांश्च भोजयेत्॥४५॥
एतच्छक्रव्रतं विप्र कर्तव्यं प्रतिवार्षिकम्। राज्ञा वा धनिनान्येन धान्यनिष्पत्तिमिच्छता॥४६॥

इस व्रत हेतु प्रातः स्नान करके देवराज इन्द्र की पूजा गन्धादि उपचारों तथा नैवेद्य के ढेर से करे। वह

नैवेद्य आमन्त्रित ब्राह्मणगण, समागत लोगों तथा दीनों-अनाथों को खिलाये। यह शक्रव्रत प्रतिवर्ष करे। हे विप्र! यह इन्द्रव्रत धन चाहने वाले, धनी लोगों तथा राजा को प्रतिवर्ष करना चाहिये।।४४-४६।।

आश्विने मासि पूर्णायां व्रतं कोजागराभिधम्।
तेन स्नात्वा विधानेन सोपवासो जितेन्द्रियः॥४७॥
लक्ष्मीमभ्यर्च्य सौवर्णीं घटे संस्थाप्य ताम्रजे।
मृन्मये वा सवस्त्रान्तामुपचारैः पृथग्विधम्॥४८॥
ततः सायन्तने कालेऽभ्युदिते तारकाधिपे।
हैमान्रौप्यान्मृन्मयान्वा घृतपूर्णान्प्रदीपयेत्॥४९॥
लक्षं तदर्धमयुतं सहस्रं शतमेव वा। घृतशर्करसम्मिश्रं विपाच्य बहु पायसम्॥५०॥
बहुपात्रेषु संस्थाप्य कौमुद्यां शीतदीधितेः।
याममात्रे गते रात्र्या लक्ष्म्यै तद्विनिवेदयेत्॥५१॥
ततः सम्भोजयेत्तेन विप्रान्भक्त्या ततश्च तैः। सहैव जागरं कुर्य्यान्नृत्यगीतसुमङ्गलैः॥५२॥

अश्विन मास की पूर्णिमा का कोजागरी व्रत करे। उस दिन सविधि स्नानोपरान्त उपवासी तथा जितेन्द्रिय होकर लक्ष्मी की स्वर्णप्रतिमा को ताम्रघट अथवा स्वर्णघट पर स्थापित करे। वस्त्र से भूषित करके उसका षोडश उपचार द्वारा पूजन करे। सन्ध्या के समय जब भी चन्द्रोदय हो, तब स्वर्ण के, चांदी के अथवा मिट्टी के एकलाख, पचास हजार, दस हजार, एक हजार अथवा एक सौ घृत दीपक जलाये। तदनन्तर घृत, शर्करायुत प्रचुर खीर बनाकर अनेक पात्रों में रखे तथा चांदनी में लक्ष्मी को अर्पित करके यह भक्ति के साथ ब्राह्मणों को खिलाये। नृत्य-गीत-मंगलस्तुति करते हुये रात्रि जागरण करे।।४७-५२।।

ततोऽरुणोदये स्नात्वा तां मूर्तिं गुरवेऽर्पयेत्।
अस्यां रात्रौ महालक्ष्मीर्वराभयकराम्बुजा॥५३॥
निशीथे चरते लोके को जागर्ति धरातले। तस्मै वित्तं प्रयच्छामि जाग्रते पूजकाय मे॥५४॥
वर्षे वर्षे कृतं चैतद्व्रतं लक्ष्मीप्रतोषणम्।
समृद्धिमैहिकीं दद्याद्देहान्ते पारलैकिकीम्॥५५॥

अरुणोदय होने पर स्नानोपरान्त मूर्त्ति गुरु को अर्पित करनी चाहिये। उस रात्रि में वरप्रदा महालक्ष्मी वर-अभय तथा कमल लेकर रात में धरातल पर विचरती है कि "जो आज रात्रि जागरण पूजन करेगा, मैं उसे धन दूंगी।" लक्ष्मी को सन्तुष्ट करने वाले इस व्रत को प्रतिवर्ष करे। इससे इहलोक में व्रती सम्पत्तिशाली होता है। परलोक में उत्तमगति लाभ करता है।।५३-५५।।

कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्कार्तिकदर्शनम्।
विप्रत्वलब्धये भूयः सर्वशत्रुजयाय च॥५६॥
अत्रैव दीपदानेन विधेयस्त्रिपुरोत्सवः। निशामुखे द्विजश्रेष्ठ सर्वजीवसुखावहः॥५७॥

कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
दृष्ट्वा प्रदीपान्नहि तेऽपि जन्मिनः पुनश्च मुक्तिं हि लभन्त एव च॥५८॥
भत्र चन्द्रोदये विप्र सम्पूज्याः कृत्तिकाश्च षट्॥५९॥
कार्तिकेयस्तथा खड्गी वरुणश्च हुताशनः। गन्धपुष्पैस्तथा धूपदीपैर्नैवेद्यविस्तरैः॥६०॥
परमान्नैः फलैः शाकैर्वह्निब्राह्मणतर्पणैः। एवं देवान्समभ्यर्च्य दीपो देयो गृहाद्बहिः॥६१॥

कार्त्तिक पूर्णिमा में कार्त्तिक का दर्शन करे। इससे विप्रत्य एवं सर्वशत्रुविजय मिलती है। उसी तिथि पर प्रदोष के समय दीपदान करे तथा त्रिपुरोत्सव मनाये। यह सर्व जीवसमूह हेतु सुखप्रद है। कीट, पतंग मशक, वृक्ष प्रभृति तथा जलचरादि प्राणी, थलचर प्राणी इन दीप को देखने के प्रताप से मुक्त हो जाते हैं। तब चन्द्रोदय काल में षट् कृत्तिका पूजन करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, खीर, फल, शाकादि से खड्गहस्त कार्त्तिकेय, अग्नि, वरुणदेव की पूजा करे तथा ब्राह्मणों को तृप्त करे। तदनन्तर देवार्चन करके दीपकों को गृह के बाहर रखे।।५६-६१।।

दीपोपान्ते तथा गर्तश्चतुरस्त्रो मनोहरः। चतुर्द्दशाङ्गुलः कार्यः सेच्यश्चंदनवारिणा॥६२॥
गवां क्षीरेण सम्पूर्य हैमं तत्र विनिक्षिपेत्। मुक्तानेत्रसमायुक्तं मत्स्यं सर्वाङ्गशोभनम्॥६३॥
महामत्स्याय च नमः इति मन्त्रं समुच्चरन्।
गन्धाद्यैस्तत्र सम्पूज्य द्विजाय प्रतिपादयेत्॥६४॥
क्षीरसागरदानं ते मयोक्तं द्विजसत्तम। दानस्यास्य प्रभावेण मोदते हरिसन्निधौ॥६५॥

दीपकों के निकट १४ अंगुल विस्तृत मनोहर गर्त्त खनन करे। उसे चन्दनयुक्त जल से सींचकर गोदुग्ध से भरें। तदनन्तर "महामत्स्याय नमः" मन्त्रोच्चार करते हुये मोती की नेत्रों वाला स्वर्ण निर्मित मत्स्य जो अत्यन्त सुन्दर हो, उसे उस गर्त्त में छोड़कर गन्धादि से पूजा करके कहे—"हे द्विजप्रवर! मैं आपको क्षीरसागर प्रदान करता हूं।" तदनन्तर उसे ब्राह्मण को अर्पित करे। इस दान के प्रभाव से वह व्यक्ति हरि के निकट आनन्दित रहता है।।६२-६५।।

अत्र कृत्वा वृषोत्सर्गं व्रतं नक्तं च नारद। रुद्रलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥६६॥
मार्गशीर्ष्यां पूर्णिमायां स्वर्णाढ्यं लवणाढकम्।
देयं विप्राय शान्ताय सर्वकामसमृद्धये॥६७॥
इदं जगत्पुरा लक्ष्म्या त्यक्तमासीत्ततो हरिः। पुरन्दरश्च सोमश्च तथा तिष्यो बृहस्पतिः॥६८॥
पञ्चैते पुष्ययुक्तायां पौर्णमास्यां जगद्बलात्।
अलङ्कृतं पुनश्चक्रुः सौभाग्योत्सवकेलिभिः॥६९॥
तस्मान्नरः पुष्ययोगे सर्वसौभाग्यवृद्धये। गौरसर्षपकल्केन समालभ्य स्वकां तनुम्॥७०॥
स्नायात्सर्वौषधिजलैर्धारयेच्च नवांशुके। दृष्ट्वा च मङ्गलं द्रव्यं स्पृष्ट्वा नत्वा ततोऽर्चयेत्॥७१॥
हरिशक्रेन्दुपुष्येज्यान्गन्धाद्यैरुपचारकैः। विधाय होमं विप्रांश्च तर्पयेत्पायसाशनैः॥७२॥

हे नारद! जो कोई उस दिन वृषोत्सर्ग तथा नक्तव्रत करता है, वह रुद्रलोक जाता है। इसमें अन्यथा

विचार न करें। अग्रहायण पूर्णिमा तिथि पर सर्वकामना प्राप्ति हेतु स्वर्ण एवं लवण शान्त विप्र को प्रदान करे। जब प्राचीन काल में लक्ष्मी ने जगत् का त्याग किया था, उस समय सौभाग्य, उत्सव तथा केलि हेतु हरि, इन्द्र, चन्द्र, तिष्य एवं बृहस्पति ने पुष्य नक्षत्र युक्त पौर्णमासी में इस संसार को अलंकृत किया। इसलिये जो मनुष्य सौभाग्यकामी है, वह पुष्ययुता पौर्णमासी को श्वेत सरसों का उबटन अंगों पर लगाये तथा सर्वौषधियुक्त जल से स्नान करे। नववस्त्र धारण करके मांगलिक द्रव्य-दर्शन, स्पर्श करे। गंधादि द्रव्यों तथा उपचारों से हरि, इन्द्र, चन्द्र पूजा करे। होम करके ब्राह्मणगण को पायस खिलाकर तृप्त करे।।६६-७२।।

एतत्कृत्वा व्रतं विप्र रमाप्रीतिविवर्द्धनम्। अलक्ष्मीनाशनं चैव मोदतेह परत्र च॥७३॥

हे विप्र! लक्ष्मीप्रीतिवर्धक व्रत को करने वाला व्यक्ति दरिद्रता रहित होता है तथा दोनों लोक में आनन्दित रहता है।।७३।।

पौर्णमास्यां ततो माघ्यां तिलकार्पासकम्बलम्।
रत्नानि कञ्चुकोष्णीषपादत्राणानि वा धनम्॥७४॥
दत्त्वा प्रमोदते स्वर्गे दानं वित्तानुसारतः। यस्त्वत्र शङ्करं देवं पूजयेद्विधिपूर्वकम्॥७५॥
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।
फाल्गुने पूर्णिमायां तु होलिकापूजनं मतम्॥७६॥
सञ्चयं सर्वकाष्ठानामुपलानां च कारयेत्। तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः॥७७॥
असृक्पाभयसन्त्रस्तैः कृत्वा त्वं होलिबालिशैः। अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव॥७८॥
इति मन्त्रेण सन्दीप्य काष्ठादिक्षेपणैस्ततः। परिक्रम्योत्सवः कार्य्यो गीतवादित्रनिःस्वनैः॥७९॥

माघी पूर्णिमा तिथि पर अपनी शक्ति के अनुरूप तिल, कपास, कम्बल, रत्न, कंचुक, पगड़ी, जूता तथा द्रव्य दान करे। इससे स्वर्ग में व्यक्ति आनन्दित होगा। उस दिन सविधि शंकर पूजा करने वाला अश्वमेध फल पाकर विष्णुलोक में पूजित होता है। फाल्गुनी पूर्णिमा को होलिकादहन होता है। सर्व प्रकार के काष्ठ तथा गोबर के कंडे रखकर राक्षस नाशक मन्त्र पाठ करके उसे अग्नि युक्त करे। मन्त्र है—असृक्यों के भय से त्रस्त होकर "मैंने होलि बालिश लगाया है। अब मैं आपकी पूजा करता हूं। आप अभयप्रदा हो।" इस मन्त्र को पढ़ते काष्ठादि को प्रज्वलित करके उसकी परिक्रमा करे तथा मंगल गीतादि गाये।।७४-७९।।

होलिका राक्षसी चेयं प्रह्लादभयदायिनी। ततस्तां प्रदहन्त्येवं काष्ठाद्यैर्गीतमङ्गलैः॥८०॥
संवत्सरस्य दाहोऽहं कामदाहो मतान्तरे। इति जानीहि विप्रेन्द्र लोके स्थितिरनेकधा॥८१॥

होलिका राक्षसी प्रह्लाद को भय देती थी। तभी लोग गीतवाद्य के साथ काष्ठादि से उसका दहन करते हैं। हे विप्रवर! कतिपय लोग इसे संवत्सर दाह कहते हैं। किसी ने इसे कामदाह कहा है। लोक में अनेक मत तथा स्थित को लोग मानते हैं।।८०-८१।।

पक्षान्ते द्वे पृथग्दैवे ततोऽमाव्रतमुच्यते। पृथक्छृणुष्व मे विप्र पितृणामतिवल्लभम्॥८२॥
चैत्रवैशाखयोस्तत्र दर्शे पितृसमर्चनम्। पार्वणेन विधानेन श्राद्धं वित्तानुसारतः॥८३॥
द्विजानां भोजनं दानं गवादीनां विशेषतः। सर्वमासेष्वमायां वै बहुपुण्यप्रदं यतः॥८४॥

ज्येष्ठामायां व्रतं प्रोक्तं सावित्र्याः कस्य नारद। विधानं ज्येष्ठपूर्णावदिहानि परिकीर्तितम्॥८५॥
शुचौ नभसि भाद्रे च मासे पूर्णान्तिके द्विज। पितृश्राद्धं दानहोमसुरार्चानन्त्यमश्नुते॥८६॥

पक्ष के अन्त में पूर्णिमा-अमावस्या होती है। दोनों के देवता अलग होते हैं। अब अमावस्या व्रत को अलग से सुनें। यह पितृगण को अतिप्रिय है। चैत्र-वैशाख अमावस्या में पितृपूजा करे। अपनी धनशक्ति के अनुरूप पितरों का पार्वण श्राद्ध, ब्राह्मणों को भोजन तथा गौ प्रदान करे। ये प्रति अमावस्या में भी अतीव पुण्यदा है। ज्येष्ठ अमावस्या को सावित्री व्रत करे। इसका विधान ज्येष्ठ पूर्णिमावत् है। हे नारद! हे द्विज! आषाढ़ी, श्रावणी, भाद्रपदी अमावस्या पर पितृश्राद्ध, दान, होम देवार्चन का अनन्त फल होता है।।८२-८६।।

भाद्रदर्शेऽपराह्ले तु तिलक्षेत्रसमुद्भवान्। विरिञ्चिमनुनामन्त्र्य हुंफट् छिन्नान्कुशान् द्विज॥८७॥
सर्वदा सर्वकार्येषु योजयेदेकदाऽपरान्। इषामायां विशेषेण पितृणां श्राद्धतर्पणम्॥८८॥
विधेय जाह्नवीतोये मुक्तिदं च गयास्थले। ऊर्ज्जामायां दीपदानं देवकारगृहेषु च॥८९॥
नद्यारामतडागेषु चैत्यगोष्ठापणेषु च। समर्चनं तथा लक्ष्म्याः स्वर्णरौप्ये कृताकृते॥९०॥
द्यूतं च वर्षफलदं जये चापि पराजये। गवां पूजात्र विहिता शृङ्गाद्यङ्गानुरञ्जनैः॥९१॥

भाद्री अमावस्या तिथि पर तिल के खेत में उत्पन्न कुश को "हुं फट्" मन्त्र से उखाड़े। ये कुश सभी कार्य में उपयोग में आते हैं। आश्विन अमावस्या को गंगा तट तथा गया क्षेत्र में पितृश्राद्ध हेतु तथा तर्पण हेतु मोक्षप्रद कहा गया है। कार्तिक अमावस्या में देवालय, गृह, नदी, उपवन, तालाब, ग्राम के महावृक्ष, गोष्ठ, व्यवसाय स्थल पर दीप जलाये। स्वर्ण किंवा रजत की लक्ष्मी पूजा करे। इस तिथि पर द्यूत-क्रीड़ा भी फलद है। भले ही जय अथवा पराजय हो। इस दिन गो पूजा भी विहित है। उनके शृंगादि अंगों को रंगे।।८७-९१।।

यवसान्नादिदानैश्च नमस्कारप्रदक्षिणैः। मार्गेऽपि पितृपूजा स्याच्छ्राद्धैर्ब्राह्मणभोजनैः॥९२॥
ब्रह्मचर्यादिनियमैर्जपहोमार्चनादिभिः। पौषे माघे च विप्रेन्द्र पितृश्राद्धं फलाधिकम्॥९३॥

अमायां कर्णपातार्कयुक्तायां तु गयाधिकम्।
फाल्गुने केवलं श्राद्धं द्विजानां भोजनं तथा॥९४॥
दानादि सर्वफलदं दर्शे सोमेऽधिकं फलम्।
इत्थं संक्षेपतः प्रोक्तं तिथिकृत्यं मुने तव॥९५॥
सर्वत्रापि विशेषोऽस्ति स पुराणान्तरे स्थितः॥९६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितपौर्णमास्यमावास्याव्रतकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥

—***—

उनको घास तथा अन्नादि देकर उनको नमस्कार करे तथा प्रदक्षिणा करे। अग्रहायण अमावस्या में पितृपूजा, श्राद्ध तथा ब्राह्मणादि को भोजन कराये। ब्रह्मचर्यादि नियम पालन करे। जप, होम अर्चनारत रहे। पौष मास तथा माघ मास की अमावस्या को पितृश्राद्ध का अधिक फल है। जब फाल्गुनी अमावस्या पर श्रवण,

व्यतीपात, सूर्य योग हो, तब समान्यतः किया जाने वाला श्राद्ध तथा ब्राह्मण भोजन गया श्राद्ध से अधिक फलप्रद है। फाल्गुन में अमावस्या पर श्राद्ध, ब्राह्मण भोजन, दानादि सभी फलद हैं। सोमवती अमावस्या तिथि पर दानादि का प्रभूत फल मिलता है। सभी तीर्थों के विशेषत्व को अन्य पुराणों में कहा गया है।।९२-९६।।

।।१२४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवर्षि सनकादि तथा नारद का प्रस्थान, नारदपुराण का माहात्म्य कथन

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वा मुनिना हि पृष्टास्ते वै कुमाराः किल नारदेन।
सम्पूजिताः शास्त्रविदां वरिष्ठाः कृताह्निका जग्मुरुमेशलोकम्।।१।।
तत्रेशमग्न्यर्कनिभैर्मुनीन्द्रैः श्रीवामदेवादिभिरर्चिताङ्घ्रिम्।
सुरासुरेन्द्रैरभिवन्द्यमुग्रं नत्वाज्ञया तस्य निषेदुरुर्व्याम्।।२।।
श्रुत्वाथ तत्राखिलशास्त्रसारं शिवागमं ते पशुपाशमोक्षणम्।
जग्मुस्ततो ज्ञानघनस्वरूपा नत्वा पुरारिं स्वपितुर्निकाशम्।।३।।

सूत जी कहते हैं—नारद मुनि ने आदर पूर्वक जो कुछ पूछा था, उसका शास्त्रवेत्ता श्रेष्ठ कुमार देवर्षिगण ने इस प्रकार से वर्णन किया तथा वे सभी शिवलोक चले गये। वहां जाकर उन्होंने सूर्य तथा अग्नि के समान तेजवान् मुनीन्द्र वामदेव आदि द्वारा पूजित चरणों वाले, देवासुर स्तुत अमित तेजस्वी शंकर को प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा होने पर वे भूमि पर बैठे। अन्ततः कुमारों ने सर्वशास्त्रसार, यमपाशभय, पशुपाशमोचक शिवपुराण को महादेव से श्रवण किया तदनन्तर महाज्ञानी चारों कुमार ऋषिगण त्रिपुरारी की चरण वन्दना करने के उपरान्त ब्रह्मलोक पिता ब्रह्मा के पास गये।।१-३।।

तत्पादपद्मे प्रणतिं विधाय पित्रापि सत्कृत्य सभाजितास्ते।
लब्ध्वाशिषोऽद्यापि चरन्ति शश्वल्लोकेषु तीर्थानि च तीर्थभूताः।।४।।
जग्मुस्ततो वै बदरीवनान्ते सुरेन्द्रवर्गैरुपसेव्यमानम्।
दध्युश्चिरं विष्णुपदाब्जमव्ययं ध्यायन्ति यद्यतयो वीतरागाः।।५।।

वहां उन्होंने पिता की चरण वन्दना किया तथा उनका स्नेहमय आशीर्वाद प्राप्त करके वे तीर्थमूर्त्ति कुमार ऋषिगण त्रैलोक्यस्थ तीर्थसमूह की यात्रा करने लगे। तदनन्तर वे देवर्षिगण देवेन्द्र वृन्द सेवित

बदरिकाश्रम जाकर वहां अविनाशी विष्णु चरणारविन्द के ध्यान में लीन हो गये। अव्यय देव के उन चरणों का ध्यान वीतराग ऋषिगण करते रहते हैं।।४-५।।

नारदोऽपि ततो विप्रा कुमारेभ्यः समीहितम्।
लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं भृशं प्रीतमना ह्यभूत्।।६।।

स तस्मात्स्वर्णदीतीरादागत्य पितुरन्तिके। प्रणम्य सत्कृतः पित्रा ब्रह्मणा निषसाद च।।७।।

कुमारेभ्यः श्रुतं यच्च ज्ञानं विज्ञानसंयुतम्।
वर्णयामास तत्त्वेन सोऽपि श्रुत्वा मुमोद च।।८।।

हे विप्रगण! उधर नारद चिर अभिलषित ज्ञान-विज्ञान का लाभ उन कुमार ऋषियों से पाकर प्रीतिचित्त हो गये। वे स्वर्गगंगा के तट से ब्रह्मसभा पहुंचे। वहां पिता को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से बैठ गये। वहां पर नारद ने कुमारगण से प्राप्त ज्ञान का वर्णन पिता ब्रह्मा से किया, जिसे सुनकर ब्रह्मा मुदित हो गये।।६-८।।

अथ प्रणम्य शिरसा लब्धाशीर्मुनिसत्तमः। आजगाम च कैलाशं मुनिसिद्धनिषेवितम्।।९।।
नानाश्चर्यमयं शश्वत्सर्वर्त्तुकुसुमद्रुमैः। मन्दारैः पारिजातैश्च चम्पकाशोकवञ्जुलैः।।१०।।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापक्षिगणावृतैः। वातोद्धूतशिखैः पान्थानाह्वयद्भिरिवावृतम्।।११।।
नानामृगगणाकीर्णं सिद्धकिन्नरसङ्कुलम्। सरोभिः स्वच्छसलिलैर्लसत्काञ्चनपङ्कजैः।।१२।।

तदनन्तर चतुरानन की चरण वन्दना करके तथा उनसे आशीर्वाद लेकर ऋषि प्रवर नारद मुनिगण तथा सिद्धों से सेवित कैलास पर्वत गये, जहां सब कुछ आश्चर्यमय है। वहां सर्वऋतु में खिलने वाले पुष्प सदा विकसित रहते हैं। वहां मन्दार, पारिजात, चम्पा, अशोक, मौलश्री तथा नाना वृक्षों की शाखा वायु प्रवाह से हितली रहती है, मानो वे वृक्ष पथिकों को आमन्त्रित कर रहे हैं। वहां नाना प्रकार के पक्षियों तथा पशुओं का समूह विचरणरत रहता है। वहां सिद्धों, किन्नरों का निवास है। वहां के सरोवर स्वच्छ जल से भरे तथा स्वर्णकमलों से युक्त हैं।।९-१२।।

शोभितं सारसैर्हंसैश्चक्राह्वाद्यैर्निनादितम्। स्वर्द्धनीपातनिर्घुष्टं क्रीडद्भिश्चाप्सरोगणैः।।१३।।
सलिलेऽलकनन्दायाः कुचकुङ्कुमपिङ्गले। आमोदमुदितैर्नागैः सलिलैः पुष्करोद्धृतैः।।१४।।
स्नापयद्भिः करेणूश्च कलभांश्च समाकुले। अथ श्वेताभ्रसदृशे शृङ्गे तस्य च भूभृतः।।१५।।
वटं कालाभ्रसदृशं ददर्श शतयोजनम्। तस्याधस्तात्समासीनं योगिमण्डलमध्यगम्।।१६।।

वहां सारस, हंस चक्रवाकों का आह्लादमय निनाद होता रहता है। आकाश गंगा की धारा का कलकल निनाद वहां श्रुतिगोचर होता रहता है। उसमें अप्सरायें क्रीड़ारत रहती हैं। वह अलकनन्दा का जल अप्सराओं के कुचों पर लगे कुंकुम के कारण पिंगल वर्ण हो जाता है। वहां हाथियों का झुण्ड जल विहार का आमोद-प्रमोद करता रहता है तथा सूड़ों में जल भर कर हाथी हथिनियों तथा बच्चों को स्नान कराते रहते हैं। ऐसे कैलास पर्वत के श्वेतमेघवत् धवल वर्ण शिखर पर काले बादल के समान वटवृक्ष के नीचे जटाधारी भस्म से सर्वांग को भूषित करने वाले चन्द्रशेखर भगवान् महेश्वर योगियों के मध्य विराजमान थे।।१३-१६।।

कपर्दिनं विरूपाक्ष व्याघ्रचर्माम्बरावृतम्। भूतिभूषितसर्वाङ्गं नागभूषणभूषितम्।।१७।।

रुद्राक्षमालया शश्वच्छोभितं चन्द्रशेखरम्। तं दृष्ट्वा नारदो विप्रा भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥१८॥
नानाशिरसा तस्य पादयोर्जगदीशितुः। ततः प्रसन्नमनसा स्तुत्वा वाग्भिर्वृषध्वजम्॥१९॥
निषसादाज्ञया स्थाणोः सत्कृतो योगिभिस्तदा।
अथापृच्छच्च कुशलं नारदं जगतां गुरुः॥२०॥

हे विप्रप्रवर! भगवान् शंकर का दर्शन पाकर नारद नतशिर हो गये। उन्होंने अपना शीश जगदीश शिव के चरणों पर रखकर उनको प्रणाम किया तथा प्रफुल्ल होकर उनका स्तव करने लगे। वहां स्थित योगीगण से सम्मानित होकर देवर्षि नारद शिवाज्ञा से आसनासीन हो गये। तदनन्तर जगद्गुरु ने नारद का कुशल-क्षेम पूछा॥१७-२०॥

स च प्राह प्रसादेन भवतः सर्वमस्ति मे। सर्वेषां योगिवर्याणां शृण्वतां तत्र वाडवाः॥२१॥
पप्रच्छ शाम्भवं ज्ञानं पशुपाशविमोक्षणम्।
स शिवः सादरं तस्य भक्त्या सन्तुष्टमानसः॥२२॥
योगमष्टाङ्गसंयुक्तं प्राह प्रणतवत्सलः। स लब्ध्वा शाम्भवं ज्ञानं शङ्कराल्लोकशङ्करात्॥२३॥
सुप्रसन्नमना नत्वा ययौ नारायणान्तिकम्। तत्रापि नारदोऽभीक्ष्णं गतागतपरायणः॥२४॥
सेवितं योगिभिः सिद्धैर्नारायणमतोषयत्। एतद्वः कीर्तितं विप्रा नारदीयं महन्मया॥२५॥

देवर्षि नारद ने उत्तर दिया—"आपकी कृपा से सब मंगल है।" तदनन्तर समस्त योगीवरों के सामने नारद ने पशुपाश-विमोक्षण नामक शांकर ज्ञान के सम्बन्ध में शिव से पूछा। नारद की भक्ति से प्रसन्न होकर प्रणतवत्सल प्रभु ने सादर अष्टांग योग का उपदेश नारद को प्रदान किया। सबका कल्याण करने वाले महेश्वर से यह शांकर ज्ञान पाकर नारद ने मुदित मन से भगवान् को प्रणाम किया तथा नारायण के यहां चले गये। वहां सर्वगामी नारद ने योगीगण तथा सिद्धों से सेवित नारायण देव को भी प्रसन्न किया। हे विप्रगण! इस प्रकार मैंने नारदीय पुराण का वर्णन आप लोगों से कर दिया॥२१-२५॥

उपाख्यानं वेदसमं सर्वशास्त्रनिदर्शनम्। चतुष्पादसमायुक्तं शृण्वतां ज्ञानवर्द्धनम्॥२६॥
य एतत्कीर्तयेद्विप्रा नारदीयं शिवालये। समाजे द्विजमुख्यानां तथाकेशवमन्दिरे॥२७॥
मथुरायां प्रयागे च पुरुषोत्तमसन्निधौ। सेतौ काञ्च्यां कुशस्थल्यां गङ्गाद्वारे कुशस्थले॥२८॥
पुष्करेषु नदीतीरे यत्र कुत्रापि भक्तिमान्।
स लभेत्सर्वयज्ञानां तीर्थानां च फलं महत्॥२९॥

यह उपाख्यान वेद के समान है तथा सर्वशास्त्र निदर्शन रूप है। यह चार पाद से युक्त तथा सुनने पर ज्ञानवर्द्धक है। जो मनुष्य भक्तिभाव से इस उपाख्यान नारदीय को शिवालय, श्रेष्ठ विप्रसमाज, विष्णु मन्दिर, मथुरा, प्रयाग, पुरुषोत्तम क्षेत्र, सेतुबन्ध, कांची, द्वारका, हरिद्वार, कुशस्थल, पुष्कर अथवा नदी तटों पर पढ़ता है, सुनाता है, वह समस्त यज्ञ, तीर्थ दान तथा तप के श्रेष्ठतम फल को प्राप्त करता है॥२६-२९॥

दानानां चापि सर्वेषां तपसां वाप्यशेषतः। उपवासपरो वापि हविष्याशी जितेन्द्रियः॥३०॥
श्रोता चैव तथा वक्ता नारायणपरायणः। शिवभक्तिरतो वापि शृणवन् सिद्धिमवाप्नुयात्॥३१॥

अस्मिन्नशेषपुण्यानां सिद्धिनां च समुद्भवः। कथितः सर्वपापघ्नः पठतां शृण्वतां सदा॥३२॥

उपवासी, हविष्याशी, इन्द्रिय संयमी नारायण-शिव भक्तगण जो इस पुराण को पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे सिद्धिलाभ करते हैं। यह उपाख्यान समस्त धर्म तथा सिद्धियों की उत्पत्ति तथा समन्वित है। यह पाठक तथा श्रोता के सभी पापों का नाश करती है।।३०-३२।।

कलिदोषहरं पुंसां सर्वसम्पत्तिवर्द्धनम्। सर्वेषामीप्सितं चेदं सर्वज्ञानप्रकाशकम्॥३३॥

शैवानां वैष्णवानां च शाक्तानां सूर्यसेविनाम्।
तथैव गाणपत्यानां वर्णाश्रमवतां द्विजाः॥३४॥
तपसां च व्रतानां च फलानां सम्प्रकाशकम्।
मन्त्राणां चैव यन्त्राणां वेदाङ्गानां विभागशः॥३५॥

तथागमानां सांख्यानां वेदानां चैव सङ्ग्रहम्। य एतत्पठते भक्त्या श्रृणयाद्वा समाहितः॥३६॥

यह नारदीय उपाख्यान कलिजन्यदोषहारी, सर्वसम्पदावर्धक, निखिल ज्ञानप्रकाशक तथा अभीप्सित फलदायक है। हे द्विजवृन्द! यह उपाख्यान शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, वर्णाश्रमी सभी के लिये वांछित शास्त्र है। यह समस्त ज्ञान-तप तथा व्रतफल का उद्बोधक प्रकाशक है। इसमें मन्त्र, यन्त्र, वेद, वेदांग, आगम, सांख्य का संग्रह भी है। जो इसे समाहित होकर पढ़ता अथवा सुनता है।।३३-३६।।

स लभेद्वाञ्छितान्कामान्देवादिष्वपि दुर्लभान्।
श्रुत्वेदं नारदीयं तु पुराणं वेदसम्मितम्॥३७॥

वाचकं पूजयेद्भक्त्या धनरत्नांशुकादिभिः। भूमिदानैर्गवां दानै रत्नदानैश्च सन्ततम्॥३८॥

हस्त्यश्वरथदानैश्च प्रीणयेत्सततं गुरुम्। यस्तु व्याकुरुते विप्राः पुराणां धर्मसङ्ग्रहम्॥३९॥

चतुर्वर्गप्रदं नृणां कोऽन्यस्तत्सदृशो गुरुः। कायेन मनसा वाचा धनाद्यैरपि सन्ततम्॥४०॥

प्रियं समाचरेत्तस्य गुरोर्द्धर्मोपदेशिनः। श्रुत्वा पुराणं विधिवद्धोमं कृत्वा सुरार्चनम्॥४१॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छतं मिष्टान्नपायसैः।
दक्षिणां प्रददेच्छक्त्या भक्त्या प्रीयेत माधवः॥४२॥

उसे सभी इच्छित देवदुर्लभ फल की प्राप्ति होती है। इस वेदसम्मत नारदीय पुराण को सुनकर धन, रत्न, वस्त्र आदि से भक्तिभाव से वाचक की पूजा करे। भूमिदान, गोदान, रत्नदान, अश्व, हस्ति, रथ आदि दान देकर सदा गुरु को प्रसन्न करे। हे विप्रगण! चतुर्वर्ग फलप्रद धर्मसंग्रह रूप इस पुराण का उपदेश प्रदाता सर्वोत्तम गुरु है। वैसा गुरु अन्य कोई नहीं है। देह, मन, वाणी और धन से व्यक्ति सदा प्रिय आचरण करे। पुराण सुनकर सविधि होम तथा देवार्चन करे। तदनन्तर १०० ब्राह्मणगण को मधुरान्न तथा पायस भोजन कराये। उनको भक्तिभावेन दक्षिणा देना चाहिये। भक्ति से ही माधव प्रसन्न हो जाते हैं।।३७-४२।।

यथा श्रेष्ठा नदी गङ्गा पुष्करं च सरो यथा। काशी पुरी नगो मेरुर्देवो नारायणो हरिः॥४३॥

कृतं युगं सामवेदो धेनुर्विप्रोऽन्नमम्बु च।
मार्गो मृगेन्द्रः पुरुषोऽश्वत्थः प्रह्लाद आननम्॥४४॥

उच्चैःश्रवा वसन्तश्च जपः शेषोऽर्यमा धनुः।
पावको विष्णुरिन्द्रश्च कपिलो वाक्पतिः कविः॥४५॥
अर्जुनो हनुमान्दर्भश्चित्तं चित्ररथोऽम्बुजम्। उर्वशी काञ्चनं यद्वच्छ्रेष्ठाश्चैते स्वजातिषु॥४६॥
तथैव नारदीयं तु पुराणेषु प्रकीर्तितम्।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु सर्वेषां वो द्विजोत्तमाः॥४७॥
गमिष्यामि गुरोः पार्श्वं व्यासस्यामिततेजसः।
इत्युक्त्वाभ्यर्चितः सूतः शौनकाद्यैर्महात्मभिः॥४८॥

जैसे नदियों में गंगा, सरोवरों में पुष्कर, पुरियों में काशी, पर्वतों में मेरु, देवगण में नारायण हरि, युगों में सत्ययुग, वेदों में सामवेद तथा अपनी-अपनी जाति में धेनु, ब्राह्मण, अन्न, जल, योग, सिंह, पुरुष, अश्वत्थ, मुख, उच्चैश्रवा, वसंत, जप, अनन्तशेष, अर्यमा, धनु, पावक, विष्णु, इन्द्र, कपिल, बृहस्पति, शुक, अर्जुन, हनुमान, कुश, चित्त, चित्ररथ, कमल, उर्वशी तथा स्वर्ण श्रेष्ठ है, तदनुरूप सभी पुराणों में नारदीय पुराण श्रेष्ठ हैं। हे ब्राह्मणवृन्दे! आपका कल्याण हो, शान्ति प्राप्त हो। अब मैं अमित तेज पूर्ण गुरु व्यास के पास जा रहा हूं। यह कहने पर सूत जी शौनकादि महात्माओं द्वारा अर्चित किये गये।।४३-४८।।

आज्ञप्तश्च पुनः सर्वैर्दर्शनार्थ गुरोर्ययौ। तेऽपि सर्वे द्विजश्रेष्ठाः शौनकाद्याः समाहिताः।
श्रुतं सम्यगनुष्ठाय तत्र तस्थुश्च सत्रिणः॥४९॥
कलिकल्मषविषनाशनं हरिं यो जपपूजनविदिभेषजोपसेवी।
स तु निर्विषमनसा समेत्य यागं लभते सततमभीप्सितं हि लोकम्॥५०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराण के पूर्वार्ध मे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे पुराणमहिमावर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२५।।

तदनन्तर ऋषियों से आज्ञा लेकर गुरु दर्शनार्थ सूत जी चले गये। वे सभी श्रेष्ठ शौनकादि ब्राह्मण समाहित होकर पुराणोक्त यज्ञानुष्ठान करने लगे। जो मानव कलिरूप विषनाशक हरि के जपपूजन रूप भेषज का सेवन करता है, वह पापरूपी विष रहित होकर सतत् यागपुण्य का लाभ करके वांछित लोक गमन करता है।।४९-५०।।

।।१२५वां अध्याय समाप्त।।

।।पूर्वभाग सामप्त।।